वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी
भाषाटीकासहिता ।

॥ श्रीः ॥

महामहोपाध्यायश्रीमद्भट्टोजिदीक्षितविरचिता-

वैयाकरणसिद्धांतकौमुदी

सञ्जीविनीनामिकया

हिन्दीभाषाटीकया,

मुरादाबादनिवासि-यजुर्वेदभाष्यकार-दयानन्दतिमिरभास्क-
रादिनिर्मातृ-इतिहासपुराणाद्यनुवादक-विद्यावारिधि-
भारतीय-श्रीसनातनधर्ममहोपदेशकपण्डितसुखा-
नन्दमिश्रात्मज-

पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतया

सहिता।

शिक्षा १ अष्टाध्यायीसूत्र २ गण ३ धातु ४ लिङ्गानुशासन ५ कौमु-
द्यन्तर्गतवार्तिक ६ परिभाषा ७ उणादिसूत्र ८ फिट्सूत्र
९ पाठैः शिक्षालिङ्गानुशासनवर्ज्यैमुक्ताष्टाध्याय्यादि
सूचीभिश्च विभूषिता च।

सा च
क्षेमराज श्रीकृष्णदास इत्यनेन
मुम्बय्यां
(खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटालेन)
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालये
मुद्रयित्वा प्रकाशिता।

प्रथमसंस्करणम्।

विक्रमाब्दाः १९७१।

पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्र-मुरादाबाद.

SIDDHANTA KAUMUDI

OR

BHATTOJI DIKSHIT'S VRITTI

ON

PANINI'S VYAKARANA SUTRAS

WITH

THE HINDI TRANSLATION

BY

PANDIT JWALAPRASAD MISRA
VIDYABARIDHI

OF

MORADABAD.
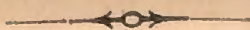
PUBLISHED BY

Khemraj Shrikrishnadass,

SHRI. VENKATESHWAR STEAM PRESS,

BOMBAY.

1914.

भूमिका ।

गौरि गिरा गणपति सुमरि, शम्भुचरण शिरनाय ।
पाणिनीयसिद्धान्तकी, टीका लिखत बनाय ॥

संस्कृतसाहित्यमें वेदार्थ जाननेके निमित्त शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष यह छः वेदाङ्ग प्रसिद्ध हैं, इनमें 'मुखं व्याकरणं प्रोक्तम्' इस प्रमाणसे व्याकरणको वेदका मुख कहाहै, जिस प्रकार मुखसे शब्दावली निर्गत होकर हृदयगत समस्त अभिप्रायोंको प्रगट करदेतीहै, इसी प्रकार व्याकरणशास्त्र वेदादि ग्रन्थोंके अभिप्राय (अर्थ) और शुद्धताका पूर्णज्ञान प्राप्त करादेताहै, महाभाष्यमें व्याकरणशास्त्रके अध्ययनकरनेके जो प्रयोजन लिखेहैं, उनका कुछ सारांश यहां प्रगट करतेहैं वहां लिखाहै कि लौकिक और वैदिक भेदसे दो प्रकारके शब्द होतेहैं वही इस शास्त्रका विषय है, उनका ज्ञान ही इस शास्त्रका प्रयोजन है, इसका जिज्ञासु अधिकारी है वे प्रयोजन अठारह प्रकारके हैं। **१ वेदरक्षा,** वेदोंकी रक्षा यथा-'भद्रं कर्णेभिः' इत्यादिवैदिक प्रयोगोंमें कर्णेभिः इसका व्याकरणद्वारा शुद्धताका ज्ञान, **२ ऊहः**-अर्थात् पद विभक्ति आदिका अपने प्रयोजनके अनुसार वेदमें परिवर्तन, यथा-'अग्नये त्वा जुष्टन्निर्वपामि, इसमें सूर्यके उद्देश्यसे कहनाहो तो 'सूर्याय त्वा जुष्टम्' इत्यादि कहना ऊह कहाताहै, **३ आगमः**-वर्णादिकी प्राप्ति यथा-'विश्वेदेवासः' इत्यादिमें "आज्जसेरसुक्" इससे असुक्‌का आगम व्याकरणसे सिद्ध होताहै, **४ लाघवम्**-अर्थात् ब्राह्मणको निष्कारण षडङ्गवेद पढना और जानना उचित है सो इस शास्त्रसे उन सबके लघु-उपायसे ज्ञानकी प्राप्ति, **५ असन्देहः**-अर्थात् सन्देहका दूर होना, यथा-'स्थूलपृषती' इसमें स्थूला चासौ पृषती अथवा स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सा, ऐसा तत्पुरुष वा बहुव्रीहि कौन समास करैं, इस सन्देह निवृत्तिमें व्याकरणकी स्वरप्रक्रियासे निश्चयका ज्ञान, **६ म्लेच्छताऽसम्पत्तिः**-अर्थात् वैदिक शब्द अशुद्ध उच्चारणसे म्लेच्छता प्राप्त होतीहै उसका अभाव, यथा--'हे ३ रयः' के स्थानमें 'हेलयः' प्रयोग म्लेच्छ अपशब्द है, **७ स्वरवर्णदोषरहितशब्दप्रयोगः**-अर्थात् स्वरवर्णके दोषसे रहित शब्दोंका प्रयोग, **८ सार्थकवेदज्ञानम्**-अर्थात् अर्थके सहित वेदका ज्ञान 'योर्थवित्सकलं भद्रमश्नुते' इस श्रुतिके अनुसार वेदार्थका ज्ञाता सकलकल्याणोंको प्राप्त होताहै, **९ सुशब्दापशब्दप्रयोगे धर्माधर्मावाप्तिः**-अर्थात् सुशब्द और अपशब्दके प्रयोगसे धर्म और अधर्मकी प्राप्ति, उसमें अधर्मसे बचना, **१० प्रत्यभिवादे नाम्नि प्लुतज्ञानम्**-अर्थात् प्रत्यभिवादवाक्यमें नाममें प्लुतकाज्ञान, **११ सविभक्तिकप्रयाजादिमन्त्रकरणम्**-अर्थात् वेदोंके प्रयाजादिमन्त्रोंको विभक्तिसहित उच्चारण करना, **१२ पदशः स्वरशोऽक्षरशश्च वाचो विधानम्**-अर्थात् पद स्वर और अक्षरोंको विभाग करके प्रयोग करना, **१३ चतुर्विधपदजातकालीनत्यानित्यशब्दविभक्तिस्थानज्ञानम्**-अर्थात् नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपातरूप चारप्रकारके पदोंका ज्ञान, भूत भविष्य वर्त्तमानाकालज्ञान, व्यङ्ग्यव्यञ्जकशब्दोंका ज्ञान, सातविभक्तिका ज्ञान वर्णोंके स्थानादिका ज्ञान, अथवा परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, यह चार अंशवाला नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपातात्मकपदोंका ज्ञान, **१४ वाग्विस्तारसम्प्राप्तिः**-अर्थात् प्रकृति प्रत्यय आदिके ज्ञानसे वाणीके विस्तारकी सम्प्राप्ति, **१५ असाधुशब्देभ्यो विविच्य साधुशब्दपृथक्करणम्**-अर्थात् अशुद्ध शब्दोंके समूहोंमेंसे निकालकर साधुशब्दोंका पृथक् करना, **१६ अपशब्दप्रयोगजन्यप्रत्यवायपरिहारकप्रायश्चित्तानाचरणम्**,-अर्थात् अपशब्दोंके प्रयोगसे उत्पन्न प्रत्यवायके निवृत्त होनेके निमित्त प्रायश्चित्तका अनाचरण अर्थात् (आहिताग्निरपशब्दं प्रयुज्य प्रायश्चित्ती स्यात्) आहिताग्नि अपशब्दका प्रयोग करनेसे प्रायश्चित्ती होता है सो नहीं होना, **१७ नामकरणेषु विहितनामस्वरूपज्ञानम्**-अर्थात् नाम रखनेके समय शास्त्रविहित कृदन्तनामके स्वरूपका ज्ञान, **१८ सर्वविभक्त्यन्तानां सम्यगुच्चारणम्**-अर्थात् सम्पूर्ण विभक्त्यन्त पदोंका सम्यक् उच्चारण करना, यह अठारह प्रकारके प्रयोजन हैं व्याकरणशास्त्रके विना यह प्रयोजन निर्वाह नहीं होसकते इस कारण व्याकरण अवश्य पढना चाहिये किसी पंडितने अपने पुत्रसे कहा था कि, 'यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् । स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत् ॥' अर्थात् हे पुत्र यदि तुम बहुत न पढ सक्ते तो भी व्याकरण पढो जिससे स्वजन (निजकुटुम्बी) इसके स्थानमें श्वजन (कुत्ता) सकल (सब) इसके स्थानमें शकल (टुकडा) सकृत् (एकबार) इसके स्थान

शंकृत् (विष्ठा) ऐसा विपरीत अर्थवाची शब्द सकारके स्थानमें शकार उच्चारणसे न होजाय ।

भाष्यकार यहां तक लिखगयेहैं कि, अपशब्द बोलनेसे म्लेच्छता आजातीहै * हम म्लेच्छ न होजांय इस कारण व्याकरण अवश्य पढना चाहिये ।

इस शास्त्रके मुख्य ग्रन्थ अष्टाध्यायी और महाभाष्य हैं, महर्षि पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायीग्रन्थपर महर्षि पतञ्जलिकी विस्तृत व्याख्याका नाम महाभाष्य है, एक टीका जो पाणिनि सूत्रोंपर है वह काशिकानामसे विख्यात है, अष्टाध्यायीसे पहले [ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम् । सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम्] ऐन्द्र, चान्द्र, काशकृत्स्न, कौमार, सारस्वत, शाकटायन, आपिशल और शाकल यह आठ व्याकरण प्रचलित थे, परन्तु पाणिनिके व्याकरणके सामने इनका प्रचार बहुत घटगया और इसी अष्टाध्यायी तथा भाष्यपर अनेक प्रकारकी टीका टिप्पणी होनेलगीं पीछे महामहिम पण्डितप्रवर श्रीभट्टोजिदीक्षितने उस अष्टाध्यायीके अनुसार प्रक्रियाकी कठिनता विचारकर सूत्रोंका क्रम छोड संधि, षड्लिङ्ग, स्त्रीप्रत्ययादि प्रकरण बांधकर उस विषयके समस्त सूत्र उस प्रकरणमें एकत्र करके उनकी वृत्ति लिखकर, और शंकासमाधानरूप पूर्वपक्ष उत्तरपक्षरूपनियामक पंक्ति (फक्किका) सन्निविष्ट करके विद्यार्थियोंकी बोधवृद्धिके निमित्त एक नवीनरूपसे इस ग्रन्थको प्रकाशित किया और इसका नाम—

"**वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी ।**"

रक्खा, इस ग्रन्थके प्रकाशित होते ही इसका प्रचार यहांतक बढा कि, इसके पूर्वकी व्याख्यायें एकप्रकार लोपसी होगईं, और कौमुदीपर बालमनोरमा प्रौढमनोरमा आदि अनेक प्रकारके टीके टिप्पण होनेलगे, परन्तु क्या सिद्धान्तकौमुदी ऐसी सरल है कि, सब प्रकारके विद्याभिलाषी इसमें सहसा प्रवेश करसकें ? नहीं यह भी एक महाकठिन ग्रन्थ है, इसी कारण इसमें प्रवेश करने और विद्यार्थियोंको व्याकरणका मर्म समझानेके लिये भट्टोजिके शिष्य वरदराजने मध्य. और लघुकौमुदीके नामसे दो ग्रन्थ इसमेंसे उद्धार किये उनमेंसे लघुकौमुदीका पठन पाठन प्रायः अनेक संस्कृतपाठशालाओंमें आरंभिक अवस्थामें होताहै और युक्तप्रदेशकी यूनीवर्सिटीने काशीकी प्रथमापरीक्षामें इसको स्थानदान कियाहै और प्रतिवर्ष अनेक विद्यार्थी प्रथमापरीक्षामें उत्तीर्ण होकर व्याकरणशास्त्रमें प्रवेशकी योग्यता प्राप्त करते हैं ।

यद्यपि सिद्धान्तकौमुदी एक नव्यशैलीपर व्याकरणके बोधके निमित्त निर्मित हुईहै और इसके द्वारा पढनेवालोंको पूरा बोध होता है, तथापि इसकी शब्दसाधनिका और विशेषकर पंक्तियें बहुत ही जटिल हैं, एक २ शब्दके साधनमें पन्द्रह २ वीस २ सूत्र लगजाते हैं, और पूर्वापरविषयकी शंकासमाधानके विना इसकी पंक्तिये वा परिभाषाओंका लगना बहुत ही कठिन है, एकवार अध्यापकके साधनका करादेनेपर विद्यार्थियोंको यदि वह विषय समझमें न आवै तो अध्यापक उस विषयमें फिर अडचन मानते हैं, तथा समय भी व्यय होताहीहै कितने विद्यार्थी तो भय वा संकोचके कारण दूसरीवार पूछते ही नहीं यहांतक कि उस विषयमें अधूरे रहजाते हैं, इस कारण अध्यापक और विद्यार्थी दोनों व्यक्तियोंके हितकी बात विचारकर मैंने प्रथम लघुकौमुदीका शब्दसाधनिकाके सहित भाषानुवाद किया, उससे संस्कृत जाननेकी इच्छावालोंको इतना लाभ हुआ कि, कितने अङ्गरेजी पढकर संस्कृतमें परीक्षा देनेवाले महाशयोंने यहांतक लिखा कि हमने आपकी भाषानुवाद कीहुई कौमुदीको स्वयं पढकर प्रथमपरीक्षा उत्तीर्ण की, तथा दूसरे विद्यार्थियोंको भी इससे बहुत बडा लाभ पहुँचा है और जबसे यह टीका हुआ तबसे आजतक इसकी कई आवृत्ति होचुकी हैं ।

कुछ दिनोंसे मेरे पास इस विषयके बहुतसे पत्र आते रहे कि, सिद्धान्तकौमुदीका भाषानुवाद किया जाय तो व्याकरणप्रेमियोंका बहुत बडा उपकार हो, और यह जिज्ञासा केवल विद्यार्थियोंको ही नहीं थी अनेक विद्वानोंकी भी पत्रोंद्वारा यह इच्छा जानी गई कि सिद्धान्तकौमुदीका भाषानुवाद अवश्य होना चाहिये, जब बहुत सज्जनों और महानुभावोंकी रुचि इसमें पाई गई तब मैंने भी इस विषयमें विचार किया और मुझे भी यह कार्य लोकहितकर प्रतीत हुआ; परन्तु सिद्धान्तकौमुदीका अनुवाद करना कोई साधारण काम नहीं है पाणिनिसूत्रोंका मात्र अर्थ और अनुवृत्ति तथा दीक्षितजीकी फक्किकाओंका अर्थ समझा देना क्या कोई साधारण बात है, केवल सूत्र और पंक्तियोंका अर्थ प्रकाशित करना भी कठिन काम है, तथापि परमेश्वरके अनुग्रह गुरुचरणोंकी कृपा और सज्जनोंके अनुरोधसे मैं इस दुरूहकार्यमें प्रवृत्त हुआ ।

पूर्वमें मेरा विचार था कि, आरम्भसे अन्ततक लघुकौमुदीकी समान इसकी समस्तसाधनिका की जाय परन्तु ऐसा करनेसे ग्रन्थका बहुत बडा विस्तार होजाता, और फिर सुलभ मूल्य न होनेसे साधारणविद्यार्थियोंको इसकी

* म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः म्लेच्छा मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम् ।

प्राप्ति दुर्लभ होजाती, एकप्रकारसे फिर भी ग्रन्थ अलभ्य होजाता, और सिद्धान्तकौमुदीके टीकेमें ऐसा होना भी न चाहिये कि साधारण सूत्रोंतकका वार २ उल्लेख कियाजाय, कारण कि, जबतक लघुकौमुदी न आती हो तबतक सिद्धान्तकौमुदीमें यथेष्ट प्रवेश नहीं होसकता, और लघुके सूत्र याद होनेसे उतने सूत्रोंको पढनेवाले स्वयं ही जान सकतेहैं, और यदि इस ग्रन्थमें साधनिका सर्वथा त्यागदीजाय तो विद्यार्थियोंको लाभ ही क्या हो सकता है, इसलिये यह उचित समझा गया कि ग्रन्थका आकार भी बहुत न बढने पावै, और उपयोगी साधनिका भी न रहजाय और विद्वानोंका यह भी निश्चय है कि, कारकपर्यन्तकी सिद्धान्तकौमुदी आजानेसे फिर विशेष कठिनाई नहीं रहती इस कारण संधि षड्लिङ्ग स्त्रीप्रत्यय कारकपर्यन्त साधनिकामें समस्तसूत्रांक तथा सूत्रोंका प्रथमपद लिखकर समझायागया है. कि जिससे वारम्बार लौटफेर करनेसे वे सूत्र पढनेवालोंको कण्ठ होजायँ, और आगेको बारम्बार उन सूत्रोंके उल्लेखका प्रयोजन न रहै और षड्लिङ्गमें साधनिकाके सिवाय उन २ सुबन्तोंके पूरे २ रूप भी लिख दिये है इन प्रकरणोंके सिवाय अगले प्रकरणोंमें प्रयोगसिद्धिमें मुख्य २ सूत्रोंसे काम लिया गया हैं, तथापि प्रयोजनकी कोई बात उठा नहीं रक्खी गई है, इसके सिवाय परिभाषाओंके अर्थ विस्तारसे किये हैं और स्वरवैदिकीमें विशेष परिश्रम किया गया है शब्द साधनिका पदोंमें स्वरोंके चिह्न ऋचाओंके पते भी जहां तहां लिखकर प्रत्येकसूत्रके नीचे उदाहरणोंमें एक एक दो दो शब्दोंकी साधनिका भी कीगई है उणादिमें शब्दोंका अर्थ भी लिखा है तथा मध्यमें जहां कहीं कुछ विशेष लिखनेकी आवश्यकता हुई हैं वहां उसको भी लिखा हैं पश्चात् (शिक्षा, अष्टाध्यायीसूत्र, गणपाठ, लिङ्गानुशासन, धातुपाठ, कौमुद्यन्तर्गतवार्तिकपाठ, परिभाषापाठ, शाकटायनप्रणीत उणादिपाठ, शान्तनवा-चार्यप्रणीत फिट्सूत्रपाठ, अष्टाध्यायीसूची, गणपाठ-सूची, धातुसूची, वार्तिकसूची परिभाषासूची उणादिसूची, फिट्सूत्रसूची क्रमसे सन्निविष्ट हैं यह मैं विश्वासके साथ कह सकताहूं कि जिसको लघुकौमुदी आती होगी अथवा जिसको कारकपर्यन्त भाषाटीकेसहित यह ग्रन्थ स्मरणहोजाय उसके लिये यह अनुवाद बहुत ही उपयोगी होगा. और जिनको पिछलापाठ स्मरण नहीं भी है वारंवार सूत्रोंके लोटफेरसे उनको भी सूत्रोंको कण्ठाग्र होजानेकी बहुत कुछ संभावना है। पढने-वालोंको इससे एक बहुतबडा लाभ यह भी होगा कि, गुरुजी जो विषय एकवार शिष्यको समझादेंगे, वह विद्यार्थी दूसरीबार गुरुजीको उस विषयमें कष्ट न देकर टीकेके सहारे अपना अभीष्ट सिद्धकर सकैगा, और इस प्रकारसे अध्यापक और अध्येता दोनोंको सुभीता होगा मुझे यह भी विदित है कि, कोई २ संस्कृतके विद्वान् जिनसे कभी एकपत्र भी घण्टे भरसे कममें नहीं लिखा जाता भाषानुवादके पक्षपाती नहीं होते, न पसन्द करतेहैं, उनसे मुझे यह कहना है कि आप इस विषयमें रुष्ट न हों अनुवाद होजानेपर भी आपकी कोई हानि नहीं, कारण कि, आपके पास तो इस विषयके खर्रे भरे पडेहैं, जिनको इस ग्रन्थमें स्थान नहीं मिलाहै, इस कारण आप इस विषयमें रुष्ट न होकर विद्याप्रेमियोंकी और विद्यार्थियोंकी भलाईकी ओर दृष्टिदें।

यथासाध्य टीका सरल और समझनेके योग्य किया-गयाहै इस पर भी यदि कहीं न्यूनता रही हो तो यथार्थसूचना मिलनेसे आगामी बार उस विषयको ठीक या विस्तृत करनेमें परिश्रम कियाजायगा कारण कि, विज्ञजन इस बातको भली भांति जानतेहैं कि, शब्दशास्त्र कितना गंभीर है और उसमें भी पाण्डित्यसम्पादनके लिये सिद्धान्तकौमुदी एक ही ग्रन्थ है और वह भी ऐसा लच्छेदार है कि, कभी २ विद्वानोंको भी चक्करमें डालदेताहै बहुतसे सज्जन वक्ष्यमाणा आदि पंक्तियोंमें ही विचरतेहैं उसको भाषानुवादके सहित सर्वसाधारणके सामने उपस्थित करना कितने बडे परिश्रमका काम है.

यद्यपि मेरा यह परिश्रम लोकहितकर तथा विद्या-प्रेमियोंके निमित्त ही है और मुझे पूर्ण आशा है कि, गुणग्राही सहृदयपुरुष इस कार्यसे अवश्य प्रसन्न होंगे परन्तु जिनके हृदय असहनशीलता तथा राग द्वेषकी अग्निसे सुलगते रहतेहैं, उनके लिये यह कार्य न रुचैगा, कारण कि, गोस्वामीतुलसीदासजीने बहुत-कुछ समझकर अपने अमूल्य ग्रन्थके प्रारंभमें 'उजरे हर्ष विषाद बसेरे' के स्वभाववालोंको पुष्पाञ्जलि समर्पण करतेहुए कहाहै.

जे परदोष लखहिं सहसाखी । परहित घृत जिनके मनमाखी ॥ परन्तु ' न्यायात्पथः परिचलन्ति पदं न धीराः ' के अनुसारसें स्वकर्तव्य पालनमें तत्पर हुआहूँ, मैंने लोकहितकर सिद्धान्तके अनुसार सिद्धान्तकौमुदीकी संजीविनीव्याख्या पाठकोंके सन्मुख उपस्थित की है यदि इससे विद्यानुरागियोंको कुछ लाभ हुआ तो मैं अपने परिश्रमको सफल जानूंगा ।

इस अवसरमें हम अपने विद्यारसिक परमप्रतिष्ठित लोकोपकारी धर्मनिष्ठ श्रीवेंकटेश्वर यंत्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदयको अनेक धन्यवाद देते हैं कि, जिन्होंने वेद, वेदांग, इतिहास, पुराणादि ग्रन्थोंका हिन्दीभाषामें अनुवादप्रकाशित कराके भारतका बहुत बडा उपकारसाधन किया है, और इस विषयमें समय २ पर हमारे उत्साहको बढाते रहे हैं. हमारी ईश्वरसे प्रार्थना है कि, सेठजी महोदय अपने दोनों सुयोग्य चिरञ्जीवी बाबू रंगनाथजी तथा बाबू श्रीनिवासजीके सन्ततिरूप पौत्रोंका दर्शनलाभ करके सब प्रकारके सुखानुभव करतेहुए भगवद्भक्तिका लाभ उठावें ॥

अनुगृहीत—

मार्गशीर्षपूर्णिमा संवत् १९७० } ज्वालाप्रसादमिश्र, दिनदारपुरा-मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

पाणिनि ।

जिन महामुनिपाणिनिके व्याकरणशास्त्रकी महिमा समस्तविश्वमें विराज रहीहै संस्कृतसाहित्यमें प्रवेशके लिये जिनका व्याकरणशास्त्र एकमात्र अवलम्बन है, कौन ऐसा पुरुष है जो उनके जन्मसमय, निवासस्थान, तथा चरित्रके जाननेकी इच्छा न करता हो, महात्माओंके वृत्तान्तका जानना प्रत्येक विज्ञपुरुषका कर्त्तव्य है, इस कारण इस समय हम पाणिनि आदिमुनित्रयके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी इच्छा करतेहैं, यद्यपि इस विषयका कोई मुख्यग्रन्थ नहीं पायाजाता, तथापि विद्वानोंके निबन्धों और कथासरित्सागर तथा * बृहत्कथाके आधारपर इस विषयमें हम कुछ कहतेहैं ।

आचार्य हेमचन्द्र अपने बनाये चिन्तामणिनामक अभिधानमें लिखतेहैं ।

(अथ पाणिनी, शालातुरीयदाक्षेयौ)

अर्थात् शालातुरीय और दाक्षेय यह दोनों पाणिनिमुनिके नाम हैं, यह अभिधान ७९० वर्षसे अधिक समयका है, अमरसिंहने भी पाणिनिका अनुसरण कियाहै मगधेश्वर शेषनन्द और चन्द्रगुप्तके समकालिक चाणक्यमुनिने भी पाणिनिके सूत्रोंको न्यायभाष्यमें लिखा है, 'अस्तेर्भूः ब्रुवो वचिः, आधारोऽधिकरणम्, ध्रुवमपायेऽपादानम्' इत्यादि पाणिनिसूत्र वात्स्यायननामकभाष्यमें उतारे हैं, वात्स्यायन और चाणक्य एक ही हैं पूर्वकालमें गुणवश और कार्यके कारण एक ही मनुष्यके अनेक नाम होतेथे इसी प्रकार चाणक्यके भी अनेक नाम थे यथा—

वात्स्यायनो मल्लनागः कौटिल्यश्चणकात्मजः
द्रामिलः पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः ॥

अर्थात् वात्स्यायन, मल्लनाग, कौटिल्य, चाणक्य, द्रामिल, पक्षिलस्वामी, विष्णुगुप्त और अङ्गुल यह चाणक्यके नाम हैं, न्यायभाष्य चाणक्य अर्थात् वात्स्यायन व्यक्तिका निर्मित है उसके और भी प्रमाण हैं, उद्योतकरमिश्रकृतवार्तिक और वाचस्पतिमिश्रकृत टीकेमें यह ग्रन्थ पक्षिलस्वामीकृत लिखाहै न्यायभाष्यमें पक्षिलस्वामीका जो स्वतंत्र मत है उसको नवीन नैयायिक भी जानतेहैं इन प्रमाणोंसे सिद्ध है कि मल्लनाग पक्षिलस्वामी वात्स्यायन और चाणक्य एक ही व्यक्ति है चाणक्य वा वात्स्यायन नीतिशास्त्र और शब्दशास्त्रमें बहुत प्रसिद्ध है संस्कृतमुद्राराक्षसके अनेकस्थलोंमें चाणक्यको कौटिल्यनामसे लिखाहै, चाणक्यने पाणिनिका नाम लिखाहै तो यह शेषनन्दसे पहलेके हैं ।

परन्तु यूरूपियन आचार्य गोल्ड स्टुकके मतसे पाणिनि ईसवी सन्‌से ६०० वर्ष पूर्वके हैं अन्ययूरुपनिवासियोंके मतसे ईसवीसन्‌से ४०० वर्ष पूर्वके हैं, तिब्बतदेशीय लामा तारानाथने उनको नन्दके समयमें हुए कहाहै किन्तु वह किस नन्दके समयमें हुए यह नहीं कहा यदि शेषनन्द हैं तो ९०० वर्ष ईसासे पूर्वके हैं बंगदेशीय पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पतिने भी ९०० वर्ष पूर्वका निश्चय कियाहै, परन्तु हम ऊपर अभी दिखा चुकेहैं कि नन्दके समयमें होनेवाले चाणक्यसे भी पाणिनि बहुत पहले के हैं, बृहत्कथामें उनका नन्दके समयमें होना लिखाहै, हमारी समझमें वह पहले नन्दके समाप्तिकाल या दूसरे नन्दके आरंभकालमें हुएहैं, कारण कि ग्रन्थ प्रचारके लिये भी तो कुछ समय चाहिये विना प्रचारके वात्स्यायन अपने न्यायभाष्यमें उनके सूत्रोंका उल्लेख कैसे करते ।

जिन विद्वानोंका यह मत है कि, पाणिनि ईसवी सन्‌से चारसौवर्ष पूर्व हुएहैं उनको यह विचारना चाहिये कि यह समय तो भगवत्पाद आदि शंकराचार्यका है, विमर्शनामक ग्रन्थमें उनका जन्म युधिष्ठिरके २६३१ संवत् वैशाख मासकी शुक्लपंचमीको लिखाहै, और अन्तसमय राजा सुधन्वाने जो अपना अनुशासन ताम्रपत्रमें लिखकर आचार्यको अर्पण कियाहै उसकी मुद्रामें युधिष्ठिर संवत् २६६३ लिखाहै युधिष्ठिर संवत् विक्रम संवत्में ३०४४ था, इस गणनासे आचार्यको इस समय २३९१ वर्ष व्यतीत होतेहैं और आचार्यने वेदान्तदर्शनके प्रथम [illegible] [नच [illegible]] ऐसा उल्लेख कियाहै तब इससे स्पष्ट है कि, शंकराचार्यसे भी पाणिनि प्राचीन हैं ।

पूर्वमीमांसाके भाष्यकार शबरस्वामी इन शंकराचार्यसे भी प्राचीन हैं कारण कि, वेदान्त शास्त्रके प्रथम अध्या-

* बृहत्कथानामकग्रंथ पैशाचीभाषामें गुणाढ्यपंडितने निर्माण किया था सोमदेवभट्टने उस बृहत्कथासे अनुवाद करके कथासरित्सागर लिखा था, यह कथा २००० वर्ष की लिखीहुई है सोमदेव और राजतरंगिणीग्रन्थके निर्माता कल्हणपंडित एक ही समयके हैं यह दोनों काश्मीरदेशमें अनुमान एक सहस्रवर्ष हुए विद्यमान थे ।

यमें "यस्तु शास्त्रतात्पर्यविदामनुक्रमणम्" इस उक्तिके द्वारा शवरस्वामीके वचनका उल्लेखकर उनकी वृद्धोचित रूपसे पूजा की है इन विद्वान् शवरस्वामीने भी पाणिनिके मतका उल्लेख कियाहै यथा "नहि वृद्धिशब्देन अपाणिनेर्व्यवहारत आदैच: प्रतीयेरन् पाणिनिकृतिमननुमन्य–इति १ अ० १ पाद. इन प्रमाणोंसे सिद्ध है कि इनका जन्मकाल शबरस्वामीसे भी प्रथमका है.

अस्तु अब हम यह सिद्ध करना चाहतेहैं कि, जब पाणिनि नन्दके समय हुए और प्रथमनन्दके समय हुए तो इस समय उनको कितना कालगत होताहै श्रीमद्भागवतके बारहवें स्कन्धके दूसरे अध्यायमें लिखाहै ।

यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नंदाभिषेचनम् ।
एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पंचदशोत्तरम् ॥ २।२६ ॥
महानन्दिसुतो राजन् शूद्रागर्भसमुद्भवः ।
महापद्मपतिः कश्चिन्नन्दः क्षत्रविनाशकृत् ॥ ९ ॥
तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ।
य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजनश्च शतं समाः ॥

अर्थात् परीक्षितके जन्मसे लेकर नन्दके आरंभका समय १०१५ वर्षका है विष्णुपुराणमें "ज्ञेयं वर्षसहस्रं तु शतं पंचदशोत्तरम्" १११५ वर्षका समय निरूपण किया है युधिष्ठिर और परीक्षितका समय बीचमें ८० वर्ष ले लें तो १०९५ और एकनन्दके राज्य अवसानके ११ वर्ष औसत निकाललें तो एक हजार एक सौ छः ११०६ वर्ष होतेहैं, और विष्णुपुराणके मतसे १२०६ वर्ष प्रथमनन्दके कालकी समाप्तिको होतेहैं, इस संवत् १९७० में कलिके ५०१४ वर्ष बीतेहैं, इस गणनासे ३९०८ अथवा विष्णुपुराणके मतसे ३८०८ वर्ष पाणिनिके जन्मको वीततेहैं और यदि अन्तिमनन्दके १०० वर्ष मिलालें तो ११९९ वा १२९९ विष्णुपुराणके मतसे होतेहैं जिसकी गणनासे ३८१९ वा ३७१९ वर्ष महामुनिको होतेहैं ।

दूसरी गणना यह है कि परीक्षितके समयमें सप्तर्षि मघानक्षत्रमें थे जैसा कहाहै ।

ते त्वदीया द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ।
तेनैव ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् ॥ २८ ॥
यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि ।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥
यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः ।
तदानंदात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥३२॥अ० २ स्कं० १२ ॥

वाराहीसंहितामें भी लिखाहै "आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ" अर्थात् परीक्षितके समयमें सप्तर्षि मघानक्षत्रमें थे और एक एक नक्षत्र पर १०० वर्ष रहतेहैं मघामें विचरते ही कलियुगका आरंभ होताहै जब सप्तर्षि पूर्वाषाढमें जायेंगे तब नन्दादिके राज्यमें कलिवृद्धि होगी इस गणनासे ग्यारहवां नक्षत्र पूर्वाषाढ है और वराहमिहिर लिखतेहैं युधिष्ठिरके समयमें भी मघामें थे तब ११०० वर्ष गत कलिमें नन्दराज्य आरंभ है इसमें प्रथमनन्दके ११ जोडनेसे ११११और अवसान पर्यन्त पूरे १००जोडनेसे १२०० बारह सौ वर्ष होते हैं और ५०१४ गतकलिमें घटानेसे ३८१४ शेष वर्ष रहते हैं यह घटाकर भी ३८१४ पाणिनिका समय होगा, और प्रथमनन्दके अवसानमें ३९०३ होगा।

कोई कहते हैं कि "ततोपि द्विसहस्रेषु दशाधिकशतत्रये । भविष्यन्नन्दराज्यं च चाणक्यो यान् हनिष्यति" यह स्कन्दका वचन है द्विसहस्रेषु यहां निर्धारणमें सप्तमी है तब यह अर्थ होगा कि, ३१० वर्ष कम दो सहस्र वर्षके बीतनेपर नन्दराज्य होगा जिनको चाणक्य मारेगा तब २००० में ३१० घटानेसे १६९० बचते हैं इसमें १०० वर्ष और मिलानेसे १७९० होते हैं और ५०१४ मेंसे १७९० घटानेसे ३२२४ बचते हैं यदि प्रथम नन्दके अवसानमें पाणिनिका प्रादुर्भाव मानें तो ३३१३ वर्ष महर्षि पाणिनिको होते हैं *

अब यदि चन्द्रगुप्तका समय निकाला जाय तो स्पष्ट है कि ८०×१०१५+१००=११९९ युधिष्ठिराब्द गत होनेपर चन्द्रगुप्त हुए और भाष्यकारने महाभाष्यमें "सभाराजाऽमनुष्यपूर्वा २ । ४ । २३" इस सूत्रपर "चन्द्रगुप्तसभा" ऐसा उदाहरण दिया है, इससे स्पष्ट है कि, उस समय वा उस चन्द्रगुप्तसे कुछकाल पीछे ही महाभाष्यकी रचना हुई है नन्दोंकी समाप्ति पर ही चाणक्यका जन्मकाल है और भागवतके मतसे युधिष्ठिराब्द ११९९ और विष्णुपुराणके मतसे १२९९ वर्ष चाणक्यको होते हैं और भाष्यकारको २९ वर्ष पीछे मानें तो गतकलि १२२० त्रि० पु० के मतसे १३३० वर्ष होते हैं, जिसको इस समय ३७९९ वा ३८९९ वर्ष

*राजतरंगिणीके मतसे "गतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले । [illegible]" कलिके ६५३ वर्ष [illegible] कौरव पाण्डव हुए ऐसा है तब युधिष्ठिरके ११०६ शकमें गत कलि ६५३ वर्ष जोडनेसे [illegible] वर्ष होते हैं गतकलिमें यह [illegible] [illegible] तात्पर्य यह है [illegible] गणनासे भी तीनसहस्रवर्षसे अधिक प्रतीत होते हैं ॥ यूरुपके विद्वानोंने चन्द्रगुप्तका समय ईसवी सनसे ३१६ वर्ष पहले कहा है ॥

होते हैं, और स्कन्दके मतसे ३२४९ वर्ष होते हैं यदि सब प्रकारसे केन्द्र मानकर विचार किया जाय तो भी पाणिनिऋषि ३५०० साढे तीन सहस्रवर्षके आगे पीछे प्रतीत होते हैं।

अब इस बातका विचार करते है कि, राजा युधिष्ठिरका शकाब्द ही गत कलि है वा और कुछ तो भविष्यकी वंशावलीसे यह समय सर्वथा मिल जाता है यथा–

पाण्डवानां कुलोत्पन्ना विष्णुरातादिका नृपाः।
कलौ राज्यं करिष्यन्ति वर्षाणां वै सहस्रकम् ॥
ततो नृपा भविष्यन्ति पंच प्रद्योतसंज्ञकाः।
अष्टत्रिंशोत्तरशतं कलौ ते राज्यकारकाः ॥
शिशुनागा दश नृपाः षष्ट्युत्तरशतत्रयम्।
कलौ भोक्ष्यन्ति पृथिवीं राजानो धर्मतत्पराः ॥
शिशुनागात्परे राज्ये शूद्रागर्भोद्भवो बली।
महापद्मधरः कश्चिन्नंदो राज्यं करिष्यति ॥
नन्दस्य चाष्टपुत्राश्च भविष्यन्ति च भूमिपाः।
तेषां तु वशगा भूमिर्भविष्यति शतं समाः ॥
अब्रह्मण्याद्द्विजः कश्चिद्दुष्टान्नंदसुतानथ।
अयोग्या इति मत्वा तु राज्यात्तानुद्धरिष्यति ॥
अराजके तु जगतीं विप्रदत्तां कलौ युगे।
भोक्ष्यन्ति दश मौर्याश्च सप्तत्रिंशोत्तरं शतम् ॥
ततः शुंगा दश नृपा दशवर्षं शताधिकम्।
कलौ राज्यं करिष्यन्ति विख्याता सर्वतो दिशि ॥
कण्वो हत्वा नृपं शुंगं राज्यलोभेन स्वामिनम्।
स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवेति विश्रुतः ॥
तत्पुत्रपौत्राः पृथिवीं चत्वारिंशच्च पञ्च च।
शतानि त्रीणि वर्षाणां भोक्ष्यन्ति च कलौ युगे ॥
तद्भृत्यस्त्वन्ध्रजातीयः कंचित्कालमुशत्तम।
चकार राज्यं हत्वा वै कण्वं तु वृषलो बली ॥
तस्य वंशोद्भवास्त्रिंशद्भविष्यन्ति कलौ नृपाः।
भोक्ष्यन्त्यान्ध्रास्तु पृथिवीं चत्वार्यब्दशतानि च ॥
षट्पंचाशोत्तरं कालं परं तस्मान्निबोध मे।
सप्ताभीराश्च पृथिवीं भोक्ष्यन्त्यब्दशतं कलौ ॥
ततो नृपा भविष्यन्ति दश गर्दभिसंज्ञकाः।
अष्टाधिकाश्च नवतिं तेषां राज्यं भविष्यति ॥
कङ्काः षोडश भूपाला भविष्यन्ति कलौ गुह।
पालयिष्यन्ति गां ते वै वर्षाणाञ्च शतद्वयम्।
ततो वै वैक्रमो नाम भवितोज्जयिनीपतिः।
यो वै म्लेच्छान् सुसम्पन्नान् कोटिशो निहनिष्यति॥ श्रीमद्भा० वंशीधरीटीकेमें भविष्यपुराणके श्लोक। अर्थात् विष्णुरातादिका राज्य १००० वर्ष, १३८ वर्ष प्रद्योत, शिशुनाग ३६०, नन्दोंका राज्य १०० वर्ष, दशमौर्य १३७ वर्ष, शुंग ११० वर्ष, काण्व ३४५ वर्ष, आन्ध्र ४०० वर्ष, पीछे सप्त आभीर १५६, गर्दभिका ९८ वर्ष, कंक २०० वर्ष इनकी समाप्तिपर विक्रमादित्यका आगमन हुआ कंकोंके अवसानपर युधिष्ठिराब्द अर्थात् इन वर्षोंकी संख्या ३०४४ होतीहै इनमें विक्रमादित्यका १९७० संवत् जोडनेसे ५०१४ वर्ष ठीक निकल आतेहैं जो इस समय गतकलिके वर्ष हैं इससे सिद्ध है कि, युधिष्ठिरका संवत् विक्रमसंवत्के आरंभमें ३०४४ था.

कथामंजरी[1] तथा बृहत्कथामें लिखाहै कि, नन्दवंशीय राजाके शासनकालमें उपवर्षनामक एक महापंडित विद्यमान थे वह उपवर्षशब्दशास्त्रके आचार्य थे जिनके निमित्त ऐसा लेख पाया जाता है कि,

यदाह भगवानुपवर्षः वर्णा एव हि शब्दाः।

मध्यदेशनिवासी पाणिनि और व्याडि उनके शिष्य थे पाणिनिने शालातुरीय नामसे इस बातको सूचित किया है कि, यह देश उनके पूर्व पुरुषोंकी निवास भूमि थी परन्तु उनकी निवासभूमि यह नहीं है, बहुतोंको इस बातका भ्रम है कि वे शलातुरदेशवासी हैं, कारण कि, शालातुरीय और दाक्षेय यह दोनों पाणिनिके नाम है शालातुरीय नाम देखकर ही पाश्चात्य विद्वानोंने इस ग्रामको उनकी जन्मभूमि मानलिया है शलातुर गान्धार (कंधार) प्रदेशके अन्तर्गत एक ग्राम है, इस समय अटकप्रदेशके उत्तर पश्चिममें स्थित है, पाणिनिका जन्म इस स्थानमें हुआ वा यह उनकी निवास भूमि थी हम इस बातका अनुमोदन नहीं कर सकते कारण कि, पाणिनि इस बातको स्वीकार नहीं करते वह अपनी अष्टाध्यायीके (४।३।९०) में एक सूत्र लिखते हैं

'अभिजनश्च'

यह सूत्र और उनका शालातुरीयनाम यह दोनों एक गूढ रहस्यको प्रगट करते हैं शलातुरग्राम पाणिनिकी जन्मभूमि वा निवासभूमि नहीं है, किन्तु उनके महात्मा पूर्व पुरुषोंकी निवासभूमि थी महामुनिने "अभिजनश्च" इस सूत्रसे पहले "तदस्य निवासः" यह सूत्र बनायाहै, इससे यह सिद्ध होताहै कि निवास और अभिजन

[1] कथामंजरीके कर्ता क्षेमेन्द्र हैं यह कथासरित्सागरसे पहले बृहत्कथासे अनुवादकी हुई है इन्होंने अपनेको व्यासदास कहकर परिचय दिया है इन्होंने अनन्तदेवके समय काश्मीरदेशमें शैव दार्शनिक अभिनवगुप्ताचार्यसे अलंकारशास्त्र पढ़ा इसके सिवाय भारतमंजरी, रामायणमंजरी, कलाविलास, दशावतारचरित, समयमातृका, व्यासाष्टक, सुवृत्ततिलक, लोकप्रकाश, और राजावली आदि अनेकग्रन्थ इनके रचे संस्कृतसाहित्यभण्डारमें विद्यमान हैं।

इन दोनोंमें अवश्य कुछ भेद है वृत्तिकारने इस भेदको दिखायाहै "यत्र संप्रत्युष्यते स निवासः यत्र पूर्वपुरुषैरुषितं सोभिजनः" अर्थात् जहां वर्तमान वासस्थान है उसको निवास और जिस स्थानमें पूर्वपुरुषोंका निवास हो उसको अभिजन कहतेहैं, ऐसे अभिजनके अर्थमें मुनिने स्वयं 'शालातुरीयः' सिद्ध कियाहै कारण कि, "अभिजनश्च" इस सूत्रसे आगे अभिजन अर्थका आकर्षण करके "तूदीशलातुरवर्मतीकुचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः ४ । ३ । ९४" यह सूत्र बनाकर शलातुर शब्दके उत्तर अभिजन अर्थमें ढक् प्रत्यय करके शालातुरीय रूप बनानेका आदेश कियाहै, इससे जब पाणिनिने स्वयं शलातुरग्राम अपना अभिजन बताया तब उनको शलातुरवासी कैसे कहसकतेहैं इस कारण हम बृहत्कथाके अनुसार उनको मगधदेशवासी ही कहेंगे, और इस शालातुरीय पदसे बृहत्कथाकी ऐतिहासिक सत्यता भी प्रमाणित होतीहै, पाणिनि किस देशके हैं इस बातको दाक्षेयपद सिद्ध करताहै यथा-"जीवति तु वंश्ये युवा।४।१।१६२" और "अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ।४ । १ । १६२" इन दो सूत्रोंमें वंश्य पुरुषोंके जीवित रहने पर उन प्रपौत्र प्रभृति दूरवंशवालोंकी युवसंज्ञा हो ऐसा कहाहै इसके अनुसार दाक्षिनामक पुरुषके जीवित रहते उनके पौत्र वा प्रपौत्र दाक्षायण नामवाले हों, यह दाक्षायण और व्याडि एक ही पुरुष हैं, कारण कि पतञ्जलिने व्याडिकृतलक्षश्लोकात्मक संग्रहनामकग्रन्थको दाक्षायण निर्मित कहाहै, यथा "शोभना खलु दाक्षायणस्य संग्रहस्य कृतिः" इस प्रमाणसे व्याडि वा दाक्षायणके पितामह वा प्रपितामहका नाम दाक्षि हुआ एवं इन दाक्षिकी कनिष्ठा भगिनीका नाम दाक्षी हुआ. (दक्षस्यापत्यं पुमान् दाक्षिः दक्षस्यापत्यं स्त्री दाक्षी) पाणिनिने इन्ही दाक्षीके गर्भसे जन्म लियाथा इस अर्थमें कोई सन्देह नहीं है 'दाक्षीपुत्रेण धीमता' ऐसा अन्यत्र भी लेख है कि यह दाक्षीके पुत्र हैं, इन प्रमाणोंसे दाक्षायण वा व्याडिके पितामह वा प्रपितामह दाक्षिके साथ, दाक्षेय वा पाणिनिका मातुल भागिनेय अर्थात् मामाभांजेका सम्बन्ध प्रगट करताहै, दाक्षिके जीवित रहते ही व्याडिको पाण्डित्य प्राप्त होगयाथा और व्याडिके जीवितकालमें उनके पितामह वा प्रपितामह दाक्षि निश्चितरूपसे जीवित थे उनके विद्यमान न रहनेपर व्याडिका दाक्षायण नाम नहीं होसकताथा, इससे विदित है कि, व्याडिका नाम दाक्षायण है और पाणिनिका नाम दाक्षेय है इन नामोंसे सिद्ध है कि व्याडि और पाणिनि अवस्थामें न्यूनाधिक रहनेपर भी परस्पर एक दूसरेके दर्शनस्पर्शसे वंचित नहीं थे परन्तु व्याडिसे पाणिनिकी आयु अधिक प्रतीत होतीहै यह बात नीचे-लिखे वंशापुरुषसे निश्चय होतीहै ।

'जीवति तु वंश्ये युवा' पाणिनिके इस सूत्रके अनुसार दाक्षिकी जीवित अवस्थाकी सन्तानके सिवाय दाक्षेय वा दाक्षायण नाम सिद्ध नहीं होताहै यह बात यूरूपियन गोल्डस्टुकमहोदयकी बुद्धिमें नहीं समाई इसीसे उन्होने पाणिनि और व्याडिका * एककालमें होना नहीं लिखा, यह बात उनके सिद्धान्तको काट देतीहै इससे निश्चय हुआ कि, उनके पूर्व पुरुष गान्धार प्रदेशके शलातुरग्रामके रहनेवालेथे और पाणिनि मगधदेशके किसी एक स्थानके निवासीथे और पणिन् उपाधिको प्राप्त किसी विख्यातवंशकी सन्तान थे उनकी माताका नाम दाक्षी था और जातिसे ब्राह्मण थे दाक्षिणात्य व्याडिके साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था और दर्शनस्पर्श भी था कोई २ इनके पिताका नाम देवल कहतेहैं पर इस विषयका पूरा निश्चय नहीं है ।

यूरूपीयआचार्य गोल्डस्टुकके मतसे पाणिनि ईसवीसन्से ६०० वर्ष पूर्वमें हुए यह विदित होताहै परन्तु उन्होने केवल व्याकरण सूत्रोंसे कुछ बातें लेकर उनका समय देश और उनकी ग्रन्थावलीका जो तत्त्वनिर्णय कियाहै वह युक्तिसंगत नहीं है कारण कि, प्रकृति-प्रत्यय का विभाग साधन और शब्दका साधुत्व बताना व्याकरणका मुख्य उद्देश्य है किन्तु पारिभाषिक वा निगूढसंकेतयुक्तशब्दके ऊपर व्याकरणकी कुछ विशेष प्रभुता नहीं है इतिहासका निर्णय व्याकरणद्वारा नहीं होसक्ता तथा पुराणोंमें 'पंचाम्र रोपी नरकं न याति' अर्थात् पंचाम्रका लगानेवाला नरकको नहीं जाता पाणिनिके मतमें इसका अर्थ पांच आम्रके वृक्ष ऐसा होता है, पर वास्तवमें

* व्याडिकी माताका नामगोत्रके अनुसार दाक्षी था यथार्थमें उसका नाम नंदिनी था इससे इनको नन्दिनीतनय भी कहते हैं और दक्षिणमें निवासकरनेके कारण विन्ध्यवासी भी कहे जाते हैं आचार्य हेमचन्द्रने नाममालामें " अथ व्याडिर्विन्ध्यवासी नन्दिनीतनयश्च सः " ऐसा लिखा है

व्याडिका निवास वेतसपुर और इनके पिताका नाम कोई [illegible] लिखा है.

आम, वट, जामन, पीपल और गूलर इन वृक्षोंके समुदायको जो नव्य स्थानोंमें लगाये जाते हैं पंचाम्र कहते हैं और भी एकपद षोडशी है पाणिनि इसका अर्थ सोलह संख्याओंको पूराकरनेवाली करतेहैं, काव्यवेत्ता सोलहवर्षकी युवति अर्थ करतेहैं, कर्मकाण्डी श्राद्धसम्बन्धी पिण्डदानकी विशेष विधिको कहते हैं, यजुर्वेदमें सोमरसग्रहणका एक यज्ञपात्र षोडशी कहलाताहै यह शब्द पाणिनि वा अन्य व्याकरणोंके मतसे यज्ञका पात्र नहीं जाना जाता सचते स षोडशी और 'षोडशीं गृह्णाति' ऐसा वैदिकग्रन्थोंमें अनेक जगह आयाहै पर अर्थ भिन्न २ हैं, इससे सिद्ध है कि व्याकरणका कार्य शब्द साधु है या असाधु यही मुख्य है न कि समस्त इतिहासका समावेश, उसमें हो इस्से जो गोल्डस्टुककी समान न्याय सांख्य वेदान्त मीमांसा उपनिषद् आरण्यक महाभारत आदि आर्षग्रन्थोंको पाणिनिका परिभाषी कहतेहैं यह युक्ति संगत नहीं हैं उल्लिखित समस्त शब्द ही पारिभाषिक हैं पारिभाषिक शब्दों द्वारा व्याकरणका समय निर्णय नहीं होता न व्याकरणका उसपर लक्ष है, एक यह भी शंका कीजातीहै कि पाणिनिके समय अथर्व वेद नहीं था होता तो उसका उल्लेख करते यह शंका भी व्यर्थ है कारण कि, "आथर्वणिकस्येकलोपश्च ४ । ३।१३३" तथा "दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिक०।६।४।१७४" "कविबोधादाङ्गिरसे ४।१।१०७" इत्यादि सूत्रोंमें अथर्ववेदका वर्णन है यदि ऐसा न भी होता तो भी वैदिक प्रक्रियासे जब सब वैदिक शब्द सिद्ध होसकतेहैं तब पृथक् २ नामग्रहणकी आवश्यकता क्या है ऋग्वेदमें भी ६।१६।१४ आदि कई स्थलोंमें अथर्वण शब्द है, जो मुनि वैदिक प्रक्रियाको यथेष्ट जान्ता हो वह न्याय वैशेषिक आरण्यक आदि शब्दोंका साधुत्व न जाने यह कब संभव हो सक्ताहै हमने जहांतक संस्कृत साहित्यके विषयमें पाश्चात्य विद्वानोंका निर्णय देखाहै उन्होंने बहुधा अपनी अटकलसे काम लियाहै किसी संस्कृतके मार्मिक विद्वानसे सहायता नहीं ली है, दूसरे उनके हृदयमें समयकी इतनी संकीर्णता है कि, प्रमाण मिलनेपर भी खीष्ट संवत्से बारह चौदह सौ वर्ष पूर्वसे आगे बढना नहीं चाहते विशेष क्या लिखें प्रमाण रहते हुए भी शंकराचार्यके समयनिरूपणमें कितने मत हैं, यह निश्चय है कि, शङ्कराचार्यकी गद्दीपर जो बैठताहै वह भी शङ्कराचार्यनामवाला होताहै उनमें किसी आचार्यका जन्म संवत् किसीके हाथ लगा कि उसको आदि शङ्कराचार्यका जन्मसमय निश्चित करलिया यही दशा पाणिनिके समय निरूपणमें आचार्य गोल्डस्टुकने की है उनकी

युक्तियें बहुधा भ्रमपूर्ण हैं उन सबको लिखकर लेख बढाना नहीं चाहते परन्तु उनके रचित पाणिनि निबन्धसे बहुतसी गूढवातोंका पता लगताहै.

प्रथम मनुष्यजाति किस भाषामें अपना हृदयगत व्यवहार प्रगट करतीथी इसका पता लगाना कठिन बात है परन्तु संस्कृतशब्दके अर्थपर विचार करनेसे स्पष्ट विदित होताहै कि यह संस्कार की हुई भाषा है ऐसा विदित होताहै कि प्रथम वैदिकशब्दोंका प्रचार होकर वे शब्द जनसाधारणमें आकर अपभ्रंश होगये, फिर उनका संस्कार होकर वह देववाणी संस्कृत कहाई अथवा सबकी भाषा यही देववाणी रहीहो पीछे प्रकृति प्रत्ययके विभाग और शब्दोंके साधु असाधु विचार होनेपर इसका नाम संस्कृत हुआ. और यही युक्ति संगत भी है कारण कि प्रारंभिक ऋषि सर्ग सर्वगुणसम्पन्न थे पश्चात् जब पठन पाठनका क्रम चला तब शिक्षाके सुगम उपायके निमित्त व्याकरणसम्बन्धी नियमोंकी रचना हुई, और फिर परंपरासे भागुरि, गालव, व्याघ्रपाद्; नौकायनादि ऋषियोंने इसका सूत्रपात किया, फिर कालक्रमसे शाकटायन, यास्क, व्याडिप्रभृति उसीके अंग पूर्ण करतेरहे पीछे यह निश्चय हुआ कि, सूत्र ही सब प्रकारसे इस विषयके निर्धारणका सरल उपाय हैं, तब सूत्रोंकी रचना हुई, और उन सूत्रकारोंमें पाणिनिमुनि सर्वश्रेष्ठ हैं सूत्र दो प्रकारकेहैं सूचक और सर्वतोमुख इनमें सूचक सूत्र पहलेके प्रचलितथे पीछे सर्वतोमुखसूत्र सबसे प्रथम इन्द्रद्वारा विरचित हुए पीछे चन्द्र काश कृत्स्न अंग कृष्ण आपिशलि इत्यादि महापुरुषोंके सूत्र विरचित होतेगये, पश्चात् पाणिनिकी अष्टाध्यायी सूत्र, अमरसिंहका वर्गसूत्र और पश्चात् जिनेन्द्र बुद्धिपाद आचार्यका संग्रहसूत्र बना ।

इतना कुछ होजानेपर भी अनेकशब्दोंकी रूपनिष्पत्ति सूत्रोंद्वारा निर्वाह नहीं होसकी. यास्काचार्यने समयमें भी 'उपसर्गा निपाताः' ऐसा लिखागया. था निपातशब्दका लक्षण यह है कि, "यद्यल्लक्षणेनानुपपन्नं तत्सर्वं निपातनात् सिद्धम्" [illegible] रूपनिष्पत्ति नहीं होती वह सब निपातनसे सिद्ध होतेहैं यास्काचार्यने लिखाहै "निपतन्ति उच्चावचेष्वर्थेषु इति निपाताः" अर्थात् जो शब्द विचित्र अर्थमें निपतित होकर सिद्ध होतेहैं वे निपात कहातेहै पाणिनि भी इस नियमको त्याग नहीं सकेहैं अर्थात् सर्वतोमुख सूत्रोंके द्वारा भी सब शब्द सिद्ध नहीं होसकेहैं वह लिखतेहै "प्राग्रीश्वरान्निपाताः" अर्थात् ईश्वरशब्द के पूर्वपर्यन्त निपातका [illegible]

संकेत है जिसको पृषोदरादि कहतेहैं यह भी एक प्रकार निपातकी जाति है इसके बलसे जो नूतन वर्णका आगम स्थितवर्णकी विपर्यय घटना आदि होतीहैं वह सूत्रोंद्वारा नहीं होतीं, सिंहशब्द पृषोदरादिसे सिद्ध है इसमें हिंस् धातुसे 'क' प्रत्यय कर सकारका स्थानपरिवर्तन पृषोदरादिसे हुआहै, और पाणिनिको भी यह नियम मानना पडाहै, समस्त वैयाकरण आचार्योंने वेदवाणीकी रक्षा और उससे ही परिवर्तित लौकिक संस्कृत भाषाकी साधुताका ज्ञान व्याकरणका प्रयोजन माना है महर्षिपाणिनिने वेदके वाक्यविन्यास उनके रूपनिष्पत्तिके आकार दिखानेके निमित्त छान्दसप्रकरण प्रस्तुत कियाहै, और जो विषय सूत्रोंद्वारा आबद्ध नहीं होसके उनके लिये 'छन्दसि' और 'आर्षे' इस प्रकार निर्देश कियाहै, पाणिनिने सबसे विशेष वैदिक पदार्थोंका निरूपण कियाहै, लौकिक व्याकरणमें नौ और वैदिक व्याकरणमें दश लकार हैं और उस अतिरिक्त लकारका नाम लेट् है इसके रूप लट् लकारके समान होतेहैं परन्तु अर्थ भिन्न होताहै लिङर्थमें लेट् होताहै यथा 'विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' यहां विविदिषन्ति यह लेट् लकारका रूप है । प्रणआयूंषितारिषत् । वेदोंके निमित्त जो व्याकरण बनेहैं वह प्रातिशाख्य कहातेहैं इनमें ऋग्वेद प्रातिशाख्य अतिप्राचीन है[1] (आनंदपुर (काशी)वासी वज्रातके पुत्र उव्वटभट्ट इसके टीकाकार हैं, इस टीकेका नाम पार्षद व्याख्या है भोजदेवके समय उव्वट विद्यमान थे) तैत्तरीयप्रातिशाख्य[2] वाजसनेयी वा कात्यायन[3] प्रातिशाख्य यजुर्वेदीयप्रातिशाख्यहै, इसी प्रकार अथर्ववेदका भी प्रातिशाख्य है, नागोजीभट्टने सामवेदके प्रातिशाख्यका नाम उल्लेख कियाहै यथा--(सामलक्षणं प्रातिशाख्यम्[4]) इन व्याकरणोंमें लौकिक शब्दोंकी उत्पत्तिका विवरण नहीं हैं वैदिक शब्दोंकी संज्ञा संधि कारक आदि समस्त विषय हैं तैत्तरीय प्रातिशाख्यका प्रथम सूत्र 'अथवर्णसमाम्नायः' है इसके द्वारा वर्णोंका उच्चारण अध्ययन और प्रयत्नादि भेदकी प्रतिज्ञा कीहै तिसके पीछे साधनप्रकार निर्दिष्ट हुआहै यथा--अथनवादितः समालक्षणानि, १ द्वे द्वे सवर्ण ह्रस्वदीर्घे २ न प्लुतपूर्वम् ३, षोडशादितः स्वराः ४, शेषो व्यञ्जनानि-इत्यादि

पाणिनिने भी अपने सूत्रोंमें कहीं २ पूर्वाचार्योंके नाम लियेहैं यथा--खार्य्याः प्राचाम्, लङः शाकटायनस्य, इत्यादि इससे विदित है कि व्याकरणप्रणाली परंपरासिद्ध है ।

व्याडिकृत लक्षश्लोकात्मक संग्रहनामकग्रन्थ पाणिनिके परवर्ती है इसमें कहीं २ पाणिनिके विरुद्ध मत देखाजाताहै पाणिनिके पीछेके आचार्योंको पाणिनिव्याकरणके नियमाधीन होनापडाहै, किन्तु व्याडिके व्याकरणमें उनके विरुद्ध मत दीखताहै और भिन्नरूपसे बनाहै पाणिनि इसको जान्ते तो अवश्य इसके विषयमें कुछ लिखते, अथवा वे इसको न देखपायेहों और इसकी रचना व्याडि द्वारा होरहीहो, कारण कि समयमें दोनोंके एकताहै और इ उ ऋ ऌ वर्णके आगे स्वरवर्णोंके बीचमें य, व, र, ल, का व्यवधान होना केवल गालव और व्याडि इन दो ही आचार्योंका मत है यथा--त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श (कालिदासः) यहां 'त्रि+अम्बकम्' था इस विषयमें पद्मनाभकृत पंचाध्यायीव्याकरणमें (यणा व्यवधानं व्याडिगालवयोः) ऐसा एक सूत्र है, इसके सिवाय एक भागुरिका कहा व्याकरण था इनके मतमें अव और अपि इन दोनों उपसर्गोंके आकारका लोप होजाताहै यथा--अवगाहः--वगाहः, अपि-धानम्-पिधानम् परन्तु पाणिनिके मतमें नहीं होताहै ।

बृहत्कथामें लिखाहै कि पाणिनिको महेश्वरकी तपस्याकरनेसे अ इ उण्, ऋ ऌ क्, आदि चौदह सूत्रोंकी प्राप्ति हुईथी उसीपर समस्तव्याकरणकी रचना उन्होंने की है लिखा भी है ।

> येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
> कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥

पाणिनिव्याकरण आठ अध्यायोंमें विभक्त है इसीसे इसको अष्टाध्यायी कहतेहैं प्रत्येक अध्यायमें चार २ पाद हैं इसके सूत्रोंकी संख्या ३९७८ किसी ने ३९८३ कही है, परन्तु इस गणनामें जो ३९७८ आये हैं उसका कारण यह है कि कदाचित् पांच सूत्र वार्तिकमें प्रविष्ट होगयेहैं, इस प्रकारसे पाणिनि व्याकरणने यथार्थमें सर्वतोमुख होनेके कारण बडा आदर पायाहै इसके ऊपर वृत्ति वार्तिक टीका और भाष्यादि रचेगयेहैं, इन सूत्रोंपर कात्यायन ने वार्तिक लिखेहैं इनके पिताका नाम सोमदत्त और माता वसुदत्ता है इन्होंने भी उपवर्ष पंडितसे विद्या प्राप्तकरके बृहत्कथा आदि निर्माण करके

---

[1] यह प्रातिशाख्य पाणिनिसे भी पूर्वका है मैक्समूलर भी ऐसा ही मानते हैं ।

[2] तैत्तरीय प्रातिशाख्यके अनेक भाष्य थे उनमें अब त्रिभाष्यरत्ननामक भाष्य प्रचलित है इससे पहले इसपर वररुचिका आत्रेय और माहिषी भाष्यथा ।

[3] इसके टीकाकार उव्वटभट्ट हैं इसके सिवाय रामचन्द्रकी बनाई ज्योत्स्नानामक एक आधुनिक टीका है ।

[4] कहाजाताहै श्रीयुत बरनेलसाहबको मदरासप्रदेशमें सामवेदका प्र प्रातिशाख्य मिला है ।

नन्दराजका मंत्रीत्व प्राप्त किया था॥ बौद्धकात्यायन और धर्मशास्त्र तथा कल्पसूत्रकर्ता कात्यायन इनसे भिन्न हैं कात्यायनकी समान वामनने पाणिनि सूत्रोंपर एकवृत्ति लिखीहै उसका नाम काशिका है यह भी अतिमान्य ग्रन्थ है आद्योपान्त प्राञ्जल और प्रसाद गुणविशिष्ट है इसपर भी दोटीके हैं हरदत्तमिश्रकृत पदमंजरी और जिनेन्द्रकृतकाशिका वृत्तिपञ्जिका--

विक्रमादित्यके ज्येष्ठ सहोदर भर्तृहरिप्रणीत वाक्यपदीय ग्रन्थमें इस प्रकार लिखाहै कि कालक्रमसे मनुष्योंमें आलस्यादिका समावेश होनेसे तथा व्याडिप्रणीत बहुविस्तृत संग्रहग्रन्थमें हतादर होनेसे पाणिनि व्याकरण भी एक प्रकारसे लुप्तप्राय होरहाथा ऐसे ही समयमें महर्षि पतञ्जलिने संग्रहग्रन्थसे सारांश संकलनपूर्वक वार्तिक और व्याख्याके उद्देश्यसे समस्तन्यायप्रदर्शन करातेहुए महाभाष्य ग्रन्थकी रचना की पतञ्जलिका दूसरा नाम गोनर्दीय है यह गोनर्दवासी हैं और इनकी माताका नाम गौणी है पतञ्जलिके भाष्य निर्माणमें अनेक आख्यायिका हैं जिनमेंसे हम एक दो यहां लिखतेहैं कि जब भगवान्ने शेषजीको महाभाष्य रचनेकी आज्ञा दी तब वह इधर उधर तपस्वियोंके आश्रमोंमें निज अवतार योग्य जननीकी खोजमें विचरने लगे विचरते हुए गोनर्ददेशान्तर्गत एक आश्रम देखा वहां पण्डितपुत्र प्राप्तिके निमित्त चिरकालसे तपस्या करती सौशील्यादि गुणोंसे युक्त गौणिकाको अपनी माता होनेयोग्य विचारकर समयकी प्रतीक्षाकर स्थित हुए, एकदिन ज्यों ही सूर्यको अञ्जलि देनेमें प्रवृत्त हुई • कि, सहस्रांशुकी अनुमतिसे अनन्तदेव उस अर्घ्यके जलमध्यमें प्रवेश करगये ज्यों ही उसने अर्घ्य दिया कि, तपस्वीकी आकृतिवाले अहिराज भूमिमें पतित हुए उस प्रकाशित आकृतिको देखकर भयसे 'कोभवान्' आप कौन हो ऐसा पूछा इन्होंने भी चातुर्य दिखाते हुए 'सर्पोहम्' अर्थात् में सर्प हूं ऐसा कहा, तब गौणीने विचारकर कहा कि, 'रेफः क गतः' अर्थात् रेफ कहां गया तब उस व्यक्तिने कहा 'त्वयापहृतः' तैंने हरण करलिया, तब तो गौणी परमप्रसन्न हुई और उनको अपनापुत्र मानकर तपस्याके क्लेशोंको त्यागकर आश्रममें लेकर प्रविष्ट हुई अंजलिमेंसे पतित होनेके कारण इनका नाम पतञ्जलि हुआ, तब फिर इन्होंने तपस्याद्वारा शंकरकी आराधना की और भगवान् शंकरने इनको भाष्यनिर्माणकी पटुता प्रदान की, और उसी शक्तिसे भाष्य बना कहा भी है कि,

यद्विस्मृतमदृष्टं वा सूत्रकारेण तत्स्फुटम्।
वाक्यकारो ब्रवीत्येव तेनादृष्टं च भाष्यकृत्॥

जिस समय पतञ्जलिने भाष्यनिर्माण किया उस समय सहस्रसे अधिक शिष्य पढनेको बैठे, पतञ्जलिने कहा हम बीचमें परदा डालकर पढावैंगे उस समय हमको कोई देखनेका उद्योग न करै अन्यथा अच्छा न होगा, इस प्रकार ३२ दिनतक पढाई होतीरही, ३३ वें दिन 'कृदतिङ्' यह सूत्र जब आया तब शिष्योंने विचार किया कि यह एकमात्र इतने शिष्योंको कैसे पढारहेहैं, देखैं तो ऐसा विचारकर जो परदा हटाकर देखा तो शेषके मुखकी ज्वाला न सहसकनेके कारण वे सब भस्म होगये और पतञ्जलि तपस्वीके रूपमें स्थित हुए, उनमेंका एक शिष्य जो बाहर गयाथा वह लघुशंकासे निवृत्त हो यह व्यापार देख बडा विस्मित हुआ और महर्षिकी बडी प्रार्थना की तब महर्षिने कहा तुम पाठ छोडकर विना पाठ शान्ति किये बाहर चलेगये, इससे तुम ब्रह्मराक्षस होगे पीछे प्रार्थना सुनकर कहा तुम यात्रियोंसे पचधातुका निष्ठामें क्या रूप होताहै ऐसा पूछना, जब कोई 'पक्वम्' ऐसा उत्तर दे तब तुम उसको भाष्य पढाकर शापसे मुक्त होगे यह कहकर ऋषि अन्तर्हित हुए, कालक्रमसे चन्द्रगुप्त ब्राह्मणने ब्रह्मराक्षसको 'पक्वम्' उत्तरदिया, तब ब्रह्मराक्षस उसको महाभाष्य पढाकर शापसे मुक्त हो स्वर्गको गया, चन्द्रगुप्तने महाभाष्यको नखोंसे वटपत्रोंमें लिखा, और कहीं मार्गमें गठरी शिरहाने धर सोगया वहां एक बकडा आकर उनको खानेलगा ज्यों ही चन्द्रगुप्त जागा कि ग्रन्थको इस प्रकारसे नष्ट होता देख वह। दुखी हुआ पश्चात् उसको लेकर चलते हुए मार्गमें एक कुमारीने उनका आतिथ्य सत्कार किया, और अपना वृत्तान्त सुनाकर कहा कि एक तपस्वी कहगयेहैं कि पतञ्जलिकी समान महाभाष्यज्ञाता एक द्विज यहां आवैगा वही "तेरा पाणिग्रहण करैगा तबसे मैं यहां निवास करतीहूं, तब द्विजने समाधिदृष्टिसे यह सब जानकर उस चतुर्वर्णीकुमारीसे कहा कि, यदि ऐसा होगा तो मुझको ऊपरके तीन वर्णोंकी कन्याओंसे भी विवाह करना होगा, उस कन्याके स्वीकार करनेपर चन्द्रगुप्त उज्जयिनीमें जाकर और तीन वर्णोंकी कन्याओंके साथ परिणय करके गृहस्थधर्म पालनकरनेलगे, और वटपत्रपर लिखे महाभाष्यको पर्यालोचन पूर्वक और गुरुके पढायेको स्मरण करके उस अजभक्षित शेषग्रन्थको ठीककिया जहांकहीं स्मरण न हुआ वहां (०) ऐसा चिह्न करदिया, यह बात नैषधकाव्यमें श्रीहर्षकविने भी स्वीकार कीहै यथा--फणिभाषितभाष्यफक्किका विषमा कुण्डलनाममापिता (सर्ग२ श्लो० ९५) इस प्रकार महाभाष्यके लिखे जानेपर पीछे व्याख्याओंकी

चारों स्त्रियोंमें चार पुत्र हुए उन चारोंके नाम वररुचि, विक्रमार्क, भट्टि और भर्तृहरि हुए * और इनको विद्वान् बनानेके उपरान्त चन्द्रगुप्त तपस्या करनेको वनमें चले गये और इन चारोंने भी अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकी कालक्रमसे शक्तिहीनता होनेसे पाणिनिके व्याकरण और पतञ्जलिके महाभाष्यका पठन पाठन लोपको प्राप्त होने-लगा, दाक्षिणात्यदेशके चित्रकूटस्थानमें किसी नारायण-नामक पण्डितके यहां महाभाष्यका ग्रन्थ शेष था, विप्र वेशधारी किसी ब्रह्मराक्षसने वहांसे वह ग्रन्थ अपहरण करके वसुरात और चन्द्र आचार्यादि विद्वानोंको दिया उनसे विक्रमादित्यके भ्राता भर्तृहरिने अध्ययन किया, पश्चात् भर्तृहरिने महाभाष्यकी व्याख्या करके और उसके तात्पर्य ज्ञापक ब्रह्मवाक्य और पदभेदसे जो त्रिकाण्ड-ग्रन्थकी रचना की उसीका नाम वाक्यपदी है, यह ग्रन्थ भाष्यकी टीकामें लक्षश्लोकात्मक है, परन्तु इस ग्रन्थके निर्माण होनेपर इन्होंने लिखाथा कि (अहोभाष्यमहो-भाष्यमहोवयमहोवयम् । मामदृष्ट्वागतः स्वर्गमकृतार्थः पत-ञ्जलिः) इस आक्षेपके वचनसे इस ग्रन्थकी अप्रतिष्ठाकरदी।

विदित होताहै कि भाष्यकार चन्द्रगुप्तके राज-त्वकालके पीछे और भर्तृहरिसे पूर्व हुएहैं कारण कि " समाराजाऽमनुष्यपूर्वा २।४।२३ " इस सूत्रके उदाहरणमें " चन्द्रगुप्तसभा " ऐसा स्पष्ट कहा है यह फणिपतिनामसे भी प्रसिद्ध हैं ।

यह पतञ्जलि योगशास्त्रकर्ता पतञ्जलिसे भिन्न हैं कारण कि, " एतेन योगः प्रत्युक्तः २ । १ । १३ " इस शारीरकसूत्रमें व्यासजीने जो योगशास्त्रके अंशमें दोष दियाहै वह व्याससे पूर्व होनेका प्रमाण देता है तथा पतञ्जलिके योगसूत्रपर व्यासभाष्य भी मिलता है, और भाष्यमें चन्द्रगुप्तका उदाहरण मिलनेसे भाष्यकर्ता उनसे परवर्ती होने चाहियें हां यह हो सकता है कि फणिपतिने पूर्वकालमें योगदर्शन रचा हो और फिर पतञ्जलिनामसे अवतीर्ण होकर भाष्यकर्ता हुए हों और इस प्रकारसे योगदर्शनके निर्माता कहेजाते हों अथवा अन्य ही कोई पातञ्जलदर्शन बनाया हो माधवाचार्यने सर्वदर्शन संग्रहमें पातञ्जलदर्शनके प्रस्तावमें कहा है कि सब शास्त्र पुरा-णकी आदिमें संसारमें प्रायः योगशास्त्रका प्रचार न था कृपापरतंत्र महर्षि पतञ्जलिने फणिपतिसार संग्रहपूर्वक पातञ्जलयोगसूत्रोंकी रचना की, अस्तु जो कुछ भी हो योगसूत्रकर्ता पतञ्जलि और महाभाष्यकर्ता पतञ्जलि भिन्न २ हैं और व्यासदेवके समय पाणिनि-व्याकरण भी नहीं था, यहां एक आख्यायिका है कि एक समय काशीधाममें जब महाकवि कालिदास गये तब व्यासदेवकी श्रीमूर्ति देखकर उनके बृहत् उदरपर हाथ फेरतेहुए श्लेषरूपसे कहाथा कि इन महर्षिके उदरमें कितने आर्षप्रयोग थे कुछ कहा नहीं जाता अर्थात् महा-भारतादि व्यासरचितग्रन्थोंमें ऐसे कितने ही प्रयोग हैं जो पाणिनिव्याकरणसे सिद्ध नहीं होसकते उस समय मंदिर मेंसे तत्क्षण यह वाणी हुई कि—

यान्युज्जहार माहेशाद्व्यासो व्याकरणार्णवात् ।
तानि किं पदरत्नानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे ॥

अर्थात् व्यासदेवने माहेशनामक व्याकरणसमुद्रसे जितने पदरत्न उद्धार किये हैं वह क्या पाणिनिके गोष्प-दतुल्य व्याकरणमें होसकते हैं ।

अस्तु पाणिनि कात्यायन और पतञ्जलि इन तीन मह-र्षियोंने व्याकरणको पूर्ण अवयवप्रदान किया है यह संस्कृ-तभाषाके कैसे अद्वितीय विद्वान् थे यह निर्णय हमारी समा-न सामान्यबुद्धिवालोंकी सामर्थ्यसे बाहर है, महाभाष्यके टीकेका नाम भाष्यप्रदीप है कैयट * इसके प्रणेता हैं कैयटके टीकेपर नागोजिभट्टने टीका लिखाहै उसका नाम 'भाष्यप्रदीपोद्योत है' कैयटके टीकेपर एक टीका और भी है उसका नाम भाष्यप्रदीप विवरण है और यह पण्डित ईश्वरानन्दका निर्मित है—

फिट्सूत्र यह शान्तनवाचार्यके संकलित वा निर्मित हैं कोई शान्तनु आचार्यकर्तृक कहतेहैं (द्वारादीनाञ्च ७ । ३ । ४) इस सूत्रकी व्याख्यापर हरदत्त कहतेहैं 'शान्तनुराचार्यः प्रणेता' अर्थात् इनके निर्माता शान्तनु आचार्य हैं यह चार पादोंमें ८७ सूत्र हैं उदात्त अनुदात्त और स्वरितके निर्णयके हेतु इनकी रचना हुई है यह पाणिनिसे परवर्ती विदित होतेहैं पूर्ववर्ती होते तो पाणिनि इनका उल्लेख करते,

उणादिवृत्ति—पाणिनिके पूर्व भी इस विषयके ग्रन्थ थे किस प्रकारके थे सो तो नहीं कहसकते, परन्तु पाणिनि-कृत कृत्सूत्र और उणादिसूत्र इस वृत्तिका अवलम्बन हैं

---

* यह चारों नाम विख्यात चार पुरुषोंसे भिन्न हैं कारण कि यही विक्रमादित्य हो तो उसको राज्यकी प्राप्तिका कोई उल्लेख नहीं है, और विक्रमादित्यके पिताका नाम गन्धर्वसेन था उनके दो रानी थीं उन दोनोंसे भर्तृहरि और विक्रमादित्य हुए दूसरी पत्नीके पिता धारानगरके राजा थे इनके कोई सन्तान न थी इससे विक्रमादित्य और भर्तृहरिको पुत्रकी समान पाला, और भर्तृहरिको धारानगरीका राज्य दिया विक्रमादित्य असामान्यपराक्रम आरूढ हुए पीछे कुछ दिनोंमें विक्रमादित्यने लौटकर उज्जयिनीका राज्यभार अपने हाथमें लिया।

* यह काश्मीरदेशके पामानगरनिवासी जैयटोपाध्यायके सन्तान १३०० ई० में थे ।

इनमें ३२९ प्रत्यय और ७४८ सूत्र हैं पाणिनिसे पूर्ववर्ती है कारण कि 'उणादयो बहुलम्' सूत्रसे पाणिनि स्वयं इनका उल्लेख करते हैं, इनपर उज्ज्वलदत्तकी वृत्ति प्रचलित और मान्य है कातंत्रव्याकरणकी दौर्गसिंहवृत्ति भी मान्य है सब व्याकरणोंमें उणादि संक्षिप्तरूपसे हैं, केवल कलाप व्याकरणका उणादि बडा और शृंखलाबद्ध है इसके सिवाय उणादिकोषनामक एक अभिधानग्रन्थ है वह भी अच्छा है.

वृत्तिकार उज्ज्वलदत्तने लिखाहै मैं गणपति ईश्वर और गुरुदेवको प्रणाम करके उज्ज्वलवृत्तिको बनाताहूँ, वृत्तिन्यास, अनुन्यास रक्षित, भागवृत्ति, भाष्य, धातुप्रदीप, उसकी टीका हैं और उपाध्यायके सर्वस्वस्वरूप सुभूति, कलिङ्ग हड्डचन्द्र इत्यादिने प्राचीनग्रन्थोंके अवलम्बन और आलोचन करके इनको बनायाहै, उणादिवृत्ति अनेक हैं वह सब सूत्र शब्दरूप धातुगतवैलक्षण्यको प्राप्त होगयेहैं इससे उनपर निर्भर न रहकर उन सबको विचारकर और अन्यग्रन्थोंका सार लेकर मैं इस वृत्तिको बनाता हूँ।

उज्ज्वलदत्तका दूसरा नाम जाजलि है यह सुभूतिके शिष्य हैं उज्ज्वलदत्त किस समय हुए इसका निश्चय तो कठिन है, पर यह अमरसिंहके परवर्ती हैं कारण कि उनकी वृत्तिमें अमरकोषके अनेक उदाहरण उद्धृत हुए हैं, इन वृत्तिकारने मुखबन्ध श्लोकोंमें ऐसा खेद प्रकाश किया है कि जो मनुष्य मेरी इस वृत्तिको देखकर अपने पुरुषत्वकी कामनासे मेरे नामको लोप करनेमें प्रवृत्त होगा उसका समस्त पुण्य नष्ट होजायगा (श्लोक ७)

इसके सिवाय पाणिनिव्याकरणके अवलम्बनसे अनेक ग्रन्थ बनेहैं उनमेंसे कुछ एकके नाम लिखते हैं, पुरुषोत्तमदेवकृत भाषावृत्ति इसके टीकाकार सृष्टिधर हैटीकाका नाम भाषावृत्त्यर्थविवृति है.

भट्टोजिदीक्षितकृत शब्दकौस्तुभ, ग्रन्थकार इसको पूर्ण नहीं करसके थे वालामभट्ट इसके टीकाकार हैं टीकाका नाम प्रभा है,

रामचन्द्रआचार्यकृतप्रक्रियाकौमुदी है इसमें पाणिनिके सब सूत्रोंका व्यवहार हुआ है परन्तु पाणिनिव्याकरणकी रीति छोडकर अन्यरीतिसे यह ग्रन्थ बना है, इसपर विट्ठलआचार्यकृत प्रसाद और जयन्तचन्द्रकृत तत्त्वचन्द्रनामक टीका हैं.

भट्टोजिदीक्षितकृत सिद्धान्तकौमुदी इसकी मनोरमा[1] तत्त्वबोधिनी शब्देन्दुशेखर लघुशब्देन्दुशेखर प्रभृति टीका है।

लघुकौमुदी और मध्यकौमुदी वरदराजकृत.

परिभाषासंग्रह, परिभाषावृत्ति, और परिभाषेन्दुशेखर नागेशभट्टकृत, वैद्यनाथपायगुण्ड[2] इसके टीकाकार हैं ।

भर्तृहरिकारिका वा वाक्यप्रदीप[3] यह आदिसे अन्ततक श्लोकोंमें रचित है कातंत्र वा कलापव्याकरण बहुत बडा है वह भी पाणिनिकी रीतिके अनुसार न होकर अन्य ही रीतिसे बनाहै परन्तु प्रत्ययसंज्ञा पाणिनिके ही अनुसार है, इसमें पाणिनि, पतञ्जलि, व्याडि, भागुरि प्रभृति व्याकरणोंका सारांश संकलित हुआ है. पाणिनिके दो दो तीन२सूत्र एकत्र कर इसका एक२सूत्र बनाहै यथा हि–

१ कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् उणादि १।१

२ छन्दसीणः–उणा०

३ दृसनिजनिचरिचटिभ्यो ञुण्–उणा०

इन सूत्रोंको एकत्र करके कातंत्रका एकसूत्र बना- यथा– "कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूदृसनिजनिचरिचटिभ्य उण्" कातंत्रके अनेक स्थलोंपर पाणिनिके सूत्र अविकल हैं किसी २ स्थलपर कुछ प्रक्षेप और निक्षेप भी है इसमें एक परिभाषा और एक परिशिष्ट अंश होनेसे यह बडा सुगम होगया है.

प्रयोगरत्नमाला–इसमें पाणिनिके सूत्र और कलापसूत्र एकत्र हैं सब सूत्र पद्योंमें ग्रथित हैं इन सब सूत्रोंको पद्योंमें रचना करके ग्रन्थकार पुरुषोत्तमने बडा- परिश्रम किया है, उन्होंने भूमिकामें लिखा है,

श्रीमल्लदेवस्य गुणैकसिन्धोर्महीमहेन्द्रस्य यथानिदेशम्।
यत्नात्प्रयोगोत्तमरत्नमाला वितन्यते श्रीपुरुषोत्तमेन ॥

इस पद्यसे प्रगट होताहै कि यह ग्रन्थ श्रीमल्लदेवके राजत्वकालमें निर्मित हुआहै श्रीमल्लदेव कूचविहारके राजा थे, महर्षि पाणिनिने अष्टाध्यायीके सिवाय धातुपाठ, लिङ्गानुशासन और शिक्षा आदि भी ग्रन्थ बनाये हैं जो बहुधा बम्बईकी छपी प्रत्येक सिद्धान्तकौमुदियोंमें सन्निविष्ट हैं । **सम्पूर्तिः**

ज्वालाप्रसादमिश्र.

---

[1] हरिदीक्षित मनोरमाके टीकाकार हैं इसके ऊपर भी भावप्रकाशिका नाम एक टीका है ।

[2] इसके ऊपर एक चिदस्थिमालानामक टीका है ।

[3] कोलब्रुकसाहबने वाक्यपदीयके भ्रमसे वाक्यप्रदीपको भर्तृहरि प्रणीत लिखा है, वाक्यप्रदीप हरिवृषभकृत है उसके टीकाकार पुण्यराज हैं ।

॥ श्रीः ॥

भट्टोजिदीक्षित।

भट्टोजिदीक्षितने संस्कृतके साहित्यमें बडे ऊंचे स्थानको अपने अधिकारमें करलिया है। उन्होंने महर्षि पाणिनिके जगद्विख्यात "अष्टाध्यायी" व्याकरणके सूत्रोंका अवलम्बनकर अतिप्रसिद्ध "सिद्धान्तकौमुदी" बनाई, और इसकी सहायतासे इन महात्माने पाणिनिके माहात्म्यका सारे संसारमें प्रचार किया। आज हम जगद्विख्यात पंडितका जीवनचरित्र व इनके समयका निर्णय करतेहैं।

कन्नौज (कान्यकुब्ज) बहुतकालसे भारतवर्षके इतिहासमें प्रसिद्ध है। भूगोलके जाननेवाले ग्रीकनिवासी टलेमिने (अनुमान १४०–१६० ई० में) प्राचीन कन्नौजनगरीका नाम लिखाहै। तबसे लेकर सन् ईसवी बारहसौके पिछले हिस्सेतक कन्नौजका नाम भारतवर्षके इतिहासमें वारंवार लिखाहुआ दिखलाई देताहै। ईसवी सन् चौथी शताब्दीके मध्यभागमें कन्नौज गुप्त सम्राटोंके अधिकारका एक उत्तम और प्रधान नगर गिनाजाताथा फिर चौथी शताब्दीसे लेकर छठी शताब्दीके मध्यमजन्मतक कन्नौज गुप्त महाराजाओंके अधिकारमें रहा। ईसवी पांचवीं शताब्दीके आरम्भमें (३९९–४१४ ई०) चीनके विख्यात भ्रमण करनेवाले फाहिपानने कन्नौजको देखकर अपने भ्रमणवृत्तान्तकी पुस्तकमें उसकी सम्पत्तिका वर्णन कियाहै तिस कालमें कन्नौज गुप्त महाराजाओंके अधिकारमें था। गुप्तमहाराज नरसिंहगुप्तका सेनापति और सामन्तराज यशोधर्म्म हुनराजके मिहिर कुलको पराजित करके स्वयं महाराज बन बैठा। ज्ञात होताहै कि, कदाचित् यह मालवेमें गुप्त महाराजाओंका शासक होकर उनपर राज करताथा अपने बाहुबलके द्वारा हुनराजके हाथसे गुप्तराज्यका उद्धारकर सेनापति यशोधर्मने पिछले गुप्तसम्राट दूसरे कुमारगुप्तके हाथसे राज्यका भार अपने हाथमें लेलिया। इसने महाराजाधिराज विष्णुवर्द्धनकी उपाधि धारण करके कन्नौजको अपने अधिकारमें करके राजधानी बनाया। इस यशोधर्मके नामकी जो दो शासनलिपि पुरातत्त्ववित् फ्लीटसाहबके खोजसे मन्दसरमें निकली हैं, उनमें एक ५३३–३४ ई० में खुदी है महाराज विष्णुवर्द्धनके समयसे भारतवर्षके बीच कन्नौज प्रधान नगर गिनाजानेलगा। अनुमान ५३० से ५८० सन् ई० पचासवर्षतक विष्णुवर्द्धन कन्नौजका राज करता रहा, गुप्त महाराजाओंकी अवनतिके पीछे इसी भांति वर्द्धनवंशका राजपाट कन्नौजमें प्रतिष्ठित हुआ। इस वर्द्धनवंशका आदिवासस्थान थानेश्वर था,

वर्द्धनवंशकी प्रतिष्ठा और सम्पत्ति इसके संग बढती रही, ईसवी छठी शताब्दीके मध्यभागसे कन्नौजकी प्रतिष्ठा सम्पत्ति बहुत बढगई। तबसे कन्नौजसंस्कृतकी चर्चाके विषयमें एक विख्यातस्थान होगया, वर्द्धनवंशका पिछला राजा हर्षवर्द्धन शिलादित्य ६०७–६४८ ई० तक समस्त भारतवर्षका चक्रवर्ती महाराज था, इसी हर्षवर्द्धनके समयमें अर्थात् सन् ६३४ ई० में हियां साङ्० ने कान्यकुब्जमें आकर भलीभांतिसे उसकी शोभाका वर्णन किया, ऐसा सुननेमें आया है कि, इन्हीं महाराज हर्षवर्द्धनने रत्नावली और नागानन्दनामक संस्कृतके नाटक बनाये। विख्यात बाणभट्टने इन्हीं महाराज हर्षवर्द्धनकी राजसभामें रहकर अपने स्वामीका जीवनचरित्र "हर्षचरित" लिखा महाकविचक्रचूडामणि बाणभट्टके पिताका नाम चित्रभानु था। यह अर्थपतिका पोता और कुबेरका परपोता था। हर्षवर्द्धनके आश्रयमें रहकर बाणभट्टने कादम्बरी पार्वतीपरिणयनाटक और चंडिकाशतक बनाया, मयूरभट्टने भी इसी हर्षवर्द्धनकी राजसभामें रहकर "सूर्यशतक" बनाया।[1]

महाराज हर्षवर्द्धनके पीछे सौवर्षसे कुछ ऊपर ईसवी आठवीं शताब्दीके मध्यभागमें यशोवर्मानामक राजा कन्नौजमें राज करता था। काश्मीरके इतिहास या राजतरंगिणीके मतसे काश्मीरके महाराजा ललितादित्यने इस यशोवर्माको वारंवार पराजित करके अन्तमें राज्यगद्दीसे उतार दिया। महाकवि भवभूति और वाक्पतिनामक

---

१ हर्षचरितके आरम्भमें बाणभट्टने अपनेसे पहले हुये कविसुबन्धुकी वासवदत्ताके अनुकरणपर प्रसिद्ध कादम्बरी बनाई, बाणभट्टसे पहले सुबन्धु ईसवी छठी शताब्दीके शेषभागमें कन्नौजकी राजसभामें आया। पंडितवर E. E. Hall साहबने वासवदत्ताकी गौरव युक्त भूमिकामें सबसे पहिले यह बात दिखाई। "कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।" (हर्ष चरित १८ श्लोक)।

२ राजतरंगिणीकी चौथी तरंगमें ललितादित्यके राज्यका वर्णन कियागया है। तिसके संग २ में कन्नौजके स्वामी यशोवर्मोके पराजित होनेका वृत्तान्त भी लिखा है।

कविवाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥
राजतरंगिणी ४। ११।

एक दूसरे कवि इस यशोवर्माकी सभामें विद्यमान थे। कहते हैं कि, ललितादित्यके समयमें (७१९–९१ ई०) विख्यात महाराज शङ्कराचार्यजी दिग्विजय करते २ काश्मीरमें आयकर कुछ कालतक सरस्वती पीठमें विराजमान रहे। (परन्तु यह शंकराचार्य शंकरस्वामीकी गद्दीके अधिकारीमेंसे होंगे भाष्यकार नहीं कारण कि भाष्यकारको २३०० वर्षसे अधिक होते हैं)

यशोवर्मासे राज छूटनेके परे ही कन्नौजमें एक नवीन राजवंश देवशक्तिसे आठवीं शताब्दीके पिछले भागमें प्रतिष्ठित हुआ इस देवशक्तिके नीचेके पंचम वंशधर महेन्द्रपालकी सभामें राजशेखरने बालभारत, बालरामायण, (प्रचण्ड पांडव) कर्पूरमंजरी और विद्धशालभंजिका यह चार नाटक बनाये, इस कविने बालरामायणमें महाकवि भवभूतिका नाम लिया है।

बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्तुमेकताम्॥
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्त्तते सम्प्रति राजशेखरः॥
(बालरामायण १।१६)

ईसवी नवमशताब्दीके शेषभागमें राजा महेन्द्रपालकी देवसभामें राजशेखर आया भवभूतिके राजशेखरसे पहले होनेका प्रमाण बालरामायणके उपरोक्त श्लोकसे प्रमाणित होताहै।

देवशक्तिके पिछले वंशधरको पराजित करके बनारससे गाहडवार राजपूतवंश कन्नौजमें प्रतिष्ठित हुआ अनुमान १०९० सन् ईसवीमें चन्द्रदेवने काश्यपगोत्री राजवंशको कन्नौजमें प्रतिष्ठित किया। चन्द्रदेवके पिताका नाम चन्द्र, और दादाका नाम यशोविग्रह था। चन्द्रदेवने कन्नौजके राजा साहसांकको पराजित करके कन्नौजमें अपना अधिकार फैलाया, इस चन्द्रदेवके पुत्र राजा मदनपालने १०९७ से लेकर १११४ सन् ई० तक कन्नौजमें राज्य किया। राजा मदनपालने मदनविनोदनिघण्टु नामक एक वैद्यक ग्रन्थ बनाया।

इस मदनपालहीकी सभामें विराजमान रहकर महेश्वरने "साहसाङ्कचरित" और "विश्वकोश" अभिधान रचा विल्सन्साहबके अनुमानसे महेश्वरने सन् ११११ ई० में विश्वकोश बनाया। महेश्वरने "वैद्यराजशेखर" और कविराजपरमेश्वर कहकर विश्वकोशके शेषभागमें अपना परिचय दिया। गुजरातके सुप्रसिद्ध जैन नरपति कुमारपालके सभासद जैनाचार्य हेमचन्द्रके "अभिधानचिन्तामणि" का नानार्थभाग विश्वकोशसे संगृहीत हुआ है।

महेश्वरकविराजके पिताका नाम ब्रह्मेश्वर और दादाका नाम केशव था, केशवका महेशनामक चचा वैद्यकशास्त्रमें अत्यन्त प्रसिद्ध होगया। महेशके पिताका नाम दामोदर और दादाका नाम श्रीकृष्ण था, श्रीकृष्ण गाधिपुरकी राजसभामें विद्यमान था, श्रीकृष्णका पिता हरिश्चन्द्र चरकसंहिताकी टीका बनाकर प्रसिद्ध हुआ, विश्वकोशके आरम्भमें कविराज महेश्वरने इस प्रकार अपना परिचय दिया है। शाके ११९९ पौषमासका लिखा हुआ एक विश्वकोश पाया गया है। अबतक जो कुछ लिखा गया तिससे यह निश्चित जाना जासकता है कि, प्राचीन समयसे कन्नौज संस्कृतकी चर्चाके लिये विख्यात है। भट्टोजिदीक्षित इसी कन्नौजकी राजसभामें स्थित थे। इसी कारण उनके होनेसे जो कन्नौजमें संस्कृतकी चर्चा होती थी उसका वर्णन यहांपर लिखागया। जिस समय महेश्वर कविराजने राजा मदनपालकी राजसभामें विराजमान रहकर "विश्वकोश" अभिधान बनाया उस कालमें हृदयधरभट्ट कन्नौजराजाका मंत्री था। महाराजा मदनपालकी मृत्युके परे उनका पुत्र गोविन्दचन्द्रदेव कन्नौजके सिंहासनपर बैठा। ११२०सन् ई० का खुदा हुआ ताम्रपत्र कि, जिसपर महाराज गोविंददेव चन्द्रका नाम

---

[1] पंडित आनन्दरामके मतसे यह भवभूति महाकवि उन भवभूतिसे अलग हैं इसका अनुमान यह है कि महाकवि भवभूतिने ई० सन् ५ वीं शताब्दीमें प्रगट होकर महावीरचरित उत्तररामचरित और मालतीमाधव यह तीननाटक बनाये। यह समस्तनाटक उज्जयिनीनगरके विख्यात "कालप्रियनाथ" महादेवजीके मन्दिरमें खेलेगये। भवभूति ईसवी पांचवीं शताब्दीमें उज्जयिनीके स्वामी महाराजविक्रमादित्यकी सभामें कालिदास और अमरसिंहका समान विद्यमान था। और यह बात सत्य भी प्रतीत होती है।

Mr. A. R. Baruah's Essay on Bhavabhuti and his place in sanskrit Literature.

—जयति मदनपालः सर्वं विद्याविशालः
कृतसरसिजमित्रः कर्मधर्मे पवित्रः।
सुजनपिकरसालस्तुष्टगोपालबालः
[illegible]विरतरचरित्रश्चारुचातुर्यचित्रः
श्रीसारसा कन्दपतेरवद्या
विद्यातरङ्गपदमव्ययमेव बिभ्रत्॥

[1] गाधिपुर, कुशस्थल, महोदय और कान्यकुब्ज यह कन्नौजके प्राचीन नाम हैं इन नामोंसे यह पायाजाता है कि, महेश्वरके पूर्वपुरुष भी इसी राजसभामें विद्यमान थे। महेश्वरने काव्य[illegible] भोगीन्द्र, कात्यायन, साहसाङ्क, वाचस्पति, व्याडि, विश्वरूप, अमरसिंह, मंगल, शुभाङ्क, वोपालित और भाण्डवाके बनाये कोषसे सहायता लेकर विश्वकोश बनाया। इससे महेश्वरसे पहले होगये हुये कोशकारोंका नाम पायाजाता है, और यह भी जानाजाता है कि महेश्वरके समयमें इन कोसकारोंके बनाये हुये ग्रन्थ प्रचलित थे।

लिखाहै–पाया गयाहै इन्होंने अनुमान सन् १११९ ई० से लेकर सन् ११६० तक कन्नौजमें राज्य किया फिर गोविन्दचन्द्रदेवके पुत्र विजयचन्द्रदेवने ११६० से लेकर ११७६ तक कन्नौजका राज्यभार संभाला। इसी विजयचन्द्रका पुत्र जयचन्द्र कन्नौजका पिछला स्वाधीन राजा हुआ। ११७७–९३ ई० तक सत्रह वर्ष राज करके, महा बुद्धिमान् शहाबुद्दीन गौरीके हाथसे हारकर महाराज जयचन्द्र मारागया, और अपने रुधिरसे ही इन महाराजने स्वदेशद्रोहिता और पापका प्रायश्चित्त किया।

हृदयधरभट्टका पुत्र लक्ष्मीधर महाराज गोविन्दचन्द्रदेवके यहां महासन्धि विग्रहादिकके पदपर नियत था। महाराजकी आज्ञासे इस सुपण्डित ब्राह्मण सचिवने द्वादशकाण्डमें "कृत्यकल्पतरु" नामक प्रसिद्ध और विस्तारित ग्रन्थ बनाया, लक्ष्मीधरका सुविस्तीर्ण "कृत्यकल्पतरु" नामक ग्रन्थ देवगिरिनिवासी हेमाद्रिके बनाये "चतुवर्गचिन्तामणि" नामक सुप्रसिद्ध स्मृतिग्रन्थसे सौवर्ष पहिले लिखागया और संगृहीत हुआ। दक्षिणपथके अन्तर्गत देवगिरिके यदुवंशीय राजा कृष्णके भ्राता राजा महादेवकी (१२६०–७१ ई०) आज्ञासे उनके सभासद हेमाद्रिने ईस्वी १३ शताब्दीके शेषभागमें "चतुर्वर्गचिन्तामणि" नामक ग्रन्थ बनाया था। सन् ईस्वी १२ शताब्दीके शेषभागमें कन्नौजके महाराजा गोविन्दचन्द्रदेवकी आज्ञासे लक्ष्मीधरभट्टने "कृत्यकल्पतरु" संगृहीत किया॥ चतुर्वर्गचिन्तामणिकी समान लक्ष्मीधरका ग्रन्थ कई एक प्रधान भागोंमें विभक्त है। तिसमें "व्यवहार" "काल" और "मोक्षकाण्ड" मिलगयाहै। १५१० शकाब्द (१५८८ ई०) का लिखा "कृत्यकल्पतरु" का कालकाण्ड नदिया जिलाके उलाग्राममें दीनानाथ भट्टाचार्यके स्थानपर विद्यमान है।

इन्हीं लक्ष्मीधरके पुत्र भट्टोजीभट्ट हुये। यह ई० १२ शताब्दीके मध्य और शेषभागमें कन्नौजके स्वामी महाराजा गोविन्दचन्द्र और विजयचन्द्रकी सभामें विद्यमान थे। भट्टोजिदीक्षितने "सिद्धान्तकौमुदी" के सिवाय "शब्दकौस्तुभकारिका" "भारवंश" "तत्त्वकौस्तुभ" "पूजाप्रकरण" "तिथिनिर्णय" और श्राद्धकाण्ड, आशौच प्रकरण, हेमाद्रिसारभूत, चतुर्विंशतिमतव्याख्या, आचारकाण्ड, संस्कारकाण्ड, प्रायश्चित्तकाण्ड, कालनिर्णय, प्रवर्गनिर्णय, मनोरमा, दायभाग, तन्त्रसिद्धान्तदीपिका त्रिस्थलीसेतु तैत्तिरीयसन्ध्याभाष्य बनाया, महर्षि पतंजलिके बनाये हुये महाभाष्यके अवलम्बनसे पाणिनिके अष्टाध्यायीसूत्रोंकी व्याख्याके रूपसे (शब्दकौस्तुभ) बनाया गया, इस पुस्तकमें जो उन्होंने अपना वृत्तान्त लिखा है, प्रयोजनीय समझकर उसको यहांपर उद्धृत किया वह व्याकरण और स्मृति दोनोंको भलीभांतिसे जानते थे। इन महाशयने "तत्त्वकौस्तुभ" में मध्वाचार्यके वेदान्तभाष्यका मत खण्डन करके शंकराचार्यका मत ग्रहण किया है। "भट्टोजिदीक्षितभट्ट सर्व शास्त्रदर्शी महोपाध्याय पंडित थे वाराणसी नगरमें ब्राह्मणके यहां इनका जन्म हुआ। अति प्राचीन कालमें काशीका भट्टवंश संस्कृतचर्चा और पंडिताईके लिये विख्यात है।

" विश्वेशं सच्चिदानन्दं वन्देऽहं योऽखिलं जगत्।
चरीकर्ति बरीभर्ति सञ्जरीहर्ति लीलया॥
नमस्कुर्वे जगद्वन्द्यं पाणिन्यादिमुनित्रयम्।
श्रीभर्तृहरिमुख्यांश्च सिद्धांतस्थापकान्बुधान्॥
नत्वा लक्ष्मीधरं तातं सुमनोवृन्दवन्दितम्।
फणिभाषितभाष्याब्धेः शब्दकौस्तुभमुद्धरे॥
समर्प्य लक्ष्मीरमणे भक्त्या श्रीशब्दकौस्तुभम्॥
भट्टोजिभट्टजनुषः साफल्यं लब्धुमीहते॥

भट्टोजिदीक्षितके समान श्रीहर्षदेव भी महाराजा विजयचन्द्रकी सभामें विद्यमान थे, श्रीहर्षका जन्म काशीमें हुआ उनके पिताका नाम श्रीहरि और माताका नाम मामल्लदेवी था मामल्लदेवीके भ्राता मम्मटभट्टने "काव्यप्रकाश" नामक अलंकारका विख्यात ग्रन्थ बनाया। विजयचन्द्रकी आज्ञासे श्रीहर्षने महाभारतके नलोपाख्यानका अवलम्बन कर "नैषधचरित" नामक महाकाव्य बनाया नैषधचरितके सिवाय इन श्रीहर्षने "नवसाहसांकचरित" "छन्दःप्रशस्ति" "विजयप्रशस्ति" और "खण्डनखण्डखाद्य" रचना किया। इन्होंने अपने बनाये हुये ग्रन्थोंमें कवित्व और दार्शनिकताका अपूर्व मेल दिखाया है॥

भट्टवैद्यनाथका "कौस्तुभटीका और कृष्णमिश्रका "भावप्रदीप" शब्दकौस्तुभकी यह दो टीका लिखी गयीं। भट्टोजिदीक्षितकी बनाई "सिद्धान्तकौमुदी" का अवलम्बन करके उनके शिष्य वरदराजने "मध्यसिद्धान्तकौमुदी

---

१ राजशेखरनामक एक जैन लेखकने सन् १३४८ ई० में प्रबन्धकोष नामक ग्रन्थ बनाया, इस पुस्तकमें उसने कन्नौजके महाराजा जयचन्द्रकी सभामें श्रीहर्षदेवके स्थित होनेका वर्णन लिखा है यह श्रीहर्ष बंगदेशमें आयेहुये पंचगौडोंमें भरद्वाजगोत्रके श्रीहर्षसे अलग है [illegible] मतसे यही जयचन्द्र गोविन्दचन्द्रदेवका पुत्र और जयचन्द्रसे अभिन्न है। डा० रामदाससेनने भी इसी बातको माना है।

और " लघुसिद्धान्तकौमुदी " बनाई। संवत् १२५० अर्थात् (११९३ ई०) में मध्यसिद्धान्तकौमुदी बनी।

नत्वा वरदराजः श्रीगुरून्भट्टोजिदीक्षितान्।
करोति पाणिनीयानां मध्यसिद्धान्तकौमुदीम्॥
कृतिर्वरदराजस्य मध्यसिद्धान्तकौमुदी।
तस्याः संख्या तु विज्ञेया खबाणकरवह्निभिः॥

इन वरदराजने बारहवीं शताब्दीके शेषभागमें "व्यवहार निर्णय" स्मृतिविषयक ग्रन्थ बनाया। शिवानन्दभट्टकी आज्ञासे उनके पुत्र रामभट्टने "मध्यमनोरमा" नामक वरदराजकृत " मध्यसिद्धान्तकौमुदी " की व्याख्या बनाई। " सिद्धान्तकौमुदी" के अवलम्बनसे " सारकौमुदी " नामक एक और व्याकरण बनाया। भट्टोजिदीक्षितने अपनी बनाई सिद्धान्तकौमुदीका " प्रौढमनोरमा " नामक टीका बनाया। भट्टोजिके वीरेश्वर और भानुजी नामक दो पुत्र हुये। वीरेश्वरका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, वात्रेलवंशीय राजा कीर्तिसिंहदेवकी आज्ञासे भानुजीने अमरकोशकी " व्याख्यासुधा " नामक अत्युत्तम व्याख्या रची। भानुजीने इसमें अपनेसे पहले रायमुकुटादिटीकाकारोंका भ्रम दिखाकर अपनी विज्ञताका परिचय दिया है। भट्टोजिदीक्षितके दूसरे शिष्य महेशमिश्रके पुत्र वनमालीमिश्रनामक एक मैथिल ब्राह्मणने " कुरुक्षेत्रप्रदीप " ग्रन्थमें पुण्यतीर्थ कुरुक्षेत्रके माहात्म्यको वर्णन किया है।

भट्टोजिदीक्षितके पोते और वीरेश्वरके पुत्र हरिदीक्षितने भट्टोजिरचित " प्रौढमनोरमा " टीकाकी " लघुशब्दरत्न " नामक व्याख्या रची, इन हरिभट्टका शिष्य नागेश(नागोजी)भट्ट अति प्रसिद्ध ग्रंथकार हुआ नागेशके पिताका नाम शिवभट्ट और माताका नाम सतीदेवी था। नागेशभट्टकृत लघुशब्देन्दुशेखर,भाष्य प्रदीपोद्योत, वैयाकरणसिद्धांतमंजूषा, सप्तशतीव्याख्या और "स्फोटवाद" पायागयाहै। वैद्यनाथभट्टने "लघुशब्देन्दुशेखर" और "वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा" ग्रन्थकी टीका बनाई।

अधीत्य फणिभाष्याब्धिं सुधीन्द्रहरिदीक्षितात्।
न्यायतंत्रं रामरामाद्वादिरक्षोघ्नरामतः॥
याचकानां कल्पतरोररिकक्षहुताशनात्।
शृङ्गवेरपुराधीशाद्रामतो लब्धजीविकः॥
वैयाकरणनागेशः स्फोटायनऋषेर्मतम्।
परिचिन्त्योक्तवांस्तेन प्रीयतामुमया शिवः॥
(वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा)

शृंगवेरपुरके राजा हिम्मतिवर्माके पुत्र रामवर्माकी सभाके यह नागेशजी पंडित थे और इनके गुरु थे इन रामवर्माने अध्यात्मरामायणका "सेतु" नामक एक टीका भी बनायाहै।

विसेनवंशजलधौ पूर्णः शीतकरोऽपरः।
नाम्ना हिम्मतिवर्म्माभूद्धैर्य्येण हिमवानिव॥
तस्माज्जातो रामदत्तश्चन्द्राचन्द्र इवापरः।
मित्राणाञ्च रिपूणाञ्च मानदः प्रथितः प्रभुः॥
भट्टनागेशशिष्येण बध्यते रामवर्मणा।
सेतुः परोपकृतयेऽध्यात्मरामायणाम्बुधौ। (सेतु)

भट्टोजिदीक्षितकी "प्रौढमनोरमा" के भाष्यरूपसे "लघुशब्देन्दुशेखर" नागेशभट्टने बनाया।

"पातञ्जले महाभाष्ये कृतभूरिपरिश्रमः।
शिवभट्टसुतो धीमान्सतीदेव्यास्तु गर्भजः॥
नत्वा फणीशं नागेशस्तनुतेऽर्थप्रकाशकम्।
मनोरमोमार्द्धदेहं लघुशब्देन्दुशेखरम्॥"
(लघुशब्देन्दुशेखर)

हरिदीक्षितकृतलघुशब्दरत्नकी पायगुण्डवैद्यनाथभट्टने "भावप्रकाश" नामक टीका बनाई। इन वैद्यनाथने "लघुशब्देन्दुशेखर" ग्रन्थकी टीका "चिदस्थिमाला" नामक रची, गंगाधरकृत"लघुशब्देन्दुशेखर" की टीका "इन्दुप्रकाश" और उदयकरकी बनाई टीका"ज्योत्स्ना" नामसे प्रसिद्ध है।

जयकृष्णभट्टने " सिद्धान्तकौमुदी " की " सुबोधिनी " नामक टीका बनाई। जयकृष्णके पिताका नाम रघुनाथ और दादाका नाम गोवर्द्धन था। इनका जन्म मौनिकुलमें हुआ। जयकृष्णभट्टमें स्फोटचंद्रिका, कारकवाद, शुद्धिचन्द्रिका और वृत्तिदीपिका बनाई। इनकी माताका नाम जानकी था। जयकृष्णभट्ट माधवेन्द्रसरस्वतीके शिष्य थे, इनके पुत्र राघवेन्द्रभट्टने अमरकोशअभिधानका एक भाष्य बनाया इन ही राघवेन्द्रप्रणीत "अभिज्ञान शकुन्तला" की एक टीका काशीमें पायीगईहै।

---

१ नत्वा गुरुं वैद्यनाथः पायगुण्डाख्य [illegible]।
चिदस्थिमालां तनुते लघुशब्देन्दुशेखरे॥
२ पित्रोः पादयुगं नत्वा जानकीरघुनाथयोः।
मौनी श्रीकृष्णभट्टेन तन्यते स्फोटचन्द्रिका॥
(स्फोट चन्द्रिका)

३ ध्यात्वा व्यासं गुरुं नत्वा माधवेन्द्रसरस्वतीम्।
मौनी श्रीकृष्णभट्टेन तन्यते वृत्तिदीपिका॥
(वृत्तिदीपिका)

४ कात्यायनव्याडिश्रीमाघमाद्यैःकातन्त्रतन्त्राणि विचार्य यत्नात्
श्रीराघवेन्द्रोऽमरसिंहकोशे तनोति भाष्यं सुधियां हिताय॥
(अमरभाष्य)

महामहोपाध्याय भट्टोजिदीक्षितकी बनाई "सिद्धान्त-कौमुदी" का अवलम्बन करके इन्द्रदत्त उपाध्यायने "गूढफक्किकाप्रकाश" नामक टीका बनाई ।

गर्गवंशावतंसो यो वैयाकरणकेसरी ।
उपाध्यायोपनामेन्द्रदत्तस्यैषास्ति संस्कृतिः ॥
इन्द्रदत्तेन विदुषा कृतोऽयं संग्रहो मुदा ।
सिद्धान्तकौमुदीगूढफक्किकार्थः प्रकाश्यते ॥

अवतक जो जो कुछ लिखागया इससे निश्चय प्रमाणित होताहै कि ईसवी १२ शताब्दीके मध्यभागमें कन्नौजके महाराजा गोविन्दचन्द्रदेवके राज्य करनेके समय काशीमें महामहोपाध्याय भट्टोजिदीक्षितने जन्म ग्रहण किया इनके पिता लक्ष्मीधरभट्ट उस समय वाणातासी राज्यके मंत्री थे महाराज गोविन्दचन्द्रदेवकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मीधरने "कृत्यकल्पतरु" नामक स्मृतिका एक बडा संग्रह किया, संभव है कि "अद्वैतमकरन्द" नामक वेदान्तिक ग्रन्थ भी इन्हीं लक्ष्मीधरभट्टने बनाया, भट्टोजिदीक्षितके शिष्य वरदराजने सन् ११९३ ई० में "मध्यसिद्धान्त-कौमुदी" बनाई । इससे भट्टोजिदीक्षितका समय निरूपित होताहै । "नैषधचरित" काव्यके बनानेवाले श्रीहर्ष और "व्यवहारनिर्णय" नामक स्मृतिशास्त्रके बनानेवाले वरदाचार्यके समयमें भट्टोजी हुये । यह महामहोपाध्याय पंडित "सिद्धान्तकौमुदी" बनाकर जगत्में विख्यात हुयेहैं जो यह सिद्धान्तकौमुदी न बनाते तो महर्षि पाणिनिके अष्टाध्यायीव्याकरणसूत्रका अनुशीलन रहित होकर संस्कृत साहित्यमेंसे पाणिनिका नाम तक लोप होजाता ।

भट्टोजिदीक्षितने "तत्त्वकौस्तुभ" में अपने समयके मध्वाचार्यका * मतखण्डन करके शंकराचार्यके कहे अद्वैतब्रह्मवादकी अभ्रांति और सत्यता प्रतिपादन की । व्याकरणदर्शन और स्मृति आदि सर्व शास्त्रोंको भट्टोजि भलीभांतिसे जानते थे । अध्यापक वेबरका मत है कि, भट्टोजिदीक्षित १७ शताब्दीमें हुये और तभी सिद्धान्तकौमुदी बनी । डाक्टर जलिका मत है कि ई० १६ शताब्दीके शेष या १७ शताब्दीके आरम्भमें दक्षिणापथके तामिलदेशमें वरदराजने उत्पन्न होकर "व्यवहारनिर्णय" नामक स्मृति ग्रन्थ बनाया है, कोई कहतेहैं कि भट्टोजिदीक्षित सारस्वत ब्राह्मण थे. शालिवाहनशके १५०० शाकेमें विद्यमान थे इन्होंने पण्डितराज जगन्नाथको समझाया था और जगन्नाथपण्डितराजका समय सन् १६६६ ईसवी है नागोजिभट्टका समय सन् १७०६ है नागोजिभट्टसे भट्टोजिदीक्षित तृतीय पूर्वपुरुष थे इससे वह सन् १६४६ में विद्यमान थे उनका निर्णयवृक्ष यह है ।

शेषश्रीकृष्णः ।

भट्टोजिदीक्षितः (शिष्य) शेषवीरेश्वरः (पुत्रः)
वीरेश्वरदीक्षितः (पुत्रः) पंडितराजजगन्नाथः (शिष्यः)
हरिदीक्षितः (पुत्रः) नागोजीभट्टः (शिष्यः)

इनके वंशके पुरुष महाराष्ट्र देवालयमें पूजा करते थे यह विशेष प्रतिष्ठा प्राप्तिके निमित्त काशीमें आकर पढने लगेथे थोडे ही समयमें यह भट्टाचार्य हुये श्रीमद् अप्पय दीक्षितने १६२७ में इनके ग्रन्थ देखकर इनका बडा सन्मान किया, शब्दकौस्तुभ १ लाख श्लोकोंमें इनका रचाहै जो पूरा नहीं मिलता । जो कुछ भी हो दीक्षित महोदयका स्वयंलिखितसमय न मिलनेसे दूसरे ग्रन्थोंसे अनुमान करना पडताहै अप्पयदीक्षितके समयका इससेंभी विरोध है इन लोगोंके अनुमानका अमूलक न होना इस प्रबन्धमें भलीभांतिसे दिखाया गयाहै । यह पुरातन ग्रन्थोंके अनुशीलनसे लिखा गया यदि कोई महाशय और निर्णय लिख भेजेंगे तो वह उनके धन्यवादसहित इसमें लिखा जायगा.

निवेदक
पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

* १११९ ई० (११२१) शकाब्दमें दक्षिणापथके अन्तर्गत तुलवदेशमें वैष्णवसंप्रदायके प्रवर्तक मध्वाचार्यभट्टने जन्म ग्रहण किया इनके पिताका नाम मधिजीभट्ट था मध्वाचार्यने शिवमंदिरमें विद्याभ्यासकर अच्युतप्रच आचार्यके उपदेश से वैष्णवधर्ममें दीक्षित हो उडुपिनगरका मन्दिर बनाय वह विष्णुमूर्तिकी प्रतिष्ठाकी वैष्णवधर्ममें इनकी सम्प्रदाय पृथक् है ।

सन् १६४६ से सन् १७०४ पर्यन्त भट्टोजिका जो समय निर्धारण कियाजाताहै हमको भी यह उचित प्रतीत होता है कारण कि, इस निर्णयपर बहुत जनोंकी सम्मति है संभव है सन् १२०० वाले दीक्षितजी कोई दूसरे हो और कन्नौजकी राजसभामें हो परन्तु दोनोंके पिताका नाम एक है, जो कुछ भी हो कन्नौजका इतना निबन्ध इन्हींके कारण लिखागया है ।

अथ भाषाटीकायुतकौमुदीस्थविषयानुक्रमणिका ।

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

मङ्गलाचरणम् ।

यस्य मायावशं याताः सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ।
नृत्यन्ति नैव जानन्ति तन्नमामि महेश्वरम् ॥ १ ॥
येनैतत् सकलं सृष्टं देवेन सचराचरम् ।
सुखाय सर्वजीवानां तं भजामि प्रजापतिम् ॥ २ ॥
वन्देऽहं कमलाकान्तं भक्ताभीष्टफलप्रदम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण दुर्लभं सुलभायते ॥ ३ ॥
यो दानवाधीशकुलं विशालं निहत्य भूमेरपनीय भारम् ।
ररक्ष गोविप्रगणं कृपालुर्लीलामनुष्योऽवतु मां मुरारिः ॥ ४ ॥
गम्भीरभावैः परिपूरितार्थां सिद्धान्तपूर्वां कुमुदप्रभान्ते ।
तस्याः सुहृद्भिर्ननु नोदितोऽहं संजीविनीं वै वितनोमि टीकाम् ॥ ५ ॥
इयं सञ्जीविनी टीका सर्वलोकस्य जीवनम् ।
ज्वालाप्रसादमिश्रेण मया लोकस्य तन्यते ॥ ६ ॥
वोभूयात्सिद्धिसंपूर्णा सर्वसिद्धान्तसम्मता ।
सिद्धान्तकौमुदी ह्येषा सिद्धसिद्धिसमावृता ॥ ७ ॥

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी ।

भाषाटीकासहिता

अथ संज्ञाप्रकरणम् ।

मुनित्रयं नमस्कृत्य तदुक्तीः परिभाव्य च॥ वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीयं विरच्यते॥१॥

दोहा।

शम्भु शिवा गणपति गिरा, मुनित्रय शीश नवाय ।
बृहत कौमुदीको तिलक, भाषा लिखत बनाय ॥ १ ॥

तीनों मुनियोंको नमस्कार कर और उनके भाषणोंका परिचिन्तन कर यह वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी मैं रचताहूं ।

विवरण—पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि यह तीन मुनि व्याकरण शास्त्रके प्रवर्तक हैं, इनमें पाणिनि मुनिने व्याकरणके सूत्रोंकी रचना की है। सूत्र शब्दका अर्थ यह कि, थोडे अक्षरोंमें बहुत अर्थ दिखादेताहै, पाणिनिके सूत्रोंमें जो कुछ न्यूनता दीखीहै, उसकी निवृत्तिके अर्थ वररुचि (कात्यायन) मुनिने जो वाक्य रचेहैं उनको वार्तिक कहतेहैं, इसी कारण कात्यायन वार्तिककार कहेजातेहैं ।

पाणिनि और कात्यायनके ग्रन्थोंका पूर्ण विचार करके उनके सिद्धान्तको पतञ्जलि मुनिने विस्तारपूर्वक स्पष्ट कियाहै, वह ग्रन्थ 'महाभाष्य' कहाताहै, और पतञ्जलि 'भाष्यकार' कहेजातेहे, कौमुदीकार भट्टोजिदीक्षितने मंगलाचरणमें इन्ही तीनों मुनियोंको नमस्कार कियाहै ।

अनेक वैयाकरणोंने उन तीनों ग्रन्थोंके अर्थोंके विषयमें जो सिद्धान्त कियेहैं वे वैयाकरणसिद्धान्त कहे जातेहैं, और यह ग्रन्थ उन वैयाकरणसिद्धान्तोंकी कौमुदी (चांदनीकी सदृश प्रकाशक) है, इस कारण इस ग्रन्थका नाम वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी है ॥ १ ॥

अइउण् १ । ऋलृक् २ । एओङ् ३ । ऐऔच् ४। हयवरट् ५ । लण् ६। ञमङणनम् ७। झभञ् ८ । घढधष् ९ । जबगडदश् १०। खफछठथचटतव् ११। कपय् १२। शषसर् १३ । हल् १४ ॥

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि । एषामन्त्या इतः । लण्सूत्रेऽकारश्च । हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः ॥

इसप्रकार शिवजीसे आये हुए वह चौदह सूत्र अण्-आदि संज्ञाके निमित्त हैं, इनमेंसे प्रत्येक सूत्रके अन्तमें जो ण्, क्, ङ्,– इत्यादि वर्ण हैं, उनकी इत् संज्ञा है, इसी प्रकार "लण्" इस सूत्रमें अकार भी इत्संज्ञक है, हकारसे लेकर आगे जो वर्ण हैं उनमें जो अकार वर्ण है वह केवल स्पष्ट उच्चारणके निमित्त जोडा गयाहै ।

विवरण—माहेश्वर सूत्र–इस विषयमें ऐसी कथा है कि, प्रारंभमें पाणिनिजी अति मूढ थे, गुरुगृहमें दूसरे शिष्य इनका बहुत उपहास करतेथे, उनसे दुःखी होकर पाणिनि वहांसे निकल कर महेश्वरकी सेवा करने लगे, शिवजीने प्रसन्न होकर नृत्यके अन्तमें चौदह वार अपना डमरू बजाया, उससे जो शब्द निकले वही यह चौदह सूत्र है, इसी कारण इनको शिवसूत्र वा माहेश्वर सूत्र कहतेहै, इनका नाम चतुर्दशसूत्री और अक्षरसमाम्नाय भी है, समाम्नायका अर्थ वेद अर्थात् ईश्वरसे पायाहुआ ज्ञान है, यह सूत्र ईश्वरसे प्राप्त हुए इस कारण इनकी योग्यता भी वेदोंके तुल्य श्रेष्ठ मानी गई और उसी आधारसे पाणिनिका रचा हुआ ग्रंथ वेदाङ्गमें गिनागयाहै, इस व्याकरणके आठ अध्याय हैं, इनको अष्टाध्यायी कहतेहैं ।

संज्ञा, शास्त्रमें अवश्य ध्यान रखनेके नियत शब्दका नाम है, आगे बहुतसी संज्ञा आवेंगीं, उनके विषयमें वहीं विचार कियाजायगा, संज्ञाका और प्रयोजन लाघव है अर्थात् थोडे शब्दोंसे बहुतसे अर्थको लाना ।

इत्का अर्थ केवल किसी सूचनाके हेतु अन्तमें जोड़ेहुए वर्णका निकल जाना है, इतर वर्णोंके साथ गणना करनेका वर्ण नहीं है, पृथक पृथक् इतोंसे होनेवाली सूचना जहांकी तहां समझमें आवेंगीं ।

ऊपरके सूत्रोंमें ह, य, व, र,–इत्यादिवर्ण व्यञ्जनरूप हैं, अर्थात् स्वर वर्णोंके आश्रय विना उनका स्पष्ट उच्चारण नहीं होता । अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, यह स्वर है इस कारण ह, य, व, र, -इत्यादिकोंके अन्तमे अ, यह स्वर जोडनेसे स्पष्ट उच्चारण होताहै, इनमें स्वर न मिलायाजाय तो ह्, य्, व्, र्,– इत्यादि विराम युक्त लिखने पडेंगे ।

ह, य, व, र, -इत्यादि वर्णोंके साथ 'अ' वर्ण केवल उच्चारणके निमित्त जोड़ा गया है, तथा लण् इस सूत्रमें जो 'ल'

---

१ "नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् । उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥"

है इसमें जो 'अ' जोडा गया है वह केवल उच्चारणके निमित्त नहीं है, किन्तु इत् अर्थात् किसी कार्यके सूचनार्थ जोडाहुआ समझना चाहिये, इसका प्रयोजन आगे $\frac{१।३।२}{३}$ में समझमें आवेगा।

वर्णका अर्थ रंग है, यह और किसी भी रंगसे प्रघातको प्राप्त नहीं होता, इसीसे वर्णका अर्थ अक्षर (अविनाशी) भी है, विशेषकर मूलाक्षरों और उनके उच्चारणोंमें वर्ण शब्दका प्रयोग होताहै, जैसे हकार अकार, ह-वर्ण, अ-वर्ण, इत्यादि [और र-वर्णमें कार नहीं लगाते, किन्तु इसको रेफ ऐसा कहते हैं] इत् अण्-इत्यादि संज्ञा पाणिनिसूत्रसे कैसे सिद्ध होती हैं, यह दिखानेको आगे दो सूत्र दियेहैं।

सिद्धान्तकौमुदी एक प्रकारसे अष्टाध्यायीकी ही टीका है, परन्तु अष्टाध्यायीमें जैसा सूत्रोंका क्रम है, वैसा इसमें नहीं रक्खाहै, अष्टाध्यायीमें एक कार्य विधान करनेवाले जितने सूत्र हैं वह सब एकत्र रक्खे हैं, परन्तु कौमुदीमें अलग २ पदोंकी सिद्धिके निमित्त जो पृथक् २ प्रकरण कियेहैं उनके अनुरोधसे जो जो सूत्र लगे हैं उनको छांट २ कर उन २ प्रकरणोंमें रक्खाहै इस कारण कौमुदीमें सूत्रोंका क्रम मूलके अनुसार नहीं है, परन्तु ऐसा होनेपर भी कोई सूत्र टीका विना रह नहीं गया और विद्यार्थियोंको सुबीता होगयाहै ॥

१ हलन्त्यम् । १ । ३ । ३ ॥

हलितिसूत्रेऽन्त्यमित्स्यात् ।

१-"हल्" इस माहेश्वर सूत्रमें अन्त्य ल् यह वर्ण इत् है, इस प्रकार पाणिनिसूत्रसे इत् सिद्ध करके-॥

२ आदिरन्त्येन सहेता । १ । १ । ७१ ॥

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । इति हलसंज्ञायाम् ॥

२-अन्त्य इत्करके सहित जो आदि अर्थात् पहिला वर्ण और अन्त्य इत्, इन दोनोंको मिलाके जो उच्चारित हो वह बीचके अक्षरोंकी और अपनी भी संज्ञा हो अर्थात् उससे मूल वर्ण और मध्यके प्रत्येक वर्णका भी बोध हो, इस कारण "हयवरट्" इसमेंका ह और सबसे पिछला "हल्" सूत्रमेंका ल् जो अन्त्य इत् यह दोनों मिलकर जो 'हल्' ऐसी संज्ञा हुई तो ह और हसे लतकके मध्यमें रहनेवाले समस्त वर्णोंका बोध हुआ इस प्रकारसे हल् संज्ञा सिद्ध होनेपर-॥

(१) हलन्त्यम् । १ । ३ । ३ ॥

उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात् । उपदेश आद्योच्चारणम् । ततोऽणजित्यादिसंज्ञासिद्धौ ॥

(१)-"हलन्त्यम्" $\frac{१।३।३}{१}$ उपदेशमें जो अन्त्य हल् उसको इत् जानो, उपदेशका अर्थ मूलका उच्चारण है, मूलका उच्चारण-सूत्र, अथवा पाणिनि कात्यायन पतञ्जलि इनका उच्चारण है, इससे सिद्ध हुआ कि, माहेश्वर सूत्रोंमेंके ण्, क् ङ्,-इत्यादि जो अन्त्य हल् हैं वे सब इत् हुए, तब $\frac{१।१।७१}{२}$ इस सूत्रसे अण्, अच्,-इत्यादि संज्ञा सिद्ध हुई। अण् अर्थात् अ, इ, उ, और अच् अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, और इसी प्रकार और भी जानना।

अच्में अइउण् ऋलृक् एओङ् ऐऔच् इस प्रकार (पढेजानेसे) ण्, क्, ङ्, इत्यादिका भी ग्रहण होना चाहिये परन्तु इत् गणनामें नहीं आते, इसका निर्णय अगले सूत्रके विवरणमें 'प्रत्याहारेषु इतां न ग्रहणम्' इत्यादिमें होनेवाला है, इस प्रकार अण् अच्,-इत्यादि संज्ञा सिद्ध होनेपर-॥

३ उपदेशेऽजनुनासिक इत् । १ । ३ । २ ॥

उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात् । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः । लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा । प्रत्याहारेष्वितां न ग्रहणम्, अनुनासिक इत्यादिनिर्देशात् । न ह्यत्र ककारे परेऽच्कार्यं दृश्यते । आदिरन्त्येनेत्येतत्सूत्रेण कृताः संज्ञाः प्रत्याहारशब्देन व्यवह्रियन्ते ॥

३-उपदेश अर्थात् सूत्रोंमें अनुनासिक जो अच् सो इत् हो, पाणिनिके सूत्रोंमें यह अनुनासिक लिखकर दिखानेका प्रचार नहीं, केवल मुखसे ही बतानेकी चाल है, इसीसे वैयाकरणोंने अमुक२ अच् अनुनासिक हैं यह बात परंपरासे जानकर वे वे इत् हैं ऐसा टीका ग्रन्थोंमें लिख रक्खाहै, इस कारण उनके जाननेकी विशेषता नहीं है, यदि उनके जाननेकी इच्छा हो तो कार्यसे कारण इस न्यायसे उनके इत्वसे जान लेना, जैसे $\frac{४।१।२}{१८३}$ इस सूत्रमें सु प्रत्ययमेंका उ यह अच् अनुनासिक है, तथापि सुके ऊपर ँ ऐसा अनुनासिक चिह्न नहीं लिखा, तथापि वहां उ इत् है ऐसा आगे लिखे होनेसे जानना चाहिये कि, उ यह अच् अनुनासिक होनेके कारण इत्वको प्राप्त हुआ है, और उसीसे (लण्सूत्रस्था०) "हयवरट्" "लण्" इनमें र, और लमें जो अ इत् है यह दोनों मिलके 'र' ऐसा जो उच्चारण हुआ उससे $\frac{१।१।७१}{२}$ सूत्रके आधारसे र और ल इन प्रत्येकोंका बोध होताहै, इस कारण 'र' यह र और ल दोनोंकी संज्ञा है, कभी कभी रके स्थानमें ल-की प्राप्ति होती है, उसकी सिद्धि करनेको 'र' प्रत्याहारका उपयोग है।

प्रत्याहारोंमें इतोंका ग्रहण नहीं होता, कारण कि, इस सूत्रमें पाणिनिने स्वयं ही अनुनासिक ऐसा उच्चारण कियाहै, अर्थात् अ और च इन दोनोंके मध्यमें अ इ उ ऋ लृ इनके अनन्तर क जो इत् उसकी गणना स्वतः उन्होंने अचोंमें

---

१ अष्टाध्यायीमें यह सूत्र एक ही वार पढा गया है और यहां दो जगह और दो प्रकारका अर्थ कैसे ? इसका उत्तर यह कि, अण् आदि संज्ञाकी सिद्धिमें "आदिरन्त्येन०" सूत्रकी प्रवृत्तिके समय इत्पदार्थज्ञानके लिये "हलन्त्यम्" की उपस्थिति होतीहै, और इसकी प्रवृत्तिमें इत्पदार्थज्ञानके लिये "आदिरन्त्येन०" की उपस्थिति होतीहै, इस प्रकार दोनोंकी प्रवृत्तिमें परस्पर दोनोंकी उपस्थिति होतीहै, इसीका नाम अन्योऽन्याश्रय दोष है, इसी दोषके- वारणके लिये "हलन्त्यम्" की आवृत्ति की गयी है, [एकके पुनःपुनः पठनको आवृत्ति कहतेहैं]। "हल्" सूत्रमें अन्त्य (ल्) इत् हो" एतदर्थक एक "हलन्त्यम्" से इत्पदार्थज्ञान होनेपर "आदिरन्त्येन०" की प्रवृत्तिमें फिर अन्योऽन्याश्रय दोष नहीं पडता॥

नहीं की, यह बात प्रत्यक्ष दीखतीहै, कारण कि, जो उसकी गणना अचोंमें की होती, तो अनुनासिक इस शब्दमें सिर्फ जो इ और अगला क यह मानाहुआ अच् इन दोनोंके एकत्र होनेके कारण अच्कार्य (यण्) होजाता, पर यहां वैसा नहीं हुआ, और यह प्रकार अनेक स्थलोंमें है, इससे प्रत्याहारोंमें इतोंका ग्रहण नहीं होता, यह बात सिद्ध हुई, दो अच् एकत्र होनेसे जो संधि होतीहै, उसको अच्कार्य कहते हैं, यह बात आगे संधिप्रकरणमें कही जायगी।

"आदिरन्त्येन $\frac{१।१।७१}{२}$" इस सूत्रसे कीहुई संज्ञाओंको प्रत्याहार शब्दसे व्यवहार कियाहै। व्याकरणमें सब मिलाकर ४३ प्रत्याहारोंका काम पड़ता है इन ४३ प्रत्याहारोंका बोध* विचारसे भलीप्रकार ध्यानमें आजायगा। कौन २ से इत् हैं इस विषयमें अष्टाध्यायीमेंका सूत्रक्रम अध्याय १। पाद ३—।

२ उपदेशेऽजनुनासिक इत्।
३ हलन्त्यम्।
४ न विभक्तौ तुस्माः।
५ आदिर्ञिटुडवः।
६ षः प्रत्ययस्य।
७ चुटू।
८ लशक्वतद्धिते।

इन सब सूत्रोंके इस स्थलमें समझनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है, तो भी इनका क्रम समझ लेनेसे बहुत लाभ है, इसके लिये थोडासा विस्तार करना आवश्यक है, अष्टाध्यायीकी सूत्ररचना ऐसी है कि, किसी विषयके सम्बन्धका मुख्य सूत्र प्रथम आताहै, उसके अर्थकी पूर्णता करनेवाला सूत्र उसके पीछे आताहै, उसमें अपवाद, विकल्प, निषेध इत्यादि सूत्र जहांके तहां आतेहैं, परन्तु इन सबोंमें ध्यान रखनेकी मुख्य बात यह है कि, पूर्व सूत्रमें आया हुआ शब्द फिर अगले सूत्रोंमें नहीं आता, उनमें उस सूत्रकी अनुवृत्ति आतीहै अर्थसे उन पूर्व सूत्रोंमेंसे जहां जिसका प्रयोजन होताहै लिया जाताहै, इस प्रकारसे पूर्व सूत्रोंमेंके शब्द आगेके सूत्रोंके अर्थ पूर्ण करनेको लियेजातेहैं, इसीको अनुवृत्ति कहते हैं, इससे जो कोई मध्यका सूत्र लिया जाय तो उसकी भरतीके निमित्त पूर्व सूत्रोंमेंसे किस शब्दकी अनुवृत्ति इसमें आती है यह समझ लेना चाहिये, कौमुदीकारने यह अनुवृत्ति जहांकी तहां कहदीहै, तो भी विना क्रमके समझे ध्यानमें नहीं आती। पुरातन पद्धतिके अनुसार पहले अष्टाध्यायी कंठ हो तो यह अनुवृत्ति शीघ्र समझमें आजाती है, परन्तु जिन्होंने अष्टाध्यायी कंठकरके कौमुदी नहीं पढीहै, वे अष्टाध्यायीकी पुस्तकसे इस बातको लक्ष्यमें लासकते हैं, उदाहरणके लिये "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" यह आरंभका सूत्र है, इसमेंके इत् शब्दकी अनुवृत्ति 'हलन्त्यम्' इस अगले सूत्रमें करके ऐसा सम्बन्ध समझना चाहिये, इसलिये $\frac{१।३।३}{१}$ इस सूत्रमें कौमुदीकारने 'हलन्त्यम्' इस सूत्रकी वृत्ति 'हल् इतिसूत्रे अन्त्यम् इत् स्यात्' ऐसी ही दी है, वृत्तिका अर्थ है सूत्रका स्पष्ट अर्थ, इसी प्रकार 'लशक्वतद्धिते' तक अगले सूत्रोंमें इत् शब्दकी अनुवृत्ति लेनी चाहिये, विशेष निरूपण जहां यह सूत्र आवेगा कियाजायगा॥

उच्चारणमें अचोंमें जो भेद पडताहै उसके दिखानेके लिये अगला सूत्र—

४ ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः।१।२।२७॥

उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः। वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद्ध्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा॥

४—उ, ऊ, ऊ ३ इन तीन उकारोंको वः कहते हैं, इनके उच्चारणकालके समान उच्चारणकाल है जिस अच्का वह अच् क्रमसे ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञावाला हो। वह प्रत्येक अच् उदात्तादि भेदसे तीन प्रकारके हैं, यथा—

५ उच्चैरुदात्तः।१।२।२९॥

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञः स्यात्। आ। ये॥

५—मुखमें जो तालुआदि वर्णोंके उच्चारणके स्थान हैं, उनके उच्च और नीच आदि यह भाग हैं, उनमेंसे उच्च भागमें वायुका आघात होकर जो अच् निष्पन्न होताहै वह उदात्त है, यथा 'आ ये' यह दोनों ही स्वर उदात्त है, यह उदाहरण " आ। ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा मरुद्भिरग्न आगहि" (ऋ० मं० १ सू० १९ मंत्र ८) में है। उदात्तादि स्वरोंमें जो नियम है, वे अभी समझने कठिन है, विशेषरूपसे स्वरप्रकरणमें समझमें आवेंगे, इस समय यह उदात्त है इतना ही जानलेना उचित है। तालु आदि स्थानोंका विवरण $\frac{१।१।९}{१०}$ सूत्रसे समझमें आवैगा॥

६ नीचैरनुदात्तः।१।२।३०॥

स्पष्टम्। अर्वाङ्॥

६—तालु आदि स्थानोंमें नीचेके भागोंसे निष्पन्नहुआ जो अच् वह अनुदात्त कहाताहै, यथा—'अर्वाङ्' यह उदाहरण

---

* अण् १। अक् २। अच् ३। अट् ४। अण् ५ यह प्रत्याहार लण् इस सूत्रके णकार पर्यन्त जानना। अम् ६। अश् ७। अल् ८। इक् ९। इच् १०। इण् ११। उक् १२। एङ् १३। एच् १४। ऐच् १५। हश् १६। हल् १७। यण् १८। यम् १९। यञ् २०। यय् २१। यर् २२। वश् २३। वल् २४। रल् २५। ञम् २६। मय् २७। ङम् २८। झष् २९। झश् ३०। झय् ३१। झर् ३२। झल् ३३। भष् ३४। जश् ३५। बश् ३६। खय् ३७। खर् ३८। छव् ३९। चय् ४०। चर् ४१। शर् ४२। शल् ४३। यह ४३ प्रत्याहार हैं इनमें बीचके इत्संज्ञक अक्षरोंको छोडकर सब लिये जातेहैं जैसे अण् प्रत्याहारसे अ, इ, उ। अक्—प्रत्याहारसे अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल,—वर्ण जानेजाते हैं इसी प्रकार दूसरे प्रत्याहारोंसे वे वे अक्षर जानने चाहियें॥

१ यहां ऐसा सन्देह होताहै कि, अक्षरसमाम्नायमें—अ, इ—का त्यागकर उ-का ग्रहण क्यों किया? इसका उत्तर यह है कि, सम्भवतः पाणिनिजी [illegible] रात्रिमें इस सूत्रको बना रहे थे, [illegible] 'कु-कु' [illegible] ऐसा शब्द किया, उसमें और उसी समय मुर्गेने [illegible] उदाहरण समझके 'ऊकाल' ऐसा [illegible] [illegible] प्रसिद्ध [illegible]

"अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः । त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आवक्ष द्विपदे चतुष्पदे" (ऋ० मं० १ सू० १५७ मं० ३) का है, इसमेंका 'अ' यह अनुदात्त है, वेदमें अनुदात्त स्वर दिखानेके लिये अक्षरके नीचे–आडी रेखा देते हैं, उदात्तका चिह्न कुछ नहीं है ॥

७ समाहारः स्वरितः । १ । २ । ३१ ॥

उदात्तत्वानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाहियेते यस्मिन् सोऽच् स्वरितसंज्ञः स्यात् ॥

७–उदात्त और अनुदात्त यह स्वरोंके दो धर्म जिसमें एकत्र आते हैं उस अच्की स्वरित संज्ञा है ॥

८ तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम् । १ । २ । ३२ ॥

ह्रस्वग्रहणमतन्त्रम् । स्वरितस्यादितोऽर्धमुदात्तं बोध्यम् । उत्तरार्धं तु परिशेषादनुदात्तम् । तस्य चोदात्तस्वरितपरत्वे श्रवणं स्पष्टम् । अन्यत्र तूदात्तश्रुतिः प्रातिशाख्ये प्रसिद्धा । क१ वोऽश्वाः । रथानां न येऽराः । शतचक्रं योऽह्यः–इत्यादिष्वनुदात्तः । अग्निमीळे इत्यादावनुदात्तश्रुतिः । स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ॥

८–सूत्रमें ह्रस्व शब्द जो आयाहै, उसका प्रस्तुत विषयसे कुछ सम्बन्ध नहीं है, इस कारण उसको छोड देना चाहिये । स्वरितका पूर्वार्द्ध उदात्त जानो, इससे यह स्पष्ट है कि, अवशिष्ट भाग उत्तरार्द्ध अनुदात्त जानना चाहिये, परन्तु स्वरितका उत्तरार्द्ध जो अनुदात्त वह कब स्पष्ट सुनाई देताहै, जब उसके आगे उदात्त अथवा स्वरित हो । अन्यत्र केवल उदात्त ही सुनाई पडताहै, यह बात प्रातिशाख्य (वैदिक व्याकरण)में प्रसिद्ध है,तथाहि–" क १ वोऽश्वाः का ३ भीशवः कथंशेक कृपायय । पृष्ठेसदोनसोयमः" (ऋ० ५ । ६१।२)। "रथानांनयेऽराःसनाभयोजिगीवांसोनशूराअभिद्यवः । वरेयवो नमर्याघृतप्रुषोऽभिस्वर्तारोअर्कनसुष्टुभः" (ऋ० मं० १० सू० ७८ मं० ४)। "यंसुपर्णःपरावतःश्येनस्यपुत्रआभरत्शतचक्रं यो ३ ह्योवर्तनिः" (ऋ० मं० १० सू० १४५ऋचा४) इन मंत्रोंमें 'वो' और 'रा' इन अक्षरोंके स्वर उदात्त होनेके कारण उनके पूर्वके 'क' मेंका 'अ' और 'ये' मेंका ए इन दोनों स्वरितोंके उत्तरार्द्धमें रहनेवाले जो अनुदत्तांश उनका भी बोलनेमें स्पष्ट श्रवण होताहै, वैसेही 'ह्यः' स्वरित आगे है, इसलिये पिछले 'यो ३' मेंका जो 'ओ३' इसके उत्तरार्द्धमें रहनेवाले अनुदत्तांशका भी स्पष्ट श्रवण होताहै, इत्यादि, परन्तु "अग्निमीळे पुरोहितंयज्ञस्यदेवमृत्विजंहोतारं रत्नधातमम्" (ऋ० मं० १ सू० १ मं० १) इस मंत्रमें पुरोहित शब्दके 'पु' अक्षरका 'उ' जो अच् है, वह अनुदात्त होनेके कारण पिछले 'ळे' मेंके 'ए' स्वरित होते भी उसमेंका अनुदात्त सुनाई न देकर केवल उदात्तमात्र सुनपडताहै, स्वरित स्वर दिखानेके लिये वेदमें अक्षरके शिरपर खडी रेखा करते हैं, जहां एक दो तीन १ । २ । ३ अंक लिखकर नीचे ऊपर स्वर दियेगये हैं वहां वे स्वरित अनुक्रमसे ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत जानने, और उनके उत्तरार्द्धमेंके अनुदात्तोंका श्रवण भी स्पष्ट है, ऐसा जानना । ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत इस प्रकारसे प्रत्येक अच्के तीन भेद हैं, और उस प्रत्येकके उदात्त, अनुदात्त, स्वरित यह तीन भेद हैं, इस प्रकारसे प्रत्येकके नौ नौ भेद होते हैं, फिर उनके अनुनासिक और निरनुनासिक ऐसे दो दो भेद होते हैं ॥

९ मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः । १ । १ । ८ ॥

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् । तदित्थम् अ इ उ ऋ इत्येतेषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः । लृवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात् ॥

९–मुख और नासिका इन दोनोंसे जिस वर्णका उच्चारण होताहै, उसे अनुनासिक जानो, इस प्रकारसे अ, इ, उ, ऋ, इनमेंसे प्रत्येक वर्णोंके अठारह २ भेद हुए । लृ वर्णके बारह भेद हैं, कारण कि, उसका दीर्घ नहीं है । ए, ओ, ऐ, औ इनमें भी प्रत्येकके बारह २ भेद होते हैं कारण कि, इनका ह्रस्व नहीं होता ॥ अब सवर्ण इस संज्ञाका निरूपण करते हैं–

१० तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् । १ । १ । ९ ॥

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात् । अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋटुरषाणां मूर्धा । लृतुलसानां दन्ताः । उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । ञमङणनानां नासिका च । एदैतोः कण्ठतालु । ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् । नासिकाऽनुस्वारस्य । इति स्थानानि । यत्नो द्विधा । आभ्यन्तरो बाह्यश्च । तत्राद्यश्चतुर्धा । स्पृष्टेषत्स्पृष्टविवृतसंवृतभेदात् । तत्र स्पृष्टं प्रयतनं स्पर्शानाम् । ईषत्स्पृष्टमन्तस्थानाम् । विवृतमूष्मणां स्वराणां च । ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम् । प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव । एतच्च सूत्रकारेणैव ज्ञापितम् । तथाहि–॥

१०–तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न यह दोनों जिनके समान हों वे वर्ण परस्पर सवर्णसंज्ञक जानने चाहिये, पहले स्थान कहतेहैं–

अ, क, ख, ग, घ, ङ, ह तथा विसर्ग इनका कण्ठ स्थान है । इ, च, छ, ज, झ, ञ, य और श इनका तालु स्थान है । ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष इनका मूर्धा

स्थान है । लृ, त, थ, द, ध, न, ल और स इनका दन्त स्थान है । उ, प, फ, ब, भ, म और उपध्मानीय इनका ओष्ठ स्थान है । ञ, म, ङ, ण, न इनका नासिका स्थान भी है । ए और ऐका कण्ठतालु स्थान है । ओ और औका कण्ठोष्ठ, वकारका दन्त और ओष्ठ स्थान है । जिह्वामूलीयका जिह्वामूल स्थान है, अनुस्वारका नासिका स्थान है ।

यह जो कु, चु, टु, तु, पु, इत्यादि हैं इनमें वर्गोंके पांच पांच अक्षरोंका समावेश होताहै, इस कारण कुका अर्थ क, ख, ग, घ, ङ, ऐसा किया जाताहै ऐसे ही और भी जानो । विसर्जनीयका अर्थ विसर्ग है, उपध्मानीयका अर्थ प फ इनसे पहले आनेवाला अर्द्ध विसर्ग ≍ है, इसी प्रकार जिह्वामूलीय क ख से पहले आनेवाला अर्द्ध विसर्ग ≍ है, एत्, ऐत्, ओत्, औत्, इनसे ए, ऐ, ओ, औ, यह वर्ण जानने चाहिये । कु, चु, इत्यादिकोंमें 'उ' और ए, ऐ इत्यादिकोंमें 'त्' जोडनेके १।१।६९/१४ और १।१।७०/१५ सूत्र आगे आवैंगे ॥ स्थान कहचुके ॥

प्रयत्न दो प्रकारके हैं–आभ्यन्तर और बाह्य, इन दोनोंमें पहला आभ्यन्तर प्रयत्न चार प्रकारका है–स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत और संवृत इन भेदोंसे । उनमें स्पृष्ट प्रयत्न स्पर्श वर्णोंका है, ईषत्स्पृष्ट अन्तःस्थोंका, विवृत प्रयत्न ऊष्मा और स्वरोंका, और पदवाक्ययोजनामें ह्रस्व अवर्णका संवृत प्रयत्न होताहै सिद्धि होनेतक उसका प्रयत्न विवृत ही जानना चाहिये ।

विवरण–आस्यका अर्थ मुख है, परन्तु यहां सूत्रमें आस्ये भवम्=आस्यम् अर्थात् आस्य (मुख) में रहनेवाला 'आस्य' इस अर्थसे मुखके जिस स्थानसे वर्ण निकलताहै उसकी आस्य संज्ञा है, मुखमें ऊपरके जेबडेमें गलेकी नलकीसे लेकर ओष्ठतक वर्णोत्पत्तिके पांच स्थान हैं, उनके नाम अनुक्रमसे कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ हैं, कण्ठ–गलेके टेंटुएका शिखर कहाताहै, दन्त नाम दांत, ओष्ठसे ऊपरका ओष्ठ, मूर्धा नाम दांतोंके पिछले भागकी उंचाई, और इस उंचाईके पीछे तालु स्थान है । जिह्वाके चार भाग हैं, मूल, मध्य, उपाग्र और अग्र यह और नीचेका होठ मिलकर जो पांच अवयव होते हैं उनका अनुक्रमसे कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ इनसे परस्पर सम्बन्ध होताहै, इन अवयवोंका जो एक दूसरेसे पूर्ण स्पर्श है वही स्पृष्ट प्रयत्न है, और थोडा स्पर्श हो तो ईषत्स्पृष्ट, और उनका एक दूसरेसे दूर होना विवृत प्रयत्न और उनका एक दूसरेके समीप आना संवृत प्रयत्न जानो । वाक्ययोजनामें 'अ' इस ह्रस्व स्वरका उच्चारण संवृत प्रयत्न वाला होताहै, अर्थात् कण्ठस्थान और जिह्वामूल यह दोनों बहुत निकट होतेहैं परन्तु प्रक्रियामें अर्थात् शब्दकी सिद्धि होनेतक उसे विवृत प्रयत्नवाला ही समझना चाहिये, अर्थात् उसके उच्चारण कालमें जिह्वामूल कण्ठ स्थानसे दूर होना चाहिये, इसका कारण यह है कि इ, ई, उ, ऊ के समान 'अ' का दीर्घ आ होनेके लिये दोनोंका प्रयत्न एक ही होना चाहिये, नहीं तो उच्चारण करते समय जो संवृत अकार है, वह दीर्घ करनेसे लम्बा २ 'अ' ही रहैगा परन्तु 'आ' न होगा, इस कारण व्याकरणमें पहलेसे ही उसको विवृत समझना चाहिये, और व्याकरणका कार्य हो जानेपर प्रयोगमें उसको संवृत जानना चाहिये, इस प्रकारसे यह कठिनाई दूर होजातीहै । ऊपर यह भी कहा है कि, विवृत प्रयत्नसे ऊष्मा और स्वर उत्पन्न होतेहैं, परन्तु उसमें एक और भी अन्तर्भेद है, कि, विवृतमें आधे स्पृष्ट प्रयत्नसे ऊष्मा, और केवल अस्पृष्ट प्रयत्नसे स्वर उत्पन्न होतेहैं यह जानना चाहिये ॥

यह जो ह्रस्व अकारके प्रयोगमें संवृतत्व और प्रक्रियामें विवृतत्व कहा है इसको सूत्रकारने स्वयं ही विज्ञापित किया है–

११ अ अ इति । ८ । ४ । ६८ ॥

विवृतमनूद्य संवृतोऽनेन विधीयते । अस्य चाष्टाध्यायीं सम्पूर्णां प्रत्यसिद्धत्वाच्छास्त्रदृष्ट्या विवृतत्वमस्त्येव । तथा च सूत्रम् ॥

११ विवृतका अनुवाद करके संवृतका इस सूत्रसे विधान होताहै, अनुवाद नाम पिछले सिद्धार्थका उच्चारण है, यह सूत्र अष्टाध्यायीमें सबसे अन्त्य होनेसे सम्पूर्ण व्याकरण सिद्ध होनेतक असिद्ध अर्थात् अपना कार्य करनेमें असमर्थ है, इस कारण तबतक प्रयोगमें अकारको भी शास्त्र दृष्टिसे विवृतत्व ही है ।

विवरण–इस सूत्रमेंका प्रथम अ विवृत दूसरा अ संवृत है, यह बात यद्यपि सूत्रमें स्पष्ट नहीं है, तो भी अनुनासिकादिके अनुसार प्रतिज्ञासे ही जाना जाता है, और वह विजातीय है, इस कारण उसको "अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१/८५" इसके अनुसार दीर्घ नहीं होता, इसी प्रकार "अणुदित् १।१।६९/१४" सूत्रके अनुसार अविधीयमान अचोंके अन्तर्गत चाहे सवर्णका ग्रहण होता है, तो भी यहां वैसा नहीं होता, ऐसा भाष्यादिकोंके व्याख्यानसे जानिये । इसका लिंगभेद नहीं और इसकी विभक्ति भी गई, "सुपाम्० ७।१।३९/३५६१" इससे लुक् "१।४।६१/२६०" इससे संज्ञा ॥ इस असिद्धपनेका प्रमाण कहते हैं–

१२ पूर्वत्रासिद्धम् । ८ । २ । १ ॥

अधिकारोऽयम् । तेन सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् । बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा । विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति ॥

खर्यो यमाः खयः ≍क≍पौ
विसर्गः शर एव च ॥
एते श्वासानुप्रदाना
अघोषाश्च विवृण्वते ॥ १ ॥
कण्ठमन्ये तु घोषाः स्युः
संवृता नादभागिनः ॥
अयुग्मा वर्गयमगा
यणश्चाल्पासवः स्मृताः ॥ २ ॥

१ मूलमें 'नासिका च' यहां चकार पढनेसे इन वर्णोंके अपने २ वर्गके अनुकूल तालु आदि स्थान भी हैं ।

वर्गेष्वाद्यानां चतुर्णां पञ्चमे परे मध्ये यमो नाम पूर्वसदृशो वर्णः प्रातिशाख्ये प्रसिद्धः । पलिक्क् (क्) नीः, चख्ख् (ख्) नतुः, अग्ग् (ग्)-निः, घ्घ् (घ्) नन्तीत्यत्र क्रमेण कखगघेभ्यः परे तत्सदृशा एव यमाः । तत्र वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः खयः तथा तषामेव यमाः, जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ, विसर्गः शषसाश्चेत्येतेषां विवारः श्वासोऽघोषश्च । अन्येषां तु संवारो नादो घोषश्च । वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमाः प्रथमतृतीययमौ यरलवाश्चाल्पप्राणाः । अन्ये महाप्राणा इत्यर्थः । बाह्यप्रयत्नाश्च यद्यपि सवर्णसंज्ञायामनुपयुक्ताः । तथाप्यान्तरतम्यपरीक्षायामुपयोक्ष्यन्त इति बोध्यम् । कादयो मावसानाः स्पर्शाः । यरलवा अन्तस्थाः शषसहा ऊष्माणः । अचः स्वराः । ⌒क⌒ इति कपाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशौ जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ । अं अः इत्यचः परौ अनुस्वारविसर्गौ । इति स्थानप्रयत्नविवेकः ॥ ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् ॥ * ॥ अकारहकारयोरिकारशकारयोर्ऋकारषकारयोर्ऌकारसकारयोश्च मिथः सावर्ण्ये प्राप्ते- ॥

१२-यह अधिकारसूत्र है, इससे सवासात अध्यायके सामने त्रिपादी असिद्ध है, इसका अधिकार अष्टाध्यायीकी समाप्तितक एकसा है, इस कारण पूर्वमें जो सवासात अध्याय बीत गये हैं, उनका कार्य होजानेतक अगला पौन अध्याय असिद्ध अर्थात् अपने काम करनेमें असमर्थ जानना चाहिये । और उस पौन अध्यायमें भी पूर्वशास्त्रके सामने पश्चात् आनेवाला शास्त्र उसी प्रकारसे असिद्ध है, अत एव अन्तके पौन अध्यायमेंका कोईसा सूत्र किसी भी पूर्व सूत्रका बाधक नहीं होता ।

विवरण-सारांश यह कि, त्रिपादीमेंका कोईसा सूत्र और उसके पूर्वका दूसरा कोई सूत्र [अर्थात् वह सूत्र त्रिपादीमेंका हो चाहे सवासात अध्यायमेंका हो] ऐसे दो सूत्रोंके कार्य किसी प्रसंगमें प्राप्त होनेपर पहले पूर्व सूत्रका कार्य होगा, और फिर पर सूत्रके कार्यको जो अवकाश होगा तो ही उसका कार्य होगा, अवकाश न होगा तो वह कार्य वहां न होगा. परन्तु पूर्व सूत्रका कार्य होनेतक किसी प्रकारसे भी उसका कुछ बल नहीं रहेगा, उसी प्रकारसे वह पर सूत्र पूर्व सूत्रको नहीं दीखता, अर्थात् उस पर सूत्रका कार्य होनेके पश्चात् फिर अवकाश होतेहुए भी पूर्व सूत्रका कार्य्य नहीं होता, 'पूर्वत्रासिद्धम्' इसके कहनेका यह कारण है कि, सामान्यतः पूर्व सूत्रसे पर सूत्र श्रेष्ठ होता है, ऐसी व्यवस्था है, यह परिभाषा आगे १।३।२ (४६) सूत्रमें आवेगी, परन्तु यहां उसके विपरीत प्रकार होनेके कारण यह अधिकार सूत्र करना पड़ा । अधिकार नाम प्रकरणके आरंभका सूत्र, उस अधिकार सूत्रकी अनुवृत्ति उस प्रकरणके अन्ततक प्रत्येक सूत्रमें होती है, सूत्र छः प्रकारके होते हैं-

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम् ॥

अर्थात् संज्ञासूत्र १, परिभाषासूत्र २, विधिसूत्र ३, नियमसूत्र ४, अतिदेश सूत्र ५ और अधिकारसूत्र ६, यह छः प्रकारके हैं । संज्ञा शब्दका अर्थ प्रारंभमें देचुके हैं, जिस सूत्रसे कोई संज्ञा कही है वह संज्ञा सूत्र है १ । कहेहुए शास्त्रकी योजना किस २ प्रकारसे करनी चाहिये इस विषयके सूत्र परिभाषा सूत्र कहाते हैं २ । जो कुछ सामान्य शास्त्र कहा हुआ होताहै उसको विधि कहतेहैं, वह विधि जिसमें हो उसे विधि सूत्र जानो ३ । विधि सूत्रसे जो शास्त्रार्थ उत्पन्न होताहै, उसकी मर्यादाको आकुञ्चन करनेवाले शास्त्रको नियम कहतेहैं ४ । अन्य सूत्रोंमेंके शास्त्रार्थको मर्यादामें और अधिक विषयके लानेको अतिदेश कहतेहैं, और वह जिसमें हो वह अतिदेशसूत्र कहाताहै ५ । अधिकारका अर्थ ऊपर कर ही चुकेहैं, जिस सूत्रमें कोई अधिकार कहा हुआ होताहै, उसे अधिकारसूत्र ६ जानो ।

बाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकारका है-विवार १, संवार २, श्वास ३, नाद ४, घोष ५, अघोष ६, अल्पप्राण ७, महाप्राण ८, उदात्त ९, अनुदात्त १० और स्वरित ११ इन भेदोंसे । वर्गोंमेंके पहले चार वर्णोंके आगे किसी भी वर्गका पंचम वर्ण आवे तो बीचमें एक पूर्वसदृश वर्ण अवश्य आताहै, उसको प्रातिशाख्यमें यम कहाहै, उदाहरण जैसे पलिक्क्नीः, चख्ख्नतुः, अग्ग्निः, घ्घ्नति, इन शब्दोंमें क,ख,ग,घ, इन वर्णोंके पश्चात् वही वही वर्ण जो फिर आये हैं उन्हीको यम कहाहै । खय नाम वर्गोंमेंके प्रथम और दूसरे (चतुर्दश सूत्रीसे समझमें आतेहैं) खय उन्हीके यम, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, विसर्ग, श, ष, स, इन सबोंके विवार (कंठविकाश), श्वास अघोष यह प्रयत्न जानने चाहिये । इतरोंके संवार (कंठसंकोच), नाद, घोष जानने चाहिये । वर्गोंके प्रथम, तृतीय, पंचम, और प्रथम तृतीय यम, और य, र, ल, व, यह अल्पप्राण जानो, इतर सबका महाप्राण प्रयत्न जानना चाहिये, यह प्रकार सरलतासे ध्यानमें रहनेके लिये "खयां यमाः" यह दो कारिका मूलमें दीहुई हैं, अर्थ ऊपर खोल ही दियाहै, परन्तु फिर भी स्पष्ट कियेदेते हैं, खयोंके यम, खय, ⌒क ⌒प, विसर्ग और शरप्रत्याहारके अक्षर यह श्वासप्रयत्नवान् अघोष और विवार (कण्ठविकाशकारी) प्रयत्नवान् हैं, और इनसे अन्य जो हैं वे घोष, संवार (कंटसंकोच) कारी और नाद प्रयत्नवान् हैं । वर्गों और यमोंके विषम स्थानके वर्ण तथा यण् प्रत्याहारके अक्षर अल्पप्राण प्रयत्नवाले और इतर महाप्राण प्रयत्नवाले जानने । बाह्य प्रयत्न यद्यपि सवर्ण संज्ञामें अनुपयोगी हैं तथापि अतिशय सादृश्य जाननेके समय इनका अवश्य उपयोग होताहै, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये । अब ऊपर कहेहुए स्पर्शादिका अर्थ कहतेहैं । क-से लेकर मकार पर्यन्त पांचों वर्गोंके अक्षर स्पर्श कहातेहैं । य, र, ल, व,

१ यहां मूलमें 'च' पढनेसे अम् वर्णोका भी अल्पप्राण प्रयत्न है ॥
२ वर्गोंके दूसरे चौथे और शल् प्रत्याहारके वर्ण ।

यह अन्तस्थ । श, ष, स, ह यह ऊष्मा कहाते हैं, सब अच् स्वर कहातेहैं, जिह्वामूलीयका अर्थ कके पूर्वमें आनेवाले अर्ध विसर्गके समान है, वह ≍ क ऐसा लिखाजाता है, उपध्मानीयका अर्थ पके पहले आनेवाले अर्ध विसर्गके समान, वह ≍ प इस प्रकारसे लिखाजाताहै, अं और अः यह अनुस्वार ं और विसर्ग(:)स्वरोंके पश्चात् आनेवाले है इनमें ं को अनुस्वार और (:) को विसर्ग कहते हैं। इस प्रकार स्थान और प्रयत्नोंका विचार कियागया । इनके विशेष समझनेको स्थान प्रयत्नका कोष्टक देखो ।

स्थानप्रयत्नबोधक कोष्ठ ।

स्थान	तत्सम्बन्धी अवयव	प्रयत्न											आभ्यन्तरप्रयत्न
		स्पृष्ट स्पर्श					ईषत्स्पृष्ट अन्तस्थ		विवृत अर्धास्पृष्ट ऊष्म		विवृत अस्पृष्ट स्वर	संवृत स्वर	
		विवार श्वास अघोष		संवार नाद घोष			संवार नाद घोष		विवार श्वास अघोष	संवार नाद घोष			
		अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण		अल्पप्राण	महाप्राण	महाप्राण	उदात्त अनुदात्त स्वरित	उदात्त अनुदात्त स्वरित	बाह्यप्रयत्न
						अनुनासिक		अनुनासिक			अनुनासिक अननुनासिक	अनुनासिक अननुनासिक	नासिका कृतभेद
											ह्रस्व दीर्घ प्लुत	ह्रस्व	काल कृत भेद
कण्ठ	जिह्वामूल	क	ख	ग	घ	ङ			≍क	ह	अ १८	अ ६	
तालु	जिह्वामध्य	च	छ	ज	झ	ञ	य	यँ	श		इ १८		
मूर्धा	जिह्वोपाग्र	ट	ठ	ड	ढ	ण	र		ष		ऋ १८		
दन्त	जिह्वाग्र	त	थ	द	ध	न	ल	लँ	स		ऌ १२		वर्ण
ओष्ठ	ओष्ठ	प	फ	ब	भ	म			≍प		उ १८		
दन्तोष्ठ							व	वँ					
कण्ठतालु											ए ६ ऐ ६		
कण्ठोष्ठ											ओ ६ औ ६		
नासिका													

ऋ और ऌ यह वर्ण परस्पर सवर्ण जानने चाहिये (यह कात्यायनका वार्तिक है वार्तिककी पहचानके लिये इस ग्रन्थमें उसके आगे फूल * बनायाहै) । "तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १।१।९" इस सूत्रसे देखाजाय तो अ और ह इन दोनोंका, इ और श इन दोनोंका, ऋ और ष इन दोनोंका, ऌ और स इन दोनोंका परस्पर सावर्ण्य प्राप्त हुआ तो-॥

१३ नाऽऽज्झलौ । १ । १ । १० ॥ आकारसहितोऽच् आच् स च हल् चेत्येतौ मिथः सवर्णौ न स्तः । तेन दधीत्यस्य हरति, शीतलम्, षष्ठम्, सान्द्रम्,-इत्येतेषु परेषु यणादिकं न । अन्यथा दीर्घादीनामिव हकारादीनामपि ग्रहणकशास्त्रबलादच्त्वं स्यात् । तथाहि-॥

१३-आ और अच् मिलकर आच् । यह आच् और हल् परस्पर सवर्ण नहीं है, अर्थात् अ आ और ह इनका, ह्रस्व इ और श इनका, ह्रस्व ऋ और ष इनका, ह्रस्व ऌ और स इनका परस्पर सावर्ण्य नहीं है, इसलिये दधि शब्दके आगे हरति, शीतलम्, षष्ठम्, सान्द्रम्, यह शब्द आवें तो संधिकार्य यणादिक नहीं होते । यह सूत्र न होता तो ग्रहणकशास्त्र

(" अणुदित्० $\frac{१।१।६९}{१४}$ " सूत्र) के बलसे दीर्घादिकोंमें जैसे अच् इस शब्दकी प्रवृत्ति होती है वैसे ही हकारादिकोंमें भी प्रवृत्त होकर यहां भी संधिकार्य हुआहोता।

विवरण–" तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् " इसमें स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न जिनके समान हों वे परस्पर सवर्ण हों ऐसा अर्थ है, उसमें अमुक वर्ण ऐसा निर्देश न होनेसे स्थान–प्रयत्नसे जितने समान वर्ण हैं वे सब अर्थात् दीर्घानुनासिकभेदसे उत्पन्न हुए भी परस्पर सवर्ण होते हैं, परन्तु " नाज्झलौ " इस निषेध सूत्रमें आ अच् और हल् यह स्पष्ट निर्देश होनेसे आ और माहेश्वर सूत्रोंमें अ से लेकर च् तक जो वर्णमात्र हैं, और ह से लेकर ल् तक जो वर्ण हैं, यह परस्पर सवर्ण नहीं ऐसा सिद्ध होताहै, इस कारण दीर्घ प्लुत ई ऋ वर्ण, वैसे ही प्लुत ऌ और प्लुत आ यह वर्ण अपने २ अनुनासिकादि भेदों सहित अनुक्रमसे श, ष, स, ह, इनके साथ सवर्ण हुएहैं। " नाज्झलौ " इस सूत्रसे उसका निषेध नहीं हुआ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये इस प्रकारसे कौन २ सा वर्ण किस २ वर्णका सवर्ण है, इसका निर्णय होगया। यणादिक संधिकार्य किसको कहते हैं यह आगे $\frac{६।१।७७}{४७}$ से समझमें आवेगा। ग्रहणक शास्त्रका अर्थ एक वर्णके अन्तर्गत अन्य वर्णका समावेश करनेवाला शास्त्र, यह संज्ञा " अणुदित्० " इत्यादि सूत्रको प्राप्त है, तथाहि– ॥

१४ अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः । १ । १ । ६९ ॥

प्रतीयते विधीयत इति प्रत्ययः। अविधीयमानोऽण उदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात्। अत्राण् परेण णकारेण। कु–चु–टु–तु–पु एते उदितः। तदेवम्–अ इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ। ऋकारस्त्रिंशतः। एवं ऌकारोपि। एचो द्वादशानाम्। एदैतोरोदौतोश्च न मिथः सावर्ण्यम्, ऐऔजितिसूत्रारम्भसामर्थ्यात्। तेनैचश्चतुर्विंशतेः संज्ञाः स्युरिति नापादनीयम्। नाज्झलाविति निषेधो यद्यप्याक्षरसमाम्नायिकानामेव, तथापि हकारस्याकारो न सवर्णः, तत्राकारस्यापि प्रश्लिष्टत्वात्। तेन विश्वपाभिरित्यत्र होढ इति ढत्वं न भवति। अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा। तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा ॥

१४–अमुक होना चाहिये वा अमुक योजना करनी चाहिये इस प्रकारके वर्णन करनेको उसका विधान करना कहतेहैं, प्रतीयते नाम जिसका विधान कियाजाताहै उसको प्रत्यय कहतेहैं, जिसका विधान नहीं ऐसा कोईसा अण् उसी प्रकार उत् (उ यह इत् जिसमें लगाया गया हो वह वर्ण) यह दोनों सवर्ण संज्ञावाले (सवर्णके ग्राहक) हों, अर्थात् "तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्" से सिद्ध किये हुए जो सवर्ण उनका ग्रहण होताहै, इस स्थानमें जो अण् कियागया है वह माहेश्वर सूत्रोंमें दूसरे णकारतक लेना चाहिये, और कु, चु, टु, तु, पु, यह उदित हैं इस कारण इनसे अनुक्रमसे कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, इनका बोध होताहै।

विधानरहित अ लियाजाय तो उससे ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक और अननुनासिक इन भेदोंसे जो अठारह प्रकार होतेहैं, उन सबका ग्रहण होताहै, वैसे ही इकार और उकार इनसे अठारह २ प्रकारोंका ग्रहण होताहै। ऋके अठारह और ऌके बारह भेद मिलकर जो तीस भेद होतेहैं, उन सबोंका ऋसे और ऌसे भी ग्रहण होताहै, कारण कि, ऋ और ऌ यह सवर्ण हैं, एच् (ए, ओ, ऐ, औ) के बारह प्रकारोंका ग्रहण होताहै। ए ऐ तथा ओ औ, इनकी परस्पर सवर्णता नहीं है, यद्यपि इनका स्थान प्रयत्न समान हैं तो भी चतुर्दश सूत्रीमें " ऐऔच् " ऐसा पृथक् सूत्र करनेसे उनका सावर्ण्य न होना दिखलाया गयाहै, इस कारण ए ओ, ऐ औ, इन प्रत्येकसे चौवीस २ वर्णोंके ग्रहणकी शंका न करके बारह २ भेदोंका ही ग्रहण समझना चाहिये।

विवरण–अ, इ, उ, ऋ, ऌ, इनके दीर्घादि वर्ण चतुर्दश सूत्रीमें पृथक् पृथक् न देकर इन्हींके अन्तर्गत दिखायेहैं, वैसे ही ऐ औ यह यदि ए ओ इनके सवर्ण होते तो यह ए ओ इनके ही अन्तर्गत ग्रहण करलिये जाते, और " ऐऔच् " इस पृथक् सूत्रनिर्माणका कुछ प्रयोजन न था, परन्तु पृथक् सूत्र दियागयाहै, इससे बोध होताहै कि, ए ऐ और ओ औ इनका परस्पर सावर्ण्य नहीं है।

" तुल्यास्य० " सूत्रसे जिस सवर्णका निश्चय कियागया उसीका "अणुदित्० " इस सूत्रसे ग्रहण कियाजायगा, कारण कि, सवर्ण शब्दका पूरा निश्चय हुए विना इस सूत्रकी प्रवृत्ति नहीं होसकती, और " नाज्झलौ " सूत्रसे जो अच् हल् वर्ण चतुर्दशसूत्रीमें पढे गये हैं उन्हींकी सवर्ण संज्ञाका निषेध होताहै उनके दीर्घादि भेदोंकी सवर्णसंज्ञाका नहीं, क्योंकि ग्राहकसूत्रसे यह पहले ही पढा हुआ है।

इसी सम्बन्धमें भाष्यमें संज्ञासिद्धिका ऐसा क्रम है–

१ आदौ उपदेशः (अर्थात् माहेश्वरसूत्र)

२ ततः इत्संज्ञा ("उपदेशे" और "हलन्त्यम्" इन-सूत्रोंसे)

३ ततः प्रत्याहारः (" आदिरन्त्येन० " इस सूत्रसे)

४ ततः सवर्णसंज्ञा (" तुल्यास्यप्रयत्नम् " ("नाज्झलौ") इन सूत्रोंसे)

५ ततः सवर्णग्रहणम् ("अणुदित्सवर्णस्य" इस सूत्रसे)।

" नाज्झलौ " यह निषेध यद्यपि अक्षरसमाम्नायके ही वर्णोंमें मुख्यकर लगताहै, तथापि इसमें प्रश्लेष अर्थात् पदच्छेदसे आ अधिक लिये जानेसे आ और ह परस्पर सवर्ण नहीं हैं, यह बात पिछले सूत्रके व्याख्यानसे स्पष्ट है, जो ' आ ' का प्रश्लेष न कियाजाय तो आ और हके सावर्ण्यका निषेध न हो इस कारण जो कार्य 'ह' को प्राप्त होताहै वही कार्य 'आ' कोभी प्राप्त होवे, उदाहरण तृतीयाका बहुवचन भिस् प्रत्यय 'ह' के आगे आवे तो "हो ढः $\frac{८।२।३१}{३२४}$ " सूत्रके अनुसार जैसे 'ह' के स्थानमें 'ढ' होताहै, इसी प्रकार

विश्वपा शब्दके अन्त्य आके आगे भिस् प्रत्यय है तो 'आ' के स्थानमें भी 'ढ' होने लगेगा, परंतु ऐसा रूप शास्त्रमें नहीं है इस कारण सूत्रकारका आशय जानकर 'आ' का प्रश्लेष कियेजानेसे 'आ' और 'ह' इनका सावर्ण्य जातारहा, और विश्वपाभिः इसमें आके स्थानमें 'ढ' न होनेपाया, दीर्घ ईकारादिकोंका शकारादिकोंसे सावर्ण्य रहते भी कोई बाधा नहीं आती, और उनके सावर्ण्यका निषेध भी नहीं ॥

इसका ज्ञापक (अर्थात् सूत्रोच्चारण प्रमाण) "कालसमयवेलासु० $\frac{3।3।१६७}{३१७९}$" यह सूत्र है,क्योंकि, "आदेशप्रत्यययोः $\frac{८।३।५९}{२१२}$" इस सूत्रमें ऐसा नियम है कि, इण् अथवा ककारके आगे आदेशस्वरूप किंवा प्रत्ययसम्बन्धी सकार आवे तो सकारके स्थानमें षकार होताहै, 'ह' यह इण् है इस कारण हकारके आगे उक्त प्रसंगी षकार हो, यही योग्य है, परंतु 'ह' और 'आ' यह सवर्ण कहेजांय तो 'आ' के आगे भी उक्त प्रसंगमें षकारकी अवश्य प्राप्ति होतीहै, तथापि 'कालसमयवेला०' इस सूत्रके अन्त्य 'आ' के आगे सु प्रत्ययमेंका सकार होतेहुए भी उसके स्थानमें षकार नहीं हुआ ऐसा सूत्रमें स्पष्ट दीखपडताहै, इसलिये आकार और हकार यह सवर्ण नहीं है । जहां दूसरा प्रमाण नहीं वहां ऐसा ज्ञापक प्रमाण लेतेहैं पीछे $\frac{१।१।७१}{२}$ इसमें ऐसेही अनुनासिक इस शब्दका प्रमाण लियाहै ।

य, व, ल, इनके अनुनासिक और अननुनासिक यह दो २ भेद हैं, इस लिये इन प्रत्येकोंसे दो दोका बोध होताहै ।

अण्में रहनेवाले ह, र, इनको अनुनासिकत्व नहीं है ऐसा शिक्षा ग्रंथमें कहाहै ॥

१५ तपरस्तत्कालस्य ।१।१।७०॥

तः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाणसमकालस्यैव संज्ञा स्यात्। तेन अत्-इत्-उत्-इत्यादयः षण्णांषण्णां संज्ञाः । ऋदिति द्वादशानाम् ॥

१५-जिस वर्णके आगे वा पीछें त् यह वर्ण जोडागयाहै वह उच्चारणसमकालिक वर्णका ही बोधक होता है, इस कारण अत्, इत्, उत्, इनमें केवल ह्रस्व स्वरही होनेसे इनसे इनका समकालिक अर्थात् ह्रस्व वर्ण ही लेना चाहिये, दीर्घ, प्लुतोंका ग्रहण नहीं होता, स्वरभेद और अनुनासिकभेद इनसे जो छः भेद हैं, उनका ही केवल ग्रहण होताहै, इसी भांति सब स्वरोंका प्रकार जानना । ह्रस्वके स्थानमें ह्रस्व और दीर्घके स्थानमें दीर्घ लेना चाहिये । ऋ, ऌ की सवर्णता होनेसे ऋत्, ऌत् इन प्रत्येकोंसे बारह २ वर्णोंका बोध होताहै ॥

१६ वृद्धिरादैच् । १ । १ । १ ॥

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ॥

१६-आ, ऐ, औ, इनकी वृद्धि संज्ञा है ।

यद्यपि अष्टाध्यायीमें यह प्रथम सूत्र है तो भी कौमुदीकारकी रचनाके अनुसार यह सोलहवां सूत्र हुए बिना क्रमसे इसका पूरा अर्थ समझमें नहीं आता, यह बात सूत्रसे ध्यानमें आवेगी, यही सर्वत्र जानना ॥

१७ अदेङ्गुणः । १ । १ । २ ॥

अदेङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ॥

१७-अ, ए, ओ, इनकी गुण संज्ञा है । इसमें अदेङ् इसकी गुण यह नई संज्ञा की है इस कारण जिसको नई संज्ञा की ऐसा अदेङ् उद्देश्य है वह पहले और गुण यह जो संज्ञा विधेय वह पीछे आया यह ठीकही हुआ, परन्तु "वृद्धिरादैच् $\frac{१।१।१}{१६}$" इस सूत्रमें वृद्धि यह संज्ञा आदैच् इसको होती है तो भी "आदैज्वृद्धिः" ऐसा न कहनेमें यह हेतु है कि, यह सूत्र अष्टाध्यायीके आरंभका है, और 'वृद्धि' यह मंगलवाचक शब्द है इस कारण प्रारंभमें लायेहैं ऐसा जानना चाहिये ॥

१८ भूवादयो धातवः । १ । ३ । १ ॥

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः ॥

१८-क्रियावाचक भूआदिक शब्दोंकी धातु संज्ञा है ।

व्याकरणमें जिनका वारंवार काम पड़ताहै ऐसे दूसरे और ग्रंथ हैं । जैसे-शिक्षा, गणपाठ, धातुपाठ, उणादिसूत्र, लिंगानुशासन और फिट्सूत्र । शिक्षामें वर्णोंकी उत्पत्ति और उच्चारण कहाहै, गणपाठमें अष्टाध्यायीके अनेक सूत्रोंमें वर्णन किये गये (सूचितकिये) शब्दसमुदाय दिये हैं उनको गण कहते है, धातुपाठमें संस्कृत भाषाके सब क्रियापदोंकी बीजस्थिति दिखाई है, उनको धातु कहते हैं, उणादिसूत्र कृदन्तप्रकरणके अंगभूत हैं, लिंगानुशासनमें शब्दोंके लिंगभेदका प्रतिपादन है, फिट्सूत्रोंमें वैदिक स्वरोंका निरूपण है, इनमेंसे धातुपाठ, लिङ्गानुशासन, उणादि और फिट्सूत्र इनको कौमुदीकार अपने ग्रंथमें लाये हैं, शिक्षामें केवल अवश्यभाग स्थान प्रयत्न प्रकरणमें आया ही है, गणपाठ के कितनेही गण कौमुदीमें आयेही हैं तो भी सब नहीं आये । गणपाठ, धातुपाठ, अष्टाध्यायी और लिङ्गानुशासन, यह चार ग्रन्थ पाणिनिके बनाये हुए हैं, शिक्षा किसी पाणिनिके अनुयायीने बनाई है, उणादिसूत्र शाकटायनकृत हैं, और फिट्सूत्र शान्तनवाचार्यने रचे हैं ।

धातुपाठमें 'भू सत्तायाम्' यह धातु दी है, इस कारण भ्वादयो धातवः ऐसा कहना उचित था, तथापि 'वा गतिगन्धनयोः' ऐसा उसीमेंका एक धातु डालकर "भूवादयो धातवः" ऐसा सूत्र लिखनेका कारण यह है कि, भू इससे केवल उस वर्गका बोध हुआ परन्तु 'वा' से तत्सदृश क्रियावाचकका बोध होताहै ॥

१९ प्राग्रीश्वरान्निपाताः ।१।४।५६॥

इत्यधिकृत्य ॥

१९-यह अधिकार सूत्र है । 'ईश्वरशब्दात्प्राक् निपाताः स्युः' अर्थात् इस सूत्रसे आगे और "अधिरीश्वरे $\frac{१।४।९७}{६४०}$" इस सूत्रके ईश्वर शब्दसे पहले जो शब्द एकतालीस सूत्रोंमें कहेगये हैं उनकी निपात संज्ञा है ॥

२० चादयोऽसत्त्वे । १ । ४ । ५७॥

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपातसंज्ञाः स्युः ॥

२०–च, वा, ह,-इत्यादि बहत्तर शब्दोंका १।१।३७/४४७ इस सूत्रमें कथित गण अव्यय प्रकरणमें दियाहै, उसमें लिङ्ग संख्यादिका भेद नहीं है उनसे वस्तुओंका बोध नहीं होता, इस कारण उनको अद्रव्यार्थ कहते हैं अर्थात् अद्रव्य अर्थवाले चादिकोंकी निपात संज्ञा है ॥

२१ प्रादयः । १ । ४ । ५८ ॥

अद्रव्यार्थाः प्रादयस्तथा ॥

२१–प्र, परा,-इत्यादि बाइस शब्दोंका जो प्रादिगण है उसमेंके शब्द भी अद्रव्यार्थ हैं इस कारण उनकी निपात संज्ञा है, इनकी व्याख्या अगले सूत्रमें है ॥

२२ उपसर्गाः क्रियायोगे।१।४।५९॥

२३ गतिश्च । १ । ४ । ६० ॥

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञा गतिसंज्ञाश्च स्युः । प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उद् अभि प्रति परि उप एते प्रादयः ॥

२२–२३–प्र आदि शब्द क्रियापदमें जोडे गये हों तो उनकी उपसर्ग और गति संज्ञा होती है । प्रादि स्पष्ट हैं " गतिश्च " इसमें चकारका ग्रहण उपसर्ग संज्ञाके समावेशके निमित्त है, नहीं तो "आ कडारादेका संज्ञा १।४।१/२३२ " इससे पर्याय होजाता अर्थात् कभी गतिसंज्ञा कभी उपसर्गसंज्ञा होती । इसका फल तो 'प्रणेयम्' इत्यादिमें " उपसर्गादसमासे–" इस सूत्रसे णत्व हुआ अर्थात् यदि (च) न कहते तो ' आ कडारात् ' इस सूत्रसे इस प्र की केवल गति संज्ञा ही मानी जाती तो णकार न होता कारण कि णकार उपसर्ग मान कर होताहै और गतिसंज्ञाके कारण "गतिकारक०" से पूर्वोक्त उदाहरणमें कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वर भी होताहै इस कारण उपसर्ग और गति दोनोंके लिये चकारका समावेश कियाहै ॥

२४ नवेति विभाषा । १ । १ । ४४ ॥

निषेधविकल्पयोर्विभाषा संज्ञा स्यात् ॥

२४–विभाषा इस संज्ञासे निषेध और विकल्प इन दोनों का बोध होताहै, यहां 'न इति' और 'वा इति' ऐसा अर्थ है, न इति का अर्थ निषेध और वा इति का अर्थ विकल्प जानो, अगले १।१।६८/२५ सूत्रसे न वा इन्हीं शब्दोंके रूप नहीं लेना, यह बात दिखानेके लिये इति शब्द आगे लायेहैं, न और वा इनकी क्रमसे निषेध और विकल्प अर्थोंमें स्वतंत्रता है ।

विभाषा तीन प्रकारकी होती है–प्राप्तविभाषा, अप्राप्तविभाषा और उभयत्र (प्राप्ताऽप्राप्त) विभाषा । जहां सामान्य शास्त्रसे किसी प्रसंगमें कोई कार्य प्राप्त होकर एकरूप सिद्ध होतेहुए मतभेदसे विशेष शास्त्रसे वह कार्य न होकर दूसरा ही एक अलग रूप बन जाय वहां प्राप्तविभाषा कही जाती है, जैसे ६।१।९२/७७ में । और सामान्य शास्त्रसे एकरूप सिद्ध होतेहुए मतभेद करके विशेष शास्त्रसे कुछ अधिक कार्य होकर जहां औ रही एक अलग रूप सिद्ध होताहै वहां अप्राप्तविभाषा हुई कहतेहैं, जैसे ८।३।२९/१३१ सूत्रमें । जब प्राप्तिके प्रसंगमें उसके निषेधयुक्त पाक्षिक रूप और अप्राप्तिके प्रसंगमें उसकी प्राप्तिका पाक्षिक रूप ऐसे दोनों प्रसंगोंमें एक ही शास्त्रसे अधिक रूप सिद्ध होतेहैं वहां उभयत्रविभाषा कहते हैं जैसे ६।१।१३०/६६ सूत्र देखो ॥

२५ स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञा । १ । १ । ६८ ॥

शब्दस्य स्वं रूपं संज्ञि शब्दशास्त्रे या संज्ञा तां विना ॥

२५–व्याकरणमें कोईभी शब्द मुखसे उच्चारण किया तो उससे उसी शब्दके उसी रूपका बोध होताहै, उसके अर्थका अथवा उसी अर्थके दूसरे शब्दका बोध नहीं होता,परंतु शब्द (व्याकरण) शास्त्रसम्बंधिनी जो संज्ञा है, उसकी वैसी बात नहीं होती, वह संज्ञा जिसकी होतीहै उसीका उस संज्ञासे बोध होताहै ।

उदाहरण–गृह शब्द जो आवै तो सचमुच गृह शब्दका अर्थ पत्थर, चूना, लकडी इत्यादिसे बनाया हुआ ऐसा ध्यानमें न लाना चाहिये अथवा गृहके स्थानमें सदन आगार इत्यादि इन सभी अर्थोंके शब्दोंका प्रयोग भी कार्यके योग्य नहीं, केवल जो गृहको कहै तो वहां 'गृह' यही शब्द लिया जायगा; परंतु वृद्धि, गुण, ह्रस्व, दीर्घ,–इत्यादि जो व्याकरणकी संज्ञा हैं उनसे वही २ शब्द नहीं लिये जांयगे किन्तु वृद्धिसे आ, ऐ, औ इत्यादि लेने होंगे ।

यहां 'अशब्दसंज्ञा' इस शब्दसे शब्दशास्त्रकी संज्ञाको छोडकर ऐसा अर्थ करना चाहिये जिसकी कोई संज्ञा की हो वह संज्ञी कहाताहै । स्पष्ट यह कि जैसे "अग्नेर्ढक् ४।२।३३/१२३६" इस सूत्रसे अग्नि शब्दके उत्तरही ढक् प्रत्यय होताहै (आग्नेयम्), अग्निवाचक अनल वा शुचि शब्दोंसे ढक् नहीं होता, अशब्दसंज्ञाका उदाहरण यह कि "उपसर्गे घोः किः ३।३।९२/३२७०" इस सूत्रके द्वारा घुसंज्ञक (दा और धा) धातुके उत्तर कि प्रत्यय हो किन्तु घु शब्दके उत्तर न हो कारण कि यह व्याकरणकी संज्ञामात्र है ॥

२६ येन विधिस्तदन्तस्य ।१।१।७२॥

विशेषणं तदन्तस्य संज्ञा स्यात्स्वस्य च रूपस्य ॥ समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः ॥ * ॥ उगिद्वर्णग्रहणवर्जम् ॥ * ॥

२६–जिस विशेषणके निमित्त कोई विधि कही हुई होती है, वह विशेषण उसके अन्तकी संज्ञा होताहै अर्थात् वह विशेषण जिस वर्णसमुदायके अन्तभागमें हो उस सब समुदायकी वह उक्त कार्य होताहै ।

उदाहरण–कृदन्त प्रकरणमें " एरच् ३।३।५६/३२३१ " इसमें 'इ' धातुको अ प्रत्यय लगकर नाम उत्पन्न होताहै ऐसा कहा

है, परंतु ' इ ' यह 'धातु' इसका विशेषण है इस कारण इसका अर्थ इकारान्त धातुओंको अ प्रत्यय लगानेसे नाम होता है ऐसा समझना चाहिये, इस कारण 'चि, जि' इत्यादि धातुओंको वह प्रत्यय लगकर 'चयः, जयः' इत्यादि नाम सिद्ध होतेहैं, सिद्धिका प्रकार आगे आवेगा।

स्वस्य च रूपस्य-अपने रूपकी भी यह संज्ञा होताहै, ऊपरके सूत्रोंमेंकी 'इ' लेकर स्वतः 'इ' धातुका भी बोध होताहै इस कारण उसका अय ऐसा रूप बनकर 'प्रति' इस उपसर्गके योगसे प्रति अय 'प्रत्यय' ऐसा रूप होताहै ।

जिस विशेषणके निमित्त समासोंका वा प्रत्ययोंका विधान होताहै उससे उसके अन्तका बोध नहीं होता ।

जैसे " द्वितीयाश्रितातीत० $\frac{२।१।२४}{६८६}$ इत्यादि सूत्रसे श्रित इत्यादि पद आगे रहते वे पूर्व शब्दोंसे मिलकर ' कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः ' इत्यादि प्रकारसे द्वितीयातत्पुरुष समास होत है परंतु श्रित इत्यादि पद जिनके अन्तमें हों ऐसे परमश्रित इत्यादि पद आगे रहते 'कृष्णं परमाश्रितः ' इत्यादि वाग्योंमें समास नहीं होता ऐसाही वाक्य रहताहै, "अग्नेर्ढक् $\frac{४।२।३३}{१२७६}$" इस सूत्रसे अग्निशब्दसे ढक् (एय) प्रत्यय होके ' आग्नेय ' ऐसा शब्द सिद्ध होताहै परन्तु अग्नि शब्द जिनके अन्तमें है ऐसे परमाग्नि इत्यादि शब्दोंसे ढक् प्रत्यय नहीं होता ।

प्रत्ययविधानमें विशेषणसे तदन्तका ग्रहण नहीं होता यह सत्य है तो भी जहां उगित् यह शब्द सूत्रमें हो अथवा किसी एक वर्णका उच्चारण कियागया हो वहां तदन्तका ग्रहण होताहै जैसे भवतु (भवत्) यह सर्वनाम है इसमें उ यह उक् प्रत्याहारमेंका वर्ण इत् है इस कारण " उगितश्च $\frac{४।१।६}{४५५}$" इससे उसमें ङीप् प्रत्यय लगाकर ' भवती ' ऐसा स्त्रीलिंग शब्द बनताहै, वैसेही अतिभवत् इस तदन्त शब्दसे ' अतिभवती ' ऐसा शब्दभी सिद्ध होताहै ।

" अत इञ् $\frac{४।१।९५}{१०९५}$" इससे अशब्दरसे अपत्यार्थमें इ प्रत्यय होकर ' इ ' ऐसा रूप होताहै उसी प्रकारसे दक्ष इस अदन्त शब्दसे वही प्रत्यय होनेसे ' दाक्षिः ' ऐसा रूप होताहै ॥

२७ विरामोऽवसानम् ।१।४।११०॥

वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात् ॥

२७-किसी भी वर्णके अनन्तर जो अन्य वर्णका अभाव है, उसकी अवसान संज्ञा है ॥

२८ परः संनिकर्षः संहिता।१।४।१०९॥

वर्णानामतिशयितः संनिधिः संहितासंज्ञः स्यात् ॥

२८-परका अर्थ अत्यन्त, वर्णोंकी जो अत्यन्त समीपता (स्वाभाविक अर्धमात्राके उच्चारण कालसे अधिक कालका व्यवधान न होना) उसको संहिता कहतेहैं ॥

२९ सुप्तिङन्तं पदम् ।१।४।१४॥

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात् ॥

२९-सुप्का अर्थ नामविभक्ति प्रत्यय $\frac{४।१।२}{१८३}$ और तिङ्का अर्थ धातुविभक्ति प्रत्यय $\frac{३।४।७८}{२१५८}$ यह जिसके अन्तमें हों वे क्रमसे सुबन्त और तिङन्त जानने चाहियें, उन दोनोंकी पद संज्ञा है ।

यहां अन्तका ग्रहण,अन्यत्र संज्ञाविधिमें प्रत्यय ग्रहणमें तदन्तका ग्रहण नहीं होता यह दिखानेको है, इससे " ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् " इससे द्विवचनान्तको प्रगृह्य संज्ञा नहीं हुई, नहीं तो 'कुमार्योरगारं कुमार्यगारम्' यहां प्रकृतिभाव होजाता ॥

३० हलोऽनन्तराः संयोगः।१।१।७॥

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः ॥

३०-बीचमें अच लाकर जो हल् अलग नहीं किये गये उनकी संयोग संज्ञा है अर्थात् दो वा अधिक व्यञ्जनोंके समुच्चयको संयोग कहतेहैं ॥

३१ ह्रस्वं लघु । १ । ४ । १० ॥

३२ संयोगे गुरु । १ । ४ । ११ ॥

संयोगे परे ह्रस्वं गुरुसंज्ञं स्यात् ॥

३१-ह्रस्व अक्षरकी लघु संज्ञा है । जैसे ' दधि ' इस शब्दमेंके ' अ ' और ' इ ' यह दोनों वर्ण ह्रस्व हैं इस कारण इनको लघुसंज्ञक जानना चाहिये ॥

३२-आगे संयोग हो तो ह्रस्वकी भी गुरु संज्ञा होतीहै । यथा ' विष्णु ' इस शब्दमें ' ष्णु ' यह संयोग आगे होनेके कारण पहले ' वि ' मेंकी ' इ ' ह्रस्व है तो भी उसकी गुरु संज्ञा होतीहै ॥

३३ दीर्घं च । १ । ४ । १२ ॥

दीर्घं च गुरुसंज्ञं स्यात् ॥

॥ इति संज्ञाप्रकरणम् ॥

३३-दीर्घ अक्षर भी गुरु जानना चाहिये । यथा ' रामः ' इसमें ' रा ' में ' आ ' दीर्घ है इस कारण यह भी गुरु है ॥

इति संज्ञाप्रकरणम्[1] ।

अथ परिभाषाप्रकरणम् ।

३४ इको गुणवृद्धी । १ । १ । ३ ॥

गुणवृद्धिशब्दाभ्यां यत्र गुणवृद्धी विधीयेते तत्रेक इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते ॥

३४-यहां " वृद्धिरादैच् " " अदेङ् गुणः " इन सूत्रोंसे गुण, वृद्धि पदकी अनुवृत्ति करके ऐसा अर्थ करते है कि गुण वृद्धि शब्द करके जहां गुण वृद्धिका विधान हो वहां ' इ, उ, ऋ, लृ, इन वर्णोंके स्थानमें ' ऐसे अर्थका ' इकः ' यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होताहै, आशय यह कि जहां यह न बताया गया हो कि किसके स्थानमें गुण, वृद्धि होंगी वहां इक्के स्थानमें होंगी ऐसा जानना, यथा " मिदेर्गुणः "

---

१ इस प्रकरणमें संधिकार्योपयोगिनी संज्ञा आगई हैं यह न समझना कि सब ही संज्ञा आगई हैं ॥

७।३।८२/२३४६ ” मिद् धातुको गुण हो तो इसमें ऐसा जानना कि मिद् धातुकी जो ‘ इ ’ उसको गुण हो, ऐसे ही “ मृजेर्वृद्धिः ७।२।११४” इसमें मृजूकी ऋ इक् है. तो इसके ही स्थानमें वृद्धि होतीहै ऐसा जानो ।

इकः जो अनुकरणवाचक शब्द है उसका यहां सम्बन्ध नहीं है,यह बात दिखानेके निमित्त षष्ठ्यन्त ऐसा कहा है। और जहाँ गुण वृद्धि यह शब्द न आकर गुण वृद्धिसंज्ञक “ अ ए ओ, आ ऐ औ ” इन वर्णोंका साक्षात् विधान हो तो वहां इकः यह पद नहीं लिया जायगा, यह दिखानेको ‘गुण वृद्धि शब्दकरके जहां गुण वृद्धिका विधान हो ’ ऐसा कहाहै, और जहां स्थानी निर्दिष्ट नहीं है उसी स्थानमें यह विधि लगती है, स्थानी निर्दिष्ट होनेपर नहीं लगती, यथा “ सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ७।३।८४” इत्यादि सूत्रोंमें साक्षात् स्थानी निर्दिष्ट न होनेसे इक्के स्थानमें हो ऐसा जानना * ॥

३५ अचश्च । १ । २ । २८ ॥

ह्रस्वदीर्घप्लुतशब्दैर्यत्राज्विधीयते तत्राऽच इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते ॥

३५–ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, ऐसे स्पष्ट शब्दोंकी योजना करके जहां ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत इनका विधान हो वहां ‘ अचोंके स्थानमें हो ’ ऐसे अर्थका ‘ अचः ’ यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होताहै, जहां ह्रस्व, दीर्घ वा प्लुत ऐसा शब्द नहीं रहता यह सूत्र वहां नहीं लगता ।

अचस् जो एक अनुकरणवाचक शब्द, उसका यहां कुछ सम्बन्ध नहीं यह दिखानेके लिये ‘ ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत ’ यह शब्द लायेहैं, यथा “ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७/३१८ ” इसमें प्रातिपदिककी नपुंसक लिंगमें ह्रस्व होताहै ऐसा अर्थ है

तथापि उससे उसका अन्त्य १।१।५२/४२ अच्के स्थानमें ह्रस्व होताहै ऐसा जानना चाहिये यथा ‘ श्रीपम् ’ ।

“ शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ७।३।७४/२५१९ ” इसमें शम्प्रभृति आठ धातुओंको श्यन् (य) विकरण कालमें १।१।६९/२५०५ से दीर्घ होताहै ऐसा कहाहै इससे शम् इत्यादिकोंमेंके ‘ अ ’ इस अच्के स्थानमें दीर्घ होताहै ऐसा जानना चाहिये ॥

३६ आद्यन्तौ टकितौ ।१।१।४६॥

टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः ॥

३६–किसी एक शब्दको कहाहुआ आगम टित् अर्थात् जिसके सूचनार्थ ट् यह इत् जोडा गयाहै ऐसा हो तो वह आगम उस शब्दका आद्यावयव होताहै अर्थात् उस शब्दके पूर्वभागमें वह लगताहै । वैसेही कित् अर्थात् जिसमें क यह इत् जोडा गया हो वह आगम जिस शब्दको कहागयाहो उसका अन्त्य अवयव होताहै अर्थात् वह उसके अन्त्य भागको लगताहै ।

यथा ‘षट् सन्तः’ इस प्रयोगमें “ङः सि धुट् ८।३।२९/१३१ ” इससे संधि होनेसे उसमेंके सकारको विकल्प करके धुट् (ध्) का आगम होताहै, परंतु धुट्में टकार इत् होनेसे वह आगम उस सकारका आद्य अवयव होकर षड् ध् सन्तः ऐसा हुआ फिर दूसरे नियमोंसे ‘षट्त्सन्तः’ ऐसा रूप होताहै सो आगे लिखेंगे ।

इसी प्रकार ‘सन् शम्भुः’ में “शि तुक् ८।३।३१/१३३ ” इससे संधि होनेके कारण उसके नकारको तुक् (त्) आगम होताहै परंतु यहां क् इत् होनेसे ऐसा जानना चाहिये कि वह आगम उस नकारका अन्त्य अवयव होकर ‘ सन्त् शम्भुः ’ ऐसा रूप होताहै फिर और सूत्रोंसे आगे लिखे अनुसार ‘सञ्छम्भुः’ रूप बनताहै ।

उच्चारणके निमित्त ट् न लिखकर ट लिखाहै ऐसा आगे बहुत स्थानोंमें आवेगा। शब्दके असली अवयवको प्रकृति कहतेहैं, पदसिद्धिके निमित्त प्रकृतिके अनेक रूपान्तर होतेहैं, कभी कुछ अधिक वर्ण भी लगतेहैं, कभी एकको हटाकर उसके स्थानमें दूसरे वर्ण लातेहैं, कभी कुछ वर्ण सब ही मिट जातेहैं ।

अर्थविशेष दिखानेके निमित्त प्रकृतिके आगे जो वर्ण लगतेहैं वे प्रत्यय कहातेहैं, प्रकृति वा प्रत्यय इनकी पदसिद्धिके निमित्त जो विशेष वर्ण लगतेहैं, उनको आगम कहतेहैं। वर्णोंको मिकालकर उनके स्थानमें जो दूसरे वर्ण लायेजातेहैं उनको आदेश कहतेहैं, आगमसे अन्य वर्णका नाश नहीं होता, आदेशसे होताहै, इस कारण-मित्रवत् आगमः, शत्रुवत् आदेशः, ऐसा कहाजाताहै ।

वर्णका मिटजाना इसका अर्थ पहले कहाहै और फिर उसका न दीखपडना इसको लोप (“ अदर्शनं लोपः १।१।६०/५३ ”) कहतेहैं, पीछे १४ सूत्रमें प्रत्यय शब्दका जो अर्थ लिया गयाहै वह यहां भीहै, तो भी उसमें और इसमें थोडासा भेद है यह सहजमें ध्यानमें आसकताहै ॥

३७ मिदचोऽन्त्यात्परः । १ । १ । ४७॥

---

* (प्र०) “इको गुण०” इस सूत्रमें इक्का ग्रहण क्यों किया ? (उत्तर) इक् ग्रहण न करेंगे तो अनिक्को भी होगा, अर्थात् दीर्घ आकार, संधिके अक्षर (ए, ऐ, ओ, औ) और व्यंजन इनको भी गुण होजायगा. यथा याता यहां आकारको भी गुण होजायगा, ग्लायति इसमें संधिके अक्षर ऐको भी गुण होगा [ग्लै]। और उम्भितुम् इसमें व्यञ्जनको भी गुण होजायगा । (प्रश्न) यह कहना ठीक नहीं कि इक् ग्रहण न करें तो आकारको गुण होजायगा, इक् ग्रहण न करें तो भी आकारको गुण नहीं होता, यह आचार्योंकी वृत्तिसे विदित है, “आतोऽनुपसर्गे कः ३।२।३/२५१५ ” इसमें कित् ग्रहण इस निमित्त है कि कित्परे रहते आकारका लोप हो, यदि आकारको गुण हो तो कित् ग्रहण व्यर्थ पडता है, इससे आकारको गुण नहीं होता, यदि कहो कि इस सूत्रमें कित् ग्रहण उत्तरके निमित्त है तो भी “गापोष्टक् २/२९२२ ” इस सूत्रमें तो अनन्यार्थ है । विधान सामर्थ्यसे संधिके अक्षरोंको भी गुण नहीं होसकता, और व्यंजनको भी गुण नहीं होसकता कारण कि “सप्तम्यां जनेर्डः ३।२।९७/३००७ ” इस सूत्रमें डित्करण इस निमित्त है कि टिका लोप हो, यदि व्यंजनको गुण होगा तो डित् ग्रहण व्यर्थ होगा, कारण कि आन्तर्यसे नकारको अकार गुण होगा, और उसका पररूप होजायगा, मन्दुरजः इत्यादि प्रयोग बन जायँगे. इस कारण सूत्रमें इक्ग्रहण व्यर्थ ही है। (उत्तर) इक्ग्रहण केवल व्यंजनके निमित्त है गम धातुसे अ-प्रत्यय करनेपर मकारको ओकार प्राप्त होताहै, इस कारण इक्ग्रहण उचित ही है ॥

अच इति निर्धारणे षष्ठी । अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित्स्यात् ॥

३७–मित् जिसमें मकार इत् है ऐसा कोईसा आगम किसी शब्दको कहागया हो तो वह उस शब्दके अन्त्य स्वर-का अन्त्य अवयव होगा और जो अन्त्य स्वरके आगे कोई हल् हो तो भी उसको एक ओर निकालकर बीचमें आप रहैगा, अचोंमेंसे अन्त्य अच् छांटनेवाली 'अचः' यह 'निर्धा-रण' अर्थमें षष्ठी है ।

यथा पच् धातुसे पचत् (पकानेवाला) ऐसा शब्द होताहै इससे स्त्रीलिंगमें ङीप् प्रत्यय होनेपर "शप्श्यनोर्नित्यम् $\frac{७।१।८१}{४४६}$" इससे नुम् (न्) का आगम होताहै ऐसा नियम है, परन्तु नुम्मेंका मकार जो इत् है इससे ऐसा बोध होताहै कि न् यह आगम पचत् इसके अन्त्य अच्के पीछे आकर स्त्रीवाचक (ई) प्रत्ययके साथ पचन्ती (पकानेवाली) ऐसा शब्द सिद्ध होताहै ॥

३८ षष्ठी स्थानेयोगा । १ । १ । ४९ ॥

अनिर्धारितसंबन्धविशेषा षष्ठी स्थानेयोगा बोध्या । स्थानं च प्रसङ्गः ॥

३८–सूत्रोंमें षष्ठीकी योजना कीहुई है तो भी जब उसके सम्बन्धी शब्दकी पहचान स्पष्ट नहीं है अर्थात् जिसका संबंधी शब्द आगे न हो तब उस षष्ठ्यन्त शब्दके स्थान अर्थात् प्रसंगमें ऐसा उस षष्ठीका अर्थ लेना चाहिये (४२ सूत्र देखो) आशय यह कि जिस षष्ठीका कोई सम्बन्ध विशेष निर्दिष्ट नहीं है, वह षष्ठी 'स्थानेयोगा' जाननी चाहिये, स्थान-का अर्थ प्रसंग है प्रसंगके स्थानमें जिसका योग हो उसीका स्थानमें योग है ।

उदाहरण–"इको यणचि ४७" अच् आगे रहते इक्को यण् हो ऐसा शास्त्र है, उसमें 'इकः यण् अचि' ऐसे शब्द हैं और इकः (इक्का) यह षष्ठी है परन्तु इस षष्ठीका कोई सम्बन्ध निश्चित नहीं है, इस लिये इस षष्ठीसे ऐसा अर्थ लेना चाहिये कि इक्के स्थान नाम प्रसंगमें यण् हो ॥

३९ स्थानेऽन्तरतमः । १ । १ । ५० ॥

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात् । यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः ॥

३९–प्रसंग होनेपर प्राप्त होनेवाले आदेशोंके मध्यमें स्थान व प्रयत्न करके अतिशय सदृश आदेश हो, अर्थात् किसी एक स्थानीके प्रसंगमें एकसे अधिक आदेशोंकी प्राप्तिके कारण-से वहां कौनसा आदेश लेना यह शंका हुई तो स्थानी वर्णसे अति सदृश अर्थात् अतिशय समान वर्ण जो उसमें मिलै वह लेना चाहिये, जहां अनेक प्रकारका आन्तर्य (सादृश्य) दीखै वहां स्थानसम्बन्धी सादृश्यका बल विशेष जानना चाहिये ॥

४० तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य । १ । १ । ६६ ॥

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् ॥

४०–सप्तमी निर्देशके द्वारा जिसका विधान हुआहो ऐसा कार्य सप्तमी विभक्त्यन्त पदके वर्णान्तराव्यवहित पूर्वको ही जानना अर्थात् 'अमुक पर होते हुए' इस अर्थके पदका उच्चारण कर जो कुछ कार्य कहाहो उससे वह व्यवधान-रहित पूर्व अर्थात् पिछले अति निकटवर्ती वर्णको होताहै * ।

४१ तस्मादित्युत्तरस्य । १ । १ । ६७ ॥

पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ॥

४१–पञ्चमीनिर्देश (अमुकसे आगे इस प्रकार पंचम्यन्त शब्दका उच्चारण) कर जो कार्यविधान किया हो तो उसके आगेका अति निकट जो वर्ण उसको वह उक्तकार्य होगा ऐसा अर्थ लेना चाहिये ।

---

१ निर्धारणका अर्थ चुनलेना है । षष्ठी शब्दसे षष्ठी विभक्ति लेनी इसका प्रकरण आगे आवैगा । 'मित् अन्त्यात् अचः परः' नाम मित् यह अन्त्य अच्के उपरान्त लगताहै, इतनाही अर्थ बहुत था ऐसा समझ कर अचः यह पंचमी होनेसे भी कुछ बाधा नहीं पडती ऐसा पहले दीखताहै, परन्तु पञ्चमीका कार्य दूसरा है वह ४१ सूत्रमें जानेगे वह यहां ठीक नहीं लगता. दूसरी बात यह कि षष्ठी किये विना वह मित् आगम मूल शब्दका अवयव नहीं होसकता ॥

२ और जहां सम्बन्धविशेष निर्धारित होगा वहां ऐसा न होगा, "ऊदुपधाया गोहः ६ । ४ । ८९" "शास इदङ्हलोः ६ । ४ । ३४" इत्यादि सूत्रोंमें उपधाके सन्निधानसे अवयव षष्ठी निर्दिष्ट है इस कारणसे 'गोहः' 'शासः' इस स्थलमें षष्ठी 'स्थाने-योगा' न होगी ॥

१ आन्तर्य (सादृश्य) चार प्रकारके होतेहैं, स्थानतः, अर्थतः, गुणतः और प्रमाणतः । १ स्थानतःका अर्थ स्थानसे, यथा क ख ग घ ङ अ ह इन सबका स्थान कंठ है, इससे इनका स्थानतः सादृश्य है । २ क्रोष्टु और क्रोष्टृ इन शृगालवाची दोनों शब्दोंका अर्थसे सादृश्य है । ३ गुणका अर्थ प्रयत्न है, ह और घ इन दोनों वर्णोंका संवार नाद घोष महाप्राण प्रयत्न है इस कारण यहाँ गुणतः सादृश्य है । ४ प्रमाणका अर्थ उच्चारणकाल आदि है इससे ह्रस्व ह्रस्वका और दीर्घ दीर्घका प्रमाणतः सादृश्य है ।

क्रमसे उदाहरण--१ 'दधि + अत्र=दध्यत्र' इस स्थलमें इकारके स्थानमें यकार हुआ क्योंकि दोनोंका ही उच्चारणस्थान तालु है । २ 'वातण्ड्ययुवतिः' इस स्थलमें अर्थकी सदृशता है अतः वतण्डी शब्दके स्थानमें वातण्ड्य आदेश हुआ । ३ 'वाक्+हरिः=वाग्घरिः' इस स्थलमें घोष, नाद, महाप्राण, संवार हकारके स्थानमें उसी प्रकारके गुणोंसे युक्त घकार हुआ । ४ 'अमुम्, अमू' इत्यादि स्थलमें ह्रस्व और दीर्घके स्थानमें "अदसोसेर्दादु दो मः $\frac{८।२।८०}{४१९}$" से क्रमसे ह्रस्व और दीर्घ उकार हुए हैं ॥

* "इको यणचि ४७" इसका अर्थ यह कि अच् पर होते इक् को यण् हो, पर यहां यण्का विधान करते हुए 'अचि' ऐसे सप्तम्यन्त पदकी योजना की है, इससे जानना चाहिये कि जो अव्यवहित पूर्व (बीचमें अन्य वर्ण न होकर पीछे जो अति-निकट) इक् हो उसीके स्थान में यण् होगा, इस कारण ४७ सूत्र-से 'सुधी, उपास्यः' इसकी संधि करनेमें 'उ' यह अच् आगे है इस कारण उसका अव्यवहित पूर्व जो ईवर्ण उसके स्थानमें 'य' यह यण् होकर 'सुध्युपास्यः' ऐसा रूप होनेवाला है, व्यवधान-रहितका कारण यह कि जहां व्यवधान हो वहां यण् न हो. यथा--'अग्निचित्+अत्र=अग्निचिदत्र' यहां तकारके व्यवधानसे अच् परे रहते 'चि' के इकारके स्थानमें यकार न हुआ

उदाहरण-" उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८।४।६१/११८ " 'उद् इसके आगे स्था और स्तम्भ इनको पूर्वसवर्ण आदेश होताहै' ऐसा शास्त्र कहताहै, पर वह कहां होताहै ? तो 'उदः' यह पंचमी है, इस कारण ऐसा जानना चाहिये कि उद् इसका अव्यवहित पर (अगला अति निकट) जो स्था वा स्तम्भ शब्द उसको वह आदेश होताहै । उद्के आगे अस्थात् ऐसा स्थासे बनाहुआ रूप आया है, तो बीचमें अ यह व्यवधान होनेसे पूर्वसवर्ण नहीं होगा " आदेः परस्य १।१।५४/४४ " सूत्र देखो ॥

४२ अलोन्त्यस्य । १ । १ । ५२॥

षष्ठीनिर्दिष्टस्यान्त्यस्याल आदेशः स्यात् ॥

४२-षष्ठ्यन्त शब्दकी योजना करके जो आदेश हो वह उस शब्दके प्रसंगमें ३८ के अनुसार होता तो है परन्तु वह उस सम्पूर्ण शब्दका नाश करके उसके स्थानमें होताहै, ऐसा नहीं है, वह केवल उसके अन्त्य अल् (वर्ण) का नाश करके उतनेहीके स्थानमें होताहै अर्थात् षष्ठीसे दिखाया आदेश अन्त्य अल्को हो ।

उदाहरण-" त्यदादीनामः ७।२।१०२/२६५ " अर्थात् त्यद् इत्यादि दश शब्दोंके आगे विभक्ति होनेपर 'अ' आदेश होताहै ऐसा शास्त्रमें कहाहै, परन्तु वह आदेश ४२ सूत्रसे उस शब्दके अन्त्य अल्के स्थानमें होताहै ऐसा जानना-चाहिये, इस कारण 'द्वि' ऐसा जो त्यदादिमेंका शब्द उसके अन्त्य इकारके स्थानमें अ होकर द्व ऐसा रूप हुआ । आगे विभक्ति-प्रत्यय लगाकर द्वौ, द्वाभ्याम् इत्यादि रूप सिद्ध हुए हैं, यह बात और है ॥

४३ ङिच्च । १ । १ । ५३ ॥

अयमप्यन्त्यस्यैव स्यात्। सर्वस्येत्यस्यापवादः॥

४३-ङित् (जिस आदेशमें ङकार इत् जोडा हो वह) आदेश भी अन्त्य अल्के ही स्थानमें होताहै । यह " अनेकाल्शित् सर्वस्य ४५ " सूत्रका अपवाद अर्थात् विशेष है ।

उदाहरण-" अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।१२३/८८ " से आगे अच् रहते पदके अन्तमें गो शब्दको स्फोटायन ऋषिके मतमें अवङ् (अव) आदेश होताहै इसमेंके ङकारसे ऐसा जानना चाहिये कि यह अव आदेश गो शब्दके अन्त्य अल् ओको होताहै, इससे गो+अग्रम् की संधि करनेसे गव + अग्रम्=पीछे ८५ से गवाग्रम् होताहै ॥

४४ आदेः परस्य । १ । १ । ५४ ॥

परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम् । अलोन्त्यस्येत्यस्यापवादः ॥

४४-किसी शब्दके अनन्तर आनेवाले पर अर्थात् आगेके शब्दको कोई कार्य कहागयाहो तो वह कार्य उस पर शब्दके आदिके (अर्थात् पहलेके) वर्णको होताहै ऐसा जानना चाहिये । यह 'अलोन्त्यस्य ४२' सूत्रका अपवाद है इसीसे अल्की अनुवृत्ति आती है ।

उदाहरण-ऊपर " अलोन्त्यस्य ४२ " के प्रसंगमें "उदः स्थास्तम्भोः " यह सूत्र आयाहै, वहां उद्के आगे स्था और स्तम्भ इनको पूर्वसवर्ण आदेश होताहै ऐसा शास्त्र है परन्तु उदके आगेका ऐसा कहनेसे यह जानना चाहिये कि यह आदेश स्था और स्तम्भ इनका प्रथम वर्ण जो सकार उसीके स्थानमें होनेसे 'उत्थानम्, उत्तम्भनम्' इत्यादि रूप होतेहैं सम्पूर्ण शब्दके स्थानमें आदेश नहीं होता ॥

४५ अनेकाल्शित्सर्वस्य।१।१।५५॥

स्पष्टम् । अलोन्त्यसूत्रापवादः । अष्टाभ्य औशित्यादावादेः परस्येत्येतदपि परत्वादनेन बाध्यते ॥

४५-अनेकाल् (जिसमें एकसे अधिक वर्ण हों) किंवा शित् (जिसमें शकार इत् जोडागया हो) ऐसा कोई आदेश जिस शब्दको कहा हो तो उस सम्पूर्ण शब्दका नाश करके उसके स्थानमें उक्त आदेश होगा " अलोन्त्यस्य ४२ " सूत्रका यह अपवाद है ॥ अष्टन् इस शब्दके आगे आनेवाले प्रथमा द्वितीयाके बहुवचन सम्बन्धी अस् प्रत्ययको औश् (औ) ऐसा शित् ७।१।२१/३७२ आदेश कहाहै, इस कारण औश् अस् ४।१।२/१०३ इस प्रत्ययमेंके दोनों वर्णोंका नाश करके उसके स्थानमें होताहै पर " आदेः परस्य ४४ " इस सूत्रसे केवल 'अ' इस प्रथम वर्णको ही आदेश होकर शेष रहे हुए सकार सहित औस् ऐसा प्रत्ययका रूप जो बने तो भी नहीं होता 'औ' ऐसा ही होता है, इसका कारण यह कि " अनेकाल्शित् सर्वस्य १।१।५५/४५ " यह सूत्र "आदेः परस्य १।१।५४/४४ " इस सूत्रके अनन्तरका है इस कारण इस सूत्रका बाधक होताहै (केवल अनेकाल् जैसे " अतो भिस ऐस् ७।१।९/२०३ "इसमें अनेकाल् है इससे भिस्के सम्पूर्ण अवयवके स्थानमें ऐस् हुआ) अनन्तर आनेवाला सूत्र पूर्वसूत्रसे बलवान् होताहै ऐसा नियम अगले सूत्रमें कहा जायगा ॥

४६ स्वरितेनाधिकारः । १ । ३ । ११ ॥

स्वरितत्वयुक्तं शब्दस्वरूपमधिकृतं बोध्यम् ॥ परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः ॥ असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः । निमित्तं विनाशोन्मुखं दृष्ट्वा तत्प्रयुक्तं कार्यं न कुर्वन्तीत्यर्थः ॥

॥ इति परिभाषाप्रकरणम् ॥

४६-सूत्रमें जो शब्द स्वरितयुक्त है वह अधिकृत जानना चाहिये अर्थात् वह [1]अधिकार है, अगले सूत्रमें उसकी अनुवृत्ति करै ।

---

१ किसी सूत्रमें अचकोही हेनेवाला १।२।३१/७ इस सूत्रमें आया हुआ स्वरित और है, और यह स्वरित अच् हल् साधारण है यह सम्पूर्ण शब्दको होताहै, तथापि अनुनासिक १।३।२/३ इत्के सदृश इस स्वरितको भी सूत्रमें लिखकर दिखानेकी शैली नहीं है अतः इसको व्याख्यानसे ही जानना चाहिये, और यह अधिकार कहांतक चलता है यह स्पष्ट न हो तो भी व्याख्यानसे जानना चाहिये ।

यहांतक जो परिभाषा आई हैं वे सब सूत्रपाठमेंकी हैं, और अगली तीन परिभाषा किनने एक सूत्रोंका आशय देखकर ठ्या-

(परि०) पर, नित्य, अन्तरङ्ग और अपवाद इनमें क्रमसे एक एक उत्तरोत्तर बली हैं अर्थात् अष्टाध्यायीमें सामान्यतासे त्रिपादीको छोड़कर अन्यत्र हर किसी भी पूर्व शास्त्रसे पर शास्त्रको बलवान् समझना चाहिये, परन्तु पूर्व सूत्रका कार्य जो नित्य होनेवाला हो तो वह पूर्वमें होते हुए भी पर शास्त्रसे बलवान् होताहै, फिर नित्य कार्य होतेहुए भी वह जो अन्य शब्दके सान्निध्य (निकट) होनेसे अथवा प्रत्ययके निमित्तसे होनेवाला हो तो उससे शब्दमेंके अंगके वर्णोंके निमित्तसे होनेवाला कार्य बलवान् जानना, और अपवाद शास्त्र इन सबसे बलवान् समझो, जो बलवान् होताहै उसका कार्य सबसे प्रथम होताहै, शास्त्रका अर्थ नियम सूत्र है । यथा-'तुदति' इस स्थलमें परवर्ती "पुगन्तलघूपधस्य च ७ । ३ । ८६" सूत्रको बाधकर नित्यत्वके कारण "तुदादिभ्यः शः ३ । १ । ७७" इस सूत्रसे 'श' प्रत्यय हुआ ॥ परसे अन्तरंग बलवान् है, यथा-'उभये देवमनुष्याः' इस स्थलमें परवर्ती "प्रथमचरम० १।१।३३/२२६" इस सूत्रसे विकल्पको बाध कर अन्तरङ्ग "सर्वादीनि० १।१।२७/२१३" सूत्रसे सर्वनाम संज्ञा होकर 'उभये' पद सिद्ध हुआ, परसे अपवाद बलवान् है, यथा-'दध्ना' इस स्थलमें परवर्ती "अस्थिदधि० ७।१।७५/२२२" से दधिको अनङ् आदेश होताहै तो परवर्ती "अनेकाल्शित् सर्वस्य १।१।५५/४५" सूत्रको बाधकर "ङिच्च १।१।५३/४३" इस अपवाद सूत्रसे अन्त्यादेश होताहै ॥ नित्यसे अन्तरंग बलवान् है, यथा 'ग्रामणिनी कुले' इस स्थलमें ग्रामणी शब्दको "इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३/३२०" इस सूत्रोक्त नित्य नुम्को बाधकर "ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७/३१८" इस सूत्रसे पहले ह्रस्व होकर फिर नुम् हुआ, पहले नुम् करनेपर अजन्तत्व न रहनेसे ह्रस्व न होता ॥ अन्तरंगसे अपवाद बलवान् है, यथा-'दैत्यारिः' इस स्थलमें परवर्ती सवर्ण दीर्घ ६।१।१०१/८५ को बाधकर अन्तरंगत्वहेतुसे "आद् गुणः ६।१।८७/६९" की प्रवृत्ति होतीहै, परंतु अपवादके कारण सवर्णदीर्घ ही होताहै ॥

(परि०) अन्तरंग कार्य कर्त्तव्य रहते बहिरङ्ग कार्य असिद्ध होताहै, अन्तरंग यह है कि प्रकृतिआदि निमित्तोंके समुदायमें जिस कार्यके उपकारी अवयव दूसरे कार्यकी अपेक्षासे समीप वा न्यून हों, बहिरंग वह है कि प्रकृति प्रत्यय वर्ण और पदके समुदायमें जिस कार्यके उपकारी अवयव दूसरे कार्यकी अपेक्षासे दूर वा अधिक हों, यथा-'पचावेदम्, पचामिदम्' यहां लोट्के उत्तम पुरुषके एकारको "एत ऐ ३।४।९३" सूत्रसे ऐकारादेश प्राप्त है सो ऐत्व अन्तरंगकी दृष्टिमें "आद् गुणः ६।१।८७" सूत्रसे हुआ गुण बहिरंग होनेसे असिद्ध है, इस कारण वहां एकारही नहीं तो ऐकार किसको हो ॥

(परि०) पाणिनिके मतानुरोधसे चलनेवाले वैयाकरण व्यर्थ तर्क नहीं करते अर्थात् कहीं किसी निमित्तसे कुछ कार्य होना सत्य है परन्तु जो उस निमित्तका ही आगे नाश होनेवाला हो तो उस निमित्तका कार्य वह नहीं करते ऐसा उनका सिद्धान्त है, यथा 'निषेदुषीम्' इत्यादि स्थलमें क्वसु प्रत्ययको "आर्धधातुकस्येड् वलादेः ७।२।३५" से इट् प्राप्त होने पर भी "वसोः सम्प्रसारणम् ६।४।१३१" सूत्रसे सम्प्रसारण होनेपर इट्का निमित्त वलादित्व नष्ट होजावेगा यह विचार कर इट् नहीं करते ॥

इति परिभाषाप्रकरणम् ।

—करणोंकी लिखी हुई हैं, तिसी और परिभाषा भी हैं जो प्रसंगसे लिखी जायगी परिभाषा जहां आवेगी वहां (परि०) शब्द सूचनार्थ लिखेंगे ॥

अथाच्सन्धिप्रकरणम् ।

सन्धिप्रकरण पढनेके पहले नीचे लिखी हुई बातोंको भले प्रकार ध्यानमें रखना चाहिये ।

१-'क' अक्षरमें क् और अ यह दो वर्ण हैं, 'का' में क् आ, 'कि' में क् इ, 'की' में क् ई, 'कु' में क् उ, 'क्य' में क् य् अ, 'द्यौः' में द् य् औः, 'क्ष' में क् ष् अ, 'ज्ञ' ज् ञ् आ, इत्यादि ।

२-'अज्झीनं परेण संयोज्यम्' । स्वरहीन वर्ण (व्यंजन) अगले वर्णसे जोडना चाहिये, यथा क् अ मिलकर क, क् आ मिलकर का, श् र् ई मिलकर श्री, स् त् र् अ मिलकर स्त्र इत्यादि ।

३-पिछले लिखे प्रत्याहार भले प्रकार ध्यानमें रखने चाहिये ।

४-संधिका अर्थ संहिता (२८ देखो) संहिता कब करै इसका नियम पीछे १।४।१०९/२२३२ सूत्रकी व्याख्यामें आवेगा । वह यह कि-

"संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥"

अर्थात् एक पदमें सर्व वर्ण, धातु, उपसर्ग, समासमेंके सब पद इन तीन प्रसंगोंमें संहिता अवश्य करनी चाहिये परन्तु वाक्योंके पृथक् २ शब्दोंमें बोलनेवालेकी इच्छा है कि वह संधि करै अथवा न करै, जब संहिता करनी होती है, तभी आगेके नियम लगाये जासकते हैं सन्धिके सूत्रोंमें संहिताका नियम होताहै ॥

४७ इको यणचि । ६ । १ । ७७ ॥

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये । सुधी उपास्य इति स्थिते । स्थानत आन्तर्यादीकारस्य यकारः । सुध्य् उपास्य इति जाते ॥

४७-जब कार्य और निमित्तकी अत्यन्त निकटता विवक्षित हो अर्थात् संहिताके विषयमें इक्के स्थानमें यण् हो अच् परे रहते, यथा-

सुधीभिः उपास्यः (बुद्धिमानोंसे पूजनीय) इसका समास करनेपर समासके नियमानुसार विभक्तिप्रत्यय आकर सुधी+ उपास्यः ऐसी स्थिति हुई, तब सुधीके अन्तकी ई और उपास्यका प्रथम वर्ण उ यह दो वर्ण एकत्र होनेसे संहिता प्राप्त हुई, यहां उ अच् आगे आनेसे ई इस इक्के स्थानमें

यण् होताहै, परन्तु यण् कहनेसे य् व् र् ल् यह चार वर्ण हुए, इस कारण स्थानवाले ३९ सूत्रसे सादृश्य देखा जाय तो ई से य् यण् मिलताहै, कारण कि यह दोनों तालव्य हैं इस कारण ईके स्थानमें य् हुआ तब सु ध् य् उपास्यः (सध्युपास्यः) ऐसा रूप हुआ* ॥

(द्वित्वप्रकरणम्) ।

४८ अनचि च । ८ । ४ । ४७ ॥

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वम् ॥

४८-जो अच्के आगे यर् (हकार रको छोडकर कोई हल्) आवे और फिर उसके आगे अच् न हो तो उस यर्को विकल्पसे द्वित्व होताहै, इस कारण सु ध् य् उपास्यः इसमें ध् को द्वित्व होकर सु ध् ध् य् उपास्यः ऐसी एक और स्थिति प्राप्त हुई "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४५" इससे 'यरः' और 'वा' की तथा "अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६" से 'द्वे' की अनुवृत्ति आती है ॥ (अब शंका और समाधान-) ।

४९ स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ।१।१।५६॥

आदेशः स्थानिवत्स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ । अनेनेह यकारस्य स्थानिवद्भावेनाऽचत्वमाश्रित्याऽनचीति द्वित्वनिषेधो न शंक्योऽनल्विधाविति तन्निषेधात् ॥

४९-आदेश स्थानीके तुल्य होताहै अर्थात् स्थानी रहते जो कार्य होताहै वह आदेश होनेपर भी होताहै, परन्तु जो स्थानी अल् अर्थात् एक वर्ण हो और उसके आश्रयसे कार्य होता हो तो आदेश स्थानिवत् नहीं होता, आशय यह कि ऐसे प्रसंगमें स्थानीके रहनेसे होनेवाला कार्य आदेश होनेपर नहीं होता, इस कारण यहां यकारकी स्थानिवद्भाव करके अच् मानकर उसके निमित्तसें "अनचि च $\frac{८।४।४७}{४८}$" इससे धकारके द्वित्वको बाध आताहै, ऐसी शंका न करनी, कारण कि 'अनल्विधौ' अर्थात् अल्के आश्रयसे कुछ विधान होते आदेश स्थानिवत् नहीं होता ऐसा सूत्रमें ही इस विषयका निषेध है, अर्थात् धकारके द्वित्वको बाध नहीं आता.

विशेष विवरण-स्थानी उसको कहते हैं जो प्रथम तो हो पीछे न रहै, और आदेश उसको कहते हैं जो प्रथम न हो पीछे होजावे । जो एकके तुल्य दूसरेको मानके कोई काम करनाहै उसको अतिदेश कहते हैं, स्थानी और आदेशके पृथक् २ होनेसे स्थानीका कार्य आदेशसे नहीं निकल सकता, इसलिये आदेशको स्थानिवद्भाव करते हैं, जैसे रामाय यहां ङेको य आदेश होनेपरभी स्थानिवद्भावसे सुप्त्व आताहै, अत एव "सुपि च $\frac{७।३।१०२}{२०२}$" से दीर्घ होताहै । यहां वत्करण इसलिये है कि संज्ञाधिकारमें यह परिभाषासूत्र पढा है, सो आदेशकी स्थानी संज्ञा न होजावै, न तो आदेशप्रयुक्तकार्य न होंगे । आदेशग्रहण इसलिये है कि आदेशमात्र स्थानिवत् होजावै, जैसे 'भवतु' यहां इकारके स्थानमें उकार हुआहै, उसके स्थानिवत् होनेसे ही पदसंज्ञा आदि कार्य होतेहैं । अनल्विधिग्रहण इस लिये है कि, अल्विधिमें स्थानिवद्भाव न हो, अल्विधि शब्दमें कईप्रकारका समास होताहै यथा अल् करके जो विधि, अलसे परे जो विधि, अल्की जो विधि, अल् पर रहते जो विधि, करनी हो वहां स्थानिवद्भाव न हो, अल् करके जो विधि वहां स्थानिवत् न हो, यथा-'व्यूढोरस्केन, महोरस्केन' यहां विसर्जनीयके स्थानमें सकारादेश हुआहै उसको यदि स्थानिवत् मानें तो विसर्जनीय जो अयोगवाहोंमें प्रसिद्ध है उसका अट् प्रत्याहारमें पाठ मानकर नकारको णकारादेश प्राप्त है सो होजाय । अल्से परे विधि यथा-'द्यौः' यहां दिव् शब्दके वकारको औकारादेश हुआहै, इस हल् वकारसे परे सु-विभक्तिका लोप "हल्ङ्याब्भ्यो० $\frac{६।१।६८}{२५२}$" सूत्रसे प्राप्त है सो नहीं होता, कारण कि यहां हल्से परे सु नहीं है । अल्की जो विधि 'द्युकामः' यहां दिव् शब्दके वकारको उकारादेश हुआहै, सो जो स्थानिवत् माना जाय तो उस वकारका लोप "लोपो व्योर्वलि ६।१।६६" इस सूत्रसे होजाय । अल्पर रहते जो विधि 'क इष्टः' यहां यकारके स्थानमें इकार संप्रसारण हुआ है सो जो स्थानिवत् माना जाय तो 'हशि च १६६" इस सूत्रसे उत्व होजाय, इत्यादि इस सूत्रका महान् विषय है, विशेष महाभाष्यमें देखलेना ॥

५० अचः परस्मिन्पूर्वविधौ।१।१।५७॥

अल्विध्यर्थमिदम् । परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्यात् स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इति यणः स्थानिवद्भावे प्राप्ते ॥

५०-(शंका-) अल्विधिमें स्थानिवद्भाव नहीं होता यह ४९ से स्पष्ट है । कहीं अल्विधिमें भी स्थानिवद्भाव होताहै । इसके लिये यह सूत्र है । स्थानी अच् होते उसके पूर्वमें रहनेवाले वर्णके सम्बन्धका कुछ कार्य करना हो तो उस अच्को पर वर्णके निमित्तसे जो आदेश हो वह स्थानिवत् होताहै अर्थात् ऐसे प्रसंगमें अच् रहते उसके पूर्व वर्णको जो कार्य होताहै वह आदेशकालमें (आदेश होनेपर) भी होताहै ।

यहां स्थानी ई यह जो अच् है उसके पूर्वमें रहनेवाले धकारको द्वित्व करना है, इससे इस प्रसंगमें ईके स्थानमें अगले उकारके निमित्तसे जो यकार हुआ उसको इस आधारसे स्थानिवद्भाव कर अच्त्व प्राप्त हुआ, अच्परत्वके कारणसे "अनचि च" सूत्रकी फिर प्राप्ति न होनेसे धकारके द्वित्वमें निषेध आताहै ऐसी शंका प्राप्त हुई ।

विशेष विवरण-जिस अच्के स्थानमें पर वर्णको निमित्त मानके आदेश हुआ हो और उसके पूर्वको विधि करना हो

---

* आगे अच् रहते इक्के स्थानमें यण् आदेश होताहै इस कारण यण्का विधान है, वैसे इक अच् इनका विधान नहीं तो अविर्धाग्रमान जो इक् अच् उनके "अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः $\frac{१।१।६९}{१४}$" इस सूत्रसे दीर्घानुनासिकादि भेदोंका भी ग्रहण होताहै इससे सुधी उपास्यः इसमेंके धी अक्षरको दीर्घ ईकारान्त होने हुए भी [illegible] "इको यणचि ४७" इस सूत्रसे यण् हुआ, इसीप्रकार और-स्थानोंमें भी जानना, परन्तु विर्धाग्रमान जो अगला यण् उसमें उनके सवर्ण अनुनासिकका किसीप्रकार भी ग्रहण नहीं होता, [illegible] के सूत्रके प्लुत प्रगृह्यादि बाधक हैं, इनका विस्तार ९० से ११० तक प्रकृतिभाव संधिप्रकरणमें होगा ॥

तो अच्के स्थानमें जो आदेश है वह स्थानिवत् होजावे। पूर्व सूत्रसे अल्विधिमें स्थानिवद्भावका निषेध कियाहै परन्तु उसी विषयमें इस सूत्रसे स्थानिवद्भावका विधान है, इस कारण यह सूत्र उसका अपवाद है। अच्ग्रहण इस लिये है कि हल् के स्थानमें जो आदेश हो वह स्थानिवद्भाव न हो, जैसे 'आगत्य' यहां जो मकारका लोप हुआ है उसको स्थानिवत् माने तो तुक् का आगम न होवे। परस्मिन्ग्रहण इस निमित्त है कि जहां परनिमित्त अच्को आदेश न हो वहां स्थानिवद्भाव न हो, यथा 'आदीध्ये' यहां जो इट् प्रत्ययको एकारादेश होताहै, वह परनिमित्त नहीं है, उसको यदि स्थानिवत् मानै तो दीधी धातुके ईकारका लोप "यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः ७।४।५३ / २४८८" से होजाय सो नहीं होता। पूर्वविधिग्रहण इस कारण है कि जहां पर विधि कर्तव्य हो वहां स्थानिवद्भाव न हो, जैसे–'नैधेयः' यह जब डुधाञ् धातुके आकारका लोप कित् प्रत्ययके परे होताहै तब निधिशब्द बनताहै उस आकारको यदि स्थानिवत् मानै तो द्व्यच् प्रातिपदिकाश्रित जो ढक् प्रत्यय होता है वह न होसकै परन्तु विधि वही है कि प्रातिपदिकके आगे प्रत्यय होताहै। (ऊपरकी शंकाका समाधान)–

५१ न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णाऽनुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु १।१।५८

पदस्य चरमावयवे द्विर्वचनादौ च कर्तव्ये परनिमित्तोऽजादेशो न स्थानिवत् । इति स्थानिवद्भावनिषेधः ॥

५१–पदका अन्त अवयव, वैसेही द्विर्वचन अर्थात् द्वित्व, वरे, यलोप (यकारका लोप), स्वर, सवर्ण, अनुस्वार, दीर्घ, जश् , चर इन विधियोंके करनेमें जो परको निमित्त मानकर अच्को आदेश होताहै वह स्थानिवत् नहीं होता, जो पूर्व सूत्रसे स्थानिवद्भाव होताहै उसका यह नियत स्थानोंमें निषेधक है इस कारण इसमेंके द्विर्वचन इस शब्दसे स्थानिवद्भावका निषेध हुआ अर्थात् धकारको द्वित्व हुआ तब सु धृ ध् य् उपास्यः ऐसी स्थिति हुई॥

५२ झलां जश् झशि ।८।४।५३॥

स्पष्टम् । इति धकारस्य दकारः ॥

५२–झश् परे रहते झल्के स्थानमें जश् होताहै। इससे आगे धकार रहते पूर्वधकारके स्थानमें दकार हुआ, तब सु द् ध् य् उपास्यः रूप हुआ। यहां (यकारके लोपकी शंका)–

५३ अदर्शनं लोपः । १ । १ । ६०॥

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ॥

५३–प्राप्त वर्णके अदर्शन (नहीं दीखने) को लोप कहतेहैं अर्थात् दृष्टिगोचर वर्णके मिटजानेका नाम लोप है यह भी और आदेशोंके समान आदेश है॥

५४ संयोगान्तस्य लोपः ।८।२।२३॥

संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् । इति यलोपे प्राप्ते ॥ यणः प्रतिषेधो वाच्यः ॥ * ॥ यणो मयो द्वे वाच्ये ॥ * ॥ मय इति पञ्चमी यण इति षष्ठीति पक्षे यकारस्यापि द्वित्वम् । तदिह धकारयकारयोर्द्वित्वविकल्पाच्चत्वारि रूपाणि । एकधमेकयम् । द्विधं द्वियम् । द्विधमेकयम् । एकधं द्वियम् । सुद्ध्युपास्यः । मद्ध्वरिः । धात्त्रंशः । लाकृतिः ॥

५४–जिस पदके अन्तमें संयोग हो उसको संयोगान्त पद कहतेहैं, उसके अन्त्य वर्णका लोप होताहै। इसके अनु-

---

१ इनके उदाहरण आगे समझमें आवेंगे तथापि यहां पतेसहित संक्षेप लिखतेहैं। पदान्त "लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९ / ६७" द्विर्वचन १।१।५८ / ५१ वरे "यश्च यङः ३।२।१७६ / २९८३" यलोप ३।२।१७६ / २९८३ स्वर ६।१।१९३ / ३६७६ सवर्ण ६।४।२३ / २५४४ शिष्लृधातु। अनुस्वार ६।४।२३ / २५४४ दीर्घ ८।२।२७ / २३६९ जश् २।४।३९ / २३९८ चर्। २।४।४० / २४२४।

पदान्तविधि–'कौ स्तः' यहां अस् धातुके अकारका लोप परको मानकर हुआहै, उसको स्थानिवत् मानकर जो आवादेश प्राप्त है, सो नहीं होता। द्विर्वचनका उदाहरण यहां है ही। वरेविधि जो वरच् प्रत्ययके परे लोप होताहै, वहां स्थानिवद्भाव न हो, यथा–'यायावरः' जो यहां अकारका लोप परनिमित्त हुआहै उसके स्थानिवत् होनेसे आकारका लोप "आतो लोप इटि च" से प्राप्त है सो न हुआ। यलोपमें 'यातिः' इसमें यङन्तसे क्तिन् फिर "अतो लोपः" अकारका लोप फिर (लोपो व्योर्वलि) यलोप हुआ। अलोपको स्थानिवत् होनेसे आकारका लोप हुआ, फिर यकारका हुआ। यहां आकारलोपके स्थानिवद्भावसे यलोप नहीं प्राप्त होताथा सो होगया। स्वरविधि–'चिकीर्षकः' यहां ण्वुल् प्रत्ययके परे चिकीर्ष धातुके–

–अकारका लोप होताहै, उसको स्थानिवत् माननेसे लित् प्रत्ययसे पूर्व (की) में उदात्त स्वर इष्ट है, सो नहीं होसकताथा सो यहां होगया। सवर्णविधि–'शिण्ढि' यहां श्नम् प्रत्ययके अकारका लोप हुआ, स्थानिवत् न माना गया। वा रुन्धः यहां श्नम् प्रत्ययके अकारका लोप हुआहै, उसके स्थानिवत् होनेसे धकारके परे अनुस्वारको परसवर्ण अर्थात् नकारादेश नहीं पाताथा सो हुआ। अनुस्वारविधि–'शिंषन्ति' यहां श्नम् प्रत्ययके अकारका लोप हुआ है उसके स्थानिवत् होनेसे नकारको अनुस्वार नहीं प्राप्त होताथा सो होगया। दीर्घविधि–'प्रतिदीव्ना, प्रतिदीव्ने' यहां प्रतिदिवन् शब्दके अकारका लोप हुआ। 'हलि च' से दीर्घ करनेमें यकारका लोप स्थानिवत् होनेसे दीर्घ नहीं पाता था सो होगया। जश्विधि–'सग्धिः'–यहां घस् धातुके अकारका लोप हुआ उसके स्थानिवत् होनेसे घकारको गकार नहीं पाता था सो होगया अदनं ग्धि. अद् से क्तिन् "बहुलं छन्दसि" से घस्लृ आदेश "घसिभसोर्हलि" से उपधालोप, "झलो झलि" से सकारका लोप "झषस्तथोः०" से तको ध "झलां जश् झशि" से जश्त्वके कर्तव्यमें उपधालोप स्थानिवत् न हुआ। चर्विधि–'जक्षतुः' यहां भी घस् धातुके अकारका लोप हुआहै, उसके स्थानिवत् होनेसे घकारको ककारादेश नहीं प्राप्त होताथा सो होगया॥ * ॥

१ तथापि संयोगादिलोप, लत्व, णत्व, इत्व छोडकर 'पूर्वत्रासिद्धीये न स्थानिवत्' अर्थात् त्रिपादीके सूत्रोंमें स्थानिवद्भावकी प्राप्ति नहीं होती ऐसी परिभाषा है "अनचि च ८।४।४७" सूत्र त्रिपादीका है इस कारण सुद्ध्युपास्यः इस उदाहरणमें स्थानिवद्भाव नहीं होता इस कारण यहां 'न पदान्त' इत्यादि यह प्रस्तुत सूत्र नहीं होता तो भी कार्य होजाता ऐसा वैयाकरण कहतेहैं।

सार मुद्ध्य् इसके अन्त यकारका लोप प्राप्त है परन्तु* संयोगान्तमें 'यण् हो तो लोप नहीं होता' (वा० ४८०६) इससे यकारका लोप न हुआ।

अब यकारको भी द्वित्व कहतेहैं,* यहां कार्यके अनुरोधसे 'मयः' इसमें पंचमी और 'यणः' इसमें षष्ठी विभक्ति ऐसा पक्ष लियाहै इससे मयके आगे यण् आवे तो उस यण्को द्वित्व होताहै (वा० ५०१८) ऐसा पक्ष होनेपर यकारको विकल्प करके द्वित्व हुआ। इस प्रकारसे धकार और यकार दोनोंको विकल्पसे द्वित्व करनेसे चार रूप हुए। एक ध् एक य्, दो ध् दो य्, दो ध् एक य्, एक ध् दो य्, यह चार रूप हुए। सुध्युपास्यः। सुद्ध्य्युपास्यः। सुद्ध्युपास्यः। सुध्य्युपास्यः। (पण्डितोंसे उपासनीय)। इसी प्रकार मधु+अरिः—मध्वरिः (मधु नामा दैत्यके शत्रु) (विष्णु)। धातृ+अंशः—धात्रंशः (ब्रह्माका अंश)। लृ+आकृतिः—लाकृतिः (लृकारकी आकृति) रूप जानो। मध्वरिः इसमें भी धकार वकारके द्वित्वसे चार रूप होंगे। धात्रंशः इसका धात्त्रंशः केवल यही ८।४।४६/५९ रूप होगा। लाकृतिमें अन्यरूपकी प्राप्ति नहीं है। (यणो मये द्वे वाच्ये) इसमें यण्में पंचमी और मयमें षष्ठी ऐसा पक्षभी आगे ७१ सूत्रमें लियाहै, यहां कार्यानुरोधसे ऐसा अर्थ कियाहै और भी द्वित्वके सूत्र प्रसंगसे कहतेहैं—

५५ नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य । ८।४।४८॥

पुत्रशब्दस्य न द्वे स्त आदिनीशब्दे परे आक्रोशे गम्यमाने। पुत्रादिनी त्वमसि पापे। आक्रोशे किम्। तत्त्वकथने द्विर्वचनं भवत्येव। पुत्त्रादिनी सर्पिणी॥ तत्परे च॥*॥ पुत्रपुत्रादिनी त्वमसि पापे॥ वा हतजग्धयोः॥*॥ पुत्त्रहती। पुत्रहती। पुत्त्रजग्धी। पुत्रजग्धी॥

५५—आदिनी (खानेवाली) यह शब्द आगे रहते गालीका अर्थ हो तो पुत्र शब्दमेंके अच्के आगेका जो यर् उसको द्वित्व नहीं होता। पुत्रादिनी त्वमसि पापे (हे पापिनी! तू बच्चे खानेवाली है)। गालीका अर्थ हो ऐसा क्यों कहा? सत्यभाषणमें द्वित्व होता ही है, यथा—पुत्त्रादिनी सर्पिणी * पुत्रादिनी शब्द आगे रहते भी पुत्र शब्दके तकारको द्वित्व नहीं होताहै (वा० ५०२१) यथा पुत्रपुत्रादिनी त्वमसि पापे। * आगे हत वा जग्ध शब्द हो तो पुत्र शब्दमें विकल्प करके द्वित्व होताहै (वा० ५०२२) पुत्त्रहती, पुत्रहती (बच्चा मारनेवाली) इत्यादि। *

५६ त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य । ८।४।५०।

त्र्यादिषु वर्णेषु संयुक्तेषु वा द्वित्वम्। इन्न्द्रः। इन्द्रः। राष्ट्ट्रम्। राष्ट्रम्॥

५६—अच्से परे तीन अथवा अधिक वर्णोंका संयोग हो तो वहां विकल्पसे द्वित्वका निषेध होताहै, यह शाकटायनका[1] मत है, यथा—इन्न्द्रः, इन्द्रः। राष्ट्ट्रम्, राष्ट्रम्। "अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६" से अच्की अनुवृत्ति आती है।

५७ सर्वत्र शाकल्यस्य । ८।४।५१॥

द्वित्वं न। अर्कः। ब्रह्मा॥

५७—शाकल्यके मतके अनुसार सर्वत्र द्वित्वका निषेध जानना चाहिये अर्कः, ब्रह्मा इत्यादि॥*

५८ दीर्घादाचार्याणाम् । ८।४।५२॥

द्वित्वं न। दात्रम्। पात्रम्॥

५८—आचार्योंके मतमें दीर्घके अनन्तर आनेवाले यर्को द्वित्व नहीं हो। दात्रम्। पात्रम्॥

इससे यह सिद्ध हुआ कि अन्यत्र द्वित्व होना इनको मान्य है, आचार्य भी कोई वैयाकरण थे (अथवा सब आचार्योंके मतमें)॥

५९ अचो रहाभ्यां द्वे । ८।४।४६॥

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। हर्य्यनुभवः। हर्यनुभवः। नह्य्यस्ति। नह्यस्ति॥

५९—अच्के आगे रेफ वा हकार आकर उसके आगे यर् आवे तो उस यर्को द्वित्व होताहै, यथा—हर्य्यनुभवः। नह्य्यस्ति।

यहां "अनचि च ४८" सूत्रसे रेफ और हकारको द्वित्व होना चाहिये परन्तु प्रस्तुत सूत्रसे अगले वर्णको ही द्वित्व होताहै। 'निमित्तत्वेन कार्यित्वस्य बाधः' अर्थात् जिसके निमित्तसे कार्य होताहै उसीमें अन्य निमित्तसे भी वही कार्य नहीं होसक्ता ऐसा तक्रकौण्डिन्य न्याय है—"ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्याय" अर्थात् ब्राह्मणोंको दही दो और कौण्डिन्यको मट्ठा, तो यहां मट्ठा देनेसे दही नहीं दीजाती, योंही रेफ हकारको निमित्त होनेसे कार्यिता नहीं होती। यह रूप विकल्प करके होते हैं, इस कारण द्वित्वरहित मूल रूप भी ग्राह्य हैं हर्यनुभवः। नह्यस्ति। अब लोपविषय कहते हैं—

---

* "अनचि च ४८" सूत्रसे पुत्र शब्दके तकारको द्वित्वप्राप्ति हुई है उसका इस सूत्रसे अंशतः निषेध कियाहै।

आदिन् शब्द सूत्रमें होते हुए उदाहरणमें आदिनी ऐसा स्त्रीलिंग शब्द लिया इसका कारण वा आधार क्या है तो (प्रातिपदिकग्रहणे लिंगविशिष्टस्यापि ग्रहणम्) अर्थात् मूल शब्द लेनेसे उसीसे उसके लिंगभेदयुक्त रूपोंका भी ग्रहण होताहै ऐसी परिभाषा है इसको लिंगविशिष्ट परिभाषा कहतेहैं। इससे यहां आदिनीका भी ग्रहण हुआ। और नागेशका कथन है कि सूत्रमें ङ्यन्तका अनुकरण लुप्तसप्तमीक आदिनी शब्द है, अत एव "तत्परे च" इसकी व्याख्या हरदत्तने 'आदिनी शब्द है पर जिससे' ऐसी की॥

[1] पाणिनिसे पहले अनेक वैयाकरण थे, उनमें एक शाकटायन भी हुए हैं उनके मतसे यह निषेध होताहै परन्तु "अनचि च" इस सूत्रसे सामान्यसे द्वित्व है ही, और दूसरे वैयाकरणोंके भेद जहां कहेहैं वहां वृत्तिमें उनको केवल वा शब्दसे ही दिखलायाहै, कारण कि अन्य विकल्पोंसे और इनमें भेद नहीं है॥

* शाकल्यके मतसे सर्वत्र अर्थात् इस प्रकरणके किसी भी सूत्रसे द्वित्व प्राप्त हुआ हो तो भी उस द्वित्वका निषेध है, तो दो मत हुए और दोनों ही ठीक हैं एक उचित एक अनुचित ऐसा कहनेका वैयाकरणोंको अधिकार नहीं है, इस कारण अर्कः अर्क्कः, ब्रह्मा, ब्रह्म्मा यह दोनों प्रकारके रूप ग्राह्य हुए ५९ सूत्र देखो। दक्षिणमें शाकल्यके मतका प्रचार है, द्वित्वका नहीं, पूर्वोत्तरमें द्वित्वका प्रचार है, परन्तु द्वित्व लिखनेमें कोई नियम खास नहीं है॥

६० हलो यमां यमि लोपः ।८।४।६४॥

हलः परस्य यमो लोपः स्याद्वा यमि । इति लोपपक्षे द्वित्वाभावपक्षे चैकयं रूपं तुल्यम् । लोपारम्भफलं तु आदित्यो देवताऽस्येति आदित्यं हविरित्यादौ । यमां यमीति यथासंख्यविज्ञानान्नेह । माहात्म्यम् ॥

६०–हल्से परे यदि यम् आवै तो उसके आगे यम् होनेसे पहले यमका लोप विकल्पसे होताहै, तो हर्य्यनुभवः इत्यादिकोंमें पिछले सूत्रसे यकारको द्वित्व करके इस सूत्रसे उसका लोप किया, अथवा द्वित्व कियाही नहीं तोभी एक यकार युक्त रूप समानही सिद्ध होते हैं, तो फिर लोपविधायक सूत्रके कहनेका प्रयोजन क्या है? तो आदित्य है देवता जिसका इस अर्थमें ण्य (य) प्रत्यय ४।१।८५/१०७७ होकर आदित्यं हविः (आदित्य देवताकी हवि) ऐसा प्रयोग होतेहुए इस सूत्रसे विकल्प करके एक यकारका रूप होकर आदित्यं हविः ऐसाभी रूप होताहै । 'यमां यमि' ऐसा अनुक्रम लेकर निश्चय किया है, इस कारण आगे वही यम रहते ऐसा अर्थ करना चाहिये १।३।१०/१२८ इसपरसे माहात्म्यम् इसमेंका 'य' यम् आगे रहते भी आनेवाले 'म्' यम्का लोप नहीं होता । तथापि आदित्यम्, माहात्म्यम् इत्यादिकोंमें 'अनचि च' इससे तकारको द्वित्व होकर, आदित्त्यम्, माहात्त्म्यम् इत्यादि पाक्षिक विकल्प रूप होतेहैं ॥

(इति द्वित्वप्रकरणं लोपप्रकरणञ्च समाप्तम्)।

६१ एचोऽयवायावः ।६।१।७८॥

एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि॥

६१–आगे अच् रहते एच् (ए, ओ, ऐ, औ) के स्थानमें क्रमसे अय्, अव्, आय्, आव्, आदेश होतेहै, अर्थात् एको अय्, ओको अव्, ऐको आय्, औको आव्, यह हो। 'इको यणचि' से अचिकी अनुवृत्ति आतीहै ।

(शंका और समाधान)–

६२ तस्य लोपः । १ । ३ । ९ ॥

तस्येतो लोपः स्यात् । इति यवयोर्लोपो न । उच्चारणसामर्थ्यात् ॥ एवं चेत्संज्ञापीह न भवति । हरये । विष्णवे । नायकः । पावकः ॥

६२–उस इत् का लोप हो। अर्थात् प्रयोगमें लोप होताहै। (प्रारंभमें माहेश्वर सूत्रके नीचे दीहुई इत्सम्बन्धी टिप्पणी देखो) और १ सूत्रसे अन्त्य हल्की इत्संज्ञा कहीहै, इस कारण अय् अव् आय् आव् इनके अन्त्य हल् जो य् व् य् व् इनकी इत् संज्ञा होकर लोप प्राप्तहुआ, परन्तु यकार वकारके उच्चारणके सामर्थ्यसे लोप नहीं होता, अर्थात् यदि लोप ही करना था तो आदेशोंमें य, व का उच्चारण ही क्यों किया इसी कारण उनकी इत् संज्ञा भी नहीं होती। 'उपदेशेऽजनु०' की अनुवृत्तिसे इत् लिया. "और एच संयुक्त अक्षर है जैसे ए में अ इ है, अतः आन्तरतम्यसे दो दो अक्षरवालोंके स्थानमें दो दो अक्षरवाले आदेश किये।" उदाहरण हरे+ए=हरये। विष्णो+ए=विष्णवे । नै+अकः=नायकः । पौ+अकः=पावकः ॥

६३ वान्तो यि प्रत्यये ।६।१।७९॥

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः । गोर्विकारो गव्यम् । गोपयसोर्यत् । नावा तार्यं नाव्यम् । नौवयोधर्मेत्यादिना यत् ॥ गोर्यूतौ छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ अध्वपरिमाणे च ॥ * ॥ गव्यूतिः । ऊतियूतीत्यादिना यूतिशब्दो निपातितः । वान्त इत्यत्र वकाराद् गोर्यूतावित्यत्र छकाराद्वा पूर्वभागे लोपो व्योरिति लोपेन वकारः प्रश्लिष्यते । तेन श्रूयमाणवकारान्त एवादेशः स्यात् । वकारो न लुप्यत इति यावत् ॥

६३–यकारादि प्रत्यय आगे रहते ओ, औ के स्थानमें ऊपरके चार आदेशोंमेंसे अव् और आव् यह आदेश होतेहैं। (६१ से अव् और आव् की अनुवृत्ति होतीहै)। गो और पयस् इनके आगे विकार अर्थ (साक्षात् अथवा परंपरासे निष्पन्न पदार्थके दिखानेवाले) में यत् (य) प्रत्यय ४।३।१६०/१५३८ होताहै। वह आगे रहते गोमेंके ओके स्थानमें अव् होकर गव्यम् ऐसा रूप होताहै, वैसेही 'नावा तार्यम् नाव्यम्' "नौवयोधर्म० ४।४।९१/१६४२" नौ, वयस्, धर्म, इत्यादिकोंके आगे तार्य (पार लेजानेके योग्य तुल्य, प्राप्य) इत्यादि अर्थमें यत् (य) प्रत्यय ४।४।९१/१६०३ होताहै, वह आगे रहते नौमेंके औके स्थानमें आव् होकर नाव्यम् ऐसा शब्द होताहै ।

* यूति शब्द आगे रहते वेदके प्रयोगमें (३५४३ वा०) और * मार्गके नापके अर्थमें लौकिक प्रयोगमें भी गोशब्दके ओके स्थानमें वान्त आदेश अर्थात् अव् होताहै (वा० ३५४४) ऐसा उपसंख्यान (पहले कहे विषयका विशेष वचन) जानना। गो+यूतिः=गव्यूतिः (दो कोसका नाप) इसमें "ऊतियूति० ३।३।९७/३२७४" सूत्रसे यूति (मिश्रण) यह शब्द 'यु मिश्रणे' इस धातुसे निपातन करके लिया गयाहै, ('अन्यथा सिद्धस्य अन्यथोच्चारणं निपातनम्') प्रकृति प्रत्ययकी सिद्धि निराले प्रकारसे होतेहुए सूत्रमें कोईसा निराला रूप सिद्ध हो इस कारण सूत्रमें उसका अचिन्त्य रूप कहना निपातन है।

(शंका) "लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९/६७" सूत्रसे आगे अश् रहते पदके अन्तमें अकारके आगे रहनेवाले यकार वकारका विकल्पसे लोप होता है इस कारण गव् य, गव्–यूति, इन-

---

१ संस्कृतमें पुँल्लिंग, नपुंसकलिंग कर्तृ कर्मादि अर्थ इत्यादि न जाननेके निमित्त विभक्तिप्रत्यय आते हैं, उदाहरणमें विभक्ति सहित पद दिखाये जातेहैं, "अपदं न प्रयुञ्जीत" अपदका उच्चारण न करना चाहिये इस भाष्यके कथनसे प्रथमादि विभक्तिसहित पद लिखा जाताहै । यथार्थ मूलशब्द गव्य नाव्य हुए वे नपुंसक लिंगकी विभक्ति सहित गव्यम्. नाव्यम् लिखे गयेहैं । इसका प्रकार षड्लिङ्गमें समासमें आवेगा ॥

मेंका य् यह अश् आगे है, इस कारण गव् इनमेंके वकारको लोप प्राप्त हुआ परन्तु गव्य, गव्यूति शब्दका वकारलोपयुक्त रूप नहीं दीखता तो इसकी क्या व्यवस्था समझनी चाहिये ?

(उत्तर)–वान्त शब्दके वकारके पहले और 'गोर्यूतौ' इसके आगे छकारके पहले उच्चारणकी अनुकूलतासे वकारका प्रश्लेष है अर्थात् 'व्वान्तो यि प्रत्यये' किंवा 'गोर्यूतौ व्छन्दसि' ऐसी मूलस्थिति होनेमें "लोपो व्योर्वलि ६।१।६६/८७३" इस सूत्रसे अगले व् और छ इनके निमित्तसे पिछले वकारका लोप हुआहै इस कारण वह सूत्रमें नहीं दीखता, तो भी वह सूत्रमें है ही ऐसा समझना चाहिये । इसका उपयोग क्या है तो इस पर कहते हैं कि–उससे यहां दोनोंमेंसे कोईसा भी प्रश्लेष लिया जाय तो भी गोशब्दको व् व् अन्त अर्थात् अन्ततक जिसका वकार सुनाई देता रहै, आशय यह कि, अन्ततक वकाररूपसे रहनेवाला वकार अन्तमें है जिसके ऐसा वान्त आदेश होताहै । सारांश यह कि उसमेंके वकारका लोप नहीं होता ऐसा जानना * ॥

६४ धातोस्तन्निमित्तस्यैव । ६।१।८० ॥

यादौ प्रत्यये परे धातोरेचश्चेद्वान्तादेशस्तर्हि तन्निमित्तस्यैव नान्यस्य । लव्यम् । अवश्यलाव्यम् । तन्निमित्तस्यैवेति किम् । ओयते । औयत ॥

६४–यकारादि प्रत्यय आगे रहते ओ, औ इन एचोंको पूर्वसूत्रसे वान्त आदेश होताहै परन्तु धातुओमें यह नियम सर्वत्र नहीं लगता, किन्तु धातुके अन्तमें रहनेवाले ओ,औ जो एच् हैं, वे उस यादि प्रत्ययके ही निमित्तसे हुए हों तो ही उनके स्थानमें वान्त आदेश होगा अन्यथा नहीं, यथा–लू–यम् लव्यम् । 'लूञ् (लू) छेदने' इस धातुके आगे योग्यतार्थक यत् (य) ३।१।९७/२८४२ होकर उसके निमित्तसे उकारको गुण हुआ और लोय ऐसी स्थिति होने पर ओ के स्थानमें अव् ऐसा वान्त आदेश होकर 'लव्यम्' (काटने योग्य) रूप सिद्ध हुआ । इसी प्रकार अवश्य अर्थवाला ण्यत् (य) ३।२।१२५/२८८६ प्रत्यय होकर उसके निमित्तसे लु को वृद्धि होकर लौ–य ऐसी स्थिति हुई और प्रस्तुत सूत्रसे औके स्थानमें आव् होकर 'लाव्यम्' (अवश्य काटने योग्य) ऐसा रूप सिद्ध हुआ ।

यादि प्रत्ययकेही निमित्तसे हो ऐसा क्यों कहा ? यदि ऐसा न कहते तो ओयते (किंचित् बुना जाताहै) औयत (बुना गया) यहां भी आदेश होजाता ।

आङ् (आ) पूर्वक वेञ् (वे) धातुके लट् आत्मनेपदमें ते होकर ३।१।६७/२७५६ से यक् प्रत्यय हुआ, यजादि होनेसे सम्प्रसारण, पूर्वरूप "अकृतसार्वधातुकयोर्दीर्घः"से दीर्घ, और आ+ऊयते में आङ्के साथ उकारको गुण होकर ओयते पद सिद्ध हुआ । यहां य प्रत्ययके पहले धातुसम्बन्धी ओकार है, तथापि वह यत् प्रत्ययके निमित्तसे नहीं हुआहै इस कारण उसके स्थानमें अव् आदेश नहीं होता ।

वैसेही आङ्पूर्वक 'वेञ्–तन्तुसन्ताने' इसी धातुसे कर्मणि लङ् अट्का आगम यक् सम्प्रसारण अर्थात् वे के स्थानमें पूर्ववत् ऊ होकर आट्का आगम ६।४।७२/२२५४ होकर पीछे दोनों मिलकर औ ६।१।८७/२६९ वृद्धि हुई । तब 'औयत' ऐसा बना, यहां औ यह वर्ण अगले यत्प्रत्ययके निमित्तसे नहीं हुआ इसकारण यहां आव्–ऐसा वान्त आदेश नहीं होता यह नियमसूत्र है (१२ सूत्रके नीचेकी टिप्पणी देखो) नियमसूत्रमें प्रायः (एव) यह शब्द आया करताहै ॥

६५ क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे । ६।१।८१ ॥

यान्तादेशनिपातनार्थमिदम् । क्षेतुं शक्यं क्षय्यम् । जेतुं शक्यं जय्यम् । शक्यार्थे किम् । क्षेतुं जेतुं योग्यं क्षेयं पापं जेयं मनः ॥

६५–यत्प्रत्यय आगे रहते निपातन करके यान्तादेश करनेके लिये यह सूत्र है । क्षि, जि इन धातुओंसे क्षय्य, जय्य यह रूप बनतेहैं, क्षय पानेको शक्य क्षय्यम् । जय पानेके शक्य जय्यम्, शक्यार्थमें हो ऐसा क्यों कहा ? तो योग्यताके अर्थमें यान्तादेश नहीं होता, यथा–जीतनेके योग्य 'जेयम्' (मन) । क्षयकरनेके योग्य 'क्षेयम्' (पाप), यहां "अर्हे कृत्यतृचश्च ३।३।१६९" से यत् प्रत्यय और ७।३।८४/२१६८ से गुण होकर क्षेयम्, जेयम् बने हैं ॥

६६ क्रय्यस्तदर्थे । ६ । १ । ८२ ॥

तस्मै प्रकृत्यर्थायेदं तदर्थम् । क्रेतारः क्रीणीयुरिति बुद्ध्या आपणे प्रसारितं क्रय्यम् । क्रेयमन्यत् । क्रयणार्हमित्यर्थः ॥

६६–'डुक्रीञ् (क्री)–द्रव्यविनिमये' इस धातुका जो प्रकृत अर्थ खरीदना है उसके निमित्त अर्थात् ग्राहक मोल लें इस निमित्त बेचनेके स्थानमें धरा हुआ पदार्थ क्रय्य कहाताहै और इतर अर्थात् बेचनेके योग्य तो है परन्तु घरमें वा और चाहे जहां रखा हुआ हो वह क्रेय कहाताहै अर्थात् बेचनेके योग्य ॥

---

* ('यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे' (सप्तम्यन्ते विशेषणीभूते अल्ग्रहणे यो विधिर्विधीयते स तदादौ ज्ञेय इत्यर्थः) ऐसी परिभाषा है, सूत्रमें दो सप्तमी आकर एक विशेषण और एक विशेष्य हो और वह विशेषण अल्रूप हो तो वहां तदन्तविधि १।१।७२/२६ न होते तदादि विधि होतीहै इस लिये 'वान्तो यि प्रत्यये' इसमें 'यकारादौ प्रत्यये' अर्थात् यकारादि प्रत्यय आगे रहते ऐसा अर्थ लियाहै ॥)

विशेष विवरण–कोई अक्षर यदि किसी प्रकार सूत्रमें लुप्त हो उसको फिर वहां मानना प्रश्लेष है । वान्त आदेश कहनेसे अव् आव् का ही बोध होताहै क्योंकि इससे अव्यवहित पूर्व सूत्रमें एही वान्त आदेश हैं और वहां स्थानित्वेन निश्चित ओकार, और औकार भी यहां उपस्थित होतेहैं । और गव्यम्, नाव्यम् यहां 'लोपः शाकल्यस्य' (पदान्त यकार वकारका लोप हो विकल्पसे अश् प्रत्याहारके वर्ण परे रहते) इस सूत्र करके वैकल्पिक वकारका लोप प्राप्त होताहै इस लिये तो वान्तो यि० में वकारका प्रश्लेष है सो ठीक नहीं क्योंकि यद्यपि गोः य, नावा यं इसकी लुप्त विभक्तिको प्रत्यय लक्षण मान पदत्व आसक्ताहै तथापि 'यचि भम्' इससे भसंज्ञा होनेके कारण पदत्वका बाध होजाताहै इसी अरुचिसे ग्रन्थकारने छकाराद्व ऐसा कहाहै ॥

हरे एहि (हरि आओ) इसकी जब संधि करनी हो तब ६१ सूत्रसे हरय् एहि ऐसी स्थिति हुई, तब–

६७ लोपः शाकल्यस्य।८।३।१९॥

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्वा लोपोऽशि परे। पूर्वत्रासिद्धमिति लोपशास्त्रस्यासिद्धत्वान्न स्वरसंधिः। हर एहि। हरयेहि। विष्ण इह। विष्णविह। श्रिया उद्यतः। श्रियायुद्यतः। गुरा उत्कः। गुरावुत्कः। कानि सन्ति कौस्त इत्यत्रास्तेरल्लोपस्य स्थानिवत्त्वेन यणावादेशौ प्राप्तौ न पदान्तेति सूत्रेण पदान्तविधौ तन्निषेधान्न स्तः॥

६७–अश् आगे रहते अ, आ इनके आगे रहनेवाले पदान्तमें स्थित जो य् और व् उनका विकल्पसे लोप होताहै। फिर तो एक दफे लोप होकर हर एहि ऐसा रूप हुआ। फिर "वृद्धिरेचि ६।१।८८/७२" इसको बाधकर "ओमाङोश्च ८०" से पररूप संधिकी प्राप्ति हुई पर "पूर्वत्रासिद्धम्" इस सूत्रसे सवासात अध्यायमें रहनेवाले पररूपसूत्रके प्रति त्रिपादीमें रहनेवाले लोप शास्त्रकी असिद्धतासे यकारके बीचमें आजानेके कारण सन्धि न हुई, अत एव हर एहि ऐसाही रूप सिद्ध रहा। लोपशास्त्रके वैकल्पिक होनेके कारण हरय् एहि इसमें लोप नहीं होता हरयेहि ऐसा भी एक पृथक् रूप होताहै, इसी प्रकारसे विष्णो इह इसकी संधि विष्ण इह, विष्णविह (विष्णु यहां)। श्रियै+उद्यतः= श्रिया उद्यतः श्रियायुद्यतः (लक्ष्मीके लिये उद्युक्त)। गुरौ+ उत्कः-इसका गुरा उत्कः, गुरावुत्कः (गुरुके विषयमें उत्कंठित) ऐसा जानना चाहिये।

सन्ति (हैं) और स्तः (दोनो हैं) यह दोनों क्रियापद 'अस्–भुवि' इस धातुसे बनते हैं इनके पूर्वभागमें अकारका "श्नसोरल्लोपः ६।४।१११/२४६९" इससे लोप हुआहै। इस कारण "अचः परस्मिन्० ५०" इससे अल्लोपको स्थानिवद्भाव होकर वह लोप दृष्ट अकारवत् होनेसे कानि सन्ति (वे कौन हैं) कौ स्तः (वे दोनों कौन हैं) इस वाक्यमेंके पूर्व शब्दोंके अन्तमें रहनेवाले जो 'इ', 'औ' यह वर्ण उनके स्थानमें संधि होनेसे क्रमसे यण् और आव् यह आदेश प्राप्त हुए, परन्तु पदान्त सम्बन्धका विधान होनेसे "न पदान्त० १।१।५८/५१" इत्यादि सूत्रसे स्थानिवद्भावका निषेध है, इस कारण अगले अदृष्ट अचोंके निमित्तसे 'इ, औ' इन पदान्त वर्णोंके स्थानमें यण् और आव् यह आदेश नहीं होते, मूलके रूप ज्योंके त्यों रहते हैं॥

६८ एकः पूर्वपरयोः।६।१।८४॥

इत्यधिकृत्य॥

६८–पूर्व और पर इन दोनोंके स्थानमें एक आदेश हो। यह अधिकार करके–॥

६९ आद्गुणः।६।१।८७॥

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुणादेशः स्यात्संहितायाम्। उपेन्द्रः। रमेशः। गंगोदकम्॥

६९–अ वा आ इनके आगे अच् होय तो पूर्व और पर इन दोनोंके स्थानमें मिल कर एक गुण आदेश होताहै, यथा–उप+इन्द्रः उपेन्द्रः (विष्णु)। रमा+ईशः=रमेशः (विष्णु)। गंगा+उदकम्=गंगोदकम् (गंगाजल) *

अवर्णके आगे ऋ वा ऌ हो तो पूर्व और पर इन दोनोंके स्थानमें मिलकर इस सूत्रके अनुसार कौनसा गुण आना चाहिये, कारण कि अवर्ण और ऋ, ऌ इनके अनुसार कण्ठ–मूर्धन्य और कण्ठ–दन्त्य ऐसे गुण नहीं हैं, इसका उत्तर कहते हैं–

७० उरण् रपरः।१।१।५१॥

ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तं तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते। तत्रान्तरतम्यात् कृष्णर्धिरित्यत्राऽर्। तवल्कार इत्यत्राऽल्। अचो रहाभ्यामिति पक्षे द्वित्वम्॥

७०–ऋ के अठारह और ऌ के बारह मिलकर जो तीस भेद हैं उन सबोंका ऋ में ही ग्रहण होताहै। सो१४सूत्रमें कह चुके हैं। उस ऋ के स्थानमें अण् (अ, इ, उ) इनमेंसे कोईसा आनेसे रपर होकर ही (अर्, इर्, उर्,) इस प्रकारसे प्रवृत्त होताहै। अ वर्ण गुण है और अचोंमेंसे भी है, इस कारण ऋ के सम्बन्धसे जो गुण लिया जायगा वह 'अ' लेनेसे प्रस्तुत सूत्रसे अर् होकर अ और ऋ इन दोनोंके स्थानमें प्रशस्त प्रकारसे मिलताहै, अर् में 'अ' कण्ठय और 'र्' मूर्धन्य है। इसमें ऋके अन्तर ऋ, ऌ और रके अन्तर र्, ल् आतेहैं इस कारण स्थानसे आन्तरतम्यके कारण कृष्ण+ऋद्धिः=कृष्णर्द्धिः (कृष्णका अभ्युदय) इसमें अर् और तव+ऌकारः=तवल्कारः (तेरा ऌकार) इसमें अल् ऐसे आदेश होते हैं। इसी प्रकारसे ऋ ऌ इनके स्थानमें वृद्धिकी प्राप्ति होते आ के स्थानमें आर्, आल् इनकी प्रवृत्ति होतीहै ऐसा जानना।

'उरण् रपरः' इसमें उः, अण्, रपरः ऐसे ३ पद हैं, और उः यह ऋशब्दकी षष्ठीका एकवचनान्त है। "अचो रहाभ्यां द्वे ५९" इस सूत्रसे कृष्णर्द्धिः में विकल्पसे ध को द्वित्व होता है॥

७१ झरो झरि सवर्णे।८।४।६५॥

हलः परस्य झरो लोपो वा स्यात्सवर्णे झरि। द्वित्वाभावे लोपे सत्येकधम्। असति लोपे द्वित्वलोपयोर्वा द्विधम्। सति द्वित्वे लोपे

---

* गुण कहनेसे "अदेङ् गुणः" सूत्रसे अ, ए, ओ इन तीन का बोध होता है, परन्तु प्रथम उदाहरणमेका संभवर्ण 'अ' कण्ठय और 'इ' तालव्य है, इस कारण, "स्थानेन्तरतमः" इस सूत्रसे स्थानकी सदृशताके कारण दोनोंके स्थानमें कण्ठतालव्य 'ए' हुआ इसी प्रकार 'रमेशः' में कण्ठतालव्य और 'गंगोदकम्' में कण्ठोष्ठ ओकार गुणादेश हुआहै।

इस सूत्रके अपवाद, क्रमसे आगे आतेहैं, इस कारण अवर्णके आगे अवर्ण अथवा [illegible] आवैं तो यह सूत्र वहां नहीं लगता, यहां इतनाही जानो॥

चासति त्रिधम् । कृष्णर्धिः । कृष्णर्द्धिः । कृष्णर्द्द्धिः । यण इति पञ्चमी मय इति षष्ठीति पक्षे ककारस्य द्वित्वम् । लस्य त्वनचि चेति । तेन तवल्कार इत्यत्र रूपचतुष्टयम् ॥

द्वित्वं लस्यैव कस्यैव नोभयोरुभयोरपि ।
तवल्कारादिषु बुधैर्बोध्यं रूपचतुष्टयम् ॥

७१–आगे सवर्ण झर् रहते हल्के आगेके झर्को विकल्पसे लोप होताहै, इस कारण द्वित्व न करते लोप कियाजाय तो एक धयुक्त, लोप न किया जाय अथवा द्वित्व और लोप दोनों कार्य किये जांय तो दो धकारोंसे युक्त, द्वित्व किया और लोप न किया तो तीन धकारोंसे युक्त ऐसे तीन रूप होंगे। कृष्णर्धिः । कृष्णर्द्धिः । कृष्णर्द्द्धिः । *

'यणो मयो द्वे वाच्ये' ऐसा जो ५३ सूत्रपर वार्तिक है, उसका 'यणः' यह पंचमी और 'मयः' यह षष्ठी ऐसा पक्ष होतेहुए यण्के आगेके मय्को द्वित्व होताहै ऐसा अर्थ है, इस कारण 'तवल्कारः' इसमेंके ककारको द्वित्व हुआ, वैसेही "अनचि च ६।४।४७/४८" इस सूत्रसे लकारको द्वित्व हुआ, इस कारण उस शब्दके चार रूप होतेहैं।

द्वित्वमिति–एकवार लकारको द्वित्व, एक वार ककारको द्वित्व, एकवार दोनोंको द्वित्व नहीं, और एकवार दोनोंको द्वित्व इस कारण बुद्धिमानोंको तवल्कारादि शब्दोंमें चार रूप जानने चाहिये । तवल्ल्कारः । तवल्क्कारः । तवल्कारः । तवल्ल्क्कारः ॥

७२ वृद्धिरेचि । ६ । १ । ८८ ॥

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः । कृष्णैकत्वम् । गङ्गौघः । देवैश्वर्यम् । कृष्णौत्कण्ठ्यम् ॥

७२–अ अथवा आ के आगे ए, ओ, ऐ, औ, वर्ण आवें तो पूर्व और पर इन दोनोंके स्थानमें वृद्धिरूप एक आदेश होताहै । ६९ सूत्र 'आद् गुणः' का यह अपवाद है. कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम् (कृष्णका एकत्व) । गंगा+ओघः=गंगौघः (गंगाका प्रवाह) । देव+ऐश्वर्यम्=देवैश्वर्यम् (देवका भाग्य) । कृष्ण + औत्कण्ठ्यम्=कृष्णौत्कण्ठ्यम् (कृष्णकी उत्कंठा)। 'आद् गुणः' से आत्की अनुवृत्ति आतीहै । स्थान मिलाकर ऐ औ यह वृद्धि हुई हैं ॥

७३ एत्येधत्यूठ्सु । ६ । १ । ८९ ॥

अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । पररूपगुणापवादः । उपैति । उपैधते । प्रष्ठौहः । एजाद्योः किम् । उपेतः । मा भवान्प्रेदिधत् । पुरस्तादपवादन्यायेनेयं वृद्धिरेङि पररूपमित्यस्यैव बाधिका न त्वोमाङोश्चेत्यस्य । तेनावैहीति वृद्धिरसाधुरेव ॥ अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ अक्षौहिणी सेना ॥ स्वादीरेरिणोः ॥ * ॥ स्वैरः । स्वेनेरितुं शीलमस्येति स्वैरी । स्वैरिणी ॥ प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु ॥ * ॥ प्रौहः । प्रौढः । अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम् । "व्रश्चेतिसूत्रे राजेः पृथग् भ्राजिग्रहणाज्ज्ञापकात्" तेन ऊढग्रहणेन क्तान्तमेव गृह्यते न तु क्तवत्वन्तस्यैकदेशः । प्रोढवान् । प्रौढिः । इष इच्छायां तुदादिः । इष गतौ दिवादिः । इष आभीक्ष्ण्ये क्र्यादिः । एषां घञि ण्यति च एष एष्य इति रूपे तत्र पररूपे प्राप्तेऽनेन वृद्धिः । प्रैषः । प्रैष्यः । यस्तु ईष उञ्छे यश्च ईष गतिहिंसादर्शनेषु । तयोर्दीर्घोपधत्वात् । ईषः । ईष्यः । तत्राद्गुणे प्रेषः । प्रेष्यः ॥ ऋते च तृतीयासमासे ॥ * ॥ सुखेन ऋतः सुखार्तः । तृतीयेति किम् । परमर्तः ॥ प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे ॥ * ॥ प्रार्णम् । वत्सतरार्णमित्यादि । ऋणस्यापनयनाय यदन्यदृणं क्रियते तदृणार्णम् । दशार्णो देशः । नदी च दशार्णा । ऋणशब्दो दुर्गभूमौ जले च ॥

७३–अ अथवा आ वर्णके आगे अच् है आदिमें जिसके ऐसी एति (इण् (इ) गतौ) एधति (एध वृद्धौ) धातु (इन धातुओंके अजादिरूप) अथवा ऊठ् (अर्थात् वह आदि धातुके वकारको सम्प्रसारण ६।४।१३२/३२९ कार्य होकर ऊ ऐसा जो वकारका रूप होताहै) आवे तो पूर्व परके स्थानमें वृद्धिरूप एकादेश होताहै । अवर्णके आगे ए ओ होते पररूप ६।१।९४/७८ और अच् होते गुण ६।१।८७/६९ इन दोनों नियमोंका यह अपवाद है । उप+एति=उपैति (समीप आताहै) उप+एधते=उपैधते (समीप बढताहै) प्रष्ठ+ऊहः=प्रष्ठौहः (बैलको)

एजादि क्यों कहा? तो एति,एधति इन्हींके रूप होते हुए भी वे एजादि न हों तो वहां वृद्धि न होगी । यथा–उप+इतः=उपेतः (समीप गयाहुआ), मा भवान् प्र+इदिधत्=मा भवान् प्रेदिधत् (आप बहुत मत बढिये)।

यहां एति, एधति इनके एजादि रूप पर रहते ऐसा एति पदकी अनुवृत्तिसे कहा गया है वस्तुतः इनमेंसे केवल एकारादि रूपोंके ही उदाहरण देखनेमें आवेंगे तथापि इससे नियमको किसी प्रकारसे बाध आताहै यह बात नहीं है "पुरस्तादपवादा अनन्तरानेव विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्" (परि०) पहले कहेहुए अपवाद अगले निकटवर्ती विधानके ही केवल बाधक होतेहैं, उससे परविधानके बाधक नहीं होते, ऐसा न्याय अर्थात् परिभाषा है । आशय यह कि जो पहले अपवाद और पीछे उत्सर्ग पढा हो तो वह अपवाद अपने समीपस्थ उत्तर कार्यका बाधक होताहै और जो उससे पर विधि उसका बाधक नहीं होता, इस कारण "एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८९/७३" इस प्रस्तुत सूत्रमें कहीहुई वृद्धि "एङि पररूपम् ६।१।९४/७८"

१ इनमेंसे अन्तके दो रूपोंमें "झलां जश् झशि ५२" सूत्रसे पूर्व धकारोंके स्थानमें दकार हुआहै,तो भी उसके सुर्मतिके निमित्त धकार ही कहाँहै यह पीछे सुध्युपास्यः प्रयोगपर ५४ सूत्रमें दिखादियाहै ॥

इस सूत्रसे कहे हुए परूपका ही बाधक है, "ओमाङोश्च ६।१।९५/८०" इसके पररूपका बाधक नहीं, इस कारण अव+एहि=अवैहि ऐसा वृद्धियुक्त रूप अशुद्ध जानना, अवेहि ऐसा होना चाहिये। आङ् (आ) उपसर्ग और इहि (जा) यह इ (एति) धातुका रूप मिलकर एहि (आओ) ऐसा रूप होताहै, इसके प्रारंभमें आ उपसर्ग है और फिर एति (इण्) धातुका एजादि रूप भी है। "अन्तादिवच्च ६।१।८५/७५" देखो इसकारण अव एहि यह वाक्य "एत्ये० ७३" और "ओमाङोश्च" इन सूत्रोंसे वृद्धि और पररूप इन दोनों कार्योंका विषय बनबैठा, इस कारण संशयनिवृत्तिके निमित्त पुरस्तात् अपवाद इत्यादि न्याय लाकर यहां पररूप ही होताहै, वृद्धि नहीं ऐसा सिद्ध किया है।

* अक्ष शब्दके आगे ऊहिनी शब्द होते अ और ऊ मिलकर औ वृद्धि होती है ऐसा उपसंख्यान जानना (वा० ३६०४) अक्षौहिणी सेना[1] ॥

* स्वशब्दके आगे ईर, ईरिन् शब्द रहते वृद्धिरूप एकादेश होताहै (वा० ३६०६) स्वेच्छासे गमन करनेका स्वभाव है जिसका वह स्वैरी, इसी प्रकार लिंगविशिष्ट परिभाषासे (५५ सू० टि०) स्वैरिणी (जारिणी) पद हुआ।

* प्र उपसर्गके आगे ऊह, ऊढि एष, एष्य, यह शब्द होतेहुए भी वृद्धिरूप एकादेश होताहै (वा० ३६०५) प्रौहः (बडा भारी तर्क), प्रौढः (विचारशील) (परि०) "अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम्" "व्रश्च० ८।२।३६/२९४" सूत्रमें राज[1] और भ्राज इन दो शब्दोंके अन्तमें किसीएक प्रसंगमें ष होना कहा है, उसमें राज शब्दका उच्चारण होकर भ्राज शब्दमें फिर राज ऐसा अंश आयाहै परन्तु राज इस सार्थ शब्दसे भ्राज इसमेंका अर्थहीन जो राज उसका भी ग्रहण होसकता तो फिर भ्राजका उच्चारण करनेका क्या काम था? इस कारण 'अर्थवद्ग्रहणमें अनर्थक शब्दका ग्रहण नहीं होता' ऐसी परिभाषा निकलती है; इस कारण वह धातुके आगे क्त (त) प्रत्यय होकर जो ऊढ शब्द बनताहै वही यहां लेना चाहिये, क्तवतु (तवत्) प्रत्यय होकर बनाहुआ ऊढवान् ऐसा जो स्वतंत्र शब्द उसका अवयव जो ऊढ वहां वृद्धि नहीं होगी। प्र+ऊढवान्=प्रोढवान् (जो उठाकर लेगया वह) प्र+ऊढिः=प्रौढिः (बडापन)।

१ अक्षौहिणीका प्रमाण—"अक्षौहिण्याः समाख्याता रथानां द्विजसत्तमाः ॥ संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ॥ १ ॥ शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः ॥ गजानां च परीमाणमेतदेव विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥ ज्ञेयं शतसहस्रन्तु सहस्राणि नवैव तु ॥ नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघ ॥ ३ ॥ पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च ॥ दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह संख्यया ॥ ४ ॥ [महाभारत आदिपर्व, अ० २, श्लो० २३-२६] अर्थ-२१८७० रथ, २१८७० हाथी, १०९३५० पैदल, ६५६१० घुडसवार यह अक्षौहिणीका प्रमाण है। अक्षौहिणी, स्वैरिणी पदोंमें नकारको णकार "पूर्वपदात्० ८।४।३/८५७" और "रषाभ्याम्० ८।४।१/२३५" इन सूत्रोंसे होता है, स्वैरिन्का स्वैरी यह प्रथमाका रूप है।

१ राजि और भ्राजि यह धातुदर्शक नाम हैं, वैसे ही एति, एधति, यह भी धातुदर्शक नाम हैं, इसी प्रकार आगे भी जानना. इसका आधार "इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे" अर्थात् इक् (इ) और श्तिप् (ति) यह धातुदर्शक प्रत्यय हैं ऐसा ३।३।१०८/३२८५ पर वार्तिक है ॥

तुदादि, दिवादि और क्र्यादि गणोंमेंका जो इष धातु उसके घञ् (अ) "३।३।१८/३१८४" और ण्यत् (य) ३।१।१२४/२८७२ इन प्रत्ययोंके योगवाले एषः और एष्यः यह रूप बने हैं, प्र उपसर्गके आगे इनके रहते "एङि पररूपम् ६।१।९४/७८" से पररूप प्राप्त है परन्तु प्रस्तुत वार्त्तिकसे उसका बाध होकर वृद्धि ही होती है, प्रैषः, प्रैष्यः। परन्तु (दानादाना बीनना और गति, हिंसा, दर्शन इन अर्थोंमें जो) ईष ऐसे दीर्घ उपधावाले दो धातु हैं उनसे ईषः और ईष्यः यह रूप बनते हैं, यह प्र इसके आगे हों तो "आद् गुणः ६।१।८७/६९" से प्रेषः प्रेष्यः सिद्ध होते हैं, वृद्धि नहीं होती।

इनमेंके प्रैषः, प्रेषः यह रूप भेजना, सुखालेना, इन अर्थोंमें क्रियावाचक और प्रैष्यः, प्रेष्यः यह रूप योग्यतावाचक हैं ऐसा जानना ॥

* अ अथवा आ इनके आगे ऋत शब्द होते तृतीयातत्पुरुष समास हो तो पूर्व परके स्थानमें वृद्धि होती है (वा० ३६०७) सुखेन+ऋतः=सुखार्तः (सुखसे पूजित)। तृतीयासमास क्यों कहा? परम+ऋतः=परमर्तः (अत्यन्त पूजित) इसमें गुण होताहै वृद्धि नहीं होती, क्योंकि, यह परमश्चासौ ऋतश्च परमर्तः ऐसा कर्मधारय समास है।

* प्रवत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण, दश इन शब्दोंके आगे ऋण शब्द हो तो वृद्धिरूप एक आदेश होता है (वा ३६०८-९) प्र+ऋणम्=प्रार्णम् (अतिशय ऋण)। वत्सतर+ऋणम्=वत्सतरार्णम् (गायके बच्चेके निमित्त ऋण) इत्यादि। ऋणके चुकानेके निमित्त जो दूसरा ऋण लियाजाय वह ऋणार्णम्। दश दुर्गवाला देश 'दशार्ण' होताहै, दश नदियां जिसमें मिली हों वह दशार्णा नदी (बुन्देलखंडमें दशान नदी है) ऋण शब्दका अर्थ दुर्गभूमि और जल भी होताहै।

'परनित्यान्तरंगापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः' यह ४६ सूत्र पर परिभाषा लिखी है, इससे "एङि पररूपम् ६।१।९४/७८" यह पर सूत्र है तो भी इससे "एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८९/७३" यह पूर्व सूत्र ही अपवादत्वके कारण बली हुआ है ॥

७४ उपसर्गादृति धातौ। ६।१।९१॥

अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। उपार्च्छति। प्रार्च्छति ॥

७४-अकारान्त वा आकारान्त उपसर्गके आगे ऋकारादि धातु हो तो वृद्धिरूप एकादेश होताहै। उप+ऋच्छति=उपार्च्छति। प्र+ऋच्छति=प्रार्च्छति।

ऋति इसमें ऋत् ऐसा तपर रूप लेनेका कारण ७७ सूत्र की व्याख्यामें समझा जायगा। (शंका-)

७५ अन्तादिवच्च। ६। १। ८५ ॥

योयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत्परस्यादिवत्स्यात्। इति रेफस्य पदान्तत्वे ॥

७५-पूर्व और पर इन दोनोंके स्थानमें जो एकादेश होताहै, वह पूर्व शब्दके अन्त्य अवयवके समान हो और पर शब्दके आद्य अवयवके समान हो, इससे उपार्च्छति और

प्राच्छंति इनमेंके रेफोंको ' उपार् ' और 'प्रार् ' इन पूर्वशब्दोंके अन्तावयव ठहरनेसे पदान्तत्व हुआ और (इसमें ६८ की अनुवृत्ति आती है) ॥

७६ खरवसानयोर्विसर्जनीयः।८।३।१५॥

खरि अवसाने च परे रेफस्य विसर्जनीयः स्यात्पदान्ते । इति विसर्गे प्राप्ते । अन्तवद्भावेन पदान्तरेफस्य न विसर्गः । उभयथर्क्षु कर्तरि चर्षिदेवतयोरित्यादिनिर्देशात् । उपसर्गेणैव धातोराक्षेपे सिद्धे धाताविति योगविभागेन पुनर्वृद्धिविधानार्थम् । तेन ऋत्यक इति पाक्षिकोपि प्रकृतिभावोऽत्र न भवति ॥

७६-कोईसा खर् आगे हो अथवा अवसानका विषय हो तो पदान्त रेफके स्थानमें विसर्ग होताहै (" रो रि ८ । ३ १४ " से रेफकी अनुवृत्ति आती है) इससे प्राच्छंति और उपार्च्छंति इनके पदान्त रेफोंके स्थानमें विसर्ग प्राप्त हुए, परन्तु सूत्रमेंही उभयथा+ऋक्षु=इनकी सन्धि उभयथर्क्षु ८।३।८/३६३० ऐसी है, वैसे ही कर्तरि च ऋषिदेवतयोः इनकी सन्धि " कर्तरि चर्षिदेवतयोः ३।२।१८६/३१६७ " ऐसी है, इसमें खर् आगे रहते भी पदान्त रेफके स्थानमें विसर्ग नहीं हुआ, इस कारण अन्तवद्भाववाले ७५ सूत्रसे जो रेफको पदान्तत्व आया उसके स्थानमें विसर्ग नहीं होता ऐसा जानना चाहिये।

जब प्रादि शब्द धातुओंके पहले कहे जाते हैं तभी उनकी उपसर्ग संज्ञा २२ सूत्रसे होती है, इस कारण उपसर्ग शब्द आवे तो आगे धातु शब्दका अध्याहार आही जायगा, ऐसा होते भी " उपसर्गादृति धातौ ७४ " सूत्रमें धातौ शब्द क्यों रक्खा ? उत्तर-" ऋत्यकः ६।१।२८/९२ " अक् वर्णके आगे ऋ होते उनकी अन्य नियमोंके अनुसार संधि होती है किंवा प्रकृतिभावसे वे वर्ण वैसे ही रहते हैं, इस विकल्पविधायक सूत्रसे । इस प्रसंगमें उपार्च्छंति रूप होकर एक पक्षमें उप ऋच्छति ऐसा प्रकृतिभाव भी विकल्प करके प्राप्त होगा, वह न हो इस कारण ' धातौ ' ऐसा सूत्रांश पृथक् लेकर आगे ऋकारादि धातु होते हुए वृद्धि ही होती है, ऐसा अर्थ इससे दर्शायाहै इससे यहां " ऋत्यकः " इस सूत्रके अनुसार जो पाक्षिक प्रकृतिभाव प्राप्त हुआ था उसका स्पष्ट बाध हुआ ॥

७७ वा सुप्यापिशलेः।६।१।९२॥

अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ सुब्धातौ परे वृद्धिर्वा स्यात् । आपिशलिग्रहणं पूजार्थम् । प्रार्षभीयति । प्रर्षभीयति । सावर्ण्यादॢकारस्य ग्रहणम् । प्राल्कारीयति । प्रल्कारीयति । तपरत्वाद्दीर्घे न । उप ऋकारीयति । उपकारीयति ॥

७७-अवर्णान्त उपसर्गके आगे ऋकारादि नामधातु आवे तो विकल्पसे वृद्धि होती है, यह आपिशलिका मत है, आपिशलिका ग्रहण पूजाके निमित्त है, अर्थात् वा विकल्पविधायक होते हुए भी नामग्रहण संमानके निमित्त है। प्र + ऋषभीयति=प्रार्षभीयति-प्रर्षभीयति-(बैलकासा आचरण करताहै) । ऋ ॡ इनका सावर्ण्य है इस कारण सवर्णको भी यह नियम लगताहै । प्र+ॡकारीयति-प्राल्कारीयति-प्रल्कारीयति (ॡकारकी विशेषकर इच्छा करताहै) ऋत्में तपरग्रहण इस कारण है कि ऋकारादि नामधातु परे रहते वृद्धि नहीं होती, इस कारण उप+ऋकारीयति ऐसी स्थिति होते वृद्धि नहीं होती-उपकारीयति (समीपॡकारकी इच्छा करताहै) ऐसा गुण होताहै । नामधातु वा सुब्धातु यह नामपर ही सिद्ध होतेहैं इनकी उत्पत्ति आगे धातुप्रकरण २६५७-२६७७ में समझोगे ॥

७८ एङि पररूपम्।६।१।९४॥

आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् । प्रेजते । उपोषति । इह वा सुपीत्यनुवर्त्य वाक्यभेदेन व्याख्येयम् । तेन एङादौ सुब्धातौ वा । उपेडकीयति । उपैडकीयति । प्रोघीयति । प्रौघीयति ॥ एवे चानियोगे ॥ * ॥ नियोगोऽवधारणम् । क्केव भोक्ष्यसे । अनवक्लृप्तावेव शब्दः । अनियोगे किम् । तवैव ॥

७८-अवर्णान्त उपसर्गसे एङादि धातु परे रहते पूर्व परके स्थानमें पररूप एकादेश होताहै, प्र+ एजते=प्रेजते (बहुत कम्पित होताहै), उप+ओषति=उपोषति (उपवास करताहै) यहां ' वा सुपि ' ऐसी अनुवृत्ति पिछले ६।१।९२/७७ सूत्रसे लेकर भिन्न वाक्य कर व्याख्या करनी चाहिये, इस कारण एङादि नामधातु आगे रहते विकल्प करके पररूप जानना । विकल्प कहनेसे एक पक्षमें वृद्धि भी होतीहै, उप+एडकीयति ऐसी स्थितिमें उपेडकीयति-उपैडकीयति (मेढेके समान आचरण करताहै) । प्र+ओघीयति=प्रोघीयति, प्रौघीयति (प्रवाहके समान विशेषकर आचरण करताहै) ऐसे रूप होतेहैं ।

* नियोग न हो तो एव शब्द आगे होते भी पररूप जानो (वा० ३६३१) नियोगका अर्थ अवधारण अर्थात् निश्चय है । क्केव भोक्ष्यसे (भला कहां भोजन करोगे) यहां अनिश्चयार्थ एव शब्द है । ' नियोग न होते ' ऐसा क्यों कहा ? नियोग होते पररूप न होकर वृद्धि होतीहै इस कारण तवैव (तेराही भोजन करूंगा) यहां निश्चयार्थमें वृद्धि होतीहै ॥

७९ अचोन्त्यादि टि।१।१।६४॥

अचां मध्ये योन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात् ॥ शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् ॥ * ॥ तच्च टेः ॥ शकन्धुः । कर्कन्धुः । कुलटा । सीमन्तः केशवेशे । सीमान्तोन्यः । मनीषा । हलीषा । लाङ्गलीषा । पतञ्जलिः । सारङ्गः पशुपक्षिणोः । साराङ्गोन्यः ॥ आकृतिगणोयम् । मार्तण्डः ॥ ओत्वोष्ठयोः समासे वा ॥ * ॥

स्थूलोतुः । स्थूलौतुः । बिम्बोष्ठः । बिम्बौष्ठः । समासे किम् । तवौष्ठः ॥

७९–शब्दके सब अचोंमें जो अन्त्य अच्, वह आदि है जिस भागका उसको 'टि' कहतेहैं, अर्थात् शब्दमेंका अन्त्य अच् आगे हल् रहते अगले हल् सहित टिसंज्ञक होताहै और जहां अन्त्य अच्के बाद हल् नहीं रहता वहां व्यपदेशिवद्भावसे उस अन्त्य अच्को ही टि संज्ञा होतीहै ।

* शकन्ध्वादि गणके शब्दोंमें पररूप होताहै (वा० ३६३२) और वह पूर्वकी 'टि' और पर शब्दका आदि वर्ण जो अच् इन दोनोंके स्थानमें होताहै । आशय यह कि पूर्व शब्दकी टि उड जातीहै, शक+अन्धुः=शकन्धुः (शक देशका कुआ) । कर्क+अन्धुः=कर्कन्धुः (कर्कनामक राजाका कुआ) । कुल+अटा=कुलटा (घरघर फिरनेवाली–जारिणी) । केशोंकी विशेष रचना (मांग) अर्थ हो तो सीमन्+अन्तः=सीमन्तः (वा० ३६३३) और इससे पृथक् अर्थ हो तो सीमन्+अन्तः=सीमान्तः(सीमाकी हद)। मनस+ईषा=मनीषा (मनकी इच्छा) । हल+ईषा= हलीषा (जोतनेके हलकी डंडी) । लाङ्गल+ईषा=लाङ्गलीषा (हलकी डंडी)। पतत्+अञ्जलिः= पतञ्जलिः (हाथ जोडनेयोग्य वा संध्यावंदन समय किसी ऋषिके हाथसे नीचे गिरा जल, पतञ्जलि ऋषिका नाम है) । पशु (चित्रमृग), पक्षि (राजहंस) ऐसा अर्थ हो तो सार+अङ्गः=सारङ्गः (गण० १३६) । दूसरा अर्थात् जिसका सुन्दर अंग है वह सार+अङ्गः=साराङ्गः । यह आकृतिगण है । मृत+अण्डः=मृतण्डः इसके परे अण् प्रत्यय करके आदिके अच्को वृद्धि करनेसे मार्त+अण्डः=मार्तण्डः हुआहै। यहां भी दीर्घ न हुआ * ।

* अवर्णके आगे समासमें ओतु (बिल्ली) अथवा ओष्ठ शब्द आवे तो विकल्प करके पररूप जानना अर्थात् पाक्षिक वृद्धि हो (वा० ३६३४) स्थूल+ओतुः=स्थूलोतुः–स्थूलौतुः (मोटी बिल्ली) । बिम्ब+ओष्ठः=बिम्बोष्ठः–बिम्बौष्ठः (कुंदुरूके समान लाल होठ)। समासमें हो ऐसा क्यों कहा ? समासके विना यह शब्द आगे रहते भी पररूप नहीं होता, यथा– तव+ओष्ठः=तवौष्ठः ॥

८० ओमाङोश्च । ६ । १ । ९५ ॥

ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात् । शिवायों नमः । शिव एहि–शिवेहि ॥

८०–अवर्णके आगे ओम् अथवा आङ् (आ) शब्द हो तो पररूप एकादेश होताहै, यथा शिवाय+ ओं नमः= शिवायों नमः (रक्षा करनेवाले शिवको नमस्कार है)। शिव+एहि (आ इहि)=शिवेहि (हे शिव आओ) ॥

८१ अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ।६।१।९८।

ध्वनेरनुकरणस्य योऽच्छब्दस्तस्मादितौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् । पटत् इति । पटिति ॥ एकाचो न ॥ * ॥ श्रदिति ॥

८१–ध्वनिका जो फिर उच्चारण उसको अनुकरण कहतेहैं उसमेंका जो अत् ऐसा शब्द उसके आगे इति शब्द आवे तो पररूप एकादेश होताहै (यहां अस्फुट ध्वनि लेनी). यथा–पटत् + इति= पटिति (पटत् ऐसा ध्वनिका अनुकरण) ।

* वह अनुकरण यदि एकाच् हो तो उसमेंके अत् शब्दके आगे इति शब्द होते पररूप नहीं होता (वा० ३६३७) श्रत्+इति=श्रदिति (श्रत् ऐसा ध्वनिका अनुकरण) इसमें त्के स्थानमें "झलां जशोऽन्ते ८४" से 'द्'हुआ है ॥

८२ नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा ।६।१।९९।

आम्रेडितस्य प्रागुक्तं न स्यात् । अन्त्यस्य तु तकारमात्रस्य वा स्यात् । डाचि बहुलं द्वे भवत इति बहुलवचनाद्द्वित्वम् ॥

८२–आम्रेडितके अन्तमें अत् शब्द हो और इति शब्द आगे आवे तो पूर्वोक्त कार्य (पररूप) नहीं होता, केवल उस अत् शब्दके अन्तका अंश जो त् केवल उसीको होताहै अर्थात् विकल्प करके तकार उड जाताहै । आम्रेडितका अर्थ अगले सूत्रमें आवेगा ।

* अनुकरणमें डाच् प्रत्यय हो तो बहुल करके द्विरुक्ति होती है (वा० ४६९७) इस वचनसे द्विरुक्ति * ॥

८३ तस्य परमाम्रेडितम् । ८ । १ ।२॥

द्विरुक्तस्य परं रूपमाम्रेडितसंज्ञं स्यात् । पटत्पटेति ॥

---

१ असुख्यमें मुख्य व्यवहारको व्यपदेशिवद्भाव कहतेहैं, जैसे किसीके एक ही पुत्र है, वही उसका ज्येष्ठ मध्यम तथा कनिष्ठ पुत्र भी कहलाताहै,इसी प्रकार अन्त्य अच्में तदादित्व व्यवहार होताहै॥

* पीछे गणपाठनामक जो ग्रन्थ कहा गया है, उसीमें यह शकन्ध्वादि गण भी है, गणमेंके शब्द जिस नियमके योग्य हों उसी नियममें आनेवाले और २ शब्द जो उससे बाहर भी दीखते हों तो उसको आकृतिगण कहतेहैं, इससे शकन्ध्वादिके समान और दूसरे भी कई शब्दोंमें दीर्घ नहीं होताहै, जैसे मार्तण्डः यह शब्द गणके बाहरका दिखाहै, मार्तण्डः इसमे मृत+अण्डः ऐसे मूलके शब्द होते मृताण्डः रूप प्राप्त होताहै, परन्तु उसमें मृत शब्दको वृद्धि होकर मार्त ऐसा रूप हुआ और फिर पररूप हुआहै, अर्थ यह कि जो मृत अण्डसे उत्पन्न हुआ ॥

* डाच् (आ) प्रत्यय "अव्यक्तानुकरणात्० ५।४।५७ / २१२८" सूत्रमें कहाहै और उसी सूत्रके सम्बन्धका यह ऊपर वार्तिक जानना चाहिये । बहुल चार प्रकारका होताहै,यथा "क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव । विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥" अर्थात् कहीं प्रवृत्ति, कहीं अप्रवृत्ति, कहीं प्रवृत्ति और अप्रवृत्ति, कहीं और कुछ इस प्रकारसे किसी एक कार्यके अनेक विधान देखकर बाहुलकके चार प्रकार किये हैं । इसमें जो अन्तका अन्यदेव–'और दूसरा कुछ' है वही इसमें आताहै परन्तु 'दूसरा कुछ' इसका क्या अर्थ है सहज ही यह प्रश्न उत्पन्न होताहै, तो सब प्रसंगमें एक ही उत्तर देते नहीं बनेगा इससे यहां उसका निर्णय नहीं किया तो भी इस स्थलमें डाच् (आ) प्रत्यय न होते और सूत्रमें निषेध किया हुआ इति शब्द आगे रहतेभी अनुकरणमें द्विरुक्ति होतीहै ऐसा इस 'बहुलम्' शब्दसे ऊपर कहे वार्तिकका अर्थ जानना ॥

८३–द्विरुक्तिमें जो दो रूप होते हैं, उनमें दूसरे रूपकी आम्रेडित ऐसी संज्ञा है, यथा–पटत् पटत् इसमेंका दूसरा आम्रेडित है, इसके आगे इति शब्द होते केवल अन्त्यके तकारहीको पररूप विकल्प करके होताहै ऐसा पिछले सूत्रमें कहाहै, पटत् पट–इति=(आद् गुणः) पटत्पटेति (पटत् पटत् ऐसा ध्वनिका अनुकरण है) । विकल्प कहनेसे तकार रहकर भी संधि होतीहै– ॥

८४ झलां जशोन्ते । ८ । २ । ३९॥

पदान्ते झलां जशः स्युः । पटत्पटदिति ॥

८४–पदान्तमें जो झल् उसके स्थानमें जश् होताहै, इस कारण पटत्पटत् इसमेंका अन्त्य वर्ण जो दन्त्य 'त्' उसके स्थानमें जश् कहनेसे स्थानके आन्तरतम्यसे 'द्' वर्ण हुआ और अगले इति इससे मिलकर पटत्पटदिति ऐसा पाक्षिक रूप सिद्ध हुआ ॥

(अत्र सवर्णसन्धि कहतेहैं)–

८५ अकः सवर्णे दीर्घः ।६।१।१०१॥

अकः सवर्णेऽचि परे दीर्घ एकादेशः स्यात् । दैत्यारिः। श्रीशः। विष्णूदयः।अचि किम्।कुमारी शेते । नाज्झलाविति सावर्ण्यनिषेधस्तु न दीर्घशकारयोः । ग्रहणकशास्त्रस्य सावर्ण्यविधिनिषेधाभ्यां प्रागनिष्पत्तेः । अकः किम् । हरये । "अकोकि दीर्घ इत्येव सुवचम्" ॥ ऋति सवर्णे ऋ वा ॥ * ॥ होतृकारः । होतॄकारः ॥ लृति सवर्णे लृ वा ॥ * ॥ होत्लृकारः । होतॄकारः । पक्षे ऋकारः सावर्ण्यात् । ऋति ऋ वा लृति लृ वेत्युभयत्रापि विधेयं वर्णद्वयं द्विमात्रम्। आद्यस्य मध्ये द्वौ रेफौ तयोरेका मात्रा अभितोऽज्भक्तेरपरा । द्वितीयस्य तु मध्ये द्वौ लकारौ शेषं प्राग्वत् । इहोभयत्रापि ऋत्यक इति पाक्षिकः प्रकृतिभावो वक्ष्यते ॥

८५–अक्के आगे सवर्ण अच् रहते दोनोंके स्थानमें मिलकर दीर्घरूप एकादेश होताहै । दैत्य + अरिः=दैत्यारिः (विष्णु) । श्री + ईशः = श्रीशः (विष्णु) । विष्णु+उदयः=विष्णूदयः (विष्णुका अवतार) । 'आगे अच् परे हो' ऐसा क्यों कहा ? तब कुमारी + शेते (कुमारी सोती है) इसमें भी सवर्ण दीर्घकी प्राप्ति होनेलगैगी । "नाज्झलौ $\frac{1।1।10}{13}$" इस सूत्रसे कहा गया जो सावर्ण्यनिषेध वह दीर्घ ई और शकार इनके सावर्ण्यका बाधक नहीं है, यदि ग्रहणक शास्त्रके बलपर $\frac{1।1।69}{14}$ दीर्घ ईकारका भी निषेध माना जाय तो किसी भी वर्णोंका परस्पर सावर्ण्य है वा नहीं यह प्रथमतः सिद्ध हुए विना ग्रहणक शास्त्रकी प्रवृत्ति नहीं होती ($\frac{1।1।10}{13}$ की तथा $\frac{1।1।69}{14}$) की टिप्पणी देखो । अकके आगे क्या ? तो हरे + ए इसमें ए ए यह सवर्ण होनेपर भी अक न होनेसे सवर्ण दीर्घ न होते हरये (विष्णुके लिये) ऐसा अविकृत होताहै । ऊपरके सूत्रमें (अकोकि दीर्घः) अक्के आगे अक् हो तो दीर्घ होताहै यह भी सुवच है अर्थात् ऐसा होता तो अच्छा होता ॥

(परि०) 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः' व्याकरणग्रंथ और विशेष कर सूत्रोंकी रचनामें एक अर्धमात्राका लाघव हो जाय तो वैयाकरण पुत्रका उत्सव मानते हैं । इससे अकः सवर्णे दीर्घः–इससे अकोकि दीर्घः ऐसे थोडे अक्षरोंमें यह सूत्र होता तो अच्छा होता यह कौमुदीकारका मत है, अकोकि दीर्घः– ऐसा कह कर "यथासंख्यमनुदेशः समानाम् $\frac{1।3।10}{128}$" इससे जिस अक्के आगे वही अक् हो तो क्रमसे दीर्घ होताहै, यह अर्थ होताहै और उसी प्रकार अविधीयमान होनेसे ह्रस्व अथवा दीर्घ कैसाही हो तो भी कुछ हानि नहीं यह४७सूत्रमें पीछे निर्णय किया ही है।

* आगे सवर्ण ह्रस्व ऋ हो तो विकल्पसे ऋ होती है (वा० ३६४०)होतृ + ऋकारः= होतृकारः (हवन करनेवालेसे उच्चारण कियाहुआ ऋकार) पक्षमें दीर्घ होकर होतॄकारः ।

* सवर्ण ह्रस्व लृ आगे रहते विकल्पसे लृ होती है (वा० ३६४१) होत्लृकारः (होमकरनेवालेसे उच्चारण किया हुआ लृकार) दूसरे पक्षमें दीर्घ लृकार नहीं इस लिये सावर्ण्यके कारण दीर्घ ऋकार होगा होतॄकारः । आगे ऋ होते जो विकल्प ऋ होती है और आगे लृ होते जो विकल्प लृ होती है इन दोनों प्रसंगोंमें ऋ और लृ इन प्रत्येकोंमें दो वर्ण मिल कर दो मात्रा हैं ऐसा जानना । यहां आद्य नाम ऋ इसके बीचमें दो रेफ और दोनोंको एकत्र रखनेवाला चारों तरफ अच् भाग अर्थात् स्वरांश (र्‌ र्‌) है, दोनों रेफोंकी आधी आधी मात्रा मिलकर एक हुई, और स्वरांशकी एक इस प्रकार सब मिल कर दो मात्रा हुई । दूसरी जो लृ इसमें दो लकार और पहलेहीकी समान अच् भाग (ल ल) मिल कर यहां भी दो मात्रा जानना चाहिये ।

लघु अक्षरका जो कालमान उसको मात्रा वा एकमात्रा कहतेहैं, गुरु अक्षरके कालमानको दो मात्रा कहतेहैं, परन्तु कहीं व्यंजनकी आधी मात्रा लीजातीहै, इस कारण ऋ लृ लघु हैं तो भी इनमें दो मात्रा हैं ऐसा जानना । इन दोनों स्थलोंमें ऋ लृ सवर्ण आगे रहते "ऋत्यकः $\frac{6।1।128}{92}$" इस सूत्रसे पाक्षिक प्रकृतिभाव होताहै, अर्थात् संधिके कारण रूपान्तर न होते विकल्प करके शब्द वैसे ही रहतेहैं ऐसा इस (९२) सूत्रकी व्याख्यामें दिखाया जायगा ("इको यणचि" की अनुवृत्ति आतीहै) ॥

८६ एङः पदान्तादति ।६।१।१०९॥

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेऽव । विष्णोऽव ॥

८६–पदान्तमें ए वा ओ होतेहुए आगे ह्रस्व अ आवे तो दोनोंके स्थानमें पूर्वरूप एक आदेश होताहै । हरे+अव=हरेऽव (हे हरि रक्षा करो) । विष्णो+अव=विष्णोऽव (हे विष्णु रक्षा करो) * ॥

---

* ऐसे उदाहरणोंमें हरेऽव, विष्णोऽव, इसप्रकार यह (ऽ) लिखनेका प्रचार है, इससे इसके स्थानमें (अ) ह्रस्व स्वर रहाहै ऐसा समझनेमें सुभीता पडताहै, कितनेही प्रसंगमें संशय निवृत्तिके लिये इस (ऽ) से बडी सहायता मिलतीहै ॥

८७ सर्वत्र विभाषा गोः ।६।१।१२२॥

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः स्यात्पदान्ते । गोअग्रम् । गोऽग्रम् ॥ एङन्तस्य किम् । चित्रग्वग्रम् ॥ पदान्ते किम् । गोः ॥

८७-लौकिक और वैदिक इन दोनों प्रकारके प्रयोगोंमें एङन्त (ओकारान्त) जो गो शब्द उसके आगे ह्रस्व 'अ' आवै तो ओकारको विकल्प करके प्रकृतिभाव होताहै, पदान्तके विषयमें, पक्षमें ऊपरके सूत्रके अनुसार पूर्वरूप होताहै गो+अग्रम्=गो अग्रम्-गोग्रम् । (गौओंमें श्रेष्ठ) । एङन्त क्यों कहा ? तो ओकारान्तत्वके विना भी प्रकृतिभाव हो जाता यण् न होता यथा चित्रगु+अग्रम्=चित्रग्वग्रम् (चित्रगायोंमें श्रेष्ठ) । पदान्तमें क्यों कहा ? पदान्त न हो तो प्रकृतिभाव नहीं होता पूर्वरूपही होताहै, गो+अस् (पंचमी प्रत्यय) मिल कर गोस् कारण कि यहां गोशब्दको पदसंज्ञा नहींहै, इस कारण उसमेंके 'ओ' को पदान्तत्व नहीं है देखो सू० २९ और २३१ आगे अन्य ८।२।६६/१६२ और ८।३।१५/७६ सूत्रोंके अनुसार स् के स्थानमें विसर्ग होकर गोः (गायसे) ऐसा पद हुआ । केवल अनुवृत्तिसेही एङ् ऐसा पद ऊपर आयाहै तथापि एकारान्त गोशब्द न होनेसे उदाहरणमें केवल ओकारान्त शब्दकीही योजना की है ।

८८ अवङ् स्फोटायनस्य ।६।१।१२३ ॥

अतीति निवृत्तम् । अचि परे पदान्ते गोरवङ् वा स्यात् । गवाग्रम् । पदान्ते किम् । गवि । व्यवस्थितविभाषया गवाक्षः ॥

८८-अति० इस स्थानमें अत् की निवृत्ति हुई 'अचि' यह सप्तम्यन्तकी अनुवृत्ति ४७ सूत्रसे आतीहै । आगे कोईसा अच् होते पदान्तमें गो शब्दको विकल्प करके अवङ् (अव) आदेश होताहै इसमें ङ् इत् है इसलिये केवल अन्त्य ओको आदेश होताहै, पिछले उदाहरणमें गोअग्रम् इस शब्दकी सन्धि करनेसे गवाग्रम् (८५) ऐसा होताहै । पदान्तमें क्यों कहा ? इसका कारण यह कि अपदान्तमें विकल्प नहीं होता, "एचोऽयवायावः ६१" इससे अवादेश होताहै गो+इ यहां 'इ' यह सप्तमी प्रत्यय है 'गवि' (गायके विषयमें) व्यवस्थितविभाषासे गवाक्षः यही होताहै । गो+अक्षः=ऐसे शब्द होते पिछले दो सूत्रोंसे अनुक्रमसे पूर्वरूप प्रकृतिभाव और इस सूत्रसे अवङ् आदेश कर तीनरूप प्राप्त होतेहैं परन्तु इन तीनोंमेंसे केवल अवङ् आदेशसे होनेवालाही रूप भाष्यकारने मानाहै, पिछले दो रूप नहीं होते । ऐसी वैकल्पिक रूपोंकी व्यवस्था करदी है इस कारण गवाक्षः (खिडकी) ऐसा रूप एकही माना गया ।

मूलमें गो+अक्षि-ऐसा शब्द है परन्तु उनमेंसे अक्षि (नेत्र) यह शब्द नपुंसक है इस लिये गवाक्ष (गायके नेत्रके समान) यह नपुंसक शब्द होना चाहिये परन्तु लोकरूढिके अनुसार गवाक्षः ऐसा पुंल्लिङ्गही शब्द हुआ ।

इस सूत्रके अनुसार गो+ईशः इसकी संधि गवेशः होतीहै गवीशः यह भी एक रूप है, ऐसेही और जगह भी जानना । ऊपरके सूत्रसे विभाषाकी अनुवृत्ति आनेकी योग्यता रहते स्फोटायनका नाम लिखाहै सो सम्मानार्थ जानना (धन्य यह पाणिनि हैं जिनके ग्रन्थमें स्फोटायन आचार्यकी भी सम्मति है. और धन्य स्फोटायन हैं जिनकी सम्मति पाणिनिने भी ली है इस प्रकार दोनोंका समान जानना) ॥

८९ इन्द्रे च । ६ । १ । १२४॥

गोरवङ् स्यादिन्द्रे । गवेन्द्रः ॥

८९-इन्द्र शब्दके आगे रहते भी गो शब्दको अवङ् (अव) आदेश होताहै गो+इन्द्रः=गवेन्द्रः (६९) (बडा बैल) सिद्ध हुआ ।

यहां "इन्द्रे च नित्यम्" ऐसा वैदिकोंका पाठ है तथापि विकल्प न होनेसे नित्यम् ऐसा शब्द न होते भी नित्यम् इसका अर्थ आ ही रहाहै इस कारण उसका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥

अथ प्रकृतिभावः ।

९० प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्।६।१।१२५

प्लुताः प्रगृह्याश्च वक्ष्यन्ते तेऽचि नित्यं प्रकृत्या स्युः । एहि कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति । हरी एतौ । नित्यमिति किम् । हरी एतावित्यादावयमेव प्रकृतिभावो यथा स्यादिकोऽसवर्णे इति ह्रस्वसमुच्चितो मा भूत् ॥

९०-आगे प्लुत (९३-९९) और प्रगृह्य (१००-१०९) कहे जायँगे, वे आगे अच् परे रहते नित्य प्रकृतिभावसे रहते हैं अर्थात् उनमें सन्धिके कारण रूपान्तर नहीं होता । एहि कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति (आओ कृष्ण यहां गौ चरती है) । हरी+एतौ (यह दोनों हरि हैं) । नित्यम् ऐसा क्यों कहा ? तो हरी एतौ इत्यादिकोंमें यही प्रकृतिभाव जिसमें होवे "इकोसवर्णे० ६।१।१२७/९१" इत्यादि अगले सूत्रसे होनेवाला जो ह्रस्वयुक्त प्रकृतिभाव वह यहां न होवे * ॥

९१ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च । ६ । १ । १२७ ॥

पदान्ता इकोऽसवर्णेऽचि परे प्रकृत्या स्युर्ह्रस्वश्च वा । अत्र ह्रस्वविधिसामर्थ्यादेव प्रकृतिभावे सिद्धे तदनुकर्षणार्थश्चकारो न कर्तव्य इति भाष्ये स्थितम् । चक्रि अत्र । चक्र्यत्र । पदान्ता इति किम् । गौर्यौ ॥ न समासे ॥ * ॥ वाप्यश्वः ॥ सिति च ॥ पार्श्वम् ॥

* एहि कृष्ण इसमेंका अवर्ण "दूराद्धूते च ८।२।८४/९५" इससे प्लुत हुआहै इस कारण आगे अ रहतेभी सवर्ण दीर्घ न होते प्रस्तुत सूत्रसे प्रकृतिभाव ही हुआहै, उसी प्रकार हरी यह द्विवचनान्त होनेके कारण उसमेंकी ई यह "ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११/१००" इससे प्रगृह्य है, इस कारण उसके आगे अच् रहते भी यण् न हुआ किन्तु प्रकृतिभाव ही हुआ ॥

९१-आगे असवर्ण अच् रहते पदान्त जो इक् उनको विकल्प करके प्रकृतिभाव और ह्रस्व होताहै, पक्षमें "इको यणचि ६।१।७५/४७"इसके अनुसार यणादेश है ही। इसमें ह्रस्व होताहै ऐसा कहाहै इस कारण प्रकृतिभाव होताहै यह सिद्ध है, क्योंकि-ह्रस्व करनेपरभी यदि यण् हो तो ह्रस्व करना क्यों ? क्योंकि विना ह्रस्वकेभी यण् तो हो ही जाता । फिर प्रकृतिभावके अनुकर्षके लिये सूत्रमें 'च' इस अक्षरकी योजना करना अप्रयोजकही है ऐसा भाष्यमें कहा है । चक्री+अत्र-ऐसा रूप है इसमें ई को ह्रस्व होकर प्रकृतिभाव हुआ तो चक्रि अत्र ऐसा रूप हुआ । विकल्पसे चक्री+अत्र इस मूलस्थिति परसेही यणादेश होकर चक्र्यत्र (विष्णु यहां) ऐसा भी एक रूप होताहै इस प्रकारसे दो रूप होतेहैं। पदान्त क्यों कहा ? तो पदान्त न होते भी प्रकृतिभाव होजायगा। यथा-गौरी+औ (विभक्ति प्रत्यय) इसकी सन्धि होकर 'गौर्यौ' बन गया, यहां पदान्त न होनेसे प्रकृतिभाव न हुआ । * समासमें पूर्व शब्दको पदत्व है तो भी प्रकृतिभाव नहीं होताहै (वा० ३६८४) वापी+अश्वः वाप्यश्वः (तालावमेंका घोडा)।[1] * सकार इत् वाला प्रत्यय परे हो तो भी प्रकृतिभाव न हो चाहे पूर्व शब्दको पदत्व भी हो (वा० ३६८४), यथा-पर्शु+णस् (अ) पार्श्वम् (कोख) हुआ । * ॥

९२ ऋत्यकः । ६ । १ । १२८ ॥

ऋति परेऽकः प्राग्वत् । ब्रह्म ऋषिः । ब्रह्मर्षिः । पदान्ता इत्येव । आर्च्छत् । समासेऽप्ययं प्रकृतिभावः । सप्तऋषीणाम् । सप्तर्षीणाम्॥

९२-ह्रस्व ऋ आगे हो तो अक् वर्णको पूर्ववत् अर्थात् विकल्प करके प्रकृतिभाव और ह्रस्व होताहै । पक्षमें "आद् गुणः ६९" से गुण होताहै ब्रह्म + ऋषिः ब्रह्म ऋषिः । ब्रह्मर्षिः (ब्राह्मण वर्णका ऋषि, वा ब्रह्मा और ऋषि) यह दो रूप हुए । इस सूत्रमें भी पदान्तकी अनुवृत्ति आतीहै, इससे अपदान्तमें प्रकृतिभाव नहीं होता, आ (आट्)+ऋच्छत्=आर्च्छत् (गया) यहां पदान्त न होनेसे प्रकृतिभाव न हुआ । यह प्रकृतिभाव समासमें भी विकल्प करके होताहै सप्त + ऋषीणाम्= सप्तर्षीणाम् । (सात ऋषियोंका) । ब्रह्म+ऋषीणाम्=ब्रह्मऋषीणाम् । *

[1] वाप्यामश्वः=वापीअश्वः=वाप्यश्वः ।

* पर्शुका अर्थ कोख(मेंका अस्थि) इसके आगे समुदाय अर्थमें णस् (अ) प्रत्यय हो तो ४।२।४३ / १२५१ वार्तिकसे उस णस् प्रत्ययमेंके स् इत्के कारण पूर्व शब्दको पदत्व १।४।१६ / १।२।५२ आकर ण् इस इत्के कारण उसके पूर्व स्वरको वृद्धि ७।२।११७ / १०७५ हुई और प्रत्ययमेंके अकारके कारण यण् होकर पार्श्वम् ऐसा रूप हुआहै। "एङः पदान्तादति" से पदान्तकी अनुवृत्ति होती है ॥

* "आडजादीनाम् ६।४।७२ / २२५४" के अनुसार लङादिरूपोंमें अजादि धातुको आट् (आ) का आगम होताहै और "आटश्च ६।१।९० / २६९" सूत्रसे वृद्धिरूप एकादेश होताहै । इस कारण ऋच्छ धातुका 'आर्च्छत्' यह जो लङ्का रूप होताहै, उसमें 'आ' कोई पृथक् पद नहीं है इससे आ इसको पदान्तत्व न होनेसे प्रकृतिभाव न हुआ ।-

९३ वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः।८।२।८२॥

इत्यधिकृत्य ॥

९३-वाक्यकी जो टि अर्थात् अन्त्य अच् जिसके आदिमें हो ऐसा समुदाय उसकी प्लुत संज्ञा है और वह उदात्त हो । यह अधिकार सूत्र है ॥

९४ प्रत्यभिवादेऽशूद्रे । ८ । २ । ८३॥

अशूद्रविषये प्रत्यभिवादे यद्वाक्यं तस्य टेः प्लुतः स्यात् स चोदात्तः । अभिवादये देवदत्तोहं भोः । आयुष्मानेधि देवदत्त ३ ॥ स्त्रियां न ॥ * ॥ अभिवादये गार्ग्यहं भोः । आयुष्मती भव गार्गि । नाम गोत्रं वा यत्र प्रत्यभिवादवाक्यान्ते प्रयुज्यते तत्रैव प्लुत इष्यते । नेह । आयुष्मानेधि ॥ भोराजन्यविशां वेति वाच्यम् ॥ * ॥ आयुष्मानेधि भो ३ः । आयुष्मानेधीन्द्रवर्म ३ न् । आयुष्मानेधीन्द्रपालित ३ ॥

९४-प्रणाम करनेके पश्चात् उस प्रणाम करनेवालेसे उलट कर आशीर्वादादियुक्त जो गुरु इत्यादिकोंका भाषणरूप प्रत्यभिवाद, उसका विषय (जिसको प्रत्यभिवादन करना हो वह मनुष्य) जो शूद्र न हो अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो तो प्रत्यभिवादरूप जो वाक्य उसकी टि को प्लुत हो। अभिवादये देवदत्तोऽहं भोः। (मैं देवदत्त प्रणाम करता हूं) इस प्रकार देवदत्त ब्राह्मणके प्रणाम करनेपर गुरुके द्वारा 'आयुष्मानेधि देवदत्त ३' (देवदत्त तुम्हारी बड़ी उमर हो) ऐसा प्रत्यभिवाद कियाहै इस कारण देवदत्त इसकी टि अर्थात् अन्त्य 'अ' प्लुत है ।

* यदि आशीर्वादका विषय स्त्री हो तो वाक्यकी टि प्लुत नहीं होती (वा० ४६६४) अभिवादये गार्ग्यहं भोः (मैं गार्गी प्रणाम करती हूं) ऐसा कहने पर आयुष्मती भव गार्गि (हे गार्गि आयुष्मती हो) ऐसा प्रत्यभिवादन किया है, तथापि यहां गार्गि इस शब्दकी टि (अन्त्यका ह्रस्व वर्ण) इ है उसको प्लुत नहीं होता । जहां प्रत्यभिवाद वाक्यके अन्तमें नाम किंवा गोत्र (वंशवाचक नाम) हो वहां टि प्लुत होतीहै, ऐसा भाष्यका मत है, इस कारण आयुष्मानेधि (आयुष्मान् हो) इस वाक्यमें यह प्रकार नहीं है इस कारण टि प्लुत नहीं होती ॥

* भो शब्द, राजन्य (क्षत्रिय), विश् (वैश्य) इनके वाचक शब्द अन्तमें हों तो टि विकल्प करके प्लुत होतीहै (वा० ४८६५) आयुष्मानेधि भो ३ः(भो आयुष्मान् हो),

-पिछले सूत्रमेंका प्रकृतिभाव समासमें नहीं होता परन्तु इस सूत्रमें का होताहै यह दिखानेके निमित्त'समासेऽपि'ऐसा कहाहै । सप्तऋषीणाम् इसमें स्वतः ही ह्रस्व है फिर ह्रस्वको ह्रस्व क्या होगा ॥

आयुष्मानेधीन्द्रवर्म ३न् (हे इन्द्रवर्मन् आयुष्मान् हो), आयुष्मानेधीन्द्रपालित ३ (हे इन्द्रपालित आयुष्मान् हो) * ॥

९५ दूराद्धूते च । ८ । २ । ८४ ॥

दूरात्संबोधने यद्वाक्यं तस्य टेः प्लुतः स्यात् । सक्तून्पिब देवदत्त ३ ॥

९५–दूरसे बुलानेका जो वाक्य उसकी टि को प्लुत होताहै सक्तून् पिब देवदत्त ३ (देवदत्त सत्तू पी) ॥

९६ हैहेप्रयोगे हैहयोः । ८ । २ । ८५ ॥

एतयोः प्रयोगे दूराद्धूते यद्वाक्यं तत्र हैहयोरेव प्लुतः स्यात् । हे ३ राम । राम है ३ ॥

९६–दूरसे बुलाते समय है, हे इन सम्बोधनवाचक शब्दोंका प्रयोग किया जाय तो है, हे शब्दोंको प्लुत होताहै, नामकी टि को प्लुत नहीं होता । हे ३ राम, राम है ३ ॥

९७ गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् । ८ । २ । ८६ ॥

दूराद्धूते यद्वाक्यं तस्य ऋद्भिन्नस्याऽनन्त्यस्यापि गुरोर्वा प्लुतः स्यात् । दे३वदत्त । देवद३त्त । देवदत्त ३ । गुरोः किम् । वकारात्परस्याकारस्य मा भूत् । अनृतः किम् । कृष्ण३ । एकैकग्रहणं पर्यायार्थम् । इह प्राचामिति योगो विभज्यते तेन सर्वः प्लुतो विकल्प्यते ॥

९७–दूरसे बुलानेमें जो वाक्य, उसकी टि को ही प्लुत होताहै ऐसा नहीं, उसमेंका अच् जो अन्त्य न भी हो पर ऋकारभिन्न गुरु हो तो वह भी प्राचीनोंके मतमें विकल्प करके प्लुत होताहै । दे ३ वदत्त, देवद ३ त्त, देवदत्त ३ । गुरु हो ऐसा क्यों कहा ? तो वकारके आगे जो अलघु है वहां प्लुत नहीं होता, इससे ऐसा कहा । ऋकारभिन्नको ऐसा क्यों कहा ? कृष्ण यहां ऋ गुरु है तो भी उसको प्लुत नहीं होता । सूत्रमें एकैकस्य (एक एकका) ऐसा कहाहै इस कारण एकही समय सब प्लुत नहीं होते पर्यायसे अर्थात् बारी २ से उसमेंका अच् इच्छानुसार प्लुत होगा । यहां 'प्राचाम्' अर्थात् प्राचीन वैयाकरणोंके मतमें ऐसा योगविभाग अर्थात् सूत्रका अवयव अलग करतेहैं, इस कारण ऐसा अर्थ होताहै कि प्लुत, जितना कुछ इसके पूर्वमें (पहले) आया है, उतना सब प्राचीन वैयाकरणोंके मतमें (विकल्प करके) होताहै, इस कारण जिन २ शब्दोंमें प्लुत कहा है उनके प्लुत विना भी अन्य रूप होतेहैं ॥

जब प्लुत नहीं तब प्लुतके निमित्तसे होनेवाला जो प्रकृतिभाव वह भी नहीं होता सामान्य नियमोंके अनुसार संधि होतीहै ॥

९८ अप्लुतवदुपस्थिते । ६ । १ । १२९ ॥

उपस्थितोऽनार्ष इतिशब्दस्तस्मिन्परे प्लुतोऽप्लुतवद्भवति, अप्लुतकार्यं यणादिकं करोतीत्यर्थः । सुश्लोक ३ इति । सुश्लोकेति । वत्किम् । अप्लुत इत्युक्तेऽप्लुत एव विधीयेत प्लुतश्च निषिध्येत । तथा च प्रगृह्याश्रये प्रकृतिभावे प्लुतस्य श्रवणं न स्यात् । अग्नी ३ इति ॥

९८–जो वैदिक नहीं ऐसा जो (अव्यक्तानुकरणमें आया ८१) इति शब्द वह आगे हो तो प्लुत स्वर अप्लुतवत् होताहै, इस कारण उसमें प्लुतत्व होते भी यणादि संधिकार्य होतेहैं । सुश्लोक ३ + इति=ऐसी स्थिति होते वहां अप्लुत होनेके समान सन्धि होकर सुश्लोकेति ऐसा होताहै । अप्लुतवत् ऐसा क्यों कहा अप्लुत ही होताहै, ऐसा स्पष्ट क्यों न कहा ? तो अप्लुत होताहै ऐसा कहनेमें उसके विषय अप्लुतहीका विधान होगा प्लुतत्व नहीं रहैगा और जब प्लुत स्वरको प्रगृह्यसंज्ञा भी होतीहै तब प्रगृह्यके आश्रयसे प्रकृतिभाव होताहै, इस कारण संधि तो होती नहीं, प्लुतका श्रवण होताहै सो नहीं होगा, और उसका होना तो आवश्यक है । इस कारण अप्लुतवत् इससे ऐसा जानना कि, जब रूपान्तरका सम्भव नहीं तब आदिका प्लुत नहीं जाता, और सम्भव हो तो अप्लुतके समान संधिकार्यादि होतेहैं । यथा अग्नी ३ इति । (दो अग्नी) * ॥

९९ इ ३ चाक्रवर्मणस्य । ६ । १ । १३० ॥

इ ३ प्लुतोऽचि परेऽप्लुतवद्वा स्यात् । चिनुहि३ इति । चिनुहीति । चिनुहि ३ इदम् । चिनुहीदम् । उभयत्रविभाषेयम् ॥

९९–आगे अच् रहते प्लुत जो इ ३ वह विकल्प करके (चक्रवर्मके मतके अनुसार) अप्लुतवत् होताहै, चिनुहि ३ इति । चिनुहीति (इकट्ठा करो) इसी प्रकार चिनुहि ३ इ+

* भो यह सम्बोधनवाचक शब्द अजी इस अर्थमें आताहै, इन्द्रवर्मन् यह किसी क्षत्रियका और इन्द्रपालित यह वैश्यका नाम है, यथा–"शर्मवद्ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रजन्मनः । गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ॥" (विष्णुपुराण) गुप्त और पालित इन दोनोंका एकही अर्थ है ।

इन तीनों स्थानोंमें विकल्प है इस कारण प्लुत छोड कर दूसरे सादे रूप होतेहै । भो शब्दको प्लुत न होते इस वार्तिकहीके कारण उसकी प्राप्ति हुई इस कारण यह अप्राप्तविभाषा है. इन्द्रवर्मन्, इन्द्रपालित, इनकी टि को 'नाम गोत्रं वा' इत्यादि वचनोंसे प्लुत है, उसका इस वार्तिकसे विकल्प हुआ इसी कारण यह प्राप्तविभाषा है, इस प्रकारसे इस जगह एकही वार्तिकसे दो पृथक् कार्य होकर वैकल्पिक रूप सिद्ध हुए, इस लिये यह उभयत्र विभाषा है (२४ की टिप्पणी देखो) ॥

* इसमें अग्निशब्दका सम्बोधन [illegible] अर्थ है उसको "दूराद्धूते च $\frac{८।२।८४}{९५}$" इसके अनुसार प्लुतत्व है, और "[illegible] प्रगृह्यम् $\frac{१।१।११}{१००}$" से प्रगृह्यत्व भी है, यहां इति शब्द आगे होनेसे प्रस्तुत सूत्रसे अप्लुतवत् अर्थात् प्लुत हो तो भी संधिकार्य होना चाहिये, परन्तु फिर प्रगृह्यत्व है इस कारण $\frac{६।१।१२५}{९०}$ सूत्रसे संधि नहीं होती, तो भी वत इस कारण प्लुत जाता नहीं, अप्लुत होताहै ऐसा जो कहते तो चाहे सन्धि न होती परन्तु [illegible] भी प्लुत नहीं रहता ॥

इदम् (यह इकट्ठा करो) ऐसी स्थितिमें चिनुहि३ इदम् । चिनुहीदम् ऐसे दो रूप होतेहैं। यह उभयत्रविभाषा है * ॥

(अब प्रगृह्य कहतेहैं)-

१०० ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् । १।१।११॥

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात् । हरी एतौ । विष्णू इमौ । गङ्गे अमू । पचेते इमौ । मणी वोष्ट्रस्येति तु इवार्थे वशब्दो वाशब्दो वा बोध्यः ॥

१००-दीर्घ ईकारान्त, दीर्घ ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचनकी प्रगृह्य संज्ञा होती है, हरी+ एतौ=हरी एतौ (यह दो हरि)। विष्णू + इमौ=विष्णू इमौ (यह दो विष्णु) । गंगे+ अमू=गङ्गे अमू (यह दो गंगा) । पचेते + इमौ= पचेते इमौ (यह दो पाक करते हैं) इत्यादिकोंमें प्रगृह्य संज्ञा होकर९० सूत्रसे प्रकृतिभाव होताहै, यणादि कार्य नहीं होते । "मणी वोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम" इस महाभारतवाक्यमें मणी वा उष्ट्रस्य किंवा मणी व उष्ट्रस्य ऐसे पद हैं और उनमें वा व इनका अर्थ इव (समान) है, इनमें प्रत्यक्ष इव शब्द नहीं है, होता तो मणी इव ऐसा प्रकृतिभाव हुआ होता ॥

१०१ अदसो मात् । १ । १ । १२ ॥

अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः । अमी ईशाः । रामकृष्णावमू आसाते । मात्किम् । अमुकेऽत्र । असति माद्ग्रहणे एकारोप्यनुवर्तेत ॥

१०१-अदस् (वह) शब्दके मकारके पश्चात् ई, ऊ यह वर्ण प्रगृह्य होते हैं । अमी ईशाः (यह बहुत ईश) । रामकृष्णा वमू आसाते (यह राम और कृष्ण हैं) ॥

अदस् शब्दके किसी रूपमें मकारके परे 'ए' नहीं आता इस कारण ईत्, ऊत्, एत्, इनमेंसे एत् निकाल कर अवशिष्ट ई, ऊ केवल इन्हींकी अनुवृत्ति १०० से इस सूत्रमें लाये हैं, और यदि एकारका काम पड़ता तो उसकी भी अनुवृत्ति ला सकतेथे ।

मकारके अनन्तर क्यों कहा ? तो अमुकेऽत्र (ये यहां) इसमें ककारके अनन्तर 'ए' है मकारके उपरान्त व्यवधान रहित 'ए' नहीं है,इसीसे अमुके यहां प्रगृह्य संज्ञा नहीं होतीहै, इस कारण अमुके + अत्र में "एङः पदान्तादति ८६" सूत्रसे पूर्वरूपकी सन्धि होकर अमुकेऽत्र बनताहै, मात्

अर्थात् मकारके परे ऐसा जो न कहा होता तो इस उदाहरणमें अनुवृत्तिके कारणसे एकार प्रगृह्य हुआ होता * ॥

१०२ शे । १ । १ । १३ ॥

अयं प्रगृह्यः स्यात् । अस्मे इन्द्राबृहस्पती ॥

१०२-शे (ए) आदेश प्रगृह्य जानो, यथा "अस्मे इन्द्रा बृहस्पतीरयिं धत्तशतग्विनम् । अश्वावन्तसहस्रिणम्" (ऋ० मं० ४ सू० ४९ मं० ४) इसमें "सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णात्० $\frac{७।१।३९}{३५६१}$" इत्यादि सूत्रसे भ्यम् प्रत्ययके स्थानमें शे (ए) आदेश हुआहे, शित्वके कारण सर्वादेश हुआ इस कारण अस्मत् (मे) शब्दके चतुर्थीके बहुवचनमें 'अस्मभ्यम्' होना चाहिये उसके बदले वेदमें 'अस्मे' ऐसा रूप हुआहै, और प्रगृह्य होनेके कारण अगले 'इ' वर्णसे उसकी संधि नहीं हुई ॥

१०३ निपात एकाजनाङ् । १ । १ । १४ ॥

एकोऽन्निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात् । इ विस्मये, इ इन्द्रः । उ वितर्के, उ उमेशः । अनाङित्युक्तेरङिदाकारः प्रगृह्य एव । आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । ङित्तु न प्रगृह्यः। ईषदुष्णम् । ओष्णम् । वाक्यस्मरणयोरङित् । अन्यत्र ङिदिति विवेकः ॥

१०३-ङकार है इत् जिसका ऐसा जो 'आ'उसको छोडकर निपातरूप एक अच् प्रगृह्य होताहै । इ यह विस्मय अर्थमें आतीहै। इ इन्द्रः(हां इन्द्र क्या)। उ यह वितर्क अर्थमें आताहै । उ उमेशः (क्या यह शिव है) । आङ्वर्ज कहाहै इसी कारण जिसका ङ् इत् नहीं होता ऐसा जो निपात'आ' है वह भी प्रगृह्य होताहै । आ एवं नु मन्यसे (हां, ऐसा मानते हो ना ?) । आ एवं किल तत् (हां वह बात ऐसी ही है) परन्तु जिसका ङ् इत् है वह आ प्रगृह्य नहीं है। ईषत् उष्णम् (कुछ गरम) इस अर्थमें आङ् (आ) उष्णम् ऐसे शब्द जब आतेहैं, तब 'आ' प्रगृह्य नहीं होता, ओष्णम् ऐसी ही उसकी संधि होतीहै, तो फिर ङित् अङित्की किस प्रकारसे पहचान होगी, तो वाक्य और स्मरणमें 'आ' अङित् अर्थात् प्रगृह्य होताहै दूसरा ङित् होताहै इसीसे वह प्रगृह्य नहीं होता. इस विषयमें भाष्यमें कहाहै-"ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः। एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित्॥" अर्थात् ईषत् (थोडा) अर्थमें, क्रियाके योगमें, मर्यादा और अभिविधिमें वर्तमान जो आ है उसको ङित् जानो, वाक्य और स्मरण इन दो अर्थोंमें अङित् जानो । पीछे "प्राग्रीश्वरान्निपाताः १९" इस सूत्रमें निपात दिखायेहैं ॥

१०४ ओत् । १ । १ । १५ ॥

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात् । अहो ईशाः ॥

---

*"विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः $\frac{८।२।९३}{३६१२}$" इससे चिनुहि इस शब्दमेंकी हिकारकी इ विकल्पसे प्लुत है, इस कारण चिनुहि ३ इति इसकी चिनुहीति ऐसे पिछले सूत्रसे संधि हुई । फिर इति इसमेंका प्रथम वर्ण इ यह अच् है, इस कारण प्रस्तुत सूत्रमें चिनुहि ३ इति ऐसा प्रकृतिभावयुक्त वैकल्पिक रूप हुआ । चिनुहि ३ इदम् ऐसी स्थिति रहते प्रकृतिभाव सर्वदा होना चाहिये, परन्तु प्रस्तुत सूत्रसे अप्लुतवत् कार्य होकर चिनुहीदम् ऐसा प्रकृतिभावरहित वैकल्पिक रूप हुआ, इसीकारण पहली सूत्रमें एकवार [illegible] भावयुक्त रूप और एकवार प्रकृतिभावरहित रूप ऐसे दो प्रकार होना यह उभयत्रविभाषा है $\frac{१।१।४४}{२४}$ देखो ॥

*'अदसो मात्' इसमें द्विवचन ही होनेकी आवश्यकता नहीं है इसीसे अमी ईशाः इसमें अमी इस बहुवचनमेंकी ई प्रगृह्य हुई है ॥

१०४-ओकारान्त जो निपात उसे प्रगृह्य जानना चाहिये। अहो ईशाः (अहो ईश्वरो)॥

१०५ संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे । १ । १ । १६ ॥

संबुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे । विष्णो इति । (विष्ण इति)। विष्णविति । अनार्ष इति किम् । ब्रह्मबन्धवित्यब्रवीत् ॥

१०५-सम्बोधनके निमित्त जो शब्दके अन्तमें ओकार लाया हुआ होताहै वह अवैदिक इति शब्द आगे रहते विकल्पसे प्रगृह्य होताहै, यथा- विष्णो इति । (विष्ण इति) विष्णविति (हे विष्णु ऐसा) इसमें पहला रूप प्रगृह्य होनेपर प्रकृतिभाव होनेसे सिद्ध होताहै और प्रगृह्य संज्ञाके अभावपक्षमें "एचो० ६१" से अव् करनेपर "लोपः शाकल्यस्य ६७" से विकल्प करके वकारके लोपसे दूसरा रूप और वकारका लोप न होनेपर तीसरा रूप होताहै * ।

अवैदिकमें क्यों कहा ? इसका कारण यह कि यह वैदिक वाक्यमें प्रगृह्य नहीं होता, यथा ब्रह्मबन्धो+इत्यब्रवीत् । इसकी सन्धि ब्रह्मबन्धवित्यब्रवीत् (ब्रह्मबन्धो ऐसा कहा) हुई ॥

१०६ उञः । १ । १ । १७ ॥

उञ इतौ वा प्रागुक्तम् । उ इति । विति ॥

१०६-इति शब्द आगे रहते उञ् (उ) यह जो निपात उसे भी विकल्प करके प्रगृह्य जानो । उ इति अथवा विति । (उ ऐसा उच्चारण) ॥

१०७ ऊँ । १ । १ । १८ ॥

उञ इतौ दीर्घोऽनुनासिकः प्रगृह्यश्च ऊँ इत्ययमादेशो वा स्यात् । ऊँ इति ॥

१०७-इति शब्द आगे रहते उञ् (उ) के स्थानमें दीर्घ अनुनासिक और प्रगृह्य ऐसा ऊँ यह विकल्पसे आदेश होताहै यथा ऊँ इति (ऊं ऐसा) पक्षान्तरमें १०६ के उदाहरण जानने ॥

१०८ मय उञो वो वा । ८ । ३ । ३३ ॥

मयः परस्य उञो वो वा स्यादचि । किमु उक्तम् । किम्वुक्तम् । वस्यासिद्धत्वान्नानुस्वारः ॥

१०८-अच् आगे रहते मय् प्रत्याहारके आगे आनेवाला जो उञ् (उ) उसके स्थानमें विकल्प करके वं होताहै, किम्+उ+उक्तम् (भला क्या कहा) इसकी संधि 'किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्' हुई, "मोऽनुस्वारः $\frac{८।३।२३}{१२२}$" इस सूत्रसे वकारके पहले मकारके स्थानमें अनुस्वार होना चाहिये, परन्तु इस १०८ सूत्रके "पूर्वत्रासिद्धम् $\frac{८।२।१}{१२}$" से असिद्ध होनेके कारण उसको वकार नहीं दीखता, इस कारण मकारके स्थानमें अनुस्वार नहीं होता ॥

१०९ ईदूतौ च सप्तम्यर्थे । १ । १ । १९ ॥

सप्तम्यर्थे पर्यवसन्नमीदूदन्तं प्रगृह्यं स्यात् । सोमो गौरी अधिश्रितः ॥ मामकी तनू इति । सुपां सुलुगिति सप्तम्या लुक् । अर्थग्रहणं किम् । वृत्तावर्थान्तरोपसंक्रान्ते मा भूत् । वाप्यामश्वो वाप्यश्वः ॥

१०९ सप्तमीके अर्थमें स्थिर रहने (परन्तु प्रत्यक्ष सप्तम्यन्त नहीं) वाला ईदन्त किंवा ऊदन्तरूप प्रगृह्य जानना, यथा सोमो गौरी अधिश्रितः । मामकी तनू इन वैदिक उदाहरणोंमें गौरी और तनू यह शब्द सप्तम्यर्थमें होकर "सुपां सुलुक् $\frac{७।१।३९}{३५६१}$" इस सूत्रसे सप्तमीका लोप होकर मूल रूप ही रह गयेहैं, इस कारण आगे अच् रहते भी गौरी तनू यह शब्द प्रगृह्य होकर प्रकृतिभावसेही रहेहैं । सप्तमीके अर्थमें हो ऐसा क्यों कहा ? इसका आशय यह कि अन्ततक सप्तमीकाही अर्थ रहना चाहिये, नहीं तो समासादि वृत्तिसे अन्य अर्थकी ओर उसका क्रमण होजानेपर वहां भी प्रगृह्य संज्ञा होजावेगी, यथा वाप्यश्वः अश्वः इसमें बावडीमें और घोडा ऐसा मूलका अर्थ होते समास होनेसे वापी शब्दका अश्व शब्दके अर्थकी ओर क्रमण हुआहै, इस कारण वापी शब्द प्रगृह्य न होते तालावपरका घोडा ऐसी अर्थान्तरकी संधि हुईहै ॥

सोमो गौरी अधिश्रितः यह वाक्य "मदच्युत्क्षेति साधने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् सोमोगौरी अधिश्रितः" (ऋग्वेदमं० ९ सू० १२ मं० ३)" * ॥

११० अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः । ८ । ४ । ५७ ॥

अप्रगृह्यस्याणोऽवसानेऽनुनासिको वा स्यात् । दधिँ । दधि । अप्रगृह्यस्य किम् अग्नी ॥

॥ इत्यच्संधिः ॥

११०-अवसानमें अप्रगृह्य जो अण् (अ इ उ) वह विकल्प करके अनुनासिक होताहै, दधिँ । दधि (दही) । अप्रगृह्य क्यों कहा ? तो प्रगृह्य हो तो अनुनासिक नहीं होता । अग्नी (दो अग्नि) यह ईदन्त द्विवचन है, इससे प्रगृह्य होनेके कारण अनुनासिक न हुआ ॥

॥ इत्यच्सन्धिप्रकरणम् ॥

---

* अनेक पुस्तकोंमें यह तीन रूप देख पडतेहैं इस लिये यहां भी 'विष्ण इति' यह इस ( ) चिह्नके अन्दर रख दिआ गया है, और वस्तुतः तो १३५ और ६७ यह दोनों सूत्रके कार्य शाकल्य आचार्यके ही मतमें होतेहैं, तो यह जब प्रगृह्यसंज्ञाप्रयुक्त प्रकृतिभाव मानते हैं, तो इनके मतमें अव् तो होगा नहीं, तो वकारका लोप इनके मतसे कैसे होसकताहै ॥

* 'कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः' इसके अनुसार पांच वृत्ति ([illegible]) है ॥

अथ हल्सन्धिः ।

१११ स्तोः श्चुना श्चुः ।८।४।४० ॥

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः । हरिश्शेते । रामश्चिनोति । सच्चित् । शार्ङ्गिञ्जय ॥

१११-सकार और तवर्गके साथ शकार और चवर्गका योग हो तो यथाक्रम सकारके स्थानमें शकार और तवर्गके स्थानमें चवर्ग होताहै । यह योग पीछे या आगे कहीं भी हो तो उक्त कार्य होगा । हरिस्+शेते=हरिश्शेते (हरि सोताहै) । रामस् + चिनोति=रामश्चिनोति (राम एकत्र करताहै) । सत् + चित्=सच्चित् (सत्य और ज्ञान) । शार्ङ्गिन् + जय= शार्ङ्गिञ्जय (हे कृष्ण विजयी हो) । सूत्रमें तु चु इनसे तवर्ग और चवर्गका बोध होताहै १।१।६९/१४ इसी प्रकारसे आगे जानो ॥

इस सूत्रका अपवाद-

११२ शात् । ८ । ४ । ४४ ॥

शात्परस्य तवर्गस्य चुत्वं न स्यात् । विश्नः । प्रश्नः ॥

११२-यदि शकारके आगे तवर्ग हो तो तवर्गको चवर्ग नहीं होता । विश्नः (जानेवाला) । प्रश्नः (पूछना) इनमें नके स्थानमें ञ् नहीं होता । (८।४।४२/११४ । ८।४।४३/११५ की अनुवृत्ति) ॥

११३ ष्टुना ष्टुः । ८ । ४ । ४१ ॥

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् । रामष्षष्ठः । रामष्टीकते । पेष्टा । तट्टीका । चक्रिण्ढौकसे ॥

११३-षकार और टवर्गके साथ योग हो तो सकार और तवर्गके स्थानमें यथाक्रम षकार और टवर्ग हों । रामस् + षष्ठः=रामष्षष्ठः (छठवां राम) । रामस् + टीकते= रामष्टीकते (राम जाताहै) । पेष् + ता= पेष्टा (पीसनेवाला) तत् + टीका=तट्टीका (उसकी टीका) । चक्रिन् + ढौकसे= चक्रिण्ढौकसे (कृष्ण तुम जातेहो) ॥

इसका अपवाद-

११४ न पदान्ताट्टोरनाम् ।८।४।४२॥

अनामिति लुप्तषष्ठीकं पदम् । पदान्ताट्टवर्गात्परस्यानामः स्तोः ष्टुर्न स्यात् । षट् सन्तः । षट् ते । पदान्तात्किम् । ईट्टे । टोः किम् । सर्पिष्टमम् ॥ अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् ॥ * ॥ षण्णाम् । षण्णवतिः । षण्णगर्यः ॥

११४-इसमें 'अनाम्' यह लुप्तषष्ठीक पद है, अर्थात् षष्ठी प्रत्यय लुप्त है ऐसा समझ कर तदनुसार अर्थ लेना । पदके अन्तमें रहनेवाला टवर्गमेंका कोईसा वर्ण हो और उसके आगे नामको छोड कर सकार और तवर्गके स्थानमें षकार और टवर्ग न हों । षट् सन्तः (छः साधु) षट् ते (वे छः) इनमें षकार टवर्ग नहीं होते । पदान्त टवर्गके आगे ऐसा क्यों कहा? इसका कारण यह कि अपदान्त टवर्गके आगे सकार तवर्ग आतेहैं तो ष्टुत्व होता ही है । ईड्+ते=ईड् टे " खरि च ८।४।५५/१२१ " ईट्टे (वह स्तवन करताहै) । सूत्रमें टवर्गसे परे क्यों कहा? तो सैकारके आगे यह निषेध नहीं होता, यथा-सर्पिष्+तमम्= सर्पिष्टमम् (बहुत घी)

* सूत्रमें अनामसे नामके नकारको छोडा है परन्तु नाम्, नवति, नगरी, इन तीनों शब्दोंमेंका तवर्ग छोड कर ऐसा कहना चाहिये (वा० ५०१६) अर्थात् पदान्त टवर्गके आगे यह शब्द रहते ष्टुत्व होताहै, यथा-षड्+नाम्=षण्णाम् (छहों का) । षड्+नवतिः=षण्णवतिः (छयानवे) । षड्+नगर्यः= षण्णगर्यः (छह नगरी) इनमें ११६ सूत्रके अनुसार अनुनासिक होताहै * ॥

और अपवाद-

११५ तोः षि । ८ । ४ । ४३ ॥

तवर्गस्य षकारे परे न ष्टुत्वम् । सन्षष्ठः ॥

११५-आगे षकार रहते तवर्गको ष्टुत्व नहीं होता । सन्+ षष्ठः=सन् षष्ठः (छठा साधु) । अनुवृत्तिके कारण ष्टुत्व कहाहै, तथापि यहां केवल टुत्वका ही प्रयोजन पडताहै ।

---

१ यहां स्थानी और आदेशमें यथासंख्य है, निमित्त और कार्योंमें नहीं, अर्थात् सकारको शकार-चवर्गके योगमें शकार हो और तवर्गको शकार-चवर्गके योगमें चवर्ग हो, इसमें प्रमाण " शात् ११२ " यह सूत्र है, क्योंकि यदि निमित्तकार्योंमें भी यथासंख्य होता तो सकारको शकार हो, शकारके योगमें और तवर्गको चवर्ग हो, चवर्गके योगमें, ऐसा अर्थ होता, फिर तो शकारसे पर तवर्गको चवर्ग प्राप्तही न होता तो निषेध किसका ? ॥

१ तात्पर्य यह कि, यदि यहाँ ' टोः ' न कहकर पूर्वसूत्रसे अनुवृत्ति लावेंगे तो 'एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः' के अनुसार षकार भी आजावेगा, तो 'सर्पिष्टमम्' नहीं बनेगा ॥

षण्णवतिः, षण्णगर्यः इत्यादिकोंमें षड् शब्दकी " सुप्तिङन्तं पदम् २९ " सूत्रसे पदसंज्ञा हुईहै, उसके आगे विभक्तिप्रत्ययका विभक्तिनियमके अनुसार लोप हुआहै, वैसे ही नाम यह अवयव आगे लगकर षण्णाम् ऐसा जो षष्ठीबहुवचनमें रूप होताहै वह पद होगा, परन्तु उसमेंके षट् इतनेही अवयवको पदत्व कहांसे हुआ, पदत्व आये विना इस सूत्रकी प्राप्ति ही नहीं होसकती तो "स्वादिष्वसर्वनामस्थाने १।४।१७/२३० " "यचि भम् " १।४।१८/२३१ " इन दोनो सूत्रोंके विचारसे पदत्व हुआहै. इसमें ऐसा अर्थ है कि स्वादि (चतुर्थ पंचम इन दोनों अध्यायोंमें कहे हुए सब) प्रत्ययोंमेंसे सर्वनामस्थान (सु औ जस् अम् औट् शि) और यकारादि और अजादि प्रत्यय छोडकर शेष रहे जो प्रत्यय उन्हें आगे होने हुए भी पूर्व शब्दकी पद संज्ञा होती है, इस कारण नाम आगे रहते पूर्व शब्दकी पदसंज्ञा होतीहै, इससे नाम आगे होते षट् शब्दको पद संज्ञा है । शंका-स्वादि प्रत्ययोंमें नाम प्रत्यय नहीं है, आम ऐसा अजादि प्रत्यय होकर उसको नुट् (न) का आगम ७।१।५४/३३८ से होनेसे नाम् हुआहै, तब अजादि प्रत्यय आगे रहते षट्को पदत्व कैसे है ? उत्तर-नुट् यह आगम टित् होनेसे आम् प्रत्ययका ही १।१।४६/३६ आद्यावयव होजाताहै, यह पृथक् प्रत्यय नहीं माना जाता और फिर जब उसको अजादित्व नहीं रहा तो पूर्वशब्दको पदत्व ठीक ही है॥

झलां जशोऽन्ते (सू–८४) ।

वागीशः । चिद्रूपम् ॥

"झलां जशोन्ते ८।२।३९/८४" पदान्त झलके स्थानमें जश् होताहै । वाक्+ईशः इसमें पदान्त क् के स्थानमें ग् जश् होकर वागीशः (बृहस्पति) । इसीप्रकार चित्+रूपम्= चिद्रूपम् (ज्ञानस्वरूप) । (प्रयोजनवश यह सूत्र पहले कहा गया है मुख्य इसका स्थान यही है) ॥

११६ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८ । ४ । ४५ ॥

यरः पदान्तस्याऽनुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् । एतन्मुरारिः । एतद्मुरारिः । स्थानप्रयत्नाभ्यामन्तरतमे स्पर्शे चरितार्थो विधिरयं रेफे न प्रवर्तते । चतुर्मुखः ॥ प्रत्यये भाषायां नित्यम् ॥ * ॥ तन्मात्रम् । चिन्मयम् । कथं तर्हि मदोदग्राः ककुद्मन्त इति । यवादिगणे दकारनिपातनात् ॥

११६–अनुनासिक अक्षर परे रहते पदान्तमें स्थित यर्को विकल्प करके अनुनासिक होताहै, पक्षमें जश् होताहै । एतद्+मुरारिः=एतन्मुरारिः । एतद्मुरारिः (यह मुरारि) । किसी एक यर्के साथ स्थान और प्रयत्न इनसे अति सदृश अनुनासिक जो मिलता हो, अर्थात् स्पर्श वर्ण पदान्तमें हो तो इस विधिकी प्रवृत्ति होतीहै, रेफ यह ईषत्स्पृष्ट और मूर्धन्य है इसके साथ मिलनेवाला ईषत्स्पृष्ट मूर्धन्य अनुनासिक वर्ण नहीं है, इस कारण पदान्तमें रेफ होते इस विधिकी प्रवृत्ति नहीं चतुर्+मुखः–मिलकर चतुर्मुखः (ब्रह्मदेव) ऐसाही रूप होताहै अनुनासिक नहीं ।

* प्रत्यय सम्बन्धी अनुनासिकके आगे होते अवैदिक प्रयोगमें यर्के स्थानमें नित्य अनुनासिक ही होताहै, जश् नहीं होता (वा० ५०१७) तत्+मात्रम्=तन्मात्रम् (वही केवल) । चित्+मयम्=चिन्मयम् (ज्ञानमय) । तो फिर "मदोदग्राः ककुद्मन्तः सरितां कूलमुद्रुजाः" (रघुवंश स० ४ श्लो० २२) इसमें कालिदासने ककुद्मन्तः ऐसा जश्त्वयुक्त प्रयोग क्यों किया, तो यवादिगण ८।२।९/१८९७ में ककुद् ऐसा दकारयुक्त शब्द दिया हुआहै (अन्यथा नकारयुक्त ही पढते) इससे ककुद्मान् सिद्ध होताहै उसका प्रथमाका बहुवचनान्त ककुद्मन्तः हुआहै इसकारण यह प्रयोग शुद्ध है ॥

८४ सूत्रका अपवाद–

११७ तोर्लि । ८ । ४ । ६० ॥

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः स्यात् । तल्लयः । विद्वाँल्लिखति । नकारस्याऽनुनासिको लकारः ॥

११७–आगे लकार रहते तवर्गके स्थानमें परसवर्ण होताहै । तद्+लयः=तल्लयः (उसका लय) विद्वान्+लिखति= विद्वाँल्लिखति (विद्वान् लिखताहै) यहां नकारके स्थानमें अनुनासिक लकार होताहै ॥

११८ उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य । ८ । ४ । ६१ ।

उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः स्यात् । आदेः परस्य । उत्थानम् । उत्तम्भनम् । अत्राघोषस्य महाप्राणस्य सस्य तादृश एव थकारः । तस्य झरो झरीति पाक्षिको लोपः । लोपाभावपक्षे तु थकारस्यैव श्रवणं न तु खरि चेति चर्त्वम् । चर्त्वं प्रति थकारस्याऽसिद्धत्वात् ॥

११८–उद् (ऊपर) इस उपसर्गके आगे आनेवाले स्था वा स्तम्भ शब्दको पूर्वसवर्ण आदेश होताहै, परशब्दको कहाहुआ आदेश (४४ से) उसके आदि वर्णको होताहै । उद्+स्थानम्=उत्थानम् (उठना), उद्+स्तम्भनम्=उत्तम्भनम् (थमाना) इनमें स् इसको अघोष और महाप्राण होनेके कारण इसके स्थानमें आनेवाला पूर्वसवर्ण दकारके अनुसार स्पृष्ट और दन्त्य होकर सकारकी जातिका अघोष–महाप्राण 'थ' यही होताहै, उसका "झरो झरि सवर्णे ७१" से पाक्षिक लोप होकर यह रूप होतेहैं । उद्के दकारको जो त् हुआहै यह "खरि च ८।४।५५/१२१" से आगे ख प्रत्याहार होनेके कारण हुआहै ।

पाक्षिक रूप कहा इससे लोपाभाव पक्षमें थकार ही का श्रवण होताहै "खरि च १२१" सूत्रसे थकारके स्थानमें चर्त्व (त्) नहीं होता कारण कि यहां चर्त्वको थकार असिद्ध है (१२) अर्थात् दीखता नहीं । उत्थ्थानम् । उत्स्तम्भनम् * ॥

११९ झयो होऽन्यतरस्याम् । ८ । ४ । ६२ ॥

झयः परस्य हस्य पूर्वसवर्णो वा स्यात् । घोषवतो नादवतो महाप्राणस्य संवृतकण्ठस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थ एवादेशः ॥ वाग्घरिः । वाग्हरिः ॥

११९–झय्से परे ह आवे तो 'ह' के स्थानमें विकल्प करके पूर्वसवर्ण होताहै, 'ह' यह घोष, नाद, संवार, महाप्राण, है इस कारण उसके स्थानमें जो पूर्वसवर्ण आनेवालाहै वह भी वैसाही आना चाहिये, आशय यह कि, पूर्व वर्णके वर्गोंका चतुर्थ वर्ण ही हकारके स्थानमें होताहै, वाक्+हरिः= वाग्घरिः (बृहस्पतिः) । जब विकल्प न हुआ तब वाग्हरिः ।

आदिमें वाचां हरिः इसका समास है, इसकारण वाच् यह मूल शब्द और हरिः इसमें मूलसन्धि प्राप्त हुई, उसमें "चोः कुः ८।२।३०/३७८" से चकारके स्थानमें क् होकर वाक्+हरिः ऐसी स्थिति हुई और "झलां जशोन्ते" से क् के स्थानमें ग् होकर फिर प्रस्तुत सूत्रसे वाग्घरिः । वाग्हरिः रूप सिद्ध हुए ॥ तद्+शिवः यह स्थिति है–

* यह दोनों सूत्र त्रिपादीमेंके हैं । "खरि च" ८।४।५५/१२१ यह पूर्व सूत्र है और "उदः स्थास्तम्भोः० ८।४।६१/११८" यह पर है त्रिपादीमें पर सूत्र असिद्ध रहताहीहै ॥

१२० शश्छोटि । ८ । ४ । ६३ ॥

पदान्ताज्झयः परस्य शस्य छो वा स्यादटि । दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते-॥

१२०-पदान्त झय्के आगे श् हो और उसके आगे अट् प्रत्याहारका कोई वर्ण हो तो श्के स्थानमें विकल्प करके 'छ' होताहै, परन्तु "स्तोः श्चुना श्चुः १११" से छकारके योगसे दकारके स्थानमें श्चुत्व होकर (दकारके अनुसार घोष अल्पप्राण) ज् हुआ, तब तज्+छिवः ऐसी स्थिति हुई । (११४ से पदान्तकी अनुवृत्ति आतीहै) ॥

१२१ खरि च । ८ । ४ । ५५ ॥

खरि झलां चरः स्युः । इति जकारस्य चकारः । तच्छिवः । तच्शिवः ॥ छत्वममीति वाच्यम् ॥ * ॥ तच्श्लोकेन । तच्छ्लोकेन । अमि किम् । वाक् श्च्योतति ॥

१२१-खर् आगे होते झल्के स्थानमें चर् होताहै । इससे अगले खर् प्रत्याहारके कारण जकारके स्थानमें चकार हुआ तच्छिवः । तच्शिवः । (उसका शिव वा वह शिव)। ("झलां जश् झशि" से झल् "अभ्यासे चर्च" से चरकी अनुवृत्ति) * ॥

"शश्छोऽटि १२०" सूत्रसे अट् पर रहते विकल्पकरके छ होताहै * परन्तु अट्की जगह अम् समझना चाहिये अर्थात् अम् परे रहते पदान्त झय्से पर शकारके स्थानमें विकल्पसे छ ही होताहै(वा० ५०२५) अत एव तत् + श्लोकेन इसको श्चुत्वके कारण तच् + श्लोकेन ऐसी स्थिति होनेपर वैकल्पिक छत्व होनेसे तच्छ्लोकेन-तच्श्लोकेन (उस श्लोकने) ऐसे रूप होतेहैं । उसके आगे हो ऐसा क्यों कहा ? तो आगे अम् न हो तो छ नहीं होता । वाक् श्च्योतति (जीभ लडखडातीहै) यहां छ नहीं होता ॥

१२२ मोनुस्वारः । ८ । ३ । २३ ।

मान्तस्य पदस्याऽनुस्वारः स्याद्धलि । अलोऽन्त्यस्य । हरिं वन्दे । पदस्येति किम् । गम्यते ॥

१२२-आगे हल् रहते मकारान्त पदको अनुस्वार होताहै, परन्तु " अलोन्त्यस्य $\frac{१।१।५२}{४२}$ " से आदेश अन्त्य अल्को होताहै । हरिम्+वन्दे=हरिं वन्दे (हरिको नमस्कार करताहूं) । पदान्तमें क्यों कहा ? तो अपदान्तमें अनुस्वार नहीं होता । गम्यते (जायाजाताहै) इसमें हल् परे होते भी म् पदान्त न होनेसे उसके स्थानमें अनुस्वार नहीं होता ॥

१२३ नश्चापदान्तस्य झलि । ८ । ३ । २४ ॥

नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः । यशांसि । आक्रंस्यते । झलि किम् । मन्यते ॥

* झलन्त शब्दके आगे अवसान होते "वावसाने $\frac{८।४।५६}{२०६}$" इससे झल्के स्थानमें विकल्प करके चर् होताहै, जैसे आगे अवसान होते वदका वत् ऐसा दूसरा रूप होताहै, परन्तु अवसान इस शब्दसे ही स्पष्ट है कि उसके आगे दूसरा शब्द नहीं आवेगा और आनेके योग्य हो तो अवसान नहीं कहावेगा, और अवसान न हो तो "वावसाने" यह विकल्प प्राप्त नहीं होसकेगा ॥

१२३-आगे झल् परे रहते अपदान्तमें जो न वा म् उसके स्थानमें अनुस्वार होताहै । यशान्+सि ऐसी स्थिति होते यशांसि (बहुत यश) ऐसा हुआ । आक्रम्+स्यते-आक्रंस्यते (आक्रमण करेगा) ऐसा होगा । आगे झल् होते ऐसा क्यों कहा ? तो आगे झल् न होते अथवा अन्य वर्ण हो तो अनुस्वार नहीं होता, मन्+यते=मन्यते (मानताहै) इसमें नकारके आगे यकार झल् नहीं है इसकारण नकार ही रहा । अपदान्तमें क्यों कहा ? तो पदान्त नकारको अनुस्वार नहीं होता, राजन् पाहि (हे राजन् रक्षा करो) ॥

यहां पिछले दो सूत्रोंसे जो अनुस्वार प्राप्त होताहै उसका कितनेही प्रसंगमें फिर रूपान्तर होताहै । इसविषयके सूत्र—

१२४ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । ८ । ४ । ५८ ॥

स्पष्टम् । अङ्कितः । अञ्चितः । कुण्ठितः । शान्तः । गुम्फितः । कुर्वन्तीत्यत्र णत्वे प्राप्ते तस्यासिद्धत्वादनुस्वारे परसवर्णे च कृते तस्यासिद्धत्वान्न णत्वम् ॥

१२४-आगे यय् प्रत्याहार होते अनुस्वारके स्थानमें परसवर्ण होताहै 'अकि-लक्षणे,अञ्चु-पूजायाम्, कुठि-प्रतिघाते, शमु-उपशमे, गुम्फ-ग्रन्थे ' इन धातुओंसे अं+कितः । अं+चितः । कुं+ठितः । शां+तः । गुं+फितः ऐसे निष्ठान्त रूप (भूतकालवाचक धातुसाधित) होतेहैं, इनमें पिछले सूत्रके अनुसार मकार नकारके स्थानमें अनुस्वार होकर पिछले रूप हुए, और अन्तमें प्रस्तुत सूत्रसे अनुस्वारको परसवर्ण होकर अङ्कितः (चिह्नित कियाहुआ), अञ्चितः (पूजित हुआ), कुण्ठितः (स्तब्ध), शान्तः (शान्तहुआ), गुम्फितः (गूँथा गया) ऐसे रूप सिद्ध होतेहैं ।

इसीप्रकारसे कुर्वन्ति (करतेहैं) यहां नकारको अनुस्वार होकर फिर परसवर्ण हुआहै, तो इसमें पहले " रषाभ्यां नो णः समानपदे $\frac{८।४।१}{२३५}$" और "अट्कुप्वाङ्नुम्० $\frac{८।४।२}{१९७}$" इनसे बीचमें वकार तथा अकार रहते भी रेफके आगेके नकारको णत्व प्राप्त हुआ, परन्तु वह अनुस्वारके $\frac{८।३।२३}{१२२}$ प्रति असिद्ध होनेके कारण रहकर अनुस्वारही हुआ फिर परसवर्ण नकार $\frac{८।४।५८}{१२४}$ हुआ, पुनः णत्वकी प्राप्ति उन्ही दो सूत्रोंसे हुई, परन्तु परसवर्ण (१२४) उनके ($\frac{८।४।१}{२३५}$ और $\frac{८।४।२}{१९७}$) प्रति असिद्ध है, इस कारण णत्व नहीं होता अन्तमें ' कुर्वन्ति ' यही रूप सिद्ध हुआ ॥

१२५ वा पदान्तस्य । ८ । ४ । ५९ ॥

पदान्तस्याऽनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात् । त्वङ्करोषि । त्वं करोषि । सँय्यन्ता । संयन्ता । सँव्वत्सरः । संवत्सरः ॥ यँल्लोकम् । यं लोकम् । अत्रानुस्वारस्य पक्षेऽनुनासिका यवलाः ॥

१२५-आगे यय् रहते पदान्तमें जो अनुस्वार उसके स्थानमें विकल्प करके परसवर्ण होताहै, अर्थात् परसवर्णविना

अनुस्वार भी रहजाताहै। त्वङ्करोषि, त्वं करोषि (तू करताहै)। सय्यँन्ता,संयन्ता (संयमन करनेवाला)। सँव्वत्सरः, संवत्सरः (वर्ष)। यँल्लोकम्, यं लोकम् (जिस लोकको) इनमें वैकल्पिक रूपोंमें अनुस्वारोंके स्थानमें अनुनासिक 'यँ वँ लँ' होतेहैं * ॥

१२६ मो राजि समः क्वौ।८।३।२५॥

क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात्। सम्राट्॥

१२६–क्विप्प्रत्ययान्त राज् धातु परे रहते 'सम्' इस उपसर्गके मकारके स्थानमें अनुस्वार न होकर मकार ही रहताहै, यथा–सम्+राट्=सम्राट् (सार्वभौम) *॥

१२७ हे मपरे वा।८।३।२६॥

मपरे हकारे परे मस्य म एव स्याद्वा। ह्मल ह्वल चलने। किम् ह्मलयति। किं ह्मलयति॥ यवलपरे यवला वेति वक्तव्यम्॥ * ॥

१२७–म है परे जिससे ऐसा हकार परेहुए सन्ते मकारके स्थानमें विकल्प करके मकार ही होताहै अनुस्वार नहीं। 'ह्मल्–ह्मल्–संचलने' इसमेंके ह्मल् धातुसे ह्मलयति यह क्रियापद बनताहै। किम् ह्मलयति। किं ह्मलयति (वह क्या चलताहै) ऐसा हुआ। * य, व, ल, आगे हैं जिसके ऐसा ह परे हो तो मकारके स्थानमें विकल्प करके य, व, ल, होतेहैं (वा० ४९०२) परन्तु–॥

१२८ यथासंख्यमनुदेशः समानाम्। १।३।१०॥ ≀

समसंबन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। किँय्ह्यः। किं ह्यः। किँव्ह्वलयति। किं ह्वलयति। किँल्ह्लादयति। किं ह्लादयति॥

१२८–समान समानोंका उच्चारण करके कोई विधान कहा हो तो वह विधान यथासंख्य करके जानना चाहिये, अर्थात् प्रथमको प्रथम, द्वितीयको द्वितीय, तृतीयको तृतीय, इस प्रकारसे हो, इससे ऊपरके विकल्पमें हकारके आगे यकार होते 'म्' के स्थानमें 'यँ' होताहै, हकारके आगे व रहते 'वँ' होताहै 'ल' हो तो 'लँ' होताहै। अन्य पक्षमें अनुस्वार होताहै। किम्+ह्यः=किय्ँह्यः, किं ह्यः (कल क्या)। किम्+ह्वलयति=किँव्ह्वलयति, किं ह्वलयति (वह क्या चलाताहै) किम्+ह्लादयति=किँल्ह्लादयति, किं ह्लादयति (क्या हर्षाताहै)॥

१२९ नपरे नः।८।३।२७॥

नपरे हकारे परे मस्य नः स्याद्वा। किन् ह्नुते॥ किं ह्नुते॥

१२९–नकार है आगे जिसके ऐसा ह अर्थात् ह्न परे हो तो मकारके स्थानमें विकल्पसे न् होताहै, दूसरे पक्षमें अनुस्वार। किम्+ह्नुते=किन्ह्नुते। किं ह्नुते (वह क्या छिपाताहै)॥

१३० ङ्णोः कुक्टुक् शरि।८।३।२८॥

ङकारणकारयोः कुक्टुकावागमौ वा स्तः शरि। कुक्टुकोरसिद्धत्वाज्जश्त्वं न॥ चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्॥ * ॥ प्राङ्ख्षष्ठः। प्राङ्क्षष्ठः। प्राङ् षष्ठः। सुगण्ठ् षष्ठः। सुगण्ट् षष्ठः। सुगण् षष्ठः॥

१३०–शर् आगे रहते ङकार और णकारको अनुक्रमसे कुक् (क्) टुक् (ट्) यह आगम विकल्पकरके होतेहैं, कित्वके कारण अन्तमें आगम होगा। "झलां जशोऽन्ते $\frac{८।२।३९}{८४}$" की दृष्टिसे १३० सूत्रको असिद्ध होनेके कारण इसमेंके कुक् (क्) टुक् (ट्) इनको जश्त्व नहीं होता। * शर् परे रहते चय् प्रत्याहारके स्थानमें अपने २ वर्गका दूसरा अक्षर हो पौष्करसादिके मतमें (वा० ५०२३)। क् और ट् यह चय् है, इनके दूसरे वर्ण ख् और ठ् होंगे, इस प्रकार तीन रूप हुए। प्राङ्+षष्ठः=प्राङ्ख्षष्ठः।प्राङ्क्षष्ठः।प्राङ् षष्ठः। (पहला छठवाँ) सुगण्+षष्ठः=सुगण्ठ्षष्ठः। सुगण्ट् षष्ठः। सुगण् षष्ठः (छठवां अच्छा गणित जाननेवाला)॥

१३१ डः सि धुट्।८।३।२९॥

डात्परस्य सस्य धुड्वा स्यात्। षट्त्सन्तः। षट् सन्तः॥

१३१–डकारसे परे रहनेवाले सकारको विकल्प करके धुट् का आगम होताहै, षड्+सन्तः=षट्त्सन्तः। षट् सन्तः (छः साधु) *॥

---

* इस भांतिसे यह सहजमें ध्यानमें आवेगा कि,आगे हल् रहते पदान्त मकारके स्थानमें अनुस्वार करना यह उत्तम पक्ष है। आगे यय् रहते पदान्त मकारको परसवर्ण होता तो है, पर विकल्प करके होताहै इस कारण लिखने और स्पष्टताके अनुकूल सर्वसामान्यको अनुस्वारका ही यहां स्वीकार करना अच्छा है। परन्तु अपदान्तमें यय् प्रत्याहारके अक्षर आगे रहते पीछे अनुस्वार कभी नहीं रह सकता, यहां परसवर्ण ही करना चाहिये, इस समय दक्षिण और उत्तरकी पुस्तकोंमें अनुस्वारके विषयमें बड़ी गड़बड़ी रहतीहै, इसे ठीक करना चाहिये॥

* बहुतसे धातुओंसे कुछ हस्य प्रत्यय न होते कर्तृवाचक क्विप् (कृत्) प्रत्यय होताहै $\frac{३।२।७६}{२९८३}$ इस क्विप् प्रत्ययके सब वर्ण लुप्त होतेहैं, इसके अनुसार 'राजृ–दीप्तौ' इस धातुसे क्विप् प्रत्यय होकर राज् की प्रथमामें राट् हुआहै॥

* सूत्रमें डात् यह पंचमी और सि यह सप्तमी है, इसमें "उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्" पञ्चमी और सप्तमी ऐसे दो निर्देश आवें तो वहां पञ्चमीनिर्देश बलवान् होताहै, ऐसी परिभाषा है, इसकारण "तस्मादित्युत्तरस्य $\frac{१।१।६७}{४१}$" सूत्रसे धुट्का आगम स को ही होताहै, टित्वके कारण पूर्वभागमें आगम होताहै और आगे स रहनेसे। "खरि च $\frac{८।४।५५}{१२२}$" से धू के स्थानमें त और आगे खर (त) होनेसे ड के स्थानमें ट हुआ॥

१३२ नश्च । ८ । ३ । ३० ॥

नकारान्तात्सस्य धुड्वा । सन्त्सः । सन्सः ॥

१३२–नकारान्तके आगे स को विकल्पसे धुट् (ध्) का आगम होताहै सन्+सः=सन्त्सः । सन्सः (वह साधु) ॥

सन्+शम्भुः ऐसी स्थिति रहते–

१३३ शि तुक् । ८ । ३ । ३१ ॥

नस्य पदान्तस्य शे परे तुग्वा स्यात् । शश्छोटीति छत्वविकल्पः । पक्षे झरो झरीति चलोपः । सञ्छंभुः । सञ्च्छंभुः । सञ्चशंभुः । सञ्शंभुः ॥

ञ्छौ ञ्चछा ञ्चशा ञ्शाविति चतुष्टयम् ॥
रूपाणामिह तुक्छत्वचलोपानां विकल्पनात्॥

१३३–आगे श् होते पदान्त नकारको विकल्प करके तुक् (त्) का आगम होताहै । उसको चुत्वके कारण च् और नकारको चुत्वके कारण ञ् । "शश्छोऽटि $\frac{८।४।६३}{१२०}$" से श् के स्थानमें विकल्प करके छ, पक्षमें "झरो झरि $\frac{८।४।६५}{७१}$" से चकारका लोप हुआ सन्+शम्भुः=सञ्छम्भुः । सञ्च्छम्भुः । सञ्चशंभुः । सञ्शम्भुः । ञ्छाविति– इसमें तुक्, छत्व और चलोप इनके विकल्पके कारण ञ्छ, ञ्चछ, ञ्चश और ञ्श ऐसे चार रूप होतेहैं । ("उञि च पदे ८ । ३ । २१" से पदकी अनुवृत्ति आतीहै) ॥

१३४ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् । । ८ । ३ । ३२ ॥

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो नित्यं ङमुडागमः स्यात् । प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्णीशः । सन्नच्युतः ॥

१३४–ह्रस्वके आगे जो ङम् (ङ्, ण्, न्) यह है अन्तमें जिस पदके उसके आगेके अच्को ङमुट् (ङुट्, णुट् नुट्) (ङ् ण् न्) का आगम होताहै, यथा–प्रत्यङ्+आत्मा=प्रत्यङ्ङात्मा (अन्तरात्मा) । सुगण्+ईशः=सुगण्णीशः (श्रेष्ठ गणितका ज्ञाता) । सन्+अच्युतः=सन्नच्युतः (साधु अच्युत) * ॥

अगले चार सूत्रोंमें रुप्रकरणका विषय है–

१३५ समः सुटि । ८ । ३ । ५ ॥

समो रुः स्यात्सुटि । अलोन्त्यस्य ॥

१३५–सुट् (स्) परे रहते सम् शब्दके स्थानमें रु "र्" होताहै । "अलोऽन्त्यस्य $\frac{१।१।५२}{४२}$" से अन्त्य अल्के स्थानमें आदेश होताहै * ॥

* सूत्रोंमें इस नियमका बहुतसी जगह अभाव है अर्थात् ङमुट् आगम न होनेके उदाहरण–इको यणचि, तिङन्त, षडन्त, उणादि इत्यादि हैं परन्तु यह आर्ष प्रयोग हैं इसकारण शुद्ध ही है ॥

* "सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे $\frac{६।१।१३७}{२५५०}$" इस सूत्रसे सम् शब्दके आगे आनेवाले कृधातुके रूपको सुट्का आगम होताहै, ऐसी स्थिति होनेपर प्रस्तुत सूत्रसे मकारके स्थानमें रु (र्) सम्×स्कर्ता' अनंतर 'सर्+स्कर्ता' ऐसी स्थिति होतीहै ॥

१३६ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा । ८ । ३ । २ ॥

अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्याऽनुनासिको वा स्यात् ॥

१३६–इस रुप्रकरणमें रुके पूर्ववर्ती अक्षरको विकल्प करके अनुनासिक हो (रुप्रकरणे ऐसे कहनेका कारण यह कि "ढो ढे लोपः ८ । ३ । १३" इस स्थलमें पूर्ववर्ती अक्षरको अनुनासिक न होगा) तब सँर्+स्कर्ता ऐसी स्थिति हुई–॥

१३७ अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः ८।३।४।

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः स्यात् । खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥

१३७–पिछले सूत्रके विकल्पसे जो दो रूप प्राप्त हुए, उनमें अनुनासिकको छोडकर दूसरे अननुनासिकमेंके रूपमेंके रुके पूर्ववर्णके अनन्तर अनुस्वारका आगम होताहै, तब सँर्+स्कर्ता ऐसी स्थिति हुई, तब "खरवसा० $\frac{८।३।१५}{७६}$" सूत्रसे पदान्त रेफको विसर्ग हुआ सँः+स्कर्ता=संः+स्कर्ता ऐसी स्थिति हुई । फिर–

१३८ विसर्जनीयस्य सः ।८।३।३४॥

खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात् । एतदपवादे वा शरीति पाक्षिके विसर्गे प्राप्ते ॥ संपुंकानां सो वक्तव्यः ॥ * ॥ संस्स्कर्ता । सँस्स्कर्ता ॥ समो वा लोपमेक इति भाष्यम् ॥ * ॥ लोपस्यापि रुप्रकरणस्थत्वादनुस्वारानुनासिकाभ्यामेकसकारं रूपद्वयम् । द्विसकारं तूक्तमेव । तत्रानचि चेति सकारस्य द्वित्वपक्षे त्रिसकारमपि रूपद्वयम् । अनुस्वारविसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीययमानामकारोपरि शर्षु च पाठस्योपसंख्यातत्वेनानुस्वारस्याप्यच्त्वात् । अनुनासिकवतां त्रयाणां शरः खय इति द्वित्वे षट् । अनुस्वारवतामनुस्वारस्यापि द्वित्वे द्वादश । एषामष्टादशानां तकारस्य द्वित्वे वचनान्तरेण पुनर्द्वित्वे च एकतं द्वितं त्रितमिति चतुष्पञ्चाशत् । अणोऽनुनासिकत्वेऽष्टोत्तरं शतम् ॥

१३८–खर् वर्ण आगे रहते विसर्गके स्थानमें सकार होताहै, इसके अपवाद "वा शरि $\frac{८।३।३६}{१५१}$" (शर् आगे रहते विसर्गके स्थानमें विकल्प करके विसर्ग ही रहताहै) से विकल्प प्राप्त हुआ तब कहतेहैं कि (वा० ४८९२) सम्, पुम्, कान् इनके विसर्गको सकार ही होताहै अर्थात् इन शब्दोंकी सन्धिमें विसर्ग और स् युक्त दो रूप न हो करके एक ही सकारयुक्त रूप होताहै, इस कारण, सँस्स्कर्ता । संस्स्कर्ता (भूषित करनेवाला) यह दो रूप सिद्ध हुए । (समो वेति०) सम् शब्दके अन्तके मकारको विकल्प करके लोप हो, ऐसा कितनेही वैयाकरण मानतेहैं, यह भाष्यका

वचन है, इस कारण स+स्कर्त्ता ऐसा रूप सिद्ध हुआ। (लोपस्येति०) यह लोप भी रुप्रकरणमें कियागया है इस कारण पिछले दो सूत्रोंके अनुसार अनुनासिक और अनुस्वार-वाले एक सकारयुक्त दो रूप हुए, सँस्कर्ता । संस्कर्ता । दोसकारवाला रूप तो कहा ही है। (तत्रेति) उसमें फिर "अनचि च ८।४।४७/४८" इससे सकारको विकल्पसे द्वित्व होकर त्रिसकारयुक्त दो रूप हुए । अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय और यम् इनको भाष्यकारने चतुर्दशसूत्रीमें अकार पर और फिर शरोंमें भी पढाहै, इसकारण अनुस्वार भी अचोंमें आगया, इसकारण उसके आगे आनेवाले सकारको "अनचि च" के अनुस्वार द्वित्व होनेमें कोई हानि नहीं, इसप्रकार सब मिलकर अनुनासिकयुक्त तीन और अनुस्वारयुक्त तीन रूप हुए । (अनुनासिकेति) शकारके आगे आनेवाले खय्को द्वित्व होताहै (वा० ५०१९) ऐसा "अनचि च" इस सूत्र पर वार्तिक है, उससे अनुनासिकयुक्त तीनों रूपोंके ककारको विकल्पसे द्वित्व होकर उनके छः रूप हुए । अनुस्वारयुक्त जो तीन रूप हैं, उनमेंके ककारको इसी प्रकारसे द्वित्व होकर छः रूप हुए और उन छहोंमें फिर अनुस्वारको शरोंमें ही गिना है, इस कारण "अनचि च" इससे उसको विकल्पसे द्वित्व होकर छः के बारह रूप हुए, इस प्रकार सब मिलकर अठारह रूप हुए, इन अठारह रूपोंके तकारको "अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६/५९" इससे द्वित्व किया, और "यणो मयो द्वे वाच्ये ५४" इस वार्तिकसे फिर द्वित्व करनेसे एक त, दो त, और तीन त, इसप्रकारसे अठारहसे तिगुने (५४) रूप हुए, फिर (अण इति) "अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः ८।४।५७/११०" इससे अन्त्य अच्को विकल्पसे अनुनासिक होनेसे १०८ रूप सिद्ध होतेहैं * ॥

अगले सूत्र भी रुप्रकरणके ही हैं, पुम् + कोकिलः । पुम् + पुत्रः इस स्थितिमें–

१३९ पुमः खय्यम्परे । ८ । ३ । ६ ॥

अम्परे खयि पुमशब्दस्य रुः स्यात् । व्युत्पत्तिपक्षेऽप्रत्ययस्येति षत्वपर्युदासात् ᳲक ᳲप-योः प्राप्तौ । अव्युत्पत्तिपक्षे तु षत्वप्राप्तौ सत्यां संपुंकानामिति सः । पुँस्कोकिलः । पुंस्कोकिलः । पुँस्पुत्रः । पुंस्पुत्रः । अम्परे किम् । पुंक्षीरम् । खयि किम् । पुंदासः । ख्याञादेशे न । पुंख्यानम् ॥

१३९–अम् प्रत्याहार परे है जिससे ऐसा खय् परे हो तो पुम् शब्दके मकारके स्थानमें रु (र्) होताहै । रुत्वप्रकरणके कारण पिछले वर्णको अनुस्वार और अनुनासिकयुक्त कहाहै इससे विकल्प करके दो रूप हुए पुँर्+कोकिलः–पुंर्+कोकिलः फिर रेफको "खरवसा० ८।३।१५/७६" से विसर्ग हुआ ।

* यह एक सौ आठ रूप बताये तो हैं पर लिखनेमें नहीं आते केवल सँस्स्कर्ता वा संस्स्कर्ता यही दो रूप लिखनेमें आतेहैं, कहीं सकार व तकारको द्वित्व दिखाई देताहै, बुद्धि सूक्ष्म करने और सूत्रोंकी गति दिखानेको लिखे हैं ॥

शब्दोंका ज्ञान दोप्रकारसे होताहै–व्युत्पत्ति अर्थात् शब्दके प्रकृति प्रत्ययादिकोंका ज्ञान होनेसे, अथवा केवल रूढि अर्थात् जनव्यवहारसे ।

फिर इसमें जो व्युत्पत्तिपक्ष लिया जाय तो "पातेर्डुम्सुन्" (उणादि ४ । १) इससे 'पा–रक्षणे' धातुसे डुम्सुन् (उम्स्) प्रत्यय होकर पुम्स् शब्द बना है उसका कोकिलशब्दके साथ समास होनेपर "संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३/५४" से उसमेंका सकार जाकर पुम् शब्द शेष रहा, इस कारण उसका मकार प्रत्ययका अवयव है और उसके स्थानमें विसर्ग आयाहै, इससे "इदुदुपधस्य० ८।३।४१/१५५" इस सूत्रसे आगे ककार पकार रहतेभी उस विसर्गके स्थानमें षकारका निषेध होताहै क्योंकि वह प्रत्ययावयवभिन्न ही विसर्गको होताहै इसीसे "कुप्वोᳲकᳲपौ च ८।३।३७/१४२" सूत्रसे ᳲक ᳲप की प्राप्ति है । और यदि अव्युत्पत्तिपक्ष (केवल रूढिसे ही अर्थका ज्ञान जिसमें) माना जाय तो प्रकृति प्रत्ययका भेद न होनेसे अप्रत्यय शब्द ठहरकर "इदु० १५५" इससे विसर्गके स्थानमें षत्व प्राप्त होताहै। परन्तु इन सबको बाधकर "सम्पुंका०" (वा० ४८९२) से सं, पुं, कान्, इन शब्दोंके विसर्गोंको सकार ही होताहै, इस पूर्वसूत्रके वार्तिकसे सकार ही हुआ, पुँस्कोकिलः। पुंस्कोकिलः (कोयल पक्षियोंमें नर)। पुँस्पुत्रः । पुंस्पुत्रः (पुत्र यह पुरुष) । अम् जिसके आगे हो ऐसा खय् यह क्यों कहा ? तो इससे अन्यत्र रु नहीं होता पुम्+क्षीरम्= पुंक्षीरम् (पुरुषके निमित्त क्षीर) वहां कके बाद ष है वह अम्में नहीं जाता । खय् आगे रहते ऐसा क्यों कहा ? तो इससे अन्यत्र न हो, यथा–पुम्+दासः=पुंदासः (पुरुषदास) यहां अम् रहते भी खय्के न रहनेसे रु न हुआ ॥ * चक्ष धातुके स्थानमें ख्याञ् आदेश करनेपर न होगा (वा० १५९१) "चक्षिङः ख्याञ् २।४।५४/२४३६" इससे आर्द्धधातुक प्रत्ययसे पहले 'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि' धातुको ख्याञ् आदेश होताहै सो 'अम्पर खय् होते भी' पुम् शब्दको रु नहीं होता पुम्+ख्यानम्=पुंख्यानम् (पुरुषका वर्णन) हुआ ॥

१४० नश्छव्यप्रशान् । ८ । ३ । ७ ॥

अम्परे छवि नकारान्तस्य पदस्य रुः स्यात् । न तु प्रशान्शब्दस्य । विसर्गः । सत्वम् । श्चुत्वम् । शार्ङ्गिँश्छिन्धि । शार्ङ्गिंश्छिन्धि । चक्रिँस्त्रायस्व । चक्रिंस्त्रायस्व । पदस्य किम् । हन्ति । अम्परे किम् । सन् त्सरुः खड्गमुष्टिः । अप्रशान् किम् । प्रशान्तनोति ॥

१४०–अम् जिसके आगे हो ऐसा छव् परे रहते नकारान्त पदको रु होताहै, परन्तु प्रशान् शब्दको रु नहीं होता। शार्ङ्गिन्+छिन्धि ऐसी स्थिति रहते नकारके स्थानमें रु हुआ विसर्ग, "खरवसानयो० ८।३।१५/७६" से रुको सत्व, श्चुत्व अर्थात् "विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४/१३८" इससे विसर्गको स और फिर [illegible] और [illegible] कारण अनुनासिक तथा 'ं' आगे रहनेसे [illegible] पक्षमें अनुस्वार होकर शार्ङ्गिँश्छिन्धि। शार्ङ्गिंश्छिन्धि। (हे शार्ङ्गिन् कृष्ण छेदन कर), इसी प्रकारसे चक्रिन्+त्रायस्व=चक्रिँस्त्रायस्व

चक्रिंस्त्रायस्व(हे चक्रिन् रक्षा करो) ऐसे दो रूप हुए। नकारान्त पदको ऐसा क्यों कहा?तो पदान्त न होनेसे रु नहीं होता,यथा- हन्+ति=हन्ति (मारताहै) यहां आगे छव् होते हुए भी नकारको रुत्व न हुआ । अम् आगे रहते ऐसा क्यों कहा? तो अन्यत्र नहीं होता सन्+त्सरुः=सन्त्सरुः (खड्गमुष्टि-तल्वारकी मूठी) छव् तकारके रहते भी सको अम्में न होनेसे रु न हुआ । प्रशान् शब्दको रु नहीं होता इससे प्रशान्+तनोति= प्रशान्तनोति (शान्त मनुष्य विस्तार करताहै) यहां रु न हुआ ॥

१४१ नॄन्पे । ८ । ३ । १० ॥

नॄनित्यस्य रुः स्याद्वा पकारे परे ॥

१४१-नॄन् इस शब्दके नकारके स्थानमें विकल्प करके रु हो पकार परे रहते। "उभयथर्क्षु ८ । ३ । ८" इस सूत्रसे 'उभयथा' इसकी अनुवृत्ति आतीहै, इस आशयसे ही वृत्तिकारने विकल्पका निर्देश किया है ॥

१४२ कुप्वोः ᳵक ᳶपौ च।८।३।३७॥

कवर्गे पवर्गे च परे विसर्जनीयस्य क्रमाज्जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ स्तः । चाद्विसर्गः । येन नाप्राप्तिन्यायेन विसर्जनीयस्य स इत्यस्यापवादोयम् । न तु शर्परे विसर्जनीय इत्यस्य । तेन वासः क्षौममित्यादौ विसर्ग एव । नॄँᳶपाहि। नॄंᳶपाहि । नॄँः पाहि । नॄंः पाहि । नॄन्पाहि ॥

१४२-कवर्ग, पवर्ग परे रहते विसर्गके स्थानमें क्रमसे जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हों अर्थात् कवर्ग परे रहते जिह्वामूलीय और पवर्ग परे रहते उपध्मानीय हों, सूत्रमें चकारनिर्देशसे विसर्ग भी हो अर्थात् चकारसे "शर्परे विसर्जनीयः ८ । ३ । ३५" इस सूत्रसे विसर्गकी अनुवृत्ति आतीहै ।

" येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति " अर्थात् जिस कार्यकी अवश्य प्राप्तिमें जिसका आरंभ किया जाताहै, वह उस कार्यका अपवाद (बाधक) होताहै । और जिसकी प्राप्ति अप्राप्तिमें सर्वथा जिसका आरंभ है वह उसका बाधक नहीं होता, इस न्यायके अनुसार आगे खर् रहते विसर्गको सकार होताहै इस ८।३।३४/१३८ सूत्रका प्रस्तुत सूत्र बाधक है, 'जिसके आगे शर् हो ऐसा खर् आगे रहते विसर्गको विसर्ग ही रहताहै' ८।३।३५/१५० इस सूत्रका बाधक नहीं होता, इसकारण वासः क्षौमम् (रेशमी वस्त्र) इत्यादि शब्दोंमें ष् यह शर् जिससे परे है ऐसा क् जो खर् सो आगे होते विसर्गको विसर्ग ही रहताहै, परन्तु-नॄन् + पाहि (मनुष्योंकी रक्षा करो) ऐसी स्थितिमें पूर्वसूत्रसे विकल्प करके रुत्व होताहै और रुत्वके कारण अनुनासिक और अनुस्वार यह दो भेद होतेहैं और फिर विसर्ग होनेपर प्रस्तुत सूत्रसे विसर्गके स्थानमें उपध्मानीय या विसर्ग, ऐसे दो पाक्षिक रूप होतेहैं, ऐसे सब मिलकर पांच रूप हुए । नॄँᳶ पाहि। नॄंᳶ पाहि । नॄंः पाहि । नॄँः पाहि । नॄन्पाहि ॥

१४३ कानाम्रेडिते । ८ । ३ । १२॥

कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते परे । संपुंकानामिति सः । यद्वा ।

१४३-आम्रेडित (द्विरुक्तिमें का पररूप) ८।१।२/८३ परे रहते कान् शब्दके नकारको रु (र्) होताहै, उसको 'संपुंकानाम्०' इस वार्तिकसे स् होताहै । अथवा-

१४४ कस्कादिषु च । ८ । ३ । ४८॥

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षः स्यादन्यत्र तु सः । ᳵक ᳶपयोरपवाद इति सः काँस्कान् । कांस्कान् । कस्कः। कौतस्कुतः । सर्पिष्कुण्डिका। धनुष्कपालम् । आकृतिगणोयम् ॥

१४४-कस्कादि गणके शब्दोंमें इण्के पश्चात् आनेवाले विसर्गके स्थानमें ष् होताहै, और जहां इण् नहीं वहां "कुप्वोः० ८।३।३७/१४२" सूत्रका यह सूत्र अपवाद है, इसकारण स् होताहै । ("सोपदादौ ८ । ३ । ३८" । "इणः षः" ८।३।३९ " इन दो सूत्रोंसे स् और ष् की अनुवृत्ति आतीहै) काँस्कान्-कांस्कान् (किन२को) । कस्कः (कौन २) । कौतस्कुतः (कहांका २) । सर्पिष्कुण्डिका (घीका पात्र) । धनुष्कपालम् (धनुषकी रस्सी) । यह आकृतिगण है सि० ७९ की टीप देखो *॥

१४५ संहितायाम् । ६ । १ । ७२ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

१४५-यह अधिकार सूत्र है अर्थात् इस प्रकरणमें इसके परे जो सूत्र कहे जायंगे वह सब संहिता अर्थमें जानने चाहिये ॥

१४६ छे च । ६ । १ । ७३ ॥

ह्रस्वस्य छे परे तुगागमः स्यात्संहितायाम् । चुत्वस्यासिद्धत्वाज्जश्त्वेन दः । ततश्चर्त्वस्यासिद्धत्वात्पूर्वं चुत्वेन जः । तस्य चर्त्वेन चः । चुत्वस्यासिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वं न । स्वच्छाया । शिवच्छाया ॥

१४६-'छ' परे रहते ह्रस्वको तुक्का आगम हो संहिताके विषयमें, तुक्के उकार और ककारकी इत् संज्ञा हुई (" ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।१।७१ " इस सूत्रसे ह्रस्व और तुक् इन दोनों पदोंकी अनुवृत्ति आतीहै) । सवासात अध्यायके सामने त्रिपादी और त्रिपादीमें भी पूर्वके प्रति पर सूत्र असिद्ध हैं, यह पहले ही कहदियाहै, स्व+छाया इसमें आगे छकार होनेसे तुक् करनेके उपरान्त तकारके स्थानमें " स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४०/१११ " इस सूत्रसे चकार होना चाहिये था,परन्तु चुत्वके असिद्ध होनेसे"झलां जशोन्ते ८।२।३९/८४"

---

* कस्कादिगणः-कस्कः । कौतस्कुतः । भ्रातुष्पुत्रः । शुनस्कर्णः । सद्यस्कालः । सद्यस्क्रीः । सद्यस्कः । कांस्कान् सर्पिष्कुण्डिका । धनुष्कपालम् । बर्हिष्पलम् (बर्हिष्पलम्) । यजुष्पात्रम् । अयस्कान्तः । तमस्काण्डः । अयस्काण्डः मेदस्पिण्डः । भास्करः । अयस्करः । आकृतिगणोऽयम् ।

से दकार हुआ, फिर " खरि च ८।४।५५/१२१ " इस चर्त्वके असिद्ध होनेके कारण पहले "स्तोः श्चुना० ८।४।४०/१११ " से चवर्ग होकर दकारके स्थानमें 'ज्' हुआ और फिर चर्त्व ८।४।५५/१२१ होकर च् हुआ, इस चकार १२१ के असिद्ध होनसे "चोः कुः ८।२।३०/२७८" से चकारको 'क्' नहीं होता । स्वच्छाया (अपनी छाया) । शिवच्छाया (शिवकी छाया) ।

सूत्रांकोपर ध्यान देनेसे असिद्धत्व सहजमें समझमें आवेगा " चोः कुः ८।२।३०/२७८ " से अच् शब्दका अक् रूप होना चाहिये था परन्तु स्पष्टताके निमित्त नहीं होता, इस विषयकी 'चोः कुः' सूत्र पर ही लिखेंगे ॥

१४७ आङ्माङोश्च । ६ । १ । ७४ ॥

एतयोश्छे परे तुक् स्यात् । पदान्ताद्वेति विकल्पापवादः । आच्छादयति । माच्छिदत् ॥

१४७–छकार परे रहते आङ् (आ) इस उपसर्ग और माङ् (मा) इस निषेध वाचकको तुक् (त्) का आगम होताहै " पदान्ताद्वा ६।१।७६/१४९ " इस सूत्रके विकल्पका यह अपवाद है । " इस सूत्रमें आङ् और माङ् शब्दमें सानुबंध निर्देशका फल यह है कि, गति कर्मप्रवचनीय आ शब्दका और निषेध वाचक माशब्दका ही ग्रहण होताहै अन्यका नहीं " आ+छादयति=आच्छादयति (ढकताहै) । मा+छिदत्=माच्छिदत् (मत ढको) । तुक् को चकार पिछले सूत्रकी समान हुआ ॥

१४८ दीर्घात् । ६ । १ । ७५ ॥

दीर्घाच्छे परे तुक् स्यात् । दीर्घस्यायं तुक् न तु छस्य । सेनासुराच्छायेति ज्ञापकात् । चेच्छिद्यते ॥

१४८–छ परे रहते दीर्घको तुक् हो यह तुक् दीर्घको होताहै छकारको नहीं—

'उभयनिर्देशे पंचमीनिर्देशो बलीयान्' यह परिभाषा पीछे (१३१ सूत्रमें) आईहै, तो भी यहां दीर्घात् यह पंचमी षष्ठीके अर्थमें है, इसकारण दीर्घको आगम होताहै, इसमें " विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् २।४।२५/८२८ " इस सूत्रका निर्देश ही ज्ञापक है । इस सूत्रमें छ के पूर्वका जो 'ए' उसको तुक् 'त्' हुआहै और कित्वके कारण अन्त्य भागमें हुआहै, जो छकारको तुक् होता तो वह छकारके पश्चात् आकर अनिष्ट रूप बनजाता चे+छिद्यते=चेच्छिद्यते (फिर २ काटा जाताहै) ॥

१४९ पदान्ताद्वा । ६ । १ । ७६ ॥

दीर्घात्पदान्ताच्छे परे तुग्वा स्यात् । लक्ष्मीच्छाया । लक्ष्मीछाया ॥

॥ इति हल्संधिः ॥

१४९–आगे छ रहते पदान्त दीर्घको विकल्प करके तुक् होताहै । लक्ष्मी+छाया=लक्ष्मीच्छाया । लक्ष्मीछाया (लक्ष्मी की छाया) ॥

इति हल्सन्धिप्रकरणम् ।

अथ विसर्गसन्धिः ।

"विसर्जनीयस्य सः" ८ । ३ । ३४ ॥ (सू० १३८) ।

विष्णुस्त्राता ॥

" विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४/१३८ " खर् परे रहते विसर्गके स्थानमें सकार होताहै । विष्णुः+त्राता=विष्णुस्त्राता (रक्षा करनेवाले विष्णु) यह रूप सिद्ध होताहै *॥

१५० शर्परे विसर्जनीयः । ८ । ३ । ३५ ॥

शर्परे खरि विसर्जनीयस्य विसर्जनीयो न त्वन्यत् । कः त्सरुः । घनाघनः क्षोभणः । इह यथायथं सत्वं जिह्वामूलीयश्च न ॥

१५०–शर् जिसके आगे हो ऐसा खर् परे रहते विसर्गके स्थानमें विसर्ग ही होताहै और कुछ नहीं होताहै । कः+त्सरुः= कः त्सरुः (कौनसी तलवारकी मूठ) । घनाघनः+क्षोभणः= घनाघनः क्षोभणः (इन्द्रप्रेरक) यहां विसर्ग ही रहताहै विसर्गके स्थानमें विसर्ग ही होनेका फल यह है कि यथाक्रम इसके स्थानमें स् और जिह्वामूलीय न हुए ॥

१५१ वा शरि । ८ । ३ । ३६ ॥

शरि परे विसर्जनीयस्य विसर्जनीय एव वा स्यात् । हरिः शेते । हरिश्शेते ॥ खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः ॥ * ॥ राम स्थाता । रामः स्थाता । हरि स्फुरति । हरिः स्फुरति । पक्षे विसर्गे सत्वे च त्रैरूप्यम् । कुप्वोः ≍ क≍पौ च । क≍ करोति । कः करोति । क≍ खनति । कः खनति । क≍ पचति । कः पचति । क≍ फलति । कः फलति ॥

१५१–शर् परे रहते विसर्गके स्थानमें विकल्प करके विसर्ग हो अर्थात् पक्षमें ८।३।३४/१३८ से सकार और ८।४।४०/१११ से श्चुत्व होताहै । हरिः+शेते=हरिः शेते, हरिश्शेते (हरि सोताहै)। *खर् प्रत्याहार जिसके आगे हो ऐसा शर् परे रहते विकल्प करके विसर्गका लोप होताहै (वा० ४९०६) रामः+स्थाता–राम स्थाता, रामः स्थाता । (राम स्थित होनेवाला) । हरिः+ स्फुरति=हरि स्फुरति, हरिः स्फुरति (हरि हिलताहै)। एक पक्षमें विसर्ग रहकर उसके स्थानमें सकार हुआ तो सब मिलकर तीन रूप होंगे । रामस्स्थाता । हरिस्स्फुरति । " कुप्वोः ≍क≍पौ च ८।३।३७/१४२ "आगे कवर्ग पवर्ग होते विसर्गके स्थानमें विसर्ग अथवा अनुक्रमसे जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय होतेहैं। क≍ करोति । कः करोति (कौन करताहै) । क≍ खनति ।

* विष्णुस्+त्राता यह आदिका रूप है इसको "ससजुषो रुः ८।२।६६/१६२" इससे सके स्थानमें रु (र्) और "खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५/९६" से खर् आगे होनेसे [illegible] स्थानमें विसर्ग होकर विष्णुः+त्राता ऐसी स्थिति हुई और इस प्रस्तुत सूत्रका काम पूर्ण हुआ, [illegible] आगे भी जानना चाहिये । यद्यपि यह सूत्र [illegible] [illegible] है तथापि इसका मुख्य कार्यस्थान यही है इसलिये फिर भी यहां रखके उदाहरण दिखाया गया है ॥

कः खनति (कौन खोदताहै) । क ॅ फलति । कः फलति (कौन फल देताहै) ।

यहां पाक्षिक विसर्गलोपका वार्तिक है, वह ठीक है, तथापि अल्प अभ्यासवालोंको उससे संशय होनेका सम्भव जानकर पुस्तकोंमें प्रायः लोप नहीं करते ॥

१५२ सोऽपदादौ । ८ । ३ । ३८ ॥

विसर्जनीयस्य सः स्यादपदाद्योः कुप्वोः परयोः॥ पाशकल्पककाम्येष्विति वाच्यम् ॥ *॥ पयस्पाशम् । यशस्कल्पम् । यशस्कम् । यशस्काम्यति ॥ अनव्ययस्येति वाच्यम् ॥ * ॥ प्रातःकल्पम् ॥ काम्ये रोरेवेति वाच्यम् ॥ * ॥ नेह । गीः काम्यति ॥

१५२–पदके आदिमें स्थित न हों ऐसे कवर्ग पवर्ग परे रहते विसर्गके स्थानमें स् होताहै परन्तु* पाश,कल्प,क, काम्य इन प्रत्ययोंके परे रहते ही विसर्गके स्थानमें स् हो ऐसा कहना चाहिये (वा० ५०३३) । पयः+पाशम्=पयस्पाशम् (कुत्सित पय) । यशः+कल्पम्=यशस्कल्पम् (यशके समान) । यशः+कम्=यशस्कम् (अल्पयश) । यशः+काम्यति=यशस्काम्यति (यशकी इच्छा करताहै)॥* अव्यय-सम्बन्धी विसर्गको क, प आगे रहते यह सकार नहीं होता, ऐसा कहना चाहिये (वा० ४९०१) इस कारण प्रातः-कल्पम् (प्रातःकालके कुछ पहले) अव्यय होनेके कारण इसमें विसर्गके स्थानमें सकार नहीं होता ॥* काम्य शब्द (प्रत्यय) आगे आवे तो रु के स्थानमें हुए विसर्गहीके स्थानमें सकार होताहै, ऐसा कहना चाहिये (वा० ४९०२) इस कारण गीः काम्यति (वाणीकी इच्छा रखताहै) यहां स् नहीं होता * ॥

१५३ इणः षः । ८ । ३ । ३९ ॥

इणः परस्य विसर्गस्य षकारः स्यात्पूर्वविषये । सर्पिष्पाशम् । सर्पिष्कल्पम् । सर्पिष्कम् । सर्पिष्काम्यति ॥

१५३–पाशकल्प इत्यादि पूर्वसूत्रोक्त शब्द (प्रत्यय) परे रहते इ, उ इनके आगेके विसर्गको मूर्द्धन्य ष् होताहै । सर्पिः+पाशम्=सर्पिष्पाशम् (बुरा घी) । सर्पिः+कल्पम्=सर्पिष्कल्पम् (घीके समान) । सर्पिः+कम्=सर्पिष्कम् (थोडा घी) सर्पिः+काम्यति=सर्पिष्काम्यति (घीकी इच्छा करताहै) ॥

१५४ नमस्पुरसोर्गत्योः।८।३।४०॥

गतिसंज्ञयोरनयोर्विसर्गस्य सः कुप्वोः परयोः। नमस्करोति । साक्षात्प्रभृतित्वात्कृञो योगे विभाषा गतिसंज्ञा । तदभावे नमः करोति । पुरोऽव्ययमिति नित्यं गतिसंज्ञा। पुरस्करोति । अगतित्वान्नेह । पूः । पुरौ । पुरः प्रवेष्टव्याः ॥

१५४–नमस् और पुरस् इन गतिसंज्ञक शब्दोंके विसर्गके स्थानमें कवर्ग, पवर्ग परे रहते सकार होताहै । नमः+करोति=नमस्करोति (नमन करताहै) । साक्षात्प्रभृतिगण १।४।७४/७७५ में नमस् शब्द होनेसे कृञ् धातुके योगमें इसकी विकल्प करके गति संज्ञा होतीहै, इससे गति अभावमें नमः करोति ऐसा ही रूप रहेगा । "पुरोऽव्ययम् १।४।६७/७६८" से पुर् अव्यय नित्य गतिसंज्ञक है । इस कारण पुरः+करोति=पुरस्करोति (आगे करताहै) ऐसा रूप हुआ । पुर् शब्दका बहुवचन जो पुरः (अनेक नगरी) शब्द है सो अव्यय न होनेसे गतिसंज्ञक नहीं है, इस कारण पुरः प्रवेष्टव्याः (प्रवेश करनेके योग्य नगरी) इसमें स् नहीं होता॥

१५५ इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य । ८ । ३ । ४१ ॥

इकारोकारोपधस्याऽप्रत्ययस्य विसर्गस्य षः स्यात्कुप्वोः । निष्प्रत्यूहम् । आविष्कृतम् । दुष्कृतम् । अप्रत्ययस्य किम् । अग्निः करोति । वायुः करोति । एकादेशशास्त्रनिमित्तकस्य न षत्वम् । कस्कादिषु भ्रातुष्पुत्रशब्दस्य पाठात् । तेनेह न । मातुः कृपा ॥ मुहुसः प्रतिषेधः ॥ * ॥ मुहुःकामा ॥

१५५–आगे कवर्ग, पवर्ग रहते उपधारूप ह्रस्व इकार उकारके आगे रहनेवाले अप्रत्ययरूप विसर्गके स्थानमें ष् होताहै । निः+प्रत्यूहम्=निष्प्रत्यूहम् (विघ्नरहित) । आविः+कृतम्=आविष्कृतम् (प्रकटित) दुः+कृतम्=दुष्कृतम् (बुरा काम) । अप्रत्ययका विसर्ग ऐसा क्यों कहा ? अग्निः करोति (अग्नि करताहै) । वायुः करोति (वायु करताहै) इनका विसर्ग प्रथमाके सुप्रत्ययका रूपान्तर है, इस कारण इसके स्थानमें षत्व नहीं हुआ (एकादेशेति) "ऋत उत् ६।१।१११/२७९" ऋकारान्त शब्दके आगे पंचमी षष्ठीका अस् प्रत्यय रहते ऋ और अ इन दोनोंके स्थानमें 'उ' ऐसा एकादेश होताहै, और ऋ के स्थानमें वह उ है इस कारण "उरण् रपरः १।१।५१/७०" से 'उर्' ऐसा उसका रूप होताहै और अस्मेंका शेष रहा स् आगे जुड कर उर्स् रूप होताहै परन्तु "संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३/५४" से सकार लुप्त होकर उर् इतना ही अंश रहताहै और उस रेफके स्थानमें "खरवसानयो० ७६" से विसर्ग होताहै, ऐसे स्थानमें आदेशशास्त्रके निमित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्ग चाहे उकारोपध और अप्रत्ययवाला हो,तो भी कवर्ग, पवर्ग आगे रहते उसके स्थानमें षत्व नहीं होता । किस आधारसे ? तो ऐसे प्रसंगमें यदि षत्व प्राप्त होता तो कस्कादिगण ८।३।४८/१४४ में जान बूझ कर भ्रातुः पुत्रः (वा० ४९१९) इससे भ्रातुष्पुत्रः (भाईका लडका) ऐसा षकारयुक्त शब्द

---

* यहां रु–शब्दसे "ससजुषो रुः ८।२।६६/१६२" इससे सान्त शब्दको अथवा प्रत्ययके स्थानमें होनेवाला जो रु (र्) उसके स्थानमें होनेवाला जो विसर्ग वह लेना चाहिये, केवल रेफ नहीं लेना, इस कारण गीःकाम्यति इसमें गिर्शब्दके मूल रेफके स्थानमें "खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५/७६" से विसर्ग होनेके कारण उसके स्थानमें स् नहीं होता, विसर्ग ही रहताहै, परन्तु यशः इसमें यशस् ऐसा सान्त शब्द होते स् के स्थानमें रु होकर विसर्ग हुआहै, इस कारण उसके स्थानमें स् होकर यशस्कल्पम् । यशस्काम्यति इत्यादि प्रयोग सिद्ध हुएहैं ॥

सिद्ध होताहै, यह कहनेका कुछ प्रयोजन नहीं था, सामान्य नियमसे ही वह शब्द सिद्ध होजाता, तथापि जब वह शब्द गणपाठमें पठित है, तो यह विदित हुआ कि भ्रातुष्पुत्र शब्द छोड कर और कहीं इस प्रसंगमें षत्व नहीं होता, इस कारण मातुः कृपा (माताकी कृपा) इस शब्दमें षत्व नहीं होता । (वा० ४९११) * यद्यपि मुहुः (पुनः) इस शब्दका विसर्ग उदुपधावाला है और अप्रत्यय सकारके स्थानमें हुआहै, तो भी कवर्ग पवर्गके पहले उस विसर्गके स्थानमें षत्व नहीं होता मुहुःकामा (फिर इच्छा करनेवाली) ॥

१५६ तिरसोऽन्यतरस्याम् ।८।३।४२॥

तिरसः सो वा स्यात्कुप्वोः । तिरस्कर्ता । तिरःकर्ता ॥

१५६–कवर्ग, पवर्ग आगे रहते तिरस् शब्दके विसर्गके स्थानमें विकल्पसे सत्व होताहै । तिरः+कर्ता=तिरस्कर्ता । तिरः कर्ता (तिरस्कार करनेवाला) ॥

१५७ द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोर्थे ।८।३।४३॥

कृत्वोर्थे वर्तमानानामेषां विसर्गस्य षकारो वा स्यात्कुप्वोः । द्विष्करोति । द्विः करोति इत्यादि । कृत्वोर्थे किम् । चतुष्कपालः ॥

१५७–कृत्वस् (सुच्) प्रत्ययके अर्थ (कितनी एक बेर) को दिखानेवाले द्विः, त्रिः, चतुः, इन शब्दोंके विसर्गके स्थानमें विकल्प करके षकार होताहै, आगे कवर्ग, पवर्ग रहते । द्विष्करोति । द्विः करोति (दो बार करताहै) । इत्यादि जानना । कृत्वोऽर्थ क्यों कहा ? तो इससे भिन्न अर्थमें विकल्प न होकर षत्व ही होताहै, चतुः+कपालः=चतुष्कपालः (चार कपालमें संस्कृत पुरोडाश) ॥

१५८ इसुसोः सामर्थ्ये ।८।३।४४॥

एतयोर्विसर्गस्य षः स्याद्वा कुप्वोः । सर्पिष्करोति । सर्पिः करोति । धनुष्करोति । धनुः करोति । सामर्थ्यमिह व्यपेक्षा । सामर्थ्ये किम् । तिष्ठतु सर्पिः पिब त्वमुदकम् ॥

१५८–कवर्ग, पवर्ग आगे रहते आकांक्षा होनेपर इस्, उस् इनके सकारके स्थानमें होनेवाले विसर्गके स्थानमें विकल्प करके ष् होताहै । सर्पिष्करोति । सर्पिः करोति (घी बनाताहै) । धनुष्करोति । धनुः करोति । (धनुष बनाताहै)। सामर्थ्य शब्दका अर्थ यहां अन्वयका बोध होनेके निमित्त शब्दविशेषकी विशेष अपेक्षा होनाहै । ऐसी व्यपेक्षा होते ऐसा क्यों कहा ? तो व्यपेक्षा न होनेसे षत्व नहीं होता–तिष्ठतु सर्पिः, पिब त्वमुदकम् (घी रहने दो पानी पी लो) 'सर्पिः' और 'पिब' इनमें कुछ व्यपेक्षा नहीं इस कारण षत्व नहीं हुआ * ॥

* "अथात्वभिहितं समानाधिकरणमसमर्थवद्भवति" अर्थात् चाहे समान द्रव्यके बोधक शब्द हों तथापि जो उनमें क्रियापद न हो तो उसमें सामर्थ्य अर्थात् व्यपेक्षा नहीं है ऐसा समझना चाहिये । सर्पिः पवित्रम् इसमें षत्व नहीं हुआ ॥

१५९ नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य ।८।३।४५॥

इसुसोर्विसर्गस्याऽनुत्तरपदस्थस्य समासे नित्यं षः स्यात्कुप्वोः परयोः । सर्पिष्कुण्डिका । अनुत्तरपदस्थस्येति किम् । परमसर्पिःकुण्डिका । कस्कादिषु सर्पिष्कुण्डिकाशब्दोऽसमासे व्यपेक्षाविरहेऽपि षत्वार्थः, व्यपेक्षायां नित्यार्थश्च ॥

१५९–उत्तर पदमें स्थित न हों ऐसे इस् और उस् शब्दोंके विसर्गके स्थानमें सर्वदा षकार हो कवर्ग पवर्ग परे रहते समासमें । सर्पिः+कुण्डिका=सर्पिष्कुण्डिका (घीका पात्र) । उत्तरपदमें न हो ऐसा क्यों कहा? तो परमसर्पिःकुण्डिका (बडा घीका पात्र) । इसमें सर्पिः के पहले परम शब्द होनेसे विसर्गको षत्व नहीं होता । कस्कादि $\frac{८।३।४८}{१४४}$ गणमें सर्पिष्कुण्डिका शब्द जो आयाहै, सो तो इसलिये कि, समास न होते, व्यपेक्षा न होते, केवल सामीप्यसे ही उसमें षत्व हो, और जहां व्यपेक्षा हो वहां तो षत्व नित्य ही हो ॥

१६० अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ।८।३।४६॥

अकारादुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सकारादेशः स्यात्करोत्यादिषु परेषु न तूत्तरपदस्थस्य । अयस्कारः । अयस्कामः । अयस्कंसः । अयस्कुम्भः । अयस्पात्रम् । अयःसहिता कुशा अयस्कुशा । अयस्कर्णी । अतः किम् । गीःकारः । अनव्ययस्य किम् । स्वःकामः । समासे किम् । यशः करोति । अनुत्तरपदस्थस्य किम् । परमयशःकारः ॥

१६०–कृ धातु, कमि धातु, कंस, कुंभ, पात्र, कुशा, कर्णी, इनमेंसे कोईसा शब्द आगे होय तो अकारके आगे आनेवाले अनव्ययसम्बन्धी विसर्गके स्थानमें समासमें नित्य सकार होताहै, परन्तु उत्तर पदमें स्थित विसर्ग हो, तो सकार नहीं होता । अयस्कारः (लुहार) । अयः+कामः=अयस्कामः (लोहा चाहनेवाला) । अयस्कंसः (लोहेका पात्रविशेष) । अयस्कुम्भः (लोहेका घडा) । अयस्पात्रम् (लोहेका पात्र)। अयःसहिता कुशा अयस्कुशा (लोह सहित औदुम्बरशंकु)[1] अयस्कर्णी (लोहेका बाणविशेष) । अकारके आगे ऐसा क्यों कहा ? तो गीःकारः, इसमें सकार नहीं होता । अनव्यय क्यों कहा? तो स्वःकामः (स्वर्गकी इच्छा करनेवाला) । इसमें स्वः अव्यय है, इस कारण विसर्गके स्थानमें सकार न हुआ । स्वः इसका मूलरूप स्वर् ऐसा रेफान्त है । समासमें क्यों कहा ? तो अन्यत्र स् नहीं होता, जैसे–यशः करोति (यश करताहै) इस स्थलमें समास न होनेके कारण विसर्गके स्थानमें 'स्' न हुआ । अनुत्तरपदस्थ [illegible] तो उत्तर पदमें

१ छन्दोगाः स्तोत्रीयगणनार्थानौदुम्बराञ्शङ्कून् 'कुशा' इति व्यवहरन्ति ।

होनेसे 'स्' नहीं होता, जैसे परमयशःकारः (बडा यश करनेवाला) यहां उत्तरपदस्थ होनेके कारण विसर्गके स्थानमें 'स्' न हुआ ॥

१६१ अधःशिरसी पदे ।८।३।४७।

एतयोर्विसर्गस्य सादेशः स्यात्पदशब्दे परे। अधस्पदम्। शिरस्पदम्। समास इत्येव। अधः पदम्। शिरः पदम। अनुत्तरपदस्थस्येत्येव। परमशिरःपदम् ॥

कस्कादिषु च। भास्करः ॥

॥ इति विसर्गसंधिः ॥

१६१-पद (स्थान) शब्द आगे रहते अधः (नीचे) और शिरः (शिर) शब्दके विसर्गके स्थानमें स् आदेश होताहै। अधः+पदम्=अधस्पदम् (नीचे स्थान)।शिरः+पदम्=शिरस्पदम् (शिरस्थान) । इस सूत्रमें भी समासमें ही स् हो, यह कहना चाहिये, अन्यत्र विसर्ग रहेगा । अधः+पदम्=अधः पदम् । शिरः+पदम्=शिरः पदम्। (मस्तक, पद) यहां समास न होनेसे विसर्गको सकार न हुआ । यहां भी अनुत्तरपदमें स्थित विसर्गके स्थानमें ही सकार कहना चाहिये। उत्तरपदमें होनेसे न हो, परमशिरःपदम् (बडा मस्तक पद) यहां पूर्वपद परम होनेके कारण विसर्गको स् न हुआ। कस्कादि १४४ गणमें पाठके कारण आकारसे परे विसर्गको सकार होताहै । भाः+करः=भास्करः (सूर्य) यहां विसर्गको सकार हुआ ॥

इति विसर्गसन्धिप्रकरणम् ॥

अथ स्वादिसन्धिः ।

स्वौजसमौडिति सुप्रत्यये शिवस् अर्च्य इति स्थिते-

सु (स्), औ, जस् (अस्), अम्, औट् (औ) इत्यादि विभक्ति प्रत्यय आगे ४।१।२/१८३ सूत्रमें कहेंगे उनमेंका सु (स्) प्रथमाका एकवचन प्रत्यय शिव शब्दके आगे लानेसे शिव+स् रूप हुआ, उसके आगे अर्च्यः (पूज्य) शब्दके आनेसे शिवस्+अर्च्यः ऐसी स्थिति हुई, तव-

१६२ ससजुषो रुः । ८। २। ६६॥

पदान्तस्य सस्य सजुषशब्दस्य च रुः स्यात्। जश्त्वापवादः ॥

१६२-पदान्तमें स्थित सकार और सजुष् (खेलकी गुइयाँ) शब्दके षकारके स्थानमें रु हो। "झलां जशोऽन्ते ८।२।३९/८८" सूत्रका यह अपवाद है ॥

१६३ अतो रोरप्लुतादप्लुते।६।१।११३॥

अप्लुतादतः परस्य रो रुः स्यादप्लुतेऽति। भो भगो अघो इति प्राप्तस्य यत्वस्याऽपवादः। उत्वं प्रति रुत्वस्याऽसिद्धत्वं तु न भवति। रुत्वमनूद्य उत्वविधेः सामर्थ्यात् ॥

१६३-अप्लुत अकार आगे रहते अप्लुत अकारसे परे रु के स्थानमें 'उ' होताहै। ("ऋत उत् ६।१।१११/२७९" सूत्रसे उत्की अनुवृत्ति आतीहै)। यह सूत्र "भोभगोअघो० ८।३।१७/१६७" का अपवाद है अर्थात् इस सूत्रसे यकार प्राप्त है सो न हो । रुत्वविधायक सूत्र "ससजुषो रुः ८।२।६६/१६२" यह यद्यपि त्रिपादीका है और उत्वविधायक "अतो रो० ६।१।११३/१६३" यह सपादसप्ताध्यायीका है, तथापि उत्वसूत्रके प्रति रुत्व असिद्ध नहीं होता, कारण कि त्रिपादीके सूत्रसे होनेवाले रुत्वका सपादसप्ताध्यायीके सूत्रमें रोः ऐसा स्पष्ट उच्चारण करके उसके स्थानमें उत्वका विधान कियाहै । तब शिव उ+अर्च्यः ऐसी स्थिति हुई-* ॥

१६४ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ।६।१।१०२॥

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि परे पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात्। इति प्राप्ते ॥

१६४-अक् (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) के आगे प्रथमा और द्वितीया इन विभक्तियोंका अच् आवे तो दोनोंके स्थानमें मिल कर पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होताहै ("इको यणचि ६।१।७७/४७", "अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१/८५", "एकः पूर्वपरयोः ६।१।८४/६८" इन तीन सूत्रोंसे अच्, अक् और दीर्घ एकादेशकी अनुवृत्ति आतीहै) इसकी प्राप्ति होनेपर-

१६५ नादिचि। ६ । १ । १०४ ॥

अवर्णादिचि परे न पूर्वसवर्णदीर्घः। आद्गुणः। एङः पदान्तादति। शिवोऽर्च्यः। अत इति तपरः किम्। देवा अत्र । अतीति तपरः किम्। श्व आगन्ता। अप्लुतात्किम्। एहि सुस्रोत ३ अत्र स्नाहि। प्लुतस्याऽसिद्धत्वादतः परोयम्। अप्लुतादिति विशेषणे तु तत्सामर्थ्यान्नासिद्धत्वम्। तपरकरणस्य तु न सामर्थ्यं दीर्घनिवृत्त्या चरितार्थत्वात्। अप्लुते इति किम्। तिष्ठतु पय अ ३ मिदत्त। गुरोरनृत इति प्लुतः ॥

१६५-अवर्णसे इच् परे रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश न हो। इस कारण "आद् गुणः ६।१।८७/६९"से गुण होकर शिवो-अर्च्यः ऐसी स्थिति हुई, फिर "एङः पदान्तादति ६।१।१०९/८६" इस सूत्रसे पूर्वरूप हुआ, तब शिवोऽर्च्यः ऐसा रूप सिद्ध हुआ ।

इन दोनों सूत्रोंका आगे बार बार काम पडेगा इस कारण इनके नियम ध्यानमें रखने चाहिये।

"अतो रोः० ६।१।११३/१६३" इसमें अतः ऐसा तपर 'अ' क्यों कहा? तो दीर्घके आगे रु को उत्व नहीं हो। देव+अस्=अत्र इस स्थितिसे देवास्+अत्र ऐसी स्थिति होते स को रुत्व हुआ परन्तु फिर आगे उत्व न होने "भोभगो० ८।३।१७/१६७"

---

* पीछे रुत्वप्रकरणमें जो रु होताहै, उसके अनुनासिक अनुस्वार यह कार्य पृथक् हैं, वे उतनेहीके निमित्त हैं यहां उनका कुछ सम्बन्ध नहीं यह स्पष्ट करनेके निमित्त ही अत्र (यहां) ऐसा शब्द सूत्रमें उस स्थानपर दियाहै ८।३।२/१३६ पर ध्यान दो ॥

से रुके स्थानमें यत्व हुआ और "लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९/६७" से विकल्प करके यकारका लोप होकर देवा अत्र (बहुतसे देवता यहां) ऐसा रूप बना और देवायत्र ऐसा भी रूप बना ।

उसी सूत्रमें अति ऐसा तपर 'अ' क्यों कहा ? तो आगे आ आनेपर भी उत्व नहीं होता । श्वस्+आगन्ता मिल कर पूर्ववत् यत्व, और विकल्पसे य का लोप होकर श्व आगन्ता (कल आवेगा) ऐसा रूप सिद्ध हुआ ।

अप्लुत अकारके आगे क्यों कहा ? तो एहि सुस्रोत३ः+अत्र स्नाहि (हे सुस्रोत यहां आओ और न्हाओ) । सुस्रोतस् किसी मनुष्यका नाम है उसके संबोधनमें "दूरा दे च ८।२।८४/९५" इस सूत्रसे प्लुत हुआहै । इसमें सुस्रोतस्के सकारको रुत्व होकर "खरवसानयो० ८।३।१५/७६" से विसर्ग हुआ है, दूसरे सम्बोधनके कारण अकारको प्लुतत्व हुआ, परन्तु "अतो रो०" इस सूत्रके प्रति प्लुत असिद्ध होनेके कारण उसको यह केवल ह्रस्व अकारके आगे है ऐसा दीखताहै, तो यद्यपि वह अकार प्लुत है तो भी उसके आगे उत्वकी प्राप्ति होतीहै इसी कारण 'अप्लुतात्' ऐसा सूत्रमें ही विशेषण लगाया हुआहै इससे उसकी सामर्थ्यके कारण असिद्धत्व नहीं होता । तो फिर उस तपरको चरितार्थता कहां ? अर्थात् उसके कार्यको स्थान कहां है ? तो उसीसे दीर्घकी निवृत्ति होतीहै इतनी ही चरितार्थता उसके निमित्त बस है ।

प्लुत आगे न होते ऐसा क्यों कहा ? तो तिष्ठतु पय अ३ग्निदत्त (हे अग्निदत्त दूध रहने दे) यहां "गुरोरनृतो० ८।२।८६/९६" इससे प्लुत हुआहै, इस कारण रुको उत्व न होते "भोभगो० ८।३।१७/९७" से यत्व और "लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९/६७" से विकल्प करके यकारका लोप हुआ ॥

१६६ हशि च । ६ । १ । ११४ ॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्याद्धशि । शिवो वन्द्यः । रोरित्युकारानुबन्धग्रहणान्नेह । प्रातरत्र । धातर्गच्छ । देवास् इह इति स्थिते । रुत्वम् ॥

१६६–आगे 'हश्' रहते अप्लुत अकारसे परे रु के स्थानमें 'उ' होताहै । शिवस्+वन्द्यः इसमें स् को रुत्व, उत्व, गुण होकर शिवो वन्द्यः (शिव पूजनीय) ऐसा रूप बना । (रोरिति०) "अतो रोः०" इससे रु ऐसा उकारयुक्त शब्द लियागयाहै, इस कारण वह उकारानुबन्ध रेफ लेना चाहिये केवल रेफ नहीं लेना, इस कारण प्रातर्+अत्र इसमें मूलका ही रेफ होनेसे रेफके स्थानमें 'उ' नहीं होता, रेफही रहताहै । प्रातरत्र (यहां प्रातःकाल) । उसी प्रकार धातर्+गच्छ मिल कर धातर्गच्छ ऐसा हुआ (हे विधाता जाओ) ॥

देवास+इह ऐसी स्थिति रहते पहले १६२ से रुत्व हुआ, फिर–

१६७ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि । ८ । ३ । १७ ॥

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशः स्यादशि परे । असन्धिः सौत्रः । लोपः शाकल्यस्य । देवा इह । देवायिह । अशि किम् । देवाः सन्ति । यद्यपीह यत्वस्याऽसिद्धत्वाद्विसर्गो लभ्यते तथापि विसर्गस्य स्थानिवद्भावेन रुत्वाद्यत्वं स्यात् । न ह्ययमल्विधिः । रोरिति समुदायरूपाश्रयणात् । भोस्, भगोस्, अघोस्, इति सकारान्ता निपाताः । तेषां रोर्यत्वे कृते ॥

१६७–भो, भगो, अघो अथवा अवर्ण है पूर्व जिसके ऐसे रु के स्थानमें य् आदेश होताहै अश् परे होते अर्थात् भोस, भगोस्, अघोस्, अस्–आस्के सकारके स्थानमें हुए रु को यकारादेश होताहै अश् परे रहते । इस सूत्रमें भगो, अघो–आदिमें संधि नहीं की है तो (असन्धिः सौत्रः) सूत्रोंमें जो कुछ लौकिक व्याकरणानुसार न दीखे वह सौत्र अर्थात् सूत्रसम्बन्धी होनेके कारण ऋषिप्रणीत होनेसे निर्दोष माना जाताहै, वैसाही यहां भी है । देवास् इसमें सकारको रुत्व होकर इस सूत्रसे यत्व होनेके पश्चात् "लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९/६७" से विकल्प करके यकारका लोप हुआ, तब–देवा इह और देवायिह (बहुत देवता यहां) ऐसे दो रूप हुए । आगे अश् रहते क्यों कहा ? तो अश्से भिन्न वर्ण आगे रहते यत्व नहीं होता, देवास् सन्ति इसमें रुत्व होकर अगले सकारके कारण "खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५/७६" इससे देवाः सन्ति (देवता है) ऐसा सिद्ध हुआ । (यद्यपीति) यद्यपि रु के स्थानमें 'भोभगो०' इस सूत्रसे होनेवाला यत्व असिद्ध होकर "खरवसानयोः०" इससे विसर्ग प्राप्त होताहै, तो भी वह विसर्ग स्थानिवद्भावसे रु ही है इसी कारण उसके स्थानमें फिर इस से यत्व हो जायगा, परन्तु अल्विधि–(अर्थात् एकही वर्णके स्थानमें आदेश प्राप्त होकर कोई कार्य होने)में स्थानिवद्भाव १।१।५६/४९ नहीं होता, फिर यहां कैसे हुआ ? (उत्तर–) यहां रु अर्थात् (र् उ) इन दो वर्णोंके समुदायको मिलाकर आदेश कहा हुआहै इस कारण अल्विधि होती ही नहीं इसीसे ऐसा होनेमें कोई हानि नहीं* ॥

भोस्, भगोस्, अघोस् यह सकारान्त निपात हैं, उनके रुके स्थानमें यत्व करनेके पश्चात्–

१६८ व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य । ८ । ३ । १८ ॥

पदान्तयोर्वकारयकारयोर्लघूच्चारणौ वयौ वा स्तोऽशि परे । यस्योच्चारणे जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानां शैथिल्यं जायते स लघूच्चारणः ॥

१६८–अश् परे रहते पदान्तमें स्थित वकार और यकारके स्थानमें विकल्प करके लघूच्चारण घ् य् होतेहैं । जिसके उच्चारणमें जीभके अग्र, उपाग्र, मध्य, मूल इनकी शिथिलता होतीहै, वह लघूच्चारण कहाताहै यह शाकटायनका मत है ॥

* अवर्णके अन्तर्गत अ, आ, [illegible] ग्रहण होताहै, यह बात स्पष्ट है, परन्तु इस सूत्रको [illegible] कारण पूर्वके [illegible] सूत्रोंके कार्य प्रथम होकर, रहे अवकाशमें इसका कार्य होगा, इस पर ध्यान रखना चाहिये ॥

१६९ ओतो गार्ग्यस्य। ८।३।२०॥

ओकारात्परस्य पदान्तस्याऽलघुप्रयत्नस्य यकारस्य नित्यं लोपः स्यात्। गार्ग्यग्रहणं पूजार्थम्। भो अच्युत। लघुप्रयत्नपक्षे भोयच्युत। पदान्तस्य किम्। तोयम्॥

१६९-ओकारसे पर पदान्तमें स्थित अलघुप्रयत्नवाले (भोभगो० १६७ से हुए) यकारका नित्य लोप हो यह गार्ग्यका मत है। इसमें गार्ग्य शब्दसे विकल्प नहीं जानना, यह गार्ग्यग्रहण केवल पूजाके निमित्त है। भोस्+अच्युत ऐसी स्थिति होनेपर रुके स्थानमें यत्व होकर फिर उसका लोप होनेसे भो अच्युत (हे विष्णु) ऐसा रूप हुआ, और ८।३।१८/१६८ से लघुप्रयत्न होते यलोप न होनेपर भोयच्युत ऐसा रूप हुआ।

पदान्त यकारके स्थानमें क्यों कहा ? तो अपदान्तमें लोप नहीं होता, तोयम् (जल) इसमें यकारका लोप न हुआ॥

१७० उञि च पदे। ८।३।२१॥

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोप उञि परे। स उ एकाग्निः। पदे किम्। तन्त्रयुतम्। वेञः संप्रसारणे रूपम्। यदि तु प्रतिपदोक्तो निपात उञिति ग्रहीष्यते तर्ह्युत्तरार्थं पदग्रहणम्॥

१७०-अवर्णसे पर पदान्तमें स्थित यकार और वकारका लोप हो उञ् (उ) परे रहते। सस् उ एकाग्निः इसमें सुके स्थानमें जो य् होताहै, उसका लोप होकर स उ एकाग्निः (वही एक अग्नि) ऐसा रूप हुआ, इसमें विकल्प नहीं हुआ। उ यह एकाच् निपात होनेसे प्रगृह्य है, इस कारण अगले वर्णसे उसकी सन्धि नहीं हुई।

(पदे किम्) पदे क्यों कहा ? तो तन्त्रयुतम्, यह 'वेञ् (वे) तन्तुसन्ताने' (तन्तुबुनना) इस धातुको सम्प्रसारण ६।१।१६/१४१२ होकर उतम् (उञ्तम्) ऐसा जो क्त प्रत्ययान्त रूप होताहै, वह तन्त्रे इसके आगे होनेसे उसका उञ् (उ) इतना ही अंश पद न होनेसे तन्त्रय् इसके यकारका लोप न होकर तन्त्रयुतम् (तंत्रमें गुथा हुआ) ऐसा संधिका रूप होताहै। यदि प्रतिपदोक्त (उञ् शब्दसे उच्चारण किया हुआ) जो 'उ' निपात उसीका ग्रहण किया जाय तो 'पदे' जो अधिक है उसको "ङमो ह्रस्वादचि० ८।३।३२/१३४" यह जो अगला सूत्र है उसके लिये जानना चाहिये॥

१७१ हलि सर्वेषाम्। ८।३।२२॥

भोभगोअघोअपूर्वस्य लघ्वलघूच्चारणस्य यकारस्य लोपः स्याद्धलि सर्वेषां मतेन। भो देवाः। भो लक्ष्मि। भो विद्वद्वृन्द। भगो नमस्ते। अघो याहि। देवा नम्याः। देवा यान्ति। हलि किम्। देवायिह॥

१७१-आगे हल् होते भो, भगो, अघो और अ, इनके आगे सकारके स्थानमें प्राप्त हुआ जो लघुउच्चारण और अलघुउच्चारण यकार उसका सब आचार्योंके मतमें लोप होताहै। भोस्+देवाः=भो देवाः (हे देवताओ)। भोस्+लक्ष्मि=भो लक्ष्मि (हे लक्ष्मी)। भोस्+विद्वद्वृन्द=भो विद्वद्वृन्द (हे विद्वान्‌समूह)। भगोस्+नमस्ते=भगो नमस्ते (हे भगो तुमको प्रणाम है) अघोस्+याहि=अघो याहि (अरे पापी तू जा)। देवास्+नम्याः=देवा नम्याः (देवता पूज्य)। देवास्+यान्ति=देवा यान्ति (देवता जातेहैं)।

(हलि किम्) आगे हल् होते ऐसा क्यों कहा ? तो अच् परे रहते यकारका लोप नहीं होगा, जैसे-देवास्+इह=देवायिह (देवता यहां) और "लोपः शाकल्यस्य" इससे विकल्प करके यकारका लोप होकर देवा इह ऐसा भी रूप होताहै॥

१७२ रोऽसुपि। ८।२।६९॥

अह्नो रेफादेशः स्यान्न तु सुपि। रोरपवादः। अहरहः। अहर्गणः। असुपि किम्। अहोभ्याम्। अत्राहन्निति रुत्वम्॥ रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्॥ * ॥ अहोरूपम्। गतमहो रात्रिरेषा। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वादहोरात्रः। अहो रथन्तरम्। अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः॥ * ॥ विसर्गापवादः। अहर्पतिः। गीर्पतिः। धूर्पतिः। पक्षे विसर्गोपध्मानीयौ॥

१७२-अहन् शब्दके नकारके स्थानमें रेफ आदेश हो, यदि सुप् परे हो तो न हो। "सु औ जस्० ४।१।२/१८३" सूत्रमें कहे हुए २१ विभक्तिप्रत्ययोंको सुप् कहतेहैं। 'अहन्' इसको पदान्तमें रुत्व ८।२।६८/४४३ होताहै, उसका यह अपवाद है। (यहां "अहन् ८।२।६८/४४३" सूत्रसे अहन् शब्दकी अनुवृत्ति आतीहै) *॥

अहन् शब्दके आगे जो प्रथमाका सु (स्) प्रत्यय, उसका "स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३/३१९" इससे लुक् होगयाहै, इस कारण उसके आगे सुप्रत्यय न होनेसे अहर् ऐसा रूप हुआ, तब अहर्+अहर् की सन्धि होकर अहरहर् और आगे अवसान होनेसे अहरहः रूप हुआ (दिनदिन)। इसी प्रकार अहन्+गणः=अहर्गणः (दिनोंका समुदाय)।

आगे सुप् न होते ऐसा क्यों कहा ? तो सुप् रहते रेफ नहीं होता, यथा-अहन्+भ्याम्=अहोभ्याम् (दो दिन पीछे) यहां भ्याम् प्रत्ययके कारण पदान्तत्वके होनेसे "अहन् ८।२।६८/४४३" से रुत्व हुआहै।

* रेफका अर्थ र् और रुका अर्थ भी र् है परन्तु उसमें भेद यह है कि, जब रुका उच्चारण हो तब वहां उत्व, वा विसर्ग यह अलग् २ कार्य होतेहैं, और वैसे रेफको नहीं होते, वह सन्धिमें वैसा ही रहताहै, अथवा अवसान होते उसको विसर्ग होताहै, यह बात पिछले सब प्रकरणोंसे सहजही ध्यानमें आजायगी॥

* रूप, रात्रि, रथन्तर, यह शब्द आगे होते अहन् शब्दको रुत्व होताहै (४८४७ वा०) यथा–अहन्+रूपम्=अहोरूपम् (दिवसका रूप) । गतमहो रात्रिरेषा (दिन बीता यह रात है).।

(एकदेशेति) शब्दके किसी एक अंशमें विकार हुआ हो तो भी वह शब्द उससे अन्य नहीं होता, मूल शब्दके समान ही रहताहै, ऐसी परिभाषा है । रात्रिशब्दका ही रात्रः रूपान्तर है उसके पहले अहन् शब्दको रुत्व ही होताहै, इस कारण अहोरात्रः (दिन और रात) । अहन्+रथन्तरम्=अहोरथन्तरम् (दिनमें रथसे जानेवाला) (साम)।* " अहरादीनाम् " (वा० ४८५१) आगे पति आदि शब्द आवें तो अहन् इत्यादिकोंको विकल्पसे रेफ होताहै, यह विसर्गका अपवाद है । अहन्+पतिः=अहर्पतिः (सूर्य) । गिर्+पतिः=गीर्पतिः (बृहस्पति) । धुर्+पतिः=धूर्पतिः (धुरंधर) । और पक्षमें विसर्ग अथवा उपध्मानीय होतेहैं ॥

१७३ रो रि । ८ । ३ । १४ ॥

रेफस्य रेफे परे लोपः स्यात् ॥

१७३–रेफ आगे रहते रेफका लोप होताहै । (" ढो ढे लोपः ८।३।१३ " इससे लोपकी अनुवृत्ति आतीहै) ॥

१७४ ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोणः ६ । ३ । १११ ॥

ढरेफौ लोपयतीति तथा तस्मिन्वर्णेऽर्थाद् ढकाररेफात्मके परे पूर्वस्याणो दीर्घः स्यात् । पुना रमते । हरी रम्यः । शंभू राजते । अणः किम् । तृढः । वृढः । तृहू हिंसायाम् । वृहू उद्यमने । पूर्वग्रहणमनुत्तरपदेऽपि पूर्वमात्रस्यैव दीर्घार्थम् । अजर्घाः । लीढः । मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रो रीति लोपे च प्राप्ते ॥

१७४–ढकार और रेफका जो लोप करै उसका नाम ढ्रलोप अर्थात् ढकार और रेफको लोप करनेवाले ढकार और रेफ आगे रहते पूर्व अण्को दीर्घ होताहै। (यहां अण् प्रथम णकारसे लेना) । पुनर्+रमते=पुना रमते (फिर खेलताहै) । हरिर्+रम्यः=हरी रम्यः (विष्णु मनोहर है) । शम्भुर्+राजते=शम्भू राजते (शिव शोभित होतेहैं) ।

(अणः किम्)अण्(अ इ उ) को दीर्घ क्यों कहा?तो अन्यत्र दीर्घ नहीं होता, यथा–तृढ्+ढः=तृढः (मरा हुआ) । वृढ्+ढः=वृढः (उद्युक्त) ' तृहू (तृह्) हिंसायाम् ' (मारना), ' वृहू (वृह्) उद्यमने ' उद्योग करना) इन धातुओंसे यह शब्द बनेहैं, इनको दीर्घ नहीं होता ।

(पूर्वेति) अनुत्तर पदमें अर्थात् एक ही पदके दो रेफ वा दो ढकार हों तो वहां भी पूर्व ही अण्को दीर्घ होताहै, यह दिखानेके निमित्त सूत्रमें 'पूर्वस्य' कहाहै । अजर्घाः– ' गृधु–अभिकांक्षायाम्' (इच्छा करनी) । गृध–यङ् "यङोऽचिच २।४।७४/२६५० " इससे यङ्का लुक् "चर्करीतञ्च " इससे यङ्लुक्को अदादिमें होनेके कारण " भूवादयो धातवः " इससे धातुसंज्ञा हुई " सन्यङोः " इससे द्वित्व होकर गृध् गृध् हुआ, तब अभ्यास संज्ञा होकर " उरत् " इससे अभ्यास ऋवर्णको रपर उकार हुआ " हलादिः शेषः " इससे रेफ और धकारका लोप हुआ " कुहोश्चुः ७।४।६२ " इससे अभ्यास ग को ज होगया, " रुग्रिकौ च लुकि " ७।४।९१/२६५२ " इससे अभ्यासको रुक् (र्) का आगम होकर जर्गृधू हुआ तब "लुङ्लङ् ६।४।७१/२२०६" इससे अट्का आगम, और लङ्के स्थानमें सिप् " इतश्च ३।४।१००/२२०७ " इससे सिप्के इकारका लोप और "एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८।२।३७/३२६" इससे जर्गृधके गकारको घकार,ऋकारको गुण रपर अकार हुआ, सकारको "हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् ६।१।६८/२५२ " इससे लोप हुआ " झलाञ्जशोऽन्ते ८।२।३८/८४ " इससे ध् को द् हुआ द् को"दश्च ४।२।७५/२४६८ " इससे रु (रु) हुआ"रो रि ८।३।१४/१७३"इससे रेफका लोप और"ढ्रलोपे पूर्वस्य० ६।३।१११/१७४ " इससे पूर्व अण्को दीर्घ आकार होकर अजर्घार् हुआ तब " खरवसानयो० ४।३।१५" इससे रेफको विसर्ग होकर अजर्घाः ऐसा रूप बना ॥

लीढः–' लिह्–आस्वादने' (स्वादलेना) इसके आगे क्त प्रत्यय आयां तब लिह्+क्त=लिह्+त फिर "हो ढः८।२।३१" से लिढ्+त तब " झषस्तथोर्धोऽधः ८।२।४० " से लिढ्+ध=तब " ष्टुना ष्टुः ८।४।४४ " से लिढ्+ढ फिर " ढो ढे लोपः ८।३।१३ " से ढकारका लोप फिर इसी १७४ सूत्रसे पूर्व अण्को दीर्घ होकर लीढः (चाटा हुआ) रूप हुआ । यहां ढलोपके प्रति ष्टुत्व असिद्ध न होगा कारण कि ढकारके परे लोप विधिका सामर्थ्य होनेसे ॥

मनस्+रथः इसमें रुत्व करनेके पश्चात् " हशि च ६।१।११४/१६६ " से उत्व और " रो रि ८।३।१४/१७३ " से लोप इस प्रकारसे दो कार्य प्राप्त हुए, तब—

१७५ विप्रतिषेधे परं कार्यम् ।१।४।२॥

तुल्यबलविरोधे सति परं कार्यं स्यात् । इति लोपे प्राप्ते। पूर्वत्रासिद्धमिति रो रीत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव । मनोरथः ॥

१७५–तुल्यबलविरोध उपस्थित होनेपर अर्थात् किसी नियमका जो समानबल विरोध प्राप्त हो तो उन दोनोंमेंसे पर अर्थात् अगले सूत्रका कार्य करना चाहिये तब इस सूत्रके द्वारा लोप प्राप्त होनेपर "पूर्वत्रासिद्धम्-८ । २ । १ " इस सूत्रसे "रो रि ८ । ३ । १४ " के असिद्धत्वके कारण उत्व ही हुआ, तब मनोरथः (मनकी इच्छा) ऐसा रूप सिद्ध हुआ ॥

---

१ हरिस् और शम्भुस् ऐसे आदिरूप थे, सकारको रुत्व होकर हरिर् और शम्भुर् यह रूप हुआहै ॥ २ तृढः–तृह+तस् (तः) इसमें और वृढः–वृह+तस् (तः) इसमें लीढः के सब सूत्र क्रमसे लगेहैं । परंतु लोप होनेके पश्चात् अण् न होनेसे केवल ऋको दीर्घ नहीं हुआ।

१ भिन्न भिन्न जगह दोनों सूत्रोंका कार्य होता हो और एक जगह दोनोंकी साथ ही प्रवृत्ति हो उसको तुल्यबलविरोध कहतेहैं ॥

१७६ एतत्तदोः सुलोपोकोरनञ्समासे हलि । ६ । १ । १३२ ॥

अककारयोरेतत्तदोयः सुस्तस्य लोपः स्याद्धलि न तु नञ्समासे । एष विष्णुः । स शंभुः । अकोः किम् । एषको रुद्रः । अनञ्समासे किम् । असः शिवः । हलि किम् । एषोत्र ॥

१७६–ककारयुक्त न हों ऐसे जो एतद् (यह) और तद् (वह) इन दोनों शब्दोंके आगे का जो सु (स्) उसका हल् परे रहते लोप हो परन्तु नञ्समासमें न हो । यथा–एषस्+विष्णुः=एष विष्णुः (यह विष्णु) । सस्+शम्भुः=स शम्भुः (वह शिव) ।

ककारयुक्त न हों ऐसा क्यों कहा ? तो ककार रहते लोप नहीं होता, यथा–एषकस्+रुद्रः=एषको रुद्रः (यह रुद्र) । नञ्समासमें न हों ऐसा क्यों कहा? तो असस्+शिवः=असशिवः (वह शिव नहीं) । यहां नञ्समास होनेके कारण सकारका लोप नहीं हुआ । आगे हल् होते ऐसा क्यों कहा ? तो आगे अच् होते लोप नहीं होता, यथा–एषस्+अत्र=एषोऽत्र (वह यहां) इस प्रकार संधि हुई ॥

१७७ सोचि लोपे चेत्पादपूरणम् । ६ । १ । १३४ ॥

स इत्येतस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चल्लोपे सत्येव पूर्येत । सेमामविड्ढिप्रभृतिम् । इह ऋक्पाद एव गृह्यत इति वामनः । अविशेषाच्छ्लोकपादोपीत्यपरे । सैष दाशरथी रामः । लोपे चेदिति किम् । स इष्क्षेति । स एवमुक्त्वा । सत्येवेत्यवधारणं तु स्यश्छन्दसि बहुलमिति पूर्वसूत्राद्बहुलग्रहणानुवृत्त्या लभ्यते । तेनेह न । सोहमाजन्मशुद्धानाम् ॥

॥ इति स्वादिसन्धिः ॥

१७७–यदि लोप करनेपर ही चरणकी पूर्ति होती हो तो अच् परे रहते सः इस पदके सु (स्) विभक्तिका लोप हो अन्यत्र नहीं, यथा–"सेमामविड्ढिप्रभृतिंयईशिषेऽयाविधेमनवयाम्-हागिरा । यथानोमीढ्रान्स्तवतेसखातवबृहस्पतेसीषधः सोतनोमतिम्" (ऋ० मं० २ सू० २४ मं० १ ।) इसमें इमाम् शब्द आगे रहते पादपूर्तिके निमित्त सस्के सकारका लोप हुआ है तब सस्+ इमाम्=स+ इमाम् फिर गुण होकर सेमाम् हुआ. यहां ऋग्वेदका ही पाद लेना चाहिये ऐसा वामन नाम वैयाकरणका मत है, परन्तु 'अविशेषात्' ऋक्पाद ही लेना ऐसा कहीं कहा हुआ नहीं है, इस कारण श्लोकपाद भी ले सकतेहैं, ऐसा दूसरे वैयाकरण कहतेहैं, यथा–"सैष दाशरथी रामः सैष राजा युधिष्ठिरः ।
सैष कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबलः ॥"

इस श्लोकमें भी सस्+एषः इसमें सुका लोप होकर स+एषः हुआ फिर "वृद्धिरेचि०. ७२" से सैषः ऐसी संधि हुई (लोपे चेदिति) लोप होनेसे ही पाद पूर्ण होताहै ऐसा क्यों कहा ? तो पादपूर्तिका बखेडा न हो तो लोप न हो, यथा–"स इत्क्षेति सुधित ओकसिस्वेतस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् । तस्मै विशः स्वयमेवानमन्ते यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति (ऋ० म० ४ सू० ५० ऋ० ८ ।) इसमें स इत् इसमें सुका लोप नहीं होता, परन्तु "भोभगो० ८।३।१७/१६७" से सकारको यत्व होकर उसका "लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९/६७" से विकल्पसे लोप होकर स इक्षेति ऐसा रूप हुआ, इसमें यत्व और यकारका लोप असिद्ध होनेसे फिर "आद् गुणः ६।१।८७/६९" नहीं होता । इसी प्रकारसे "स एवमुक्त्वा०" (रघु० स० ३ श्लो० ५२) इसमें जानो । "स्यश्छन्दसि बहुलम् ६।१।१३३/३५२६" इस सूत्रसे बहुलग्रहणकी अनुवृत्तिसे लोप होते ही पाद पूर्ण होता हो तो ऐसा (एव) निश्चयार्थ प्राप्त होताहै (तेनेह न) इस कारण अगले उदाहरणमें सु का लोप नहीं होता यथा–"सोऽहमाजन्मशुद्धानाम्" यहां सस्+अहम्=सरु+अहम्–सउ+अहम्=सो+अहम्–सोऽहम् ("एङः पदान्तादति") से अकारको पूर्व रूप हुआ, तब 'सोहमाजन्मशुद्धानाम्' (रघु० स० ९ श्लो० ५) *॥

इति स्वादिसन्धिप्रकरणम् ॥

अथाजन्तपुँल्लिङ्गाः ।

१७८ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् । १ । २ । ४५ ॥

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वाऽर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात् ॥

१७८–धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्तभिन्न जो अर्थवान् (जिसका अर्थ हो ऐसा) शब्द, उसकी प्रातिपदिक संज्ञा हो * ॥

---

* यहां साहम् इस सूत्रसे और सोऽहम् पिछले सूत्रोंसे सिद्ध होताहै परन्तु अक्षर दोनोंमें बराबर रहतेहैं, तब बहुलके कारण यहां साहम् न होकर सोऽहम् हुआ अर्थात् इस सूत्रके नियमकी प्राप्ति न हुई । तत्त्वबोधिनीकार कहतेहैं कि बहुलग्रहणसे यह प्रयोजन है कि, कहीं पादपूर्तिके विना भी लोप होताहै, यथा–स+अस्मै+अरम्–का सास्मा अरम् हुआहै और जो 'सोहमाजन्म०' पर पादपूर्तिका निश्चयार्थ लातेहैं, उनको सास्माअरम् इत्यादिमें सुलोपकी अनापत्ति होगी, इससे तत्त्वबोधिनीके अनुसार दोनों ठीक रहतेहैं ॥

संधि करते समय सामासिक शब्दोंका विग्रह उनके अवयवोंकी विभक्ति इत्यादिका ज्ञान होना बहुत उपयोगी है, परन्तु वह कहने लगें तो बडा विस्तार होनेसे सीखनेवाला गडबडमें पड जायगा, इससे ऐसा न किया, तो भी अभ्यास होते २ आगे समझमें आताजायगा ॥

* प्रत्यय पदकी आवृत्ति होनेसे एक प्रत्ययपद प्रत्ययपर और दूसरा प्रत्ययान्तपर होताहै, इस कारण प्रत्ययान्त शब्द वृत्तिमें अधिक बढायाहै ॥

अर्थवत्का ग्रहण क्यों किया? तो 'धनम्,वनम्' यहां प्रातिपदिक संज्ञा न होनेसे प्रत्येक वर्णसे स्वादिकी उत्पत्ति नहीं होती । अधातुग्रहण क्यों किया ? तो 'अहन्' यहां प्रातिपदिकसंज्ञा न होनेसे–

१७९ कृत्तद्धितसमासाश्च।१।२।४६॥

कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञाः स्युः । पूर्वसूत्रेण सिद्धे समासग्रहणं नियमार्थम्। यत्र संघाते पूर्वो भागः पदं तस्य चेद्भवति तर्हि समासस्यैव । तेन वाक्यस्य न ॥

१७९–अन्तमें कृत्प्रत्यय और तद्धितप्रत्ययवाले शब्द तथा समासकी प्रातिपदिक संज्ञा हो ।

(पूर्वेति०) पूर्वसूत्रके द्वारा समासमें प्रातिपदिकत्व सिद्ध होनेपर भी फिर इस सूत्रमें समासग्रहण, नियमके कारण कियाहै अर्थात् जिस वर्णसंघातमें पूर्व भाग पद हो तो उसकी यदि प्रातिपदिकसंज्ञा हो तो वह समासहीकी संज्ञा जाननी चाहिये यह बात दिखानेको फिर समासग्रहण कियाहै इससे यह विदित हुआ कि वाक्यकी प्रातिपदिकसंज्ञा नहीं होती * ॥

१८० प्रत्ययः । ३ । १ । १ ॥

आ पञ्चमपरिसमाप्तेरधिकारोयम् ॥

१८०–यह अधिकारसूत्र है, यह तीसरे अध्यायके प्रारम्भसे पांचवें अध्यायके अन्ततक चलताहै अर्थात् इतने अवकाशमें प्रत्यय कहेहैं ॥

१८१ परश्च । ३ । १ । २ ॥

अयमपि तथा ॥

१८१–प्रत्यय आगे लगताहै, यह नियम दिखानेको यह अधिकारसूत्र है, इसका भी पांचवें अध्यायके अन्ततक अधिकार है ॥

१८२ ङ्याप्प्रातिपदिकात् ।४।१।१॥

ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्चेत्यापञ्चमपरिसमाप्तेरधिकारः । प्रातिपदिकग्रहणं लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणमित्येव सिद्धे ङ्याब्ग्रहणं ङ्याबन्तात्तद्धितोत्पत्तिर्यथा स्यात् ङ्याब्भ्यां प्राङ् मा भूदित्येवमर्थम् ॥

१८२–ङीप्रत्ययान्त, आप्प्रत्ययान्त और प्रातिपदिक इन सम्पूर्ण पदोंका अधिकार पाँचवें अध्यायकी समाप्तितक जानना । ङी और आप् यह प्रत्यय आगे लगनेसे स्त्रीवाचक नाम सिद्ध होतेहैं, वे प्रत्यय आगे स्त्रीप्रकरण (सि० ४५३–५३१) में कहेहैं, ङीके अन्तर्गत ङीप्,ङीष्, ङीन् ऐसे तीन जानने ।

(प्रातिपदिकेति) प्रातिपदिकके ग्रहणमें लिङ्गबोधक प्रत्यय विशिष्टका ग्रहण होताहै । इस परिभाषाके रहते फिर ङ्यन्त और आबन्त पृथक् पढनेका क्या कारण ? तो उत्तर यह है कि ङ्यन्त और आबन्त शब्दोंको जब तद्धित प्रत्यय लगतेहैं तब वे तद्धितप्रत्यय ङी, आप् प्रत्ययोंके अनन्तर लगने चाहिये उनके पूर्वमें न लगाये जायँ यह दिखानेको कहाहै * ॥

१८३ स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् । ४ । १ । २ ॥

ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः । सुङस्योरुकारेकारौ जशटङपाश्चेतः ॥

१८३–ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक, इनके आगे सु है आरम्भमें जिनके ऐसे स्वादि प्रत्यय लगतेहैं । स्वादि प्रत्यय यहांसे पांचवें अध्यायके अन्ततक हैं, परन्तु यहां इस प्रस्तुत सूत्रके प्रत्ययोंके विषयमें ही कहाहै, यह प्रत्यय इस प्रकार हैं–

सु, औ, जस् । अम्, औट्,शस् । टा, भ्याम्, भिस् । ङे, भ्याम्, भ्यस् । ङसि, भ्याम्, भ्यस् । ङस्, ओस्, आम् । ङि, ओस्, सुप् । इनमें सुका उ, ङसिका इ और ज्, श्, ट्, ङ्, प्, यह इत् हैं * ॥

१८४ विभक्तिश्च । १ । ४ । १०४ ॥

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः । तत्र सु औ जस् इत्यादीनां सप्तानां त्रिकाणां प्रथमादयः सप्तम्यन्ताः प्राचां संज्ञास्ताभिरिहापि व्यवहारः ॥

१८४–सुप् (इस प्रत्याहारमें आनेवाले पूर्व सूत्रमेंके सब प्रत्यय) और तिङ् $\frac{३।४।७८}{२१५४}$ में कहे हुए प्रत्यय इनकी विभक्ति संज्ञा हो । उसमें सु, औ, जस् इत्यादि तीन २ प्रत्ययोंका एक २ त्रिक अनुक्रमसे प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी यह संज्ञाएं हैं, ऐसे यह सब २१ विभक्ति हुईं, इनकी जैसे पुराने वैयाकरणोंकी नियमित की हुई संज्ञा है वही संज्ञा यहां भी रक्खी हैं ॥

१८५ सुपः १ । ४ । १०३ ॥

सुपस्त्रीणित्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि स्युः ॥

१८५–सुप् प्रत्याहारमें तीन २ प्रत्ययोंकी जो एक २ विभक्ति कहीहै, उनमें पहले प्रत्ययकी एकवचन, दूसरेकी

–न्का लोप नहीं होता । अप्रत्ययग्रहण क्यों किया? तो हरिषु करोषि यहां प्रत्ययको प्रातिपदिक न होनेसे “सात्पदाद्योः ८।३।१११” से षत्वका निषेध नहीं हुआ । यहां वृत्तिमें प्रत्ययान्तको छोडकर ऐसा क्यों किया ? तो हरिषु करोषि यहां ही प्रत्ययसहितको प्रातिपदिक संज्ञा न होनेसे “सुपो धातु०” से विभक्तिका लोप नहीं होता ॥

* पूर्वसूत्रमें प्रत्ययान्तका निषेध होने भी कृदन्त और तद्धितान्त प्रातिपदिक होतेहैं यह दिखानेको यहां उनका उच्चारण कियाहै । कृत् (सि० २८२९–३३८६), तद्धित (१०७२–२१३८) और समास (६४७–१०७१) तकके सूत्रोंके देखनेसे ध्यानमें आवेगा ॥

* “प्रातिपदिकग्रहणे०” इस परिभाषाका फल “बहु.” यह जानना यहां प्रत्ययान्त होनेसे भी स्वादिकी उत्पत्ति हुई । ङ्यन्त और आबन्तसे तद्धितकी उत्पत्तिका फल एतिका, एनिका । आर्यिका आर्येका यह जानना । (स्त्री प्रत्ययमें खुलासा मालूम होगा) ॥

* तीसरे, चौथे, पांचवें अध्यायमें जो प्रत्यय कहेहैं, उनमें तीसरे अध्यायमें धातुप्रत्यय और चौथे पांचवें अध्यायोंमें नाममें लगनेवाले प्रत्यय हैं ॥

द्विवचन और तीसरेकी बहुवचन संज्ञा हो । ("तिङस्त्रीणित्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १ । ४ । १०१ ।" "तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १ । ४ । १०२" इन दो सूत्रोंसे त्रीणित्रीणि और एकशः, एकवचनद्विवचनबहुवचनानि इनकी अनुवृत्ति आतीहै) * ॥

१८६ द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने।१।४।२२।

द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः ॥

१८६–द्वित्व (दो संख्या), एकत्व (एक संख्या) कहनेकी इच्छामें द्विवचन और एकवचनकी योजना करतेहैं अर्थात् एकत्वकी विवक्षामें एकवचन और द्वित्वकी विवक्षामें द्विवचन प्रत्यय लगतेहैं ॥

१८७ बहुषु बहुवचनम् ।१।४।२१॥

बहुत्वे एतत्स्यात् । रुत्वविसर्गौ । रामाः ॥

१८७–बहुत्व (दोसे अधिक संख्याके भाव) में बहुवचन आताहै । इस प्रकारसे वचनोंकी व्यवस्था है । विभक्तिके प्रयोग कारकप्रकरणमें (सि० ५३२ से–६४६ तक) कहे हैं वहां विस्तार देखलेना *॥

प्रथम अकारान्त पुँल्लिङ्ग राम शब्द, (रमन्ते योगिनोऽस्मिन् 'रमु–क्रीडायाम्' घञ्, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वम्) योगी जिसमें रमण करतेहैं इस अर्थमें रम् (क्रीडा करना) धातुसे घञ् प्रत्यय, उपधावृद्धि होकर राम यह कृदन्त शब्द सिद्ध हुआ और कृदन्त होनेसे प्रातिपदिक हुआ तब १८३ से स्वादि प्रत्ययकी प्राप्ति है, इस प्रकारसे प्रत्येक शब्दोंकी व्युत्पत्ति जानने योग्य है, परन्तु अभी वह प्रसंग कठिन है इस कारण विभक्तिनामक प्रस्तुत विषयपर विशेष ध्यान देंगे हां! कृदन्त और तद्धितान्तमें व्युत्पत्तिपर विशेष लक्ष दिया जायगा ।

---

* यह सब विभक्ति, ध्यानमें आनेके निमित्त नीचे लिखतेहैं और उनके इत् कोष्ठमें धरतेहैं–

विभक्ति.	एकवचन.	द्विवचन.	बहुवचन.
प्रथमा	सु (उ)	औ	(ज्) अस्
द्वितीया	अम्	औ (ट्)	(श्) अस्
तृतीया	(ट्) आ	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङ् (ए)	भ्याम्	भ्यस्
पंचमी	(ङ्) अस् (इ)	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	(ङ्) अस्	ओस्	आम्
सप्तमी	(ङ्) इ	ओस्	सु (प्)

इसमें सुट् प्रत्याहार कहनेसे सु, औ, जस्, अम्, औट्, पहले पांच प्रत्यय लेने। ङित् अर्थात् ङकार इतवाले कहनेसे चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी और सप्तमीके एकवचनके प्रत्यय लेने । सु भ्याम् भिस् भ्यस् और सुप् यह हलादि हैं और इतर अजादि हैं यह भली भांति ध्यानमें रखना चाहिये ॥

* यहां नामोंमें विभक्ति प्रत्यय लगाकर दिखानेका प्रकरण है, इसमें अजन्त और हलन्त दो भेद हैं और इन प्रत्येकोंमें पुँल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग यह तीन २ भेद होकर दोनोंमें छः भेद होतेहैं, यह सब मिलकर षड्लिङ्गप्रकरण कहाताहै, इनमें चतुर्दश सूत्रोंके अकारादि वर्णक्रमसे शब्द लियेगयेहैं, उनपर विभक्ति लगाकर दिखायागयाहै, इसीसे सरल और कठिन शब्दोंका एकत्र समावेश होगयाहै ॥

प्रथम राम शब्दके आगे प्रथमाका एकवचन सु (स्) प्रत्यय लाकर रामस् हुआ, फिर सकारको $\frac{८।२।६६}{१६२}$ से रुत्व फिर रुके र्को $\frac{८।३।१८}{७६}$ से विसर्ग करनेपर रामः (एक राम) यह पद सिद्ध हुआ ॥

अब प्रथमाके द्विवचनमें औ प्रत्यय लाकर दो बार राम शब्द लानेकी आवश्यकतासे रामराम औ ऐसी स्थिति हुई, तब–

१८८ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ । १ । २ । ६४ ॥

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते । प्रथमयोः पूर्वसवर्णः । नादिचि । वृद्धिरेचि । रामौ ॥

१८८–एक विभक्तिके होनेपर समानरूप प्रातिपदिकमें एक ही शेष रहेगा और सबका लोप होजायगा । तब 'राम+औ' यही शेष रहा, तब "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः $\frac{६।१।१०२}{१६४}$" प्रथमा और द्वितीया इन प्रत्ययोंके आगे होनेसे पूर्वसवर्ण दीर्घ होताहै, परन्तु उसका बाधक "नादिचि $\frac{६।१।१०४}{१६५}$" है, तब "वृद्धिरेचि ६।१।८८" से वृद्धि होकर रामौ (दो राम) पद सिद्ध हुआ ॥

राम+जस् (बहुवचनका प्रत्यय) –

१८९ चुटू । १ । ३ । ७ ॥

प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः । इति जस्येत्संज्ञायाम् ॥

१८९–प्रत्ययके आदि भागमें रहनेवाले चवर्ग और टवर्गमेंके वर्ण इत् होतेहैं । इससे जकारकी इत्संज्ञा होकर राम+अस् हुआ–॥

१९० न विभक्तौ तुस्माः।१।३।४॥

विभक्तिस्थास्तवर्गसकारमकारा इतो न स्युः। इति सकारस्य नेत्वम् ॥

१९० विभक्तियोंके तवर्ग, सकार और मकार, यह इत् नहीं होते । इस कारण जस्के सकारकी इत् संज्ञा नहीं हुई, फिर "सरूपाणाम् १८८" से एकशेष होकर– ॥

१९१ अतो गुणे । ६ । १ । ९७ ॥

अपदान्तादकाराद्गुणे परतः पररूपमेकादेशः स्यादिति प्राप्ते । परत्वात्पूर्वसवर्णदीर्घः । अतो गुण इति हि पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरानिति न्यायेनाकः सवर्ण इत्यस्यैवापवादो न तु प्रथमयोरित्यस्यापि। रामाः॥

१९१–अपदान्त अकारके आगे गुण (अ, ए, ओ) आवे तो दोनोंके स्थानमें पररूप एक आदेश होताहै । ("उस्यपदान्तात् ६ । १ । ९६" और "एङि पररूपम् ६ । १ । ९४" इन दो सूत्रोंसे 'अपदान्त' और 'पररूप'की अनुवृत्ति आतीहैं) । इस प्रकार पररूप प्राप्त होनेपर "प्रथमयोः० $\frac{६।१।१०२}{१६४}$" इसको पर होनेसे पूर्वसवर्ण दीर्घ 'आ' हुआ ।

(अतो गुणे इति) पहले कहे हुए अपवाद अगले निकटके विधानमात्रके बाधक होतेहैं, उससे परके विधानके बाधक नहीं होते, इस पूर्वोक्त ७३ परिभाषाके देखनेसे "अतो गुणे ६।१।९७/१९१" इस सूत्रमें कहा हुआ पररूप "अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१/८५" इसके सवर्णदीर्घका केवल बाधक होताहै, "प्रथमयोः० ६।१।१०२/१६४" का बाधक नहीं होता, इस कारण पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर रामास् और फिर सकारको विसर्ग होकर रामाः (बहुत राम) यह पद सिद्ध हुआ ॥

प्रथमाका ही भेद सम्बुद्धि है इस विषयमें—

१९२ एकवचनं संबुद्धिः।२।३।४९॥

संबोधने प्रथमाया एकवचनं संबुद्धिसंज्ञं स्यात् ॥

१९२–सम्बोधन अर्थात् किसीको बुलाना ऐसे समयमें प्रथमाका एकवचन सम्बुद्धिसंज्ञक हो । राम+सु लगाकर रामस् ऐसी स्थिति हुई– ॥

१९३ एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः । ६।१।६९ ॥

एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल्लुप्यते संबुद्धेश्चेत् । संबुद्ध्याक्षिप्तस्याङ्गस्यैङ्ह्रस्वाभ्यां विशेषणान्नेह । हे कतरत्कुलेति । हे राम । हे रामौ । हे रामाः । एङ्ग्रहणं किम् । हे हरे । हे विष्णो । अत्र हि परत्वान्नित्यत्वाच्च संबुद्धिगुणे कृते ह्रस्वात्परत्वं नास्ति ॥

१९३–एङन्त और ह्रस्वान्त अङ्ग १।४।१३/१९९ के आगे स्थित सम्बुद्धिके अवयव हल्का लोप हो । ("हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्० ६ । १ । ६८" से हल् और "लोपो व्योर्वलि ६ । १ । ६६" से लोपकी अनुवृत्ति आतीहै)

(सम्बुद्ध्याक्षिप्तस्येति) सम्बुद्धि यह प्रत्यय होनेसे उसके पूर्वमें अंग रहताहै, यह स्पष्ट है, परन्तु उसका एङन्त और ह्रस्वान्त यह विशेषण हैं, इस कारण हे कतरत् (हे कितने) इस हलन्त अंगके अन्त्य तकारका लोप नहीं होता, कारण कि ह्रस्वान्त अंगसे परे सम्बुद्धि नहीं है, हे कुल इस स्थलमें सम्बुद्धिका लोप हुआहै, कारण कि पूर्वान्तवद्भावके कारण ह्रस्वान्त अङ्गसे परे सम्बुद्धिका अवयव मकार है * ॥

हे राम (हे एक राम), हे रामौ (हे दो राम), हे रामाः (हे बहुतसे राम) ऐसे रूप हुए । सम्बोधनमें प्रथमासे भिन्न विभक्तिके वचन नहीं होते ।

एङन्त ऐसा शब्द क्यों कहा ? तो हरि, विष्णु, इनके सम्बोधनमें ७।३।१०८/२४२ सुका लोप होकर हे हरे हे विष्णो ऐसे रूप होते हैं, यह बात दिखानेको एङन्तका ग्रहण किया है, कारण कि इसमें जो एङ् शब्द न होता तो "एङ् ६।१।६९/१९३" इससे हरिस्, विष्णुस्, इनके हलोंका जो लोप उसके होनेके पहिले ही "ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८/२४२" यह पर सूत्र और नित्यसूत्र भी है, इससे इसका कार्य गुण होजायगा, गुणोंमें ए, ओ तो ह्रस्व हैं नहीं, इससे हरेस्, विष्णोस् यहां स् का लोप न होगा, इस कारण एङ्, शब्दका ग्रहण आवश्यक है, ह्रस्वके कारण पहले हल्का लोप और फिर गुण ऐसा नहीं होता ॥

अब द्वितीयाका अम् प्रत्यय लगाकर राम+अम् ऐसी स्थिति हुई–

१९४ अमि पूर्वः । ६ । १ । १०७ ॥

अकोऽम्यचि परतः पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । रामम् । रामौ ॥

१९४–अक् (अ, इ, उ, ऋ, लृ)के आगे अम्का अवयव अच् परे होते दोनोंके स्थानमें मिलकर पूर्वरूप एकादेश होताहै । ("अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१" से अक्की और "इको यणचि ६। १।७७" से अच्की अनुवृत्ति आतीहै)। पूर्वसवर्णदीर्घ ६।१।१०२/१६४ का यह अपवाद है । रामम् (रामको) राम+औट्=राम+औ=रामौ (दो रामोंको) ॥

द्वितीयाके बहुवचनमें राम+शस् ऐसा हुआ—

* "एङ् ०१९३" इस सूत्रमें "हल्० २५२" इससूत्रसे हल्का सम्बन्ध करतेहैं तो यह अर्थ होताहै कि, एङ् और ह्रस्वसे परे सम्बुद्धिके अवयव हल्का लोप हो, ऐसा अर्थ करनेपर-हे कतरत् इसमें तकारके लोपकी प्राप्ति हुई, इसपर कहतेहैं (सम्बुद्ध्या० इति) सम्बुद्धिसे अंगका आक्षेप किया वह अङ्ग, एङ् और ह्रस्वका विशेष्य है तो ह्रस्वान्त अंगसे परे तकार् नहीं है, किन्तु हल्से परे है ।

(प्र०) यहां सम्बुद्धिसे अङ्गका आक्षेप नहीं होसक्ता, कहाहै "येन विना यदनुपपन्नं तत्तेनाऽऽक्षिप्यते यथा च पीनोयं देवदत्तो दिवा न भुंक्ते" अर्थात् जिसके विना जो अनुपपन्न होताहै उससे उसका आक्षेप कियाजाताहै, जैसे विना भोजन किये पुष्ट होना अनुपपन्न है, इस कारण रात्रिमें भोजनका अनुमान कियाजाताहै, सो यहां नहीं, सम्बुद्धिके विना अङ्ग अनुपपन्न नहीं किन्तु अङ्गके विना सम्बुद्धि अनुपपन्न है, इस कारण अंगका अनुमान नहीं हो सकता, यह अर्थापत्तिमूलक प्रमाण है, भाष्यमें लिखाहै अङ्गाधि–

–कारके हटाकर प्रत्ययाधिकार है । प्रत्ययाधिकार करनेसे 'ब्राह्मणभिस्सा' इत्यादि प्रयोगोंमें दोष नहीं हुआ, परन्तु प्राकरोत् यहां उपसर्गसे पूर्व अडागम प्राप्त हुआ तो भाष्यकारने 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्०' इस परिभाषासे वारण किया परन्तु अङ्गका आक्षेप नहीं किया, यदि अङ्गका आक्षेप करते तो भी उपसर्गसे पूर्व नहीं होता फिर "प्रत्ययग्रहणे०" इससे क्यों वारण किया ? इससे मालुम होताहै कि, अङ्गका आक्षेप नहीं होताहै अथवा किसी प्रकार हुआ भी तो अङ्गका सम्बुद्धिमें अन्वय होगा, कारण कि, यह नियम है कि जिससे जिसका आक्षेप होताहै, उसका उसीमें अन्वय होताहै, एङन्त, ह्रस्वान्त अंगसे परे जो सम्बुद्धि उसके हल्का लोप हो ऐसा करनेमें हे कुल यह रूप सिद्ध नहीं होता, कारण कि ह्रस्वान्त अङ्गसे परे सम्बुद्धि नहीं किन्तु सम्बुद्ध्यवयव है, और जो परादिवद्भाव मानकर सम्बुद्धि लातेहैं और पूर्वान्तवद्भाव मानकर ह्रस्व लातेहैं तो "उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्" इससे अन्तवद्भाव नहीं होता । यदि ऐसा कहो कि "उभयत आश्रयणे" को नहीं मानेंगे तो भी पौर्वापर्य व्यवहार नहीं हो सकता । (उ०) लक्ष्यानुरोधसे हल्में अन्वय करतेहैं तो कोई दोष नहीं होता ॥

(प्र०) 'गुणात् सम्बुद्धेः' ऐसा ही सूत्र होना चाहिये ? (उ०) यदि एसा सूत्र कियाजायगा तो हे लक्ष्मि यहां सुलोप नहीं होगा, कारण कि सुनिमित्तसे ह्रस्व हुआहै वह ह्रस्व सुलोपका निमित्त नहीं होगा सन्निपातपरिभाषाके बलसे एङ्ह्रस्वग्रहण करनेपर एङ्ह्रस्वग्रहणबलसे सन्निपातपरिभाषा नहीं लगती ॥

१९५ लशक्वतद्धिते । १ । ३ । ८ ॥

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः । इति शसः शस्येत्संज्ञा ॥

१९५-तद्धितभिन्न प्रत्ययके आदिमें रहनेवाले ल्, श् और कवर्ग इनकी इत्संज्ञा हो । इससे शस्के शकारकी इत्संज्ञा होकर राम+अस् रहा, तब पूर्ववत् "प्रथमयोः० १६४" से रामास् हुआ, आगे—

१९६ तस्माच्छसो नः पुंसि।६।१।१०३॥

पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सकारस्तस्य नः स्यात्पुंसि ॥

१९६-पूर्वसवर्णदीर्घसे परे स्थित शस् के सकारके स्थानमें नकार होताहै ("अकः सवर्णे० ६।१।१०१" से दीर्घ और "प्रथम० ६।१।१०२" से पूर्वसवर्णकी अनुवृत्ति होतीहै) तब सकारके स्थानमें नकार होकर रामान् (बहुत रामोंको) ऐसी सिद्धि हुई । (शंका-)

१९७ अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।८।४।२॥

अट् कवर्गः पवर्ग आङ् नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासंभवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात्समानपदे । पदव्यवायेऽपीति निषेधं बाधितुमाङ्ग्रहणम् । नुम्ग्रहणमनुस्वारोपलक्षणार्थम् । तच्चाकर्तुं शक्यम् । अयोगवाहानामट्सूपदेशस्योक्तत्वात् । इति णत्वे प्राप्ते ॥

१९७-एक ही पदमें र् अथवा ष्, इनके आगे न् आवे तो अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् (आ), नुम् (न्), यह अलग २ अथवा यथासम्भव (दो, तीन आदि) मिले हुए भी बीचमें हों तो भी नकारके स्थानमें णकार होताहै । ("रषाभ्यां नो णः समानपदे ८।४।१" इस सूत्रसे 'र, ष' के परवर्ती नकारके स्थानमें णकार होनेकी अनुवृत्ति आतीहै) ।

"पदव्यवायेऽपि ८।४।३८/१०५७" बीचमें अन्य पद आवे तो भी णत्व नहीं होता ऐसा जो निषेध है, उसके बाधके लिये आङ्ग्रहण है, आङ् यह अव्ययत्वके कारण पद है ।

नुम्का ग्रहण, अनुस्वारग्रहणके निमित्त है (तच्चेति) तो भी उसका त्याग हो सकेगा, कारण कि, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, यम, यह जो अयोगवाहसंज्ञक अनुक्त वर्ण सो चतुर्दशसूत्रीमें अट्के ऊपर भाष्यमें लिये गयेहैं, ऐसा पीछे कहा है । इससे रामान्के नकारको णत्व प्राप्त हुआ ॥ (समाधान-)

१९८ पदान्तस्य । ८ । ४ । ३७ ॥

पदान्तस्य नस्य णत्वं न स्यात् । रामान् ॥

१९८-पदान्तमें स्थित नकारके स्थानमें णकार न हो । ("न भाभूपूकमिगमि० ८।४।३४" से निषेधकी अनुवृत्ति आतीहै) इससे रामान् ही रहा ॥

१९९ यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् । १ । ४ । १३ ॥

यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन्प्रत्यये परेऽङ्गसंज्ञं स्यात् । भवामि भविष्यामीत्यादौ विकरणविशिष्टस्याऽङ्गसंज्ञार्थं तदादिग्रहणम् । विधिरिति किम् । स्त्री इयती । प्रत्यये किम् । प्रत्ययविशिष्टस्य ततोऽप्यधिकस्य वा मा भूत् ॥

१९९-जो प्रत्यय जिस शब्दके आगे कियाजाताहै वह प्रत्यय आगे रहते तदादि (वह शब्द है आदिमें जिसके) शब्दस्वरूपकी अंग संज्ञा हो ।

(भवामीति) भवामि (मैं होताहूं), भविष्यामि (मैं होऊंगा) इत्यादि स्थलमें भू धातुके आगे मि प्रत्यय है, तथापि रूप सिद्ध होनेके पहले अ और स्य यह विकरण[1]संज्ञक वर्ण भू धातुके आगे लगतेहैं यहां भू+अ मिलकर भव और भू+स्य=भविष्य हुआ है, यहाँ मि प्रत्यय परे रहते "भव", "भविष्य" इनकोभी अंग संज्ञा होनेके लिये तदादि शब्द सूत्रमें लिया है । जहां विकरण आदि कुछ नहीं, वहां प्रत्यय आगे रहते केवल आदि (मूल) शब्द ही अंगसंज्ञक होता है, भवामि, भविष्यामिकी व्यवस्था तिङन्तमें समझी जायगी ।

(विधिरिति) जिससे प्रत्ययविधान किया जाय ऐसा क्यों कहा ? तो शब्दके आगे केवल प्रत्यय ही और उस शब्दके आगे उसका विधान न हो तो इतने मात्रसे प्रत्यय आगे रहते पूर्व शब्दकी अंगसंज्ञा न हो, यथा-स्त्री+इयती (स्त्री इतनी बडी) इसमें इयती शब्द इदम् (यह) शब्दसे सिद्ध हुआहै, तथापि उसमें इदम् शब्दका कुछभी अंश शेष नहीं रहा, सबका लोप हुआहै, और इयती यह केवल अगला प्रत्ययरूप अंग होकर वही स्त्रीवाचक शब्द हुआ है, इस कारण इयती यह प्रत्ययरूप शब्द आगे है तो भी वह प्रत्यय स्त्री शब्दसे नहीं कहागया, इदम् इस लुप्त शब्दसे हुआहै, इस कारण इयती इस प्रत्ययके आगे रहते स्त्रीशब्दकी अंगसंज्ञा नहीं होती । इदम् शब्दसे परिमाण अर्थमें "किमिदंभ्यां वो घः ५।२।४०" इस सूत्रसे वतुप् प्रत्यय और वकारको घ हुआ फिर उसको इय् आदेश, फिर "इदंकिमोः० ६।३।९०" से ईश्, "यस्येति च ६।४।१४८" से ईश्का लोप हुआ, "उगितश्च ४।१।६" से ङीप् होके इयती सिद्ध हुआ । अंगसंज्ञा न होनेसे स्त्रीके ईका लोप वा इय् न हुआ ।

प्रत्यय आगे रहते ऐसा क्यों कहा? तो आगे प्रत्यययुक्त शब्द अथवा उससे भी अधिक शब्दसमुदाय वा वाक्य होते पूर्व अंशकी अंगसंज्ञा न हो ॥

२०० अङ्गस्य । ६ । ४ । १ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

---

[1] विकरण वह प्रत्यय हैं जो धातुओंके आगे तिङ्से पूर्व दशगणोंमें आतेहैं, जैसे भ्वादि धातुओंसे शप् आदि ॥

२००–अंगस्य यह अधिकार है, छठे अध्यायके चौथे पादसे प्रारम्भ होकर सातवें अध्यायके अन्त तक चलताहै, इसे अंगाधिकार कहतेहैं ॥

२०१ टाङसिङसामिनात्स्याः ७।१।१२॥

अकारान्तादङ्गाट्टादीनां क्रमादिनादय आदेशाः स्युः। णत्वम्। रामेण ॥

२०१–अकारान्त अंगसे परे स्थित टा, ङसि और ङस्के स्थानमें यथाक्रम इन, आत् और स्य आदेश हों अर्थात् तृतीया पञ्चमी और षष्ठी विभक्तिके एकवचनके स्थानमें यह आदेश हों। ("अतो भिस ऐस् ७।१।९" से अत्की अनुवृत्ति आती है)। राम+टा=राम+इन=गुण हुआ रामेन फिर "अट्कु० १९७" से णत्व होनेपर रामेण हुआ (रामकरके)॥

२०२ सुपि च। ७। ३। १०२॥

यञादौ सुपि परे अतोऽङ्गस्य दीर्घः स्यात्। रामाभ्याम् ॥

२०२–यञ् (य व र ल ञ ङ ण न म झ भ) प्रत्याहारमेंसे कोई भी वर्ण जिसके प्रारंभमें हो, ऐसा सुप् प्रत्याहारमेंका कोई प्रत्यय आगे रहते अकारान्त अंगको दीर्घ होताहै। राम+भ्याम्–रामाभ्याम् (दो रामकरके)॥

राम+भिस्–

२०३ अतो भिस ऐस्। ७। १। ९॥

अकारान्तादङ्गाद्भिस ऐस् स्यात्। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। रामैः ॥

२०३–अकारान्त अंगसे परे भिस्के स्थानमें ऐस् आदेश हो। अनेकाल् आदेश होनेके कारण यह "अनेकाल्शित्० १।१।५५/४५" से सम्पूर्ण भिस्के स्थानमें होताहै। अर्थात् सब प्रत्ययको निकालकर उसके स्थानमें आदेश होताहै। राम+ऐस्। वृद्धि। विसर्ग, रामैः (बहुतसे रामोंकरके)॥

राम+ङे (चतुर्थीका एकवचन)–

२०४ ङेर्यः। ७। १। १३॥

अतोऽङ्गात्परस्य ङे इत्यस्य यादेशः स्यात्। रामाय। इह स्थानिवद्भावेन यादेशस्य सुप्त्वात्सुपि चेति दीर्घः। सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति परिभाषा तु नेह प्रवर्तते। कष्टाय क्रमणे इत्यादिनिर्देशेन तस्या अनित्यत्वज्ञापनात्। रामाभ्याम् ॥

२०४–अकारान्त अंगसे परे ङे के स्थानमें य आदेश होताहै। राम+य–(२०२) से रामाय (रामके निमित्त) यहां ङेके स्थानमें य होनेसे स्थानिवद्भाव (४९) के कारण य–को सुप् मानकर "सुपि च ७।३।१०२/२०२" से अकारको दीर्घ हुआ।

(सन्निपातलक्षणेति) प्रकृति, प्रत्यय आदि दोके सम्बन्धको सन्निपात कहतेहैं, इस सन्निपातके कारण जो कुछ विधि नाम कार्य होताहै, फिर उसी विधिके निमित्तसे उस सन्निपातका नाश नहीं होता, 'उपजीव्य' जिससे पोषण हो, 'उपजीवी' जिसका पोषण कियाजाय वह; तो जिस उपजीव्यसे अपना पोषण होताहै, उस उपजीव्यका नाश करना यह बात उपजीवीको नहीं सजती, अथवा जिसकी कृपासे आप बढा हो, उसका विघात न करे ऐसा न्याय है, उसी सन्निपातसम्बन्धके निमित्तसे जो विधि (कार्य) है, वह उस अपने निमित्तके बिगाडनेवाले कार्य्यका निमित्त नहीं होताहै, इसको सन्निपातपरिभाषा कहतेहैं, यहां अकारके कारण ङेके स्थानमें 'य' हुआहै, इस कारण 'य' के निमित्तसे 'अ' का नाश होकर आ होना यह ठीक नहीं, ऐसी शंका होनेपर कहतेहैं–यह परिभाषा इस स्थलमें प्रवृत्त नहीं होती, "कष्टाय क्रमणे ३।१।१४/२६७०" पाणिनि महर्षिने यह सूत्र बनायाहै, इसमें इसी प्रकारसे य के निमित्तसे पिछले अकारको दीर्घ कियाहै, यदि यहां यह परिभाषा लगती तो 'कष्टाय' न होता इससे इस परिभाषाका अनित्यत्व ज्ञात होताहै।

राम+भ्याम्– (२०२) रामाभ्याम् (दो रामोंके निमित्त) ॥

राम+भ्यस् (च० बहु०)–

२०५ बहुवचने झल्येत्। ७। ३। १०२॥

झलादौ बहुवचने सुपि परे अतोऽङ्गस्यैकारः स्यात्। रामेभ्यः। बहुवचने किम्। रामः रामस्य। झलि किम्। रामाणाम्। सुपि किम्। पचध्वम्। जश्त्वम्।

२०५–बहुवचन झलादि सुप् प्रत्यय परे रहते अकारान्त अंगको एकार होताहै। रामे+भ्यस्=रामेभ्यः (बहुत रामोंके निमित्त)।

बहुवचन क्यों कहा? तो राम+स्, राम+स्य, इनमें अकारके आगे स् और स्य यह एकवचन झलादि सुप्प्रत्यय हैं, यहां एत्व न हो।

झलादि क्यों कहा? तो रामाणाम् इसमें आम् यह अजादि प्रत्यय होनेके कारण एत्व नहीं होता।

सुप् प्रत्यय रहते ऐसा क्यों कहा? तो पच+ध्वम्, इसमें ध्वम् यह प्रत्यय यद्यपि बहुवचन है, परन्तु वह तिङ् प्रत्यय है सुप् नहीं, इस कारण एत्व नहीं होता।

राम+ङसि (पंच० एक०) २०१ से ङसिके स्थानमें आत् आदेश, तब राम+आत्=रामात्, फिर "झलां जशोऽन्ते ८।२।३९/८४" से तकारके स्थानमें द् प्राप्त हुआ, परन्तु अपवादत्वके कारण इसको बाधकर–

२०६ वावसाने। ८। ४। ५६॥

अवसाने झलां चरो वा स्युः। रामात्। रामाद्। द्वित्वे रूपचतुष्टयम् ॥ रामाभ्याम्। रामेभ्यः। रामस्य। सस्य द्वित्वपक्षे खरि चेति चर्त्वेऽप्यान्तरतम्यात्स एव न तु तकारः। अल्प-

१ यहां 'बहुवचने २०५' इत्यादि निर्देशसे चतुर्थीके एकवचनका ग्रहण होताहै, सप्तमीके एकवचनका नहीं ॥

प्राणतया प्रयत्नभेदात् । अत एव सः सीति तादेश आरभ्यते ॥

२०६–आगे अवसान होनेपर झलोंके स्थानमें चर् हों विकल्प करके ("अभ्यासे चर्च ८।४।५४" से चर्की अनुवृत्ति आतीहै) तब चर् होनेसे रामात्, पक्षमें (८४) द् होनेसे रामाद् यह दो रूप हुए, "अनचि च ८।४।४७/४८" इससे अन्त्य वर्णको द्वित्व करनेसे चार रूप होंगे । राम+भ्याम्=रामाभ्याम् (दो रामोंसे) । रामेभ्यः (बहुत रामोंसे) ।

अब षष्ठीका एकवचन रामके आगे ङस् और उसके स्थानमें स्य हुआ तो–रामस्य (रामका) रूप हुआ । सकारको "अनचि च" इससे द्वित्व करनेसे "खरि च ८।४।५५/१२१" से इसके पूर्वसकारको चर्त्व भी कियाजाय तो भी चर्में सकार है ही, इस कारण आन्तरतम्यसे वही होगा, उसके स्थानमें तकार नहीं होगा, कारण कि,त् को अल्पप्राण होनेसे त् और स्में प्रयत्नभेद होताहै, इसीसे सकारके स्थानमें तकार विधान करनेको "सः स्यार्धधातुके ७।४।४९/२३४२" यह नया सूत्र बनायाहै ॥

राम+ओस् (ष० द्वि०)–

२०७ ओसि च । ७ । ३ । १०४ ॥

ओसि परे अतोऽङ्गस्य एकारः स्यात्।रामयोः॥

२०७–आगे ओस् प्रत्यय परे रहते अकारान्त अंगको एकार होताहै, रामे+ओस् मिलकर रामयोस्=रामयोः (दो रामोंका) ॥

राम+आम् (ष० ब०)–

२०८ ह्रस्वनद्यापो नुट् । ७ । १ । ५४ ॥

ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो नुडागमः स्यात् ॥

२०८–ह्रस्वान्त, नद्यन्त और आबन्त अंगके आगेके आम् प्रत्ययको नुट्(न्)का आगम होताहै।राम+न्+आम्=राम+नाम् ऐसी स्थिति हुई*– ॥

२०९ नामि । ६ । ४ । ३ ॥

नामि परेऽजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्यात् । रामाणाम् । सुपि चेति दीर्घो यद्यपि परस्तथापीह न प्रवर्तते । सन्निपातपरिभाषाविरोधात् । नामीत्यनेन त्वारम्भसामर्थ्यात्परिभाषा बाध्यते। रामे । रामयोः । सुपि एत्वे कृते ॥

२०९–नाम् परे रहते अजन्त अंगको दीर्घ होताहै । ("ढ्रलोपे० ६।३।१११/१७४" से दीर्घकी अनुवृत्ति और "अचश्च १।२।२८/३५" से अच्की उपस्थिति होतीहै और अच्, अङ्गका विशेषण होता है, इस कारण "येन विधिः० १।१।७२/२६" से तदन्तविधि हुई, रामाणाम् (बहुतसे रामोंका) ।

'नामि' इस सूत्रसे "सुपि च ७।३।१०२/२०२" यह पर सूत्र है, तो भी यहां प्रवृत्त नहीं हो सकता, कारण कि, इसके प्रवृत्त होनेमें सन्निपातपरिभाषा विरोध आताहै और 'नामि' सूत्र बनाकर जो नवीन विधान कियाहै इसीसे वह परिभाषा इससे दीर्घ करते समय नहीं लगती, यदि ऐसा न होता तो २०२ सूत्रके होते यह सूत्र बनानेकी आवश्यकता ही क्या थी ?

राम+ङि (स० ए०) राम+इ=रामे (राममें) । राम+ओस्=रामयोः (दो रामोंमें) सिद्धि पूर्ववत् ।

राम+सुप् (सप्तमीका बहुवचन) "बहुवचने० ७।३।१०३/२०५" से एत्व, रामे+सु–––

२१० अपदान्तस्य मूर्धन्यः।८।३।५५॥

आ पादपरिसमाप्तेरधिकारोऽयम् ॥

२१०–'अपदान्तस्य' और 'मूर्धन्यः' इन दो पदोंका पादसमाप्ति ८।३।११९ तक अधिकार है ॥

२११ इण्कोः । ८ । ३ । ५७ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

२११– इण्, कवर्ग इन पदोंका अधिकार करके कहतेहैं–॥

२१२ आदेशप्रत्यययोः । ८ । ३ । ५९॥

सहेः साडः स इति सूत्रात्स इति षष्ठ्यन्तं पदमनुवर्तते । इण्कवर्गाभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशः प्रत्ययावयवश्च यः सकारस्तस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । विवृताघोषस्य सस्य तादृश एव षः । रामेषु । इण्कोः किम् । रामस्य । आदेशप्रत्यययोः किम् । सुपीः । सुपिसौ। सुपिसः । अपदान्तस्य किम् । हरिस्तत्र । एवं कृष्णमुकुन्दादयः ॥

---

१ सूत्रमें 'नद्यापः' यह पञ्चम्यन्त है षष्ठ्यन्त नहीं, इसमें प्रमाण "नामि २०३" सूत्र है,नहीं तो प्रकृतिको नुट् होनेसे 'राम' यह अजन्त अङ्ग नहीं होगा ॥

* ह्रस्वान्त शब्द तो स्पष्ट ही हैं, नदीसंज्ञक शब्द आगे १।४।३/२६६ पर आवेंगे और आबन्त अर्थात् आप्प्रत्ययान्त शब्द ४।१।४/४५४ स्त्री० प्रकरणमें आवेंगे, यहांपर बहुतसे स्थानोंमें शब्दसे तदन्तका ग्रहण कियाहै, वह "येन विधिस्तदन्तस्य १।१।१०२/२६" सूत्रके अनुसार है । आशय यह कि उससे पृथक् न होकर उसीकी बात कहतेहैं । उसमें ध्यान रखने योग्य इतनी बात है कि, 'पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च' ऐसी परिभाषा है, पदाधिकार ८।१।१६ सूत्रसे ८।३।५४ तक चलताहै, अङ्गाधिकार ६।४।१ से ७।४।९७ तक चलताहै यह पीछे कह दियाहै, तो पदाधिकार और अङ्गाधिकारके सूत्रोंमेंके शब्दसे तदन्तका भी ग्रहण होताहै और केवल शब्दका भी, कारण कि वे शब्द, पद वा अङ्ग इनके विशेषण होतेहैं ॥

१ ह्रस्वान्त अङ्ग होनेके कारण "ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४/२०८" इससे नुट् होकर नाम् ऐसा प्रत्ययका रूप हुआहै, तब नाम् यह यञादि है इस कारण "सुपि च २०२" से इसके अङ्गके अन्त्य अकारको दीर्घ प्राप्त होताहै, अर्थात् अकारका नाश होताहै, आशय यह कि पीछे ७।१।१३/२०४ इस सूत्रमें कहे हुएकी समान उपजीव्य विरोध आताहै, इससे उस सूत्रका यहां कार्य नहीं होसकताहै, और 'नामि' यह नवीन सूत्र बनानेसे स्पष्ट ही है कि वह परिभाषा यहां काम नहीं देती ॥

२१२–" सहेः साडः सः ८।३।५६/३३५ " इस सूत्रसे सः इस षष्ठ्यन्त पदकी अनुवृत्ति आतीहै, इण् और कवर्गसे परे स्थित अपदान्तमें रहनेवाला आदेशस्वरूप अथवा प्रत्ययावयव जो सकार है, उसके स्थानमें मूर्धन्यादेश होताहै। विवृत (आभ्यन्तर प्रयत्नवाला), अघोष (बाह्यप्रयत्नवाला) सकार है, उसके स्थानमें विवृत अघोष प्रयत्नवाला ही मूर्धन्य ष हुआ, रामेषु (बहुतसे रामोंमें) इसमें विवृतत्वविशेषणसे ठकारकी निवृत्ति हुई और अघोष कहनेसे ऋकारकी निवृत्ति हुई ।

इण् अथवा कवर्गके आगे क्यों कहा ? तो अन्यत्र षत्व नहीं होता, यथा–रामस्य ।

आदेशरूप और प्रत्ययसम्बन्धी ही स् क्यों कहा ? तो अङ्गसम्बन्धी सकार होते मूर्धन्य नहीं होता, यथा–सुपिस्+सु=सुपीः । सुपिस्+औ=सुपिसौ । सुपिस्+जस्=सुपिसः (अच्छा चलनेवाला इत्यादि) इस स्थानमें आदेश अथवा प्रत्ययका सकार न होनेके कारण षत्व न हुआ, अर्थात् इनके अन्तमें सकार, अंग (सुपिस् इस प्रातिपदिक) का है, इससे उसके स्थानमें षत्व न हुआ ।

अपदान्त सकारके स्थानमें ही क्यों ? तो पदान्त सकारके स्थानमें नहीं होता, हरिस्+तत्र–मिलकर हरिस्तत्र हुआ, इसमें पदान्त सकार है इस कारण षकार न हुआ । अब सिद्ध किये रामशब्दके सब रूप एकत्र कर लिखतेहैं–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
सम्बुद्धि	हे राम	हे रामौ	हे रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पंचमी	रामात्, रामाद्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु

इसी प्रकार कृष्ण, मुकुन्द,–इत्यादि अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके रूप जानने। विशेष इतनी बात है कि, कृष्ण शब्दमें षकारके आगे 'अट्कुप्वाङ्०' इनके बाहरका ण है, इस कारण तृतीयाके एकवचनमें 'कृष्णेन' ऐसा रूप होगा। मुकुन्द शब्दमें तो णकारके लिये निमित्त ही नहीं है ॥

२१३ सर्वादीनि सर्वनामानि।१।१।२७॥

सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युः। तदन्तस्यापीयं संज्ञा द्वन्द्वे चेति ज्ञापकात् । तेन परमसर्वत्रेति त्रल परमभवकानित्यत्राकच सिध्यति ॥

२१३–सर्वादि (सि॰ २१७ देखो) गणमेंके शब्दोंकी सर्वनाम संज्ञा है । सर्वादि गणमें जो शब्द हैं, वे हैं अन्तमें जिनके ऐसे शब्दोंकी भी सर्वनाम संज्ञा होतीहै । इसका "द्वन्द्वे च २२४" यह सूत्र ज्ञापक है, इसस परमसर्वत्र इसमें त्रल् (त्र) प्रत्यय और परमभवकान् इसमें अकच् सिद्ध होतेहैं ।

विवरण–"द्वन्द्वे च १।१।३१/२२४" द्वन्द्व समासमें सर्वनाम संज्ञा नहीं होती ऐसा निषेध है, समासमें एकसे अधिक शब्द होतेहैं, तो द्वंद्व समासमें सर्वनाम संज्ञा नहीं ऐसा कहनेसे इतर समासोंमें (अर्थात् तदन्तको भी) सर्वनाम संज्ञा होतीहै ऐसा सिद्ध हुआ, इस कारण परमसर्व इस कर्मधारय समासघटित तदन्त शब्दकी भी सर्वनाम संज्ञा हुईहै, और "सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०/१९५७" इससे सर्वनामसे जो सप्तम्यर्थमें त्रल् (त्र) हुआ करताहै वह 'परमसर्व' इसके आगे होकर परमसर्वत्र (बहुत सर्वत्र) ऐसा शब्द सिद्ध हुआ । "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ५।३।७१/२०२६" "अज्ञाते ५।३।७३/२०२८" इस अर्थमें भवत् (आप) इस सर्वनामको अकच् (अक्) प्रत्यय टि के पहले होताहै और भवकत् ऐसा रूप होकर उसका प्रथमामें 'भवकान्' रूप होताहै, उसीप्रकार परमभवत् इसको भी सर्वनाम संज्ञा होनेसे अकच् (अक्) प्रत्यय होकर परमभवकत् और प्रथमाका रूप परमभवकान् (आप अज्ञात बडे मनुष्य) ऐसा होताहै * ॥

अब सर्वादि गणमेंके अकारान्त शब्दोंमें पहले सर्व (सब) शब्द है । उसके प्रथम सिद्ध रामशब्दके रूपोंसे जितने पृथक् २ प्रकारके रूप होंगे उतने ही सिद्ध किये जायगे, शेष रूप पूर्ववत् जानना ॥

सर्व+जस्–

२१४ जसः शी।७।१।१७॥

अदन्तात्सर्वनाम्नः परस्य जसः शी स्यात् । अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः । न चार्वणस्तृ इत्यादाविव नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वमिति वाच्यम् । सर्वादेशत्वात्प्रागित्संज्ञाया एवाभावात् । सर्वे ॥

२१४–अकारान्त सर्वनामके आगे जस् प्रत्ययके स्थानमें शी आदेश होताहै, ("अतो भिस ऐस् ७।१।९/२०३" से अत्की और "सर्वनाम्नः स्मैः ७।१।१४/२१५" इस सूत्रसे सर्वनाम-की अनुवृत्ति आतीहै)। आदेश अनेकाल् होनेसे १।१।५५/४५ सब प्रत्ययको निकाल डालताहै। शी यह प्रत्ययको आदेश है, इस कारण स्थानिवद्भाव करके उसको प्रत्ययत्व हुआ, तब "लशक्वतद्धिते १।३।८/१९५" से शकारको इत्व होकर 'ई' मात्र शेष रहा । यहां सन्देह होताहै कि, जैसे "अर्वणस्त्रसावनञः ६।४।१२७/३६४" सूत्रमें "नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्" इस परिभाषासे अनुबन्धकृत अनेकाल्त्व नहीं मानाजाता, वैसे ही यहां भी अनुबन्ध (श्) कृत अनेकाल्त्व नहीं होना चाहिये, परन्तु यह परिभाषा यहां नहीं लगती, कारण कि,

---

* "सर्वादीनि सर्वनामानि" यह सूत्र प्रथमाध्यायमेंका होनेसे यहां पदाधिकार वा अङ्गाधिकार नहीं है (सि॰ २०८ टिप्पणी देखो) वैसेही सूत्रोंमें विशेषण नहीं होनेसे "येन विधिस्तदन्तस्य १।१।७२/२६" यह सूत्र भी यहां नहीं लगता, इस कारण सर्वादि शब्दसे तदन्तका ग्रहण नहीं होता यह दिखानेके निमित्त ही (सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि) अर्थात् सर्वादिओंके शब्दस्वरूप सर्वनामसंज्ञक होतेहैं ऐसा ऊपर कह आयेहैं, तथापि "द्वन्द्वे च" इस ज्ञापकसे तदन्तको भी सर्वनाम संज्ञा होतीहै ऐसा कहाहै ॥

यहां पहले सर्वादेश होगा फिर पीछे इत्संज्ञा होगी, उसके पहले आदेशके अंगमें प्रत्ययत्व न होनेसे इत्वकी प्राप्ति यहां नहीं होती, सर्व+ई=सर्वे । विशेष ३६४ सूत्रमें लिखेंगे ।

२१५ सर्वनाम्नः स्मै । ७ । १ । १४ ॥

अतः सर्वनाम्नो ङे इत्यस्य स्मै स्यात् । सर्वस्मै ॥

२१५-अकारान्त सर्वनामके आगे ङे प्रत्ययके स्थानमें स्मै आदेश होताहै । ("ङेर्यः $\frac{७।१।१३}{२०४}$" से ङेकी अनुवृत्ति आतीहै) । सर्व+ङे=सर्वस्मै (सबके लिये) ॥

२१६ ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ । ७ । १ । १५ ॥

अतः सर्वनाम्नो ङसिङ्योरेतौ स्तः॥सर्वस्मात्॥

२१६-अकारान्त सर्वनामके आगे ङसि और ङिके स्थानमें क्रमसे स्मात् और स्मिन् आदेश होतेहैं । सर्व+ङसि=सर्वस्मात् (सबोंसे) ॥

सर्व+आम्-

२१७ आमि सर्वनाम्नः सुट् ।७।१।५२॥

अवर्णान्तात्सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः स्यात् । एत्वषत्वे । सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् । शेषं रामवत् । एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः । सर्वादयश्च पञ्चत्रिंशत् । सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम्, इति । उभशब्दो द्वित्वविशिष्टस्य वाचकः । अत एव नित्यं द्विवचनान्तः । तस्येह पाठस्तु उभकावित्यकजर्थः । न च कप्रत्ययेनेष्टसिद्धिः । द्विवचनपरत्वाभावेनोभयत उभयत्रेत्यादाविवायच्प्रसङ्गात् । तदुक्तम् । उभयोन्यत्रेति । अन्यत्रेति द्विवचनपरत्वाभावे । उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्तीति कैयटः।अस्तीति हरदत्तः।तस्माज्जस्ययजादेशस्य स्थानिवद्भावेन तयप्प्रत्ययान्ततया प्रथमचरमेति विकल्पे प्राप्ते विभक्तिनिरपेक्षत्वेनान्तरङ्गत्वान्नित्यैव संज्ञा भवति । उभये । डतरडतमौ प्रत्ययौ। यद्यपि संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति, सुप्तिङन्तमिति ज्ञापकात् । तथापीह तदन्तग्रहणम् । केवलयोः संज्ञायाः प्रयोजनाभावात् । अन्यतरान्यतमशब्दावव्युत्पन्नौ स्वभावाद्द्विबहुविषये निर्धारणे वर्तेते । तत्रान्यतमशब्दस्य गणे पाठाभावान्न संज्ञा । त्व त्व इति द्वावप्यदन्तावन्यपर्यायौ । एक उदात्तोऽपरोऽनुदात्त इत्येके । एकस्तान्त इत्यपरे । नेम इत्यर्धे । समः सर्वपर्यायः । तुल्यपर्यायस्तु नेह गृह्यते । यथासंख्यमनुदेशः समानामिति ज्ञापकात् ॥ अन्तरं बहिर्योगेति गणसूत्रेऽपुरीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अन्तरायां पुरि ॥

२१७-अवर्णान्तसे परे सर्वनाम शब्दसे विधानकिये आम्को सुट्का आगम हो । सुट्के ट् और उ की इत् संज्ञा होकर 'स्' मात्र शेष रहा, तब सर्व+स्+आम्=ऐसी स्थिति होकर "बहुवचने झल्येत् $\frac{७।३।१०३}{२०५}$" से अकारको एत्व और "आदेशप्रत्यययोः $\frac{८।३।५९}{२१२}$" से सकारको षत्व हुआ, तब सर्वेषाम् (सबोंका) यह पद सिद्ध हुवा । सर्व+ङि=सर्वस्मिन् (सबोंमें) शेष रामशब्दवत् रूप जानो । अब सब रूप लिखतेहैं--

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
सम्बुद्धि	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पंचमी	सर्वस्मात् (द्)	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

आशय यह है कि, सर्वनामके मुख्य कार्य यह हैं कि अकारान्त पुँलिङ्ग शब्दसे प्रथमाके बहुवचन जस्के स्थानमें शी (ई) १, चतुर्थीके एकवचन ङेके स्थानमें स्मै २,पंचमीके एकवचन ङसिके स्थानमें स्मात् ३,षष्ठीके बहुवचनमें आम्प्रत्ययको सुट्का आगम ४, सप्तमीके एकवचनमें ङिके स्थानमें स्मिन् ५ होतेहैं, दूसरे लिंगोंमें जो विकार होंगे वे जहांके तहां समझेजायंगे । सर्वकी समान अदन्त विश्व आदि जानने ।

सर्वादि शब्द ३५ हैं, सर्व, विश्व, उभ, उभय, इत्यादि इनमें प्रत्येक शब्दके सम्बन्धमें जो कुछ विशेष होगा वह क्रमसे कहाजायगा । उभशब्दसे दोका बोध होताहै, इस कारण वह नित्य द्विवचनान्त होताहै, परन्तु अकारान्त सर्वनामका कार्य ऊपर कहे अनुसार केवल प्रथमाके बहुवचन, चतुर्थी, पंचमी, सप्तमीके एकवचन और षष्ठीके बहुवचनमें होताहै, द्विवचनमें वह कार्य नहीं होता, तो फिर सर्वादि गणमें इस द्विवचनान्त उभ शब्दको डालनेका क्या प्रयोजन ? (उत्तर) "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः $\frac{५।३।७१}{२०७६}$" इस सूत्रसे अज्ञातार्थ अथवा कुत्सितार्थ दिखानेके लिये अव्यय और सर्वनामकी टिके पूर्व अकच् प्रत्यय हुआ करताहै, इसमें 'उभ' सर्वनामकी टि (अन्त अकार) के पहले अकच् होकर उभ्+अक्+अ=उभक ऐसा रूप हुआ, तब द्विवचनमें उभकौ (कोई दो अज्ञात) ऐसा रूप सिद्ध होताहै, जो उभ शब्द सर्वादिगणमें न लियागया होता तो 'उभकौ' पद न बनता । (प्रश्न) "अज्ञाते $\frac{५।३।७३}{२०२८}$"

"कुत्सिते ५।३।७४/२०२९" इन सूत्रोंसे सामान्यतः क प्रत्यय होता-है, तो वहां सर्वनाम ही हो ऐसी कुछ आवश्यकता नहीं, तो उभ शब्दको 'क' प्रत्यय लगकर 'उभकौ' ऐसा रूप बन ही जाता फिर सर्वनामत्व क्यों चाहिये ? (उ०) क प्रत्यय करने-से 'उभकौ' इस इष्टरूपकी सिद्धि नहीं होसकती, क्योंकि 'क' प्रत्यय होकर आगे द्विवचन प्रत्यय 'औ' रहनेसे उभक+औ–ऐसी जो स्थिति हुई, तो उसमें द्विवचन प्रत्यय औ उभशब्दके आगे अ-व्यवहित नहीं है, बीचमें 'क' आगयाहै, और जब अव्यवहित द्विवचन प्रत्यय आगे न हो तब उभ शब्दको अयच् (अय) प्रत्यय होताहै, जैसे उभ्+तस् ऐसी स्थिति रहते उभ+अय-+तस् ऐसा रूप होकर उभयतः (दोनों ओरसे) ऐसा रूप सिद्ध होताहै, और उभ+अय+त्र होकर उभयत्र (दोनों ओर) ऐसा रूप सिद्ध होताहै, उसी प्रकार उभ+क+औ इसमें उभ+अय+क+औ–ऐसा होकर उभयकौ ऐसे रूपकी प्राप्ति होजायगी, उभकौ ऐसा रूप नहीं होगा, (तदुक्तमिति) (उभयोन्यत्र वा ० २३२) इस विषयमें भाष्यमें 'उभयः' यह अयच्युक्त रूप अन्यत्र होताहै ऐसा कहाहै, जब कि द्विवचन प्रत्यय आगे न हो तब * ॥

उभ और उभक (अकज्विशिष्ट) शब्दोंके रूप–

वि०	द्वि०	द्वि०
प्र० सं० द्वि०	उभौ	उभकौ
तृ० च० पं०	उभाभ्याम्	उभकाभ्याम्
ष० स०	उभयोः	उभकयोः

उभ, अय, इसमें अय यह पंचमाध्यायका प्रत्यय होनेसे स्वादि प्रत्यय है और अजादि भी है, इस कारण इसको आगे रहनेसे "यचि भम् १।४।१८/२३१" इससे अङ्गको भ संज्ञा हुई, तद्धित प्रत्यय अथवा ईकार परे रहते "यस्येति च ६।४।१४८/३११" सूत्रसे भसंज्ञकके अन्त्य इकार, अकारोंका लोप होताहै, इस कारण उभ्+अय मिलकर उभय होताहै, सवर्णदीर्घ नहीं होताहै ।

उभय शब्द उभ शब्दसे बनाहै, तो भी उसमें द्वित्वविशिष्ट अर्थ नहीं किन्तु "संख्याया अवयवे तयप् ५।२।४२/१८४३" इससे अवयव अर्थमें उभ शब्दके आगे तयप्, इसके स्थानमें अयच् होकर उभय शब्द होताहै । (उभयशब्दस्येति) उभय शब्दका द्विवचन नहीं ऐसा कैयटका मत है, द्विवचन है ऐसा हरदत्तका मत है, क्योंकि उभय शब्दको द्विवचन न होनेसे असर्वविभक्तित्व होनेपर अव्यय संज्ञा प्राप्त हुई तब "तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः १।१।३८/४४८" सूत्रपर ' कृत्तद्धितानां ग्रहणं च पाठे' (पाठमें कृत्तद्धितोंका परिगणन करना) इस भाष्यके अवतरणसे अनभिधान होनेसे द्विवचन नहीं है यह कैयटका मत है । और हरदत्तके मतमें तो 'पचतिकल्पम्' (कुछ कमती पकाता है), 'पचतिरूपम्' (अच्छा पकाताहै) इत्यादिको अव्यय संज्ञा वारण करनेसे पाठको चरितार्थ होनेपर द्विवचनके अनभिधानमें वह पाठ प्रमाण नहीं होसक्ता ।

कैयटने भाष्यप्रदीपनामक महाभाष्यकी टीका की है हरदत्तने पाणिनिसूत्रोंका न्यास कर पदमञ्जरीनामक वृत्ति लिखी है, कैयटकी योग्यता विशेष होनेपर उभय शब्दका द्विवचन नहीं यह मत सबको मान्य है, फिर भाष्यकारने भी 'उभयो मणिः 'उभये देवमनुष्याः' ऐसा उदाहरण दिया, द्विवचनका उदाहरण नहीं दिया, इससे कैयटका मत पुष्ट होताहै ।

(तस्मादिति०) उभय शब्दको जस् प्रत्यय आगे रहते, नित्य सर्वनामकार्य होताहै । यहां शंका हुई कि, उभयमें जो अयच् (अय) प्रत्यय है, वह अभी कहेके अनुसार तयप् (तय्) प्रत्ययको आदेश हुआहै, तब "स्थानिवदादेशो० १।१।५६/४९" से आदेशको स्थानिवत् होनेसे वह 'तय' प्रत्यय ही है, तयप्रत्ययान्त शब्दके आगे जस् प्रत्यय होते "प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च २२६" से विकल्प करके सर्वनाम संज्ञा प्राप्त होतीहै, इस कारण उभय शब्दको जस् प्रत्ययमें विकल्प करके सर्वनाम संज्ञा होकर क्या दो रूप होंगे ? नहीं, कारण कि "प्रथमचरम०" सूत्रसे जसके निमित्तसे ही वैकल्पिक सर्वनामसंज्ञा होनेवाली है, इससे वह बहिरंगकार्य है और सर्वादिमें उभय शब्दका पाठ होनेसे नित्य सर्वनाम संज्ञामें विभक्तिकी अपेक्षा नहीं है, इससे यह अन्तरङ्ग कार्य है इसलिये "असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे" अर्थात् अन्तरङ्ग कार्य करना हो तो बहिरंग कार्य नहीं होताहै इस परिभाषासे विकल्प करके सर्वनाम संज्ञा न होकर उभय शब्दकी नित्य सर्वनाम संज्ञा होतीहै, इससे जसको शी होकर उभये ऐसा रूप बना, शेष रूप सर्वशब्दकी समान जानना ।

रूप लिखतेहैं–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	उभयः	०	उभये
सम्बुद्धि	हे उभय	०	हे उभये
द्वितीया	उभयम्	०	उभयान्
तृतीया	उभयेन	०	उभयैः
चतुर्थी	उभयस्मै	०	उभयेभ्यः
पंचमी	उभयस्मात्	०	उभयेभ्यः
षष्ठी	उभयस्य	०	उभयेषाम्
सप्तमी	उभयस्मिन्	०	उभयेषु

डतर (अतर) और डतम (अतम) यह प्रत्यय "किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ५।३।९२/२०४७" और "वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५।३।९३/२०४८" इनसे किम्, यद्, तद् इन सर्वनामोंके आगे आतेहैं, यह पंचमाध्यायके प्रत्यय और अजादि है इस कारण "यचि भम् १।४।१८/२३१" से अंगकी भ संज्ञा, "टेः ६।४।१४३/३१६" इससे डित् आगे होते भकी टि का लोप होताहै, और कतर (मैंसेदोनों कौई), यतर (दोनों-

* "उभादुदात्तो नित्यम् ५।२।४४/१८४५" इससे द्विवचन न होते उभ शब्दके आगे नित्य अयच् प्रत्यय होताहै, उभयो मणिः (दो अवयव हैं जिस मणिके ऐसा) परन्तु जब अकच् प्रत्यय होताहै तब शब्दकी टि को आगे छोडकर वह अकच् बीचमें आताहै । तब "तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते" इस परिभाषासे उभ शब्दसे उभक शब्दका भी ग्रहण होताहै इस कारण अगला द्विवचन प्रत्यय दूर नहीं पडता, इस कारण अकच् होकर भी अयच् नहीं होता, अकच् रहते भी उसका ऐसा ही रूप होनाहै, अन्यत्र अयच् होनाहै ॥

१–२३१ सूत्रकी टिप्पणी देखो ॥

मेंसे जो), ततर (दोनोंमेंसे वह), कतम (बहुतोंमेंसे कौन सा), यतम (बहुतोंमेंसे जो), ततम (बहुतोंमें वह) ऐसे शब्द होतेहैं, यह शब्द सर्वनामसंज्ञक हैं, ऐसा जानना। केवल प्रत्यय सर्वनामसंज्ञक नहीं ।(यद्यपीति) "प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्" अर्थात् प्रत्ययके उच्चारणसे प्रत्ययादि और प्रत्ययान्त शब्दोंका भी ग्रहण होताहै ऐसी परिभाषा (सि० ४५६ पर) है परन्तु "सुप्तिङन्तं पदम् $\frac{१।४।१४}{२९}$" इसमें सुबन्त और तिङन्तकी पदसंज्ञा करनेमें सुप् तिङ् यह केवल प्रत्यय ही न उच्चारण करते स्पष्ट 'सुप्तिङन्त' ऐसा शब्द दियाहुआहै, इससे यह परिभाषा निकलतीहै कि,-(संज्ञाविधौ प्र०) अर्थात् संज्ञाका विधान होते प्रत्ययके ग्रहणसे तदन्तका ग्रहण नहीं होता, इससे यहां भी तदन्त (डतरान्त, डतमान्त) का ग्रहण नहीं होना चाहिये क्योंकि, यह भी संज्ञाविधि है और प्रत्ययग्रहण है, तो भी यहां तदन्तका ही ग्रहण करना चाहिये, कारण कि केवल प्रत्ययोंका ही ग्रहण करना हो तो उनकी सर्वनाम संज्ञा करनेका कुछ प्रयोजन न था, इससे यहां तदन्तका ही ग्रहण है,इनका रूप सर्व शब्दके समान जानो । अन्यशब्द भी सर्वशब्दके समान जानना ।

अन्यतर (दोनोंमेंसे एक) और अन्यतम (बहुतोंमेंसे एक) यह दोनों शब्द अव्युत्पन्न हैं, यह डतर, डतम प्रत्यय लगकर नहीं बने हैं, और स्वभावसे ही द्विबहुविषयक निर्धारणमें हैं और अन्यतम शब्द सर्वादि गणमें नहीं पायेजानेसे उसकी सर्वनाम संज्ञा नहीं, इससे उसके रूप रामशब्दवत् और अन्यतरके सर्वशब्दवत् जानने । इतर शब्द भी सर्व शब्दके समान है ।

'त्व' 'त्व' इन दोनों अकारान्त शब्दोंका अर्थ अन्य है । पहला त्व उदात्त और दूसरा अनुदात्त है ऐसा कोई कहतेहैं, प्रथम त्व शब्द तान्त (त्वत्) है ऐसा कोई कहते हैं, अकारान्त माननेसे इसके सर्व शब्दके समान रूप होतेहैं, यदि एक तान्त ही माना जाय तो हलन्तप्रकरणमें उसकी विभक्ति समझमें आवेगी ।

नेमका अर्थ 'आधा' है सर्व शब्दके समान इसके रूप होंगे । केवल जसमें 'नेमाः' यह एक रूप अधिक होगा ।

(सम इति) सर्वादि गणमें सर्वार्थक सम शब्द लिया जाताहै, तुल्या (समाना) र्थक सम शब्द नहीं लिया जाताहै, "यथासंख्यमनुदेशः समानाम् $\frac{१।३।१०}{१२८}$" यह सूत्र इसका ज्ञापक है, यदि यह समान अर्थमें सर्वनामसंज्ञक होता तो उसका षष्ठी बहुवचनमें समानाम् न होता, ('समेषाम्' ऐसा सुडागमयुक्त होता) इस कारण समान अर्थवाला सम शब्द राम शब्दकी समान होगा और जहां सर्वार्थक हो वहां सर्व शब्दके समान जानो ।

सिम शब्दका अर्थ सब है, इसके सर्व शब्दके समान रूप होंगे ।

" अन्तरं ब०" इस गण सूत्रमें 'अपुरि' ऐसा कहना चाहिये अर्थात् पुरी अर्थमें सर्वनाम संज्ञा अन्तर शब्दको न हो । इससे 'अन्तरायां पुरि' यहां सर्वनाम दू संज्ञा प्रयुक्त स्यान हुआ ।

पूर्व (प्रथमका), पर (पीछेका), अवर (उल्टी ओरका), दक्षिण (दहिनी ओरका), उत्तर (अन्त वा आगेका), अपर (पृथक्), अधर (नीचेका), यह शब्द पंचम्यर्थके सम्बन्धी अर्थात् अमुकके पहले अमुकके पीछे, इस अर्थके हों और संज्ञा न हो तो सर्वनाम संज्ञक हैं ।

स्व शब्द ज्ञाति और धन इस अर्थका न हो अर्थात् आत्मा वा आत्मीय (आप वा अपना) इस अर्थका हो तो सर्वनामसंज्ञक है ।

अन्तर यह शब्द बहिर्योग (बाहरका) अथवा उपसंव्यान (पहरनेका कपडा) इस अर्थका हो तो सर्वनामसंज्ञक जानना । (अन्तरमिति) ' अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ' ऐसा जो पीछे कहा हुआ गणसूत्र है उसमें अन्तर शब्दका अर्थ बाहरका ऐसा चाहे हो तो भी उसके आगे पुर् (नगरी) शब्द हो तो सर्वनामसंज्ञक नहीं होता, (अपुरीति वा० २४०) इस कारण ' अन्तरायां पुरि ' (बाहरकी नगरीमें) ऐसा रूप हुआ, सर्वनाम संज्ञा होती तो ' अन्तरस्याम् ' ऐसा सप्तम्यन्त रूप हुआ होता (सि० २९१ आबन्त सर्वा शब्द देखो) ।

' पूर्वपरा० ', ' स्वमज्ञाति० ', ' अन्तरं बहिर्० ', यह तीनों गणसूत्र हैं, सर्वनाम संज्ञा करनेके लिये ही केवल इनका प्रयोजन है, यही सूत्र फिर अष्टाध्यायीमें आगे दिये हुएहैं, गणसूत्रसे प्राप्त हुई संज्ञाको जस् प्रत्यय परे रहते विकल्प लाना ही उनका प्रयोजन है, सो यह सब आगे दिखातेहैं-

२१८ पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ।१।१।३४॥

एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणपाठात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात् । पूर्वे । पूर्वाः। स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था । व्यवस्थायां किम् । दक्षिणा गाथकाः । कुशला इत्यर्थः।असंज्ञायां किम्।उत्तराः कुरवः॥

२१८-पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, इन शब्दोंकी व्यवस्थाकालमें और संज्ञा न होते जो गणपाठसे संज्ञा सब स्थानमें होती है, उसको जस्के रूपमें प्रस्तुत सूत्रसे विकल्प होताहै । पूर्वे । पूर्वाः ।

(स्वाभिधेयेति) इनके अर्थमें जिस अवधिकी अर्थात् मर्यादाकी अपेक्षा उत्पन्न होतीहै उस विषयके नियमको व्यवस्था कहतेहैं, अर्थात् अमुकसे पूर्व इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारके विषयमें जो नियम उसको व्यवस्था कहतेहैं । व्यवस्था होते ऐसा क्यों कहा ? तो व्यवस्थाका नियम न हो तो ' दक्षिणा गाथकाः ' कुशला इत्यर्थः । कुशल अर्थात् चतुर गवैया इस प्रकारके अर्थमें प्रयोग है, उसमें दक्षिण शब्दको सर्वनाम संज्ञा नहीं होनेसे जस् के स्थानमें शी नहीं हुई ।

संज्ञा न होते क्यों कहा? तो 'उत्तराः कुरवः' इसमें उत्तरके कुरु यह देशकी संज्ञा (नाम) है, इससे उसकी सर्वनाम संज्ञा नहीं हुई, इसीसे जस्के स्थानमें शी(ई) नहीं हुई * ॥

२१९ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १।१।२९॥

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य या प्राप्ता संज्ञा सा जसि वा स्यात्। स्वे। स्वाः। आत्मीया इत्यर्थः। आत्मान इति वा। ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः ज्ञातयोऽर्था वा ॥

२१९—ज्ञाति और धनको छोड कर अर्थात् 'आप' वा 'अपना' इन अर्थोंमें जो स्व शब्दकी गणपाठके अनुसार सर्वनाम संज्ञा प्राप्त है सो जस् प्रत्ययमें विकल्प हो।यथा—स्व+जस्=स्वे, स्वाः (आत्मा वा आत्मीय अर्थ यहां जानना)। जब ज्ञाति अथवा धन ऐसा अर्थ होता है, तब स्व+जस्=स्वाः (ज्ञाति वा धन) पद सिद्ध होगा। 'स्वे' में जस्के स्थानमें शी हुई है ॥

२२० अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः १।१।३६॥

बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य या प्राप्ता संज्ञा सा जसि वा स्यात्। अन्तरे, अन्तरा वा गृहाः। बाह्या इत्यर्थः। अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः। परिधानीया इत्यर्थः ॥

२२०—बाहरका अथवा पहरनेका वस्त्र इस अर्थमें अन्तर शब्द हो तो उसको जो सर्वनाम संज्ञा सर्वत्र प्राप्त है सो जस् परे रहते विकल्प करके हो। यथा—अन्तर+जस्=अन्तरे, अन्तराः गृहाः (बाहरके घर)। अन्तरे, अन्तराः शाटकाः (पहरनेकी साडी)। दोनों स्थानोंमें विकल्प करके सर्वनाम संज्ञा हुई ॥

२२१ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा।७।१।१६॥

एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः। पूर्वस्मात्। पूर्वात्। पूर्वस्मिन्। पूर्वे। एवं परादीनामपि। शेषं सर्ववत्। एकशब्दः संख्यायां नित्यैकवचनान्तः ॥

२२१—इन्हीं पूर्वादि नव शब्द अर्थात् पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व और अन्तर शब्दके परवर्ती ङसि और ङिके स्थानमें क्रमसे विकल्प करके स्मात् और स्मिन् हों। यथा—पूर्व+ङसि=पूर्वस्मात्, पूर्वात्। पूर्व+ङि=पूर्वस्मिन्, पूर्वे। इसी प्रकार पर आदि शब्दोंमें भी जानना। इन शब्दोंके शेष रूप सर्व शब्दकी समान होंगे, इन नव शब्दोंके रूप स्पष्ट करनेके लिये पूर्व शब्दके रूप लिखतेहैं।

पूर्व शब्दके रूप—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
सम्बुद्धि	हे पूर्व	हे पूर्वौ	हे पूर्वे, हे पूर्वाः
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
तृतीया	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
चतुर्थी	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पंचमी	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
षष्ठी	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
सप्तमी	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

इसी प्रकार शेष पर आदि आठोंके भी रूप जानो। इसके आगे गणपाठमें क्रमसे आनेवाले त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस् यह सर्वनाम हलन्त हैं, इस कारण हलन्त प्रकरणमें इनके रूप आवेंगे। एकशब्द सर्ववत् है, परन्तु जब उसका संख्याविशेष (एक) अर्थ हो, तब केवल एकवचनान्त ही रूप होताहै, एकशब्दके—

> एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
> साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते ॥

अर्थात् अन्य, प्रधान (मुख्य), प्रथम, केवल, साधारण, समान, अल्प और संख्याविशेष ऐसे आठ अर्थ हैं, उनमें संख्याविशेषको छोडकर दूसरे अर्थ हों तो उनके रूप सब वचनोंके होंगे।

द्वि शब्द इकारान्त शब्दोंमें आवेगा।

युष्मद्, अस्मद्, भवतु (भवत्), किम्, यह सर्वनाम हलन्त हैं, इस कारण हलन्तप्रकरणमें आवेंगे।

समासके कारण कभी २ सर्वनाम संज्ञाको बाध आताहै, उसके विषयमें अगला सूत्र है ॥

२२२ न बहुव्रीहौ। १। १। २९ ॥

बहुव्रीहौ चिकीर्षिते सर्वनामसंज्ञा न स्यात्। त्वकं पिता यस्य स त्वत्कपितृकः। अहकं पिता यस्य स मत्कपितृकः। इह समासात्प्रागेव प्रक्रियावाक्ये सर्वनामसंज्ञा निषिध्यते। अन्यथा लौकिके विग्रहवाक्ये इव तत्राप्यकच् प्रवर्तेत स च समासेऽपि श्रूयेत। अतिक्रान्तो भवकन्तमाति भवकानितिवत्। भाष्यकारस्तु त्वकत्पितृको मकत्पितृक इति रूपे इष्टापत्तिं कृत्वैतत्सूत्रं प्रत्याचख्यौ। यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्। संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः। महासंज्ञाकरणेन तदनुगुणानामेव गणे संनिवेशात्। अतः संज्ञाकार्यमन्तर्गणकार्यं च तेषां न भवति। सर्वो नाम कश्चित्तस्मै सर्वाय देहि। अतिक्रान्तः सर्वमतिसर्वस्तस्मै अतिसर्वाय। अतिकतरं कुलम्। अतितत् ॥

२२२—बहुव्रीहि समास करना हो तो समासघटक शब्दोंकी सर्वनाम संज्ञा न हो। त्वकं पिता यस्य स त्वत्कपितृकः ([illegible]) [illegible] नहीं [illegible]) अहकं [illegible]

* सारांश यह कि, जस्में पूर्वे, पूर्वाः। परे, पराः। अवरे, अवराः। दक्षिणे, दक्षिणाः। उत्तरे, उत्तराः। अपरे, अपराः। ऐसे दो दो रूप होनेहै। इतर रूप २२१ में स्पष्ट जांयेगे। संज्ञामें सर्वनाम संज्ञा न होनेसे रामशब्दवत् रूप होंगे ॥

पिता यस्य स मत्कपितृकः (मैं अज्ञात मनुष्य हूं पिता जिसका वह मत्कपितृक) सर्वनामसंज्ञक शब्दको ही अकच् प्रत्यय होता है यह पीछे "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ५।३।७१ / २०२६" सूत्रका उल्लेख करके स्पष्ट कर ही दियाहै, तथा अर्थ भी कर दिया है । युष्मद् (तू) अस्मद् (मैं) इन सर्वनामोंके प्रथमाके एकवचन त्वम्, अहम् ३८५ से होते हैं, अकच् होनेसे वह रूप 'त्वकम्' 'अहकम्' होतेहैं–युष्मद्, अस्मद्,–यह सर्वनाम समासमें आतेहैं तब उनके स्थानमें ७।२।९८ / १३७१ त्वत्, मत्,–यह रूप होतेहैं और अकच् होते ही वही त्वकत्, मकत् ऐसे रूप होतेहैं, परन्तु २।२।२३ / ८२९ से बहुव्रीहि समास किया जायगा तब प्रस्तुत सूत्रसे सर्वादिकोंकी सर्वनामसंज्ञा नहीं होती और सर्वनामत्वके बिना तो अकच् होता ही नहीं, इस कारण उक्त प्रसंगमें त्वकत्, मकत्, यह रूप नहीं होते, अकच्के अभावमें सामान्यसे होनेवाला जो केवल क प्रत्यय वह लगकर होनेवाले 'त्वत्क,' 'मत्क' यह रूप उन्हींकी योजनासे होतेहैं, इस कारण केवल वाक्य हीमें 'त्वकं पिता यस्य' 'अहकं पिता यस्य' इनमें सर्वनाम है, तो भी बहुव्रीहि समास होते समय सर्वनामत्व न रहते, 'त्वत्कपितृकः', मत्कपितृकः' इनमें क-प्रत्ययान्तोंकी योजना हुईहै ।

(इह समासादिति) लौकिक विग्रहवाक्यका अर्थ यह कि, समासके पदोंका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये लौकिक भाषणकी रीतिसे जो शब्दयोजनाकी जाती है, वह लौकिक विग्रहका अर्थ है, समासपदका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये उसके घटनायुक्त शास्त्रीयभाषाके अनुसार रहनेवाले प्रकृति प्रत्ययकी स्थिति दिखानेवाले वाक्यको अलौकिक प्रक्रियावाक्य कहते हैं ।

'त्वत्कपितृकः' इसका लौकिक विग्रहवाक्य–'त्वकं पिता यस्य' है और अलौकिक प्रक्रियावाक्य युष्मद्+क+सु+पितृ+सु+कप्+सु यह है ।

इस अलौकिक वाक्यमें ही पहले सर्वनामसंज्ञाका निषेध होकर अकच्के स्थानमें क प्रत्यय होकर फिर समास हुआहै, ऐसा न होता तो लौकिक विग्रहवाक्यके अनुसार यहांपर भी अकच् हो जाता और समासमें भी उसका श्रवण होता, जैसे 'अतिक्रान्तो भवकन्तम्=अतिभवकान्' इस तत्पुरुष समासमें अन्तमें भी अकच् रह गयाहै वैसा प्रकार (बहुव्रीहिमें) यहां भी होता । (भाष्यकार इति) ऐसा होनेपर भी भाष्यकारने 'त्वकत्पितृकः', 'मकत्पितृकः' इन रूपोंमें इष्टापत्ति (अर्थात् यह रूप बहुव्रीहिमें होतेहैं चलो यही अच्छा है ऐसा स्वीकार) कर "न बहुव्रीहौ" इस प्रस्तुत सूत्रका प्रत्याख्यान कियाहै अर्थात् यह सूत्र नहीं चाहिये ऐसा कहाहै । (यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्) पहले सूत्रकार, फिर वार्तिककार, फिर भाष्यकार, इन तीन मुनियोंमें अनुक्रमसे उत्तरोत्तर प्रमाण मानना अर्थात् सूत्रकारसे वार्तिककारका, वार्तिककारसे भाष्यकारका मत विशेष ग्राह्य है परन्तु भाष्यकारका इन दोनोंके ही मतसे विशेष प्रमाण है इस कारण भाष्यकारके मतानुसार 'त्वकत्पितृकः' 'मकत्पितृकः' यह रूप ग्राह्य हैं और सर्वादि शब्दोंकी बहुव्रीहिसमासमें भी सर्वनामसंज्ञा है ।

* (संज्ञोपसर्जनीति) जो सर्वादि शब्द संज्ञा (नाम) में योजना किये गये हैं, अथवा उपसर्जनीभूत (दूसरे शब्दमें विशेषणकी समान लगाये हुए) हों तो वे सर्वादि शब्द सर्वनामसंज्ञक न हों (वा० २२५) कारण कि, व्याकरणमें केवल लाघवके निमित्त ही जो छोटी २ विना अर्थकी (टि० ७९), (घि २४३) इत्यादि संज्ञा की हैं, वैसे सर्वनाम यह संज्ञा अर्थशून्य वा छोटी संज्ञा नहीं है, यह महासंज्ञा (पांच अक्षरोंकी बडी संज्ञा) है और सार्थ है, सर्वनामानिका अर्थ 'सर्वेषां नामानि' अर्थात् सब नामोंके स्थानमें आनेवाले शब्द हैं, इसीसे इस अर्थके अनुकूल ही जब यह सर्वादि शब्द होंगे तभी सर्वादि गणमें उनकी गणना होगी, यह बात स्पष्ट है, जब वे केवल संज्ञाशब्द होतेहैं, अथवा विशेषण होतेहैं, तब उनके अर्थमें संकोच होताहै, इसी कारण उनकी सर्वनाम संज्ञा नहीं, इसीसे सर्वनाम संज्ञा होनेसे जो कार्य शब्दको होतेहैं वह (शी, स्मै, स्मात्, स्मिन्, सुट्, अकच्) और अन्तर्गणके कारणसे त्यदादि २६५ डतरादि ३१५ ऐसे जो सर्वादिकोंके अन्तर्गत दूसरे गण किये हैं उस कारणसे होनेवाले जो (अ, अद्, आदि) कार्य वे भी नहीं होते । (सर्वो नाम कश्चित् तस्मै सर्वाय देहि) अर्थात् सर्वनामवाले पुरुषको कुछ दो ऐसा कहनेकी इच्छामें सर्वकी चतुर्थी सर्वस्मै ऐसा न होते 'सर्वाय देहि' ऐसा प्रयोग हुआहै यह संज्ञाका उदाहरण हुआ ।

(अतिक्रान्तः सर्वमिति)–सबके उल्लंघन करनेवाले अतिसर्वको कुछ दो ऐसा कहना हो तो उपसर्जनत्वके कारण अर्थात् उसमें विशेषणत्व होनेसे अतिसर्वाय ऐसा ही प्रयोग होताहै ।

(अतिकतरं कुलम्) किस मनुष्यका अतिक्रमण किया हुआ कुल । इसमें डतर (अतर) प्रत्ययके कारणसे नपुंसकमें 'अतिकतरम्' ऐसा इतर नपुंसक शब्दके समान रूप हुआ, इसी प्रकारसे 'अतितत्' (उसका अतिक्रमण करनेवाला) इसमें 'तद्' इसको विशेषण होनेके कारण सर्वनाम संज्ञा न होनेसे पुँल्लिङ्गमें भी 'अतितत्' ऐसा ही नपुंसक शब्दके रूपकी समान दीखता हुआ रूप होताहै । अतिसः नहीं होता, ('अतितत्' में "त्यदादीनामः" से अ और "तदोः सः०" से स न हुए) ॥

सर्वनामसंज्ञाका निषेधक सूत्र–

२२३ तृतीयासमासे । १ । १ । ३० ॥

अत्र सर्वनामता न स्यात् । मासपूर्वाय । तृतीयासमासार्थवाक्येऽपि न । मासेन पूर्वाय ॥

२२३–तृतीयातत्पुरुष ६९३ समासमें भी सर्वनाम संज्ञा नहीं होती । 'मासेन पूर्वाय' एक महीनेमें बडा ऐसा विग्रह होते मासपूर्व जो समास होताहै, उसकी चतुर्थीमें 'मासपूर्वाय' होताहै, इस सूत्रमें "विभाषा दिक्समासे०" इससे समासे इसकी अनुवृत्ति लाकर सिद्ध ही था फिर समासग्रहणसे नियम होताहै कि तृतीयातत्पुरुष समासका अर्थ हो जिसमें ऐसा वाक्य होते भी वहां सर्वादि शब्दको सर्वनामता नहीं 'मासेन पूर्वाय'

(जो एक महीनेसे बडा, उसको) यह सूत्र तदन्तविधिसे प्राप्त संज्ञाके निषेधके निमित्त है ॥

२२४ द्वन्द्वे च । १ । १ । ३१ ॥

द्वन्द्वे उक्ता संज्ञा न । वर्णाश्रमेतराणाम् । समुदायस्यायं निषेधो न त्ववयवानाम् । न चैवं तदन्तविधिना सुट्प्रसङ्गः सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडिति व्याख्यातत्वात् ॥

२२४–तदन्तविधिसे प्राप्त जो सर्वनाम संज्ञा वह द्वन्द्वसमास (९०१) में नहीं होती । वर्णाश्रमेतराणाम् (वर्ण, आश्रम और इतरका) । यह निषेध समुदायका है, उसके अवयवोंका जैसे बहुव्रीहिमें होताहै वैसे नहीं होता अर्थात् 'वर्णाश्रमेतर' इस सम्पूर्ण शब्दमात्रको सर्वनामता नहीं है, इसमेंके 'इतर' इस अंशकी तो है ही, इस कारण 'पदाङ्गाधिकारे०' इस पूर्वोक्त (२०९) परिभाषासे "आमि सर्वनाम्नः सुट् $\frac{७।१।५२}{१२७}$" यहाँ तदन्तविधि होकर षष्ठीके आम् प्रत्ययको कहा हुआ जो सुट् वह इतरान्तसे परे जो आम् उसको भी होना चाहिये परन्तु वैसा नहीं होता, कारण कि, सर्वनामसे विधान करके जो आम् प्रत्यय लगाया हुआ होगा उसको सुट्का आगम होताहै, इस प्रकार २१७ सूत्रकी व्याख्या भाष्यकारने की है । इस कारण इतर यह शब्द सर्वनाम भी है और उसके आगे आम् प्रत्यय भी है तो भी उस इतर शब्दसे यह आम् प्रत्यय नहीं विहित है, इसकारण उसको सुडागम नहीं होता ऐसा इस व्याख्यानसे सिद्ध होताहै, आम् प्रत्यय 'वर्णाश्रमेतर' इस द्वन्द्वसमासघटित शब्दसे किया गयाहै, और इस शब्दके सर्वनामत्वका प्रस्तुत सूत्रसे निषेध है, इस कारण यहां सुडागम नहीं होता ऐसा जानना ॥

२२५ विभाषा जसि । १ । १ । ३२ ॥

जसाधारं शीभावाख्यं यत्कार्यं तत्र कर्तव्ये द्वन्द्वे उक्ता संज्ञा वा स्यात् । वर्णाश्रमेतरे । वर्णाश्रमेतराः । शीभावं प्रत्येव विभाषेत्युक्तमतो नाचक् । किंतु कप्रत्यय एव । वर्णाश्रमेतरकाः ॥

२२५–द्वन्द्व समासको सर्वनामसंज्ञा नहीं होती ऐसा कहा भी है, तथापि जस् प्रत्ययको जब शी (ई) कार्य हो तब द्वन्द्व समासमें उक्त सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके होतीहै, यथा–वर्णाश्रमेतरे, वर्णाश्रमेतराः । केवल शीरूप कार्यके लिये ही द्वन्द्वमें सर्वनामत्वको विभाषा कहाहै, इस कारण द्वन्द्वमें 'अकच्' नहीं 'क' प्रत्यय ही होताहै, कारण कि 'अकच्' प्रत्यय होनेके लिये उसको सर्वनामसंज्ञा नहीं है, 'वर्णाश्रमेतरकाः' । और शीभाव होताहै तब तो क प्रत्यय भी नहीं होता, कारण कि जो 'क' प्रत्यय किया जाताहै तो द्वन्द्वसमास पीछे पडजाताहै और फिर उसमें जहां 'क' प्रत्यय है, वहां सर्वनाम संज्ञा न होनेसे आगे शीभाव न होगा ॥

ऐसे ही और भी कितने शब्दोंकी सर्वनाम संज्ञा कभी नहीं होती, केवल जस्प्रत्ययमें वह विकल्पसे होती है, उसके निमित्त सूत्र–

२२६ प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च । १ । १ । ३३ ॥

एते जसः कार्यं प्रत्युक्तसंज्ञा वा स्युः । प्रथमे । प्रथमाः । शेषं रामवत् । तयः प्रत्ययस्ततस्तदन्ता ग्राह्याः । द्वितये । द्वितयाः । शेषं रामवत् । नेमे । नेमाः । शेषं सर्ववत् । विभाषाप्रकरणे तीयस्य ङित्सूपसंख्यानम् ॥ द्वितीयस्मै । द्वितीयायेत्यादि । एवं तृतीयः । अर्थवद्ग्रहणान्नेह । पटुजातीयाय । निर्जरः ॥

२२६–प्रथम, चरम, तय (प्रत्ययान्त), अल्प, अर्ध, कतिपय, नेम, यह शब्द जस् कार्यके समय विकल्प करके सर्वनामसंज्ञक होतेहैं । प्रथमे, प्रथमाः (प्रथमके); शेष रूप रामशब्दके समान जानने । तय यह प्रत्यय है, इससे तयप्प्रत्ययान्त शब्द लिये जायंगे, द्वितये, द्वितयाः (दूसरे) इतर रूप रामशब्दवत् होंगे । इसी प्रकार चरमे, चरमाः (अन्तके) । अल्पे, अल्पाः । अर्धे, अर्धाः । कतिपये, कतिपयाः (कुछ) ऐसे रूप होतेहैं, इतर रूप रामशब्दवत् जानो । नेमे, नेमाः । नेमशब्द सर्वादि गणमें है इससे शेष रूप सर्वशब्दवत् जानो । अवयवोंकी संख्या दिखानेवाला तयप् प्रत्यय है, दो अवयव जिसके हों वह द्वितय इसी प्रकार त्रितय, चतुष्टय, पञ्चतय, बहुतय, इत्यादि रूप जानो $\frac{५।२।४२}{१८४३}$ सूत्र देखो ।

*(विभाषेति) इस विभाषाप्रकरणमें तीयप्रत्ययान्त (द्वितीय, तृतीय) शब्दोंको ङित् विभक्ति परे रहते सर्वनाम संज्ञा करनी चाहिये । (वा० २४५) अर्थात् द्वितीय, तृतीय शब्दोंको ङित् विभक्तिमें (चतुर्थी, पंचमी, सप्तमी) इनके एक वचनमें विकल्पसे सर्वनाम संज्ञा होतीहै । द्वितीयस्मै, द्वितीयाय । द्वितीयस्मात्, द्वितीयात् । द्वितीयस्मिन्, द्वितीये । इसी प्रकार तृतीय शब्दके रूप जानने । तृतीयस्मै, तृतीयाय । तृतीयस्मात्, तृतीयात् । तृतीयस्मिन्, तृतीये । इनके इतर रूप रामशब्दवत् होंगे ।

'अर्थवद् ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम् ७३' यह परिभाषा पीछे कहीहै, इसके अनुसार यहां ऐसा जानना कि, संख्याके पूर्ण करनेके निमित्त जो "द्वेस्तीयः $\frac{५।२।५४}{१८५४}$" इससे तीय प्रत्यय होताहै उसके उच्चारणसे "प्रकारवचने जातीयर् $\frac{५।३।६९}{२०२४}$" इससे होनेवाला जातीयर् (जातीय) प्रत्यय है, इसमेंके 'तीय' इतने निरर्थक अंशका ग्रहण नहीं होता, उन शब्दोंका इस विभाषासे किसी प्रकारका कुछ सम्बन्ध नहीं, इस कारण पटुजातीय (कुशल मनुष्यकेसा) इस शब्दकी चतुर्थीमें 'पटुजातीयाय' ऐसा ही रूप होताहै, ऐसे ही और रूप रामशब्दकी समान जानने ॥

निर्जर (देवता) शब्द–(निर्गता जरा यस्मात् अर्थात् जिसको बुढापा नहीं आता–देवता) निर्जर+सु–निर्जरः । निर्जर+औ–

२२७ जराया जरसन्यतरस्याम् ७ । २ । १०१ ॥

जराशब्दस्य जरस् वास्यादजादौ विभक्तौ ।

पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च । अनेकाल्त्वात्सर्वादेशे प्राप्ते निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाज्जरशब्दस्य जरस्। निर्जरसौ । निर्जरसः। इनादीन् बाधित्वा परत्वाज्जरस्। निर्जरसा। निर्जरसे। निर्जरसः। पक्षे हलादौ च रामवत् । वृत्तिकृता तु पूर्वविप्रतिषेधेन इनातोः कृतयोः सन्निपातपरिभाषाया अनित्यत्वमाश्रित्य जरसि कृते निर्जरसिन निर्जरसादिति रूपे न तु निर्जरसा निर्जरस इति केचिदित्युक्तम्। तथा भिसि निर्जरसैरिति रूपान्तरमुक्तम् । तदनुसारिभिश्च षष्ठ्येकवचने निर्जरस्येत्येव रूपमिति स्वीकृतमेतच्च भाष्यविरुद्धम् ॥

२२७-अजादि विभक्ति आगे होते जरा शब्दको जरस् आदेश होताहै । (परि०) 'पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च' अर्थात् पदाधिकार वा अंगाधिकारमें कहे हुए शब्दसे तदन्तका भी ग्रहण होताहै (२०९ सि०) । यह सूत्र अंगाधिकारमें है, इससे जराशब्दसे निर्जर शब्दका भी ग्रहण होताहै, अर्थात् निर्जर शब्दको भी जरस् आदेश होताहै, जरस् यह अनेकवर्णवान् आदेश है इससे निर्जरके स्थानमें १।१।५५/४५ से प्राप्त हुआ, परन्तु (पारे०) 'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति' अर्थात् सूत्रमें जितनेका उच्चारण किया हो उतने ही अंशको आदेश होताहै, इस कारण 'जर' इतने ही अंशको आदेश जानना चाहिये। (एकदेशेति) एक देशमें विकार होनेसे अन्यके तुल्य नहीं होता (जैसे कुत्ता कान, पूंछ कटनेपर घोडा या गधा नहीं होता) इससे आदिमें जरा इस आकारान्त शब्दको सूत्रमें आदेश कहाहै तो भी उसके एकदेश अर्थात् थोडे भागमें विकार होकर बना जो जर शब्द उसको जरस् आदेश होताहै, निर्जर शब्दमें जरा यह मूल स्त्रीलिंग शब्द है, "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८/६५६" इससे उसको ह्रस्व हुआ है। निर्जरसौ । जस्, शस्में निर्जरसः । अकारान्त पुँल्लिंगके आगेके टा, ङे, ङसि, ङस्के स्थानमें ५।१।१२/२०१ । ७।१।१३/२०४ से क्रमसे इन, य, आत्, स्य. यह आदेश होतेहैं, परन्तु इस ७।२।७१/२२७ का कार्य जरस् आदेश पहले होकर शब्दका अकारान्तत्व नष्ट होगया, और उससे इन इत्यादि आदेश न होकर टा आदि मूल प्रत्यय ही लगकर निर्जरस् + टा=निर्जरसा । ङे=निर्जरसे । ङसि, ङस्=निर्जरसः । इसी प्रकारसे ओस्, आम्, ङि, इन प्रत्ययोंमें पहले ही जरस् आदेश होताहै । और जरसादेशके विकल्प पक्षमें और हलादिमें रामवत् रूप होतेहैं ।

निर्जर शब्दके रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	निर्जरः	निर्जरसौ,निर्जरौ	निर्जरसः, निर्जराः
सम्बोधन	हे निर्जर	हे निर्जरसौ, हे निर्जरौ	हे निर्जरसः, हे निर्जराः
द्वि०	निर्जरसम्,निर्जरम्,	निर्जरसौ,निर्जरौ	निर्जरसः, निर्जरान्
तृ०	निर्जरसा, निर्जरेण	निर्जराभ्याम्	निर्जरैः
च०	निर्जरसे, निर्जराय	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
पं०	निर्जरसः, निर्जरात्–द्	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
षष्ठी	निर्जरसः, निर्जरस्य	निर्जरसोः, निर्जरयोः	निर्जरसाम्, निर्जराणाम्
सप्तमी	निर्जरसि, निर्जरे	निर्जरसोः,निर्जरयोः	निर्जरेषु ॥ * ॥

(वृत्तिकृतेति)-वृत्तिकार कहतेहैं कि, "विप्रतिषेधे परं कार्यम् १।४।२/१०५" से पर अर्थात् इष्ट प्रसंगके अनुकूल ऐसा अर्थ लेकर यहां पूर्व यही अनुकूल अर्थ है, ऐसा कह कर "विभक्त्यादेशाः पूर्वप्रतिषेधेन भवन्ति" ऐसा वार्तिक वचन होनेसे उसके बलसे पूर्व कार्य पहले करना, अकारान्त निर्जर शब्दको इन, आत् यह पूर्व ७।१।१२/२०१ कार्य पहले करके उन्हींके निमित्तसे फिर उलटे निर्जर शब्दको २२७ से जरस् आदेश करना चाहिये, सन्निपातपरिभाषा तो अनित्य है अर्थात् यहां बाध आनेपर भी कोई हानि नहीं, इस कारण 'निर्जरसिन' 'निर्जरसात्' ऐसे रूप होतेहैं; 'निर्जरसा' 'निर्जरसः' ऐसे रूप नहीं होते ऐसा कोई कोई कहतेहैं, इसी प्रकार भिस् प्रत्ययमें भी निर्जरसैः ऐसा एक और रूप उन्होंने मानाहै, इसी प्रकार वृत्तिकारका मत माननेवालोंने षष्ठीके एकवचनमें 'निर्जरस्य' यह एक ही रूप मानाहै, वार्तिकसे स्य आदेश पहले होताहै और फिर जरस् आदेशको स्थल नहीं रहता ऐसा कहते हैं, परन्तु यह सब मत भाष्यविरुद्ध होनेसे त्याज्य हैं * ॥

(इस सूत्रमें "अचि र ऋतः ७।२।१००/२९९" से 'अचि' और "अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८४/२७१" से 'विभक्तौ' की अनुवृत्ति आतीहै)

पाणिनीय सूत्रोंकी वृत्ति लिखनेवालोंका नाम वृत्तिकार है, नाम प्रसिद्ध नहीं ।

स्त्रीलिंग जरा शब्द २९३ सूत्रमें आवेगा उसका वर्णन वहीं करेंगे, यहां केवल अकारान्त शब्द दिखाया है ॥

---

* द्वितीयाबहुवचनमें अर्थात् शस् प्रत्ययमें प्रथम रूपमें दीर्घ नहीं होता इस कारण "तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।७२/१९६" सूत्र नहीं लगता अर्थात् नकार नहीं होता । तृतीयाबहुवचनमें "अतो भिस ऐस् ७।१।९/२०३ इससे अकारान्तके आगे भिस् प्रत्ययके स्थानमें ऐस् आदेश हुआ, वह अजादि है इससे उसके कारणसे "जराया जरस्०" ७।२।१०१/२२७ सूत्रसे जरसादेश भी प्राप्त होताहै ऐसा न कहना चाहिये कारण कि निर्जर शब्दमेंके अकारान्तके आश्रयसे जो ऐस् आदेश हुआ उसीके कारणसे उपजीव्य निर्जर शब्दके अकारान्तत्वको नष्ट न होते सन्निपातपरिभाषा २०४ का विरोध आताहै वैसे ही अकारान्त शब्दको भी जो कितने एक दूसरे कार्य होने हैं वे जरसादेशमें नहीं होते ॥

* २०१ सूत्रमें भाष्यकारने इन और आत् का प्रत्याख्यान करके उसके स्थानमें 'न' 'अत्' ऐसा विधान किया 'रामेण' इत्यादि रूपसिद्धिके लिये "आङि चापः २८९" में 'आङि च' इसका योगविभाग कर आङ् परे रहते अदन्ताङ्गको एत्व हो ऐसा अर्थ किया और 'रामात्' इत्यादिकी सिद्धिके लिये 'अत्' ऐसा उच्चारणसामर्थ्यसे पररूप १९१ का बाध कर दीर्घ ही ८५ होगा ऐसा कहाहै, उनके मतसे वार्तिककारका 'निर्जरसिन' 'निर्जरसात्' इत्यादिरूप विरुद्ध है क्योंकि 'न' 'अत्' ऐसा आदेश होनेपर वे रूप नहीं बनसकते और भिससे 'निर्जरैः' ऐसा ही होताहै यहां सन्निपातपरिभाषासे जरस् आदेश नहीं होता ऐसा भाष्यकारने कहाहै ॥

अब पाद (चरण) शब्द कहतेहैं–

२२८ पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ॥ ६ । १ । ६३ ॥

पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृज्, यूष, दोष, यकृत्, शकृत्, उदक, आस्य, एषां पादादय आदेशाः स्युः शसादौ वा । यत्तु आसनशब्दस्य आसन्नादेश इति काशिकायामुक्तं तत्प्रामादिकम् । पादः । पादौ । पादाः । पादम् । पादौ । पदः । पादान् । पदा । पादेन इत्यादि ॥

२२८–पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृज्, यूष, दोष, यकृत्, शकृत्, उदक, आस्य, इन शब्दोंके स्थानमें क्रमसे पद्, दत्, नस्, मास्, हृद्, निश्, असन्, यूषन्, दोषन्, यक्न्, शकन्, उदन्, आसन् ,आदेश शस् आदि विभक्ति परे रहते विकल्प करके हों ("अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ६ । १ । ५९" से विकल्पकी अनुवृत्ति आतीहै)। आसन शब्दके स्थानमें आसन् आदेश हो यह बात जो काशिका[1] वृत्तिमें लिखीहै, वह प्रमाद अर्थात् भूल है * ॥

पाद शब्दके रूप–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र.	पादः	पादौ	पादाः
सं.	हे पाद	हे पादौ	हे पादाः
द्वि.	पादम्	पादौ	पदः, पादान्
तृ.	पदा, पादेन	पद्भ्याम्, पादाभ्याम्	पद्भिः, पादैः
च.	पदे, पादाय	पद्भ्याम्, पादाभ्याम्	पद्भ्यः, पादेभ्यः
पं.	पदः, पादात्	पद्भ्याम्, पादाभ्याम्	पद्भ्यः, पादेभ्यः
ष.	पदः, पादस्य	पदोः, पादयोः	पदाम्, पादानाम्
स.	पदि, पादे	पदोः, पादयोः	पत्सु, पादेषु

अब 'दन्त' (दांत) इसको शसादि प्रत्यय आगे रहते पूर्वसूत्रसे विकल्पसे दत् आदेश होताहै परन्तु इसके रूप कहनेसे पहले कितनी ही संज्ञायें कहनी उचित हैं, सो कहतेहैं–

२२९ सुडनपुंसकस्य । १ । १ । ४३ ॥

सुट् प्रत्याहारः । स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य ॥

२२९–सुट् यह प्रत्याहार है, इससे सु, औ, जस्, अम्, औट् इन पांच प्रत्ययोंमेंसे प्रत्येकका ग्रहण होताहै । नपुंसकलिंगको छोडकर सु आदि पांच विभक्तियोंकी सर्वनामस्थान संज्ञा है । ("शि सर्वनामस्थानम् १।१।३९ / ३१३" से सर्वनामस्थानकी अनुवृत्ति आतीहै) * ॥

२३० स्वादिष्वसर्वनामस्थाने । १ । ४ । १७ ॥

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु परतः पूर्वं पदसंज्ञं स्यात् ।

२३०–असर्वनामस्थान अर्थात् सर्वनामस्थानभिन्न कप्प्रत्ययपर्यन्त (चतुर्थाध्यायके प्रारम्भसे पञ्चमाध्यायतकके) प्रत्यय परे रहते पूर्वकी पद संज्ञा हो । "सुप्तिङन्तं पदम् २९" से, ४।१।२ / १८३ से सुप् और १।४।७८ / २१५४ से तिङ् प्रत्यय लगाकर जो शब्द बनतेहैं, उनकी पद संज्ञा होतीहै, परन्तु यहां प्रत्यय आगे रहते शब्दके मूलरूपकी पद संज्ञा है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये । यहां (२९ से पदकी अनुवृत्ति आतीहै) ॥

इसका अपवाद–

२३१ यचि भम् । १ । ४ । १८ ॥

यकारादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु परतः पूर्वं भसंज्ञं स्यात् ॥

२३१–पिछले सूत्रमें कहेके अनुसार असर्वनामस्थान जो सु से लेकर कप् तक प्रत्यय उनमेंसे जो यकारादि अथवा अजादि प्रत्यय आगे हों तो पूर्व शब्दकी भ संज्ञा होतीहै ॥

पद और भ संज्ञा यह दोनों एक ही समय प्राप्त होतीहैं, तो इसपर कहतेहैं–

२३२ आ कडारादेका संज्ञा । १ । ४ । १ ॥

इत ऊर्ध्वं कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया या पराऽनवकाशा च । तेन शसादावचि भसंज्ञैव न पदत्वम् । अतो जश्त्वं न । दतः । दता । जश्त्वम् । दद्भ्यामित्यादि । मासः । मासा । भ्यामि रुत्वे यत्वे च यलोपः । माभ्याम् । माभिरित्यादि ॥

२३२–यहां १।४।१ / २३२ से "कडाराः कर्मधारये २।२।३८ / ७५१" तक अर्थात् पहिले अध्यायके चतुर्थपादसे लेकर द्वितीय अध्यायके द्वितीय पादकी समाप्तितक तीन पादमें जो संज्ञा कही है, वह एकको एक ही होतीहै अर्थात् एक शब्दको कौन संज्ञा हो ? तो इनमेंसे दो या अधिक संज्ञायें नहीं होतीं, (या परंतु) जो पर हो वह होतीहै, परन्तु जो पूर्व संज्ञाको

---

[1] जयादित्य अपर नाम वामनाचार्यने जो पाणिनीय सूत्रोंकी वृत्ति लिखी है वह काशी क्षेत्रमें लिखे जानेके कारण काशिका नामसे विख्यात है, कौमुदीसे पहले इसीका प्रचार था ॥

* "आसो [illegible]" [illegible] 'आस्नः' इसका 'मुखात्' (मुखसे) [illegible] [illegible] (मुखसे) [illegible] आस्नि' इस [illegible] 'आस्नि' [illegible] [illegible] 'आसन [illegible] आसन शब्द नहीं ॥

* यहां लाघवसे 'सुट् क्लीबस्य' ऐसा कहना उचित था [illegible] कहकर 'अनपुंसकस्य' ऐसा जो उच्चारण किया [illegible] [illegible] तिससे [illegible] समास हो ([illegible] कोई बाधा नहीं [illegible] क्रियासे अन्वय [illegible] 'अब्राह्मणः' इत्यादि और [illegible]) ऐसे वाक्यसे [illegible] होताहै [illegible] इत्यादि [illegible] होताहै जिससे [illegible] होनेसे सिद्ध होतेहैं ॥

और कहीं भी अवकाश न हो तो वही होतीहै, इससे शस् यहांसे चतुर्थ पंचम अध्यायमेंके प्रत्यय जो हैं, उनमेंके अजादि प्रत्यय आगे हों तो पूर्व शब्दको भ संज्ञा ही होतीहै, पद संज्ञा नहीं होती।

सारांश यह कि, सु, औ, जस्, अम्, औट् इन पांच प्रत्ययोंको पुँल्लिङ्गमें और स्त्रीलिंगमें सर्वनाम संज्ञा होतीहै, इन पांच प्रत्ययोंको छोडकर चौथे पांचवें अध्यायोंके जो और प्रत्यय बचे हैं उनमेंसे यकारादि और अजादि प्रत्यय आगे रहते पूर्व शब्दको 'भ' और उन्हींमेंके इतर प्रत्यय आगे रहते पूर्व शब्दको पद संज्ञा जाननी चाहिये, यह सब प्रत्यय बहुत हैं, परन्तु यहां सुप् प्रत्ययोंको दिखातेहैं-शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस् इनसे भ संज्ञा है। भ्याम्, भिस्, भ्याम्, भ्यस्, भ्याम्, भ्यस्, सुप्, इन सातसे पद संज्ञा है। विशेष ध्यान रखने योग्य यह बात है कि, सर्वनामस्थान संज्ञा प्रत्ययोंकी होतीहै, परन्तु पद और भ संज्ञा यह प्रत्ययोंके पहले रहनेवाले शब्दोंकी होतीहै। इसी प्रकारसे शसादिकोंमेंके अजादि प्रत्यय आगे रहते पद संज्ञा नहीं होती, इसीसे 'दत्' के आगे शस् प्रत्यय होते "झलाञ्जशोऽन्ते ८४" सूत्र नहीं लगता, कारण कि पदान्तके विना इस सूत्रकी प्राप्ति नहीं होती, यहां पदान्त नहीं है, इससे तकारको (जश्त्व) दकार नहीं होता, दतः। दता। भ्याम् इत्यादि हलादि प्रत्यय आगे रहते पद संज्ञा है इससे ८४ से जश्त्व (तकारको दकार) हुआ दद्भ्याम् इत्यादि। दन्त शब्दके रूप-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र.	दन्तः	दन्तौ	दन्ताः
सं.	हे दन्त	हे दन्तौ	हे दन्ताः
द्वि.	दन्तम्	दन्तौ	दतः, दन्तान्
तृ.	दता, दन्तेन	दद्भ्याम्, दन्ताभ्याम्	दद्भिः, दन्तैः
च.	दते, दन्ताय	दद्भ्याम्, दन्ताभ्याम्	दद्भ्यः, दन्तेभ्यः
पं.	दतः, दन्तात्	दद्भ्याम्, दन्ताभ्याम्	दद्भ्यः, दन्तेभ्यः
ष	दतः, दन्तस्य	दतोः, दन्तयोः	दताम्, दंतानाम्
स.	दति, दन्ते	दतोः, दन्तयोः	दत्सु, दन्तेषु

नासिका (नाक) शब्द स्त्रीलिंगमें आगे आवेगा, (२९३ सू० देखो)।

मास (महीना) शब्द, इसको शसादिमें विकल्प करके मास् होगा, इससे मास्+शस्=मासः। मास्+टा=मासा। मास्+भ्याम्=माभ्याम्, इसमेंके सकारको "ससजुषो रुः ८।२।६६ / १६२" से रु(र्) और आगे अश् रहनेसे रु को "भोभगो० ८।३।१७ / १६७" से यत्व, फिर "हलि सर्वेषाम् ८।३।२२ / १७१" से लोप होकर माभ्याम् हुआ। मास्+भिस्=माभिः-इत्यादि।

मास शब्दके रूप-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र.	मासः	मासौ	मासाः
सं.	हे मास	हे मासौ	हे मासाः
द्वि.	मासम्	मासौ	मासः, मासान्
तृ.	मासा, मासेन	माभ्याम्, मासाभ्याम्	माभिः, मासैः
च.	मासे, मासाय	माभ्याम्, मासाभ्याम्	माभ्यः, मासेभ्यः
पं.	मासः मासात्	माभ्याम्, मासाभ्याम्	माभ्यः, मासेभ्यः
ष.	मासः, मासस्य	मासोः, मासयोः	मासाम्, मासानाम्
स.	मासि, मासे	मासोः, मासयोः	माःसु, मास्सु, मासेषु

हृदय नपुंसक लिंगमें, निशा स्त्रीलिंगमें, असृज् नपुंसकमें आवेंगे।

यूष (मूंगका काढा) शब्द, इसको शसादिमें विकल्प करके यूषन् आदेश होताहै, परन्तु-॥

२३३ भस्य। ६। ४। १२९॥

अधिकारोऽयम्॥

२३३-यहां भसंज्ञाका अधिकार जानना चाहिये॥

२३४ अल्लोपोऽनः। ६। ४। १३४॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः स्यात्॥

२३४-अङ्गका अवयव और असर्वनामस्थान यकारादि प्रत्यय और अच् आदिवाले स्वादि प्रत्यय जिसके परे हों ऐसे अन्के अकारका लोप हो। यूषन्+अस् ऐसी स्थिति हुई-॥

२३५ रषाभ्यां नो णः समानपदे। ८। ४। १॥

एकपदस्थाभ्यां रेफषकाराभ्यां परस्य नस्य णः स्यात्। यूष्णः। यूष्णा। पूर्वस्मादपि विधौ स्थानिवद्भाव इति पक्षे तु अड्व्यवाय इत्येवात्र णत्वम्। पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदिति तु इह नास्ति। तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेष्विति निषेधात्॥

२३५-एक ही पदमें रहनेवाला रेफके आगेका अथवा षकारके आगेका जो 'न्' उसके स्थानमें 'ण्' आदेश होताहै, यूष्णः। यूष+टा=यूष्णा, यहां अकारके स्थानमें लोप यह आदेश है, (पूर्वस्मादिति) "अचः परस्मिन्पूर्वविधौ १।१।५७ / ५०" इससे पर वर्णके निमित्तसे अच्के स्थानमें प्राप्त होनेवाला जो आदेश वह अच्के पूर्व वर्णके कार्य कर्तव्य होते स्थानिवत् होताहै ऐसा कहाहै, परन्तु 'पूर्वविधौ' इसका अर्थ पूर्वस्य विधौ (पूर्ववर्णके सम्बन्धसे कार्य कर्त्तव्य होते) ऐसा न करके 'पूर्वस्मात् विधौ' अर्थात् पूर्ववर्णके अगले वर्णका कार्य कर्त्तव्य होते ऐसा भी कहीं २ करतेहैं, इस कारण विभक्ति प्रत्ययके निमित्तसे यूषन् इसमेंके जिस 'अ' अच्के स्थानमें अकारका लोप आदेश हुआहै, उसका पूर्व वर्ण जो ष् उससे परे नकारको णकार करना है, इस कारण अकारके लोपको 'स्थानिवद्भाव' अर्थात् अ है ऐसा पक्ष लियाजाय तो 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८।४।२ / १५७" इस सूत्रसे बीचमें अकार रहते भी षकारके निमित्तसे नकारके स्थानमें णत्व होताहै। (पूर्वत्रासि०) 'त्रिपादीमें स्थानिवद्भाव नहीं होताहै' ऐसा वचन है, परन्तु वह यहां नहीं लगता, क्योंकि संयोगादिलोप, लत्व, णत्व इनका

विधान होते त्रिपादीमें भी स्थानिवद्भाव होता है, ऐसा भाष्यमें निषेध होनेसे यहां उस वचनका बाध होताहै * ॥

२३६ न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य । ८।२।२७॥

नेति प्रातिपदिकेति च लुप्तषष्ठीके पदे । प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नकारस्य लोपः स्यात् । नलोपस्यासिद्धत्वाद्दीर्घत्वमेत्वमैस्त्वं च न। यूषभ्याम्।यूषभिः।यूषभ्य इत्यादि॥

२३६–इस सूत्रमें 'न' और 'प्रातिपदिक' यह दोनों पद 'लुप्तषष्ठीक' हैं,इनमेंके षष्ठीप्रत्ययोंका लोप हुआ हैं, सूत्रोंमें यह बात देखी जातीहै इससे षष्ठीप्रत्यय न होते भी षष्ठीका अर्थ लेना चाहिये, तब प्रातिपदिकसंज्ञक पद होते (अर्थात् उसके आगे असर्वनामस्थानसंज्ञक यजादिवर्ज भ्याम् इत्यादि स्वादि प्रत्यय होते) उसके अन्त्य नकारका लोप होताहै ।

(नलोपस्येति) यह सूत्र त्रिपादीका है इससे सपादसप्ताध्यायीमेंके आगे कहे कार्यको लोप नहीं दीखता, नकार ही दीखताहै, इससे "सुपि च ७।३।१०२ / २०२" इससे यञादि सुप् प्रत्यय आगे रहते अकारान्त अंगको होनेवाला दीर्घ यहां नहीं होता, "अतो भिस ऐस् ७।१।९ / २०३" इससे अकारान्त के आगे जो भिस् उसके स्थानमें होनेवाला ऐस् आदेश वह भी नहीं होता, "बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३ / २०५" इससे बहुवचन झलादि सुप् प्रत्यय आगे रहते अकारको होनेवाला एत्व भी नहीं होता । इनके उदाहरण अनुक्रमसे यूषभ्याम्, यूषभिः, यूषभ्यः–इत्यादि

. ऊपर वृत्तिमें 'प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदम्' ऐसा कहा है उसमें सुप्तिङन्त जो पद उसका भी ग्रहण होताहै,इससे राजन्+पुरुषः इत्यादिमें नकारका लोप होकर 'राजपुरुषः' ऐसा हुआ है ॥

२३७ विभाषा ङिश्योः।६।४।१३६॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः । यूष्णि । यूषणि । पक्षे रामवत् । पद्न्निति सूत्रे प्रभृतिग्रहणं प्रकारार्थम् । तथा च औङः श्यामपि दोषन्नादेशो भाष्ये ककुदोषणी इत्युदाहृतः । तेन पदंघ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्, स्वान्तं हृन्मानसं मन इति संगच्छते । आसन्यं प्राणमूचुरिति च। आस्ये भवः आसन्यः । दोषशब्दस्य नपुंसकत्वमप्यत एव भाष्यात् । तेन दक्षिणं दोर्निशाचर इति संगच्छते । भुजबाहू प्रवेष्टो दोरिति साहचर्यात्पुंस्त्वमपि । दोषं तस्य तथाविधस्य भजत इति। द्वयोरद्दोर्भवो द्वयहः॥

. २३७–असर्वनामस्थानयजादिस्वादिपर (अर्थात् भसंज्ञक) और अंगका अवयव जो अन् उसके अकारका विकल्प करके लोप होताहै आगे ङि वा शी ७।१।१९ / ३१० प्रत्यय परे रहते । यूष्णि, यूषणि । अन्य पक्षमें रामशब्दवत् ।

यूष शब्दके रूप–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यूषः	यूषौ	यूषाः
सम्बोधन	हे यूष	हे यूषौ	हे यूषाः
द्वितीया	यूषम्	यूषौ	यूष्णः, यूषान्
तृतीया	यूष्णा, यूषेण	यूषभ्याम्, यूषाभ्याम्	यूषभिः,यूषैः
चतुर्थी	यूष्णे, यूषाय	यूषभ्याम्, यूषाभ्याम्	यूषभ्यः, यूषेभ्यः
पञ्चमी	यूष्णः, यूषात्	यूषभ्याम्, यूषाभ्याम्	यूषभ्यः,यूषेभ्यः
षष्ठी	यूष्णः, यूषस्य	यूष्णोः, यूषयोः	यूष्णाम्, यूषाणाम्
सप्तमी	यूष्णि, यूषणि, यूषे	यूष्णोः, यूषयोः	यूषसु, यूषेषु

इसके अगले शब्द दोष्, यकृत्, शकृत् यह हलन्त हैं । उदक, आस्य यह अदन्त नपुंसक हैं, इससे इनके रूप अपने २ स्थानपर आवेंगे.

"पद्दत्० २२८" सूत्रमें प्रभृतिशब्द प्रकार अर्थात् सादृश्य दिखानेके निमित्त जोडा गयाहै, इस कारण शस्के पूर्वमें भी कहे हुए प्रत्यय आगे रहते कहीं २ पद्, दत् इत्यादि आदेश होतेहैं, (तथा च औङः श्या०) भाष्यमें "नपुंसकाच्च ७।१।१९ / ३१०" इस सूत्रसे औङ् (औ) प्रत्ययको होनेवाला शी (ई) आदेश करते समय भी 'ककुदोषणी' (बैलकी ककुद् कन्धा)। दोष (हाथ) यह उदाहरण देकर स्पष्ट कियाहै । इसीसे 'पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्' इत्यादि अमरकोशके वाक्योंमें पद्, हृद् ऐसा शब्द प्रथमाके एकवचन सुप्रत्यय में लाये गयेहैं यह ठीक बैठताहै । (आसन्यं प्राणमूचुरिति) मुखमें उत्पन्न हुए वायुको प्राण कहतेहैं, ऐसा भी प्रामाणिक प्रयोग है । (आस्ये भव आसन्यः) मुखमें उत्पन्न हुआ, 'आसन्य' इसमें "शरीरावयवाच्च ४।३।५५ / १४३०" इससे यत् (य) प्रत्यय हुआहै यह शसादि सुप् प्रत्ययोंके परेका है

* 'रषाभ्यां नो०' 'अट्कुप्वाङ्०' यह सूत्र त्रिपादीमें होनेसे पूर्वत्र असिद्ध है इस कारण तत्प्रयुक्त कार्यको "अचः परस्मिन्पूर्वविधौ १।१।५७ / ५०" यह शास्त्र नहीं लगता, इसपरसे "पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्"यह परिभाषा प्रगट हुई,परन्तु फिर 'संयोगादिलोप०' इस निषेधके कारण उसका प्रस्तुत प्रसंगमें निराकरण हुआ, अर्थात् वहां स्थानिवद्भाव है ऐसा निश्चय हुआ, इन तीनों अपवादोंके उदाहरण यहां हैं–"स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२।२९ / ३८०"इससे पदान्तमें वा आगे झल् रहते संयोगके प्रारंभमें रहनेवाले सकार और ककारका लोप होताहै, इस कारण चक्री+अत्र इसकी संधि होनेसे जो चक्र्य्×अत्र ऐसी स्थिति हुई उसमें 'क्र्य्' ऐसा जो संयोग वह पदान्तमें होनेसे उसके आदि ककारका लोप प्राप्त हुआ, परन्तु 'संयोगादिलोप०' इस वचनसे अन्त्य यकारको स्थानिवद्भावसे ईत्व प्राप्त है, इस कारण क्र इस संयोगको पदान्तत्व नहीं आता, और आगे झल् भी नहीं है इस कारण आदि ककारका लोप न होने 'चक्र्यत्र' ऐसी संधि हुई । लत्वका उदाहरण 'निगाल्यते' यह गृ धातुका प्रयोजकर्मणि ण्यन्तकर्माण रूप है, इसमें स्थानिवद्भावसे रफके स्थानमें "अचि विभाषा ८।२।२१" से लत्व हुआ है । 'माषवपनी' इसमें स्थानिवद्भाव है इस कारण नकारको णत्व नहीं हुआ, अर्थात् 'प्रातिपदिकान्त०' इससे अलोपके स्थानिवद्भाव होनेसे नकारको प्रातिपदिकान्तत्वाभाव होनेसे णकार न हुआ । अन्तके इन दोनों रूपोंका सिद्धिका विस्तार आगेके स्थलोंमें आवेगा इस कारण यहां नहीं लिखते ॥

तो भी यह आगे रहते आस्य शब्दको आसन् आदेश हुआ है।

'आसन्' यह आदेश आसन शब्दको होताहै ऐसा काशिकाकारने कहाहै सो प्रामादिक है यह कहनेको 'आसन्यं प्राणमूचुः' यही आधार है ॥

(दोषशब्दस्य) ऊपर 'ककुद्दोषणी' ऐसा शब्द आया है वह 'ककुद्दोषन्' इस नपुंसक शब्दका प्रथमा द्वितीयाका द्विवचन है, इस भाष्यके लेखके आधारसे दोष शब्द नपुंसक भी है, इससे 'दक्षिणं दोर्निशाचरे' (दहिनी भुजा राक्षसपर 'डाली') यह प्रयोग साधु दीखताहै । (भुजबाहू०) अमरकोशमें 'प्रवेष्टः' पुँल्लिङ्गके साथ 'दोः' (दोष्) शब्द दिया हुआहै इस कारण उसको पुंस्त्व भी है, इसका प्रयोग 'दोषं तस्य तथाविधस्य भजतः' (इस प्रकारका वह ईश्वर है उसकी बाहुको भजते०) यह है ॥

अब द्व्यह्न शब्द-('द्वयोः अह्नोः भवः-द्व्यह्नः' । जो दो दिनोंमें हुआ)—

२३८ संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याहन्नन्यतरस्यां ङौ।६।३।११०॥

संख्यादिपूर्वस्याह्नस्याहनादेशो वा स्यान्ङौ। द्व्यह्नि। द्व्यहनि। द्व्यह्ने। विगतमहर्व्यह्नः। व्यह्नि। व्यहनि। व्यह्ने। अहः सायः सायाह्नः। सायाह्नि। सायाहनि। सायाह्ने॥ ॥ इत्यदन्ताः ॥

विश्वपाः ॥

२३८-संख्यावाचक शब्द अथवा अव्यय वि और साय-शब्द यदि पूर्वमें हों तो अह्न शब्दके स्थानमें ङि परे रहते विकल्प करके अहन् आदेश हो। इससे द्व्यह्नको 'द्व्यहन्' ऐसा रूप हुआ परन्तु आगे ङि होनेसे "विभाषा ङिश्योः ६।४।१३६/२३७" इससे फिर विकल्प करके अन्के अकारका लोप हुआ इस प्रकारसे तीन रूप हुए-द्व्यह्नि, द्व्यहनि, द्व्यह्ने। शेष रूप रामशब्दवत् जानो।

इसी प्रकार व्यह्न ('विगतम् अहः' बीता हुआ दिन) शब्दके रूप जानो। इसके आगे ङि होनेसे व्यह्नि, व्यहनि, व्यह्ने। इतर रूप रामशब्दवत् जानो।

अह्नः सायः-(दिनका सायंकाल) 'सायाह्नः' ङि प्रत्यय आनेपर सायाह्नि, सायाहनि, सायाह्ने। इतर रूप रामशब्दवत् जानने।

इसमें अहन शब्द हलन्त है तो भी "अहोऽह्न एतेभ्यः ५।४।८८/७९०" इससे टच् (अ) होकर समासान्तमें अह्न आदेश हुआ है, अहन् शब्द आदिका नपुंसक है तो भी द्व्यह्न यह सामासिक शब्द विशेषणरूप होनेसे पुँल्लिङ्गमें लेनेसे कोई दोष नहीं, 'व्यह्न' और 'सायाह्न' यह शब्द "रात्राह्नाहाः पुंसि २।४।२९/८१४" इससे पुँल्लिङ्ग हुए हैं ॥

इति अदन्ताः ॥

आदन्त [illegible] (विश्वं पाति इति विश्वपाः विश्वका [illegible]) इसमें 'पा' धातुके आगे क्विप् प्रत्यय हुआ है क्विप् प्रत्यय सब जातारहताहै (२२६ देखो)

कृत् प्रत्यय होनेके कारण इसकी प्रातिपदिक संज्ञा हुई आगे विभक्ति प्रत्यय 'सु' में विश्वपाः। अब 'औ' और 'जस्' में-

२३९ दीर्घाज्जसि च।६।१।१०५॥

दीर्घाज्जसि इचि च परे प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घो न स्यात्। वृद्धिः। विश्वपौ। सवर्णदीर्घः। विश्वपाः। यद्यपीह औङि नादिचीत्येव सिद्धं जसि तु सत्यपि पूर्वसवर्णदीर्घे क्षतिर्नास्ति तथापि गौर्यौ गौर्य इत्याद्यर्थं सूत्रमिहापि न्याय्यत्वादुपन्यस्तम् ॥

२३९-दीर्घके आगे जस् वा इच् प्रत्याहारका वर्ण हो तो "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२/१६४" यह सूत्र नहीं लगता अर्थात् इससे पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता। औ प्रत्यय आगे रहते "वृद्धिरेचि ६।१।८८/७२" इससे वृद्धि हुई तब विश्वपौ। आगे जस् परे रहते "अकः सवर्णे दीर्घः ८५" से दीर्घ विश्वपाः।

(यद्यपीति०) यहां औङ् (औ) प्रत्यय आगे रहते "नादिचि ६।१।१०४/१६५" अवर्णके आगे इच् रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता, इसीसे रूप सिद्ध होजायगा और जस् प्रत्ययमें तो पूर्वसवर्णदीर्घ हो तो भी कोई हानि नहीं वही रूप होगा तथापि गौरी इत्यादिशब्दोंके गौर्यौ गौर्यः, इत्यादि रूप "प्रथमयोः० १६४" से सिद्ध नहीं होंगे इस सूत्रसे उसमें दोष आजायगा, इससे यह प्रस्तुत सूत्र लगाना चाहिये (२०० सूत्र देखो) उस शब्दकी समान ही यह शब्द दीर्घान्त होनेसे यहां भी वही नियम लगाना न्याय्य है, इससे वह सूत्र यहां दियाहै ॥

२४० आतो धातोः।६।४।१४०॥

आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः स्यात्। अलोऽन्त्यस्य। विश्वपः। विश्वपा। विश्वपाभ्यामित्यादि। एवं शङ्खध्मादयः। धातोः किम्। हाहान्। टा। सवर्णदीर्घः। हाहा। ङे। वृद्धिः। हाहै। ङसिङसोर्दीर्घः। हाहाः २। ओसि वृद्धिः। हाहौः। ङौ आद्गुणः। हाहे। शेषं विश्वपावत्। आत इति योगविभागादधातोरप्याकारलोपः क्वचित्। क्त्वः। इनः॥

इत्यादन्ताः ॥

२४०-आकारान्त जो धातु वह है अन्तमें जिसके ऐसे भसंज्ञक अंगका लोप हो। "अलोऽन्त्यस्य १।१।५२/४२" इससे आकारका लोप हुआ विश्वप्+अस्=विश्वपः। विश्वपा+टा=विश्वपा। विश्वपाभ्याम् इत्यादि।

विश्वपा शब्दके रूप-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
सम्बोधन	हे विश्वपाः	हे विश्वपौ	हे विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः

तृतीया	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
चतुर्थी	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
पंचमी	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
षष्ठी	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
सप्तमी	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु

विश्वपा शब्दको एङन्त वा ह्रस्वान्त न होनेसे सम्बोधनमें "एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः ६।१।६९/१९३" इसका कार्य अर्थात् सुलोप नहीं होता, दूसरा भी कोई कार्य नहीं होता कारण कि प्राप्ति ही नहीं ।

इसी प्रकार शंखध्मा आदि शब्दोंके रूप जानने। धूम्रपा, सोमपा आदि शब्दोंके रूप इसी प्रकार होंगे ।

(धातोः किम्) धातुको हो ऐसा क्यों कहा ? तो धातु न होते भी भ संज्ञकका लोप होजाता । यथा—हाहा (गन्धर्वविशेष) यह अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है इसमें लोप न होनेसे शस् प्रत्ययमें 'हाहान्', टा प्रत्ययमें "अकः सवर्णे दीर्घः ८५" से दीर्घ हाहा। ङेप्रत्ययमें "वृद्धिरेचि ६।१।८८/७२" इससे वृद्धि हाहै। ङसि, ङस्, इन प्रत्ययोंमें सवर्ण दीर्घ हाहाः। हाहाः। ओस् प्रत्ययमें "वृद्धिरेचि ७२" से वृद्धि हाहौः। ङिमें "आद् गुणः ६।१।८७/६९" से गुण हाहे। शेष रूप विश्वपा शब्दके समान जानने। इस सब जगह लोप होजाता, इसलिये धातोः कहा ।

हाहा शब्दके रूप—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हाहाः	हाहौ	हाहाः
संबोधन	हे हाहाः	हे हाहौ	हे हाहाः
द्वितीया	हाहाम्	हाहौ	हाहान्*
तृतीया	हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभिः
चतुर्थी	हाहै	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
पंचमी	हाहाः	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
षष्ठी	हाहाः	हाहौः	हाहाम्
सप्तमी	हाहे	हाहौः	हाहासु

(आतः०) 'आतो धातोः' इस सूत्रमें 'आतः' इतना भाग अलग है उससे केवल अर्थात् धातु न होते भी आकारान्त शब्दोंको कहीं भके स्थानमें अन्त्यलोप होताहै, इससे ३।४।१८/३३१६ इस प्रत्ययका शस् प्रत्ययमें 'क्त्वः' रूप और श्ना ३।१।८१/२५५४ इस बिकरणका शस्प्रत्ययमें 'श्नः' रूप हुआ ॥

इति आदन्ताः ॥

हरिः। प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। हरी ॥

इकारान्त हरि (विष्णु) शब्द। सुप्रत्ययमें हरिः। औ प्रत्ययमें "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२/१६४" इससे पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर हरी। जस्—

२४१ जसि च। ७। ३। १०९ ॥

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः स्याज्जसि परे। हरयः ॥

२४१ आगे जस् रहते ह्रस्वान्त अङ्गको गुण होता है। हरे+अस् अय (एचोऽयवायावः) होकर हरयः। सम्बुद्धि—

२४२ ह्रस्वस्य गुणः। ७। ३। १०८॥

ह्रस्वस्य गुणः स्यात्संबुद्धौ। एङ्ह्रस्वादिति संबुद्धिलोपः। हे हरे। हरिम्। हरी। हरीन् ॥

२४२—आगे सम्बुद्धि रहते ह्रस्वको गुण होताहै। हरे+सु ऐसी स्थिति रहते "एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः ६।१।६९/१९३" इससे सम्बुद्धिलोप, हे हरे। "अमि पूर्वः ६।१।१०७/१९४" इससे हरिम्। हरी पूर्ववत्। "तस्माच्छसो० ६।१।१०३/१९६" से हरीन्।

अगले रूप समझानेको नई संज्ञा करतेहैं।

२४३ शेषो घ्यसखि। १। ४। ७॥

अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविवर्णोवर्णौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञं स्यात्। शेषः किम्। मत्यै। एकसंज्ञाधिकारात्सिद्धे शेषग्रहणं स्पष्टार्थम्। ह्रस्वौ किम्। वातप्रम्ये। यू किम्। मात्रे ॥

२४३—ह्रस्व इकारान्त और ह्रस्व उकारान्त जो सखिवर्जित शब्द उनमें नदीसंज्ञक शब्दोंको छोडकर शेष रहे शब्दोंकी घि संज्ञा हो ("यूस्त्र्याख्यौ नदी १।४।३/२६६" से इ वर्ण उ वर्णकी और "ङिति ह्रस्वश्च १।४।६/२९६" इससे ह्रस्व पदकी अनुवृत्ति आती है) * ॥

(शेषः किम्) नदीसंज्ञक शब्द छोडकर शेष रहे हुए ऐसा क्यों कहा ? इसका आशय यह कि जब नदी संज्ञा है तब घि संज्ञा नहीं होती यह बात दिखानेको ('मत्यै' इस को विचारो) मति शब्दको ङे प्रत्ययमें जब विकल्पसे नदी संज्ञा होकर मत्यै (२९६) रूप हुआ, तब उसकी घि-संज्ञा नहीं है जब नदी संज्ञा नहीं तभी घि संज्ञा है।

(एकसंज्ञाधिकारादिति) "आ कडारादेका संज्ञा १।४।१/२३२" यहांसे लेकर २।२।३८ तक एकसंज्ञाधिकार होनेसे यहां दोनों संज्ञा एक ही समय नहीं होतीं घिसंज्ञाका नदी संज्ञा अपवाद है, इससे शेष ऐसा शब्द सूत्रमें योजना करनेका प्रयोजन न था तथापि स्पष्ट करनेके निमित्त जोडा गयाहै।

ह्रस्व क्यों कहा ? तो वातप्रमी यह शब्द नदीसंज्ञक नहीं है तो भी वह दीर्घान्त है इस कारण घि संज्ञा नहीं और इसीसे

---

* शस् प्रत्ययमें पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर "तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३/१९६" इससे सकारको नकारादेश होकर 'हाहान्' ऐसा रूप हुआ ॥

* बहुतसे दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द नदीसंज्ञक है, यथा १।४।३/२६६। १।४।४/३०३। १।४।५/३०४। १।४।६/२९६ इस संज्ञाका प्रयोजन आगे सिद्ध होगा. (सि० २६६। २७०)। सब ह्रस्व इकारान्त, उकारान्त स्त्रीलिङ्गशब्द भी नदीसंज्ञक होतेहैं परन्तु केवल ङित् (जिसमें ङ् इत् हो ऐसा) प्रत्यय आगे रहते ही वह नदीसंज्ञक हैं और फिर भी विकल्प करके नदीसंज्ञक हैं इससे दूसरे पक्षमें सर्वदा अनदीसंज्ञक भी हैं। ह्रस्व उकारान्त शब्दोंकी जब नदी संज्ञा नहीं होती तब सामान्यतः घिसंज्ञा होतीहै, घिसंज्ञा सभी लिङ्गमें होतीहै, स्त्रीलिङ्गमें ही होतीहै यह बात नहीं, आशय यह कि पुंल्लिङ्गमें, स्त्रीलिङ्गमें अथवा नपुंसकलिङ्गमें, सखि शब्दको छोडकर दूसरा कोई ह्रस्व इकारान्त वा उकारान्त शब्द हो वह घिसंज्ञक होताहै यह सामान्य नियम है (पतिशब्दका अपवाद सि०२५७) और ह्रस्व इकारान्त उकारान्त स्त्रीलिङ्गवाले शब्द ङित्प्रत्ययके पूर्वमें विकल्प करके नदीसंज्ञक जानने। हरिशब्द इकारान्त पुंल्लिङ्ग होनेसे उसकी घि संज्ञा है, घि संज्ञाका कार्य हरि शब्दकी विभक्तियोंमें समझमें आवेगा ॥

'वातप्रम्ये' ऐसा ङे प्रत्यय (२६५) में रूप होताहै । 'हरये' इसके समान नहीं होताहै । अब नहीं होगा इस लिये करना चाहिये ।

(यू०) इ उकारान्त ही क्यों? तो मातृ इस ऋकारान्त शब्द-की नदी संज्ञा नहीं है तो भी घि संज्ञा नहीं इससे ङे प्रत्ययमें मात्रे (३०८) ऐसा रूप होता है, हरये के समान नहीं होता अब घि संज्ञाका कार्य होगा इसलिये यू कहना चाहिये ।

२४४ आङो नाऽस्त्रियाम् ।७।३।१२०॥

घेः परस्याऽऽङो ना स्यादस्त्रियाम् । आङिति टासंज्ञा प्राचाम् । हरिणा । अस्त्रियां किम् । मत्या ॥

२४४-' टा ' की ' आङ् ' ऐसी संज्ञा प्राचीन वैयाकरणोंकी है, स्त्रीलिंगको छोड़ कर घिसंज्ञक शब्दके आगे टाके स्थानमें ' ना ' आदेश होताहै । हरि+टा=हरिणा इसमें " अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८।४।२ / १९७ " इससे णत्व हुआ, अस्त्रीलिङ्गमें क्यों ? तो स्त्रीलिङ्गमें ना नहीं होता, ' मत्या ' सि० २९५ ॥

२४५ घेर्ङिति । ७ । ३ । १११ ॥

घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः स्यात् । हरये । घेः किम् । सख्ये । ङिति किम् । हरिभ्याम् । सुपि किम् । पट्वी । घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते ॥

२४५-ङित् सुप् (ङे, ङसि, ङस्, ङि) विभक्ति आगे रहते घिसंज्ञक शब्दको गुण होताहै (" ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८ " से गुणकी अनुवृत्ति आतीहै)। हरे+ए=हरये । घिसंज्ञक क्यों कहा ? तो ' घि ' न होते गुण नहीं होता । सखि+ए=सख्ये (सि० २४५) ङित् होत सन्ते सुप् ऐसा क्यों ? तो अन्यत्र गुण नहीं होता, हरिभ्याम् । सुप् ऐसा क्यों ? तो जिस स्थानमें सुप् न हो वहां पटु (कुशल) इस घिसंज्ञक शब्दको ङीप् (ई) यह ङित् स्त्रीप्रत्यय है, परन्तु वह सुप् प्रत्यय न होनेसे गुण नहीं हुआ, (सि० ५०२) पटु+ई=पट्वी । ङसि प्रत्ययमें '.घेर्ङिति ' इस सूत्रसे गुण किया गया तो हरे+अस् ऐसी स्थिति हुई, तब-

२४६ ङसिङसोश्च ।६।१।११०॥

एङो ङसिङसोरति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेः । हरेः । हर्योः । हरीणाम् ॥

२४६-एङन्त शब्दके परे ङसि, ङस् प्रत्यय सम्बन्धी अत् हो तो पूर्वरूप एकादेश हो:(" एङः पदान्तादति ६।१।१०९ / ८६ " इस सूत्रसे ' एङ् ' और ' अत् ' की अनुवृत्ति आतीहै) । हरि+ङसि=हरेः । हरि+ङस्=हरेः । हरि+ओस्=हर्योः । आम् प्रत्ययमें राम शब्दके समान नुट् दीर्घ और णत्व (सि० ३०८ । ३०९) हरीणाम् ॥

२४७ अच्च घेः । १ । ३ । ११९ ॥

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत्स्याद् घेरन्तादेशश्चाकारः । हरौ । हर्योः । हरिषु । एवं श्रीपत्यग्निरविकव्यादयः ॥

२४७-ह्रस्व इकारान्त और ह्रस्व उकारान्त शब्दके परे स्थित ङिके स्थानमें ' औ ' हो और उसी समय घिसंज्ञक शब्दको अकार अन्तादेश होता है । " इदुद्भ्याम् ७।३।११७ / २९७ " " औत् ७।३।११८ / २५६ " " ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६ / २७० " इन सूत्रोंसे इकार, उकार औत् (औ) और ङिकी अनुवृत्ति आतीहै 'हरि+ङि इनकी हर+औ=ऐसी स्थिति होकर ' हरौ ' हुआ, यहां " घेर्ङिति ७।३।१११ / २४५ " के अनुसार गुण होना चाहिये परन्तु प्रस्तुत सूत्र पर सूत्र है और अपवादक भी होनेके कारण गुण नहीं होता, प्रस्तुत सूत्रकाही कार्य होताहै । हरि+ओस्=मिल कर पूर्ववत् हर्योः । हरि+सु=हरिषु (सि० २१२) ।

हरि शब्दके रूप-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
संबोधन	हे हरे	हे हरी	हे हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पंचमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु

इसपरसे देखा जाय तो घिसंज्ञाके कार्य तीन हैं १ अस्त्रीलिंगमें तृतीयाके एकवचनमें ' ना ', २ ङिति गुण और ३ सप्तमीके एकवचनमें औ । ऐसेही श्रीपति, अग्नि, रवि, कवि, इत्यादि शब्दोंके रूप जानो ।

अब सखि (मित्र) शब्द, इसको घि संज्ञा नहीं १।४।५ / २४३ ॥

२४८ अनङ् सौ । ७ । १ । ९३ ॥

सख्युरङ्गस्यानङादेशः स्यादसंबुद्धौ सौ परे । ङिच्चेत्यन्तादेशः ॥

२४८-सम्बुद्धिसंज्ञक न हो ऐसा (प्रथमाका) सुप्रत्यय परे रहते सखि शब्दके अङ्गको अनङ् (अन्) आदेश होताहै । ' अनङ्'के नकारके परे स्थित अकार उच्चारणके निमित्त है, "ङिच्च १।१।५३ / ४३" इससे अन्त्यवर्णको आदेश,सखन्+स् ऐसी स्थिति होनेपर-॥

२४९ अलोन्त्यात्पूर्व उपधा ।१।१।६५॥

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात् ॥

२४९-अन्त्य अल्के पिछले वर्णकी उपधा संज्ञा है ॥

२५०सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ ।६।४।८॥

नान्तस्योपधाया दीर्घः स्यादसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे ॥

२५०-सम्बुद्धिको छोड़कर सर्वनामस्थान परे रहते नान्त-शब्दकी उपधाको दीर्घ होताहै (" नोपधायाः ६।४।७ / ३७० " और "ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः" ६।३।१११ / १७४ इन दो सूत्रोंसे नान्त उपधा और दीर्घकी अनुवृत्ति आतीहै) । सखान्+स् ऐसी स्थिति हुई, फिर संज्ञा-

२५१ अपृक्त एकाल् प्रत्ययः।१।२।४१॥

एकाल् प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात् ॥

२५१–एकवर्णात्मक प्रत्ययकी अपृक्त संज्ञा है ॥

२५२ हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् । ६ । १ । ६८ ॥

हलन्तात्परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल् लुप्यते । हल्ङ्याब्भ्यः किम् । ग्रामणीः । दीर्घात्किम् । निष्कौशाम्बिः । अतिखट्वः । सुतिसीति किम् । अभैत्सीत् । तिपा सहचरितस्य सिपो ग्रहणात्सिचो ग्रहणं नास्ति । अपृक्तमिति किम् । बिभर्ति । हल् किम् । बिभेद । प्रथमहल् किम् । राजा । नलोपो न स्यात्, संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वात् । सखा । हे सखे ॥

२५२- हलन्त शब्दके परे सु, ति, सि, इनके अपृक्तरूपी हल्का लोप हो और दीर्घ ङी (ई) आप् (आ) वाले स्त्री प्रत्ययके आगेके भी सु–सम्बन्धी अपृक्त हल्का लोप हो * ॥

हल्, ङी और आप् एतदन्त शब्दके आगेका ही क्यों कहा? तो 'ग्रामणीः' यह हलन्त नहीं तो भी ङीवन्त अथवा आबन्त भी नहीं किन्तु दीर्घान्त है (ग्रामं नयति इति) 'गांव पर अधिकार चलाताहै' सो ग्रामणी। यह ग्राम और नी धातुसे बनाहै, इस कारण हल् (स्) का लोप नहीं 'ग्रामणीः' (सि० २७२)।

दीर्घ जो ङी और आप् तदन्तशब्दके आगेका ऐसा क्यों कहा ? तो वे मूलके दीर्घ होते फिर ह्रस्व हुए हों तो उनके आगेका हल्लोप नहीं होता. कुशाम्बेन निर्वृत्ता (कुशाम्ब राजासे बसाई) कौशाम्बी नगरी इसमें "तेन निर्वृत्तम् $\frac{४।२।६८}{११६०}$" इससे अण (औ वृद्धि) और "टिड्ढाणञ्० $\frac{४।१।१५}{४७०}$" इससे ङीप् होकर कुशाम्बमें 'कौशाम्बी' ऐसा शब्द बनाहै, और उस ङीवन्त शब्दसे फिर "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य $\frac{१।२।४८}{६५६}$" इसमें कौशाम्ब्याः निर्गतः (कोशाम्बीसे निकलगया हुआ) 'निष्कौशाम्बिः' ऐसा ह्रस्वान्त पुँल्लिगशब्द बना है, यह ङीवन्त है, तथापि दीर्घान्त न होनेसे हल् लोप नहीं हुआ इस कारण आगे विसर्ग है । वैसे ही 'खट्व' इस शब्दसे "अजाद्यतष्टाप् $\frac{४।१।४}{४५४}$" इससे टाप् (आ) प्रत्यय होकर खट्वा (खाट) यह आबन्त शब्द बना इससे फिर खट्वाम् अतिक्रान्तः (खाट छोड रक्खीहै जिसने सो) 'अतिखट्वः' ऐसा "गोस्त्रियो०" के अनुसार ह्रस्वान्त शब्द हुआ, यद्यपि यह आबन्त है तो भी दीर्घ न होनेसे इसमें हल्का लोप नहीं।

सु, ति, सि, इनके सम्बन्धी ही हल् का लोप क्यों ? तो 'अभैत्सीत्' यह भिद् धातुके लुङ् नाम भूतकालका रूप बनते समय अ+भैत्+सिच् (स्) त् ऐसी स्थिति रहते समय तकारके आगे चाहे 'स्' यह अपृक्त हल् है तो भी उसका लोप नहीं होता कारण कि (तिपा सहचरितस्य सिपो ग्रहणात् सिचो ग्रहणं नास्ति) सु, ति, सि, ऐसा उच्चारण है, इससे तिप् (ति) के साथ रहनेवाला जो सिप् (सि) $\frac{३।४।७८}{२१५४}$ उसीका ग्रहण है, लुङ्में आनेवाला जो सिच् $\frac{३।१।४४}{२२२२}$ तत्सम्बन्धी सकारका ग्रहण नहीं होता अर्थात् उसका लोप नहीं होता ।

(अपृक्तम् इति किम्) अपृक्तका ही लोप क्यों ? तो 'बिभर्ति' (धारण करताहै) इसमें रेफके आगे तिप् (ति) यह द्विवर्ण प्रत्यय होनेसे उसमेंके तकारका लोप नहीं होता (२४९६ सि०)।

(हल् किम्) हल्का ही लोप क्यों ? तो 'बिभेद' (फोडता हुआ) इसमें बिभिद्+अ ऐसी स्थिति है, यहां दकारके आगे अपृक्त है तो भी वह हल् नहीं अच् है, इससे उसका लोप नहीं ।

(प्रथमहल् किम् । राजा । नलोपो न स्यात् संयोगान्तलोपस्य असिद्धत्वात्) सूत्रमें आये हुए जो दो हल्, उनमेंका प्रथम हल् क्यों, अर्थात् हल्के परे हल्का लोप ऐसा क्यों ? तो राजन् शब्दको "सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ $\frac{६।४।८}{२५०}$" इससे दीर्घ होकर राजान्+स् ऐसा रूप होकर नकारके परे सकारका इससे लोप होना चाहिये, परन्तु यदि कोई शंका करै कि राजान्+स् इसमें "संयोगान्तस्य लोपः $\frac{८।२।२३}{५४}$" इससे सकारका लोप होसकेगा, फिर इसका कुछ कार्य नहीं, तो ऐसा नहीं कह सकते, कारण कि, "संयोगान्तस्य०" यह सूत्र त्रिपादीमेंका है, इससे उसका कार्य असिद्ध होनेसे 'राजान्' इस शेष रहे हुए अंशमेंके नकारको प्रातिपदिकान्तत्व नहीं प्राप्त होगा और "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य $\frac{८।२।७}{२३६}$" इस सूत्रसे उसका लोप होना अशक्य होगा अर्थात् 'राजा' यह रूप न [illegible] सकेगा, [illegible] इससे सूत्रमें प्रथमका हल् होना ही चाहिये [illegible] प्राप्त सूत्रसे हल्लोप होनेके पीछे नकारको [illegible] कोई हानि होकर "नलोपः०" इस सूत्रसे उसका [illegible] और नहीं हुई, इसी प्रकारसे [illegible] रहा "ह्रस्व [illegible] होकर [illegible] गुण और "एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः [illegible] होकर 'हे सखे' [illegible] ॥

---

* सु (स्) यह प्रथमाके एकवचनका प्रत्यय, 'ति' और 'सि' यह "तिप्तस्झिसिप् $\frac{३।४।७८}{२१५४}$" इसमेंके 'तिप्' और 'सिप्' हैं, लङ् (अनद्यतन भूतकाल) में इनके त् और स् यह शेष रहतेहैं, उनका यहां ग्रहण किया है. 'स्त्री' इसमें ङीप्, ङीष्, ङीन् यह तीनों प्रत्यय आतेहैं ।

इस सूत्रमें 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्' ऐसा कहाहै उसमें दीर्घात् यह ङी और आप् इन दोनोंका विशेषण है परन्तु 'हल्ङ्याब्भ्यः' ऐसा पंचमी बहुवचन और सन्ते दीर्घात् यह केवल पंचमीका एकवचन है, विशेषण और उनका विशेष्य यह दोनो एक लिंग और एक वचनके होने चाहिये परन्तु सूत्रोंमें कभी [illegible] नियम टूटा हुआ दिखाई देताहै, इस विषयमें 'सूत्रे [illegible]ऽवनवतनमनंत्रम्' ऐसी परिभाषा है ॥

२५३ सख्युरसंबुद्धौ । ७ । १ । ९२ ॥

सख्युरङ्गात्परं संबुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णित्कार्यकृत्स्यात् ॥

२५३-सखि शब्दके अंगसे परे रहनेवाला सम्बुद्धिको छोड कर सर्वनामस्थान णिद्वत् अर्थात् णकार है इत् जिसमें ऐसा होकर कार्य करनेवाला जानना चाहिये ॥ णित्का कार्य-

२५४ अचो ञ्णिति । ७ । २ । ११५ ॥

ञिति णिति च परेऽजन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् । सखायौ । सखायः । सखायम् । सखायौ । घिसंज्ञाऽभावान्न तत्कार्यम् । सख्या । सख्ये ॥

२५४-ञित् वा णित् आगे रहते अजन्त अंगको वृद्धि होती है । सखै+औ=सखायौ । सखै+अस्=सखायः । सखै+अम्=सखायम्, यहां अम् इसके पहले अक् न होनेसे पूर्वरूप नहीं होता(६।१।१०७/१९४ की वृत्ति देखनी चाहिये) फिर सखायौ सखि शब्दको घि संज्ञा न होनेसे उस संज्ञाका कार्य नहीं होता, सख्या, सख्ये, यहां टा और ङे परे गुण न हुआ ॥

२५५ ख्यत्यात्परस्य । ६ । १ । ११२ ॥

खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उत्स्यात् । सख्युः ॥

२५५-खि, ति और खी, ती, इनके परे ङसि, ङस् (अस्) यह प्रत्यय रहते संधिनियमोंके अनुसार इ, ईके स्थानमें ६।१।७७/४७ से यण् (य्) होनेपर अगले ङसि, ङस् (अस्) इनमेंके अकारके स्थानमें 'उ' होताहै । सखि+अस् ऐसी स्थिति होते सख्य्+अस् होकर फिर सख्य्+उस् ऐसी स्थिति होकर 'सख्युः' ऐसा हुआ ।

इसमें खि, ति, खी, ती, इन चारोंका ग्रहण होकर उदाहरणमें सखिशब्दमात्र आया, 'ति' का उदाहरण पतिशब्द (सि० २५७), 'खी' के उदाहरण-पुँल्लिंग 'सखी' 'सुखी' शब्द (सि० २७३), 'ती' का उदाहरण सुतीशब्द (सि० २७३) देखो ॥

२५६ औत । ७ । ३ । ११८ ॥

इदुद्भ्यां परस्य ङेरौत्स्यात् । उकारानुवृत्तिरुत्तरार्था । सख्यौ । शेषं हरिवत् । शोभनः सखा सुसखा । सुसखायौ । सुसखायः । अनङ्णिद्भावयोराङ्गत्वात्तदन्तेपि प्रवृत्तिः । समुदायस्य सखिरूपत्वाभावादसखीति निषेधाप्रवृत्तेर्घिसंज्ञा । सुसखिना । सुसखये । ङसिङसोर्गुणे कृते कृतयणादेशत्वाभावात्ख्यत्यादित्युत्वं न । सुसखेः । सुसखौ । इत्यादि । एवमतिशयितः सखा अतिसखा । परमः सखा यस्येति विग्रहे परमसखा । परमसखायावित्यादि । गौणत्वेप्यनङ्णित्त्वे प्रवर्तेते । सखीमतिक्रान्तोऽतिसखिः । लिङ्गविशिष्टपरिभाषाया अनित्यत्वान्न टच् । हरिवत् । इहानङ्णित्त्वे न भवतः । गोस्त्रियोरिति ह्रस्वत्वेन सखिशब्दस्य लाक्षणिकत्वात् । लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणात् ॥

२५६-ह्रस्व इ और ह्रस्व उ इनके आगे ङिके स्थानमें औत् (औ) होताहै । ("इदुद्भ्याम् ७।३।११७/२९७" इस सूत्रसे इत् और उत्की अनुवृत्ति आतीहै) यहां केवल अनुवृत्तिसे उकार आयाहै, पर उसका यहां कुछ प्रयोजन नहीं है आगे अनुवृत्ति चलनेके निमित्त ही वह लेना चाहिये । सखि+औ =सख्यौ । (शेषं हरिवत्) शेष रूप हरिशब्दके समान जानने ।

सखि शब्दके रूप-

वि०	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सखा	सखायौ	सखायः
सं०	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृ०	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
च०	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पं०	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
ष०	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
स०	सख्यौ	सख्योः	सखिषु

शोभनः सखा (अच्छा मित्र) सुसखा इसमें 'सुसखि' यह शब्द है । सुसखायौ । सुसखायः । "अनङ् सौ ७।१।९३/२४८" और "सख्युरसम्बुद्धौ ७।१।९२/२५३" यह अंगाधिकारमेंके सूत्र हैं, इस कारण तदन्त शब्दमें भी इनकी प्रवृत्ति होकर सर्वनामस्थानमें उक्त रूप होतेहैं । आगे "शेषो घ्यसखि १।४।७/२४३" इससे सखिशब्दको घिसंज्ञाका निषेध तो सत्य है, पर यह सूत्र प्रथमाध्यायमेंका है, इस कारण अंगाधिकार अथवा पदाधिकार इनमेंका न होनेसे समुदाय अर्थात् तदन्तको 'असखि' यह निषेध नहीं पहुंचता, इससे सुसखि इसकी घि संज्ञा है इसलिये सुसखिना, सुसखये, यह रूप होतेहैं. ङसि और ङस् यह प्रत्यय आगे रहते घि संज्ञा होनेके कारण गुण होकर सुसखे ऐसा होताहै, यहाँ यण् आदेश न होनेके कारण "ख्यत्यात्परस्य ६।१।११२/२५५" इस सूत्रका कार्य जो उत्व उसकी प्राप्ति न हुई तो हरिशब्दके समान (सुसखेः) रूप हुआ, वैसे ही ङि प्रत्ययमें सुसखौ इत्यादि । सारांश इसमें यह है कि सर्वनामस्थानमें सखिवत् कार्य होंगे और इतर विभक्तियोंमें हरिशब्दवत् होंगे ।

सुसखि शब्दके रूप-

वि०	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सुसखा	सुसखायौ	सुसखायः
सं०	हे सुसखे	हे सुसखायौ	हे सुसखायः
द्वि०	सुसखायम्	सुसखायौ	सुसखीन्
तृ०	सुसखिना	सुसखिभ्याम्	सुसखिभिः
च०	सुसखये	सुसखिभ्याम्	सुसखिभ्यः

पं०	सुसखेः	सुसखिभ्याम्	सुसखिभ्यः
ष०	सुसखेः	सुसख्योः	सुसखीनाम्
स०	सुसखौ	सुसख्योः	सुसखिषु.

इसी प्रकारसे 'अतिसखि' इस शब्दके रूप भी जानने। 'अतिशयितः सखा' (परम मित्र) अतिसखा।

अत्र परमसखि शब्द—'परमः सखा यस्य इति विग्रहे' अर्थात् बडा है मित्र जिसका वह, ऐसे विग्रहमें 'परमसखा, परमसखयौ'—इत्यादि रूप होंगे, 'परमसखि' यह बहुव्रीहि समासका उदाहरण लायेहैं, बहुव्रीहि समासान्त शब्द अन्य-शब्दोंके सहारेसे चलनेवाले होते हैं इससे उनको गौणत्व है (गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः) गौण और मुख्य इनमेंसे मुख्य जो हो उसमें कार्यकी प्राप्ति होतीहै, ऐसी सामान्य परिभाषा है, तथापि गौणत्व होते भी सख्यन्त (परमसखि) शब्दमें, अंगाधिकार होनेके कारण अनङ् और णित्व इनकी प्राप्ति होतीहै, अर्थात् इस शब्दके भी रूप सुसखिशब्दके रूपकी समान जानने।

अब 'अतिसखि' ऐसा एक पृथक् शब्द लाये (सखीम् अतिक्रान्तः) जो सखीको छोड कर गया वह 'अतिसखिः' यह द्वितीयान्तके साथ तत्पुरुष समास है (सि० ७८०*२) तत्पुरुष समासमें राजन्, अहन्, सखि इनमेंसे कोईसा शब्द उत्तरभागमें रहते "राजाहःसखिभ्यष्टच् $\frac{५।४।९१}{७८८}$" इससे टच् (अ) प्रत्यय होकर अकारान्त शब्द बनताहै, परन्तु यहां सखी यह दीर्घान्त शब्द है (लिङ्गविशिष्टपरिभाषायाः अनित्यत्वात् न टच्) सखिशब्दसे ही स्त्रिलिंगमें 'सखी' यह $\frac{४।१।६२}{५१७}$ से दीर्घ ङीषन्त शब्द बनाहै, इस कारण यहां भी टच् होना चाहता था, परन्तु लिंगविशिष्ट परिभाषा अनित्य है (१८२) इस कारण यहां वह नहीं लगतीहै, इससे टच् नहीं हुआ * ॥

इस शब्दके रूप हरि शब्दके समान होतेहैं, (इहानङ्-णित्वे न भवतः) सखि शब्दको जो अनङ् और प्रत्ययको णित्व हुआ करतेहैं, वे यहां नहीं होते, कारण यह है कि, "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य $\frac{१।२।४८}{६५६}$" इससे दीर्घको ह्रस्व होनेहीसे केवल यह सखि शब्दके समान दीखताहै, परन्तु यह सखि शब्द लाक्षणिक (सूत्रसे बना हुआ) है इसलिये इसमें (लक्षण०) लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त इन दोनोंमेंसे प्रति-पदोक्तका ही ग्रहण करना चाहिये ऐसी परिभाषा है, इससे यहां लाक्षणिक सखि शब्दको सच्चे सखि शब्दकी समान कार्य नहीं होता, घि संज्ञा होतीहै।

अतिसखि शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	ब०
प्र०	अतिसखिः	अतिसखी	अतिसखयः
सं०	हे अतिसखे	हे अतिसखी	हे अतिसखयः
द्वि०	अतिसखिम्	अतिसखी	अतिसखीन्
तृ०	अतिसखिना	अतिसखिभ्याम्	अतिसखिभिः
च०	अतिसखये	अतिसखिभ्याम्	अतिसखिभ्यः
पं०	अतिसखेः	अतिसखिभ्याम्	अतिसखिभ्यः
ष०	अतिसखेः	अतिसख्योः	अतिसखीनाम्
स०	अतिसखौ	अतिसख्योः	अतिसखिषु

पति (स्वामी) शब्द—

२५७ पतिः समास एव ।१।४।८॥

पतिशब्दः समास एव घिसंज्ञः । पत्या । पत्ये । पत्युः २ । पत्यौ । शेषं हरिवत् । समासे तु भूपतिना । भूपतये । कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः ॥

२५७—पति शब्द केवल समासमें ही घिसंज्ञक है अर्थात् अकेला पति शब्द घिसंज्ञक नहीं, इससे इसको घिकार्य नहीं, पत्या। पत्ये। पति+अस् ऐसी स्थितिमें यण् होकर "ख्यत्यात्परस्य $\frac{६।१।११२}{२५५}$" इससे पत्य्+इससे पर अस् इसके अ को उ होकर। पत्युः। पत्युः। ङि प्रत्ययमें "औत् $\frac{७।३।११८}{२५६}$" से औ, पति+औ=पत्यौ। शेष रूप हरिशब्दके समान होंगे।

पति शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	पतिः	पती	पतयः
सं०	हे पते	हे पती	हे पतयः
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पं०	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
ष०	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
स०	पत्यौ	पत्योः	पतिषु * ॥

(समासे तु) परन्तु समासमें पति शब्दको घि संज्ञा रहनेसे भूपति :(राजा) शब्दके रूप सर्वत्र हरि शब्दके समान जानने, भूपतिना भूपतये।

भूपति शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	भूपतिः	भूपती	भूपतयः
सं०	हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतयः
द्वि०	भूपतिम्	भूपती	भूपतीन्
तृ०	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः
च०	भूपतये	भूपतिभ्याम्	भूपतिभ्यः
पं०	भूपतेः	भूपतिभ्याम्	भूपतिभ्यः
ष०	भूपतेः	भूपत्योः	भूपतीनाम्
स०	भूपतौ	भूपत्योः	भूपतिषु

* "शक्तिलाङ्गलाङ्कुशतोमरघटिघटघटीधनुष्षु ग्रहेरुपसंख्यानम्" ऐसा $\frac{३।२।९}{२९२३}$ इसमें वार्तिक है, इसमें 'घट' पुंलिङ्गशब्द देकर पुनः 'घटी' ऐसा उस पुंलिंग शब्दसे ही बना हुआ स्त्रीलिङ्ग शब्द दिया है, लिङ्गविशिष्टपरिभाषासे घट शब्दसे [illegible] का भी ग्रहण होजाता, घटी शब्द पृथक् देनेका कुछ काम न था, परन्तु यहां दोनों शब्दोंकी योजना [illegible] है इससे वार्तिककारका [illegible] अभिप्राय स्पष्ट है कि, लिङ्गविशिष्टपरिभाषा अनित्य है॥

* पति और सखि इन शब्दोंको घि संज्ञा करके उनके पतिना, सखिना, पतौ इत्यादि रूप बने हुए कहीं २ स्मृति पुराणोंमें [illegible] मिलतेहैं, परन्तु उन रूपोंको [illegible] लौकिक प्रयोगमें वे रूप अशुद्ध गिने जातेहैं स्थलमें प्राप्त समझने, इससे उनकी योजना न करनी॥

कति (कितने) शब्द । कति शब्द सदा बहुवचनान्त होताहै उसकी संख्या संज्ञा करतेहैं--

२५८ बहुगणवतुडति संख्या।१।१।२३॥

• एते संख्यासंज्ञाः स्युः ॥

२५८--बहु (बहुत), गण (समुदाय), वतुप्रत्ययान्त और डतिप्रत्ययान्त, शब्दोंकी ' संख्या ' संज्ञा है * ॥

२५९ डति च । १ । १ । २५ ॥

डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् ॥

२५९--डतिप्रत्ययान्त संख्याकी षट् संज्ञा है । तब कति शब्दकी षट् संज्ञा हुई । अब षट् संज्ञाका कार्य बतानेको फिर संज्ञा--

२६० प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः।१।१।६१॥

लुक्श्लुलुप्शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात्तत्संज्ञं स्यात् ॥

२६०--अदर्शन की ' लोप ' ऐसी संज्ञा पीछे १।१।६०/५३ इस सूत्रमें कही गई, परन्तु वही अदर्शन लुक्, श्लु अथवा लुप् इनमेंके किसी भी शब्दसे प्रत्ययका कहागया हो तो उस अदर्शनको लुक्, श्लु, लुप् यह संज्ञा अनुक्रमसे होतीहैं, इनका प्रयोजन सि० २६३ में आवेगा ॥

२६१ षड्भ्यो लुक् । ७ । १ । २२॥

षड्भ्यः परयोर्जश्शसोर्लुक् स्यात् ॥

२६१--षट्संज्ञक शब्दोंके आगे जस् और शस् प्रत्ययका लुक् होताहै । यहां डतिप्रत्ययमात्रकी षट् संज्ञा कही, परन्तु " ष्णान्ता षट् १।१।२४/२६९ " इससे षान्त नान्त संख्याकी भी षट् संज्ञा है इससे ' षड्भ्यः ' ऐसा पंचमीबहुवचनका रूप सूत्रमें लायेहैं, लुकका कार्य कहनेके पहले लोपका कार्य कहतेहैं * ॥

२६२ प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् । १ । १ । ६२ ॥

प्रत्यये लुप्तेऽपि तदाश्रितं कार्यं स्यात् । इति जसि चेति गुणे प्राप्ते ॥

२६२--प्रत्ययका लोप करनेपर भी प्रत्ययके आश्रयसे होनेवाला कार्य होसकताहै । इससे " जसि च ७।३।१०९/२४१ " इससे ' कति ' इस ह्रस्वान्त अंगको गुण प्राप्त हुआ, परन्तु--

२६३ न लुमताङ्गस्य । १ । १ । ६३ ॥

लुक् श्लुः लुप् एते लुमन्तः । लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात् । कति२ । कतिभिः । कतिभ्यः २ । कतीनाम्[1] । कतिषु । अस्मद्युष्मद्षट्संज्ञास्त्रिषु सरूपाः । त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः ॥

२६३--लुक्, श्लु, लुप् इनमें लु यह अक्षर है इस कारण यह लुममान् हैं, लुमान् शब्दसे (लुक्, श्लु, लुप् इनमें से किसी भी शब्दसे) यदि लोप कहा गया हो तो वहां तन्निमित्त अंगकार्य नहीं होता, इससे जस्, शस्, इनका लुक् रहते " जसि च " इससे गुण नहीं होता । कति । कति । कति+भिस्=कतिभिः । कति+भ्यस्=कतिभ्यः २ । कति+आम्=कतीनाम् । कति+सुप्=कतिषु ।

अस्मद् (मैं) युष्मद् (तू) और षट् संज्ञक शब्द, इनके रूप तीनों लिंगोंमें समान होतेहैं, अर्थात् कति शब्दके रूप भी उसी प्रकारसे हैं ।

त्रि (तीन) शब्द भी नित्य बहुवचनान्त है, " जसि च ७।३।१०९/२४१ " से गुण होकर त्रे+अयः=त्रयः । त्रि+शस्=त्रीन् । त्रि+भिस्=त्रिभिः । त्रि+भ्यस्=त्रिभ्यः ॥

२६४ त्रेस्त्रयः । ७ । १ । ५३ ॥

त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि । त्रयाणाम् । परमत्रयाणाम् । गौणत्वे तु नेति केचित् । प्रियत्रीणाम् । वस्तुतस्तु प्रियत्रयाणाम् । त्रिषु । द्विशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः ॥

२६४--आगे आम् प्रत्यय रहते त्रिशब्दको त्रय आदेश होताहै । " ह्रस्वनद्यापो नुट् २०८ " सूत्रसे त्रयाणाम् । ऐसे ही त्रि शब्द कर्मधारय समासमें हो तो परमाश्च ते त्रयश्च= परमत्रयः (तीनों बडे) ऐसा प्रथमाके बहुवचनमें रूप होताहै, और ' परमत्रयाणाम् ' ऐसा षष्ठीबहुवचनमें रूप होताहै ।

(गौणत्वे तु०) बहुव्रीहिसमासमें प्रियाः त्रयः यस्य सः= प्रियत्रिः (जिसको तीन प्रिय हैं सो) ऐसा विशेषणत्व प्राप्त होकर यहां गौणत्व आताहै (सू० २५६ देखो) इससे उस समय आम् प्रत्ययमें ' त्रय ' आदेश नहीं होता, ऐसा कोई कोई कहतेहैं, इससे ' प्रियत्रीणाम् ' यह रूप होगा पर वास्त-

---

* एक, द्वि, त्रि, इत्यादि शब्दोंकी यह संज्ञा प्रसिद्ध ही है, परन्तु उनको छोड कर 'बहु' 'गण' इत्यादि शब्दोंकी 'संख्या' संज्ञा होनी चाहिये, यह प्रस्तुत सूत्रका प्रयोजन है, जैसे "यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५।२।३९/१८४०" तथा "किमिदंभ्यां वो घः ५।२।४०/१८४१" इससे वतुप् प्रत्यय होकर यावत् (जितना) तावत् (तितना) एतावत् (इतना) कियत् (कितना) इयत् (इतना) यह शब्द सिद्ध होतेहैं, वतु प्रत्ययद्वारा उनका ग्रहण किया जाताहै, वैसे ही "किमः संख्यापरिमाणे डति च ५।२।४१/१८४२" इससे डति (अति) प्रत्यय होकर कति (कितने) यह शब्द बनताहै उसका डतिप्रत्ययद्वारा ग्रहण कियाजायगा ॥

* यहां 'षड्भ्यः' ऐसा बहुवचन क्यों किया ? लाघवसे 'षषो लुक्' ऐसा ही करते इससे बहुवचन अर्थप्राधान्यसूचनार्थ जानना अर्थात् पदार्थगतसंख्याका अभिधान करनेवाले जो जस् और शस् उनहीका लोप हो, जिससे प्रियषषः (प्रिय हैं पांच जिनके) यहां जस् और शसका लुक् नहीं होता, कारण कि बहुव्रीहि समास होनेसे पञ्चन् शब्दार्थगतसंख्याभिधायी जस्, शस् नहीं हैं ॥

[1] 'कतीनाम्' इसमें आम् प्रत्ययको जो नुट् (न्) का आगम हुआ है वह "ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४/२०८" से नहीं हुआ है इस विषयमें "षट्चतुर्भ्यश्च ७।१।५५/३३८" ऐसा स्वतंत्र सूत्र है और उसीको परत्व है, इससे यहां उसीका कार्य है ॥

नमें तो "पदांगाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च" इससे त्रयादेशका कोई बाध नहीं, इससे 'प्रियत्रयाणाम्' ऐसा भी रूप होगा, इस प्रकार सामासिकशब्दोंका निर्णय होजानेपर सप्तमीमें–त्रिषु रूप होगा ॥

रूप–(बहुवचनमें) परमत्रयः । परमत्रीन् । परमत्रिभिः । परमत्रिभ्यः । परमत्रिभ्यः । परमत्रयाणाम् । परमत्रिषु ।

प्रियत्रि (बहुव्रीहि समासनिष्पन्न) शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रियत्रिः	प्रियत्री	प्रियत्रयः
सं०	हे प्रियत्रे	हे प्रियत्री	हे प्रियत्रयः
द्वि०	प्रियत्रिम्	प्रियत्री	प्रियत्रीन्
तृ०	प्रियत्रिणा	प्रियत्रिभ्याम्	प्रियत्रिभिः
च०	प्रियत्रये	प्रियत्रिभ्याम्	प्रियत्रिभ्यः
पं०	प्रियत्रेः	प्रियत्रिभ्याम्	प्रियत्रिभ्यः
ष०	प्रियत्रेः	प्रियत्र्योः	(प्रियत्रीणाम्) प्रियत्रयाणाम्
स०	प्रियत्रौ	प्रियत्र्योः	प्रियत्रिषु ।

प्रियाश्च ते त्रयश्च–प्रियत्रयः (प्यारे तीनों) ऐसा कर्मधारयसमास होते यही रूप होंगे, परन्तु केवल बहुवचनमें ही होंगे और षष्ठीमें परमत्रि शब्दके समान 'प्रियत्रयाणाम्' यह एक ही रूप होगा ॥

द्वि शब्द नित्य द्विवचनमें आताहै–

२६८ त्यदादीनामः । ७ । २ । १०२ ॥

एषामकारोन्तादेशः स्याद्विभक्तौ ॥ द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः ॥ * ॥ द्वौ २ । द्वाभ्याम् ३ । द्वयोः २ । द्विपर्यन्तानां किम् । भवान् । भवन्तौ । भवन्तः । संज्ञायामुपसर्जनत्वे च नात्वम् । सर्वाद्यन्तर्गणकार्यत्वात् । द्विर्नाम कश्चित् । द्विः । द्वी । द्वावतिक्रान्तोऽतिद्विः । हरिवत् । प्राधान्ये तु परमद्वौ । इत्यादि । औडुलोमिः । औडुलोमी । उडुलोमाः ॥ लोम्नोपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः ॥ * ॥ बाह्वादीञोऽपवादः । औडुलोमिम् । औडुलोमी । उडुलोमान् ॥

इतीदन्ताः ॥

२६५–त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि–इन आठ सर्वनाम त्यदादिको आगे विभक्तिप्रत्यय होते अकार अन्तादेश होताहै ("अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८४/३७१" से विभक्तिकी अनुवृत्ति आतीहै) । सर्वादि गणमेंसे 'द्वि' तक ही त्यदादिगण है, ऐसी 'इष्टि' अर्थात् भाष्यकारका निश्चय है । अकार अन्तादेशके कारण द्व ऐसी स्थिति होकर औ प्रत्ययमें द्वौ २ । द्वि+भ्याम्=द्वाभ्याम् ३ । द्वि+ओस्–द्वयोः २ । त्यदादिकोंका सम्बोधन नहीं होता । द्वितक ही त्यदादि क्यों ? तो भवत् शब्द द्विसे परे है, इससे उसको अकार अन्तादेश नहीं होता, नहीं तो त्को अकारान्तादेश होकर "उगिद० ३६१" से नुम् (न्) आगम और "सर्वनामस्थाने० २५०" से दीर्घ, सु (स्) का लोप और न्का लोप होकर 'भवा' ऐसा अनिष्टरूप होजायगा । भवत्+सु=भवान् । भवत्+औ=भवन्तौ । भवत्+जस्=भवन्तः । इन रूपोंकी सिद्धि आगे ४२५ में करेंगे ।

(संज्ञायामिति) इस त्यदादि गणको सर्वादि गणका अन्तर्गण होनेसे इस अन्तर्गणका जो यह (अकारान्तादेशरूप) कार्य वह अंशसे सर्वादिगणका ही कार्य है, अर्थात् जब त्यदादिकोंकी सर्वनामसंज्ञा रहेगी तभी यह होगा, और 'संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः' इस सि० २२२ वार्तिक देखनेसे जानाजाताहै कि संज्ञा वा उपसर्जन होनेसे सर्वादिकोंकी सर्वनामसंज्ञा नहीं अर्थात् संज्ञा अथवा उपसर्जन होते त्यदादि कार्यभी नहीं जैसे 'द्वि' इस संज्ञाका कोई मनुष्य हो तो वहां संज्ञाके कारण 'द्वि' यह असर्वनाम होगा, इससे द्विः । द्वी । द्वयः । यह रूप होंगे । इसी प्रकार द्वौ अतिक्रान्तः–(दोनोंको छोड कर गया सो) अतिद्विः यह उपसर्जन अर्थात् विशेषण होनेसे असर्वनाम है, इस कारण यह दोनों शब्द केवल हरि शब्दके समान होतेहैं इनमें त्यदादिकार्य नहीं होता ।

(प्राधान्ये तु) जब प्राधान्य है गौणत्व नहीं, तब अंगाधिकारके कारण तदन्तको भी सर्वनामकार्य अर्थात् त्यदादिकार्य होगा । इससे 'परमद्वि' (बडे दोनों) इसके रूप द्विशब्दकी समान होंगे, परमद्वौ २ । परमद्वाभ्याम् ३ । परमद्वयोः २ ।

अब विशेष प्रकारसे होनेवाला औडुलोमि शब्द–

उडूनीव लोमानि यस्य सः (जिसके बाल तारोंकी समान चमकते हों वह) उडुलोमा (ऋषिविशेष) तस्य अपत्यं पुमान् (उसका पुत्र) औडुलोमिः इसमें उडुलोमन् यह मूल शब्द है उसके आगे "बाह्वादिभ्यश्च ४।१।९६/१०९६" इस सूत्रसे अपत्यार्थमें इञ् (इ) और आदि अच्को ५।२।११७/१०७५ से वृद्धि होकर औडुलोमन्+इ ऐसी स्थिति हुई और "नस्तद्धिते ६।४।१४४/६७९" इससे अन्का लोप होकर 'औडुलोमि' यह शब्द बना है, इस व्युत्पत्तिको ध्यानमें रखनेसे रूप अच्छी प्रकार समझमें आवेंगे, औडुलोमिः । औडुलोमी । उडुलोमाः । कारण यह है कि (लोम्नो०) * लोमन् (रोम) शब्द जिसके अन्तमें है ऐसे शब्दके आगे अपत्यार्थमें बहुवचनमें अकार होताहै ऐसा कहना चाहिये (वा० २५६०) ऊपर इस शब्दकी व्युत्पत्तिमें "बाह्वादिभ्यश्च" इस सूत्रसे होनेवाला जो इञ् (इ) वृद्धिनिमित्तक यह प्रत्यय कहा गयाहै । उसका यह अपवाद है, इससे बहुवचनमें इकार भी नहीं और वृद्धि भी नहीं केवल अकारान्त शब्द होकर रामशब्दवत् 'उडुलोमाः' आगे औडुलोमिम् । औडुलोमी । पुनः बहुवचनमें पूर्ववत् अकार प्रत्यय होकर उडुलोमान् ।

औडुलोमि शब्दके रूप–

वि०	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	औडुलोमिः	औडुलोमी	उडुलोमाः
सं०	हे औडुलोमे	हे औडुलोमी	हे उडुलोमाः
द्वि०	औडुलोमिम्	औडुलोमी	उडुलोमान्

तृ०	औडुलोमिना	औडुलोमिभ्याम्	उडुलोमैः
च०	औडुलोमये	औडुलोमिभ्याम्	उडुलोमेभ्यः
पं०	औडुलोमेः	औडुलोमिभ्याम्	उडुलोमेभ्यः
ष०	औडुलोमेः	औडुलोम्योः	उडुलोमानाम्
स०	औडुलोमौ	औडुलोम्योः	उडुलोमेषु* ॥

इति इदन्ताः ॥

वातप्रमीरित्युणादिसूत्रेण माङ ईप्रत्ययः स च कित्। वातं प्रमिमीते वातप्रमीः । दीर्घाज्जसि च । वातप्रम्यौ । वातप्रम्यः । हे वातप्रमीः । अमि पूर्वः । वातप्रमीम् । वातप्रम्यौ । वातप्रमीन् । वातप्रम्या । वातप्रमीभ्याम् ३ । वातप्रम्ये । वातप्रम्यः २ । वातप्रम्योः २ । वातप्रम्याम् । दीर्घत्वान्न नुट् । ङौ तु सवर्णदीर्घः । वातप्रमी । वातप्रमीषु । एवं ययीपप्यादयः । यान्त्यनेनेति ययीमार्गः । पाति लोकमिति पपीः सूर्यः । यापोः किद्द्वे चेति ईप्रत्ययः । क्विबन्तवातप्रमीशब्दस्य तु अमि शसि ङौ च विशेषः । वातप्रम्यम् । वातप्रम्यः । वातप्रम्यि । एरनेकाच इति वक्ष्यमाणो यण् । प्रधीवत् । बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी । दीर्घङ्यन्तत्वाद्धल्ङ्याबिति सुलोपः ॥

ईदन्त शब्द वातप्रमी (मृगविशेष)–

"वातप्रमीः (उणा० ४ । १)" इस उणादिसूत्रसे वातशब्दके आगे 'माङ्–माने' इस धातुसे 'ई' यह कित् प्रत्यय होकर यह वातप्रमीशब्द बना है, कित् यह संज्ञा अगले 'ई' इस अजादिप्रत्ययके होनेसे 'मा' इसमेंके आकारका "आतो लोप इटि च ६।४।६४/२३७२" इससे लोप होकर वातप्रम्+ई मिलकर 'वातप्रमी'। वातं प्रमिमीते इति (वायुका माप लेताहै अर्थात् वायुवेगसे दौडता है) इससे 'वातप्रमीः' आगे औ और जस् प्रत्यय होते "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२/१६४" से होनेवाला जो पूर्वसवर्णदीर्घ उसको "दीर्घाज्जसि च ६।१।१०५/२३९" इससे निषेध है इस कारण वातप्रम्यौ । वातप्रम्यः । हे वातप्रमीः । "अमि पूर्वः ६।१।१०७/१९४" इससे वातप्रमीम् । वातप्रम्यौ । पूर्वसवर्णदीर्घ और सकारके स्थानमें नकार (सि० १९६) वातप्रमीन् । वातप्रम्या । वातप्रमीभ्याम् ३ । वातप्रमीभिः । वातप्रम्ये । वातप्रम्यः २ । वातप्रम्योः २ । वातप्रम्याम्, यह शब्द दीर्घान्त होनेसे "ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४/२०८" यह सूत्र नहीं लगता । ङि (इ) प्रत्यय आगे रहते केवल सवर्णदीर्घ ८५ होकर वातप्रमी । वातप्रमीषु । रूप हुए । इसीप्रकारसे ययी, पपी आदि शब्दोंके रूप होतेहैं। यान्ति अनेन इति ययीः मार्गः (जगत् गमन करताहै इससे ययी मार्ग) पाति लोकम् इति पपीः सूर्यः (जगत् को पावन करताहै इससे पपी सूर्य) "यापोः०" उणादि ३ । १५९ से 'या प्रापणे' तथा 'पा रक्षणे' इस धातुके आगे कित् 'ई' प्रत्यय होताहै और द्विरुक्ति होतीहै, इस उणादि सूत्रसे ययी, पपी यह शब्द सिद्ध होतेहैं ।

इसी अर्थका एक दूसरा वातप्रमी शब्द है, इसकी व्युत्पत्ति सब धातुओंसे "क्विप् च ३।२।७६/२९८३" इस सूत्रसे क्विप् प्रत्यय हुआ करते हैं, इसी प्रकारसे वात प्र और 'मा' धातु मिलकर 'वातप्रमा' इसके आगे क्विप् प्रत्यय होकर क्विप्मेंका क् इत् होनेसे "घुमास्था० ६।४।६६/२४६२" इस सूत्रसे 'मा' इसके आकारके स्थानमें 'ई' आदेश हुआ, और वात+प्रम्+ई+क्विप् ऐसी स्थिति हुई, क्विप् प्रत्ययके सब वर्ण जाते हैं, उनमेंसे कुछ शेष नहीं रहता, इस प्रकार 'वातप्रमी' शब्द क्विबन्त अर्थात् धात्वन्त है, ऊपरके वातप्रमीशब्दके समान ई प्रत्ययान्त नहीं इसके कुछ रूप भिन्नप्रकारके होतेहैं, सो इस प्रकारसे हैं कि, इस क्विबन्त वातप्रमी शब्दके अम्, शस्, ङि, इन प्रत्ययोंमें भेद है, वातप्रम्यम् । वातप्रम्यः । वातप्रम्यि । इनमें धातुत्वके कारण "एरनेकाचः ६।४।८२/२७२" इस सूत्रके निमित्तसे प्रधीशब्दवत् अन्त्य ईकारके स्थानमें यण् होताहै सो आगेका सूत्र जाननेसे स्पष्टतासे ध्यानमें आवेगा ।

वातप्रमी ईप्रत्ययान्तके रूप–

वि०	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वातप्रमीः	वातप्रम्यौ	वातप्रम्यः
सं०	हे वातप्रमीः	हे वातप्रम्यौ	हे वातप्रम्यः
द्वि०	वातप्रमीम्	वातप्रम्यौ	वातप्रमीन्
तृ०	वातप्रम्या	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभिः
च०	वातप्रम्ये	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभ्यः
पं०	वातप्रम्यः	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभ्यः
ष०	वातप्रम्यः	वातप्रम्योः	वातप्रम्याम्
स०	वातप्रमी	वातप्रम्योः	वातप्रमीषु

क्विबन्तमें विशेष रूप–

वि०	एकवचन	द्वि०	बहु०
द्वि०	वातप्रम्यम्	वातप्रम्यौ	वातप्रम्यः
स०	वातप्रम्यि	(शेष पूर्ववत् जानो)	

(बह्व्यः०) बहुत श्रेष्ठ स्त्रियें हैं जिसके वह 'बहुश्रेयसी'

* इस प्रकारसे (१) यस्कादि २।४।६३/११४६ गणमेंके शब्द, (२) "अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च २।४।६५/११४७" इसमें पठित शब्द, (३) गर्गादि ४।१।१०५/११०७ गणमेंके शब्द, और (४) तद्राजसंज्ञक प्रत्यय २।४।६२/११९३ के लुक्वाले शब्द, और (५) प्राच्य भरत इन दोनों गोत्रोंके बह्वच् होने इञ्प्रत्ययान्त २।४।६६/११४८ शब्द, यह पुँल्लिङ्गमें बहुवचनके हों तो उनके अपत्यार्थद्योतक प्रत्यय मिट गयेके समान होकर मूलशब्दहीको बहुवचन प्रत्यय लगतेहैं, यथा–गार्ग्यः । गार्ग्यौ । गर्गाः इत्यादि ॥

१ दो शब्दोंमेंसे एकको भेद दिखाना हो तो शब्दसे ईयसुन् (ईयस्) ऐसा प्रत्यय हुआ करताहै, ५।३।५७/२००५ 'प्रशस्य' (स्तुत्य) इस शब्दको यह प्रत्यय होते हुए 'प्रशस्य' के स्थानमें 'श्र' ५।३।६०/२००९ आदेश होकर प्रत्ययके योगसे श्रेयस् (अधिकस्तुत्य) ऐसा रूप होताहै, 'ईयसुन्' इसमें 'उ' यह इत् है इस कारण "उगितश्च ४।१।६/४५५" इस सूत्रसे श्रेयस्के आगे ङीप् (ई) यह प्रत्यय होकर 'श्रेयसी' (श्रेष्ठा स्त्री) ऐसा शब्द होताहै, अर्थात् श्रेयसी शब्द ङीबन्त है ऐसा जानना ॥

यह बहुव्रीहि समास है, समासमें स्त्रीलिंग शब्द अन्तमें हो तो सामान्यतः "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८/६५६" इससे शब्द ह्रस्वान्त होताहै और "नद्यृतश्च ५।४।१५३/८३३" नदीसंज्ञकको, ऋदन्तको बहुव्रीहि समासके अन्तमें कप् (क) प्रत्यय हुआ करताहै परन्तु "ईयसश्च ५।४।१५६/८५४" इससे ईयसुन् प्रत्यान्त शब्दके अन्तमें कप् प्रत्ययका निषेध है, वैसेही "ईयसो बहुव्रीहेर्न" इस वार्तिकसे ह्रस्वका भी निषेध है इससे 'बहुश्रेयसी' ऐसा ही दीर्घान्तशब्द रहा ।

यह पुँलिङ्गशब्द है तथापि दीर्घङीबन्त ही है इस कारण आगे प्रथमाका सुप्रत्यय रहते दीर्घङ्यन्तत्वके कारण "हल्ङ्या० ६।१।६८/२५२" इससे सु का लोप होकर 'बहुश्रेयसी' रूप बना । आगे रूप समझनेको संज्ञा–

२६६ यूस्त्र्याख्यौ नदी । १ । ४ । ३ ॥

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः ॥ * ॥ पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः ॥

२६६–दीर्घ 'ई' 'ऊ'कारान्त जो नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्द उनकी नदी संज्ञा है । परन्तु बहुश्रेयसी यह शब्द ङीबन्त है सही तो भी पुँलिङ्ग है तो क्या इसकी नदीसंज्ञा है ? इसपर कहतेहैं कि इसमेंका 'श्रेयसी' इतना अंश ईकारान्त नित्यस्त्रीलिंग है, इससे उसकी तो नदी संज्ञा है ही 'बहुश्रेयसी' यह तदन्त शब्द पुँल्लिंग है तो भी इसके नदीत्वके विषयमें वार्तिक "प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च (वा० १०३२)" अर्थात् जो पहले शब्दका लिंग हो वही ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् शब्द स्त्रीलिंग होते पहले जो उसको नदी संज्ञा हो तो तदन्तशब्द बहुव्रीहि समाससे उपसर्जनत्व (विशेषणत्व) पा कर अन्य लिंगमें गया हो तो भी उस तदन्तकी नदी संज्ञा होतीहै, ऐसा जानना चाहिये । अब नदी संज्ञाका कार्य कहतेहैं–

२६७ अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः।७।३।१०७॥

अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वः स्यात्संबुद्धौ। हे बहुश्रेयसि । शसि बहुश्रेयसीन् ॥

२६७–अम्बा (माता) अर्थके जो आकारान्त शब्द (सि० २९३) और नदीसंज्ञकान्त शब्द इनको सम्बुद्धिप्रत्यय परे रहते ह्रस्व होताहै । यहां ह्रस्व होताहै ऐसा स्पष्ट कहनेसे वह ह्रस्व वैसे ही रहताहै, "ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८/२४२" से उसको गुण नहीं होता, हे बहुश्रेयसि । शस्में बहुश्रेयसीन्॥

२६८ आण् नद्याः । ७ । ३ । ११२ ॥

नद्यन्तात्परेषां ङितामाडागमः स्यात् ॥

२६८–नद्यन्त शब्दके आगे आनेवाले ङित्प्रत्ययको आट्का आगम होताहै । आट् + ङे । आट् + ङसि । आट् + ङस्–

२६९ आटश्च । ६ । १ । ९० ॥

आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयस्याः । नद्यन्तात्परत्वान्नुट् । बहुश्रेयसीनाम् ॥

२६९–आट्के आगे अच् हो तो दोनोंके स्थानमें मिल कर वृद्धिरूप एकादेश होताहै । ऐ । आस् । आस् । यह नद्यन्तके आगे होनेसे "इको यणचि ४७" से यण् होकर बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयस्याः २ । आम्प्रत्ययमें "ह्रस्वनद्यापो नुट् २०८" इससे नुट् बहुश्रेयसीनाम् ।

२७० ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ।७।३।११६॥

नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च ङेराम् स्यात्। इह परत्वादाटा नुड् बाध्यते । बहुश्रेयस्याम् । शेषं मीप्रत्ययान्तवातप्रमीवत्। अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः। अतिलक्ष्मीः। शेषं बहुश्रेयसीवत् । कुमारीमिच्छन् कुमारीवाचरन्वा ब्राह्मणः कुमारी । क्यजन्तादाचारक्विबन्ताद्वा कर्तरि क्विप् । हल्ङ्याबिति सुलोपः ॥

२७०–नद्यन्त, आबन्त (सि० २८७) और नी शब्द (सि० २७२) के आगे ङि प्रत्ययके स्थानमें आम् आदेश होताहै । यह आम् यद्यपि सप्तमीका है तो भी आम् तो है, फिर कोई क्यों न हो "ह्रस्वनद्यापो० ७।१।५४/२०८" से षष्ठीबहुवचनके समान यहां भी उसको नुट्का आगम होना चाहिये, ऐसी शंका होते यहांपर "आण् नद्याः ७।३।११२/२६८" इसको पर सूत्र होनेसे इस नुट्को बाध होकर परसूत्रका कार्य आट्का आगम ही होताहै, आट् होनेपर "सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव" इस न्यायसे पीछे नुट् नहीं होता । आट् + आम् वृद्धि ६।१।९०/२६९ होकर आम् तब बहुश्रेयस्याम् । और सब रूप ईप्रत्ययान्त वातप्रमीशब्दके समान जानने ।

बहुश्रेयसी शब्दके रूप–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	बहुश्रेयसी	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयस्यः
संम्बुद्धि	हे बहुश्रेयसि	हे बहुश्रेयस्यौ	हे बहुश्रेयस्यः
द्वितीया	बहुश्रेयसीम्	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयसीन्
तृतीया	बहुश्रेयस्या	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभिः
चतुर्थी	बहुश्रेयस्यै	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभ्यः
पंचमी	बहुश्रेयस्याः	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभ्यः
षष्ठी	बहुश्रेयस्याः	बहुश्रेयस्योः	बहुश्रेयसीनाम्
सप्तमी	बहुश्रेयस्याम्	बहुश्रेयस्योः	बहुश्रेयसीषु

इसपरसे देखनेसे मुख्यनदीकार्य चार–(१) सम्बुद्धिह्रस्व । (२) ङित्को आट्का आगम । (३) ङिके स्थानमें आम् । (४) बहुव्रीहिसमासमें "नद्यृतश्च" इससे कप् । इनको छोड नदीसंज्ञक शब्द जो ङ्यन्त हो तो प्रथमाके एकवचनमें सुलोप । (अगला अतिलक्ष्मी शब्द देखो)—

अतिलक्ष्मी शब्द–

लक्ष्मीम् अतिक्रान्तः (लक्ष्मीको छोड कर चला गया वह) अतिलक्ष्मीः । इसमें "अवितॄस्तृतन्त्रिभ्य ईः" (उणा० ३।१५८) और "लक्षेर्मुट् च" (उणा० ३।१६०) इन सूत्रोंसे लक्ष धातुसे 'लक्ष्मी' ऐसा ईप्रत्ययान्त शब्द

बना है, यह केवल ईप्रत्ययान्त है ङ्यन्त नहीं, इसी प्रकार ' अतिलक्ष्मी ' शब्द भी ।

अतिलक्ष्मी शब्दको ङ्यन्त न होनेसे "हल्ङ्या० ६।१।६८ / २५२" यह सूत्र नहीं लगता (इससे सुलोप नहीं) अतिलक्ष्मीः । शेष रूप बहुश्रेयसीशब्दके समान जानने । षष्ठीके बहुवचनमें अतिलक्ष्मीणाम् ।

कुमार (लड़का) शब्दके परे " वयसि प्रथममे ४।१।२० / ४७८" इससे ङीप् (ई) प्रत्यय होकर कुमारी (लडकी) ऐसा स्त्रीलिङ्ग शब्द बना है, इससे यह ङ्यन्त है और नित्यस्त्रीलिंग होनेके कारण इसको नदीत्व है ।

नामके आगे क्यच्, क्विप् इत्यादि प्रत्यय लगाकर नामधातु हुआ करतेहैं (सि० २६५७।२६७७) उसी प्रकार " सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८ / २६५७ " इससे कुमारी शब्दके आगे क्यच् (य) प्रत्यय होकर कुमारीय (कुमरीकी इच्छा कहताहै) ऐसी धातु हुई उससे " क्विप् च ३।२।७६ / २९८३ " इससे क्विप् प्रत्यय होकर कुमारीय+क्विप् ऐसी स्थिति हुई, " अतो लोपः ६।४।४८ / २३०८ " इससे उसके अन्त्य अकारका और " लोपो व्योर्वलि ६।१।६६ / ८७२ " इससे यकारका लोप होकर अन्तमें कुमारी (कुमारीकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण) ऐसा पुँल्लिंग शब्द सिद्ध हुआहै ।

अथवा (" सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः* ") (सि० २६६) इससे निष्पन्न क्विबन्तधातुसे फिर नाम होनेके वास्ते " क्विप् च २९८३ " से क्विप् प्रत्यय होकर कुमारी (कुमारीवत् आचरणकरनेवाला ब्राह्मण) ऐसा पुँल्लिंग शब्द सिद्ध हुआ, ऐसी व्युत्पत्ति भी ठीक है, इसप्रकारसे "क्विबन्ता विजन्ता विडन्ता धातुत्वं न जहति शब्दत्वं परिपालयन्ति " इस वचनसे कुमारी शब्दको धातुत्व प्राप्त हुआ । क्यच्, क्विप् यह प्रत्यय नहीं रहेके समान होकर अन्तमें ङ्यन्त पुँल्लिङ्ग शब्द हुआ और " प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च " इस वार्तिकसे नदीत्व भी प्राप्त हुआ (२६६ सि०) कुमारी+सु=इसमें " हल्ङ्याप्० २५२ " से सु का लोप होकर ' कुमारी ' बना ॥

२७१ अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ । ६ । ४ । ७७ ॥

श्नुप्रत्ययान्तस्य इवर्णोवर्णान्तधातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे । ङिच्चेत्यन्तादेशः । आन्तरतम्यादेरियङ् ओरुवङ् । इतीयङि प्राप्ते ॥

२७१–अजादि प्रत्यय परे रहते श्नु ३।१।७३ / २५२३ प्रत्ययान्त, इवर्णान्त, उवर्णान्त धातु और भ्रू (३०६) इस अंगको इयङ् (इय्) और उवङ् (उव्) आदेश होतेहैं । " ङिच्च १।१।५३ / ४३ " से अन्तादेश, " स्थानेऽन्तरतमः १।१।५० / ३९ " इससे अतिसादृश्यके अनुसार इवर्णके स्थानमें इयङ् और उवर्णके स्थानमें उवङ् होताहै, इस कारण अजादिप्रत्यय परे रहते कुमारीमेंके अन्त्य ईकारके स्थानमें इयङ् (इय्) की प्राप्ति हुई, परन्तु–

२७२ एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य । ६ । ४ । ८२

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादजादौ प्रत्यये परे । इति यण् । कुमार्यौ । कुमार्यः । हे कुमारि । अमि शसि च । कुमार्यम् । कुमार्यः । कुमार्यै । कुमार्याः २ । कुमारीणाम् । कुमार्याम् । प्रधीः । प्रध्यौ । प्रध्यः । प्रध्यम् । प्रध्यः । उन्नयतीत्युन्नीः । धातुना संयोगस्य विशेषणादिह स्यादेव यण् । उन्न्यौ । उन्न्यः । हे उन्नीः । उन्न्यम् । ङेराम् । उन्न्याम् । एवं ग्रामणीः । अनेकाचः किम् । नीः । नियौ । नियः । अमि शसि च परत्वादियङ् । नियम् । नियः । ङेराम् । नियाम् । असंयोगपूर्वस्य किम् । सुश्रियौ । यवक्रियौ ॥ गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते ॥ * ॥ शुद्धधियौ । परमधियौ । कथं तर्हि दुर्धियो वृश्चिकभियेत्यादि । उच्यते । दुस्स्थिता धीर्येषामिति विग्रहे दुरित्यस्य धीशब्दं प्रति गतित्वमेव नास्ति । यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञाः । वृश्चिकशब्दस्य बुद्धिकृतमपादानत्वं नेह विवक्षितम् । वृश्चिकसंबन्धिनी भीरित्युत्तरपदलोपो वा ॥

२७२–धातुका अवयव संयोगपूर्व न हो ऐसा जो इवर्ण, तदन्तधातु जिसके अन्तमें हो ऐसे अनेक अच्युक्त अङ्गके इवर्णके स्थानमें यण् हो अजादि प्रत्यय परे रहते ("इणो यण ६ । ४ । ८१" इससे यण्की अनुवृत्ति आतीहै और "अचि श्नुधातुभ्रुवाम् २७१" से केवल धातु हीकी अनुवृत्ति आतीहै । और श्नु, भ्रूको इवर्णान्त न होनेसे अनुवृत्ति नहीं) । पिछले सूत्रसे जो इयङ् प्राप्त हुआ सो नहीं होता इससे कुमारी+औ–कुमार्यौ । कुमारी+जस्–कुमार्यः । यहां इस सूत्रसे यण् हुआ । नदीकार्य, हे कुमारि । अम्–शस् परे भी यण् होकर कुमार्यम् । कुमारी+शस्–कुमार्यः । कारण यह है कि "अमि पूर्वः ६।१।१०७ / १९८" और पूर्व सवर्ण दीर्घ ६।१।१०२ / १६४ और तन्मूलक नकार ६।१।१०३ / १८६ इनसे भी यह प्रस्तुत सूत्र पर है, इससे बाधक है, नदीकार्य, कुमारी ङे=कुमार्यै । कुमारी+ङसि=कुमार्याः । कुमारी+ङस्=कुमार्याः । कुमारी+आम्=कुमारीणाम् । "ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४ / २०८" यह प्रस्तुत सूत्रसे पर है, इससे उसका कार्य होताहै, यण् नहीं । ङिके स्थानमें नदीत्व होनेके कारण जो आम् उसको नुट् नहीं । (देखो सि० २७०) यण् होताहै कुमार्याम् । कुमारी+ओस्–कुमार्योः ।

कुमारी शब्दके रूप–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	कुमारी	कुमार्यौ	कुमार्यः

सं०	हे कुमारि	हे कुमार्यौ	हे कुमार्यः
द्वि०	कुमार्यम्	कुमार्यौ	कुमार्यः
तृ०	कुमार्या	कुमारीभ्याम्	कुमारीभिः
च०	कुमार्यै	कुमारीभ्याम्	कुमारीभ्यः
पं०	कुमार्याः	कुमारीभ्याम्	कुमारीभ्यः
ष०	कुमार्याः	कुमार्योः	कुमारीणाम्
स०	कुमार्याम्	कुमार्योः	कुमारीषु.

अथ प्रधीशब्द–

'प्रकर्षेण ध्यायति–इति कर्तरि क्विप्' (जो अतिशय ध्यान करता है वह प्रधी) इसमें प्र उपसर्ग "ध्यै–चिन्तायाम्" इस धातुसे "ध्यायतेः सम्प्रसारणञ्च" इस वचनसे क्विप्, सम्प्रसारण और "हलः ६।४।२ / २५५९" इससे दीर्घ होकर प्रधी शब्द बनताहै, यह केवल क्विबन्त है ङ्यन्त नहीं और नदीसंज्ञक भी नहीं इससे सुलोप भी नहीं, प्रधी+सु=प्रधीः, प्रधी+औ=प्रध्यौ, प्रधी+जस्=प्रध्यः, नदीकार्य न होनेसे हे प्रधीः । धातुत्वके कारण "एरनेकाचः०" इस सूत्रसे अम्, शस्में भी (कुमारीशब्दके अनुसार) यण् होगा, प्रधी+अम्=प्रध्यम् । प्रध्यः । नदीत्वका अभाव है इससे नुट् नहीं । ङिप्रत्ययमें सवर्णदीर्घ न होते ६।१।१० / ८५ परत्वके कारण यण् होगा सारांश यह कि अजादिप्रत्ययमें सर्वत्र यण् होगा * ॥

अनदीसंज्ञक प्रधी शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
सं०	हे प्रधीः	हे प्रध्यौ	हे प्रध्यः
द्वि०	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः
तृ०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
च०	प्रध्ये	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
पं०	प्रध्यः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
ष०	प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम्
स०	प्रध्यि	प्रध्योः	प्रधीषु.

नदीसंज्ञक प्रधी शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
सं०	हे प्रधि	हे प्रध्यौ	हे प्रध्यः
द्वि०	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः
तृ०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
च.	प्रध्यै	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
पं.	प्रध्याः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
ष.	प्रध्याः	प्रध्योः	प्रधीनाम्
स.	प्रध्याम्	प्रध्योः	प्रधीषु.

उत् नयति इति उन्नीः (ऊपर ले जाताहै सो उन्नी) उत्+नी–क्विप्, 'धातुना संयोगस्य विशेषणात् इह स्यादेव यण्' (चाहें इसमें ईकारके पहले 'न्न' यह संयोग है तो भी यह धातुका संयोग नहीं, उपसर्गके संयोगसे हुआ है इससे यण् होता ही है) उन्न्यौ । उन्न्यः । हे उन्नीः । उन्न्यम् । यह सूत्र अङ्गाधिकारका है इससे 'उन्नी' इसको नीशब्दान्त होनेपर भी "ङेराम् नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६ / २७०" इस सूत्रसे नी शब्दके आगे ङिके स्थानमें आम् 'उन्न्याम्' अर्थात् अनदीसंज्ञक प्रधीशब्दके समान ङिके स्थानमें आम्मात्रमें विशेष ।

उन्नी शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	उन्नीः	उन्न्यौ	उन्न्यः
सं०	हे उन्नीः	हे उन्न्यौ	हे उन्न्यः
द्वि०	उन्न्यम्	उन्न्यौ	उन्न्यः
तृ०	उन्न्या	उन्नीभ्याम्	उन्नीभिः
च०	उन्न्ये	उन्नीभ्याम्	उन्नीभ्यः
पं०	उन्न्यः	उन्नीभ्याम्	उन्नीभ्यः
ष०	उन्न्यः	उन्न्योः	उन्न्याम्
स०	उन्न्याम्	उन्न्योः	उन्नीषु.

इसी प्रकार 'ग्रामणीः' ग्रामं नयति इति (गांव चलनेवाला जिमीदार) यह शब्द होताहै, इसमें ग्राम+नी+क्विप् ऐसी व्युत्पत्तिमें "अग्रग्रामाभ्यां नयतेः ३।२।६१ / २९७५" * इस वार्तिकसे णत्व हुआ ।

('अनेकाचः' किम्) सूत्रमें अंग अनेकाच् होना चाहिये ऐसा क्यों कहा ? तो नी+क्विप् इससे बना हुआ 'नी' (लेजानेवाला) यह शब्द एकाच् होनेसे अजादिप्रत्ययमें यण् नहीं होता, "अचि श्नुधातु० ६।४।७७ / २७२" इससे इयङ् होताहै । नीः । नियौ । नियः । अम् , शस् प्रत्ययोंके पहले अनुक्रमसे पूर्वरूप ६।१।१०७ / १९४ और पूर्वसवर्ण ६।१।१०२ / १६४ न होते यह "अचि श्नुधातु०" सूत्र पर है इससे इसीका कार्य इयङ् होताहै नी+अम्=नियम्। नी+शस्=नियः । "ङेराम्० ७।३।११६ / २७०" से नियाम् ।

नी शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	नीः	नियौ	नियः
सं०	हे नीः	हे नियौ	हे नियः
द्वि०	नियम्	नियौ	नियः
तृ०	निया	नीभ्याम्	नीभिः
च०	निये	नीभ्याम्	नीभ्यः
पं०	नियः	नीभ्याम्	नीभ्यः
ष०	नियः	नियोः	नियाम्
स०	नियाम्	नियोः	नीषु

* प्रधीशब्दमें अन्त्य ईवर्णके पूर्व प्र यह संयोग है, तथापि वह धातुका अवयव नहीं बाहर उपसर्गका है इस कारण यण्में कोई बाधा नहीं ॥

पीछे (सि० २६५) क्विबन्तवातप्रमीशब्दमें 'वक्ष्यमाण यण् प्रधीवत्' ऐसा जो कहा है वह इसी प्रधी शब्दके समान है इस शब्दके स्त्रीलिंगमें रूप कैयटके मतसे ऐसे ही होतेहैं (सि० ३०४) ।
प्रधी शब्दकी नदी संज्ञा भी होतीहै, परन्तु उस जगह अर्थ और व्युत्पत्तिमें मतभेद है, यह सब आगे स्त्रीलिङ्ग प्रकरण (३०४) में ध्यानमें आवेंगे परन्तु इस स्थानमें प्रधीशब्द पुँल्लिंग हो वा स्त्रीलिंग हो जब उसकी नदी संज्ञा है तब उसकी रूपावली कैसी यह तो केवल दिखावेंगे, लक्ष्मीशब्दके समान (सि० ३००) धातुत्व होनेके कारण अम्, शस् ङिमें यणमात्र विशेष होगा ॥

सूत्रमें 'असंयोगपूर्वस्य' ऐसा क्यों कहा? तो पूर्वमें संयोग

होते यण् न हो पूर्ववत् इयङ् हो। सुष्ठु श्रयते इति सुश्रीः (उत्तम प्रकारसे सेवा करताहै वह सुश्री) इसमें 'श्रिञ्–सेवायाम्' के आगे क्विप् होकर* "क्विब्वचिप्रच्छ्यायत०" (३१५८ सि०) इस वार्तिकसे दीर्घ हुआ है, इसमें 'श्र्' यह स्वतः धात्ववयव संयोग होनेसे यण् नहीं हुआ, पूर्ववत् इयङ् हुआ, सुश्री+औ=सुश्रियौ। ङिके स्थानमें आम् प्राप्त नहीं इससे वहां भी इयङ् होगा।

सुश्री शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सुश्रीः	सुश्रियौ	सुश्रियः
सं०	हे सुश्रीः	हे सुश्रियौ	हे सुश्रियः
द्वि०	सुश्रियम्	सुश्रियौ	सुश्रियः
तृ०	सुश्रिया	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभिः
च०	सुश्रिये	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः
पं०	सुश्रियः	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः
ष०	सुश्रियः	सुश्रियोः	सुश्रियाम्
स०	सुश्रियि	सुश्रियोः	सुश्रीषु.

इसी प्रकारसे यवं क्रीणाति इति यवक्रीः (यव मोल लेताहै सो) यह क्विबन्त शब्द होता है, यवक्री+औ इस अवस्थामें 'क्र्' इसको स्वतः धात्ववयव संयोग होनेसे यण् न होकर इयङ् हुआ, यवक्रियौ।

"गतिकारके०" (वा० ५०३४) गति (प्रआदि उपसर्ग $\frac{1।4।6}{23}$) और कारक (क्रियाके कर्तृकर्मादि) इनको छोड कर अन्य जो शब्द उनमेंका शब्द इवर्णान्त धातुके पूर्वमें हो तो यण् नहीं होता इयङ् ही होताहै।

"कर्ता कर्म च करणं संप्रदानं तथैव च। अपादानाऽधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्" ऐसी कारिका है, इसका अर्थ कारकप्रकरण (सि० ५३२। ६४६) में स्पष्ट किया जायगा, अस्तु पिछले प्रधी, उन्नी, सुश्री; इनमें प्र, उत्, सु यह गतिसंज्ञक हैं 'ग्रामणी' 'यवक्री' इनमें ग्राम और यव यह अनुक्रमसे नी और क्री इन धातुओंके कर्म हैं, परन्तु 'शुद्ध-धी' 'परमधी' इनमें वैसा प्रकार नहीं है, 'ध्यै' के आगे क्विप् होकर पूर्ववत् धी (बुद्धि) ऐसा शब्द बना और शुद्धा धीर्यस्य सः (जिसकी शुद्ध बुद्धि है सो) ऐसा समास हुआ है, इसमें शुद्ध यह धीका विशेषण है, गति अथवा कारक नहीं इससे 'शुद्धधी' 'परमधी' इनमें यण् नहीं, इयङ् होताहै 'शुद्धधियौ' 'परमधियौ' अर्थात् यह शब्द सुश्री शब्दके समान होतेहैं * ॥

शंका–(कथं तर्हि दुर्धियो वृश्चिकभिया इत्यादि) ऐसे शब्दोंमें गति और कारकसे इतर (दूसरा ही) पूर्वपद रहते यण् नहीं होता ऐसा नियम करनेसे गति अथवा कारक यह पूर्वपद होते यण् होना चाहिये, ऐसा है तो 'दुर्धी' 'वृश्चिकभी' इत्यादिकोंमें गति और कारक पूर्वपद रहते उनके 'दुर्धियः' 'वृश्चिकभिया' इत्यादि प्रकारके इयङ्युक्त रूप कैसे हुए ? तो इसपर कहतेहैं 'दुःस्थिता धीः येषाम्' ऐसे विग्रहमें धी शब्दकी दृष्टिसे देखाजाय तो 'दुर्' को गतित्व ही नहीं है कारण कि (यत्क्रियायुक्ताः०) जिस क्रियासे यह प्रादि शब्द युक्त किये हों उसी क्रियाके योगमें उनकी गति और उपसर्गसंज्ञा है, 'धी' इसकी दृष्टिसे नहीं है, इससे यण् नहीं।

(वृश्चिकशब्दस्येति) (वृक्षात् पतति) पेडसे गिरताहै इत्यादिकोंमें जैसे वास्तविक अपादान अर्थात् विवक्षित स्थलसे दूरगमन दृष्टिमें आताहै, वैसे, वृश्चिकभीः–(विच्छूसे डर) इसमें वास्तविक अपादान नहीं है, केवल बुद्धिसे मानलेनेका अपादान है, इससे यहां कारकशब्दसे उसका ग्रहण नहीं किया गया (वृश्चिकसम्बन्धिनीति) अथवा विच्छूके विषे जो भय वह 'वृश्चिकभीः' ऐसा उत्तरपदलोपसमास मानाजाय सो भी ठीक ही है सि० ७३९ पर "उत्तरपदलोपो वा" यह वार्तिक देखनेसे इस शंकाका समाधान होगा।

सुधीशब्द–सुष्ठु ध्यायति इति–(उत्तम प्रकारसे ध्यान करताहै) 'सुधीः' ऐसा क्विबन्त शब्द–

२७३ न भूसुधियोः ६। ४। ८५॥

एतयोर्यण् न स्यादचि सुपि। सुधियौ। सुधिय इत्यादि। सखायमिच्छति सखीयति। ततः क्विप्। अल्लोपयलोपौ। अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वाद्यणि प्राप्ते क्वौ लुप्तं न स्थानिवत्। एकदेशविकृतस्यानन्यतयानङ्णित्त्वे। सखा। सखायौ। सखायः। हे सखीः। अमि पूर्वरूपात्परत्वाद्यणि प्राप्ते ततोपि परत्वात्सख्युरसंबुद्धाविति प्रवर्तते। सखायम्। सखायौ। शसि यण्। सख्यः। सह खेन वर्तत इति सखः। तमिच्छतीति सखीः। सुखमिच्छतीति सुखीः। सुतमिच्छतीति सुतीः। सख्यौ। सुख्यौ। सुत्यौ। ख्यत्यादिति दीर्घस्यापि ग्रहणादुकारः। सख्युः। सुख्युः। सुत्युः। लूनमिच्छतीति लूनीः। क्षाममिच्छतीति क्षामीः। प्रस्तीममिच्छतीति प्रस्तीमीः। एषां ङसिङसोर्यण। नत्वमत्वयोरसिद्धत्वात् ख्यत्यादित्युत्वम्। लून्युः। क्षाम्युः। प्रस्तीम्युः। शुष्कीयतेः शुष्कीः। इयङ्। शुष्कियौ। शुष्कियः। ङसिङसोः शुष्किय इत्यादि॥

॥ इतीदन्ताः ॥

२७३–आगे अजादि सुप् होते 'भू' (भूमि) और 'सुधी' (उत्तमरीतिसे ध्यान करनेवाला) इन शब्दोंको यण्

* ऊपर 'शुद्धधी' इसमें गतिकारकेतरपूर्वपद होनेसे यण् नहीं होता ऐसा कहा है वह ठीक है परन्तु शुद्धं ध्यायति इति (शुद्ध प्रकारसे अथवा शुद्धको ध्यान करताहै वह) 'शुद्धधीः' ऐसा समास कियाजाय तो शुद्ध इसको क्रियाका विशेषणत्व (कारकत्व) प्राप्त होकर उसमें अजादि विभक्तिके परे यण् होताहै और अनदी प्रधीशब्दके समान उसके 'शुद्धध्यौ' इत्यादि रूप होतेहैं॥

नहीं होता अर्थात् उवङ्, इयङ् होतेहैं ("ओः सुपि ६।४।८३/२८१" से सुप्की अनुवृत्ति आती है) * ॥

सुधियौ । सुधिय इत्यादि । भूशब्दका प्रयोजन आगे २८१ सूत्रमें स्वभूशब्दमें आवेगा ।

सुधीशब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
सं०	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः
द्वि०	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
च०	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पं०	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
ष०	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
स०	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु

(सखायमिच्छति सखीयति । ततः क्विप्) 'सखि (मित्र) की जो इच्छा करताहै' इस अर्थमें उसके आगे क्यच् प्रत्यय लगा और उसके कारण "अकृत्सार्वधातुकयोः० ७।४।२५/२२९४" से दीर्घ होकर 'सखीय' इस धातुके आगे क्विप् हुआ, और (अल्लोपयलोपौ) "अतो लोपः ६।४।४८/२३०८" इससे अल्लोप और "लोपो व्योर्वलि ६।१।६६/८७३" इससे यकारका लोप इस प्रकारसे अन्तमें 'सखी' (मित्रकी इच्छा करनेवाला) ऐसा शब्द बना, (अल्लोपस्य०) अकारलोपको स्थानिवद्भाव करके 'अ' बुद्धि होनेसे सखी इसमें यण् प्राप्त हुआ, परन्तु (क्वौ लुप्तं० वा ० ४३१) क्विप् प्रत्यय आगे होते जो लोप वह स्थानिवत् नहीं होता, इससे स्थानिवद्भावका निषेध होजानेसे यण् न हुआ । (एकदेशेति) मूलका 'सखी' शब्द और उससे बना यह 'सखी' शब्द इनका केवल अन्तवर्णमात्रमें भेद है, इससे यह कोई दूसरा शब्द नहीं, इससे उसी शब्दके अनुसार अनङ् और प्रत्ययको णिद्वत्त्व होगा । प्रथमाके एकवचनमें अनङ् ७।१।९३/२४८ होकर सखन्+स् आगे दीर्घ ६।४।८/२५० , सुलोप ६।१।६८/२७२ , नलोप ८।२।७/२३६ सखि शब्दके तुल्य ही जानो, सखा । सम्बुद्धिवर्ज सर्वनामस्थानमें णित्व ७।१।९२/२५३ तथा उसी प्रकारसे अङ्गकी वृद्धि भी जानो । सखायौ । सखायः । संबुद्धिमें दीर्घ होनेके कारण ७।३।१०८/२४२ गुण नहीं और सुलोप भी नहीं, हे सखीः ।

(अमि पूर्वेति) अम् प्रत्ययमें पूर्वरूप ६।१।१०७/१९४ होना चाहिये परन्तु "एरनेकाचः० ६।४।८२/२७२" यह सूत्र पर है, इससे यण् प्राप्त हुआ, परन्तु "सख्युरसम्बुद्धौ ७।१।९२/२५३" यह उससे भी पर है, इससे इसका कार्य णिद्वत्त्व और "अचो ञ्णिति २५४" से वृद्धि हुई, सखायम् । सखायौ । शस्में धातुत्वके कारण "एरनेकाचः०" इससे यण् होकर 'सख्यः'

रूप हुआ । ङसि और ङस् में यण् होकर "ख्यत्यात्० २५५" से उत्व होनेपर 'सख्युः' ऐसा होगा ।

(सह खेन वर्तत इति सखः) 'ख' अर्थात् इन्द्रिय इसके सहित रहताहै सो 'सख' सखकी इच्छा करनेवाला 'सखी' सुखकी इच्छा करनेवाला 'सुखी' सुत (पुत्र) की इच्छा करनेवाला 'सुती' * ॥

क्विबन्त शब्द होनेके कारण इनके रूप 'सख्यौ', 'सुख्यौ' 'सुत्यौ' यणयुक्त होते हैं। "ख्यत्यात्परस्य ६।१।११२/२५५" इसमें खी, ती इन दीर्घोंका भी ग्रहण होनेसे ऊपरके सखी, सुखी, सुती, ऐसे यह तीनों शब्दोंमें ङसि, ङस्, इनके निमित्तसे "एरनेकाचः" इससे यण् होनेके अनन्तर ख्य्, त्य्, के आगे ङसि, ङस्, इनमें 'अ' के स्थानमें उकार होताहै, सख्युः । सुख्युः । सुत्युः । शेष रूप अनदीसंज्ञक श्री शब्दके समान यण्युक्त जानने ।

सखी—(मित्रकी इच्छा करनेवाला) शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	ब०
प्र०	सखा	सखायौ	सखायः
सं०	हे सखीः	हे सखायौ	हे सखायः
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सख्यः
तृ०	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभिः
च०	सख्ये	सखीभ्याम्	सखीभ्यः
पं०	सख्युः	सखीभ्याम्	सखीभ्यः
ष०	सख्युः	सख्योः	सख्याम्
स०	सखि	सख्योः	सखीषु.

सखी—(सख—इन्द्रिययुक्त प्राणी, उसकी इच्छावाला) शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	ब०
प्र०	सखीः	सख्यौ	सख्यः
सं०	हे सखीः	हे सख्यौ	हे सख्यः
द्वि०	सख्यम्	सख्यौ	सख्यः
तृ०	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभिः
च०	सख्ये	सखीभ्याम्	सखीभ्यः
पं०	सख्युः	सखीभ्याम्	सखीभ्यः
ष०	सख्युः	सख्योः	सख्याम्
स०	सख्यि	सख्योः	सखीषु

इसी प्रकार सुखी, सुती शब्द जानने ।

(लूनमिच्छतीति लूनीः) कटे हुएकी इच्छा करनेवाला लूनी, (क्षीण वस्तुकी इच्छा करनेवाला) क्षामी, प्रस्तीम (ध्वनित) की इच्छा करनेवाला प्रस्तीमी * ॥

* "एरनेकाचः० ६।४।८२/२७२" इसके आगे "ओः सुपि ६।४।८३/२८१" यह सूत्र है, इसमें उवर्णान्त धातुको प्रायः पूर्वसूत्रकी अनुवृत्तिसे ही यण् कहागया है इसमें अनेकाच न होनेके कारण भूशब्दको धातुत्व से "अचि श्नुधातु० ६।४।७७/२७१" इससे उवङ् हो सकताहै, परन्तु तदन्त शब्दमें 'ओः सुपि' इससे जो यण् प्राप्त है उसका प्रस्तुत सूत्रसे निषेध है, 'सुधीः' (सुष्ठु ध्यायति) उसका भी निषेध प्रस्तुतसूत्रसे जानना ॥

* इनमें सख, सुख, सुत, इनके आगे "सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८/२६५" इससे क्यच् (य) प्रत्यय होकर उसके कारण "क्यचि च ७।४।३३/६५८" इससे शब्दके अन्त्य अकारको ईकार होकर सखीय, सुखीय, सुतीय ऐसे क्यजन्त धातु बने, आगे क्विप् होनेसे पूर्ववत् अल्लोप यलोप होकर सखी, सुखी, सुती यह क्विबन्त सिद्ध हुए हैं ।

* इनमें "ल्वादि० ८।२।४४/३०९८", "क्षायो मः ८।२।५३/३०३२", "स्त्यः प्र० ८।२।५४" इन सूत्रोंसे सामान्यतः ६।१।२३, "प्रस्त्यो ऽ" ३।१।२० उसके स्थानमें क्रमसे न, म, होनेवाला जो क्त (त) ३०९५ अकारको सम्प्रासरण होकर, 'लून'—म, ऐसे आदेश और इसके

(एषामिति) ङसि, ङस् प्रत्यय आगे रहते इनको "एरनेकाचः०" इससे यण् हुआ और लून्य्, क्षाम्य्, प्रस्तीम्य् ऐसे रूप हुए, उनमेंके नकार, मकार, यह त्रिपादीमें स्थित हैं, इससे असिद्ध होनेके कारण ल्य् दीखताहै, इस कारण "ख्यत्यात्परस्य $\frac{६।१।११२}{२५५}$" इससे प्रत्ययमेंके अ को उकार हुआ लून्युः, क्षाम्युः, प्रस्तीम्युः, इन तीनों शब्दोंके रूप सखी, सुखी, सुती इनके अनुसार होतेहैं।

शुष्कीयतेः क्विप् 'शुष्कीः' । शुष्क यह भी निष्ठान्त शब्द है, इसमें "शुषः कः $\frac{८।२।५१}{३०३०}$" इससे तकारके स्थानमें ककार होकर पूर्ववत् शुष्कीय धातु बनकर 'शुष्कीः' (सूखे हुएकी इच्छा करनेवाला) ऐसा क्विबन्त शब्द बना है। 'पक्वी' इसी प्रकारसे "पचो वः $\frac{८।२।५२}{३०३१}$" इससे 'पक्व' निष्ठान्त होकर ऐसा क्विबन्त शब्द बना है, इनमें ईकारके पहले धात्ववयवसंबन्धी संयोग होनेसे "एरनेकाच०" इससे यण् नहीं, "अचि श्नुधातु० $\frac{६।४।७७}{२७१}$" इससे इयङ् इससे शुष्कियौ। शुष्कियः। ङसि, ङस्में शुष्कियः इत्यादि यहां ककार, वकारके असिद्ध होनेसे भी इयङ् होताहै, यण् नहीं, इसलिये तीय् दीखताहै ल्य् नहीं दीखता, इससे "ख्यत्यात्परस्य" इसकी प्राप्ति नहीं अर्थात् उकार भी नहीं। इसी प्रकारसे 'पक्वियः' इत्यादि।

शुष्की शब्दके रूप-

वि०	एकव०	द्वि०	बहु०
प्र०	शुष्कीः	शुष्कियौ	शुष्कियः
सं०	हे शुष्कीः	हे शुष्कियौ	हे शुष्कियः
द्वि०	शुष्कियम्	शुष्कियौ	शुष्कियः
तृ०	शुष्किया	शुष्कीभ्याम्	शुष्कीभिः
च०	शुष्किये	शुष्कीभ्याम्	शुष्कीभ्यः
पं०	शुष्कियः	शुष्कीभ्याम्	शुष्कीभ्यः
ष०	शुष्कियः	शुष्कियोः	शुष्कियाम्
स०	शुष्कियि	शुष्कियोः	शुष्कीषु,

इसी प्रकार पक्वी शब्द जानना।

इति ईदन्ताः ॥

शंभुर्हरिवत्। एवं विष्णुवायुभान्वादयः ॥

उकारान्त-(शम्भुः हरिवत्) शम्भु (शिव) शब्द हरिवत् होताहै।

(वि० २४०) विकार्य। इतनी ही बात विशेष है कि हरि शब्द इकारान्त है इसलिये 'ए' गुण हुआ है, यहां शम्भु उकारान्त है इसलिये 'ओ' गुण होताहै।

शम्भु शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	शम्भुः	शम्भू	शम्भवः
सं०	हे शम्भो	हे शम्भू	हे शम्भवः
द्वि०	शम्भुम्	शम्भू	शम्भून्
तृ०	शम्भुना	शम्भुभ्याम्	शम्भुभिः
च०	शम्भवे	शम्भुभ्याम्	शम्भुभ्यः
पं०	शम्भोः	शम्भुभ्याम्	शम्भुभ्यः
ष०	शम्भोः	शम्भ्वोः	शम्भूनाम्
स०	शम्भौ	शम्भ्वोः	शम्भुषु.

इसी प्रकारसे विष्णु, वायु, भानु इत्यादि शब्दके रूप होतेहैं, ॥

क्रोष्टु (सियार) शब्द-

२७४ तृज्वत्क्रोष्टुः । ७ । १ । ९५ ॥

क्रोष्टुस्तृजन्तेन तुल्यं वर्तते असंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे। क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः ॥

२७४-सम्बुद्धिको छोड कर सर्वनामस्थान आगे रहते क्रोष्टु शब्दके तृजन्त शब्दोंकी समान रूप होतेहैं अर्थात् क्रोष्टु शब्दके स्थानमें क्रोष्टृ शब्दका प्रयोग करना चाहिये ("सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ $\frac{६।४।८}{२५०}$" इस सूत्रसे सर्वनामस्थानकी अनुवृत्ति आतीहै) 'क्रुश-आह्वाने रोदने च' इस धातुसे तृच् (२८९५) प्रत्यय होकर क्रोष्टृ शब्द बनताहै, उसके जैसे रूप होतेहैं, वैसे ही सम्बोधनको छोड कर सर्वनामस्थानमें क्रोष्टु शब्दके रूप होतेहैं, ऐसा जानना। क्रोष्टु शब्द सूत्रमें प्रथमान्त है, * ॥

२७५ ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः । ७ । ३ । ११० ॥

ङौ सर्वनामस्थाने च परे ऋदन्ताङ्गस्य गुणः स्यात्। इति प्राप्ते ॥

२७५-ङि और सर्वनामस्थान परे रहते ऋदन्त (ह्रस्व ऋकारान्त) अंगको गुण होताहै। ("ह्रस्वस्य गुणः $\frac{७।३।१०८}{२४२}$" इससे 'गुण' की अनुवृत्ति आतीहै) । इस सूत्रसे क्रोष्टृ शब्दको गुण प्राप्त हुआ, परन्तु-

२७६ ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च । ७ । १ । ९४ ॥

ऋदन्तानामुशनसादीनां चाऽनङ् स्यादसंबुद्धौ सौ परे ॥

२७६-आगे सम्बुद्धिभिन्न सु प्रत्यय रहते ऋदन्तशब्द, उशनस् ४३६, पुरुदंसस् ४३६, अनेहस् ४३६, इन शब्दोंको 'अनङ्' (अन्) आदेश होताहै। ("अनङ् सौ $\frac{७।१।९३}{२४८}$" "सख्युरसम्बुद्धौ $\frac{७।१।९२}{२५३}$" इन दो सूत्रोंसे 'अनङ्' और 'असम्बुद्धि' की अनुवृत्ति आतीहै) इस अपवादके कारण आगे सु होते गुण न होकर अनङ् हुआ, क्रोष्टृ+अन् मिल कर 'क्रोष्टन्' ऐसा रूप हुआ, तब-

-(काटाहुआ), 'क्षाम' (कृश) और 'प्रस्तीम' (ध्वनित) यह शब्द बनकर सुखी, सुती इनके अनुसार क्यच् (य) और उसके पहलेको ई होकर 'लूनीय,' 'क्षामीय,' 'प्रस्तीमीय,' ऐसे धातु हुए और फिर क्विप् होकर पूर्ववत् अलोप, यलोप होकर लूनी, क्षामी, प्रस्तीमी यह क्विबन्त शब्द हुए हैं ॥

* तृजन्त शब्द बहुतसे हैं, परन्तु उनमें अर्थसे 'क्रोष्टु' से 'क्रोष्टृ' ही मिलताहै, इस कारण इसका ही ग्रहण किया जायगा "$\frac{१।१।५०}{४९}$" की टिप्पणी देखो ॥

२७७ अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् । ६ । ४ । ११ ॥

अबादीनामुपधाया दीर्घः स्यादसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे । नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् । तेन पितृभ्रातृप्रभृतीनां न । उद्गातृशब्दस्य तु भवत्येव समर्थसूत्रे उद्गातार इति भाष्यप्रयोगात् । क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः । क्रोष्टारम् । क्रोष्टारौ । क्रोष्टून् ॥

२७७–आगे सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान रहते अप् (जल) शब्द और अष्टाध्यायीमेंके "तृन् ३।२।१३५/३११५" "तृच् ३।१।१३३/२८१५" प्रत्ययान्त शब्द और स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ शब्दोंकी उपधाको दीर्घ होताहै। ("ढ्रलोपे० ६।३।१११/१७४"से दीर्घ, "नोपधायाः ६।४।७/२७०" से उपधा और "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८/२५०"इससे सर्वनामस्थानकी अनुवृत्ति आतीहै)। स्वसृ, नप्तृ, इत्यादि आठ शब्द अव्युत्पन्न लिये तो सूत्रका अर्थ ठीक बनेगा परन्तु, उणादिकोंमें इनकी व्युत्पत्ति है 'स्वसृ' यह ऋन्प्रत्ययान्त (उणा० २।९५) का है इससे चाहे कुछ हानि नहीं पर तो भी नप्तृ इत्यादि सात शब्द 'तृन्नन्त' 'तृजन्त' ही हैं (उणा० २।९४) इस पक्षमें, फिर उनके कहनेका प्रयोजन क्या ? इसलिये कहतेहैं कि, (नप्त्रादिग्रहणमिति) नप्त्रादिकोंकी व्युत्पत्ति है, ऐसा पक्ष लियाजाय तो भी अन्य 'तृन्नन्त' 'तृजन्त' शब्दोंका संग्रह न कियाजाय इस कारण नियमित शब्द ही कहेहैं, (उणादिनिष्पन्नानां तृन्तृजन्तानां चेद्भवति तर्हि नप्त्रादीनामेव) इससे ऐसा जानना चाहिये कि, उणादिके तृन् तृच् प्रत्ययसे निष्पन्न तृन्नन्त, तृजन्त, शब्दोंको दीर्घ हो तो केवल नप्त्रादि इन सात शब्दोंकी ही उपधाको दीर्घ हो इससे पितृ, भ्रातृ जो उणादिकोंमें इतर तृन्नन्त तृजन्त (उणा० २।९४) शब्द हैं, उनकी उपधाको दीर्घ नहीं होता (सि० २८२) * ॥

(उद्गातृशब्दस्येति) परन्तु उद्गातृ (ऋत्विग्विशेष) यह शब्द भी उणादिकोंमेंसे तृन्–तृजन्त है तो भी "समर्थः पदविधिः २।१।१/६४७" इस सूत्रके भाष्यमें भाष्यकारने 'उद्गातारः' ऐसा प्रयोग किया है, इससे इसकी उपधाको दीर्घ होता ही है ऐसा जानना * ॥

अस्तु इस सूत्रसे उपधा दीर्घ होकर क्रोष्टान्+स् ऐसी स्थिति हुई–* ॥

"हल्ङ्या० ६।१।६८/२५२" से सकारका लोप और "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७/२३६" इससे नलोप होकर क्रोष्टा। सम्बुद्धि होते 'क्रोष्टृ' आदेशकी प्राप्ति नहीं ७।१।९५/२७४ इस कारण शम्भु शब्दके अनुसार हे क्रोष्टो। आगे अन्य सर्वनामस्थान रहते "ऋतो ङि० ७।३।११०/२७५" इससे गुण होकर क्रोष्टर् और "अप्तृन्०" इससे उपधादीर्घ। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। क्रोष्टरम्। क्रोष्टारौ। शस् प्रत्यय सर्वनामस्थान नहीं है, इससे क्रोष्टृ आदेशकी प्राप्ति नहीं इससे शम्भु शब्दकी समान क्रोष्टून् ऐसा रूप होताहै ॥

२७८ विभाषा तृतीयादिष्वचि । ७ । १ । ९७ ॥

अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत् । क्रोष्ट्रा । क्रोष्ट्रे ॥

२७८–अच् आदिमें है जिसके, ऐसी तृतीया आदि विभक्ति परे रहते क्रोष्टु शब्दको विकल्प करके तृज्वद्भाव होताहै। तब क्रोष्टृ+टा ऐसी अवस्थामें टकारकी इत्संज्ञा होकर यणादेश होकर क्रोष्ट्रा। क्रोष्टृ+ङे=क्रोष्ट्रे। आगे ङसि, ङस्–

२७९ ऋत उत् । ६ । १ । १११ ॥

ऋदन्तान्ङसिङसोरति परे उकार एकादेशः स्यात् । रपरत्वम् ॥

२७९–ऋदन्तके आगे ङसि अथवा ङस्का सम्बन्धी अकार होते दोनोंके स्थानमें मिलकर उकार एकादेश होताहै, परन्तु ऋकारके स्थानमें होनेवाला अण् "उरण् रपरः ७०" रपर होताहै, इस कारण 'उर्' एकादेश होगा क्रोष्टृ+अस्=क्रोष्टुर्स् ऐसी स्थिति हुई–

२८० रात्सस्य । ८ । २ । २४ ॥

रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । रेफस्य विसर्गः । क्रोष्टुः । आमि परत्वात्तृज्वद्भावे प्राप्ते ॥ नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन ॥* क्रोष्टूनाम । क्रोष्टरि । क्रोष्ट्रोः । पक्षे हलादौ च शंभुवत् ॥

॥ इत्युदन्ताः ॥

२८०–रेफके अनन्तर संयोगान्तमें रहनेवाले, किसी भी अन्यवर्णका लोप नहीं होता सकारमात्रका ही लोप होताहै, इस प्रकार सकारका लोप होकर "खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५/७६" इससे रेफके स्थानमें विसर्ग हुआ, क्रोष्टुः। आम् प्रत्यय आगे रहते ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४/२०८ इससे नुट् प्राप्त हुआ परन्तु आम् प्रत्यय अजादि है "विभाषा तृतीयादिष्वचि ७।१।९७/२७८" इससे परत्व होनेके कारण क्रोष्टु शब्दको विकल्प करके तृज्वद्भावकी पहले

---

* उणादिकोंमें जो मुख्य करके तृन्, तृच्, प्रत्यय कहेहैं, तदन्त शंस्तृ, क्षत्तृ (उणा० २ । ९२) नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, होतृ, पोतृ, भ्रातृ, जामातृ, मातृ, पितृ, दुहितृ ('उणा०' २ । ९४) यह हैं, इससे "अप्तृन्०" इस सूत्रमें गिनाये हुए नप्त्रादि शब्द इनमेंसे निकाल कर शेष शंस्तृ, भ्रातृ, जामातृ, मातृ, पितृ, दुहितृ शब्द हैं, इनकी उपधाको सर्वनामस्थानमें दीर्घ नहीं होता ॥

* तृन्, तृच्, इन दोनोंमें (तृ) यही मुख्य प्रत्यय है "ञ्नित्यादिर्नित्यम् ६।१।१९७/३६८६" इससे 'न्' इस इत्के कारण शब्दका आदि उदात्त होताहै, 'च्' इस इत्से शब्द अन्तोदात्त ६।१।१६३/३७१० होताहै, यह भेद आगे स्वरप्रकरणमें समझ पडेंगे, दोनों इतोंके कारणसे दोनों स्वर पर्यायसे होंगे ॥

* "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८/२५०" इससे सखिशब्दके जैसे दीर्घ होताहै, वैसे [illegible] होना चाहिये था, परन्तु परत्वके कारण वह दीर्घ यहां प्रस्तुत सूत्रसे होताहै ॥

प्राप्ति हुई तथापि "नुमचि० (वा० ४३७४)"* नुम् ७।१।७३/३२०, अच् परे रहते ऋकारके रेफादेश ७।२।१००/२९९, और तृज्वद्भाव इनका नुट् ७।१।५४/२०८ से विरोध आवे तो 'विप्रतिषेधे पूर्वं कार्यम्' इससे पर कार्यका निषेध करके 'नुट्' ही कार्य करना। क्रोष्टु+आम्=क्रोष्टूनाम्। ङिप्रत्ययमें तृज्वद्भावसे 'क्रोष्टृ' और "ऋतो ङि० ७।३।११०/२७५" इससे गुण होकर क्रोष्टरि। क्रोष्टु+ओस्=क्रोष्ट्रोः। विकल्पपक्षमें और हलादि विभक्ति परे रहते शंभु शब्दके समान रूप होंगे।

क्रोष्टु शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
सं०	हे क्रोष्टो	हे क्रोष्टारौ	हे क्रोष्टारः
द्वि०	क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टून्
तृ०	क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
च०	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
पं०	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
ष०	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
स०	क्रोष्टरि क्रोष्टौ	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टुषु.

इति उदन्ताः ॥

हूहूः। हूहौ। हूहूः। हूहूम्। हूहौ। हूहूनित्यादि। अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः। हे अतिचमु। अतिचम्वै। अतिचम्वाः २। अतिचमूनाम्। अतिचम्वाम्। खलपूः॥

ऊदन्त हूहू (गन्धर्वविशेष) शब्द-

हूहूः। हूहू+औ इस अवस्थामें पूर्वसवर्णदीर्घ १६४ का "दीर्घाज्जसि च २३" इससे निषेध होनेसे "इको यणचि ४७" से यण् हुआ। हूहौ। हूहः। इत्यादि रूप होतेहैं।

हूहू शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	हूहूः	हूहौ	हूहः
सं०	हे हूहूः	हे हूहौ	हे हूहः
द्वि०	हूहूम्	हूहौ	हूहून्
तृ०	हूहा	हूहूभ्याम्	हूहूभिः
च०	हूहे	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
पं०	हूहः	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
ष०	हूहः	हूहोः	हूहाम्
स०	हूहि	हूहोः	हूहूषु.

(अतिचमूशब्दे तु०) चमू (सेना) यह शब्द नित्य स्त्रीलिंग ऊकारान्त है इस कारण १।४।३/२६६ नदीसंज्ञक है। 'चमूम् अतिक्रान्तः अतिचमूः' (सेनाको छोडकर गया हुआ सो अतिचमू) यह तदन्तशब्द भी "प्रथमलिंगग्रहणञ्च १।४।३/२६६" इससे नदीसंज्ञक है, इससे नदीकार्य विशेष होगा। हे अतिचमू+सु हे अतिचमु। अतिचमू+ङे=अतिचम्वै। अतिचमू+ङसि=अतिचम्वाः। अतिचमू+ङस्=अतिचम्वाः। अतिचमू+आम्=अतिचमूनाम्। अतिचमू+ङि=अतिचम्वाम्। शेष रूप हूहूशब्दके समान जानना।

अतिचमू शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अतिचमूः	अतिचम्वौ	अतिचम्वः
सं०	हे अतिचमु	हे अतिचम्वौ	हे अतिचम्वः
द्वि०	अतिचमूम्	अतिचम्वौ	अतिचमून्
तृ०	अतिचम्वा	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभिः
च०	अतिचम्वै	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभ्यः
पं०	अतिचम्वाः	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभ्यः
ष०	अतिचम्वाः	अतिचम्वोः	अतिचमूनाम्
स०	अतिचम्वाम्	अतिचम्वोः	अतिचमूषु

खलपू-('खलं पुनाति इति, दुष्टको पवित्र करता है सो खलपू) क्विबन्त शब्द-

खलपू+सु=खलपूः। खलपू+औ=

२८१ ओः सुपि। ६।४।८३॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादजादौ सुपि। गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते। खलप्वौ। खलप्व इत्यादि। एवं सुल्वादयः। अनेकाचः किम्। लूः। लुवौ। लुवः। धात्ववयवेति किम्। उल्लूः। उल्लुवौ। उल्लुवः। असंयोगपूर्वस्य किम्। कटप्रुवौ। कटप्रुवः। गतीत्यादि किम्। परमलुवौ। सुपि किम्। लुलुवतुः। स्वभूः। न भूसुधियोः। स्वभुवौ। स्वभुवः॥

२८१-अच् आदिमें है जिसके ऐसा सुप् परे रहते धातुका अवयव जो संयोग, वह पूर्वमें न हो, ऐसा जो उवर्ण तदन्त जो धातु, तदन्त जो अनेकाच् अङ्ग, उसको यण् हो। (यहां "इणो यण् ६।४।८१" इससे यणकी और "एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य २७२" इस संपूर्ण सूत्रकी अनुवृत्ति होती है, 'एः' इस अंशको छोडकरके कारण कि, सूत्रमें 'ओः' ऐसा स्पष्ट स्थानीका उच्चारण किया है)। "अचिश्नु० ६।४।७७/२७१" से होनेवाले उवङ्का यह अपवाद है, "गतिकारकेति (५०३४ वा०)" गति और कारकसे भिन्नपद पूर्ववर्ती होनेपर यण् न हो (परमलू शब्द देखो)। खलप्वौ। खलप्वः इत्यादि अनदीसंज्ञकप्रधीवत्॥

खलपू शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	खलपूः	खलप्वौ	खलप्वः
सं०	हे खलपूः	हे खलप्वौ	हे खलप्वः
द्वि०	खलप्वम्	खलप्वौ	खलप्वः
तृ०	खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः
च०	खलप्वे	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
पं०	खलप्वः	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
ष०	खलप्वः	खलप्वोः	खलप्वाम्
स०	खलप्वि	खलप्वोः	खलपूषु,

इसी प्रकारसे सुलू (उत्तमप्रकारसे काटनेवाला) इत्यादि शब्दोंके रूप जानो।

अनेकाच् क्यों कहा ? तो एकाच् शब्द लू (काटनेवाला) को यण् नहीं होकर "अचि श्नुधातु० २७१" से उवङ् होगा, लूः। लुवौ। लुवः। परन्तु ङिके स्थानमें आम् नहीं होगा।

लू शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	लूः	लुवौ	लुवः
सं०	हे लूः	हे लुवौ	हे लुवः
द्वि०	लुवम्	लुवौ	लुवः
तृ०	लुवा	लूभ्याम्	लूभिः
च०	लुवे	लूभ्याम्	लूभ्यः
पं०	लुवः	लूभ्याम्	लूभ्यः
ष०	लुवः	लुवोः	लुवाम्
स०	लुवि	लुवोः	लूषु.

(धात्ववयवेति किम्) धातुका अवयव संयोग न हो, ऐसा क्यों कहा ? तो उत् लू मिलकर उल्लू (ऊपर काटनेवाला) इसमें उकारके पीछे संयोग है तो भी धातुका अवयव न होनेके कारण यण् होताहै। उल्लूः। उल्ल्वौ। उल्ल्वः। खलपूशब्दके समान।

(असंयोगेति) पीछे संयोग न हो ऐसा क्यों कहा ? तो (कटं प्रवते इति) बिछौनेकी ओर चलता है सो 'कटप्रू' यहां धातुका अवयव संयोग होनेके कारण यण् नहीं होता, कटप्रूः। कटप्रुवौ। कटप्रुवः। उवङ् लू शब्दके समान।

(गतीति) गति, कारक पूर्व पद होते ऐसा क्यों कहा ? तो (परमश्चासौ लूश्च परमलूः) 'उत्कृष्ट काटनेवाला सो परमलू' इस कर्मधारयमें 'परम' इसको गति वा कारक न होनेसे यण् नहीं होकर उवङ् होगा, (लूशब्दवत्) परमलुवौ।

(सुपि किम्) अजादि सुप् प्रत्यय होते ऐसा क्यों कहा? तो अनुस् ($\frac{३।४।८३}{२१७३}$) इस तिङ् प्रत्ययको आगे रहते 'लुलू' इस द्विरुक्त धातुको यण् न होकर उवङ् होताहै, लुलुवतुः (उन दोनोंने काटा) $\frac{७।३।८०}{२५५८}$ * ॥

स्वभू शब्द–(स्वयम् अर्थात् आपही होनेवाला)

स्वभूः। "न भूसुधियोः $\frac{६।४।८५}{२७३}$" इस निषेधके कारण यण् नहीं, उवङ् होगा स्वभुवौ। स्वभुवः। लूशब्दवत्। इसी प्रकार स्वयम्भू शब्दके रूप जानने।

स्वयम्भू शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	स्वयंभूः	स्वयंभुवौ	स्वयंभुवः
सं०	हे स्वयंभूः	हे स्वयम्भुवौ	हे स्वयंभुवः
द्वि०	स्वयंभुवम्	स्वयंभुवौ	स्वयंभुवः
तृ०	स्वयंभुवा	स्वयंभूभ्याम्	स्वयंभूभिः
च०	स्वयंभुवे	स्वयंभूभ्याम्	स्वयंभूभ्यः
पं०	स्वयंभुवः	स्वयंभूभ्याम्	स्वयंभूभ्यः
ष०	स्वयंभुवः	स्वयंभुवोः	स्वयंभुवाम्
स०	स्वयंभुवि	स्वयंभुवोः	स्वयंभूषु.

वर्षाभू–(वर्षासु भवति) बरसातमें होनेवाला (मेंडक) शब्द–

२८२ वर्षाभ्वश्च। ६। ४। ८४॥

अस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सुपि। वर्षाभ्वौ। वर्षाभ्वः। दृम्भतीति दृम्भूः। अन्दूदृम्भूजम्बूकफेलूकर्कन्धूदिधिषूरित्युणादिसूत्रेण व्युत्पादितः। दृम्भ्वौ। दृम्भ्वः। दृम्भूम्। दृम्भ्वौ। दृम्भून्। शेषं हूहूवत्। दृन्निति नान्तं हिंसार्थेऽव्यये भुवः क्विप्। दृन्भूः॥ दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः॥ * ॥ दृन्भ्वम्। दृन्भ्व इत्यादि। खलपूवत्। करभ्वौ। करभ्वः। दीर्घपाठे तु कर एव कारः। स्वार्थिकः प्रज्ञाद्यण्। कारभ्वौ। कारभ्वः। पुनर्भूर्यौगिकः पुंसि। पुनर्भ्वावित्यादि। दृग्भूकाराभूशब्दौ स्वयंभूवत्॥

॥ इत्यूदन्ताः ॥

२८२–अजादि सुप् परे रहते 'वर्षाभू' शब्दके उकारको यण् होताहै, उवङ् नहीं। इस सूत्रमें स्थित चकारको अनुक्तसमुच्चयार्थकत्व स्वीकार करके वार्तिकमें कहे 'दृन्' और 'कर' तथा 'पुनः' शब्दपूर्वक भी भू शब्दका ग्रहण होगा. वर्षाभू+औ, यहां "इको यणचि $\frac{६।१।७७}{४७}$" से प्राप्त यणको बाधकर "प्रथमयोः० $\frac{६।१।१०२}{१६८}$" से प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घका "दीर्घाज्जसि च $\frac{६।१।१०५}{२३९}$" से निषेध हुआ और पूर्व ४७ की प्राप्ति हुई उसको बाध कर "अचि श्नु० $\frac{६।४।७७}{२७१}$" से उवङ् प्राप्त हुआ, उसको बाधकर "ओः सुपि $\frac{६।४।८३}{२८१}$" से यण् प्राप्त हुआ, उसका "न भूसु० $\frac{६।४।८५}{२७३}$" से निषेध हुआ, तब उवङ्की प्राप्ति बनी रही उसको बाधकर प्रस्तुत सूत्रसे यण् हुआ। वर्षाभ्वौ। वर्षाभू+जस्=वर्षाभ्वः। शेष रूप खलपूकी समान जानना।

(दृम्भतीति) गुंथताहै वह दृम्भू। यह शब्द "अन्दूदृम्भूजम्बूकफेलूकर्कन्धूदिधिषूः १। ९३" इस उणादि सूत्रसे 'दृभी ग्रन्थे' इस धातुमें कृत् (ऊ) प्रत्यय लग कर निष्पन्न हुआ है, आगे ऊ रहनेके कारण इस शब्दमें धातुत्व नहीं इस कारण उवङ् न होकर ४७ से यण् हुआ दृम्भ्वौ। दृम्भ्वः। दृम्भून्। शेष रूप हूहूशब्दकी समान है।

'दृन्' यह हिंसार्थमें नान्त अव्यय है, सो पूर्वमें रहते भू धातुसे क्विप् प्रत्यय होकर दृन्भूः (हिंसासे जन्मा हुआ) यह शब्द व्युत्पन्न हुआ है। दृन्, कर, पुनः, एतत्पूर्वक 'भू' शब्दको यण् होताहै। [illegible] "न भूसुधियोः $\frac{६।४।८५}{२७३}$" इससे यण्का [illegible], तो भी "दृन्करपुनः०" (वा० ४११८) इसवार्तिकसे होगा दृन्भू+औ दृन्भ्वौ। दृन्भू+जस्=दृन्भ्वः इत्यादि। शेष रूप खलपूवत् जानना।

* इस सूत्रमें "एरनेकाचः०" इससे 'सुपि' यह अर्थ अधिक है, इससे यह सूत्र तिङन्तमें प्रवृत्त नहीं होता, यह ध्यानमें रखना चाहिये॥

इसी प्रकार करभू (हाथसे जन्मा हुआ)

करभू+सु=करभूः । करभ्वौ । करभ्वः । (दीर्घपाठे) कार इस प्रकारका दीर्घयुक्त वार्तिकपाठ है तब उसमें 'कार' इसका 'कर' यही अर्थ है, कर इससे "प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८/२१०६" इससे स्वार्थमें अण् (वृद्धिनिमित्त) होकर कार शब्द बना है इससे कारभ्वौ । कारभ्वः । इत्यादि करभूवत् रूप जानना ।

पुनर्भूः—यह शब्द यौगिक (व्युत्पत्तिके अनुसार अर्थवाला) (फिर होनेवाला) पुँल्लिङ्ग है । पुनर्भू+औ=पुनर्भ्वौ । स्त्रीलिंग 'पुनर्भू' रूढि है उसका निर्णय (३०६) सूत्रमें होगा ।

दृग्भूः (दृष्टिसे होनेवाला), काराभूः (कारागृहमें होनेवाला) यह क्विबन्त शब्द स्वयंभूशब्दके समान होतेहैं, कारण कि, "न भूसुधियोः" यह निषेध सूत्र यहां लगताहै दूसरी कोई प्राप्ति नहीं ॥

॥ इति ऊदन्ताः ॥

धाता । हे धातः । धातारौ । धातारः ॥ ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् ॥ * ॥ धातॄणामित्यादि । एवं नप्त्रादयः । उद्गातारौ । पिता । व्युत्पत्तिपक्षे नप्त्रादिग्रहणस्य नियमार्थत्वान्न दीर्घः । पितरौ । पितरः । पितरम् । पितरौ । शेषं धातृवत् । एवं जामातृभ्रात्रादयः । ना । नरौ । नरः । हे नः ॥

ऋदन्त धातृ (ब्रह्मा) शब्द—

यह अष्टाध्यायीमेंका तृजन्त ३।१।१३३/२८९५ है, सुप्रत्यय परे रहते "ऋदुशन० ७।१।९४/२७६" इससे अनङ्, धात्+अन्+स् मिलकर धातन्+स् ऐसी स्थिति हुई, "अप्तृन्तृच्० ६।४।११/२७७" इससे उपधाको दीर्घ,. धातान्+स् "हल्ङ्या० ६।१।६८/२५०" से सकारका लोप "न लोपः० २३६" से नकारका लोप, धाता । आगे 'औ' रहते "ऋतो ङिसर्व० ७।३।११०/२७५" इससे गुण हुआ । धातर्+औ "अप्तृन्तृच्०" इससे उपधाको दीर्घ धातार्+औ=धातारौ हुआ । सम्बुद्धिमें "ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८/२४२" इससे धातर्+स् ऐसी स्थिति होते उपधाको दीर्घकी प्राप्ति नहीं, "हल्ङ्या०" इससे सकारका लोप होकर 'धातर्' हुआ फिर "खरवसानयोः० ८।३।१५/९६" से विसर्ग हे धातः । धातारौ । धातारः । धातृ+नाम् ऐसी अवस्थामें दीर्घ और पीछे "रषाभ्यां नो णः समानपदे ८।४।१/२३५" ऐसा सूत्र है, उसके अनुसार "ऋवर्णा०" यह वार्तिक है इससे ऋवर्णके आगे नकारको णत्व हुआ धातॄणाम् । धातृ+ङि यहां "ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ७।३।११०/२७५" इससे गुण होकर धातरि—इत्यादि ।

धातृ शब्दके रूप—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	धाता	धातारौ	धातारः
सं०	हे धातः	हे धातारौ	हे धातारः
द्वि०	धातारम्	धातारौ	धातॄन्
तृ०	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
च०	धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पं०	धातुः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
ष०	धातुः	धात्रोः	धातॄणाम्
स०	धातरि	धात्रोः	धातृषु.

इसी प्रकारसे नप्तृ इत्यादि सात शब्दोंके रूप जानना, तथा और भी तृन–तृजन्तोंके रूप इसी प्रकार जानना, स्वसृ शब्दके रूप स्त्रीलिङ्ग प्रकरण (३०८) में आवेंगे । ऋकारान्त शब्दोंके 'धातः' इत्यादि जो सम्बुद्धिके रूप हैं, उनमेंका विसर्ग रेफसे बना है, रु से नहीं इसलिये केवल आगे हश् रहते रेफको उत्व नहीं होता धातर्+गच्छ इसकी संधि धातर्गच्छ इत्यादि होगी ।

उद्गातृ (ऋत्विग्विशेष) शब्द औणादिक है तो भी इसको भाष्यके. आधारसे उपधा दीर्घ होताहै, इससे उद्गातारौ इत्यादि धातृवत् ॥

पितृ (बाप) । यह पितृ आदि शब्द अव्युत्पन्न मान लियेजांय तो दीर्घ होनेको कोई शंका नहीं, कारण कि, "अप्तृ०" इसमें उनका पाठ नहीं है और यदि व्युत्पन्न मानलियेजांय तो भी उपधादीर्घके विषयमें वहां नप्त्रादिको नियमार्थ होनेसे नप्तृ आदि सातही शब्द गिनाये गयेहैं, इससे इनको उपधादीर्घ नहीं, पितृ+औ=पितरौ । पितृ+जस्=पितरः । पितृ+अम्=पितरम् । पितरौ । शेष रूप धातृवत् जानना ॥

पितृ शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
सं०	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः
द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
च०	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पं०	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
ष०	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
स०	पितरि	पित्रोः	पितृषु

इसी प्रकारसे जामातृ (जमाई), भ्रातृ (भाई) इत्यादि शब्दोंके रूप होतेहैं,. आदिशब्द कहनेसे शंस्तृ (स्तुति करनेवाला), मातृ (मा) और दुहितृ (कन्या) यह शब्द लिये जांयगे । मातृ, दुहितृ शब्द स्त्रीलिंगमें ध्यानमें आवेंगे (३०८ में)* ॥

नृ (पुरुष) शब्द—

ना । नरौ । नरः । हे नः ।

---

* शेष ऋदन्त शब्द देवृ (देवर), नृ (मनुष्य), सव्येष्ठृ (सारथी) यह ऋ प्रत्ययान्त (उणा० २ । ९८ । ९९ । १००) और यातृ (जिठानी देवरानी), ननान्दृ,–ननन्दृ (ननंद) यह ऋन् प्रत्ययान्त हैं ("उणादि० २ । ९६ । ९७") तृन् अथवा तृच् प्रत्ययवाले नहीं, इससे इनमें भी उपधादीर्घ नहीं । देवृ, सव्येष्ठृ इनके रूप पितृ शब्दके समान होंगे । यातृ, ननान्दृ, ननन्दृ, इनके रूप स्त्रीलिङ्ग प्रकरणमें ध्यानमें आवेंगे [सि० ३०८] ॥

२८३ नृ च । ६ । ४ । ६ ॥

नृ इत्येतस्य नामि वा दीर्घः स्यात् । नृणाम् । नॄणाम् ॥

॥ इति ऋदन्ताः ॥

२८३–आगे नाम् रहते नृ शब्दको विकल्प करके दीर्घ होताहै । (" नामि ६।४।३/२०९ " " छन्दस्युभयथा ६।४।५/३४५ " इन दो सूत्रोंसे नाम्, दीर्घ, और विकल्पकी अनुवृत्ति आतीहै) नॄणाम्, नृणाम्, शेष रूप पितृ शब्दकी समान जानना ॥

इति ऋदन्ताः ॥

कॄ तॄ अनयोरनुकरणे प्रकृतिवदनुकरणमिति वैकल्पिकातिदेशादित्वे रपरत्वम् । कीः । किरौ । किरः । तीः । तिरौ । तिर इत्यादि गीर्वत् । इत्वाभावपक्षे तु ऋदुशन इति ऋतो ङीति च तपरकरणादनङ्गुणौ न । कॄः । क्रौ । क्रः । कॄम् । क्रौ । कॄन् । क्रा । क्रे इत्यादि ॥

॥ इति ॠदन्ताः ॥

(कॄ तॄ अनयोरिति) ॠदन्त शब्द नहीं है इस कारण 'कॄ विक्षेपे' 'तॄ प्लवनसंतरणयोः' जो दो ॠदन्त धातु हैं उनका ही अनुकरण (उच्चारण) कॄ, तॄ, लियाहै, प्रकृतिकी समान अनुकरण होताहै नहीं भी होताहै ऐसा वैकल्पिक अतिदेश है, इस कारण कॄ, तॄ, इन धातुओंको "ॠत इद्धातोः ७।१।१००/२३९० " इससे होनेवाला इत्व इनको भी हुआ, "उरण् रपरः १।१।५१/७० " से इस इकारको रपरत्व, इर् यह अन्तादेश होकर 'किर्' 'तिर्' ऐसे रूप बने, आगे सु प्रत्ययमें किर्+स्, तिर्+स्, इनमें "हल्ङ्या० " इससे अगले सकारका लोप होकर 'किर्' 'तिर्' ऐसी स्थिति हुई, फिर "र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८।२।७६/४३३ " (रेफान्त और वान्त धातुओंके उपधास्थानमें रहनेवाले इक्को पदान्तमें दीर्घ होताहै) इससे कीः । किरौ । किरः । तीः । तिरौ । तिरः इत्यादि (गीर्वत्) शेष रूप गिर् शब्दके रूपके समान जानना (४४०) * ॥

(इत्वाभावपक्षे तु०) जब इत्व नहीं करना है, तब "ऋदुशनस्० ७।१।९४/२७६ " इसमें और "ऋतो ङि० ७।३।११०/२७५ " इसमें जो ऋ है, वह ऋत् ऐसा तपर होनेसे दीर्घान्त शब्द होते उनको अनङ् और गुण यह कार्य नहीं होते, कॄ+सु=कॄः । कॄ+औ=क्रौ । कॄ+जस्=क्रः । कॄ+अम्=कॄम् । कॄ+औ= क्रौ । कॄ+शस्=कॄन् । कॄ+टा=क्रा । कॄ+ङे=क्रे इत्यादि ॥

कॄ शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	कीः, कॄः	किरौ, क्रौ	किरः, क्रः
सं०	हे कीः, कॄः	हे किरौ, क्रौ	हे किरः, क्रः
द्वि०	किरम्, कॄम्	किरौ, क्रौ	किरः, कॄन्
तृ०	किरा, क्रा	कीर्भ्याम्, कॄभ्याम्	कीर्भिः, कॄभिः
च०	किरे, क्रे	कीर्भ्याम्, कॄभ्याम्	कीर्भ्यः, कॄभ्यः
पं०	किरः, क्रः	कीर्भ्याम्, कॄभ्याम्	कीर्भ्यः, कॄभ्यः
ष०	किरः, क्रः	किरोः, क्रोः	किराम्, क्राम्
स०	किरि, क्रि	किरोः, क्रोः	कीर्षु, कॄषु

इसी प्रकार 'तॄ' शब्दके रूप जानना ।

कीर्षु । तीर्षु इनमें रेफके स्थानमें विसर्ग नहीं होता, कारण कि "रोः सुपि ८।३।१६/३३९ " रु सम्बन्धी र् होते ही सप्तमी बहुवचनमें "खरवसानयोः० ८।३।१५/७६ " यह सूत्र लगताहै, अन्यथा नहीं ॥

इति ॠदन्ताः ॥

गम्लृ शक्लृ अनयोरनुकरणेऽनङ् । गमा । शका । गुणविषये तु लपरत्वम् । गमलौ । गमलः । गमलम् । गमलौ । गमॄन् । गम्ला । गम्ले । ङसिङसोस्तु ऋत उदित्युत्वे लपरत्वे संयोगान्तस्य लोपः । गमुल् । शकुल् । इत्यादि ।

॥ इति लृदन्ताः ॥

लृदन्त शब्द–

'गम्लृ–गतौ', 'शक्लृ–शक्तौ' यह धातु हैं, इनका अनुकरण 'गम्लृ', 'शक्लृ' यही शब्द लियेहैं । 'लृ' 'ऋ' वर्णकी परस्पर सवर्णसंज्ञा है १२ वार्तिकसे । ऋदन्तपितृवत् कार्य होंगे, इस कारण अनङ् होकर गमा शका परन्तु जब गुण होगा तब "उरण् रपरः ७० " इस सूत्रमें र प्रत्याहार है, इससे र, ल, दोनोंका ग्रहण होनेसे यहां आन्तरतम्यसे लपरत्व अर्थात् ऋदन्तत्वके कारण जैसे 'र्' वैसे लृदन्तत्वके कारण 'ल्' गमलौ । गम्लृ+जस्=गमलः । गम्लृ+अम्=गमलम् । गम्लृ+औ=गमलौ । लृकारको दीर्घ न होनेसे उसके स्थानमें 'ॠ' गमॄन् । गम्लृ+टा=गम्ला । गम्लृ+ङे=गम्ले । ङसि, ङस् प्रत्ययोंमें "ऋत उत् ६।१।१११/२७९ " इससे उत्व होकर, उसको लपरत्व होनेपर गमुल्स् इसमें केवल संयोगान्तलोप होगा । आगे अन्त्य लकारको रेफके समान विसर्गकी प्राप्ति नहीं होगी, गम्लृ+ङसि=गमुल् । गम्लृ+ङस्=गमुल् इत्यादि ।

गम्लृ शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	गमा	गमलौ	गमलः
सं०	हे गमल्	हे गमलौ	हे गमलः
द्वि०	गमलम्	गमलौ	गमॄन्
तृ०	गम्ला	गम्लृभ्याम्	गम्लृभिः
च०	गम्ले	गम्लृभ्याम्	गम्लृभ्यः
पं०	गमुल्	गम्लृभ्याम्	गम्लृभ्यः

---

* अतिदेशका अर्थ–'नियमित मर्यादाके बाहर किसी नियमका कार्य होना है' । कॄ, तॄ धातु होते जो इत्व होताहै उसका अनुकरणमें (प्रातिपदिककालमें) भी होना यह अतिदेश हुआ, परन्तु "क्षियो दीर्घात्" यहां इयङ् होनेवास्ते 'क्षि' अनुकरणको प्रकृतिवत् मानाहै और प्रातिपदिक संज्ञा होनेके लिये प्रकृतिवत् नहीं मानाहै, कारण कि, प्रकृतिवत् होनेसे धातु होगा और धातुकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती, इस कारण इस सूत्रके निर्देशसे यह विकल्पसे होताहै, ऐसा कहनेसे इत्वको छोड़कर भी अन्य रूप होतेहैं ॥

ष०	गम्लुल्	गम्लोः	गम्लृणाम्
स०	गमलि	गम्लोः	गम्लृषु.

इसी प्रकार शक्लृ शब्दके रूप जानने ॥

इति लृदन्ताः ॥

सेः । सयौ । सयः । स्मृतेः । स्मृतयौ । स्मृतयः ।

॥ इत्येदन्ताः ॥

दीर्घ लृ होती ही नहीं, इससे तदन्तशब्द भी नहीं । एकारान्त से शब्द—

'इः कामः इना सह वर्तते इति सेः' । इ अर्थात् मदन, उसके सहित वर्तताहै सो 'से' । से+सु=सेः । से+औ= सयौ । से+जस्=सयः ।

से शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सेः	सयौ	सयः
सं०	हे से	हे सयौ	हे सयः
द्वि०	सयम्	सयौ	सयः
तृ०	सया	सेभ्याम्	सेभिः
च०	सये	सेभ्याम्	सेभ्यः
पं०	सयः	सेभ्याम्	सेभ्यः
ष०	सयः	सयोः	सयाम्
स०	सयि	सयोः	सेषु.

इसी प्रकार 'स्मृते' (स्मरण कियाहै मदनका जिसने सो) शब्दके रूप जानना, स्मृतेः । स्मृतयौ । स्मृतयः इत्यादि॥

इति एदन्ताः ॥

ओदन्त गो (बैल) शब्द—

२८४ गोतो णित् । ७ । १ । ९० ॥

गोशब्दात्परं सर्वनामस्थानं णिद्वत् स्यात् । गौः । गावौ । गावः ॥

२८४–गोशब्दसे परे सर्वनामस्थानको णिद्वद्भाव हो । (इसमें " इतोऽत्सर्वनामस्थाने $\frac{७।१।८६}{३६६}$ " से सर्वनामस्थानेकी अनुवृत्ति होती है । और उस सूत्रमें यद्यपि ' सर्वनाम० ' यह सप्तम्यन्त है तथापि विभक्तिका अर्थवशसे विपरिणाम करके यहां प्रथमान्त ही लिया जाताहै.) । " अचो ञ्णिति $\frac{७।२।११५}{२५४}$ " इससे अजन्त अंगको वृद्धि हुई, गो+सु=गौः । गो+औ=गावौ । गो+जस्=गावः ॥

२८५ औतोऽम्शसोः । ६ । १ । ९३ ।

आ ओत इति च्छेदः । ओकारादम्शसोरचि परे आकार एकादेशः स्यात् । शसा साहचर्यात्सुपेवाम् गृह्यते । नेह । अचिनवम् । असुनवम् । गाम् । गावौ । गाः । गवा । गवे । गोः । इत्यादि ॥ ओतो णिदिति वाच्यम् ॥ * ॥ विहितविशेषणं च ॥ * ॥ तेन । सुद्यौः । सुद्यावौ । सुद्यावः । ओकारान्ताद्विहितं सर्वनामस्थानमिति व्याख्यानान्नेह । हे भानो । भानवः । उः शंभुः स्मृतो येन सः स्मृतोः । स्मृतावौ । स्मृतावः । स्मृताम् । स्मृतावौ । स्मृताः इत्यादि ।

॥ इत्योदन्ताः ॥

२८५–सूत्रमेंके ' ओतः ' इसमें आ, ओतः ऐसे दो पद हैं, ओकारसे परे अम् और शस् इनको अच् परे रहते आकार एकादेश हो । ' अम्शसोः ' इसमें जो अम् है वह शस्के संग कहा हुआहै इस कारण वह सुप्प्रत्याहारमेंका ही लिया जायगा, इस कारण अ + चि + नो + अम् । अ + सु + नो + अम् । ऐसे जो ' चि ' (२५५५), ' सु ' (२५२३) धातुओंके लङ् (अनद्यतनभूतकालके) उत्तमपुरुषके एकवचनमें रूप प्राप्त होते हैं उनमें अम् इस तिङ् प्रत्ययके पहले यद्यपि ओ है तो भी वहां आकार एकादेश न होते ' अचिनवम् ', ' असुनवम् ' ऐसे ही रूप सिद्ध होते हैं । गो + अम् = गाम् । गो + औ = गावौ । गो + शस्=गाः । गो+टा=गवा । गो+ङे=गवे । गो+ङसि=गोः । इत्यादि * ॥

गो शब्दके रूप—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	गौः	गावौ	गावः
सं०	हे गौः	हे गावौ	हे गावः
द्वि०	गाम्	गावौ	गाः
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च०	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पं०	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
ष०	गोः	गवोः	गवाम्
स०	गवि	गवोः	गोषु.

'ओतो णिदि० (वा०५०३५)' "गोतो णित् $\frac{७।१।९०}{२८४}$ " जो सूत्र है उसमें गो शब्दके परे सर्वनामस्थान णिद्वत् हो ऐसा कहाहै, परन्तु वहां 'ओतो णित् ' ऐसा कहना चाहिये । और 'सर्वनामस्थान' इस शब्दको विहित यह विशेषण लगावें, ओकारान्तके आगे विहित (अर्थात् ओकारान्त शब्द पहले होते उसके आगे लाए हुये जो सर्वनामस्थान वह) सर्वनामस्थान णिद्वत् जानो । सामान्यसे ओकारान्त शब्दके आगेके सर्वनामस्थानको णिद्वद्भाव करनेसे सुद्यो (सुन्दर स्वर्ग) इसके रूप सुद्यौः । सुद्यु+औ=सुद्यावौ इत्यादि होंगे ।

ओकारान्तशब्द पहले रह कर उसके आगे जो सर्वनामस्थान लाना है ऐसा व्याख्यान होनेसे भानो इस गुणयुक्त भानुशब्दके आगेके सम्बुद्धि सु अथवा जस्को णिद्वद्भाव नहीं, इस कारण हे भानु+सु=हे भानो, भानु+जस्=भानवः इनमें वृद्धि नहीं (सि०२५३ देखो) ॥

* यहां सुप् शस्का साहचर्य लियाहै, तद्धित शस्का नहीं कारण कि, ओकारसे परे तद्धित शस् मिलता नहीं। और कैयट तो तद्धित शस् भी है तो सुप् शस्के साहचर्यसे सुप् ही अम् लियाजाय ऐसा कैसे कह सकतेहैं यह शंका करके, अजादिका अधिकार होनेसे तद्धित शस् अजादि नहीं है क्योंकि उसके शकारकी इत् संज्ञा नहीं है ऐसा कहतेहैं ॥

स्मृतो शब्द–(उ अर्थात् शम्भुका स्मरण कियाहै जिसने वो)

इसका प्रथमामें स्मृतो+सु=स्मृतौः । स्मृतो+औ=स्मृतावौ । स्मृतो+जस्=स्मृतावः । स्मृतो+अम्=स्मृताम् । स्मृतो+औ=स्मृतावौ । स्मृतो+शस्=स्मृताः इत्यादि गोवत् ॥

इति ओदन्ताः ॥

ऐकारान्त रै (सम्पत्ति) शब्द–

२८६ रायो हलि । ७ । २ । ८५ ॥

रैशब्दस्याऽऽकारान्तादेशः स्याद्धलि विभक्तौ। अचि आयादेशः ॥ राः । रायौ । रायः । रायम् । रायौ । रायः । राया । राभ्यामित्यादि ।

॥ इत्यैदन्ताः ॥

२८६–हलादिविभक्ति आगे रहते 'रै' शब्दको आकार अन्तादेश हो । (इस सूत्रमें "अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८४/२७१" से आ और विभक्तिकी अनुवृत्ति होतीहै) रै+सु=राः । अजादिप्रत्यय परे रहते संधिसे आय् आदेश हो, रै+औ=रायौ । रै+जस्=रायः । रै+अम्–रायम् । रै+औ=रायौ । रै+शस्=रायः । रै+टा=राया । रै+भ्याम्=राभ्याम् इत्यादि ।

रै शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	राः	रायौ	रायः
सं०	हे राः	हे रायौ	हे रायः
द्वि०	रायम्	रायौ	रायः
तृ०	राया	राभ्याम्	राभिः
च०	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पं०	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
ष०	रायः	रायोः	रायाम्
स०	रायि	रायोः	रासु.

इति ऐदन्ताः ॥

ग्लौः । ग्लावौ । ग्लावः । ग्लावम् । ग्लावौ । ग्लावः इत्यादि । औतोऽम्शसोरितीह न प्रवर्तते । ऐऔजिति सूत्रेण ओदौतोः सावर्ण्याभावज्ञापनात् ॥

इत्यजन्ताः पुँल्लिङ्गाः ॥

औकारान्त ग्लौ (चन्द्रमा) शब्द–

ग्लौ+सु=ग्लौः । ग्लौ+औ=ग्लावौ । ग्लौ+जस्=ग्लावः । ग्लौ+अम्=ग्लावम् । ग्लौ+औ=ग्लावौ । ग्लौ+शस्=ग्लावः इत्यादि । "औतोऽम्शसोः ६।१।९३/२८५" इस सूत्रकी यहां प्रवृत्ति नहीं होती और आकारान्तत्व नहीं आता कारण कि, वह सूत्र केवल ओकारान्त शब्दके निमित्त ही है, ओ, औ यह सवर्ण नहीं यह समझानेके निमित्त "ऐऔच्" ऐसा चौदह सूत्रोंमें पृथक सूत्र कियाहै, ए, ओ, इनके अन्तर्गत ऐ, औ, इनका ग्रहण नहीं माना, इससे ओकारान्तका कार्य औकारान्तको प्राप्त नहीं होता।

ग्लौ शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
सं०	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	हे ग्लावः
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
पं०	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
ष०	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु.

इति औदन्ताः ॥

॥ इति अजन्तपुँल्लिंगप्रकरणम् ॥

अथाजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

रमा ॥

अकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके अव्यवहित उत्तर विभक्ति नहीं लगतीं, वह शब्द चाहे मूलके स्त्रीलिंग हों, चाहे न हों उनसे स्त्रीप्रत्ययोंके (४५३–५३१) नियमानुसार स्त्रीलिङ्गसूचक ङी (ई), आप् (आ) इत्यादि प्रत्यय पहले लगतेहैं, उसके अनन्तर विभक्ति प्रत्यय लगतेहैं ("ङ्याप्प्रातिपदिकात् ४।१।१/१८२" यह सूत्र देखिये)

आकारान्त रमा शब्द–

रमा (लक्ष्मी) यह आबन्त (आप्प्रत्ययान्त) है, इस कारण "हल्ङ्या० ६।१।६८/२५२" इससे सुलोप, रमा । रमा+औ–

२८७ औङ आपः । ७ । १ । १८ ॥

आबन्तादङ्गात्परस्यौङः शी स्यात् । औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा । रमे । रमाः ॥

२८७–आबन्त शब्दसे परे औङ्के स्थानमें शी हो । ("जसः शी ७।१।१७/२१४" इस सूत्रसे शीकी अनुवृत्ति आतीहै)। शीके शकारकी इत्संज्ञा हुई, प्राचीन आचार्योंके मतमें औ विभक्तिकी 'औङ्' संज्ञा है । रमा+ई=रमे । रमा+जस् "दीर्घाज्जसि च ६।१।१०५/२३९" इससे जैसे विश्वपा शब्दमें (२३९) दिखायाहै उसी प्रकारसे पूर्वसवर्ण दीर्घका निषेध, इससे केवल "अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१/८५" इससे दीर्घ, रमाः ॥

२८८ संबुद्धौ च । ७ । ३ । १०६ ॥

आप एकारः स्यात्संबुद्धौ । एङ्ह्रस्वादिति संबुद्धिलोपः । हे रमे २ । हे रमाः । रमाम् । रमे । रमाः । स्त्रीत्वान्नत्वाभावः ॥

२८८–सम्बोधन परे रहते आप्के स्थानमें एकार हो । ("बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३/२०५" "आङि चापः ७।३।१०५/२८..." इन दो सूत्रोंसे एत् और आप्की अनुवृत्ति आतीहै)। "एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः ६।१।६९/१९३" इससे [illegible] हे रमे । [illegible] हे रमाः । रमा+ द्विवचनमें भी हे रमे । [illegible] रमा+शस्-रमाः । स्त्रीलिङ्ग होनेके कारण "तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३/१९६" यह सूत्र नहीं लगता इससे शस् प्रत्ययमें नकार नहीं हुआ ।

२८९ आङि चापः । ७ । ३ । १०५ ॥

आङि ओसि च परे आबन्तस्याङ्गस्य एकारः स्यात् । रमया । रमाभ्याम् । रमाभिः ॥

२८९–आङ् (टा २४४) और ओस् प्रत्यय आगे रहते आबन्त अंगके आकारके स्थानमें एकार हो ("बहुवचने०" से एत्की अनुवृत्ति और सूत्रमेंके चकारसे ओस्का परामर्श हुआ) । रमा+टा=रमया । रमा+भ्याम्=रमाभ्याम् । रमाभिः * ॥

२९० याडापः । ७ । ३ । ११३ ॥

आपः परस्य ङिद्वचनस्य याडागमः स्यात् । वृद्धिरेचि । रमायै । सवर्णदीर्घः । रमायाः । रमयोः । रमाणाम् । रमायाम् । रमयोः । रमासु । एवं दुर्गादयः ॥

२९०–आबन्तके आगे ङित् (ङे, ङसि, ङस्, ङि) प्रत्ययोंको याट् (या) का आगम होताहै । ("घेर्ङिति ७।३।१११/२४५" इस सूत्रसे ङित्की अनुवृत्ति आती है) । रमा+या+ङे ऐसी स्थिति होते "वृद्धिरेचि ७२" रमायै । रमा+या+अस्=रमायाः । सवर्ण दीर्घ हुआ । रमा+या+ङस्=रमायाः । रमा+ओस्=रमयोः । रमा+आम्=रमाणाम् । "ङेराम् नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६/२७०" रमा+ङि=रमायाम् । रमा+ओस्=रमयोः रमा+सुप्=रमासु * ॥

रमा शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	रमा	रमे	रमाः
सं०	हे रमे	हे रमे	हे रमाः
द्वि०	रमाम्	रमे	रमाः
तृ०	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
च०	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
पं०	रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
ष०	रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
स०	रमायाम्	रमयोः	रमासु.

इसी प्रकार दुर्गा आदि आबन्त शब्दोंके रूप जानने । सर्वनामसंज्ञक सर्वा (सब) शब्द– सर्व+टाप् (आ) सर्वा ॥

२९१ सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च । ७ । ३ । ११४ ॥

आबन्तात्सर्वनाम्नः परस्य ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः । याटोऽपवादः । सर्वस्यै । सर्वस्याः २ । एकादेशस्य पूर्वान्तत्वेन ग्रहणादामि सर्वनाम्न इति सुट् । सर्वासाम् । सर्वस्याम् । सर्वयोः । सर्वासु । एवं विश्वादय आबन्ताः ॥

२९१–आबन्त सर्वनामके परे स्थित ङित्को स्याट्का आगम हो और आप् प्रत्ययके 'आ' को ह्रस्व हो . याट्का यह अपवाद है । सर्व+स्या+ए=सर्वस्यै । सर्वा+ङसि=सर्वस्याः । सर्वा+ङस्=सर्वस्याः । "आमि सर्वनाम्नः सुट् ७।१।५२/२१७" इससे सर्वनामके आगे आनेवाले आम् प्रत्ययको सुट्का आगम होताहै, परन्तु यहां सर्व+टाप् (आ) +आम् ऐसी स्थिति होनेके कारण टाप् प्रत्ययके आगे आम् आया, प्रत्यक्ष सर्वनामके आगे नहीं आया, तो यहां सुट्का आगम किस प्रकार होगा ? (उत्तर–) सर्व और टाप् (आ) इनकी संधि होते समय 'अ' और 'आ' इन दोनोंके स्थानमें मिलकर 'आ' एकादेश हुआ, टाप् (आ) पृथक् नहीं रहा, इस प्रकारसे सर्व और सर्वा यह एकही शब्द है कारण कि, इस एकादेशका "अन्तादिवच्च ७५" से पूर्वान्तवद्भाव माना जाताहै इस कारण 'सर्वा' यह भी सर्वनामसंज्ञक है, इससे उसके परे आम् प्रत्ययको सुट् हुआ, सर्वा+आम्=सर्वासाम् । सर्वा+ङि=सर्वस्याम् । सर्वा+ओस्=सर्वयोः । सर्वा+सुप्=सर्वासु ।

सर्वा शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सं०	हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः
द्वि०	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
च०	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पं०	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
ष०	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु.

इसी प्रकारसे 'विश्वा' इत्यादि आबन्त शब्दोंके रूप जानना चाहिये * ॥

---

* रमा+भिस् है यहां आकारको "अन्तादिवच्च ७५" से पूर्वान्तवद्भाव होनेसे अदन्तत्व होगा तब "अतो भिस ऐस् २०३" से ऐस् हो ऐसा नहीं कह सकते कारण कि 'अत्' अल् है अल्विधिमें "अन्तादिवच्च" नहीं लगता ॥

* यहां "सुपि च" से, सुप्का सम्बन्ध है, इस कारण ङित् सुप्को याट् हो ऐसा अर्थ करना चाहिये, नहीं तो 'मालेवाऽऽचरतः' (मालाके समान दोनों आचरण करतेहैं) मालासे क्विप् होकर तस् हुआ 'मालातः' ऐसा सिद्ध होताहै, यहांपर भी तस्का "सार्वधातुकमपित्" से ङित् संज्ञा है तो याट् हो जायगा, फिर सुप् कहनेसे नहीं होता 'तस्' तिङ् है सुप् नहीं ॥

१ यहां 'लिङ्गविशिष्ट' (परि०) से सिद्ध था तब 'एकादेशस्य पूर्वान्तत्वेन' इत्यादि ग्रन्थका लेखन असङ्गत है, ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों कि 'विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम्' (विभक्तिके परे कार्य करना हो तो 'लिङ्गविशिष्ट परिभाषा उपस्थित नहीं होती) इससे लिङ्ग विशिष्ट परिभाषा यहां उपस्थित नहीं होती है ॥

* आबन्त सर्वनाम कहनेसे सर्वा, विश्वा, उभा, डतर, डतम प्रत्ययान्त (कतरा, यतरा, ततरा, कतमा, यतमा, ततमा) अन्या, अन्यतरा, इतरा, त्वा, त्वा, नेमा, समा, सिमा, पूर्वा, परा, अवरा, दक्षिणा, उत्तरा, अपरा, अधरा, स्वा, अन्तरा, एका, यह शब्द लियेजातेहैं, इनमेंके पूर्वादि नव शब्दके अर्थ गण २१७ सूत्रमें जैसे कहेहैं, वही यहां भी समझना, लिङ्गभेदमात्र विशेष है, हलन्त सर्वनाम हलन्त प्रकरणमें आवेंगे ॥

आबन्त सर्वनामोंको जस् प्रत्ययमें कोई कार्य (शी) नहीं, इससे यहां सर्वनाम और "प्रथमचरम० १।१।३३/२२६" में कहे हुए शब्द भी स्त्रीलिंग रमाशब्दवत् जानने, पुँल्लिंगमें जस् प्रत्ययमें जो सर्वनामके सम्बन्धसे अनेक विकल्प कहेहैं उनकी भी यहां प्रवृत्ति नहीं, सर्वा शब्दके समान ही उनके रूप होंगे। जो कुछ भेद होगा, हम केवल उन्हींको दिखावेंगे पुँल्लिङ्गके सदृश यहां भी उभाशब्दके केवल द्विवचन और 'उभयी' शब्दको द्विवचनाभाव जानो, वहां 'तयप्' को 'अयच्' हुआहै, इस कारण 'उभय' को "स्थानिवत्० ४९" से तयप् प्रत्ययान्त मानकर ४७० से ङीप् होगा और उसका रूप नदीशब्दवत् जानना।

पूर्वादि नौ शब्दोंके जो पूर्वास्याः२।पूर्वस्याम् यह ङसि, ङस् और ङि सम्बन्धी स्त्रीलिंगके रूप हैं उनमें स्याट् आगम है 'स्मात्' 'स्मिन्' नहीं इससे "पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७।१।१६/२२१" यह विकल्प नहीं होता, एकही रूप सर्वाशब्दवत्। अब सर्वनामसंज्ञाका विकल्प कहतेहैं–

२९२ विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ । १ । १ । २८ ॥

अत्र सर्वनामता वा स्यात् । उत्तरपूर्वस्यै । उत्तरपूर्वायै । दिङ्नामान्यन्तराले इति प्रतिपदोक्तस्य दिक्समासस्य ग्रहणान्नेह । योत्तरा सा पूर्वा यस्या उन्मुग्धायास्तस्यै उत्तरपूर्वायै । बहुव्रीहिग्रहणं स्पष्टार्थम् । अन्तरस्यै शालायै । बाह्यायै इत्यर्थः । अपुरीत्युक्तेर्नेह । अन्तरायै नगर्यै ॥

२९२–दिग्वाचक शब्दके समासमें सर्वादि शब्दोंको सर्वनामता विकल्प करके होतीहै। उत्तरपूर्वा (उत्तर और पूर्वके बीचकी ऐशानी दिशा) यहां 'पूर्वा' सर्वनाम शब्द है, इसलिये 'उत्तरपूर्वा' इसको भी तदन्तत्वके कारण २१३से प्राप्त हुई सर्वनामताकी, समास होनेसे 'पूर्वा' इसको गौणत्व हुआ इस कारण "संज्ञोपसर्जनी० २२२" से अप्राप्ति होते प्रस्तुत सूत्रसे विकल्प है, परन्तु उसका "न बहुव्रीहौ १।१।२९/२२३" से निषेध होते प्रस्तुत सूत्रसे विकल्प करके सर्वनामत्व है, ऐसा नहीं कहसकते, कारण कि, यह जो २२२ निषेध है सो अलौकिक प्रक्रियावाक्यमें सर्वादिविषयका है और यह विकल्प समासविषयक है, इसलिये 'ङे' प्रत्ययमें उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै ।

("दिङ्नामान्यन्तराले २।२।२६/८४५" इति) अन्तराल (मध्यदिशा) का अर्थ होते ऐसा कहा हुआ है, इससे प्रतिपदोक्त (अर्थात् उक्त अर्थ ध्यानमें आनेवाला) दिक्शब्दोच्चारित दिक्समास हो तो यही विकल्प होताहै, नहीं तो निषेध है यही बात ठीक है ।

(या उत्तरा–) जिस मुग्धा स्त्रीको उत्तर पूर्वका ज्ञान नहीं है, वह 'उत्तरपूर्वा' (मूढ कन्यका) उसके कारण ऐसा अर्थ करतेहैं दिक्० २।२।२६/८४५ शब्दोच्चारित नहीं है, परन्तु "अनेकमन्यपदार्थे २।२।२४/८३०" इससे समास होनेसे सर्वनामत्वाभावके कारण "उत्तरपूर्वायै" यह रूप हुआ, यहां प्रतिपदोक्त दिक्समासका ग्रहण है और यह सूत्र "शेषो बहुव्रीहिः" के अधिकारमेंका है तो सूत्रमें 'बहुव्रीहि' शब्दका प्रयोजन नहीं था, तथापि स्पष्टताके लिये उसका उपादान है ।

अन्तरा (बाहरकी) यह शब्द सर्वनामसंज्ञक है,

अन्तरा+ङे=अन्तरस्यै (अर्थात् बाहरके घरके निमित्त) । (अपुरीति) पुरवाचक शब्द विशेष्य न हो तो सर्वनामसंज्ञा हो ऐसा २१७ में होनेसे 'अन्तरायै नगर्यै' इसमें नगरी शब्द यह विशेष्य है, इससे 'अन्तरा' शब्दको सर्वनामत्व नहीं अर्थात् स्याट्का आगम और ह्रस्व ७।३।११४/२९१ नहीं ॥

अब द्वितीया और तृतीया यह शब्द–

२९३ विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम् । ७ । ३ । ११५ ॥

आभ्यां ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः । इदं सूत्रं त्यक्तं शक्यम् । तीयस्य ङित्सूपसंख्यानात् । द्वितीयस्यै । द्वितीयायै । द्वितीयस्याः२। द्वितीयायाः २ । द्वितीयस्याम् । द्वितीयायाम् । शेषं रमावत् । एवं तृतीया । अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः । हे अम्ब । हे अक्क । हे अल्ल । असंयुक्ता ये डलकास्तद्वतां ह्रस्वो न । हे अम्बाडे । हे अम्बाले । हे अम्बिके । जरा । जरसौ । शीभावात्परत्वाज्जरस् । आमि नुटः परत्वाज्जरस् । जरसामित्यादि । पक्षे हलादौ च रमावत् । इह पूर्वविप्रतिषेधेन शीभावं कृत्वा संनिपातपरिभाषाया अनित्यतां चाश्रित्य जरसी इति केचिदाहुस्तन्निर्मूलम् । यद्यपि जरसादेशस्य स्थानिवद्भावेनाबन्ततामाश्रित्य औङ आपः । आङि चापः । याडापः । ह्रस्वनद्यापः । ङेराम् । इति पञ्चापि विधयः प्राप्ताः । एवं नसुनिशपृत्सु तथाप्यनल्विधावित्युक्तेर्न भवन्ति । आ आविति प्रश्लिष्य आकाररूपस्यैवाऽऽपः सर्वत्र ग्रहणात् । एवं हलङ्यादिसूत्रेपि आ आप ङी ई इति प्रश्लेषादतिखट्वः निष्कौशाम्बिरित्यादिसिद्धेर्दीर्घग्रहणं प्रत्याख्येयम् । न चैवमप्यतिखट्वायेत्यत्र स्वाश्रयमाकारत्वं स्थानिवद्भावेनापत्वं चाश्रित्य याट् स्यादिति वाच्यम् । आबन्तं यदङ्गं ततः परस्य याड्विधानात् । उपसर्जनस्त्रीप्रत्यये तदादिनियमात् । पद्दन्न इति नासिकाया नस् । नसः । नसा । नोभ्यामित्यादि । पक्षे सुटि च रमावत् । निशाया निश् । निशः । निशा ॥

२९३-द्वितीया और तृतीया इन शब्दोंके परे ङित् प्रत्ययको विकल्प करके स्याट्का अगम होताहै और आबन्त अङ्ग ह्रस्वान्त होताहै । ङित्प्रत्ययमें तीयप्रत्ययान्त (द्वितीय, तृतीय) शब्द विकल्प करके सर्वनामसंज्ञक माने गये हैं ऐसा (२२६ में) वार्तिक है, इससे उस परसे विकल्प करके स्याट् ७।३।११४/२९१ कार्य होनेसे इस सूत्रका त्याग हो सकताहै । द्वितीया+ङे=द्वितीयस्यै, द्वितीयायै । द्वितीया+ङसि= द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः । द्वितीया+ङि=द्वितीयस्याम्, द्वितीयायाम् । शेष रूप रमाशब्दवत् जानना ।

द्वितीया शब्दके रूप-

वि०	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	द्वितीया	द्वितीये	द्वितीयाः
सं०	हे द्वितीये	हे द्वितीये	हे द्वितीयाः
द्वि०	द्वितीयाम्	द्वितीये	द्वितीयाः
तृ०	द्वितीयया	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभिः
च०	द्वितीयस्यै,द्वितीयायै	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
पं०	द्वितीयस्याः,द्वितीयायाः	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
ष०	द्वितीयस्याः,द्वितीयायाः	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
स०	द्वितीयस्याम्,द्वितीयायाम्	द्वितीययोः	द्वितीयासु.

इसी प्रकार तृतीयाशब्दके रूप होंगे ।

अम्बा, अक्का, अल्ला, अम्बार्थ (माता अर्थवाले) शब्द-

इनके सम्बोधनमें "अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ७।३।१०७/२६७" इससे ह्रस्व होकर हे अम्ब, हे अक्क, हे अल्ल, ऐसे रूप होतेहैं । शेष रूप रमाशब्दवत् जानो । (असंयुक्तेति वा० ४५९२) भाष्यकारने दो अक्षरवाले अम्बार्थ शब्दोंको कहाहै औरको नहीं, इससे कहाजाताहै कि असंयुक्त जो ड, ल, क, उनसे युक्त अम्बार्थक शब्दोंको ह्रस्व न होगा हे अम्बाडा+सु=हे अम्बाडे । हे अम्बाला+सु=हे अम्बाले । हे अम्बिका+सु=हे अम्बिके । अर्थात् डा, ला, का, इनके आकारको ह्रस्व न हुआ ॥

जरा (वृद्धत्व) शब्द-

जरा । जरसौ । आबन्त जराशब्दके आगे औङ् आया, उसके स्थानमें "औङ् आपः ७।१।१८/२८७" इससे होनेवाले शी (ई) से "जराया जरसन्यतरस्याम् ७।२।१०१/२२७" इससे अजादि विभक्तिकालमें होनेवाला जरस् आदेश पर है इस कारण जरस् आदेश हुआ । आम् प्रत्ययके समयमें "ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४/२०८" इससे होनेवाले नुट्से जरस् आदेशको पर होनेसे वहां भी जरस् हुआ; जरा+आम्=जरसाम्-इत्यादि । अन्य पक्ष और हलादिप्रत्ययोंमें रमाशब्दके समान जानना ।

जरा शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	जरा	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
सं०	हे जरे	हे जरसौ, हे जरे,	हे जरसः,हे जराः
द्वि०	जरसम्, जराम्	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
तृ०	जरसा, जरया	जराभ्याम्	जराभिः
च०	जरसे, जरायै	जराभ्याम्	जराभ्यः
पं०	जरसः,जरायाः	जराभ्याम्	जराभ्यः
ष०	जरसः,जरायाः	जरसोः, जरयोः	जरसाम्, जराणाम्
स०	जरसि, जरायाम्	जरसोः जरयोः	जरासु.

(इहेति०) 'यहां पूर्वविप्रतिषेधसे औङ्के स्थानमें शी-भाव करके और सन्निपातपरिभाषाको अनित्य मानकर जरस् आदेश करनेसे प्रथमा, द्वितीयाके द्विवचनमें 'जरसी' ऐसा रूप होताहै, ऐसा कोई कहतेहैं, परन्तु यह कहना निर्मूल है, क्योंकि, "विप्रतिषेधे० १७५" में पर शब्दको इष्टवाची मानकर पूर्वविप्रतिषेध मानाहै सो नहीं हो सकता, कारण कि, पूर्वविप्रतिषेध माननेके लिये ततत् स्थलमें वार्तिक पढेहैं, यहांपर वार्तिक नहीं पढा, इससे यहां पूर्वविप्रतिषेध नहीं माना जायगा और सन्निपातपरिभाषाके अनित्यतामें यहां कोई युक्त प्रमाण नहींहै और भाष्यकारने भी सन्निपातपरिभाषाकी अप्रवृत्तिका जो जो उदाहरण दिया-है,उनमें इस उदाहरणको नहीं कहा इससे परिभाषा भी अनित्य नहीं मानी जायगी ।

यद्यपि जरस् आदेशको स्थानिवद्भावसे आबन्त मानकर "औङ आपः ७।१।१८/२८७" इससे शी (ई), "आङि चापः ७।३।१०५/२८९" इससे एकार, "याडापः ७।३।११३/२९०" इससे याट्, "ह्रस्वनद्यापः० ७।१।५४/२०८" इससे नुट्, और "ङे-राम्० ७।३।११६/२७०" इससे आम्, इस प्रकारसे पांचों विधि प्राप्त हैं ऐसा दीखताहै, वैसे ही नासिका, निशा, पृतना (२९५) इनके स्थानमें जो नस्, निश्, पृत्, यह आदेश, उनमें भी इन पांचोंकी प्राप्ति दीखतीहै, तथापि जहां २ आप् शब्द आयाहै, वहां वहां आ आप् ऐसा प्रश्लेष कर 'आरूप आप्' ऐसाही सर्वत्र अर्थ करना, इससे वहां 'आ' इस विशेषणसे वह केवल 'आ' अर्थात् अल् है अल्विधिके कारण 'अनल्विधौ' ऐसा १।१।५६/४९ इसमें कहाहै, इस कारण स्थानिवद्भाव नहीं । ऐसेही "हल्ङ्या० ६।१।६८/२५२" इस सूत्रमें 'दीर्घात्' यह शब्द है, उसका प्रयोजन अतिखट्वः, निष्कौशाम्बिः इनमें 'सु' का लोप न हो यह दिखानेके निमित्त है परन्तु उस सूत्रमें भी 'आ आप्' और 'ङी ई' ऐसा प्रश्लेष करके आरूप आप् ईरूप ङी ऐसा अर्थ करनेसे कार्य होगया, 'अतिखट्वः, निष्कौशाम्बिः' इनमें वैसा 'आरूप आप्' और 'ईरूप ङी' नहीं है, इससे 'दीर्घात्' यह शब्द निकाल लियाजाय तो भी उससे यह रूप सिद्ध होजांयगे इससे 'दीर्घात्' इसका प्रत्याख्यान करने, अर्थात् उस श-ब्दको निकाल डालनेमें भी कुछ हानि नहीं ऐसा कहना चाहिये ।

जो कोई यह कहैं कि 'आ आप्' ऐसा प्रश्लेष करनेपर भी 'अतिखट्व' शब्दके आगे चतुर्थीका प्रत्यय ङे (य) आकर 'अतिखट्वाय' ऐसा जो रूप बनाहै उसमें 'अतिखट्वा' इस शब्दके आगे (य) ङे प्रत्यय है, यहां खट्वा इसमें मूलका आप् है और वह चाहे प्रथमतः ह्रस्व भी हुआ तो भी यकारके निमित्तसे दीर्घ होकर आरूप हुआहै और उसको स्थानिवद्भावसे आबन्तत्व भी है, इससे आरूप आब-न्तत्व होनेके कारण अगले प्रत्ययको "याडापः ७।३।११३/२९०

इससे याट्का आगम होनाचाहिये, तो ऐसा कहना उचित नहीं. (आबन्तमिति) क्योंकि, मूलका ही आबन्त अंग हो, तभी उसके आगे प्रत्ययको याट्का आगम कहाहै 'खट्वा' यह आबन्त शब्द है तो भी 'अतिखट्व' इतने शब्दको कुछ आप् प्रत्यय नहीं हुआहै इससे 'अतिखट्व' यह आबन्त अंग नहीं और चाहें वह विभक्तिके निमित्तसे आकारान्त हुआहै तो भी उसको आबन्त नहीं कहसकते अर्थात् जो आबन्त है वही कुछ यहां अंग नहीं है, उपसर्जन स्त्रीप्रत्यय होते 'तदादि' ग्रहणका नियम प्राप्त होताहै * ॥

परि॰–("प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्") प्रत्ययसे तदन्तका ग्रहण होताहै, तदन्तका अर्थ–'वह अन्तमें है जिसके ऐसा वर्णसमुदाय' है, परन्तु उस वर्णसमुदायकी मर्यादा कहांसे कहांतक है ? तो प्रत्यक्ष जिस शब्दके आगे उस प्रत्ययका विधान कियागया हो, उस शब्दको आदि जानकर आगे उस प्रत्ययके अन्ततक जो वर्णसमुदाय है उतनेहीको तदन्त कहना चाहिये और उतनेका ही ग्रहण करे, उसके पीछे समासादिकके कारण और भी अक्षर हों तो उनका ग्रहण न करना चाहिये, इसका नाम तदादिनियम है । परि॰–'स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने न' अर्थात् उपसर्जनके परे हुआ न हो ऐसा स्त्रीप्रत्यय आगे होते तदादि नियम नहीं चलता (अर्थात् उस समय चाहे जितने बडे शब्दका तदन्त करके ग्रहण करसकतेहैं) ऐसा ऊपर कहे हुए 'प्रत्ययग्रहणे' इत्यादि परिभाषाका प्रतिषेध है इसमें 'अनुपसर्जन' ऐसा कहाहुआहै, इससे जहां उपसर्जनके आगे हुआ स्त्री प्रत्यय हो वहां यह प्रतिषेध नहीं, तदादिनियम ही चलताहै, यह बात सिद्ध है इससे 'उपसर्जनस्त्रीप्रत्यये तदादिनियमात्' ऐसा ऊपर ग्रन्थमें कहाहै ।

नासिका (नाक) शब्द–

" पद्दत्॰ $\frac{६।१।६३}{२२८}$ " इस सूत्रसे नासिका शब्दको शसादि प्रत्ययोंमें विकल्प करके 'नस्' आदेश होताहै, इससे नासिका+शस्=नसः । नासिका+टा=नसा । नासिका + भ्याम्, ऐसी अवस्थामें नासिका शब्दके नस् आदेश होकर " हशि च $\frac{६।१।११४}{१६६}$ " इससे उत्व होकर नोभ्याम् इत्यादि विकल्पके कारण अन्य पक्षमें और सुट् प्रत्ययमें भी रमा शब्दके समान रूप होतेहैं ।

नासिका शब्दके रूप–

वि॰	एक॰	द्वि॰	बहु॰
प्र॰	नासिका	नासिके	नासिकाः
सं॰	हे नासिके	हे नासिके	हे नासिकाः
द्वि॰	नासिकाम्	नासिके	नसः, नासिकाः
तृ॰	नसा, नासिकया	नोभ्याम्, नासिकाभ्याम्	नोभिः, नासिकाभिः
च॰	नसे, नासिकायै	नोभ्याम्, नासिकाभ्याम्	नोभ्यः, नासिकाभ्यः
पं॰	नसः, नासिकायाः	नोभ्याम्, नासिकाभ्याम्	नोभ्यः, नासिकाभ्यः
ष॰	नसः, नासिकायाः	नसोः, नासिकयोः	नसाम्, नासिकानाम्
स॰	नसि, नासिकायाम्	नसोः, नासिकयोः	नःसु, नस्सु, नासिकासु.

* 'खट्वा' इसके आगे टाप् (आप्–आ) यह स्त्रीप्रत्यय होकर 'खट्वा' ऐसा आबन्त शब्द बनाहै और 'खट्वाम् अतिक्रान्तः अतिखट्वः' इस रीतिसे 'अतिखट्व' यह पुँल्लिङ्गशब्द बनताहै, इससे 'खट्वा' शब्दको गौणत्व प्राप्त होकर उसकी उपसर्जन (विशेषण) संज्ञा होतीहै, इस उपसर्जनके आगे हुआ आप् यह स्त्रीप्रत्यय उपसर्जन स्त्रीप्रत्यय है ॥

निशा (रात) शब्द–

" पद्दन्॰ " सूत्रके अनुसार निशाको निश् आदेश, निशा + शस्=निशः । निशा + टा=निशा ॥

२९४ व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः । ८ । २ । ३६ ॥

व्रश्चादीनां सप्तानां छशान्तयोश्च षकारोऽन्तादेशः स्याज्झलि पदान्ते च । षस्य जश्त्वेन डकारः । निड्भ्याम् । निड्भिः । सुपि डः सीति पक्षे धुट् । चर्त्वम् । तस्यासिद्धत्वाच्चयो द्वितीया इति टतयोष्ठथौ न । न पदान्ताट्टोरिति ष्टुत्वं न । निट्त्सु । निट्सु ॥

२९४ आगे झल् होते और पदान्तमें व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज, भ्राज, इन सात धातुओंको, वैसेही छकारान्तोंको और शकारान्तोंको षकार अन्तादेश होताहै, इसलिये भ्याम् प्रत्यय परे होते पदान्तत्वके कारण शकारको षकार होकर 'निष् + भ्याम्' ऐसी स्थिति हुई, "झलां जशोऽन्ते ८४" इससे षकारको जश्त्व होकर डकार हुआ । निड्भ्याम् । निड्भिः । निड्के आगे सुप् होते "डः सि धुट् $\frac{८।३।२९}{१३१}$" इससे 'सु' को विकल्प करके धुट् (ध्) का आगम हुआ, तब निड्ध् सु ऐसी स्थिति हुई, आगे सकार है इस कारण "खरि च $\frac{८।४।५५}{१२१}$" इससे धकारको चर्त्व होकर निट्त्सु, निट्सु हुए, * "चयो द्वितीयाः॰" इस(सि॰ १३॰ के) वार्तिकसे आगे सकार है, इसलिये टकार, तकारके स्थानमें अनुक्रमसे ठकार, थकार विकल्प करके होने चाहिये । परन्तु इस वार्तिकसे "खरि च" सूत्रसे कहाहुआ चर्त्व असिद्ध होनेके कारण नहीं दीखता, इस कारण ठ, थ नहीं होते, वैसे ही पदान्तमें रहनेवाले टवर्गके आगे 'नाम्' को छोडकर सकार, तवर्ग आवे तो सकार, तवर्गके स्थानमें षकार, टवर्ग नहीं होते $\frac{८।४।४२}{११४}$ इससे यहां षकार, टकार नहीं हुए, निट्त्सु, निट्सु । (आगे शंका और समाधान)

२९५ षढोः कः सि । ८ । २ । ४१ ॥

षस्य ढस्य च कः स्यात्सकारे परे । इति तु न भवति । जश्त्वं प्रत्ययसिद्धत्वात् । केचित्तु व्रश्चादिसूत्रे दादेर्धातोरिति सूत्राद्धातोरित्यनुवर्तयन्ति । तन्मते जश्त्वेन जकारं । निजभ्याम् । निज्भिः । जश्त्वं श्चुत्वं चर्त्वम् । निच्शु । चोः कुरिति कुत्वं

तु न भवति, जश्त्वस्यासिद्धत्वात् ॥ मांसपृतनासानूनां मांस्पृत्स्नवो वाच्याः शसादौ वा ॥ * ॥ पृतः । पृता । पृद्भ्याम् । पक्षे सुटि च रमावत् । गोपा विश्वपावत् । मतिः प्रायेण हरिवत् । स्त्रीत्वान्नत्वाभावः । मतीः । नात्वं न । मत्या ।

२९५-सकार परे रहते षकार और ढकारके स्थानमें क होताहै इस कारण यहां निष्+सु इसमें 'ष्' के स्थानमें ककार होना चाहिये था, परन्तु इस सूत्रके "झलाञ्जशोऽन्ते ८।२।३९/८४" इसकी दृष्टिसे असिद्ध होनेके कारण ककारकी प्राप्ति नहीं, जश्त्व ही होताहै अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारसे निट्त्सु, निट्सु यही रूप ठीक हैं । परन्तु कोई "व्रश्चभ्रस्ज० ८।२।३६/२८४" इस सूत्रमें "दादेर्धातोर्घः ८।२।३२/३२५" इस सूत्रमेंके 'धातोः' शब्दकी अनुवृत्ति लातेहैं, अर्थात् छान्त, शान्त धातुओंको ही षकार होताहै और वे धातु न हों तो षकार नहीं होता, ऐसा कहतेहैं अर्थात् उनके मतसे यहां षत्व नहीं, इससे उनके मतके अनुसार पहले ही "झलाञ्जशोऽन्ते" सूत्र लगाकर जश् करनेपर, निज्भ्याम् । निज्भिः । 'सुप्' प्रत्ययमें जश्त्व, श्चुत्व, ८।४।४०/१११, चर्त्व, निश्+सु=निज्+सु= निज्+शु इस प्रकारसे स्थिति होकर अन्तमें निच्शु यह रूप सिद्ध हुआ । "चोः कुः ८।२।३०/३७८" अर्थात् झल् परे रहते अथवा पदान्तमें रहनेवाले चवर्गके स्थानमें कवर्ग होताहै, इस सूत्रकी दृष्टिसे जश्त्व ८।२।३९/८४ असिद्ध है, इस लिये 'श्' स्थानिक जो जकार अर्थात् उससे उत्पन्न हुआ जो चकार वह 'चोः कुः' इसको नहीं दीखता, इस कारण निच्शु इसमेंके चकारके स्थानमें ककार नहीं होता, यहां संधिके कारण "शश्छोऽटि ८।४।६३/१२०" से वैकल्पिक रूपोंकी प्राप्ति है ।

निशा शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	निशा	निशे	निशाः
सं०	हे निशे	हे निशे	हे निशाः
द्वि०	निशाम्	निशे	निशः, निशाः
तृ०	निशा, निशया ।	निज्भ्याम्; निड्भ्याम्, निशाभ्याम् ।	निज्भिः; निड्भिः, निशाभिः
च०	निशे, निशायै	निज्भ्याम्; निड्भ्याम्, निशाभ्याम् ।	निज्भ्यः; निड्भ्यः, निशाभ्यः
पं०	निशः, निशायाः	निज्भ्याम्; निड्भ्याम्, निशाभ्याम्।	निज्भ्यः; निड्भ्यः निशाभ्यः
ष०	निशः, निशायाः	निशोः, निशयोः	निशाम्, निशानाम्
स०	निशि, निशायाम्	निशोः, निशयोः	निच्शु; निट्त्सु; निट्सु, निशासु.

पृतना (सेना) शब्द-

'पद्दन्०' इस सूत्रमें जो शब्द कहेहैं उनको छोड और भी "मांसपृतना० (वा० ३४९६)" अर्थात् मांस, पृतना, सानु इन शब्दोंके स्थानमें शसादि प्रत्यय परे रहते विकल्प करके मांस् (३१७), पृत्, स्नु (३२२) यह आदेश होतेहैं । पृतना+शस्=पृतः । पृतना+टा = पृता । पृतना+भ्याम्=पृद्भ्याम् इत्यादि । अन्यपक्ष और सुट्में रमाशब्दकी समान जानना ।

पृतना शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	पृतना	पृतने	पृतनाः
सं०	हे पृतने	हे पृतने	हे पृतनाः
द्वि०	पृतनाम्	पृतने	पृतः, पृतनाः
तृ०	पृता, पृतनया	पृद्भ्याम्, पृतनाभ्याम्	पृद्भिः, पृतनाभिः
च०	पृते, पृतनायै	पृद्भ्याम्, पृतनाभ्याम्	पृद्भ्यः, पृतनाभ्यः
पं०	पृतः, पृतनायाः	पृद्भ्याम्, पृतनाभ्याम्	पृद्भ्यः, पृतनाभ्यः
ष०	पृतः, पृतनायाः	पृतोः, पृतनयोः	पृताम्, पृतनानाम्
स०	पृति, पृतनायाम्	पृतोः, पृतनयोः	पृत्सु, पृतनासु.

गोपा (गायोंकी रक्षा करनेवाली) शब्द विश्वपा (२४०) शब्दवत् जानना ।

मति (बुद्धि) शब्द-

"शेषो घ्यसखि १।४।७/२४३" इससे 'घि' संज्ञा हुई, इससे मति शब्द बहुधा हरि शब्दके समान होताहै (२४१) परन्तु शस् प्रत्ययमें स्त्रीलिङ्ग होनेके कारण "तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३/१९६" इससे प्राप्त जो नकार वह नहीं होगा, मति+शस्=मतीः । तृतीयाके एकवचनमें स्त्रीत्वके कारण ७।३।१२०/२४४ से टाके स्थानमें 'ना' नहीं होता, मति+टा=मत्या । ङित् प्रत्ययमें कितने ही शब्दोंकी नदी संज्ञा विकल्प करके होतीहै, उस विषयमें सूत्र कहते हैं-

२९६ ङिति ह्रस्वश्च । १ । ४ । ६ ॥

इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ चेवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति परे । आण् नद्याः । मत्यै । मतये । मत्याः । मतेः । नदीत्वपक्षे औदिति ङेरौत्वे प्राप्ते ॥

२९६-जिनके स्थानमें विभक्तिके समय इयङ् वा उवङ् होताहै, ऐसे स्त्रीशब्दभिन्न जो नित्यस्त्रीलिङ्ग ईकारान्त वा ऊकारान्त शब्द हैं, वे और जो ह्रस्व इकारान्त वा ह्रस्व उकारान्त स्त्रीलिङ्गमें योजना किये गयेहैं वे शब्द, आगे ङित् प्रत्यय होते विकल्प करके नदीसंज्ञक होतेहैं । ("नेयङुवङ्० १।४।४/३०३", "वामि १।४।५/३०४" इन दोनों सूत्रोंसे 'इयङुवङ्स्थानौ' 'अस्त्री' और 'वा' इनकी अनुवृत्ति आती है) । इससे ङित् प्रत्ययोंमें मति शब्दकी विकल्प करके नदी संज्ञा होतीहै, और पक्षमें घि संज्ञा होतीहै, "आण्नद्याः ७।३।११२/२६८" इससे नदीसंज्ञकसे परे ङित् प्रत्ययको आट्का आगम होताहै, मति+ङे=मत्यै, मतये । मति+ङसि=मत्याः, मतेः । मति+ङस्=मत्याः, मतेः । नदीसंज्ञक पक्ष लेते समय "ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६/२७०" इससे "औत् ७।३।११८/२५६" यह सूत्र पर होनेके कारण यद्यपि ङिके स्थानमें औत् प्राप्त हुआ, तथापि-

1-७-इति केचित् ॥

२९७ इदुद्भ्याम् । ७ । ३ । ११७ ॥

नदीसंज्ञकाभ्यामिदुद्भ्यां परस्य ङेराम् स्यात्। पक्षे अच्च घेः । मत्याम् । मतौ । एवं श्रुति-स्मृत्यादयः ॥

२९७–ह्रस्व इकारान्त और ह्रस्व उकारान्त नदीसंज्ञकके आगे ङिके स्थानमें आम् होताहै, ऐसा अपवाद है, (इस सूत्रमें " आण्नद्याः ७।३।११२" से " नद्याः " और "ङेराम् नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६" से 'ङेराम्' इसकी अनुवृत्ति होती है) इससे आम् हुआ, अन्यपक्षमें अर्थात् जहां नदी संज्ञा नहीं, वहां घि संज्ञाके कारण "अच्च घेः ७।३।११९ / २४७" इससे हरि शब्दमें जैसे हुआहै वैसे ही ङिके स्थानमें 'औ' और शब्दको अकार अन्तादेश होताहै, मति+ङि=मत्याम्, मतौ ।

मति शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	मतिः	मती	मतयः
सं०	हे मते	हे मती	हे मतयः
द्वि०	मतिम्	मती	मतीः
तृ०	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
च०	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पं०	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
ष०	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
स०	मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु.

इसी प्रकारसे श्रुति, स्मृति, बुद्धि इत्यादि शब्दोंके रूप जानने ॥

त्रि (तीन) शब्द–

२९८ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ । ७ । २ । ९९ ॥

स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतावादेशौ स्तो विभक्तौ परतः ॥

२९८–स्त्रीलिङ्गमें स्थित त्रि और चतुर (चार) शब्दके स्थानमें विभक्ति परे रहते क्रमसे 'तिसृ' और 'चतसृ' आदेश होतेहैं । ("अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८४ / ३६१" इस सूत्रसे विभक्तिकी अनुवृत्ति आती है) ॥

२९९ अचि र ऋतः। ७।२।१००॥

तिसृ चतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि । गुणदीर्घोत्वानामपवादः । तिस्रः २ । आमि नुमचिरेति नुट् ॥

२९९–अच् परे रहते 'तिसृ' और 'चतसृ' इनके ऋकारके स्थानमें रेफ आदेश होताहै।"ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ७।३।११० / २७५" इससे होनेवाला गुण, " प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२ / १६४" इससे होनेवाला दीर्घ और "ऋत उत् ६।१।१११ / २७९" इससे ङसि ङस्प्रत्ययकालमें होनेवाला जो उत्व, इन तीनोंका यह अपवाद है । तिसृ+जस्=तिस्रः । तिसृ+शस्=तिस्रः । तिसृ+भिस्=तिसृभिः । तिसृ+भ्यस्=तिसृभ्यः । आम् प्रत्ययमें "ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४ / २०८" इससे नुट्का आगम होताहै, यद्यपि "अचि र ऋतः ७।२।१०० / २९९" से यहां ऋके स्थानमें रेफ आदेश होना चाहिये और "ह्रस्वनद्यापो नुट्" इसको अवसर न मिलना चाहिये, तथापि "नुमचिर०" इस पीछे २८० के वार्तिकसे अच् आगे रहते ऋकारको होनेवाला जो रेफादेश उसका परत्वके कारण नुट्से विरोध आवे तो "विप्रतिषेधे पूर्वं कार्यम्" इससे पर कार्यका निषेध करके पूर्व कार्य अर्थात् नुट् ही होताहै । इससे नुट्, तिसृ+नाम् ऐसी स्थिति हुई–॥

३०० न तिसृचतसृ । ६ । ४ । ४ ॥

एतयोर्नामि दीर्घो न स्यात् । तिसृणाम् । तिसृषु । स्त्रियामिति त्रिचतुरोर्विशेषणान्नेह । प्रियास्त्रयस्त्रीणि वा यस्याः सा प्रियत्रिः । मतिवत् । आमि तु प्रियत्रयाणामिति विशेषः । प्रियास्तिस्रो यस्य स इति विग्रहे तु प्रियतिसा । प्रियतिसौ । प्रियतिसः । प्रियतिसामित्यादि । प्रियास्तिस्रो यस्य तत्कुलं प्रियत्रि । स्वमोर्लुका लुप्तत्वेन प्रत्ययलक्षणाभावान्न तिस्रादेशः । न लुमतेति निषेधस्यानित्यत्वात्पक्षे प्रियतिसृ । रादेशात्पूर्वविप्रतिषेधेन नुम् । प्रियतिसृणी । प्रियतिसृणि । तृतीयादिषु, वक्ष्यमाणपुंवद्भावविकल्पात्पर्यायेण नुम्रभावौ । प्रियतिस्रा । प्रियतिसृणा । इत्यादि ॥ द्वेरत्वे सत्याप् । द्वे २ । द्वाभ्याम् ३ । द्वयोः २ ॥ गौरी । गौर्यौ । गौर्यः । नदीकार्यम् । हे गौरि । गौर्यै इत्यादि । एवं वाणीनद्यादयः ॥ प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणादनङि णिद्वद्भावे च प्राप्ते। विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम् । सखी । सख्यौ । सख्य इत्यादि गौरीवत् । अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः । लक्ष्मीः । शेषं गौरीवत् । एवं तरीतन्त्र्यादयः॥ स्त्री । हे स्त्रि ॥

३००–नाम् परे रहते तिसृ, चतसृ इनको (नामि २०९ से) दीर्घ न हो । तिसृणाम् । तिसृ+सुप्=तिसृषु । एकवचन द्विवचन नहीं हैं ॥

---

१ यहां 'मध्येऽपवादाः पूर्वान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरान्' (मध्यमें पठित अपवाद पूर्व विधियोंका बाध करतेहैं पर विधियोंका नहीं) इस न्यायका आश्रयण करके दीर्घ १६४, उत्व २७९, इन्हींका अपवाद कहना चाहिये, गुण २७५ का नहीं,कारण कि "ऋतो –ङि०" यह सूत्र "अचि र०"इससे परक है, तो भी इस शास्त्रमें दो पक्ष हैं–बाध्यसामान्यचिन्ता पक्ष और बाध्यविशेषचिन्ता पक्ष, यहांपर बाध्यसामान्यचिन्ता (हमारे विषयमें जो जो प्राप्त हैं सबका बाध करें) पक्षहीका ग्रहण होनेसे गुणका भी अपवाद है ॥

स्त्रीलिङ्ग त्रि शब्दके रूप--

प्र० ब०	द्वि० ब०	तृ० ब०	च० ब०	पं० ब०
तिस्रः	तिस्रः	तिसृभिः	तिसृभ्यः	तिसृभ्यः

ष० ब०	स० बहुवचन.
तिसृणाम्	तिसृषु.

प्रियत्रि शब्द--ऊपर "त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ७।२।९९/२९८" इस सूत्रमें 'स्त्रियाम्' यह शब्द त्रि और चतुर् इन्हीका विशेष अर्थ लानेके लिये जोडा गयाहै इसीसे यहां अगले शब्दोंमें वैसा प्रकार न आनेसे आदेश नहीं होता, 'प्यारे हैं तीन पुरुष जिस स्त्रीको' ऐसा अर्थ हो तो भी 'प्रियत्रिः' ऐसा ही रूप होताहै, इसी प्रकारसे इतर रूप मतिशब्द २९७ के समान जानना, परन्तु आम् प्रत्ययमें "त्रेस्त्रयः ७।१।५३/२६४" इससे 'त्रय' आदेश होताहै, इससे प्रियत्रयाणाम् ऐसा रूप होताहै यह विशेष है, परन्तु 'प्रियाः तिस्रः यस्य' (प्रिय हैं तीन स्त्री जिसको) ऐसा विग्रह कियाजाय तो पुँल्लिङ्गमें भी तिसृ आदेश होताहै, कारण कि यद्यपि पूरा शब्द पुँल्लिंग है तो भी इसमेंका त्रि शब्द 'प्रियाः' इस स्त्रीलिङ्गशब्दका विशेषण है, इससे ऋका- रान्त शब्दके अनुसार 'प्रियतिसा' ऐसा प्रथमाके एकवच- नमें रूप होताहै, आगे "अचि र ऋतः ७।२।१००/२९९" इससे रेफादेश और वहां ही दिखायेके अनुसार गुण, दीर्घ और उत्वका अभाव जानना, प्रियतिस्रौ। प्रियतिस्रः। प्रियति- स्रम् इत्यादि * ॥

प्रियतिसृ शब्दके रूप--

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	प्रियतिसा	प्रियतिस्रौ	प्रियतिस्रः
सं०	हे प्रियतिसः	हे प्रियतिस्रौ	हे प्रियतिस्रः
द्वि०	प्रियतिस्रम्	प्रियतिस्रौ	प्रियतिस्रः
तृ०	प्रियतिस्रा	प्रियतिसृभ्याम्	प्रियतिसृभिः
च०	प्रियतिस्रे	प्रियतिसृभ्याम्	प्रियतिसृभ्यः
पं०	प्रियतिस्रः	प्रियतिसृभ्याम्	प्रियतिसृभ्यः
ष०	प्रियतिस्रः	प्रियतिस्रोः	प्रियतिसृणाम्
स०	प्रियतिस्रि	प्रियतिस्रोः	प्रियतिसृषु.

(प्रियाः०) 'प्यारी हैं तीन स्त्रियां जिस कुलको' ऐसा अर्थ हो तो नपुंसकमें 'प्रियत्रि'। कारण यह कि "स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३/३१९" अर्थात् नपुंसक शब्दसे परे 'सु' और 'अम्' इनका लुक् होताहै, ऐसा आगे एक सूत्र है, इसमें लुक् शब्दसे लोप कहा गयाहै, इस कारण "न लुमताङ्गस्य १।१।६३/२६३" इससे सुलोप और अम्लोप इनका प्रत्यय लक्षण नहीं होताहै, इस कारण आगे प्रत्यय न होनेसे उन दोनोंको विभक्तिकालमें तिसृ आदेश नहीं ७।२।९९/२९८, जब "न लुमताङ्गस्य १।१।६३/२६३" यह शास्त्र अनित्य है (सि० ३२० की टीप देखो) इस कारण वैसा पक्ष लिया जाय तो 'प्रियतिसृ' ऐसा भी रूप होगा, यदि कोई ऐसा कहे कि यह अनित्यत्व सम्बुद्धिविषयक है इस कारण सम्बु- द्धि ही में 'न लुमता०' निषेध अनित्य मानाजायगा अन्यत्र नहीं, तो ऐसा नहीं कह सकते कारण कि, जब कोई बाधक नहीं तब प्रमाणोंकी सामान्यतः सर्वत्र प्रवृत्ति होती है, इसलिये सम्बुद्धिभिन्न प्रथमामें और द्वितीयामें भी अनित्य माना गया है। सम्बुद्धिमें भी ऐसाही होगा। द्विवचनमें "नपुंसकाच्च ७।१।१९/३१०" इससे औ के स्थानमें शी (ई) आदेश होताहै तब प्रियतिसृ+ई ऐसी स्थिति हुई, "इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३/३२०" इससे आगे अजादि विभक्ति रहते इगन्त नपुंसक शब्दको नुम् (न्) का आगम होताहै, यद्यपि "अचि र ऋतः ७।२।१००/२९९" यह पर सूत्र है तो भी यहां "विप्रतिषेधे परं कार्यम् १।४।२/१७५" इसमें पर (इष्ट) अर्थात् पूर्व यह अर्थ लेतेहैं, इससे यहां रादेश न होते पूर्वविप्रति- षेधसे 'नुम्' यही कार्य होताहै, 'प्रियतिसृणी'। नपुंसकश- ब्दके आगेके जस्, शस् इनके स्थानमें "जश्शसोः शिः ७।१।२०/३१२" इससे शि (इ) आदेश और पूर्ववत् नुम्का आगम होताहै, तब 'प्रियतिसृन्+इ' ऐसी स्थिति हुई, "शि सर्वनामस्थानम् १।१।४२/३१३" इससे शि (इ) इसकी सर्वनामस्थान संज्ञा है। इससे "सर्वनामस्थाने चास- म्बुद्धौ ६।४।८/२५०" इससे प्रियतिसृन्+इ इसमें नकारान्त शब्दकी उपधाको दीर्घ होकर प्रियतिसॄणि। "तृतीयादिषु भाषित- पुंस्कं पुंवद्गालवस्य ७।१।७४/३२१" ऐसा आगे सूत्र है, नपुंसक- शब्द हो और वही विशेष अर्थमें पुँल्लिङ्गमें चलताहै (बरता जाताहै) तो उसको 'भाषितपुंस्क' कहतेहैं, तृतीयादिविभक्ति- कालमें भाषितपुंस्कशब्द नपुंसकलिंगमें भी विकल्प करके पुंवत् चलताहै, इस लिये नपुंसकवत् रूपोंमें नुम् और अन्यपक्षमें 'र' भाव ऐसे पर्यायसे दोदो रूप हुए, प्रियतिस्रा, प्रियतिसृणा इत्यादि ॥

नपुंसक प्रियत्रि शब्दके रूप--

वि०	एकवचन	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रियत्रि, प्रियतिसृ	प्रियतिसृणी	प्रियतिसॄणि
सं०	हे प्रियत्रे, प्रियत्रि, प्रियतिसः	हे प्रियतिसृणी	हे प्रियतिसॄणि
द्वि०	प्रियत्रि, प्रियतिसृ	प्रियतिसृणी	प्रियतिसॄणि
तृ०	प्रियतिस्रा, प्रियतिसृणा	प्रियतिसृभ्याम्	प्रिततिसृभिः
च०	प्रियतिस्रे, प्रियतिसृणे	प्रियतिसृभ्याम्	प्रियतिसृभ्यः
पं०	प्रियतिस्रः, प्रियतिसृणः	प्रियतिसृभ्याम्	प्रियतिसृभ्यः
ष०	प्रियतिस्रः, प्रियतिसृणः	प्रियतिस्रोः, प्रियतिसृणोः	प्रियतिसॄणाम्
स०	प्रियतिस्रि, प्रियतिसृणि	प्रियतिस्रोः, प्रियतिसृणोः	प्रियतिसृषु.

द्वि शब्द द्विवचनमें चलताहै, यह सर्वनाम है और त्यदादि गणमें है, इससे "त्यदादीनामः ७।२।१०२/२६५" इससे अकारान्तत्व होकर 'द्व' ऐसी स्थिति हुई, उससे "अजाद्य- तष्टाप् ४।१।४/४५४" इससे स्त्रीलिङ्गमें टाप् प्रत्यय होकर 'द्वा'

---

* इस सूत्रमें 'स्त्रियाम्' यह पद श्रुत जो 'त्रिचतुरोः' यह पद है, उसीका विशेषण है और अधिकारसे प्राप्त अङ्गका विशेषण नहीं, कारण कि 'श्रुतानुमितयोः श्रुतसम्बन्धो बलवान्' (श्रुत और अनुमि- तका जहां सम्बन्ध हो वहां श्रुतसम्बन्ध बलवान् होताहै) इस परिभाषा का यहां आश्रयण है ॥

१ इसके रूपोंकी सिद्धि यहां की है, तथापि अजन्त नपुंसक प्रकरण (३०९-३२३) पढनेसे ठीक ध्यानमें आवेगा ॥

ऐसा शब्द हुआ, आगे रमा शब्दके समान कार्य, प्र० द्वि० द्वे । तृ० च० पं० द्वाभ्याम् । ष० स० द्वयोः । द्वि शब्दको सम्बोधन नहीं, सो ३४५ सूत्रपर कहेंगे * ॥

ईकारान्त गौरी शब्द—

"षिद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१/४९८" इससे गौर शब्दसे ङीप् (ई) यह स्त्रीप्रत्यय होकर गौरी ऐसा ङ्यन्तशब्द बना है, ङ्यन्तत्व होनेके कारण "हल्ङ्याब्भ्यो० ६।१।६८/२५२" इससे सुलोप, गौरी । आगे 'औ'— और 'जस्' होते "दीर्घाज्जसि च ६।१।१०५/२३९" इससे पूर्वसवर्णदीर्घका निषेध, सामान्यतः सन्धिके कारण यण् होकर गौर्यौ । गौर्यः । नित्यस्त्रीत्व होनेके कारण नदीसंज्ञा २६६, नदीकार्य २६७, हे गौरि । गौरी+ ङे=गौर्यै इत्यादि ॥

गौरी शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	गौरी	गौर्यौ	गौर्यः
सं०	हे गौरि	हे गौर्यौ	हे गौर्यः
द्वि०	गौरीम्	गौर्यौ	गौरीः * ॥
तृ०	गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभिः
च०	गौर्यै	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
पं०	गौर्याः	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
ष०	गौर्याः	गौर्योः	गौरीणाम्
स०	गौर्याम्	गौर्योः	गौरीषु.

इसी प्रकारसे वाणी, नदी, इत्यादि ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग-शब्दोंके रूप जानो ।

सखी (सहेली) शब्द—

"सख्यशिश्वीति भाषायाम् ४।१।६२/५१७" इससे सखि शब्दके आगे ङीष् (ई) यह स्त्रीप्रत्यय हुआहै, इसलिये यह ङ्यन्त शब्द है, "प्रातिपदिकग्रहणे०" यह परिभाषा पीछे (१८२ में) आचुकी है, इससे सखि शब्दको जो अनङ् ७।१।९३/२८८ और णिद्वद्भाव ७।१।९२/२५३ कार्य हैं, वे इस 'सखी' शब्दको भी प्राप्त हुए, परन्तु "विभक्तौ लिङ्ग-विशिष्टाग्रहणम्" (परि०) अर्थात् विभक्तिनिमित्तक कार्य कर्तव्य हो तो प्रातिपदिकसे लिङ्गविशिष्टका ग्रहण नहीं होता, इस लिये अनङ् और णित्कार्य नहीं होते, सखी । सख्यौ । सख्यः इत्यादि गौरीवत् ।

इसमें नदीकार्यके कारण ङसि, ङस् प्रत्ययके पूर्व आडागम होनेसे वे ङसि, ङस् अव्यवहित नहीं हैं इस कारण "ख्यत्यात्परस्य ६।१।११२/२५५" यह सूत्र नहीं लगता अर्थात् उत्व नहीं होता ॥

लक्ष्मी शब्द—

"लक्षेर्मुट् च (उणा० ३। १६०)" इससे लक्षि धातुसे 'ई' प्रत्यय और उसको मुट् (म्) का आगम और 'णि' को लोप होकर 'लक्ष्मी' ऐसा ईप्रत्ययान्त शब्द सिद्ध हुआहै, यह ङ्यन्त नहीं है इस लिये "हल्ङ्या०" सूत्र नहीं लगता अर्थात् सुका लोप नहीं होता, लक्ष्मीः । शेष रूप गौरीशब्दकी समान होंगे कारण यह कि यह नित्यस्त्रीलिंग है इससे इस शब्दको नदीत्व है * ॥

लक्ष्मी शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
सं०	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः
द्वि०	लक्ष्मीम्	लक्ष्म्यौ	लक्ष्मीः
तृ०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
च०	लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
पं०	लक्ष्म्याः	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
ष०	लक्ष्म्याः	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
स०	लक्ष्म्याम्	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीषु.

ऐसे ही तरी, तन्त्री इत्यादि शब्दोंके रूप जानो अर्थात् प्रथमामें सुलोप नहीं, "अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः (उणा० ३ । १५८)" इससे अवी (रजस्वला), तरी (नौका), स्तरी (धूम), तन्त्री (वीणा आदिका सूत्र) यह ईप्रत्ययान्त शब्द बनेहैं, इस लिये ङ्यन्त नहीं हैं ॥

स्त्री शब्द—

'स्त्यायतेर्ड्रट्' (उणा० ४ । १६५) इससे 'स्त्यै' धातुसे ड्रट् (र) प्रत्यय हुआ, उसमें ड् इत् है इस लिये 'टि' का लोप, तो 'ऐ' उड गया और "लोपो व्योर्वलि ६।१।६६/८७३" इससे यकारका लोप और आगे टित्वके कारण "टिड्ढाणञ्० ४।१।१५/४७०" इससे ङीप् (ई) यह स्त्रीप्रत्यय होकर 'स्त्री' शब्द बनाहै इसलिये ङ्यन्तत्वके कारण सुका लोप हुआ, 'स्त्री' नित्य स्त्रीलिङ्ग है इस लिये नदीत्व, हे स्त्रि । आगे—

३०१ स्त्रियाः । ६ । ४ । ७९ ॥

स्त्रीशब्दस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे । स्त्रियौ । स्त्रियः ॥

३०१—अजादिप्रत्यय परे रहते 'स्त्री' शब्दको इयङ् (इय्) आदेश होताहै । ("अचि श्नुधातु० ६।४।७७/२७१" इससे अच्की अनुवृत्ति आतीहै और उसका प्रत्ययके साथ

* द्वि शब्दको विभक्ति निमित्त मानकर त्यदाद्यत्व हुआ, तब 'द्व' ऐसा हुआ, अब इससे ४५४ टाप् न होना चाहिये कारण कि सन्निपातपरिभाषासे विरोध आताहै सो यहां नहीं कह सकते क्योंकि "न यासयोः ४६४" इस निर्देशसे सन्निपातपरि० अनित्य है, नहीं तो 'यद्' 'तद्' शब्दका 'या' 'सा' ये रूप हैं सो नहीं हो सकेंगे कारण कि विभक्ति निमित्त मानकर त्यदाद्यत्व होनेपर उस सन्निपातका विघातक टाप् यहां पर भी नहीं होगा ॥

* शस्में पुंस्त्वाभाव होनेसे [illegible] "तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३/१९६" यह सूत्र नही लगता इससे नकार नहीं हुआ ॥

१ लक्ष धातु चुरादिगणपठित है यदि चौरादिक णिच्प्रत्यय करके ई प्रत्यय और मुट् भयाहै तो णिलोप ठीक है यदि चौरादिक णिच्प्रत्यय पाक्षिक है तो णिलोप करनेका प्रयोजन नहीं यह शब्द सम्पत्ति शोभा विष्णुपत्नी इनके अर्थको कहताहै ॥

* कोई ऐसा भी कहतेहैं कि 'लक्ष्मी' शब्दसे (कृदिकारादक्तिनः) क्तिन्प्रत्ययभिन्न कृदिकारान्तसे ङीष् प्रत्यय होताहै, इस ४।१।४५/५०३ सूत्रपरके वार्तिकसे ङीष् (ई) प्रत्यय होनेसे यह ङ्यन्त भी है तो पक्षमें 'सु' का लोप होगा और द्विरूपकोषमें दोनों रूप मिलते भी हैं 'लक्ष्मीर्लक्ष्मी हरिप्रिया" ॥

विशेषण होनेसे 'यस्मिन्विधिस्तदा०' इस परिभाषासे अजादि ऐसा अर्थ होताहै, इस लिये स्त्रियौ । स्त्रियः ॥

३०२ वाम्शसोः । ६ । ४ । ८० ॥

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात् । स्त्रियम् । स्त्रीम् । स्त्रियौ । स्त्रियः । स्त्रीः । स्त्रिया । स्त्रियै । स्त्रियाः २ । स्त्रियोः । परत्वान्नुट् । स्त्रीणाम् । स्त्रियाम् । स्त्रियोः । स्त्रीषु । स्त्रियमतिक्रान्तः अतिस्त्रिः । अतिस्त्रियौ ।

गुणनाभावौत्वनुड्भिः परत्वात्पुंसि बाध्यते ।
क्लीबे नुमा च स्त्रीशब्दस्येयङित्यवधार्यताम्॥

जसि च । अतिस्त्रयः । हे अतिस्त्रे । हे अतिस्त्रियौ । हे अतिस्त्रियः । वाम्शसोः । अतिस्त्रियम् । अतिस्त्रिम् । अतिस्त्रियौ । अतिस्त्रियः । अतिस्त्रीन् । अतिस्त्रिणा । घेर्ङिति । अतिस्त्रये । अतिस्त्रेः २ । अतिस्त्रियोः २ । अतिस्त्रीणाम् । अच्च घेः । अतिस्त्रौ ।

ओस्यौकारे च नित्यं स्यादम्शसोस्तु विभाषया ।
इयादेशोऽचि नान्यत्र स्त्रियाः पुंस्युपसर्जने ॥

क्लीबे तु नुम् । अतिस्त्रि । अतिस्त्रिणी । अतिस्त्रीणि । अतिस्त्रिणा । अतिस्त्रिणे । ङेप्रभृतावजादौ वक्ष्यमाणपुंवद्भावात्पक्षे प्राग्वद्रूपम् । अतिस्त्रये । अतिस्त्रिणः २ । अतिस्त्रेः २ । अतिस्त्रिणोः २ । अतिस्त्रियोरित्यादि । स्त्रियां तु प्रायेण पुंवत् । शसि । अतिस्त्रीः । अतिस्त्रिया । ङिति ह्रस्वश्चेति ह्रस्वान्तत्वप्रयुक्तो विकल्पः । अस्त्रीति तु इयङुवङ्स्थानावित्यस्यैव पर्युदासस्तत्संबद्धस्यैवानुवृत्तेर्दीर्घस्यायं निषेधो न तु ह्रस्वस्य । अतिस्त्रियै । अतिस्त्रये । अतिस्त्रियः । अतिस्त्रीणाम् । अतिस्त्रियाम् । अतिस्त्रौ ॥ श्रीः । श्रियौ । श्रियः ॥

३०२–आगे अम् वा शस् प्रत्यय परे होते 'स्त्री' शब्दको विकल्प करके इयङ् आदेश होताहै, अर्थात् अन्य पक्षमें "अमि पूर्वः" और "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः" यह होतेहैं स्त्रियम्, स्त्रीम् । स्त्री+औ=स्त्रियौ । स्त्री+शस्=स्त्रियः, स्त्रीः ।

यहां "नेयङुवङ्स्थानावस्त्री १।४।४/३०३" यह सूत्र ध्यानमें रखना चाहिये, अर्थात् "यू स्त्र्याख्यौ नदी १।४।३/२६६" इससे स्त्री शब्दको नदीत्व आता तो है, पर जिनके स्थानमें इयङ् उवङ् आदेश होतेहैं वे शब्द नदीसंज्ञक नहीं हैं, क्योंकि "नेयङुवङ्०" यह अगला निषेध सूत्र है, उसमें भी 'अस्त्री' ऐसा पढा है इसलिये स्त्री शब्दको इयङ् होते भी निषेध न [illegible] नदी संज्ञा होतीहै यह सिद्ध हुआ ।

[illegible] स्त्रिया । स्त्री+ङे=स्त्रियै । ङसि और ङसम [illegible] स्त्रियोः [illegible] आम् प्रत्ययमें स्त्री शब्दको इयङ् [illegible] "ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४/२०८" यह परसूत्र है, इससे परत्व होनेके कारण नुट् होताहै, इयङ् नहीं होता, स्त्री+आम्=स्त्रीणाम् । ङि प्रत्ययमें इयङ् । स्त्रियाम् । स्त्रियोः । स्त्रीषु ।

स्त्री शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
सं०	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः
द्वि०	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः, स्त्रीः
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
च०	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पं०	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
ष०	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु.

'अतिस्त्रि' यह पुँल्लिङ्ग ह्रस्वान्त शब्द है ("गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८/६५६" इससे उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययान्त शब्दको ह्रस्व होताहै) इस कारण ङित्में विकल्पसे घिसंज्ञा होगी, स्त्रीमतिक्रान्तः (स्त्रीको अतिक्रमण करगया सो) 'अतिस्त्रिः' एकदेशके विकारवाला वैसाही होताहै अन्य नहीं होता, इस कारण 'औ' में "स्त्रियाः ६।४।७९/३०१" इससे इयङ्, अतिस्त्रि+औ=अतिस्त्रियौ ।

(गुणनाभावौ०) स्त्रीशब्द जब पुँल्लिङ्गमें होताहै तब "स्त्रियाः" इससे होनेवाले इयङादेशसे "जसि च ७।३।१०९/२४१" इससे जस् प्रत्ययमें और "घेर्ङिति ७।३।१११/२४५" इससे ङित् प्रत्ययमें होनेवाला गुण पर है, वैसेही "आङो नास्त्रियाम् ७।३।१२०/२४४" इससे टा के स्थानमें होनेवाला 'ना' और "अच्च घेः ७।३।११९/२४७" इससे सप्तमीके एकवचनमें होनेवाला औत्व, "ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४/२०८" इससे आम् प्रत्ययमें होनेवाला नुट् यह कार्य पर हैं, इस लिये इयङ्का बाध करके यही कार्य होतेहैं और इसी प्रकारसे नपुंसकमें "इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३/३२०" इससे होनेवाला नुम् परत्वके कारण 'इयङ्' का बाध करताहै ऐसा निश्चय जानो, "जसि च" इससे गुण होकर अतिस्त्रयः । सम्बुद्धिसमयमें "ह्रस्वस्य गुणः" तो है ही तब हे अतिस्त्रे । आगे अतिस्त्रियौ । अतिस्त्रयः । अम् प्रत्ययमें "वाम्शसोः ६।४।८०/३०२" इससे विकल्प हुआ तब अतिस्त्रि+अम्=अतिस्त्रियम्, अतिस्त्रिम् । अतिस्त्रियौ । अतिस्त्रियः, अतिस्त्रीन् । अतिस्त्रि+टा=इसके स्थानमें 'ना' अतिस्त्रिणा "घेर्ङिति" इससे गुण, अतिस्त्रि+ङे=अतिस्त्रये । अतिस्त्रि+ङस्=अतिस्त्रेः । इयङ्, अतिस्त्रियोः । अतिस्त्रियोः । नुट् । अतिस्त्रीणाम् । "अच्च घेः" इससे औत्व, अतिस्त्रौ ॥

(ओस्यौकारे च०) स्त्रीशब्द उपसर्जनत्वको प्राप्त होकर पुँल्लिङ्ग हुआ हो तो ओस् और 'औ' ये प्रत्यय आगे होते 'स्त्री' शब्दको "स्त्रियाः" इस सूत्रसे इयङ् आदेश नित्य होताहै और अम्, शस् यह प्रत्यय आगे रहते विकल्प करके इयङ् होताहै अन्यत्र इयङ् नहीं कारण कि, अन्य अजादि विभक्तियोंमें परत्वके कारण गुण, नाभाव इत्यादिसे इयङ्का बाध होजाताहै ।

पुँल्लिङ्ग अतिस्त्रि शब्दका रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु
प्र०	अतिस्त्रिः	अतिस्त्रियौ	अतिस्त्रयः
सं०	हे अतिस्त्रे	हे अतिस्त्रियौ	हे अतिस्त्रयः
द्वि०	अतिस्त्रियम्, अतिस्त्रिम्	अतिस्त्रियौ	अतिस्त्रियः, अतिस्त्रीन्
तृ०	अतिस्त्रिणा ।	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभिः
च०	अतिस्त्रये	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभ्यः
पं०	अतिस्त्रेः	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभ्यः
ष०	अतिस्त्रेः	अतिस्त्रियोः	अतिस्त्रीणाम्
स०	अतिस्त्रौ	अतिस्त्रियोः	अतिस्त्रिषु.

नपुंसक अतिस्त्रि शब्द—

(क्लीबे तु नुम्) कारिकामें कहे अनुसार नपुंसक लिंगमें " इकोचि विभक्तौ " इससे नुम् होताहै इयङ् नहीं 'स्वमोर्लुक्' अतिस्त्रि । अतिस्त्रि+औ=अतिस्त्रिणी । अतिस्त्रि+जस्=अतिस्त्रीणि। सम्बुद्धिकालमें सु का लोप, पक्षमें "न लुमता०" इसको अनित्यत्व है, इस कारण गुण, हे अतिस्त्रे, हे अतिस्त्रि। परत्वके कारण 'ना' अतिस्त्रिणा। ङेप्रभृति अजादि प्रत्यय परे रहते आगे ७।१।७४/३२१ में कहे हुए भाषितपुंस्कके अनुसार पुंवद्भावके कारण अन्यपक्षमें पूर्ववत् रूप होंगे अतिस्त्रि+ङे=अतिस्त्रये, अतिस्त्रिणे । अतिस्त्रि+ङसि–अतिस्त्रेः, अतिस्त्रिणः । अतिस्त्रि+ङस्–अतिस्त्रेः, अतिस्त्रिणः । अतिस्त्रि+ओस्–अतिस्त्रियोः, अतिस्त्रिणोः–इत्यादि । आम् प्रत्ययमें 'अतिस्त्रीणाम्' एक ही रूप होताहै कारण कि, पुंवद्भावमें तो नुट् होताही है, परन्तु नपुंसकलिङ्गमें भी परत्वके कारण 'इकोचि' इससे प्राप्त नुम्को बाधकर 'नुमचिर०' इस वार्तिकके अनुसार पूर्वविप्रतिषेधसे नुट् ही होताहै ।

नपुंसकलिंग अतिस्त्रि शब्दके रूप—

वि०	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अतिस्त्रि	अतिस्त्रिणी	अतिस्त्रीणि
सं०	हे अतिस्त्रे, अतिस्त्रि	हे अतिस्त्रिणी	हे अतिस्त्रीणि
द्वि०	अतिस्त्रि	अतिस्त्रिणी	अतिस्त्रीणि
तृ०	अतिस्त्रिणा	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभिः
च०	अतिस्त्रये, अतिस्त्रिणे	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभ्यः
पं०	अतिस्त्रेः, अतिस्त्रिणः	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभ्यः
ष०	अतिस्त्रेः, अतिस्त्रिणः	अतिस्त्रियोः, अतिस्त्रिणोः	अतिस्त्रीणाम्
स०	अतिस्त्रौ, अतिस्त्रिणि	अतिस्त्रियोः, अतिस्त्रिणोः	अतिस्त्रिषु.

स्त्रीलिङ्ग अतिस्त्रिशब्द प्रायः पुँल्लिङ्गके समान है, भेद इतना ही है कि, शस्में नकार नहीं होता, इस कारण पाक्षिक रूप 'अतिस्त्रीः' । इसी प्रकार टा में 'ना' न होनेसे अतिस्त्रिया । यह इकारान्त स्त्रीलिङ्गशब्द है, इस कारण " ङिति ह्रस्वश्च १।४।६/२९६ " इससे उसकी ङित्प्रत्ययमें विकल्प करके नदीसंज्ञा होतीहै, (अस्त्री०) यदि यह कहो कि " ङिति ह्र० " इसमें 'अस्त्री' आताहै तो यहां पर भी निषेध होगा, सो नहीं कहसकते क्योंकि "नेयङुवङ्स्थानावस्त्री १।४।४/३०३" इसमें 'अस्त्री' (स्त्रीशब्दभिन्न) यह जो 'इयङुवङ्स्थानौ' अर्थात् दीर्घ ईकारान्त, ऊकारान्त इनहीं का निषेध है, काहे कि आगे " ङिति ह्रस्वश्च १।४।६/२९६ " इसमें भी 'इयङुवङ्स्थानौ (ई ऊ) अस्त्री' ऐसी ही अनुवृत्ति है इससे 'अस्त्री' यह निषेध केवल दीर्घ ही के लिये है, ह्रस्वके निमित्त नहीं, इससे केवल " ङिति ह्रस्वश्च " इससे इतर ह्रस्व इकारान्त शब्दोंके अनुसार इसकी ङित्प्रत्ययमात्रमें विकल्प करके नदीसंज्ञा होतीहै, अतिस्त्रि+ङे=अतिस्त्रियै, अतिस्त्रये । अतिस्त्रि+ङसि=अतिस्त्रियाः, अतिस्त्रेः । अतिस्त्रि+ङस्=अतिस्त्रियाः, अतिस्त्रेः । अतिस्त्रि+आम्=अतिस्त्रीणाम् । अतिस्त्रि+ङि=अतिस्त्रियाम्, अतिस्त्रौ ।

स्त्रीलिंग अतिस्त्रि शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अतिस्त्रिः	अतिस्त्रियौ	अतिस्त्रयः
सं०	हे अतिस्त्रे	हे अतिस्त्रियौ	हे अतिस्त्रयः
द्वि०	अतिस्त्रियम्, अतिस्त्रिम्	अतिस्त्रियौ	अतिस्त्रियः, अतिस्त्रीः
तृ०	अतिस्त्रिया	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभिः
च०	अतिस्त्रियै, अतिस्त्रये	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभ्यः
पं०	अतिस्त्रियाः, अतिस्त्रेः	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभ्यः
ष०	अतिस्त्रियाः, अतिस्त्रेः	अतिस्त्रियोः	अतिस्त्रीणाम्
स०	अतिस्त्रियाम्, अतिस्त्रौ	अतिस्त्रियोः	अतिस्त्रिषु.

श्री (सम्पत्ति) शब्द—

'श्रिञ् (श्रि) सेवायाम्' इससे "अन्येभ्योऽपि दृश्यते ३।२।१७९/३१५८" इस सूत्रसे 'क्विप्' प्रत्यय होकर "क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च"* इस वार्तिकसे दीर्घ, श्रीः । क्विबन्तत्वके कारण 'श्री' को धातुत्व है इस कारण "अचि श्नुधातुभ्रुवां० ६।४।७७/२७१" इससे अजादि प्रत्ययमें इयङ्, श्रियौ । श्रियः ॥

३०३ नेयङुवङ्स्थानावस्त्री ।१।४।४ ॥

इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री । हे श्रीः । श्रियै । श्रिये । श्रियाः । श्रियः ॥

३०३–जिन ईकारान्त, ऊकारान्त शब्दोंकी इयङ् उवङ्में स्थिति प्राप्त होतीहै, वे शब्द नदीसंज्ञक नहीं होते तथापि स्त्रीमात्र शब्दको इयङ् आदेश होते भी यह निषेध नहीं है उसकी नदी संज्ञा है । इससे श्री शब्दको नदी संज्ञा नहीं, हे श्रीः । "ङिति ह्रस्वश्च १।४।६/२९६" इससे ङित्प्रत्ययमें 'इयङ्स्थान' भी 'श्री' शब्दको विकल्पसे नदीत्व, श्री+ङे=श्रियै, श्रिये । श्री+ङस्=श्रियाः, श्रियः । आम् प्रत्ययमें–

३०४ वामि । १ । ४ । ५ ॥

इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा

१ जैसे "यूस्त्र्या० १ । ४ । ३"से प्राप्त नदी संज्ञाका प्रस्तुत सूत्रसे निषेध होताहै वैसे "ङिति ह्रस्वश्च १ । ४ । ६" इससे प्राप्त नदीसंज्ञाका भी निषेध होना चाहिये ऐसा कोई कहै तो सो नहीं हो सकता क्यों तो 'मध्येऽपवादाः०' (प०) से पूर्वविधि; जो "यूस्त्र्या० १ ।४।३" इसीका प्रस्तुत सूत्र निषेधकरता है. "ङिति ह्रस्वश्च १ । ४ । ६" इसका नहीं करता है ॥

२ सि० ३०१ की टिप्पणी देखो ॥

नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री । श्रीणाम् । श्रियाम् । श्रियाम् । श्रियि । प्रधीशब्दस्य तु वृत्तिकारादीनां मते लक्ष्मीवद्रूपम् । पदान्तरं विनापि स्त्रियां वर्तमानत्वं नित्यस्त्रीत्वमिति स्वीकारात् । लिङ्गान्तरानभिधायकत्वं तदिति कैयटमते तु पुंवद्रूपम् । प्रकृष्टा धीरिति विग्रहे तु लक्ष्मीवत् । अमि शसि च प्रध्यं प्रध्य इति विशेषः । सुष्ठु धीर्यस्याः, सुष्ठु ध्यायति वेति विग्रहे तु वृत्तिमते सुधीः श्रीवत् । मतान्तरे पुंवत् । सुष्ठु धीरिति विग्रहे तु श्रीवदेव ॥ ग्रामणीः पुंवत् । ग्रामनयनस्योत्सर्गतः पुंधर्मतया पदान्तरं विना स्त्रियामप्रवृत्तेः । एवं खलपवनादेरपि पुंधर्मत्वमौत्सर्गिकं बोध्यम् ॥ धेनुर्मतिवत् ॥

२०४–जिनको इयङ्, उवङ्की प्राप्ति है ऐसे स्त्रीलिङ्ग दीर्घ ईकारान्त, ऊकारान्त शब्दकी आम् परे रहते विकल्प करके नदी संज्ञा हो, स्त्री शब्दकी विकल्प करके न हो, यह नित्य नदीसंज्ञक है । आम् प्रत्ययमें जब श्री शब्द नदीसंज्ञक होताहै, तब "ह्रस्वनद्यापो नुट् $\frac{७।१।५४}{२०८}$" इससे नुट् होकर श्रीणाम् । जब नदीसंज्ञक नहीं, तब श्रियाम् । श्री + ङि= श्रियि । पक्षमें ङित्वके कारण विकल्पसे नदीसंज्ञा होकर "ङेराम्नद्याम्नीभ्यः $\frac{७।३।११६}{२७०}$" से ङिके स्थानमें आम्, श्रियाम् ।

श्रीशब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
सं०	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः
द्वि०	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
च०	श्रियै, श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पं०	श्रियाः, श्रियः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
ष०	श्रियाः, श्रियः	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
स०	श्रियाम्, श्रियि	श्रियोः	श्रीषु.

प्रधी शब्द–

'प्रकृष्टं ध्यायति' अतिशय करके ध्यान करतीहै यह शब्द (२७२ सि०) क्विबन्त ही है ।

(प्रधीशब्दस्येति) वृत्तिकारादिकोंके मतमें स्त्रीलिंग 'प्रधी' शब्दके रूप 'लक्ष्मी'-शब्दकी समान होतेहैं । कारण कि विशेषणके विना भी जिसके स्त्रीलिंगमें प्रयोग करते बनताहै वही शब्द अन्यत्र पुंलिंग भी हो तो उसको यहां नित्यस्त्रीत्व है, ऐसा कह सकतेहैं, यह उनका मत है, इससे उनके मतके अनुसार स्त्रीलिंग 'प्रधी' शब्दकी नदी संज्ञा हुई, इससे उनके रूप 'लक्ष्मी' शब्दके समान होंगे, धातुत्वके कारण केवल अम्, शस् प्रत्ययमें भेद है नदीसंज्ञक प्रधी शब्दके रूप पीछे (२७२ में) दिये हुए हैं ।

(लिंगान्तरा०) जो दूसरे लिंगका अभिधान करनेवाला न हो, वह नित्यस्त्रीत्व है ऐसे कैयटके मतमें दूसरे लिंगके भी अभिधान करनेसे 'प्रधी' शब्दको नदीत्व नहीं अर्थात् 'प्रकृष्टं ध्यायति या' इस विग्रहमें अनदी 'प्रधी' शब्दके पुँल्लिंग शब्द की समान रूप होंगे ।

(प्रकृष्टा धीरिति) पहले 'ध्यै चिन्तायाम्' इस धातुसे परे "अन्येभ्योऽपि दृश्यते $\frac{३।२।१७८}{३१५८}$" इससे क्विप् और "ध्यायतेः सम्प्रसारणञ्च (३१५८ वा०)" * इस वार्तिकसे सम्प्रसारण होकर 'धी' यह क्विबन्त शब्द बना है, फिर प्रकृष्टा (बहुतसूक्ष्म) धीः (बुद्धि) ऐसा विग्रह होते 'प्रधी' ऐसा जो शब्द होताहै, उसको निर्विवादके कारण नित्यस्त्रीत्व होनेसे दोनों मतोंके अनुसार नदीत्व है इस कारण उसके रूप लक्ष्मी शब्दके समान होंगे, तथापि अजादि प्रत्ययोंमें समान्यतः संधिके कारण जो यण् होताहै, उसके स्थानमें वहां धातुत्व होनेके कारण "एरनेकाचः० $\frac{६।४।८२}{२७२}$" इस सूत्रसे यण् होताहै, इससे अम्, शस् प्रत्ययकालमें भी पूर्वरूप अथवा पूर्व सवर्ण दीर्घ न होनेसे यण् होकर प्रध्यम् । प्रध्यः । ऐसे लक्ष्मीशब्दके रूपसे पृथक् रूप होतेहैं * ॥

शंका–पीछे सि० २७२ में 'दुर्धियो वृश्चिकभिया' इन प्रयोगोंमें यण् नहीं इयङ् सिद्ध किया है, ऐसा यहां क्यों नहीं, यहां यण् क्यों ? समाधान–दोनों स्थानोंमें यण् होना ही योग्य है इससे 'सुधी' शब्दमें जो इयङ् होताहै वह दिखानेके लिये "न भूसुधियोः $\frac{६।४।८५}{२७३}$" ऐसा एक स्वतन्त्र सूत्र बनाकर उस यणका निषेध स्पष्ट कर दियाहै तथापि 'दुर्धियो, वृश्चिकभिया' ऐसा प्रामाणिक प्रयोग है और युक्तिसे भी उसे सिद्ध करके दिखा सकतेहैं इस लिये वह ग्रहण कियागया इतनी ही बात है और वैसे ही इयङ्युक्त प्रयोग और भी कहीं आवे तो उसकी भी सिद्धि वैसे ही कर लेनी चाहिये ऐसा है तो भी विना किसी विवादके सूत्रसे सिद्ध होनेवाले रूपोंको ऐसी बातोंसे बाध आताहै ऐसा कदापि न समझे वैसे ही 'प्रकृष्टा धीः' इत्यादिविग्रहमें 'प्र' को गतित्व है ॥

केवल 'धी' शब्द ऊपर दिखाये समान क्विबन्त है यह एक ही शब्द होनेके कारण "एरनेकाच०" यह सूत्र नहीं लगता, "अचि श्नुधातु०" इससे इयङ् होताहै इस कारण "नेयङुवङ्स्थानावस्त्री $\frac{१।४।४}{३०३}$" इससे नदीसंज्ञाका निषेध प्राप्त हुआ तथापि "ङिति ह्रस्वश्च $\frac{१।४।६}{२९६}$" इससे ङित्प्रत्ययमें और "वामि $\frac{१।४।५}{३०४}$" इससे आम् प्रत्ययमें विकल्प करके नदी संज्ञा अर्थात् सर्वथा 'श्री' शब्दकेसे रूप होंगे ।

* [illegible] यह विकल्प पूर्वसूत्र (३०३) स्थित निषेधका होनेसे निषेध [illegible] हो, ऐसा ही अर्थ करना उचित था तथापि निषेधका विकल्प [illegible] विधि (नदीसंज्ञा) का ही विकल्प सम्पन्न होताहै, इस कारण [illegible] "वा नदीसंज्ञा" ऐसा कहाहै ॥

* 'प्रकृष्टा धीः यस्याः' ऐसा विग्रह होने वृत्तिकारादिकोंके मतसे तो नदी संज्ञा हुई है, कैयटके मतसे "प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च" इससे नदीत्व आताहै तो दोनों मतोंके अनुसार लक्ष्मीशब्दके से रूप हुए, 'प्रकृष्टा धीः यस्य' ऐसा पुँल्लिङ्ग शब्द लियाजाय तो भी उभय मतसे "प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च" इस वार्तिकसे नदी संज्ञा है, इस कारण यहां भी लक्ष्मीवत् है अर्थात् वृत्तिकारके मतसे होनेवाले ऊपर कहे हुए २७२ मे दाहिनी ओर दिये हुए रूप हैं और यह एकहीहै ॥

धी शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	धीः	धियौ	धियः
सं०	हे धीः	हे धियौ	हे धियः
द्वि०	धियम्	धियौ	धियः
तृ०	धिया	धीभ्याम्	धीभिः
च०	धियै, धिये	धीभ्याम्	धीभ्यः
पं०	धियाः, धियः	धीभ्याम्	धीभ्यः
ष०	धियाः, धियः	धियोः	धीनाम्, धियाम्
स०	धियाम्, धियि	धियोः	धीषु.

'सुष्ठु धीः यस्याः' 'सुष्ठु ध्यायति' वा (उत्तम बुद्धि है जिस स्त्रीकी वा उत्तम प्रकारसे जो ध्यान करतीहै) ऐसा विग्रह हो तो 'सुधी' शब्दको वृत्तिकारादिके मतसे (पीछे प्रधीशब्दमें दिखायेके समान) नित्यस्त्रीत्व है, परन्तु "न भूसुधियोः $\frac{६।४।८५}{२७३}$" इससे यणका निषेध है, इसलिये "अचि श्नुधातु०" इससे इयङ्, तो ङित् और आम् प्रत्ययमात्रमें विकल्पसे नदीसंज्ञा अर्थात् सब रूप श्री शब्दकी समान हैं ।

अन्य लिङ्गमें भी यह शब्द चलताहै इसलिये उसको कैयटके मतसे नित्यस्त्रीत्व नहीं अर्थात् ङित् और आम् प्रत्ययोंमें जो नदीसंज्ञा होतीहै वह भी कैयटके मतसे नहीं, इससे पुँल्लिङ्ग सुधीशब्दके समान ही इसके रूप होंगे (सि० २७३ देखो) ।

शंका–'प्रकृष्टा धीः यस्याः' ऐसा विग्रह होते (बहुव्रीहिसमासमें) "प्रथमलिंगग्रहणञ्च" * इस वार्तिकसे कैयटने भी प्रधी शब्दका नदीत्व स्वीकार किया है, वैसे यहां 'सुष्ठु धीः यस्याः' ऐसा विग्रह करनेपर धी शब्द नित्यस्त्रीलिंग है, इस कारण "प्रथमलिंग०" इस वार्तिकसे सुधी शब्दमें क्यों नहीं किया ? समाधान–यहां यद्यपि "प्रथमलिंगग्रहणञ्च" इससे नदीत्व प्राप्त है, तो भी यहां "न भूसुधियोः" इस सूत्रसे इयङ् होताहै, इसलिये "नेयङुवङ्०" इससे उस नदीत्वको बाध आताहै, इससे उभय मतसे इसको नदीत्वका निषेध है, केवल इयङ्के निमित्त ही "ङिति ह्रस्वश्च" और "वामि" इतनेके लिये ही वृत्तिकारके मतसे नदीसंज्ञा है, इस लिये यह रूप श्रीवत् हुए । कैयटके मतसे वह भी नहीं, यद्यपि "प्रथमलिंगग्रहणञ्च" इससे नदीत्वकी प्राप्ति है तथापि उस शब्दका नित्यस्त्रीत्व ग्रहण किया ऐसा नहीं कह सकते (पूर्वं स्त्र्याख्यस्य उपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यम् २६६) इतना ही उस वार्तिकका अर्थ है, उसको नित्यस्त्रीत्व है ऐसा कुछ कहा नहीं है अर्थात् नित्यस्त्रीत्वके अभावके कारण विकल्प भी नहीं ।

('सुष्ठु धीः' इति विग्रहे तु श्रीवत् एव') इसमें जो [illegible] किया जाय तो निर्विवाद नित्यस्त्रीत्व होनेके कारण दोनों मतोंमें 'श्री' शब्दके समान ही रूप जानो ।

'ग्रामणीः पुंवत् ग्रामनयनस्यो०' ('ग्रामं नयति' अर्थात् गांव चलातीहै सो) यह शब्द पुँल्लिंग 'ग्रामणी' शब्दके समान अर्थात् 'उन्नी' शब्दके समान (सि० २७२) चलताहै, कारण कि, यह गांव चलानेका काम स्वभावतः पुरुषधर्म है, इसलिये अन्य शब्द अर्थात् विशेष्य लगाये विना स्त्रीलिंगमें उसकी प्रवृत्ति नहीं होती, इस लिये उसको नित्यस्त्रीत्व न होनेसे दोनों मतसे पुंवत् जानना ।

(एवं खलेति) इसी प्रकारसे खल अर्थात् दुष्ट, उसको शुद्ध करना यह भी स्वाभाविक पुरुषधर्म समझना चाहिये इस लिये आगे ऊकारान्त (सि० ३०६) में आनेवाला 'खलपू' शब्द पुँल्लिगवत् जानना । उकारान्त धेनु (तुरतकी ब्याई हुई गाय) शब्द मतिशब्दकी समान, इसके कार्य २९५–२९७ तक देखो ।

धेनु शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	धेनुः	धेनू	धेनवः
सं०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः
द्वि०	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
पं०	धेन्वाः, धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
ष०	धेन्वाः, धेनोः	धेन्वोः	धेनूनाम्
स०	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु.

स्त्रीलिंग क्रोष्टु (सियारी) शब्द–

३०५ स्त्रियां च । ७ । १ । ९६ ॥

स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते ॥

३०५–स्त्रीलिंगमें भी 'क्रोष्टु' शब्दको तृजन्त (अथात् 'क्रोष्टृ') आदेश होताहै । ("तृज्वत्क्रोष्टुः $\frac{७।१।९५}{२७४}$" इस सम्पूर्ण सूत्रकी अनुवृत्ति आतीहै)

३०६ ऋन्नेभ्यो ङीप् । ४ । १ । ५ ॥

ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् स्यात् । क्रोष्ट्री । क्रोष्ट्र्यौ । क्रोष्ट्र्यः ॥ वधूर्गौरीवत् ॥ कासिभ्रूः श्रीवत् । हे सुभ्रूः । कथं तर्हि हापितः कासि हे सुभ्रु इति भट्टिः । प्रमाद एवायमिति बहवः। खलपूः पुंवत् । पुनर्भूः । दृन्करेति यणा उवङो बाधनान्नेयङुवङिति निषेधो न । हे पुनर्भु । पुनर्भ्वम् । पुनर्भ्वौ । पुनर्भ्वः ॥

३०६ ऋदन्त और नान्तशब्दके आगे स्त्रीलिंगमें ङीप् प्रत्यय होताहै । ('ऋत्' और 'न' इनको प्रातिपदिकका विशेषण होनेसे $\frac{१।१।७२}{२६}$ इससे तदन्तविधि होकर ऋदन्त और नान्त ऐसा अर्थ लब्ध है) क्रोष्टृ ई मिलकर क्रोष्ट्री । क्रोष्ट्र्यौ । क्रोष्ट्र्यः । नदीसंज्ञा, हे क्रोष्ट्रि आगे भी सर्वत्र गौरीशब्दके समान (सि० १००) ॥

(वधूः गौरीवत्) वधू (स्त्री) शब्द नदीत्व होनेके कारण गौरीशब्दके समान होताहै, परन्तु ङ्यन्त न होनेसे 'सु' लोप नहीं केवल इतना ही भेद है ॥

वधू शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	वधूः	वध्वौ	वध्वः
सं०	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः
द्वि०	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च०	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
पं०	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
ष०	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
सं०	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु.

(भ्रूः श्रीवत्) भ्रू (भौं) शब्द श्रीवत् "अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७/२७१" इससे उवङ् और ङित्प्रत्ययमें और आङ् प्रत्ययमात्रमें विकल्पसे नदीसंज्ञा अन्यत्र नहीं, इस लिये श्रीवत् कार्य (सि० ३०३-३०४) ॥

भ्रू शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	भ्रूः	भ्रुवौ	भ्रुवः
सं०	हे भ्रूः	हे भ्रुवौ	हे भ्रुवः
द्वि०	भ्रुवम्	भ्रुवौ	भ्रुवः
तृ०	भ्रुवा	भ्रूभ्याम्	भ्रूभिः
च०	भ्रुवै, भ्रुवे	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्यः
पं०	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्यः
ष०	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रुवोः	भ्रूणाम्, भ्रुवाम्
सं०	भ्रुवाम्, भ्रुवि	भ्रुवोः	भ्रूषु.

सुभ्रूः (सुन्दर भौं हैं जिस स्त्रीकी) यह भी वैसे ही है सुभ्रुः (कथं तर्हीति०) तो फिर भट्टिकाव्यमें सर्ग ६ श्लो० ११ 'हा पितः हे सुभ्रु कहां हो' इस रामचन्द्रके विलापमें 'सुभ्रु' ऐसा नदीशब्दके समान सम्बुद्धिमें ह्रस्वप्रयोग क्यों किया, बहुतोंका मत है कि यह चूक है (परन्तु मेरे मतमें रामकी व्याकुलता दिखानेको कविने जान बूझकर ऐसा प्रयोग कियाहै, क्योंकि 'हा पितः क्वासि हे सुभ्रूर्बह्वेवं विललाप सः' ऐसा पाठ बदलकर दीर्घशब्द कहाजाय तो भी कोई बाध नहीं आता, इससे कविने जान बूझ कर ऐसा कहाहै, ज्वा० प्र०)*॥

'खलपू' शब्द पीछे ३०४ में कथन कियेके समान पुँल्लिङ्गवत् २८१ होगा । पुनर्भूः (फिर ब्याही हुई स्त्री) यह केवल रूढि अर्थ है, पुंल्लिंग ' पुनर्भू ' की समान यौगिक नहीं है ।

(दृन्करेति०) " न भूसुधियोः ६।४।८५/२७२ " इससे यण्का निषेध कर उवङ् प्राप्त हुआ था, परन्तु फिर "दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः " (इस २८२ के) वार्तिकके अनुसार पुनर्भू शब्दको " ओः सुपि ६।४।८३/२८१ " इसमें कहा हुआ यण् होताहै, इससे उवङ्का बाध हुआ, इस कारण "नेयङुवङ्०" यह जो नदी संज्ञाका निषेध है वह यहां प्राप्त नहीं होता, हे पुनर्भू + सु=हे पुनर्भु । पुनर्भू + अम्= पुनर्भ्वम् । पुनर्भू + औ=पुनर्भ्वौ । पुनर्भू + जस्= पुनर्भ्वः ॥

३०७ एकाजुत्तरपदे णः । ८।४।१२॥

एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन्समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य नित्यं णत्वं स्यात् । आरम्भसामर्थ्यान्नित्यत्वे सिद्धे पुनर्णग्रहणं स्पष्टार्थम् । यणं बाधित्वा परत्वान्नुट् । पुनर्भूणाम् । वर्षाभूः । भेकजातौ नित्यस्त्रीत्वाभावात् हे वर्षाभूः । कैयटमते । मतान्तरे तु हे वर्षाभु । पुनर्नवायां तु हे वर्षाभु । भेक्यां पुनर्नवायां स्त्री वर्षाभूर्दर्दुरे पुमानिति यादवः । वर्षाभ्वौ । वर्षाभ्वः ॥ स्वयंभूः पुंवत् ॥

३०७-समासका उत्तरपद जो एकाच् है, उसके पूर्व पदमें रेफ षकार अथवा ऋकार हो तो उस निमित्तसे आगे प्रातिपदिकान्त, किंवा नुम्के, अथवा विभक्तिमें रहनेवाले नकारके स्थानमें नित्य णकार होताहै । पिछली अनुवृत्तिसे होनेवाला णत्व विकल्प, "एकाजुत्तरपदे०" ऐसा नया सूत्र बनानेके कारण जाता रहकर णत्वकी नित्यता होतसन्ते फिर सूत्रमें णकारका ग्रहण स्पष्टताके निमित्त है । आम्में " ओः सुपि ६।४।८३/२८१ " इससे " ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४/२०८ " यह पर है, इस कारण यण्का बाध करके ' नुट् ' ही हुआ, पुनर्भू+आम्=पुनर्भूणाम् । अर्थात् सब प्रकारसे आगे लिखे वर्षाभू (पुनर्नवावाचक) शब्दके समान रूप जानने ।

वर्षाभू (मेडकी) शब्द-

वर्षासु भवति (बरसातमें होतीहै वह) वर्षाभूः । भेक (मेडक) जातिको सर्वदा स्त्रीत्व ही होताहै, ऐसी बात नहीं है, इस कारण नदीत्व न प्राप्त होनेसे ' हे वर्षाभूः ' कैयटके मतसे ऐसा रूप है, पर औरोंके मत अर्थात् वृत्तिकारादिके मतसे नदीत्व है, इस कारण हे वर्षाभु । वर्षाभू शब्दका ' पुनर्नवानामक बनस्पति ' ऐसा अर्थ हो तो नित्य स्त्रीत्व है, इसलिये उभयमतसे हे वर्षाभु ।

(भेक्यामिति) 'वर्षाभू' शब्दका अर्थ जब भेकी अर्थात् मेडकी, अथवा पुनर्नवानामक वनस्पति हो तो वह शब्द स्त्रीलिङ्ग और दर्दुर (मेडक) ऐसा हो तो पुँल्लिङ्ग ' ऐसा यादवने अपने कोशमें लिखाहै । "वर्षाभ्वश्च ६।४।८४/२८२" इससे यण्, वर्षाभू+औ=वर्षाभ्वौ । वर्षाभू+जस्=वर्षाभ्वः ।

कैयटके मतसे वर्षाभू (मेडकी) शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	वर्षाभूः	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
सं०	हे वर्षाभूः	हे वर्षाभ्वौ	हे वर्षाभ्वः
द्वि०	वर्षाभ्वम्	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
तृ०	वर्षाभ्वा	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभिः
च०	वर्षाभ्वै	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः

* 'विमानने सुभ्रु पितुर्गृहे कुतः' इत्यादि कालिदासके प्रयोगकी भी अनुपपत्तिनिवारणके वास्ते समाधान-'नञर्थाऽतत्संनियम्' (नञ्-र्थान्त अनित्य होताहै) इस प्राचीनके मतका अनुसरण करके "नेयङु०" इसको अनित्य माननेसे भी नदीसंज्ञा होकर ह्रस्व होसक्ताहै ।

पं०	वर्षाभ्वः	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
ष०	वर्षाभ्वः	वर्षाभ्वोः	वर्षाभ्वाम्
स०	वर्षाभ्वि	वर्षाभ्वोः	वर्षाभूषु.

वृत्तिकारके मतसे वर्षाभू (मेढकी) शब्द और उभयमतसे वर्षाभू (पुनर्नवा) शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	वर्षाभूः	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
सं०	हे वर्षाभु	हे वर्षाभ्वौ	हे वर्षाभ्वः
द्वि०	वर्षाभ्वम्	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
तृ०	वर्षाभ्वा	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभिः
च०	वर्षाभ्वै	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
पं०	वर्षाभ्वाः	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
ष०	वर्षाभ्वाः	वर्षाभ्वोः	वर्षाभूणाम्
स०	वर्षाभ्वाम्	वर्षाभ्वोः	वर्षाभूषु.

स्वयम्भू (अपने आप होनेवाली) शब्द–

इसको नित्यस्त्रीत्वका अभाव है, इससे नदीसंज्ञा नहीं है, इस कारण कैयटके मतसे पुंवत् रूप होंगे (२८१)*॥

भू (पृथ्वी) शब्दको नित्यस्त्रीत्व है, इस कारण दोनों मतोंमें भ्रू शब्दके समान है ।

ऋकारान्त स्वसृ (बहन) शब्द–

३०८ न षट्स्वस्रादिभ्यः । ४ । १ । १० ॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च ङीप्टापौ न स्तः॥

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा । याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ॥

अप्तृन्निति दीर्घः । स्वसा । स्वसारौ । स्वसारः । माता पितृवत् । शसि मातॄः । द्यौर्गोवत् । राः पुंवत् । नौर्ग्लौवत् ॥

इत्यजन्ताः स्त्रीलिंगाः ॥

३०८–षट्संज्ञक शब्द १।१।२४/२६९ और स्वस्रादि शब्दसे ङीप्, टाप् यह स्त्रीप्रत्यय नहीं होते*॥

स्वस्रादि कहतेहैं–स्वसृ, तिसृ, चतसृ, ननान्दृ, दुहितृ, यातृ, मातृ, यह सात स्वस्रादि शब्द हैं ।

"अप्तृन्तृच्० ६।४।११/२७७" इससे सम्बुद्धिवर्ज सर्वनामस्थानमें उपधादीर्घ होगा । धातृ शब्दके रूप (२८२ में) दिखाये हुएके समान इसके रूप होतेहैं, स्वसृ+सु=स्वसा । स्वसृ+औ=स्वसारौ । स्वसृ+जस्=स्वसारः । पुंस्त्वके अभावसे शस् प्रत्ययमें नकार नहीं, ६।१।१०३/१९६ से दीर्घ, स्वसॄः । इतना ही भेद है ।

मातृ शब्द पितृ शब्दकी समान है, 'पितृमातृप्रभृतीनां न' ऐसा कहा हुआ होनेसे 'मातृ' शब्दमें उपधादीर्घ नहीं अर्थात् २८२ में कहे पितृवत् जानना, स्त्रीत्व होनेके कारण, शस्में 'मातॄः' बस यही भेद है ।

दुहितृ, ननान्दृ, यातृ, यह शब्द भी मातृशब्दवत् जानने ।

द्यौः (स्वर्ग) 'द्यो' यह ओकारान्त शब्द गो (२८४-२८५) शब्दकी समान । रै (सम्पत्ति) यह ऐकारान्त शब्द पुंलिङ्ग रै शब्द (२८६) के समान है ।

नौ (नाव) यह औकारान्त शब्द ग्लौ (२८६) शब्दकी समान है ॥

इति अजन्तस्त्रीलिंगप्रकरणम् ॥

अथाजन्ता नपुंसकलिंगाः ।

अकारान्त ज्ञान शब्द–

३०९ अतोम् । ७ । १ । २४ ॥

अतोऽङ्गात् क्लीबात्स्वमोरम् स्यात् । अमि पूर्वः । ज्ञानम् । एङ्ह्रस्वादिति हल्मात्रलोपः । हे ज्ञान ॥

३०९–अकारान्त नपुंसकलिंग शब्दोंके परे स्थित सु और अम्के स्थानमें अम् हो * ॥

("स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३/३१९" इस संपूर्ण सूत्रकी अनुवृत्ति आतीहै) । "अमि पूर्वः ६।१।१०७/१९४" अक्के आगे अम्सम्बन्धी अच् होते दोनोंके स्थानमें मिलकर पूर्वरूप, ज्ञानम् । "एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः ६।१।६९/१९३" इससे सम्बुद्धिकालमें मकारका लोप, ज्ञान + अम् यह मूल वर्ण हैं इनमें ज्ञान यह अंग और अम् यह प्रत्यय है, तथापि "अन्तादिवच्च ६।१।८५/७५" इससे 'ज्ञानम्' इसमें भी 'ज्ञान' इतने भागको

---

* वृत्तिकारके मतसे नित्यस्त्रीत्व है, तथापि "न भूसुधियोः ६।४।८५/२७३" इससे यणका निषेध, और "अचि श्नुधातु० ६।४।७७/२७१" इससे उवङ् होते हैं इस कारण श्री, भ्रू इत्यादि शब्दोंके समान ङित् और आम् प्रत्ययके निमित्त ही केवल विकल्पसे नदी संज्ञा होती है ॥

* यहां 'स्त्रीत्व वाच्य रहते जो प्राप्त हो सो न हो' ऐसा अर्थ करनेसे व्यवहित जो टाप् ४।१।४/४५४ उसका भी निषेध होताहै, नहीं तो 'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा' (विधान अथवा निषेध अव्यवहित अर्थात् व्यवधानरहितको होते हैं) इसका आश्रयण करके यह निषेध, अव्यवहित जो ङीप् ४।१।५/३०६ उसीका होगा, टाप्का नहीं होगा ॥

१ स्वस्रादिमें तिसृ, चतसृ, इनका पाठ न करना चाहिये, यदि यह कहो कि, ङीप् होजायगा, सो ठीक नहीं, कारण कि, "न तिसृच० ३००" सूत्र व्यर्थ होजायगा अर्थात् ङीप् करनेसे दीर्घ ही मिलैगा, तो सूत्रारम्भसामर्थ्यसे ङीप् नहीं होगा ऐसा कैयटका मत है ॥

* इस सूत्रमें मकार छेद करके सु के स्थानमें म् होकर और अम् प्रत्ययमें "आदेः परस्य १।१।५४" से अ के स्थानमें मकार होकर "संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३" से अन्त्य मकारका लोप होकर 'ज्ञानम्' यह रूप सिद्ध हो था फिर अम् ऐसा छेद करनेका प्रयोजन यह है कि, [illegible] 'ज्ञानम्' यहां "संयोगान्तस्य० ८।२।२३" से लोप नहीं होसकता है, क्यों ? तो "संयो० ८।२।२३" में भाष्यकारने झल्की अनुवृत्ति करके संयोगान्त झल्का लोप हो ऐसा अर्थ किया है तब यहां म् तो झल् नहीं है तो लोप नहीं होनेसे द्वितीयैकवचनमें ज्ञानम् यह सिद्ध नहीं होगा ॥

अंगत्व प्राप्त होकर आगे केवल मकार रहगया, उसका "एङ्ह्रस्वात्०" से लोप, हे ज्ञान *॥

३१० नपुंसकाच्च । ७ । १ । १९ ॥

क्लीबात्परस्यौङः शी स्यात् । भसंज्ञायाम् ।

३१०–नपुंसकलिंग शब्दोंके परे स्थित औङ् प्रत्ययके स्थानमें शी आदेश होताहै । ("जसः शी ७।१।१७/२१४" "औङ आपः ७।१।१८/२८७" इन सूत्रोंसे 'शी' और 'औङ्' इनकी अनुवृत्ति होतीहै)। नपुंसकप्रकरणमें जस्के स्थानमें होनेवाला 'शि' (इ) आदेश आगे (वि० ३१३) कहा हुआहै, केवल उसकी सर्वनामस्थानसंज्ञा है, "सुडनपुंसकस्य २२९" ऐसा कहाहै, इस कारण दूसरोंको नहीं, तो उससे "यचि भम्२२१" इसके अनुसार आगे शी (ई) होते अङ्गको भ संज्ञा हुई तब–

३११ यस्येति च । ६ । ४ । १४८ ॥

भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः स्यादीकारे तद्धिते च परे । इत्यकारलोपे प्राप्ते ॥ औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः ॥ * ॥ ज्ञाने ॥

३११–दीर्घ ईकार और तद्धित परे रहते भसंज्ञक इवर्ण उवर्ण का लोप हो । (चग्रहणसे तद्धितका अनुकर्ष है) इससे ज्ञान + ई इसमेंके अवर्णका लोप प्राप्त हुआ, परन्तु "औङ श्यां प्रतिषेधो वाच्यः * (वा० ४१८९)" औङ्के स्थानमें होनेवाली शी (ई) आगे रहते भसंज्ञकके इवर्ण, अवर्णके लोपका निषेध जानना चाहिये । ज्ञान+ई=ज्ञाने *॥

३१२ जश्शसोः शिः । ७ । १ । २० ॥

क्लीबादनयोः शिः स्यात् ॥

३१२–नपुंसक लिंगशब्दोंके आगे स्थित जस् और शस् के स्थानमें शि (इ) हो * ॥

३१३ शि सर्वनामस्थानम् ।१।१।४२॥

शि इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात् ॥

३१३– उस 'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा हो ॥

३१४ नपुंसकस्य झलचः ।७।१।७२॥

झलन्तस्याऽजन्तस्य च क्लीबस्य नुमागमः स्यात्सर्वनामस्थाने परे। उपधादीर्घः। ज्ञानानि। पुनस्तद्वत्। शेषं रामवत् ।एवं धनवनफलादयः॥

३१४–नपुंसकलिंग झलन्त और अजन्त शब्दोंको सर्वनामस्थान परे रहते नुम्का आगम हो("इदितो नुम् धातोः ७।१।५८," "उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७।१।७०/३६१" इन सूत्रोंसे नुम् और सर्वनामस्थान इनकी अनुवृत्ति होतीहै और अंगका अधिकार होताहै, झल् अच्को नपुंसक अंगका विशेषण होनेसे "येन वि० २६" से तदन्त विधि होतीहै) ज्ञानम्+इ ऐसी स्थिति होते "सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ ६।४।८/२५०" सम्बुद्धिवर्ज सर्वनामस्थान परे रहते नान्त शब्दकी उपधाकी दीर्घ होताहै, इससे ज्ञानात्+इ मिलकर ज्ञानानि । फिर भी उसी प्रकार द्वितीया के स्थानमें अम्, शी, शि, यही आदेश होनेसे वैसे ही रूप होतेहैं । अगले सब प्रत्यय और कार्य पुँल्लिङ्ग शब्दके समान होतेहैं, । इसलिये शेष रूप राम शब्दकी समान होंगे ।

ज्ञान शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
सं०	हे ज्ञान	हे ज्ञाने	हे ज्ञानानि
द्वि०	ज्ञानम्	ज्ञाने	हे ज्ञानानि
तृ०	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
च०	ज्ञानाय	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
पं०	ज्ञानात्	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
ष०	ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्
स०	ज्ञाने	ज्ञानयोः	ज्ञानेषु.

इसी प्रकार धन, वन, फल आदिशब्दोंके रूप जानने चाहिये ॥

डतरप्रत्ययान्त कतर (कौनसा) शब्द–

३१५ अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः । ७ । १ । २५ ॥

एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात् ॥

३१५–डतर–डतम–प्रत्ययान्त, अन्य, अन्यतर, इतर, यह जो डतरादि शब्द नपुंसक हों तो उनसे परे स्थित सु और अम् विभक्तिके स्थानमें अद्ड् (अद्) आदेश होताहै । कतर अद् ऐसी स्थिति हुई, परन्तु–

३१६ टेः । ६ । ४ । १४३ ॥

डिति परे भस्य टेर्लोपः स्यात् । वावसाने । कतरत् । कतरद् । कतरे । कतराणि । भस्येति किम् । पञ्चमः । टेर्लुप्तत्वात्प्रथमयोरिति पूर्वसवर्णदीर्घ एङ्ह्रस्वादिति संबुद्धिलोपश्च न भवति। हे कतरत् । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । कतमत् । अन्यत् । अन्यतरत् । इतरत् । अन्यतमशब्दस्य तु अन्यतममित्येव ॥ एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ एकतरम् । सोरमादेशे कृते संनिपातपरिभाषया न जरस् । अजरम् । अजरसी । अजरे । परत्वाज्जरसि कृते झलन्तत्वान्नुम् ॥

३१६–डकार है इत्संज्ञक जिसका ऐसा प्रत्यय परे रहते भसंज्ञककी 'टि'का लोप होताहै,"ति विंशतेर्डिति ६।४।१४२"

* अम्को फिर अम् विधान करनेका फल यह है कि अमका लुक् न हो ॥

* यहां "विभाषा ङिश्योः ६ । ४ । १३६" इससे 'शी' इस एक देशकी अनुवृत्ति होगी और "न संयोगाद्व० ६।४।१३७" से न की अनुवृत्ति होगी तब सूत्रका अर्थ–ईकार तथा तद्धित परे रहते इकार अकारका लोप होगा। शीको परत्वसे नहीं होगा ऐसा होगा तो द्विवचनमें लोप नहीं होगा इस कारण "औङः श्यो०" [illegible] ॥

* [illegible] शाहचर्य्यसे शस् भी सुप् ही लिया गया, इससे 'कुण्डशो [illegible]' यहां नहीं भया, कुण्ड शब्दसे तद्धित शस् प्रत्यय होकर [illegible] ॥

से डित्की अनुवृत्ति और " भस्य " इसका अधिकार होताहै) । " वाऽवसाने ८।४।५६/२०६ " इससे विकल्प करके चर्, कतरत्, कतरद् । कतरे । कतराणि ।

(भस्येति) भसंज्ञककी टिका लोप हो ऐसा क्यों कहा? तो 'पंचमः' इसमें 'पंचन्' शब्दके आगे "तस्य पूरणे डट् ५।२।४८/१८४९ " इससे पूरणार्थ डट्(अ) प्रत्यय हुआ, उस डट्को "नान्तादसंख्यादेर्मट् ५।२।४९/१८५० " इससे मट् (म) का आगम हुआहै तब पंचन्+म ऐसी स्थिति हुई, 'म' इस प्रत्ययको यादि वा अजादि न होनेसे " यचि भम् १।४।१८/२३१ " यह सूत्र नहीं लगता तो 'पंचन्' को भ संज्ञा न हुई, इसलिये प्रत्यय डित् है तो भी 'पंचन्' की टि अर्थात् अन्का लोप न होते " न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७/२३६ " इससे केवल नकारका लोप होकर 'पंचमः' (पाँचवाँ) ऐसा शब्द सिद्ध होताहै ।

(टेर्लुप्तत्वादिति) 'अद्ड्' में डित् क्यों किया ? तो सम्बुद्धिमें 'टि' का लोप होनेसे अदन्तत्व मिट गया तब कतर्+अद् ऐसी स्थिति हुई, इसलिये " प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२/१६४ " और " एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः ६।१।६९/१९३ " इन दोनों सूत्रोंके कार्य नहीं हुए । हे कतरत् । फिर द्वितीयामें पूर्ववत् कतरत् (द्) कतरे । कतराणि । कतरशब्दके तृतीयादिमें रूप पुंवत् । कतरेण । कतराभ्याम् इत्यादि सर्वशब्दके समान ।

इसी प्रकार डतमप्रत्ययान्त 'कतम' शब्दके रूप कतमत् । कतमे । कतमानि इत्यादि । ऐसे ही यतर, यतम, ततर, ततम, एकतम इनके भी रूप यतरत् । यतमत् । ततरत् । ततमत् इत्यादि जानने चाहिये ।

डतरादिशब्दोंमेंके बचे हुए इतर, अन्य, अन्यतर इनके भी रूप इसी प्रकारसे होंगे, इतरत् । इतरे । इतराणि । अन्यत् । अन्ये । अन्यानि । अन्यतरत् । अन्यतरे । अन्यतराणि । परन्तु 'अन्यतम' शब्दका रूप 'अन्यतमम्' ऐसाही रहेगा, कारण कि, यह 'डतम' प्रत्ययान्त न रहनेसे (२१३ से) इसको सर्वनामत्व नहीं है और 'अद्ड्' आदेश भी नहीं अर्थात् इतर रूप भी ज्ञान शब्दके समान होंगे ।

(एकतरादिति) डतरादिमें आनेवाला जो एकतर शब्द ५।३।९४/२०४९ उसको सर्वनामत्व है तो भी उसमें 'अद्ड्' आदेशका निषेध है, इस कारण एकतरम् तृतीयादिरूप सर्वशब्दके समान हैं ।

अजर-(जिसको जरा नहीं)

अकारान्त 'अजर' शब्दके आगे 'सु' प्रत्ययके स्थानमें " अतोऽम् ७।१।२४/३०९ " इससे अम् आदेश होकर अजर+अम्-ऐसी जो स्थिति हुई, उसमें 'अजर' यह अकारान्त शब्द उपजीव्य है और उसके निमित्तसे आयाहुआ सुस्थानका अम् यह उपजीवी है, इस कारण अम् इसके निमित्तसे फिर " जराया जरसन्यतरस्याम् ७।२।१०१/२२७ " यह सूत्र लगाकर 'जरस्' आदेश कियाजाय तो उपजीव्यविरोध अर्थात् अकारान्तत्वका नाश होनेसे सन्निपातपरिभाषा २०४ का विषय आताहै, इस कारण जरस् आदेश नहीं, अजरम् । आगे विकल्पसे जरसादेश, अजरसौ, अजरे । फिर बहुवचनमें अजर+शि-इसमें दो कार्य प्राप्त हुए, परन्तु जरस् आदेशका सूत्र ७।२।१०१/२२७ पर होनेसे उसका कार्य पहले होकर फिर "नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२/३१४ " इससे सर्वनामस्थान परे रहते होनेवाले नुम् (न) का आगम हुआ, " मिदचोऽन्त्यात्परः १।१।४७/२७ " इससे अजरन्-स्+इ-ऐसी स्थिति हुई परन्तु--

३१७ सान्तमहतः संयोगस्य।६।४।१०॥

सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घः स्यादसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे । अजरांसि । अजराणि । अमि लुकोपवादमम्भावं बाधित्वा परत्वाज्जरस् । ततः सन्निपातपरिभाषया न लुक् । अजरसम् । अजरम् । अजरसी। अजरे । अजरांसि । अजराणि । शेषं पुंवत् । पद्दन्न इति हृदयोदकास्यानां हृत उदन् आसन् । हृन्दि । हृदा । हृद्भ्यामित्यादि । उदानि । उद्गा। उदभ्यामित्यादि ॥ आसानि । आस्ना । आसभ्यामित्यादि ॥ मांसि । मांसा । मान्भ्यामित्यादि । वस्तुतस्तु प्रभृतिग्रहणं प्रकारार्थमित्युक्तम् । अत एव भाष्ये मांस्पचन्या उखाया इत्युदाहृतम् । अयस्मयादित्वेन भत्वात्संयोगान्तलोपो न । पद्दन्न इत्यत्र हि छन्दसीत्यनुवर्तितं वृत्तौ तथाप्यपो भीत्यत्र मासश्छन्दसीति वार्तिके छन्दोग्रहणसामर्थ्याल्लोकेपि क्वचिदिति कैयटोक्तरीत्या प्रयोगमनुसृत्य पदादयः प्रयोक्तव्या इति बोध्यम् ।

३१७-सान्त संयोग और महत् शब्दका जो नकार, उसकी उपधाको दीर्घ हो सम्बोधनभिन्न सर्वनामस्थान परे रहते । ("नोपधायाः ६।४।७/३७० " "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८/२५० " इन सूत्रोंकी अनुवृत्ति आतीहै और सान्त यह लुप्तषष्ठयन्त पृथक् पद है तिससे संयोगके साथ समानाधिकरण होताहै) तब पूर्वोक्तस्थितिके पश्चात् "नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४/१९३ " इससे अजरांसि । पक्षमें अजराणि । फिर "स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३/३१९ " अर्थात् नपुंसक शब्दके आगे 'सु' और 'अम्' का लुक् होताहै ऐसा सामान्य सूत्र है, परन्तु अजर यह शब्द अकारान्त है, इस कारण "अतोऽम् ७।१।२४/३०९ " यह अपवाद प्राप्त होकर उसका बाध हुआ, परन्तु "अतोऽम्" इसके कारणसे अम्के स्थानमें फिर अम्की जो प्राप्ति उसको "जराया जरस० ७।२।१०१/२२७ " यह सूत्र पर होनेके कारण इसका कार्य अर्थात् जरस् आदेश प्रथम हुआ, अजरस्+अम् ऐसी स्थिति हुई, जो जर-तब अम् इस अजादि प्रत्यय रूपसे आया हुआ जो उलट कर उपजीव्य अम्के सादेश उसीके निमित्तसे फिर उलट कर उपजीव्य अम्के स्थानमें "स्वमोर्नपुंसकात्" इस सामान्य सूत्रके बलसे लुक् होना शक्य नहीं है कारण कि सन्निपातपरिभाषासे विरोध

आताहै । इससे अजरसम् । पक्षमें अजरम् । अजरसी, अजरे । अजरांसि, अजराणि । शेष पुँल्लिङ्ग निर्जर २२७ की समान जानना ।

नपुंसक अजर शब्दके रूप-

बिभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अजरम्	अजरसी, अजरे	अजरांसि, अजराणि
सं०	हे अजर	हे अजरसी, हे अजरे	हे अजरांसि, हे अजराणि
द्वि०	अजरसम्, अजरम्	अजरसौ, अजरे	अजरांसि, अजराणि

शेष रूप पुँल्लिङ्गकी समान ॥

हृदय, उदक और आस्य शब्द-

"पद्दत्० ६।१।६३/२२८" इस सूत्रसे आगे शसादि विभक्ति रहते हृदय, उदक, आस्य, इनके स्थानमें क्रमसे हृद्, उदन्, आसन्, यह आदेश विकल्प करके होतेहैं, इस कारण "नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२/३१४" इससे हृदय+शस्=हृन्दि । यहां कुर्वन्ति (१२४) शब्दमें दिखाये हुएके समान णत्व प्राप्त हुआ, उसके असिद्ध होनेसे अनुस्वार, परसवर्ण, उसके असिद्ध होनेसे णत्व नहीं । हृदय+टा=हृदा । हृदय+भ्याम्= हृद्भ्याम् इत्यादि ।

हृदय शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	हृदयम्	हृदये	हृदयानि
सं०	हे हृदय	हे हृदये	हे हृदयानि
द्वि०	हृदयम्	हृदये	हृन्दि, हृदयानि
तृ०	हृदा, हृदयेन	हृद्भ्याम्, हृदयाभ्याम्	हृद्भिः, हृदयैः
च०	हृदे, हृदयाय	हृद्भ्याम्, हृदयाभ्याम्	हृद्भ्यः, हृदयेभ्यः
पं०	हृदः, हृदयात्	हृद्भ्याम्, हृदयाभ्याम्	हृद्भ्यः, हृदयेभ्यः
ष०	हृदः, हृदयस्य	हृदोः, हृदययोः	हृदाम्, हृदयानाम्
स०	हृदि, हृदये	हृदोः, हृदययोः	हृत्सु, हृदयेषु.

'हृदयानि' इत्यादिमें दकारसे व्यवधान होनेके कारण णत्व नहीं हुआ ।

इसी प्रकारसे उदक शब्दमें 'शि' प्रत्यय आगे रहते 'उदन्' आदेश होनेके पीछे "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८/२५०" इससे उपाधादीर्घ, उदानि । आगे "अल्लोपोनः ६।४।१३४/२३४" इससे अल्लोप, उद्ना । आगे "न लोपः ८।२।७/२३६" इससे हलादि विभक्तिमें उदभ्याम् इत्यादि । आगे ङि प्रत्यय होते "विभाषा ङिश्योः ६।४।१३६/२३७" इससे विकल्पसे अल्लोप, उद्नि, उदनि ॥

उदक शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	उदकम्	उदके	उदकानि
सं०	हे उदक	हे उदके	हे उदकानि
द्वि०	उदकम्	उदके	उदानि, उदकानि
तृ०	उद्ना, उदकेन	उदभ्याम्, उदकाभ्याम्	उदभिः, उदकैः
च०	उद्ने, उदकाय	उदभ्याम्, उदकाभ्याम्	उदभ्यः, उदकेभ्यः
पं०	उद्नः, उदकात्	उदभ्याम्, उदकाभ्याम्	उदभ्यः, उदकेभ्यः
ष०	उद्नः, उदकस्य	उद्नोः, उदकयोः	उद्नाम्, उदकानाम्
स०	उद्नि, उदनि, उदके	उद्नोः, उदकयोः	उदसु, उदकेषु.

इसी प्रकार आस्य (मुख) शब्दके रूप आसन् आदेश, आस्य+शस्=आसानि । आस्य+टा=आस्ना । आस्य+भ्याम्= आसभ्याम् इत्यादि ॥

आस्य शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	आस्यम्	आस्ये	आस्यानि
सं०	हे आस्य	हे आस्ये	हे आस्यानि
द्वि०	आस्यम्	आस्ये	आसानि, आस्यानि
तृ०	आस्ना, आस्येन	आसभ्याम्, आस्याभ्याम्	आसभिः, आस्यैः
च०	आस्ने, आस्याय	आसभ्याम्, आस्याभ्याम्	आसभ्यः, आस्येभ्यः
पं०	आस्नः, आस्यात्	आसभ्याम्, आस्याभ्याम्	आसभ्यः, आस्येभ्यः
ष०	आस्नः, आस्यस्य	आस्नोः, आस्ययोः	आस्नाम्, आस्यानाम्
स०	आस्नि, आसनि, आस्ये	आस्नोः, आस्ययोः	आससु, आस्येषु.

मांस शब्द-

"मांसपृतनासानूनां मांसपृत्स्नवो वाच्याः०*(८।२।४१/२६५)" इससे आगे शसादि प्रत्यय रहते मांस् आदेश होताहै, मांस+शस्=मांसि । मांस+टा=मांसा । मांस+भ्याम्=मान्भ्याम् इत्यादि । मांसि । मांसा इनमें का जो अनुस्वार है वह "नकारजावनुस्वारपञ्चमौ०" (२५३६) इस प्रसिद्ध वाक्यके अनुसार नकारज है इस कारण मांस्+भ्याम् ऐसी स्थिति होते पदान्तत्वके कारण "संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३/५४" इससे सलोप होकर "निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः" (प०) (निमित्तका विनाश होनेसे निमित्तीका भी विनाश होताहै) इससे अनुस्वारके स्थानमें न् आनेसे मान् + भ्याम् ऐसी स्थिति हुई, यह सूत्र त्रिपादीका है और पर है इससे उसके अनुसार जो सकारका लोप हुआ वह असिद्ध है । इसलिये "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७/२३६" इससे नलोप नहीं, नकारको फिर कोई कार्य नहीं, इससे मान्भ्याम् इत्यादि ।

मांस शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	मांसम्	मांसे	मांसानि
सं०	हे मांस	हे मांसे	हे मांसानि
द्वि०	मांसम्	मांसे	मांसि मांसानि
तृ०	मांसा, मांसेन	मान्भ्याम्, मांसाभ्याम्	मान्भिः, मांसैः

च०	मांसे, मांसाय	मान्भ्याम्, मांसाभ्याम्	मान्भ्यः, मांसेभ्यः
पं०	मांसः, मांसात्	मान्भ्याम्, मांसाभ्याम्	मान्भ्यः, मांसेभ्यः
ष०	मांसः, मांसस्य	मांसोः, मांसयोः	मांसाम्, मांसानाम्
स०	मांसि, मांसे	मांसोः, मांसयोः	मान्सु, मान्सु मांसेषु.

(वस्तुत इति) चाहे शसादिप्रत्ययोंमें ही यह वैकल्पिक रूप दियेहुए हैं, तो भी पीछे (२३७ में) कहा ही है कि "पद्त्०" इस सूत्रमें 'प्रभृति' यह शब्द सादृश्यार्थक है इसीसे भाष्यमें " मांस्पचन्या उखायाः" (मांस पकानेके बरतनका) ऐसा उदाहरण दियाहै अर्थात् ' मांसस्य पचनी ' ऐसा विग्रह होते मांस और पचनी इनकी संधि होनेके समय आगे शसादि प्रत्यय नहीं है, तो भी मांस् आदेश होकर 'मांस्पचनी' ऐसा शब्द बनाया हुआ दिखायाहै । (अयस्मयादि०) 'मांस्पचनी' यह शब्द अयस्मयादिगणमें आताहै इससे "अयस्मयादीनि च्छन्दसि $\frac{१।४।२०}{३३९०}$" इससे 'मांस्' इसको भी भ संज्ञा होनेके कारण पदत्व नहीं है, इससे संयोगान्तलोप नहीं ।

परन्तु " पद्त्०" इस सूत्रमें वृत्तिकार 'छन्दसि' इसकी अनुवृत्ति पूर्वसे लायेहैं तो लौकिक भाषणमें इसका प्रयोग कैसे होगा, तो भी "अपो भि $\frac{७।४।४८}{४४२}$" इस सूत्रकी व्यवस्थामें "मासश्छन्दसि" (३५९४ वा०) अर्थात् भकार आगे रहते मास् शब्दको वैदिक प्रयोगमें तकार होताहै ऐसा वार्त्तिक है, तो फिर वैदिक प्रयोगमें तकार ऐसा कहनेसे अर्थात् वेद हीमें आदेश होगा तो वहाँ 'मास्' यह हलन्त होनेसे तकारकी प्राप्ति है) इससे अन्यत्र अर्थात् लौकिकमें भी 'मास्' इसका कहींकहीं प्रयोग होताहै, ऐसा कैयटने कहाहै वैसा प्रयोग देखकर पदादि शब्दोंकी योजना करनी यह जानना ।

श्रीप शब्द--

'श्री' और 'पा' धातु इनसे 'श्रियं पाति' (लक्ष्मीकी रक्षा करताहै) इस व्युत्पत्तिसे 'श्रीपा' यह क्विबन्त प्रातिपदिक है ।

३१८ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य । १ । २ । ४७ ॥

क्लीबे प्रातिपदिकस्याऽजन्तस्य ह्रस्वः स्यात् । श्रीपं ज्ञानवत् । श्रीपाय । अत्र सन्निपातपरिभाषया आतो धातोरित्याकारलोपो न ॥

३१८–नपुंसकलिंगमें अजन्त प्रातिपदिकको ह्रस्व होताहै (यहां ह्रस्व पदसे " अचश्च ३५ " परिभाषासूत्रके बलसे अच्की उपस्थिति भई और उसका प्रातिपदिकका विशेषण होनेसे अजन्त ऐसा अर्थ हुआ) 'श्रीपा ' ऐसा रूप होकर ' सु ' प्रत्ययमें ' श्रीपम् ' ऐसा रूप हुआ । इसके सब रूप ज्ञानशब्दके समान होंगे, बहुवचनमें ' श्रीपाणि ' इसमें " एकाजुत्तरपदे णः $\frac{८।४।१२}{५०७}$ " इससे णकार हुआ श्रीप+ङे=' श्रीपाय ' इसमें यकारके कारण ' श्रीपा ' को भत्व है और ' पा ' यह आकारान्त है और उसको धातुत्व भी है तो फिर " आतो धातोः $\frac{६।४।१४०}{२४०}$ " इससे उसके आकारका लोप क्यों न हुआ? तो सन्निपातपरिभाषा आतीहै अर्थात् अवर्णके निमित्तसे ङेके स्थानमें यकार हुआ फिर उसीके निमित्तसे उस अवर्णका नाश होना योग्य नहीं । यदि कोई यह कहै कि " कष्टाय० " इस निर्देशसे " सुपि च " से दीर्घके वास्ते तो सन्निपातपरिभाषा अनित्य माननी होगी इस कारण लोपके वास्ते भी अनित्य मान लीजाय तो ऐसा नहीं कहसकते, कारण कि, दीर्घविधिमें निर्देश प्रमाण होगा लोपमें नहीं ॥

इकारान्त वारि (जल) शब्द–वारि+सु–

३१९ स्वमोर्नपुंसकात् । ७ । १ । २३ ॥

क्लीबादङ्गात्स्वमोर्लुक् स्यात् । वारि ॥

३१९–नपुंसकलिंग शब्दोंके परे स्थित ' सु ' और 'अम्' विभक्तिका लोप हो । वारि ॥

३२० इकोचि विभक्तौ । ७ । १ । ७३ ॥

इगन्तस्य क्लीबस्य नुमागमः स्यादचि विभक्तौ । वारिणी । वारीणि । न लुमतेति निषेधस्यानित्यत्वात्पक्षे संबुद्धिनिमित्तो गुणः । हे वारे । हे वारि । आङो ना । वारिणा । घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते ॥ वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन ॥ * ॥ वारिणे । वारिणः । वारिणोः । नुमचिरेति नुट् । नामीति दीर्घः । वारीणाम् । वारिणि । वारिणोः । हलादौ हरिवत् ॥

३२०–अजादि विभक्ति परे रहते इगन्त नपुंसकलिंग शब्दोंको नुम्का आगम हो । वारिन्+ई=वारिणी । वारिन्+जस्=वारीणि । " न लुमताङ्गस्य $\frac{१।१।६३}{२६३}$ " अर्थात् लुमान् शब्दसे जो लोप कहागया हो तो वहां तन्निमित्तक अंगकार्य नहीं होता, ऐसा जो सूत्र है, उसका अनित्यत्व सिद्ध होताहै, इससे तन्निमित्त अंगकार्य विकल्पसे होताहै, इससे सम्बुद्धि ' सु ' इसके स्थानमें " स्वमोर्नपुंसकात् " इससे लुक् शब्दसे लुक् होते " ह्रस्वस्य गुणः $\frac{७।३।१०८}{२४२}$ इससे सम्बुद्धिनिमित्तक गुण विकल्पसे होताहै, हे वारे, हे वारि * ॥

---

* " इकोऽचि विभक्तौ " इस प्रस्तुत सूत्रमें ' अचि ' शब्दका क्या प्रयोजन है ? ' इको विभक्तौ ' ऐसा सूत्र होता तो भी कार्य होजाता, देखो केवल ' विभक्तौ ' ऐसा कहनेसे भी आगे ' सु ' यह हलादि विभक्ति होते नुमागम होकर वारिन् + स् ऐसा स्थिति होनेपर सुलुक् होकर 'वारिन्' यह पद रहा, उसमेंके नकारका " न [illegible] (४४३) इत्यादि शब्दोंसेके अनुसार "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य" इससे लोप होकर 'वारि' ऐसा रूप होजायगा उसी प्रकारसे वारिन्+भ्याम् ऐसा स्थिति रहते वारिभ्याम् इत्यादि रूप होजांयगे, उसी प्रकारसे आगे सम्बुद्धि सु होते [illegible] वारिन्+सु इसमेंका सकार नकार मिटकर 'वारि' ऐसा रूप बन जायगा. यदि कोई कहै तो फिर सूत्रमें 'अच्' ग्रहण किस अर्थसे [illegible] आगे सम्बुद्धि कि यहां "न ङिसम्बुद्ध्योः $\frac{८।२।८}{२५२}$" इस नियमसे [illegible] होने नकारलोपका [illegible] है, इसलिये यह बाधा दूर करनेके निमित्त 'अच्' ग्रहण कियाहै [illegible] लुप्त हुआहै इससे "न ङि [illegible]

(आङो ना) 'इकोऽचि०' इस सूत्रका बाध करके परत्व होनेके कारण "आङो ना० ७।३।१२०/२४४" इसके अनुसार 'ना' वारिणा। 'घि' संज्ञाके कारण "घेर्ङिति ७।३।१११/२४५" इससे गुण प्राप्त हुआ, परन्तु (*वृद्ध्यौत्त्व०) वृद्धि, औत्त्व, तृज्वद्भाव, गुण इनके परत्व होनेके कारण जो नुम्को बाध आताहो तो पूर्व विप्रतिषेध करके 'नुम्' ही कार्य करना चाहिये, (* वा० ४३७३) इस कारण गुण न होते नुम् हुआ, वारि+ङे–वारिणे। वारि+ङस्–वारिणः । वारि + ओस्–वारिणोः * ॥

(नुमचिरेति नुट्) 'आम्' प्रत्ययमें परत्वसे "इकोचि०" इससे नुम् प्राप्त हुआ तो सही परन्तु "नुमचिरतृज्वद्भावे० ८।२।२४/२८०" इस वार्तिकसे नुट् वारि + नाम् ऐसी स्थिति होते "नामि ६।४।३/२०७" इससे दीर्घ हुआ, और "अट्कुप्वाङ्० ८।४।२" से णत्व हुआ वारीणाम् * ॥

आगे वारि+ङि=वारिणि । वारि+ओस्=वारिणोः । हलादि प्रत्ययमें हरिवत् रूप होंगे ।

वारि शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
सं०	हे वारे, हे वारि	हे वारिणी	हे वारीणि
द्वि०	वारि	वारिणी	वारीणि
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
च०	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पं०	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
ष०	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
स०	वारिणि	वारिणोः	वारिषु.

अनादि शब्द–

३२१ तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य । ७ । १ । ७४ ॥

प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद्वा स्याट्टादावचि । अनादये । अनादिने । इत्यादि । शेषं वारिवत् ॥ पीलुर्वृक्षस्तत्फलं पीलु, तस्मै पीलुने। अत्र न पुंवत् । प्रवृत्तिनिमित्तभेदात् ॥

३२१–जो शब्द पुँल्लिंगमें भी आताहै ऐसे नपुंसक शब्दको भाषितपुंस्क कहतेहैं, शब्दका प्रयोग करनेके निमित्त कहनेसे उसकी शक्ति समझनी चाहिये वह यह कि जो उसका एक ही अर्थ हो तो 'टा' आदि अजादि प्रत्यय परे रहते भाषितपुंस्क जो इगन्त नपुंसक अंग उसके रूप विकल्प करके पुंवत् होतेहैं । ("इकोऽचि विभ०" से 'अच्' की अनुवृत्ति आतीहै) । अनादि+ङे–अनादये, अनादिने । शेष रूप वारि शब्दके समान ।

नपुंसक 'अनादि' शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अनादि	अनादिनी	अनादीनि
सं०	हे अनादे, हे अनादि	हे अनादिनी	हे अनादीनि
द्वि०	अनादि	अनादिनी	अनादीनि
तृ०	अनादिना	अनादिभ्याम्	अनादिभिः
च०	अनादये, अनादिने	अनादिभ्याम्	अनादिभ्यः
पं०	अनादेः, अनादिनः	अनादिभ्याम्	अनादिभ्यः
ष०	अनादेः, अनादिनः	अनाद्योः, अनादिनोः	अनादीनाम्
स०	अनादौ, अनादिनि	अनाद्योः, अनादिनोः	अनादिषु.

पीलु (भिही) शब्द–

'पीलु' इस शब्दके वृक्ष और फल यह दो अर्थ हैं, उनमेसे वृक्ष अर्थमें पुँल्लिंग और फल अर्थमें नपुंसक लिया है, इसको पुंवद्भाव नहीं होता, कारण कि, इस शब्दके, प्रवृत्तिनिमित्त पृथक्पृथक् हैं एक वृक्ष और दूसरा फल, 'पीलु' फल इस नपुंसक शब्दकी चतुर्थीमें 'पीलुने' वारि शब्दके समान होताहै । शेष रूप भी वारि शब्दके समान जानना ।

–ताङ्गस्य" यह निषेध प्राप्त होकर उस लुप्त सुका प्रत्ययलक्षण ही जातारहताहै, जब प्रत्ययलक्षण ही नहीं अर्थात् आगे सु नहीं तो "न ङिसम्बुद्ध्योः" इसकी प्राप्ति ही नहीं, तो यह समाधान ठीक नहीं हुआ, सारांश यह कि 'अच्' ग्रहण व्यर्थ सा दीखताहै, इससे सूत्रकारका आशय ऐसा दीखताहै कि "न लुमताङ्गस्य" यह निषेध नित्य नहीं, इसको कभी २ बाध आताहै और जब इसको बाध आया तब "न ङिसम्बुद्ध्योः" इसकी प्राप्ति होकर नकार रहजायगा, उसकी निवृत्तिके निमित्त सूत्रमें 'अचि' यह पद डालदियाहै, इससे "न लुमताङ्गस्य" इस निषेधका अनित्यत्व अर्थात् विकल्प सिद्ध है, इस कारण जब "न लुमतांगस्य" इसका नित्यत्व स्वीकार करैं तब सम्बुद्धिमें वारिके परे 'सु' न होनेसे "ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८/२४२" यह सूत्र प्राप्त नहीं, इससे गुण न होते 'हे वारि' ऐसा ही रूप रहा, जब अनित्यत्व स्वीकार करैं, तब प्रत्ययलक्षण करके आगे 'सु' होनेसे गुण होकर 'हे वारे' ऐसा रूप हुआ । इस अनित्यत्वसे पीछे भी 'प्रियत्रि' और प्रियतिसृ ऐसे दो रूप 'प्रियत्रि' शब्दमें दिये हैं (३००) ॥

* "सख्युरसम्बुद्धौ ७।१।९२/२५३" इससे नपुंसक 'अतिसखि' शब्दको णिद्भाव करके वृद्धि प्राप्त रहते उसका बाध होकर नुम् होकर 'अतिसखीनि' ऐसा रूप हुआ, इस 'वारि' शब्दमें ही "अच्च घेः ७।३।११९/२४७" इससे औत्व प्राप्त रहते 'नुम्' से उसका बाध होकर 'वारि+ङि–वारिणि ऐसा रूप हुआ, 'प्रियक्रोष्टु' इसमें तृज्वद्भावका बाध होकर 'नुम्' प्रियक्रोष्टु+इ–प्रियक्रोष्टूनि, "घेर्ङिति" इससे गुण प्राप्त होने भी ऊपर प्रस्तुत सूत्रमें दिखाए हुएके अनुसार 'वारि' शब्दमें नुमसे उसका बाध होकर वारि+ङे–वारिणे हुआ ॥

* यद्यपि नुम् और नुट् इन दोनोंमें 'न्' यही मुख्य अंश रहनेसे कुछ भेद नहीं दीखता तथापि "मिदचोन्त्यात्परः १।१।४७/३७" इससे नुम् (न्) यह वारिमेंके अन्त्य अच्के आगे आकर उसीका अन्तावयव होताहै, इस कारण 'वारिन्, यह अंग और उसके आगे आम् यह प्रत्यय ऐसा होनेके कारणसे "नामि" यह सूत्र नहीं [illegible], इस कारण नुम्का प्रथमहीसे बाध करके "ह्रस्वनद्यापो नुट् [illegible]" इसमें 'आम्' प्रत्ययको ही नुट् (न्) करनेसे टित्वके कारण [illegible] उस प्रत्ययका ही वह आद्य अवयव होकर 'नाम्' [illegible] "नामि" इस सूत्रको अवकाश मिलकर [illegible]

दधि (दही) शब्द–

३२२ अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः । ७ । १ । ७५ ॥

एषामनङ् स्याट्टादावचि स चोदात्तः । अल्लोपोनः । दध्ना । दध्ने । दध्नः । दध्नोः २ । दध्नि । दधनि । शेषं वारिवत् । एवमस्थिसक्थ्यक्षि । तदन्तस्याप्यनङ् । अतिदध्ना ॥ सुधि । सुधिनी । सुधीनि । हे सुधे । हे सुधि । सुधिया। सुधिना ॥ प्रध्या । प्रधिना ॥ मधु । मधुनी । मधूनि । हे मधो । हे मधु । एवमम्वादयः ॥ सानुशब्दस्य स्नुर्वा । स्नूनि । सानूनि ॥ प्रियक्रोष्टु। प्रियक्रोष्टुनी । तृज्वद्भावात्पूर्वविप्रतिषेधेन नुम् । प्रियक्रोष्टूनि । टादौ पुंवत्पक्षे प्रियक्रोष्ट्रा । प्रियक्रोष्टुना । प्रियक्रोष्ट्रे । प्रियक्रोष्टवे । अन्यत्र तृज्वद्भावात्पूर्वविप्रतिषेधेन नुमेव । प्रियक्रोष्टुना । प्रियक्रोष्टुने । नुमचिरेति नुट् । प्रियक्रोष्टूनाम् ॥ सुलु । सुलुनी । सुलूनि । पुनस्तद्वत् । सुल्वा । सुलुना ॥ धातृ । धातृणी । धातॄणि । हे धातः। हे धातृ । धात्रा । धातृणा । एवं ज्ञातृकर्त्रादयः॥

३२२–टादिकोंमेंके अजादि प्रत्यय परे रहते, अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि, इनको 'अनङ्' (अन्) आदेश होताहै और वह उदात्त होताहै । ("इकोऽचि० ३२०" "तृतीयादिषु० ३२१" इन सूत्रोंसे अच् और तृतीयादि इनकी अनुवृत्ति होतीहै) । दध्+अन्+टा (आ) इस परसे दधन्+आ ऐसी स्थिति हुई, तब "अल्लोऽपोनः $\frac{६।४।१३४}{२३४}$" इससे नकारके पूर्वके अकारका लोप हुआ, तब दध्ना । दधि+ङे=दध्ने । दधि+ङसि=दध्नः । दधि+ङस्=दध्नः । दध्नोः । दध्नोः । दध्नाम् । दधि+ङि=यहां "विभाषा ङिश्योः $\frac{६।४।१३६}{२३७}$" इससे ङि परे रहते अन् इसमें विकल्पसे अल्लोप होगा, तब दध्नि, दधनि । शेष रूप वारि शब्दके समान जानना ।

दधि शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	दधि	दधिनी	दधीनि
सं०	हे दधे, हे दधि	हे दधिनी	हे दधीनि
द्वि०	दधि	दधिनी	दधीनि
तृ०	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
च०	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
पं०	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
ष०	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
स०	दध्नि, दधनि	दध्नोः	दधिषु

इसी प्रकार अस्थि (हड्डी), सक्थि (जांघ), अक्षि (आंख), इन शब्दोंके रूप जानो ।

(तदन्तस्यापि अनङ्) 'अस्थिदधि०' इस प्रस्तुत सूत्रको अंगाधिकारमें कहेजानेके कारण तदन्तको भी 'अनङ्' होताहै, 'अतिदधि' शब्द लियाजाय तो अतिदध्ना इत्यादि दधि शब्दके समान रूप होंगे, यह शब्द अन्य लिंगमें हो तो भी 'अनङ्' होताहै ॥

सुधी शब्द–

"ह्रस्वो नपुंसके०" इससे ह्रस्व, सुधि+सु=सुधि । सुधि+औ=सुधिनी । सुधि+जस्=सुधीनि । सुधि+सु=हे सुधे, हे सुधि । पुंवद्भावमें दीर्घत्वके कारण "न भूसुधियोः" इससे यण्निषेध, "अचि श्नु० $\frac{६।४।७७}{२७१}$" इसकी प्रवृत्ति होकर 'इयङ्', 'ना' भाव नहीं । सुधी+टा=सुधिया, सुधिना । सुधि+आम्=सुधियाम्, सुधीनाम् ।

नपुंसक सुधी शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
सं०	हे सुधे, हे सुधि	हे सुधिनी	हे सुधीनि
द्वि०	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
तृ०	सुधिया, सुधिना	सुधिभ्याम्	सुधिभिः
च०	सुधिये, सुधिने	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
पं०	सुधियः, सुधिनः	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
ष०	सुधियः, सुधिनः	सुधियोः, सुधिनोः	सुधियाम्, सुधीनाम्
स०	सुधियि, सुधिनि	सुधिनोः, सुधियोः	सुधिषु. *

इसी प्रकार 'प्रधी' शब्दके पुंवद्भावमें दीर्घान्तत्व होनेके कारण "एरनेकाचः० $\frac{६।४।८२}{२७२}$" इससे यण् हुआ, प्रधि+टा–प्रध्या, प्रधिना ॥

नपुंसक प्रधी शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रधि	प्रधिनी	प्रधीनि
सं०	हे प्रधे,हे प्रधि	हे प्रधिनी	हे प्रधीनि
द्वि०	प्रधि	प्रधिनी	प्रधीनि
तृ०	प्रध्या, प्रधिना	प्रधिभ्याम्	प्रधिभिः
च०	प्रध्ये, प्रधिने	प्रधिभ्याम्	प्रधिभ्यः
पं०	प्रध्यः, प्रधिनः	प्रधिभ्याम्	प्रधिभ्यः
ष०	प्रध्यः, प्रधिनः	प्रध्योः, प्रधिनोः	प्रध्याम्, प्रधीनाम्
स०	प्रध्यि, प्रधिनि	प्रध्योः, प्रधिनोः	प्रधिषु.

मधु (शहत) शब्द–वारिवत् जानना ।

मधु+सु=मधु । मधु+औ=मधुनी । मधु+जस्=मधूनि । हे मधु+सु=हे मधो, हे मधु * ॥

* पुंवद्भावमें दीर्घत्वके कारण वृत्तिकारके मतसे नदीत्व प्राप्त होगा ऐसा न मानना, कारण कि, यहां केवल पुंवद्रूपका ही अतिदेश है, नदीत्वके कहनेसे स्त्रीत्वका अंग आताहै, इस कारण उसका ग्रहण यहां नहीं होसकता ॥

* यहां "तृतीयादिषु०" इससे पुंवद्भाव नहीं होता, कारण कि 'मधु' (मधु शब्द मद्य और पुष्परसमें नपुसक है) "मधुर्वसन्ते चैत्रे च" (बसन्त और चैत्र अर्थमें मधुशब्द पुंल्लिङ्ग है) इससे पुंल्लिङ्ग और नपुंसकमें प्रवृत्तिनिमित्त भिन्न २ होगया, एक नहीं रहा ॥

मधु शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	मधु	मधुनी	मधूनि
सं०	हे मधो, हे मधु	हे मधुनी	हे मधूनि
द्वि०	मधु	मधुनी	मधूनि
तृ०	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
च०	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
पं०	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
ष०	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
स०	मधुनि	मधुनोः	मधुषु.

इसी प्रकारसे अम्बु (जल) आदिशब्दोंके रूप जानो ।

" मांसपृतनासानूनां मांस्पृत्स्नवो वाच्याः *(सि० २०५)" से शसादिविभक्ति परे रहते सानु (पर्वतकी चोटी) इस शब्दको विकल्पसे स्नु आदेश होताहै, सानु+जस्=स्नूनि, सानूनि ।

सानु शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सानु	सानुनी	सानूनि
सं०	हे सानो, हे सानु	हे. सानुनी	हे सानूनि
द्वि०	सानु	सानुनी	स्नूनि, सानूनि
तृ०	स्नुना, सानुना	स्नुभ्याम्, सानुभ्याम्	स्नुभिः, सानुभिः
च०	स्नुने, सानुने	स्नुभ्याम्, सानुभ्याम्	स्नुभ्यः, सानुभ्यः
पं०	स्नुनः, सानुनः	स्नुभ्याम्, सानुभ्याम्	स्नुभ्यः, सानुभ्यः
ष०	स्नुनः, सानुनः	स्नुनोः, सानुनोः	स्नूनाम्, सानूनाम्
स०	स्नुनि, सानुनि	स्नुनोः, सानुनोः	स्नुषु, सानुषु.

प्रियक्रोष्टु शब्द--

प्रियक्रोष्टु । प्रियक्रोष्टुनी । " तृज्वत्क्रोष्टुः ७।१।९५/२७४ " इससे सर्वनामस्थानमें क्रोष्टृ आदेश प्राप्त हुआ, परन्तु " तज्व् ... ३२० " इसमें दिये "वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भाव० " इस वार्तिकसे पूर्वविप्रतिषेधसे नुम्, प्रियक्रोष्टु+इ=प्रियक्रोष्टूनि "विभाषा तृतीयादिष्वचि ७।१।९७/२७८" इससे विकल्प करके तृज्वद्भाव, प्रियक्रोष्ट्रा, 'ना' भाव प्रियक्रोष्टुना, नपुंसकमें भी प्रियक्रोष्टुना मिलकर तृतीयाके दो रूप होंगे । चतुर्थीमें प्रियक्रोष्ट्रे, प्रियक्रोष्टवे । (अन्यत्रेति) अन्यत्र अर्थात् नपुंसकमें भी विकल्पसे तृज्वद्भावप्राप्ति है तो सही परन्तु " वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भाव०"(३२०) इस वार्तिकसे पूर्वविप्रतिषेध करके " इकोचि० " इससे नुम् यह एकही कार्य होगा, प्रियक्रोष्टुने । आम्प्रत्ययमें परत्वसे नुम्की प्राप्ति तो है "नुमचिर० २८०" इस वार्तिकसे नुट्, प्रियक्रोष्टूनाम् यह एकही रूप होगा ।

नपुंसक प्रियक्रोष्टु शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	ब०
प्र०	प्रियक्रोष्टु	प्रियक्रोष्टुनी	प्रियक्रोष्टूनि
सं०	हे प्रियक्रोष्टो, हे प्रियक्रोष्टु	हे प्रियक्रोष्टुनी	हे प्रियक्रोष्टूनि
द्वि०	प्रियक्रोष्टु	प्रियक्रोष्टुनी	प्रियक्रोष्टूनि
तृ०	प्रियक्रोष्ट्रा, प्रियक्रोष्टुना	प्रियक्रोष्टुभ्याम्	प्रियक्रोष्टुभिः
च०	प्रियक्रोष्ट्रे, प्रियक्रोष्टवे, प्रियक्रोष्टुने	प्रियक्रोष्टुभ्याम्	प्रियक्रोष्टुभ्यः
पं०	प्रियक्रोष्टुः, प्रियक्रोष्टोः, प्रियक्रोष्टुनः	प्रियक्रोष्टुभ्याम्	प्रियक्रोष्टुभ्यः
ष०	प्रियक्रोष्टुः, प्रियक्रोष्टोः, प्रियक्रोष्टुनः	प्रियक्रोष्ट्रोः, प्रियक्रोष्टोः, प्रियक्रोष्टुनोः	प्रियक्रोष्टूनाम्
स०	प्रियक्रोष्टरि, प्रियक्रोष्टौ, प्रियक्रोष्टुनि	प्रियक्रोष्ट्रोः, प्रियक्रोष्टोः, प्रियक्रोष्टुनोः	प्रियक्रोष्टुषु.

सुलू शब्द–

ह्रस्व, सुलु । सुलुनी । सुलूनि । फिर द्वितीयामें इसी प्रकार। पुंवद्भाव पक्षमें सुलू + टा=सुल्वा, विकल्पमें सुलु + टा= सुलुना । इत्यादि रूप नपुंसक प्रधीकी समान * ॥

धातृ शब्द–

धातृ + सु=धातृ । धातृ + औ=धातृणी । धातृ + जस्= धातॄणि । सम्बुद्धिमें " न लुमताङ्गस्य" इस सूत्रके अनित्यत्वके कारण विकल्पकरके पूर्ववत् गुण, हे धातः, हे धातृ 'धारण करना' 'पोषण करना' यह अर्थ पुन्नपुंसकमें एकही है, इससे तृतीयादिमें भाषितपुंस्कत्वके कारण विकल्पसे पुंवद्भाव, धातृ + टा=धात्रा, धातृणा ।

नपुंसक धातृ शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	धातृ	धातृणी	धातॄणि
सं०	हे धातः, हे धातृ	हे धातृणी	हे धातॄणि
द्वि०	धातृ	धातृणी	धातॄणि
तृ०	धात्रा, धातृणा	धातृभ्याम्	धातृभिः
च०	धात्रे, धातृणे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पं०	धातुः, धातृणः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
ष०	धातुः, धातृणः	धात्रोः, धातृणोः	धातॄणाम्
स०	धातरि, धातृणि	धात्रोः, धातृणोः	धातृषु.

इसी प्रकारसे ज्ञातृ, कर्तृ, इत्यादि शब्दोंके रूप जानो ।

प्रद्यो शब्द–

'प्रकृष्टा द्यौः यस्मिन् तत्' (विस्तीर्ण है आकाश जिसमें सो) " ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७/३१८ " इससे ह्रस्व, परन्तु–

३२३ एच इग्घ्रस्वादेशे । १ । १ । ४८॥

आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु एच इगेव स्यात् । प्रद्यु । प्रद्युनी । प्रद्यूनि । प्रद्युनेत्यादि । इह न पुंवत् । यदिगन्तं प्रद्यु इति तस्य भाषितपुंस्कत्वाभावात् । एवमग्रेऽपि । प्ररि । प्ररिणी । प्ररीणि । प्ररिणा । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद्रायो हलीत्यात्वम् । प्रराभ्याम् । प्रराभिः । नुमचिरेति नुट्यात्वे प्र-

* यहां 'सुन्दर काटना' यह अर्थ पुंनपुंसकमें एक ही है, इस कारण 'सुलु' यह भाषितपुंस्क है ॥

राणामिति माधवः । वस्तुतस्तु संनिपातपरिभाषया नुटयात्वं न । नामीति दीर्घस्त्वारम्भसामर्थ्यात्परिभाषां बाधत इत्युक्तम् । प्रराणाम् । सुनु । सुनुनी । सुनूनि । सुनुना । सुनुने । इत्यादि ॥

॥ इत्यजन्ता नपुंसकलिंगाः ॥

३२३–जब 'ह्रस्व आदेश होताहै' ऐसा कहा हो तो वहां एच् के स्थानमें इक् यही ह्रस्व आदेश होतेहैं, इस कारण ओकारके स्थानमें उकार, प्रद्यु + सु=प्रद्यु । प्रद्यु + औ=प्रद्युनी । प्रद्यु + जस्=प्रद्यूनि । प्रद्यु + ङे=प्रद्युने, यहां पुंवद्भाव नहीं कारण कि नपुंसकमें 'प्रद्यु' शब्द इगन्त है, परन्तु पुँल्लिंगमें 'प्रद्यो' इसमें इगन्तत्व नहीं, इस कारण यहां भाषितपुंस्कत्व नहीं, अर्थात् 'मधु' शब्दकी समान रूप होंगे *॥

इसी प्रकार अगले शब्दोंमें जानना चाहिये, 'प्रकृष्टो राः यस्य तत्' ऐसा विग्रह होते 'प्ररै' इसमें ह्रस्व करके 'प्ररि' रूप होकर प्ररि+सु=प्ररि । प्ररि + औ=प्ररिणी । प्ररि+जस्=प्ररीणि । प्ररि + टा=प्ररिणा ।

(एकदेशेति) अंशतः विकार पायाहुआ शब्द पृथक् नहीं होता इस कारण "रायो हलि ७।२।८५/२८६" इस सूत्रसे आगे हलादि विभक्ति होते आत्व हुआ, प्रराभ्याम् । प्रराभिः ।

(नुमचि०) वारिशब्दमें कहे अनुसार नुम्का बाध करके नुट्, परन्तु नुट्के कारण 'नाम्' ऐसा प्रत्ययका रूप बनकर उसके हलादित्वके कारण प्ररिशब्दको आत्व करके 'प्रराणाम्' ऐसा रूप कहना चाहिये, ऐसा माधवका मत है ।

(वस्तुत इति) वास्तविक बात यह है कि, नुट् होनेके अनन्तर सन्निपातपरिभाषाके कारण आत्व नहीं, (नामीति) नाम् आगे रहते जो अन्यत्र दीर्घ होताहै वहां सन्निपातपरिभाषा प्राप्त नहीं होती कारण कि, सन्निपातपरिभाषा लाईजाय तो "नामि ६।४।३/२०९" इस सूत्रको कुछ भी अवकाश नहीं रहेगा, ऐसा पीछे (२०९ में) कहाहुआ ठीक ही है, वैसा यहां नहीं यहां, दीर्घत्वकी कुछ चर्चा नहीं है आत्वके विषयमें है और आत्वको तो अन्यत्र अर्थात् प्रराभ्याम् इत्यादि स्थानोंमें अवकाश है ही, इससे सन्निपातपरिभाषा बिगाडनेका कोई कारण नहीं ।

'सुष्ठु नौः यस्मिन् तत्' ऐसा विग्रह होते सुनौ इसको ह्रस्व करके सुनुशब्द–सुनो+सु=सुनु । सुनु+औ=सुनुनी । सुनु+जस्=सुनूनि । सुनु+टा=सुनुना । सुनु+ङे=सुनुने इत्यादि मधुवत् ।

इति अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

---

* सुधि इत्यादि शब्दोंमें मूलके सुधी इत्यादि दीर्घान्तशब्द भी इगन्त ही हैं, इस कारण भाषितपुंस्कत्व ठीक ही है, परन्तु यहां प्रद्यो शब्द इगन्त नहीं इस कारण भाषितपुंस्कत्व नहीं ॥

अथ हलन्ताः पुँल्लिंगाः ।

हकारान्त लिह् (चाटनेवाला) शब्द–

यह क्विबन्त शब्द है लिह्+सु ऐसी स्थिति होते–

३२४ हो ढः । ८ । २ । ३१ ॥

हस्य ढः स्याज्झलि पदान्ते च । हल्ङ्याब्भ्यिति सुलोपः । पदान्तत्वाद्धस्य ढः । जश्त्वचर्त्वे । लिट् । लिड् । लिहौ । लिहः । लिहम् । लिहौ । लिहः । लिहा । लिड्भ्याम् । लिट्त्सु । लिट्सु ॥

३२४–हकारको आगे झल् रहते और पदान्तमें ढकार होताहै । (यहां "झलो झलि ८ । २ । २६" "पदस्य ८।१।१६/४०१" "स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२।२९/३८०" इनसे 'झल्,' 'पद' और 'अन्त' इन पदोंकी अनुवृत्ति होतीहै) लिह्+स् इसमें "हल्ङ्या० ६।१।६८/२५९" इससे सुलोप होकर लिह् ऐसा पद रहगया, फिर पदान्त हकारको त्रिपादीके प्रस्तुत सूत्रसे ढत्व हुआ तो 'लिढ्' ऐसी स्थिति हुई, फिर "झलाञ्जशोऽन्ते ८।२।३९/८४" इससे ढकारको डकार और "वावसने ८।४।५६/२७६" इससे विकल्प करके चर्त्वसे ढकार हुआ, लिट्, लिड् । लिह्+औ=लिहौ । लिह्+जस्=लिहः । लिह्+अम्=लिहम् । लिह्+औ=लिहौ । लिह्+शस्=लिहः । लिह्+टा=लिहा । लिह्+भ्याम्=ऐसी स्थिति होते पदान्त होनेसे पूर्ववत् ढकार होकर डकार, लिड्भ्याम् । लिह्+सु=यहां भी पूर्ववत् लिड्+सु–ऐसी स्थिति होनेपर "ड्ः सि धुट् ८।३।२९/१३१" "खरि च ८।४।५५/१२१" से लिट्त्सु । यहां 'चयो० १३०' से 'त्' और 'ट्' को थ् और ठ २९४ में लिखेके अनुसार नहीं होते । और दूसरे पक्षमें लिट्सु ।

लिह् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	लिट्, लिड्	लिहौ	लिहः
सं०	हे लिट्, हे लिड्	हे लिहौ	हे लिहः
द्वि०	लिहम्	लिहौ	लिहः
तृ०	लिहा	लिड्भ्याम्	लिड्भिः
च०	लिहे	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः
पं०	लिहः	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः
ष०	लिहः	लिहोः	लिहाम्
स०	लिहि	लिहोः	लिट्त्सु, लिट्सु,

दुह् (दूध दूहनेवाला) यह क्विबन्त शब्द है–

३२५ दादेर्धातोर्घः । ८ । २ । ३२ ॥

उपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः स्याज्झलि पदान्ते च । उपदेशे किम् । अधोगित्यत्र यथा स्यात् । दामलिहमात्मानमिच्छति दामलिह्यति । ततः क्विपि दामलिट् । अत्र मा भूत् ॥

३२५–उपदेश (धातुपाठ) में जो दकारादि ऐसे हकारान्त (अर्थात् दकार जिनके आदिमें और हकार अन्तमें) धातु हैं उनके हकारके स्थानमें आगे झल् रहते और पदान्तमें घकार होताहै । (इस सूत्रमें 'धातोः' इसकी आवृत्ति होतीहै

इससे एक 'धातु' शब्द धातुपरक रहताहै और दूसरा उपदेशपरक होताहै) दुह्+स् इसमें दुह् पश्चात् दुघ् ऐसी स्थिति हुई ।

(उपदेशे किम्) उपदेशमें दादि ऐसा क्यों कहा ? तो (अधोक्०) अदोह्, यद्यपि इसके आदिमें दकार नहीं है, तो भी धातुपाठमें उसका मूलधातु दुह्, ऐसा दियाहुआहै, इससे ह्के स्थानमें घकार होकर अधोक्(दूध दुह लिया) ऐसा रूप होनेके निमित्त अर्थात् उपदेश कहनेसे यहां दादि न होनेसे भी सूत्रकी प्रवृत्ति होकर 'अव्याप्ति' (मुख्य उदाहरणमें प्रवृत्ति न होनी) दोष न हुआ (२४३५) उसी प्रकार (दामलिहम्०) ~~समलिह्~~ (रज्जु चाटनेवाला) उसकी इच्छा करताहै ऐसे अर्थमें 'दामलिह्यति' ऐसा जो क्रियापद उसमें 'दामलिह्य' धातुके आगे क्विप् (०) होकर उसी क्विप्के कारण (सि० २७० में कुमारी शब्दके समान) अकार, यकार मिटकर 'दामलिह्' ऐसा जो शब्द बनताहै, वह दादि भी है और हकारान्त भी है, परन्तु उपदेशमें यह दामलिह् धातु नहीं है, इसलिये उसको घत्व न हुआ अर्थात् उपदेश कहनेसे यहां दादि होनेपर भी सूत्रकी प्रवृत्ति न होकर 'अतिव्याप्ति' (जो उदाहरण नहीं है उसमें प्रवृत्त होना) दोष न हुआ, पूर्वसूत्रसे ढत्व ही होकर 'दामलिट्' ऐसाही रूप बना, इसलिये उपदेशमें ऐसा कहाहै । अस्तु । 'दुह्' शब्दकी 'दुघ्' ऐसी स्थिति होनेपर-

३२६ एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः । ८ । २ । ३७ ॥

धातोरवयवो य एकाच् झषन्तस्तदवयवस्य बशः स्थाने भष् स्यात्सकारे ध्वशब्दे पदान्ते च। एकाचो धातोरिति सामानाधिकरण्येनान्वये तु इह न स्यात् । गर्दभमाचष्टे गर्दभयति । ततः क्विप्, णिलोपो गर्द्धप् । झलीति निवृत्तम् । स्ध्वोर्ग्रहणसामर्थ्यात् । तेनेह न । दुग्धम् । दोग्धा । व्यपदेशिवद्भावेन धात्ववयवत्वाद्भष्भावः । जश्त्वचर्त्वे । धुक् । धुग् । दुहौ । दुहः । षत्वचर्त्वे । धुक्षु ॥

३२६-झषन्त होते एकाच् भी हो ऐसा धातुका जो अवयव उसमें बश् (ब ग् ड् द्) वर्ण हो तो उस बश्के स्थानमें भष् होताहै, आगे सकार अथवा ध्वशब्द होते और पदान्तमें । 'धुघ्' ऐसी स्थिति हुई । (एकाचः धातोः इति) 'एकाच्धातुका अवयव' ऐसे सामानाधिकरण्यसे (अर्थात् एकाच् और धातु इन दोनोंका एकही विषय लेकर) अन्वय लगायाजाय तो दोष होगा। देखो-गर्दभको बोलताहै इस अर्थमें 'गर्दभयति' यह क्रियापद है, इसमेंके 'गर्दभि' धातुके परे क्विप्, णिलोप होकर 'गर्दभ्' ऐसा जो धातुशब्द बनताहै, एकाच् न होनेके कारण उसके प्रथमाका रूप 'गर्धप्' ऐसा इस अन्वयके अनुसार नहीं होसकेगा, परन्तु उसका होना तो आवश्यक है, इसलिये ऊपर कहेहुएके समान वैयधिकरण्यसे अन्वय करना चाहिये ।

(झलि इति निवृत्तं स्ध्वोः ग्रहणसामर्थ्यात् तेन इह न । दुग्धम् । दोग्धा) 'सकार, ध्व शब्द आगे रहते' ऐसा जो सूत्रमें नया उच्चारण कियागया है इससे 'झल् आगे रहते' यह अर्थ यहां प्राप्त नहीं है इसलिये 'दुघ्+तम्' दोघ्+ता' इनमें यद्यपि आगे झल् है तो भी वह झल् सकार अथवा 'ध्व' शब्द नहीं हैं, इस कारण दकारके स्थानमें धकार नहीं होता, 'दुग्धम्' (दूध) 'दोग्धा' (दूध दुहनेवाला) ऐसेही रूप होतेहैं । यह रूप 'दुह्' धातुके हैं तथापि इनकी सिद्धिका यहां प्रयोजन नहीं है, इसलिये वे रूप यहां नहीं दियेहैं, आगे समझमें आजायंगे ॥

(व्यपदेशिवद्भावेन धात्ववयवत्वाद् भष्भावः) 'व्यपदेशिवत् एकस्मिन्' एक (असहाय) में (व्यपदेश अर्थात् मुख्यव्यवहार, वह है इसको इसलिये व्यपदेशी; उसके समान अर्थात् एकही वस्तु हो तो अवयव भी वही और मुख्यवस्तु भी वही) ऐसी परिभाषा है इसलिये 'दुह्' को धातुत्व है और धात्ववयवत्व भी प्राप्त होताहै, इस कारण सूत्रसे दुह्के स्थानमें धुघ् ऐसी स्थिति होकर "झलां जशोऽन्ते" और "वावसाने" इनके अनुसार जश्त्व और चर्त्व हुआ, धुक्, धुग् । दुहौ । दुहः । धुघ्+स् ऐसी स्थिति होते, (षत्वचर्त्वे) "आदेशप्रत्यययोः $\frac{८।३।५९}{२१२}$" इससे सकारको षत्व और "खरि च $\frac{८।४।५५}{२२१}$" इससे घकारको चर्त्व, धुक्षु ।

दुह् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	धुक्, धुग्	दुहौ	दुहः
सं०	हे धुक्, हे धुग्	हे दुहौ	हे दुहः
द्वि०	दुहम्	दुहौ	दुहः
तृ०	दुहा	धुग्भ्याम्	धुग्भिः
च०	दुहे	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
पं०	दुहः	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
ष०	दुहः	दुहोः	दुहाम्
स०	दुहि	दुहोः	धुक्षु.

द्रुह् (द्रोह करनेवाला) शब्द-

३२७ वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् । ८ । २ । ३३ ॥

एषां हस्य वा घः स्याज्झलि पदान्ते च । पक्षे ढः । ध्रुक् । ध्रुग् । ध्रुट् । ध्रुड् । द्रुहौ । द्रुहः । ध्रुग्भ्याम् । ध्रुड्भ्याम् । ध्रुक्षु । ध्रुट्त्सु । ध्रुट्सु । एवं मुहष्णुहष्णिहाम् ॥

३२७-झल् आगे रहते और पदान्तमें द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह्, इनके हकारके स्थानमें विकल्प करके घ् होताहै । (पक्षे ढः) अन्य पक्षमें प्रथम सूत्रसे ढकार, इसलिये ध्रुक्, ध्रुग् । ध्रुट्, ध्रुड् । द्रुहौ । द्रुहः । ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम् । ध्रुक्षु, ध्रुट्त्सु, ध्रुट्सु ॥

द्रुह शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड्	द्रुहौ	द्रुहः
सं०	हे ध्रुक्, हे ध्रुग्, हे ध्रुट्, हे ध्रुड्	हे द्रुहौ	हे द्रुहः
द्वि०	द्रुहम्	द्रुहौ	द्रुहः

तृ०	द्रुहा	ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भिः, ध्रुड्भिः
च०	द्रुहे	ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भ्यः, ध्रुड्भ्यः
पं०	द्रुहः	ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भ्यः, ध्रुड्भ्यः
ष०	द्रुहः	द्रुहोः	द्रुहाम्
स०	द्रुहि	द्रुहोः	ध्रुक्षु, ध्रुट्त्सु, ध्रुट्सु.

(एवं मुहष्णुहष्णिहाम्) इसी प्रकारसे मुह् (मूढ), स्नुह् (उकार देनेवाला), स्निह् (मित्र) यह शब्द होतेहैं । इनमें दकारादित्व नहीं इसलिये भष्भावमात्र नहीं । मुक्, मुग । मुट्, मुड् । मुहौ । मुहः । मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम् । मुक्षु; मुट्त्सु, मुट्सु * ॥

विश्ववाह् (ईश्वर) शब्द । इसका कार्य समझनेके लिये अगला सूत्र-

३२८ इग्यणः संप्रसारणम् ।१।१।४५॥

यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स संप्रसारणसंज्ञः स्यात् ॥

३२८-यण् (य व र ल) के स्थानमें जो इक् (इ उ ऋ ऌ) हुआ करताहै उसकी संप्रसारण संज्ञा है ॥

३२९ वाह ऊठ् । ६ । ४ । १३२ ॥

भस्य वाहः संप्रसारणमूठ् स्यात् ॥

३२९-वाह् शब्द भसंज्ञक हो तो (अर्थात् असर्वनाम स्थान अजादि वा यादि स्वादि प्रत्यय आगे हों तो) उसमेंके वकारको संप्रसारण होताहै, परन्तु के स्थानमें संप्रसारण कहनेसे पूर्व सूत्रसे ह्रस्व ' उ ' होना चाहिये था वह न होते प्रस्तुत सूत्रसे ऊठ् (ऊ दीर्घ) होताहै अङ्गाधिकारके कारण तदन्त (वह है अन्तमें जिसके उस) को भी । इस लिये आगे शस् प्रत्यय रहते विश्व ऊ + आह्=अस् ऐसी स्थिति हुई । परन्तु-

* इनमेंके स्नुह् और स्निह् धातु. धातुपाठमें ष्णुह् और ष्णिह् इन रूपोंसे दिये हुए हैं तो भी "धात्वादे षः सः (६।१।६४ / २२६४)" इससे षकारके स्थानमें सकार हुआ और षकारके निमित्तसे उनमें नकारके स्थानमें णकार हुआहै, इसलिये षकारको सकारत्व प्राप्त होते ही ' निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायायः ' इस परिभाषासे णकारके स्थानमें मूलका नकार आकर स्नुह् और स्निह् ऐसे किबन्त शब्द होतेहैं ।

नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु ।
सकारजः शकारश्चे षाट्टवर्गस्तवर्गजः ॥

अर्थात् धातुके विषे झल् परे होते जो अनुस्वार अथवा वर्गीय (उसी वर्गका) पञ्चम वर्ण हो तो वह नकारजन्य है; अर्थात् वह पहिले नकार था ऐसा जानना चाहिये और चकार जिसके आगे हो ऐसा जो शकार उसको सकारजन्य जानो। वैसे ही रेफ और षकारके आगेका जो टवर्ग वर्ण, उसको तवर्गजन्य जानो, इस कारणसे षकारके आगेके नकारको णत्व प्राप्त हुआ था ।

१ यहां 'वसोः सम्प्रसारणम् ६।४।१३१ / ४६५' इससे सम्प्रसारणकी अनुवृत्ति होतीहै और वह ऊठ्का विशेषण होता है, इस कारण 'अलोऽन्त्यस्य ४२' इसकी प्रवृत्ति नहीं होती ॥

३३० संप्रसारणाच्च । ६ । १ । १०८ ॥

संप्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । एत्येधत्यूठ्सु । विश्वौहः । विश्वौहेत्यादि । छन्दस्येव ण्विरिति पक्षे णिजन्ताद्विच् ॥

३३०-संप्रसारणके आगे अच् आवे तो दोनोंके स्थानमें मिलकर पूर्वरूप एकादेश होताहै ("अमि पूर्वः ६।१।१०७ / १९४" " इको यणचि ६।१।७७ / ४७" इन सूत्रोंसे ' पूर्व' और 'अच्' इनकी अनुवृत्ति आतीहै और "एकः पूर्वपरयोः ६।१।८४ / ६८" इसका अधिकार होताहै) विश्व + ऊह्=अस् ऐसी स्थिति हुई तब "एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८९ / ७३" इससे वृद्धि आदेश होकर विश्वौहः । विश्वौहा । इत्यादि ।

(छन्दसि एव ण्विः इति पक्षे णिजन्तात् विच्) "वहश्च ३।२।६४ / ३४१०" अर्थात् वह धातुको कर्त्रर्थमें ण्वि (०) प्रत्यय होकर वाह् (बोझ उठानेवाला) ऐसा यह शब्द सिद्ध होताहै परन्तु इसके पहले "छन्दसि सहः ३।२।६३ / ३४०९" ऐसा जो सूत्र है, उसमेंसे 'छन्दसि' की अनुवृत्ति लाकर कोई २ कहतेहैं कि यह ण्वि (०) प्रत्यय वैदिक प्रयोगमात्रमें होताहै लौकिमें नहीं होता । उनका यह पक्ष स्वीकार किया जाय तो विश्ववाह् शब्दका प्रयोग लोकमें नहीं होसकेगा, परन्तु "हेतुमति च ३।१।२६ / २५७६" इससे वह् धातुसे प्रयोजकार्थमें णिच् प्रत्यय करके ' वाह् + इ' ऐसा जो रूप होताहै उसके आगे "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ६।२।७५ / २९८०" इससे विच् (०) प्रत्यय करके तब "णेरनिटि ६।४।५१ / २३१३" इससे णिलोप कर वाह् शब्द जो रहा उसीका ग्रहण करना उचित है । ऊठ् में ठकार " ऊडिदंपदादि० ६।१।१७१ / ३७१७ " इससे उदात्त स्वरके अर्थ है * ॥

विश्ववाह् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	विश्ववाट्-ड्	विश्ववाहौ	विश्ववाहः
सं०	हे विश्ववाट्-ड्	हे विश्ववाहौ	हे विश्ववाहः
द्वि०	विश्ववाहम्	विश्ववाहौ	विश्वौहः
तृ०	विश्वौहा	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भिः
च०	विश्वौहे	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्यः
पं०	विश्वौहः	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्यः
ष०	विश्वौहः	विश्वौहोः	विश्वौहाम्
स०	विश्वौहि	विश्वौहोः	विश्ववाट्त्सु-सु.

अनडुह् (बैल) शब्द-

* विच् प्रत्यय करनेसे शसादि प्रत्ययमें 'विश्वौहः' इत्यादि रूप नहीं बन सकते हैं क्यों? तो णिलोपके "अचः परस्मिन् १।१।५७" से स्थानिवद्भाव होनेसे इकारसे व्यवधान होजाय तो "वाह ऊठ् ६।४।१३२" इसकी प्रवृत्ति नहीं है ऐसा कोई कहते हैं सो ठीक नहीं, क्यों? तो 'क्वौ लुप्तं न स्थानिवत् (वा०)' इसमें क्वि पद विच्का भी उपलक्षक है तब उक्त वचनसे स्थानिवद्भावका निषेध होजायगा । वस्तुतः विचार करो तो "विभाषा पुरीषा०४।३।२४" इस सूत्रमें भाष्यकारने " प्रष्ठौह आगत प्रष्ठवाड्रूप्यम्" ऐसा प्रयोग दिखलाये हैं इस लिये क्वचित् लोकमें भी ण्विप्रत्यय हो ऐसी कल्पना करके यथास्थित प्रयोग बन सकताहै ॥

३३१ चतुरनडुहोरामुदात्तः ।७।१।९८॥

अनयोराम् स्यात्सर्वनामस्थाने स चोदात्तः॥

३३१-सर्वनामस्थान आगे रहते चतुर् (सि० ३३७) और अनडुह् शब्दोंको आम् (आ) यह उदात्त आगम होताहै ("इतोऽत्सर्वनामस्थाने ७।१।८६/३६६" से 'सर्वनाम-स्थान' की अनुवृत्ति होतीहै)। अनड्वाह् +स् ऐसी स्थिति हुई, तब-

३३२ सावनडुहः । ७ । १ । ८२ ॥

अस्य नुम् स्यात्सौ परे। आदित्यधिकारादवर्णात्परोयं नुम्। अतो विशेषविहितेनापि नुमाऽऽम्न बाध्यते। अमा च नुम्न बाध्यते। सोर्लोपः। नुम्विधिसामर्थ्याद्वसुस्रंस्विति दत्वं न। संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वान्नलोपो न। अनड्वान् ॥

३३२-सु परे रहते अनडुह् शब्दको नुम् (न्) का आगम होताहै। ("आच्छीनद्योर्नुम् ७।१।८०/४४५" से 'नुम्' की अनुवृत्ति होतीहै)। (आत् इति अधिकारात् इति)। "आच्छीनद्योर्नुम् ७।१।८०/४४५" इसमेंके आत् (अवर्णसे परे) का अधिकार होनेके कारण, अवर्णके आगे यह नुम् होताहै। और विशेष करके चाहे नुम्का विधान कियाहै तो भी उससे आम्का बाध नहीं होता। और अम् करके (सि० ३३७) नुम्का भी बाध नहीं होता। अनड्वान्+ह्+स् ऐसी स्थिति हुई (सोः लोपः) "हल्ङ्या० ६।१।६८/२५२" इससे सुलोप, "संयोगान्तस्य० ८।२।२३/२५४" इससे ह्लोप अनड्वान्। ऐसी स्थिति हुई।

(नुम्विधिसामर्थ्यात् वसुस्रंसु० इति दत्वं न) अगले (सि० ३३४) "वसुस्रंसु०" सूत्रसे नकारके स्थानमें दकार करनेसे प्रस्तुत सूत्रकरके नुम्कार्य व्यर्थ होजायगा इसलिये दकार नहीं।

(संयोगान्तलोपस्य असिद्धत्वात् नलोपो न) "संयोगान्त० ८।२।२३/५४" यह सूत्र त्रिपादीमेंका और पर है इसलिये असिद्ध है, इस कारण "न लोपः प्राति० ८।२।७/२३६" इस सूत्रसे नलोप नहीं, अनड्वान् ॥

३३३ अम् संबुद्धौ । ७। १ । ९६ ॥

चतुरनडुहोरम् स्यात्संबुद्धौ। आमोपवादः। हे अनड्वन्। अनड्वाहौ। अनड्वाहः। अनडुहा॥

३३३-संबुद्धि परे रहते चतुर् और अनडुह् शब्दोंको अम् (अ) का आगम होताहै। पूर्व सूत्रमेंके आम्का यह अपवाद है। अनड्वह्+स् ऐसी स्थिति हुई। "सावनडुहः" इससे नुम्। अनड्वन्हस् ऐसी स्थिति होकर पूर्ववत् सकार हकार जाकर हे अनड्वन्। अनड्वाहौ। अनड्वाहः। असर्व-नामस्थानमें कुछ विशेष न होनेसे अनडुहः। अनडुहा॥

३३४ वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः।८।२।७२॥

सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात्पदान्ते। अनडुद्भ्यामित्यादि। सान्तेति किम्। विद्वान्। पदान्ते इति किम्। स्रस्तम्। ध्वस्तम्॥

३३४-सान्त हो और वसुप्रत्ययान्त भी हो (सि० ३१०५) ऐसा जो शब्द और स्रंसु (स्रंस्), ध्वंसु (ध्वंस्), और अनडुह्, इन शब्दोंको पदान्तमें दकार होताहै। अनडुद्भ्याम्-इत्यादि।

अनडुह् शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
सं०	हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः
द्वि०	अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः
तृ०	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
च०	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
पं०	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
ष०	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
सं०	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु.

(सान्त इति किम्) वसु (वस्) प्रत्ययान्त कहनेसे सान्त आही गया, तो फिर सान्त कहनेका क्या प्रयोजन ? तो विद्वस् यह यद्यपि वसुप्रत्ययान्त शब्द है तो भी विद्वान् ऐसा जब उसकी प्रथमाका रूप होताहै तब सान्त न रहनेके कारण वहां दकार नहीं होता (सि० ४३४)।

(पदान्त इति किम्) पदान्तमें ऐसा क्यों कहा ? तो-क्त (त) यह कृत्प्रत्यय है स्वादि नहीं है. इसलिये वह आगे होते स्रंस्, ध्वंस्, इनको पदत्व नहीं है, इसलिये स्रस्तम्, ध्वस्तम्, इनमें सकारके स्थानमें दकार नहीं हुआ॥

'तुरासाह' (इन्द्र) शब्द-क्विबन्त-

"हो ढः ३२४" इससे तुरासाढ्, फिर जश्त्व, तुरासाड् ऐसा रूप होनेके पश्चात्-

३३५ सहेः साडः सः । ८ । ३ । ५६ ॥

साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात्। तुराषाट्। तुराषाड्। तुरासाहौ। तुरासाहः। तुराषाड्भ्यामित्यादि। तुरं सहत इत्यर्थे छन्दसि सह इति ण्विः। लोके तु साहयतेः क्विप्। अन्येषामपीति पूर्वपदस्य दीर्घः॥

३३५-सह धातुका साड् ऐसा रूप जब होताहै तब साड्-मेंके सकारके स्थानमें मूर्धन्य (षकार) आदेश होताहै। "वावसाने २०६" इससे चर्त्व, तुराषाट्, तुराषाड्। तुरासाहौ। तुरासाहः। पदान्तमें पूर्ववत् षत्व, तुराषाड्भ्याम्-इत्यादि-

तुरासाह् शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	तुराषाट्-ड्	तुरासाहौ	तुरासाहः
सं०	हे तुराषाट्-ड्	हे तुरासाहौ	हे तुरासाहः
द्वि०	तुरासाहम्	तुरासाहौ	तुरासाहः
तृ०	तुरासाहा	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भिः
च०	तुरासाहे	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भ्यः
पं०	तुरासाहः	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भ्यः

ष०	तुरासाहः	तुरासाहोः	तुरासाहाम्
स०	तुरासाहि	तुरासाहोः	तुराषाट्त्सु-सु.

(तुरं सहते इत्यर्थे छन्दसि सह इति ण्विः) 'वेगको सहताहै ' इस अर्थमें सह धातुसे "छन्दसि सहः ३।२।६३/३४०९" इससे ण्वि, पीछे वृद्धि होकर यह वैदिक शब्द सिद्ध होताहै, परन्तु यह शब्द लौकिक भी है । उसकी व्युत्पत्ति-(लोके तु साहयतेः क्विप्) लोकमें सह् धातुका प्रयोजकणिजन्त 'साहयति' ऐसा जो होताहै उसमेंके साहि धातुके आगे क्विप् होकर, णिलोप होकर साह् इतनाही अंश रहजाताहै । और (अन्येषामपि० इति पूर्वपदस्य दीर्घः) "अन्येषामपि० ६।३।१३७/३५३९ " इससे तुर इस पदके अकारको दीर्घ हुआ तब 'तुरासाह्' यह बना ॥

(यकारान्त शब्द कोई प्रचलित नहीं मिलता) ।

वान्त शब्द सुदिव् (सुन्दर आकाश जिसमें वह)-

३३६ दिव औत् । ७ । १ । ८४ ॥

दिविति प्रातिपदिकस्य औत्स्यात्सौ परे । अल्विधित्वेन स्थानिवत्त्वाभावाद्धल्ङ्याबिति सुलोपो न । सुद्यौः । सुदिवौ । सुदिवः । सुदिवम् । सुदिवौ ॥

३३६-सुप्रत्यय परे रहते दिव् इस प्रातिपदिकको औत् (औ) आदेश होताहै । सुद्यौस् ऐसी स्थिति हुई । (अल्विधित्वेन स्थानिवत्त्वाभावात् हल्ङ्यादिलोपो न) इसमें औ आदेशके स्थानमें व् यह हल् है सही, तो भी वह एक अल् है, इसलिये "अनल्विधौ १।१।५६/४९" इस सूत्रांशके कारण औको स्थानिवत्त्व अर्थात् यहां हल्त्व नहीं प्राप्त होता, इसलिये "हल्ङ्या०" यह सूत्र नहीं लगता, इस कारण सुलोप नहीं । सुद्यौः । आगे सुदिवौ । सुदिवः । सुदिवम् । सुदिवौ । फिर पदान्तमें-

३३७ दिव उत् । ६ । १ । १३१ ॥

दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात्पदान्ते । सुद्युभ्याम् । सुद्युभिः । चत्वारः । चतुरः । चतुर्भिः । चतुर्भ्यः २ ॥

३३७-पदान्तमें दिव्को उकार यह अन्तादेश होताहै । सुद्युभ्याम् । सुद्युभिः ।

सुदिव् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः
सं०	हे सुद्यौः	हे सुदिवौ	हे सुदिवः
द्वि०	सुदिवम्	सुदिवौ	सुदिवः
तृ०	सुदिवा	सुद्युभ्याम्	सुद्युभिः
च०	सुदिवे	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
पं०	सुदिवः	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
ष०	सुदिवः	सुदिवोः	सुदिवाम्
स०	सुदिवि	सुदिवोः	सुद्युषु

रेफान्त चतुर् (चार) शब्द केवल बहुवचनहीमें इसके रूप होतेहैं । "चतुरनडुहो-रामु० ७।१।९८/३३१" इसकरके सर्वनामस्थान परे रहते 'आम्' (आ) का आगम । चतुआर्+अस् मिलकर चत्वारः, फिर कुछ कार्य नहीं । चतुरः । चतुर्भिः । चतुर्भ्यः । चतुर्भ्यः । आम् प्रत्ययमें-

३३८ षट्चतुर्भ्यश्च ७ । १ । ५५ ॥

षट्संज्ञकेभ्यश्चतुरश्च परस्यामो नुडागमः स्यात् । णत्वम् । द्वित्वम् । चतुर्णाम् ॥

३३८-षट्संज्ञक शब्द (सि० ३६९) और ' चतुर् ' शब्दके आगेके आम् प्रत्ययको नुट् (न्) का आगम होताहै । 'चतुर्+न् आम्' ऐसी स्थिति होते (णत्वम्, द्वित्वम्) रेफके कारण नकारको णत्व और "अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६/५९" इससे रेफके आगेके णकारको विकल्पकरके द्वित्व, चतुर्ण्णाम् । अर्थात् पक्षमें 'चतुर्णाम्' ऐसा द्वित्वहीन एकणकारयुक्त रूप भी होताहै । परन्तु यहां द्वित्वके स्मरणका कारण यह है कि आगे सप्तमीके ' चतुर्षु ' रूपमें जैसा द्वित्वनिषेध है वैसा यहां नहीं, यह ध्यानमें रखना चाहिये. फिर आगे चतुर्+सु इसमें "खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५/७६" इससे रेफके स्थानमें विसर्ग प्राप्त हुआ, परन्तु-

३३९ रोः सुपि । ८ । ३ । १६ ॥

सप्तमीबहुवचने रोरेव विसर्जनीयो नान्यरेफस्य । षत्वम् । षस्य द्वित्वे प्राप्ते ॥

३३९-सप्तमीबहुवचनका सु प्रत्यय आगे रहते "ससजुषो रुः ८।२।६६/१६१" इससे प्राप्त हुआ जो रु उसीके स्थानमें विसर्ग होताहै, अन्य रेफके स्थानमें नहीं होता, इसकारण विसर्ग नहीं, इकारके कारण सकारके स्थानमें षत्व, "अचो-रहाभ्यान्द्वे" से षकारको द्वित्व प्राप्त हुआ, परन्तु-

३४० शरोऽचि । ८ । ४ । ४९ ॥

अचि परे शरो न द्वे स्तः । चतुर्षु । प्रियचत्वाः । हे प्रियचत्वः । प्रियचत्वारौ । प्रियचत्वारः । गौणत्वे तु नुट् नेष्यते । प्रियचतुराम् । प्राधान्ये तु स्यादेव । परमचतुर्णाम् ॥ कमलं कमलां वा आचक्षाणः कमल् । कमलौ । कमलः । षत्वम् । कमल्षु ॥

३४०-आगे अच् परे रहते शर् वर्णको द्वित्व न हो । (यहां "अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६/५९", "नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य ८।४।४८/५५" इन सूत्रोंसे ' द्वे ' और ' न ' की अनुवृत्ति होतीहै)। चतुर्षु ।

प्र० सं०-चत्वारः । द्वि०-चतुरः । तृ०-चतुर्भिः । च० पं०-चतुर्भ्यः । ष०-चतुर्णाम् । स०-चतुर्षु ।

एकवचन दिखानेके निमित्त ' प्रियचतुर् ' यह शब्द लियाजाताहै, तो सर्वनामस्थानमें पूर्ववत् आम् का आगम, प्रियचत्वार्+स् ऐसी स्थिति हुई, स का लोप, "खरवसानयोः० ८।३।१५/७६" इससे विसर्ग प्रियचत्वाः । "अम्सम्बुद्धौ ७।१।९९/३३३" इससे सम्बुद्धि आगे रहते अम्, हे प्रियचत्वः । प्रियचत्वारौ ।

'प्रियाः चत्वारः येषाम् ' ऐसा बहुव्रीहिसमासका विग्रह

होनेसे इस शब्दको विशेषणत्व अर्थात् गौणत्व है और गौणत्व होनेसे आम् प्रत्ययमें "षट्चतुर्भ्यश्च ७।१।५५/२३८" इससे नुट् नहीं होता ऐसी इष्टि (अर्थात् भाष्यकारकी इच्छा) है इसकारण प्रियचतुराम् ।

प्रियचतुर् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रियचत्वाः	प्रियचत्वारौ	प्रियचत्वारः
सं०	हे प्रियचत्वः	हे प्रियचत्वारा	हे प्रियचत्वारः
द्वि०	प्रियचत्वारम्	प्रियचत्वारौ	प्रियचतुरः
तृ०	प्रियचतुरा	प्रियचतुर्भ्याम्	प्रियचतुर्भिः
च०	प्रियचतुरे	प्रियचतुर्भ्याम्	प्रियचतुर्भ्यः
पं०	प्रियचतुरः	प्रियचतुर्भ्याम्	प्रियचतुर्भ्यः
ष०	प्रियचतुरः	प्रियचतुरोः	प्रियचतुराम्
स०	प्रियचतुरि	प्रियचतुरोः	प्रियचतुर्षु.

और जब 'परमाश्च ते चत्वारः' ऐसा कर्मधारय समासका विग्रह होताहै तब परमचतुर (उत्कृष्ट चारों) ऐसा होताहै, इससे उसको प्राधान्य है, इस कारण 'परमचतुर्णाम्' ऐसा नुट्युक्त रूप होताही है । केवल बहुवचनही होताहै-प्र० सं० परमचत्वारः । द्वि०-परमचतुरः । तृ०-परमचतुर्भिः । च०-पं०-परमचतुर्भ्यः । ष०-परमचतुर्णाम् । स० परमचतुर्षु ।

लकारान्त कमल् शब्द-

'कमलं कमलां वा आचक्षाणः' (कमल अथवा लक्ष्मीको कहनेवाला)कमल अथवा कमला इसके आगे णिच् (इ)हुआ, णिच् के कारण टिलोप होकर 'कमलि' ऐसा धातु बना, आगे क्विप् होकर णिका लोप होनेसे 'कमल्' हुआ, सु का लोप कमल् । कमल् + औ=कमलौ । कमल् + जस्= कमलः । कमल् + सु-ऐसी स्थिति होते "इन्कोः ८।३।५७/२११" "आदेशप्रत्यययोः ८।३।५९/२१२" इससे लकार होनेके कारण सकारको षत्व हुआ, कमल्षु ।

कमल् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	कमल्	कमलौ	कमलः
सं०	हे कमल्	हे कमलौ	हे कमलः
द्वि०	कमलम्	कमलौ	कमलः
तृ०	कमला	कमल्भ्याम्	कमल्भिः
च०	कमले	कमल्भ्याम्	कमल्भ्यः
पं०	कमलः	कमल्भ्याम्	कमल्भ्यः
ष०	कमलः	कमलोः	कमलाम्
स०	कमलि	कमलोः	कमल्षु * ॥

मकारान्त प्रशाम् (विशेष शान्त) शब्द-

इसमें सु का लोप होकर प्रशाम् ऐसी स्थिति हुई * ॥

३४१ मो नो धातोः । ८ । २ । ६४ ॥

धातोर्मस्य नः स्यात्पदान्ते । नत्वस्यासिद्धत्वान्नलोपो न । प्रशाम्यतीति प्रशान् । प्रशामौ । प्रशामः । प्रशान्भ्यामित्यादि ॥

३४१-पदान्तमें रहनेवाले धातुसम्बन्धी मकारके स्थानमें नकार होताहै । यह नत्व त्रिपादीस्थ और पर है, इसलिये असिद्ध है, इस कारण "न लोपः० ८।२।२७/२३६" इससे उस नकारका लोप नहीं, (प्रशाम्यति-इति) । अर्थात् अतिशय शान्त होताहै-प्रशान् । प्रशाम्+औ=प्रशामौ । प्रशाम्+ जस्=प्रशामः । प्रशाम्+भ्याम्=प्रशान्भ्याम् ॥

प्रशाम् शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रशान्	प्रशामौ	प्रशामः
सं०	हे प्रशान्	हे प्रशामौ	हे प्रशामः
द्वि०	प्रशामम्	प्रशामौ	प्रशामः
तृ०	प्रशामा	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भिः
च०	प्रशामे	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भ्यः
पं०	प्रशामः	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भ्यः
ष०	प्रशामः	प्रशामोः	प्रशामाम्
स०	प्रशामि	प्रशामोः	प्रशान्सु-न्त्सु.

किम् (कौन) शब्द-

यह सर्वादिगणमें है, इसलिये सर्वनामसंज्ञक है ।

३४२ किमः कः ७ । २ । १०३ ॥

किमः कः स्याद्विभक्तौ । अकच्सहितस्याप्ययमादेशः । कः । कौ । के । कम् । कौ । कान् । इत्यादि सर्ववत् ॥

३४२-विभक्ति परे रहते 'किम्' शब्दको 'क' आदेश होताहै । ("अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८४/३७१" से 'विभक्ति' की अनुवृत्ति आतीहै)। अनेकाल् होनेसे सर्वादेश (अकच्सहितस्य अपि०) "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ५।३।७१/२०२६" इससे चाहे इसको अकच् प्रत्यय लगाकर (सि० २१७ उभय शब्दमें दिखाये हुएके समान) 'क्-अक्-इम् इस रीतिसे किम्के अन्तर्गत ही अकच् है, इस कारण 'क-किम्' यह कोई पृथक् शब्द नहीं होसकता इससे आगे विभक्ति रहते उस शब्दको भी 'क' आदेश होताहै । किम्+सु=कः । किम्+औ=कौ । किम्+जस्=के । कम् । कौ । किम्+शस्= कान् । इत्यादि सर्ववत् जानना । (सि० २१४ । २१७) (त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीति) ३४५ सर्वादि गणमेंके त्यदादिशब्दोंका सम्बोधन नहीं है ऐसा नियम है इससे सम्बोधन नहीं है * ॥

किम् शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	कः	कौ	के

* इस कमल् शब्दके रूप बहुतही सीधे हैं सप्तमीमें संधिके कारण षत्वमात्र होताहै इसको छोडकर और कोई कार्य नहीं ॥

* यद्यपि सु का लोप हुआहै परन्तु प्रत्ययलोपे "प्रत्ययलक्षणम् १।१।६२/१९०" इससे माना सु है ही इस कारण "सुप्तिङन्तं पदम्" इससे 'प्रशाम्'के मकारको पदान्तत्व है ॥

* अकच्सहितको 'क' आदेश करनेमें क्या प्रमाण ? तो "किमः कः" यहां स्थानी और आदेशमें ककारोच्चारण 'इमः अः' ऐसा भी सूत्र करनेसे इष्ट सिद्ध होसकता है ॥

द्वि०	कम्	कौ	कान्
तृ०	केन	काभ्याम्	कैः
च०	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पं०	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
ष०	कस्य	कयोः	केषाम्
स०	कस्मिन्	कयोः	केषु.

इदम् (यह) इस सर्वनामके रूप कुछ थोडेसे कठिन हैं इससे उनके सम्बन्धकी बात पहले दीजातीहै उसको विचारमें लानेसे अगला प्रकरण सुलभ जानपड़ेगा, '७ । २ । १०२ त्यद्-आदीनाम् अः विभक्तौ २६५' । 'इदमः मः सौ ७।२।१०८/३४३' । 'इदमः दः च मः विभक्तौ ७।२।१०९/३४५' । 'इदमः इदः अय् सौ पुंसि ७।२।१११/३४४' । 'अन् आपि अकः इदमः इदः ७।२।११२/३४६' । 'हलि अकः इदमः इदः लोपः ७।२।११३/३४७' । 'भिसः न ऐस् इदम्-अदसोः अकोः ७।१।११/३४९' ॥

३४३ इदमो मः । ७ । २ । १०८ ॥

इदमो मः स्यात्सौ परे । त्यदाद्यत्वापवादः॥

३४३–सु परे रहते इदम् शब्दके मकारके स्थानमें 'म' हो (यहां "तदोः सः सावनन्त्ययोः ७।२।१०६/३८१" से 'सु' की अनुवृत्ति होतीहै) । "त्यदादीनामः ७।२।१०२/२६५" इससे आगे विभक्ति रहते त्यदादि शब्दोंको अकार होताहै परन्तु उसको बाधकर इससे मकार ही होताहै ॥

३४४ इदोऽय् पुंसि । ७ । २ । १११ ॥

इदम इदोऽय् स्यात्सौ पुंसि । सोर्लोपः । अयम् । त्यदाद्यत्वं पररूपत्वं च ॥

३४४–पुँल्लिङ्गमें सु प्रत्यय आगे रहते इदम् के 'इद्' इतने ही भागके स्थानमें 'अय्' आदेश होताहै । अय्+अम्+स्–ऐसी स्थिति होते सु का लोप हुआ, अयम् । 'औ' आगे रहते त्यदाद्यत्वके कारण अकार, इद+अ+औ–ऐसी स्थिति हुई, "अतो गुणे ६।१।९७/१९१" इससे पररूप, तब इद+औ–ऐसी स्थिति हुई–

३४५ दश्च । ७ । २ । १०९ ॥

इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ । इमौ । इमे । त्यदादेः संबोधनं नास्तीत्युत्सर्गः[1] ॥

३४५–विभक्ति परे रहते इदम् शब्दके दकारके स्थानमें मकार होताहै । इम+औ–फिर "वृद्धिरेचि ६।१।८८/७२" इससे इमौ । इसी प्रकार इदम्+जस्=इमे । त्यदादि बारह शब्दोंका सम्बोधन नहीं होता ऐसा नियम है । आगे पूर्ववत् इद+अ होकर 'इद' होनेके पीछे–

३४६ अनाप्यकः । ७ । २ । ११२ ॥

अककारस्येदम इदोऽन् स्यादापि विभक्तौ । आबिति टा इत्यारभ्य सुपः पकारेण प्रत्याहारः। अनेन ॥

३४६–आप् अर्थात् टादि विभक्ति परे रहते ककाररहित इदम् शब्दके इद्के स्थानमें 'अन्' हो । ककाररहितका अर्थ अकच्हीन जानना । (आबिति) 'टा' में के 'आ' से सुप्के पकार पर्यन्त जो प्रत्यय हैं वे इस प्रत्याहारके अनुरूप आप् संज्ञावाली हैं (अर्थात् टादि विभक्ति) । अन् और शेष रहा अकार मिलकर 'अन' हुआ फिर 'अनेन' हुआ । आगे भ्याम् प्रत्यय रहते इदम् इसका पूर्ववत् 'इद' ऐसा रूप होकर इद+भ्याम् ऐसी स्थिति हुई, फिर–

३४७ हलि लोपः । ७ । २ । ११३ ॥

अककारस्येदम इदो लोपः स्यादापि हलादौ॥ नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥ * ॥

३४७–हलादि आप् विभक्ति आगे रहते अकच्से हीन इदम् शब्दके 'इद्'का लोप होताहै । (नानर्थकेति) अर्थहीन शब्दको यदि आदेश कहागयाहो तो वहां अलोन्त्यविधि नहीं होती, अर्थात् " अलोन्त्यस्य " यह परिभाषा नहीं लगती, वहां सबके स्थानमें आदेश होताहै, और जहां धातुको द्वित्व होकर उसके अभ्यासके निमित्त कार्य रहतेहैं, केवल वहां तो ऐसा नहीं होता अर्थात् वहां " अलोन्त्यस्य " यह परिभाषा प्रवृत्त होतीहै, ऐसा जानना । इसीसे अभ्यासके अ-न्त्यको "अर्तिपिपर्त्योश्च ७।४।७७ " इससे इत्व होकर ' पि-पर्ति ' इत्यादि सिद्ध होतेहैं, यहां 'इद'मेंके 'इद्' इस अर्थहीन शब्दका लोप कहाहुआ है, इस कारण सर्वादेश होताहै, 'इद'मेंके 'इद्'का लोप होनेपर 'अभ्याम्' ऐसी स्थिति हुई, तब–

३४८ आद्यन्तवदेकस्मिन् । १ । १ । २१ ॥

एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवाऽन्त इव स्यात् । आभ्याम् ॥

३४८–शब्दमें जो एक ही वर्ण हो तो आदि भी वही और अन्त भी वही जानना । इससे उसको जो कार्य कियाजाय वह कारणपरत्वसे आदि वर्णके और अन्त वर्णके समान होताहै, इसलिये अभ्याम् इसमें ' अ ' इस वर्णको अन्त्यवर्ण लेकर "सुपि च ७।३।१०२/२०२" इससे दीर्घ हुआ, आभ्याम् । आगे भिस्के स्थानमें 'ऐस्'की प्राप्ति हुई, परन्तु–

३४९ नेदमदसोरकोः । ७ । १ । ११ ॥

अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न स्यात् एत्वम् । एभिः । अत्वम् । नित्यत्वात् ङेः स्मै पश्चाद्धलि लोपः । अस्मै । आभ्याम् । एभ्यः । अस्मात् । आभ्याम् । एभ्यः । अस्य । अनयोः। एषाम् । अस्मिन् । अनयोः । एषु । ककारयोगे तु अयकम् । इमकौ । इमके । इमकम् । इमकौ । इमकान् । इमकेन । इमकाभ्याम् । इमकैः ॥

३४९–अकच्से हीन इदम् और अदस् (३९) शब्दोंके आगे भिस्के स्थानमें ' ऐस् ' आदेश नहीं होता (" अतो भिस ऐस् ७ । १ । ९ " से भिसः इसकी अनुवृत्ति

[1] त्यदादि शब्दोंका सम्बोधन न होनेमें क्या प्रमाण ? तो अधिक प्रयोगोंका अभाव ही प्रमाण है और सम्बोधनाभाव प्रयोगस्वभाव है ऐसा कहनेसे भाष्यकारके कहे हुए ' हे स ' इत्यादि प्रयोगोंसे विरोध नहीं आता ॥

होती है) "बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३/२०५" इससे एत्व, एभिः। आगे ङे प्रत्यय परे रहते पूर्ववत् अत्व होकर 'इद' ऐसी स्थिति होनेके पीछे अकारान्त सर्वनामत्वके कारण "सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४/२१५" इससे ङे के स्थानमें 'स्मै'की प्राप्ति हुई,परन्तु, परत्वके कारण पहले "अनाप्यकः ७।२।११२/३४६"इससे 'इद्'को 'अन्' होकर 'अन्' इस रूपकी प्राप्ति हुई, तथापि इद और अन् इन दोनोंको भी अकारान्तत्व होनेके कारण अनादेश किया तो भी'स्मै'की प्राप्ति है ही,और अनादेश न करते 'इद'ऐसाही रूप रहा तो भी'स्मै' की प्राप्ति है ही तो फिर 'कृतेपि प्राप्नोत्यकृतेपि प्राप्नोति तन्नित्यम्' अथवा 'कृताकृतप्रसंगि नित्यम्' इस लक्षणसे 'स्मै'को नित्यत्व प्राप्त हुआ, नित्य होनेसे ङे को 'स्मै' पीछे "हलि लोपः" इससे लोप अर्थात् "परनित्यान्तरंगापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः ४६" इस परिभाषासे पर शास्त्रसे नित्य शास्त्र बलिष्ठ है, इससे नित्यत्वके कारण पर कार्यका भी बाध कर 'स्मै' यही कार्य हुआ, और फिर "हलि लोपः ७।२।११३/३४७" इससे इद+स्मै—इसमेंके 'इद्' का लोप हुआ, अस्मै। आभ्याम्। इदम् + भ्यस्= एभ्यः। इदम् + ङसि=अस्मात्। आभ्याम्। एभ्यः। इदम् + ङस्=अस्य। इदम् + ओस्=अनयोः। इदम् + आम्=एषाम्। इदम् + ङि=अस्मिन्। इदम् + ओस्= अनयोः। इदम् + सु=एषु।

(ककारयोगे तु) 'अकच्' का योग हुआ हो तो, शब्दके बीचमें 'अकच्' आनेसे अयकम्। इमकौ। इमके। इमकम्। इमकौ। इमकान्। फिर आगे "अनाप्यकः" ऐसा कहागया है इससे 'अकच्' कालमें 'अन्' नहीं, इससे इमकेन और हलादि विभक्तिकालमें भी 'अक' पढनेसे इद्का लोप नहीं, इमकाभ्याम् "नेदमदसोरकोः" कहागया है इससे ऐस्को बाध नहीं इमकैः। इदम् शब्दके और भी कुछ रूप होतेहैं—

३५० इदमोन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ। २। ४। ३२॥

अन्वादेशविषयस्येदमोनुदात्तोऽश् आदेशः स्यात्तृतीयादौ। अशूवचनं साकच्कार्थम्॥

३५०—अन्वादेशके विषयमें तृतीयादि विभक्ति परे रहते इदम् शब्दको अश् (अ) आदेश होताहै। इसमें शकार इत् है इस कारण अकच्युक्त शब्दका भी ग्रहण करना चाहै तो उससे अकच्युक्त शब्दको भी अन्वादेशमें यही आदेश होताहै * ॥

अकच्से हीन'इदम्'शब्दको अन्वादेशमें जो आदेश होतेहैं वही अकच्सहित (साकच्क) इदम् शब्दको भी होतेहै ऐसा जानना चाहिये॥

३५१ द्वितीयाटौस्स्वेनः। २। ४। ३४॥

द्वितीयायां टौसोश्च परत इदमेतदोरेनादेशः स्यादन्वादेशे। किंचित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः। यथाऽनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति। अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति। एनम्। एनौ। एनान्। एनेन। एनयोः॥ गणयतेर्विच्। सुगण्। सुगणौ। सुगणः। सुगणट्सु। सुगण्ट्सु। सुगणसु॥ क्विप अनुनासिकस्य क्विझलोरिति दीर्घः। सुगाण्। सुगाणौ। सुगाणः। सुगाण्ट्सु। सुगाणट्सु। सुगाणसु। परत्वादुपधादीर्घः। हलङ्याब्भ्यादिलोपः। ततो नलोपः। राजा॥

३५१—अन्वादेशकालमें द्वितीया, टा और ओस् प्रत्यय आगे रहते इदम् और एतद् इन शब्दोंको 'एन' ऐसा आदेश होताहै। (यहां "इदमोऽन्वादेशेऽश० ३५०" "एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चाऽनुदात्तौ २।४।३३" इन सूत्रोंसे 'इदम्', 'अन्वादेश' और 'एतद्' इनकी अनुवृत्ति होतीहै)।

(किंचित् कार्यमिति) कोई एक कार्य बोधन करनेके निमित्त एकवार शब्दकी योजना करके फिर अन्य कार्य बोधनके निमित्त उसीका ग्रहण करना इसका नाम अन्वादेश है, जैसे (अनेनेति) इसने व्याकरण पढाहै, अब इसको छन्द सिखाओ। इसमें पहले 'अनेन' शब्द है, परन्तु दूसरी वार उसके स्थानमें इससे 'एन' हुआ इससे 'एनम्' लायेहैं, एनम् यह द्वितीया है,वैसे ही'अनयोः पवित्रं कुलम्'। 'एनयोः प्रभूतं स्वम्' अर्थात् इन दोनोंका कुल पवित्र है और उन्हीं इन दोनोंके बहुत धन है यहांपर भी जानना। एनम्। एनौ। एनान्। एनेन। एनयोः।आगे आभ्याम्, इत्यादि पूर्ववत् जानना, परन्तु स्वरका भेद है।

इदम् शब्दके दो प्रकारके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम्, एनम्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पं०	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः

१ शकारेत्संज्ञक अकार नहीं होगा तो "अलोऽन्त्यस्य (४२)" से अन्त्यको आदेश होजायगा ऐसा कहें तो ठीक नहीं, क्यों? तो अन्त्यके आदेश हो तो वह निष्फल है, क्यों? तो"त्यदादी०" से 'अत्व' करके सिद्ध ही है फिर अ—विधानसामर्थ्यसे सर्वादेश हो ही जायगा। अथवा अन्त्यहीको हो तो क्या न्यूनता? "हलि लोपः ७।२।११३" से लोप करके सिद्ध होजायगा फिर शित्करणेका प्रयोजन अकच्सहितके भी हो यही यह ध्यान रखना चाहिये॥

* इस सूत्रका अगला सूत्र ("द्वितीयाटौस्स्वेनः") अपवाद है, इससे उस अपवादका विषय छोडकर तृतीयादि प्रत्ययोंमें अ—न्वादेशमें यह अनुदात्त अश् (अ) आदेश होताहै, अर्थात् वहां इदमके स्थानमें 'अ' होकर उस 'अ' के आगे प्रत्यय दीखते हैं, अन्वादेश न होते भी इदम् इससे 'इद' इस प्रकारका रूप बनने पर "हलि लोपः ३४७" इससे इद् अंशका लोप होनेसे अकार अवशिष्ट रहकर फिर जो रूप होते हैं वे लिखनेमें समान ही होते हैं, परन्तु भेद इतनाही है कि अन्वादेशमें अकार अनुदात्त है, अन्वादेशके अभावमें "फिषोऽन्त उदात्तः" (फि० १।१) इससे वह अकार उदात्त है॥

ष०	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु.

प्र०	अयकम्	इमकौ	इमके
द्वि०	इमकम्	इमकौ	इमकान्
तृ०	इमकेन	इमकाभ्याम्	इमकैः
च०	इमकस्मै	इमकाभ्याम्	इमकेभ्यः
पं०	इमकस्मात्	इमकाभ्याम्	इमकेभ्यः
ष०	इमकस्य	इमकयोः	इमकेषाम्
स०	इमकस्मिन्	इमकयोः	इमकेषु.

अन्वादेशमें पूर्ववत् एनम् । आभ्याम् । इत्यादि ।

णान्त सुगण् (अच्छा गणित करनेवाला) शब्द—(गणयतेः विच्) गण धातुसे " अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२।७५/२९८० " इससे विच् (०) प्रत्यय होकर गण्, पीछे 'सु' उपसर्ग है । इसके रूप बहुत सरल हैं । सुगण्+सु=सुगण् । सुगण्+औ=सुगणौ। सुगण्+जस्=सुगणः। सुगण्+सु=सुगण्सु । "ङ्णोः कुक्टुक् शरि ८।३।२८/१३० "इससे विकल्पकरके 'टुक्' का आगम और " चयो द्वितीयाः० " इस वार्तिकसे सुगण्ठ्सु और " चयो द्वितीयाः " इसके अभावपक्षमें सुगण्ट्सु ।

सुगण् शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सुगण्	सुगणौ	सुगणः
सं०	हे सुगण्	हे सुगणौ	हे सुगणः
द्वि०	सुगणम्	सुगणौ	सुगणः
तृ०	सुगणा	सुगण्भ्याम्	सुगण्भिः
च०	सुगणे	सुगण्भ्याम्	सुगण्भ्यः
पं०	सुगणः	सुगण्भ्याम्	सुगण्भ्यः
ष०	सुगणः	सुगणोः	सुगणाम्
स०	सुगणि	सुगणोः	सुगण्ठ्सु, सुगण्ट्सु, सुगण्सु,

सुगाण् (अच्छा गणित जाननेवाला) शब्द—गण्के आगे क्विप् और "अनुनासिकस्य क्विझलोः० ६।४।१५/२६६६" इससे दीर्घ होकर पीछे 'सु' उपसर्ग लगकर यह शब्द बनाहै सुगाण्+सु=सुगाण् । सुगाण्+औ=सुगाणौ । सुगाण्+जस्=सुगाणः । सुगाण्+सु=सुगाण्ठ्सु । सुगाण्ट्सु । सुगाण्सु, इत्यादि सब रूप सुगण्शब्दके समान होंगे ॥

नान्त राजन् शब्द—

राजन्+सु—ऐसी स्थिति रहते "हल्ङ्या० ६।१।६८/२५२" इससे "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८/२५०" यह सूत्र पर है, इस कारण इस सूत्रसे नकारान्तत्वके कारण पहले उपधादीर्घ होकर फिर "हल्ङ्या०" इससे सुलोप हुआ और फिर "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७/२३६" इससे नकारका लोप होकर 'राजा' यह पद सिद्ध हुआ । आगे सम्बुद्धि सु रहते 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' ऐसा कहाहै इसलिये उपधादीर्घ नहीं, सुलोप होकर राजन् ऐसी स्थिति हुई, "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७/२३६" अर्थात् प्रातिपदिकसंज्ञा जिसको है वह पद होते उसमेंके अन्त्य नकारका लोप होताहै, इससे लोप प्राप्त हुआ, परन्तु

३५२ न ङिसंबुद्ध्योः ८।२।८॥

नस्य लोपो न स्यान्ङौ संबुद्धौ च। हे राजन्। ङौ तु छन्दस्युदाहरणम् । सुपां सुलुगिति ङेर्लुक् । निषेधसामर्थ्यात्प्रत्ययलक्षणम् । परमे व्योमन् ॥ ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥*॥ चर्मणि तिला अस्य चर्मतिलः । ब्रह्मनिष्ठः । राजानौ। राजानः।राजानम्।राजानौ।अल्लोपोनः। चुत्वम् । न चाल्लोपः स्थानिवत् । पूर्वत्रासिद्धे तन्निषेधात् । नापि बहिरङ्गतयाऽसिद्धः । यथोद्देशपक्षे षाष्ठीं परिभाषां प्रति चुत्वस्यासिद्धतयाऽन्तरङ्गाभावे परिभाषाया अप्रवृत्तेः । जञोर्ज्ञः । राज्ञः । राज्ञा ॥

३५२–ङि अथवा सम्बुद्धि आगे रहते प्रातिपादिकसंज्ञक पदमेंके अन्त्य नकारका लोप नहीं होता । 'राजन्' यह नान्त प्रातिपदिक तो है ही फिर 'सु' का लोप हुआ है, तो भी "सुप्तिङन्तं पदम् १।४।१४/२९" इससे राजन् को पदत्व लानेके लिये "प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १।१।६२/२६२" इससे मानो सु प्रत्यय हुईहै अर्थात् यहां राजन् यह पद भी है और उसी प्रत्ययलक्षणसे प्रस्तुत सूत्रके बलसे नकारलोपका निषेध करनेको भी यह सु समर्थ है,इस कारण नलोप न हुआ हे राजन्। ङि परे रहते प्रातिपदिकको पदान्तत्व नहीं तो वहां नकार लोपकी प्राप्ति ही नहीं ऐसा होते सूत्रमें " न ङिसम्बुद्ध्योः " इसमें ङि लानेका क्या प्रयोजन है? तो (ङौ तु छन्द०) 'ङि' प्रत्ययका इसी प्रकारसे लोप हुआ तो भी पदान्त नकारका लोप नहीं होता, इसका उदाहरण लौकिक भाषामें नहीं आता, वेदहीमें मिलताहै । व्योमन्+ङि—इसमें "सुपां सुलुक्० ७।१।३९/३५६१" इससे 'ङि' इस सुप्का लुक होकर 'व्योमन्' ऐसी जो स्थिति रही, उसमें लुक् शब्दसे प्रत्ययका लुप्तत्व होनेसे यद्यपि प्रत्ययलक्षण नहीं आना चाहिये तो भी प्रस्तुत निषेधसूत्रमें 'ङि' का जो ग्रहण कियाहै, उसको और कहीं भी अवकाश नहीं मिलता, इसलिये (निषेधसामर्थ्यात्प्रत्ययलक्षणम्) उस निषेध की सामर्थ्यसे ही (इस निषेधका सार्थक्य होनेके निमित्त) यहां लुप्त 'ङि' को प्रत्यय लक्षण है, और उससे 'व्योमन्' इसको पदत्व प्राप्त होकर नकारका लोप प्राप्त हुआ उसका प्रस्तुत सूत्रसे निषेध है, इससे 'परमे व्योमन्' (उत्तम आकाशमें) ऐसा वेदवाक्य सिद्ध हुआ ।

(ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः वा० ४७८५) * ङि के आगे उत्तरपद होते (अर्थात् समासमेंके पूर्वपदके अन्तमें रहनेवाले ङिका समासनियमके कारण लोप हुआ, उससे) नान्त प्रातिपदिकको पदत्व होताहै, वहां प्रस्तुत सूत्रमें कहा हुआ निषेध नहीं चलता अर्थात् इतर विभक्ति समासके विषे जैसा नकारका लोप होताहै वैसाही ङि प्रत्ययमें भी होता है।

(चर्मणि तिलाः अस्य चर्मतिलः) चर्मके विषे (चर्मके ऊपर) तिल हैं इसके, इसलिये 'चर्मतिल' इससे चर्मन्+ङि+तिल जस ऐसी स्थिति होते ङिके आगे 'तिल' यह उत्तरपद है

समासशास्त्रके अनुसार २।४।७१/६५० यद्यपि ङिका लोप हुआ है तो भी प्रत्ययलक्षणसे 'चर्मन्' को पदत्व है तथापि सूत्रोक्त निषेधका प्रस्तुत वार्तिकसे प्रतिषेध होकर नकारका लोप होता ही है, ऐसा जानना इसी प्रकारसे ब्रह्मन् + ङि + निष्ठा + सु–इनका समास होकर नलोप करके 'ब्रह्मनिष्ठः' ऐसा ही रूप होताहै ।

आगे फिर पूर्ववत् उपधादीर्घ होकर राजानौ । राजानः । राजानम् । राजानौ । शस् प्रत्ययमें भत्वके कारण "अल्लोपोऽनः ६।४।१३४/२३४" इससे राजन् इसमेंके उपधा अकारका लोप हुआ, तब राज्न् + अस्–ऐसी स्थिति हुई फिर "स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४०/१११" इससे नकारके स्थानमें ञकार, (न च अल्लोपेति) यहां "अचः परस्मिन्पूर्वविधौ १।१।५७/५०" इस सूत्रसे पर जो अस् प्रत्यय उसके निमित्तसे स्थानी (अ) इस अच्के 'पूर्वस्मात्' अर्थात् पूर्व जकारके अगले नकारको श्चुत्व (ञ) करना होगा तब आदेश जो अल्लोप वह स्थानिवत् अर्थात् अकारवत् होताहै और उस कारणसे 'ज्' और 'न्' इनके बीचमें व्यवधान आताहै ऐसा नहीं कहना चाहिये, कारण कि "पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्" ऐसी परिभाषा है इस कारण इसको प्रतिबंध (रोक) नहीं । (नापि बहिरङ्गस्येति) वैसे ही राजन् + शस्–इसमें नकारके पिछले अकारका जो लोप होताहै उसका कारण कहनेसे 'राजन्' इस शब्दको भत्व होताहै और यह भत्व तो शस् (अस्) प्रत्यके कारण अर्थात् शब्दके बाहर रहनेवालेके निमित्तसे है, इस कारण यह अल्लोप बहिरंग है, परन्तु शब्दके अंगके ही नकारके निमित्तसे अङ्गके ही नकारको श्चुत्व होताहै तो अंगका अर्थात् अन्तरंगकार्य हुआ इसकारण 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरंगे'इस (४६) परिभाषासे अन्तरङ्गकार्य श्चुत्व कर्तव्य होते बहिरंगकार्य अल्लोप असिद्ध होकर श्चुत्वके निमित्तकी हानि होगी, ऐसा भी न कहना चाहिये कारण कि,यथोद्देश(जो संज्ञा अथवा परिभाषा जहां उत्पन्न भई हो उसका वही देश मानाजाता है) पक्षमें 'असिद्धं बहिरंग॰' यह परिभाषा भाष्यमें "वाह ऊठ् ६।४।१३२/२२९" इस छठे अध्यायमें स्थित सूत्रमें ऊठ्ग्रहणसे निकली हुई है, इसका वह उद्देश्य ध्यानमें रक्खाजाय तो इस छठे अध्यायमें स्थित परिभाषाकी दृष्टिसे त्रिपादीमें स्थित श्चुत्व असिद्ध है, अर्थात् उस परिभाषाको वह नहीं दीखता, तो फिर उसका अन्तरङ्गत्वही न रहा, इससे उस परिभाषाकी प्रवृत्ति ही यहां न रही । (ज्ञोः ज्ञः) । राज्ञ्+अस्–ऐसी स्थिति होनेपर जकार ञकार इनके संयोगसे 'ज्ञ' यह लिखनेकी परिपाटी है, इसलिये राज्ञः।आगे राजन्+टा=राज्ञा । फिर इसके पश्चात्– * ॥

३५३ नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति । ८ । २ । २ ॥

सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र राजाश्व इत्यादौ । इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वं च न । राजभिः । राज्ञे । राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः । राज्ञोः । राज्ञाम् । राज्ञि । राजनि ॥ प्रति दीव्यतीति प्रतिदिवा । प्रतिदिवानौ । प्रतिदिवानः । अस्य भविषयेऽल्लोपे कृते ॥

३५३–सुप्कार्य, स्वरकार्य, संज्ञाकार्य और कृत्प्रत्ययके सम्बन्धसे तुक् (त्)का आगम,यह कर्तव्य हो तो प्रातिपदिकान्त नकारका जो लोप ८।२।७/२३६ होताहै वह असिद्ध है इसको छोड अन्यत्र अर्थात् समासमें राजन् अश्व इत्यादिकोंकी संधि होते समय दोनों अकारोंके स्थानमें मिलकर सवर्णदीर्घ होकर 'राजाश्वः' इत्यादि रूप बनतेहैं, वहां दीर्घकार्यमें नकारका लोप असिद्ध नहीं, (इतीति) अस्तु, यहां सुप्कार्य होनेसे नकारका लोप असिद्ध अर्थात् नकार दीखताहै, इस कारण शब्दको अकारान्तत्व न होनेसे 'भ्याम्' प्रत्ययमें "सुपि च ७।३।१०२/२०२" इससे दीर्घसे होनेवाला आत्व, 'भ्यस्' प्रत्ययमें "बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३/२०५" इससे होनेवाला एत्व और "अतो भिस ऐस् ७।१।९/२०३" इससे होनेवाला ऐस्त्व इन तीनोंकी प्राप्ति ही नहीं । राजभिः । राजन्+ङे=राज्ञे । राजन्+भ्याम्=राजभ्याम् । राजभ्यः । राजन्+ङस्=राज्ञः । राज्ञोः । राज्ञाम् । "विभाषा ङिश्योः ६।४।१३६/२३७" इससे 'ङि' प्रत्ययमें विकल्पसे अल्लोप, इस कारण राज्ञि, राजनि ।

राजन् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
सं०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः
द्वि०	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
च०	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पं०	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
ष०	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
स०	राज्ञि,राजनि	राज्ञोः	राजसु.

प्रतिदिवन् (सूर्य) शब्द–

'प्रतिदीव्यति इति प्रतिदिवा' (प्रतिदिन प्रकाश करनेवाला सो प्रतिदिवा) 'दिव्' धातुके आगे 'कनिन्'प्रत्यय (उणा० १ । १५४) पूर्ववत् सर्वनामस्थानमें उपधादीर्घ, सुलोप, प्रतिदिवा । प्रतिदिवन्+औ=प्रतिदिवानौ । प्रतिदिवन्+जस्=प्रतिदिवानः । (अस्य भविषये॰) भसंज्ञाका विषय होते इसमें अल्लोप होकर प्रतिदिवन्+अस् ऐसी स्थिति होनेपर–

३५४ हलि च । ८ । २ । ७७ ॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्याद्धलि । न चाऽल्लोपस्य स्थानिवत्त्वं दीर्घ-

---

* यदि कोई शंका करे कि कार्यकाल (संज्ञा और परिभाषाओंकी कार्यविधायक सूत्रके साथ एकवाक्यता होती है) पक्षमें तो श्चुत्व अन्तरङ्ग ही है उस पक्षमें अल्लोप असिद्ध क्यों नहीं होता ? नहीं कहते हैं कि, 'व्यवस्थितयोः पक्षयोरेकतरेण पक्षेण लक्ष्यसिद्धौ पक्षान्तरेण दोषदानस्याऽनुचितत्वात्' जहां दो पक्ष हैं और एक पक्षग्रहण करनेसे उदाहरण सिद्ध होजाते हैं तो वहां दूसरा पक्ष लेकर दोष देना अनुचित है ॥

विधौ तन्निषेधात् । बहिरङ्गपरिभाषा तूक्तन्यायेन न प्रवर्तते । प्रतिदीव्नः । प्रतिदीव्नेत्यादि । यज्वा । यज्वानौ । यज्वानः ॥

३५४–हल् आगे रहते रेफान्त और वकारान्त धातुके उपधा इक्‌को दीर्घ होताहै ("र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८।२।७६/४३३" इस सूत्रकी अनुवृत्ति होतीहै और "सिपि धातो० ८।२।७४" इस सूत्रसे धातुकी अनुवृत्ति होतीहै उस धातु पदका रेफ और व् ये विशेषण होतेहैं । इस कारण "येन विधिस्तदन्तस्य २६" इससे तदन्तविधि भया)। (न चाल्लोपस्य०) यहां अस् परे है उसके निमित्तसे ' दिवन् ' इसमेंके अकारको लोप आदेश हुआहै और इस अकारके पूर्वमें रहनेवाले इकारको दीर्घ कर्तव्य है इसलिये अल्लोपको " अचः परस्मिन्पूर्वविधौ १।१।५७/५०" इससे स्थानिवद्भाव तो प्राप्त हुआ, परन्तु जब दीर्घ कर्तव्य है तब " न पदान्त–दीर्घजश्चर्विधिषु १।१।५८/५१ " इससे स्थानिवद्भावका निषेध है, इसलिये स्थानिवद्भाव नहीं और 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' यह परिभाषा भी पूर्ववत् यहां प्रवृत्त नहीं होती इस कारण 'दिव्न्' इसमें 'न्' हल् वकारके आगे अव्यवहित होनेसे उपधादीर्घको बाध नहीं, प्रतिदीव्नः । प्रतिदीव्ना । इत्यादि । आगे पदान्तनलोप राजवत् जानना ॥

प्रतिदिवन् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रतिदिवा	प्रतिदिवानौ	प्रतिदिवानः
सं०	हे प्रतिदिवन्	हे प्रतिदिवानौ	हे प्रतिदिवानः
द्वि०	प्रतिदिवानम्	प्रतिदिवानौ	प्रतिदीव्नः
तृ०	प्रतिदीव्ना	प्रतिदिवभ्याम्	प्रतिदिवभिः
च०	प्रतिदीव्ने	प्रतिदिवभ्याम्	प्रतिदिवभ्यः
पं०	प्रतिदीव्नः	प्रतिदिवभ्याम्	प्रतिदिवभ्यः
ष०	प्रतिदीव्नः	प्रतिदीव्नोः	प्रतिदीव्नाम्
स०	प्रतिदीव्नि,प्रतिदिवनि	प्रतिदीव्नोः	प्रतिदिवसु.

यज्वन् (यजनकर्ता) शब्द–

पूर्ववत् सर्वनामस्थानमें यज्वा । यज्वानौ । यज्वानः । आगे भके स्थानमें अल्लोप प्राप्त हुआ, परन्तु–

३५५ न संयोगाद्वमन्तात् ६।४।१३७॥

वकारमकारान्तसंयोगात्परस्यानोऽकारस्य लोपो न स्यात् । यज्वनः । यज्वना । यज्वभ्यामित्यादि । ब्रह्मणः । ब्रह्मणा । ब्रह्मभ्यामित्यादि ॥

३५५–वकारान्त अथवा मकारान्त संयोगके आगेके अन्‌के अकारका लोप नहीं होता । यज्वनः । यज्वन्+टा=यज्वना । यज्वभ्याम् । इत्यादि । अर्थात् 'अल्लोपोनः ' और 'विभाषा ङिश्योः' यह नहीं लगते हैं ।

यज्वन् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	यज्वा	यज्वानौ	यज्वानः
सं०	हे यज्वन्	हे यज्वानौ	हे यज्वानः
द्वि०	यज्वानम्	यज्वानौ	यज्वनः
तृ०	यज्वना	यज्वभ्याम्	यज्वभिः
च०	यज्वने	यज्वभ्याम्	यज्वभ्यः
पं०	यज्वनः	यज्वभ्याम्	यज्वभ्यः
ष०	यज्वनः	यज्वनोः	यज्वनाम्
स०	यज्वनि	यज्वनोः	यज्वसु.

इसी प्रकारसे 'ब्रह्मन्' शब्द–

ब्रह्मन्+शस्=ब्रह्मणः । ब्रह्मन्+टा–ब्रह्मणा । ब्रह्मभ्याम् । इत्यादि ।

ब्रह्मन् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	ब्रह्मा	ब्रह्माणौ	ब्रह्माणः
सं०	हे ब्रह्मन्	हे ब्रह्माणौ	हे ब्रह्माणः
द्वि०	ब्रह्माणम्	ब्रह्माणौ	ब्रह्मणः
तृ०	ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः
च०	ब्रह्मणे	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभ्यः
पं०	ब्रह्मणः	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभ्यः
ष०	ब्रह्मणः	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्
स०	ब्रह्मणि	ब्रह्मणोः	ब्रह्मसु.

वृत्रहन् (इन्द्र) शब्द–

सर्वनामस्थानमें उपधादीर्घ प्राप्त हुआ, परन्तु–

३५६ इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ।६।४।१२॥

एषां शावेवोपधाया दीर्घो नान्यत्र इति निषेधे प्राप्ते ॥

३५६–इन् (इन्नन्त शब्द) हन्, पूषन्, अर्यमन्, इनके आगे शि (३१२) हो तभी उपधाको दीर्घ होताहै अन्यत्र नहीं । ऐसा निषेध प्राप्त हुआ, परन्तु–

३५७ सौ च । ६ । ४ । १३ ॥

इन्नादीनामुपधाया दीर्घः स्यादसंबुद्धौ सौ परे । वृत्रहा । हे वृत्रहन् । एकाजुत्तरपदे इति णत्वम् । वृत्रहणौ । वृत्रहणः । वृत्रहणम् । वृत्रहणौ ॥

३५७–आगे सम्बुद्धिभिन्न सु रहते इन्, हन्, पूषन्, अर्यमन् इनकी उपधाको दीर्घ होताहै सुलोप, नलोप, वृत्रहा । "न ङिसम्बुद्ध्योः ८।२।८/३५२" इससे नलोपका निषेध,हे वृत्रहन् । पूर्व सूत्रके निषेधके कारण अन्यत्र शिवर्ज सर्वनामस्थानमें उपधादीर्घ नहीं । आगे फिर औ–प्रत्ययमें "एकाजुत्तरपदे णः ८।४।१२/३०७" इससे णत्व, वृत्रहणौ । वृत्रहन्+जस्=वृत्रहणः । वृत्रहन्+अम्=वृत्रहणम् । वृत्रहणौ । वृत्रहन्+शस्=इसमें भके स्थानमें अल्लोप होकर वृत्रहन्+अस् ऐसी स्थिति होते–

३५८ हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु । ७ । ३ । ५४ ॥

ञिति णिति च प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वं स्यात् ॥

३५८–'हन्' धातुके हकारके परे ञित् वा णित् प्रत्यय वा नकार रहते उस हकारके स्थानमें कुत्व (कवर्ग) होताहै । (यहां " चजोः कु घि० ७।३।५२ " इससे कुत्वकी अनु-

प्ति होतीहै) । उसमें हकारकी योग्यता अर्थात् नाद महाप्राण कहनेसे घकार, वृत्रघ्न्+अस्–ऐसी स्थिति हुई, तब णत्वकी शंका–

३५९ हन्तेः । ८ । ४ । २२ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य हन्तेर्नस्य णत्वं स्यात् । प्रहण्यात् ॥

३५९–उपसर्गमें जो णत्वका निमित्त (र्) हो तो उस निमित्तसे पर 'हन्' धातुके नकारके स्थानमें णकार होताहै । 'प्र' इस उपसर्गमें स्थित रेफके आगे 'हन्यात्' इसके नकारको णत्व होकर, प्रहण्यात् (विशेष कर मारसकेगा) । परन्तु उसी सूत्रमेंका नियामक अंश–

३५९ अत्पूर्वस्य । ८ । ४ । २२ ॥

हन्तेरत्पूर्वस्यैव नस्य णत्वं नान्यस्य । प्रघ्नन्ति । योगविभागसामर्थ्यादनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति न्यायं बाधित्वा एकाजुत्तरपदे इति णत्वमपि निवर्त्यते । नकारे परे कुत्वविधिसामर्थ्यादल्लोपो न स्थानिवत् । वृत्रघ्नः । वृत्रघ्ना इत्यादि । यत्तु वृत्रघ्न इत्यादौ वैकल्पिकं णत्वं माधवेनोक्तं तद्भाष्यवार्तिकविरुद्धम् । एवं शार्ङ्गिन्यशस्विन्नर्यमन्पूषन् । यशस्विन्निति विन्प्रत्यये इनोऽनर्थकत्वेपि इनहन्नित्यत्र ग्रहणं भवत्येव । अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्तीति वचनात् । अर्यम्णि । अर्यमणि । पूष्णि । पूषणि ॥

३५९–'हन्' धातुके नकारके पीछे ह्रस्व अकारमात्र हो तो उसके स्थानमें णत्व होसकेगा अन्यथा नहीं 'प्रघ्नन्ति' इसमें घ्नके नकारके पहले अकार नहीं इस कारण उसको णत्व नहीं ।

(योगविभागेति) सूत्र जो है सो अनन्तर अर्थात् अतिसमीपस्थ ऐसे पूर्व अथवा उत्तर सूत्रका विधायक वा निषेधक होताहै ऐसी परिभाषा है, इस कारण 'हन्तेरत्पूर्वस्य' इस सूत्रका विभागकरके उसके 'हन्तेः' और 'अत्पूर्वस्य' ऐसे दो सूत्र कियेगये, इनमें 'अत्पूर्वस्य' यह सूत्र 'हन्तेः' इसका निषेधक हुआ, इससे एक और बात हुई कि 'हन्तेः' इससे पिछली (उपसर्गस्थात् निमित्तात्) की अनुवृत्ति लेते बनतीहै और फिर 'अत्पूर्वस्य' इतने भागको जितना आवश्यक था वह निकाल डालते भी बनाहै और 'हन्तेः' इतनी ही अनुवृत्ति भी आगे हुई, इससे उपसर्गका सम्बन्ध न रहनेसे 'अत्पूर्वस्य' 'हन्तेः' इसकी सामान्यत्व प्राप्त हुआ तो फिर योगविभागके बलसे पूर्व न्यायका बाध होकर उससे "एकाजुत्तरपदे णः $\frac{८।४।१२}{३०७}$" इससे होनेवाले णत्वका भी निवारण हुआ ।

(नकारेति) नकार आगे रहते 'हन्' के हकारको कुत्व होताहै । इस कारण ही यहां अल्लोप स्थानिवत नहीं है यह प्रत्यक्ष दीखताहै, कारण कि लोप स्थानिवत् हो तो 'हन्' इसके हकारके अगले अव्यवहित नकारकी प्राप्ति होगी ही नहीं, वृत्रघ्नः । वृत्रघ्ना । इत्यादि प्रयोग होंगे ।

(यत्तु वृत्रघ्न इत्यादाविति) अल्लोप होनेसे एकाच् उत्तरपद न रहनेसे "एकाजुत्तर०", इससे णत्व नहीं होसकता, यदि यह कहो कि, स्थानिवद्भाव होनेसे एकाच् उत्तरपद होगा तो नहीं, कारण कि अल्विधिमें निषेध होताहै, इस कारण "प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च $\frac{८।४।११}{१०५५}$" इससे वृत्रघ्नः इत्यादिकोंमें विकल्पसे णत्व होताहै, ऐसा जो माधवने कहाहै सो भाष्य–वार्तिकसे विरुद्ध है कारण कि उस सूत्रका भी 'अत्पूर्वस्य' 'हन्तेः' इससे निषेध होताही है। पदान्तमें नलोप पूर्ववत् । ङि प्रत्ययमें "विभाषा ङिश्योः $\frac{६।४।१३६}{२३७}$" इससे विकल्प करके अन्के अकारका लोप होताहै ।

वृत्रहन् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः
सं०	हे वृत्रहन्	हे वृत्रहणौ	हे वृत्रहणः
द्वि०	वृत्रहणम्	वृत्रहणौ	वृत्रघ्नः
तृ०	वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः
च०	वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
पं०	वृत्रघ्नः	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
ष०	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
स०	वृत्रघ्नि, वृत्रहणि	वृत्रघ्नोः	वृत्रहसु.

इसीप्रकार शार्ङ्गिन्, यशस्विन्, अर्यमन्, पूषन्, इन शब्दोंके रूप जानिये अर्थात् पुँल्लिङ्गमें 'सु' प्रत्ययमात्रमें इनको दीर्घ होताहै ॥

शार्ङ्गिन् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	शार्ङ्गी	शार्ङ्गिणौ	शार्ङ्गिणः
सं०	हे शार्ङ्गिन्	हे शार्ङ्गिणौ	हे शार्ङ्गिणः
द्वि०	शार्ङ्गिणम्	शार्ङ्गिणौ	शार्ङ्गिणः
तृ०	शार्ङ्गिणा	शार्ङ्गिभ्याम्	शार्ङ्गिभिः
च०	शार्ङ्गिणे	शार्ङ्गिभ्याम्	शार्ङ्गिभ्यः
पं०	शार्ङ्गिणः	शार्ङ्गिभ्याम्	शार्ङ्गिभ्यः
ष०	शार्ङ्गिणः	शार्ङ्गिणोः	शार्ङ्गिणाम्
स०	शार्ङ्गिणि	शार्ङ्गिणोः	शार्ङ्गिषु.

ऐसेही सब इन्नन्त अर्थात् इन्प्रत्ययान्त $\frac{५।२।११५}{१९२}$ शब्द जानने चाहियें, इनमें उपधा अकार न होनेसे अल्लोपकी प्राप्ति ही नहीं ।

(यशस्विन्निति) यशस्विन् शब्द भी इसीप्रकार है, यद्यपि यह 'विन्' प्रत्ययान्त शब्द है और 'विन्' प्रत्ययमें 'इन्' उसका अंश अर्थात् अवयव है, इससे 'इन्' प्रत्ययके समान सार्थक नहीं है तो भी "इन्हन्० $\frac{६।४।१२}{३५६}$" इस सूत्रमें उसका ग्रहण होताहै, ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि, (अनिनस्मन्निति) अन्, इन्, अस्, मन्, यह शब्द सार्थक अनर्थक दोनोंप्रकारके तदन्तविधि प्राप्त करलेतेहैं, ऐसी परिभाषा है, इस कारण अर्यमन्, पूषन्, इनके उक्त कार्यको छोडकर और भी उपधा अकारके कारण 'भ' के स्थानमें अल्लोप

और 'ङि' कालमें विकल्पसे अल्लोप होताहै; अर्यमन्+ङि= अर्यम्णि, अर्यमणि । पूष्णि, पूषणि । यह रूप और 'वृत्रहन्' शब्दके रूप समान तो हैं, तथापि यहां अल्लोपकालमें "हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु $\frac{७।३।५४}{३५८}$" इस प्रकार णकारनिषेध नहीं यह स्पष्ट है॥

अर्यमन् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अर्यमा	अर्यमणौ	अर्यमणः
सं०	हे अर्यमन्	हे अर्यमणौ	हे अर्यमणः
द्वि०	अर्यमणम्	अर्यमणौ	अर्यम्णः
तृ०	अर्यम्णा	अर्यमभ्याम्	अर्यमभिः
च०	अर्यम्णे	अर्यमभ्याम्	अर्यमभ्यः
पं०	अर्यम्णः	अर्यमभ्याम्	अर्यमभ्यः
ष०	अर्यम्णः	अर्यम्णोः	अर्यम्णाम्
स०	अर्यम्णि, अर्यमणि	अर्यम्णोः	अर्यमसु.

इसी प्रकार पूषन् शब्द ।

अब मघवन् (इन्द्र) शब्द–

३६० मघवा बहुलम् ।६।४।१२८॥

मघवन्शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः स्यात्। ऋ इत् ॥

३६०–सूत्रमें मघवा यह प्रथमा षष्ठ्यर्थमें है । 'मघवन्' शब्दको 'तृ' ऐसा विकल्पसे अन्तादेश होताहै (यहां "अर्वणस्त्रसावनञः $\frac{६।४।१२७}{३६४}$" इस सूत्रसे 'तृ' इसकी अनुवृत्ति होतीहै)। तृ की 'ऋ' इत् है तो केवल त् यह अन्तादेश हुआ, मघवत् और मघवन् ऐसे दो प्रातिपदिक हुए, उनमेंसे मघवत् यह तृप्रत्ययान्त पहले लिया, फिर–

३६१ उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ।७।१।७०॥

अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुमागमः स्यात्सर्वनामस्थाने परे । उपधादीर्घः । मघवान् । इह दीर्घे कर्तव्ये संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वं न भवति बहुलग्रहणात् । तथा च श्वन्नुक्षन्निति निपातनान्मघशब्दान्मतुपा च भाषायामपि शब्दद्वयसिद्धिमाश्रित्यैतत्सूत्रं प्रत्याख्यातमाकरे । हविर्जक्षिति निश्शङ्को मखेषु मघवानसाविति भट्टिः । मघवन्तौ । मघवन्तः । हे मघवन् । मघवन्तम् । मघवन्तौ । मघवतः । मघवता । मघवद्भ्यामित्यादि । तृत्वाभावे मघवा । छन्दसीवनिपौ चेति वनिबन्तं मध्योदात्तं छन्दस्येव । अन्तोदात्तं तु लौकिकपीति विशेषः । मघवानौ । मघवानः । सुटि राजवत्॥

३६१–उक् (उ, ऋ, ऌ) यह इत् हैं जिनका वे उगित् [illegible] धातु न होकर जो उगित् शब्द हो सो और अञ्चधातुको जब नलोप होताहै तब वह शब्द इन दोनोंको सर्वनामस्थान आगे रहते नुम् (न्) का आगम होताहै (यहां "इदितो नुम् धातोः ७ । १।५८" से 'नुम्'की अनुवृत्ति होतीहै)। तृका ऋ जो इत् है वह उक् होनेसे 'मघवत्' शब्द उगित् है, और धातु नहीं इससे नुमागम होकर मघवन्त्+स् ऐसी स्थिति सुप्रत्ययमें हुई, सुलोप, संयोगान्तलोप होकर मघवन् ऐसा जो शब्द रहा उसको सुलोपनिमित्त प्रत्ययलक्षणकरके "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ $\frac{६।४।८}{२५०}$" इससे उपधाको दीर्घ, मघवान् यहां नकार और सु इन दोनोंके बीचमें जो लुप्त तकार है वह प्रत्यय नहीं है, इससे वहां प्रत्ययलक्षण नहीं अर्थात् मघवन्को नान्तत्व है ऐसा कहनेसे कोई हानि नहीं, इसीसे उपधादीर्घकी प्राप्ति हुई, (इह दीर्घेति) यहां दीर्घ कर्त्तव्य होते संयोगान्तलोप त्रिपादी $\frac{८।२।२३}{५४}$ मेंका है सही तथापि असिद्ध नहीं कारण कि "मघवा बहुलम् $\frac{६।४।१२}{३६०}$" इससे 'तृ' आदेश हुआहै इसलिये बहुलग्रहणके कारण 'क्वचित्प्रवृत्तिः०' इससे यहां 'अन्यत् एव' अर्थात् 'असिद्धत्वनिषेध' यह कार्य होताहै और नलोप कर्तव्य होते तो संयोगान्तलोप असिद्ध होताही है ।

(तथा च श्वन्नुक्षन् इति०)'मघवन्'शब्दको विकल्पसे'तृ'आदेश करके उसके मघवन् और मघवत् ऐसे दो रूप 'मघवा बहुलम्' इससे किये सही परन्तु "श्वन्नु०(उणा० १।१५६)" इससे मघवन् यह कनिन्प्रत्ययान्त शब्द निपातन करके सिद्ध होताहै, वैसे ही 'मघवत्' शब्द 'मघ' शब्दके आगे "तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् $\frac{५।२।९४}{१८९४}$" इससे मतुप् (मत्) प्रत्यय और मकारको "मादुपधायाश्च० $\frac{८।२।९}{१८९७}$" इससे वकार होकर सिद्ध होताहै, इससे लौकिक प्रयोगोंमें भी इस प्रकारसे उनकी सिद्धि ग्रहण करके भाष्यमें 'मघवा बहुलम्' इस सूत्रका प्रत्याख्यान कियाहै (अर्थात् यह सूत्र नहीं चाहिये ऐसा कहाहै) 'मघवत्' शब्दका लौकिक उदाहरण("हविर्जक्षिति निश्शंको मखेषु मघवानसौ" इति भट्टिः । अर्थात् यह 'मघवान्'–इन्द्र यज्ञमें निश्शंक होकर हवि भक्षण करताहै भट्टि० स० १८ श्लो० १९) अगले रूप–मघवन्तौ । मघवन्तः। हे मघवन् । मघवन्तम् मघवन्तौ । असर्वनामस्थानमें नुमागम नहीं, इससे मघवत् + शस्=मघवतः । मघवत् + टा=मघवता । मघवत् + भ्याम्=मघवद्भ्याम् इत्यादि ॥

मघवन् शब्दके रूप (तृ आदेश पक्षमें)–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्तः
सं०	हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्तः
द्वि०	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवतः
तृ०	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः
च०	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
पं०	मघवतः	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
ष०	मघवतः	मघवतोः	मघवताम्
स०	मघवति	मघवतोः	मघवत्सु.

परन्तु जब 'तृ' आदेश नहीं तब मघवन् ऐसा ही शब्द होनेसे 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इत्यादि पूर्ववत् कार्य होकर मघवा होताहै, इस मघवन् शब्दकी व्युत्पत्ति दो प्रकारसे है, [illegible] समान [illegible] कनिन्प्रत्ययान्त, दूसरी मतुप्

अर्थमें वनिप्रत्ययान्त, उसमें (छन्दसी वनिपौ चेति) यह 'मघवन्' शब्द छान्दस रहते "छन्दसीवनिपौ० * ५।२।१२२/३४९८" इससे वनिप् (वन्) प्रत्ययान्त मध्योदात्त है और इसका अन्तोदात्तत्व लौकिक प्रयोगमें है, इतना ही भेद है * ॥

मघवा । मघवानौ । मघवानः । सुट्प्रत्याहारमें राजवत् । फिर-

३६२ श्वयुवमघोनामतद्धिते।६।४।१३३॥

अन्नन्तानां भसंज्ञकानामेषामतद्धिते परे संप्रसारणं स्यात् । संप्रसारणाच्च । आद्गुणः । मघोनः । अन्नन्तानां किम् । मघवतः । मघवता । स्त्रियां मघवती । अतद्धिते किम् । माघवनम् । मघोना । मघवभ्यामित्यादि । शुनः । शुना । श्वभ्यामित्यादि । युवनशब्दे वस्योत्वे कृते ॥

३६२-तद्धितवर्ज प्रत्यय परे हों तो श्वन्, युवन्, मघवन्, इन अन्नन्त भसंज्ञकोंको संप्रसारण होताहै, मघ+उ+अन्=अस् ऐसी स्थिति होनेपर "संप्रसारणाच्च ६।१।१०८/३३०" इससे उ अ इन दोनोंके स्थानमें मिलकर पूर्वरूप अर्थात् उ हुआ, तब मघ+उन्+अस्-ऐसी स्थिति हुई, "आद् गुणः ६।१।८५/६९" मघोनः। "अल्लोपोऽनः ६।४।१३४/२३४" इस अगले सूत्रमेंसे 'अनः' इसका पिछले सूत्रमें आकर्षण करके जानबूझकर अन्नन्तानाम् ऐसा क्यों कहा ? तो पीछे जो मघवत् तृआदेशयुक्त शब्द लियाहै, वह मूलका 'मघवन्' है सही तो भी उसमें कुछ तात्कालिक अन्नन्तत्व नहीं, इसीसे यहां संप्रसारण नहीं होता, मघवतः । मघवता । इसी प्रकारसे "उगितश्च ४।१।६/४५५" इससे स्त्रीप्रत्यय ङीप् (ई) आगे कर 'मघवती' होताहै * ॥

आगे तद्धितवर्ज प्रत्यय होते ऐसा क्यों कहा ? तो "तस्येदम् ४।३।१२०/१५००" इससे 'मघोनः इदम्' इस अर्थमें मघवन् इस अन्नन्त शब्दके आगे तद्धित अण् (अ), वृद्धि होकर माघवनम् (इन्द्रसम्बन्धी) ऐसा शब्द बनताहै, उसमें संप्रसारण नहीं * ॥

आगे मघोना । पदान्तमें राजवत् नलोप, मघवभ्याम् । इत्यादि ।

मघवन् शब्दके (तृ आदेशके अभाव पक्षमें) रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवानः
सं०	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः
द्वि०	मघवानम्	मघवानौ	मघोनः
तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
च०	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
पं०	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
ष०	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
स०	मघोनि	मघोनोः	मघवसु.

श्वन् (कुत्ता) शब्द पूर्ववत्, शुनः । शुना । श्वभ्याम् । इत्यादि ॥

श्वन् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	श्वा	श्वानौ	श्वानः
सं०	हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः
द्वि०	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
तृ०	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
च०	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
पं०	शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
ष०	शुनः	शुनोः	शुनाम्
स०	शुनि	शुनोः	श्वसु.

युवन् (तरुण पुरुष) शब्द-

युवन् शब्दमें म के वकारको पूर्ववत् संप्रसारण और पूर्वरूप करनेसे उत्व होकर यु+उन्+अस्-ऐसी जो स्थिति हुई, उसमें यकार होनेसे उसको फिर संप्रसारण प्राप्त हुआ, परन्तु-

३६३ न संप्रसारणे संप्रसारणम् । ६ । १ । ३७॥

संप्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः संप्रसारणं न स्यात् । इति यकारस्य नेत्वम् । अत एव ज्ञापकादन्त्यस्य यणः पूर्वं संप्रसारणम् । यूनः । यूना । युवभ्यामित्यादि । अर्वा । हे अर्वन् ॥

३६३-संप्रसारण परे रहते पूर्व यण्को संप्रसारण नहीं होता (इति यकारस्य०) इससे यकारको सम्प्रसारण और पूर्वरूप (इकार) नहीं होता, (अत एव०) आगे सम्प्रसारण होते ऐसा कहा है, इस ज्ञापकसे ऐसा सिद्ध होताहै कि, एकसे अधिक यण् हों तो अन्त्य यणको पहले सम्प्रसारण

* "फिषोऽन्त उदात्तः (फि० १।१)" इससे फिट् अर्थात् प्रातिपदिक अ[illegible]दात्त होताहै, इससे मघमेंका अन्त अकार उदात्त और "अनुदात्तौ सुप्पितौ ३।१।४/३७०९" इससे पित्त्वके कारण वनिप् (वन्) मेंका अकार अनुदात्त मिलकर मघवन् इसमें मध्य स्वर जो घ का अ वह उदात्त है, इससे यह वनिप्प्रत्ययान्त मध्योदात्त हुआ, परन्तु जो कनिन्प्रत्ययान्त है वह "ञ्नित्यादिर्नित्यम् ६।१।१९७/३३८६" इससे आद्युदात्त होताहै तथापि वेदमें वह केवल कनि (अन्) प्रत्यायान्त ही लेनेका उदाहरण है इससे प्रत्ययको "आद्युदात्तश्च ३।१।३/१८०।३७०८" इससे आद्युदात्त होनेसे लोकमें भी अन्तोदात्त शब्दको ही जानना । "उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः (ऋ० मं० ५ सू० ४३ ऋ० ३)" "पूषा त्वेतो नयतु हस्त गृह्य० (ऋ० मं० १० सू० ८५ ऋचा० २६)" ॥

* मघवत्+ई+सु ऐसी स्थिति होते 'प्रातिपदिकग्रहणे० १८२' इस [illegible] आश्रयण करके "उगिदचां० ३६१" से नुम् नहीं [illegible] 'विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम्' इससे पूर्वोक्त परि[illegible] ॥

१ "तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७/१०७५" और "किति च ७।२।११८/१०७६" इनसे ञित्, णित्, कित्, तद्धित प्रत्ययके कारण आदि अच्को वृद्धि होतीहै ॥

होताहै, अर्थात् उसकरके इस यण्को सम्प्रसारणका निषेध है, युवन्+शस्=यूनः । युवन्+टा=यूना । युवन्+भ्याम्=युवभ्याम् । इत्यादि * ॥

अर्वन् (घोडा) शब्द–

अर्वन्+सु=अर्वा । हे अर्वन् ।

३६४ अर्वणस्त्रसावनञः ।६।४।१२७॥

नञा रहितस्यार्वन्नन्तस्याङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशः स्यान्न तु सौ । उगित्त्वान्नुम् । अर्वन्तौ । अर्वन्तः । अर्वन्तम् । अर्वन्तौ । अर्वतः । अर्वता । अर्वद्भ्यामित्यादि । अनञः किम् । अनर्वा यज्ववत् ॥

३६४–नञ्तत्पुरुष (७५६) नहीं ऐसा जो अर्वन्नन्त अंग उसको तृ (त्) अन्तादेश होताहै, सु परे रहते नहीं होता, इसमेंका 'ऋ' यह 'उक्' है इससे "उगिदचाम्० ७।१।७०/३६१" इससे सर्वनामस्थानमें नुम् (न्) का आगम होगा अर्वन् + औ = अर्वन्तौ । अर्वन्+जस् = अर्वन्तः । अर्वन् + अम् = अर्वन्तम् । अर्वन् + औ = अर्वन्तौ । अर्वन्+शस् = अर्वतः । अर्वन्+टा=अर्वता । अर्वन्+भ्याम्=अर्वद्भ्याम् इत्यादि । सर्वनामस्थान होते भी ऊपर 'अर्वा' और 'हे अर्वन्' इसमें 'तृ' आदेश नहीं, यह बात इस प्रस्तुत सूत्रके 'असौ' से प्रत्यक्ष है ।

अर्वन् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अर्वा	अर्वन्तौ	अर्वन्तः
सं०	हे अर्वन्	हे अर्वन्तौ	हे अर्वन्तः
द्वि०	अर्वन्तम्	अर्वन्तौ	अर्वतः
तृ०	अर्वता	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भिः
च०	अर्वते	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
पं०	अर्वतः	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
ष०	अर्वतः	अर्वतोः	अर्वताम्
स०	अर्वति	अर्वतोः	अर्वत्सु.

नञ्तत्पुरुष न हो ऐसा क्यों कहा ? तो नञ्तत्पुरुष हो तो 'तृ' आदेश नहीं होता, इस कारण (अनर्वा यज्ववत्) अनर्वन् (जिसके घोडा नहीं सो) इस शब्दके रूप 'यज्वन्' शब्दके समान (३५६) अर्थात् औ इत्यादिमें तृ आदेश नहीं होता है * ॥

पथिन् (मार्ग) शब्द–

३६५ पथिमथ्यृभुक्षामात् ।७।१।८५॥

एषामाकारोन्तादेशः स्यात्सौ परे। आ आदिति-प्रश्लेषेण शुद्धाया एव व्यक्तेर्विधानान्नानुनासिकः॥

३६५–सु परे रहते पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् इनको आत् (आ) आदेश होताहै, इसमें नकार अनुनासिक है तो उसके स्थानमें 'आ' यह आदेश कहा हुआहै, इससे वह आदेश भी अनुनासिक (आं) होना चाहिये ऐसी शंका उठतीहै, यदि कोई कहे कि "अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः १।१।६९/१४" इस प्रकार देखाजाय तो अविधीयमान केवल अण्के स्थानमें ही सवर्णग्रहण होताहै, विधीयमान 'आ' में सवर्णका ग्रहण नहीं होता, इससे अनुनासिककी प्राप्ति नहीं, तो भी (अभेदका गुणाः) "स्वरूपेण उच्चारितः गुणः न भेदकः न विवक्षितः" अर्थात् सूत्रमें स्वरादिकोंका केवल उच्चारण उसका यत्न न करते किया हो तो उसके अंगमें भेदक अर्थात् विवेचक गुण नहीं आता अर्थात् उससे सर्व सवर्णका भी ग्रहण होताहै ऐसी परिभाषा है इससे 'आ' में अनुनासिककी प्राप्ति हुई, उसको निवारण करनेके निमित्त (आ आदिति) आ आत् अर्थात् केवल आरूपसे रहनेवाला आ ऐसा प्रश्लेष कियागया, इससे केवल 'आ' इसी व्यक्तिका विधान हुआ, आशय यह कि, अनुनासिक न रहा, पथि+आ+स् ऐमी स्थिति हुई–

३६६ इतोऽत्सर्वनामस्थाने ।७।१।८६॥

पथ्यादेरिकारस्याऽकारः स्यात्सर्वनामस्थाने परे ॥

३६६–आगे सर्वनामस्थान रहते पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन्, इनके इकारके स्थानमें अकार होताहै । तब पथ + आ + स् ऐसी स्थिति हुई, फिर सवर्णदीर्घ होकर पथा + स् हुआ, आगे–

३६७ थो न्थः ।७।१।८७॥

पथिमथोस्थस्य न्थादेशः स्यात्सर्वनामस्थाने परे । पन्थाः । पन्थानौ । पन्थानः । पन्थानम् । पन्थानौ ॥

३६७–सर्वनामस्थान परे रहते पथिन् और मथिन् शब्दोंके थकारके स्थानमें 'न्थ' आदेश हो । पन्थाः । पथिन् + औ इसमें "इतोत्सर्वनामस्थाने" और "थो न्थः" इनसे पन्थन् + औ फिर "सर्वनामस्थाने० ६।४।८/२५०" इससे उपधादीर्घ, पन्थानौ । पथिन् + जस्=पन्थानः । पथिन् + अम्=पन्थानम् । पथिन् + औ=पन्थानौ । फिर आगे भ के स्थानमें–

---

* यु + उन् = अस् ऐसी स्थिति रहते यकारके सम्प्रसारणका निषेध किस प्रकार होगा? कारण कि सूत्रमें 'सम्प्रसारणे' यह सप्तमी है तो "तस्मिन्निति० ४०" इससे अव्यवहित अर्थ होगा, यहां उकारका व्यवधान है, यदि कोई यह कहै कि "अकः सवर्णे०" से दीर्घ होनेपर व्यवधान नहीं रहेगा सो ठीक नहीं, "अचः परस्मिन्० ५०" से स्थानिवत् होजायगा, तहां समाधान–"ह्वः सम्प्रसारणम् ६।१।३२" से सम्प्रसारणकी अनुवृत्ति न लाकर सम्प्रसारणग्रहण करनेसे व्यवधानमें भी यह निषेध लगताहै ॥

* कोई 'अनर्वायज्ववत्' यहां 'अनर्व अयज्ववत्' ऐसा छेद करतेहैं, आशय यह है कि 'अनर्वा' यह प्रत्युदाहरण अनञ्का–नहीं होसकता कारण कि सु परे रहते 'असौ' इस निषेधहीसे तृ आदेश नहीं होगा इसवास्ते 'अयज्ववत' अर्थात् यज्वन् शब्द पुँल्लिङ्ग है उसके समान नहीं, नपुंसक, तब तो 'असौ' निषेध नहीं होगा, कारण कि, प्रत्ययलक्षणका "न लुमता० १।१।६३/२६३" से निषेध होताहै ॥

१ इसमें पूर्वसूत्रसे 'आत्' की अनुवृत्ति आनेसे भी इष्टसिद्धि होगी और 'पन्थानौ' इत्यादिमें सवर्ण दीर्घहीसे इष्ट सिद्ध होगा और प्रक्रियालाघव भी है तो 'अत्' ग्रहण क्यों किया? तर्क–

३६८ भस्य टेर्लोपः । ७ । १ । ८८ ॥

भसंज्ञकस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात् । पथः । पथा । पथिभ्यामित्यादि । एवं मन्थाः । ऋभुक्षाः । स्त्रियां नान्तलक्षणे ङीपि भत्वाट्टिलोपः । सुपथी नगरी । अनृभुक्षी सेना । आत्वं नपुंसके न भवति न लुमतेति प्रत्ययलक्षणनिषेधात् । सुपथि वनम् ॥ संबुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः ॥ * ॥ हे सुपथिन् । हे सुपथि । नलोपः सुप्स्वरेति नलोपस्यासिद्धत्वाद्ध्रस्वस्य गुणो न । द्विवचने भत्वाट्टिलोपः । सुपथी । शौ सर्वनामस्थानत्वात् सुपन्थानि । पुनरपि । सुपथि । सुपथी । सुपन्थानि । सुपथा । सुपथे । सुपथिभ्यामित्यादि ॥

३६८-पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन्, यह शब्द भसंज्ञक हों तो इनकी टि का लोप होताहै । (यकारादि तद्धितप्रत्यय और सर्वनामस्थानभिन्न अजादि स्वादि विभक्तिकी परता पूर्वको भसंज्ञा है)। पथिन् + शस्=पथः । आगे पदान्तमें केवल नकारका लोप २३६, पथिभ्याम् इत्यादि ।

पथिन् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
सं०	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः
द्वि०	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पं०	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
ष०	पथः	पथोः	पथाम्
स०	पथि	पथोः	पथिषु.

इसी प्रकारसे मथिन् (मट्ठा विलोनेकी रई), ऋभुक्षिन् (इन्द्र), इन शब्दोंके रूप मन्थाः, ऋभुक्षाः इत्यादि होतेहैं।

(स्त्रियामिति०) यह शब्द नान्त होनेसे "ऋन्नेभ्यो ङीप् ४।१।५/२०४" इससे इनके आगे स्त्रीवाचक ङीप् (ई) प्रत्यय होताहै, इसको अच् होनेसे इसके पूर्व शब्दको भत्व है ही, इसकारण यहां भी "भस्य टेर्लोपः" इस प्रस्तुत सूत्रसे टिलोप होताहै, "सुपथी" (जिसमें सुन्दर मार्ग है ऐसी नगरी) "अनृभुक्षी" (इन्द्ररहित सेना)।

(आत्वमिति) नपुंसकमें कुछ भी प्रत्यय नहीं, इसकारण सुपथिन् (अच्छा मार्ग है जिसमें ऐसा) यह नपुंसक शब्द भी नान्त ही है, इसी कारण ' सु ' प्रत्ययके विषयमें "पथिमथि०" इस सूत्रसे आकारान्तत्वकी शंका हुई, परन्तु नपुंसकमें " स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३/३१९" इससे लुक् शब्दसे सु का लोप होनेसे " न लुमताङ्गस्य " यह प्रत्ययलक्षणका निषेध आकर प्राप्त होताहै, इससे ' आ ' यह अङ्गकार्य नहीं होता, आगे फिर "न लोपः प्राति० ८।२।७/२३६" इससे नलोप हुआ, सुपथि वनम् । फिर आगे सम्बुद्धिमें सुलुक् होकर पदान्तत्वके कारण नलोप प्राप्त हुआ, परन्तु (सम्बुद्धाविति*) सम्बुद्धि आगे रहते नपुंसक शब्दके अन्त्य नकारका लोप विकल्पसे होताहै (वा० ४७८६) हे सुपथिन् । हे सुपथि ।

(नलोपः सुप्स्वर०) अर्थात् 'हे सुपथि' इसमें जो नकारका लोप हुआहै वह " नलोपः सुप्स्वर० ८।२।२/३५३ " इससे असिद्ध है, इससे वहां नकार दीखताहीहै, इससे अनित्यत्वके कारण प्रत्ययलक्षणसे आगे सम्बुद्धि रहते " ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८/२४२ " इस ह्रस्वनिमित्तसे गुण नहीं होता ॥

(द्विवचने०) द्विवचनमें शी (ई) यह अच् असर्वनामस्थान है इस कारण अङ्गको भत्व प्राप्त होकर टि का लोप हुआ, सुपथी, जस् और शस्के स्थानमें आनेवाले शि (इ) को सर्वनामस्थान संज्ञा ७।१।२०/३१२ है, इसकारण " इतोऽत्सर्वनामस्थाने " और " थो न्थः " इन दोनोंकी प्राप्ति होकर सुपन्थन्+इ-ऐसी स्थिति हुई और उपधादीर्घ होकर सुपन्थानि । फिर भी उसी प्रकार सुपथि । सुपथी । सुपन्थानि । सुपथिन्+टा=सुपथा । सुपथिन्+ङे=सुपथे । सुपथिन्+भ्याम्+सुपथिभ्याम् इत्यादि ।

नपुंसकलिंगमें सुपथिन् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सुपथि	सुपथी	सुपन्थानि
सं०	हे सुपथिन्, सुपथि	हे सुपथी	हे सुपन्थानि
द्वि०	सुपथि	सुपथी	सुपन्थानि
तृ०	सुपथा	सुपथिभ्याम्	सुपथिभिः
च०	सुपथे	सुपथिभ्याम्	सुपथिभ्यः
पं०	सुपथः	सुपथिभ्याम्	सुपथिभ्यः
ष०	सुपथः	सुपथोः	सुपथाम्
स०	सुपथि	सुपथोः	सुपथिषु.

पञ्चन् (पांच) शब्द-

यह बहुवचनमें ही होताहै, पंचन्+अस् ऐसी स्थिति हुई-

३६९ ष्णान्ता षट् । १ । १ । २४ ॥

षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा स्यात् । षड्भ्यो लुक् । पञ्च २ । संख्या किम् । विप्रुषः । पामानः । शतानि सहस्राणीत्यत्र सन्निपातपरिभाषया न लुक् । सर्वनामस्थानसंनिपातेन कृतस्य नुमस्तदविघातकत्वात् । पञ्चभिः । पञ्चभ्यः २ । षट्चतुर्भ्यश्चेति नुट् ॥

३६९-षान्त और नान्त जोजो संख्यावाचक शब्द हैं उनकी षट्संज्ञा हो, तो जस् और शसमें " षड्भ्यो लुक्

-[illegible] " वा षपूर्वस्य निगमे ६।४।९ " से विकल्प करके उपधादीर्घ होताहै, दीर्घाभावमें ' ऋभुक्षणम ' ऐसा होताहै सो नहीं बनेगा इसवास्ते अतका ग्रहण किया ॥

१ इस सूत्रमें 'ष्णान्ता' यह [illegible]निर्देश है सो "बहुगणवतुडति संख्या १।१।२३/२५८" इसमें 'संख्या' यह यद्यपि संज्ञापर है, तथापि यहां संज्ञिपर है ऐसा बोधन करनेके लिये है ॥

७।१।२२/२६१ " इससे उन प्रत्ययोंका लुक् हुआ, तब 'पंचन्' ऐसी स्थिति हुई, प्रत्ययलक्षणसे सुबन्त होनेसे पदत्व प्राप्त होकर नकारका लोप हुआ। पञ्च। पञ्च। षान्त नान्त संख्याहीको षट्संज्ञा क्यों कहा? तो संख्यावाचक न होनेसे विप्रुष् (बिन्दु), पामन् (खुजली), इन षान्त, नान्त शब्दोंके आगेके जस्, शस्का लोप नहीं होता, विप्रुष्+जस्=विप्रुषः। पामन्+जस् पामानः।

(शतानि सहस्राणीति) शत, सहस्र, यह शब्द नपुंसक हैं, इनको शि (इ) प्रत्यय सर्वनामस्थान परे रहते "नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२/३१४" इससे नुम् (न्) का आगम होकर शतन्+इ, सहस्रन्+इ ऐसी स्थिति हुई, नान्तत्वके कारण उपधादीर्घ होनेसे 'शतानि', णत्व होकर 'सहस्राणि' ऐसे जो रूप होतेहैं उनमें 'शतान्, सहस्रान्' ऐसी स्थिति रहते उनका नान्तत्व और संख्यात्व लेकर उनको षट्संज्ञा और विभक्तिलुक् न करना चाहिये, क्योंकि सर्वनामस्थान शि प्रत्ययके सन्निपात (सम्बन्ध) से जो नुमागम हुआ इसी निमित्तसे फिर उलटकर शिप्रत्ययका नाश करनेसे सन्निपातपरिभाषासे विरोध होगा, इसलिये वहां लुक् न करना चाहिये। आगे फिर पदान्तत्वके कारण नकारका लोप, पञ्चभिः। पञ्चन्+भ्यस्=पञ्चभ्यः। 'आम्' प्रत्ययमें "षट्चतुर्भ्यश्च ७।१।५५/३३८" इससे नुट्, तब पञ्चन्+नाम् ऐसी स्थिति हुई फिर--

३७० नोपधायाः। ६। ४। ७॥

नान्तस्योपधाया दीर्घः स्यान्नामि परे। नलोपः। पञ्चानाम्। पञ्चसु। परमपञ्च। परमपञ्चानाम्। गौणत्वे तु न लुग्नुटौ। प्रियपञ्चा। प्रियपञ्चानौ। प्रियपञ्चानः। प्रियपञ्चाम्। एवं सप्तन्, नवन्, दशन्॥

३७०--नाम् आगे रहते नान्त अंगकी उपधाको दीर्घ होताहै। तब पञ्चान्+नाम् ऐसी स्थिति हुई, नाम्को सुप्त प्राप्त हुआ, यजादित्व न होनेसे उसके अंगको भत्व नहीं, किन्तु पदत्व है इससे नकारका लोप पञ्चानाम्। पञ्चसु *॥

परमपञ्चन् (उत्तम पांच) ऐसा कर्मधारयसमास हो तो भी ऐसे ही रूप होंगे, परमपञ्च। परमपञ्चानाम्।

(गौणत्वे त्विति) प्रियाः पञ्च यस्य (अर्थात् प्रिय हैं पांच जिसको सो), ऐसा 'प्रियपञ्चन्' बहुव्रीहि अर्थात् विशेषणरूप है, इसलिये गौण शब्द है, जस् शस् विभक्तियोंका लुक् नहीं, और 'आम्' प्रत्ययमें नुट् भी नहीं ऐसा वचन है, अर्थात् सब रूप राजवत् हैं, प्रियपञ्चन्+सु=प्रियपञ्चा। प्रियपञ्चन्+औ=प्रियपञ्चानौ। प्रियपञ्चन्+जस्=प्रियपञ्चानः। प्रियपञ्चन्+आम्=प्रियपञ्ञ्आम्।

प्रियपञ्चन् शब्दके रूप--

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रियपञ्चा	प्रियपञ्चानौ	प्रियपञ्चानः
सं०	हे प्रियपञ्चन्	हे प्रियपञ्चानौ	हे प्रियपञ्चानः
द्वि०	प्रियपञ्चानम्	प्रियपञ्चानौ	प्रियपञ्ञः
तृ०	प्रियपञ्ञा	प्रियपञ्चभ्याम्	प्रियपञ्चभिः
च०	प्रियपञ्ञे	प्रियपञ्चभ्याम्	प्रियपञ्चभ्यः
पं०	प्रियपञ्ञः	प्रियपञ्चभ्याम्	प्रियपञ्चभ्यः
ष०	प्रियपञ्ञः	प्रियपञ्ञोः	प्रियपञ्ञाम्
स०	प्रियपञ्ञि, प्रियपञ्चानि	प्रियपञ्ञोः	प्रियपञ्चसु.

* 'पञ्चानाम्' यह "नामि २०९" इससे सिद्ध नहीं होसकता कारण कि, नलोप असिद्ध होजायगा इस कारणसे इस सूत्रको बनाया॥

इसी प्रकार सप्तन् (सात), नवन् (नौ), दशन् (दस), इनके रूप जानने चाहिये॥

अष्टन् (आठ) शब्द--

३७१ अष्टन आ विभक्तौ।७।२।८४॥

अष्टन आत्वं स्याद्धलादौ विभक्तौ॥

३७१--हलादि विभक्ति परे रहते 'अष्टन्' शब्दको आत्व होताहै। ("रायो हलि ७।२।८५/२८६" इस पर सूत्रसे हल्का अपकर्ष होताहै और वह हल् विभक्तिका विशेषण होताहै, इससे 'हलादौ' ऐसा अर्थ होताहै)। इससे अगले सूत्रमें भ्यस् प्रत्ययमें अष्टन्को आत्व होकर 'अष्टाभ्यः' ऐसा बना है, इसका और भी प्रयोजन वहां ही आवेगा॥[1]

३७२ अष्टाभ्य औश्।७।१।२१॥

कृताकारादष्टनः परयोर्जश्शसोरौश् स्यात्। अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृतात्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति। वैकल्पिकं चेदमष्टन आत्वमष्टनो दीर्घादिति सूत्रे दीर्घग्रहणाज्ज्ञापकात्। अष्टौ २। परमाष्टौ। अष्टाभिः। अष्टाभ्यः २। अष्टानाम्। अष्टासु। आत्वाभावे अष्ट २। इत्यादि पञ्चवत्। गौणत्वे त्वात्वाभावे राजवत्। शसि प्रियाष्णः। इह पूर्वस्मादपि विधावल्लोपस्य स्थानिवद्भावान्न ष्टुत्वम्। कार्यकालपक्षे बहिरङ्गस्याल्लोपस्यासिद्धत्वाद्वा। प्रियाष्ण। इत्यादि। जश्शसोरनुमीयमानमात्वं प्राधान्य एव न तु गौणतायाम्। तेन प्रियाष्टौ हलादावेव वैकल्पिकमात्वम्। प्रियाष्टाभ्याम्। प्रियाष्टाभिः। प्रियाष्टाभ्यः २। प्रियाष्टासु। प्रियाष्णो राजवत्सर्वं हाहावच्चापरं हलि। भष्भावः। जश्त्वचर्त्वे॥ भुत्। भुद्। बुधौ। बुधः। बुधा। भुद्भ्याम्। भुत्सु॥

[1] यहां हल्का अपकर्ष क्यों किया 'विभक्तिके परे रहते' इतने ही अर्थसे रूप, सिद्ध होजायँगे, ऐसी शङ्का होनेपर कहते है कि, 'अष्टानाम्' यह रूप नहीं सिद्ध होगा, कारण कि "अष्टन आ०" यह सूत्र पर है और नित्य है तो "षट्चतु० ३३८" को बाधकर प्रथम आत्व होगा फिर नुट् नहीं होगा और 'प्रियाष्टानौ' इत्यादिमे भी दोष जानना॥

३७२-अष्टन् शब्दको जब आत्व होताहै, तब उसके आगेके जस् शस् प्रत्ययोंके स्थानमें औश् (औ) आदेश होताहै ।

(अष्टम्य इतीति) 'अष्टभ्यः' ऐसा रूप होते भी जान-बूझकर सूत्रमें आत्वयुक्त 'अष्टाभ्यः' ऐसा रूप लाए हैं, इस गौरवयुक्त निर्देशसे ही ऐसा जाना जाताहै कि, जस् और शस् इनका विषय होते भी अष्टन्को आत्व होताहै ।

(वैकल्पिकश्चेति) 'अष्टभ्यः' ऐसा भी और एक रूप होताहै, कैसे ? तो "अष्टनो दीर्घात् ६।१।१७२/३७१८" इस सूत्रमें दीर्घान्त 'अष्टन्' शब्दके आगेकी असर्वनामस्थान विभक्ति उदात्त होतीहै, ऐसा कहा हुआ है, इस कारण पक्षमें ह्रस्वान्त भी उस शब्दके रूप होतेहैं, ऐसा बोध होताहै, इस ज्ञापकसे और "अष्टन" इस सूत्रसे और उसमेंके ज्ञापकसे भी होनेवाला आत्व वैकल्पिक है, ऐसा जानना । आत्व होते औश् होकर, अष्टौ । अष्टौ । रूप हुए । 'परमाष्टन्' ऐसा कर्मधारय समास कियाजाय तो भी वैसे ही परमाष्टौ जस् और शस्में बनेगा । अष्टन्+भिस् अष्टाभिः । अष्टन्+भ्यस्=अष्टाभ्यः । अष्टन्+आम्=अष्टानाम् । अष्टन्+सुप्=अष्टासु । जब आत्व नहीं है तब "षड्भ्यो लुक् ७।१।२२/२६१" इससे जस् शस् का लुक् होकर अष्ट । अष्ट । पंचन् शब्दके समान रूप होंगे प्र० सं० द्वि० अष्टौ, अष्ट । तृ० अष्टाभिः, अष्टभिः । च० पं० अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः । ष० अष्टानाम् । स० अष्टासु, अष्टसु । इसी प्रकारसे परमाष्टन् शब्दके रूप होतेहैं ।

(गौणत्वे त्विति) 'प्रियाष्टन्' ऐसा बहुव्रीहि अर्थात् गौण शब्द लियाजाय तो आत्व नहीं होता, तब राजवत् रूप होंगे, शस्में प्रियाष्ण्ः (इहेति०) यहां 'शस्' इस परनिमित्तसे भत्वके कारण अकारका जो लोप हुआहै, उसके पहले टवर्णके अगले वर्णको अर्थात् नकारको ष्टुत्व कर्तव्य है, इस कारण अल्लोपको स्थानिवद्भाव प्राप्त हुआ, इसलिये टकारके आगे अव्यवहित नकार न होनेसे ष्टुत्व नहीं (कार्यकालपक्षे इति) अथवा कार्यकाल पक्षमें अल्लोपको बहिरङ्गत्व आताहै तो असिद्धता होजायगी ऐसा कहना भी योग्य ही है । प्रियाष्टन्+टा=प्रियाष्ट्णा इत्यादि * ॥

(जश्शसोः०) जस् और शस् आगे होते अंगको जो आत्व होताहै, यह अनुमानसे लायागयाहै अर्थात् केवल ज्ञापकसिद्ध होनेसे शब्दको प्राधान्य होते वह आत्व होताहै, बहुव्रीहिसमासके कारण जब गौणत्व आताहै, तब आत्व ही नहीं (तेनेति) इसकारण आगे हलादि विभक्ति हो तो हो । नहीं तो नहीं, 'प्रियाष्टन्' शब्दको वैकल्पिक आत्व होताहै जस् शस् प्रत्ययोंमें नहीं, प्रियाष्टन्+भ्याम्=प्रियाष्टाभ्याम् । प्रियाष्टन्+भिस्=प्रियाष्टाभिः । प्रियाष्टन्+भ्यस्=प्रियाष्टाभ्यः । प्रियाष्टन् + सुप्=प्रियाष्टासु, इस विषयमें आधी कारिका है "प्रियाष्टनो राजवत्सर्वं हाहावच्चापरं हलि" अर्थात् प्रियाष्टन् शब्दको राजन् शब्दके समान सब कार्य होतेहैं, आगे 'भ्याम्' इत्यादि हलादि विभक्ति होत हाहावत् (२४०) आकारयुक्त दूसरे रूप होतेहैं ।

प्रियाष्टन् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रियाष्टा	प्रियाष्टानौ	प्रियाष्टानः
सं०	हे प्रियाष्टन्	हे प्रियाष्टानौ	हे प्रियाष्टानः
द्वि०	प्रियाष्टानम्	प्रियाष्टानौ	प्रियाष्ट्णः
तृ०	प्रियाष्ट्णा	प्रियाष्टाभ्याम्, प्रियाष्टभ्याम्,	प्रियाष्टाभिः, प्रियाष्टभिः,
च०	प्रियाष्ट्णे	प्रियाष्टाभ्याम्, प्रियाष्टभ्याम्	प्रियाष्टाभ्यः, प्रियाष्टभ्यः
पं०	प्रियाष्ट्णः	प्रियाष्टाभ्याम्, प्रियाष्टभ्याम्	प्रियाष्टाभ्यः, प्रियाष्टभ्यः,
ष०	प्रियाष्ट्णः	प्रियाष्ट्णोः	प्रियाष्ट्णाम्
स०	प्रियाष्ट्णि, प्रियाष्टणि	प्रियाष्ट्णोः	प्रियाष्टासु, प्रियाष्टसु.

बुध् (ज्ञाता) यह क्विप् प्रत्ययान्त झषन्त शब्द है ।

सु का लोप, भष्भाव, धातुत्व है, इस कारण "एकाचो बशो भष्० ८।२।३७/३२६" इससे पदान्तत्वके कारण भष्भाव, तब 'भुध्' ऐसी स्थिति हुई, "झलाञ्जशोऽन्ते ८।२।३९/८४" इससे जश्त्व, भुद् होकर "वावसाने ८।४।५६/२०६" इससे विकल्पकरके चर्त्व, भुत्, भुद् । फिर आगे बुधौ । बुधः । फिर पदान्तमें पूर्ववत् भष्भाव, भुद्भ्याम् । भुत्सु ।

बुध् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	भुत्, भुद्	बुधौ	बुधः
सं०	हे भुत्-द्	हे बुधौ	हे बुधः
द्वि०	बुधम्	बुधौ	बुधः
तृ०	बुधा	भुद्भ्याम्	भुद्भिः
च०	बुधे	भुद्भ्याम्	भुद्भ्यः
पं०	बुधः	भुद्भ्याम्	भुद्भ्यः
ष०	बुधः	बुधोः	बुधाम्
स०	बुधि	बुधोः	भुत्सु. * ॥

* 'यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम्', 'कार्यकालं संज्ञापरिभाषम्' ऐसी परिभाषा हैं अर्थात् संज्ञा और परिभाषा इनके विषयमें यथोद्देश पक्ष और कार्यकाल पक्ष यह दो पक्ष हैं, अमुक एक संज्ञा वा परिभाषा अमुक ही उद्देश्यसे दी हुई है अर्थात् केवल उतनेके निमित्तही उस संज्ञा वा परिभाषाका प्रयोजन है, ऐसा मानना, इसको यथोद्देशपक्ष कहतेहैं, इस यथोद्देशपक्षमें तो पाछी बहिरंग-परिभाषाको राजन् शब्द (३५२) में ष्टुत्व त्रैपादिक है, इस कारण दीखता नहीं, इस कारण अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग इन दोनों शब्दोंकी वहां प्राप्ति ही नहीं, अर्थात् वहां उस परिभाषाकी प्राप्ति ही नहीं इस कारण वहां अल्लोप असिद्ध नहीं, और उसी कारण ष्टुत्व हुआहै, परन्तु मूलका उद्देश ध्यानमें न लाते जहां उस परिभाषाका कार्य आवेगा वहां वह लाई जाय, ऐसा जो पक्ष उसको कार्यकालपक्ष कहतेहैं, यह पक्ष माननेसे यहां [illegible]पाकी प्राप्ति आकर अल्लोपको बहिरङ्गत्वके कारण असिद्धत्व प्राप्त होताहै, इसलिये नकारको ष्टुत्वका अभाव हुआ, यदि यह पक्ष न मानाजाय तो ऊपर कहेसमान स्थानिवद्भाव करके ष्टुत्वका निषेध है ही, "अचः परस्मिन्पूर्वविधौ" इसके अनुसार-स्थानिवद्भाव है । यहां 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्' यह वचन लाकर ष्टुत्व क्यों नहीं करते ? ऐसी शंका हुई, परन्तु इसको 'संयोगादिलोपलत्वणत्वेषु' ऐसा निषेध (२३५ में) कहा है ॥

* इस प्रकारसे सब झषन्त शब्दोंके रूप जानना चाहिये परन्तु जहां शब्दमेंका एकाच् झषन्त अवयव बश्युक्त न हो वहां "एका-

युज् (योजना करनेवाला) जशन्त शब्द–

प्रथम शब्दकी उत्पत्ति–

३७३ ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च । ३ । २ । ५९ ॥

एभ्यः क्विन् स्यात् । अलाक्षणिकमपि किंचित्कार्यं निपातनाल्लभ्यते । निरुपपदाद्युजेः क्विन् । कनावितौ ॥

३७३–ऋत्विज्, दधृष्, स्रज्, दिश्, उष्णिह्, अञ्चु, युज्, क्रुञ्च् यह निपातन करके क्विप्प्रत्ययान्त सिद्ध होतेहैं, अर्थात् यह शब्द अनुक्रमसे यज्, धृष्, सृज्, दिश्, ष्णिह्, अञ्चु, युजि, क्रुञ्च्, इनसे कर्त्रर्थमें क्विन्नन्त हैं ऐसा जानना।

(अलाक्षणिकमपि०) यहां ऊपरके शब्द पूर्वोक्त धातुओंसे बनेहुए द्वित्व, अमागम, तलोप, नलोपाभाव, यह जो कार्य हुए हैं,वे यद्यपि अलाक्षणिक (अर्थात् किसी भी सूत्रसे सिद्ध न हुए ऐसे) हैं, तो भी प्रस्तुत सूत्रमें उनके सिद्ध रूप दिये हैं, इस निपातन करके ही उनको वे वे कार्य होतेहैं, ऐसा जानना चाहिये।

(निरुपपदादिति) उपपदरहित जो (३७६) युज् धातु, उसके परे कर्त्रर्थमें क्विन् प्रत्यय होताहै, (सोपपद युज् क्विबन्त होताहै सि० ३७७), ककार, नकार इत् हैं, इससे 'वि' इतना अंश रहा, फिर संज्ञा–

३७४ कृदतिङ् । ३ । १ । ९३ ॥

संनिहिते धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात् ॥

३७४–"धातोः $\frac{३।१।९१}{२८२९}$ " ऐसा जो प्रस्तुत सूत्रके समीप सूत्र है, उस अधिकारमेंके तिङ् प्रत्याहार $\frac{३।४।७८}{२१५४}$ भिन्न जो प्रत्यय हैं, उनकी 'कृत्' ऐसी संज्ञा है, इसलिये यह क्विन् (वि) प्रत्यय कृत्संज्ञक है, 'वि' में भी इकार इत् है, तब 'व्' इतनाही अंश रहा, एकाल् होनेसे "अपृक्त एकाल् प्रत्ययः $\frac{१।२।४१}{२५}$" इससे इसकी अपृक्त संज्ञा हुई, फिर–

३७५ वेरपृक्तस्य । ६ । १ । ६७ ॥

अपृक्तस्य वस्य लोपः स्यात् । कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वात्स्वादयः ॥

३७५–अपृक्तसंज्ञक वकारका लोप होताहै, इस कारण युज् इतना ही शब्द रहा,यह शब्द कृत्प्रत्ययान्त अर्थात् कृदन्त है, इसलिये (कृत्तद्धित०) "कृत्तद्धितसमासाश्च $\frac{१।२।४६}{१७९}$" इससे कृदन्तत्वके कारण इसकी प्रातिपदिक संज्ञा है,इस कारण इसके आगे स्वादिविभक्ति (१८३) आई युज्+स् हुआ फिर–

-चो वशो भष० $\frac{८।२।३७}{३२६}$" इस सूत्रकी प्राप्ति नहीं, इसकारण सब रूप बहुत सीधे हैं, जस्त्व, चर्त्व मात्र पूर्ववत् होंगे, इससे उदाहरण न दिये, इसी प्रकार जहां शब्दोंमें कोई विशेष बात नहीं है, वहां भी उदाहरण नहीं दिये हैं। कमल्, सुगण् इत्यादि शब्दोंके अनुसार संधिकार्य रखकर उनके आगे प्रत्ययमात्र लगानेसे कार्य सिद्ध होगा ॥

३७६ युजेरसमासे । ७ । १ । ७१ ॥

युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे । सुलोपः । संयोगान्तस्य लोपः ॥

३७६–समासमेंका न हो ऐसे क्विन्नन्त युज् शब्दके आगे सर्वनामस्थान परे रहते नुम् (न्) का आगम हो। (यहां "इदितो नुम्० ७।१।५८" उगिदचां सर्वनामस्थाने $\frac{७।१।७०}{३६१}$" इन सूत्रोंसे 'नुम्' और 'सर्वनामस्थाने' की अनुवृत्ति होतीहै) युन्+ज्=स् ऐसी स्थिति हुई सु का लोप,संयोगान्तलोप, तब युन् ऐसी स्थिति रही, फिर–

३७७ क्विन्प्रत्ययस्य कुः । ८ । २ । ६२ ॥

क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोन्तादेशः स्यात्पदान्ते । नस्य कुत्वेनानुनासिको ङकारः । युङ् । नश्चापदान्तस्येति नुमोऽनुस्वारः परसवर्णः । तस्याऽसिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वं न । युञ्जौ । युञ्जः । युञ्जम् । युञ्जौ । युजः । युजा । युग्भ्यामित्यादि । असमासे किम् ॥

३७७–जिससे क्विन् प्रत्यय हुआ है उसको पदान्तमें कवर्ग अन्तादेश होताहै। नकारको कवर्ग कहनेसे अनुनासिक अर्थात् ङकार हुआ, युङ्।

(नश्चेति) 'औ' आगे रहते युन्+ज्=औ इसमें अगले जकारके कारण "नश्चापदान्तस्य झलि $\frac{८।३।२४}{१२३}$" इससे अपदान्त नकारको अनुस्वार, उसको "अनुस्वारस्य ययि० $\frac{८।४।५८}{१२४}$" इससे परसवर्ण 'ञ्' वह "चोः कुः $\frac{८।२।३०}{३७८}$" इससे पर है, इसलिये असिद्ध अर्थात् नहीं दीखता, इस कारण अगले झल् (ज्) के निमित्तसे ञकारको उससे कुत्वङ कार नहीं, युञ्जौ। युज्+जस्=युञ्जः। युज्+अम्=युञ्जम्। युञ्जौ। युज्+शस् असर्वनामस्थानत्वके कारण नुम् नहीं हुआ, युजः। युज्+टा=युजा। पदान्तमें 'चोः कुः' इससे कुत्वके कारण युग्भ्याम् इत्यादि ॥

क्विन्नन्त युज् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	युङ्	युञ्जौ	युञ्जः
सं०	हे युङ्	हे युञ्जौ	हे युञ्जः
द्वि०	युञ्जम्	युञ्जौ	युजः
तृ०	युजा	युग्भ्याम्	युग्भिः
च०	युजे	युग्भ्याम्	युग्भ्यः
पं०	युजः	युग्भ्याम्	युग्भ्यः
ष०	युजः	युजोः	युजाम्
स०	युजि	युजोः	युक्षु.* ॥

(असमासे किम्) युज्को असमासमें ऐसा क्यों कहा? तो समासमें "सत्सूद्विष० $\frac{३।२।६१}{२९७५}$" इससे बनेहुए 'सुयुज्' इस क्विन्नन्त शब्दको सर्वनामस्थानमें नुम् नहीं तो भी कुत्व हुई है इसके विषयमें–

* इसमें "क्विन्प्रत्ययस्य कुः", "चोः कुः", "संयोगान्तस्य लोपः", इत्यादि सूत्रोंके अंक भली भांति ध्यानमें रखनेसे उन २ सूत्रोंके प्रयोजन स्पष्ट होजायंगे ॥

३७८ चोः कुः । ८ । २ । ३० ॥

चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च । इति कुत्वम् । क्विन्प्रत्ययस्येति कुत्वस्यासिद्धत्वात् । सुयुक् । सुयुग् । सुयुजौ । सुयुजः । युजेरिति धातुपाठपठितेकारविशिष्टस्यानुकरणं न त्विका निर्देशः । तेनेह न । युज्यते समाधत्ते इति युक् । युज समाधौ दैवादिक आत्मनेपदी । संयोगान्तलोपः । खन् । खञ्जौ । खञ्जः । इत्यादि ॥ व्रश्चेति षत्वम् । जश्त्वचर्त्वे । राट् । राड् । राजौ राजः । राट्त्सु । राट्सु ॥ एवं विभ्राट् । देवेट् । देवेजौ । देवेजः । विश्वसृट् । विश्वसृड् । विश्वसृजौ । विश्वसृजः । इह सृजियज्योः कुत्वं नेति क्लीबे वक्ष्यते । परिमृट् । षत्वविधौ राजिसाहचर्यात् टुभ्राजृदीप्ताविति फणादिरेव गृह्यते । यस्तु एजृ भ्राजृ दीप्ताविति तस्य कुत्वमेव । विभ्राक्, विभ्राग् । विभ्राग्भ्यामित्यादि ॥

परौ व्रजेः षः पदान्ते ॥ (उ० २१७) ॥ परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्याद्दीर्घश्च पदान्तविषये षत्वं च । परित्यज्य सर्वं व्रजतीति परिव्राट् । परिव्राजौ । परिव्राजः ॥

३७८-झल् आगे रहते और पदान्तमें चवर्गको कवर्ग होताहै । "क्विन्प्रत्ययस्य कुः $\frac{६।२।६२}{३७७}$" यह सूत्र यहांपर असिद्ध है इससे प्रस्तुतसूत्रसे कुत्व हुआ, सुयुक्, सुयुग् । सुयुज्+औ=सुयुजौ । सुयुज्+जस्=सुयुजः ।

क्विबन्त सुयुज् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सुयुक्, सुयुग्	सुयुजौ	सुयुजः
सं०	हे सुयुक्, हे सुयुग्	हे सुयुजौ	हे सुयुजः
द्वि०	सुयुजम्	सुयुजौ	सुयुजः
तृ०	सुयुजा	सुयुग्भ्याम्	सुयुग्भिः
च०	सुयुजे	सुयुग्भ्याम्	सुयुग्भ्यः
पं०	सुयुजः	सुयुग्भ्याम्	सुयुग्भ्यः
ष०	सुयुजः	सुयुजोः	सुयुजाम्
स०	सुयुजि	सुयुजोः	सुयुक्षु.

(युजेरिति) "युजेरसमासे" इसमें और "ऋत्विग्दधृक्० $\frac{३।२।२९}{३७३}$" इसमें भी 'युजि' ऐसा जो धातु है वह धातुपाठमें ही जो इकारयुक्त धातु 'युजिर् योगे' रुधादि (२५४३) है उसीका उच्चारण है अर्थात् उसीको नुम् होताहै। दूसरा जो युज् धातु (२५१३) उसको* "इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे (३२८५)" इस वार्तिकसे इक् (इ) प्रत्यय लगानेसे 'युजि' ऐसा सामान्यतः उच्चारण होताहै, वह यह नहीं है, इस कारण इस धातुसे 'युज्यते' (जो समाधान करताहै वह) इस अर्थमें जो क्विबन्त शब्द 'युज्' होताहै, उसको सर्वनामस्थानमें 'नुम्' नहीं, यह धातु 'युज् समाधौ' ऐसा दिवादिगणमेंका आत्मनेपदी है, इस क्विबन्त 'युज्' शब्दके रूप 'सुयुज्' शब्दके समान जानना चाहिये।

खञ्ज् (लूला) शब्द (क्विबन्त) ।

इसमेंका ञकार नकारज है इसलिये खन्ज् ऐसा शब्द है तो सुलोप, "संयोगान्तस्य लोपः $\frac{८।२।२३}{५४}$" खँन् । सम्बुद्धिमेंभी इसीप्रकार । आगे फिर नकारके स्थानमें अनुस्वार फिर परसवर्ण होकर खञ्जौ । खञ्ज्+जस्=खञ्जः इत्यादि । आगे पदसंज्ञानिमित्त हलादि विभक्तिमें भी संयोगान्तलोप, खन्भ्याम् इत्यादि ।

खञ्ज् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	खन्	खञ्जौ	खञ्जः
सं०	हे खन्	हे खञ्जौ	हे खञ्जः
द्वि०	खञ्जम्	खञ्जौ	खञ्जः
तृ०	खञ्जा	खन्भ्याम्	खन्भिः
च०	खञ्जे	खन्भ्याम्	खन्भ्यः
पं०	खञ्जः	खन्भ्याम्	खन्भ्यः
ष०	खञ्जः	खञ्जोः	खञ्जाम्
स०	खञ्जि	खञ्जोः	खन्त्सु–न्सु.

राज् (दीप्तिमान्) शब्द–(क्विबन्त)–

सुलोप, "व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः $\frac{८।२।३६}{२९४}$" इसमें राज् धातु है, इससे इसी सूत्रसे पदान्तमें और झल् परे रहते षत्व, राष् ऐसी स्थिति हुई, "झलाञ्जशोऽन्ते $\frac{८।२।३९}{८४}$" इससे षकारके स्थानमें जश् डकार और "वावसाने $\frac{८।४।५६}{२०६}$" इससे विकल्पसे चर्त्व, राट्, राड् । राज्+औ=राजौ । राज्+जस्=राजः । पदान्तमें पूर्ववत् षत्व और फिर डत्व, राड्भ्याम् । राज्+सु=राट्त्सु, राट्सु ।

राज् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	राट्, राड्	राजौ	राजः
स०	हे राट्, हे राड्	हे राजौ	हे राजः
द्वि०	राजम्	राजौ	राजः
तृ०	राजा	राड्भ्याम्	राड्भिः
च०	राजे	राड्भ्याम्	राड्भ्यः
पं०	राजः	राड्भ्याम्	राड्भ्यः
ष०	राजः	राजोः	राजाम्
स०	राजि	राजोः	राट्त्सु, राट्सु.* ॥

१ चाहे यह क्विबन्त शब्द है, तो भी बहुव्रीहिके आश्रयणसे जिनसे क्विन् हुआ उनको होनेवाले कुत्वका असिद्धत्व जानना चाहिये ॥

* व्रश्च १, भ्रस्ज २, सृज ३, मृज ४, यज ५, राज ६, भ्राज ७, इन सात धातुओंसे जो क्विबन्त शब्द बनतेहैं, उनमेंसे 'राज्' शब्द तो ऊपर आ ही चुका, व्रश्च यह चान्त है, इस लिये आगे चान्तप्रकरणमें (४२८) आवेगा, उसको और शेष रहेहुए भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, भ्राज इन पांच धातुओंसे बनेहुए शब्दोंको भी पदान्तमें और झल् परे रहते षत्व होताहै, इसी कारण 'एवं विभ्राट्' (इसी प्रकारसे विभ्राट्) ऐसा आगे कहा है ॥

व्रश्च, भ्रस्ज, –इत्यादि सात शब्दोंको "चोः कुः ८।२।३०/३७८" इससे कुत्वकी प्राप्ति तो हुई, परन्तु "व्रश्चभ्रस्ज० ८।२।३६/२९४" यह अपवाद होनेके कारण अपवादहीको प्रबलता आई और षत्व ही स्थिर रहा, कुत्व नहीं होता (एवं विभ्राट्) इस 'राज्' शब्दके समान ही विभ्राज् (सूर्य) शब्दके रूप जानना कारण कि, वह उसी 'व्रश्चभ्रस्ज०' सूत्रमेंके 'भ्राज्' धातुसे "भ्राजभास० ३।२।१७७/३१५७" इससे बनाहुआ क्विबन्त शब्द है ॥

देवेज् (देवताके निमित्त यज्ञ करनेवाला) यह भी वैसे ही, अर्थात् इसके भी रूप वैसे ही होंगे, यज् धातु, देवेट्, देवेड् । देवेजौ । देवेजः । इत्यादि ।

विश्वसृज् (विश्वकर्ता) यह भी उसी प्रकार, विश्वसृट्, विश्वसृड् । विश्वसृजौ । इत्यादि ।

'यज्' और 'सृज्' शब्दोंको षत्व तो सिद्ध ही है, परन्तु "ऋत्विग्दधृक्स्र० ३।२।५९/३७३" यहां ऋत्विज् और सृज् यह शब्द उसी यज् और सृज् धातुओंसे क्विन्नन्त बने हैं और उनको "चोः कुः" इससे कुत्व होताहै (२८० । ४४१) इस कारण उसी प्रकारसे देवेज् और विश्वसृज् क्या इनको भी कुत्व होताहै ? इस शंकाके निवारणार्थ कहते हैं–

(इहेति) इसमें यज् और सृज् इनको "चोः कुः" इससे कुत्व प्राप्त तो है, परन्तु नहीं होता ऐसा आगे नपुंसक असृज् शब्दके साधन ४४३ में कहाजायगा * ॥

परिमृज् (शुद्ध करनेवाला) शब्द–

इसके रूप वैसेही परिमृट् इत्यादि विश्वसृज् शब्दके समान जानने ।

(षत्वविधाविति) इस षत्वविधानमें जो भ्राज् लिया जायगा वह 'राज्' धातुकी संगतिसे फणादिगणमें ६।४।१२५/२३५४ 'टुभ्राजृ दीप्तौ' यह जो धातु है, वह लियाजायगा, अर्थात् उसीको षत्व होगा। (यस्त्विति) परन्तु, एजृ, भ्रेजृ इनके संगतिमें 'भ्राजृ दीप्तौ' ऐसा धातु (सि० २२९० में) है, उसको षत्व नहीं होता है, "चोः कुः" इससे कुत्व ही होताहै, इस कारण इस दूसरे भ्राजृ धातुसे जो 'विभ्राज्' अन्य शब्द बनताहै, उसके रूप विभ्राक्, विभ्राग् । विभ्राग्भ्याम् इत्यादि होंगे। सुयुज् शब्द (३७८) के समान * ॥

परिव्राज् इसमें व्रज् धातु है, उसको षत्वकी प्राप्ति नहीं, तथापि वार्तिकसे षत्व होताहै वह इस प्रकार है कि–

* "परौ व्रजेः षः पदान्ते (उ० २१७)" परि उपपद होते व्रज् धातुको कर्त्रर्थमें क्विप् (०) प्रत्यय और दीर्घ होताहै और पदान्तका विषय हो तो षत्व भी होताहै। (इसमें इसके पूर्व "क्विब्वचिप्रच्छि०" इस औणादिक सूत्रसे क्विप् और दीर्घका अनुकर्ष होताहै) । (परित्यज्य०) सबका परित्याग करके जो चलताहै सो परिव्राट् (संन्यासी) परिव्राज्+औ=परिव्राजौ । परिव्राज्+जस्=परिव्राजः इत्यादि राज् शब्दके समान ॥

विश्वराज् शब्द–

इसमें कई स्थानोंमें दीर्घ होताहै, उसके समझनेको पहले उत्पत्ति लिखते हैं–

३७९ विश्वस्य वसुराटोः ।६।३।१२८॥

विश्वशब्दस्य दीर्घः स्याद्वसौ राट्शब्दे च परे । विश्वं वसु यस्य स विश्वावसुः । राडिति पदान्तोपलक्षणार्थम् । चर्त्वमविवक्षितम् । विश्वाराट् । विश्वाराड् । विश्वराजौ । विश्वराजः । विश्वाराड्भ्यामित्यादि ॥

३७९–आगे वसु अथवा राट् शब्द हो तो विश्व शब्दको दीर्घ होताहै । ("ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घः० ६।३।१११/१७४" से दीर्घकी अनुवृत्ति आतीहै) । (विश्वं वसु यस्य सः) सब जगत् है वसु (धन) जिसका वह विश्वावसु (गन्धर्व विशेष) ।

(राडिति) इसमें राट् जो टान्त शब्द है सो पदान्तोपलक्षणार्थ (अर्थात् राज् शब्द पदान्तमें होते उसका जो रूप होताहै उस रूपका ग्रहण कियाजाय ऐसा दिखानेको) लाये हैं, उसमें चर्त्व होना ही चाहिये, ऐसी कुछ आवश्यकता नहीं है, विश्वाराट्, विश्वाराड् । विश्वराज्+औ=विश्वराजौ । विश्वराज्+जस्=विश्वराजः । विश्वराज्+भ्याम्=विश्वाराड्भ्याम् । इत्यादि ।

विश्वराज् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	विश्वाराट्–ड्	विश्वराजौ	विश्वराजः
सं०	हे विश्वाराट्-ड्	हे विश्वराजौ	हे विश्वराजः
द्वि०	विश्वराजम्	विश्वराजौ	विश्वराजः
तृ०	विश्वराजा	विश्वाराड्भ्याम्	विश्वाराड्भिः
च०	विश्वराजे	विश्वाराड्भ्याम्	विश्वाराड्भ्यः
पं०	विश्वराजः	विश्वाराड्भ्याम्	विश्वाराड्भ्यः
ष०	विश्वराजः	विश्वराजोः	विश्वराजाम्
स०	विश्वराजि	विश्वराजोः	विश्वाराट्सु–सु

भृस्ज् (पाक करनेवाला) शब्द–

यह 'भ्रस्ज पाके' इस धातुसे क्विबन्त बनाहै, और "ग्रहिज्यावयि० ६।१।१६/२४१२" इस सूत्रसे संप्रसारण हुआहै, भृस्ज्+सु इसमें सु का लोप होकर भृस्ज् ऐसी स्थिति रहते पदान्तमें संयोग आया इससे संयोगान्तलोपकी प्राप्ति हुई, परन्तु–

३८० स्कोः संयोगाद्योरन्ते च । ८ । २ । २९ ॥

पदान्ते झलि च परे यः संयोगस्तदाद्योः सकारककारयोर्लोपः स्यात् । भृट् । भृड् । सस्य श्चुत्वेन शः । तस्य जश्त्वेन जः । भृज्जौ ।

---

* "चोः कुः ८।२।३०/३७२" और "क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२/३७७" इनमेंसे नुमागममें (३७६) ही "क्विन्प्रत्ययस्य कुः" की प्राप्ति रहती है अन्यत्र उस सूत्रको असिद्ध होनेके कारण "चोः कुः" इसका सर्वत्र कार्य होता है यह बात सब पिछला प्रकरण देखनेसे ध्यानमें आ ही जायगी ॥

* व्रश्चादि सात धातुओंमेंसे भ्रस्ज् शेष रहा, उसका कार्य कुछ दूसरे प्रकारका है, इस कारण आगे कहा जायगा, पहले षत्वके सम्बन्धसे 'परिव्राज्' और 'विश्वराज्' इन दो शब्दोंके रूप दिये जायंगे ॥

भृज्जः ॥ ऋत्विगित्यादिना ऋतावुपपदे यजेः क्विन्। क्विन्नन्तत्वात्कुत्वम्। ऋत्विक्। ऋत्विग्। ऋत्विजौ। ऋत्विजः। रात्सस्येति नियमान्न संयोगान्तलोपः। ऊर्क्, ऊर्ग्। ऊर्जौ। ऊर्जः। त्यदाद्यत्वं पररूपत्वं च ॥

३८०—पदान्तमें अथवा झल्के पूर्व रहनेवाले संयोगके आदिके सकार और ककारका लोप होताहै । भृज् ऐसी स्थिति हुई, फिर आगे "व्रश्चभ्रस्ज० ८।२।३६/२९४" इससे षत्व, उसको "झलाञ्जशोऽन्ते" इससे जश्त्व और "वावसाने ८।४।५६/२०६" इससे वैकल्पिक चर्त्व हुआ, भृट्, भृड् । आगे फिर 'औ' होते भ्रस्ज्+औ—इसमें सकारको श्चुत्व ८।४।४०/१११ होकर शकार और "झलाञ्जश् झशि ८।४।५३/५२" इससे शकारको जश्त्व होकर जकार हुआ, भृज्जौ। भृज्जः।

भ्रस्ज् शब्दके रूप—

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	भृट्-ड्	भृज्जौ	भृज्जः
सं०	हे भृट्-ड्	हे भृज्जौ	हे भृज्जः
द्वि०	भृज्जम्	भृज्जौ	भृज्जः
तृ०	भृज्जा	भृड्भ्याम्	भृड्भिः
च०	भृज्जे	भृड्भ्याम्	भृड्भ्यः
पं०	भृज्जः	भृड्भ्याम्	भृड्भ्यः
ष०	भृज्जः	भृज्जोः	भृज्जाम्
स०	भृज्जि	भृज्जोः	भृट्सु–ट्सु.

ऋत्विज् शब्द—

"ऋत्विग्दधृक्० ३।२।५९/३७३" इस सूत्रसे ऋतु यह उपपद रहते यज्धातुसे ऋत्विज् यह क्विन्नन्त प्रातिपदिक निपातित है, "चोः कुः ८।२।३०/३७८" इससे कुत्व (क्विन्प्रत्ययस्य कुः। ८।२।६२/३७७ यह सूत्र असिद्ध है) इसलिये ऋत्विक्, ऋत्विग्। ऋत्विज्+औ=ऋत्विजौ। ऋत्विज्+जस्=ऋत्विजः। सुयुज् (३७८) शब्दके समान रूप होंगे ॥

ऊर्ज् (बल) शब्द—"भ्राजभास० ३।२।१७७/३१५७" इससे क्विबन्त है।

(रात्सस्येति) सु का लोप होनेके पीछे संयोगान्तलोप प्राप्त हुआ, परन्तु "रात्सस्य ८।२।२४/२८०" इस नियमसे संयोगान्त पदमें रेफके परे सकारमात्रका लोप होताहै, अन्य वर्णका नहीं, इस कारण ऊर्क्, ऊर्ग्। ऊर्जौ। ऊर्जः इत्यादि।

ऊर्ज् शब्दके रूप—

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	ऊर्क्–र्ग्	ऊर्जौ	ऊर्जः
सं०	हे ऊर्क्–र्ग्	हे ऊर्जौ	हे ऊर्जः
द्वि०	ऊर्जम्	ऊर्जौ	ऊर्जः
तृ०	ऊर्जा	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भिः
च०	ऊर्जे	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भ्यः
पं०	ऊर्जः	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भ्यः
ष०	ऊर्जः	ऊर्जोः	ऊर्जाम्
स०	ऊर्जि	ऊर्जोः	ऊर्क्षु.

त्यद् (वह) शब्द

यह त्यदादि गणमेंका सर्वनाम शब्द है, विभक्ति आगे रहते "त्यदादीनामः ७।२।१०२/२६५" इससे उसको अकारान्तत्व है, त्य+अ—ऐसी स्थिति हुई, फिर "अतो गुणे ६।१।९७/१९१" से पररूप होकर 'त्य' ऐसा अजन्तशब्द बना उसके आगे विभक्तिकी प्राप्ति हुई, तब सु आगे रहते त्य+स् ऐसी स्थिति हुई, परन्तु—

३८१ तदोः सः सावनन्त्ययोः । ७ । २ । १०६ ॥

त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात्सौ परे। स्यः। त्यौ। त्ये। त्यम्। त्यौ। त्यान्। सः। तौ। ते। परमसः। परमतौ। परमते। द्विपर्यन्तानामित्येव। नेह। त्वम्। न च तकारोच्चारणसामर्थ्यादिति वाच्यम्। अतित्वमिति गौणे चरितार्थत्वात्। संज्ञायां गौणत्वे चात्वसत्वे न। त्यद्। त्यदौ। त्यदः। अतित्यद्। अतित्यदौ। अतित्यदः॥ यः। यौ। ये॥ एषः। एतौ। एते। अन्वादेशे तु एनम्। एनौ। एनान्। एनेन। एनयोः २॥

३८१—सु परे होते अन्तके न हों ऐसे त्यदादिकोंके तकार और दकारके स्थानमें सकार होताहै । त्य+स्=स्यः। फिर त्यद्+औ=त्यौ । त्यद्+जस्=त्ये । त्यद्+अम्=त्यम् । त्यद्+औ=त्यौ । त्यद्+शस्=त्यान् । इत्यादि सर्ववत् । त्यदादिकोंका सम्बोधन नहीं होता ।

त्यद् शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	स्यः	त्यौ	त्ये
द्वि०	त्यम्	त्यौ	त्यान्
तृ०	त्येन	त्याभ्याम्	त्यैः
च०	त्यस्मै	त्याभ्याम्	त्येभ्यः
पं०	त्यस्मात्	त्याभ्याम्	त्येभ्यः
ष०	त्यस्य	त्ययोः	त्येषाम्
स०	त्यस्मिन्	त्ययोः	त्येषु.

इसी प्रकारसे तद् (वह) शब्द, सः। तौ। ते।

तद् शब्दके रूप—

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सः	तौ	ते
द्वि०	तम्	तौ	तान्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पं०	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
स०	तस्मिन्	तयोः	तेषु.

इसी प्रकारसे परमतत् यह कर्मधारय समाससे बनाहुआ शब्द, परमसः। परमतौ। परमते।

(द्विपर्यन्तानामित्येव) त्यदादि गण द्विशब्दतक ही हैं अर्थात् उसमें त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक,

दि, यही आठ शब्द आतेहैं (२६५) इसीसे युष्मद् शब्दको त्यदाद्यत्व नहीं अर्थात् उसमें अत्व, सत्व नहीं होते 'त्वम्' ऐसा ही रूप होताहै (सि० ३८५)

(न च तकारोच्चारणेति) यदि कोई कहै कि, युष्मद्को त्यदाद्यत्व है परन्तु "त्वाहौ सौ ७।२।९४/३८४" इस सूत्रसे युष्मद्मेंके युष्मके स्थानमें 'त्व' आदेश होताहै ऐसा कहा हुआ है, इसलिये सूत्रके तकारके उच्चारणका सामर्थ्य लानेके अर्थ यहां 'त्व' आदेश करके 'त्वम्' ऐसा रूप बना, अत्व-सत्वमात्र नहीं कियागया, इतना ही न्यून है, तो ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये, कारण कि, संज्ञा और उपसर्जन इनमें सर्वनामकार्य और त्यदादिअन्तर्गणकार्य भी नहीं होता (सि० २२२) इसलिये 'अतित्वम्' इसमें 'युष्मद्' शब्द है, तो भी उसको उपसर्जनत्वके कारण सर्वनामत्व और त्यदाद्यत्व भी नहीं है, इतनी बात तो स्पष्ट ह ही, वहां 'त्व' के उच्चारणको चारितार्थ्य आया, इस कारण 'त्वम्' में उच्चारण सार्थकतानिमित्त व्यर्थ है, सारांश यह है युष्मद् अस्मद् भवतु किम् यह शब्द त्यदादिगणमें नहीं आते ऊपर कहे हुए आठही शब्द आतेहैं, यही सिद्ध है इसलिये 'त्यद्' ऐसी संज्ञा लीजाय तो त्यद् । त्यदौ । त्यदः इत्यादि रूप होंगे। 'अतित्यद्' शब्द, इसको उपसर्जनत्व होनेसे सर्वनामकार्य और अन्तर्गणकार्य दोनों नहीं,केवल इतर जशन्त शब्दोंके समान होगा, अतित्यद्+सु=अतित्यद् । अतित्यद्+औ=अतित्यदौ । अतित्यद्+जस्=अतित्यदः इत्यादि । यद् (जो) शब्द, सर्वनामही है त्यद् शब्दके समान ही त्यदाद्यत्व और पररूपत्व होताहै, यः । यौ । ये इत्यादि ।

यद् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	यः	यौ	ये
द्वि०	यम्	यौ	यान्
तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
च०	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पं०	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
ष०	यस्य	ययोः	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययोः	येषु.

एतद् (यह) शब्द भी सर्वनाम उसी प्रकार है अत्व, सत्व, आदेशरूप सकारके कारण "आदेशप्रत्यययोः ८।३।५९/२१२" इससे षत्व, एषः । एतद्+औ=एतौ । एतद्+जस्=एते । (अन्वादेशे तु) "द्वितीयाटौस्स्वेनः २।४।३४/३५१" इससे अन्वादेशमें एनम् । एनौ । एनान् । एनेन । एनयोः । एनयोः ।

एतद् शब्दके अन्वादेश और अनन्वादेश-पक्षमें रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	एषः	एतौ	एते
द्वि०	एतम्, एनम्	एतौ, एनौ	एतान्,एनान्
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पं०	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष०	एतस्य	एतयोः,एनयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयोः,एनयोः	एतेषु.

युष्मद् (तू) शब्द और अस्मद् (मैं) शब्द– ।

इन दोनों शब्दोंके कार्य एकत्र कहे हुए हैं, इनके रूप कुछ विकट हैं, इस कारण नीचे लिखी बातोंपर विशेष ध्यान रखना चाहिये ।

प्रथमतः युष्मद् और अस्मद् यह अंग हैं और सु, औ, जस्, इत्यादि प्रत्यय हैं, परन्तु प्रत्ययोंको और अंगोंको भी प्रायः आदेश हुआ करतेहैं, जहां आदेश नहीं वहां मूलमात्रके रूप होतेहैं, पहले प्रत्ययोंके आदेश बडे अक्षरोंमें लिखेजांयगे। अनादेश (अ० मूलके) प्रत्यय महीन अक्षरोंमें, फिर अंगके आदेश पूर्ववत् बडे अक्षरोंमें, और अनादेश अंगके महीन अक्षरोंमें, फिर अङ्गके अन्त्यवर्णको होनेवाले आदेश मध्यमें रक्खे जांयगे, यह सब लिखनेके अनन्तर अन्तरङ्गत्वके अनुसार अङ्गसंधि और आदेशकार्य फिर शेष रही इतर संधि । इस प्रकारसे कार्य करनेसे युष्मद् और अस्मद् इन दोनों शब्दोंके सब विभक्तियोंके रूप सहजमें सिद्ध होजांयगे । सूत्रोंके प्रयोजन सब आगे आवेंगेही परन्तु संक्षेपमात्रसे रूपसिद्धि इस कोष्ठकसे भली प्रकार ध्यानमें आजायगी, फिर सूत्रोंके क्रमसे केवल कार्य करते चले जाओ ।

पहले अनुवृत्तिसहित प्रत्ययादेशोंके सूत्र–

७।१।२७ युष्मद्–अस्मद्भ्याम् ङसः अश् ३९९

७।१।२८ युष्मद्–अस्मद्भ्यां ङेप्रथम (द्वितीय)-योः अम् ३८२

७।१।२९ युष्मद्–अस्मद्भ्यां शसः न (न्) ३९१

७।१।३० युष्मद्–अस्मद्भ्यां भ्यसः भ्यम् ३९५

७।१।३१ युष्मद्–अस्मद्भ्यां पञ्चम्याः भ्यसः अत् ३९७

७।१।३२ युष्मद्–अस्मद्भ्यां पञ्चम्याः एकवचनस्य च अत् ३९६

७।१।३३ युष्मद्–अस्मद्भ्यां सामः आकम् ४००

(इतर मूलके प्रत्यय वही हैं)।

अङ्गको होनेवाले आदेशोंको दिखानेवाली सूत्रानुवृत्ति–

७।२।९१ युष्मद्–अस्मदोः मपर्यन्तस्य ३८३

७।२।९२ युष्मद्–अस्मदोः मपर्यन्तस्य युवाऽऽवौ द्विवचने ३८६

७।२।९३ युष्मद्–अस्मदोः मपर्यन्तस्य यूयवयौ जसि ३८८

७।२।९४ युष्मद्–अस्मदोः मपर्यन्तस्य त्वाऽहौ सौ ३८४

७।२।९५ युष्मद्–अस्मदोः मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यौ ङयि ३९४

७।२।९६ युष्मद्–अस्मदोः मपर्यन्तस्य तवममौ ङसि ३९८

७।२।९७ युष्मद्–अस्मदोः मपर्यन्तस्य त्वमौ एकवचने ३८९

(इतर यहां मूलकेही अंग हैं)।

अङ्गके अन्त्यवर्णको होनेवाले आदेशके विषय सूत्रानुवृत्ति-

७ । २ । ८६ युष्मद्-अस्मदोः आ अनादेशे हलादौ विभक्तौ ३९३

७ । २ । ८७ युष्मद्-अस्मदोः आ-द्वितीयायां च३९०

७ । २ । ८८ युष्मद्-अस्मदोः आ प्रथमायाः च द्विवचने भाषायाम् ३८७

७ । २ । ८९ युष्मद्-अस्मदोः यः (य्) अनादेशे अचि ३९२

७ । २ । ९० शेषे (आ-य निमित्तेतरविभक्तौ) युष्मद्-अस्मदोः लोपः ३८५

कितनेही स्थानोंमें दो दो रूप होतेहैं उनके विषयमें सूत्र-

८ । १ । २० युष्मद्-अस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः वां-नावौ ४०४

८ । १ । २१ युष्मद्-अस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयाबहुवचनस्य वस्नसौ ४०५

८ । १ । २२ युष्मद्-अस्मदोः षष्ठीचतुर्थीस्थयोः तेमयौ एकवचनस्य ४०६

८ । १ । २३ युष्मद्-अस्मदोः त्वामौ द्वितीयायाः एकवचनस्य ४०७

इस प्रकार क्रमसे सब कार्य किये जानेसे आगेके कोष्ठकमें दिखलाये हुएके अनुसार उनकी स्थिति होगी, उनके अनन्तर फिर संधि आदि कार्य । लोपादेश दरशानेके निमित्त कोष्ठकमें ऐसा।चिह्न कियाहै-

युष्मद् शब्द-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	त्व अद्।अम्	युव अद् आ अम्	यूय अद्।अम्
द्वि०	त्व अद् आ अम्, त्वा	युव अद् आ अम, वाम्	युष्मद् आ न् स, वस्
तृ०	त्व अद् य् आ	युव अद् आ भ्याम्	युष्मद् आ भिस्
च०	तुभ्य अद्।अम्, ते	युव अद् आ भ्याम्, वाम्	युष्मद्।भ्यम्, वस्
पं०	त्व अद्।अत्	युव अद् आ भ्याम्	युष्मद्।अत्
ष०	तव अद्।अ, ते	युव अद् य ओस्, वाम्	युष्मद्।आकम्, वस्
स०	त्व अद् य् इ	युव अद् य ओस्	युष्मद् आ सु

अस्मद् शब्द-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अह अद्।अम्	आव अद् आ अम्	वय अद्+अम्
द्वि०	म अद् आ अम्, मा	आव अद् आ अम्, नौ	अस्मद् आ न् स, नस्
तृ०	म अद् य् आ	आव अद् आ भ्याम्	अस्मद् आ भिस्
च०	मह्य अद्।अम्, मे	आव अद् आ भ्याम्, नौ	अस्मद्।भ्यम्, नः
पं०	म अद्।अत्	आव अद् आ भ्याम्	अस्मद्।अत्
ष०	मम अद्।अ, मे	आव अद् य् ओस्, नौ	अस्मद्।आकम्, नस्
स०	म अद् य् इ	आव अद् य् ओस्	अस्मद् आ सु

अब सिद्ध रूप लिखतेहैं-युष्मद् शब्द-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पं०	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
ष०	तव, ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम्, वः
स०	त्वयि	युवयोः	युष्मासु.

अस्मद् शब्द-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च०	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
पं०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
ष०	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
स०	मयि	आवयोः	अस्मासु.

अब कौमुदीके क्रमसे रूपसिद्धि दिखातेहैं-युष्मद्+सु ऐसी स्थिति हुई-

३८२ ङे प्रथमयोरम् । ७ । १ । २८ ॥

युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः स्यात् ॥

३८२-युष्मद् और अस्मद् इनके आगे ङेके स्थानमें तथा प्रथमा द्वितीया प्रत्ययके स्थानमें अम् आदेश होताहै । ("युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ७।१।२७/३९९" से युष्मद् अस्मद्की अनुवृत्ति होतीहै, सूत्रमें 'ङे' यह लुप्तषष्ठीक पृथक् है और 'प्रथमयोः' इस द्विवचनके बलसे द्वितीयाकाभी ग्रहण भया) ॥ युष्मद्+अम् ऐसी स्थिति हुई-

३८३ मपर्यन्तस्य । ७ । २ । ९१ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

३८३-यह अधिकारसूत्र है अगले सूत्रमें इसके अर्थका समावेश है ॥

३८४ त्वाहौ सौ । ७ । २ । ९४ ॥

युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्व अह इत्येतावादेशौ स्तः सौ परे ॥

३८४-सु परे रहते युष्मद्, अस्मद् शब्दोंके मपर्यन्त अंशके स्थानमें त्व और अह यह आदेश होतेहैं फिर आगे

अद् इतना जो अंश रहा वह वैसा ही रहताहै, इस कारण 'त्व+अद्=अम्' 'अह+अद्=अम्' ऐसी स्थिति हुई, "अतो गुणे ६।१।९७/१९१" इससे पररूप, त्वद्=अम्। अहद्=अम् ऐसा होनेके अनन्तर–

३८५ शेषे लोपः । ७ । २ । ९० ॥

आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ परतो युष्मदस्मदोरन्त्यस्य लोपः स्यात् । अतो गुणे । अमि पूर्वः । त्वम् । अहम् । ननु त्वं स्त्री अहं स्त्री इत्यत्र त्व अम् अह अम् इति स्थिते अमि पूर्वरूपत्वं परमपि बाधित्वाऽन्तरङ्गत्वाट्टाप् प्राप्नोति । सत्यम् । अलिङ्गे युष्मदस्मदी । तेन स्त्रीत्वाभावान्न टाप् । यद्वा शेष इति सप्तमी स्थानिनोऽधिकरणत्वविवक्षया तेन मपर्यन्ताच्छेषस्य अद् इत्यस्य लोपः स्यात् । स च परोऽप्यन्तरङ्गे अतो गुणे कृते प्रवर्तते । अदन्तत्वाभावान्न टाप् । परमत्वम् । परमाहम् । अतित्वम् । अत्यहम् ॥

३८५–जिस विभक्तिके आगे रहते युष्मद् और अस्मद् इनके अन्त्य दकारको आत्व (७।२।८६।८७।८८) अथवा यत्व (७।२।८९) होताहै उन विभक्तियोंको छोडकर अन्य विभक्ति परे रहते युष्मद् और अस्मद् इनके अन्त्य दकारका लोप होताहै। 'सु' प्रत्ययमें आत्व वा यत्व होनेके निमित्त सूत्र नहीं, इसलिये दकारका लोप, 'त्व=अम्' 'अह=अम्' ऐसी स्थिति हुई, "अमि पूर्वः ६।१।१०७/१९४" इससे पूर्वरूप, त्वम् । अहम् * ॥

शंका–(ननु त्वम् स्त्रीति) त्वम्, अहम्, यह शब्दरूप स्त्रीलिङ्गमें सिद्ध होतेहैं, त्व+अम्, अह+अम् ऐसी जो उनकी पहले स्थिति होतीहै वहां आगे अम् होनेके कारण "अमि पूर्वः ६।१।१०७/१९४" और स्त्रीत्वके कारण "अजाद्यतष्टाप् ४।१।४/४५४" इन दोनोंकी प्राप्ति हुई, और यद्यपि परत्वके कारण "अमि पूर्वः" इसीका कार्य होना चाहिये यह सत्य है, तो भी टाप् (आ) यह अङ्ग (त्व, अह) को होनेवाला प्रत्यय अम् यह 'सु' विभक्ति प्रत्ययके स्थानमें कियाहुआ आदेश है अर्थात् अम्के सम्बन्धसे जो पूर्वरूप है वह बाहरका कार्य है, इस कारण बहिरंग है और टाप्का कार्य अन्तरंग है, तो पूर्वरूप चाहे परसूत्र हो उसका बाध करके अन्तरंगकार्य ही प्रबल होना चाहिये, सारांश यह कि टाप्का कार्य प्रथम हो, ऐसी शंका हुई तो–

(सत्यमिति) सत्य है, परन्तु युष्मद् अस्मद् यह शब्द अलिङ्ग हैं ऐसा भाष्यमें निर्णय होचुका है इससे उसको स्त्रीत्व ही नहीं अर्थात् टाप् नहीं इस कारण "अमि पूर्वः" यही सूत्र प्रवृत्त होताहै ।

(यद्वा शेष०) "शेषे लोपः" इसमें 'शेषे' जो सप्तमी है वह स्थानीको अधिकरणत्व (अर्थात् कार्याधारत्व) लानेवाली सप्तमी माननेसे "तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य" यह परिभाषा यहां न लग सकेगी, तब युष्मद् अस्मद् इसमेंके मकारतक रहनेवाले युष्म्, अस्म्, इनके स्थानमें आनेवाले त्व, अह उनके आगेका रहनेवाला जो 'अद्' अंश उसके स्थानमें लोप होताहै, ऐसा अर्थ होगा यह लोप यद्यपि "अतो गुणे ६।१।९७/१९१" इससे पर ७।२।९०/३८५ है तो भी वहां (त्व अद्+अम्, अह अद्+अम् इनमें) त्व अद, अह अद् इनमेंके संधिकार्य अन्तरंगकार्य हैं, और अद्लोप बहिरंगकार्य है, इसलिये पहले "अतो गुणे" यह अन्तरंगकार्य प्रवृत्त होताहै, उससे त्व अम्, अह अम् ऐसी स्थिति होते त्व, अह यह शब्द हलन्त हैं, इसलिये अदन्तत्वके अभाव होनेके कारण उनको 'टाप्' इस स्त्री प्रत्ययकी कुछभी प्राप्ति नहीं ४।१।४/४५४ ।

इसी प्रकारसे अङ्गाधिकारके कारण परमयुष्मद्, परमास्मद्, अतियुष्मद्, अत्यस्मद्, इन तदन्तशब्दोंके परमत्वम्, परमाहम्, अतित्वम्, अत्यहम् । आगे "ङे प्रथमयोरम् ७।१।२८/३८२" इससे औके स्थानमें अम् होनेके पीछे–

३८६ युवावौ द्विवचने । ७ । २ । ९२ ॥

द्वयोरुक्तौ युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ ॥

३८६–द्वित्व+अर्थ उक्त होते युष्मद्, अस्मद् इनमेंके म तक अंशके स्थानमें आगे विभक्ति रहते युव और आव आदेश होतेहैं । युव अद्+अम् । आव अद्+अम् ऐसी स्थिति हुई–*॥

३८७ प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् । ७ । २ । ८८ ॥

इह युष्मदस्मदोराकारोन्तादेशः स्यात् । औङीत्येव सुवचम् । भाषायां किम् । युवं वस्त्राणि । युवाम् । आवाम् । मपर्यन्तस्य किम् । साकच्कस्य मा भूत्, युवकाम् । आवकाम् । त्वया मयेत्यत्र त्वया म्येति मा भूत् । युवकाभ्यामावकाभ्यामिति च न सिध्येत् ॥

३८७–यहां (प्रथमाके द्विवचनमें) युष्मद् अस्मद् इनको भाषामें 'आ' यह अन्तादेश होताहै । युव अ आ+अम् ऐसी स्थिति हुई, अन्तरंगत्वके कारण "अतो गुणे", "अकः सवर्णे दीर्घः" इनके कार्य पहिले होकर फिर "अमि पूर्वः"। इसलिये क्रमसे युव आ+अम्–युवा+अम् होकर अन्तमें युवाम् और आव आ+ अम्–आवा+अम् और फिर आवाम्।

---

* इसमें त्व, अह, इसमें अकार उच्चारणार्थ होनेसे त्व्, अह् ऐसे हलन्त लियेगये हैं इस कारण 'त्व्+अ=अम्' 'अह्+अ=अम्' ऐसी स्थिति हुई है, इससे पूर्वमें 'अतो गुणे' इसका वहां प्रयोजन नहीं, 'अमि पूर्वः' इसीसे 'त्वम्' 'अहम्' यह सिद्ध होतेहैं ऐसा नवीनोंका मत है तथापि कौमुदीकारने 'त्व' 'अह' यह अजन्त लिये हैं, इससे 'अतो गुणे' इसका प्रयोजन है ॥

* विग्रहमें द्वित्व होते समासका अर्थ एकत्व या द्वित्व हो तो कुछ भी हानि नहीं, युव, आव यह आदेश होतेही है, इस कारण वृत्तिमें 'द्विवचने' इसका अर्थ 'द्वयोरुक्तौ' ऐसा ही किया है॥

(औङि इत्येव सुवचम्) सूत्रमें 'प्रथमायाश्च द्विवचने' ऐसा न लिखते 'औङि' इतना कहते तो बहुत लाघव है फिर ऐसा बडा सूत्र करनेकी जरूरत नहीं, भाषा अर्थात् लोकमें ऐसा क्यों कहा ? तो वेदमें 'युवं वस्त्राणि' (युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ऋ० मं०१सू०१५२ऋ०१) इसमें 'युवम्' यह प्रथमाका द्विवचन है उसमें आकार यह आदेश नहीं, पीछे "मपर्यन्तस्य ७।२।९१/३८३" इस सूत्रके बनानेका क्या प्रयोजन ? तो (साकच्कस्य मा भूत्।) युष्मद् अस्मद् शब्दोंके जो रूप होतेहैं वही रूप युष्मकद्, अस्मकद् इन अकच्-सहित शब्दोंके भी न होते "मपर्यन्तस्य" इस नियमानुसार युवकाम्, आवकाम् ऐसेही रूप हों, (यहांपर यदि ऐसा कहाजाय कि, "ओकारसकारमकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्०" इसका आश्रयण करें तो 'युवाम्' 'आवाम्' ऐसा सिद्ध होनेपर अकच् होगा तो कोई दोष नहीं, इसलिये दूसरा दोष-) (त्वया मयेति) ऐसेही आगे तृतीयाके एकवचनमें त्वया, मया ऐसे जो रूप होतेहैं वहां त्व्या, म्या, ऐसे रूप न होनेपावें (३९२), (यहांपर भी "योऽचि ७।२।८९/३९२" इसके स्थानमें 'अच्ये' ऐसा न्यास करके 'अनादेश अजादि विभक्ति परे रहते युष्मद्, अस्मद् इनको एत्व हो' ऐसा अर्थ करतेहैं, तो 'त्वया' 'मया' यहां दोष नहीं इस कारण दूसरा दोष-) ऐसा नियम जो न होता तो 'भ्याम्' प्रत्ययमें युष्मकद्, अस्मकद् इनके रूप युवकाभ्याम्, आवकाभ्याम् ऐसे सिद्ध न हुएहोते (३९४) (कारण किं, पूर्वोक्त "ओकारसकारभकारादौ०" इसके अनुसार यहां 'भ्याम्' को भकारादि होनेसे प्रथम ही अकच् होगा, पीछे संपूर्णको आदेश होजायगा) इसलिये 'मपर्यन्तस्य' ऐसा कहाहै, आगे फिर 'जस्' प्रत्ययमें पूर्ववत् अम् और-

३८८ यूयवयौ जसि । ७ । २ । ९३ ॥

स्पष्टम् । यूयम् । वयम् । परमयूयम् । परमवयम् । अतियूयम् । अतिवयम् । इह शेषे लोपोन्त्यलोप इति पक्षे जसः शी प्राप्तः । अङ्गकार्ये कृते पुनर्नाङ्गकार्यमिति न भवति । ङे प्रथमयोरित्यत्र मकारान्तरं प्रश्लिष्य अम् मान्त एवावशिष्यते न तु विक्रियत इति व्याख्यानाद्वा ॥

३८८-जस् परे रहते मपर्यन्त युष्मद् शब्दके स्थानमें 'यूय' और अस्मद् शब्दके स्थानमें 'वय' आदेश होताहै । यूय+अद्=अम्, वय+अद्=अम् ऐसी स्थिति रहते पूर्ववत् कार्य होकर यूयम्, वयम् । उसी प्रकारसे तदन्तत्वके कारण परमयूयम् । परमवयम् । अतियूयम् । अतिवयम् ।

(इहेति) यहां "शेषे लोपः ७।२।९०/३८९" इसका द्वितीय अर्थ अर्थात् अन्त्य वर्णका लोप किया जाय तो युष्मद्, अस्मद्, इनका अन्त्य दकार जाते ही वह शब्द अदन्त होकर "जसः शी ७।१।१७/२१४" इससे जस्के स्थानमें शी प्राप्त हुई, परन्तु एकवार अङ्गकार्य (अङ्गाधिकारसम्बन्धी कार्य) होगया तो फिर अङ्गकार्य नहीं होता, ऐसी परिभाषा है "ङे प्रथमयोरम् ७।१।२८/३८२" इससे एकवार जस्के स्थानमें अम् सिद्ध हुआ फिर उसके स्थानमें शी नहीं हो सकती, अथवा "ङे प्रथमयोरम्" इसमेंके अम्के स्थानमें प्रश्लेष करके और एक मकार लाकर 'अम्म्' अर्थात् अन्ततक मकारान्त रूपसे ही टिकनेवाला ऐसा 'अम्' आदेश होताहै, उसके मकारान्तत्वको कोई विकार नहीं होता, ऐसा व्याख्यान करनेसे भी ठीक ही है * ॥

आगे द्वितीयाके एकवचनमें अम्प्रत्यय होते-

३८९ त्वमावेकवचने । ७ । २ । ९० ॥

एकस्योक्तौ युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ॥

३८९-एकत्व+अर्थ उक्त होते युष्मद्, अस्मद् शब्दके मपर्यन्तके स्थानमें विभक्ति परे रहते त्व, म, यह आदेश होतेहैं ॥

त्वअद्+अम् । मअद्+अम् ऐसी स्थिति हुई-

३९० द्वितीयायां च । ७।२।८७॥

युष्मदस्मदोराकारः स्यात् । त्वाम् । माम् । युवाम् । आवाम् ॥

३९०-आगे द्वितीया विभक्ति रहते युष्मद् अस्मद् इनको भी आकार अन्तादेश होताहै । त्व अ आ+अम् । म अ आ+अम् । इस परसे पूर्ववत् कार्य होकर त्वाम् माम् । द्विवचनमें पूर्ववत् युवाम् आवाम् । आगे शस् होते युष्मद्+अस्, अस्मद्+अस् ऐसी स्थिति होते "ङे प्रथमयोरम्" इससे होनेवाला जो अम् उसकी प्राप्ति हुई, परन्तु-

३९१ शसो न । ७ । १ । २९ ॥

नेत्यविभक्तिकम् । युष्मदस्मद्भ्यां परस्य शसो नकारः स्यादमोऽपवादः । आदेः परस्य । संयोगान्तस्य लोपः । युष्मान् । अस्मान् ॥

३९१-यहां 'न' यह अविभक्तिकरूप प्रथमार्थमें है । युष्मद्, अस्मद् इनके आगेके शस् प्रत्ययको नकार आदेश होताहै । यह अम्का अपवाद है, "आदेः परस्य १।१।५४/४४" इससे शस् (अस्) इसके अकारके स्थानमें नकार होकर युष्मद्+न्स् अस्मद्+न्स् ऐसी स्थिति होते "द्वितीयायां च" इससे आकार होकर युष्मान्स् अस्मान्स् ऐसी स्थिति होकर "संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३/५४" इससे युष्मान् । अस्मान् । 'टा' प्रत्यय आगे होते "त्वमावेकवचने" इससे त्व अद्+आ । म अद्+आ ऐसी स्थिति हुई-

३९२ योऽचि । ७ । २ । ८९ ॥

अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः। त्वया । मया ॥

---

* 'अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः' ऐसी मूलकी परिभाषा है परन्तु यह शब्दभेद करके अर्थसे ऊपर लीहुई है ॥

३९२–आदेशरूप न हो ऐसा प्रत्यय परे रहते युष्मद्, अस्मद् इनको यकारादेश होताहै । त्व, अय्+आ म अय्+आ ऐसी स्थिति होकर त्वया । मया । फिर " युवावौ द्विवचने " यह सूत्र है ही युवअद्+भ्याम् आवअद्+भ्याम् इन परसे पूर्ववत् युवद्+भ्याम् आवद्+भ्याम् ऐसी स्थिति हुई–

३९३ युष्मदस्मदोरनादेशे।७।२।८६॥

अनयोराकारः स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ। युवाभ्याम् । आवाभ्याम्।युष्माभिः।अस्माभिः॥

३९३–अनादेशरूप हलादि विभक्ति परे रहते युष्मद्,अस्मद्को आकार होताहै । युवाभ्याम्।आवाभ्याम्। बहुवचनमें युव आव नहीं । युष्मद्+भिस् अस्मद्+भिस् ऐसी स्थिति होते प्रस्तुत सूत्रके अनुसार हलादि विभक्तिके कारण आकार हुआ, युष्माभिः । अस्माभिः । 'ङे' प्रत्यय आगे रहते–

३९४ तुभ्यमह्यौ ङयि।७।२।९५॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यौ स्तो ङयि । अमादेशः । शेषे लोपः । तुभ्यम् । मह्यम् । परमतुभ्यम् । परममह्यम् । अतितुभ्यम् । अतिमह्यम् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् ॥

३९४–ङे आगे रहते युष्मद् अस्मद् इनके मकारतक अंशको तुभ्य और मह्य यह आदेश होतेहैं, ७।१।२८/३८२ से अमादेश,तुभ्य अद्+अम् । मह्य अद्+अम् इनपरसे तुभ्यद्+अम् । मह्यद्+अम् और दकारका लोप होकर अन्तमें तुभ्यम् । मह्यम् । परमतुभ्यम् । परममह्यम् । अतितुभ्यम् । अतिमह्यम् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । बहुवचनमें भ्यस् प्रत्यय आगे रहते–

३९५ भ्यसो भ्यम् । ७ । १ । ३० ॥

भ्यसो भ्यम् अभ्यम् वा आदेशः स्यात् । आद्यः शेषे लोपस्यान्त्यलोपत्व एव । तत्राङ्गवृत्तपरिभाषया एत्वं न । अभ्यम् तु पक्षद्वयेपि साधुः । युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ॥

३९५–भ्यस्के स्थानमें ' भ्यम् ' अथवा ' अभ्यम् ' आदेश होताहै । (आद्य इति) आद्य अर्थात् ' भ्यम् ' लेनेसे " शेषे लोपः " इसका अन्त्यलोप ऐसा ही अर्थ लेना चाहिये तब द्का लोपहोकर युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम् ऐसी स्थिति रहते " बहुवचने झल्येत् " इससे भ्यम्के पहले जो एकारकी प्राप्ति वह अंगवृत्तपरिभाषा (३८८) से नहीं होती, (अभ्यं त्विति) अभ्यम् ऐसा आदेश लियाजाय तो " शेषे लोपः " इसका दोनोंमेंसे कोईसा भी अर्थ लियाजाय तो होसकताहै, युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् । अब पंचमीके एकवचनमें त्व, म, आदेश होनेके पीछे–

३९६ एकवचनस्य च । ७।१।३२॥

आभ्यां पञ्चम्येकवचनस्य अत्स्यात् । त्वत् । मत्।ङसेश्चेति सुवचम्। युवाभ्याम् ।आवाभ्याम्॥

३९६–युष्मद् और अस्मद् शब्दके उत्तर पंचमीके एकवचनके अत्+आदेश हो । त्व अद्+अत्।म अद्+अत् इनसे पूर्ववत् कार्य होकर त्वत् । मत् । (ङसेश्च इति सुवचम्) " एकवचनस्य० " इतना लम्बा सूत्र न करके ' ङसेश्च' इतनाही सूत्र होता तो अच्छा होता । आगे पूर्ववत् युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । फिर बहुवचनमें–

३९७ पञ्चम्या अत् । ७।१।३१ ॥

आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत्स्यात् । युष्मत् । अस्मत् ॥

३९७–युष्मद् अस्मद् इनके आगेके पंचमीके भ्यस् प्रत्ययके स्थानमें अत् आदेश होताहै । युष्मत् । अस्मत् । आगे फिर–

३९८ तवममौ ङसि । ७ । २।९६॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो ङसि ॥

३९८–ङस् आगे होते युष्मद् अस्मद्के मकारपर्यन्तको ' तव ' ' मम ' आदेश होतेहैं । तव अद्+ङस्, मम अद्+ङस् ऐसी स्थिति होते फिर–

३९९ युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्।७।१।२७॥

स्पष्टम् । तव । मम । युवयोः । आवयोः ॥

३९९–युष्मद्, अस्मद् इनके आगे जो ङस् उसके स्थानमें ' अश् ' आदेश होताहै । तवद्+अ, ममद्+अ, इसपरसे तव । मम । द्विवचनमें युव आव होकर युवद्+ओस् । आवद्+ओस् ऐसी स्थिति होते "योऽचि ७।२।८९/३९२" इससे दकारके स्थानमें यकार होकर युवयोः । आवयोः । फिर–

४०० साम आकम् ।७।१।३३ ॥

आभ्यां परस्य साम आकम् स्यात् । भाविनः सुटो निवृत्त्यर्थं ससुट्कनिर्देशः । युष्माकम् । अस्माकम् । त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः । युष्मासु । अस्मासु ॥

समस्यमाने द्व्येकत्ववाचिनी युष्मदस्मदी ।
समासार्थोऽन्यसंख्यश्चेत्तौ युवावौ त्वमावपि १॥
सुजस्ङेङस्सु परत आदेशाः स्युः सदैव ते ।
त्वाहौ यूयवयौ तुभ्यमह्यौ तवममावपि ॥ २ ॥
एते परत्वाद्बाधन्ते युवावौ विषये स्वके ॥
त्वमावपि प्रबाधन्ते पूर्वविप्रतिषेधतः ॥ ३ ॥
द्व्येकसंख्यः समासार्थो बह्वर्थे युष्मदस्मदी ॥
तयोरद्व्येकतार्थत्वान्न युवावौ त्वमौ न च ॥४॥

त्वां मां वा अतिक्रान्त इति विग्रहे अतित्वम् । अत्यहम् । अतित्वाम् । अतिमाम् । अतियूयम् । अतिवयम् । अतित्वाम् २ । अतिमाम् २ । अतित्वान् । अतिमान् । अतित्वया । अतिमया । अतित्वाभ्याम् । अतिमाभ्याम् । अतित्वाभिः । अतिमाभिः । अतितुभ्यम् । अतिमह्यम् । अतित्वाभ्याम् । अतिमाभ्याम् । अतित्वभ्यम् । अतिमभ्यम् । ङसिभ्यसोः ।

अतित्वत् २ । अतिमत् २ । भ्यामि प्राग्वत् । अतितव । अतिमम । अतित्वयोः । अतिमयोः । अतित्वाकम् । अतिमाकम् । अतित्वयि । अतिमयि । अतित्वयोः । अतिमयोः । अतित्वासु । अतिमासु । युवाम् आवां वा अतिक्रान्त इति विग्रहे सुजसूङेङस्सु प्राग्वत् । औअमौट्सु । अतियुवाम् ३ । अत्यावाम् ३ । अतियुवान् । अत्यावान्।अतियुवया।अत्यावया। अतियुवाभ्याम् ३।अत्यावाभ्याम् ३। अतियुवाभिः। अत्यावाभिः।भ्यसि अतियुवभ्यम्।अत्यावभ्यम् । ङसिभ्यसोः । अतियुवत् २ । अत्यावत् २ । ओसि अतियुवयोः २ । अत्यावयोः २ । अतियुवाकम् । अत्यावाकम् । अतियुवयि । अत्यावयि । अतियुवासु । अत्यावासु । युष्मानस्मान्वेति विग्रहे सुजसूङेङस्सु प्राग्वत् । औअमौट्सु । अतियुष्माम् ३ । अत्यस्माम् ३ । अतियुष्मान् । अत्यस्मान् । अतियुष्मया । अत्यस्मया । अतियुष्माभ्याम् ३ । अत्यस्माभ्याम् ३।अतियुष्माभिः।अत्यस्माभिः।भ्यसि । अतियुष्मभ्यम् । अत्यस्मभ्यम् । ङसिभ्यसोः । अतियुष्मत् । अत्यस्मत् । ओसि । अतियुष्मयोः २ । अत्यस्मयोः २ । अतियुष्माकम् । अत्यस्माकम् । अतियुष्मयि । अत्यस्मयि । अतियुष्मासु । अत्यस्मासु ॥

४००-युष्मद्, अस्मद् इनके आगेके साम(सम्भावित सुट्पूर्वकआम्) के स्थानमें 'आकम्'आदेश होता है । आगे आकम्को फिर 'सुट्' आगम न होने पावे इस कारण पहले ही सुट्युक्तका उच्चारण किया है, युष्माकम् । अस्माकम् । फिर सप्तमीके एकवचनमें त्व म आकर "योऽचि" इससे त्वयि । मयि । द्विवचनमें युवयोः । आवयोः । बहुवचनमें 'सु' अनादेश हलादिविभक्ति है इसकारण आकार हुआ, युष्मासु । अस्मासु रूप पूर्वमें लिखही चुकेहैं ।

अब समासमें जो इन रूपोंके विषयमें नियम हैं उनके विषयमें कारिका है—("युवावौ द्विवचने ७।२।९२/३८६" "तवममावेकवचने ७।२।९०/३८९" इन सूत्रोंमें द्विवचन और एकवचन शब्द अर्थपर हैं, प्रत्ययपर नहीं इसका फल दिखानेके लिये-) (समस्यमान इति) समासमें युष्मद्, अस्मद् रहें और जो वह द्विवचनके अथवा एकवचनके हों और चाहे सब (पूरे) सामासिकशब्द अन्यवचनके भी होजांय, तो भी उसके अन्तर्गतस्थानीको युव, आव, त्व, म, ये आदेश होतेहैं, परन्तु सु, जस्, ङे, ङस् प्रत्यय आगे हों तो त्व, [illegible] यूय, वय, तुभ्य, मह्य, तव, मम ये आदेश क्रमसे [illegible] कि जहां इनका विषय आताहै वहां यु, आव, [illegible] कारण बाधक होतेहैं और त्व, म, इनके भी ये पूर्वविप्रतिषेध करके बाधक होतेहैं, समासका अर्थ जो द्विवचनका अथवा एकवचनका हो और उसमेंके युष्मद् अस्मद् बहुवचनके हों तो उस बीचके शब्दोंमें द्वित्व अथवा एकत्व न होनेसे उनके स्थानमें युव आव और त्व म नहीं होते ।

(त्वां मां वा अतिक्रान्तः०) तुझको अथवा मुझको छोडकर गया ऐसे अर्थके 'अतियुष्मद्' और 'अत्यस्मद्' शब्द लियेजांय तो उनके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अतित्वम् । अत्यहम्	अतित्वाम् । अतिमाम्	अतियूयम् । अतिवयम्
द्वि०	अतित्वाम् । अतिमाम्	अतित्वाम् । अतिमाम्	अतित्वान् । अतिमान्
तृ०	अतित्वया।अतिमया	अतित्वाभ्याम्। अतिमाभ्याम्	अतित्वाभिः। अतिमाभिः
च०	अतितुभ्यम्।अतिमह्यम्	अतित्वाभ्याम्। अतिमाभ्याम्	अतित्वभ्यम्। अतिमभ्यम्

(ङसिभ्यसोः) पंचमीके एकवचन और बहुवचनमें अतित्वत् । अतिमत् । भ्याम्प्रत्ययमें पूर्ववत् अतित्वाभ्याम् । अतिमाभ्याम् ।

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
ष०	अतितव । अतिमम	अतित्वयोः । अतिमयोः	अतित्वाकम्। अतिमाकम्
स०	अतित्वयि । अतिमयि	अतित्वयोः । अतिमयोः	अतित्वासु । अतिमासु

(युवाम् आवां वा अतिक्रान्तः इति विग्रहे) तुम दोनोंको अथवा हम दोनोंको छोड़ कर गया इस विग्रहमें अतियुष्मद्, अत्यस्मद् शब्द लियेजांय तो प्रथमाके एकवचन, बहुवचन, चतुर्थी और षष्ठीके एकवचनमें इनके रूप पूर्ववत् अर्थात् अतित्वम्।अत्यहम्। अतियूयम् अतिवयम्।अतितुभ्यम् । अतिमह्यम्।अतितव । अतिमम । प्रथमाके द्विवचन, द्वितीयाके एकवचन और द्विवचन इनमें अतियुवाम् । अत्यावाम् । द्वितीयाके बहुवचनमें अतियुवान् । अत्यावान् । अतियुवया । अत्यावया । तृ० च० पं० द्विवचनमें अतियुवाभ्याम् ३ अत्यावाभ्याम् । तृ० ब० अतियुवाभिः । अत्यावाभिः । च० ब० में अतियुवभ्यम् । अत्यावभ्यम् । (ङसिभ्यसोः) अतियुवत् । अत्यावत् । दोनों ओस्प्रत्ययोंमें अतियुवयोः । अत्यावयोः । ष० ब० अतियुवाकम् । अत्यावाकम् । स० एक० अतियुवयि । अत्यावयि ।

(युष्मान्, अस्मान् वा अतिक्रान्तः इति विग्रहे) तुमको हमको छोडकर गया इस विग्रहमें अतियुष्मद्, अत्यस्मद् शब्दोंके रूप-प्र० एकवचन, बहुवचन, चतुर्थी और षष्ठीके एकवचनमें प्राग्वत् । प्रथमाके एकवचन और द्वितीयाके एकवचन, द्विवचनमें अतियुष्माम् । अत्यस्माम् । द्वि० ब० में अतियुष्मान् । अत्यस्मान् । तृ० ए० अतियुष्मया । अत्यस्मया । भ्याम् प्रत्ययमें अतियुष्माभ्याम् ३ अत्यस्माभ्याम् । तृ० ब० अतियुष्माभिः । अत्यस्माभिः । चतुर्थीके बहुवचनमें अतियुष्मभ्यम् । अत्यस्मभ्यम् । पंचमीके एकवचन और बहुवचनमें अतियुष्मत् । अत्यस्मत् । दोनों ओस् प्रत्ययोंमें अतियुष्मयोः । अत्यस्मयोः । ष० ब० अतियुष्माकम् । अत्यस्माकम् ।

स० ए० अतियुष्मयि । अत्यस्मयि । स० ब० अतियुष्मासु । अत्यस्मासु ॥

युष्मद् अस्मद्के अधिक रूपोंके विषयमें--

४०१ पदस्य । ८ । १ । १६ ॥

४०१--पदके ।

४०२ पदात् । ८ । १ । १७ ॥

४०२--पदसे परे ।

४०३ अनुदात्तं सर्वमपादादौ॥८।१।१८॥

इत्यधिकृत्य ॥

४०३--अनुदात्त सर्व अपादादिमें ।

इस प्रकारसे अधिकार करके ।

४०४ युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ । ८ । १ । २० ॥

पदात्परयोरपादादौ स्थितयोरनयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वान्नावित्यादेशौस्तस्तौ चानुदात्तौ ॥

४०४--किसी पदके अनन्तर हों परन्तु पद्यरचनामें पादके आरम्भमें न हों ऐसे युष्मद्, अस्मद्, शब्द षष्ठी चतुर्थी अथवा द्वितीयाविशिष्ट हों तो उनके स्थानमें वाम्, नौ आदेश होतेहैं वे अनुदात्त हैं ॥

४०५ बहुवचनस्य वस्नसौ॥८।१।२१॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वसनसौ स्तः । वान्नावोरपवादः ॥

४०५--पदके परे अपादके आदिमें स्थित षष्ठीआदिके बहुवचनान्त युष्मद् और अस्मद् शब्दके स्थानमें वस् और नस् आदेश हों । यह आदेश वां और नौ आदेशके अपवादक हैं ।

४०६ तेमयावेकवचनस्य । ८।१।२२ ॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे एतौ स्तः ॥

४०६--पदके परे अपादके आदिमें स्थित षष्ठी और चतुर्थीके एकवचनमें युष्मद्, अस्मद् शब्दके स्थानमें ते, मे आदेश हों । द्वितीयाके एकवचनमें अन्य रूप होतेहैं इस कारण उनका ग्रहण न करके अगला सूत्र लिखतेहैं--

४०७ त्वामौ द्वितीयायाः । ८।१।२३ ॥

द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा एतौ स्तः ।
श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः ।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः ।
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वःस नः ।
पदात्परयोः किम् । वाक्यादौ मा भूत् । त्वां पातु मां पातु । अपादादौ किम् ।
वेदैरशेषैः संवेद्योऽस्मान्कृष्णः सर्वदाऽवतु । स्थग्रहणाच्छ्रूयमाणविभक्तिकयोरेव । नेह । इति युष्मत्पुत्रो ब्रवीति। इत्यस्मत्पुत्रो ब्रवीति॥ समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः ॥*॥ एकतिङ् वाक्यम् । तेनेह न । ओदनं पच तव भविष्यति ।इह तु स्यादेव ।शालीनां ते ओदनं दास्यामीति ॥ एते वांनावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः ॥ * ॥ अन्वादेशे तु नित्यं स्युः । धाता ते भक्तोऽस्ति धाता तव भक्तोऽस्तीति वा । तस्मै ते नम इत्येव ॥

४०७--पदके परे अपादके आदिमें स्थित द्वितीयाके एकवचनान्त युष्मद् और अस्मद् शब्दके स्थानमें त्वा, मा आदेश हों । इनके उदाहरण देतेहैं 'श्रीशस्त्वावतु' इति (श्रीशः त्वा मा अपि अवतु) श्रीपति तेरी और मेरी भी रक्षा करे, यहां 'श्रीशः' इस शब्दके परे युष्मद्, अस्मद् शब्द अपादके आदिमें स्थित और द्वितीयाका एकवचनान्त हैं इस कारण उनको त्वा, मा, यह आदेश हुए, (सः ते मेऽपि शर्म दत्तात्) वह तुझको और मुझको भी कल्याण देवें, इस स्थलमें 'दत्तात्' इस शब्दके परे अपादके आदिमें स्थित चतुर्थीके एकवचनान्त होनेके कारण दोनों शब्दोंको ते मे आदेश हुए, (स हरिः ते मे अपि स्वामी) वह हरि तेरा और मेरा भी स्वामी है, इस स्थलमें 'स्वामी' इस शब्दसे परे और अपादके आदिमें स्थित षष्ठीका एकवचन है यहां पूर्वविधि होनेके कारण ते मे आदेश हुए, (विभुः वां नौ अपि पातु) ईश्वर तुम दोनोंकी और हम दोनोंकी भी रक्षा करें । वाम् नौ यह द्वितीयाके द्विवचन, (ईशः वां नौ अपि सुखं ददातु) ईश्वर तुमको और हमको भी सुख दें, वां नौ यह चतुर्थीका द्विवचन, (हरिः वां नौ अपि पतिः) तुम दोनोंका और हम दोनोंका भी पति हरि हैं, वाम् नौ यह षष्ठीका द्विवचन है, (सः वः नः अव्यात्) वह तुम सबोंकी और हम सबोंकी रक्षा करें, वः नः यह द्वितीयाका बहुवचन, (शिवं वः नः दद्यात्) तुम सबको और हम सबको कल्याण देवें, वः नः यह चतुर्थीका बहुवचन, (सः हरिः वः नः सेव्यः) वह तुम सबको और हम सबको सेव्य हैं, वः नः यह षष्ठीके बहुवचन हैं ।

(पदात् परयोः किम्) पदसे पर हों ऐसा क्यों कहा ? तो वाक्यके आरंभमें यह आदेश नहीं करना चाहिये इसलिये ऐसा कहा है (त्वां पातु०) तेरी रक्षा करें इसमें त्वा आदेश नहीं, (अपादादौ०) पदात् पर कहनेपर भी फिर 'अपादादौ' (पदका आरंभ न हो) ऐसा क्यों ? तो पदके आरंभमें होते पदके अनन्तर होना संभव है, इस कारण उनके निवारणके लिये हैं (वेदैरशेषैः०) सब वेदोंमें पूज्य कृष्ण सर्वदा हमारी रक्षा करें, यहां अनुष्टुप् छन्दके आठ अक्षरोंका पाद है, और 'अस्मान्' यह द्वितीयान्त शब्द पदके अनन्तर होते भी द्वितीयपादके प्रारंभमें है, इसलिये वहां 'नः' यह आदेश नहीं होता, (स्थग्रहणमिति) " युष्मदस्मदोः $\frac{८।१।२०}{४०४}$ " इस सूत्रमें ' स्थ ' (अर्थात् वर्तमान) शब्दका ग्रहण होनेसे

विभक्तिप्रत्ययोंका जब श्रवण होग्य हो तब ही उनको आदेश होतेहैं, इस कारण अगले उदाहरणमें आदेश नहीं, 'इति युष्मत्पुत्रो ब्रवीति,' 'इति अस्मत्पुत्रो ब्रवीति' इस प्रकारसे तेरा पुत्र कहताहै, इस प्रकारसे मेरा पुत्र कहताहै, इनमें युष्मद् अस्मद् शब्द पदके अनन्तर हैं, षष्ठयन्त हैं तो भी समासशास्त्रके कारण उनके आगेके प्रत्यय लुप्त हुए हैं इसलिये उनके स्थानमें पूर्वोक्त आदेश नहीं, * समान वाक्य इति०(वा० ४७१४) * एकतिङ् वाक्यम् (११९९ वा०) एक क्रियापद जिसमें हो वह वाक्य, निघात (अर्थात् अनुदात्तकरण) और युष्मद् अस्मद् इनके आदेश, समानवाक्यमें ही होतेहैं, (तेन इह न) इसलिये अगले संयुक्त वाक्योंमें वह प्रकार नहीं 'ओदनं पच तव भविष्यति' भात पकाओ तुम्हारे लिये होजायगा, इसमें दो वाक्य हैं, इसलिये 'तव' यह शब्द समानवाक्यस्थ पदके अनन्तर नहीं इसलिये आदेश नहीं, परन्तु अगला वाक्य समान वाक्य होनेसे वहां आदेश होताहै, 'शालीनां ते ओदनं दास्यामि' शाली धानका भात तुझको दूंगा ऐसा, * एते वामिति (४७१७ वा०) अन्वादेश न हो तो वां नौ इत्यादि आदेश प्राप्त हों तो भी विकल्प करके होतेहैं, परन्तु अन्वादेश हो तो नित्य होतेहैं, 'धाता ते भक्तोऽस्ति' 'धाता तव भक्तोऽस्ति इति वा' ब्रह्मदेव तेरा भक्त है, इसमें अन्वादेश न होनेसे विकल्प करके 'ते' आदेश हुआ है, परन्तु अन्वादेशमें 'तस्मै ते नमः इत्येव' उस तुझको नमस्कार है ऐसा ही प्रयोग होताहै विकल्प नहीं। अब निषेध-

४०८ न चवाहाऽहैवयुक्ते।८।१।२४॥

चादिपञ्चकयोगे नैते आदेशाः स्युः॥हरिस्त्वां मां च रक्षतु। कथं त्वां मां वा न रक्षेदित्यादि युक्तग्रहणात्साक्षाद्योगेऽयं निषेधः। परंपरासंबन्धे तु आदेशः स्यादेव। हरो हरिश्च मे स्वामी॥

४०८-'चादिपंचक च, वा, ह, अह, एव, इनका योग हो तो पूर्वोक्त आदेश नहीं होते। (हरिस्त्वां मां च रक्षतु) हरि तेरी और मेरी रक्षा करें, इसमें चकार होनेके कारण आदेश नहीं, (कथं त्वां मां वा न रक्षेत्) तुझको वा मुझको क्यों नहीं रक्षा करेगा, इसमें 'वा' शब्दके कारण आदेश नहीं, (युक्तग्रहणादिति) 'न चवाहाहैवैः०' ऐसा सूत्र होता तो भी 'तुल्यार्थैः-'इत्यादिके समान तृतीयाहीसे युक्त अर्थ आजाता सो न होकर सूत्रमें युक्तशब्द होनेसे युष्मद् अस्मद् शब्दोंको प्रत्यक्ष चादिकोंका योग हो तो वहां ही यह निषेध है, (परंपरा) परंपरा अर्थात् अन्यशब्दोंके सम्बन्धसे जो उनका सम्बन्ध हो तो आदेश होनाही चाहिये 'हरो हरिश्च मे स्वामी' हर और हरि यह मेरे स्वामी हैं, इसमें 'च' का अस्मद्शब्दसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं, हर और हरि इनसे है, इस कारण यहां आदेश होताहै॥

४०९ पश्यार्थैश्चानालोचने।८।१।२५॥

अचाक्षुषज्ञानार्थैर्धातुभिर्योगे एते आदेशा न स्युः। चेतसा त्वां समीक्षते। परम्परासम्बन्धेऽप्ययं निषेधः। भक्तस्तव रूपं ध्यायति। आलोचने तु भक्तस्त्वा पश्यति चक्षुषा॥

४०९-'प्रत्यक्ष नेत्रसे देखना' यह अर्थ छोडकर इतर अर्थमें योजना किये हुए (लायेहुए) जो देखने अर्थके धातु इनका योग रहते यह आदेश नहीं होते। (चेतसा त्वां समीक्षते) मनसे तुझको देखताहै, (परंपरासम्बन्ध इति) परंपरा सम्बन्ध होते भी यह निषेध होताहै, यथा 'भक्तस्तव रूपं ध्यायति' भक्त तेरा रूप ध्यान करताहै, (आलोचने तु) परन्तु प्रत्यक्ष देखनेका अर्थ होते निषेध नहीं, 'भक्तस्त्वां पश्यति चक्षुषा' भक्त तुझको नेत्रोंसे देखताहै, इस स्थलमें चाक्षुषज्ञानार्थ धातुको योग होनेके कारण 'त्वा' आदेश हुआ॥

४१० सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा। ८।१।२६॥

विद्यमानपूर्वात्प्रथमान्तात्परयोरनयोरन्वादेशेऽप्येते आदेशा वा स्युः। भक्तस्त्वमप्यहं तेन हरिस्त्वां त्रायते स माम्। त्वा मेति वा॥

४१०-पूर्वमें दूसरा कोई पद विद्यमान हो ऐसे प्रथमान्तपदके परे युष्मद् अस्मद् शब्दको अन्वादेशमें यह सम्पूर्ण आदेश विकल्प करके हों। (भक्तस्त्वमप्यहं तेन हरिस्त्वां त्रायते स माम् त्वा, मा इति वा) तू भक्त है मैं भी हूं इस कारण वह हरि तुझको और मुझको रक्षण करताहै। इनमें 'हरिः' 'सः' यह प्रथमान्त हैं सपूर्व हैं अर्थात् इनके पहले और २ शब्दभी हैं इससे इनके आगे आनेवाले युष्मद् अस्मद् शब्दोंको विकल्प करके उक्त आदेश होतेहैं, इस कारण 'त्वाम्' 'माम्' अथवा 'त्वा' 'मा' यह रूप होतेहैं। अगले निषेधके लिये पहले संज्ञा-

४११ सामन्त्रितम्। २। ३। ४८॥

संबोधने या प्रथमा तदन्तमामन्त्रितसंज्ञं स्यात्॥

५११-सम्बोधनमें प्रथमाविभक्त्यन्त पदकी आमंत्रित संज्ञा हो॥

४१२ आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्। ८। १। ७२॥

स्पष्टम्। अग्ने तव। देवास्मान्पाहि। अग्ने नय। अग्न इन्द्र वरुण। इह युष्मदस्मदोरादेशस्तिङन्तनिघात आमन्त्रितनिघातश्च न। सर्वदा रक्ष देव न इत्यत्र तु देवेत्यस्याविद्यमानवद्भावेऽपि ततः प्राचीनं रक्षेत्येतदाश्रित्यादेशः। एवमिमं मे गङ्गे यमुने इति मन्त्रे यमुन इत्यादिभ्यः प्राचीनामन्त्रिताविद्यमानवद्भावेऽपि मेशब्दमेवाश्रित्य सर्वेषां निघातः॥

४१२-पूर्वस्थित आमंत्रित अविद्यमानकी समान हो (न होनेके समान हो) अर्थात् यह एकही शब्द पहले हो और आगे युष्मद्, अस्मद्, इनकी पूर्वोक्त प्रथमादिविभक्ति आगे

अथवा निघात प्राप्त हो तो भी उनके स्थानमें वेवे आदेशादि कार्य नहीं होते । (अग्ने तव) हे अग्नि तेरा । (देव अस्मान् पाहि) हे देव हमारी रक्षा करो । (अग्ने नय) हे अग्नि लेजा । (अग्न इन्द्र वरुण) हे अग्नि, हे इन्द्र, हे वरुण, (इइ युष्मदस्मदोः०) इन उदाहरणोंमें युष्मद् अस्मद् इनके स्थानमें आदेश, तिङ्के स्थानमें निघातस्वर और आमंत्रितके स्थानमें निघातस्वर यह सब नहीं होते * ॥

(सर्वदा रक्ष देव नः इत्यत्रेति) इस उदाहरणमें यद्यपि 'देव' यह आमन्त्रित अविद्यमानवत् है तो भी उसके पहले 'रक्ष' 'सर्वदा' यह पद रहनेसे उनके आश्रयसे अस्मद् शब्दको पदात्परत्व है ही इस कारण उसके स्थानमें 'नः' आदेश योग्य ही है । (एवम् इमम्मे गङ्ग इति०) इसी प्रकारसे "इमम्मेगङ्गेयमुनेसरस्वतिशुतुद्रिस्तोमंसचता परुष्ण्या" (ऋ० मं० १० सू० ५ ऋक् ५) * ॥

अत्र निषेधका फिर निषेध कहतेहैं—

४१३ नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् । ८ । १ । ७३ ॥

विशेष्यं समानाधिकरणे आमन्त्रिते परे नाविद्यमानवत्स्यात् । हरे दयालो नः पाहि । अग्ने तेजस्विन् ॥

४१३—समानाधिकरण (अर्थात् विशेष्यसे ही जिसका बोध होताहै उसीका गुण दिखलानेवाला ऐसा) विशेषण आमंत्रित आगे हो तो विशेष्य अविद्यमानवत् नहीं होता, 'हरे दयालो नः पाहि' (हे दयालु हरि हमारी रक्षा करो) 'अग्ने तेजस्विन्' (हे तेजस्वी अग्नि) इनमें 'दयालो' और 'तेजस्विन्' यह समानाधिकरण विशेषण आमंत्रितभी हैं, और आगे भी हैं इस कारण 'हरे' और 'अग्ने' यह आमंत्रित सामान्यवचन अर्थात् विशेष्य अविद्यमानवत् नहीं है अर्थात् अगले 'अस्मद्' शब्दको 'नः' आदेश होताहै और 'तेजस्विन्' को निघात होताहै ॥

❀ विभाषितं विशेषवचने।८।१।७४॥

अत्र भाष्यम् । बहुवचनमिति वक्ष्यामीति । बहुवचनान्तं विशेष्यं समानाधिकरणे आमन्त्रिते विशेषणे परे अविद्यमानवद्वा । यूयं प्रभवः देवाः शरण्या युष्मान् भजे । वो भजे इति वा । इहान्वादेशेपि वैकल्पिका आदेशाः । सुपात् । सुपाद् । सुपादौ । सुपादः । सुपादम् । सुपादौ ॥

"समानाधिकरण आमंत्रितविशेषण परे रहते बहुवचनान्त विशेष्य विकल्प करके अविद्यमानकी समान होताहै । यथा 'यूयं प्रभवः देवाः शरण्याः युष्मान् भजे, वो भजे' इत्यादि स्थलमें अन्वादेश होनेपर भी वैकल्पिक आदेश हुआ है" ॥

सुपाद् (जिसके सुन्दर चरण हों) शब्द—

"संख्यासुपूर्वस्य $\frac{५।४।१४०}{८७९}$" इससे अन्तलोप होकर सु, पाद् इनसे यह बना है सुपाद्+सु=सुपात्, सुपाद् । सुपाद्+औ=सुपादौ । सुपाद्+जस्=सुपादः । सुपाद्+अम्=सुपादम् । सुपाद्+औ=सुपादौ । आगे—

४१४ पादः पत् । ६ । ४ । १३० ॥

पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भ तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः स्यात् । सुपदः । सुपदा । सुपाद्भ्यामित्यादि । अग्निं मन्थतीत्यग्निमत् । अग्निमद् । अग्निमथौ । अग्निमथः । अग्निमद्भ्यामित्यादि । ऋत्विगादिसूत्रेणाग्नेः सुप्युपपदे क्विन् ॥

४१४—'पाद्' शब्द जिसके अन्तमें है ऐसे भसंज्ञक अंगके अवयव पाद् शब्दके स्थानमें 'पद्' आदेश हो । सुपाद्+शस्=सुपदः । सुपाद्+टा=सुपदा । सुपाद्+भ्याम्=सुपाद्भ्याम्—इत्यादि ।

सुपाद् शब्दके रूप—

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सुपात्, सुपाद्	सुपादौ	सुपादः
सं०	हे सुपात्, सुपाद्	सुपादौ	सुपादः
द्वि०	सुपादम्	सुपादौ	सुपदः
तृ०	सुपदा	सुपाद्भ्याम्	सुपाद्भिः
च०	सुपदे	सुपाद्भ्याम्	सुपाद्भ्यः
पं०	सुपदः	सुपाद्भ्याम्	सुपाद्भ्यः
ष०	सुपदः	सुपदोः	सुपदाम्
स०	सुपदि	सुपदोः	सुपात्सु.

थान्त शब्द अग्निमथ्—

'अग्निं मथ्नाति इति अग्निमत्' (अग्निका मन्थन करे सो) 'मन्थ' धातुको "क्विप् च $\frac{३।२।७६}{२९८३}$" इससे क्विप् और "अनिदितां० $\frac{६।४।२४}{४१५}$" इससे नलोप, अग्निमथ्+सु= ऐसी स्थितिमें सुलोप, और "झलाञ्जशोऽन्ते $\frac{८।२।३९}{८४}$" इससे 'अग्निमद्' और "वाऽवसाने $\frac{८।४।५६}{२०६}$" इससे विकल्प करके अग्निमत्—द् । अग्निमथौ । अग्निमथः । अग्निमद्भ्याम् इत्यादि ।

क्विबन्त अग्निमथ् शब्दके रूप—

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अग्निमत्-द्	अग्निमथौ	अग्निमथः
सं०	हे अग्निमत्-द्	अग्निमथौ	अग्निमथः

* 'अग्ने तव' 'देवास्मान्पाहि' इनमें 'तव' 'अस्मान्' इनके स्थानमें "पदस्य" "पदात्" इत्यादिकोंसे जो आदेश प्राप्त हैं वे आमंत्रितपूर्वके कारण निषेध कियेगये हैं, 'अग्ने नय' इसमें "तिङ्ङतिङः $\frac{८।१।२८}{३९३५}$" इससे 'अग्ने' इस अतिङन्त पदके परेके 'नय' इस तिङन्तपदको निघात प्राप्त है, परन्तु वह प्रस्तुत सूत्रसे निषिद्ध है, वैसेही अग्न, इन्द्र, वरुण इनमें "आमंत्रितस्य च $\frac{८।१।१९}{३६५४}$" इससे अग्ने इस पदके परेके इन्द्रपदको आमंत्रितत्व होनेसे वह प्रस्तुत सूत्र करके अविद्यमानवत् (हैही नहींके समान) है इसलिये इन्द्रको निघात (अनुदात्त) का निषेध है ॥

* इस मंत्रमें यमुने इत्यादि आमंत्रित शब्दोंके पूर्वशब्दोंको चाहे आमंत्रितत्वके कारण अविद्यमानत्व है, तो भी उनके पीछेका जो (मे) शब्द उसके आश्रयसे अगले सब आमंत्रितोंको निघात होता है ॥

द्वि०	अग्निमथम्	अग्निमथौ	अग्निमथः
तृ०	अग्निमथा	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भिः
च०	अग्निमथे	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भ्यः
पं०	अग्निमथः	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भ्यः
ष०	अग्निमथः	अग्निमथोः	अग्निमथाम्
स०	अग्निमथि	अग्निमथोः	अग्निमत्सु.

प्राच् (पहलेका) शब्द-

यह सुबन्त उपपद और अञ्च् (अञ्चु) धातु इनसे "ऋत्विग्दधृक्० $\frac{३।२।५९}{३७३}$ " इससे यह क्विन्नन्त बना है ॥

४१५ अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति। ६। ४। २४॥

हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः स्यात्किति ङिति च । उगिदचामिति नुम्। संयोगान्तस्य लोपः। नुमो नकारस्य क्विन्प्रत्ययस्य कुरिति कुत्वेन ङकारः । प्राङ् । अनुस्वारपरसवर्णौ । प्राञ्चौ । प्राञ्चः । प्राञ्चम् । प्राञ्चौ ॥

४१५-अङ्ग हलन्त हो और इदित् न हो(अर्थात् जिसमें ह्रस्व इकार इत् न हो) तो कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे रहते उपधाके नकारका लोप होताहै । (यहां " श्नान्नलोपः ६।४। २३ " इस सूत्रसे 'न' इस लुप्तषष्ठीककी और लोपकी अनुवृत्ति होतीहै) । 'अञ्चु गतिपूजनयोः' यह धातु इदित् नहीं है, और आगेके क्विन्‌में क् इत् होनेसे वह कित् प्रत्यय है इसलिये 'प्राञ्च्' इसमेंके उपधानकारका लोप हुआ, तब 'प्राच्' यही प्रातिपदिक हुआ, प्राच्+सु=ऐसी स्थिति होते सर्वनामस्थानत्वके कारण " उगिदचां सर्व० $\frac{७।१।७०}{३६१}$ " इसके 'अचाम्' (अर्थात् नलोपिनः अञ्चतेश्च) इससे नुम् (न्) हुआ, तब प्रान्च्+स् ऐसी स्थिति हुई, सकारका संयोगान्तलोप हुआ, यह क्विन्नन्त शब्द होनेसे "क्विन्प्रत्ययस्य कुः $\frac{८।२।६२}{३७७}$ " इससे नुम्‌मेंके नकारके स्थानमें कुत्व अर्थात् ङकार हुआ, प्राङ् । आगे नकारके स्थानमें अनुस्वार और परसवर्ण, प्रान्च्+औ=प्राञ्चौ । प्राञ्चः । प्राञ्चम् । प्राञ्चौ । आगे भके स्थानमें प्रअच्+अस् ऐसी स्थिति रहते-

४१६ अचः । ६ । ४ । १३८ ॥

लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य लोपः स्यात्॥

४१६-नकार जिसका गयाहुआ है ऐसा अञ्चु धातु (अर्थात् अच् जो रूप है सो) भसंज्ञक होते उसके अकारका लोप होताहै । प्रच्+अस् ऐसी स्थिति हुई-

४१७ चौ । ६ । ३ । १३८ ॥

लुप्ताकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः स्यात् । प्राचः । प्राचा । प्राग्भ्यामित्यादि ॥ प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । प्रत्यञ्चः । प्रत्यञ्चम् । प्रत्यञ्चौ । अच इति लोपस्य विषयेऽन्तरङ्गोऽपि यण् न प्रवर्तते । अकृतव्यूहा इति परिभाषया । प्रतीचः। प्रतीचा ॥ अमुमञ्चतीति विग्रहे । अदस् अञ्च् इति स्थिते ॥

४१७-'चु' अर्थात् जिसके अकार, नकार, लुप्त होगये हैं, ऐसा अञ्चुधातु (अर्थात् उसका 'च्' अंश) आगे रहते उसके पूर्वमें आनेवाले अण्‌को दीर्घ होताहै । यहां " ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः $\frac{६।३।१११}{१७४}$ " इससे अण् और दीर्घकी अनुवृत्ति होतीहै) इसलिये 'प्र' मेंके 'अ' इस अण्‌को दीर्घ, प्राच्+अस्=प्राचः । टामें प्राचा । आगे प्र+अच्+भ्याम् यहां भसंज्ञा नहीं, इससे अकारका लोप भी नहीं प्राग्भ्यामित्यादि ।

प्राच् शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
सं०	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राचः
तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
च०	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
पं०	प्राचः	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
ष०	प्राचः	प्राचोः	प्राचाम्
स०	प्राचि	प्राचोः	प्राक्षु.

इसी प्रकारसे प्रत्यच् (पिछला) शब्द-

उत्पत्ति पूर्ववत्, प्रति+अच्+सु ऐसी स्थिति होकर पूर्ववत् नुम् कुत्वादि, प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । प्रत्यञ्चः । प्रत्यञ्चम् । प्रत्यञ्चौ ॥

(अचः इति) प्रति+अच्+अस् ऐसी स्थिति रहते "अचः $\frac{६।४।१३८}{४१६}$" इससे भसंज्ञासमयमें अकारका लोप होताहै यहां लोपके पहले ही अन्तरंगत्वके कारण प्रति+अच् इसमेंके इकारके स्थानमें यण् प्राप्त हुआ, परन्तु "अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः" इस (४६) परिभाषाके कारण उसकी प्रवृत्ति नहीं होती * ॥

प्रति+च्+अस् ऐसी स्थिति हुई, 'चौ' इससे पूर्व अण्‌को दीर्घ होकर प्रतीचः । 'टा' में प्रतीचा ।

प्रत्यच् शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः
सं०	हे प्रत्यङ्	हे प्रत्यञ्चौ	हे प्रत्यञ्चः
द्वि०	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीचः
तृ०	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भिः
च०	प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
पं०	प्रतीचः	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
ष०	प्रतीचः	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
स०	प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु.

और भी अञ्चुधात्वन्त शब्द-

'अमुम् अञ्चति' (उसकी ओर जाताहै) ऐसा विग्रह हो तो 'अमुम्' इसका मूलशब्द अदस् और अञ्चुधातु इससे अदस्+अञ्च् ऐसी स्थितिमें अञ्चुधातुको " ऋत्विग्दधृक्०

* अकारके निमित्तसे इकारके स्थानमें यण् प्राप्त है परन्तु आगे "अचः" इस सूत्रसे उस अकारका ही लोप होनेवाला है इससे उस अकारके निमित्तसे वह यणरूप कार्य नहीं होता ऐसा 'अकृतव्यूहाः०' इसका अर्थ है ॥

३।२।५९/३७३ " इससे आगे होनेवाले क्विन्प्रत्ययके कित्वके कारण पूर्ववत् " अनिदिताम्० ६।४।२४/४१५ " इससे उपधाके नकारका लोप होकर अदस्+अच् ऐसी स्थिति हुई * ॥

४१८ विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये ।:६ । ३ । ९२ ॥

अनयोः सर्वनाम्नश्च टेरद्र्यादेशः स्यादप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे।अदद्रिअञ्च् इति स्थिते यण् ॥

४१८–अप्रत्ययान्त 'अञ्चु' धातु आगे रहते विष्वक्, देव और सर्वनामसंज्ञक शब्दकी 'टि' को 'अद्रि' आदेश होताहै । यहां 'अदस्' यह सर्वनाम होनेके कारण उसकी टि 'अस्' के स्थानमें आदेश होनेसे अदद्रि+अच् ऐसी स्थिति होते अगले अकारके कारण इकारके स्थानमें यण् अदद्र्य्+अच् ऐसी स्थिति हुई * ॥

४१९ अदसोऽसेर्दादु दो मः।८।२।८०॥

अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ स्तो दस्य मश्च उ इति ह्रस्वदीर्घयोः समाहारद्वन्द्वः । आन्तरतम्याद्ध्रस्वव्यञ्जनयोर्ह्रस्वो दीर्घस्य दीर्घः । अमुमुयङ् । अमुमुयञ्चौ । अमुमुयञ्चः । अमुमुयञ्चम् । अमुमुयञ्चौ । अमुमुईचः । अमुमुईचा । अमुमुयग्भ्यामित्यादि । मुत्वस्याऽसिद्धत्वान्न यण्। अन्त्यबाधेऽन्त्यसदेशस्येति परिभाषामाश्रित्य परस्यैव मुत्वं वदतां मते अदमुयङ् । अः सेः सकारस्य स्थाने यस्य सः असिरिति व्याख्यानात् त्यदाद्यत्वविषय एव मुत्वं नान्यत्रेति पक्षे अदद्र्यङ् । उक्तं च–

अदसोऽद्रेः पृथङ्मुत्वं केचिदिच्छन्ति लत्ववत्।
केचिदन्त्यसदेशस्य नेत्येकेऽसेर्हि दृश्यते इति ॥

विष्वग्देवयोः किम्। अश्वाची। अञ्चतौ किम्। विष्वग्युक् । अप्रत्यये किम् । विष्वगञ्चनम् । अप्रत्ययग्रहणं ज्ञापयति अन्यत्र धातुग्रहणे तदादिविधिरिति । तेनाऽयस्कारः । अतः कृकमीति सः॥उदङ्।उदञ्चौ । उदञ्चः।शसादावचि॥

४१९–जब 'अदस्' शब्द सकारान्त न हो तब उस शब्दके दकारके पर वर्णके स्थानमें 'उ' अथवा 'ऊ' और दकारके स्थानमें मकार यह आदेश होतेहैं ।

(उ इति ह्रस्वदीर्घयोः समाहारद्वन्द्वः) सूत्रमें 'उ' लिया है सो ह्रस्व'उ' और दीर्घ 'ऊ' इन दोनोंका समाहारद्वन्द्व है इसलिये उन दोनोंका इसमें ग्रहण करना चाहिये और (आन्तरतम्यादिति) दकारके परेका वर्ण ह्रस्व अथवा व्यञ्जन हो तो वहां ह्रस्व 'उ' आदेश होगा और दीर्घ हो तो दीर्घ 'ऊ' (अदस् शब्दमें सि० ४३७ में) आदेश करे, यह आन्तरतम्यसे जानना चाहिये । अदद्र्य्+अच् इसमें दो दकार होनेसे उन दोनोंके अगले वर्णके स्थानमें उकार और दकारके स्थानमें मकार आया, अमू+उमू+उय्+अच् इस परसे'अमुमुयच्' ऐसा प्रातिपदिक सिद्ध हुआ, उसके आगे विभक्ति और इसमें नलोपी अञ्च् (अर्थात् अच्) धातु होनेसे सर्वनामस्थानमें पूर्ववत् नुम् (न्) का आगम, "क्विन्प्रत्ययस्य कुः" इससे ङकार, संयोगान्तलोप, अमुमुयङ् । अमुमुयञ्चौ । अमुमुयञ्चः । अमुमुयञ्चम् । अमुमुयञ्चौ । आगे 'भ' के विषयमें अदद्रि+अच्+अस् ऐसे पहलेमें ही "अचः ६।४।१३८/४१६ " इससे अकारका लोप और " चौ ६।१।१३८/४१७ " इससे पूर्व-अण्को दीर्घ, उकार, मकार, अमुमुईचः । यहां पूर्ववत् 'अकृतव्यूहाः०'इससे 'अच्' के अकारको अच्मानकर इकारके स्थानमें यण्का अभाव, मकार उकार असिद्ध हैं ८।२।८/४१९ इसकारण अगले ईकारके कारण उकारके स्थानमें यण् ६।१।७७/४७ नहीं, आगे 'टा' में अमुमुईचा । अमुमुयग्भ्याम् इत्यादि * ॥

अदद्र्यच् शब्दके रूप (२ मुत्व)–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अमुमुयङ्	अमुमुयञ्चौ	अमुमुयञ्चः
सं०	हे अमुमुयङ्	हे अमुमुयञ्चौ	हे अमुमुयञ्चः
द्वि०	अमुमुयञ्चम्	अमुमुयञ्चौ	अमुमुईचः
तृ०	अमुमुईचा	अमुमुयग्भ्याम्	अमुमुयग्भिः
च०	अमुमुईचे	अमुमुयग्भ्याम्	अमुमुयग्भ्यः
पं०	अमुमुईचः	अमुमुयग्भ्याम्	अमुमुयग्भ्यः
ष०	अमुमुईचः	अमुमुईचोः	अमुमुईचाम्
स०	अमुमुईचि	अमुमुईचोः	अमुमुयक्षु.

दूसरा मत–अदद्र्यच् ऐसी स्थिति होते " अदसोऽसेर्दादु दो मः ८।२।८०/४१९ " इसके अनुसार दोनों स्थलोंमें जब मुत्व कार्य प्राप्त हुआ, तब सूत्रमें 'अदसः' यह अवयवषष्ठी नहीं है किन्तु स्थानषष्ठी है इसलिये 'अलोऽन्त्यस्य ४२' इस परिभाषाकी उपस्थिति भई, तो अदस्का जो अन्त्य है 'य' सो 'द' से पर नहीं है और जो द से पर है 'र्' सो अन्त्य नहीं है ऐसा संदेह होनेपर–

(अन्त्यबाध इति) 'अन्त्यको कार्य न हो तो उसके समीपवर्णको कार्य होताहै' ऐसी जो परिभाषा है उसका आश्रय लेकर अन्त्यके समीप (शब्दमेंका दूसरा) जो दकार उसके परेके वर्णको उकार और उसी दकारको मकार होताहै, उसके पहले और दकार हो तो भी वहां मुत्व नहीं होता, इस मतसे 'अदमुयच्' ऐसा प्रातिपदिक होकर 'अदमुयङ्' अर्थात् विभक्तिमें दो मु न आते 'अदमु' ऐसा अंश होकर अगले सब अंश 'अमुमुयच्' इसके अनुसार होंगे और उसीके अनुसारही सब रूप जानना चाहिये ।

अदद्र्यच् शब्दके रूप (१ मु०)–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अदमुयङ्	अदमुयञ्चौ	अदमुयञ्चः

* क्विन्, क्विप् इन प्रत्ययोंमें ककार, नकार, पकार, इत् हैं और " वेरपृक्तस्य ६।१।६७/३७५ "इससे वकारका लोप, फिर कुछ नहीं रहता ॥

* इस सूत्रमें 'अञ्चतौ वप्रत्यये' ऐसा भी पाठ कहींकहीं है वप्रत्ययसे 'क्विन्' इसका ग्रहण करना चाहिये ॥

* सूत्रमें 'असेः' यह असि शब्दकी षष्ठी है असके स्थानमें असि यह शब्द केवल उच्चारणके अर्थ लियागया है ॥

सं०	हे अदमुयङ्	हे अदमुयञ्चौ	हे अदमुयञ्चः
द्वि०	अदमुयञ्चम्	अदमुयञ्चौ	अदमुईचः
तृ०	अदमुईचा	अदमुयग्भ्याम्	अदमुयग्भिः
च०	अदमुईचे	अदमुयग्भ्याम्	अदमुयग्भ्यः
पं०	अदमुईचः	अदमुयग्भ्याम्	अदमुयग्भ्यः
ष०	अदमुईचः	अदमुईचोः	अदमुईचाम्
स०	अदमुईचि	अदमुईचोः	अदमुयक्षु.

अब तीसरा मत-(अः सेः सकारस्येति) अकार (यह) सेः अर्थात् सकारके स्थानमें होताहै जिसको वह 'असि' अर्थात् 'अदस्' शब्दको त्यदादिगणमें स्थित होनेके कारण जब अकारान्तत्व आताहै अर्थात् दूसरा शब्द न आते प्रत्यक्ष विभाक्तियां लातीहैं, तब ही उसको मुत्व होताहै अन्यत्र नहीं ऐसा व्याख्यान कितनेही करतेहैं, यह पक्ष लियाजाय तो यहां त्यदादिकार्य न होनेसे मुत्व होताही नहीं, 'अदद्रयच्' यही प्रातिपदिक है, उससे अगले रूप पूर्ववत्, वार्तिककारने ऐसा कहा भी है कि-

(अदसोऽद्रेः)कोई कहतेह अदस्शब्दसे परे'अद्रि'इस भागके दकार और रेफको (कुव) इससे " कृपो रो लः $\frac{८।२।१८}{२३५०}$" इससे होनेवाले 'चलीक्लृप्यते,' इसमेंके जुदे लकारके अनुसार पृथक् (अर्थात् दोनों स्थानोंमें) मुत्व होताहै, कोई कहतेहैं कि केवल अन्त्यके समीप रहनेवाले 'अद्रि' इस भागको मुत्व होताहै,कोई कहतेहैं कि होता ही नहीं परन्तु अदस् शब्दको अकारान्तत्व होते मात्रमें वह देखनेमें आताहै ।

अदद्रयच् शब्दके रूप (मुत्वाभाव)-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अदद्रयङ्	अदद्रयञ्चौ	अदद्रयञ्चः
सं०	हे अदद्रयङ्	हे अदद्रयञ्चौ	हे अदद्रयञ्चः
द्वि०	अदद्रयञ्चम्	अदद्रयञ्चौ	अदद्रीचः
तृ०	अदद्रीचा	अदद्रयग्भ्याम्	अदद्रयग्भिः
च०	अदद्रीचे	अदद्रयग्भ्याम्	अदद्रयग्भ्यः
पं०	अदद्रीचः	अदद्रयग्भ्याम्	अदद्रयग्भ्यः
ष०	अदद्रीचः	अदद्रीचोः	अदद्रीचाम्
स०	अदद्रीचि	अदद्रीचोः	अदद्रयक्षु.

इस 'अदद्रयच्' शब्दके अनुसार विष्वद्रयच् और देवद्रयच् शब्दोंके रूप जानने चाहिये ।

(विष्वग्देवयोः किम्) विष्वक् और देव इन्हीं शब्दोंको 'अद्रि' आदेश होताहै, ऐसा क्यों कहा ? तो 'अश्वाची' (अश्वपरसे जानेवाली) इसमें अश्व शब्द पहले होनेसे 'अद्रि' आदेश नहीं ।

(अञ्चतौ किम्) आगे अञ्चुधातु हो ऐसा क्यों कहा ? तो विष्वक् शब्द यद्यपि पहले है तो भी आगे युजधातु होनेसे 'अद्रि' आदेश न होते, विष्वग्युक् ।

आगे प्रत्यय न होते क्यों कहा ? तो 'विष्वगञ्चनम्' (सर्वत्र गमन) यह सूत्र उत्तरपदाधिकारी है तो उत्तरपदरूप अञ्चुधातु परे रहते ऐसा अर्थ होगा, इसमें विष्वक्शब्द है, आगे अञ्चुधातु भी है तो भी उसके आगे ल्युट् (अन्) प्रत्यय है, इसलिये 'अद्रि' आदेश नहीं ।

(अप्रत्ययग्रहणमिति) यहां 'अप्रत्यय' ऐसा जो सूत्रमें कहा है उससे ऐसा जानपडताहै कि, जहां केवल धातुका उच्चारण कियागया हो वहां तदादि ग्रहण करै, अर्थात् आगे प्रत्यय हो तो भी कुछ हानि नहीं, इसीसे 'अयस्कारः' ऐसी सन्धि सिद्ध होतीहै ('अतः कृकमि० $\frac{८।३।४६}{१६०}$' इति सः) आगे कृ, कमि इत्यादि उत्तरपद होते अकारके परे विसर्गके स्थानमें सकार होताहै ऐसा सूत्र है, तथापि 'कृ' है जिसको ऐसा 'कार' इतना उत्तरपद होतेभी इस ज्ञापकसे विसर्गके स्थानमें सकार होताहै अन्यथा न हुआ होता ॥

उदच् (ऊपरका) शब्द-

उद् और अञ्चुधातु क्विन्नन्त पूर्ववत्, उदङ् । उदञ्चौ । उदञ्चः । शस् इत्यादि अजादि प्रत्यय आगे रहते अर्थात् भके स्थानमें-

४२० उद ईत् । ६ । ४ । १३९ ॥

उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत्स्यात् । उदीचः । उदीचा । उदग्भ्यामित्यादि ॥

४२०-उद् शब्दके आगे जो लुप्तनकार अञ्चुधातु (अर्थात् अच्) वह भसंज्ञक हो तो उसके अकारके स्थानमें ईकार होताहै । अकारलोपका यह सूत्र बाधक है, उदीचः । उदीचा । भसंज्ञाके अभावमें उदग्भ्यामित्यादि ।

उदच् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः
सं०	हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्चः
द्वि०	उदञ्चम्	उदञ्चौ	उदीचः
तृ०	उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः
च०	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
पं०	उदीचः	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
ष०	उदीचः	उदीचोः	उदीचाम्
स०	उदीचि	उदीचोः	उदक्षु.

सम्यच् (भली प्रकार चलनेवाला) शब्द-

इसकी उत्पत्ति सम् उपपद रहते अञ्चुधातुसे क्विन्प्रत्यय होकर क्विन्का लोप और नलोप हुआ तब-

४२१ समः समि । ६ । ३ । ९३ ॥

अप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे । सम्यङ् । सम्यञ्चौ । सम्यञ्चः । समीचः । समीचा ॥

४२१-आगे अप्रत्ययान्त अञ्चुधातु होते सम् (अच्छा) इसके स्थानमें 'समि' आदेश होताहै । आगे सुप्रत्यय लाकर सम्यङ् । सम्यञ्च्+औ=सम्यञ्चौ । सम्यञ्च्+जस्=सम्यञ्चः । सम्यञ्चम् । सम्यञ्चौ । सम्यञ्च्+शस्=समीचः । अकारलोप और पूर्व अच्को दीर्घ (सि० ४१६ । ४१७) सम्यञ्च्+टा=समीचा इत्यादि ।

सम्यच् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सम्यङ्	सम्यञ्चौ	सम्यञ्चः
सं०	हे सम्यङ्	हे सम्यञ्चौ	हे सम्यञ्चः

द्वि०	सम्यञ्चम्	सम्यञ्चौ	समीचः
तृ०	समीचा	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भिः
च०	समीचे	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भ्यः
पं०	समीचः	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भ्यः
ष०	समीचः	समीचोः	समीचाम्
स०	समीचि	समीचोः	सम्यक्षु.

सध्र्यच् (संग २ जानेवाला) शब्द–
सह+अच् ऐसी मूलकी स्थिति है–

४२२ सहस्य सध्रिः । ६ । ६ । ९५ ॥

अप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे । सध्र्यङ् ॥

४२२–आगे अप्रत्ययान्त अञ्चु धातु हो तो सहके स्थानमें ' सध्रि ' आदेश होताहै । पूर्ववत्, सध्र्यङ् इत्यादि–

सध्र्यच् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सध्र्यङ्	सध्र्यञ्चौ	सध्र्यञ्चः
सं०	हे सध्र्यङ्	हे सध्र्यञ्चौ	हे सध्र्यञ्चः
द्वि०	सध्र्यञ्चम्	सध्र्यञ्चौ	सध्रीचः
तृ०	सध्रीचा	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भिः
च०	सध्रीचे	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भ्यः
पं०	सध्रीचः	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भ्यः
ष०	सध्रीचः	सध्रीचोः	सध्रीचाम्
स०	सध्रीचि	सध्रीचोः	सध्र्यक्षु.

तिर्यच् (टेढा चलनेवाला) शब्द–
तिरस्+अच् ऐसी स्थिति हुई–

४२३ तिरसस्तिर्यलोपे । ६ । ३ । ९४ ॥

अलुप्ताऽकारेऽञ्चतावप्रत्ययान्ते परे तिरसस्तिर्यादेशः स्यात् । तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिर्यञ्चः । तिर्यञ्चम् । तिर्यञ्चौ । तिरश्चः । तिरश्चा । तिर्यग्भ्यामित्यादि ॥

४२३–अप्रत्ययान्त अलुप्तअकार अञ्चु धातु आगे होते तिरस् शब्दको ' तिरि ' आदेश होताहै । तिर्यञ्च्+सु=तिर्यङ् । तिर्यञ्च्+औ=तिर्यञ्चौ । तिर्यञ्च्+जस्=तिर्यञ्चः । तिर्यञ्च्+अम्=तिर्यञ्चम् । तिर्यञ्च्+औ=तिर्यञ्चौ । तिर्यञ्च्+शस् इसमें भके स्थानमें " अचः $\frac{६।४।१३८}{४१६}$ " इससे अकारका लोप होताहै, इसलिये आदेश नहीं, तिरश्चः । पदविभक्तिमें अकारलोप नहीं, इसलिये पूर्ववत् तिरि आदेश, तिर्यग्भ्याम् इत्यादि ।

तिर्यच् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
सं०	हे तिर्यङ्	हे तिर्यञ्चौ	हे तिर्यञ्चः
द्वि०	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्चः
तृ०	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः
च०	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
पं०	तिरश्चः	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
ष०	तिरश्चः	तिरश्चोः	तिरश्चाम्
स०	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु.

यह जो अञ्च्धात्वन्त शब्द ऊपर कहेहैं इसमें अञ्चु इसका अर्थ ' गतौ ' अर्थात् ' जाना ' ऐसा था, अञ्चुका दूसरा अर्थ पूजा ऐसा है ' अञ्चुगतिपूजनयोः ' (सि०२२७) यह दूसरा अर्थ लेनेसे उसी शब्दके रूपोंमें अन्तर पड जाताहै वह इस प्रकारसे कि, प्र+अञ्च् क्विन्नन्त लिया जाय तब–

४२४ नाञ्चेः पूजायाम् । ६ । ४ । ३० ॥

पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न स्यात् । अलुप्तनकारत्वान्न नुम् । प्राङ् । प्राञ्चौ । प्राञ्चः । नलोपाभावादकारलोपो न । प्राञ्चः । प्राञ्चा । प्राङ्भ्याम् । प्राङ्क्षु । प्राङ्षु । एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः ॥ क्रुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोः । अस्य ऋत्विगादिना नलोपाभावोऽपि निपात्यते । क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुञ्चः । क्रुङ्भ्यामित्यादि ॥ चोः कुः । पयोमुक् । पयोमुग् । पयोमुचौ । पयोमुचः ॥ व्रश्चेति षत्वम् । स्कोरिति सलोपः । जश्त्वचर्त्वे । सुवृट् । सुवृड् । सुवृश्चौ । सुवृश्चः । सुवृट्त्सु । सुवृट्सु ॥ वर्तमाने पृषन्महद्बृहज्जगच्छतृवच्च ॥ * * ॥ एते निपात्यन्ते शतृवच्चैषां कार्यं स्यात् । उगित्त्वान्नुम् । सान्त महत इति दीर्घः । मह्यते पूज्यत इति महान् । महान्तौ । महान्तः । हे महन् । महतः । महता । महद्भ्यामित्यादि ॥

४२४–पूजा अर्थमें अञ्चु धातुके उपधानकारका लोप नहीं होताहै, इस लिये लुप्तनकार हो तो "उगिदचाम्० $\frac{७।१।७०}{३६१}$ " इससे जो सर्वनामस्थान परे रहते नुमागम होताहै वह यहां नहीं होता यहां मूलका (आदिका) ही नकार है, प्राञ्च्+स् ऐसी स्थिति होते सुलोप, संयोगान्तलोप और " क्विन्प्रत्ययस्य कुः $\frac{८।२।६३}{३७७}$ " इससे नकारको ङ्, प्राङ् । औ आगे होते नकारके स्थानमें अनुस्वार,परसवर्ण होकर प्राञ्चौ । प्राञ्चः । नकारका लोप कहीं भी नहीं इससे भस्थानमें भी नहीं, इससे ' अच् ' ऐसा रूप नहीं होता इसलिये " अचः $\frac{६।४।१३८}{४१६}$ " इससे होनेवाला अकारलोप भी नहीं, और "चौ $\frac{६।३।१३९}{४१७}$ " इससे जो पूर्व अणको दीर्घकी प्राप्ति होनेवाली वह भी न हुई, प्राञ्चः । प्राञ्चा । पदान्तमें "क्विन्प्रत्ययस्य कुः " इससे प्राङ्भ्याम् इत्यादि ।

पूजन अर्थवाले प्राच्शब्द के रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
सं०	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	प्राञ्चः
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
तृ०	प्राञ्चा	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भिः
च०	प्राञ्चे	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः
पं०	प्राञ्चः	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः

प०	प्राञ्चः	प्राञ्चोः	प्राञ्चाम्
स०	प्राञ्चि	प्राञ्चोः	प्राङ्ख्षु,प्राङ्क्षु–ङ्षु*

(एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः) इसी प्रकार पूजाके अर्थमें 'प्रत्यञ्च्' इत्यादि शब्दोंके रूप जानना चाहिये, प्रत्यञ्चा। प्रत्यङ्भ्याम्। अमुमुयञ्चा। अमुमुयङ्भ्याम्। अदमुयञ्चा। अदमुयङ्भ्याम्। अदद्र्यञ्चा। अदद्र्यङ्भ्याम्। विष्वद्र्यञ्चा। विष्वद्र्यङ्भ्याम्। देवद्र्यञ्चा। देवद्र ङ्भ्याम्। उदञ्चा। उदङ्भ्याम्। सम्यञ्चा। सम्यङ्भ्याम्। ध्र्यञ्चा।सध्र्यङ्भ्याम्। तिर्यञ्चा। तिर्यङ्भ्याम् इत्यादि ॥

(क्रुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोः०) टेढा होना वा अल्प होना,इस अर्थमें क्रुञ्च धातु है,उससे "ऋत्विग्दधृक्० ३।२।५९/३७३" इससे क्रुञ्च् (टेढा चलनेवाला अथवा अल्प होनेवाला) ऐसा क्विन्नन्त शब्द निपातित है, सामान्यतः "अनिदितां हल उपधायाः० ६।४।२४/४१५" इससे अनिदित् हलन्त शब्दके उपधा नकारका लोप होताहै, परन्तु यहां सूत्रमें ही 'क्रुञ्चाञ्च' ऐसा नकारयुक्त उच्चारण कियाहै, इस कारण उस नकारका भी निपातन हुआ, अर्थात् उसका लोप नहीं होता ऐसा सिद्ध हुआ, "क्विन्प्रत्ययस्य कुः" क्रुङ्। आगे क्रुञ्चौ। क्रुञ्चः। क्रुङ्भ्याम्–इत्यादि।

क्रुञ्च् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	क्रुङ्	क्रुञ्चौ	क्रुञ्चः
सं०	हे क्रुङ्	हे क्रुञ्चौ	हे क्रुञ्चः
द्वि०	क्रुञ्चम्	क्रुञ्चौ	क्रुञ्चः
तृ०	क्रुञ्चा	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भिः
च०	क्रुञ्चे	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भ्यः
पं०	क्रुञ्चः	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भ्यः
ष०	क्रुञ्चः	क्रुञ्चोः	क्रुञ्चाम्
स०	क्रुञ्चि	क्रुञ्चोः	क्रुङ्ख्षु, क्रुङ्क्षु-ङ्षु.

पयोमुच् (मेघ) शब्द–

'मुच्लृ मोचने' इससे क्विप्, "चोः कुः ८।२।३०/३७९" इससे कुत्व, पयोमुक्, पयोमुग्। पयोमुचौ। पयोमुचः–इत्यादि।

पयोमुच् शब्दके रूप--

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	पयोमुक्-ग्	पयोमुचौ	पयोमुचः
सं०	हे पयोमुक्–ग्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः
द्वि०	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुचः
तृ०	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः
च०	पयोमुचे	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः
पं०	पयोमुचः	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः
ष०	पयोमुचः	पयोमुचोः	पयोमुचाम्
स०	पयोमुचि	पयोमुचोः	पयोमुक्षु. * ॥

सुव्रश्च् (भलीप्रकारसे काटनेवाला) शब्द–

'ओ व्रश्च् (व्रश्च्) छेदने' इसके आगे "क्विप् च ३।२।७६/३९८३" इससे क्विप् "ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चति० ६।१।१६/२४१२" इससे सम्प्रसारण, सुवृश्च्+सु ऐसी स्थिति होते सुलोप, और पदान्तमें संयोग है, इस कारण "स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२।२९/३८०" इससे सलोप, और "व्रश्चभ्रस्ज० ८।२।३६/२९४" इससे अन्त चकारके स्थानमें षत्व, "झलाञ्जशोऽन्ते" इससे जश्त्व और "वावसाने" इससे विकल्प करके चर्त्व, सुवृट्, सुवृड्। सुवृश्चौ। सुवृश्चः। सुवृट्त्सु, सुवृट्सु * ॥

सुव्रश्च् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सुवृट्–ड्	सुवृश्चौ	सुवृश्चः
सं०	हे सुवृट्-ड्	हे सुवृश्चौ	हे सुवृश्चः
द्वि०	सुवृश्चम्	सुवृश्चौ	सुवृश्चः
तृ०	सुवृश्चा	सुवृड्भ्याम्	सुवृड्भिः
च०	सुवृश्चे	सुवृड्भ्याम्	सुवृड्भ्यः
पं०	सुवृश्चः	सुवृड्भ्याम्	सुवृड्भ्यः
ष०	सुवृश्चः	सुवृश्चोः	सुवृश्चाम्
स०	सुवृश्चि	सुवृश्चोः	सुवृट्त्सु-ट्सु.

महत् (बडा) शब्द–

'मह पूजायाम्' इस धातुसे बना है, (वर्तमान इति) *(उ० २४१) पृषत् (जलबिन्दु), महत् (बडा), बृहत् (बडा), जगत् (संसार), यह शब्द निपातन करके वर्तमान अर्थमें उत्पन्न होतेहैं और शतृ (अत्) प्रत्ययान्त ३।२।१२४/३१०० शब्दोंके प्रमाणसे इनके कार्य होतेहैं। यह कार्य इस प्रकारसे हैं कि शतृ (अत्) इसमें शकार, ऋकार इत् हैं, फिर इसमें 'ऋ' यह उक् प्रत्याहारका वर्ण है, इस कारण "उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७।१।७०/३६१" इससे सर्वनामस्थान आगे रहते नुम् (न्) का आगम हुआ, महन्त्+स् ऐसी स्थिति हुई, "सान्त महतः संयोगस्य ६।४।१०/३१७" इससे सम्बुद्धिवर्ज सर्वनामस्थान आगे होते नकारउपधावाले अकारको दीर्घ हुआ,तब महान्त्+स् ऐसी स्थिति हुई,सुलोप,संयोगान्तलोप हुए 'मह्यते पूज्यते'अर्थात् सम्मानित कियाजाताहै सो, महान्। महत्+औ=महान्तौ। महत्+जस्=महान्तः। सम्बुद्धिमें दीर्घ नहीं, इस कारण हे महन्। असर्वनामस्थानमें नुम्की प्राप्ति नहीं और उपधादीर्घ भी नहीं, महत्+शस्=महतः। महत्+टा=महता। महद्भ्याम्–इत्यादि।

महत् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः
सं०	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्तः
द्वि०	महान्तम्	महान्तौ	महतः
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः

---

* यहां 'चयो द्वितीयाश्शरि (वा)' से द्वितीय अक्षर ख भया तो प्राङ्ख्षु। इसके विकल्पपक्षमें प्राङ्क्षु। कुक्विकल्पपक्षमें प्राङ्षु॥

अच् (स्वर) यह शब्द यद्यपि चान्त है, तो भी विभक्तिमें स्पष्ट प्रतिपत्तिके निमित्त "चोः कुः" यह सूत्र नहीं लगता, अच्। अचौ। अचः। अचम्। अचा। अज्भ्याम्। अज्भिः। अच्सु इत्यादि, वैसेही उससे 'अच्संधि'इत्यादि शब्द सिद्ध होतेहैं॥

* "संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३/५४" इसका "स्कोः संयोगाद्योः० ८।२।२९/३८०" यह अपवाद है, इस कारण संयोगादिलोप ही होताहै॥

च०	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
पं०	महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
ष०	महतः	महतोः	महताम्
स०	महति	महतोः	महत्सु.

धीमत् (बुद्धिमान्) शब्द–

मतुप् (मत्) प्रत्ययान्त " तदस्या० ५।२।९४/१८९४ "

४२९अत्वसन्तस्य चाऽधातोः६।४।१४॥

अत्वन्तस्योपधाया दीर्घः स्याद्धातुभिन्नासन्तस्य चासंबुद्धौ सौ परे । परं नित्यं च नुमं बाधित्वा वचनसामर्थ्यादादौ दीर्घः । ततो नुम् । धीमान् । धीमन्तौ । धीमन्तः । हे धीमन् । शसादौ महद्वत् । धातोरप्यत्वन्तस्य दीर्घः । गोमन्तमिच्छति गोमानिवाचरतीति वा क्यजन्तादाचारक्विबन्ताद्वा कर्तरि क्विप् । उगिदचामिति सूत्रेऽञ्ग्रहणं नियमार्थम् । धातोश्चेदुगित्कार्यं तर्ह्यञ्चतेरेवेति तेन स्रत् ध्वत् इत्यादौ न । अधातोरिति तु अधातुभूतपूर्वस्यापि नुमर्थम् । गोमान् । गोमन्तौ । गोमन्तः इत्यादि ॥ भातेर्डवतुः । भवान् । भवन्तौ । भवन्तः । शत्रन्तस्य त्वत्वन्तत्वाभावान्न दीर्घः । भवतीति भवन् ॥

४२९–असम्बुद्धि सु आगे रहते अतु (मतुप, वतुप्) प्रत्ययान्त शब्द और धातुभिन्न अस्प्रत्ययान्त शब्द, इनकी उपधाको दीर्घ होताहै, (यहां " ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६।३।१११/१७४ ", "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८/२५० ", " सौ च ६।४।१३/३५७ ", "नोपधायाः ६।४।७/३७० " इन सूत्रोंसे दीर्घ, असम्बुद्धि, सु, उपधा, इनकी अनुवृत्ति जाननी) । (परं नित्यमिति) मतुप् प्रत्ययके कारण उगित् है, इस कारण "उगिदचां० ७।१।७०/३६१ " इससे नुम्की प्राप्ति, वह इस दीर्घसे पर और नित्य भी है, तथापि यह प्रस्तुत सूत्र जानबूझकर बनायागया है, इस कारण अपवाद है इससे इसका कार्य दीर्घ पहले होगा और फिर नुम्, धीमाम्+स्=धीमान् । आगे दीर्घकी प्राप्ति नहीं, धीमत्+औ=धीमन्तौ । धीमत्+जस्=धीमन्तः । सम्बोधनमें हे धीमन्।असर्वनामस्थानमें दीर्घकी प्राप्ति नहीं,अर्थात् शसादि प्रत्ययोंमें महत् शब्दके समान रूप होंगे ।

धीमत् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः
सं०	हे धीमन्	हे धीमन्तौ	हे धीमन्तः
द्वि०	धीमन्तम्	धीमन्तौ	धीमतः
तृ०	धीमता	धीमद्भ्याम्	धीमद्भिः
च०	धीमते	धीमद्भ्याम्	धीमद्भ्यः
पं०	धीमतः	धीमद्भ्याम्	धीमद्भ्यः
ष०	धीमतः	धीमतोः	धीमताम्
स०	धीमति	धीमतोः	धीमत्सु.

इसी प्रकार गोमत् (गायवाला) इस शब्दके रूप जानो, सूत्रमें " अत्वसन्तस्य चाधातोः " ऐसा पाठ है उसमें 'अधातोः' यह विशेषण 'असन्तस्य' इतनेहीका है. 'अत्वन्त' इसको वह नहीं लगता कारण कि, 'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा ' (विधि और निषेध अव्यवहितको होतेहैं) ऐसा न्याय है, इससे (धातोः अपि अत्वन्तस्य दीर्घः) अतु (मतुप्, वतुप्) प्रत्ययान्त धातु शब्दको भी असम्बुद्धि सु प्रत्ययमें दीर्घ होताहै, (गोमन्तमिति) गोमत् अर्थात् गायवाला उसकी जो इच्छा करे इस अर्थमें 'क्यच्' प्रत्यय किया, अथवा गायवालेके समान वर्तताहै, ऐसे अर्थमें आचार क्यप् प्रत्यय किया और इन दोनोंके आगे फिर कर्तामें क्विप् किया (सि० २०० कुमारी शब्दकी व्युत्पत्ति देखो), तो गोमत् ऐसा जो धातुप्रातिपदिक सिद्ध होताहै, उसको भी असम्बुद्धि सु प्रत्ययमें दीर्घ होताहै ।

शङ्का–(उगिदचामिति०) " उगिदचाम्० ७।१।७०/३६१ " इस सूत्रमें 'अधातोः' ऐसा कहकर फिर ' अच् ' ऐसा अञ्चु धातु लियाहै, वह केवल नियमार्थ है, अर्थात् एक नकारलोपी 'अञ्चु' धातुमात्रको ही उगित्कार्य अर्थात् नुमागम हो, इतर धातुओंको नहीं हो, इसीसे स्रन्सु, ध्वन्सु, इन धातुओंसे बनेहुए क्विबन्त स्रस् ध्वस् शब्दोंको उगित्कार्य नहीं होता, इससे स्रत्, ध्वत्–इत्यादि रूप होतेहैं (सि०४३५) ।

गोमत् शब्द मतुप्प्रत्ययान्तके कारण यद्यपि उगिदन्त है, तो भी धातु होनेके कारण इसको उगित्कार्य नहीं होना चाहिये ? समाधान–(अधातोः इति०) "उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७।१।७०/३६१ " इसमें 'अधातोः' ऐसा जो कहाहै उसका अर्थ यह है कि, पूर्वका अधातु हो और फिर चाहे उसको धातुत्व भी आजाय,तो भी उसको अधातुके ही समान सर्वनामस्थान आगे रहते नुमागम होताहै, गोमान् । गोमन्तौ । गोमन्तः–इत्यादि धीमत् शब्दके समान * ॥

भवत् (आप–श्रेष्ठजन) शब्द–

"भातेर्डवतुः" (उणा० १।६३) इससे 'भा दीप्तौ' इस धातुके आगे कर्तामें 'डवतु' (अवत्) प्रत्यय होताहै यह प्रत्यय स्वादि नहीं है, इस कारण यद्यपि अङ्गको भसंज्ञा नहीं, तो भी डित्वकी सामर्थ्यसे अभसंज्ञक भी टिका लोप (२।४।८९/२१८८) होकर 'भवत्' यह प्रातिपदिक हुआ 'भवतु' ऐसा जो सर्वादिगणमें उदित् शब्द दियाहुआ है वही यह है दीर्घ, उगित्कार्य भवान् । भवन्तौ । भवन्तः ।

भवत् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
सं०	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः
द्वि०	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
तृ०	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
च०	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्य.
पं०	भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
ष०	भवतः	भवतोः	भवताम्
स०	भवति	भवतोः	भवत्सु.

* इस विषयमें " सांप्रतिकाभावे भूतपूर्वगतिः " ऐसी परिभाषा है ॥

(शत्रन्तस्य त्विति) 'भू सत्तायाम्' इस धातुसे "वर्तमाने लट् ३।२।१२३/२१५१" और "लटः शतृशानचौ० ३।२।१२४/३१००" इनसे शतृ (अत्) प्रत्ययान्त जो भवत् (रहनेवाला, होता हुआ) ऐसा शब्द होताहै, वह कुछ अतु (वतुप् मतुप्) प्रत्ययान्त नहीं, इस कारण "अत्वसन्तस्य०" इस प्रस्तुत सूत्रकी प्राप्ति नहीं अर्थात् दीर्घ नहीं, (भवतीति भवन्) यह शतृप्रत्ययान्त है, दीर्घ न होनेके कारण सु विभक्तिमें ही इनके रूपोंमें भेद जानना, उगित्वके कारण सर्वनामस्थान परे रहते नुमागम है ही, इस कारण अगले सब रूप पूर्ववत्, भवन्तौ । भवन्तः । भवता । भवद्भ्याम् इत्यादि ॥

(शत्रन्त शब्दोंके नुमागमके सम्बन्धके अपवाद-) ददत् (देनेवाला) शब्द *-

४२६ उभे अभ्यस्तम् । ६ । १ । ५ ॥

षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः ॥

४२६-छठे अध्यायमें जो द्वित्वप्रकरण है उस करके जो धातुके दो अवयव बनेहैं उन दोनोंकी मिलकर अभ्यस्तसंज्ञा हैं। इससे 'ददा'की अभ्यस्तसंज्ञा हुई-

४२७ नाभ्यस्ताच्छतुः ।७।१।७८ ॥

अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम् न स्यात् । ददत् । ददद् । ददतौ । ददतः ॥

४२७-अभ्यस्तसे परे शतृ प्रत्ययको नुम् न हो । ददत्, ददद् । ददत्+औ=ददतौ । ददत्+जस्=ददतः ।

ददत् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	ददत्-द्	ददतौ	ददतः
सं०	हे ददत्-द्	हे ददतौ	हे ददतः
द्वि०	ददतम्	ददतौ	ददतः
तृ०	ददता	ददद्भ्याम्	ददद्भिः
च०	ददते	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः
पं०	ददतः	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः
ष०	ददतः	ददतोः	ददताम्
स०	ददति	ददतोः	ददत्सु.

और भी अभ्यस्तसंज्ञक शब्द-

४२८ जक्षित्यादयः षट् । ६ । १ । ६ ॥

षड् धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एतेऽभ्यस्तसंज्ञाः स्युः । जक्षत् । जक्षद् । जक्षतौ । जक्षतः । एवं जाग्रत् । दरिद्रत् । शासत् । चकासत् ॥ दीधीवेव्योर्ङित्वेपि छान्दसत्वाद्व्यत्ययेन परस्मैपदम् । दीध्यत् । वेव्यत् ॥ गुप् । गुब् । गुपौ । गुपः । गुब्भ्यामित्यादि ॥

४२८-जक्ष धातु और दूसरे छः धातु इनकी अभ्यस्त संज्ञा हो । 'जक्ष भक्षहसनयोः' १, 'जागृ निद्राक्षये' २, 'दरिद्रा दुर्गतौ' ३, 'चकासृ दीप्तौ' ४, 'शासु अनुशिष्टौ' ५, 'दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः' ६, 'वेवीङ् वेतिना तुल्ये' (गतार्थे) यह धातु द्वितीय अर्थात् अदादिगणके हैं, इनसे होनेवाले शत्रन्त शब्दोंको नुम् नहीं होता, जक्षत्+सु=जक्षत्, जक्षद् । जक्षत्+औ=जक्षतौ । जक्षत्+जस्=जक्षतः इत्यादि ददत् शब्दके समान, इसी प्रकार जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चकासत्, शब्द होंगे ।

संस्कृत भाषाके धातुओंके आगे जो प्रत्यय होतेहैं, उनमें आत्मनेपदी और परस्मैपदी यह दो भेद हैं (१।४।९९-१००/२१५५-५६) धातुपाठमें जिस धातुको अनुदात्त इत् अथवा ङ् यह इत् लगा होताहै उसके परे आत्मनेपदके प्रत्यय लगतीहैं (अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२/२१५७) जिनको स्वरित इत् अथवा ञ् यह इत् लगा है उनका क्रियाफल कर्तृगामी हो, तो उसके परे भी आत्मनेपदी प्रत्यय लगतीहैं "स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये० १।३।७२/२१५८" इसको छोडकर आत्मनेपदनिमित्तक अन्य कुछ स्थल हैं, परन्तु इतर सब धातुओंके आगे कर्तृवाच्यप्रसंगमें परस्मैपदी प्रत्यय लगती हैं, "शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८/२१५९" तो इस नियमसे दीधीङ् वेवीङ् यह धातु ङित्वके कारण आत्मनेपदी हैं, इससे शतृ (अत्) यह परस्मैपदी प्रत्यय उनके परे नहीं लगानी चाहिये, परन्तु-

(दीधीवेव्योः इत्यादि) यह दीधी वेवी, धातु ङित् हैं, तो भी छान्दस अर्थात् वेदमेंके हैं इस कारण "व्यत्ययो बहुलम् ३।१।८५/३४३३" इससे नियम टूटकर उनके आगे परस्मैपदी प्रत्यय लगती हैं, दीध्यत् । वेव्यत् । इनके रूप 'ददत्' शब्दकी समान जानना, नुम् नहीं होता ॥

गुप् (रक्षाकरनेवाला) शब्द क्विबन्त-

गुप् ,गुब्।गुपौ।गुपः। गुब्भ्याम्। गुप्सु-इत्यादि सरल रूप है॥

शान्त तादृश् (उसकी समान) शब्द-

४२९ त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च । ३ । २ । ६० ॥

त्यदादिषूपपदेष्वज्ञानार्थाद्दृशेर्धातोः कञ् स्यात् क्विन् ॥

---

* यहां कुछ थोडासा विशेष कहना आवश्यक है, धातुपाठमें जो गण पाणिनिमुनिने लिखेहैं वह क्रियापदमें दिखावेंगे, वे वहीं समझमें आवेंगे पर यहां इतना ही ध्यानमें रखना चाहिये कि, 'ददत्' यह शत्रन्त शब्द, 'डुदाञ् दाने' इस तीसरे जुहोत्यादि गणके धातुसे निकला हुआ है, इस गणके धातुओंको "जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २।४।७५/२४८९" इससे बहुतसे प्रसंगोंमें 'श्लु' यह होताहै, इस कारण कार्यविशेष होताहै और इसी हेतुसे "श्लौ ६।१।१०/२४९०" इससे धातुको द्वित्व होताहै और भी कुछ दूसरे कार्य होतेहैं, वे आगे भली भांति समझमें आवेंगे, यह द्वित्वप्रकरण छठे अध्यायमें है इतना कहना बस है ॥

१ आठवें अध्यायमें भी दूसरे किसी सम्बन्धके (अनचि च) द्वित्वप्रकरण हैं उनका इसमें संग्रह न होने पावे इससे वृत्तिमें 'षाष्ठद्वित्वप्रकरणे' ऐसा पढा है और सूत्रमें 'उभे' के स्थानमें 'द्वे' इसकी अनुवृत्ति ही करनी योग्य थी सो न करके गौरवनिर्देशसे समुदित अर्थ आनाहै उसमें 'नेनिजति' उसमें "अभ्यस्तानामादिः" इससे समुदायको आद्युदात्तत्व होताहै प्रत्येकको नहीं ॥

४२९–त्यदादि गणमेंके (त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि,) उपपद हों और आगे ज्ञानार्थवर्ज दृश् धातु हो, तो उसके आगे, कर्ता अर्थमें, कञ् प्रत्यय हो, सूत्रमें चकार है इसलिये पिछली अनुवृत्तिसे क्विन् होताहै यहां क्विन्प्रत्ययान्त ही शब्द लेना चाहिये, कञ्प्रत्ययान्त शब्द अजन्त (१०१७) में हैं, इस कारण उनका यहां प्रयोजन नहीं। तद्+दृश् ऐसी स्थिति हुई–

४३० आ सर्वनाम्नः । ६ । ३ । ९१ ॥

सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्याद् दृग्दृशवतुषु । कुत्वस्यासिद्धत्वाद्व्रश्चेति षः । तस्य जश्त्वेन डस्तस्य कुत्वेन गः, तस्य चर्त्वेन पक्षे कः । तादृक् । तादृग् । तादृशौ । तादृशः । षत्वापवादत्वात्कुत्वेन खकार इति कैयटः । हरदत्तादिमते तु चर्त्वाभावपक्षे ख एव श्रूयते न तु गः । जश्त्वं प्रति कुत्वस्याऽसिद्धत्वाद्दिगादिभ्यो यदिति निर्देशान्नासिद्धत्वमिति वा बोध्यम् । व्रश्चेति षत्वम् । जश्त्वचर्त्वे । विट् । विड् । विशौ । विशः । विशम् ॥

४३०–दृश्, दृश अथवा वतु प्रत्यय आगे रहते सर्वनामको आकार अन्तादेश होताहै, इससे 'तादृश्' यह प्रातिपदिक है यहां विभक्तिमें "क्विन्प्रत्ययस्य कुः $\frac{८।२।६२}{३७७}$" इसकी प्राप्ति है सही, तो भी उसके असिद्धत्वके कारण "व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः $\frac{८।२।३६}{२९४}$" इससे शकारके स्थानमें षत्व हुआ, तब 'तादृष्' ऐसी स्थिति हुई, (तस्येति) "झलां जशोऽन्ते $\frac{८।२।३९}{८४}$" इससे षकारके स्थानमें डकार, फिर "क्विन्प्रत्ययस्य कुः" इससे डकारको गकार और "वावसाने $\frac{८।४।५६}{२०६}$" इससे विकल्प होकर ककार, तादृक्, तादृग् । आगे पदान्तत्वके अभावसे तादृशौ । तादृशः ।

तादृश् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	तादृक्–ग्	तादृशौ	तादृशः
सं०	हे तादृक्–ग्	हे तादृशौ	हे तादृशः
द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृशः
तृ०	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः
च०	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
पं०	तादृशः	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
ष०	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
स०	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु.

(षत्वापवादत्वादिति) कैयट हरदत्तादिकोंका ऐसा मत है कि, "व्रश्चभ्रस्ज० $\frac{८।२।३६}{२९४}$" इस सूत्रका "क्विन्प्रत्ययस्य कुः $\frac{८।२।६२}{३७७}$" यह अपवाद है, इस कारण असिद्ध नहीं, अर्थात् शकारके स्थानमें कुत्व होताहै, 'श' यह अघोष महाप्राण है, तो उसके स्थानमें कवर्गसम्बन्धी अघोष महाप्राण करनेसे खकार आताहै, वह वैसा ही रहताहै, अथवा चर्त्व $\frac{८।४।५६}{२०६}$ पक्षमें ककार होताहै, परन्तु उस खकारके स्थानमें गकार नहीं होता, कारण कि, जश्त्व कर्तव्य रहते भी ($\frac{८।२।३९}{८४}$) वह कुत्व ($\frac{८।२।६३}{३७७}$) असिद्ध है, (दिगादिभ्यो यत् इतीति) परन्तु "दिगादिभ्यो यत् $\frac{४।३।५४}{१४२६}$" इसमें खकारके स्थानमें गकार हुआ है, इस निर्देशसे जश्त्व कर्तव्य रहते खकार असिद्ध नहीं, ऐसा निर्णय करनेसे कोई हानि नहीं होगी ।

विश् (वैश्य) शब्द–

(व्रश्चेति) "व्रश्च०" इससे षत्व और जश्त्व, चर्त्व, क्विन्नन्तत्वके अभावके कारण कुत्व नहीं, विट्, विड् । विशौ । विशः । विशम्–इत्यादि ।

विश् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	ब०
प्र०	विट्, विड्	विशौ	विशः
सं०	हे विट्, हे विड्	हे विशौ	हे विशः
द्वि०	विशम्	विशौ	विशः
तृ०	विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः
च०	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
पं०	विशः	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
ष०	विशः	विशोः	विशाम्
स०	विशि	विशोः	विट्त्सु-ट्सु.

नश् (नष्ट होनेवाला) शब्द क्विबन्त–

सुलोप, इसको षत्व होनेके पीछे जश्त्व, चर्त्व, परन्तु एक और विकल्प–

४३१ नशेर्वा । ८ । २ । ६३ ॥

नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा स्यात्पदान्ते । नक् । नग् । नट् । नड् । नशौ । नशः । नग्भ्याम् । नड्भ्यामित्यादि ॥

४३१–'नश्' धातुको पदान्तमें विकल्प करके कवर्ग अन्तादेश हो, नख् ऐसी स्थिति होनेपर जश्त्व, चर्त्व, नक्–ग्। नट्–ड्। नग्भ्याम् । नड्भ्याम् ।

नश् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	नक्–ग्–ट्–ड्	नशौ	नशः
सं०	हे नक्–ग्–ट्–ड्	हे नशौ	हे नशः
द्वि०	नशम्	नशौ	नशः
तृ०	नशा	नग्भ्याम्, नड्भ्याम्	नग्भिः, नड्भिः
च०	नशे	नग्भ्याम्, नड्भ्याम्	नग्भ्यः, नड्भ्यः
पं०	नशः	नग्भ्याम्, नड्भ्याम्	नग्भ्यः, नड्भ्यः
ष०	नशः	नशोः	नशाम्
स०	नशि	नशोः	नक्षु–ट्सु–ट्त्सु.

घृतस्पृश् (घृतका स्पर्श करनेवाला) शब्द–

४३२ स्पृशोऽनुदके क्विन् । ३ । २ । ५८ ॥

अनुदके सुप्युपपदे स्पृशः क्विन् स्यात् । घृतस्पृक् । घृतस्पृग् । घृतस्पृशौ । घृतस्पृशः । क्विन्प्रत्ययो यस्मादिति बहुव्रीह्याश्रयणात् क्विप्यपि

कुत्वम् । स्पृक् । षडगकाः प्राग्वत् ॥ ञिधृषा प्रागल्भ्ये । अस्मादृत्विगादिना क्विन् द्वित्वमन्तोदात्तत्वं च निपात्यते । कुत्वात्पूर्वं जश्त्वेन डः,गः, कः । धृष्णोतीति दधृक् । दधृग् । दधृषौ । दधृषः । दधृग्भ्यामित्यादि ॥ रत्नानि मुष्णातीति रत्नमुट् । रत्नमुड् । रत्नमुषौ । रत्नमुषः । षड्भ्यो लुक् । षट् । षड् । षड्भिः । षड्भ्यः २ । षट्चतुर्भ्यश्चेति नुट् । अनामिति पर्युदासान्न ष्टुत्वनिषेधः । यरोऽनुनासिक इति विकल्पं बाधित्वा प्रत्यये नित्यमिति वचनान्नित्यमनुनासिकः । षण्णाम् । षट्त्सु । षट्सु । तदन्तविधिः । परमषट् । परमषण्णाम् । गौणत्वे तु प्रियषषः । प्रियषषाम् । रुत्वं प्रति षत्वस्यासिद्धत्वात्ससजुषोरुरिति रुत्वम् ॥

४३२-उदकशब्दवर्ज सुबन्त उपपद होते 'स्पृश्' धातुसे कर्त्रर्थमें क्विन् प्रत्यय हो । षत्व, डत्व, कुत्व, चर्त्व, घृतस्पृक्, घृतस्पृग् । घृतस्पृशौ । घृतस्पृशः-इत्यादि तादृश् शब्दके समान ।

(क्विन्प्रत्ययः यस्मादिति) जिस धातुके आगे चाहे जब क्विन् प्रत्यय होता हो, वह क्विन् प्रत्यय जिससे ऐसा बहुव्रीहि समासके आश्रयसे "क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२/३७७" इसमें अर्थ है इसलिये स्पृश् (स्पर्श करनेवाला) इस क्विन्नन्त शब्दको भी कुत्व, स्पृक्, षकार, डकार, गकार, ककार, क्रमसे पूर्ववत् (४३०) स्पृक्, स्पृग् । स्पृशौ । स्पृशः इत्यादि तादृश् शब्दके समान ।

षान्त दधृष् (ढीठ मनुष्य) शब्द-

'ञिधृषा (धृष्) प्रागल्भ्ये' इस धातुसे "ऋत्विग्दधृक्० ३।२।५९/३७३" इससे क्विन, 'दधृष्' इसमें 'धृष्' इसको जो द्वित्व है वह निपातनसे (सूत्रमें दियाहै इतने ही परसे) लेना चाहिये, अन्तोदात्तत्व भी वैसे ही निपातन करके, वेदमें (नेत्वा धृष्णुह- रसाजहंप्राणादधृषिंधन्यन्धंयखयति । मं० १० सू० १६ ऋ०७) इत्यादि स्थलोंमें 'दधृष्' शब्द अन्तोदात्त है, "ञ्नित्यादिर्नित्यम् ६।१।१९७/३६८६" इससे नित्वके कारण आद्युदात्तत्व होना चाहियेथा वैसा नहीं होता (कुत्वात्पूर्वं जश्त्वेन डः, गः, कः,) कुत्वसे पहले जश्त्व करके डकार, फिर गकार, ककार, 'धृष्णोति (ढीठपन करताहै सो) इति' दधृक्, दधृग् । दधृषौ । दधृषः । दधृग्भ्याम्-इत्यादि ।

दधृष् शब्दके रूप-

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	दधृक्-ग्	दधृषौ	दधृषः
सं०	हे दधृक्-ग्	हे दधृषौ	हे दधृषः
द्वि०	दधृषम्	दधृषौ	दधृषः
तृ०	दधृषा	दधृग्भ्याम्	दधृग्भिः
च०	दधृषे	दधृग्भ्याम्	दधृग्भ्यः
पं०	दधृषः	दधृग्भ्याम्	दधृग्भ्यः
ष०	दधृषः	दधृषोः	दधृषाम्
स०	दधृषि	दधृषोः	दधृक्षु.

रत्नमुष् (रत्न चुराताहै सो) शब्द-

यह शब्द क्विबन्त है इस कारण कुत्व नहीं, जश्त्व, चर्त्व, 'रत्नानि मुष्णाति इति' रत्नमुट्, रत्नमुड् । रत्नमुषौ । रत्नमुषः-इत्यादि सरल रूप हैं ।

षष् (छह) शब्द संख्यावाचक-

"ष्णान्ता षट् १।१।२४/३६९" इससे षट् संज्ञा, बहुत अर्थ होनेसे बहुवचन, "षड्भ्यो लुक् ७।१।२२/२६" इससे जस्, शस्, इनका लोप, जश्त्व, चर्त्व, षट्, षड् । षड्भिः । षड्भ्यः । आम्प्रत्यय आगे रहते "षट्चतुर्भ्यश्च ७।१।५५/३३८" इससे नुट्, (अनामिति) यहां 'षड्+नाम्' ऐसी स्थिति रहते "न पदान्ताट्टोः० ८।४।४२/११४" इससे यद्यपि ष्टुत्वनिषेध है, तो भी वहीं 'अनाम्' ऐसा पर्युदास (प्रत्ययका निषेध) आगे होनेसे ष्टुत्व होताही है, (यरोनुनासिके इति) षड्+नाम् ऐसी स्थिति होते "यरोऽनुनासिके० ८।४।४५/११६" इससे डकारके स्थानमें विकल्प करके अनुनासिक 'ण्' प्राप्त है, परन्तु सूत्रपरके इस वार्तिक (प्रत्यये भाषायां नित्यम्) के नित्य शब्दसे उसका बाध होकर नित्य ही अनुनासिक होताहै विकल्प नहीं, षण्णाम् । षट्त्सु, षट्सु ।

प्र० सं० द्वि-षट्-ड् । तृ० षड्भिः । च० पं० षड्भ्यः । ष० षण्णाम् । षट्त्सु-ट्सु ।

(तदन्तविधिः) 'परमषष्' ऐसा कर्मधारयसमास लिया जाय, तो अंगाधिकारके कारण तदन्तत्वके कारण तद्वत्, परमषट् । परमषण्णाम्-इत्यादि (३४०) देखो । (गौणत्वे तु) बहुव्रीहिसमास हो, तो शब्दको गौणत्व है, इसलिये वहां "षड्भ्यो लुक्" और "षट्चतुर्भ्यश्च" यह दोनों सूत्र नहीं लगते (सि० ३४०) अर्थात् जस् शस्में लुक्, और नुट् यह दोनों नहीं, इस विषयमें 'गौणत्वे तु न लुङ्नुटौ' ऐसा वचन है । प्रियषषः । प्रियषषाम् ।

प्रियषष् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	प्रियषट्-ड्	प्रियषषौ	प्रियषषः
सं०	हे प्रियषट्-ड्	हे प्रियषषौ	हे प्रियषषः
द्वि०	प्रियषषम्	प्रियषषौ	प्रियषषः
तृ०	प्रियषषा	प्रियषड्भ्याम्	प्रियषड्भिः
च०	प्रियषषे	प्रियषड्भ्याम्	प्रियषड्भ्यः
पं०	प्रियषषः	प्रियषड्भ्याम्	प्रियषड्भ्यः
ष०	प्रियषषः	प्रियषषोः	प्रियषषाम्
स०	प्रियषषि	प्रियषषोः	प्रियषट्त्सु-ट्सु.

पिपठिष् (पठनकी इच्छावाला) शब्द-

'पठ व्यक्तायां वाचि' (२२९९) इस धातुके आगे इच्छार्थमें सन् (स) प्रत्यय होता है और क्रियापदके सम्बन्धसे इडागम, द्वित्व, षत्व (८।३।५९/२१२) यह कार्य होकर 'पिपठिष' ऐसा धातु बनताहै, वह सन्नन्तप्रकरण (२६०८- २६२८) में भली भांति समझमें आवेगा, उसके आगे क्विप् होकर अल्लोप (२७३) हुआ, तब 'पिपठिष्' ऐसा प्रातिपदिक बना, आगे विभक्तिकार्य, पिपठिष्+स्, ऐसी स्थिति होकर सुलोप, (ससजुषोरुः) इसमेंका षकार "सस-

जुषो रुः ८।२।६६/१६२" इसकी दृष्टिसे असिद्ध है, वहां सकारही दीखताहै इस कारण इसी सूत्रसे रुत्व, 'पिपठिर्' ऐसी स्थिति हुई, परन्तु धातुत्वके कारण–

४३३ र्वोरुपधाया दीर्घ इकः।८।२।७६॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्यात्पदान्ते । पिपठीः । पिपठिषौ । पिपठिषः । पिपठीर्भ्याम् । वा शरीति वा विसर्जनीयः ॥

४३३–रेफान्त और वान्त धातुके उपधा इक्‌को पदान्तमें दीर्घ होताहै । 'पिपठीर्' ऐसी स्थिति हुई, "खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५/७६" इससे विसर्ग, पिपठीः । 'औ' प्रत्ययमें पदान्तत्व न होनेसे रुत्व, दीर्घ नहीं, पिपठिषौ । पिपठिषः । भ्याम्‌में पदान्तत्वके कारण रुत्व, दीर्घ, पिपठीर्भ्याम् । पिपठिष्+सु, ऐसी स्थिति रहते रुत्व, दीर्घ और अगला सकार शर् है इसलिये 'खरवसानयोः०' इससे विसर्ग, उसको "वा शरि ८।३।३६/१५१" इससे विसर्ग ही हुआ, विकल्प पक्षमें "विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४/१३८" इससे सकार, पिपठीः+सु, पिपठीस्+सु ऐसी स्थिति हुई–

४३४ नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि । ८ । ३ । ५८ ॥

एतैः प्रत्येकं व्यवधानेपि इण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् । ष्टुत्वेन पूर्वस्य षत्वम् । पिपठीःषु । पिपठीष्षु । प्रत्येकमिति व्याख्यानादनेकव्यवधाने षत्वं न । निंस्स्व । निंस्से । नुम्ग्रहणं नुम्स्थानिकानुस्वारोपलक्षणार्थं व्याख्यानात् । तेनेह न । सुहिन्सु । पुंसु । अत एव न शर्ग्रहणेन गतार्थता । रात्सस्येति सलोपे विसर्गः । चिकीः । चिकीर्षौ । चिकीर्षः । रोः सुपीति नियमान्न विसर्गः । चिकीर्षु ॥ दमेर्डोस् । डित्वसामर्थ्याट्टिलोपः । षत्वस्यासिद्धत्वाद्रुत्वविसर्गौ । दोः । दोषौ । दोषः । पद्दन्न इति वा दोषन् । दोष्णः । दोष्णा । दोषः । दोषा ॥ विश प्रवेशने । सन्नन्तात् क्विप् । षत्वस्यासिद्धत्वात्संयोगान्तलोपः । व्रश्चेति षः । जश्त्वचर्त्वे । विविट् । विविड् । विविक्षौ । विविक्षः । स्कोरिति कलोपः । तट् । तड् । तक्षौ । तक्षः ॥ गोरट् । गोरड् । गोरक्षौ । गोरक्षः । तक्षिरक्षिभ्यां ण्यन्ताभ्यां क्विपि तु स्कोरिति न प्रवर्तते । णिलोपस्य स्थानिवद्भावात् । पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदिति तु इह नास्ति । तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेष्विति निषेधात् । तस्मात्संयोगान्तलोप एव । तक् । तग् । गोरक् । गोरग् ॥ स्कोरिति कलोपं प्रति कुत्वस्यासिद्धत्वात् संयोगान्तलोपः । पिपक् । पिपग् । एवं विवक् । दिधक् ॥ पिस गतौ । सुष्ठु पसतीति सुपीः । सुपिसौ । सुपिसः । सुपिसा । सुपीर्भ्याम् । सुपीःषु । सुपीष्षु । एवं सुतूः । तुस खण्डने ॥ विद्वान् । विद्वांसौ । विद्वांसः । हे विद्वन् । विद्वांसम् । विद्वांसौ ॥

४३४–नुम्, विसर्जनीय और शर् इनमेंसे कोई भी एक बीचमें आवे, तो इण् अथवा कवर्गके आगेके आदेश तथा प्रत्ययसम्बन्धी सकारको मूर्धन्य (ष) आदेश होताहै । इससे विसर्गसे व्यवधान रहते षत्व, पिपठीःषु । दूसरे रूपमें सकारको षत्व, "ष्टुना ष्टुः ८।४।४१/११२" इससे पूर्व सकारको ष, पिपठीष्षु ।

पिपठिष् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	पिपठीः	पिपठिषौ	पिपठिषः
सं०	हे पिपठीः	हे पिपठिषौ	हे पिपठिषः
द्वि०	पिपठिषम्	पिपठिषौ	पिपठिषः
तृ०	पिपठिषा	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भिः
च०	पिपठिषे	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्यः
पं०	पिपठिषः	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्यः
ष०	पिपठिषः	पिपठिषोः	पिपठिषाम्
स०	पिपठिषि	पिपठिषोः	पिपठीःषु, पिपठीष्षु.

(प्रत्येकमिति) "नुम्विसर्जनीय०" इस प्रस्तुत सूत्रके व्याख्यानमें 'प्रत्येकम्' (एक एक) ऐसा कहाहुआ है इसलिये इण्, कवर्ग और सकार इनमें (नुम्, विसर्ग और शर्) इनमेंसे एकसे अधिकका व्यवधान आवे, तो मूर्धन्यादेश नहीं होता, यथा निंस्स्व । निंस्से * ॥

(नुम्ग्रहणमिति) सूत्रमें नुम् (न्) जो अंश लियाहै उससे नुम्स्थानिक अनुस्वारका ग्रहण करना चाहिये (नकार अथवा अन्य अनुस्वार इनका ग्रहण नहीं) ऐसा व्याख्यान होनेसे, सुहिन्सु, पुंसु, इनमेंके नुम्स्थानिक नकार, मस्थानिक अनुस्वार इनके व्यवधानके कारण अगले सकारके स्थानमें षत्व नहीं होता । (४३५ में 'सुहिन्स्' शब्द और ४३६ में 'पुम्स्' शब्द देखो) । (अत एव न शर्ग्रहणेन गतार्थता) इससे सामान्यतः शर्ग्रहणसे अनुस्वारका भी ग्रहण संभाव्य है (वि० १३८) तथापि यहां नुम्स्थानिक अनुस्वारका ही ग्रहण आवश्यक है, इस कारण सूत्रमें नुम् ऐसा पृथक् शब्द लायेहैं, केवल शर् कहनेसे उसका ग्रहण न होता ।

चिकीर्ष् (करनेकी इच्छावाला) शब्द–

यह पूर्ववत् 'डुकृञ् (कृ) करणे' इस धातुसे उत्पन्न

---

* 'णिसि (निस्) चुम्बने' यह अदादिकाधातु है, इसको इदित् होनेके कारण "इदितो नुम् धातोः ७।१।५८/२२६२" इससे नुम् (न्)का आगम होकर अनुस्वारसे 'निंस्' ऐसा धातु है और 'स्व' और 'से' यह आत्मनेपद प्रत्यय आनेसे 'निंस्स्व' (चुम्बन करो) और 'निंस्से' (चुम्बन करताहै) ऐसे रूप सिद्ध हुए हैं, उनमें प्रथम सकारको धातुके अंशका होनेसे "आदेशप्रत्यययोः" यह सूत्र नहीं लगता, इसलिये उसके स्थानमें षत्व नहीं, आगेके जो प्रत्ययमेंके सकार उनके और [illegible] बीच नुम्स्थानिक अनुस्वार और [illegible] ऐसे दो आवें, नुम् और शर् इनमें [illegible] सकार यह (शर्) [illegible] यद्यपि हानि नहीं तथापि एकत्र आनेसे आगे षत्व नहीं होता ॥

हुआहै, सुलोप होनेपर 'चिकीर्ष्' ऐसी स्थिति हुई, उसमें 'र्ष्' ऐसा संयोग अन्तमें है, इसलिये "संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३/५४" इसकी प्राप्ति तो है, परन्तु यहां रेफके परे सकार-स्थानिक षकार असिद्ध है इस कारण "रात्सस्य" ऐसा जो नियम उससे सकारका लोप, रेफके स्थानमें "खरवसानयोः० ८।३।१५/७६" इससे विसर्ग, चिकीः । चिकीर्षौ । चिकीर्षः । चिकीर्ष्+सु, ऐसी स्थिति रहते पदान्तत्वके कारण संयोगान्त-लोप, रेफके स्थानमें विसर्ग प्राप्त है, परन्तु "रोः सुपि ८।३।१६/३३९" इस नियमसे अर्थात् यह रेफ रु के स्थानका होता, तो उसको विसर्ग होता, वह रुस्थानका नहीं मूलका ही है इस कारण विसर्ग नहीं, चिकीर्षु । इसमें रेफ इण् है इस कारण अगले सकारको षत्व हुआ ।

चिकीर्ष् शब्दके रूप--

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	चिकीः	चिकीर्षौ	चिकीर्षः
सं०	हे चिकीः	हे चिकीर्षौ	हे चिकीर्षः
द्वि०	चिकीर्षम्	चिकीर्षौ	चिकीर्षः
तृ०	चिकीर्षा	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्भिः
च०	चिकीर्षे	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्भ्यः
पं०	चिकीर्षः	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्भ्यः
ष०	चिकीर्षः	चिकीर्षोः	चिकीर्षाम्
स०	चिकीर्षि	चिकीर्षोः	चिकीर्षु.

दोष् (भुजा) शब्द--

'दमेर्डोस्' (उणा० २।६९) दम् धातुके आगे डोस् (ओस्) प्रत्यय, डित्वके सामर्थ्यसे दम्‌मेंकी टि (अम्) का लोप और षत्व होकर 'दोष्' यह प्रातिपदिक बना, सुलोप हुआ, ('पिपठिष्' शब्दमें दिखाये हुएके समान) षत्व (८।३।५९/२१२) को असिद्धत्व है इसलिये रुत्व (८।२।६६/१६२) और विसर्ग (८।३।१५/७६) हुए, दोः । दोष्+औ=दोषौ । दोष्+जस्=दोषः । "पद्दन्नो० ६।१।६३/२२८" इस सूत्रसे शसादि विभक्तियोंके पूर्वमें दोषन् आदेश होकर विकल्पसे दोष्+शस् =दोष्णः, दोषः । यहां "अल्लोपोऽनः ६।४।१३४/२३४", "न-लोपः० ८।२।७/२३६" और "विभाषा ङिश्योः ६।४।१३६/२३७" यह सूत्र ध्यानमें रखने चाहिये । दोषन्+टा=दोष्णा, दोषा ।

दोष् शब्दके रूप--

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	दोः	दोषौ	दोषः
सं०	हे दोः	हे दोषौ	हे दोषः
द्वि०	दोषम्	दोषौ	दोष्णः, दोषः
तृ०	दोष्णा, दोषा	दोषभ्याम्,दोर्भ्याम्	दोषभिः, दोर्भिः
च०	दोष्णे, दोषे	दोषभ्याम्,दोर्भ्याम्	दोषभ्यः,दोर्भ्यः
पं०	दोष्णः, दोषः	दोषभ्याम्,दोर्भ्याम्	दोषभ्यः,दोर्भ्यः
ष०	दोष्णः, दोषः	दोष्णोः, दोषोः	दोष्णाम्,दोषाम्
स०	दोष्णि, दोषणि, दोषि.	दोष्णोः, दोषोः	दोषसु, दोःषु, दोष्षु.

विविक्ष (भीतर घुसनेकी इच्छावाला) शब्द

'विश प्रवेशने' इस धातुसे सन्नन्त होनेसे क्विप् प्रत्यय पूर्ववत्, विविश्+स्, यह प्रातिपदिककी मूलस्थिति हुई, सुलोप हुआ, आगे सु झल् है इस कारण "व्रश्चभ्रस्ज० ८।२।३६/२९४" इससे शकारके स्थानमें षत्व होना चाहिये था, परन्तु वह षत्व असिद्ध है, इसलिये पहले संयोगान्तलोप (८।२।२३/५४) विविश् ऐसी स्थिति हुई, फिर "व्रश्चभ्रस्ज०" इससे पदान्तत्वके कारण शकारके स्थानमें षत्व, जश्त्व, चर्त्व हुए, विविट्, विविड् । विविश्+स्+औ, इसमें शकारके स्थानमें षत्व होकर विविष्+स्+औ, यह स्थिति हुई, आगे सकार होनेके कारण "षढोः कः सि ८।२।४१/२९५" इससे षका-रके स्थानमें ककार और ककारके कारण "आदेश० ८।३।५७/२११" इससे सकारके स्थानमें षकार,विविक्षौ।विविक्षः*।

विविक्ष् शब्दके रूप--

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	विविट्--ड्	विविक्षौ	विविक्षः
सं०	हे विविट्--ड्	हे विविक्षौ	हे विविक्षः
द्वि०	विविक्षम्	विविक्षौ	विविक्षः
तृ०	विविक्षा	विविड्भ्याम्	विविड्भिः
च०	विविक्षे	विविड्भ्याम्	विविड्भ्यः
पं०	विविक्षः	विविड्भ्याम्	विविड्भ्यः
ष०	विविक्षः	विविक्षोः	विविक्षाम्
स०	विविक्षि	विविक्षोः	विविट्सु--ट्सु.

तक्ष् (बढई) शब्द--

'तक्ष् तनूकरणे' इसके आगे क्विप्, तक्ष्+स् ऐसी स्थिति होते सुलोप, "स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२।२९/३८०" इससे 'क्ष' मेंके ककारका लोप, जश्त्व, चर्त्व, तट्, तड् । तक्षौ । तक्षः । और सब रूप ऊपर कहे अनुसार जानना ।

गोरक्ष् (गाय रखनेवाला) शब्द भी इसी प्रकार, गोरट्, गोरड् । गोरक्षौ । गोरक्षः--इत्यादि ।

(तक्षिरक्षिभ्यामिति) तक्षि,रक्षि यह धातु णिजन्त(२५७५--२६०७) अर्थात् तक्ष्, रक्ष्, धातुसे प्रयोजकार्थमें णिच् कियागया और फिर क्विप् किया, तो तक्ष्+णिच्+क्विप्, ऐसी स्थिति रहते "णेरनिटि ६।४।५१/२३९३" इससे यद्यपि णिच्का लोप हुआ, तो भी स्थानिवद्भावसे वह णिच् है ही, इसलिये यहां पदान्त, अथवा झल् आगे न होनेसे "स्कोः संयोगा-द्योः०" यह सूत्र ही नहीं प्रवृत्त होता। इस कारण तक्ष् (छी-लनेवाला) गोरक्ष् (गाय रखानेवाला) इनके क्षके ककारका लोप नहीं, (पूर्वत्रासिद्ध इति) (वा० ४३३) पूर्व-त्रासिद्धे अर्थात् त्रिपादीमें स्थानिवद्भाव नहीं होता ऐसा जो वचन है वह यहां नहीं लगता, उस वचनका दोष है, कारण कि (तस्य दोषेति) (वा० ८८०) संयोगादिलोप, लत्व, णत्व, यह कार्य कर्तव्य होते यह निषेध नहीं (अर्थात् इस स्थानमें स्थानिवद्भावका निषेध होने फिर [illegible] निषेध है) इससे संयोगान्तलोप ही हुआ, (८।२।२३ [illegible]) [illegible], नश ।

* विविश्+स् यहां संयोगान्तलोप [illegible] होने अल्लोपः [illegible] क्विप् मानकर भयाहै इसलिये बहिरङ्ग है, सो "असिद्धं बहि०" इस परिभाषासे असिद्ध होना था सो नहीं कारण कि [illegible] अपेक्षा संयोगान्तलोप ही बहिरङ्ग पदाधिकारि [illegible] है ।

तक्ष् शब्दके रूप—

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	तक्-ग्	तक्षौ	तक्षः
सं०	हे तक्-ग्	हे तक्षौ	हे तक्षः
द्वि०	तक्षम्	तक्षौ	तक्षः
तृ०	तक्षा	तग्भ्याम्	तग्भिः
च०	तक्षे	तग्भ्याम्	तग्भ्यः
पं०	तक्षः	तग्भ्याम्	तग्भ्यः
ष०	तक्षः	तक्षोः	तक्षाम्
स०	तक्षि	तक्षोः	तक्षु.

इसी प्रकार गोरक्, गोरग् इत्यादि ।

पिपक्ष् (पाक करनेकी इच्छा करनेवाला) शब्द—

पच् धातु सन्नन्त होकर क्विप् :पिपच्+स् ऐसी मूलस्थिति होते स् इसके झल् होनेके कारण "चोः कुः ८।२।३०/३७८" इससे चकारको कुत्व हुआहै, इसलिये (स्कोरितीति)"स्कोः संयोगाद्योः० ८।२।२९/३८०" इसकी दृष्टिसे कुत्व असिद्ध अर्थात् नहीं दीखता, इस कारण "संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३/५४" इससे सकारका लोप, पिपक्, पिपग् पूर्ववत् रूप होंगे ।

इसी प्रकारसे विवक्ष् (बोलनेकी इच्छा करनेवाला) वच् धातु, दिधक्ष् (जलानेकी इच्छा करनेवाला) दह् धातु, इन सन्नन्तोंके रूप विवक् । विवक्षौ । दिधक् । दिधक्षौ इत्यादि जानना ।

सान्त 'सुपिस्' शब्द—

'पिस् गतौ' धातु क्विप्, सुलोप, 'सुपिस्' ऐसी स्थिति रहते "ससजुषो रुः ८।२।६६/१६२" इससे रुत्व, "र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८।२।७६/४३३" इससे सुपीर् ऐसी स्थिति, फिर "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" इससे विसर्ग, 'सुष्ठ पेसति इति' (भली प्रकारसे चलताहै सो) सुपीः । सुपिस्+औ=सुपिसौ, इसमें अंगका अर्थात् निजका सकार है, इसलिये "आदेशप्रत्ययोः" इससे षत्व नहीं, सुपिस्+जस्=सुपिसः सुपिस्+टा= सुपिसा । पदान्तत्वके कारण पूर्ववत् रेफ, दीर्घ, सुपीर्भ्याम् । (४३४) 'पिपठीषु'के अनुसार सुपीः षु, सुपींषु ।

(एवं सुतुः) 'तुस् खण्डने' इस धातुसे निकला हुआ सुतुस् (भली प्रकार तोडनेवाला) शब्द बना है, सुतुः । सुतुसौ इत्यादि ।

विद्वस् (जाननेवाला) शब्द—

'विद ज्ञाने' इसके आगे 'शतृ' के स्थानमें "विदेः शतुर्वसुः ७।१।३६/३१०५" इससे कर्त्रर्थमें वसु (वस्) आदेश हुआ है आगे सर्वनामस्थान है, इस लिये उगित्त्वके कारण "उगिदचाम्० ७।१।७०/३६१" इससे नुम्, विद्वन्स्+स्, ऐसी स्थिति "सान्त महतः संयोगस्य ६।४।१०/३१७" इससे नकारके पूर्वके अकारको दीर्घ, विद्वान्स्+स् ऐसी स्थिति हुई, सुलोप ६।१।६८/२५२ फिर अन्तमें "संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३/५४" इससे सलोप, विद्वान्[1] । विद्वस्+औ, इसमें नुम् और दीर्घ विद्वान्सौ, ऐसी स्थिति हुई, तब "नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४/१२३" इससे नकारको अनुस्वार, विद्वांसौ । विद्वांसः । सम्बुद्धिमें दीर्घ नहीं, हे विद्वन् । आगे भके स्थानमें विद्वस्+शस्—

४३५ वसोः संप्रसारणम्।६।४।१३१॥

वस्वन्तस्य भस्य संप्रसारणं स्यात् । पूर्वरूपत्वं षत्वम् । विदुषः । विदुषा । वसुस्रंस्विति दत्वम् । विद्वद्भ्यामित्यादि । सेदिवान् । सेदिवांसौ । सेदिवांसः । सेदिवांसम् । अन्तरङ्गोपीडागमः संप्रसारणविषये न प्रवर्तते । अकृतव्यूहा इति परिभाषया । सेदुषः । सेदुषा । सेदिवद्भ्यामित्यादि । सान्त महत इत्यत्र सान्तसंयोगोपि प्रातिपदिकस्यैव गृह्यते न तु धातोः । महच्छब्दसाहचर्यात् ॥ सुष्ठु हिनस्तीति सुहिन् । सुहिंसौ । सुहिंसः । सुहिन्भ्याम् । सुहिन्सु ॥ ध्वत् । ध्वद् । ध्वसौ । ध्वसः । ध्वद्भ्याम् । एवं स्नत् ॥

४३५—वसुप्रत्ययान्त शब्द भसंज्ञक हो तो उसको संप्रसारण होताहै । विद्—उ—अस्+अस् ऐसी स्थिति रहते (पूर्वरूपत्वम्) "संप्रसारणाच्च ६।१।१०८/३३०" इससे पूर्वरूप, तब विदुस्+अस् ऐसी स्थिति हुई, 'उस्' को स्थानिवद्भाव करके प्रत्ययत्व है इस कारण "आदेशप्रत्यययोः" इससे षत्व, विदुषः । विद्वस्+टा=विदुषा । विद्वस्+भ्याम्="वसुस्रंसुध्वंसु० ८।२।७२/३३४" इससे पदान्तमें सकारके स्थानमें दत्व, विद्वद्भ्याम्—इत्यादि ।

विद्वस् शब्दके रूप—

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
सं०	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः
द्वि०	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
च०	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
पं०	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
ष०	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
स०	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु.

सेदिवस् (गया हुआ) शब्द—

'षद्लृ (सद्) विशरणगत्यवसादनेषु' इस धातुके परे भूतसामान्य अर्थमें लिट् (३।२।१०५/३०९३) प्रत्यय होकर उसको क्वसु (वस्) (३।२।१०७/३०९५) आदेश हुआ है.*॥ पूर्ववत् उगित्त्वके कारण सर्वनामस्थान आगे रहते नुम्

---

[1] 'विद्वान्' ऐसी स्थितिमें "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य [illegible]३६" इससे नलोप नहीं होता, कारण कि, संयोगान्तलोपके असिद्ध होनेसे पदान्तत्व नहीं रहता ॥

* यहां 'सद्' इसको लिट्के कारण द्वित्व होताहै और फिर "अत एकहल्मध्ये० ६।४।१२०/२२६०" इससे अभ्यासलोप होकर, 'सेद्' ऐसा रूप होताहै [illegible] इसमें "वस्वेकाजाद्घसाम् ७।२।६७/३०९६" इससे वसको इडागम [illegible] सेदिवस् ऐसा प्रातिपदिक बना. [illegible] आज्ञायगा. जहां अभ्यासलोप नहीं होता [illegible] इसी प्रकारसे होगा ॥

और सान्तत्वके कारण सम्बुद्धिवर्ज सर्वनामस्थान आगे रहते दीर्घ, सेदिवान्। सेदिवांसौ । सेदिवांसः । सेदिवांसम् । सेदिवांसौ। सेदिवस्+अस्, इसमें "वसोः सम्प्रसारणम्" इससे वस्के स्थानमें 'उस्' ऐसा सम्प्रसारण हुआ, इस शब्दमें इडागम वस्के निमित्तसे होनेवाला था, परन्तु 'वस्' इसीका आगे विनाश होगा, इसलिये यद्यपि सम्प्रसारण इस बहिरंग कार्यसे इडागम यह अन्तरंग कार्य प्रबल होना चाहिये, तथापि 'अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः' इस परिभाषाके आश्रयसे इडागम प्रवृत्त नहीं होता, "आर्धधातुकस्येड् वलादेः ७।२।३५ / २१८४" इससे वकारके निमित्तसे इट्का आगम होता, इसलिये वकारके स्थानमें उकार होनेके पीछे उस इडागमकी प्राप्ति नहीं, सेदुषः[1]। सेदुषा । सेदिवद्भ्याम्— इत्यादि । शेष कार्य 'विद्वस्'की समान ।

सेदिवस् शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सेदिवान्	सेदिवांसौ	सेदिवांसः
सं०	हे सेदिवन्	हे सेदिवांसौ	हे सेदिवांसः
द्वि०	सेदिवांसम्	सेदिवांसौ	सेदुषः
तृ०	सेदुषा	सेदिवद्भ्याम्	सेदिवद्भिः
च०	सेदुषे	सेदिवद्भ्याम्	सेदिवद्भ्यः
पं०	सेदुषः	सेदिवद्भ्याम्	सेदिवद्भ्यः
ष०	सेदुषः	सेदुषोः	सेदुषाम्
स०	सेदुषि	सेदुषोः	सेदिवत्सु

(सान्त महतः इति) "सान्त महतः संयोगस्य ६।४।१० / ३१७" इस सूत्रमें, 'महत्', इस प्रातिपदिकके साथ 'सान्त' शब्द है, इससे उस साहचर्यसे ऐसा जानना चाहिये कि, सान्त संयोग भी प्रातिपदिकका ही गृहीत है धातुका नहीं[2] इस कारण 'सुष्ठु हिनस्ति' (उत्तम प्रकारसे हिंसा करताहै) ऐसा अर्थ होते, 'सुहिन्स्' ऐसा जो 'हिंसि, हिंसायाम्' इस धातुसे क्विबन्तप्रातिपदिक बनताहै, उसमें धातुका है, इस कारण उसके नकारकी उपधा दीर्घ नहीं होती, सुहिन्। सुहिंसौ । सुहिंसः । पदान्तमें अनुस्वार नहीं, सुहिन्भ्याम् । सुहिन्सु, सुहिन्त्सु ।

सुहिन्स् शब्दके रूप—

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सुहिन्	सुहिंसौ	सुहिंसः
सं०	हे सुहिन्	हे सुहिंसौ	हे सुहिंसः
द्वि०	सुहिंसम्	सुहिंसौ	सुहिंसः
तृ०	सुहिंसा	सुहिन्भ्याम्	सुहिन्भिः
च०	सुहिंसे	सुहिन्भ्याम्	सुहिन्भ्यः
पं०	सुहिंसः	सुहिन्भ्याम्	सुहिन्भ्यः
ष०	सुहिंसः	सुहिंसोः	सुहिंसाम्
स०	सुहिंसि	सुहिंसोः	सुहिन्त्सु-न्सु.

ध्वस् (विध्वंस करनेवाला) शब्द—

यह शब्द 'स्रन्सु ध्वन्सु अवस्रंसने' इसमेंके ध्वन्सु धातुसे क्विप् करके बना है, क्विप् इसके कित्वके कारण "अनिदितां हल० ६।४।२४ / ४१५" इससे नकारका लोप, यह शब्द उगित् है तो भी धातुशब्द होनेके कारण उगित्कार्य नहीं (सि० ४२५ में 'गोमत्' इस क्विबन्तशब्दके आगेका शास्त्रार्थ देखो) "वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ८।२।७२ / ३३८" इससे पदान्तमें दकार आदेश, विकल्पसे चर्त्व, ध्वत्, ध्वद् । ध्वसौ । ध्वसः । ध्वद्भ्याम् इत्यादि ।

ध्वस् शब्दके रूप—

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	ध्वत्-द्	ध्वसौ	ध्वसः
सं०	हे ध्वत्-द्	हे ध्वसौ	हे ध्वसः
द्वि०	ध्वसम्	ध्वसौ	ध्वसः
तृ०	ध्वसा	ध्वद्भ्याम्	ध्वद्भिः
च०	ध्वसे	ध्वद्भ्याम्	ध्वद्भ्यः
पं०	ध्वसः	ध्वद्भ्याम्	ध्वद्भ्यः
ष०	ध्वसः	ध्वसोः	ध्वसाम्
स०	ध्वसि	ध्वसोः	ध्वत्सु.

(एवं स्रत्) स्रन्सु धातुसे जो स्रस् शब्द बनताहै उसके रूप भी इसी प्रकार जानने, स्रत्, स्रद् । स्रसौ । स्रसः । स्रद्भ्याम् इत्यादि ।

पुम्स् (पुरुष) शब्द—

४३६ पुंसोऽसुङ् । ७ । १ । ८९ ॥

सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् स्यात् । उकार उच्चारणार्थः । बहुपुंसी इत्यत्र उगितश्चेति ङीबर्थं कृतेन पूर्वो ङुम्सुन्निति प्रत्ययस्योगित्वेनैव नुमसिद्धेः । पुमान् । हे पुमन् । पुमांसौ । पुमांसः । पुंसः । पुंसा । पुंभ्याम् । पुंभिः । पुंसु ॥ ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च । उशना । उशनसौ । उशनसः ॥ अस्य संबुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः ॥ * ॥ हे उशनन । हे उशन । हे उशनः । उशनोभ्यामित्यादि ॥ अनेहा । अनेहसौ । अनेहसः । हे अनेहः । अनेहोभ्यामित्यादि । वेधाः । वेधसौ । वेधसः । हे वेधः । वेधोभ्यामित्यादि । अत्वसन्तस्य चाधातोरित्युक्तेर्न दीर्घः । सुष्ठु वस्ते सुवः । सुवसौ । सुवसः ॥ पिण्डं ग्रसते पिण्डग्रः । पिण्डग्लः । ग्रसु ग्लसु अदने ॥

---

१ सेदुषः यहां "वसोः सम्प्रसारणम् ६३७" इससे सम्प्रसारण न होना चाहिये कारण कि, 'तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य' (उस अनुबन्धवालेका ग्रहण होनेपर उससे भिन्न अनुबन्धवालेका ग्रहण नहीं होता) इस परिभाषासे 'वसोः संप्रसा०' सूत्रमें वसुकाही ग्रहण होगा, क्वसुका नहीं, ऐसी शङ्का होनेपर वहां कहतेहै कि, क्वसुमें उकार ग्रहण क्यों किया ? यदि यह कहो कि, उगित कार्य होनेके लिये, सो ठीक नहीं, स्थानिवद्भावसे वसुमेंका उगित्त्व वसुमें आवेगा, तो वही उकार क्वसु सामान्यग्रहणमें ज्ञापक होताहै अर्थात् क्वसुके भी वसुको संप्रसारण भया ॥

२ साहचर्यसे गृहीत और अगृहीत उन दोनोंमें गृहीतका ग्रहण है, इस अर्थका "गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः" ... णम्" ऐसी परिभाषा है इसलिये प्रातिपदिककाही संयोग ग्राह्य है ॥

४३६–आगे सर्वनामस्थान विवक्षित होते 'पुम्स्' शब्दको असुङ् (अस्) आदेश होताहै ।(यहां "इतोऽत्सर्वनामस्थाने ७।१।८६/३६६ " इस सूत्रसे सर्वनामस्थानकी अनुवृत्ति होतीहै)। ङित् होनेसे अन्तादेश, पुमस्+स्, ऐसी स्थिति हुई (उकार उच्चारणार्थः० बहुपुंसी इत्यत्रेति) असुङ्मेंका उकार केवल उच्चारणके अर्थ है, इत् नहीं है कारण कि, 'बहुपुम्स्' इससे 'बहुपुंसी' इस स्त्रीलिङ्ग ङीप् प्रत्ययान्त शब्द सिद्ध होनेके निमित्त 'बहुपुम्स्' यह शब्द उगित् होना चाहिये, तो ही "उगितश्च ४।१।६/४५५ " इससे वहां ङीप् होगा नहीं तो नहीं होगा, परन्तु ङीप् यह सर्वनामस्थान न होनेसे उस प्रसङ्गमें इस असुङ्की कुछ भी प्राप्ति नहीं, अर्थात् शब्दको उगित्त्व लानेके निमित्त उससे सर्वत्र निर्वाह नहीं होता, 'पूञो डुम्सुन्' इस उणादिसूत्रसे पूञ् (पू) धातुके आगे डुम्सुन् (उम्स्) प्रत्यय आकर 'पुम्स्' यह प्रातिपदिक सिद्ध होताहै, इसी उत्पत्तिकी दृष्टिसे जो शब्दको उगित्त्व आताहै, वही ग्रहण करना पडताहै, इससे वही सर्वत्र लेना चाहिये और 'असुङ्' मेंका उकार उच्चारणार्थ जानना चाहिये ।

"पातेर्डुम्सुन् (उणा० ४।१७७) इसीका 'पूञो डुम्सुन्' ऐसा पाठान्तर है"

उगित् होनेसे नुम्, "सान्त महतः" इससे दीर्घ, पुमान् । सम्बुद्धिमें हे पुमन् । नकारके स्थानमें अनुस्वार, पुमांसौ । पुमांसः । असर्वनामस्थानमें उगित्कार्य और दीर्घ नहीं, पुम्स्+शस्=पुंसः । पुम्स्+टा=पुंसा । पुम्स्+भ्याम्=पुंभ्याम् । पुंभिः । पुम्सु+सु=पुंसु (सि० ४३४) ।

पुम्स् शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
सं०	हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः
द्वि०	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः
तृ०	पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः
च०	पुंसे	पुंभ्याम्	पुंभ्यः
पं०	पुंसः	पुंभ्याम्	पुंभ्यः
ष०	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
स०	पुंसि	पुंसोः	पुंसु.

उशनस् (शुक्राचार्य) शब्द—

"ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ७।१।९४/२७८" इससे असम्बुद्धि प्रत्यय आगे रहते अनङ् (अन्) आदेश, उशन–अन्+स्, फिर "अतो गुणे ६।१।९७/१९१" उशनन्+स्, ऐसी स्थिति हुई, नान्तत्वके कारण "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८/१९१" इससे उपाधादीर्घ, फिर सुलोप, नलोप, उशना । आगे अनङ् नहीं । उशनस्+औ=उशनसौ । उशनस्+जस्=उशनसः । (अस्य सम्बुद्धौ० वा० ५०३७) * आगे सम्बुद्धि होते 'उशनस्' शब्दको विकल्प करके अनङ् और विकल्प करके नलोप होताहै हे उशनन्, हे उशन । हे उशनः । आगे उशनस्+भ्याम्, ऐसी स्थिति होते सकारको रुत्व और रुको "हशि च ६।१।११४/१६६" इससे उत्व, "आद् गुणः" उशनोभ्याम्–इत्यादि ।

उशनस् शब्दके रूप—

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	उशना	उशनसौ	उशनसः
सं०	हे उशन, हे उशनन्, हे उशनः	हे उशनसौ	हे उशनसः
द्वि०	उशनसम्	उशनसौ	उशनसः
तृ०	उशनसा	उशनोभ्याम्	उशनोभिः
च०	उशनसे	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
पं०	उशनसः	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
ष०	उशनसः	उशनसोः	उशनसाम्
स०	उशनसि	उशनसोः	उशनःसु–स्सु.

अनेहस् (समय) शब्द—

पूर्ववत् अनङ्, अनेहा । अनेहस्+औ=अनेहसौ । अनेहस्+जस्=अनेहसः । सम्बोधनका वार्तिक उशनस्मात्रके निमित्त है, इससे यहां अनङ् किंवा नलोप नहीं है, अर्थात् सम्बुद्धिका एकही रूप होगा, हे अनेहः । इतर सब रूप उशनस् शब्दके समान जानने, अनेहोभ्याम्–इत्यादि ।

पुरुदंसस् (इन्द्र) शब्द—

इसके भी रूप अनेहस् शब्दके समान होंगे पुरुदंसा । पुरुदंसस्+औ=पुरुदंससौ–इत्यादि, सम्बुद्धिमें हे पुरुदंसः ।

वेधस् (ब्रह्मा) शब्द—

'सु' आगे रहते अनङ्की प्राप्ति नहीं, "अत्वसन्तस्य चाधातोः ६।४।१४/४२५" इससे दीर्घ, वेधाः । वेधस्+औ=वेधसौ । वेधस्+जस्=वेधसः । सम्बुद्धि आगे रहते दीर्घ नहीं, हे वेधः । भ्याम्में वेधोभ्याम्–इत्यादि. ।

वेधस् शब्दके रूप—

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	वेधाः	वेधसौ	वेधसः
सं०	हे वेधः	हे वेधसौ	हे वेधसः
द्वि०	वेधसम्	वेधसौ	वेधसः
तृ०	वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभिः
च०	वेधसे	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
पं०	वेधसः	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
ष०	वेधसः	वेधसोः	वेधसाम्
स०	वेधसि	वेधसोः	वेधःसु-स्सु.

सुवस् यह क्विबन्त शब्द है ।

'अत्वसन्तस्य०' इसमें 'अधातोः' ऐसा कहाहुआहै, इसलिये यहां दीर्घ नहीं 'सुष्ठु वस्ते' (भली प्रकारसे वस्त्र धारण करै सो) सुवः । सुवसौ । सुवसः । शेष रूप वेधस् शब्दकी समान जानना ।

'पिण्डं ग्रसते' पिण्डग्रः, पिण्डग्लः (ग्रसु, ग्लसु, अदने) पिण्डग्रस्, पिण्डग्लस् यह क्विबन्त शब्द भी आताहै इस अर्थमें पिण्डग्रस्+सु=पिण्डग्रः । पिण्डग्रस्+ इसी प्रकारसे होतेहैं,

1 'अस्य सम्बुद्धौ०' यह वाचनिक है, हरदत्तादिके मतमें तो यह ज्ञापकसिद्ध है सो इस प्रकार "अनङ् सौ २४८" इसके स्थानमें 'सोर्डा' ऐसा ही करनेसे इष्ट सिद्ध होताहै तो 'अनङ् सौ' यह निर्देश अनङ् (अन्) का श्रवण होनेके वास्ते है यदि यह कहो कि टि का लोप होनेपर 'सर्वनामस्थाने०' से दीर्घ होकर 'उशाना' ऐसा अनिष्ट रूप होजायगा सो नहीं 'अङ्गवृत्ते०' इस परिभाषासे दीर्घ नहीं होगा, यह उनका आशय है ॥

औ=पिण्डग्रसौ । पिण्डग्रस्+जस्=पिण्डग्रसः । पिण्डग्लः । पिण्डग्लसौ । पिण्डग्लसः–इत्यादि ।

अदस् (वह) त्यदादि सर्वनाम शब्द–

"त्यदादीनामः ७।२।१०२ / २६५" इसका पर और अपवाद सूत्र–

४३७ अदस औ सुलोपश्च।७।२।१०७॥

अदस औकारोन्तादेशः स्यात्सौ परे सुलोपश्च । तदोः सः साविति दस्य सः । असौ ॥ औत्वप्रतिषेधः साकच्कस्य वा वक्तव्यः सादुत्वं च ॥ * ॥ प्रतिषेधसन्नियोगशिष्टमुत्वं तदभावे न प्रवर्तते।असकौ।असुकः।त्यदाद्यत्वं पररूपत्वम्। वृद्धिः। अदसोसेरिति मत्वोत्वे । अमू । जसः शी। आद् गुणः ॥

४३७–आगे सु होते अदस् शब्दको औ अन्तादेश होताहै और सु का लोप हो, अद+औ,ऐसी स्थिति हुई, "तदोः सः सावनन्त्ययोः ७।२।१०६ / ३८१" इससे दकारके स्थानमें सकार, अस+औ ऐसी स्थिति हुई, "वृद्धिरेचि ६।१।८८ / ७२" असौ । (औत्वप्रतिषेध इति ४४८२ वा०) * अकच्सहित अदस् शब्दको औत्वनिषेध और सकारके आगे उत्व यह कार्य विकल्प करके होतेहैं, (प्रतिषेधसंनियोगेति) औत्वनिषेधके संनियोगसे उत्वका विधान है इस कारण जब औत्वनिषेध नहीं तब उत्व भी प्रवृत्त नहीं, अदकस्+सु इससे असुक+सु और विकल्पसे असक+औ ऐसी दो स्थिति हुई, इस कारण असुकः । असकौ ।

अदस्+औ ऐसी स्थिति होते "त्यदादीनामः ७।२।१०२ / २६५" इससे अत्व, "अतो गुणे ६।१।९७ / १०१" इससे पररूप और "वृद्धिरेचि ६।१।८८ / ७२" इससे वृद्धि, 'अदौ' ऐसी स्थिति हुई, "अदसोऽसेर्दादु दो मः ८।२।८० / ४१८" इससे दकारके आगेके औ वर्णके स्थानमें उत्व और दकारके स्थानमें मकार, अमू। औ यह दीर्घ वर्ण है इसलिये उसके स्थानमें दीर्घ ऊ(४१९)। त्यदादिगणके कारण अद्+जस् ऐसी स्थिति होते सर्वनामत्वके कारण जस्के स्थानमें शी (ई) "आद्गुणः ६।१।८७ / ६९" 'अदे' ऐसी स्थिति हुई–

४३८ एत ईद्बहुवचने । ८ । २ । ८१ ॥

अदसो दात्परस्यैत ईत्स्याद्दस्य च मो बह्वर्थोक्तौ । अमी । पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक् पश्चादुत्वमत्वे । अमुम् । अमू । अमून् । मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः ॥

४३८–बहुत्व अर्थ उक्त होते अदस् शब्दसम्बन्धी दकारके आगे एके स्थानमें 'ई' आदेश होताहै, अमी (पूर्वत्रासिद्धमिति०) मुत्वकार्य ८।२।८० / ४१९ असिद्ध है इस कारण पहले द्वितीयाके ६।१।१०७ / १९४ अम् प्रत्ययका कार्य होकर फिर मुत्व, अमुम् । अमू । अमून् । शब्दको मुत्व किया हुआ है इससे घिसंज्ञा होकर 'टा' के स्थानमें ना (७।३।१२० / २४४) अमुना ऐसी स्थिति हुई, यहां मुत्वको असिद्धत्वकी शंका आती है, परन्तु–

४३९ न मु ने । ८ । २ । ३ ॥

नाभावे कर्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः स्यात् । अमुना । अमूभ्याम् ३ । अमीभिः । अमुष्मै । अमीभ्यः । अमुष्मात् । अमुष्य । अमुयोः । अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमुयोः । अमीषु ॥

॥ इति हलन्ताः पुँल्लिगाः ॥

४३९–'ना' भाव कर्तव्य हो तो, अथवा किया गया हो तो मुत्व असिद्ध नहीं होता (नाभाव कर्तव्य हो, अथवा कियागया हो, यह दोनों अर्थ सूत्रमें 'ने' इसकी आवृत्तिसे लब्ध होतेहैं, एक जगह विषयसप्तमी मानतेहैं वहां पहला अर्थ और दूसरी जगह सत्सप्तमी मानतेहैं वहां दूसरा अर्थ) अमुना । यहां नाभाव किये जानेपर भी किया हुआ मुत्व असिद्ध नहीं, इससे "सुपि च ७।३।१०२ / २०२" इसकी दृष्टिसे उकारके स्थानमें मूलका अकार रहकर दीर्घकी प्राप्ति न हुई ।

अमूभ्याम्३ । अद+भिस् यहां "अतो भिस ऐस् ७।१।९ / २०३" इसकी प्राप्ति है सही, परन्तु "नेदमदसोरकोः ७।१।११ / ३४९" इस निषेधके कारण ऐस्त्व नहीं, मीत्व होगा, अमीभिः । अदस्+ङे=अमुष्मै । अदस्+भ्यस्=अमीभ्यः । अदस्+ङसि =अमुष्मात् । अदस्+ङस्=अमुष्य । अदस्+ओस्=अमुयोः । अदस्+आम्=अमीषाम् । अदस्+ङि=अमुष्मिन् । अदस्+सु=अमीषु * ।

अदस् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	अमू	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पं०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

॥ इति हलन्ताः पुँल्लिङ्गाः ॥

* [illegible] सूत्रमें 'बहुवचन' पारिभाषिक नहीं लियाजाता, इसी कारण वृत्तिमें 'बह्वर्थोक्तौ' ऐसा कहा है, यदि पारिभाषिक लियाजाय तो 'अमीभिः'–इत्यादि सिद्ध होंगे, परन्तु 'अमी' यह नहीं बनेगा ॥

* इसमें सामान्यतः ऐसा ध्यान रखना चाहिये कि, 'अद' ऐसा रूप होनेके पीछे अकारान्त सर्वनामके अनुसार प्रत्ययकार्य और फिर मुत्व होताहै और फिर उसमें भी ह्रस्वके स्थानमें ह्रस्व दीर्घके स्थानमें दीर्घ ऊकार, बहुवचनमें एकारके स्थानमें ईकार। अपवादमात्र अलग ॥

अथ हलन्ताः स्त्रीलिंगाः ।

हकारान्त उपानह् (जूता) शब्द--

'णह् बन्धने' क्विप्, सुलोप । "हो ढः ८।२।३१/३२४" इसका अपवाद--

४४० नहो धः । ८ । २ । ३४ ॥

नहो हस्य धः स्याज्झलि पदान्ते च । उपानत् । उपानद् । उपानहौ । उपानहः । उपानद्भ्याम् । उपानत्सु ॥ उत्पूर्वात् ष्णिह प्रीतावित्यस्मादृत्विगादिना क्विन्निपातनात्तलोपषत्वे । क्विन्नन्तत्वात्कुत्वेन हस्य घः । जश्त्वचर्त्वे । उष्णिक् । उष्णिग् । उष्णिहौ । उष्णिहः । उष्णिग्भ्याम् । उष्णिक्षु ॥ द्यौः । दिवौ । दिवः । द्युषु ॥ गीः । गिरौ । गिरः । एवं पूः ॥ चतुरश्चतस्रादेशः । चतस्रः २ । चतसृणाम् ॥ किमः कादेशे टाप् । का । के । काः । सर्ववत् ॥

४४०--झल् परे रहते और पदान्तमें 'नह्' धातुके हकारके स्थानमें धकार होताहै । उपानध् ऐसी स्थिति होनेपर जश्त्व, चर्त्व । उपानत्, उपानद् । उपानहौ । उपानहः । उपानद्भ्याम् । उपानत्सु * ।

उपानह् शब्दके रूप--

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	उपानत्--द्	उपानहौ	उपानहः
सं०	हे उपानत्--द्	हे उपानहौ	हे उपानहः
द्वि०	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
च०	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
पं०	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
ष०	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
स०	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु.

उष्णिह् (छन्दविशेष) शब्द--

(उत्पूर्वादिति) 'उत्' उपसर्गपूर्वक 'ष्णिह् (स्निह्) प्रीतौ' धातुसे "ऋत्विग्दधृक्० ३।२।५९/३७३" इससे क्विन् प्रत्यय, और निपातनसे उनमेंके तकारका लोप और षत्व, सुलोप, क्विन्नन्तत्वके कारण "क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२/३७७" इससे हकारको कुत्व घकार, जश्त्व, चर्त्व । उष्णिक्, उष्णिग् । उष्णिहौ । उष्णिहः । उष्णिग्भ्याम् । उष्णिक्षु ।

वान्त दिव् (स्वर्ग) शब्द--

आगे सु रहते "दिव औत् ७।१।८४/३३६" इससे पुंवत्[1] वकारके औ, द्यौः । दिव्+औ=दिवौ । दिव्+जस्=दिवः । दिव्+सुप्="दिव उत् ६।१।१३१/३३७" इससे पदान्तमें उत्व, द्युषु, सर्वथा सुदिव् (३३६) शब्दवत् रूप होंगे ॥

रेफान्त गिर् (वाणी) शब्द--

'गृ निगरणे' इससे क्विबन्त है इस कारण "र्वोरुपधायाः० ८।२।७६/४३३" इससे दीर्घ, रेफके स्थानमें "खरवसानयोः०" इससे विसर्ग, गीः । गिर्+औ=गिरौ । गिर्+जस्=गिरः । आगे सुप् होते "रोः सुपि ८।३।१६/३३९" इस नियमसे रेफके स्थानमें विसर्गनिषेध, गीर्षु ।

गिर् शब्दके रूप--

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	गीः	गिरौ	गिरः
सं०	हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः
द्वि०	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
च०	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
पं०	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
ष०	गिरः	गिरोः	गिराम्
स०	गिरि	गिरोः	गीर्षु.

(एवं पूः) पुर् (नगरी) शब्दके रूप भी इसी प्रकार होंगे, 'पॄ पालनपूरणयोः' "भ्राजभास०" इससे क्विप्, पूः । पुरौ । पुरः । पूर्षु ।

पुर् शब्दके रूप--

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	पूः	पुरौ	पुरः
सं०	हे पूः	हे पुरौ	हे पुरः
द्वि०	पुरम्	पुरौ	पुरः
तृ०	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
च०	पुरे	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
पं०	पुरः	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
ष०	पुरः	पुरोः	पुराम्
स०	पुरि	पुरोः	पूर्षु.

चतुर् (चार) शब्द--

केवल बहुवचनमें इसके रूप होतेहैं, चतुर्+जस् "त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ७।२।९९/२९८" इससे विभक्ति परे रहते चतुर् शब्दके स्थानमें स्त्रीलिङ्गमें चतसृ आदेश होताहै, चतसृ+जस् ऐसी स्थिति होनेपर, (सि० २९९ में दिखाये अनुसार) गुण (७।३।११०/२०८), दीर्घ (६।१।१०२/१६४), उत्व (६।१।१११/२०९) इनका अपवाद "अचि र ऋतः ७।२।१००/२९९" इससे ऋके स्थानमें रेफादेश, चतस्रः । चतुर्+आम्=चतसृ[1] । 'नुमचिर० (२८०*)' इससे नुडागम, "न तिसृचतसृ ६।४।४/३००" इससे दीर्घनिषेध, चतसृणाम् ।

प्र० सं० द्वि० चतस्रः । तृ० चतसृभिः । च० पं० चतसृभ्यः । ष० चतसृणाम् । स० चतसृषु ॥

किम् (कौन) शब्द--

यह सर्वनाम है, विभक्ति आगे रहते "किमः कः ७।२।१०३/३४२" इससे 'क' आदेश, स्त्रीलिङ्गके कारण 'अजाद्यतष्टाप् ४।१।४/४२४' इससे टाप् (आ) प्रत्यय, आबन्तत्व होनेके कारण सु का

1 यहां "सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः" इससे पुंवद्भाव होताहै ॥

* "नहो धः" इससे प्रक्रियालाघवमूलक 'द्' यह विधान नहीं किया, कारण कि, नद्धा इस स्थलमें झषसे परे तकार न होनेसे, "झषस्तथोर्धोऽधः" इससे धकार न होता ॥

1 चतुर्+जस् ऐसी स्थितिमें "चतुरनडुहोरामुदात्तः ७।१।९८/३३१" से आम् प्राप्त हुआ और "त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ७।२।९९/२९८" से चतसृ आदेश, तहां परत्वके कारण चतसृ आदेश हुआ, फिर आम्की प्राप्ति 'सकृद्गतिन्याय' से न हुई ॥

लोप, का । किम्+औ=के । किम्+जस्=काः । सर्वा(२९१) शब्दकी समान रूप जानने ॥

इदम् (यह) शब्द--

४४१ यः सौ । ७ । २ । ११० ॥

इदमो दस्य यः स्यात्सौ । इदमो मः । इयम् । त्यदाद्यत्वं टाप् । दश्चेति मः । इमे । इमाः । इमाम् । इमे । इमाः । अनया । हलि लोपः । आभ्याम् ३ । आभिः । अस्यै । अस्याः । अनयोः २ । आसाम् । अस्याम् । आसु । अन्वादेशे तु एनाम् । एने । एनाः।एनया।एनयोः२॥ ऋत्विगादिना स्रजेः क्विन् अमागमश्च निपातितः । स्रक् । स्रग् । स्रजौ । स्रजः । स्रग्भ्याम् । स्रक्षु॥ त्यदाद्यत्वं टाप् । स्या । त्ये । त्याः । एवं तद् यद् एतद् ॥ वाक् । वाग् । वाचौ । वाचः । वाग्भ्याम् । वाक्षु ॥ अप्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। अप्तृन्निति दीर्घः । आपः । अपः ॥

४४१--सु परे रहते इदम् शब्दके दकारके स्थानमें यकार हो, इयम्+सु--ऐसी स्थिति हुई,"त्यदादीनाम: ७।२।१०२/२६५" इससे अकारकी प्राप्ति भई परन्तु सु परे रहते "इदमो मः ७।२।१०८/३४३" यह अपवाद है, इयम् । आगे त्यदादित्वके कारण होनेवाला अत्व, पररूप, इद+औ ऐसी स्थिति होते टाप् और "दश्च ७।२।१०९/३४५" इससे दकारके स्थानमें मत्व, इमा+औ ऐसी स्थिति हुई, "औङ आपः ७।१।१८/२७८" इससे औके स्थानमें शी (ई) इमे । आगे 'इदाः' इससे इमाः । इमाम् । इमे । इमाः । आगे 'इद्' इसको "अनाप्यकः ७।२।११२/३४६" और "आङि चापः ७।३।१०५/२८९"इससे अनया । "हलि लोपः ७।२।११३/३४७"आभ्याम् ३ । आभिः । "सर्वनाम्नः स्याड् ढ्रस्वश्च ७।३।११४/२९१" इससे ह्रस्व, इदम्+ङे=अस्यै । इदम्+ङसि=अस्याः । इदम्+ङस्=अस्याः । इदम्+ओस्=अनयोः । इदम्+आम्=आसाम् । इदम्+ङि=अस्याम् । इदम्+सुप्=आसु । अन्वादेशमें इदम्+अम्=एनाम्। इदम्+औ=एने । इदम्+शस्=एनाः। इदम्+टा=एनया। इदम्+ओस्=एनयोः (२।४।३४/३५१)।

इदम् शब्दके रूप--

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	इमाम्,एनाम्	इमे,एने	इमाः,एनाः
तृ०	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
च०	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पं०	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
ष०	अस्याः	अनयोः,एनयोः	आसाम्
स०	अस्याम्	अनयोः, एनयोः	आसु.

जान्त स्रज् (पुष्पमाला) शब्द--

"ऋत्विग्दधृक्० ३।२।५९/३७३" इससे सृज् धातुसे क्विन् और अम् (अ) आगम निपातनसे होकर स्रज् प्रातिपदिक बनाहै * ॥

"चोः कुः ८।२।३०/३७९" से स्रज्+सु=स्रक्,स्रग् । स्रज्+औ=स्रजौ, स्रज्+जस्=स्रजः । स्रज्+भ्याम्=स्रग्भ्याम् । स्रज् + सुप्=स्रक्षु ॥

त्यद् शब्द--

सु विभक्ति परे रहते त्यदाद्यत्व, टाप्, सु आगे रहते "तदोः सः सौ०" इससे तकारके स्थानमें सकार, सुलोप, स्या । त्यद्+औ=त्ये । त्यद्+जस्=त्याः (२९१ सर्ववत्) ।

इसी प्रकारसे तद्,यद्,एतद् इन शब्दोंके रूप जानना चाहिये, उनमें यद्को केवल सकारकी प्राप्ति नहीं,एतद्में तकारके स्थानमें आदेशरूप सकार, इसलिये षत्व (३८१) एतद् शब्द देखो । अन्वादेशमें एनाम्--इत्यादि ।

स्त्रीलिङ्ग तद् शब्दके रूप--

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	ते	ताः
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पं०	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
ष०	तस्याः	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	तयोः	तासु.

यद् शब्दके रूप--

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	या	ये	याः
द्वि०	याम्	ये	याः
तृ०	यया	याभ्याम्	याभिः
च०	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
पं०	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
ष०	यस्याः	ययोः	यासाम्
स०	यस्याम्	ययोः	यासु.

एतद् शब्दके रूप--

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	एषा	एते	एताः .
द्वि०	एताम्, एनाम्	एते, एने	एताः, एनाः
तृ०	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पं०	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
ष०	एतस्याः	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
स०	एतस्याम्	एतयोः, एनयोः	एतासु.

वाच् (वाणी) शब्द--

"चोः कुः" वाक्, वाग् । वाच्+औ=वाचौ । वाच्+जस्=वाचः । वाग्भ्याम् । वाच्+सु=वाक्षु. ।

---

* 'सृज्' धातुको "सृजिदृशोर्झल्यम० ६।१।५८/२४०५" इससे 'अम्' आगम प्राप्त है, परन्तु इसी सूत्रमें 'अकिति' ऐसा कहा है, इससे यहां क्विन्नन्तत्वके कारण वह आगम नहीं होता इसलिये निपातनसे ही आगम लियाहै ॥

वाच् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	वाक्, वाग्	वाचौ	वाचः
सं०	हे वाक्, हे वाग्	हे वाचौ	हे वाचः
द्वि०	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पं०	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष०	वाचः	वाचोः	वाचाम्
स०	वाचि	वाचोः	वाक्षु.

अप् (जल) शब्द–

नित्य बहुवचनान्त है, "अप्तृन्तृच्० ६।४।११/२७७" इससे सर्वनामस्थान परे रहते उपधादीर्घ, आपः । अप्+शस्= असर्वनामस्थानमें दीर्घ नहीं, अपः। आगे भिस् रहते–

४४२ अपो भि । ७ । ४ । ४८ ॥

अपस्तकारः स्याद्भादौ प्रत्यये परे । अद्भिः । अद्भ्यः २ । अपाम् । अप्सु । दिक् । दिग् । दिशौ । दिशः । दिग्भ्याम् । दिक्षु ॥ त्यदादिष्विति दृशेः क्विन्विधानादन्यत्रापि कुत्वम् । दृक् । दृग् । दृशौ । दृशः । त्विट् । त्विड् त्विषौ। त्विषः । त्विड्भ्याम् । त्विट्त्सु । त्विट्सु । सह जुषत इति सजूः । सजुषौ । सजुषः । सजूर्भ्याम् । सजूःषु । सजूष्षु । षत्वस्यासिद्धत्वाद्रुत्वम् । आशीः । आशिषौ । आशिषः । आशीर्भ्याम् । असौ । त्यदाद्यत्वं टाप् । औङः शी । उत्वमत्वे। अमू । अमूः । अमूम् । अमू । अमूः । अमुया । अमूभ्याम् । अमूभिः । अमुष्यै । अमूभ्याम् । अमूभ्यः । अमुष्याः २ । अमुयोः २ । अमूषाम्। अमुष्याम् । अमूषु ॥

॥ इति हलन्ताः स्त्रीलिंगाः ॥

४४२–भकारादि प्रत्यय परे रहते, अप्के पकारके स्थानमें तकार होताहै । ("अच उपसर्गात्तः ७ । ४ । ४८" इस सूत्रसे तकारकी अनुवृत्ति होतीहै) जश्त्व, अद्भिः । अद्भ्यः२। अप्+आम्=अपाम् । अप्सु ।

दिश् (दिशा) शब्द–

'दिश्' धातु "ऋत्विग्दधृक्० ३।२।५९/२७३" इससे क्विन्, ष्, ड्, ग्, क् । दिक्, दिग् । दिश्+औ=दिशौ । दिश्+जस्=दिशः। दिश्+भ्याम्=दिग्भ्याम् । दिश्+सु=दिक्षु।

दृश् (नेत्र) शब्द–

क्विन्नन्त–(त्यदादिषु दृशे) त्यदादि उपपद रहते ही दृश् धातुसे "त्यदादिषु दृशो० ३।२।६०/४२६" इससे क्विन्प्रत्यय होताहै, इस कारण चाहे जब क्विन् प्रत्यय जिसको होताहो इस अर्थमें "क्विन्प्रत्ययस्य०" इसमें बहुव्रीहि समास करके यह क्विन्नन्तधातु प्रत्यक्ष क्विन्नन्त नहीं, तो भी उसको "क्विन्प्रत्ययस्य कुः" इससे कुत्व होताहै, दृक्, दृग् । दृश्+औ=दृशौ । दृशः– इत्यादि सरल रूप हैं ।

त्विष् (कान्ति) शब्द–

पदान्तमें जश्त्व, चर्त्व, त्विष्+सु=त्विट्, त्विड्।त्विष्+औ= त्विषौ । त्विष्+जस्=त्विषः । त्विष्+भ्याम्=त्विड्भ्याम् । त्विष्+सु=धुट्, त्विट्त्सु, त्विट्सु ।

सजुष् शब्द–

(सह जुषते इति सजूः) साथ २ जो रहताहै सो (सहचरी वा सहेली) सुलोप, "ससजुषो रुः ८।२।६६/१६२" इससे ष्के स्थानमें रुत्व, तब 'सजुर्' ऐसी स्थिति रहते "र्वोरुपधायाः० ८।२।७६/४३३" इससे उपधादीर्घ, फिर "खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५/७६" सजूः । सजुष्+औ=सजुषौ । सजुष्+जस्=सजुषः । सजूर्भ्याम् । सजुष्+सु=सजूःषु, सजूष्षु ।

आशिष् (आशीर्वाद) शब्द–

'आङः शासु (आ शास्) इच्छायाम्' (सि० २४४०) इस धातुसे आगे क्विप् है, इसलिये (* आशासः क्वावुपधाया इत्वं वाच्यम् वा० २९८४) इससे उपधाके स्थानमें इकार, इकार होनेके कारण, "शासिवसिघसीनां च ८।३।६०/२४१०" इससे सकारके स्थानमें षत्व होनाचाहिये था, परन्तु वह असिद्ध है, इसलिये "ससजुषो रुः ८।२।६६/१६२" इससे रुत्व, उपधादीर्घ, विसर्ग, आशीः । आगे षत्व, आशिष्+औ= आशिषौ । आशिष्+जस्=आशिषः । पदान्तत्वके कारण रुत्व, दीर्घ, आशिष्+भ्याम्=आशीर्भ्याम् । आशीर्भिः ।

आशिष् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	आशीः	आशिषौ	आशिषः
सं०	हे आशीः	हे आशिषौ	हे आशिषः
द्वि०	आशिषम्	आशिषौ	आशिषः
तृ०	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
च०	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पं०	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
ष०	आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
स०	आशिषि	आशिषोः	आशीः–ष्षु.

अदस् (वह) शब्द–

सु आगे रहते "त्यदादीनामः" इसका अपवाद "अदस औ सुलोपश्च ७।२।१०७/४३७", "तदोः सः सौ० ७।२।१०६/३८१" इससे पुंवत् असौ । आगे औ होते त्यदाद्यत्वके कारण अकारान्तत्व प्राप्त होकर फिर टाप्, अदा+औ=ऐसी स्थिति रहते "औङ आपः ७।१।१८/२८७" इससे औके स्थानमें शी (ई) हुई, 'अदे' ऐसी स्थिति रहते "अदसोऽसेर्दादु दो मः ८।२।८०/४१९" इससे दकारके परेके वर्णको ऊकार (दीर्घस्थानमें दीर्घ), दकारको मकार, अमू । आगे इतर विभक्ति रहते पूर्ववत् आबन्तत्व होकर 'अद' ऐसा अंग और उसको सर्वनामत्व होनेके कारण सर्वा शब्दके समान सब विभक्तियोंमें रूप होंगे, परन्तु "अदसोऽसे०" इससे उत्व, मत्व, विशेष, बहुवचनमें एत्व न होनेसे "एत ईद्बहुवचने ८।२।८१/४३८" यह सूत्र प्राप्त नहीं, अदस्+जस्=अमूः । अदस्+अम्=अमूम् । अदस्+औ=अमू । अदस्+शस्=अमूः । अदस्+टा अवर्णां

ऐसी स्थिति रहते मुत्व (ह्रस्वके स्थानमें ह्रस्व) अमुया। अदस्+भ्याम्=अमूभ्याम् ३। अदस्+भिस् अमूभिः। अदस्+ङे=अमुष्यै। अदस्+भ्यस्=अमूभ्यः। अदस्+ङसि=, ङस्=अमुष्याः २। अदस्+ओस्=अमुयोः २। अदस्+आम्=अमूषाम्, अदस्+ङि=अमुष्याम्। अदस्+सु=अमूषु।

स्त्रीलिङ्ग अदस् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	असौ	अमू	अमूः
द्वि०	अमूम्	अमू	अमूः
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च०	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पं०	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
ष०	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु.

॥ इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

अथ हलन्ता नपुंसकलिंगाः।

स्वमोर्लुक्। दत्वम्। स्वनडुत्। स्वनडुद्। स्वनडुही। चतुरनडुहोरित्याम्। स्वनड्वांहि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्॥ दिव उत्। विमलद्यु अहः। अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पूर्वपदस्येवोत्तरखण्डस्यापि पदसंज्ञायां प्राप्तायामुत्तरपदत्वे चापदादिविधौ प्रतिषेध इति प्रत्ययलक्षणं न। विमलदिवी। विमलदिवि। अपदादिविधौ किम्। दधिसेचौ। इह षत्वनिषेधे कर्तव्ये पदत्वमस्त्येव। कुत्वे तु न॥ वाः। वारी। अझलन्तत्वान्न नुम्। वारि। चत्वारि। न लुमतेति कादेशो न। किम्। के। कानि॥ इदम्। इमे। इमानि॥ अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः॥ *॥ एनत्। एने। एनानि। एनेन। एनयोः २॥ ब्रह्म। ब्रह्मणी। ब्रह्माणि। हे ब्रह्मन्। हे ब्रह्म। रोऽसुपि। अहर्भाति। विभाषा ङिश्योः। अह्नी। अहनी। अहानि॥

हान्त 'स्वनडुह्' (सुन्दर बैल है जिसके) शब्द–

सु आगे होते "स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३/३१९" इससे सुलुक्, "वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ८।२।७२/३३४" इसको पदाधिकारस्थ होनेसे अनडुह् शब्दान्तके भी हकारके स्थानमें दकार, चर्त्व, स्वनडुत्, स्वनडुद्। सम्बोधनमें भी ऐसेही रूप होंगे। स्वनडुह्+औ औके स्थानमें "नपुंसकाच्च ७।१।१९/३१०" इससे शी (ई) स्वनडुही। स्वनडुह्+जस् इसमें "जश्शसोः शिः ७।१।२०/३१२" और "शि सर्वनामस्थानम् १।१।४२/३१३" इससे जस्के स्थानमें सर्वनामस्थानसंज्ञक शि (इ), सर्वनामस्थान आगे है इसलिये "चतुरनडुहोराम्० ७।१।९८/३३१" इससे आम् (आ), स्वनडुआह्+इ ऐसी स्थिति हुई, "नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२/३३५" इससे आगे सर्वनामस्थान होनेके कारण नुम् (न्) स्वनड्वान्ह्+इ ऐसी स्थिति हुई, फिर "नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४/१३३" इससे नकारके स्थानमें अनुस्वार, स्वनड्वांहि। फिर इसी प्रकार और सब रूप पुंवत् जानने (अनडुह् (३३४) शब्दके समान)।

विमलदिव् (निर्मल है आकाश जिस दिनमें ऐसा) शब्द—

"स्वमोर्नपुंसकात्", "दिव उत् ६।१।१३१/३३७" पदान्तत्वके कारण उत्व, विमलद्यु अहः (निरभ्र दिन)। (अन्तर्वर्तिनीमिति) औस्थानिक शी (ई) प्रत्यय परे रहते, शब्दकी मूल (आदि) स्थिति विमलसु दिव्+सु+शी ऐसी है और समासशास्त्रके कारण "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः ६।४।७१/६५०" इससे सु का लुक् होगया है, इसलिये इस अन्तर्गत विभक्तिको प्रत्ययलक्षण करके, जैसे राजपुरुष यहां पूर्वपदको प्रत्ययलक्षणसे पदत्व होकर नलोप होताहै वैसेही 'दिव्' इस उत्तर खण्डको भी पदत्व होकर "दिव उत्" इस सूत्रका कार्य होना चाहिये था, परन्तु *(उत्तरपदत्वे इति) 'उत्तरखण्डके आदिको छोड इतर वर्णको कोई विधान कर्तव्य हो तो वहां प्रत्ययलोपमें प्रत्ययलक्षण नहीं, अर्थात् पदत्व नहीं' ऐसा वचन होनेके कारण यहां दिव्को पदत्व नहीं इस कारण 'दिव उत्' इसकी प्राप्ति भी नहीं, विमलदिवी। आगे शि (इ) सर्वनामस्थान होते 'विमलदिव्' इसमें झलन्तत्व न होनेसे "नपुंसकस्य झलचः" इस सूत्रकी प्राप्ति नहीं अर्थात् नुमागम नहीं, विमलदिवि। फिर भी उसी प्रकार तृतीयादिमें सुदिव् (३३७) शब्दकी समान रूप होंगे।

(अपदादिविधौ किम्) पदके आदि वर्णको छोड इतर वर्णको विधान होते ऐसा क्यों कहा ? तो पदके आदिवर्णको विधान होते प्रत्ययलक्षण होताहै इससे पदत्व सिद्ध होताहै सो नहीं होता, जैसे 'दधिसेचौ' इसमें दधि और सेच् यह शब्द समस्त हैं, और 'सेच्' इसमेंके आदिवर्ण (स) को इणपूर्वत्व होनेके कारण षत्व प्राप्त होताहै परन्तु "सात्पदाद्योः ८।३।१११/२१२" इससे षत्वनिषेध होताहै, अत एव कहतेहैं कि, (इह षत्वेति) यहां आदि सकारको षत्वनिषेध यह कार्य है, इसलिये पदत्व है ही, परन्तु दधिसेच्+औ=इसके चकारको "चोः कुः" इससे जो कुत्व प्राप्त है वह सेच्मेंके आदि वर्णको न होनेसे सेच् इसको पदत्वनिषेध है, पदत्व नहीं तो कुत्व भी नहीं ऐसा जानना चाहिये।

वार् (जल) शब्द–

स्वमोर्लुक् "खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५/७६" इससे

---

१ दध्नः सेचौ–'दधिसेचौ' ऐसा षष्ठीसमास है, उपपदसमास तो 'गतिकारकोपपदानाम्०' इस करके सुबुत्पत्तिके पहले ही होताहै, तो उस समासमें 'सेच्' इसको पद संज्ञा नहीं, इसलिये सेच्के सकारको पदादित्व भी नहीं होता, [illegible] उपपदसमासमें पदादित्व न होनेसे षत्व होजायगा, सो ठीक नहीं 'सात्पदाद्योः' इसमें पदादि इस अंशमें पदात्–आदिः–पदादिः (पदसे परे हो और किसीका आदि हो) ऐसे समासका आश्रय कर इस पक्षमें भी दोष नहीं॥

विसर्ग, वाः । वार्+औ=वारी । आगे झलन्त न होनेसे नुम् नहीं, वारि । फिर उसीप्रकार ।

वार् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	वाः	वारी	वारि
सं०	हे वाः	हे वारी	हे वारि
द्वि०	वाः	वारी	वारि
तृ०	वारा	वार्भ्याम्	वार्भिः
च०	वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
पं०	वारः	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
ष०	वारः	वारोः	वाराम्
स०	वारि	वारोः	वार्षु.

चतुर् (चार) शब्द–

यह नित्य वहुवचनान्त है । चतुर्+जस् ऐसी स्थिति होते शि (इ) और उसे सर्वनामस्थान संज्ञा, "चतुरनडुहोराम्० ७।१।९८/३३१" इससे आम् (आ) चत्वार्+इ ऐसी स्थिति हुई, झलन्त न होनेसे नुम् नहीं हुआ, चत्वारि । फिर उसी प्रकार ।

प्र० सं० द्वि० चत्वारि । तृ० चतुर्भिः । च० पं० चतुर्भ्यः । ष० चतुर्णाम् । स० चतुर्षु ।

किम् (क्या) शब्द–

आगे सु होते "किमः कः ७।२।१०२/३४२" इससे 'क' आदेश होना चाहिये था, परन्तु "स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३/३१९" इससे पहले सुलुक् हुआ है इसलिये "न लुमताङ्गस्य १।१।६३/२६३" इससे प्रत्ययलक्षणनिषेध है, इससे कादेश नहीं होता, किम् । आगे 'शी' होते "किमः कः" गुण, के । आगे फिर कादेश शि (इ) सर्वनामस्थान होते अजन्तत्वके कारण "नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२/३१४" इससे नुम्, कन्+इ ऐसी स्थिति होते, नान्तत्वके कारण "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८/२५०" इससे उपधादीर्घ, कानि । आगे इसी प्रकार । तृतीयादिके (३४२) पुंवत् रूप होंगे ।

इदम् (यह) शब्द–

इदम्+सु–"स्वमोर्नपुंसकात्" इससे लुक्, पूर्ववत् प्रत्ययलक्षणाभाव, इसलिये त्यदाद्यत्व (७।२।१०२/२६५) नहीं, इदम् । आगे शी (ई) होते त्यदाद्यत्व और "दश्च ७।२।१०९/३४५" से म, इमे । फिर इदम्+शि–त्यदाद्यत्व मत्व, नुम् और उपधादीर्घ, इमानि । फिर इसी प्रकार तृतीयादिमें (३४२ पुंवत्) । (अन्वादेशे नपुंसके० वा० १५६९) * इदम् और एतत् शब्दोंको अन्वादेशमें नपुंसकमें 'एनद्' आदेश हो । अमलुक्, एनत्, एनद् । आगे त्यदाद्यत्वके कारण अकारान्तत्व प्राप्त होकर ज्ञानशब्दके समान रूप ऐसा जानना चाहिये (सि० ३१४) एने । एनानि । एनेन । एनयोः२ ।

इदम् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	इदम्	इमे	इमानि
द्वि०	इदम्, एनत्–द्	इमे, एने	इमानि, एनानि
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पं०	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
ष०	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु.

नान्त ब्रह्मन् शब्द–

'स्वमोर्लुक्' "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७/२३६" ब्रह्म । "सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः ३६८" * इस वार्तिकके अनुसार विकल्प करके नलोप; हे ब्रह्मन्, हे ब्रह्म । ब्रह्मणी, यहां "न संयोगाद्वमन्तात् ६।४।१३७/३५५" इस निषेध होनेके कारण "विभाषा ङिश्योः ६।४।१३६/२३७" से वैकल्पिक अल्लोप नहीं । आगे नान्तत्वके कारण उपधादीर्घ, ब्रह्माणि । फिर इसी प्रकार । तृतीयादिमें पुँल्लिङ्गके समान रूप होंगे (३५५) ।

अहन् (दिवस) शब्द–

'स्वमोर्लुक्' प्रत्ययलक्षण नहीं, तो विभक्तिका अभाव होनेके कारण "रोः सुपि ८।२।६९/१७२" इससे रेफादेश, विसर्ग, अहः । यह रेफ रुस्थानका नहीं, इसलिये "हशि च ६।१।११४/१६६" इसकी प्राप्ति नहीं, अर्थात् रेफको उत्व न हुआ, अहर्भाति (दिन प्रकाश होताहै) आगे 'शी' होते "विभाषा ङिश्योः ६।४।१३६/२३७" इससे अन्में के अकारका विकल्प करके लोप हुआ, अह्नी, अहनी । उपधादीर्घ, अहानि । पुनस्तद्वत् । आगे "अल्लोपोऽनः ६।४।१३४/२३४" इससे अन्में के अकारका लोप, अह्ना ॥

४४३ अहन् । ८ । २ । ६८ ॥

अहन्नित्यस्य रुः स्यात्पदान्ते । अहोभ्याम् । अहोभिः । इह अहः अहोभ्यामित्यादौ रत्वरुत्वयोरसिद्धत्वान्नलोपे प्राप्ते अहन्नित्यावर्त्य नलोपाभावं निपात्य द्वितीयेन रुर्विधेयः ॥ तदन्तस्यापि रुत्वरत्वे । दीर्घाण्यहानि यस्मिन् स दीर्घाहा निदाघः । इह हल्ङ्याब्भ्यादिलोपे प्रत्ययलक्षणेनाऽसुपीतिनिषेधाद्रत्वाभावे रुस्तस्यासिद्धत्वान्नान्तलक्षण उपधादीर्घः । संबुद्धौ तु हे दीर्घाहो निदाघ । दीर्घाहाणौ । दीर्घाहानः । दीर्घाह्णा । दीर्घाहोभ्याम् ॥ दण्डि । दण्डिनी । दण्डीनि ॥ स्रग्वि । स्रग्विणी । स्रग्वीणि ॥ वाग्मि । वाग्मिनी । वाग्मीनि ॥ बहुवृत्रहाणि । बहुपूषाणि । बह्वर्यमाणि ॥ असृजः पदान्ते कुत्वम् । सृजेः क्विनो विधानात् । विश्वसृडादौ तु न । सृजिदृशोरितिसूत्रे रज्जुसृड्भ्यामिति भाष्यप्रयोगात् । यद्वा व्रश्चादिसूत्रे सृजियजोः पदान्ते षत्वं कुत्वापवादः । स्रगृत्विकशब्दयोस्तु निपातनादेव कुत्वम् । असृक्शब्दस्तु अस्यतेरौणादिके ऋजुप्रत्यये बोध्यः । असृक् । असृग् । असृजी । असृञ्जि । पद्दन्निति वा असन् । असा । असृजा । अस्ना । असृग्भ्याम् । असभ्यानि ॥ ऊर्क् । ऊर्ग् । ऊर्जी । ऊर्न्जि । न-मित्यादि ॥

रजनां संयोगः ॥ बहूर्जि नुम्प्रतिषेधः । अन्त्यात्पूर्वो वा नुम् ॥ * ॥ बहूर्जि । बहूंर्जि वा कुलानि ॥ त्यत् । त्यद् । त्ये । त्यानि ॥ तत् । तद् । ते । तानि ॥ यत् । यद् । ये । यानि ॥ एतत् । एतद् । एते । एतानि । अन्वादेशे तु एनत् ॥ बेभिद्यतेः क्विप् । बेभित् । बेभिद् । बेभिदी । शावल्लोपस्य स्थानिवत्त्वादझलन्तत्वान्न नुम् । अजन्तलक्षणस्तु नुम्न स्वविधौ स्थानिवत्त्वाभावात् । बेभिदि ब्राह्मणकुलानि । चेछिदि ।

गवाक्शब्दस्य रूपाणि क्लीबेऽर्चागतिभेदतः ।
असंध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाधिकशतं मतम् ॥
स्वमसुप्सु नव षड् भादौ षट्के स्युस्त्रीणि जश्शसोः ।
चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय ॥ २ ॥

तथाहि । गामञ्चतीति विग्रहे । ऋत्विगादिना क्विन् । गतौ नलोपः । अवङ् स्फोटायनस्येत्यवङ् । गवाक् । गवाग् । सर्वत्र विभाषेति प्रकृतिभावे । गोअक् । गोअग् । पूर्वरूपे । गोक् । गोग् । पूजायां नस्य कुत्वेन ङः । गवाङ् । गोअङ् । गोङ् । अम्यपि एतान्येव नव । औङः शी । भस्यादच इत्यलोपः । गोची । पूजायां तु । गवाञ्ची । गोअञ्ची । गोञ्ची । जश्शसोः शिः । शेः सर्वनामस्थानत्वान्नुम् । गवाञ्चि । गोअञ्चि । गोञ्चि । गतिपूजनयोस्त्रीण्येव । गोचा । गवाञ्चा । गोअञ्चा । गोञ्चा । गवाग्भ्याम् ॥ गोअग्भ्याम् । गोग्भ्याम् । गवाङ्भ्याम् । गोअङ्भ्याम् । गोङ्भ्याम् । इत्यादि ॥ सुपि तु ङान्तानां पक्षे ङ्णोः कुक्टुगिति कुक् । गवाङ्क्षु । गोअङ्क्षु । गोङ्क्षु । गवाङ्षु । गोअङ्षु । गोङ्षु । गवाक्षु । गोअक्षु । गोक्षु । न चेह चयो द्वितीया इति पक्षे ककारस्य खकारेण षण्णामाधिक्यं शङ्क्यम् । चर्त्वस्यासिद्धत्वात् । कुक्पक्षे तु तस्यासिद्धत्वाज्जश्त्वाभावपक्षे चयो द्वितीयादेशास्त्रीणि रूपाणि वर्धन्त एव ॥

ङ्ङमेषां द्विर्वचनानुनासिकविकल्पनात् ।
रूपाण्यश्वाक्षिभूतानि (५२७) भवन्तीति मनीषिभिः ॥ १ ॥

तिर्यक् । तिरश्ची । तिर्यञ्चि । पूजायां तु । तिर्यङ् । तिर्यञ्ची । तिर्यञ्चि ॥ यकृत् । यकृती । यकृन्ति । पद्न्निति वा यकन् । यकानि । यक्ना । यकृता ॥ शकृत् । शकृती । शकृन्ति । शकानि । शक्ना । शकृता ॥ ददत् । ददती ॥

४४३-पदान्तमें 'अहन्' इसको 'रु' हो, " हशि च " इससे उत्व, गुण, अहोभ्याम् । अहोभिः । (इहेति) इस शब्दके अहः और अहोभ्याम्-इत्यादि रूपोंमें रत्व ८।२।६०/१७२" और रुत्व ८।२।६८/४४३ यह दोनों असिद्ध हैं, इस कारण "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७/२३६" इसकी प्राप्ति होतीहै, तो यहां क्या युक्ति करनी चाहिये जिससे नलोप न होवे ? तो कहतेहैं कि, "अहन्" इस सूत्रकी आवृत्ति[1] करैं अर्थात् उसे दो वार लें और प्रथम "अहन्" का अर्थ 'अहन्' ऐसा निपातन हो अर्थात् अहन् ऐसा नान्त शब्द ही स्थिर रहे उसके नकारका कहीं भी लोप नहीं हो, ऐसा अर्थ समझना चाहिये। फिर दूसरे 'अहन्' इस सूत्रसे नकारके स्थानमें रुत्व कर दो, बस होगया, ऐसी युक्तिसे नलोप सूत्रका कुछ न चलेगा, वह सूत्र मानो है ही नहीं, ऐसा होगा। अहः इसमें 'अहन्' इसका अगला सूत्र "रोः सुपि ८।२।६९/१७२" इस अपवादका ही कार्य होगा इससे वहां भी वही युक्ति ।

अहन् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
सं०	हे अहः	हे अह्नी, अहनी	हे अहानि
द्वि०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
च०	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पं०	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
ष०	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
स०	अह्नि, अहनि, अह्नोः		अहःसु-स्सु.

(तदन्तस्यापीति) इस सूत्रको पदाधिकारमेंका होनेसे 'पदाङ्गाधिकारे०' इस परिभाषासे तदन्त शब्दको भी रत्व, रुत्व; ' दीर्घाहन् ' ऐसा नपुंसक शब्द होते, दीर्घाहः । दीर्घाहोभ्याम् । ऐसेही रूप होंगे । अन्यलिङ्ग तदन्त शब्दोंमें भी रत्व प्राप्त है, परन्तु ' असुपि ' इस निषेधके कारण रत्व न होते, रुत्व ही होताहै, देखो ' दीर्घाणि अहानि यस्मिन्' (दीर्घ हैं दिवस जिसमें सो) ऐसा अर्थ होते ' दीर्घाहन् ' इस पुँल्लिङ्ग शब्दके प्रथमाके एकवचनमें 'दीर्घाहाः निदाघः' (ग्रीष्म); (इह हल्ङ्यादि०) परन्तु यहां सुलुक् नहीं पुँल्लिङ्ग होनेसे "हल्ङ्याप्०" इससे सुलोप है इसलिये प्रत्ययलक्षण कार्य है ही इस कारण " रोऽसुपि ८।२।६९/१७२ " इसकी प्राप्ति नहीं अर्थात् रेफ नहीं किन्तु प्रत्ययलक्षण करके पदत्व लाकर ' अहन् ' इस सूत्रसे प्रथमामें भी न्‌के स्थानमें रुत्व पाया परन्तु वह असिद्ध है अर्थात् " सर्वनामस्थाने० ६।४।८/२५० " यह नकार ही दीखताहै इसलिये उपधादीर्घ हुआ है, आगे विसर्ग ।

(सम्बुद्धौ तु) परन्तु सम्बोधनमें सम्बुद्धिके कारण उपधादीर्घ नहीं, हे दीर्घाहो निदाघ । दीर्घाहाणौ । दीर्घाहाणः ।

---

१ नलोपाभावबोधक "अहन्" इस सूत्रकी आवृत्तिमें क्या प्रमाण है सो कहतेहैं "रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम् १७२" यह वार्तिक प्रमाण है, नहीं तो रुत्व वा रेफादेशमें कोई फरक नहीं होगा, कारण कि, नकारका लोप करनेपर हकारोत्तर अकारको आदेश करनेपर हकार हल् होजायगा, तो हल्से परे रकारको कोई सन्धि न होगी ।

दीर्घाह्ना । रुत्व, दीर्घाहोभ्याम् । यहां " प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च ८।४।११/१०५५ " इससे प्रातिपदिकान्त होनेके कारण णकार विकल्प, दीर्घाहाणौ । दीर्घाहानः । दीर्घाह्नः । दीर्घाहा-इत्यादि * ॥

दण्डिन् शब्द–' स्वमोर्लुक्' " नलोपः०" इससे नलोप, दण्डिन्+सु=दण्डि । दण्डिन्+औ=दण्डिनौ । दण्डिन्+जस्=दण्डीनि । सर्वनामस्थान आगे है इससे जसमें उपधादीर्घ हुआ, पुनरुक्तवत्, तृतीयादिमें पुँल्लिङ्गके समान रूप होंगे(३५९शार्ङ्गिन् शब्द देखो) केवल णत्वमात्र नहीं ।

इसी प्रकार स्रग्विन् (मालाधारी) शब्द–

स्रग्विन्+सु=स्रग्वि । स्रग्विन्+औ=स्रग्विणी । स्रग्विन्+जस्=स्रग्वीणि–इत्यादि ।

इसी प्रकार 'वाग्मिन्' (बोलनेवाला) शब्द–

वाग्मि । वाग्मिनी । वाग्मीनि–इत्यादि ।

बहुवृत्रहन् (बहुत इन्द्र हैं जिसमें वह) शब्द–

'स्वमोर्लुक्', "इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ६।४।१२/३५६" इससे केवल 'शी' ही आगे हो तो उपधादीर्घ होता है इसलिये यहां दीर्घ नहीं, लुलुक् है इसलिये "सौ च ६।४।१३/३५७" इसकी भी प्रवृत्ति नहीं, "न लोपः० ८।२।७/२३६"बहुवृत्रह । आगे द्विवचनमें "विभाषा ङिश्योः ६।४।१३६/२३७" इससे विकल्प करके अल्लोप । बहुवृत्रघ्नी, बहुवृत्रहणी । उपधादीर्घ, बहुवृत्रहाणि । पुनरुक्तवत् । तृतीयादिमें पुँल्लिङ्ग वृत्रहन् शब्द (३५९) की समान रूप होंगे ।

इसी प्रकारसे 'बहुपूषन्' शब्द–

बहुपूषन्+सु=बहुपूष । बहुपूषन्+औ=बहुपूष्णी, बहुपूषणी । बहुपूषाणि–इत्यादि ।

इसी प्रकारसे बह्वर्यमन् शब्द–

बह्वर्यम । बह्वर्यम्णी, बह्वर्यमणी । बह्वर्यमाणि–इत्यादि ।

असृज् (रक्त) यह रूढि शब्द है–

"ऋत्विग्दधृ०" इससे 'सृज्'धातुसे परे क्विन्प्रत्यय कहाहुआ है, इसलिये असृज् इसको पदान्तमें कुत्व होताहै परन्तु भाष्यकारने "सृजिदृशो० ६।१।५८/२४०५" इस सूत्रके व्याख्यानमें 'रज्जुसृड्भ्याम्' ऐसा जो प्रयोग किया है उसमें रज्जुसृज् शब्दको "व्रश्चभ्रस्ज०"इससे षत्व ही कियाहुआ स्पष्ट दीखता है, इससे भाष्यकारका अभिप्राय है कि अनव्यय पूर्वपद रहनेसे षत्वही होताहै इससे विश्वसृज्, देवेज् इत्यादि सामासिक यौगिक (अन्वर्थक) शब्दोंमें षत्व ही होताहै कुत्व नहीं (वि० ३७८) ।

(यद्वेति) अथवा अन्यप्रकारसे ऐसी सिद्धि होगी, सृज्, यज् इनको "व्रश्चभ्रस्ज० ८।२।३६/२९४" इस सूत्रमें जो षत्व कहाहुआ है वह "क्विन्प्रत्यय० ३।२।५९/३७७" होनेवाले कुत्वका अपवाद जानना चाहिये, स्रज् (४४१) और ऋत्विज् (३८०) इन शब्दोंमें "ऋत्विग्दधृक्स्रक्० ३।२।५९/३७३"इस सूत्रसे निपातनकरके ही कुत्व सिद्ध है, इस लिये उनको कुत्वमात्र करना चाहिये, (असृगिति०) तो फिर इस रीतिसे असृज् इस तद्व्यतिरिक्तशब्दको कुत्व कैसा, तो असृज् शब्द सृज् धातुसे न लेते 'असु (अस्) क्षेपणे' इस दिवादि धातुके परे "उणादयो बहु० ३।३।१/३१६९" इससे 'ऋज्' प्रत्ययकी कल्पना करके वह सिद्ध कर लेनेसे कार्य बनगया, केवल " चोः कुः " इससे कुत्व । असृक्, असृग् । असृजी । "नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२/३१४" इससे नुम्, असृञ्जि । "पद्दन्० ६।१।६३/२२८" इससे शसादि प्रत्यय परे रहते विकल्प करके 'असन्' आदेश, असानि । असृजा, अस्ना । असृग्भ्याम्, असभ्याम्–इत्यादि ।

असृज् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	असृक्–ग्	असृजी	असृञ्जि
सं०	हे असृक्–ग्	हे असृजी	हे असृञ्जि
द्वि०	असृक्–ग्	असृजी	असानि असृञ्जि
तृ०	अस्ना, असृजा	असभ्याम्, असृग्भ्याम्	असभिः, असृग्भिः
च०	अस्ने, असृजे	असभ्याम्, असृग्भ्याम्	असभ्यः, असृग्भ्यः
पं०	अस्नः, असृजः	असभ्याम्, असृग्भ्याम्	असभ्यः, असृग्भ्यः
ष०	अस्नः, असृजः	अस्नोः, असृजोः	अस्नाम्, असृजाम्
स०	अस्नि, असनि, असृजि,	अस्नोः, असृजोः	असत्सु, असृक्षु.

उर्ज् (बल) शब्द–

'स्वमोर्लुक्', ऊर्ज्में संयोगान्तलोप प्राप्त है पर रेफके परे

---

* 'एकाह' इत्यादि शब्द तत्पुरुष समास होनेके कारण "राजाहः सखिभ्यष्टच् ५।४।९१/७८८" इससे टच् (अ) प्रत्ययान्त, और "रात्राह्नाहाः पुंसि २।४।२९/८१४" इससे उनको पुंस्त्व है, इस कारण राम शब्दके ऐसे रूप होंगे ॥

१ 'रज्जुसृड्भ्याम्' यहांपर 'भ्याम्' प्रत्यय झलादि और अकित् है, तो "सृजिदृशोर्झल्यमकिति ६ । १ । ५८" इस सूत्रसे 'अम्' होकर 'रज्जुस्रड्भ्याम्' ऐसा क्यों नहीं होता ? तहां कहतेहैं कि, अम्विधायक सूत्रमें सृज् यह धातु है इस कारण 'धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानम्' इससे भ्याम्को धातुप्रत्यय न होनेसे अम् न हुआ, यदि यह कहो कि, "अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ६ । १।५९ " इसमें धातुके स्वरूपका ग्रहण नहीं है, तो विकल्प करके अम् होनाचाहिये सो भी ठीक नहीं, 'धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यय एव' ऐसा नियम है, (ऐसा भाष्यमें कहा हुआ है) ॥

१ सन्देह यह है कि, 'रज्जुसृड्भ्याम्' इस भाष्यप्रयोगसे अनव्यय पूर्व पद रहते षत्व ही हो ऐसा स्पष्ट मालूम होताहै तो भी "उपयट्काम्यति" "उपसृट्काम्यति" इन प्रयोगोंमें षत्व ही देखतहैं इसलिये कहते हैं यद्वेति ॥

२ सारांश यह कि, यहां थोडासा मतभेद है अर्थात् असृज्वर्ज सृजन्त यजन्त सब शब्दोंको पदान्तमें षत्वही होताहै ऐसा कौमुदीकारका अभिप्राय दीखताहै, प्राचीन ग्रंथकारोंके मतसे रज्जुसृज् शब्दके सजातीय होनेके कारण द्रव्यवाचक पूर्वपदघटित समासमें ही सृज्, यज् इनको पदान्तमें षत्व होताहै और अव्ययपूर्वपदघटितोंको कुत्व होताहै, परन्तु इस समय हमको कौमुदीकाका मत प्राह्य है यह स्पष्ट है ॥

सकार नहीं, इसलिये "रात्सस्य ८।२।४२/२८०" इस नियमसे जकारका लोप न हुआ, "चोः कुः" और चर्त्व हुआ, ऊर्क्, ऊर्ग्। ऊर्जी ।। ऊर्ज+जस्=ऊन्र्जि । इसमें क्रमसे नकार, रेफ और जकार इनका संयोग है इसमें भी झल् परे न होनेसे नकारको अनुस्वार (८।३।२४/१२३) नहीं होता । तृतीयादिके रूप पुँल्लिङ्गके रूप (३८०) की समान ।

ऊर्ज् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	ऊर्क्, ऊर्ग्	ऊर्जी	ऊन्र्जि
सं०	हे ऊर्क्, हे ऊर्ग्	हे ऊर्जी	हे ऊन्र्जि
द्वि०	ऊर्क्, ऊर्ग्	ऊर्जी	ऊन्र्जि
तृ०	ऊर्जा	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भिः
च०	ऊर्जे	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भ्यः
पं०	ऊर्जः	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भ्यः
ष०	ऊर्जः	ऊर्जोः	ऊर्जाम्
स०	ऊर्जि	ऊर्जोः	ऊर्क्षु.

बहूर्ज् (बहुत बली) शब्द-

(बहूर्जि नुम्प्रतिषेधः वा० ४३३१) आगे शि रहते 'बहूर्ज्' शब्दको नुम् नहीं हो बहूर्जि । (अन्त्यात्पूर्वो वा नुम् । ४३३२ वा०) अथवा अन्त्यवर्णके पहले विकल्प करके नुम् हो । अनुस्वार, परसवर्ण,बहूर्जि बहूर्ञ्जि वा कुलानि (बडे बलवान् घराने) इतर सब रूप ऊर्जशब्दके समान ।

त्यद् शब्द-

नित्यत्वसे "स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३/३१९" पहले, इसलिये आगे विभक्ति न होनेसे फिर "तदोः सः सौ० ७।२।१०६/३८१" और "त्यदाद्यत्व (७।२।१०२/२६५) यह होतेही नहीं, त्यत्, त्यद् । आगे शी रहते त्यदाद्यत्व, गुण, त्ये । पुनः त्यदाद्यत्व, सर्वनामस्थान आगे है इस कारण "नपुंसकस्य झलचः" इससे नुम्, नान्त होनेसे उपधादीर्घ, त्यानि । फिर उसीप्रकार । शेष रूप (३८१) पुंवत् ।

इसी प्रकार तद् शब्द-

तत् ,तद् । ते । तानि। पुनस्तद्वत् । तृतीयादिमें पुंवत् (३८१)

इसी प्रकार यद् शब्द-

यत्, यद् । ये । यानि । पुनस्तद्वत् । तृतीयादिमें पुंवत् (३८१) ।

इसी प्रकार एतद् शब्द-

पूर्ववत् तकार दकारके स्थानमें सकाराभाव है इसलिये पुँल्लिङ्गमें और स्त्रीलिङ्गमें जैसे सत्व षत्व होतेहैं वैसे यहां नहीं, एतत्, एतद् । एते । एतानि । पुनस्तद्वत् । तृतीयादिमें पुंवत् (३८१) (अन्वादेशे तु एनत्) इदम् शब्दपरका वार्तिक देखो।

एतद् शब्दके रूप-

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	एतत्, एतद्	एते	एतानि
द्वि०	एतत्, एतद्, एनत्	एते, एने	एतानि, एनानि
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पं०	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष०	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु.

बेभिद् (फिर २ तोडनेवाला) शब्द-

(बेभिद्यतेः क्विप्) भिद् धातुके परे पौनःपुन्य अर्थमें अथवा अतिशयार्थमें "धातोरेकाचो० ३।१।२२/२६२९" इससे यङ् (य) प्रत्यय होकर द्वित्वादिकार्य होकर, 'बेभिद्यते' (फिर २ किंवा अतिशय करके फोडताहै) ऐसा जो क्रियापद होताहै उसमेंका 'बेभिद्य' ऐसा जो धातु उससे क्विप्, और "यस्य हलः ६।४।४९/२६३१" इससे यलोप, "अतो लोपः ६।४।४८/२३०८" इससे अलोप तब 'बेभिद्' ऐसा प्रातिपदिक बना, यह शत्रन्त नहीं है, बेभित्, बेभिद् । बेभिदी । शि परे रहते "नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२/३१४" इससे नुम् होना चाहिये था, परन्तु यहां अलोपको स्थानिवद्भाव करके अझलन्त होनेसे नुम् नहीं, तो भी अजन्त शब्द है नुम् होना चाहिये, वैसा भी नहीं होता, कारण कि, "अचः परस्मिन्पूर्वविधौ १।१।५७/५०" इससे स्थानी अच्से पूर्व वर्णको कुछ विधि कर्तव्य हो तो स्थानिवद्भाव होताहै, परन्तु यहां तो स्थानी अकारको ही नुमागमकी प्राप्ति है, इसलिये स्थानिवद्भाव नहीं, नुमागम भी नहीं, 'बेभिदी ब्राह्मणकुलानि' (पुनः २ अथवा अतिशय करके फोडनेवाले ब्राह्मणकुल) पुनस्तद्वत्, आगे सरल रूप ।

इसी प्रकारसे 'छिद्' धातुसे बनेहुए 'चेच्छिद्यते' इस यङन्त क्रियापदका जो धातु 'चेच्छिद्य' उससे क्विप् होकर चेच्छिद् (फिर २ छेदनेवाला) ऐसा जो प्रातिपदिक उसके भी रूप बेभिद्के समान ही जानने चाहियें । चेच्छिद् । चेच्छिदी । चेच्छिदि-इत्यादि ॥

गवाञ्च् शब्द-

(गवाक्शब्दस्येति) अर्चा (पूजा) और गति यह दो भेद होनेके कारण नपुंसकमें 'गवाञ्च्' शब्दके रूप असन्धि, अवङ्, पूर्वरूप, इनके योगसे १०९ एकसौ नौ माने गये हैं उनमें सु, अम्, सुप्, इन प्रत्ययोंको नौ नौ अर्थात् नौतियां सत्ताईस, भादि छः प्रत्ययोंमें प्रत्येकमें छः २ अर्थात् छत्तीस, जस्, शस्, इनमें तीन २ मिलकर छः, और इतर दश विभक्तियोंमें चार २ मिलकर चालीस, इसका अर्थविस्तार-

(तथाहि-) वह इस प्रकारसे 'गाम् अञ्चति' (अञ्चु गतिपूजनयोः) ऐसे विग्रहमें "ऋत्विग्दधृक्० " इससे क्विन्

---

१ किसी राजाकी सभामें किसी पण्डितने-

"जाग्रन्ते नव सौ तथाऽमि च नव भ्यांभिस्भ्यसां सप्तमे । षट्संख्यानि नवैव सुप्यथ जसि त्रीण्येव तद्वच्छसि ॥ चत्वार्यन्यवचस्सु कस्य विबुधाः शब्दस्य रूपाणि त- ज्जानन्तु प्रतिभाऽस्ति चेन्निगदितु षाण्मासिकोऽत्रावधिः ॥"

(अर्थात् सु में नौ रूप होतेहैं और अम्में भी नौ रूप होतेहैं, भ्याम् भिस् भ्यस् इनमें छः २ रूप होतेहैं, सुप्में नौ, जस्में तीन, और शस्में तीन. और [illegible] होतेहैं. सो हे पण्डितलोगो ! [illegible] कौन शब्द है जिसके [illegible] रूप होतेहैं, यह [illegible] शक्ति है तो छः महीनेकी अवधि [illegible]) ऐसा [illegible] कियाथा. उसका उत्तर किसी पण्डितने इन [illegible] श्लोकोंमें दियाथा॥

हुआ उसमें अञ्चु धातुके गति अर्थमें नकारका लोप हुआ, तब गो + अच् ऐसी स्थिति हुई, 'स्वमोर्लुक्', समासके कारण 'गो' को पदत्व है और अच् परे होते "अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।१२३/८८" इससे अवङ् (अव) गव+अच् इसका 'गवाच्' होकर "चोः कुः" इससे गवाक्, गवाग् । "सर्वत्र विभाषा गोः ६।१।१२२/८७" इससे विकल्प करके प्रकृतिभाव, कुत्व, (बार बार कहनेका प्रयोजन नहीं) गो--अक्, गोअग् । (पूर्वरूपे) "एङः पदान्तादति ६।१।१०९/८६" इससे पूर्वरूप हुआ, गोक्, गोग् । (पूजायां नस्य कुत्वेन ङः) जब अञ्चु धातुका अर्थ पूजा हो तब "नाञ्चेः पूजायाम्" इससे नकारके लोपका निषेध होताहै इसलिये संयोगान्तलोप, "क्विन्प्रत्ययस्य कुः" इससे नकारके स्थानमें ङकार, गवाङ्, गोअङ्, गोङ् । इस प्रकारसे 'सु' प्रत्ययके नौ रूप होतेहैं, 'अम्' प्रत्ययमें भी यही नौ रूप । औङ्के स्थानमें होनेवाली शी (ई) के पहलेको भत्व होनेसे "अचः ६।४।१३८/४१६" इससे अलोप, गोची । पूजा अर्थ होते नलोप नहीं, अलोप नहीं, पूर्ववत् अवङ्, प्रकृतिभाव और पूर्वरूप, गवाञ्ची, गोअञ्ची, गोञ्ची । जस्, शस्, इनके स्थानोंमें जो 'शि' वह सर्वनामस्थान है इससे "नपुंसकस्य झलचः" इससे नुम्, पूर्ववत् तीन रूप, गवाञ्चि, गोअञ्चि, गोञ्चि । गति किंवा पूजा कोईसा अर्थ हो तो भी तीन ही रूप । आगे गोचा, गवाञ्चा, गोअञ्चा, गोञ्चा, यह टाके रूप हुए । भ्याम्में गवाग्भ्याम्, गोअग्भ्याम्, गोग्भ्याम्, गवाङ्भ्याम्, गोअङ्भ्याम्, गोङ्भ्याम्--इत्यादि । (सुपि तु०) सप्तमीका सुप् परे रहते ङान्तको पक्षमें "ङ्णोः कुक्० ८।३।२८/१३०" इससे कुक्, गवाङ्क्षु, गोअङ्क्षु, गोङ्क्षु, गवाङ्षु, गोअङ्षु, गोङ्षु, गवाक्षु, गोअक्षु, गोक्षु ।

गति अर्थमें गवाच्--शब्दके रूप--

विभ०	ए०	द्वि०	बहु०
प्र०	गवाक्--ग् गोअक्-ग् गोऽक्-ग्	गोची	गवाञ्चि गोआञ्चि गोऽञ्चि
सं०	,,	,,	,,
द्वि०	गवाक्--ग् गोअक्--ग् गोऽक्--ग्	गोची	गवाञ्चि गोअञ्चि गोऽञ्चि
तृ०	गोचा	गवाग्भ्याम् गोअग्भ्याम् गोऽग्भ्याम्	गवाग्भिः गोअग्भिः गोऽग्भिः
च०	गोचे	गवाग्भ्याम् गोअग्भ्याम् गोऽग्भ्याम्	गवाग्भ्यः गोअग्भ्यः गोऽग्भ्यः
पं०	गोचः	गवाग्भ्याम् गोअग्भ्याम् गोऽग्भ्याम्	गवाग्भ्यः गोअग्भ्यः गोऽग्भ्यः
ष०	गोचः	गोचोः	गोचाम्
स०	गोचि	गोचोः	गवाक्षु गोअक्षु गोऽक्षु.

पूजा अर्थमें--गवाञ्च् शब्दके रूप--

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	गवाङ् गोअङ् गोऽङ्	गवाञ्ची गोअञ्ची गोऽञ्ची	गवाञ्चि गोअञ्चि गोऽञ्चि
सं०	,,	,,	,,
द्वि०	गवाङ् गोअङ् गोऽङ्	गवाञ्ची गोअञ्ची गोऽञ्ची	गवाञ्चि गोअञ्चि गोऽञ्चि
तृ०	गवाञ्चा गोअञ्चा गोऽञ्चा	गवाङ्भ्याम् गोअङ्भ्याम् गोऽङ्भ्याम्	गवाङ्भिः गोअङ्भिः गोऽङ्भिः
च०	गवाञ्चे गोअञ्चे गोऽञ्चे	गवाङ्भ्याम् गोअङ्भ्याम् गोऽङ्भ्याम्	गवाङ्भ्यः गोअङ्भ्यः गोऽङ्भ्यः
पं०	गवाञ्चः गोअञ्चः गोऽञ्चः	गवाङ्भ्याम् गोअङ्भ्याम् गोऽङ्भ्याम्	गवाङ्भ्यः गोअङ्भ्यः गोऽङ्भ्यः
ष०	गवाञ्चः गोअञ्चः गोऽञ्चः	गवाञ्चोः गोअञ्चोः गोऽञ्चोः	गवाञ्चाम् गोअञ्चाम् गोऽञ्चाम्
स०	गवाञ्चि गोआञ्चि गोऽञ्चि	गवाञ्चोः गोअञ्चोः गोऽञ्चोः	गवाङ्क्षु--षु गोअङ्क्षु--षु गोङ्क्षु--षु.

(न च इहेति) सप्तमीके बहुवचनमें आगे शर होनेके कारण तीन रूपोंमेंके ककारको "चयो द्वितीयाः० ८।३।२८/१३०" इस वार्तिकसे पाक्षिक खकार करके तीनों स्थानोंमें छः रूप अधिक होंगे ? ऐसी शंका न करनी चाहिये, कारण कि, उसमें "चोः कुः" इससे कुत्व, कुत्वको जश्त्व और जश्त्वको चर्त्व; ऐसा क्रम है इसलिये वह चर्त्व 'चयो द्वितीयाः०' इस वार्तिकके प्रति असिद्ध है इससे न हुआ। (कुक् पक्षे०) जब कुक् आगम होताहै तब वह असिद्ध होनेके कारण वहीं दरशाये हुएके अनुसार जश्त्व नहीं, उस समय चय्को द्वितीयादेश होकर तीन रूप बढेंगेही, इस प्रकार ११२ रूप होंगे ।

(ऊह्यमेषामिति) इन ११२ रूपोंके "अनचि च" से विकल्प करके द्वित्व और "अणोऽप्रगृह्यस्य० ८।४।५७/११०" इससे विकल्प अनुनासिक, सब मिलकर अश्व ७ अक्षि २ भूत ५ 'अंकानां वामतो गतिः' (अंकोंकी वामभागसे गिनती होतीहै) इससे ५२७ रूप होतेहैं यह विद्वानोंको ध्यानमें लाने चाहियें ॥

तिर्यञ्च् शब्द क्विन्नन्त--

गत्यर्थमें "आनिदितां हल्० ६।४।२४/४१५" इससे नलोप, तिर्यच् + सु ऐसी स्थिति होते सुलुक्, भसंज्ञाका अभाव होनेसे "अचः ६।४।१३८/४१६" इससे अकार लोपकी प्राप्ति नहीं, लोपाभावके कारण "तिरसस्तिर्यलोपे ६।३।९४/४२३" इससे 'तिरि' आदेश, तब तिर्यच् ऐसी स्थिति हुई, "चोः कुः" तिर्यक् । आगे 'शी' रहते भसंज्ञा, भसंज्ञाके कारण अकार-लोप, आदेश नहीं, तिरश्च् + ई ऐसी स्थिति हुई, तिरश्ची । आगे । 'शि' सर्वनामस्थान है भसंज्ञाऽभावके कारण अकार-लोप नहीं, 'तिरि' आदेश, "नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२"

इससे नुम, तिरि+अञ्च्+ इ–तिर्यञ्चि । पुनस्तद्वत् । आगे ४२३ के अनुसार पुंवत् ।

(पूजायान्तु०) पूजार्थ हो तो, "नाञ्चेः पूजायाम् ६।४।३०/४२४" इससे नलोपनिषेध अत एव कहीं भी अलोप नहीं इस कारण 'तिरि'आदेश,सुलुक्,तिरिअञ्च् ऐसी स्थिति रहते "संयोगान्तस्य लोपः","क्विन्प्रत्ययस्य कुः"इससे ङत्व,तिर्यङ् । तिर्यञ्ची । तिर्यञ्चि । फिर इसी प्रकार तिर्यञ्चा । तिर्यङ्भ्याम्– इत्यादि (४२४) इसके समान ॥

यकृत् (पित्तस्थान) शब्द–

यकृत्+सु= यकृत् । यकृत्+औ=यकृती । यकृत्+जस् "नपुंसकस्य झलचः" यकृन्ति । "पद्दन्नो० ६।१।६३/२२८" इससे शसादि प्रत्यय परे रहते 'यकन्' आदेश, यकानि । अल्लोप, यक्ना, यकृता । आगे पुंवत् ।

यकृत् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	यकृत्–द्	यकृती	यकृन्ति
सं०	हे यकृत्–द्	हे यकृती	हे यकृन्ति
द्वि०	यकृत्–द्	यकृती	यकानि, यकृन्ति
तृ०	यक्ना, यकृता	यकभ्याम्, यकृद्भ्याम्	यकभिः,यकृद्भिः
च०	यक्ने, यकृते	यकभ्याम्, यकृद्भ्याम्	यकभ्यः,यकृद्भ्यः
पं०	यक्नः, यकृतः	यकभ्याम्, यकृद्भ्याम्	यकभ्यः,यकृद्भ्यः
ष०	यक्नः, यकृतः	यक्नोः, यकृतोः	यक्नाम्, यकृताम्
स०	यक्नि, यकनि, यकृति	यक्नोः,यकृतोः	यकसु, यकृत्सु.

इसी प्रकार शकृत् (विष्ठा) शब्द–

शकृत् । शकृती । शकृन्ति, शकानि । शक्ना, शकृता इत्यादि पुंवत् ।

शकृत् शब्दके रूप–

विभ०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	शकृत्–द्	शकृती	शकृन्ति
सं०	हे शकृत्–द्	हे शकृती	हे शकृन्ति
द्वि०	शकृत्–द्	शकृती	शकानि, शकृन्ति
तृ०	शक्ना, शकृता	शकभ्याम्, शकृद्भ्याम्,	शकभिः,शकृद्भिः
च०	शक्ने, शकृते	शकभ्याम्, शकृद्भ्याम्,	शकभ्यः, शकृद्भ्यः
पं०	शक्नः, शकृतः	शकभ्याम्, शकृद्भ्याम्	शकभ्यः, शकृद्भ्यः
ष०	शक्नः, शकृतः	शक्नोः, शकृतोः	शक्नाम्, शकृताम्
स०	शक्नि, शकनि, शकृति	शक्नोः, शकृतोः	शकसु,शकृत्सु.

ददत् (देनेवाला) शतृप्रत्ययान्त शब्द–

यह ददत् शब्द पीछे (सि० ४२६) दरसाये हुएकी समान अभ्यस्तसंज्ञक है, 'स्वमोर्लुक्' ददत् । शी परे रहते अभ्यस्तके अगले 'शतृ' प्रत्ययको नुम्‌की प्राप्ति ही नहीं, कारण कि उसके पहले अङ्गके 'आ' इस वर्णका लोप हुआहै, तो अवर्णसे पर नहीं है, ददती । आगे शि सर्वनामस्थान रहते–

४४४ वा नपुंसकस्य ।७।१।७९॥

अभ्यस्तात्परो यः शता तदन्तस्य क्लीबस्य नुम् वा स्यात्सर्वनामस्थाने । ददन्ति । ददति ॥ तुदत् ॥

४४४–अभ्यस्तसे परे जो 'शतृ' प्रत्यय तदन्त क्लीब (नपुंसक) शब्दको विकल्पसे नुम् हो, आगे सर्वनामस्थान

१ यहां थोडासा विशेष ध्यान देना चाहिये, शतृ (अत्) प्रत्ययान्त शब्दोंको भिन्न २ तीन निमित्तोंसे नुम् (न्) आगम होताहै और उस नुम्‌के विकल्पस्थल भी हैं, वे निमित्त यह हैं– –१ सर्वनामस्थान, २ शीप्रत्यय, और ३ नदी (ङीप् ४।१।६/४५५ प्रत्यय), इनमेंसे सर्वनामस्थान परे रहते प्राप्ति, निषेध स्थल अलग २ और शी वा नदी होते अलग स्थल हैं ।

सामान्यतः सब धातुओंके आगे शतृ (अत्) प्रत्ययको सु औ, जस्, अम्, औट् यह सर्वनामस्थान आगे रहते "उगिदचां सर्वनामस्थाने० ७।१।७०/३६१" इससे नुम् होताहै, वैसे ही 'शि' यह सर्वनामस्थान परे रहते "नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२/३१४" इससे नुम् होताहै,अब निषेध कहेजानेसे "नाभ्यस्ताच्छतुः ७।१।७८/४२७" इससे सामान्यतः अभ्यस्तके आगेके 'शतृ' प्रत्ययको नुमागम नहीं यही एक निषेध है, परन्तु इस निषेधको फिर "वा नपुंसकस्य ७।१।७९/४४४" इससे नपुंसकमें (आगे सर्वनामस्थान हो तो) विकल्प है । अब शी, नदी, इनके सम्बन्धसे नुमागमके विषयमें आगे शी किंवा नदी रहते शत्रन्तको नुमागम होनेके निमित्त उस शतृ प्रत्ययके पिछले धातुको अवर्णान्तत्व होना चाहिये उसमें फिर शप् (अ) विकरणान्त (भ्वादिगणस्थ) और श्यन् (य) विकरणान्त (दिवादिगणस्थ) धातुओंसे आगे शी अथवा नदी हो तो "शप्श्यनोर्नित्यम् ७।१।८१/४४६" इससे नित्य नुम् होताहै । और आकारान्त (अदादिगणके) धातु और श (अ) विकरणान्त (तुदादिगणस्थ धातु) इनसे शी, नदी, आगे हों तो "आच्छीनद्योर्नुम् ७।१।८०/४४५" इससे विकल्प करके नुम् होताहै, अन्यत्र नुमागम है ही नहीं ।

"नाभ्यस्ताच्छतुः" यह निषेध यहां भी (अ० शी, नदी, प्रत्यय परे रहते) प्राप्त हुआहोता, परन्तु शतृप्रत्ययके पहले अभ्यस्तके अन्त्यवर्णको "श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२/२४८३" इससे लोप होही जाताहै इस कारण अवर्णान्तत्वाभावके कारण वहां नुम्‌की प्राप्ति कहींभी नहीं, उसी प्रकारसे श्ना (ना) विकरणान्त (क्र्यादिगणके) धातुके अगले भी आकारका इसी सूत्रसे लोप होताहै इसलिये उनके आगेके शतृप्रत्ययको नुम् नहीं ।

शतृप्रत्ययान्त शब्दको स्त्रीलिङ्ग होनेके लिये नदी ङीप् प्रत्यय होताहै और उसी समय नुम्‌की साध्यबाधता निश्चित होकर ईकारान्त रूप सिद्ध होताहै, इस कारण उन स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके परे विभक्तियां लानी होतीहैं, तब फिर नुम्‌का निमित्त ही नहीं है, कारण कि उन शब्दोंमेंके शतृ प्रत्ययके आगे अव्यवहित सर्वनामस्थान नहीं ।

"उगिदचाम्० ७।१।७०/३६१" और "नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२/३१४" इन दोनोंका भी कार्य नुम् है तथापि "नपुंसकस्य झलचः" इसको परत्व होनेके कारण नपुंसकमें इसका कार्य होताहै ॥

यह सब अनुगम भली प्रकारसे ध्यानमें रखना चाहिये यही प्रकरण आगे है ॥

होते "उगिदचाम्०" और "नपुंसकस्य झलचः" इनसे नुमागमका "नाभ्यस्ताच्छतुः" यह जो निषेध है उसका भी बाधक यह विकल्प है, ददन्ति, ददति । पुनस्तद्वत् । आगे पुंवत् (४२७) ॥

तुदत् (पीडा देनेवाला) शब्द–

यह 'तुद व्यथने' इस तुदादिगणस्थ श (अ) विकरणवाले धातुसे तुद्+अ+अत् ऐसा शत्रन्त बनाहुआ है, तुदत् । आगे–

४४५ आच्छीनद्योर्नुम् ।७।१।८०॥

अवर्णान्तादङ्गात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्याङ्गस्य नुम् वा स्याच्छीनद्योः परतः । तुदन्ती । तुदती । तुदन्ति ॥ भात् । भान्ती । भाती । भान्ति ॥ पचत् ॥

४४५–अवर्णान्त (अकारान्त और आकारान्त) अङ्गसे परे स्थित शतृ (अत्)प्रत्ययका अवयव (त्) तदन्त अङ्गको विकल्पसे नुम् हो, औके स्थानमें होनेवाले शी वा नदी (ङीप् ४।१।६/४५५) आगे हो तो 'तुदत्' इसमें शतृ (अत्) प्रत्ययके 'त्' इस अवयवके पूर्व (पहले) 'तुद' ऐसा श (अ) विकरणान्त (३।१।७७/२५३४) अर्थात् अवर्णान्त अंग है इससे विकल्प करके नुम्, तुदन्ती, तुदती । आगे शि होते "नपुंसकस्य झलचः" इससे नुम्, पुनस्तद्वत् । आगे सरल रूप ददत्के समान ॥

भात् (प्रकाश करनेवाला) शब्द–

'भा दीप्तौ' (अदादिगण) यह आकारान्त धातु है इसके आगे कोई विकरण नहीं रहता, इसलिये केवल शतृ प्रत्यय, 'भात्' के आगे शी रहते भाके अवर्णके कारण "आच्छीनद्योर्नुम्" विकल्पसे नुम् हुआ, भान्ती, भाती । "नपुंसकस्य०" इससे नुम्, भान्ति । आगे सरल रूप हैं ॥

पचत् (पकानेवाला) शब्द–

भ्वादिगणके पच् धातुसे बनाहुआ शत्रन्त, पचत् । "कर्तरि शप् ३।१।६८/२१६७" इससे पच् धातुसे शप् (अ) यह विकरण है, परन्तु–

४४६ शप्श्यनोर्नित्यम् ।७।१।८१॥

शप्श्यनोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् स्याच्छीनद्योः परतः । पचन्ती । पचन्ति ॥ दीव्यत् । दीव्यन्ती । दीव्यन्ति॥स्वप् । स्वब् । स्वपी । नित्यात्परादपि नुमः प्राक् अप्तृन्निति दीर्घः प्रतिपदोक्तत्वात् । स्वाम्पि । निरवकाशत्वं प्रतिपदोक्तत्वमिति पक्षे तु प्रकृते तद्विरहान्नुमेव । स्वम्पि । स्वपा । अपो भि । स्वद्भ्याम् । स्वद्भिः ॥ अर्तिपिपर्तीत्यादिना धनेरुस् । रुत्वम् । धनुः । धनुषी । सान्तेति दीर्घः । नुम्विसर्जनीयेति षत्वम् । धनूंषि । धनुषा । धनुर्भ्याम् । एवं चक्षुर्हविरादयः ॥ पिपठिषतेः क्विप् । वोंरिति दीर्घः । पिपठीः । पिपठिषी । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वाज्झलन्तलक्षणो नुम् न । स्वविधौ स्थानिवत्त्वाभावादजन्तलक्षणोपि नुम् न । पिपठिषि । पिपठीर्भ्यामित्यादि ॥ पयः । पयसी । पयांसि । पयसा । पयोभ्यामित्यादि ॥ सुपुम् । सुपुंसी । सुपुमांसि ॥ अदः । विभक्तिकार्यम् । उत्वमत्वे । अमू । अमूनि । शेषं पुंवत् ॥

॥ इति हलन्ता नपुंसकलिंगाः ॥

४४६–शप् (अ) और श्यन् (य) इन विकरणोंके अवर्णसे आगे जो शतृ प्रत्ययका अवयव तदन्तको नित्य नुम् हो, शी अथवा नदी आगे होते । पचन्ती । शि सर्वनामस्थान परे रहते "नपुंसकस्य०" इससे नुम् है ही, पचन्ति । आगे पूर्ववत् सरल रूप ॥

दीव्यत् (खेलनेवाला) शब्द–

'दिवु क्रीडायाम्' इस दिवादिगणस्थ धातुसे शत्रन्त बना है, बीचमें "दिवादिभ्यः श्यन् ३।१।६९/२५०५" इससे श्यन् (य) विकरण और उसमें यकारके कारण "हलि च ८।२।७७/३५४" इससे इकारको दीर्घ होकर 'दीव्यत्' यह प्रातिपदिक बना, 'स्वमोर्लुक्' दीव्यत् । दीव्यत्+औ इसको शी होकर प्रस्तुत सूत्रसे नित्य नुम्, दीव्यन्ती । दीव्यत्+शि "नपुंसकस्य झलचः" दीव्यन्ति । पुनस्तद्वत् । आगे पुंवत् ॥

स्वप् शब्द–

'सुष्ठु आपः यस्मिन् तत्' (अच्छा जल है जिसमें सो) स्वप्+सु=स्वप्, स्वब् । स्वप्+शी=स्वपी । स्वप्+शि–(नित्यात्परादिति) नित्य और पर ऐसा भी नुम् है (७।१।७२/३१४) तो भी वह होनेके पहले "अप्तृन्तृच्० ६।४।११/२७७" इससे दीर्घ हुआ, कारण कि, उस दार्घको प्रतिपदोक्तत्व है अर्थात् जानबूझकर उसका विशेष विधान किया है, अनन्तर नुम्, स्वाम्पि । जो पहले किया होता, तो स्वम्प्+इ ऐसी स्थिति होनेसे अकारको उपधात्व नहीं, इससे "अप्तृन्०" इससे होनेवाला दीर्घ न होता, (निरवकाशत्वमिति) कोई कोई कहतेहैं कि, सूत्रको निरवकाशत्व रहना (अर्थात् उसके कार्यको और कहीं भी स्थल न रहना) इसका नाम प्रतिपदोक्त है, तो "अप्तृन्०" इसको अन्यत्र (शि० ४४१ में) अप् शब्दमें अवकाश है, इससे प्रकृत कार्य्यमें प्रतिपदोक्तत्व नहीं, उनके मतसे उस सूत्रकी प्राप्ति ही नहीं अर्थात् दीर्घ नहीं, स्वम्पि । स्वप्+टा=स्वपा । "अपो भि ७।४।४८/४४२" स्वद्भ्याम् । स्वद्भिः ।

स्वप् शब्दके रूप–

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	स्वप्–ब्	स्वपी	स्वाम्पि, स्वम्पि
सं०	स्वप्–ब्	स्वपी	स्वाम्पि, स्वम्पि

१ इस सूत्रमें नुम्ग्रहण करनेका कुछ प्रयोजन नहीं, कारण कि, इस सूत्रके पूर्वका सूत्र है "वा नपुंसकस्य ७ । १ । ७९" इसमें "इदितो नुम् धातोः ७ । १ । ५८" से नुम्की अनुवृत्ति आतीहै वही अनुवृत्ति यहां पर भी आवेगी, उसके आनेमें कोई बाधक नहीं है ॥

द्वि०	स्वप्-त्	स्वपी	स्वाम्पि, स्वम्पि
तृ०	स्वपा	स्वद्भ्याम्	स्वद्भिः
च०	स्वपे	स्वद्भ्याम्	स्वद्भ्यः
पं०	स्वपः	स्वद्भ्याम्	स्वद्भ्यः
ष०	स्वपः	स्वपोः	स्वपाम्
स०	स्वपि	स्वपोः	स्वप्सु.

धनुष् शब्द--

"अर्तिपृवपियजितनिधनितपिभ्यो नित् (उणा० २।११६)" इससे धन धातुके आगे उस् प्रत्यय हुई 'स्वमोर्लुक्' (रुत्वम्) षत्व (८।३।५९ / २१२) असिद्ध है इस कारण "ससजुषो रुः ८।२।६६ / १६२" इससे रुत्व, विसर्ग, धनुः। धनुस् औ=षत्व, धनुषी। आगे 'शि' रहते "नपुंसकस्य झलचः" इससे नुम् होकर 'धनुन्स्+इ' ऐसी स्थिति हुई, "सान्त महतः संयोगस्य ६।४।१० / २१७" इससे नकारकी उपधाको दीर्घ, नकारको अनुस्वार, "नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८।३।५८ / ४३४" इससे षत्व, धनूंषि। धनुस्+टा=धनुषा। पदान्तमें रुत्व, धनुर्भ्याम्। यह शब्द धातु नहीं इसलिये "र्वोरुपधायाः०" इससे दीर्घ नहीं।

धनुष् शब्दके रूप--

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
सं०	हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि
द्वि०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
तृ०	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
च०	धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
पं०	धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
ष०	धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
स०	धनुषि	धनुषोः	धनुःषु-ष्षु.

इसी प्रकारसे चक्षुष् (नेत्र) हविष् (होमद्रव्य) इत्यादिके रूप जानने।

पिपठिष् शब्द--

(पिपठिषतेः क्विप्) पुँल्लिङ्गमें (४३२), दिखायेके अनुसार पिपठिषके आगे क्विप् होकर 'पिपठिष्' यह प्रातिपदिक बना, (स्वमोर्लुक्) "र्वोरुपधाया० ८।२।७६ / ४३३" इससे पदान्तमें उपधादीर्घ, विसर्ग, पिपठीः। 'शी' में पिपठिषी। आगे शि रहते (अल्लोपस्येति) (४४३ में 'बेभिद्' शब्दके समान) अल्लोपको स्थानिवत्त्व होनेसे झलन्तलक्षण नुम् नहीं होता, स्वके विधानमें स्थानिवत्त्वाभाव है इसलिये अजन्तलक्षण भी नुम् नहीं होता, तथा दीर्घ भी नहीं होता, पिपठिषि। पिपठीर्भ्याम्-इत्यादि (४३२) पुंवत्॥

सान्त पयस् (दूध) शब्द--

'स्वमोर्लुक्' रुत्व, विसर्ग, पयस्+सु=पयः। पयस्+शी=पयसी। पयस्+शि-नुम्, "सान्त महतः०" इससे दीर्घ, पयांसि। पयस्+टा=पयसा। पदान्तमें रुत्व, उत्व, पयोभ्याम् इत्यादि।

पयस् शब्दके रूप--

वि०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	पयः	पयसी	पयांसि
सं०	हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि
द्वि०	पयः	पयसी	पयांसि
तृ०	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
च०	पयसे	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
पं०	पयसः	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
ष०	पयसः	पयसोः	पयसाम्
स०	पयसि	पयसोः	पयःसु-स्सु.

सुपुम्स् (सुन्दर पुरुष हैं जिसमें सो) शब्द--

'स्वमोर्लुक्', संयोगान्तलोप, सुपुम्। अनुस्वार, सुपुंसी। [1]शि आगे रहते "पुंसोऽसुङ् ७।१।८९ / ४३६" इससे असुङ् (अस्) पुम्स्+इ ऐसी स्थिति रहते नुम् और सान्तत्वके कारण उपधादीर्घ, सुपुमांसि। फिर इसी प्रकार। आगे पुंवत् (४३६)॥

अदस् (यह) शब्द--

'स्वमोर्लुक्,' रुत्व, विसर्ग, अदः। आगे प्रत्यय रहते त्यदाद्यत्व, (विभक्तिकार्यम्) शी परे रहते अदे, अदस्+शि= अदानि, ऐसी स्थिति होकर उत्व, मत्व,-(दकारपरेके वर्णको उत्व और दकारको मत्व) अमू। अमूनि। शेष पुंवत् (सि० ४३९)॥

॥ इति हलन्ता नपुंसकलिङ्गाः॥

अथाव्ययप्रकरणम्।

४४७ स्वरादिनिपातमव्ययम् १।१।३७॥

स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञाः स्युः। स्वर्, अन्तर्, प्रातर्, पुनर्, सनुतर्, उच्चैस्, नीचैस्, शनैस्, ऋधक्, ऋते, युगपत्, आरात्, पृथक्, ह्यस्, श्वस्, दिवा, रात्रौ, सायम्, चिरम्, मनाक्, ईषत्, जोषम्, तूष्णीम्, बहिस्, अवस्, समया, निकषा, स्वयम्, वृथा, नक्तम्, नञ्, हेतौ, इद्धा, अद्धा, सामि, वत्, ब्राह्मणवत्, क्षत्रियवत्, सना, सनत्, सनात्, उपधा, तिरस्, अन्तरा, अन्तरेण, ज्योक्, कम्, शम्, सहसा, विना, नाना, स्वस्ति, स्वधा, अलम्, वषट्, श्रौषट्, वौषट्, अन्यत्, अस्ति, उपांशु, क्षमा, विहायसा, दोषा, मृषा, मिथ्या, मुधा, पुरा, मिथो, मिथस्, प्रायस्, मुहुस्, प्रवाहुकम्, प्रवाहिका, आर्यहलम्, अभीक्ष्णम्, साकम्, सार्धम्, नमस्, हिरुक्, धिक्, अथ, आम्, प्रताम्, प्रशान्, प्रतान्, मा, माङ्, आकृतिगणोऽयम्॥ च, वा, ह, अह, एव, एवम्, नूनम्,

---

१ प्राचीनोंने "पुंसोऽसुङ्" इस सूत्रका सुट्में (पांच वचनमें) असुङ् हो ऐसी व्याख्या कियाहै, परन्तु उनके मतमें जस्में "सुपुमांसि" सिद्ध होगा शस्में नहीं होगा और 'सुपुंसी' यहां पर भी होजायगा यह सब दोष हैं, इसलिये सर्वनामस्थानकी अनुवृत्ति करके व्याख्यान किया है, तो सब इष्ट सिद्ध होजातेहैं और कोई दोष भी नहीं होता॥

शश्वत्, युगपत्, भूयस्, कूपत्, कुवित्, नेत्, चेत्, चण्, कच्चित्, यत्र, नह, हन्त, माकिः, माकिम्, नकिः, नकिम्, माङ्, नञ्, यावत्, तावत्, त्वै, द्वै, न्वै, रै, श्रौषट्, वौषट्, स्वाहा, स्वधा, तुम्, तथाहि, खलु, किल, अथ, सुष्ठु, स्म, आदह, उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च, अवदत्तम्, अहंयुः, अस्तिक्षीरा, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, पशु, शुकम्, यथाकथाच, पाट्, प्याट्, अङ्ग, है, हे, भोः, अये, द्य, विषु, एकपदे, युत्, आतः। चादिरप्याकृतिगणः ॥

४४७–स्वर्–इत्यादि गणके शब्द और निपातसंज्ञक शब्द $\frac{१।४।५७-९८}{२०}$ इनकी ' अव्यय ' संज्ञा हो।

अव्यय	संस्कृत अर्थ	भाषार्थ
स्वर्–	स्वर्गे परलोके च	स्वर्ग वा परलोक
अन्तर्–	मध्ये	मध्यमें
प्रातर्–	प्रत्यूषे	प्रातःकाल
पुनर्–	अप्रथमे विशेषे च	फिर वा विशेष
सनुतर्–	अन्तर्धाने	अन्तर्धान
उच्चैस्–	महति	ऊंचा, बड़ा
नीचैस्–	अल्पे	नीचा, थोडा
शनैस्–	क्रियामान्द्ये	धीरे धीरे
ऋधक्–	सत्ये। वियोगशीघ्रसामीप्यलाघवेषु इत्यन्ये	यथार्थ–वियोग, शीघ्र, समीपता, छोटेपन, यह किसीका मत है.
ऋते–	वर्जने	विना
युगपत्	एककाले	एक कालमें
आरात्–	दूरसमीपयोः	दूर वा निकट
पृथक्–	भिन्ने	अलग
ह्यस्–	अतीतेऽहनि	बीता हुआ काल
श्वस्–	अनागतेऽहनि	आनेवाला कलका दिन
दिवा–	दिवसे	दिनमें
रात्रौ–	निशि	रातमें
सायम्–	निशामुखे	सायंकाल

अ०	सं० अ०	भा० अर्थ
चिरम्–	बहुकाले	बहुत समयतक
मनाक्–	अल्पे	थोड़ा
ईषत्–	अल्पे	थोड़ा
जोषम्–	सुखे मौने च	मौन वा सुख
तूष्णीम्–	मौने	मौन
बहिस्–	बाह्ये	बाहर
अवस्–	बाह्ये	बाहरकी ओर
समया–	समीपे मध्ये च	निकट वा मध्यमें
निकषा–	अन्तिके	निकट
स्वयम्–	आत्मना इत्यर्थे	आप ही
वृथा–	व्यर्थे	निष्फल
नक्तम्–	रात्रौ	रातमें
नञ्–	निषेधे	नहीं
हेतौ–	निमित्ते	कारणमें
इद्धा–	प्राकाश्ये	प्रकाशतासे
अद्धा–	स्फुटावधारणयोः	स्पष्टता वा निश्चयसे
सामि–	अर्धजुगुप्सितयोः	अर्ध वा निन्दित
वत्–	तुल्ये	सदृश
ब्राह्मणवत्	ब्रा० तुल्ये	ब्राह्मणकी तुल्य
क्षत्रियवत्–	क्ष० तुल्ये	क्षत्रियकी तुल्य
सना–	नित्ये	नित्य
सनत्–	नित्ये	सदा
सनात्–	नित्ये	सर्वदा
उपधा–	भेदे	विभाग
तिरस्–	अन्तर्धौ तिर्यगर्थे परिभवे च	अन्तर्धान, तिर्यक्, तिरस्कार
अन्तरा–	मध्ये विनार्थे च	मध्य वा विना
अन्तरेण–	वर्जने	वर्जन
ज्योक्–	कालभूयस्त्वप्रश्नशीघ्रार्थसंप्रत्यर्थेषु	कालबाहुल्य, प्रश्न, शीघ्रता, संप्रति
कम्–	वारिमूर्धनिन्दासुखेषु	जल, मस्तक, निन्दा, सुख
शम्–	सुखे	सुख
सहसा–	आकस्मिकाविमर्शयोः	विनाहेतुक वा अविचारसे
विना–	वर्जने	छोडकर
नाना–	अनेकविनार्थयोः	अनेक वा विना
स्वस्ति–	मङ्गले	कल्याण मंगल
स्वधा–	पितृदाने	पितृसम्बन्धी दान
अलम्–	भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणनिषेधेषु	भूषण, पूर्ति, शक्ति, वारण, निषेध
वषट्, श्रौषट्, वौषट्	हविर्दाने	देवसम्बन्धी हविर्दानमें यह तीनों शब्द हैं
अन्यत्–	अन्यार्थे	और रीतिसे
अस्ति	सत्तायाम्	है
उपांशु	अप्रकाशोच्चारणरहस्ययोः	गुप्तरीतिसे बोलना, रहस्य

१ इस सूत्रमें स्वरादिग्रहण क्यों किया ? यदि यह कहो कि, 'च' आदिमें 'स्वर्' इनको अव्ययसंज्ञा किस तरह होगी ? तो आदि पढेंगे, निपात ही मानकर उनको भी अव्यय संज्ञा होजायगी और "तद्धितश्चासर्वविभक्तिः $\frac{१।१।३८-३९-४०-४१}{४४८}$" इन सूत्रोंको "चादयोऽसत्त्वे $\frac{१।४।५७}{२०}$" इसके आगे पढेंगे और जिन सूत्रोंमें 'अव्यय' शब्द है वहांपर 'निपात' ही उच्चारण करेंगे, ऐसा [illegible] कहते हैं कि, अव्ययवाची जो नहीं हैं उनकी निपात संज्ञा होनाहै और स्वर् आदि चाहे अव्ययार्थक हों वा द्रव्यार्थक हों उनकी अव्ययसंज्ञा होनी ही है, तो 'स्व [illegible]' [illegible] 'स्वर्गम् वाञ्छयति' इत्यादिमें [illegible] होनेसे [illegible] आताहै इस कारण यहां निपात संज्ञा न होनेसे अव्यय संज्ञा न होगी इस वास्ते स्वरादि ग्रहण करना चाहिये ॥

अ०	सं० अ०	भा० अ०
क्षमा-	क्षान्तौ	सहन
विहायसा-	वियदर्थे	आकाशमें
दोषा-	रात्रौ	रातमें
मृषा- मिथ्या-	वितथे	झूठ-असत्य
मुधा-	व्यर्थे	निष्प्रयोजन
पुरा-	अविरते चिरातीते भविष्यदासन्ने च	निरन्तर, पहलेसे, भविष्य, समीप,
मिथो मिथस्	रहःसहार्थयोः	एकान्त, परस्पर
प्रायस्-	बाहुल्ये	बहुधा
मुहुस्-	पुनरर्थे	बार बार
प्रवाहुकम् प्रवाहिका	समकाले ऊर्ध्वार्थे च	उसी समय अथवा ऊपर
आर्यहलम्-	बलात्कारे	बलात्कार
अभीक्ष्णम्-	पौनःपुन्ये	बारबार, निरंतर
साकम् सार्धम्	सहार्थे	साथ
नमस्-	नतौ	नमस्कार
हिरुक्-	वर्जने	विना
धिक्-	निन्दाभर्त्सनयोः	निन्दा, धमकाना
अम्-	शैघ्र्येऽल्पे च	शीघ्रतासे वा अल्पतासे
आम्-	अङ्गीकारे	अङ्गीकार करना
प्रताम्-	ग्लानौ	ग्लानि
प्रशान्-	समानार्थे,	सदृश
प्रतान्-	विस्तारे	विस्तार-बढाव
मा माङ्	शंकानिषेधयोः	आशंका वा निषेध

(आकृतिगणोयम्) यह स्वरादि आकृतिगण है।

निपात लिखते हैं--

च	समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहारेषु	समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग, समाहार
वा-	विकल्पोपमयोरिवार्थे च समुच्चये	विकल्प, उपमा, निश्चय, समुच्चय
ह-	प्रसिद्धौ	प्रसिद्धिमें
अह	पूजायाम्	पूजा, आदर
एव-	अवधारणेऽनवक्लृप्तौ च	निश्चय, अनिश्चय
एवम्-	उक्तपरामर्शे	ऐसा
नूनम्-	निश्चये वितर्के च	निश्चय वा संभावना
शश्वत्-	पौनःपुन्ये सहार्थे च	निरन्तर (सर्वदा), साथ
युगपत्	एककाले	एककालमें
भूयस्	पुनरर्थे आधिक्ये च	बहुधा, अधिकता

अ०	सं० अ०	भा० अ०
कूपत् सूपत्	प्रश्ने प्रशंसायां च	प्रश्न वा प्रशंसा, अच्छा
कुवित्-	भूयर्थे प्रशंसायां च	बाहुल्य वा प्रशंसा
नेत्-	शंकाप्रतिषेधविचारसमुच्चयेषु	शंका, निषेध, विचार, समुच्चय,
चेत्-	यद्यर्थे	यदि, जो
चण्-	(च) चेदर्थे	जो
कच्चित्-	इष्टप्रश्ने	इष्टप्रश्न-क्या
किंचित्-	ईषदर्थे	कुछ
यत्र-	आश्चर्यादौ	आश्चर्य, अनिश्चय, निन्दा, अक्षमा,
नह-	प्रत्यारम्भे	नहीं
हन्त-	हर्षविषादवाक्यारम्भानुकम्पासु	हर्ष, विषाद, वाक्यारम्भ, दया
माकिः माकिम् नकिः नकिम्	वर्जने	नहीं (ठीकठीक)
माङ्- नञ्	वर्जने	नहीं
यावत् तावत्	साकल्ये	जितना, जबतक तितना, तबतक
त्वै-	विशेषवितर्कयोः	विशेष, वितर्क
द्वै-	वितर्के	वितर्क, कदाचित्
न्वै-	वितर्के	वितर्क
रै-	दाने अनादरे च	दान अनादर
श्रौषट् वौषट्	हविर्दाने	हविषके देनेमें
स्वाहा-	देवतादाने	देवताके अर्पणमें
स्वधा-	पितृदाने	पितृअर्पणमें
तुम्-	तुंकारे	तुकारकर
तथाहि-	निदर्शने	इस प्रकारसे, इस प्रमाणसे
खलु-	निषेधवाक्यालंकारनिश्चयेषु	निषेध, वाक्यालंकार, निश्चय
किल-	वार्तायामलीके च	वार्ता, अलीक
अथो अथ	मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्याधिकारप्रतिज्ञासमुच्चयेषु	मङ्गल, अनन्तर, आरम्भ, प्रश्न, कार्त्स्न्य, अधिकार, प्रतिज्ञा, समुच्चय
सुष्ठु-	शोभनार्थे	अच्छा
स्म-	अतीते पादपूरणे च	बीतना पादपूरण
आदह-	उपक्रमहिंसाकुत्सनेषु	आरंभ, हिंसा, निंदा.

(उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च) उपसर्ग, विभक्ति, स्वर, इनके समान दिखाई देनेवाले शब्द अव्ययसंज्ञक हों। अवदत्तम् (दियाहुआ), अहंयुः (अहंकारवान्), अस्तिक्षीरा (दूध जिसमें वह), इनमें 'अव' यह उपसर्ग-प्रतिरूपक और अहम्, अस्ति, यह विभक्ति प्रतिरूपक अव्यय है, 'अव' यह 'उपसर्ग' होता तो अजन्त होनेके कारण

"अच उपसर्गात्तः ७।४।४७/३०७८" इससे अगले 'दत्त' के दकारके परेके अकारके स्थानमें तकार होकर 'अवत्तम्' ऐसा रूप बना होता । 'अहम्' शब्द विभक्त्यन्त होता तो, समासके कारण विभक्तिलोप हुआ होता । 'अस्ति' यह क्रियापद होता तो, समासही न हुआ होता 'गेये केन विनीतौ वाम्' (युवाम्), त्वामस्मि (अहम्), 'वच्मि'–इत्यादि प्रयोग इसी परसे सिद्ध होतेहैं । अगले दस अव्यय स्वरप्रतिरूपक हैं–

अ–'सम्बोधनाधिक्षेपनिषेधेषु' सम्बोधन, विक्षेप और निषेधवाचक ।

आ–'वाक्यस्मरणयोः' वाक्य और स्मरणार्थक ।

इ–'सम्बोधनजुगुप्साविस्मयेषु' सम्बोधन, निन्दा और विस्मयवाचक ।

ई उ ऊ ए ऐ ओ औ–'सम्बोधने' सम्बोधनवाचक ।

अ०	सं० अ०	भा० अ०
पशु–	सम्यगर्थे	सरस, अच्छा
शुकम्–	शैघ्ये	शीघ्रता
यथाकथाच–	अनादरे	अनादर, किसीप्रकार
पाट्–	सम्बोधने	सम्बोधन
प्याट्, अङ्ग, ह, हे, भोः, अये	सम्बोधने	सम्बोधनार्थक.
च–	हिंसाप्रातिलोम्यपादपूरणेषु	हिंसा, प्रतिकूलता, पादपूर्ति, सम्बोधन
विषु–	नानार्थे	नानार्थक, सर्वत्र, जहां तहां
एकपदे–	अकस्मादित्यर्थे	अकस्मात्, एकसमय
युत्–	कुत्सायाम्	दोष, निन्दा
आतः–	इतोपीत्यर्थे	इससे

(चादिरप्याकृतिगणः)चादि भी आकृतिगण है, इसलिये इनको छोड और भी निपात हैं ("चादयोऽसत्वे १।४।५७/२०") * ॥

४४८ तद्धितश्चासर्वविभक्तिः १।१।३८॥

यस्मात्सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययं स्यात् । परिगणनं कर्तव्यम् । तसिलादयः प्राक् पाशपः । शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः । अम् । आम् । कृत्वोर्थाः । तसिवती । नानाञाविति । तेनेह न । पचतिकल्पम् । पचतिरूपम् ॥

४४८–तद्धितप्रत्ययान्त जो शब्द, उनमेंसे जिनके आगे सब विभक्तियां नहीं लगतीं उनकी अव्ययसंज्ञा हो, ऐसे अव्ययसंज्ञक तद्धितान्त कौनसे हैं इसकी गणना करनी चाहिये (तसिलादयः०) "पञ्चम्यास्तसिल् ५।३।७/१९५३" यहांसे लेकर "याप्ये पाशप् ५।३।४७/१९९३" इसके पूर्वसूत्रतक, (शस्प्रभृतयः०) "बह्वल्पार्थाच्छस्० ५।४।४२/२१०९" यहांसे लेकर "समासान्ताः ५।४।६८/६७६" इसके पूर्व सूत्रतक । (अम्) "अमु च च्छन्दसि ५।४।१२/३५०२" इससे होनेवाला अमु (अम्) । (आम्) "किमेत्तिङव्ययघादामु० ५।४।११/२००४" इससे होनेवाला आमु (आम्)। (कृत्वोर्थाः) "संख्यायाः क्रिया० ५।४।१७/२०८५" इत्यादि सूत्रोंसे होनेवाले कृत्वसुच् (कृत्वस्) सुच् (स्),–इत्यादि आवृत्तिसूचक प्रत्यय । (तसिवती) "तेनैकदिक्, तसिश्च ४।३।११२-११३/१४९२-३" इनसे तसि (तस्) और "तेन तुल्यं क्रिया चेत्० ५।१।११५/१७७८" इससे वति (वत्) प्रत्यय । (नानाञौ०) "विनञ्भ्यां नानाञौ० ५।२।२७/१८२८" इस सूत्रसे ना, नाञ् (ना), इन प्रत्ययवाले सब शब्दोंकी अव्ययसंज्ञा जाननी चाहिये । (तेन इह न) इसलिये इससे बाहर "ईषदसमाप्तौ० ५।३।६७/२०२२" इससे होनेवाला कल्पप् (कल्प) और "प्रशंसायां रूपप् ४।३।६६/२०२१" इससे होनेवाला रूपप् (रूप) इत्यादि जो तद्धित प्रत्यय तदन्तोंकी अव्यय संज्ञा नहीं, 'पचतिकल्पम्' (कच्चा पकाताहै) 'पचतिरूपम्' (अच्छा पकाताहै) ॥

४४९ कृन्मेजन्तः । १ । १ ३९ ॥

कृद्यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात् । स्मारंस्मारम् । जीवसे । पिबध्यै ॥

४४९–धातुके अधिकारमें कहेहुए "कृदतिङ् ३।१।९३/३७४" सूत्रसे जो कृत्संज्ञक प्रत्यय मकारान्त, तथा ए ऐ ओ औ–कारान्त जो हैं तदन्तोंकी अव्ययसंज्ञा हो, मकारान्त (स्मारंस्मारम्) फिरफिर स्मरण करके । वैदिकशब्द एकारान्त, जीवसे ('जीवितुम्' अर्थात् बचनेके कारण) यह असेन् (असे) (३।४।९/३४३६) प्रत्ययान्त । पिबध्यै (पातुम् अर्थात् पीनेके निमित्त) यह शध्यै (अध्यै) (३।४।९/३४३६) प्रत्ययान्त ॥

४५० क्त्वातोसुन्कसुनः।१।१।४०॥

एतदन्तमव्ययं स्यात् । कृत्वा । उदेतोः । विसृपः ॥

४५०–क्त्वा (त्वा) (३।४।१८-२१/३३१६-२०) तोसुन् (तोस्) (३।४।१६/३४।४३) कसुन् (अस्) (३।४।१७/३४४४) यह प्रत्ययान्त–शब्द भी अव्ययसंज्ञक जानने चाहियें, यथा–कृत्वा (करके), उदेतोः ('उदेतुम्' अ० उदय पानेको) । विसृपः ('विसृतम्' अ० जानेकेलिये) ॥

४५१ अव्ययीभावश्च । १ । १ । ४१ ॥

अधिहरि ॥

४५१–अव्ययीभाव समास भी (६४७–६८३) अव्ययसंज्ञक हो । अधिहरि ('हरौ इति' अर्थात् हरिमें) ॥

---

* स्वरादिकोंमेंसे कितने शब्द यहां फिर आयेहुए हैं "निपाता आद्युदात्ताः" (फिट् ४ । १२) इससे स्वरभेद है ॥

१ यहां श्रुत जो कृत् है उसीके साथ मान्त इसका सम्बन्ध होताहै, तदन्तविधिसे 'कृदन्त' के साथ नहीं होता, कारण कि, 'श्रुतानुमितयोः श्रुतसम्बन्धो बलीयान्' ऐसी परिभाषा है, नहीं तो प्रताम् शब्दके द्विवचन प्रतामौ यहांपर भी अव्ययसंज्ञा होकर लुक् होजायगा; कारण कि, "प्रताम्" यह मान्त भी है और प्रत्ययलक्षणसे कृदन्त भी है ॥

४५२ अव्ययादाप्सुपः ।२।४।८२॥

अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक् स्यात् । तत्र शालायाम् । विहितविशेषणान्नेह । अत्युच्चैसौ । अव्ययसंज्ञायां यद्यपि तदन्तविधिरस्ति तथापि न गौणे । आब्ग्रहणं व्यर्थमलिङ्गत्वात् ॥

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

इति श्रुतिर्लिङ्गकारकसंख्याभावपरा ।

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा॥

वगाहः । अवगाहः । पिधानम् । अपिधानम्॥

॥ इत्यव्ययानि ॥

४५२–अव्ययके उत्तर विधान कियेहुए जो स्त्रीवाचक आप् (आ) और सु, औ, जस्–इत्यादि 'सुप्' प्रत्यय इनका लुक् होताहै । ("ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुग्० २।४।५८" सूत्रसे लुक्की अनुवृत्ति होतीहै) 'तत्र शालायाम्' (उस शालामें) इसमें 'शालायाम्' यह 'तत्र' इसका ही अर्थ है इसलिये शाला शब्दके समान ' तत्र ' इसके आगे भी स्त्रीवाचक आप् (आ) और सप्तमी प्रत्ययका प्रस्तुत सूत्रसे लुक् हुआ है, कारण कि, "सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०/१९५७" इससे होनेवाली यह त्रल् (त्र) प्रत्यय तसिलादिकोंमेंसे है इसलिये इसको अव्ययत्व है, (विहितेति) विहित अर्थात् विवक्षित शब्दके आगे कहाहुआ, ऐसा विशेषण लगाहुआ है, इस कारण ' अत्युच्चैसौ ' (उच्चको अतिक्रमण करनेवाले, दो जने) इसमें ' औ ' प्रत्ययका लुक् नहीं हुआ, कारण यह कि, ' उच्चैस् ' शब्दके परे यद्यपि औ प्रत्यय है, तो भी 'उच्चैस्' से विहित नहीं है ।(अव्ययसंज्ञायामिति) अव्ययसंज्ञा होते यद्यपि ' प्रयोजनं सर्वनामाव्ययसंज्ञायाम् ' इस भाष्यकारके वचनसे तदन्तविधि है, तो भी इस शब्दमें ' उच्चैस् ' शब्द नहीं है, 'अत्युच्चैस्' इसमें विशेषण है, इसलिये उसको गौणत्व है, गौण होनेके कारण " गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्य्यसम्प्रत्ययः " इस न्यायसे यहां लुक् नहीं । सूत्रमें आप् ग्रहण व्यर्थ है, कारण कि, अव्यय अलिङ्ग है, यह अगली श्रुतिसे स्पष्ट है । (सदृशमिति०) तीनो लिङ्गोंमें समान, सब विभक्तियोंमें समान, सब वचनोंमें समान, अर्थात् जिसमें कभी भी विकार उत्पन्न नहीं होता, वह अव्यय है । (इति श्रुतिः लिङ्गकारकसंख्याऽभावपरा) ऐसी लिङ्ग, कारक (विभक्तिसम्बन्ध), संख्या (वचन) इनका अभाव दरसानेवाली यह (आथर्वण) श्रुति है ।

अव्ययप्रकरणमें कुछ विशेषता कहतेहैं–

(वष्टि भागुरीति) भागुरिनामक वैयाकरणको 'अव' और 'अपि' इन उपसर्गोंमेंका अकारलोप इष्ट है, वैसेही हलन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंका आबन्तत्व इष्ट माना है, जैसे 'वाच्' इसके वाचा, निशके निशा और दिशके दिशा । वगाहः, अवगाहः (स्नान), । पिधानम्, अपिधानम् (ढकना) विकल्पके कारण यहां दोनों प्रकारके रूपोंका ग्रहण जानना चाहिये ॥

॥ इति अव्ययानि ॥

१ वास्तवमें यह श्रुति ब्रह्मका निरूपण करनेवाली है, तो भी भाष्यकारके व्याख्यानसे यहां अव्ययपरत्व की गई है ॥

अथ स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ।

४५३ स्त्रियाम् । ४।१।३ ॥

अधिकारोऽयं समर्थानामिति यावत् ॥

४५३–यह अधिकारसूत्र है, "समर्थानां प्रथमाद्वा ४।१।८२/१०७२" इस सूत्रतक चलेगा ॥

४५४ अजाद्यतष्टाप् । ४ । १ । ४ ॥

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप् स्यात् । अजाद्युक्तिर्ङीषो ङीपश्च बाधनाय । अजा । अतः खट्वा । अजादिभिः स्त्रीत्वस्य विशेषणान्नेह । पञ्चाजी । अत्र हि समासार्थसमाहारनिष्ठं स्त्रीत्वम् । अजा । एडका । अश्वा । चटका । मूषिका । एषु जातिलक्षणो ङीष् प्राप्तः ॥ बाला । वत्सा । होढा । मन्दा । विलाता । एषु वयसि प्रथम इति ङीप् प्राप्तः ॥ संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ॥ * ॥ संफला । भस्त्रफला । ङ्याप़ोरिति ह्रस्वः ॥ सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् ॥ * ॥ सत्पुष्पा । प्राक्पुष्पा । प्रत्यक्पुष्पा । शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः ॥ * ॥ पुंयोगे तु शूद्री । अमहत्पूर्वा किम् । महाशूद्री । क्रुञ्चा । उष्णिहा । देवविशा । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमेति पुंयोगेऽपि । कोकिला जातावपि ॥ मूलान्नञः ॥ * ॥ अमूला ॥

ऋन्नेभ्यो ङीप् । कर्त्री । दण्डिनी ॥

१ इस कारिकामें 'अव' और 'अपि' के अकारका लोप पढाहै, तो 'अव' इसमें अन्त्य अकारका लोप नहीं होता, कारण कि, 'सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम् ' इस परिभाषाके बलसे 'अपि' के साहचर्यसे अवके भी आदिका ही लोप इष्ट है अन्त्यका नहीं ॥

२ यहां यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि, अव्ययोंसे "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः ५।३।७१/२०२६" इससे अव्ययके टिसे पूर्व अकच् भी होताहै, इसलिये–

"किमसामयिकं वितन्वता मनसः क्षोभमुपात्तरंहसः ।
क्रियते पतिरुच्चकैरपां भवता धीरतयाऽधरीकृतः ॥"

इस श्लोकमें उच्चकैः यह रूप सिद्ध हुआ, इसी तरह नीचकैः– इत्यादि रूप भी जानने चाहियें ॥

४५४–अजादि और अकारान्त शब्दोंका वाच्य जो स्त्रीत्व वह द्योत्य रहते टाप् प्रत्यय हो । ङीष् और ङीप् प्रत्ययके बाधके निमित्त सूत्रमें अजादिग्रहण कियाहै, नहीं तो केवल 'अतः' इतना ही कहदेते । अज+टाप्=अजा । खट्वा । अजादिमें जो स्त्रीत्वका विशेषण दिया है इस कारणसे 'पञ्चानामजानां समाहारः– पञ्चाजी,' इस स्थलमें टाप् प्रत्यय नहीं हुआ, "द्विगोः $\frac{४।१।२१}{४७९}$" सूत्रसे ङीप् हुआ है, कारण कि, इस स्थलमें समासार्थ जो समाहार तन्निष्ठ स्त्रीत्व हुआ है, अजा, एडका, अश्वा, चटका, मूषिका, इनमें जातिलक्षणसे ङीष् प्राप्त है, परन्तु यह अजादि गणमें पठित हैं, इस कारण ङीष् नहीं हुआ, बाला, वत्सा, होडा, मंदा, विलाता, इनमें "वयसि प्रथमे $\frac{४।१।२०}{४७८}$" इस सूत्रसे ङीप् प्राप्त है, परन्तु अजादिमें पाठके कारण नहीं हुआ ।

संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् (वा० २४९७) सम्, भस्त्रा, अजिन, शण और पिण्ड शब्दके परे स्थित फल शब्दके उत्तर टाप् प्रत्यय हो सम्फल+टाप्=संफला । भस्त्रफला । "ङ्यापोः० $\frac{६।३।६३}{१००१}$" इस सूत्रसे ह्रस्व हुआ है ।

सदच्काण्डप्रांतशतैकेभ्यः पुष्पात् (वा० २४९६) सत् अञ्च्, काण्ड, प्रान्त, शत और एक शब्दके परे स्थित पुष्प शब्दके उत्तर टाप् प्रत्यय हो । सत्पुष्प+टाप्=सत्पुष्पा, प्रत्यक्पुष्पा–इत्यादि ।

शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः (वा० २४००–२४०१) जातिवाचक अमहत्पूर्वक शूद्र शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें टाप् (आ) हो । 'शूद्रत्वजातिविशिष्ट स्त्री' इस अर्थमें शूद्र+टाप्=(आ) शूद्रा, परन्तु पुंयोग अर्थात् 'शूद्रस्य स्त्री' इस अर्थमें जातिवाच्य न होनेके कारण ङीप् होताहै, शूद्र+ङीप्=शूद्री । 'अमहत्पूर्वा' क्यों कहा ? तो महत् शब्द पूर्वमें जहां है वहां ङीप् हो, महाशूद्री । क्रुञ्च+टा= क्रुञ्चा । उष्णिहा, देवविशा, ज्येष्ठा, कनिष्ठिका । मध्यमा शब्दसे पुंयोगमें और कोकिल शब्दसे जातिवाच होनेपर भी अजादित्वके कारण टाप् होगा ।

(मूलान्नञः २५००) नञ्पूर्वक मूल शब्दके उत्तर टाप् प्रत्यय हो । अमूला ।

(ऋन्नेभ्यो ङीप् $\frac{४।१।५}{३०६}$) ऋदन्त और नान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीप् हो । कर्तृ+ङीप्=कर्त्री, दण्डिन्+ङीप्= दण्डिनी–इत्यादि ॥

४५५ उगितश्च । ४ । १ । ६ ॥

उगिदन्तात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । पचन्ती । भवन्ती । शप्श्यनोरिति नुम् । उगिदचामिति सूत्रेऽज्ग्रहणेन धातोश्चेदुगित्कार्यं तर्ह्यञ्चतेरेवेति नियम्यते । तेनेह न । उखास्रत् । क्विप् । अनिदितामिति नलोपः । पर्णध्वत् । अञ्चतेस्तु स्यादेव । प्राची । प्रतीची ॥

४५५–उगिदन्त (उ–ऋ–ऌ–इत्संज्ञक हैं जिसमें तदन्त) जो प्रातिपदिक उससे स्त्रीलिंगमें ङीप् हो । भवन्ती, पचन्ती, "शप्श्यनो० $\frac{७।१।८१}{४४६}$" इस सूत्रसे नुम्, भवत्+ई=भवन्+त्+ई=भवन्ती (होतीहुई) । पचत्+ई=पचन्+त्+ई= पचन्ती (रांधतीहुई) । "उगिदचाम्० $\frac{७।१।७०}{३६१}$" इस सूत्रसे अच्ग्रहणके सामर्थ्यसे, धातुको उगित्कार्य हो तो अञ्चु धातुको ही हो, अन्यको नहीं, इसलिये उखायाः स्रंसते उखा+स्रन्स्+क्विप्+सु=उखास्रत् । पर्णेभ्यो ध्वंसते पर्ण+ ध्वंस्+क्विप्+सु=पर्णध्वत्, (स्रन्सु, ध्वंसु अवस्रंसने) "वसुस्रंसु० $\frac{८।२।७२}{३३४}$" इससे दकार, "अनिदिताम्० $\frac{६।४।२४}{४१२}$" इससे नकारका लोप हुआ और यहां ङीप् न हुआ, अञ्चु धातुके उत्तर ङीप् होगा, प्र+अञ्च्+ङीप्=प्राची । प्रति+ अञ्च्+ङीप्=प्रतीची ॥

४५६ वनो र च । ४ । १ । ७ ॥

वन्नन्तात्तदन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्याद् रश्चान्तादेशः । वन्निति ङ्वनिक्वनिब्वनिपां सामान्यग्रहणम् ॥ प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम् । तेन प्रातिपदिकविशेषणात्तदन्तान्तमपि लभ्यते । सुत्वानमतिक्रान्ता अतिसुत्वरी । अतिधीवरी । शर्वरी ॥ वनो न हश इति वक्तव्यम् ॥*॥ हशन्ताद्धातोर्विहितो यो वन् तदन्तात्तदन्तान्ताच्च प्रातिपदिकात् ङीप् रश्च नेत्यर्थः । ओणृ अपनयने वनिप् । विड्वनोरित्यात्वम् । अवावा ब्राह्मणी । राजयुध्वा ॥ बहुव्रीहौ वा ॥ * ॥ बहुधीवरी । बहुधीवा । पक्षे डाप् वक्ष्यते ॥

४५६–वन्प्रत्ययान्त और तदन्त प्रातिपदिकके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीप् हो और रकार अन्तादेश हो । ङ्वनिप्, क्वनिप्, वनिप्, इन प्रत्ययोंका वनिप् कहनेसे सामान्यतासे ग्रहण है, प्रत्ययग्रहणके कारणसे 'प्रत्ययग्रहणे०' इस परिभाषासे तदादिविशेष्यक तदन्त विधि होकर वन्नन्त जो तदादि ऐसा अर्थ हुआ, फिर वन्नन्तको प्रातिपदिकका विशेषण होनेसे "येन विधिस्तद०" इससे तदन्तविधि होकर वन्नन्तान्त ऐसा अर्थ हुआ, इसलिये यहां भी होताहै, यथा–सुत्वानमतिक्रान्ता "सुयजोर्ङ्वनिप्० $\frac{३।२।१०३}{२०९१}$" से ङ्वनिप्, "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे०" इससे समास हुआ, तब अति+सु+ङ्वनिप्+ङीप्= अतिसुत्वरी । अतिधीवरी अति+धा+क्वनिप्+ङीप्=अतिधीवरी "अन्येभ्योऽपि दृश्यते" इससे धा धातुसे क्वनिप् प्रत्यय हुआ, "घुमास्था० $\frac{६।४।६६}{२४६२}$" इससे ईत्व हुआ, अतिधीवरी । शर्वरी–यह शृधातुसे "अन्येभ्योपि०" इससे वनिप्,

---

१ अज, एडक, अश्व, चटक, मूषक, बाल, वत्स, होड, पाक, मन्द, विलात, पूर्वापहाण, उत्तरापहाण, क्रुञ्च, उष्णिहा, देवविशा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा यह पुंयोगमें भी, कोकिला यह जातिमें दंष्ट्रा, इतने अजादि हैं, यह आकृतिगण है ॥

२ 'संभस्त्रा०' 'सदच्०' 'मूलात्०' यह तीन वार्तिक ङीष्के प्रतिषेधनिमित्त हैं, "पाककर्ण० $\frac{४।१।६४}{५१९}$" इस सूत्रमें पठित भी है, तो भी फलमें विशेष न होनेके कारण यहां ही लिखा इससे यह गणसूत्र है ऐसा भ्रम न करना चाहिये, ऐसे ही 'श्वेताच्च' 'त्रेश्च' ये दोनों वार्तिक यहां जानने चाहियें इससे श्वेतफला, त्रिफला, यह भी सिद्ध हुए ॥

फिर गुण, रपरत्व, होकर होताहै, यहां वनको इशन्तसे परत्व होनेपर भी इशन्तसे विधान नहीं है इससे ङीप् और रकारका निषेध नहीं हुआ।

वनो न हश० (वा० २४०५) हशन्त धातुसे विहित जो वन तदन्त और तदन्तान्त प्रातिपदिकसे ङीप् और र आदेश नहीं हों 'ओणृ अपनयने' इससे वनिप्, "विड्वनो० ६।४।४१ / २९८२" इससे आत्व हुआ ओण्+वन्=ओ+आ+वन्+सु=अवावा (पाप दूर करनेवाली ब्राह्मणी) इसमें अवादेश "हल्ङ्याब्भ्यः०" इससे अपृक्त हल्का लोप, "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८ / २५०" इससे नान्तकी उपधाको दीर्घ, "नलोपः० ८।२।७ / २६६" इससे नकारका लोप हुआहै। राजयुध्वा=राजानं योधितवती "राजनियुधिकृञः ३।२।९५ / ३०९" इस सूत्रसे क्वनिप्।

बहुव्रीहौ वा (२४०७ वा०) बहुव्रीहिमें ङीप्, रकारान्तादेश, विकल्पकरके हों। बहवो धीवानो यस्यां नगर्यामिति बहुधीवरी। विकल्प पक्षमें "डाबुभाभ्याम्० ४।१।१३ / ४६१" इससे डाप् होकर बहुधीवा। द्विवचनमें बहुधीवर्यौ, बहुधीवे, बहुधीवानौ, यह तीन रूप होंगे ॥

४५७ पादोऽन्यतरस्याम् ।४।१।८॥

पाच्छब्दः कृतसमासान्तस्तदन्तात्प्रातिपदिकाद् ङीप् वा स्यात् । द्विपदी । द्विपाद् ॥

४५७–कृतसमासान्त जो पाद् शब्द तदन्त प्रातिपदिकसे विकल्प करके ङीप् हो। द्वौ पादौ यस्याः इस बहुव्रीहिमें "संख्यासुपूर्वस्य० ५।४।१४० / ८७९" इससे पादशब्दका अन्तलोप, ङीप्, भत्व होनेसे पादको पद् आदेश हुआ, द्विपदी। ङीप् न होनेसे द्विपाद् ॥

४५८ टाबृचि ।४।१।९॥

ऋचि वाच्यायां पादन्ताट्टाप् स्यात्। द्विपदा ऋक् । एकपदा ॥ * ॥ न षट्स्वस्रादिभ्यः । पञ्च । चतस्रः । पञ्चेत्यत्र नलोपे कृतेऽपि ष्णान्ता षडिति षट्संज्ञां प्रति नलोपः सुप्स्वरेति नलोपस्यासिद्धत्वान्न षट्स्वस्रादिभ्य इति न टाप् ॥

४५८–ऋक् अर्थमें पाद्शब्दान्त प्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गमें टाप् प्रत्यय हो। द्विपद्+टाप्=द्विपदा ऋक्। एकपदा ऋक्। यद्यपि 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इस कोशसे पादके ही समान अर्थवाला पद शब्द है, तथापि ऋचा अर्थमें, द्विपदी द्विपात् इस प्रयोगके निवृत्तिके निमित्त यह आरंभ है।

"न षट्स्वस्रादिभ्यः ४।१।१० / ३०८" इस सूत्रसे पञ्च। चतस्रः। पञ्च यहां नकारका लोप करनेपर भी "ष्णान्ता षट् १।१।२४ / ३६९" इस सूत्रसे षट् संज्ञाके प्रति "नलोपः सुप्स्वर० ८।२।२ / ३५३" इस सूत्रसे नकारलोपको असिद्धत्व है, इसलिये, "न षट्स्वस्रादिभ्यः" ४।१।१० / ३०८ इससे टाप् नहीं होगा ॥

४५९ मनः ।४।१।११॥

मन्नन्तान्न ङीप् । सीमा । सीमानौ ॥

४५९–मन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गमें ङीप् न हो सीमा, सीमानौ ॥

४६० अनो बहुव्रीहेः ।४।१।१२॥

अन्नन्ताद्बहुव्रीहेर्न ङीप् । बहुयज्वा । बहुयज्वानौ ॥

४६०–अन्नन्त बहुव्रीहिसे ङीप् न हो। बहुयज्वा, बहुयज्वानौ ॥

४६१ डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ४।१।१३।

सूत्रद्वयोपात्ताभ्यां डाब् वा स्यात् । सीमा । सीमे । सीमानौ ॥ दामा । दामे । दामानौ । न पुंसि दामेत्यमरः ॥ बहुयज्वा । बहुयज्वे । बहुयज्वानौ ॥

४६१–पूर्वोक्त दोनों सूत्रोंमें कहे हुए मन्नन्त और अन्नन्त शब्दोंसे विकल्प करके डाप् (आ) प्रत्यय हो। सीमा, सीमे, सीमानौ। दामन्+डाप्=दामा, दामे, दामानौ। दामन् शब्दका पुल्लिङ्गमें प्रयोग नहीं है ऐसा अमरकोश कहता है, बहुयज्वा, बहुयज्वे, बहुयज्वानौ। बहवो यज्वानोऽस्यां नगर्यां सा बहुयज्वा॥

४६२ अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ४।१।२८॥

अन्नन्ताद्बहुव्रीहेरुपधालोपिनो वा ङीप् स्यात् । पक्षे । डाब्निषेधौ । बहुराज्ञी । बहुराज्ञ्यौ । बहुराजे । बहुराजानौ ॥

४६२–उपधालोपी जो अन्नन्त बहुव्रीहि, उससे स्त्रीलिङ्गमें विकल्प करके ङीप् हो, विकल्प पक्षमें डाप् और ङीप्का निषेध है। "बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ४।१।२५" इससे बहुव्रीहि पदकी अनुवृत्ति आई और "संख्याव्ययादेर्ङीप् ४।१।२६" इससे ङीप्की अनुवृत्ति हुई। बहवो राजानः यस्याः सा बहुराज्ञी। बहुराज्ञ्यौ। बहुराजे, बहुराजानौ। अन्नन्तग्रहण इस कारण है कि, बहुमत्स्या, यहां ङीप् न हो। और उपधालोपी इस कारण है कि, सुपर्वा, सुपर्वाणौ, सुपर्वाणः–इत्यादिमें न

---

१ राजयुध्वा–इत्यादिकी सिद्धिके लिये कृत 'वनो न हश०' इससे ही यहां भी इष्टसिद्धि होसकती थी, फिर इस सूत्रसे क्या प्रयोजन है? तो यह बात नहीं, अन्नन्त बहुव्रीहिसे "डाबुभाभ्याम्०" इस डाप्के विधान होनेके लिये इस सूत्रकी आवश्यकता है और इससे ङीप्का निषेध होनेपर ङीप्के संनियोगसे प्राप्त "वनो र च ४।१।७ / ४५६" इससे रेफ भी दुर्लभ हुआ इससे 'वनो न हश०' यह वार्तिक अबहुव्रीहिके ही निमित्त है यह फलित हुआ। बहुयज्वानौ, यहां "न संयोगात्० ६।४।१३७ / ३५५" इस निषेधसे उपधालोप नहीं, इससे "अन उपधालोपिनो० ४।१।२८ / ४६२" इस वक्ष्यमाण विकल्पकी निवृत्ति हुई ॥

२ "मनः ४।१।११" "अनो बहुव्रीहेः। ४।१।१२" इन दोनों वचनोंके सामर्थ्यसे और "डाबुभाभ्याम्० ४।१।१३" इससे डाब्विधानसामर्थ्यसे पर्याय करके डाप् ङीप्निषेध होही जाता, फिर यहां अन्यतरस्यां ग्रहण जो किया सो स्पष्टार्थ है॥

हो । यहां ४६१ सूत्रसे डाप् विकल्प करके होता है इन दो विकल्पोंके होनेसे तीन प्रयोग होजातेहैं ॥

४६३ प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः । ७ । ३ । ४४ ॥

प्रत्ययस्थात्ककारात्पूर्वस्याऽकारस्येकारः स्यादापि परे स आप् सुपः परो न चेत् । सर्विका । कारिका । अतः किम् । नौका । प्रत्ययस्थात्किम् । शक्नोतीति शका । असुपः किम् । बहुपरिव्राजका नगरी । कात्किम् । नन्दना । पूर्वस्य किम् । परस्य मा भूत् । कटुका । तपरः किम् । राका । आपि किम् । कारकः ॥ मामकनरकयोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ मामिका । नरान् कायतीति नरिका ॥ त्यक्त्यपोश्च ॥ * ॥ दाक्षिणात्यिका । इहत्यिका ॥

४६३—सुप्से आगे स्थित न हो, ऐसा आप् परे रहते प्रत्ययस्थित ककारके पूर्ववर्ती अकारके स्थानमें इकार हो । सर्वक+आ=सर्व्+इ+क+आ=सर्विका " अव्ययसर्वनाम्नामकच्० $\frac{५।३।७१}{२०२६}$ " (कुत्सित स्त्री) कारक+आ=कार्+इ+का=कारिका(करोतेर्ण्वुल् वृद्धिः) (बनानेवाली स्त्री) ।

ककारके पूर्वमें अकार न होनेपर इकार न हो, यथा—नौका (नाव) (स्वार्थे कः । टाप्०) इसमें 'औ' है इस कारण ऊपर कही विधि न लगी ।

प्रत्ययमें स्थित ककारके कहनेका कारण 'शक्नोतीतिशका' इसमें ककार धातुका अवयव है, इससे अकारको इकार न हुआ, 'पचाद्यच्' और टाप् हुआ ।

' असुपः ' कहनेका कारण यह कि, सुप्से परे हो तो, यह विधि न लगे, बहुपरिव्राजका नगरी (जिसमें बहुत संन्यासी हों ऐसी नगरी) इसमें सुप्का लोप होकर पीछे स्त्रीप्रत्यय आ है । ' बहवः परिव्राजकाः यस्याम् ' ऐसे बहुव्रीहि समासमें, सुप्का लुक् होनेपर, प्रत्ययलक्षणसे सुबन्तके परे आप् होताहै, (परिपूर्वक व्रज धातुसे पाहिले ण्वुल् हुआहै) इससे यहां इकार न हुआ ।

ककारके पूर्वमें न होनेपर नन्दना यहां न हुआ, "नन्दिग्रहि० $\frac{३।१।१३४}{२८९६}$ " इस सूत्रसे ल्यु प्रत्यय हुआ है ।

सूत्रमें 'पूर्वस्य' क्यों कहा ? तो कप्रत्ययस्थ ककारसे पर अकारको इकार न हो, यथा—'कटुका' यहां पूर्वग्रहणके अभावमें सर्विका कारिका इसी जगह दोष था, फिर कटुकामें दोष क्यों दिया ? ऐसा नहीं कह सकते, कारण जो " नयासयोः ७ । ३ । ४५ " इस सूत्रारम्भसामर्थ्यसे और अत्में तपरकरणसामर्थ्यसे प्रत्ययस्थ ककारसे पूर्व अकारको इकार हो, ऐसा विशेष ज्ञापन करनेसे यहां दोष न था, इसलिये ' कटुका ' यहां दोष दिया, यहां वैसा अकार न होनेसे ककारसे पर अकारको इकार होजायगा, इसलिये ' पूर्वस्य ' कहा ।

तपरकरण इस कारण है कि, राका (" कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः" (उणादि० ३२०) इससे क और संज्ञापूर्वक विधिके अनित्यत्वसे " केणः $\frac{७।४।१३}{३४}$ " इससे ह्रस्व न हुआ) यहां इत्व न हो ।

आप् परे न होनेपर ' कारकः ' यहां इत्व न हुआ ।

"मामकनरकयोरुपसंख्यानं कर्तव्यमप्रत्ययस्थत्वात्"(४५२४ वा.) आप्के परे रहते मामक और नरक शब्दके ककारसे पूर्व अत्को इकार आदेश हो । यथा—'ममेयम्' इस विग्रहमें "युष्मदस्मदोः०" इससे अण् और "तवकममकौ०" इससे ममकादेश होकर मामिका ' नरान् कायति ' (इस विग्रहमें कै धातुसे "आदेच उपदेशे०" इससे आत्व करके "आतोऽनुपसर्गे०" इससे क प्रत्यय"आतो लोपः०"से आकारका लोप टाप्) नरिका ।

"प्रत्ययप्रतिषेधेत्यक्त्यपोश्चोपसंख्यानम्"(४५२५वा०)आप् परे हो तो, प्रत्ययस्थ ककारसे पूर्व त्यक् और त्यप् प्रत्ययके अकारको इत् आदेश हो, यथा—दाक्षिणात्यिका, इहत्यिका, इत्यादि, (यहां दक्षिणस्यामदूरे इस अर्थमें " दक्षिणादाच् " इससे आच्, तब दक्षिणा भवा इस अर्थमें दक्षिणा शब्दसे " दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् $\frac{४।२।९८}{१३१८}$ " इससे त्यक् प्रत्यय और अव्ययशब्दसे " अव्ययात्त्यप् $\frac{४।२।१०४}{१३२४}$ " इस सूत्रसे त्यप् प्रत्यय हुआहै) ॥

४६४ न यासयोः । ७ । ३ । ४५ ॥

यत्तदोरस्येन्न स्यात् । यका । सका । यकाम् । तकाम् ॥ त्यकनश्च निषेधः ॥ * ॥ अधित्यका । उपत्यका ॥ आशिषि वुनश्च न ॥ * ॥ जीवका । भवका ॥ उत्तरपदलोपे न ॥ * ॥ देवदत्तिका । देवका ॥ क्षिपकादीनां च ॥ * ॥ क्षिपका । ध्रुवका । कन्यका । चटका ॥ तारका ज्योतिषि ॥ * ॥ अन्यत्र तारिका ॥ वर्णका तान्तवे ॥ * ॥ अन्यत्र वर्णिका ॥ वर्तका शकुनौ प्राचाम् ॥ * ॥ उदीचां तु वर्तिका ॥ अष्टका पितृदेवत्ये ॥ * ॥ अष्टिकान्या ॥ सूतिकापुत्रिकावृन्दारकाणां वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इह वा अ इतिच्छेदः । कात्पूर्वस्याऽकारादेशो वेत्यर्थः । तेन पुत्रिकाशब्दे ङीन इवर्णस्य पक्षेऽकारः । अन्यत्रेत्त्वबाधनार्थमकारस्यैव पक्षेऽकारः । सूतिका । सूतकेत्यादि ॥

४६४—प्रत्ययस्थ ककारसे पूर्व यत्तत्सम्बन्धी अकारको इत् आदेश न हो । यका, सका, यहां यत् तत् शब्दोंसे अकच् प्रत्यय हुआहै, पीछे टाप् हुआहै ।

"यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम्" (वा० ४५२६) यत् और तत् शब्दोंको जो इत्वका निषेध कियाहै, वहां 'त्यकन्' प्रत्ययके ककारसे पूर्व अको भी इत्व न हो ऐसा कहना चाहिये यथा—उपत्यका, अधित्यका, य पूर्व होनेसे यहां " उदीचा० " इस अगले सूत्रसे विकल्प इत्वका निषेध करदिया ।

" आशिषि [illegible] श्चोपसंख्यानम् " (४५२८ वा०)

आशीर्वाद अर्थमें वर्तमान वुन् प्रत्ययसम्बन्धी ककारसे पूर्व अको इत्व न हो, यथा-जीवका, भवका "जीवतिभवति-भ्यामाशिषि च $\frac{3।1।150}{2912}$" इससे वुन् उसको अकादेश करनेपर टाप् ।

"उत्तरपदलोपे चोपसंख्यानम्" (४५२९ वा०) उत्तरपदका जहां लोप हो, वहां प्रत्ययस्थककारसे पूर्व अको इत्व न हो । देवदत्तका-देवका, यहां दत्त इस उत्तरपदका लोप होनेसे इत्व नहीं हुआ । (यहां स्वार्थमें क) "अनजादौ विभाषा लोपो वक्तव्यः" इससे लोप) ।

"क्षिपकादीनां चोपसंख्यानम्" (४५३०वा०)क्षिपके आदि शब्दोंके अकारके स्थानमें इत्व न हो । * क्षिपका ध्रुवका कन्यका चटका (चट् भेदने पचाद्यच् टाप्) ।

"तारका ज्योतिष्युपसंख्यानम्" (वा० ४५३१) तारका शब्द जहां नक्षत्रनामवाला है, वहां उसको इकारादेश न हो, यथा तारका, तृ धातुसे ण्वुल् प्रत्यय । जहां तारावाचक न हो, वहां तारिका ।

"वर्णका तान्तव उपसंख्यानम्"(४५३२ वा०) तन्तुओंके समुदाय इस अर्थमें वर्तमान वर्णकाशब्दको इत्व न हो, यथा वर्णका (यहां ण्वुल् हुआ है) जहां यह अर्थ न होगा, वहां वर्णिका (किसी ग्रंथकी व्याख्या वा स्तोत्रकरनेवाली) ।

"वर्तका शकुनौ प्राचामुपसंख्यानम्" (४५३३ वा०) जहां पक्षीवाची वर्तका शब्द हो, वहां प्राचीन आचार्योंके मतमें इकारादेश न हो । वर्तयतीति वर्तका शकुनिः । नवीनोंके मतमें वर्तिका ।

"अष्टका पितृदेवत्ये" (वा० ४५३४) पितृदैवतकर्ममें वर्तमान अष्टका शब्दको इकार न हो, अष्टका (अश्नन्ति ब्राह्मणा यस्यां सा अष्टका ' इष्यशिभ्यां तकन् ') अन्य अर्थमें, अष्टिका (अष्टौ परिमाणमस्याः इति " संख्याया अतिशदन्तायाः कन् ") ।

"सूतिकापुत्रिकावृन्दारकाणामुपसंख्यानम्"(वा० ४५३५) यहां वा अ ऐसा पदच्छेद करके ककारसे पूर्वको विकल्पसे अकार आदेश हो, ऐसा अर्थ जानना, इसी कारण पुत्रिका शब्दमें ङीन्के इवर्णको पक्षमें अकारादेश होगा, अन्यत्र इत्वबाधनके निमित्त अकारको विकल्पकरके अकार ही होगा,यथा-सूतका, सूतिका इत्यादि ॥

४६५ उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः । ७ । ३ । ४६ ॥

यकपूर्वस्य स्त्रीप्रत्ययाकारस्य स्थाने योऽकारस्तस्य कात्पूर्वस्येद्वा स्यादापि परे । केण इति ह्रस्वः । आर्यका । आर्यिका । चटकका । चटकिका । अतः किम् । सांकाश्ये भवा सांकाश्यिका । यकेति किम् । अश्विका । स्त्रीप्रत्ययेति किम् । शुभं यातीति शुभंया । अज्ञाता शुभंया शुभंयिका ॥ धात्वन्तयकोस्तु नित्यम् ॥ * ॥ सुनयिका । सुपाकिका ॥

४६५-य, क पूर्वक जो स्त्रीप्रत्ययसम्बन्धी आकार उसके स्थानमें जो अकार उसके स्थानमें विकल्पकरके इकार हो । "केऽणः $\frac{7।4।13}{634}$" इस सूत्रसे ह्रस्व हुआ, आर्यका, आर्यिका । चटकका, चटकिका । आत्का ग्रहण इस कारण है कि, जहां स्त्रीप्रत्ययसम्बन्धी आत्स्थानी अकार नहीं हो वहां इत्व न हो यथा-साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका, यहां न हुआ, (संकाशेन निर्वृत्तं नगरं सांकाश्यम् " वुञ्छण्० " ' संकाशादिभ्यो ण्यः ' । फिर भवार्थमें " धन्वयोपधाद्वुञ् " अकादेश) । यकपूर्वग्रहण इस लिये है कि, यह जहां न हो, वहां उक्तविधि न लगे, यथा-अश्विका, विकल्प न हुआ । स्त्रीप्रत्ययसम्बन्धी आकार न होनेपर शुभं याति इस अर्थमें " अन्येभ्योपि दृश्यते " इस सूत्रसे शुभं+या+विच् शुभंया, अज्ञातार्थमें शुभंया शब्दके उत्तर क प्रत्यय, ह्रस्व, पश्चात् "प्रत्ययस्थात्० $\frac{7।3।44}{463}$" इस सूत्रसे नित्य इ होकर शुभंयिका पद सिद्धहुआ है यहां विकल्प न हुआ ।

(धात्वन्तयकोस्तु नित्यम् ४५३६) धात्वन्त यकार और ककारपूर्वक स्त्रीप्रत्ययसम्बन्धी आत्स्थानी अकारको नित्य इकार हो, यथा-सुनयिका । सुपाकिका । सुष्ठु नयो यस्याः सुनया, फिर क, फिर "केऽणः" इससे ह्रस्व । इसी प्रकार सुष्ठु पाको यस्याः सा सुपाकिका ॥

४६६ भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वाणामपि । ७ । ३ । ४७ ॥

स्वेत्यन्तं लुप्तषष्ठीकं पदम् । एषामत इद्वा स्यात् । तदन्तविधिनैव सिद्धे नञ्पूर्वाणामपीति स्पष्टार्थम् । भस्त्राग्रहणमुपसर्जनार्थम् । अन्यस्य तूत्तरसूत्रेण सिद्धम् । एषा द्वा एतयोस्तु सपूर्वयोर्नेत्वम् । अन्तवर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्याऽसुप इति प्रतिषेधात् । अनेषका । परमैषका । अद्वके । परमद्वके । स्वशब्दग्रहणं संज्ञोपसर्जनार्थम् । इह हि । आतः स्थाने इत्यनुवृत्तं स्वशब्दस्यातो विशेषणं न तु द्वेषयोरसंभवात् । नाप्यन्येषामव्यभिचारात् । स्वशब्दस्त्वनुपसर्जनमात्मीयवाची अकजर्हः । अर्थान्तरे तु न स्त्री । संज्ञोपसर्जनीभूतस्तु कप्रत्ययान्तत्वाद्भवत्युदाहरणम् । एवं चात्मीयायां स्विका परमस्विकेति नित्यमेवेत्वम् । निर्भस्त्रका । निर्भस्त्रिका । एषका । एषिका । कृतषत्वनिर्देशान्नेह विकल्पः । एतिके । एतिकाः । अजका । अजिका । ज्ञका । ज्ञिका । द्विके । द्वके । निःस्वका । निःस्विका ॥

४६६-स्वा यहांतक लुप्तषष्ठीक पद है, भस्त्रा, एषा, अजा, ज्ञा, द्वा और स्वा यह शब्द नञ्पूर्वक भी हों, तो

---

१ क्षिपका, ध्रुवका, चरका,सेवका,करका,चटका,अवका, हलका, अलका, कन्यका, एडका, इतने क्षिपकादि हैं, यह आकृतिगण है ॥

भी आकारके अकारको विकल्पकरके इत् आदेश हो। तदन्तविधिसे ही नञ्पूर्वकको भी हो ही जाता, फिर नञ्पूर्वग्रहण स्पष्टताके निमित्त है। भस्त्राग्रहण, उपसर्जन अर्थात् गौणार्थके निमित्त है, औरको "अभाषितपुंस्काच्च ७।३।४८" इस पर सूत्रसे ही सिद्ध होगा। एषा और द्वा शब्दके पूर्वमें कोई पद विद्यमान हो तो, इत्व नहीं होगा, क्योंकि, अन्तवर्त्तिनी विभक्तिका आश्रय करके 'असुपः' यह निषेध लगजाताहै इसलिये अनेषका होताहै, 'न सु, एतद् सु' ऐसी स्थितिमें अकच् करनेपर, वा अकच्से पहले ही, नञ्तत्पुरुष करनेपर, 'अन्तरङ्गानपि' इस न्यायसे त्यदाद्यत्वप्रवृत्तिसे पहले ही, सामासिक लुक् होगया। फिर विशिष्टसे सुप्, त्यदाद्यत्व और पररूप करनेपर टाप् होता है, यहां आदि सुपसे टाप्को पर होनेके कारण आकारस्थानिक अकारको इत्व नहीं होता, अज्ञाता एषा एषका—न एषका, अनेषका, अज्ञाता अनेषा अनेषका वा यह लौकिक विग्रह जानना। इसी प्रकार आगे भी जानना। परमैषका। अद्वके। परमद्वके। स्व शब्दका ग्रहण संज्ञा उपसर्जन (विशेषण) के निमित्त है। इस सूत्रमें 'आतः स्थाने०' ($\frac{३।४।११०}{२२२७}$) इसकी अनुवृत्ति आतीहै वह स्व शब्दके आत्का विशेषण है, द्वा और एषा शब्दके असंभवके कारण, और अन्यको अर्थात् भस्त्रादि शब्दोंके अव्यभिचारके कारण आत् विशेषण नहीं है। यदि स्व शब्द संज्ञा अथवा उपसर्जनीभूत हो तो, क प्रत्ययके पीछे इस सूत्रसे विकल्प करके इत्व होगा, इसके कहनेकी आवश्यकता क्या? इस शंकापर कहतेहैं कि, आत्मीयवाचक अनुपसर्जनीभूत स्व शब्दको टिके पूर्वमें अकच् प्रत्यय होता है इस कारण उसका अकार आत्स्थानजात नहीं है, इस कारण इत्व न होगा। अर्थान्तरमें आत्मीयसे भिन्नार्थ (ज्ञातिधनादि)में स्व शब्द स्त्रीलिङ्ग नहीं है, परन्तु संज्ञा और उपसर्जनीभूत स्व शब्द कप्रत्ययान्त यहां रहेंगे वही उदाहरण अर्थात् इस सूत्रसे वैकल्पिक इत्व होगा। इसी कारण आत्मीयार्थमें स्विका, परमस्विका,—इत्यादिमें नित्य ही इत्व होगा, निर्भस्त्रका, निर्भस्त्रिका—निष्क्रान्ता भस्त्रायाः इस विग्रहमें निर्भस्त्रा, 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या (१३३९वा०)' इससे समास, उपसर्जनह्रस्व, टाप्, अज्ञातादिमें क, "केऽणः" से ह्रस्व, फिर टाप्। इसी प्रकार एषा, एषिका। कृतषत्वनिर्देशके कारण एतिके, एतिकाः, यहां विकल्प नहीं हुआ। अजका, अजिका। ज्ञका, ज्ञिका—जानातीति ज्ञः "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ३।१।१३५।" इससे क प्रत्यय हुआ। द्वके, द्विके। निःस्वका, निःस्विका (स्वस्याः निष्क्रान्तेति निःस्वका)॥

४६७ अभाषितपुंस्काच्च ।७।३।४८॥

एतस्माद्विहितस्यातः स्थानेऽत इद्वा स्यात्। गंगका। गङ्गिका। बहुव्रीहिर्भाषितपुंस्कत्वात्ततो विहितस्य नित्यम्। अज्ञाता खट्वा अखट्विका। शैषिके कपि तु विकल्प एव॥

४६७—अभाषितपुंस्कके उत्तर विहित जो आत् तत्स्थानी अकारके स्थानमें विकल्प करके इत् हो। गङ्गका, गङ्गिका। बहुव्रीहि समास भाषितपुंस्क है इस कारण उसके उत्तर विहित आत्के आकारके स्थानमें नित्य इकार होगा। न विद्यते खट्वा यस्याम् इस विग्रहमें नञ्को खट्वाको समास करके "गोस्त्रियोः०" इससे ह्रस्व, फिर टाप् अखट्वा, तब अज्ञाता अखट्वा इस वाक्यमें अज्ञातार्थमें कप्रत्यय, इससे प्रत्यय परे रहते "केऽणः" इससे ह्रस्व अकार और अकारके स्थानमें नित्य इकार होकर अखट्विका पद सिद्ध हुआ, परन्तु शैषिक कप्पक्षमें विकल्प ही होगा, कारण जो उपसर्जन ह्रस्वको बाधकर समासान्त कप्प्रत्यय करनेपर स्त्रीप्रत्ययान्तके अभावसे उपसर्जन ह्रस्व नहीं होताहै, किन्तु "आपोऽन्यतरस्याम्" से वैकल्पिक ह्रस्व होकर, 'अखट्विका' यहां अभाषितपुंस्कसे विहितके कारण इससे वैकल्पिक इत्व होताहै॥

४६८ आदाचार्याणाम् । ७ । ३ । ४९ ॥

पूर्वसूत्रविषये आद्वा स्यात्। गङ्गाका। उक्तपुंस्कात्तु शुभ्रिका॥

४६८—आचार्योंके मतमें अभाषितपुंस्क प्रातिपदिकोंसे विहित आत्के स्थानमें अकारको विकल्पकरके आत् हो, यथा—गङ्गाका, परन्तु उक्तपुंस्कसे विहित आके स्थानमें अकारको आकार न होकर, शुभ्रिका ऐसा रूप होगा॥

४६९ अनुपसर्जनात्। ४ । १ । १४ ॥

अधिकारोऽयं यूनस्तिरित्यभिव्याप्य। अयमेव स्त्रीप्रत्ययेषु तदन्तविधिं ज्ञापयति॥

४६९—"यूनस्तिः $\frac{४।१।७७}{५३१}$" सूत्रतक इस सूत्रका अधिकार चलेगा। यहांसे आगे जिन २ प्रत्ययोंका विधान करेंगे, सो २ अनुपसर्जन अर्थात् स्वार्थमें मुख्य प्रातिपदिकोंसे ही होंगे। यही स्त्रीप्रत्ययमें तदन्तविधिका ज्ञापन करताहै॥

४७० टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः। ४ । १ । १५ ॥

अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुरुचरी। उपसर्जनत्वान्नेह। बहुकुरुचरा। नदट् नदी। वक्ष्यमाणेत्यत्र टित्वादुगित्वाच्च ङीप् प्राप्तः। यासुटो ङित्त्वेन लाश्रयमनुबन्धकार्यं नादेशानामिति ज्ञापनान्न भवति। श्नः शानचः शित्त्वेन क्वचिदनुबन्धकार्येऽप्यनल्विधाविति निषेधज्ञापनाद्वा। सौपर्णेयी। ऐन्द्री। औत्सी। ऊरुद्वयसी। ऊरुदघ्नी। ऊरुमात्री। पञ्चतयी। आक्षिकी। लावणिकी। यादृशी। इत्वरी॥ताच्छीलिके णेऽपि॥*॥ चौरी॥ नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्॥*॥ स्त्रैणी। पौंस्नी। शाक्तीकी। आढ्यंकरणी। तरुणी। तलुनी॥

४७०—अनुपसर्जनीभूत टिदादि अर्थात् टित्, ढप्रत्यय, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्,

क्वञ् और क्वरप् इन सम्पूर्ण प्रत्ययान्त अकारान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीप् हो ।

कुरुषु चरति इस अर्थमें "चरेष्टः ३।२।१६/२९३०" इस सूत्रसे टच् प्रत्यय होकर ङीप् हुआ, तब कुरुचरी (कुरुको जानेवाली स्त्री)। बहवः कुरुचरा यस्याम् इस विग्रहमें बहुकुरुचरा यहां अन्यपदार्थ प्रधान होनेसे ङीप् न हुआ। नदट् शब्दका टकार इत् है पीछे ङीप् होकर नदी पद बना ।

(वक्ष्यमाणेति) 'वच् परिभाषणे' इससे कर्ममें लृट् प्रत्यय, उसके स्थानमें "लृटः सद्वा ३।३।१४/३१०७" से शानच् आदेश, "स्यतासी० ३।१।३३/२१८६" से स्य प्रत्यय, कुत्व, षत्व, "आने मुक्" से मुक्का आगम होकर-वक्ष्यमाण ऐसी स्थिति हुई, यहां स्थानि (लृ) वृत्ति टित्व और उगित्वको स्थानिवद्भाव करके आदेशमें लाकर "४ । १ । १५" सूत्रसे वा "४ । १ । ६" से ङीप् प्राप्त हुआ, यहां "अनल्विधौ" यह स्थानिवद्भावका निषेध नहीं कर सकता, कारण जो "न ल्यपि" इस सूत्रारम्भसामर्थ्यसे अनुबन्धप्रयुक्त कार्य्य कर्त्तव्य होते 'अनल्विधौ' यह निषेध नहीं लगताहै, ऐसा ज्ञापन है, नहीं तो प्रदाय, प्रस्थाय, यहां भी क्त्वावृत्ति कित्वको स्थानिवद्भावसे आदेश (य) में नहीं आनेसे ईत्वकी प्राप्ति ही नहीं थी, फिर उसके निषेधके लिये "नल्यपि" सूत्र व्यर्थ ही होजाता ? यह बात सत्य है, परन्तु यहां ङीप् नहीं होसकताहै, कारण जो लिङ्वृत्ति ङित्व स्थानिवद्भावसे आदेशमें आहीजाता फिर "यासुट् परस्मैपदेषु०" इसमें यासुट्को ङित्वविधानसामर्थ्यसे 'लाश्रयमनुबन्धकार्य्यं नादेशानाम्' अर्थात् लाश्रय अनुबन्धकार्य्य आदेशको नहीं होताहै, ऐसा वचन सिद्ध होताहै, इससे यहां ङीप् न होगा, यह ठीक है, परन्तु ङित्वविधान व्यर्थ नहीं होसकताहै, कारण जो भाष्यकार "ङिच्च-पिन्न, पिच्च ङिन्न," अर्थात् ङित् पित् नहीं होता और पित् ङित् नहीं होता, ऐसा "सार्वधातुक०" इस सूत्रमें कहेहैं इससे ङित्वको तिप्प्रत्यय ही में व्याघात होगया अर्थात् तिप्में ङित्व नहीं आवेगा इसलिये ङित्वविधान सार्थक होगया, फिर उससे 'लाश्रय०' यह ज्ञापन नहीं होसकताहै, इसलिये कहते हैं-(श्नः शानच् इति) "हलः श्नः शानज्झौ ३।१।८३/२५५७" इससे श्नाके स्थानमें शानच्को शित्वकरणसामर्थ्यसे कहीं अनुबन्धकार्य्यमें भी "अनल्विधौ" यह निषेध लगताहै, ऐसा ज्ञापनसे वक्ष्यमाणा यहां ङीप् न हुआ, यदि कोई इस पर भी कहे कि, शानच्के शित्वको भाष्यकार प्रत्याख्यान किये हैं, तो वक्ष्यमाणा ऐसा प्रयोग देखनेमें आवे, तो अजादिगणमें पाठकर टाप् प्रत्यय करके सिद्ध करना ॥

सुपर्णी+ढक्+ङीप्=सौपर्णेयी (सुपर्णीकी कन्या) सुपर्ण्या अपत्यं स्त्री "स्त्रीभ्यो ढक् ११२३" इससे ढक् हुआ है, फिर ४७५ वां सूत्र लगा । इन्द्र+अण्+ङीप्=ऐन्द्री (जिस ऋचाका इन्द्र देवता है) इन्द्रो देवता अस्याः "साऽस्य देवता १२२६" इससे अण् हुआ है । उत्स+अञ्+ङीप्=औत्सी (उत्सवंशकी कन्या) उत्से भवा "उत्सादिभ्योऽञ् १०७८" इससे अञ् हुआ । ऊरु+द्वयसच्+ङीप्=ऊरुद्वयसी । ऊरु+दघ्नच्+ङीप्=ऊरुदघ्नी । ऊरु+मात्रच्+ङीप्=ऊरुमात्री (जांघभर प्रमाणवाली) ऊरू प्रमाणमस्याः "प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः १८३८" इससे द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् प्रत्यय क्रमसे हुए हैं । पञ्च+तयप्+ङीप्=पञ्चतयी (जिसके पांच अवयव हों) पञ्च अवयवा यस्याः "संख्याया अवयवे तयप् १८४३" इससे तयप् हुआ है । अक्ष+ठक्+ङीप्=आक्षिकी (पासासे खेलनेवाली) अक्षैर्दीव्यति "तेन दीव्यति० १५५०" से ठक् हुआ है । लवण+ठञ्+ङीप्=लावणिकी (लवण बेचनेवाली) लवणं पण्यमस्याः "लवणाट्ठञ् १६०२" से ठञ् हुआ है । यादृश्+कञ्+ङीप्=यादृशी (जैसी) "त्यदादिषु० ४२९" इससे कञ् हुआ है, फिर ४३० वां सूत्र लगा । इण्+क्वरप्+ङीप्=इत्वरी (जानेवाली) "इण्नशजिसर्तिभ्यः० ३१४३" से क्वरप् हुआ है ।

(ताच्छीलिके णेपि ६८ प०) अण् प्रत्यय रहते जो कार्य्य होता है, वह शीलार्थक ण प्रत्ययमें भी होता है, इस कारण चुरा शीलमस्याः इस वाक्यमें चुरा+ताच्छीलिक ण+ङीप्=चौरी ।

(नञ्स्नञ्० २४२५ वा०) नञ्, स्नञ्, ईकक्, ख्युन् प्रत्ययान्त और तरुण तथा तलुन शब्दोंके उत्तर ङीप् हो । स्त्री+नञ्+ङीप्=स्त्रैणी, (स्त्रीसम्बन्धिनी) स्त्रिया इयं "स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४।१।८७/१०७९" से नञ् हुआ है। पुंस्+स्नञ्+ङीप्=पौंस्नी (पुरुषसम्बन्धिनी) शक्ति+ईकक्+ङीप्=शाक्तिकी (शक्तिप्रहार करनेवाली) शक्तिः प्रहरणमस्याः "शक्तियष्ट्योरीकक्० ४।४।५९/१६०९" से ईकक्, आढ्यः+कृ+ख्युन्+ङीप्=आढ्यङ्करणी (दरिद्रको धनीकरनेवाली स्त्री) अनाढ्यः आढ्यः क्रियते अनया "आढ्यसुभग० ३।२।५६/२९७३" इससे कृ धातुसे ख्युन्, "युवोरना० ७।१।१/१२४७" इससे अनादेश, "अरुर्द्विषत्० ६।३।६७/२९४२" इससे मुम्, तरुण+ङीप्=तरुणी, तलुन+ङीप्=तलुनी. (जवान स्त्री) ॥

४७१ यञश्च । ४ । १ । १६ ॥

यञन्तात्स्त्रियां ङीप्स्यात् । अकारलोपे कृते ॥

४७१-यञन्तशब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीप् हो । अकारका लोप करनेपर-

४७२ हलस्तद्धितस्य । ६ । ४ । १५० ॥

हल उत्तरस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोपः स्यादीति परे । गार्गी ॥ अनपत्याधिकारस्थान्न ङीप् ॥ * ॥ द्वीपे भवा द्वैप्या । अधिकारग्रहणान्नेह । देवस्यापत्यं दैव्या । देवाद्यञञाविति हि यञ् प्राग्दीव्यतीयो न त्वपत्याधिकारपठितः ॥

४७२-ईत् परे रहते हल्के उत्तर उपधाभूत तद्धितके यकारका लोप हो गर्गस्य अपत्यं स्त्री इस वाक्यमें गर्ग+यञ्+ङीप्=गार्गी (गर्गवंशकी कन्या) "यञश्च ४७१" इस सूत्रमें भाष्यकारका 'अपत्यग्रहणं कर्तव्यम्' (अपत्यार्थक यञ् यहां लेना चाहिये) ऐसा वार्त्तिक है इससे "द्वीपादनुसमुद्रं यञ् ४।३।१०/१३२०" इस सूत्रमेंके यञ् के अपत्याधिकारस्थ नहीं होनेसे

यञ्के उत्तर ङीप् न हुआ, द्वीपे भवा द्वीप्+यञ्+टाप्=द्वैप्या। वार्त्तिकमें अधिकारग्रहण है इससे देवस्यापत्यम् देव+यञ्+टाप्=दैव्या, इस स्थलमें अपत्यार्थमें यञ् होनेपर भी "देवाद्यञञौ २५५५ वा०"इसमें स्थित यञ् 'प्राग्दीव्यतीय' अधिकारमें पठित है अपत्याधिकारमें पठित नहीं है। इसीकारण ङीप् नहीं हुआ ॥

४७३ प्राचां ष्फ तद्धितः। ४। १।१७॥

यञन्तात्ष्फो वा स्यात् स्त्रियां स च तद्धितः॥

४७३–स्त्रीलिङ्गमें यञन्त शब्दके उत्तर विकल्प करके ष्फ हो, वह ष्फ तद्धितसंज्ञक हो ॥

४७४ षः प्रत्ययस्य । १ । ३ । ६ ॥

प्रत्ययस्यादिः ष इत्स्यात् ॥

४७४–प्रत्ययके आदिमें स्थित षकार इत् हो ॥

४७५ आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् । ७ । १ । २ ॥

प्रत्ययादिभूतानां फादीनां क्रमादायन्नादय आदेशाः स्युः। तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वम्। षित्त्वसामर्थ्यात् ष्फेणोक्तेऽपि स्त्रीत्वे षिद्गौरेति वक्ष्यमाणो ङीष्। गार्ग्यायणी ॥

४७५–प्रत्ययके आदिभूत जो फादि, अर्थात् फ्, ढ्, ख्, छ्, घ्, इनको क्रमसे आयन्, एय्, ईन्, ईय्, इय्, आदेश हों (अर्थात् फको आयन्, ढको एय्, खको ईन्, छको ईय्, घको इय् हों)। तद्धितान्तत्वके कारण प्रातिपदिकत्व होगा, स्त्रीलिङ्गमें ष्फके विधानसे स्त्रीत्व उक्त होनेके कारण 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इस न्यायके अनुसार गार्ग्यायणी इत्यादि स्थलमें ङीष्की अप्राप्ति हुई, परन्तु ष्फमें षित्त्वकरणसामर्थ्यसे (ङीष् न होता, तो षित्त्व करनेका प्रयोजन क्या इससे) उक्त न्यायको बाधकर "षिद्गौरादिभ्यः० ४९८" से ङीष् होकर गार्ग्यायणी सिद्ध हुआ॥

४७६ सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः । ४ । १ । १८ ॥

लोहितादिभ्यः कतशब्दान्तेभ्यो यञन्तेभ्यो नित्यं ष्फः स्यात्। लौहित्यायनी। कात्यायनी॥

४७६–गर्गादि गणपठित जो लोहित[1] आदि कत शब्द पर्यन्त अकारान्त शब्द हैं उनके यञन्त होनेपर उनसे नित्य ष्फ हो। लौहित्य+ष्फ+आयन्+ङीष्=लौहित्यायनी। कात्य+ष्फ+आयन्+ङीष्=कात्यायनी ॥

४७७ कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च।४।१।१९॥

आभ्यां ष्फः स्यात्। टाब्ङीषोरपवादः। कुर्वादिभ्यो ण्यः। कौरव्यायणी। ढक् च मण्डूकादित्यण्। माण्डूकायनी। आसुरेरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ आसुरायणी ॥

४७७–कौरव्य और माण्डूक शब्दोंके उत्तर ष्फ प्रत्यय हो। यह टाप् और ङीष्का अपवाद है। "कुर्वादिभ्यो ण्यः $\frac{४।१।१५१}{११७५}$" इस सूत्रसे कुरुआदि शब्दोंके उत्तर ण्य प्रत्यय करके, कुरु+ण्य=कौरव्य+ष्फ+आयन्+ङीष्=कौरव्यायणी। "ढक् च मण्डूकात् $\frac{४।१।११९}{११२२}$" इससे अण्, मण्डूक+अण्=माण्डूक+ष्फ+आयन्+ङीष्=माण्डूकायनी।

(आसुरेरुपसंख्यानम् २४३३ वा०) आसुरि शब्दसे भी तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय हो। आसुरि+ष्फ+आयन्+ङीष्=आसुरायणी, यहां आसुरि शब्दमें अपत्यसंज्ञक इञ् प्रत्यय हुआहै, तद्धितग्रहणका प्रयोजन यही है कि, आसुरि शब्दके इकारका लोप होजाय ॥

४७८ वयसि प्रथमे । ४ । १ । २० ॥

प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुमारी॥वयस्यचरम इति वाच्यम्॥*॥ वधूटी। चिरण्टी। वधूटचिरण्टशब्दौ यौवनवाचिनौ। अतः किम्। शिशुः। कन्याया न। कन्यायाः कनीन चेति निर्देशात् ॥

४७८–प्रथमवयोवाचक (पहली उमरके कहनेवाले) अकारान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीप् प्रत्यय हो। कुमार+ङीप्=कुमारी।

(वयस्यचरम इति वाच्यम् २४३५ वा०) प्रथमावस्थामें जो ङीप् कहाहै, वह अचरमे अर्थात् वृद्धावस्थाको छोडके कहना चाहिये, यथा–वधूटी। चिरंटी। अकारान्त, न होनेपर ङीप् न हो, यथा–शिशुः। कन्या शब्दके उत्तर ङीप् न हो, "कन्यायाः कनीन च $\frac{४।१।११६}{१११९}$" इस सूत्रनिर्देशके कारण ॥

४७९ द्विगोः । ४ । १ । २१ ॥

अदन्ताद् द्विगोर्ङीप् स्यात्। त्रिलोकी। अजादित्वात्त्रिफला। त्र्यनीका सेना ॥

४७९–स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान अकारान्त द्विगुसमाससंज्ञक प्रातिपदिकके उत्तर ङीप् हो,त्रयाणां लोकानां समाहारः इस वाक्यमें "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ७२८" इससे समास, "संख्यापूर्वो द्विगुः ७३०" इससे द्विगुसंज्ञा और "अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः" (वा०) से स्त्रीत्व होकर अकारान्त त्रिलोक शब्दके उत्तर ङीप् करके त्रिलोकी पद सिद्ध हुआ। अजादि गणमें पाठके कारण त्रिफला, इत्यादिमें टाप् होगा ङीप् नहीं होगा। त्र्यनीका (सेना) भी इसी प्रकार है। त्रयाणामनीकानां समाहारः त्र्यनीका ॥

४८० अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि । ४। १। २२ ॥

अपरिमाणान्ताद्बिस्ताद्यन्ताच्च द्विगोर्ङीप् न स्यात्तद्धितलुकि सति। पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा। आर्हीयष्ठक्। अध्यर्धेति लुक्। द्वौ

[1] लोहित, संशित, बभ्रु, वल्गु, मण्डु, गण्डु, शंख, लिगु, गुहलु, मन्तु, मंक्षु, अलिगु, जिगीषु, मनु, तन्तु, मनायी, सूनु, कथक, कंथक, ऋक्ष, वृक्ष, तक्ष, तनु, तरुक्ष, तलुक्ष, तण्ड, वतण्ड, कपिकत, कुरु और कत यह लोहितादि हैं ॥

विस्तौ पचति द्विविस्ता । द्व्याचिता । द्विकम्बल्या । परिमाणात्तु द्व्याढकी । तद्धितलुकि किम् । समाहारे । पञ्चाश्वी ॥

४८०-तद्धितलुक् होनेपर, अपरिमाणान्त और विस्तादि शब्दान्त द्विगुके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीप् प्रत्यय न हो। पञ्चभिरश्वैः क्रीता इस अर्थमें पञ्चाश्व+टाप्=पञ्चाश्वा, आर्हीय ठक् हुआ "अध्यर्द्ध० ५।१।२८/१६९३" इससे ठक्का लुक् । द्वौ विस्तौ पचति इस वाक्यमें द्विविस्त+टाप्=द्विविस्ता । द्व्याचित+टाप्=द्व्याचिता । द्विकम्बल्य+टाप्=द्विकम्बल्या । (द्वाभ्यां कम्बलाभ्यां क्रीता)। परिमाणान्त होनेपर, द्वौ आढकौ प्रमाणमस्याः इस वाक्यमें द्व्याढक+ङीप्=द्व्याढकी यहां निषेध न लगा 'तद्धितलुकि' इस कारण कहा है कि, यहां भी ङीप् निषेध न होजाय, पञ्चानामश्वानां समाहारः इस अर्थमें समास करके पञ्चाश्व, तब ङीप्, पञ्चाश्वी ॥

४८१ काण्डान्तात्क्षेत्रे । ४ । १ । २३ ॥

क्षेत्रे यः काण्डान्तो द्विगुस्ततो न ङीप् तद्धितलुकि। द्वे काण्डे प्रमाणमस्या द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः । प्रमाणे द्वयसज्जिति विहितस्य मात्रचः प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यमिति लुक् । क्षेत्रे किम् । द्विकाण्डी रज्जुः ॥

४८१-तद्धितलुक् होनेपर, क्षेत्रवाचक काण्ड शब्दान्त द्विगुके उत्तर ङीप् न हो, यथा-द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः इस वाक्यमें द्विकाण्ड+टाप्=द्विकाण्डा । काण्ड यह सोलह हाथ परिमाणवाले डंडेका नाम है,इससे द्विकाण्डपरिमित क्षेत्रभक्ति (क्षेत्रका भाग) अर्थ हुआ । "प्रमाणे द्वयसज्० ५।२।३७/१८३८" इस सूत्रसे विहित मात्रच् प्रत्ययको "प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम् (३१२८ वा०)" से लुक् हुआ । क्षेत्रवाचक न होनेपर ङीप् होगा, द्विकाण्ड+ङीप्=द्विकाण्डी, दो काण्ड प्रमाणवाली रस्सी ॥

४८२ पुरुषात्प्रमाणेऽन्यतरस्याम् । ४ । १ । २४ ॥

प्रमाणे यः पुरुषस्तदन्ताद्द्विगोर्ङीब्वा स्यात्तद्धितलुकि । द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः सा द्विपुरुषी द्विपुरुषा वा परिखा ॥

४८२-तद्धित लुक् होनेपर, प्रमाणवाचक जो पुरुषशब्द तदन्त द्विगुके उत्तर स्त्रीलिंगमें विकल्प करके ङीप् हो, द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः सा द्विपुरुष+ङीप्=द्विपुरुषी अथवा द्विपुरुषा। यहां तद्धित प्रत्ययको "प्रमाणे लो० ३१२८" से लुक् होताहै (परिखा) दो पुरुषके परिमाणवाली खाई ।

जहां प्रमाण अर्थमें पुरुष शब्द न होगा, वहां द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता द्विपुरुषा गौः "अपरिमाण० ४८०" इससे ङीप्निषेध होगा । तद्धितलुक् इसलिये है कि, द्विपुरुषी, यहां समाहारमें विकल्प न हो ॥

४८३ ऊधसोऽनङ् । ५ । ४ । १३१ ॥

ऊधोन्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशः स्यात् स्त्रियाम् । इत्यनङि कृते डाब्ङीब्निषेधेषु प्राप्तेषु ॥

४८३-स्त्रीलिङ्गमें ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि समासको अनङ् आदेश हो। इस सूत्रसे अनङ् करनेपर, "डाबुभाभ्याम्० ४६१" इससे वैकल्पिक डाप्, "अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ४।१।२८/४६२" इससे अन्नन्तसे वैकल्पिक ङीप् और "ऋन्नेभ्यः० ४।१।५/३०६" इससे प्राप्त ङीप्का "अनो बहुव्रीहेः० ४।१।१२/४६०" इससे निषेध प्राप्त होताहै ॥

४८४ बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ४ । १ । २५ ॥

ऊधोन्ताद्बहुव्रीहेर्ङीष् स्यात् स्त्रियाम् । कुण्डोध्नी । स्त्रियां किम् । कुण्डोधो धैनुकम् । इहाऽनङपि न। तद्विधौ स्त्रियामित्युपसंख्यानात् ॥

४८४-ऊधस्शब्दान्त बहुव्रीहिके उत्तर, स्त्रीलिङ्गमें ङीष् हो, यथा-कुण्डोध्+अन्+ङीष्= "अल्लोपोऽनः ६।४।१३४/२३४" इस सूत्रसे अन्के अकारका लोप करनेपर कुण्डोध्नी (कुण्डकी समान स्तनवाली) । स्त्रीवाची न होनेपर कुण्डोधो धैनुकम्, इस स्थानमें नपुंसक लिङ्ग होनेके कारण अनङ् आदेश भी न हुआ कारण जो अनङ् भी स्त्रीलिंग ही में कहाहै, "स्त्रियाम् ३३६७" इसका अधिकार होनेसे ॥

४८५ संख्याव्ययादेर्ङीप् । ४ । १ । २६ ॥

ङीषोऽपवादः । द्व्यूध्नी । अत्यूध्नी । बहुव्रीहेरित्येव । ऊधोऽतिक्रान्ता अत्यूधाः ॥

४८५-संख्या और अव्यय जिसके आदिमें है, ऐसे स्त्रीलिंगमें वर्तमान ऊधस्शब्दान्त बहुव्रीहिसंज्ञक प्रातिपदिकसे ङीप् हो, यह सूत्र ङीष्का बाधक है, द्व्यूध्+अन्+ङीप्=द्व्यूध्नी । अव्यय, यथा-अत्यूध्+अन्+ङीप्=अत्यूध्नी । बहुव्रीहि समास न होनेपर, ऊधोऽतिक्रान्ता अत्यूधाः यहां ङीप् वा ङीष् न हुआ ॥

४८६ दामहायनान्ताच्च । ४ । १ । २७ ॥

संख्यादेर्बहुव्रीहेर्दामान्ताद्धायनान्ताच्च ङीप् स्यात् । दामान्ते डाप्प्रतिषेधयोः प्राप्तयोर्हायनान्ते टापि प्राप्ते वचनम् । द्विदाम्नी । अव्ययग्रहणाऽननुवृत्तेरुद्दामा वडवेत्यत्र डाप्निषेधावपि पक्षे स्तः । द्विहायनी बाला ॥ त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम् ॥ * ॥ वयोवाचकस्यैव हायनस्य ङीब् णत्वं चेष्यते ॥*॥ त्रिहायणी । चतुर्हायणी । वयसोऽन्यत्र त्रिहायना । चतुर्हायना शाला ॥

४८६-संख्यावाचक शब्द जिसके आदिमें है, ऐसे दामान्त और हायनान्त बहुव्रीहिके उत्तर, स्त्रीलिंगमें ङीप् हो । "संख्या-

व्ययादेः० ४।१।२६/४८५ " इस सूत्रमें संख्याशब्दको समासान्तर्गत होनेपर भी स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलसे अनुवृत्ति होतीहै । दामान्त शब्दसे " डाबुभाभ्याम्० ४।१।१३/४६१ " इस सूत्रसे डाप् और " अनो बहुव्रीहेः० ४।१।१२/४६० " इस सूत्रसे नान्तलक्षण ङीप्का निषेध प्राप्त था, तथा हायनान्त शब्दसे " अजाद्यतष्टाप् " इससे टाप् प्राप्त था । लेकिन इस सूत्रसे सबका ही बाध होता है । द्विदामन्+ङीप्=द्विदाम्नी । अव्ययकी अनुवृत्ति न होनेसे उद्दामा वडवा; इस स्थलमें " अन उ० " इसके विकल्प पक्षमें डाप् और ङीप्के निषेध भी होतेहैं, द्विहायनी बाला (दो वर्षकी लडकी) ।

त्रि और चतुर शब्दके परे हायन शब्दके नकारको णत्व हो, (वा० ५०३८) वयोवाचक ही हायन शब्दके उत्तर ङीप् और णत्व दोनों हों (वा० २४४१) यथा—त्रिहायणी, चतुर्हायणी । वयोवाचक न होनेपर ङीप् णत्व न होंगे, यथा—द्विहायना, त्रिहायना, चतुर्हायना शाला—इत्यादि ॥

४८७ नित्यं संज्ञाछन्दसोः । ४ । १ । २९ ॥

अन्नन्ताद्बहुव्रीहेरुपधालोपिनो ङीप् । सुराज्ञी नाम नगरी । अन्यत्र पूर्वेण विकल्प एव । वेदे तु शतमूर्ध्नी ॥

४८७—स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान अन्नन्त उपधालोपी बहुव्रीहि समासनिष्पन्न प्रातिपदिकसे संज्ञा और वेदविषयमें नित्य ङीप् हो, संज्ञामें यथा—सुराज्ञी नाम नगरी, 'सुशोभनो राजा यस्याः' इस विग्रहमें समास होकर सुराजन् शब्दके उत्तर ङीप् हुआ है, जहां संज्ञा वा वेद नहीं है वहां पूर्व सूत्र(४६२) से विकल्प ही होताहै । छन्दमें शतमूर्ध्नी—इत्यादि ॥

४८८ केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्यकृतसुमङ्गलभेषजाच्च । ४ । १ । ३० ॥

एभ्यो नवभ्यो नित्यं ङीप् स्यात्संज्ञाछन्दसोः । अथोत इन्द्रः केवलीर्विशः । मामकी । भागधेयी । पापी । अपरी । समानी । आर्यकृती । सुमङ्गली । भेषजी । अन्यत्र केवला इत्यादि । मामकग्रहणं नियमार्थम् । अण्णन्तत्वादेव सिद्धेः । तेन लोकेऽसंज्ञायां मामिका ॥

४८८—संज्ञा और वेदमें केवल १, मामक २, भागधेय ३, पाप ४, अपर ५, समान ६, आर्यकृत ७, सुमंगल ८ और भेषज ९, इन शब्दोंके उत्तर नित्य ङीप् हो । छन्दमें यथा—" अथोत इन्द्रः केवलीर्विशः " केवल+ङीप्=केवली । मामक+ङीप्=मामकी । इसी प्रकार भागधेयी, पापी, अपरी, समानी, आर्यकृती, सुमंगली, भेषजी । संज्ञा और छन्दसे भिन्न विषयमें केवला—इत्यादि । मामकग्रहण नियमके निमित्त है, अर्थात् अण्णन्त मामक शब्दसे यदि ङीप् हो तो संज्ञा और वेद ही में हो, नहीं तो अण्णन्त होनेसे " टिड्ढाणञ्० ४।१।१५/४७० " इससे ङीप् होकर मामकी यह सिद्ध ही था फिर इस सूत्रमें मामक ग्रहण व्यर्थ ही होजाता, इस लिये लोकमें और असंज्ञामें 'मामिका' ऐसा ही रूप होताहै ॥

४८९ अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् । ४ । १ । ३२ ॥

एतयोः स्त्रियां नुक् स्यात् । ऋन्नेभ्यो ङीप् । गर्भिण्यां जीवद्भर्तृकायां च प्रकृतिभागौ निपात्येते । तत्रान्तरस्त्यस्यां गर्भ इति विग्रहे अन्तःशब्दस्याधिकरणशक्तिप्रधानतयाऽस्तिसामानाधिकरण्याभावादप्राप्तो मतुब् निपात्यते पतिवत्नीत्यत्र तु वत्वं निपात्यते । अन्तर्वत्नी । पतिवत्नी । प्रत्युदाहरणं तु । अन्तरस्त्यस्यां शालायां घटः । पतिमती पृथिवी ॥

४८९—अन्तर्वत् और पतिवत् शब्दको स्त्रीलिङ्गमें नुक्का आगम हो । पीछे " ऋन्नेभ्यो ङीप् ३०६ " इस सूत्रसे ङीप्, गर्भिणी और जीवद्भर्तृका अर्थमें प्रकृतिभाग, अर्थात् गर्भिणी अर्थमें मतुप् और जीवद्भर्तृका अर्थमें वत्वका निपातन है, 'अन्तरस्ति अस्यां गर्भः' इस विग्रहमें अन्तर शब्दको अधिकरण शक्ति प्रधान होनेके कारण अस्तिके साथ सामानाधिकरण्य न होनेसे अप्राप्त जो मतुप् उसका निपातन होताहै और पतिवत्नी इसमें अप्राप्त वत्वका निपातन होता है, यथा अन्तर्वत्+नुक्+ङीप्=अन्तर्वत्नी । पतिवत्+नुक् (न्)+ङीप् पतिवत्नी । इनसे भिन्नार्थमें 'अन्तरस्ति अस्यां शालायां घटः, पतिमती पृथिवी ' इन स्थलोंमें, मतुप् वत्व और नुक् न हुए ॥

४९० पत्युर्नो यज्ञसंयोगे । ४ । १ । ३३ ॥

पतिशब्दस्य नकारादेशः स्याद्यज्ञेन संबन्धे । वसिष्ठस्य पत्नी । तत्कर्तृकयज्ञस्य फलभोक्त्रीत्यर्थः । दम्पत्योः सहाधिकारात् ॥

४९०—यज्ञका सम्बन्ध रहते पतिशब्दको नकार आदेश हो, वसिष्ठस्य पत्+न्+ङीप्=पत्नी । दम्पतिके सहाधिकारके कारण उस (वसिष्ठ) के यज्ञके फलकी भोगनेवाली । (जहां यज्ञका सम्बन्ध न हो वहां नकारादेश नहीं होताहै यथा ग्रामस्य पतिरियं ब्राह्मणी) ।

४९१ विभाषा सपूर्वस्य । ४ । १ । ३४ ॥

पतिशब्दान्तस्य सपूर्वस्य प्रातिपदिकस्य नो वा स्यात् । गृहस्य पतिः गृहपतिः । गृहपत्नी । अनुपसर्जनस्येत्येतदिहोत्तरार्थमनुवृत्तमपि न पत्युर्विशेषणं किन्तु तदन्तस्य । तेन बहुव्रीहावपि ।

---

१ (का०) "अन्तर्वत्पतिवतोर्नुग्मतुब्वत्वे निपातनात् । गर्भिण्यां जीवत्पत्यांश्च वा च च्छन्दसि नुग्भवेत् ॥ " अर्थात् यहां यह बात ध्यानमें लानी चाहिये कि, अन्तःशब्दसे गर्भिणी अर्थमें मतुप्का निपातन है, और पतिवत् शब्दमें जीवद्भर्तृका अर्थमें वत्वका निपातन है, और दोनों जगह नुक्का आगम होताहै, परन्तु वेदमें नुक्का आगम विकल्प करके होताहै । यथा—सान्तर्वत्नी सान्तर्वती देवानुपैत् । पतिवत्नी तरुणवत्सा, पतिवती तरुणवत्सा इति ॥

दृढपत्नी । दृढपतिः । वृषलपत्नी । वृषलपतिः ॥ अथ वृषलस्य पत्नीति व्यस्ते कथमिति चेत् । पत्नीव पत्नीत्युपचारात् । यद्वा । आचारक्विबन्तात्कर्तरि क्विप् । अस्मिंश्च पक्षे । पत्नियौ । पत्नियः इतीयङ्विषये विशेषः । सपूर्वस्य किम् । गवां पतिः स्त्री ॥

४९१-विद्यमानपूर्वावयव पतिशब्दान्त प्रातिपदिकको विकल्प करके नकार हो, यथा-गृहस्य पतिः इस अर्थमें गृहपत्नी, गृहपतिः । यद्यपि इस सूत्रमें अनुपसर्जन अधिकारकी आवश्यकता नहीं है, तथापि उत्तर सूत्रमें अनुवृत्तिके निमित्त इस सूत्रमें भी अनुवृत्ति आतीहै, परन्तु अनुपसर्जन पति शब्दका विशेषण नहीं होगा, किन्तु तदन्तका विशेषण होगा, इससे यह फल हुआ कि, बहुव्रीहि समासमें भी ङीप् और नकारादेश विकल्प करके होंगे, यथा-दृढपत्नी, दृढपतिः । वृषलपत्नी, वृषलपतिः । जिस स्थलमें वृषलस्य पत्नी इस प्रकार पृथक् पद हो उस स्थलमें पत्नीव पत्नी ऐसे उपचारसे सिद्ध होगा, अथवा पत्नीव आचरति इस वाक्यमें आचारार्थक क्विबन्तके उत्तर, कर्त्रर्थमें क्विप् करके पत्नी पद सिद्ध होगा, इसमें पत्नियौ, पत्नियः-इत्यादिमें इयङ् आदेशमात्र विशेष है ।

सपूर्व इस कारण कहाहै कि, गवां पतिः स्त्री, यहां ङीप् और नकारादेश न हों ॥

४९२ नित्यं सपत्न्यादिषु ।४।१।३५॥

पूर्वविकल्पापवादः । समानस्य सभावोऽपि निपात्यते । समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी । एकपत्नी । वीरपत्नी ॥

४९२-सपत्न्यादि शब्दोंमें नकार नित्य हो । यह पूर्व सूत्रसे विकल्पका अपवादक है । समान शब्दके स्थानमें स आदेश निपातनसिद्ध है । समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी । इस वाक्यमें समान+पत्+न्+ङीप्=सपत्नी । एकपत्नी और वीरपत्नी शब्द भी इसी प्रकार हैं ॥

४९३ पूतक्रतोरै च ।४।१।३६॥

इयं त्रिसूत्री पुंयोग एवेष्यते ॥ * ॥ पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी । यया तु क्रतवः पूताः पूतक्रतुरेव सा ॥

४९३-स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान पूतक्रतु शब्दसे ङीप् और उसको ऐकारादेश भी हो (२४४९ वा०) इस सूत्रसे लेकर तीन सूत्र पुंयोगहीमें लगते हैं, यथा-पूतक्रतोः स्त्री इस वाक्यमें पूतक्रत्+ऐ+ङीप्=पूतक्रतायी जहां पुंयोग अर्थात् उस स्त्रीके साथ पुरुषसम्बन्धकी विवक्षा न होगी वहां ङीप् न होगा, यथा-'यया तु क्रतवः पूताः स्यात्पूतक्रतुरेव सा' यहां ङीप् और ऐकार आदेश न हुए ॥

४९४ वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः ४।१।३७॥

एषामुदात्त ऐ आदेशः स्यात् ङीप् च । वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी । हरविष्णू वृषाकपी इत्यमरः ॥ वृषाकपायी श्रीगौर्योरिति च । अग्नायी । कुसितायी । कुसिदायी । कुसिदशब्दो ह्रस्वमध्यो न तु दीर्घमध्यः ॥

४९४-पुरुषके योगमें वृषाकपि, अग्नि, कुसित और कुसिद शब्दों को उदात्त ऐकारादेश और इनसे ङीप् प्रत्यय हो । वृषाकपेः स्त्री इस अर्थमें वृषाकपै+ङीप्=वृषाकपायी (हरि हर इनकी स्त्री लक्ष्मी और पार्वती) । अग्नै+ङीप्=अग्नायी । कुसितै+ङीप्=कुसितायी । कुसिदै+ङीप्=कुसिदायी । कुसिद शब्द ह्रस्वमध्य है दीर्घमध्य नहीं है ॥

४९५ मनोरौ वा । ४ । १ । ३८ ॥

मनुशब्दस्यौकारादेशः स्यादुदात्तैकारश्च वा ताभ्यां संनियोगशिष्टो ङीप् च । मनोः स्त्री मनावी । मनायी । मनुः ॥

४९५-पुंयोगमें मनु प्रातिपदिकको औकार और उदात्त ऐकार आदेश हो, विकल्प करके, और उसके साथ ङीप् भी हो, यथा-मनोः स्त्री । मनौ+ङीप्=मनावी । मनै+ङीप्=मनायी । जहां ऐ अथवा औ न होगा वहां ङीप् भी न होगा, यथा-मनुः ॥

४९६ वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः । ४ । १ । ३९ ॥

वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात्प्रातिपदिकाद्वा ङीप् स्यात्तकारस्य नकारादेशश्च । एनी । एता । रोहिणी । रोहिता । वर्णानां तणतिनितान्तानामिति फिट्सूत्रेणाद्युदात्तः । त्र्येण्या च शलल्येति गृह्यम् । त्रीण्येतान्यस्या इति बहुव्रीहिः । अनुदात्तात्किम् । श्वेता । घृतादीनां चेत्यन्तोदात्तोऽयम् । अत इत्येव । शितिः स्त्री ॥ पिशङ्गादुपसंख्यानम् ॥ * ॥ पिशङ्गी । पिशङ्गा ॥ असितपलितयोर्न ॥ * ॥ असिता । पलिता ॥ छन्दसि क्नमेके ॥ * ॥ असिक्नी । पलिक्नी ॥ अवदातशब्दस्तु न वर्णवाची किन्तु विशुद्धवाची । तेन अवदाता इत्येव ॥

४९६-स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान वर्णवाची अनुदात्तान्त जो तकारोपध तदन्त जो अनुपसर्जन प्रातिपदिक हैं, उनसे विकल्प करके ङीप् और उनके तकारको नकारादेश हों, यथा-एन+ई=एनी । विकल्प पक्षमें टाप्=एता (चित्र विचित्र मृगी)

---

१ इस सूत्रमें यज्ञसंयोगकी अनुवृत्ति नहीं होतीहै इसलिये यह अप्राप्तविभाषा है, यदि यज्ञसम्बन्धहीमें यह भी लगता, तो पूर्वसूत्रसे नुक्की प्राप्ति होनेसे प्राप्तविभाषा हो जाता ॥

२ समान, एक, वीर, पिण्ड, स्व, भ्रातृ, भद्र, पुत्र, दासपूर्वक पति शब्दको छन्दमें नकारादेश हो उतने समानादि हैं ॥

रोहिन्+ई=रोहिणी, रोहिता । "वर्णानां तणतिनितान्तानाम् (३३)" इस फिट्सूत्रसे त, ण, ति, नि, और तान्त शब्दके आदि उदात्त होते हैं इसलिये यह अनुदात्तान्त हुए ।

(त्र्येण्या च शलल्येति) यहां सन्देह यह है कि, अनुपसर्जन यह गृह्यमाण अर्थात् सूत्रोपात्त ही शब्दोंका विशेषण होताहै, कारण जो "अनुपसर्जनाधिकारस्य गृह्यमाणविशेषणतैव" ऐसा "उपमानानि०" इस सूत्रमें भाष्यकार कहेहैं, तब यहां भी गृह्यमाणहीको विशेषण होनेसे 'त्र्येण्या' इस जगह बहुव्रीहि होनेसे शलली पदार्थको प्राधान्य है, इससे वर्णवाची अनुदात्तान्त तोपध अनुपसर्जन प्रातिपदिक त्र्येणीघटक एत शब्द न हुआ, किन्तु उपसर्जन होगया, तब यहां ङीप् और नकारादेश कैसे हुआ ? इसपर कहते हैं कि, इस गृह्यसूत्रानुरोधसे तदन्तमें यहां विशेषण है, तब तदन्त 'त्र्येत' यह अनुपसर्जन प्रातिपदिक है ही, इससे ङीप्, नकार हुए । वस्तुतः विचार करो तो यहां 'एनी' पहले बनाकर, फिर त्रिषु एनी ऐसे समास करके त्र्येणी होगा, उसके तृतीयामें त्र्येण्या है ।

अनुदात्त न होनेपर ङीप् न होगा, यथा—श्वेता, यहां "घृतादीनाञ्च (फिट् २१)" इस सूत्रसे अन्तोदात्त होनेके कारण ङीप् और तकारके स्थानमें नकार आदेश नहीं हुआ ।

अकारान्त से ही आगे ङीप् और नकार होगा, इसलिये शितिः स्त्री इस स्थानमें इकारान्त होनेके कारण ङीप् आदि नहीं हुए ।

(पिशंगादुपसंख्यानम् २४५५ वा०) पिशंग शब्द तोपध नहीं है, इस कारण ङीप् नहीं पाता था, इस लिये यह वार्तिक है । पिशंग शब्दसे भी स्त्रीलिङ्गमें विकल्प करके ङीप् हो । पिशङ्गी, पिशङ्गा ।

(असितपलितयोर्न २४५३ वा०) असित और पलित प्रातिपदिकोंसे ङीप् और इनके तकारको नकारादेश न हो । यह वार्तिक सूत्रका अपवादक है । असिता । पलिता ।

(छन्दसि क्नमेके २४५४ वा०) कोई आचार्य कहते हैं कि, वेदमें असित और पलित शब्दोंके तकारको क्न आदेश हो, यथा—असिक्नी । पलिक्नी । अवदात शब्द विशुद्धवाचक है, वर्णवाचक नहीं है, इस कारण उसके उत्तर ङीप् आदि न हुए, यथा—अवदाता ॥

४९७ अन्यतो ङीष् । ४ । १ । ४० ॥

तोपधभिन्नाद्वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्तात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् स्यात् । कल्माषी । सारंगी । लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुरिति मध्योदात्तावेतौ । अनुदात्तान्तात्किम् । कृष्णा । कपिला ॥

४९७—तकारोपधसे भिन्न वर्णवाचक अनुदात्तान्त प्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गमें ङीष् हो, यथा—कल्माष+ङीष्=कल्माषी । सारङ्ग+ङीष्=सारङ्गी, "लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः (फिट् ४२)" इससे कल्माष और सारङ्ग शब्द मध्योदात्त हैं । उदात्तान्त होनेपर ङीष् न होगा, यथा—कृष्णा । कपिला ॥

४९८ षिद्गौरादिभ्यश्च । ४ । १ । ४१ ॥

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च ङीष् स्यात् । नर्तकी । गौरी । अनडुही । अनड्वाही ॥ पिप्पल्यादयश्च ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥

४९८—षित् अर्थात् ष् इत् है जिसमें तदन्त शब्द और गौरादि शब्दोंके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीष् प्रत्यय हो । नर्तक+ङीष्=नर्तकी, इस उदाहरणमें, "शिल्पिनि ष्वुन् ३।१।१४५ / २९०७" इस सूत्रसे "ष्वुन् प्रत्यय हुआ है । "षः प्रत्ययस्य १।३।६ / ४७४" इससे ष इत्, तब लोप, "युवोरनाकौ ७।१।१ / १२४७" इससे वुके स्थानमें अक आदेश, नर्त+ष्वुन्=नर्त+अक=नर्तक ई "यस्येति च" इससे अकारका लोप, नर्तकी (नाचनेवाली)। गौर+ङीष्=गौरी ।

(आमनडुहः स्त्रियां वा ४३७८ वा०) स्त्रीलिङ्गमें विकल्प करके अनडुह् शब्दको आम् हो । अनडुह्+ङीष्=अनड्वाही, अनडुही ।

(पिप्पल्यादयश्च ४७ गण०) पिप्पल्यादि शब्दोंके उत्तर भी ङीष् हो । गौरादि आकृतिगण है ॥

४९९ सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः । ६ । ४ । १४९ ॥

अंगस्योपधाया यस्य लोपः स्यात्स चेद्यः सूर्याद्यवयवः ॥ मत्स्यस्य ङ्याम् ॥ * ॥ सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च ॥ * ॥ तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम् ॥ * ॥ मत्सी । मातरि षिच्चेति षित्वादेव सिद्धे गौरादिषु मातामहीशब्दपाठादनित्यः षितां ङीष् । दंष्ट्रा ॥

४९९—सूर्यादि अङ्गके उपधाभूत यकारका लोप हो, वह यकार यदि सूर्यादिओंका अवयव हो तो ।

मत्स्य शब्दके यकारका लोप हो ङी प्रत्यय परे रहते (४१९८ वा०) । ङी और छ परे रहते सूर्य और अगस्त्य शब्दके यकारका लोप हो (वा० ४१९९)। नक्षत्र सम्बन्धी अण् परे रहते तिष्य और पुष्यके यकारका लोप हो (४२००) । ("संधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्" इससे अण् होताहै) मत्स्य+ङीष्=मत्सी । "मातरि षिच्च" (वा० २७१०) इससे षित्वके कारण ङीष् सिद्ध होनेपर भी गौरादि गणमें मातामही शब्दका उल्लेख होनेसे षित्वप्रयुक्त ङीष्की अनित्यता सिद्ध होगी, इससे दश्यतेऽनयेति दंष्ट्रा "दाम्नीशस०" इत्यादिसे करणमें ष्ट्रन् प्रत्यय हुआ है, यहां ङीष् न हुआ ॥

५०० जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु । ४ । १ । ४२ ॥

एकादशभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः क्रमाद् वृत्त्यादिष्वर्थेषु ङीष् स्यात् । जानपदी वृत्तिश्चेत् । अन्या तु जानपदी । उत्सादित्वादञन्तत्वेन टिड्ढेति ङीप्याद्युदात्तः । कुण्डी अमत्रं चेत् । कुण्डाऽन्या । कुडि दाहे गुरोश्च हल इति अप्रत्ययः । यस्तु अमृते जारजः कुण्ड इति मनुष्यजातिवचनस्ततो जातिलक्षणो ङीष् भवत्येव । अमत्रे हि स्त्रीविषयत्वाभावादप्राप्तो ङीष् विधीयते न तु नियम्यते । गोणी आवपनं चेत् । गोणाऽन्या । स्थली अकृत्रिमा चेत् । स्थलाऽन्या । भाजी श्राणा चेत् । भाजा अन्या । नागी स्थूला चेत् । नागाऽन्या । गजवाची नागशब्दः स्थौल्यगुणयोगादन्यत्र प्रयुक्त उदाहरणम् । सर्पवाची तु दैर्घ्यगुणयोगादन्यत्र प्रयुक्तः प्रत्युदाहरणम् । काली वर्णश्चेत् । कालाऽन्या । नीली अनाच्छादनं चेत् । नीलाऽन्या । नील्या रक्ता शाटीत्यर्थः । नील्या अन्वक्तव्य इत्यन् । अनाच्छादनेपि न सर्वत्र किंतु ॥ नीलादौषधौ ॥ * ॥ नीली ॥ प्राणिनि च ॥ * ॥ नीली गौः ॥ संज्ञायां वा ॥ * ॥ नीली । नीला ॥ कुशी अयोविकारश्चेत् । कुशाऽन्या । कामुकी मैथुनेच्छा चेत् । कामुकाऽन्या । कबरी केशानां संनिवेशविशेषः । कबराऽन्या चित्रेत्यर्थः ॥

५००-वृत्ति, अमत्र, आवपन, अकृत्रिम, श्राणा, स्थौल्य, वर्ण, अनाच्छादन, अयोविकार, मैथुनेच्छा और केशवेश अर्थमें क्रमसे जानपद, कुण्ड, गोण, स्थल, भाज, नाग, काल, नील, कुश, कामुक और कबर शब्दसे ङीष् हो, यथा- जानपद+ङीष्=जानपदी (वृत्ति-आजीवका)। अन्य अर्थमें जानपदी उत्सादित्वके कारण अञ् "टिड्ढाणञ्० $\frac{४।१।१५}{४७०}$" इस सूत्रसे अञन्तत्वके कारण ङीप् होनेपर जानपदी यह आद्युदात्त होगा ।

कुण्ड+ङीष्=कुण्डी अर्थात् यतिओंके जलपात्र (कमण्डलु) "अस्त्री कमण्डलुः कुण्डी" इत्यमरः । अन्यार्थमें कुण्डा । दाहार्थक कुडि धातुके उत्तर "गुरोश्च हल $\frac{३।३।१०३}{३२८०}$" से 'अ' प्रत्यय हुआ स्वामीके जीवित रहते जारसे उत्पन्न हुए बालकका नाम कुण्ड है, वह कुण्ड शब्द मनुष्य जातिवाचक है इस लिये उससे स्त्रीलिङ्गमें जातिलक्षण "जातेरस्त्री०" से ङीष् होताही है, अमत्रार्थमें कुण्ड शब्दके स्त्रीविषयत्वके कारण "जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्" से अप्राप्त ङीप्का विधान किया है, कुण्डशब्दसे अमत्र ही अर्थमें ङीष् हो, ऐसा नियम नहीं कियाहै ।

गोण+ङीष्=गोणी (गोन), अन्यार्थमें गोणा ।

स्थल+ङीष्=स्थली अर्थात् अकृत्रिम भूमि, अन्यत्र, स्थला ।

भाज+ङीष्=भाजी (पकाया हुआ व्यंजन), अन्यत्र भाजा ।

नाग+ङीष्=नागी, (अतिमोटी) अन्यत्र नागा । नाग शब्दसे हस्ती और सर्प जानना, उसमें जहां गजवाची नाग शब्द है, वहां स्थौल्य गुणसे योग होनेके कारण प्रस्तुत सूत्रका उदाहरण है, अर्थात् वहां प्रस्तुत सूत्रसे ङीष् होताहै, जहां सर्पवाची है, वहां दैर्घ्य गुणसे योग होनेके कारण प्रत्युदाहरण है, अर्थात् वहां प्रस्तुत सूत्रसे ङीष् नहीं होता, किन्तु टाप् होताहै, यथा-नागा ।

काल+ङीष्=काली (काले रंगकी स्त्री), अन्यत्र काला ।

नील+ङीष्=नीली (अनाच्छादन), अन्यार्थमें नीला, नील्या रक्ता शाटी अर्थात् नीलीसे रक्त साडी यहां "नील्या अन् वक्तव्यः २६८० वा०" इससे नीली शब्दके उत्तर अन् होताहै. अनाच्छादन होनेपर भी सर्वत्र ङीष् नहीं हो, किन्तु औषधि अर्थमें नील शब्दसे ङीप् हो (वा० २४५६), यथा नीली । प्राणी अर्थमें भी ङीष् हो (वा० २४५७) नीली (गौ) । संज्ञा अर्थमें विकल्प करके ङीप् हो (वा० २४५८) नीली, नीला ।

कुशी (लोहेका विकार), अन्यार्थमें कुशा ।

कामुक+ङीष्=कामुकी (मैथुनकी इच्छावाली), अन्यार्थमें कामुका ।

कबर+ङीष्=कबरी (बालोंका संभालना) अन्यत्र कबरा (चित्रविचित्र) ॥

५०१ शोणात्प्राचाम् । ४ । १ । ४३ ॥

शोणी । शोणा ॥

५०१-शोण शब्दके उत्तर, प्राचीन आचार्योंके मतमें ङीष् हो । शोणी । नवीनमतमें शोणा ॥

५०२ वोतो गुणवचनात् । ४ । १ । ४४ ॥

उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीष् स्यात् । मृद्वी । मृदुः । उतः किम् । शुचिः । गुणेति किम् । आखुः ॥ खरुसंयोगोपधान्न ॥ * ॥ खरुः पतिंवरा कन्या । पाण्डुः ॥

५०२-उकारान्त गुणवाचक शब्दके उत्तर, विकल्प करके ङीष् हो, यथा-मृदु+ङीष्=मृद्वी, मृदुः ।

उकारान्तसे ङीष् विधानके कारण इकारान्त शुचि शब्दसे वैकल्पिक ङीष् न हुआ ।

गुणवाचकसे विधान होनेसे जातिवाचक आखु शब्दसे ङीष् न हुआ ।

खरु और संयोगोपध शब्दके गुणवाचकत्व होनेपर भी उनके उत्तर ङीष् न हो (वा० २४६०) खरुः पतिंवरा कन्या (पतिका वरण करनेवाली लड़की), पाण्डुः (पीली स्त्री)॥

५०३ बह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ४५ ॥

एभ्यो वा ङीष् स्यात् । बह्वी । बहुः ॥ कृदिकारादक्तिनः ॥ रात्रिः । रात्री ॥ सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके ॥ शकटिः । शकटी । अक्तिरित्येव । अजननिः । क्तिन्नन्तत्वादप्राप्ते विध्यर्थं पद्धतिशब्दो गणे पठ्यते । हिमकाषिहतिषु चेति पद्भावः । पद्धतिः । पद्धती ॥

५०३-बहु आदि शब्दोंके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें विकल्प करके ङीष् हो, यथा-बहु+ङीष्=बह्वी, बहुः ।

"कृदिकारादक्तिनः" (गणसू०५०) क्तिन् प्रत्ययसे भिन्न जो कृत् इकारान्त प्रत्यय तदन्तसे विकल्प करके ङीष् हो, यथा-रात्री, रात्रिः ।

कोई कहते हैं, अक्तिन्नर्थक जो सब इकारान्त प्रत्यय, तदन्त शब्दसे विकल्प करके ङीष् हो (गण० ५१) शकटी, शकटिः ।

अक्तिन्नर्थ न होनेपर अजननिः, यहां ङीष् न हुआ । "आक्रोशे नञ्यनिः $\frac{३।३।११२}{३३८९}$" इससे जन्से अनि प्रत्यय हुआ है ।

क्तिन्नन्तत्वके कारण ङीष्की अप्राप्ति होनेपर, उस विधानके निमित्त बह्वादि-गणमें पद्धति शब्दका उल्लेख कियाहै, यहां "हिमकाषिहतिषु च $\frac{६।३।५४}{९९२}$" इससे हति शब्द परे रहते पद शब्दको पद् भाव हुआ है, पद्धती, पद्धतिः ॥

५०४ पुंयोगादाख्यायाम् । ४।१।४८॥

या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् स्यात् । गोपस्य स्त्री गोपी ॥ पालकान्तान्न ॥ * ॥ गोपालिका । अश्वपालिका ॥ सूर्याद्देवतायां चाप् वाच्यः ॥ * ॥ सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । देवतायां किम् । सूरी कुन्ती मानुषीयम् ॥

५०४-जो पुंवाचक शब्द पुंयोग (पुंवाचक शब्दप्रवृत्तिनिमित्तके आरोप) से स्त्रीलिङ्गसे वर्त्तमान है, उससे ङीष् हो । गोपस्य स्त्री इस वाक्यमें गोप+ङीष्=गोपी ।

पालकान्त शब्दके उत्तर ङीष् न हो (२४६१ वा०) गोपालिका । अश्वपालिका ।

(सूर्याद्देवतायां चाप् वक्तव्यः २४७१ वा०) देवता अर्थमें सूर्य शब्दसे स्त्रीलिङ्गमें चाप् हो । सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । देवतासे भिन्न अर्थमें सूरी (कुन्ती) " सूर्यतिष्य० $\frac{६।४।१४९}{४९९}$" से यकारका लोप हुआहै ॥

५०५ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् । ४ । १ । ४९ ॥

एषामानुगागमः स्यान्ङीष् च । इन्द्रादीनां षण्णां मातुलाचार्ययोश्च पुंयोग एवेष्यते । तत्र ङीषि सिद्धे आनुगागममात्रं विधीयते । इतरेषां चतुर्णामुभयम् । इन्द्राणी ॥ हिमाऽरण्ययोर्महत्त्वे ॥ * ॥ महद्धिमं हिमानी । अरण्यानी ॥ यवाद्दोषे ॥ * ॥ दुष्टो यवो यवानी ॥ यवनाल्लिप्याम् ॥ * ॥ यवनानां लिपिर्यवनानी ॥ मातुलोपाध्याययोरानुग्वा ॥ * ॥ मातुलानी । मातुली । उपाध्यायानी । उपाध्यायी । या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा ङीष् वाच्यः ॥ * ॥ उपाध्यायी । उपाध्याया ॥ आचार्यादणत्वं च ॥ * ॥ आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी । पुंयोग इत्येव । आचार्या स्वयं व्याख्यात्री ॥ अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे ॥ * ॥ अर्याणी । अर्या । स्वामिनी वैश्या वेत्यर्थः ॥ क्षत्रियाणी । क्षत्रिया । पुंयोगे तु । अर्यी । क्षत्रियी । कथं ब्रह्माणीति । ब्रह्माणमानयति जीवयतीति कर्मण्यण् ॥

५०५-इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य शब्दोंको आनुक् हो और ङीष् हो । इन्द्रादि छः शब्दोंके और मातुल शब्द व आचार्य शब्दके पुंयोगमें ही आनुक् इष्ट है । वहां पुंयोगमें ङीष् सिद्ध ही है, इसलिये आनुक् आगममात्रका विधान होगा, दूसरे चारके उत्तर ङीष् और आनुक् होगा । इन्द्र+आनुक्+ङीष्=इन्द्राणी ।

महत्त्व अर्थमें हिम और अरण्य शब्दके उत्तर ङीष् और आनुक् हो (२४७२ वा०) महद्धिमम् इस अर्थमें हिम+आन्+ङीष्=हिमानी (बर्फका ढेर) । महदरण्यम् इस अर्थमें अरण्य+आन्+ङीष्=अरण्यानी । बड़ा वन ।

दोष अर्थमें यव शब्दके उत्तर आनुक् और ङीष् हो । (वा० २४७३) दुष्ट यवार्थमें यव+आन्+ङीष्=यवानी ।

लिपि अर्थमें यवन शब्दके उत्तर आनुक् और ङीष् हो । (२४७४ वा०) यवनानां लिपिः इस अर्थमें यवन+आन्+ङीष्=यवनानी ।

मातुल और उपाध्याय शब्दके उत्तर आनुक् विकल्प करके हो । (२४७६वा०) मातुल+आन्+ङीष्=मातुलानी, मातुली । उपाध्यायानी, उपाध्यायी । जो स्त्री स्वयं ही अध्यापिका (पढानेवाली) हो उस अर्थमें उपाध्याय शब्दके उत्तर स्त्रीलिंगमें विकल्प करके ङीष् हो। (२४७७) उपाध्यायी, उपाध्याया।

आचार्यशब्दके परे स्थित आनुक्के नकारको णत्व न हो (२४७७ वा०) आचार्यस्य स्त्री इस अर्थमें आचार्य+आन्+ङीष्=आचार्यानी । ङीष् तथा आनुक् पुंयोगहीमें होते हैं, इससे पुंयोग न होनेपर ङीष् और आनुक् न होंगे, यथा-आचार्या स्वयं व्याख्याकर्त्री यहां टाप् हुआ है ।

अर्य और क्षत्रिय शब्दके उत्तर विकल्प करके ङीष् और आनुक् हों, स्वार्थमें (२४७८ वा०) अर्याणी, अर्या, अर्थात् स्वामिनी वा वैश्या । क्षत्रियाणी, क्षत्रिया । पुंयोग होनेपर, यथा-अर्यी, क्षत्रियी ।

" इन्द्रवरुण०" इस सूत्रमें ब्रह्मन् शब्दका पाठ न होनेसे [illegible] कहतेहैं कि-ब्रह्माणमान- [illegible] इससे अण्, "णेरनि- [illegible] यति जीवयति इस [illegible] टि० " इससे णिलोप करके " टिड्ढाणञ्०" इससे ङीप्, " पूर्वपदात् संज्ञायाम्० " इससे णत्व, ब्रह्माणी ॥

५०६ क्रीतात्करणपूर्वात् । ४ । १ । ५० ॥

क्रीतान्तादन्तात्करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात् । वस्त्रक्रीती । क्वचिन्न । धनक्रीता ॥

५०६–करणकारकपूर्वक क्रीतान्त अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिंगमें ङीष् हो, यथा–वस्त्रेण क्रीता, इस अर्थमें वस्त्रक्रीती । कहीं न भी हो, यथा–धनक्रीता ॥

५०७ क्तादल्पाख्यायाम् । ४ । १ । ५१ ॥

करणादेः क्तान्तात् स्त्रियां ङीष् स्यादल्पत्वे द्योत्ये । अभ्रलिप्ती द्यौः ॥

५०७–करण कारकादि क्तप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर, अल्प अर्थ द्योत्य रहते ङीष् हो, अभ्रेण लिप्ता द्यौः इस अर्थमें अभ्रलिप्ती। अल्पार्थ न होनेपर, चन्दनलिप्ता अंगना यहां ङीष् न हुआ ॥

५०८ बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् । ४ । १ । ५२ ॥

बहुव्रीहेः क्तान्तादन्तोदात्तादन्तात् स्त्रियां ङीष् स्यात् ॥ जातिपूर्वादिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ तेन बहुनञ्सुकालसुखादिपूर्वान्न । ऊरुभिन्नी । नेह । बहुकृता ॥ जातान्तान्न ॥ * ॥ दन्तजाता ॥ पाणिगृहीती भार्यायाम् ॥ * ॥ पाणिगृहीताऽन्या ॥

५०८–बहुव्रीहिसंज्ञक क्तान्त अन्तोदात्त अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिंगमें ङीष् हो । यहां जातिवाचकपूर्वकसे ङीष् हो ऐसा कहना चाहिये, इसलिये बहु, नञ्, सुकाल और सुखादि पूर्वक होनेपर न होगा । भिन्नौ ऊरू यस्याः, इस वाक्यमें 'ऊरुभिन्न' इस क्तान्त अकारान्त शब्दके उत्तर ङीष् हुआ ऊरुभिन्नी । बहुकृत+टाप्=बहुकृता, इस स्थानमें बहु शब्द पूर्वमें होनेके कारण ङीष् न होकर टाप् हुआ।

जात शब्द अन्तमें रहनेसे ङीष् न हो (२४७९ वा०) यथा–दन्तजाता । भार्या अर्थमें पाणिगृहीतसे ङीष् हो । पाणिगृहीती, अन्यार्थमें पाणिगृहीता ॥

५०९ अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा । ४ । १ । ५३ ।

पूर्वेण नित्यं प्राप्ते विकल्पोऽयम् । सुरापीती । सुरापीता । अन्तोदात्तात्किम् । वस्त्रच्छन्ना । अनाच्छादनादित्युदात्तनिषेधः । अत एव पूर्वेणापि न ङीष् ॥

५०९–अस्वांगवाचक शब्द पूर्वमें हो तो क्तान्त अन्तोदात्त अ[illegible] बहुव्रीहिसंज्ञक [illegible] हो । पूर्व सूत्रसे नित्य विधि प्राप्त था परन्तु विकल्पके लिये यह सूत्र है । सुरापीत+ङीष्=सुरापीती, ङीष् न हुआ, तो टाप् हुआ सुरापीता ।

---

१ धनक्रीता ऐसा ही प्रयोग सब जगह दृष्ट होताहै, इससे [illegible]गणके आकृतिगणत्वके कारण इसका भी उस गणमें [illegible] उक्त प्रयोग सिद्ध होताहै, यही 'क्वचिन्न' इसका [illegible] ॥

[illegible]) यहां "जातिकाल०" (१४२२ वा०) [illegible] निष्ठाको परनिपात और अन्तोदात्त हुआ ।

अन्तोदात्त कहनेका कारण यह कि जहां यह स्वर न होगा, वहां ङीष् न होगा, यथा–वस्त्रछन्ना, यहां टाप् हुआ है । अनाच्छादनके कारण इस स्थलमें "नञ्सुभ्यां जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात्" इससे उदात्तका निषेध हुआ इस कारण पूर्व सूत्रसे भी ङीष् न हुआ ॥

५१० स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् । ४ । १ । ५४ ॥

असंयोगोपधमुपसर्जनं यत्स्वाङ्गं तदन्तादन्तात्प्रातिपदिकाद्वा ङीष् । केशानतिक्रान्ता अतिकेशी । अतिकेशा । चन्द्रमुखी । चन्द्रमुखा । संयोगोपधात्तु सुगुल्फा । उपसर्जनात्किम् । शिखा । स्वाङ्गं त्रिधा ॥

अद्रवन्मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम् ॥

सुस्वेदा । द्रवत्वात् । सुज्ञाना । अमूर्तत्वात् । सुमुखा शाला । अप्राणिस्थत्वात् । सुशोफा । विकारजत्वात् ॥

अतत्स्थं तत्र दृष्टं च–

सुकेशी सुकेशा वा रथ्या । अप्राणिस्थस्यापि प्राणिनि दृष्टत्वात् ॥

–तेन चेत्तत्तथा युतम् ॥ * ॥

सुस्तनी सुस्तना वा प्रतिमा । प्राणिवत्प्राणिसदृशे स्थितत्वात् ॥

५१०–असंयोगोपध उपसर्जनीभूत जो स्वाङ्गवाचक अकारान्त शब्द तदन्तसे विकल्प करके ङीष् हो, यहां बहुव्रीहि अन्तोदात्त क्तान्त ये तीनों पद छूट गये हैं केशान् अतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा । चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा । संयोगोपध [illegible]होनेपर ङीष् न होगा, यथा–सुगुल्फा ।

(उपसर्जनात्किमिति) उपसर्जन नहीं कहेंगे तो अनुपसर्जन स्वाङ्गवाचक शब्दोंसे भी ङीष् हो जायगा, यथा–शिखा, शोभना शिखा सुशिखा । आशय यह है कि, 'कल्याणप्राणिपादा' यहां ङीष् न होनेके लिये पूर्वसूत्र(४।१।५३)से "अस्वाङ्गपूर्वपदात्" इसकी अनुवृत्ति लाकर पर्युदास मानकर स्वांगभिन्नपूर्वपदक जो स्वांगवाचक शब्द उससे ङीष् हो, ऐसा अर्थ होनेसे 'शिखा' यहां पूर्वपदके अभावसे दोष न था, इसलिये 'सुशिखा' यहां दोष दिया । नवीन लोग तो कहतेहैं कि, 'सुशिखा' यह प्रक्षिप्त पाठ है, क्योंकि,–विशिष्ट (सुशिखा) को अदन्तत्व न होनेसे प्राप्ति ही नहीं है, किन्तु 'शिखा' यही प्रत्युदाहरण है, यद्यपि भाष्यकार उपसर्जनग्रहणके खण्डनकालमें 'अशिखा' यही प्रत्युदाहरण दियेहैं, तथापि उनका भी एकदेश 'शिखा' यहींपर तात्पर्य है, नहीं तो विशिष्टमें अदन्तत्व न होने और होनेपर भी "सहनञ्० ४ । १ । ५७" [illegible]

होजानेसे ङीप् हो ही न सकता, यदि यह कहो कि, पूर्व कहेके अनुसार शिखामें भी दोष नहीं है? सो नहीं कह सकते। कारण जो 'अस्वांगपूर्वपदात्' यहां इसी भाष्यप्रमाणसे प्रसज्य-प्रतिषेध है, तब तो ऐसा अर्थ हुआ कि,—स्वांगपूर्वपदक स्वांगवाचक शब्दसे ङीप् न हो, तब 'शिखा' यह स्वांगपूर्वपदक स्वांगवाचक नहीं है, इससे प्राप्त हुआ, इसलिये 'उपसर्जनात्' कहना चाहिये ॥

स्वांग तीन प्रकारका है, (१) अद्रव, मूर्तिमत् और प्राणिस्थित अविकारज इनको स्वांग कहते हैं, जहां स्वांग न होगा, वहां ङीप् न होगा, यथा द्रव होनेसे सुस्वेदा । मूर्ति-रहित होनेसे सुज्ञाना, अप्राणिस्थत्वके कारण सुमुखा शाला । विकारजके कारण सुशोफा इन सब स्थलोंमें ङीप् न होकर टाप् हुआ है ॥

(२) प्राणिस्थ न होकर प्राणीमें दृष्ट हो तो वह भी स्वांग होता है, यथा—सुकेशी, सुकेशा वा रथ्या । इस स्थानमें केश अप्राणिस्थ होनेपर भी प्राणीमें देखे जानेके कारण स्वांग हुआ इससे ङीप् हुआ ॥

(३) जिस अंगसे प्राणी जैसे युक्त होता है वैसे उस अंगसे अप्राणी भी युक्त हो, तो वह स्वांग होताहै यथा—सुस्तनी, पक्षमें—सुस्तना वा प्रतिमा । इस स्थानमें प्राणिवत् प्राणिसदृश प्रतिमामें स्थितिके कारण स्तन यह स्वांग है ॥

५११ नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्ण-शृंगाच्च । ४ । १ । ५५ ॥

एभ्यो वा ङीष् स्यात् । आद्ययोर्बह्वज्लक्षणो निषेधो बाध्यते पुरस्तादपवादन्यायात् । ओष्ठादीनां पञ्चादीनां तु असंयोगोपधादिति पर्युदासे प्राप्ते वचनं मध्येपवादन्यायात् । सहनञ्लक्षणस्तु प्रतिषेधः परत्वादस्य बाधकः । तुङ्गनासिकी । तुङ्गनासिका । इत्यादि । नह । सहनासिका । अनासिका । अत्र वृत्तिः ॥ अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम् ॥ * ॥ स्वङ्गी । स्वङ्गेत्यादि । एतच्चानुक्तसमुच्चयार्थेन चकारेण संग्राह्यमिति केचित् । भाष्याद्यनुक्तत्वादप्रमाणमिति प्रामणिकाः । अत्र वार्तिकानि ॥ पुच्छाच्च ॥ * ॥ सुपुच्छी । सुपुच्छा ॥ कबरमणिविषशरेभ्यो [illegible] ॥ * ॥ [illegible] पुच्छं यस्याः सा [illegible] मयूरी इत्यादि ॥ उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च ॥*॥ नित्यमित्येव ॥ उलूकपक्षी शाला । उलूकपुच्छी सेना ॥

५११—बहुव्रीहि समासमें स्त्रीलिंगमें वर्तमान नासिका, उदर, ओष्ठ, जंघा, दंत, कर्ण और शृंग शब्दके उत्तर विकल्प करके ङीप् हो । आदिमें स्थित नासिका और उदर शब्दके बहुअच्विशिष्टत्वके कारण " न क्रोडादिबह्वचः ५१२" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे निषेध प्राप्त होनेपर 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरान्' (प०) अर्थात् जो पहले अपवाद और पीछे उत्सर्ग पढा हो, तो वह अपने समीपमें स्थित कार्यका बाधक हो और परविधि अर्थात् जिसके साथ व्यवधान हो, उसका बाधक न हो । इसके अनुसार बह्वच्लक्षण ङीप्के निषेधका बाधक हुआ और सह नञ् विद्यमानपूर्वक नासिका और उदरसे प्राप्त ङीप्के निषेधका बाधक नहीं हुआ, और इस सूत्रमें जो ओष्ठादि पांच संयोगोपध हैं, उनमें " असंयोगोपधात् " यह निषेध प्राप्त है, उसके बाधके लिये यह वचन है, परन्तु, सह, नञ्, विद्यमान, पूर्व पद रहते " सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ५१३ " इसका अपवादक नहीं है, कारण जो '(परि०) मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्' अर्थात् मध्य अपवाद पूर्व विधिको बाध करताहै और उत्तर विधिको बाध नहीं करताहै, इससे यह सूत्र सामान्य उपपद रहते ओष्ठादि पांचोंसे प्राप्त " असंयोगोपधात् " इस पर्युदासहीका बाध किया और " सहनञ्० " इसका बाध न किया, इसलिये सह, नञ्, विद्यमान, पूर्वपद रहते " सहनञ्० " यह निषेध परत्वके कारण इसका बाध करेगा, यथा—तुङ्गनासिक+ङीप्=तुङ्गनासिकी । पक्षमें तुङ्गनासिका, इत्यादि । सहनासिका, अनासिका;—इत्यादि स्थलोंमें सहनञ्योगके कारण ङीप् नहीं हुआ ।

इस स्थलमें वृत्तिकारने कहा है कि, (अङ्गगात्रकण्ठेभ्य इति वक्तव्यम्) अङ्ग, गात्र और कंठ इन शब्दोंके उत्तर विकल्प करके ङीष् हो । स्वङ्गी, पक्षमें—स्वङ्गा । कोई२ कहते हैं कि, सूत्रमें अनुक्त समुच्चयार्थक चकारसे इन सबका संग्रह करना चाहिये । भाष्य आदिमें ऐसा प्रयोग न होनेसे प्रमाणिकोंने उसको अप्रमाण माना है ।

इस विषयमें सब वार्तिक कहते हैं—

(पुच्छाच्च२४८९) पुच्छ शब्दके उत्तर विकल्प करके ङीप् हो, यथा—सुपुच्छी, सुपुच्छा ।

(कबरमणिविषशरेभ्यो नित्यम्२४९० वा०) कबर, मणि, विष और शर शब्दोंसे परे स्वांगवाची पुच्छ प्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गमें नित्य ङीप् हो, यथा—कबरं पुच्छं यस्याः सा कबरपुच्छी मयूरी (मोरनी) इत्यादि ।

(उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च२४९१वा०) उपमानवाचकसे परे पक्ष और पुच्छ शब्दके उत्तर नित्य ङीष् हो, जैसे—उलूकपक्षी शाला । उलूकपुच्छी सेना—इत्यादि ॥

५१२ न क्रोडादिबह्वचः । ४ । १ । ५६ ॥

क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गात्र ङीष् । कल्याणक्रोडा । अश्वानामुरः क्रोडा । आकृतिगणोऽयम् । सुजघना ॥

५१२—क्रोडादि अर्थात् क्रोड, नख, खुर, गोखा, [illegible]

---

१ क्रोड शब्द स्त्रीलिङ्ग है, यह [illegible] है, [illegible] प्राप्ति थी; अमरकोशमें ह्रस्व करनेपर अदन्तत्व होनेसे [illegible] "न ना क्रोडं भुजान्तरम्" इससे नपुंसक और स्त्रीलिङ्ग कहा है, [illegible] गणमें 'क्रोड' ऐसा प्रातिपदिकमात्र [illegible] नर्गत तो, पुंलि[illegible] [illegible] कहतेहैं. ऐसे [illegible] पढा है, [illegible]

शिखा, बाल, शफ, शुक्र, भग, गल, घोण, नाल, भुज, गुद, कर-इत्यादि शब्द और बहुअच्युक्त स्वांगवाचक शब्दोंके उत्तर ङीष् न हो, यथा-कल्याणक्रोडा ॥

५१३ सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ।४।१।५७॥

सहेत्यादित्रिकपूर्वान्न ङीष् । सकेशा । अकेशा । विद्यमाननासिका ॥

५१३-सह, नञ् अथवा विद्यमान शब्द जिसके पूर्वमें हो ऐसे स्वाङ्गवाची प्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गमें ङीष् न हो । सकेशा, अकेशा । विद्यमाननासिका ॥

५१४ नखमुखात्संज्ञायाम् ।४।१।५८॥

ङीष् न स्यात् । शूर्पणखा । गौरमुखा । संज्ञायां किम् । ताम्रमुखी कन्या ॥

५१४-संज्ञामें नख और मुख शब्दके उत्तर ङीष् न हो, यथा-शूर्पणखा (यहां " पूर्वपदात्संज्ञायामगः ८५७" इससे णत्व हुआहै) । गौरमुखा ।

संज्ञा अर्थ न होनेपर ताम्रमुखी कन्या । यहां ङीष्का निषेध न हुआ ॥

५१५ दिक्पूर्वपदान्ङीप् । ४।१।६० ॥

दिक्पूर्वपदात्स्वांगान्तात्प्रातिपदिकात्परस्य ङीषो ङीबादेशः स्यात् । प्राङ्मुखी । आद्युदात्तं पदम् ॥

५१५-दिग्वाचक शब्द पूर्वमें है जिसके ऐसे स्वाङ्गान्त प्रातिपदिकके उत्तर ङीष्के स्थानमें ङीप् हो, यथा-प्राङ्मुखी, यह आद्युदात्त है ॥

५१६ वाहः । ४ । १ । ६१ ॥

वाहन्तात्प्रातिपदिकात् ङीष् स्यात् । ङीषेवानुवर्तते न ङीप् । दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे ॥

५१६-वेदमें वाहशब्दान्त प्रातिपदिकके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीष् हो, ङीष्की ही अनुवृत्ति आतीहै, ङीप्की नहीं । दित्यवाट् च मे, दित्यौही च मे । " वाह ऊठ्" इससे ऊठ्, " संप्रसारणाच्च " इससे पूर्वरूप, " एत्येधत्यू०" इससे वृद्धि ॥

५१७ सख्यशिश्वीति भाषायाम् । ४ । १ । ६२ ॥

इति शब्दः प्रकारे भाषायामित्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः । छन्दस्यपि क्वचित् । सखी । अशिश्वी । आधेनवो धुनयन्तामशिश्वीः ॥

५१७-सखि और अशिशु शब्दके उत्तर भाषा अर्थात् लौकिक प्रयोगमें ङीष् हो । सखि+ङीष्=सखी । न विद्यते शिशुर्यस्याः, अशिशु+ङीष्=अशिश्वी । सूत्रमें इति शब्द सादृश्यार्थक है और उसे ' भाषायाम् ' इसके आगे देखना चाहिये, इससे कहीं वेदमें भी इनके उत्तर ङीष् हो, यथा-आधेनवो धुनयन्तामशिश्वी । (भाषामें क्यों कहा ? तो वेदमें ' सखा सप्तपदी भव ' यहां ङीष् नहीं होता) ॥

५१८ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् । ४ । १ । ६३ ।

जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततः स्त्रियां ङीष् स्यात् ॥

आकृतिग्रहणा जातिः-

अनुगतसंस्थानव्यङ्ग्येत्यर्थः । तटी ॥

-लिंगानां च न सर्वभाक् ।

सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या-

असर्वलिंगत्वे सत्येकस्यां व्यक्तौ कथनाद्व्यक्त्यन्तरे कथनं विनापि सुग्रहा जातिरिति लक्षणान्तरम् । वृषली । सत्यन्तं किम् । शुक्ला । सकृदित्यादि किम् । देवदत्ता ॥

-गोत्रं च चरणैः सह ॥

अपत्यप्रत्ययान्तः शाखाध्येतृवाची च शब्दो जातिकार्यं लभत इत्यर्थः । औपगवी । कठी । बह्वृची । ब्राह्मणीत्यत्र तु शार्ङ्गरवादिपाठात् ङीना ङीष् बाध्यते । जातेः किम् । मुण्डा । अस्त्रीविषयात्किम् । बलाका । अयोपधात्किम् । क्षत्रिया ॥ योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः ॥ * ॥ हयी । गवयी । मुकयी । हलस्तद्धितस्येति यलोपः । मनुषी ॥ मत्स्यस्य ङ्याम् ॥ * ॥ मत्सी ॥

५१८ स्त्रीलिङ्गमें वर्त्तमान यकारोपधभिन्न जातिवाची अनियत स्त्रीलिङ्ग अकारान्त प्रातिपदिकसे ङीष् प्रत्यय हो ।

भिन्नोंमें अभिन्न प्रत्ययके निमित्तको जाति कहतेहैं और नित्य हो, एक हो, अनेकमें अनुगत हो उसे भी जाति कहतेहैं, इस प्रकार लक्षण करनेसे शुक्लादि गुणोंमें अतिव्याप्ति हुई, अर्थात् शुक्ला शाटी यहां ङीष् प्राप्त हुआ । ' जन्मसे जो प्राप्त हो ' इतने लक्षणसे अतिव्याप्ति दूर होगई परन्तु ' युवती ' इस प्रयोगमें अव्याप्ति हुई, अर्थात् यहां नहीं प्राप्त हुआ, इससे कहते हैं कि, (आकृतिग्रहणा०) आकृति अर्थात् अवयव सन्निवेश, यह अवयवसन्निवेश जिसका ग्रहण (ज्ञान) करानेवाला है, उसे जाति कहतेहैं, जैसे-तटी । पूर्वोक्त लक्षण करनेपर भी वृषल शब्दमें अव्याप्ति होगी अर्थात् ' वृषली ' यहां ङीष् न होगा, कारण कि जैसे-ब्राह्मणादिमें अवयवसन्निवेश है वैसेही वृषलमें है । इस कारण कहाहै कि, लिङ्गानामिति 'लिङ्गानाम्' यहां

-लिङ्ग होनेसे तीनों लिङ्गोंमें उदाहरण समझना । माधवने तो तुदादिगणके "कुड निमज्जने" इससे घञ् मानकर 'क्रोडः' कहाहै । अस्वानासुरः क्रोडा । स्वभावसे उरोविषयक यह टावन्त है, कारण जो क्रोडादिमें टावन्तमात्रका पाठ है मृजान्तर मात्रवचन क्रोड शब्दको बहुव्रीहिमें स्वाङ्गलक्षण ङीष् विकल्प करके होता ही है, यथा-कल्याणक्रोडी, कल्याण क्रोडा, मयूरी इत्यादि॥

कर्ममें षष्ठी है, सम्पूर्ण लिङ्गोंको जो न भजै, अर्थात् जो तीनों लिङ्ग न हो। "सकृदाख्यात०" यहां आख्यात पदका अर्थ उपदेश है, एक वारके उपदेशसे जिसका सब जगह ग्रहण हो उसे जाति कहतेहैं, यथा-वृषली। जैसे ब्राह्मण कहनेसे उसके पिता आदिमें ब्राह्मणत्व जाति विदित होतीहै, वृषल कहनेसे उसके अपत्यादिमें वृषलत्व जाति होतीहै, वैसे एक स्थानमें इन्द्रके कहनेसे अन्यत्र उसका ग्रहण नहीं होसकता इस कारण इन्द्रत्व जाति नहीं होतीहै ।

सत्यन्त (असर्वलिङ्गत्वे सति) ग्रहणके कारण शुक्ला इस स्थलमें ङीष् न होकर टाप् हुआ है। एक वारके उपदेशसे दूसरी व्यक्तिमें ज्ञात न होनेसे देवदत्ता, यहां ङीप् न होकर टाप् हुआहै।

अब पूर्वोक्त लक्षण करनेसे भी औपगवी, कठी; इत्यादि प्रयोग सिद्ध नहीं होते, इससे 'गोत्रञ्च चरणैः सह' यह भी पारिभाषिक जातिलक्षण कहतेहैं, अर्थात् अपत्य प्रत्ययान्त और शाखाअध्येतृवाचक शब्द भी जातिकार्यका लाभ करतेहैं। यथा-'उपगोरपत्यं पुमान्' इस अर्थमें उपगु शब्दके उत्तर अपत्यार्थमें अण् प्रत्यय हुआ, और अपत्य प्रत्ययान्तत्वसे जातित्वके कारण उसके उत्तर ङीप् हुआ, यथा-औपगवी ।

'कठशाखाध्यायिनी' इस अर्थमें शाखाध्येतृत्वके कारण जातित्व हुआहै, इस कारण उसके उत्तर ङीष् हुआ, कठी और 'कठेन प्रोक्तमधीयाना' इस विग्रहमें " कलापिवैशंपायनान्तेवासिभ्यश्च ४।३।१०४/१४८४" इससे णिनि, "कठचरकाल्लुक् ४।३।१०७/१४८७" इससे लुक्, अध्येता अर्थमें विहित अण्का तो "प्रोक्ताल्लुक् ४।२।६४/१२७४" इससे लुक् ।

बहवृची-(बह्वयः ऋचोऽध्येतव्या यया सेति बहुव्रीहिः) "अनृचबह्वृचावध्येतर्येव" इस वचनसे " ऋक्पूरब्धू० ५।४।७४/९४०" इससे समासान्त अप्रत्यय हुआ, फिर ङीष् हुआ। (पूर्व कल्पमें स्त्रियां अध्ययन करती थीं, ऐसा यमने कहाहै- "पुरा कल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते। अध्यापनञ्च वेदानां सावित्रीवचनं तथा" पर इस कल्पमें निषेध है) ।

ब्राह्मणी इस स्थलमें ब्राह्मण शब्दको शार्ङ्गरवादिगणमें पाठ होनेके कारण ङीन्से ङीष् बाधित हुआहै ।

जातिवाचक न होनेपर मुण्डगुणयोगके कारण 'मुण्डा' यहां ङीष् न हुआ ।

अस्त्रीविषय कहनेसे बलाका (बिसकण्ठिका) यहां ङीष् न हुआ ।

यकारोपधके कारण ङीष् न हुआ क्षत्रिया, "क्षत्राद् घः ४।१।१३८/११६१" इससे अपत्यमें घविधान कियाहै ।

यकारोपधके निषेधमें हय, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्य, शब्दका अप्रतिषेध हो (२४९९ वा०), यथा हयी, गवयी, मुकयी । "हलस्तद्धितस्य ६।४।१५०/४७२" इस सूत्रसे यकारका लोप करके मानुषी । ङी परे रहते मत्स्य शब्दके यकारका लोप हो (४१९८) मत्सी ।

१ गौरादिमें गवयादि शब्द अबके पुरुषोंने संयुक्त कियेहैं, यह इस वार्तिकसे जाना जाताहै ॥

५१९ पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च । ४ । १ । ६४ ॥

पाकाद्युत्तरपदाज्जातिवाचिनः स्त्रीविषयादपि ङीष् स्यात् । ओदनपाकी । शंकुकर्णी । शालपर्णी । शंखपुष्पी । दासीफली । दर्भमूली । गोवाली । ओषधिविशेषे रूढा एते ॥

५१९-पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल और वाल शब्द हैं उत्तरपदमें जिसके ऐसे जातिवाचक स्त्रीविषयक भी शब्दसे स्त्रीलिङ्गमें ङीष् हो, यथा-ओदनपाक+ङीष्=ओदनपाकी । शंकुकर्णी । शालपर्णी । शंखपुष्पी । दासीफली । दर्भमूली । गोवाली । यह सब शब्द औषधि अर्थमें रूढ हैं ॥

५२० इतो मनुष्यजातेः । ४ । १ । ६५ ॥

ङीष् स्यात् । दाक्षी । योपधादपि । उदमेयस्यापत्यम् औदमेयी । मनुष्येति किम् । तित्तिरिः ॥

५२०-मनुष्यजातिवाचक इकारान्त शब्दके उत्तर ङीष् हो, यथा-दाक्षी, "अत इञ् ४।१।९५/१०९५" । यकारोपध होनेपर भी ङीष् होगा, 'उदमेयस्यापत्यम्' इस वाक्यमें औदमेयी ।

मनुष्यभिन्नजातिवाची होनेपर ङीष् न होगा, यथा-तित्तिरिः (पक्षीविशेषतीतर) ॥

५२१ ऊङुतः । ४ । १ । ६६ ॥

उकारान्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् स्यात् । कुरूः । कुरुनादिभ्यो ण्यः । तस्य स्त्रियामवन्तीत्यादिना लुक् । अयोपधात्किम् । अध्वर्युः ॥ अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ रज्ज्वादिपर्युदासादुवर्णान्तेभ्य एव । अलाब्वा । कर्कन्ध्वा । अनयोर्दीर्घान्तत्वेऽपि नोङ्धात्वोरिति विभक्त्युदात्तत्वप्रतिषेध ऊङः फलम् । प्राणिजातेस्तु कृकवाकुः । रज्ज्वादेस्तु रज्जुः । हनुः ॥

५२१-यकार उपधामें न हो ऐसे मनुष्यजातिवाचक उकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ऊङ् हो, यथा कुरूः । "कुरुनादिभ्यो ण्यः ४।१।१७२/११९०" इस सूत्रसे ण्य, उसका "स्त्रियामवन्ति० ४।१।१७६/११९५" इससे लुक्, कुरु+ऊङ्=कुरूः।

जब उपधामें यकार होगा तो ऊङ् न होगा,यथा-अध्वर्युः (अध्वर्यु शाखाका अध्ययन करनेवाली अथवा अध्वर्युशाखाध्यायी वंशमें प्रगट होनेवाली) । 'अध्वरं याति' इस विग्रहमें "मृगय्वादयश्च (३७ उणा०)" इससे अध्वर शब्दके अकारका लोप और या धातुमे कुप्रत्यय हुआहै ।

(अप्राणीति २५०२ वा०) रज्जु आदिकों छोडकर स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान अप्राणिजातिवाची प्रातिपदिकसे ऊङ् हो । उवर्णान्त रज्जुआदि शब्दके पर्युदाससे उवर्णान्तहीसे ऊङ् हो, यथा-अलाबू+ऊङ्=टा अलाब्वा । कर्कन्धू+ऊङ्+

टा=कर्कन्ध्वा । अलाबू और कर्कन्धू शब्दोंको दीर्घान्तत्व रहते भी ऊङ्करनेकी आवश्यकता यह है कि, "नोङ्धात्वोः ६।१।१७५/३७२१" (ऊङ् और धातु सम्बन्धी यणूसे परे शसादि विभक्ति उदात्त न हो) इस सूत्रसे उदात्तप्रतिषेध हो, प्राणिजातिवाचक होनेपर कृकवाकुः (मोर वा मुरगा) यहां न हुआ । रज्ज्वादिका ग्रहण इस लिये है कि, रज्जुः, हनुः, यहां ऊङ् न हो ॥

५२२ बाह्वन्तात्संज्ञायाम् । ४ ।१।६७॥

स्त्रियामूङ् स्यात् । भद्रबाहूः । संज्ञायां किम् । वृत्तबाहुः ॥

५२२–संज्ञा होनेपर बाह्वन्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ऊङ् हो, यथा–भद्रबाहु+ऊङ्=भद्रबाहूः । संज्ञा न होनेपर ऊङ् न हो, यथा–वृत्तबाहुः ॥

५२३ पङ्गोश्च । ४ । १ । ६८ ॥

पङ्गूः॥श्वशुरस्योकाराऽकारलोपश्च॥*॥चादूङ्। पुंयोगलक्षणस्य ङीषोऽपवादः । लिंगविशिष्ट-परिभाषया स्वादयः । श्वश्रूः ॥

५२३–स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान पंगु प्रातिपदिकसे ऊङ् हो, यथा–पंगूः (पंगुल स्त्री) ।

(श्वशुरस्य० ५०३९ वा०) श्वशुर शब्दके उकार और अकारका लोप हो और उसके उत्तर चकारसे ऊङ् भी हो । यह पुंयोगलक्षण ङीष्का अपवाद है । लिङ्गविशिष्ट परिभाषासे सुआदि विभक्ति होंगी । श्वश्रू+ऊङ्+सु=श्वश्रूः (सास) * ॥

५२४ ऊरूत्तरपदादौपम्ये । ४।१ ।६९ ॥

उपमानवाचि पूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्प्राति-पदिकं तस्मादूङ् स्यात् । करभोरूः ॥

५२४–उपमानवाचक शब्द पूर्वपद है और ऊरु शब्द उत्तरपद है जिसका ऐसे प्रातिपदिकसे स्त्रीलिंगमें ऊङ् हो । करभ+ऊरु+ऊङ्=करभोरू+सु=करभोरूः (करभकी समान जंघावाली) (मणिबंधसे लेकर कनिष्ठापर्यन्त हाथके बाहरी भागको करभ कहतेहैं) ॥

५२५ संहितशफलक्षणवामादेश्च । ४ । १ । ७० ॥

अनौपम्यार्थं सूत्रम् । संहितोरूः । सैव शफोरूः। शफौ खुरौ ताविव संश्लिष्टत्वादुपचारात् । लक्षण-ब्दादर्शआद्यच् । लक्षणोरूः । वामोरूः ॥ सहितसहाभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ हितेन सह सहितौ ऊरू यस्याः सा सहितोरूः । संहते इति सहौ ऊरू यस्याः सा सहोरूः । यद्वा । विद्यमानवचनस्य सहशब्दस्य ऊर्वतिशयप्रति-पादनाय प्रयोगः ॥

५२५–स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान संहित, शफ, लक्षण, अथवा वाम शब्द जिसके आदिमें हो ऐसे ऊरूत्तर प्रातिपदिकसे ऊङ् हो । जहां उपमानवाचक कोई पूर्वपद न हो उसके निमित्त यह सूत्र, है क्यों कि उपमानवाचक पूर्वपद रहता तो पूर्व ही सूत्रसे कार्य सिद्ध था । संहित+ऊरु+ऊङ्+सु=संहितोरूः (मिली जांघोंवाली) । शफ+ऊरु+ऊङ्+सु=शफोरूः (खुरकी समान जुटी जांघोंवाली) संहितोरूः और शफोरूः का एक ही अर्थ है । 'लक्षणमस्त्यस्य' ऐसे विग्रहमें लक्षण शब्दसे अर्शआदित्वके कारण अच् प्रत्यय हुआहै,लक्षण+ऊरु+ऊङ्+सु=लक्षणोरूः (जिसकी जंघामें तिल आदिका चिह्न हो) । वामौ सुन्दरौ ऊरू यस्याः=वाम+ऊरु+ऊङ्+सु= वामोरूः (सुन्दर जांघोंवाली) ।

(सहितसहाभ्यामिति २५०३ वा०) स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान सहित और सह शब्दसे परे जो ऊरु प्रातिपदिक उससे ऊङ् हो, यथा–हितेन सह सहितौ ऊरू यस्याः सा=सहितोरूः । ' सहेते ' इस अर्थमें ' सहौ ' पद सिद्ध हुआहै, ' सहौ ऊरू यस्याः सा ' इस विग्रहमें सहोरूः, अथवा विद्य-मानवचन सह शब्दको ऊरुकी अतिशयता प्रतिपादनके निमित्त यहां प्रयोग हुआहै ॥

५२६ संज्ञायाम् । ४ । १ । ७२ ॥

कद्रुकमण्डल्वोः संज्ञायां स्त्रियामूङ् स्यात् । कद्रूः । कमण्डलूः । संज्ञायां किम् । कद्रुः । कमण्डलुः । अच्छन्दोर्थं वचनम् ॥

५२६–कद्रु और कमण्डलु शब्दके उत्तर संज्ञामें स्त्रीलिंगमें ऊङ् हो, यथा कद्रु+ऊङ्+सु=कद्रूः । कमण्डलु+ऊङ्+सु=कमण्डलूः (चतुष्पाद्जातिवाचक), संज्ञासे भिन्न अर्थमें तो कद्रुः । कमण्डलुः । वेदमें "कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ३४४९" इससे संज्ञा और असंज्ञामें भी ऊङ् सिद्ध है इस लिये केवल लोकके वास्ते यह सूत्र है ॥

५२७ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ।४।१। ७३ ॥

शार्ङ्गरवादेरञो योकारस्तदन्ताच्च जाति-वाचिनो ङीन् स्यात् । शार्ङ्गरवी । बैदी । जातेरित्यनुवृत्तेः पुंयोगे ङीषेव । नृनरयोर्वृद्धि-श्चेति गणसूत्रम् । नारी ॥

५२७–जातिवाचक शार्ङ्गरवादि शब्दोंके उत्तर और अञ् प्रत्ययका अकार है अन्तमें जिनके ऐसे शब्दोंके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीन् हो, यथा–शार्ङ्गरव+ई=शार्ङ्गरवी (शृङ्गरु ऋषिके वंशकी कन्या) । बिद+ई=बैदी (बिदऋषिके वंशकी कन्या) 'बिदस्यापत्यं स्त्री' इस अर्थमें "अनृष्यानन्तर्ये बिदा-दिभ्योऽञ् ४।१।१०४/११०६" इससे अञ् होताहै । जाति इसकी अनुवृत्तिके कारण पुंयोगमें ङीष् ही होगा ।

* यह "श्वशुरः श्वश्र्वा १।२।७१/६३७" इस निर्देशसे सिद्ध है । "ङ्याप्० ४।१।१/१८२" इस सूत्रके भाष्यमें 'उवर्णान्तसे ऊङ्विधान कियाहै फिर उसे एकादेश करनेपर, अन्तादिवद्भावसे प्रातिपदिक-संज्ञा होगी' ऐसा कहाहै, इससे तो ध्वनित होताहै कि श्वश्रू शब्द अव्युत्पन्न है ॥

"नृनरयोर्वृद्धिश्च (ग० ५४)" नृ तथा नर शब्दोंको वृद्धि भी हो । नृ+ङीन्, नर+ङीन्=नारी * ॥

५२८ यङश्चाप् । ४ । १ । ७४ ॥

यङन्तात् स्त्रियां चाप् स्यात् । यङ्ष्यङोः सामान्यग्रहणम् । आम्बष्ठ्या । कारीषगन्ध्या । षाद्यञश्चाप् वाच्यः ॥ * ॥ पौतिमाष्या ॥

५२८–यङन्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें चाप् हो । यङ् कहनेसे यङ् और ष्यङ् इन दोनोंका ग्रहण होताहै । (चकार स्वरके निमित्त है–पित्स्वर (३७०९) का बाध कर "चितः ३७१०" से अन्तोदात्त होताहै) । आम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री "वृद्धेत्कोसला० ४।१।१७२/११८९" इससे ञ्यङ्, आम्बष्ठ्या । कारीषगन्ध्या–करीषस्येव गन्धोऽस्य करीषगन्धिः "उपमानाच्च ५।४।१३७/८७६" इससे गन्धको इदन्तादेश, उससे 'तस्य गोत्रापत्यं स्त्री'इस अर्थमें अण् "अणिञोरनार्षयोः० ४।१।७८/११९८" इससे ष्यङ् आदेश । यद्यपि यह चाप् स्त्रीलिङ्गमें विहित है तो भी ङित्करणके सामर्थ्यसे तदन्तसे भी होताहै । षकारसे परे स्थित यञ् से चाप् (आप्) हो (वा० २५०५) यथा–पौतिमाष्या ॥

५२९ आवट्याच्च । ४ । १ । ७५ ॥

अस्माच्चाप् स्यात् । यञश्चेति ङीपोऽपवादः। अवटशब्दो गर्गादिः । आवट्या ॥

५२९–आवट्य शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें चाप् हो "यञश्च ४।१।१६/४७१" ङीप्का अपवादक है, (अर्थात् अवट शब्द गर्गादिमें पठित होनेसे यञ्प्रत्यायान्त होनेसे ङीप् प्राप्त है, उसका यह अपवाद है । प्राचीन आचार्योंके मतमें ष्फ् होता-है) अवट+यञ्+आप्=आवट्या ॥

५३० तद्धिताः । ४ । १ । ७६ ॥

आ पञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम् ॥

५३०–पांचवें अध्यायतक इस सूत्रका अधिकार है इस-लिये अगले सूत्रोंसे जिन प्रत्ययोंका विधान होगा उनको तद्धित संज्ञा होगी ॥

५३१ यूनस्तिः । ४ । १ । ७७ ॥

युवन्शब्दात्तिप्रत्ययः स्यात्स च तद्धितः । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया सिद्धे तद्धिताधिकार उत्तरार्थः । युवतिः । अनुपसर्जनादित्येव बहवो युवानो यस्यां सा बहुयुवा । युवतीति तु यौतेः शत्रन्तात् ङीपि बोध्यम् ॥

॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः ॥

५३१–स्त्रीलिङ्गमें युवन् शब्दसे ति प्रत्यय हो और वह तद्धितसंज्ञक हो । लिङ्गविशिष्टपरिभाषासे सिद्ध होनेपर तद्धि-ताधिकार उत्तरार्थ जानना चाहिये । युवन्+ति=युवतिः । "स्वादिषु० १।४।१७/२३०"से पदत्वके कारण नकारका लोप हुआ। अनुपसर्जन न होनेके कारण 'बहवो युवानो यस्यां सा बहु-युवा' इस स्थानमें ति प्रत्यय न हुआ । यौति मिश्रीकरोति पत्या इस विग्रहमें "लटः शतृशानचौ० ३।२।१२४/३१००" इससे शतृ होनेपर "उगितश्च ४५५" इससे ङीप् करके युवती यह दीर्घ ईकारान्त शब्द सिद्ध होताहै ॥

इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ॥

अथ कारकप्रकरणम् ।

५३२ प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण-वचनमात्रे प्रथमा । २ । ३ । ४६ ॥

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः । मात्र-शब्दस्य प्रत्येकं योगः । प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात् । उच्चैः । नीचैः । कृष्णः । श्रीः । ज्ञानम्। अलिंगा नियतलिंगाश्च प्रातिपदिकार्थमात्र इत्य-स्योदाहरणम् । अनियतलिंगास्तु लिंगमात्रा-द्याधिक्यस्य । तटः । तटी । तटम् । परिमाण-मात्रे द्रोणो व्रीहिः । द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थः । प्रत्ययार्थे परि-माणे प्रकृत्यर्थोऽभेदेन संसर्गेण विशेषणम् । प्रत्ययार्थस्तु परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेन व्रीहौ विशेषणमिति विवेकः । वचनं संख्या । एकः । द्वौ । बहवः।इहोक्तार्थत्वाद्विभक्तेरप्राप्तौ वचनम्॥

५३२–नियतोपस्थितिक जो है, वही यहां प्रातिपदिकार्थ है, तन्मात्रमें, लिङ्ग, परिमाण और वचनमात्रके आधिक्यमें प्रथमा हो । प्रातिपदिकादि सबके साथ मात्र शब्दका योग होगा, यथा–प्रातिपदिकार्थमात्रमें, लिङ्गमात्रमें–इत्यादि ।

प्रातिपदिकार्थ बोध होनेपर भी लिङ्ग परिमाणादिके बोधके असंभवके कारण आधिक्यार्थमें प्रथमाविधान किया है । यदि ऐसा कहो कि,लिङ्गादि भी प्रातिपदिकार्थ ही हैं,क्यों तो–

" स्वार्थो द्रव्यञ्च लिङ्गञ्च संख्या कर्मादिरेव च ।

अमी पञ्चैव नामार्थास्त्रयः केषाञ्चिदग्रिमाः ॥"

अर्थात् स्वार्थ–विशेषण, द्रव्य–विशेष्य, लिङ्ग=स्त्रीत्वआदि, संख्या–एकत्वादि, कर्मादि–कारक, यह पांच नामार्थ प्राति

* नृ शब्दसे "ऋन्नेभ्यः० ४।१।५/३०६" इससे ङीप् प्राप्त होनेपर और नर शब्दसे जातिलक्षण ङीष् प्राप्त होनेपर उसके बाधनार्थ; और वृद्धिविधानके निमित्त यह वचन है, यदि कहो कि, नर शब्दमें "अलोन्त्यस्य" से अन्त्य अकारको वृद्धि होजायगी सो नहीं, क्योंकि "वार्णादाङ्गं बलीयः" इस परिभाषासे अकारका "यस्येति च" ६।४।१४८/३११ इस सूत्रसे लोप होनेसे अनन्त भी अकारको वृद्धि होतीहै, अथवा नरस्य अः=नरः, कतन्तवत् पररूप 'ना च नरश्च, तयोर्नृनरयोः' इस प्रकार प्रश्लेषकी सामर्थ्यसे परके प्रथम ही अकारका ग्रहण कियाजाताहै, न कि दूसरेका । यद्यपि अन्यतरोपादानसे भी नारी इस रूपकी सिद्धि होती, तो भी अन्यतरको अनिष्ट रूप निवृत्तिके निमित्त दोनोंका उपादान है । जहां नरी ऐसा रूप हो, वहां पुंयोगलक्षणमें ङीष् हुआहै । कोई नरशब्दका ग्रहण ङीन्के निमित्त करतेहैं, यह बात दूसरे लोग नहीं मानते, कारण कि, यदि ङीन्के निमित्त ही ग्रहण हुता तो इसका पाठ शार्ङ्गरवादि गणमें अलग ही करते ॥

पदिकार्थ हैं, इस कारिकाके अनुसार पांच प्रकारके नामार्थ हों, तो प्रातिपदिकार्थ कहनेमें ही लिङ्गादिकी प्राप्ति हुई, फिर सूत्रमें उसका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है ? ऐसा नहीं कहना, क्यों तो ' नियतोपस्थितिकः ' यह विशेषण दिया है, अर्थात् जिस प्रातिपदिकके उच्चारणमात्रसे ही नियमके साथ जिस अर्थकी उपस्थिति हो उसे नियतोपस्थितिक कहते हैं,वही यहां प्रातिपदिकार्थ पदसे विवक्षित है, तत्र लिङ्गादिकोंके प्रातिपदिकार्थत्व नहीं आया, क्यों तो वे नियतोपस्थितिक नहीं हैं, इसलिये पृथक् ग्रहण है ।

मात्र पदसे कर्मादिके आधिक्यमें प्रथमाका निषेध होगा, लिङ्ग, परिमाण और वचनका पृथक् ग्रहण करनेसे प्रातिपदिकार्थमात्रसे अधिक लिङ्गादि अर्थमें भी प्रथमा होगी ।

प्रातिपदिकार्थका उदाहरण, यथा—उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम् । अलिङ्ग और नियतलिङ्ग दोनों ही प्रातिपदिकार्थमात्रके उदाहरण हैं।

अनियतलिंग केवल लिङ्गमात्राधिक्यका उदाहरण है, यथा—तटः, तटी, तटम् ।

परिमाण(तोल) मात्रका उदाहरण,जैसे—द्रोणो व्रीहिः(अर्थात् द्रोणरूप परिमाणसे परिच्छिन्न व्रीहि)यहां द्रोण नियमित तोलका नाम है, सो प्रातिपदिकार्थसे भिन्न है । प्रत्ययार्थ परिमाण होनेपर प्रकृतिका अर्थ, अभेद संसर्गसे प्रत्ययार्थमें विशेषण होगा, परन्तु प्रत्ययार्थ जो है, सो परिच्छेद्य परिच्छेदक भावद्वारा व्रीहिका विशेषण है,यह कहना चाहिये ।

वचन अर्थात् संख्या, यथा—एकः, द्वौ, बहवः । इस स्थानमें उक्तार्थत्वके कारण ' उक्तार्थानामप्रयोगः ' इस न्यायके अनुसार विभक्तिकी अप्राप्ति होनेके कारण वचन शब्दका पृथक् ग्रहण है * ॥

५३३ संबोधने च । २ । ३ । ४७ ॥

इह प्रथमा स्यात् । हे राम ॥

५३३—सम्बोधनमें प्रथमा विभक्ति हो, यथा—हे राम ॥

॥ इति प्रथमा ॥

५३४ कारके । १ । ४ । २३ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

५३४—यह अधिकार सूत्र है, संज्ञाधिकारके बीचमें पढनेसे और आगे २ सूत्रोंमें इसकी अनुवृत्ति होनेसे यह अधिकार सूत्र है, इससे जहां जहां स्वतंत्रादि रूप अर्थोंकी संज्ञा की जायगी, वहां वहां कारकका अधिकार समझा जायगा । क्रिया और द्रव्यका संयोग तथा क्रियाकी सिद्धि करनेवालेको कारक कहतेहैं । कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण यह कारक हैं । भर्तृहरिजीकी कारिका भी ऐसे ही सिद्धान्तको प्रतिपादन करती है, यथा—

कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च ।
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट् ॥

पूर्वोक्त छे प्रकारके कारक हैं, ऐसा आचार्य लोग कहतेहैं यही इस कारिकाका अर्थ है ॥

५३५ कर्तुरीप्सिततमं कर्म ।१।४।४९ ॥

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् । कर्तुः किम् । माषेष्वश्वं बध्नाति । कर्मण ईप्सिता माषा न तु कर्तुः । तमब्ग्रहणं किम् । पयसा ओदनं भुङ्क्ते । कर्मेत्यनुवृत्तौ पुनः कर्मग्रहणमाधारनिवृत्त्यर्थम् । अन्यथा गेहं प्रविशतीत्यत्रैव स्यात् ॥

५३५—कर्ताकी क्रियासे सम्बन्ध करनेको अत्यन्त इष्ट जो है, उसको कारक संज्ञा होकर कर्म संज्ञा हो ।

'कर्तुः' कहनेसे यह दिखाया है कि, माषेष्वश्वं बध्नाति (उडदोंमें घोडेको बांधताहै) , इस स्थलमें माष पदको कर्म संज्ञा नहीं हो, कारण कि, माषपदार्थ कर्मकी क्रियासे सम्बन्ध करनेको अत्यन्त इष्ट है, परन्तु कर्ताकी क्रियासे सम्बन्ध करनेको अत्यन्त इष्ट नहीं ।

तमप्को ग्रहण इस कारण है कि, पयसा ओदनं भुंक्ते, यहां पयस्की कर्म संज्ञा न हो ।

(कर्मेत्यनुवृत्तावित्यादि) पूर्व सूत्रसे कर्मकी अनुवृत्तिका सम्भव है, तो फिर इस सूत्रमें कर्मग्रहण केवल आधारग्रहणकी अनुवृत्तिकी निवृत्तिके ही लिये है, यदि कोई कहे कि, आधारकी अनुवृत्ति हो ही जाती तो क्या क्षति, सो ठीक नहीं, क्यों तो (अन्यथा, गेहं प्रविशतीत्यत्रैव स्यात्) यदि आधारकी अनुवृत्ति आती, तो गेहं प्रविशति (गृहमें प्रवेश करताहै) ऐसे ही स्थलोंमें कर्म संज्ञा होती, किन्तु हरिंभजति—इत्यादि स्थलोंमें नहीं होती ॥

५३६ अनभिहिते । २ । ३ । १ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

५३६—आगे इस सूत्रका अधिकार चलेगा, यह अधिकार विभक्तिविधानप्रकरणमें है । अभिहित उसको कहतेहैं, जिससे लकारादि प्रत्ययान्त क्रियाओंका समानाधिकरण होवे । जिसमें लकारादि प्रत्ययोंका समानाधिकरण न हो, वह अनभिहित, अनुक्त और अकथित कहाताहै, आगेके विभक्तिविधानप्रकरणमें इसका अधिकार चलेगा ॥

५३७ कर्मणि द्वितीया । २ । ३ । २ ॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति। अभिहिते तु कर्मणि प्रातिपदिकार्थमात्र इति प्रथमैव । अभिधानं तु प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितस-

---

* इसी सूत्रके भाष्यमें ''तिङ्समानाधिकरणे प्रथमेत्येतल्लक्षणं करिष्यते''अर्थात्—अस्ति, भवति आदि तिङन्त क्रियाके साथ जो समानाधिकरण हो, उसको उक्त, कथित और अभिहित कहतेहैं, उसीमें प्रथमा विभक्ति होतीहै, इससे भिन्न कारकोंमें द्वितीयादि होतीहैं, सो आगे कहेंगे । कर्ता, हेतु कारकके उदाहरण प्रातिपदिकार्थमात्रमें 'देवदत्तो ग्रामं गच्छति' 'देवदत्तो यज्ञदत्तं ग्रामं गमयति' 'देवदत्त ओदनं पचति' 'यज्ञदत्तो देवदत्तेनौदनं पाचयति'-इत्यादि, यहां गच्छति, पचति क्रियाके करनेमें देवदत्त स्वतंत्र होनेसे कर्ता और यज्ञदत्तकी प्रेरणाका कर्म है, उसका इन्हीं क्रियाओंके साथ समानाधिकरणता होनेसे प्रथमा हुई ॥

मासैः। तिङ्। हरिः सेव्यते। कृत्। लक्ष्म्या सेवितः। तद्धितः। शतेन क्रीतः शत्यः।समासः। प्राप्त आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः। क्वचिन्निपाते-नाभिधानम्। यथा। विषवृक्षोपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम्। सांप्रतमित्यस्य हि युज्यत इत्यर्थः॥

५३७-अनुक्त कर्ममें द्वितीया विभक्ति हो, यथा-हरिं भजति (हरिको भजन करताहै) इसमें भजनरूप क्रियासे सम्बन्ध करनेको अत्यन्त इष्ट हरि है, इस कारण यहां 'हरिम्' में कर्म संज्ञा हुई।

कर्म-प्रधान क्रियापेक्षित प्रत्ययद्वारा अभिहित होनेपर प्रातिपदिकार्थमात्रमें उससे प्रथमा होगी। अभिधान प्रायः तिङ्, कृत्, तद्धित और समासद्वारा होताहै, तिङ्, यथा-हरिः सेव्यते। कृत्, यथा-लक्ष्म्या सेवितः। तद्धित, यथा-शतेन क्रीतः=शत्यः (यत् प्रत्यय)। समासमें, यथा-प्राप्तः आनन्दः यं सः=प्राप्तानंदः ("गत्यर्थाकर्मक०" ३।४।७२/१०८६, इससे कर्तामें क्त)। कहीं निपातनसे भी उक्त होताहै, यथा-विषवृक्षोपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्, यहां 'साम्प्रतम्' शब्दका अर्थ 'युज्यते' जानना इस कारण 'असाम्प्रतम्' अर्थात् अयुक्त है, यहां 'विषवृक्षम्' न हुआ॥

५३८ तथायुक्तं चानीप्सितम्। १।४।५०॥

ईप्सिततमवत्क्रियया युक्तमनीप्सितमपि कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते॥

५३८-ईप्सिततमकी समान क्रियायुक्त अनीप्सित कारककी भी कर्म संज्ञा हो, यथा-ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति (गांवको जाताहुआ तृण छूताहै), (ओदनं बुभुक्षुर्विषं भुंक्ते भात खानेकी इच्छा करते विष खाजाताहै) ओदनं भुञ्जानो विषं भुंक्ते (ओदनको खाता विष खा जाताहै) यहां कर्ताको तृण और विष दोनों अनीप्सित हैं,पर कर्म होनेसे इनमें भी द्वितीया हुई *॥

५३९ अकथितं च।१।४।५१॥

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्॥

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्॥

कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्।

दुहादीनां द्वादशानां तथा नीप्रभृतीनां चतुर्णां कर्मणा यद्युज्यते तदेवाकथितं कर्मेति परिगणनं कर्तव्यमित्यर्थः। गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। अविनीतं विनयं याचते। तण्डुलानोदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा। अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्तीत्यादि। कारकं किम्। माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति॥ अकर्मकधातुभियोंगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्॥ *॥ कुरून् स्वपिति। मासमास्ते। गोदोहमास्ते। क्रोशमास्ते॥

५३९-अपादानादि विशेषसे अविवक्षित कारककी कर्म संज्ञा हो अर्थात् अपादानादिकी जहां विवक्षा न हो, उसे अकथित कहते ह और उसकी भी कर्म संज्ञा होतीहै, आशय यह कि, कर्तामें लकार होकर कर्म अनुक्त होनेसे अकथित कर्ममें द्वितीया होतीहै।

अकथित कर्म कहां होताहै, सो दिखातेहैं-

(दुह्याच०) दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध, प्रच्छ, चिञ्, ब्रूञ्, शास्, जि, मन्थ और मुष्, इन बारह धातुओंके और नी, हृ, कृष्, वह, इन चार धातुओंके कर्मसे युक्त जो है, वही अकथित कर्म है,यथा-गां दोग्धि पयः अर्थात् गायसे दूध दुहताहै, यहां दुह् धातुके कर्मसे युक्त होनेके कारण अपादानके अनुसार अविवक्षित कारककी कर्म संज्ञा हुई। बलिं याचते वसुधाम् (बलिराजासे पृथ्वी मांगताहै,) यहां याच् धातुके कर्मसे युक्त वसुधा है, इस कारण अपादान प्रकारमें अविवक्षित कारक वसुधाकी कर्म संज्ञा हुई है। अविनीतं विनयं याचते (अविनीतसे विनयकी प्रार्थना करताहै), तण्डुलानोदनं पचति (चावलसे भात पकाताहै,) गर्गान् शतं दण्डयति (गर्गसे सौ रुपये दण्ड ग्रहण करताहै)। व्रजमवरुणद्धि गाम् (व्रजमें गायको रोकताहै) इनमें पच्, दण्ड और रुध् धातुके कर्मसे युक्त होनेसे कर्म संज्ञा हुई। यहां रुध् धातुके कर्मसे युक्त होनेसे अधिकरण प्रकारमें अविवक्षित कारक (व्रज) की कर्म संज्ञा हुई। माणवकं पंथानं पृच्छति (बालकसे मार्ग पूछताहै) यहां 'प्रच्छ्', वृक्षमवचिनोति फलानि (वृक्षसे फल चुनताहै) यहां 'चिञ्', माणवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति वा (बालकको धर्म देता वा उपदेश करताहै), इस स्थानमें 'ब्रू' और 'शास्' धातुके कर्मसे युक्त होनेके कारण संप्रदान विषयमें अविवक्षित कारककी कर्म संज्ञा हुई। [illegible] जयति देवदत्तम् (देवदत्तको जीतकर उससे सौ रुपये लेताहै,) इस स्थानमें [illegible]

---

* यदा कर्तुरनिष्टं यत्कर्मत्वेन विवक्षितम्।
तदनीप्सिततमं कर्म उक्तानुक्ततया द्विधा"

अर्थात् जब कर्ताका अनिच्छित कारक भी कर्म माना जाताहै, तब वह अनीप्सित कर्म होताहै और वह उक्त अनुक्त भेदसे दो प्रकारका है. अनुक्त अनीप्सित विषं खादति [illegible]। [illegible] [illegible], यथा विषं खादते [illegible]। 'विषम्' [illegible] [illegible] हुई॥

दान विषयमें अविवक्षित कारक (देवदत्त) की कर्म संज्ञा हुई । सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति (अमृतके निमित्त क्षीरसागर मथताहै) इस स्थानमें निमित्तार्थ चतुर्थीके विषयमें अविवक्षा करके सुधाकी कर्म संज्ञा हुई । देवदत्तं शतं मुष्णाति (देवदत्तको ठगकर सौ रुपये लेताहै) यहां मुष् धातुके कर्मसे युक्त होनेसे अपादान प्रकारमें अविवक्षा करके देवदत्तकी कर्म संज्ञा हुई । ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति, वा (बकरीको गांवसे लेकर जाताहै, अर्थात् गांवसे हरण, कर्षण और वहन करताहै) यहां अधिकरण प्रकारमें अविवक्षा करके ग्रामकी कर्म संज्ञा हुई ।

यह संज्ञा अर्थके अनुसारही हो, अर्थात् दुहादि धातुओंका जो अर्थ उस अर्थके कहनेवाले अन्य धातुके कर्मसे युक्त होनेपर अविवक्षितत्वके कारण उनकी भी कर्म संज्ञा होगी, यथा-बलिं भिक्षते वसुधाम्, इस स्थलमें याच् धातुके अर्थबोधक भिक्ष् धातुके कर्मसे युक्त होनेके कारण अपादान प्रकारमें अविवक्षित कारक वसुधाकी कर्म संज्ञा हुई । माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि, इस स्थानमें ब्रू धातुका अर्थबोधक भाष्,अभिपूर्वक धा-और वच् धातु हैं संप्रदानविषयमें कर्म संज्ञा हुई है ।

कारक क्यों कहा ? तो माणवकस्य पितरं पंथानं पृच्छति, इस स्थलमें 'माणवकस्य' यहां षष्ठीके विषयमें कर्म संज्ञा होकर द्वितीया न हो ।

(अकर्मक धातुके योगमें देश, काल, भाव और गमनके योग्य पथि(मार्ग)इनकी कर्म संज्ञा हो१०३-११०४ वा०) । कुरून् स्वपिति, यहां 'स्वपिति' इस अकर्मक धातुके योगमें कुरु नाम देशको कर्मत्व हुआहै । मासमास्ते, इस स्थानमें आस् इस अकर्मक-धातुके योगमें मासको कर्मत्व हुआ है (यह कालका उदाहरण है) । गोदोहमास्ते, इस स्थानमें गोदोहको कर्मत्व हुआहै (यह भावका उदाहरण है) । क्रोशमास्ते, इस स्थानमें क्रोशको कर्मत्व हुआ है (यह अध्वाका उदाहरण है) ॥

५४० गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्त्ता स णौ । १ । ४ । ५२ ॥

गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मकाणामकर्मकाणां चाणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात् ।

शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत् ।
आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम् ॥ १ ॥
आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः ॥

गतीत्यादि किम् । पाचयत्योदनं देवदत्तेन । अण्यन्तानां किम् । गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तं तमपरः प्रयुङ्क्ते । गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः ॥ नीवह्योर्न ॥ * ॥ नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन ॥ नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः ॥ * ॥ वाहयति रथं वाहान् सूतः ॥ आदिखाद्योर्न ॥ * ॥ आदयति खादयति वाऽन्नं वटुना ॥ भक्षेरहिंसार्थस्य न ॥ * ॥ भक्षयत्यन्नं वटुना । अहिंसार्थस्य किम् । भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम् ॥ जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ जल्पयति भाषयति पुत्रं देवदत्तः ॥ दृशेश्च ॥ * ॥ दर्शयति हरिं भक्तान् । सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणं न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते । तेन स्मरति जिघ्रतीत्यादीनां न । स्मारयति घ्रापयति देवदत्तेन ॥ शब्दायतेर्न ॥ * ॥ शब्दाययति देवदत्तेन । धात्वर्थसंगृहीतकर्मत्वेनाकर्मकत्वात्प्राप्तिः । येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न संभवति तेऽत्राकर्मकाः नत्वविवक्षितकर्माणोऽपि । तेन मासमासयति देवदत्तमित्यादौ कर्मत्वं भवति देवदत्तेन पाचयतीत्यादौ तु न ॥

५४०-गतिअर्थवाले, बुद्धिअर्थवाले, प्रत्यवसान अर्थात् भोजनअर्थवाले, शब्दकर्मक और अकर्मक धातुओंका जो णिच् प्रत्ययके पहले कर्ता है, अर्थात् अण्यन्त अवस्थाका जो कर्ता है, वह ण्यन्त अवस्थामें कर्मसंज्ञक होताहै, यथा-शत्रूनगमयत्स्वर्गम्, इस स्थानमें गत्यर्थ गम् धातुके अणिजन्तकर्ता (शत्रवः) की णिजन्तकालमें कर्म संज्ञा (शत्रून्) हुई है । वेदार्थं स्वानवेदयत्, इस स्थानमें बुद्ध्यर्थ धातुके अणिजन्तकर्ता (स्वाः) की णिजन्त कालमें कर्म संज्ञा (स्वान्) हुई है । देवान् अमृतम् आशयत्, इस स्थानमें प्रत्यवसानार्थ धातुके अणिजन्तकर्ता (देवाः) को णिजन्त कालमें कर्मत्व (देवान्) हुआहै । विधिं वेदमध्यापयत्,इस स्थानमें शब्दकर्मक धातुके अणिजन्तकर्ता (विधिः) को णिजन्तकालमें कर्मत्व (विधिम्) हुआहै । सलिले पृथ्वीम् आसयत्, इस स्थानमें अकर्मक आस् धातुके अणिजन्त कर्ता (पृथिवी) को णिजन्तकालमें कर्मत्व (पृथिवीम्) हुआहै ।

गति इत्यादि अर्थ न होनेपर, यथा-पाचयति ओदनं देवदत्तेन-इत्यादि स्थलमें गत्यर्थ न होनेके कारण अणिजन्त कर्ता (देवदत्त) को णिजन्त कालमें कर्मत्व (देवदत्तम्) नहीं हुआहै ।

अणिजन्तकर्त्ता न होनेपर अर्थात् णिजन्तकर्त्ता होनेपर, यथा='गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तं तमपरः प्रयुंक्ते गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः' । इस स्थानमें देवदत्तको कर्मत्व नहीं हुआ ।

नी और वह धातुके अणिजन्तकर्ताको णिजन्तकालमें कर्मत्व न हो (११०९ वा०) । नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन, इस स्थानमें नी और वह् धातुके अणिजन्तकर्ता (भृत्यः) को णिजन्तकालमें कर्मत्व नहीं हुआ ।

जहां वह् धातुके प्रयोगमें अण्यन्तावस्थाका कर्ता यदि अनियन्ता हो अर्थात् जहां सारथि वह् धातुका कर्ता न हो

वहीं कर्म संज्ञाका निषेध हो, अन्यत्र नहीं अर्थात् सारथि कर्ता होनेपर वह धातुके अणिजन्तकर्ताकी णिजन्तकालमें कर्म संज्ञा हो (वा० १११०) यथा–वाहयति रथं वाहान् सूतः, इस स्थानमें वह् धातुका सारथि कर्ता होनेसे अणिजन्त कर्ता (वाहाः) की णिजन्तकालमें कर्म संज्ञा (वाहान्) होतीहै ।

(आदिखाद्योर्न प्रतिषेधः १९०९ वा०) आदि और खादि, इन धातुओंके प्रयोगमें अणिजन्त कर्ताको णिजन्तकालमें कर्मत्व न हो, यथा–आदयति खादयति वान्नं बटुना, इस स्थानमें अद् और खाद् धातुके अणिजन्तकर्ता (बटु) की णिजन्तकालमें कर्म संज्ञा (बटुम्) न हुई ।

(भक्षे० ११११ वा०) अहिंसार्थक भक्ष धातुके अणिजन्त-कर्ताकी णिजन्तकालमें कर्म संज्ञा न हो 'भक्षयत्यन्नं बटुना' । हिंसार्थक होनेपर कर्मत्व हो, यथा–भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्, इस स्थानमें बलीवर्दकी कर्म संज्ञा हुई ॥

जल्पति आदि धातुओंके प्रयोगमें अण्यन्त अवस्थाका कर्ता ण्यन्त अवस्थामें कर्मसंज्ञक होताहै (वा० ११०७) जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः, इस स्थानमें पुत्रकी कर्म संज्ञा हुई है ।

(दृशेश्च ११०८ वा०) दृश् धातुके प्रयोगमें अण्यन्त अवस्थाका कर्ता ण्यन्त अवस्थामें कर्मसंज्ञक होता है, यथा–दर्शयति हरिं भक्तान्, इस स्थानमें भक्त इसकी कर्म संज्ञा हुई है, उपरोक्त सूत्रमें बुद्धि अर्थवाले अन्य धातुओंका ग्रहण करनेसे ही दृश् धातुका भी ग्रहण होजानेके कारण वार्तिक व्यर्थ होकर नियम करताहै कि,–सूत्रमें ज्ञानसामान्यार्थक धातुओंका ग्रहण है, विशेषज्ञानार्थक धातुओंका ग्रहण नहीं है, इसीलिये स्मारयति घ्रापयति देवदत्तेन, यहां विशेषज्ञानार्थक स्मृ और घ्रा धातुके योगमें अण्यन्तावस्थाका कर्ता ण्यन्तावस्थामें कर्म नहीं हुआ, इससे देवदत्तको कर्मत्व नहीं हुआ ॥

(शब्दायतेर्न ११०५ वा०) शब्दाय धातुके अण्यन्तावस्थाके कर्ताकी ण्यन्तावस्थामें कर्म संज्ञा न हो । शब्दाययतीति "शब्दवैर० ३।१।१७/२६७३" इससे क्यङ् फिर हेतुमत् अर्थमें (३।१।२६/२५७६) णिच् हुआहै । (धात्वर्थेति)यहां धात्वर्थसे कर्म संगृहीत होताहै क्योंकि, शब्दाययति, इसका 'शब्दं करोति' यह अर्थ है, इसलिये अकर्मकत्व होनेसे " गतिबुद्धि० ५४० " से कर्म संज्ञाकी प्राप्ति हुई थी ।

जिसको देश, काल–आदिसे भिन्न कर्मकी संभावना न हो उसका इस सूत्रमें अकर्मक पदसे ग्रहण है, किन्तु अविवक्षित कर्मका नहीं है, इसलिये मासमासयति देवदत्तम्–इत्यादि स्थलोंमें कर्मत्व हुआ, देवदत्तेन पाचयति–इत्यादि स्थलोंमें कर्मत्व न हुआ ॥

५४१ हृक्रोरन्यतरस्याम् ।१।४।५३।

हृक्रोरणौ यः कर्ता स णौ वा कर्म स्यात् । हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम् ॥

अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् ॥ * ॥ अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा ॥

५४१–हृ और कृ धातुके अण्यन्त अवस्थाका जो कर्ता है, उसकी णिजन्तकालमें विकल्प करके कर्म संज्ञा हो, यथा–हारयति कारयति भृत्यं भृत्येन वा कटम्, इस स्थानमें 'भृत्य' इसको विकल्प करके कर्मत्व हुआहै पक्षमें 'भृत्येन' यहां तृतीया हुई ।

(अभिवादीति १११४ वा०) अभिपूर्वक वद् धातु तथा दृश् धातु इनका आत्मनेपदमें अण्यन्तावस्थाका कर्ता ण्यन्तावस्थामें कर्म होताहै विकल्प करके, यथा–अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा, इस स्थानमें एकवार भक्त शब्दको कर्मत्व, विकल्पपक्षमें तृतीया हुई ॥

५४२ अधिशीङ्स्थासां कर्म ।१।४।४६॥

अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्म स्यात् । अधिशेते अधितिष्ठति अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः ॥

५४२–अधिपूर्वक शीङ्, स्था और आस् धातुके आधारकी कर्म संज्ञा हो, यथा अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः, इस स्थानमें शीङ्, स्था और आस् के आधार वैकुण्ठको कर्मत्व हुआ ॥

५४३ अभिनिविशश्च ।१।४।४७।

अभिनीत्येतत्संघातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्म स्यात् । अभिनिविशते सन्मार्गम् । परिक्रयणे संप्रदानमिति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्याऽन्यतरस्यांग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात् क्वचिन्न । पापेऽभिनिवेशः ॥

५४३–अभि और निपूर्वक विश् धातुके अधिकरणकी कर्म संज्ञा हो, यथा–अभिनिविशते सन्मार्गम्, इस स्थानमें 'सन्मार्ग' जो है वह आधार है, इस लिये उसको कर्मत्व हुआहै, अन्यथा 'सन्मार्गे' ऐसा होता । "परिक्रयणे सम्प्रदानम्० १।४।४४/५८०" इस सूत्रसे इस सूत्रमें मण्डूकप्लुति न्यायसे 'अन्यतरस्याम्' इस पदकी अनुवृत्ति करके व्यवस्थित विभाषाके आश्रयके कारण कहीं कर्म संज्ञा नहीं भी होतीहै, यथा–पापे अभिनिवेशः, इस स्थानमें पाप शब्दको कर्मत्व नहीं हुआ ॥

---

१ धातुओंके अनेक अर्थ होनेसे कई अर्थोंमें कर्म संज्ञा प्राप्त है, और कईमें नहीं, यथा–अभ्यव और आङ्पूर्वक हृ धातु प्रत्यवसानार्थक है वहां प्राप्त है, अन्यत्र नहीं, तथा–विपूर्वक कृ धातु शब्दकर्मक है, और अकर्मक कहीं, वहां प्राप्त अन्यत्र अप्राप्त इसप्रकार यह (सूत्र) प्राप्ताप्राप्त विभाषा है ॥

२ जहां अभिपूर्वक वद् धातु शब्दकर्मक और दृश धातु बुद्ध्यर्थक है, वहां तो पूर्वसूत्रसे कर्म संज्ञा प्राप्त है अन्य अर्थमें नहीं, इस वार्तिकसे सर्वत्र विकल्प होताहै, इस कारण यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है ॥

३ जहां कहीं शब्दको कर्मत्व हो, अधिकरणत्व हो इत्यादि–

५४४ उपान्वध्याङ्वसः।१।४।४८॥

उपादिपूर्वस्य वसतेराधारः कर्म स्यात्। उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः॥ अभुक्त्यर्थस्य न॥ * ॥ वने उपवसति॥

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।*। उभयतः कृष्णं गोपाः। सर्वतः कृष्णम्।धिक कृष्णाऽभक्तम्।उपर्युपरि लोकं हरिः।अध्यधि लोकम्। अधोऽधो लोकम्॥ अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि।*।अभितः कृष्णम्। परितः कृष्णम्। ग्रामं समया। निकषा लंकाम्। हा कृष्णाऽभक्तम्। तस्य शोच्यत इत्यर्थः। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्॥

५४४-उप, अनु, अधि और आङ्पूर्वक वस् धातुके अधिकरणको कर्मत्व हो, (यहां वस् निवासे भ्वादिगणी जानना) यथा उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा वैकुण्ठं हरिः इस स्थानमें वैकुण्ठ शब्दको अधिकरणमें कर्मत्व हुआहै।

(अभुक्त्यर्थस्य न (१०८७ वा०) भोजनकी निवृत्तिका वाचक वस् धातु होय तो उसका आधार कर्म न हो, यथा-वने उपवसति, इस स्थानमें अभुक्त्यर्थक वस् धातुके आधार वन शब्दको कर्मत्व न हुआ।

उभयतः, सर्वतः, धिक् और उपर्युपरि, अध्यधि, अधोऽधः इन आम्रेडितान्तोंके योगमें द्वितीया विभक्ति हो, पूर्वकी अपेक्षा दूसरे स्थानमें भी द्वितीया हो, उभयतः कृष्णं गोपाः (कृष्णके दोनों ओर गोप) यहां 'उभयतः' के योगसे 'कृष्णम्' यह द्वितीयान्त पद हुआ, सर्वतः कृष्णम्, यहां 'सर्वतः' के योगसे 'कृष्णम्' में द्वितीया हुई। धिक् कृष्णाऽभक्तम् (जो कृष्णका भक्त नहीं उसको धिक्कार है) यहां धिक्के योगमें 'अभक्तम्' में द्वितीया हुई,उपर्युपरि लोकं हरिः, यहां 'उपर्युपरि' के योगसे 'लोकम्' में द्वितीया हुई। अध्यधि लोकम्, इस स्थानमें 'अध्यधि' के योगसे 'लोकम्' में द्वितीया हुई, अधोऽधो लोकम्, इस स्थानमें 'अधोऽधः' के योगसे 'लोकम्' में द्वितीया हुई।

(अभितःपरितेति १४४२-१४४३ वा०) अभितः, परितः, समया, निकषा, हा और प्रति इनके योगमें भी द्वितीया हो, यथा-(अभितः कृष्णम्, परितः कृष्णम्। ग्रामं समया(ग्रामके निकट)० निकषा लङ्काम् (लंकाके धेरे), हा कृष्णाभक्तम् (कृष्णके अभक्तके निमित्त शोक), बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित् (भूंखेको कुछ अच्छा नहीं लगता) यहां प्रतिके योगसे द्वितीया हुई॥

-वाक्य आवे, वहां शब्दसे उस शब्दका अर्थ जानना, अर्थमें कर्मत्व व्यवहार होनेसे शब्दमें भी गौण व्यवहार होताहै॥

५४५ अन्तराऽन्तरेण युक्ते।२।३।४॥

आभ्यां योगे द्वितीया स्यात्। अन्तरा त्वां मां हरिः। अन्तरेण हरिं न सुखम्॥

५४५-अन्तर और अन्तरेण इन दो अव्ययोंके योगमें द्वितीया हो। अन्तरा त्वां मां हरिः, अन्तरेण हरिं न सुखम् यहां 'अन्तरा'के योगमें 'त्वाम्' 'माम्' और 'अन्तरेण'के योगमें 'हरिम्' यहां द्वितीया हुई॥

५४६ कर्मप्रवचनीयाः। १।४। ८३॥

इत्यधिकृत्य॥

५४६-यह अधिकार सूत्र है, यहांसे आगे जो कार्य होगा वह कर्मप्रवचनीयका अधिकार करके होगा। यह इतनी बड़ी संज्ञा इस कारण है कि, ' अन्वर्था संज्ञा यथा विज्ञायेत कर्म प्रोक्तवंतः कर्मप्रवचनीयाः ' (भाष्य) अर्थात् जिससे यौगिक संज्ञा समझी जावे जो शब्द क्रियाको कहचुका हो उसे कर्मप्रवचनीय कहते हैं॥

५४७ अनुर्लक्षणे। १। ४। ८४॥

लक्षणे द्योत्येऽनुरुक्तसंज्ञः स्यात्। गत्युपसर्गसंज्ञापवादः॥

५४७-जहां लक्षण अर्थ द्योत्य हो वहां अनुकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। यह सूत्र गति और उपसर्ग संज्ञाका अपवाद है॥

५४८ कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया। २। ३। ८॥

एतेन योगे द्वितीया स्यात्। जपमनु प्रावर्षत्। हेतुभूतजपोपलक्षितं वर्षणमित्यर्थः। परापि हेतौ तृतीयाऽनेन बाध्यते। लक्षणेत्थंभूतेत्यादिना सिद्धे पुनः संज्ञाविधानसामर्थ्यात्॥

५४८--कर्मप्रवचनीयके योगमें द्वितीया विभक्ति हो। यथा-जपमनु प्रावर्षत् (जपके पीछे वर्षा अर्थात् कारणीभूत जपोपलक्षित् वर्षण) इस स्थानमें कर्मप्रवचनीय अनुके योगमें द्वितीया हुई। तृतीया क्यों न हुई? इस आशंकासे कहतेहैं कि, हेतु अर्थमें तृतीयाविधायक सूत्रको परवर्ती होनेपर भी इस सूत्रसे उसका बाध होगा, जिसलिये "लक्षणेत्थंभूत० १।४।९० ५५२" इस सूत्रसे कर्मप्रवचनीय सिद्ध होनेपर भी दूसरी वार संज्ञाविधानसे द्वितीयाविधानकी सामर्थ्य है॥

५४९ तृतीयार्थे। १। ४। ८५॥

अस्मिन् द्योत्येऽनुरुक्तसंज्ञः स्यात्। नदीमन्ववसिता सेना। नद्या सह संबद्धेत्यर्थः॥ षिञ् बन्धने क्तः॥

५४९-जो तृतीया विभक्तिके अर्थमें वर्तमान अनु शब्द है, उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा है। यथा- नदीमन्ववसिता सेना। इस स्थानमें तृतीयार्थद्योतक अनुकी कर्मप्रवचनीय

संज्ञा हुई उसके योगसे नदी शब्दसे द्वितीया हुई (नदीके साथ सम्बद्ध ऐसा अर्थ होगा), अवपूर्वक बन्धनार्थक षिञ् धातुके उत्तर क्त प्रत्ययसे अवसित पद बनाहै ॥

५५० हीने । १ । ४ । ८६ ॥

हीने द्योत्येऽनुः प्राग्वत् । अनु हरिं सुराः । हरेर्हीना इत्यर्थः ॥

५५०-जहां अनुका हीन (छोटा) अर्थ हो, वहां भी अनुकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो; यथा-अनु हरिं सुराः (देवता हरिसे हीन हैं) इस स्थानमें हीनार्थक अनुकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई, तब उसके योगसे ' हरिम् ' में द्वितीया हुई ॥

५५१ उपोऽधिके च । १। ४ ।८७॥

अधिके हीने च द्योत्ये उपेत्यव्ययं प्राक्संज्ञं स्यात् । अधिके सप्तमी वक्ष्यते । हीने उप हरिं सुराः ॥

५५१-अधिक और हीनार्थ द्योत्य होनेपर उप इस अव्ययकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो । अधिकार्थक उप शब्दके योगमें सप्तमी कहेंगे । हीनार्थमें यथा-उपहरिं सुराः(देवता हरिसे हीन हैं), इस स्थानमें हीनार्थक उप शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई उसके योगसे 'हरिम्' में द्वितीया हुई ॥

५५२ लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः । १ । ४ । ९० ॥

एष्वर्थेषु विषयभूतेषु प्रत्यादय उक्तसंज्ञाः स्युः । लक्षणे वृक्षं प्रति पर्यनु वा विद्योततं विद्युत् । इत्थंभूताख्याने । भक्तो विष्णुं प्रति पर्यनु वा । भागे लक्ष्मीर्हरिं प्रति पर्यनु वा । हरेर्भाग इत्यर्थः । वीप्सायां वृक्षंवृक्षं प्रति पर्यनु वा सिञ्चति । अत्रोपसर्गत्वाभावान्न षत्वम् । एषु किम् । परिषिञ्चति ॥

५५२-लक्षण (किसी ज्ञानको उत्पन्न करनेवाला जो ज्ञान उसका विषय), इत्थम्भूताख्यान (किसी प्रकारको प्राप्त जो है उसका कहना), भाग (अंश), वीप्सा (व्याप्ति), इन अर्थोंके होनेपर प्रति, परि और अनु शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो । लक्षणार्थमें यथा-वृक्षं प्रति पर्यनु वा विद्योतते विद्युत्, यहां बिजलीविद्योतनज्ञानका उत्पन्न करनेवाला ज्ञान हुआ वृक्षज्ञान तद्विषय वृक्षको होनेसे प्रति : इत्यादिकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई (वृक्षके सामने ऊपर और पश्चात् बिजली चमकतीहै) । इत्थम्भूताख्यान यथा-भक्तो विष्णुं प्रति पर्य्यनु वा (भक्त विष्णुके प्रति किंचित्प्रकार भक्ति आदिको पायाहै) । भागार्थमें यथा-लक्ष्मीः हरिं प्रति पर्य्यनु वा (लक्ष्मी हरिका अंश है)। वीप्सार्थमें यथा वृक्षं वृक्षं प्रति पर्यनु वा सिञ्चति,इस स्थानमें कर्मप्रवचनीय संज्ञासे उपसर्गसंज्ञाके बाध होनेके कारण षत्व नहीं हुआ । यह सम्पूर्ण अर्थमें कोई अर्थ न होनेसे परिषिञ्चति, इत्यादि स्थलमें कर्मप्रवचनीय संज्ञासे उपसर्ग संज्ञाके बाध न होनेके कारण षत्व हुआ * ॥

५५३ अभिरभागे । १ । ४ । ९१ ॥

भागवर्जे लक्षणादावभिरुक्तसंज्ञः स्यात् । हरिमभि वर्तते । भक्तो हरिमभि । देवंदेवमभिसिञ्चति । अभागे किम् । यदत्र ममाभिष्यात्तद्दीयताम् ॥

५५३-भागसे भिन्नार्थमें अर्थात् लक्षण, इत्थम्भूताख्यान और वीप्सा अर्थमें अभि शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो । लक्षण अर्थमें यथा-हरिमभि वर्तते, इत्थंभूताख्यान-भक्तो हरिमभि, इस स्थलमें 'हरिम्' यहां द्वितीया हुई । वीप्सा अर्थमें यथा-' देवंदेवमभिषिञ्चति' । भाग अर्थमें संज्ञा न होनेपर यथा-यदत्र ममाभिष्यात्तद्दीयताम् (जो इसमें मेरा है सो दीजिये) यहां अभि शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा न होनेसे षत्व हुआ और (मम) इसमें द्वितीया न होकर षष्ठी हुई ॥

५५४ अधिपरी अनर्थकौ ।१।४।९३ ॥

उक्तसंज्ञौ स्तः । कुतोऽध्यागच्छति । कुतः पर्यागच्छति । गतिसंज्ञाबाधाद्गतिर्गताविति निघातो न ॥

५५४-अनर्थक अधि और परि इन दो अव्ययोंकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो (आशय यह कि, धातुके साथ लगनेसे इनका कुछ विशेष अर्थ नहीं होनेसे इन दोनोंकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो) उदाहरण, यथा-कुतोध्यागच्छति, इस स्थानमें गम् धातुके साथ ' अधि ' उपसर्ग लगनेसे वही अर्थ रहा । कुतः पर्यागच्छति, इस स्थानमें भी ' परि ' इस अव्ययकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है,यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा करनेका प्रयोजन यह है कि, यहां अधि, परिकी गति संज्ञा होकर आङ् उपसर्गको गतिसंज्ञक होनेसे "गतिर्गतौ $\frac{८।१।७०}{३९७७}$" इस सूत्रसे अनुदात्त स्वर न होजाय इस कारण गति संज्ञाके निषेधके निमित्त कर्मप्रवचनीय संज्ञाका इस सूत्रसे विधान किया है ॥

५५५ सुः पूजायाम् । १ । ४ । ९४ ॥

सु सिक्तम् । सु स्तुतम् । अनुपसर्गत्वान्न षः । पूजायां किम् । सुषिक्तं किं तवात्र । क्षेपोयम् ॥

५५५-पूजा अर्थमें वर्तमान सु शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो, यथा-सु सिक्तम्, सु स्तुतम्, इस स्थानमें पूजा अर्थमें सु को कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई, अर्थ-अच्छी प्रकार सींचा हुआ, अच्छी प्रकार स्तुति किया हुआ, यहां उपसर्ग संज्ञा न होनेके कारण षत्व नहीं हुआ, जहां पूजासे भिन्न अर्थ हो वहां सुषिक्तं किं तवात्र, यहां आक्षेप अर्थ है, इस

* अप और परिके योगमें जहां पञ्चमी होतीहै, वहां वर्जन अर्थवाले अप, और परि एकत्र पडे हैं, उन्हीका ग्रहण होताहै अन्यका नहीं ॥

कारण कर्मप्रवचनीयत्व न होकर उपसर्गत्व होनेके कारण षत्व हुआहै। अर्थ यह कि, क्या तूने अच्छा सींचा ॥

५९६ अतिरतिक्रमणे च । १ । ४।९५॥

अतिक्रमणे पूजायां चातिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञः स्यात् । अति देवान् कृष्णः ॥

५५६-अतिक्रमण और पूजा अर्थमें अति शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। अतिक्रमण (उलंघन) अर्थ, जैसे-अति देवान् कृष्णः (कृष्ण सब देवताओंके अतिक्रमण करनेवाले हैं), यहां अतिके योगसे 'देवान्' में द्वितीया हुई, यही पूजा अर्थमें भी होताहै,अति देवान् कृष्णः (कृष्ण सब देवताओंकी अपेक्षा पूज्य हैं) ॥

५९७ अपिः पदार्थसंभावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु । १ । ४ । ९६ ॥

एषु द्योत्येष्वपिरुक्तसंज्ञः स्यात् । सर्पिषोऽपि स्यात् । अनुपसर्गत्वान्न षः । संभावनायां लिङ्। तस्या एव विषयभूते भवने कर्तृदौर्लभ्यप्रयुक्तं दौर्लभ्यं द्योतयन्नपि शब्दः स्यादित्यनेन संबध्यते । सर्पिष इति षष्ठी तु अपिशब्दबलेन गम्यमानस्य बिन्दोरवयवावयविभावसंबन्धे । इयमेव ह्यपिशब्दस्य पदार्थद्योतकता नाम । द्वितीया तु नेह प्रवर्तते सर्पिषो बिन्दुना योगो न त्वपिनेत्युक्तत्वात् । अपि स्तुयाद्विष्णुम्। संभावनं शक्त्युत्कर्षमाविष्कर्तुमत्युक्तिः । अपि स्तुहि । अन्ववसर्गः कामचारानुज्ञा । धिग्देवदत्तमपि स्तुयाद् वृषलम् । गर्हा । अपि सिञ्च अपि स्तुहि। समुच्चये ॥

५५७-पदार्थ, संभावना, अन्ववसर्ग (कामचारानुज्ञा), गर्हा (निन्दा) और समुच्चय अर्थमें वर्तमान अपिकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो ।

पदार्थमें यथा-सर्पिषोपि स्यात् (घृतका बिन्दु भी हो), यहां पदार्थद्योतक अपि शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होनेसे उपसर्गत्वप्रयुक्त षत्व नहीं हुआ, इस स्थानमें संभावना अर्थमें लिङ्का प्रयोग हुआ है,सम्भावनाहीका विषयभूत जो भवन (सत्ता) तिसमें बिन्दु इस कर्ताकी दुर्लभताप्रयुक्त क्रियाका दौर्लभ्य प्रकाश करता हुआ अपि शब्द 'स्यात्' इस क्रियाके साथ सम्बद्ध होताहै, ' सर्पिषः' इस जगह षष्ठी तो अपि शब्दके बलसे गम्यमान जो बिन्दु उसके साथ सर्पिष्के अवयवावयविभाव सम्बन्धमें हुई, यही अपि शब्दकी पदार्थद्योतकता है,इस स्थानमें द्वितीया विभक्ति नहीं होतीहै क्योंकि, सर्पिष् शब्दका योग बिन्दु शब्दके साथ है, अपिके साथ नहीं, यह बात कहदीगई है ।

१ इस सूत्रमें, नहीं प्रयुक्त जो पदान्तर उसका जो अर्थ वही पदार्थ पदसे गृहीत है किन्तु पदका जो अर्थ सो पदार्थ ऐसा नहीं,अगर ऐसा अर्थ होता तो सम्भावनादिग्रहण व्यर्थ हो जाता॥

(अपि स्तुयाद्विष्णुम्) यह संभावनाका उदाहरण है, शक्तिके उत्कर्षप्रकाशके निमित्त जो अत्युक्ति उसको संभावना कहतेहैं ।

अन्ववसर्ग यथा-अपिस्तुहि (स्तुति कर) अभिलाषाके अनुकूल जो अनुज्ञा उसका नाम अन्ववसर्ग है ।

गर्हा यथा-धिग्देवदत्तमपि स्तुयाद् वृषलम् (शूद्रकी स्तुति करे तो देवदत्तको धिक्कार है), धिक् ते जन्म यद्देवनिन्दकमपि स्तौषि(तेरे जन्मको धिकार है जो तू देव पितर अवतारादिकी निन्दा करनेवालेकी स्तुति करताहै), यहां अपि शब्द गर्हाका द्योतक है ।

समुच्चयार्थ यथा-अपि सिञ्च, अपि स्तुहि (सींचो या स्तुति करो), इन सब अर्थोंमें अपि शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञासे उपसर्गसंज्ञाका बाध होनेके निमित्त कर्मप्रवचनीय संज्ञा की है, जिससे उपरोक्त प्रयोगोंमें मूर्धन्य षकार न हुआ ॥

५९८ कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे।२।३।५॥

इह द्वितीया स्यात् । मासं कल्याणी । मासमधीते मासं गुडधानाः । क्रोशं कुटिला नदी । क्रोशमधीते । क्रोशं गिरिः । अत्यन्तसंयोगे किम् । मासस्य द्विरधीते। क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः॥

५५८-अत्यन्त संयोग होनेपर काल और अध्व (मार्ग) वाचक शब्दके उत्तर द्वितीया हो, यथा-मासं कल्याणी, मासमधीते (निरन्तर महीने भर तक पढताहै), मासं गुडधानाः । क्रोशं कुटिला नदी (क्रोश पर्यन्त कुटिल नदी है), यहां मार्ग और नदीका अत्यन्त संयोग है, इससे 'क्रोशम्' में द्वितीया हुई । क्रोशं गिरिः-इत्यादि । अत्यन्त संयोग न होनेपर, मासस्य द्विरधीते (महीनेमें दो बार पढता है), यहां द्वितीया न हुई, क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः (पहाड कोशके एकदेशमें है) यहां द्वितीया न हुई * ॥

॥ इति द्वितीया ॥

* कर्म सातप्रकारका होताहै, ईप्सित १ अनीप्सित २ ईप्सितानीप्सित ३ उक्ताकथित ४ अनुक्ताकथित ५ अनुक्तकर्तृकर्म ६ उक्तकर्तृकर्म ७ इस प्रकार सातप्रकारका है, तथा अनुक्तेप्सित, उक्तेप्सित, अनुक्तानीप्सित, उक्तानीप्सित इस प्रकार ईप्सित अनीप्सित मिलानेसे दो भेद और बढ जाते हैं, अनुक्तेप्सित यथा-द्वारिकां गच्छति हरिः, यहां 'द्वारिकाम्' ईप्सित कर्म है, 'हरिः' स्वतंत्र कर्ता है, गम्धातु है, इससे "लः कर्मणि च०" इस सूत्रसे कर्तामें लकार होकर 'गच्छति' रूप बनता है, यहां कर्ता उक्त होताहै और कर्म अनुक्त होताहै, इससे कर्ममें द्वितीया होती है ।

"सकर्मकाणां धातूनां यदा कर्तरि लादयः ।
तदानुक्तेप्सितं कर्म द्वितीया तत्र कीर्तिता ॥

अर्थात् जब सकर्मक धातुओंसे कर्तामें लकार होकर प्रयोग होताहै, तब ईप्सित कर्मको अनुक्तत्व होनेसे उससे द्वितीया होतीहै । उक्तेप्सितकर्म यथा-द्वारिका गम्यते हारिणा, यहां "लः कर्मणि० ३।४।६९ / २१५२" इस सूत्रसे कर्ममें प्रत्यय हुआहै, इससे कर्ता अनुक्त होनेसे 'हरिणा' में "कर्तृकरणयोः० २।३।१८ / ५६१" इससे तृतीया हुई, द्वारिकामें प्रथमा, इसके नियमकी अगली कारिका है-

५५९ स्वतन्त्रः कर्ता । १ । ४ । ५४ ॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोर्थः कर्ता स्यात्॥

५५९–क्रियामें स्वतंत्रतासे विवक्षित जो अर्थ है, अर्थात् जो क्रियाके करनेमें आपही प्रधान है, उसकी कर्ता संज्ञा है * ॥

५६० साधकतमं करणम् ।१।४।४२ ॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं कारकं करणसंज्ञं स्यात् । तमब्ग्रहणं किम् । गङ्गायां घोषः ॥

५६०–क्रियाकी निष्पत्तिसम्पादनमें जो अत्यन्त उपकारक हो उसकी करण संज्ञा हो ।

(तमप्ग्रहणं किमिति) आशय यह है कि,–कारक (क्रियासम्पादक) के अधिकारसे और करण (क्रिया सम्पादित हो जिससे) इस महासंज्ञासे साधक पदका जो अर्थ है, उसका लाभ हो ही जाता, फिर साधकग्रहण व्यर्थ होकर साधकतम पदका जो अर्थ है, उसका बोधक होनेसे रामेण बाणेन धनुषो हतो वाली, यहां धनुष्की करण संज्ञाकी प्राप्ति नहीं, तो फिर 'तमप्'ग्रहण क्यों किया ? यह प्रश्न है, उत्तर देतेहैं कि,–'गङ्गायां घोषः' आशय यह कि,–जैसे प्रस्तुत सूत्रमें महासंज्ञासे अत्यन्त अर्थका लाभ कियाहै, वैसे ही "आधारोऽधिकरणम् १।४।४५" इसमें भी अधिकरण ('अधिक्रियते यस्मिन्०' रक्खा जाय जिसमें) इस महासंज्ञासे आधार इस अर्थका लाभ होनेसे आधारग्रहण व्यर्थ होकर ऐसा ज्ञापन करता कि,–जिस आधारका आधेयके साथ सब अवयवोंमें सम्बन्ध है, वही यहां आधार पदसे ग्राह्य है, तब तिलेषु तैलम्, दध्नि सर्पिः इत्यादि स्थलोंमें ही अधिकरण संज्ञा होती, गंगायां घोषः (गङ्गापद तीररूप अर्थमें लाक्षणिक है, गंगाजीके तीरमें घोष–झोपडा) इत्यादि स्थलोंमें नहीं होती, इसलिये तमप्ग्रहण करना, करनेसे तमप्ग्रहणके सामर्थ्यसे ऐसा ज्ञापन होगया कि,–इस कारकाधिकारमें शब्दके सामर्थ्यसे विशेष अर्थका लाभ न हो, तब कारकाधिकारसे और करण इस महासंज्ञासे अत्यन्त इस अर्थका लाभ न होनेसे रामेण बाणेन धनुषो हतो वाली, यहां धनुष् शब्दको भी करण संज्ञा होनेसे तृतीया होजाती, इसलिये प्रस्तुत सूत्रमें तमप्ग्रहण किया " आधारोधि०" यहां

–"सकर्मकाणां धातूनां यदा कर्मणि लादयः ।
तदैवोक्तेप्सितं कर्म प्रथमा तत्र कीर्तिता ॥"

अर्थात् सकर्मक, धातुओंका कर्ममें लकार होकर जब प्रयोग होताहै, तब ईप्सित कर्म उक्त होताहै, उसमें प्रथमा विभक्ति होतीहै । अकर्मक सकर्मक धातुओंकी पहचान यह है कि,–

"लज्जासत्तास्थितिजागरणं वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम् ।
शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं धातुगणन्तमकर्मकमाहुः ॥"

अर्थात्–लज्जा, सत्ता (होना), स्थिति, जागना, वृद्धि, नाश, भय, जीवन, मरण, शयन, क्रीडा, प्रीति, प्रकाश, इन अर्थवाले धातुओंको अकर्मक कहतेहैं, यथार्थ तो यह है कि,–'फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मत्वम्' अर्थात् जिनके फलका समानाधिकरण व्यापार अर्थ वह धातु अकर्मक कहातेहैं, यथा–देवदत्तः स्नाति (देवदत्त न्हाताहै,) यहां धातुका फल देवदत्तको छोडकर और कहीं नहीं जाता । 'फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मत्वम्' जिसके फलका समानाधिकरण व्यापार अर्थ न हो, किन्तु अन्यत्र रहनेवाला हो, उस व्यापार अर्थवाला धातु सकर्मक कहाता है, यथा–ग्रामं गच्छति, यहां गम् धातुका फल कर्तामें न होकर ग्राममें है । अनुक्तानीप्सितकर्म यथा–विषं खादति क्रुद्धः, यहां 'विषम्' अनुक्तानीप्सित कर्म है । उक्तानीप्सित यथा–विषं खाद्यते क्रुद्धेन, यहां "लःकर्म०" से कर्ममें प्रत्यय है, कर्म उक्त, कर्ता अनुक्त है । अनीप्सित कर्म उक्त अनुक्त भेदसे दोप्रकारका है, तथाच–

"यदा कर्तुरनिष्टं यत्कर्मत्वेन विवक्षितम् ।
तदानीप्सिततमं कर्म उक्तानुक्ततया द्विधा ॥"

अर्थात्–जब कर्ताका अनिच्छित कारक भी कर्म माना जाताहै, तब अनीप्सित कर्म होताहै, वह उक्त अनुक्त भेदसे दो प्रकारका है, उक्तमें प्रथमा अनुक्त कर्ममें द्वितीया होतीहै । ईप्सितानीप्सित कर्म यथा– पायसं भक्षयँस्तत्पातितं रजोऽप्यभ्यवहरति कुमारः (कुमार खीर खातेहुए उसमें गिरी धूर भी खाताहै) इसमें विना इच्छाके धूलि भी खाताहै यहां रज कर्म है । अनुक्ताकथित कर्म यथा–गां दोग्धि पयः गोपालः, इसमें 'गाम्' अनुक्ताकथितकर्म, 'पयः' अनुक्तेप्सित कर्म है । उक्ताकथित कर्म यथा–गौर्दुह्यते दुग्धं गोपालेन, यहां 'दुग्धम्' ईप्सितकर्म, 'गौः' उक्ताकथितकर्म है । अनुक्तकर्तृकर्म गच्छति ग्रामं पथिकः तं धनी प्रेरयति=गमयति ग्रामं पथिकं धनी, यह णिच् होकर कर्तामें लकार होकर शुद्ध कर्ता कर्म हुआहै (गतिबुद्धि सूत्र देखो) । उक्त कर्तृकर्म, यथा–गम्यते ग्रामः पथिको धनिना, यहां भी धातुसे णिच् होकर "लः कर्मणि०" इससे कर्ममें लकार हुआहै ॥

* "तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५/२५७५" कर्ताको प्रेरण करनेवाला हेतु कहाता है और हेतु कर्ता भी कहाताहै, यथा–

"प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा यः स्वतन्त्रं प्रयोजयेत् ।
हेतुकर्ता भवेदेष उक्तानुक्तभिदा द्विधा ॥"

विधि, निषेधमें जो स्वतंत्र होकर प्रेरण करै, वह हेतुकर्ता कहाता है, वह उक्त अनुक्त भेदसे दो प्रकारका है, स्वतंत्र कर्ता भी उक्त अनुक्त भेदसे दो प्रकारका है, हेतुकर्ता भी दो प्रकारका है अभिहित और अनभिहित । अभिहित हेतुकर्ता यथा–हितं–लभन्ते विनीताः तान् विनीतान् हितं लभमानान् यो धीरः प्रयुंक्ते स विनीतान् हितं लम्भयति–अर्थात् नम्र पुरुष हितको प्राप्त करतेहैं और कोई पंडित उनको हित प्राप्त कराताहै, यहां 'हितम्' अनभिहित कर्म है 'विनीतान्' यह कर्तृकर्म है, हितं लभन्ते विनीताः, यहां विनीत शब्दकी कर्तृ संज्ञा थी कारण कि, कर्तामें प्रत्यय हुआहै और जब ण्यन्तावस्थामें विनीत शब्द प्रेरित होताहै तब कर्म होजाताहै, इस कारण कर्तृकर्म कहाताहै, 'धीरः' अभिहित हेतुकर्ता है । अनभिहित हेतुकर्ता यथा–हितं लम्भ्यन्ते विनीताः धीरेण, यहां 'हितम्' यह अनभिहित कर्म है, 'विनीताः' यह कर्तृकर्म है और अभिहित है, 'धीरेण' यह अनभिहित हेतुकर्ता है ।

जब सकर्मक तथा अकर्मक धातुसे "लः कर्मणि च भावे चाकर्म्मकेभ्यः ६।४।६९/२१५२" इस सूत्रसे कर्तामें लकार होताहै, तब स्वतंत्र कर्ता अभिहित होताहै और जब सकर्मक धातुसे उक्त सूत्रसे कर्ममें प्रत्यय होताहै तब स्वतंत्र कर्ता अनभिहित होताहै, इसी प्रकार जब ण्यन्तावस्थामें धातुसे कर्तामें प्रत्यय होताहै तब अभिहित हेतुकर्ता होताहै और जब ण्यन्त धातुसे कर्ममें प्रत्यय होताहै, तब अनभिहित हेतुकर्ता होताहै ॥

भी महासंज्ञासे उक्त अर्थका लाभकर आधारग्रहणके सामर्थ्यसे वैसे अर्थका लाभ न होनेसे ' गंगायाम् ' यहां सप्तमी भई यह जानना ॥

५६१ कर्तृकरणयोस्तृतीया । २।३।१८॥

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् । रामेण बाणेन हतो वाली ॥ प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ प्रकृत्या चारुः । प्रायेण याज्ञिकः । गोत्रेण गार्ग्यः । समेनैति । विषमेणैति । द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। सुखेन दुःखेन वा यातीत्यादि ॥

५६१-अनुक्त कर्तृकारक और करण कारकमें तृतीया विभक्ति हो, यथा-रामेण बाणेन हतो वाली, इस स्थानमें ' रामेण ' इस अनुक्त कर्तामें तृतीया हुई, ' बाणेन ' इस करणमें तृतीया हुई ।

(प्रकृत्यादिभ्यः० १४६६ वा०) प्रकृति इत्यादि शब्दोंसे भी तृतीया होती है,यथा-प्रकृत्या चारुः, प्रायेण याज्ञिकः, गोत्रेण गार्ग्यः, समेनैति, विषमेणैति, द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति, सुखेन दुःखेन वा यातीत्यादि, यहां प्रकृति, प्राय, गोत्र, सम, विषम, द्विद्रोण ये शब्द प्रकृत्यादि गणके हैं इनमें तृतीया होतीहै * ॥

५६२ दिवः कर्म च । १ । ४ । ४३ ॥

दिवः साधकतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्याच्चात्करणसंज्ञम् । अक्षैरक्षान्वा दीव्यति ॥

५६२-जो दिव् धातुके प्रयोगमें क्रियाकी सिद्धिमें मुख्य हेतुकारक है, वह कर्मसंज्ञक और चकारसे करणसंज्ञक भी हो । पूर्व सूत्रसे नित्य करण संज्ञा प्राप्त थी उसका बाधक यह सूत्र है, यथा- अक्षैरक्षान् वा दीव्यति * ॥

* एक प्रकारका कर्मकर्ता, यथा-स्वयमेव पच्यते ओदनः (आप ही ओदन पकताहै,), भिद्यते काष्ठम् (आप ही काष्ठ विदीर्ण होताहै) यहां ओदनः' 'काष्ठम्' कर्मकर्ता हैं, जो कर्मस्थ क्रिया 'पचति' को आदि लेकर धातु हैं उनके प्रयोगमें "कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः" इस सूत्रसे जब कर्ताको कर्मवद्भाव होताहै, तब ही कर्ताको कर्मवद्भाव होनेसे कर्मविषयक यक्, तदन्तसे आत्मनेपद, चिण्, चिण्वद्भाव-इत्यादि कार्य होतेहैं, तब यह 'पच्यते' आदि प्रयोग बनते हैं ।

"कर्म्मस्थो यस्य भावः स्यात्कर्म्मस्था च क्रिया तथा ।
तस्य धातोः प्रयोगे तु कर्म कर्ता विधीयते ॥"

जिस धातुका भाव कर्मस्थ हो, तथा क्रिया कर्मविषयक हो, उस धातुके प्रयोगमें कर्म कर्ता होताहै ॥

* इस सूत्रके विधानमें केवल करण संज्ञा होकर तृतीया विभक्ति प्राप्त थी, उसका यह सूत्र अपवाद है, बहुव्यापक उत्सर्ग, और अल्पव्यापक अपवादसंज्ञक है, उत्सर्ग सूत्रोंहीके विषयमें अपवाद सूत्र प्रवृत्त होतेहैं और अपवाद सूत्रोंके विषयमें उत्सर्ग सूत्र प्रवृत्त नहीं होते, किन्तु अपवादविषयोंको छोडकर उत्सर्ग सूत्रोंकी प्रवृत्ति होतीहै, ऐसा सर्वत्र समझना, इसलिये सूत्रमें चकार ग्रहण किया ॥

५६३ अपवर्गे तृतीया । २ । ३ । ६ ॥

अपवर्गः फलप्राप्तिस्तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात् । अह्ना क्रोशेन वानुवाकोऽधीतः । अपवर्गे किम् । मासमधीतो नायातः ॥

५६३-फलप्राप्ति होनेपर काल और अध्ववाचक शब्दोंके उत्तर अत्यन्तसंयोगमें तृतीया हो, यथा-अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः, इस स्थानमें फलप्राप्ति होनेके कारण तृतीया हुई । अपवर्गग्रहण करनेसे ' मासमधीतो नायातः ' (महीनेभर तक पढा, पर कुछ आया नहीं) यहां फलकी प्राप्ति नहीं है, इसलिये तृतीया नहीं हुई, किन्तु कालके अत्यन्त संयोगमें (५५८) द्वितीया हुई ॥

५६४ सहयुक्तेऽप्रधाने । २। ३ ।१९॥

सहार्थेन युक्ते अप्रधाने तृतीया स्यात् । पुत्रेण सहागतः पिता । एवं साकं सार्द्धं समं योगेपि । विनापि तद्योगं तृतीया । वृद्धो यूनेत्यादिनिर्देशात् ॥

५६४-सह शब्दका जो अर्थ उससे युक्त जो अप्रधान कर्ता कारक उसका वाचक जो शब्द उससे तृतीया विभक्ति हो, यथा-पुत्रेण सहागतः पिता (पुत्रसहित पिता आया) , इसी प्रकार साकं, सार्द्धं, समम्-इत्यादिके योगमें, अथवा उनका योग न होनेपर भी तृतीया हो,यथा-"वृद्धो यूना०"इत्यादिमें 'साकम्'आदिका योग न होनेपर भी उक्तार्थमें तृतीया हुई* ॥

५६५ येनाङ्गविकारः । २ ।३।२०॥

येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततस्तृतीया स्यात् । अक्ष्णा काणः । अक्षिसंबन्धिकाणत्वविशिष्ट इत्यर्थः । अङ्गविकारः किम् । अक्षि काणमस्य ॥

५६५-जिस अंग (अवयव) से शरीरका विकार प्रसिद्ध हो, उस अवयववाचकसे तृतीया विभक्ति हो, यथा-अक्ष्णा काणः (नेत्रसम्बन्धी. काणत्वसे युक्त) अङ्गविकार न होनेपर अक्षि काणमस्य, यहां तृतीया न हुई ॥

५६६ इत्थंभूतलक्षणे । २ । ३ । २१॥

कंचित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात्।जटाभिस्तापसः।जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः ॥

* इस सूत्रमें सह शब्द शब्दपरक नहीं है, यदि होता तो "सहयुक्ते" के जगहमें "सहेन" ऐसा तृतीयान्त निर्देश करके तृतीयासे योग इस अर्थका लाभ करके सिद्ध था ही, फिर युक्तग्रहण व्यर्थ होजाता किन्तु अर्थपरक है, इससे टीकामें जो अर्थ दिखलाया है, उसका लाभ हुआ, इसीसे साकं, सार्द्धम्-इत्यादिशब्दोंका योग रहेनेसे 'वृद्धोयूना०' इत्यादि स्थलमें उन उन शब्दोंके योग नहीं रहनेसे भी तादर्थ्यगम्यमान होनेसे तृतीया हुई ॥

५६६-इत्थम्भूत अर्थात् इस प्रकारका वह है, इस अर्थका जनानेवाला जो अर्थ उसके बोधक प्रातिपदिकसे तृतीया विभक्ति हो, यथा-जटाभिस्तापसः (जटाओंसे तपस्वी है) यहां लक्षण जटा है, उससे तृतीया विभक्ति हुई॥

५६७ संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि।२।३।२२॥

संपूर्वस्य जानातेः कर्मणि तृतीया वा स्यात्। पित्रा पितरं वा संजानीते॥

५६७-सम्पूर्वक ज्ञा धातुके कर्ममें विकल्प करके तृतीया हो, यथा-पित्रा पितरं वा संजानीते, यहां 'संजानीते' यह सम्पूर्वक ज्ञा धातुका प्रयोग है, इस कारण उसके कर्म पितृशब्दमें द्वितीया और तृतीया हुई. (यह अप्राप्त विभाषा है, अनभिहित कर्ममें द्वितीया प्राप्त है, यह उसका अपवाद है)॥

५६८ हेतौ।२।३।२३॥

हेत्वर्थे तृतीया स्यात्। द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम्। करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च। दण्डेन घटः। पुण्येन दृष्टो हरिः। फलमपीह हेतुः। अध्ययनेन वसति। गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका। अलं श्रमेण। श्रमेण साध्यं नास्तीत्यर्थः। इह साधनक्रियां प्रति श्रमः करणम्। शतेन शतेन वत्सान्पाययति पयः। शतेन परिच्छिद्येत्यर्थः॥ अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया॥ * ॥ दास्या संयच्छते कामुकः। धर्म्ये तु भार्यायै संयच्छति॥

५६८-हेतु अर्थमें तृतीया विभक्ति हो। द्रव्यादिसाधारण और निर्व्यापार साधारणका नाम हेतु है, अर्थात् जो द्रव्य, गुण और कर्म व्यापाररहित होकर क्रियाका सम्पादक है, वह हेतु होताहै, और जो द्रव्य, गुण और कर्म व्यापारसे युक्त होकर क्रियाका जनक हो, वह करण है, यथा-दण्डेन घटः, यहां द्रव्यनिरूपित हेतुत्ववान् दण्ड है, इस कारण तृतीया हुई। 'पुण्येन दृष्टो हरिः, यहां हरिदर्शनहेतु पुण्यसे तृतीया हुई है। यहां हेतुसे फलका भी ग्रहण जानना। अध्ययनेन वसति (अध्ययन हेतु वसताहै), यहां वसनेका फल अध्ययन है वही हेतु है। कहीं गम्यमान क्रिया भी कारक विभक्तिमें प्रयोजिका (हेतु) होजातीहै, यथा-अलं श्रमेण (यह कार्य श्रमसे साध्य नहीं है), इस स्थानमें क्रिया ऊह्य होनेके कारण 'श्रमेण' में तृतीया हुई, साधन क्रियाके प्रति श्रमको करणत्व हुआ। शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः (सौ सौ बछडोंको जल पिलाताहै), यहां 'शतेन' में तृतीया हुई।

(अशिष्टव्यवहारे० ५०४० वा०) अशिष्ट व्यवहारमें दाण् धातुके प्रयोगस्थलमें चतुर्थीके अर्थमें तृतीया हो, यथा-दास्या संयच्छते कामुकः (कामी पुरुष दासीके अर्थ देता है), दासीसंगम निन्दित है, इसमें 'संयच्छते' इस दाण् धातुके प्रयोगमें अधर्मार्थ दान होनेसे चतुर्थी न होकर तृतीया हुई। शिष्टार्थ (धर्मार्थ) में, यथा-भार्यायै संयच्छति, यहां 'भार्यायै' इसमें चतुर्थी हुई॥

॥ इति तृतीया॥

५६९ कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम्।१।४।३२॥

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानसंज्ञः स्यात्॥

५६९-दा धातुका जो कर्म उससे सम्बन्ध करानेके लिये जो इष्ट है, अर्थात् जिसका उद्देश्य करके दान किया जाय उसकी संप्रदान संज्ञा हो * ॥

५७० चतुर्थी संप्रदाने।२।३।१३॥

विप्राय गां ददाति। अनभिहित इत्येव। दानीयो विप्रः॥ क्रियया यमभिप्रैति सोपि संप्रदानम्॥ * ॥ पत्ये शेते॥ कर्मणः करणसंज्ञा संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा॥ * ॥ पशुना रुद्रं यजते। पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः॥

५७०-सम्प्रदानमें चतुर्थी होतीहै, यथा-विप्राय गां ददाति (ब्राह्मणके निमित्त गौ देताहै) अनुक्त स्थलमें सम्प्रदान कारकमें चतुर्थी होगी, परन्तु उक्त स्थलमें "अनभिहिते" इसके अधिकारसे प्रथमा ही होती है, यथा-दानीयो विप्रः (देने योग्य ब्राह्मण), यहां चतुर्थी न हुई।

(क्रियया० १०८५ वा०) क्रियासे जिसकी इच्छा की जाय उसको सम्प्रदानत्व हो, यथा-पत्ये शेते (पतिके उद्देशसे शयन करती है) यहां चतुर्थी हुई।

यज् धातुके कर्मकी करण संज्ञा और सम्प्रदानकी कर्म संज्ञा हो (वा० १०८६)। पशुना रुद्रं यजते (रुद्रको पशु देता है) यहां कर्मकी करण संज्ञा होकर 'पशुम्' के स्थानमें 'पशुना' और सम्प्रदानकी कर्म संज्ञा होकर 'रुद्राय' के स्थानमें 'रुद्रम्' हुआहै॥

५७१ रुच्यर्थानां प्रीयमाणः।१।४।३३॥

रुच्यर्थानां धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणोर्थः संप्रदानं स्यात्। हरये रोचते भक्तिः। अन्य-

* प्रेरक, अनुमन्तृक, और अनिराकर्तृक भेदसे सम्प्रदान तीन प्रकारका है।

प्रेरक यथा-रामः भक्ताय मुक्तिं ददाति (राम भक्तोंको मुक्ति देतेहैं) यहां जब भक्तिद्वारा भक्त रामको प्रेरणा करताहै, तब वह मुक्ति देतेहैं।

अनुमन्तृक वह है, जिसमें न प्रेरणा की जाय, न निराकरण किया जाय, यथा-तापसः वने फलमूले रामाय ददाति (वनमें तपस्वी रामके अर्थ फल, मूल देताहै) यहां राम फल, मूलको देनेकी प्रेरणा नहीं करते, निषेध भी नहीं करते।

अनिराकर्तृक वह है, जिसमें प्रेरणा, निराकरण और अनुमति भी न हो, यथा-पुरुषोत्तमाय पुष्पं ददाति (पुरुषोत्तमके निमित्त फूल देताहै) यहां पुरुषोत्तम पुष्पके निमित्त प्रेरणा और निषेध नहीं करते और यह भी निश्चय नहीं होता कि, ग्रहण करलिया॥

कर्तृकोऽभिलाषो रुचिः । हरिनिष्ठप्रीतेर्भक्तिः कर्त्री । प्रीयमाणः किम् । देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि ॥

५७१-रुच्यर्थक धातुओंके प्रयोगमें तृप्त होनेवाले कारककी सम्प्रदान संज्ञा हो, यथा-हरये रोचते भक्तिः (हरिको भक्ति अच्छी लगती है), अन्यकर्तृक अभिलाषाका नाम रुचि है, यहां रुचि अर्थवाला रुच् धातु है, तृप्त होनेवाले हरि हैं, इससे 'हरये'में चतुर्थी हुई, हरिनिष्ठ प्रीतिकी कर्त्री भक्ति है। प्रीयमाणार्थ न होनेपर यथा-देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि (देवदत्तको मार्गमें लड्डू अच्छा लगताहै) ॥

५७२ श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः । १ । ४ । ३४ ॥

एषां प्रयोगे बोधयितुमिष्टः संप्रदानं स्यात् । गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते ह्नुते तिष्ठते शपते वा। ज्ञीप्स्यमानः किम्। देवदत्तस्य श्लाघते पथि॥

५७२-श्लाघ, ह्नुङ्, स्था, शप् इन धातुओंके प्रयोगमें जिसको जनाया जाय उसकी सम्प्रदान संज्ञा हो, यथा-गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते, ह्नुते, तिष्ठते, शपते वा (गोपी कामदेवके वश हो कृष्णके अर्थ श्लाघा करती, सपत्नीसे दूरकरती, स्थित होकर अपना अभिप्राय कहती और उपालम्भ करती है), इनके योगमें कृष्णमें चतुर्थी हुई । जिसको जनाया जाय ऐसा कहनेसे देवदत्ताय श्लाघते पथि, यहां पथिमें चतुर्थी न हुई ॥

५७३ धारेरुत्तमर्णः । १ । ४ । ३५ ॥

धारयतेः प्रयोगे उत्तमर्ण उक्तसंज्ञः स्यात् । भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः । उत्तमर्णः किम् । देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे ॥

५७३-ऋण देनेवाला उत्तमर्ण कहाताहै, ऋण लेनेवाला अधमर्ण कहाताहै, जहां ण्यन्त धृ धातुका प्रयोग होय वहाँ उत्तमर्णकी सम्प्रदान संज्ञा हो, यथा-भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः (हरि भक्तके अर्थ मोक्षको धारतेहैं) यहां उत्तमर्ण भक्त है, अधमर्ण हरि हैं, इस कारण उत्तमर्ण भक्तकी सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी हुई । उत्तमर्ण न होनेपर यथा-देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे, यहां शतकी सम्प्रदान संज्ञा न हुई ॥

५७४ स्पृहेरीप्सितः । १ । ४ । ३६ ॥

स्पृहयतेः प्रयोगे इष्टः संप्रदानं स्यात् । पुष्पेभ्यः स्पृहयति । ईप्सितः किम् । पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति । ईप्सितमात्रे इयं संज्ञा । प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात्कर्मसंज्ञा । पुष्पाणि स्पृहयति ॥

५७४-ण्यन्त स्पृह धातुके प्रयोगमें ईप्सितकी सम्प्रदान संज्ञा हो, यथा-पुष्पेभ्यः स्पृहयति (फूलोंके निमित्त इच्छा करताहै), यहां ण्यन्त स्पृह् धातुके प्रयोगमें ईप्सित पुष्प है, इस कारण पुष्पकी संप्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी हुई । ईप्सितमात्रमें ही सम्प्रदान संज्ञा होतीहै, जहां अत्यन्त स्पृहा हो वहां परत्वके कारण कर्म संज्ञा होती है, यथा-पुष्पाणि स्पृहयति-(फूलोंकी अत्यन्त इच्छा करताहै) ॥

५७५ क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः । १ । ४ । ३७ ॥

क्रुधाद्यर्थानां प्रयोगे यं प्रति कोपः स उक्तसंज्ञः स्यात् । हरये क्रुध्यति । द्रुह्यति । ईर्ष्यति। असूयति । यं प्रति कोपः किम् । भार्यामीर्ष्यति। मैनामन्योऽद्राक्षीदिति।क्रोधोऽमर्षः।द्रोहोऽपकारः। ईर्ष्याऽक्षमा । असूया गुणेषु दोषाविष्करणम् । द्रुहादयोऽपि कोपप्रभवा एव गृह्यन्ते । अतो विशेषणं सामान्येन यं प्रति कोप इति ॥

५७५-क्रुध, द्रुह, ईर्ष्य, असूय, इन तुल्यार्थ धातुओंके प्रयोगमें जिसके प्रति कोप किया जाय वह कारक संप्रदानसंज्ञक हो, यथा-हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति (हरिके अर्थ क्रोध करता, अपकार करता, ईर्षा करता और गुणोंमें दोष निकालताहै) यहां जिसके प्रति कोपादि करताहै उस हरिमें चतुर्थी हुई, जिसके प्रति कोप होय उसकी सम्प्रदान संज्ञा इस कारण कहीहै कि,-भार्यामीर्ष्यति (स्त्रीके ऊपर क्रोध करताहै) यहां इसको कोई और न देखै इस कारण भर्त्सन करता (धमकाता) है । क्रोधसे अमर्ष जानना । द्रोह-अपकार । ईर्ष्या-अक्षमा । असूया-गुणोंमें दोष देखना । द्रोहादि भी क्रोधसे उत्पन्न हुएहैं, इस कारण सामान्यसे जिसके प्रति क्रोध यह विशेषण ग्रहण कियाहै ॥

५७६ क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म । १ । ४ । ३८ ॥

सोपसर्गयोरनयोर्यं प्रति कोपस्तत्कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् । क्रूरमभिक्रुध्यति अभिद्रुह्यति ॥

५७६-उपसर्गयुक्त क्रुध् और द्रुह् धातुके प्रयोगमें जिसके प्रति कोप हो, उसकी कारक संज्ञा होकर कर्म संज्ञा हो यह सूत्र पूर्व सूत्रका बाधक है । क्रूरमभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति (क्रूरके ऊपर क्रोध और द्रोह करताहै) यहां अभि उपसर्गपूर्वक क्रुध् और द्रुह् धातुका प्रयोग है, इससे क्रूरके ऊपर क्रोध होनेसे उसकी कर्म संज्ञा हुई ॥

५७७ राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः । १ । ४ । ३९ ॥

एतयोः कारकं संप्रदानं स्यात् । यदीयो विविधः प्रश्नः क्रियते । कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा। पृष्टो गर्गः शुभाशुभं पर्यालोचयतीत्यर्थः ॥

५७७-राध् और ईक्ष धातुके प्रयोगमें जिसका विविध प्रकारका प्रश्न हो, वह कारक संप्रदानसंज्ञक हो, यथा-कृष्णाय राध्यति, ईक्षते वा (गर्गके प्रति कृष्णके प्रश्न करनेपर कृष्णके प्रति शुभाशुभकी आलोचना करतेहैं) यहां

राध् और ईक्ष धातुका प्रयोग है, प्रश्नविषय कृष्ण हैं, इससे कृष्णकी सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी हुई ॥

५७८ प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ।१।४।४०॥

आभ्यां परस्य शृणोतेर्योगे पूर्वस्य प्रवर्त्तनरूपव्यापारस्य कर्ता संप्रदानं स्यात् । विप्राय गां प्रतिशृणोति। आशृणोति वा। विप्रेण मह्यं देहीतिप्रवर्तितः प्रतिजानीत इत्यर्थः ॥

५७८-प्रति और आङ्पूर्वक श्रु धातुके योगमें पूर्व जो प्रेरणारूप व्यापार उसके कर्ताकी सम्प्रदान संज्ञा हो, यथा-विप्राय गां प्रतिशृणोति, आशृणोति वा (किसी ब्राह्मणने कहा मुझे गौ दो उसको गौके देनेकी प्रतिज्ञा करताहै) यहां पूर्व कारक ब्राह्मणकी सम्प्रदान संज्ञा हुई, विप्रकर्तृक मुझे दो ऐसा प्रवर्तित होकर उसकी प्रतिज्ञा करताहै ॥

५७९ अनुप्रतिगृणश्च ।१।४।४१॥

आभ्यां गृणातेः कारकं पूर्वव्यापारस्य कर्तृभूतमुक्तसंज्ञं स्यात्। होत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणाति। होता प्रथमं शंसति तमध्वर्युः प्रोत्साहयतीत्यर्थः ॥

५७९-अनु और प्रतिपूर्वक गृ धातुके योगमें पूर्व व्यापारके कर्ताकी कारक संज्ञा होकर संप्रदान संज्ञा हो, यथा-होत्रेऽनुगृणाति, प्रतिगृणाति वा (होता पहले कहताहै, पीछे अध्वर्यु उसको उत्साहित करताहै,) यहां पूर्वकर्ता होतृमें सम्प्रदान संज्ञा हुई ॥

५८० परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् ।१।४।४४॥

नियतकालं भृत्यास्वीकरणं परिक्रयणं तस्मिन् साधकतमं कारकं संप्रदानसंज्ञं वा स्यात्। शतेन शताय वा परिक्रीतः ॥ तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या ॥ * ॥ मुक्तये हरिं भजति ॥ क्लृपिसंपद्यमाने च ॥ * ॥ भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते संपद्यते जायते इत्यादि ॥ उत्पातेन ज्ञापिते च ॥ * ॥ वाताय कपिला विद्युत् ॥ हितयोगे च ॥ * ॥ ब्राह्मणाय हितम् ॥

५८०-नियत कालमें धनादि देकर जो भृत्यको अत्यन्त स्वाधीन करलेना है वह परिक्रयण कहाताहै, उस परिक्रयणमें अत्यन्त साधककी विकल्प करके सम्प्रदान संज्ञा हो; यथा-'शतेन शताय वा परिक्रीतः' (सौ रुपये देकर स्वीकार किया हुआ भृत्य) चतुर्थी न होनेपर "कर्तृकरणयोः०" इससे तृतीया हुई ।

(चतुर्थी विधाने तादर्थ्यमुपसंख्यानम् १४५८ वा०) जिस कार्यके निमित्त कारणवाची शब्दका प्रयोग कियाहो, उस कार्य (तादर्थ्य) में चतुर्थी हो, यथा-मुक्तये हरिं भजति (मुक्तिके लिये हरिका भजन करताहै), यहां मुक्तिके निमित्त हरिका भजन है, इससे मुक्तिमें चतुर्थी हुई ।

(क्लृपि० १४५९ वा०) जो क्लृप् धातुका प्रयोग रहते उत्पन्न होनेवाला कारक है, उसमें चतुर्थी हो, यथा-भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, संपद्यते, जायते (भक्ति ज्ञानके अर्थ होतीहै) इसमें क्लृप् धातुके अर्थवाला सम्पूर्वक पद् और जन धातु है, और वार्तिकमें अर्थग्रहण है अर्थात् क्लृप् धातुका जो अर्थ, तदर्थक धातुका प्रयोग रहते ऐसा अर्थ होनेसे सम्पद्यमान ज्ञानमें चतुर्थी हुई है ।

(उत्पातेन० १४६० वा०) शुभाशुभके जतानेवाले पृथ्वी आदिके उत्पातसे जो जानाजाय उसमें चतुर्थी हो ।

"वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी" ।
कृष्णा सर्वविनाशाय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥"

अर्थात् पीत वर्णकी बिजलीसे आंधी बहुत आतीहै, लाल वर्णकी बहुत धूपके अर्थ होती, कालेः सर्वनाशके निमित्त और श्वेत चमके तो दुर्भिक्षके निमित्त होतीहै, यहां विद्युत्से जानीजाती वस्तुमें चतुर्थी हुई ।

(हितयोगे च १४६१वा०) हित शब्दके योगमें चतुर्थी हो, यथा-ब्राह्मणाय हितम् ॥

५८१ क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ।२।३।१४॥

क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य तस्य स्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य तुमुनः कर्मणि चतुर्थी स्यात्। फलेभ्यो याति । फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः । नमस्कुर्मो नृसिंहाय । नृसिंहमनुकूलयितुमित्यर्थः। एवं स्वयंभुवे नमस्कृत्येत्यादावपि ॥

५८१-क्रियाके अर्थ जिसके उपपद क्रिया हो, ऐसे स्थानी अप्रयुज्यमान तुमुन् प्रत्ययान्तके कर्ममें चतुर्थी हो, यथा-फलेभ्यो याति (फलोंके लेनेके निमित्त जाताहै) यहां 'आहर्तुम्' का कर्म फल है । नमस्कुर्मो नृसिंहाय (नृसिंहके अनुकूल करनेके निमित्त नमस्कार करतेहैं), इसी प्रकार स्वयम्भुवे नमस्कृत्य-इत्यादि जानना (यह द्वितीयाका अपवाद है) ॥

५८२ तुमर्थाच्च भाववचनात् २।३।१५॥

भाववचनाश्चेतिसूत्रेण यो विहितस्तदन्ताच्चतुर्थी स्यात्। यागाय याति। यष्टुं यातीत्यर्थः॥

५८२-"भाववचनाश्च $\frac{३।३।११}{३१८०}$" इस सूत्रसे विहित जो प्रत्यय तदन्तसे चतुर्थी हो । यथा-यागाय याति (यज्ञ करनेके निमित्त जाताहै) यहां याग शब्द भावमें घञ् होकर बनाहै और तुमुन्का अर्थ देताहै, इससे यागमें चतुर्थी हुई ॥

५८३ नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च ।२।३।१६॥

एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् । हरये नमः । उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी ॥ * ॥

नमस्करोति देवान् । प्रजाभ्यः स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा । अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि । प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि साधुः । तस्मै प्रभवति स एषां ग्रामणीरिति निर्देशात् । तेन प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्येति सिद्धम्। वषडिन्द्राय । चकारः पुनर्विधानार्थः । तेनाशीर्विवक्षायां परामपि चतुर्थी चाशिषीति षष्ठीं बाधित्वा चतुर्थ्येव भवति । स्वस्ति गोभ्यो भूयात् ॥

५८३-नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट् शब्दके योगमें चतुर्थी हो, यथा-हरये नमः (हरिके निमित्त नमस्कार) । (उपपदविभक्तेः०१०३परि०) उपपद विभक्तिसे कारक विभक्ति बलवती होतीहे । उपपदविभक्ति वह है, जो किसी शब्दके योगको मानकर होतीहै, यथा-समया, निकषाके योगमें द्वितीया और कारकविभक्ति कर्मादि छः कारकोंमें होनेवाली कहातीहै, यथा-'नमः' के योगमें चतुर्थी उपपदविभक्ति कहातीहै, कर्ममें द्वितीया कारकविभक्ति है, इससे यह बलवती है, यथा-नमस्करोति देवान्, यहां चतुर्थी न हुई ।

प्रजाभ्यः स्वस्ति (प्रजाके अर्थ मंगल हो) अग्नये स्वाहा, (अग्निके निमित्त हविष्का दान) पितृभ्यः स्वधा-(पितरोंके निमित्त अन्नादिका दान)।

(अलमिति०) 'अलम्' अव्ययके भूषणादि अनेक अर्थ हैं, परन्तु यहां 'पर्याप्ति' (समर्थ) परिपूर्ण अर्थ ही लिया जायगा । यथा-दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि (दैत्योंके अर्थ हरि समर्थ हैं) । प्रभु आदिके योगमें षष्ठी भी हो, यथा-तस्य तस्मै वा प्रभवति इसमें, "तस्मै प्रभवति $\frac{५।१।१०१}{१७६५}$" "स एषां ग्रामणीः $\frac{५।२।७८}{१८७८}$" इन सूत्रोंमें 'तस्मै' और 'एषाम्' ऐसे निर्देशसे चतुर्थी और षष्ठी दोनोंका ही विधान है, इससे "प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य" इत्यादि स्थलमें षष्ठी हुई ।

इन्द्राय वषट् (इन्द्रके निमित्त वषट् हविष्का दान) सूत्रमें चकारग्रहण इसलिये है कि, यदि इस सूत्रसे पर होकर अन्य विभक्ति प्राप्त होय तो, उसे भी बाधकर चतुर्थी हो, यथा-स्वस्ति गोभ्यो भूयात्, यहां "चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्र० $\frac{२।३।७३}{६३१}$" इससे षष्ठी प्राप्त थी, पर चतुर्थी हुई ॥

५८४ मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु । २ । ३ । १७ ॥

प्राणिवर्जे मन्यतेः कर्मणि चतुर्थी वा स्यात्तिरस्कारे । न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा । श्यना निर्देशात्तानादिकयोगे न । न त्वां तृणं मन्ये । अप्राणिष्वित्यपनीय ॥ नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम् ॥ * ॥ तेन न त्वां नावमन्नं वा मन्ये इत्यत्राप्राणित्वेऽपि चतुर्थी न । न त्वां शुने श्वानं वा मन्ये इत्यत्र प्राणित्वेपि भवत्येव ॥

५८४-प्राणीको छोड़कर तिरस्कार अर्थ विदित होय तो दिवादि मन् धातुके कर्ममें विकल्पसे चतुर्थी हो । पक्षमें द्वितीया । न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा (मैं तुझे तृणकी समान भी नहीं मानताहूं) यहां मन् धातुका कर्म तृण प्राणी नहीं है, तिरस्कार अर्थ भी है, तब चतुर्थी विकल्पसे हुई । सूत्रमें मन्य ऐसे श्यन्प्रत्यययुक्त निर्देशके कारण तनादिके योगमें चतुर्थी न होगी, यथा-न त्वां तृणं मन्वे ।

इस सूत्रमें 'अप्राणिषु' यह पद त्यागकरके (नौकाक० १४६४ वा०) नौ, काक, अन्न, शुक, शृगाल इनको छोडकर चतुर्थी हो ऐसा कहना, यथा-न त्वां नावम् अन्नं वा मन्ये (मैं तुझे नाव और अन्न नहीं मानताहूं)यहां अप्राणित्व होनेसे भी चतुर्थी न हुई, यद्यपि दिवादि मन धातु और तिरस्कार अर्थ भी है । न त्वां शुने श्वानं वा मन्ये (मैं तुझे कुत्ता भी नहीं मानताहूं) यहां प्राणी होनेपर भी चतुर्थी हुई ॥

५८५ गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि । २ । ३ । १२ ॥

अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्मणि एते स्तश्चेष्टायाम् । ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति। चेष्टायां किम् मनसा हरिं व्रजति । अनध्वनीति किम् ।पन्थानं गच्छति । गन्त्राधिष्ठितेऽध्वन्येवायं निषेधः । यदा तूत्पथात्पन्था एवाक्रमितुमिष्यते तदा चतुर्थी भवत्येव । उत्पथेन पथे गच्छति ॥

५८५-अध्ववाचक शब्दभिन्न गत्यर्थ धातुके कर्ममें चेष्टा अर्थमें द्वितीया और चतुर्थी हो । ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति (ग्रामको जाताहै) यहां गत्यर्थ गम् धातुका कर्म मार्गभिन्न ग्राम है, उससे द्वितीया तथा चतुर्थी हुई । चेष्टा अर्थ न होनेपर, यथा-मनसा हरिं व्रजति, इस स्थानमें चेष्टा न होनेपर केवल द्वितीया हुई । अध्वभिन्न न होनेपर यथा-पंथानं गच्छति, यहां अध्ववाचक ही पथिन् शब्द है, इससे केवल द्वितीया हुई । गमनकर्तासे अधिष्ठित पथमें इसका निषेध जानना, परन्तु जब उत्पथ (कुमार्ग) से सत्पथ (श्रेष्ठमार्ग) में जाने की इच्छा हो, तब चतुर्थी ही होगी, यथा-उत्पथेन सत्पथे गच्छति (उन्मार्गसे सुमार्गमें जाता है) ॥

॥ इति चतुर्थी ॥

५८६ ध्रुवमपायेऽपादानम् ।१।४।२४॥

अपायो विश्लेषस्तस्मिन्साध्ये ध्रुवमवधिभूतं कारकमपादानं स्यात् ॥

५८६–ध्रुव अर्थात् पदार्थोंके पृथक् होनेमें जो अवधि है, वह कारक अपादानसंज्ञक हो * ॥

५८७ अपादाने पञ्चमी ।२। ३।२८॥

ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात्पतति।कारकं किम्। वृक्षस्य पर्णं पतति ॥जुगुप्साविरामप्रमादार्थाना-मुपसंख्यानम् ॥ * ॥ पापाज्जुगुप्सते । विरमति । धर्मात्प्रमाद्यति ॥

५८७–अपादानमें पंचमी विभक्ति हो, यथा–ग्रामादायाति (ग्रामसे आता है), धावतोऽश्वात्पतति (दौड़ते घोड़ेसे गिरताहै) यहां अश्व और ग्रामकी अपादान संज्ञा होकर उससे पञ्चमी होती है । कारक न होनेसे वृक्षस्य पर्णं पतति (वृक्षका पत्ता गिरता है) यहां पंचमी न हुई।

(जुगुप्साविराम० १०७९ वां०) जुगुप्सा (निन्दा), विराम (विरति) और प्रमादबोधक धातुओंका कारक अपादान हो, यथा–पापात् जुगुप्सते, विरमति (पापसे विरामको प्राप्त होताहै), धर्मात् प्रमाद्यति (धर्मसे प्रमाद करताहै)॥

५८८ भीत्रार्थानां भयहेतुः । १।४।२५॥

भयार्थानां त्राणार्थानां च प्रयोगे भयहेतुरपादानं स्यात्। चोराद् बिभेति । चोरात्त्रायते। भयहेतुः किम् । अरण्ये बिभेति त्रायते वा ॥

५८८–भय अर्थवाले तथा रक्षा अर्थवाले धातुओंके प्रयोगमें भयका हेतु जो है, उसकी अपादान संज्ञा हो, यथा–चोराद्बिभेति (चोरसे डरताहै), चोरात्त्रायते (चोरसे रक्षा करताहै) यहां भी और त्रा धातुके योगमें भयके हेतु चोरमें पंचमी हुई । भयके हेतु भिन्नकी अपादान संज्ञा न हो, यथा–अरण्ये बिभेति त्रायते वा, यहां पंचमी न हुई * ॥

५८९ पराजेरसोढः । १ । ४। २६ ॥

पराजेः प्रयोगेऽसह्योऽर्थोऽपादानं स्यात्। अध्ययनात्पराजयते । ग्लायतीत्यर्थः। असोढः किम्। शत्रून्पराजयते । अभिभवतीत्यर्थः ॥

५८९–परापूर्वक जि धातुके प्रयोगमें असह्य अर्थकी अपादान संज्ञा हो, यथा–अध्ययनात्पराजयते (पढ़नेसे सुस्त होताहै), पढ़ना असह्य है, इससे अध्ययनमें पंचमी हुई । असह्यार्थ न होनेपर शत्रून्पराजयते (शत्रुका तिरस्कार करताहै), यहां सह्य अर्थ होनेसे पंचमी न हुई ॥

---

* चल और अचल भेदसे दो प्रकारका अपादान होताहै। चल यथा–धावतोऽश्वात्पतति (दौड़ते हुए घोड़ेसे गिरताहै)। अचल यथा–वृक्षात्पर्णं पतति (वृक्षसे पत्ता गिरताहै) । परस्परान्मेषावपसरतः (आपसमें मेष टक्करसे हटते हैं), यहां जो हटनाहै उसकी अपेक्षा दूसरेकी अपादान संज्ञा होतीहै ॥

* अरण्ये बिभेति, त्रायते वा, यहां अरण्यसे पञ्चमी न हुई कारण कि, वनमें जो व्याघ्रादि हैं, उनसे भयका और मनुष्यादिसे त्राणका सम्भव है; किन्तु अरण्यसे नहीं इसलिये पञ्चमी न हुई ॥

५९० वारणार्थानामीप्सितः ।१।४।२७॥

प्रवृत्तिविघातो वारणम् । वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्सितोऽर्थोऽपादानं स्यात्। यवेभ्यो गां वारयति । ईप्सितः किम् । यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे ॥

५९०–वारण उसको कहतेहैं कि कुछ काम करते हुएको वहांसे हटादेना, वारणार्थ धातुके प्रयोगमें अत्यन्त इष्ट कारककी अपादान संज्ञा हो । यवेभ्यो गां वारयति (यवभक्षणरूप कार्यसे गौको निवारण करताहै) यहां वारणार्थक धातुके प्रयोगमें ईप्सित यवोंकी अपादान संज्ञा हुई । ईप्सित अर्थ न होनेपर यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे (खेतमें यवरक्षाके निमित्त गौको वारण करताहै) यहां क्षेत्रकी अपादान संज्ञा नहीं होतीहै ॥

५९१ अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति ।१।४।२८॥

व्यवधाने सति यत्कर्तृकस्यात्मनो दर्शनस्याभावमिच्छति तदपादानं स्यात् । मातुर्निलीयते कृष्णः । अन्तर्धौ किम्। चौरान्न दिदृक्षते । इच्छतिग्रहणं किम् । अदर्शनेच्छायां सत्यां सत्यपि दर्शने यथा स्यात् ॥

५९१–अन्तर्द्धि अर्थात् छिपजाने अर्थमें जिसको अपने नहीं दीखनेकी इच्छा करताहै, वह कारक अपादानसंज्ञक हो । मातुर्निलीयते कृष्णः (कृष्ण मातासे दुबकतेहैं), यहां व्यवधान करके माताको अपने नहीं दीखनेकी कृष्णको इच्छा है, इससे मातृ शब्दकी अपादान संज्ञा हुई । व्यवधान न होनेपर अपादान संज्ञा नहीं होतीहै, इसलिये चौरान्न दिदृक्षते, यहां अपादान संज्ञा न हुई । 'इच्छति'ग्रहण इसलिये है कि, देखनेकी इच्छा न हो और सामनेसे दिखाता हो तो उसकी अपादान संज्ञा हो, यथा–देवदत्तात् यज्ञदत्तो निलीयते ॥

५९२ आख्यातोपयोगे ।१। ४।२९॥

नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ता प्राक्संज्ञः स्यात्। उपाध्यायादधीते ।उपयोगे किम् । नटस्य गाथां शृणोति ॥

५९२–उपयोग अर्थात् नियमपूर्वक विद्याग्रहण करनेमें पढ़ानेवालेकी अपादान संज्ञा हो, यथा–उपाध्यायादधीते (उपाध्यायसे पढ़ताहै) यहां उपाध्यायसे नियमपूर्वक विद्याग्रहण है, इसलिये उपाध्यायसे अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी हुई । उपयोग न होनेपर नटस्य गाथां शृणोति, यहां नटकी अपादान न संज्ञा न हुई ॥

५९३ जनिकर्तुः प्रकृतिः ।१।४।३०॥

जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात् । ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते ॥

५९३–जन् धातुके कर्ताका हेतु अपादानसंज्ञक हो । ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते (ब्रह्मासे प्रजा होतीहैं), यहां

प्रजाओंका ब्रह्मा हेतु है, इससे ब्रह्माकी अपादान संज्ञा होकर पंचमी हुई ॥

५९४ भुवः प्रभवः । १ । ४ । ३१ ॥

भवनं भूः । भूकर्तुः प्रभवस्तथा । हिमवतो गङ्गा प्रभवति । तत्र प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च ॥*॥ प्रासादात्प्रेक्षते आसनात्प्रेक्षते । प्रासादमारुह्य आसने उपविश्य प्रेक्षत इत्यर्थः । श्वशुराज्जिह्रेति । श्वशुरं वीक्ष्येत्यर्थः । गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम् । कस्मात्त्वं नद्याः ॥ यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी । तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ । कालात्सप्तमी च वक्तव्या ॥ * ॥ वनाद् ग्रामो योजनं योजने वा । कार्तिक्या आग्रहायणी मासे ॥

५९४-प्रभव उसको कहतेहैं, जहांसे कोई पदार्थ उत्पन्न हुआ हो, जो भू धातुके कर्ताका प्रभव कारक है, वह अपादानसंज्ञक हो । 'भूः' यह भू धातुसे क्विप् होकर बनाहै हिमवतो गंगा प्रभवति (हिमालयसे गंगा प्रगट हुई है) यहां प्रभव हिमवत्की अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी हुई ।

(पंचमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम् १४७४ वा०) (अधिकरणे च १४७५वा०) जहां ल्यबन्त क्रियाका लोप हुआ हो, वहां कर्ममें पंचमी हो, जहां ल्यबन्त क्रियाका लोप हुआ हो उसके अधिकरणमें पंचमी हो, यथा-प्रासादात्प्रेक्षते, आसनात्प्रेक्षते, यहां 'प्रासादमारुह्य' (महलपर चढकर देखताहै), ' आसने उपविश्य ' (आसनपर बैठकर देखताहै), यहां ल्यबन्त क्रिया जो 'आरुह्य' और 'उपविश्य' उसका लोप हुआ तो प्रासाद इस कर्ममें और आसन इस अधिकरणमें पंचमी हुई । इसी प्रकार श्वशुराज्जिह्रेति (श्वशुरको देखकर लज्जित होताहै), यहां भी ल्यबन्त क्रियाका लोप होनेसे श्वशुरमें पञ्चमी हुई ॥

गम्यमान क्रिया भी कारकविभक्तिका निमित्त होतीहै, यह पहले कहदियाहै, भाष्यमें तो इस अर्थमें ' प्रश्नाख्यानयोश्च १४७८वा०' यह वार्तिक है, प्रश्न और आख्यानवाची शब्दोंसे पंचमी हो, यथा-कस्मात्त्वम्-(तुम कहांसे आतेहो), नद्याः-(नदीसे आताहूं) इस स्थानमें गम्यमान क्रिया (आगतः) 'कस्मात्' और 'नद्याः' इन दो पदोंको कारकविभक्तिका निमित्त होनेसे उसके उत्तर पंचमी हुई ।

(यतश्चेति० १४७७ वा०) जहांसे मार्ग और कालका परिमाण कियाजाय वहां पंचमी हो । (तद्युक्तादिति १४७९ वा०) जो कालके निर्माणमें पंचमी विभक्ति की है उससे युक्त मार्गवाची शब्दसे प्रथमा और सप्तमी हों । (कालात्स० १४१८ वा०) उससे युक्त कालवाची शब्दसे केवल सप्तमी हो । वनाद् ग्रामो योजनं योजने वा (वनसे ग्राम योजनभर है), यहां अध्वका परिमाण वनसे हुआ इस कारण वन शब्दसे पंचमी होतीहै, तथा मार्गवाची योजन शब्दसे प्रथमा और सप्तमी हुई । कार्तिक्या आग्रहायणी मासे, यहां कालका परिमाण है, इस कारण 'कार्तिक्याः'में पंचमी और कालवाची मास शब्दसे सप्तमी होतीहै ॥

५९५ अन्यारादितरर्तेदिक्छब्दाऽञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते । २ । ३ । २९ ॥

एतैर्योगे पञ्चमी स्यात् । अन्य इत्यर्थग्रहणम् । इतरग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् । आराद्वनात् । ऋते कृष्णात् । पूर्वो ग्रामात् । दिशि दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः । तेन संप्रति देशकालवृत्तिना योगेऽपि भवति । चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः । अवयववाचियोगे तु न । तस्य परमाम्रेडितमिति निर्देशात् । पूर्वं कायस्य । अञ्चूत्तरपदस्य तु दिक्छब्दत्वेऽपि षष्ठ्यतसर्थेति षष्ठीं बाधितुं पृथग् ग्रहणम् । प्राक् प्रत्यग्वा ग्रामात् । आच् । दक्षिणा ग्रामात् । आहि । दक्षिणाहि ग्रामात् । अपादाने पञ्चमीतिसूत्रे कार्तिक्याः प्रभृतीतिभाष्यप्रयोगात्प्रभृतियोगेऽपि पञ्चमी । भवात्प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः । अपपरिबहिरिति समासविधानाज्ज्ञापकाद्बहिर्योगे पञ्चमी । ग्रामाद्बहिः ॥

५९५-अन्यार्थ, आरात्, इतर, ऋते, दिशावाचक शब्द और अञ्चूत्तरपद, आच् और आहिप्रत्ययान्त शब्दोंके योगमें पंचमी हो । अन्य शब्दका अर्थग्रहण करना चाहिये । इतरग्रहण प्रपंचके निमित्त है । अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्, यहां अन्य शब्द, अन्यार्थक भिन्न शब्द, तथा इतर शब्दके योगमें 'कृष्णात्' यहां पंचमी हुईहै । आरात् वनात्, ऋते कृष्णात्, पूर्वो ग्रामात्, इनमें आरात्के योगमें ' वनात् ', ऋतेके योगमें ' कृष्णात् ', पूर्वके योगमें 'ग्रामात्' यहां पंचमी

१ अन्यार्थके ग्रहणमें इतर शब्द भी आजाता फिर पृथक् ग्रहण प्रपञ्चार्थ है ऐसा टीकामें कहचुका हूँ । शंका-' इतरस्त्वन्यनीचयोः' (अमर) इतर शब्द अन्यमें और नीचमें आताहै, तो नीचार्थ क्यों नहीं मानाजाता ? समाधान-यदि नीचार्थक इतर शब्दका ग्रहण होता तो इतर शब्दका ग्रहण करना ही व्यर्थ था कारण कि, नीच अर्थवाले इतर शब्दके प्रयोगमें तो "पंचमी विभक्ते २।३।४२/६३९" इससे पंचमी हो ही जाती, इस कारण अन्यार्थ ही इतर शब्द जानना ॥

२ प्रश्न-(घटः पटो न) नञ्का भी भेद अर्थ होताहै, इस कारण उक्त उदाहरणमें नञ्के योगमें पंचमी प्राप्त है सो क्यों न हुई ? उत्तर-यद्यपि नञ् शब्दका भेद अर्थ है तथापि नञ्को द्योतक अर्थात् वाचक न होनेसे उसके योगमें पंचमी नहीं होती कारण कि, इस सूत्रका, अन्य शब्दका जो अर्थ उसका वाचक जो शब्द उसके योगमें पञ्चमी हो ऐसा अर्थ है ॥

३ प्रश्न-यदि ऋते शब्दके योगमें पंचमी होतीहै, तो 'फलन्ति पुरुषाराधनमृते' यहां 'ऋते' के योगमें पुरुषाराधनम्, यहां द्वितीया कैसे हुई ? उत्तर-इसमें हरदत्तका तो यह मत है कि, यह प्रमाद है, दूसरे वैयाकरण कहतेहैं कि, " ततोऽन्यत्रापि दृश्यते " इस कारिकाके प्रमाणसे द्वितीया होसकतीहै, इसीसे इसमें चान्द्र व्याकरणका "ऋते द्वितीया च" (ऋतेके योगमें द्वितीया और पंचमी होतीहै) यह सूत्र अनुकूल पडताहै ॥

हुईहै। दिक्भागमें दृष्ट शब्दको भी दिक्शब्द कहतेहैं, इस कारण देशकालवृत्तिके योगमें भी पंचमी विभक्ति होगी, यथा–चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः (चैत्रसे फाल्गुन पूर्व है), यहां पूर्व शब्द कालवाची है, उसके योगमें 'चैत्रात्' यहां पंचमी हुईहै। अवयववाचक शब्दके योगमें "तस्य परमाम्रेडितम् $\frac{८।१।२}{८३}$" इस सूत्रमें षष्ठीनिर्देशके कारण 'पूर्वं कायस्य' इस स्थलमें पंचमी न हुई। अञ्चूत्तरपदको दिक्शब्दत्व होनेपर भी "षष्ठ्यतसर्थ० $\frac{२।३।३०}{६०२}$" इस सूत्रसे प्राप्त षष्ठीके बाधके निमित्त पृथक् ग्रहण कियाहै, यथा–प्राक् प्रत्यग्वा ग्रामात्, यहां प्राङ् और प्रत्यङ् अञ्चूत्तर, प्र और प्रति उपसर्गसे बनतेहैं, इनके योगसे 'ग्रामात्' यहां पंचमी हुई। आच्के योगमें यथा–दक्षिणा ग्रामात्, यहां दक्षिणाके अन्तमें आच् है, इससे 'ग्रामात्' यहां पंचमी हुई। आहिके योगमें दक्षिणाहि ग्रामात्, यहां 'ग्रामात्'में पञ्चमी हुई। "अपादाने पञ्चमी $\frac{२।३।२८}{५८७}$" इस सूत्रपर "कार्तिक्याः प्रभृति"–इत्यादि भाष्यप्रयोगसे प्रभृति शब्दके योगमें भी पञ्चमी हो ऐसा ज्ञापन होनेके कारण प्रभृतिके योगसे 'कार्तिक्याः' इसमें पंचमी हुईहै, इससे भवात्प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः, इस स्थानमें प्रभृतिके योगमें 'भवात्' यहां पंचमी हुई, यह भाष्यसे जाना जाताहै।

(अपपरिबहि० $\frac{२।१।१२}{६६६}$) पाणिनिने इस ($\frac{२।१।१२}{६६६}$) सूत्रसे बहिः शब्दके साथ पंचम्यन्तका समास कियाहै, इससे जाना जाताहै कि, 'बहिः'के योगमें पंचमी विभक्ति होती है, अन्यथा आचार्य ऐसा समासविधायक सूत्र नहीं बनाते,इससे 'बहिः'के योगमें पंचमी होतीहै, यथा–ग्रामाद्बहिः, यहां ग्रामसे पंचमी 'बहिः'के योगमें हुई है ॥

५९६ अपपरी वर्जने। १।४।८८॥

एतौ वर्जने कर्मप्रवचनीयौ स्तः ॥

५९६–वर्जन अर्थमें अप और परि शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो ॥

५९७ आङ् मर्यादावचने। १।४।८९॥

आङ् मर्यादायामुक्तसंज्ञः स्यात्। वचनग्रहणादभिविधावपि ॥

५९७–मर्यादा अर्थमें आङ् शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। इस सूत्रमें वचनग्रहणसे अभिविधि अर्थमें भी आङ् अव्ययकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो, कहनेका तात्पर्य यह है कि, यदि मर्यादामात्र अर्थमें उक्त संज्ञा होती, तो "आङ् मर्यादायाम् ५९८" ऐसे ही सूत्र करते, फिर वचनग्रहण करनेका क्या प्रयोजन था, इससे मालुम होताहै कि, मर्यादासे अन्य अर्थमें भी हो ॥

१ अर्थात् पूर्व शब्द पहले दिशाका वाची देखाहै कालवाची है तो भी पंचमी हुई ॥

२ प्रश्न–सध्यङ् देवदत्तेन, यहां अञ्चूत्तरपद 'सध्यङ्' शब्दके योगमें पञ्चमी क्यों नहीं ? उत्तर–यद्यपि 'सध्यङ्' शब्द अञ्चूत्तरपद है, तो भी सूत्रमें दिक् शब्दके साथ अञ्चूत्तरपदका ग्रहण कियाहै, इस कारण दिशावाची अञ्चूत्तरपद प्राक्, प्रत्यक् इत्यादि शब्दोंहीका ग्रहण होताहै, इस कारण 'सध्यङ्' शब्दको दिग्वाचित्व न होनेसे उसके योगमें पंचमी न होगी ॥

५९८ पञ्चम्यपाङ्परिभिः। २।३।१०॥

एतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी स्यात्। अप हरेः परि हरेः संसारः। परिरत्र वर्जने। लक्षणादौ तु हरिं परि। आ मुक्तेः संसारः। आ सकलाद्ब्रह्म ॥

५९८–कर्मप्रवचनीय अप, आङ् और परि इनके योगमें पंचमी हो, यथा–अप हरेः,परि हरेर्वा संसारः,यहां वर्जन अर्थवाले अप और परिके योगमें 'हरेः'यहां पंचमी हुई है। लक्षणादि होनेपर पंचमी न होगी, यथा–हरिं परि। मर्यादा अर्थवाले आङ्के योगमें आ मुक्तेः संसारः (मुक्तिपर्यन्त संसार है), आ सकलाद्ब्रह्म, इसमें अभिविधि अर्थ होनेसे 'सकलात्' यहां पंचमी हुई है ॥

५९९ प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः। १।४।९२॥

एतयोरर्थयोः प्रतिरुक्तसंज्ञः स्यात् ॥

५९९–प्रतिनिधि (किसीके स्थानमें वैसे ही गुणोंवालेका स्थापन करना) और प्रतिदान (एक वस्तुके बदले दूसरी वस्तु देना) में वर्तमान प्रति अव्ययकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो ॥

६०० प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्। २।३।११॥

अत्र कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी स्यात्। प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् ॥

६००–जिससे प्रतिनिधि और प्रतिदान हो उससे कर्मप्रवचनीयके योगमें पञ्चमी होतीहै। प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति (कृष्णके प्रद्युम्न प्रतिनिधि हैं) यहां प्रतिनिधि अर्थ होनेपर कर्मप्रवचनीय प्रतिके योगमें 'कृष्णात्' में पंचमी हुई। प्रतिदान अर्थ यथा–तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् (तिलोंसे उडदोंको देताहै), यहां प्रतिदान अर्थमें प्रतिके योगमें 'तिलेभ्यः' यहां पंचमी हुई ॥

६०१ अकर्तर्यृणे पञ्चमी। २।३।२५॥

कर्तृवर्जितं यदृणं हेतुभूतं ततः पञ्चमी स्यात् ॥ शताद्बद्धः। अकर्तरि किम्। शतेन बन्धितः ॥

६०१–कर्तृसंज्ञकसे भिन्न जो हेतुभूत ऋण उससे पञ्चमी विभक्ति हो। शताद्बद्धः (सौके हेतु बंधा है), यहां शत जो ऋण है, वह कर्ता नहीं, किन्तु हेतु है, इससे 'शतात्'में पंचमी हुई। कर्तृसंज्ञक होनेपर यथा–शतेन बंधितः,यहां पंचमी न हुई ॥

६०२ विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्। २।३।२६॥

गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे पञ्चमी वा स्यात्। जाड्याज्जाड्येन वा बद्धः। गुणे किम्। धनेन

कुलम् । अस्त्रियां किम् । बुद्ध्या मुक्तः । विभाषेति योगविभागादगुणे स्त्रियां च क्वचित्। धूमादग्निमान्। नास्ति घटोऽनुपलब्धेः ॥

६०२-गुणवाचक हेतुभूत पुँल्लिङ्ग नपुंसक लिङ्गमें वर्तमान शब्दसे विकल्प करके पंचमी हो । पक्षमें तृतीया होगी । जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः (जडतासे बंधाहुआ),यह जाड्यशब्द गुणवाचक नपुंसक है,बंधनमें हेतुभूत भी है,इससे पंचमी तथा तृतीया होताहै । गुण न होनेपर, यथा-धनेन कुलम्, यहां पंचमी न हुई । स्त्रीलिङ्ग होनेपर बुद्ध्या मुक्तः, यहां बुद्धिसे पंचमी न हुई । सूत्रमें 'विभाषा' इस योगविभागके कारण अगुण और स्त्रीलिङ्गमें भी कहीं कहीं होतीहै, यथा-धूमादग्निमान्, नास्ति घटोनुपलब्धेः ॥

६०३ पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् । २ । ३ । ३२ ॥

एभिर्योगे तृतीया स्यात्पञ्चमीद्वितीये च । अन्यतरस्यां ग्रहणं समुच्चयार्थं पञ्चमीद्वितीये चाऽनुवर्तेते । पृथग् रामेण । रामात् । रामं वा। एवं विना नाना ॥

६०३-पृथक्, विना और नाना-आदि शब्दोंके योगमें द्वितीया, तृतीया और पंचमी हो । 'अन्यतरस्याम्' इस पदका ग्रहण समुच्चयार्थ है । पंचमी और द्वितीयाकी अनुवृत्ति आतीहै । पृथक् रामेण, रामात्, रामं वा । विना और नानाके योगमें भी इसी प्रकार जानना ॥

६०४ करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य ।२।३ । ३३ ॥

एभ्योऽद्रव्यवचनेभ्यः करणे तृतीयापञ्चम्यौ स्तः।स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्तः । द्रव्ये तु स्तोकेन विषेण हतः ॥

६०४-अद्रव्यवाची स्तोक, अल्प, कृच्छ्र और कतिपय शब्दोंके उत्तर करणमें तृतीया और पंचमी हो, यथा-स्तोकेन स्तोकाद् वा मुक्तः । द्रव्य होनेपर, यथा-स्तोकेन विषेण हतः (थोडे ही विषसे मरगया), यहां पंचमी आदि न हुई ॥

६०५ दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च । २ । ३ । ३५ ॥

[illegible] द्वितीया स्याच्चात्पञ्चमीतृतीये । प्रातिपदिकार्थमात्रे विधिरयम् । ग्रामस्य दूरं दूरात् दूरेण वा । अन्तिकम् अन्तिकात् अन्तिकेन वा । असत्त्ववचनस्येत्यनुवृत्तेर्नेह । दूरः पन्थाः ॥

६०५-दूर और अन्तिकार्थ (धोरे) शब्दके उत्तर [illegible] होती है, चकारसे पंचमी और तृतीया भी हों । प्रातिपदिकार्थमात्रमें यह विधि है,यथा-ग्रामस्य दूरं, दूरात्,दूरेण वा। अन्तिकम्, अन्तिकात्,अन्तिकेन वा । दूरः पन्थाः,इस स्थलमें "-असत्त्ववचनस्य ६०४" इस सूत्रसे असत्त्ववचनकी अनुवृत्ति होनेसे पंचमी, तृतीया और द्वितीया कुछ भी न हुई, 'पन्थाः' रूप द्रव्यवाची है ॥

॥ इति पञ्चमी ॥

६०६ षष्ठी शेषे । २ । ३ । ५० ॥

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी स्यात् । राज्ञः पुरुषः । कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव । सतां गतम् । सर्पिषो जानीते । मातुः स्मरति । एधो दकस्योपस्कुरुते । भजे शंभोश्चरणयोः । फलानां तृप्तः ॥

६०६-प्रातिपदिकार्थ और कारकसे व्यतिरिक्त जो स्वस्वामिभावको आदिलेकर सम्बन्ध है, वह शेष कहाताहै, उस शेषमें षष्ठी विभक्ति हो, यथा-राज्ञः पुरुषः (राजाका पुरुष), इस स्थानमें 'राज्ञः' यहां स्वस्वरूप सम्बन्धमें षष्ठी हुई । कर्मादि कारककी भी सम्बन्धविवक्षामें षष्ठी हो, अर्थात् जब कर्म्मादिकी विवक्षा न हो, तो शेष मानकर षष्ठी हो, यथा-सतां गतम् (सत्सम्बन्धी गमन) यहां कर्मसम्बन्धकी विवक्षामें षष्ठी हुई, सर्पिषो जानीते (सर्पिःसम्बन्धी ज्ञान),मातुः स्मरति, एधोदकस्योपस्कुरुते, भजे शम्भोश्चरणयोः, फलानां तृप्तः, यहां क्रमसे कर्मादि कारकोंकी अविवक्षामें शेष-षष्ठी होतीहै * ॥

६०७ षष्ठी हेतुप्रयोगे । २ । ३ । २६ ॥

हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी स्यात् । अन्नस्य हेतोर्वसति ॥

६०७-हेतुवाचक शब्दके प्रयोगमें हेतु द्योत्य होनेपर षष्ठी विभक्ति हो । अन्नस्य हेतोः वसति (अन्नके निमित्त वसताहै), यहां हेतु शब्दका प्रयोग है तथा हेतु द्योत्य है, इससे 'अन्नस्य' यहां षष्ठी हुई है ॥

---

* "स्वस्वामिजन्यजनकावयवाङ्गी तृतीयकः ।
स्थान्यादेशश्च विज्ञेयः सम्बन्धोसौ चतुर्विधः ॥"

स्वस्वामिभाव सम्बन्ध १, जन्यजनकभाव सम्बन्ध २, अवयवावयविभाव सम्बन्ध ३, स्थान्यादेशभाव सम्बन्ध ४, यह चार प्रकारके सम्बन्ध हैं और भी अनेक हैं, पर यह मुख्य हैं, इनके उदाहरण, यथा-

"साधोर्धनं पितुः पुत्रः पशोः पादो ब्रुवो वचिः ।
उदाहृतश्चतुर्धा यः कविभिः परिशीलितः॥ "

स्वस्वामिभाव सम्बन्ध जैसे-साधोर्धनम् (साधुका धन), यहां धन और साधुका स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है । पितुः पुत्रः (पिताका पुत्र), यहां पुत्र जन्य, पिता जनक है, यहां जन्यजनकभाव सम्बन्ध है । अवयवावयविभाव सम्बन्ध यथा-पशोः पादः (पशुका चरण) यहां पशुका पैर अवयव और पशु अवयवी है । स्थान्यादेशभाव सम्बन्ध जैसे-'ब्रू' के स्थानमें 'वचि' आदेश होताहै, 'ब्रू' स्थानी और 'वचि' आदेश होताहै । चार सम्बन्धसे अन्य स्थानोंमें भी षष्ठी होतीहै । कर्ताकी इच्छासे छः कारक होतेहैं, यथा-स्थाल्या पच्यते, यह प्रयोग 'स्थाल्यां पच्यते' के स्थानमें लिखाहै, अर्थात विवक्षासे अधिकरणकी जगह करण करदियाहै ॥

६०८ सर्वनाम्नस्तृतीया च । २ । ३ । २७ ॥

सर्वनाम्नो हेतुशब्दस्य च प्रयोगे हेतौ द्योत्ये तृतीया स्यात् षष्ठी च । केन हेतुना वसति । कस्य हेतोः ॥ निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम् ॥ * ॥ किं निमित्तं वसति । केन निमित्तेन । कस्मै निमित्तायेत्यादि । एवं किं कारणं को हेतुः किं प्रयोजनमित्यादि । पायग्रहणादसर्वनाम्नः प्रथमाद्वितीये न स्तः । ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः । ज्ञानाय निमित्तायेत्यादि ॥

६०८–हेतु शब्दके प्रयोगमें हेतु द्योत्य होनेपर सर्वनाम शब्दसे तृतीया और षष्ठी विभक्ति हो । केन हेतुना, कस्य हेतोर्वा वसति, इस स्थानमें सर्वनाम 'किम्' शब्दके परे हेतु शब्द रहते 'केन' में तृतीया और 'कस्य' यहां षष्ठी हुईहै ।

(निमित्त० १४७३ वा०) निमित्तके पर्याय जो कारण हेतु–इत्यादि शब्द हैं, उनके प्रयोगमें हेतु द्योत्य होय तो, प्रायः सब विभक्ति होतीहैं । यथा–किं निमित्तं वसति, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय–इत्यादि । इसी प्रकार किं कारणं वसति–इत्यादि, को हेतुः, किं प्रयोजनम्–इत्यादि । प्रायः शब्दग्रहणके कारण असर्वनामके उत्तर प्रथमा और द्वितीया न होगी, यथा–ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः, ज्ञानाय निमित्ताय–इत्यादि ॥

६०९ षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन । २ । ३ । ३० ॥

एतद्योगे षष्ठी स्यात् । दिक्शब्देति पञ्चम्या अपवादः । ग्रामस्य दक्षिणतः । पुरः पुरस्तात् । उपरि उपरिष्टात् ॥

६०९–अतसुच् प्रत्ययके अर्थमें जो प्रत्यय होतेहैं, तदन्तके योगमें षष्ठी हो । यह सूत्र "दिक्शब्द० $\frac{२।३।२९}{५९५}$" से प्राप्त पंचमीका अपवाद है । ग्रामस्य दक्षिणतः, पुरः, पुरस्तात्, उपरि, उपरिष्टात्, यहां अतसुच्के अर्थमें होनेवाले जो अस्ताति–आदि प्रत्यय तदन्तके योगमें षष्ठी हुई है ॥

६१० एनपा द्वितीया । २ । ३ । ३१ ॥

एनबन्तेन योगे द्वितीया स्यात् । एनपेति योगविभागात् षष्ठ्यपि । दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा । एवमुत्तरेण ॥

६१०–एनप् प्रत्यय अन्तवाले शब्दके योगमें द्वितीया हो । इस सूत्रमें "एनपा" इस योगविभागके कारण षष्ठी भी हो । दक्षिणेन ग्रामं, ग्रामस्य वा, यहां 'दक्षिणेन' यह एनप् प्रत्ययान्त है, इस कारण द्वितीया और षष्ठी होकर 'ग्रामस्य' 'ग्रामम्' बनेहैं । "एनबन्यतरस्याम्" इससे एनप् प्रत्यय होताहै, इसी प्रकार 'उत्तरेण'–इत्यादि * ॥

६११ दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् । २ । ३ । ३४ ॥

एतैर्योगे षष्ठी स्यात्पञ्चमी च । दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद्वा ॥

६११–दूर और समीप अर्थवाले शब्दोंके योगमें पंचमी और षष्ठी हो । यथा–दूरं, निकटं ग्रामस्य, ग्रामाद्वा, यहां दूर और निकट शब्दोंके योगमें 'ग्रामस्य' यहां षष्ठी और 'ग्रामात्' यहां पंचमी हुई है ॥

६१२ ज्ञोऽविदर्थस्य करणे ॥ २ । ३ । ५१ ॥

जानातेरज्ञानार्थस्य करणे शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी स्यात् । सर्पिषो ज्ञानम् ॥

६१२–अज्ञानार्थक ज्ञा धातुके प्रयोगमें शेषविवक्षा होय तो उक्त धातुके करण कारकमें षष्ठी हो । सर्पिषो ज्ञानम् (अभिकरणीभूत घृतके सम्बन्धसे प्रज्वलित होताहै), यहां ज्ञा धातुका ज्ञान अर्थ नहीं है और ज्ञा धातुका प्रयोग है, इस कारण सर्पिःरूप करणमें शेषविवक्षा करनेपर षष्ठी विभक्ति होतीहै ॥

६१३ अधीगर्थदयेशां कर्मणि । २ । ३ । ५२ ॥

एषां कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात् । मातुः स्मरणम् । सर्पिषो दयनमीशनं वा ॥

६१३–स्मरण अर्थवाला धातु तथा दय, ईश इनके कर्ममें शेषविवक्षामें षष्ठी विभक्ति हो, मातुः स्मरणम्, यहां स्मरण अर्थवाला स्मृ धातुका कर्म माता है, उसमें शेषविवक्षामें षष्ठी होतीहै । दय, ईशके कर्ममें यथा–सर्पिषो दयनम्, ईशनं वा, यहां दय, ईश धातुका कर्म जो सर्पि उसमें शेषविवक्षामें षष्ठी होतीहै * ॥

---

१ (दक्षिणतः) यह "दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् $\frac{५।३।२८}{१९७८}$" इससे 'दक्षिणस्याम्' इस सप्तम्यन्त दक्षिणा शब्दसे अतसुच् (अतस्) प्रत्यय और "यस्येति च" से आकारका लोप होकर बनताहै ॥

२ (पुरः) यह "पूर्वाधरावराणामसिपुरधवश्चैषाम् $\frac{५।३।३९}{१९७५}$" इससे 'पूर्वस्याम्' इस सप्तम्यन्त पूर्वा शब्दसे असि प्रत्यय और पूर्वाको पुर आदेश होकर बनताहै ॥

३ (पुरस्तात्) यह "दिक्शब्देभ्यः० $\frac{५।३।२७}{१९१४}$" इससे सप्तम्यन्त पूर्वा शब्दसे अस्ताति (अस्तात्) प्रत्यय होकर "अस्ताति च $\frac{५।३।४०}{१९७६}$" इससे पूर्वाको पुर आदेश होनेसे बनताहै ॥

४ (उपरि, उपरिष्टात्) यहां "उपर्युपरिष्टात् $\frac{५।३।३१}{१९८४}$" इससे 'ऊर्ध्वे' इस सप्तम्यन्त ऊर्ध्व शब्दसे रिल् (रि) और रिष्टातिल् (रिष्टाति) प्रत्यय तथा ऊर्ध्व शब्दको उप आदेश हुआहै ॥

* 'तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयम्' । यहां 'उत्तरेण' इस एनप्प्रत्ययान्तके योगमें पंचमी कैसे ? (उत्तर)–'दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन' यहां तृतीयान्त तोरण शब्दका 'उत्तरेण' के साथ समानाधिकरणता है, इससे एनबन्त उत्तर शब्द नहीं, किन्तु [illegible] है ॥

* इगर्थ कहनेसे ही स्मरणार्थक धातुका ग्रहण होजाता, तो अधिग्रहणका प्रयोजन क्या ? उत्तर–यद्यपि इगर्थ इतनाही [illegible]

६१४ कृञः प्रतियत्ने ।२।३।५३॥

कृञः कर्मणि शेषे षष्ठी गुणाधाने । एधो दकस्योपस्करणम् ॥

६१४–जो प्रतियत्न (गुणाधान) अर्थमें वर्तमान कृञ् धातु हो तो उसके शेषकर्ममें षष्ठी विभक्ति हो । एधो दकस्योपस्करणम् (इंधन जलका गुण लेताहै) यहां गुणाधान अर्थमें कृञ् धातुसे सुट् होकर ' उपस्कुरुते ' बनताहै, उसका कर्म ' दक ' है, शेषविवक्षामें षष्ठी होतीहै ॥

६१५ रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः । २ । ३ । ५४ ॥

भावकर्तृकाणां ज्वरिवर्जितानां रुजार्थानां कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात् । चौरस्य रोगस्य रुजा ॥ अज्वरिसंताप्योरिति वाच्यम् ॥ * ॥ रोगस्य चौरज्वरः । चौरसंतापो वा । रोगकर्तृकचौरसम्बन्धि ज्वरादिकमित्यर्थः ॥

६१५–जिन धातुओंके कर्तामें धातुका अर्थ रहताहै, ऐसे रुजार्थक धातुओंमेंसे ज्वर धातुको छोडकर उनके शेषकर्ममें षष्ठी हो । यहां भाववचन शब्दसे कर्तृस्थभावक रुजार्थ धातु समझे जातेहैं । चौरस्य रोगस्य रुजा, यहां भावकर्तृक ज्वर धातुवर्जित रुज्के कर्ममें शेषविवक्षामें षष्ठी हुई ।

(अज्वरि० १५०७ वा०) जहां ज्वर धातुका निषेध कियाहै, वहां ज्वर और सम् पूर्वक तप् धातुका निषेध कहना । रोगस्य चौरज्वरः, चौरसन्तापो वा, यहां भावकर्तृक ज्वरधातु तथा सम्पूर्वक तप् धातुके कर्ममें शेषविवक्षामें षष्ठी प्राप्त थी, सो इससे न हुई ॥

६१६ आशिषि नाथः । २ ।३ । ५५ ॥

आशीरर्थस्य नाथतेः शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात् । सर्पिषो नाथनम् । आशिषीति किम् । माणवकनाथनम् । तत्संबन्धिनी याच्ञेत्यर्थः॥

६१६–आशीर्वाद अर्थवाले नाथ् धातुके कर्ममें शेषविवक्षामें षष्ठी हो । सर्पिषो नाथनम् (घृतसम्बन्धी आशीर्वाद), यहां आशीर्वादार्थक नाथ् धातुके सर्पिरूप कर्ममें शेषविवक्षामें षष्ठी हुईहै । आशीः अर्थ न होनेपर, यथा–माणवकनाथनम् अर्थात् तत्सम्बन्धी याचना, यहां षष्ठी न हुई॥

६१७ जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् । २ । ३ । ५६ ॥

हिंसार्थानामेषां शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात् । चौरस्योज्जासनम् । निप्रौ संहतौ विपर्यस्तौ व्यस्तौ वा । चौरस्य निप्रहणनम् । प्रणिहननम् । निहननम् । प्रहणनं वा । नट अवस्यन्दने चुरादिः । चौरस्योन्नाटनम् । चौरस्य क्राथनम् । वृषलस्य पेषणम् । हिंसायां किम् । धानापेषणम् ॥

३१७–हिंसा अर्थवाला जास् धातु और नि-प्र-पूर्वक हन् धातु तथा नाट,क्राथ् और पिष् धातु इनके कर्ममें शेष विवक्षामें षष्ठी हो, यथा–चौरस्योजासनम्, यहां 'उज्जासनम्' उत् पूर्वक जास् धातुका चौर कर्म है, चोरका मारना हिंसा है, इस कारण शेष विवक्षामें कर्ममें षष्ठी हुई । नि और प्र यह दो उपसर्ग विपर्यस्त–उलटे पुलटे और व्यस्त–एक एक हों तो भी कर्ममें षष्ठी हो, यथा–चौरस्य निप्रहणनम्, इस स्थानमें मिलित तथा प्रणिहननम्, इस स्थानमें विपर्यस्त हुए हैं । निहननम्, प्रहणनम्, इन स्थानोंमें व्यस्त हुए हैं । नट् धातु चुरादिगणीय है, उसका अवस्यन्दन अर्थ है, यथा–चौरस्योन्नाटनम् । चौरस्य क्राथनम्, वृषलस्य पेषणम्, यहां क्राथ् तथा पिष् धातुके कर्ममें षष्ठी हुईहै । जहां हिंसा अर्थ न हो, वहां षष्ठी न होगी यथा–धानापेषणम् ॥

६१८ व्यवहृपणोः समर्थयोः।२।३। ५७॥

शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात् । द्यूते क्रयविक्रयव्यवहारे चानयोस्तुल्यार्थता । शतस्य व्यवहरणं पणनं वा । समर्थयोः किम् । शलाकाव्यवहारः। गणनेत्यर्थः । ब्राह्मणपणनं स्तुतिरित्यर्थः ॥

६१८–तुल्यार्थक जो वि और अव उपसर्गपूर्वक हृ और पण् धातु उनके कर्ममें शेष विवक्षामें षष्ठी हो । द्यूत और क्रय विक्रयके व्यवहारमें वि और अवपूर्वक हृ तथा पण् धातुका एकसा अर्थ होताहै। शतस्य व्यवहरणं, पणनं वा(सौका व्यवहार करना वा पण लगाना) यहां शत कर्ममें षष्ठी हुई । समान अर्थ न होनेपर षष्ठी न होगी, यथा–शलाकाव्यवहारः (शलाका गणना), ब्राह्मणपणनम् (ब्राह्मणस्तुति) ॥

६१९ दिवस्तदर्थस्य । २ । ३ । ५८ ॥

द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि षष्ठी स्यात् । शतस्य दीव्यति । तदर्थस्य किम् । ब्राह्मणं दीव्यति स्तौतीत्यर्थः ॥

६१९–द्यूत और क्रयविक्रय व्यवहार अर्थवाले दिव् धातुके कर्ममें षष्ठी हो । शतस्य दीव्यति, यहां दिव् धातुका अर्थ द्यूत खेलना तथा क्रय विक्रय व्यवहार है, इससे उक्त धातुके कर्म शतमें षष्ठी हुई । जिस स्थानमें उक्त अर्थ न हो, वहां षष्ठी न होगी, यथा–ब्राह्मणं दीव्यति; अर्थात् ब्राह्मणकी स्तुति करताहै ॥

६२० विभाषोपसर्गे । २ । ३ । ५९ ॥

पूर्वयोगापवादः । शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति ॥

६२०–उपसर्गपूर्वक द्यूतार्थक तथा क्रयविक्रय व्यवहा-

–स्मरणार्थक धातुका ग्रहण होजाता, तथापि'इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः' इङ् धातु और इक् धातु अधि उपसर्गसे कभी भी व्यभिचारको नहीं प्राप्त होतेहैं, इसके निमित्त अधि उपसर्गका ग्रहण कियाहै ॥

रार्थक दिव् धातुके कर्ममें विकल्प करके षष्ठी हो। पक्षमें द्वितीया होगी। शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति, यहां प्रति उपसर्गपूर्वक दिव् धातुके कर्ममें षष्ठी और पक्षमें द्वितीया दोनों हुई। पूर्व सूत्रसे नित्य षष्ठी प्राप्त थी, उपसर्गयुक्त होनेसे विकल्प होता है। यह पूर्व सूत्रका अपवाद है॥

६२१ प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने। २। ३। ६१॥

देवतासंप्रदानकेऽर्थे वर्तमानयोः प्रेष्यब्रुवोः कर्मणो हविर्विशेषस्य वाचकाच्छब्दात् षष्ठी स्यात्। अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा॥

६२१–देवताके अर्थ दान देनेमें वर्तमान जो प्रेष्य, ब्रू उनके हविर्विशेषके वाचक कर्ममें षष्ठी हो। अग्नये छागस्य हविषो वपायाः मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा (श्रुतिः), यहां अग्नि देवताके अर्थ छागकी वपा और मेदस् रूप हविका दान है, इसकारण प्रेष्य ब्रूके कर्म वपा और मेदस्में षष्ठी हुई *॥

६२२ कृत्वोर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे। २। ३। ६४॥

कृत्वोर्थानां प्रयोगे कालवाचिन्यधिकरणे शेषे षष्ठी स्यात्। पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम्। द्विरह्नो भोजनम्। शेषे किम्। द्विरहन्यध्ययनम्॥

६२२–कृत्वसुच् और उसके समानार्थप्रत्ययान्त प्रातिपदिकोंके प्रयोगमें काल तथा अधिकरणवाचक शब्द हो तो उससे शेषमें षष्ठी विभक्ति हो। पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम्, द्विरह्नो भोजनम्, यहां 'पंचकृत्वः' में "कृत्वसुच्० ५।४।१७ / २०८" और 'द्विः' में कृत्वोर्थक सुच् प्रत्ययका प्रयोग है, इस कारण कालरूप अधिकरण 'अहन्' में षष्ठी हुई "द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ५।४।१८ / २०८६" इससे सुच् हुआ। यह सूत्र सप्तमीका अपवाद है। शेष अर्थ न होनेपर अधिकरणत्वाविवक्षामें 'द्विरहन्यध्ययनम्' यहां सप्तमी ही हुई॥

६२३ कर्तृकर्मणोः कृति। २। ३। ६५॥

तद्योगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी स्यात्। कृष्णस्य कृतिः। जगतः कर्ता कृष्णः॥ गुणकर्मणि वेष्यते॥ * ॥ नेताऽश्वस्य स्रुघ्नं स्रुघ्नस्य वा। कृति किम्। तद्धिते मा भूत्। कृतपूर्वी कटम्॥

६२३–कृत् प्रत्ययके योगमें कर्ता और कर्ममें षष्ठी विभक्ति हो। कृष्णस्य कृतिः, जगतः कर्त्ता कृष्णः, यहां 'कृति' में कृत्-संज्ञक क्तिन् प्रत्यय है और 'कर्त्ता' यहां कृत्संज्ञक तृन् प्रत्यय है, इसकारण 'कृष्णस्य' यहां कर्त्तामें और 'जगतः' यहां कर्ममें षष्ठी हुई॥

(गुणकर्म० ५०४२ वा०) द्विकर्मक धातुओंके गौण कर्ममें विकल्प करके षष्ठी हो। नेताश्वस्य स्रुघ्नं स्रुघ्नस्य वा, यहां 'नेता' यह द्विकर्मक णीञ् (नी) धातुसे कृदन्तमें तृन् प्रत्यय होकर बनताहै, इसके योगमें मुख्य कर्म 'अश्वस्य' में नित्य षष्ठी और गौण (स्रुघ्नं स्रुघ्नस्य)में विकल्प करके होतीहै॥

(कृति किमिति) आशय यह है कि, 'कृति' नहीं कहनेपर कर्तृ और कर्म इन दोनों पदोंसे क्रियाका आक्षेप होगा, क्रिया तो धातुका अर्थ है, धातुसे दो प्रत्यय होते हैं, तिङ् और कृत्, उनमें तिङ्के योगमें "न लोका० २।३।६९ / ६२७" इससे निषेध ही होजायगा, बचगया कृत्, तदन्तके योगमें कर्त्ता और कर्ममें षष्ठी हो, ऐसा अर्थ हो ही जायगा, फिर कृतिग्रहण क्यों किया? उत्तर–'कृतपूर्वी कटम्' (कटरूप कर्मकी अविवक्षा करके कृ धातुसे भावमें क्त प्रत्यय हुआ, फिर 'कृतं पूर्वम् अनेन' इस विग्रहमें "सपूर्वाच्च ५।२।८७ / १८८७" इससे इनि प्रत्यय हुआ, फिर समास होकर प्रातिपदिक संज्ञा होनेसे 'कृतपूर्वी' यह बना। पीछे 'कटम्' यह कर्मकी विवक्षा किया, विवक्षाके अधीन कारक है, यह पहले कहचुका हूं), यहां कटसे षष्ठी होजायगी। यदि कहो कि, 'कृति' ग्रहण करनेपर भी क्यों नहीं होती, कारण कि, कृदन्त तो कृत यह है ही? सो तो नहीं कह सकते, कारण कि, कृतिग्रहणके बलसे ऐसा ज्ञापन हो जायगा कि, जहां कृदन्त शब्दमात्रका प्रयोग है, वहां ही षष्ठी हो, 'कृतपूर्वी' यह तो तद्धितान्त है, इसलिये यहां नहीं होगी॥

६२४ उभयप्राप्तौ कर्मणि। २। ३। ६६॥

उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन् कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी स्यात्। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन॥ स्त्रीप्रत्यययोरकाकारयोर्नायं नियमः॥*॥ भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः॥ शेषे विभाषा॥*॥ स्त्रीप्रत्यय इत्येके। विचित्रा जगतः कृतिर्हरेर्हरिणा वा। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति। शब्दानामनुशासनमाचार्येणाचार्यस्य वा॥

६२४–पूर्व सूत्रसे कृदन्तयुक्त कर्त्ता तथा कर्ममें षष्ठी प्राप्त है, उसका नियम करनेके लिये यह सूत्र है, कृदन्तके योगमें कर्त्ता और कर्म दोनोंमें षष्ठी प्राप्त होनेपर कर्ममें ही षष्ठी हो। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन, यहां कृत्प्रत्ययान्त (दोह) के योगमें गोरूप कर्ममें षष्ठी हुई, अनुक्त कर्त्तामें तृतीया हुई। (१५१२वा०) अक और अकार कृत्प्रत्ययान्त शब्द यदि स्त्रीलिङ्ग होंय तो, केवल कर्ममें ही षष्ठी न हो अर्थात् कर्त्ता कर्म दोनोंमें हो, यथा–भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः, यहां 'भेदिका' यह शब्द कृदन्तमें अक प्रत्यय होकर स्त्रीलिङ्गमें बनताहै (भेदनं भेदिका "पर्यायार्हणोत्पत्तिषु ण्वुच् ३।३।१११ / ३२८८" कोई ऐसा भी कहतेहैं 'धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः' "युवोरनाकौ" स्त्रियां टाप्, "प्रत्ययस्थात्० ७।३।४४ / ४६३" इससे इत्व, 'बिभित्सा' सन्नन्त भिद् धातुसे "हलन्ताच्च १।२।१० / २६१३" इससे कित् होनेसे गुणाभाव "अ प्रत्ययात् ३।३।१०२ / ३२७९" इससे अकार प्रत्यय होनेपर टाप्, इस कारण एक ही समयमें 'रुद्रस्य', 'जगतः' यहां कर्त्ता और कर्ममें षष्ठी होतीहै॥

* यहां प्रेष्यमें दिवादि गणवाला इष् धातु है, दूसरा ब्रू धातु है प्रेष्य ब्रू न होनेपर अग्नये छागस्य हविर्वपां मेदो जुहुधि, यहां प्रपूर्वक इष् नहीं इससे षष्ठी न हुई। हविष्ग्रहण इसलिये है कि, अग्नये गोमयानि प्रेष्य, यहां गोमयानि में षष्ठी न हुई। देवताप्रदानके लिये इसकारण कहा कि, माणवकाय पुरोडाशान् प्रेष्य, यहां देवतादान न होनेसे पुरोडाशसे षष्ठी न हुई॥

(शेष विभाषा १५१३ वा०) स्त्रीप्रत्ययमें वर्त्तमान जो कृत्प्रत्ययान्त शब्द उसके योगमें "उभयप्रा०" इस सूत्रसे शेष कर्त्तामें विकल्प करके षष्ठीका नियम होता है (ऐसा कोई कहतेहैं) यथा–विचित्रा जगतः कृतिर्हरेर्हरिणा वा, यहां स्त्रीलिङ्गमें वर्त्तमान कृत्प्रत्ययान्त कृति शब्दके योगमें कर्त्तामें षष्ठी होतीहै, पक्षमें अनुक्त कर्त्तामें तृतीया हुई । कोई २ अविशेषरूपसे विकल्पकी इच्छा करतेहैं, यथा– शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा, इस स्थानमें 'आचार्यस्य' में षष्ठी हुई, 'आचार्येण' में तृतीया हुई । (यह अप्राप्त विभाषा इस कारण है कि, शेष स्त्रीप्रत्ययके योगमें कर्तृवाची शब्दसे किसी सूत्रसे षष्ठी प्राप्त नहीं प्रत्युत "उभयप्राप्तौ०" इससे कर्मका नियम होनेसे कर्त्ताका निषेध होता है) ॥

६२५ क्तस्य च वर्त्तमाने ।२। ३। ६७ ॥

वर्त्तमानार्थस्य क्तस्य योगे षष्ठी स्यात् । न लोकेतिनिषेधस्याऽपवादः । राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा ॥

६२५–जो वर्त्तमान कालमें क्त प्रत्ययान्त शब्द है, उससे सम्बन्धमें षष्ठी हो, यह सूत्र "नलोका० ६२७" का अपवाद है । राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा, यहां 'मतः' 'बुद्धः' 'पूजितः' में "मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ३।२।१८८/३०८९" इस सूत्रसे क्त प्रत्यय हुआ है, इस कारण इनके योगमें 'राज्ञाम्' यहां षष्ठी हुईहै* ॥

६२६ अधिकरणवाचिनश्च ।२।३।६८ ॥

क्तस्य योगे षष्ठी स्यात् । इदमेषामासितं शयितं गतं भुक्तं वा ॥

६२६–अधिकरणवाची क्त प्रत्ययके योगमें कर्त्तामें षष्ठी हो । इदमेषामासितं गतं भुक्तं वा("क्तोऽधिकरणे च० ३।४।७६/३०८७" इससे अधिकरणमें क्त), यहां 'आसितम्' यह अधिकरणमें क्त प्रत्यय होकर बनताहै, इस कारण इसके योगमें 'एषाम्' यहां षष्ठी हुई ॥

६२७ न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् । २ । ३ । ६९ ॥

एषां प्रयोगे षष्ठी न स्यात् । लादेशाः । कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः । उ । हरिं दिदृक्षुः । अलंकरिष्णुर्वा । उक । दैत्यान् घातुको हरिः ॥ कमेरनिषेधः ॥ * ॥ लक्ष्म्याः कामुको हरिः । अव्ययम् । जगत् सृष्ट्वा । सुखं कर्तुम् । निष्ठा । विष्णुना हता दैत्याः । दैत्यान् हतवान् विष्णुः । खलर्थाः । ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा । तृन्निति प्रत्याहारः शतृशानचाविति तृशब्दादारभ्याऽऽतृनो नकारात् । शानन् । सोमं पवमानः । चानश् । आत्मानं मण्डयमानः । शतृ । वेदमधीयन् । तृन् । कर्ता लोकान् ॥ द्विषः शतुर्वा ॥ * ॥ मुरस्य मुरं वा द्विषन् । सर्वोयं कारकषष्ठ्याः प्रतिषेधः । शेषे षष्ठी तु स्यादेव । ब्राह्मणस्य कुर्वन् । नरकस्य जिष्णुः ॥

६२७–लकारस्थानीय उ; उक्, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ और तृन् इन कृत्प्रत्ययान्त शब्दोंके योगमें कर्ममें षष्ठी विभक्ति न हो । लकारस्थानीय यथा–कुर्वन् कुर्वाणः सृष्टिं हरिः, यहां 'कुर्वन्' यह कृधातुसे परे लट् लकारके स्थानमें शतृ आदेश होकर बनताहै, तथा शानच् (आन) आदेश होकर 'कुर्वाणः' बनताहै ("लटः शतृशानचौ० ३।२।१२४/३१००"), इस कारण इसके योगमें षष्ठी विभक्ति नहीं होती, उ प्रत्ययके योगमें, जैसे–हरिं दिदृक्षुः, यहां सन्नन्त दृश् धातुसे "सनाशंसभिक्ष उः ३।२।१६८/३१४८" इस सूत्रसे उ प्रत्यय होकर 'दिदृक्षुः' बनताहै, इससे इसके योगमें षष्ठी न हुई, ऐसे ही अलंकरिष्णुः (अलंकृञ्० ३।२।१३६/३११८ इससे इष्णुच्), उक् प्रत्यय यथा–दैत्यान् घातुको हरिः, यहां "लषपत० ३।२।१५४/३१३४" इस सूत्रसे उकञ् (उक) प्रत्यय होकर 'घातुकः' इसके योगमें षष्ठी न हुई ।

(कमेर० १५१९ वा०) यदि कमु (कम्) धातुसे उकञ् प्रत्यय हो तो वहां षष्ठीका निषेध नहीं हो, यथा–लक्ष्म्याः कामुकः, यहां कामुक शब्द कम् धातुसे उकञ् होकर बनाहै, इसके योगमें 'लक्ष्म्याः' यहां षष्ठी हुई ।

अव्ययके योगमें यथा–जगत् सृष्ट्वा, यहां सृज् धातुसे क्त्वा प्रत्यय होकर "क्त्वातोसुन्कसुनः १।१।४०/४५०" इस सूत्रसे अव्यय संज्ञा होकर 'सृष्ट्वा' यह बनताहै, इस निषेधके कारण जगत्से षष्ठी नहीं होतीहै, ऐसे ही सुखं कर्तुम् । निष्ठामें जैसे–विष्णुनाहता दैत्याः, दैत्यान् हतवान् विष्णुः, यहां 'हताः' और 'हतवान्' यह दोनों शब्द निष्ठासंज्ञक (१।१।२६/३०१२) क्त और क्तवतु प्रत्ययसे बनतेहैं, इससे इनके योगमें षष्ठी नहीं होतीहै । खलर्थके योगमें जैसे–ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा, यहां "ईषद्दुस्सुषु० ३।३।१२६/३३०५" इससे खल् प्रत्यय होकर 'ईषत्करः' बनताहै, इसके योगमें षष्ठी नहीं होती । "–शतृशानचौ०" इस सूत्रमें तृ यह जो पद है उसको लेकर तृन्के नकार पर्यन्त तृन् प्रत्यय जानना, अर्थात् यह प्रत्याहार है, तब इसमें शानन् और चानश् भी आया । शानन्का उदाहरण जैसे–सोमं पवमानः "पूङ्यजोः शानन् ३।२।१२८/३१०८" इससे शानन् (आन), चानश्का उदाहरण यथा–आत्मानं मण्डयमानः, 'मडि भूषायाम्' इदित् होनेसे नुम् "ताच्छील्यवयोवचन० ३।२।१२९/३१०९" इससे चानश् (आन), शतृमें जैसे 'वेदमधीयन्' इसमें "इङ्धार्योः० ३।२।१३०/३११०" इससे शतृ

* "क्तस्य च वर्त्तमाने नपुंसके भावे उपसंख्यानम्" जो नपुंसक भावमें क्तप्रत्ययान्त है, उसके कर्त्तामें षष्ठी हो, यथा–'नटस्य भुक्तम्' 'भुक्तम्' यह वर्त्तमान कालके भावमें क्तप्रत्ययान्त और नपुंसक है, इस कारण नटस्य यहां कर्त्तामें षष्ठी हुई ॥

(अव्ययप्रतिषेधे तोसुन्कसुनोरप्रतिषेधः १५२१ वा०) जहां अव्ययके योगमें षष्ठीका निषेध है, वहां तोसुन्, कसुन् इन दो अव्ययोंके योगमें निषेध नहीं है, यथा–पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः, क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् इत्यादि, यहां 'सूर्यस्य' और 'क्रूरस्य' में षष्ठी हुई है ॥

(अत्) । तृन् प्रत्ययके योगमें जैसे—कर्त्ता लोकान्, इसमें 'कर्त्ता' तच्छीलादिमें "तृन् ३।२।१३५ / २११५" इससे तृन् प्रत्यय होकर बनताहै, इससे यहां षष्ठी नहीं होती। (द्विष० १५२२वा०) द्विष धातुसे लट् होकर उसके स्थानमें शतृविधान करनेपर विकल्प करके षष्ठी हो, यथा—मुरस्य मुरं वा द्विषन् ॥

यह सम्पूर्ण कारक षष्ठीका ही निषेध करतेहैं इससे शेषमें षष्ठी होगी यथा—ब्राह्मणस्य कुर्वन्, नरकस्य जिष्णुः ॥

६२८ अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः । २ । ३ । ७० ॥

भविष्यत्यकस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थेनश्च योगे षष्ठी न स्यात् । सतः पालकोऽवतरति । व्रजं गामी । शतं दायी ॥

६२८—भविष्यत् अर्थमें विहित जो अक् प्रत्यय और भविष्यत् अर्थमें तथा आधमर्ण्य अर्थमें वर्तमान इन् प्रत्ययके योगमें षष्ठी न हो । यथा—सतः पालकोऽवतरति, यहां अक होकर 'पालकः' बनताहै, इससे षष्ठी न हुई, यहां सत् पुरुषोंका पालनेवाला अवतार लेताहै, इससे विदित होताहै कि, अवतार लिया है तो पालन करैगा, इस प्रकार भविष्य अर्थ है । इन्के योगमें यथा—व्रजं गामी, शतं दायी ॥

६२९ कृत्यानां कर्तरि वा।२।३।७१॥

षष्ठी वा स्यात् । मया मम वा सेव्यो हरिः । कर्तरीति किम् । गेयो माणवकः साम्नाम् । भव्यगेयेति कर्तरि यद्विधानादनभिहितं कर्म । अत्र योगो विभज्यते । कृत्यानाम् । उभयप्राप्ताविति नेति चानुवर्तते । तेन नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन । ततः कर्तरि वा उक्तोर्थः ॥

६२९—कृत्यप्रत्ययान्तके कर्त्तामें विकल्प करके षष्ठी हो । पक्षमें अनुक्त कर्त्तामें तृतीया होगी, मया मम वा सेव्यो हरिः, इसमें 'षेवृ—सेवायाम्' से "ऋहलोर्ण्यत् ३।२।१२३" इससे कर्ममें ण्यत् होकर 'सेव्यः' बना, इसके योगमें षष्ठी और तृतीया हुई । कर्त्ता कारकसे भिन्न, जैसे—गेयो माणवकः साम्नाम्, यहां "भव्यगेय० ३।४।६८ / २८९४" इस सूत्रसे कर्तृवाच्यमें यत्विधानके कारण अनुक्त कर्म हुआ । इस सूत्रमें योगविभाग होताहै, अर्थात् "कृत्यानाम्" इतना सूत्र पृथक् माना जाताहै और "कर्तरि वा" इतना अलग माना जाताहै, "कृत्यानाम्" इससे कर्त्ता और कर्म दोनों स्थलोंमें षष्ठीकी प्राप्ति होनेसे "न लोकाव्य० ५२७" इससे नकारकी अनुवृत्ति आनेसे उभयप्राप्तिमें कृत्य प्रत्ययके योगमें षष्ठी नहीं होतीहै, इससे नेतव्या व्रजङ्गावः कृष्णेन, यहां 'नेतव्याः' यह कृत्य प्रत्यय होकर बनताहै, इससे इसके योगमें उभयप्राप्त षष्ठी नहीं होतीहै । "कर्तरि वा" इसका अर्थ यह कि, अनुक्त कर्तामें सर्वत्र विकल्प करके षष्ठी हो, पक्षमें तृतीया होगी । उदाहरण पूर्वोक्त है ॥

६३० तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् । २ । ३ । ७२ ॥

तुल्यार्थैर्योगे तृतीया वा स्यात्पक्षे षष्ठी। तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा । अतुलोपमाभ्यां किम् । तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति ।

६३०—तुल्य अर्थवाले शब्दोंके योगमें तृतीया और षष्ठी विभक्ति हो, यथा—तुल्यः, सदृशः, समो वा कृष्णस्य, कृष्णेन वा, यहां तुल्यार्थक तुल्य, सदृश, सम शब्द हैं, इस कारण 'कृष्णस्य' 'कृष्णेन' यहां षष्ठी तथा तृतीया हुई । 'अतुलोपमाभ्याम्' कहनेका भाव यह कि, तुला और उपमा शब्दके योगमें तृतीया न हो । तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति, यहां तुल्य अर्थ होनेसे पक्षमें तृतीया प्राप्त थी सो न हुई । यद्यपि इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे विकल्पकी अनुवृत्ति आतीहै, तथापि 'अन्यतरस्याम्' ग्रहणका प्रयोजन यह है कि, कर्त्ताकी अनुवृत्ति न आजाय और उत्तर सूत्र "चतुर्थी चाशि० २।३।७३" में चकारसे सान्निध्यको प्राप्त जो तृतीया पद उसका अनुकर्षण न हो ॥

६३१ चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः । २ । ३ । ७३ ॥

एतदर्थैर्योगे चतुर्थी वा स्यात्पक्षे षष्ठी । आशिषि आयुष्यं चिरंजीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात् । एवं मद्रं भद्रं कुशलं निरामयं सुखं शम् अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा भूयात् । आशिषि किम् । देवदत्तस्यायुष्यमस्ति । व्याख्यानात्सर्वत्रार्थग्रहणम् । मद्रभद्रयोः पर्यायत्वादन्यतरो न पठनीयः ॥

६३१—आशीर्वाद अर्थमें वर्तमान आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित इन शब्दोंके अर्थवाले शब्दोंके योगमें चतुर्थी विकल्प करके हो । पक्षमें—षष्ठी होगी । यथा—आयुष्यं चिरञ्जीवितं कृष्णस्य कृष्णाय वा भूयात्, इसी प्रकार 'मद्रम्, भद्रम्, कुशलं निरामयम्, सुखं शम्, अर्थः प्रयोजनं, हितं पथ्यं वा भूयात्' इनके योगमें चतुर्थी, षष्ठी हुई । आशीरर्थ न होनेपर षष्ठी हो, यथा—देवदत्तस्या-

---

१ (सतः) यह अस् धातुसे शतृ (अत्) प्रत्यय करके बनताहै ॥

२ (पालकः) यह "तुमुन्ण्वुलौ० ३।३।१०" इससे ण्वुल्, फिर अक आदेश होकर बनताहै ॥

३ (गामी) यह "भविष्यति गम्यादयः ३।३।३" इससे भविष्यत् अर्थमें गम् धातुसे णिनि (इन्) प्रत्यय होकर बनताहै ॥

४ (दायी) यह "आवश्यकाधम० ३।३।२७" इससे दा धातुसे आधमर्ण्य अर्थमें णिनि प्रत्यय होकर बनताहै । 'दायी' अर्थात् देनदार; जो देनदार है, वही अधमर्ण कहाताहै ॥

१ "यतं ण्यतं क्यपञ्चैव केलिमरमनीयरम् । तव्यञ्च तव्यतञ्चैव कृत्यान्सप्त विदुर्बुधाः" ॥ यत्, ण्यत्, क्यप्, केलिमर्, अनीयर्, तव्य, तव्यत्, यह सात प्रत्यय कृत्य नामसे व्यवहार किये जातेहैं ऐसा आचार्य कहतेहैं ॥

युष्मस्ति । व्याख्यानसे सर्वत्र ही अर्थग्रहण है। मद्र भद्र शब्दके पर्यायत्वके कारण दोनोंमेंसे एकको नहीं पढना ॥

॥ इति षष्ठी ॥

६३२ आधारोऽधिकरणम् ।१।४।४५॥

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसंज्ञः स्यात् ॥

६३२–जिसमें पदार्थ धरे जातेहैं वह आधार कहाताहै, एककी अपेक्षामें दूसरा आधार बनता जाताहै, कर्ता और कर्मके द्वारा कर्ता और कर्मनिष्ठ क्रियाके आधारकी कारक संज्ञा होकर अधिकरण संज्ञा हो *॥

६३३ सप्तम्यधिकरणे च ।२।३।३६॥

अधिकरणे सप्तमी स्यात् । चकाराद्दूरान्तिकार्थेभ्यः । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छास्ति । सर्वस्मिन्नात्मास्ति । वनस्य दूरे अन्तिके वा। दूरान्तिकार्थेभ्य इति विभक्तित्रयेण सह चतस्रोऽत्र विभक्तयः फलिताः ॥ क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ अधीती व्याकरणे । अधीतमनेनेति विग्रहे इष्टादिभ्यश्चेति कर्तरीनिः ॥ साध्वसाधुप्रयोगे च ॥ * ॥ साधुः कृष्णो मातरि । असाधुर्मातुले ॥ निमित्तात्कर्मयोगे ॥ * ॥ निमित्तमिह फलम् । योगः संयोगः समवायात्मकः ॥

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः१॥

हेतौ तृतीयाऽत्र प्राप्ता तन्निवारणार्थम् । सीमाण्डकोशः । पुष्कलको गन्धमृगः । योगविशेषे किम् । वेतनेन धान्यं लुनाति ॥

६३३–अधिकरणमें सप्तमी विभक्ति हो, चकारसे दूर और समीप अर्थवालोंके भी उत्तर सप्तमी हो। औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक भेदसे अधिकरण तीन प्रकारका है। औपश्लेषिक यथा–कटे आस्ते, यहां कट और बैठनेवालेका स्पर्श संयोग है। स्थाल्यां पचति, यहां कर्मद्वारा क्रियाका आधार। वैषयिक यथा–मोक्षे इच्छास्ति (मोक्ष विषयमें इच्छा है)। अभिव्यापक यथा–सर्वस्मिन्नात्मा अस्ति–(सबमें आत्मा व्याप्त है)। दूरान्तिकादि, जैसे–वनस्य दूरे, अन्तिके वा, "दूरान्तिकार्थेभ्यो० ६०५" इससे द्वितीया,तृतीया और पंचमी विभक्तिके साथ इस स्थानमें द्वितीया, तृतीया, पंचमी और सप्तमी यह चार विभक्ति होतीहैं।

(क्तस्येन्० १४८५ वा०) इन्विषयक क्तप्रत्ययान्तके कर्ममें सप्तमी हो, यथा–व्याकरणे अधीती, यहां अधीतमनेन इस विग्रहमें क्तप्रत्ययान्त अधीत शब्दसे "इष्टादिभ्यश्च $\frac{५।२।८८}{१८८८}$" इस सूत्रसे कर्तृवाच्यमें इन् प्रत्यय करके उसके योगमें सप्तमी हुई।

(साध्व० १४८६वा०) साधु और असाधु शब्दोंके प्रयोगमें सप्तमी हो, यथा–साधुः कृष्णो मातरि, असाधुर्मातुले, यहां 'मातरि' और 'मातुल'में सप्तमी हुई।

(निमित्तात्० १४९० वा०) यदि कर्मका संयोग होय और किसी निमित्तके अर्थ कर्म कियाजाय तो निमित्तवाची शब्दसे सप्तमी हो, यहां निमित्तसे फल जानना। योग शब्दसे समवायात्मक संयोग जानना। (चर्मणीति) चर्मके निमित्त गैंडेको मारताहै। दांतोंके निमित्त हाथीको मारताहै, चामरके निमित्त चंवरी गायकी पूंछ काटता है, कस्तूरीके निमित्त हरिणको मारा, यहां चर्मरूप निमित्तमें द्वीपिकर्म संयुक्त है, इस कारण निमित्त चर्ममें सप्तमी हुई, इसी प्रकार दन्त, चमर, कस्तूरी निमित्त है और हस्ती, चमरी, पुष्कलक कर्म निमित्तसे संयुक्त है, इससे निमित्त दन्त, केश, सीमामें सप्तमी हुई। यहां हेत्वर्थमें तृतीया होती, इससे उसके निवारणके लिये यह वार्तिक किया है। सीमासे अंडकोष,पुष्कलकसे गंधमृग लेना। योगविशेष न होनेपर सप्तमी न होगी, यथा–वेतनेन धान्यं लुनाति ॥

६३४ यस्य च भावेन भावलक्षणम् । २।३।३७॥

यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः सप्तमी स्यात् । गोषु दुह्यमानासु गतः॥ अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च ॥*॥ सत्सु तरत्सु असन्त आसते । असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति । सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति । असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति ॥

६३४–जिसकी क्रियासे अन्य क्रिया लक्षित हो उससे सप्तमी विभक्ति हो। गोषु दुह्यमानासु गतः (गौओंके दुहनेमें चला गया), यहां गौका दोहनरूप जो क्रिया है, उससे गमनरूप क्रिया लक्षित होतीहै, तब 'गोषु' यहां सप्तमी हुई।

(अर्हाणाम्० १४८७–१४८८ वा०) योग्यकारकोंको कर्तृत्व होनेपर तथा अयोग्य कारकोंको अकर्तृत्व होनेपर तथा योग्य कारकोंको अकर्तृत्व होनेपर अयोग्य कारकोंको कर्तृत्व होनेपर जिनकी क्रियासे अन्यक्रिया विदित हो, उसमें सप्तमी हो, यथा–सत्सु तरत्सु असन्त आसते, असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति, सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति, असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति

---

*"उपश्लेषोपविषयौ सामीप्यो व्यापकस्तथा ।
चतुर्विधोऽयमाधारो विभक्तिस्तत्र सप्तमी ॥"

औपश्लेषिक, वैषयिक, सामीप्य, अभिव्यापक, यह चार प्रकारका अधिकरण है इसमें सप्तमी विभक्ति होतीहै, यह प्राचीनोंका मत है। औपश्लेषिक–जहां आधार और आधेयका संयोगसम्बन्ध हो, यथा–खट्वायां शेते, यहां खाट और सोनेवालेका स्पर्शमात्र संयोग है। वैषयिक–जिसमें जो रहै, यथा धर्मे प्रतिष्ठते (धर्ममें प्रतिष्ठा करताहै)। सामीप्य–जगति विश्वेश्वरो वर्तते (यह विश्वेश्वर सब जगतके समीप है)। अभिव्यापक–जिसका योग सब व्याप्त और अवयवोंमें रहै, यथा–तिलेषु तैलम् (तिलोंमें तेल सब अवयवोंमें रहताहै) ॥

(सन्तोंके तरनेपर असन्त बैठे रहतेहैं), (असन्तोंके बैठनेपर सन्त तरतेहैं), (सत्पुरुषोंके बैठनेपर असन्त तरतेहैं), (असन्तोंके तरनेपर सत्पुरुष बैठे रहतेहैं), यहां सत्पुरुषोंका तरना योग्य है, अर्थात् तरणरूप क्रिया सन्तोंके कर्तृत्व-योग्य है, इस कारण 'सत्सु' यहां सप्तमी होती है, इसी प्रकार सन्तोंके तरनेपर असन्तोंका बैठा रहना योग्य है, अर्थात् तरणरूप क्रियामें अयोग्य होनेसे असन्तोंको अकर्तृत्व प्राप्त होताहै, इससे 'असत्सु' यहां दूसरे उदाहरणमें सप्तमी होतीहै, तीसरे और चौथे उदाहरणोंमे विपरीत होनेपर 'सत्सु' 'असत्सु' यहां सप्तमी होतीहै। सब स्थानमें तरणरूप क्रियासे स्थितिरूप क्रिया विदित होतीहै ॥

६३५ षष्ठी चानादरे । २ । ३ । ३८ ॥

अनादराधिके भावलक्षणे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत्। रुदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य संन्यस्तवानित्यर्थः ॥

६३५—अनादर अर्थमें जिस क्रियासे अन्य क्रियाका लक्षण किया, वहां षष्ठी और चकारसे सप्तमी विभक्ति हो। रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत् (रुदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य संन्यस्तवानित्यर्थः। अर्थात् रोते हुए पुत्रादिकोंको कुछ न समझ संन्यासी होगया), यहां रोदनरूप क्रियासे प्रव्रजनरूप क्रिया लक्षित होतीहै, और अनादरका आधिक्य भी है, इससे 'रुदति' यहां सप्तमी तथा 'रुदतः' यहां षष्ठी हुई ॥

६३६ स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च । २ । ३ । ३९ ॥

एतैः सप्तभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। षष्ठ्यामेव प्राप्तायां पाक्षिकसप्तम्यर्थं वचनम्। गवां गोषु वा स्वामी। गवां गोषु वा प्रसूतः। गा एवानुभवितुं जात इत्यर्थः ॥

६३६—स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रतिभू, प्रसूत, इन शब्दोंके योगमें षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हो। षष्ठी ही प्राप्त होनेपर पाक्षिक सप्तमीके निमित्त यह सूत्र किया। गवां, गोषु वा स्वामी, गवां गोषु वा प्रसूतः, यहां स्वामी और प्रसूत शब्दके योगमें गो शब्दसे षष्ठी और सप्तमी होती है, अर्थात् सम्पूर्ण गौओंके ही अनुभवके निमित्त जन्माहै ॥

६३७ आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् । २ । ३ । ४० ॥

आभ्यां योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तस्तात्पर्यर्थे। आयुक्तो व्यापारितः। आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा। आसेवायां किम्। आयुक्तो गौः शकटे। ईषद्युक्त इत्यर्थः ॥

६३७—आसेवा अर्थमें, तात्पर्य अर्थमें वर्तमान आयुक्त और कुशल शब्दके योगमें षष्ठी और सप्तमी हो, आसेवा अर्थात् यदि सब प्रकारसे सेवा गम्यमान होय तो। आयुक्त अर्थात् व्यापारित, यथा—आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा (हरिके पूजनमें सब प्रकारसे लगा हुआ वा कुशल है), यहां-पर षष्ठी तथा सप्तमी हुई। आसेवा अर्थ न होनेपर षष्ठी न होगी, यथा—आयुक्तो गौः शकटे, अर्थात् ईषद्युक्त ॥

६३८ यतश्च निर्धारणम् । २।३।४१ ॥

जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणं यतस्ततः षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः। गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः ॥

६३८—जाति गुण क्रिया संज्ञा इनसे समूहसे एकदेशका पृथक् करना निर्धारण कहाताहै, वह जिससे निर्धारण अर्थात् किसीको पृथक् किया जाय उसमें षष्ठी और सप्तमी हो। नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः (मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है), यहां मनुष्यरूप जातिसे ब्राह्मणरूप एकदेशको पृथक् कियाहै, इससे नृ शब्दसे षष्ठी और सप्तमी हुई, इसी प्रकार गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा (गोओंमें काली गाय बहुत दुधारी है), गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः (चलनेवालोंमें धावन करनेवाला शीघ्रगामी है), छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः (विद्यार्थियोंमें मैत्र चतुर है) यहां जाति, गुण, क्रिया और संज्ञासे समुदायसे निर्धारणके कारण निर्धारणमें षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हुई ॥

६३९ पञ्चमी विभक्ते । २।३।४२ ॥

विभागो विभक्तं निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पञ्चमी स्यात्। माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः ॥

६३९—विभक्त शब्दका अर्थ विभाग है, निर्धारणमें जिसका विभाग कियाजाय उसमें पंचमी विभक्ति हो, अर्थात् जहां निर्धारणका भेद प्रतीत हो। यह पूर्व सूत्रका अपवाद है। माथुराः पाटलिपुत्रेभ्यः आढ्यतराः (माथुर पटनवालोंसे विशेष धनी हैं), यहां पाटलिपुत्रवालोंसे आढ्यतर होनेसे माथुरोंका भेदमात्र विदित होताहै, इस कारण पाटलिपुत्र शब्दसे पंचमी हुई, षष्ठी सप्तमी न हुई ॥

६४० साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः । २ । ३ । ४३ ॥

आभ्यां योगे सप्तमी स्यादर्चायां न तु प्रतेः प्रयोगे। मातरि साधुर्निपुणो वा। अर्चायां किम्। निपुणो राज्ञो भृत्यः। इह तत्त्वकथने तात्पर्यम्। अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति पर्यनु वा ॥

६४०—पूजन अर्थ गम्यमान हो तो साधु और निपुण[1] शब्दके योगमें सप्तमी हो, प्रतिके योगमें न हो, यथा—मातरि साधुर्निपुणो वा, (माताके विषयमें सत्कार करनेवाला और चतुर है)। पूजा अर्थ न होनेपर निपुणो राज्ञो भृत्यः, इस स्थानमें तत्त्वकथनमें तात्पर्य जानना चाहिये।

1 (निपुणः) 'पुण कर्मणि शुभे'से इगुपधलक्षण क ॥

(अप्रत्य० १४९३ वा०) जहां प्रतिके योगमें सप्तमी-का निषेध कियाहै, वहां प्रतिको आदि ले परि, अनु उपसर्गमें भी निषेध जानना, यथा—साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति पर्यनु वा, यहां प्रति, परि और अनुका योग होनेसे सप्तमी न हुई ॥

६४१ प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च । २ । ३ । ४४ ॥

आभ्यां योगे तृतीया स्याच्चात्सप्तमी । प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा ॥

६४१—प्रसित और उत्सुक शब्दके योगमें तृतीया और चकारसे सप्तमी हो (इन दोनों शब्दोंका 'तत्पर' अर्थ है) । प्रसितः उत्सुको वा हरिणा हरौ वा (हरिमें उत्सुक वा तत्पर —आसक्त है), यहां प्रसित और उत्सुकके योगमें सप्तमी तृतीया हुई ॥

६४२ नक्षत्रे च लुपि । २ । ३ । ४५ ॥

नक्षत्रे प्रकृत्यर्थे यो लुप्संज्ञया लुप्यमानस्य प्रत्ययस्यार्थस्तत्र वर्तमानात्तृतीयासप्तम्यौ स्तोऽधिकरणे । मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् । मूले श्रवणे इति वा । लुपि किम् । पुष्ये शनिः॥

६४२—प्रकृत्यर्थ नक्षत्र होनेसे लुप्संज्ञासे लुप्यमान प्रत्ययके अर्थमें वर्तमान शब्दोंसे अधिकरण गम्यमान होय तो तृतीया और सप्तमी हो, आशय यह कि, नक्षत्रवाची शब्दके प्रकृत अर्थमें जो लुप्संज्ञासे लोपको प्राप्त हुए प्रत्ययका अर्थ है, उस अर्थमें वर्तमान लुबन्त नक्षत्रवाची शब्दसे तृतीया और सप्तमी हो । मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्, मूले श्रवणे वा (मूलमें देवीका आवाहनकर श्रवणमें विसर्जन करै), यहां "नक्षत्रेण युक्तः कालः $\frac{४।२।३}{१०२४}$" इसमें अण् प्रत्यय होकर "लुबविशेषे $\frac{४।२।४}{१२०५}$" इससे अणका लोप होनेपर भी प्रत्ययका अर्थ वर्तमान रहताहै, इससे श्रवण और मूल शब्दोंसे सप्तमी तृतीया हुई । लुप् संज्ञासे लुप्यमान प्रत्यय कहनेका आशय यह कि, पुष्ये शनिः, यहां इस सूत्रकी अनुवृत्ति (प्राप्ति) न होगी ॥

६४३ सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये । २ । ३ । ७ ॥

शक्तिद्वयमध्ये यौ कालाध्वानौ ताभ्यामेते स्तः । अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता । कर्तृशक्त्योर्मध्येऽयं कालः । इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत् । कर्तृकर्मशक्त्योर्मध्येऽयं देशः । अधिकशब्देन योगे सप्तमीपञ्चम्याविष्येते। तदस्मिन्नधिकमिति यस्मादधिकमिति च सूत्रनिर्देशात् । लोके लोकाद्वाऽधिको हरिः ॥

६४३—दो कारकोंके मध्यमें जो काल और मार्गवाचक शब्द है, उससे पंचमी और सप्तमी हो । अद्य भुक्त्वायं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता, (आज भोजन करके यह दो दिनमें भोजन करेगा), इस स्थानमें कर्ता और शक्तिके मध्यमें काल है, यद्यपि यहां भोक्ता कारक एक है, कारकोंका मध्य कहा है, इसपर कहतेहैं कि, शक्तिका आश्रयरूप जो द्रव्य है, वह कारक यहां नहीं लिया जायगा, किन्तु शक्तिही कारक माना जायगा, सो आज भोजन करना फिर दूसरे दिन भोजन करना यह दो शक्ति हैं ही, उनके मध्यकालवाची 'द्व्यह' शब्दसे पंचमी और सप्तमी हुई । इहस्थोयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्, (यहीं बैठा हुआ यह एक कोशपर लक्ष्यवेध करसकताहै), यहां कर्ता कर्म शक्तिके मध्यमें मार्गवाची क्रोश शब्द है, इसमें पंचमी सप्तमी हुई ।

अधिक शब्दके योगमें भी पंचमी और सप्तमी होतीहै । यद्यपि इसका किसी सूत्रसे विधान नहीं है,तथापि पाणिनिने अपने सूत्रपाठमें "तदस्मिन्नधिकमि० $\frac{५।२।४५}{१८४६}$" "यस्मादधिकम्० $\frac{२।३।९}{६४५}$" ऐसा अधि शब्दके योगमें सप्तमी और पञ्चमीका प्रयोग दियाहै, इससे विदित होताहै कि, अधिक शब्दके योगमें पंचमी और सप्तमी होतीहै । लोके लोकाद्वा ऽधिको हरिः, यहां अधिक शब्दके योगमें लोक शब्दसे सप्तमी और पञ्चमी होतीहै ॥

६४४ अधिरीश्वरे । १ । ४ । ९७ ॥

स्वस्वामिभावसम्बन्धेऽधिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञः स्यात् ॥

६४४—स्वस्वामिभाव सम्बन्धमें अधि शब्दकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो ॥

६४५ यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी । २ । ३ । ९ ॥

अत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी स्यात् । उपपरार्धे हरेर्गुणाः । परार्धादधिका इत्यर्थः । ऐश्वर्ये तु स्वस्वामिभ्यां पर्यायेण सप्तमी । अधि भुवि रामः । अधि रामे भूः । सप्तमी शौण्डैरिति समासपक्षे तु रामाधीना । अषडक्षेत्यादिना खः ॥

६४५—अधिक अर्थवाले कर्मप्रवचनीयके योगमें तथा ईश्वर अर्थमें वर्तमान कर्मप्रवचनीयके योगमें सप्तमी हो । ईश्वर अर्थमें इतना अधिक है कि, जिसका ईश्वर हो उससे सप्तमी हो, पक्षमें जिसका अर्थ ईश्वरवचन हो, उससे सप्तमी हो । अधिकार्थ कर्मप्रवचनीयके योगमें, यथा—उपपरार्द्धे हरेर्गुणाः (हरिके गुण परार्द्धसे भी अधिक हैं), यहां "उपोऽधिके च $\frac{१।४।८७}{५५१}$" इस सूत्रसे उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा है, इससे उसके योगमें सप्तमी हुई, ऐश्वर्य अर्थ होनेपर स्वस्वामिभाव सम्बन्ध होनेपर अधि भुवि रामः, अधि रामे भूः, यहां राम पृथ्वीके ईश्वर हैं, ऐसा अर्थ निकलता है, यहां ईश्वर अर्थमें अधिकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई, इससे एक पक्षमें पृथिवी शब्दसे सप्तमी, द्वितीय पक्षमें राम शब्दसे सप्तमी होतीहै । जब "सप्तमी शौण्डैः $\frac{२।१।४०}{७१७}$" इस सूत्रसे समास होताहै तब "अषडक्ष० $\frac{५।४।७}{२०७६}$" इससे 'ख' प्रत्यय होकर और

"आयनेयीनीयियः० ७।१।२/४७५" इस सूत्रसे 'ख' को 'ईन' होकर 'रामाधीना' ऐसा प्रयोग बनता है ॥

६४६ विभाषा कृञि ।१।४।९८॥

अधिः करोतौ प्राक्संज्ञो वा स्यादीश्वरेऽर्थे। यदत्र मामधिकरिष्यति। विनियोक्ष्यत इत्यर्थः। इह विनियोक्तुरीश्वरत्वं गम्यते। अगतित्वात्तिङ्ङिचोदात्तवतीति निघातो न ॥

॥ इति विभक्त्यर्थाः ॥

६४६–ईश्वर अर्थ होनेपर कृ धातुके प्रयोगमें अधिको विकल्प करके कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो, यथा–यदत्र मामधिकरिष्यति (इसमें मुझे विनियुक्त करेगा), यहां विनियोगकर्ताको ईश्वरत्व हुआहै, इस प्रकार कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर गति संज्ञा न होनेसे "तिङ्ङिचोदात्तवति ८।१।७१/३९७८" इस सूत्रसे जो निघात स्वर प्राप्त था,सो नहीं होताहै ॥ इति सप्तमी ॥

॥ इति कारकप्रकरणम् ॥

अथाऽव्ययीभावसमासप्रकरणम्।

६४७ समर्थः पदविधिः ।२।१।१॥

पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः ॥

६४७–पदसम्बन्धवाली विधिको समर्थाश्रित जानना, अर्थात् पदका उद्देश करके जो समासादि कार्य्य हैं, वे विग्रह वाक्यका जो अर्थ उसका अभिधान करनेमें समर्थ होकर साधु होतेहैं ॥

६४८ प्राक्कडारात्समासः ।२।१।३॥

कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्राक् समास इत्यधिक्रियते ॥

६४८–"कडाराः कर्मधारये ७५१" इस सूत्रके पूर्वपर्यन्त समासका अधिकार चलेगा ॥

६४९ (१) सह सुपा ।२।१।४॥

सहेति योगो विभज्यते। सुबन्तं समर्थेन सह समस्यते। योगविभागस्येष्टसिद्ध्यर्थत्वात्कतिपयतिङन्तोत्तरपदोयं समासः स च छन्दस्येव। पर्यभूषत्। अनुव्यचलत् ॥

६४९–(१)–सह शब्दका योगविभाग करते हैं, समर्थके अर्थात् सुबन्त, तिङन्त, नाम, धातु इत्यादिके साथ सुबन्तका समास हो,अर्थात् सुबन्तका सुबन्तके साथ, सुबन्तका तिङन्तके साथ, सुबन्तका नामके साथ, सुबन्तका धातुके साथ समास हो, योगविभाग इष्टसिद्धिके लिये होताहै इससे कतिपयतिङन्तोत्तरपदक भी यह समास होताहै परन्तु ऐसा समास वेदमें ही होताहै, जैसे–पर्यभूषत्, अनुव्यचलत् ॥

६४९ (२) सुपा ।२।१।४॥

सुप् सुपा सह समस्यते। समासत्वात्प्रातिपदिकत्वम् ॥

६४९–(२)–सुबन्तके साथ सुबन्तका समास हो। समास होनेसे उसको प्रातिपदिकत्व होताहै (१७९) ॥

६५० सुपो धातुप्रातिपदिकयोः ।२।४।७१॥

एतयोरवयवस्य सुपो लुक् स्यात्। भूतपूर्वे चरडितिनिर्देशात्। भूतशब्दस्य पूर्वनिपातः। पूर्वं भूतो भूतपूर्वः ॥ इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च ॥ * ॥ जीमूतस्येव ॥

६५०–धातु और प्रातिपदिकके अवयव सुप्का लोप हो। 'भूतपूर्वः' यहां पूर्वं भूतः इस विग्रहमें समास होनेपर "प्रथमानिर्दिष्टं स०"इससे उपसर्जनत्व होनेसे दोनों सुबन्तोंको पर्य्यायसे पूर्वप्रयोग प्राप्त था; परन्तु उपसर्जन (विशेषण) इस अन्वर्थ संज्ञाके बलसे 'पूर्व' शब्दको ही पूर्व निपात प्राप्त हुआ, इस लिये कहतेहैं कि, "भूतपूर्वे चरट् १९९९" ऐसे सूत्रनिर्देशके कारण भूत शब्दका ही पूर्व निपात होताहै, यथा–पूर्व+भूतः=भूतपूर्वः ॥

इव शब्दके साथ सुबन्तका समास हो और विभक्तिका लुक् नहीं हो, यथा–जीमूतस्य+इव=जीमूतस्येव ॥

६५१ अव्ययीभावः ।२।१।५॥

अधिकारोऽयम् ॥

६५१–यहांसे अव्ययीभावका अधिकार है ॥

६५२ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ।२।१।६॥

अव्ययमिति योगो विभज्यते। अव्ययं समर्थेन सह समस्यते सोऽव्ययीभावः ॥

६५२–'अव्ययम्' इतने अंशका इस सूत्रमें योगविभाग करतेहैं, इससे यह अर्थ होताहै कि, समर्थके साथ अव्ययका समास हो और वह अव्ययीभावसंज्ञक हो, (विभक्ति आदिके अर्थमें वर्त्तमान अव्ययके उदाहरण क्रमसे आगे दिये जांयगे) ॥

६५३ प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् ।१।२।४३॥

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्॥

६५३–समासशास्त्रके गणमें प्रथमानिर्दिष्टकी उपसर्जन संज्ञा हो ॥

६५४ उपसर्जनं पूर्वम् ।२।२।३०॥

मास उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम् ॥

६५४-समासमें उपसर्जनका प्रयोग पूर्वमें करना चाहिये ॥

६५५ एकविभक्ति चापूर्वनिपाते । १ । २ । ४४ ॥

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्यात् न तु तस्य पूर्वनिपातः ॥

६५५-विग्रहवाक्यमें नियतविभक्तियुक्त पदकी उपसर्जन संज्ञा हो, परन्तु उसका पूर्वनिपात न हो ॥

६५६ गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य । १ । २ । ४८ ॥

उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात् । अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वम् ॥

६५६-उपसर्जनीभूत जो गो शब्द और स्त्रीप्रत्ययान्त तदन्त प्रातिपदिकको ह्रस्व हो "अव्ययीभावश्च ४५१" इस सूत्रसे अव्ययीभावकी अव्यय संज्ञा होतीहै ॥

६५७ नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः । २ । ४ । ८३ ॥

अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक् तस्य पञ्चमीं विना अमादेशश्च स्यात् । दिशयोर्मध्यमपदिशम् । क्लीबाऽव्ययं त्वपदिशं दिशोर्मध्ये विदिक् स्त्रियामित्यमरः ॥

६५७-अकारान्त अव्यीभाव समासके उत्तर सुप्का लुक् न हो और पंचमीको छोडकर दूसरी विभक्तियोंको अम् आदेश हो, यथा-'दिशयोर्मध्यम्' इस विग्रहमें अपदिश+अम्=अपदिशम्, यहां विभक्तिके स्थानमें अमादेश हुआहे, अमरकोशमें लिखा है-"क्लीबाव्ययं त्वपदिशं दिशोर्मध्ये विदिक् स्त्रियाम्" अर्थात् 'दिशोंका मध्य' इस अर्थमें अपदिश यह शब्द नपुंसकलिंग अव्यय है और विदिक् शब्द स्त्रीलिंग है, इस प्रयोगमें मध्यरूप अर्थका द्योतक अप शब्द है ॥

६५८ तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् । २ । ४ । ८४ ॥

अदन्तादव्ययीभावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात् । अपदिशम् । अपदिशेन । अपदिशम् । अपदिशे । बहुलग्रहणात्सुमद्रमुन्मत्तगङ्गमित्यादौ सप्तम्या नित्यमम्भावः ॥ विभक्तीत्यादेरयमर्थः । विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह समस्यते सोऽव्ययीभावः ॥ विभक्तौ तावत् । हरौ इत्यधिहरि । सप्तम्यर्थस्यैवात्र द्योतकोऽधिः । हरि ङि अधि इत्यलौकिकं विग्रहवाक्यम् । अत्र निपातेनाभिहितेऽप्यधिकरणे वचनसामर्थ्यात्सप्तमी ॥

६५८-अकारान्त अव्ययीभाव समासके उत्तर तृतीया और सप्तमीको विकल्प करके अम् आदेश हो, यथा-अपदिशम्, जब अम् आदेश न हुआ तब तृतीयामें अपदिशेन । सप्तमीमें अपदिशम् और अम् आदेशके अभावमें अपदिशे । बहुलग्रहणके कारण मद्राणां समृद्धिः=सुमद्रम् । उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन् तत्=उन्मत्तगङ्गम्-इत्यादिमें सप्तमीको नित्य अम्भाव हुआ है ।

(६५२) विभक्त्यर्थ, समीप, समृद्धि, व्यृद्धि, अर्थाभाव, अत्यय, असम्प्रति, शब्दप्रादुर्भाव, पश्चात्, यथा, आनुपूर्व्य यौगपद्य, सादृश्य, सम्पत्ति, साकल्य, अन्तवचन, इन अर्थोंमें वर्तमान अव्ययका सुबन्तके साथ समास हो, वह अव्यीभावसंज्ञक हो । अब विभक्ति आदिका उदाहरण कहतेहैं-

विभक्ति अर्थमें यथा- 'हरौ' इस विग्रहमें 'अधिहरि' इस स्थानमें अधि शब्द सप्तम्यर्थका ही द्योतक है । हरि+ङि+अधि यह अलौकिक विग्रहवाक्य है, इस स्थलमें अधि इस निपातसे अधिकरणके कथित होनेपर भी 'विभक्ति' इस वचनसामर्थ्यसे 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इस न्यायकी प्रवृत्ति न होकर सप्तमी हुई है, आशय यह है कि, प्रत्यासत्तिन्यायसे जिस विभक्तिके अर्थका वाचक अव्यय हो, उसी विभक्त्यन्तसे उस अव्ययका समास होगा, तब यहां सप्तमीके अर्थको 'अधि' इस अव्ययसे उक्त होनेपर 'उक्तार्थानाम्०' इस न्यायसे सप्तमी विभक्ति नहीं आसकती, और अन्य विभक्त्यन्तसे उस अव्ययका समास हो नहीं सकता, तब विभक्तिग्रहण व्यर्थ ही होजाता ॥

६५९ अव्ययीभावश्च । १ । ४ । १८ ॥

अयं नपुंसकं स्यात् । ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य । गोपायतीति गाः पातीति वा गोपाः तस्मिन्नित्यधिगोपम् ॥ समीपे । कृष्णस्य समीपमुपकृष्णम् । समया ग्रामम्, निकषा लंकाम्, आराद्वनादित्यत्र तु नाऽव्ययीभावः अभितःपरितः, अन्यारादिति द्वितीयापञ्चम्योर्विधानसामर्थ्यात् ॥ मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् ॥ यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनम् । विगता ऋद्धिर्व्यृद्धिः ॥ मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् ॥ हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् । अत्ययो ध्वंसः ॥ निद्रा संप्रति न युज्यते इत्यतिनिद्रम् ॥ हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि ॥ विष्णोः पश्चादनुविष्णु । पश्चाच्छब्दस्य तु नायं समासः । ततः पश्चात् स्रंस्यत इति भाष्यप्रयोगात् ॥ योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः । अनुरूपम् । रूपस्य योग्यमित्यर्थः । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । प्रतिशब्दस्य वीप्सायां कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधानसामर्थ्यात्तद्योगे द्वितीयागर्भं वाक्यमपि । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति । हरेः सादृश्यं सहरि । वक्ष्यमाणेन सहस्य सः ॥ ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम् ॥ चक्रेण युगपदिति विग्रहे ॥

६५९-अव्यीभाव समास नंपुसक हो, गोपायतीति, गाः पातीति वा गोपाः, तस्मिन्, इस विग्रहमें समास होनेसे नपुं-

सक होकर गोपाके आकारको " ह्रस्वो नपुंसके० ३१८"से ह्रस्व हुआ, तथा अम्भाव हुआ, अधिगोपम्।

सामीप्यार्थमें यथा–कृष्णस्य समीपम्=उपकृष्णम्, यहां उप सामीप्य अर्थका द्योतक है।

" अभितःपरितः० वा० " और "अन्यारात्० (५९५ सू०) " इनसे द्वितीया और पंचमीके विधानके सामर्थ्यसे समया ग्रामम्, निकषा लंकाम्, आरात् वनात्–इत्यादिमें अव्ययीभाव समास न हुआ।

समृद्ध्यर्थमें यथा–मद्राणां समृद्धिः=सुमद्रम्।

व्यृद्ध्यर्थमें यथा–यवनानां व्यृद्धिः=दुर्यवनम्। विगता ऋद्धिः=व्यृद्धिः।

अभावमें यथा–मक्षिकाणामभावः=निर्मक्षिकम्, यहां निर् शब्द अभावका द्योतक है और अव्यय है।

अत्यय अर्थमें यथा–हिमस्यात्ययः=अतिहिमम्,यहां अत्यय शब्द ध्वंसार्थमें है और अव्यय है।

असम्प्रति अर्थमें यथा–निद्रा सम्प्रति न युज्यते इत्यतिनिद्रम्, यहां असम्प्रति (नहीं लगना) इस अर्थमें अति अव्यय है।

शब्दप्रादुर्भाव अर्थात् प्रकाश अर्थमें यथा–हरिशब्दस्य प्रकाशः=इतिहरि, यहां प्रकाशार्थद्योतक इति शब्द है।

पश्चात् अर्थमें विष्णोः पश्चात्=अनुविष्णु, यहां अनु शब्द पश्चात् अर्थका द्योतक है। "ततः पश्चात् स्रंस्यते(१।१।५७)" इस प्रकार भाष्यप्रयोगके कारण पश्चात् शब्दके साथ अव्ययीभाव समास नहीं होता।

यथा शब्दके योग्यता, वीप्सा (सम्बन्धकी इच्छा), पदार्थानतिवृत्ति (किसी पदार्थका उल्लंघन न करना) और सादृश्य (समानपना) यह चार अर्थ जानने। योग्यता अर्थमें यथा–रूपस्य योग्यम् अनु+रूप+अम्=अनुरूपम्, यहां अनु योग्यताका द्योतक है। वीप्सा अर्थमें यथा–अर्थम् अर्थं प्रति=प्रत्यर्थम् (सब अर्थोंके विषय), यहां वीप्सा अर्थका द्योतक प्रति है। प्रति शब्दको वीप्सा अर्थमें कर्मप्रवचनीय संज्ञा विधानके सामर्थ्यसे उसके योगमें द्वितीयागर्भ वाक्य भी होताहै। पदार्थानतिवृत्ति अर्थमें यथा–शक्तिमनतिक्रम्य यथा+शक्ति+अम्=यथाशक्ति, अर्थात् शक्तिके अनुसार। सादृश्य अर्थमें यथा–हरेः सादृश्यम्=सहरि।अगले सूत्रसे सह शब्दके स्थानमें स आदेश हुआ है।

आनुपूर्व्य अर्थमें यथा–ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण(६९४) अनु+ज्येष्ठ+अम्=अनुज्येष्ठम्।

युगपत् अर्थमें यथा–चक्रेण युगपत्, इस वाक्यमें समास होनेपर–॥

६६० अव्ययीभावे चाकाले।६।३।८१॥

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले। सचक्रम्। काले तु सहपूर्वाह्णम् ॥ सदृशः सख्या ससखि। यथार्थत्वेनैव सिद्धे पुनः सादृश्यग्रहणं गुणभूतेऽपि सादृश्ये यथा स्यादित्येवमर्थम् ॥ क्षत्त्राणां संपत्तिः सक्षत्त्रम् ॥ ऋद्धेराधिक्यं समृद्धिः, अनुरूपमात्मभावः संपत्तिरिति भेदः ॥ तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। साकल्येनेत्यर्थः। न त्वत्र तृणभक्षणे तात्पर्यम् ॥ अन्ते अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि ॥

६६०–अव्ययीभाव समासमें सह शब्दके स्थानमें स हो, यदि उत्तरपद कालवाचक हो तो न हो। सह+चक्र+अम्=सचक्रम् (चक्रसहित) कालार्थमें यथा–पूर्वाह्णेन+सह=सहपूर्वाह्णम्, यहां सहके स्थानमें स न हुआ।

सादृश्यार्थमें यथा–सदृशः सख्या=ससखि। यथार्थहीसे सादृश्यमें भी समास सिद्ध होजाता फिर सादृश्यका ग्रहण इस कारण है कि, गुणभूत सादृश्यमें भी समास हो ('सदृशः सख्या' यहां द्रव्यकी प्रधानता होनेसे ' सादृश्य' गौण है)। सम्पत्ति अर्थमें यथा–क्षत्त्राणां सम्पत्तिःसह+क्षत्र+अम्=सक्षत्रम् (क्षत्रियोंकी सम्पत्ति)यहां सह शब्द सम्पत्ति अर्थमें है। ऋद्धेराधिक्यम्=समृद्धिः,अर्थात् धनके आधिक्यका नाम समृद्धि है और अनुरूप आत्मभावका नाम सम्पत्ति है, यही भेद है।

साकल्य अर्थमें यथा–तृणमपि अपरित्यज्य अत्ति सह+तृण=सतृण+अम्=सतृणम्, अर्थात् तृणके साथ ही सब भोजन कर लेताहै, यहां साकल्यार्थमें सह शब्द है, तृण भक्षणमें तात्पर्य नहीं है।

अन्तार्थमें यथा–अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते सह+अग्नि=साग्नि ॥

६६१ यथाऽसादृश्ये।२।१।७॥

असादृश्ये एव यथा शब्दः समस्यते। तेनेह न। यथा हरिस्तथा हरः। हरेरुपमानत्वं यथा शब्दो द्योतयति। तेन सादृश्ये इति वा यथार्थ इति वा प्राप्तं निषिध्यते ॥

६६१–असादृश्यार्थमें ही यथा शब्दका समास हो, इसी कारण यथा हरिस्तथा हरः, यहां सादृश्यार्थ होनेसे भी समास न हुआ, यथा शब्द यहां हरिका उपमानत्व प्रकाश करताहै, इसीसे "सादृश्ये" इससे वा "यथार्थ" इससे प्राप्त समासका निषेध हुआ है ॥

६६२ यावदवधारणे।२।१।८॥

यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामा यावच्छ्लोकम् ॥

६६२–अवधारण अर्थात् निश्चय अर्थमें यावत् शब्दको सुबन्तके साथ अव्ययीभाव समास हो, जैसे–यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामाः=यावच्छ्लोकम्। अवधारण अर्थ न होनेपर यावद्दत्तं तावद् भुक्तम् (कितना खाया सो नहीं जाना जाताहै), यहां समास न हुआ ॥

६६३ सुप् प्रतिना मात्रार्थे।२।१।९॥

शाकस्य लेशः शाकप्रति। मात्रार्थे किम्। वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् ॥

६६३–मात्रा अर्थमें प्राप्त शब्दके साथ सुबन्तका समास हो। यहां पुनः सुप्का ग्रहण अव्ययनिवृत्तिके निमित्त है। शाकस्य+लेशः=शाकप्रति।

मात्रार्थ न होनेपर वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्, यहां समास न हुआ ॥

६६४ अक्षशलाकासंख्याः परिणा । । २ । १ । १० ॥

द्यूतव्यवहारे पराजये एवायं समासः । अक्षेण विपरीतं वृत्तम् अक्षपरि । शलाकापरि । एकपरि॥

६६४–द्यूतव्यवहारमें पराजय गम्यमान हो तो अक्ष, शलाका और संख्यावाचक शब्दोंका परि शब्दके साथ समास हो, जैसे–अक्षेण विपरीतं वृत्तम्=अक्षपरि, शलाकया विपरीतं वृत्तम्=शलाकापरि, एकेन विपरीतं वृत्तम्=एकपरि ॥

६६५ विभाषा । २ । १ । ११ ॥

अधिकारोऽयम् । एतत्सामर्थ्यादेव प्राचीनानां नित्यसमासत्वम् । सुप् सुपेति तु न नित्यसमासः । अव्ययमित्यादिसमासविधानाज्ज्ञापकात् ॥

६६५–यह विभाषाधिकार है, यहां इसके करनेके कारण पूर्ववर्ती सूत्रोंसे नित्य समास होगा, परन्तु "अव्ययम्" इत्यादिसे समास विधान सामर्थ्यके कारण "सह सुपा" इस सूत्रसे नित्य समास नहीं होगा (आशय यह है कि, एकार्थीभाव सामर्थ्य और व्यपेक्षा सामर्थ्य,इनकी विवक्षासे समास और वाक्यका साधुत्व हो ही जाता, फिर विभाषाधिकार करनेका प्रयोजन यह है कि, लक्षण देखकर प्रयोग करनेवाले जो वैयाकरण लोग उनको भी स्पष्टतया समझमें आवे । यहां सन्देह यह है कि, विभाषाधिकारको इस जगह करनेसे इससे पूर्वसूत्रोंसे नित्य ही समास होगा, तब–विस्पष्टं पटुः विस्पष्टपटुः ऐसा 'सुप् सुपा' से समास करके विग्रहवाक्य जो भाष्यकारने दिखाया है, सो विरुद्ध होताहै ? इसपर कहतेहैं कि, "सुप्सुपा" इससे नित्य समास नहीं होताहै, कारण "अव्ययम्०" इससे समासविधान व्यर्थ हो जायगा) ॥

६६६ अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या । २ । १ । १२ ॥

अपविष्णु संसारः । अप विष्णोः । परिविष्णु । परिविष्णोः । बहिर्वनम् । बहिर्वनात् । प्राग्वनम् । प्राग्वनात् ॥

६६६–अप, परि, बहिः, अञ्चु शब्दोंका पञ्चमी विभक्त्यन्तके साथ विकल्प करके समास हो, जैसे–अपविष्णु, संसारः, अप विष्णोः । परिविष्णु, परिविष्णोः । बहिर्वनम्, बहिर्वनात् । प्राग्वनम्, प्राग्वनात् ।

१ समासप्रकरणमें जिस जगह शब्दका समास होऐसा लिखाहै, वहां तत्प्रकृतिकसुबन्तका समास समझना, कारण जो सुप्की अनुवृत्ति आतीहै, यथा–(६६४) इस सूत्रके अर्थमें लिखाहै की जो अक्षवाचक, शलाकावाचक और संख्यावाचक शब्दोंका परिशब्दके साथ समास हो, वहां अक्षवाचकप्रकृतिक, शलाकावाचकप्रकृतिक और संख्यावाचकप्रकृतिक सुबन्तोंका परि शब्दके साथ समास हो ऐसा जानना, इसी तरह सब जगह जानना॥

६६७ आङ्मर्यादाभिविध्योः २।१।१३॥

एतयोराङ् पञ्चम्यन्तेन वा समस्यते सोऽव्ययीभावः । आमुक्ति संसारः । आ मुक्तेः । आबालं हरिभक्तिः । आ बालेभ्यः ॥

६६७–मर्यादा और अभिविधि अर्थमें आङ् शब्दका पञ्चम्यन्तके साथ विकल्प करके अव्ययीभाव समास हो, जैसे–आमुक्ति संसारः, आ मुक्तेः (मुक्तिं मर्यादीकृत्येत्यर्थः) (मुक्तिकी मर्य्यादा करके संसार है) । आबालं हरिभक्तिः, आ बालेभ्यः ॥

६६८ लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये । २ । १ । १४ ॥

आभिमुख्यद्योतकावभिप्रती चिह्नवाचिना सह प्राग्वत् । अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति । अग्निमभि प्रत्यग्नि । अग्निं प्रति ॥

६६८–आभिमुख्य–द्योतक अभि और प्रति शब्दोंका चिह्नवाचक शब्दोंके साथ पूर्ववत् समास हो, जैसे–अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति, अग्निमभि । प्रत्यग्नि, अग्निं प्रति ॥

६६९ अनुर्यत्समया । २ । १ ।१५॥

यं पदार्थं समया द्योत्यते तेन लक्षणभूतेनानुः समस्यते सोऽव्ययीभावः । अनुवनमशनिर्गतः । वनस्य समीपं गत इत्यर्थः ॥

६६९–जिस पदार्थका सामीप्य द्योतन किया जाय उस लक्षणभूत शब्दके साथ अनु शब्दका अव्ययीभाव समास हो, जैसे–अनुवनमशनिर्गतः (वनस्य समीपं गत इत्यर्थः, अर्थात् वनके समीपमें वज्रका पतन हुआ है) ॥

६७० यस्य चायामः । २ ।१।१६॥

यस्य दैर्घ्यमनुना द्योत्यते तेन लक्षणभूतेनानुः समस्यते । अनुगङ्गं वाराणसी । गंगाया अनु । गंगादैर्घ्यसदृशदैर्घ्योपलक्षितेत्यर्थः ॥

६७०–अनु शब्दसे जिसका दैर्घ्यद्योतन हो, उस लक्षणभूतके साथ अनु शब्दका समास हो, जैसे–अनुगङ्गं वाराणसी, गङ्गाया अनु, अर्थात् गंगा सदृश दैर्घ्यसमान वाराणसी है ॥

६७१ तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च ।२।१।१७॥

एतानि निपात्यन्ते । तिष्ठन्ति गावो यस्मिन्काले स तिष्ठद्गु दोहनकालः आयतीगवम् । इह शत्रादेशः पुंवद्भावविरहः समासान्तश्च निपात्यते॥

६७१–तिष्ठद्गु इत्यादि पद निपातनसे सिद्ध होतेहैं, जैसे–तिष्ठंति गावो यस्मिन् काले सः तिष्ठद्गु अर्थात् दोहनकाल, इस स्थानमें शतृ आदेश हुआहै सो निपातन सिद्ध है । और ओकारको "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य" से ह्रस्व, आयत्यः गावो यस्मिन् काले सः आयतीगवम्,इस स्थानमें शतृ आदेश,पुंवद्भावविरह और समासान्त टच् प्रत्यय निपातनसे सिद्ध हुए हैं ॥

६७२ पारे मध्ये षष्ठ्या वा ।२।१।१८॥

पारमध्यशब्दौ षष्ठ्यन्तेन सह वा समस्येते । एदन्तत्वं चानयोर्निपात्यते । पक्षे षष्ठीतत्पुरुषः । पारेगङ्गादानय । गङ्गापारात् । मध्येगङ्गात् । गङ्गामध्यात् । महाविभाषया वाक्यमपि । गङ्गायाः पारात् । गङ्गाया मध्यात् ॥

६७२–पार और मध्य शब्दका षष्ठ्यन्तके साथ विकल्प करके समास हो, और इनकी एकारान्तता भी निपातन सिद्ध हो । पक्षमें–षष्ठीतत्पुरुष होगा । जैसे–पारेगंगादानय, पक्षमें–षष्ठीतत्पुरुष होकर, गंगापारात् । मध्येगङ्गात्, पक्षमें–गंगामध्यात् । महाविकल्पके कारण वाक्यभी होकर गङ्गायाः पारात्, गङ्गायाः मध्यात्, इस प्रकार होंगे ॥

६७३ संख्या वंश्येन । २।१।१९॥

वंशो द्विधा विद्यया जन्मना च । तत्र भवो वंश्यः । तद्वाचिना सह संख्या वा समस्यते । द्वौ मुनी वंश्यौ । द्विमुनि । व्याकरणस्य त्रिमुनि । विद्या तद्वतामभेदविवक्षायां त्रिमुनि व्याकरणम् । एकविंशतिभारद्वाजम् ॥

६७३–विद्या और जन्मसे वंश दो प्रकारका है, वंशे भवः वंश्यः अर्थात् वंशमें जो हो, वंश्यवाचक शब्दके साथ संख्यावाचकका विकल्प करके समास हो । द्वौ मुनी वंश्यौ= इस वाक्यमें द्विमुनि । व्याकरणस्य त्रिमुनि, अर्थात् व्याकरणके तीन मुनि हैं, जैसे–पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि । विद्या और विद्वान्की अभेद विवक्षामें जैसे–त्रिमुनि व्याकरणम्, अर्थात् त्रिमुनिरूप व्याकरण । जन्मसे वंशभेदका उदाहरण जैसे–एकविंशतिभारद्वाजम् (एकविंशतिः भारद्वाजा वंश्या इति विग्रहः) ॥

६७४ नदीभिश्च । २।१।२०॥

नदीभिः संख्या प्राग्वत् ॥ समाहारे चायमिष्यते ॥ * ॥ सप्तगङ्गम् । द्वियमुनम् ॥

६७४–नदीवाचक शब्दोंके साथ संख्यावाचकका पूर्ववत् समास हो । समाहारमें यह समास इष्ट है, यथा–सप्तानां गङ्गानां समाहारः सप्तगङ्गम्, द्वयोर्यमुनयोः समाहारः द्वियमुनम् ॥

६७५ अन्यपदार्थे च संज्ञायाम् २।१।२१॥

अन्यपदार्थे विद्यमानं सुबन्तं नदीभिः सह नित्यं समस्यते संज्ञायाम् ॥ विभाषाधिकारेपि वाक्येन संज्ञानवगमादिह नित्यसमासः । उन्मत्तगङ्गं नाम देशः । लोहितगङ्गम् ॥

६७५–संज्ञा होनेपर अन्य पदार्थमें विद्यमान सुबन्तका नदीवाचक शब्दोंके साथ नित्य समास हो । विभाषाधिकार होनेपर भी वाक्यसे संज्ञाके अनवगमके कारण इस स्थलमें नित्य समास होगा, उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन्–उन्मत्तगङ्गम्, अर्थात् इस नामका देश । लोहितगङ्गम् ॥

६७६ समासान्ताः । ५।४। ६८॥

इत्यधिकृत्य ॥

६७६–समासान्ताः इसका अधिकार करके कहतेहैं–

६७७ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः । ५। ४। १०७॥

शरदादिभ्यष्टच् स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे । शरदः समीपमुपशरदम् । प्रतिविपाशम् । शरद् । विपाश् । अनस् । मनस् । उपानह् । दिव् । हिमवत् । अनडुह् । दिश् । दृश् । विश् । चेतस् । चतुर् । त्यद् । तद् । यद् । कियत् । जराया जरस् च । उपजरसम् । प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः । यस्येति च । प्रत्यक्षम् । अक्ष्णः परमिति विग्रहे समासान्तविधानसामर्थ्यादव्ययीभावः । परोक्षे लिडिति निपातनात्परस्यौकारादेशः । परोक्षम् । परोक्षा क्रियेत्यादि तु अर्शआद्यचि । समक्षम् । अन्वक्षम् ॥

६७७–शरदादि शब्दोंके उत्तर समासान्त टच् प्रत्यय हो अव्ययीभावमें, जैसे–'शरदः समीपम्', इसवाक्यमें उप+शरद्+टच्(अ)=उपशरदम् । प्रतिविपाशम् । शरदादि यथा–शरद्, विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह्, दिव्, हिमवत्, अनडुह्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, त्यद्, तद्, यद्, कियत्, यह शब्द । जरा शब्दके स्थानमें जरस् आदेश और टच् प्रत्यय हो उप+जरस्+अ+अम्=उपजरसम् । प्रति, पर, सम, अनु, शब्दके परे स्थित अक्षि शब्दके उत्तर टच् प्रत्यय हो । "यस्येति च ३११" इस सूत्रसे अवर्णलोप होकर अक्ष्णः प्रति इस वाक्यमें प्रत्यक्षम् । अक्ष्णः परम् इस वाक्यमें समासान्त विधानकी सामर्थ्यके कारण अव्ययीभाव हुआ, "परोक्षे लिट् २१७१" इस सूत्रसे निपातनसे पर शब्दके अकारके स्थानमें ओकार आदेश हुआ, जैसे–परोक्षम् । 'परोक्षा क्रिया' इत्यादि स्थलमें "अर्शआदिभ्योच्" इस सूत्रसे अच् प्रत्यय करके सिद्ध हुईहै, अक्ष्णः समम्=समक्षम् अर्थात् अक्षिके योग्य । अक्ष्णः अनु=अन्वक्षम् अर्थात् आक्षिके पश्चात् ॥

६७८ अनश्च । ५ । ४ । १०८ ॥

अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् स्यात् ॥

६७८–अन्नन्त अव्ययीभाव समासके उत्तर टच् प्रत्यय हो ॥

६७९ नस्तद्धिते । ६ । ४ । १४४ ॥

नान्तस्य भस्य टेर्लोपः स्यात्तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम् ॥

६७९–तद्धित परे रहते नान्त भसंज्ञककी टिका लोप हो, जैसे–राज्ञः समीपम् इस वाक्यमें उप+राजन्+अ+अम्=उपराजम्, आत्मनि अधि इस वाक्यमें अधि+आत्मन्+अ+अम्=अध्यात्मम्, यहां अन् भागका लोप टि होनेसे हुआहै ॥

६८० नपुंसकादन्यतरस्याम् ५।४।१०९॥

अन्नन्तं यत् क्लीवं तदन्तादव्ययीभावाट्टच् वा स्यात् । उपचर्मम् । उपचर्म ॥

६८०–अन् भागान्त जो नपुंसक तदन्त अव्ययीभाव समासमें विकल्प करके टच् हो, जैसे–चर्मणः उप=उपच-र्मन्+अ=उपचर्म+अम्=उपचर्मम्, पक्षे–उपचर्म ॥

६८१ नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः । ५ । ४ । ११० ॥

वा टच् स्यात् । उपनदम् । उपनदि । उपपौर्णमासम् । उपपौर्णमासि । उपाग्रहायणम् । उपाग्रहायणि ॥

६८१–नदी, पौर्णमासी, आग्रहायणी शब्दोंके उत्तर विकल्प करके टच् हो । नद्याः समीपम्–इस वाक्यमें उपनदम्, पक्षे–उपनदि । पौर्णमास्याः समीपम्=उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि । आग्रहायण्याः समीपम्=उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि ॥

६८२ झयः । ५ । ४ । ११२ ॥

झयन्तादव्ययीभावाट्टज्वा । उपसमिधम् । उपसमित् ॥

६८२–झयन्त अव्ययीभावके उत्तर विकल्प करके टच् हो । समिधः समीपम्=इस वाक्यमें उप+समिध्+अ+अम्= उपसमिधम्, पक्षमें–उपसमित् (२०६ सू.) ॥

६८३ गिरेश्च सेनकस्य । ५ । ४ । ११३ ॥

गिर्यन्तादव्ययीभावाट्टच् वा स्यात् । सेनकग्रहणं पूजार्थम् । उपगिरम् । उपगिरि ॥

॥ इत्यव्ययीभावः ॥

६८३–गिरिशब्दान्त अव्ययीभावके उत्तर विकल्प करके टच् हो । सेनकग्रहण पूजाके निमित्त है । गिरेः समीपम्= उपगिरम्, पक्षमें–उपगिरि ॥

॥ इत्यव्ययीभावः ॥

अथ तत्पुरुषसमासप्रकरणम् ।

६८४ तत्पुरुषः । २ । १ । २२ ॥

अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः ॥

६८४–"तत्पुरुषः" इसका बहुव्रीहि समासके पूर्वपर्यंत अधिकार है ॥

६८५ द्विगुश्च । २ । १ । २३ ॥

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञः स्यात् । इदं सूत्रं त्यक्तुं शक्यम् । संख्यापूर्वो द्विगुरिति पठित्वा चकारबलेन संज्ञाद्वयसमावेशस्य सुवचत्वात् । समासान्तः प्रयोजनम् । पञ्चराजम् ॥

६८५–द्विगु समास भी तत्पुरुषसंज्ञक हो । "संख्यापूर्वो द्विगुश्च" इस सूत्रमें पठित चकारसे दोनों संज्ञाओंके समावेशके सुवचत्वके कारण यह सूत्र त्याग कर सकते हैं । द्विगुकी तत्पुरुषसंज्ञा करनेका समासान्त अर्थात् टच् आदि प्रत्यय प्रयोजन होगा, जैसे–पञ्चानां राज्ञां समाहारः=इस वाक्यमें पञ्चराजम्– इत्यादि ॥

६८६ द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः । २ । १ । २४ ॥

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते स तत्पुरुषः । कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः । दुःखमतीतो दुःखातीतः ॥ गम्यादीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ ग्रामं गमी ग्रामगमी । अन्नं बुभुक्षुः अन्नबुभुक्षुः ॥

६८६–श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्नप्रकृतिक सुबन्तके साथ द्वितीयान्त पदका विकल्प करके तत्पुरुष समास हो । कृष्णं श्रितः=कृष्णश्रितः । दुःखम् अतीतः=दुःखातीतः ।

गम्यादिका भी द्वितीयान्तके साथ तत्पुरुष समास हो* जैसे–ग्रामं गमी=ग्रामगमी । अन्नं बुभुक्षुः=अन्नबुभुक्षुः । यह द्वितीयातत्पुरुष समास हुआ ॥

६८७ स्वयं क्तेन । २ । १ । २५ ॥

द्वितीयेति न सम्बध्यतेऽयोग्यत्वात् । स्वयंकृतस्याऽपत्यं स्वायंकृतिः ॥

६८७–क्तप्रत्ययान्तप्रकृतिक सुबन्तके साथ स्वयं शब्दका समास हो । अयोग्यत्वके कारण द्वितीया (६८६ सू०) के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है । स्वयंकृतस्य अपत्यम्= स्वायंकृतिः । समास न होनेपर स्वयं कातिः ऐसा होगा ॥

६८८ खट्वा क्षेपे । २ । १ । २६ ॥

खट्वाप्रकृतिकं द्वितीयान्तं क्तान्तप्रकृतिकेन सुबन्तेन समस्यते निन्दायाम् । खट्वारूढो जाल्मः । नित्यसमासोऽयम् । न हि वाक्येन निन्दा गम्यते ॥

६८८–निन्दा अर्थ होनेपर खट्वाप्रकृतिक द्वितीयान्त पदका क्तान्तप्रकृतिक सुबन्तके साथ समास हो । खट्वा+आरूढः=खट्वारूढो जाल्मः । जाल्म नाम अविचारसे काम करनेवालेका है, वेद और व्रतको समाप्तकर खाटपर चढना चाहिये, भूमिपर शयन ब्रह्मचर्यावस्थामें नहीं कर, उस समय जो खाट पर चढता है, वह जाल्म है, वा सब ही निषिद्ध अनुष्ठानकारी खट्वारूढ कहे जायँगे । यह नित्य समास है, कारण जो वाक्यसे निन्दाकी प्रतीति नहीं होतीहै ॥

६८९ सामि । २ । १ । २७ ॥

सामिकृतम् ॥

६८९–सामि शब्द अर्द्धवाचक है । क्तप्रत्ययान्तप्रकृतिक सुबन्तके साथ सामि शब्दका समास हो । सामिकृतम् ॥

६९० कालाः । २ । १ । २८ ॥

क्तेनेत्येव अनत्यन्तसंयोगार्थं वचनम् । मासप्रमितः प्रतिपच्चन्द्रः । मासं परिच्छेत्तुमारब्धवानित्यर्थः ॥

६९०–कालवाचक शब्दका क्तप्रत्ययान्तप्रकृतिक सुबन्तके साथ समास हो । यह सूत्र अनत्यन्त संयोगके निमित्त है । मासं प्रमितः=मासप्रमितः प्रतिपच्चन्द्रः, अर्थात् मासके नियमके निमित्त प्रतिपद् (पड़वा) का आरब्धवान् चन्द्र होताहै । (माङ् माने “ आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च” इससे कर्त्तामें क्त हुआ) ॥

६९१ अत्यन्तसंयोगे च । २।१।२९॥

काला इत्येव । अक्तान्तार्थं वचनम् । मुहूर्तं सुखं मुहूर्तसुखम् ॥

६९१–अत्यन्त संयोग होनेपर कालवाचक शब्दका क्तप्रत्ययान्तसे भिन्नके साथ समास हो । मुहूर्तं सुखम् (५५८)= इस विग्रहमें मुहूर्तसुखम् (मुहूर्तपर्यन्त सुख) ॥

६९२ तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन । २ । १ । ३० ॥

तत्कृतेति लुप्ततृतीयाकम् । तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थशब्देन च सह प्राग्वत् । शंकुलया खण्डः शंकुलाखण्डः । धान्येनार्थो धान्यार्थः । तत्कृतेति किम् । अक्ष्णा काणः ॥

६९२–“तत्कृत” यह लुप्ततृतीयाक पद है । तृतीयान्तार्थकृत जो गुण तद्वाचक शब्द और अर्थ शब्द उसके साथ तृतीयान्त पदका समास हो । शंकुलया खंडः=शंकुलाखंडः । (खडि+भेदने इससे घञ् प्रत्यय करके खण्ड बना, करणमें तृतीया हुई) । धान्येन अर्थः=धान्यार्थः ।

तत्कृत यह कहनेसे ‘ अक्ष्णा काणः ’ इस स्थलमें समास नहीं हुआ, यहां तृतीयान्त ‘अक्ष्णा’ पद तो है, परन्तु आंखने काना नहीं किया, किन्तु कर्मने किया (‘कण–निमीलने’ कण्+घञ्=काणः) ॥

६९३ पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः । २ । १ । ३१ ॥

तृतीयान्तमेतैः प्राग्वत् । मासपूर्वः । मातृसदृशः । पितृसमः । ऊनार्थे माषोनं कार्षापणम् । माषविकलम् । वाक्कलहः । आचारनिपुणः । गुडमिश्रः । आचारश्लक्ष्णः । मिश्रग्रहणे सोपसर्गस्याऽपि ग्रहणम् । मिश्रं चानुपसर्गमसन्धावित्यत्रानुपसर्गग्रहणात् । गुडसंमिश्रा धानाः ॥ अवरस्योपसंख्यानम् ॥ * ॥ मासेनावरः मासावरः ॥

६९३–पूर्व, सदृश, सम, ऊनार्थ, कलह, निपुण, मिश्र और श्लक्ष्ण शब्दके साथ तृतीयान्त पदका समास हो । मासेन पूर्वः इस वाक्यमें मासपूर्वः । मात्रा सदृशः=मातृसदृशः । पित्रा समः=पितृसमः । ऊनार्थमें यथा–माषोनम् कार्षापणम् । माषविकलम् । वाक्कलहः । आचारनिपुणः । गुडमिश्रः । आचारश्लक्ष्णः ।

सूत्रमें मिश्रग्रहण करनेसे सोपसर्ग मिश्र शब्दका भी ग्रहण होगा, कारण जो “ मिश्रञ्चानुपसर्गमसंधौ (३८८८) इस सूत्रमें अनुपसर्गका ग्रहण नहीं भी करनेपर सोपसर्ग मिश्र शब्दका ग्रहण नहीं होता, फिर अनुपसर्गग्रहण क्यों किया, इससे ज्ञापित होताहै कि, मिश्रग्रहण रहते सोपसर्गका भी ग्रहण होताहै, इसलिये गुडसंमिश्रा धानाः यहां भी समास हुआ ।

अवर शब्दके साथ तृतीयान्तका समास हो, * जैसे–मासेन अवरः=इस वाक्यमें मासावरः ॥

६९४ कर्तृकरणे कृता बहुलम् । २ । १ । ३२ ॥

कर्तरि करणे च तृतीया । कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् । हरिणा त्रातो हरित्रातः । नखैर्भिन्नो नखभिन्नः ॥ कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् ॥ नखनिर्भिन्नः । कर्तृकरणे इति किम् । भिक्षाभिरुषितः । हेतावेषा तृतीया । बहुलग्रहणं सर्वोपाधिव्यभिचारार्थम् । तेन दात्रेण लूनवानित्यादौ न । कृता किम् । काष्ठैः पचतितराम् ॥

६९४–कर्ता और करणमें जो तृतीया, उसका कृदन्तके साथ विकल्प करके समास हो । हरिणा त्रातः=इस विग्रहमें हरित्रातः । नखैर्भिन्नः=नखभिन्नः । कृत्का ग्रहण रहनेसे गति और कारकपूर्वकका भी ग्रहण होताहै, इसलिये नखनिर्भिन्नः, यहां गतिपूर्वक कृदन्तके भी साथ समास हुआ । कर्तृकरणे ऐसा क्यों कहा ? तो कर्त्ता करणमें तृतीया न होनेपर भिक्षाभिरुषितः, अर्थात् भिक्षाके निमित्त वास करता है, इस स्थलमें हेतुमें तृतीया हुई है, कर्ता वा करणमें नहीं । इससे समास न हुआ ।

सूत्रमें बहुलग्रहण सर्वोपाधिव्यभिचारार्थ है अर्थात् जिस कारणसमूहके रहनेसे समास होताहै, उस कारणसमूहके रहनेपर भी कहीं न हो; इसी कारण ‘ दात्रेण लूनवान् ’ इत्यादिमें समास नहीं हुआ ।

“ कृता ” ग्रहण करनेसे काष्ठैः पचतितराम् इस स्थलमें समास नहीं हुआ ॥

६९५ कृत्यैरधिकार्थवचने । २ । १ । ३३ ॥

स्तुतिनिन्दाफलकमर्थवादवचनमधिकार्थवचनं तत्र कर्तरि करणे च तृतीया कृत्यैः सह प्राग्वत् । काकपेया नदी ॥ वातच्छेद्यं तृणम् ।

६९५–स्तुति और निन्दात्मक अर्थवादवचनको अधिकार्थवचन कहतेहैं, उसमें कर्ता और करण कारकमें तृतीया का कृत्यप्रत्ययान्तके साथ पूर्ववत् समास हो, जैसे–वातेन+छेद्यम्=वातच्छेद्यम्, तृणम्, काकैः+पेया=काकपेया नदी, यहां

अत्यन्त तरङ्ग होनेके कारण काकहीसे पीने लायक इस अर्थसे स्तुति, और कम जलके कारण काकहीसे पीने योग्य न कि दूसरेसे इस अर्थसे निन्दा होती है, इसी प्रकार अत्यन्त कोमलत्वके कारण वातसे भी छेदन करने योग्य इस अर्थसे स्तुति और अत्यन्त निःसारत्वके कारण वातसे भी छेदन करने योग्य इस अर्थसे निन्दा होती है ॥

६९६ अन्नेन व्यञ्जनम् ।२ । १ ।३४॥

संस्कारकद्रव्यवाचकं तृतीयान्तमन्नेन प्राग्वत्। दध्ना ओदनो दध्योदनः । इहान्तर्भूतोपसेकक्रियाद्वारा सामर्थ्यम् ॥

६९६-संस्कारक द्रव्यवाचक तृतीयान्तपदका अन्न शब्दके साथ पूर्ववत् समास हो, जैसे-दध्ना=ओदनः=दध्योदनः, इस स्थानमें अन्तर्भूत उपसेक क्रियाद्वारा सामर्थ्य है ॥

६९७ भक्ष्येण मिश्रीकरणम् २।१।३५॥

गुडेन धानाः गुडधानाः । मिश्रणक्रियाद्वारा सामर्थ्यम् ॥

६९७-भक्ष्यवाचक तृतीयान्तके साथ मिश्रीकरणवाचकका समास हो, जैसे-गुडेन धानाः=गुडधानाः, यहां भी मिश्रणक्रियाद्वारा सामर्थ्य जानना चाहिये ॥

६९८ चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः । २ । १ । ३६ ॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिनाऽर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत्। तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एव बलिरक्षितग्रहणाज्ज्ञापकात्। यूपाय दारु यूपदारु। नेह । रन्धनाय स्थाली । अश्वघासादयस्तु षष्ठीसमासाः ॥ अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् ॥*॥ द्विजायायं द्विजार्थः सूपः। द्विजार्था यवागूः । द्विजार्थं पयः । भूतबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् ॥

६९८-चतुर्थ्यन्तार्थके निमित्त जो अर्थ तद्वाचक शब्द और अर्थादि शब्दके साथ चतुर्थ्यन्तका विकल्प करके समास हो । सूत्रमें बलि और रक्षित शब्दका ग्रहण करनेसे तदर्थसे प्रकृतिविकृतिभावका ही ग्रहण होगा । यूपाय दारु=यूपदारु, परन्तु रंधनाय स्थाली इस स्थलमें प्रकृतिविकृतिभाव न होनेके कारण समास नहीं होगा । ' अश्वस्य घासः ' इत्यादि में क्योंकि तो षष्ठीतत्पुरुष समास होकर अश्वघासादि पद सिद्ध होते हैं ॥ अर्थके साथ नित्य समास और विशेष्यलिङ्गता हो ऐसा कहना चाहिये । द्विजाय अयम्=द्विजार्थः सूपः, इस स्थानमें विशेष्य पुँल्लिङ्ग है । द्विजाय इयम्=द्विजार्था यवागूः, इस स्थानमें विशेष्य स्त्रीलिङ्ग है। द्विजार्थं इदम्=द्विजार्थं पयः, इस स्थानमें विशेष्य नपुंसकलिंग है । भूताय बलिः=भूतबलिः । गवे हितम् गोहितम् । गवे सुखम्=गोसुखम् । गवे रक्षितम्=गोरक्षितम् ॥

६९९ पञ्चमी भयेन । २ । १ । ३७॥

चोराद्भयं चोरभयम् ॥ भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम् ॥ * ॥ वृकभीतः ॥

६९९-भय शब्दके साथ पञ्चम्यन्त पदका समास हो । चोरात् भयम्=चोरभयम् । भय, भीत, भीति,भी,इन शब्दोंके साथ भी पञ्चम्यन्त पदका समास हो * वृकात्+भीतः=वृकभीतः ॥

७०० अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः । २ । १ ।३८ ॥

एतैः सहाल्पं पञ्चम्यन्तं समस्यते स तत्पुरुषः । सुखापेतः। कल्पनापोढः। चक्रमुक्तः।स्वर्गपतितः। तरङ्गापत्रस्तः । अल्पशः किम्। प्रासादात्पतितः ॥

७००-अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित और अपत्रस्त शब्दोंके साथ अल्प पञ्चम्यन्त पदका पञ्चमीतत्पुरुष समास हो। सुखात् अपेतः=सुखापेतः । कल्पनायाः अपोढः=कल्पनापोढः । चक्रात् मुक्तः=चक्रमुक्तः । स्वर्गात् पतितः=स्वर्गपतितः। तरङ्गात् अपत्रस्तः=तरङ्गापत्रस्तः। 'अल्पशः' कहनेसे प्रासादात् पतितः, इस स्थलमें समास न हुआ ॥

७०१ स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन । २ ।१। ३९ ॥

स्तोकान्मुक्तः । अल्पान्मुक्तः । अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः । दूरादागतः । विप्रकृष्टादागतः । कृच्छ्रादागतः । पञ्चम्याः स्तोकादिभ्य इत्यलुक् ॥

७०१-स्तोक, अन्तिक, दूरार्थ और कृच्छ्र शब्दोंका क्तप्रत्ययान्त पदके साथ पञ्चमीतत्पुरुष समास हो । स्तोकात् मुक्तः=स्तोकान्मुक्तः । अल्पान्मुक्तः। अन्तिकादागतः । अभ्यासादागतः । दूरादागतः । विप्रकृष्टादागतः । कृच्छ्रादागतः । (९५९) निषेधके कारण स्तोकादि शब्दोंके उत्तर पञ्चमीका लुक् नहीं हुआ ॥

७०२ षष्ठी । २ ।२ । ८ ॥

राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः ॥

७०२-षष्ठ्यन्त पदका सुबन्तके साथ समास हो, जैसे-राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः ॥

७०३ याजकादिभिश्च ।२।२।९॥

एभिः षष्ठ्यन्तं समस्यते । तृजकाभ्यां कर्तरीत्यस्य प्रतिप्रसवोऽयम् । ब्राह्मणयाजकः । देवपूजकः ॥ गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम्॥*॥ तरबन्तं यद्गुणवाचि तेन सह समासस्तरलोपश्च। न निर्धारण इति पूरणगुणेति च निषेधस्य प्रतिप्रसवोऽयम्। सर्वेषां श्वेततरः।सर्वश्वेतः । सर्वेषां

महत्तरः। सर्वमहान्॥ कृद्योगा षष्ठी समस्यत इति वाच्यम् ॥ * ॥ इध्मस्य व्रश्चनः इध्मव्रश्चनः ॥

७०३–याजकादि शब्दोंके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास हो । यह सूत्र "तृजकाभ्यां कर्त्तरि७०९" इस सूत्रका प्रतिप्रसव अर्थात् बाधक है । ब्राह्मणानां याजकः=ब्राह्मणयाजकः । देवानां पूजकः=देवपूजकः ।

तरप्प्रत्ययान्त गुणवाचक शब्दके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास हो और तरका लोप हो । यह " न निर्धारणे ७०४" और " पूरणगुण० ७०५ " इन निषेधसूत्रोंका प्रतिप्रसव है । सर्वेषां श्वेततरः=सर्वश्वेतः । सर्वेषां महत्तरः=सर्वमहान् ।

कृद्योगमें षष्ठ्यन्तका सुबन्तके साथ समास हो, यह कहना चाहिये, जैसे–इध्मस्य व्रश्चनः=इध्मव्रश्चनः ॥

७०४ न निर्धारणे । २ । २ । १० ॥

निर्धारणे या षष्ठी सा न समस्यते । नृणां द्विजः श्रेष्ठः ॥ प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यत इति वाच्यम् ॥ * ॥ सर्पिषो ज्ञानम् ॥

७०४–निर्द्धारणमें विहित जो षष्ठी तदन्तका समास न हो, जैसे–नृणां द्विजः श्रेष्ठः, यहां समास न हुआ ।

प्रतिपदविधाना षष्ठीका समास न हो, यह कहना चाहिये, जैसे–सर्पिषो ज्ञानम्, इस स्थानमें समास नहीं हुआ ॥

७०५ पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन । २ । २ । ११ ॥

पूरणाद्यर्थैः सदादिभिश्च षष्ठी न समस्यते । पूरणे । सतां षष्ठः । गुणे काकस्य कार्ष्ण्यम् । ब्राह्मणस्य शुक्लाः । यदा प्रकरणादिना दन्ता इति विशेष्यं ज्ञातं तदेदमुदाहरणम् । अनित्योऽयं गुणेन निषेधः । तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वादित्यादिनिर्देशात् । तेनार्थगौरवं बुद्धिमान्द्यमित्यादि सिद्धम् । सुहितार्थास्तृप्त्यर्थाः । फलानां सुहितः। तृतीयासमासस्तु स्यादेव । स्वरे विशेषः । सत्। द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा । किंकर इत्यर्थः । अव्ययम् । ब्राह्मणस्य कृत्वा । पूर्वोत्तरसाहचर्यात् कृदव्ययमेव गृह्यते । तेन तदुपरीत्यादि सिद्धमिति रक्षितः । तव्य । ब्राह्मणस्य कर्तव्यम् । तव्यता तु भवत्येव । स्वकर्तव्यम् । स्वरे भेदः। समानाधिकरणे । तक्षकस्य सर्पस्य । विशेषणसमासस्त्विह बहुलग्रहणान्न । गोर्धेनोरित्यादिषु पोटायुवतीत्यादीनां विभक्त्यन्तरे चरितार्थानां परत्वाद्बाधकः षष्ठीसमासः प्राप्तः सोऽप्यनेन वार्यते ॥

७०५–पूरणप्रत्ययान्त, गुणवाचक, सुहितार्थ, सत्, अव्यय, तव्यप्रत्ययान्त और समानाधिकरणके साथ षष्ठ्यन्तका समास न हो । पूरणमें यथा–सतां षष्ठः । गुणमें यथा–काकस्य कार्ष्ण्यम् । ब्राह्मणस्य शुक्लाः । जब प्रकरण आदिसे 'दन्ताः' यह पद विशेष्य जाना जाताहै, तब यह उदाहरण होताहै । गुणवाचकके साथ षष्ठ्यन्तके समासका निषेध अनित्य है, कारण कि, "तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् १२९५ " इसमें 'संज्ञाप्रमाणत्वात्' ऐसा निर्देश है । इसी कारण अर्थगौरवम्, बुद्धिमांद्यम् इत्यादि भी सिद्ध हुए । सुहितार्थ अर्थात् तृप्त्यर्थमें जैसे–फलानां सुहितः, इस स्थलमें तृतीयासमास तो हो ही गा, तब निषेधका क्या फल हुआ सो नहीं कहसकते, कारण जो स्वर विषयमें विशेष होगा । सत् यथा–द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा अर्थात् किंकर । अव्यय जैसे–ब्राह्मणस्य कृत्वा । पूर्वोत्तरसाहचर्यके कारण कृत् अव्ययका ही ग्रहण है, ऐसा रक्षितने कहा है, इसी कारण तदुपरि इत्यादि पद सिद्ध हुए । तव्य यथा–ब्राह्मणस्य कर्तव्यम् । तव्यत्प्रत्ययके साथ तो समास होहीगा, यथा–स्वकर्तव्यम्, परन्तु स्वरमें भेद होगा । समानाधिकरणमें यथा–तक्षकस्य सर्पस्य, इस स्थानमें " विशेषणं विशेष्येण बहुलम् " इस सूत्रमें बहुलग्रहणके कारण विशेषणसमास भी नहीं हुआ ।

गोर्धेनोः इत्यादिमें "पोटायुवति० ७४४" इत्यादि सूत्रोंके विभक्त्यन्तरमें चरितार्थत्वके कारण अपवादकत्व न होनेसे परत्वात् बाधक षष्ठीसमासकी प्राप्ति होती है, परन्तु वह सूत्र भी इस सूत्रसे वारित होताहै ॥

७०६ क्तेन च पूजायाम् । २ । २ । १२ ॥

मतिबुद्धीति सूत्रेण विहितो यः क्तस्तदन्तेन षष्ठी न समस्यते । राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा । राजपूजित इत्यादौ तु भूते क्तान्तेन सह तृतीयान्तस्य समासः ॥

७०६–"मतिबुद्धि० ३०८९ " इस सूत्रसे विहित क्तप्रत्ययान्तके साथ षष्ठीसमास नहीं हो, जैसे–राज्ञां मतो, बुद्धः पूजितो वा । राजपूजितः–इत्यादिमें तो अतीत कालमें विहित क्तप्रत्ययान्तके साथ तृतीयासमास जानना ॥

७०७ अधिकरणवाचिना च ।२।२।१३॥

क्तेन षष्ठी न समस्यते । इदमेषामासितं गतं भुक्तं वा ॥

७०७–अधिकरणवाचकक्तप्रत्ययान्तके साथ षष्ठीसमास न हो, जैसे–इदमेषामासितम्, गतम्, भुक्तं वा ॥

७०८ कर्मणि च । २ । २ । १४ ॥

उभयप्राप्तौ कर्मणीति या षष्ठी सा न समस्यते । आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन ॥

७०८–"उभयप्राप्तौ कर्मणि ६२४" इस सूत्रसे विहित जो षष्ठी तदन्तका समास न हो जैसे–आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन, यहां षष्ठ्यन्तका समास न हुआ ॥

७०९ तृजकाभ्यां कर्तरि । २ । २ । १५ ॥

कर्त्रर्थतृजकाभ्यां षष्ठ्या न समासः । अपां स्रष्टा । व्रजस्य भर्ता । ओदनस्य पाचकः । क-

र्तरि किम् । इक्षूणां भक्षणमिक्षुभक्षिका । पत्यर्थभर्तृशब्दस्य याजकादित्वात्समासः । भूभर्ता । कथं तर्हि घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलह इति । शेषषष्ठ्या समास इति कैयटः ॥

७०९-कर्तृवाच्यमें विहित जो तृच् और अक, तदन्तके साथ षष्ठ्यन्तका समास न हो । अपां स्रष्टा (तृच्), वज्रस्य भर्त्ता (तृच्), ओदनस्य पाचकः (अक) ।

कर्तृवाच्यमें प्रत्यय न होनेपर समास होगा, जैसे-इक्षूणां भक्षणम् इस विग्रहमें इक्षुभक्षिका । याजकादित्वके कारण पत्यर्थ भर्तृ शब्दका भी समास होगा, जैसे-भूभर्त्ता । इस सूत्रके रहते किस प्रकारसे "घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलहः" इस स्थलमें त्रिभुवन शब्दका समास हुआ ? इसपर कहतेहैं कि, कैयटने कहाहै कि, इस स्थलमें "शेषे षष्ठी" इस सूत्रसे षष्ठी हो समास हुआ है ॥

७१० कर्तरि च । २ । २ । १६ ॥

कर्तरि षष्ठ्या अकेन न समासः । भवतः शायिका । नेह तृजनुवर्तते । तद्योगे कर्तुरभिहितत्वेन कर्तृषष्ठ्या अभावात् ॥

७१०-कर्त्तामें विहित जो षष्ठी तदन्तका, अकप्रत्ययान्तके साथ समास न हो, जैसे-भवतः शायिका । इस सूत्रमें तृच् की अनुवृत्ति नहीं आती है, कारण कि, तृच्से कर्त्ता उक्त होनेके कारण कर्तृकारकमें षष्ठी हो नहीं सकती है ॥

७११ नित्यं क्रीडाजीविकयोः । २ । २ । १७ ॥

एतयोरर्थयोरकेन नित्यं षष्ठी समस्यते । उद्दालकपुष्पभञ्जिका । क्रीडाविशेषस्य संज्ञा । संज्ञायामिति भावे ण्वुल् । जीविकायां दन्तलेखकः । तत्र क्रीडायां विकल्पे जीविकायां तृजकाभ्यां कर्तरीति निषेधे प्राप्ते वचनम् ॥

७११-अकप्रत्ययान्तके साथ क्रीडा और जीविका अर्थमें षष्ठ्यन्तका समास नित्य हो, जैसे-उद्दालकपुष्पभञ्जिका, यह क्रीडाविशेषकी संज्ञा है । (भञ्ज धातुके उत्तर "संज्ञायाम् ३२८९" इस सूत्रसे भावमें ण्वुल् प्रत्यय करके भञ्जिका उद्दालकः श्लेष्मातकस्तस्य पुष्पाणि भज्यन्ते यस्यां क्रीडायां सा उद्दालकपुष्पभञ्जिका) । जीविकार्थमें, जैसे-दन्तलेखकः, यहां क्रीडा अर्थमें, "षष्ठी"से विभाषाधिकारके कारण वैकल्पिक समास प्राप्त होनेपर और जीविकार्थमें "तृजकाभ्यां कर्तरि ७०९" इस सूत्रसे निषेधकी प्राप्ति होनेपर उन दोनोंके बाधनार्थ यह सूत्र हैं ॥

७१२ पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे । २ । २ । १८ ॥

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी । षष्ठीसमासापवादः । पूर्वं कायस्य पूर्वकायः । अपरकायः ॥ एकदेशिना किम् । पूर्वं नाभेः कायस्य । एकाधिकरणे किम् । पूर्वश्छात्राणाम् । सर्वोऽप्येकदेशोऽह्ना समस्यते संख्याविसायेति ज्ञापकात् । मध्याह्नः । सायाह्नः । केचित्तु सर्वं एकदेशः कालेन समस्यते न त्वह्नैव ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षत्वात् । तेन मध्यरात्रः, उपारताः पश्चिमरात्रगोचरा इत्यादि सिद्धमित्याहुः ॥

७१२-एकत्वसंख्याविशिष्ट अवयवीके साथ पूर्वादि अर्थात् पूर्व, अपर, अधर और उत्तर शब्दका समास हो । यह सूत्र षष्ठीसमासका अपवाद है । पूर्वं कायस्य, इस वाक्यमें पूर्वकायः । अपरं कायस्य=अपरकायः-इत्यादि, एकदेशी कहनेसे पूर्वं नाभेः कायस्य, इस स्थलमें समास नहीं हुआ । एकाधिकरण कहनेसे पूर्वश्छात्राणाम्, इस स्थलमें समास नहीं हुआ ।

"संख्याविसाय० (२३८)" इससे सायपूर्वक अह्नको अहन् आदेश विधानके कारण अहन् शब्दके साथ सब एकदेशका समास हो, जैसे मध्याह्नः । अह्नः+सायः=सायाह्नः ।

कोई कहतेहैं कि, ज्ञापकके सामान्यापेक्षत्वके कारण सब एकदेशका कालवाचकके साथ समास हो, केवल अहन् शब्दके साथ ही नहीं, इसी कारण मध्यरात्रः, "उपारताः पश्चिमरात्रिगोचरात्" इत्यादि भी सिद्ध हुए ॥

७१३ अर्धं नपुंसकम् । २ । २ । २ ॥

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे स प्राग्वत् ॥ एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनम् ॥ * ॥ एकदेशिसमासविषयकोयमुपसर्जनसंज्ञानिषेधः । तेन पञ्चखट्वी इत्यादि सिध्यति । अर्धं पिप्पल्याः अर्धपिप्पली । क्लीबे किम् । ग्रामार्धः । द्रव्यैक्य एव । अर्धं पिप्पलीनाम् ॥

७१३-नपुंसकलिंगमें वर्त्तमान समांशवाचक अर्द्ध शब्दका पूर्ववत् समास नित्य हो । (एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनम् *) "एकविभक्ति० ६५५" से षष्ठ्यन्तसे भिन्नकी उपसर्जन संज्ञा हो, अर्थात् षष्ठ्यन्तकी उपसर्जन संज्ञा न हो । यह उपसर्जन संज्ञाका निषेध एकदेशी समासविषयक है, इसी कारण पञ्चानां खट्वानां समाहारः=पञ्चखट्वी, इत्यादि सिद्ध होतेहैं । अर्द्धं पिप्पल्याः=अर्द्धपिप्पली । नपुंसक कहनेसे ग्रामार्द्धः, इस स्थलमें अर्ध शब्द नपुंसकलिंग नहीं है । द्रव्यके न ऐक्य होनेसे अर्द्धं पिप्पलीनाम् ऐसा होगा ॥

---

१ अभिप्राय यह है कि, अर्द्धपिप्पली-इत्यादिके तरह पञ्चानां खट्वानां समाहारः=इस वाक्यमें पञ्चखट्वाघटक खट्वाकी भी उपसर्जन संज्ञाका निषेध होता तो "गोस्त्रि० ६५६" से ह्रस्वता नहीं होनेसे अदन्तत्वके अभावके कारण ङीप् "द्विगोः" से नहीं होता ॥

७१४ द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् । २ । २ । ३ ॥

एतान्येकदेशिना सह प्राग्वद्वा । द्वितीयं भिक्षायाः । द्वितीयभिक्षा । एकदेशिना किम् । द्वितीयं भिक्षाया भिक्षुकस्य । अन्यतरस्यांग्रहणसामर्थ्यात्पूरणगुणेतिनिषेधं बाधित्वा पक्षे षष्ठीसमासः । भिक्षाद्वितीयम् ॥

७१४–द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्य शब्दका एकदेशी (अवयवी) के साथ पूर्ववत् समास विकल्प करके हो, जैसे–द्वितीयं भिक्षायाः इस विग्रहमें द्वितीयभिक्षा । एकदेशी न होनेपर द्वितीयं भिक्षायाः भिक्षुकस्य, इस स्थलमें समास नहीं हुआ । " अन्यतरस्याम्" इसके ग्रहणसामर्थ्यके कारण " पूरणगुण० ७०५" सूत्रके निषेधको बाधकर पक्षमें–षष्ठीसमास होगा, जैसे–भिक्षाद्वितीयम् ॥

७१५ प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ।२।२।४॥

पक्षे द्वितीयाश्रितेति समासः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। जीविकाप्राप्तः। आपन्नजीविकः। जीविकापन्नः । इह सूत्रे द्वितीयया अ इति छित्त्वा अकारोऽपि विधीयते । तेन जीविकां प्राप्ता स्त्री प्राप्तजीविका । आपन्नजीविका ॥

७१५–प्राप्त और आपन्न शब्दका द्वितीयान्त पदके साथ विकल्प करके समास हो । पक्षमें "द्वितीयाश्रित० ६८६" इस सूत्रसे समास होगा, जैसे–प्राप्तो जीविकाम्=प्राप्तजीविकः, जीविकाप्राप्तः । आपन्नजीविकः, जीविकापन्नः । इस सूत्रमें "द्वितीयया अ" इस प्रकार पदच्छेद करके अकार विधान भी होता है, इस कारण जीविकां प्राप्ता स्त्री=प्राप्तजीविका, आपन्न जीविका, ऐसा होगा ॥

७१६ कालाः परिमाणिना । २ ।२।५॥

परिच्छेद्यवाचिना सुबन्तेन सह कालाः समस्यन्ते। मासो जातस्य यस्य स मासजातः। द्व्यहजातः । द्वयोरह्नोः समाहारो द्व्यहः । द्व्यहो जातस्येति विग्रहे ॥ उत्तरपदेन परिमाणिना द्विगोः सिद्धये बहूनां तत्पुरुषस्योपसंख्यानम् ॥ * ॥ द्वे अहनी जातस्य यस्य स द्व्यह्नजातः । अह्नोऽह्न इति वक्ष्यमाणोऽह्नादेशः । पूर्वत्र तु न संख्यादेः समाहार इति निषेधः ॥

७१६–परिच्छेद्यवाचक सुबन्तके साथ कालवाचक शब्दका समास हो जैसे–मासो जातस्य यस्य सः मासजातः, द्व्यहजातः । द्वयोरह्नोः समाहारः द्व्यहः। द्व्यहो जातस्य इस विग्रहमें द्व्यहजातः ।* परिमाणवाचक उत्तरपदके साथ द्विगु समासकी सिद्धिके निमित्त बहुत पदका तत्पुरुष समास हो, जैसे–द्वे अहनी जातस्य यस्य सः द्व्यह्नजातः । "अह्नोऽह्न:० ७९०" इस सूत्रसे अह्नादेश होताहै, पहलेके प्रयोगमें तो "न संख्यादेः समाहारे ७९३" से समाहारमें अह्नादेशका निषेध हुआहै ॥

७१७ सप्तमी शौण्डैः । २ । १ । ४० ॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वद्वा । अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्डः । अधि शब्दोत्र पठ्यते । अध्युत्तरपदादिति खः । ईश्वराधीनः ॥

७१७–शौंडादि शब्दके साथ सप्तम्यन्त पदका विकल्प करके समास हो, जैसे–अक्षेषु+शौण्डः=अक्षशौण्डः, यहां अधि शब्दको भी पढतेहैं । "–अध्युत्तरपदात्० २०७९"इस सूत्रसे खप्रत्यय हुआ, 'ख' को ईन हुआ, जैसे ईश्वराधीनः ॥

७१८ सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ।२।१।४१॥

एतैः सप्तम्यन्तं प्राग्वत् । सांकाश्यसिद्धः । आतपशुष्कः । स्थालीपक्वः । चक्रबन्धः ॥

७१८–सिद्ध, शुष्क, पक्व और बंध शब्दके साथ सप्तम्यन्तका पूर्ववत् समास हो, जैसे–साङ्काश्यसिद्धः, आतपशुष्कः, स्थालीपक्वः, चक्रबंधः ॥

७१९ ध्वाङ्क्षेण क्षेपे । २ । १ । ४२ ॥

ध्वाङ्क्षवाचिना सह सप्तम्यन्तं समस्यते निन्दायाम् । तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव तीर्थध्वाङ्क्षः । तीर्थकाक इत्यर्थः ॥

७१९–निन्दा गम्यमान रहते ध्वाङ्क्षवाचक शब्दके साथ सप्तम्यन्तका पूर्ववत् समास हो, जैसे–तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव=तीर्थध्वाङ्क्षः, अर्थात् तीर्थकाक ॥

७२० कृत्यैर्ऋणे । २ । १ । ४३ ॥

सप्तम्यन्तं कृत्यप्रत्ययान्तैः सह प्राग्वदावश्यके । मासे देयमृणम् । ऋणग्रहणं नियोगोपलक्षणार्थम् । पूर्वाह्णे गेयं साम ॥

७२०–आवश्यक अर्थ गम्यमान रहते कृत्यप्रत्ययान्तके साथ सप्तम्यन्तका पूर्ववत् समास हो । मासे देयम्=ऋणम्। "तत्पुरुषे कृति०"इससे सप्तमीका अलुक्।सूत्रमें नियोगोपलक्षणार्थ अर्थात् आवश्यकोपलक्षणार्थ ऋण शब्दका ग्रहण किया है, इससे पूर्वाह्णेगेयम्–साम इत्यादिमें समास हुआ । अनावश्यकमें मासे देया भिक्षा, ऐसा होगा ॥

७२१ संज्ञायाम् । २ । १ । ४४ ॥

सप्तम्यन्तं सुपा प्राग्वत् संज्ञायाम्।वाक्येन संज्ञानवगमान्नित्यसमासोऽयम् । अरण्येतिलकाः । वनेकसेरुकाः । हलदन्तात्सप्तम्या इत्यलुक् ॥

७२१–संज्ञामें सुबन्तके साथ सप्तम्यन्तका पूर्ववत् समास हो, वाक्यसे संज्ञाका अवगम न होनेके कारण इससे नित्य समास होगा । अरण्येतिलकाः । वनेकसेरुकाः। "हलदन्तात् सप्तम्याः० ९६६" इस सूत्रसे सप्तमीका अलुक् हुआहै ॥

७२२ क्तेनाहोरात्रावयवाः। २। १। ४५॥

अह्नो रात्रेश्चावयवाः सप्तम्यन्ताः क्तान्तेन सह प्राग्वत्। पूर्वाह्णकृतम्। अपररात्रकृतम्। अवयवग्रहणं किम्। अह्नि दृष्टम्॥

७२२-अहन् और रात्रिके अवयववाचक सप्तम्यन्त पदका क्तान्त पदके साथ पूर्ववत् समास हो,जैसे-पूर्वाह्णकृतम्, अपररात्री कृतम्=अपररात्रकृतम्। अवयवग्रहण करनेसे अह्नि दृष्टम्, इस स्थलमें समास नहीं हुआ॥

७२३ तत्र। २। १। ४६॥

तत्रेत्येतत्सप्तम्यन्तं क्तान्तेन सह प्राग्वत्। तत्रभुक्तम्॥

७२३-"तत्र" इस सप्तम्यन्तका क्तान्तके साथ पूर्ववत् समास हो, जैसे-तत्रभुक्तम्॥

७२४ क्षेपे। २। १। ४७॥

सप्तम्यन्तं क्तान्तेन प्राग्वन्निन्दायाम्। अवतप्तेनकुलस्थितं त एतत्॥

७२४-निन्दा अर्थ गम्यमान रहते क्तान्तके साथ सप्तम्यन्तका पूर्ववत् समास हो, यथा-अवतप्तेनकुलस्थितं त एतत् यहां "कृद्ग्रहणे गतिकारक०" इस परिभाषासे 'नकुलस्थित' शब्दको क्तान्तत्व हुआ और उसके साथ 'अवतप्ते' इस सप्तम्यन्तका समास होकर "तत्पुरुषे कृति बहुलम् ९७२" इससे अलुक् हुआहै॥

७२५ पात्रेसमितादयश्च। २। १। ४८॥

एते निपात्यन्ते क्षेपे। पात्रेसमिताः। भोजनसमये एव संगताः न तु कार्ये। गेहेशूरः। गेहेनर्दी। आकृतिगणोऽयम्। चकारोऽवधारणार्थः। तेनैषां समासान्तरे घटकतया प्रवेशो न। परमाः पात्रेसमिताः॥

७२५-निन्दा गम्यमान रहते 'पात्रेसमिताः' इत्यादि पदोंका निपातन करतेहैं, जैसे-पात्रेसमिताः, अर्थात् भोजनकालमें ही संगत हैं कार्यमें नहीं। जैसे-गेहेशूरः, गेहेनर्दी। यह आकृतिगण है, चकार अवधारणार्थ है, इस कारण इसका समासान्तरमें घटकतया अर्थात् अवयव होकर प्रवेश नहीं होगा, इससे परमाः पात्रेसमिताः ऐसे ही हुआ और "सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ७४०" इससे समास नहीं हुआ॥

७२६ पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन। २। १। ४९॥

विशेषणं विशेष्येणेति सिद्धे पूर्वनिपातनियमार्थं सूत्रम्। एकशब्दस्य दिक्संख्ये संज्ञायामिति नियमबाधनार्थं च। पूर्वं स्नातः पश्चादनुलिप्तः स्नातानुलिप्तः। एकनाथः। सर्वयाज्ञिकाः। जरन्नैयायिकाः। पुराणमीमांसकाः। नवपाठकाः। केवलवैयाकरणाः॥

७२६-पूर्व काल, एक, सर्व, जरत्, पुराण, नव और केवल शब्दका समानाधिकरणके साथ समास हो। "विशेषणं विशेष्येण० ७३६" इस सूत्रसे समास सिद्ध होनेपर भी पूर्वनिपातके निमित्त यह सूत्र है, और एक शब्दका "दिक् संख्ये संज्ञायाम् ७२७" इस सूत्रसे जो संज्ञाविषयमें नियम कियाहै, उसके भी बाधके निमित्त है, जैसे-पूर्वं स्नातः पश्चात् अनुलिप्तः, इस विग्रहमें स्नातानुलिप्तः। एकनाथः। सर्वयाज्ञिकाः। जरन्नैयायिकाः। पुराणमीमांसकाः। नवपाठकाः। केवलवैयाकरणाः॥

७२७ दिक्संख्ये संज्ञायाम्। २। १। ५०॥

समानाधिकरणेनेत्या पादपरिसमाप्तेरधिकारः। संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम्। पूर्वेषु कामशमी। सप्तर्षयः। नेह। उत्तरा वृक्षाः। पञ्च ब्राह्मणाः॥

७२७-संज्ञामें दिक् और संख्यावाचकका समानाधिकरणके साथ समास हो। पादसमाप्तिपर्यन्त 'समानाधिकरणेन' इस पदकी अनुवृत्ति चलेगी। "विशेषणं विशेष्येण०" इस सूत्रसे समास सिद्ध होनेपर भी यह सूत्र संज्ञाविषयमें ही दिक् और संख्यावाचकका समास हो, अन्यत्र नहीं, ऐसे नियमके निमित्त है, जैसे-पूर्वेषुकामशमी, सप्तर्षयः, उत्तरा वृक्षाः, पंच ब्राह्मणाः,इत्यादिमें तो संज्ञा न होनेके कारण समास नहीं हुआ॥

७२८ तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च। २। १। ५१॥

तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये प्राग्वद्वा। पूर्वस्यां शालायां भवः पौर्वशालः। समासे कृते दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञ इति ञः॥ सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः॥ * ॥ आपरशालः। पूर्वा शाला प्रिया यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ कृते प्रियाशब्दे उत्तरपदे पूर्वयोस्तत्पुरुषः। तेन शालाशब्दे आकार उदात्तः। पूर्वशालाप्रियः। दिक्षु समाहारो नास्त्यनभिधानात्॥ संख्यायास्तद्धितार्थे। षण्णां मातॄणामपत्यं षाण्मातुरः। पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहाववान्तरतत्पुरुषस्य विकल्पे प्राप्ते॥ द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्॥ * ॥

७२८-तद्धितार्थविषयमें उत्तरपद परे रहते और समाहारमें दिग्वाचक और संख्यावाचकका पूर्वकी समान विकल्प करके समास हो, जैसे-पूर्वस्यां शालायां भवः-इस विग्रहमें पौर्वशालः, यहां समास करनेपर "दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः १३२८" इस सूत्रसे ञप्रत्यय हुआ। सर्वनामको वृत्तिमात्रमें पुंवद्भाव हो,इससे पुंवद्भाव हुआ। वैसे आपरशालः। 'पूर्वा

शाला प्रिया यस्य–यह त्रिपद बहुव्रीहि समास करके प्रिया शब्द उत्तर पदमें रहनेसे पूर्व दो पदोंका तत्पुरुष समास हुआ, इसलिये शाला शब्दका आकार उदात्त हुआ, पूर्वशालाप्रियः। अनभिधानके कारण दिग्वाचक शब्दका समाहार नहीं होगा। संख्यावाचकका तद्धितार्थमें जैसे–षण्णां मातॄणाम् अपत्यम्–इस विग्रहमें षाण्मातुरः। पञ्च गावो धनं यस्य–ऐसे त्रिपद बहुव्रीहि समासमें अवान्तर तत्पुरुषकी विकल्प करके प्राप्ति होनेपर द्वन्द्व तथा तत्पुरुषका उत्तरपद परे रहते नित्य समास कहना चाहिये, इस वार्तिकसे अवान्तर तत्पुरुषको नित्य समास होकर–

७२९ गोरतद्धितलुकि ।५।४।९२॥

गोन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तद्धितलुकि। पञ्चगवधनः। पञ्चानां गवां समाहारः॥

७२९–गो शब्दान्त तत्पुरुषसे समासान्त टच् प्रत्यय हो, तद्धितलुक्में नहीं, जैसे पञ्चगवधनः। पंचानां गवां समाहारः–इस विग्रहमें "तद्धितार्थ० ७२८" इससे समास करके–

७३० संख्यापूर्वो द्विगुः ।२।१।५२॥

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तः संख्यापूर्वो द्विगुः स्यात्॥

७३०–तद्धितार्थ (७२८) से उक्त जो त्रिविध समास उसमें संख्यावाचक पदपूर्वककी द्विगु संज्ञा हो। इससे द्विगुसंज्ञा होनेपर–

७३१ द्विगुरेकवचनम् । २ । ४ । १ ॥

द्विग्वर्थः समाहार एकवत्स्यात्। स नपुंसकमिति नपुंसकत्वम्। पञ्चगवम्॥

७३१–द्विगुसंज्ञक समाहार एकवत् हो। इससे समासान्त पदको एकवद्भाव और "स नपुंसकम् (८२१)" इससे नपुंसकत्व होकर, 'पञ्चगवम्' यह सिद्ध हुआ॥

७३२ कुत्सितानि कुत्सनैः ।२।१।५३॥

कुत्स्यमानानि कुत्सनैः सह प्राग्वत्। वैयाकरणखसूचिः। मीमांसकदुर्दुरूढः॥

७३२–कुत्सनवाचक शब्दके साथ कुत्स्यमानवाचक शब्दका पूर्ववत् समास हो, जैसे–वैयाकरणखसूचिः, मीमांसकदुर्दुरूढः। (सूचयतेः "अच इः" पृष्टः सन् प्रश्नं विस्मारयितुं खं सूचयति, अभ्यासवैधुर्यात्)॥

७३३ पापाणके कुत्सितैः ।२।१।५४॥

पूर्वसूत्रापवादः। पापनापितः। अणककुलालः॥

७३३–कुत्सितवाचक शब्दके साथ पाप और अणक शब्दका समास हो यह पूर्वसूत्रका अपवाद है। पापनापितः। अणककुलालः॥

७३४ उपमानानि सामान्यवचनैः । २ । १ । ५५ ॥

घन इव श्यामो घनश्यामः। इह पूर्वपदं तत्सदृशे लाक्षणिकमिति सूचयितुं लौकिकविग्रहे इवशब्दः प्रयुज्यते। पूर्वनिपातनियमार्थं सूत्रम्॥

७३४–उपमानवाचक शब्दके साथ सामान्यवचनका समास हो, जैसे–घन इव श्यामः=घनश्यामः, इस स्थानमें पूर्वपद तत्सदृशमें लाक्षणिक है, इस सूचनाके निमित्त इव शब्द लौकिक विग्रहमें प्रयुक्त है। यह सूत्र पूर्वनिपातनियमके निमित्त है॥

७३५ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे २ । १ । ५६ ॥

उपमेयं व्याघ्रादिभिः सह प्राग्वत्साधारणधर्मस्याप्रयोगे सति। विशेष्यस्य पूर्वनिपातार्थं सूत्रम्। पुरुषव्याघ्रः। नृसोमः। व्याघ्रादिराकृतिगणः। सामान्याप्रयोगे किम्। पुरुषो व्याघ्र इव शूरः॥

७३५–साधारण धर्मका अप्रयोग हो तो व्याघ्रादि शब्दोंके साथ उपमेयवाचक शब्दका पूर्ववत् समास हो। विशेष्यके पूर्वनिपातके निमित्त यह सूत्र कियाहै, जैसे–पुरुषः व्याघ्र इव=पुरुषव्याघ्रः, ना सोम इव=नृसोमः। व्याघ्रादि आकृतिगण है।

सामान्यके प्रयोग होनेपर, यथा–पुरुषो व्याघ्र इव शूरः, इस स्थलमें समास नहीं हुआ॥

७३६ विशेषणं विशेष्येण बहुलम् । २ । १ । ५७ ॥

भेदकं समानाधिकरणेन भेद्येन बहुलं प्राग्वत्। नीलमुत्पलं नीलोत्पलम्। बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम्। कृष्णसर्पः। क्वचिन्न। रामो जामदग्न्यः॥

७३६–समानाधिकरण भेद्यके साथ भेदकका पूर्ववत् बहुलप्रकारसे समास हो, जैसे–नीलञ्च तत् उत्पलम्=नीलोत्पलम्। बहुलग्रहणके कारण कहीं नित्य समास होगा, जैसे–कृष्णसर्पः। कहीं कहीं समास नहीं होगा, जैसे–रामो जामदग्न्यः॥

७३७ पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च । २ । १ । ५८ ॥

पूर्वनिपातनियमार्थमिदम्। पूर्ववैयाकरणः। अपराध्यापकः॥ अपरस्यार्धे पश्चभावो वक्तव्यः*। अपरश्चासावर्धश्च पश्चार्धः। कथमेकवीर इति। पूर्वकालैकेति बाधित्वा परत्वादनेन समासे वीरैक इति हि स्यात्। बहुलग्रहणाद्भविष्यति॥

७३७–पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम और वीर शब्दका समानाधिकरण भेद्यके साथ बहुलप्रकारसे समास हो। यह सूत्र पूर्वनिपातनियमके निमित्त है, जैसे–पूर्ववैयाकरणः, अपराध्यापकः। * अर्द्ध शब्द परे रहते अपर शब्दके स्थानमें पश्च आदेश हो। अपरश्चासौ अर्द्धश्चेति=पश्चार्द्धः।

"पूर्वकालैक० ७२६" इस सूत्रको बाध करके परत्वके कारण इस सूत्रसे समास होनेपर 'वीरैकः' ऐसा पद सिद्ध होगा, तब 'एकवीरः' यह शब्द कैसे हुआ? इस आशंकापर कहतेहैं कि, इस सूत्रमें अनुवृत्त बहुलग्रहणके कारण 'एकवीरः' पद सिद्ध होगा ॥

७३८ श्रेण्यादयः कृतादिभिः।२।१।५९॥

श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनं कर्तव्यम् ॥ * ॥ अश्रेणयः श्रेणयः कृताः श्रेणीकृताः ॥

७३८-श्रेणी आदि शब्दोंका कृतादिके साथ समास हो। इस सूत्रमें प्रथम आदि शब्द व्यवस्थावाची, द्वितीय आदि शब्द प्रकारवाची हैं। एक शिल्प अथवा एक पण्यसे जो जीवन धारण करे,उसके समूहको श्रेणी कहतेहैं। च्व्यर्थ(अभूततद्भाव) गम्यमान रहते ही श्रेण्यादिका कृतादिके साथ समास हो, ऐसा कहना चाहिये,जैसे-अश्रेणयः श्रेणयः कृताः=श्रेणीकृताः-इत्यादि ॥

७३९ क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ्।२।१।६०॥

नञ्विशिष्टेन क्तान्तेनानञ् क्तान्तं समस्यते। कृतं च तदकृतं च कृताकृतम् ॥ शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्॥*॥ शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः। देवब्राह्मणः॥

७३९-नञ्युक्त क्तान्तके साथ नञ्विहीन क्तान्त पदका समास हो, जैसे-कृतञ्च तत् अकृतञ्च=कृताकृतम्। शाकपार्थिवादिसिद्धिके निमित्त उत्तरपदलोपका उपसंख्यान करना चाहिये, जैसे-शाकप्रियः पार्थिवः=शाकपार्थिवः, देवप्रियः ब्राह्मणः=देवब्राह्मणः ॥

७४० सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः।२।१।६१॥

सद्वैद्यः। वक्ष्यमाणेन महत आकारः। महावैयाकरणः। पूज्यमानैः किम्। उत्कृष्टो गौः। पंकादुद्धृत इत्यर्थः॥

७४०-पूज्यमानवाचक शब्दके साथ सत्, महत्, परम और उत्कृष्ट शब्दका समास हो, जैसे-सद्वैद्यः। वक्ष्यमाण सूत्रसे महत् शब्दको आ होकर महावैयाकरणः।पूज्यमानवाचक न होनेपर यथा- उत्कृष्टो गौः (पंकमेंसे निकाली हुई गौ) इस स्थानमें गौको पूज्यमान न होनेके कारण समास नहीं हुआ ॥

७४१ वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम्।२।१।६२॥

गोवृन्दारकः। व्याघ्रादेराकृतिगणत्वादेव सिद्धे सामान्यप्रयोगार्थं वचनम्।

७४१-वृन्दारक, नाग और कुञ्जर शब्दके साथ पूज्यमानवाचक शब्दका समास हो, जैसे गोवृन्दारकः। वृन्दारक शब्दसे देवता, नाग शब्दसे अजगर सर्प और कुञ्जर शब्दसे हाथी जानना। व्याघ्रादिके आकृतिगण होनेसे ही यह बात सिद्ध थी, परन्तु सामान्य धर्मवाचकका जहां प्रयोग हो, वहां भी समासके निमित्त यह वचन कहा है ॥

७४२ कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने। २।१।६३॥

कतरकठः। कतरकलापः। गोत्रं च चरणैः सहेति जातित्वम्॥

७४२-जातिपरिप्रश्नार्थमें समानाधिकरणके साथ कतर और कतम शब्दका समास हो, जैसे-कतरकठः, कतमकलापः, इस स्थानमें "गोत्रञ्च चरणैः सह" इस पारिभाषिक लक्षणसे जातित्व हुआ है ॥

७४३ किं क्षेपे।२।१।६४॥

कुत्सितो राजा। किं राजा। यो न रक्षति॥

७४३-निन्दा गम्यमान रहते किम् शब्दका समानाधिकरणके साथ समास हो, जैसे-कुत्सितो राजा=किंराजा, अर्थात् जो राजा रक्षा न करै ॥

७४४ पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः।२।१।६५॥

७४४-पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय, गृष्टि, धेनु, वशा, वेहत्, वष्कयणी, प्रवक्तृ, श्रोत्रिय, अध्यापक और धूर्त शब्दोंके साथ जातिवाचक शब्दका समास हो ॥

७४५ तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः।१।२।४२॥

७४५-समानाधिकरण तत्पुरुषकी कर्मधारय संज्ञा हो ॥

७४६ पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु।६।३।४२॥

कर्मधारये जातीयदेशीययोश्च परतो भाषितपुंस्कात्पर ऊङभावो यस्मिंस्तथाभूतं पूर्वं पुंवत्। पूरणीप्रियादिष्वप्राप्तः पुंवद्भावो विधीयते। महानवमी। कृष्णचतुर्दशी। महाप्रिया।तथा कोपधादेः प्रतिषिद्धः पुंवद्भावः कर्मधारयादौ प्रतिप्रसूयते। पाचकस्त्री। दत्तभार्या। पञ्चमभार्या। स्रौघ्नभार्या। सुकेशभार्या। ब्राह्मणभार्या। एवं पाचकजातीया पाचकदेशीयेत्यादि। इभपोटा। पोटा स्त्रीपुंसलक्षणा। इभयुवतिः। अग्निस्तोकः। उदश्वित्कतिपयम्। गृष्टिः सकृत्प्रसूता। गोगृष्टिः। धेनुर्नवप्रसूतिका। गोधेनुः। वशा वन्ध्या। गोवशा। वेहद्गर्भघातिनी। गोवेहत्। वष्कयणी तरुणवत्सा। गोवष्कयणी। कठप्रवक्ता। कठश्रोत्रियः। कठाध्यापकः। कठधूर्तः॥

७४६-कर्मधारयमें, जातीय और देशीय प्रत्ययके परे

भाषितपुंस्कके उत्तर ऊङ्का अभाव हो जिसमें ऐसे स्त्रीवाचक पूर्वपदको पुंवद्भाव हो । इस सूत्रसे पूरणी, प्रियादि परे रहते अप्राप्त जो पुंवद्भाव उसका विधान कियाहै, जैसे—महानवमी (नवानां पूरणी "तस्य पूरणे डट्" "नान्तादसंख्यादेर्मट्" टित्वान्ङीप्) महती चासौ नवमी ऐसे विग्रहमें समास होकर पूरणप्रत्ययान्त स्त्रीवाचक शब्द परे रहते भी स्त्रीवाचक पूर्वपद (महती) को पुंवद्भाव तदुत्तर, महत् शब्दको आकार हुआ,तब 'महानवमी' पद बना, वैसे कृष्णचतुर्दशी, महाप्रिया । "न कोपधायाः ८३८" इत्यादि सूत्रोंसे कोपधादिके प्रतिषिद्ध पुंवद्भावका भी कर्मधारयादिमें प्रतिप्रसव (विधान) इस सूत्रसे होताहै, जैसे—पाचकस्त्री, दत्तभार्या, पञ्चमभार्या, स्रौघ्नभार्या, सुकेशभार्या, ब्राह्मणभार्या । इसी प्रकार पाचकजातीया (पाचकप्रकारवती) पाचकदेशीया—इत्यादि। पाचकजातीयामें "प्रकारवचने जातीयर्" से जातीयर् और पाचकदेशीयामें "ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः" इससे थोडी असमाप्तिमें देशीयर् प्रत्यय हुआ । पोटादि यथा—इभी चासौ पोटा=इभपोटा, पोटा अर्थात् स्त्रीपुरुषलक्षणवाली । इभयुवतिः । अग्निस्तोकः । उदश्वित् । कतिपयम् । गृष्टिः अर्थात् पहलौनब्याईहुई गौ, गोगृष्टिः । धेनुः अर्थात् नवप्रसूतिका—गोधेनुः । वशा अर्थात् वन्ध्या—गोवशा । वेहत् अर्थात् गर्भघातिनी—गोवेहत् । बष्कयणी अर्थात् तरुणवत्सा—गोबष्कयणी। कठप्रवक्ता । कठश्रोत्रियः । कठाध्यापकः । कठधूर्तः ॥

७४७ प्रशंसावचनैश्च । २ । १ । ६६ ॥

एतैः सह जातिः प्राग्वत् । गोमतल्लिका । गोमचर्चिका । गोप्रकाण्डम् । गवोद्धः । गोतल्लजः । प्रशस्ता गौरित्यर्थः । मतल्लिकादयो नियतलिङ्गा न तु विशेष्यनिघ्नाः । जातिः किम् । कुमारी मतल्लिका ॥

७४७—प्रशंसावाचक शब्दोंके साथ जातिवाचकका समास हो, यथा—गौः चासौ मतल्लिका=गोमतल्लिका, गोमचर्चिका, गोप्रकाण्डम्, गवोद्धः, गोतल्लजः अर्थात् प्रशस्त गौ । मतल्लिकादि शब्द नियतलिङ्ग हैं । विशेष्यनिघ्न नहीं हैं । जातिवाचक न होनेपर जैसे—कुमारी मतल्लिका-इत्यादिमें समास न हुआ, कारण कि, यहां कुमारी शब्द जातिवाचक नहीं है ॥

७४८ युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः । २ । १ । ६७ ॥

पूर्वनिपातनियमार्थं सूत्रम् । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया युवतिशब्दोऽपि समस्यते । युवा खलतिः युवखलतिः । युवतिः खलती युवखलती । युवजरती । युवत्यामेव जरतीधर्मोपलम्भेन तद्रूपारोपात्सामानाधिकरण्यम् ॥

७४८—खलति, पलित, वलिन और जरती शब्दके साथ युवन् शब्दका समास हो । यह सूत्र पूर्वनिपातनियमार्थ है । "प्रातिपदिकग्रहणे०" इस परिभाषासे लङ्गविशिष्ट युवति शब्दका भी पूर्ववत् समास होगा । 'युवा खलतिः' इस विग्रहमें युवखलतिः । युवतिः खलती=युवखलती । युवजरती, यहां युवतिमें ही जरतीधर्मकी उपलब्धिसे तद्रूप (जरतीस्वरूप) के आरोपके कारण युवति शब्दके साथ जरतीका सामानाधिकरण्य जानना ॥

७४९ कृत्यतुल्याख्या अजात्या।२।१।६८।

भोज्योष्णम् । तुल्यश्वेतः । सदृशश्वेतः । अजात्या किम् । भोज्य ओदनः । प्रतिषेधसामर्थ्याद्विशेषणसमासोऽपि न ॥

७४९—कृत्यप्रत्ययान्त शब्द और तुल्याख्य शब्दका जातिवाचकसे भिन्नके साथ समास हो, जैसे—भोज्योष्णम्,तुल्यश्वेतः, सदृशश्वेतः। जातिभिन्न न होनेपर, जैसे—भोज्य ओदनः, इस स्थलमें समास नहीं हुआ और प्रतिषेधकी सामर्थ्यसे विशेषणसमास भी नहीं होगा ॥

७५० वर्णो वर्णेन । २ । १ । ६९ ॥

समानाधिकरणेन सह प्राग्वत्।कृष्णसारङ्गः॥

७५०—समानाधिकरण वर्णवाचक शब्दके साथ वर्णवाचकका समास हो, जैसे—कृष्णश्चासौ सारंगः=कृष्णसारङ्गः ॥

७५१ कडाराः कर्मधारये ।२।२।३८॥

कडारादयः शब्दाः कर्मधारये वा पूर्वं प्रयोज्याः । कडारजैमिनिः । जैमिनिकडारः ॥

७५१—कर्मधारय समासमें कडार आदि शब्द विकल्प करके पूर्वमें प्रयुक्त हों, जैसे—कडारश्चासौ जैमिनिः=कडारजैमिनिः, जैमिनिकडारः ॥

७५२ कुमारः श्रमणादिभिः ।२।१।७०॥

कुमारी श्रमणा कुमारश्रमणा । इह गणे श्रमणा प्रव्रजिता गर्भिणीत्यादयः स्त्रीलिंगाः पठ्यन्ते । लिंगविशिष्टपरिभाषाया एतदेव ज्ञापकं बोध्यम् ॥

७५२—श्रमणादि शब्दके साथ कुमार शब्दका समास हो, जैसे—कुमारी चासौ श्रमणा=कुमारश्रमणा । श्रमणादि गणमें श्रमणा, प्रव्रजिता, गर्भिणी—इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्द पढे गये हैं, लिंगविशिष्ट परिभाषाका यही ज्ञापक समझना[1] ॥

७५३ चतुष्पादो गर्भिण्या । २।१।७१॥

चतुष्पाज्जातिवाचिनो गर्भिणीशब्देन सह प्राग्वत् । गोगर्भिणी ॥

---

[1] मतल्लिका मचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ । प्रशस्तवाचकान्यमूनीत्यमरः । अर्थात् मतल्लिका, मचर्चिका, प्रकाण्ड, उद्ध, तल्लज इतने शब्द प्रशस्तवाचक हैं, यह अमरकोशसे जानाजाताहै ॥

[1] आशय यह है कि, श्रमणादि शब्दोंको स्त्रीलिङ्ग होनेके कारण 'कुमार' शब्दके साथ सामानाधिकरण्य होगा नहीं, कुमारी शब्दसे होगा पर उसका सूत्रमें उपादान है नहीं, फिर उन शब्दोंका गणमें जो पाठ किया उसके सामर्थ्यसे "प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्" यह परिभाषा ज्ञापित होतीहै ॥

७५३–चतुष्पाद् जातिवाचकका गर्भिणी शब्दके साथ समास हो, जैसे–गौः चासौ गर्भिणी=गोगर्भिणी । यहां "पोटायुवति०" इस सूत्रसे 'जातिः' इसकी मण्डूकप्लुति न्यायसे अनुवृत्ति होती है, इससे 'कालाक्षी गर्भिणी' यहां समास न हुआ ॥

७५४ मयूरव्यंसकादयश्च ।२।१।७२॥

एते निपात्यन्ते । मयूरो व्यंसकः मयूरव्यंसकः। व्यंसको धूर्तः। उदक्चावाक्च उच्चावचम्। निश्चितं च प्रचितं च निश्चप्रचम् । नास्ति किंचन यस्य सः अकिंचनः । नास्ति कुतो भयं यस्य सोऽकुतोभयः। अन्यो राजा राजान्तरम् । चिदेव चिन्मात्रम्। आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये॥ अश्नीत पिबतेत्येवं सततं यत्राभिधीयते सा अश्नीतपिबता । पचतभृज्जता । खादतमोदता॥ एहीडादयोऽन्यपदार्थे ॥ ॥ एहीड इति यस्मिन् कर्मणि तदेहीडम् । एहियवम् । उद्धर कोष्ठादुत्सृज देहीति यस्यां क्रियायां सा उद्धरोत्सृजा । उद्धमविधमा । असातत्यार्थमिह पाठः ॥ जहि-कर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्तारं चाभिदधाति॥ ॥ जहीत्येतत्कर्मणा बहुलं समस्यते आभीक्ष्ण्ये गम्ये समासेन चेत्कर्ताऽभिधीयत इत्यर्थः । जहिजोडः। जहिस्तम्बः ॥ अविहितलक्षणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादौ द्रष्टव्यः॥

७५४–मयूरव्यंसकादि शब्द निपातनसे सिद्ध हों, जैसे–मयूरो व्यंसकः=मयूरव्यंसकः, व्यंसक यह धूर्तकी संज्ञा है । उदक् च अवाक् च=उच्चावचम् । निश्चितञ्च प्रचितञ्च= निश्चप्रचम् । नास्ति किंचन यस्य सः अकिंचनः । नास्ति कुतो भयं यस्य सः=अकुतोभयः । अन्यो राजा=राजान्तरम्, चिदेव=चिन्मात्रम् ।

क्रियासातत्यमें आख्यातके साथ आख्यातका समास हो, जैसे अश्नीत पिबतेत्येवं सततं यत्राभिधीयते सा=अश्नीतपिबता । पचतभृज्जता, खादतमोदता–इत्यादिभी इसी प्रकार जानने ।

अन्यपदार्थमें एहीडादि पदका समास हो । एहीड इति यस्मिन् कर्मणि तत्=एहीडम् । एहियवम् । उद्धर कोष्ठादुत्सृज देहीति यस्यां क्रियायां सा=उद्धरोत्सृजा । उद्धमविधमा । यहां असातत्यार्थ इस गणसूत्रका पाठ है ।

पौनःपुन्य गम्यमान रहते यदि समाससे कर्त्ताका कथन होता हो तो कर्मके साथ'जहि'का बहुल प्रकारसे समास हो। जहि जोडमिति आभीक्ष्ण्येन य आह सः=जहिजोडः । जहिस्तम्बः । जिसका तत्पुरुष समास किसीसे विहित नहीं है, उसका मयूरव्यंसकादिगणमें पाठ समझना ॥

७५५ ईषदकृता ।२।२।७॥

ईषत्पिङ्गलः॥ ईषद्गुणवचनेनेति वाच्यम्॥*॥ ईषद्रक्तम् ॥

७५५–कृत्प्रत्ययान्तसे भिन्न पदके साथ ईषत् शब्दका समास हो, जैसे–ईषत्पिङ्गलः ।

गुणवाचक शब्दके साथ ईषत् शब्दका समास हो, यह कहना चाहिये * ईषद्रक्तम् ॥

७५६ नञ् ।२।२।६॥

नञ् सुपा सह समस्यते ॥

७५६–सुबन्तके साथ नञ्का समास हो ॥

७५७ नलोपो नञः ।६।३।७३॥

नञो नस्य लोपः स्यादुत्तरपदे । न ब्राह्मणः अब्राह्मणः ॥

७५७–उत्तरपद परे रहते नञ्के नकारका लोप हो, जैसे–न ब्राह्मणः=अब्राह्मणः ॥

७५८ तस्मान्नुडचि ।६।३।७४॥

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात् । अनश्वः । अर्थाभावेऽव्ययीभावेन सहायं विकल्पते । रक्षोहागमलध्वसंदेहाः प्रयोजनमिति अद्रुतायामसंहितमिति च भाष्यवार्तिकप्रयोगात् । तेनानुपलब्धिरविवादोऽविघ्नमित्यादि सिद्धम् ॥ नञो नलोपस्तिङि क्षेपे ॥ * ॥ अपचसि त्वं जाल्म । नैकधेत्यादौ तु नशब्देन सह सुपेति समासः ॥

७५८–लुप्तनकारक नञ्से परे अजादि उत्तरपदको नुडागम हो, जैसे–न अश्वः=अनश्वः ।

अर्थाभावमें अव्ययीभाव समासके साथ यह समास विकल्प करके होताहै अर्थात् पक्षमें अव्ययीभाव भी होताहै, कारण कि 'रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्', 'अद्रुतायामसंहितम्' इन (भाष्य तथा वार्त्तिक) में तत्पुरुष करके–'असन्देहाः'और अव्ययीभाव करके'असंहितम्'यह प्रयोग कियेहैं,नहीं तो अर्थाभावमें 'निर्मक्षिकम्' इत्यादि स्थलमें अव्ययीभावको चरितार्थ होनेसे परत्वसे'असंहितम्'इत्यादि प्रयोगोंमें तत्पुरुष ही हो जाता, उपरोक्त ज्ञापन होनेपर असंहितम्, अविघ्नम्, अविवादः,अनुपलब्धिः, असन्देहः–इत्यादि सिद्ध हुए ।

निन्दामें तिङन्त पद परे रहते नञ्के नकारका लोप हो * जैसे–अपचसि त्वं जाल्म ।

'नैकधा' इत्यादिमें नके साथ "सह सुपा ६४९" इससे समास होगा ॥

७५९ नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या ।६।३।७५॥

पादिति शत्रन्तः । वेदा इत्यसुन्नन्तः । न सत्या असत्याः न असत्या नासत्याः । न मुञ्चतीति नमुचिः । न कुलमस्य । न खमस्य । न स्त्री पुमान्। स्त्रीपुंसयोः पुंसकभावो निपातनात्।

न क्षरतीति नक्षत्रम् । क्षीयतेः क्षरतेर्वा क्षत्रमिति निपात्यते । न क्रामतीति नक्रः । क्रमेर्डः । न अकमस्मिन्निति नाकः ॥

७५९–नभ्राट्,नपात्,नवेदाः,नासत्याः, नमुचि,नकुल,नख, नपुंसक,नक्षत्र,नक्र,नाक,इनके नकारका लोप न हो(यह स्वाभाविक नकारयुक्त हैं)। पात् यह शतृप्रत्ययान्त है । वेदाः यह असुन्नन्त है । न सत्याः=असत्याः,न असत्याः=नासत्याः। न मुञ्चतीति=नमुचिः । न कुलमस्य नकुलः । न खम् अस्य=नखः । न स्त्री पुमान्=नपुंसकम्, यहां स्त्रीपुंसको इस सूत्रसे निपातनसे पुंसक आदेश हुआ है । न क्षरतीति=नक्षत्रम् । क्षीयतेः क्षरतेर्वा क्षत्रम्, यह निपातनसे सिद्ध हुआहै । न क्रामतीति= नक्रः, यहां निपातनसे क्रम् धातुसे डप्रत्यय हुआहै । न अकमस्मिन्निति=नाकः ॥

७६० नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् । ६ । ३ । ७७ ॥

नग इत्यत्र नञ् प्रकृत्या वा । नगाः, अगाः, पर्वताः । अप्राणिष्विति किम् । अगो वृषलः शीतेन । नित्यं क्रीडेत्यतो नित्यमित्यनुवर्तमाने॥

७६०–अप्राणी होनेपर नग शब्दके नकारका विकल्प करके लोप न हो, जैसे–नगाः, अगाः, पर्वताः । प्राणी होनेपर जैसे–अगो वृषलः शीतेन, अर्थात् शूद्र शीतके कारण अचल होताहै ।

"नित्यं क्रीडा० ७११" इस सूत्रसे 'नित्यम्' पदकी अनुवृत्ति होनेपर– ॥

७६१ कुगतिप्रादयः ।२।२।१८॥

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः । गतिश्चेत्यनुवर्तमाने ॥

७६१–कु, गतिसंज्ञक शब्द और प्रादिका सुबन्तके साथ नित्य समास हो, जैसे–कुत्सितः पुरुषः=कुपुरुषः ।

"गतिश्च" इस सूत्रसे गति शब्दकी अनुवृत्ति होनेपर–॥

७६२ ऊर्यादिच्विडाचश्च।१।४।६१॥

एते क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः । ऊरीकृत्य। शुक्लीकृत्य । पटपटाकृत्य ॥ कारिकाशब्दस्योपसंख्यानम्॥*॥कारिका क्रिया । कारिकाकृत्य॥

७६२–ऊरी आदि शब्द,च्विप्रत्ययान्त शब्द और डाच्प्रत्ययान्त शब्दोंकी क्रियायोगमें गतिसंज्ञा हो । च्वि, डाच् प्रत्यय कृ, भू, अस् धातुके योगमें होते हैं, उनके साहचर्यसे ऊर्यादि शब्द भी पूर्वोक्त धातुके योगहीमें गतिसंज्ञक होंगे, इसलिये 'ऊरी पक्त्वा' यहां गतिसंज्ञा नहीं होती है, माधवादिग्रन्थमें तो 'आविः, प्रादुः, शब्दको छोडकर और सब शब्दोंको 'कृ' धातुके योगहीमें गतिसंज्ञा है'ऐसा स्थित है, वैसेही उदाहरण देतेहैं।ऊरीकृत्य। शुक्लीकृत्य। पटपटाकृत्य।।* कारिका शब्दकी गतिसंज्ञा हो, कारिका अर्थात् क्रिया। कारिकाकृत्य ॥

७६३ अनुकरणं चानितिपरम्।१।४।६२॥

खाट्कृत्य । अनितिपरं किम् । खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत् ॥

७६३–इति शब्दसे भिन्न शब्द परे रहते अनुकरण शब्दकी गतिसंज्ञा हो, जैसे–खाट्कृत्य ।

'अनितिपरम्' कहनेसे 'खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत्' यहां गतिसंज्ञा न हुई, नहीं तो समास होकर क्त्वाको ल्यप् आदेश होजाता ॥

७६४ आदरानादरयोः सदसती । १ । ४ । ६३ ॥

सत्कृत्य । असत्कृत्य ॥

७६४–आदरार्थमें सत् शब्द और अनादारमें असत् शब्दकी गतिसंज्ञा हो, जैसे–सत्कृत्य । असत्कृत्य ॥

७६५ भूषणेऽलम् । १ । ४ । ६४ ॥

अलंकृत्य । भूषणे किम् । अलंकृत्वौदनं गतः। पर्याप्तमित्यर्थः । अनुकरणमित्यादित्रिसूत्री स्वभावात् कृञ्विषया ॥

७६५–भूषणार्थमें अलम् शब्दकी गतिसंज्ञा हो, जैसे– अलंकृत्य । भूषणार्थ न होनेपर जैसे–'अलंकृत्वा ओदनं गतः' इस स्थानमें पर्याप्त अर्थ होनेके कारण गतिसंज्ञा नहीं हुई।

"अनुकरणञ्चानितिपरम् ७६३"इस सूत्रसे "भूषणेऽलम्" इस सूत्रतक तीन सूत्र स्वभावसे कृ धातुके योगमें लगते हैं ॥

७६६ अन्तरपरिग्रहे । १ ।४। ६५ ॥

अन्तर्हत्य । मध्ये हत्वेत्यर्थः । अपरिग्रहे किम्। अन्तर्हत्वा गतः। हतं परिगृह्य गत इत्यर्थः॥

७६६–परिग्रहसे भिन्न अर्थमें अन्तर शब्दकी गति संज्ञा हो, जैसे–अन्तर्हत्य, अर्थात् मध्यमें हनन करके गया ।

'अपरिग्रह' क्यों कहा ? तो 'अन्तर्हत्वा गतः' (मारे हुएको लेकर गया) यहां गति संज्ञा न हो ॥

७६७ कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते । १ । ४ । ६६ ॥

कणेहत्य पयः पिबति । मनोहत्य । कणे शब्दः सप्तमीप्रतिरूपको निपातोऽभिलाषातिशये वर्तते । मनःशब्दोऽप्यत्रैव ॥

७६७–श्रद्धाका प्रतिघात हो तो, कणे और मनस् शब्दकी गति संज्ञा हो, जैसे कणे हत्य पयः पिबति । मनोहत्य । कणे शब्द सप्तमीप्रतिरूपक निपात है, इसका अर्थ अत्यन्त अभिलाषा है, मनस् शब्दका भी यही अर्थ है। श्रद्धाप्रतीघात न होनेपर कणे हत्वा ॥

७६८ पुरोऽव्ययम् । १।४ । ६७ ॥

पुरस्कृत्य ॥

७६८ पुरस् इस अव्यय शब्दकी गति संज्ञा हो, जैसे–पुरस्कृत्य ॥

७६९ अस्तं च । १ । ४ । ६८ ॥

अस्तमिति मान्तमव्ययं गतिसंज्ञं स्यात् । अस्तंगत्य ॥

७६९—अस्तम् इस मकारान्त अव्यय शब्दकी गति संज्ञा हो, जैसे—अस्तंगत्य ॥

७७० अच्छ गत्यर्थवदेषु।१।४।६९॥

अव्ययमित्येव । अच्छगत्य । अच्छोद्य । अभिमुखं गत्वा उक्त्वा चेत्यर्थः । अव्ययं किम् । जलमच्छं गच्छति ॥

७७०—गत्यर्थ और वद् धातु परे रहते अच्छ इस अव्ययकी गति संज्ञा हो, जैसे-अच्छगत्य, अच्छोद्य, अर्थात् अभिमुखमें जाकर तथा कहकर ।

अव्यय न होनेपर, जैसे—जलमच्छं गच्छति, अर्थात् निर्मल जल जाताहै, इस स्थानमें गति संज्ञा नहीं हुई ॥

७७१ अदोनुपदेशे । १ । ४ । ७० ॥

अदःकृत्य अदःकृतम् । परं प्रत्युपदेशे प्रत्युदाहरणम् । अदः कृत्वा अदः कुरु ॥

७७१—उपदेश न हो तो अदस् शब्दकी गति संज्ञा हो, जैसे—अदःकृत्य अदः कृतम् ।

अन्यके प्रति उपदेश होनेपर यथा—अदः कृत्वा अदः कुरु॥

७७२ तिरोऽन्तर्धौ । १ । ४ । ७१ ॥

तिरोभूय ॥

७७२—अन्तर्द्धान अर्थमें तिरस् शब्दकी गति संज्ञा हो, जैसे—तिरोभूय ॥

७७३ विभाषा कृञि । १ । ४ । ७२ ॥

तिरस्कृत्य । तिरःकृत्य । तिरः कृत्वा ॥

७७३—कृ धातु परे रहते तिरस् शब्दकी विकल्प करके गति संज्ञा हो, गति संज्ञाके अभाव पक्षमें समास और "तिरसोऽन्यतरस्याम्" इससे सत्व नहीं होगा, जैसे तिरस्कृत्य,तिरःकृत्य, तिरः कृत्वा ॥

७७४ उपाजेऽन्वाजे । १ । ४ । ७३ ॥

एतौ कृञि वा गतिसंज्ञौ स्तः । उपाजेकृत्य । उपाजे कृत्वा । अन्वाजेकृत्य । अन्वाजे कृत्वा । दुर्बलस्य बलमाधायेत्यर्थः ॥

७७४—कृ धातु परे रहते उपाजे और अन्वाजे शब्दकी विकल्प करके गति संज्ञा हो । यह दो शब्द एकारान्त विभक्तिप्रतिरूपक निपात हैं, उपाजेकृत्य, उपाजे कृत्वा । अन्वाजेकृत्य, अन्वाजे कृत्वा (दुर्बलका बलाधान करके) ॥

७७५ साक्षात्प्रभृतीनि च । १ । ४ । ७४ ॥

कृञि वा गतिसंज्ञानि स्युः ॥ च्व्यर्थ इति वाच्यम् ॥ * ॥ साक्षात्कृत्य । साक्षात्कृत्वा । लवणंकृत्य । लवणं कृत्वा । मान्तत्वं निपातनात् ॥

७७५—कृ धातु परे रहते च्विप्रत्ययार्थमें साक्षात् प्रभृति शब्दकी विकल्प करके गति संज्ञा हो, जैसे—साक्षात्कृत्य, साक्षात् कृत्वा । लवणंकृत्य, लवणं कृत्वा । निपातनसे मकारान्तत्व हुआ है ॥

७७६ अनत्याधान उरसिमनसी । १ । ४ । ७५ ॥

उरसिकृत्य । उरसि कृत्वा । अभ्युपगम्येत्यर्थः । मनसिकृत्य । मनसि कृत्वा । निश्चित्येत्यर्थः । अत्याधानमुपश्लेषणं तत्र न । उरसि कृत्वा पाणिं शेते ॥

७७६—कृ धातु परे रहते अनत्याधान अर्थमें उरसि और मनसि शब्दकी विकल्प करके गति संज्ञा हो, जैसे—उरसिकृत्य, उरसि कृत्वा,अर्थात् अभ्युपगम करके।मनसिकृत्य,मनसि कृत्य, अर्थात् मनमें निश्चयकरके । अत्याधान अर्थात् उपश्लेष होनेपर न होगा, जैसे—'उरसि कृत्वा पाणि शेते'यहां न हुआ ॥

७७७ मध्ये पदे निवचने च । १ । ४ । ७६ ॥

एते कृञि वा गतिसंज्ञाः स्युरनत्याधाने । मध्येकृत्य।मध्ये कृत्वा। पदेकृत्य।पदे कृत्वा।निवचनेकृत्य । निवचने कृत्वा । वाचं नियम्येत्यर्थः ॥

७७७—कृ धातु परे रहते अनत्याधान अर्थमें मध्ये, पदे और निवचने शब्दोंकी विकल्प करके गति संज्ञा हो, जैसे—मध्येकृत्य, मध्ये कृत्वा । पदेकृत्य, पदे कृत्वा । निवचनेकृत्य, निवचने कृत्वा, अर्थात् वाक्यसंयम करके । अनत्याधान अर्थमें इन तीनों शब्दोंको एदन्तत्व निपातन है ॥

७७८ नित्यं हस्ते पाणावुपयमने । १ । ४ । ७७ ॥

कृञि । उपयमनं विवाहः । स्वीकारमात्रमित्यन्ये । हस्तेकृत्य । पाणौकृत्य ॥

७७८—कृ धातु परे रहते उपयम अर्थात् विवाह अर्थमें किसीके मतसे स्वीकार अर्थमें हस्ते और पाणौ शब्दकी गति संज्ञा हो, जैसे—हस्तेकृत्य पाणौकृत्य ॥

७७९ प्राध्वं बन्धने । १ । ४ । ७८ ॥

प्राध्वमित्यव्ययम् । प्राध्वंकृत्य । बन्धनेनानुकूल्यं कृत्वेत्यर्थः । प्रार्थनादिना त्वानुकूल्यकरणे। प्राध्वं कृत्वा ॥

७७९—कृ धातु परे रहते बन्धन अर्थमें प्राध्वम् शब्दकी गतिसंज्ञा हो, जैसे—प्राध्वंकृत्य अर्थात् बंधनसे आनुकूल्य करके ।

प्रार्थनादिसे आनुकूल्य करण हो तो न हो, जैसे—प्राध्वं कृत्वा ॥

७८० जीविकोपनिषदावौपम्ये । १ । ४ । ७९ ॥

जीविकामिव कृत्वा जीविकाकृत्य । उपनिषदमिव कृत्वा उपनिषत्कृत्य । औपम्ये किम् ।

जीविकां कृत्वा । प्रादिग्रहणमगत्यर्थम् । सुपुरुषः । अत्र वार्तिकानि ॥ प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया ॥*॥ प्रगत आचार्यः प्राचार्यः ॥ अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया ॥ * ॥ अतिक्रान्तो मालामतिमालः ॥ अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया ॥ * ॥ अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः ॥ पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या ॥ * ॥ परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः ॥ निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ॥ * ॥ निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः ॥ कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधः ॥ * ॥ वृक्षं प्रति ॥

७८०–औपम्यार्थमें जीविका और उपनिषद् शब्दकी गति संज्ञा हो, जैसे–' जीविकामिव कृत्वा ' इस वाक्यमें जीविकाकृत्य । उपनिषदमिव कृत्वा=उपनिषत्कृत्य ।

औपम्यार्थ न होनेपर गति संज्ञा न होगी, जैसे–जीविकां कृत्वा । " कुगतिप्रादयः " इस सूत्रमें प्रादिग्रहण अगत्यर्थ है अर्थात् जहां गति संज्ञा नहीं हुई है वहां भी प्रादिके समासके निमित्त है, नहीं तो क्रियायोगहीमें गति संज्ञा होनेसे ' सुपुरुषः '–इत्यादिमें समास नहीं होता ।

इस स्थलमें वार्त्तिक हैं–

गतादि अर्थमें प्रथमान्तके साथ प्रादिका समास हो* जैसे–प्रगतः आचार्यः=प्राचार्यः ।

क्रान्तादि अर्थमें अत्यादि शब्दोंका द्वितीयान्तके साथ समास हो * जैसे–अतिक्रान्तो मालाम्=अतिमालः ।

क्रुष्टादि अर्थमें तृतीयान्त पदके साथ अवादि शब्दोंका समास हो * जैसे–अवक्रुष्टः कोकिलया=अवकोकिलः ।

ग्लानादि अर्थमें चतुर्थ्यन्तके साथ परि आदि शब्दोंका समास हो * जैसे–परिग्लानोऽध्ययनाय=पर्यध्ययनः ।

क्रान्तादि अर्थमें पञ्चम्यन्तके साथ निरादि अव्यय शब्दका समास हो * जैसे–निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः=निष्कौशाम्बिः ।

कर्मप्रवचनीयसंज्ञक शब्दका समास न हो * जैसे–वृक्षंप्रति–इत्यादि ॥

७८१ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ।३।१।९२॥

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात् तस्मिंश्च सत्येव वक्ष्यमाणः प्रत्ययः स्यात् ॥

७८१–सप्तम्यन्त जो 'कर्मणि' (२९१३) इत्यादि पद, उसमें वाच्यत्वरूपसे स्थित जो कुम्भादि, तद्वाचक जो पद, वह उपपदसंज्ञक हो, और उपपद संज्ञा होनेपर ही वक्ष्यमाण प्रत्यय हो ॥

७८२ उपपदमतिङ् । २ । २ । १९ ॥

उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते । अतिङन्तश्चायं समासः । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः । इह कुम्भ अस् कार इत्यलौकिकं प्रक्रियावाक्यम् । अतिङ् किम् । मा भवान् भूत् । माङि लुङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम् । अतिङ्ग्रहणं ज्ञापयति सुपेत्येतन्नेहानुवर्तत इति । पूर्वसूत्रेपि गतिग्रहणं पृथक्कृत्यातिङ्ग्रहणं तत्रापकृष्यते सुपेति च निवृत्तम् । तथा च गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेरिति सिद्धम् ॥ व्याघ्री । अश्वक्रीती । कच्छपी ॥

७८२–उपपद सुबन्तका समर्थके साथ नित्य समास हो । यह अतिङन्त अर्थात् तिङन्तसे भिन्नका समास है, जैसे–' कुंभं करोति ' इस वाक्यमें कुंभकारः, यहां कुंभ+अस्+कार, यह अलौकिक प्रक्रियावाक्य है ।

अतिङ् कहनेसे–'मा भवान् भूत् ' इस स्थानमें समास नहीं हुआ । " माङि लुङ् २२१९ " इस सूत्रमें सप्तमीनिर्देशके कारण माङ् यह उपपद है ।

यहां अतिङ्ग्रहणके सामर्थ्यसे " सह सुपा " इससे 'सुपा' की अनुवृत्ति नहीं आती है, और पूर्व सूत्र (कुगतिप्रादयः) में भी गतिग्रहणको अलग करके अतिङ्का इस सूत्रसे अपकर्षण है, इससे वहां भी 'सुपा' इसकी निवृत्ति हुई, तब "गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः" अर्थात् गति, कारक और उपपदोंका सुबुत्पत्तिसे पहले ही कृदन्तके साथ समास हो, यह परिभाषा फलित हुई, इससे व्याघ्री, अश्वक्रीती, कच्छपी, यह सब सिद्ध हुए, नहीं तो ' व्याजिघ्रति ' इस विग्रहमें " आतश्चोपसर्गे " इससे क प्रत्यय और जातिवाचक न होनेसे टाप्, तब सुप् प्रत्यय और समास, तब अदन्त न होनेसे " जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् " इससे ङीप् नहीं होता, वैसे ही 'अश्वेन क्रीता' इस विग्रहमें समास तब अदन्त न होनेसे " क्रीतात् करणपूर्वात् " से ङीप् नहीं होता, वैसे ही 'कच्छेन पिबति' इस विग्रहमें " सुपि " इस योगविभागसे कप्रत्यय हुआ, तदुत्तर समाससे पहले जातिवाचक न होनेसे वा समासोत्तर अदन्त न होनेसे ङीप् न होता, पूर्वोक्त ज्ञापन होनेपर सब सिद्ध होते हैं ॥

७८३ अमैवाव्ययेन । २ । २ । २० ॥

अमैव तुल्यविधानं यदुपपदं तदेवाऽव्ययेन सह समस्यते । स्वादुंकारम् । नेह । कालसमयवेलासु तुमुन् । कालः समयो वेला वा भोक्तुम् । अमैवेति किम् । अग्रे भोजम् । अग्रे भुक्त्वा । विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेष्विति क्त्वाणमुलौ । अमा चान्येन च तुल्यविधानमेतत् ॥

७८३–अम्से ही तुल्यविधान जो उपपद अर्थात् जिस उपपदमें जिस वाक्यसे अम् ही विहित हो ऐसे उपपदका अव्ययके साथ समास हो, जैसे–स्वादुंकारम् । जिस स्थानमें " कालसमयवेलासु तुमुन् ३१७९ " इस सूत्रसे तुमुन् प्रत्यय हुआ है, उस स्थानमें समास न होगा, जैसे–कालः

समयो वेला वा भोक्तुम्। 'अमैव' इस पदका ग्रहण करनेसे अग्रे भोजम्, अग्रे भुक्त्वा, इस स्थलमें "विभाषाग्रेप्रथमपूर्वे० ३३४५" इस सूत्रसे क्त्वा, और णमुल् इन दोनों प्रत्ययोंके विधानके कारण 'अग्रे' यह उपपद अम्से और दूसरेसे भी तुल्यविधान है, केवल अम्से ही तुल्यविधान नहीं है, इससे समास नहीं हुआ ॥

७८४ तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्। २।२।२१॥

उपदंशस्तृतीयायामित्यादीन्युपपदान्यमन्तेनाऽव्ययेन सह वा समस्यन्ते। मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकोपदंशम्॥

७८४-"उपदंशस्तृतीयायाम् ३३६८" इत्यादिसूत्रविषयक उपपदोंका अमन्त अव्ययके साथ विकल्प करके समास हो, जैसे-मूलकेनोपदंशं भुंक्ते=मूलकोपदंशम्॥

७८५ क्त्वा च। २।२।२२॥

तृतीयाप्रभृतीन्युपपदानि क्त्वान्तेन सह वा समस्यन्ते। उच्चैःकृत्य। उच्चैः कृत्वा। अव्यये यथाभिप्रेतेति क्त्वा। तृतीयाप्रभृतीनीति किम्। अलंकृत्वा। खलु कृत्वा॥

७८५-क्त्वाप्रत्ययान्तके साथ तृतीयान्त आदि उपपदोंका विकल्प करके समास हो, जैसे-उच्चैःकृत्य, उच्चैः कृत्वा, इस स्थानमें "अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने ३३८१" इस सूत्रसे क्त्वा प्रत्यय हुआहै।

तृतीया आदि कहनेसे अलं कृत्वा, खलु कृत्वा-इत्यादिमें समास नहीं हुआ॥

७८६ तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः। ५।४।८६॥

संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य तत्पुरुषस्य समासान्तोऽच् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलं दारु। निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरंगुलम्॥

७८६-जिस तत्पुरुष समासके आदिमें संख्यावाचक शब्द हो अथवा अव्यय हो और अन्तमें अंगुलि शब्द हो उस (तत्पुरुष) से समासान्त अच् प्रत्यय हो, जैसे-द्वे अंगुली प्रमाणमस्य-द्वि+अंगुली+अ=द्व्यंगुलम् दारु (दो अंगुल प्रमाणकी लकडी)। निर्गतमंगुलिभ्यः-निर्+अंगुली+अ+अम्=निरंगुलम् (जो अंगुलीसे निकल गया)॥

७८७ अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः। ५।४।८७॥

एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात्संख्याव्ययादेः। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम्। अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः। सर्वा रात्रिः सर्वरात्रः। पूर्वं रात्रेः पूर्वरात्रः। संख्यातरात्रः। पुण्यरात्रः। द्वयो रात्र्योः समाहारो द्विरात्रम्। अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्रः॥

७८७-अहन्, सर्व, एकदेश, संख्यात, पुण्य और अव्यय, इन शब्दोंके परे स्थित रात्रि शब्दसे अच् प्रत्यय हो। अहर्ग्रहण द्वन्द्वार्थ है, जैसे-अहश्च रात्रिश्च=अहोरात्रः। सर्वा चासौ रात्रिः=सर्वरात्रः। पूर्वं रात्रेः=पूर्वरात्रः। संख्याता चासौ रात्रिः=संख्यातरात्रः। पुण्या चासौ रात्रिः=पुण्यरात्रः। द्वयो रात्र्योः समाहारः=द्विरात्रम्। अतिक्रान्तो रात्रिम्=अतिरात्रः॥

७८८ राजाहस्सखिभ्यष्टच्। ५।४।९१॥

एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात्। परमराजः। अतिराजी। कृष्णसखः।

७८८-राजन्, अहन् और सखि शब्दके उत्तर समासान्त टच् प्रत्यय हो, जैसे-परमश्चासौ राजा=परमराजः। अतिराजी। कृष्णसखः॥

७८९ अह्नष्टखोरेव। ६।४।१४५॥

टिलोपः स्यान्नान्यत्र। उत्तमाहः। द्वे अहनी भृतो द्व्यहीनः क्रतुः। तद्धितार्थे द्विगुः। तमधीष्ट भृतो इत्यधिकारे द्विगोर्वेत्यनुवृत्तौ रात्र्यहःसंवत्सराच्चेति खः। लिंगविशिष्टपरिभाषाया अनित्यत्वान्नेह। मद्राणां राज्ञी मद्रराज्ञी॥

७८९-टच् और ख प्रत्यय परे रहते ही अहन् शब्दकी टिका लोप हो, अन्यत्र न हो, जैसे-उत्तममहः-उत्तमाहः। द्वे अहनी भृतः=द्व्यहीनः, क्रतुः। तद्धितार्थमें समास करके द्विगु संज्ञा, "तमधीष्ट० १७४४" इस सूत्रके अधिकारमें "द्विगोर्वा" इसकी अनुवृत्ति होनेपर "रात्र्यहःसंवत्सराच्च १७५१" इस सूत्रसे अहन् शब्दके उत्तर ख प्रत्यय करके 'द्व्यहीनः' पद सिद्ध हुआ॥

लिङ्गविशिष्ट परिभाषाके अनित्यत्वके कारण मद्राणां राज्ञी=मद्रराज्ञी, इस स्थलमें टच् और टिका लोप नहीं हुआ॥

७९० अह्नोऽह्न एतेभ्यः। ५।४।८८॥

सर्वादिभ्यः परस्याहन्शब्दस्याह्नादेशः स्यात्समासान्ते परे॥

७९०-समासान्त परे रहते सर्वादिसे परे स्थित अहन् शब्दके स्थानमें अह्नादेश हो॥

७९१ अह्नोऽदन्तात्। ८।४।७॥

अदन्तपूर्वपदस्थाद्रेफात्परस्याह्नोऽह्नादेशस्य नस्य णः स्यात्। सर्वाह्णः। पूर्वाह्णः। संख्याताह्नः। द्वयोरह्नोर्भवः। कालाट्ठञ्। द्विगोर्लुगनपत्ये इति ठञो लुक्। द्व्यह्नः। स्त्रियामदन्तत्वाट्टाप्। द्व्यह्ना। द्व्यह्नप्रियः। अत्यह्नः॥

७९१-अदन्तपूर्वपदस्थ रेफके परे स्थित अहन् शब्दके स्थानमें अह्न आदेशके न को ण हो, जैसे-सर्वाह्णः। पूर्वाह्णः। संख्याताह्नः। 'द्वयोरह्नोर्भवः' इस विग्रहमें "कालाट्ठञ् १३८१" इस सूत्रसे ठञ्, "द्विगोर्लुगनपत्ये १०८०" इस सूत्रसे ठञ्का लोप हुआ, जैसे-द्व्यह्नः। स्त्री लिङ्गमें अदन्तत्वके कारण टाप् होगा, जैसे-द्व्यह्ना। द्व्यह्नप्रियः। अत्यह्नः॥

७९२ क्षुभ्नादिषु च । ८ । ४ । ३९ ॥

एषु णत्वं न स्यात् । दीर्घाह्नी प्रावृट् । एवं चैतदर्थमह्न इत्यदन्तानुकरणे क्लेशो न कर्तव्यः । प्रातिपदिकान्तेतिणत्ववारणाय क्षुभ्नादिषु पाठस्यावश्यकत्वात् । अदन्तादितितपरकरणान्नेह । परागतमहः पराह्नः ॥

७९२ क्षुभ्नादिके नकारको णत्व न हो, जैसे—दीर्घाह्नी प्रावृट् । 'दीर्घाह्नी'यहां णत्व न हो इस कारण "अह्नोऽदन्तात्" इस सूत्रमें अह्न इस अदन्तानुकरणमें क्लेश करना नहीं चाहिये, कारण कि, "प्रातिपदिकान्त० १०५५" इस सूत्रसे प्राप्त णत्वनिषेधके निमित्त क्षुभ्नादिके मध्यमें पाठकी तो आवश्यकता ही है, इसीसे "७९१"से प्राप्त णत्वका भी निषेध हो जायगा। "अदन्तात्" इस तपरकरणके कारण आकारान्त पूर्वपद रहते णत्व नहीं होगा, जैसे—परागतमहः=पराह्नः ॥

७९३ न संख्यादेः समाहारे ।५।४।८९॥

समाहारे वर्तमानस्य संख्यादेरह्नादेशो न स्यात् । संख्यादेरिति स्पष्टार्थम् । द्वयोरह्नोः समाहारो द्व्यहः । त्र्यहः ॥

७९३—समाहारमें वर्तमान संख्यावाचकके परे स्थित अहन् शब्दके स्थानमें अह्नादेश न हो ।

'संख्यादेः' ऐसा कहना स्पष्टताके निमित्त है कारण कि, समाहारमें संख्यादिका ही सम्भव है, जैसे—द्वयोरह्नोः समाहारः द्व्यहः । त्र्यहः ॥

७९४ उत्तमैकाभ्यां च ।५। ४। ९० ॥

आभ्यामह्नादेशो न । उत्तमशब्दोऽन्त्यार्थः पुण्यशब्दमाह । पुण्यैकाभ्यामित्येव सूत्रयितुमुचितम् । पुण्याहम् । सुदिनाहम् । सुदिनशब्दः प्रशस्तवाची । एकाहः । उत्तमग्रहणमुपान्त्यस्यापि संग्रहार्थमित्येके । संख्याताहः ॥

७९४—उत्तम और एक शब्दके उत्तर अह्नादेश न हो । उत्तम शब्द अन्त्यवाचक है, इससे पुण्य शब्द लिया गया, तब "पुण्यैकाभ्याम्" इस प्रकार सूत्र करना उचित था । पुण्यं च तत् अहः=पुण्याहम् । सुदिनं च तत् अहः= सुदिनाहम् । सुदिन शब्द प्रशस्तवाची है । एकाहः । कोई कहतेहैं कि उपान्त्यके भी ग्रहणके निमित्त उत्तम शब्दका ग्रहण किया है, जैसे—संख्यातं च तत् अहः=संख्याताहः ॥

७९५ अग्राख्यायामुरसः । ५ ।४।९३॥

टच् स्यात् । अश्वानामुर इव अश्वोरसम् । मुख्योश्व इत्यर्थः ॥

७९५—अग्र अर्थात् प्रधानवाचक उरस् शब्दके उत्तर टच् हो, यथा—अश्वानामुर इव=अश्वोरसम्, अर्थात् मुख्य अश्व ॥

७९६ अनोश्मायस्सरसां जातिसंज्ञयोः । ५ । ४ । ९४ ॥

टच् स्याज्जातौ संज्ञायां च । उपानसम् । अमृताश्मः । कालायसम् । मण्डूकसरसमितिजातिः । महानसम् । पिण्डाश्मः । लोहितायसम् । जलसरसमिति संज्ञा ॥

७९६—जाति और संज्ञामें अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् शब्दके उत्तर टच् हो । जातिमें यथा—उपगतम् अनः=उपानसम् । अमृतस्य अश्मा=अमृताश्मः । कालं च तत् अयः=कालायसम् । मण्डूकस्य सरः=मण्डूकसरसम् । संज्ञा अर्थमें महत् च तत् अनः=महानसम् । पिण्डस्य अश्मा= पिण्डाश्मः । लोहितं च तदयः=लोहितायसम् । जलस्य सरः=जलसरसम् ॥

७९७ ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः ।५।४।९५॥

ग्रामस्य तक्षा ग्रामतक्षः । साधारण इत्यर्थः । कुट्यां भवः कौटः स्वतन्त्रः स चासौ तक्षा च कौटतक्षः ॥

७९७—ग्राम और कौट शब्दके परे स्थित तक्षन् शब्दके उत्तर टच् प्रत्यय हो, जैसे—ग्रामस्य तक्षा=ग्रामतक्षः—अर्थात् साधारण । कुट्यां भवः=कौटः, अर्थात् स्वतंत्र, स चासौ तक्षा च=कौटतक्षः ॥

७९८ अतेः शुनः । ५ । ४ । ९६ ॥

अतिश्वो वराहः । अतिश्वी सेवा ॥

७९८—अति शब्दके परे स्थित श्वन् शब्दके उत्तर टच् प्रत्यय हो, जैसे—श्वानमतिक्रान्तो जवेन=अतिश्वो वराहः । अतिश्वी सेवा, अर्थात् नीच ॥

७९९ उपमानादप्राणिषु ।५। ४। ९७॥

अप्राणिविषयकोपमानवाचिनः शुनष्टच् स्यात् । आकर्षः श्वेव आकर्षश्वः । अप्राणिषु किम् । वानरः श्वेव वानरश्वा ॥

७९९—अप्राणिविषयक उपमानवाचक जो श्वन् शब्द, उसके उत्तर टच् हो, जैसे—आकर्षः श्वेव=आकर्षश्वः ।

प्राणि अर्थमें जैसे—वानरः श्वेव=वानरश्वा, इस स्थानमें टच् नहीं हुआ ॥

८०० उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ।५।४।९८॥

चादुपमानात् । उत्तरसक्थम् । मृगसक्थम् । पूर्वसक्थम् । फलकमिव सक्थि फलकसक्थम् ॥

८००—उत्तर, मृग और पूर्व शब्दके परे स्थित सक्थि शब्दके उत्तर टच् हो, चकारसे उपमानवाचकके उत्तर भी होगा, जैसे—उत्तरसक्थम् । मृगसक्थम् । पूर्वसक्थम् । फलकमिव सक्थि=फलकसक्थम् ॥

---

१ आकृष्यतेऽनेन खलादिगतं धान्यमित्याकर्षः काष्ठविशेषः ॥

८०१ नावो द्विगोः । ५ । ४ । ९९ ॥

नौशब्दान्ताद्विगोष्टच् स्यान्न तु तद्धितलुकि । द्वाभ्यां नौभ्यामागतः द्विनावरूप्यः । द्विगोर्लुगनपत्य इत्यत्र अचीत्यस्यापकर्षणाद्धलादेर्न लुक् । पञ्चनावप्रियः । द्विनावम् । त्रिनावम् । अतद्धितलुकीति किम् । पञ्चभिर्नौभिः क्रीतः पञ्चनौः ॥

८०१-नौशब्दान्त द्विगु समासके उत्तर टच् हो, परन्तु तद्धितलुक् होनेपर न हो, जैसे-द्वाभ्यां नौभ्यामागतः=द्विनावरूप्यः, यहां "द्विगोर्लुगनपत्ये १०८०" इस सूत्रमें 'अचि' इस पदके आकर्षणके कारण हलादि 'रूप्य' प्रत्ययका लुक् न हुआ । पञ्चनावप्रियः । द्विनावम् । त्रिनावम् ।

'अतद्धितलुकि' कहनेसे पञ्चभिर्नौभिः क्रीतः=पञ्चनौः, यहां टच् न हुआ ॥

८०२ अर्धाच्च । ५ । ४ । १०० ॥

अर्धान्नावष्टच् स्यात् । नावोर्धम् । अर्धनावम् । क्लीबत्वं लोकात् ॥

८०२-अर्द्ध शब्दके परे स्थित नौ शब्दके उत्तर टच् प्रत्यय हो, जैसे-अर्द्ध नावः=अर्द्धनावम्, इस स्थलमें नपुंसकत्व लौकिकप्रसिद्ध है ॥

८०३ खार्याः प्राचाम् । ५ । ४ । १०१ ॥

द्विगोरर्धाच्च खार्याष्टज्वा स्यात् । द्विखारम् । द्विखारि । अर्धखारम् । अर्धखारि ॥

८०३-खारीशब्दान्त द्विगु और अर्द्ध शब्दके परे स्थित खारी शब्दके उत्तर विकल्प करके टच् हो, जैसे-द्विखारम्, द्विखारि । अर्द्धखारम्, अर्द्धखारि ॥

८०४ द्वित्रिभ्यामञ्जलेः । ५ । ४ । १०२ ॥

टज्वा स्याद् द्विगौ । द्व्यञ्जलम् । द्व्यञ्जलि । अतद्धितलुकीत्येव । द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां क्रीतो द्व्यञ्जलिः ॥

८०४-द्विगु समासमें द्वि और त्रि शब्दके परे स्थित अञ्जलि शब्दके उत्तर विकल्प करके टच् हो, जैसे-द्व्यञ्जलम्, द्व्यञ्जलि । अतद्धितलुक्में ही यह सूत्र लगताहै, इससे द्वाभ्याम् अञ्जलिभ्यां क्रीतः=द्व्यञ्जलिः, यहां तद्धितलुक्के कारण टच् प्रत्यय न हुआ ॥

८०५ ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् । ५ । ४ । १०४ ॥

ब्रह्मान्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात्समासेन जानपदत्वमाख्यायते चेत् । सुराष्ट्रे ब्रह्मा सुराष्ट्रब्रह्मः ॥

८०५-समाससे जानपदत्वका कथन हो तो, ब्रह्मशब्दान्त तत्पुरुषके उत्तर टच् हो, जैसे-सुराष्ट्रे ब्रह्मा=सुराष्ट्रब्रह्मः ॥

१ "हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ४।३।८१" इससे रूप्य प्रत्यय हुआ ॥

८०६ कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् ५।४।१०५

आभ्यां ब्रह्मणो वा टच् स्यात् तत्पुरुषे । कुत्सितो ब्रह्मा कुब्रह्मः । कुब्रह्मा ॥

८०६-कु और महत् शब्दके परे स्थित ब्रह्म शब्दके उत्तर विकल्प करके टच् हो, जैसे-कुत्सितो ब्रह्मा=कुब्रह्मः, कुब्रह्मा ॥

८०७ आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः । ६ । ३ । ४६ ॥

महत आकारोऽन्तादेशः स्यात्समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे । महाब्रह्मः । महाब्रह्मा । महादेवः । महाजातीयः । समानाधिकरणे किम् । महतः सेवा महत्सेवा । लाक्षणिकं विहाय प्रतिपदोक्तः सन्महदितिसमासो ग्रहीष्यत इति चेत् महाबाहुर्न स्यात् । तस्माल्लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्येति परिभाषा नेह प्रवर्तते समानाधिकरणग्रहणसामर्थ्यात् । आदिति योगविभागादात्वं प्रागेकादशभ्य इति निर्देशाद्वा । एकादश । महतीशब्दस्य पुंवत्कर्मधारयेति पुंवद्भावे कृते आत्वम् । महाजातीया ॥ महदात्वे घासकरविशिष्टेषूपसंख्यानं पुंवद्भावश्च ॥ * ॥ असामानाधिकरण्यार्थमिदम् । महतो महत्या वा घासो महाघासः । महाकरः । महाविशिष्टः ॥ अष्टनः कपाले हविषि ॥*॥ अष्टाकपालः ॥ गवि च युक्ते ॥*॥ गोशब्दे परे युक्त इत्यर्थे गम्येऽष्टन आत्वं स्यात् । अष्टागवं शकटम् । अच्प्रत्यन्ववेत्यत्राऽजिति योगविभागादड्बहुव्रीहावप्यच् । अष्टानां गवां समाहारः अष्टगवम् । तद्युक्तत्वाच्छकटमष्टागवमिति वा ॥

८०७-समानाधिकरण उत्तर पद और जातीय प्रत्यय परे रहते महत् शब्दको आकार अन्तादेश हो, जैसे-महाब्रह्मः, महाब्रह्मा । महादेवः । महाजातीयः ।

समानाधिकरण न होनेपर जैसे-महतः सेवा=महत्सेवा ।

यदि लाक्षणिकको त्याग करके प्रतिपदोक्त "सन्महत्० ७४०" इस सूत्रसे विहित समासका ग्रहण करेंगे तो 'महाबाहुः' ऐसा पद न होगा, इस कारण "लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्" इस परिभाषाकी समानाधिकरणग्रहणकी सामर्थ्यके कारण इस स्थानमें प्रवृत्ति नहीं होती है ।

'आत्' इस योगविभागके कारण "प्रागेकादशभ्यः० १९९५" इस सूत्रनिर्देशके कारण आत्व करके 'एकादश' यह पद सिद्ध हुआ ।

महती शब्दको "पुंवत्कर्मधारय० ७४६" इस सूत्रसे पुंवद्भाव होनेपर आत्व होगा, जैसे-महाजातीया।

घास, कर और विशिष्ट शब्द परे रहते महती शब्दको आकार आदेश और पुंवद्भाव हो * यह वार्त्तिक असामानाधिकरण्यके निमित्त है। महतो महत्या वा घासः=महाघासः। महतो महत्या वा करः=महाकरः। महतो महत्या वा विशिष्टः=महाविशिष्टः।

हविष् वाच्य रहते तथा कपाल शब्द परे रहते अष्टन् शब्दको आकार हो, जैसे-अष्टाकपालः।

युक्त अर्थ हो तो गो शब्दके पूर्वमें स्थित अष्टन् शब्दको आकार हो, यथा-अष्टागवं शकटम्, यहां "अच् प्रत्यन्वव०" इस सूत्रमें 'अच्' इस योगविभाग अर्थात् भिन्न सूत्रकरनेके कारण बहुव्रीहि समासमें भी अच् हुआ। अष्टानां गवां समाहारः=अष्टगवम्। वा तद्युक्तत्वके कारण 'अष्टागवं शकटम्' ऐसा होगा।

८०८ द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः। ६। ३। ४७॥

आत्स्यात्। द्वौ च दश च द्वादश। द्व्यधिका दशेति वा। द्वाविंशतिः। अष्टादश। अष्टाविंशतिः। अबहुव्रीह्यशीत्योः किम्। द्वित्राः। द्व्यशीतिः॥ प्राक् शताद्वक्तव्यम्॥ * ॥ नेह द्विसहस्रम्॥

८०८-संख्यावाचक पद परे रहते द्वि शब्द और अष्टन् शब्दको आकार हो और बहुव्रीहि समासमें और अशीति शब्द परे रहते न हो, जैसे-द्वौ च दश च=द्वादश, द्व्यधिका दश इति वा। द्वाविंशतिः। अष्टादश। अष्टाविंशतिः।

बहुव्रीहि समासमें और अशीति शब्द परे रहते यथा-द्वित्राः। द्व्यशीतिः। यहां आत्व न हुआ। शत संख्यासे न्यून संख्यावाचक शब्द परे रहते ही आत्व हो। इसी कारण द्विशतम्, द्विसहस्रम्, इस स्थलमें आत्व नहीं हुआ॥

८०९ त्रेस्त्रयः। ६। ३। ४८॥

त्रिशब्दस्य त्रयः स्यात्पूर्वविषये। त्रयोदश। त्रयोविंशतिः। बहुव्रीहौ तु। त्रिर्दश त्रिदशाः। प्राक् सुजर्थे बहुव्रीहिः। अशीतौ तु त्र्यशीतिः। प्राक् शतादित्येव। त्रिशतम्। त्रिसहस्रम्॥

८०९-पूर्व विषयमें त्रि शब्दके स्थानमें त्रयस् आदेश हो, जैसे-त्रयोदश। त्रयोविंशतिः। बहुव्रीहि समासमें तो त्रिर्दश=त्रिदशाः, इस स्थलमें सुच्के अर्थमें बहुव्रीहि हुआ है। अशीति शब्द परे रहते, जैसे-त्र्यशीतिः। शत शब्दके पूर्वमें न होनेपर, जैसे-त्रिशतम्, त्रिसहस्रम्, इस प्रकार होंगे॥

८१० विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम्। ६। ३। ४९॥

द्व्यष्टनोस्त्रेश्च प्रागुक्तं वा स्याच्चत्वारिंशदादौ परे। द्विचत्वारिंशत्। द्वाचत्वारिंशत्। अष्टचत्वारिंशत्। अष्टाचत्वारिंशत्। त्रिचत्वारिंशत्। त्रयश्चत्वारिंशत्। एवं पञ्चाशत्षष्टिसप्ततिनवतिषु॥

८१०-चत्वारिंशत् आदि शब्द परे रहते द्वि, अष्टन् और त्रि शब्दोंको पूर्वोक्त कार्य विकल्प करके हों, जैसे-द्वाचत्वारिंशत्, द्विचत्वारिंशत्। अष्टाचत्वारिंशत्, अष्टचत्वारिंशत्। त्रयश्चत्वारिंशत्, त्रिचत्वारिंशत्। पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति और नवति शब्द परे रहते भी इसी प्रकार कार्य्य होंगे॥

८११ एकादिश्चैकस्य चादुक्। ६। ३। ७६॥

एकादिर्नञ् प्रकृत्या स्यादेकस्य चादुगागमश्च। नञो विंशत्या समासे कृते एकशब्देन सह तृतीयेति योगविभागात्समासः। अनुनासिकविकल्पः। एकेन न विंशतिः एकान्नविंशतिः। एकाद्नविंशतिः। एकोनविंशतिरित्यर्थः॥ षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेः ष्टुत्वं च। धासु वेति वाच्यम्॥ * ॥ षोडन्। षोडश। षोढा। षड्धा॥

८११-एकादि नञ् शब्दका प्रकृतिभाव हो, और एक शब्दको अदुक्का आगम हो। विंशति शब्दके साथ नञ्का समास करनेपर फिर एक शब्दके साथ "तृतीया" इस योगविभागसे समास हुआ और अनुनासिक विकल्प करके हुआ, जैसे-एकेन न विंशतिः=एकान्नविंशतिः, एकाद्नविंशतिः। एकोनविंशतिरित्यर्थः।

दत्, दश और धा शब्द परे रहते षष् शब्दको उत्व हो और उत्तरपदादिको ष्टुत्व हो और धा शब्दमें षको विकल्प करके ष्टुत्व हो, जैसे-षट् दन्ता अस्येति=षोडन्, यहां "वयसि दन्तस्य दतृ" इससे दतृ आदेश होताहै, षोडश, षोढा, षड्धा, यहां "संख्याया विधार्थे धा" इस सूत्रसे धा प्रत्यय हुआ है॥

८१२ परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः। २। ४। २६॥

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्। कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। अर्धपिप्पली॥ द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः॥ * ॥ पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः पुरोडाशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। आपन्नजीविकः। अलं कुमार्यै अलंकुमारिः। अत एव ज्ञापकात्समासः। निष्कौशाम्बिः॥

८१२-द्वन्द्व और तत्पुरुष समासमें परवर्त्ती पदके समान लिङ्ग हो, जैसे-कुक्कुटश्च मयूरी च=कुक्कुटमयूर्यौ इमे। मयूरीकुक्कुटौ इमौ। पिप्पल्या अर्द्धम्, इस विग्रहमें अर्द्धपिप्पली॥

द्विगु समास और प्राप्त, आपन्न, अलम्पूर्वक समास और गतिसमासमें पर पदके समान लिङ्ग न हो* जैसे-पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः=पञ्चकपालः पुरोडाशः। प्राप्तो जीविकाम्=प्राप्तजीविकः। आपन्नो जीविकाम्=आपन्नजीविकः। अलं कुमार्यै=

अलंकुमारिः, इसी ज्ञापकके कारण इस स्थानमें समास हुआ, निष्कौशाम्बिः ॥

८१३ पूर्ववदश्ववडवौ । २ । ४ । २७ ॥

द्विवचनमतन्त्रम् । अश्ववडवौ । अश्ववडवान् । अश्ववडवैः ॥

८१३-अश्व और वडवा शब्दके समासमें पूर्व पदके समान लिङ्ग हो । इस सूत्रमें द्विवचन अतन्त्र (अविवक्षित) है इससे अश्ववडवौ, अश्ववडवान्, अश्ववडवैः, इत्यादि सब रूप बनेंगे ॥

८१४ रात्राह्नाहाः पुंसि । २ । ४ । २९ ॥

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव । अनन्तरत्वात्परवल्लिङ्गतापवादोऽप्ययं परत्वात्समाहारनपुंसकतां बाधते । अहोरात्रः । रात्रेः पूर्वभागः पूर्वरात्रः । पूर्वाह्णः । द्व्यहः ॥ संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् ॥ * ॥ द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् । गणरात्रम् ॥

८१४-रात्र, अह्न व अहशब्दान्त द्वन्द्व और तत्पुरुष समास पुँल्लिङ्गही में हों । अनन्तरत्वके कारण परवल्लिङ्गताका अपवाद होनेपर भी यह सूत्र परत्वके कारण समाहारमें नपुंसक लिङ्गका बाधक होताहै, जैसे-अहश्च रात्रिश्च=अहोरात्रः, अथवा अह्ना सहिता रात्रिः=अहोरात्रः । रात्रेः पूर्वभागः=पूर्वरात्रः । पूर्वाह्णः । द्व्यहः ।

संख्यापूर्वक रात्र शब्द नपुंसकलिङ्ग हो * जैसे-द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् । गणरात्रम् ॥

८१५ अपथं नपुंसकम् । २ । ४ । ३० ॥

तत्पुरुष इत्येव । अन्यत्र तु । अपथो देशः । कृतसमासान्तनिर्देशान्नेह । अपन्थाः ॥

८१५-समासान्त अपथ शब्द तत्पुरुषमें नपुंसक हो, जैसे-अपथम् । अन्यत्र तु-अर्थात् तत्पुरुषसे भिन्न समासमें तो जैसे अपथो देशः । कृतसमासान्त निर्देशके कारण अपन्थाः, इस स्थानमें नपुंसकत्व नहीं हुआ ॥

८१६ अर्धर्चाः पुंसि च । २ । ४ । ३१ ॥

अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः । अर्धर्चः । अर्धर्चम् । ध्वजः । ध्वजम् । एवं-तीर्थ, शरीर, मण्ड, पीयूष, देह, अंकुश, कलश, इत्यादि ॥

८१६-अर्धर्चादि शब्द पुँल्लिङ्गमें और नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त हों । अर्धर्चः, अर्धर्चम् । ध्वजः, ध्वजम् । इसी प्रकार तीर्थ, शरीर, मंड, पीयूष, देह, अंकुश और शकल-इत्यादि शब्द पुँल्लिङ्ग नपुंसकलिङ्ग हैं ॥

८१७ जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्याम् । १ । २ । ५८ ॥

एकोऽप्यर्थो वा बहुवद्भवति । ब्राह्मणाः पूज्याः । ब्राह्मणः पूज्यः ॥

८१७-जातिवाचक शब्दसे एकत्व अर्थमें भी विकल्प करके बहुवचन हो, जैसे ब्राह्मणाः पूज्याः, ब्राह्मणः पूज्यः ॥

८१८ अस्मदो द्वयोश्च । १ । २ । ५९ ॥

एकत्वे द्वित्वे च विवक्षितेऽस्मदो बहुवचनं वा स्यात् । वयं ब्रूमः । पक्षेऽहं ब्रवीमि । आवां ब्रुव इति वा ॥ सविशेषणस्य प्रतिषेधः ॥ * ॥ पटुरहं ब्रवीमि ॥

८१८-एकत्व और द्वित्व विवक्षित हो तो अस्मद् शब्दसे विकल्प करके बहुवचन हो, जैसे-वयं ब्रूमः । अहं ब्रवीमि । आवां ब्रुव इति वा । विशेषणयुक्त अस्मद् शब्दसे एकत्व और द्वित्व विवक्षित रहते बहुवचन नहीं हो, जैसे-पटुरहं ब्रवीमि ॥

८१९ फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे । १ । २ । ६० ॥

द्वित्वे बहुत्वप्रयुक्तं कार्यं वा स्यात् । पूर्वे फल्गुन्यौ । पूर्वाः फल्गुन्यः । पूर्वे प्रोष्ठपदे । पूर्वाः प्रोष्ठपदाः । नक्षत्रे किम् । पूर्वफल्गुन्यौ माणविके ॥

८१९-नक्षत्रवाचक फल्गुनी और प्रोष्ठपदा शब्दके द्वित्व अर्थमें विकल्प करके बहुत्वप्रयुक्त कार्य्य हो, जैसे-पूर्वे फल्गुन्यौ, पूर्वाः फल्गुन्यः । पूर्वे प्रोष्ठपदे, पूर्वाः प्रोष्ठपदाः । नक्षत्रसे भिन्न अर्थमें नहीं होगा, जैसे-पूर्वफल्गुन्यौ माणविके ॥

८२० तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम् । १।२।६३॥

बहुत्वं द्वित्ववद्भवति । तिष्यश्च पुनर्वसू च तिष्यपुनर्वसू । तिष्येति किम् । विशाखानुराधाः । नक्षत्रेति किम् । तिष्यपुनर्वसवो माणवकाः ॥

८२०-तिष्य और पुनर्वसु शब्दका नक्षत्रार्थमें द्वन्द्व समास होनेपर बहुवचनको नित्य द्विवचन हो, जैसे-तिष्यश्च पुनर्वसू च=तिष्यपुनर्वसू । सूत्रमें तिष्य, पुनर्वसू शब्दका ग्रहण करनेसे 'विशाखानुराधाः' इत्यादि स्थलमें द्विवचन नहीं हुआ । नक्षत्रवाचक कहनेसे 'तिष्यपुनर्वसवो माणवकाः' इस स्थलमें द्विवचन नहीं हुआ ॥

८२१ स नपुंसकम् । २ । ४ । १७ ॥

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । परवल्लिङ्गापवादः । पञ्चगवम् । दन्तोष्ठम् ॥ अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः ॥ * ॥ पञ्चमूली ॥ आबन्तो वा ॥ * ॥ पञ्च खट्वी ॥ पञ्चखट्वम् ॥ अनो नलोपश्च वा च द्विगुः स्त्रियाम् ॥ * ॥ पञ्चतक्षी । पञ्चतक्षम् ॥ पात्राद्यन्तस्य न ॥ * ॥ पञ्चपात्रम् । त्रिभुवनम् ॥ चतुर्युगम् ॥ पुण्यसुदिनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्टा ॥ * ॥ पुण्याहम् । सुदिनाहम् ॥ पथः संख्याव्ययादेः ॥ * ॥ संख्याव्ययादेः परः कृतसमासान्तः पथशब्दः क्लीब-

मित्यर्थः । त्रयाणां पन्थास्त्रिपथम् । विरूपः पन्था विपथम् । कृतसमासान्तनिर्देशान्नेह । सुपन्थाः । अतिपन्थाः ॥ सामान्ये नपुंसकम् ॥*॥ मृदु पचति । प्रातः कमनीयम् ॥

८२१–समाहारमें द्विगु और द्वन्द्व नपुंसकलिङ्ग हो, यह सूत्र परवल्लिङ्गका अपवाद है । पञ्चगवम् । दन्तोष्ठम् । अकारान्तोत्तरपदक जो द्विगु पद वह स्त्रीलिङ्गमें इष्ट हो अर्थात् उसको क्लीव हो * जैसे–पञ्चमूली । आबन्त हो तो विकल्पकरके स्त्रीलिङ्गमें इष्ट हो * जैसे–पञ्चखट्वी, पञ्चखट्वम् ।

द्विगु समासमें अन्के नकारका लोप हो और विकल्पकरके द्विगुसंज्ञक शब्द स्त्रिलिङ्ग हो,जैसे–पञ्चतक्षी,पञ्चतक्षम् । पात्रादिशब्दान्त द्विगुको क्लीव न हो * जैसे–पञ्चपात्रम् । त्रिभुवनम् । चतुर्युगम् ।

पुण्य और सुदिन शब्दके उत्तर अहन् शब्द नपुंसक लिङ्ग हो, जैसे–पुण्यं च तत् अहः=पुण्याहम् । सुदिनं च तत् अहः= सुदिनाहम् ।

संख्या और अव्यय आदिके परे स्थित कृतसमासान्त पथ शब्द नपुंसक लिङ्ग हो, जैसे–त्रयाणां पन्थाः=त्रिपथम् । विरूपः पन्थाः=विपथम् । कृतसमासान्तनिर्देशके कारण 'सुपन्थाः', 'अतिपन्थाः' इत्यादि पदोंको क्लीबत्व नहीं हुआ । सामान्यमें नपुंसक लिङ्ग हो * यह अनियत लिङ्गविषयक है, क्योंकि, नियतलिङ्गका नपुंसकत्व ही नहीं होताहै । 'मृदु पचति' इस स्थलमें क्रियाविशेषणत्वके कारण द्वितीया हुई है । प्रातः कमनीयम् ॥

८२२ तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः । २ । ४ । १९ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

८२२–इसके आगे नञ्समास और कर्मधारयसे भिन्न तत्पुरुषाधिकार चलेगा अर्थात् नञ्समास और कर्मधारयसे भिन्न तत्पुरुषको वक्ष्यमाण कार्य्य होंगे ॥

८२३ संज्ञायां कन्थोशीनरेषु।२।४।२० ॥

कन्थान्तस्तत्पुरुषः क्लीबं स्यात्सा चेदुशीनरदेशोत्पन्नायाः कन्थायाः संज्ञा । सुशमस्यापत्यानि सौशमयः, तेषां कन्था सौशमिकन्थम् । संज्ञायां किम् । वीरणकन्था।उशीनरेषु किम्।दाक्षिकन्था॥

८२३–उशीनरदेशोत्पन्न कंथा होनेपर कन्थाशब्दान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग हो । सुशमस्यापत्यानि=सौशमयः, तेषां कंथा=सौशमिकन्थम् । संज्ञा न होनेपर, वीरणकन्था । और उशीनर देशसे भिन्न होनेपर 'दाक्षिकंथा'–इत्यादि स्थलमें नपुंसक नहीं हुआ ॥

८२४ उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम् । २ । ४ । २१ ॥

उपज्ञान्त उपक्रमान्तश्च तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात् तयोरुपज्ञायमानोपक्रम्यमाणयोरादिः प्राथम्यं चेदाख्यातुमिष्यते। पाणिनेरुपज्ञा पाणिन्युपज्ञं ग्रन्थः । नन्दोपक्रमं द्रोणः ॥

८२४–उपज्ञायमान और उपक्रम्यमाणका आदि अर्थात् प्राथम्यके आख्यानकी इच्छा हो तो उपज्ञान्त और उपक्रमान्त तत्पुरुष नपुंसकलिंग हो, जैसे–पाणिनेरुपज्ञा=पाणिन्युपज्ञं ग्रंथः, अर्थात् पाणिनिसंबन्धी आद्यज्ञानविषयीभूत ग्रंथ । नन्दोपक्रमं द्रोणः, अर्थात् नंदसम्बन्धी आद्यज्ञानविषय द्रोण ॥

८२५ छाया बाहुल्ये । २ । ४ । २२ ॥

छायान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात्पूर्वपदार्थबाहुल्ये । इक्षूणां छाया । इक्षुच्छायम् । विभाषा सेनेति विकल्पस्यायमपवादः।इक्षुच्छायानिषादिन्य इति तु आ समन्तान्निषादिन्य इत्याङ्प्रश्लेषो बोध्यः ॥

८२५–पूर्वपदार्थका बाहुल्य हो तो छायाशब्दान्त तत्पुरुष समास नपुंसकलिङ्ग हो, जैसे–'इक्षूणां छाया' इस वाक्यमें इक्षुच्छायम् । "विभाषा सेना० ८२८" इस सूत्रसे प्राप्त विकल्पका यह अपवाद है । " इक्षुछायानिषादिन्यः " इत्यादि स्थलमें ' आ समन्तात् निषादिन्यः ' ऐसा आङ्का प्रक्षेप जानना चाहिये ॥

८२६ सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा ।२।४।२३॥

राजपर्यायपूर्वोऽमनुष्यपूर्वश्च सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात् । इनसभम् । ईश्वरसभम् ॥ नेह । राजपर्यायस्यैवेष्यते ॥ * ॥ सभा । चन्द्रगुप्तसभा । अमनुष्यशब्दो रूढ्या रक्षःपिशाचादीनाह। रक्षःसभम् । पिशाचसभम्॥

८२६–राजपर्याय पूर्वमें हो और अमनुष्यवाचक पद पूर्वमें हो ऐसा सभान्त तत्पुरुष नपुंसक लिङ्ग हो,जैसे–इनस्य सभा=इनसभम् । ईश्वरस्य सभा=ईश्वरसभम् । राजपर्यायपूर्व-कही तत्पुरुषको नपुंसक लिङ्ग हो, परन्तु राजशब्दपूर्वक तत्पुरुषको नहीं हो, जैसे–राजसभा । चंद्रगुप्तसभा । इस सूत्रमें अमनुष्य शब्द रूढि शक्तिसे राक्षस और पिशाचादिओंको कहताहै, जैसे–रक्षसां सभा=रक्षःसभम् । पिशाचानां सभा=पिशाचसभम् ॥

८२७ अशाला च । २ । ४ । २४ ॥

संघातार्था या सभा तदन्तस्तत्पुरुषः क्लीबं स्यात् । स्त्रीसभम् । स्त्रीसंघात इत्यर्थः । अशाला किम् । धर्मसभा । धर्मशालेत्यर्थः ॥

८२७–संघातार्थ अर्थात् समूहार्थ जो सभा शब्द तदन्त तत्पुरुष नपुंसक लिङ्ग हो, जैसे–स्त्रीसभम् । शालार्थमें जैसे– ' धर्मसभा ' अर्थात् धर्मशाला, इस स्थलमें क्लीवत्व नहीं हुआ ॥

८२८ विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् । २ । ४ । २५ ॥

एतदन्तस्तत्पुरुषः क्लीबं वा स्यात् । ब्राह्मणसेनम् । ब्राह्मणसेना । यवसुरम् । यवसुरा । कुड्यच्छायम् । कुड्यच्छाया । गोशालम् । गोशाला । श्वनिशम् । श्वनिशा । तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारय इत्यनुवृत्तेर्नेह । दृढसेनो राजा । असेना । परमसेना ॥

॥ इति तत्पुरुषः ॥

८२८–सेना, सुरा, छाया, शाला और निशा शब्दान्त तत्पुरुष विकल्प करके नपुंसक लिङ्ग हो, जैसे–ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना । यवसुरम्, यवसुरा । कुड्यच्छायम्, कुड्यच्छाया। गोशालम्, गोशाला । श्वनिशम्, श्वनिशा । "तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः ८२२" इस सूत्रकी अनुवृत्ति होनेके कारण इन स्थलोंमें विकल्प करके नपुंसक लिङ्ग नहीं हुआ–दृढसेनो राजा । असेना । परमसेना ॥

॥ इति तत्पुरुषसमासः ॥

अथ बहुव्रीहिसमासप्रकरणम् ।

८२९ शेषो बहुव्रीहिः । २ । २ । २३ ॥

अधिकारोऽयम् । द्वितीयाश्रितेत्यादिना यस्य त्रिकस्य विशिष्य समासो नोक्तः स शेषः प्रथमान्तमित्यर्थः ॥

८२९–बहुव्रीहि समासका अधिकार है । "द्वितीयाश्रिता० ६८६" इस सूत्रसे विशेष करके जिस त्रिकका समास नहीं कहा हो, वह शेष अर्थात् प्रथमान्त है ॥

८३० अनेकमन्यपदार्थे । २ । २।२४ ॥

अनेकं प्रथमान्तमन्यपदार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः । अप्रथमाविभक्त्यर्थे बहुव्रीहिरिति समानाधिकरणानामिति च फलितम् । प्राप्तमुदकं यं प्राप्तोदको ग्रामः।ऊढरथोऽनड्वान् । उपहृतपशू रुद्रः । उद्धृतौदना स्थाली । पीताम्बरो हरिः । वीरपुरुषको ग्रामः। प्रथमार्थे तु न । वृष्टे देवे गतः । व्यधिकरणानामपि न पञ्चभिर्भुक्तमस्य ॥ प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ॥ * ॥ प्रपतितपर्णः प्रपर्णः ॥ नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ॥*॥ अविद्यमानपुत्रः अपुत्रः । अस्तीति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम् । अस्तिक्षीरा गौः ॥

८३०–अन्यपदार्थबोधक अनेक प्रथमान्त पदका विकल्प करके समास हो और उसकी बहुव्रीहि संज्ञा हो । अप्रथमाविभक्त्यर्थमें बहुव्रीहि और, समानाधिकरणोंका बहुव्रीहि यह बात फलित हुई । जैसे–' प्राप्तमुदकं यं ग्रामम् ' इस विग्रहमें प्राप्तोदको ग्रामः । ' ऊढो रथः येन ' इस विग्रहमें=ऊढरथोऽनड्वान् । उपहृतः पशुः यस्मै=उपहृतपशू रुद्रः । उद्धृतमोदनं यस्याः=उद्धृतौदना स्थाली । पीतम् अम्बरं यस्य=पीताम्बरो हरिः । वीरः पुरुषो यस्मिन्=वीरपुरुषो ग्रामः । प्रथमार्थमें बहुव्रीहि न होनेसे जैसे–वृष्टे देवे गतः । व्यधिकरण पदको भी बहुव्रीहि न होनेसे जैसे–पञ्चभिर्भुक्तमस्य ।

प्रादि उपसर्गोंसे परे स्थित धातुजका पदान्तरके साथ समास हो, और पूर्वपदान्तर्गत प्रादि उपसर्गोंके उत्तर भागस्थित धातुजको विकल्प करके लोप हो * जैसे–प्रपतितपर्णः=प्रपर्णः ।

नञ्के परे स्थित अस्त्यर्थवाचकका पदान्तरके साथ बहुव्रीहि समास और नञ्से परे अस्त्यर्थवाचकका विकल्प करके लोप हो* जैसे–अविद्यमानपुत्रः=अपुत्रः ।

'अस्ति' यह विभक्तिप्रतिरूपक अव्यय है, अस्तिक्षीरा गौः ॥

८३१ स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु । ६ । ३ । ३४ ॥

भाषितपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिर्निपातनात्पञ्चम्या अलुक् षष्ठ्याश्च लुक् । तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकस्य शब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात्समानाधिकरणे स्त्रीलिंगे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः । गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । चित्रा गावो यस्येति लौकिकविग्रहे । चित्रा अस् गो अस् इत्यलौकिकविग्रहे । चित्रगुः । रूपवद्भार्यः । चित्रा जरती गौर्यस्येति विग्रहे अनेकोक्तेर्बहूनामपि बहुव्रीहिः । अत्र केचित् । चित्राजरतीगुः । जरतीचित्रागुर्वा । एवं दीर्घातन्वीजंघः । तन्वीदीर्घाजंघः । त्रिपदे बहुव्रीहौ प्रथमं न पुंवत्, उत्तरपदस्य मध्यमेन व्यवधानात् । द्वितीयमपि न पुंवत्, पूर्वपदत्वाभावात् । उत्तरपदशब्दो हि समासस्य चरमावयवे रूढः पूर्वपदशब्दस्तु प्रथमावयव इति वदन्ति । वस्तुतस्तु नेह पूर्वपदमाक्षिप्यते । आनङ् ऋत इत्यत्र यथा । तेनोपान्त्यस्य पुंवदेव । चित्राजरद्गुरित्यादि । अत एव चित्राजरत्यौ गावौ यस्येति द्वन्द्वगर्भेऽपि चित्राजरद्गुरिति भाष्यम् । कर्मधारयपूर्वपदे तु द्वयोरपि पुंवत् । जरच्चित्रगुः । कर्मधारयोत्तरपदे तु चित्रजरद्गवीकः । स्त्रियाः किम् । ग्रामणि कुलं दृष्टिरस्य ग्रामणिदृष्टिः । भाषितपुंस्कात्किम् । गंगाभार्यः । अनूङ् किम् ।

वामोरूभार्यः । समानाधिकरणे किम् । कल्याण्या माता कल्याणीमाता । स्त्रियां किम् । कल्याणी प्रधानं यस्य सः कल्याणीप्रधानः । पूरण्यां तु ॥

८३१–'भाषितपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्याम्' ऐसा बहुव्रीहि है, निपातनसे पञ्चमीका अलुक् और षष्ठीका लुक् हुआ । तुल्य प्रवृत्तिनिमित्तमें उक्तपुंस्कके परे ऊङ्का अभाव हो जहां ऐसे स्त्रीवाचक शब्दोंको पुंवद्भाव हो, पूरणी प्रियादिसे भिन्न समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग उत्तर पद परे रहते । "गोस्त्रियोः० ६५६" इस सूत्रसे ह्रस्व हुआ, जैसे–'चित्रा गावो यस्य' इस लौकिक विग्रहमें और 'चित्रा+जस्–गो+ अस्' इस अलौकिक विग्रहमें 'चित्रगुः' पद होताहै । रूपवद्भार्यः । चित्रा जरती गौर्यस्य, इस विग्रहमें अनेक कहनेसे बहुत शब्दोंका भी बहुव्रीहि होताहै । इस विषयमें कोई २ 'चित्राजरतीगुः जरतीचित्रागुर्वा' ऐसे 'दीर्घातन्वी- जंघः, तन्वीदीर्घाजंघः' इस त्रिपद बहुव्रीहि समासमें उत्तर पदको मध्यम पदसे व्यवधान होनेसे पहिला पद पुंवत् न होगा और पूर्वपदत्वाभावके कारण दूसरा पद भी पुंवत् नहीं होगा, कारण कि, उत्तरपद शब्द समासके चरमावयवमें रूढ है और पूर्वपद शब्द समासके प्रथमावयवमें रूढ है, ऐसा कहतेहैं । वास्तवमें तो जैसे "आनङ् ऋतः० ९२१" इस सूत्रमें पूर्वपदका आक्षेप नहीं हुआहै, वैसे यहां भी पूर्वपदका आक्षेप नहीं है, इस कारण उपान्त्यका पुंवद्भाव होहीगा, जैसे– चित्राजरद्गुः–इत्यादि । इसी कारण 'चित्राजरत्यो गावो यस्य' इस द्वन्द्वगर्भमें भी चित्राजरद्गुः, यह पद भाष्याभिमत है । कर्म- धारयपूर्वपदमें तो दोनोंका भी पुंवद्भाव होगा, जैसे–जर- च्चित्रगुः । कर्मधारयोत्तरपदमें, चित्रजरद्गवीकः । स्त्रीलिङ्ग न होनेपर, ग्रामणि कुलं दृष्टिरस्य=ग्रामणिदृष्टिः । भाषितपुंस्क न होनेपर, जैसे–गङ्गाभार्यः । ऊङ्युक्त होनेपर, वामोरूभार्यः । समानाधिकरण न होनेपर, जैसे–कल्याण्या माता=कल्याणीमाता । स्त्रीलिङ्ग न होनेपर, जैसे–कल्याणी प्रधानं यस्य सः= कल्याणीप्रधानः । पूरणार्थप्रत्ययान्तकी बात अगले सूत्रमें कहते हैं–॥

८३२ अप्पूरणीप्रमाण्योः ।५।४।११६ ॥

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिंगं तदन्तात्प्र- माण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात् । कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाणः । पुंवद्भावप्रतिषेधोऽप्प्रत्ययश्च प्रधानपूरण्यामेव । रात्रिः पूरणी वाच्या चेत्युक्तोदाहरणे मुख्या । अन्यत्र तु ॥

८३२–पूरणार्थप्रत्ययान्त जो स्त्रीलिङ्ग शब्द, तदन्त और प्रमाण्यन्तसे बहुव्रीहि समासमें अप् प्रत्यय हो, जैसे–कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः=कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । स्त्री प्रमाणी यस्य सः=स्त्रीप्रमाणः । पुंवद्भावप्रतिषेध और अप् प्रत्यय प्रधानपूरणीमें ही होगा । रात्रि शब्द उक्तोदाहरणमें पूरणी- वाच्य है, इससे पूरणप्रत्ययान्तका प्राधान्य जानना । अन्यत्र नहीं होगा यह बात ८३५ के व्याख्यामें ज्ञात होगी ॥

८३३ नद्यृतश्च । ५। ४। १५३ ॥

नद्युत्तरपदादृदन्तोत्तरपदाच्च बहुव्रीहेः कप्स्यात् । पुंवद्भावः ॥

८३३–नदी और ऋदन्त शब्द उत्तर पद होनेपर बहु- व्रीहि समासमें कप् प्रत्यय और पुंवद्भाव हो ॥

८३४ केऽणः । ७ । ४ । १३ ॥

के परेऽणो ह्रस्वः स्यात् । इति प्राप्ते ॥

८३४–कप् प्रत्यय परे रहते अण्को ह्रस्व हो । ऐसी प्राप्ति होनेपर–॥

८३५ न कपि । ७ । ४ । १४ ॥

कपि परे ह्रस्वो न स्यात् । कल्याणपञ्चमीकः पक्षः । अत्र तिरोहितावयवभेदस्य पक्षस्यान्य- पदार्थतया रात्रिरप्रधानम् । बहुकर्तृकः । अप्रि- यादिषु किम् । कल्याणीप्रियः । प्रिया । मनोज्ञा । कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । भक्तिः । सचिवा । स्वसा । कान्ता । क्षान्ता । समा । चपला । दुहिता । वामा । अबला । तनया । प्रियादिः । सामान्ये नपुंसकम् । दृढं भक्तिर्यस्य स दृढभक्तिः । स्त्रीत्व- विवक्षायां तु दृढाभक्तिः ॥

८३५–कप् प्रत्यय परे रहते अण्को ह्रस्व न हो, जैसे कल्याणपञ्चमीकः पक्षः, इस स्थलमें तिरोहित अवयवभेद पक्षकी अन्यपदार्थताके कारण रात्रि शब्दका अप्राधान्य कहाहै, बहुकर्तृकः । प्रियादि परे रहते जैसे–कल्याणीप्रियः । प्रियादि जैसे–प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी, सुभगा, दुर्भगा, भक्ति, सचिवा, स्वसा, कान्ता, क्षान्ता, समा, चपला, दुहिता, वामा, अबला, तनया । सामान्यमें नपुंसक लिङ्ग हो, जैसे–दृढं भक्तिर्यस्य सः=दृढ- भक्तिः । स्त्रीत्वकी विवक्षामें 'दृढाभक्तिः' ऐसा पद होगा ॥

८३६ तसिलादिष्वाकृत्वसुचः ।६।३।३५।

तसिलादिषु आकृत्वसुजन्तेषु परेषु स्त्रियाः पुंवत्स्यात् । परिगणनं कर्तव्यम् । अव्याप्त्य- तिव्याप्तिपरिहाराय । त्रतसौ । तरप्तमपौ । चरड्जातीयरौ । कल्पब्देशीयरौ । रूपप्पाशपौ । थाल् । तिल्थ्यनौ । बह्वीषु बहुत्र । बहुतः । दर्शनीयतरा । दर्शनीयतमा घरूपेति वक्ष्यमाणो ह्रस्वः परत्वात्पुंवद्भावं बाधते । पटुतरा । पटु- तमा । पटुजातीया । दर्शनीयकल्पा । दर्शनीय- देशीया । दर्शनीयरूपा । दर्शनीयपाशा । बहुथा । प्रशस्ता वृकी वृकतिः । अजाभ्यो हिता अजथ्या ॥ शसि बह्वल्पार्थस्य पुंवद्भावो वक्तव्यः ॥ * ॥ बह्वीभ्यो देहि बहुशः । अल्पाभ्यो देहि अल्पशः ॥

त्वतलोर्गुणवचनस्य ॥ * ॥ शुक्लाया भावः शुक्लत्वम् । गुणवचनस्य किम् । कर्त्र्या भावः कर्त्रीत्वम् । शरदः कृतार्थतेत्यादौ तु सामान्ये नपुंसकम् ॥ भस्याढे तद्धिते ॥ * ॥ हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम् । अढे किम् । रौहिणेयः । स्त्रीभ्यो ढगिति ढोऽत्र गृह्यते । अग्नेर्ढगिति ढकि तु पुंवदेव अग्नायी देवतास्य स्थालीपाकस्याग्नेयः ॥ सपत्नीशब्दस्त्रिधा । शत्रुपर्यायात्सपत्नशब्दाच्छार्ङ्गरवादित्वात् ङीन्येकः । समानः पतिर्यस्या इति विग्रहे विवाहनिबन्धनं पतिशब्दमाश्रित्य नित्यस्त्रीलिंगो द्वितीयः । स्वामिपर्यायपतिशब्देन भाषितपुंस्कस्तृतीयः।आद्ययोः शिवाद्यण् । सपत्न्या अपत्यं सापत्नः । तृतीयात्तु लिंगविशिष्टपरिभाषया पत्युत्तरपदलक्षणो ण्य एव न त्वण् । शिवादौ रूढयोरेव ग्रहणात्सापत्यः ॥ ठक्छसोश्च ॥ * ॥ भवत्याश्छात्रा भावत्काः । भवदीयाः । एतद्वार्तिकमेकतद्धिते चेति सूत्रं च न कर्तव्यम् । सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव इति भाष्यकारेष्ट्या गतार्थत्वात् । सर्वकाम्यति । सर्विका भार्या यस्य सर्वकभार्यः । सर्वप्रिय इत्यादि । पूर्वस्यैवेदम् । भस्त्रैषाजाज्ञाद्वेति लिंगात् । तेनाकचि एकशेषवृत्तौ च न । सर्विका । सर्वाः ॥कुक्कुटयादीनामण्डादिषु॥*॥ कुक्कुट्या अण्डं कुक्कुटाण्डम् । मृग्याः पदं मृगपदम् । मृगक्षीरम् । काकशावः ॥

८३६–तसिलादि कृत्वसुच्पर्यन्त प्रत्यय परे रहते स्त्रीलिङ्ग-
को पुंवद्भाव हो । अव्याप्ति और अतिव्याप्तिके परिहारके नि-
मित्त इन संपूर्ण प्रत्ययोंका परिगणन करना चाहिये । प्रत्यय
यथा–त्रल्, त्रस्, तरप्, तमप्, चरट्, जातीयर्, कल्पप्, देशीयर्,
रूपप्, पाशप्, थाल्, तिल्, थ्यन्, इतने प्रत्यय तसिलादि हैं ।
'बह्वीषु' इस अर्थमें बहु+त्रल्=बहुत्र । 'बह्व्याः' इस अर्थमें बहु
+तस्=बहुतः । दर्शनीय+तरप्, तमप्=दर्शनीयतरा, दर्शनीय-
तमा, इस स्थलमें "घरूप० ९८५" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे
ह्रस्व परत्वके कारण पुंवद्भावको बाधता है । पटुवितरा । पटु-
वितमा । पटु+जातीयर्=पटुजातीया । दर्शनीय+कल्पप्=
दर्शनीयकल्पा । दर्शनीय+देशीयर्=दर्शनीयदेशीया । दर्श-
नीय+रूपप्=दर्शनीयरूपा । दर्शनीय+पाशप्=दर्शनीयपाशा ।
बहु+थाल्=बहुथा । 'प्रशस्ता वृका' इस अर्थमें वृक+
तिल्=वृकतिः । 'अजाभ्यो हिता' इस अर्थमें अजा+
थ्यन्=अजथ्या ।

शस् प्रत्यय परे रहते बहु और अल्पार्थक शब्दको पुंवद्भाव
हो * जैसे–'बह्वीभ्यो देहि' इस वाक्यमें, बहुशः । 'अल्पा
भ्यो देहि' इस वाक्यमें, अल्पशः ।

त्व और तल् प्रत्यय परे रहते गुणवाचक शब्दको पुंवद्भाव
हो, जैसे–शुक्लायाः भावः=शुक्लत्वम् । गुणवाचकसे भिन्नको
पुंवद्भाव नहीं होगा, यथा–कर्त्र्या भावः=कर्त्रीत्वम् । "शरदः कृतार्थता" इत्यादिमें सामान्यमें नपुंसक लिङ्ग जानना ।

ढ प्रत्ययसे भिन्न तद्धित प्रत्यय परे रहते भसंज्ञकको पुंवद्भाव हो* जैसे–हस्तिनीनां समूहः=हास्तिकम् । ढ प्रत्यय परे रहते पुंवद्भाव न होगा, जैसे–रौहिणेयः । इस वार्तिकमें "स्त्रीभ्यो ढक् ११२३" इस सूत्रसे विहित ढ प्रत्यय ही गृहीत है, इसलिये "अग्नेर्ढक् १२३६" इस सूत्रसे विहित ढक् प्रत्यय परे रहते पुंवद्भाव होहीगा, जैसे–अग्नायी देवताऽस्य स्थालीपाकस्य, इस विग्रहमें आग्नेयः । सपत्नी शब्द तीन प्रकारका है, उसमें पहिला शत्रुपर्याय सपत्न शब्दके उत्तर शार्ङ्गरवादित्वके कारण ङीन् प्रत्ययवाला है, दूसरा 'समानः पतिर्यस्याः' इस विग्रहमें विवाहनिबंधन पति शब्दका आश्रयण करके निष्पन्न नित्यस्त्रीलिङ्ग है, तीसरा स्वामिपर्याय पति शब्दसे निष्पन्न सपत्नी शब्द भाषितपुंस्क है, इनमें प्रथम और द्वितीय सपत्नी शब्दके उत्तर शिवादित्वके कारण अण् प्रत्ययसे 'सपत्न्या अपत्यम्' इस विग्रहमें 'सापत्नः' यह पद सिद्ध हुआ है । तृतीय सपत्नी शब्दके उत्तर लिङ्गविशिष्ट परिभाषासे पत्युत्तरपदलक्षण ण्य प्रत्यय ही होगा, शिवादिमें प्रथम और द्वितीय रूढ सपत्नी ही शब्दके ग्रहणके कारण अण् नहीं होगा, तीसरेके उत्तर ण्य होनेपर 'सापत्यः' यह पद सिद्ध हुआ ।

ठक् और छस् प्रत्यय परे रहते पुंवद्भाव हो* जैसे–भवत्याः छात्राः=भावत्काः, भवदीयाः । इस वार्तिककी और "एकतद्धिते च १०००" इस सूत्रकी आवश्यकता नहीं है । क्यों कि, सर्वनामको वृत्तिमात्रमें पुंवद्भाव हो, इस प्रकार भाष्यकारके अभिप्रायसे दोनों गतार्थ हैं, जैसे–सर्वमयः । सर्वकाम्यति । सर्विका भार्या यस्य=सर्वकभार्यः । सर्वप्रियः–इत्यादि । "भस्त्रैषा० ४४६" ऐसे सूत्रनिर्देशके कारण पूर्वपदको ही पुंवद्भाव होगा, इसी कारण अकच् प्रत्यय और एकशेषवृत्तिविषयमें पुंवद्भाव नहीं होगा, जैसे–सर्विका । सर्वाः ।

अंडादि शब्द परे रहते कुक्कुट्यादि शब्दोंको पुंवद्भाव हो* जैसे–कुक्कुट्या अंडम्=कुक्कुटाण्डम् । मृग्याः पदम्=मृगपदम् । मृग्याः क्षीरम्=मृगक्षीरम् । काक्याः शावः=काकशावः ॥

८३७ क्यङ्मानिनोश्च । ६।३।३६॥

एतयोः परतः पुंवत् । एनीवाचरति एतायते । श्येनीवाचरति श्येतायते । स्वभिन्नां कांचिद्दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते दर्शनीयमानिनी । दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते दर्शनीयमानी चैत्रः ॥

८३७–क्यङ् प्रत्यय और मानिन् शब्द परे रहते पुंवद्भाव हो, जैसे–एनीवाचरति=एतायते । श्येनीवाचरति=श्येतायते । स्वभिन्नां काञ्चित् दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते=दर्शनीयमानिनी । दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते=दर्शनीयमानी चैत्रः ॥

८३८ न कोपधायाः । ६ । ३ । ३७ ॥

कोपधायाः स्त्रिया न पुंवत् । पाचिकाभार्यः । रसिकाभार्यः । मद्रिकायते । मद्रिकामानिनी ॥ कोपधप्रतिषेधे तद्धितवुग्रहणम् ॥ * ॥ नेह । पाका भार्या यस्य स पाकभार्यः ॥

८३८–ककार उपधावाले स्त्रीलिङ्ग शब्दोंको पुंवद्भाव न हो, जैसे–पाचिका भार्या यस्य सः=पाचिकाभार्यः । रसिकाभार्यः । मद्रिकायते । मद्रिकामानिनी ।

ककारोपधके प्रतिषेधविषयमें वुक् इस तद्धित प्रत्ययका ग्रहण करना चाहिये * इस कारण पाका भार्या यस्य सः=पाकभार्यः, इस स्थलमें पुंवद्भाव हुआ ॥

८३९ संज्ञापूरण्योश्च । ६ । ३ । ३८ ॥

अनयोर्न पुंवत् । दत्ताभार्यः । दत्तामानिनी । दानक्रियानिमित्तः स्त्रियां पुंसि च संज्ञाभूतोयमिति भाषितपुंस्कत्वमस्ति । पञ्चमीभार्यः । पञ्चमीपाशा ॥

८३९–संज्ञावाचक और पूरणार्थप्रत्ययान्त शब्दको पुंवद्भाव न हो, जैसे–दत्ताभार्यः । दत्तामानिनी । स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्गमें दानक्रियानिमित्त संज्ञाभूत दत्ता शब्दको भाषितपुंस्कत्व है, पञ्चमीभार्यः । पञ्चमीपाशा ॥

८४० वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्याऽरक्तविकारे । ६ । ३ । ३९ ॥

वृद्धिशब्देन विहिता या वृद्धिस्तद्धेतुर्यस्तद्धितोऽरक्तविकारार्थस्तदन्ता स्त्री न पुंवत् । स्रौघ्नीभार्यः । माथुरीयते । माथुरीमानिनी । वृद्धिनिमित्तस्य किम् । मध्यमभार्यः । तद्धितस्य किम् । काण्डलावभार्यः । वृद्धिशब्देन किम् । तावद्भार्यः । रक्ते तु काषायी कन्था यस्य स काषायकन्थः । विकारे तु हैमी मुद्रिका यस्येति हैममुद्रिकः । वृद्धिशब्देन वृद्धिं प्रति फलोपधानाभावादिह पुंवत् । वैयाकरणभार्यः । सौवश्वभार्यः ॥

८४०–वृद्धि शब्दसे विहित जो वृद्धि तद्धेतुभूत जो रक्त और विकारार्थसे भिन्न तद्धित प्रत्यय तदन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दको पुंवद्भाव न हो, जैसे–स्रौघ्नीभार्यः । माथुरीयते । माथुरीमानिनी । वृद्धिनिमित्त न होनेपर, जैसे–मध्यमभार्यः । तद्धितप्रत्ययान्त न होनेपर, जैसे–कांडलावभार्यः । वृद्धि न होनेपर जैसे–तावद्भार्यः । रक्तार्थ होनेपर, जैसे–काषायी कन्था यस्य सः=काषायकन्थः । विकारार्थ होनेपर, जैसे–हैमी मुद्रिका यस्य सः=हैममुद्रिकः । वृद्धि शब्दसे विहित वृद्धिके प्रति फलोपधानरूप निमित्तके अभावके कारण इस स्थानमें पुंवद्भाव होगा, जैसे वैयाकरणभार्यः । सौवश्वभार्यः ॥

८४१ स्वाङ्गाच्चेतः । ६ । ३ । ४० ॥

स्वांगाद्य ईकारस्तदन्ता स्त्री न पुंवत् । सुकेशीभार्यः । स्वांगात्किम् । पटुभार्यः । ईतः किम् । अकेशभार्यः ॥ अमानिनीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सुकेशमानिनी ॥

८४१–स्वांगवाचकसे विहित जो ईकार तदन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दको पुंवद्भाव न हो, जैसे–सुकेशीभार्यः । स्वाङ्गवाचकके उत्तर न होनेपर, जैसे–पटुभार्यः । ईकारान्त न होनेपर, जैसे–अकेशभार्यः ।

मानिनी शब्द परे रहते पुंवद्भावका निषेध न हो यह कहना चाहिये * जैसे–सुकेशमानिनी ॥

८४२ जातेश्च । ६ । ३ । ४१ ॥

जातेः परो यः स्त्रीप्रत्ययस्तदन्तं न पुंवत् । शूद्राभार्यः । ब्राह्मणीभार्यः । सौत्रस्यैवायं निषेधः । तेन हस्तिनीनां समूहो हास्तिकमित्यत्र भस्याढ इति तु भवत्येव ॥

८४२–जातिवाचकके उत्तर जो स्त्रीप्रत्यय, तदन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दको पुंवद्भाव न हो, जैसे–शूद्राभार्यः । ब्राह्मणीभार्यः । सूत्रसे कहे हुए पुंवद्भावको ही यह निषेध है, इसी कारण हस्तिनीनां समूहः=हास्तिकम्, इस स्थलमें "भस्याढे०" इस वार्त्तिकसे पुंवद्भाव होताही है ॥

८४३ संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये । २ । २ । २५ ॥

संख्येयार्थया संख्ययाऽव्ययादयः समस्यन्ते स बहुव्रीहिः । दशानां समीपे ये सन्ति ते उपदशाः । नव एकादश वेत्यर्थः । बहुव्रीहौ संख्येये इति वक्ष्यमाणो डच् ॥

८४३–संख्येयार्थक संख्यावाचक शब्दके साथ अव्ययादिको बहुव्रीहि समास हो, जैसे–दशानां समीपे ये सन्ति ते=उपदशाः, अर्थात् नौ अथवा ग्यारह । "बहुव्रीहौ संख्येये० ८५१" इस सूत्रसे वक्ष्यमाण डच् प्रत्यय हुआ है ॥

८४४ ति विंशतेर्डिति । ६ । ४ । १४२ ॥

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपः स्याड्डिति । आसन्नविंशाः । विंशतेरासन्ना इत्यर्थः । अदूरत्रिंशाः । अधिकचत्वारिंशाः । द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः । द्विरावृत्ता दश द्विदशाः । विंशतिरित्यर्थः ॥

८४४–डित् प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक विंशति शब्दके तिभागका लोप हो, जैसे–आसन्ना विंशतिः=आसन्नविंशाः, अर्थात् बीसकी समीपवर्त्तिनी संख्या । अदूराः त्रिंशतः=अदूरत्रिंशाः । अधिकाः चत्वारिंशतः=अधिकचत्वारिंशाः । द्वौ वा त्रयो वा=द्वित्राः । द्विरावृत्ता दश=द्विदशाः (बीस) ॥

८४५ दिङ्नामान्यन्तराले । २ । २ । २६ ॥

दिशो नामान्यन्तराले वाच्ये प्राग्वत् । दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालं दक्षिणपूर्वा । नामग्रहणाद्यौगिकानां न । ऐन्द्र्याश्च कौबेर्याश्चान्तरालं दिक् ॥

८४५–अन्तराल वाच्य होनेपर दिग्वाचक शब्दोंको पूर्ववत् समास हो, जैसे दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालम्, इस विग्रहमें दक्षिणपूर्वा । नामग्रहण करनेसे यौगिकको नहे

होताहै, जैसे-'ऐन्द्रयाश्च कौबेर्याश्चान्तरालं दिक्' इस स्थलमें समास नहीं हुआ ॥

८४६ तत्र तेनेदमिति सरूपे।२।२।२७॥

सप्तम्यन्ते ग्रहणविषये सरूपे पदे तृतीयान्ते च प्रहरणविषये इदं युद्धं प्रवृत्तमित्यर्थे समस्येते कर्मव्यतिहारे द्योत्ये स बहुव्रीहिः । इतिशब्दादयं विषयविशेषो लभ्यते ॥

८४६-समान रूपवाले सप्तम्यन्तके ग्रहणविषयमें और समान रूपवाले तृतीयान्तके प्रहरणविषयमें 'इदं युद्धं प्रवृत्तम्' अर्थात् यह युद्ध प्रवृत्त हुआ, इस अर्थमें कर्मव्यतिहार द्योत्य हो तो बहुव्रीहि समास हो, इति शब्दसे यह विशेष विषय लब्ध होताहै ॥

अन्येषामपि दृश्यते ६।३।१३७॥

दीर्घ इत्यनुवर्तते । इचि कर्मव्यतिहारे बहुव्रीहौ पूर्वपदान्तस्य दीर्घः । इच् समासान्तो वक्ष्यते । तिष्ठद्गुप्रभृतिष्विच्प्रत्ययस्य पाठादव्ययीभावत्वमव्ययत्वं च । केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि । दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तं दण्डादण्डि । मुष्टीमुष्टि ॥

(३५३९ अन्येषामपि दृश्यते) यहां "ढूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः १७४" से दीर्घ पदकी अनुवृत्ति होतीहै । कर्मव्यतिहारमें बहुव्रीहि समासमें पूर्वपदान्तको दीर्घ हो । इच् यह समासान्त प्रत्यय आगे कहेंगे, तिष्ठद्गु आदिमें इच् प्रत्ययके पाठके कारण अव्ययीभावत्व और अव्ययत्व होगा, जैसे-केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्=केशाकेशि । दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तम् = दण्डादण्डि । मुष्टीमुष्टि ॥

८४७ ओर्गुणः । ६ । ४ । १४६ ॥

उवर्णान्तस्य भस्य गुणः स्यात्तद्धिते । अवादेशः । बाहूबाहवि । ओरोदिति वक्तव्ये गुणोक्तिः संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति ज्ञापयितुं तेन स्वायम्भुवमित्यादि सिद्धम् । सरूपे इति किम् । हलेन मुसलेन ॥

८४७-तद्धित प्रत्यय परे रहते उवर्णान्त भसंज्ञक शब्दोंको गुण हो । अव् आदेश होकर,-बाहोः बाहोः गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्=बाहूबाहु+इ=बाहूबाहो+इ=बाहूबाहव्+इ=बाहूबाहवि । "ओरोत्" ऐसा कहनेसे ही काम हो जाताहै, परन्तु संज्ञापूर्वक विधिके अनित्यत्व ज्ञापनके निमित्त गुणका ग्रहण किया है, इससे ' स्वायम्भुवम् ' इत्यादि पद सिद्ध होतेहैं । पूर्व सूत्रमें 'सरूपे' इस पदका ग्रहण करनेसे 'हलेन मुसलेन' इस स्थानमें समास नहीं हुआ ॥

८४८ तेन सहेति तुल्ययोगे २।२।२८॥

तुल्ययोगे वर्तमानं सहेत्येतत्तृतीयान्तेन प्राग्वत् ॥

८४८-तुल्ययोगमें वर्त्तमान सह शब्दका तृतीयान्त पदके साथ पूर्ववत् समास हो ॥

८४९ वोपसर्जनस्य । ६ । ३ । ८२ ॥

बहुव्रीह्यवयवस्य सहस्य सः स्याद्वा । पुत्रेण सह सपुत्रः सहपुत्रो वा आगतः । तुल्ययोगवचनं प्रायिकम् । सकर्मकः । सलोमकः ॥

८४९-बहुव्रीहिके अवयवीभूत सह शब्दको विकल्प करके स आदेश हो, जैसे-पुत्रेण सह=सपुत्रः, सहपुत्रो वा आगतः । तुल्ययोगका कथन प्रायिक है, इससे सकर्मकः, सलोमकः, यहां भी समास हुआ ॥

८५० प्रकृत्याऽऽशिषि । ६ । ३ । ८३ ॥

सह शब्दः प्रकृत्या स्यादाशिषि । स्वस्ति राज्ञे सपुत्राय सहामात्याय ॥ अगोवत्सहलेष्विति वाच्यम् ॥ * ॥ सगवे । सवत्साय । सहलाय ॥

८५०-आशीर्वादार्थमें सह शब्द प्रकृतिमें ही हो, अर्थात् स आदेश न हो । स्वस्ति राज्ञे सहपुत्राय। सहामात्याय । गो, वत्स और हल शब्द परे रहते प्रकृतिभाव न हो । यह कहना चाहिये । जैसे-सगवे । सवत्साय । सहलाय ॥

८५१ बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् । ५ । ४ । ७३ ॥

संख्येये यो बहुव्रीहिस्तस्माड्डच् स्यात् । उपदशाः । अबहुगणात्किम् । उपबहवः । उपगणाः । अत्र स्वरे विशेषः ॥ संख्यायास्तत्पुरुषस्य वाच्यः ॥ * ॥ निर्गतानि त्रिंशतो निस्त्रिंशानि वर्षाणि चैत्रस्य । निर्गतस्त्रिंशतोंगुलिभ्यो निस्त्रिंशः खड्गः ॥

८५१-संख्येयार्थमें बहुव्रीहि समासके उत्तर डच् प्रत्यय हो, जैसे-उप (समीपे) दशानां ये सन्ति ते=उपदशाः । सूत्रमें "अबहुगणात्" इस पदके ग्रहणके कारण, उपबहवः, उपगणाः, इन स्थलोंमें डच् न हुआ, रूपमें भेद न होनेसे स्वरविषयमें विशेष जानना ॥

संख्यावाचक शब्दके उत्तर तत्पुरुषमें डच् प्रत्यय हो * निर्गतानि त्रिंशतः=निस्त्रिंशानि वर्षाणि चैत्रस्य । निर्गतस्त्रिंशतोंगुलिभ्यः=निस्त्रिंशः (खड्ग) ।

८५२ बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वांगात्षच् । ५ । ४ । ११३ ॥

व्यत्ययेन षष्ठी । स्वांगवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्यात् । दीर्घे सक्थिनी यस्य स दीर्घसक्थः । जलजाक्षी । स्वांगात्किम् ॥ दीर्घसक्थि शकटम् । स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः । अक्ष्णोऽदर्शनादित्यच् ॥

८५२–'सक्थ्यक्ष्णोः' इस स्थलमें षष्ठी व्यत्ययसे है, स्वाङ्ग-
वाचक सक्थि और अक्षिशब्दान्त बहुव्रीहिके उत्तर षच्
प्रत्यय हो, जैसे–दीर्घे सक्थिनी यस्य सः=दीर्घसक्थः ।
जलजाक्षी ।
स्वाङ्गवाचक न होनेपर दीर्घसक्थि शकटम्, स्थूलाक्षा वेणु-
यष्टिः, ऐसा होगा, यहां "अक्ष्णोऽदर्शनात् ५।४।७६" से
समासान्त अच् प्रत्यय हुआहै ॥

८५३ अंगुलेर्दारुणि । ५ । ४ । ११४॥

अंगुल्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्याद्दारुण्यर्थे ।
पञ्चांगुलयो यस्य तत्पञ्चांगुलं दारु । अंगुलि-
सदृशावयवं धान्यादिविक्षेपणकाष्ठमुच्यते । बहु-
व्रीहेः किम् । द्वे अंगुली प्रमाणमस्या द्व्यंगुला
यष्टिः । तद्धितार्थे तत्पुरुषे तत्पुरुषस्यांगुलेरि-
त्यच् । दारुणि किम् । पञ्चांगुलिर्हस्तः ॥

८५३–अंगुलि शब्दान्त बहुव्रीहिके उत्तर षच् प्रत्यय हो
दारु अर्थमें, जैसे–पञ्च अंगुलयो यस्य तत्=पञ्चांगुलं दारु, अर्थात्
अंगुलिसदृश अवयवसे युक्त धान्यादिविक्षेपणकाष्ठविशेष ।
बहुव्रीहि समास न होनेपर, जैसे–द्वे अंगुली प्रमाणमस्याः=
द्व्यंगुला यष्टिः, यहां तद्धितार्थमें तत्पुरुष होनेपर "तत्पुरुषस्यां-
गुलेः० ७८६" इस सूत्रसे अच् प्रत्यय हुआहै । दारु न होने-
पर जैसे–पञ्चांगुलिर्हस्तः ॥

८५४ द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ।५।४।११५॥

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद्बहुव्रीहौ । द्विमूर्द्धः ।
त्रिमूर्द्धः ॥ नेतुर्नक्षत्रे अब्वक्तव्यः ॥ * ॥ मृगो
नेता यासां ताः मृगनेत्रा रात्रयः । पुष्यनेत्राः ॥

८५४–बहुव्रीहि समासमें द्वि और त्रि शब्दके परे स्थित
मूर्द्धन् शब्दके उत्तर ष प्रत्यय हो, जैसे–द्वौ मूर्द्धानौ यस्य सः=
द्विमूर्द्धः । त्रिमूर्द्धः ॥
नक्षत्रवाचक नेतृ शब्दके उत्तर अप् प्रत्यय हो * जैसे–
मृगो नेता यासां ताः=मृगनेत्राः–रात्रयः । पुष्यनेत्राः ॥

८५५ अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ५।४।११७॥

आभ्यां लोम्नोऽप्स्याद् बहुव्रीहौ । अन्तर्लोमः ।
बहिर्लोमः ॥

८५५–अन्तर् और बहिस् शब्दसे परे स्थित लोमन्
शब्दके उत्तर अप् प्रत्यय हो बहुव्रीहिमें, जैसे–अन्तर्लोमः ।
बहिर्लोमः ॥

८५६ अञ् नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् । ५ । ४ । ११८ ॥

नासिकान्ताद्बहुव्रीहेरच् स्यात् नासिकाशब्दश्च
नसं प्राप्नोति न तु स्थूलपूर्वात् ॥

८५६–नासिकाशब्दान्त बहुव्रीहिके उत्तर अच् प्रत्यय हो
और नासिका शब्दके स्थानमें नस् आदेश हो, परन्तु स्थूल
शब्द पूर्वमें हो तो न हो ॥

८५७ पूर्वपदात्संज्ञायामगः ।८।४।३॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात्सं-
ज्ञायां न तु गकारव्यवधाने । द्रुरिव नासिका-
ऽस्य द्रुणसः । खरणसः । अगः किम् । ऋचा-
मयनम् ऋगयनम् । अणृगयनादिभ्य इति निपा-
तनात् णत्वाभावमाश्रित्य अग इति प्रत्याख्यातं
भाष्ये । अस्थूलात्किम् । स्थूलनासिकः ॥ खुर-
खराभ्यां वा नस् ॥ * ॥ खुरणाः । खरणाः ॥
पक्षे अजपीष्यते ॥ * ॥ खुरणसः । खरणसः ॥

८५७–संज्ञामें पूर्वपदस्थित निमित्तके उत्तर नकारको णत्व
हो, परन्तु गकारव्यवधान रहते न हो, द्रुरिव नासिका यस्य
सः=द्रुणसः । इसी प्रकार, खरणसः ।
गकारव्यवधान रहते, जैसे–ऋचामयनम्=ऋगयनम् ।
भाष्यमें " अणृगयनादिभ्यः १४५२" इस निपातनसे यहां
णत्वके अभावका आश्रयण करके 'अग' इस अंशका प्रत्या-
ख्यान किया है । स्थूल शब्द पूर्वमें रहते नस् आदेश न
होगा । जैसे–स्थूलनासिकः ।
खुर और खर शब्दसे परे स्थित नासिका शब्दको विकल्प
करके नस् आदेश हो * जैसे–खुरणाः, खरणाः । विकल्प
पक्षमें–अच् भी होगा, जैसे–खुरणसः, खरणसः ॥

८५८ उपसर्गाच्च । ५ । ४ । ११९॥

प्रादेर्या नासिकाशब्दस्तदन्ताद्बहुव्रीहेरच् ना-
सिकाया नसादेशश्च । असंज्ञार्थं वचनम् । उन्नता
नासिका यस्य स उन्नसः । उपसर्गादनोत्पर इति
सूत्रं तद्भङ्क्त्वा भाष्यकार आह ॥

८५८–प्रादि उपसर्गके परे स्थित जो नासिका शब्द तदन्त
बहुव्रीहिसे अच् प्रत्यय हो और नासिकाको नस् आदेश हो ।
संज्ञा जहां नहीं है वहांके लिये यह सूत्र है, जैसे–उन्नता
नासिका यस्य सः=उन्नसः ॥
भाष्यकार "उपसर्गादनोत्परः" इस सूत्रको भांगकर
अर्थात् 'अनोत्परः' इसके स्थानमें 'बहुलम्' इसको पढकर
कहतेहैं कि–

८५९ उपसर्गाद्बहुलम् । ८ ।४।२८॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नसो नस्य णः
स्याद्बहुलम् । प्रणसः ॥ वेर्ग्रो वक्तव्यः ॥ * ॥
विगता नासिकास्य विग्रः ॥ ख्यश्च ॥ * ॥
विख्यः । कथं तर्हि विनसा हतबान्धवेति भट्टिः ।
विगतया नासिकयोपलक्षितेति व्याख्येयम् ॥

८५९–उपसर्गस्थ निमित्तके परे स्थित नस्के नकारके
स्थानमें बहुल प्रकारसे णकार हो, जैसे-प्रणसः ।
वि से परे नासिका शब्दको ग्र आदेश हो * जैसे–विगता
नासिकाऽस्य विग्रः ।
विसे परे नासिका शब्दको ख्य आदेश भी हो *
जैसे विख्यः ।

पूर्वोक्त ग्र वा ग्य आदेश होजानेसे भट्टिकाव्यमें "विनसा हतबांधवा" ऐसा प्रयोग कैसे हुआ ? तो कहतेहैं कि, 'विगतया नासिकया उपलक्षिता' इस प्रकार व्याख्या करनी चाहिये॥

८६० सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाऽजपदप्रोष्ठपदाः ।५।४।१२०॥

एते बहुव्रीहयोऽच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। शोभनं प्रातरस्य सुप्रातः । शोभनं श्वोऽस्य सुश्वः । शोभनं दिवास्य सुदिवः । शारेरिव कुक्षिरस्य शारिकुक्षः । चतस्रोऽश्रयोऽस्य चतुरश्रः । एण्या इव पादावस्य एणीपदः । अजपदः । प्रोष्ठो गौः तस्येव पादावस्य प्रोष्ठपदः ॥

८६०-सुप्रातः, सुश्वः, सुदिवः, शारिकुक्षः, चतुरश्वः, एणीपदः, अजपदः, प्रोष्ठपदः, इतने बहुव्रीहि अच्प्रत्ययान्त निपातन किये जातेहैं, जैसे-शोभनं प्रातः अस्य=सुप्रातः । शोभनं श्वोऽस्य=सुश्वः । शोभनं दिवास्य=सुदिवः शारेरिव कुक्षिः अस्य=शारिकुक्षः । चतस्रोऽश्रयोऽस्य=चतुरश्रः । एण्या-इव पादावस्य=एणीपदः । अजस्येव पादौ अस्य=अजपदः । प्रोष्ठो गौः तस्येव पादावस्य=प्रोष्ठपदः ॥

८६१ नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् । ५ । ४ । १२१ ॥

अच् स्यात् । अहलः । अहलिः । असक्थः । असक्थिः । एवं दुःसुभ्याम् । शक्त्योरिति पाठान्तरम् । अशक्तः । अशक्तिः ॥

८६१-बहुव्रीहि समासमें नञ्, दुस् और सु शब्दके परे स्थित हलि और सक्थि शब्दके उत्तर विकल्प करके समासान्त अच् प्रत्यय हो, जैसे-अहलः, अच् न हुआ तो अहलिः । असक्थः, असक्थिः । सु और दुर् शब्दके उत्तर भी इसी प्रकार होगा ।

सक्थिके स्थानमें शक्ति ऐसा भी पाठान्तर है, तब-अशक्तः, अशक्तिः, ऐसे प्रयोग होंगे ॥

८६२ नित्यमसिच् प्रजामेधयोः । ५ । ४ । १२२ ॥

नञ्दुःसुभ्य इत्येव । अप्रजाः । दुष्प्रजाः । सुप्रजाः । अमेधाः । दुर्मेधाः । सुमेधाः ॥

८६२-नञ्, सु और दुर् शब्दके परे स्थित प्रजा और मेधा शब्दके उत्तर नित्य असिच् प्रत्यय हो, जैसे-अप्रजाः । दुष्प्रजाः । सुप्रजाः । अमेधाः । दुर्मेधाः । सुमेधाः ॥

८६३ धर्मादनिच् केवलात् ।५।४।१२४॥

केवलात्पूर्वपदात्परो धर्मशब्दस्तदन्ताद्बहुव्रीहेरनिच् स्यात् । कल्याणधर्मा । केवलात्किम् । परमः स्वो धर्मो यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ मा भूत् । स्वशब्दो हीह न केवलं पूर्वपदं किंतु मध्यमत्वादापेक्षिकम् । संदिग्धसाध्यधर्मेत्यादौ तु कर्मधारयपूर्वपदो बहुव्रीहिः । एवं तु परमस्वधर्मेत्यपि साध्वेव । निवृत्तिधर्मा अनुच्छित्तिधर्मेत्यादिवत् । पूर्वपदं तु बहुव्रीहिणाक्षिप्यते ॥

८६३-केवल पूर्वपदके परे स्थित जो धर्म शब्द, तदन्त बहुव्रीहिके उत्तर समासान्त अनिच् प्रत्यय हो, जैसे-कल्याणधर्मा । केवल पूर्वपद न रहनेसे अर्थात् पूर्वमें दो पद रहते, जैसे-'परमः स्वो धर्मो यस्य' इस त्रिपद बहुव्रीहिमें नहीं होताहै, कारण कि, इस स्थानमें स्व शब्द केवल पूर्वपद नहीं है किन्तु मध्यमपदत्वके कारण आपेक्षिक पूर्वपद है 'संदिग्धसाध्यधर्मा' इत्यादि स्थलमें तो कर्मधारयपूर्वक बहुव्रीहि हुआ है । इसी प्रकारसे 'निवृत्तिधर्मा, अनुच्छित्तिधर्मा' इत्यादिकी समान 'परमस्वधर्मा' पद भी साधु ही है । इस स्थलमें पूर्वपद बहुव्रीहिसे आक्षिप्त होताहै ॥

८६४ जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्यः । ५ । ४ । १२५ ॥

जम्भेति कृतसमासान्तं निपात्यते । जम्भो भक्ष्ये दन्ते च । शोभनो जम्भोऽस्य सुजम्भा । हरितजम्भा । तृणं भक्ष्यं यस्य तृणमिव दन्ता अस्येति वा तृणजम्भा । सोमजम्भा । स्वादिभ्यः किम् । पतितजम्भः ॥

८६४-सु, हरित, तृण और सोम शब्दके उत्तर कृतसमासान्त जंभा शब्द निपातनसे सिद्ध हो, जंभा शब्दसे भक्ष्य और दन्त जानना, जैसे-सुशोभनो जम्भोऽस्य=सुजम्भा । हरितजम्भा । तृणं भक्ष्यं यस्य, तृणमिव दन्ता यस्येति वा=तृणजम्भा । सोमजम्भा । स्वादिके उत्तर न होनेपर 'पतितजम्भः' इस प्रकार रूप होगा ॥

८६५ दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ।५।४।१२६॥

दक्षिणे ईर्मं व्रणं यस्य दक्षिणेर्मा मृगः । व्याधेन कृतव्रण इत्यर्थः ॥

८६५-व्याधसम्बन्ध होनेपर 'दक्षिणेर्मा' पद निपातनसे सिद्ध हो, जैसे-दक्षिणे ईर्मं व्रणं यस्य=दक्षिणेर्मा (मृगविशेष अर्थात् व्याधकर्तृककृतव्रण मृग) ॥

८६६ इच् कर्मव्यतिहारे । ५ ।४।१२७॥

कर्मव्यतिहारे यो बहुव्रीहिस्तस्मादिच् स्यात्समासान्तः । केशाकेशि । मुसलामुसलि ॥

८६६-कर्मव्यतिहारमें जो बहुव्रीहि, उसके उत्तर समासान्त इच् प्रत्यय हो, जैसे-केशाकेशि । मुसलामुसलि ॥

८६७ द्विदण्ड्यादिभ्यश्च । ५ ।४।१२८॥

तादर्थ्ये चतुर्थ्येषा । एषां सिद्ध्यर्थमिच् प्रत्ययः स्यात् । द्वौ दण्डौ यस्मिन्प्रहरणे तद् द्विदण्डि प्रहरणम् । द्विमुसलि । उभाहस्ति । उभयाहस्ति ॥

८६७-इस सूत्रमें तादर्थ्यमें चतुर्थी हुई है, द्विदण्डि-इत्यादि शब्दोंकी सिद्धिके लिये [illegible]

द्वौ दण्डौ यस्मिन् प्रहरणे तत्=द्विदण्डि प्रहरणम् । द्विमुसलि। उभाहस्ति, उभयाहस्ति ॥

८६८ प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः ।५।४।१२९॥

आभ्यां परयोर्जानुशब्दयोर्ज्ञुरादेशः स्याद्बहुव्रीहौ । प्रगते जानुनी यस्य प्रज्ञुः । संज्ञुः ॥

८६८–बहुव्रीहि समासमें प्र और सं पूर्वक जानु शब्दको ज्ञु आदेश हो, जैसे–प्रगते जानुनी अस्य=प्रज्ञुः । इसी प्रकार संज्ञुः ॥

८६९ ऊर्ध्वाद्विभाषा ।५।४।१३०॥

ऊर्ध्वज्ञुः । ऊर्ध्वजानुः ॥

८६९–ऊर्ध्व शब्दके परे स्थित जानु शब्दको विकल्प करके ज्ञु आदेश हो, जैसे–ऊर्ध्वे जानुनी यस्य=ऊर्ध्वज्ञुः, ऊर्ध्वजानुः ॥

८७० धनुषश्च ।५।४।१३२॥

धनुरन्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशः स्यात् । शार्ङ्गधन्वा ॥

८७०–धनुःशब्दान्त बहुव्रीहिको अनङ् आदेश हो, जैसे–शार्ङ्गं धनुर्यस्य सः=शार्ङ्गधन्वा ॥

८७१ वा संज्ञायाम् ।५।४।१३३॥

शतधन्वा । शतधनुः ॥

८७१–संज्ञा होनेपर विकल्प करके उक्त आदेश हो, जैसे-शतानि धनूंषि यस्य सः=शतधन्वा, शतधनुः ॥

८७२ जायाया निङ् ।५।४।१३४॥

जायान्तस्य बहुव्रीहेर्निङादेशः स्यात् ॥

८७२–जायाशब्दान्त बहुव्रीहिको निङ् आदेश हो ॥

८७३ लोपो व्योर्वलि ।६।१।६६॥

वकारयकारयोर्लोपः स्याद्वलि । पुंवद्भावः । युवतिर्जायाऽस्य युवजानिः ॥

८७३–वल् परे रहते वकार और यकारका लोप हो, पुंवद्भाव होनेपर जैसे–युवतिर्जाया अस्य=युवजानिः ॥

८७४ गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः । ५।४।१३५॥

एभ्यो गन्धस्य इकारोन्तादेशः स्यात् । उद्गन्धिः । पूतिगन्धिः । सुगन्धिः । सुरभिगन्धिः ॥ गन्धस्येत्त्वे तदेकान्तग्रहणम् ॥ * ॥ एकान्त एकदेश इव अविभागेन लक्ष्यमाण इत्यर्थः । सुगन्धि पुष्पं सलिलं च सुगन्धिर्वायुः । नेह । शोभना गन्धाः द्रव्याण्यस्य सुगन्ध आपणिकः ॥

८७४–उत्, पूति, सु और सुरभि शब्दके परे स्थित गंध शब्दको इकार अन्तादेश हो, जैसे उद्गन्धिः । पूतिगन्धिः । सुगन्धिः । सुरभिगन्धिः ।

गंध शब्दको इत्व करनेमें उसके एकान्तता ग्रहण करना चाहिये, एकान्त अर्थात् एकदेशकी समान अविभागसे लक्ष्यमाण* जैसे–सुगन्धि पुष्पं सलिलं वा । सुगन्धिर्वायुः । शोभना गन्धाः द्रव्याणि अस्य=सुगन्धः आपणिकः, इस स्थलमें इकार नहीं हुआ ॥

८७५ अल्पाख्यायाम् ।५।४।१३६॥

सूपस्य गन्धो लेशो यस्मिन् तत् सूपगन्धि भोजनम् । घृतगन्धि । गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोरिति विश्वः ॥

८७५–अल्पार्थ हो तो गंध शब्दको इकार अन्तादेश हो, जैसे–'सूपस्य गंधो लेशो यस्मिन् तत्' इस वाक्यमें 'सूपगन्धि' अर्थात् भोजन । घृतस्य गंधो लेशो यस्मिन् तत्=घृतगंधि । विश्वकोशमें गंध शब्दके गंध, गंधक, आमोद, लेश, संबंध और गर्व इतने अर्थ कहेहैं ॥

८७६ उपमानाच्च ।५।४।१३७॥

पद्मस्येव गन्धोस्य पद्मगन्धिः ॥

८७६–उपमानवाचक शब्दके परे स्थित गंध शब्दको इकार अन्तादेश हो, जैसे–पद्मस्येव गंधोऽस्य=पद्मगन्धिः ॥

८७७ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः । ५।४।१३८॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद्बहुव्रीहौ । स्थानिद्वारेणायं समासान्तः । व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्यः किम् । हस्तिपादः । कुसूलपादः ॥

८७७–बहुव्रीहि समासमें हस्त्यादिसे भिन्न उपमानवाचकके परे स्थित पाद शब्दके अकारका लोप हो । स्थानिद्वारा यह अकारका लोप समासान्त है, जैसे–व्याघ्रस्येव पादावस्य=व्याघ्रपात् । हस्त्यादि शब्दके उत्तर होनेपर हस्तिपादः, कुसूलपादः, ऐसे प्रयोग होंगे ॥

८७८ कुम्भपदीषु च ।५।४।१३९॥

कुम्भपद्यादिषु पादस्य लोपो ङीप् च निपात्यते स्त्रियाम् । पादः पत् । कुम्भपदी । स्त्रियां किम् । कुम्भपादः ॥

८७८–स्त्रीलिङ्गमें कुम्भपदी इत्यादि स्थलमें पाद शब्दके अकारका लोप हो और ङीप्का निपातन हो, पाद शब्दके स्थानमें पद आदेश होनेपर, जैसे–कुंभपदी । स्त्रीलिंग न होनेपर अकारका लोप और ङीप् न होंगे, जैसे–कुंभपादः ॥

८७९ संख्यासुपूर्वस्य ।५।४।१४०॥

पादस्य लोपः स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ । द्विपात् । सुपात् ॥

८७९–संख्यावाचक शब्द और सुशब्दपूर्वक पाद शब्दके समासान्त अकारका लोप हो, जैसे–द्विपात् । सुपात् ॥

८८० वयसि दन्तस्य दतृ ।५।४।१४१॥

संख्यासुपूर्वस्य दन्तस्य दतृ इत्यादेशः स्या-

वयसि । द्विदन् । चतुर्दन् । षट् दन्ता अस्य षोडन् । सुदन् । सुदती । वयसि किम् । द्विदन्तः करी । सुदन्तो नटः ॥

८८०-वयस् अर्थमें संख्यावाचक शब्द और सु शब्द पूर्वक दन्त शब्दके स्थानमें दतृ आदेश हो, जैसे-द्विदन् । चतुर्दन् । षट् दन्ता अस्य=षोडन् । सुदन् । सुदती । वयस् अर्थ न होनेपर न होगा, जैसे-द्विदन्तः करी, सुदन्तो नटः ॥

८८१ स्त्रियां संज्ञायाम् ।५।४।१४३॥

दन्तस्य दतृ स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ । अयोदती । फालदती । संज्ञायां किम् । समदन्ती ॥

८८१-संज्ञामें तथा स्त्रीलिङ्गमें बहुव्रीहि समास होनेपर दन्त शब्दको दतृ आदेश हो । अयोदती । फालदती । संज्ञा न होनेपर न होगा, जैसे-समदन्ती ॥

८८२ विभाषा श्यावारोकाभ्याम् । ५ । ४ । १४४ ॥

दन्तस्य दतृ बहुव्रीहौ । श्यावदन् । श्यावदन्तः । अरोकदन् । अरोकदन्तः ॥

८८२-बहुव्रीहि समासमें श्याव और अरोक शब्दके उत्तर दन्त शब्दके स्थानमें विकल्प करके दतृ आदेश हो, जैसे-श्यावदन्, श्यावदन्तः । अरोकदन्, अरोकदन्तः ॥

८८३ अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च । ५ । ४ । १४५ ॥

एभ्यो दन्तस्य दतृ वा । कुड्मलाग्रदन् । कुड्मलाग्रदन्तः ॥

८८३-अग्रान्त, शुद्ध, शुभ्र, वृष और वराह शब्दके परे दन्त शब्दके स्थानमें विकल्प करके दतृ आदेश हो, कुड्मलाग्रदन्, कुड्मलाग्रदन्तः ॥

८८४ ककुदस्यावस्थायां लोपः । ५ । ४ । १४६ ॥

अजातककुत् । पूर्णककुत् ॥

८८४-अवस्था गम्यमान होनेपर ककुद शब्दके अन्त्य अकारका लोप हो, जैसे-अजातककुत् । पूर्णककुत् ॥

८८५ त्रिककुत्पर्वते । ५ । ४ । १४७ ॥

त्रीणि ककुदान्यस्य त्रिककुत् । संज्ञैषा पर्वतविशेषस्य । त्रिककुदोऽन्यः ॥

८८५-पर्वत वाच्य होनेपर त्रिककुद शब्दके अकारका लोप हो, जैसे त्रीणि ककुदान्यस्य=त्रिककुत्, अर्थात् पर्वत विशेष । अन्य होनेपर अकारका लोप न होगा, जैसे-त्रिककुदः ॥

८८६ उद्विभ्यां काकुदस्य ।५।४।१४८॥

लोपः स्यात् । उत्काकुत् । विकाकुत् । काकुदं तालु ॥

८८६-उत् और विपूर्वक काकुद शब्दके अकारका लोप हो, जैसे-उत्काकुत् । विकाकुत् । काकुद शब्दसे तालु जानना ॥

८८७ पूर्णाद्विभाषा । ५ । ४ । १४९ ॥

पूर्णकाकुत् । पूर्णकाकुदः ॥

८८७-पूर्ण शब्दके परे स्थित काकुद शब्दके अकारका लोप विकल्प करके हो, जैसे-पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः ॥

८८८ सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः । ५ । ४ । १५० ॥

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृन्मित्रम् । दुर्हृदमित्रः । अन्यत्र सुहृदयः । दुर्हृदयः ॥

८८८-मित्र अर्थ होनेपर सु शब्दके परे स्थित हृदय शब्दको और अमित्र अर्थ होनेपर दुर्से परे हृदय शब्दको हृद् आदेश निपातनसे हो, जैसे-सुहृत् मित्रम् । दुर्हृद् अमित्रः । अन्यार्थमें सुहृदयः । दुर्हृदयः ॥

८८९ उरःप्रभृतिभ्यः कप् ।५।४।१५१॥

व्यूढोरस्कः । प्रियसर्पिष्कः । इह पुमान्, अनड्वान्, पयः, नौः, लक्ष्मीरिति एकवचनान्तानि पठ्यन्ते । द्विवचनबहुवचनान्तेभ्यस्तु शेषाद्विभाषेति विकल्पेन कप् । द्विपुमान् । द्विपुंस्कः ॥ अर्थान्नञः ॥ अनर्थकम् । नञः किम् । अपार्थम् । अपार्थकम् ॥

८८९-बहुव्रीहि समासमें उरस् आदि शब्दोंके उत्तर कप् प्रत्यय हो, जैसे-व्यूढोरस्कः । प्रियसर्पिष्कः । उरःप्रभृतिमें पुमान्, अनड्वान्, पयः, नौः, लक्ष्मीः, इत्यादि एकवचनान्त ही पद पढे गये हैं, इसी कारण "शेषाद्विभाषा ८९१" इस सूत्रसे द्विवचनान्त और बहुवचनान्तके उत्तर विकल्प करके कप् होगा, जैसे-द्विपुमान्, द्विपुंस्कः ।

नञ्पूर्वक अर्थ शब्दके उत्तर कप् प्रत्यय हो, जैसे-अनर्थकम् । नञ्से परे न होनेपर, जैसे-अपार्थम्, अपार्थकम् ॥

८९० इनः स्त्रियाम् ।५।४।१५२ ॥

बहुदण्डिका नगरी । अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेनापि तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति॥ बहुवाग्मिका । स्त्रियां किम् । बहुदण्डी । बहुदण्डिको ग्रामः ॥

८९०-इनप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिंगमें कप् प्रत्यय हो, जैसे-बहुदण्डिका नगरी । अन्, इन्, अस्, मन्, यह

अर्थविशिष्ट हों अथवा अर्थशून्य भी हों, परन्तु तदन्तविधिका लाभ करतेहैं, जैसे—बहुवाग्मिका । स्त्रीलिंग न होनेपर, जैसे—बहुदंडी, बहुदंडिकः (ग्राम) ॥

८९१ शेषाद्विभाषा । ५ । ४ । १५४ ॥

अनुक्तसमासान्ताच्छेषाधिकारस्थाद्बहुव्रीहेः कप् वा स्यात् । महायशस्कः। महायशाः । अनुक्तेत्यादि किम् । व्याघ्रपात् । सुगन्धिः । प्रियपथः । शेषाधिकारस्थात्किम् । उपबहवः । उत्तरपूर्वा । सपुत्रः । तन्त्रादिना शेषशब्दोऽर्थद्वयपरः ॥

८९१—अनुक्तसमासान्त शेषाधिकारस्थित बहुव्रीहिके उत्तर विकल्प करके कप् प्रत्यय हो, जैसे—महत् यशो यस्य=महायशस्कः, महायशाः । अनुक्तसमासान्त न होनेपर, जैसे—व्याघ्रपात् । सुगंधिः । प्रियपथः । शेषाधिकारस्थ कहनेसे उपबहवः, उत्तरपूर्वा, सपुत्रः, इत्यादिमें कप् न हुआ। तंत्रादिसे शेष शब्द दोनों (अनुक्तसमासान्त १, शेषाधिकारस्थ २) अर्थोंका बोधक है ॥

८९२ आपोऽन्यतरस्याम् । ७ ।४।१५॥

कप्यावन्तस्य ह्रस्वो वा स्यात् । बहुमालकः। बहुमालाकः । कबभावे बहुमालः ॥

८९२—कप् प्रत्यय परे रहते आबन्त शब्दको विकल्प करके ह्रस्व हो, जैसे—बहुमालकः, बहुमालाकः । कप्के अभावमें बहुमालः ॥

८९३ न संज्ञायाम् ।५।४। १५५॥

शेषादिति प्राप्तः कप् न स्यात्संज्ञायाम् । विश्वे देवा अस्य विश्वेदेवः ॥

८९३—संज्ञामें "शेषात्०" से प्राप्त कप् नहीं हो, जैसे—विश्वे देवा अस्य=विश्वेदेवः ॥

८९४ ईयसश्च । ५ । ४ । १५६ ॥

ईयसन्तोत्तरपदान्न कप् । बहवः श्रेयांसोस्य बहुश्रेयान् । गोस्त्रियोरिति ह्रस्वत्वे प्राप्ते ॥ ईयसो बहुव्रीहेर्नेति वाच्यम् ॥ * ॥ बह्वयः श्रेयस्योस्य बहुश्रेयसी । बहुव्रीहेः किम् । अतिश्रेयसिः ॥

८९४—ईयसन्त उत्तर पदके उत्तर कप् प्रत्यय न हो, जैसे—बहवः श्रेयांसोऽस्य=बहुश्रेयान् । "गोस्त्रियोः० ६५६" इस सूत्रसे ह्रस्व प्राप्त होनेपर—ईयसुप्रत्ययान्त बहुव्रीहिके उत्तर पदसे कप् प्रत्यय न हो यह कहना चाहिये * जैसे—बह्वयः श्रेयस्योऽस्य=बहुश्रेयसी बहुव्रीहि न होनेपर, जैसे—अतिश्रेयसिः ॥

८९५ वन्दिते भ्रातुः । ५ । ४ ।१५७॥

पूजितेर्थे यो भ्रातृशब्दस्तदन्तान्न कप् स्यात् । प्रशस्तो भ्राता यस्य प्रशस्तभ्राता । न पूजनादिति निषेधस्तु बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोरित्यतः प्रागेवेति वक्ष्यते। वन्दिते किम् । मूर्खभ्रातृकः ॥

८९५—पूजित अर्थमें जो भ्रातृ शब्द तदन्तके उत्तर कप् न हो, जैसे—प्रशस्तो भ्राता अस्य=प्रशस्तभ्राता । "न पूजनात् ५।४।६९" इस सूत्रसे जो निषेध है, वह "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः० ८५२" इस सूत्रके पूर्वहीमें होताहै यह कहेंगे। पूजितार्थ न होनेपर, जैसे—मूर्खभ्रातृकः ॥

८९६ नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे ।५।४।१५९॥

स्वाङ्गे यौ नाडीतन्त्रीशब्दौ तदन्तात्कप् न स्यात् । बहुनाडिः कायः । बहुतन्त्रीर्ग्रीवा । तन्त्रीर्धमनी । स्त्रीप्रत्ययान्तत्वाभावाद्ध्रस्वो न । स्वाङ्गे किम् । बहुनाडीकः स्तम्भः । बहुतन्त्रीका वीणा ॥

८९६—स्वाङ्गवाचक नाडी और तन्त्री शब्दके उत्तर कप् न हो, बहुनाडिः कायः । बहुतंत्री ग्रीवा, तंत्री अर्थात् धमनी, इस स्थलमें स्त्रीप्रत्ययान्तत्वके अभावके कारण ह्रस्व नहीं हुआ ।

स्वाङ्गवाचक न होनेपर जैसे—बहुनाडीकः स्तम्भः । बहुतन्त्रीका वीणा ॥

८९७ निष्प्रवाणिश्च । २ । २ । १६० ॥

कबभावोऽत्र निपात्यते । प्रपूर्वाद्वयतेर्ल्युट् । प्रवाणी तन्तुवायशलाका । निर्गता प्रवाण्यस्य निष्प्रवाणिः पटः । समाप्तवानः नव इत्यर्थः ॥

८९७—' निष्प्रवाणिः ' यहां कप् प्रत्ययका अभाव निपातनसे सिद्ध हो, प्रपूर्वक 'वेञ्-तन्तुसन्ताने' से ल्युट् प्रत्यय हुआ 'प्रवाणी ' अर्थात् तन्तुबुननेकी सलाई । निर्गता प्रवाण्यस्य=निष्प्रवाणिः पटः । समाप्तवान अर्थात् नवीन ॥

८९८ सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ।२।२।३५॥

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं प्रयोज्यम् । कण्ठेकालः । अत एव ज्ञापकाद्व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः । चित्रगुः ॥ सर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ सर्वश्वेतः । द्विशुक्लः ॥ मिथोनयोः समासे संख्यापूर्वं शब्दपरविप्रतिषेधात् ॥ * ॥ द्व्यन्यः ॥ संख्याया अल्पीयस्याः ॥ * ॥ द्वित्राः । द्वन्द्वेऽपि । द्वादश ॥ वा प्रियस्य ॥ * ॥ प्रियगुडः । गुडप्रियः ॥ गड्वादेः परा सप्तमी ॥ * ॥ गड्कण्ठः । क्वचिन्न वहेगडुः ॥

८९८—बहुव्रीहि समासमें सप्तम्यन्त पद और विशेषण पद पूर्वमें प्रयुक्त हो, जैसे—कंठेकालः । इसी ज्ञापकसे व्यधिकरणपदमें भी बहुव्रीहि होताहै । चित्रा गावो यस्य=चित्रगुः ।

उक्त समासमें सर्वनाम शब्द और संख्यावाचक शब्द पूर्वमें प्रयुक्त हों * जैसे—सर्वश्वेतः । द्विशुक्लः ।

सर्वनाम और संख्यावाचकके परस्पर समासमें शब्दपरविप्रतिषेधके कारण संख्यावाचक शब्द पूर्वमें प्रयुक्त हो * जैसे-द्वयन्यः ।

संख्यावाचकके परस्पर समासमें अल्प संख्याबोधक शब्दका पूर्वनिपात हो * जैसे-द्वौ वा त्रयः=द्वित्राः ।

द्वन्द्व समासमें भी इसी प्रकार होगा * जैसे-द्वौ च दश च=द्वादश ।

प्रिय शब्दको विकल्प करके पूर्वनिपात हो * जैसे-प्रियगुडः=गुडप्रियः ।

गडु आदि शब्दके उत्तर सप्तम्यन्तका प्रयोग हो, * जैसे-कण्ठे गडुर्यस्य=गडुकण्ठः । किसी स्थलमें न हो, जैसे-वहेगडुः ॥

८९९ निष्ठा । २ । २ । ३६ ॥

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । कृतकृत्यः ॥ जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्या ॥ * ॥ सारङ्गजग्धी । मासजाता । सुखजाता । प्रायिकं चेदम् । कृतकटः । पीतोदकः ॥

८९९-बहुव्रीहि समासमें निष्ठाप्रत्ययान्त पदका पूर्वनिपात हो, जैसे-कृतकृत्यः ।

जाति, काल और सुखादि शब्दके उत्तर निष्ठाप्रत्ययान्तका प्रयोग हो * जैसे-सारङ्गजग्धी । मासजाता । सुखजाता । यह प्रायिक अर्थात् प्राय ही होगा, इससे कृतकटः, पीतोदकः, इनमें निष्ठान्तका पर निपात न हुआ ॥

९०० वाहिताग्न्यादिषु । २ । २ । ३७ ॥

आहिताग्निः । अग्न्याहितः । आकृतिगणोऽयम् ॥ प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ ॥ * ॥ अस्युद्यतः । दण्डपाणिः । क्वचिन्न । विवृतासिः ॥

॥ इति बहुव्रीहिः ॥

९००-आहिताग्नि इत्यादि पदोंमें विकल्प करके पूर्वनिपात हो । आहिताग्निः, अग्न्याहितः । यह आकृतिगण है ।

प्रहरणार्थके उत्तर निष्ठान्त और सप्तम्यन्तका प्रयोग हो * जैसे-अस्युद्यतः । दंडपाणिः । किसी २ स्थलमें नहीं होगा, जैसे-विवृतासिः ॥

॥ इति बहुव्रीहिसमासः ॥

अथ द्वन्द्वसमासप्रकरणम् ।

९०१ चार्थे द्वन्द्वः । २ । २ । २९ ॥

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः । समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः । परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्य एकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः । अन्यतरस्यानुषंगिकत्वेऽन्वाचयः । मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः । समूहः समाहारः । तत्रेश्वरं गुरुं च भजस्वेति समुच्चये भिक्षामट गां चानयेत्यन्वाचये च न समासोऽसामर्थ्यात् । धवखदिरौ । संज्ञापरिभाषम् । अनेकोक्तेर्होतृपोतृनेष्टोद्गातारः । द्वयोर्द्वयोर्द्वन्द्वं कृत्वा पुनर्द्वन्द्वे तु होतापोतानेष्टोद्गातारः ॥

९०१-चकारार्थमें वर्तमान सुबन्त पदोंका विकल्प करके समास हो और उसका नाम द्वन्द्व हो । चकारका अर्थ समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार जानना । परस्पर निरपेक्ष अनेक पदोंका एकमें जो अन्वय (संबंध) है, उसको 'समुच्चय ' कहतेहैं । दो पदार्थोंमेंसे एक पदार्थके मुख्यत्व और अन्यके अमुख्यत्वको 'अन्वाचय' कहतेहैं । समुच्चय और अन्वाचयमें समास नहीं होताहै, कारण कि, शब्दका परस्पर सीधा सीधा संबंध न होनेसे असामर्थ्य है । मिलित शब्दोंका जो अन्वय उसको ' इतरेतरयोग ' कहतेहैं । अनेक पदार्थोंके समुदायको ' समाहार ' कहतेहैं । ' ईश्वरं च गुरुं च भजस्व', इस समुच्चयमें ईश्वर और गुरु परस्पर निरपेक्ष हैं और ' भजस्व ' इस एक ही क्रियामें अन्वय है, 'भिक्षामट गाञ्चानय' इसमें भिक्षा और गौको परस्पर निरपेक्षतासे क्रमशः अटन तथा आनयनमें अन्वय होनेसे असामर्थ्य है, इससे समास न हुआ । धवश्च खदिरश्च=धवखदिरौ छिन्धि, इसमें मिलितको क्रियासे संबन्ध है । समाहारमें संज्ञा च परिभाषा च=संज्ञापरिभाषम्, ऐसा होगा । सूत्रमें ' अनेक ' इस पदका ग्रहण करनेसे होता च पोता च नेष्टा च उद्गाता च=होतृपोतृनेष्टोद्गातारः । दो दो पदोंमें द्वन्द्व करके पुनः द्वन्द्व करनेपर 'होतापोतानेष्टोद्गातारः ' ऐसा प्रयोग होगा ॥

९०२ राजदन्तादिषु परम् । २।२।३१॥

एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात् । दन्तानां राजा राजदन्तः ॥ धर्मादिष्वनियमः ॥ * ॥ अर्थधर्मौ । धर्मार्थौ । दम्पती, जम्पती, जायापती । जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च वा निपात्यते । आकृतिगणोऽयम् ॥

९०२-राजदन्तादि शब्दोंमें जो शब्द पूर्वप्रयोगके योग्य हो उसको परनिपात हो, जैसे-दन्तानां राजा= राजदन्तः ।

धर्मादि शब्दके विषयमें पूर्व पर निपातका कोई नियम नहीं हो * जैसे-अर्थश्च धर्मश्च=अर्थधर्मौ, धर्मार्थौ । दम्पती, जम्पती, जायापती, यहां जाया शब्दको जम्भाव और दम्भावका विकल्प करके निपातन है । यह आकृतिगण है ॥

९०३ द्वन्द्वे घि । २ । २ । ३२ ॥

द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात् । हरिश्च हरश्च हरिहरौ ॥ अनेकप्राप्तावेकत्र नियमोऽनियमः शेषे ॥ * ॥ हरिगुरुहराः । हरिहरगुरवः ॥

९०३-द्वन्द्व समासमें घिसंज्ञकका पूर्वनिपात हो, जैसे-हरिश्च हरश्च=हरिहरौ ।

एक घिसंज्ञक होनेपर ऐसा नियम है, परन्तु अनेक घिसंज्ञकको पूर्वनिपात प्राप्त हो तो एकमें पूर्वनिपातका नियम हो और शेषमें पूर्वनिपातका नियम नहीं हो * जैसे—हरिगुरुहराः, हरिहरगुरवः ॥

९०४ अजाद्यदन्तम् । २ । २ । ३३ ॥

इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्। ईशकृष्णौ ॥ बहुष्वनियमः । अश्वरथेन्द्राः। इन्द्राश्वरथाः॥ घ्यन्तादजाद्यदन्तं विप्रतिषेधेन ॥ * ॥ इन्द्राग्नी ॥

९०४—द्वन्द्व समासमें अजादिरूप अदन्त शब्दका पूर्वनिपात हो, ईशकृष्णौ ।

अनेक अजादिअदन्त शब्दके स्थलमें ऐसा नियम नहीं हो, जैसे—अश्वरथेन्द्राः, इन्द्राश्वरथाः ।

जिस स्थलमें घिसंज्ञक और अजाद्यदन्त दोनोंका समास हो, उस स्थलमें "विप्रतिषेधे परं कार्यम्" इस सूत्रसे अजाद्यदन्तका ही पूर्वनिपात हो * जैसे—इन्द्राग्नी ॥

९०५ अल्पाच्तरम् । २ । २ । ३४ ॥

शिवकेशवौ ॥ ऋतुनक्षत्राणां समाक्षराणामानुपूर्व्येण ॥ * ॥ हेमन्तशिशिरवसन्ताः । कृत्तिकारोहिण्यौ । समाक्षराणां किम् । ग्रीष्मवसन्तौ ॥ लघ्वक्षरं पूर्वम् ॥ * ॥ कुशकाशम् ॥ अभ्यर्हितं च ॥ * ॥ तापसपर्वतौ ॥ वर्णानामानुपूर्व्येण ॥ * ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः ॥ भ्रातुर्ज्यायसः ॥ * ॥ युधिष्ठिरार्जुनौ ॥

९०५—द्वन्द्व समासमें अल्पअच्युक्त पदका पूर्वनिपात हो, जैसे—शिवश्च केशवश्च=शिवकेशवौ ।

समाक्षरविशिष्ट जो ऋतु और नक्षत्रवाचक शब्द उनके आनुपूर्व्य अर्थात् ऋतुओंके प्रादुर्भावकृत और नक्षत्रोंके उदयकृत क्रमसे पूर्वनिपात हो * जैसे—हेमन्तशिशिरवसन्ताः। कृत्तिकारोहिण्यौ ।

समसंख्याक अक्षर न होनेपर, जैसे—ग्रीष्मवसन्तौ ।

द्वन्द्व समासमें लघुअक्षरयुक्त शब्दको पूर्वनिपात हो * जैसे—कुशकाशम् ।

द्वन्द्व समासमें अभ्यर्हित (पूजित) शब्दको पूर्वनिपात हो * जैसे—पर्वतश्च तापसश्च=तापसपर्वतौ ।

वर्ण अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रियादि शब्दोंको क्रमसे पूर्वनिपात हो * जैसे—ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः ।

भ्राताओंके मध्यमें ज्येष्ठको ही पूर्वनिपात हो* यथा—युधिष्ठिरार्जुनौ । भीमार्जुनौ ॥

९०६ द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् । २ । ४ । २ ॥

एषां द्वन्द्व एकवत्स्यात् । पाणिपादम् । मार्दङ्गिकपाणविकम् । रथिकाश्वारोहम् । समाहारस्यैकत्वादेकत्वे सिद्धे नियमार्थं प्रकरणम् । प्राण्यङ्गादीनां समाहार एव यथा स्यात् ॥

९०६—द्वन्द्व समासमें प्राण्यंग, तूर्यांग और सेनांगवाचक शब्दोंको एकवद्भाव हो। पाणी च पादौ च=पाणिपादम् । मार्दङ्गिकपाणविकम् । रथिकाश्वारोहम् ।

समाहारमें एकत्वके कारण एकवचन सिद्ध होनेपर भी यह एकवद्भावविधायक प्रकरण केवल नियमके निमित्त है, अर्थात् प्राण्यंगादिओंका समाहारद्वन्द्व ही हो, इतरेतरयोग द्वन्द्व न हो, यहां "तिष्यपुनर्वस्वो० १ । २ । ६३"में बहुवचनग्रहणसामर्थ्यसे विपरीत नियम अर्थात् प्राण्यंगादिओंका ही समाहारद्वन्द्व हो ऐसा नियम नहीं हुआ, नहीं तो तिष्यपुनर्वसू शब्दका समाहार द्वन्द्व न होनेसे एकवचन तो होता ही नहीं तब बहुवचनहीको द्विवचनविधान होता, फिर बहुवचनग्रहण व्यर्थ ही होजाता ॥

९०७ अनुवादे चरणानाम्।२।४।३॥

चरणानां द्वन्द्व एकवत्स्यात्सिद्धस्योपन्यासे॥ स्थेणोर्लुङीति वक्तव्यम्॥ * ॥ उदगात्कठकालापम् । प्रत्यष्ठात्कठकौथुमम् ॥

९०७—सिद्ध वस्तुका उपन्यास (कथन) होनेपर चरणवाचक शब्दोंका द्वन्द्व एकवत् हो ।

लुङन्त स्था धातु और इण् धातुके प्रयोगमें द्वन्द्व एकवत् हो, ऐसा कहना चाहिये * जैसे—उदगात् कठकालापम्, प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम् ॥

९०८ अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् । २।४।४॥

यजुर्वेदे विहितो यः क्रतुस्तद्वाचिनामनपुंसकलिङ्गानां द्वन्द्व एकवत्स्यात् । अर्काश्वमेधम् । अध्वर्युक्रतुः किम् । इषुवज्रौ सामवेदे विहितौ । अनपुंसकं किम् । राजसूयवाजपेये । अर्धर्चादी॥

९०८—यजुर्वेदमें विहित जो क्रतु तद्वाचक अनपुंसकलिङ्गका द्वन्द्व एकवत् हो, जैसे—अर्काश्वमेधम् । अध्वर्युक्रतु न होनेपर, जैसे—इषुवज्रौ । यह सामवेदमें विहित हैं । नपुंसक होनेपर, जैसे—राजसूयवाजपेये । यह संपूर्ण अर्द्धर्चादिके मध्यमें गृहीत हुए हैं ॥

९०९ अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् । २ । ४ । ५ ॥

अध्ययनेन प्रत्यासन्ना आख्या येषां तेषां द्वन्द्व एकवत् । पदकक्रमकम् ॥

९०९—जिसके अध्ययनसे प्रत्यासन्न संज्ञा हो उसका द्वन्द्व एकवत् हो, जैसे—पदकक्रमकम् ॥

९१० जातिरप्राणिनाम् । २ । ४ । ६ ॥

प्राणिवर्जजातिवाचिनां द्वन्द्व एकवत् । धानाशष्कुलि । प्राणिनां तु । विट्शूद्राः । द्रव्यजातीयानामेव । नेह। रूपरसौ। गमनाकुञ्चने।जातिप्राधान्य एवायमेकवद्भावः । द्रव्यविशेषविवक्षायां तु । बदरामलकानि ॥

९१०-प्राणिभिन्न जातिवाचक शब्दोंका द्वन्द्व एकवत् हो, जैसे-धानाश्च शष्कुल्यश्च=धानाशष्कुलि । प्राणी होनेपर एकवत् न होगा, जैसे-विट्शूद्राः । द्रव्यवाचक ही जातिवाची एकवत् हों, अन्य नहीं, यथा-रूपरसौ । गमनाकुंचने । जातिके प्राधान्यमें ही एकवद्भाव होताहै । इससे द्रव्यविशेषकी विवक्षा होनेपर जैसे-बदरामलकानि, इस स्थलमें एकवद्भाव नहीं हुआ ॥

९११ विशिष्टलिंगो नदीदेशोऽग्रामाः । २ । ४ । ७ ॥

ग्रामवर्जनदीदेशवाचिनां भिन्नलिङ्गानां समाहारे द्वन्द्व एकवत् स्यात् । उद्ध्यश्च इरावती च उद्ध्येरावति । गङ्गा च शोणश्च गङ्गाशोणम् । कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च कुरुकुरुक्षेत्रम् । भिन्नलिङ्गानां किम् । गङ्गायमुने । मद्रकेकयाः । अग्रामाः किम् । जाम्बवं नगरम् । शालूकिनी ग्रामः । जाम्बवशालूकिन्यौ ।

९११-ग्रामभिन्न और भिन्नलिंग नदी और देशवाचक शब्दका समाहारमें द्वन्द्व एकवत् हो, जैसे-उद्ध्यश्च इरावती च=उद्ध्येरावति । गंगा च शोणश्च=गंगाशोणम् । कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च=कुरुकुरुक्षेत्रम् ।

भिन्नलिंग न होनेपर, जैसे-गंगा च यमुना च=गंगायमुने । मद्रकेकयाः ।

ग्राम होनेपर, जैसे-जाम्बवन्नगरम्, शालूकिनी ग्रामः= जाम्बवशालूकिन्यौ ॥

९१२ क्षुद्रजन्तवः । २ । ४ । ८ ॥

एषां समाहारे द्वन्द्व एकवत्स्यात् । यूकालिक्षम् । आ नकुलात् क्षुद्रजन्तवः ॥

९१२-क्षुद्रजन्तुवाचक शब्दका समाहारमें द्वन्द्व एकवत् हो, जैसे-यूकाश्च लिक्षाश्च =यूकलिक्षम् । जिसको अस्थि नहीं अथवा जो अतिक्षुद्राकृतिविशिष्ट हो और अर्द्धाञ्जलिपरिमित स्थलमें जिसकी शतसंख्या हो उसको क्षुद्रजन्तु कहतेहैं । कोई २ नकुलतकको क्षुद्रजन्तु कहतेहैं ॥

९१३ येषां च विरोधः शाश्वतिकः । २ । ४ । ९ ॥

एषां प्राग्वत् । अहिनकुलम् । गोव्याघ्रम् । काकोलूकमित्यादौ परत्वाद्विभाषा वृक्षमृगेति प्राप्तं चकारेण बाध्यते ॥

९१३-जिन जन्तुओंका परस्पर विरोध स्वभावसिद्ध हो उनका द्वन्द्व एकवत् हो, जैसे-अहयश्च नकुलाश्च=अहिनकुलम् । गावश्च व्याघ्राश्च=गोव्याघ्रम् । काकोलूकम् । इस स्थलमें परत्वके कारण "विभाषा वृक्षमृग० ९१६" इस सूत्रसे प्राप्तविकल्प एकवद्भावका इस सूत्रस्थ चकारसे बाध होताहै ॥

९१४ शूद्राणामनिरवसितानाम् । २ । ४ । १० ॥

अबहिष्कृतानां शूद्राणां प्राग्वत् । तक्षायस्कारम् । पात्राद्बहिष्कृतानां तु चण्डालमृतपाः ॥

९१४-पात्रसे बहिष्कृत नहीं हो, ऐसे शूद्रजातिवाचक शब्दका द्वन्द्व एकवत् हो, जैसे-तक्षायस्कारम् । जिसके भोजन करनेपर कांस्यादि पात्र स्मृतिशास्त्रोक्त "भस्मना शुद्ध्यते कांस्यम्" इत्यादि वचनके अनुसार भस्मसे भी शुद्ध न हो अर्थात् ब्राह्मणादि चतुर्वर्णातिरिक्त पात्रसे बाहर चंडालादि जाति होनेपर एकवद्भाव नहीं होगा, जैसे-चंडालमृतपाः ॥

९१५ गवाश्वप्रभृतीनि च । २ । ४ । ११ ॥

यथोच्चारितानि साधूनि स्युः । गवाश्वम् । दासीदासमित्यादि ॥

९१५-गवाश्व-आदि कितने शब्द जिस प्रकारसे उच्चारित हों उसी प्रकार सिद्ध हों, जैसे-गवाश्वम्, दासीदासम्-इत्यादि । आदि शब्दसे और भी कितने शब्द जानने ॥

९१६ विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् । २ । ४ । १२ ॥

वृक्षादीनां सप्तानां द्वन्द्वः अश्ववडवेत्यादिद्वन्द्वत्रयं च प्राग्वद्वा । वृक्षादौ विशेषाणामेव ग्रहणम् । प्लक्षन्यग्रोधम् । प्लक्षन्यग्रोधाः । रुरुपृषतम् । रुरुपृषताः । कुशकाशम् । कुशकाशाः । व्रीहियवम् । व्रीहियवाः । दधिघृतम् । दधिघृते । गोमहिषम् । गोमहिषाः । शुकबकम् । शुकबकाः । अश्ववडवम् । अश्ववडवौ । पूर्वापरम् । पूर्वापरे । अधरोत्तरम् । अधरोत्तरे ॥ फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवदिति वाच्यम् ॥*॥ बदराणि चामलकानि च बदरामलकम् । जातिरप्राणिनामित्येकवद्भावः । नेह । बदरामलके । रथिकाश्वारोहौ । प्लक्षन्यग्रोधौ इत्यादि । विभाषा वृक्षेतिसूत्रे येऽप्राणिनस्तेषां ग्रहणं जातिरप्राणिनामिति नित्ये प्राप्ते विकल्पार्थम् । पशुग्रहणं हस्त्यश्वादिषु सेनाङ्गत्वान्नित्ये प्राप्ते मृगाणां मृगैरेव शकुनीनां तैरेवोभयत्र द्वन्द्वः । अन्यैस्तु संहतेरतरयोग एवेति नियमार्थं मृगशकुनिग्रहणम् । एवं पूर्वापरमधरोत्तरमित्यपि । अश्ववडवग्रहणं तु पक्षे नपुंसकत्वार्थम् । अन्यथा परत्वात्पूर्ववदश्ववडवाविति स्यात् ॥

९१६-वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु और शकुनि, इन सात शब्दोंका द्वन्द्व और अश्ववडव, पूर्वापर, अधरोत्तर,

यह तीन द्वन्द्व विकल्प करके एकवत् हों । वृक्षादिसे विशेषोंका ही ग्रहण है, आशय यह है कि, " सरूपाणाम्० १।२।६४ " से एकशेषके कारण सरूप वृक्ष वृक्षका द्वन्द्व नहीं हो सकताहै, वैसे "विरूपाणामपि०" इससे एकशेषके कारण विरूप समानार्थकका भी द्वन्द्व नहीं होसकताहै, अनभिधानके कारण ' वृक्ष धव ' इस सामान्य विशेषका भी द्वन्द्व नहीं होसकताहै, इसलिये इस सूत्रमें वृक्ष पदसे वृक्षविशेषका ही ग्रहण होताहै, ऐसे ही सब जगह समझना । प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च=प्लक्षन्यग्रोधम्, प्लक्षन्यग्रोधाः । रुरुपृषतम्, रुरुपृषताः। कुशकाशम्, कुशकाशाः।व्रीहियवम्, व्रीहियवाः। दधि च घृतं च=दधिघृतम्, दधिघृते । गावश्च महिषाश्च=गोमहिषम्, गोमहिषाः । शुकबकम्, शुकबकाः । अश्ववडवम्, अश्ववडवौ । पूर्वापरम्, पूर्वापरे । अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे ।

फल, सेना, वनस्पति, मृग, शकुनि, क्षुद्रजन्तु, धान्य और तृण शब्दोंके बहुवचनप्रकृतिक ही द्वन्द्व एकवत् हों ऐसा कहना चाहिये * जैसे–बदराणि च आमलकानि च=बदरामलकम्, यहां "जातिरप्राणिनाम् ९१० " इस सूत्रसे एकवद्भाव हुआहै । बदरामलके, रथिकाश्वारोहौ और प्लक्षन्यग्रोधौ–इत्यादिमें बहुवचनप्रकृतिक द्वन्द्व न होनेसे एकवचन नहीं हुआ ।

" विभाषा वृक्ष० ९१६"इस सूत्रमें जो अप्राणिवाचक हैं, उनका ग्रहण " जातिरप्राणिनाम् ९१० " इस सूत्रसे नित्य एकवद्भावकी प्राप्ति होनेपर भी विकल्प विधानके निमित्त है । हस्त्यश्वादिओंमें सेनाङ्गत्वके कारण नित्य एकवद्भाव प्राप्त होनेपर भी विकल्पार्थ पशु शब्दका ग्रहण है । मृगका मृगहीके साथ और शकुनिका शकुनिहीके साथ दोनों स्थलोंमें समाहार द्वन्द्व हो, अन्यके साथ इतरेतरयोग द्वन्द्व ही हो, इस नियमके निमित्त सूत्रमें मृग और शकुनि शब्दका ग्रहण कियाहै, इसी प्रकार पूर्वापरम्, अधरोत्तरम्, यहां भी समझना । विकल्प पक्षमें नपुंसकत्वके निमित्त अश्ववडव शब्दका ग्रहण कियाहै, अन्यथा परत्वके कारण " पूर्ववदश्ववडवौ ८१३ " सूत्रसे ' अश्ववडवौ ' ऐसा ही होजाता ॥

९१७ विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि । २ । ४ । १३ ॥

विरुद्धार्थानामद्रव्यवाचिनां द्वन्द्व एकवद्वा स्यात् । शीतोष्णम् । शीतोष्णे । वैकल्पिकः समाहारद्वन्द्वश्चार्थे इति सूत्रेण प्राप्तः स विरुद्धार्थानां यदि भवति तर्हि अद्रव्यवाचिनामेवेति नियमार्थमिदम् । तेन द्रव्यवाचिनामितरेतरयोग एव । शीतोष्णे उदके स्तः । विप्रतिषिद्धं किम् । नन्दकपाञ्चजन्यौ । इह पाक्षिकः समाहारद्वन्द्वो भवत्येव ॥

९१७–परस्पर विरुद्धार्थ तथा अद्रव्यवाचक शब्दोंके द्वन्द्व विकल्प करके एकवत् हों, जैसे–शीतं च उष्णं च=शीतोष्णम्, शीतोष्णे । यद्यपि विकल्प करके समाहारद्वन्द्व "चार्थे द्वन्द्वः ९०१" इस सूत्रसे ही प्राप्त है तथापि यह सूत्र यदि विरुद्धार्थवाचक शब्दोंका हो तो अद्रव्यवाचकका ही हो, इस नियमके निमित्त यह सूत्र कियाहै, इससे यह फल हुआ कि, द्रव्यवाचकोंका इतरेतरयोगद्वन्द्व ही होगा, जैसे–शीतोष्णे उदके स्तः । विरुद्धार्थ न होनेपर, जैसे–नन्दकपाञ्चजन्यौ, इस स्थलमें पाक्षिक समाहारद्वन्द्व होताहीहै ॥

९१८ न दधिपयआदीनि । २ । ४ । १४ ॥

एतानि नैकवत्स्युः । दधिपयसी । इध्माबर्हिषी । निपातनाद्दीर्घः । ऋक्सामे । वाङ्मनसे ॥

९१८–दधिपयः आदि पदोंको एकवद्भाव न हो, जैसे–दधि च पयश्च=दधिपयसी । 'इध्माबर्हिषी' इस स्थलमें निपातनसे दीर्घ हुआहै । ऋक्सामे । वाक् च मनश्च=वाङ्मनसे ॥

९१९ अधिकरणैतावत्त्वे च । २ । ४ । १५ ॥

द्रव्यसंख्यावगमे एकवदेवेति नियमो न स्यात् । दश दन्तोष्ठाः ॥

९१९–द्रव्यकी संख्याका अवगम होनेपर 'एकवदेव' यह नियम न हो । यह सूत्र "द्वन्द्वश्च प्राणि० २।४।२" इस सूत्रसे प्राप्त एकवद्भावके निषेधार्थ है, जैसे–दश दन्तोष्ठाः ॥

९२० विभाषा समीपे । २ । ४ । १६ ॥

अधिकरणैतावत्त्वस्य सामीप्येन परिच्छेदे समाहर एवेत्येवंरूपो नियमो वा स्यात् । उपदशं दन्तोष्ठम् । उपदशाः दन्तोष्ठाः ॥

९२०–द्रव्यगत संख्याके अवगमका सामीप्यसे परिच्छेदन होनेपर समाहार द्वन्द्व ही हो, यह नियम विकल्प करके हो, जैसे–उपदशं दन्तोष्ठम्, पक्षे–उपदशा दन्तोष्ठाः ॥

९२१ आनङ् ऋतो द्वन्द्वे । ६ । ३ । २५ ॥

विद्यायोनिसंबन्धवाचिनामृदन्तानां द्वन्द्वे आनङ् स्यादुत्तरपदे परे । होतापोतारौ । होतृपोतृनेष्टोद्गातारः । मातापितरौ । पुत्रेऽन्यतरस्यामित्यतो मण्डूकप्लुत्या पुत्र इत्यनुवृत्तेः पितापुत्रौ ॥

९२१–विद्या और योनिसंबन्धवाचक ऋकारान्त शब्दोंके द्वन्द्वमें उत्तरपद परे रहते आनङ् आदेश हो, जैसे–होतापोतारौ, होतृपोतृनेष्टोद्गातारः । मातापितरौ । यहां "पुत्रेऽन्यतरस्याम् ६।३।२२ " इस सूत्रसे मंडूकप्लुति अधिकारसे पुत्र शब्दकी अनुवृत्ति होतीहै, इस कारण 'पितापुत्रौ' यहां भी आनङ् आदेश हुआ ॥

९२२ देवताद्वन्द्वे च । ६ । ३ । २६ ॥

इहोत्तरपदे परे आनङ् । मित्रावरुणौ ॥ वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेधः ॥ * ॥ अग्निवायू । वायग्नी । पुनर्द्वन्द्वग्रहणं प्रसिद्धसाहचर्यस्य परिग्रहार्थम् । तेन ब्रह्मप्रजापती इत्यादौ नानङ् । एतद्धि नैकहविर्भागित्वेन श्रुतं नापि लोके प्रसिद्धं साहचर्यम् ॥

९२२-देवतावाचक शब्दोंके द्वन्द्वमें उत्तरपद परे रहते आनङ् हो, जैसे-मित्रश्च वरुणश्च=मित्रावरुणौ । वायु शब्दके प्रयोगमें आनङ् नहीं हो * जैसे-अग्निवायू, वाय्वग्नी । सूत्रमें द्वन्द्वकी अनुवृत्ति होनेपर भी प्रसिद्ध साहचर्यके परिग्रहार्थ पुनः द्वन्द्वग्रहण किया है, इसी कारण 'ब्रह्मप्रजापती' इत्यादिमें आनङ् नहीं होताहै, यह साहचर्य एकहविर्भागित्वसे श्रुत नहीं है और लोकमें भी प्रसिद्ध नहीं है ॥

९२३ ईदग्नेः सोमवरुणयोः ।६।३।२७॥

देवताद्वन्द्वे इत्येव ॥

९२३-देवतावाचक शब्दके द्वन्द्वमें सोम और वरुण शब्द परे रहते अग्नि शब्दको ईकार आदेश हो ॥

९२४ अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः।८।३।८२॥

अग्नेः परेषामेषां सस्य षः स्यात्समासे । अग्निष्टुत् । अग्निष्टोमः । अग्नीषोमौ । अग्नीवरुणौ ॥

९२४-अग्नि शब्दके परे स्थित स्तुत्, स्तोम और सोम शब्दके सकारको ष हो, जैसे-अग्निष्टुत् । अग्निष्टोमः । अग्नीषोमौ । अग्नीवरुणौ ॥

९२५ इद् वृद्धौ । ६ । ३ । २८ ॥

वृद्धिमत्युत्तरपदे अग्नेरिदादेशः स्याद्देवताद्वन्द्वे । अग्नामरुतौ देवते अस्य आग्निमारुतं कर्म । अग्नीवरुणौ देवते अस्य आग्निवारुणम् । देवताद्वन्द्वे चेत्युभयपदवृद्धिः । अलौकिकवाक्ये आनङमीत्त्वं च बाधित्वा इः । वृद्धौ किम् । आग्नेन्द्रः । नेन्द्रस्य परस्येत्युत्तरपदवृद्धिप्रतिषेधः ॥ विष्णौ न ॥ * ॥ आग्नावैष्णवम् ॥

९२५-देवतावाचक शब्दके द्वन्द्व समासमें वृद्धिमत् पद परे रहते अग्नि शब्दको इत् आदेश हो, जैसे-अग्नामरुतौ देवते अस्य=आग्निमारुतं कर्म । अग्नीवरुणौ देवते अस्य=आग्निवारुणम् । दोनों स्थलोंमें "देवताद्वन्द्वे च १२३९" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे दोनों पदोंकी वृद्धि हुई है और अलौकिक वाक्यमें आनङ् और ईत्त्व दोनोंको बाधकर इकार होताहै । वृद्धिमत् शब्द परे हो ऐसा क्यों कहा ? तो ऐसा न होनेपर इत्त्व आदेश न हो,जैसे-आग्नेन्द्रः,यहां"नेन्द्रस्य परस्य१२४०" इस सूत्रसे उत्तरपदवृद्धिका निषेध हुआहै ।

विष्णु शब्द परे रहते इत्त्व न हो * यथा-आग्नावैष्णवम् ॥

९२६ दिवो द्यावा । ६ । ३ । २९ ॥

देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे । द्यावाभूमी । द्यावाक्षमे ॥

९२६-देवतावाचक शब्दोंके द्वन्द्वमें उत्तरपद परे रहते दिव् शब्दके स्थानमें द्यावा आदेश हो, जैसे-द्यावाभूमी । द्यावाक्षमे ॥

९२७ दिवसश्च पृथिव्याम् । ६।३।३०॥

दिव इत्येव । चाद् द्यावा । आदेशे अकारोच्चारणं सकारस्य रुत्वं मा भूदित्येतदर्थम् । द्यौश्च पृथिवी च दिवस्पृथिव्यौ । द्यावापृथिव्यौ । छन्दसि दृष्टानुविधिः । द्यावा चिदस्मै पृथिवी । दिवस्पृथिव्योररतिमित्यत्र पदकारा विसर्गं पठन्ति ॥

९२७-पृथिवी शब्द परे रहते दिव् शब्दके स्थानमें दिवस आदेश हो, चकारसे द्यावा आदेश भी हो । दिवस आदेशमें अकारका उच्चारण इसलिये है कि, सकारके स्थानमें रुत्व नहीं हो । द्यौश्च पृथ्वी च=दिवस्पृथिव्यौ, द्यावापृथिव्यौ । वेदमें जिस प्रकार देखा जाय वैसा विधान हो, जैसे-द्यावा चिदस्मै पृथिवी । 'दिवस्पृथिव्योररतिम्' इस स्थलमें पदकार वि[र्ग]युक्त पाठ करतेहैं, इस कारण 'दिवः पृथिव्योररतिम्' ऐसा उनके मतसे पाठ है ॥

९२८ उषासोषसः । ६ । ३ । ३१ ॥

उषस्शब्दस्योषासादेशो देवताद्वन्द्वे । उषासासूर्यम् ॥

९२८-देवतावाचक शब्दके द्वन्द्वमें उषस् शब्दके स्थानमें उषासा आदेश हो, जैसे-उषाश्च सूर्यश्च तयोः समाहारः= उषासासूर्यम् ॥

९२९ मातरपितरावुदीचाम् ।६।३।३२ ॥

मातरपितरौ । उदीचां किम् । मातापितरौ ॥

९२९-उदीचोंके मतमें 'मातरपितरौ' इसमें मातृ शब्दको निपातनसे अरङ् आदेश हो । उदीचोंके मतमें हो ऐसा क्यों कहा ? तो औरोंके मतमें 'मातापितरौ' ऐसा भी प्रयोग हो ॥

९३० द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे । ५ । ४ । १०६ ॥

चवर्गान्ताद्दषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच् स्यात्समाहारे । वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम् । त्वक्स्रजम् । शमीदृषदम् । वाक्त्विषम् । छत्रोपानहम् । समाहारे किम् । प्रावृट्शरदौ ॥

॥ इति द्वन्द्वः ॥

९३०-समाहारद्वन्द्वमें, चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हकारान्त शब्दोंके उत्तर टच् प्रत्यय हो, जैसे-वाक् च त्वक् च=वाक्त्वचम् । त्वक्स्रजम् । शमीदृषदम् । वाक्त्विषम् । छत्रोपानहम् । समाहार न होनेपर टच् न होगा, जैसे-प्रावृट्शरदौ ॥

॥ इति द्वन्द्वसमासः ॥

अथैकशेषप्रकरणम् ।

सरूपाणाम् । रामौ । रामाः ॥ विरूपाणामपि समानार्थानाम् ॥ * ॥ वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च वक्रदण्डौ । कुटिलदण्डौ ॥

"सरूपाणामेक० १८८" अर्थात् संपूर्ण विभक्तियोंमें समान रूपवाले समानार्थक अनेकमेंसे एक ही शेष रहै,

अन्यका लोप हो, इससे राम+राम+औ=रामौ । राम+राम+राम+जस्=रामाः ।

समानार्थ विरूप (भिन्न रूप) का भी एकशेष हो *। जैसे–वक्रदंडश्च कुटिलदंडश्च=वक्रदंडौ, कुटिलदंडौ ॥

९३१ वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः । १ । २ । ६५ ॥

यूना सहोक्तौ गोत्रं शिष्यते गोत्रयुवप्रत्ययमात्रकृतं चेत्तयोः कृत्स्नं वैरूप्यं स्यात् । गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ । वृद्धः किम् । गर्गगार्ग्यायणौ । यूना किम् । गर्गगार्ग्यौ । तल्लक्षणः किम् । भागवित्तिभागवित्तिकौ । कृत्स्नं किम् । गार्ग्यवात्स्यायनौ ॥

९३१–युवप्रत्ययान्त पदके साथ वृद्ध अर्थात् गोत्रप्रत्ययान्तकी उक्ति होनेपर गोत्रप्रत्ययान्त पद ही अवशेष रहे, परन्तु गोत्र और युवप्रत्ययमात्रकृत यदि उन दोनोंका सम्पूर्ण वैरूप्य हो तो, जैसे–गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च=गार्ग्यौ, इस स्थानमें गोत्रप्रत्ययान्त पद 'गार्ग्यः' और युवप्रत्ययान्त पद 'गार्ग्यायणः' इन दोनोंमेसे गोत्रप्रत्ययान्त (गार्ग्यः) शेष रहा । गोत्रप्रत्ययान्त न होनेपर, जैसे–गर्गश्च गार्ग्यायणश्च=गर्गगार्ग्यायणौ । युवप्रत्ययान्त न होनेपर,जैसे–गर्गगार्ग्यौ। सूत्रमें 'तल्लक्षणः' यह पद ग्रहण करनेसे 'भागवित्तिभागवित्तिकौ' इस स्थलमें एकशेष नहीं हुआ । कृत्स्न पद ग्रहण करनेसे 'गार्गी च वात्स्यायनौ च गार्ग्यवात्स्यायनौ' इस स्थानमें भी एकशेष नहीं हुआ ॥

९३२ स्त्रीपुंवच्च । १ । २ । ६६ ॥

यूना सहोक्तौ वृद्धा स्त्री शिष्यते तदर्थश्च पुंवत्।गार्गी च गार्ग्यायणश्च गर्गाः।अस्त्रियामित्यनुवर्तमाने यञञोश्चेति लुक् । दाक्षी च दाक्षायणश्च दाक्षी ॥

९३२–युवप्रत्ययान्तके साथ उक्ति होनेपर गोत्रप्रत्ययान्त स्त्रीवाचक शब्द अवशेष रहे और उसका अर्थ पुंवत् हो, जैसे–गार्गी च गार्ग्यायणी च=गर्गाः । 'अस्त्रियाम्' इस अंशकी अनुवृत्ति होनेपर–" यञञोश्च ११०८ " इस सूत्रसे यञ् प्रत्ययका लुक् हुआ । दाक्षी च दाक्षायणश्च=दाक्षी ॥

९३३ पुमान् स्त्रिया । १ । २ । ६७ ॥

स्त्रिया सहोक्तौ पुमान् शिष्यते तल्लक्षण एव विशेषश्चेत् । हंसी च हंसश्च हंसौ ॥

९३३–स्त्रीवाचक पदके साथ उक्ति होनेपर पुंवाचक पद शेष रहै, यदि तल्लक्षण ही कुछ विशेष हो तो, जैसे–हंसी च हंसश्च=हंसौ ॥

९३४ भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् । १ । २ । ६८ ॥

भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ । पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ ॥

९३४–स्वसृ और दुहितृ शब्दके साथ उक्ति होनेपर भ्रातृ और पुत्र शब्द शेष रहता है, जैसे–भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ । पुत्रश्च दुहिता च=पुत्रौ ॥

९३५ नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् । १ । २ । ६९ ॥

अक्लीबेन सहोक्तौ क्लीबं शिष्यते तच्च वा एकवत्स्यात्तल्लक्षण एव विशेषश्चेत् । शुक्लः पटः । शुक्ला शाटी । शुक्लं वस्त्रम् । तदिदं शुक्लं तानीमानि शुक्लानि ॥

९३५–अक्लीवके साथ अर्थात्, पुँल्लिङ्ग स्त्रीलिंगके साथ उक्ति होनेपर नपुंसकलिंग पद अविशिष्ट रहै और वह पद विकल्प करके एकवत् हो, यदि पुंस्त्रीनपुंसकलिंगकृत ही विशेष हो तो, जैसे–शुक्लः पटः । शुक्ला शाटी । शुक्लं वस्त्रम् । तदिदं शुक्लम्, तानीमानि शुक्लानि ॥

९३६ पिता मात्रा । १ । २ । ७० ॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते । माता च पिता च पितरौ, मातापितरौ वा ॥

९३६–मातृ शब्दके साथ उक्ति होनेपर विकल्प करके पितृ शब्द शेष रहै, जैसे–माता च पिता च=पितरौ, मातापितरौ वा ॥

९३७ श्वशुरः श्वश्र्वा । १ । २ । ७१ ॥

श्वश्र्वा सहोक्तौ श्वशुरो वा शिष्यते तल्लक्षण एव विशेषश्चेत् । श्वश्रूश्च श्वशुरश्च श्वशुरौ । श्वश्रूश्वशुरौ ॥

९३७–श्वश्रूके साथ उक्ति होनेपर विकल्प करके श्वशुर शब्द शेष रहताहै, यदि तल्लक्षण ही विशेष हो तो, जैसे–श्वश्रूश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ, श्वश्रूश्वशुरौ ॥

९३८ त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् १।२।७२॥

सर्वैः सहोक्तौ त्यदादीनि नित्यं शिष्यन्ते । स च देवदत्तश्च तौ ॥ त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत्परं तच्छिष्यते ॥ * ॥ स च यश्च यौ ॥ पूर्वशेषोपि दृश्यते इति भाष्यम् ॥ स च यश्च तौ ॥ त्यदादितः शेषे पुंनपुंसकतो लिङ्गवचनानि ॥ * ॥ सा च देवदत्तश्च तौ । तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च तानि । पुंनपुंसकयोस्तु परत्वान्नपुंसकं शिष्यते । तच्च देवदत्तश्च ते ॥ अद्वन्द्वतत्पुरुषविशेषणानामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटाविमौ । तच्च सा च अर्द्धपिप्पल्यौ ते ॥

९३८–सब शब्दोंके साथ उक्ति होनेपर त्यदादि ही नित्य शेष रहैं, जैसे–स च देवदत्तश्च=तौ ।

त्यदादिकोंकी परस्पर उक्ति होनेपर जो पर हो वही शेष रहै * जैसे–स च यश्च=यौ । भाष्यकारने कहा है कि, किसी २ स्थलमें पूर्वपद भी शेष रहे, जैसे–स च यश्च=तौ ।

त्यदादिकोंका शेष होनेपर पुँल्लिंग, नपुंसकलिंगके अनुसार लिंगवचन होतेहैं अर्थात् 'स्त्रीलिंग पुँल्लिंग प्राप्त हो तो पुंल्लिंग हो और स्त्रीलिङ्ग नपुंसकलिङ्ग प्राप्त हो तो नपुंसकलिङ्ग हो और तीनोंकी प्राप्ति हो तो परत्वके कारण नपुंसकलिंग हो * जैसे–सा च देवदत्तश्च=तौ । तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च तानि । पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्गकी प्राप्ति होनेपर परत्वसे नपुंसकलिंग ही शेष हो, जैसे–तच्च देवदत्तश्च=ते ॥

द्वन्द्व और तत्पुरुषविशेषण पदका पूर्वोक्त न हो अर्थात् विशेष्यगत लिंग हो * जैसे–कुक्कुटमयूर्याविमे, मयूरीकुक्कुटाविमौ । तच्च सा च अर्द्धपिप्पल्यौ ते ॥

९३९ ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री । १ । २ । ७३ ॥

एषु सहविवक्षायां स्त्री शिष्यते । पुमान् स्त्रियेत्यस्यापवादः । गाव इमाः । ग्राम्येति किम् । रुरव इमे । पशुग्रहणं किम् । ब्राह्मणाः । संघेषु किम् । एतौ गावौ । अतरुणेषु किम् । वत्सा इमे ॥ अनेकशफेष्विति वाच्यम् ॥ * ॥ अश्वा इमे । इह सर्वत्र एकशेषे कृतेऽनेकसुबन्ताभावाद् द्वन्द्वो न । तेन शिरसी शिरांसीत्यादौ समासस्येत्यन्तोदात्तः प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावश्च न । पन्थानौ पन्थान इत्यादौ समासान्तो न ॥

॥ इत्येकशेषः ॥

९३९–अतरुण ग्राम्य पशुसमूहके 'सह' विवक्षामें स्त्रीवाचक शब्द शेष रहै । यह सूत्र "पुमान् स्त्रिया ९३३" इस सूत्रका अपवाद है, यथा–गाव इमाः । ग्राम्य न होनेपर, जैसे–रुरव इमे । पशु न होनेपर, जैसे–ब्राह्मणा इमे । समूह न होनेपर, जैसे–एतौ गावौ । अतरुण न होनेपर, जैसे–वत्सा इमे ॥

अनेक खुरविशिष्ट पशुसमूहमें 'सह' विवक्षा हो तो यह विधि हो और एकखुर पशुसमूहमें यह विधि न हो * जैसे–अश्वा इमे । इन सब स्थलोंमें अन्तरंगत्वके कारण पहले ही एकशेष होनेपर अनेक सुबन्तके अभावके कारण द्वन्द्व नहीं हुआ, इस कारण शिरसी, शिरांसि–इत्यादि स्थलोंमें "समासस्य०" इस सूत्रसे अन्तोदात्त और प्राण्यंगत्वके कारण एकवद्भाव भी नहीं हुआ, और पन्थानौ, पन्थानः–इत्यादि स्थलोंमें समासान्त नहीं हुआ ॥

॥ इत्येकशेषप्रकरणम् ॥

अथ सर्वसमासशेषप्रकरणम् ।

कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः । परार्थाभिधानं वृत्तिः । वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः । स द्विधा । लौकिकोऽलौकिकश्च । परिनिष्ठितत्वात्साधुर्लौकिकः । प्रयोगानर्होऽसाधुरलौकिकः । यथा । राज्ञः पुरुषः । राजन् अस् पुरुष सु इति । अविग्रहो नित्यसमासः, अस्वपदविग्रहो वा । समासश्चतुर्विध इति प्रायोवादः । अव्ययीभावतत्पुरुषबहुव्रीहिद्वन्द्वाधिकारबहिर्भूतानामपि सह सुपेति विधानात् । पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः । उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः । अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः । उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः । इत्यपि प्राचां प्रवादः प्रायोभिप्रायः । सूपप्रति उन्मत्तगङ्गमित्याद्यव्ययीभावे अतिमालादौ तत्पुरुषे द्वित्रा इत्यादिबहुव्रीहौ दन्तोष्ठमित्यादिद्वन्द्वे चाभावात् । तत्पुरुषविशेषः कर्मधारयः । तद्विशेषो द्विगुः। अनेकपदत्वं द्वन्द्वबहुव्रीह्योरेव। तत्पुरुषस्य क्वचिदेवेत्युक्तम् । किंच,

सुपां सुपा तिङा नाम्ना धातुनाऽथ तिङां तिङा।
सुबन्तेनेति विज्ञेयः समासः षड्विधो बुधैः ॥१॥

सुपां सुपा। राजपुरुषः । तिङा । पर्यभूषत् । नाम्ना । कुम्भकारः । धातुना । कटप्रूः । अजस्रम् । तिङां तिङा । पिबतखादता । खादतमोदता । तिङां सुपा । कृन्त विचक्षणेति यस्यां क्रियायां सा कृन्तविचक्षणा । एहीडादयोऽन्यपदार्थे इति मयूरव्यंसकादौ पाठात्समासः ॥

॥ इति सर्वसमासशेषः ॥

कृत्, तद्धित, समास, एकशेष और सनादिप्रत्ययान्त धातुरूप भेदसे वृत्ति पांच प्रकारकी है । जिससे दूसरा पदार्थ अभिहित हो उसका नाम वृत्ति है । वृत्त्यर्थज्ञापक वाक्यका नाम विग्रह है । वह विग्रह दो प्रकारका है, लौकिक और अलौकिक । परिनिष्ठितत्वके कारण साधु जो हो, उसको लौकिक विग्रह कहतेहैं और प्रयोगके अयोग्य अर्थात् असाधुको अलौकिक विग्रह कहतेहैं, जैसे–'राज्ञः पुरुषः' यह लौकिक और 'राजन्+ङस्=पुरुष+सु' यह अलौकिक विग्रह है । नित्यसमासमें विग्रह नहीं हो, यदि हो तो जिस पदके साथ समास हो उससे दूसरे पदके साथ हो । समास चार प्रकारका है, यह प्राचीनोंका मत है, परन्तु वह ठीक नहीं है क्योंकि, अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि और द्वन्द्व इन चार प्रकारके समाससे अतिरिक्त भी "सह सुपा ६४९" इस सूत्रसे समास विधान किया है । जिस समासमें पूर्वपदार्थ प्रधान हो, उसका नाम अव्ययीभाव है । जिस समासमें उत्तरपदार्थ प्रधान हो, उसका नाम तत्पुरुष है । जिस समासमें अन्यपदार्थ प्रधान हो, उसका नाम बहुव्रीहि है । जिस समासमें दोनों पदार्थ प्रधान हो, उसका नाम द्वन्द्व है. यह जो प्राचीनोंका प्रवाद है सो भी अमूलक है, क्योंकि, 'सूपप्रति', 'उन्मत्त-

गंगम्' इत्यादि अव्ययीभाव समासमें पूर्वपदार्थके प्रधानत्वका अभाव है, 'अतिमाला' इत्यादि । तत्पुरुष समासमें उत्तर-पदार्थके प्रधानत्वका अभाव है, 'दंतोष्ठम्' इत्यादि । द्वन्द्व समासमें समूहके प्रधान होनेसे उभय पदार्थके प्रधानत्वका अभाव है । तत्पुरुषका विशेष कर्मधारय समास और कर्म-धारयका विशेष द्विगु समास है । अनेकपदत्व केवल द्वन्द्व और बहुव्रीहि समासको ही है । और तत्पुरुषका कहीं ही अनेकपदत्व है । और

"सुपां सुपा तिङा नाम्ना धातुनाऽथ तिङां तिङा ।
सुबन्तेनेति विज्ञेयः समासः षड्विधो बुधैः ॥"

अर्थात् सुबन्तके साथ सुबन्तका समास, जैसे–राजपुरुषः । तिङन्तके साथ सुबन्तका समास, जैसे–पर्यभूषत् । नामके साथ सुबन्तका समास, जैसे–कुंभकारः । धातुके साथ सुबन्तका समास, जैसे–कटप्रूः । अजस्रम् । तिङन्तके साथ तिङन्तका समास, जैसे–पिबतखादता । खादतमोदता । सुबन्तके साथ तिङन्तका समास, जैसे–कृन्त विचक्षणेति यस्यां क्रियायां सा कृन्तविचक्षणा, यहां "एहीडादयोऽन्यपदार्थे" इस गणसूत्रसे मयूरव्यंसकादि गणके मध्यमें पाठ होनेके कारण समास हुआ ॥

॥ इति सर्वसमासशेषप्रकरणम् ॥

अथ समासान्तप्रकरणम् ।

९४० ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ५।४।७४॥

अ अनक्षे इति च्छेदः । ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अ प्रत्ययोऽन्तावयवः स्यात् । अक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न । अर्द्धर्चः ॥ अनृचबह्वृचावध्येतर्येव । नेह । अनृक्साम । बह्वृक् सूक्तम् । विष्णोः पूः विष्णुपुरम् । क्लीबत्वं लोकात् । विमलापं सरः ॥

९४०–'आनक्षे' इस स्थलमें 'अ अनक्षे' ऐसा पदच्छेद है । ऋक्शब्दान्त, पूर्शब्दान्त, अप्शब्दान्त, धुर्शब्दान्त और पथिन्शब्दान्त जो समास उसका अन्तावयव अ प्रत्यय हो, परन्तु शकटका अक्षबोधक जो धुर् शब्द है तदन्त समाससे अ प्रत्यय नहीं हो, 'अर्द्धर्चः' यहां "अर्द्धर्चाः पुंसि च २।४।३१" इस सूत्रसे पुंस्त्व हुआहै । अनृच और बह्वृच यह दोनों पद अध्ययनकर्ता ही अर्थमें अप्रत्ययान्त होंगे, अन्यार्थमें अप्रत्ययान्त नहीं होंगे, यथा–अनृक् साम । बह्वृक् सूक्तम् । विष्णोः पूः=विष्णुपुरम्, इस स्थलमें लोकमें नपुंसकका ही प्रयोग होनेके कारण क्लीबत्व हुआ, इसी प्रकार 'विमलापं सरः' इत्यादि प्रयोग जानने ॥

९४१ द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् ६।३।९७।

अप इति कृतसमासान्तस्यानुकरणम् । षष्ठ्यर्थे प्रथमा । एभ्योऽपस्य ईत् स्यात् । द्विर्गता आपो यस्मिन्निति द्वीपम् । अन्तरीपम् । प्रतीपम् । समीपम् । समापो देवयजनमिति तु समा आपो यस्मिन्निति बोध्यम् । कृतसमासान्तग्रहणान्नेह । स्वप्, स्वपी ॥ अवर्णान्ताद्वा ॥*॥ प्रेपम् । परेपम् । प्रापम् । परापम् ॥

९४१–अप यह कृतसमासान्तका अनुकरण है, इससे षष्ठ्यर्थमें प्रथमा है । द्वि, अन्तर् और उपसर्ग इनके परे स्थित अप शब्दके अकारके स्थानमें ईत् हो, जैसे–द्विर्गता आपो यस्मिन्=द्वीपम् । अन्तर्गता आपो यस्मिन्=अन्तरीपम् । इसी प्रकार प्रतीपम्, समीपम्, इत्यादि । 'समापो देवयजनम्' इस स्थलमें 'समा आपो यस्मिन्' इस विग्रहमें उपसर्गपूर्वक न होनेके कारण ईत् नहीं हुआ । कृतसमासान्तके ग्रहणके कारण 'स्वप्, स्वपी' इत्यादिमें ईत् आदेश नहीं हुआ ।

अवर्णान्त उपसर्गके उत्तर अप् शब्दके अकारके स्थानमें विकल्प करके ईत् हो * जैसे–प्रेपम्, विकल्प पक्षमें–प्रापम् । परेपम्, पक्षे–परापम् ॥

९४२ ऊदनोर्देशे । ६ । ३ । ९८ ॥

अनोः परस्यापस्य ऊत्स्याद्देशे । अनूपो देशः । राजधुरा । अक्षे तु अक्षधूः । दृढधूरक्षः । सखिपथो रम्यपथो देशः ॥

९४२–देश अर्थ होनेपर 'अनु' इस उपसर्गके परे स्थित जो कृतसमासान्त अप् शब्द उसके अकारके स्थानमें ऊत् हो, जैसे–अनूपो देशः । राज्ञो धुरा=राजधुरा । जिस स्थानमें धुर् शब्द अक्षवाचक है वहां अ प्रत्यय नहीं होगा, जैसे–अक्षधूः । दृढधूः अक्षः । सखिपथः । रम्यपथो देशः ॥

९४३ अच् प्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः । ५ । ४ । ७५ ॥

एतत्पूर्वात्सामलोमान्तात्समासादच् स्यात् । प्रतिसामम् । अनुसामम् । अवसामम् । प्रतिलोमम् । अनुलोमम् ॥ कृष्णोदक्पाण्डुसंख्यापूर्वाया भूमेरजिष्यते ॥ कृष्णभूमः । उदग्भूमः । पाण्डुभूमः । द्विभूमः प्रासादः ॥ संख्याया नदीगोदावरीभ्यां च ॥ पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् । अजिति योगविभागादन्यत्रापि । पद्मनाभः ॥

९४३–प्रति, अनु और अवपूर्वक सामन् और लोमन् शब्दान्त समासके उत्तर अच् प्रत्यय हो जैसे–प्रतिसामम् । अनुसामम् । अवसामम् । प्रतिलोमम् । अनुलोमम् । अवलोमम् ।

कृष्ण, उदक, पांडु और संख्यावाचकशब्दपूर्वक भूमि शब्दके उत्तर समासान्त अच् प्रत्यय हो, जैसे–कृष्णभूमः । उदग्भूमः । पांडुभूमः । द्विभूमः प्रासादः ।

संख्यावाचक शब्दके परे स्थित नदी और गोदावरी शब्दके उत्तर समासान्त अच् प्रत्यय हो, जैसे–पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् । 'अच्' ऐसा भिन्न सूत्र करनेके

कारण एतद्भिन्न स्थलमें भी अच् प्रत्यय होगा, जैसे–पद्मनाभः ॥

९४४ अक्ष्णोऽदर्शनात् । ५ । ४ । ७६ ॥

अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात्समासान्तः । गवामक्षीव गवाक्षः ॥

९४४–चक्षुःपर्याय न हो ऐसे अक्षि शब्दके उत्तर समासान्त अच् प्रत्यय हो, गवामक्षीव=गवाक्षः ॥

९४५ अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः । ५ । ४ । ७७ ॥

एते पञ्चविंशतिरजन्ता निपात्यन्ते । आद्यास्त्रयो बहुव्रीहयः । अविद्यमानानि चत्वार्यस्य अचतुरः । विचतुरः । सुचतुरः ॥ त्र्युपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते ॥ त्रिचतुराः । चतुर्णां समीपे उपचतुराः । तत एकादश द्वन्द्वाः । स्त्रीपुंसौ । धेन्वनडुहौ । ऋक्सामे । वाङ्मनसे । अक्षिणी च भ्रुवौ च अक्षिभ्रुवम् । दाराश्च गावश्च दारगवम् । ऊरू च अष्ठीवन्तौ च ऊर्वष्ठीवम् । निपातनाट्टिलोपः । पदष्ठीवम् । निपातनात्पादशब्दस्य पद्भावः । नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम् । रात्रौ च दिवा च रात्रिन्दिवम् । रात्रेर्मान्तत्वं निपात्यते । अहनि च दिवा च अहर्दिवम् । वीप्सायां द्वन्द्वो निपात्यते । अहन्यहनीत्यर्थः । सरजसमिति साकल्येऽव्ययीभावः । बहुव्रीहौ तु सरजः पंकजम् । निश्चितं श्रेयो निःश्रेयसम् । तत्पुरुष एव । नेह । निःश्रेयान् पुरुषः । पुरुषस्यायुः पुरुषायुषम् । ततो द्विगू । द्व्यायुषम् । त्र्यायुषम् । ततो द्वन्द्वः । ऋग्यजुषम् । ततस्त्रयः कर्मधारयाः । जातोक्षः । महोक्षः । वृद्धोक्षः । शुनः समीपम् उपशुनम् । टिलोपाभावः सम्प्रसारणं च निपात्यते । गोष्ठे श्वा गोष्ठश्वः ॥

९४५–अचतुरादि पचीस शब्द अच्प्रत्ययान्त निपातन होतेहैं । उनमें पहिलेके तीन बहुव्रीहि हैं, जैसे–अविद्यमानानि चत्वारि अस्य=अचतुरः । विचतुरः । सुचतुरः । त्रि और उपपूर्वक चतुर् शब्दके उत्तर अच् प्रत्यय हो, जैसे–त्रिचतुराः । 'चतुर्णां समीपे' ऐसे विग्रहमें उपचतुराः ॥ इसके पश्चात् और ग्यारह शब्द द्वन्द्व हैं, जैसे–स्त्रीपुंसौ । धेन्वनडुहौ । ऋक्सामे । वाङ्मनसे । 'अक्षिणी च भ्रुवौ च' इस विग्रहमें अक्षिभ्रुवम्, दाराश्च गावश्च=दारगवम् । ऊरू च अष्ठीवन्तौ च=ऊर्वष्ठीवम्, इस स्थलमें निपातनसे टिलोप हुआ और 'पदष्ठीवम्' यहां निपातनहीसे पाद शब्दके स्थानमें पद्भाव हुआहै । नक्तञ्च दिवा च=नक्तन्दिवम् । रात्रौ च दिवा च=रात्रिन्दिवम्, इस स्थानमें रात्रि शब्दका मान्तत्व निपातनसिद्ध है । अहनि च दिवा च=अहर्दिवम्, इस स्थानमें वीप्सा अर्थमें द्वन्द्व निपातनसिद्ध है अर्थात् 'अहन्यहनि' ऐसा जानना चाहिये । सरजसम्, यहां साकल्यार्थमें अव्ययीभाव समास है, परन्तु बहुव्रीहि समासमें 'सरजः पङ्कजम्' ऐसा होगा । निश्चितं श्रेयः=निःश्रेयसम्, यह तत्पुरुष समासहीमें हो, इससे तत्पुरुष समास नहीं होने-पर 'निःश्रेयान् पुरुषः' यहां नहीं हुआ, 'पुरुषस्यायुः' इस वाक्यमें पुरुषायुषम् । पश्चात् दो द्विगु हैं, जैसे–द्व्यायुषम् । त्र्यायुषम् । पश्चात् एक द्वन्द्व है, जैसे–ऋग्यजुषम् । पश्चात् तीन कर्मधारय हैं, जैसे–जातोक्षः । महोक्षः । वृद्धोक्षः । 'शुनः समीपम्' इस वाक्यमें 'उपशुनम्' इस स्थानमें टिके लोपका अभाव और संप्रसारण निपातनसिद्ध है । 'गोष्ठे श्वा' इस वाक्यमें गोष्ठश्वः ॥

९४६ ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः । ५ । ४ । ७८ ॥

अच् स्यात् । ब्रह्मवर्चसम् । हस्तिवर्चसम् । पल्यराजभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पल्यवर्चसम् राजवर्चसम् ॥

९४६–ब्रह्मन् और हस्तिन् शब्दके परे स्थित वर्चस् शब्दके उत्तर अच् हो, जैसे–ब्रह्मवर्चसम् । हस्तिवर्चसम् ।

पल्य और राजन् शब्दके परे स्थित वर्चस् शब्दके उत्तर भी अच् प्रत्यय हो * जैसे–पल्यवर्चसम् । राजवर्चसम् । मांसको पल्य कहतेहैं ॥

९४७ अवसमन्धेभ्यस्तमसः । ५ । ४ । ७९ ॥

अवतमसम् । सन्तमसम् । अन्धयतीत्यन्धं पचाद्यच् । अन्धं तमः अन्धतमसम् ॥

९४७–अव, सम्, और अन्धपूर्वक तमस् शब्दके उत्तर अच् प्रत्यय हो, जैसे–अवतमसम् । अन्धयतीति=अंधः, पचादित्वके कारण अच्, अन्धं तमः=अन्धतमसम् ॥

९४८ श्वसो वसीयश्श्रेयसः । ५ । ४ । ८० ॥

वसुशब्दः प्रशस्तवाची तत ईयसुनि वसीयः । श्वस्शब्द उत्तरपदार्थप्रशंसामाशीर्विषयतामाह । मयूरव्यंसकादित्वात्समासः । श्वोवसीयसम् । श्वःश्रेयसं ते भूयात् ॥

९४८–वसु शब्द प्रशस्तवाचक है, उसके उत्तर ईयसुन् प्रत्यय करके वसीयः, यह पद हुआहै । श्वस् शब्दसे आशीर्वादविषय जो उत्तरपदार्थप्रशंसा सो जानना । श्वस् शब्दके परे स्थित वसीयस् और श्रेयस् शब्दके उत्तर अच् प्रत्यय हो । 'श्वोवसीयसम्, श्वःश्रेयसं ते भूयात्' इस स्थलमें मयूरव्यंसकादित्वके कारण समास हुआहै ॥

९४९ अन्ववतप्ताद्रहसः । ५ । ४ । ८१ ॥

अनुरहसम् । अवरहसम् । तप्तरहसम् ॥

९४९-अनु, अव और तप्तशब्दपूर्वक रहस् शब्दके उत्तर समासान्त अच् प्रत्यय हो, जैसे-अनुरहसम्। अवरहसम्। तप्तरहसम् ॥

९५०प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्।५।४।८२॥

उरसि प्रति प्रत्युरसम्। विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः॥

९५०-प्रतिपूर्वक सप्तम्यन्त उरस् शब्दके उत्तर अच् प्रत्यय हो, जैसे-उरसि प्रति=प्रत्युरसम्, इस स्थानमें विभक्त्यर्थमें अव्ययीभाव हुआहै ॥

९५१ अनुगवमायामे । ५ । ४ । ८३ ॥

एतन्निपात्यते दीर्घत्वे। अनुगवं यानम्।यस्य चायाम इति समासः॥

९५१-दीर्घ अर्थ होनेपर अनुपूर्वक गो शब्दके उत्तर अच् प्रत्ययका निपातन हो, जैसे-अनुगवं यानम्, इस स्थलमें "यस्य चायामः ६७०" इस सूत्रसे अनु शब्दके साथ गो शब्दका समास हुआहै ॥

९५२ द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः । ५ । ४ । ८४ ॥

अच् प्रत्ययष्टिलोपः समासश्च निपात्यते । यावती प्रकृतौ वेदिस्ततो द्विगुणा त्रिगुणा वाऽश्वमेधादौ तत्रेदं निपातनम्। वेदिरिति किम्। द्विस्तावती त्रिस्तावती रज्जुः॥

९५२-'द्विस्तावा' और 'त्रिस्तावा' इनमें अच् प्रत्यय, टिका लोप और समास निपातनसे हों। प्रकृतिमें जितनी बडी वेदि विहित है, उसकी अपेक्षा दुगनी अथवा तिगुनी अश्वमेधादिमें होतीहै, वहां यह पनिपातन है। वेदिसे भिन्न अर्थमें पूर्वोक्त रूप न होंगे, जैसे-द्विस्तावती, त्रिस्तावती रज्जुः ॥

९५३ उपसर्गादध्वनः। ५ । ४।८५ ॥

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ॥

९५३-उपसर्गके परे स्थित अध्वन् शब्दके उत्तर अच् प्रत्यय हो, जैसे-प्रगतोऽध्वानम्=प्राध्वः, अर्थात् रथ ॥

९५४ न पूजनात् । ५ । ४ । ६९ ॥

पूजनार्थात्परेभ्यः समासान्ता न स्युः। सुराजा। अतिराजा ॥ स्वतिभ्यामेव ॥ * ॥ नेह । परमराजः। पूजनात्किम् । गामतिक्रान्तोऽतिगवः। बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोरित्यतः प्रागेवायं निषेधः। नेह । सुसक्थः । स्वक्षः ॥

९५४-पूजनार्थ शब्दके परे स्थित शब्दोंसे समासान्त प्रत्यय न हों, जैसे-सुराजा । अतिराजा ।

पूजानार्थ सु और अति शब्दसे ही परे स्थित शब्दके उत्तर समासान्त प्रत्यय न हों * इसी कारण 'परमराजः' इस स्थलमें निषेध नहीं हुआ ।

पूजनार्थसे परे न होनेपर जैसे-गामतिक्रान्तः=अतिगवः, इस स्थलमें टच् प्रत्यय हुआ है। "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः० ८५२" इस सूत्रके पूर्व सूत्रोंसे विहित समासान्त प्रत्ययोंका ही यह निषेधक सूत्र है, इस कारण सुसक्थः, स्वक्षः, इस स्थलमें निषेध नहीं हुआ ॥

९५५ किमः क्षेपे । ५ । ४ । ७० ॥

क्षेपे यः किंशब्दस्ततः परं यत्तदन्तात्समासान्ता न स्युः। कुत्सितो राजा किंराजा। किंसखा। किंगौः । क्षेपे किम् । किंराजः। किंसखः। किंगवः॥

९५५-निन्दाबोधक किम् शब्दके परे स्थित शब्दोंके उत्तर समासान्त प्रत्यय न हो, जैसे-'कुत्सितो राजा' इस वाक्यमें-किंराजा । किंसखा । किंगौः ।

निंदा न होनेपर समासान्त होगा, जैसे-किंराजः । किंसखः। किंगवः। यहां किम् शब्द प्रश्नमें है, षष्ठीसमास वा कर्मधारय जानना ॥

९५६ नञस्तत्पुरुषात् । ५ । ४ । ७१ ॥

समासान्तो न। अराजा। असखा । तत्पुरुषात्किम्। अधुरं शकटम्॥

९५६-नञ्तत्पुरुष समासके उत्तर समासान्त प्रत्यय न हो, जैसे-अराजा । असखा ।

तत्पुरुष कहनेसे 'अधुरं शकटम्' इस स्थलमें समासान्त हुआ है ॥

९५७ पथो विभाषा । ५ । ४ । ७२ ॥

नञ्पूर्वात्पथो वा समासान्तः । अपथम्। अपन्थाः । तत्पुरुषादित्येव । अपथो देशः। अपथं वर्तते ॥ ॥ इति समासान्ताः ॥

९५७-नञ्पूर्वक पथिन् शब्दके उत्तर विकल्प करके समासान्त प्रत्यय हो । 'अपथम्'यहां "नस्तद्धिते ६।४।१४४" इससे टिलोप और "अपथन्नपुंसकम् २ । ४ । ३०" इससे नपुंसकत्व हुआ है । अपंथाः ।

इस सूत्रमें भी'तत्पुरुषात्'इसकी अनुवृत्तिसे नञ्पूर्वक पथिन् शब्दान्त तत्पुरुषसे ही समासान्त विकल्प करके होगा, इस कारण 'अपथो देशः, अपथं वर्तते' इत्यादि स्थलोंमें बहुव्रीहि समास होनेके कारण नित्य समासान्त हुआहै ॥

॥ इति समासान्तप्रकरणम् ॥

अथालुक्समासप्रकरणम्।

९५८ अलुगुत्तरपदे । ६ । ३ । १ ॥

अलुगधिकारः प्रागानङ उत्तरपदाधिकारस्त्वा पादसमाप्तेः ॥

९५८-आनङ् (९२१) के पूर्वपर्यन्त अलुक्का अधिकार और पादसमाप्तिपर्यन्त उत्तरपदका अधिकार चलेगा ॥

९५९ पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ।६।३।२॥

एभ्यः पञ्चम्या अलुक् स्यादुत्तरपदे। स्तोकान्मुक्तः। एवमन्तिकार्थदूरार्थकृच्छ्रेभ्यः। उत्तरपदे

किम्। निष्क्रान्तः स्तोकान्निःस्तोकः । ब्राह्मणाच्छंसिन उपसंख्यानम् ॥ * ॥ ब्राह्मणे विहितानि शस्त्राणि उपचाराद् ब्राह्मणानि तानि शंसतीति ब्राह्मणाच्छंसी ऋत्विग्विशेषः । द्वितीयार्थे पञ्चम्युपसंख्यानादेव ॥

९५९–उत्तरपद परे रहते स्तोकादि शब्दके उत्तर पञ्चमीका अलुक् अर्थात् लुक् न हो, जैसे–स्तोकान्मुक्तः । ऐसे ही उत्तरपद परे रहते अन्तिकार्थ शब्द, दूरार्थ शब्द और कृच्छ्र शब्दके उत्तर पञ्चमीका लुक् नहीं होगा । जिस स्थानमें उत्तरपद परे न होगा, उस स्थानमें निष्क्रान्तः स्तोकात्=निःस्तोकः, ऐसा ही होगा ।

(ब्राह्मणाच्छंसिन उपसंख्यानम् *) शंसिन् शब्द परे रहते ब्राह्मण शब्दके उत्तर पञ्चमीका अलुक् हो, जैसे–'ब्राह्मणे विहितानि शस्त्राणि उपचारात् ब्राह्मणानि, तानि शंसति' इस विग्रहमें 'ब्राह्मणाच्छंसी' अर्थात् ऋत्विग्विशेष । उक्त स्थानमें उपसंख्यानके ही कारण द्वितीयाके अर्थमें पञ्चमी हुई है, यह जानना चाहिये ॥

९६० ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः । ६ । ३ । ३ ॥

ओजसा कृतमित्यादि ॥ अञ्जस उपसंख्यानम् ॥ * ॥ अञ्जसा कृतम् । आर्जवेन कृतमित्यर्थः ॥ पुंसानुजो जनुषान्ध इति च ॥ * ॥ यस्याग्रजः पुमान् स पुंसानुजः । जनुषान्धो जात्यन्धः ॥

९६०–उत्तरपद परे रहते ओजस्, सहस्, अम्भस् और तमस् शब्दसे परे तृतीया विभक्तिका अलुक् हो, जैसे–ओजसाकृतम्–इत्यादि ।

अञ्जस् शब्दके परे भी तृतीयाका अलुक् हो * जैसे–अञ्जसाकृतम्, अर्थात् ऋजुताद्वारा किया हुआ ।

अनुज शब्द परे रहते पुम्स् शब्दसे और अन्ध शब्द परे रहते जनुष् शब्दसे विहित तृतीया विभक्तिका अलुक् हो * जैसे–यस्याग्रजः पुमान् सः=पुंसानुजः । जनुषांधः, अर्थात् जातान्ध ॥

९६१ मनसः संज्ञायाम् । ६ । ३ । ४॥

मनसागुप्ता ॥

९६१–उत्तर पद परे रहते संज्ञा अर्थमें मनस् शब्दके उत्तर विभक्तिका अलुक् हो, जैसे–मनसागुप्ता ॥

९६२ आज्ञायिनि च । ६ । ३ । ५ ॥

मनस इत्येव । मनसा आज्ञातुं शीलमस्य मनसाज्ञायी ॥

९६२–आज्ञायिन शब्द परे रहते मनस् शब्दके उत्तर तृतीया विभक्तिका अलुक् हो, जैसे–मनसा आज्ञातुं शीलमस्य=मनसाज्ञायी ॥

९६३ आत्मनश्च । ६ । ३ । ६२ ॥

आत्मनस्तृतीयाया अलुक् स्यात् ॥ पूरण इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ पूरणप्रत्ययान्ते उत्तरपदे इत्यर्थः । आत्मनापञ्चमः । जनार्दनस्त्वात्मचतुर्थ एवेति बहुव्रीहिर्बोध्यः । पूरणे किम्। आत्मकृतम् ॥

९६३–पूरणप्रत्ययान्त* उत्तरपद परे रहते आत्मन् शब्दके परे तृतीया विभक्तिका अलुक् हो, जैसे–आत्मनापञ्चमः । 'जनार्दनस्त्वात्मचतुर्थः' इस स्थानमें 'आत्मा चतुर्थो यस्य' ऐसा बहुव्रीहि समझना । पूरणप्रत्ययान्त परे न रहते लुक् होगा, जैसे–आत्मकृतम् ॥

९६४ वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः । ६ । ३ । ७ ॥

आत्मन इत्येव । आत्मनेपदम् । आत्मनेभाषा । तादर्थ्ये चतुर्थी । चतुर्थीतियोगविभागात्समासः ॥

९६४–व्याकरणसंबंधी संज्ञा होनेपर आत्मन् शब्दके परे चतुर्थीका अलुक् हो, जैसे–आत्मनेपदम् । आत्मनेभाषा । उक्त स्थलमें तादर्थ्यमें चतुर्थी हुई है, और "चतुर्थी तदर्था०" इस सूत्रमें 'चतुर्थी' इस योगविभागसे समास हुआहै ॥

९६५ परस्य च । ६ । ३ । ८ ॥

परस्मैपदम् । परस्मैभाषा ॥

९६५–व्याकरणकी संज्ञा होनेपर पर शब्दके परे स्थित चतुर्थी विभक्तिका अलुक् हो, जैसे–परस्मैपदम् । परस्मैभाषा ॥

९६६ हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् । ६ । ३ । ९ ॥

हलन्तादन्ताच्च सप्तम्या अलुक् संज्ञायाम् । त्वचिसारः ॥

९६६–संज्ञा होनेपर हलन्त और अकारान्त शब्दके परे स्थित सप्तमी विभक्तिका अलुक् हो, जैसे–त्वचिसारः ॥

९६७ गवियुधिभ्यां स्थिरः।८।३।९५ ॥

आभ्यां स्थिरस्य सस्य षः स्यात् । गविष्ठिरः । अत्र गवीति वचनादेवाऽलुक् । युधिष्ठिरः । अरण्येतिलकः । अत्र संज्ञायामिति सप्तमीसमासः ॥ हृद्द्युभ्यां च ॥ * ॥ हृदिस्पृक् । दिविस्पृक् ॥

९६७–गवि और युधि इन दो पदोंके परे स्थित स्थिर शब्दके सकारको षत्व हो, जैसे–गविष्ठिरः । इस सूत्रमें 'गवि' ऐसा कहनेसे ही सप्तमी विभक्तिका अलुक् हुआ । युधिष्ठिरः । अरण्येतिलकः । इस स्थानमें "संज्ञायाम् ७२१" इस सूत्रसे सप्तमीतत्पुरुष समास हुआ ॥

---

१ "स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन" इस सूत्रमें पठित स्तोकादि हैं॥

१ "आत्मनश्च पूरणे" ऐसे विशिष्ट सूत्रका काशिकामें पाठ है॥

हृद् और दिव् शब्दके परे सप्तमीका अलुक् हो * जैसे-हृदिस्पृक् । दिविस्पृक् ॥

९६८ कारनाम्नि च प्राचां हलादौ । ६ । ३ । १० ॥

प्राचां देशे यत्कारनाम तत्र हलादावुत्तरपदे हलदन्तात्सप्तम्या अलुक् । मुकुटेकार्षापणम् । दृषदिमाषकः । पूर्वेण सिद्धे नियमार्थम् । कारनाम्न्येव प्राचामेव हलादावेवेति । कारनाम्नि किम् । अभ्याहितपशुः । कारादन्यस्यैतद्देयस्य नाम । प्राचां किम् । यूथपशुः । हलादौ किम् । अविकटोरणः । हलदन्तात्किम् । नद्यां दोहः नदीदोहः ॥

९६८-वणिक्, पशुपालक और कृषकादिके निकटसे राजा जो धन ग्रहण करे उसका नाम कर है, उसको ही कार भी कहतेहैं, पूर्व देशमें जो कारनाम, वहां हलादि उत्तरपद परे रहते हलन्त और अदन्तसे परे सप्तमीका अलुक् हो, जैसे-मुकुटेकार्षापणम् । दृषदिमाषकः । यद्यपि "हलदन्तात् सप्तम्याः० ६।३।९" इस सूत्रसे अलुक् सिद्ध है, तथापि यह सूत्र नियमके निमित्त है, किस प्रकार नियम है सो दिखाते हैं, जैसे-हलन्त और अदन्त शब्दके परे सप्तमीका अलुक् हो, किन्तु यदि प्राचीन देशप्रसिद्ध कारनामक हलादि पद परे हो तो। कारनाम शब्दके ग्रहण करनेसे यह हुआ कि, 'अभ्याहितपशुः' इस स्थलमें अलुक् नहीं हुआ। प्राचीन देश कहनेसे 'यूथपशुः' इस स्थानमें अलुक् नहीं हुआ । हलादि कहनेसे 'अविकटोरणः' इस जगहमें अलुक् नहीं हुआ । हलन्त और अदन्त कहनेसे 'नद्यां दोहः' इस विग्रहमें नदीदोहः, इस स्थलमें भी अलुक् नहीं हुआ ॥

९६९ मध्याद्गुरौ । ६ । ३ । ११ ॥

मध्येगुरुः ॥ अन्ताच्च ॥ * ॥ अन्तेगुरुः ॥

९६९-गुरु शब्द परे रहते मध्य शब्दके परे सप्तमी विभक्तिका अलुक् हो, जैसे-मध्येगुरुः ।

(अन्ताच्च *) गुरु शब्द परे रहते अन्त शब्दके परे भी सप्तमीका अलुक् हो, जैसे-अन्तेगुरुः ॥

९७० अमूर्द्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे । ६ । ३ । १२ ॥

कण्ठेकालः । उरसिलोमा । अमूर्द्धमस्तकात्किम् । मूर्द्धशिखः । मस्तकशिखः । अकामे किम् । मुखे कामोऽस्य मुखकामः ॥

९७०-काम शब्दसे भिन्न शब्द परे रहते मूर्द्ध और मस्तक शब्दसे भिन्न स्वाङ्गवाचक शब्दके परे सप्तमीका अलुक् हो, जैसे कंठेकालः । उरसिलोमा । मूर्द्ध और मस्तक शब्दसे भिन्न कहनेसे 'मूर्द्धशिखः', 'मस्तकशिखः' इस स्थानमें अलुक् नहीं हुआ । 'अकामे' ऐसा कहनेके कारण 'मुखे कामोऽस्य' इस विग्रहमें 'मुखकामः' इस स्थानमें भी अलुक् नहीं हुआ है ॥

९७१ बन्धे च विभाषा ।६।३।१३ ॥

हलदन्तात्सप्तम्या अलुक् । हस्तेबन्धः । हस्तबन्धः । हलदन्तेति किम् । गुप्तिबन्धः ॥

९७१-बंध शब्द परे रहते हलन्त और अदन्त शब्दके परे सप्तमीका विकल्प करके अलुक् हो, जैसे-हस्तेबन्धः । पक्षमें-हस्तबंधः । हलन्त और अदन्त कहनेसे 'गुप्तिबंधः' इस स्थानमें अलुक् नहीं हुआ ॥

९७२ तत्पुरुषे कृति बहुलम् ।६।३।१४॥

स्तम्बेरमः । स्तम्बरमः । कर्णेजपः । कर्णजपः । क्वचिन्न । कुरुचरः ॥

९७२-तत्पुरुष समासमें कृत्प्रत्ययान्त शब्द परे रहते हलन्त और अदन्त शब्दके परे सप्तमीका बहुल करके अलुक् हो, जैसे-स्तम्बेरमः, स्तम्बरमः । कर्णेजपः, कर्णजपः । बहुलग्रहणसे कहीं नहीं भी होगा, जैसे-कुरुचरः ॥

९७३ प्रावृट्शरत्कालदिवां जे ६।३।१५॥

प्रावृषिजः । शरदिजः । कालेजः । दिविजः । पूर्वस्यायं प्रपञ्चः ॥

९७३-ज शब्द परे रहते प्रावृट्, शरद्, काल, दिव्, इन शब्दोंके परे सप्तमीका अलुक् हो, जैसे-प्रावृषिजः । शरदिजः । कालेजः । दिविजः । यह सूत्र पूर्व सूत्रका प्रपञ्च है॥

९७४ विभाषा वर्षक्षरशरवरात् ६।३।१६॥

एभ्यः सप्तम्या अलुक् जे । वर्षेजः । वर्षजः । क्षरेजः । क्षरजः । शरेजः । शरजः । वरेजः । वरजः ॥

९७४-ज परे रहते वर्ष, क्षर, शर, वर, इन शब्दोंके परे सप्तमीका विकल्प करके अलुक् हो, जैसे-वर्षेजः, वर्षजः । क्षरेजः, क्षरजः । शरेजः, शरजः । वरेजः, वरजः ॥

९७५ घकालतनेषु कालनाम्नः ।६।३।१७॥

सप्तम्या विभाषा लुक् स्यात् । घे । पूर्वाह्णेतरे । पूर्वाह्णतरे । पूर्वाह्णेतमे । पूर्वाह्णतमे । काले । पूर्वाह्णेकाले । पूर्वाह्णकाले । तने । पूर्वाह्णेतने । पूर्वाह्णतने ॥

९७५-घसंज्ञक, कालशब्द और तन शब्द परे रहते कालवाचक शब्दसे परे विकल्प करके सप्तमीका अलुक् हो । (तरप् और तमप् प्रत्ययकी घ संज्ञा है) घ-पूर्वाह्णेतरे, पूर्वाह्णतरे । पूर्वाह्णेतमे, पूर्वाह्णतमे । काल-पूर्वाह्णेकाले, पूर्वाह्णकाले । तन-पूर्वाह्णेतने, पूर्वाह्णतने ॥

९७६ शयवासवासिष्वकालात् ६।३।१८।

खेशयः । खशयः । ग्रामेवासः । ग्रामवासः । ग्रामेवासी । ग्रामवासी । हलदन्तादित्येव । भूमिशयः ॥ अपो योनियन्मतुषु ॥ * ॥ अप्सुयोनिः । अप्सुर्योनिरुत्पत्तिर्यस्य सोऽप्सुयोनिः । अप्सु भवोऽप्सव्यः । अप्सुमन्तावाज्यभागौ ॥

९७६–शय, वास और वासिन् शब्द परे रहते कालवाचक शब्दसे भिन्न शब्दके परे विकल्प करके सप्तमीका अलुक् हो, जैसे–खेशयः, खशयः। ग्रामेवासः, ग्रामवासः। ग्रामेवासी, ग्रामवासी। "हलदन्तात्० ६ । ३ । ९" इस सूत्रसे इस स्थानमें हलन्त और अदन्तकी अनुवृत्ति होनेसे हलन्त और अदन्त शब्दके उत्तर ही सप्तमीका अलुक् होगा, इससे 'भूमिशयः' यहां अलुक् न हुआ।

योनि शब्द, यत् प्रत्यय और मतुप् प्रत्यय परे रहते अप् शब्दके परे सप्तमीका अलुक् हो* जैसे–'अप्सु योनिरुत्पत्तिर्यस्य' इस विग्रहमें अप्सुयोनिः। 'अप्सु भवः' इस विग्रहमें अप्सव्यः। अप्सुमन्तावाज्यभागौ॥

९७७ नेन्सिद्धबध्नातिषु च ।६।३।१९॥

इन्नन्तादिषु सप्तम्या अलुम्न। स्थण्डिलशायी। सांकाश्यसिद्धः। चक्रबन्धः॥

९७७–इनप्रत्ययान्त सिद्ध शब्द और बन्धार्थक बन्ध धातु परे रहते सप्तमीका अलुक् न हो, जैसे–स्थंडिलशायी। सांकाश्यसिद्धः। चक्रबन्धः॥

९७८ स्थे च भाषायाम् । ६ । ३।२०॥

सप्तम्या अलुम्न। समस्थः। भाषायां किम्। कृष्णोऽस्याखरेष्ठः॥

९७८–स्थ शब्द परे रहते भाषामें सप्तमीका अलुक् नहीं हो, जैसे–समस्थः। भाषा न होनेपर अलुक् होगा, जैसे–कृष्णोऽस्याखरेष्ठः॥

९७९ षष्ठ्या आक्रोशे । ६ । ३ । २१॥

चौरस्यकुलम्। आक्रोशे किम्। ब्राह्मणकुलम्॥ वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु॥ * ॥ वाचोयुक्तिः। दिशोदण्डः। पश्यतोहरः॥ आमुष्यायणाऽऽमुष्यपुत्रिकाऽऽमुष्यकुलिकेति च॥ ॥ * ॥ अमुष्यापत्यम्। आमुष्यायणः। नडादित्वात् फक्। अमुष्य पुत्रस्य भावः आमुष्यपुत्रिका। मनोज्ञादित्वाद्वुञ्। एवमामुष्यकुलिका॥ देवानांप्रिय इति च मूर्खे॥ * ॥ अन्यत्र देवप्रियः॥ शेपपुच्छलांगूलेषु शुनः॥ * ॥ शुनःशेपः। शुनःपुच्छः। शुनोलांगूलः॥ दिवश्च दासे॥ * ॥ दिवोदासः॥

९७९–आक्रोश अर्थात् निन्दा गम्यमान होनेपर षष्ठीका अलुक् हो, जैसे–चौरस्यकुलम्। आक्रोश न होनेपर, जैसे–ब्राह्मणकुलम्, इस स्थानमें अलुक् नहीं हुआ।

युक्ति, दंड और हर शब्द परे रहते वाच्, दिश् और पश्यत् शब्दके परे षष्ठीका अलुक् हो * जैसे–वाचोयुक्तिः। दिशोदण्डः, पश्यतोहरः॥

आयन प्रत्यय, पुत्रिका शब्द और कुलिका शब्द परे रहते 'अमुष्य' इसमें षष्ठी विभक्तिका अलुक् हो * जैसे–'अमुष्यापत्यम्' इस विग्रहमें 'आमुष्यायणः' इस स्थानमें नडादित्वप्रयुक्त फक् प्रत्यय हुआ। 'अमुष्य पुत्रस्य भावः' इस विग्रहमें 'आमुष्यपुत्रिका' यहां मनोज्ञादित्वके कारण वुञ् प्रत्यय हुआहै। ऐसे ही 'आमुष्यकुलिका' में भी जानना॥

मूर्ख अर्थ होनेपर 'देवानांप्रियः' इस स्थलमें षष्ठी विभक्तिका अलुक् हो * जैसे–देवानांप्रियः अर्थात् पशुके समान मूर्ख[1]। जिस स्थानमें मूर्ख अर्थ न होगा उस स्थानमें देवप्रियः, ऐसा होगा।

शेप, पुच्छ और लांगूल शब्द परे रहते श्वन् शब्दके परे षष्ठीका अलुक् हो * जैसे–शुनःशेपः। शुनःपुच्छः। शुनोलाङ्गूलः।

दास शब्द परे रहते दिव शब्दके परे षष्ठी विभक्तिका अलुक् हो * जैसे–दिवोदासः॥

९८० पुत्रेऽन्यतरस्याम् । ६ । ३ । २२॥

षष्ठ्याः पुत्रे परेऽलुग्वा निन्दायाम्। दास्याः पुत्रः दासीपुत्रः। निन्दायां किम्। ब्राह्मणीपुत्रः॥

९८०–निन्दा अर्थ होनेपर पुत्र शब्द परे रहते षष्ठी विभक्तिका विकल्प करके अलुक् हो, जैसे–दास्याः पुत्रः= दासीपुत्रः। जिस स्थानमें निन्दा न होगी उस स्थानमें लुक होगा, जैसे–ब्राह्मणीपुत्रः॥

९८१ ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः। ६ । ३ । २३॥

विद्यासंबन्धयोनिसंबंधवाचिन ऋदन्तात्षष्ठ्या अलुक्। होतुरन्तेवासी। होतुःपुत्रः। पितुरन्तेवासी। पितुःपुत्रः॥ विद्यायोनिसंबन्धेभ्यस्तत्पूर्वोत्तरपदग्रहणम्॥ * ॥ नेह। होतृधनम्॥

९८१–विद्यासम्बन्ध और योनिसंबन्धवाचक ऋदन्त शब्दके परे षष्ठीका अलुक् हो, जैसे–होतुरन्तेवासी। होतुःपुत्रः। पितुरन्तेवासी। पितुःपुत्रः। विद्या और योनिसंबंधवाचक ऋदन्त शब्दसे परे षष्ठीका विद्यायोनिसम्बन्धवाचक ही उत्तरपद परे रहते अलुक् हो, ऐसा कहना चाहिये* इससे होतृधनम्, पितृधनम्, इस स्थलमें अलुक् नहीं हुआ॥

९८२ विभाषा स्वसृपत्योः ।६।३।२४॥

ऋदन्तात्षष्ठ्या अलुग् वा स्वसृपत्योः परयोः॥

९८२–स्वसृ और पति शब्द परे रहते ऋदन्त शब्दके परे विकल्प करके षष्ठीका अलुक् हो–॥

९८३ मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम्। ८ । ३ । ८५॥

[1] जैसे–दुग्धादिप्रदानद्वारा गवादि पशु मनुष्यकी प्रीतिको उत्पन्न करतेहैं, वैसे ही संसारी मनुष्य भी यागादिक अनुष्ठानद्वारा देवताओंकी प्रीतिको उत्पन्न करतेहैं, इसलिये पशुसदृश होनेसे संसारी ही मूर्ख हैं, तत्त्वज्ञानी तो यागादिका अनुष्ठान नहीं करतेहैं, इसलिये वे पशुसदृश नहीं होनेसे मूर्ख नहीं हैं॥

आभ्यां परस्य स्वसुः सस्य षो वा स्यात् समासे । मातुःष्वसा । मातुःस्वसा । पितुःष्वसा । पितुःस्वसा । लुक्पक्षे तु ॥

९८३–समासमें मातृ शब्द और पितृ शब्दसे परे जो स्वसृ शब्द उसके सकारको विकल्प करके षत्व हो, जैसे–मातुःष्वसा, मातुःस्वसा । पितुःष्वसा, पितुःस्वसा । लुक् पक्षमें–किस प्रकार होगा वह आगे कहतेहैं–॥

९८४ मातृपितृभ्यां स्वसा ।८।३।८४॥

आभ्यां परस्य स्वसुः सस्य षः स्यात्समासे । मातृष्वसा । पितृष्वसा । असमासे तु । मातुः स्वसा । पितुः स्वसा ॥

॥ इत्यलुक्समासः ॥

९८४–समासमें मातृ और पितृ शब्दके परे स्वसृ शब्दके सकारको षत्व हो, जैसे–मातृष्वसा । पितृष्वसा । जिस स्थानमें समास न होगा उस स्थानमें पितुः स्वसा । मातुः स्वसा ॥

॥ इत्यलुक्समासः ॥

अथ समासाश्रयविधिप्रकरणम् ।

९८५ घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः । ६।३।४३॥

भाषितपुंस्काद्यो ङी तदन्तस्याऽनेकाचो ह्रस्वः स्याद्धरूपकल्पप्प्रत्ययेषु परेषु चेलडादिषु चोत्तरपदेषु । ब्राह्मणितरा । ब्राह्मणितमा । ब्राह्मणिरूपा । ब्राह्मणिकल्पा । ब्राह्मणिचेली । ब्राह्मणिब्रुवा । ब्राह्मणिगोत्रेत्यादि । ब्रूञः पचाद्यचि वच्यादेशगुणयोरभावोपि निपात्यते । चेलडादीनि वृत्तिविषये कुत्सनवाचीनि तैः कुत्सितानि कुत्सनैरिति समासः । ङ्यः किम् । दत्तातरा । भाषितपुंस्कात्किम् । आमलकीतरा । कुवलीतरा ॥

९८५–घसंज्ञक, रूपप् और कल्पप् प्रत्यय तथा चेलड्, ब्रुव, गोत्र, मत, हत, इतने शब्द परे रहते उक्तपुंस्क शब्दके परे जो ङी तदन्त जो अनेकाच् उसको ह्रस्व हो, जैसे–ब्राह्मणितरा । ब्राह्मणितमा । ब्राह्मणिरूपा । ब्राह्मणिकल्पा । ब्राह्मणिचेली । ब्राह्मणिब्रुवा । ब्राह्मणिगोत्रा–इत्यादि । 'ब्रुव' इस स्थलमें ब्रूञ् धातुके उत्तर पचादित्वके कारण अच् प्रत्यय होनेपर ब्रू धातुके स्थानमें वच् आदेश और गुणका अभाव निपातनसे सिद्ध हुआहै । चेलड् आदि शब्द वृत्तिविषयमें निन्दावाची हैं, इन चेलडादिके साथ "कुत्सितानि कुत्सनैः ७३२" इस सूत्रसे समास हुआहै । ङी कहनेसे दत्तातरा, इस स्थानमें ह्रस्व नहीं हुआ। उक्तपुंस्क शब्दके उत्तर कहनेसे 'आमलकीतरा', 'कुवलीतरा' इस स्थानमें ह्रस्व नहीं हुआ ॥

९८६ नद्याः शेषस्याऽन्यतरस्याम् । ६ । ३ । ४४ ॥

अङ्ङ्यन्तनद्या ङ्यन्तस्यैकाचश्च घादिषु ह्रस्वो वा स्यात्॥ ब्रह्मबन्धुतरा । ब्रह्मबन्धूतरा । स्त्रितरा । स्त्रीतरा ॥ कृन्नद्या न ॥ * ॥ लक्ष्मीतरा ॥

९८६–घसंज्ञक प्रत्यय, रूपप् प्रत्यय और कल्पप् प्रत्यय, चेलड्, ब्रुव, गोत्र, मत, हत, शब्द परे रहते अङ्यन्त नदीसंज्ञक शब्दको और ङ्यन्त एकाच्को विकल्प करके ह्रस्व हो, जैसे–ब्रह्मबंधुतरा, ब्रह्मबन्धूतरा । स्त्रितरा, स्त्रीतरा ।

(कृन्नद्या न *) कृत्प्रत्ययान्त नदीसंज्ञक शब्दको ह्रस्व न हो, जैसे–लक्ष्मीतरा ॥

९८७ उगितश्च । ६ । ३ । ४५ ॥

उगितः परा या नदी तदन्तस्य घादिषु ह्रस्वो वा स्यात् । विदुषितरा । ह्रस्वाभावपक्षे तु तसिलादिष्विति पुंवत् । विद्वत्तरा । वृत्त्यादिषु विदुषीतरेत्यप्युदाहृतं तन्निर्मूलम् ॥

९८७–घ आदि परे रहते उगित्के परे जो नदीसंज्ञक शब्द तदन्तको विकल्प करके ह्रस्व हो, जैसे-विदुषितरा। ह्रस्वाभाव पक्षमें तो "तसिलादिषु०–८३६" इस सूत्रसे पुंवद्भाव होगा, जैसे–विद्वत्तरा । वृत्त्यादि ग्रन्थमें 'विदुषीतरा' ऐसा भी उदाहरण है (अर्थात् कोई २ कहतेहैं पुंवद्भाव नहीं होगा), परन्तु वह अमूलक है ॥

९८८ हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु । ६ । ३ । ५० ॥

हृदयं लिखतीति हृल्लेखः । हृदयस्य प्रियं हृद्यम् । हृदयस्येदं हार्दम् । हृल्लासः । लेखेत्यणन्तस्य ग्रहणम् । घञि तु हृदयलेखः । लेखग्रहणमेव ज्ञापकम् उत्तरपदाधिकारे तदन्तविधिर्नास्तीति ॥

९८८–लेख शब्द, यत् प्रत्यय, अण् प्रत्यय और लास शब्द परे रहते हृदय शब्दके स्थानमें हृद् आदेश हो, जैसे–'हृदयं लिखति' इस वाक्यमें–हृल्लेखः । हृदयस्य प्रियम्=हृद्यम् । हृदयस्य इदम्=हार्दम् । हृल्लासः । लेख यह अणन्तका ग्रहण है । घञ् परे रहते तो 'हृदयलेखः' ऐसा होगा । लेखग्रहणसे ही उत्तरपदाधिकारमें तदन्तविधि नहीं है, यह विदित होताहै ॥

९८९ वा शोकष्यञ्रोगेषु ।६।३।५१॥

हृच्छोकः । हृदयशोकः । सौहार्द्यम् । सौहृदय्यम् । हृद्रोगः । हृदयरोगः । हृदयशब्दपर्यायो हृच्छब्दोऽप्यस्ति । तेन सिद्धे प्रपञ्चार्थमिदम् ॥

९८९–शोक शब्द, ष्यञ् प्रत्यय और रोग शब्द परे रहते हृदय शब्दके स्थानमें विकल्प करके हृद् आदेश हो, जैसे–हृच्छोकः, पक्षमें हृदयशोकः । सौहार्द्यम्, सौहृदय्यम् । हृद्रोगः, हृदयरोगः । हृदय शब्दका पर्याय हृद् शब्द भी है, इससे यह सम्पूर्ण पद सिद्ध होनेपर भी यह सूत्र शास्त्रविस्तरके निमित्त है ॥

९९० पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु । ६ । ३ । ५२ ॥

एषूत्तरपदेषु पादस्य पद इत्यदन्त आदेशः स्यात् । पादाभ्यामजतीति पदाजिः । पदातिः । अज्यतिभ्यां पादे चेतीण् प्रत्ययः । अजेर्व्यभावो निपातनात् । पदगः । पदोपहतः ॥

९९०-आजि, आति, ग और उपहत शब्द परे रहते पाद शब्दके स्थानमें पद ऐसा अदन्त आदेश हो, जैसे-'पादाभ्यामजति' इस विग्रहमें पदाजिः । पदातिः । उक्त स्थानमें "अज्यतिभ्यां पादे च" इस उणादिसूत्रसे इण् प्रत्यय हुआ है । और अज्को वि आदेशका अभाव निपातनसे हुआहै । पदगः । पदोपहतः ॥

९९१ पद्यत्यतदर्थे । ६ । ३ । ५३ ॥

पादस्य पत्स्यादतदर्थे यति परे [पादौ विध्यन्ति पद्याः शर्कराः । अतदर्थे किम् । पादार्थमुदकं पाद्यम् । पादार्घाभ्यां चेति यत् ॥ इके चरतावुपसंख्यानम् ॥ * ॥ पादाभ्यां चरति पदिकः । पर्पादित्वात् ष्ठन् ॥

९९१-अतदर्थमें विहित यत् प्रत्यय परे रहते पाद शब्दके स्थानमें पद् आदेश हो, जैसे-पादौ विध्यन्ति पद्याः, अर्थात् शर्करा । जिस स्थानमें अतदर्थक यत् न होगा उस स्थानमें 'पादार्थमुदकम्=पाद्यम्' ऐसा होगा, इस स्थानमें "पादार्घाभ्यां च २०॰॰" इस सूत्रसे यत् प्रत्यय हुआहै ।

'चरति' अर्थमें विहित इक् शब्द परे रहते पाद शब्दके स्थानमें पद् आदेश हो* जैसे='पादाभ्यां चरति' इस विग्रहमें 'पदिकः' इस स्थानमें पर्पादित्वके कारण ष्ठन् प्रत्यय हुआ है ॥

९९२ हिमकाषिहतिषु च । ६ । ३ । ५४ ॥

पद्धिमम् । पत्काषी । पद्धतिः ॥

९९२-हिम, काषि और हति शब्द परे रहते पाद शब्दके स्थानमें पद् आदेश हो, जैसे-पद्धिमम् । पत्काषी । पद्धतिः ॥

९९३ ऋचः शे । ६ । ३ । ५५ ॥

ऋचः पादस्य पत्स्याच्छे परे । गायत्रीं पच्छः शंसति । पादम्पादमित्यर्थः । ऋचः किम् । पादशः कार्षापणं ददाति ॥

९९३-श शब्द परे रहते मंत्रसम्बन्धी पाद शब्दके स्थानमें पद् आदेश हो, जैसे-गायत्रीं पच्छः शंसति, अर्थात् एक २ चरण करके पढता है । मंत्रसम्बन्धी पाद शब्दका ग्रहण करनेसे 'पादशः कार्षापणं ददाति' इस स्थानमें पद् आदेश नहीं हुआ ॥

९९४ वा घोषमिश्रशब्देषु । ६ । ३ । ५६ ॥

पादस्य पत् । पद्घोषः । पादघोषः । पन्मिश्रः । पादमिश्रः । पच्छब्दः । पादशब्दः ॥ निष्के चेति वाच्यम् ॥ * ॥ पन्निष्कः । पादनिष्कः ॥

९९४-घोष, मिश्र और शब्द शब्द परे रहते पाद शब्दके स्थानमें विकल्प करके पद् आदेश हो, जैसे-पद्घोषः, पक्षमें पादघोषः । पन्मिश्रः, पक्षमें-पादमिश्रः । पच्छब्दः, पादशब्दः ।

निष्क शब्द परे रहते भी पाद शब्दके स्थानमें विकल्प करके पद् आदेश हो * जैसे-पन्निष्कः, पादनिष्कः ॥

९९५ उदकस्योदः संज्ञायाम् । ६ । ३ । ५७ ॥

उदमेघः ॥ उत्तरपदस्य चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ क्षीरोदः ॥

९९५-संज्ञामें उदक शब्दके स्थानमें उद् आदेश हो, जैसे-उदमेघः ।

उदक शब्दके उत्तरपदस्थ होनेपर भी उसके स्थानमें उद आदेश हो * जैसे-क्षीरोदः ॥

९९६ पेषं वासवाहनधिषु च । ६ । ३ । ५८ ॥

उदपेषं पिनष्टि । उदवासः । उदवाहनः । उदधिर्घटः । समुद्रे तु पूर्वेण सिद्धम् ॥

९९६-पेषम्, वास, वाहन और धि शब्द परे रहते उदक शब्दके स्थानमें उद आदेश हो, जैसे-उदपेषम्पिनष्टि । उदवासः । उदवाहनः । उदधिर्घटः । जिस स्थानमें उदधि शब्दसे समुद्रका ग्रहण हो, उस स्थानमें पूर्व सूत्रसे ही संज्ञामें उक्त पद सिद्ध होगा ॥

९९७ एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम् । ६ । ३ । ५९ ॥

उदकुम्भः । उदककुम्भः । एकेति किम् । उदकस्थाली । पूरयितव्येति किम् । उदकपर्वतः ॥

९९७-पूरयितव्य अर्थमें एकमात्र हल् आदिमें है जिसके ऐसे पद परे रहते उदक शब्दके स्थानमें विकल्प करके उद आदेश हो, जैसे-उदकुम्भः, उदककुम्भः । एकमात्र हल् आदिमें न होनेपर अर्थात् अनेक हल् आदिमें रहते 'उदकस्थाली' इस स्थलमें उद आदेश नहीं हुआ । पूरयितव्य अर्थ न होनेपर 'उदकपर्वतः' यहां उद आदेश न हुआ ॥

९९८ मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च । ६ । ३ । ६० ॥

उदमन्थः । उदकमन्थः । उदौदनः । उदकौदनः ॥

९९८-मन्थ, ओदन, सक्तु, बिन्दु, वज्र, भार, हार, वीवध और गाह शब्द परे रहते उदक शब्दके स्थानमें विकल्प करके उद आदेश हो, जैसे-उदमन्थः, उदकमन्थः । उदौदनः, उदकौदनः-इत्यादि ॥

९९९ इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य । ६ । ३ । ६१ ॥

इगन्तस्याङ्यन्तस्य ह्रस्वो वा स्यादुत्तरपदे ।

ग्रामणिपुत्रः । ग्रामणीपुत्रः । इकः किम् । रमापतिः । अङ्य इति किम् । गौरीपतिः । गालवग्रहणं पूजार्थम् । अन्यतरस्यामित्यनुवृत्तेः ॥ इयङुवङ्भाविनामव्ययानां च नेति वाच्यम् ॥ * ॥ श्रीमदः । भ्रूभङ्गः । शुक्लीभावः ॥ अभ्रुकुंसादीनामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भ्रुकुंसः । भ्रुकुटिः । भ्रूकुंसः । भ्रूकुटिः । अकारोऽनेन विधीयत इति व्याख्यान्तरम् ॥ भ्रकुंसः । भ्रकुटिः । भ्रुवा कुंसो भाषणं शोभा वा यस्य सः स्त्रीवेषधारी नर्तकः । भ्रुवः कुटिः कौटिल्यम् ॥

९९९–उत्तरपद परे रहते इगन्त जो अङ्यन्त शब्द उसको विकल्प करके ह्रस्व हो, जैसे–ग्रामणिपुत्रः, ग्रामणीपुत्रः । इगन्त शब्द न होनेपर जैसे–रमापतिः । अङ्यन्त न होनेपर ह्रस्व नहीं होगा, जैसे–गौरीपतिः। पूर्व सूत्र(६।३।५९) से 'अन्यतरस्याम्' इस पदकी अनुवृत्ति होनेसे विकल्प अर्थ हो ही जाता, फिर गालवग्रहण सूत्रमें पूजार्थ है ।

इयङ् और उवङ्स्थानी और अव्ययको ह्रस्व न हो* जैसे–श्रीमदः । भ्रूभङ्गः । शुक्लीभावः ।

(अभ्रुकुंसादीनाम्० *) भ्रुकुंसादि शब्दके ह्रस्वका निषेध न हो अर्थात् भ्रुकुंसादि शब्दको विकल्प करके ह्रस्व हो, जैसे–भ्रुकुंसः, भ्रूकुंसः । भ्रुकुटिः, भ्रूकुटिः । इस वार्त्तिकसे भ्रुकुंसादिके इक्को अकार आदेश विधान होताहै, यह व्याख्यान्तर है, इससे 'भ्रकुंसः, भ्रकुटिः' यह सिद्ध हुए । भ्रुवसे कुंस–सम्भाषण वा शोभा है जिसकी वह भ्रुकुंस कहाताहै अर्थात् स्त्रीवेषधारी पुरुष । 'भ्रुवः कुटिः कौटिल्यम्' अर्थात् भ्रूकी कुटिलता (टेढपनी) ॥

१००० एकतद्धिते च । ६ । ३ । ६२ ॥

एकशब्दस्य ह्रस्वः स्यात्तद्धिते उत्तरपदे । एकस्या आगतम् एकरूप्यम् । एकक्षीरम् ॥

१०००–तद्धित प्रत्यय परे रहते एक शब्दको ह्रस्व हो जैसे–एकस्या आगतम्=एकरूप्यम् । 'एकस्याः क्षीरम्' इस विग्रहमें–एकक्षीरम् ॥

१००१ ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् । ६ । ३ । ६३ ॥

रेवतिपुत्रः । अजक्षीरम् ॥

१००१–संज्ञा और वेदमें ङ्यन्त और आबन्त शब्दको ह्रस्व हो, बहुल करके अर्थात् कहीं हो, कहीं नहीं हो । रेवतिपुत्रः । अजक्षीरम् ॥

१००२ त्वे च । ६ । ३ । ६४ ॥

त्वप्रत्यये ङ्यापोर्वा ह्रस्वः । अजत्वम् । अजात्वम् । रोहिणित्वम् । रोहिणीत्वम् ॥

१००२–त्व प्रत्यय परे रहते ङ्यन्त और आबन्त शब्दको विकल्प करके ह्रस्व हो, जैसे–अजत्वम्, अजात्वम् । रोहिणित्वम्, रोहिणीत्वम् ॥

१००३ ष्यङः संप्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे । ६ । १ । १३ ॥

ष्यङन्तस्य पूर्वपदस्य संप्रसारणं स्यात्पुत्रपत्योरुत्तरपदयोस्तत्पुरुषे ॥

१००३–तत्पुरुष समासमें पुत्र और पति शब्द परे रहते ष्यङ्प्रत्ययान्त पूर्वपदको संप्रसारण हो ॥

१००४ संप्रसारणस्य । ६ । ३ । १३९ ॥

संप्रसारणस्य दीर्घः स्यादुत्तरपदे । कौमुदगन्ध्यायाः पुत्रः कौमुदगन्धीपुत्रः। कौमुदगन्धीपतिः । व्यवस्थितविभाषया ह्रस्वो न । स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने नेति तदादिनियमप्रतिषेधात् । परमकारीषगन्धीपुत्रः । उपसर्जने तु तदादिनियमान्नेह । अतिकारीषगन्ध्यापुत्रः ॥

१००४–उत्तरपद परे रहते संप्रसारणको दीर्घ हो, जैसे–'कौमुदगन्ध्यायाः पुत्रः' इस विग्रहमें कौमुदगन्धीपुत्रः (कुमुदगन्धेरपत्यं स्त्री=कौमुदगन्ध्या "तस्यापत्यम्" इत्यणि कृते "अणिञोः०" इति ष्यङादेशः "यङश्चाप्") । कौमुदगन्धीपतिः । इन दोनों स्थानोंमें व्यवस्थित विकल्पके कारण ह्रस्व नहीं हुआ । 'स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने न' इस परिभाषासे तदादिनियमके प्रतिषेधके कारण 'परमकारीषगंधीपुत्रः' इस स्थानमें भी संप्रसारण हुआ और उपसर्जनमें तदादि नियमके कारण 'अतिकारीषगन्ध्यापुत्रः' इस स्थानमें संप्रसारण नहीं हुआ ॥

१००५ बन्धुनि बहुव्रीहौ । ६।१।१४ ॥

बन्धुशब्दे उत्तरपदे ष्यङः संप्रसारणं स्याद्बहुव्रीहौ । कारीषगन्ध्या बन्धुरस्येति कारीषगन्धीबन्धुः । बहुव्रीहाविति किम् । कारीषगन्ध्याया बन्धुः कारीषगन्ध्याबन्धुः । क्लीबनिर्देशस्तु शब्दस्वरूपापेक्षया ॥ मातज्मातृकमातृषु वा ॥ * ॥ कारीषगन्धीमातः । कारीषगन्ध्यामातः । कारीषगन्धीमातृकः । कारीषगन्ध्यामातृकः । कारीषगन्धीमाता । कारीषगन्ध्यामाता । अस्मादेव निपातनान्मातृशब्दस्य मातजादेशः कब्विकल्पश्च । बहुव्रीहाविवेदम् । नेह । कारीषगन्ध्याया माता करीषगन्ध्यामाता । विस्वसामर्थ्याच्चित्स्वरो बहुव्रीहिस्वरं बाधते ॥

१००५–बहुव्रीहि समासमें बन्धु शब्द उत्तरपद परे रहते ष्यङ्प्रत्ययान्तको संप्रसारण हो, जैसे–'कारीषगन्ध्या बन्धुरस्य' इस विग्रहमें कारीषगन्धीबन्धुः । जिस स्थानमें बहुव्रीहि न होगा उस स्थानमें 'कारीषगन्ध्यायाः बन्धुः' इस विग्रहमें 'कारीषगन्ध्याबन्धुः' ऐसा होगा । सूत्रमें 'बन्धुनि' ऐसा क्लीबनिर्देश शब्दस्वरूपकी अपेक्षासे जानना ।

मातज्, मातृक् और मातृ शब्द परे रहते विकल्प करके

ष्यङ्प्रत्ययान्तको संप्रसारण हो * जैसे–कारीषगन्धीमातः, कारीषगन्ध्यामातः । कारीषगंधीमातृकः, कारीषगन्ध्यामातृकः । कारीपगन्धीमाता, कारीषगन्ध्यामाता । इसी निपातनके कारण मातृ शब्दके स्थानमें मातच् आदेश और कप् प्रत्यय विकल्प करके होताहै । बहुव्रीहि समासमें ही यह सम्प्रसारण होगा अन्यत्र नहीं होगा, इस कारण 'कारीपगन्ध्याया माता' इस विग्रहमें 'कारीषगन्ध्यामाता' यहां नहीं हुआ । मातच् आदेशमें चित्त्वसामर्थ्यके कारण चित्स्वर बहुव्रीहिस्वरको बाध करताहै ॥

१००६ इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु । ६ । ३ । ६५ ॥

इष्टकादीनां तदन्तानां च पूर्वपदानां चितादिषु क्रमादुत्तरपदेषु ह्रस्वः स्यात् । इष्टकचितम् । पक्वेष्टकचितम् । इषीकतूलम् । मुञ्जेषीकतूलम् । मालभारी । उत्पलमालभारी ॥

१००६–चित शब्द, तूल शब्द और भारिन् शब्द परे रहते इष्टका, इषीका और माला शब्दको ह्रस्व हो, जैसे–इष्टकचितम् । पक्वेष्टकचितम् । इषीकतूलम् । मुञ्जेषीकतूलम् । मालभारी । उत्पलमालभारी (मालां बिभर्ति "सुप्यजातौ०" इति णिनिः) ॥

१००७ कारे सत्याऽगदस्य । ६ । ३ । ७० ॥

मुम् स्यात् । सत्यङ्कारः । अगदङ्कारः ॥ अस्तोश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अस्तुङ्कारः ॥ धेनोर्भव्यायाम् ॥ * ॥ धेनुम्भव्या ॥ लोकस्य पृणे ॥ * ॥ लोकम्पृणः । पृण इति मूलविभुजादित्वात्कः ॥ इत्येऽनभ्याशस्य ॥ * ॥ अनभ्याशमित्यः । दूरतः परिहर्तव्य इत्यर्थः ॥ भ्राष्ट्राग्न्योरिन्धे ॥ * ॥ भ्राष्ट्रमिन्धः । अग्निमिन्धः ॥ गिलेऽगिलस्य ॥ * ॥ तिमिङ्गिलः । अगिलस्य किम् । गिलगिलः ॥ गिलगिले च ॥ * ॥ तिमिङ्गिलगिलः ॥ उष्णभद्रयोः करणे ॥ * ॥ उष्णङ्करणम् । भद्रङ्करणम् ॥

१००७–कार शब्द परे रहते सत्य और अगद शब्दको मुम्का आगम हो, जैसे–सत्यंकारः । अगदंकारः ।

कार शब्द परे रहते अस्तु शब्दको मुम् हो * जैसे–अस्तुंकारः ।

भव्या शब्द परे रहते धेनु शब्दको मुम् हो * जैसे–धेनुम्भव्या ।

पृण शब्द परे रहते लोक शब्दको मुम् हो * जैसे–लोकम्पृणः । 'पृणः' इसमें मूलविभुजादित्वके कारण क प्रत्यय है ।

इत्य शब्द परे रहते अनभ्यास शब्दको मुम् हो * जैसे–अनभ्यासमित्यः (दूरसे त्याग करनेके योग्य) ।

इन्ध शब्द परे रहते भ्राष्ट्र और अग्नि शब्दको मुम् हो* जैसे–भ्राष्ट्रमिन्धः । अग्निमिन्धः ।

गिल शब्द परे रहते गिलभिन्न शब्दको मुम् हो * जैसे–तिमिङ्गिलः । जिस स्थानमें गिलभिन्न शब्द नहीं है वहां 'गिलगिलः' ऐसा होगा ।

गिलगिल शब्द परे रहते गिलभिन्न शब्दको मुम् हो* जैसे–तिमिङ्गिलगिलः ।

करण शब्द परे रहते उष्ण और भद्र शब्दको मुम् हो* जैसे–उष्णंकरणम् । भद्रंकरणम् ॥

१००८ रात्रेः कृति विभाषा । ६ । ३ । ७२ ॥

रात्रिञ्चरः । रात्रिचरः । रात्रिमटः । रात्र्यटः । अखिदर्थमिदं सूत्रम् । खिति तु अरुर्द्विषदिति नित्यमेव वक्ष्यते । रात्रिंमन्यः ॥

१००८–कृत्प्रत्ययान्त शब्द परे रहते रात्रि शब्दको विकल्प करके मुम् हो, जैसे–रात्रिञ्चरः, रात्रिचरः । रात्रिमटः, रात्र्यटः । यह सूत्र अखिदर्थ है । खित् परे रहते तो "अरुर्द्विषत्० ६ । ३ । ६७" इस सूत्रसे नित्य ही मुम् कथित होगा, जैसे–रात्रिम्मन्यः ॥

१००९ सहस्य सः संज्ञायाम् । ६ । ३ । ७८ ॥

उत्तरपदे । सपलाशम् । संज्ञायां किम् । सहयुध्वा ॥

१००९–संज्ञा होनेपर सह शब्दके स्थानमें स आदेश हो, जैसे–सपलाशम् । संज्ञा न होनेपर, जैसे–'सहयुध्वा' इस स्थानमें स आदेश नहीं हुआ ॥

१०१० ग्रन्थान्ताऽधिके च । ६ । ३ । ७९ ॥

अनयोरर्थयोः सहस्य सः स्यादुत्तरपदे । समुहूर्तं ज्योतिषमधीते । सद्रोणा खारी ॥

१०१०–ग्रन्थान्त और अधिक अर्थमें उत्तरपद परे रहते सह शब्दके स्थानमें स आदेश हो, जैसे–समुहूर्त्तं ज्योतिषमधीते । सद्रोणा खारी ॥

१०११ द्वितीये चानुपाख्ये । ६ । ३ । ८० ॥

अनुमेये द्वितीये सहस्य सः स्यात् । सराक्षसीका निशा । राक्षसी साक्षादनुपलभ्यमाना निशयानुमीयते ॥

१०११–अनुमेयार्थक द्वितीय पद परे रहते सह शब्दके स्थानमें स आदेश हो, जैसे–सराक्षसीका निशा । इस स्थानमें राक्षसी साक्षात् उपलभ्यमान नहीं होतीहै, परन्तु निशासे अनुमित होतीहै ॥

१०१२ समानस्य च्छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु । ६ । ३ । ८४ ॥

समानस्य सः स्यादुत्तरपदे न तु मूर्द्धादिषु । अनुभ्राता सगर्भ्यः । अनुसखा सयूथ्यः । यो नः सनुत्यः । तत्र भव इत्यर्थे सगर्भसयूथसनुताद्यत् । अमूर्द्धादिषु किम् । समानमूर्द्धा । समानप्रभृतयः । समानोदर्काः । समानस्येति योगो विभज्यते । तेन सपक्षः साधर्म्यं सजातीयमित्यादि सिद्ध-

मिति काशिका। अथ वा सहशब्दः सदृशवचनोऽस्ति। सदृशः सख्या ससखीति यथा। तेनायमस्वपदविग्रहो बहुव्रीहिः। समानः पक्षोऽस्येत्यादि॥

१०१२-वेदमें उत्तरपद परे रहते समान शब्दके स्थानमें स आदेश हो, परन्तु मूर्द्ध प्रभृति और उदर्क शब्द परे रहते नहीं हो, जैसे-अनुभ्राता सगर्भ्यः। अनुसखा सयूथ्यः। यो नः सनुत्यः। इन सब स्थलोंमें 'तत्र भवः' इस अर्थमें सगर्भ, सयूथ और सनुत शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हुआ है।

मूर्धादि शब्द परे रहते समान शब्दके स्थानमें स आदेश न होगा, जैसे-समानमूर्द्धा। समानप्रभृतयः। समानोदर्काः।

इस सूत्रमें 'समानस्य' यह योगविभाग (भिन्न सूत्र) करनेसे 'सपक्षः, साधर्म्यम्, सजातीयम्' इत्यादि पद सिद्ध होतेहैं, यह काशिकाकारने कहाहै।

अथवा सह शब्द सदृशवाचक भी है, जैसे-सदृशः सख्या='ससखि' यहां, इस कारण 'सपक्ष' इत्यादिमें 'समानः पक्षोऽस्य' इत्यादि अस्वपद विग्रहमें बहुव्रीहि जानना॥

१०१३ ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु। ६। ३। ८५॥

एषु द्वादशसूत्तरपदेषु समानस्य सः स्यात्। सज्योतिः। सजनपद इत्यादि॥

१०१३-ज्योतिष्, जनपद, रात्रि, नाभि, नाम, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन और बंधु यह बारह शब्द परे रहते समान शब्दके स्थानमें स आदेश हो, जैसे-सज्योतिः सजनपदः-इत्यादि॥

१०१४ चरणे ब्रह्मचारिणि। ६। ३। ८६॥

ब्रह्मचारिण्युत्तरपदे समानस्य सः स्याच्चरणे समानत्वेन गम्यमाने। चरणः शाखा, ब्रह्म वेदः। तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म तच्चरतीति ब्रह्मचारी। समानः सः सब्रह्मचारी॥

१०१४-ब्रह्मचारिन् शब्द परे रहते समान शब्दके स्थानमें स आदेश हो, समान रूपसे वेदका चरण गम्यमान हो तो। चरण शब्दसे शाखा जानना और ब्रह्म शब्दसे वेद जानना। वेदाध्ययनार्थ व्रतविशेषको भी ब्रह्म कहतेहैं। ब्रह्म चरति, इस वाक्यमें-ब्रह्मचारी, 'समानो ब्रह्मचारी' इस विग्रहमें समान शब्दके स्थानमें स आदेश होनेपर 'सब्रह्मचारी' यह सिद्ध हुआ॥

१०१५ तीर्थे ये। ६। ३। ८७॥

तीर्थे उत्तरपदे यादौ प्रत्यये विवक्षिते समानस्य सः स्यात्। सतीर्थ्याः एकगुरुकः। समानतीर्थेवासीति यत्प्रत्यय॥

१०१५ तीर्थ शब्द परे रहते यकारादि प्रत्यय विवक्षित होनेपर समान शब्दके स्थानमें स हो, जैसे-सतीर्थ्यः, अर्थात् एक गुरुका छात्र। इस स्थानमें समान तीर्थमें वसनेवाला इस अर्थमें यत् प्रत्यय हुआहै॥

१०१६ विभाषोदरे। ६। ३। ८८॥

यादौ प्रत्यये विवक्षिते इत्येव। सोदर्यः। समानोदर्यः॥

१०१६-यादि प्रत्यय विवक्षित होनेपर उदर शब्द परे रहते समान शब्दके स्थानमें विकल्प करके स हो, जैसे-समानोदर्यः, सोदर्यः ("समानोदरे शयित० ४।४।१०८/१६५५" इति यत् प्रत्ययः)॥

१०१७ दृग्दृशवतुषु। ६। ३। ८९॥

सदृक्। सदृशः॥ दृक्षे चेति वक्तव्यम्॥*॥ सदृक्षः। वतुरुत्तरार्थः॥

१०१७-दृक्, दृश शब्द परे रहते समान शब्दके स्थानमें स हो, जैसे-सदृक्। सदृशः।

दृक्ष शब्द परे रहते भी समान शब्दके स्थानमें स हो * जैसे-सदृक्षः।

इस सूत्रमें वतुग्रहण उत्तरार्थ है॥

१०१८ इदंकिमोरीश्की। ६। ३। ९०॥

दृग्दृशवतुषु इदम ईश् किमः की स्यात्। ईदृक्। ईदृशः। कीदृक्। कीदृशः। वतूदाहरणं वक्ष्यते॥ दृक्षे चेति वक्तव्यम्॥*॥ ईदृक्षः। कीदृक्षः। आ सर्वनाम्नः। दृक्षे च। तादृक्। तादृशः। तावान्। तादृक्षः। दीर्घः। मत्वोत्वे। अमूदृशः। अमूदृक्। अमूदृक्षः॥

१०१८-दृक्, दृश और वतु प्रत्यय परे रहते इदम् शब्दके स्थानमें ईश् और किम् शब्दके स्थानमें की हो, जैसे-ईदृक्। ईदृशः। कीदृक्। कीदृशः। वतु प्रत्ययका उदाहरण पश्चात् कहेंगे।

दृक्ष शब्द परे रहते इदम् शब्दके स्थानमें ईश और किम् शब्दके स्थानमें की आदेश हो * जैसे-ईदृक्षः। कीदृक्षः।

दृक्, दृश, वतु और दृक्ष शब्द परे रहते सर्वनामके अकार आदेश होकर, जैसे-तादृक्। तादृशः। तावान्। तादृक्षः। दीर्घ, मत्व और उत्व करक अमूदृक्। अमूदृशः। अमूदृक्षः। इतने पद सिद्ध हुए हैं॥

१०१९ समासेऽङ्गुलेः सङ्गः। ८। ३। ८०॥

अंगुलिशब्दात्सङ्गस्य सस्य मूर्द्धन्यः स्यात्समासे। अंगुलिषंगः। समासे किम्। अंगुलेः संगः॥

१०१९-समासमें अंगुलि शब्दके परे सङ्ग शब्दके सकारके स्थानमें ष हो, जैसे-अंगुलिषङ्गः। समास न होनेपर-'अंगुलेः सङ्गः' ऐसा होगा॥

१०२० भीरोः स्थानम्। ८। ३। ८१॥

भीरुशब्दात् स्थानस्य सस्य मूर्द्धन्यः स्यात्समासे। भीरुष्ठानम्। असमासे तु। भीरोः स्थानम्॥

१०२०-समासमें भीरु शब्दके परे स्थान शब्दके सकारको

षत्व हो, जैसे—भीरुष्ठानम् । समास न होनेपर, जैसे—'भीरोः स्थानम्' इस स्थानमें षत्व नहीं हुआ ॥

१०२१ ज्योतिरायुषः स्तोमः।८।३।८३॥

आभ्यां स्तोमस्य सस्य मूर्द्धन्यः समासे । ज्योतिष्टोमः । आयुष्टोमः । समासे किम् । ज्योतिषः स्तोमः ॥

१०२१—समासमें ज्योतिष् और आयुष् शब्दके परे स्तोम शब्दके सकारको षत्व हो, जैसे—ज्योतिष्टोमः । आयुष्टोमः । समास न होनेपर षत्व नहीं होगा, जैसे—ज्योतिषः स्तोमः । आयुषः स्तोमः ॥

१०२२ सुषामादिषु च । ८ । ३ । ९८॥

सस्य मूर्धन्यः । शोभनं साम यस्य सुषामा। सुषन्धिः ॥

१०२२—सुषामादि शब्दमें सकारको षत्व हो, जैसे—शोभनं साम यस्य=सुषामा । सुषंधिः—इत्यादि ॥

१०२३ एति संज्ञायामगात् ।८।३।९९॥

सस्य मूर्द्धन्यः । हरिषेणः । एति किम् । हरिसक्थम् । संज्ञायां किम् । पृथुसेनः । अगकारात्किम् । विष्वक्सेनः । इणकोरित्येव । सर्वसेनः ॥

१०२३—संज्ञामें एकार परे रहते गकारसे भिन्नके परे स्थित सकारको षत्व हो, जैसे—हरिषेणः ।

एकार परे न होनेसे, यथा—हरिसक्थम् ।

संज्ञा न होनेपर, पृथुसेनः ।

गकारसे परे होनेसे यथा—विष्वक्सेनः ।

इण्,कवर्गसे परे ही सकारको षत्व होताहै इससे 'सर्वसेनः' यहां षत्व न हुआ ॥

१०२४ नक्षत्राद्वा । ८ । ३ । १०० ॥

एति सस्य संज्ञायामगकारान्मूर्द्धन्यो वा । रोहिणीषेणः । रोहिणीसेनः । अगकारात्किम् । शतभिषक्सेनः । आकृतिगणोऽयम् ॥

१०२४—संज्ञामें नक्षत्रवाचक शब्दके उत्तर गकारके परे न हो ऐसे सकारको विकल्प करके षत्व हो एकार परे रहते, जैसे—रोहिणीषेणः, रोहिणीसेनः । गकारके परे होनेपर, जैसे—शतभिषक्सेनः, षत्व न हुआ । यह (सुषामादि) आकृतिगण है ॥

१०२५ अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारक-रागच्छेषु । ६ । ३ । ९९ ॥

अन्यशब्दस्य दुगागमः स्यादाशीरादिषु परेषु । अन्यदाशीः । अन्यदाशा । अन्यदास्था । अन्यदास्थितः । अन्यदुत्सुकः । अन्यदूतिः । अन्यद्रागः । अन्यदीयः । अषष्ठीत्यादि किम् । अन्यस्याऽन्येन वाशीः।अन्याशीः॥ कारके छे च नायं निषेधः । अन्यस्य कारकः अन्यत्कारकः । अन्यस्यायमन्यदीयः । गहादेराकृतिगणत्वाच्छः ॥

१०२५—आशिष्, आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, ऊति, कारक और राग शब्द और छ प्रत्यय परे रहते षष्ठ्यन्त और तृतीयान्तसे भिन्न जो अन्य शब्द उसको दुगागम हो, जैसे—अन्यदाशीः । अन्यदाशा । अन्यदास्था । अन्यदास्थितः । अन्यदुत्सुकः । अन्यदूतिः । अन्यत्कारकः । अन्यद्रागः । अन्यदीयः ।

षष्ठ्यन्त और तृतीयान्तसे भिन्न कहनेसे 'अन्यस्यान्येन वाशीः' इस वाक्यमें 'अन्याशीः' ऐसा हुआहै ।

कारक और छ प्रत्यय परे रहते षष्ठ्यन्त और तृतीयान्त अन्य पदको दुगागमका निषेध नहीं होताहै । 'अन्यस्य कारकः' इस विग्रहमें अन्यत्कारकः । अन्यस्यायम्=अन्यदीयः । गहादिके आकृतिगणत्वके कारण छ प्रत्यय करके 'अन्यदीयः' पद सिद्ध हुआहै ॥

१०२६ अर्थे विभाषा । ६ । ३ । १०० ॥

अन्यदर्थः । अन्यार्थः ॥

१०२६—अर्थ शब्द परे रहते अन्य शब्दके उत्तर विकल्प करके दुगागम हो, जैसे—अन्यदर्थः, अन्यार्थः (अन्य—द्—अर्थः=अन्यदर्थः) ॥

१०२७ कोः कत्तत्पुरुषेऽचि।६।३।१०१॥

अजादावुत्तरपदे । कुत्सितोऽश्वः कदश्वः । कदन्नम् । तत्पुरुषे किम् । कूष्ट्रो राजा ॥ त्रौ च ॥ * ॥ कुत्सितास्त्रयः कत्त्रयः ॥

१०२७—तत्पुरुष समासमें अजादि उत्तरपद परे रहते कु शब्दके स्थानमें कत् आदेश हो, जैसे—कुत्सितोऽश्वः=कदश्वः । कदन्नम् ।

तत्पुरुष समास न होनेपर, जैसे—कूष्ट्रो राजा ।

(त्रौ च *) त्रि शब्द परे रहते कु शब्दके स्थानमें कत् आदेश हो, जैसे—कुत्सितास्त्रयः=कत्त्रयः ॥

१०२८ रथवदयोश्च । ६ । ३ । १०२॥

कद्रथः । कद्वदः ॥

१०२८—रथ और वद शब्द परे रहते कु शब्दके स्थानमें कत् आदेश हो, जैसे—कद्रथः । कद्वदः ॥

१०२९ तृणे च जातौ । ६ । ३।१०३॥

कत्तृणम् ॥

१०२९—जाति होनेपर तृण शब्द परे रहते कु शब्दके स्थानमें कत् आदेश हो, जैसे—कत्तृणम् ॥

१०३० का पथ्यक्षयोः ।६।३।१०४॥

कापथम् । काक्षः । अक्षशब्देन तत्पुरुषः । अक्षशब्देन बहुव्रीहिर्वा ॥

---

१ "एति संज्ञायामगात्" और "नक्षत्राद्वा" यह दोनों गणसूत्रोंका पाणिनीय सूत्रपाठमें किसीने प्रक्षेप कियाहै ॥

१०३०–पथिन् और अक्षि शब्द परे रहते कु शब्दके स्थानमें का आदेश हो, जैसे–कापथम् । काक्षः । इस स्थानमें अक्ष शब्दके साथ तत्पुरुष समास अथवा अक्षि शब्दके साथ बहुव्रीहि समास जानना ॥

१०३१ ईषदर्थे । ६ । ३ । १०५ ॥

ईषज्जलं काजलम् । अजादावपि परत्वात्कादेशः । काम्लः ॥

१०३१–ईषत् अर्थ होनेपर कु शब्दके स्थानमें का आदेश हो, जैसे–'ईषज्जलम्' इस वाक्यमें–काजलम् । अजादि शब्द परे रहते भी परत्वके कारण कु शब्दके स्थानमें का आदेश होगा, जैसे–काम्लः ॥

१०३२ विभाषा पुरुषे । ६ । ३ । १०६ ॥

कापुरुषः । कुपुरुषः । अप्राप्तविभाषेयम् । ईषदर्थे हि पूर्वविप्रतिषेधान्नित्यमेव । ईषत्पुरुषः कापुरुषः ॥

१०३२–पुरुष शब्द परे रहते कु शब्दके स्थानमें विकल्प करके का आदेश हो, जैसे–कापुरुषः, कुपुरुषः । यह अप्राप्तविभाषा है । ईषदर्थमें तो पूर्वविप्रतिषेधके कारण नित्य ही का आदेश होगा, जैसे–ईषत्पुरुषः=कापुरुषः ॥

१०३३ कवं चोष्णे । ६ । ३ । १०७ ॥

उष्णशब्दे उत्तरपदे कवं का च वा स्यात् । कवोष्णम् । कोष्णम् । कदुष्णम् ॥

१०३३–उष्ण शब्द परे रहते किम् शब्दके स्थानमें विकल्प करके कव और का आदेश हो, जैसे–कवोष्णम्, कोष्णम्, कदुष्णम् ॥

१०३४ पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् । ६ । ३ । १०९ ॥

पृषोदरप्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि स्युः । पृषद् उदरं पृषोदरम् । तलोपः । वारिवाहको बलाहकः । पूर्वपदस्य बः उत्तरपदादेश्च लत्वम् ॥

भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात् ।
गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात्पृषोदरम् ॥ १ ॥

दिक्शब्देभ्यस्तीरस्य तारभावो वा ॥ * ॥ दक्षिणतारम् । दक्षिणतीरम् । उत्तरतारम् । उत्तरतीरम् ॥ दुरो दाशनाशदभध्येषूत्वमुत्तरपदादेः ष्टुत्वं च ॥ * ॥ दुःखेन दाश्यते दूडाशः । दुःखेन नाश्यते दूणाशः । दुःखेन दभ्यते दूडभः । खल् त्रिष्वपि । दम्भेर्नलोपो निपात्यते । दुःखेन ध्यायतीति दूढ्यः । आतश्चेति कः । ब्रुवन्तोऽस्यां सीदन्तीति बृसी । ब्रुवच्छब्दस्य बृ आदेशः । सदेरधिकरणे डट् । आकृतिगणोऽयम् ॥

१०३४–पृषोदरादि शब्द शिष्टगणकर्तृक जिस प्रकार उच्चारित हुएहैं उस प्रकार ही साधु हों, जैसे–पृषत्+उदरम्=इस विग्रहमें तकारका लोप करके 'पृषोदरम्' यह पद सिद्ध हुआ । 'वारिवाहकः' इसमें वारि इस पूर्वपदके स्थानमें ब और उत्तरपदके आदिको ल आदेश होकर'बलाहकः'पद सिद्ध हुआ।

वर्णागमके कारण अर्थात् हन् धातुके उत्तर पचादित्वके कारण अच् प्रत्यय और सगागम करके 'हंसः' पद सिद्ध हुआ। हिंसि धातुके उत्तर पचादित्वके कारण अच् प्रत्यय करके हकार और सकारके स्थानमें विपर्ययके कारण 'सिंहः' पद सिद्ध हुआ। वर्णकी विकृतिके कारण अर्थात् आत्मन् शब्दके आकारके स्थानमें उकार करके 'गूढोत्मा' पद सिद्ध हुआ। वर्णके विनाश अर्थात् 'पृषत्' इस पदके तकारके लोपके कारण 'पृषोदरम्' यह पद सिद्ध हुआ ।

दिग्वाचक शब्दके उत्तर तीरशब्दके स्थानमें विकल्प करके तार आदेश हो * जैसे–दक्षिणतारम्, दक्षिणतीरम् । उत्तरतारम्, उत्तरतीरम् ।

(दुरो दाशनाश० *) दाश, नाश, दभ और ध्य शब्द परे रहते दुर् शब्दको उत्व हो और उत्तर पदके आदि वर्णको ष्टुत्व हो, जैसे–'दुःखेन दाश्यते' इस विग्रहमें–दूडाशः । 'दुःखेन नाश्यते' इस वाक्यमें–दूणाशः । दुःखेन दभ्यते= दूडभः । दाश, नाश और दभ इन तीन शब्दोंके उत्तर खल् प्रत्यय हुआहै। दंभ् धातुके नकारका लोप निपातनसे सिद्ध हुआहै । 'दुःखेन ध्यायति'इस वाक्यमें दूढ्यः, यहां''आतश्च० २८९८'' इस सूत्रसे क प्रत्यय हुआहै ।

'ब्रुवन्तोऽस्यां सीदन्ति' इस वाक्यमें ब्रुवत् शब्दके स्थानमें बृ आदेश और सद् धातुके उत्तर अधिकरणमें डट् प्रत्यय करके 'बृसी' पद सिद्ध हुआहै । बृसी शब्दसे व्रतियोंका और मुनियोंका कुशादि निर्मित आसन जानना । यह (पृषोदरादि) आकृतिगण है ॥

१०३५ संहितायाम् । ६ । ३ । ११४ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

१०३५–यह संहिताधिकार सूत्र है ॥

१०३६ कर्णे लक्षणस्याऽविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य । ६ । ३ । ११५ ॥

कर्णशब्दे परे लक्षणवाचकस्य दीर्घः । द्विगुणाकर्णः । लक्षणस्य किम् । शोभनकर्णः । अविष्टादीनां किम् । विष्टकर्णः । अष्टकर्णः । पञ्चकर्णः । मणिकर्णः । भिन्नकर्णः । छिन्नकर्णः । छिद्रकर्णः । स्रुवकर्णः । स्वस्तिककर्णः ॥

१०३६–संहिताविषयमें कर्ण शब्द परे रहते लक्षणवाचक शब्दको दीर्घ हो, परन्तु विष्ट, अष्टन्, पञ्चन्, मणि, भिन्न, छिन्न, छिद्र, स्रुव और स्वस्तिक शब्दको दीर्घ न हो, जैसे–द्विगुणाकर्णः ॥

लक्षणवाचक न होनेपर दीर्घ नहीं होगा, जैसे-शोभनकर्णः । विष्टाद शब्दको भी दीर्घ नहीं होगा, जैसे-विष्टकर्णः । अष्टकर्णः । पञ्चकर्णः । मणिकर्णः । भिन्नकर्णः । छिन्नकर्णः । छिद्रकर्णः । स्रुवकर्णः । स्वस्तिककर्णः ॥

१०३७ नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ । ६ । ३ । ११६ ॥

क्विबन्तेषु परेषु पूर्वपदस्य दीर्घः । उपानत् । नीवृत् । प्रावृट् । मर्मावित् । नीरुक् । अभीरुक् । ऋतीषट् । परीतत् । क्वाविति किम् । परिणहनम् । विभाषा पुरुष इत्यतो मण्डूकप्लुत्या विभाषानुवर्तते सा च व्यवस्थिता । तेन गतिकारकयोरेव । नेह । पटुरुक् । तिग्मरुक् ॥

१०३७-क्विप्प्रत्ययान्त नह्, वृत्, वृष्, व्यध्, रुच्, सह् और तन् धातु परे रहते पूर्वपदको दीर्घ हो, जैसे-उप-नह्-क्विप्=उपानत् । निवर्तते इति=नीवृत् । प्रवर्षति इति=प्रावृट् । मर्माणि विध्यति इति=मर्मावित् । नीरुक् । अभीरुक् । ऋतिं सहते=ऋतीषट् । परितनोति=परीतत् ।

क्विप्रत्ययान्त न होनेपर दीर्घ नहीं होगा, जैसे-परिणहनम् । "विभाषा पुरुषे १०३२" इस सूत्रसे मंडूकप्लुतिद्वारा विभाषाकी अनुवृत्ति होतीहै, वह व्यवस्थित विभाषा है, इस कारण गति और कारक इन दोनोंको ही दीर्घ होगा, इससे पटुरुक् । तिग्मरुक्-इत्यादि स्थलमें दीर्घ नहीं हुआ ॥

१०३८ वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलुकादीनाम् । ६ । ३ । ११७ ॥

कोटरादीनां वने परे किंशुलुकादीनां गिरौ परे दीर्घः स्यात्संज्ञायाम् ॥

१०३८-संज्ञा होनेपर वन शब्द परे रहते कोटरादि शब्दोंको और गिरि शब्द परे रहते किंशुलुकादि शब्दोंको दीर्घ हो ॥

१०३९ वनं पुरगामिश्रकासिध्रकासारिकाकोटराग्रेभ्यः । ८ । ४ । ४ ॥

वनशब्दस्योत्तरपदस्य एभ्य एव णत्वं नान्येभ्यः । इह कोटरान्ताः पञ्च दीर्घविधौ कोटरादयो बाध्याः । तेषां कृतदीर्घाणां णत्वविधौ निर्देशो नियमार्थः । अग्रेशब्दस्य तु विध्यर्थः । पुरगावणम् । मिश्रकावणम् । सिध्रकावणम् । सारिकावणम् । कोटरावणम् । एभ्य एवेति किम् । असिपत्त्रवनम् । वनस्याग्रे अग्रेवणम् । राजदन्तादिषु निपातनात्सप्तम्या अलुक् । प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमा । किंशुलुकागिरिः ॥

१०३९-पुरगा, मिश्रका, सिध्रका, सारिका, कोटरा और अग्रे शब्दके परे ही उत्तरपदभूत वन शब्दके नकारको णत्व हो, अन्यके उत्तर होनेपर णत्व न हो । इस सूत्रमें कोटरापर्यन्त पांच शब्द दीर्घ विधि(१०३८) में कोटरादि जानने । कृतदीर्घ इन शब्दोंका णत्वविधिमें निर्देश नियमके निमित्त है, और अग्रे शब्दका विध्यर्थ है, जैसे-पुरगावणम् । मिश्रकावणम् । सिध्रकावणम् । सारिकावणम् । कोटरावणम् । एतद्भिन्न शब्दोंके उत्तर वन शब्दके नकारको णत्व न हो, जैसे-असिपत्त्रवनम् । वनस्याग्रे=अग्रेवणम्, यहां राजदन्तादि गणके मध्यमें निपातनसे सप्तमीका अलुक् हुआहै और प्रातिपदिकार्थ मात्रमें प्रथमा हुई है । किंशुलुकागिरिः । आदि शब्दसे 'अञ्जनागिरिः' इत्यादि पद सिद्ध हुएहैं । किंशुलुकादि न होनेपर, जैसे-कृष्णगिरिः । रामगिरिः ॥

१०४० वले । ६ । ३ । ११८ ॥

वलप्रत्यये परे दीर्घः स्यात्संज्ञायाम् । कृषीवलः ॥

१०४०-संज्ञामें वल प्रत्यय परे रहते प्रातिपदिकको दीर्घ हो, जैसे-कृषीवलः ॥

१०४१ मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् । ६ । ३ । ११९ ॥

अमरावती । अनजिरादीनां किम् । अजिरवती । बह्वचः किम् । व्रीहिमती । संज्ञायामित्येव । नेह । वलयवती ॥

१०४१-मतुप् प्रत्यय परे होनेपर अजिरादि शब्दोंसे भिन्न अनेकाच् प्रातिपदिकको दीर्घ हो, यथा-अमरावती । अजिरादि शब्दोंको दीर्घ न होनेसे यथा-अजिरवती । बहुत अच् न होनेपर, यथा-व्रीहिमती । संज्ञामें ही दीर्घ होताहै, इससे वलयवती यहां दीर्घ न हुआ ॥

१०४२ शरादीनां च । ६ । ३ । १२० ॥

शरावती ॥

१०४२-मतुप् प्रत्यय परे रहते शर आदि प्रातिपदिकको दीर्घ हो, जैसे-शरावती ॥

१०४३ इको वहेऽपीलोः । ६ । ३ । १२१ ॥

इगन्तस्य दीर्घः स्याद्वहे । ऋषीवहम् । कपीवहम् । इकः किम् । पिण्डवहम् । अपीलोः किम् । पीलुवहम् ॥ अपील्वादीनामिति वाच्यम् ॥ * ॥ दारुवहम् ॥

१०४३-वह शब्द परे रहते पीलु शब्दसे भिन्न अन्य इगन्त शब्दको दीर्घ हो, जैसे-ऋषीवहम् । कपीवहम् । इगन्त न होनेपर दीर्घ नहीं होगा, जैसे-पिण्डवहम् । पीलु शब्दको दीर्घ नहीं होगा, जैसे-पीलुवहम् ।

पीलु आदि कितने एक शब्दोंको दीर्घ न हो ऐसा कहना चाहिये * जैसे-दारुवहम् ॥

१०४४ उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् । ६ । ३ । १२२ ॥

उपसर्गस्य बहुलं दीर्घः स्याद्घञन्ते परे न

तु मनुष्ये । परीपाकः । परिपाकः । अमनुष्ये किम् । निषादः ॥

१०४४—घञन्त शब्द परे रहते उपसर्गको बहुल करके दीर्घ हो मनुष्य वाच्य रहते नहीं हो, जैसे—परीपाकः, परिपाकः । मनुष्यवाचक होनेपर दीर्घ नहीं होता, जैसे—निषादः ॥

१०४५ इकः काशे । ६ । ३ । १२३ ॥

इगन्तस्योपसर्गस्य दीर्घः स्यात्काशे । वीकाशः । नीकाशः । इकः किम् । प्रकाशः ॥

१०४५—काश शब्द परे रहते इगन्त उपसर्गको दीर्घ हो, जैसे—वीकाशः । नीकाशः । इगन्त न होनेपर दीर्घ न होगा, जैसे—प्रकाशः ॥

१०४६ अष्टनः संज्ञायाम् ।६।३।१२५॥

उत्तरपदे दीर्घः । अष्टापदम् । संज्ञायां किम् । अष्टपुत्रः ॥

१०४६—संज्ञामें उत्तरपद परे रहते अष्टन् शब्दको दीर्घ हो, जैसे—अष्टापदम् । संज्ञा न होनेपर दीर्घ न होगा, जैसे—अष्टपुत्रः ॥

१०४७ चितेः कपि । ६ । ३ । १२७ ॥

एकचितीकः ॥

१०४७—कप् प्रत्यय परे रहते चिति शब्दके इकारको दीर्घ हो, जैसे—एकचितीकः ॥

१०४८ नरे संज्ञायाम् ।६ ।३ ।१२९ ॥

विश्वानरः ॥

१०४८—नर शब्द परे रहते संज्ञामें पूर्वपदको दीर्घ हो, जैसे—विश्वानरः ॥

१०४९ मित्रे चर्षौ । ६ । ३ । १३० ॥

विश्वामित्रः । ऋषौ किम् । विश्वमित्रो माणवकः ॥ शुनो दन्तदंष्ट्राकर्णकुन्दवराहपुच्छपदेषु दीर्घो वाच्यः ॥ * ॥ श्वादन्तः इत्यादि ॥

१०४९—ऋषिवाच्य रहते, मित्र शब्द परे रहते पूर्वपदको दीर्घ हो, जैसे—विश्वामित्रः । ऋषि वाच्य न होनेपर दीर्घ न होगा, जैसे—विश्वमित्रो माणवकः ।

दन्त, दंष्ट्रा, कर्ण, कुन्द, वराह, पुच्छ और पद शब्द परे रहते श्वन् शब्दको दीर्घ हो * जैसे—श्वादन्तः—इत्यादि ॥

१०५० प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि ।८।४।५॥

एभ्यो वनस्य णत्वं वा स्यात् । प्रवणम् । कार्ष्यवणम् । इह षात्परत्वात् णत्वम् ॥

१०५०—संज्ञा न होनेपर भी प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर और पीयूक्षा शब्दके परे स्थित वन शब्दके नकारको णत्व हो, जैसे—प्रवणम् । कार्ष्यवणम्, इस स्थानमें षकारके परे होनेके कारण णत्व हुआ है ॥

१०५१ विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः । ८ । ४ । ६ ॥

एभ्यो वनस्य णत्वं वा स्यात् । दूर्वावणम् । दूर्वावनम् । शिरीषवणम् । शिरीषवनम् । द्व्यच्त्र्यज्भ्यामेव ॥ * ॥ नेह । देवदारुवनम् ॥ इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ इरिकावनम् । मिरिकावनम् ॥

१०५१—ओषधि और वनस्पतिवाचक शब्दके उत्तर वन शब्दके नकारको विकल्प करके णत्व हो, जैसे—दूर्वावणम्, दूर्वावनम् । शिरीषवणम्, शिरीषवनम् ।

दो और तीन अचोंसे युक्त शब्दके उत्तर ही वन शब्दके नकारको णत्व हो * इससे तदतिरिक्त अर्थात् चार आदि अचोंसे युक्त शब्दके उत्तर होनेपर णत्व नहीं होगा, जैसे—देवदारुवनम् ।

इरिकादि शब्दोंके उत्तर वन शब्दके नकारको णत्व नहीं हो * जैसे—इरिकावनम् । मिरिकावनम् ॥

१०५२ वाहनमाहितात् ।८ । ४ । ८॥

आरोप्य यदुह्यते तद्वाचिस्थान्निमित्तात्परस्य वाहननकारस्य णत्वं स्यात् । इक्षुवाहणम् । आहितात्किम् । इन्द्रवाहनम् । इन्द्रस्वामिकं वाहनमित्यर्थः । वहतेर्ल्युटि वृद्धिरिहैव सूत्रे निपातनात् ॥

१०५२—जो उठाकर लेजायाजाय तद्वाचिस्थ निमित्तके परे वाहन शब्दके नकारको णत्व हो, जैसे—इक्षुवाहणम् । आहित न होनेपर णत्व न होगा, जैसे—इन्द्रवाहनम्, अर्थात् इन्द्रस्वामिक वाहन । 'वाहनम्' इसमें वह धातुके उत्तर ल्युट् प्रत्यय होनेपर इसी सूत्रमें निपातनसे वृद्धि हुईहै ॥

१०५३ पानं देशे । ८ । ४ । ९ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य पानस्य नस्य णत्वं स्याद्देशे गम्ये । क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणा उशीनराः । सुरापाणाः प्राच्याः । पीयते इति पानम् । कर्मणि ल्युट् ॥

१०५३—देश गम्य होनेपर पूर्वपदस्थ निमित्तके परे पान शब्दके नकारको णत्व हो, जैसे—क्षीरं पानं येषां ते=क्षीरपाणाः उशीनराः । सुरापाणाः प्राच्याः (पीयते इति पानम् । पा+कर्मणि ल्युट्) ॥

---

१ मनुष्यादि वाच्य रहते दीर्घ नहीं हो ऐसा कहना चाहिये * जैसे—प्रसेवः । प्रसारः । प्रहारः । कृत्रिम होनेपर साद और कार शब्द परे रहते उपसर्गको दीर्घ हो * यथा एषोऽस्य प्रासादः । एषोऽस्य प्राकारः । इस वार्तिमें कृत्रिम शब्द किमर्थ है, तो—एषोऽस्य प्रसादः, प्रकारः । प्रतिवेशादि शब्दोंको विकल्प करके दीर्घ हो * जैसे—प्रतीवेशः, प्रतिवेशः । प्रतीकारः, प्रतिकारः । यह सब बहुलग्रहणका ही फल है ॥

१०५४ वा भावकरणयोः ।८।४।१०॥

पानस्येत्येव । क्षीरपाणम् । क्षीरपानम् ॥ गिरिनद्यादीनां वा ॥ * ॥ गिरिणदी । गिरिनदी । चक्राणितम्बा । चक्रनितम्बा ॥

१०५४–पूर्वपदस्थ निमित्तके परे भाव और करणमें विहितल्युट्प्रत्ययान्त पान शब्दके नकारको विकल्प करके णत्व हो, जैसे–क्षीरपाणम्, क्षीरपानम् ।

गिरिनद्यादि शब्दोंको भी विकल्प करके णत्व हो* जैसे–गिरिणदी, गिरिनदी । चक्राणितम्बा, चक्रनितम्बा ॥

१०५५ प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च।८।४।११॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य एषु स्थितस्य नस्य णो वा स्यात् । प्रातिपदिकान्ते । माषवापिणौ । नुमि । व्रीहिवापाणि । विभक्तौ । माषवापेण । पक्षे माषवापिनावित्यादि । उत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तदन्तस्यैव णत्वम् । नेह । गर्गाणां भगिनी गर्गभगिनी । अत एव नुम्ग्रहणं कृतम् । अङ्गस्य नुम्विधानात्तद्भक्तो हि नुम् न तूत्तरपदस्य । किंच । प्रहिण्वन्नित्यादौ हिवेर्नुमो णत्वार्थमपि नुम्ग्रहणम् । प्रेन्वनमित्यादौ तु क्षुभ्नादित्वान्न ॥ युवादेर्न ॥ * ॥ रम्ययूना । परिपक्वानि । एकाजुत्तरपदे णः । नित्यमित्युक्तम् । वृत्रहणौ । हरिं मानयतीति हरिमाणी । नुमि । क्षीरपाणि । विभक्तौ क्षीरपेण । रम्यविणा ॥

१०५५–पूर्वपदस्थ निमित्तके परे प्रातिपदिकान्त, नुम् और विभक्तिमें स्थित नकारको विकल्प करके णत्व हो । प्रातिपदिकान्तमें जैसे–माषवापिणौ । नुम्में जैसे–व्रीहिवापाणि । विभक्तिमें जैसे–माषवापेण । विकल्प पक्षमें जैसे–माषवापिनौ, इत्यादि । उत्तरपद जो प्रातिपदिक तदन्त नकारको ही णत्व होताहै, इस कारण ' गर्गाणाम् भगिनी=गर्गभगिनी' इस स्थलमें णत्व नहीं हुआ, इस निमित्त ही नुम्का ग्रहण कियाहै । अङ्गको नुम्विधानके कारण अङ्गावयव नुम् होताहै, परन्तु उत्तरपदसंबन्धी. नुम् नहीं होताहै, अथवा प्रहिण्वन्–इत्यादि स्थलमें हिविधातुसंबन्धी जो नुम् उसको भी णत्वविधानके निमित्त इस स्थानमें नुम्ग्रहण है । प्रेन्वनम्–इत्यादिमें तो क्षुभ्नादित्वके कारण णत्व नहीं होताहै।

युवादिको, अर्थात् युवन, पक्व इत्यादिको णत्व नहीं हो* जैसे–रम्ययूना । परिपक्वानि ।

"एकाजुत्तरपदे णः १०१" इस सूत्रसे नित्य णत्व उक्त हुआ है, जैसे–वृत्रहणौ । ' हरिं मानयति' इस वाक्यमें हरिमाणी । नुम्में जैसे–क्षीरपाणि । विभक्तिमें जैसे–क्षीरपेण । रम्यविणा ॥

१०५६ कुमति च।८।४।१३॥

कवर्गवत्युत्तरपदे प्राग्वत् । हरिकामिणौ । हरिकामाणि । हरिकामेण ॥

१०५६–कवर्गयुक्त उत्तरपद परे रहते पूर्वके समान हो, अर्थात् पूर्वपदस्थ निमित्तके परे प्रातिपदिकान्त, नुम् और विभक्तिस्थ नकारको णत्व हो, जैसे–हरिकामिणौ । हरिकामाणि । हरिकामेण ॥

१०५७ पदव्यवायेऽपि ।८।४।३८॥

पदेन व्यवधानेऽपि णत्वं न स्यात् । माषकुम्भवापेन । चतुरङ्गयोगेन ॥ अतद्धित इति वाच्यम् ॥ * ॥ आर्द्रगोमयेण । शुष्कगोमयेण ॥

१०५७–मध्यमें किसी पदसे व्यवधान रहते भी पूर्वपदस्थ निमित्तसे परे प्रातिपदिकान्त, नुम् और विभक्तिमें स्थित नकारको णत्व न हो, जैसे–माषकुंभवापेन । चतुरङ्गयोगेन ।

तद्धितप्रत्ययान्त पदसे व्यवधान रहते निषेध नहीं हो * जैसे–आर्द्रगोमयेण । शुष्कगोमयेण ॥

१०५८ कुस्तुम्बुरूणि जातिः ६।१।१४३।

अत्र सुण्निपात्यते । कुस्तुम्बुरुर्धान्याकम् । क्लीबत्वमतन्त्रम् । जातिः किम् । कुतुम्बुरूणि । कुत्सितानि तिन्दुकीफलानीत्यर्थः ॥

१०५८–जातिवाचक होनेपर कुस्तुम्बुरु शब्दमें निपातनसे सुट् हो, जैसे–कुस्तुम्बुरुः धान्याकम् । सूत्रमें क्लीबनिर्देश अविवक्षित है । जातिवाचक न होनेपर सुट् नहीं होगा, जैसे–कुतुम्बुरूणि, अर्थात् कुत्सित तौंबीके फल ॥

१०५९ अपरस्पराः क्रियासातत्ये । ६।१।१४४॥

सुण्निपात्यते । अपरस्पराः सार्था गच्छन्ति । सततमविच्छेदेन गच्छन्तीत्यर्थः । क्रियेति किम् । अपरपरा गच्छन्ति । अपरे च परे च सकृदेव गच्छन्तीत्यर्थः ॥

१०५९–क्रियासातत्य होनेपर ' अपरस्पराः ' इस स्थलमें निपातनसे सुट्का आगम हो, जैसे–अपरस्पराः सार्था गच्छन्ति, अर्थात् निरंतर अविच्छेदसे गमन करतेहैं । क्रियाकी निरंतरता न होनेपर सुट् न होगा, जैसे–अपरपरा गच्छन्ति । (अपरे च, परे च सकृत् एव गच्छन्ति)॥

१०६० गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु ।६।१।१४५॥

सुट् सस्य षत्वं च निपात्यते । गावः पद्यन्तेऽस्मिन्देशे स गोभिः सेवितो गोष्पदः । असेविते । अगोष्पदान्यरण्यानि । प्रमाणे । गोष्पदमात्रं क्षेत्रम् । सेवितेत्यादि किम् । गोः पदं गोपदम् ॥

१०६०–सेवित, असेवित और प्रमाण अर्थ होनेपर गोष्पद शब्दमें निपातनसे सुट् और सुट्के सकारको षत्व हो । सेवित अर्थमें जैसे गावः पद्यन्तेऽस्मिन् देशे सः–गोभिः सेवितः=गोष्पदः । असेवित अर्थमें जैसे–अगोष्पदान्यरण्यानि । प्रमा-

ण अर्थमें जैसे–गोष्पदमात्रं क्षेत्रम् । सेवितादि अर्थ न होनेपर सुट् और षत्व नहीं होंगे, जैसे–गोः पदम्=गोपदम् ॥

१०६१ आस्पदं प्रतिष्ठायाम्।६।१।१४६॥

आत्मयापनाय स्थाने सुट् निपात्यते । आस्पदम् । प्रति किम् । आपदापदम् ॥

१०६१–अपने शरीररक्षाके निमित्त जो स्थान सो वाच्य रहते 'आस्पदम्' इसमें निपातनसे सुट् हो, जैसे–आस्पदम् । प्रतिष्ठा अर्थ न होनेपर 'आपदापदम्' ऐसा होगा ॥

१०६२ आश्चर्यमनित्ये ।६।१।१४७॥

अद्भुते सुट् । आश्चर्यं यदि स भुञ्जीत । अनित्ये किम् । आचर्यं कर्म शोभनम् ॥

१०६२–अद्भुत अर्थ होनेपर 'आश्चर्यम्' इसमें निपातनसे सुट् हो, जैसे–आश्चर्यं यदि स भुञ्जीत ("चरेराङि चागुरौ" इति यत्)। अद्भुत अर्थ न होनेपर सुट् नहीं होगा, यथा–आचर्यम्, अर्थात् शोभन कर्म ॥

१०६३ वर्चस्केऽवस्करः ।६।१।१४८॥

कुत्सितं वर्चः वर्चस्कमन्नमलं तस्मिन् सुट् । अवकीर्यत इति अवस्करः । वर्चस्के किम् । अवकरः ॥

१०६३–कुत्सित वर्चस्को वर्चस्क, अर्थात् अन्नमल (विष्ठा) कहते हैं, वर्चस्क अर्थ होनेपर अवस्कर शब्दमें निपातनसे सुट्का आगम हो, जैसे='अवकीर्यते' इस वाक्यमें अव+स् (सुट्)+कॄ (कर्ममें)+अप्=अवस्करः, यह पद सिद्ध हुआहै । अवस्कर शब्दसे विष्ठा जानना । वर्चस्क अर्थ न होनेपर सुट् नहीं होगा, जैसे–अवकरः, अर्थात् जञ्जाल ॥

१०६४ अपस्करो रथाङ्गम्।६।१।१४९॥

अपकरोऽन्यः ॥

१०६४–रथाङ्ग अर्थ होनेपर अपस्कर शब्दमें निपातनसे सुट् हो, जैसे–अपस्करः । अन्य अर्थमें सुट् न होगा, जैसे–अपकरः ॥

१०६५ विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा । ६ । १ । १५० ॥

पक्षे विकिरः । वावचनेनैव सुड्विकल्पे सिद्धे विकिरग्रहणं तस्यापि शकुनेरन्यत्र प्रयोगो मा भूदिति वृत्तिस्तन्न । भाष्यविरोधात् ॥

१०६५–शकुनि अर्थ होनेपर विष्किर शब्दमें निपातनसे विकल्प करके सुट् हो । विष्किरः । पक्षमें विकिरः । सूत्रस्थ वा शब्दसे ही सुट्का विकल्प सिद्ध है फिर विकिर शब्दका ग्रहण करनेसे विकिर शब्दका भी शकुनिसे भिन्न अर्थमें प्रयोग नहीं होगा, यह वृत्तिकारका अभिप्राय है, परन्तु यह भाष्यविरुद्धताके कारण युक्त नहीं है ॥

१०६६ प्रतिष्कशश्च कशेः।६।१।१५२॥

कश गतिशासनयोरित्यस्य प्रतिपूर्वस्य पचाद्यचि सुट् निपात्यते षत्वं च । सहायः पुरोयायी वा प्रतिष्कश इत्युच्यते । कशेः किम् । प्रतिगतः कशां प्रतिकशोऽश्वः । यद्यपि कशेरेव कशा तथापि कशेरिति धातोर्ग्रहणमुपसर्गस्य प्रतेर्ग्रहणार्थम् । तेन धात्वन्तरोपसर्गान्न ॥

१०६६–कश धातुसे गति और शासन जानना । प्रतिपूर्वक कश धातुके उत्तर पचादित्वके कारण अच् प्रत्यय करनेपर निपातनसे सुट्का आगम और सुट्के सकारको षत्व हो, जैसे–प्रतिष्कशः । सहाय अथवा अग्रवर्ती लोकको प्रतिष्कश कहते हैं । सूत्रमें 'कशेः' यह धातुनिर्देश क्यों किया ? तो प्रतिगतः कशाम्=प्रतिकशः, अर्थात् अश्व, यहां सुट् और षत्व न हों, यद्यपि 'कशा' यह कश् धातुसे ही बनाहै, तथापि 'कशेः'यह धातुग्रहण उपसर्ग प्रतिके ग्रहणके निमित्त है, अर्थात् कश् धातुके योगमें जहां उपसर्ग संज्ञा प्रतिकी हुई हो वहां ही सुट् षत्व हों, इसलिये प्रतिगतः कशाम्=प्रतिकशोऽश्वः, इस स्थलमें गम् धातुके योगमें प्रतिकी उपसर्ग संज्ञा होनेके कारण कश् धातुके योगमें प्रतिको उपसर्गत्व नहीं है, इससे सुट्, षत्व, नहीं हुए ॥

१०६७ प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी । ६ । १ । १५३ ॥

हरिश्चन्द्रग्रहणममन्त्रार्थम् । ऋषीति किम् । प्रकण्वो देशः । हरिचन्द्रो माणवकः ॥

१०६७–ऋषि वाच्य होनेपर प्रस्कण्व और हरिश्चन्द्र इन दो शब्दोंमें निपातनसे सुट् हो । मंत्र होनेपर "ह्रस्वाच्चंद्रोत्तरपदे मंत्रे ६ । १ । १५१ " इससे सुट्का आगम सिद्ध ही था, फिर हरिश्चंद्रके ग्रहण करनेकी क्या आवश्यकता थी, इस शंकापर कहतेहैं कि, इस सूत्रमें हरिश्चंद्र ग्रहण अमंत्रार्थ है, अर्थात् मंत्रसे भिन्न स्थलमें भी सुट् होनेके कारण सूत्रमें हरिश्चन्द्र शब्दका ग्रहण कियाहै, जैसे–प्रस्कण्वः । हरिश्चन्द्रः, अर्थात् ऋषिविशेष हैं । ऋषि न होनेपर सुट् नहीं होगा, जैसे–प्रकण्वः, अर्थात् देश । हरिचन्द्रः, अर्थात् माणवक ॥

१०६८ मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः । ६ । १ । १५४ ॥

मकरशब्दोऽव्युत्पन्नस्तस्य सुडिनिश्च निपात्यते। वेण्विति किम् । मकरो ग्राहः । मकरी समुद्रः ॥

१०६८–वेणु और परिव्राजक अर्थ होनेपर मस्कर और मस्करिन् यह दो पद निपातसे सिद्ध हों मकर शब्द अव्युत्पन्न अर्थात् व्युत्पत्तिसिद्ध नहीं है, उसको निपातनसे सुट् और इन् प्रत्यय होकर मस्करिन् शब्द सिद्ध हुआहै । वेणु और परिव्राजक अर्थ न होनेपर सुट्का आगम नहीं होगा, जैसे–मकरः, अर्थात् ग्राह (जलजन्तुविशेष) मकरी, अर्थात् समुद्र (मकरयुक्त) ॥

१०६९ कास्तीराजस्तुन्दे नगरे । ६ । १ । १५५ ॥

ईषत्तीरमस्यास्तीति कास्तीरं नाम नगरम् । अजस्येव तुन्दमस्येति अजस्तुन्दं नाम नगरम् । नगरे किम् । कातीरम् । अजतुन्दम् ।

१०६९-नगर अर्थ होनेपर कास्तीर और अजस्तुन्द इन दो शब्दोंमें निपातनसे सुट् हो, जैसे-'ईषत्तीरम् अस्यास्ति' इस विग्रहमें 'कास्तीरम्' यह सिद्ध हुआ, इसका अर्थ नगर है । 'अजस्येव तुन्दमस्य' इस विग्रहमें-अजस्तुन्दम्, अर्थात् नगरविशेष । नगर अर्थ न होनेपर सुट् नहीं होगा, जैसे-कातीरम् । अजतुन्दम् ॥

१०७० कारस्करो वृक्षः । ६ । १ । १५६ ॥

कारं करोतीति कारस्करो वृक्षः । अन्यत्र कारकरः । केचित्तु कस्कादिष्विदं पठन्ति न सूत्रेषु ॥

१०७०-वृक्ष अर्थ होनेपर कारस्कर शब्दमें निपातनसे सुट् हो, जैसे-'कारं करोति' इस वाक्यमें 'कारस्करः' (वृक्षविशेष) यह पद सिद्ध हुआ । वृक्ष अर्थ न होनेपर सुट् नहीं होगा, जैसे-कारकरः । किसी२ने सूत्रमें इसका पाठ न करके कस्कादि गणमें पाठ कियाहै ॥

१०७१ पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् । ६ । १ । १५७ ॥

एतानि ससुट्कानि निपात्यन्ते नाम्नि । पारस्करः । किष्किन्धा ॥ तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च ॥ * ॥ तात्पूर्वं चत्वेन दकारो बोध्यः । तद्बृहतोर्दकारतकारौ लुप्येते । करपत्योस्तु सुट् । चोरदेवतयोरिति समुदायोपाधिः । तस्करः । बृहस्पतिः ॥ प्रायस्य चित्तिचित्तयोः ॥ * ॥ प्रायश्चित्तिः । प्रायश्चित्तम् । वनस्पतिरित्यादि । आकृतिगणोऽयम् ॥

॥ इति समासाश्रयविधयः ॥

१०७१-संज्ञा अर्थ होनेपर पारस्करादि शब्दको निपातनसे सुट् हो, जैसे-'पारं करोति' इस विग्रहमें "कृञो हेतुताच्छील्य०" इससे ट प्रत्यय हुआ, पश्चात् सुट्-पारस्करः । 'किमपि धत्ते' इस विग्रहमें "आतोऽनुपसर्गे कः" इससे क, टाप्, निपातनसे किम्‌को द्वित्व, पूर्व मको लोप, सुट्, षत्व-किष्किन्धा । (तद्बृहतोः० *) चोर और देवता अर्थ होनेपर कर और पति शब्द परे रहते तद् और बृहत् शब्दको सुट्का आगम हो और तद् शब्दके दकारका और बृहत् शब्दके तकारका लोप हो, जैसे-तस्करः, अर्थात् चोर । बृहस्पतिः, अर्थात् देवता ॥

चित्ति और चित्त शब्द परे रहते प्राय शब्दको सुट्का आगम हो, जैसे-प्रायश्चित्तिः । प्रायश्चित्तम् । वनस्पतिः-इत्यादि पारस्करादि । आकृतिगण है ॥

॥ इति समासाश्रयविधयः ॥

अथ तद्धितप्रकरणम् ।

१०७२ समर्थानां प्रथमाद्वा । ४ । १ । ८२ ॥

इदं पदत्रयमधिक्रियते । प्राग्दिश इति यावत् । सामर्थ्यं परिनिष्ठितत्वम् । कृतसन्धिकार्यमिति यावत् ॥

१०७२-"प्राग्दिशो विभक्तिः १९४७" इस सूत्रपर्यन्त समर्थानाम्, प्रथमात् और वा, इन तीन पदोंका अधिकार होताहै । सामर्थ्यसे परिनिष्ठितत्व, अर्थात् कृतसंधिकार्यत्व जानना ॥

१०७३ प्राग्दीव्यतोऽण् । ४ । १ । ८३ ॥

तेन दीव्यतीत्यतः प्रागणधिक्रियते ॥

१०७३-"तेन दीव्यति" इस सूत्रके पूर्वपर्यन्त अण् प्रत्यका अधिकार होताहै ॥

१०७४ अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८४ ॥

एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । वक्ष्यमाणस्य ण्यस्यापवादः ॥

१०७४-प्राग्दीव्यतीय प्रकरणमें जिस २ अर्थमें प्रत्यय होतेहैं, उस २ अर्थमें अश्वपत्यादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो । इस अण् प्रत्ययको वक्ष्यमाण (ण्य) प्रत्यका अपवाद जानना ॥

१०७५ तद्धितेष्वचामादेः । ७ । २ । ११७ ॥

ञिति णिति च तद्धिते परेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात् ॥

१०७५-ञित् और णित् तद्धित प्रत्यय परे रहते अचोंके मध्यमें आदि अच्को (पूर्वस्वरको) वृद्धि हो ॥

१०७६ किति च । ७ । २ । ११८ ॥

किति तद्धिते च तथा । अश्वपतेरपत्यादि आश्वपतम् । गाणपतम् । गाणपत्यो मन्त्र इति तु प्रामादिकमेव ॥

१०७६-ककार इत् हो जिसमें ऐसा तद्धित प्रत्यय परे रहते अचोंके मध्यमें आद्यच्का वृद्धि हो, जैसे-अश्वपतेरपत्यम्, इत्यादि वाक्यमें अश्वपति+अण्=आश्वपतम् । गणपतेरपत्यम्, इत्यादि वाक्यमें गणपति+अण्=गाणपतम् । गाणपत्यः, अर्थात् मंत्रविशेष, यह पद प्रामादिक (भ्रममूलक) है । देवतावाचक अणन्तके उत्तर चतुर्वर्णादिके आकृतिगणत्वके कारण ष्यञ् प्रत्यय करके ताहश पद भी सिद्ध हो सकताहै ऐसा जानना ॥

१०७७ दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः । ४ । १ । ८५ ॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यादणोऽपवादः । दैत्यः । अदितेरादित्यस्य वा आदित्यः । प्राजापत्यः ॥ यमा-

ञेति काशिकायाम् ॥ याम्यः ॥ पृथिव्या ञाञौ ॥ * ॥ पार्थिवा । पार्थिवी ॥ देवाद्यञञौ ॥ * ॥ दैव्यम् । दैवम् ॥ बहिषष्टिलोपो यञ्च ॥ * ॥ बाह्यः ॥ ईकक्च ॥ * ॥ बाहीकः ॥ स्थाम्नोऽकारः ॥ * ॥ अश्वत्थामः । पृषोदरादित्वात्सस्य तः॥भवार्थे तु लुग्वाच्यः ॥* अश्वत्थामा । लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारः ॥ * ॥ बाह्वादीञोऽपवादः । उडुलोमाः । उडुलोमान् । बहुषु किम् । औडुलोमिः । गोरजादिप्रसङ्गे यत् ॥ * ॥ गव्यम् ॥ अजादिप्रसङ्गे किम् । गोभ्यो हेतुभ्य आगतं गोरूप्यम् । गोमयम् ॥

१०७७–प्राग्दीव्यतीय प्रकरणमें जिस २ अर्थमें प्रत्यय होतेहैं, उसी २ अर्थमें दिति, अदिति, आदित्य और पतिशब्दान्त शब्दके उत्तर ण्य प्रत्यय हो,यह सूत्र अण् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे–दितेरपत्यं पुमान्, इत्यादि वाक्योंमें दिति+ण्य=दैत्यः । अदितेः आदित्यस्य वा अपत्यम्,इत्यादि वाक्योंमें अदिति, आदित्य+ण्य=आदित्यः । प्रजापतेः अपत्यम्,इत्यादि विग्रहोंमें प्रजापति+ण्य–प्राजापत्यः ।

(यमाच्च) यम शब्दके उत्तर भी ण्य प्रत्यय हो, यह काशिकासे अभिहित होताहै, जैसे–यमस्यापत्यम्, इस वाक्यमें यम+ण्य=याम्यः ।

पृथिवी शब्दके उत्तर ञ और अञ् प्रत्यय हों * जैसे–पार्थिवा । पार्थिवी ।

देव शब्दसे यञ् और ञ हों * जैसे–दैव्यम् । दैवम् ।

बहिष् शब्दकी टिका लोप हो और उसके उत्तर यञ् प्रत्यय हो * जैसे–बाह्यः ।

बहिष् शब्दकी टिका लोप हो और उसके उत्तर ईकक् प्रत्यय भी हो * जैसे–बाहीकः ।

स्थामन् शब्दके उत्तर अकार प्रत्यय हो * जैसे–अश्वत्थामः । अश्वस्येव स्थामा स्थितिर्यस्य, इस वाक्यमें बहुव्रीहि समास होनेपर पृषोदरादित्वके कारण स्थामन् शब्दके सकारके स्थानमें तकार करके 'अश्वत्थामः' यह पद सिद्ध हुआ ।

भवार्थमें स्थामन् शब्दके उत्तर प्रत्ययका लुक् हो * जैसे–अश्वत्थामा ।

अपत्य अर्थमें लोमन् शब्दके उत्तर बहुवचनमें अकार प्रत्यय हो * केवल लोमन् शब्दके अपत्ययोगके अभावके कारण लोमन्शब्दान्त पदके विषयमें ही यह विधि जाननी चाहिये । यह सूत्र बाहु आदि शब्दके उत्तर जो इञ् प्रत्यय होताहै, उसका अपवाद (विशेषक) है, जैसे–उडुलोमाः । उडुलोमान् । बहुवचन न होनेपर अकार नहीं होगा, जैसे–औडुलोमिः ।

गो शब्दके उत्तर अजादिप्रसङ्गमें यत् प्रत्यय हो * जैसे–गो+य=गव्+य+अम्=गव्यम् । इस वार्तिकसे केवल अपत्यार्थमें ही नहीं होताहै, किन्तु प्राग्दीव्यतीय प्रकरणमें जो २ अर्थ हैं, उन २ अर्थोंमें होताहै, अर्थात् गोरिदम्, गवि भवम्, गौर्देवतास्य, इत्यादि वाक्यमें 'गव्यम्' यह पद होगा । जिस स्थानमें अजादिप्रसंग नहीं होगा, उस स्थानमें गोभ्यो हेतुभ्य आगतम्, इस वाक्यमें 'गोरूप्यम्' 'गोमयम्' ऐसे पद होंगे ॥

१०७८ उत्सादिभ्योऽञ् । ४ । १ । ८६ ॥

औत्सः ॥ अग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः ॥ * ॥ अग्नेरपत्यादि आग्नेयम् । कालेयम् ॥

इत्यपत्यादिविकारान्तार्थसाधारणाः प्रत्ययाः॥

१०७८–उत्सादि शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, जैसे=उत्स+अञ् (अ)=औत्सः (१०७५) ।

अग्नि और कलि शब्दके उत्तर ढक् हो । अग्नेरपत्यादि, इस वाक्यमें आग्नेयम् । ४७४ सूत्रसे ढको एय होताहै, कालेयम् । अपत्यादि ऐसा कहनेसे अग्नेः आगतम्, अग्नौ भवम्, अग्निना दृष्टं साम, अग्नेरिदम्, इन संपूर्ण वाक्योंका ग्रहण जानना चाहिये ॥

यह अपत्यादिविकारान्तार्थ साधारण प्रत्यय हैं ॥

१०७९ स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् । ४ । १ । ८७ ॥

धान्यानां भवन इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः । स्त्रैणः । पौंस्नः । वत्यर्थे न । स्त्री पुंवच्चेति ज्ञापकात् । स्त्रीवत् । पुंवत् ॥

१०७९–"धान्यानां भवने० १८०२" इस सूत्रके पूर्वपर्यन्त जिस २ अर्थमें प्रत्यय हों, उसी २ अर्थमें स्त्री और पुंस् शब्दके उत्तर क्रमसे नञ् और स्नञ् प्रत्यय हों, जैसे–स्त्री+न=(१०७५ । १९७) स्त्रैणः । पुंस्+न=पौंस्नः । "स्त्री पुंवच्च" इस सूत्रनिर्देशके कारण वतिके अर्थमें उक्त प्रत्यय नहीं होताहै, जैसे–स्त्रीवत् । पुंवत् ॥

१०८० द्विगोर्लुगनपत्ये । ४ । १ । ८८ ॥

द्विगोर्निमित्तं यस्तद्धितोऽजादिरनपत्यार्थः प्राग्दीव्यतीयस्तस्य लुक् स्यात् । पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः । पञ्चकपालः । द्विगोर्निमित्तस्येति किम् । पञ्चकपालस्येदं खण्डं पाञ्चकपालम् । अजादिः किम् । पञ्चगर्गरूप्यम् । अनपत्ये किम् । द्वयोर्मित्रयोरपत्यं द्वैमित्रिः ॥

१०८०–द्विगु समासका निमित्त जो तद्धित प्रत्यय हो, वह यदि अजादि और अनपत्यार्थमें हो, तो प्राग्दीव्यतीय तद्धित प्रत्ययका लुक् हो, जैसे पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः, इस वाक्यमें पञ्चकपालः पुरोडाशः । द्विगु समासका निमित्तीभूत तद्धित प्रत्यय न होनेपर लुक् नहीं होताहै, जैसे–पञ्चकपालस्य इदं खण्डं=पाञ्चकपालम् । अजादि क्यों कहा ? तो अजादि न होनेपर लुक् न हो, जैसे–पञ्चगर्गरूप्यम् । अपत्यार्थ न होनेपर लुक् नहीं होगा, जैसे–द्वयोर्मित्रयोरपत्यम्, इस [illegible] ॥

१०८१ गोत्रेऽलुगचि । ४ । १ । ८९ ॥

अजादौ प्राग्दीव्यतीये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययस्याऽलुक् स्यात् । गर्गाणां छात्राः।वृद्धाच्छः॥

१०८१-अजादि प्राग्दीव्यतीय प्रत्यय विवक्षित होनेपर गोत्र प्रत्ययका अलुक् हो, जैसे-गर्गाणां छात्राः, इस विग्रहमें "वृद्धाच्छः १३३७" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे छ प्रत्यय होकर-

१०८२ आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति । ६ । १ । १५१ ॥

हलः परस्यापत्ययकारस्य लोपः स्यात्तद्धिते परे न त्वाकारे । गार्गीयाः । प्राग्दीव्यतीये किम् । गर्गेभ्यो हितं गर्गीयम् । अचि किम् । गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यम् ॥

१०८२-तद्धित प्रत्यय परे रहते, व्यञ्जन वर्णके परे स्थित अपत्यार्थक प्रत्ययके यकारका लोप हो, परन्तु आकार परे रहते न हो, जैसे-गर्ग+यञ्+छ-ईय्=गार्गीयाः । प्राग्दीव्यतीय अर्थ कहनेसे गर्गेभ्यो हितम्, इस वाक्यमें गर्गीयम्, इस स्थलमें यञ् प्रत्ययका लोप हुआ । अजादि प्राग्दीव्यतीय प्रत्यय विवक्षित हो, ऐसा कहनेसे 'गर्गेभ्य आगतम्' इस वाक्यमें गर्गरूप्यम्,इस स्थानमें यञ्का लोप हुआ। (सब प्रोक्त प्रत्युदाहरणोंमें उक्त सूत्रसे 'य' का लोप न होकर "यञिञोश्च" से यञ्का लोप होनेसे वृद्धि नहीं होतीहै) ॥

१०८३ यूनि लुक् । ४ । १ । ९० ॥

प्राग्दीव्यतीये अजादौ प्रत्यये विवक्षिते युवप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यं ग्लुचुकायनिः । वक्ष्यमाणः फिञ् । ततो यून्यण् । ग्लौचुकायनः । तस्य च्छात्रोऽपि ग्लौचुकायनः।अणो लुकि वृद्धत्वाभावाच्छो न॥

१०८३-प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय विवक्षित होनेपर युवप्रत्ययका लुक् हो, जैसे-ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यम्, इस वाक्यमें ग्लुचुकायनिः । वक्ष्यमाण सूत्रसे (१०८७) फिञ् प्रत्यय करके पश्चात् युवार्थमें अण् प्रत्यय होकर ग्लौचुकायनः । उसके छात्र होनेपर भी ग्लौचुकायनः । अणका लुक् करनेपर वृद्धत्वके अभावके कारण छ प्रत्यय नहीं हुआ*॥

१०८४ पैलादिभ्यश्च । २ । ४ । ५९ ॥

एभ्यो युवप्रत्ययस्य लुक् । पीलाया वेत्यण् । तस्मादणो द्व्यच इति फिञ् । तस्य लुक् । पैलः पिता पुत्रश्च ॥ तद्राजाच्चाणः ॥ द्व्यञ्मगधेत्यणन्तादाङ्गशब्दादणो द्व्यच इति फिञो लुक् । आङ्गः पिता पुत्रश्च ॥

* अजादि ऐसा नहीं कहते तो 'ग्लौचुकायनरूप्यम्' यहां भी रूप्य प्रत्यय परे रहते अणका लुक् होजाता । प्राग्दीव्यतीय ऐसा नहीं कहते तो 'ग्लौचुकायनीयम् ("तस्मै हितम्॰" इससे छ प्रत्यय हुआ है) यहां भी अणका लुक् होजाता ॥

१०८४-पैलादि शब्दके उत्तर युवप्रत्ययका लुक् हो। "पीलाया वा ११२१" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय करके 'पैल' पद सिद्ध हुआहै, इस कारण "अणो द्व्यचः ११८०" इस सूत्रसे फिञ्, उसका प्रस्तुत सूत्रसे लुक् होताहै, जैसे-पैलः पिता पुत्रश्च । "तद्राजाच्चाणः" इससे "द्व्यञ्मगध॰" इस सूत्रसे-अणन्त आङ्ग शब्दके उत्तर "अणो द्व्यचः ११८०" इस सूत्रसे विहित फिञ्का लुक् होताहै, जैसे-आङ्गः पिता पुत्रश्च ॥

१०८५ इञः प्राचाम् । २ ।४।६०॥

गोत्रे य इञ् तदन्ताद्युवप्रत्ययस्य लुक् स्यात् तच्चेद्गोत्रं प्राचां भवति । पन्नागारस्यापत्यम् । अत इञ् । यञिञोश्चेति फक् । पान्नागारिः पिता पुत्रश्च । प्राचां किम् । दाक्षिः पिता । दाक्षायणः पुत्रः ॥

१०८५-गोत्र अर्थमें विहित जो इञ् प्रत्यय, तदन्तसे परे युव प्रत्ययका लुक् हो, यदि यह गोत्र प्राचीनोंका हो तो,नहीं तो लुक् नहीं हो,जैसे-पन्नागारस्यापत्यम्, इस विग्रहमें "अत इञ्१०९५" से इञ् होकर पश्चात् "यञिञोश्च ११०३"इस सूत्रसे फक् प्रत्यय हुआ, तब प्रस्तुत सूत्रसे फक्का लुक्, जैसे-पान्नागारिः, पिता-पुत्रश्च । प्राचीनोंका न होनेपर 'दाक्षिः पिता, दाक्षायणः पुत्रः' इस स्थानमें लुक् न होकर ऐसा ही होताहै ॥

१०८६ न तौल्वलिभ्यः । २ । ४ । ६१॥

तौल्वल्यादिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य लुक् न स्यात् । पूर्वेण प्राप्तः । तुल्वलः । तत इञि फक् । तौल्वलिः पिता । तौल्वलायनः पुत्रः ॥

१०८६-तौल्वल्यादि शब्दके उत्तर युव प्रत्ययका लुक् न हो । पूर्व सूत्रसे लुक् प्राप्त है, उसका यह निषेधक है । तुल्वल शब्दसे इञ् और फक् प्रत्यय हुआहै, जैसे-तौल्वलिः पिता, तौल्वलायनः पुत्रः । यहां प्रस्तुत सूत्रसे निषेधके कारण लुक् न हुआ ॥

१०८७ फक्फिञोरन्यतरस्याम् । ४ । १ । ९१ ॥

यूनि लुगिति नित्ये लुकि प्राप्ते विकल्पार्थं सूत्रम् । कात्यायनस्य च्छात्राः कातीयाः कात्यायनीयाः । यस्कस्यापत्यं यास्कः । शिवाद्यण् । तस्यापत्यं युवा यास्कायनिः । अणो द्व्यच इति फिञ् । तस्य च्छात्राः यास्कीयाः।यास्कायनीयाः॥

१०८७-फक् और फिञ् प्रत्ययका विकल्प करके लुक् हो । "यूनि लुक्" इस सूत्रसे नित्य लुक्की प्राप्ति होनेपर यह केवल विकल्प विधानके निमित्त है, जैसे-कात्यायनस्य छात्राः=कातीयाः, कात्यायनीयाः । यस्कस्यापत्यम्=यास्कः । "शिवादिभ्योऽण्" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय करके तस्यापत्यं युवा, इस विग्रहमें यास्कायनिः । "अणो द्व्यचः ११८०" इससे

फिञ् । उसके छात्र, इस अर्थमें यास्कीयाः, यास्कायनीयाः । विकल्पसे लुक् ॥

१०८८ तस्यापत्यम् । ४ । १ । ९२ ॥

षष्ठ्यन्तात् कृतसन्धेः समर्थादपत्येर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः । उपगोरपत्यम् औपगवः । आदिवृद्धिरन्त्योपधावृद्धी बाधते ।

तस्येदमित्यपत्येऽपि बाधनार्थं कृतं भवेत् ।
उत्सर्गः शेष एवासौ वृद्धान्यस्य प्रयोजनम् ॥ १ ॥

योगविभागस्तु । भानोरपत्यं भानवः । कृतसन्धेः किम् । सौत्थितिः । अकृतव्यूहपरिभाषया सात्सुत्थितिर्मा भूत् । समर्थपरिभाषया । नेह । वस्त्रमुपगोरपत्यं चैत्रस्य । प्रथमात्किम् । अपत्यवाचकात्षष्ठ्यर्थे मा भूत् । वाग्रहणाद्वाक्यमपि । दैवयज्ञीति सूत्रादन्यतरस्यांग्रहणानुवृत्तेः समासोऽपि । उपग्वपत्यम् । जातित्वान्ङीष् । औपगवी । आश्वपतः । दैत्यः । औत्सः । स्त्रैणः । पौंस्नः ॥

१०८८–षष्ठयन्त और कृतसन्धि (कृत है सन्धिकार्य्य जिसमें ऐसे) प्रथमपदबोध्य समर्थ प्रातिपदिकके उत्तर अपत्यार्थमें जो प्रत्यय उक्त हुए हैं वह सम्पूर्ण प्रत्यय और वक्ष्यमाण प्रत्यय विकल्प करके हों, जैसे–उपगोरपत्यम्, इस विग्रहमें औपगवः ।

आदिवृद्धि परत्वके कारण अन्त्यवृद्धि और उपधावृद्धि इन दोनों वृद्धियोंका बाध करतीहै ।

"तस्येदम् ४ । ३ । १२०" इससे "तस्यापत्यम् ४ । १ । ९२" इसके कार्यकी प्राप्ति ही है, फिर "तस्यापत्यम्" "अत इञ्" यह योगविभाग "तस्येदम् ४ । ३ । १२०" इस सूत्रके बाधकभूत "वृद्धाच्छः ४ । २ । ११४" इस सूत्रके बाधके निमित्त है । यदि कहो कि, "वृद्धाच्छः" इस सूत्रके शेषाधिकारविषयत्व होनेसे अपत्यार्थमें छकी प्राप्ति नहीं, फिर योगविभाग क्यों किया ? तो, सो नहीं कह सकते, क्योंकि, अदन्त दशरथादि शब्दसे इञ् प्रत्यय करनेपर दाशरथ्यादि शब्दसे अपत्य अर्थ उक्त होनेपर भी इकारान्त तथा उकारान्तादि हरि भान्वादि प्रकृतिकसे अपत्य अर्थ अनुक्त ही है, इसलिये उक्त (४ । २ । ११४) सूत्रकी हरेः अपत्यं, भानोरपत्यम्, इत्यादि विग्रहमें प्राप्ति हैही, यदि कोई कहै कि, "तस्यापत्यम्" इस सूत्रारम्भके सामर्थ्यसे ही "वृद्धाच्छः" इसका बाध होजाता फिर योगविभाग क्यों किया ? तो सो ठीक नहीं, कारण कि 'तस्यापत्यम्' इससे भिन्न अर्थमें "अत इञ्" यह प्रवृत्त न हो, इस कारण सूत्रारम्भ तो आवश्यक ही है ।

भानोरपत्यम्, ऐसा विग्रह कर 'भानवः' इस स्थलमें अण् प्रत्ययके निमित्त योगविभाग कियाहै । कृतसन्धिसे न होनेपर 'सौत्थितिः' ऐसा पद न होगा, किन्तु "अकृतव्यूह०" परिभाषासे 'सात्सुत्थितिः' ऐसा पद होजायगा । "समर्थः०" से समर्थकी अनुवृत्ति होनेके कारण वस्त्रमुपगोः अपत्यं चैत्रस्य, इस विग्रहमें अण् प्रत्यय नहीं हुआ ।

"समर्थानां प्रथमाद्वा" इस सूत्रसे 'प्रथमात्' इस पदका ग्रहण करनेके कारण अपत्यवाचक शब्दके उत्तर षष्ठ्यर्थमें अण् प्रत्यय नहीं होताहै ।

वा शब्दके ग्रहणके कारण वाक्य भी होगा ।

"दैवयज्ञि० १२०१" इस सूत्रसे विकल्पकी अनुवृत्तिके कारण समास भी विकल्प करके होगा ।

उपग्वपत्यम्, इस विग्रहमें अण् प्रत्यय होकर जातित्वके कारण ङीष् करके 'औपगवी' पद सिद्ध हुआहै । ऐसे ही 'आश्वपतः । दैत्यः । औत्सः । स्त्रैणः । पौंस्नः' इत्यादि पद सिद्ध हुए ॥

१०८९ अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् । ४ । १ । १६२ ॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् ॥

१०८९–अपत्यत्वसे विवक्षित पौत्रादिकी गोत्र संज्ञा हो ॥

१०९० जीवति तु वंश्ये युवा । ४ । १ । १६३ ॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव न गोत्रसंज्ञम् ॥

१०९०–वंशमें पिता आदिके जीवित रहते पौत्रादिका जो चतुर्थादि अपत्य है, उसकी युव संज्ञा हो, गोत्र संज्ञा न हो ॥

१०९१ भ्रातरि च ज्यायसि । ४ । १ । १६४ ॥

ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति कनीयान् चतुर्थादियुवा स्यात् ॥

१०९१–ज्येष्ठ भ्राताके जीवित रहते चतुर्थादि कनिष्ठकी अर्थात् कनिष्ठ पौत्रादिके अपत्यकी युव संज्ञा हो ॥

१०९२ वान्यस्मिन्त्सपिण्डे स्थविरतरे जीवति । ४ । १ । १६५ ॥

भ्रातुरन्यस्मिन्सपिण्डे स्थविरतरे जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं जीवदेव युवसंज्ञं वा स्यात् । एकं जीवतिग्रहणमपत्यस्य विशेषणं द्वितीयं सपिण्डस्य । तरब्निर्देश उभयोरुत्कर्षार्थः । स्थानेन वयसा चोत्कृष्टे पितृव्ये मातामहे भ्रातरि वा जीवति । गार्ग्यस्यापत्यं गार्ग्यायणः । गार्ग्यो वा । स्थविरेति किम् । स्थानवयोन्यूने गार्ग्य एव । जीवतीति किम् । मृते मृतो वा गार्ग्य एव ॥ वृद्धस्य च पूजायामिति वाच्यम् ॥ * ॥ गोत्रस्यैव वृद्धसंज्ञा प्राचाम् । गोत्रस्य युवसंज्ञा पूजायां गम्यमानायाम् । तत्रभवान् गार्ग्या-

यणः । पूजेति किम् । गार्ग्यः ॥ यूनश्च कुत्सायां गोत्रसंज्ञेति वाच्यम् ॥ * ॥ गार्ग्यो जाल्मः । कुत्सेति किम् । गार्ग्यायणः ॥

१०९२-यदि भ्रातासे अन्य स्थविरतर सपिंड जीवित हो तो पौत्रादिके जीवित अपत्यकी अर्थात् चौथी पीढीवाले प्रपौत्र आदि सन्तानकी युव संज्ञा हो, गोत्र संज्ञा न हो । प्रथम 'जीवति' पद अपत्यका विशेषण है, दूसरा सपिंडका । दोनोंके उत्कर्षार्थमें तरप्प्रत्ययान्त करके निर्देश हुआ है । यदि स्थान और वयःक्रमसे उत्कृष्ट, पितृव्य और मातामहका भ्राता जीवित रहे तो पौत्रादिके अपत्यकी विकल्प करके युव संज्ञा हो । इस स्थलमें मातामहभ्राताके ऐसा कहनेसे मातृसपिंडका ग्रहण हुआहै, कहीं भ्राताका भी ग्रहण जानना, जैसे-गर्गस्यापत्यम्, इस विग्रहमें गार्ग्यायणः (फक् वा) । गार्ग्यः (यञ्) ।

स्थविरतर कहनेके कारण तद्भिन्न स्थलमें अर्थात् स्थान और वयःक्रमकी न्यूनताके स्थलमें 'गार्ग्यः' ऐसा होगा ।

जीवित पद कहाहै, जीवित न होनेपर अर्थात् स्थविर सपिंडकी मृत्यु हो, अथवा पौत्रादिका अपत्य मृत हो, तो 'गार्ग्यः' ऐसा होगा ।

पूजा अर्थ होनेपर वृद्धकी भी युव संज्ञा होगी,क्योंकि,प्राचीनोंके मतमें गोत्रकी ही वृद्ध संज्ञा है और पूज्य अर्थ होनेपर गोत्रकी युव संज्ञा है * जैसे-तत्रभवान् गार्ग्यायणः । पूज्य अर्थ न होनेपर उक्त संज्ञा नहीं होगी, जैसे-गार्ग्यः ।

कुत्सा अर्थात् निन्दा अर्थ होनेपर युवसंज्ञक प्रत्ययकी गोत्र संज्ञा हो * जैसे-गार्ग्यो जाल्मः । जिस स्थानमें निन्दा नहीं होगी, उस स्थानमें उक्त संज्ञा नहीं होगी, जैसे-गार्ग्यायणः ॥

१०९३ एको गोत्रे । ४ । १ । ९३ ॥

गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात् । उपगोर्गोत्रापत्यम् औपगवः । गार्ग्यः । नाडायनः ॥ गोत्रे स्वैकोनसंख्यानां प्रत्ययानां परम्परा । यद्वा स्वद्व्यूनसंख्येभ्योऽनिष्टोत्पत्तिः प्रसज्यते १॥ अपत्यं पितुरेव स्यात्ततः प्राचामपीति च । मतभेदेन तद्वान्यै सूत्रमेतत्तथोत्तरम् ॥ २ ॥ पितुरेवापत्यमिति पक्षे हि उपगोस्तृतीये वाच्ये औपगवादिञ् स्यात् । चतुर्थे त्वजीवज्ज्येष्ठे मृतवंश्ये औपगवेः फक् । इत्थं फगिञोः परम्परायां मूलाच्छततमे गोत्रे एकोनशतं प्रत्ययाः स्युः । पितामहादीनामपीति मुख्यपक्षे तु तृतीये वाच्ये उपगोरणा इष्टे सिद्धेपि अण्णन्तादिञपि स्यात् । चतुर्थे फगिति फगिञोः परम्परायां शततमे गोत्रेऽष्टनवतिरनिष्टप्रत्ययाः स्युः । अतो नियमार्थमिदं सूत्रम् । एवमुत्तरसूत्रेप्यूह्यम् ॥

१०९३-गोत्रविषयमें एकमात्र अपत्यार्थक प्रत्यय हो, जैसे-उपगोर्गोत्रापत्यम्, इस विग्रहमें औपगवः । गार्ग्यः । नाडायणः ।

(गोत्रे स्वै०) यदि "एको गोत्रे" ऐसा सूत्र न किया होता तो गोत्रकी अपेक्षासे अपत्याधिकारमें जितने प्रत्यय हैं, उनमें एकको छोडकर जितने प्रत्ययोंकी परस्पर प्रसक्ति होती, अथवा गोत्रकी अपेक्षासे अपत्याधिकारमें जितने प्रत्यय हैं, उनमें दोको छोडकर संपूर्ण प्रत्यय होजाते, अर्थात् पिताको लेकर जितने उसके पुत्र पौत्रादिकी अपत्य संज्ञा हो, उतने ही अमरसिंहके मतमें और पिताके ऊर्ध्वतन तत्पुरुषको लेकर उनके पुत्र पौत्रादिकोंकी अपत्य संज्ञा हो, इस प्रकार अन्योंके मतमें प्रत्यय होते, ऐसे मतभेदके कारण, आदि पक्षमें प्रत्ययसमूहकी पारम्पर्यनिवृत्तिके निमित्त और द्वितीय पक्षमें गोत्रापेक्षासे दो ऊन प्रातिपदिकोंके उत्तर अनिष्ट प्रत्ययकी निवृत्तिके निमित्त "एको गोत्रे" इस प्रकार सूत्र लिखाहै । वृत्तिकार कारिकासे पूर्वोक्त अर्थ स्पष्ट करके लिखतेहैं, जैसे-जिस मतमें पिताको लेकर उसके पुत्रादिकी अपत्य संज्ञा हो, उस मतमें उपगुसे तृतीय होनेपर औपगव शब्दके उत्तर इञ् प्रत्यय होजाता, और चतुर्थ होनेपर मृतज्येष्ठविषयमें और मृतवंश्यविषयमें औपगवि शब्दके उत्तर फक् प्रत्यय होजाता; इस प्रकार फक् प्रत्यय और इञ् प्रत्ययके पारम्पर्यविषयमें मूलसे सौमें गोत्रसे एकोनशत प्रत्यय होजाते, यद्यपि जिस मुख्य मतमें पितामहको लेकर उसके पौत्रादिकी अपत्य संज्ञा होतीहै उस मतमें उपगु शब्दके उत्तर अण् प्रत्ययद्वारा इष्टसिद्धि होसकतीहै, तथापि अण् प्रत्ययान्तके उत्तर फिर इञ् प्रत्यय होजाता और चतुर्थ होनेपर फक् प्रत्यय होजाता, इस प्रकार फक् और इञ् प्रत्ययके पारम्पर्यविषयमें सौमें गोत्रमें ९८ अनिष्ट प्रत्यय होजाते, इनकी निवृत्तिके निमित्त पूर्वोक्त ("एको गोत्रे") सूत्र किया है, इस प्रकार उत्तर सूत्रका भी प्रयोजन जानना होगा ॥

१०९४ गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ।४।१।९४॥

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेवापत्यप्रत्ययः स्यात् स्त्रियां तु न युवसंज्ञा । गर्गस्य युवाऽपत्यं गार्ग्यायणः । स्त्रियां गोत्रत्वादेक एव प्रत्ययः ॥

१०९४-युवापत्य अर्थमें यदि अपत्य प्रत्यय हो तो पहले गोत्ररूप सन्तान अर्थमें प्रत्यय हो, पीछे युवरूप सन्तान अर्थमें प्रत्यय हो, परन्तु स्त्रीलिङ्गमें युव संज्ञा न हो, जैसे-गर्गस्य युवा अपत्यम्, इस विग्रहमें गार्ग्यायणः (यञ्+फक्)। स्त्रीलिङ्गमें गोत्रके कारण एकमात्र प्रत्यय होगा ॥

१०९५ अत इञ् । ४ । १ । ९५ ॥

अदन्तं यत्प्रातिपदिकं तत्प्रकृतिकात्षष्ठ्यन्तादिञ् स्यादपत्येऽर्थे । दाक्षिः ॥

१०९५-अकारान्त प्रातिपदिक यदि षष्ठ्यन्त हो तो उसके उत्तर अपत्य अर्थमें इञ् प्रत्यय हो, जैसे-दक्षस्यापत्यम्, इस विग्रहमें दक्ष+इञ्=दाक्षिः ॥

१०९६ बाह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ९६ ॥

बाहविः । औडुलोमिः । आकृतिगणोऽयम् ॥

१०९६–बाहु आदि शब्दके उत्तर अपत्यार्थमें इञ् प्रत्यय हो, जैसे–बाहोरपत्यम्, इस वाक्यमें बाहु+इञ्=बाहविः । उडुलोम्नोऽपत्यम्, इस विग्रहमें उडुलोमन्+इञ्=औडुलोमिः । यह आकृतिगण है ॥

१०९७ सुधातुरकङ् च । ४ । १ । ९७ ॥

चादिञ् । सुधातुरपत्यं सौधातकिः ॥ व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥

१०९७–अपत्यार्थमें सुधातृ शब्दके अकङ् आदेश हो और सूत्रमें चकार होनेके कारण इञ् प्रत्यय भी हो, ङित्व होनेके कारण "ङिच्च" इससे अन्त्य (ऋ) के स्थानमें होगा, जैसे–सुधातुरपत्यम्, इस वाक्यमें सुधातृ+अकङ्+इञ्=सौधातकिः ।

व्यास, वरुड, निषाद, चडाल और विम्ब, इन संपूर्ण शब्दोंको अकङ् आदेश और इञ् प्रत्यय हो * ॥

१०९८ न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् । ७ । ३ । ३ ॥

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः किंतु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैचावागमौ स्तः । वैयासकिः । वारुडकिरित्यादि ॥

१०९८–पदके अन्तस्थित यकार और वकारके परे स्वर वर्णकी वृद्धि न हो, परन्तु यकार और वकारके पूर्वमें क्रमसे ऐच् (ऐ औ) का आगम हो, जैसे–व्यासस्यापत्यम्, इस विग्रहमें व्यास्+अकङ्+इञ्=वैयासकिः । वरुडस्यापत्यम्, इस विग्रहमें वरुड्+अकङ्+इञ्=वारुडकिः–इत्यादि । व्यास आदि प्रातिपदिकोंको अदन्त होनेसे इञ् तो होजाता पर अकङ् आदेश होनेके लिये १०९७ सूत्रमें वार्तिक पढाहै ॥

१०९९ गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् ४।१।९८।

१०९९–गोत्र होनेपर कुञ्जादि शब्दके उत्तर अपत्य अर्थमें च्फञ् (फ) प्रत्यय हो । इञ्का अपवाद है * ॥

११०० व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ५।३।११३॥

व्रातवाचिभ्यश्च्फञन्तेभ्यश्च स्वार्थे ञ्यः स्यान्न तु स्त्रियाम् । कौञ्जायन्यः । बहुत्वे तद्राजत्वाल्लुग्वक्ष्यते । व्राध्नायन्यः । स्त्रियां कौञ्जायनी । गोत्रत्वेन जातित्वान्ङीष् । अनन्तरापत्ये कौञ्जिः ॥

११००–च्फञ्प्रत्ययान्त जो व्रातवाचक शब्द उसके उत्तर ञ्य(य) प्रत्यय हो,परन्तु स्त्रीलिङ्गमें नहीं हो,जैसे–कुञ्जस्य गोत्रापत्यम्, इस विग्रहमें कौञ्जायन्यः । बहुत्व विवक्षित होनेपर "तद्राजाचाणः" इस गणसूत्रसे लुक् हो,यह आगे कहेंगे । ब्रध्नस्यापत्यम्, इस विग्रहमें व्राध्नायन्यः । स्त्रीलिङ्गमें गोत्रत्वके हेतु जातिवाचकके उत्तर ङीष् प्रत्यय होकर कौञ्जायनी । अनन्तर अपत्य होनेपर 'कौञ्जिः' ऐसा पद होगा ॥

११०१ नडादिभ्यः फक् । ४ । १।९९॥

गोत्र इत्येव । नाडायनः । चारायणः । अनन्तरो नाडिः ॥

११०१–गोत्र होनेपर षष्ठ्यन्त नडादि शब्दके उत्तर अपत्य अर्थमें फक् प्रत्यय हो, जैसे–नडस्य गोत्रापत्यम्, इस विग्रहमें नाडायनः । चरस्य गोत्रापत्यम्, इस वाक्यमें चारायणः । अनन्तरापत्य होनेपर 'नाडिः' ऐसा पद होगा ॥

११०२ हरितादिभ्योऽञः।४।१।१००॥

अञ्योऽञन्तेभ्यो यूनि फक् । हारितायनः । इह गोत्राधिकारेपि सामर्थ्याद्यून्ययम् । न हि गोत्रादपरो गोत्रप्रत्ययः । विदाद्यन्तर्गणो हरितादिः ॥

११०२–अञ्प्रत्ययान्त हरितादि शब्दके उत्तर युवापत्य अर्थमें फक् प्रत्यय हो, जैसे–हरितस्य युवापत्यम्, इस विग्रहमें हारितायनः । इस सूत्रमें 'गोत्रे' इसका अधिकार होनेपर भी सामर्थ्यके कारण युवापत्यार्थमें फक् प्रत्यय हुआहै, यह फक् गोत्रापत्यार्थ प्रत्यय नहीं है, क्योंकि, गोत्रापत्यप्रत्ययके उत्तर अन्य गोत्रार्थ प्रत्यय नहीं होताहै । हरितादि विदादि गण (११०६) के अन्तर्गत है ॥

११०३ यञिञोश्च । ४ । १ । १०१ ॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात् । अनातीत्युक्तेरापत्यस्येति यलोपो न । गार्ग्यायणः । दाक्षायणः ॥

११०३–गोत्रार्थ विषयमें जो यञ् और इञ् प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिकके उत्तर फक् प्रत्यय हो, आकार परे रहते अपत्यार्थ प्रत्ययके यकारका लोप न हो, ऐसी उक्तिके कारण " आपत्यस्य० १०८२ " इस सूत्रसे यकारका लोप न हुआ। यञन्त जैसे–गार्ग्यायणः । इञन्त जैसे दाक्षायणः । यञन्तसे इञ्का और इञन्तसे अण्का बाध समझना चाहिये ॥

---

१ यहां च्फञ् प्रत्ययमें चकार अनुबन्ध " व्रातच्फञोः० " इस सूत्रमें सवन्ध होनेके और ञकार वृद्धिके लिये है और इन च्फञ्प्रत्ययान्त प्रातिपदिकोंसे स्वार्थमें ञ्य प्रत्यय होजाताहै, उस ञ्य प्रत्ययको तद्राज संज्ञा होनेसे बहुवचनमें लुक् होजाताहै । विकल्प, समर्थोंका,इन दोका अधिकार छः पादमें और तद्धित संज्ञाका अधिकार पंचमा [illegible] [illegible] पर्य्य। [illegible] [illegible] कार इसी पादमें जाताहै । इन सबका संबन्ध प्रतिसूत्रमें समझना चाहिये ॥

१ इस सूत्रमें गोत्रापत्यकी विवक्षा इस कारण नहीं है कि, हारितादिकोंसे प्रथम गोत्रापत्यमें अञ्‌विधान है, फिर दूसरा प्रत्यय गोत्रापत्यमें नहीं होसकता, किन्तु युवापत्यमें होगा ॥

११०४ शरद्वच्छुनकदर्भाद्भृगुवत्साग्रायणेषु । ४ । १ । १०२ ॥

गोत्रे फक् । अञिञोरपवादः । आद्यौ बिदादी । शारद्वतायनो भार्गवश्चेत् । शारद्वतोऽन्यः । शौनकायनो वात्स्यश्चेत् । शौनकोऽन्यः । दार्भायण आग्रायणश्चेत् । दार्भिरन्यः ॥

११०४-गोत्रार्थमें भार्गवार्थ होनेपर शरद्वत् शब्दके उत्तर, वात्स्य अर्थ होनेपर शुनक शब्दके उत्तर और आग्रायण अर्थ होनेपर दर्भ शब्दके उत्तर फक् प्रत्यय हो । यह फक् प्रत्यय, अञ् और इञ् प्रत्ययका अपवाद है । प्रथम दो शब्द अर्थात् शरद्वत् और शुनक शब्द बिदादि हैं, जैसे-शारद्वतायनः, अर्थात् भार्गवः । अन्य अर्थ होनेपर 'शारद्वतः' ऐसा होगा । शौनकायनः, अर्थात् वात्स्यः । अन्यार्थमें शौनकः । दार्भायणः, अर्थात् आग्रायणः । अन्यार्थमें 'दार्भिः' ऐसा होगा ।

११०५ द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम् । ४ । १ । १०३ ॥

एभ्यो गोत्रे फग् वा । द्रौणायनः । द्रौणिः । पार्वतायनः । पार्वतिः । जैवन्तायनः। जैवन्तिः। अनादिरिह द्रोणः । अश्वत्थाम्न्यनन्तरे तूपचारात् ॥

११०५-गोत्रार्थमें द्रोण, पर्वत और जीवन्त शब्दके उत्तर विकल्प करके फक् प्रत्यय हो । इञ्का अपवाद है, जैसे-द्रौणायनः । विकल्पपक्षमें द्रौणिः । पार्वतायनः । पक्षमें=पार्वतिः । जैवन्तायनः । पक्षमें जैवन्तिः । इस सूत्रमें द्रोण शब्द अनादि है सादि नहीं, अर्थात् भारतमें प्रसिद्ध जो द्रोण शब्द वह सादि है, और यह अनादि है, तो अश्वत्थामारूप अनन्तर अपत्यार्थमें 'द्रौणायनः' पदकी उक्ति कैसी ? समाधान करते हैं कि, वह उपचाराधीन (लाक्षणिक पद) है ।

११०६ अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् । ४ । १ । १०४ ॥

एभ्योऽञ् गोत्रे ये त्वत्रानृषयस्तेभ्य आनन्तर्ये। सूत्रे स्वार्थे ष्यञ् । बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः। अनन्तरो बैदिः । बाह्वादेराकृतिगणत्वादिञ् । पुत्रस्यापत्यं पौत्रः । दौहित्रः ॥

११०६-ऋषिवाचक जो बिदादि शब्द उसके उत्तर गोत्रापत्य अर्थमें और ऋषिवाचकसे भिन्न जो बिदादि शब्द उसके उत्तर अनन्तरापत्य अर्थमें अञ् प्रत्यय हो । सूत्रमें ' आनन्तर्ये ' इसमें स्वार्थमें ष्यञ् प्रत्यय हुआहै । जैसे-बिदस्य गोत्रापत्यम्, इस विग्रहमें ' बैदः' यह पद सिद्ध हुआ है । जिस स्थानमें अनन्तर अपत्य होगा उस स्थानमें ' बैदिः' ऐसा होगा, इस स्थानमें बाह्वादिके आकृतिगणत्वके कारण इञ् प्रत्यय हुआ । पुत्रस्यापत्यम्, इस विग्रहमें पौत्रः । दुहितुरपत्यम्, इस वाक्यमें दौहित्रः-इत्यादि * ॥

११०७ गर्गादिभ्यो यञ् ।४।१।१०५ ॥

गोत्र इत्येव । गार्ग्यः । वात्स्यः ॥

११०७-गोत्रापत्य अर्थमें गर्गादि शब्दके उत्तर यञ् प्रत्यय हो, जैसे-गार्ग्यः । वात्स्यः ॥

११०८ यञञोश्च । २ । ४ । ६४ ॥

गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । गर्गाः । वत्साः । बिदाः । ऊर्वाः । तत्कृते इति किम् । प्रियगार्ग्याः । स्त्रियां तु गार्ग्यः स्त्रियः । गोत्रे किम् । द्वैप्याः । औत्साः । प्रवराध्यायप्रसिद्धमिह गोत्रम् । तेनेह न । पौत्राः । दौहित्राः ॥

११०८-तत्कृत बहुत्व अर्थ होनेपर, गोत्रविषयमें जो यञ्प्रत्ययान्त और अञ्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक तदवयवीभूत उक्त प्रत्ययका अर्थात् यञ् और अञ् प्रत्ययका लुक् हो, परन्तु स्त्रीलिङ्गमें न हो, जैसे-गर्गाः । वत्साः । बिदाः । ऊर्वाः ।

जिस स्थानमें तत्कृत बहुत्व न होगा, उस स्थानमें यञ् प्रत्ययका लोप नहीं होगा, जैसे-प्रियगार्ग्याः ।

स्त्रीलिङ्गमें तो ' गार्ग्यः स्त्रियः ' ऐसा पद होगा ।

गोत्रसे भिन्न अर्थमें द्वैप्याः । औत्साः ।

इस सूत्रमें प्रवराध्यायप्रसिद्ध गोत्र जानना चाहिये, इस कारण ' पौत्राः, दौहित्राः ' इस स्थानमें अञ् प्रत्ययका लुक् नहीं हुआ ॥

११०९ मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः । ४ । १ । १०६ ॥

गोत्रे यञ् । माधव्यो ब्राह्मणः । माधवोऽन्यः। बाभ्रव्यः कौशिक ऋषिः । बाभ्रवोऽन्यः । बभ्रुशब्दस्य गर्गादिपाठात्सिद्धेपि नियमार्थमिदम् । गर्गादिपाठफलं तु लोहितादिकार्यार्थम् । बाभ्रव्यायणी ॥

११०९-ब्राह्मण और कौशिक अर्थ होनेपर क्रमसे मधु और बभ्रु शब्दके उत्तर गोत्रविषयमें यञ् प्रत्यय हो, जैसे-माधव्यो ब्राह्मणः, ब्राह्मण न होनेपर 'माधवः' ऐसा होगा । बाभ्रव्यः, अर्थात् कौशिक ऋषि । कौशिक न होनेपर ' बाभ्रवः ' ऐसा होगा ।

बभ्रु शब्दका गर्गादिके मध्यमें पाठ होनेके कारण यद्यपि यञ् प्रत्यय सिद्ध ही है, तथापि यह सूत्रकरण केवल नियमार्थ है अर्थात् बभ्रु शब्दसे कौशिक अर्थ होनेपर ही यञ् प्रत्यय हो अन्यार्थमें नहीं हो, ऐसे नियमके निमित्त है, लोहितादि

१ इस प्रकरणमें तीन प्रकारके अपत्य जानने चाहियें-गोत्रापत्य, युवापत्य और अनन्तरापत्य,इनमें गोत्रापत्य और युवापत्यका आगे व्याख्यान कियाहै, अनन्तरापत्य पिताकी अपेक्षामें पुत्रको कहतेहैं, [illegible] कुछ अन्तर नहीं होता ॥

कार्यके निमित्त गर्गादिमें पाठकी आवश्यकता है, जैसे- ' बाभ्रव्यायणी ' यह गर्गादिमें पाठ होनेसे स्त्रीलिंङ्गमें हुआ है ॥

१११० कपिबोधादाङ्गिरसे।४।१।१०७॥

गोत्रे यञ् स्यात् । काप्यः । बौध्यः । आङ्गिरसे किम् । कापेयः । बौधिः ॥

१११०-गोत्रविषयमें आङ्गिरस अर्थ होनेपर कपि और बोध शब्दके उत्तर यञ् प्रत्यय हो, जैसे-काप्यः । बौध्यः । जिस स्थानमें आङ्गिरस अर्थ नहीं होगा, उस स्थानमें 'कापेयः, बौधः' ऐसे पद होंगे ॥

११११ वतण्डाच्च । ४ । १ । १०८ ॥

आंगिरस इत्येव । वातण्ड्यः । अनांगिरसे तु गर्गादौ शिवादौ च पाठाद्यञणौ । वातण्ड्यः । वातण्डः ॥

११११-आङ्गिरस अर्थ होने पर वतण्ड शब्दके उत्तर यञ् प्रत्यय हो, जैसे-वातण्ड्यः । जिस स्थानमें आङ्गिरस अर्थ नहीं होगा, उस स्थानमें वतण्ड शब्दसे गर्गादिके मध्यमें और शिवादिके मध्यमें पाठ होनेके कारण यञ् और अण् यह दोनों प्रत्यय होंगे, जैसे-वातण्ड्यः । वातण्डः ॥

१११२ लुक् स्त्रियाम् । ४ । १ ।१०९॥

वतण्डाच्चेति विहितस्य लुक् स्यात् स्त्रियाम् । शार्ङ्गरवादित्वात् ङीन् । वतण्डी । अनांगिरसे तु वातण्ड्यायनी । लोहितादित्वात् ष्फः । अणि तु वातण्डी। ऋषित्वाद्वक्ष्यमाणः ष्यङ् न॥

१११२-"वतण्डाच्च११११"इस सूत्रसे विहित जो स्त्रीलिङ्गमें यञ् प्रत्यय, उसका लुक् हो । शार्ङ्गरवादित्वके कारण ङीन् प्रत्यय होकर ' वतण्डी ' पद सिद्ध हुआ । आङ्गिरस न होनेपर ' वातण्ड्यायनी ' ऐसा पद होगा, इस स्थानमें लोहितादित्वके कारण ष्फ प्रत्यय हुआहै । अण् प्रत्यय करनेपर ' वातण्डी ' ऐसा पद होगा, इस स्थानमें ऋषित्वके कारण वक्ष्यमाण ष्यङ् प्रत्यय नहीं हुआ ॥

१११३ अश्वादिभ्यः फञ्।४।१।११०॥

गोत्रे । आश्वायनः ॥ पुंसि जाते ॥ * ॥ पुंसीति तु प्रकृतिविशेषणम् । जातस्य गोत्रापत्यं जातायनः । पुंसि इति किम् । जाताया अपत्यं जातेयः ॥

१११३-गोत्र होनेपर अश्वादि शब्दके उत्तर फञ् प्रत्यय हो, जैसे-आश्वायनः ।

(पुंसि जाते *) इस गणसूत्रमें 'पुंसि' यह पद प्रकृतिका विशेषण है । पुँल्लिङ्ग जात शब्दके उत्तर गोत्र होनेपर फञ् प्रत्यय हो, जैसे-जातस्य गोत्रापत्यम्, इस विग्रहमें जातायनः । जिस स्थानमें पुँल्लिङ्ग जात शब्द न होगा, उस स्थानमें जातायाः अपत्यम्, इस विग्रहमें ' जातेयः ' ऐसा पद होगा ॥

१११४ भर्गात्त्रैगर्ते । ४ । १ । १११ ॥

गोत्रे फञ् । भार्गायणस्त्रैगर्तः । भार्गिरन्यः॥

१११४-गोत्रविषयमें त्रैगर्त अर्थ होनेपर भर्ग शब्दके उत्तर फञ् प्रत्यय हो, जैसे-भार्गायणः,अर्थात् त्रैगर्त । त्रैगर्तसे भिन्न अर्थ होनेपर ' भार्गिः ' ऐसा पद होगा, इसमें इञ् प्रत्यय हुआहै ॥

१११५ शिवादिभ्योऽण् ।४।१।११२ ॥

गोत्रे इति निवृत्तम् । शिवस्यापत्यं शैवः । गांगः । पक्षे तिकादित्वात्फिञ् । गांगायनिः । शुभ्रादित्वाड्ढक् । गांगेयः ॥

१११५-इस स्थलमें गोत्र अर्थकी निवृत्ति हुई, शिवादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे-शिवस्यापत्यम्, इस विग्रहमें शिव+अण्=शैवः । गाङ्गः । पक्षमें तिकादित्वके कारण फिञ् प्रत्यय होगा, जैसे-गाङ्गायनिः । शुभ्रादि गंगाके उत्तर ढक् प्रत्यय करके 'गांगेयः' यह पद सिद्ध हुआहै ॥

१११६ अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः । ४ । १ । ११३ ॥

अवृद्धेभ्यो नदीमानुषीनामभ्योऽण् स्यात् । ढकोऽपवादः । यामुनः । नामर्दः । चिन्तितताया अपत्यं चैन्तितः । अवृद्धाभ्यः किम् । वासवदत्तेयः । नदी इत्यादि किम् । वैनतेयः । तन्नामिकाभ्यः किम् । शोभनाया अपत्यं शौभनेयः॥

१११६-वृद्धसंज्ञकसे भिन्न नदी और मानुषीनामक शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यह अण् प्रत्यय ढक् प्रत्ययका अपवादक है, जैसे-यामुनः । नार्म्मदः । चिन्तितायाः अपत्यम्, इस विग्रहमें चैन्तितः ।

वृद्धसंज्ञकसे भिन्न न होनेपर अण् प्रत्यय नहीं होगा, जैसे-वासवदत्तेयः ।

नदी और मानुषी न होनेपर अण् नहीं होगा,जैसे-वैनतेयः ॥

नदी और मानुषीनामक न होनेपर भी अण् नहीं होगा, जैसे-शोभनायाः अपत्यम्, इस विग्रहमें 'शौभनेयः' यहां अण् न होनेपर ढक् हुआ ॥

१११७ ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च । ४ । १ । ११४ ॥

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः । वासिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः। श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः । वासुदेवः । आनिरुद्धः । शौरिः इति तु बाह्वादित्वादिञ् । आनिरुद्धः । शौरिः इति तु बाह्वादित्वादिञ् । इञ् एवायमपकुरुभ्यः । नाकुलः । साहदेवः । इञ् एवायमपवादः, मध्येऽपवादन्यायात् । अत्रिशब्दात्तु परत्वाड्ढक् । आत्रेयः ॥

१११७-ऋषिवाचक, अन्धकवाचक, वृष्णिवाचक और कुरुवाचक शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, मन्त्र देखनेवालोंको ऋषि कहतेहैं, जैसे वसिष्ठ+अण्=वासिष्ठः । विश्वामित्र+अण्=

वैश्वामित्रः । अन्धकवाचक जैसे-श्वाफल्कः । वृष्णिवाचक जैसे-वासुदेवः । आनिरुद्धः । 'शौरिः' यह पद तो बाह्वादित्वके कारण इञ् प्रत्यय होकर सिद्ध हुआहै । कुरुवाचक जैसे-नाकुलः । साहदेवः । यह सूत्र मध्येऽपवादन्यायके कारण इञ्का ही अपवादक होताहै, इसलिये अत्रि शब्दके उत्तर परत्वके कारण ढक् प्रत्यय करके 'आत्रेयः' यह पद सिद्ध हुआहै ॥

११११८ मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः । ४ । १ । ११५ ॥

संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्योदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च । द्वैमातुरः । षाण्मातुरः । साम्मातुरः । भाद्रमातुरः । आदेशार्थं वचनम् । प्रत्ययस्तूत्सर्गेण सिद्धः । स्त्रीलिंगनिर्देशोऽर्थापेक्षः । तेन धान्यमातुर्न । संख्येति किम् । सौमात्रः । शुभ्रादित्वाद्वैमात्रेयः ॥

१११८-संख्यापूर्वक, सम्पूर्वक और भद्रपूर्वक जो मातृ शब्द उसको उत् आदेश हो और उससे अण् प्रत्यय भी हो, जैसे-द्वैमातुरः । षाण्मातुरः । साम्मातुरः । भाद्रमातुरः । यह सूत्र केवल उत् आदेशके निमित्त ही है, अण् प्रत्यय तो "तस्यापत्यम्" इस सूत्रसे ही सिद्ध है । इस सूत्रमें अर्थकी अपेक्षासे स्त्रीलिङ्ग निर्देश कियाहै, इससे यह फल हुआ कि, धान्यमातृ शब्दको उत् नहीं होगा । संख्या, सम्, और भद्रपूर्वक न होनेपर, जैसे-सौमात्रः । शुभ्रादित्वके कारण ढक् प्रत्यय करके 'वैमात्रेयः' ऐसा पद होगा ॥

१११९ कन्यायाः कनीन च । ४ । १ । ११६ ॥

ढकोऽपवादोऽण् । तत्सन्नियोगेन कनीनादेशश्च । कानीनो व्यासः कर्णश्च । अनूढाया एवापत्यमित्यर्थः ॥

१११९-कन्या शब्दसे ढक् प्रत्ययका अपवाद अर्थात् विशेषक अण् प्रत्यय हो और इस अण् प्रत्ययके सन्नियोगसे कन्या शब्दके स्थानमें कनीन आदेश भी हो, जैसे-कानीनो व्यासः कर्णश्च, अविवाहितावस्थामें उत्पन्न हुए पुत्रको 'कानीन' कहतेहैं ॥

११२० विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु । ४ । १ । ११७ ॥

अपत्येऽण । वैकर्णो वात्स्यः । वैकर्णिरन्यः । शौङ्गो भारद्वाजः । शौङ्गिरन्यः । छागल आत्रेयः । छागलिरन्यः । केचित्तु शुंगन्याबन्तं पठन्ति । तेषां ढक् प्रत्युदाहरणम् । शौङ्गेयः ॥

११२०-विकर्ण, शुङ्ग, छगल, इन शब्दोंके उत्तर यथाक्रम वात्स्य, भारद्वाज और आत्रेय अर्थ होनेपर अपत्य अर्थमें अण् प्रत्यय हो, जैसे-वैकर्णः अर्थात् वात्स्य । अन्य अर्थमें वैकर्णिः । शौङ्गः, अर्थात् भारद्वाज । अन्य अर्थमें शौङ्गिः । छागलः, अर्थात् आत्रेय । अन्य अर्थमें छागलिः । सूत्रमें कोई २ 'शुङ्गा' ऐसा आबन्त पढतेहैं, उनके मतमें ढक् प्रत्ययान्त प्रत्युदाहरण होगा, जैसे-शौङ्गेयः ॥

११२१ पीलाया वा । ४ । १ । ११८ ॥

तन्नामिकाणं बाधित्वा द्व्यच इति ढकि प्राप्ते पक्षेऽण् विधीयते । पीलाया अपत्यं पैलः । पैलेयः ॥

११२१-पीला शब्दके उत्तर विकल्प करके अण् प्रत्यय हो । "अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः" इस सूत्रसे जो अण् प्रत्ययकी प्राप्ति हुई थी, उसको बाध करके "द्व्यचः ११२४" इस सूत्रसे ढक् प्रत्ययकी प्राप्ति होनेपर इस सूत्रसे पक्षमें अण्का विधान करतेहैं, जैसे-पीलाया अपत्यम्, इस विग्रहमें पैलः । विकल्प पक्षमें पैलेयः ॥

११२२ ढक् च मण्डूकात् । ४ । १ । ११९ ॥

चादण् । पक्षे इञ् । माण्डूकेयः । माण्डूकः । माण्डूकिः ॥

११२२-मण्डूक शब्दके उत्तर विकल्पकरके ढक् प्रत्यय हो और चकारनिर्देशके कारण अण् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें इञ् प्रत्यय होगा, जैसे-माण्डूकेयः, माण्डूकः, माण्डूकिः ॥

११२३ स्त्रीभ्यो ढक् । ४ । १ । १२० ॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् स्यात् । वैनतेयः । बाह्वादित्वात्सौमित्रिः । शिवादित्वात्सापत्नः ॥

११२३-स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर अपत्य अर्थमें ढक् प्रत्यय हो, जैसे-विनताया अपत्यम्=वैनतेयः बाह्वादित्वके कारण इञ् प्रत्यय करके 'सौमित्रिः' ऐसा पद हुआ । शिवादित्वके कारण अण् प्रत्यय करके 'सापत्नः' यह पद सिद्ध हुआहै ॥

११२४ द्व्यचः । ४ । १ । १२१ ॥

द्व्यचः स्त्रीप्रत्ययान्तादपत्ये ढक् । तन्नामिकाऽणोपवादः । दात्तेयः । पार्थ इत्यत्र तु तस्येदमित्यण् ॥

११२४-दो अचोंसे युक्त जो स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द, उसके उत्तर अपत्य अर्थमें ढक् प्रत्यय हो । यह सूत्र "अवृद्धाभ्यः०" इससे विहित अण्का विशेषक है, जैसे-दात्तेयः । 'पार्थः' इस स्थलमें तो "तस्येदम् १५००" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय हुआहै ॥

११२५ इतश्चाऽनिञः । ४ । १ । १२२ ॥

इकारान्ताद् द्व्यचोऽपत्ये ढक् स्यात् न त्विञन्तात् । दौलेयः । नैधेयः ॥

११२५-दो अचोंसे युक्त जो इकारान्त शब्द, उसके उत्तर अपत्य अर्थमें ढक् प्रत्यय हो, परन्तु इञ्प्रत्ययान्त होनेपर नहीं हो, जैसे-दौलि+ढक्=दौलेयः । नैधेयः ॥

११२६ शुभ्रादिभ्यश्च । ४ । १ । १२३ ॥

ढक् स्यात् । शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः ॥

११२६-अपत्य अर्थमें शुभ्रादि शब्दके उत्तर ढक् प्रत्यय हो, जैसे-शुभ्रस्यापत्यम्, इस विग्रहमें शौभ्रेयः ॥

११२७ विकर्णकुषितकात्काश्यपे । ४ । १ । १२४ ॥

अपत्ये ढक् । वैकर्णेयः। कौषीतकेयः । अन्यो वैकर्णिः । कौषीतकिः ।

११२७-काश्यप अर्थ होनेपर विकर्ण और कुषीतक शब्दके उत्तर अपत्य अर्थमें ढक् प्रत्यय हो, जैसे-वैकर्णेयः । कौषीतकेयः । अन्य अर्थ होनेपर ढक् प्रत्यय नहीं होगा, जैसे-वैकर्णिः । कौषीतकिः ॥

११२८ भ्रुवो वुक् च । ४ । १ । १२५ ॥

चात् ढक् । भ्रौवेयः ॥

११२८-भ्रु शब्दको वुक्का आगम और चकारसे ढक् प्रत्यय हो, जैसे-भ्रौवेयः ॥

११२९ प्रवाहणस्य ढे । ७ । ३ । १२९ ॥

प्रवाहणशब्दस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचो वृद्धिः पूर्वपदस्य तु वा ढे परे । प्रवाहणस्यापत्यं प्रावाहणेयः । प्रवाहणेयः ॥

११२९-ढ प्रत्यय परे रहते प्रवाहण शब्दके उत्तरपदके आद्यच्को नित्य वृद्धि हो और पूर्वपदके आद्यच्को विकल्प करके वृद्धि हो, जैसे-प्रवाहणस्यापत्यम्, इस वाक्यमें प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः ॥

११३० तत्प्रत्ययस्य च । ७ । ३।२० ॥

ढान्तस्य प्रवाहणस्योत्तरपदस्यादेरचो वृद्धिः पूर्वपदस्य तु वा । प्रवाहणेयस्यापत्यं प्रावाहणेयिः । प्रवाहणेयिः । बाह्यतद्धितनिमित्ता वृद्धिर्ढाश्रयेण विकल्पेन बाधितुं न शक्यत इति सूत्रारम्भः ॥

११३०-ढप्रत्ययान्त प्रवाहण शब्दके उत्तरपदके आद्यच्को वृद्धि हो, और पूर्वपदको विकल्प करके वृद्धि हो, जैसे-प्रवाहणेयस्यापत्यम्, इस विग्रहमें प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः । बाह्यतद्धितनिमित्त जो वृद्धि उसको ढप्रत्ययाश्रित विकल्प बाधित नहीं कर सकता, इस कारण यह सूत्रारम्भ हुआ है ॥

११३१ कल्याण्यादीनामिनङ् । ४ । १ । १२६ ॥

एषामिनङादेशः स्यात् ढक् च । काल्याणिनेयः । बान्धकिनेयः ॥

११३१-कल्याणी आदि शब्दोंको इनङ् आदेश और चकारसे ढक् प्रत्यय हो, जैसे-कल्याण्+इनङ्+ढक्=काल्याणिनेयः । बान्धकिनेयः ॥

११३२ कुलटाया वा । ४ । १ । १२७ ॥

इनङ्मात्रं विकल्प्यते ढक् तु नित्यः पूर्वेणैव। कौलटिनेयः । कौलटेयः । सती भिक्षुक्यत्र कुलटा । या तु व्यभिचारार्थं कुलान्यटति तस्याः क्षुद्राभ्यो वेति पक्षे ढ्रक् कौलटेरः ॥

११३२-कुलटा शब्दको विकल्प करके इनङ् आदेश हो, इस सूत्रसे इनङ् आदेशमात्रका विकल्पविधान करतेहैं, ढक् प्रत्यय तो पूर्व सूत्रसे ही नित्य होगा, जैसे-कुलट्+इनङ्+ढक्=कौलटिनेयः । कुलटा+ढक्=कौलटेयः । इस स्थलमें कुलटा शब्दसे सती भिक्षुकी जानना,परन्तु जो स्त्री व्यभिचारके निमित्त अपने कुलको त्याग कर गमन करे उससे अपत्यअर्थमें "क्षुद्राभ्यो वा" इस सूत्रसे ढ्रक् प्रत्यय होगा, जैसे-कौलटेरः ॥

११३३ हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च । ७ । ३ । १९ ॥

हृदाद्यन्ते पूर्वोत्तरपदयोरचामादेरचो वृद्धिर्ञिति णिति किति च । सुहृदोऽपत्यं सौहार्दः । सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः । सक्तुप्रधानाः सिन्धवः सक्तुसिन्धवः तेषु भवः साक्तुसैन्धवः ॥

११३३-ञित्, णित् और कित् प्रत्यय परे रहते हृद्, भग और सिन्धुशब्दान्त प्रातिपदिकमें पूर्वपद और उत्तरपदके अचोंके मध्यमें आद्यच्को वृद्धि हो, जैसे-सुहृदोऽपत्यम्, इस विग्रहमें सौहार्दः । सुभगाया अपत्यम्, इस वाक्यमें सौभागिनेयः । सक्तुप्रधानाः सिन्धवः, इस विग्रहमें सक्तुसिन्धवः । सक्तुसिन्धुषु भवः, इस विग्रहमें साक्तुसैन्धवः ॥

११३४ चटकाया ऐरक् ।४।१।१२८॥

चटकस्येति वाच्यम् ॥ * ॥ लिङ्गविशिष्टपरिभाषया स्त्रिया अपि । चटकस्य चटकाया वा अपत्यं चाटकैरः॥ स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः॥*॥ तयोरेव स्त्र्यपत्यं चटका । अजादित्वाट्टाप् ॥

११३४-चटका शब्दके उत्तर ऐरक् प्रत्यय हो। वार्त्तिककार इस स्थलमें कहतेहैं कि-

(चटकस्येति वाच्यम् *) 'चटक' इस पुंलिङ्ग शब्दके उत्तर ऐरक् प्रत्यय हो ऐसा कहना चाहिये। लिङ्गविशिष्ट परिभाषासे स्त्रीलिङ्ग चटका शब्दसे भी ऐरक् प्रत्यय होगा, जैसे-चटकस्य, चटकाया वा अपत्यम्, इस विग्रहमें चाटकैरः ।

(स्त्रियामपत्ये लुग् वक्तव्यः *) स्त्री सन्तान हो तो ऐरक् प्रत्ययका लुक् हो । तयोरेव स्त्र्यपत्यम्, इस विग्रहमें 'चटका' यह पद सिद्ध हुआ, इस स्थानमें अजादित्वके कारण टाप् हुआ है ।

११३५ गोधाया ढ्रक् । ४ । १ ।१२९॥

गौधेरः । शुभ्रादित्वात्पक्षे ढक् । गौधेयः ॥

११३५-गोधा शब्दके उत्तर ढ्रक् प्रत्यय हो, जैसे-गौधेरः। पक्षमें शुभ्रादित्वके कारण ढक् प्रत्यय करके 'गौधेयः' ऐसा पद सिद्ध होगा ॥

११३६ आरगुदीचाम् ।४।१।१३०॥

गौधारः । रका सिद्धे आकारोच्चारणमन्यतो

विधानार्थम् । जडस्यापत्यं जाडारः । पण्डस्यापत्यं पाण्डारः ॥

११३६-उत्तरदेशीय पण्डितोंके मतमें गोधा शब्दके उत्तर आरक् प्रत्यय हो, जैसे-गौधारः । रक् प्रत्यय करनेसे ही यह पद सिद्ध होता तो आरक् ऐसे आकारयुक्त उच्चारणकी क्या आवश्यकता थी ? तो उसका अभिप्राय कहतेहैं कि, अन्य स्थलमें विधानके निमित्त आकारयुक्त करके कहाहै, जैसे-जडस्यापत्यम्, इस विग्रहमें जाडारः । पण्डस्यापत्यम्, इस वाक्यमें पाण्डारः ॥

११३७ क्षुद्राभ्यो वा । ४ । १ । १३१॥

अङ्गहीनाः शीलहीनाश्च क्षुद्रास्ताभ्यो वा ढ्रक्। पक्षे ढक् । काणेरः। काणेयः । दासेरः । दासेयः॥

११३७-जो अङ्गहीन और शीलहीन हैं, उन स्त्रियोंको क्षुद्रा कहतेहैं, उनके उत्तर विकल्पकरके ढ्रक् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें ढक् होगा, जैसे-काणेरः, काणेयः । दासेरः, दासेयः ॥

११३८ पितृष्वसुश्छण् । ४ ।१।१३२॥

अणोपवादः । पैतृष्वस्रीयः ॥

११३८-पितृष्वसृ शब्दके उत्तर छण् प्रत्यय हो, यह छण् प्रत्यय अण् प्रत्ययका अपवाद अर्थात् विशेषक है, जैसे-पैतृष्वस्रीयः ॥

११३९ ढकि लोपः । ४ । १ । १३३ ॥

पितृष्वसुरन्तलोपः स्याड्ढकि । अत एव ज्ञापकात् ढक् । पैतृष्वसेयः ॥

११३९-ढक् प्रत्यय परे रहते पितृष्वसृ शब्दके अन्तका लोप हो, इसी ज्ञापनके कारण ढक् प्रत्यय हुआ, जैसे-पैतृष्वसेयः[१]॥

११४० मातृष्वसुश्च । ४ । १ । १३४॥

पितृष्वसुर्यदुक्तं तदस्यापि स्यात् । मातृष्वस्रीयः । मातृष्वसेयः ॥

११४०पितृष्वसृ शब्दके उत्तर जो २ विधि उक्त हुईहैं, वह सब विधि मातृष्वसृ शब्दके उत्तर भी हों, जैसे-मातृष्वस्रीयः । मातृष्वसेयः ॥

११४१ चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ।४।१।१३५॥

११४१-चतुष्पाद्जातिवाचक शब्दके उत्तर ढञ् प्रत्यय हो-॥

११४२ ढे लोपोऽकद्र्वाः । ६।४।१४७॥

कद्रूभिन्नस्योवर्णान्तस्य भस्य लोपः स्यात् ढे परे । कामण्डलेयः । कमण्डलुशब्दश्चतुष्पाज्जातिविशेषः ॥

११४२-ढ प्रत्यय परे रहते कद्रु शब्दसे भिन्न जो उवर्णान्त भसंज्ञक शब्द उसके अन्त्य वर्णका लोप हो, जैसे-कामण्डलेयः । कमंडलु शब्दसे चतुष्पाजाति जानना ॥

११४३ गृष्ट्यादिभ्यश्च । ४ । १।१३६॥

एभ्यो ढञ् स्यात् । अणृढकोरपवादः । गार्ष्टेयः। मित्रयोरपत्यम् । ऋष्यणि प्राप्ते ढञ् ॥

११४३-गृष्ट्यादि शब्दोंके उत्तर ढञ् प्रत्यय हो, यह सूत्र अण् और ढक् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-गार्ष्टेयः । मित्रयोरपत्यम्, इस विग्रहमें "ऋष्यन्धक० १११७" इस सूत्रसे अण् प्रत्ययकी प्राप्ति होनेपर, इस सूत्रसे ढञ्विधान कियाहै ॥

११४४ केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः । ७ । ३ । २ ॥

एषां यकारादेरिय् आदेशः स्यात् ञिति णिति किति च तद्धिते परे । इति इयादेशे प्राप्ते ॥

११४४-ञित् णित्, और कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते केकय, मित्रयु और प्रलय शब्दके यकारादिको इय् आदेश हो । इस सूत्रसे इय् आदेशकी प्राप्ति होनेपर-॥

११४५ दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि। ६ । ४ । १७४ ॥

एतानि निपात्यन्ते । इति युलोपः । मैत्रेयः। मैत्रेयौ ॥

११४५-दाण्डिनायन, हास्तिनायन, आथर्वणिक, जैह्माशिनेय, वाशिनायनि, भ्रौणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐक्ष्वाक, मैत्रेय और हिरण्मय यह सम्पूर्ण शब्द निपातनसे सिद्ध हों, इससे युलोप करके 'मैत्रेयः, मैत्रेयौ' यह पद सिद्ध हुए हैं ॥

११४६ यस्कादिभ्यो गोत्रे।२।४।६३॥

एभ्योऽपत्यप्रत्ययस्य लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । मित्रयवः ॥

११४६-तत्कृत बहुत्व अर्थ गम्यमान होनेपर स्त्रीलिङ्गको छोडकर यस्कादि शब्दोंके उत्तर गोत्रप्रत्ययका लुक् हो, जैसे-मित्रयवः ॥

११४७ अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च । २ । ४ । ६५ ॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुक् स्यात् तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम । अत्रयः । भृगवः । कुत्साः । वसिष्ठाः । गोतमाः । अङ्गिरसः ॥

११४७-तत्कृत बहुत्व होनेपर अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम और अङ्गिरस् शब्दोंके उत्तर गोत्र प्रत्ययका लुक् हो, जैसे-अत्रयः । भृगवः । कुत्साः । वसिष्ठाः । गोतमाः । अङ्गिरसः ॥

---

[१] यहां "ओर्गुणः ८४१" इस सूत्रसे 'ओः' इस पदकी अनुवृत्ति होनेसे तथा 'भस्य' इसके साथ विशेष्यविशेषणभावके कारण "येन विधिः० २६" इस सूत्ररूप परिभाषासे तदन्तविधि होनेसे 'उवर्णान्त' ऐसा अर्थ लब्ध हुआ ॥

११४८ बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु। २।४।६६॥

बह्वचः परो य इञ् प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे च वर्तमानस्तस्य लुक् स्यात्।पन्नागाराः।युधिष्ठिराः॥

११४८–प्राच्यगोत्र और भरतगोत्रमें वर्तमान और बहुत अचोंसे युक्त शब्दके उत्तर प्रयुज्यमान इञ् प्रत्ययका लुक् हो, जैसे–पन्नागाराः। युधिष्ठिराः॥

११४९ न गोपवनादिभ्यः।२।४।६७॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुक् न स्यात्। बिदाद्यन्तर्गणोयम्। गौपवनाः। शैग्रवाः॥

११४९–गोपवनादि शब्दोंके उत्तर गोत्रप्रत्ययका लुक् न हो, गोपवनादि बिदादिका अन्तर्गण है, जैसे–गौपवनाः। शैग्रवाः॥

११५० तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे। २।४।६८॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य बहुत्वे लुक् स्यात् द्वन्द्वे। तैकायनयश्च कैतवायनयश्च। तिकादिभ्यः फिञ् तस्य लुक्। तिककितवाः॥

११५०–तिककितवादि शब्दोंके उत्तर द्वन्द्व समासविषयमें बहुत्व अर्थ गम्यमान होनेपर गोत्रप्रत्ययका लुक् हो। तैकायनयश्च कैतवायनयश्च–"तिकादिभ्यः फिञ्११७८"इस सूत्रसे फिञ् प्रत्यय होकर वर्त्तमान सूत्रसे उसका लुक् हुआ, जैसे–तिककितवाः॥

११५१ उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे।२।४।६९॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य बहुत्वे लुग्वा स्यात् द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च।औपकायनाश्च लामकायनाश्च। नडादिभ्यः फक्। तस्य लुक्। उपकलमकाः। औपकायनलामकायनाः। भ्राष्टककपिष्ठलाः। भ्राष्टकिकापिष्ठलयः। लमकाः। लामकायनाः॥

११५१–उपकादि शब्दोंके उत्तर द्वन्द्व वा अद्वन्द्व दोनोंमें बहुत्व अर्थ गम्यमान होनेपर गोत्र प्रत्ययका विकल्प करके लुक् हो,जैसे–औपकायनाश्च लामकायनाश्च–"नडादिभ्यः फक्११०१"इससे फक् प्रत्यय होकर प्रस्तुत सूत्रसे उसका लुक् करके उपकलमकाः, औपकायनलामकायनाः। भ्राष्टककपिष्ठलाः, भ्राष्टकिकापिष्ठलयः। उपकाः, औपकायनाः। लमकाः,लामकायनाः॥

११५२ आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच्। २।४।७०॥

एतयोरवयवस्य गोत्रप्रत्ययस्याऽणो यञश्च बहुषु लुक् स्यादवशिष्टस्य प्रकृतिभागस्य यथासंख्यमगस्ति कुण्डिनच् एतावादेशौ स्तः। अगस्तयः। कुण्डिनाः॥

११५२–आगस्त्य और कौण्डिन्य इन दो शब्दोंका अवयवीभूत जो गोत्रप्रत्ययसम्बन्धी अण् और यञ् प्रत्यय उनके बहुवचनमें और अवशिष्ट भागके स्थानमें यथाक्रमसे अगस्ति और कुण्डिनच् आदेश हों,जैसे–अगस्तयः। कुण्डिनाः॥

११५३ राजश्वशुराद्यत्।४।१।१३७॥

राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्॥ *॥

११५३–राजन् और श्वशुर शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो। जाति अर्थ होनेपर ही राजन् शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो ऐसा कहना चाहिये *॥

११५४ ये चाऽभावकर्मणोः।६।४।१६८॥

यादौ तद्धिते परेऽन्प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः। राजन्यः। श्वशुर्यः। जातिग्रहणाच्छूद्रादावुत्पन्नो राजनः॥

११५४–भाव तथा कर्म्म वाच्य न होनेपर यकार आदिमें है जिसके ऐसे तद्धित प्रत्यय परे रहते अन् इस अवयवको प्रकृतिभाव हो, अर्थात् टिका लोप नहीं हो, जैसे–राजन्यः। श्वशुर्यः। सूत्रमें जातिग्रहणके कारण शूद्रादिमें उत्पन्न होनेपर 'राजनः' ऐसा पद होगा। (इससे क्षत्रियजातिके राजामें ही यत् होगा)॥

११५५ अन्।६।४।१६७॥

अणि अन्प्रकृत्या स्यात्। इति टिलोपो न। अभावकर्मणोः किम्। राज्ञः कर्म भावो वा राज्यम्॥

११५५–अण् प्रत्यय परे रहते अन्को प्रकृतिभाव हो, और भाव तथा कर्म वाच्यमें विहित तद्धित प्रत्यय परे रहते नहीं हो, इस कारण टिका लोप नहीं हुआ, जैसे–राजनः। जिस स्थानमें भाव और कर्मवाचक तद्धित होगा उस स्थानमें राज्ञो भावः कर्म वा, इस विग्रहमें 'राज्यम्' ऐसा होगा॥

११५६ संयोगादिश्च।६।४।१६६॥

इन्प्रकृत्या स्यादणि परे। चक्रिणोपत्यं चाक्रिणः॥

११५६–अण् प्रत्यय परे रहते आदिमें संयोग स्थित रहते इन्को प्रकृतिभाव हो, जैसे–चक्रिणोऽपत्यम्, इस वाक्यमें चाक्रिणः॥

११५७ न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः।६।४।१७०॥

मपूर्वोऽन्प्रकृत्या न स्यादपत्येऽणि। भाद्रसामः। मपूर्वः किम्। सौत्वनः। अपत्ये किम्। चर्मणा परिवृतश्चार्मणो रथः। अवर्मणः किम्। चक्रवर्मणोऽपत्यं चाक्रवर्मणः॥ वा हितनाम्न इति वाच्यम्॥ *॥ हितनाम्नोपत्यं हैतनामः। हैतनामनः॥

११५७-अपत्य अर्थमें विहित अण् प्रत्यय परे रहते वर्मन् शब्दसे भिन्न जिसके पूर्वमें मकार है ऐसे अन्को प्रकृतिभाव न हो, जैसे-भाद्रसामः ।

मकारपूर्वक न होनेपर प्रकृतिभाव होगा, जैसे-सौत्वनः ।

अपत्यार्थक अण् प्रत्यय न होनेपर प्रकृतिभाव होगा, जैसे-चर्मणा परिवृतः चार्मणो रथः ।

'अवर्मणः' क्यों कहा ? तो वर्मन् शब्दसे अपत्यार्थक अण् प्रत्यय परे रहते प्रकृतिभावका निषेध न हो, जैसे-चक्रवर्मणोऽपत्यम्, इस विग्रहमें चाक्रवर्मणः ।

हितनामन् शब्दके अन्को विकल्प करके प्रकृतिभाव हो* जैसे-हितनाम्नोऽपत्यम्, इस वाक्यमें हैतनामः । विकल्प पक्षमें हैतनामनः ॥

११५८ ब्राह्मो जातौ । ६।४।१७१॥

योगविभागोऽत्र कर्तव्यः। ब्राह्म इति निपात्यतेऽनपत्येऽणि । ब्राह्मं हविः । ततो जातौ । अपत्ये जातावणि ब्रह्मणष्टिलोपो न स्यात् । ब्रह्मणोपत्यं ब्राह्मणः । अपत्ये किम् । ब्राह्मी औषधिः ॥

११५८-इस स्थलमें योगविभाग अर्थात् भिन्न सूत्र करना उचित है, अनपत्यार्थक अण् प्रत्यय परे रहते 'ब्राह्मः' यह पद निपातनसे सिद्ध हो, जैसे-ब्राह्मं हविः । अब 'जातौ' इसका अर्थ कहतेहैं, अपत्यार्थक अण् प्रत्यय परे रहते और जाति होनेपर ब्रह्मन् शब्दकी टिका लोप न हो, जैसे-ब्रह्मणोऽपत्यम्, इस विग्रहमें ब्राह्मणः । जिस स्थानमें अपत्यार्थक प्रत्यय नहीं होगा, उस स्थानमें 'ब्राह्मी' ऐसा होगा । ब्राह्मी शब्दसे औषधि जानना ॥

११५९ औक्ष्मनपत्ये ।६ । ४ ।१७३ ॥

अणि टिलोपो निपात्यते । औक्षं पदम् । अनपत्ये किम् । उक्ष्णोपत्यम्-॥

११५९-अनपत्यार्थक अण् प्रत्यय परे रहते औक्षन् शब्दमें निपातनसे टिका लोप हो, जैसे-उक्ष्ण इदम् औक्षं पदम् । अपत्यार्थक प्रत्यय होनेपर उक्ष्णोऽपत्यम्, इस विग्रहमें 'औक्ष्णः' इस पदमें टिका लोप नहीं हुआ ॥

११६० षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि । ६। ४ । १३५ ॥

षपूर्वो योऽन् तस्य हनादेश्च भस्यातो लोपोऽणि। औक्ष्णः।ताक्ष्णः।भ्रौणघ्नः। धृतराज्ञोपत्यं धार्तराज्ञः षपूर्वेति किम् । साम्नोऽयं सामनः । अणि किम् । ताक्षण्यः ॥

११६०-अण् प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक जो षकारपूर्वक अन् और हन् आदि शब्द, उनके अकारका लोप हो, जैसे-औक्ष्णः । ताक्ष्णः । भ्रौणघ्नः । 'धृतराज्ञोऽपत्यम्' इस विग्रहमें धार्तराज्ञः ।

षकारपूर्वक न होनेपर अकारका लोप न हो । साम्नोऽयम्, इस वाक्यमें सामनः ।

अण् प्रत्यय परे न रहते अकारका लोप न हो, जैसे-ताक्षण्यः ॥

११६१ क्षत्राद् घः । ४।१।१३८ ॥

क्षत्रियः । जातावित्येव । क्षात्रिरन्यः ॥

११६१-जाति होनेपर क्षत्र शब्दके उत्तर घप्रत्यय हो, इञ्का अपवाद है, जैसे-क्षत्रियः । अन्यार्थमें क्षात्रिः ॥

११६२ कुलात्खः ।४ ।१।१३९ ॥

कुलीनः । तदन्तादपि । उत्तरसूत्रेऽपूर्वपदादिति लिङ्गात् । आढ्यकुलीनः ॥

११६२-कुल शब्दके उत्तर ख प्रत्यय हो, जैसे-कुलीनः। उत्तर सूत्रमें अपूर्वपद अर्थात् जिसके पूर्वमें कोई पद न हो ऐसे कुल शब्दके उत्तर ख प्रत्ययके निर्देशके कारण कुलशब्दान्त जो प्रातिपदिक उसके उत्तर भी ख प्रत्यय होगा, जैसे-आढ्यकुलीनः ॥

११६३ अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ । ४ । १ । १४० ॥

कुलादित्येव । पक्षे खः । कुल्यः । कौलेयकः । कुलीनः । पदग्रहणं किम् । बहुकुल्यः । बाहुकुलेयकः । बहुकुलीनः ॥

११६३-यदि कुल शब्दके पूर्वमें अन्य कोई पद न हो तो उसके उत्तर विकल्प करके यत् और ढकञ् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें ख प्रत्यय हो,जैसे-कुल्यः। कौलेयकः। कुलीनः। अपूर्वपदग्रहण करनेसे बहुकुल्यः[1] । बाहुकुलेयकः । बहुकुलीनः इत्यादि पद सिद्ध हुए हैं । (यह अप्राप्तविभाषा है) ॥

११६४ महाकुलादञ्खञौ।४।१।१४१॥

अन्यतरस्यामित्यनुवर्तते । पक्षे खः । माहाकुलः । माहाकुलीनः । महाकुलीनः ॥

११६४-महाकुल शब्दके उत्तर अन् और खञ् प्रत्यय हो,विकल्पपक्षमें ख प्रत्यय हो,जैसे-माहाकुलः । माहाकुलीनः। महाकुलीनः ॥

११६५ दुष्कुलाड्ढक ।४।१।१४२॥

पूर्ववत्पक्षे खः । दौष्कुलेयः । दुष्कुलीनः ॥

११६५-दुष्कुल शब्दके उत्तर ढक् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें ख प्रत्यय हो, जैसे-दौष्कुलेयः । पक्षमें दुष्कुलीनः ॥

११६६ स्वसुश्छः । ४ । १।१४३ ॥

स्वस्रीयः ॥

११६६-स्वसृ शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-स्वस्रीयः ॥

११६७ भ्रातुर्व्यच्च । ४ । १ । १४४ ॥

चाच्छः । अणोपवादः ।भ्रातृव्यः।भ्रात्रीयः॥

---

[1] आशय यह है कि, सुबन्त कुल शब्दसे " विभाषा सुपः० २०२३ " से प्रकृतिसे पूर्व बहुच् (बहु) प्रत्यय होकर बहुकुल शब्दसे उक्त प्रत्यय हुए हैं, इसलिये बहुके पूर्वपद न होनेसे ' अपूर्वपदात् ' यह निषेध न लगा, यदि पदग्रहण न करते, तो यहां भी सपूर्वक होनेसे 'अपूर्वात्' यह निषेध लग जाता ॥

११६७-अपत्यार्थमें भ्रातृ शब्दके उत्तर व्यत् प्रत्यय हो और चकारनिर्देशके कारण छ प्रत्यय भी हो, यह सूत्र अण् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-भ्रातृव्यः। भ्रात्रीयः॥

११६८ व्यन्त्सपत्ने। ४। १। १४५॥

भ्रातुर्व्यन् स्यादपत्ये प्रकृतिप्रत्ययसमुदायेन शत्रौ वाच्ये। भ्रातृव्यः शत्रुः पाप्मना भ्रातृव्येणेति तूपचारात्॥

११६८-यदि प्रकृति और प्रत्यय मिलित होकर शत्रुवाचक हों तो अपत्यार्थमें भ्रातृ शब्दके उत्तर व्यन् प्रत्यय हो, जैसे-भ्रातृव्यः-शत्रुः। 'पाप्मना भ्रातृव्येण' इस स्थलमें "अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मा पापं किल्बिषकल्मषम्" इस अमरकोषके अनुसार पाप्मन् शब्द पाप अर्थका बोधक है, इस लिये 'भ्रातृव्यः'में व्यन् प्रत्यय नहीं होना चाहिये कारण कि, भ्राताका अपत्य पाप नहीं होसकता? इस शंकाको मनमें रखके समाधान देतेहैं कि, 'इति तूपचारात् इति' अर्थात् पाप्मन् शब्द उपचार (लक्षणा) से पापी पुरुषका बोधक है, तब कोई बाध नहीं है॥

११६९ रेवत्यादिभ्यष्ठक्। ४। १। १४६॥

११६९-रेवत्यादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो॥

११७० ठस्येकः। ७। ३। ५०॥

अंगात्परस्य ठस्येकादेशः स्यात्। रैवतिकः॥

११७०-अङ्गके परे ठ प्रत्ययके स्थानमें इक आदेश हो, जैसे-रैवतिकः॥

११७१ गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च। ४। १। १४७॥

गोत्रं या स्त्री तद्वाचकाच्छब्दात् णठकौ स्तः कुत्सायाम्। सामर्थ्याद्यूनि। गार्ग्या अपत्यं गार्गो गार्गिको वा जाल्मः॥ भस्याढे तद्धिते इति पुंवद्भावाद्गार्ग्यशब्दाण्णठकौ। यस्येति लोपः। आपत्यस्येति यलोपः॥

११७१-कुत्सा अर्थ होनेपर गोत्रवाचक स्त्रीलिङ्ग शब्दके उत्तर ण और ठक् प्रत्यय हो। ढक्का अपवाद है। गार्ग्या अपत्यम्, इस वाक्यमें गार्गो गार्गिको वा जाल्मः। "भस्याढे तद्धिते *" इससे पुंवद्भाव प्राप्त होनेपर गार्ग्य शब्दके उत्तर ण और ढक् प्रत्यय हुआ। "यस्येति च-३११" इस सूत्रसे अकारका लोप होकर और "आपत्यस्य० १०८२" इस सूत्रसे यकारका लोप हुआहै॥

११७२ वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम्। ४। १। १४८॥

सुवीरदेशोद्भवाः सौवीराः। वृद्धात्सौवीरगोत्राद्यूनि बहुलं ठक् स्यात् कुत्सायाम्। भागवित्तेर्भागवित्तिकः। पक्षे फक्। भागवित्तायनः॥

११७२-सुवीरदेशोद्भव मनुष्यको सौवीर कहतेहैं, कुत्सार्थ गम्यमान होनेपर युवापत्य अर्थमें सौवीरगोत्रवाचक जो वृद्ध (वृद्धसंज्ञक) शब्द उसके उत्तर बहुल (विकल्प) करके ठक् प्रत्यय हो, जैसे-भागवित्तेः-भागवित्तिकः। पक्षमें फक् प्रत्यय होगा, जैसे-भागवित्तायनः॥

११७३ फेश्छ च। ४। १। १४९॥

फिञन्तात्सौवीरगोत्रादपत्ये छः ठक् च कुत्सने गम्ये। यमुन्दस्यापत्यं यामुन्दायनिः। तिकादित्वात् फिञ्। तस्यापत्यं यामुन्दायनीयः। यामुन्दायनिकः। कुत्सने किम्। यामुन्दायनिः। औत्सर्गिकस्याणो ण्यक्षत्त्रियेति लुक्। सौवीरेति किम्। तैकायनिः॥

११७३-कुत्सा अर्थ गम्यमान होनेपर अपत्य अर्थमें सौवीरगोत्रवाचक फिञ्प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर छ और ठक् प्रत्यय हो, जैसे-यमुन्दस्यापत्यम्=यामुन्दायनिः। तिकादित्वके कारण फिञ् प्रत्यय करके तदन्तको तस्यापत्यम्, इस विग्रहमें यामुन्दायनीयः, यामुन्दायनिकः।

कुत्सार्थ न होनेपर 'यामुन्दायनिः' ऐसा होगा। 'औत्सर्गिकस्याणो ण्यक्षत्त्रियेति' अर्थात् "ण्यक्षत्त्रिय० १२७६" इस सूत्रसे अण् प्रत्ययका लुक् होताहै।

सौवीरसे भिन्नस्थलमें छ और ठक् प्रत्यय नहीं होगा, जैसे-तैकायनिः॥

११७४ फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ। ४। १। १५०॥

सौवीरेषु। नेह यथासंख्यमल्पाच्तरस्य परनिपाताल्लिंगादिति वृत्तिकारः। भाष्ये तु यथासंख्यमेवेति स्थितम्। फाण्टाहृतः। फाण्टाहृतायनिः। मैमतः। मैमतायनिः॥

११७४-सौवीरार्थ होनेपर फाण्टाहृति और मिमत शब्दके उत्तर ण और फिञ् प्रत्यय हो। फक्का अपवाद है।

वृत्तिकार कहतेहैं कि, इस(११७४) सूत्रसे ण और फिञ् प्रत्ययका यथासंख्यसे विधान नहीं होगा। कारण कि, सूत्रमें अल्पाच्विशिष्टका पूर्व निर्देश है। भाष्यमें तो यथासंख्यसे ही विधान है। वृत्तिकारके मतसे उदाहरण देतेहैं, फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतायनिः। मैमतः, मैमतायनिः॥

११७५ कुर्वादिभ्यो ण्यः। ४। १। १५१॥

अपत्ये। कौरव्या ब्राह्मणाः। वावदूक्याः॥ सम्राजः क्षत्रिये॥ * ॥ साम्राज्यः। साम्राजोन्यः॥

११७५-अपत्यार्थमें कुरु आदि शब्दोंके उत्तर ण्य प्रत्यय हो, इञ्का अपवाद है, जैसे-कौरव्याः ब्राह्मणाः। वावदूक्याः॥

क्षत्त्रिय होनेपर सम्राज् शब्दके उत्तर ण्य प्रत्यय हो * जैसे-साम्राज्यः। अन्य अर्थमें साम्राजः, ऐसा पद होगा॥

११७६ सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च । ४ । १ । १५२ ॥

एभ्यो ण्यः । एति संज्ञायामिति सस्य षः । हारिषेण्यः । लाक्षण्यः । कारिः शिल्पी तस्मात् । तान्तुवाय्यः । कौंभकार्यः । नापित्यः ॥

११७६-सेनान्त शब्द, लक्षण शब्द और कारि अर्थात् शिल्पिवाचक शब्द, इनके उत्तर ण्य प्रत्यय हो, "एति संज्ञायाम्० १०२३" इस सूत्रसे सकारके स्थानमें षकार होताहै, जैसे-हारिषेण्यः । लाक्षण्यः । कारि (शिल्पी) वाचकके उत्तर ण्य प्रत्यय होकर जैसे-तांतुवाय्यः । कौंभकार्यः । नापित्यः ॥

११७७ उदीचामिञ् । ४ । १ । १५३॥

हारिषेणिः । लाक्षणिः । तान्तुवायिः । कौम्भकारिः । नापितात्तु परत्वात् फिञेव । नापितायनिः ॥ तक्ष्णोऽण उपसंख्यानम् ॥ * ॥ ताक्ष्णः । पक्षे ताक्षण्यः ॥

११७७-सेनान्त, लक्षण और कारि (शिल्पी) वाचक शब्दके उत्तर, उत्तरदेशीय आचार्योंके मतमें इञ् प्रत्यय हो, जैसे-हारिषेणिः । लाक्षणिः । तान्तुवायिः । कौंभकारिः । नापित शब्दके उत्तर तो परत्वके कारण फिञ् प्रत्यय ही होगा, जैसे-नापितायनिः ॥

तक्षन् शब्दके उत्तर अण् प्रत्ययका उपसंख्यान हो * "वपूर्व० ११६०"इस सूत्रसे अन्के अकारका लोप होताहै, जैसे-ताक्ष्णः । विकल्प पक्षमें ताक्षण्यः ॥

११७८ तिकादिभ्यः फिञ् ।४।१।१५४॥

तैकायनिः ॥

११७८-तिकादि शब्दोंके उत्तर फिञ् प्रत्यय हो, तैकायनिः ॥

११७९ कौसल्यकार्मार्याभ्यां च । ४ । १ । १५५ ॥

अपत्ये फिञ् । इञोपवादः ॥ परमप्रकृतेरेवायमिष्यते ॥ * ॥ प्रत्ययसंनियोगेन प्रकृतिरूपं निपात्यते। कोसलस्याऽपत्यं कौसल्यायनिः। कर्मारस्यापत्यं कार्मार्यायणिः ॥ छागवृषयोरपि ॥ * ॥ छाग्यायनिः । वार्ष्यायणिः ॥

११७९-कौसल्य और कार्मार्य शब्दके उत्तर अपत्यार्थमें फिञ् प्रत्यय हो, यह फिञ् प्रत्यय इञ् प्रत्ययका अपवाद अर्थात् विशेषक है ॥

यह फिञ् प्रत्यय कोसल और कर्मार इस प्रकृतिके उत्तर ही हो (एतदर्थ अन्य शब्दके उत्तर न हो)। फिञ् प्रत्ययके सन्नियोगसे कौसल्य और कार्मार्य इन प्रकृतिरूपोंका निपातन होताहै, जैसे-कोसलस्यापत्यम् , इस विग्रहमें कौसल्यायनिः । कर्मारस्यापत्यम्, इस विग्रहमें कार्मार्यायणिः ॥

छाग और वृष शब्दके उत्तर फिञ् प्रत्यय हो * जैसे-छाग्यायनिः । वार्ष्यायणिः ॥

११८० अणो द्व्यचः । ४ । १।१५६॥

अपत्ये फिञ् । इञोऽपवादः । कार्त्रायणिः । अण इति किम् । दाक्षायणः । द्व्यचः किम् । औपगविः ॥ त्यदादीनां फिञ् वा वाच्यः ॥ * ॥ त्यादायनिः । त्यादः ॥

११८०-दोस्वरयुक्त अण्प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर अपत्यार्थमें फिञ् प्रत्यय हो । यह फिञ् इञ् प्रत्ययका अपवादक है, जैसे-कार्त्रायणिः । जिस स्थानमें अण् प्रत्यय नहीं होगा उस स्थानमें इञ् नहीं होगा, जैसे-दाक्षायणः । जिस स्थानमें दो अच् नहीं होंगे, उस स्थानमें 'औपगविः' ऐसा होगा ।

त्यदादिके उत्तर विकल्प करके फिञ् प्रत्यय हो * जैसे-त्यदायनिः, त्यादः ॥

११८१उदीचां वृद्धादगोत्रात्४।१।१५७।

आम्रगुप्तायनिः । प्राचां तु । आम्रगुप्तिः । वृद्धात्किम् दाक्षिः । अगोत्रात्किम् । औपगविः॥

११८१-उत्तरदेशीय आचार्योंके मतमें गोत्रप्रत्ययान्तसे भिन्न जो वृद्धसंज्ञक शब्द, उसके उत्तर फिञ् प्रत्यय हो । यह फिञ इञ्का बाधक है, जैसे-आम्रगुप्तस्यापत्यम्=आम्रगुप्तायनिः । प्राचीनोंके मतमें तो 'आम्रगुप्तिः' ऐसा पद होगा । वृद्धसंज्ञक शब्दके उत्तर न होनेपर 'दाक्षिः' ऐसा पद होगा । जिस स्थानमें गोत्रप्रत्ययान्तसे भिन्न नहीं होगा, उस स्थानमें औपगविः, ऐसा होगा ॥

११८२ वाकिनादीनां कुक् च । ४ । १ । १५८ ॥

अपत्ये फिञ् वा । वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः । वाकिनिः ॥

११८२-वाकिनादि शब्दोंको अपत्यार्थमें कुक्का आगम हो और चकारसे विकल्प करके फिञ् प्रत्यय भी हो, जैसे-वाकिनस्यापत्यम्, इस विग्रहमें वाकिनकायनिः, वाकिनिः ॥

११८३ पुत्रान्तादन्यतरस्याम् । ४ । १ । १५९ ॥

अस्माद्यः फिञ् सिद्धस्तस्मिन्परे पुत्रान्तस्य वा कुक् विधीयते । गार्गीपुत्रकायणिः । गार्गीपुत्रायणिः । गार्गीपुत्रिः ॥

११८३-पुत्रान्त शब्दके उत्तर विकल्पकरके फिञ् प्रत्यय हो और विकल्प करके कुक्का आगम हो । इञ्का अपवाद है । "उदीचाम्० ११८१" इस सूत्रसे विकल्प करके फिञ् प्रत्यय सिद्ध रहते फिञ् प्रत्यय परे रहते पुत्रान्त शब्दको इस सूत्रसे विकल्प करके कुक्के आगममात्रका विधान है, जैसे-गार्गीपुत्रस्यापत्यम्=गार्गीपुत्रकायणिः । गार्गीपुत्रायणिः । गार्गीपुत्रिः ॥

११८४ प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलम् । ४ । १ । १६० ॥

ग्लुचुकायनिः ॥

११८४-प्राचीन पंडितोंके मतमें वृद्धसंज्ञक शब्दसे भिन्न शब्दके उत्तर बहुल करके फिन् प्रत्यय हो, जैसे-ग्लुचुकायनिः ॥

११८५ मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च । ४ । १ । १६१ ॥

समुदायार्थो जातिः । मानुषः । मनुष्यः ॥

११८५-प्रकृति और प्रत्यय मिलकर यदि जातिवाचक हों, तो मनु शब्दके उत्तर अञ् और यत् प्रत्यय हों, और षुक्का आगम हो, जैसे-मानुषः । मनुष्यः * ॥

११८६ जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ् । ४ । १ । १६८ ॥

जनपदक्षत्रिययोर्वाचकादञ् स्यादपत्ये । दाण्डिनायनेतिसूत्रे निपातनाट्टिलोपः। ऐक्ष्वाकः। ऐक्ष्वाकौ ॥ क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत् ॥ * ॥ तद्राजमाचक्षाणस्तद्राज इत्यन्वर्थसंज्ञासामर्थ्यात् । पञ्चालानां राजा पाञ्चालः ॥ पूरोरण् वक्तव्यः ॥ * ॥ पौरवः ॥ पाण्डोर्ड्यण् ॥ * ॥ पाण्ड्यः ॥

११८६-जनपद और क्षत्रियवाचक शब्दके उत्तर अपत्यार्थमें अञ् प्रत्यय हो । "दांडिनायन० ११४५" इस सूत्रमें निपातनसे टिका लोप होकर-ऐक्ष्वाकः, ऐक्ष्वाकौ, यह दो पद सिद्ध हुए हैं ।

क्षत्रियतुल्य जनपदवाचक शब्दके उत्तर, 'उसका राजा' इस अर्थमें अपत्यकी समान प्रत्यय हो * तद्राजमाचक्षाणः, इस विग्रहमें तद्राजः, इस अर्थानुगतसंज्ञाके बलसे पञ्चालानां राजा, इस वाक्यमें पाञ्चालः ।

पूरु शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो * जैसे-पौरवः ।

पांडु शब्दके उत्तर ड्यण् प्रत्यय हो * जैसे-पांड्यः ॥

११८७ साल्वेयगान्धारिभ्यां च । ४ । १ । १६९ ॥

आभ्यामपत्येऽञ् वृद्धेदिति ञ्यङोऽपवादः । साल्वेयः । गान्धारः । तस्य राजन्यप्येवम् ॥

११८७-साल्वेय और गांधारि शब्दोंके उत्तर अपत्यार्थमें अञ् प्रत्यय हो । यह "वृद्धेत्० ११८९" इससे विधीयमान ञ्यङ् प्रत्ययका अपवाद है, जैसे-साल्वेयानामपत्यम्=साल्वेयः । गांधारः । तस्य राजा, ऐसे अर्थमें भी ऐसे (अपत्यवत्) ही प्रत्यय होंगे ॥

* अपत्यमें अण् होगा, यथा-मानवी प्रजा ॥

११८८ द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् । ४ । १ । १७० ॥

अञोपवादः । द्व्यच् । आङ्गः । वाङ्गः । सौह्मः । मागधः । कालिङ्गः । सौरमसः । तस्य राजन्यप्येवम् ॥

११८८-दोस्वरयुक्त, मगध, कलिङ्ग और सूरमस शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो । यह अञ् प्रत्ययका अपवाद है । द्व्यच् जैसे-अङ्गानामपत्यम्, तेषां राजा वा=आङ्गः । वाङ्गः । सौह्मः । मागधः । कालिङ्गः । सौरमसः । तस्य राजा, इस अर्थमें भी पूर्ववत् (अपत्यवत्) कार्य होगा ॥

११८९ वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् । ४ । १ । १७१ ॥

वृद्धात् । आम्बष्ठ्यः । सौवीर्यः । इत् । आवन्त्यः । कौसल्यः।अजादस्यापत्यम् आजाद्यः॥

११८९-वृद्धसंज्ञक शब्द, इकारान्त शब्द, कोसल शब्द और अजाद शब्दके उत्तर ञ्यङ् प्रत्यय हो । वृद्धसंज्ञक जैसे-आम्बष्ठानामपत्यम्, तेषां राजा वा=आम्बष्ठ्यः । सौवीर्यः । इकारान्त, जैसे-आवन्त्यः । कौसल्यः । अजादस्यापत्यम्, इस विग्रहमें आजाद्यः ॥

११९० कुरुनादिभ्यो ण्यः।४।१।१७२॥

कौरव्यः । नैषध्यः । सनैषधस्यार्थपतेरित्यादौ तु शैषिकोऽण् ॥

११९०-कुरु और नकारादि शब्दोंके उत्तर ण्य प्रत्यय हो, जैसे-कुरूणामपत्यं तेषां राजा वा=कौरव्यः । नैषध्यः । 'स नैषधस्यार्थपतेः' इत्यादि प्रयोगमें तो शेषाधिकारका अण् प्रत्यय जानना ॥

११९१ साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् । ४ । १ । १७३ ॥

साल्वो जनपदस्तदवयवा उदुम्बरादयस्तेभ्यः प्रत्यग्रथादिभ्यस्त्रिभ्यश्च इञ् । अञोपवादः। औदुम्बरिः । प्रात्यग्रथिः । कालकूटिः । आश्मकिः । राजन्यप्येवम् ॥

११९१-साल्व पदसे तदाख्य जनपदविशेष जानना, उसके अवयव जो उदुम्बरादि शब्द, तिनके उत्तर और प्रत्यग्रथ, कलकूट और अश्मक शब्दके उत्तर इञ् प्रत्यय हो। यह इञ् प्रत्यय अञ् प्रत्ययका अपवाद है, जैसे-औदुम्बरिः। प्रात्यग्रथिः । कालकूटिः । आश्मकिः । तद्राजार्थमें भी अपत्यवत् कार्य होगा ॥

११९२ ते तद्राजाः । ४ । १ । १७४ ॥

अञादय एतत्संज्ञाः स्युः ॥

११९२-"जनपद० ४ । १।१६८" से लेकर यहांतक विहित अञ् आदि प्रत्ययोंकी तद्राज संज्ञा हो ॥

११९३ तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम् । २ । ४ । ६२ ॥

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् स्यात्तदर्थकृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । इक्ष्वाकवः । पञ्चाला इत्यादि । कथं तर्हि कौरव्याः पशवः, तस्यामेव रघोः पाण्डया इति च । कौरव्ये पाण्डये च साधव इति समाधेयम् । रघूणामन्वयं वक्ष्ये, निरुध्यमाना यदुभिः कथंचिदिति तु रघुयदुशब्दयोस्तदपत्ये लक्षणया ॥

११९३–तदर्थ (तद्राजसंज्ञकप्रत्ययार्थ) कृत बहुत्व होने- पर तद्राजार्थक प्रत्ययोंका लुक् हो, स्त्रीलिङ्गमें लुक् न हो, जैसे–इक्ष्वाकवः । पञ्चालाः–इत्यादि । इस सूत्रके रहते 'कौरव्याः पशवः' और 'तस्यामेव रघोः पांड्याः' इत्यादि स्थलोंमें 'कौरव्याः' और 'पांड्याः' किस प्रकार सिद्ध हुए ? इस शंकापर कहतेहैं कि, इस स्थलमें "तत्र साधुः" इस सूत्रसे 'कौरव्ये पाण्डये च साधवः' इस विग्रहमें यत् प्रत्यय करके उक्त दोनों पद सिद्ध हुए हैं । 'रघूणामन्वयं वक्ष्ये' इत्यादि स्थलोंमें और 'निरुध्यमाना यदुभिः कथञ्चित्' इत्यादि स्थलोंमें लक्षणाद्वारा रघु और यदु शब्दसे तदपत्य कहाहै, (नहीं तो तद्राजसंज्ञक प्रत्यय न होनेके कारण लुक् न होकर 'राघवाणाम्, यादवानाम्' ऐसे होजाते) ॥

११९४ कम्बोजाल्लुक् । ४ । १ । १७५ ॥

अस्मात्तद्राजस्य लुक् । कम्बोजः । कम्बोजौ ॥ कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ चोलः । शकः । द्व्यच्लक्षणस्याणो लुक् । केरलः । यवनः । अञो लुक् । कम्बोजाः समरे इति पाठः सुगमः । दीर्घपाठे तु कम्बोजोऽभिजनो येषामित्यर्थः । सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञावित्यण् ॥

११९४–कम्बोज शब्दके उत्तर तद्राजसंज्ञक प्रत्ययका लुक् हो, जैसे–कम्बोजस्यापत्यम्, तेषां राजा वा=कम्बोजः । कम्बोजौ ।

कम्बोजादि शब्दोंके उत्तर तद्राजसंज्ञक प्रत्ययोंका लुक् हो ऐसा कहना चाहिये * जैसे–चोलः । शकः । यहां दोअच्- निमित्तक जो अण् उसका लुक् हुआहै । केरलः । यवनः । इनमें अञ् प्रत्ययका लुक् हुआहै । 'कम्बोजाः समरे' यह पाठ सुगम है । जिस स्थानमें दीर्घ पाठ है वहां 'कम्बोजोऽभिजनो येषाम्' ऐसा अर्थ जानना । "सिंधुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ १४७३" इस सूत्रसे इस स्थानमें अण् प्रत्यय हुआ है ॥

११९५ स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च । ४ । १ । १७६ ॥

तद्राजस्य लुक् स्यात् । अवन्ती । कुन्ती । कुरूः ॥

११९५–स्त्रीलिङ्गमें अवन्ति, कुन्ति और कुरु शब्दके उत्तर तद्राजसंज्ञक प्रत्ययोंका लुक् हो, जैसे–अवन्तीनामपत्यम्, तेषां राज्ञी वा=अवन्ती । कुन्ती । कुरूः ॥

११९६ अतश्च । ४ । १ । १७७ ॥

तद्राजस्याकारस्य स्त्रियां लुक् स्यात् । शूरसेनी । मद्री । कथं माद्रीसुताविति । ह्रस्व एव पाठ इति हरदत्तः । भर्गादित्वं वा कल्प्यम् ॥

११९६–स्त्रीलिङ्गमें तद्राजसंज्ञक प्रत्ययोंके अकारका लुक् हो, जैसे–शूरसेनी । मद्री (ङीष्), तो 'माद्रीसुतौ' इस स्थलमें किस प्रकार माद्री हुआ ? इसपर हरदत्त कहतेहैं कि, इस स्थलमें ह्रस्व पाठ ही श्रेष्ठ है, अथवा भर्गादि (११९७) गणमें इसकी कल्पना करनी चाहिये ॥

११९७ न प्राच्यभर्गादि यौधेयादिभ्यः । ४ । १ । १७८ ॥

एभ्यस्तद्राजस्य न लुक् । पाञ्चाली । वैदर्भी । आङ्गी । वाङ्गी । मागधी । एते प्राच्याः । भार्गी । कारूशी । कैकयी । केकयीत्यत्र तु जन्यजनकभावलक्षणे पुंयोगे ङीष् । युधा, शुक्रा, आभ्यां द्व्यच इति ढक् । ततः स्वार्थे पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञावित्यञ् । शार्ङ्गरवाद्यञ इति ङीन् । अतश्चेति लुकि तु ढगन्तत्वात् ङीप्युदात्तनिवृत्तिस्वरः स्यात् । यौधेयी । शौक्रेयी ॥

११९७–प्राच्यसंज्ञक; भर्गादि और यौधेयादि शब्दोंके उत्तर तद्राजसंज्ञक प्रत्ययका लुक् न हो, जैसे–पाञ्चाली । वैदर्भी । अङ्गानामपत्यम्, तद्राज्ञी वा=आङ्गी । वाङ्गी । मागधी । यह प्राच्यसंज्ञक हैं । भार्गी । कारूशी । कैकेयी । केकयी, इस स्थानमें जन्यजनकभावलक्षण पुंयोगमें ङीष् प्रत्यय हुआहै । यौधेयी और शौक्रेयी इन दो स्थलोंमें युध और शुक्रासे "द्व्यचः ११२४" इस सूत्रसे ढक् प्रत्यय हुआहै, पश्चात् स्वार्थमें "पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ २०७०" इस सूत्रसे अञ् प्रत्यय, पश्चात् शार्ङ्गरवादित्वके कारण अजन्तसे ङीन् प्रत्यय हुआ (५२७)। "अतश्च ११९६" इस सूत्रसे प्रत्ययका लुक् होनेपर तो ढगन्तत्वके कारण ङीप् प्रत्यय होकर उदात्तनिवृत्ति स्वर होजाता, इस प्रकार ये दोनों पद सिद्ध हुएहैं ॥

११९८ अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे । ४ । १ । ७८ ॥

त्र्यादीनामन्त्यमुत्तमं तस्य समीपमुपोत्तमम् । गोत्रे यावणिञौ विहितावनार्षौ तदन्तयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्त्रियां ष्यङादेशः स्यात् । निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्तीत्यणिञोरेव । षङावितौ । यङश्चाप् । मुकुदगन्धस्यापत्यं स्त्री कौमुदगन्ध्या । वाराह्या । अनार्षयोः किम् । वासिष्ठी । वैश्वामित्री । गुरूपोत्तमयोः किम् ।

औपगवी । जातिलक्षणो ङीष् । गोत्रे किम् । अहिच्छत्रे जाता आहिच्छत्री ॥

११९८–ष्यादिका जो अन्त्य भाग, उसको उत्तम कहतेहैं, और उसके समीपवर्तीको उपोत्तम कहतेहैं। गोत्रमें विहित जो अनार्ष (ऋषिवाचक शब्दसे विहित न हो ऐसा) अण् प्रत्यय और इञ् प्रत्यय, तदन्त जो गुरूपोत्तम प्रातिपदिक, उनके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ष्यङ् आदेश हो । "निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति" इस परिभाषासे अण् और इञ् प्रत्ययको ही ष्यङ् होगा । ष्यङ् प्रत्ययके षकार और ङकारकी इत्संज्ञा हुई । "यङश्चाप् ५२८"इस सूत्रसे चाप(आप्) करके'कुमुदगन्धेरपत्यम् स्त्री,कौमुदगन्ध्या' यह पद सिद्ध हुआहै। वाराहा। ऋषिभिन्नसे विहित न होनेपर ष्यङ् न होगा, जैसे–वाशिष्ठी । वैश्वामित्री । गुरूपोत्तम न होनेपर ष्यङ् न होगा, जैसे–औपगवी, इस स्थानमें जातिलक्षणसे ङीष् प्रत्यय हुआहै। गोत्रवाचक न होनेपर ष्यङ् आदेश नहीं होगा, जैसे–अहिच्छत्रे जाता, इस विग्रहमें आहिच्छत्री ॥

११९९ गोत्रावयवात् । ४ । १ । ७९ ॥

गोत्रावयवा गोत्राभिमताः कुलाख्यास्ततो गोत्रे विहितयोरणिञोः स्त्रियां ष्यङादेशः स्यात् । अगुरूपोत्तमार्थमारम्भः। पौणिक्या। भौणिक्या॥

११९९–गोत्रावयव (कुलनाम) वाचक शब्दके परे गोत्रार्थमें विहित जो अण् और इञ् प्रत्यय, उनको स्त्रीलिङ्गमें ष्यङ् आदेश हो । अगुरूपोत्तमार्थ यह सूत्रारंभ हुआहै, जैसे–पौणिक्या । भौणिक्या ॥

१२०० क्रौड्यादिभ्यश्च । ४ । १ ।८० ॥

स्त्रियां ष्यङ् प्रत्ययः स्यात् । अगुरूपोत्तमार्थोऽनणिञर्थश्चारम्भः । क्रौड्या । व्याड्या ॥ सूत युवत्याम् ॥ * ॥ सूत्या ॥ भोज क्षत्रिये ॥ * ॥ भोज्या ॥

१२००–क्रौड्यादि शब्दोंके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ष्यङ् प्रत्यय हो । अगुरूपोत्तमार्थ और अनणिञर्थ यह सूत्रारंभ है, जैसे–क्रौड्या । व्याड्या ॥

(सूत युवत्याम् *) युवती अर्थमें सूत शब्द ष्यङ्को लाभ करे सूत्या ।

(भोज क्षत्रिये *) क्षत्रिय वाच्य रहते भोज शब्दसे ष्यङ् हो भोज्या ॥

१२०१ दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् ।४।१।८१॥

एभ्यश्चतुर्भ्यः ष्यङ्वा । अगोत्रार्थमिदं गोत्रेपि परत्वात्प्रवर्तते । पक्ष इतो मनुष्यजातेर्ङीष् । दैवयज्ञ्या । दैवयज्ञी ॥

॥ इत्यपत्याधिकारः ॥

१२०१–दैवयज्ञि, शौचिवृक्षि, सात्यमुग्रि और काण्ठेविद्धि इन चार शब्दोंके उत्तर विकल्प करके ष्यङ् प्रत्यय हो । यह सूत्रारम्भ अगोत्रार्थ है, अर्थात् जिस स्थानमें गोत्र नहीं है उस स्थानमें होनेके निमित्त है, परन्तु गोत्रविषयमें भी परत्वके कारण यह प्रवृत्त होताहै, विकल्प पक्षमें "इतो मनुष्य० ५२०" इस सूत्रसे ङीष् प्रत्यय होगा, जैसे–दैवयज्ञ्या । दैवयज्ञी । इत्यादि ॥

॥ इत्यपत्याधिकारप्रकरणम् ॥

अथ रक्ताद्यर्थकाः ।

१२०२ तेन रक्तं रागात् । ४ । २ । १ ॥

रज्यतेऽनेनेति रागः । कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम् । माञ्जिष्ठम् । रागात्किम् । देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम् ॥

१२०२–जिससे कोई वस्तु रंगी जाय, उसको 'राग' कहतेहैं, तृतीयान्त रागवाचक शब्दके उत्तर 'रक्तम् (रंगा-हुआ)' इस अर्थमें अणादि प्रत्यय हों, जैसे–कषायेण रक्तं वस्त्रम्,इस विग्रहमें काषायम् । माञ्जिष्ठम् । रागवाचक न होनेपर प्रत्यय नहीं होगा, जैसे–देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम् ॥

१२०३ लाक्षारोचनाट्ठक् । ४ । २ । २॥

लाक्षिकः । रौचनिकः ॥ शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ शाकलिकः । कार्दमिकः । आभ्यामणपीति वृत्तिकारः । शाकलः। कार्दमः॥ नील्या अन् ॥ * ॥ नील्या रक्तं नीलम् ॥ पीतात्कन् ॥ * ॥ पीतकम् ॥ हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् ॥ * ॥ हारिद्रम् । माहारजनम्॥

१२०३–तृतीयान्त रागवाचक लाक्षा और रोचना शब्दके उत्तर 'रक्तम्' इस अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, अणका अपवाद है, जैसे–लाक्षया रक्तं वस्त्रम्=लाक्षिकः । रौचनिकः ।

शकल और कर्दम शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो * जैसे–शकलेन रक्तः=शाकलिकः । कार्दमिकः । वृत्तिकार कहतेहैं कि, इन दोनोंसे अण् भी हो, यथा–शाकलः । कार्दमः ॥

तृतीयान्त रागवाचक नीली शब्दके उत्तर रक्त इस अर्थमें अन् प्रत्यय हो* जैसे–नील्या रक्तम्=नीलम् ।

पीत प्रातिपदिकसे कन् प्रत्यय हो* जैसे–पीतेन रक्तम्=पीतकम् ।

हरिद्रा और महारजना शब्दके उत्तर 'रक्त' इस अर्थमें अञ् प्रत्यय हो * जैसे–हरिद्रया रक्तम्=हारिद्रम्। माहारजनम्॥

१२०४ नक्षत्रेण युक्तः कालः ।४।२।३॥

पुष्येण युक्तं पौषमहः । पौषी रात्रिः ॥

१२०४–तृतीयान्त नक्षत्रवाचक शब्दके उत्तर 'युक्त' इस अर्थमें अण् प्रत्यय हो और जो युक्त हो वह यदि कालवाचक हो तो, जैसे–पुष्येण युक्तम्=पौषम् अहः । पौषी रात्रिः ॥

१२०५ लुबविशेषे । ४ । २ । ४ ॥

पूर्वेण विहितस्य लुप्स्यात् षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः। कथं तर्हि पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषीति । विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्य इति

निर्देशेन पौर्णमास्यामयं लुब् नेति ज्ञापितत्वात्। श्रवणशब्दात्तु अत एव लुप् युक्तवद्भावाभावश्च। अबाधकान्यपि निपातनानि। श्रावणी॥

१२०५-यदि षष्टिदंडात्मक कालके अवान्तर (मध्य)में कालविशेषकी प्रतीति नहीं हो तो पूर्वसूत्रसे विदित जो प्रत्यय उसका लोप हो, जैसे-पुष्येण युक्तः कालः अद्य=पुष्यः। इस सूत्रको रहते 'पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी' इस स्थलमें प्रत्ययका लोप क्यों नहीं हुआ? इसपर कहतेहैं कि, "विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः १२३५" इस सूत्रनिर्देशके कारण 'पौर्णमासी' अर्थमें यह लुप् न हो ऐसा ज्ञापन होनेसे यहां लुप् नहीं हुआ। इसी सूत्रनिर्देशके कारण श्रवण शब्दके उत्तर तो प्रत्ययका लुप् और प्रकृतिवत् लिङ्ग तथा वचनका अभाव होताहै। निपातन बाधक नहीं भी होतेहैं इस परिभाषासे 'श्रावणी' इस स्थानमें प्रत्ययका लुप् नहीं हुआ यह जानना चाहिये॥

१२०६ संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम्। ४।२।५॥

विशेषार्थोयमारम्भः। श्रवणा रात्रिः। अश्वत्थो मुहूर्त्तः। संज्ञायां किम्। श्रावणी। आश्वत्थी॥

१२०६-संज्ञा होनेपर श्रवण और अश्वत्थ शब्दके उत्तर प्रत्ययका लुप् हो। विशेषके निमित्त यह सूत्रारंभ हुआहै अर्थात् षष्टिदण्डात्मक कालके मध्यमें जहां कालविशेषकी प्रतीति हो वहांके निमित्त है, जैसे-श्रवणा रात्रिः। अश्वत्थो मुहूर्तः। संज्ञा न होनेपर प्रत्ययका लुप् नहीं होगा, जैसे-श्रावणी। आश्वत्थी॥

१२०७ द्वन्द्वाच्छः। ४।२।६॥

नक्षत्रद्वन्द्वाद्युक्ते काले छः स्यात् विशेषे सत्यसति च। तिष्यपुनर्वसवीयमहः। राधानुराधीया रात्रिः॥

१२०७-नक्षत्रवाचक शब्दका द्वन्द्व समास होनेपर 'तद्युक्त काल' इस अर्थमें विशेष रहते अथवा न रहते उसके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-तिष्यपुनर्वसवीयमहः। राधानुराधीया रात्रिः॥

१२०८ दृष्टं साम। ४।२।७॥

तेनेत्येव। वशिष्ठेन दृष्टं वाशिष्ठं साम॥ अस्मिन्नर्थेऽण् डिद्वा वक्तव्यः॥ *॥ उशनसा दृष्टमौशनम्। औशनसम्॥

१२०८-दृष्ट अर्थमें तृतीयान्त समर्थसे अण् आदि प्रत्यय हों, यदि वह दृष्ट वस्तु साम अर्थात् सामवेद हो तो, जैसे-वशिष्ठेन दृष्टम्=वाशिष्ठं साम।

इस अर्थमें अण् प्रत्यय विकल्प करके डित् हो * जैसे-उशनसा दृष्टम्, इस विग्रहमें औशनम्, औशनसम्॥

१२०९ कलेर्ढक्। ४।२।८॥

कलिना दृष्टं कालेयं साम॥

१२०९-दृष्ट अर्थमें और वह दृष्ट वस्तु यदि साम वेद हो तो कलि शब्दके उत्तर ढक् प्रत्यय हो, जैसे-कलिना दृष्टं साम, इस वाक्यमें कालेयं साम। (यह वार्तिक मानागयाहै)॥

१२१० वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ। ४। २।९॥

वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम्॥ सिद्धे यस्येति लोपेन किमर्थं ययतौ डितौ। ग्रहणं मातदर्थंमूद्वामदेव्यस्य नञ्स्वरे॥ *॥

१२१०-दृष्टार्थमें दृष्ट वस्तुके सामवेद होनेपर वामदेव शब्दके उत्तर ड्यत् और ड्य प्रत्यय हों, जैसे-वामदेवेन दृष्टं साम, इस विग्रहमें वामदेव्यम्। "यस्येति च ३११" इस सूत्रसे ही लोपकी सिद्धि होती थी, तब किस कारण य और यत् प्रत्ययको डित् किया? इस विषयमें कहतेहैं कि, वामदेव्य शब्दका "ययतोश्चातदर्थे ३८९०" इस सूत्रसे अतदर्थमें विहित जो नञ्स्वर उसमें ग्रहण न हो अर्थात् 'अवामदेव्यम्' यहां नञ्स्वर न हो॥

१२११ परिवृतो रथः। ४।२।१०॥

वस्त्रैः परिवृतो वास्त्रो रथः। रथः किम्। वस्त्रेण परिवृतः कायः। समन्ताद्वेष्टितः परिवृत उच्यते। तेनेह न। छात्रैः परिवृतो रथः॥

१२११-तृतीयान्त समर्थसे परिवृत (मढा हुआ) अर्थमें परिवृत वस्तु यदि रथ हो तो अण् आदि प्रत्यय हों, जैसे-वस्त्रैः परिवृतः=वास्त्रो रथः। जिस स्थानमें रथ परिवृत नहीं होगा,उस स्थानमें अणादि नहीं होंगे, जैसे-वस्त्रेण परिवृतः कायः अर्थात् वस्त्रसे चारों तरफसे घिरा हुआ शरीर। चारों तरफसे वेष्टितको परिवृत कहतेहैं, इस कारण, छात्रैः परिवृतः रथः, इस स्थलमें अण् प्रत्यय नहीं हुआ॥

१२१२ पाण्डुकम्बलादिनिः।४।२।११॥

पाण्डुकम्बलेन परिवृतः पाण्डुकम्बली। पाण्डुकम्बलशब्दो राजास्तरणवर्णकम्बलस्य वाचकः। मत्वर्थीयेनैव सिद्धे वचनमणो निवृत्यर्थम्॥

१२१२-परिवृत अर्थमें पांडुकंबल शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे-पांडुकम्बलेन परिवृतः, इस विग्रहमें पांडुकम्बली। पांडुकम्बल शब्दसे राजाका आस्तरण कम्बल जानना। मत्वर्थीय इन् प्रत्ययसे ही उक्त प्रयोगकी सिद्धि थी फिर यह सूत्र केवल अण् प्रत्ययकी निवृत्तिके निमित्त किया है॥

१२१३ द्वैपवैयाघ्रादञ्। ४।२।१२॥

द्वीपिनो विकारो द्वैपम्। तेन परिवृतो द्वैपो रथः। एवं वैयाघ्रः॥

१२१३-परिवृत अर्थमें परिवृत वस्तु रथ हो तो द्वैप और वैयाघ्र शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, जैसे-द्वीपिनो विकारः; इस विग्रहमें द्वैपम्,तेन परिवृतः=द्वैपः अर्थात् रथः। इसी प्रकार वैयाघ्रः॥

१२१४ कौमारापूर्ववचने । ४ । २ । १३ ॥

कौमारेत्यविभक्तिको निर्देशः । अपूर्वत्वे निपातनमिदम् । अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः कौमारः पतिः । यद्वा । अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्या ॥

१२१४-अपूर्व होनेपर अर्थात् जिसका किसीके साथ विवाह पहले न हुआ हो ऐसे कुमार शब्दके उत्तर निपातनसे अण् प्रत्यय हो । सूत्रमें कौमार यह अविभक्तिक निर्देश है । यह अपूर्वत्वमें निपातनसे सिद्ध हुआ है, जैसे-अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः=कौमारः पतिः । अथवा अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना=कौमारी भार्या ॥

१२१५ तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः । ४ । २ । १४ ॥

शरावे उद्धृतः शारावः ओदनः । उद्धरतिरिहोद्धरणपूर्वके निधाने वर्तते । तेन सप्तमी । उद्धृत्य निहित इत्यर्थः ॥

१२१५-सप्तम्यन्त पात्रवाचक शब्दसे उद्धृत अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों जैसे-शरावे उद्धृतः, इस विग्रहमें शारावः ओदनः । इस सूत्रमें उद्धरति, अर्थात् उत्पूर्वक धृ धातुका उद्धरणपूर्वक स्थापन अर्थ है, इस कारण सप्तमी विभक्ति विहित हुई है । उद्धृतः इसका अर्थ उठाकर रक्खा हुआ, ऐसा जानना ॥

१२१६ स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते । ४ । २ । १५ ॥

तत्रेत्येव । समुदायेन चेद्व्रतं गम्यते । स्थण्डिले शेते स्थाण्डिलो भिक्षुः ॥

१२१६-शयनकर्ता अर्थ होनेपर सप्तम्यन्त स्थण्डिल शब्दके उत्तर अण् आदि प्रत्यय हों, समुदायसे यदि व्रत गम्यमान हो तो, जैसे-स्थण्डिले शेते स्थाण्डिलः, अर्थात् भिक्षुक ॥

१२१७ संस्कृतं भक्षाः । ४ । २ । १६ ॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात्संस्कृतेऽर्थे यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः । भ्राष्ट्रे संस्कृता भ्राष्ट्रा यवाः । अष्टसु कपालेषु संस्कृतोऽष्टाकपालः पुरोडाशः ॥

१२१७-संस्कृत अर्थ होनेपर संस्कृत द्रव्य भक्ष्य वस्तु हो तो सप्तम्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे-भ्राष्ट्रे संस्कृताः, इस विग्रहमें भ्राष्ट्राः यवाः । अष्टसु कपालेषु संस्कृतः=अष्टाकपालः, अर्थात् पुरोडाशः ॥

१२१८ शूलोखाद्यत् । ४ । २ । १७ ॥

अणोऽपवादः । शूले संस्कृतं शूल्यं मांसम् । उखा पात्रविशेषः । तस्यां संस्कृतमुख्यम् ॥

१२१८-संस्कृत अर्थ होनेपर संस्कृत वस्तु भक्ष्य द्रव्य हो तो सप्तम्यन्त शूल और उखा शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, यह सूत्र अण् प्रत्ययका अपवादक है, जैसे शूले संस्कृतम्, शूल्यं मांसम् । उखा शब्दसे पात्रविशेष जानना, उसमें संस्कृत, इस अर्थमें उख्यम् ॥

१२१९ दध्नष्ठक् । ४ । २ । १८ ॥

दध्नि संस्कृतं दाधिकम् ॥

१२१९-संस्कृत अर्थ होनेपर सप्तम्यन्त दधि शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-दध्नि संस्कृतम्, इस विग्रहमें दाधिकम् ॥

१२२० उदश्वितोऽन्यतरस्याम् । ४ । २ । १९ ॥

ठक् स्यात्पक्षेऽण् ॥

१२२०-संस्कृत अर्थमें उदश्वित् शब्दके उत्तर विकल्प करके ठक् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें अण् प्रत्यय होगा ॥

१२२१ इसुसुक्तान्तात्कः । ७ । ३ । ५१ ॥

इस् उस् उक् त एतदन्तात्परस्य ठस्य कः स्यात् । उदकेन श्वयति वर्धते इत्युदश्वित् । तत्र संस्कृत औदश्वित्कः औदश्वितः । इसुसोः प्रतिपदोक्तयोर्ग्रहणान्नेह । आशिषा चरति आशिषिकः । उषा चरति औषिकः ॥ दोष उपसंख्यानम् ॥ * ॥ दोर्भ्यां चरति दौष्कः ॥

१२२१-इस् उस् उक् और त् यह अन्तमें है जिनके ऐसे प्रातिपदिकके परे स्थित ठके स्थानमें क हो, जैसे-उदकेन श्वयति वर्द्धते, ऐसे विग्रहमें 'उदश्वित्' यह पद सिद्ध हुआ, उसमें संस्कृत, इस अर्थमें औदश्वित्कः, औदश्वितः ।

प्रतिपदोक्त इस् और उस्के ग्रहणके कारण इस स्थानमें क आदेश नहीं हुआ, जैसे-आशिषा चरति, इस वाक्यमें आशिषिकः । उषा चरति, इस वाक्यमें औषिकः ।

दोष् शब्दके परे स्थित ठके स्थानमें ककारका उपसंख्यान करना चाहिये * जैसे-दोर्भ्यां चरति, इस वाक्यमें दौष्कः ॥

१२२२ क्षीराड्ढञ् । ४ । २ । २० ॥

अत्र संस्कृतमित्येव संबध्यते न तु भक्षा इति । तेन यवाग्वामपि भवति । क्षैरेयी ॥

१२२२-संस्कृत अर्थ होनेपर क्षीर शब्दके उत्तर ढञ् प्रत्यय हो, इस सूत्रमें 'संस्कृत' यही अर्थ सम्बद्ध होताहै भक्ष अर्थ नहीं, इस कारण यवागू अर्थ होनेपर भी क्षीर शब्दके उत्तर ढञ् प्रत्यय होताहै, जैसे-क्षैरेयी ॥

१२२३ सास्मिन्पौर्णमासीति । ४ । २ । २१ ॥

इतिशब्दात्संज्ञायामिति लभ्यते । पौषी पौर्णमासी अस्मिन् पौषो मासः ॥

१२२३-संज्ञा होनेपर 'अस्मिन्' इस सप्तम्यन्तार्थमें प्रथमान्त पौर्णमासीवाचक शब्दके उत्तर अण् आदि प्रत्यय हों, इति शब्दसे 'संज्ञायाम्' इसका लाभ होताहै । पौषी पौर्णमासी अस्मिन्, इस विग्रहमें पौषो मासः ॥

१२२४ आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् । ४ । २ । २२ ॥

अग्रे हायनमस्या इति आग्रहायणी । प्रज्ञादेराकृतिगणत्वादण् । पूर्वपदात्संज्ञायामिति णत्वम् ।

आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन् आग्रहायणिको मासः । अश्वत्थेन युक्ता पौर्णमासी अश्वत्थः । निपातनात्पौर्णमास्यामपि लुप् । आश्वत्थिकः ॥

१२२४-'अस्मिन्' इस सप्तम्यन्तार्थमें आग्रहायणी और अश्वत्थ शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-अग्रे हायनम् अस्याः, इस वाक्यमें 'आग्रहायणी' इस स्थलमें प्रज्ञादिके आकृतिगणत्वके कारण अण् प्रत्यय हुआ है और "पूर्वपदात्संज्ञायाम्० ८५७" इस सूत्रसे णत्व हुआ है, आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन्, इस वाक्यमें आग्रहायणिको मासः । अश्वत्थेन युक्ता पौर्णमासी=अश्वत्थः। सूत्रमें अश्वत्थ ऐसे निपातनके कारण पौर्णमासी होनेपर भी प्रत्ययका लुक् हुआ । अश्वत्थः पौर्णमासी अस्मिन्मासे, इस विग्रहमें आश्वत्थिकः ॥

१२२५ विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः । ४ । २ । २३ ॥

एभ्यष्ठग्वा पक्षेण् । फाल्गुनिकः फाल्गुनो मासः । श्रावणिकः । श्रावणः । कार्तिकिकः । कार्तिकः । चैत्रिकः । चैत्रः ॥

१२२५-'अस्मिन्' इस सप्तम्यन्तार्थमें फाल्गुनी, श्रवणा, कार्त्तिकी और चैत्री शब्दके उत्तर विकल्प करके ठक् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें अण् प्रत्यय होगा, जैसे-फाल्गुनिकः, फाल्गुनो मासः । श्रावणिकः,श्रावणः । कार्त्तिकिकः,कार्त्तिकः । चैत्रिकः, चैत्रः ॥

१२२६ सास्य देवता । ४ । २ । २४ ॥

इन्द्रो देवताऽस्येति ऐन्द्रं हविः । पाशुपतम् । बार्हस्पतम् । त्यज्यमानद्रव्ये उद्देश्यविशेषो देवता मन्त्रस्तुत्या च । ऐन्द्रो मन्त्रः । आग्नेयो वै ब्राह्मणो देवतयेति तु शैषिकेऽर्थे सर्वत्राग्नीति ढक्॥

१२२६-'अस्य' इस षष्ठ्यन्तार्थमें प्रथमान्त देवतावाचक शब्दके उत्तर अण् आदि प्रत्यय हों, जैसे-इन्द्रो देवता अस्य, इस वाक्यमें ऐन्द्रं हविः । पाशुपतम् । बार्हस्पतम् । त्यज्यमान द्रव्यमें उद्देश्यविशेष जो हो, उसका नाम देवता है और मन्त्रसे जिसकी स्तुति की जाय उसको भी देवता कहतेहैं ॥ 'ऐन्द्रो मन्त्रः आग्नेयो वै ब्राह्मणो देवतया' इस स्थलमें तो शैषिकार्थमें "अग्निकलिभ्याम्०" इस वार्त्तिकसे ढक् प्रत्यय हुआ ॥

१२२७ कस्येत् । ४ । २ । २५ ॥

कशब्दस्य इदादेशः स्यात्प्रत्ययसन्नियोगेन । यस्येति लोपात्परत्वादादिवृद्धिः । को ब्रह्मा देवताऽस्य कायं हविः । श्रीर्देवताऽस्य श्रायम् ॥

१२२७-प्रत्ययके सन्नियोगसे क शब्दको इत् आदेश हो । "यस्येति च ३११" इस सूत्रसे विहित लोपसे पर होनेके कारण आदि स्वरको वृद्धि हुई, जैसे-को ब्रह्मा देवता अस्य, इस विग्रहमें कायम्, अर्थात् हविष । श्रीर्देवतास्य, इस विग्रहमें श्रायम् ॥

१२२८ शुक्राद्घन् । ४ । २ । २६ ॥

शुक्रियम् ॥

१२२८-अस्य इस षष्ठ्यन्तार्थमें शुक्र शब्दके उत्तर घन् प्रत्यय हो, जैसे-शुक्रियम् (घको इय्) ॥

१२२९ अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यां घः ।४।२।२७।

अपोनप्त्रियम् । अपान्नप्त्रियम् । अपोनपात् अपान्नपाच्च देवता । प्रत्ययसन्नियोगेन तृक् रूपं निपात्यते । अत एवापोनपाते अपान्नपातेऽनुब्रूहीति प्रैषः ॥

१२२९-अपोनपात् और अपान्नपात् शब्दके उत्तर घ प्रत्यय हो, इस घ प्रत्ययके संनियोगसे अपोनपात् शब्दके स्थानमें अपोनप्तृ और अपान्नपात् शब्दके स्थानमें अपान्नप्तृ आदेश निपातनसे हुए हैं, जैसे अपोनपात् देवता अस्य, इस विग्रहमें अपोनप्त्रियम् । अपान्नपात् देवतास्य, इस विग्रहमें अपान्नप्त्रियम् । यहां अपोनपात् और अपान्नपात्से विहित प्रत्ययके साथ उक्त रूप निपातनसे सिद्ध हुए हैं, इस कारण 'अपोनपाते, अपान्नपातेऽनुब्रूहि' ऐसा प्रैष है ॥

१२३० छ च । ४ । २ । २८ ॥

योगविभागो यथासंख्यनिवृत्त्यर्थः । अपोनप्त्रीयम् । अपान्नप्त्रीयम् ॥ शतरुद्राद्घश्च ॥*॥ चाच्छः । शतं रुद्रा देवता अस्य शतरुद्रियम् । शतरुद्रीयम् । घच्छयोर्विधानसामर्थ्याद्द्विगोर्लुगनपत्ये इति न लुक् ॥

१२३०-अपोनपात् और अपान्नपात् शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो, इस छ प्रत्ययके संनियोगसे अपोनपात् शब्दके स्थानमें अपोनप्तृ और अपान्नपात् शब्दके स्थानमें अपान्नप्तृ आदेश हुआहै । यहां यथासंख्यकी निवृत्तिके निमित्त योगविभाग कियाहै अर्थात् भिन्न सूत्र न करके यदि "अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यां घश्छ च" ऐसा एक सूत्र करते तो यथाक्रम अपोनपात् शब्दके उत्तर घ प्रत्यय और अपान्नपात् शब्दके उत्तर छ प्रत्यय होजाता, उसकी निवृत्तिके निमित्त भिन्न सूत्र किया है । अपोनप्त्रीयम् । अपान्नप्त्रीयम् ।

शतरुद्र शब्दके उत्तर घ प्रत्यय और चकारसे छ प्रत्यय भी हो * जैसे-शतं रुद्रा देवता अस्य, इस विग्रहमें शतरुद्रियम्, शतरुद्रीयम् । घ और छ प्रत्ययके विधानके सामर्थ्यसे "द्विगोर्लुगनपत्ये १०८०" इस सूत्रसे लुक् नहीं हुआ ॥

१२३१ महेन्द्राद् घाणौ च । ४।२।२९॥

चाच्छः । महेन्द्रियं हविः । माहेन्द्रम् । महेन्द्रीयम् ॥

१२३१-महेन्द्र शब्दके उत्तर घ और अण् प्रत्यय हो और चकारसे छ प्रत्यय भी हो, जैसे-महेन्द्रियम् हविः, माहेन्द्रम्, महेन्द्रीयम् ॥

१२३२ सोमाट्ट्यण् । ४ । २ । ३० ॥

सौम्यम् । टित्त्वान् ङीप् । सौमी ऋक् ॥

१२३२–सोम शब्दके उत्तर ट्यण् प्रत्यय हो, जैसे–सौम्यम् । टित्वके कारण ङीप् प्रत्यय होकर 'सौमी' पद सिद्ध होगा, इसका अर्थ ऋक् है ॥

१२३३ वाय्वृतुपित्रुषसो यत् । ४ । २ । ३१ ॥

वायव्यम् । ऋतव्यम् ॥

१२३३–वायु, ऋतु, पितृ और उषस् शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–वायव्यम् । ऋतव्यम् ॥

१२३४ रीङ्ृतः । ७ । ४ । २७ ॥

अकृद्यकारेऽसार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्तांगस्य रीङादेशः स्यात् । यस्येति च । पित्र्यम् । उषस्यम् ॥

१२३४–कृत्से भिन्न और सार्वधातुकसे भिन्न यकार और च्वि प्रत्यय परे रहते ऋकारान्त जो अङ्ग उसको रीङ् आदेश हो, "यस्येति० ३११" इस सूत्रसे ईकारका लोप होकर–पित्र्यम् । उषस्यम् ॥

१२३५ द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च । ४ । २ । ३२ ॥

चाद्यत् । द्यावापृथिवीयम् । द्यावापृथिव्यम् । शुनासीरीयम् । शुनासीर्यम् ॥

१२३५–द्यावापृथिवी, शुनासीर, मरुत्वत्, अग्नीषोम, वास्तोष्पति और गृहमेध शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो और चकारसे यत् प्रत्यय भी हो, जैसे–द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य=द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम् । शुनासीरीयम्, शुनासीर्यम् ॥

१२३६ अग्नेर्ढक् । ४ । २ । ३३ ॥

आग्नेयम् ॥

१२३६–अग्नि शब्दके उत्तर ढक् प्रत्यय हो, जैसे–आग्नेयम् ॥

१२३७ कालेभ्यो भववत् । ४ । २ । ३४ ॥

मासिकम् । प्रावृषेण्यम् ॥

१२३७–कालवाचक शब्दके उत्तर भव अर्थमें कहे हुए प्रत्ययोंके समान 'सास्य देवता' ऐसे अर्थमें प्रत्यय हों,–जैसे–मासिकम् । प्रावृषेण्यम् ॥

१२३८ महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् । ४ । २ । ३५ ॥

माहाराजिकम् । प्रौष्ठपदिकम् ॥

१२३८–महाराज और प्रोष्ठपद शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–महाराजो देवता अस्य=माहाराजिकम् । प्रौष्ठपदिकम् ॥

१२३९ देवताद्वन्द्वे च । ७ । ३ । २१ ॥

अत्र पूर्वोत्तरपदयोराद्यचो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति किति च परे । आग्निमारुतम् ॥

१२३९–ञित्, णित् और कित् प्रत्यय परे रहते देवतावाचक शब्दके द्वन्द्व समासमें पूर्वपद और उत्तर पदका जो आद्यच् उसको वृद्धि हो, जैसे–आग्निमारुतम् ॥

१२४० नेन्द्रस्य परस्य । ७ । ३ । २२ ॥

परस्येन्द्रस्य वृद्धिर्न स्यात् । सौमेन्द्रः । परस्य किम् । ऐन्द्राग्नः ॥

१२४०–इन्द्र शब्द परे रहते उसके इकारको वृद्धि नहीं हो, जैसे–सौमेन्द्रः । इन्द्र शब्द परे न रहते अर्थात् पूर्वमें रहते वृद्धि होगी, जैसे–ऐन्द्राग्नः ॥

१२४१ दीर्घाच्च वरुणस्य । ७ । ३ । २३ ॥

दीर्घात्परस्य वरुणस्य न वृद्धिः । ऐन्द्रावरुणम् । दीर्घात्किम् । आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत ॥ तदस्मिन्वर्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ नावयज्ञिकः कालः । पाकयज्ञिकः ॥ पूर्णमासादण् वक्तव्यः ॥ * ॥ पूर्णो मासोऽस्यां वर्तते इति पौर्णमासी तिथिः ॥

१२४१–दीर्घके परे स्थित वरुण शब्दके आद्यच्को वृद्धि न हो, जैसे–ऐन्द्रावरुणम् । जिस स्थानमें दीर्घसे परे स्थित वरुण शब्द नहीं होगा, उस स्थानमें वृद्धि होगी, जैसे–आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत ।

वह इसमें वर्तताहै, इस अर्थमें नवयज्ञादि शब्दोंके उत्तर ठञ्का उपसंख्यान करना चाहिये* जैसे–नावयज्ञिकः कालः । पाकयज्ञिकः । वह इसमें वर्तताहै, इस अर्थमें पूर्णमास शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो * जैसे–पूर्णः मासोऽस्यां वर्तते इस विग्रहमें पौर्णमासी तिथिः ॥

१२४२ पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः । ४ । २ । ३६ ॥

एते निपात्यन्ते ॥ पितुर्भ्रातरि व्यत् ॥ * ॥ पितुर्भ्राता पितृव्यः ॥ मातुर्डुलच् ॥ * ॥ मातुर्भ्राता मातुलः ॥ मातृपितृभ्यां पितरि डामहच् ॥ * ॥ मातुः पिता मातामहः । पितुः पिता पितामहः ॥ मातरि षिच्च ॥ * ॥ मातामही । पितामही ॥ अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचो वक्तव्याः ॥ * ॥ सकारपाठसामर्थ्यान्न षः । अविसोढम् । अविदूसम् । अविमरीसम् ॥ तिलान्निष्फलात्पिञ्जपेजौ ॥ * ॥ तिलपिञ्जः । तिलपेजः । वन्ध्यस्तिल इत्यर्थः ॥ पिञ्जश्छन्दसि डिच्च ॥ * ॥ तिलिपिञ्जः ॥

१२४२–पितृव्य, मातुल, मातामह, पितामह, इतने पद निपातनसे सिद्ध हों ।

पिताका भ्राता होनेपर पितृ शब्दके उत्तर व्यत् प्रत्यय हो * जैसे-पितुर्भ्राता=पितृव्यः ।

माताका भ्राता होनेपर मातृ शब्दके उत्तर डुलच् प्रत्यय हो * जैसे-मातुर्भ्राता=मातुलः ।

मातृ और पितृ शब्दके उत्तर उसका पिता वाच्य होनेपर डामहच् प्रत्यय हो * जैसे-मातुःपिता=मातामहः । पितुः पिता=पितामहः ।

माता और पिताकी माता वाच्य होनेपर मातृ शब्दके उत्तर डामहच् प्रत्यय हो और प्रत्यय षित् हो * जैसे-मातामही । पितामही ।

दुग्ध अर्थमें अवि शब्दके उत्तर सोढ, दूस और मरीसच् प्रत्यय हों * सकारपाठसामर्थ्यके कारण प्रत्ययावयव सकारको षत्व नहीं हुआ, जैसे-अवेर्दुग्धम्=अविसोढम्, अविदूसम्, अविमरीसम् ।

निष्फलार्थक तिल शब्दके उत्तर पिञ्ज और पेज प्रत्यय हो* जैसे-तिलपिञ्जः । तिलपेजः, अर्थात् वन्ध्य तिल ।

वेदमें तिल शब्दके उत्तर पिञ्ज प्रत्यय हो और वह डित् भी हो * जैसे=तिलपिञ्जः ॥

१२४३ तस्य समूहः । ४ । २ । ३७ ॥

काकानां समूहः काकम् । बाकम् ॥

१२४३-समूह अर्थमें षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर अण् आदि प्रत्यय हों, जैसे=काकानां समूहः, इस विग्रहमें-काकम् । बाकम् ॥

१२४४ भिक्षादिभ्योऽण् ।४।२ । ३८ ॥

भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम् । इह भस्याढ इति पुंवद्भावे कृते ॥

१२४४-समूह अर्थमें भिक्षादि शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे-भिक्षाणां समूहः=भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहः=गार्भिणम्, इस स्थलमें "भस्याढे०" इससे पुंवद्भाव होनेपर-॥

१२४५ इनण्यनपत्ये । ६ । ४ ।१६४॥

अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात् । तेन नस्तद्धित इति टिलोपो न । युवतीनां समूहो यौवनम् । शत्रन्तादनुदात्तादेरञि यौवतम् ॥

१२४५-अनपत्यार्थमें विहित अण् प्रत्यय परे रहते इनको प्रकृतिभाव हो, अर्थात् इन् विकृत न हो, इससे "नस्तद्धिते ६७९" इस सूत्रसे टिका लोप नहीं हुआ, युवतीनाम् समूहः, इस विग्रहमें यौवनम् । शतृप्रत्ययान्त अनुदात्तादि युवत् शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय होकर-यौवतम् ॥

१२४६ गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ् । ४।२।३९ ॥

एभ्यः समूहे वुञ् स्यात् । लौकिकमिह गोत्रं तच्चापत्यमात्रम् ॥

१२४६-गोत्रप्रत्ययान्त, उक्ष, उष्ट्र, उरभ्र, राजन्, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य और अज शब्दके उत्तर समूह अर्थमें वुञ् प्रत्यय हो । इस स्थलमें गोत्र शब्दसे लौकिक गोत्र जानना, वह अपत्यमात्र है ॥

१२४७ युवोरनाकौ । ७ । १ । १ ॥

यु वु एतयोरनुनासिकयोः क्रमादन अक एतावादेशौ स्तः । ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम् । औक्षकमित्यादि । आपत्यस्य चेति यलोपे प्राप्ते ॥ प्रकृत्या अके राजन्यमनुष्ययुवानः ॥ * ॥ राजन्यकम् । मानुष्यकम् ॥ वृद्धाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वार्द्धकम् ॥

१२४७-यु वु इन दो अनुनासिक वर्णोंके स्थानमें यथाक्रम अन और अक आदेश हों, जैसे-ग्लुचुकायनीनां समूहः, इस विग्रहमें ग्लौचुकायनकम् । औक्षकम् । "आपत्यस्य च० १०८२" इस सूत्रसे यकारका लोप प्राप्त होनेपर-

अक प्रत्यय परे रहते राजन्य, मनुष्य और युवन् शब्दको प्रकृतिभाव हो * जैसे-राजन्यकम् । मानुष्यकम् ।

वृद्ध शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो * जैसे-वार्द्धकम् ॥

१२४८ केदाराद्यञ्च । ४ । २ । ४० ॥

चाद्वुञ् । कैदार्यम् । कैदारकम् । गणिकाया यञिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ गाणिक्यम् ॥

१२४८-समूह अर्थमें केदार शब्दके उत्तर यञ् प्रत्यय हो और चकारसे वुञ् प्रत्यय भी हो,जैसे-कैदार्य्यम्,कैदारकम् ।

गणिका शब्दके उत्तर यञ् प्रत्यय हो* जैसे-गाणिक्यम् ॥

१२४९ ठञ्कवचिनश्च । ४ । २ । ४१॥

चात्केदारादपि । कवचिनां समूहः कावचिकम् । कैदारिकम् ॥

१२४९-समूह अर्थमें कवचिन् शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, चकारसे केदार शब्दके उत्तर भी ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-कवचिनां समूहः, इस विग्रहमें कावचिकम् । कैदारिकम् ॥

१२५० ब्राह्मणमाणववाडवाद्यत् । ४ । २ । ४२ ॥

ब्राह्मण्यम् । माणव्यम् । वाडव्यम् । पृष्ठादुपसंख्यानम् ॥ * ॥ पृष्ठ्यम् ॥

१२५०-ब्राह्मण, माणव और वाडव शब्दके उत्तर समूहार्थमें यत् प्रत्यय हो, जैसे-ब्राह्मणानां समूहः=ब्राह्मण्यम् । माणव्यम् । वाडव्यम् ।

पृष्ठ शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो * जैसे-पृष्ठ्यम् ॥

१२५१ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ।४।२।४३॥

ग्रामता । जनता । बन्धुता ॥ गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ गजता । सहायता ॥ अह्नः खः क्रतौ ॥ * ॥ अहीनः । अहर्गणसाध्यसुत्याकः क्रतुरित्यर्थः । क्रतौ किम् । आह्नः । इह खण्डिकादित्वादञ् । अह-

ष्ठखोरेवेति नियमाट्टिलोपो न ॥ पर्श्वा णस् वक्तव्यः ॥ * ॥

१२५१–ग्राम, जन, और बन्धु शब्दके उत्तर समूह अर्थमें तल् प्रत्यय हो, जैसे–ग्रामाणां समूहः ग्रामता। जनता। बन्धुता। गज और सहाय शब्दके उत्तर समूहार्थमें तल् प्रत्यय हो* जैसे–गजानां समूहः=गजता । सहायता ।

क्रतु, अर्थात् यज्ञ वाच्य होनेपर अहन् शब्दके उत्तर ख प्रत्यय हो *जैसे–अह्नां समूहः=अहीनः, अर्थात् अहर्गणसाध्य सुत्याक नामका क्रतु । क्रतु अर्थ न होनेपर ख प्रत्यय न होकर खण्डिकादित्वके कारण अञ् प्रत्यय होगा, जैसे–आह्नः, यहां "अह्नष्टखोरेव ७८९"इस नियमसे टिका लोप नहीं हुआ ।

पर्शु शब्दके उत्तर णस् प्रत्यय हो * ।

१२५२ सिति च । १ । ४ । १६ ॥

सिति परे पूर्वं पदसंज्ञं स्यात् । अभत्वादोर्गुणो न । पर्शूनां समूहः पार्श्वम् ॥

१२५२–सित् प्रत्यय परे रहते पूर्वको पद संज्ञा हो, इससे भ संज्ञाके अभावके कारण "ओर्गुणः ६।४।१४६" इससे गुण नहीं होगा, जैसे–पर्शूनां समूहः, इस विग्रहमें पार्श्वम् ॥

१२५३ अनुदात्तादेरञ् । ४ । २ । ४४॥

कापोतम् । मायूरम् ॥

१२५३–अनुदात्तादि शब्दोंके उत्तर समूह अर्थमें अञ् प्रत्यय हो, जैसे–कापोतम् । मायूरम् ॥

१२५४ खण्डिकादिभ्यश्च ।४।२। ४५ ॥

अञ् स्यात् । खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम् ॥

१२५४–खण्डिकादि शब्दोंके उत्तर समूह अर्थमें अञ् प्रत्यय हो, जैसे–खण्डिकानां समूहः, इस विग्रहमें खाण्डिकम् ॥

१२५५ चरणेभ्यो धर्मवत् ।४।२।४६ ॥

काठकम् । छान्दोग्यम् ॥

१२५५–चरणवाचक शब्दोंमेंसे जिस प्रकृतिके उत्तर जो प्रत्यय धर्म अर्थमें विधान करेंगे, वह प्रत्यय उस प्रकृतिके उत्तर समूह अर्थमें भी हो, जैसे–काठकम् । छान्दोग्यम् । यहां क्रमसे "गोत्रचरणाद्वुञ् ४।३।१२६" "छन्दोगौ० ४।३।१२९" इनसे वुञ् और ञ्य प्रत्यय हुए हैं ॥

१२५६अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्।४।२।४७॥

साक्तुकम् । हास्तिकम् । धैनुकम् ॥

१२५६–समूह अर्थमें चित्तभिन्न, अर्थात् अचेतनवाचक शब्द, हस्ति शब्द और धेनु शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–सक्तूनां समूहः=साक्तुकम् । हास्तिकम् । धैनुकम् ॥

१२५७ केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम् । ४ । २ । ४८ ॥

पक्षे ठगणौ । कैश्यम् । कैशिकम् । अश्वीयम्। आश्वम् ॥

१२५७–समूह अर्थमें केश शब्दके उत्तर विकल्प करके यञ् प्रत्यय और अश्व शब्दके उत्तर विकल्प करके छ प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें अचित्तवाचक शब्दसे ठक् और अश्व शब्दसे अण् प्रत्यय होगा, जैसे–केशानां समूहः=कैश्यम्, कैशिकम् । अश्वीयम्, आश्वम् ॥

१२५८ पाशादिभ्यो यः । ४।२।४९ ॥

पाश्या । तृण्या । धूम्या । वन्या । वात्या ॥

१२५८–समूह अर्थमें पाशादि शब्दोंके उत्तर य प्रत्यय हो, जैसे–पाश्या । तृण्या । धूम्या । वन्या । वात्या ॥

१२५९ खलगोरथात् । ४ । २ । ५०॥

खल्या । गव्या । रथ्या ॥

१२५९–समूह अर्थमें खल, गो और रथ, शब्दके उत्तर य प्रत्यय हो, जैसे–खल्या । गव्या । रथ्या ॥

१२६० इनित्रकट्यचश्च ।४।२।५१ ॥

खलादिभ्यः क्रमात्स्युः । खलिनी । गोत्रा । रथकट्या । खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः ॥ * ॥ डाकिनी । कुटुम्बिनी । आकृतिगणोयम् ॥

१२६०–खल, गो और रथ शब्दके उत्तर यथाक्रम इनि, त्र और कट्यच् प्रत्यय हो, अर्थात् खल शब्दके उत्तर इनि, गो शब्दके उत्तर त्र और रथ शब्दके उत्तर कट्यच् प्रत्यय हो, जैसे–खलिनी । गोत्रा । रथकट्या ।

खलादि शब्दोंके उत्तर इनि प्रत्यय हो * जैसे–डाकिनी । कुटुम्बिनी । खलादि आकृतिगण है ॥

१२६१ विषयो देशे । ४ । २ । ५२ ॥

षष्ठ्यन्तादणादयः स्युरत्यन्तपरिशीलितेऽर्थे स चेद्देशः । शिबीनां विषयो देशः शैबः । देशे किम् । देवदत्तस्य विषयोऽनुवाकः ॥

१२६१–षष्ठीविभक्त्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर अत्यन्त परिशीलित अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों, जो परिशीलित हो वह यदि देश हो तो, जैसे–शिबीनां विषयो देशः, इस विग्रहमें शैबः । देश न होनेपर अण् आदि प्रत्यय नहीं होंगे, जैसे–देवदत्तस्य विषयोऽनुवाकः ॥

१२६२ राजन्यादिभ्यो वुञ्।४।२।५३॥

राजन्यकः ॥

१२६२–अत्यन्त परिशीलित अर्थमें जो परिशीलित हो वह यदि देश हो तो राजन्यादि शब्दोंके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे–राजन्यकः ॥

१२६३ भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ । ४ । २ । ५४ ॥

भौरिकीणां विषयो देशः । भौरिकिविधम् । भौलिकिविधम् । ऐषुकारिभक्तम् । सारसायनभक्तम् ॥

१२६३–पूर्वोक्त अर्थमें भौरिकिआदि शब्द और ऐषुकारि आदि शब्दोंके उत्तर यथाक्रम विधल् और भक्तल्

प्रत्यय हों, जैसे—मौरिकीणाम् विषयो देशः, इस विग्रहमें मौरिकिविधम् । मौलिकिविधम् । ऐषुकारिभक्तम् । सारसायनभक्तम् ॥

१२६४ सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु । ४ । २ । ५५ ॥

अण् । पंक्तिरादिरस्येति पाङ्क्तः प्रगाथः ॥ स्वार्थ उपसंख्यानम् ॥ * ॥ त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभम् ॥

१२६४—प्रगाथ अर्थ होनेपर षष्ठ्यन्तार्थमें आदिभूत प्रथमान्त जो छन्दोवाचक शब्द उसके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे—पंक्तिः आदिरस्य, इस विग्रहमें—पाङ्क्तः प्रगाथः ॥

स्वार्थमें भी अण् प्रत्ययका उपसंख्यान करना चाहिये* जैसे—त्रिष्टुप् एव, इस विग्रहमें—त्रैष्टुभम् ॥

१२६५ संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः । ४ । २ । ५६ ॥

सोऽस्येत्यनुवर्तते । सुभद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्येति सौभद्रः । भरता योद्धारोऽस्य संग्रामस्य भारतः ॥

१२६५—षष्ठ्यन्तार्थमें प्रथमान्त प्रयोजन और योद्धृवाचक शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे—सुभद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्य, इस विग्रहमें सौभद्रः । भरता योद्धारः अस्य संग्रामस्य, इस विग्रहमें भारतः ॥

१२६६ तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः । ४ । २ । ५७ ॥

दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दाण्डा । मौष्टा ॥

१२६६—सप्तम्यन्तार्थमें प्रथमान्त प्रहरणवाचक शब्दके उत्तर ण प्रत्यय हो । यदि सप्तम्यन्तार्थ क्रीडा हो तो, जैसे—दण्डः प्रहरणम् अस्यां क्रीडायाम्, इस विग्रहमें दाण्डा । मौष्टा ॥

१२६७ घञः सास्यां क्रियेति ञः । ४ । २ । ५८ ॥

घञन्तात्क्रियावाचिनः प्रथमान्तादस्यामिति सप्तम्यर्थे स्त्रीलिङ्गे ञप्रत्ययः स्यात् । घञ इति कृद्ग्रहणाद्गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् ॥

१२६७—सप्तम्यन्तार्थमें प्रथमान्त घञन्त क्रियावाचक प्रातिपदिकके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ञ प्रत्यय हो । 'घञः' इस कृत् प्रत्ययके ग्रहणके कारण गति और कारकपूर्वक शब्दका भी ग्रहण होताहै ॥

१२६८ श्येनतिलस्य पाते ञे । ६ । ३ । ७१ ॥

श्येन, तिल, एतयोर्मुमागमः स्यात् ञप्रत्यये परे पातशब्दे उत्तरपदे । श्यैनपातोऽस्यां वर्तते श्यैनम्पाता मृगया । तिलपातोऽस्यां वर्तते तैलम्पाता स्वधा । श्येनतिलस्य किम् । दण्डपातोऽस्यां तिथौ वर्तते दाण्डपाता तिथिः ॥

१२६८—ञ प्रत्यय परे रहते और पात शब्द उत्तरपद होनेपर श्येन और तिल शब्दको मुम्का आगम हो, जैसे—श्येनपातोऽस्यां वर्तते, इस विग्रहमें श्यैनम्पाता मृगया । तिलपातोऽस्यां वर्तते, इस विग्रहमें तैलम्पाता स्वधा ।

श्येन और तिल शब्द न होनेके कारण मुमागम नहीं होगा, जैसे—दण्डपातोऽस्यां तिथौ वर्तते, इस विग्रहमें दाण्डपाता तिथिः ॥

१२६९ तदधीते तद्वेद । ४ । २ । ५९ ॥

व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः ॥

१२६९—तदधीते, अर्थात् उसे अध्ययन करताहै और तद्वेद, अर्थात् उसे जानताहै, ऐसा अर्थ होनेपर द्वितीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर अण्आदि प्रत्यय हों, जैसे—व्याकरणम् अधीते वेद वा, इस विग्रहमें—वैयाकरणः ॥

१२७० क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् । ४ । २ । ६० ॥

क्रतुविशेषवाचिनामेवेह ग्रहणम् । तेभ्यो मुख्यार्थेभ्यो वेदितरि तत्प्रतिपादकग्रन्थपरेभ्यस्त्वध्येतरि । आग्निष्टोमिकः । वाजपेयिकः । उक्थं सामविशेषस्तल्लक्षणपरो ग्रन्थविशेषो लक्षणयोक्थम् । तदधीते वेद वा औक्थिकः ॥ मुख्यार्थात्तूक्थशब्दाट्ठगणौ नेष्येते ॥ * ॥ न्यायम् नैयायिकः । वृत्तिम् वार्त्तिकः । लौकायतम् लौकायतिक इत्यादि ॥ सूत्रान्तात्त्वकल्पादेरेवेष्यते ॥ * ॥ सांग्रहसूत्रिकः । अकल्पादेः किम् । काल्पसूत्रः ॥ विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वायसविद्यिकः । गौलक्षणिकः । आश्वलक्षणिकः । पाराशरकल्पिकः ॥ अङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वाद्विद्यान्तान्नेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आङ्गविद्यः । क्षात्रविद्यः । धार्मविद्यः । त्रिविधा विद्या त्रिविद्या तामधीते वेद वा त्रैविद्यः ॥ आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च ॥ * ॥ यवक्रीतमधिकृत्य कृतमाख्यानमुपचाराद् यवक्रीतं तदधीते वेत्ति वा यावक्रीतिकः । वासवदत्तामधिकृत्य कृता आख्यायिका वासवदत्ता । अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इत्यर्थे वृद्धाच्छः । तस्य लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलमिति लुप् । ततोऽनेन ठक् । वासवदत्तिकः । ऐतिहासिकः । पौराणिकः ॥ सर्वादेः सादेश्च लुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ सर्ववेदानधीते सर्ववेदः । सर्वतन्त्रः । सवार्त्तिकः । द्विगोर्लुगिति लुक् । द्वितन्त्रः ॥ इकन्पदोत्तरपदात् ॥ * ॥ शतषष्टेः षिकन्पथः ॥ * ॥ पूर्वपदिकः । उत्तरपदिकः । शतपथिकः । शतपथिकी । षष्टिपथिकः । षाष्टिपथिकी ॥

१२७०–क्रतुवाचक उक्थादि और सूत्रान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, इस स्थलमें क्रतु शब्दसे क्रतुविशेषवाचकोंका ही ग्रहण है, सामान्यक्रतुवाचक शब्दका ग्रहण नहीं है, मुख्यार्थयुक्त क्रतुवाची शब्दोंके उत्तर 'वेत्ता' अर्थमें और तत्प्रतिपादक ग्रन्थपरक क्रतुवाचक शब्दके उत्तर 'अध्येता' अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे–अग्निष्टोममधीते वेद वा=आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। उक्थ शब्दसे सामविशेष जानना। लक्षणाद्वारा तल्लक्षणपरक ग्रन्थविशेष भी उक्थ कहाताहै, जैसे–उक्थमधीते वेद वा, इस विग्रहमें औक्थिकः।

मुख्यार्थविशिष्ट उक्थ शब्दके उत्तर ठक् और अण् प्रत्यय वैयाकरणोंको अभिमत नहीं है *।

न्यायम् अधीते वेद वा, इस विग्रहमें नैयायिकः। वृत्तिम् अधीते वेद वा=वार्त्तिकः। लोकायतम् अधीते वेद वा=लौकायतिकः–इत्यादि।

कल्प शब्द आदिमें न हो ऐसे सूत्रान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो * जैसे–सांग्रहसूत्रिकः। अकल्पादि कहनेका भाव यह है कि, कल्प शब्द आदिमें होनेपर काल्पसूत्रः, यहां ठक् न हो।

विद्या, लक्षण, कल्प इन शब्दोंमेंसे कोई एक शब्द जिसके अन्तमें है, ऐसे प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो * जैसे–वायसविद्यिकः। गौलक्षणिकः। आश्वलक्षणिकः। पाराशरकल्पिकः।

अङ्ग, क्षत्र, धर्म, त्रि, इन शब्दोंमेंसे कोई एक शब्द पूर्वमें हो, और विद्या शब्द अन्तमें हो तो ऐसे प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय न हो * जैसे–आंगविद्यः। क्षात्रविद्यः। धार्मविद्यः। त्रिविधा विद्या=त्रिविद्या, तामधीते वेद वा=त्रैविद्यः।

आख्यान, आख्यायिका, इतिहास और पुराण शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो * जैसे–यवक्रीतका अधिकार करके कृत जो आख्यान सो उपचारके कारण यवक्रीत कहाताहै, उससे यवक्रीतम् अधीते वेद वा, इस विग्रहमें–यावक्रीतिकः। वासवदत्ताका अधिकार करके की हुई आख्यायिकाको वासवदत्ता कहतेहैं, "अधिकृत्य कृते ग्रन्थे १४६७" इस अर्थमें "वृद्धाच्छः १३३७" इस सूत्रसे छ प्रत्यय हुआ और "लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्" इस सूत्रसे उसका लुप् हुआ, पश्चात् इससे ठक् प्रत्यय होकर–वासवदत्तिकः। ऐतिहासिकः। पौराणिकः।

सर्व शब्द आदिमें है जिसके ऐसे प्रातिपदिक और स शब्द आदिमें है जिसके ऐसे प्रातिपदिकके उत्तर अण् प्रत्ययका लुक् हो * जैसे–सर्ववेदान् अधीते=सर्ववेदः। सर्वतन्त्रः। सवार्तिकः। "द्विगोर्लुक–१०८०" इस सूत्रसे अण् प्रत्ययका लुक् होकर द्वितन्त्रः।

पद शब्द उत्तर पद हो जिसके ऐसे प्रातिपदिकके उत्तर ष्कन् प्रत्यय हो, शत शब्द और षष्टि शब्दके परे स्थित पथिन् शब्दके उत्तर षिकन् प्रत्यय हो * जैसे–पूर्वपदिकः। उत्तरपदिकः। शतपथिकः। शतपथिकी। षष्टिपथिकः। षष्टिपथिकी॥

१२७१ क्रमादिभ्यो वुन्। ४। २। ६१॥

क्रमकः। क्रम, पद, शिक्षा, मीमांसा, क्रमादिः॥

१२७१–'अधीते' और 'वेद' इस अर्थमें क्रमादि शब्दोंके उत्तर वुन् प्रत्यय हो, जैसे–क्रमकः। क्रमादि जैसे–क्रम, पद, शिक्षा, मीमांसा॥

१२७२ अनुब्राह्मणादिनिः। ४।२।६२॥

तदधीते तद्वेदेत्यर्थे। ब्राह्मणसदृशो ग्रन्थोऽनुब्राह्मणं तदधीते अनुब्राह्मणी। मत्वर्थीयेनैव सिद्धे अण्बाधनार्थमिदम्॥

१२७२–'अधीते' और 'वेद' इस अर्थमें अनुब्राह्मण शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे–ब्राह्मणसदृशो ग्रन्थो अनुब्राह्मणम्, तदधीते तद्वेद वा=अनुब्राह्मणी। मत्वर्थीय प्रत्ययसे ही उक्त पद सिद्ध होता, फिर यह सूत्र केवल अण् प्रत्ययके बाधके निमित्त है॥

१२७३ वसन्तादिभ्यष्ठक्। ४। २। ६३॥

वासन्तिकः। अथर्वाणमधीते आथर्वणिकः। दाण्डिनायनेति सूत्रे निपातनाट्टिलोपो न॥

१२७३–उक्त अर्थमें वसन्तादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–वासन्तिकः। अथर्वाणमधीते=आथर्वणिकः, यहां "दाण्डिनायन० ११४५" इस सूत्रमें निपातनके कारण टिका लोप नहीं हुआ॥

१२७४ प्रोक्ताल्लुक्। ४। २। ६४॥

प्रोक्तार्थप्रत्ययात्परस्याध्येतृवेदितृप्रत्ययस्य लुक् स्यात्। पणनं पणः। घञर्थे कविधानमिति कः। सोऽस्यास्तीति पणी। तस्य गोत्रापत्यं पाणिनः॥

१२७४–प्रोक्तार्थक प्रत्ययके परे स्थित अध्येतृ और वेदितृवाचक प्रत्ययका लुक् हो, जैसे–पणनं पणः "घञर्थे कविधानम्" इससे क प्रत्यय हुआ, पणोऽस्यास्तीति=पणी तस्य गोत्रापत्यम्=पाणिनः॥

१२७५ गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च। ६। ४। १६५॥

एतेऽणि प्रकृत्या स्युः। इति टिलोपो न। ततो यूनि इञ्। पाणिनिः॥

१२७५–अण् प्रत्यय परे रहते गाथिन्, विदथिन्, केशिन्, गणिन् और पणिन् शब्दको प्रकृतिभाव हो, इस कारण टिका लोप नहीं हुआ, जैसे–पाणिनः। पश्चात् युवापत्य अर्थमें इञ् प्रत्यय होकर पाणिनिः॥

१२७६ ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः। २। ४। ५८॥

ण्यप्रत्ययान्तात्क्षत्रियगोत्रप्रत्ययान्तादृष्य-

भिधायिनो गोत्रप्रत्ययान्ताद् ञितश्च परयो-र्युवाभिधायिनोरणिञोर्लुक् स्यात् । कौरव्यः पिता, कौरव्यः पुत्रः । श्वाफल्कः पिता, श्वाफल्कः पुत्रः । वाशिष्ठः पिता, वाशिष्ठः पुत्रः। तैकायनिः पिता, तैकायनिः पुत्रः। एभ्यः किम् । शिवाद्यण् । कौहडः पिता तत इञ् । कौहडिः पुत्रः । यूनि किम् । वामरथ्य-स्य च्छात्राः वामरथाः। इति अणो लुक् तु न भवति । आर्षग्रहणेन प्रतिपदोक्तस्य ऋष्यण एव ग्रहणात् । पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम् । वृद्धाच्छः । इञश्चेत्यण् तु न । गोत्रे य इञ् तदन्तादिति वक्ष्यमाणत्वात् । ततोऽध्येतृवेदि-त्रणो लुक् । स्वरे स्त्रियां च विशेषः । पाणि-नीयः। पाणिनीया ॥

१२७६–ण्यप्रत्ययान्त और क्षत्रियवाची गोत्रप्रत्ययान्त और ऋषिवाचक गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिकके परे और ञित् प्रत्ययके परे युवापत्यार्थमें विहित अण् और इञ् प्रत्ययका लुक् हो, जैसे–कौरव्यः पिता। कौरव्यः पुत्रः । श्वाफल्कः पिता । श्वाफल्कः पुत्रः । वाशिष्ठः पिता । वाशिष्ठः पुत्रः । तैकायनिः पिता । तैकायनिः पुत्रः ।

इनसे भिन्न शब्दके उत्तर उक्त प्रत्ययका लुक् नहीं होताहै, इसलिये शिवादित्वके कारण अण् प्रत्यय करके कौहडः पिता, पश्चात् युवापत्यार्थमें इञ् प्रत्यय करके कौहडिः पुत्रः ।

युवापत्यार्थसे दूसरे अर्थमें विहित जो अण् और इञ् प्रत्यय, उनका लुक् न होगा, जैसे–वामरथ्यस्य छात्राः= वामरथाः ॥

आर्षग्रहणसे इस स्थलमें प्रतिपदोक्त ऋषिवाचक शब्दसे विहित जो अण् अर्थात् अण्से परे स्थित इञ्, उसका ही ग्रहण है, इस कारण अण् (अण्से परे स्थित इञ्) का लुक् नहीं होगा, जैसे–'पाणिनिना प्रोक्तम्=पाणिनीयम्' यहां "वृद्धाच्छः१३३७"इस सूत्रसे छ प्रत्यय हुआ,इस स्था-नमें "इञश्च १३३३" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय तो नहीं होताहै, कारण कि, गोत्रार्थमें विहित जो इञ् प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिकके उत्तर अण् प्रत्यय हो यह वक्ष्यमाण है (कहेंगे) पश्चात् अध्येतृ, वेदितृ अर्थमें विहित प्रत्ययका लुक् हुआ, लुगन्तके स्वर और स्त्रीलिङ्गमें विशेष होगा, जैसे–पाणिनीयः । पाणिनीया ॥

१२७७ सूत्राच्च कोपधात् । ४ ।२।६५॥

सूत्रवाचिनः ककारोपधादध्येतृवेदितृप्रत्यय-स्य लुक् स्यात् । अप्रोक्तार्थ आरम्भः । अष्टा-वध्यायाः परिमाणमस्य अष्टकं पाणिनेः सूत्रम्। तदधीयते विदन्ति वा अष्टकाः ॥

१२७७–ककारोपध सूत्रवाचक शब्दके उत्तर अध्येतृ, वेदितृ प्रत्ययका लुक् हो, अप्रोक्तार्थ यह सूत्रारम्भ है, जैसे-अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य=अष्टकं पाणिनेः सूत्रम्, तदधी-यते विदन्ति वा, इस विग्रहमें अष्टकाः ॥

१२७८ छन्दोब्राह्मणानि च तद्विष-याणि । ४ । २ । ६६ ॥

छन्दांसि ब्राह्मणानि च प्रोक्तप्रत्ययान्तानि तद्विषयाणि स्युः । अध्येतृवेदितृप्रत्ययं विना न प्रयोज्यानीत्यर्थः । कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः । वैशम्पायनान्तेवासित्वाण्णिनिः । तस्य कठचरकादिति लुक्, ततोऽण्, तस्य प्रोक्काल्लुक्॥ (इति रक्ताद्यर्थकाः)।

१२७८–प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्दोवाचक और ब्राह्मणवाचक शब्द अध्येतृ और वेदितृविषयक हों अर्थात् अध्येतृ और वेदितृ प्रत्ययके विना प्रयुक्त न हों, जैसे–कठेन प्रोक्तम् अधीयते=कठाः । "कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यः ४ । ३ १०४" इस सूत्रसे वैशम्पायनान्तेवासित्वके कारण णिनि प्रत्यय हुआ, उसका "कठचरकात्० १४८७"इस सूत्रसे लुक् हुआ, पश्चात् अण् प्रत्यय होकर उसका "प्रोक्ताल्लुक्१२७४" इस सूत्रसे लुक् हुआ ॥

(इति रक्ताद्यर्थकाः)।

अथ चातुरर्थिकप्रकरणम्।

१२७९ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्ना-म्नि । ४ । २ । ६७ ॥

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे, औदुम्बरः ॥

१२७९–तदस्मिन् अस्ति, अर्थात् वह इसमें है, इस अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकके उत्तर प्रत्ययान्तसे देशनाम गम्यमान होनेपर यथाविहित प्रत्यय हों, जैसे–उदुम्बराः सन्ति अस्मिन् देशे, इस विग्रहमें–औदुम्बरः ॥

१२८० तेन निर्वृत्तम् । ४ । २ । ६८ ॥

कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी ॥

१२८०–तेन निर्वृत्तम्, अर्थात् उससे यह निष्पादित हुआहै, इस अर्थमें तृतीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर यथा-विहित प्रत्यय हो, जैसे–कुशाम्बेन निर्वृत्ता=कौशाम्बी नगरी ॥

१२८१ तस्य निवासः । ४ । २ । ६९॥

शिबीनां निवासो देशः शैबः ॥

१२८१–षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर निवास अर्थमें यथा-विहित प्रत्यय हो, जैसे–शिबीनां निवासो देशः=शैबः ॥

१२८२ अदूरभवश्च । ४ । २ । ७० ॥

विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम् । च-कारेण प्रागुक्तास्त्रयोऽर्थाः संनिधाप्यन्ते तेन व-क्ष्यमाणप्रत्ययानां चातुरर्थिकत्वं सिध्यति ॥

१२८२–अदूरभव अर्थमें षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर यथाविहित प्रत्यय हो, जैसे–विदिशाया अदूरभवं नगरम्=

वैदिशम्, यहां अण् प्रत्यय हुआहै । चकारसे प्रागुक्त तीनों अर्थोंमें भी वक्ष्यमाण प्रत्यय होंगे, इसलिये वक्ष्यमाण प्रत्ययोंको चातुरर्थिकत्व सिद्ध होताहै ॥

१२८३ ओरञ् । ४ । २ । ७१ ॥

अणोऽपवादः । कक्षतु, काक्षतवम् । नद्यां तु परत्वान्मतुप् । इक्षुमती ॥

१२८३–उकारान्त प्रातिपदिकके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, यह अञ् प्रत्यय अण् प्रत्ययका अपवाद (विशेषक) है, जैसे–कक्षतुरस्मिन्नस्ति=काक्षतवम् । नदी वाच्य रहते तो "नद्यां मतुप् १३०४" इस सूत्रसे परत्वके कारण मतुप् प्रत्यय होगा, जैसे–इक्षुमती ॥

१२८४ मतोश्च बह्वजङ्गात् ।४।२।७२॥

बह्वच् अङ्गं यस्य मतुपस्तदन्तादञ् नाऽण् । सैध्रकावतम् । बह्वजिति किम् । आहिमतम् । अङ्गग्रहणं बह्वजिति तद्विशेषणं यथा स्यान्मत्वन्तविशेषणं मा भूत् ॥

१२८४–जिसका अङ्ग बहुत अचोंसे युक्त हो ऐसा जो मतुप्, प्रातिपदिकके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, अण् प्रत्यय न हो, जै कावतम् ।

बहुत अचोंसे युक्त अङ्ग न होनेपर अञ् त्यय नहीं होगा, जैसे–आहिमतम् । सूत्रमें बह्वच् यह अङ्गका विशेषण हो,मत्वन्तका विशेषण न हो, इसलिये अङ्गग्रहण कियाहै, नहीं तो 'आहिमतम्' यहां अञ् प्रत्यय होजाता ॥

१२८५ बह्वचः कूपेषु । ४ । २ । ७३ ॥

अणोऽपवादः।दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तो दैर्घवरत्रःकूपः॥

१२८५–बहुत अचोंसे युक्त जो प्रातिपदिक, उसके उ र कूप वाच्य होनेपर अञ् प्रत्यय हो । यह अञ्, अण् प्रत्ययका विशेषक है,जैसे–दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः=दैर्घवरत्रः,अर्थात् कूप ॥

१२८६ उदक् च विपाशः । ४।२।७४॥

विपाश उत्तरे कूले ये कूपास्तेष्वञ् । अबह्वजर्थ आरम्भः । दत्तेन निर्वृत्तो दात्तः कूपः । उदक् किम् । दक्षिणतः कूपेष्वणेव ॥

१२८६–विपाशाके उत्तर कूलमें स्थित जो कूप, सो वाच्य होनेपर तृतीयान्त प्रातिपदिकसे अञ् प्रत्यय हो । बह्वच् प्रातिपदिकसे भिन्न स्थलमें अञ् प्रत्ययके निमित्त यह सूत्रारंभ कियाहै, जैसे–दत्तेन निर्वृत्तः, इस विग्रहमें दात्तः कूपः । विपाशाके उत्तर कूलमें स्थित न होनेपर अर्थात् दक्षिण कूलमें स्थित होनेपर अण् प्रत्यय ही होगा, अञ् नहीं होगा ॥

१२८७ संकलादिभ्यश्च । ४ । २ ।७५॥

कूपेष्विति निवृत्तम् । संकलेन निर्वृत्तं सांकलम् । पौष्कलम् ॥

१२८७–संकलादि शब्दोंके उत्तर अञ् प्रत्यय हो । यहां 'कूपेषु' यह निवृत्त हुआ । संकलेन निर्वृत्तम्=सांकलम् । पौष्कलम् ॥

१२८८ स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु । ४ । २ । ७६ ॥

स्त्रीलिङ्गेषु एषु देशेषु वाच्येष्वञ् । सौवीरे, दत्तामित्रेण निर्वृत्ता दात्तामित्री नगरी । साल्वे, वैधूमाग्नी । प्राचि माकन्दी ॥

१२८८–स्त्रीलिङ्गमें सौवीर, साल्व और प्राच्य देश वाच्य होनेपर अञ् प्रत्यय हो । सौवीरमें जैसे–दत्तामित्रेण निर्वृत्ता=दात्तामित्री नगरी । साल्वमें–वैधूमाग्नी । प्राच्यमें माकन्दी ॥

१२८९ सुवास्त्वादिभ्योऽण् ।४।२।७७॥

अञोऽपवादः । सुवास्तोरदूरभवं सौवास्तवम् । वर्णु, वार्णवम् । अण्ग्रहणं नद्यां मतुपो बाधनार्थम् । सौवास्तवी ॥

१२८९–सुवास्त्वादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो,यह अण् अञ् प्रत्ययका अपवाद है । सुवास्तोरदूरभवम्, इस विग्रहमें सौवास्तवम् । वर्णोरदूरभवम्=वार्णवम् । इस सूत्रमें अण् ग्रहण "नद्यां मतुप् १३०४" इस सूत्रसे विहित मतुप् प्रत्ययके बाधके निमित्त है, जैसे–सौवास्तवी ॥

१२९० रोणी । ४ । २ । ७८ ॥

रोणीशब्दात्तदन्ताच्च अण् । कूपाञोऽपवादः। रौणः । आजकरोणः ॥

१२९०–रोणी और रोणीशब्दान्त प्रातिपदिकके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यह अण् कूपार्थक अञ् प्रत्ययका अपवाद है। रौणः । आजकरोणः ॥

१२९१ कोपधाच्च । ४ । २ । ७९ ॥

अण् । अञोऽपवादः कार्णच्छिद्रकः कूपः । कार्कवाकवम् । त्रैशंकवम् ॥

१२९१–ककारोपध प्रातिपदिकके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यह अण् प्रत्यय अञ् प्रत्ययका अपवाद है, जैसे–कार्णच्छिद्रकः अर्थात् कूप । कार्कवाकवम् । त्रैशंकवम् ॥

१२९२ वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः । ४ । २ । ८० ॥

सप्तदशभ्यः सप्तदश क्रमात्स्युश्चतुरर्थ्याम् । अरीहणादिभ्यो वुञ् । अरीहणेन निर्वृत्तमारीहणकम् । कृशाश्वादिभ्यश्छण् । काशाश्वीयम् । ऋश्यादिभ्यः कः । ऋश्यकम् । कुमुदादिभ्यष्ठच् । कुमुदिकम् । काशादिभ्य इलः । काशिलः । तृणादिभ्यः सः । तृणसम् । प्रेक्षादिभ्य इनिः ।

प्रेक्षी । अश्मादिभ्यो रः । अश्मरः । सख्यादिभ्यो ढञ् । साखेयम् । संकाशादिभ्यो ण्यः । सांकाश्यम् । बलादिभ्यो यः । बल्यम् । पक्षादिभ्यः फक् । पाक्षायणः । पथः पन्थ च । पान्थायनः । कर्णादिभ्यः फिञ् । कार्णायनिः । सुतङ्गमादिभ्य इञ् । सौतङ्गमिः । प्रगद्यादिभ्यो ञ्यः। प्रागद्यः । वराहादिभ्यः कक् । वाराहकः । कुमुदादिभ्यष्ठक् । कौमुदिकः ॥

१२९२-चारों (तदस्मिन्नस्तीति देश तन्नाम्नि १, तेन निर्वृत्तम् २, तस्य निवासः ३, अदूरभवश्च ४) अर्थोंमें अरीहणादि सप्तदश शब्दोंके उत्तर क्रमसे वुञ् आदि सप्तदश प्रत्यय हों, अर्थात् अरीहणादि शब्दोंके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे-अरीहणेन निर्वृत्तम्-आरीहणकम् । कृशाश्वादि शब्दोंके उत्तर छण् प्रत्यय हो,-जैसे-कार्शाश्वीयम् । ऋश्यादि शब्दोंके उत्तर क प्रत्यय हो, जैसे-ऋश्यकम् । कुमुदादि शब्दोंके उत्तर ठच् प्रत्यय हो, जैसे-कुमुदिकम् । काशादि शब्दोंके उत्तर इल प्रत्यय हो, जैसे-काशिलः । तृणादि शब्दोंके उत्तर स प्रत्यय हो, जैसे-तृणसम् । प्रेक्षादि शब्दोंके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे-प्रेक्षी । अश्मादि शब्दोंके उत्तर र प्रत्यय हो, जैसे-अश्मरः । सख्यादि शब्दोंके उत्तर ढञ् प्रत्यय हो, जैसे-साखेयम् । सङ्काशादि शब्दोंके उत्तर ण्य प्रत्यय हो, जैसे-साङ्काश्यम् । बलादि शब्दोंके उत्तर य प्रत्यय हो, जैसे-बल्यम् । पक्षादि शब्दोंके उत्तर फक् प्रत्यय हो, जैसे-पाक्षायणः । पथिन् शब्दके स्थानमें पंथ आदेश और फक् प्रत्यय हो, जैसे-पान्थायनः । कर्णादि शब्दोंके उत्तर फिञ् प्रत्यय हो, जैसे-कार्णायनिः । सुतंगमादि शब्दोंके उत्तर इञ् प्रत्यय हो, जैसे-सौतङ्गमिः । प्रगद्यादि शब्दोंके उत्तर ञ्य प्रत्यय हो, जैसे-प्रागद्यः । वराहादि शब्दोंके उत्तर कक् प्रत्यय हो, जैसे-वाराहकः । कुमुदादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-कौमुदिकः ॥

१२९३ जनपदे लुप् । ४ । २ । ८१ ॥

जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप्स्यात् ॥

१२९३-जनपद अर्थ वाच्य होनेपर चातुरर्थिक प्रत्ययका लुप् हो-॥

१२९४ लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने ।१।२।५१॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः । पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः । कुरवः । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः ॥

१२९४-(साधारणतः विशेषणके, विशेष्यके लिङ्ग और वचनके समान लिङ्ग और वचन होतेहैं, परन्तु इस स्थानमें उस नियमका परिहार करतेहैं-) प्रत्ययका लुप् होनेपर प्रकृतिके समान लिङ्ग और वचन हों, अर्थात् विशेष्यानुरोधसे विशेषण अपने लिंग और वचनका परित्याग न करे, जैसे-पाञ्चालानां निवासो जनपदः=पञ्चालाः । कुरवः । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः ॥

१२९५ तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् । १ । २ । ५३ ॥

युक्तवद्वचनं न कर्तव्यं संज्ञानां प्रमाणत्वात् ॥

१२९५-पूर्व आचार्योंके अनुरोधसे "लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने" इस प्रकार सूत्र कियाहै, परन्तु सम्प्रति इस सूत्रका प्रत्याख्यान करतेहैं, कारण कि, लोकमें व्यवहृत संज्ञाको प्रामाण्य होनेसे जैसी संज्ञा लोकमें व्यवहृत होगी वैसी ही साधु होगी अङ्गाः, वङ्गाः, कलिङ्गाः-इत्यादि बहुवचनान्त ही जनपदकी संज्ञा हैं, इसके लिये प्रकृतिवत् लिङ्गवचनविधान करना उचित नहीं है, इसलिये 'आपो दाराः' इत्यादि स्थलमें शास्त्रसे लिङ्ग, संख्याके विधान नहीं किये जातेहैं ॥

१२९६ लुब्योगाऽप्रख्यानात् ।१।२।५४॥

लुबपि न कर्तव्योऽवयवार्थस्येहाप्रतीतेः ॥

१२९६-उपजीवक युक्तवद्वचनका प्रत्याख्यान करके अब उपजीव्य लुब्विधानका प्रत्याख्यान करतेहैं कि, चातुरर्थिक प्रत्ययके लुप्का विधान नहीं करना चाहिये, कारण कि, इस स्थानमें अवयवार्थ, अर्थात् यौगिक अर्थकी प्रतीति नहीं होतीहै । आशय यह है कि, पाञ्चालादि शब्द जैसे क्षत्रियमें रूढ हैं, वैसे जनपदमें भी रूढ हैं, इसलिये "तस्य निवासः" "अदूरभवश्च" इनसे तद्धितोत्पत्ति हो ही नहीं सकती है, फिर उसका लुप्विधान करना व्यर्थ है ॥

१२९७ योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात् । १ । २ । ५५ ॥

यदि हि योगस्यावयवार्थस्येदं बोधकं स्यात्तदा तदभावे न दृश्येत ॥

१२९७-प्रत्ययके स्वीकार होनेपर उसके विषयमें भी कहतेहैं कि, यदि कहो कि, इस स्थानमें योगार्थका बोध होताहै अर्थात् पञ्चाल शब्दसे क्षत्रियका निवास जिस स्थानमें हो, उसको 'पञ्चालाः' कहतेहैं, ऐसे यौगिकार्थका बोध होताहै तो, जिस स्थानमें प्रत्ययका लुप् होगा, उस स्थानमें यौगिकार्थका बोध नहीं होगा अर्थात् पञ्चाल शब्दसे क्षत्रियका निवासस्थान इस अर्थका बोध नहीं होगा ॥

१२९८ प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्याऽन्यप्रमाणत्वात् । १ । २ । ५६ ॥

प्रत्ययार्थः प्रधानमित्येवंरूपं वचनमप्यशिष्यम् । कुतः । अर्थस्य लोकत एव सिद्धेः ॥

१२९८-प्रकृत्यर्थ और प्रत्ययार्थके मध्यमें प्रत्ययार्थको प्राधान्य है, ऐसा वचन भी नहीं करना चाहिये, कारण कि, प्रत्ययार्थप्रधानविषयक बोधकी लोकहीसे सिद्धि है ॥

१२९९ कालोपसर्जने च तुल्यम् । १ । २ । ५७ ॥

अतीताया रात्रेः पश्चार्द्धेनागामिन्याः पूर्वार्द्धेन च सहितो दिवसोऽद्यतनः । विशेषणमुपस-

र्जनमित्यादि पूर्वाचार्यैः परिभाषितं तत्राप्यशिष्यत्वं समानं लोकप्रसिद्धेः ॥

१२९९—'बीती हुई रात्रिके शेषार्द्धसे और आगामिनी रात्रिके प्रथमार्द्धसे युक्त जो दिन, उसको अद्यतन कहतेहैं' 'विशेषण अप्रधान होताहै' इत्यादि पूर्वाचार्य्योंके कहे हुए वचन भी नहीं करने चाहियें, कारण कि, वह सब लोकमें प्रसिद्ध हैं ॥

१३०० विशेषणानां चाऽजातेः ।१।२।५२॥

लुबर्थस्य विशेषणानामपि तद्वल्लिङ्गवचने स्तो जातिं वर्जयित्वा । पञ्चाला रमणीयाः । गोदौ रमणीयौ । अजातेः किम् । पञ्चाला जनपदः । गोदौ ग्रामः ॥ हरीतक्यादिषु व्यक्तिः ॥ * ॥ हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः ॥ खलतिकादिषु वचनम् ॥ * ॥ खलतिकस्य पर्वतस्यादूरभवानि खलतिकं वनानि ॥ मनुष्यलुपि प्रतिषेधः ॥ * ॥ मनुष्यलक्षणे लुबर्थे विशेषणानां न । लुबन्तस्य तु भवतीत्यर्थः । चञ्चा अभिरूपः ॥

१३००—जिस प्रत्ययका लुप् हुआ है, तदर्थभूत जो विशेष्य पद, उसके जो विशेषण, उनके भी विशेष्यके समान ही लिङ्ग और वचन हों, अर्थात् विशेष्यके जैसे लिङ्गादि हों विशेषणके भी वैसे ही लिङ्गादि हों, परन्तु जातिवाचक शब्दके नहीं हों, जैसे पञ्चालाः रमणीयाः । गोदौ रमणीयौ । जातिवाचक होनेपर विशेषण, विशेष्यके लिङ्ग वचनके भागी नहीं होंगे, जैसे—पञ्चाला जनपदः । गोदौ ग्रामः ।

हरीतकी आदि शब्दोंमें प्रकृतिवत् लिङ्ग हो अर्थात् विशेषण, विशेष्यलिङ्गका भागी न हो * जैसे— हरीतक्याः फलानि=हरीतक्यः ।

खलतिकादि शब्दोंमें प्रकृतिवत् वचन हो, अर्थात् विशेष्यानुरूप वचन न हो * जैसे—खलतिकस्य पर्वतस्य अदूरभवानि=खलतिकं वनानि ।

लुबर्थ मनुष्य होनेपर विशेष्यके समान विशेषणका लिङ्ग और वचन न हो, परन्तु लुबन्तके प्रकृतिवत् लिङ्ग, वचन हों* जैसे—चञ्चा अभिरूपः ॥

१३०१ वरणादिभ्यश्च ।४।२।८२॥

अजनपदार्थ आरम्भः । वरणानामदूरभवं नगरं वरणा ॥

१३०१—वरणादि शब्दोंके उत्तर चातुरर्थिक प्रत्ययका लुप् हो, अजनपदार्थ इस सूत्रका आरंभ है, अर्थात् जनपदवाचक शब्दके अतिरिक्त शब्दसे चातुरर्थिक प्रत्ययका लुप् हो इस लिये यह सूत्र है, जैसे—वरणानामदूरभवं नगरम्=वरणाः ॥

१३०२ शर्कराया वा ।४।२।८३॥

अस्माच्चातुरर्थिकस्य वा लुप्स्यात् ॥

१३०२—शर्करा शब्दके उत्तर चातुरर्थिक प्रत्ययका विकल्प करके लुप् हो ॥

१३०३ ठक्छौ च ।४।२।८४॥

शर्करायां एतौ स्तः । कुमुदादौ वराहादौ च पाठसामर्थ्यात्पक्षे ठच्ककौ । वाग्रहणसामर्थ्यात्पक्षे औत्सर्गिकोऽण्, तस्य लुब्विकल्पः । षड् रूपाणि । शर्करा । शार्करम् । शार्करिकम् । शर्करीयम् । शर्करिकम् । शार्करकम् ॥

१३०३—शर्करा शब्दके उत्तर ठक् और छ प्रत्यय हों । कुमुदादि गण (१२९२) और वराहादि (१२९२) गणमें शर्करा शब्दके पाठके सामर्थ्यसे ठच् और कक् प्रत्यय होंगे, पूर्व सूत्रसे विकल्पसे लुप्के विधानके कारण पक्षमें औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होगा, उस अण् प्रत्ययका विकल्प करके लुप् होगा, इस प्रकार शर्करा शब्दके छः रूप होंगे, जैसे—शर्करा, शार्करम्, शार्करिकम्, शर्करीयम्, शर्करिकम्, शार्करकम् ॥

१३०४ नद्यां मतुप् ।४।२।८५॥

चातुरर्थिकः । इक्षुमती ॥

१३०४—नदी वाच्य होनेपर चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय हो, जैसे—इक्षुमती ॥

१३०५ मध्वादिभ्यश्च ।४।२।८६॥

मतुप् स्याच्चातुरर्थिकः । अनद्यर्थ आरम्भः । मधुमान् ॥

१३०५—मधु आदि शब्दोंके उत्तर चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय हो; नदीवाचकसे भिन्न स्थलमें भी मतुप् प्रत्यय होनेके लिये यह सूत्रारम्भ हुआ है, जैसे—मधुमान् ॥

१३०६ कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ।४।२।८७॥

कुमुद्वान् । नड्वान् । वेतस्वान् । आद्ययोर्झय इति अन्त्ये मादुपधाया इति वक्ष्यमाणेन वः ॥ महिषाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ महिष्मान्नाम देशः ॥

१३०६—कुमुद, नड और वेतस् शब्दके उत्तर ड्मतुप् प्रत्यय हो, जैसे—कुमुद्वान् । नड्वान् । वेतस्वान् । आद्य दोनों अर्थात् कुमुद और नड शब्दके उत्तर जो मतुप् प्रत्ययका मकार उसके स्थानमें "झयः १८९८"—इस वक्ष्यमाण सूत्रसे व आदेश और अन्त्यस्थित जो वेतस् शब्द उसके उत्तर मतुप्के मकारको "मादुपधायाः१८१७" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे व हुआ ।

महिष शब्दसे भी ड्मतुप् हो* जैसे—महिष्मान् नाम देशः ॥

१३०७ नडशादाड्ड्वलच् ।४।२।८८॥

नड्वलः । शादो जम्बालघासयोः । शाद्वलः ॥

१३०७—नड और शाद शब्दके उत्तर ड्वलच् प्रत्यय हो, जैसे—नड्वलः । शाद शब्दसे जम्बाल और घास जानना । शाद्वलः ॥

१३०८ शिखाया वलच् ।४।२।८९॥

शिखावलम् ॥

१३०८-शिखा शब्दसे वलच् प्रत्यय हो, जैसे-शिखावलम् ॥

१३०९ उत्करादिभ्यश्छः । ४।२।९०॥

उत्करीयः ॥

१३०९-उत्करादि शब्दोंके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-उत्करीयः ॥

१३१० नडादीनां कुक् च ।४।२।९१॥

नडकीयम् ॥ कुञ्चाह्रस्वत्वं च ॥ * ॥ कुञ्चकीयः ॥ तक्षन्नलोपश्च ॥ तक्षकीयः ॥

१३१०-नडादि शब्दोंको कुक्का आगम और छ प्रत्यय हो, जैसे-नडकीयम् ।

कुञ्चा शब्दको कुक्का आगम और छ प्रत्यय और कुञ्चाको ह्रस्वत्व हो* जैसे-कुञ्चकीयः ।

तक्षन् शब्दको कुक्का आगम और छ प्रत्यय और नकारका लोप हो* जैसे-तक्षकीयः ॥

१३११ बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् । ६ । ४ । १५३ ॥

नडाद्यन्तर्गता बिल्वकादयस्तेभ्यश्छस्य लुक् तद्धिते परे । बिल्वा यस्यां सन्ति सा बिल्वकीया तस्यां भवा बैल्वकाः । वेत्रकीयाः । वैत्रकाः । छस्य किम् । छमात्रस्य लुग्यथा स्यात्कुको निवृत्तिर्मा भूत् । अन्यथा सन्नियोगशिष्टानामिति कुगपि निवर्तेत । लुग्ग्रहणं सर्वलोपार्थं लोपोऽपि यमात्रस्य स्यात् ॥

॥ इति चातुरर्थिकाः ॥

१३११-नडादिके अन्तर्गत जो बिल्वकादि शब्द, उनके उत्तर तद्धित प्रत्यय परे रहते छ प्रत्ययका लुक् हो, जैसे-बिल्वा यस्यां सन्ति सा=बिल्वकीया, तस्यां भवाः=बैल्वकाः । इसी प्रकार-वेत्रकीयाः । वैत्रकाः ।

इस सूत्रमें छ प्रत्ययका ग्रहण क्यों किया ? तो बिल्वकादि शब्दोंके उत्तर जो प्रत्यय, केवल उसका ही लुक् हो और कुक्की निवृत्ति नहीं हो । यदि छ प्रत्ययका लुक् हो, ऐसा न कहकर प्रत्ययमात्रका लुक् कहते तो "सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः" इस न्यायसे प्रत्ययकी निवृत्ति होनेसे सन्नियोगशिष्ट कुक् भी निवृत्त हो जाता । लोपकी अनुवृत्ति न करके इस सूत्रमें लुक्का ग्रहण सर्वलोपके निमित्त है, नहीं तो लोपकी अनुवृत्ति करनेसे केवल यकारहीका लोप होता ॥

॥ इति चातुरर्थिकप्रकरणम् ॥

अथ शैषिकप्रकरणम् ।

१३१२ शेषे । ४ । २ । ९२ ॥

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राऽणादयः स्युः । चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम् । श्रावणः शब्दः । औपनिषदः पुरुषः । दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः । उलूखले क्षुण्णः औलूखलो यावकः । अश्वैरुह्यते आश्वो रथः । चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम् । चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः । शेष इति लक्षणं चाधिकारश्च । तस्य विकार इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः ॥

१३१२-तद्धितमें अपत्य आदि चतुरर्थ्यन्त जो २ अर्थ हैं उनसे जो अन्य (अर्थात् विशेष रूपसे भासमान) अर्थ उनका नाम शेष है, उस शेष अर्थमें अणादि प्रत्यय हों, यथा-चक्षुषा गृह्यते=चाक्षुषं रूपम् । श्रावणः शब्दः । औपनिषदः पुरुषः । दृषदि पिष्टाः=दार्षदाः सक्तवः । उलूखले क्षुण्णः-औलूखलः यावकः । अश्वैरुह्यते=आश्वो रथः । चतुर्भिरुह्यते=चातुरं शकटम् । चतुर्दश्यां दृश्यते=चातुर्दशं रक्षः । "शेषे" यह लक्षण और अधिकार भी है । "तस्य विकारः" इस सूत्रके पूर्वपर्यन्त इस सूत्रका अधिकार अर्थात् शेषाधिकार चलेगा ॥

१३१३ राष्ट्रावारपाराद्घखौ ।४।२।९३॥

आभ्यां क्रमाद्घखौ स्तः शेषे । राष्ट्रियः । अवारपारीणः ॥ अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अवारीणः । पारीणः । पारावारीणः । इह प्रकृतिविशेषाद्घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते ॥

१३१३-शेषार्थमें राष्ट्र और अवारपार शब्दके उत्तर यथाक्रम घ और ख प्रत्यय हो, जैसे-राष्ट्रियः । अवारपारीणः ।

विगृहीत अवारपार शब्द अर्थात् अवार और पार शब्दसे और विपरीत अवारपार शब्द अर्थात् पारावार शब्दसे भी ख प्रत्यय हो* जैसे-अवारीणः । पारीणः।पारावारीणः । इस गणमें प्रकृतिविशेषसे घआदि ट्युट्युलन्त प्रत्यय उक्त होतेहैं, उन प्रत्ययोंका जात आदि अर्थविशेष और समर्थ विभक्ति कही जायँगी ॥

१३१४ ग्रामाद्यखञौ । ४ । २।९४॥

ग्राम्यः । ग्रामीणः ॥

१३१४-शेषार्थमें ग्राम शब्दके उत्तर य और खञ् प्रत्यय हो, जैसे-ग्रामे जातो भवो वा=ग्राम्यः । ग्रामीणः ॥

१३१५ कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ् ।४।२।९५॥

कुत्सितास्त्रयः कत्त्रयः तत्र जातादिः कात्त्रेयकः । नागरेयकः । ग्रामादित्यनुवृत्तेः-ग्रामेयकः॥

१३१५–कत्त्र्यादि शब्दोंके उत्तर ढकञ् प्रत्यय हो, जैसे–कुत्सितास्त्रयः=कत्त्रयः,तत्र जातादिः=कात्त्रेयकः। नागरेयकः। इस सूत्रमें ग्राम शब्दकी अनुवृत्तिके कारण'ग्रामेयकः' ऐसा पद सिद्ध हुआ ॥

१३१६ कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु । ४ । २ । ९६ ॥

कौलेयकः श्वा । कौलोऽन्यः । कौक्षेयकोऽसिः । कौक्षोऽन्यः । ग्रैवेयकोऽलंकारः । ग्रैवोऽन्यः ॥

१३१६–कुल, कुक्षि और ग्रीवा शब्दके उत्तर क्रमसे श्वा, असि और अलंकार अर्थ होनेपर ढकञ् प्रत्यय हो, जैसे–कौलेयकः श्वा। अन्यार्थमें कौलः। कौक्षेयकः असिः ।अन्यार्थमें कौक्षः। ग्रैवेयकः अलंकारः। अन्यार्थमें ग्रैवः ॥

१३१७ नद्यादिभ्यो ढक्।४।२।९७॥

नादेयम् । माहेयम् । वाराणसेयम् ॥

१३१७–जातादि अर्थमें नदी आदि शब्दोंके उत्तर ढक् प्रत्यय हो, जैसे–नादेयम्। माहेयम्। वाराणसेयम् ॥

१३१८ दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् । ४ । २ । ९८ ॥

दक्षिणेत्याजन्तमव्ययम । दाक्षिणात्यः । पाश्चात्यः । पौरस्त्यः ॥

१३१८–दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् शब्दके उत्तर त्यक् प्रत्यय हो, 'दक्षिणा' यद पद आच्प्रत्ययान्त अव्यय है, जैसे–दाक्षिणात्यः। पाश्चात्यः। पौरस्त्यः ॥

१३१९ कापिश्याः ष्फक् । ४ ।२।९९ ॥

कापिश्यां जातादि कापिशायनं मधु। कापिशायनी द्राक्षा ॥

१३१९–जातादि अर्थमें कापिशी शब्दके उत्तर ष्फक् प्रत्यय हो, जैसे–कापिश्यां जातादि=कापिशायनं मधु। कापिशायनी द्राक्षा ॥

१३२० रंकोरमनुष्येऽण् च।४।२।१००॥

चात् ष्फक्। रांकवो गौः । रांकवायणः। अमनुष्ये इति किम् । रांकवको मनुष्यः ॥

१३२०–मनुष्यसे भिन्न अर्थ होनेपर रंकु शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय और चकारसे ष्फक् प्रत्यय हो, जैसे–राङ्कवो गौः। राङ्कवायणः। मनुष्यार्थ होनेपर रांकवको मनुष्यः ॥

१३२१ द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् । ४ । २ । १०१ ॥

दिव्यम् । प्राच्यम् । अपाच्यम् । उदीच्यम् । प्रतीच्यम ॥

१३२१–जातादि अर्थमें दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच् और प्रतीच् शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो,जैसे–दिवि भवम्=दिव्यम्। प्राचि भवम्=प्राच्यम्। अपाच्यम्। उदीच्यम्। प्रतीच्यम् ॥

१३२२ कन्थायाष्ठक् ।४।२।१०२॥

कान्थिकः ॥

१३२२–जातादि अर्थमें कन्था शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–कान्थिकः ॥

१३२३ वर्णौ वुक् । ४ । २ । १०३ ॥

वर्णुर्नदस्तस्य समीपदेशो वर्णुः, तद्विषयार्थवाचिकन्थाशब्दाद्वुक् स्यात् । यथा हि जातं हिमवत्सु कान्थकम् ॥

१३२३–वर्णुनामक नद है,उसके समीपका देश भी वर्णु कहाता है, तद्विषयार्थवाची कन्था शब्दसे वुक् प्रत्यय हो, यथा–"यथा हि जातं हिमवत्सु कान्थकम् " ॥

१३२४ अव्ययात्त्यप् । ४ । २।१०४॥

अमेहक्वतसित्रेभ्य एव ॥ * ॥ अमान्तिकसहार्थयोः । अमात्यः । इहत्यः । क्वत्यः। ततस्त्यः । तत्रत्यः । परिगणनं किम् । उपरिष्टाद्भव औपरिष्टः ॥ अव्ययानां भमात्रे टिलोपः ॥ * ॥ अनित्योऽयं बहिषष्टिलोपविधानात् । तेनेह न । आरातीयः ॥ त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ नित्यः ॥निसो गते॥*॥

१३२४–अव्ययसंज्ञक शब्दके उत्तर त्यप् प्रत्यय हो। अमा, इह, क्व, तस् और त्रल्प्रत्ययान्त अव्यय शब्दोंके उत्तर ही त्यप् प्रत्यय हो * ।

'अमा' यह अव्यय शब्द अन्तिकार्थक और सहार्थक है, जैसे–अमात्यः। इहत्यः । क्वत्यः। ततस्त्यः। तत्रत्यः।

परिगणन क्यों किया ? तो उपरिष्टाद्भवः, इस विग्रहमें 'औपरिष्टः' यहां त्यप् न हो।

अव्ययकी भ–संज्ञामात्रमें टिका लोप हो * बहिष् शब्दके टिलोपविधानके कारण यह टिलोपविधि अनित्य है, इस कारण इस स्थानमें टिलोप नहीं हुआ, जैसे–आरातीयः।

निश्चयार्थमें नि उपसर्गके उत्तर त्यप् प्रत्यय हो*जैसे–नित्यः।

निस् उपसर्गके परे गत अर्थमें त्यप् प्रत्यय हो–* ।

१३२५ ह्रस्वात्तादौ तद्धिते।८।३।१०१॥

ह्रस्वादिणः परस्य सस्य षः स्यात्तादौ तद्धिते । निर्गतो वर्णाश्रमेभ्यो निष्ट्यश्चाण्डालादिः ॥ अरण्याण्णः ॥ * ॥ आरण्याः सुमनसः ॥ दूरादेत्यः ॥ * ॥ दूरेत्यः ॥ उत्तरादाहञ् ॥ * ॥ औत्तराहः ॥

१३२५–तकारादि तद्धित प्रत्यय परे रहते ह्रस्व इणके परे स्थित सकारको षत्व हो, जैसे–निर्गतो वर्णाश्रमेभ्यः, इस विग्रहमें निष्ट्यः–चाण्डालादिः।

अरण्य शब्दके उत्तर ण प्रत्यय हो * जैसे. आरण्याः सुमनसः।

दूर शब्दके उत्तर एत्य प्रत्यय हो * जैसे–दूरेत्यः।

उत्तर शब्दके उत्तर आहञ् प्रत्यय हो * जैसे–औत्तराहः॥

१३२६ ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम् । ४ । २ । १०५ ॥

एभ्यस्त्यब्वा । पक्षे वक्ष्यमाणौ ट्यु ऐषमस्त्यम् । ऐषमस्तनम् । ह्यस्त्यम् । ह्यस्तनम् । श्वस्त्यम् । श्वस्तनम् । पक्षे । शौवस्तिकं वक्ष्यते॥

१३२६–ऐषमस्, ह्यस् और श्वस् शब्दके उत्तर विकल्प करके त्यप् प्रत्यय हो, पक्षमें वक्ष्यमाण ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होगा, जैसे–ऐषमस्त्यम्, ऐषमस्तनम् । ह्यस्त्यम् । ह्यस्तनम् । श्वस्त्यम् । श्वस्तनम् । पक्षमें 'शौवस्तिकम्' ऐसा रूप कहेंगे ॥

१३२७ तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ । ४ । २ । १०६ ॥

यथासंख्येन । काकतीरम् । पाल्वलतीरम् । शैवरूप्यम् । तीररूप्यान्तादिति नोक्तम् । बहुच्पूर्वान्मा भूत् । बाहुरूप्यम् ॥

१३२७–तीर शब्द और रूप्य शब्द उत्तर पद हैं जिनके ऐसे शब्दोंके उत्तर यथाक्रम अञ् और ञ प्रत्यय हो, जैसे–काकतीरम् । पाल्वलतीरम् । शैवरूप्यम् ।

तीरशब्दान्त और रूप्यशब्दान्त प्रातिपदिकोंके उत्तर उक्त प्रत्यय हों, ऐसे न कहकर तीर शब्द और रूप्य शब्द उत्तरपद हैं जिनके ऐसे शब्दोंके उत्तर उक्त प्रत्यय हों, ऐसा क्यों कहा? तो जिस स्थानमें बहुच् प्रत्यय होगा उस स्थानमें तीर शब्द अथवा रूप्य शब्द अन्तस्थित होगा, क्योंकि, बहुच् प्रत्यय प्रकृतिके पूर्वमें ही होताहै, उस स्थानमें अञ् अथवा ञ प्रत्यय नहीं हो,जैसे–'बाहुरूप्यम्' इस स्थानमें ञ प्रत्यय नहीं हुआ ॥

१३२८ दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः । ४ । २ । १०७ ॥

अणोपवादः । पौर्वशालः । असंज्ञायां किम् । संज्ञाभूतायाः प्रकृतेर्मा भूत् । पूर्वेषुकामशम्यां भवः पूर्वेषुकामशमः । प्राचां ग्रामनगराणामित्युत्तरपदवृद्धिः ॥

१३२८–दिग्वाचक शब्द जिसका पूर्वपद है, ऐसे प्रातिपदिकके उत्तर संज्ञा न होनेपर ञ प्रत्यय हो,यह ञ प्रत्यय अण् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे–पौर्वशालः ।

संज्ञा न होनेपर ऐसा क्यों कहा ? तो संज्ञाभूत प्रातिपदिकके उत्तर ञ प्रत्यय नहीं हो, जैसे–पूर्वेषुकामशम्यांभवः= पूर्वेषुकामशमः यहां " प्राचां ग्रामनगराणाम् १४४०" इस सूत्रसे उत्तरपदकी वृद्धि हुई है ॥

१३२९ मद्रेभ्योऽञ् । ४ । २ । १०८ ॥

दिक्पूर्वपदादित्येव । दिशोऽमद्राणामिति मद्रपर्युदासादादिवृद्धिः । पौर्वमद्रः ।आपरमद्रः ।

१३२९–जिसके पूर्वमें दिग्वाचक शब्द है, ऐसे मद्र शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, "दिशोऽमद्राणाम् १३९९" इस सूत्रमें मद्र शब्दके पर्युदासके कारण आदि अच्की वृद्धि हुई,जैसे–पौर्वमद्रः । आपरमद्रः ॥

१३३० उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात् । ४ । २ । १०९ ॥

अञ् स्यात् । शैवपुरम् ॥

१३३०–इस सूत्रमें 'दिक्पूर्वपदात्' यह निवृत्त हुआ । बहुत स्वरसे युक्त अन्तोदात्त उदीच्यग्रामवाचक शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, जैसे–शैवपुरम् ॥

१३३१ प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् । ४ । २ । ११० ॥

माहिकिप्रस्थः । पालदः । नैलीनकः ॥

१३३१–प्रस्थ शब्द उत्तर पद है जिसके ऐसे प्रातिपदिक, पलदी आदि शब्द और ककारोपध प्रातिपदिकके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे–माहिकिप्रस्थः । पालदः । नैलीनकः ॥

१३३२ कण्वादिभ्यो गोत्रे ।४।२।१११॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययान्तेभ्योऽण् स्यात् । कण्वो गर्गादिः । काण्व्यस्य छात्राः काण्वाः ॥

१३३२–गोत्रप्रत्ययान्त कण्वादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, कण्व शब्द गर्गादि गणमें पठित है, जैसे–काण्व्यस्य च्छात्राः, इस विग्रहमें–काण्वाः ॥

१३३३ इञश्च । ४ । २ । ११२ ॥

गोत्रे य इञ् तदन्तादण् स्यात् । दाक्षाः । गोत्रे किम् । सौतङ्गमेरिदं सौतङ्गमीयम् । गोत्रमिह शास्त्रीयं न तु लौकिकम् । तेनेह न । पाणिनीयम् ॥

१३३३–गोत्रार्थमें जो इञ् प्रत्यय,तदन्त प्रातिपदिकके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे–दाक्षाः ।

गोत्रार्थ न होनेपर इञ् नहीं होगा । जैसे–सौतङ्गमेरिदम्= सौतङ्गमीयम् ।

इस स्थलमें गोत्र शास्त्रीय है, लौकिक नहीं है अर्थात् शास्त्रमें पौत्रादि अपत्यको गोत्र कहतेहैं वही इस सूत्रमें गोत्र जानना, किन्तु लौकिक गोत्र नहीं, इसलिये यहां नहीं हुआ, जैसे–पाणिनीयम् ।

१३३४ न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु । ४ । २ । ११३ ॥

इञश्चेत्यणोऽपवादः । प्राष्ठीयाः । काशीयाः । भरतानां प्राच्यत्वेऽपि पृथगुपादानमन्यत्र प्राच्यग्रहणे भरतानामग्रहणस्य लिंगम् ॥

१३३४–दो स्वरोंसे युक्त शब्दके उत्तर प्राच्य और भरत गोत्र रहते गोत्रार्थमें जो इञ् प्रत्यय, तदन्तके उत्तर अण् प्रत्यय न हो, यह सूत्र "इञश्च १३३३" इस सूत्रसे विहित अण् प्रत्ययका निषेधक है, जैसे–प्राष्ठीयाः । काशीयाः ।

भरतोंके प्राच्यत्व होनेपर भी इस स्थानमें पृथक् ग्रहणके कारण अन्य किसी स्थलमें प्राच्य शब्दका ग्रहण करनेपर भरतोंका ग्रहण नहीं होगा ॥

१३३५ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् । १।१।७३॥

यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद् वृद्धसंज्ञं स्यात् ॥

१३३५–जिस समुदायके अचोंके मध्यमें आद्यच् वृद्धि हो वह वृद्धसंज्ञक हो ॥

१३३६ त्यदादीनि च । १ । १ ।७४ ॥

वृद्धसंज्ञानि स्युः ॥

१३३६–त्यदादि भी वृद्धसंज्ञक हों ॥

१३३७ वृद्धाच्छः । ४ । २ । ११४ ॥

शालीयः । मालीयः । तदीयः ॥

१३३७–वृद्धसंज्ञक शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे–शालीयः । मालीयः । तदीयः ॥

१३३८ एङ् प्राचां देशे । १।१।७५॥

एङ् यस्याचामादिस्तद्वृद्धसंज्ञं वा स्याद्देशाभिधाने । एणीपचनीयः । गोनर्दीयः । भोजकटीयः । पक्षे अणि । ऐणीपचनः । गौनर्दः । भौजकटः । एङ् किम् । आहिच्छत्रः । कान्यकुब्जः ॥ वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या॥*॥ देवदत्तीयः । दैवदत्तः ॥

१३३८–देश अर्थमें अचोंके मध्यमें एङ् (ए ओ) जिसके आदिमें है, उसकी विकल्प करके वृद्धसंज्ञा हो, जैसे–एणीपचनीयः । गोनर्दीयः । भोजकटीयः । विकल्प पक्षमें अण् प्रत्यय होगा, जैसे–ऐणीपचनः । गौनर्दः । भौजकटः ।

एङ् आदिमें न होनेपर वृद्ध संज्ञा नहीं होगी, जैसे–आहिच्छत्रः । कान्यकुब्जः ।

नामधेयवाचक शब्दकी विकल्प करके वृद्ध संज्ञा हो * जैसे–देवदत्तीयः, दैवदत्तः ॥

१३३९ भवतष्ठक्छसौ ।४।२।११५॥

वृद्धाद्भवत एतौ स्तः । भावत्कः । जश्त्वम् । भवदीयः । वृद्धादित्यनुवृत्तेः शत्रन्तादणेव । भावतः ॥

१३३९–वृद्धसंज्ञक भवत् शब्दके उत्तर ठक् और छस् प्रत्यय हो, जैसे–भावत्कः । स् प्रत्ययमें सकारकी इत् संज्ञा होनेके कारण पूर्वपदकी "सिति च १ । ४ । १६ " इससे पदसंज्ञा होनेपर जश्त्व हुआ, जैसे–भवदीयः 'वृद्धात्' इस पदकी अनुवृत्ति होनेसे शतृप्रत्ययान्तके उत्तर अण् प्रत्यय ही होगा, जैसे–भावतः ॥

१३४० काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ । ४ । २ । ११६ ॥

इकार उच्चारणार्थः । काशिकी । काशिका । वैदिकी । वैदिका ॥ आपदादिपूर्वपदात्कालान्तात् ॥ * ॥ आपदादिराकृतिगणः । आपत्कालिकी । आपत्कालिका ॥

१३४०–काश्यादि शब्दके उत्तर ठञ् और ञिठ् प्रत्यय हो, ञिठ् प्रत्ययका इकार उच्चारणार्थ है, जैसे–काशिकी, काशिका । वैदिकी, वैदिका ।

आपदादि शब्द पूर्वमें है और काल शब्द अन्तमें है जिसके ऐसे प्रातिपदिकके उत्तर ठञ् और ञिठ् प्रत्यय हो * आपदादि आकृतिगण है । जैसे–आपत्कालिकी, आपत्कालिका ॥

१३४१ वाहीकग्रामेभ्यश्च ।४।२।११७॥

वाहीकग्रामवाचिभ्यो वृद्धेभ्यष्ठञ्ञिठौ स्तः । छस्यापवादः । कास्तीरं नाम वाहीकग्रामः । कास्तीरिकी । कास्तीरिका ॥

१३४१–वाहीकग्रामवाचक वृद्धसंज्ञक शब्दके उत्तर ठञ् और ञिठ् प्रत्यय हो । यह सूत्र छ प्रत्ययका अपवादक है । कास्तीरं नाम वाहीकग्रामः । कास्तीरिकी, कास्तीरिका ॥

१३४२ विभाषोशीनरेषु ।४।२।११८ ॥

एषु ये ग्रामास्तद्वाचिभ्यो वृद्धेभ्यष्ठञ्ञिठौ वा स्तः । सौदर्शनिकी । सौदर्शनिका । सौदर्शनीया ॥

१३४२–उशीनर देशमें जो ग्राम हैं, तद्वाचक वृद्धसंज्ञक शब्दके उत्तर विकल्प करके ठञ् और ञिठ् प्रत्यय हो, जैसे–सौदर्शनिकी, सौदर्शनिका, सौदर्शनीया ॥

१३४३ ओर्देशे ठञ् ।४।२।११९ ॥

उवर्णान्ताद्देशवाचिनष्ठञ् । निषादकर्षूः । नैषादकर्षुकः । केऽण इति ह्रस्वः । देशे किम् । पटोश्छात्राः पाटवाः । ञिठं व्यावर्तयितुं ठञ्ग्रहणम् । वृद्धाच्छं परत्वादयं बाधते । दाक्षिकर्षुकः ॥

१३४३–उवर्णान्त देशवाचक शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–निषादकर्षू 'नैषादकर्षुकः' यहां "केऽणः ८३४" इस सूत्रसे ह्रस्व हुआहै । देशार्थ न होनेपर–पटोश्छात्राः= पाटवाः ऐसा पद होगा । ञिठ् प्रत्ययकी व्यावृत्तिके निमित्त सूत्रमें ठञ् प्रत्ययका ग्रहण कियाहै । यह सूत्र परत्वके कारण "वृद्धाच्छः" इस पूर्वोक्त सूत्रको बाधताहै, जैसे–दाक्षिकर्षुकः ॥

१३४४ वृद्धात्प्राचाम् ।४।२।१२० ॥

प्राग्देशवाचिनो वृद्धादेवेति नियमार्थं सूत्रम् । आढकजम्बुकः । शाकजम्बुकः । नेह । मल्लवास्तु-माल्लवास्तवः ॥

१३४४–वृद्धसंज्ञक ही पूर्वदेशवाचक शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, ऐसे नियमके निमित्त यह सूत्र है, इससे पूर्वदेशवाचक वृद्धसंज्ञक ही शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय होगा

अन्यत्र नहीं होगा, जैसे-आढकजम्बुकः । शाकजम्बुकः । मल्लवास्तुषे-माल्लवास्तवः इस स्थलमें नहीं हुआ ॥

१३४५ धन्वयोपधाद्वुञ् ।४।२।१२१॥

धन्वविशेषवाचिनो यकारोपधाच्च देशवाचिना वृद्धाद्वुञ् स्यात् । ऐरावतं धन्व ऐरावतकः । सांकाश्यकाम्पिल्यशब्दौ वुञ्छणादिसूत्रेण ण्यान्तौ । सांकाश्यकः । काम्पिल्यकः ।

१३४५-धन्वविशेषवाचक शब्द और यकारोपध देशवाचक वृद्धसंज्ञक शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हों, जैसे-ऐरावतं धन्व=ऐरावतकम्।सांकाश्य और काम्पिल्य शब्द "वुञ्छण्० १२९२" इस सूत्रसे ण्यप्रत्ययान्त है, जैसे-सांकाश्यकः । काम्पिल्यकः ॥

१३४६ प्रस्थपुरवहान्ताच्च ।४।२।१२२॥

एतदन्ताद्वृद्धाद्देशवाचिनो वुञ् स्यात् । छस्यापवादः । मालाप्रस्थकः । नान्दीपुरकः । पैलुवहकः । पुरान्तग्रहणमप्रागर्थम् । प्राग्देशे तूत्तरेण सिद्धम् ॥

१३४६-प्रस्थ,पुर और वह अन्तमें है जिनके ऐसे देशवाचक वृद्धसंज्ञक शब्दोंके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, यह वुञ् प्रत्यय छ प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-मालाप्रस्थकः । नान्दीपुरकः । पैलुवहकः । पुरशब्दान्तका ग्रहण अप्रागर्थ अर्थात् पूर्वदेशवाचकसे भिन्नके अर्थ है, पूर्वदेशवाचक होनेपर तो वक्ष्यमाण "रोपधेतोः० १३४७" इस परवर्ती सूत्रसे वुञ् प्रत्यय सिद्ध है ॥

१३४७ रोपधेतोः प्राचाम् ।४।२।१२३॥

रोपधादीकारान्ताच्च प्राग्देशवाचिनश्च वृद्धाद्वुञ् स्यात् । पाटलिपुत्रकः । ऐतः । कान्दकः ॥

१३४७-रकारोपध और ईकारान्त पूर्वदेशवाचक वृद्धसंज्ञक शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे-पाटलिपुत्रकः । ईतः-कान्दकः ॥

१३४८ जनपदतदवध्योश्च ।४।२।१२४॥

जनपदवाचिनस्तदवधिवाचिनश्च वृद्धाद्वुञ् स्यात् । आदर्शकः । त्रैगर्तकः ॥

१३४८-जनपदवाचक और उसकी अवधि अर्थात् 'सीमा' वाचक वृद्धसंज्ञक शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे-आदर्शकः । त्रैगर्तकः ॥

१३४९ अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् । ४ । २ । १२५ ॥

अवृद्धाद्वृद्धाच्च जनपदतदवधिवाचिनो बहुवचनविषयात्प्रातिपदिकाद्वुञ् स्यादवृद्धादणो वृद्धाच्छस्यापवादः। अवृद्धाज्जनपदात्-आंगकः। अवृद्धाज्जनपदावधेः-आजमीढकः । वृद्धाज्जनपदात्-दार्वकः । वृद्धाज्जनपदावधेः-कालञ्जरकः । विषयग्रहणं किम् । एकशेषेण बहुत्वे मा भूत् । वर्तनी च वर्तनी च वर्तनी च वर्तन्यः, तासु भवो वार्तनः ॥

१३४९-अवृद्ध अथवा वृद्धसंज्ञक जनपदवाचक और उसकी अवधिवाचक बहुवचनविषयीभूत अर्थात् बहुवचनान्त प्रातिपदिकके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, अवृद्धसंज्ञकके उत्तर अण् प्रत्ययका और वृद्धसंज्ञकके उत्तर छ प्रत्ययका विशेषक यह सूत्र है ।

अवृद्धजनपदके उत्तर, जैसे-आङ्गकः । अवृद्धजनपदावधिके उत्तर, जैसे-आजमीढकः ।

वृद्धसंज्ञक जनपदवाचकके उत्तर, जैसे-दार्वकः। वृद्धसंज्ञक जनपदावधिकके उत्तर, जैसे-कालञ्जरकः ।

विषयग्रहण कहनेसे जिस स्थानमें एकशेषसे बहुत्व होगा उस स्थानमें नहीं होगा, जैसे-वर्तनी च वर्तनी च वर्तनी च वर्तन्यः, तासु भवः=वार्तनः ॥

१३५० कच्छाग्निवक्रवर्तोत्तरपदात् । ४ । २ । १२६ ॥

देशवाचिनो वृद्धादवृद्धाच्च वुञ् स्यात् । दारुकच्छकः । काण्डाग्नकः । सैन्धुवक्त्रकः । बाहुवर्तकः ॥

१३५०-कच्छ, अग्नि, वक्र और वर्त शब्द उत्तरपद हैं जिसके ऐसे देशवाचक वृद्धसंज्ञक वा अवृद्ध शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे-दारुकच्छकः । काण्डाग्रकः । सैन्धुवक्रकः । बाहुवर्तकः ॥

१३५१ धूमादिभ्यश्च । ४ । २ । १२७॥

देशवाचिभ्यो वुञ् । धौमकः । तैर्थकः ॥

१३५१-देशवाचक धूमादि शब्दोंके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे-धौमकः । तैर्थकः ॥

१३५२ नगरात्कुत्सनप्रावीण्ययोः । ४ । २ । १२८ ॥

नगरशब्दाद्वुञ् स्यात्कुत्सने प्रावीण्ये च गम्ये। नागरकश्चौरः शिल्पी वा । कुत्सनेति किम् । नागरा ब्राह्मणाः ॥

१३५२-कुत्सन और प्रावीण्य अर्थ गम्यमान होनेपर नगर शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे-नागरकः चौरः शिल्पी वा । कुत्सन अर्थ न होनेपर वुञ् प्रत्यय नहीं होगा, जैसे-नागरा ब्राह्मणाः ॥

१३५३ अरण्यान्मनुष्ये ।४।२।१२९॥

वुञ् । अरण्याण्ण इत्यस्यापवादः ॥ पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वाच्यम् ॥ ॥ * ॥ आरण्यकः पन्थाः अध्यायो न्यायो विहारो मनुष्यो हस्ती वा ॥ वा गोमयेषु ॥ * ॥ आरण्यकाः आरण्या वा गोमयाः ॥

१३५३-मनुष्यार्थ गम्यमान होनेपर अरण्य के उत्तर वुञ् प्रत्यय हो। यह सूत्र "अरण्याणः" इस वार्त्तिकका अपवाद है।

मार्ग, अध्याय, न्याय, विहार, मनुष्य और हस्ती इन अर्थोंमें अरण्य शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, ऐसा कहना चाहिये * जैसे-आरण्यकः,-पन्थाः अध्यायः न्यायः विहारः मनुष्यः हस्ती वा ।

गोमय अर्थ होनेपर अरण्य शब्दके उत्तर विकल्प करके वुञ् प्रत्यय हो * जैसे-आरण्यकाः, आरण्या वा गोमयाः ॥

१३५४ विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्। ४ । २ । १३० ॥

वुञ् । कौरवकः । कौरवः । यौगन्धरकः । यौगन्धरः ॥

१३५४-कुरु और युगन्धर शब्दके उत्तर विकल्प करके वुञ् प्रत्यय हो, जैसे-कौरवकः, कौरवः । यौगन्धरकः, यौगन्धरः ॥

१३५५ मद्रवृज्योः कन् । ४ । २।१३१॥

जनपदवुञोऽपवादः । मद्रेषु जातो मद्रकः । वृजिकः ॥

१३५५-मद्र और वृजि शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, यह कन् प्रत्यय जनपदवाचकसे विहित वुञ् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-मद्रेषु जातःमद्रकः । वृजिकः ॥

१३५६ कोपधादण् । ४ । २ । १३२॥

माहिषिकः ॥

१३५६-ककारोपध शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे-माहिषिकः ॥

१३५७ कच्छादिभ्यश्च । ४ । २ । १३३॥

देशवाचिभ्योऽण् । वुञादेरपवादः । काच्छः। सैन्धवः ॥

१३५७-देशवाचक कच्छादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो। यह सूत्र देशवाचक शब्दके उत्तर विहित वुञ आदि प्रत्ययका अपवाद है, जैसे-काच्छः । सैन्धवः ॥

१३५८ मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्।४।२।१३४॥

कच्छाद्यणोऽपवादः । कच्छे जातादिः काच्छको मनुष्यः। काच्छकं हसितम् । मनुष्येति किम् । काच्छो गौः ॥

१३५८-मनुष्य और मनुष्यस्थित पदार्थ वाच्य रहते कच्छादि शब्दोंके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, यह सूत्र कच्छादि शब्दोंके उत्तर विहित अण् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-कच्छे जातादिः=काच्छकः अर्थात् मनुष्यः । काच्छकं हसितम् ।

मनुष्य अथवा उसमें रहनेवाले पदार्थ वाच्य न होनेपर वुञ् प्रत्यय नहीं होगा, जैसे-काच्छो गौः ॥

१३५९ अपदातौ साल्वात्।४।२।१३५॥

साल्वशब्दस्य कच्छादित्वाद्वुञि सिद्धे नियमार्थमिदम् । अपदातावेवेति । साल्वको ब्राह्मणः । अपदातौ किम् । साल्वः पदातिर्व्रजति ॥

१३५९-पदातिभिन्न अर्थ होनेपर साल्व शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो। साल्व शब्दके उत्तर-कच्छादित्वके कारण वुञ् प्रत्यय सिद्ध ही है फिर यह सूत्र अपदातावेव, अर्थात् अपदाति अर्थ होनेपर ही साल्व शब्दसे वुञ् प्रत्यय हो अन्यार्थमें न हो, इस नियमके निमित्त है, जैसे-साल्वको ब्राह्मणः, इस स्थानमें पदाति अर्थ नहीं है, पदाति अर्थ होनेपर वुञ् प्रत्यय नहीं होगा, जैसे-साल्वः पदातिर्व्रजति ॥

१३६० गोयवाग्वोश्च । ४ । २ । १३६ ॥

साल्वाद्वुञ् । कच्छाद्यणोऽपवादः । साल्वको गौः । साल्विका यवागूः । साल्वमन्यत् ॥

१३६०-गो और यवागू अर्थ होनेपर साल्व शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, यह सूत्र कच्छादिके उत्तर विहित अण् प्रत्ययका अपवाद है, जैसे-साल्वको गौः । साल्विका यवागूः। साल्वमन्यत् ॥

१३६१ गर्तोत्तरपदाच्छः ।४।२।१३७॥

देशे । अणोऽपवादः । वृकगर्तीयम् । उत्तरपदग्रहणं बहुच्पूर्वनिरासार्थम् ॥

१३६१-गर्त शब्द जिसके परे है, ऐसे शब्दके उत्तर देश अर्थ होनेपर छ प्रत्यय हो, यह सूत्र अण् प्रत्ययका अपवादक है, जैसे-वृकगर्तीयम्, इस स्थानमें केवल बहुच्पूर्वके निषेधार्थ उत्तर पदका ग्रहण कियाहै ॥

१३६२ गहादिभ्यश्च । ४ । २ । १३८ ॥

छः स्यात् । गहीयः ॥ मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च ॥ ॥मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् । अव्ययानां भमात्रे टिलोपस्यानित्यतां ज्ञापयितुमिदम् । कुग् जनस्य परस्य च ॥ ॥ जनकीयम् । परकीयम् ॥ देवस्य च ॥ देवकीयम् ॥ स्वस्य च ॥ स्वकीयम् । वेणुकादिभ्यश्छण्वाच्यः ॥ * ॥ वैणुकीयम् । वैत्रकीयम् । औत्तरपदकीयम् ॥

१३६२-गहादि शब्दोंके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-गहीयः ।

मुख और पार्श्व शब्दके उत्तर तस् प्रत्ययके अन्तका लोप हो और छ प्रत्यय हो, जैसे-मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् । अव्ययोंकी भसंज्ञामात्रमें टिके लोपकी अनित्यता ज्ञापन करनेके निमित्त यह गणसूत्र है ।

जन और पर शब्दको कुक्का आगम और छ प्रत्यय हो, जैसे-जनकीयम् । परकीयम् ।

देव शब्दको कुक्का आगम और छ प्रत्यय हों, जैसे-देवकीयम् ।

स्व शब्दको कुक्का आगम और छ प्रत्यय हो, जैसे-स्वकीयम् ।

वेणुकादि शब्दोंके उत्तर छण् प्रत्यय हो* जैसे-वैणुकीयम् । वैत्रकीयम् । औत्तरपदकीयम् ॥

१३६३ प्राचां कटादेः । ४ । २ । १३९ ॥

प्राग्देशवाचिनः कटादेश्छः स्यात् । अणोऽपवादः । कटनगरीयम् । कटघोषीयम् । कटपल्वलीयम् ॥

१३६३-पूर्वदेशवाचक कटादि शब्दोंके उत्तर छ प्रत्यय हो, यह छ प्रत्यय अण् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-कटनगरीयम् । कटघोषीयम् । कटपल्वलीयम् ॥

१३६४ राज्ञः क च । ४ । २ । १४० ॥

वृद्धत्वाच्छे सिद्धे तत्सन्नियोगेन कादेशमात्रं विधीयते । राजकीयम् ॥

१३६४-राजन् शब्दको क आदेश और छ प्रत्यय हो, इस स्थलमें वृद्धत्वके कारण छ प्रत्यय सिद्ध होनेपर प्रत्ययसन्नियोगसे ककार आदेशमात्र विधान करतेहैं, जैसे-राजकीयम् ॥

१३६५ वृद्धादकेकान्तखोपधात् । ४ । २ । १४१ ॥

अक इक एतदन्तात् खोपधाच्च वृद्धाद्देशवाचिनश्छः स्यात् । ब्राह्मणको नाम जनपदो यत्र ब्राह्मणा आयुधजीविनस्तत्र जातो ब्राह्मणकीयः । शाल्मलिकीयः । अयोमुखीयः ॥

१३६५-अक,इक, यह अन्तमें हैं जिसके ऐसे और खकारोपध देशवाचक वृद्धसंज्ञक शब्दोंके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-ब्राह्मणको नाम जनपदः यत्र ब्राह्मणाः आयुधजीविनस्तत्र जातः=ब्राह्मणकीयः । शाल्मलिकीयः । अयोमुखीयः ॥

१३६६ कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् । ४ । २ । १४२ ॥

कन्थादिपञ्चकोत्तरपदाद्देशवाचिनो वृद्धाच्छः स्यात् । ठञ्ञिठादेरपवादः । दाक्षिकन्थीयम् । दाक्षिपलदीयम् । दाक्षिनगरीयम् । दाक्षिग्रामीयम् । दाक्षिह्रदीयम् ॥

१३६६-कन्था, पलद, नगर, ग्राम और ह्रद, यह पांच शब्द उत्तरपद हैं जिसके ऐसे देशवाचक वृद्धसंज्ञक शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो, यह छ प्रत्यय ठञ् और ञिठ् आदि प्रत्ययोंका विशेषक है, जैसे-दाक्षिकन्थीयम् । दाक्षिपलदीयम् । दाक्षिनगरीयम् । दाक्षिग्रामीयम् । दाक्षिह्रदीयम् ॥

१३६७ पर्वताच्च । ४ । २ । १४३ ॥

पर्वतीयः ॥

१३६७-पर्वत शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-पर्वतीयः ॥

१३६८ विभाषाऽमनुष्ये । ४ । २ । १४४ ॥

मनुष्यभिन्नेऽर्थे पर्वताच्छो वा स्यात्पक्षेऽण् । पर्वतीयानि पार्वतानि वा फलानि । अमनुष्ये किम् । पर्वतीयो मनुष्यः ॥

१३६८-मनुष्यभिन्न अर्थ होनेपर पर्वत शब्दके उत्तर विकल्प करके छ प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें अण् प्रत्यय होगा, जैसे-पर्वतीयानि पार्वतानि वा फलानि । मनुष्य अर्थ होनेपर 'पर्वतीयः' अर्थात् मनुष्य, ऐसा होगा ॥

१३६९ कृकणपर्णाद्भारद्वाजे । ४ । २ । १४५ ॥

भारद्वाजदेशवाचिभ्यामाभ्यां छः । कृकणीयम् । पर्णीयम् । भारद्वाजे किम् । कार्कणम् । पार्णम् ॥

१३६९-भारद्वाजदेशवाचक जो कृकण और पर्ण शब्द उनके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-कृकणीयम् । पर्णीयम् । भरद्वाजदेशवाचक न होनेपर 'कार्कणम्' और 'पार्णम्' ऐसा होगा ॥

१३७० युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च । ४ । ३ । १ ॥

चाच्छः । पक्षेऽण् । युवयोर्युष्माकं वा अयं युष्मदीयः । अस्मदीयः ॥

१३७०-युष्मद् और अस्मद् शब्दके उत्तर विकल्प करके खञ् प्रत्यय हो, चकारनिर्देशके कारण छ प्रत्यय भी हो, विकल्प पक्षमें अण् प्रत्यय होगा, जैसे-युवयोर्युष्माकं वा अयम्=युष्मदीयः । अस्मदीयः ॥

१३७१ तस्मिन्नणि च युष्माकाऽस्माकौ । ४ । ३ । २ ॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि अणि च । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः ॥

१३७१-खञ् और अण् प्रत्यय परे रहते युष्मद् और अस्मद् शब्दके स्थानमें यथाक्रम युष्माक और अस्माक आदेश हों, जैसे-यौष्माकीणः । यौष्माकः । आस्माकीनः । आस्माकः ॥

१३७२ तवकममकावेकवचने । ४ । ३ । ३ ॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञ्यणि च । तावकीनः । तावकः । मामकीनः । मामकः । छे तु ॥

१३७२-खञ् और अण् प्रत्यय परे रहते एकार्थवाचक युष्मद् और अस्मद् शब्दके स्थानमें यथाक्रम तवक और ममक आदेश हों, जैसे-तावकीनः । तावकः । मामकीनः । मामकः । छ प्रत्यय परे रहते कैसा होगा ? सो कहतेहैं-॥

१३७३ प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ।७।२।९८॥

मपर्यन्तयोरेकार्थयोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च । त्वदीयः । मदीयः ॥

१३७३–प्रत्यय परे रहते और उत्तरपद परे रहते एकार्थवाचक युष्मद् और अस्मद् शब्दके मकारपर्यन्तको त्व और म आदेश हों, जैसे–त्वदीयः । मदीयः । उत्तरपद परे होनेपर, जैसे–त्वत्पुत्रः । मत्पुत्रः ॥

१३७४ अर्द्धाद्यत् । ४ । ३ । ४ ॥

अर्द्धचः ॥

१३७४–अर्द्ध शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–अर्द्धयः ॥

१३७५ परावराधमोत्तमपूर्वाच्च।४।३।५॥

परार्द्ध्यम् । अवरार्द्ध्यम् । अधमार्द्ध्यम् । उत्तमार्द्ध्यम् ॥

१३७५–पर, अवर, अधम और उत्तम, यह शब्द पूर्वमें रहते अर्द्ध शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–परार्द्ध्यम् । अवरार्द्ध्यम् । अधमार्द्ध्यम् । उत्तमार्द्ध्यम् ॥

१३७६ दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च । ४ । ३ । ६ ॥

चाद्यत् । पौर्वार्द्धिकम् । पूर्वार्द्ध्यम् ॥

१३७६–दिग्वाचक शब्द पूर्वमें रहते अर्द्ध शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, चकारनिर्देशके कारण यत् प्रत्यय भी हो,जैसे–पौर्वार्द्धिकम् । पूर्वार्द्ध्यम् ॥

१३७७ ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ । ४ । ३ । ७ ॥

ग्रामैकदेशवाचिनो जनपदैकदेशवाचिनश्च दिक्पूर्वपदादर्द्धान्तादञ्ठञौ स्तः । इमेऽस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्वार्द्धाः । पौर्वार्द्धिकाः। ग्रामस्य पूर्वस्मिन्नर्द्धे भवा इति तद्धितार्थे समासः । ठञ्ग्रहणं स्पष्टार्थम् । अञ् चेत्युक्ते-यतोऽप्यनुकर्षः सम्भाव्येत ॥

१३७७–ग्रामैकदेश (ग्रामका एक अंश) वाचक और जनपदैक देश (देशका एक अंश) वाचक जो दिग्वाचक-शब्दपूर्वक अर्द्धशब्दान्त प्रातिपदिक उसके उत्तर अञ् और ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–इमेऽस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य वा= पौर्वार्द्धाः, पौर्वार्द्धिकाः । ग्रामस्य पूर्वस्मिन्नर्द्धे भवाः, इस विग्रहमें तद्धितार्थमें समास हुआ है । ठञ् ग्रहण स्पष्टीकरणके निमित्त है । इस सूत्रमें 'अञ् च' ऐसा कहनेसे यत् प्रत्ययका भी अनुकर्ष सम्भावित होता, उसकी निवृत्तिके निमित्त दोनोंका उल्लेख किया, यह जानना चाहिये ॥

१३७८ मध्यान्मः । ४ । ३ । ८ ॥

मध्यमः ॥

१३७८–मध्य शब्दके उत्तर म प्रत्यय हो, जैसे–मध्यमः ॥

१३७९अ साम्प्रतिके । ४ । ३ । ९ ॥

मध्यशब्दादकारप्रत्ययः स्यात्साम्प्रतिकेर्थे । उत्कर्षापकर्षहीनो मध्यो वैयाकरणः । मध्यं दारु। नातिह्रस्वं नातिदीर्घमित्यर्थः ॥

१३७९–साम्प्रतिक अर्थात् न्याय्य अर्थ होनेपर मध्य शब्दके उत्तर अ प्रत्यय हो । उत्कर्ष और अपकर्षसे हीन व्यक्ति और वस्तुको मध्य कहतेहैं, जैसे–मध्यो वैयाकरणः । मध्यं दारु अर्थात् न बहुत छोटा और न तो बहुत बडा दारु ॥

१३८० द्वीपादनुसमुद्रं यञ् । ४ । ३।१०॥

समुद्रस्य समीपे यो द्वीपस्तद्विषयाद्द्वीपशब्दाद्यञ् स्यात् । द्वैप्यम् । द्वैप्या ॥

१३८०–समुद्रके समीपमें जो द्वीप, तद्विषयीभूत द्वीप शब्दके उत्तर यञ् प्रत्यय हो, जैसे–द्वैप्यम् । द्वैप्या ॥

१३८१ कालाट्ठञ् । ४ । ३ । ११ ॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात् । मासिकम् । सांवत्सरिकम् । सायम्प्रातिकः । पौनःपुनिकः । कथं तर्हि शार्वरस्य तमसो निषिद्धये इति कालिदासः, अनुदितौषसरागेति भारविः, समानकालीनं प्राक्कालीनमित्यादि च । अपभ्रंशा एवैत इति प्रामाणिकाः । तत्र जात इति यावत्कालाधिकारः ।

१३८१–कालवाचक शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–मासिकम् । सांवत्सरिकम् । सायम्प्रातिकः । पौनःपुनिकः ।

इस सूत्रके रहते कालिदासने "शार्वरस्य तमसो निषिद्धये" ऐसे स्थलमें किस प्रकार 'शार्वरस्य'पदका प्रयोग किया ? और भारविने "अनुदितौषसरागः" ऐसा प्रयोग कैसे किया ? और 'समानकालीनम्, प्राक्कालीनम्' इत्यादि पद कैसे सिद्ध हुए हैं ? इस विषयमें प्रामाणिक कहतेहैं कि, यह सब पद अपभ्रंश हैं ।

"तत्र जातः १३९३" इस सूत्रतक कालाधिकार है॥

१३८२ श्राद्धे शरदः । ४ । ३ । १२ ॥

ठञ् स्यात्।ऋत्वणोऽपवादः।शारदिकं श्राद्धम्॥

१३८२–श्राद्ध अर्थमें शरद् शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, यह सूत्र ऋतुवाचक शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय (१३८७) का विशेषक है, जैसे–शारदि भवम्=शारदिकं श्राद्धम् ॥

१३८३ विभाषा रोगातपयोः।४।३।१३॥

शारदिकः शारदो वा रोग आतपो वा । एतयोः किम् । शारदं दधि ॥

१३८३–रोग और आतप अर्थमें शरद् शब्दके उत्तर विकल्प करके ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–शारदिकः शारदो वा रोग आतपो वा । रोग और आतप अर्थ न होनेपर ठञ् प्रत्यय नहीं होगा, जैसे–शारदं दधि ॥

१३८४ निशाप्रदोषाभ्यां च ।४।३।१४॥

वा ठञ् स्यात् । नैशिकम् । नैशम् । प्रादोषिकम् । प्रादोषम् ॥

१३८४-निशा और प्रदोष शब्दके उत्तर विकल्प करके ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-नैशिकम्, नैशम्। प्रादोषिकम्,प्रादोषम्। (प्रदोषमें होनेवाला) ॥

१३८५ श्वसस्तुट् च । ४ । ३ । १५ ॥

श्वसूशब्दाट्ठञ् वा स्यात्तस्य तुडागमश्च ॥

१३८५-श्वस् शब्दके उत्तर विकल्प करके ठञ् प्रत्यय हो और उसको तुट्का आगम हो ॥

१३८६ द्वारादीनां च । ७ । ३ । ४ ॥

द्वार, स्वर, व्यल्कश, स्वस्ति, स्वर, स्फ्यकृत, स्वादु, मृदु, श्वस्, श्वन्, स्व, एषां न वृद्धिरैजागमश्च । शौवस्तिकम् ॥

१३८६-द्वार, स्वर, स्वाध्याय, व्यल्कश, स्वस्ति, स्वर, स्फ्यकृत, स्वादु, मृदु, श्वस्, श्वन् और स्व शब्दके पूर्व स्वरको वृद्धि न हो और ऐच्का आगम हो,जैसे-शौवस्तिकम्।

१३८७ सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् । ४ । ३ । १६ ॥

सन्धिवेलादिभ्य ऋतुभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च कालवृत्तिभ्योऽण् स्यात् । सन्धिवेलायां भवं सान्धिवेलम् । ग्रैष्मम् । तैषम् ॥ सन्धिवेला, संध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपत् ॥ संवत्सरात् फलपर्वणोः ॥ * ॥ सांवत्सरं फलं पर्व वा । सांवत्सरिकमन्यत् ॥

१३८७-कालवृत्ति जो संधिवेलादि शब्द, ऋतुवाचक शब्द और नक्षत्रवाचक शब्द, उनके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे-'संधिवेलायां भवम्' इस वाक्यमें-सांधिवेलम् । ग्रैष्मम् । तैषम् । संधिवेलादि जैसे-संधिवेला,संध्या,अमावास्या,त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपत् ।

फल और पर्व वाच्य होनेपर संवत्सर शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे-सांवत्सरं फलं पर्व वा । अन्य अर्थमें-सांवत्सरिकम् (संवत्सरमें होनेवाला) ॥

१३८८ प्रावृष एण्यः । ४ । ३ । १७ ॥

प्रावृषेण्यः ॥

१३८८-प्रावृष् शब्दके उत्तर एण्य प्रत्यय हो, जैसे-प्रावृषेण्यः (वर्षाऋतुमें होनेवाला) ॥

१३८९ वर्षाभ्यष्ठक् । ४ । ३ । १८ ॥

वर्षासु साधु वार्षिकं वासः । कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेष्विति साध्वर्थे ॥

१३८९-वर्षा शब्दके उत्तर साधु अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-'वर्षासु साधु' इस वाक्यमें-वार्षिकम् वासः, यहां "कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु १४१८" इस सूत्रसे साधु अर्थमें ही ठक् होगा ॥

१३९० सर्वत्राण् च तलोपश्च ।४।३।२२॥

हेमन्तादण् स्यात्तलोपश्च वेदलोकयोः । चकारात्पक्षे ऋत्वण् । हैमनम् । हैमन्तम् ॥

१३९०-वेद और लोकमें हेमन्त शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो और हेमन्त शब्दके तकारका लोप हो । चकारसे पक्षमें ऋतुवाचक शब्दके उत्तर अण् (१३८७)प्रत्यय होगा, जैसे-हैमनम् । हैमन्तम् ॥

१३९१ सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च । ४ । ३ । २३ ॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च । तुटः प्रागनादेशः । अनद्यतन इत्यादि निर्देशात् । सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्णप्रगयोरेदन्तत्वं निपात्यते । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषातनम् । दिवातनम् ॥ चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः॥*॥ चिरत्नम् । परुत्नम् । परारित्नम् ॥ अग्रादिपश्चाड्डिमच् ॥ * ॥ अग्रिमम् । आदिमम् । पश्चिमम् ॥ अन्ताच्च ॥ * ॥ अन्तिमम् ॥

१३९१-सायम्, चिरम्, प्राह्णे और प्रगे यह चार अव्यय और अन्य कालवाचक अव्यय शब्दोंके उत्तर ट्यु, ट्युल् प्रत्यय हों और इन दोनों प्रत्ययोंको तुट्का आगम भी हो, "अनद्यतने० २१८५" ऐसे सूत्रके निर्देशके कारण तुट्से पहले अनादेश होगा, जैसे-सायं भवम्=सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्णे और प्रगे शब्दका एकारान्तत्व निपातनसे सिद्ध है, जैसे-प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषातनम् । दिवातनम् ॥

चिर, परुत् और परारि शब्दके उत्तर त्न प्रत्यय हो * जैसे-चिरत्नम् । परुत्नम् । परारित्नम् ॥

अग्र, आदि और पश्चात् शब्दके उत्तर डिमच् प्रत्यय हो * जैसे-अग्रिमम् । आदिमम् । पश्चिमम् ।

अन्त शब्दके उत्तर भी डिमच् प्रत्यय हो* जैसे-अन्ते भवम्=अन्तिमम् ॥

१३९२ विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् । ४ । ३ । २४ ॥

आभ्यां ट्युट्युलौ वा स्तस्तयोस्तुट् च । पक्षे ठञ् । पूर्वाह्णेतनम् । अपराह्णेतनम् । घकालतनेष्विवत्यलुक् । पूर्वाह्णः सोढोऽस्येति विग्रहे तु पूर्वाह्णतनम् । अपराह्णतनम् । पौर्वाह्णिकम् । आपराह्णिकम् ॥

१३९२-पूर्वाह्ण और अपराह्ण शब्दके उत्तर विकल्प करके ट्यु और ट्युल् प्रत्यय हो और इन ट्यु, ट्युल् प्रत्ययोंको तुट्का आगम हो, पक्षमें ठञ् प्रत्यय होगा, जैसे-पूर्वाह्णेत-

नम्। अपराह्णेतनम्। इस स्थानमें "घकालतनेषु० ९७५" इस सूत्रसे सप्तमीका अलुक् हुआ। पूर्वाह्णः सोढोऽस्य, इस विग्रहमें तो पूर्वाह्णतनम्। अपराह्णतनम्। पौर्वाह्णिकम्। आपराह्णिकम्॥

१३९३ तत्र जातः। ४। ३। २५॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः। स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः। औत्सः। राष्ट्रियः। अवारपारीण इत्यादि॥

१३९३–तत्र जातः, अर्थात् सप्तमीविभक्त्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर जात अर्थ होनेपर अण् आदि और घ आदि प्रत्यय हों, जैसे–स्रुघ्ने जातः, इस वाक्यमें–स्रौघ्नः। औत्सः। राष्ट्रियः। अवारपारीणः–इत्यादि॥

१३९४ प्रावृषष्ठप्। ४। ३। २६॥

एण्यस्यापवादः। प्रावृषि जातः प्रावृषिकः॥

१३९४–जात अर्थमें प्रावृष् शब्दके उत्तर ठप् प्रत्यय हो, जैसे–प्रावृषि जातः, इस विग्रहमें प्रावृषिकः। यह ठप् प्रत्यय एण्य प्रत्ययका अपवाद है॥

१३९५ संज्ञायां शरदो वुञ्।४।३।२७॥

ऋत्वणोऽपवादः। शारदका दर्भविशेषा मुद्गविशेषाश्च॥

१३९५–संज्ञा अर्थ होनेपर शरद् शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, यह वुञ् प्रत्यय ऋतुवाचक शब्दके उत्तर विहित अण् प्रत्ययका अपवादक है, जैसे–शारदकाः, अर्थात् दर्भविशेष और मुद्गविशेष॥

१३९६ उत्तरपदस्य। ७। ३। १०॥

अधिकारोऽयम्। हनस्त इत्यस्मात्प्राक्॥

१३९६–"उत्तरपदस्य" यह अधिकार सूत्र है, "हनस्तः०"इस वक्ष्यमाण सूत्रके पूर्वपर्यन्त इस सूत्रका अधिकार चलैगा॥

१३९७ अवयवादृतोः। ७। ३। ११॥

अवयववाचिनः पूर्वपदादृतुवाचिनोऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति किति च तद्धिते परे। पूर्ववार्षिकः। अपरहैमनः। अवयवात्किम्। पूर्वासु वर्षासु भवः पौर्ववर्षिकः। ऋतोर्वृद्धिमद्विधाववयवानामिति तदन्तविधिः पूर्वत्र, इह तु नावयवत्वाभावात्॥

१३९७–ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते अवयववाचक जो पूर्वपद उसके उत्तर ऋतुवाचक शब्दके अचोंके मध्यमें आद्यच्को वृद्धि हो, जैसे–पूर्ववार्षिकः। अपरहैमनः।

अवयववाचक न होनेपर वृद्धि नहीं होगी, जैसे–पूर्वासु वर्षासु भवः=पौर्ववर्षिकः।

"ऋतोर्वृद्धिमद्विधाववयवानाम्" (ऋतुवाचक शब्दके उत्तर वृद्धिनिमित्तक प्रत्ययविधिमें तदन्तविधि हो, वह ऋतुवाचक शब्द यदि अवयववाचकसे परे रहे तो) इस वार्तिकसे 'पूर्ववार्षिकः, अपरहैमनः' इत्यादिकी सिद्धिके लिये "१३८९–१३९०" इन सूत्रोंमें तदन्तविधि होतीहै और 'पौर्ववर्षिकः' यहां अवयववाचक पूर्वपद न होनेके कारण "१३८९" इस सूत्रमें तदन्तविधि न होनेसे ठक् प्रत्यय नहीं हुआ, किन्तु औत्सर्गिक "कालाट्ठञ् ३।३।११" इससे ठञ् प्रत्यय हुआ और "अवयवादृतोः" इससे उत्तरपदकी वृद्धि नहीं हुई॥

१३९८ सुसर्वार्द्धाज्जनपदस्य।७।३।१२॥

उत्तरपदस्य वृद्धिः। सुपाञ्चालकः। सर्वपाञ्चालकः। अर्द्धपाञ्चालकः। जनपदतदवध्योरिति वुञ्॥ सुसर्वार्द्धदिक्शब्देभ्यो जनपदस्येति तदन्तविधिः॥

१३९८–सुसर्व और अर्द्ध शब्दके उत्तर जनपदवाचक उत्तर पदके अचोंके मध्यमें आद्यच्को वृद्धि हो, जैसे–सुपाञ्चालकः।सर्वपाञ्चालकः। अर्द्धपाञ्चालकः"जनपदतदवध्योः० १३४८" इस सूत्रमें "सुसर्वार्द्धदिक्शब्देभ्यो जनपदस्य" इस वार्तिकसे तदन्तविधि होतीहै, इसलिये पूर्वोक्त प्रयोगमें वुञ् प्रत्यय हुआ॥

१३९९ दिशोऽमद्राणाम्। ७। ३।१३॥

दिग्वाचकाज्जनपदवाचिनो वृद्धिः। पूर्वपाञ्चालकः। दिशः किम्। पूर्वपञ्चालानामयं पौर्वपञ्चालः। अमद्राणां किम्। पौर्वमद्रः। योगविभाग उत्तरार्थः॥

१३९९–दिग्वाचक शब्दके उत्तर मद्रभिन्न जनपदवाचक शब्दके आद्यच्को वृद्धि हो, जैसे–पूर्वपाञ्चालकः।

दिग्वाचक शब्द पूर्वमें न होनेपर–पूर्वपञ्चालानामयम्=पौर्वपञ्चालः।

मद्र शब्द होनेपर पौर्वमद्रः, ऐसा होगा।

उत्तर सूत्रमें दिग्वाचक शब्दकी अनुवृत्तिके निमित्त भिन्न सूत्र कियाहै॥

१४००प्राचां ग्रामनगराणाम्।७।३।१४॥

दिशः परेषां ग्रामवाचिनां नगरवाचिनां चांगानामवयवस्य च वृद्धिः। पूर्वेषुकामशम्यां भवः पूर्वैषुकामशमः। नगरे, पूर्वपाटलिपुत्रकः॥

१४००–दिग्वाचक शब्दके परे स्थित पश्चिमदेशस्थ ग्रामवाचक और नगरवाचक शब्दोंके अवयवको वृद्धि हो, जैसे–पूर्वेषुकामशम्यां भवः=पूर्वैषुकामशमः। नगरे–पूर्वपाटलिपुत्रकः॥

१४०१ पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद्वुन्। ४। ३। २८॥

पूर्वाह्णकः। अपराह्णकः। आर्द्रकः। मूलकः। प्रदोषकः। अवस्करकः॥

१४०१–पूर्वाह्ण, अपराह्ण, आर्द्रा, मूल, प्रदोष और अवस्कर शब्दके उत्तर वुन् प्रत्यय हो, जैसे–पूर्वा-

ह्नकः । अपराह्नकः । आर्द्रकः । मूलकः । प्रदोषकः । अवस्करकः ॥

१४०२ पथः पन्थ च । ४ । ३ । २९ ॥

पथि जातः पन्थकः ॥

१४०२-पथिन् शब्दके स्थानमें पन्थ आदेश हो और वुन् प्रत्यय हो, जैसे-पथि जातः=पन्थकः ॥

१४०३ अमावास्याया वा ।४।३।३० ॥

अमावास्यकः । आमावास्यः ॥

१४०३-अमावास्या शब्दके उत्तर विकल्प करके वुन् प्रत्यय हो, जैसे-अमावास्यकः । आमावास्यः ॥

१४०४ अ च । ४ । ३ । ३१ ॥

अमावास्यः ॥

१४०४-अमावास्या शब्दके उत्तर अ प्रत्यय भी हो,जैसे-अमावास्यः ॥

१४०५ सिन्ध्वपकराभ्यां कन्।४।३।३२॥

सिन्धुकः । कच्छाद्यणि मनुष्यवुञि च प्राप्ते । अपकरकः । औत्सर्गिकेऽणि प्राप्ते ॥

१४०५-सिन्धु और अपकर शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-'सिन्धुकः' यहां कच्छादित्वके कारण अण् प्रत्यय और "मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्" इस सूत्रसे मनुष्यार्थक वुञ् प्रत्यय प्राप्त होनेपर "सिन्ध्वपकराभ्यां कन्" इस सूत्रसे कन् प्रत्यय होताहै । 'अपकरकः' इस स्थलमें औत्सर्गिक अण् प्रत्ययकी प्राप्ति होनेपर कन् प्रत्यय होताहै ॥

१४०६ अणञौ च । ४ । ३ । ३३ ॥

क्रमात् स्तः । सैन्धवः । आपकरः ॥

१४०६-सिन्धु और अपकर शब्दके उत्तर यथाक्रम अण् और अञ् प्रत्यय हो, जैसे-सैन्धवः । आपकरः ॥

१४०७ श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक् । ४ । ३ । ३४ ॥

एभ्यो नक्षत्रवाचिभ्यः परस्य जातार्थप्रत्ययस्य लुक् स्यात् ॥

१४०७-श्रविष्ठा, फल्गुनी, अनुराधा, स्वाति, तिष्य, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा, आषाढा, बहुला, इन नक्षत्रवाचक शब्दोंके परे जातार्थक प्रत्ययका लुक् हो ॥

१४०८ लुक् तद्धितलुकि ।१।२।४९॥

तद्धितलुकि सत्युपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । श्रविष्ठासु जातः श्रविष्ठः । फल्गुनः इत्यादि ॥ चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ चित्रायां जाता चित्रा । रेवती रोहिणी आभ्यां लुक् तद्धितलुकीति लुकि कृते पिप्पल्यादेराकृतिगणत्वात्पुनर्ङीष् ॥ फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ वक्तव्यौ ॥ * ॥ स्त्रियामित्येव । फल्गुनी । अषाढा ॥ श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण्वक्तव्यः ॥ * ॥ अस्त्रियामपि । श्राविष्ठीयः । आषाढीयः ॥

१४०८-तद्धित प्रत्ययका लुक् होनेपर उपसर्जनीभूत स्त्रीप्रत्ययका लुक् हो, जैसे-श्रविष्ठासु जातः=श्रविष्ठः । फल्गुनः-इत्यादि ।

चित्रा, रेवती और रोहिणी शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें विहित नानार्थक प्रत्ययका लुक् हो, जैसे-चित्रायां जाता=चित्रा । रेवती और रोहिणी शब्दके उत्तर "लुक् तद्धितलुकि" इससे उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययका लुक् करनेपर पिप्पल्यादिके आकृतिगणत्वके कारण पुनर्वार ङीप् प्रत्यय हुआ ।

स्त्रीलिङ्गमें फल्गुनी और अषाढा शब्दके उत्तर ट और अन् प्रत्यय हो * जैसे-फल्गुनी[1] । अषाढा ।

श्रविष्ठा और अषाढा शब्दके उत्तर छण् प्रत्यय हो * यह छण् प्रत्यय स्त्रीलिंगभिन्न स्थलमें भी होगा, जैसे-श्राविष्ठीयः । आषाढीयः ।

१४०९ जे प्रोष्ठपदानाम्। ७ । ३ । १८॥

प्रोष्ठपदानामुत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिः स्याज्जातार्थे ञिति णिति किति च । प्रोष्ठपदासु जातः प्रोष्ठपादो माणवकः । जे इति किम् । प्रोष्ठपदासु भवः प्रौष्ठपदः । बहुवचननिर्देशात्पर्यायोऽपि गृह्यते । भद्रपादः ॥

१४०९-जातार्थमें विहित ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते प्रोष्ठपद शब्दके परवर्ती पदके आद्यच्को वृद्धि हो, जैसे-प्रोष्ठपदासु जातः=प्रोष्ठपादो माणवकः । जातार्थ न होनेपर पूर्वपदस्थ आद्यच्को वृद्धि होगी,जैसे-प्रोष्ठपदासु भवः=प्रौष्ठपदः । बहुवचननिर्देशके कारण पर्यायका भी ग्रहण होगा, जैसे-भद्रपादः ॥

१४१० स्थानान्तगोशालखरशालाच्च । ४ । ३ । ३५ ॥

एभ्यो जातार्थप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । गोस्थानः । गोशालः । खरशालः । विभाषा सेनेति नपुंसकत्वे ह्रस्वत्वम् ॥

१४१०-स्थानान्त शब्द, गोशाल शब्द और खरशाल शब्दके उत्तर जातार्थमें विहित प्रत्ययका लुक् हो, जैसे-गोस्थाने जातः, इस विग्रहमें-गोस्थानः । गोशालः । खरशालः । सूत्रस्थ गोशाल और खरशाल शब्दोंको " विभाषा सेना० ८२८ " इस सूत्रसे नपुंसकत्व होनेपर ह्रस्व हुआहै ॥

१४११ वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा । ४ । ३ । ३६ ॥

एभ्यो जातार्थस्य लुग्वा स्यात् । वत्सशाले जातो वत्सशालः । वात्सशालः इत्यादि ॥

१ फल्गुनीमें ङीप् और अषाढामें टाप् प्रत्यय हुआहै ॥

जातार्थे प्रतिप्रसूतोऽण्वा डिद्वक्तव्यः ॥*॥ शातभिषः । शातभिषजः । शतभिषक् ॥

१४११–वत्सशाल, अभिजित्, अश्वयुक् और शतभिषज् शब्दके उत्तर जातार्थमें विहित प्रत्ययका विकल्प करके लुक् हो, जैसे–वत्सशाले जातः=वत्सशालः, वात्सशालः–इत्यादि ।

जातार्थमें प्रतिप्रसूत अण् प्रत्यय विकल्प करके डित् हो * जैसे–शातभिषः, शातभिषजः, शतभिषक् ॥

१४१२ नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ।४।३।३७॥

जातार्थप्रत्ययस्य बहुलं लुक् स्यात् । रोहिणः । रौहिणः ॥

१४१२–नक्षत्रवाचक शब्दके उत्तर जातार्थक प्रत्ययका विकल्प करके लुक् हो, जैसे–रोहिणः, रौहिणः ॥

१४१३ कृतलब्धक्रीतकुशलाः।४।३।३८।

तत्रेत्येव । स्रुघ्ने कृतो लब्धः क्रीतः कुशलो वा स्रौघ्नः ॥

१४१३–सप्तम्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर कृत, लब्ध, क्रीत और कुशल अर्थमें अण् आदि और घ आदि प्रत्यय हों ।

कृतार्थको जातार्थका व्याप्य और क्रीतार्थको लब्धार्थका व्याप्य होनेपर दो पदोंके पृथक् ग्रहणका फल क्या है? इसपर कहतेहैं कि, कृतत्व और क्रीतत्वप्रकारक बोधमें भी प्रत्ययविधानके निमित्त उसका ग्रहण है, इसी कारण जातार्थमें प्रत्ययका लुक् होनेपर भी कृतार्थमें लुक् नहीं होताहै, जैसे–स्रुघ्ने कृतो लब्धः क्रीतः कुशलो वा=स्रौघ्नः ॥

१४१४ प्रायभवः ।४।३।३९॥

तत्रेत्येव।स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति स्रौघ्नः॥

१४१४–सप्तम्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर 'प्रायेण भवति' ऐसे अर्थमें अण्आदि और घ आदि प्रत्यय हों,जैसे–स्रुघ्ने प्रायेण (बाहुल्येन) भवति=स्रौघ्नः ॥

१४१५ उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक् । ४।३।४०॥

औपजानुकः।औपकर्णिकः । औपनीविकः ॥

१४१५–उपजानु, उपकर्ण और उपनीवि शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–औपजानुकः । औपकर्णिकः । औपनीविकः ॥

१४१६ संभूते ।४।३।४१॥

स्रुघ्ने संभवति स्रौघ्नः ॥

१४१६–सम्भवार्थमें सप्तम्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर अण् आदि और घ आदि प्रत्यय हों, जैसे–स्रुघ्ने संभवति, इस विग्रहमें–स्रौघ्नः ॥

१४१७ कोशाड्ढञ् ।४।३।४२॥

कौशेयं वस्त्रम् ॥

१४१७–कोश शब्दके उत्तर ढञ् प्रत्यय हो, जैसे–कौशेयं वस्त्रम् ॥

१४१८ कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु ।४।३।४३॥

हेमन्ते साधुर्हैमन्तः प्राकारः। वसन्ते पुष्पन्ति वासन्त्यः कुन्दलताः । शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः ॥

१४१८–कालवाचक शब्दके उत्तर साधु, पुष्प्यत् (प्रस्फुटन) और पच्यमान अर्थमें अण् आदि और घ आदि प्रत्यय हों, जैसे–हेमन्ते साधुः=हैमन्तः प्राकारः । वसन्ते पुष्प्यन्ति=वासन्त्यः कुन्दलताः । शरदि पच्यन्ते=शारदाः शालयः ॥

१४१९ उप्ते च ।४।३।४४॥

हेमन्ते उप्यन्ते हैमन्ता यवाः ॥

१४१९–कालवाचक शब्दके उत्तर उप्त अर्थात् वपन अर्थमें अण् आदि और घ आदि प्रत्यय हों, जैसे–हेमन्ते उप्यन्ते=हैमन्ता यवाः ॥

१४२० आश्वयुज्या वुञ् ।४।३।४५॥

ठञोपवादः । आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका माषाः ॥

१४२०–आश्वयुजी शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, यह सूत्र ठञ् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे–आश्वयुज्यामुप्ताः=आश्वयुजका माषाः ॥

१४२१ ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम् । ४।३।४६॥

पक्षे ऋत्वण् । ग्रैष्मकम् । ग्रैष्मम् । वासन्तकम् । वासन्तम् ॥

१४२१–ग्रीष्म और वसन्त शब्दके उत्तर विकल्प करके वुञ् प्रत्यय हो, पक्षमें ऋतुवाचक शब्दके उत्तर अण् (१३८७) प्रत्यय होगा, जैसे–ग्रैष्मकम्, ग्रैष्मम् । वासन्तकम्, वासन्तम् ॥

१४२२ देयमृणे ।४।३।४७॥

कालादित्येव । मासे देयमृणं मासिकम् ॥

१४२२–देय ऋण अर्थमें कालवाचक शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे–मासे देयमृणम्, इस विग्रहमें–मासिकम् ॥

१४२३ कलाप्यश्वत्थयवबुसाद्वुन् । ४।३।४८॥

यस्मिन् काले मयूराः कलापिनो भवन्ति स उपचारात्कलापी तत्र देयमृणं कालापकम् । अश्वत्थस्य फलमश्वत्थस्तद्युक्तः कालोऽप्यश्वत्थः । यस्मिन् कालेऽश्वत्थाः फलन्ति तत्र देयमश्वत्थकम् । यस्मिन् यवबुसमुत्पद्यते तत्र देयं यवबुसकम् ॥

१४२३-कलापिन्, अश्वत्थ, और यवबुस, इन कालवाचक शब्दोंके उत्तर देय ऋण अर्थमें वुन् प्रत्यय हो। जिस समयमें मोर कलापयुक्त हों वह समय उपचारके कारण कलापी कहकर प्रसिद्ध होताहै उस समयमें 'देय ऋण' अर्थमें-कालापकम्। अश्वत्थके फल अश्वत्थ, तद्युक्त काल भी अश्वत्थ, जिस समयमें सम्पूर्ण अश्वत्थ फलित हो उस समयमें 'देय ऋण' इस अर्थमें-अश्वत्थकम्। जिस समयमें यवका भूसा उत्पन्न हो उस समयमें 'देय ऋण' इस अर्थमें-यवबुसकम्॥

१४२४ ग्रीष्मावरसमाद्वुञ् ।४।३। ४९॥

ग्रीष्मे देयमृणं ग्रैष्मकम् । आवरसमकम् ॥

१४२४-ग्रीष्म और अवरसम शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे-ग्रीष्मे देयमृणम्=ग्रैष्मकम्। आवरसमकम्॥

१४२५ संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ्च । ४ । ३ । ५० ॥

चाद्वुञ् । सांवत्सरिकम् । सांवत्सरकम् । आग्रहायणिकम् । आग्रहायणकम् ॥

१४२५-संवत्सर और आग्रहायणी शब्दके उत्तर ठञ् और वुञ् प्रत्यय हों, जैसे-सांवत्सरिकम्, सांवत्सरकम्। आग्रहायणिकम्, आग्रहायणकम्॥

१४२६ व्याहरति मृगः । ४ । ३ ।५१॥

कालवाचिनः सप्तम्यन्ताच्छब्दायत इत्यर्थे अणादयः स्युः यो व्याहरति स मृगश्चेत् । निशायां व्याहरति नैशो मृगः । नैशिकः ॥

१४२६-जो शब्द करे वह मृग हो तो कालवाचक सप्तम्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर 'शब्दायते' इस अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों, जैसे-निशायां व्याहरति=नैशः मृगः। नैशिकः॥

१४२७ तदस्य सोढम् । ४ ।३।५२॥

कालादित्येव । निशासहचरितमध्ययनं निशा तत्सोढमस्य नैशः । नैशिकः ॥

१४२७-प्रथमान्त शब्दके उत्तर 'तदस्य सोढम्' इस अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों, इस सूत्रसे भी कालवाचक शब्दके उत्तर ही प्रत्यय होगा, निशासहचरितमध्ययनं निशा, तत्सोढमस्य=नैशः। नैशिकः॥

१४२८ तत्र भवः । ४ । ३ ।५३॥

स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः । राष्ट्रियः ॥

१४२८-'भवः' इस अर्थमें सप्तम्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर अण् आदि प्रत्यय हों, जैसे-स्रुघ्ने भवः=स्रौघ्नः। राष्ट्रियः॥

१४२९ दिगादिभ्यो यत् । ४।३।५४ ॥

दिश्यम् । वर्ग्यम् ॥

१४२९-दिक् आदि शब्दोंके उत्तर भवार्थमें यत् प्रत्यय हो, जैसे-दिशि भवम्=दिश्यम्। वर्ग्यम्॥

१४३० शरीरावयवाच्च ।४। ३ । ५५ ॥

दन्त्यम् । कर्ण्यम् ॥

१४३०-शरीरावयववाचक शब्दोंके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे-दन्ते भवम्=दन्त्यम्। कर्ण्यम्॥

१४३१ प्राचां नगरान्ते। ७ । ३ ।२४॥

प्राचां देशे नगरान्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचो वृद्धिर्ञिति णिति किति च । सुह्मनगरे भवः सौह्मनागरः । पौर्वनागरः । प्राचां किम्।मद्रनगरमुदक्षु तत्र भवो माद्रनगरः॥

१४३१-ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते प्राचीनदेशीय नगरान्त अंगमें पूर्व और उत्तरपदके अचोंके मध्यमें आद्यच्को वृद्धि हो जैसे-सुह्मनगरे भवः=सौह्मनागरः। पौर्वनागरः।

प्राचीनदेशीय नगरान्त अंग न होनेपर, जैसे-मद्रनगरमुदक्षु तत्र भवः=माद्रनगरः॥

१४३२ जंगलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् । ७ । ३ । २५ ॥

जंगलाद्यन्तस्यांगस्य पूर्वपदस्याचामादेरचो वृद्धिरुत्तरपदस्य वा ञिति णिति किति च। कुरुजंगले भवं कौरुजांगलम् । कौरुजंगलम् ॥ वैश्वधैनवम् । वैश्वधेनवम् । सौवर्णवालजम् । सौवर्णवलजम् ॥

१४३२-ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते जंगलाद्यन्त अंगके पूर्व पदके आद्यच्को नित्य और उत्तर पदके आद्यच्को विकल्प करके वृद्धि हो, जैसे-कुरुजंगले भवम्=कौरुजांगलम्, कौरुजंगलम्। वैश्वधैनवम्, वैश्वधेनवम्। सौवर्णवालजम्, सौवर्णवलजम्॥

१४३३ दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् । ४ । ३ । ५६ ॥

दार्तेयम् । कौक्षेयम् । कलशिर्घटः तत्र भवं कालशेयम् ॥

१४३३-दृति, कुक्षि, कलशि, वस्ति, अस्ति और अहि शब्दके उत्तर ढञ् प्रत्यय हो, जैसे-दार्तेयम्। कौक्षेयम्। कलशिः, अर्थात् घट, उसमें उत्पन्न-कालशेयम्॥

१४३४ ग्रीवाभ्योऽण् च । ४ । ३।५७॥

चात् ढञ् । ग्रैवम् । ग्रैवेयम् ॥

१४३४-ग्रीवादि शब्दोंके उत्तर अण् और ढञ् प्रत्यय हो, जैसे-ग्रैवम्, ग्रैवेयम्॥

१४३५ गम्भीराञ्ञ्यः । ४ । ३।५८॥

गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम् ॥

१४३५-गंभीर शब्दके उत्तर ञ्य प्रत्यय हो, जैसे-गंभीरे भवम्=गाम्भीर्यम् ।

(पञ्चजन शब्दके उत्तर ञ्य प्रत्यय हो * जैसे-पाञ्चजन्यः) ॥

१४३६ अव्ययीभावाच्च । ४ । ३।५९॥

परिमुखं भवं पारिमुख्यम् । परिमुखादिभ्य एवेष्यते ॥ * ॥ नेह । औपकूलः ॥

१४३६-अव्ययीभावसंज्ञक पदके उत्तर ञ्य प्रत्यय हो, जैसे-परिमुखं भवम्=पारिमुख्यम् ।

परिमुखादि ही शब्दोंके उत्तर ञ्य प्रत्यय हो * इस कारण ' औपकूलः ' इस स्थलमें ञ्य प्रत्यय नहीं हुआ ॥

१४३७ अन्तःपूर्वपदाट्ठञ् । ४ ।३।६०॥

अव्ययीभावादित्येव । वेश्मनि इति अन्तर्वेश्मम् । तत्र भवमान्तर्वेश्मिकम् । आन्तर्गणिकम् ॥ अध्यात्मादिभ्यष्ठञिष्यते ॥ * ॥ अध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम् ॥

१४३७-अन्तर् शब्द पूर्वमें है जिसके, ऐसे अव्ययीभावसंज्ञक शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-वेश्मनि इस विग्रहमें अन्तर्वेश्मम्=तत्र भवम्=आन्तर्वेश्मिकम् । आन्तर्गणिकम् ।

आध्यात्मादि शब्दोंके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो * जैसे-अध्यात्मं भवम्=आध्यात्मिकम् ॥

१४३८ अनुशतिकादीनां च।७।३।२०॥

एषामुभयपदवृद्धिः स्यात् ञिति णिति किति च । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम्।पारलौकिकम्। अध्यात्मादिराकृतिगणः॥

१४३८-ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते अनुशतिकादि शब्दोंके दोनों पदोंके आद्यच्को वृद्धि हो, जैसे-आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिकम् । अध्यात्मादि आकृतिगण है ॥

१४३९ देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् । ७ । ३ । १ ॥

एषां पञ्चानां वृद्धिप्राप्तावादेरच आत् ञिति णिति किति च । दाविकम् । देविकाकूले भवा दाविकाकूलाः शालयः । शिंशपाया विकारः शांशपश्चमसः । पलाशादिभ्यो वेत्यञ् । दित्यौह इदं दात्यौहम् । दीर्घसत्रे भवं दार्घसत्रम् । श्रेयसि भवं श्रायसम ॥

१४३९-ञित्, णित्, और कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते देविका, शिंशपा, दित्यवाट्, दीर्घसत्र और श्रेयस्, इन पांच शब्दोंके वृद्धिकी प्राप्ति होनेपर आद्यच्के स्थानमें आत् आदेश हो, जैसे-दाविकम् । देविकाकूले भवाः=दाविकाकूलाः शालयः । शिंशपाया विकारः=शांशपश्चमसः, यहां "पलाशादिभ्यो वा ४ । ३ । १४१" इससे अञ् प्रत्यय होताहै । दित्यौहि इदम्, इस विग्रहमें-दात्यौहम् । दीर्घसत्रे भवम्=दार्घसत्रम् । श्रेयसि भवम्=श्रायसम् ॥

१४४० ग्रामात्पर्यनुपूर्वात् ।४।३।६१॥

ठञ् स्यात् । अव्ययीभावादित्येव । पारिग्रामिकः । आनुग्रामिकः ॥

१४४०-परि और अनुपूर्वक ग्राम शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, यह विधि अव्ययीभावसंज्ञक शब्दके उत्तर ही होगी, जैसे-पारिग्रामिकः । आनुग्रामिकः ॥

१४४१ जिह्वामूलाऽङ्गुलेश्छः।४।३।६२॥

जिह्वामूलीयम् । अंगुलीयम ॥

१४४१-जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-जिह्वामूले भवम्-जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् । यह सूत्र "शरीरावयवाच्च १४३०" इसका बाधक है ।

१४४२ वर्गान्ताच्च । ४ । ३ । ६३ ॥

कवर्गीयम् ॥

१४४२-वर्गान्त शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-कवर्गे भवम्=कवर्गीयम् ॥

१४४३ अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम् । ४ । ३ । ६४ ॥

पक्षे पूर्वेण छः । मद्वर्ग्यः । मद्वर्गीणः । मद्वर्गीयः । अशब्दे किम् । कवर्गीयो वर्णः ॥

१४४३-अशब्द अर्थ होनेपर वर्गान्त शब्दके उत्तर विकल्प करके यत् और ख प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें पूर्व सूत्रसे छ प्रत्यय होगा, जैसे-मद्वर्ग्यः, मद्वर्गीणः, मद्वर्गीयः ।

शब्द अर्थ होनेपर अर्थात् वर्णमात्र होनेपर केवल छ प्रत्यय ही होगा, जैसे-कवर्गीयो वर्णः ॥

१४४४ कर्णललाटात्कनलंकारे । ४ । ३ । ६५ ॥

कर्णिका । ललाटिका ॥

१४४४-कर्ण और ललाट शब्दके उत्तर अलङ्कारार्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे-कर्णिका । ललाटिका ॥

१४४५ तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः । ४ । ३ । ६६ ॥

सुपां व्याख्यानः सौपो ग्रन्थः । तैङः । कार्तः । सुप्सु भवं सौपम ॥

१४४५-व्याख्यातव्य ग्रन्थके प्रतिपादक षष्ठ्यन्त पदके उत्तर व्याख्यान अर्थमें और तादृश सप्तम्यन्त पदके उत्तर भवार्थमें अण् आदि प्रत्यय हों, जैसे-सुपां व्याख्यानः=सौपो ग्रन्थः । तिङां व्याख्यानो ग्रंथः=तैङः । कार्तः । सुप्सु भवम्=सौपम् ॥

१४४६ बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्।४।३।६७॥

षत्वणत्वयोर्विधायकं शास्त्रं षत्वणत्वम् । तस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा षात्वणत्विकः ॥

१४४६-पूर्वोक्त अर्थमें बहुत अचोंसे युक्त अन्तोदात्त शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो । षत्व और णत्वविधायक जो शास्त्र है उसको 'षत्वणत्वम्' कहतेहैं, तस्य व्याख्यानः, तत्र भवो वा, इस विग्रहमें-षात्वणत्विकः ॥

१४४७ क्रतुयज्ञेभ्यश्च । ४ । ३ । ६८ ॥

सोमसाध्येषु यागेष्वेतौ प्रसिद्धौ, तत्रान्यतरोपादानेन सिद्धे उभयोरुपादानसामर्थ्यादसोमका अपीह गृह्यन्ते । अग्निष्टोमस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा आग्निष्टोमिकः । वाजपेयिकः । पाकयज्ञिकः । नावयज्ञिकः । बहुवचनं स्वरूपविधिनिरासार्थम् । अनन्तोदात्तार्थ आरम्भः ॥

१४४७-पूर्वोक्त अर्थमें क्रतु और यज्ञवाचक शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, सोमसाध्य यागमें यह दोनों प्रसिद्ध हैं, उसमें अन्यतरके उपादानसे सिद्ध होनेपर दोनोंके उपादानके सामर्थ्यसे इस स्थानमें असोमकका भी ग्रहण है, जैसे-अग्निष्टोमस्य व्याख्यानः, तत्र भवो वा, इस विग्रहमें-आग्निष्टोमिकः । वाजपेयिकः । पाकयज्ञिकः । नावयज्ञिकः । स्वरूपविधिके निरासके निमित्त बहुवचनान्त प्रयोग है । अनन्तोदात्तार्थ इस सूत्रका आरंभ है ॥

१४४८ अध्यायेष्वेवर्षेः । ४ । ३ । ६९ ॥

ऋषिशब्देभ्यो लक्षणया व्याख्येयग्रन्थवृत्तिभ्यो भवे व्याख्याने चाध्याये ठञ् स्यात् । वशिष्ठेन दृष्टो मन्त्रो वशिष्ठस्तस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा वाशिष्ठिकोऽध्यायः। अध्यायेषु किम्।वाशिष्ठी ऋक् ॥

१४४८-लक्षणाद्वारा व्याख्येयग्रंथवृत्ति ऋषिवाचक शब्दके उत्तर भवार्थमें और व्याख्यानार्थमें अध्यायवाच्य रहते ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-वशिष्ठेन दृष्टो मंत्रो वाशिष्ठस्तस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा, इस विग्रहमें वाशिष्ठिकः अध्यायः ।

अध्यायार्थ न होनेपर 'वाशिष्ठी ऋक्' ऐसा होगा ॥

१४४९ पौरोडाशपुरोडाशात्ष्ठन् । ४ । ३ । ७० ॥

पुरोडाशसहचरितो मन्त्रः पुरोडाशः स एव पौरोडाशः ततः ष्ठन् पौरोडाशिकः।पुरोडाशिकः॥

१४४९-पुरोडाशसहचरित मंत्रविशेषको पुरोडाश कहतेहैं, उसका ही नाम पौरोडाश है, उस पौरोडाश शब्दके उत्तर ष्ठन् प्रत्यय हो, जैसे-पौरोडाशिकः । पुरोडाशिकः ॥

१४५० छन्दसो यदणौ ।४।३।७१॥

छन्दस्यः । छान्दसः ॥

१४५०-छन्दस् शब्दके उत्तर यत् और अण् प्रत्यय हो, जैसे-छन्दस्यः । छान्दसः ॥

१४५१ द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्यानाट्ठक् । ४ । ३ । ७२ ॥

द्व्यचः । ऐष्टिकः । पाशुकः । ऋत् । चातुर्होतृकः । ब्राह्मणिकः । आर्चिकः । इत्यादि ॥

१४५१-दो अचोंसे युक्त शब्द, ऋकारान्त शब्द और ब्राह्मण, ऋच्, प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नामन्, आख्यात, इन शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो । दोअच् जैसे-ऐष्टिकः । पाशुकः । ऋकारान्त जैसे-चातुर्होतृकः । ब्राह्मणिकः। आर्चिकः-इत्यादि ॥

१४५२ अणृगयनादिभ्यः ।४।३।७३ ॥

ठञादेरपवादः । आर्गयनः । औपनिषदः । वैयाकरणः ॥

१४५२-ऋगयनआदि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यह अण् प्रत्यय ठञादि प्रत्ययोंका विशेषक है, जैसे-आर्गयनः। औपनिषदः । वैयाकरणः-इत्यादि ॥

१४५३ तत आगतः । ४ । ३ । ७४॥

स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः ॥

१४५३-तत आगतः, अर्थात् उससे आया, इस अर्थमें अणादि प्रत्यय हो, जैसे-स्रुघ्नादागतः=स्रौघ्नः ॥

१४५४ ठगायस्थानेभ्यः ।४।३। ७५ ॥

शुल्कशालाया आगतः । शौल्कशालिकः ॥

१४५४-आयस्थानवाचक शब्दसे आगत अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-शुल्कशालाया आगतः, इस वाक्यमें-शौल्कशालिकः ॥

१४५५ शुण्डिकादिभ्योऽण् ।४।३।७६॥

आयस्थानठक्छादीनां चापवादः । शुण्डिकादागतः शौण्डिकः । कार्कणः । तैर्थः ॥

१४५५-शुण्डिकादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यह अण् प्रत्यय आयस्थानवाचकसे विहित ठक् और छआदि प्रत्ययोंका विशेषक है, जैसे शुण्डिकादागतः=शौण्डिकः । कार्कणः । तैर्थः ॥

१४५६ विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् । ४ । ३ । ७७ ॥

औपाध्यायकः । पैतामहकः ॥

१४५६-विद्या और योनिसंबन्धवाचक शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे-उपाध्यायादागतः=औपाध्यायकः । पैतामहकः । (१२४७) ॥

१४५७ ऋतष्ठञ् । ४ । ३ । ७८ ॥

वुञोपवादः । हौतृकम् । भ्रातृकम् ॥

१४५७-ऋकारान्त शब्दोंके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, यह ठञ् प्रत्यय वुञ् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-होतुरागतम्=हौतृकम् । भ्रातृकम् ॥

१४५८ पितुर्यच्च । ४ । ३ । ७९ ॥

चाद्ठञ्। रीङ् ऋतः। यस्येति लोपः। पित्र्यम्। पैतृकम् ॥

१४५८–पितृ शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, चकारसे ठञ् प्रत्यय हो, "रीङ् ऋतः १२३४", "यस्येति०३११" इन दो सूत्रोंमें एकसे रीङ् आदेश होगा, दूसरेसे ईकारका लोप होगा, जैसे–पितुरागतम्=पित्र्यम्, पैतृकम् ॥

१४५९ गोत्रादङ्कवत् । ४ । ३ । ८० ॥

बिदेभ्यः आगतं बैदम् । गार्गम् । दाक्षम् । औपगवकम् ॥

१४५९–आगत अर्थमें गोत्रप्रत्ययान्त शब्दोंके उत्तर अंकवत् प्रत्यय हो, अर्थात् अंक अर्थमें जो प्रत्यय गोत्रप्रत्ययान्तसे होताहै वह हो,जैसे–बिदेभ्य आगतम्=बैदम्। गार्गम्। दाक्षम् । औपगवकम् ॥

१४६० नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् । ७ । ३ । ३० ॥

नञः परेषां शुच्यादिपञ्चानामादेरचो वृद्धिः पूर्वपदस्य तु वा ञिदादौ परे । आशौचम् । अशौचम् । आनैश्वर्यम् । अनैश्वर्यम् । आक्षैत्रज्ञम् । अक्षैत्रज्ञम् । आकौशलम् । अकौशलम् । आनैपुणम् । अनैपुणम् ॥

१४६०–ञित्आदि प्रत्यय परे रहते नञ्के परे स्थित शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल और निपुण शब्दके आद्यच्को नित्य और पूर्वपदके आद्यच्को विकल्प करके वृद्धि हो, जैसे–आशौचम्, अशौचम् । आनैश्वर्य्यम्, अनैश्वर्य्यम् । आक्षैत्रज्ञम्, अक्षैत्रज्ञम् । आकौशलम्, अकौशलम् । आनैपुणम्, अनैपुणम् ॥

१४६१ हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः । ४ । ३ । ८१ ॥

समादागतं समरूप्यम् । विषमरूप्यम् । पक्षे गहादित्वाच्छः । समीयम् । विषमीयम् । देवदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् ॥

१४६१–हेतु और मनुष्यवाचक शब्दसे आगत अर्थमें विकल्प करके रूप्य प्रत्यय हो, जैसे–समादागतम्=समरूप्यम् । विषमरूप्यम् । पक्षमें गहादिगणके मध्यमें पठित होनेके कारण छ प्रत्यय होगा, जैसे–समीयम् । विषमीयम् । देवदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् ॥

१४६२ मयट् च । ४ । ३ । ८२ ॥

सममयम् । विषममयम् । देवदत्तमयम् ॥

१४६२–उक्त अर्थमें हेतु और मनुष्यावाचक शब्दसे मयट् प्रत्यय हो, जैसे–सममयम् । विषममयम् । देवदत्तमयम् ॥

१४६३ प्रभवति । ४ । ३ । ८३ ॥

तत इत्येव।हिमवतः प्रभवति हैमवती गंगा ॥

१४६३–उससे उत्पन्न होताहै, इस अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–हिमवतः प्रभवति=हैमवती गङ्गा ॥

१४६४ विदूराञ्ञ्यः । ४ । ३ । ८४ ॥

विदूरात्प्रभवति वैदूर्यो मणिः ॥

१४६४–'प्रभवति' इस अर्थमें पञ्चम्यन्त विदूर शब्दसे ञ्य प्रत्यय हो, जैसे–विदूरात्प्रभवति=वैदूर्यो मणिः ॥

१४६५ तद्गच्छति पथिदूतयोः ४।३।८५॥

स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः पन्था दूतो वा ॥

१४६५–'गच्छति' इस अर्थमें द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिकोंसे मार्ग और दूत वाच्य रहते अणआदि प्रत्यय हों, जैसे–स्रुघ्नं गच्छति, इस विग्रहमें स्रौघ्नः, अर्थात् पन्था (मार्ग) अथवा दूत ॥

१४६६ अभिनिष्क्रामति द्वारम् । ४ । ३ । ८६ ॥

तदित्येव । स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम् ॥

१४६६–'अभिनिष्क्रामति' इस अर्थमें द्वितीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर अणआदि प्रत्यय हों, अभिनिष्क्रमणकर्त्ता द्वार हो तो, जैसे–स्रुघ्नम् अभिनिष्क्रामति, इस विग्रहमें–स्रौघ्नम् कान्यकुब्जद्वारम् ॥

१४६७ अधिकृत्य कृते ग्रन्थे।४।३।८७॥

तदित्येव । शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः । शारीरकं भाष्यमिति त्वभेदोपचारात् ॥

१४६७–तदधिकृत्य कृते ग्रन्थे,अर्थात् उसका अधिकार करके कृत ग्रन्थ, ऐसा अर्थ होनेपर द्वितीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर अणादि प्रत्यय हों, जैसे–शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, इस विग्रहमें शारीरकीयः । 'शारीरकं भाष्यम्' यह प्रयोग तो अभेदोपचारके वशसे होताहै ॥

१४६८ शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः । ४ । ३ । ८८ ॥

शिशूनां क्रन्दनं शिशुक्रन्दः तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शिशुक्रन्दीयः । यमस्य सभा यमसभम्। क्लीबत्वं निपातनात् । यमसभीयः । किरातार्जुनीयम् । इन्द्रजननादिराकृतिगणः । इन्द्रजननीयम् । विरुद्धभोजनीयम् ॥

१४६८–शिशुक्रन्द,यमसभ,द्वन्द्वसमासनिष्पन्न शब्द और इन्द्रजननादि शब्दोंके उत्तर'उसका अधिकार करके कृत ग्रन्थ' इस अर्थमें छ प्रत्यय हो,जैसे–शिशूनां क्रन्दनम्=शिशुक्रन्दः=तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः=शिशुक्रन्दीयः । यमस्य सभा=यमसभम्, इस स्थलमें क्लीबलिङ्गत्व निपातनसिद्ध है, यमसभीयः। किरातार्जुनीयम्। इन्द्रजननादि आकृतिगण है । इन्द्रजननीयम्। विरुद्धभोजनीयम् ॥

१४६९ सोऽस्य निवासः । ४ । ३ । ८९॥

स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः ॥

१४६९-सोऽस्य निवासः, अर्थात् वह इसका निवास है, इस अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकके उत्तर अणादि प्रत्यय हों, जैसे-स्रुघ्नो निवासोऽस्य=स्रौघ्नः ॥

१४७० अभिजनश्च । ४ । ३ । ९० ॥

स्रुघ्नोऽभिजनोस्य स्रौघ्नः । यत्र स्वयं वसति स निवासः। यत्र पूर्वैरुषितं सोऽभिजन इति विवेकः ॥

१४७०-सोऽस्याभिजनः, अर्थात् वह इसका अभिजन है, इस अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकके उत्तर अणादि प्रत्यय हों, जैसे-स्रुघ्नोऽभिजनोस्य, इस विग्रहमें स्रौघ्नः । जिस स्थलमें स्वयं वास करताहै, उसका नाम निवास और जिस स्थलमें पूर्व पुरुषोंने वास कियाहै, उस स्थलको अभिजन कहतेहैं, यह पार्थक्य है ॥

१४७१ आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते । ४ । ३ । ९१ ॥

पर्वतवाचिनः प्रथमान्तादभिजनशब्दादस्येत्यर्थे छः स्यात् । हृद्गोलः पर्वतोऽभिजनो येषामायुधजीविनां ते हृद्गोलीयाः । आयुधेति किम्। ऋक्षोदः पर्वतोऽभिजनो येषां ते आर्क्षोदा द्विजाः॥

१४७१-पर्वतवाचक प्रथमान्त अभिजन शब्दके उत्तर अस्य, अर्थात् इसका, इस अर्थमें छ प्रत्यय हो, जैसे-हृद्गोलः पर्वतोऽभिजनो येषामायुधजीविनान्ते=हृद्गोलीयाः ।

आयुधजीवी क्यों कहा ? तो आयुधजीवीसे भिन्नार्थमें छ प्रत्यय नहीं हो, जैसे-ऋक्षोदः पर्वतोऽभिजनो येषां ते= आर्क्षोदाः द्विजाः ॥

१४७२शण्डिकादिभ्यो ञ्यः।४।३।९२॥

शण्डिकोऽभिजनोस्य शाण्डिक्यः ॥

१४७२-'सोऽस्याभिजनः' इस अर्थमें शण्डिकादि शब्दोंके उत्तर ञ्य प्रत्यय हो, जैसे-शण्डिकोऽभिजनोऽस्य,इस विग्रहमें शाण्डिक्यः ॥

१४७३ सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ । ४ । ३ । ९३ ॥

सिन्ध्वादिभ्योऽण् तक्षशिलादिभ्योऽञ् स्यादुक्तेर्थे । सैन्धवः । तक्षशिला नगरी अभिजनोऽस्य ताक्षशिलः ॥

१४७३-प्रागुक्त अर्थमें सिन्धु आदि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय और तक्षशिलादि शब्दोंके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, जैसे-सैन्धवः । तक्षशिला नगरी अभिजनोऽस्य=ताक्षशिलः ॥

१४७४ तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः । ४ । ३ । ९४ ॥

तूदी अभिजनोऽस्य तौदेयः । शालातुरीयः । वार्मतेयः । कौचवार्यः ॥

१४७४-तूदी, शलातुर, वर्म्मती और कूचवार शब्दोंके उत्तर यथाक्रम ढक्, छण्, ढञ् और यक् प्रत्यय हों, जैसे-तूदी अभिजनोऽस्य=तौदेयः । शालातुरीयः । वार्मतेयः । कौचवार्यः ॥

१४७५ भक्तिः । ४ । ३ । ९५ ॥

सोस्येत्यनुवर्तते। भज्यते सेव्यते इति भक्तिः। स्रुघ्नो भक्तिरस्य स्रौघ्नः ॥

१४७५-'भक्तिः अस्य' अर्थात् इसकी भक्ति, इस अर्थमें प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिकसे अणादि प्रत्यय हों, जैसे-भज्यते सेव्यते इति भक्तिः,-स्रुघ्नो भक्तिरस्य=स्रौघ्नः ॥

१४७६ अचित्तादेशकालाट्ठक् । ४ । ३ । ९६ ॥

अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः । पायसिकः । अचित्तात्किम् । दैवदत्तः । अदेशात्किम । स्रौघ्नः। अकालात्किम् । ग्रैष्मः ॥

१४७६- चेतन न हो और देश कालवाचक न हो, ऐसा जो शब्द उसके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः । पायसिकः ।

चेतन होनेपर ठक् प्रत्यय न होगा,जैसे-दैवदत्तः ।

देश होनेपर जैसे-स्रौघ्नः ।

होनेपर जैसे-ग्रैष्मः ॥

१४७७ महाराजाट्ठञ् । ४ । ३ । ९७ ॥

माहाराजिकः ॥

१४७७-महाराज शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-माहाराजिकः ॥

१४७८वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्।४।३।९८॥

वासुदेवकः । अर्जुनकः ॥

१४७८-वासुदेव और अर्जुन शब्दके उत्तर वुन् प्रत्यय हो, यह छ अणका अपवाद है, जैसे-वासुदेवकः । अर्जुनकः

१४७९ गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ् । ४ । ३ । ९९ ॥

अणोपवादः । परत्वाद्वृद्धाच्छं बाधते । ग्लुचुकायनिर्भक्तिरस्य ग्लौचुकायनकः । नाकुलकः। बहुलग्रहणान्नेह । पाणिनो भक्तिरस्य पाणिनीयः॥

१४७९-गोत्रप्रत्ययान्त और क्षत्रियवाचक शब्दोंके उत्तर बहुल करके वुञ् प्रत्यय हो, यह वुञ् प्रत्यय अण् प्रत्ययका अपवादक है, परत्वके कारण "वृद्धाच्छः" इस सूत्रसे विहित छ प्रत्ययको भी बाधताहै, जैसे-ग्लुचुकायनिर्भक्तिरस्य= ग्लौचुकायनकः । नाकुलकः ।

बहुल शब्दका ग्रहण करनेसे सर्वत्र वुञ् प्रत्यय नहीं होगा, अत एव पाणिनो भक्तिरस्य=पाणिनीयः, इस स्थलमें वुञ् प्रत्यय नहीं हुआ ॥

१४८० जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने।४।३।१००।

जनपदस्वामिवाचिनां बहुवचने जनपदवाचिनां समानश्रुतीनां जनपदवत्सर्वं स्यात्प्रत्ययः प्रकृतिश्च । जनपदतदवध्योश्चेति प्रकरणे ये प्रत्यया उक्तास्तेऽत्रातिदिश्यन्ते । अङ्गा जनपदो भक्तिरस्याङ्गकः । अङ्गाः क्षत्रिया भक्तिरस्याङ्गकः । जनपदिनां किम् । पञ्चाला ब्राह्मणा भक्तिरस्य पाञ्चालाः । जनपदेनेति किम् । पौरवो राजा भक्तिरस्य पौरवीयः ॥

१४८०–बहुवचनमें जनपदवाचक शब्दके समान जो जनपदस्वामिवाचक शब्द उसको जनपदवाचक शब्दके समान प्रकृति और प्रत्यय हो । "जनपदतदवध्योश्च१३४८" इस सूत्रप्रकरणमें जो जो प्रत्यय उक्त हुए हैं, उन सबका इस स्थलमें अतिदेश होताहै, अर्थात् जनपद स्वामिवाचक बहुवचनान्त अङ्ग शब्दके उत्तर इस सूत्रसे अण् प्रत्ययकी प्राप्तिमें वुञ् प्रत्ययका अतिदेश होताहै, जैसे–अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य=आङ्गकः । अङ्गाः क्षत्रिया भक्तिरस्य=आङ्गकः ।

जनपदस्वामी न होनेपर, जैसे–पञ्चाला ब्राह्मणा भक्तिरस्य=पाञ्चालः । जनपदके समान शब्द न होनेपर, जैसे–पौरवो राजा भक्तिरस्य=पौरवीयः ॥

१४८१ तेन प्रोक्तम् । ४ । ३ । १०१ ॥

पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम् ॥

१४८१–'प्रोक्तम्' इस अर्थमें तृतीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर अणादि प्रत्यय हों, जैसे–पाणिनिना प्रोक्तम्=पाणिनीयम् ॥

१४८२ तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् । ४ । ३ । १०२ ॥

छन्दोब्राह्मणानीति तद्विषयता । तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते तैत्तिरीयाः ॥

१४८२–"छन्दोब्राह्मणानि १३७८" इस सूत्रसे प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्दोवाचक, ब्राह्मणवाचक शब्दको अध्येतृ, वेदितृ प्रत्ययविषयत्व है, तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डिक और उख शब्दके उत्तर प्रोक्तार्थमें छण् प्रत्यय हो, जैसे–तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते, इस विग्रहमें–तैत्तिरीयाः ॥

१४८३ काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः । ४ । ३ । १०३ ॥

काश्यपेन प्रोक्तमधीयते काश्यपिनः ॥

१४८३–काश्यप, कौशिक इन दो ऋषिवाचक शब्दोंके उत्तर प्रोक्त अर्थमें णिनि प्रत्यय हो, जैसे–काश्यपेन प्रोक्तमधीयते=काश्यपिनः ॥

१४८४ कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च । ४ । ३ । १०४ ॥

कलाप्यन्तेवासिभ्यः–हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः । वैशम्पायनान्तेवासिभ्यः–आलम्बिनः ॥

१४८४–कलापी और वैशम्पायन ऋषिके अन्तेवासी, अर्थात् छात्रवाचक शब्दके उत्तर प्रोक्त अर्थमें णिनि प्रत्यय हो, कलाप्यन्तेवासीके उत्तर, जैसे=हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते=हारिद्रविणः । वैशम्पायनान्तेवासीके उत्तर, जैसे–आलम्बेन प्रोक्तमधीयते=आलम्बिनः ॥

१४८५ पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु। ४ । ३ । १०५ ॥

तृतीयान्तात्प्रोक्तार्थे णिनिः स्यात् । यत्प्रोक्तं पुराणप्रोक्ताश्चेद्ब्राह्मणकल्पास्ते भवन्ति । पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना प्रोक्ताः।भल्लु,भाल्लविनः। शाट्यायन,‌शाट्यायनिनः। कल्पे–पिंगेन प्रोक्तः पैंगी कल्पः। पुराणेति किम् । याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि । आश्मरथः कल्पः । अणि आपत्यस्येति यलोपः ॥

१४८५–जो प्रोक्त हो वह यदि पुराणप्रोक्त ब्राह्मण और कल्प हो, तो तृतीयान्त पदके उत्तर प्रोक्तार्थमें णिनि प्रत्यय हो, ब्राह्मणमें यथा–पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना प्रोक्ताः, भल्लु–भाल्लविनः । शाट्यायन–शाट्यायनिनः । कल्पमें–पिङ्गेन प्रोक्तः=पैङ्गी कल्पः ।

पुराण क्यों कहा ? तो याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि । आश्मरथः कल्पः, यहां नहीं हो, यहां अण् प्रत्यय परे रहते "आपत्यस्य० १०८२" इस सूत्रसे यकारका लोप हुआहै ॥

१४८६ शौनकादिभ्यश्छन्दसि । ४ । ३ । १०६ ॥

छन्दस्यभिधेये एभ्यो णिनिः । शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः ॥

१४८६–वेद अभिधेय (वाच्य) होनेपर शौनकादि शब्दोंके उत्तर प्रोक्त अर्थमें णिनि प्रत्यय हो, जैसे–शौनकेन प्रोक्तमधीयते, इस विग्रहमें–शौनकिनः ॥

१४८७ कठचरकाल्लुक्। ४ । ३।१०७॥

आभ्यां प्रोक्तप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः । चरकाः ॥

१४८७–कठ और चरक शब्दके उत्तर प्रोक्त अर्थमें विहित प्रत्ययका लुक् हो, जैसे–कठेन प्रोक्तमधीयते, इस विग्रहमें–कठाः । चरकाः ॥

१४८८ कलापिनोऽण् । ४।३ । १०८ ॥

कलापिना प्रोक्तमधीयते कालापाः ॥ नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापि-

कौथुमितैतिलिजाजलिलांगलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसंख्यानाट्टिलोपः ॥

१४८८-' प्रोक्तमधीयते ' इस अर्थमें तृतीयान्त कलापिन् शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे-कलापिना प्रोक्तमधीयते, इस विग्रहमें-कालापाः ।

नकारान्त शब्दकी टिके लोपके विषयमें सब्रह्मचारिन्, पीठसर्पिन्, कलापिन्, कौथुमिन्, तैतिलिन्, जाजलिन्, लाङ्गलिन्, शिलालिन्, शिखंडिन्, सूकरसद्मन्, सुपर्वन्, इन शब्दोंके उपसंख्यानके कारण यहां अण् प्रत्यय परे रहते टिका लोप हुआ ॥

१४८९ छगलिनो ढिनुक् ।४।३।१०९॥

छगलिना प्रोक्तमधीयते छागलेयिनः ॥

१४८९-तृतीयान्त छगलिन् शब्दके उत्तर 'प्रोक्तमधीयते' इस अर्थमें ढिनुक् प्रत्यय हो, जैसे-छगलिना प्रोक्तमधीयते= छागलेयिनः ॥

१४९० पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः । ४ । ३ । ११० ॥

पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः । शैलालिनो नटाः ॥

१४९०-पूर्वोक्त अर्थमें भिक्षु वाच्य होनेपर पराशर्य शब्दके उत्तर और नटसूत्र अर्थमें शिलालिन् शब्दके उत्तर णिनि प्रत्यय हो, जैसे-पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते=पाराशरिणो भिक्षवः । शैललिना प्रोक्तं नटसूत्रमधीयते=शैलालिनो नटाः ॥

१४९१ कर्मन्दकृशाश्वादिनिः । ४ । ३ । १११ ॥

भिक्षुनटसूत्रयोरित्येव । कर्मन्देन प्रोक्तमधीयते कर्मन्दिनो भिक्षवः । कृशाश्विनो नटाः ॥

१४९१-भिक्षु अर्थमें तृतीयान्त कर्मन्द शब्दके उत्तर और नटसूत्र अर्थमें तृतीयान्त कृशाश्व शब्दके उत्तर 'प्रोक्तमधीयते' इस अर्थमें इनि प्रत्यय हो, जैसे-कर्मन्देन प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते= कर्मन्दिनो भिक्षवः । कृशाश्वेन प्रोक्तं नटसूत्रमधीयते=कृशाश्विनो नटाः ॥

१४९२ तेनैकदिक् । ४ । ३ । ११२ ॥

सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् सौदामनी ॥

१४९२-एकदिक् अर्थात् तुल्यदिक् अर्थमें तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिकके उत्तर अणादि प्रत्यय हों, जैसे-सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक्=सौदामनी ॥

१४९३ तसिश्च । ४ । ३ । ११३ ॥

स्वरादिपाठादव्ययत्वम् । पीलुमूलेन एकदिक् पीलुमूलतः ॥

१४९३-एकदिक् अर्थमें तृतीयान्त पदके उत्तर तसि प्रत्यय भी हो । स्वरादिगण (४४७) में तसि प्रत्ययका पाठ है, इससे तसि प्रत्ययान्त शब्दको अव्ययत्व होताहै, यथा- पीलुमूलेन एकदिक्=पीलुमूलतः ॥

१४९४ उरसो यच्च । ४ । ३ । ११४ ॥

चात्तसिः । अणोऽपवादः । उरसा एकदिक् उरस्यः । उरस्तः ॥

१४९४-तृतीयान्त उरस् शब्दके उत्तर एकदिक् अर्थमें यत् प्रत्यय और चकारसे तसि प्रत्यय हो, यह प्रत्यय अण् प्रत्ययके अपवाद हैं । यथा-उरसा एकदिक्=उरस्यः, उरस्तः ॥

१४९५ उपज्ञाते । ४ । ३ । ११५ ॥

तेनेत्येव । पाणिनिना उपज्ञातं पाणिनीयम्॥

१४९५-उपज्ञात अर्थमें तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिकके उत्तर यत् प्रत्यय हो, यथा-पाणिनिना उपज्ञातम्= पाणिनीयम् ॥

१४९६ कृते ग्रन्थे । ४ । ३ । ११६ ॥

वररुचिना कृतो वाररुचो ग्रन्थः ॥

१४९६-कृत (कियागया) अर्थमें परन्तु जो कियाजाय सो ग्रन्थ हो तो तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिकके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यथा-वररुचिना कृतः=वाररुचः ग्रन्थः ॥

१४९७ संज्ञायाम् । ४ । ३ । ११७ ॥

तेनेत्येव । अग्रन्थार्थमिदम् । मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकं मधु ॥

१४९७-कृत अर्थमें संज्ञा होनेपर तृतीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यह सूत्र ग्रन्थभिन्नार्थ है, अर्थात् संज्ञामें ग्रन्थ अर्थ होनेपर अण् प्रत्यय न हो, किन्तु तद्भिन्न अर्थमें अण् प्रत्यय हो, यथा-मक्षिकाभिः कृतम्=माक्षिकम्, अर्थात् मधु ॥

१४९८ कुलालादिभ्यो वुञ् ।४।३।११८॥

तेन कृते संज्ञायाम् । कुलालेन कृतं कौलालकम् । वारुडकम् ॥

१४९८-कृत अर्थ होनेपर संज्ञामें तृतीयान्त कुलालादि-शब्दोंके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, यथा-कुलालेन कृतम्=कौलालकम् । वारुडकम् ।

१४९९ क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ् । ४ । ३ । ११९ ॥

तेन कृते संज्ञायाम् । क्षुद्राभिः कृतं क्षौद्रम् । भ्रामरम् । वाटरम् । पादपम् ॥

१४९९-कृत अर्थमें संज्ञा होनेपर तृतीयान्त क्षुद्रा, भ्रमर, वटर और पादप शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, यथा-क्षुद्राभिः कृतम्=क्षौद्रम् । भ्रमरेण कृतम्=भ्रामरम् । वटरेण (कुक्कुटेन) कृतम्=वाटरम् । पादपैः कृतम्=पादपम्॥

१५०० तस्येदम् । ४ । ३ । १२० ॥

उपगोरिदमौपगवम् ॥ वहेस्तुरणिट् च ॥ * ॥ संवोढुः स्वं सांवहित्रम् ॥ अग्नीधः शरणे रण्

भं च ॥ * ॥ अग्निमिन्धे अग्नीत्, तस्य स्थानमाग्नीध्रम्, तात्स्थ्यात्सोप्याग्नीध्रः ॥ समिधामाधाने षेण्यण् ॥ * ॥ सामिधेन्यो मन्त्रः । सामिधेनी । ऋक् ॥

१५००–उसका यह है, इस अर्थमें षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकोंसे शैषिक प्रकरणमें कहे हुए प्रत्यय हों, यथा–उपगोरिदम्=औपगवम् ।

तृन्, तृच्–प्रत्ययान्त वह धातुके उत्तर अण् प्रत्यय और वह धातुको इट्का आगम हो * यथा–संवोढुः स्वम्=सांवहित्रम् ।

अग्नीध् शब्दके उत्तर शरण (घर) अर्थमें रण् प्रत्यय हो और अग्नीध् शब्दको भसंज्ञा हो * यथा–अग्निमिन्धे–अग्नीत्, तस्य स्थानम्=आग्नीध्रम् । तात्स्थ्यहेतु (उस स्थानमें रहनेके हेतु) से वह (अग्निको दीप्त करनेवाला) भी आग्नीध्र कहाजाताहै ।

आधान अर्थमें समिध् शब्दके उत्तर षेण्यण् प्रत्यय हो * यथा–सामिधेन्यः मन्त्रः । सामिधेनी ऋक् ॥

१५०१ रथाद्यत् । ४ । ३ । १२१ ॥

रथ्यं चक्रम् ॥

१५०१–रथ शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, यथा–रथ्यं चक्रम् ॥

१५०२ पत्रपूर्वादञ् । ४ । ३ । १२२ ॥

पत्रं वाहनम् । अश्वरथस्येदमाश्वरथम् ॥

१५०२–पत्र, अर्थात् वाहनवाचकशब्दपूर्वक रथ शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, यथा–अश्वरथस्य इदम्=आश्वरथम् ॥

१५०३ पत्राध्वर्युपरिषदश्च।४।३।१२३॥

अञ् ॥ पत्राद्वाह्ये ॥ * ॥ अश्वस्येदं वहनीयमाश्वम् । आध्वर्यवम् । पारिषदम् ॥

१५०३–पत्रवाचक, अध्वर्यु और परिषद् शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो ।

पत्रवाचकसे वाह्य अर्थमें हो * यथा–अश्वस्येदं वहनीयम्=आश्वम् । आध्वर्यवम् । पारिषदम् ॥

१५०४ हलसीराट्ठक् । ४ । ३ । १२४॥

हालिकम् । सैरिकम् ॥

१५०४–हल और सीर शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, यथा–हालिकम् । सैरिकम् ॥

१५०५ द्वन्द्वाद्वुन्वैरमैथुनिकयोः । ४ । ३ । १२५ ॥

काकोलूकिका । कुत्सकुशिकिका ॥ वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः ॥ * ॥ दैवासुरम् ॥

१५०५–वैर और मैथुनिका (स्त्रीपुरुषका कर्म) अर्थमें द्वन्द्वसमासनिष्पन्न शब्दके उत्तर वुन् प्रत्यय हो, यथा–काकोलूकिका । कुत्सकुशिकिका ।

वैर अर्थमें द्वन्द्वसमासनिष्पन्न देवासुर शब्दके उत्तर वुन् प्रत्यय न हो * यथा–दैवासुरम् ॥

१५०६ गोत्रचरणाद्वुञ् । ४ । ३ । १२६॥

औपगवकम् ॥ चरणाद्धर्माम्नाययोरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ काठकम् ॥

१५०६–गोत्रप्रत्ययान्त और चरणवाचक शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, यथा–औपगवकम् ।

चरणवाचक शब्दके उत्तर धर्म, और आम्नाय अर्थात् वेद अर्थमें उक्त प्रत्यय हो * यथा–काठकम् ॥

१५०७ सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् । ४ । ३ । १२७ ॥

घोषग्रहणमपि कर्तव्यम् ॥ * ॥ अञ्, बैदः सङ्घोऽङ्को घोषो वा।बैदं लक्षणम् । यञ्, गार्गः । गार्गम्। इञ्, दाक्षः। दाक्षम्। परम्परासम्बन्धोऽङ्कः। साक्षात्तु लक्षणम् ॥

१५०७ संघ, अंक और लक्षण अर्थमें अञ्, यञ् और इञ्प्रत्ययान्त षष्ठ्यन्त समर्थ शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो ।

इस सूत्रमें घोष शब्दका भी ग्रहण करना चाहिये* अञ् जैसे–बैदः संघोंको घोषो वा । बैदं लक्षणम् । यञ् यथा–गार्गः । गार्गम्। इञ् जैसे–दाक्षः । दाक्षम् । परम्परासम्बन्धको 'अंक' कहतेहैं और साक्षात् सम्बन्धको ' लक्षण ' कहतेहैं ॥

१५०८ शाकलाद्वा । ४ । ३ । १२८ ॥

अण् वोक्तेर्थे । पक्षे चरणत्वाद्वुञ् । शाकलेन प्रोक्तमधीयते शाकलास्तेषां सङ्घोऽङ्को घोषो वा शाकलः । शाकलकः । लक्षणे क्लीबता ॥

१५०८–पूर्वोक्त अर्थमें शाकल शब्दके उत्तर विकल्पसे अण् प्रत्यय हो, पक्षमें चरणवाचक शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय होगा, यथा–शाकलेन प्रोक्तमधीयते शाकलाः, तेषां संघोंको घोषो वा, इस विग्रहमें-शाकलः । पक्षमें शाकलकः । लक्षण अर्थमें नपुंसकलिङ्ग होताहै ॥

१५०९ छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ् ञ्यः । ४ । ३ । १२९ ॥

छन्दोगानां धर्म आम्नायो वा छान्दोग्यम् । औक्थिक्यम् । याज्ञिक्यम् । बाह्वृच्यम्।नाट्यम्॥ चरणाद्धर्माम्नाययोरित्युक्तं तत्साहचर्यान्नटशब्दादपि तयोरेव ॥

१५०९–छन्दोग, औक्थिक, याज्ञिक, बह्वृच और नट शब्दके उत्तर ञ्य प्रत्यय हो, यथा–छन्दोगानां धर्म आम्नायो वा=छान्दोग्यम् । औक्थिक्यम् । याज्ञिक्यम् । बाह्वृच्यम् । नाट्यम् ।

चरणवाचक शब्दके उत्तर धर्म और आम्नाय अर्थमें ञ्य प्रत्यय हो, यह पहले कह आये हैं, उसके साहचर्यसे नट शब्दके उत्तर भी धर्म और आम्नाय अर्थमें ही ञ्य प्रत्यय होताहै ॥

१५१० न दण्डमाणवान्तेवासिषु । ४ । ३ । १३० ॥

दण्डप्रधाना माणवा दण्डमाणवास्तेषु शिष्येषु च वुञ् न स्यात्। दाक्षा दण्डमाणवाः शिष्या वा॥

१५१०--दण्डप्रधान जो माणव उसको दंडमाणव कहतेहैं, दंडमाणव और शिष्य अर्थमें वुञ् प्रत्यय न हो, यथा--दाक्षा दण्डमाणवाः शिष्या वा ॥

१५११ रैवतिकादिभ्यश्छः ।४।३।१३१।

तस्येदमित्यर्थे । वुञोपवादः । रैवतिकीयः । बैजवापीयः ॥

१५११--'यह उसका है' इस अर्थमें रैवतिकादि शब्दोंके उत्तर छ प्रत्यय हो, यह छ प्रत्यय वुञ्का अपवाद है, यथा--रैवतिकीयः । बैजवापीयः ॥

१५१२ कौपिञ्जलहास्तिपदादण् । ४ । ३ । १३२ ॥ (वा १९१८) ॥

कुपिञ्जलस्यापत्यम् । इहैव, निपातनादण् तदन्तात्पुनरण् । कौपिञ्जलः । गोत्रवुञोऽपवादः । हस्तिपादस्यापत्यं हास्तिपदस्तस्यायं हास्तिपदः।

१५१२--कौपिञ्जल और हास्तिपद शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो । कुपिञ्जलस्यापत्यम्, इस विग्रहमें इसी सूत्रमें निपातनसे अण् प्रत्यय होकर तदन्तके उत्तर फिर अण् प्रत्यय हुआ, यथा--कौपिञ्जलः । यह अण् प्रत्यय, गोत्रवाचक शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्ययका अपवाद है । हस्तिपादस्यापत्यम्--हास्तिपदः, तस्यायम्=हास्तिपदः । (यह प्रक्षिप्त सूत्र है, ऐसा कैयटका मत है) ॥

१५१३ आथर्वणिकस्येकलोपश्च । ४ । ३ । १३३ ॥

चादण् । आथर्वणिकस्यायमाथर्वणो धर्म आम्नायो वा । चरणाद्वुञोपवादः ॥

॥ समाप्ताः शैषिकाः ॥

१५१३--आथर्वणिक शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो और इकका लोप हो । यह सूत्र चरणवाचक शब्दके उत्तर विहित वुञ् प्रत्ययका अपवाद है, यथा--आथर्वणिकस्यायम्=आथर्वणो धर्म आम्नायो वा ॥

॥ इति शैषिकप्रकरणम् ॥

अथ प्राग्दीव्यतीयप्रकरणम् ।

१५१४ तस्य विकारः । ४ । ३।१३४॥

अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः ॥ * ॥ अश्मनो विकार आश्मः । भास्मनः । मार्तिकः ॥

१५१४--षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर विकार अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों । विकारार्थक प्रत्यय परे रहते अश्मन् शब्दकी टिका लोप हो* (जहांतक विशेष कथन न हो वहांतक विकार अर्थ जानना) अश्मनो विकारः=आश्मः । भास्मनः । मार्तिकः ॥

१५१५ अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः । ४ । ३ । १३५ ॥

चाद्विकारे । मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूरः । मौर्वं काण्डं भस्म वा । पैप्पलम् ॥

१५१५--प्राणी, ओषधि और वृक्षवाचक शब्दके उत्तर अवयव अर्थमें और विकार अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों, जैसे--मयूरस्यावयवो विकारो वा, इस विग्रहमें--मायूरः । मौर्वं कांडं भस्म वा । पैप्पलम् ॥

१५१६ बिल्वादिभ्योऽण् । ४।३।१३६॥

बैल्वम् ॥

१५१६--बिल्वादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे--बैल्वम्, अर्थात् बिल्वका विकार वा अवयव ॥

१५१७ कोपधाच्च । ४ । ३ । १३७ ॥

अण् । अञोपवादः । तर्कु, तार्कवम् । तैत्तिडीकम् ॥

१५१७--ककारोपध शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यह अण् प्रत्यय अञ् प्रत्ययका अपवाद है, जैसे--तार्कवम् । तैत्तिडीकम् ॥

१५१८ त्रपुजतुनोः षुक् । ४।३।१३८॥

आभ्यामण् स्याद्विकारे एतयोः षुगागमश्च । त्रापुषम् । जातुषम् ॥

१५१८--त्रपु और जतु शब्दके उत्तर विकार अर्थमें अण् प्रत्यय हो और षुक्का आगम हो, जैसे--त्रापुषम् । जातुषम् ॥

१५१९ ओरञ् । ४ । ३ । १३९ ॥

दैवदारवम् । भाद्रदारवम् ॥

१५१९--उकारान्त प्रातिपदिकके उत्तर विकार अर्थमें अञ् प्रत्यय हो, जैसे--दैवदारवम् । भाद्रदारवम् ।

१५२० अनुदात्तादेश्च । ४। ३ । १४०॥

दाधित्थम् । कापित्थम् ॥

१५२०--अनुदात्तादि प्रातिपदिकके उत्तर भी अञ् प्रत्यय हो, जैसे--दाधित्थम् । कापित्थम् ॥

१५२१ पलाशादिभ्यो वा ।४।३।१४१॥

पालाशम् । कारीरम् ॥

१५२१--अवयव और विकार अर्थमें पलाशादि शब्दोंके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, जैसे--पालाशम् । खादिरम् । कारीरम् ॥

१५२२ शम्याः ष्लञ् । ४ । ३ । १४२॥

शामीलं भस्म । षित्त्वान्ङीष् । शामीली स्रुक् ॥

१५२२–शमी शब्दके उत्तर ष्लञ् प्रत्यय हो, जैसे–शामीलं भस्म, षित्वके कारण स्त्रीलिङ्गमें ङीष् प्रत्यय होगा, जैसे–शामीली स्रुक् ॥

१५२३ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः । ४ । ३ । १४३ ॥

प्रकृतिमात्रान्मयड्वा स्याद्विकारावयवयोः । अश्ममयम् । आश्मनम् । अभक्ष्येत्यादि किम् । मौद्गः सूपः । कार्पासमाच्छादनम् ॥

१५२३–भाषा (लोक) में विकार और अवयव अर्थ होनेपर प्रकृतिमात्रके उत्तर विकल्प करके मयट् प्रत्यय हो, भक्ष्य और आच्छादन अर्थ छोडकर, जैसे–अश्मनो विकारः अवयवो वा=अश्ममयम्।आश्मनम्।भक्ष्य और आच्छादन अर्थ होनेपर, जैसे–मौद्गः सूपः । कार्पासम् आच्छादनम् ॥

१५२४ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः । ४ । ३ । १४४ ॥

आम्रमयम् । शरमयम् ॥ एकाचो नित्यम्॥*॥ त्वङ्मयम् । वाङ्मयम् । कथं तर्हि आप्यमम्मयमिति । तस्येदमित्यण्णन्तात्स्वार्थे ष्यञ् ॥

१५२४–वृद्धसंज्ञक और शरादि शब्दोंके उत्तर नित्य मयट् प्रत्यय हो, जैसे–आम्रस्य विकारोऽवयवो =आम्रमयम् । शरमयम् ।

एक अच्से युक्त शब्दके उत्तर नित्य मयट् हो * जैसे–त्वङ्मयम् । वाङ्मयम् । शरमयम् । इस सूत्रके रहते'आप्यम्, अम्मयम्' ऐसे पद किस प्रकार हुए ? इसपर कहतेहैं कि, इस स्थानमें "तस्येदम् १५००" इस सूत्रसे विहित अण्प्रत्ययान्तके उत्तर स्वार्थमें ष्यञ् प्रत्यय हुआहै ॥

१५२५ गोश्च पुरीषे । ४ । ३ । १४५ ॥

गोः पुरीषं गोमयम् ॥

१५२५–पुरीष (विष्ठा) अर्थमें गो शब्दके उत्तर मयट् प्रत्यय हो, जैसे–गोः पुरीषम्=गोमयम् ॥

१५२६ पिष्टाच्च । ४ । ३ । १४६ ॥

मयट् स्याद्विकारे । पिष्टमयं भस्म । कथं पैष्टी सुरेति । सामान्यविवक्षायां तस्येदमित्यण्॥

१५२६–विकार अर्थमें पिष्ट शब्दके उत्तर मयट् प्रत्यय हो, जैसे–पिष्टमयं भस्म, तो फिर 'पैष्टी सुरा' यहां पैष्टी पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआहै ? इसपर कहतेहैं कि, इस स्थलमें सामान्यविवक्षामें "तस्येदम् १५००" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय हुआहै ॥

१५२७ संज्ञायां कन् । ४ । ३ । १४७॥

पिष्टादित्येव । पिष्टस्य विकारविशेषः पिष्टकः । पूपोऽपूपः पिष्टकः स्यात् ॥

१५२७–संज्ञामें पिष्ट शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे–पिष्टस्य विकारविशेषः=पिष्टकः। 'पूपोऽपूपः पिष्टकः स्यात्' इत्यमरः ॥

१५२८ व्रीहेः पुरोडाशे । ४ । ३।१४८॥

मयट् स्यात् । बिल्वाद्यणोपवादः । व्रीहिमयः पुरोडाशः । व्रैहमन्यत् ॥

१५२८–पुरोडाश अर्थमें व्रीहि शब्दके उत्तर मयट् प्रत्यय हो, यह बिल्वादि (१५१६) शब्दके उत्तर विहित अणका अपवाद है, जैसे–व्रीहिमयः पुरोडाशः, अन्य अर्थमें व्रैहम् ॥

१५२९ असंज्ञायां तिलयवाभ्याम् । ४ । ३ । १४९ ॥

तिलमयम् । यवमयम् । संज्ञायां तु तैलम् । यावकः ॥

१५२९–असंज्ञामें तिल और यव शब्दके उत्तर मयट् प्रत्यय हो, जैसे–तिलमयम् । यवमयम् । संज्ञा होनेपर नहीं होगा, जैसे–तैलम् । यावकः ॥

१५३० तालादिभ्योण् । ४ । ३ ।१५२॥

अञ्मयटोरपवादः ॥ तालाद्धनुषि ॥*॥ तालं धनुः । अन्यत्तालमयम् । ऐन्द्रायुधम् ॥

१५३०–तालादि शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो । यह अञ् और मयट् प्रत्ययका अपवाद है ।

ताल शब्दके उत्तर धनुष् अर्थमें मयट् प्रत्यय हो * जैसे–तालं धनुः । अन्य अर्थमें–तालमयम् । ऐन्द्रायुधम् ॥

१५३१ जातरूपेभ्यः परिमाणे । ४ । ३ । १५३ ॥

अण् । बहुवचनात्पर्यायग्रहणम् । हाटकः । तापनीयः । सौवर्णो वा निष्कः । परिमाणे किम् । हाटकमयी यष्टिः ॥

१५३१–परिमाण अर्थमें जातरूप (सुवर्ण) वाचक शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो । इस स्थलमें बहुवचनसे जातरूपके पर्यायका ग्रहण होताहै, जैसे–हाटकः, तापनीयः, सौवर्णो वा निष्कः । परिमाण अर्थ न होनेपर 'हाटकमयी यष्टिः' ऐसा रूप होगा ॥

१५३२ प्राणिरजतादिभ्योऽञ् । ४ । ३ । १५४ ॥

शौकम् । बाकम् । राजतम् ॥

१५३२–प्राणिन् और रजतादि शब्दोंके उत्तर विकार अर्थ और अवयव अर्थमें अञ् प्रत्यय हो, जैसे–शौकम् । बाकम् । राजतम् ।

१५३३ ञितश्च तत्प्रत्ययात्।४।३।१५५।

ञिद्यो विकारावयवप्रत्ययस्तदन्तादञ् स्यात्तयोरेवार्थयोः । मयटोपवादः । शामीलस्य शामीलम् । दाधित्थस्य दाधित्थम् । कापित्थम्। ञितः किम् । बैल्वमयम् ॥

१५३३-विकार और अवयव अर्थमें ञित् जो विकारावयवार्थ प्रत्यय,तदन्तके उत्तर अञ् प्रत्यय हो । यह अञ् प्रत्यय मयट् प्रत्ययका अपवाद है, जैसे-शामीलस्य-शामीलम् । दाधित्थस्य-दाधित्थम् । कापित्थम् । ञित् न होनेपर अञ् न होकर मयट् प्रत्यय ही होगा, जैसे-बैल्वमयम् ॥

१५३४ क्रीतवत्परिमाणात्।४।३।१५६॥

प्राग्वहतेष्ठगित्यारभ्य क्रीतार्थे ये प्रत्यया येनोपाधिना परिमाणाद्विहितास्ते तथैव विकारेऽतिदिश्यन्ते । अणादीनामपवादः । निष्केण क्रीतं नैष्किकम्, एवं निष्कस्य विकारोपि नैष्किकः । शतस्य विकारः शत्यः । शतिकः ॥

१५३४-"प्राग्वहतेष्ठक् १५४८" इस सूत्रसे आरंभ करके क्रीतार्थमें जो २ प्रत्यय जिस उपाधिसे परिमाणवाचकसे कहे गये हैं वह सब प्रत्यय परिमाणवाचकसे विकार अर्थमें हों । यह सूत्र अणादि प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-निष्केण क्रीतम्=नैष्किकम् । इसी प्रकार निष्कस्य विकारः=नैष्किकः । शतस्य विकारः=शत्यः । शतिकः ॥

१५३५ उष्ट्राद्वुञ् । ४ । ३ । १५७ ॥

प्राण्यञोपवादः । औष्ट्रकः ॥

१५३५-उष्ट्र शब्दके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो । यह वुञ् प्रत्यय प्राणिवाचकके उत्तर विहित अण् प्रत्ययका अपवाद है, जैसे-औष्ट्रकः ॥

१५३६ उमोर्णयोर्वा । ४ । ३ । १५८ ॥

औमम् । औमकम् । और्णम् । और्णकम् । वुञभावे यथाक्रममणञौ ॥

१५३६-उमा और ऊर्णा शब्दके उत्तर विकल्प करके वुञ् प्रत्यय हो, जैसे-औमकम्, औमम् । और्णकम्, और्णम् । वुञ्के अभावपक्षमें क्रमसे अर्थात् उमा शब्दके उत्तर अण् और ऊर्णा शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय होताहै ॥

१५३७ एण्या ढञ् । ४ । ३ । १५९ ॥

ऐणेयम् । एणस्य तु ऐणम् ॥

१५३७-एणी शब्दके उत्तर ढञ् प्रत्यय हो, जैसे-ऐणेयम् । एण शब्दका तो 'ऐणम्' ऐसा रूप होगा ॥

१५३८ गोपयसोर्यत् । ४ । ३ । १६० ॥

गव्यम् । पयस्यम् ॥

१५३८-गो और पयस् शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे-गव्यम् । पयस्यम् ॥

१५३९ द्रोश्च । ४ । ३ । १६१ ॥

द्रुर्वृक्षस्तस्य विकारोऽवयवो वा द्रव्यम् ॥

१५३९-द्रु शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, द्रु शब्दसे वृक्ष जानना, उसका विकार वा अवयव होनेपर 'द्रव्यम्' इस प्रकार रूप होगा ॥

१५४० माने वयः । ४ । ३ । १६२ ॥

द्रोरित्येव । द्रुवयम् । यौतवं द्रुवयं पाय्यमिति मानार्थकं त्रयम् ॥

१५४०-मान अर्थमें द्रु शब्दके उत्तर वय प्रत्यय हो, जैसे-द्रुवयम् ।"यौतवं द्रुवयं पाय्यमिति मानार्थकं त्रयम्"अर्थात् यह तीन पद परिमाणवाचक हैं ॥

१५४१ फले लुक् । ४ । ३ । १६३ ॥

विकारावयवप्रत्ययस्य लुक् स्यात् फले । आमलक्याः फलमामलकम् ॥

१५४१-फल वाच्य होनेपर विकार और अवयव अर्थमें विहित प्रत्ययका लुक् हो, जैसे-आमलक्याः फलम्, इस वाक्यमें आमलकम् ॥

१५४२ प्लक्षादिभ्योऽण् । ४ । ३ । १६४ ॥

विधानसामर्थ्यान्न लुक् । प्लाक्षम् ॥

१५४२-प्लक्षादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो । इस स्थानमें फलवाचक होनेपर भी विधानसामर्थ्यके कारण प्लक्ष आदि शब्दोंके उत्तर प्रत्ययका लुक् नहीं हुआ, जैसे-प्लाक्षम् ॥

१५४३ न्यग्रोधस्य च केवलस्य।७।३।५।

अस्य न वृद्धिरैजागमश्च । नैयग्रोधम् ॥

१५४३-अण् प्रत्यय परे रहते केवल न्यग्रोध शब्दके पूर्व स्वरकी वृद्धि न हो, परन्तु ऐच्का आगम हो, जैसे-नैयग्रोधम् ॥

१५४४ जम्ब्वा वा । ४ । ३ । १६५ ॥

जम्बूशब्दात् फलेऽण् वा स्यात् । जाम्बवम् । पक्षे ओरञ्, तस्य लुक्, जम्बु ॥

१५४४-फल वाच्य होनेपर जम्बू शब्दके उत्तर विकल्प करके अण् प्रत्यय हो, जैसे-जाम्बवम् । विकल्प पक्षमें "ओरञ्" इस सूत्रसे उकारान्त शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय होकर उसके लुक् होनेपर 'जम्बु' ऐसा पद होगा ॥

१५४५ लुप् च । ४ । ३ । १६६ ॥

जम्ब्वाः फलप्रत्ययस्य लुप् वा स्यात् । लुपि युक्तवत् । जम्ब्वाः फलं जम्बूः ॥ फलपाकशुषामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ व्रीहयः । मुद्गाः ॥ पुष्पमूलेषु बहुलम् ॥ * ॥ मल्लिकायाः पुष्पं मल्लिका । जात्याः पुष्पं जाती । विदार्या मूलं विदारी । बहुलग्रहणान्नेह । पाटलानि पुष्पाणि । साल्वानि मूलानि । बाहुलकात् क्वचिल्लुक् । अशोकम् । करवीरम् ॥

१५४५-जम्बू शब्दके उत्तर फल अर्थमें विहित प्रत्ययका विकल्प करके लुप् हो । लुप् होनेपर प्रकृतिकी समान लिङ्ग और वचन होगा (१२९४) जैसे-जम्ब्वाः फलम्-जम्बूः । फल परिपक्व होनेपर जो सूखजायँ, तद्वाचक शब्दोंके उत्तर

फल अर्थमें विहित प्रत्ययका लुप् हो * जैसे-व्रीहीणां फलानि=व्रीहयः। मुद्गाः।

पुष्प और मूल वाच्य रहते बहुल करके विकारावयव-प्रत्ययका लुप् हो* जैसे-मल्लिकायाः पुष्पम्=मल्लिका। जात्याः पुष्पम्=जाती। विदार्याः मूलम्-विदारी। बहुलग्रहणके कारण 'पाटलानि पुष्पाणि' और 'साल्वानि मूलानि' इन दो स्थलोंमें प्रत्ययका लुप् न हुआ। बहुलग्रहणके कारण किसी किसी स्थलमें लुक् होगा, जैसे-अशोकम्। करवीरम्।

१५४६ हरीतक्यादिभ्यश्च।४।३।१६७॥

एभ्यः फलप्रत्ययस्य लुप्स्यात्। हरीतक्यादीनां लिङ्गमेव प्रकृतिवत्। हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः॥

१५४६-हरीतकी आदि शब्दोंके उत्तर फलार्थक प्रत्ययका लुक् हो, हरीतक्यादि शब्दोंका लिङ्ग ही प्रकृतिकी समान होगा वचन तो, विशेष्यानुरोधसे ही होगा, जैसे-हरीतक्याः फलानि, इस विग्रहमें हरीतक्यः॥

१५४७ कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च।४।३।१६८॥

कंसीयपरशव्यशब्दाभ्यां यञञौ स्तश्छयतोश्च लुक्। कंसाय हितं कंसीयम्। तस्य विकारः कांस्यम्। परशवे हितं परशव्यम्, तस्य विकारः पारशवः॥

॥ इति प्राग्दीव्यतीयाः॥

१५४७-कंसीय और परशव्य शब्दके उत्तर यञ् और अञ् प्रत्यय हों और प्रकृतिके अवयव जो छ और यत् प्रत्यय उनका लुक् हो, जैसे-कंसाय हितम्-कंसीयम्, तस्य विकारः=कांस्यम्। परशवे हितम्-परशव्यम्, तस्य विकारः=पारशवः॥

॥ इति प्राग्दीव्यतीयप्रकरणं समाप्तम्॥

अथ ठगधिकारप्रकरणम्।

१५४८ प्राग्वहतेष्ठक्।४।४।१॥

तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते॥ तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम्॥ * ॥ मा शब्दः कारि इति य आह स माशब्दिकः॥

१५४८-"तद्वहति० १६२७" इस सूत्रके पूर्वतक ठक्का अधिकार है।

'तदाह' वह कहताहै, इस अर्थमें मा शब्द (स्वागत) आदि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो* जैसे-मा शब्दः कारि इति य आह सः=माशब्दिकः॥

१५४९ स्वागतादीनां च।७।३।७॥

ऐच् न स्यात्। स्वागतमित्याह स्वागतिकः। स्वाध्वरिकः। स्वङ्गस्याऽपत्यं स्वाङ्गिः। व्यङ्गस्याऽपत्यं व्याङ्गिः। व्यडस्यापत्यं व्याडिः। व्यवहारेण चरति व्यावहारिकः। स्वपतौ साधु स्वापतेयम्॥ * ॥ आहौ प्रभूतादिभ्यः। प्रभूतमाह प्राभूतिकः। पार्याप्तिकः॥ पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः॥ * ॥ सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकः। सौखशायनिकः। अनुशातिकादिः॥ गच्छतौ परदारादिभ्यः॥ * ॥ पारदारिकः। गौरुतल्पिकः॥

१५४९-स्वागतादि शब्दोंको ऐच्का आगम न हो, जैसे-स्वागतमित्याह=स्वागतिकः। स्वाध्वरिकः। स्वङ्गस्यापत्यम्=स्वांगिः। व्यंगस्यापत्यम्=व्यांगिः। व्यडस्यापत्यम्=व्याडिः। व्यवहारेण चरति=व्यावहारिकः। स्वपतौ साधु=स्वापतेयम्।

'आह' इस अर्थमें प्रभूतादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो * जैसे-प्रभूतमाह=प्राभूतिकः। पार्याप्तिकः।

'पृच्छति' इस अर्थमें सुस्नातादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो * जैसे-सुस्नातं पृच्छति=सौस्नातिकः। सौखशायनिकः, यह अनुशातिकादि १४३८ है।

'गच्छति' इस अर्थमें परदारादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो* जैसे-पारदारिकः। गौरुतल्पिकः॥

१५५० तेन दीव्यति खनति जयति जितम्।४।४।२॥

अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः। अभ्र्या खनति आभ्रिकः। अक्षैर्जयति आक्षिकः। अक्षैर्जितमाक्षिकम्॥

१५५०-दीव्यति, खनति, जयति, जितम्, अर्थात् क्रीडा करताहै, खनन करताहै, जय करताहै और जीतागया है, इन अर्थोंमें तृतीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-अक्षैर्दीव्यति=आक्षिकः। अभ्र्या खनति आभ्रिकः। अक्षैर्जयति=आक्षिकः। अक्षैर्जितम्=आक्षिकम्॥

१५५१ संस्कृतम्।४।४।३॥

दध्ना संस्कृतं दाधिकम्। मारिचिकम्॥

१५५१-संस्कृत अर्थमें तृतीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-दध्ना संस्कृतम्, इस विग्रहमें दाधिकम्। मारिचिकम्॥

१५५२ कुलत्थकोपधादण्।४।४।४॥

ठकोपवादः। कुलत्थैः संस्कृतं कौलत्थम्। तैत्तिडीकम्॥

१५५२-तृतीयान्त कुलत्थ और ककारोपध शब्दके उत्तर संस्कृत अर्थमें अण् प्रत्यय हो, यह अण् प्रत्यय ठक् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-कुलत्थैः संस्कृतम्, इस विग्रहमें कौलत्थम्। तैत्तिडीकम्॥

१५५३ तरति।४।४।५॥

उडुपेन तरति औडुपिकः॥

१५५३-'तरति' अर्थात् तरताहै, ऐसे अर्थमें तृतीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-उडुपेन तरति, इस वाक्यमें औडुपिकः॥

१५५४ गोपुच्छाट्ठञ् । ४ । ४ । ६ ॥

गौपुच्छिकः ॥

१५५४-उक्त अर्थमें तृतीयान्त गोपुच्छ शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-गौपुच्छिकः ॥

१५५५ नौद्व्यचष्ठन् । ४ । ४ । ७ ॥

नाविकः । घटिकः । बाहुभ्यां तरति बाहुका स्त्री ॥

१५५५-उक्त अर्थमें नौ शब्द और द्विस्वरयुक्त शब्दके उत्तर ठन् प्रत्यय हो, जैसे-नाविकः । घटिकः । बाहुभ्यां तरति (दोनों भुजाओंसे तरतीहै) इस वाक्यमें बाहुका स्त्री ॥

१५५६ चरति । ४ । ४ । ८ ॥

तृतीयान्ताद्गच्छति भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात् । हस्तिना चरति हास्तिकः । शाकटिकः । दध्ना भक्षयति दाधिकः ॥

१५५६-तृतीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर 'चरति' अर्थात् 'गच्छति' और 'भक्षयति' इन दो अर्थोंमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-हस्तिना चरति=हास्तिकः । शकटेन चरति=शाकटिकः । दध्ना भक्षयति=दाधिकः ॥

१५५७ आकर्षात् ष्ठल् । ४ । ४ । ९ ॥

आकर्षो निकषोपलः । आकषादिति पाठान्तरम् । तेन चरति आकर्षिकः । षित्त्वान्ङीष् । आकर्षिकी ॥

१५५७-आकर्ष शब्दसे निकष पत्थर जानना, तृतीयान्त आकर्ष शब्दके उत्तर 'चरति' (चलता है) इस अर्थमें ष्ठल् प्रत्यय हो, यहां'आकषात्' ऐसा पाठान्तर भी है। आकर्षेण चरति=आकर्षिकः । षित् प्रत्यय होनेके कारण उसके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीष् प्रत्यय होगा, जैसे-आकर्षिकी ॥

१५५८ पर्पादिभ्यः ष्ठन् । ४ । ४ । १० ॥

पर्पेण चरति पर्पिकः । पर्पिकी । येन पीठेन पङ्गवश्चरन्ति स पर्पः । अश्विकः । रथिकः ॥

१५५८-'चरति' इस अर्थमें तृतीयान्त पर्पादि शब्दोंके उत्तर ष्ठन् प्रत्यय हो, जैसे-पर्पेण चरति=पर्पिकः । स्त्रीलिङ्गमें पर्पिकी । जिस पीठ (वा यान) से लँगडे चलें उसको 'पर्प' कहतेहैं । अश्विकः। रथिकः ॥

१५५९ श्वगणाट्ठञ्च । ४ । ४ । ११ ॥

चात् ष्ठन् ॥

१५५९-उक्त अर्थमें तृतीयान्त श्वगण शब्दके उत्तर ठञ् और चकारसे ष्ठन् प्रत्यय हो ॥

१५६० श्वादेरिञि । ७ । ३ । ८ ॥

ऐच् न । श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः । श्वादंष्ट्रिः । तदादिविधौ चेदमेव ज्ञापकम् ॥ इकारादाविति वाच्यम् ॥ * ॥ श्वगणेन चरति श्वागणिकः । श्वागणिकी । श्वगणिकः । श्वगणिकी ॥

१५६०-श्वादि (श्वन्शब्दपूर्वक) शब्दके इञ् प्रत्यय परे रहते ऐच् न हो, जैसे--श्वभस्त्रस्यापत्यम्=श्वाभस्त्रिः । श्वादंष्ट्रिः ।

तदादिविधिविषयमें यही ज्ञापन है, आशय यह है कि, द्वारादि गणमें स्वन् शब्द पठित है, स्वभस्त्रादि शब्द पठित नहीं हैं, इससे उनको "द्वारादीनाञ्च ७।३।४" इस सूत्रसे ऐजागमकी प्राप्ति ही नहीं थी फिर यह निषेधसूत्र करनेका क्या प्रयोजन ? इसपर कहतेहैं कि, यही निषेधक सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापन करताहै कि, द्वारादिमें तदादिविधि है, इस ज्ञापनसे द्वारादिशब्दपूर्वक शब्दमें भी ऐजागमकी प्राप्ति होनेपर यह निषेधक सूत्र चारितार्थ हुआ ।

इकारादि तद्धित प्रत्यय परे रहते ऐच् न हो, ऐसा कहना चाहिये * जैसे--श्वगणेन चरति, इस विग्रहमें श्वागणिकः । श्वागणिकी । श्वगणिकः । श्वगणिकी ॥

१५६१ पदान्तस्याऽन्यतरस्याम् । ७ । ३ । ९ ॥

श्वादेरङ्गस्य पदशब्दान्तस्यैज्वा । श्वापदस्येदं शौवापदम् । श्वापदम् ॥

१५६१--पद शब्द अन्तमें है जिसके ऐसे श्वन्शब्दपूर्वक अंगको विकल्प करके ऐच्का आगम हो, जैसे--श्वापदस्येदम्=शौवापदम् । श्वापदम् ॥

१५६२ वेतनादिभ्यो जीवति । ४ । ४ । १२ ॥

वेतनेन जीवति वैतनिकः । धानुष्कः ॥

१५६२--जीवति (जीवनको धारण करताहै) इस अर्थमें तृतीयान्त वेतनादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे--वेतनेन जीवति, इस विग्रहमें वैतनिकः । धनुषा जीवति=धानुष्कः ॥

१५६३ वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् । ४ । ४ । १३ ॥

वस्नेन मूल्येन जीवति वस्निकः । क्रयविक्रयग्रहणं संघातविगृहीतार्थम् । क्रयविक्रयिकः । क्रयिकः । विक्रयिकः ॥

१५६३-'जीवति' इस अर्थमें तृतीयान्त वस्न और क्रय विक्रय शब्दके उत्तर ठन् प्रत्यय हो, वस्न शब्दसे मूल्य जानना, जैसे-वस्नेन जीवति=वस्निकः । संघात और विगृहीत निमित्त क्रय विक्रय शब्दका ग्रहण सूत्रमें किया है, जैसे- क्रयविक्रयिकः । क्रयिकः । विक्रयिकः ॥

१५६४ आयुधाच्छ च । ४ । ४ । १४ ॥

चाट्ठन् । आयुधेन जीवति आयुधीयः । आयुधिकः ॥

१५६४--तृतीयान्त आयुध शब्दके उत्तर 'जीवति' इस अर्थमें छ और चकारसे ठन् प्रत्यय हो, जैसे--आयुधेन जीवति=आयुधीयः, आयुधिकः ॥

१५६५ हरत्युत्सङ्गादिभ्यः । ४ । ४ । १५ ॥

उत्सङ्गेन हरत्यौत्सङ्गिकः ॥

१५६५--'हरति' इस अर्थमें तृतीयान्त उत्सङ्गादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे--उत्संगेन हरति=औत्संगिकः ॥

१५६६ भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ।४।४।१६॥

भस्त्रया हरति भस्त्रिकः । षित्त्वान्ङीष् भस्त्रिकी ॥

१५६६--'हरति' इस अर्थमें तृतीयान्त भस्त्रादि शब्दोंके उत्तर ष्ठन् प्रत्यय हो,जैसे--भस्त्रया हरति=भस्त्रिकः षकार इत् होनेके कारण स्त्रीलिंगमें ङीष् होगा, जैसे--भस्त्रिकी ॥

१५६७ विभाषा विवधात् ।४।४।१७॥

विवधेन हरति विवधिकः । पक्षे ठक् । वैवधिकः । एकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वाद्वीवधादपि ष्ठन् । वीवधिकः । वीवधिकी । विवधवीवधशब्दौ उभयतोबद्धशिक्ये स्कन्धवाह्ये काष्ठे वर्तेते॥

१५६७--'हरति' इस अर्थमें तृतीयान्त विवध शब्दके उत्तर विकल्प करके ष्ठन् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें ठक् प्रत्यय होगा, जैसे--विवधेन हरति--विवधिकः । वैवधिकः ।

"एकदेशविकृतमनन्यवत्" (एक देशके विकारसे वह दूसरा नहीं होताहै) इस न्यायसे वीवध शब्दका विवध शब्दसे अन्य रूप नहीं हुआ,इस कारण वीवध शब्दके उत्तर भी ष्ठन् प्रत्यय होगा, जैसे--वीवधिकः । वीवधिकी । विवध और वीवध दोनों शब्दोंसे दोनों पार्श्वोंमें बद्धशिक्य स्कंधवाह्य काष्ठ (वाँक) जानना ॥

१५६८ अण् कुटिलिकायाः ।४।४।१८॥

कुटिलिका व्याधानां गतिविशेषः कर्मारोपकरणभूतं लोहं च । कुटिलिकया हरति मृगानङ्गारान्वा कौटिलिको व्याधः कर्मारश्च ॥

१५६८--' हरति ' इस अर्थमें तृतीयान्त कुटिलिका शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, व्याधोंके गतिविशेष और कर्मारके उपकरणभूत लौहको कुटिलिका कहतेहैं, जैसे--कुटिलकया हरति मृगान् अङ्गारान् वा, इस विग्रहमें कौटिलिकः, अर्थात् व्याध और कर्मार । (कर्मार शब्दसे कर्मकार जानना) ॥

१५६९ निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ।४।४।१९॥

अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिकं वैरम् ॥

१५६९--निर्वृत्तम्, इस अर्थमें तृतीयान्त अक्षद्यूतादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे--अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्=आक्षद्यूतिकम्, अर्थात् वैर ॥

१५७० क्त्रेर्मम्नित्यम् ।४।४।२०॥

क्त्रिप्रत्ययान्तप्रकृतिकात्तृतीयान्तान्निर्वृत्तेर्थे मप्स्यान्नित्यम् । कृत्या निर्वृत्तं कृत्रिमम् । पक्त्रिमम् ॥ भावप्रत्ययान्तादिमब्वक्तव्यः ॥ * ॥ पाकेन निर्वृत्तं पाकिमम् । त्यागिमम् ॥

१५७०--क्त्रिप्रत्ययान्त प्रकृतिके तृतीयाविभक्त्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर 'निर्वृत्तम्' इस अर्थमें नित्य मप् प्रत्यय हो, जैसे--कृत्या निर्वृत्तम्=कृत्रिमम् । पक्त्रिमम् ।

भाववाच्यमें विहित प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर इमप् प्रत्यय हो * जैसे--पाकेन निर्वृत्तम्=पाकिमम् । त्यागिमम् ॥

१५७१ अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ ।४।४।२१॥

अपमित्येति ल्यबन्तम् । अपमित्य निर्वृत्तम् आपमित्यकम् । याचितेन निर्वृत्तं याचितकम् ॥

१५७१--अपमित्य और याचित शब्दके उत्तर क्रमसे कक् और कन् प्रत्यय हो, अपमित्य शब्द ल्यप्प्रत्ययान्त है, इस कारण इस स्थानमें तृतीयान्तके उत्तर उक्त प्रत्यय न होकर प्रथमान्तके उत्तर होगा, जैसे--अपमित्य निर्वृत्तम्=आपमित्यकम् । याचितेन निर्वृत्तम्=याचितकम् ॥

१५७२ संसृष्टे ।४।४।२२॥

दध्ना संसृष्टं दाधिकम् ॥

१५७२--' संसृष्टम् ' इस अर्थमें तृतीयान्त शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे--दध्ना संसृष्टम्=दाधिकम् ॥

१५७३ चूर्णादिनिः ।४।४।२३॥

चूर्णैः संसृष्टाश्चूर्णिनोऽपूपाः ॥

१५७३--'संसृष्टम्' इस अर्थमें तृतीयान्त चूर्ण शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे--चूर्णैः संसृष्टाः=चूर्णिनः अपूपाः ॥

१५७४ लवणाल्लुक् ।४।४।२४॥

लवणेन संसृष्टो लवणः सूपः । लवणं शाकम्॥

१५७४--' संसृष्टम् ' इस अर्थमें तृतीयान्त लवण शब्दके उत्तर उक्त प्रत्ययका लुक् हो, जैसे--लवणेन संसृष्टः=लवणः, अर्थात् सूपः । लवणं शाकम् ॥

१५७५ मुद्गादण् ।४।४।२५॥

मौद्ग ओदनः ॥

१५७५--' संसृष्टम् ' इस अर्थमें तृतीयान्त मुद्ग शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे--मुद्गेन संसृष्टः=मौद्गः, अर्थात् ओदन ॥

१५७६ व्यञ्जनैरुपसिक्ते ।४।४।२६॥

ठक् । दध्ना उपसिक्तं दाधिकम् ॥

१५७६--उपसिक्त अर्थ होनेपर व्यञ्जनवाचक तृतीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे--दध्ना उपसिक्तम्=दाधिकम् ॥

१५७७ ओजःसहोऽम्भसा वर्तते ।४।४।२७॥

ओजसा वर्तते औजसिकः शूरः । साहसिकश्चौरः । आम्भसिको मत्स्यः ॥

१५७७--' वर्तते ' इस अर्थमें तृतीयान्त ओजस्, सहस् और अम्भस् शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे--ओजसा वर्तते=औजसिकः, अर्थात् शूर । साहसिकः, अर्थात् चौर । आम्भसिकः, अर्थात् मत्स्य ॥

१५७८ तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् । ४ । ४ । २८ ॥

द्वितीयान्तादस्माद्वर्तत इत्यस्मिन्नर्थे ठक् स्यात् । क्रियाविशेषणत्वाद्द्वितीया । प्रतीपं वर्तते प्रातीपिकः । आन्वीपिकः । प्रातिलोमिकः । आनुलोमिकः । प्रातिकूलिकः । आनुकूलिकः ॥

१५७८-द्वितीयान्त प्रति, अनुपूर्वक ईप, लोम और कूल शब्दके उत्तर 'वर्त्तते' इस अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, इस स्थलमें क्रियाविशेषणमें द्वितीया हुईहै, जैसे-प्रतीपं वर्त्तते=प्रातीपिकः । आन्वीपिकः । प्रातिलोमिकः । आनुलोमिकः । प्रातिकूलिकः । आनुकूलिकः ॥

१५७९ परिमुखं च । ४ । ४ । २९ ॥

परिमुखं वर्तते पारिमुखिकः । चात्पारिपार्श्विकः ॥

१५७९-द्वितीयान्त परिमुख शब्दके उत्तर ' वर्त्तते ' इस अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-परिमुखं वर्त्तते=पारिमुखिकः । चकारसे ' पारिपार्श्विकः ' यह पद भी सिद्ध हुआ ॥

१५८० प्रयच्छति गर्ह्यम् । ४ । ४ । ३० ॥

द्विगुणार्थं द्विगुणं तत्प्रयच्छति द्वैगुणिकः । त्रैगुणिकः ॥ वृद्धेर्वृधुषिभावो वक्तव्यः ॥ * ॥ वार्धुषिकः ॥

१५८०-'प्रयच्छति ' इस अर्थमें गर्ह्यवाचक द्वितीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-द्विगुणार्थम्-द्विगुणम्, तत्प्रयच्छति=द्वैगुणिकः । त्रैगुणिकः ।

वृद्धि शब्दके स्थानमें वृधुषिभाव (वृधुषि आदेश) हो * जैसे-वार्धुषिकः ॥

१५८१ कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ । ४ । ४ । ३१ ॥

गर्ह्यार्थाभ्यामाभ्यामेतौ स्तः प्रयच्छतीत्यर्थे । कुसीदं वृद्धिस्तदर्थं द्रव्यं कुसीदं तत्प्रयच्छतीति कुसीदिकः।कुसीदिकी।एकादशार्थत्वादेकादश ते च ते वस्तुतो दश चेति विग्रहेऽकारः समासान्त इहैव सूत्रे निपात्यते । दशैकादशिकः । दशैकादशिकी । दशैकादशान्प्रयच्छतीत्युत्तमर्ण एवेहापि तद्धितार्थः ॥

१५८१-गर्ह्यार्थक कुसीद और दशैकादश शब्दके उत्तर ' प्रयच्छति ' इस अर्थमें क्रमसे ष्ठन् और ष्ठच् प्रत्यय हो, कुसीद शब्दसे वृद्धि जानना, तदर्थ द्रव्यको भी कुसीद कहतेहैं, तत्प्रयच्छति, अर्थात् वह जो दान करे उसको ' कुसीदिकः ' कहतेहैं । कुसीदिकी । एकादशार्थत्वके कारण एकादश ते च ते दश च, इस विग्रहमें समासान्त अकार इस सूत्रमें ही निपातनसे सिद्ध हुआहै, जैसे-दशैकादशिकः । दशैकादशिकी । ' दशैकादशान् प्रयच्छति ' इस अर्थमें तद्धितार्थ उत्तमर्ण ही है, अधमर्ण नहीं ॥

१५८२ उञ्छति । ४ । ४ । ३२ ॥

बदराण्युञ्छति बादरिकः ॥

१५८२-उञ्छति अर्थात् भूमिमें गिरे हुए शस्यादिको एक एक करके इकट्ठा करताहै, इस अर्थमें द्वितीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-बदराण्युञ्छति, इस वाक्यमें बादरिकः ॥

१५८३ रक्षति । ४ । ४ । ३३ ॥

समाजं रक्षति सामाजिकः ॥

१५८३-'रक्षति ' इस अर्थमें द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-समाजं रक्षति, इस विग्रहमें सामाजिकः ॥

१५८४ शब्ददर्दुरं करोति । ४ । ४ । ३४ ॥

शब्दं करोति शाब्दिकः । दार्दुरिकः ॥

१५८४-द्वितीयान्त शब्द और दर्दुर शब्दके उत्तर 'करोति' इस अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-शब्दं करोति=शाब्दिकः। दार्दुरिकः । दर्दुर शब्दसे भाण्ड जानना " दर्दुरस्तोयदे भेके वाद्ये भाण्डादिभेदयोः " ॥

१५८५ पक्षिमत्स्यमृगान्हन्ति ४ । ४ । ३५ ॥

स्वरूपस्य पर्यायाणां विशेषाणां च ग्रहणं मत्स्यपर्यायेषु मीनस्यैव।पक्षिणो हन्ति पाक्षिकः। शाकुनिकः । मायूरिकः । मात्स्यिकः । मैनिकः । शाकुलिकः । मार्गिकः । हारिणिकः।सारङ्गिकः॥

१५८५-'हन्ति ' इस अर्थमें द्वितीयान्त पक्षिवाचक, मत्स्यवाचक और मृगवाचक शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, पक्ष्यादि शब्दसे स्वरूप और उनके पर्याय और विशेषका ग्रहण है, परन्तु मत्स्यपर्यायके मध्यमें मीन शब्दका ही ग्रहण है, जैसे-पक्षिणो हन्ति=पाक्षिकः । शाकुनिकः । मायूरिकः । मात्स्यिकः । मैनिकः । शाकुलिकः । मार्गिकः । हारिणिकः । सारङ्गिकः ॥

१५८६ परिपन्थं च तिष्ठति । ४ । ४ । ३६ ॥

अस्माद्द्वितीयान्तात्तिष्ठति हन्ति चेत्यर्थे ठक् स्यात् । पन्थानं वर्जयित्वा व्याप्य वा तिष्ठति पारिपन्थिकश्चौरः । परिपन्थं हन्ति पारिपन्थिकः ॥

१५८६-द्वितीयान्त परिपन्थ शब्दके उत्तर ' तिष्ठति ' और ' हन्ति ' इस अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-पन्थानं वर्जयित्वा व्याप्य वा तिष्ठति, इस वाक्यमें पारिपन्थिकः चौरः । परिपन्थं हन्ति=पारिपन्थिकः ॥

१५८७ माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति । ४ । ४ । ३७ ॥

दण्डाकारो माथः पन्था दण्डमाथः । दण्ड-

माथं धावति दाण्डमाथिकः । पादविकः । आनुपदिकः ॥

१५८७–माथोत्तरपद, अर्थात् माथ शब्द उत्तर पद है जिसका ऐसा जो शब्द और पदवी शब्द और अनुपद शब्दके उत्तर 'धावति' इस अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, माथ शब्दसे पन्था जानना, जैसे–दण्डाकारो माथः पन्थाः, इस विग्रहमें दण्डमाथः, दण्डमाथं धावति, इस विग्रहमें दाण्डमाथिकः । पादविकः । आनुपदिकः ॥

१५८८ आक्रन्दाट्ठञ्च । ४ । ४ । ३८ ॥

अस्माट्ठञ् स्यात् चाट्ठक् धावतीत्यर्थे । आक्रन्दं दुःखिनां रोदनस्थानं धावति आक्रन्दिकः ॥

१५८८–द्वितीयान्त आक्रन्द शब्दके उत्तर 'धावति' इस अर्थमें ठञ् और चकारसे ठक् प्रत्यय हो, जैसे–आक्रन्दं–दुःखिनां रोदनस्थानं धावति, इस विग्रहमें आक्रन्दिकः, अर्थात् आर्त्तत्राता ॥

१५८९ पदोत्तरपदं गृह्णाति ।४।४।३९॥

पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः । औत्तरपदिकः॥

१५८९–द्वितीयान्त पदोत्तर पद, अर्थात् पद शब्द अन्तमें है जिसके ऐसे शब्दके उत्तर 'गृह्णाति' इस अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे–पूर्वपदं गृह्णाति=पौर्वपदिकः । औत्तरपदिकः ॥

१५९० प्रतिकण्ठार्थललामं च।४।४।४०।

एभ्यो गृह्णात्यर्थे ठक् स्यात् । प्रतिकण्ठं गृह्णाति प्रातिकण्ठिकः । आर्थिकः । लालामिकः॥

१५९०–'गृह्णाति' इस अर्थमें प्रतिकण्ठ, अर्थ, ललाम शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–प्रतिकण्ठं गृह्णाति, इस विग्रहमें प्रातिकण्ठिकः । आर्थिकः । लालामिकः ॥

१५९१ धर्मं चरति । ४ । ४ । ४१ ॥

धार्मिकः ॥ अधर्माच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आधर्मिकः ॥

१५९१–द्वितीयान्त धर्म शब्दके उत्तर 'चरति' इस अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे–धर्मं चरति=धार्मिकः ।

अधर्म शब्दके उत्तर भी ठक् प्रत्यय हो*जैसे–आधार्मिकः। इस स्थलमें चरति शब्दसे अनुष्ठानमात्र अर्थ नहीं किन्तु स्वारसिकी प्रवृत्तिरूप अर्थ जानना, इसलिये अतिदुराचारी व्यक्ति कदाचित् दैववशसे धर्मानुष्ठानमें प्रवृत्त होनेपर भी वह धार्मिक नहीं कहेजातेहैं, और दैवात् अधर्ममें प्रवृत्त धार्मिक व्यक्ति भी अधार्मिक नहीं कहेजातेहैं ॥

१५९२ प्रतिपथमेति ठंश्च । ४ ।४।४२॥

प्रतिपथमेति प्रातिपथिकः ॥

१५९२–'एति' इस अर्थमें द्वितीयान्त प्रतिपथ शब्दके उत्तर ठन् प्रत्यय हो, जैसे–प्रतिपथमेति, इस विग्रहमें प्रातिपथिकः ॥

१५९३ समवायान्समवैति ।४।४।४३॥

सामवायिकः । सामूहिकः ॥

१५९३–द्वितीयान्त समवाय अर्थात् समूहवाचक शब्दके उत्तर 'समवैति' इस अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे–समवायान् समवैति=सामवायिकः । सामूहिकः ॥

१५९४ परिषदो ण्यः । ४ । ४ । ४४ ॥

परिषदं समवैति पारिषद्यः ॥

१५९४–'समवैति' इस अर्थमें द्वितीयान्त परिषद् शब्दके उत्तर ण्य प्रत्यय हो, जैसे–परिषदं समवैति, इस विग्रहमें पारिषद्यः ॥

१५९५ सेनाया वा । ४ । ४ । ४५ ॥

ण्यः स्यात्पक्षे ठक् । सैन्याः । सैनिकाः ॥

१५९५–उक्त अर्थमें द्वितीयान्त सेना शब्दके उत्तर विकल्प करके ण्य प्रत्यय हो,विकल्प पक्षमें ठक् प्रत्यय होगा,जैसे–सेनाः समवयन्ति=सैन्याः, सैनिकाः ।

१५९६ संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति । ४ । ४ । ४६ ॥

ललाटं पश्यति लालाटिकः सेवकः । कुक्कुटीशब्देन तत्पातार्हः स्वल्पदेशो लक्ष्यते । कौक्कुटिको भिक्षुः ॥

१५९६–'पश्यति' इस अर्थमें संज्ञा होनेपर द्वितीयान्त ललाट और कुक्कुटी शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो,जैसे–ललाटं पश्यति=लालाटिकः,अर्थात् सेवक । कुक्कुटी शब्दसे कुक्कुटीके पतनयोग्य स्वल्प स्थान जानना, कौक्कुटिकः,अर्थात् भिक्षुक । कौक्कुटिक शब्दसे संन्यासी जानना, क्योंकि, संन्यासी कुक्कुटीपतनयोग्य अर्थात् पदन्यासपरिमितमात्र देशको देखता देखता चलताहै, और स्थानमें दृष्टि नहीं करताहै ॥

१५९७ तस्य धर्म्यम् । ४ । ४ । ४७ ॥

आपणस्य धर्म्यमापणिकम् ॥

१५९७–'धर्म्यम्' इस अर्थमें षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–आपणस्य धर्म्यम्, इस वाक्यमें आपणिकम् ॥

१५९८ अण् महिष्यादिभ्यः।४।४।४८॥

महिष्या धर्म्यं माहिषम् । याजमानम् ॥

१५९८–'धर्म्यम्' इस अर्थमें षष्ठ्यन्त महिष्यादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे–महिष्या धर्म्यम्=माहिषम् । याजमानम् ॥

१५९९ ऋतोऽञ् । ४ । ४ । ४९ ॥

यातुर्धर्म्यं यात्रम् ॥ नराच्चेति वक्तव्यम्॥*॥ नरस्य धर्म्या नारी ॥ विशसितुरिड्लोपश्चाञ्च वक्तव्यः ॥ * ॥ विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम् ॥ विभाजयितुर्णिलोपश्चाञ्च वाच्यः ॥ * ॥ विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजित्रम् ॥

१५९९-'धर्म्यम्' इस अर्थमें षष्ठ्यन्त ऋकारान्त शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, जैसे-यातुर्धर्म्यम्=यात्रम् ।

नर शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो * जैसे--नरस्य धर्म्या=नारी ।

विशसितृ शब्दावयव इट्का लोप और उसके उत्तर अञ् प्रत्यय भी हो * जैसे-विशसितुर्धर्म्यम्=वैशस्त्रम् ।

विभाजयितृशब्दावयव णिका लोप और अञ् प्रत्यय हो * जैसे-विभाजयितुर्धर्म्यम्=वैभाजित्रम् ॥

१६०० अवक्रयः । ४ । ४ । ५० ॥

षष्ठ्यंताट्ठक् स्यादवक्रयेऽर्थे । आपणस्यावक्रय आपणिकः । राजग्राह्यं द्रव्यमवक्रयः ॥

१६००-अवक्रय अर्थमें षष्ठीविभक्त्यन्त शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-आपणस्य अवक्रयः=आपणिकः । राजग्राह्य द्रव्यका नाम अवक्रय है ॥

१६०१ तदस्य पण्यम् । ४ । ४ । ५१ ॥

अपूपाः पण्यमस्य आपूपिकः ॥

१६०१-'अस्य पण्यम्' इस अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-अपूपाः पण्यम् अस्य= आपूपिकः ॥

१६०२ लवणाट्ठञ् । ४ । ४ । ५२ ॥

लावणिकः ॥

१६०२-'अस्य पण्यम्' इस अर्थमें प्रथमान्त लवण शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-लावणिकः ॥

१६०३ किसरादिभ्यः ष्ठन् ।४।४।५३॥

किसरं पण्यमस्य किसरिकः । षित्वान्ङीष् । किसरिकी । किसर, उशीर, नलद,-इत्यादि-किसरादयः सर्वे सुगन्धिद्रव्यविशेषवाचिनः ॥

१६०३-'अस्य पण्यम्' इस अर्थमें प्रथमान्त किसरादि शब्दोंके उत्तर ष्ठन् प्रत्यय हो, जैसे-किसरं पण्यमस्य=किसरिकः । षकार इत् होनेके कारण स्त्रीलिङ्गमें ङीष् प्रत्यय होगा, जैसे-किसरिकी । किसर, उशीर, नलद इत्यादि किसरादि सब शब्द सुगन्धिद्रव्यविशेषवाचक हैं ॥

१६०४ शलालुनोऽन्यतरस्याम् । ४ । ४ । ५४ ॥

ष्ठन् स्यात् पक्षे ठक् । शलालुकः । शलालुकी । शालालुकः । शालालुकी । शलालुः सुगन्धिद्रव्यविशेषः ॥

१६०४-उक्त अर्थमें शलालु शब्दके उत्तर विकल्प करके ठन् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें ठक् प्रत्यय होगा, जैसे-शलालुकः, शलालुकी । शालालुकः, शालालुकी । शालालु-शब्दसे सुगन्धिद्रव्याविशेष जानना ॥

१६०५ शिल्पम् । ४ । ४ । ५५ ॥

मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः ॥

१६०५-'शिल्पमस्य' इस अर्थमें प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य= मार्दङ्गिकः, यहां उत्तर पदका लोप इसलिये माना है कि, मृदङ्ग बजानेवालेका ही बोध हो, बनानेवालेका नहीं ॥

१६०६ मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम् । ४ । ४ । ५६ ॥

मड्डुकवादनं शिल्पमस्य माड्डुकः । माड्डुकिकः । झार्झरः । झार्झरिकः ॥

१६०६-मड्डुक और झर्झर शब्दके उत्तर 'शिल्पमस्य' इस अर्थमें विकल्प करके अण् प्रत्यय हो, पक्षमें ठक् होगा, जैसे-मड्डुकवादनं शिल्पमस्य=माड्डुकः, माड्डुकिकः । झार्झरः, झार्झरिकः ॥

१६०७ प्रहरणम् । ४ । ४ । ५७ ॥

तदस्येत्येव । असिः प्रहरणमस्य आसिकः । धानुष्कः ॥

१६०७-'अस्य प्रहरणम्' इस अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-असिः प्रहरणमस्य=आसिकः । धानुष्कः ॥

१६०८ परश्वधाट्ठञ्च । ४ । ४ । ५८ ॥

पारश्वधिकः ॥

१६०८-'अस्य प्रहरणम्' इस अर्थमें प्रथमान्त परश्वधादि शब्दके उत्तर ठञ् और चकारसे ठक् प्रत्यय हो, जैसे-पारश्वधिकः ॥

१६०९ शक्तियष्ट्योरीकक् ।४ ।४।५९ ॥

शाक्तीकः । याष्टीकः ॥

१६०९-उक्त अर्थमें शक्ति और यष्टि शब्दके उत्तर ईकक् प्रत्यय हो, जैसे-शक्तिः प्रहरणमस्य=शाक्तीकः । याष्टीकः ॥

१६१० अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः । ४ । ४ । ६० ॥

तदस्येत्येव । अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः । नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः । दिष्टमिति मतिर्यस्य स दैष्टिकः ॥

१६१०-अस्ति मतिरस्य, नास्ति मतिरस्य, दिष्टं मतिरस्य, इन अर्थोंमें क्रमसे प्रथमान्त अस्ति, नास्ति और दिष्ट शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य सः=आस्तिकः । नास्तीति मतिर्यस्य सः=नास्तिकः । दिष्टमिति मतिर्यस्य सः=दैष्टिकः ॥

१६११ शीलम् । ४ । ४ । ६१ ॥

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः ॥

१६११-'शीलमस्य' इस अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-अपूपभक्षणं शीलमस्य= आपूपिकः ॥

१६१२ छत्रादिभ्यो णः । ४ ।४।६२ ॥

गुरोर्दोषाणामावरणं छत्रं तच्छीलमस्य छात्रः ॥

१६१२–प्रथमान्त छत्रादि शब्दोंके उत्तर 'शीलमस्य' इस अर्थमें ण प्रत्यय हो, जैसे–गुरोर्दोषाणामावरणं छत्रं तत् शीलमस्य=छात्रः ॥

१६१३ कार्मस्ताच्छील्ये ।६।४।१७२ ॥

कार्म इति ताच्छील्ये णे टिलोपो निपात्यते। कर्मशीलः कार्मः । नस्तद्धित इत्येव सिद्धे अण्कार्यं ताच्छीलिके णेपि। तेन चौरी तापसीत्यादि सिद्धम् । ताच्छील्ये किम् । कार्मणः ॥

१६१३–तच्छील अर्थमें ण प्रत्यय परे रहते कर्मन् शब्दके निपातनसे टिका लोप हो, जैसे–कर्मशीलः कार्मः, अर्थात् कर्मशीलः ।

'कार्मः' यहां "नस्तद्धिते ६७९" इस सूत्रसे टिलोप सिद्ध होनेपर प्रकृत सूत्रसे टिलोपविधानका क्या प्रयोजन ? इसपर कहतेहैं कि, यही टिलोपविधान व्यर्थ होकर ज्ञापन करताहै कि, ताच्छीलिक ण प्रत्यय परे रहते भी अण्प्रत्ययप्रयुक्त कार्य्य हो, इस ज्ञापनसे "अन्" इस सूत्रसे प्रकृतिभाव होजाता, इसलिये सूत्र है । फल यह हुआ कि, 'चौरी, तापसी'इत्यादि पद सिद्ध हुए,नहीं तो "टिड्ढाण०" इससे ङीप् नहीं होता । ताच्छील्यार्थ न होनेपर टिका लोप न होगा, जैसे–कार्मणः ॥

१६१४ कर्माऽध्ययने वृत्तम् ।४।४।६३॥

प्रथमान्तात्षष्ठ्यर्थे ठक् स्यादध्ययने वृत्ता या क्रिया सा चेत्प्रथमान्तस्यार्थः। ऐकान्यिकः। यस्याध्ययने प्रवृत्तस्य परीक्षाकाले विपरीतोच्चारणरूपं स्खलितमेकं जातं सः ॥

१६१४–अध्ययनमें जो कर्म निष्पन्न हो वह यदि प्रथमान्तका अर्थ हो तो षष्ठ्यर्थमें प्रथमान्त पदके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–एकमन्यत् कर्म वृत्तम् अध्ययने अस्य सः=ऐकान्यिकः । अध्ययनमें प्रवृत्त जिसको परीक्षाकालमें विपरीत-उच्चारणरूप एक स्खलित हुआहै, उसको ऐकान्यिक कहतेहैं ॥

१६१५ बह्वच्पूर्वपदाट्ठच् ।४।४। ६४ ॥

प्राग्विषये । द्वादशान्यानि कर्माण्यध्ययने वृत्तान्यस्य द्वादशान्यिकः । द्वादशाऽपपाठा अस्य जाता इत्यर्थः ॥

१६१५–पूर्वसूत्रोक्त अर्थमें बहुत स्वरोंसे युक्त पूर्वपद रहते प्रथमान्त पदके उत्तर ठच् प्रत्यय हो, जैसे–द्वादशान्यानि कर्माणि अध्ययने प्रवृत्तानि अस्य=द्वादशान्यिकः, अर्थात् अध्ययनसमयमें जिसके बारह दूसरे कर्म उत्पन्न हों उसको द्वादशान्यिक कहतेहैं ॥

१६१६ हितं भक्षाः । ४ । ४ । ६५ ॥

अपूपभक्षणं हितमस्मै आपूपिकः ॥

१६१६–'अस्मै हितम्' इस अर्थमें प्रथमान्त समर्थ भक्ष्यवाचक शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–अपूपभक्षणं हितमस्मै=आपूपिकः ॥

१६१७ तदस्मै दीयते नियुक्तम् । ४ । ४ । ६६ ॥

अग्रभोजनं नियतं दीयते अस्मै आग्रभोजनिकः ॥

१६१७–'अस्मै दीयते नियुक्तम्' इस अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–अग्रभोजनं नियतं दीयतेऽस्मै, इस विग्रहमें आग्रभोजनिकः ॥

१६१८श्राणामांसौदनाट्टिठन्।४।४।६७॥

श्राणा नियुक्तं दीयतेऽस्मै श्राणिकः । श्राणिकी । मांसौदनग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम् । मांसौदनिकः । मांसिकः । औदनिकः ॥

१६१८–'नियुक्तं दीयतेऽस्मै' इस अर्थमें प्रथमान्त श्राणा, मांस और ओदन शब्दके उत्तर टिठन् प्रत्यय हो, जैसे–श्राणा (यवागू) नियुक्तं दीयतेऽस्मै, इस विग्रहमें श्राणिकः । श्राणिकी । मांसौदन शब्दका ग्रहण संघातार्थ और विगृहीतार्थ, अर्थात् मांसौदन शब्द और मांस और ओदन शब्दके उत्तर प्रत्ययविधानके निमित्त है, जैसे–मांसौदनिकः । मांसिकः । औदनिकः ॥

१६१९ भक्तादणन्यतरस्याम्।४।४।६८॥

पक्षे ठक् । भक्तमस्मै नियुक्तं दीयते भाक्तः। भाक्तिकः ॥

१६१९–प्रथमान्त भक्त शब्दके उत्तर 'अस्मै नियुक्तं दीयते' इस अर्थमें विकल्प करके अण् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें ठक् प्रत्यय होगा, जैसे–भक्तमस्मै नियुक्तं दीयते, इस विग्रहमें भाक्तः, भाक्तिकः ॥

१६२० तत्र नियुक्तः । ४ । ४ । ६९ ॥

आकरे नियुक्त आकरिकः ॥

१६२०–'नियुक्तः' इस अर्थमें सप्तम्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–आकरे नियुक्तः=आकारिकः ॥

१६२१ अगारान्ताट्ठन् । ४।४ । ७० ॥

देवागारे नियुक्तो देवागारिकः ॥

१६२१–अगार शब्द अन्तमें रहते 'नियुक्तः' इस अर्थमें सप्तम्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर ठन् प्रत्यय हो, जैसे–देवागारे नियुक्तः–देवागारिकः ॥

१६२२ अध्यायिन्यदेशकालात् ।४। ४ । ७१ ॥

निषिद्धदेशकालवाचकाट्ठक् स्यादध्येतरि ।

श्मशानेऽधीते श्माशानिकः । चतुर्दश्यामधीते चातुर्दशिकः ॥

१६२२-अध्यायिनि, अर्थात् अध्ययनकर्ता अर्थमें सप्तम्यन्त निषिद्ध देश और कालवाचक शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-श्मशाने अधीते=श्माशानिकः । चतुर्दश्यामधीते=चातुर्दशिकः ॥

१६२३ कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति । ४ । ४ । ७२ ॥

तत्रेत्येव । वंशकठिने व्यवहरति वांशकठिनिकः । वंशा वेणवः कठिना यस्मिन्देशे स वंशकठिनस्तस्मिन्देशे या क्रिया यथानुष्ठेया तां तथैवानुतिष्ठतीत्यर्थः । प्रास्तारिकः । सांस्थानिकः ॥

१६२३-सप्तम्यन्त-कठिन शब्द अन्तमें है जिसके ऐसे शब्द, प्रस्तार शब्द और संस्थान शब्दके उत्तर 'व्यवहरति' इस अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-वंशकठिने व्यवहरति, इस विग्रहमें वांशकठिनिकः । वंशा वेणवः कठिना यस्मिन्देशे स बंशकठिनस्तस्मिन् देशे या क्रिया यथानुष्ठेया तां तथैव अनुतिष्ठतीत्यर्थः (जिस देशमें वंश अर्थात् वेणु कठिन हों उसको वंशकठिन कहतेहैं, उस देशमें जो क्रिया जिस प्रकार अनुष्ठित होनी उचित है, उसको जो उसी प्रकार अनुष्ठान करै उसको 'वांशकठिनिक' कहतेहैं) । प्रस्तारे व्यवहरति=प्रास्तारिकः । सांस्थानिकः ॥

१६२४ निकटे वसति । ४ । ४।७३ ॥

नैकटिको भिक्षुः ॥

१६२४-'वसति' इस अर्थमें सप्तम्यन्त निकट शब्दसे ठक् प्रत्यय हो,जैसे-निकटे वसति=नैकटिकः,अर्थात् भिक्षुक॥

१६२५ आवसथात् ष्ठल् । ४ ।४।७४ ॥

आवसथे वसति आवसथिकः।षित्त्वान्ङीष् । आवसथिकी ॥

आकर्षात्पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च । आवसथात्किसरादेः षितः षडेते ठगधिकारे॥ षडिति सूत्रषट्केन विहिता इत्यर्थः।प्रत्ययास्तु सप्त ॥

॥ इति ठकोवधिः समाप्तः ॥

१६२५-'वसति' इस अर्थमें सप्तम्यन्त आवसथ शब्दके उत्तर ष्ठल् प्रत्यय हो, जैसे-आवसथे वसति=आवसथिकः । ष इत् होनेके कारण स्त्रीलिङ्गमें ङीष् होगा, जैसे-आवसथिकी । ठगधिकारके मध्यमें "आकर्षात् ष्ठल् १५५७", "पर्पादिभ्यः ष्ठन् १५५८", "भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् १५६६", "कुसीददशैकादशात्ष्ठन्ष्ठचौ १५८१", "किसरादेः ष्ठन् १६०३", "आवसथात् ष्ठल् १६२५" इन छै सूत्रोंसे सात षित् प्रत्यय विहित हुएहैं ॥

॥ इति ठगधिकारः समाप्तः ॥

अथ प्राग्घितीयप्रकरणम् ।

१६२६ प्राग्घिताद्यत् । ४ । ४ । ७५ ॥

तस्मै हितमित्यतः प्राक् यदधिक्रियते ॥

१६२६-"तस्मै हितम् १६६५" इस सूत्रके पूर्वपर्यंत यत् प्रत्ययका अधिकार है ॥

१६२७ तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् । ४ । ४ । ७६ ॥

रथं वहति रथ्यः । युग्यः । वत्सानां दमनकाले स्कन्धे काष्ठमासज्यते स प्रासङ्गः, तं वहति प्रासंग्यः ॥

१६२७-'वहति' इस अर्थमें द्वितीयान्त रथ, युग और प्रासङ्ग शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे-रथं वहति=रथ्यः । युग्यः । प्रासङ्गं वहति=प्रासङ्ग्यः । वत्सोंके दमन कालमें उनके स्कंधदेशमें जो काष्ठ आरोपित होताहै, उसको प्रासङ्ग कहतेहैं ॥

१६२८ धुरो यड्ढकौ । ४ । ४ । ७७ ॥

हलि चेति दीर्घे प्राप्ते ॥

१६२८-द्वितीयान्त धुर् शब्दके उत्तर यत् और ढक् प्रत्यय हो । "हलि च ३५४" इस सूत्रसे दीर्घकी प्राप्ति होनेपर-॥

१६२९ न भकुर्छुराम् । ८ । २ । ७९ ॥

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात् । धुर्यः। धौरेयः ॥

१६२९-भसंज्ञक, कुर् और छुर् शब्दोंकी उपधाको दीर्घ न हो, जैसे-धुर्यः । धौरेयः ॥

१६३० खः सर्वधुरात् । ४ । ४ ।७८ ॥

सर्वधुरां वहतीति सर्वधुरीणः ॥

१६३०-'वहति' इस अर्थमें द्वितीयान्त सर्वधुरा शब्दके उत्तर ख प्रत्यय हो, जैसे-सर्वधुरां वहति=सर्वधुरीणः ॥

१६३१ एकधुराल्लुक् च । ४ ।४।७९॥

एकधुरां वहति एकधुरीणः । एकधुरः ॥

१६३१-द्वितीयान्त एकधुरा शब्दके उत्तर 'वहति' इस अर्थमें ख प्रत्यय हो और उसका पक्षमें लुक् हो, जैसे-एकधुरां वहति, इस विग्रहमें एकधुरीणः, एकधुरः ॥

१६३२ शकटादण् । ४ । ४ । ८० ॥

शकटं वहति शाकटो गौः ॥

१६३२-द्वितीयान्त शकट शब्दके उत्तर उक्त अर्थमें अण् प्रत्यय हो, जैसे-शकटं वहति=शाकटः, अर्थात् गौः ॥

१६३३ हलसीराट्ठक् । ४ । ४ । ८१ ॥

हलं वहति हालिकः । सैरिकः ॥

१६३३–'वहति' इस अर्थमें द्वितीयान्त हल और सीर शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–हलं वहति= हालिकः । सैरिकः ॥

१६३४ संज्ञायां जन्या । ४ । ४ । ८२ ॥

जनी वधूः, तां वहति प्रापयति जन्या ॥

१६३४–संज्ञा होनेपर द्वितीयान्त जनी शब्दके उत्तर उक्त अर्थमें यत् प्रत्यय हो, जैसे–जनी वधूः, तां वहति प्रापयति, इस विग्रहमें जन्या, अर्थात् मातृवयस्या ॥

१६३५ विध्यत्यधनुषा । ४ । ४ । ८३ ॥

द्वितीयान्ताद्विध्यतीत्यर्थे यत्स्यान्न चेत्तत्र धनुः करणम् । पादौ विध्यन्ति पद्याः शर्कराः ॥

१६३५–धनुष करण न होनेपर द्वितीयान्त पदके उत्तर 'विध्यति' इस अर्थमें यत् प्रत्यय हो, जैसे–पादौ विध्यन्ति= पद्याः शर्कराः ॥

१६३६ धनगणं लब्धा । ४ । ४ । ८४ ॥

तृन्नन्तमेतत् । धनं लब्धा धन्यः । गणं लब्धा गण्यः ॥

१६३६–लब्धा (लाभ करनेवाला) इस अर्थमें द्विती- यान्त धन और गण शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, लब्धा यह पद तृन्नन्त है, जैसे–धनं लब्धा=धन्यः । गणं लब्धा=गण्यः ॥

१६३७ अन्नाण्णः । ४ । ४ । ८५ ॥

अन्नं लब्धा आन्नः ॥

१६३७–द्वितीयान्त अन्न शब्दके उत्तर उक्त अर्थमें ण प्रत्यय हो, जैसे–अन्नं लब्धा=आन्नः ॥

१६३८ वशं गतः । ४ । ४ । ८६ ॥

वश्यः परेच्छानुचारी ॥

१३३८–गत अर्थमें द्वितीयान्त वश शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–वशं गतः=वश्यः, अर्थात् दूसरेकी इच्छानु- सार करनेवाला ॥

१३३९ पदमस्मिन्दृश्यम् । ४ । ४ । ८७ ॥

पद्यः कर्दमः । नातिशुष्क इत्यर्थः ॥

१६३९–'अस्मिन् दृश्यम्' इस अर्थमें प्रथमान्त पद शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–पदमस्मिन् दृश्यम्=पद्यः, अर्थात् अनतिशुष्क कर्दम ॥

१६४० मूलमस्याऽऽबर्हि । ४ । ४ । ८८ ॥

आबर्हणमाबर्हः उत्पाटनं तदस्यास्तीत्या- बर्हि मूलमाबर्हि येषां ते मूल्या मुद्गाः ॥

१६४०–प्रथमान्त आबर्हिउपाधिक मूल शब्दके उत्तर 'अस्य' ऐसे षष्ठ्यर्थमें यत् प्रत्यय हो, आबर्हणमाबर्हः अर्थात् उत्पाटन, उत्पाटन इसका है इस अर्थमें आबर्हि पद सिद्ध हुआ, पश्चात् मूलमाबर्हि येषाम्, इस विग्रहमें मूल्या मुद्गाः ॥

१६४१ संज्ञायां धेनुष्या । ४ । ४ । ८९ ॥

धेनुशब्दस्य षुगागमो यप्रत्ययश्च स्वार्थे निपात्यते संज्ञायाम् । धेनुष्या बन्धके स्थिता ॥

१६४१–संज्ञा होनेपर धेनु शब्दके उत्तर स्वार्थमें निपात- नसे षुगागम और य प्रत्यय हो, जैसे–धेनुष्या बन्धके स्थिता॥

१६४२ गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः । ४ । ४ । ९० ॥

गृहपतिर्यजमानस्तेन संयुक्तो गार्हपत्योऽग्निः॥

१६४२–तृतीयान्त गृहपति शब्दके उत्तर संयुक्त अर्थमें ञ्य प्रत्यय हो, गृहपति शब्दसे यजमान जानना, जैसे–गृहप- तिना संयुक्तः=गार्हपत्योऽग्निः ॥

१६४३ नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्याऽऽनाम्यसमसमितसम्मितेषु । ४ । ४ । ९१ ॥

नावा तार्यं नाव्यम् । वयसा तुल्यो वयस्यः । धर्मेण प्राप्यं धर्म्यम् । विषेण वध्यो विष्यः । मूलेन आनाम्यं मूल्यम् । मूलेन समो मूल्यः । सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया संमितं तुल्यम् ॥

१६४३–तृतीयान्त नौ आदि शब्दोंके उत्तर तार्यादि अर्थोंमें यत् प्रत्यय हो, अर्थात् तार्य अर्थमें नौ शब्दके उत्तर, तुल्य अर्थमें वयस् शब्दके उत्तर, प्राप्य अर्थमें धर्म शब्दके उत्तर, वध्य अर्थमें विष शब्दके उत्तर, आनाम्य अर्थमें मूल शब्दके उत्तर, सम अर्थमें मूल शब्दके उत्तर, और समित अर्थमें सीता शब्दके उत्तर, और सम्मित अर्थमें तुला शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–नावा तार्यम्=नाव्यम् । वयसा तुल्यः=वयस्यः । धर्मेण प्राप्यम्=धर्म्यम्। विषेण वध्यः=विष्यः। मूलेन आनाम्यम्=मूल्यम् । मूलेन समः=मूल्यः । सीतया समितम्=सीत्यम्, अर्थात् क्षेत्र । तुलया सम्मितम्=तुल्यम् ॥

१६४४ धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते । ४ । ४ । ९२ ॥

धर्मादनपेतं धर्म्यम् । पथ्यम् । अर्थ्यम् । न्याय्यम् ॥

१६४४–अनपेत अर्थमें पंचम्यन्त समर्थ धर्म, पथिन्, अर्थ और न्याय शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–धर्मादनपेतम्= धर्म्यम् । पथ्यम् । अर्थ्यम् । न्याय्यम् ॥

१६४५ छन्दसो निर्मिते । ४ । ४ । ९३ ॥

छन्दसा निर्मितं छन्दस्यम् । इच्छया कृत- मित्यर्थः ॥

१६४५–निर्मित अर्थमें तृतीयान्त समर्थ छन्दस् शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–छन्दसा निर्मितम्=छन्दस्यम्, अर्थात् इच्छासे किया हुआ ॥

१६४६ उरसोऽण् च ।४।४।९४॥

चाद्यत् । उरसा निर्मितः पुत्र औरसः । उरस्यः ॥

१६४६-निर्मित अर्थमें तृतीयान्त समर्थ उरस् शब्दके उत्तर अण् और चकारसे यत् प्रत्यय हो, जैसे-उरसा निर्मितः=औरसः पुत्रः, उरस्यः ॥

१६४७ हृदयस्य प्रियः ।४।४।९५ ॥

हृद्यो देशः । हृदयस्य हृल्लेखेति हृदादेशः ॥

१६४७-प्रिय अर्थमें षष्ठ्यन्त समर्थ हृदय शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे-हृदयस्य प्रियः=हृद्यः, अर्थात् देशः, यहां हृदय शब्दके स्थानमें "हृदयस्य हृल्लेखयदण० ९८८" इस सूत्रसे हृद् आदेश हुआहै ॥

१६४८ बन्धने चर्षौ ।४।४।९६ ॥

हृदयशब्दात् षष्ठ्यन्ताद्बन्धने यत्स्याद्वेदेऽभिधेये । हृदयस्य बन्धनं हृद्यो वशीकरणमन्त्रः ॥

१६४८-बंधनार्थमें वेद वाच्य होनेपर षष्ठ्यन्त हृदय शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो,जैसे-हृदयस्य बन्धनम्=हृद्यः, अर्थात् वशीकरण मंत्र ॥

१६४९ मतजनहलात्करणजल्पकर्षेषु ।४।४।९७॥

मतं ज्ञानं तस्य करणं भावः साधनं वा मत्यम् । जनस्य जल्पो जन्यः । हलस्य कर्षो हल्यः ॥

१६४९-करण, जल्प और कर्ष अर्थमें क्रमसे मत, जन और हल शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे-मतं ज्ञानं तस्य करणं भावः साधनं वा=मत्यम् । जनस्य जल्पः=जन्यः । हलस्य कर्षः=हल्यः ॥

१६५० तत्र साधुः ।४।४।९८॥

अग्रे साधुः अग्र्यः । सामसु साधुः सामन्यः। ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभावः । कर्मण्यः । शरण्यः ॥

१६५०-'साधुः' इस अर्थमें सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिकके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे-अग्रे साधुः अग्र्यः"ये चाभावकर्मणोः ११५४" इस सूत्रसे प्रकृतिभाव होगा, जैसे-सामसु साधुः=सामन्यः । कर्मण्यः । शरण्यः ॥

१६५१ प्रतिजनादिभ्यः खञ् । ४।४।९९ ॥

प्रतिजनं साधुः प्रातिजनीनः । सांयुगीनः । सार्वजनीनः ॥ वैश्वजनीनः ॥

१६५१-साधु अर्थमें सप्तम्यन्त प्रतिजनादि शब्दोंके उत्तर खञ् प्रत्यय हो,जैसे-प्रतिजने साधुः=प्रातिजनीनः । सांयुगीनः। सार्वजनीनः । वैश्वजनीनः ॥

१६५२ भक्ताण्णः ।४। ४ । १००॥

भक्ते साधवो भाक्ताः शालयः ॥

१६५२-साधु अर्थमें सप्तम्यन्त भक्त शब्दके उत्तर ण प्रत्यय हो, जैसे-भक्ते साधवः=भाक्ताः शालयः ॥

१६५३ परिषदो ण्यः ।४।४।१०१॥

पारिषद्यः । परिषद इति योगविभागाण्णोऽपि । पारिषदः ॥

१६५३-सप्तम्यन्त परिषद् शब्दके उत्तर साधु अर्थमें ण्य प्रत्यय हो, जैसे-पारिषद्यः । "परिषदः" इस प्रकार भिन्न सूत्र करनेके कारण उसके उत्तर ण प्रत्यय होगा, जैसे-पारिषदः ॥

१६५४ कथादिभ्यष्ठक्।४।४।१०२॥

कथायां साधुः काथिकः ॥

१६५४-सप्तम्यन्त कथादि शब्दोंके उत्तर साधु अर्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-कथायां साधुः=काथिकः ॥

१६५५ गुडादिभ्यष्ठञ् । ४ । ४।१०३॥

गुडे साधुर्गौडिक इक्षुः । साक्तुको यवः ॥

१६५५-सप्तम्यन्त गुडादि शब्दोंके उत्तर साधु अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-गुडे, अर्थात् गुडविषये साधुः=गौडिकः, अर्थात् इक्षु (ईख) । साक्तुको यवः ॥

१६५६ पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् । ४ । ४ । १०४ ॥

पथि साधु पाथेयम् । आतिथेयम् । वसनं वसतिस्तत्र साधुर्वासतेयी रात्रिः । स्वापतेयं धनम् ॥

१६५६-सप्तम्यन्त पथिन्, अतिथि, वसति और स्वपति शब्दके उत्तर साधु अर्थमें ढञ् प्रत्यय हो, जैसे-पथि साधु=पाथेयम् । आतिथेयम् । वसनं वसतिस्तत्र साधुः=वासतेयी रात्रिः । स्वापतेयं धनम् ॥

१६५७ सभाया यः ।४। ४ ।१०५॥

सभ्यः ॥

१६५७-साध्वर्थमें सप्तम्यन्त समर्थ सभा शब्दके उत्तर य प्रत्यय हो, जैसे-सभायां साधुः=सभ्यः ॥

१६५८ समानतीर्थे वासी।४।४।१०७॥

साधुरिति निवृत्तम् ॥ वसतीति वासी, समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्यः ॥

१६५८-वासी इस अर्थमें सप्तम्यन्त समर्थ समानतीर्थ शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, इस सूत्रसे साध्वर्थकी निवृत्ति हुई, वसतीति वासी,समाने तीर्थे गुरौ वसतीतिसतीर्थ्यः (एक तीर्थ अर्थात् एक गुरुके निकट वास करनेवाले व्यक्तिको परस्पर सतीर्थ्य कहतेहैं) । तीर्थ शब्द शास्त्र, यज्ञ, क्षेत्र, उपाय, गुरु, मंत्री, योनि और जलावतार (घाट) का वाचक है ॥

१६५९ समानोदरे शयित ओ चोदात्तः। ४। ४। १०८॥

समाने उदरे शयितः स्थितः समानोदर्यो भ्राता ॥

१६५९–'शयितः' इस अर्थमें सप्तम्यन्त समर्थ समानोदर शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो और ओकार उदात्त हो, जैसे–समाने उदरे शयितः स्थितः=समानोदर्यः, अर्थात् भ्राता ॥

१६६० सोदराद्यः। ४। ४। १०९॥

सोदर्यः। अर्थः प्राग्वत् ॥

॥ इति प्राग्घितीयाः ॥

१६६०--सप्तम्यन्त समर्थ सोदर शब्दके उत्तर उक्त अर्थमें य प्रत्यय हो, जैसे--सोदर्यः। इसका अर्थ पूर्ववत् अर्थात् भ्राता जानना ॥

॥ इति प्राग्घितीयप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ छयदधिकारप्रकरणम्।

१६६१ प्राक् क्रीताच्छः। ५। १। १॥

तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते ॥

१६६१--"तेन क्रीतम् १७०२" इस सूत्रके पूर्वपर्यन्त जिस २ सूत्रमें प्रत्यय निर्दिष्ट नहीं है,केवल अर्थका ही निर्देश है, उस २ सूत्रमें छ प्रत्ययकी उपस्थिति हो, इसलिये समान अर्थमें प्रकृतिविशेषसे विहित यत् आदि प्रत्यय प्रकृत्यन्तरमें सावकाश छ प्रत्ययको तक्रकौण्डिन्य न्यायसे बाधतेहैं, नहीं तो छ प्रत्यय और यत् आदि प्रत्ययोंके सामीप्यका अविशेष होनेके कारण तव्यत्, तव्य और अनीयर् प्रत्ययके समान दोनों प्रत्यय पर्यायसे होजाते ॥

१६६२ उगवादिभ्यो यत्। ५। १। २॥

प्राक् क्रीतादित्येव। उवर्णान्ताद्गवादिभ्यश्च यत्स्यात् छस्यापवादः॥ नाभि नभं च॥ ॥ नभ्योऽक्षः। नभ्यमञ्जनम्। रथनाभावेवेदम् ॥ शुनः सम्प्रसारणं वा च दीर्घत्वम् ॥ ॥ शून्यम्। शुन्यम् ॥ ऊधसोऽनङ् च ॥ ऊधन्यः ॥

१६६२--"तेन क्रीतम् १७०२" इसके पूर्व अर्थोंमें चतुर्थ्यन्त उवर्णान्त और गवादि शब्दोंके उत्तर यत् प्रत्यय हो, यह सूत्र छ प्रत्ययका अपवादक है, जैसे--शङ्कवे हितम्=शंकव्यम्।

नाभि शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो और नाभि शब्दके स्थानमें नभ आदेश हो, जैसे--नभ्योऽक्षः। सच्छिद्र चक्रको नाभि कहतेहैं, और उसमें अनुप्रविष्ट काष्ठविशेषको अक्ष कहतेहैं, अक्ष तदनुगत होनेके कारण नाभिको हितकर है। नभ्यमञ्जनम्। अञ्जन शब्दसे तैलाभ्यङ्ग जानना, वह भी स्नेहन होनेके कारण नाभिको हितकर है,रथके नाभिमें ही यह विधि लगतीहै।

श्वन् शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय और श्वन् शब्दको सम्प्रसारण और विकल्प करके संप्रसारणको दीर्घ हो, जैसे--शून्यम्, शुन्यम्।

ऊधस् शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो और अनङ् आदेश हो, जैसे--ऊधन्यः ॥

१६६३ कम्बलाच्च संज्ञायाम्। ५। १। ३॥

यत्स्यात्। कम्बल्यमूर्णापलशतम्। संज्ञायां किम्। कम्बलीया ऊर्णा ॥

१६६३--संज्ञा होनेपर चतुर्थ्यन्त कम्बल शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–कम्बल्यम्, अर्थात् ऊर्णापलशत। संज्ञा न होनेपर यत् प्रत्यय नहीं होगा, जैसे--कम्बलीया ऊर्णा ॥

१६६४ विभाषा हविरपूपादिभ्यः। ५। १। ४॥

आमिक्ष्यं दधि। आमिक्षीयम्। पुरोडाश्यास्तण्डुलाः। पुरोडाशीयाः। अपूप्यम्। अपूपीयम् ॥

१६६४--चतुर्थ्यन्त हविर्वाचक शब्द और अपूपादि शब्दोंके उत्तर हितार्थमें विकल्प करके यत् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें छ प्रत्यय होगा, जैसे–आमिक्ष्यं दधि, आमिक्षीयम्। पुरोडाश्यास्तण्डुलाः, पुरोडाशीयाः। अपूप्यम्, अपूपीयम् ॥

१६६५ तस्मै हितम्। ५। १। ५॥

वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक्। शंकवे हितं शंकव्यं दारु। गव्यम्। हविष्यम् ॥

१६६५–'हितम्' इस अर्थमें चतुर्थ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकसे छ प्रत्यय हो, जैसे–वत्सेभ्यो हितः=वत्सीयः गोधुक्, अर्थात् गायदुहनेवाला। शंकवे हितम्=शंकव्यम्, अर्थात् दारु। गव्यम्। हविष्यम् ॥

१६६६ शरीरावयवाद्यत्। ५। १। ६॥

दन्त्यम्। कण्ठ्यम्। नस्नासिकायाः। नस्यम्। नाभ्यम् ॥

१६६६–'हितम्' इस अर्थमें चतुर्थ्यन्त शरीरावयववाचक शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–दन्तेभ्यो हितम्=दन्त्यम्। कण्ठ्यम्।

यत् और तस् प्रत्यय और क्षुद्र शब्द परे रहते नासिका शब्दके स्थानमें नस् आदेश हो, जैसे–नस्यम्। नाभ्यम् ॥

१६६७ ये च तद्धिते। ६। १। ६१॥

यादौ तद्धिते परे शिरश्शब्दस्य शीर्षन्नादेशः स्यात्। शीर्षण्यः। तद्धिते किम्। शिर इच्छति शिरस्यति॥ वा केशेषु ॥*॥ शीर्षण्याः शिरस्या वा केशाः ॥ अचि शीर्ष इति वाच्यम् ॥ * ॥ अजादौ तद्धिते शिरसः शीर्षादेशः। स्थूलशिरस इदं स्थौलशीर्षम् ॥

१६६७--यकारादि तद्धित प्रत्यय परे रहते शिरस् शब्दके स्थानमें शीर्षन् आदेश हो, जैसे--शीर्षण्यः । तद्धित प्रत्यय परे न रहते 'शिरः इच्छति=शिरस्यति' ऐसा होगा ।

केश वाच्य होनेपर शिरस् शब्दके स्थानमें विकल्प करके शीर्षन् आदेश हो* जैसे--शीर्षण्याः, शिरस्याः केशाः ।

अजादि तद्धित प्रत्यय परे रहते शिरस् शब्दके स्थानमें शीर्ष आदेश हो * जैसे--स्थूलशिरः इदम्=स्थौलशीर्षम् ॥

१६६८ खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ।५।१।७॥

खलाय हितं खल्यम् । यव्यम् । माष्यम् । तिल्यम् । वृष्यम् । ब्रह्मण्यम् । चाद्रथ्या ॥

१६६८--चतुर्थ्यन्त खल, यव, माष, तिल, वृष और ब्रह्मन् शब्दके उत्तर हितार्थमें यत् प्रत्यय हो, जैसे--खलाय हितम्=खल्यम् । यव्यम् । माष्यम् । तिल्यम् । वृष्यम् । ब्रह्मण्यम् । चकारसे रथ शब्दके उत्तर भी यत् प्रत्यय होगा, जैसे--रथ्या ॥

१६६९ अजाविभ्यां थ्यन्।५।१।८॥

अजथ्या यूथिः । अविथ्या ॥

१६६९--चतुर्थ्यन्त अज और अवि शब्दके उत्तर थ्यन् प्रत्यय हो, जैसे--अजथ्या यूथिः । अविथ्या ॥

१६७० आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः ।५।१।९।

१६७०--हितार्थमें चतुर्थ्यन्त समर्थ आत्मन्, विश्वजन और भोगोत्तर प्रातिपदिकोंके उत्तर ख प्रत्यय हो ॥

१६७१ आत्माध्वानौ खे।६।४।१६९॥

एतौ खे प्रकृत्या स्तः । आत्मने हितमात्मनीनम् । विश्वजनीनम्॥ कर्मधारयादेवेष्यते॥ * ॥ षष्ठीतत्पुरुषाद्बहुव्रीहेश्च छ एव । विश्वजनीयम्॥ पञ्चजनादुपसंख्यानम् ॥ * ॥ पञ्चजनीनम् ॥ सर्वजनाट्ठञ् खश्च॥*॥ सार्वजनिकः । सर्वजनीनः ॥ महाजनाट्ठञ् ॥ * ॥ माहाजनिकः । मातृभोगीणः । पितृभोगीणः । राजभोगीनः ॥ आचार्यादणत्वं च ॥ * ॥ आचार्यभोगीनः ॥

१६७१--आत्मन् और अध्वन् यह दो शब्द ख प्रत्यय परे रहते प्रकृतिमें ही रहैं अर्थात् विकृत न हों, जैसे--आत्मने हितम्=आत्मनीनम् । विश्वजनीनम् ।

यह ख प्रत्यय कर्मधारयसंज्ञक शब्दके उत्तर ही इष्ट है* षष्ठीतत्पुरुष और बहुव्रीहिसंज्ञकके उत्तर ख प्रत्यय न होकर छ प्रत्यय ही होगा, जैसे--विश्वजनीयम् ।

पंचजन शब्दके उत्तर भी ख प्रत्यय हो * जैसे--पञ्चजनीनम् ॥

सर्वजन शब्दके उत्तर ठञ् और ख प्रत्यय हो* जैसे--सार्वजनिकः, सर्वजनीनः ॥

महाजन शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो * जैसे--माहाजनिकः॥ मातृभोगीणः । पितृभोगीणः । राजभोगीनः ।

आचार्य शब्दके उत्तर नकारको णत्व न हो * जैसे--आचार्यभोगीनः ॥

१६७२ सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ।५।१।१०

सर्वाण्णो वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ सर्वस्मै हितं सार्वम् । सर्वीयम् ॥ पुरुषाद्वधविकारसमूहतेनकृतेषु ॥ * ॥ भाष्यकारप्रयोगात्तेनेत्यस्य द्वन्द्वमध्ये निवेशः । पुरुषस्य वधः पौरुषेयः । तस्येदमित्याणि प्राप्ते । पुरुषस्य विकारः पौरुषेयः । प्राणिरजतादिभ्योऽञ् इत्यञि प्राप्ते । समूहेऽप्याणि प्राप्ते । एकाकिनोपि परितः पौरुषेयवृता इवेति माघः । तेन कृते ग्रन्थेऽणि प्राप्ते अग्रन्थे तु प्रासादादावप्राप्त एवेति विवेकः ॥

१६७२--सर्व और पुरुष शब्दके उत्तर ण और ढञ् प्रत्यय हो ।

सर्व शब्दके उत्तर विकल्प करके ण हो * जैसे--सर्वस्मै हितं=सार्वम्, सर्वीयम् ॥

पुरुष शब्दके उत्तर वध, विकार, समूह और तेन कृतम् इत्यादि अर्थमें उक्त प्रत्यय हो * भाष्यकारके प्रयोगके कारण 'तेन' इसका द्वन्द्वमध्यमें निवेश हुआहै, जैसे--पुरुषस्य वधः=पौरुषेयः ।

"तस्येदम् २५००" इस सूत्रसे अण् प्रत्ययकी प्राप्ति होनेपर, प्राणि और रजतादि शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो (१५३२) इस सूत्रसे अञ् प्रत्ययकी प्राप्ति होनेपर और समूहार्थमें अण् प्रत्ययकी प्राप्ति होनेपर भी माघमें--"एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृताविव" इस प्रकार प्रयोग हुआहै ।

तत्कर्तृक कृतग्रन्थ विषयमें अण् प्रत्ययकी प्राप्ति होनेपर और अग्रन्थ विषयमें प्रासादादि अर्थमें अण्की अप्राप्ति होनेपर बाध करके यह प्रत्यय होताहै, यह विवेक है ॥

१६७३ माणवचरकाभ्यां खञ् ५।१।११।

माणवाय हितं माणवीनम् । चारकीणम् ॥

१६७३--माणव और चरक शब्दके उत्तर हितार्थमें खञ् प्रत्यय हो, जैसे--माणवाय हितम्=माणवीनम् । चारकीणम् ॥

१६७४ तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ । ५।१।१२॥

विकृतिवाचकाच्चतुर्थ्यन्तात्तदर्थायां प्रकृतौ वाच्यायां छप्रत्ययः स्यात् । अङ्गारेभ्य एतानि अङ्गारीयाणि काष्ठानि । प्राकारीया इष्टकाः । शंकव्यं दारु ॥

१६७४-विकृतिवाचक चतुर्थ्यन्त पदके उत्तर तदर्थ (उसके निमित्त) प्रकृति वाच्य होनेपर छ प्रत्यय हो, जैसे-अङ्गारेभ्यः एतानि=अङ्गारीयाणि काष्ठानि । प्राकारीया इष्टकाः । शंकव्यं दारु ॥

१६७५ छदिरुपधिबलेर्ढञ् ।५।१।१३॥

छादिषेयाणि तृणानि । बालेयास्तण्डुलाः ॥ उपधिशब्दात्स्वार्थे इष्यते ॥ * ॥ उपधीयत इत्युपधिः रथाङ्गं तदेव औपधेयम्॥

१६७५-छदिस् उपधि और बलि शब्दके उत्तर ढञ् प्रत्यय हो, जैसे-छादिषेयाणि तृणानि । बालेयास्तण्डुलाः ।

उपधि शब्दके उत्तर स्वार्थमें ही ढञ् प्रत्यय हो * जैसे-उपधीयते, इस वाक्यमें उपधि रथाङ्ग-तदेव औपधेयम् ॥

१६७६ ऋषभोपानहोर्ञ्यः ।५।१।१४॥

छस्यापवादः आर्षभ्यो वत्सः । औपानह्यो मुञ्जः । चर्म्मण्यप्ययमेव पूर्वविप्रतिषेधेन । औपानह्यं चर्म्म ॥

१६७६-ऋषभ और उपानह् शब्दके उत्तर ञ्य प्रत्यय हो, यह ञ्य प्रत्यय छ प्रत्ययका अपवाद है, जैसे-आर्षभ्यो वत्सः । औपानह्यो मुञ्जः । पूर्वविप्रतिषेधके कारण चर्म्म अर्थमें यह प्रत्यय ही होगा, जैसे-औपानह्यम् चर्म्म ॥

१६७७ चर्मणोऽञ् । ५ । १ । १५ ॥

चर्मणो या विकृतिस्तद्वाचकादञ् स्यात् । वर्ध्र्यै इदं वार्ध्रं चर्म । वारत्रं चर्म ॥

१६७७-चर्मके विकृतिवाचक शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, जैसे-वर्ध्र्यै इदं=वार्ध्रं चर्म । वारत्रं चर्म ॥

१६७८ तदस्य तदस्मिन् स्यादिति । ५ । १ । १६ ॥

प्राकार आसामिष्टकानां स्यात् प्राकारीया इष्टकाः । प्रासादीयं दारु । प्राकारोऽस्मिन् स्यात् प्राकारीयो देशः । इति शब्दो लौकिकीं विवक्षामनुसारयति । तेनेह न । प्रासादो देवदत्तस्य स्यादिति ॥

१६७८-'तदस्य स्यात्' इसका वह होगा, 'तदस्मिन् स्यात्' वह इसमें होगा, इन दो अर्थोंमें अञ् प्रत्यय हो, जैसे-प्राकारः आसाम् इष्टकानां स्यात्, इस वाक्यमें प्राकारीया इष्टकाः । प्रासादीयं दारु । प्राकारोऽस्मिन्, इस विग्रहमें प्राकारीयः देशः ।

इस सूत्रमें इति शब्द लौकिक विवक्षाका अनुसरण कराता है, इस कारण 'प्रासादो देवदत्तस्य स्यादिति' इस स्थलमें अञ् प्रत्यय नहीं हुआ ॥

१६७९ परिखाया ढञ् ।५।१।१७॥

पारिखेयी भूमिः ॥

॥ इति छयतोः पूर्णोवधिः ॥

१६७९-परिखा शब्दके उत्तर ढञ् प्रत्यय हो, जैसे-पारिखेयी भूमिः ॥

॥ इति छयदधिकारः समाप्तः ॥

अथाऽऽर्हीयप्रकरणम् ।

१६८० प्राग्वतेष्ठञ् । ५ । १ । १८॥

तेन तुल्यमिति वतिं वक्ष्यति ततः प्राक् ठञधिक्रियते ॥

१६८०-"तेन तुल्यम्० १७७८" इस सूत्रसे पश्चात् वति प्रत्यय करेंगे, उसके पूर्वतक ठञ्का अधिकार चलेगा ॥

१६८१ आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक् । ५ । १ । १९ ॥

तदर्हतीत्येतदभिव्याप्य ठञधिकारमध्ये ठञोऽपवादष्ठगधिक्रियते गोपुच्छादीन्वर्जयित्वा ॥

१६८१-" तदर्हति १७२८ " इस सूत्रपर्यन्त ठञ्-अधिकारके मध्यमें गोपुच्छादि शब्दोंको त्याग कर ठञ्के अपवाद ठक् प्रत्ययका अधिकार चलेगा ॥

१६८२ असमासे निष्कादिभ्यः । ५ । १ । २० ॥

आर्हादित्येतत्तेन क्रीतमिति यावत्सप्तदशसूत्र्यामनुवर्तते । निष्कादिभ्योऽसमासे ठक् स्यादार्हीयेष्वर्थेषु । नैष्किकम् । समासे तु ठञ् ॥

१६८२-'आर्हात्' इसकी "तेन क्रीतम्१७०२"इस सूत्रपर्यन्त १७ सूत्रोंमें अनुवृत्ति होगी । समास न होनेपर आर्हीय अर्थमें निष्कादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-नैष्किकम् । समास होनेपर ठञ् प्रत्यय होगा ॥

१६८३ परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः । ७ । ३ । १७ ॥

उत्तरपदवृद्धिः स्यात् ञिदादौ । परमनैष्किकः । असमासग्रहणं ज्ञापकं भवतीत्यतः प्राक् तदन्तविधिरिति । तेन सुगव्यम् । यवापूप्यमित्यादि । इत ऊर्ध्वं तु संख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणं प्राग्वतेरिष्यते तच्चालुकि।पारायणिकः। द्वैपारायणिकः । अलुकीति किम् । द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पम् । द्विशूर्पेण क्रीते शूर्पादञ् मा भूत, किंतु ठञ् । द्विशौर्पिकम् ॥

१६८३-संज्ञा न होनेपर ञित् आदि प्रत्यय परे रहते शाण शब्दसे भिन्न परिमाणवाचकशब्दअन्तवाले शब्दके उत्तरपदको वृद्धि हो, जैसे-परमनैष्किकः ।

संज्ञा होनेपर पञ्च कलायाः परिमाणमस्य ' पाञ्चकलापिकम् ' इस स्थानमें "तदस्य परिमाणम् १७२३" इस सूत्रसे ठञ् प्रत्यय हुआहै ।

असमासग्रहण ज्ञापक होताहै कि, इसके पूर्वपर्यन्त तदन्त विधि हो, इस कारण सुगव्यम्, यवापूप्यम्—इत्यादि पद सिद्ध होतेहैं ।

इसके परे संख्यावाचकशब्दपूर्वक पदका तदन्तग्रहण वतिके पूर्वमें ही होगा, वह अलुक्‌विषयमें ही होगा, जैसे—पारायणिकः । द्वैपारायणिकः ।

अलुक् न होनेपर द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं=द्विशूर्पम्, द्विशूर्पेण क्रीतम्, इस विग्रहमें शूर्प शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय न होकर ठञ् प्रत्यय होगा, जैसे—द्विशौर्पिकम् ॥

१६८४ अर्द्धात्परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा । ७ । ३ । २६ ॥

अर्द्धात्परिमाणवाचकस्योत्तरपदस्यादेरचो वृद्धिः पूर्वपदस्य तु वा ञिति णिति किति च । अर्द्धद्रोणेन क्रीतम् आर्द्धद्रौणिकम् । अर्द्धद्रौणिकम् ।

१६८४—ञ्इत्, णइत् और कइत् प्रत्यय परे रहते अर्द्ध शब्दके परे स्थित परिमाणवाचक उत्तरपदको नित्य वृद्धि हो और पूर्वपदको विकल्प करके वृद्धि हो, जैसे—अर्द्धद्रोणेन क्रीतम्, इस विग्रहमें आर्द्धद्रौणिकम् । अर्द्धद्रौणिकम् ॥

१६८५ नातः परस्य । ७ । ३ । २७ ॥

अर्द्धात्परस्य परिमाणाऽकारस्य वृद्धिर्न पूर्वपदस्य तु वा ञिदादौ । अर्द्धप्रस्थिकम् । आर्द्धप्रस्थिकम् । अतः किम् । अर्द्धकौडविकम् । तपरः किम् । अर्द्धखार्यां भवा अर्द्धखारी । अर्द्धखारीभार्य इत्यत्र वृद्धिनिमित्तस्येति पुंवद्भावनिषेधो न स्यात् ॥

१६८५—ञित् आदि प्रत्यय परे रहते अर्द्ध शब्दसे परे स्थित परिमाणवाचक शब्दके अकारको वृद्धि न हो, किन्तु पूर्वपदको विकल्प करके वृद्धि हो, जैसे—अर्द्धप्रस्थिकम्, आर्द्धप्रस्थिकम् ।

अकार न होनेपर अर्द्धकौडविकम् । तपर करण होनेके कारण अर्द्धखार्यां भवा=अर्द्धखारी, यहां निषेध न हुआ, नहीं तो 'अर्द्धखारीभार्यः' इस स्थलमें "वृद्धिनिमित्तस्य० ८४०" इस सूत्रसे पुंवद्भावका निषेध नहीं होता ॥

१६८६ शताच्च ठन्यतावशते । ५ । १ । २१ ॥

शतेन क्रीतं शतिकम् । शत्यम् । अशते किम् । शतं परिमाणमस्य शतकः संघः । इह प्रत्ययार्थो वस्तुतः प्रकृत्यर्थान्न भिद्यते तेन ठन्यतौ न, किंतु कनेव । असमास इत्येव । द्विशतेन क्रीतं द्विशतकम् ॥

१६८६—शतभिन्नार्थमें 'तेन क्रीतम्' इस अर्थमें शत शब्दके उत्तर ठन् और यत् प्रत्यय हो, जैसे—शतेन क्रीतम्, इस विग्रहमें शतिकम्, शत्यम् ।

शत अर्थ होनेपर यथा—शतं परिमाणमस्य=शतकः, अर्थात् संघ । इस स्थलमें प्रत्ययार्थ वस्तुतः प्रकृतिके अर्थसे भिन्न नहीं होताहै, इस कारण ठन् और यत् प्रत्यय न होकर केवल कन् प्रत्यय ही हुआ ।

समास होनेपर यथा—द्विशतेन क्रीतं=द्विशतकम् ॥

१६८७ संख्याया अतिशदन्तायाः कन् । ५ । १ । २२ ॥

संख्यायाः कन् स्यादार्हीयेऽर्थे न तु त्यन्तशदन्तायाः । पञ्चभिः क्रीतः पञ्चकः । बहुकः । त्यन्तायास्तु साप्ततिकः । शदन्तायाः । चात्वारिंशत्कः ॥

१६८७—आर्हीय अर्थमें संख्यावाचक शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, तिप्रत्ययान्त और शदन्त शब्दके उत्तर नहीं होगा, जैसे—पञ्चभिः क्रीतः=पञ्चकः । बहुकः ।

तिप्रत्ययान्त होनेपर यथा—साप्ततिकः ।

शत्‌अन्तमें जैसे—चात्वारिंशत्कः ॥

१६८८ वतोरिड्वा । ५ । १ । २३ ॥

वत्वन्तात्कन इड्वा स्यात् । तावतिकः । तावत्कः ॥

१६८८—वतुप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर कन् प्रत्ययको विकल्प करके इट् हो, जैसे—तावतिकः । तावत्कः ॥

१६८९ विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम् । ५ । १ । २४ ॥

योगविभागः कर्तव्यः । आभ्यां कन् स्यात् । असंज्ञायां ड्वुन् स्यात्कनोपवादः । विंशकः । त्रिंशकः । संज्ञायां तु, विंशतिकः । त्रिंशत्कः ॥

१६८९—यहां योगविभाग करना चाहिये, विंशति और त्रिंशत् शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो और संज्ञा न होनेपर उक्त दोनों शब्दोंके उत्तर ड्वुन् प्रत्यय हो, उक्त प्रत्यय कन् प्रत्ययका अपवादक है, जैसे—विंशकः । त्रिंशकः । संज्ञा होनेपर जैसे—विंशतिकः । त्रिंशत्कः ॥

१६९० कंसाट्टिठन् । ५ । १ । २५ ॥

टो ङीबर्थः । इकार उच्चारणार्थः । कंसिकः । कंसिकी ॥ अर्द्धाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अर्द्धिकः । अर्द्धिकी ॥ कार्षापणाट्टिठन्वक्तव्यः ॥ प्रतिरादेशश्च वा ॥ * ॥ कार्षापणिकः । कार्षापणिकी । प्रतिकः । प्रतिकी ॥

१६९०—कंस शब्दके उत्तर टिठन् प्रत्यय हो, ट ङीबर्थ है, इकार उच्चारणार्थ है, जैसे—कंसिकः । कंसिकी ।

अर्द्ध शब्दके उत्तर टिठन् प्रत्यय हो * जैसे—आर्द्धिकः । आर्द्धिकी ।

कार्षापण शब्दके उत्तर टिठन् प्रत्यय हो और विकल्प करके कार्षापणको प्रति आदेश हो * जैसे—कार्षापणिकी कार्षापणिकः । प्रतिकः । प्रतिकी ॥

१६९१ शूर्पादञन्यतरस्याम्।५।१।२६॥

शौर्पम् । शौर्पिकम् ॥

१६९१–शूर्प शब्दके उत्तर विकल्प करके अञ् प्रत्यय हो, जैसे–शौर्पम्, शौर्पिकम् ॥

१६९२ शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण् । ५ । १ । २७ ॥

एभ्योऽण् स्याट्ठञ्ठक्कनामपवादः । शतमानेन क्रीतं शातमानम् । वैंशतिकम् । साहस्रम् । वासनम् ॥

१६९२–शतमान, विंशतिक, सहस्र और वसन शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यह अण् प्रत्यय ठञ्, ठक् और कन् प्रत्ययका अपवाद है, जैसे–शतमानेन क्रीतम्=शातमानम् । वैंशतिकम् । साहस्रम् । वासनम् ॥

१६९३ अध्यर्द्धपूर्वाद्विगोर्लुगसंज्ञायाम् । ५ । १ । २८ ॥

अध्यर्द्धपूर्वाद्विगोश्च परस्यार्हीयस्य लुक् स्यात् । अध्यर्द्धकंसम् । द्विकंसम् । संज्ञायां तु पाञ्चकलायिकम् ॥

१६९३–संज्ञा न होनेपर अध्यर्द्धशब्दपूर्वक द्विगु समासके उत्तर आर्हीय प्रत्ययका लुक् हो, जैसे–अध्यर्द्धकंसम् ।

संज्ञा होनेपर ' पाञ्चकलायिकम् ' ऐसा पद होगा ॥

१६९४ विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम् । ५ । १ । २९

लुग्वा स्यात् । अध्यर्द्धकार्षापणम् । अध्यर्द्धकार्षापणिकम् । द्विकार्षापणम् । द्विकार्षापणिकम् । औपसंख्यानिकस्य टिठनो लुक् । पक्षे अध्यर्द्धप्रतिकम् । द्विप्रतिकम् । अध्यर्द्धसहस्रम् । अध्यर्द्धसाहस्रम् । द्विसहस्रम् । द्विसाहस्रम् ॥

१६९४–कार्षापण और सहस्र शब्दके उत्तर विकल्प करके आर्हीय प्रत्ययका लुक् हो, जैसे–अध्यर्द्धकार्षापणम्, अध्यर्द्धकार्षापणिकम् । द्विकार्षापणम्, द्विकार्षापणिकम् । यहां औपसंख्यानिक टिठन् प्रत्ययका लुक् हुआ । पक्षमें अध्यर्द्धप्रतिकम् । द्विप्रतिकम् । अध्यर्द्धसहस्रम्, अध्यर्द्धसाहस्रम् । द्विसहस्रम्, द्विसाहस्रम् ॥

१६९५ द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् । ५।१।३०॥

लुग्वा स्यात् । द्विनिष्कम् । द्विनैष्किकम् । त्रिनिष्कम् । त्रिनैष्किकम् ॥ बहुपूर्वाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ बहुनिष्कम् । बहुनैष्किकम् ॥

१६९५–द्वि और त्रिशब्दपूर्वक निष्क शब्दके उत्तर आर्हीय प्रत्ययका विकल्प करके लुक् हो, जैसे–द्विनिष्कम्, द्विनैष्किकम् । त्रिनिष्कम्, त्रिनैष्किकम् ।

बहुपूर्वक निष्क शब्दके उत्तर आर्हीय प्रत्ययका विकल्प करके लुक् हो * जैसे–बहुनिष्कम्, बहुनैष्किकम् ॥

१६९६ बिस्ताच्च । ५ । १ । ३१ ॥

द्वित्रिबहुपूर्वाद्बिस्तादार्हीयस्य लुग्वा स्यात् । द्विबिस्तम् । द्विबैस्तिकमित्यादि ॥

१६९६–द्वि, त्रि और बहुशब्दपूर्वक बिस्त शब्दके उत्तर आर्हीय प्रत्ययका विकल्प करके लुक् हो, जैसे–द्विबिस्तम्, द्विबैस्तिकम्–इत्यादि ॥

१६९७ विंशतिकात्खः । ५ । १।३२॥

अध्यर्द्धपूर्वाद्विगोरित्येव । अध्यर्द्धविंशतिकीनम् । द्विविंशतिकीनम् ॥

१६९७–अध्यर्द्धपूर्वक और द्विगु समासके परे स्थित विंशतिक शब्दके उत्तर ख प्रत्यय हो, जैसे–अध्यर्द्धविंशतिकीनम् । द्विविंशतिकीनम् ॥

१६९८ खार्या ईकन् । ५ । १ । ३३ ॥

अध्यर्द्धखारीकम् । द्विखारीकम् ॥ केवलायाश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ खारीकम् ॥

१६९८–अध्यर्द्धशब्दपूर्वक और द्विगुसमासके परे स्थित खारी शब्दके उत्तर ईकन् प्रत्यय हो, जैसे–अध्यर्द्धखारीकम् । द्विखारीकम् ।

केवलखारी शब्दके उत्तर भी ईकन् प्रत्यय हो * जैसे–खारीकम् ॥

१६९९ पणपादमाषशताद्यत्।५।१।३४॥

अध्यर्द्धपण्यम् । द्विपण्यम् । अध्यर्द्धपाद्यम् । द्विपाद्यम् । इह पादः पदिति न, यस्येतिलोपस्य स्थानिवद्भावात् । पद्यत्यतदर्थे इत्यपि न प्राण्यङ्गार्थस्यैव तत्र ग्रहणात् ॥

१६९९–अध्यर्द्धपूर्वक और द्विगुसमासके परे स्थित पण, पाद, माष और शत शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–अध्यर्द्धपण्यम् । द्विपण्यम् । 'अध्यर्द्धपाद्यम् । द्विपाद्यम् ' इस स्थलमें " यस्येति च ३२१" इस सूत्रसे लोपके स्थानिवद्भावके कारण "पादः पत् ४१४" इस सूत्रसे पद् आदेश नहीं होता और "पद्यतदर्थे० ९९१" इस सूत्रमें प्राणिवाचक अङ्गार्थके ग्रहणके कारण इस सूत्रसे भी पद् आदेश नहीं होगा, प्राणिअङ्गार्थका ही उसमें ग्रहण है ।

१७०० शाणाद्वा । ५ । १ । ३५ ॥

यत्स्यात्पक्षे ठञ् । तस्य लुक् । अध्यर्द्धशाण्यम् । अध्यर्द्धशाणम् ॥

१७००–अध्यर्द्धपूर्वक शाण शब्दके उत्तर विकल्प करके यत् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें ठञ् प्रत्यय होगा, इसका (१६९३) लुक् होगा, जैसे–अध्यर्द्धशाण्यम्, अध्यर्द्धशाणम् ॥

१७०१ द्वित्रिपूर्वादण् च।५।१।३६॥

शाणादित्येव । चाद्यत् । तेन त्रैरूप्यम् परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोरितिपर्युदासादा-

दिवृद्धिरेव। द्वैशाणम्। द्विशाण्यम्। द्विशाणम्। इह ठञादयस्त्रयोदश प्रत्ययाः प्रकृतास्तेषां समर्थविभक्तयोर्थाऽश्चाकाङ्क्षितास्त इदानीमुच्यन्ते॥

१७०१-द्वि और त्रि शब्द पूर्वमें रहते उसके परवर्ती शाण शब्दके उत्तर विकल्प करके अण् और यत् प्रत्यय हो, इससे 'त्रैरूप्यम्' अर्थात् तीन रूप होंगे, "परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः १६८३" इस सूत्रमें पर्युदासके कारण आदि पदको ही वृद्धि होगी, जैसे-द्वैशाणम्। द्विशाण्यम्। इस सूत्रमें ठञ्आदि तेरह प्रत्यय कहेहैं, उनकी समर्थविभक्ति और संपूर्ण अर्थ आकांक्षित हैं, इस समय उनका ही विषय कहा जायगा॥

१७०२ तेन क्रीतम्। ५। १।३७॥

ठञ्। गोपुच्छेन क्रीतं गौपुच्छिकम्। साप्ततिकम्। प्रास्थिकम्। ठक्, नैष्किकम्॥

१७०२-'तेन क्रीतम्' (उससे खरीदा हुआ) इस अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-गोपुच्छेन क्रीतम्=गौपुच्छिकम्। साप्ततिकम्। प्रास्थिकम्। ठक् जैसे-नैष्किकम्॥

१७०३ इद्गोण्याः।१।२।५०॥

गोण्या इत्स्यात्तद्धितलुकि, लुकोपवादः। पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः पटः पञ्चगोणिः॥

१७०३-तद्धित प्रत्ययका लुक् होनेपर गोणी शब्दको इत् आदेश हो, अर्थात् ईकारके स्थानमें इकार हो, यह सूत्र "लुक् तद्धितलुकि" इस सूत्रसे विहित लुक्का विशेषक है, जैसे-पञ्चभिः गोणाभिः क्रीतः पटः=पञ्चगोणिः॥

१७०४ तस्य निमित्तंसंयोगोत्पातौ।५।१।३८॥

संयोगः सम्बन्धः। उत्पातः शुभाशुभसूचकः। शतिकः शत्यो वा धनपतिसंयोगः। शतिकं शत्यं वा दक्षिणाक्षिस्पन्दनम्, शतस्य निमित्तमित्यर्थः। वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम्॥ * ॥ वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्। पैत्तिकम्। श्लैष्मिकम्॥ सन्निपाताच्चेति वक्तव्यम्॥ * ॥ सान्निपातिकम्॥

१७०४-संयोग (संबन्ध) और उत्पात (शुभाशुभसूचक) अर्थमें उनके निमित्त होनेपर शत शब्दके उत्तर ठञ् और यत् प्रत्यय हो, जैसे-शतिकः शत्यो वा धनपतिसंयोगः। शतिकम्, शत्यं वा दक्षिणाक्षिस्पन्दनम्।

वात, पित्त और श्लेष्मन् शब्दके उत्तर शमन और कोपन अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो* जैसे-वातस्य शमनं कोपनं वा=वातिकम्। पैत्तिकम्। श्लैष्मिकम्।

सन्निपात शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो * जैसे-सान्निपातिकम्॥

१७०५ गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत्। ५। १। ३९॥

गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः। द्व्यचः-धन्यः। यशस्यः। स्वर्ग्यः। गोद्व्यचः किम्। विजयस्य वैजयिकः। असंख्येत्यादि किम्। पञ्चानां पञ्चकम्। साप्तकम्। प्रास्थिकम्। खारीकम्। अश्वादि, आश्विकम्। आश्मिकम्॥ ब्रह्मवर्चसादुपसंख्यानम्॥ * ॥ ब्रह्मवर्चस्यम्॥

१७०५-गो शब्द और संख्यावाचक, परिमाणवाचक, तथा अश्वादि अर्थात् अश्व, अश्मन्, गण, ऊर्णा, उमा, गङ्गा, क्षण, वर्षा और वसु शब्दसे भिन्न दोस्वरयुक्त शब्दके उत्तर 'तस्य निमित्तम्' इस अर्थमें विकल्प करके यत् प्रत्यय हो, जैसे-गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा=गव्यः। द्व्यचः। धन्यः। यशस्यः। स्वर्ग्यः।

गोद्व्यच्से भिन्न स्थलमें जैसे-विजयस्य=वैजयिकः।

असंख्या इत्यादि न होनेपर जैसे-पञ्चानां=पञ्चकम्। साप्तकम्। प्रास्थिकम्। खारीकम्।

अश्वादि जैसे-आश्विकम्। आश्मिकम्।

ब्रह्मवर्चस शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो * जैसे-ब्रह्मवर्चस्यम्॥

१७०६ पुत्राच्छ च। ५। १। ४०॥

चाद्यत्। पुत्रीयः। पुत्र्यः॥

१७०६-पुत्र शब्दके उत्तर छ और यत् प्रत्यय हों, जैसे-पुत्रीयः, पुत्र्यः॥

१७०७ सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ। ५। १। ४१॥

सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः। पार्थिवः। सर्वभूमिशब्दोनुशतिकादिषु पठ्यते॥

१७०७-षष्ठ्यन्त समर्थ सर्वभूमि और पृथिवी शब्दके उत्तर निमित्तार्थमें अण् और अञ् प्रत्यय हो, जैसे-सर्वभूमेर्निमित्तं संयोगः उत्पातो वा=सार्वभौमः। पार्थिवः। सर्वभूमि शब्दका अनुशतिकादि गणमें पाठ है॥

१७०८ तस्येश्वरः। ५। १। ४२॥

१७०८-'तस्य ईश्वरः' (उसका ईश्वर) और-

१७०९ तत्रविदित इति च।५।१।४३॥

सर्वभूमेरीश्वरः सर्वभूमौ विदितो वा सार्वभौमः। पार्थिवः॥

१७०९-'तत्र विदितः" (इस स्थलमें वा विषयमें विदित) इन दो अर्थोंमें अण् और अञ् प्रत्यय हो, जैसे-सर्वभूमेरीश्वरः=सर्वभूमौ विदितो वा=सार्वभौमः। पार्थिवः॥

१७१० लोकसर्वलोकाट्ठञ्।५।१।४४॥

तत्र विदित इत्यर्थे। लौकिकः। अनुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धिः सार्वलौकिकः॥

१७१०—लोक और सर्वलोक शब्दके उत्तर 'तत्र विदितः' इस अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे—लौकिकः । अनुशतिकादित्वके कारण दोनों पदोंको वृद्धि होगी, जैसे—सार्वलौकिकः ॥

१७११ तस्य वापः । ५ । १ । ४५ ॥

उप्यते अस्मिन्निति वापः क्षेत्रम् । प्रस्थस्य वापः प्रास्थिकम् । द्रौणिकम् । खारीकम् ॥

१७११—उसका 'वाप' अर्थात् क्षेत्र होनेपर प्रस्थादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जिसमें जौआदि बोये जायँ उसको वाप अर्थात् क्षेत्र कहतेहैं, जैसे—प्रस्थस्य वापः=प्रास्थिकम् । द्रौणिकम् । खारीकम् ॥

१७१२ पात्रात् ष्ठन् ।५।१। ४६ ॥

पात्रस्य वापः क्षेत्रं पात्रिकम् । पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः ॥

१७१२—पात्र शब्दके उत्तर उक्त अर्थमें ष्ठन् प्रत्यय हो, जैसे—पात्रस्य वापः क्षेत्रम्=पात्रिकम् । पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः ॥

१७१३ तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते । ५ । १ । ४७ ॥

वृद्धिर्दीयत इत्यादिक्रमेण प्रत्येकं सम्बन्धादेकवचनम् । पंचास्मिन् वृद्धिः आयः लाभः शुल्कमुपदा वा दीयते पंचकः।शतिकः।शत्यः। साहस्रः । उत्तमर्णेन मूलातिरिक्तं ग्राह्यं वृद्धिः । ग्रामादिषु स्वामिग्राह्यो भाग आयः । विक्रेत्रा मूल्यादधिकग्राह्यं लाभः । रक्षानिर्वेशो राजभागः शुल्कः । उत्कोच उपदा ॥ चतुर्थ्यर्थ उपसंख्यानम् ॥ * ॥ पञ्चास्मै वृद्ध्यादिर्दीयते पञ्चको देवदत्तः । सममब्राह्मणे दानमितिवदधिकरणत्वविवक्षा वा ॥

१७१३—'तदस्मिन् दीयते' इस अर्थमें वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क और उपदा इनको'दीयते' इसका कर्म होनेपर यथाविहित प्रत्यय हों, 'वृद्धिर्दीयते' इत्यादि क्रमानुसार प्रत्येकके संबन्धमें एकवचन हुआहै, जैसे—पञ्चास्मिन् वृद्धिः आयः लाभः शुल्कम् उपदा वा दीयते,इस वाक्यमें पञ्चकः। शतिकः। शत्यः । साहस्रः ।

उत्तमर्ण अर्थात् ऋणदातृकर्तृक मूल धनकी अपेक्षाके अतिरिक्त ग्राह्य धन (व्याज)को वृद्धि कहतेहैं ।

ग्रामादिमें स्वामीके ग्राह्य भागका नाम आय है ।

विक्रयकर्ता (बेचनेवाला) से मूल धनकी अपेक्षाके अतिरिक्त ग्राह्य धनादिको लाभ कहतेहैं ।

रक्षाके निमित्त राजोंके भागनिमित्त गृहीत धनादिको शुल्क (कर) कहतेहैं ।

उत्कोचको उपदा (घूस) कहतेहैं ।

चतुर्थीके अर्थमें भी प्रथमान्त समर्थसे उक्त प्रत्यय हों * जैसे—पञ्च अस्मै वृद्ध्यादिः दीयते=पञ्चको देवदत्तः । अथवा 'सममब्राह्मणे दानम्' इसके समान अधिकरणत्व विवक्षा जाननी ॥

१७१४ पूरणार्धाट्ठन् । ५ । १ । ४८ ॥

यथाक्रमं ठक्टिठनोरपवादः । द्वितीयो वृद्ध्यादिरस्मिन् दीयते द्वितीयिकः। तृतीयिकः। आर्द्धिकः । अर्द्धशब्दो रूपकस्यार्द्धे रूढः ॥

१७१४—पूरणप्रत्ययान्त और अर्द्ध शब्दके उत्तर पूर्वोक्त अर्थमें ठन् प्रत्यय हो, यह सूत्र यथाक्रम ठक् और टिठन् प्रत्ययका अपवादक है, जैसे—द्वितीयो वृद्ध्यादिः अस्मिन् दीयते, इस विग्रहमें द्वितीयिकः । तृतीयिकः । अर्द्धिकः । अर्द्ध शब्द रूपकके अर्द्धमें रूढ है ॥

१७१५ भागाद्यच्च । ५ । १ । ४९ ॥

चाट्ठन् । भागशब्दोपि रूपकस्यार्द्धे रूढः । भागो वृद्ध्यादिरस्मिन् दीयते भाग्यं, भागिकं शतम् । भाग्या, भागिका विंशतिः ॥

१७१५—भाग शब्दके उत्तर यत् और ठन् प्रत्यय हो,भाग शब्द भी रूपकके अर्द्धमें रूढ है, जैसे—भागो वृद्ध्यादिरस्मिन् दीयते=भाग्यम्, भागिकं शतम् । भाग्या,भागिका विंशतिः ॥ भाग शब्दसे वृद्ध्यादि जानना ॥

१७१६ तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः । ५ । १ । ५० ॥

वंशादिभ्यः परो यो भारशब्दस्तदन्तं यत्प्रातिपदिकं तत्प्रकृतिकाद्वितीयान्तादित्यर्थः । वंशभारं हरति वहत्यावहति वा वांशभारिकः । ऐक्षुभारिकः । भाराद्वंशादिभ्य इत्यस्य व्याख्यान्तरं भारभूतेभ्यो वंशादिभ्य इति। भारभूतान्वंशान् हरति वांशिकः । ऐक्षुकः ॥

१७१६—'तत् हरति वहति आवहति' इन अर्थोंमें वंशादि शब्दोंके परे स्थित जो भारशब्दान्त प्रातिपदिक, तत्प्रकृतिक द्वितीयान्त पदके उत्तर यथाविहित प्रत्यय हों, जैसे—वंशभारं हरति वहति आवहति वा=वांशभारिकः । ऐक्षुभारिकः । "भाराद्वंशादिभ्यः" इसका भारभूत वंशादि शब्दोंके उत्तर यथाविहित प्रत्यय हों, ऐसा व्याख्यान्तर है, इससे भारभूतान् वंशान् हरति=वांशिकः, ऐक्षुकः, ऐसे पद सिद्ध होतेहैं ॥

१७१७ वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ । ५ । १ । ५१ ॥

यथासंख्यं स्तः । वस्नं हरति वहत्यावहति वा वस्निकः । द्रव्यकः ॥

१७१७—पूर्वोक्तार्थमें वस्न और द्रव्य शब्दके उत्तर यथाक्रम ठन् और कन् प्रत्यय हो, जैसे—वस्नं हरति वहति आवहति वा=वस्निकः । द्रव्यकः ॥

१७१८ सम्भवत्यवहरति पचति । ५ । १ । ५२ ॥

प्रस्थं सम्भवति प्रास्थिकः कटाहः । प्रस्थं

स्वस्मिन्समावेशयतीत्यर्थः। प्रास्थिकी ब्राह्मणी। प्रस्थमवहरति पचति वेत्यर्थः ॥ तत्पचतीति द्रोणादण् च ॥ * ॥ चाट्ठञ् । द्रोणं पचतीति द्रौणी। द्रौणिकी ॥

१७१८-'सम्भवति', 'अवहरति' और 'पचति' अर्थमें प्रस्थ शब्दके उत्तर यथाविहित प्रत्यय हों, जैसे-प्रस्थं सम्भवति=प्रास्थिकः कटाहः, अर्थात् प्रस्थको अपनेमें समावेशित करताहै, इससे उसको प्रास्थिक कहतेहैं। प्रास्थिकी ब्राह्मणी, अर्थात् जो प्रस्थका अवहरण और पाक करतीहै।

वह पाक करताहै, इस अर्थमें द्रोण शब्दके उत्तर अण् और ठञ् प्रत्यय हो * जैसे-द्रोणं पचति, इस वाक्यमें द्रौणी, द्रौणिकी ॥

१७१९ आढकाचितपात्रात्खोऽन्यतरस्याम् । ५ । १ । ५३ ॥

पक्षे ठञ् । आढकं सम्भवति अवहरति पचति वा आढकीना।आढकिकी। आचितीना। आचितिकी । पात्रीणा । पात्रिकी ॥

१७१९-आढक, आचित और पात्र शब्दके उत्तर संभवति इत्यादि अर्थमें ख प्रत्यय हो, और विकल्प पक्षमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-आढकं संभवति अवहरति पचति वा=आढकीना, आढकी। आचितीना, आचितिकी। पात्रीणा, पात्रिकी ॥

१७२० द्विगोः ष्ठंश्च । ५ । १ । ५४ ॥

आढकाचितपात्रादित्येव।आढकाद्यन्ताद्द्विगोः सम्भवत्यादिष्वर्थेषु ष्ठन्खौ वा स्तः पक्षे ठञ् । तस्याध्यर्द्धेति लुक् । षित्वान्ङीष् द्व्याढकिकी । द्व्याढकीना । द्विगोरिति ङीप् । द्व्याढकी । द्व्याचितिकी । द्व्याचितीना । अपरिमाणेति ङीब्निषेधात्, द्व्याचिता । द्विपात्रिकी । द्विपात्रीणा । द्विपात्री ॥

१७२०-द्विगुसमासान्त, आढक, आचित और पात्र शब्दके उत्तर सम्भावनादि अर्थमें विकल्प करके ष्ठन् और ख प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें ठञ् प्रत्यय होगा, "अध्यर्द्ध० १६९३" इस सूत्रसे उस ठञ् प्रत्ययका लुक् और षित्संज्ञक होनेके कारण स्त्रीलिङ्गमें ङीष् प्रत्यय होगा, जैसे-द्व्याढकिकी, द्व्याढकीना। द्विगुसमासान्तके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ङीप् प्रत्यय होगा (४७९), जैसे-द्व्याढकी। द्व्याचितिकी, द्व्याचितीना। "अपरिमाण० ४८०" इस सूत्रसे ङीप् प्रत्ययका निषेध भी होगा, जैसे-द्व्याचिता । द्विपात्रिकी, द्विपात्रीणा, द्विपात्री ॥

१७२१ कुलिजाल्लुक्खौ च ।५।१।५५॥

कुलिजान्ताद्द्विगोः सम्भवत्यादिष्वर्थेषु लुक्खौ वा स्तः। चात् ष्ठंश्च । लुगभावे ठञः श्रवणम् । द्विकुलिजी । द्वैकुलिजिकी । द्विकुलिजीना । द्विकुलिजिकी ॥

१७२१-कुलिजान्त द्विगु समासके उत्तर संभवत्यादि अर्थमें विकल्प करके ठञ् प्रत्ययका लुक् और ख प्रत्यय हो, सूत्रमें चकार होनेके कारण ठन् प्रत्यय भी हो,जैसे-द्विकुलिजी, द्वैकुलिजिकी। द्विकुलिजीना, द्विकुलिजिकी ॥

१७२२ सोऽस्यांशवस्नभृतयः ।५।१।५६॥

अंशो भागः। वस्नं मूल्यम् । भृतिर्वेतनम् । पञ्च अंशो वस्नो भृतिर्वाऽस्य पञ्चकः ॥

१७२२-वह इसका है, इस अर्थमें तथा अंश अर्थात् भाग, वस्न अर्थात् मूल्य और भृति अर्थात् वेतन, ऐसे अर्थोंमें यथाविहित प्रत्यय हों, जैसे-पञ्च अंशो वस्नो भृतिर्वा अस्य, इस विग्रहमें पञ्चकः ॥

१७२३ तदस्य परिमाणम् ।५।१।५७ ॥

प्रस्थं परिमाणमस्य प्रास्थिको राशिः ॥

१७२३-वह इसका परिमाण है, इस षष्ठ्यर्थमें संख्यावाचक प्रस्थ शब्दके उत्तर उक्त प्रत्यय हो, जैसे-प्रस्थं परिमाणमस्य, इस विग्रहमें प्रास्थिको राशिः ॥

१७२४ संख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु । ५ । १ । ५८ ॥

पूर्वसूत्रमनुवर्तते ॥ तत्र संज्ञायां स्वार्थे प्रत्ययो वाच्यः ॥ * ॥ यद्वा द्व्येकयोरितिवत्संख्यामात्रवृत्तेः परिमाणिनि प्रत्ययः । पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः। पञ्च परिमाणमेषामिति वा। संघे-पञ्चकः। सूत्रे-अष्टकं पाणिनीयम् । संघशब्दस्य प्राणिसमूहे रूढत्वात्सूत्रं पृथगुपात्तम्। पञ्चकमध्ययनम् ॥ स्तोमे डविधिः ॥ * ॥ पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य पञ्चदशः । सप्तदशः । एकविंशः । सोमयागेषु छन्दोगैः क्रियमाणा पृष्ठ्यादिसंज्ञिका स्तुतिः स्तोमः ॥

१७२४-संज्ञा, संघ, सूत्र और अध्ययन अर्थ होनेपर 'तदस्य परिमाणम्' इस अर्थमें संख्यावाचक शब्दके उत्तर उक्त प्रत्यय हो।

संघादिके मध्यमें संज्ञा अर्थमें स्वार्थमें ही उक्त प्रत्यय हों* जैसे-पञ्चैव=पञ्चकाः शकुनयः, पञ्चपरिमाणमेषाम् इति वा। संघार्थमें-पञ्चकः। सूत्रमें जैसे-अष्टकं पाणिनीयम् ॥

संघ शब्दके प्राणिसमूहमें रूढत्वके कारण यह सूत्र पृथक् कहागयाहै, जैसे-पञ्चकमध्ययनम् ॥

स्तोमार्थमें ड प्रत्यय हो*जैसे-पञ्चदशपरिमाणमस्य=पञ्चदशः स्तोमः। सप्तदशः। एकविंशः। सोम यागमें सामगानेवालोंके द्वारा क्रियमाण पृष्ठ्यादि संज्ञिका स्तुतिको स्तोम कहतेहैं॥

१७२५ पंक्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् । ५ । १ । ५९ ॥

एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते ॥

१७२५–पंक्ति, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति और शत,यह रूढिशब्द निपातनसे सिद्ध हों ॥

१७२६ पञ्चद्दशतौ वर्गे वा । ५।१।६० ॥

पञ्च परिमाणमस्य पञ्चद्वर्गः । दशत् । पक्षे । पञ्चकः । दशकः ॥

१७२६–वर्ग अर्थ होनेपर पञ्चत् और दशत् यह दो पद विकल्प करके निपातनसे सिद्ध हों, जैसे–पञ्च परिमाणमस्य= पञ्चद्वर्गः । दशत् । विकल्प पक्षमें पञ्चकः । दशकः ॥

१७२७ त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण् । ५ । १ । ६२ ॥

त्रिंशदध्यायाः परिमाणमेषां ब्राह्मणानां त्रैंशानि । चात्वारिंशानि ब्राह्मणानि ॥

१७२७–ब्राह्मणविषयमें संज्ञा होनेपर त्रिंशत् और चत्वारिंशत् शब्दके उत्तर डण् प्रत्यय हो, जैसे–त्रिंशदध्यायाः परिमाणं येषां ब्राह्मणानां=त्रैंशानि । चात्वारिंशानि ॥

१७२८ तदर्हति । ५ । १ । ६३ ॥

लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्ठञादयः स्युः । श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिकः ॥

१७२८–इसके योग्य है, इस अर्थमें द्वितीयान्त शब्दके उत्तर ठञ् आदि प्रत्यय हों, जैसे–श्वेतच्छत्रमर्हति= श्वैतच्छात्रिकः ॥

१७२९ छेदादिभ्यो नित्यम् ।५।१।६४॥

नित्यमाभीक्ष्ण्यम् । छेदं नित्यमर्हति छैदिको वेतसः । छिन्नप्ररूढत्वात् ॥ विरागविरङ्गं च॥*॥विरागं नित्यमर्हति वैरागिकः।वैरङ्गिकः॥

१७२९–'नित्यम् अर्हति' इस अर्थमें छेदादि शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–छेदं नित्यमर्हति= छैदिको वेतसः । छेदनमात्रमें ही प्ररूढ होनेके कारण इसको छैदिक कहते हैं ॥

विराग और विरंग शब्दके उत्तर विकल्प करके ठञ् प्रत्यय हो * जैसे–विरागं नित्यमर्हति, इस विग्रहमें वैरागिकः । वैरङ्गिकः ॥

१७३० शीर्षच्छेदाद्यच्च । ५ । १ ।६५॥

शिरश्छेदं नित्यमर्हति शीर्षच्छेद्यः । शैर्षच्छेदिकः । यट्ठकोः सन्नियोगेन शिरसः शीर्षभावो निपात्यते ॥

१७३०–'नित्यमर्हति' इस अर्थमें शीर्षच्छेद शब्दके उत्तर यत् और ठक् प्रत्यय हो, जैसे–शीर्षच्छेद्यः, शैर्षच्छेदिकः । यत् और ठक् प्रत्ययके सन्नियोगसे शिरस् शब्दके स्थानमें शीर्ष आदेश निपातनसिद्ध हुआ है ॥

१७३१ दण्डादिभ्यो यत् । ५।१।६६॥

एभ्यो यत् स्यात् । दण्डमर्हति दण्ड्यः।अर्घ्यः। वध्यः ॥

१७३१–दण्डादि शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे=दण्ड॰ मर्हति=दण्ड्यः । अर्घ्यः । वध्यः ॥

१७३२ पात्राद् घंश्च । ५ । १ । ६८ ॥

चाद्यत् तदर्हतीत्यर्थे पात्रियः । पात्र्यः ॥

१७३२–पात्र शब्दसे घन् और यत् प्रत्यय हो, जैसे– पात्रियः, पात्र्यः ॥

१७३३कडङ्करदक्षिणाच्छ च।५।१।६९॥

चाद्यत् । कडं करोतीति विग्रहे अत एव निपातनात् खच् । कडंकरं माषमुद्गादिकाष्ठमर्हतीति कडंकरीयो गौः । कडंकर्यः । दक्षिणामर्हतीति दक्षिणीयः । दक्षिण्यः ॥

१७३३–'अर्हति' इस अर्थमें कडङ्कर और दक्षिणा शब्दके उत्तर छ और चकारद्वारा यत् प्रत्यय हो, कडं करोति, इस विग्रहमें इसी निपातनसे खच् प्रत्यय भी हुआ, कडङ्करं माषमुद्गादिकाष्ठम् अर्हति, इस विग्रहमें कडङ्करीयो गौः, कडङ्कर्यः । दक्षिणामर्हति, इस वाक्यमें दक्षिणीयः, दक्षिण्यः ॥

१७३४ स्थालीबिलात् । ५ । १ ।७०॥

स्थालीबिलमर्हति स्थालीबिलीयास्तण्डुलाः। स्थालीबिल्याः । पाकयोग्या इत्यर्थः ॥

१७३४–स्थालीबिल शब्दके उत्तर 'अर्हति' अर्थमें छ और यत् प्रत्यय हो,जैसे–स्थालीबिलमर्हन्ति,इस वाक्यमें स्थालीबिलीयाः तण्डुलाः, स्थालीबिल्याः, अर्थात् पाकयोग्य ॥

१७३५यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ।५।१।७१॥

यथासंख्यं स्तः।यज्ञमृत्विजं वार्हति यज्ञियः । आर्त्विजीनो यजमानः॥ यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसंख्यानम्॥ *॥ यज्ञियो देशः । आर्त्विजीन ऋत्विक् ॥

॥ इत्यार्हीयाणां ठगादीनां द्वादशानां पूर्णोवधिः ॥

१७३५–यज्ञ और ऋत्विज् शब्दके उत्तर यथाक्रम घ और खञ् प्रत्यय हो, अर्थात् यज्ञ शब्दके उत्तर घ और ऋत्विज् शब्दके उत्तर खञ् प्रत्यय हो,जैसे–यज्ञम् ऋत्विजं वाऽर्हति इस वाक्यमें यज्ञियः । आर्त्विजीनो यजमानः ॥

यज्ञ और ऋत्विज् शब्दके उत्तर यह उस कर्म करनेके योग्य है, इस अर्थमें यथाक्रम घ और खञ् प्रत्यय हो * जैसे– यज्ञियो देशः । आर्त्विजीन ऋत्विक् ॥

इस सूत्रतक आर्हीय ठगादि अर्थात् ठक्, यत्, छ, अण्, अन्, इन्, ठन, कन्, ख, डण्, छ, खञ्, घ, इन बारह तद्धित प्रत्ययोंकी विधि वर्णित हुई ॥

॥ इत्यार्हीयप्रकरणम् ॥

अथ ठञधिकारे कालाधिकारप्रकरणम् ।

अतः परं ठञेव ॥

इसके परे ठञ्का ही अधिकार चलैगा ।

१७३६ पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति । ५ । १ । ७२ ॥

पारायणं वर्तयति पारायणिकश्छात्रः । तुरायणं यज्ञविशेषः । तं वर्तयति तौरायणिको यजमानः । चान्द्रायणिकः ॥

१७३६-पारायण, तुरायण, और चान्द्रायण शब्दके उत्तर 'वर्त्तयति' इस अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-पारायणं वर्त्तयति=पारायणिकश्छात्रः । तुरायणं यज्ञविशेषः, तं वर्त्तयति=तौरायणिकः यजमानः । चान्द्रायणिकः ॥

१७३७ संशयमापन्नः । ५ । १ । ७३ ॥

संशयविषयीभूतोर्थः सांशयिकः ॥

१७३७-संशय शब्दके उत्तर तदापन्न अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-संशयविषयीभूतोऽर्थः=सांशयिकः । संशय शब्द संशयविषयमें लाक्षणिकहै अर्थात् लक्षणा वृत्तिसे संशय शब्दसे सन्देहयुक्त वस्तु जानना । सन्दिहान व्यक्ति अर्थ नहीं है । संशयम् आपन्नो यस्मिन् सः=सांशयिकः ॥

१७३८ योजनं गच्छति । ५ । १।७४॥

यौजनिकः ॥ क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ क्रोशशतं गच्छति क्रौशशतिकः । यौजनशतिकः ॥ ततोऽभिगमनमर्हतीति च वक्तव्यम् ॥ * ॥ क्रोशशतादभिगमनमर्हतीति क्रौशशतिको भिक्षुः । यौजनशतिक आचार्यः ॥

१७३८-'गच्छति' इस अर्थमें द्वितियान्त समर्थ योजन शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-यौजनिकः ।

क्रोशशत और योजनशत शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो * जैसे क्रोशशतं गच्छति=क्रौशशतिकः । यौजनशतिकः ।

'अभिगमन करताहै' इस अर्थमें क्रोशशतादि शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो * जैसे-क्रोशशतादभिगमनर्हति=क्रौशशतिको भिक्षुः । यौजनशतिक आचार्यः ॥

१७३९ पथः ष्कन् । ५ । १ । ७५ ॥

षो ङीषर्थः॥पन्थानं गच्छति पथिकः।पथिकी॥

१७३९-पथिन् शब्दके उत्तर 'गच्छति' अर्थमें ष्कन् प्रत्यय हो, षकार इत् ङीष् प्रत्ययार्थ है, जैसे-पन्थानं गच्छति पथिकः । स्त्रीलिङ्गमें पथिकी ॥

१७४० पन्थो ण नित्यम्।५।१।७६॥

पन्थानं नित्यं गच्छति । पान्थः । पान्था ॥

१७४०-' नित्यं गच्छति' इस अर्थमें पथिन् शब्दके उत्तर ण प्रत्यय हो, "पथः पन्थ च" इस पूर्वोक्त सूत्रसे पथिन् शब्दके स्थानमें पन्थ आदेश होनेपर उसके उत्तर ण प्रत्यय होगा, जैसे-पान्थः । पान्था ॥

१७४१ उत्तरपथेनाहृतं च।५।१।७७॥

उत्तरपथेनाहृतम् औत्तरपथिकम् । उत्तरपथेन गच्छति औत्तरपथिकः ॥ आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वादुपसंख्यानम् ॥ * ॥ वारिपथिकम् ॥

१७४१-'आहृतम्' इस अर्थमें और चकारसे 'गच्छति' अर्थमें तृतीयान्त उत्तरपथ शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-उत्तरपथेनाहृतम्, इस विग्रहमें औत्तरपथिकम् । उत्तरपथेन गच्छति=औत्तरपथिकः ॥

आहृत प्रकरणमें वारि, जंगल और कान्तार शब्द पूर्वमें रहते परवर्ती पथिन् शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो * जैसे-वारिपथिकम् ॥

१७४२ कालात् । ५ । १ । ७८ ॥

व्युष्टादिभ्योणित्यतः प्रागधिकारोऽयम् ॥

१७४२-"व्युष्टादिभ्योऽण् १७६१" इस सूत्रके पूर्वपर्यन्त "कालात्" इस सूत्रका अधिकार चलैगा ॥

१७४३ तेन निर्वृत्तम्। ५। १।७९ ॥

अह्ना निर्वृत्तमाह्निकम् ॥

१७४३-' निर्वृत्तम् ' इस अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-अह्ना निर्वृत्तम्, इस वाक्यमें आह्निकम् ॥

१७४४ तमधीष्टो भृतो भूतो भावी। ५ । १ । ८० ॥

अधीष्टः सत्कृत्य व्यापारितः । भृतो वेतनेन क्रीतः । भूतः । स्वसत्तया व्याप्तकालः । भावी तादृश एवानागतकालः । मासमधीष्टो मासिकोऽध्यापकः । मासं भृतो मासिकः कर्मकरः । मासं भूतो मासिको व्याधिः । मासं भावी मासिक उत्सवः ॥

१७४४-'अधीष्टः, भृतः, भूतः भावी' ऐसे अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, अधीष्ट अर्थात् सत्कारपूर्वक कार्यमें नियोजित वा सत्कारपूर्वक ठहरना, भृत अर्थात् वेतनद्वारा खरीदा हुआ, भूत शब्दसे सत्ताद्वारा व्याप्य काल, भावी अनागत कालको कहतेहैं, जैसे-मासम् अधीष्टः=मासिकः अध्यापकः । मासं भृतो=मासिकः कर्मकरः । मासं भूतः=मासिको व्याधिः । मासं भावी=मासिकः उत्सवः ॥

१७४५ मासाद्वयसि यत्खञौ। ५।१।८१॥

मासं भूतो मास्यः। मासीनः॥

१७४५–वयस् अर्थमें द्वितीयान्त समर्थ मास शब्दके उत्तर यत् और खञ् प्रत्यय हो, जैसे–मासं भूतो=मास्यः, मासीनः॥

१७४६ द्विगोर्यप्। ५।१।८२॥

मासाद्वयसीत्यनुवर्तते। द्वौ मासौ भूतो द्विमास्यः॥

१७४६–द्विगुसमास मासान्त शब्दके उत्तर वयस् अर्थमें यप् प्रत्यय हो, जैसे–द्वौ मासौ भूतः–द्विमास्यः॥

१७४७ षण्मासाण्ण्यच्च।५।१।८३॥

वयसीत्येव। यबप्यनुवर्तते। चाट्ठञ्। षाण्मास्यः। षण्मास्यः। षाण्मासिकः॥

१७४७–षण्मास शब्दके उत्तर वयस् अर्थमें ण्यत् और यप् प्रत्यय हो, सूत्रमें चकार होनेसे ठञ् प्रत्ययका भी समागम होगा, जैसे–षाण्मास्यः, षण्मास्यः, षाण्मासिकः॥

१७४८ अवयसि ठंश्च।५।१।८४॥

चाण्ण्यत्। षण्मासिको व्याधिः। षाण्मास्यः।

१७४८–वयस्भिन्न अर्थमें षण्मास शब्दके उत्तर ठन् और ण्यत् प्रत्यय हो, जैसे–षण्मासिको व्याधिः, षाण्मास्यः॥

१७४९ समायाः खः।५।१।८५॥

समामधीष्टो भृतो भूतो भावी वा समीनः॥

१७४९–अधीष्ट, भृत, भूत और भावी अर्थमें समा शब्दके उत्तर ख प्रत्यय हो, जैसे–समामधीष्टो भृतो भूतो भावी वा=समीनः॥

१७५० द्विगोर्वा। ५। १। ८६॥

समायाः ख इत्येव। तेन परिजय्येत्यतः प्राङ् निर्वृत्तादिषु पंचस्वर्थेषु प्रत्ययाः। द्विसमीनः। द्वैसमिकः॥

१७५०–द्विगुसमासनिष्पन्न समान्त शब्दके उत्तर विकल्प करके ख प्रत्यय हो, "तेन परिजय्य० १७५७" इस सूत्रके पूर्वपर्यन्त निर्वृत्तादि पांच अर्थोंमें समस्त प्रत्यय हों, जैसे–द्विसमीनः, द्वैसमिकः॥

१७५१ रात्र्यहःसंवत्सराच्च।५।१।८७॥

द्विगोरित्येव। द्विरात्रीणः। द्वैरात्रिकः। द्व्यहीनः। द्वैयह्निकः। समासान्तविधेरनित्यत्वान्न टच्। द्विसंवत्सरीणः॥

१७५१–द्विगुसमासनिष्पन्न रात्रि, अहन् और संवत्सर शब्दके उत्तर उक्त प्रत्यय हों, जैसे–द्विरात्रीणः, द्वैरात्रिकः। द्व्यहीनः, द्वैयह्निकः, यहां समासान्त विधिके अनित्यत्वके कारण टच् प्रत्यय नहीं हुआ। द्विसंवत्सरीणः॥

१७५२ संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च। ७। ३। १५॥

संख्याया उत्तरपदस्य वृद्धिः स्याद् ञिदादौ। द्विसांवत्सरिकः। द्वे षष्टी भृतो द्विषाष्टिकः। (संख्यायाः) परिमाणान्तस्येत्येव सिद्धे संवत्सरग्रहणं परिमाणग्रहणे कालपरिमाणस्याऽग्रहणार्थम्। तेन द्वैसमिक इत्युत्तरपदवृद्धिर्न॥

१७५२–ञित्आदि तद्धित प्रत्यय परे रहते संख्यावाचक शब्दके परवर्ती द्विगुसमासमें संवत्सर और संख्यावाचक शब्दको वृद्धि हो, जैसे–द्विसांवत्सरिकः। द्वे षष्टी भृतो द्विषाष्टिकः। "परिमाणान्तस्य०" इस सूत्रसे संवत्सर शब्दको वृद्धि सिद्ध थी, तथापि संवत्सर शब्दका ग्रहण केवल परिमाणवाचकके ग्रहणविषयमें कालपरिमाणके अग्रहणके निमित्त है, इस कारण 'द्वैसमिकः' इस स्थलमें उत्तरपदको वृद्धि नहीं हुई॥

१७५३ वर्षाल्लुक् च।५।१।८८॥

वर्षशब्दान्ताद् द्विगोर्वा खः। पक्षे ठञ् वा च लुक्। त्रीणि रूपाणि। द्विवर्षीणो व्याधिः। द्विवार्षिकः। द्विवर्षः॥

१७५३–द्विगुसमासनिष्पन्न वर्षशब्दान्त प्रातिपदिकके उत्तर विकल्प करके ख प्रत्यय हो, पक्षमें ठञ् और विकल्प करके लुक् होगा, इस कारण तीन रूप होंगे, जैसे–द्विवर्षीणो व्याधिः, द्विवार्षिकः, द्विवर्षः॥

१७५४ वर्षस्याऽभविष्यति।७।३।१६॥

उत्तरपदस्य वृद्धिः स्यात्। द्विवार्षिकः। भविष्यति तु द्वैवर्षिकः। अधीष्टभृतयोरभविष्यतीति प्रतिषेधो न। गम्यते हि तत्र भविष्यत्ता न तु तद्धितार्थः। द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म करिष्यतीति द्विवार्षिको मनुष्यः॥

१७५४–भविष्यद्भिन्न अर्थमें उत्तरपदस्थित वर्ष शब्दके अकारको वृद्धि हो, जैसे–द्विवार्षिकः।

भविष्यदर्थमें द्वैवर्षिकः, इस प्रकार होगा। अधीष्ट और भृत अर्थमें 'अभविष्यति' यह प्रतिषेध नहीं होगा, कारण कि, उस स्थलमें भविष्यत्ता गम्यमान होनेपर भी तद्धितार्थ वह नहीं है, जैसे–द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म करिष्यति, इस विग्रहमें द्विवार्षिकः मनुष्यः।

(परिमाणान्तस्याऽसंज्ञाशाणयोः। ७। ३। १७॥

द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य द्विकौडविकः। द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतं द्विसौवर्णिकम्। द्विनैष्किकम्। असंज्ञेति किम्। पञ्च कलायाः परिमाणमस्य पाञ्चकलायिकम्। तद्धितान्तः संज्ञा। द्वैशाणम्। कुलिजशब्दमपि केचित्पठन्ति। द्वैकुलिजिकः॥ सू० १६८३)

असंज्ञामें तथा शाण शब्द उत्तरपदमें न होनेपर,परिमाणान्त शब्दके उत्तर पदको वृद्धि हो, (१६८३) जैसे-द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य=द्विकौडविकः । द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतम्=द्विसौवर्णिकम् । द्विनैष्किकम् ।

असंज्ञा कहनेसे पञ्च कपलायाः परिमाणमस्य=पाञ्चकलापिकम्, ऐसा होगा ।

तद्धितान्त शब्द ही संज्ञाभूत हो, इस कारण उत्तरपदको वृद्धि नहीं हुई, द्वैशाणम् ।

कोई २ इस स्थलमें कुलिज शब्दका भी पाठ करतेहैं, जैसे-द्वैकुलिजिकः ॥

१७५५ चित्तवति नित्यम् । ५ । १ । ८९ ॥

वर्षशब्दान्ताद् द्विगोः प्रत्ययस्य नित्यं लुक् स्यात् चेतने प्रत्ययार्थे । द्विवर्षो दारकः ॥

१७५५-यदि प्रत्ययार्थ चेतन पदार्थ हो तो द्विगुसमासनिष्पन्न वर्षशब्दान्त प्रातिपदिकके उत्तर तद्धित प्रत्ययका लुक् हो, जैसे-द्विवर्षो दारकः ॥

१७५६ षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते । ५ । १ । ९० ॥

बहुवचनमतन्त्रम् । षष्टिको धान्यविशेषः । तृतीयान्तात्कन् रात्रशब्दलोपश्च निपात्यते ॥

१७५६-' षष्टिकाः षष्टिरात्रेणपच्यन्ते ' इस अर्थमें ' षष्टिकः ' पद निपातनसे सिद्ध हुआहै, बहुवचन अतंत्र अर्थात् अविवक्षित जानना, षष्टिक शब्दसे धान्यविशेष जानना, तृतीयान्त षष्टिरात्र शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, और रात्रि शब्दका निपातनसे लोप हो ॥

१७५७ तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् । ५ । १ । ९३ ॥

मासेन परिजय्यो जेतुं शक्यो मासिको व्याधिः। मासेन लभ्यं कार्यं सुकरं वा मासिकम् ॥

१७५७-तृतीयान्त पदके उत्तर परिजय्य, लभ्य, कार्य और सुकर अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-मासेन परिजय्यो (जेतुं शक्यः)=मासिको व्याधिः । मासेन लभ्यं कार्यं सुकरं वा=मासिकम् ॥

१७५८ तदस्य ब्रह्मचर्यम् । ५।१।९४ ॥

द्वितीयान्तात्कालवाचिनोऽस्येत्यर्थे प्रत्ययः स्यात् । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । मासं ब्रह्मचर्यमस्य स मासिको ब्रह्मचारी । आर्द्धमासिकः। यद्वा । प्रथमान्तादस्येत्यर्थे प्रत्ययः । मासोऽस्येति मासिकं ब्रह्मचर्यम् ॥ महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ महानाम्न्यो नाम विदा मघवन्नित्याद्या ऋचः । तासां ब्रह्मचर्यमस्य महानाम्निकः । हरदत्तस्तु भस्याढ इति पुंवद्भावान्माहानामिक इत्याह ॥ चतुर्मास्याण्ण्यो यज्ञे तत्र भव इत्यर्थे ॥ * ॥ चतुर्षु मासेषु भवन्ति चातुर्मास्यानि यज्ञकर्माणि ॥ संज्ञायामण् ॥ * ॥ चतुर्षु मासेषु भवति चातुर्मासी । पौर्णमासी । अणन्तत्वान्ङीप् ॥

१७५८-ब्रह्मचर्य होनेपर द्वितीयान्त कालवाचक प्रातिपदिकके उत्तर ' अस्य ' इस अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, इस स्थलमें अत्यंतसंयोगमें द्वितीया हुई, जैसे-मासं ब्रह्मचर्यमस्य=मासिको ब्रह्मचारी । आर्द्धमासिकः ।

अथवा प्रथमान्त कालवाचक प्रातिपदिकके उत्तर ' अस्य ' इस अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-मासोऽस्येति=मासिकं ब्रह्मचर्यम् ।

षष्ठ्यन्त महानाम्न्यादि शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो * जैसे-महानाम्न्यो नाम "विदा मघवन्" इत्याद्या ऋचः, तासां ब्रह्मचर्यमस्य=माहानाम्निकः, इस स्थलमें महानाम्नी शब्दके संज्ञात्व और अभाषितपुंस्कत्वके कारण पुंवद्भाव नहीं होगा, किन्तु हरदत्तके मतमें "भस्याढे०" इससे पुंवद्भावके कारण 'माहानामिकः' ऐसा होगा ।

'तत्र भवः ' इस अर्थमें यज्ञ होनेपर चतुर्मास शब्दके आगे ण्य प्रत्यय हो * जैसे-चतुर्षु मासेषु भवन्ति=चातुर्मास्यानि यज्ञकर्माणि ।

संज्ञा होनेपर अण् प्रत्यय हो * चतुर्षु मासेषु भवति= चातुर्मासी । पौर्णमासी । अणन्त होनेके कारण स्त्रीलिङ्गमें ङीप् प्रत्यय हुआ ॥

१७५९ तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः । ५ । १ । ९५ ॥

द्वादशाहस्य दक्षिणा द्वादशाहिकी । आख्याग्रहणादकालादपि । आग्निष्टोमिकी । वाजपेयिकी ॥

१७५९-' तस्य दक्षिणा ' इस अर्थमें यज्ञसंज्ञक शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-द्वादशाहस्य दक्षिणा=द्वादशाहिकी । आख्या शब्दका ग्रहण करनेसे कालवाचकके उत्तर न होनेपर भी होगा, जैसे-आग्निष्टोमिकी । वाजपेयिकी ॥

१७६० तत्र च दीयते कार्यं भववत् । ५ । १ । ९६ ॥

प्रावृषि दीयते कार्यं वा प्रावृषेण्यम् । शारदम् ॥

॥ इति कालाधिकारस्य पूर्णोऽवधिः ॥

१७६०-' तत्र च दीयते कार्यम् ' ऐसे अर्थमें भववत् प्रत्यय हो, जैसे-प्रावृषि दीयते कार्यं वा=प्रावृषेण्यम् । शारदम् ॥

॥ इति ठञधिकारे कालाधिकारप्रकरणम् ॥

अथ ठञधिकारप्रकरणम् ।

१७६१ व्युष्टादिभ्योऽण् । ५। १। ९७ ॥

व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम् । व्युष्ट, तीर्थ, संग्राम, प्रवास इत्यादि ॥

१७६१–व्युष्टादि शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे–व्युष्टे दीयते कार्यं वा=वैयुष्टम् । व्युष्टादि शब्द जैसे–व्युष्ट,तीर्थ, संग्राम, प्रवास–इत्यादि ॥

१७६२ तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ । ५ । १ । ९८ ॥

यथाकथाचेत्यव्ययसंघातात्तृतीयान्ताद्धस्तशब्दाच्च यथासंख्यं णयतौ स्तः ॥ अर्थाभ्यां तु यथासंख्यं नेष्यते ॥ * ॥ यथाकथाच दीयते कार्यं वा याथाकथाचम् । अनादरेण देयं कार्यं वेत्यर्थः । हस्तेन दीयते कार्यं वा हस्त्यम् ॥

१७६२–'यथाकथाच' इस अव्ययशब्दके संघातके उत्तर और तृतीयान्त 'हस्त' शब्दके उत्तर यथाक्रम ण और यत् प्रत्यय हो, किन्तु–

दोनों अर्थोंके उत्तर यथासंख्य अर्थात् क्रमकी इच्छा नहीं करनी * जैसे–यथाकथाच दीयते कार्यं वा,इस विग्रहमें 'याथाकथाचम्' इसका अर्थ अनादरपूर्वक देना अथवा करना जानना । हस्तेन दीयते कार्यं वा=हस्त्यम् ॥

१७६३ सम्पादिनि । ५ । १ । ९९ ॥

तेनेत्येव । कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि कार्णवेष्टकिकं मुखम् । कर्णालंकाराभ्यामवश्यं शोभत इत्यर्थः ॥

१७६३–उसके द्वारा संपादित, यह अर्थ होनेपर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि=कार्णवेष्टकिकम्, अर्थात् मुख,दोनों कानोंके अलंकारसे अत्यन्त शोभित होताहै ॥

१७६४ कर्मवेषाद्यत् । ५ । १ ।१०० ॥

कर्मणा सम्पादि कर्मण्यं शौर्यम् । वेषेण सम्पादि वेष्यो नटः । वेषः कृत्रिम आकारः ॥

१७६४–तत्कर्तृकसंपादितार्थमें कर्म और वेष शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–कर्मणा सम्पादि=कर्मण्यं शौर्यम् । वेषेण सम्पादि=वेष्यो नटः । कृत्रिम आकारको वेष कहतेहैं ॥

१७६५ तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः । ५ । १ । १०१ ॥

सन्तापाय प्रभवति सान्तापिकः॥सांग्रामिकः॥

१७६५–'तस्मै प्रभवति' इस अर्थमें सन्तापादि शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–संतापाय प्रभवति, इस विग्रहमें सान्तापिकः । सांग्रामिकः ॥

१७६६ योगाद्यच्च । ५ । १ । १०२॥

चाट्ठञ् । योगाय प्रभवति योग्यः। यौगिकः॥

१७६६–'तस्मै प्रभवति' इस अर्थमें चतुर्थ्यन्त समर्थ योग शब्दके उत्तर यत् और ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–योगाय प्रभवति=योग्यः, यौगिकः ॥

१७६७ कर्मण उकञ्।५।१।१०३॥

कर्मणे प्रभवति कार्मुकम् ॥

१७६७–'तस्मै प्रभवति' इस अर्थमें कर्मन् शब्दके उत्तर उकञ् प्रत्यय हो, जैसे–कर्मणे प्रभवति कार्मुकम् ॥

१७६८ समयस्तदस्य प्राप्तम् । ५। १ । १०४ ॥

समयः प्राप्तोऽस्य सामयिकम् ॥

१७६८–'तदस्य प्राप्तम्' इस अर्थमें समय शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–समयः प्राप्तोऽस्य=सामयिकम् ॥

१७६९ ऋतोरण् । ५ १ । १०५ ॥

ऋतुः प्राप्तोस्य आर्तवम् ॥

१७६९–'तदस्य प्राप्तम्' इस अर्थमें ऋतु शब्दके उत्त अण् प्रत्यय हो, जैसे–ऋतुः प्राप्तोऽस्य=आर्तवम् ॥

१७७० कालाद्यत्। ५ ।१।१०७ ॥

कालः प्राप्तोस्य काल्यं शीतम् ॥

१७७०–उक्त अर्थमें काल शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे–काल्यं शीतम् ॥

१७७१ प्रकृष्टे ठञ् । ५।१।१०८ ॥

कालादित्येव । तदस्येति च । प्रकृष्टो दीर्घः कालोऽस्येति कालिकं वैरम् ॥

१७७१–'तदस्य' इस अर्थमें प्रकृष्ट अर्थात् दीर्घकालवाचक काल शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–प्रकृष्टो दीर्घः कालोऽस्येति=कालिकं वैरम् ॥

१७७२ प्रयोजनम् । ५ । १।१०९ ॥

तदस्येत्येव । इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य ऐन्द्रमहिकम् । प्रयोजनं फलं कारणं च ॥

१७७२–'तदस्य प्रयोजनम्' इस अर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे–इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य=ऐन्द्रमहिकम् । प्रयोजन शब्दसे फल और कारण जानना ॥

१७७३ विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयोः । ५ । १ । ११० ॥

आभ्यामण् स्यात्प्रयोजनमित्यर्थे क्रमान्मन्थदण्डयोरर्थयोः। विशाखा प्रयोजनमस्य वैशाखो मन्थः । आषाढो दण्डः ॥ चूडादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ चूडा–चौडम् । श्रद्धा–श्राद्धम् ॥

१७७३–'प्रयोजनमस्य' इस अर्थमें क्रमसे मन्थ और दण्ड अर्थ होनेपर विशाखा और आषाढा शब्दके उत्तर अण्

प्रत्यय हो, जैसे-विशाखा प्रयोजनमस्य=वैशाखो मन्थः । आषाढो दण्डः ।

चूडादि शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो * जैसे-चूडा-चौडम् । श्रद्धा-श्राद्धम् ॥

१७७४ अनुप्रवचनादिभ्यश्छः । ५ । १ । १११ ॥

अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम् ॥

१७७४-'प्रयोजनमस्य' इस अर्थमें अनुप्रवचनादिके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य=अनुप्रवचनीयम् ॥

१७७५ समापनात्सपूर्वपदात् । ५ । १ । ११२ ॥

व्याकरणसमापनं प्रयोजनमस्य व्याकरणसमापनीयम् ॥

१७७५-'प्रयोजनमस्य' इस अर्थमें पूर्वमें किसी एक शब्दके रहते समापन शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-व्याकरणसमापनं प्रयोजनम् अस्य=व्याकरणसमापनीयम् ॥

१७७६ ऐकागारिकट् चौरे।५।१।११३॥

एकमसहायमगारं प्रयोजनमस्य मुमुषिषोः स ऐकागारिकश्चौरः ॥

१७७६-'प्रयोजनमस्य' इस अर्थमें एकागार शब्दके उत्तर चौर अर्थ होनेपर ठञ् प्रत्यय तथा टकार अनुबन्ध हो, जैसे-एकमसहायमगारं प्रयोजनमस्य मुमुषिषोः सः=ऐकागारिकः चौरः ॥

१७७७ आकालिकडाद्यन्तवचने । ५ । १ । ११४ ॥

समानकालावाद्यन्तौ यस्येत्याकालिकः।समानकालस्याऽऽकाल आदेशः। आशुविनाशीत्यर्थः। पूर्वदिने मध्याह्नादावुत्पद्य दिनान्तरे तत्रैव नश्वर इति वा ॥ आकालाट्ठंश्च ॥ * ॥ आकालिका विद्युत् ॥

॥ इति ठञः पूर्णोवधिः ॥

१७७७-आदि और अन्त होनेपर समानकाल शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो और समानकाल शब्दको आकाल आदेश हो और टकार अन्त्यमें अनुबन्ध हो, समानकालौ आद्यन्तौ यस्य=आकालिकः, इस स्थलमें समानकाल शब्दके स्थानमें आकाल आदेश हुआहै, इसका अर्थ शीघ्रविनाशशील । पूर्व दिवसमें मध्याह्नादि कालमें उत्पन्न होकर दूसरे दिन उसी समयमें ही जिसकी मृत्यु हो, उसको भी आकालिक कहतेहैं ।

आकाल शब्दके उत्तर ठन् प्रत्यय भी हो * जैसे-आकालिका विद्युत् ॥

॥ इति ठञधिकारप्रकरम् ॥

१ टकार अनुबन्ध 'ऐकागारिकी' यहां ङीप् हो, इसलिये है॥

अथ भावकर्मार्थकप्रकरणम् ।

१७७८ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः । ५ । १ । ११५ ॥

ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवदधीते । क्रिया चेदिति किम् । गुणतुल्ये मा भूत् । पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ॥

१७७८-'तेन तुल्यम्' इस अर्थमें यदि क्रिया हो तो प्रातिपदिकके उत्तर वति प्रत्यय हो,जैसे-ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवत् अधीते ।

क्रिया तुल्य रहे ऐसा क्यों कहा ? तो गुणसे तुल्य होनेपर न हो, जैसे-पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ॥

१७७९ तत्र तस्येव । ५ । १ । ११६ ॥

मथुरायामिव मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः । चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य गावः ॥

१७७९-सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकके उत्तर इव अर्थमें वति प्रत्यय हो, जैसे-मथुरायामिव मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः, अर्थात् स्रुघ्नदेशमें मथुराकी समान प्राकार है । चैत्रस्येव=चैत्रवत् मैत्रस्य गावः, अर्थात् चैत्रकी समान मैत्रकी गाय हैं ॥

१७८० तदर्हम् । ५ । १ । ११७ ॥

विधिमर्हति विधिवत्पूज्यते । क्रियाग्रहणं मण्डूकप्लुत्यानुवर्तते । तेनेह न । राजानमर्हति छत्रम् ॥

१७८०-द्वितीयान्त प्रातिपदिकसे 'अर्हम्' इस अर्थमें वति प्रत्यय हो, जैसे-विधिमर्हति=विधिवत् पूज्यते । इस सूत्रमें मण्डूकप्लुति न्यायसे क्रिया पदकी अनुवृत्ति होतीहै, इस कारण राजानमर्हति छत्रम्, इस स्थलमें राजवत् ऐसा पद नहीं हुआ ॥

१७८१ तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११९॥

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः । गोर्भावो गोत्वम् । गोता । त्वान्तं क्लीबम् । तलन्तं स्त्रियाम् ॥

१७८१-षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकसे 'भावः' इस अर्थमें त्व और तल् प्रत्यय हों, प्रकृतिजन्य बोधमें प्रकार (विशेषण) का नाम भाव है, जैसे-गोर्भावः=गोत्वम् । गोता । त्वप्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंग और तल्प्रत्ययान्त पद स्त्रीलिङ्ग होताहै ॥

१७८२ आ च त्वात् । ५ । १ । १२० ॥

ब्रह्मणस्त्व इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते । अपवादैः सह समावेशार्थं गुणवचनादिभ्यः कर्मणि विधानार्थं चेदम् । चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः । स्त्रिया भावः स्त्रैणम् । स्त्रीत्वम् । स्त्रीता पौंस्नम् । पुंस्त्वम् । पुंस्ता ॥

१७८२–"ब्रह्मणस्त्वः ५ । १ । १३६" इस वक्ष्यमाण सूत्रके पूर्वपर्यन्त त्व और तल् प्रत्ययका अधिकार है, अपवाद अर्थात् विशेषविधिके साथ समावेशके निमित्त और गुणवाचक शब्दके उत्तर कर्म वाच्यमें विधानके निमित्त यह सूत्र कियाहै। चकारसे नञ् और स्नञ् इन दो प्रत्ययोंके भी साथ समावेशार्थ है जैसे–स्त्रिया भावः=स्त्रैणम्, स्त्रीत्वम्, स्त्रीता। पौंस्नम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता ॥

१७८३ न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषादचतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः । ५ । १ । १२१ ॥

इतः परं ये भावप्रत्ययास्ते नञ्तत्पुरुषान्न स्युश्चतुरादीन्वर्जयित्वा । अपतित्वम् । अपटुत्वम् । नञ्पूर्वात्किम् । बार्हस्पत्यम् । तत्पुरुषात्किम् । नास्य पटवः सन्तीत्यपटुस्तस्य भाव आपटवम् । अचतुरेति किम् । आचतुर्यम् । आसङ्गत्यम् । आलवण्यम् । आवटयम् । आयुध्यम् । आकत्यम् । आरस्यम् । आलस्यम् ॥

१७८३–इस सूत्रके आगे जो भाव प्रत्यय हैं वह चतुर, संगत, लवण, वट, युध, कत, रस और लस एतदन्त तत्पुरुषसे भिन्न नञ्तत्पुरुषके उत्तर नहीं हों, जैसे–अपतित्वम् । अपटुत्वम् । नञ्पूर्वक तत्पुरुष न होनेपर, जैसे–बार्हस्पत्यम्। तत्पुरुष न होनेपर जैसे–नास्य पटवः सन्तीत्यपटुस्तस्य भावः=आपटवम् ॥

चतुर आदि शब्दको छोडनेका भाव यह कि, आचतुर्यम् । आसङ्गत्यम्। आलवण्यम्। आवटयम् । आयुध्यम्। आकत्यम् । आरस्यम् । आलस्यम्, इनमें वक्ष्यमाण भावप्रत्यय हों ॥

१७८४ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा । ५ । १ । १२२ ॥

वावचनमणादिसमावेशार्थम् ॥

१७८४–पृथ्वादि शब्दोंके उत्तर विकल्प करके इमनिच् प्रत्यय हो, इस सूत्रमें वाशब्दके ग्रहण करनेसे अण् आदि प्रत्ययोंका समावेश होगा ॥

१७८५ र ऋतो हलादेर्लघोः।६।४।१६१॥

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यात् इष्ठेमेयस्सु ॥

१७८५–इष्ठन्, इमन् और ईयस् प्रत्यय परे रहते व्यंजनवर्ण आदिमें है जिसके ऐसे लघुसंज्ञक ऋकारके स्थानमें र आदेश हो ॥

१७८६ टेः । ६ । ४ । १५५ ॥

भस्य टेर्लोपः स्यादिष्ठेमेयस्सु । पृथोर्भावः प्रथिमा । पार्थवम् । म्रदिमा । मार्दवम् ॥

१७८६–इष्ठन्, इमन् और ईयस् प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक शब्दकी टिका लोप हो, यथा–पृथोर्भावः=प्रथिमा, पार्थवम् । म्रदिमा, मार्दवम् ॥

१७८७ वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च । ५ । १ । १२३ ॥

चादिमनिच् । शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । दार्ढ्यम् ॥ पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम् ॥*॥ द्रढिमा । षो ङीषर्थः । औचिती । याथाकामी ॥

१७८७–वर्णवाचक शब्द और दृढादि शब्दोंके उत्तर ष्यञ् प्रत्यय हो, और चकारसे इमनिच् प्रत्यय हो, जैसे–शुक्लस्य भावः=शौक्ल्यम्, शुक्लिमा । दार्ढ्यम् ।

पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ और परिवृढ शब्दोंके ऋकारके स्थानमें ही र आदेश हो * जैसे–द्रढिमा। ष्यञ् प्रत्ययका षकार इत्संज्ञक होनेके कारण स्त्रीलिङ्गमें ङीष् होगा, जैसे–औचिती । याथाकामी ॥

१७८८ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च । ५ । १ । १२४ ॥

चाद्भावे । जडस्य कर्म भावो वा जाड्यम् । मूढस्य भावः कर्म वा मौढ्यम् । ब्राह्मण्यम् । अर्हतो नुम् च ॥ * ॥ अर्हतो भावः कर्म वा आर्हन्त्यम् । आर्हन्ती । ब्राह्मणादिराकृतिगणः॥

१७८८–गुणवाचक[1] शब्द और ब्राह्मणादि शब्दोंके उत्तर कर्म और चकारसे भाव वाच्यमें ष्यञ् प्रत्यय हो, जैसे–जडस्य भावः कर्म वा=जाड्यम्। मूढस्य भावः कर्म वा=मौढ्यम् । ब्राह्मण्यम् ।

अर्हत् शब्दके उत्तर ष्यञ् प्रत्यय और नुम् आगम हो * जैसे–अर्हतो भावः कर्म वा=आर्हन्त्यम् । आर्हन्ती । ब्राह्मणादि आकृतिगण है ॥

१७८९ यथातथयथापुरयोः पर्यायेण । ७ । ३ । ३१ ॥

नञः परयोरेतयोः पूर्वोत्तरपदयोः पर्यायेणादेरचो वृद्धिर्ञिदादौ । अयथातथाभावः आयथातथ्यम् । अयाथातथ्यम् । आयथापुर्यम् । अयाथापुर्यम्।आ पादसमाप्तेर्भावकर्माधिकारः॥ चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम् ॥ * ॥ चत्वारो वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रम्यम् । त्रैस्वर्यम् । षाड्गुण्यम् । सैन्यम् । सान्निध्यम् । सामीप्यम् । औपम्यम् । त्रैलोक्यमित्यादि ॥ (सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे ॥) सर्वे वेदाः सर्ववेदास्तानधीते सर्ववेदः । सर्वादेरिति लुक् । स एव सार्ववैद्यः॥ चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च ॥ * ॥ चतुरो वेदानधीते चतुर्वेदः । स एव चातुर्वैद्यः। चतुर्विद्यस्येति पाठान्तरम् । चतुर्विद्य एव चातुर्वैद्यः ॥

[1] शीत उष्ण आदि गुणोंका जिससे बोध हो उसको गुणवचन कहतेहैं॥

१७८९-जित् आदि तद्धित प्रत्यय परे रहते नञ्के परे स्थित यथातथ और यथापुर इन दो शब्दोंके पूर्व और उत्तर पदके आद्यच्को पर्याय (क्रम) से वृद्धि हो, जैसे-अयथातथाभावः=आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम् । आयथापुर्य्यम्, अयाथापुर्य्यम् । इस पादकी समाप्तिपर्यन्त भाव और कर्मका अधिकार है ।

चतुर्वर्णादि शब्दोंके उत्तर स्वार्थमें ष्यञ् प्रत्यय हो* जैसे-चत्वारो वर्णाः=चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रम्यम् । त्रैस्वर्यम् । षाड्गुण्यम् । सैन्यम् । सान्निध्यम् । सामीप्यम् । औपम्यम् । त्रैलोक्यम्, इत्यादि । सर्वे वेदाः सर्ववेदाः, तानधीते सर्ववेदः । "सर्वादेः०" इससे लुक् हुआ । स एव=सार्ववेद्यः ।

चतुर्वेद शब्दके दोनों पदोंको वृद्धि हो* जैसे-चतुरो वेदानधीते=चतुर्वेदः, स एव=चातुर्वैद्यः "चतुर्विद्यस्य" ऐसा पाठान्तर है, इससे चतुर्विद्य एव=चातुर्वैद्यः ॥

१७९० स्तेनाद्यन्नलोपश्च ।५।१।१२५॥

नेति सङ्घातग्रहणम् । स्तेन चौर्ये पचाद्यच् । स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम् । स्तेनादिति योगं विभज्य स्तैन्यमिति ष्यञन्तमपि केचिदिच्छन्ति ॥

१७९०-स्तेन शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, और स्तेन शब्दके नकारका लोप हो, न शब्दसे संघातका ग्रहण जानना । चौर्यार्थक स्तेन धातुसे पचादित्वके कारण अच् प्रत्यय करके 'स्तेनः' यह सिद्ध हुआहै, स्तेनस्य भावः कर्म वा=स्तेयम् । कोई कोई आचार्य "स्तेनात्" ऐसा भिन्न सूत्र करके 'स्तैन्यम्' ऐसे ष्यञ्प्रत्ययान्त पदकी इच्छा करतेहैं ॥

१७९१ सख्युर्यः । ५ । १ । १२६ ॥

सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम् ॥ दूतवणिग्भ्यां च ॥ * ॥ दूतस्य भावः कर्म वा दूत्यम् । वणिज्यमिति काशिका । माधवस्तु वणिज्याशब्दः स्वभावात् स्त्रीलिङ्गः । भाव एव चात्र प्रत्ययो न तु कर्मणीत्याह । भाष्ये तु दूतवणिग्भ्यां चेति नास्त्येव । ब्राह्मणादित्वाद्वाणिज्यमपि ॥

१७९१-सखि शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे-सख्युर्भावः कर्म वा=सख्यम् ।

दूत और वणिक् शब्दके उत्तर भी यत् प्रत्यय हो * जैसे-दूतस्य भावः कर्म वा=दूत्यम् । वणिज्यम्, यह पद काशिकाकारके मतमें है, माधव तो वणिज्या शब्द स्वभावसे ही स्त्रीलिङ्ग है, इस स्थलमें भावार्थमें ही प्रत्यय है, कर्मार्थमें नहीं यह कहतेहैं । भाष्यमें तो "दूतवणिग्भ्याञ्च" इस प्रकारका पाठ नहीं है । ब्राह्मणादित्वके कारण 'वाणिज्यम्' ऐसा पद भी होताहै ॥

१७९२ कपिज्ञात्योर्ढक् । ५ ।१।१२७॥

कापेयम् । ज्ञातेयम् ॥

१७९२-कपि और ज्ञाति शब्दके उत्तर ढक् प्रत्यय हो, जैसे-कापेयम् । ज्ञातेयम् ॥

१७९३ पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् । ५ । १ । १२८ ॥

सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् ॥ राजाऽसे ॥*॥ राजशब्दोऽसमासे यकं लभत इत्यर्थः । राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् । समासे तु ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । आधिराज्यम् ॥

१७९३-पति शब्द अन्तमें है जिसके ऐसे शब्द और पुरोहितादि शब्दोंके उत्तर यक् प्रत्यय हो, जैसे-सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् ॥

असमासमें राजन् शब्दके उत्तर यक् प्रत्यय हो * जैसे-राज्ञो भावः कर्म वा=राज्यम् । समास होनेपर तो ब्राह्मणादिके मध्यमें पठित होनेके कारण ष्यञ् प्रत्यय होगा, जैसे-आधिराज्यम् ॥

१७९४ प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् । ५ । १ । १२९ ॥

प्राणभृज्जाति-आश्वम् । औष्ट्रम् । वयोवचन-कौमारम्, कैशोरम् । औद्गात्रम् । औन्नेत्रम् । सौष्ठवम् । दौष्ठवम् ॥

१७९४-प्राणयुक्त जातिवाचक शब्द, वयोवाचक शब्द और उद्गातृ आदि शब्दोंके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, प्राणभृज्जाति, जैसे-आश्वम् । औष्ट्रम् । वयोवाचक, जैसे-कौमारम् । कैशोरम् । उद्गात्रादि, जैसे-औद्गात्रम् । औन्नेत्रम् । सौष्ठवम् । दौष्ठवम् ॥

१७९५ हायनान्तयुवादिभ्योऽण् । ५ । १ । १३० ॥

द्वैहायनम् । त्रैहायनम् । यौवनम् । स्थाविरम् ॥ श्रोत्रियस्य यलोपश्च ॥ * ॥ श्रौत्रम् । कुशलचपलनिपुणपिशुनकुतूहलक्षेत्रज्ञा युवादिषु ब्राह्मणादिषु च पठ्यन्ते । कौशलम् । कौशल्यमित्यादि ॥

१७९५-हायन शब्द अन्तमें है जिसके ऐसे शब्द और युवादि शब्दोंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे-द्वैहायनम् । त्रैहायनम् । यौवनम् । स्थाविरम् ॥

श्रोत्रिय शब्दके यकारका लोप और अण् प्रत्यय हो* जैसे-श्रौत्रम् । कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, क्षेत्रज्ञ, यह शब्द युवादि गण और ब्राह्मणादि गणके मध्यमें पठित हैं, इससे 'कौशलम्, कौशल्यम्' इस प्रकार रूप होंगे ॥

१७९६ इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ।५।१।१३१॥

शुचेर्भावः कर्म वा शौचम् । मौनम् । कथं काव्यम्, कविशब्दस्य ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् ॥

१७९६-लघु वर्ण पूर्वमें है जिनके ऐसे इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त, और ऌकारान्त शब्दोंके उत्तर कर्म और भाव अर्थमें अण् प्रत्यय हो, जैसे-शुचेर्भावः कर्म वा=शौचम्

मौनम् । इस सूत्रके रहते 'काव्यम्' यह पद कैसे हुआ ? इस पर कहतेहैं कि, कवि शब्दको ब्राह्मणादिगणके मध्यमें पठित होनेके कारण उसके उत्तर ष्यञ् प्रत्यय हुआहै ॥

१७९७ योपधाद्गुरूपोत्तमाद्वुञ् ।५।१।१३२।

रामणीयकम् । आभिधानीयकम् ॥ सहायाद्वा ॥ * ॥ साहाय्यम् ॥ साहायकम् ॥

१७९७–यकारोपध जो गुरूपोत्तम (जिसके अन्तवर्णका पूर्ववर्ण गुरुसंज्ञक हो ऐसा) प्रातिपदिक उसके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे–रामणीयकम् । आभिधानीयकम् ।

सहाय शब्दके उत्तर विकल्प करके वुञ् प्रत्यय हो * विकल्प पक्षमें ष्यञ् प्रत्यय होगा, जैसे–साहायकम्, साहाय्यम् ॥

१७९८ द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ।५।१।१३३।

शैष्योपाध्यायिका । मानोज्ञकम् ॥

१७९८–द्वन्द्वसमास, निष्पन्न शब्द और मनोज्ञादि शब्दोंके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो, जैसे–शैष्योपाध्यायिका । मानोज्ञकम् ॥

१७९९ गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु । ५ । १ । १३४ ॥

अत्याकारोऽधिक्षेपः तदवेतस्ते गोत्रचरणयोर्भावकर्मणी प्राप्तः । अवगतवान्वा । गार्गिकया श्लाघते । गार्ग्यत्वेन विकत्थत इत्यर्थः । गार्गिकयाऽत्याकुरुते । गार्गिकामवेतः ॥

१७९९–श्लाघा (प्रशंसा), अत्याकार (अवमान), और तदवेत (तदवगत), विषयमें गोत्रवाचक और चरणवाचक प्रातिपदिकके उत्तर भाव और कर्मार्थमें वुञ् प्रत्यय हो, तदवेतस्ते गोत्रचरणयोः भावकर्मणी प्राप्तः अवगतवान् (गोत्र और चरणके भाव तथा कर्मको प्राप्त हुआ अथवा उनके ज्ञानको प्राप्त हुआ) गार्गिकया श्लाघते, अर्थात् गार्ग्यगोत्रसम्भूत होनेके कारण प्रशंसित होताहै । गार्गिकया अत्याकुरुते । गार्गिकामवेतः ॥

१८०० होत्राभ्यश्छः । ५ ।१। १३५ ॥

होत्राशब्दः ऋत्विग्वाची स्त्रीलिंगः । बहुवचनाद्विशेषग्रहणम् । अच्छावाकस्य भावः कर्म वा अच्छावाकीयम् । मैत्रावरुणीयम् ॥

१८००–उक्त अर्थमें होत्रा शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो, होत्रा शब्द ऋत्विग्वाचक स्त्रीलिङ्ग है । बहुवचनके कारण विशेषका ग्रहण होताहै, जैसे–अच्छावाकस्य भावः कर्म वा= अच्छावाकीयम् । मैत्रावरुणीयम् ॥

१८०१ ब्रह्मणस्त्वः । ५ । १ । १३६ ॥

होत्रावाचिनो ब्रह्मन्शब्दात्त्वः स्यात् । छस्यापवादः । ब्रह्मत्वम् । नेति वाच्ये त्ववचनं तलो बाधनार्थम् । ब्राह्मणपर्यायाद्ब्रह्मन्शब्दात्तु त्वतलौ । ब्रह्मत्वम् । ब्रह्मता ॥

॥ इति नञ्स्नञोरधिकारः समाप्तः ॥

१८०१–होत्रावाचक ब्रह्मन् शब्दके उत्तर त्व प्रत्यय हो, यह छ प्रत्ययका अपवाद है, जैसे–ब्रह्मत्वम् । "ब्रह्मणो न" इसी प्रकार सूत्र करनेसे इष्ट सिद्ध होनेपर त्वग्रहण तल् प्रत्ययके बाधके निमित्त है, ब्राह्मणपर्याय ब्रह्मन् शब्दके उत्तर तो त्व और तल् प्रत्यय होगा, जैसे–ब्रह्मत्वम्, ब्रह्मता ॥ ॥ इति नञ्स्नञोरधिकारः समाप्तः ॥

(इति भावकर्मार्थकप्रकरणम्)

अथ पाञ्चमिकप्रकरणम् ।

१८०२ धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् । ५ । २ । १ ॥

भवन्त्यस्मिन्निति भवनम् । मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम् ॥

१८०२–उत्पत्तिका स्थान (खेत) वाच्य हो तो षष्ठयन्त समर्थ धान्यविशेषवाची शब्दोंके उत्तर खञ् प्रत्यय हो, जैसे–भवन्ति अस्मिन्, इस विग्रहमें भवनम्, मुद्गानां भवनं क्षेत्रं=मौद्गीनम् ॥

१८०३ व्रीहिशाल्योर्ढक् । ५ । २।२ ॥

व्रैहेयम् । शालेयम् ॥

१८०३–षष्ठयन्त व्रीहि और शालि शब्दके उत्तर उक्त अर्थमें ढक् प्रत्यय हो, जैसे–व्रैहेयम् । शालेयम् ॥

१८०४ यवयवकषष्टिकाद्यत् ।५।२।३ ॥

यवानां भवनं क्षेत्रं यव्यम् । यवक्यम् । षष्टिक्यम् ॥

१८०४–षष्ठयन्त यव, यवक और षष्टिक शब्दके उत्तर उक्त अर्थमें यत् प्रत्यय हो, जैसे–यवानां भवनं क्षेत्रम्=यव्यम् । यवक्यम् । षष्टिक्यम् ॥

१८०५ विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः । ५ । २ । ४ ॥

यद्वा स्यात्पक्षे खञ् । तिल्यम् । तैलीनम् । माष्यम् । माषीणम् । उम्यम् । औमीनम् । भङ्ग्यम् । भाङ्गीनम् । अणव्यम् । आणवीनम् ॥

१८०५–तिल, माष, उमा, भङ्ग और अणु शब्दके उत्तर उक्त अर्थमें विकल्प करके यत् प्रत्यय हो, पक्षमें खञ् प्रत्यय हो, जैसे–तिल्यम्, तैलीनम् । माष्यम्, माषीणम् । उम्यम्, औमीनम् । भङ्ग्यम्, भाङ्गीनम् । अणव्यम्, आणवीनम् ॥

१८०६ सर्वचर्मणः कृतः खखञौ । ५ । २ । ५ ॥

असामर्थ्येऽपि निपातनात्समासः । सर्वश्चर्मणा कृतः सर्वचर्मीणः । सार्वचर्मीणः ॥

१८०६–'कृत' अर्थमें सर्वचर्मन् शब्दके उत्तर ख और खञ् प्रत्यय हो, इस स्थलमें सर्व इस पदका कृतके साथ अन्वय है, चर्मन्‌के साथ नहीं है, इस कारण 'सर्वेण चर्मणा कृतः' ऐसा समास न होकर इसी सूत्रमें निपातनसे सर्वचर्मन्‌में समास होताहै, जैसे–सर्वः चर्मणा कृतः=सर्वचर्मीणः ॥ सार्वचर्मीणः ॥

१८०७ यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः । ५ । २ । ६ ॥

मुखस्य सदृशं यथामुखं प्रतिबिम्बम् । निपातनात्साद‍ृश्येऽव्ययीभावः । समं सर्वं मुखं संमुखम् । समशब्दस्यान्तलोपो निपात्यते यथामुखं दर्शनो यथामुखीनः । सर्वस्य दर्शनः संमुखीनः ॥

१८०७–दर्शन अर्थमें यथामुख और सम्मुख शब्दके उत्तर ख प्रत्यय हो । मुखस्य सदृशं यथामुखं प्रतिबिम्बम्, यहां निपातसे सादृश्यार्थमें अव्ययीभाव हुआ । समं सर्वं मुखं सम्मुखम्, यहां सम शब्दके अन्तका लोप निपातनसिद्ध है । यथामुखं दर्शनः=यथामुखीनः । सर्वस्य मुखस्य दर्शनः=सम्मुखीनः ॥

१८०८ तत्सर्वादेः पथ्यंगकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति । ५ । २ । ७ ॥

सर्वादेः पथ्याद्यन्ताद् द्वितीयान्तात्खः स्यात् । सर्वपथान् व्याप्नोति सर्वपथीनः । सर्वांगीणः । सर्वकर्मीणः । सर्वपत्रीणः । सर्वपात्रीणः ॥

१८०८–सर्व शब्द आदिमें रहते द्वितीयान्त पथिन्, अङ्ग, कर्म, पत्र और पात्रशब्दके उत्तर 'व्याप्नोति (व्याप्त होताहै)' इस अर्थमें ख प्रत्यय हो, जैसे–सर्वपथान् व्याप्नोति=सर्वपथीनः । सर्वाङ्गीणः । सर्वकर्मीणः । सर्वपत्रीणः । सर्वपात्रीणः ॥

१८०९ आप्रपदं प्राप्नोति । ५।२ । ८ ॥

पादस्याग्रं प्रपदं तन्मर्यादीकृत्य आप्रपदम् । आप्रपदीनः पटः ॥

१८०९–'प्राप्नोति (प्राप्त होताहै)' इस अर्थमें आप्रपद शब्दके उत्तर ख प्रत्यय हो । पादके अग्रभागको प्रपद कहतेहैं और तदवधिकको आप्रपद कहतेहैं । आप्रपदं प्राप्नोति, इस वाक्यमें आप्रपदीनः, अर्थात् पटः ॥

१८१० अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धा-भक्षयतिनेयेषु । ५ । २ । ९ ॥

अनुरायामे सादृश्ये च । अनुपदं बद्धा अनुपदीना उपानत् । सर्वान्नानि भक्षयति सर्वान्नीनो भिक्षुः । अयानयः स्थलविशेषः । तन्नेय अयानयीनः शारः ॥

१८१०–बद्धा अर्थमें अनुपद शब्दके उत्तर, भक्षयति अर्थमें सर्वान्न शब्दके उत्तर, और नेय अर्थमें अयानय शब्दके उत्तर ख प्रत्यय हो । अनु शब्दसे आयाम और सादृश्य जानना । अनुपदं बद्धा, इस विग्रहमें अनुपदीना अर्थात् उपानत् । सर्वान्नानि भक्षयति, इस विग्रहमें सर्वान्नीनः अर्थात् भिक्षुः । अयानय शब्दसे स्थलविशेष जानना । अयानयं नेयः, इस विग्रहमें अयानयीनः अर्थात् शारः ॥

१८११ परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति । ५ । २ । १० ॥

परांश्चावरांश्चानुभवतीति परोवरीणः । अवरस्योत्वं निपात्यते । परांश्च परतरांश्चाऽनुभवति परम्परीणः । प्रकृतेः परम्परभावो निपात्यते । पुत्रपौत्राननुभवति पुत्रपौत्रीणः । परम्पराशब्दस्तु अव्युत्पन्नं शब्दान्तरं स्त्रीलिंगं तस्मादेव स्वार्थे ष्यञि पारपर्म्यम् । कथं पारोवर्यवदिति । असाधुरेव । खप्रत्ययसन्नियोगेनैव परोवरेतिनिपातनात् ॥

१८११–'अनुभवति (अनुभव करताहै)' इस अर्थमें द्वितीयान्त परोवर, परम्पर और पुत्रपौत्र शब्दके उत्तर ख प्रत्यय हो, जैसे–परांश्चावरांश्चानुभवति, इस विग्रहमें परोवरीणः । अवर शब्दके अकारके स्थानमें निपातनसे उकार होताहै । परांश्च परतरांश्चानुभवति=परम्परीणः । प्रकृतिको परम्परभाव निपातनसिद्ध अर्थात् पर इस प्रकृतिके स्थानमें परम्पर आदेश हो । पुत्रपौत्राननुभवति, इस विग्रहमें पुत्रपौत्रीणः । परम्परा शब्द तो अव्युत्पन्न शब्दान्तर स्त्रीलिङ्ग है, उसीके उत्तर स्वार्थमें ष्यञ् प्रत्यय करके पारम्पर्यम्, यह पद सिद्ध हुआहै । ख प्रत्ययके सन्नियोगमें परोवर यह शब्द निपातनसिद्ध है, इस कारण 'पारोवर्यवत्' यह पद असाधु है ॥

१८१२ अवारपाराऽत्यन्ताऽनुकामं गामी । ५ । २ । ११ ॥

अवारपारं गामी अवारपारीणः । अवारीणः । पारीणः । पारावारीणः । अत्यन्तं गामी अत्यन्तीनः । भृशं गन्तेत्यर्थः । अनुकामं गामी अनुकामीनः यथेष्टं गन्ता ॥

१८१२–'गामी' अर्थ होनेपर अवारपार, अत्यन्त, अनुकाम, इन सम्पूर्ण शब्दोंके उत्तर ख प्रत्यय हो, जैसे–अवार-

१ द्यूतके पाशोंके दहिने तरफ घूमनेको 'अय' कहतेहैं, नहीं जो अय उसको 'अनय' कहतेहैं, अयसहित अनयको 'अयानय' कहते-हैं । दक्षिण तथा वाम भागसे चलनेवाले युग्मादि स्थानोंमें स्थित पाशे जिस स्थानमें औरके पाशोंसे न आक्रान्त हों उसे लक्षणासे 'अयानय' कहतेहैं ॥

पारं गामी=अवारपारीणः । अवारीणः । पारीणः । पारावारीणः । अत्यन्तं गामी=अत्यन्तीनः अर्थात् शीघ्रगमनशीलः। अनुकामं गामी=अनुकामीनः अर्थात् यथेष्टगमनकारी ॥

१८१३ समांसमां विजायते ।५।२।१२॥

यलोपोऽवशिष्टविभक्तेरलुक् च पूर्वपदे निपात्यते । समांसमीना गौः । समांसमीना सा यैव प्रतिवर्षं प्रसूयते ॥ खप्रत्ययानुत्पत्तौ यलोपो वा वक्तव्यः ॥*॥ समांसमां विजायते । समायांसमायां वा ॥

१८१३–विपूर्वक 'जनी–प्रादुर्भावे' धातुका अर्थ गर्भविमोचन अर्थात् प्रसव है, तो प्रसवको सम्पूर्णवत्सरव्यापकत्वके अभावके कारण इस स्थलमें अत्यन्त संयोगमें होनेवाली (५५८) द्वितीया विभक्तिकी प्राप्तिका अभाव है, इस कारण इस स्थलमें सप्तमी ही विभक्ति होतीहै, इस आशयसे कहाहै कि, 'विजायते (गर्भमोचन करतीहै)' इस अर्थमें ख प्रत्यय और प्रकृतिभागमें समायांसमायाम्, इस प्रकार रहते निपातनसे पूर्व पदके यकारमात्रका लोप और अवशिष्ट विभक्त्यंशका अलुक् करके 'समाम्' ऐसा हुआ और उत्तर पदकी विभक्तिका "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" इस सूत्रसे लुक् करके,समांसमा+ईन=समांसमीना अर्थात् गौः। जो गाय प्रतिवर्ष प्रसूता हो ।

ख प्रत्ययकी अनुत्पत्तिमें दोनों पदोंके यकारका लोप विकल्पसे हो*जैसे–समांसमां विजायते, समायां समायां वा ॥

१८१४ अद्यश्वीनावष्टब्धे । ५ । २।१३॥

अद्य श्वो वा विजायते अद्यश्वीना वडवा। आसन्नप्रसवेत्यर्थः । केचित्तु विजायत इति नानुवर्तयन्ति।अद्यश्वीनं मरणम् । आसन्नमित्यर्थः॥

१८१४–अवष्टब्ध अर्थात् आसन्न अर्थमें 'अद्यश्वीना' पद निपातनसे सिद्ध हो, जैसे–अद्य श्वो वा विजायते, इस विग्रहमें अद्यश्वीना वडवा, अर्थात् आसन्नप्रसवा । कोई २ पंडित 'विजायते' इस पदकी अनुवृत्ति नहीं करते, उनके मतमें अद्यश्वीनं मरणम् (आसन्न मरण) ऐसा होगा ॥

१८१५ आगवीनः ।५।२। १४॥

आङ्पूर्वाद्गोः कर्मकरे खप्रत्ययो निपात्यते। गोः प्रत्यर्पणपर्यन्तं यः कर्म करोति स आगवीनः।

१८१५–कर्मकर अर्थमें आङ्पूर्वक गो शब्दके उत्तर निपातनसे ख प्रत्यय हो, जैसे–आगवीनः, अर्थात् जो प्राणी गायके प्रत्यर्पणपर्यन्त कार्य करे, उसको आगवीन कहतेहैं ॥

१८१६ अनुग्वलंगामी । ५। २। १५ ॥

अनुगु, गोः पश्चात्पर्याप्तं गच्छति अनुगवीनो गोपालः ॥

१८१६–अनुगु शब्दके उत्तर 'अलंगामी' अर्थात् पर्याप्त जाताहै, इस अर्थमें निपातनसे ख प्रत्यय हो, जैसे–अनुगवीनः। अनुगु अर्थात् गायके पीछे २ जो प्राणी पर्याप्तभावसे गमन करै, उसको अनुगवीनः (ग्वाला) कहतेहैं ॥

१८१७ अध्वनो यत्खौ । ५ । २।१६॥

अध्वानमलं गच्छति अध्वन्यः । अध्वनीनः। ये चाभावकर्मणोः, आत्माध्वानौ खे इति सूत्राभ्यां प्रकृतिभावः ॥

१८१७–अध्वन् शब्दके उत्तर यत् और ख प्रत्यय हो, जैसे–अध्वानमलं गच्छति=अध्वन्यः । अध्वनीनः । 'ये चाभावकर्मणोः ११५४", "आत्माध्वानौ खे १६७१" इन दो सूत्रोंसे प्रकृतिभाव भी होगा ॥

१८१८ अभ्यमित्राच्छ च । ५।२।१७॥

चाद्यत्खौ । अभ्यमित्रीयः । अभ्यमित्र्यः । अभ्यमित्रीणः । अमित्राऽभिमुखं सुष्ठु गच्छतीत्यर्थः ॥

१८१८–अभ्यमित्र शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो और सूत्रमें चकार पढनेसे यत् और ख प्रत्यय हो, जैसे–अभ्यमित्रीयः । अभ्यमित्र्यः । अभ्यमित्रीणः । अर्थात् शत्रुके सम्मुख भलीभांति गमनकरनेवाला ॥

१८१९ गोष्ठात्खञ् भूतपूर्वे।५।२।१८॥

गोष्ठो भूतपूर्वः गौष्ठीनो देशः ॥

१८१९–भूतपूर्व अर्थमें गोष्ठ शब्दके उत्तर खञ् प्रत्यय हो, जैसे–गोष्ठो भूतपूर्वः=गौष्ठीनः अर्थात् देशः ॥

१८२० अश्वस्यैकाहगमः । ५ ।२।१९॥

एकाहेन गम्यते इत्येकाहगमः,आश्वीनोऽध्वा॥

१८२०–'एकाहगम (एक दिनमें जानेयोग्य)' इस अर्थमें षष्ठ्यन्त अश्व शब्दसे खञ् प्रत्यय हो, जैसे–अश्वस्य एकाहगमःआश्वीनः, अर्थात् अश्वके एकदिनमें गमन योग्य मार्ग ॥

१८२१ शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः । ५ । २ । २० ॥

शालाप्रवेशमर्हति शालीनः, अधृष्टः । कूपपतनमर्हति कौपीनं पापम्, तत्साधनत्वात्तद्वद्गोप्यत्वात्पुरुषलिङ्गमपि।तत्सम्बन्धात्तदाच्छादनमपि।

१८२१–अधृष्ट अर्थमें शालीन और अकार्य अर्थमें कौपीन यह ख प्रत्ययान्त शब्द निपातनसे सिद्ध होतेहैं, जैसे–शालाप्रवेशमर्हति=शालीनः अर्थात् अधृष्टः । कूपपतनमर्हति=कौपीनम्, अर्थात् पाप, तत्साधनत्व और तद्वत् गोप्यत्वके कारण पुरुषलिंग, और उसके सम्बन्धवशसे उसके आच्छादन वस्त्रको भी कौपीन कहतेहैं ॥

१८२२ व्रातेन जीवति । ५ । २ ।२१॥

व्रातेन शरीरायासेन जीवति न तु बुद्धिवैभवेन स व्रातीनः ॥

१८२२-'जीवति (जीताहै)' इस अर्थमें तृतीयान्त व्रात शब्दके उत्तर ख प्रत्यय हो, जैसे-व्रातेन शरीरायासेन जीवति (न तु बुद्धिवैभवेन) सः=व्रातीनः । जो प्राणी शारीरिक श्रमसे जीविका करै बुद्धिसे नहीं उसको 'व्रातीन' कहतेहैं ॥

१८२३ सातपदीनं सख्यम् ।५।२।२२॥

सप्तभिः पदैरवाप्यते साप्तपदीनम् ॥

१८२३-सख्य (मैत्री) अर्थमें 'साप्तपदीनम्' यह पद निपातनसे सिद्ध हो, अर्थात् अवाप्य सख्य रहते तृतीयान्त सप्तपद शब्दसे खञ् प्रत्यय हो, जैसे-सप्तभिः पदैरवाप्यते= साप्तपदीनम् ॥

१८२४ हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्।५।२।२३॥

ह्योगोदोहस्य हियङ्गुरादेशः विकारार्थे खञ् च निपात्यते । दुह्यत इति दोहः क्षीरम् । ह्योगोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनं नवनीतम् ॥

१८२४-संज्ञा होनेपर ह्योगोदोह शब्दके स्थानमें विकारार्थमें हियंगु आदेश और उसके उत्तर खञ् प्रत्यय निपातनसे हों, दुह्यते, इस विग्रहमें दोहः, अर्थात् दूध, ह्योगोदोहस्य विकारः=हैयंगवीनम्=अर्थात् नवीन मक्खन ॥

१८२५ तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ । ५ । २ ।२४॥

पीलूनां पाकः पीलुकुणः । कर्णस्य मूलं कर्णजाहम् ॥

१८२५-पाक और मूल अर्थमें क्रमसे षष्ठ्यन्त समर्थ पीलु आदि शब्दोंके उत्तर कुणप् और कर्णादि शब्दोंके उत्तर जाहच् प्रत्यय हो, जैसे-पीलूनां पाकः=पीलुकुणः । कर्णस्य मूलम्=कर्णजाहम् ॥

१८२६ पक्षात्तिः । ५ । २ ।२५ ॥

मूलग्रहणमात्रमनुवर्तते।पक्षस्य मूलं पक्षतिः॥

१८२६ मूल अर्थमें षष्ठ्यन्त पक्ष शब्दके उत्तर ति प्रत्यय हो, जैसे-पक्षस्य मूलम्, इस विग्रहमें पक्षतिः । इस सूत्रमें केवल मूलार्थकी अनुवृत्ति होतीहै ॥

१८२७ तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ । ५ । २ । २६ ॥

चकारः प्रत्यययोरादौ लुप्तनिर्दिष्टस्तेन चस्य नेत्संज्ञा।विद्यया वित्तो विद्याचुञ्चुः।विद्याचणः॥

१८२७-वित्त (जानागयाहै) इस अर्थमें तृतीयान्त पदके उत्तर चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय हो, चुञ्चुप् और चणप् इन दोनों प्रत्ययोंके आदिमें चकार लुप्तनिर्दिष्ट है, इस कारण चकारकी इत्संज्ञा नहीं हुई, जैसे-विद्यया वित्तः, इस विग्रहमें विद्याचुञ्चुः । विद्याचणः ॥

१८२८ विनञ्भ्यां नानाञौ न सह। ५ । २ । २७ ॥

असहार्थे पृथग्भावे वर्तमानाभ्यां स्वार्थे प्रत्ययौ । विना । नाना ॥

१८२८-असहार्थ अर्थात् पृथग्भावमें वर्तमान वि और नञ् शब्दके उत्तर स्वार्थमें ना और नाञ् प्रत्यय हो, जैसे-विना । नाना ॥

१८२९ वेः शालच्छङ्कटचौ ।५।२।२८॥

क्रियाविशिष्टसाधनवाचकात्स्वार्थे । विस्तृतम्-विशालम् । विशङ्कटम् ॥

१८२९-क्रियाविशिष्ट साधनवाचक वि शब्दके उत्तर स्वार्थमें शालच् और शंकटच् प्रत्यय हों, जैसे-विस्तृतम्=विशालम् । विशंकटम् ॥

१८३० संप्रोदश्च कटच् । ५।२ । २९ ॥

सङ्कटम् । प्रकटम् । उत्कटम् । चाद्विकटम् । अलाबूतिलोमाभंगाभ्यो रजस्युपसंख्यानम्॥*॥ अलाबूनां रजः अलाबूकटम् ॥ गोष्ठजादयः स्थानादिषु पशुनामभ्यः ॥ * ॥ गवां स्थानं गोगोष्ठम् ॥ संघाते कटच् ॥*॥ अवीनां संघातोऽविकटः ॥ विस्तारे पटच्॥ *॥ अविपटः ॥ द्वित्वे गोयुगच् ॥ * ॥ द्वावुष्ट्रौ उष्ट्रगोयुगम् ॥ षड्त्वे षड्गवच् ॥ * ॥ अश्वषड्गवम् । स्नेहे तैलच् ॥ * ॥ तिलतैलम् । सर्षपतैलम् । भवने क्षेत्रे शाकटशाकिनौ ॥ * ॥ इक्षुशाकटम् । इक्षुशाकिनम् ॥

१८३०-सम्, प्र, उत् और चकारसे वि शब्दके उत्तर कटच् प्रत्यय हो, जैसे-संकटम् । प्रकटम् । उत्कटम् । विकटम् ।

अलाबू, तिल, उमा और भङ्गा शब्दके उत्तर रजस् अर्थमें कटच् प्रत्यय हो * जैसे-अलाबूनाम् रजः-अलाबूकटम्, इत्यादि ।

स्थानादि अर्थमें पशुनामवाचक शब्दके उत्तर गोष्ठच् आदि प्रत्यय हों, * जैसे-गवां स्थानम्=गोगोष्ठम् ।

संघातार्थमें पशुवाचक शब्दके उत्तर कटच् प्रत्यय हो * जैसे-अवीनां संघातः=अविकटः ।

विस्तार अर्थमें पटच् प्रत्यय हो * यथा-अविपटः ॥

द्वित्वार्थमें गोयुगच् प्रत्यय हो * जैसे-द्वावुष्ट्रौ= उष्ट्रगोयुगम् ।

षड्त्व अर्थमें षड्गवच् प्रत्यय हो * जैसे-अश्वषड्गवम् ।

स्नेहार्थमें तैलच् प्रत्यय हो * जैसे-तिलतैलम् । सर्षपतैलम् ।

भवन और क्षेत्र अर्थमें शाकट् और शाकिन् प्रत्यय हो* जैसे-इक्षुशाकटम् । इक्षुशाकिनम् ॥

१८३१ अवात्कुटारच्च । ५ । २ ।३०॥

चात्कटच् । अवाचीनोवकुटारः । अवकटः ॥

१८३१-अव शब्दके उत्तर कुटारच् और चकारसे कटच् प्रत्यय हो, जैसे-अवाचीनः=अवकुटारः, अवकटः ॥

१८३२ नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः । ५ । २ । ३१ ॥

अवादित्येव । नतं नमनम् । नासिकाया नतम् अवटीटम् । अवनाटम् । अवभ्रटम् । तद्योगान्नासिका अवटीटा । पुरुषोऽप्यवटीटः ॥

१८३२--नासिकाके नत अर्थमें संज्ञा होनेपर अव शब्दके उत्तर टीटच्, नाटच् और भ्रटच् प्रत्यय हों, जैसे--नासिकाया नतम्=अवटीटम् । अवनाटम् । अवभ्रटम् । उस (नासिकानत) के योगके कारण नासिका 'अवटीटा' कहलातीहै और नतयुक्तनासिकायोगके कारण पुरुष ' अवटीट ' कहलाताहै ॥

१८३३ नेर्बिडज्बिरीसचौ। ५।२।३२ ॥

निबिडम् । निबिरीसम् ॥

१८३३--नि शब्दके उत्तर बिडच् और बिरीसच् प्रत्यय हों, जैसे--निबिडम् । निबिरीसम् ॥

१८३४ इनच् पिटच्चिकचि च।५।२।३३॥

नेरित्येव नासिकाया नतेऽभिधेये इनच्पिटचौ प्रत्ययौ प्रकृतेश्चिक चि इत्यादेशौ च ॥ कप्रत्ययचिकादेशौ च वक्तव्यौ ॥ * ॥ चिकिनम् । चिपिटम् । चिक्कम्॥ क्लिन्नस्य चिल् पिल् लश्चास्य चक्षुषी ॥ * ॥ क्लिन्ने चक्षुषी अस्य चिल्लः । पिल्लः ॥ चुल् च ॥ * ॥ चुल्लः ॥

१८३४--नि शब्दके उत्तर नासिकाके नमन अर्थमें इनच् और पिटच् प्रत्यय हो, और प्रकृति (नि) को चिक् और चि आदेश हों ।

क प्रत्यय और चिक् आदेश हो, यह भी कहना चाहिये* जैसे--चिकिनम् । चिपिटम् । चिक्कम् ।

' अस्य चक्षुषी ' इस अर्थमें क्लिन्न शब्दके स्थानमें चिल् और पिल् आदेश हों और उसके उत्तर ल प्रत्यय भी हो * जैसे=क्लिन्ने चक्षुषी अस्य=चिल्लः । पिल्लः ।

उक्त अर्थमें चुल् आदेश भी हो * जैसे--क्लिन्ने चक्षुषी अस्य=चुल्लः ॥

१८३५ उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः । ५ । २ । ३४ ॥

संज्ञायामित्यनुवर्तते पर्वतस्यासन्नं स्थलमुपत्यका । आरूढं स्थलमधित्यका ॥

१८३५--संज्ञा होनेपर आसन्न और आरूढ अर्थमें वर्त्तमान उप और अधि शब्दके उत्तर स्वार्थमें त्यकन् प्रत्यय हो, जैसे--पर्वतस्यासन्नं स्थलम्=उपत्यका । पर्वतस्यारूढं, स्थलम्=अधित्यका । (इनमें " प्रत्ययस्थात्० ४६३७ " से इत्व तो नहीं होता, क्योंकि, ४६४ में " त्यकनश्च निषेधः " ऐसा वार्त्तिक है) ॥

१८३६ कर्मणि घटोऽठच् । ५।२।३५॥

घटत इति घटः । पचाद्यच् । कर्मणि घटते कर्मठः पुरुषः ॥

१८३६--' घटते ' इस अर्थमें पचादित्व (२८९६) के कारण अच् प्रत्यय होनेसे ' घटः ' सिद्ध होताहै । घट अर्थात् पटु, इस अर्थमें सप्तम्यन्त कर्मन् शब्दके उत्तर अठच् प्रत्यय हो, जैसे--कर्मणि घटते=कर्मठः, अर्थात् कर्मपटुः पुरुषः ॥

१८३७ तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् । ५ । २ । ३६ ॥

तारकाः संजाता अस्य तारकितं नभः । आकृतिगणोऽयम् ॥

१८३७--'अस्य सञ्जातम्' इस अर्थमें प्रथमान्त तारकादि शब्दोंके उत्तर इतच् प्रत्यय हो, जैसे--तारकाः सञ्जाता अस्य=तारकितम्, अर्थात् नभः । तारकादि आकृतिगण है ॥

१८३८ प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः। ५ । २ । ३७ ॥

तदस्येत्यनुवर्तते । ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम् । ऊरुदघ्नम् । ऊरुमात्रम् ॥ प्रमाणे लः ॥ * ॥ शमः । दिष्टिः वितस्तिः ॥ द्विगोर्नित्यम् ॥ * ॥ द्वौ शमौ प्रमाणमस्य द्विशमम्॥ प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रज्वक्तव्यः ॥ * ॥ शममात्रम् । प्रस्थमात्रम् । पञ्चमात्रम् ॥ वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् ॥ * ॥ तावदेव तावद्द्वयसम् । तावन्मात्रम् ॥

१८३८--प्रमाणार्थमें वर्त्तमान प्रथमान्त शब्दके उत्तर षष्ठ्यर्थमें द्वयसज्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय हों, जैसे--ऊरू प्रमाणमस्य=ऊरुद्वयसम् । ऊरुदघ्नम् । ऊरुमात्रम् ।

प्रमाण अर्थमें ल अर्थात् द्वयसच् आदि प्रत्ययोंका लुक् हो * जैसे--शमः प्रमाणमस्य=शमः । दिष्टिः । वितस्तिः ॥

प्रमाणान्त द्विगु समासके उत्तर नित्य ही द्वयसच् आदि प्रत्ययोंका लुक् हो * जैसे--द्वौ शमौ परिमाणमस्य=द्विशमम् ।

प्रमाण, परिमाण और संख्यावाचक शब्दके उत्तर संशय अर्थमें मात्रच् प्रत्यय हो * जैसे--शममात्रम् । प्रस्थमात्रम् । पञ्चमात्रम् ।

वतुप्रत्ययान्तके उत्तर स्वार्थमें द्वयसच् और मात्रच् प्रत्यय बहुल करके हों, जैसे--तावदेव=तावद्द्वयसम् । तावन्मात्रम् ॥

१८३९ पुरुषहस्तिभ्यामण् च । ५ । २ । ३८ ॥

पुरुषः प्रमाणमस्य पौरुषम् । पुरुषद्वयसम् । हास्तिनम् । हस्तिद्वयसम् ॥

१८३९--पुरुष और हस्तिन् शब्दके उत्तर प्रमाण अर्थमें अण् और द्वयसच् आदि प्रत्यय हों, जैसे--पुरुषः प्रमाणमस्य=पौरुषम् । पुरुषद्वयसम् । हास्तिनम् । हस्तिद्वयसम् ॥

१८४० यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्। ५।२।३९॥

यत्परिमाणमस्य यावान्।तावान्।एतावान्॥

१८४०-यद्, तद् और एतद् शब्दके उत्तर परिमाण अर्थमें वतुप् प्रत्यय हो, जैसे-यत् परिमाणमस्य=यावान्। तावान्। एतावान्॥

१८४१ किमिदंभ्यां वो घः। ५।२।४०॥

आभ्यां वतुप्स्याद्वस्य च घः। कियान्।इयान्॥

१८४१-किम् और इदम् शब्दके उत्तर वतुप् प्रत्यय हो और वतुप् प्रत्ययके वकारके स्थानमें घ हो, जैसे-कियान्। इयान्॥

१८४२ किमः संख्यापरिमाणे डति च।५।२।४१॥

चाद्वतुप्। तस्य च वस्य घः स्यात्। का संख्या येषां ते कति। कियन्तः॥

१८४२-किम् शब्दके उत्तर संख्याके परिमाण अर्थमें डति प्रत्यय हो और चकारसे वतुप् प्रत्यय हो और वतुप प्रत्ययके वकारके स्थानमें घ आदेश हो, जैसे-का संख्या येषां ते=कति। कियन्तः॥

१८४३ संख्याया अवयवे तयप्। ५।२।४२॥

पञ्चावयवा अस्य पञ्चतयं दारु॥

१८४३-अवयवार्थमें संख्यावाचक शब्दके उत्तर षष्ठ्यर्थमें तयप् प्रत्यय हो, जैसे-पञ्च अवयवा अस्य=पञ्चतयं दारु॥

१८४४ द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा। ५।२।४३॥

द्वयम्। द्वितयम्। त्रयम्। त्रितयम्॥

१८४४-द्वि और त्रि शब्दके उत्तर तयप् प्रत्ययके स्थानमें विकल्प करके अयच् आदेश हो, जैसे-द्वयम्, द्वितयम्। त्रयम्, त्रितयम्॥

१८४५ उभादुदात्तो नित्यम् ।५।२।४४॥

उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात् स चाद्युदात्तः। उभयम्॥

॥ इति पाञ्चमिकप्रकरणम्॥

१८४५-उभ शब्दके उत्तर तयप् प्रत्ययके स्थानमें नित्य अयच् आदेश हो और वह अयच् आद्युदात्त हो, जैसे-उभयम्॥

॥ इति पाञ्चमिकप्रकरणम्॥

अथ मत्वर्थीयप्रकरणम्।

१८४६ तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः।५।२।४५॥

एकादश अधिका अस्मिन्नेकादशम्॥ शतसहस्रयोरेवेष्यते॥ * ॥ नेह। एकादश अधिका अस्यां विंशतौ॥ प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्व एवेष्यते॥ * ॥ नेह। एकादश माषा अधिका अस्मिन् सुवर्णशते॥

१८४६-'तदस्मिन् अधिकम्' इस अर्थमें दशशब्दान्त शब्दके उत्तर ड प्रत्यय हो, जैसे-एकादश अधिका अस्मिन्=एकादशम्।

शत और सहस्र शब्द वाच्य होनेपर ही यह विधि इष्ट है* इससे यहां न हुआ, एकादश अधिका अस्यां विंशतौ।

प्रकृति और प्रत्ययार्थका समान जातीयत्व होनेपर ही यह विधि इष्ट है * इससे यहां नहीं हुआ, एकादश माषा अधिका अस्मिन् सुवर्णशते॥

१८४७ शदन्तविंशतेश्च।५।२।४६॥

डः स्यादुक्तेऽर्थे। त्रिंशदधिका अस्मिन् त्रिंशं शतम्। विंशम्॥

१८४७-उक्त अर्थमें शदन्त और विंशति शब्दके उत्तर ड प्रत्यय हो, जैसे-त्रिंशदधिका अस्मिन्=त्रिंशं शतम्। विंशम्॥

१८४८ संख्याया गुणस्य निमाने मयट्।५।२।४७॥

भागस्य मूल्ये वर्तमानात्प्रथमान्तात्संख्यावाचिनः षष्ठ्यर्थे मयट् स्यात्। यवानां द्वौ भागौ निमानमस्योदश्विद्भागस्य द्विमयमुदश्विद्यवानाम्। गुणस्येति किम्। द्वौ व्रीहियवौ निमानमस्योदश्वितः। निमाने किम्। द्वौ गुणौ क्षीरस्य एकस्तैलस्य द्विगुणं क्षीरं पच्यते तैलेन॥

१८४८-गुणका निमान, अर्थात् भागका मूल्य अर्थमें वर्तमान प्रथमान्त संख्यावाचक शब्दके उत्तर षष्ठ्यर्थमें मयट् प्रत्यय हो, जैसे-यवानां द्वौ भागौ निमानमस्य उदश्विद्भागस्य=द्विमयमुदश्विद् यवानाम्। 'गुणस्य' ऐसा कहनेसे व्रीहियवौ निमानमस्य उदश्वितः, यहां न हुआ। निमाने ऐसा क्यों कहा? तो द्वौ गुणौ क्षीरस्य एकस्तैलस्य द्विगुणं क्षीरं पच्यते तैलेन, यहां न हो॥

१८४९ तस्य पूरणे डट्।५।२।४८॥

एकादशानां पूरण एकादशः॥

१८४९-पूरणार्थमें षष्ठ्यन्त संख्यावाचकसे डट् प्रत्यय हो, जैसे-एकादशानां पूरणः=एकादशः॥

१८५० नान्तादसंख्यादेर्मट् ।५।२।४९॥

डटो मडागमः स्यात् । पञ्चानां पूरणः पञ्चमः । नान्तात्किम् । विंशः । असंख्यादेः किम् । एकादशः ॥

१८५०–संख्यावाचक शब्द आदिमें न हो ऐसे नकारान्त संख्यावाचक शब्दके उत्तर डट् प्रत्ययको मट्का आगम हो, जैसे–पञ्चानां पूरणः=पञ्चमः।नकारान्त न होनेपर मट्का आगम नहीं होगा, जैसे–विंशः । संख्यावाचक शब्द पूर्वमें होनेपर मडागम नहीं होगा, जैसे–एकादशः ॥

१८५१ षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् । ५ । २ । ५१ ॥

एषां थुगागमः स्याड्डटि।षण्णां पूरणः षष्ठः। कतिथः । कतिपयशब्दस्यासंख्यात्वेप्यत एव ज्ञापकाड्डट् । कतिपयथः । चतुर्थः ॥ चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च ॥ * ॥ तुरीयः । तुर्यः ॥

१८५१–डट् प्रत्यय परे रहते षट्, कति, कतिपय और चतुर् शब्दको थुक्का आगम हो, जैसे–षण्णां पूरणः=षष्ठः । कतिथः । इसी ज्ञापकके कारण कतिपय शब्दके असंख्यात्व होनेपर भी डट् प्रत्यय हुआ, जैसे–कतिपयथः । चतुर्थः ॥

चतुर् शब्दके उत्तर छ और यत् प्रत्यय और आद्य अक्षरका लोप हो * जैसे–तुरीयः । तुर्यः ॥

१८५२ बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक् । ५ । २ । ५२ ॥

डटीत्येव । पूगसङ्घयोरसंख्यात्वेप्यत एव डट् । बहुतिथः इत्यादि ॥

१८५२–डट् प्रत्यय परे रहते बहु, पूग, गण और संघ शब्दको तिथुक्का आगम हो, पूग और संघ शब्दको असंख्यात्व होनेपर भी इसी ज्ञापकके कारण डट् प्रत्यय हुआ, जैसे-बहुतिथः, इत्यादि ॥

१८५३ वतोरिथुक् । ५ । २ । ५३ ॥

डटीत्येव । यावतिथः ॥

१८५३–डट् प्रत्यय परे रहते वतुप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर इथुक्का आगम हो, जैसे–यावतिथः ॥

१८५४ द्वेस्तीयः । ५ । २ । ५४ ॥

डटोपवादः । द्वयोः पूरणो द्वितीयः ॥

१८५४–द्वि शब्दके उत्तर उक्त अर्थमें तीय प्रत्यय हो, यह डट् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे–द्वयोः पूरणः=द्वितीयः ॥

१८५५ त्रेः सम्प्रसारणं च ।५।२।५५॥

तृतीयः ॥

१८५५–त्रि शब्दके उत्तर तीय प्रत्यय हो और त्रि शब्दको सम्प्रसारण हो, जैसे–तृतीयः ॥

१८५६ विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् । ५ । २ । ५६ ॥

एभ्यो डटस्तमडागमो वा स्यात् । विंशतितमः । विंशः । एकविंशतितमः । एकविंशः ॥

१८५६–विंशत्यादि शब्दके उत्तर डट् प्रत्ययको विकल्प करके तमट्का आगम हो, जैसे–विंशतितमः, विंशः । एकविंशतितमः, एकविंशः ॥

१८५७ नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च । ५ । २ । ५७ ॥

शतस्य पूरणः शततमः । एकशततमः । मासादेरत एव डट् । मासतमः ॥

१८५७–शतादि शब्द, मास, अर्द्धमास और संवत्सर शब्दके उत्तर डट्को नित्य तमडागम हो, जैसे–शतस्य पूरणः=शततमः । एकशततमः । मासादि शब्दके उत्तर इसी ज्ञापनसे डट् प्रत्यय हुआ, जैसे–मासतमः ।

१८५८ षष्ट्यादेश्चाऽसंख्यादेः।५।२।५८॥

षष्टितमः । संख्यादेस्तु विंशत्यादिभ्य इति विकल्प एव । एकषष्टितमः । एकषष्टः ॥

१८५८–संख्यावाचक शब्द पूर्वमें न हो ऐसे षष्ट्यादि शब्दोंके उत्तर डट्को तमट्का आगम हो, जैसे–षष्टितमः । संख्यावाचक पूर्वमें होनेपर तो " विंशत्यादिभ्यः० १८५६ " इस सूत्रसे विकल्प करके डट् प्रत्ययको तमट्का आगम होगा, जैसे–एकषष्टितमः, एकषष्टः ॥

१८५९ मतौ छः सूक्तसाम्नोः।५।२।५९॥

मत्वर्थे छः स्यात् । अच्छावाकशब्दोऽस्मिन्नस्ति अच्छावाकीयं सूक्तम् । वारवन्तीयं साम॥

१८५९–सूक्त और साम होनेपर मत्वर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकसे छ प्रत्यय हो,जैसे–अच्छावाक शब्दोऽस्मिन्नस्ति= अच्छावाकीयं सूक्तम् । वारवन्तीयं साम ॥

१८६० अध्यायानुवाकयोर्लुक्।५।२।६०॥

मत्वर्थस्य छस्य । अत एव ज्ञापकात्तत्र छः । विधानसामर्थ्याच्च विकल्पेन लुक् । गर्दभाण्डः । गर्दभाण्डीयः ॥

१८६०–अध्याय और अनुवाक वाच्य होनेपर मत्वर्थमें विहित छ प्रत्ययका लुक् हो, इसी ज्ञापकके कारण इस स्थलमें छ प्रत्यय हुआ, उसका विधानसामर्थ्यके कारण विकल्प करके लुक् हुआ, जैसे–गर्दभाण्डः, गर्दभाण्डीयः ॥

१८६१ विमुक्तादिभ्योऽण् । ५ ।२।६१॥

मत्वर्थेऽण् स्यादध्यायानुवाकयोः । विमुक्तशब्दोऽस्मिन्नस्ति वैमुक्तः । दैवासुरः ॥

१८६१–अध्याय और अनुवाक वाच्य होनेपर विमुक्तादि शब्दोंके उत्तर मत्वर्थमें अण् प्रत्यय हो, जैसे–विमुक्तशब्दः अस्मिन्नस्ति=वैमुक्तः । दैवासुरः ॥

१८६२ गोषदादिभ्यो वुन् ।५।२।६२ ॥

मत्वर्थेऽध्यायानुवाकयोः । गोषदकः । इषेत्वकः ॥

१८६२-अध्याय और अनुवाक वाच्य होनेपर गोषदादि शब्दोंके उत्तर मत्वर्थमें वुन् प्रत्यय हो, जैसे-गोषदकः । इषेत्वकः ॥

१८६३ तत्र कुशलः पथः ।५।२।६३ ॥

वुन् स्यात् । पथि कुशलः पथिकः ॥

१८६३-'कुशल' इस अर्थमें सप्तम्यन्त पथिन् शब्दके उत्तर वुन् प्रत्यय हो, जैसे-पथि कुशलः=पथिकः ॥

१८६४ आकर्षादिभ्यः कन्।५।२।६४॥

आकर्षे कुशलः आकर्षकः । आकषादिभ्य इति रेफरहितो मुख्यः पाठः।आकषो निकषः ॥

१८६४-कुशलार्थमें आकर्षादि शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-आकर्षे कुशलः=आकर्षकः । "आकषादिभ्यः" ऐसा रेफरहित पाठ मुख्य है । आकषो निकषः (आकष निकष पत्थरको कहतेहैं) ॥

१८६५ धनहिरण्यात्कामे ।५।२।६५ ॥

काम इच्छा । धने कामो धनको देवदत्तस्य । हिरण्यकः ॥

१८६५-कामार्थमें धन और हिरण्य शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, काम शब्दसे इच्छा जानना, जैसे-धने कामः= धनकः देवदत्तस्य । हिरण्यकः ॥

१८६६ स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते ।५।२।६६ ॥

केशेषु प्रसितः केशकः तद्रचनायां तत्पर इत्यर्थः ॥

१६६६-प्रसितार्थमें स्वाङ्गवाचक शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-केशेषु प्रसितः=केशकः । केशरचनामें तत्पर व्यक्तिको 'केशकः' कहतेहैं ॥

१८६७ उदराट्ठगाद्यूने ।५। २। ६७ ॥

अविजिगीषौ ठक् स्यात्कनोऽपवादः । बुभुक्षयाऽत्यन्तपीडित उदरे प्रसित औदरिकः । आद्यूने किम् । उदरकः । उदरपरिमार्जनादौ प्रसक्त इत्यर्थः ॥

१८६७-आद्यून अर्थात् अविजिगीषा अर्थ होनेपर प्रसितार्थमें उदर शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, यह ठक्, कन् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-उदरे प्रसितः=औदरिकः, अर्थात् क्षुधासे अत्यन्त कातर । आद्यून अर्थ न होनेपर, उदरकः, अर्थात् उदर परिमार्जनादिमें प्रसक्त ॥

१८६८ सस्येन परिजातः ।५।२।६८ ॥

कन् स्मर्यते न तु ठक् । सस्यशब्दो गुणवाची न तु धान्यवाची। शस्येनेति पाठान्तरम्। सस्येन गुणेन परिजातः सम्बद्धः सस्यकः साधुः॥

१८६८-'सस्येन परिजातः' अर्थात् गुणसे युक्त, इस अर्थमें सस्य शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, ठक् प्रत्यय न हो, सस्य शब्द गुणवाची है, धान्यवाचक नहीं है, 'शस्येन' ऐसा पाठान्तर भी है । जैसे-सस्येन गुणेन परिजातः सम्बद्धः= सस्यकः, अर्थात् साधु ॥

१८६९ अंशं हारी । ५ । २ । ६९ ॥

हारीत्यावश्यके णिनिः । अत एव तद्योगे षष्ठी न । अंशको दायादः ॥

१८६९-'हारी' इस अर्थमें द्वितीयान्त अंश शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, 'हारी' इसमें हृ धातुके उत्तर आवश्यकमें णिनि प्रत्यय है, इस कारण तद्योग (णिनियोग) में षष्ठी नहीं हुई, जैसे-अंशको दायादः ॥

१८७० तन्त्रादचिरापहृते । ५।२।७० ॥

तन्त्रकः पटः । प्रत्यग्र इत्यर्थः ॥

१८७०-अचिरापहृत अर्थमें तंत्र शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-तंत्रकः पटः, प्रत्यग्र अर्थात् नवीन वस्त्र ॥

१८७१ ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम् । ५ । २ । ७१ ॥

आयुधजीविनो ब्राह्मणा यस्मिन्देशे स ब्राह्मणकः । अल्पमन्नं यस्यां सा उष्णिका यवागूः । अन्नशब्दस्य उष्णादेशो निपात्यते ॥

१८७१-संज्ञा होनेपर 'ब्राह्मणकः' और 'उष्णिका' यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों, आयुधजीवी ब्राह्मण जिस देशमें रहें उसको 'ब्राह्मणक' कहतेहैं । जिसमें अल्प अन्न है, उसको उष्णिका, अर्थात् यवागू (लप्सी) कहतेहैं, अन्न शब्दके स्थानमें निपातनसे उष्ण आदेश हुआहै ॥

१८७२ शीतोष्णाभ्यां कारिणि । ५ । २ । ७२ ॥

शीतं करोतीति शीतकोऽलसः । उष्णं करोतीति उष्णकः शीघ्रकारी ॥

१८७२-'कारी' अर्थमें शीत और उष्ण शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-शीतं करोतीति=शीतिकः अर्थात् अलस । उष्णं करोतीति उष्णकः, अर्थात् शीघ्रकारी ॥

१८७३ अधिकम् । ५ । २ । ७३ ॥

अध्यारूढशब्दात्कन् उत्तरपदलोपश्च ॥

१८७३-अध्यारूढ शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय और उत्तर पदका लोप हो, जैसे-अधिकम् ॥

१८७४ अनुकाभिकाभीकः कमिता । ५ । २ । ७४ ॥

अन्वभिभ्यां कन् अभेः पाक्षिको दीर्घश्च । अनुकामयते अनुकः । अभिकामयते अभिकः । अभीकः ॥

१८७४–कमितार्थमें अनु और अभि शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय और अभि शब्दके इकारको पाक्षिक दीर्घ भी हो, जैसे–अनुकामयते=अनुकः । अभिकामयते=अभीकः, अभिकः, अर्थात् कामुक ॥

१८७५ पार्श्वेनान्विच्छति ।५।२।७५॥

अनृजुरुपायः पार्श्वं तेनान्विच्छति पार्श्वकः॥

१८७५–'अन्विच्छति' इस अर्थमें तृतीयान्त पार्श्व शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे–अनृजुरुपायः पार्श्वं तेन अन्विच्छति=पार्श्वकः ॥

१८७६अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ । ५ । २ । ७६ ॥

तीक्ष्ण उपायोऽयःशूलं तेनान्विच्छति आयःशूलिकः साहसिकः । दण्डाजिनं दम्भः तेनान्विच्छति दाण्डाजिनिकः ॥

१८७६–'अन्विच्छति' इस अर्थमें तृतीयान्त अयःशूल और दण्डाजिन शब्दके उत्तर क्रमसे ठक् और ठञ् प्रत्यय हों, जैसे–तीक्ष्ण उपायोऽयःशूलम्, तेन अन्विच्छति=आयःशूलिकः, अर्थात् साहसिक । दण्डाजिनं दंभः तेन अन्विच्छति=दांडाजिनिकः ॥

१८७७ तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा । ५ । २ । ७७ ॥

कन् स्यात्पूरणप्रत्ययस्य च लुग्वा । द्वितीयकं द्विकं वा ग्रहणं देवदत्तस्य । द्वितीयेन रूपेण ग्रहणमित्यर्थः ॥ तावतिथेन गृह्णातीति कन्वक्तव्यो नित्यं च लुक् ॥*॥ षष्ठेन रूपेण गृह्णाति षट्को देवदत्तः । पञ्चकः ॥

१८७७–'ग्रहणम्' इस अर्थमें तृतीयान्त पूरणप्रत्ययान्तसे कन् प्रत्यय और पूरणप्रत्ययका विकल्प करके लुक् हो, जैसे–द्वितीयकं, द्विकं वा ग्रहणं देवदत्तस्य, अर्थात् द्वितीय रूपसे ग्रहण ।

तृतीयान्त पूरण प्रत्ययान्तसे 'गृह्णाति' इस अर्थमें कन् प्रत्यय और नित्य पूरण प्रत्ययका लुक् हो * जैसे–षष्ठेन रूपेण गृह्णाति=षट्को देवदत्तः । पञ्चकः ॥

१८७८ स एषां ग्रामणीः । ५ ।२।७८॥

देवदत्तो मुख्योऽस्य देवदत्तकः । त्वत्कः । मत्कः ॥

१८७८–'वह इसका ग्रामणी अर्थात् श्रेष्ठ है' इस अर्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे–देवदत्तो मुख्योऽस्य=देवदत्तकः । त्वत्कः । मत्कः ॥

१८७९ शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे । ५ । २ । ७९ ॥

शृङ्खलकः करभः ॥

१८७९–'शृंखल इसका बंधन है' इस अर्थमें करभ वाच्य होनेपर शृंखल शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे–शृंखलकः करभः ॥

१८८० उत्क उन्मनाः । ५ । २ । ८० ॥

उद्गतमनस्कवृत्तेरुच्छब्दात्स्वार्थे कन् । उत्क उत्कण्ठितः ॥

१८८०–उद्गतमनस्कवृत्ति उत् शब्दके उत्तर स्वार्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे–उत्कः, अर्थात् उत्कंठित ॥

१८८१ कालप्रयोजनाद्रोगे ।५।२।८१॥

कालवचनात्प्रयोजनवचनाच्च कन् स्याद्रोगे द्वितीयेऽहनि भवो द्वितीयको ज्वरः । प्रयोजनं कारणं रोगस्य फलं वा । विषपुष्पैर्जनितो विषपुष्पकः । उष्णं कार्यमस्य उष्णकः । रोगे किम् । द्वितीयो दिवसोऽस्य ॥

१८८१–रोगार्थमें कालवाचक और प्रयोजनवाचक शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे–द्वितीयेऽहनि भवः=द्वितीयकः ज्वरः । प्रयोजन शब्दसे कारण अथवा रोगका फल जानना, जैसे–विषपुष्पैर्जनितः=विषपुष्पकः । उष्णं कार्यमस्य=उष्णकः । रोग न होनेपर, जैसे–द्वितीयो दिवसोऽस्य ॥

१८८२ तदस्मिन्नन्नं प्राये संज्ञायाम् । ५ । २ । ८२ ॥

प्रथमान्तात्सप्तम्यर्थे कन् स्यात् यत्प्रथमान्तमन्नं चेत्प्रायविषयं तत् । गुडापूपाः प्रायेणान्नमस्यां गुडापूपिका पौर्णमासी ॥ वटकेभ्य इनिर्वाच्यः ॥ * ॥ वटकिनी ॥

१८८२–संज्ञा होनेपर प्रायविषयीभूत अन्नवाचक हो तो प्रथमान्त शब्दके उत्तर सप्तम्यर्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे–गुडापूपाः प्रायेणान्नमस्याम्=गुडापूपिका, अर्थात् पौर्णमासी।

वटक शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो * जैसे–वटकिनी (फुलौरी वा बड़ा) ॥

१८८३ कुल्माषादञ् । ५ । २ । ८३ ॥

कुल्माषाः प्रायेणान्नमस्यां कौल्माषी ॥

१८८३–उक्त अर्थमें कुल्माष शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो, जैसे–कुल्माषा प्रायेणान्नमस्याम्=कौल्माषी । कुल्माष शब्दसे अर्द्धस्विन्न गोधूमादि जानना ॥

१८८४ श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ।५।२।८४॥

श्रोत्रियः । वेत्यनुवृत्तेश्छान्दसः ॥

१८८४–'अध्ययन करता है' इस अर्थमें द्वितीयान्त छन्दस् शब्दके उत्तर निपातनसे घन् प्रत्यय और छन्दस्को श्रोत्र आदेश हो, जैसे–श्रोत्रियः । इस सूत्रमें वा शब्दकी अनुवृत्ति आनेसे 'छान्दसः' यह पद सिद्ध हुआ ॥

१८८५ श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ। ५।२।८५॥

श्राद्धी। श्राद्धिकः ॥

१८८५-' अनेन भुक्तम् ' इस अर्थमें श्राद्ध शब्दके उत्तर इनि और ठन् प्रत्यय हो, जैसे-श्राद्धं भुक्तमनेन=श्राद्धी,=श्राद्धिकः । इस स्थलमें श्राद्ध शब्दसे श्राद्धसाधन द्रव्य जानना, पितृलोकके उद्देश्यसे कर्म नहीं जानना क्योंकि, उनका साक्षात् भोजन असम्भव है ॥

१८८६ पूर्वादिनिः ।५।२।८६॥

पूर्वं कृतमनेन पूर्वी ॥

१८८६-' कृतम् ' इस अर्थमें पूर्व शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे-पूर्वी ॥

१८८७ सपूर्वाच्च ।५।२।८७॥

कृतपूर्वी ॥

१८८७-'कृतम्' इस अर्थमें तृतीयान्त सपूर्वक पूर्व शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे-कृतपूर्वी ॥

१८८८ इष्टादिभ्यश्च ।५।२।८८॥

इष्टमनेन इष्टी । अधीती ॥

१८८८-'इष्टम्' इस अर्थमें तृतीयान्त इष्टादि शब्दोंके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे-इष्टी । अधीती ॥

१८८९ छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि ।५।२।८९॥

लोके तु परिपन्थिशब्दो न न्याय्यः ॥

१८८९-वेदमें शत्रुपर्याय पर्यवस्थातृ शब्दके उत्तर स्वार्थमें इनि प्रत्यय हो, और अवस्थातृ शब्दके स्थानमें निपातनसे पंथ और पर आदेश हो, जैसे-परिपंथी । परिपरी । लोकमें परिपन्थि शब्द उचित नहीं है ॥

१८९० अनुपद्यन्वेष्टा ।५।२।९०॥

अनुपदमन्वेष्टा । अनुपदी गवाम् ॥

१८९०-अन्वेष्टाअर्थमें अनुपद शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे-अनुपदमन्वेष्टा=अनुपदी गवाम् ॥

१८९१ साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम् ।५।२।९१॥

साक्षाद्द्रष्टा साक्षी ॥

१८९१-संज्ञा होनेपर द्रष्टा अर्थमें साक्षात् शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे-साक्षात् द्रष्टा=साक्षी, यहां "अव्ययानां भमात्रे टिलोपः" इससे टिलोप हुआ ॥

१८९२ क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः। ५।२।९२॥

क्षेत्रियो व्याधिः । शरीरान्तरे चिकित्स्यः । अप्रतीकार्य इत्यर्थः ॥

१८९२-'पर क्षेत्रमें अर्थात् शरीरान्तरमें चिकित्स्य' इस अर्थमें 'क्षेत्रियच्' यह निपातनसे सिद्ध हो, अर्थात् सप्तम्यन्त परक्षेत्र शब्दके उत्तर चिकित्स्यार्थमें घच् प्रत्यय हो, और निपातनसे पर शब्दका लोप हो, जैसे-क्षेत्रियो व्याधिः, जो परक्षेत्रमें अर्थात् शरीरान्तरमें चिकित्स्य हो उसको क्षेत्रिय कहतेहैं अर्थात् अप्रतीकार्य्य व्याधि ॥

१८९३ इन्द्रियमिन्द्रलिंगमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा । ५।२।९३॥

इन्द्र आत्मा तस्य लिङ्गं करणेन कर्तुरनुमानात् । इति शब्दः प्रकारार्थः । इन्द्रेण दुर्जयमिन्द्रियम् ॥

१८९३-इन्द्र लिङ्ग (चिह्न), इन्द्रदृष्ट, इन्द्रसृष्ट, इन्द्रजुष्ट, इन्द्रदत्त, इन अर्थोंमें इन्द्र शब्दके उत्तर निपातनसे घच् प्रत्यय हो, जैसे-इन्द्रियम् । इन्द्र शब्दसे आत्मा समझना, उसके अनुमापकको इन्द्रिय कहतेहैं, इस स्थलमें करणके कर्त्ताका अनुमान किया जाताहै। इति शब्द प्रकारार्थ है, इससे इन्द्रेण दुर्जयम्=इन्द्रियम्, ऐसा हुआ ॥

१८९४ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् । ५।२।९४॥

गावोऽस्यास्मिन्वा सन्ति गोमान् ॥

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने ॥ सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥१॥

१८९४-'अस्य अस्मिन् वा अस्ति' इस अर्थमें प्रथमान्त पदसे मतुप् प्रत्यय हो, जैसे-गावोऽस्य अस्मिन् वा सन्ति=गोमान् । भूमि, अर्थात् बाहुल्यार्थमें और निन्दार्थमें, प्रशंसार्थमें, नित्ययोगमें, अतिशयार्थमें, संसर्गार्थमें और अस्तिविवक्षामें मतुप् आदि प्रत्यय होतेहैं ॥

१८९५ रसादिभ्यश्च ।५।२।९५॥

मतुप् । रसवान् । रूपवान् । अन्यमत्वर्थीयनिवृत्त्यर्थं वचनम् । रस, रूप, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, शब्द, स्नेह, भाव ॥ गुणात्, एकाचः ॥ स्ववान् । गुणग्रहणं रसादीनां विशेषणम् ॥

१८९५-रसादि शब्दोंके उत्तर उक्त अर्थमें मतुप् प्रत्यय हो, जैसे-रसवान् । रूपवान् । यह सूत्र अन्य मत्वर्थीय प्रत्ययकी निवृत्तिके निमित्त है । रसादि-रस, रूप, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, शब्द, स्नेह, भाव, इतनेहैं ।

(गुणात्) गुणग्रहण रसादिकोंका विशेषण है इससे गुणवाचक ही रसादिसे मतुप् प्रत्यय होगा।

एकस्वरयुक्त शब्दके उत्तर मतुप् प्रत्यय हो, जैसे-स्ववान् ॥

१८९६ तसौ मत्वर्थे ।१।४।१९॥

तान्तसान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे । वसोः संप्रसारणम् । विदुष्मान् ॥ गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः ॥ * ॥ शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः पटः । कृष्णः ॥

१८९६–मत्वर्थ प्रत्यय परे रहते तकारान्त और सकारान्त शब्द भसंज्ञक हों। "वसोः सम्प्रसारणम्" इससे वस्वन्त अङ्गको संप्रसारण हुआ, जैसे–विदुष्मान्।

गुणवाचक शुक्लादि शब्दोंके उत्तर मतुप् प्रत्ययका लुक् हो * जैसे–शुक्लो गुणोऽस्यास्ति=शुक्लः पटः। कृष्णः, इत्यादि ॥

१८९७ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः। ८। २। ९॥

मवर्णाऽवर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जात्परस्य मतोर्मस्य वः स्यात्। किंवान्। ज्ञानवान्। विद्यावान्। लक्ष्मीवान्। यशस्वान्। भास्वान्। यवादेस्तु यवमान्। भूमिमान्॥

१८९७–मवर्णान्त और अवर्णान्त और मवर्ण और अवर्णोपध यवादिभिन्न शब्दके उत्तर मतुप्के मकारके स्थानमें वकार हो, जैसे–किंवान्। ज्ञानवान्। विद्यावान्। लक्ष्मीवान्। यशस्वान्। भास्वान्। यवादि होनेपर जैसे–यवमान्। भूमिमान्॥

१८९८ झयः। ८। २। १०॥

झयन्तान्मतोर्मस्य वः स्यात्। अपदान्तत्वान्न जश्त्वम्। विद्युत्वान्॥

१८९८–झयन्तसे परे स्थित मतुप् प्रत्ययके मकारके स्थानमें वकार हो, जैसे–विद्युत्वान्, यहां अपदान्तत्वके कारण (१८९६) जश्त्व नहीं हुआ॥

१८९९ संज्ञायाम्। ८। २। ११॥

मतोर्मस्य वः स्यात्। अहीवती। मुनीवती। शरादीनां चेति दीर्घः॥

१८९९–संज्ञार्थमें मतुप् प्रत्ययके मकारके स्थानमें वकार हो, जैसे–अहीवती, मुनीवती। यहां "शरादीनाञ्च १०४२" इस सूत्रसे दीर्घ होताहै॥

१९०० आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती। ८। २। १२॥

एते षट् संज्ञायां निपात्यन्ते। आसनशब्दस्यासन्दीभावः। आसन्दीवान् ग्रामः। अन्यत्रासनवान्। अस्थिशब्दस्याष्ठीभावः। अष्ठीवान्नाम ऋषिः। अस्थिमानन्यत्र। चक्रशब्दस्य चक्रीभावः। चक्रीवान्नाम राजा। चक्रवानन्यत्र। कक्ष्यायाः सम्प्रसारणम्। कक्षीवान्नाम ऋषिः। कक्ष्यावानन्यत्र। लवणशब्दस्य रुमण्भावः। रुमण्वान्नाम पर्वतः। लवणवानन्यत्र। चर्मणो नलोपाभावो णत्वं च। चर्मण्वती नाम नदी। चर्मवत्यन्यत्र॥

१९००–आसन्दीवत्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्, कक्षीवत्, रुमण्वत्, चर्मण्वत्, यह छै मतुप्प्रत्ययान्त शब्द संज्ञामें

निपातनसे सिद्ध हों, आसन शब्दके स्थानमें आसन्दी आदेश हुआ, जैसे–आसन्दीवान् ग्रामः। अन्यत्र 'आसनवान्' ऐसा होगा। अस्थि शब्दके स्थानमें अष्ठी आदेश हुआ, जैसे–अष्ठीवान्। अन्यत्र अस्थिमान्। चक्र शब्दके स्थानमें चक्री आदेश हुआ, जैसे–चक्रीवान् नाम राजा। अन्यत्र चक्रवान्। कक्ष्या शब्दको सम्प्रसारण (य–के स्थानमें ई) होकर कक्षीवान् नाम ऋषिः। अन्यत्र कक्ष्यावान्। लवण शब्दके स्थानमें रुमण् आदेश होकर रुमण्वान् नाम पर्वतः। अन्यत्र लवणवान्। चर्मन् शब्दके नकारके लोपका अभाव और णत्व होकर चर्मण्वती नाम नदी। अन्यत्र चर्मवती॥

१९०१ उदन्वानुदधौ च। ८। २। १३॥

उदकस्य उदन्भावो मतौ उदधौ संज्ञायां च। उदन्वान् समुद्रः ऋषिश्च॥

१९०१--मतुप् प्रत्यय परे रहते उदधि अर्थात् समुद्र अर्थ और संज्ञामें उदक शब्दके स्थानमें उदन् आदेश हो, जैसे--उदन्वान् समुद्रः, ऋषिश्च॥

१९०२ राजन्वान् सौराज्ये। ८। २। १४॥

राजन्वती भूः। राजवानन्यत्र॥

१९०२--सौराज्य होनेपर मतुप् प्रत्यय परे रहते राजन् शब्दके नकारका लोप न हो, जैसे--राजन्वती भूः। अन्यत्र राजवान्॥

१९०३ प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्। ५। २। ९६॥

चूडालः। चूडावान्। प्राणिस्थात्किम्। शिखावान्दीपः। आतः किम्। हस्तवान्। प्राण्यङ्गादेव। नेह। मेधावान्। प्रत्ययस्वरेणैव सिद्धे अन्तोदात्तत्वे चूडालोसीत्यादौ स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादाविति स्वरितबाधनार्थश्चकारः॥

१९०३--प्राणिस्थ आकारान्त शब्दके उत्तर विकल्प करके लच् प्रत्यय हो, जैसे- चूडालः। चूडावान्। प्राणिस्थ न होनेपर जैसे- शिखावान् दीपः। आकारान्त न होनेपर, हस्तवान्। प्राणीका अङ्ग होनेसे ही लच् प्रत्यय होगा, इससे 'मेधावान्' यहां न हुआ।

प्रत्यय स्वरसे अन्तोदात्तत्व सिद्ध होनेसे 'चूडालोऽसि' इत्यादि स्थलमें "स्वरितो वानुदात्ते पदादौ ३६५९" इस सूत्रसे स्वरितके बाधके निमित्त प्रत्ययमें चकार है॥

१९०४ सिध्मादिभ्यश्च। ५। २। ९७॥

लज्वा स्यात्। सिध्मलः। सिध्मवान्। अन्यतरस्यांग्रहणं मतुप्समुच्चयार्थं न तु प्रत्ययविकल्पार्थम्। तेनाकारान्तेभ्य इनिठनौ न॥ वातदन्तबलललाटानामूङ् च॥॥ वातूलः॥

१९०४--सिध्मादि शब्दोंके उत्तर विकल्प करके लच् प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें मतुप् होगा, जैसे--सिध्मलः, सिध्मवान्।

'अन्यतरस्याम्' पदका ग्रहण मतुप् समुच्चयार्थ है, प्रत्ययके विकल्पार्थ नहीं है, इस कारण अकारान्त शब्दके उत्तर इनि और ठन् प्रत्यय न हुआ।

वात, दन्त, बल और ललाट शब्दके उत्तर लच् प्रत्यय और ऊङ् आदेश हो * जैसे--वातूलः॥

१९०५ वत्सांसाभ्यां कामबले५।२।९८॥

आभ्यां लच् स्याद्यथासंख्यं कामवति बलवति चार्थे। वत्सलः। अंसलः॥

१९०५-कामवान् और बलवान् अर्थमें यथाक्रम वत्स और अंश शब्दके उत्तर विकल्प करके लच् प्रत्यय हो, जैसे-वत्सलः। अंसलः॥

१९०६ फेनादिलच्च।५।२।९९॥

चाल्लच्। अन्यतरस्यांग्रहणं मतुप्समुच्चयार्थमनुवर्तते। फेनिलः। फेनलः। फेनवान्॥

१९०६--फेन शब्दके उत्तर इलच् प्रत्यय हो और चकारसे लच् प्रत्यय हो, यहां 'अन्यतरस्याम्' यह पद मतुप् प्रत्ययके समुच्चयार्थ अनुवृत्त है, जैसे-फेनिलः, फेनलः, फेनवान्॥

१९०७ लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः।५।२।१००॥

लोमादिभ्यः शः। लोमशः। लोमवान्। रोमशः। रोमवान्॥ पामादिभ्यो नः। पामनः॥ अङ्गात्कल्याणे॥ ॥ अङ्गना॥ लक्ष्म्या अच्च॥ ॥ लक्ष्मणः॥ विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः॥ ॥ विषुणः॥ पिच्छादिभ्य इलच्॥ पिच्छिलः। पिच्छवान्। उरसिलः। उरस्वान्॥

१९०७--लोमादि शब्दोंके उत्तर श प्रत्यय हो,जैसे-लोमशः, लोमवान्। रोमशः, रोमवान्। पामादि शब्दोंके उत्तर न प्रत्यय हो, जैसे--पामनः।

अङ्ग शब्दके उत्तर कल्याण अर्थमें न प्रत्यय हो,जैसे-अङ्गना।

न प्रत्यय परे रहते लक्ष्मी शब्दके ईकारके स्थानमें अकार हो, जैसे--लक्ष्मणः।

अकृतसंधिक विष्वक् शब्दके उत्तर न प्रत्यय हो और उत्तरपदका लोप हो, जैसे--विषुणः। पिच्छादि शब्दोंके उत्तर इलच् प्रत्यय हो, जैसे--पिच्छिलः, पिच्छावान्। उरसिलः,उरस्वान्, इत्यादि॥

१९०८ प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः।५।२।१०१॥

प्राज्ञो व्याकरणम्। प्राज्ञा। श्राद्धः। आर्चः॥ वृत्तेश्च॥ * ॥ वार्तः॥

१९०८--प्रज्ञा, श्रद्धा और अर्चा शब्दोंके उत्तर ण प्रत्यय हो, जैसे--प्रज्ञा अस्यास्ति=प्राज्ञो व्याकरणम्। प्राज्ञा। श्राद्धः। आर्चः।

वृत्ति शब्दके उत्तर भी ण प्रत्यय हो * जैसे--वार्तः॥

१९०९ तपस्सहस्राभ्यां विनीनी।५।२।१०२॥

विनीन्योरिकारो नकारपरित्राणार्थः। तपस्वी। सहस्री। असन्तत्वाददन्तत्वाच्च सिद्धे पुनर्वचनमणा बाधा मा भूदिति सहस्रात्तु ठनोपि बाधनार्थम्॥

१९०९--तपस् और सहस्र शब्दके उत्तर यथाक्रम विनि और इनि प्रत्यय हों, विनि और इनि प्रत्ययका इकार नकारके परित्राणार्थ है, जैसे--तपोऽस्मिन् अस्तीति=तपस्वी। सहस्री।

असन्तत्व और अकारान्तत्वके कारण उक्त दोनों शब्दोंके उत्तर उक्त दोनों प्रत्ययोंकी सिद्धि होजाती फिर सूत्र करनेकी क्या आवश्यकता है? इसपर कहतेहैं कि, अण् प्रत्ययसे इसका बाध न हो इस कारण यह सूत्र है और सहस्र शब्दके उत्तर ठन् प्रत्ययके भी बाधनार्थ है॥

१९१० अण् च।५।२।१०३॥

योगविभाग उत्तरार्थः। तापसः। साहस्रः॥ ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम्॥ * ॥ ज्यौत्स्नः। तामिस्रः॥

१९१०--तपस् और सहस्र शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, "अण् च" ऐसा भिन्न सूत्रकरण उत्तरार्थ है। तापसः। साहस्रः।

ज्योत्स्नादि शब्दोंके उत्तर भी अण् प्रत्यय हो * जैसे--ज्यौत्स्नः। तामिस्रः॥

१९११ सिकताशर्कराभ्यां च।५।२।१०४॥

सैकतो घटः। शार्करः॥

१९११--सिकता और शर्करा शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे--सैकतः, अर्थात् घट। शार्करः॥

१९१२ देशे लुबिलचौ च।५।२।१०५॥

चादण् मतुप् च। सिकताः सन्त्यस्मिन्देशे सिकताः। सिकतिलः। सैकतः। सिकतावान्। एवं शर्करेत्यादि॥

१९१२--देश होनेपर सिकता और शर्करा शब्दके उत्तर अण् प्रत्ययका लुप् हो, और इलच् प्रत्यय हो, चकारसे अण् और मतुप् प्रत्यय भी हो, जैसे--सिकताः सन्ति अस्मिन् देशे=सिकताः, सिकतिलः, सैकतः, सिकतावान्। इसी प्रकार शर्कराः, शर्करिलः, शार्करः, शर्करावान्॥

१९१३ दन्त उन्नत उरच्।५।२।१०६॥

उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य दन्तुरः॥

१९१३--ऊंचे अर्थमें प्रथमान्त दन्त शब्दके उत्तर उरच् प्रत्यय हो, जैसे--उन्नताः दन्ताः सन्ति अस्य=दन्तुरः।

१९१४ ऊषसुषिमुष्कमधोरः ५।२।१०७।

ऊषरः । सुषिरः । मुष्कोण्डः । मुष्करः । मधु माधुर्यम्, मधुरः ॥ रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ खरः । मुखरः ॥ कुञ्जो हस्तिहनुः,कुञ्जरः॥नगपांसुपाण्डुभ्यश्च॥*॥ नगरम् । पांसुरः । पाण्डुरः । पाण्डरशब्दस्तु अव्युत्पन्न एव॥कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च॥*॥कच्छुरः॥

१९१४–ऊष, सुषि, मुष्क और मधु शब्दके उत्तर र प्रत्यय हो, जैसे–ऊषरः । सुषिरः । मुष्करः । मुष्क शब्दसे अण्डकोष जानना । मधुरः । मधु शब्दसे माधुर्य जानना । ख, मुख और कुञ्ज शब्दके उत्तर र प्रत्यय हो*जैसे–खरः । मुखरः । कुञ्जरः । कुञ्ज शब्दसे हाथीकी हनु जानना ।

नग, पांसु और पाण्डु शब्दके उत्तर र प्रत्यय हो, जैसे–नगरम् । पांसुरः । पाण्डुरः । पाण्डर शब्द तो अव्युत्पन्न, अर्थात् व्युत्पत्तिसिद्ध नहीं है ।

कच्छू शब्दके उत्तर र प्रत्यय और ऊकारको ह्रस्व हो, जैसे–कच्छुरः ॥

१९१५ द्युद्रुभ्यां मः । ५।२।१०८ ॥

द्युमः । द्रुमः ॥

१९१५–द्यु और द्रु शब्दके उत्तर म प्रत्यय हो, जैसे–द्युमः । द्रुमः ॥

१९१६ केशाद्वोऽन्यतरस्याम् । ५। २।१०९ ॥

प्रकृतेनान्यतरस्यांग्रहणेन मतुपि सिद्धे पुनर्ग्रहणमिनिठनोः समावेशार्थम् । केशवः। केशी । केशिकः । केशवान् ॥ अन्येभ्योऽपि दृश्यते॥*॥ मणिवो नागविशेषः । हिरण्यवो निधिविशेषः ॥ अर्णसो लोपश्च ॥ * ॥ अर्णवः ॥

१९१६–केश शब्दके उत्तर विकल्प करके व प्रत्यय हो, प्रकृत 'अन्यतरस्याम्' ग्रहणसे मतुप् प्रत्ययकी सिद्धि होनेपर भी पुनर्ग्रहण इनि और ठन् प्रत्ययके समावेशार्थ है, इससे केश शब्दके उत्तर व प्रत्यय और इनि, ठन् और मतुप् प्रत्यय भी होगा, जैसे–केशवः, केशी, केशिकः, केशवान् ॥

अन्य शब्दोंके उत्तर भी उक्त प्रत्यय हो * जैसे–मणिवः नागविशेषः । हिरण्यवः निधिविशेषः ॥

अर्णस् शब्दके उत्तर व प्रत्यय हो,और सकारका लोप हो* जैसे–अर्णवः समुद्रः ॥

१९१७ गाण्ड्यजगात्संज्ञायाम् । ५।२।११० ॥

ह्रस्वदीर्घयोर्यणा तन्त्रेण निर्देशः । गाण्डिवम् । गाण्डीवम् । अर्जुनस्य धनुः ॥ अजगवं पिनाकः ॥

१९१७–संज्ञा होनेपर गांडी और अजग शब्दके उत्तर व प्रत्यय हो । ह्रस्व और दीर्घको यण् करके तंत्रसे निर्देश हैं, जैसे–गाण्डिवम्, गाण्डीवम्, अर्जुनका धनुष । अजगवं पिनाकः ॥

१९१८ काण्डाण्डादीरन्नीरचौ । ५।२।१११ ॥

काण्डीरः । आण्डीरः ॥

१९१८–काण्ड और आण्ड शब्दके उत्तर ईरन् और ईरच् प्रत्यय हो, जैसे–काण्डीरः । आण्डीरः ॥

१९१९ रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् । ५।२।११२ ॥

रजस्वला स्त्री । कृषीवलः । वल इति दीर्घः। आसुतीवलः शौण्डिकः॥ परिषद्वलः । पर्षदिति पाठान्तरम् । पर्षद्वलम् ॥ अन्येभ्योपि दृश्यते॥ ॥ * ॥ भ्रातृवलः । पुत्रवलः । शत्रुवलः । वल इत्यत्र संज्ञायामित्युनुवृत्तेर्नेह दीर्घः ॥

१९१९–रजस्, कृषि, आसुति और परिषद् शब्दके उत्तर वलच् प्रत्यय हो, जैसे–रजस्वला स्त्री । कृषीवलः, यहां वलच् प्रत्यय परे रहते "वले" इससे दीर्घ हुआ । आसुतीवलः शौंडिकः । परिषद्वलः । 'पर्षत्' ऐसा पाठान्तर भी है, इस कारण पर्षद् शब्दके उत्तर भी वलच् प्रत्यय होगा, जैसे–पर्षद्वलः ।

अन्य शब्दोंके उत्तर भी वलच् प्रत्ययका प्रयोग देखा जाता है * जैसे–भ्रातृवलः । पुत्रवलः । शत्रुवलः, "वले १०४०" इस सूत्रमें "संज्ञायाम्" इस पदकी अनुवृत्तिके कारण यहां दीर्घ नहीं हुआ ॥

१९२० दन्तशिखात्संज्ञायाम्५।२।११३।

दन्तावलो हस्ती । शिखावलः केकी ॥

१९२०–संज्ञा होनेपर दंत और शिखा शब्दके उत्तर वलच् प्रत्यय हो, जैसे–दन्तावलः, अर्थात् हस्ती । शिखावलः, अर्थात् मयूर (मोर) ॥

१९२१ ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः । ५।२।११४ ॥

मत्वर्थे निपात्यन्ते । ज्योतिष उपधालोपो नश्च प्रत्ययः । ज्योत्स्ना । तमस उपधाया इत्वं रश्च, तमिस्रा । स्त्रीत्वमतन्त्रम् । तमिस्रम् । शृङ्गादिनच्, शृङ्गिणः । ऊर्जसो वलच् । तेन बाधा मा भूदिति विनिरपि । ऊर्जस्वलः । ऊर्जस्वी। ऊर्जोऽसुगागम इति वृत्तिस्तु चिन्त्या। ऊर्जस्वतीतिवदसुन्नन्तेनैवोपपत्तेः । गोशब्दान्मि-

निः, गोमी । मलशब्दादिनच्, मलिनः । ईमसच्च, मलीमसः ॥

१९२१-ज्योत्स्ना, तमिस्रा, शृङ्गिण, ऊर्जस्विन्, ऊर्जस्वल, गोमिन, मलिन और मलीमस यह शब्द मत्वर्थमें निपातनसे सिद्ध हों । ज्योतिष् शब्दकी उपधाका लोप और उसके उत्तर न प्रत्यय हो, जैसे-ज्योत्स्ना । तमस् शब्दकी उपधाके स्थानमें इकार और र प्रत्यय हो, जैसे-तमिस्रा । इस सूत्रमें स्त्रीत्व अतंत्र अर्थात् अविवक्षित है, इस कारण 'तमिस्रम्' ऐसा भी होगा ।

शृङ्ग शब्दके उत्तर इनच् प्रत्यय हो, जैसे-शृङ्गिणः ।

ऊर्ज्जस् शब्दके उत्तर वलच् प्रत्यय हो, इस(वलच्)से बाधा न हो, इसलिये विनि प्रत्ययका भी विधान कियाहै, जैसे-ऊर्ज्जस्वलः, ऊर्जस्वी । ऊर्ज्जस्वती शब्दके समान असुन्नन्तसे ही उत्पत्ति होनेके कारण ऊर्ज्ज शब्दको असुक् आगम हो, ऐसी वृत्ति चिन्त्य है ।

गो शब्दके उत्तर मिनि प्रत्यय हो, जैसे-गोमी ।

मल शब्दसे इनच् प्रत्यय हो, जैसे-मलिनः ।

मल शब्दके उत्तर ईमसच् प्रत्यय भी हो, जैसे-मलीमसः ॥

१९२२ अत इनिठनौ । ५ । २ । ११५ ॥

दण्डी । दण्डिकः ॥

१९२२-अकारान्त शब्दके उत्तर इनि और ठन् प्रत्यय हो, जैसे-दण्डी, दंडिकः ॥

१९२३ व्रीह्यादिभ्यश्च । ५ । २ । ११६ ॥

व्रीही । व्रीहिकः । न च सर्वेभ्यो व्रीह्यादिभ्य इनिठनाविष्येते किं तर्हि ॥ शिखामालासंज्ञादिभ्य इनिः ॥ * ॥ यवखदादिभ्य इकः ॥*॥ अन्येभ्य उभयम् ॥

१९२३-व्रीह्यादि शब्दोंके उत्तर इनि और ठन् प्रत्यय हो, जैसे-व्रीही, व्रीहिकः । व्रीह्यादि गणके मध्यमें सबके उत्तर इनि और ठन् प्रत्यय नहीं होगा, किन्तु-

शिखा, माला और संज्ञादि (संज्ञा, वडवा, कुमारी, नौ, वीणा, बलाका,) शब्दोंके उत्तर इनि प्रत्यय हो *

यवखदादि शब्दोंके उत्तर इक प्रत्यय हो *

और इससे भिन्न और शब्दोंके उत्तर दोनों प्रत्यय हों ॥

१९२४ तुन्दादिभ्य इलच्च । ५ । २ । ११७ ॥

चादिनिठनौ मतुप् च । तुन्दिलः । तुन्दी । तुन्दिकः । तुन्दवान् । उदर, पिचण्ड, यव, व्रीहि ॥ स्वाङ्गाद्विवृद्धौ ॥ ॥ " विवृद्ध्युपाधिकात्स्वाङ्गवाचिन इलजादयः स्युः " । विवृद्धौ कर्णौ यस्य स कर्णिलः । कर्णी । कर्णिकः । कर्णवान् ॥

१९२४-तुन्दादि शब्दोंके उत्तर इलच् प्रत्यय हो और चकारसे इनि, ठन और मतुप् प्रत्यय हों, जैसे-तुन्दिलः, तुन्दी, तुन्दिकः, तुन्दवान् । उदर, पिचंड, यव, व्रीहि, इतने तुन्दादि हैं ।

विवृद्धिउपाधिक स्वाङ्गवाचक शब्दोंके उत्तर इलच् आदि प्रत्यय हों, जैसे-विवृद्धौ कर्णौ यस्य सः=कर्णिलः, कर्णी, कर्णिकः, कर्णवान् ॥

१९२५ एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम् । ५ । २ । ११८ ॥

एकशतमस्यास्तीति ऐकशतिकः । ऐकसहस्रिकः । गौशतिकः । गौसहस्रिकः ॥

१९२५-एक शब्द और गो शब्द पूर्वमें रहते शतादि शब्दके उत्तर नित्य ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-एकशतमस्य अस्ति, इस विग्रहमें ऐकशतिकः । ऐकसहस्रिकः । गौशतिकः । गौसहस्रिकः ।

१९२६ शतसहस्रान्ताच्च निष्कात् । ५ । २ । ११९ ॥

निष्कात्परौ यौ शतसहस्रशब्दौ तदन्तात्प्रातिपदिकाट्ठञ् स्यान्मत्वर्थे । नैष्कशतिकः । नैष्कसहस्रिकः ॥

१९२६-निष्क शब्दके परे स्थित शत और सहस्र शब्दान्त प्रातिपदिकके उत्तर मत्वर्थमें ठञ् प्रत्यय हो, जैसे-नैष्कशतिकः । नैष्कसहस्रिकः ॥

१९२७ रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् । ५ । २ । १२० ॥

आहतं रूपमस्यास्तीति रूप्यः कार्षापणः । प्रशस्तं रूपमस्यास्तीति रूप्यो गौः । आहतेति किम् । रूपवान् ॥ अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ * ॥ हिम्याः पर्वताः । गुण्या ब्राह्मणाः ॥

१९२७-आहत और प्रशस्त अर्थमें रूप शब्दके उत्तर यप् प्रत्यय हो, जैसे-आहतं रूपमस्यास्ति, इस वाक्यमें रूप्यः कार्षापणः । प्रशस्तं रूपमस्यास्ति, इस विग्रहमें रूप्यो गौः ।

आहत अर्थ न होनेपर 'रूपवान्' ऐसा होगा ।

और शब्दोंके उत्तर भी देखा जाताहै * जैसे-हिम्याः पर्वताः । गुण्याः ब्राह्मणाः ॥

१९२८ अस्मायामेधास्रजो विनिः । ५ । २ । १२१ ॥

यशस्वी । यशस्वान् । मायावी । व्रीह्यादिपाठादिनिठनौ । मायी । मायिकः । किन्नन्तत्वात्कुः । स्रग्वी ॥ आमयस्योपसंख्यानं दीर्घश्च ॥ * ॥ आमयावी ॥ शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् ॥ शृङ्गारकः । वृन्दारकः । फलबर्हाभ्यामिनच् ॥ * ॥ फलिनः । बर्हिणः ॥

हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम् ॥ * ॥ इनठनौ मतुप् च । हृदयालुः । हृदयी । हृदयिकः । हृदयवान् । शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने ॥ * ॥ शीतं न सहते शीतालुः । उष्णालुः । स्फायितंचीति रक्,तृप्रः पुरोडाशः, तं न सहते तृप्रालुः । तृप्रं दुःखमिति माधवः ॥ हिमाच्चेलुः ॥ * ॥ हिमं न सहते हिमेलुः ॥ बलादूलः ॥ * ॥ बलं न सहते बलूलः । वातात्समूहे च ॥ * ॥ वातं न सहते वातस्य समूहो वा वातूलः ॥ तप्पर्वमरुद्भ्याम् ॥ * ॥ पर्वतः । मरुत्तः ॥

१९२८–असभागान्त शब्द और माया, मेधा और स्रज् शब्दके उत्तर विनि प्रत्यय हो, जैसे–यशस्वी, यशस्वान् । मायावी । व्रीह्यादिगणमें पाठके कारण इनि और ठन् प्रत्यय भी होगा, जैसे–मायी, मायिकः । किन्नन्तत्वके कारण चवर्गके स्थानमें कवर्ग हुआ, जैसे–स्रग्वी ।

आमय शब्दके उत्तर उक्त प्रत्ययका उपसंख्यान और दीर्घ हो * जैसे–आमयावी ।

शृङ्ग और वृन्द शब्दके उत्तर आरकन् प्रत्यय हो * जैसे–शृङ्गारकः । वृन्दारकः ।

फल और बर्ह शब्दके उत्तर इनच् प्रत्यय हो * जैसे–फलिनः । बर्हिणः ।

हृदय शब्दके उत्तर विकल्प करके आलु और चकारसे मतुप् प्रत्यय हो * विकल्प पक्षमें इनि और ठन् होगा, जैसे–हृदयालुः, हृदयी, हृदयिकः, हृदयवान् ।

असहन अर्थमें शीत,उष्ण और तृप्र शब्दके उत्तर आलु प्रत्यय हो * जैसे–शीतं न सहते=शीतालुः। उष्णालुः। "स्फायीतञ्चि०"इस सूत्रसे तृप्र शब्द सिद्ध हुआ। तृप्र शब्दसे पुरोडाश जानना, तृप्रं न सहते, इस वाक्यमें तृप्रालुः । माधवके मतमें तृप्र शब्दसे दुःख जानना ।

हिम शब्दके उत्तर एलु प्रत्यय हो * जैसे–हिमं न सहते हिमेलुः ।

बल शब्दके उत्तर समूहार्थमें भी ऊल प्रत्यय हो * जैसे–बलं न सहते=बलूलः ।

वात शब्दके उत्तर समूहार्थमें तथा चकारसे असहन अर्थमें ऊल प्रत्यय हो * जैसे–वातं न सहते,=वातस्य समूहो वा=वातूलः ।

पर्व और मरुत् शब्दके उत्तर तप् प्रत्यय हो * जैसे–पर्वतः । मरुत्तः ॥

१९२९ ऊर्णाया युस् । ५ ।२।१२३ ॥

सित्वात्पदत्वम् । ऊर्णायुः । अत्र छन्दसीति केचिदनुवर्तयन्ति । युक्तं चैतत् । अन्यथा हि, अहंशुभमोरित्यत्रैवोर्णाग्रहणं कुर्यात् ॥

१९२९–ऊर्णा शब्दके उत्तर युस् प्रत्यय हो, जिसके उत्तर सकारइत् प्रत्यय हो, उसकी पद संज्ञा होतीहै । ऊर्णायुः इस स्थलमें कोई कोई " बहुलं छन्दसि " इस सूत्रसे ' छन्दसि ' इस पदकी अनुवृत्ति करतेहैं यह ठीक है, कारण कि,यह न होनेपर पृथक् सूत्र नहीं करनेसे तथा युस्ग्रहण नहीं करनेसे महालाघवके कारण १९४६ (' अहम् ' और 'शुभ' शब्दके उत्तर युस् प्रत्यय हो) इस वक्ष्यमाण सूत्रमें ही ऊर्णा शब्दका ग्रहण करते ॥

१९३० वाचो ग्मिनिः । ५।२ । १२४॥

वाग्मी ॥

१९३०–वाच् शब्दके उत्तर ग्मिनि प्रत्यय हो, जैसे–वाग्मी ॥

१९३१ आलजाटचौ बहुभाषिणि । ५ । २ । १२५ ॥

कुत्सित इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कुत्सितं बहु भाषते वाचालः । वाचाटः। यस्तु सम्यग्बहु भाषते स वाग्मीत्येव ॥

१९३१–बहुभाषी अर्थ होनेपर वाच् शब्दके उत्तर आलच् और आटच् प्रत्यय हो ।

कुत्सित अर्थ होनेपर उक्त प्रत्यय हों,ऐसा कहना चाहिये* जैसे–कुत्सितं बहु भाषते, इस अर्थमें वाचालः । वाचाटः । अच्छी तरह बहुत बोलनेवाले मनुष्यको ' वाग्मी ' कहतेहैं ॥

१९३२ स्वामिन्नैश्वर्ये । ५ । २ ।१२६॥

ऐश्वर्यवाचकात्स्वशब्दान्मत्वर्थे आमिनच् । स्वामी ॥

१९३२–ऐश्वर्यवाचक स्व शब्दके उत्तर मत्वर्थमें आमिनच् प्रत्यय हो, जैसे–स्वामी ॥

१९३३ अर्शआदिभ्योऽच् ।५।२।१२७॥

अर्शांस्यस्य विद्यन्ते अर्शसः।आकृतिगणोऽयम्॥

१९३३–अर्शआदि शब्दके उत्तर मत्वर्थमें अच् प्रत्यय हो, जैसे–अर्शांस्यस्य विद्यन्ते,इस वाक्यमें अर्शसः । अर्शआदि आकृतिगण है ॥

१९३४ द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः । ५ । २ । १२८ ॥

द्वन्द्वः–कटकवलयिनी । शङ्खनूपुरिणी । उपतापो रोगः–कुष्ठी । किलासी।गर्ह्यं निन्द्यम्–ककुदावर्ती । काकतालुकी । प्राणिस्थात्किम् । पुष्पफलवान् घटः ॥ प्राण्यङ्गान्न ॥ * ॥ पाणिपादवती । अत इत्येव । चित्रकललाटिकावती । सिद्धे प्रत्यये पुनर्वचनं ठनादिबाधनार्थम् ॥

१९३४–प्राणिस्थ अर्थात् प्राणीमें है, ऐसे अर्थमें द्वन्द्व समासनिष्पन्न शब्द, उपतापवाचक शब्द और गर्ह्य अर्थात् निन्द्यवाचक शब्दके उत्तर मत्वर्थमें इनि प्रत्यय हो ।

द्वन्द्व जैसे–कटकवलयिनी । शंखनूपुरिणी ।

उपताप शब्दसे रोग जानना, जैसे–कुष्ठी । किलासी ।

गर्ह्य शब्दसे निन्द्य जानना, जैसे—ककुदावर्ती । काकु-तालुकी ।

प्राणिस्थ न होनेपर जैसे--पुष्पफलवान् घटः ।

प्राण्यङ्गवाचकके उत्तर नहीं हो * जैसे--पाणिपादवती ।

आकारके उत्तर नहीं होगा, जैसे--चित्रकललाटिकावती ।

प्रत्ययके सिद्ध होनेपर पुनः कथन ठनादि प्रत्ययके बाधनार्थ है ॥

१९३५ वातातीसाराभ्यां कुक् च । ५ । २ । १२९ ॥

चादिनिः । वातकी । अतीसारकी ॥ रोगे चायमिष्यते ॥ * ॥ नेह । वातवती गुहा । पिशाचाच्च ॥ * ॥ पिशाचकी ॥

१९३५-वात और अतीसार शब्दके उत्तर कुक् और इनि प्रत्यय हो, जैसे--वातकी । अतीसारकी ।

रोगार्थमें ही उक्त कार्य्य हो * इससे रोग न होनेपर वातवती, अर्थात् 'गुफा' इस स्थलमें कुक् आदि प्रत्यय नहीं हुआ ।

पिशाच शब्दके उत्तर कुक् आदि प्रत्यय हो, जैसे--पिशाचकी ॥

१९३६ वयसि पूरणात् ।५।२। १३० ॥

पूरणप्रत्ययान्तान्मत्वर्थे इनिः स्याद्वयसि द्योत्ये । मासः संवत्सरो वा पञ्चमोऽस्यास्तीति पञ्चमी उष्ट्रः । ठन्बाधनार्थमिदम् । वयसि किम् । पञ्चमवान् ग्रामः ॥

१९३६-वयःक्रम होनेपर पूरणप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर मत्वर्थमें इनि प्रत्यय हो, जैसे—मासः, संवत्सरो वा, पञ्चमोऽस्यास्तीति=पञ्चमी उष्ट्रः । यह सूत्र ठन् प्रत्ययके बाधनार्थ है ।

वयस् न होनेपर जैसे—पञ्चमवान् ग्रामः ॥

१९३७ सुखादिभ्यश्च ।५। २ । १३१ ॥

इनिर्मत्वर्थे । सुखी । दुःखी॥ माला क्षेपे ॥ ॥ माली ॥

१९३७-सुखादि शब्दके उत्तर मत्वर्थमें इनि प्रत्यय हो, जैसे—सुखी । दुःखी ।

माला शब्दके उत्तर क्षेप अर्थमें इनि प्रत्यय हो, जैसे--माली ॥

१९३८ धर्मशीलवर्णान्ताच्च।५।२।१३२॥

धर्माद्यन्तादिनिर्मत्वर्थे । ब्राह्मणधर्मी । ब्राह्मणशीली । ब्राह्मणवर्णी ॥

१९३८-धर्म, शील और वर्णान्त शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो,जैसे—ब्राह्मणधर्मी । ब्राह्मणशीली । ब्राह्मणवर्णी॥

१९३९ हस्ताज्जातौ । ५ । २ । १३३ ॥

हस्ती । जातौ किम् । हस्तवान्पुरुषः ॥

१९३९-जाति अर्थमें हस्त शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे—हस्ती । जाति न होनेपर हस्तवान् पुरुषः ॥

१९४० वर्णाद्ब्रह्मचारिणि ।५।२।१३४॥

वर्णी ॥

१९४०-ब्रह्मचारी अर्थ होनेपर वर्ण शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे—वर्णी ॥

१९४१ पुष्करादिभ्यो देशे।५।२।१३५॥

पुष्करिणी । पद्मिनी । देशे किम् । पुष्करवान् करी ॥ बाहूरुपूर्वपदाद्बलात् ॥ ॥ बाहुबली । ऊरुबली ॥ सर्वादेश्च ॥ ॥ सर्वधनी । सर्वबीजी ॥ अर्थाच्चासन्निहिते ॥ ॥ अर्थी । सन्निहिते तु अर्थवान् ॥ तदन्ताच्च ॥ ॥ धान्यार्थी । हिरण्यार्थी ॥

१९४१-देश होनेपर पुष्करादिके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे—पुष्करिणी । पद्मिनी । देश न होनेपर पुष्करवान् करी ।

बाहु और ऊरु शब्द पूर्वमें रहते उसके परवर्ती बल शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो * जैसे—बाहुबली । ऊरुबली ।

सर्व शब्द पूर्वमें रहते इनि प्रत्यय हो * जैसे—सर्वधनी । सर्वबीजी ।

असन्निहितार्थमें अर्थ शब्दके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे—अर्थी । सन्निहितार्थमें 'अर्थवान्' ऐसा पद होगा ।

अर्थ शब्द अन्तमें रहते उसके उत्तर इनि प्रत्यय हो, जैसे—धान्यार्थी । हिरण्यार्थी ॥

१९४२ बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् । ५ । २ । १३६ ॥

बलवान् । बली । उत्साहवान् । उत्साही ॥

१९४२-बलादि शब्दके उत्तर विकल्प करके मतुप प्रत्यय हो, जैसे—बलवान्, बली । उत्साहवान्, उत्साही ॥

१९४३ संज्ञायां मन्माभ्याम्।५।२।१३७॥

मन्नन्तान्मान्ताच्चेनिर्मत्वर्थे । प्रथिमिनी । दामिनी । होमिनी । सोमिनी । संज्ञायां किम् । सोमवान् ॥

१९४३-मन्भागान्त शब्द और मान्त शब्दके उत्तर मत्वर्थमें इनि प्रत्यय हो, जैसे—प्रथिमिनी । दामिनी । होमिनी । सोमिनी । संज्ञा न होनेपर 'सोमवान्' होगा ॥

१९४४ कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः । ५ । २ । १३८ ॥

कं शमिति मान्तौ, कमित्युदकसुखयोः, शमिति सुखे । आभ्यां सप्त प्रत्ययाः स्युः । युस्यसोः सकारः पदत्वार्थः । कंवः । कंभः।कंयुः । कंतिः । कंतुः । कंतः । कंयः । शंवः । शंभः ।

शंयुः । शंतिः । शंतुः । शंतः । शंयः । अनुस्वारस्य वैकल्पिकः परसवर्णः । वकारयकारपरस्यानुनासिकौ वयौ ॥

१९४४-कम् और शंम् शब्दके उत्तर ब, भ, युस्, ति, तु, त, यस्,यह सात प्रत्यय हों। कम् और शम्,यह दो पद मकारान्त हैं। कम् शब्दसे जल और शम् शब्दसे सुख जानना। युस् और यस् प्रत्ययके सकार पदत्वके कारण हैं। कँवः, कम्भः, कँयुः, कन्तिः, कन्तुः, कन्तः, कँयः। शंवः, शम्भः, शंयुः, शन्तिः, शन्तुः, शन्तः, शंयः। अनुस्वारको वैकल्पिक परसवर्ण होगा, वकार और यकार परे रहते व और य अनुनासिक होगा ॥

१९४५ तुन्दिबलिवटेर्भः । ५।२।१३९॥

वृद्धा नाभिस्तुन्दिः। मूर्धन्योपधोयमिति माधवः । तुन्दिभः । बलिभः । वटिभः । पामादित्वाद् बलिनोपि ॥

१९४५-तुन्दि, बलि और वटि शब्दके उत्तर भ प्रत्यय हो, वृद्ध नाभिको तुन्दि कहतेहैं, माधवके मतमें यह पद मूर्द्धन्योपध है, जैसे-तुन्दिभः । बलिभः । वटिभः । पामादित्वके कारण 'बलिनः' ऐसा पद भी होगा ॥

१९४६ अहंशुभमोर्युस् । ५ । २।१४०॥

अहमिति मान्तमव्ययमहंकारे । शुभमिति शुभे । अहंयुः अहंकारवान्। शुभंयुः शुभान्वितः॥

॥ इति मत्वर्थीयाः ॥

१९४६-'अहम्' और 'शुभम्' के उत्तर युस् प्रत्यय हो, 'अहम्' शब्द मकारान्त अहङ्कारबोधक अव्यय है, 'शुभम्' शब्दसे शुभ जानना, जैसे-अहंयुः अहंकारवान्। शुभंयुः शुभान्वितः ॥

॥ इति मत्वर्थीयप्रकरणम् ॥

अथ प्राग्दिशीयप्रकरणम् ।

१९४७ प्राग्दिशो विभक्तिः । ५ । ३।१॥

दिक्छब्देभ्य इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञाः स्युः । अथ स्वार्थिकाः प्रत्ययाः । समर्थानामिति प्रथमादिति च निवृत्तम् । वेति त्वनुवर्तत एव ॥

१९४७-"दिक्छब्देभ्यः० १९७४"इस वक्ष्यमाण सूत्रके पूर्वपर्यन्त वक्ष्यमाणप्रत्ययसमूहोंकी विभक्ति संज्ञा हो। अब स्वार्थिक प्रत्यय कहतेहैं ॥

"समर्थानां प्रथमाद्वा" इस पूर्वोक्त सूत्रका अधिकार निवृत्त हुआ, परन्तु वा शब्दकी अनुवृत्ति तो चलेगी ॥

१९४८ किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः । ५ । ३ । २ ॥

किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति: प्राग्दिशोऽधिक्रियते ॥

१९४८-'द्विआदि भिन्न किम् शब्द,सर्वनाम शब्द और बहु शब्दके उत्तर "प्राग्दिशः०" इस सूत्रतक अधिकार चलेगा ॥

१९४९ इदम इश् । ५ । ३ । ३ ॥

प्राग्दिशीये परे ॥

१९४९-प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते इदम् शब्दके स्थानमें इश् आदेश हो ॥

१९५० एतेतौ रथोः । ५ । ३ । ४ ॥

इदम्शब्दस्य एत इत इत्यादेशौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे । इशोपवादः ॥

१९५०-रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते इदम् शब्दके स्थानमें स्वार्थमें एत और इत आदेश हो। इस सूत्रमें एत और इत आदेश ईश् आदेशके विशेषक हैं ॥

१९५१ एतदोऽन् । ५ । ३ । ५ ॥

योगविभागः कर्तव्यः । एतदः एतेतौ स्तो रथोः । अन् एतद इत्येव । अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः । न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥

१९५१-इस स्थलमें योगविभाग कर्तव्य हैं अर्थात् रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते एतद् शब्दके स्थानमें एत् और इत आदेश हो, यह "एतदः"इसका अर्थ करना। एतद् शब्दको अन् आदेश हो यह द्वितीय योग (अन्) का अर्थ करना। अनेकाल्त्वके कारण सर्वादेश होगा। प्रातिपदिकके अन्तस्थित (२३६) नकारका लोप होगा ॥

१९५२ सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि । ५ । ३ । ६ ॥

प्राग्दिशीये दकारादौ प्रत्यये परे सर्वस्य सो वा स्यात् ॥

१९५२-दकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते सर्व शब्दके स्थानमें विकल्प करके स आदेश हो ॥

१९५३ पञ्चम्यास्तसिल् । ५ । ३ । ७॥

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् स्याद्वा ॥

१९५३-पञ्चमीविभक्त्यन्त किमादि शब्दोंके उत्तर स्वार्थमें विकल्पसे तसिल् प्रत्यय हो ॥

१९५४ कु तिहोः । ७ । २ । १०४ ॥

किमः कुः स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परतः। कुतः । कस्मात् । यतः । ततः । अतः । इतः । अमुतः । बहुतः । द्व्यादेस्तु द्वाभ्याम् ॥

१९५४-तकारादि और हकारादि प्राग्दिशीय तद्धित प्रत्यय परे रहते किम् शब्दके स्थानमें कु आदेश हो, जैसे-कुतः । कस्मात् । यतः । ततः । अतः । इतः । अमुतः । बहुतः । द्विआदि होनेपर द्वाभ्याम् ॥

१९५५ तसेश्च । ५ । ३ । ८ ॥

किंसर्वनामबहुभ्यः परस्य तसेस्तसिलादेशः स्यात् । स्वरार्थं विभक्त्यर्थं च वचनम् ॥

१९५५-किम् शब्द, सर्वनाम शब्द और बहु शब्दके उत्तर तसिके स्थानमें तसिल् आदेश हो । यह सूत्र स्वरार्थ और विभक्त्यर्थ है ॥

१९५६ पर्यभिभ्यां च । ५ । ३ । ९ ॥

आभ्यां तसिल् स्यात्।सर्वोभयार्थाभ्यामेव॥*॥ परितः । सर्वत इत्यर्थः।अभितः उभयत इत्यर्थः॥

१९५६-परि और अभि शब्दके उत्तर स्वार्थमें तसिल् प्रत्यय हो ।

सर्वार्थ तथा उभयार्थमें ही यथाक्रम उक्त दोनों शब्दोंसे प्रत्यय हो*जैसे-परितः, सर्वत इत्यर्थः।अभितः, उभयत इत्यर्थः ॥

१९५७ सप्तम्यास्त्रल् । ५ । ३ । १० ॥

कुत्र । यत्र । तत्र । बहुत्र ॥

१९५७-सप्तमीविभक्त्यन्त किमादि शब्दोंके उत्तर स्वार्थमें त्रल् प्रत्यय हो, जैसे-कस्मिन्निति=कुत्र । यत्र । तत्र । बहुत्र ॥

१९५८ इदमो हः । ५ । ३ । ११ ॥

त्रलोपवादः । इशादेशः । इह ॥

१९५८-इदम् शब्दके उत्तर स्वार्थमें ह प्रत्यय हो, यह ह प्रत्यय त्रल् प्रत्ययका अपवाद है, १९४९ सूत्रसे इदम् शब्दके स्थानमें इश् आदेश हुआ, जैसे-अस्मिन्निति=इह ॥

१९५९ किमोऽत् । ५ । ३ । १२ ॥

वाग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात्किमोऽद्वा स्यात्पक्षे त्रल् ॥

१९५९-इस सूत्रमें वा शब्दकी अनुवृत्ति होतीहै, सप्तम्यन्त किम् शब्दके उत्तर विकल्प करके स्वार्थमें अत् प्रत्यय हो । विकल्प पक्षमें त्रल् प्रत्यय होगा ॥

१९६० क्वाति । ७ । २ । १०५ ॥

किमः क्वादेशः स्यादति । क्व । कुत्र ॥

१९६०-अत् प्रत्यय परे रहते किम् शब्दके स्थानमें क्व आदेश हो, जैसे-कस्मिन्निति=क्व, कुत्र ॥

१९६१ वाह च च्छन्दसि ।५।३।१३ ॥

कुहस्थः । कुह जग्मथुः ॥

१९६१-वेदमें किम् शब्दके उत्तर विकल्प करके स्वार्थमें ह प्रत्यय हो, जैसे-कुहस्थः । कुह जग्मथुः ॥

१९६२ एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ । २ । ४ । ३३ ॥

अन्वादेशविषये एतदोऽश् स्यात्स चानुदात्तस्त्रतसोः परतः, तौ चानुदात्तौ स्तः । एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः, अथात्राधीमहे, अतो न गन्तास्मः ॥

१९६२-त्रल् और तस् प्रत्यय परे रहते अन्वादेशविषयमें एतद् शब्दके स्थानमें अश् आदेश हो, यह अश्, त्र और तस् परे अनुदात्त हो, जैसे-एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः, अथात्राधीमहे, अतो न गन्तास्मः ॥

१९६३ इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते । ५ । ३ । १४ ॥

पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते । दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव । स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । एवं दीर्घायुः । देवानां प्रियः । आयुष्मान् ॥

१९६३-पञ्चमी और सप्तमीविभक्त्यन्तसे अन्यविभक्त्यन्तके उत्तर भी तसिलादि प्रत्यय हों ।

दृशिका ग्रहण करनेके कारण भवत् आदिके योगमें ही उक्त प्रत्यय होगा ,

जैसे-स भवान्=ततो भवान्, तत्र भवान् । तं भवन्तम्= ततो भवन्तम्, तत्र भवन्तम् । भवदादि जैसे-भवत्, दीर्घायुः, देवानांप्रियः, आयुष्मान् ॥

१९६४ सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा । ५ । ३ । १५ ॥

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् । सर्वस्मिन् काले सदा । सर्वदा । एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । काले किम् । सर्वत्र देशे ॥

१९६४-सप्तम्यन्त कालवाचक सर्व, एक, अन्य, किम्, यत् और तत् शब्दके उत्तर स्वार्थमें दा प्रत्यय हो, जैसे-सर्वस्मिन् काले सदा, सर्वदा । एकदा । अन्यदा । कदा । तदा ।

कालवाचक न होनेपर अर्थात् देशवाचक होनेपर दा प्रत्यय न होकर त्रल् प्रत्यय होगा, जैसे-सर्वस्मिन् देशे= सर्वत्र-इत्यादि ॥

१९६५ इदमो र्हिल् । ५ । ३ । १६ ॥

सप्तम्यन्तात्काले इत्येव । हस्यापवादः । अस्मिन् काले एतर्हि । काले किम् । इह देशे ॥

१९६५-सप्तम्यन्त कालवाचक इदम् शब्दके उत्तर र्हिल् प्रत्यय हो, यह र्हिल् प्रत्यय, ह प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-एतस्मिन् काले=एतर्हि ।

कालवाचक न होकर देशवाचक होनेपर ह प्रत्यय होगा, जैसे-अस्मिन् देशे=इह ॥

१९६६ अधुना । ५ । ३ । १७ ॥

इदमः सप्तम्यन्तात्कालवाचिनः । स्वार्थेऽधुना प्रत्ययः स्यात् । इश् । यस्येति लोपः । अधुना॥

१९६६-सप्तम्यन्त कालवाचक इदम् शब्दके उत्तर स्वार्थमें अधुना प्रत्यय हो, जैसे-अस्मिन् काले=अधुना । इश् आदेश होनेपर यस्येति (३११) से इकारका लोप हुआ ॥

१९६७ दानीं च। ५। ३। १८॥

इदानीम्॥

१९६७–सप्तम्यन्त कालवाचक इदम् शब्दके उत्तर स्वार्थमें दानीम् प्रत्यय हो, जैसे–अस्मिन्काले=इदानीम्॥

१९६८ तदो दा च। ५। ३। १९॥

तदा। तदानीम्। तदो दावचनमनर्थकं विहितत्वात्॥

१९६८–सप्तम्यन्त कालवाचक तद् शब्दके उत्तर स्वार्थमें दा और दानीम् प्रत्यय हो, यथा–तस्मिन्काले=तदा, तदानीम्। इस सूत्रसे दा प्रत्ययका विधान करना निरर्थक है, क्योंकि पहले सूत्र (१९६४) से ही दा प्रत्यय सिद्ध है॥

१९६९ अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्। ५। ३। २१॥

कर्हि। कदा। यर्हि। यदा। तर्हि। तदा। एतस्मिन् काले एतर्हि॥

१९६९–अनद्यतनमें सप्तम्यन्त किमादि शब्दों (किम्, यत्, तत्) के उत्तर विकल्प करके स्वार्थमें र्हिल् प्रत्यय हो, जैसे–कस्मिन्काले कर्हि, कदा। यर्हि, यदा। तर्हि, तदा। एतस्मिन् काले=एतर्हि॥

१९७० सद्यः परुत्परार्यैषमः परेद्यव्यद्य पूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः। ५।३।२२॥

एते निपात्यन्ते॥ समानस्य सभावो द्यस् चाहनि॥ *॥ समानेऽहनि सद्यः॥ पूर्वपूर्वतरयोः पर उदारी च संवत्सरे॥ *॥ पूर्वस्मिन्वत्सरे परुत्। पूर्वतरे वत्सरे परारि॥ इदम इश् समसण् प्रत्ययश्च संवत्सरे॥*॥ अस्मिन्संवत्सरे ऐषमः॥ परस्मादेद्यव्यहनि॥*॥ परस्मिन्नहनि परेद्यवि॥ इदमोऽश् द्यश्च॥*॥ अस्मिन्नहनि अद्य॥ पूर्वादिभ्योऽष्टभ्योऽहन्येद्युस्॥ पूर्वस्मिन्नहनि पूर्वेद्युः। अन्यस्मिन्नहनि अन्येद्युः। उभयोरह्नोरुभयेद्युः॥ द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः॥ *॥ उभयद्युः॥

१९७०–कालार्थमें सद्यः आदि पद निपातनसे सिद्ध हो।

'समानेऽहनि' इस अर्थमें समान शब्दके स्थानमें स आदेश और द्यस् प्रत्यय हो * जैसे समाने अहनि=सद्यः।

संवत्सरार्थमें पूर्व और पूर्वतर शब्दको पर आदेश और उनके उत्तर उत् और आरि प्रत्यय हो * जैसे–पूर्वस्मिन् संवत्सरे=परुत्। पूर्वतरे वत्सरे=परारि।

संवत्सरार्थमें सप्तम्यन्त इदम् शब्दके स्थानमें इश् आदेश और समसण् प्रत्यय हो * जैसे–अस्मिन् संवत्सरे=ऐषमः।

सप्तम्यन्त पर शब्दके उत्तर अहन् अर्थमें एद्यवि प्रत्यय हो * जैसे–परस्मिन् अहनि=परेद्यवि।

दिन होनेपर सप्तम्यन्त इदम् शब्दके स्थानमें अश् और द्य प्रत्यय हो * जैसे–अस्मिन् अहनि=अद्य।

'अहनि' अर्थमें पूर्वादि शब्दोंके उत्तर एद्युस् प्रत्यय हो * जैसे–पूर्वस्मिन् अहनि=पूर्वेद्युः। अन्यस्मिन् अहनि=अन्येद्युः। उभयोरह्नोः=उभयेद्युः। उभय शब्दके उत्तर द्युस् प्रत्यय भी हो, जैसे–उभयद्युः॥

१९७१ प्रकारवचने थाल्। ५।३।२३॥

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात्स्वार्थे। तेन प्रकारेण तथा। यथा॥

१९७१–प्रकारवृत्तिवाचक किम् आदि शब्दोंके उत्तर स्वार्थमें थाल् प्रत्यय हो, जैसे–तेन प्रकारेण=तथा। येन प्रकारेण=यथा॥

१९७२ इदमस्थमुः। ५। ३। २४॥

थालोऽपवादः॥ एतदो वाच्यः॥*॥ अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम्॥

॥ इति प्राग्दिशीयानां विभक्तिसंज्ञानां पूर्णोवधिः॥

१९७२–इदम् शब्दके उत्तर प्रकारार्थमें थमु प्रत्यय हो, यह थमु प्रत्यय थाल् प्रत्ययका अपवाद है।

एतद् शब्दके उत्तर भी थमु प्रत्यय हो * जैसे–अनेन, एतेन वा प्रकारेण=इत्थम्॥

१९७३ किमश्च। ५। ३। २५॥

केन प्रकारेण कथम्॥

१९७३–किम् शब्दके उत्तर प्रकारार्थमें थमु प्रत्यय हो, जैसे–केन प्रकारेण=कथम्॥

॥ इति प्राग्दिशीयप्रकरणम्॥

अथ प्रागिवीयप्रकरणम्।

१९७४ दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः। ५। ३। २७॥

सप्तम्याद्यन्तेभ्यो दिशि रूढेभ्यो दिग्देशकालवृत्तिभ्यः स्वार्थेऽस्तातिप्रत्ययः स्यात्॥

१९७४–सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्त्यन्त दिक् अर्थमें रूढ़ इसी प्रकार दिक्, देश और कालवाचक शब्दके उत्तर स्वार्थमें अस्ताति प्रत्यय हो॥

१९७५ पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्। ५। ३। ३९॥

एभ्योऽस्तात्यर्थेऽसिप्रत्ययः स्यात्तद्योगे चैषां क्रमात्पुर्, अध्, अव्, इत्यादेशाः स्युः॥

१९७५–पूर्व, अधर और अवर शब्दके उत्तर अस्तातिके अर्थमें असि प्रत्यय हो और उसके योगमें यथाक्रम पूर्व

शब्दके स्थानमें पुर्, अधर शब्दके स्थानमें अध् और अवर शब्दके स्थानमें अव् आदेश हो ॥

१९७६ अस्ताति च । ५ । ३ । ४० ॥

अस्तातौ परे पूर्वादीनां पुरादयः स्युः । पूर्वस्यां पूर्वस्याः पूर्वा वा दिक्, पुरः । पुरस्तात् । अधः । अधस्तात् । अवः । अवस्तात् ॥

१९७६-अस्ताति प्रत्यय परे रहते पूर्वादि शब्दके स्थानमें पुर्, अध् और अव् आदेश हो, जैसे-पूर्वस्यां पूर्वस्याः पूर्वा वा दिक्, इस विग्रहमें पुरः, पुरस्तात् । अधः, अधस्तात् । अवः, अवस्तात् ॥

१९७७ विभाषाऽवरस्य । ५ । ३ । ४१ ॥

अवरस्यास्तातौ परेऽव् स्याद्वा । अवस्तात् । अवरस्तात् । एवं देशे काले च । दिशि रूढेभ्यः किम् । ऐन्द्र्यां वसति । सप्तम्याद्यन्तेभ्यः किम् । पूर्वं ग्रामं गतः । दिगादिवृत्तिभ्यः किम् । पूर्वस्मिन् गुरौ वसति । अस्ताति चेति ज्ञापकादसिरस्तातिं न बाधते ॥

१९७७-अस्ताति प्रत्यय परे रहते अवर शब्दके स्थानमें विकल्प करके अव् आदेश हो, जैसे-अवस्तात्, अवरस्तात् । देश और कालविषयमें भी ऐसा होगा ।

दिक् अर्थमें रूढ न होनेपर जैसे-ऐन्द्र्यां वसति ।

सप्तमी, पंचमी और प्रथमान्त न होनेपर जैसे-पूर्वं ग्रामं गतः ।

दिक् आदि वाचक न होनेपर जैसे-पूर्वस्मिन् गुरौ वसति । "अस्ताति च" इस ज्ञापकके कारण असि प्रत्यय अस्ताति प्रत्ययको बाधा नहीं देता ॥

१९७८ दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् । ५ । ३ । २८ ॥

अस्तातेरपवादः । दक्षिणतः । उत्तरतः ॥

१९७८-दक्षिण और उत्तर शब्दके उत्तर अतसुच् प्रत्यय हो, यह अतसुच् प्रत्यय अस्ताति प्रत्ययका अपवाद है, जैसे-दक्षिणतः । उत्तरतः ॥

१९७९ विभाषा पराऽवराभ्याम् । ५ । ३ । २९ ॥

परतः । अवरतः । परस्तात् । अवरस्तात् ॥

१९७९-पर और अवर शब्दके उत्तर विकल्प करके अतसुच् प्रत्यय हो, जैसे-परतः । अवरतः । परस्तात् । अवरस्तात् । इस प्रकार पद होंगे ॥

१९८० अञ्चेर्लुक् । ५ । ३ । ३० ॥

अञ्चत्यन्ताद्दिक्शब्दादस्तातेर्लुक् स्यात् । लुक् तद्धितलुकि । प्राच्यां प्राच्याः प्राची वा दिक् प्राक् । उदक् । एवं देशे काले च ॥

१९८०-अञ्च् धातु अन्तमें है जिसके ऐसे दिग्वाचक शब्दके उत्तर अस्ताति प्रत्ययका लुक् हो, "लुक् तद्धित०" इस सूत्रसे स्त्रीप्रत्ययका लुक् होगा, जैसे-प्राच्यां प्राच्याः प्राची वा दिक्, इस विग्रहमें प्राक्, उदक् । देश और कालवाचकका भी इसी प्रकार जानना ॥

१९८१ उपर्युपरिष्टात् । ५ । ३ । ३१ ॥

अस्तातेर्विषये ऊर्ध्वशब्दस्योपादेशः स्याद्रिलरिष्टातिलौ च प्रत्ययौ ॥ उपरि उपरिष्टाद्वा वसति आगतो रमणीयं वा ॥

१९८१-अस्ताति विषयमें ऊर्ध्व शब्दके स्थानमें उप आदेश हो और उसके उत्तर रिल् और रिष्टातिल् प्रत्यय भी हों, जैसे-उपरि, उपरिष्टात् वा वसति आगतो रमणीयं वा ॥

१९८२ पश्चात् । ५ । ३ । ३२ ॥

अपरस्य पश्चभावः आतिश्च प्रत्ययोस्तातेर्विषये॥

१९८२-अस्तातिविषयमें अपर शब्दके स्थानमें पश्च आदेश हो और उसके उत्तर आति प्रत्यय हो, यथा-अपरस्यां दिशि वसति=पश्चाद्वसति ॥

१९८३ उत्तराधरदक्षिणादातिः ५।३।३४॥

उत्तरात् । अधरात् । दक्षिणात् ॥

१९८३-अस्तातिविषयमें उत्तर, अधर और दक्षिण शब्दके उत्तर आति प्रत्यय हो, जैसे-उत्तरस्यां दिशि वसति= उत्तरात् । अधरात् । दक्षिणात् ॥

१९८४ एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः । ५ । ३ । ३५ ॥

उत्तरादिभ्य एनब्वा स्यादवध्यवधिमतोः सामीप्ये पञ्चम्यन्तं विना । उत्तरेण । अधरेण । दक्षिणेन । पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः । इह केचिदुत्तरादीननुवर्त्य दिक्शब्दमात्रादेनपमाहुः । पूर्वेण ग्रामम् । अपरेण ग्रामम् ॥

१९८४-अवधि और अवधियुक्त वस्तुके सामीप्यमें उत्तरादि शब्दोंके उत्तर विकल्प करके एनप् प्रत्यय हो, परंतु पञ्चम्यन्तके उत्तर न हो, जैसे-उत्तरस्यां दिशि वसति=उत्तरेण वसति । दक्षिणेन । विकल्पपक्षमें यथायोग्य प्रत्यय होंगे । यहां कोई उत्तरादिकी अनुवृत्ति न करके दिक्शब्दमात्रसे एनप् प्रत्ययका विधान करतेहैं, यथा-पूर्वेण ग्रामम् । अपरेण ग्रामम् ॥

१९८५ दक्षिणादाच् । ५ । ३ । ३६ ॥

अस्तातेर्विषये । दक्षिणा वसति । अपञ्चम्या इत्येव । दक्षिणादागतः ॥

१९८५-अस्तातिविषयमें दक्षिण शब्दके उत्तर आच् प्रत्यय हो, जैसे-दक्षिणा वसति । पञ्चम्यन्तके उत्तर न हो, जैसे-दक्षिणात् आगतः, इस स्थलमें नहीं हुआ ॥

१९८६ आहि च दूरे । ५ । ३ । ३७ ॥

दक्षिणाद् दूरे आहिः स्यात् चादाच् । दक्षिणाहि । दक्षिणा ॥

१९८६–दूरार्थमें दक्षिण शब्दके उत्तर आहि और आच् प्रत्यय हो, जैसे–दक्षिणाहि वसति, दक्षिणा वसति ॥

१९८७ उत्तराच्च । ५ । ३ । ३८ ॥

उत्तराहि । उत्तरा ॥

१९८७–दूरार्थमें उत्तर शब्दके उत्तर आहि और आच् प्रत्यय हो, जैसे–उत्तराहि, उत्तरा ॥

१९८८संख्याया विधार्थे धा।५।३।४२॥

क्रियाप्रकारार्थे वर्तमानात्संख्याशब्दात्स्वार्थे धा स्यात् । चतुर्धा । पञ्चधा ॥

१९८८–क्रियाप्रकारार्थमें वर्तमान संख्यावाचक शब्दके उत्तर स्वार्थमें धा प्रत्यय हो, जैसे–पञ्चधा, चतुर्धा ॥

१९८९अधिकरणविचाले च।५।३।४३॥

द्रव्यस्य संख्यान्तरापादने संख्याया धा स्यात् । एकं राशिं पञ्चधा कुरु ॥

१९८९–द्रव्यके संख्यान्तरापादन अर्थमें संख्यावाचक शब्दके उत्तर धा प्रत्यय हो, जैसे–एकं राशिं पंचधा कुरु ॥

१९९०एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् । ५ । ३ । ४४ ॥

ऐकध्यम् । एकधा ॥

१९९०–क्रियाप्रकारार्थमें वर्तमान एक शब्दके उत्तर विहित धा प्रत्ययको विकल्प करके ध्यमुञ् आदेश हो, जैसे–ऐकध्यम्, एकधा ॥

१९९१ द्वित्र्योश्च धमुञ् । ५ । ३ ।४५॥

आभ्यां धा इत्यस्य धमुञ् स्याद्वा द्वैधम् । द्विधा । त्रैधम् । त्रिधा ॥ धमुञन्तात्स्वार्थे ड-दर्शनम् ॥ * ॥ पथि द्वैधानि ॥

१९९१–द्वि और त्रि शब्दके उत्तर धा प्रत्ययके स्थानमें विकल्प करके धमुञ् प्रत्यय हो, जैसे–द्वैधम्, द्विधा । त्रैधम्, त्रिधा ।

धमुञ्प्रत्ययान्तके उत्तर स्वार्थमें ड प्रत्यय हो * जैसे–पथि द्वैधानि । त्रैधानि ॥

१९९२ एधाच्च । ५ । ३ । ४६ ॥

द्वेधा । त्रेधा ॥

१९९२–द्वि और त्रि शब्दके उत्तर एधाच् प्रत्यय हो, जैसे–द्वेधा । त्रेधा ॥

१९९३ याप्ये पाशप् । ५ । ३ । ४७ ॥

कुत्सितो भिषक् भिषक्पाशः ॥

१९९३–याप्य अर्थात् कुत्सितार्थमें पाशप् प्रत्यय हो,जैसे–कुत्सितो भिषक्=भिषक्पाशः ॥

१९९४ पूरणाद्भागे तीयादन्।५।३।४८॥

द्वितीयो भागो द्वितीयः।तृतीयः । स्वरे विशेषः ॥ तीयादीकक् स्वार्थे वा वाच्यः ॥ * ॥ द्वैतीयीकः । द्वितीयः । तार्तीयीकः । तृतीयः॥ न विद्यायाः॥*॥ द्वितीया, तृतीया, विद्येत्येव ॥

१९९४–पूरणार्थक तीयप्रत्ययान्त भागवाचक शब्दके उत्तर अन् प्रत्यय हो, जैसे–द्वितीयो भागः=द्वितीयः । तृतीयः । स्वरविषयमें विशेष होगा ।

तीयप्रत्ययान्तके उत्तर विकल्प करके स्वार्थमें ईकक् प्रत्यय हो * जैसे–द्वैतीयीकः, द्वितीयः । तार्तीयीकः, तृतीयः ।

विद्या अर्थमें तीयप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर ईकक् प्रत्यय न हो * जैसे–द्वितीया, तृतीया वा विद्या ॥

१९९५ प्रागेकादशभ्योऽछन्दसि । ५ । ३ । ४९ ॥

पूरणप्रत्ययान्ताद्भागेऽन् । चतुर्थः । पञ्चमः ॥

१९९५–वेदसे भिन्न स्थलमें एकादश शब्दके पूर्वपर्यन्त पूरण प्रत्ययान्त संख्यावाचक शब्दके उत्तर अन् प्रत्यय हो, जैसे–चतुर्थः । पंचमः–इत्यादि ॥

१९९६ षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च ।५।३।५०॥

चादन् । षष्ठो भागः षाष्ठः । षष्ठः । आष्टमः । अष्टमः ॥

१९९६–षष्ठ और अष्टम शब्दके उत्तर भागार्थमें ञ और अन् प्रत्यय हो, जैसे–षष्ठो भागः=षाष्ठः, षष्ठः । आष्टमः, अष्टमः ॥

१९९७ मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च । ५ । ३ । ५१ ॥

षष्ठाष्टमशब्दाभ्यां क्रमेण कन्लुकौ स्तो माने पश्वङ्गे च वाच्ये । षष्ठको भागः मानं चेत् । अष्टमो भागः पश्वङ्गं चेत् । ञस्य अनो वा लुक्। चकाराद्यथाप्राप्तम्। षाष्ठः । षष्ठः। आष्टमः । अष्टमः। महाविभाषया सिद्धे लुग्वचनं पूर्वत्र ञानौ नित्याविति ज्ञापयति ॥

१९९७–परिमाण और पशुका अङ्ग होनेपर षष्ठ और अष्टम शब्दके उत्तर यथाक्रम कन् और लुक् हों । परिमाण होनेपर जैसे–षष्ठको भागः। पश्वङ्ग होनेपर जैसे–अष्टमो भागः। ञ और अन् प्रत्ययका विकल्प करके लुक् हुआहै, चकारसे यथाप्राप्त (ञ और अन्का श्रवण) होगा, जैसे–षाष्ठः, षष्ठः। आष्टमः, अष्टमः ॥

महाविभाषासे सिद्ध होनेपर भी पुनर्लुक्का ग्रहण पूर्व सूत्रमें ञ और अन् प्रत्ययकी नित्यता जताताहै ॥

१९९८एकादाकिनिच्चासहाये।५।३।५२।

चात्कन्लुकौ । एकः । एकाकी । एककः ॥

१९९८-एक शब्दके उत्तर असहायार्थमें आकिनिच् प्रत्यय हो, और चकारसे कन् तथा लुक् हो, जैसे-एकः, एकाकी, एककः ॥

१९९९ भूतपूर्वे चरट् । ५ । ३ । ५३ ॥

आढ्यो भूतपूर्वः आढ्यचरः ॥

१९९९-भूतपूर्वार्थमें चरट् प्रत्यय हो, जैसे-आढ्यो भूतपूर्वः=आढ्यचरः ॥

२००० षष्ठ्या रूप्य च । ५ ।३।५४॥

षष्ठ्यन्ताद्भूतपूर्वेऽर्थे रूप्यः स्याच्चरट् च । कृष्णस्य भूतपूर्वो गौः कृष्णरूप्यः । कृष्णचरः । तसिलादिषु रूप्यस्यापरिगणितत्वान्न पुंवत् । शुभ्राया भूतपूर्वः शुभ्रारूप्यः ॥

२०००-षष्ठीविभक्त्यन्त पदके उत्तर भूतपूर्वार्थमें रूप्य और चरट् प्रत्यय हो, जैसे-कृष्णस्य भूतपूर्वो गौः=कृष्णरूप्यः, कृष्णचरः । तसिलादि प्रत्ययके बीचमें रूप्य प्रत्ययके अपरिगणितत्वके कारण पुंवद्भाव नहीं होगा, जैसे-शुभ्राया भूतपूर्वः शुभ्रारूप्यः ॥

२००१ अतिशायने तमबिष्ठनौ । ५ । ३ । ५५ ॥

अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः । अयमेषामतिशयेनाढ्यः । आढ्यतमः । लघुतमः । लघिष्ठः ॥

२००१-अतिशयविशिष्टार्थवृत्तिके उत्तर स्वार्थमें तमप् और इष्ठन् प्रत्यय हो,जैसे-अयमेषामतिशयेन आढ्यः=आढ्यतमः। लघुतमः, लघिष्ठः ॥

२००२ तिङश्च । ५ । ३ । ५६ ॥

तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् ॥

२००२-तिङन्त शब्दके उत्तर अतिशयार्थमें तमप् प्रत्यय हो ॥

२००३ तरतमपौ घः । १ । १ । २२ ॥

एतौ घसंज्ञौ स्तः ॥

२००३-तरप् और तमप् प्रत्यय घसंज्ञक हों ॥

२००४ किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे । ५ । ४ । ११ ॥

किम एदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे । किन्तमाम् । प्राह्णेतमाम् । पचतितमाम् । उच्चैस्तमाम् । द्रव्यप्रकर्षे तु, उच्चैस्तमस्तरुः ॥

२००४-द्रव्यप्रकर्ष न होनेपर किम् शब्द, एदन्त शब्द, तिङन्त पद और अव्यय शब्दके उत्तर जो घ,तदन्त प्रातिपदिकके उत्तर आमु प्रत्यय हो, जैसे-किन्तमाम् । प्राह्णेतमाम् । पचतितमाम् । उच्चैस्तमाम् । द्रव्यप्रकर्ष होनेपर जैसे-उच्चैस्तमः तरुः ॥

२००५ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ । ५ । ३ । ५७ ॥

द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः । पूर्वयोरपवादः । अयमनयोरतिशयेन लघुर्लघुतरः । लघीयान् । उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः । पटीयांसः ॥

२००५-दोके मध्यमें एकके अतिशय होनेपर विभजनीय उपपदमें वर्तमान सुबन्त और तिङन्त पदके उत्तर तरप् और ईयसुन् प्रत्यय हो, यह पूर्वसूत्रोक्त तमप् और इष्ठन्के विशेषक हैं, जैसे-अयमनयोरतिशयेन लघुः=लघुतरः, लघीयान् । उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः । पटीयांसः ॥

२००६ अजादी गुणवचनादेव । ५ । ३ । ५८ ॥

इष्ठन्नीयसुनौ गुणवचनादेव स्तः । नेह । पाचकतरः । पाचकतमः ॥

२००६-गुणवाचक शब्दके ही उत्तर इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय हो, इससे पाचकतरः, पाचकतमः, यहां नहीं हुआ ॥

२००७ तुश्छन्दसि । ५ । ३ । ५९ ॥

तृन्तृजन्तादिष्ठन्नीयसुनौ स्तः ॥

२००७-वेदमें तृन् और तृच्प्रत्ययान्तके उत्तर इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय हो ॥

२००८ तुरिष्ठेमेयःसु । ६ । ४ । १५४ ॥

तृशब्दस्य लोपः स्यादिष्ठेमेयस्सु परेषु । अतिशयेन कर्ता करिष्ठः । दोहीयसी धेनुः ॥

२००८-इष्ठन्, इमन्, ईयसुन्, प्रत्यय परे रहते तृ प्रत्ययका लोप हो, जैसे-अतिशयेन कर्ता=करिष्ठः । दोहीयसी धेनुः ॥

२००९ प्रशस्यस्य श्रः । ५ । ३ । ६० ॥

अस्य श्रादेशः स्यादजाद्योः ॥

२००९-अजादि प्रत्यय परे रहते प्रशस्य शब्दके स्थानमें श्र आदेश हो ॥

२०१० प्रकृत्यैकाच् । ३ । ४ । ६३ ॥

इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात् । श्रेष्ठः । श्रेयान् ॥

२०१०-इष्ठादि प्रत्यय परे रहते एकाच् शब्द प्रकृतिमें ही रहै, जैसे-अयमतिशयेन प्रशस्यः=श्रेष्ठः, श्रेयान् ॥

२०११ ज्य च । ५ । ३ । ६१ ॥

प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यादिष्ठेयसोः । ज्येष्ठः ॥

२०११-इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते प्रशस्य शब्दके स्थानमें ज्य आदेश हो, जैसे-अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः=ज्येष्ठः ॥

२०१२ ज्यादादीयसः । ६ । ४ । १६० ॥

आदेः परस्य । ज्यायान् ॥

२०१२–ज्य शब्दके उत्तर ईयसुन् प्रत्ययके स्थानमें आत् हो, जैसे–(आदेः परस्य ४४) ज्यायान् ॥

२०१३ वृद्धस्य च । ५ । ३ । ६२ ॥

ज्यादेशः स्यादजाद्योः । ज्येष्ठः । ज्यायान् ॥

२०१३–इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते वृद्ध शब्दके स्थानमें ज्य आदेश हो, जैसे–अयमेषामतिशयेन वृद्धः=ज्येष्ठः। अयमनयोरतिशयेन वृद्धः=ज्यायान् ॥

२०१४ अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ । ५ । ३ । ६३ ॥

अजाद्योः । नेदिष्ठः । नेदीयान् । साधिष्ठः । साधीयान् ॥

२०१४–अन्तिक और बाढ शब्दको इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते यथाक्रम नेद और साध आदेश हों, जैसे–अतिशयेनान्तिकः=नेदिष्ठः, नेदीयान् । साधिष्ठः, साधीयान् ॥

२०१५ स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ।६।४।१५६॥

एषां यणादिपरं लुप्यते पूर्वस्य च गुण इष्ठादिषु । स्थविष्ठः । दविष्ठः । यविष्ठः । ह्रसिष्ठः। क्षेपिष्ठः । क्षोदिष्ठः । एवमीयस् । ह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां पृथ्वादित्वाद् ह्रसिमा। क्षेपिमा। क्षोदिमा॥

२०१५–इष्ठादि प्रत्यय परे रहते स्थूल, दूर, युव, ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र शब्दके यणयुक्त अन्तस्थित अर्थात् य, व, र, ल, भागका लोप हो और पूर्व स्वरको गुण हो, जैसे–स्थविष्ठः । दविष्ठः । यविष्ठः । ह्रसिष्ठः । क्षेपिष्ठः । क्षोदिष्ठः । ईयसुन्, इमन् परे भी ऐसे कार्य्य होंगे । ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र शब्दके पृथ्वादि गणमें पाठके कारण ह्रसिमा, क्षेपिमा, क्षोदिमा ऐसा भी होगा ॥

२०१६ प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः । ६ । ४ । १५७ ॥

प्रियादीनां क्रमात्प्रादयः स्युरिष्ठादिषु । प्रेष्ठः। स्थेष्ठः । स्फेष्ठः । वरिष्ठः । बंहिष्ठः । गरिष्ठः । वर्षिष्ठः । त्रपिष्ठः । द्राघिष्ठः । वृन्दिष्ठः । एवमीयसुन् । प्रेयान् । प्रियोरुबहुलगुरुदीर्घाणां पृथ्वादित्वात्प्रेमेत्यादि ॥

२०१६–इष्ठादि प्रत्यय परे रहते प्रिय, स्थिर, स्फिर, ऊरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ और वृन्दारक शब्दोंके स्थानमें यथाक्रम प्रस्थ, स्फ, वर्, बंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राघि और वृन्द आदेश हों, जैसे–अतिशयेन प्रियः=प्रेष्ठः । स्थेष्ठः । स्फेष्ठः । वरिष्ठः । बंहिष्ठः । गरिष्ठः । वर्षिष्ठः । त्रपिष्ठः । द्राघिष्ठः । वृन्दिष्ठः । ईयसुन्, इमन् प्रत्यय परे रहते भी ऐसा आदेश होगा, जैसे–प्रेयान् । प्रिय, ऊरु, बहुल, गुरु और दीर्घ शब्दके उत्तर पृथ्वादित्वके कारण इमनिच् प्रत्यय होकर प्रेमा–इत्यादि पद होंगे ॥

२०१७ बहोर्लोपो भू च बहोः ।६।४।१५८॥

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद्बहोश्च भूरादेशः । भूमा । भूयान् ॥

२०१७–बहु शब्दके परे स्थित इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययका लोप हो और बहु शब्दके स्थानमें भू आदेश हो, जैसे–अतिशयेन बहुः=भूमा, भूयान् (आदेः परस्य.४४) ॥

२०१८ इष्ठस्य यिट् च । ६ । ४ । १५९॥

बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्यात् यिडागमश्च। भूयिष्ठः ॥

२०१८–बहु शब्दके परे स्थित इष्ठन् प्रत्ययका लोप हो और बहु शब्दके उत्तरको यिट्का आगम हो, जैसे–भूयिष्ठः । (यिट्में टका लोप होगा) ॥

२०१९ युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् । ५ । ३ । ६४ ॥

एतयोः कनादेशो वा स्यादिष्ठेयसोः । कनिष्ठः । कनीयान् । पक्षे यविष्ठः । अल्पिष्ठ इत्यादि ॥

२०१९–युवन् और अल्प शब्दके स्थानमें इष्ठन्, ईयसुन् प्रत्यय परे रहते विकल्प करके कन् आदेश हो, जैसे–अयमेषामतिशयेन युवा=कनिष्ठः, कनीयान् । पक्षे यविष्ठः । अल्पिष्ठः–इत्यादि ॥

२०२० विन्मतोर्लुक् ।५।३।६५ ॥

विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः । अतिशयेन स्रग्वी । स्रजिष्ठः । स्रजीयान् । अतिशयेन त्वग्वान् । त्वचिष्ठः । त्वचीयान् ॥

२०२०–इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते विन् और मतुप्का लुक् हो, जैसे–अतिशयेन स्रग्वी=स्रजिष्ठः, स्रजीयान्। अतिशयेन त्वग्वान्=त्वचिष्ठः, त्वचीयान् ॥

२०२१ प्रशंसायां रूपप् ।५।३।६६॥

सुबन्तात्तिङन्ताच्च । प्रशस्तः पटुः पटुरूपः । प्रशस्तं पचति पचतिरूपम् ॥

२०२१–प्रशंसार्थमें सुबन्त और तिङन्त पदके उत्तर रूपप् प्रत्यय हो, जैसे–प्रशस्तः पटुः=पटुरूपः । प्रशस्तं पचति=पचतिरूपम् ॥

२०२२ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः । ५ । ३ । ६७ ॥

ईषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः । यशस्कल्पम् । यजुष्कल्पम् । विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः । पचतिकल्पम् ॥

२०२२-ईषत् असमाप्ति (ईषदून) अर्थमें कल्पप्, देश्य, देशीयर् प्रत्यय हों, जैसे-ईषदूनो विद्वान्=विद्वत्कल्पः। यशस्कल्पम् । यजुष्कल्पम् । विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः। पचतिकल्पम् ॥

२०२३ विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु । ५ । ३ । ६८ ॥

ईषदसमाप्तिविशिष्टेर्थे सुबन्ताद्बहुज्वा स्यात्स च प्रागेव न तु परतः । ईषदूनः पटुर्बहुपटुः। पटुकल्पः । सुपः किम् । यजतिकल्पम् ॥

२०२३-ईषत् ऊनार्थमें सुबन्तसे विकल्प करके बहुच् प्रत्यय हो, यह बहुच् प्रत्यय पूर्वमें ही हो परमें न हो, जैसे-ईषदूनः पटुः=बहुपटुः। पक्षमें कल्पप् प्रत्यय होगा, जैसे-पटुकल्पः। सुबन्त न होनेपर जैसे-यजतिकल्पम् ॥

२०२४ प्रकारवचने जातीयर्।५।३।६९॥

प्रकारवति चायम्। थाल् तु प्रकारमात्रे। पटुप्रकारः पटुजातीयः ॥

२०२४--प्रकार (सादृश्य और भेद) विशिष्ट अर्थमें जातीयर् प्रत्यय हो, यह सूत्र प्रकारविशिष्टविषयक है क्योंकि, केवल प्रकारमें थाल् प्रत्यय पूर्वसूत्रसे होगा, जैसे--पटुप्रकारः= पटुजातीयः ॥

२०२५ प्रागिवात्कः ।५।३।७०॥

इवे प्रतिकृताविव्यतः प्राक् काऽधिकारः ॥

२०२५-" इवे प्रतिकृतौ २०५१ " इस वक्ष्यमाण सूत्रके पूर्वपर्यन्त क प्रत्ययका अधिकार चलेगा ॥

२०२६ अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः।५।३।७१॥

तिङश्चेत्यनुवर्तते ॥

२०२६-अव्यय और सर्वनाम शब्दोंकी और तिङन्तकी टिके पूर्वमें अकच् प्रत्यय हो ॥

२०२७ कस्य च दः । ५ । ३ । ७२॥

कान्ताव्ययस्य दकारोऽन्तादेशः स्यादकच्च ॥

२०२७-ककारान्त अव्यय शब्दको दकार अन्तादेश हो और टिके पूर्वमें अकच् प्रत्यय हो, " तिङश्च २००२" की अनुवृत्ति होतीहै ॥

२०२८ अज्ञाते । ५ । ३ । ७३ ॥

कस्यायमश्वोऽश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वके । विश्वके ॥ ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच् ॥ * ॥ युवकयोः। आवकयोः । युष्मकासु । अस्मकासु । युष्मकाभिः । अस्मकाभिः । ओकारेत्यादि किम् । त्वयका । मयका । अकच्प्रकरणे तूष्णीमः काम्वक्तव्यः ॥ * ॥ मित्त्वादन्त्यादचः परः । तूष्णीकामास्ते ॥ शीले को मलोपश्च ॥ * ॥ तूष्णीं शीलस्तूष्णीकः । पचतकि । जल्पतकि । धकित् । हिरकुत् ॥

२०२८-अज्ञातार्थमें अकच् प्रत्यय हो, जैसे-कस्यायम् अश्वः=अश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वके । विश्वके ।

ओकार, सकार और भकारादि सुप् प्रत्यय परे रहते सर्वनाम शब्दकी टिके पूर्वमें अकच् प्रत्यय हो * जैसे-युवकयोः । आवकयोः । युष्मकासु । अस्मकासु । युष्मकाभिः । अस्मकाभिः । ओकारादि सुप् परे न होनेपर त्वयका । मयका ।

अकच्प्रकरणमें ' तूष्णीम् ' शब्दके उत्तर काम् प्रत्यय हो * प्रत्ययका मकार इत्संज्ञक होनेके कारण अन्त्य अच्के परे होगा, तूष्णीकामास्ते ।

शीलार्थमें ' तूष्णीम् ' शब्दके उत्तर क प्रत्यय हो और मकारका लोप हो * जैसे-तूष्णींशीलः=तूष्णीकः ।

पचतकि । जल्पतकि । धकित् । हिरकुत् ॥

२०२९ कुत्सिते । ५ । ३ । ७४ ॥

कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः ॥

२०२९-कुत्सितार्थमें क प्रत्यय हो, जैसे-कुत्सितोऽश्वः= अश्वकः ॥

२०३० संज्ञायां कन् ।५।३।७५॥

कुत्सिते कन् स्यात्तदन्तेन चेत्संज्ञा गम्यते । शूद्रकः । राधकः । स्वरार्थं वचनम् ॥

२०३०-यदि तदन्त पदसे संज्ञा गम्यमान हो तो कुत्सितार्थमें शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-शूद्रकः । राधकः । यह सूत्र स्वरार्थ है ॥

२०३१ अनुकम्पायाम् ।५।३।७६ ॥

पुत्रकः । अनुकम्पितः पुत्र इत्यर्थः ॥

२०३१-अनुकम्पार्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे-पुत्रकः, अर्थात् अनुकंपित पुत्र ॥

२०३२ नीतौ च तद्युक्तात्।५।३।७७॥

सामदानादिरूपा नीतिस्तस्यां गम्यमानायामनुकम्पायुक्तात्कप्रत्ययः स्यात् । हन्त ते धानकाः । गुडकाः । एहकि । अद्धकि । पूर्वेणानुकम्प्यमानात् प्रत्ययः, अनेन तु परम्परासम्बन्धेपीति विशेषः ॥

२०३२-साम दानादि उपायको नीति कहतेहैं,नीति अर्थ होनेपर अनुकम्पायुक्त शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-हन्त ते धानकाः गुडकाः । एहकि । अद्धकि । पूर्व सूत्रसे अनुकम्प्यमानके उत्तर कन् प्रत्यय हुआ परंतु इससे परम्परा संबंधमें भी होगा, यही विशेष है ॥

२०३३ बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा । ५ । ३ । ७८ ॥

पूर्वसूत्रद्वयविषये ॥

२०३३–पहले दोनों सूत्रोंके विषयमें बहुस्वरयुक्त मनुष्यनामवाचक शब्दके उत्तर विकल्प करके ठच् प्रत्यय हो ॥

२०३४ घनिलचौ च । ५।३।७९ ॥

तत्रैव ॥

२०३४–पूर्वसूत्रोक्त विषयमें घन् और इलच् प्रत्यय हो ॥

२०३५ ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः । ५ । ३ । ८३ ॥

अस्मिन्प्रकरणे यष्ठोऽजादिप्रत्ययश्च तस्मिन्प्रत्यये परे प्रकृतेर्द्वितीयादच ऊर्ध्वं सर्वं लुप्यते। अनुकम्पितो देवदत्तो देविकः। देवियः। देविलः। देवदत्तकः । अनुकम्पितो वायुदत्तो वायुकः । ठग्रहणमुको द्वितीयत्वे कविधानार्थम्॥वायुदत्तः। वायुकः। पितृकः ॥ चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपो वाच्यः ॥ * अनुकम्पितो बृहस्पतिदत्तो बृहस्पतिकः ॥ अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्यः ॥ * ॥ देवकः । देवदत्तकः ॥ लोपः पूर्वपदस्य च ॥ * ॥ दत्तिकः। दत्तियः। दत्तिलः। दत्तकः ॥ विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः ॥ * ॥ दत्तः । देवः । देवदत्तः ॥ भामा । सत्या । सत्यभामा ॥ उवर्णाल्ल इलस्य च ॥*॥भानुलः। भानुदत्तः ॥ ऋवर्णादपि॥*॥ सवितृलः । सवित्रियः ॥

चतुर्थादनजादौ च लोपः पूर्वपदस्य च ।
अप्रत्यये तथैवेष्ट उवर्णाल्ल इलस्य च ॥ १ ॥

२०३५–इस प्रकरणमें जो ठ और अजादि प्रत्यय कहेहैं, वह प्रत्यय परे रहते प्रकृतिके दूसरे अच्के परवर्ती सम्पूर्ण अंशका लोप हो, जैसे–अनुकम्पितो देवदत्तः=देविकः,देवियः। देविलः, देवदत्तकः । अनुकम्पितो वायुदत्तः=वायुकः "इसुसुक्तान्तात् कः" इस सूत्रसे विहित उक्के द्वितीयत्वमें क विधानके निमित्त ठ ग्रहण हुआहै, जैसे–वायुदत्तः–वायुकः । पितृकः ।

चतुर्थ अच्के परे स्थित अंशका लोप हो * यथा–अनुकम्पितो बृहस्पतिदत्तो बृहस्पतिकः ।

अजादि न होनेपर विकल्प करके लोप हो * यथा–देवकः, देवदत्तकः ।

पूर्वपदका भी लोप हो * यथा–दत्तिकः, दत्तियः, दत्तिलः, दत्तकः ।

प्रत्ययके विना भी पूर्व और उत्तर पदका लोप विकल्प करके हो * जैसे–दत्तः, देवः, देवदत्तः । भामा, सत्या, सत्यभामा ।

उवर्णके उत्तर इलच् प्रत्ययका भी ल हो * जैसे–भानुदत्तः–भानुलः ।

ऋवर्णके उत्तर पूर्वपदका लोप हो * जैसे–सवितृलः । सवित्रियः ।

अनजादि विषयमें चतुर्थ अच्के उत्तरपदका लोप हो, इसी प्रकार प्रत्यय परे न रहते भी लोप हो, उवर्णान्तके उत्तर इलको ल आदेश हो, यह कारिकाका अर्थ है ॥

२०३६ प्राचामुपादेरडज्वुचौ च । ५ । ३ । ८० ॥

उपशब्दपूर्वात्प्रातिपदिकात्पूर्वविषये अडच् वुच् एतौ स्तः । चाद्यथा प्राप्तम् । प्राचांग्रहणं पूजार्थम् । अनुकम्पितः उपेन्द्रदत्तः उपडः । उपकः । उपिकः । उपियः । उपिलः । उपेन्द्रदत्तकः । षड्रूपाणि ॥

२०३६–उपशब्दपूर्वक प्रातिपदिकके उत्तर पूर्व विषयमें अडच् और वुच् प्रत्यय हों, चकारसे यथाप्राप्त होगा। 'प्राचाम्' पदका ग्रहण पूजाके निमित्त है, जैसे–अनुकम्पितः उपेन्द्रदत्तः=उपडः, उपकः, उपिकः, उपियः, उपिलः, उपेन्द्रदत्तकः, यह छै रूप होंगे ॥

२०३७ जातिनाम्नः कन् ।५।३ । ८१ ॥

मनुष्यनाम्न इत्येव । जातिशब्दो यो मनुष्यनामधेयस्तस्मात्कन् स्यादनुकम्पायां नीतौ च । सिंहकः । शरभकः । रासभकः ॥ द्वितीयं संध्यक्षरं चेत्तदादेर्लोपो वक्तव्यः ॥*॥ कहोडः । कहिकः ॥ एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपो वक्तव्यः ॥ * ॥ वागाशीर्दत्तः वाचिकः। कथं षडंगुलिदत्तः षडिक इति ॥ षषष्ठाजादिवचनात्सिद्धम् ॥ * ॥

२०३७–जातिवाचक शब्द जो मनुष्य नामवाचक हो, उस शब्दके उत्तर अनुकम्पा और नीति अर्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे–सिंहकः । शरभकः । रासभकः ।

यदि दूसरी संधिका अक्षर हो तो तदादिका लोप हो* कहोडः । कहिकः ।

एकाक्षरयुक्त पूर्वपदविशिष्ट शब्दके उत्तरपदका लोप हो* वागाशीर्दत्तः–वाचिकः ।

षडंगुलिदत्तः=षडिकः यह पद कैसे सिद्ध हुआ, कारण कि, उत्तरपदके लोप होनेपर अजादि प्रत्यय परे रहते " यचि भम् १।४।१८ " से भ संज्ञा होनेके कारण जश्त्वकी प्राप्ति नहीं है ? इसलिये वार्तिक कहतेहैं–

षषष्ठाजादिवचनात्सिद्धम् * अर्थात् षडंगुलिदत्त शब्दमें " एकाक्षर० " यह वार्तिक न होकर " ठाजादा० " इस सूत्रसे ही द्वितीय अच्से पर भागका लोप हो, इसलिये अकारसे व्यवधान होनेके कारण षान्तकी भ संज्ञा न होनेसे जश्त्व हुआ ॥

२०३८ शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात् । ५ । ३ । ८४ ॥

एषां मनुष्यनाम्नां ठाजादौ परे तृतीयादच ऊर्ध्वं लोपः स्यात् । पूर्वस्यापवादः। अनुकम्पितः शेवलदत्तः। शेवलिकः । शेवलियः । शेवलिलः । सुपरिकः । विशालिकः । वरुणिकः।अर्यमिकः ॥

२०३८-नीति और अनुकंपार्थमें अजादि प्रत्यय परे रहते शेवल, सुपरि, विशाल, वरुण, अर्यमन्-इत्यादि मनुष्य नामवाचक शब्दके तीसरे अच्के परभागका लोप हो, यह सूत्र पूर्व सूत्रका विशेषक है, जैसे-अनुकम्पितः शेवलदत्तः- शेवलिकः, शेवलियः, शेवलिलः । सुपरिकः । विशालिकः । वरुणिकः । अर्यमिकः ॥

२०३९ अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च । ५ । ३ । ८२ ॥

अजिनान्तान्मनुष्यनाम्नोऽनुकम्पायां कन् तस्य चोत्तरपदलोपः । अनुकम्पितो व्याघ्राजिनो व्याघ्रकः । सिंहकः ॥

२०३९-अजिन्शब्दान्त मनुष्यनामवाचक शब्दके उत्तर अनुकम्पार्थमें कन् प्रत्यय हो और उत्तरपदका लोप हो, जैसे- अनुकम्पितः व्याघ्राजिनः=व्याघ्रकः । सिंहकः ॥

२०४० अल्पे । ५ । ३ । ८५ ॥

अल्पं तैलं तैलिकम् ॥

२०४०-अल्पार्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे-अल्पं तैलं= तैलिकम् ॥

२०४१ ह्रस्वे । ५ । ३ । ८६ ॥

ह्रस्वो वृक्षो वृक्षकः ॥

२०४१-ह्रस्वार्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे-ह्रस्वो वृक्षः= ह्रस्वकः ॥

२०४२ संज्ञायां कन् । ५ । ३ । ८७ ॥

ह्रस्वहेतुका या संज्ञा तस्यां गम्यमानायां कन् । पूर्वस्यापवादः । वंशकः । वेणुकः ॥

२०४२-ह्रस्वहेतुक जो संज्ञा वह होनेपर कन् प्रत्यय हो, यह पूर्व सूत्रका अपवाद है, जैसे-वंशकः वेणुकः ॥

२०४३ कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ५।३।८८

ह्रस्वा कुटी कुटीरः । शमीरः । शुण्डारः ॥

२०४३-ह्रस्वार्थमें कुटी, शमी और शुण्डा शब्दके उत्तर र प्रत्यय हो, जैसे-ह्रस्वा कुटी=कुटीरः । शमीरः । शुण्डारः ॥

२०४४ कुत्वा डुपच् । ५ । ३ । ८९ ॥

ह्रस्वा कुतूः कुतुपः । कुतूः कृत्तेः स्नेहपात्रं ह्रस्वा सा कुतुपः पुमान् ॥

२०४४-ह्रस्वार्थमें कुतू शब्दके उत्तर डुपच् प्रत्यय हो, जैसे-ह्रस्वा कतूः=कुतुपः । कुतू शब्दसे चमडेका बनाहुआ स्नेहपात्र अर्थात् तेलका वर्तन जानना । वह छोटा होनेसे कुतुप, (कुप्पी) कही जातीहै । कुतुप शब्द पुँल्लिङ्ग है ॥

२०४५ कासूगोणीभ्यां ष्टरच् ।५।३।९०॥

आयुधविशेषः कासूः । ह्रस्वा सा कासूतरी। गोणीतरी ॥

२०४५-ह्रस्वार्थमें कासू और गोणी शब्दके उत्तर ष्टरच् प्रत्यय हो, जैसे-ह्रस्वा कासूः=कासूतरी । कासू शब्दसे अस्त्रविशेष जानना । गोणीतरी । गोणी शब्दसे धान्यादि पात्र (कुठिया वा खलिहान) जानना ॥

२०४६ वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे । ५ । ३ । ९१ ॥

वत्सतरः द्वितीयं वयः प्राप्तः । उक्षतरः । अश्वतरः । ऋषभतरः । प्रवृत्तिनिमित्ततनुत्वे एवायम् ॥

२०४६-तनुत्व अर्थात् वयोन्तर प्राप्ति होनेपर वत्स और उक्ष शब्दके उत्तर और अपकर्ष होनेपर अश्व और ऋषभ शब्दके उत्तर ष्टरप् प्रत्यय हो, जैसे-वत्सतरः, अर्थात् दूसरी उमरको प्राप्त हुआ बछड़ा । उक्षतरः । द्वितीयवयःप्राप्तको उक्षा कहतेहैं, उसको तनुत्व अर्थात् तीसरी उमरकी प्राप्ति । अश्वतरः । अश्वजातिका तनुत्व अर्थात् अन्यपितृकतारूप अपकर्ष । बोझ उठानेवाले बैलको ऋषभ कहतेहैं, उसके वहनमें अपकर्ष अर्थात् मंद शक्ति होनेपर उसको ' ऋषभतर ' कहतेहैं ॥

२०४७ किंयत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् । ५ । ३ । ९२ ॥

अनयोः कतरो वैष्णवः । यतरः । ततरः । महाविभाषया कः । यः । सः ॥

२०४७-किम्,यद् और तद् शब्दके उत्तर दोनोंके मध्यमें एकका निर्द्धारण होनेपर डतरच् प्रत्यय हो, जैसे-अनयोः कतरो वैष्णवः । यतरः । ततरः । महाविभाषासे पक्षमें, किम् शब्दसे 'कः', यद् शब्दसे 'यः' और तद् शब्दसे 'सः' हुआ ॥

२०४८ वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् । ५ । ३ । ९३॥

बहूनां मध्ये एकस्य निर्द्धारणे डतमच् वा स्यात् । जातिपरिप्रश्न इति प्रत्याख्यातमाकरे । कतमो भवतां कठः । यतमः । ततमः । वाग्रहणमकजर्थम् । यकः । सकः। महाविभाषया यः। सः । किमोऽस्मिन्विषये डतरजपि । कतरः ॥

२०४८-बहुतोंके मध्यमें एकके जातिनिर्द्धारण होनेपर किम्, यद् और तद् शब्दके उत्तर विकल्प करके डतमच् प्रत्यय हो।

'जातिपरिप्रश्ने' यह पद भाष्यमें प्रत्याख्यात हुआहै, इस कारण 'कतमो भवताम् अध्यापकः। शूरः देवदत्तो वा' ऐसा प्रयोग संगत होताहै । कतमो भवतां कठः । यतमः। ततमः। वा शब्दका ग्रहण अकजर्थ है। यकः। सकः। महाविभाषासे 'यः, सः' ऐसा भी होगा।

इस विषयमें किम् शब्दके उत्तर डतरच् प्रत्यय भी हो,जैसे-कतरः ॥

२०४९ एकाच्च प्राचाम् ।५।३।९४॥

डतरच्च डतमच्च स्यात्। अनयोरेकतरो मैत्रः। एषामेकतमः ॥

२०४९–प्राचीन पंडितोंके मतमें एक शब्दके उत्तर डतरच् और डतमच् प्रत्यय हो, जैसे–अनयोरेकतरो मैत्रः। एषामेकतमः ॥

२०५० अवक्षेपणे कन् ।५।३।९५॥

व्याकरणेन गर्वितो व्याकरणकः । येनेतरः कुत्स्यते तदिहोदाहरणम्। स्वतः कुत्सितं तु कुत्सित इत्यस्य ॥

॥ इति प्रागिवीयानां पूर्णोवधिः ॥

२०५०–अवक्षेप अर्थात् गर्वित अर्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे–व्याकरणेन गर्वितः=व्याकरणकः। इस स्थलमें 'व्याकरणक' शब्दसे व्याकरणज्ञानवर्जितकी जो निन्दा करै उसको ही जानना, परन्तु स्वयम् कुत्सित होनेपर (२०२९) कन् प्रत्यय होगा।

॥ इति प्रागिवीयप्रकरणम् ॥

अथ स्वार्थिकप्रकरणम्।

२०५१ इवे प्रतिकृतौ। ५।३।९६॥

कन् स्यात्। अश्व इव प्रतिकृतिः अश्वकः। प्रतिकृतौ किम्। गौरिव गवयः ॥

२०५१–इवार्थोपमानत्वविशिष्ट अर्थमें वर्तमान प्रातिपदिकके उत्तर कन् प्रत्यय हो, यदि उपमेय ही प्रतिकृति हो, मृत्तिकादिनिर्मित प्रतिमाको प्रतिकृति कहतेहैं, जैसे–अश्व इव प्रतिकृतिः=अश्वकः । प्रतिकृति न होनेपर गौरिव=गवयः यहां कन् न हुआ ॥

२०५२ संज्ञायां च। ५। ३।९७॥

इवार्थे कन् स्यात्समुदायश्चेत्संज्ञा। अप्रतिकृत्यर्थमारम्भः। अश्वसदृशस्य संज्ञा अश्वकः। उष्ट्रकः ॥

२०५२–संज्ञा होनेपर इवार्थमें कन् प्रत्यय हो, इस सूत्रका आरम्भ अप्रतिकृत्यर्थ है, जैसे–अश्वसदृशस्य संज्ञा=अश्वकः। उष्ट्रकः ॥

२०५३ लुम्मनुष्ये। ५। ३। ९८ ॥

संज्ञायां च विहितस्य कनो लुप्स्यान्मनुष्ये वाच्ये। चञ्चा तृणमयः पुमान्। चञ्चेव मनुष्यश्चञ्चा। वर्ध्रिका ॥

२०५३–मनुष्य होनेपर संज्ञार्थमें विहित कन् प्रत्ययका लुप् हो, जैसे–चञ्चा तृणमयः पुमान् (तृणमय पुरुषको चञ्चा कहतेहैं)। चञ्चा इव मनुष्यः=चञ्चा। वर्ध्रिका ॥

२०५४ जीविकार्थे चापण्ये।५।३।९९॥

जीविकार्थं यद्विक्रीयमाणं तस्मिन्वाच्ये कनो लुप्स्यात्। वासुदेवः। शिवः। स्कन्दः। देवलकानां जीविकार्थासु देवप्रतिकृतिष्विदम्। अपण्ये किम्। हस्तिकान्विक्रीणीते ॥

२०५४–जीविकार्थ जो विक्रीयमाण, तद्भिन्न अर्थ (विक्रयसे भिन्न जीविका) होनेपर कन् प्रत्ययका लुप् हो, जैसे–वासुदेवः। शिवः। स्कंदः। यह कार्य्य देवलादिके जीविकार्थमें देवताओंकी प्रतिकृति होनेपर होताहै, क्योंकि, देवल देवमूर्ति सेवासे ही निर्वाह करतेहैं, उसमें जो वासुदेवसे जीविका निर्वाह करै उसको 'वासुदेव ' कहतेहैं।

पण्यार्थ होनेपर जैसे–हस्तिकान् विक्रीणीते, यहां कन् प्रत्ययका लोप न हुआ।

(इस सूत्रसे तथा भाष्यके उदाहरणोंसे मूर्तिपूजन सिद्ध होताहै, इससे वैदिक होना सिद्ध है, दयानंदने सैकडों सूत्र छोड दिये, इसका अर्थ भी उलटा कियाहै)॥

२०५५देवपथादिभ्यश्च।५।३।१००॥

कनो लुप्स्यात्। देवपथः। हंसपथः। आकृतिगणोऽयम् ॥

२०५५–देवपथादि शब्दके उत्तर कन् प्रत्ययका लुप् हो, जैसे–देवपथः। हंसपथः। देवपथादि आकृतिगण है ॥

२०५६ वस्तेर्ढञ्। ५। ३। १०१॥

इवेत्यनुवर्तत एव। प्रतिकृताविति निवृत्तम्। वस्तिरिव वास्तेयम्। वास्तेयी ॥

२०५६–वस्ति शब्दके उत्तर इवार्थमें ढञ् प्रत्यय हो, इस स्थलमें इव शब्दकी अनुवृत्ति हुई,प्रतिकृतिकी निवृत्ति भी हुई, जैसे–वस्तिरिव=वास्तेयम्। वास्तेयी ॥

२०५७ शिलाया ढः ।५।३।१०२॥

शिलाया इति योगविभागाड्ढञपीत्येके। शिलेव शिलेयम्। शैलेयम् ॥

२०५७–शिला शब्दके उत्तर इवार्थमें ढ प्रत्यय हो,जैसे–शिलेव=शिलेयम्। कोई २ कहतेहैं "शिलायाः" ऐसे योगविभाग (भिन्नसूत्रकरण) के कारण शिला शब्दके उत्तर ढञ् प्रत्यय भी होगा, जैसे–शैलेयम् ॥

२०५८ शाखादिभ्यो यः।५।३।१०३॥

शाखेव शाख्यः। मुख्यः। जघनमिव जघन्यः। अग्र्यः। शरण्यः ॥

२०५८–शाखादि शब्दके उत्तर इवार्थमें य प्रत्यय हो, जैसे–शाखेव=शाख्यः। मुख्यः। जघनमिव=जघन्यः। अग्र्यः। शरण्यः ॥

२०५९ द्रव्यं च भव्ये।५।३।१०४॥

द्रव्यम् अयं ब्राह्मणः ॥

२०५९-भव्यार्थमें (अभिप्रेतार्थपात्रभूत विषयमें) वर्तमान द्रु शब्दके उत्तर इवार्थमें य प्रत्यय हो, अथवा भव्यार्थमें 'द्रव्य' शब्द निपातनसे सिद्ध हो, जैसे-द्रव्यमयं ब्राह्मणः, अर्थात् अभिप्रेतार्थ पात्रभूत ब्राह्मण ।

२०६० कुशाग्राच्छः । ५।३।१०५॥

कुशाग्रमिव कुशाग्रीया बुद्धिः ॥

२०६०-कुशाग्र शब्दके उत्तर इवार्थमें छ प्रत्यय हो, जैसे-कुशाग्रम् इव=कुशाग्रीया बुद्धिः ॥

२०६१ समासाच्च तद्विषयात् । ५ । ३ । १०६ ॥

इवार्थविषयात् समासाच्छः स्यात् । काकतालीयो देवदत्तस्य वधः । इह काकतालसमागमसदृशश्चोरसमागम इति समासार्थः । तत्प्रयुक्तः काकमरणसदृशस्तु प्रत्ययार्थः । अजाकृपाणीयः । अतर्कितोपनत इति फलितोऽर्थः ॥

२०६१-इवार्थविषयीभूत समासके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-काकतालीयः देवदत्तस्य वधः । इस स्थलमें काकतालसमागमसदृश चौरसमागम यह समासार्थ है, परन्तु तत्प्रयुक्त काकमरणसदृश प्रत्ययार्थ है। अजाकृपाणीयः, अर्थात् अतर्कित भावमें उपनत ॥

२०६२ शर्करादिभ्योऽण् ।५।३।१०७॥

शर्करेव शार्करम् ॥

२०६२-शर्करादि शब्दके उत्तर इवार्थमें अण् प्रत्यय हो, जैसे-शर्करेव=शार्करम् ॥

२०६३ अंगुल्यादिभ्यष्ठक्।५।३।१०८॥

अंगुलीव आंगुलिकः । भरुजेव भारुजिकः ॥

२०६३-अंगुल्यादि शब्दके उत्तर इवार्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-अंगुलीव=आंगुलिकः । भरुजेव=भारुजिकः ॥

२०६४ एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम्। ५ । ३ । १०९ ॥

एकशालाशब्दादिवार्थे ठज्वा पक्षे ठक् । एकशालेव एकशालिकः । ऐकशालिकः ॥

२०६४-एकशाला शब्दके उत्तर स्वार्थमें ठञ् और पक्षमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-एकशालेव=एकशालिकः, ऐकशालिकः॥

२०६५ कर्कलोहितादीकक्।५।३।११०॥

कर्कः शुक्लोऽश्वः स इव कार्कीकः । लौहितीकः स्फटिकः ॥

२०६५-कर्क और लोहित शब्दके उत्तर इवार्थमें ईकक् प्रत्यय हो, जैसे-कर्क इव=कार्कीकः । कर्क शब्दसे सफेद घोड़ा जानना । लौहितीकः, अर्थात् स्फटिक ॥

२०६६ पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्। ५ । ३ । ११२ ॥

इवार्थो निवृत्तः । नानाजातीया अनियतवृत्तयोऽर्थकामप्रधानाः सङ्घाः पूगास्तद्वाचकात्स्वार्थे ञ्यः स्यात् । लौहितध्वज्यः ॥

२०६६-ग्रामणी शब्द पूर्वमें न रहते पूगवाचक शब्दके उत्तर स्वार्थमें ञ्य प्रत्यय हो, इस सूत्रसे इवार्थकी निवृत्ति हुई, नानाजातीय अनियतवृत्ति अर्थ कामप्रधान जो संघ उसको 'पूग' कहतेहैं, उससे स्वार्थमें ञ्य प्रत्यय हो, जैसे-लौहितध्वज्यः ॥

(व्रातच्फञोरस्त्रियाम् । ५ । ३ । ११३ ॥ ११००)

व्रातः, कापोतपाक्यः । च्फञ्, कौञ्जायन्यः । ब्राध्नायन्यः ॥

स्त्रीलिङ्गभिन्नमें व्रातवाचक और च्फञ् प्रत्ययान्तसे ञ्य प्रत्यय हो (सू० ११००) व्रात यथा-कापोतपाक्यः । चफञ् जैसे-कौञ्जायन्यः । ब्राध्नायन्यः ॥

२०६७ आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यड्वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्। ५ । ३ । ११४ ॥

वाहीकेषु य आयुधजीविसङ्घस्तद्वाचिनः स्वार्थे ञ्यट् । क्षौद्रक्यः । मालव्यः।टित्वान्ङीप्। क्षौद्रकी । आयुधेति किम् । मल्लाः।संघेति किम्। सम्राट् । वाहीकेषु किम् । शबराः ।अब्राह्मणेति किम् । गोपालवाः । शालंकायनाः। ब्राह्मणे तद्विशेषग्रहणम् । राजन्ये स्वरूपग्रहणम् ।

२०६७-वाहीक अर्थमें जो आयुधजीविसमूह, तद्वाचक शब्दके उत्तर स्वार्थमें ञ्यट् प्रत्यय हो, ब्राह्मण और राजन्य शब्दके उत्तर न हो, जैसे-क्षौद्रक्यः । मालव्यः ।

टकार इत्संज्ञक होनेके कारण स्त्रीलिङ्गमें ङीप् होगा, जैसे-क्षौद्रकी ।

आयुधजीवी अर्थ न होनेपर मल्लाः ।

संघ न होनेपर सम्राट् ।

वाहीक अर्थ न होनेपर शबराः ।

अब्राह्मण न होनेपर गोपालवाः । शालङ्कायनाः ।

इस स्थलमें ब्राह्मणसे तद्विशेषग्रहण और राजन्यसे स्वरूपग्रहण होगा ॥

२०६८ वृकाट्टेण्यण् ।५।३।११५॥

आयुधजीविसंघवाचकात्स्वार्थे । वार्केण्यः । आयुधेति किम् । जातिशब्दान्मा भूत् ॥

२०६८-आयुधजीविसमूहवाचक वृक शब्दके उत्तर स्वार्थमें टेण्यण् प्रत्यय हो, जैसे-वार्केण्यः ।

आयुध कहनेसे जातिवाचकके उत्तर नहीं होगा ।

२०६९ दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः । ५ । ३ । ११६ ॥

दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्तषष्ठेभ्यश्चायुधजीविसंघवाचिभ्यः स्वार्थे छः स्यात् । त्रिगर्तः षष्ठो वर्गो येषां ते त्रिगर्तषष्ठाः ॥

आहुस्त्रिगर्तषष्ठांस्तु कौण्डोपरथदाण्डकी ।
क्रोष्टुकिर्जालमानिश्च ब्रह्मगुप्तोऽथ जालकिः१॥

दामनीयः । दामनीयौ । दामनयः । औलपि-औलपीयः । त्रिगर्त-त्रिगर्तीयः । कौण्डोपरथीयः । दाण्डकीयः ॥

२०६९-आयुधजीविसंघवाचक दामान्यादि, त्रिगर्तषष्ठ शब्दोंके उत्तर स्वार्थमें छ प्रत्यय हो, त्रिगर्तः षष्ठो वर्गो येषां ते= त्रिगर्त्तषष्ठाः ।

कौंडोपरथ, दाण्डकी, क्रोष्टुकि, जालमानि, ब्रह्मगुप्त और जालकि शब्द भी त्रिगर्त्त कहे जातेहैं ।

दामनीयः । दामनीयौ । दामनयः । औलपि, औलपीयः । त्रिगर्त्त, त्रिगर्तीयः । कौंडोपरथीयः । दाण्डकीयः ॥

२०७०पश्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ। ५ । ३ । ११७ ॥

आयुधजीविसंघवाचिभ्य एभ्यः क्रमादणञौ स्तः स्वार्थे । पार्शवः । पार्शवौ । पर्शवः। यौधेयः। यौधेयौ । यौधेयाः ॥

२०७०-आयुधजीविसंघवाचक पर्श्वादि और यौधेयादि शब्दोंके उत्तर स्वार्थमें क्रमसे अण् और अञ् प्रत्यय हों, जैसे-पार्शवः । पार्शवौ । पर्शवः । यौधेयः । यौधेयौ । यौधेयाः ॥

२०७१ अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमीवदूर्णावच्छ्रुमदणो यञ् । ५ । ३ । ११८ ॥

अभिजिदादिभ्योऽणन्तेभ्यः स्वार्थे यञ् स्यात् । अभिजितोऽपत्यमाभिजित्यः।वैदभृत्यः । शालावत्यः । शैखावत्यः । शामीवत्यः।और्णावत्यः । श्रौमत्यः ॥

२०७१-अभिजित्, विदभृत्, शालावत्, शिखावत्, शमीवत्, ऊर्णावत् और श्रुमत्, इन अण्प्रत्ययान्त शब्दोंके उत्तर स्वार्थमें यञ् प्रत्यय हो, जैसे-अभिजितोऽपत्यम्= आभिजित्यः । वैदभृत्यः । शालावत्यः । शैखावत्यः । शामीवत्यः । और्णावत्यः । श्रौमत्यः ॥

२०७२ ञ्यादयस्तद्राजाः । ५ । ३ । ११९ ॥

पूगाञ्ञ्य इत्यारभ्य उक्ता एतत्संज्ञाः स्युः । तेनास्त्रियां बहुषु लुक् । लोहितध्वजाः । कपोतपाकाः । कौञ्जायनाः । ब्राध्नायना इत्यादि ॥

२०७२-"पूगात् ञ्यः २०६६" इस सूत्रसे लेकर इस प्रकरणमें उक्त सम्पूर्ण प्रत्ययोंकी तद्राज संज्ञा हो, तद्द्वारा स्त्रीलिङ्गभिन्न स्थलमें बहुत अर्थमें प्रत्ययका लुक् होगा, जैसे-लोहितध्वजाः । कपोतपाकाः । कौञ्जायनाः । ब्राध्नायनाः-इत्यादि ॥

२०७३ पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च । ५ । ४ । १ ॥

लोपवचनमनैमित्तिकत्वार्थम् । अतो न स्थानिवत् । पादः पत् । तद्धितार्थ इति समासे कृते प्रत्ययः । वुन्नन्तं स्त्रियामेव । द्वौ द्वौ पादौ ददाति द्विपदिकाम् । द्विशतिकाम् । पादशतग्रहणमनर्थकमन्यत्रापि दर्शनात् ॥ द्विमोदिकिकाम् ॥

२०७३-संख्यावाचक शब्द पूर्वमें रहते पाद और शत शब्दके उत्तर वीप्सार्थमें वुन् प्रत्यय और पाद,शतके अन्त्यवर्ण का लोप हो,इस सूत्रसे लोपविधान अनैमित्तिकत्वार्थ है, इस कारण स्थानिवद्भाव नहीं होगा । पाद शब्दके स्थानमें पद् आदेश हो (४१४) । तद्धितार्थमें (७२८) समास करनेपर प्रत्यय होगा । वुन्नन्त पद स्त्रीलिङ्ग हो, जैसे-द्वौ द्वौ पादौ ददाति=द्विपदिकाम् । द्विशतिकाम् । पाद और शत शब्दका ग्रहण अनर्थक है क्योंकि, यह कार्य्य अन्यत्र भी देखा जाताहै, द्विमोदिकिकाम् ॥

२०७४ दण्डव्यवसर्गयोश्च ।५।४ ।२ ॥

वुन् स्यात् । अवीप्सार्थमिदम् । द्वौ पादौ दण्डितः द्विपदिकां द्विशतिकां व्यवसृजति ददातीत्यर्थः ॥

२०७४-दंड और व्यवसर्ग अर्थमें वुन् प्रत्यय हो । यह सूत्र अवीप्सार्थ है । द्वौ पादौ दंडितः=द्विपदिकां व्यवसृजति, ददातीत्यर्थः ॥

२०७५ स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् । ५ । ४ । ३ ॥

जातीयरोपवादः । स्थूलकः । अणुकः ॥ चञ्चद्बृहतोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ चञ्चत्कः । बृहत्कः॥सुराया अहौ ॥॥ सुरावर्णोऽहिः सुरकः ॥

२०७५-स्थूलादि शब्दोंके उत्तर प्रकारार्थमें कन् प्रत्यय हो, यह सूत्र जातीयर् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे-स्थूलकः । अणुकः ॥

चञ्चत् और बृहत् शब्दके उत्तर भी अण् प्रत्यय हो * जैसे-चञ्चत्कः । बृहत्कः ।

सुरा शब्दके उत्तर अहि अर्थात् सर्पार्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे-सुरावर्णोऽहिः=सुरकः ॥

२०७६ अनत्यन्तगतौ क्तात् ।५।४।४ ॥

छिन्नकम् । भिन्नकम् । अभिन्नकम् ॥

२०७६-अनत्यन्त गति अर्थमें क्तप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-छिन्नकम् । भिन्नकम्। अभिन्नकम्।

२०७७ न सामिवचने । ५ । ४ । ५ ॥

सामिपर्याये उपपदे क्तान्तान्न कन् । सामिकृतम् । अर्धकृतम् । अनत्यन्तगतेरिह प्रकृत्यैवाभिधानात्पूर्वेण कन्न प्राप्तः । इदमेव निषेधसूत्रमत्यन्तस्वार्थिकमपि कनं ज्ञापयति । बहुतरकम् ॥

२०७७-सामिपर्य्यायवाचक उपपद रहते क्त प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय न हो,जैसे-सामिकृतम् । अर्द्धकृतम्। इस स्थलमें प्रकृतिसे ही अनत्यन्त गति (सर्वावयवसे सम्बन्धाभावके) अभिधानके कारण पूर्वसूत्रसे कन् प्रत्ययकी प्राप्ति नहीं थी, इसलिये यह निषेध सूत्र ही अत्यन्त स्वार्थिक जो कन् प्रत्यय उसको ज्ञापन करताहै, जैसे-बहुतरकम् ॥

२०७८ बृहत्या आच्छादने ।५।४।६ ॥

कन् स्यात् । द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा । आच्छादने किम् । बृहती छन्दः ॥

२०७८-आच्छादनार्थमें बृहती शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा। आच्छादन न होनेपर कन् प्रत्यय नहीं होगा, जैसे-बृहती छन्दः ॥

२०७९ अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालंपुरुषाध्युत्तरपदात्खः । ५ । ४ । ७ ॥

स्वार्थे । अषडक्षीणो मन्त्रः । द्वाभ्यामेव कृत इत्यर्थः। आशिता गावोऽस्मिन्निति आशितङ्गवीनमरण्यम् । निपातनात्पूर्वस्य मुम् । अलंकर्मीणः । अलंपुरुषीणः । ईश्वराधीनः । नित्योऽयं खः । उत्तरसूत्रे विभाषाग्रहणात् ॥ अन्येऽपि केचित्स्वार्थिकाः प्रत्यया नित्यमिष्यन्ते तमबादयः प्राक्कनः, ञ्यादयः प्राग्वुनः, आमादयः प्राङ् मयटः, बृहतीजात्यन्ताः समासान्ताश्चेति ॥

२०७९-अषडक्ष,आशितंगु,अलङ्कर्मन्, अलंपुरुष शब्द और अधि शब्द उत्तर पदमें हैं जिनके ऐसे शब्दोंके उत्तर स्वार्थमें ख प्रत्यय हो, जैसे-अषडक्षीणो मंत्रः,द्वाभ्यामेव कृत इत्यर्थः। आशिता गावोऽस्मिन्=आशितङ्गवीनं शरण्यम्, यहां निपातनसे पूर्वपदको मुम्का आगम हुआ । अलङ्कर्मणे=अलङ्कर्मीणः । अलंपुरुषीणः । ईश्वराधीनः । पर सूत्रमें विभाषा ग्रहणके कारण यह ख प्रत्यय नित्य है । ख भिन्न और भी कतिपय स्वार्थिक प्रत्यय नित्य इष्ट हैं । जैसे-"अतिशायने तमप्० ५।३।५५" इससे लेकर "अवक्षेपणे कन् ५।३।९५" इसके पूर्वपर्य्यन्त विहित प्रत्यय, "पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ५।३।११२" इससे लेकर "पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् ५।४।१" इसके पूर्वपर्य्यन्त विहित । , "किमेत्तिङव्ययघादाम्० ५ । ४ । ११ " इससे लेकर " तत्प्रकृतवचने मयट् ५।४।२१" इसके पूर्वपर्य्यन्त विहित प्रत्यय और "बृहत्या आच्छादने ५।४।६" "अषडक्षा० ५।४।७" "जात्यन्ताच्छ बन्धुनि ५।४।९" इनसे विहित प्रत्यय और समासान्त प्रत्यय ऐसा भाष्य है ॥

२०८० विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम् । ५ । ४ । ८ ॥

अदिक्स्त्रीवृत्तेरञ्चत्यन्तात् प्रातिपदिकात्खः स्याद्वा स्वार्थे । प्राक्-प्राचीनम् । प्रत्यक्-प्रतीचीनम् । अवाक्-अवाचीनम् । निकृष्टप्रतिकृष्टार्वरेफयाप्यावमाधमाः । अर्वन्तमञ्चतीति अर्वाक्, अर्वाचीनम् । अदिक्स्त्रियां किम् । प्राची दिक् । उदीची दिक् । दिग्ग्रहणं किम् । प्राचीना ब्राह्मणी । स्त्रीग्रहणं किम् । प्राचीनं ग्रामादाम्राः ॥

२०८०-दिक्रूप स्त्रीवृत्ति न हो ऐसे अञ्चु धात्वन्त प्रातिपदिकके उत्तर स्वार्थमें विकल्प करके ख प्रत्यय हो, जैसे-प्राक्, प्राचीनम् । प्रत्यक्, प्रतीचीनम् । अवाक्, अवाचीनम् । "निकृष्टप्रतिकष्टार्वरेफयाप्यावमाधमाः" ऐसे अभिधानके अनुसार अर्वत् शब्दसे निकृष्ट अर्थ जानना । अर्वन्तमञ्चति=अर्वाक्, अर्वाचीनम् । दिक्रूपस्त्रीवृत्ति होनेपर जैसे-प्राची दिक्, उदीची दिक् । दिक् शब्दका ग्रहण क्यों किया ? तो 'प्राचीना ब्राह्मणी' यहां उक्त प्रत्यय हो, नहीं तो अस्त्रीवृत्ति न होनेसे प्रत्यय नहीं होता । स्त्रीग्रहण क्यों किया ? तो 'प्राचीनं ग्रामादाम्राः' यहां हो ॥

२०८१ जात्यन्ताच्छ बन्धुनि । ५ । ४ । ९ ॥

ब्राह्मणजातीयः । बन्धुनि किम् । ब्राह्मणजातिः शोभना । जातिर्व्यञ्जकं द्रव्यं बन्धु ॥

२०८१-बंधु अर्थमें जात्यन्त शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो, जैसे-ब्राह्मणजातीयः । बंधु न होनेपर छ प्रत्यय न होगा, जैसे-ब्राह्मणजातिः शोभना । जातिव्यञ्जक द्रव्यको बंधु कहतेहैं ॥

२०८२ स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् । ५ । ४ । १० ॥

सस्थानेन तुल्येन चेत् स्थानान्तमर्थवदित्यर्थः। पितृस्थानीयः पितृस्थानः । सस्थानेन किम् । गोः स्थानम् ॥

२०८२-यदि सस्थान अर्थात् तुल्यरूप अर्थसे स्थानान्त शब्द अर्थविशिष्ट हो तो उसके उत्तर विकल्प करके छ प्रत्यय हो, जैसे-पितृस्थानीयः, पितृस्थानः । तुल्यार्थमें वर्त्तमान न होनेपर छ प्रत्यय नहीं होगा, जैसे-गोः स्थानम् ॥

२०८३ अनुगादिनष्ठक् । ५ । ४ । १३ ॥

अनुगदतीत्यनुगादी, स एवानुगादिकः ॥

२०८३–अनुगादिन् शब्दके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे–अनुगदति इति=अनुगादी, स एव=आनुगादिकः ॥

२०८४ विसारिणो मत्स्ये ।५।४।१६॥

अण् स्यात् । वैसारिणः । मत्स्ये इति किम् । विसारी देवदत्तः ॥

२०८४–मत्स्यार्थमें विसारिन् शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, जैसे–वैसारिणः । मत्स्यभिन्नार्थमें अण् प्रत्यय न होगा, जैसे–विसारी देवदत्तः ॥

२०८५ संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् । ५ । ४ । १७ ॥

अभ्यावृत्तिर्जन्म । क्रियाजन्मगणनवृत्तेः संख्याशब्दात्स्वार्थे कृत्वसुच् स्यात् । पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते । संख्यायाः किम् । भूरिवारान् भुङ्क्ते॥

२०८५–क्रियाकी उत्पत्ति गणनवृत्ति संख्यावाचक शब्दके उत्तर स्वार्थमें कृत्वसुच् प्रत्यय हो, जैसे–पञ्चकृत्वो भुंक्ते । संख्यावाचक न होनेपर, भूरिवारान् भुंक्ते ॥

२०८६ द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ।५।४।१८॥

कृत्वसुचोऽपवादः । द्विर्भुङ्क्ते । त्रिः । रात्सस्य । चतुः ॥

२०८६–द्वि, त्रि और चतुर् शब्दके उत्तर सुच् प्रत्यय हो, यह सूत्र कृत्वसुच् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे–द्विर्भुंक्ते । त्रिः । "रात्सस्य २८०" इस सूत्रसे सुच्सम्बन्धी सकारका लोप होनेपर 'चतुः' पद सिद्ध हुआ ॥

२०८७ एकस्य सकृच्च । ५ । ४ ।१९॥

सकृदित्यादेशः स्याच्चात्सुच् । सकृद्भुङ्क्ते । संयोगान्तस्येति सुचो लोपः । न तु हल्ङ्याबिति । अभैत्सीदित्यत्र सिच इव सुचोऽपि तदयोगात् ॥

२०८७–एक शब्दके स्थानमें सकृत् आदेश हो और चकारसे सुच् प्रत्यय भी हो, जैसे–सकृद्भुंक्ते, यहां "संयोगान्तस्य० ५४" इस सूत्रसे सुच् प्रत्यका लोप हुआ "हल्ङ्याप्० २५२" इस सूत्रसे तो 'अभैत्सीत्' इस स्थलमें सिच्की समान सुच्का भी लोप नहीं होसकताहै ॥

२०८८ विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले । ५ । ४ । २० ॥

अविप्रकृष्ट आसन्नः । बहुधा बहुकृत्वो वा दिवसस्य भुङ्क्ते । आसन्नकाले किम् । बहुकृत्वो मासस्य भुङ्क्ते ॥

२०८८–अविप्रकृष्ट अर्थात् आसन्नकाल होनेपर बहु शब्दके उत्तर विकल्प करके धा प्रत्यय हो, जैसे–बहुधा, बहुकृत्वा वा दिवसस्य भुंक्ते । आसन्नकालार्थ न होनेपर, जैसे–बहुकृत्वो मासस्य भुंक्ते ॥

२०८९ तत्प्रकृतवचने मयट् ।५।४।२१॥

प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं तस्य वचनं प्रतिपादनम् । भावेऽधिकरणे वा ल्युट् । आद्ये, प्रकृतमन्नमन्नमयम् । अपूपमयम् । यवागूमयी । द्वितीये, अन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्व ॥

२०८९–तत्प्रकृतवचने अर्थात् प्राचुर्यसे जो प्रस्तुत उसको प्रकृत कहतेहैं, उसका वचन, अर्थात् प्रतिपादनअर्थमें मयट् प्रत्यय हो, 'वचनम्' इसमें भाव वा अधिकरण वाच्यमें ल्युट् प्रत्यय हुआहै । आद्य अर्थात् भाव ल्युडन्त पक्षमें, जैसे–प्रकृतमन्नम्=अन्नमयम् । अपूपमयम् । यवागूमयम् । अधिकरणल्युडन्त पक्षमें, जैसे–अन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्व ॥

२०९० समूहवच्च बहुषु । ५ । ४ ।२२॥

सामूहिकाः प्रत्यया अतिदिश्यन्ते चान्मयट् । मोदकाः प्रकृताः । मौदकिकम् । मोदकमयम् । शाष्कुलिकम् । शाष्कुलीमयम् । द्वितीयेऽर्थे । मौदकिको यज्ञः । मोदकमयः ॥

२०९०–बहुत्व अर्थमें समूहवत् प्रत्यय और चकारसे मयट् प्रत्यय हो, जैसे–मोदकाः प्रकृताः=मौदकिकम्, मोदकमयम् । शाष्कुलिकम्, शाष्कुलीमयम् । द्वितीय पक्षमें, जैसे–मौदकिको यज्ञः, मोदकमयः ॥

२०९१ अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः । ५ । ४ । २३ ॥

अनन्त एवानन्त्यम् । आवसथ एवावसथ्यम् । इतिहेति निपातसमुदायः । ऐतिह्यम् । भेषजमेव भैषज्यम् ॥

२०९१–अनन्त, आवसथ, इतिह और भेषज शब्दके उत्तर ञ्य प्रत्यय हो, जैसे–अनन्त एव=आनन्त्यम् । आवसथ एव=आवसथ्यम् । 'इतिह' यह निपातसमुदाय है,इतिह एव=ऐतिह्यम् । भेषजमेव=भैषज्यम् ।

२०९२ देवतान्तात्तादर्थ्ये यत्।५।४।२४॥

तदर्थ एव तादर्थ्यम् । स्वार्थे ष्यञ् । अग्निदेवतायै इदमग्निदेवत्यम् । पितृदेवत्यम् ॥

२०९२–देवतान्त शब्दके उत्तर तादर्थ्यमें यत् प्रत्यय हो, तदर्थ एव=तादर्थ्यम्, यहां स्वार्थमें ष्यञ् है, जैसे–अग्निदेवतायै इदम्=आग्निदेवत्यम् । पितृदेवत्यम् ॥

२०९३ पादार्घाभ्यां च । ५ । ४ ।२५॥

पादार्थमुदकं पाद्यम् । अर्घ्यम् ॥ नवस्य नू आदेशः, त्नप्तनप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्याः ॥ * ॥ नूत्नम् । नूतनम् । नवीनम् ॥ नश्च पुराणे प्रात् ॥ * ॥ पुराणार्थे वर्तमानात्प्रशब्दान्नो वक्तव्यः। चात्पूर्वोक्ताः । प्रणम् । प्रत्नम् । प्रतनम् । प्रीणम् ॥ भागरूपनामभ्यो धेयः ॥ * ॥ भाग-

धेयम् । रूपधेयम् । नामधेयम् ॥ आग्नीध्रसाधारणादञ् ॥ * ॥ आग्नीध्रम् । साधारणम् । स्त्रियां ङीप् । आग्नीध्री । साधारणी ॥

२०९३-पाद और अर्घ शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, जैसे-पादार्थमुदकम्=पाद्यम् । अर्घ्यम् ।

नव शब्दके स्थानमें नू आदेश और उसके उत्तर त्नप्, तनप् और ख प्रत्यय हो * नूत्नम् । नूतनम् । नवीनम् ।

पुराणार्थमें वर्त्तमान प्र शब्दके उत्तर न प्रत्यय और चकारसे पूर्वोक्त प्रत्यय भी हों * जैसे-प्रणम् । प्रत्नम् । प्रतनम् । प्रीणम् ।

भाग, रूप और नाम शब्दके उत्तर धेय प्रत्यय हो* जैसे-भागधेयम् । रूपधेयम् । नामधेयम् ।

आग्नीध्र और साधारण शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो * जैसे-आग्नीध्रम् । साधारणम् । स्त्रीलिङ्गमें ङीप् प्रत्यय होगा, जैसे-आग्नीध्री । साधारणी ॥

२०९४ अतिथेर्ञ्यः । ५ । ४ । २६ ॥

तादर्थ्य इत्येव । अतिथये इदमातिथ्यम् ॥

२०९४-अतिथि शब्दके उत्तर तादर्थ्यमें ञ्य प्रत्यय हो, जैसे-अतिथये इदम्=आतिथ्यम् ॥

२०९५ देवात्तल् । ५ । ४ । २७ ॥

देव एव देवता ॥

२०९५-देव शब्दके उत्तर स्वार्थमें तल् प्रत्यय हो, जैसे-देव एव=देवता ॥

२०९६ अवेः कः । ५ । ४ । २८ ॥

अविरेवाविकः ॥

२०९६-अवि शब्दके उत्तर स्वार्थमें क प्रत्यय हो, जैसे-अविरेव=अविकः ॥

२०९७ यावादिभ्यः कन् । ५ ।४।२९॥

याव एव यावकः । मणिकः ॥

२०९७-यावादि शब्दोंके उत्तर स्वार्थमें कन् प्रत्यय हो, जैसे-याव एव=यावकः । मणिकः ॥

२०९८ लोहितान्मणौ । ५ । ४। ३०॥

लोहित एव मणिर्लोहितकः ॥

२०९८-मणि होनेपर लोहित शब्दके उत्तर स्वार्थमें कन् प्रत्यय हो, लोहित एव=लोहितको मणिः ॥

२०९९ वर्णे चानित्ये । ५ । ४ । ३१॥

लोहितकः कोपेन ॥ लोहिताल्लिङ्गबाधनं वा ॥ * ॥ लोहितिका, लोहिनिका कोपेन ॥

२०९९-अनित्य वर्ण होनेपर लोहित शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-लोहितकः कोपेन ।

लोहित शब्दके उत्तर विकल्प करके लिङ्गबाध न हो * जैसे-लोहितिका, लोहिनिका कोपेन ॥

२१०० रक्ते । ५ । ४ । ३२ ॥

लाक्षादिना रक्ते यो लोहितशब्दस्तस्मात्कन् स्यात् । लिङ्गबाधनं वेत्येव । लोहितिका, लोहिनिका, शाटी ॥

२१००-लाक्षादिसे रक्तमें वर्त्तमान जो लोहित शब्द उसके उत्तर कन् प्रत्यय हों, विकल्प करके लिङ्गबाधन भी होगा, जैसे-लोहितिका, लोहिनिका शाटी ॥

२१०१ कालाच्च । ५ । ४ । ३३ ॥

वर्णे चानित्ये रक्ते इति द्वयमनुवर्तते । कालकं मुखं वैलक्ष्येण । कालकः पटः । कालिका शाटी ॥

२१०१-अनित्य वर्ण होनेपर और लाक्षादिसे रक्त होनेपर काल शब्दके उत्तर कन् प्रत्यय हो, जैसे-कालकं मुखं वैलक्ष्येण । कालकः पटः । कालिका शाटी ॥

२१०२ विनयादिभ्यष्ठक् । ५।४। ३४ ॥

विनय एव वैनयिकः । सामयिकः ॥ उपायो ह्रस्वत्वं च ॥ औपयिकः ॥

२१०२-विनयादि शब्दोंके उत्तर ठक् प्रत्यय हो, जैसे-विनय एव-वैनयिकः । सामयिकः ।

उपाय शब्दको ह्रस्व भी हो * जैसे-औपयिकः ॥

२१०३वाचो व्याहृतार्थायाम्।५।४।३५॥

सन्दिष्टार्थायां वाचि विद्यमानाद्वाक्शब्दात्स्वार्थे ठक् स्यात् । संदेशवाग्वाचिकं स्यात् ॥

२१०३-व्याहृतार्थ अर्थात् सन्दिष्टार्थ वचनमें विद्यमान वाच् शब्दके उत्तर स्वार्थमें ठक् प्रत्यय हो, जैसे-संदेशवाक् वाचिकं स्यात् ॥

२१०४ तद्युक्तात्कर्मणोऽण् । ५।४।३६॥

कर्मैव कार्मणम् । वाचिकं श्रुत्वा क्रियमाणं कर्मेत्यर्थः ॥

२१०४-तद्युक्त कर्मन् शब्दके उत्तर स्वार्थमें अण् प्रत्यय हो, जैसे-कर्म एव=कार्मणम् अर्थात् सन्दिष्ट वाणीको सुनकर क्रियमाण कर्म ॥

२१०५ ओषधेरजातौ । ५ । ४ । ३७ ॥

स्वार्थेऽण् । औषधं पिबति । अजातौ किम् । ओषधयः क्षेत्रे रूढाः ॥

२१०५-जातिभिन्न होनेपर ओषधि शब्दके उत्तर स्वार्थमें अण् प्रत्यय हो, जैसे-औषधं पिबति । जाति होनेपर, ओषधयः क्षेत्रे रूढाः ॥

२१०६ प्रज्ञादिभ्यश्च । ५ । ४ । ३८ ॥

प्रज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री। दैवतः। बान्धवः॥

२१०६-प्रज्ञादि शब्दोंके उत्तर स्वार्थमें अण् प्रत्यय हो, जैसे-प्रज्ञ एव=प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । दैवतः । बान्धवः ॥

२१०७ मृदस्तिकन् । ५ । ४ । ३९ ॥

मृदेव मृत्तिका ॥

२१०७–मृद् शब्दके उत्तर स्वार्थमें तिकन् प्रत्यय हो, जैसे–मृदेव=मृत्तिका ॥

२१०८ सस्नौ प्रशंसायाम् ।५।४।४० ॥

रूपपोऽपवादः । प्रशस्ता मृत्, मृत्सा । मृत्स्ना। उत्तरसूत्रेऽन्यतरस्यांग्रहणान्नित्योऽयम् ॥

२१०८–प्रशंसार्थमें मृद् शब्दके उत्तर स और स्न प्रत्यय हो, यह प्रत्यय रूपप् प्रत्ययका विशेषक है, जैसे–प्रशस्ता मृत्= मृत्सा । मृत्स्ना । इस सूत्रके परवर्ती सूत्रमें ' अन्यतरस्याम् ' पदका ग्रहण करनेसे यह विधि नित्य है ॥

२१०९ बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् । ५ । ४ । ४२ ॥

बहूनि ददाति बहुशः । अल्पानि अल्पशः॥ बह्वल्पार्थान्मंगलाऽमंगलवचनम् ॥ * ॥ नेह । बहूनि ददात्यनिष्टेषु । अल्पं ददात्याभ्युदयिकेषु॥

२१०९–बहु और अल्पार्थक कारकके उत्तर विकल्प करके शस् प्रत्यय हो, जैसे–बहूनि ददाति=बहुशः । अल्पानि=अल्पशः ।

बहु और अल्पार्थक शब्दसे क्रमसे मंगल और अमंगल गम्यमान होनेपर ही उक्त प्रत्यय हो * इस कारण बहूनि ददाति अनिष्टेषु अल्पं ददाति अभ्युदयेषु, इस स्थलमें विपरीत होनेसे शस् प्रत्यय नहीं हुआ ॥

२११० संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्। ५ । ४ । ४३ ॥

द्वौ द्वौ ददाति द्विशः । माषंमाषं माषशः । प्रस्थशः परिमाणशब्दावृत्तावेकार्था एव । संख्यैकवचनात्किम् । घटंघटं ददाति । वीप्सायां किम् । द्वौ ददाति । कारकादित्येव । द्वयोर्द्वयोः स्वामी ॥

२११०–वीप्सार्थमें संख्यावाचक शब्द और एकार्थप्रतिपादक शब्दके उत्तर शस् प्रत्यय हो, जैसे–द्वौद्वौ ददाति= द्विशः । माषंमाषम्=माषशः । प्रस्थशः । परिमाणवाचक शब्द वृत्तिमें एकार्थ ही है, संख्यैकवचन न होनेपर घटंघटं ददाति । वीप्सार्थ न होनेपर द्वौ ददाति । कारक न होनेपर, जैसे–द्वयोर्द्वयोः स्वामी, इस स्थलमें शस् प्रत्यय नहीं हुआ ॥

२१११ प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः । ५ । ४ । ४४ ॥

प्रतिना कर्मप्रवचनीयेन योगे या पञ्चमी विहिता तदन्तात्तसिः स्यात् । प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति ॥ आद्यादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ आदौ आदितः । मध्यतः । अन्ततः । पृष्ठतः॥पार्श्वतः॥ आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरतः । वर्णतः ॥

२१११–कर्मप्रवचनीय प्रति शब्दके योगमें जो पञ्चमी विहित हो, तदन्तके उत्तर तसि प्रत्यय हो, जैसे–प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति ।

आद्यादि शब्दोंके उत्तर भी तसि प्रत्यय हो, जैसे–आदौ= आदितः । मध्यतः । अन्ततः । पृष्ठतः । पार्श्वतः । यह आकृतिगण है, इससे स्वरेण=स्वरतः । वर्णतः, यह सब सिद्ध हुए ॥

२११२ अपादाने चाऽहीयरुहोः । ५ । ४ । ४५ ॥

अपादाने या पञ्चमी तदन्तात्तसिः स्यात् । ग्रामादागच्छति । ग्रामतः । अहीयरुहोः किम् । स्वर्गाद्धीयते । पर्वतादवरोहति ॥

२११२–अपादानमें जो पञ्चमी, तदन्तके उत्तर तसि प्रत्यय हो, हीय और रुहके योगमें न हो, जैसे–ग्रामात् आगच्छति=ग्रामतः । हीय और रुहके योग होनेपर, जैसे–स्वर्गाद्धीयते । पर्वतादवरोहति ॥

२११३ अतिग्रहाऽव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः । ५ । ४ ।४६ ॥

अकर्तरि तृतीयान्ताद्वा तसिः स्यात् । अतिक्रम्य ग्रहोऽतिग्रहः।चारित्रेणातिगृह्यते।चारित्रतोऽतिगृह्यते।चारित्रेणान्यानतिक्रम्य वर्तत इत्यर्थः। अव्यथनमचलनम् । वृत्तेन न व्यथते वृत्ततो न व्यथते । वृत्तेन न चलतीत्यर्थः। क्षेपे, वृत्तेन क्षिप्तः । वृत्ततः क्षिप्तः । वृत्तेन निन्दित इत्यर्थः । अकर्तरीति किम् । देवदत्तेन क्षिप्तः ॥

२११३–अतिग्रह, अव्यथन और क्षेप (निन्दा) अर्थमें कर्तृकारकभिन्न तृतीयान्त पदके उत्तर विकल्प करके तसि प्रत्यय हो, अतिक्रम्य ग्रहः अतिग्रहः, अतिक्रमपूर्वक ग्रहणको 'अतिग्रह' कहतेहैं, जैसे–चारित्रेणातिगृह्यते=चारित्रतोऽतिगृह्यते, चारित्रेणान्यानतिक्रम्य वर्त्तते इत्यर्थः । अव्यथन शब्दसे अचलन जानना, जैसे–वृत्तेन न व्यथते=वृत्ततो न व्यथते, वृत्तेन न चलति इत्यर्थः । क्षेपार्थ,जैसे–वृत्तेन क्षिप्तः। वृत्ततः क्षिप्तः। वृत्तेन निन्दितः इत्यर्थः। तृतीयान्त कर्तृकारक होनेपर, जैसे– देवदत्तेन क्षिप्तः ॥

२११४ हीयमानपापयोगाच्च।५।४।४७॥

हीयमानपापयुक्तादकर्तरि तृतीयान्ताद्वा तसिः । वृत्तेन हीयते । वृत्तेन पापः । वृत्ततः । क्षेपस्याऽविवक्षायामिदम् । क्षेपे तु पूर्वेण सिद्धम्। अकर्तरि किम् । देवदत्तेन हीयते ॥

२११४–हीयमान और पापयुक्त कर्तृकारक भिन्न तृतीयान्त पदके उत्तर विकल्प करके तसि प्रत्यय हो, जैसे–वृत्तेन हीयते

वृत्तो ह्रीयते । वृत्तेन पापः—वृत्ततः पापः । क्षेपकी अविवक्षामें यह सूत्र लगेगा, क्षेपार्थमें तो पूर्व सूत्रसे ही सिद्ध है । कर्तृकारक तृतीयान्त होनेपर देवदत्तेन ह्रीयते ॥

२११५ षष्ठ्या व्याश्रये । ५ । ४ ।४८॥

षष्ठ्यन्ताद्वा तसिः स्यान्नानापक्षसमाश्रये । देवा अर्जुनतोऽभवन् । आदित्याः कर्णतोऽभवन् । अर्जुनस्य कर्णस्य पक्षे इत्यर्थः । व्याश्रये किम् । वृक्षस्य शाखा ॥

२११५—नानापक्षसमाश्रय अर्थ होनेपर षष्ठी विभक्त्यन्त पदके उत्तर विकल्प करके तसि प्रत्यय हो, जैसे—देवा अर्जुनतोऽभवन् । आदित्याः कर्णतोऽभवन्, अर्जुनस्य कर्णस्य पक्षे इत्यर्थः । व्याश्रय न होनेपर, जैसे—वृक्षस्य शाखा ॥

२११६ रोगाच्चापनयने । ५ । ४ ।४९॥

रोगवाचिनः षष्ठ्यन्ताद्वा तसिश्चिकित्सायाम् । प्रवाहिकातः कुरु । प्रतीकारमस्याः कुर्वित्यर्थः । अपनयने किम् । प्रवाहिकायाः प्रकोपनं करोति ॥

२११६—चिकित्सार्थमें रोगवाचक षष्ठ्यन्त पदके उत्तर विकल्प करके तसि प्रत्यय हो, जैसे—प्रवाहिकातः कुरु, प्रतीकारमस्याः कुरु इत्यर्थः । चिकित्सार्थ न होनेपर प्रवाहिकायाः प्रकोपनं करोति ॥

२११७ कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः । ५ । ४ । ५० ॥

अभूततद्भाव इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद्विकारशब्दात्स्वार्थे च्विर्वा स्यात्करोत्यादिभिर्योगे ॥

२११७—कृ, भू और अस्धातुनिष्पन्न पदके योगमें विकारात्मताको प्राप्त किये प्रकृतिमें वर्त्तमान विकारवाचक शब्दके उत्तर स्वार्थमें विकल्प करके च्वि प्रत्यय हो ।

अभूततद्भावमें हो, ऐसा कहना चाहिये * ॥

२११८ अस्य च्वौ । ७ । ४ ।३२ ॥

अवर्णस्य ईत्स्यात् च्वौ । वेर्लोपः । च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम् । अकृष्णः कृष्णः संपद्यते, तं करोति कृष्णीकरोति । ब्रह्मीभवति । गङ्गीस्यात् ॥ अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम् ॥*॥ दोषाभूतमहः । दिवाभूता रात्रिः । एतच्चाव्ययीभावश्चेतिसूत्रे भाष्ये उक्तम् ॥

२११८—च्वि प्रत्यय परे रहते अकार और आकारके स्थानमें ईकार हो । च्वि प्रत्ययसम्बन्धी वि–का लोप हुआ, और च्विप्रत्ययान्तत्वके कारण अव्ययत्व हुआ, जैसे—अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति=कृष्णीकरोति । ब्रह्मीभवति । गङ्गीस्यात् ।

च्वि प्रत्यय परे रहते अव्ययसंज्ञक शब्दके अवर्णके स्थानमें ई नहीं हो* जैसे—दोषाभूतमहः । दिवाभूतारात्रिः । यह विषय "अव्ययीभावश्च २ । ४ । १८" इस सूत्रके भाष्यमें कहाहै ॥

२११९ क्यच्च्व्योश्च । ६ । ४ । १५२ ॥

हलः परस्यापत्ययकारस्य लोपः स्यात् क्ये च्वौ च परतः । गार्गीभवति ॥

२११९—क्यच् और च्वि प्रत्यय परे रहते हल् वर्णके परे स्थित अपत्य यकारका लोप हो, जैसे—गार्गीभवति ॥

२१२० च्वौ च । ७ । ४ । २६ ॥

च्वौ परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात् । शुचीभवति । पटूस्यात् । अव्ययस्य दीर्घत्वं नेति केचित्, तन्निर्मूलम् । स्वस्ति स्यादिति तु महाविभाषया च्वेरभावात्सिद्धम् । स्वस्तीस्यादित्यपि पक्षे स्यादिति चेदस्तु । यदि नेष्यते तर्ह्यनभिधानात् च्विरेव नोत्पद्यते इत्यस्तु । रीङ् ऋतः । मात्रीकरोति ॥

२१२०—च्वि प्रत्यय परे रहते पूर्वपदको दीर्घ हो, जैसे—शुचीभवति । पटूस्यात् ।

कोई २ कहतेहैं कि, अव्ययसंज्ञक शब्दको दीर्घ न हो, उसका प्रमाण कुछ भी नहीं है, 'स्वस्ति स्यात्' ऐसा पद तो महाविभाषासे च्वि प्रत्ययके अभाव पक्षमें सिद्ध है 'स्वस्तीस्यात्' ऐसा प्रयोग भी विकल्प पक्षमें होगा, ऐसा कहो तो हो, यदि न होता हो तो अनभिधानके कारण च्वि प्रत्ययकी भी उत्पत्ति न हो "रीङृतः १२३४" इससे ऋदन्त अङ्गको रीङ् आदेश होकर मात्रीकरोति ॥

२१२१ अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च । ५ । ४ । ५१ ॥

एषां लोपः स्यात् च्विश्च । अरूकरोति । उन्मनीस्यात् । उच्चक्षूकरोति । विचेतीकरोति । विरहीकरोति । विरजीकरोति ॥

२१२१—अरुष्, मनस्, चक्षुस्, चेतस्, रहस् और रजस् शब्दके उत्तर च्वि प्रत्यय और सकारका लोप हो, जैसे—अरूकरोति । उन्मनीस्यात् । उच्चक्षूकरोति। विचेतीकरोति । विरहीकरोति । विरजीकरोति ॥

२१२२ विभाषा साति कार्त्स्न्ये । ५ । ४ । ५२ ॥

च्विविषये सातिर्वा स्यात्साकल्ये ॥

२१२२—च्वि प्रत्ययके विषयमें साकल्यार्थमें विकल्प करके साति प्रत्यय हो ॥

२१२३ सात्पदाद्योः । ८ । ३ । १११॥

सस्य षत्वं न स्यात् । दधि सिञ्चति । कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यतेऽग्निसाद्भवति । अग्नीभवति ।

महाविभाषया वाक्यमपि। कार्त्स्न्ये किम्। एकदेशेन शुक्लीभवति पटः ॥

२१२३–साति प्रत्ययके सकार और पदादि सकारको षत्व न हो, जैसे–दधि सिञ्चति। कृत्स्नं शस्त्रम् अग्निः सम्पद्यते अग्निसाद्भवति, अग्नीभवति। महाविभाषासे वाक्य भी होगा। कार्त्स्न्यार्थ न होनेपर, जैसे–शुक्लीभवति पटः, अर्थात् एक देशसे शुक्ल होताहै ॥

२१२४ अभिविधौ सम्पदा च।५।४।५३॥

सम्पदा कृभ्वस्तिभिश्च योगे सातिर्वा स्याद्व्याप्तौ। पक्षे कृभ्वस्तियोगे च्विः। सम्पदा तु वाक्यमेव। अग्निसात्सम्पद्यते अग्निसाद्भवति शस्त्रम्। अग्नीभवति। जलसात्सम्पद्यते जलीभवति लवणम्। एकस्या व्यक्तेः सर्वावयवावच्छेदेनाऽन्यथाभावः कार्त्स्न्यम्। बहूनां व्यक्तीनां किंचिदवयवाऽवच्छेदेनान्यथात्वं त्वभिविधिः॥

२१२४–अभिविधि अर्थात् व्याप्ति होनेपर संपूर्वक पद् धातु और कृ, भू, अस् धातुके योगमें विकल्प करके साति प्रत्यय हो, पक्षमें कृ, भू, अस् धातुके योगमें च्वि प्रत्यय होगा, संपूर्वक पद् धातुके योगमें तो वाक्य ही होगा, जैसे–अग्निसात् सम्पद्यते, अग्निसाद्भवति शस्त्रम्, अग्नीभवति शस्त्रम्। जलसात् सम्पद्यते, जलसाद्भवति, जलीभवति लवणम्। एक व्यक्तिका सर्वावयवावच्छेदसे जो अन्यथाभाव उसको कार्त्स्न्य कहतेहैं, और बहुतसी व्यक्तियोंका किंचित् अवयवावच्छेदसे जो अन्यथात्व उसको अभिविधि कहतेहैं ॥

२१२५ तदधीनवचने। ५ ।४। ५४ ॥

सातिः स्यात्कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे। राजसात्करोति। राजसात्संपद्यते। राजाधीनमित्यर्थः ॥

२१२५–तदधीनार्थमें कृ, भू, अस् और संपूर्वक पद् धातुके योगमें साति प्रत्यय हो, जैसे–राजसात् करोति। राजसात् सम्पद्यते, अर्थात् राजाधीन करताहै ॥

२१२६ देये त्रा च। ५। ४। ५५ ॥

तदधीने देये त्रा स्यात्सातिश्च कृभ्वादियोगे। विप्राधीनं देयं करोति विप्रत्राकरोति। विप्रत्रासंपद्यते। पक्षे विप्रसात्करोति। देये किम्। राजसाद्भवति राष्ट्रम् ॥

२१२६–तदधीनार्थमें और देयार्थमें कृ, भू, अस् और संपूर्वक पद् धातुके योगमें त्रा और साति प्रत्यय हो, जैसे–विप्राधीनं देयं करोति विप्रत्राकरोति। विप्रत्रासम्पद्यते। पक्षमें विप्रसात् करोति। देयार्थ न होनेपर, जैसे–राजसात् भवति राष्ट्रम् ॥

२१२७ देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्। ५ ।४। ५६ ॥

एभ्यो द्वितीयान्तेभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यश्च त्रा स्यात्। देवत्रा वन्दे रमे वा। बहुलोक्तेरन्यत्रापि। बहुत्रा जीवतो मनः ॥

२१२७–द्वितीयान्त और सप्तम्यन्त देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु और मर्त्य शब्दके उत्तर त्रा प्रत्यय हो, जैसे–देवत्रा वन्दे रमे वा। बहुल दके ग्रहणसे अन्य स्थलमें भी त्रा प्रत्यय होगा, जैसे–बहुत्रा जीवतो मनः ॥

२१२८ अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्। ५।४। ५७॥

द्व्यच् अवरं न्यूनं न तु ततो न्यूनमनेकाजिति यावत्तादृशमर्द्धं यस्य तस्माड्डाच् स्यात्कृभ्वस्तिभिर्योगे ॥ डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् ॥ * ॥ नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ डाच्परं यदाम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात्। इति तकारपकारयोः पकारः। पटपटाकरोति। अव्यक्तानुकरणात्किम्। दृषत्करोति। द्व्यजवरार्धात्किम्। श्रत्करोति। अवरेति किम्। खरटखरटाकरोति। त्रपटत्रपटाकरोति। अनेकाच इत्येव सूत्रयितुमुचितम्। एवं हि डाचीति परसप्तम्येव द्वित्वे सुवचेत्यवधेयम्। अनितौ किम्। पटिति करोति ॥

२१२८–कृ, भू और अस् धातुके योगमें अनेकाच् आधा भाग है जिसके ऐसे अव्यक्तानुकरण प्रातिपदिक शब्दके उत्तर डाच् प्रत्यय हो इति शब्द परे रहते नहीं हो।

डाच् प्रत्यय विवक्षित होनेपर बहुल करके द्वित्व हो * डाच् प्रत्यय परे रहते जो आम्रेडित हो, वह परे रहते पूर्व और पर वर्णको पर रूप हो * इससे तकार और पकारके स्थानमें पकार हुआ, जैसे–पटपटाकरोति। अव्यक्तानुकरण न होनेपर दृषत् करोति। द्व्यजवरार्द्ध न होनेपर, श्रत्करोति। अवर न होनेपर, खरटखरटाकरोति। त्रपटत्रपटाकरोति। "अनेकाचः" ऐसाही सूत्र करना ठीक था, इससे 'डाचि' यह पर सप्तमी ही द्वित्वविधायक वार्त्तिकमें सुवच होतीहै ऐसा जानना। इति शब्द परे होनेपर, पटिति करोति ॥

२१२९ कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषौ । ५ । ४ । ५८ ॥

द्वितीयादिभ्यो डाच् स्यात्कृञ एव योगे कर्षणेऽर्थे । बहुलोक्तेरव्यक्तानुकरणादन्यस्य डाचि न द्वित्वम् । द्वितीयं तृतीयं कर्षणं करोति, द्वितीयाकरोति, तृतीयाकरोति । शम्बशब्दः प्रतिलोमे । अनुलोमं कृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रतिलोमं कर्षति शम्बाकरोति । बीजेन सह कर्षति बीजाकरोति ॥

२१२९–कर्षणार्थमें कृ धातुके ही योगमें द्वितीय, तृतीय, शम्ब और बीज शब्दके उत्तर डाच् प्रत्यय हो । बहुलोक्तिके कारण अव्यक्तानुकरणसे भिन्नको डाच् प्रत्यय परे (द्वित्व) नहीं होगा, जैसे–द्वितीयं तृतीयं कर्षणं करोति=द्वितीयाकरोति, तृतीयाकरोति। शम्ब शब्द प्रतिलोमवाचक है, अनुलोम क्षेत्रको पुनर्वार प्रतिलोम कर्षण करताहै, इस अर्थमें शम्बाकरोति । बीजेन सह कर्षति=बीजाकरोति ॥

२१३० संख्यायाश्च गुणान्तायाः । ५ । ४ । ५९ ॥

कृञो योगे कृषौ डाच् स्यात् । द्विगुणा करोति क्षेत्रम् । क्षेत्रकर्मकं द्विगुणं कर्षणं करोतीत्यर्थः ॥

२१३०–गुण शब्द अन्तमें है जिसके ऐसे संख्यावाचक शब्दके उत्तर कृ धातुके योगमें कृषि अर्थमें डाच् प्रत्यय हो, जैसे–द्विगुणाकरोति क्षेत्रम्, अर्थात् क्षेत्रको दूना कर्षण करताहै ॥

२१३१ समयाच्च यापनायाम् । ५ । ४ । ६० ॥

कृषाविति निवृत्तम् । कृञो योगे डाच् स्यात् । समयाकरोति । कालं यापयतीत्यर्थः ॥

२१३१–कृ धातुके योगमें यापनार्थमें समय शब्दके उत्तर डाच् प्रत्यय हो, यहां कर्षण अर्थ निवृत्त हुआ, जैसे–समयाकरोति, अर्थात् समयको बिताताहै ॥

२१३२ सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने । ५ । ४ । ६१ ॥

सपत्राकरोति मृगम् । सपुङ्खशरप्रवेशेन सपत्रं करोतीत्यर्थः। निष्पत्राकरोति। सपुङ्खस्य शरस्याऽपरपार्श्वे निर्गमनान्निष्पत्रं करोतीत्यर्थः। अतिव्यथने किम् । सपत्रं निष्पत्रं वा करोति भूतलम् ॥

२१३२–अतिव्यथनार्थमें कृ धातुके योगमें सपत्र और निष्पत्र शब्दके उत्तर डाच् प्रत्यय हो, जैसे–सपत्राकरोति, अर्थात् पुंखसहित बाणका प्रवेश कराकर मृगको सपत्र करताहै। निष्पत्राकरोति, अर्थात् सपुंख बाणको दूसरे पार्श्वमें प्रवेश कराके मृगको निष्पत्र करताहै । अतिशय व्यथा न होनेपर जैसे–सपत्रं निष्पत्रं वा करोति भूतलम् ॥

२१३३ निष्कुलान्निष्कोषणे ।५।४।६२॥

निष्कुलाकरोति दाडिमम् । निर्गतं कुलमन्तरवयवानां समूहो यस्मादिति बहुव्रीहेर्डाच् ॥

२१३३–निष्कोषणार्थमें निष्कुल शब्दके उत्तर डाच् प्रत्यय हो, जैसे–निष्कुलाकरोति दाडिमम्, यहां निर्गतं कुलमन्तरवयवानां समूहो यस्मात्, ऐसा बहुव्रीहि समास करके डाच् प्रत्यय हुआहै ॥

२१३४ सुखप्रियादानुलोम्ये ।५।४।६३॥

सुखाकरोति । प्रियाकरोति गुरुम्। अनुकूलाचरणेनानन्दयतीत्यर्थः ॥

२१३४–आनुलोम्यार्थमें सुख और प्रिय शब्दोंके उत्तर डाच् प्रत्यय हो, जैसे–सुखाकरोति प्रियाकरोति गुरुम्, अर्थात् अनुकूलाचरणसे गुरुको आनन्दित करताहै ॥

२१३५ दुःखात्प्रातिलोम्ये । ५।४।६४॥

दुःखाकरोति स्वामिनं पीडयतीत्यर्थः ॥

२१३५–प्रातिलोम्यार्थमें दुःख शब्दके उत्तर डाच् प्रत्यय हो, जैसे–दुःखाकरोति, अर्थात् स्वामीको पीडित करताहै ॥

२१३६ शूलात्पाके । ५ । ४ । ६५ ॥

शूलाकरोति मांसम् । शूलेन पचतीत्यर्थः ॥

२१३६–पाकार्थमें शूल शब्दके उत्तर डाच् प्रत्यय हो, जैसे–शूलाकरोति मांसम्, अर्थात् शूलसे मांसका पाक करताहै ॥

२१३७ सत्यादशपथे । ५ । ४ । ६६ ॥

सत्याकरोति भाण्डं वणिक् क्रेतव्यमिति तथ्यं करोतीत्यर्थः । शपथे तु सत्यं करोति विप्रः ॥

२१३७–शपथ अर्थ न होनेपर सत्य शब्दके उत्तर डाच् प्रत्यय हो, जैसे–सत्याकरोति भाण्डं वणिक्, क्रेतव्यं तथ्यं करोतीत्यर्थः। शपथार्थमें 'सत्यं करोति विप्रः' ऐसा होगा ॥

२१३८ मद्रात्परिवापणे । ५ । ४ ।६७॥

मद्रशब्दो मंगलार्थः । परिवापणं मुण्डनम् । मद्राकरोति । मांगल्यमुण्डनेन संस्करोतीर्थः ॥ भद्राच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ भद्राकरोति । अर्थः प्राग्वत् । परिवापणे किम् । मद्रं करोति ॥ इति स्वार्थिकप्रकरणम् ॥

॥ इति तद्धितप्रकरणं समाप्तम् ॥

२१३८–परिवापण अर्थमें मद्र शब्दके उत्तर डाच् प्रत्यय हो, मद्र शब्दसे मंगल जानना,परिवापण शब्दसे मुंडन जानना,जैसे–मद्राकरोति,माङ्गल्य मुण्डनसे संस्कार करताहै । भद्र शब्दके उत्तर भी डाच् प्रत्यय हो * जैसे–भद्राकरोति, इसका भी अर्थ पूर्ववत् है । परिवापणार्थ न होनेपर जैसे–भद्रं करोति ॥ इति स्वार्थिकप्रकरणम् ॥

॥ इति तद्धितप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ द्विरुक्तप्रकरणम् ।

२१३९ सर्वस्य द्वे । ८ । १ । १ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

२१३९–सर्वपदको द्वित्व हो, इसको अधिकार करके ॥

२१४० नित्यवीप्सयोः । ८ । १ । ४ ॥

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्विर्वचनं स्यात्।आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञककृदन्तेषु च। पचतिपचति । भुक्त्वाभुक्त्वा । वीप्सायाम् । वृक्षंवृक्षं सिञ्चति । ग्रामोग्रामो रमणीयः ॥

२१४०–आभीक्ष्ण्य और वीप्सा द्योत्य होनेपर पदको द्वित्व हो । तिङन्त और अव्ययसंज्ञक कृदन्तमें आभीक्ष्ण्य रहताहै, जैसे–पचतिपचति । भुक्त्वाभुक्त्वा । वीप्सार्थमें जैसे–वृक्षंवृक्षं सिञ्चति । ग्रामोग्रामो रमणीयः ॥

२१४१ परेर्वर्जने । ८ । १ । ५ ॥

परिपरि वंगेभ्यो वृष्टो देवः । वंगान्परिहृत्येत्यर्थः ॥ परेर्वर्जने वा वचनम् ॥ * ॥ परिवंगेभ्यः ॥

२१४१–वर्जनार्थमें परि शब्दको द्वित्व हो,जैसे–परिपरि वङ्गेभ्यो वृष्टो देवः, अर्थात् वङ्ग देशको परित्याग करके मेघ वर्षण करताहै । 'परेर्वर्जने' इसमें वा वचन करना चाहिये अर्थात् परि शब्दको वर्जनार्थमें विकल्प करके द्वित्व हो, ऐसा कहना चाहिये * जैसे– परिवङ्गेभ्यः ॥

२१४२ उपर्यध्यधसः सामीप्ये । ८ । १ । ७ ॥

उपर्युपरि ग्रामम् । ग्रामस्योपरिष्टात्समीपे देशे इत्यर्थः । अध्यधि सुखम् । सुखस्योपरिष्टात्समीपकाले दुःखमित्यर्थः । अधोऽधो लोकम्। लोकस्याधस्तात्समीपे देशे इत्यर्थः ॥

२१४२–सामीप्यार्थमें उपरि, अधि और अधस् शब्दको द्वित्व हो, जैसे–उपर्युपरि ग्रामम्, ग्रामस्य उपरिष्टात् समीपे देशे इत्यर्थः । अर्थात् ग्रामके ऊपर समीपदेशमें । अध्यधि सुखम्, सुखस्योपरिष्टात् समीपकाले दुःखम् इत्यर्थः, अर्थात् सुखके अनन्तर समीपकालमें दुःख । अधोऽधो लोकम् । लोकस्याधस्तात् समीपे देशे इत्यर्थः, लोकके अधस्तलके समीप देशमें ॥

२१४३ वाक्यादेरामन्त्रितस्याऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु । ८ । १ । ८ ॥

असूयायाम् । सुन्दरसुन्दर वृथा ते सौन्दर्यम् । सम्मतौ । देवदेव वन्द्योऽसि । कोपे । दुर्विनीतदुर्विनीत इदानीं ज्ञास्यसि । कुत्सने । धानुष्कधानुष्क वृथा ते धनुः । भर्त्सने । चोरचोर घातयिष्यामि त्वाम् ॥

२१४३–असूया, सम्मति, कोप, कुत्सा और भर्त्सन अर्थमें वाक्यके आदिमें स्थित आमंत्रितसंज्ञक पदको द्वित्व हो, असूयार्थमें जैसे–सुन्दरसुन्दर ! वृथा ते सौन्दर्यम् । सम्मति–देवदेव ! वंद्योसि । कोप–दुर्विनीतदुर्विनीत ! इदानीं ज्ञास्यसि । कुत्सा-धानुष्कधानुष्क ! वृथा ते धनुः । भर्त्सन–चौरचौर ! घातयिष्यामि त्वाम् ॥

२१४४ एकं बहुव्रीहिवत् । ८ । १ । ९॥

द्विरुक्त एकशब्दो बहुव्रीहिवत्स्यात् । तेन सुब्लोपपुंवद्भावौ । एकैकमक्षरम् । इह द्वयोरपि सुपोर्लुकि कृते बहुव्रीहिवद्भावादेव प्रातिपदिकत्वात्समुदायात्सुप् । एकैकयाऽऽहुत्या । इह पूर्वभागे पुंवद्भावादवग्रहे विशेषः । न बहुव्रीहावित्यत्र पुनर्बहुव्रीहिग्रहणं मुख्यबहुव्रीहिलाभार्थम् । तेनातिदिष्टबहुव्रीहौ सर्वनामताऽस्त्येवेति प्राञ्चः । वस्तुतस्तु भाष्यमते प्रत्याख्यातमेतत् । सूत्रमतेऽपि बहुव्रीह्यर्थेऽलौकिके विग्रहे निषेधकं न तु बहुव्रीहावितीहातिदेशशंकैव नास्ति ।एकैकस्मै देहि ॥

२१४४-द्विरुक्त एक शब्द बहुव्रीहिसंज्ञककी समान हो, इस कारण सुप्का लोप और पुंवद्भाव होगा, जैसे-एकैकमक्षरम्, इस स्थलमें दोनों सुपोंका लोप करनेपर बहुव्रीहिवद्भावके कारण ही प्रातिपदिकत्व होनेसे समुदायके उत्तर सुप् प्रत्यय हुआ। एकैकया आहुत्या, इस स्थलमें पूर्वभागमें पुंवद्भावके कारण अवग्रहमें विशेष होगा।

"न बहुव्रीहौ २२२" इस सूत्रमें पुनर्बहुव्रीहिग्रहण मुख्य बहुव्रीहिके लाभार्थ है, इस कारण अतिदिष्ट बहुव्रीहिस्थलमें सर्वनामता है ही, यह प्राचीनोंका मत है. वास्तविक तो भाष्यकारके मतमें यह सूत्र प्रत्यख्यात है, सूत्रकारके मतमें भी बहुव्रीहिके निमित्त अलौकिक विग्रहमें निषेध होताहै बहुव्रीहि समासमें नहीं, इस कारण इस स्थलमें निषेधके अतिदेशकी शंका ही नहीं है, जैसे-एकैकस्मै देहि ॥

२१४५ आबाधे च। ८। १। १०॥

पीडायां द्योत्यायां द्वे स्तो बहुव्रीहिवच्च। गतगतः। विरहात्पीडयमानस्येयमुक्तिः। बहुव्रीहिवद्भावात्सुब्लुक्। गतगता। इह पुंवद्भावः॥

२१४५-पीडा द्योत्य होनेपर पदको द्वित्व हो, और वह बहुव्रीहिसंज्ञककी समान हो, जैसे-गतगतः, विरहसे पीडित व्यक्तिकी यह उक्ति है, यहां बहुव्रीहिवद्भावके कारण सुप्का लुक् हुआ। गतगता, इस स्थलमें पुंवद्भाव हुआ है ॥

२१४६ कर्मधारयवदुत्तरेषु। ८।१।११॥

इत उत्तरेषु द्विर्वचनेषु कर्मधारयवत्कार्यम् ॥ प्रयोजनं सुब्लोपपुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि ॥ * ॥

२१४६-इसके परवर्ती द्विरुक्त स्थलमें कर्मधारयकी समान कार्य हो।

कर्मधारयातिदेशका प्रयोजन सुप्का लोप पुंवद्भाव और अन्तोदात्तत्व है * ॥

२१४७ प्रकारे गुणवचनस्य।८।१।१२॥

सादृश्ये द्योत्ये गुणवचनस्य द्वे स्तस्तच्च कर्मधारयवत्। कर्मधारयवदुत्तरेष्वित्यधिकारात्। तेन पूर्वभागस्य पुंवद्भावः, समासस्येत्यन्तोदात्तत्वं च। पटुपट्वी। पटुपटुः। पटुसदृशः। ईषत्पटुरिति यावत्। गुणोपसर्जनद्रव्यवाचिनः केवलगुणवाचिनश्चेह गृह्यन्ते। शुक्लशुक्लं रूपम्। शुक्लशुक्लः पटः॥ आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये ॥ * ॥ मूलेमूले स्थूलः ॥ संभ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः ॥ * ॥ सर्पसर्प बुध्यस्व बुध्यस्व। सर्पसर्पसर्प बुध्यस्व बुध्यस्व बुध्यस्व ॥ क्रियासमभिहारे च ॥ * ॥ लुनीहिलुनीहीत्येवायं लुनाति। नित्यवीप्सयोरिति सिद्धे भृशार्थे द्वित्वार्थमिदम्। पौनःपुन्येऽपि लोटा सह समुच्चित्य द्योतकतां लब्धुं वा॥ कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये ॥ *॥ समासवच्च बहुलम्॥*॥बहुलग्रहणादन्यपरयोर्न समासवत्। इतरशब्दस्य तु नित्यम्। असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः ॥ * ॥ अन्योऽन्यं विप्रा नमन्ति। अन्योऽन्यौ। अन्योऽन्यान्। अन्योऽन्येन कृतम्। अन्योऽन्यस्मै दत्तमित्यादि। अन्योऽन्येषां पुष्करैरामृशन्त इति माघः। एवं परस्परम्। अत्र कस्कादित्वाद्विसर्गस्य सः। इतरेतरम्। इतरेतरेणेत्यादि ॥ स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वा वक्तव्यः॥*॥ अन्योऽन्याम्। अन्योऽन्यम्। परस्पराम्। परस्परम्। इतरेतराम्। इतरेतरं वा इमे ब्राह्मण्यौ कुले वा भोजयतः। अत्र केचित्। आमादेशो द्वितीयाया एव। भाष्यादौ तथैवोदाहृतत्वात्। तेन स्त्रीनपुंसकयोरपि तृतीयादिषु पुंवदेव रूपमित्याहुः। अन्ये तूदाहरणस्य दिङ्मात्रत्वात्सर्वविभक्तीनामामादेशमाहुः ॥

दलद्वये टाबभावः क्लीबे चाड्विरहः स्वमोः।
समासे सोरलुक्चेति सिद्धं बाहुलकात्रयम्१॥

तथाह। अन्योऽन्यं परस्परमित्यत्र दलद्वयेपि टाप् प्राप्तः। न च सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे इति पुंवद्भावः। अन्यपरयोरसमासवद्भावात्। न च द्विर्वचनमेव वृत्तिः। यासां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षीं सासेत्यादावतिप्रसङ्गात्। अन्योऽन्यमितरेतरमित्यत्र चाडुत्तरादिभ्य इत्यदड् प्राप्तः। अन्योऽन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्। अन्योऽन्याश्रयः। परस्पराक्षिसादृश्यमदष्टपरस्परैरित्यादौ सालुक्च प्राप्तः। सर्वं बाहुलकबलेन समाधेयम्। प्रकृतवार्तिकभाष्योदाहरणं स्त्रियामितिसूत्रेऽन्योऽन्यसंश्रयं त्वेतदिति भाष्यं चात्र प्रमाणमिति ॥

२१४७—सादृश्यार्थमें गुणवाचक शब्दको द्वित्व हो और "कर्मधारयवदुत्तरेषु २१४६" इस सूत्राधिकारसे वह कर्मधारयकी समान हो, इस कारण पूर्वभागको पुंवद्भाव और "समासस्य ३७३४" इस सूत्रसे अन्तोदात्तत्व भी होगा, जैसे—पटुपट्वी । पटुपटुः, पटुसदृशः, अर्थात् ईषत्पटुः । इस सूत्रमें गुणवचन पदसे गुणोपसर्जनीभूत द्रव्यवाचक और केवल गुणवाचक शब्दका ग्रहण है, जैसे—शुक्लशुक्लं रूपम् । शुक्लशुक्लः पटः । आनुपूर्व्य होनेपर द्वित्व हो * जैसे—मूलेमूले स्थूलः ।

सम्भ्रमसहित प्रवृत्ति होनेपर इच्छानुसार अनेकवार प्रयोग न्यायसिद्ध हो, जैसे—सर्पसर्प बुध्यस्व २ । सर्प ३ । बुध्यस्व ३ ।

क्रियासमभिहारमें द्वित्व हो * लुनीहिलुनीहीत्येवायं लुनाति, यहां "नित्यवीप्सयोः २१४२" इस सूत्रसे द्वित्व सिद्ध होनेपर भी भृशार्थमें द्वित्व करनेके निमित्त और पौनःपुन्यमें भी लोट्के साथ समुच्चय करके द्योतकता लाभ करनेके निमित्त यह वचन है ।

कर्मव्यतीहार अर्थमें सर्वनामसंज्ञक शब्दको द्वित्व हो * ।

वह समासकी समान बहुल करके हो * बहुल शब्दके ग्रहणके कारण अन्य और पर शब्द समासवत् नहीं होगा, इतर शब्दको तो नित्य समासवद्भाव होगा ।

असमासवद्भावमें पूर्वपदस्थ सुप्के स्थानमें सु हो * जैसे अन्योन्यं विप्रा नमन्ति । अन्योन्यौ । अन्योन्यान् । अन्योन्येन कृतम् । अन्योन्यस्मै दत्तम् इत्यादि । "अन्योन्येषां पुष्करैरामृशन्ते" इति माघः । इसी प्रकार 'परस्परम्' इत्यादि जानना । इस स्थलमें कस्कादित्वके कारण विसर्गको सकार हुआ है । इतरेतरम्, इतरेतरेण, इत्यादि ।

स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग शब्दके उत्तर विभक्तिको विकल्प करके आम्भाव हो * अन्योन्याम् । अन्योन्यम् । परस्पराम् । परस्परम् । इतरेतराम् । इतरेतरम् वा इमे ब्राह्मण्यौ कुले वा भोजयतः ।

इस स्थलमें कोईकोई कहतेहैं कि, द्वितीयाको ही आमादेश होताहै, क्योंकि, भाष्यादिमें वैसा ही उदाहरण है, इस कारण स्त्रीलिङ्ग और क्लीबलिंग शब्दके तृतीयादि विभक्तिमें पुँल्लिंगके समान ही रूप होंगे, दूसरे पंडित तो उदाहरणके दिङ्मात्रत्वके कारण सर्वविभक्तिको आमादेश कहतेहैं ।

कारिकाका अर्थ—दोनों दलमें टाप् प्रत्ययका अभाव, नपुंसकलिंगमें सु और अम्के स्थानमें अद्ड्का विरह और समासमें सु प्रत्ययका अलुक्, यह तीन प्रकारका कार्य बाहुलकसे सिद्ध है, जैसे—अन्योन्यम्, परस्परम् इस स्थलमें दोनों दलमें टाप् प्राप्त हुआ, अन्य और पर शब्दके असमासवद्भावके कारण "सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे०" इससे पुंवद्भाव नहीं होसकता, कारण कि, द्विर्वचन ही वृत्ति है, तो "यांयां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सासा" इत्यादि स्थलमें अतिप्रसंग होजायगा 'अन्योन्यमितरेतरम्' इस स्थलमें "अद्ड्डतरादिभ्यः० ३१५" इस सूत्रसे अद्ड् प्राप्त हुआ और 'अन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्' 'अन्योन्याश्रयः' 'परस्पराक्षिसादृश्यम्' 'अदृष्टपरस्परैः' इत्यादि स्थलोंमें सुका लुक् प्राप्त हुआ, परन्तु सब बाहुलकबलसे समाधेय है । प्रकृतवार्त्तिक, भाष्योदाहरण और "स्त्रियाम्" इस सूत्रमें "अन्योन्यसंश्रयम्" ऐसा भाष्य इसमें प्रमाण है ॥

२१४८ अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम् । ८ । १ । १३ ॥

प्रियप्रियेण ददाति । प्रियेण वा । सुखसुखेन ददाति । सुखेन वा । द्विर्वचने कर्मधारयवद्भावात्सुपि लुकि तदेव वचनम् । अतिप्रियमपि वस्त्वनायासेन ददातीत्यर्थः ॥

२१४८—अकृच्छ्रार्थमें प्रिय और सुख शब्दको विकल्प करके द्वित्व हो, जैसे—प्रियप्रियेण ददाति, प्रियेण वा । सुखसुखेन ददाति, सुखेन वा, अर्थात् अतिप्रिय वस्तु भी अनायाससे देताहै । द्विवचनस्थलमें कर्मधारयद्भावके कारण सुप्का लोप होगा ॥

२१४९ यथास्वे यथायथम् । ८ । १ । १४ ॥

यथास्वमिति वीप्सायामव्ययीभावः । योयमात्मा यच्चात्मीयं तद्यथास्वम् । तस्मिन्यथाशब्दस्य द्वे क्लीबत्वं च निपात्यते । यथायथं ज्ञाता यथास्वभावमित्यर्थः । यथाऽऽत्मीयमिति वा ॥

२१४९—आत्मा और आत्मीयको यथास्व कहतेहैं, यथास्व अर्थ होनेपर यथा शब्दको द्वित्व और नपुंसकलिंगत्व निपातनसे सिद्ध हो । सूत्रमें वीप्सार्थमें अव्ययीभाव समास करके 'यथास्वम्' पद सिद्ध है, यथायथं ज्ञाता, अर्थात् यथास्वभाव अथवा यथात्मीय जाननेवाला ॥

२१५० द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु । ८ । १ । १५ ॥

द्विशब्दस्य द्विर्वचनं पूर्वपदस्याऽम्भावोऽत्वं चोत्तरपदस्य नपुंसकत्वं च निपात्यते एभ्य-

र्थेषु । तत्र रहस्यं द्वन्द्वशब्दस्य वाच्यम् । इतरे विषयभूताः । द्वन्द्वं मन्त्रयते । रहस्यमित्यर्थः । मर्यादा स्थित्यनतिक्रमः । आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनीयन्ति । माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति पौत्रेण प्रपौत्रेणापीति मर्यादार्थः । व्युत्क्रमणं पृथगवस्थानम् । द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः । द्विवर्गसंबन्धेन पृथगवस्थिताः । द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति । द्वन्द्वं संकर्षणवासुदेवौ । अभिव्यक्तौ साहचर्येणेत्यर्थः । योगविभागादन्यत्रापि द्वन्द्व इष्यते ॥

॥ इति द्विरुक्तप्रकरणम् ॥

२१५०-रहस्य, मर्यादा, वचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्रप्रयोग और अभिव्यक्ति अर्थमें द्वि शब्दको द्वित्व, पूर्वपदको अम्भाव और उत्तरपदको नपुंसकत्व निपातनसे सिद्ध हो, उक्त अर्थमें रहस्य द्वन्द्व शब्दका वाच्य और सब विषयभूत रहेंगे, जैसे-द्वन्द्वं मंत्रयते, अर्थात् एकान्तमें सलाह करताहै । मर्यादा शब्दसे स्थितिका अनतिक्रम जानना, जैसे-आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनीयन्ति । माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति, पौत्रेण प्रपौत्रेणापि, इस स्थानमें मर्यादा अर्थ जानना । व्युत्क्रमण शब्दसे पृथक् अवस्थान जानना, जैसे-द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः, अर्थात् द्विवर्गसम्बन्धसे पृथक् अवस्थित । द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति । द्वन्द्वं संकर्षणवासुदेवौ, अर्थात् साहचर्यसे अभिव्यक्त । योगविभागके कारण अन्यत्र भी द्वन्द्व ऐसा पद इष्ट है ॥

॥ इति द्विरुक्तप्रकरणं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचितायां सिद्धान्तकौमुद्यां पूर्वार्धं समाप्तम् ॥

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी ।

भाषाटीकासहिता

तदुत्तरार्द्धम् ।

अथ तिङन्ते भ्वादयः १.

श्रौत्रार्हन्तीचणैर्गुण्यैर्महर्षिभिरहर्दिवम् ।
तोष्टूय्यमानोप्यगुणो विभुर्विजयतेतराम्॥१॥

जो निर्गुण होकर भी श्रोत्रियत्व (वेदपठनकर्तृत्व) और योग्यतासे प्रसिद्ध तथा प्रशस्त गुणोंसे युक्त महर्षियोंसे निरन्तर संस्तूयमान है, वह निग्रहानुग्रहसमर्थ सर्वव्यापी जगदीश्वर सर्वोत्कृष्ट रूपसे वर्तमान रहताहै ॥ १ ॥

पूर्वार्धे कथितास्तुर्यपञ्चमाध्यायवर्तिनः ।
प्रत्यया अथ कथ्यन्ते तृतीयाध्यायगोचराः २

चौथे और पांचवें अध्यायमें स्थित सम्पूर्ण प्रत्यय पूर्वार्धमें कहेहैं, अब तीसरे अध्यायमें वर्तमान प्रत्यय कहे जातेहैं ॥ २ ॥

तत्रादौ दश लकाराः प्रदर्श्यन्ते । लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् । लुङ् । लृङ् । एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः ॥

उसमें पहले दश लकार दिखातेहैं, यथा–लट् १, लिट्२, लुट्३, लृट्४, लेट्५, लोट्६, लङ्७, लिङ्८, लुङ् ९, लृङ् १०, इनमें पाचवें लकार (लेट्) का प्रयोग केवल वैदिक प्रकरणमें ही देखाजाताहै ॥

२१५१ वर्तमाने लट् । ३ । २ ।१२३॥

वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् । अटावितौ॥

२१५१–वर्तमान कालमें विद्यमान जो क्रिया, तद्वृत्ति धातुके उत्तर लट् प्रत्यय हो । लट्के अ और टकी इत्संज्ञा हुई (ल शेष बचा) ॥

२१५२ लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः । ३ । ४ । ६९ ॥

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ॥

२१५२–सकर्मक धातुके उत्तर, कर्म और कर्ता वाच्य रहते और अकर्मक धातुके उत्तर, कर्ता और भाव वाच्य रहते लकार प्रयुक्त हों ॥

२१५३ लस्य । ३ । ४ । ७७ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

२१५३–यह अधिकार सूत्र है, अर्थात् यहांसे 'लस्य' इस षष्ठ्यन्त पदका अधिकार आरम्भ हुआ ॥

२१५४ तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्ताताञ्झथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्।३।४।७८॥

एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः ॥

२१५४–तिप्, तस्, झि । सिप्, थस्, थ । मिप्, वस्, मस् । त, आताम्, झ । थास्, आथाम्, ध्वम् । इट्, वहि, महिङ् । यह अठारह आदेश लकारके स्थानमें प्रयुक्त हों ॥

२१५५ लः परस्मैपदम् ।१।४।९९॥

लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः ॥

२१५५–लकारके स्थानमें विहित जो आदेश, उनकी परस्मैपद संज्ञा हो ॥

२१५६तङानावात्मनेपदम्।१।४।१००॥

तङ् प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः । पूर्वसंज्ञापवादः ॥

२१५६–उन (लादेशों)में तङ् प्रत्याहार अर्थात् त, आताम्, झ । थास्, आथाम्, ध्वम् । इट्, वहि, महिङ् और आन अर्थात् शानच्, कानच् प्रत्ययोंकी भी आत्मनेपद संज्ञा हो । यह पूर्व संज्ञा (परस्मैपद) का अपवाद सूत्र है ॥

२१५७ अनुदात्तङित आत्मनेपदम्। १ । ३ । १२ ॥

अनुदात्तेत उपदेशे यो ङित्तदन्ताच्च धातोर्लस्य स्थाने आत्मनेपदं स्यात् ॥

२१५७–जिस धातुका अनुदात्त अक्षर इत्संज्ञक हो, और उपदेश विषयमें जो ङकारइत्संज्ञक हो, तदन्त धातुके उत्तर विहित लकारोंके स्थानमें आत्मनेपदसंज्ञक आदेश हों ।

२१५८ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले । १ । ३ । ७२ ॥

स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले ॥

२१५८-क्रियाके फलको कर्तामें जानेपर स्वरित वर्ण जिसका इत् हो और ञ जिसका इत् हो ऐसे धातुके उत्तर आत्मनेपद हो ॥

२१५९ शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् । १ । ३ । ७८ ॥

आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मै पदं स्यात् ॥

२१५९-आत्मनेपदके निमित्त (अनुदात्तेत्त्व १, उपदेशमें ङित्त्व २, कर्तृगामी क्रियाफलमें स्वरितेत्त्व ३ और ञित्त्व ४) से हीन जो धातु, उसके उत्तर कर्तृवाच्यमें परस्मैपद हो ॥

२१६० तिङस्त्रीणित्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः । १ । ४ । १०१ ॥

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः ॥

२१६०-तिङ् प्रत्याहारके मध्यमें स्थित परस्मैपद तथा आत्मनेपदकी सम्पूर्ण विभक्तियोंकी तीन तीन करके क्रमसे प्रथम, मध्यम और उत्तम (पुरुष) संज्ञा हो ॥

२१६१ तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः । १ । ४ । १०२ ॥

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणित्रीणि वचनानि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः ॥

२१६१-परस्मैपद और आत्मनेपदके प्रथम, मध्यम और उत्तम, इन तीनों पुरुषोंमें प्रत्येक पुरुषकी एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञा हो ॥

२१६२ युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः । १ । ४ । १०५ ॥

तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः स्यात् ॥

२१६२-तिङ्का वाच्य जो कारक तद्वाचक युष्मद् शब्दके प्रयुज्यमान वा अप्रयुज्यमान होनेपर अर्थात् युष्मद् शब्दका योग रहते वा न रहते केवल युष्मदर्थ गम्यमान रहते धातुके उत्तर मध्यम पुरुष हो ॥

२१६३ प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च । १ । ४ । १०६ ॥

मन्यधातुरुपपदं यस्य धातोस्तस्मिन्प्रकृतिभूते सति मध्यमः स्यात्परिहासे गम्यमाने मन्यतेरुत्तमः स्यात्स चैकार्थस्य वाचकः स्यात् ॥

२१६३-मन्य धातु जिस धातुका उपपद हो, उस धातुको प्रकृतिभूत होनेपर मध्यम पुरुष हो, परिहास अर्थमें और मन धातुसे उत्तम पुरुष हो, वह उत्तम पुरुष एकार्थवाचक अर्थात् एकवचनान्त ही हो ॥

२१६४ अस्मद्युत्तमः । १ । ४ । १०७ ॥

तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः स्यात् ॥

२१६४-तिङ्वाच्य कारकवाचक अस्मद् शब्दको प्रयुज्यमान होनेपर भी धातुसे उत्तम पुरुष हो ॥

२१६५ शेषे प्रथमः । १ । ४ । १०८ ॥

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात् । भू सत्तायाम् ॥ कर्तृविवक्षायां भू-ति इति स्थिते ॥

२१६५-मध्यम और उत्तम पुरुषके अविषयमें प्रथम पुरुष हो । भू धातु सत्ता (आत्मधारणानुकूल व्यापार) में है । इसके उत्तर कर्तृवाच्यमें लट्, तिप् 'भू+तिप्' ऐसी स्थिति होनेपर-॥

२१६६ तिङ्शित्सार्वधातुकम् । ३ । ४ । ११३ ॥

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः ॥

२१६६-तिङ् प्रत्याहार और धात्वधिकारोक्त शित् प्रत्यकी सार्वधातुक संज्ञा हो ॥

२१६७ कर्तरि शप् । ३ । १ । ६८ ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् स्यात् । शपावितौ ॥

२१६७-कर्ता अर्थमें विहित सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय परे रहते धातुके उत्तर शप् प्रत्यय हो । शप्के शकार और पकारकी इत्संज्ञा होकर अकार रहा ॥

२१६८ सार्वधातुकार्धधातुकयोः । ७ । ३ । ८४ ॥

अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः स्यात् । अवादेशः । भवति । भवतः ॥

२१६८-सार्वधातुक और आर्धधातुक परे रहते इगन्त (इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त, ऌकारान्त) धातुको गुण हो । ओकारके स्थानमें अवादेश, भू+तिप्=भवति ॥ भू+तस्=भवतः ॥

२१६९ झोऽन्तः । ७ । १ । ३ ॥

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः स्यात् । अतो गुणे । भवन्ति । भवसि । भवथः । भवथ ॥

२१६९-प्रत्ययका अवयव जो झ उसके स्थानमें अन्त आदेश हो । "अतो गुणे १९१" इस सूत्रसे पररूप । भू+झि=भवन्ति । भू+सिप्=भवसि । भू+थस्=भवथः । भू+थ=भवथ ॥

२१७० अतो दीर्घो यञि । ७।३।१०१॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घः स्याद् यञादौ सार्वधातुके परे । भवामि । भवावः । भवामः । स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि । युवां भवथः । यूयं भवथ । अहं भवामि । आवां भवावः । वयं भवामः । एहि मन्ये ओदनं भोक्ष्यसे इति भुक्तः सोऽतिथिभिः । एतमेत वा मन्ये ओदनं भोक्ष्येथे, भोक्ष्यध्वे । भोक्ष्ये, भोक्ष्यावहे, भोक्ष्यामहे । मन्यसे, मन्येथे, मन्यध्वे । इत्यादिरर्थः । युष्मद्युपपदे इत्याद्यनुवर्तते, तेनेह न । एतु भवान्मन्यते ओदनं भोक्ष्ये इति भुक्तः सोतिथिभिः । प्रहासे किम् । यथार्थकथने मा भूत् । एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति भुक्तः सोतिथिभिरित्यादि ॥

२१७०-यञादि सार्वधातुक परे रहते अदन्त अङ्गको दीर्घ हो, जैसे-भव+मिप्=भवामि । भव+वस्=भवावः । भव+मस्=भवामः । प्रथम पुरुषका उदाहरण, जैसे-स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । मध्यम पुरुषका जैसे-त्वं भवसि-इत्यादि । उत्तम पुरुषका जैसे-अहं भवामि-इत्यादि । एहि मन्ये ओदनं भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः । इस स्थानमें परिहासार्थमें 'भुज्' धातुका उपपद 'मन्' धातु है, अत एव भुज् धातुसे मध्यम पुरुष हुआ । और मन् धातुसे उत्तम पुरुष और एकवचन हुआ । एतम् एत वा मन्ये, ओदनं भोक्ष्येथे, भोक्ष्यध्वे, भोक्ष्ये, भोक्ष्यावहे, भोक्ष्यामहे इत्यादि । मन्यसे, मन्येथे, मन्यध्वे, इत्यर्थः । इस स्थलमें "युष्मद्युपपदे० २१६२" इस सूत्रकी अनुवृत्ति होतीहै, इस कारण यहां नहीं हुआ, जैसे-एतु भवान् मन्यते ओदनं भोक्ष्य इति, भुक्तः सोऽतिथिभिः । परिहासभिन्न अर्थात् यथार्थकथनस्थलमें ऐसा नहीं होगा, जैसे-एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति, भुक्तः सोऽतिथिभिः-इत्यादि ॥

२१७१ परोक्षे लिट् । ३ । २ । ११५ ॥

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात् । लस्य तिबादयः ॥

२१७१-भूताऽनद्यतनपरोक्षार्थ वृत्ति जो धातु, उसके उत्तर लिट् हो । लके स्थानमें तिबादि आदेश होतेहैं ॥

२१७२ लिट् च । ३ । ४ । ११५ ॥

लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञ एव स्यान्न तु सार्वधातुकसंज्ञः । तेन शबादयो न ॥

२१७२-लिट्के स्थानमें आदिष्ट तिङ् आर्धधातुक संज्ञक ही हों, सार्वधातुकसंज्ञक नहीं, इस कारण लिट्के उत्तर शप् आदि नहीं होंगे ॥

२१७३ परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः । ३ । ४ । ८२ ॥

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयो नव स्युः । भू अ इति स्थिते ॥

२१७३-लिट्के स्थानमें आदिष्ट तिबादि नवके स्थानमें यथाक्रम णल्, अतुस्, उस् । थल्, अथुस्, अ । णल्, व, म, यह नव आदेश हों, जैसे-भू+तिप्=भू+अ (णल्) ॥

२१७४ भुवो वुग्लुङ्लिटोः ।६।४।८८॥

भुवो वुगागमः स्यात् लुङ्लिटोरचि । नित्यत्वाद्वुग्गुणवृद्धी बाधते ॥

२१७४-लुङ् और लिट्सम्बन्धी अच् परे रहते भू धातुको वुक्का आगम हो । नित्यत्वके कारण वुक्का आगम गुण और वृद्धिको बाधताहै * ॥

२१७५ एकाचो द्वे प्रथमस्य । ६।१।१॥

२१७५-यह अधिकार सूत्र है । धातुके प्रथम एकाच्को द्वित्व हो ॥

२१७६ अजादेर्द्वितीयस्य । ६ । १ ।२॥

इत्यधिकृत्य ॥

२१७६-यह भी अधिकार सूत्र है । अजादि धातुके द्वितीय एकाच्को द्वित्व हो ॥

२१७७ लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८॥

लिटि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः । आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । भूव् भूव् अ इति स्थिते ॥

२१७७-लिट् परे रहते अनभ्यास, धातुके अवयव प्रथम एकाच्को द्वित्व हो और आदि अच्के परे स्थित दूसरे एकाच्को द्वित्व हो भूव् भूव्=अ, ऐसा होनेपर-

२१७८ पूर्वोऽभ्यासः । ६ । १ । ४ ॥

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् ॥

२१७८-द्विरुक्त धातुके पूर्व भागको अभ्यास संज्ञा हो ॥

२१७९ हलादिः शेषः । ७ । ४ । ६० ॥

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते अन्ये हलो लुप्यन्ते । इति वलोपः ॥

२१७९-अभ्यासके आदिमें स्थित हल् अक्षर शेष रहे, और उससे भिन्न अन्य हल् वर्णोंका लोप हो, इस सूत्रसे अभ्यासके वकारका लोप हुआ भूभूव्=अ-॥

२१८० ह्रस्वः । ७ । ४ । ५९ ॥

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात् ॥

* " कृताऽकृतप्रसङ्गी विधिर्नित्यः " अर्थात् जिसके होने और न होनेपर जिसकी प्रवृत्ति होती है, वह उसके प्रति नित्य होताहै, यहां वृद्धि होनेपर भी एकदेशविकृत-न्यायसे वुक्की प्रवृत्ति होती है, और वुक् करनेपर अजन्ताङ्ग न रहनेसे वृद्धिकी (२५४) प्रवृत्ति नहीं होतीहै । यहां गुणको बाधके वृद्धिकी प्रवृत्ति होतीहै, इस लिये नित्यत्वसे गुणको बाधके वुक् होनेका उदाहरण बभूविथ जानना ॥

२१८०-अभ्यासके अच्को ह्रस्व हो । बुभूव्=अ ॥

२१८१ भवतेरः । ७ । ४ । ७३ ॥

भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्यात् लिटि ॥

२१८१-लिट् परे रहते भू धातुके अभ्यासका जो उकार, उसके स्थानमें अकार हो । बभूव्=अ ॥

२१८२ अभ्यासे चर्च । ८ । ४ । ५४॥

अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च । झशां जशः खरां चरः । तत्रापि प्रकृतिजशां प्रकृतिजशः । प्रकृतिचरां प्रकृतिचर इति विवेकः आन्तरतम्यात् ॥

२१८२-अभ्यासके झल्के स्थानमें चर् और जश् भी हों । झलोंके स्थानमें जश् और खर्के स्थानमें चर् हों । वहां भी सादृश्यके कारण प्रकृतिभूत जश्के स्थानमें जश् और प्रकृतिभूत चर्के स्थानमें चर् ही होंगे ॥

२१८३ असिद्धवदत्राभात् । ६।४।२२॥

इत ऊर्ध्वमापादपरिसमाप्तेराभीयम् । समानाश्रये तस्मिन् कर्तव्ये तदसिद्धं स्यात् । इति वुकोऽसिद्धत्वादुवङि प्राप्ते ॥ वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ ॥ * ॥ बभूव । बभूवतुः । बभूवुः ॥

२१८३-इस सूत्रसे पादसमाप्तिपर्यंत जो सूत्र हैं उनकी 'आभीय' संज्ञा है, और समानाश्रय आभीय कर्तव्य होनेपर वह आभीय असिद्ध हो अर्थात् जिस समय एक आभीयका कार्य किसी निमित्तको मानकर प्रयोगमें होचुका हो, उसी निमित्तको मानकर उसी प्रयोगमें दूसरे आभीयका कार्य होने लगे तो पहले आभीयका कार्य असिद्ध माना जाय, इस कारण वुक्के असिद्धत्वसे उवङ्०(२७१) की प्राप्ति होने पर ।

उवङ् और यण् कर्तव्य रहते वुक् और युट् सिद्धही रहतेहैं *जैसे-बभूव । बभूवतुः । बभूवुः ॥

२१८४आर्धधातुकस्येड्वलादेः।७।२।३५।

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात् । बभूविथ । बभूवथुः । बभूव । बभूव । बभूविव । बभूविम॥

२१८४-वलादि आर्धधातुकको इट्का आगम हो, जैसे-बभूविथ । बभूवथुः । बभूव । बभूव । बभूविव । बभूविम ॥

२१८५ अनद्यतने लुट् । ३ । ३ ।१५॥

भविष्यत्यनद्यतनेर्थे धातोर्लुट् स्यात् ॥

२१८५-भविष्यत् अनद्यतन कालमें धातुके उत्तर लुट् हो ॥

२१८६ स्यतासी लृलुटोः। ३ । १।३३॥

लृ इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम् । धातोः स्यतासी एतौ स्तो लृलुटोः परतः । शबाद्यपवादः ॥

२१८६-लृङ् और लृट् परे रहते धातुके उत्तर स्य और लुट् परे रहते धातुके उत्तर तासि प्रत्यय हो, यह सूत्र शप् आदिका अपवाद है ॥

२१८७ आर्धधातुकं शेषः ।३।४।११४॥

तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धात्वधिकारोक्तः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात् । इट् ॥

२१८७-"धातोः३।१।९१"इसके अधिकारमें विहित तिङ् और शित्से भिन्न प्रत्ययकी आर्धधातुक संज्ञा हो । इस सूत्रसे आर्धधातुक संज्ञा करनेपर पूर्व सूत्रसे इट् होताहै ॥

२१८८लुटःप्रथमस्य डारौरसः।२।४।८५।

डा रौ रस् एते क्रमात्स्युः । डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः ॥

२१८८-लुट्के स्थानमें आदिष्ट जो प्रथम पुरुष (तिप्, तस्, झि) उसके स्थानमें क्रमसे डा, रौ, रस् आदेश हों । यहां डित् करनेके सामर्थ्यसे भ संज्ञा न होनेपर भी टि (आस्) का लोप होगा ॥

२१८९ पुगन्तलघूपधस्य च ७ ।३।८६।

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः स्यात्सार्वधातुकार्धधातुकयोः । येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेपि वचनप्रामाण्यात् । तेन भिनत्तीत्यादावनेकव्यवहितस्येको न गुणः । भवित् आ अत्रेटो गुणे प्राप्ते ॥

२१८९-सार्वधातुक और आर्धधातुक परे रहते पुगन्त और लघूपध अङ्गका जो इक्, उसको गुण हो । यत्कर्तृक अवश्य व्यवधान हो, तत्कर्तृक व्यवधान होनेपर भी वचन प्रमाणानुसार कार्य होताहै, परन्तु तद्भिन्न द्वारा व्यवहित होने पर नहीं होता, यही फलितार्थ है, इस कारण 'भिनत्ति' इत्यादि स्थलमें अनेकसे व्यवहित इक्को गुण नहीं होता । भवित्+आ, इस स्थलमें इक्को गुण प्राप्त हुआ है ॥

२१९० दीधीवेवीटाम् । १ । १ । ६ ।

दीधीवेव्योरिटश्च गुणवृद्धी न स्तः । भविता ॥

२१९०-दीधीङ् और वेवीङ् धातुके और इट्के इक्को गुण और वृद्धि न हों । भविता ॥

२१९१ तासस्त्योर्लोपः । ७ । ४ ।५० ॥

तासेरस्तेश्च लोपः स्यात्सादौ प्रत्यये परे ॥

२१९१ सकारादि प्रत्यय परे रहते तासि प्रत्ययके और अस् धातुके सकारका लोप हो ॥

२१९२ रि च । ७ । ४ । ५१ ॥

रादौ प्रत्यये प्राग्वत् । भवितारौ । भवितारः। भवितासि । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास्मि । भवितास्वः । भवितास्मः ॥

२१९२-रकारादि प्रत्यय परे रहते तासि प्रत्यय और अस् धातुके सकारका लोप हो । भवितारौ । भवितारः । भवितासि । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास्मि । भवितास्वः । भवितास्मः ॥

२१९३ लृट् शेषे च । ३ । ३ । १३ ॥

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् स्यात्क्रियायामसत्यां सत्यां च । स्यः । इट् । भविष्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्यामः ॥

२१९३-क्रियार्थ क्रिया हो अथवा न हो भविष्यत् कालमें धातुके उत्तर लृट् हो । भू+स्य+ति=भविष्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्यामः ॥

२१९४ लोट् च । ३ । ३ । १६२ ॥

विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लोट् स्यात् ॥

२१९४-विध्यादि अर्थोंमें धातुके उत्तर लोट् हो ॥

२१९५ आशिषि लिङ्लोटौ ।३।३।१७३॥

२१९५-आशीर्वाद अर्थमें धातुके उत्तर लिङ् और लोट् हों ॥

२१९६ एरुः ३ । ४ । ८६ ॥

लोट इकारस्य उः स्यात् । भवतु ॥

२१९६-लोट्के स्थानमें आदिष्ट तिबादिकोंके इकारके स्थानमें उकार हो, जैसे-भवतु ॥

२१९७ तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् । ७ । १ । ३५ ॥

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा स्यात् । अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः । यद्यपि ङिच्चेत्ययमपवादस्तथाप्यनन्यार्थङित्त्वेष्वनङादिषु चरितार्थ इति गुणवृद्धिप्रतिषेधसंप्रसारणाद्यर्थतया सम्भवत्प्रयोजनङकारे तातङि मन्थरं प्रवृत्तः परेण बाध्यते । इहोत्सर्गापवादयोरपि समबलत्वात् । भवतात् ॥

२१९७-आशीर्वाद अर्थमें तु और हि के स्थानमें विकल्प करके तातङ् हो । अनेकाल्त्वके कारण (४५) 'तु' और 'हि' सम्पूर्णके स्थानमें ही होगा, "ङिच्च४३" इस सूत्रसे अन्तादेश नहीं होगा । यद्यपि "ङिच्च ४३" यह सूत्र उसका(४५)अपवाद है, तथापि जहां ङित्का अन्य कोई प्रयोजन नहीं है, उन अनङ् आदि स्थलोंमें "ङिच्च" इस सूत्रकी चरितार्थता होतीहै, इसलिये गुण और वृद्धिका प्रतिषेध और संप्रसारण आदि जिसके ङित्त्वके फल हैं, ऐसे तातङ्में "ङिच्च" यह मंथर गतिसे प्रवृत्त होताहै, इससे उत्सर्ग और अपवादके तुल्यबलत्वके कारण पर होनेसे "अनेकाल्शित्सर्वस्य" इस सूत्रसे "ङिच्च" यह सूत्र बाधित होताहै जैसे-भवतात् ॥

२१९८ लोटो लङ्वत् । ३ । ४ । ८५॥

लोटो लङ इव कार्यं स्यात् । तेन तामादयः सलोपश्च । तथाहि ॥

२१९८-लोट्को लङ्के समान कार्य हों । तिससे यह सिद्ध हुआ कि, ताम्-आदि और सकारका लोप लङ्के समान लोट्को भी होंगे । ताम्-आदि और सलोपके सूत्र आगे दिखातेहैं ॥

२१९९ तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः । ३ । ४ । १०१ ॥

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात्स्युः ॥

२१९९-ङित् लकारके स्थानमें आदिष्ट जो तस् १, थस् २, थ ३ और मिप् ४ इन चार प्रत्ययोंके स्थानमें क्रमसे ताम् १, तम् २, त ३ और अम् यह चार आदेश हों ॥

२२०० नित्यं ङितः । ३ । ४ । ९९ ॥

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः स्यात् । अलोन्त्यस्येति सस्य लोपः । भवताम् । भवन्तु ॥

२२००-सकारान्त ङित् लकारके उत्तम पुरुषका नित्य लोप हो । "अलोन्त्यस्य ४२" इस सूत्रसे सकारका लोप हो । जैसे-भवताम् । भवन्तु ॥

२२०१ सेर्ह्यपिच्च । ३ । ४ । ८७ ॥

लोटः सेर्हिः स्यात्सोऽपिच्च ॥

२२०१-लोट्के सिके स्थानमें हि आदेश हो और वह अपित् भी हो ॥

२२०२ अतो हेः । ६ । ४ । १०५ ॥

अतः परस्य हेर्लुक् स्यात् । भव । भवतात् । भवतम् । भवत ॥

२२०२-अकारके परे स्थित हिका लुक् हो । भव । भवतात् । भवतम् । भवत ।

२२०३ मेर्निः । ३ । ४ । ८९ ॥

लोटो मेर्निः स्यात् ॥

२२०३-लोट्की मिके स्थानमें नि हो ॥

२२०४ आडुत्तमस्य पिच्च ।३।४।९२॥

लोडुत्तमस्याडागमः स्यात्स पिच्च । हिन्योरुत्वं न इकारोच्चारणसामर्थ्यात् । भवानि । भवाव । भवाम ॥

२२०४-लोट्के उत्तम पुरुषको आट्का आगम हो और वह पित् हो । इकारोच्चारणसामर्थ्यसे हि और निके इकारके स्थानमें उकार न हो, जैसे-भवानि । भवाव । भवाम ॥

२२०५ अनद्यतने लङ् ।३।२। १११ ॥

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात् ॥

२२०५-अनद्यतन भूतार्थवृत्ति धातुके उत्तर लङ् हो ॥

२२०६ लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः । ६ । ४ । ७१ ॥

एषु परेष्वङ्गस्याऽडागमः स्यात्स चोदात्तः ॥

२२०६-लुङ्, लङ् और लृङ् परे रहते धातुको अट्का आगम हो और वह अडागम उदात्त हो ॥

२२०७ इतश्च । ३ । ४ । १०० ॥

ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तस्य लोपः स्यात् । अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम ॥

२२०७-ङित् लकारका जो परस्मैपद इकारान्त, उसका लोप हो । अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम ॥

२२०८ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् । ३ । ३ । १६१ ॥

एष्वर्थेषु द्योत्येषु वाच्येषु वा लिङ् स्यात् । विधिः प्रेरणम्, भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम् । निमन्त्रणं नियोगकरणम्, आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम् । आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा । अधीष्टं सत्कारपूर्वको व्यापारः । प्रवर्तनायां लिङ् इत्येव सुवचम् । चतुर्णां पृथगुपादानं प्रपञ्चार्थम् ॥

२२०८-विधि, निमंत्रण, आमंत्रण, अधीष्ट, संप्रश्न और प्रार्थना अर्थमें धातुके उत्तर लिङ् हो । विधि-प्रेरण अर्थात् भृत्यादि निकृष्ट व्यक्तिके प्रवर्त्तनको कहतेहैं । निमंत्रण-नियोग करण जानना, अर्थात् आवश्यक श्राद्ध भोजनादि विषयोंमें दौहित्रादिकोंका प्रवर्त्तन--आमंत्रण--कामचारकी अनुज्ञा । अधीष्ट-सत्कारपूर्वक व्यापारको कहतेहैं । ' प्रवर्त्तना अर्थमें लिङ् हो ' ऐसा कहनेसे काम चलजाता परन्तु विधि आदि चारोंका पृथक् २ उपादान प्रपञ्चार्थ स्पष्टताके लिये है ॥

२२०९ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च । ३ । ४ । १०३ ॥

लिङः परस्मैपदानां यासुडागमः स्यात्स चोदात्तो ङिच्च । ङित्त्वोक्तेर्ज्ञायते क्वचिदनुबन्धकार्येप्यनल्विधाविति प्रतिषेध इति । आदेशस्य शानचः शित्वमपीह लिङ्गम् ॥

२२०९-लिङ्के परस्मैपदोंको यासुट्का आगम हो और वह उदात्त और ङित् भी हो, इस ङित्वकी उक्तिसे जाना जाता है कि, कभीकभी अनुबन्ध कार्यमें भी ''अनल्विधौ'' यह स्थानिवद्भावका प्रतिषेध होताहै । श्नाके स्थानमें विहित जो शानच् उसका शित्व प्रमाण भी इस विषयका ज्ञापक है । इसका विशेष विवरण पहले (४७०) कर चुकेहैं ॥

२२१० सुट् तिथोः । ३ । ४ । १०७ ॥

लिङस्तकारथकारयोः सुट् स्यात् सुटा यासुट् न बाध्यते, लिङो यासुट् तकारथकारयोः सुडिति विषयभेदात् ॥

२२१०-लिङ्के तकार और थकारको सुट्का आगम हो । इस सुट्से यासुट् बाधित नहीं होताहै, क्योंकि, लिङ्को यासुट् होताहै और तकार और थकारको सुट् होताहै, इस कारण विषयभेद है, और भिन्नविषयमें बाध्यबाधकभाव नहीं होता ॥

२२११ लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य । ७ । २ । ७९ ॥

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः स्यात् । इति सकारद्वयस्यापि निवृत्तिः । सुटः श्रवणं त्वाशीर्लिङि । स्फुटतरं तु तत्रात्मनेपदे ॥

२२११-सार्वधातुक जो लिङ्, उसके अनन्त्य (अन्तमें न हो ऐसे) सकारका लोप हो । इस सूत्रके अनुसार दोनों सकारोंकी निवृत्ति हुई, सुट्का श्रवण तो आशिषिलिङ्में होगा और स्फुटतर तो वहां भी आत्मनेपदमें होगा ॥

२२१२ अतो येयः । ७ । २ । ८० ॥

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य या इत्यस्य इय् स्यात् । गुणः । यलोपः । भवेत् । सार्वधातुके किम् । चिकीर्ष्यात् । मध्येऽपवादन्यायेन हि अतो लोप एव बाध्येत । भवेदित्यादौ तु परत्वाद्दीर्घः स्यात् । भवेताम् ॥

२२१२-अकारके परे स्थित सार्वधातुकके अवयव 'या' के स्थानमें इय् आदेश हो । (गुण (६९) और यलोप ८७३) भवेत् । इस सूत्रमें 'सार्वधातुके' की अनुवृत्ति न करेंगे तो 'चिकीर्ष्यात्' यहां इय् होजायगा, और ''मध्येऽपवादाः पूर्वान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरान्'' इस परिभाषासे प्रकृतसूत्र ''अतो लोपः६।४।४८''कोही बाधेगा,''अतो दीर्घो यञि७।३।१०१'' को नहीं, तब तो'भवेत्'इत्यादिकमें परत्वात् दीर्घही हो जायगा इय् नहीं । भवेताम् ॥

२२१३ झेर्जुस् । ३ । ४ । १०८ ॥

लिङो झेर्जुस् स्यात् ज इत् ॥

२२१३-लिङ्के झि प्रत्ययके स्थानमें जुस् आदेश हो । जुस्के जकारकी इत्संज्ञा हुई (१८९) उस् रहा ॥

२२१४ उस्यपदान्तात् । ६ । १ । ९६ ॥

अपदान्तादवर्णादुसि परे पररूपमेकादेशः स्यात् । इति प्राप्ते । परत्वान्नित्यत्वाच्चातो येय इति प्राञ्चः । यद्यप्यन्तरङ्गत्वात्पररूपं न्याय्यं तथापि यास् इत्येतस्य इय् इति व्याख्येयम् । एवं च सलोपस्यापवाद इय् । अतो येय

इत्यत्र तु सन्धिरार्षः । भवेयुः । भवेः । भवेतम् । भवेत । भवेयम् । भवेव । भवेम ॥

२२१४–अपदान्त अवर्णके उत्तर उस् परे रहते पूर्व परके स्थानमें पररूप एकादेश हो । इसकी प्राप्ति होने पर, परत्व और नित्यत्वके कारण आदेश हो, "अतो येयः २२१२" से 'या' को इय् यह प्राचीन लोगोंका मत है । यद्यपि अन्तरङ्गत्वके कारण पररूप न्याय्य है तथापि 'यास्' भागके स्थानमें इय् आदेश हो, इस प्रकार ही उस (२२१२) की व्याख्या करनी उचित है, इस प्रकार 'इय्' आदेश सलोपका अपवाद होताहै, इस व्याख्यामें "अतो येयः" इस सूत्रमें जो संधि है, वह आर्ष है । भवेयुः । भवेः । भवेतम् । भवेत । भवेयम् । भवेव । भवेम ॥

२२१५ लिङाशिषि । ३ । ४ । ११६ ॥

आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् ॥

२२१५–आशीर्वादार्थक लिङ्के स्थानमें विहित जो तिङ्, वह आर्धधातुक संज्ञक हो ॥

२२१६ किदाशिषि । ३ । ४ । १०४ ॥

आशिषि लिङो यासुट् कित्स्यात् । स्कोरिति सलोपः ॥

२२१६–आशीर्वादार्थक लिङ्का यासुट् कित् हो । "स्कोः ३८०" इस सूत्रसे यासुट् और सुट् (२२१०) के सकारका लोप हुआ ॥

२२१७ क्ङिति च । १ । १ । ५ ॥

गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः । भूयात् । भूयास्ताम् । भूयासुः । भूयाः । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासम् । भूयास्व । भूयास्म ॥

२२१७–गित्, कित्, और ङित् निमित्तवाले इग्लक्षण गुण और वृद्धि न हों, जैसे–भूयात् । भूयास्ताम् । भूयासुः । भूयाः । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासम् । भूयास्व । भूयास्म ॥

२२१८ लुङ् । ३ । २ । ११० ॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लुङ् स्यात् ॥

२२१८–भूत अर्थमें वर्त्तमान धातुसे लुङ् हो ॥

२२१९ माङि लुङ् । ३ । ३ । १७५ ॥

सर्वलकारापवादः ॥

२२१९–माङ् शब्दके योगमें धातुके उत्तर लुङ् हो यह सर्वलकारका अपवाद है ॥

२२२० स्मोत्तरे लङ् च । ३ । ३ । १७६ ॥

स्मोत्तरे माङि लङ् स्याल्लुङ् च ॥

२२२०–स्म शब्द पर है जिससे ऐसे माङ् शब्दके योगमें धातुके उत्तर लङ् और लुङ् दोनों हों ॥

२२२१ च्लि लुङि । ३ । १ । ४३ ॥

शबाद्यपवादः ॥

२२२१–लुङ् परे रहते धातुके उत्तर च्लि प्रत्यय हो । यह च्लि शबादिकोंका अपवाद है ॥

२२२२ च्लेः सिच् । ३ । १ । ४४ ॥

इचावितौ ॥

२२२२–च्लिके स्थानमें सिच् आदेश हो । सिच्के इ और च की इत्संज्ञा हुई, सकार शेष रहा ॥

२२२३ गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु । २ । ४ । ७७ ॥

एभ्यः सिचो लुक् स्यात् । गापाविहेणादेशपिबती गृह्येते ॥

२२२३–गा धातु, स्था धातु, घुसंज्ञक (दा, धा) धातु, पा धातु और भू धातुके उत्तर सिच्का लुक् हो । परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय परे रहते । गा धातु और पा धातु, दो दो हैं । एक इण् धातुके स्थानमें आदिष्ट गा धातु, अन्य गीतार्थमें एवम् 'पा पाने' और 'पा–रक्षणे' यह दो पा हैं, परन्तु इस स्थानमें इण् धातुके स्थानमें आदिष्ट गा धातु और पानार्थक पा धातुके उत्तर ही सिच्का लुक् होगा अन्यत्र नहीं ॥

२२२४ भूसुवोस्तिङि । ७ । ३ । ८८ ॥

भू सु एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न स्यात् ॥

२२२४–सार्वधातुक तिङ् परे रहते भू और सु, इन दोनों धातुओंके उकारको गुण न हो ॥

२२२५ अस्तिसिचोऽपृक्ते । ७ । ३ । ९६ ॥

सिच् अस् चेति समाहारद्वन्द्वः । सिच्छब्दस्य सौत्रं भत्वम् । अस्तीत्यव्ययेन कर्मधारयः । ततः पञ्चम्याः सौत्रो लुक् । विद्यमानात्सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तहल ईडागमः स्यात् । इतीट् नेह । सिचो लुप्तत्वात् । अभूत् । हलः किम् । ऐधिषि । अपृक्तस्येति किम् । ऐधिष्ट । अभूताम् ॥

२२२५–इस स्थलमें 'सिच्' और 'अस्'का परस्पर समाहारद्वन्द्व समास है । सूत्रके अनुसार सिच्की भ संज्ञा हुई, पश्चात् 'अस्ति' इस अव्ययके साथ कर्मधारय समास हुआ, पश्चात् सौत्रत्वके कारण पंचमी विभक्तिका लुक् हुआहै ।

विद्यमान सिच् और अस् धातुके परे स्थित अपृक्त हल्को ईट्का आगम हो, इस सूत्रसे यहां ईट् नहीं होता क्योंकि, सिच्का लुक् हुआ है । अभूत् ।

हल्को ईडागमका विधान करनेसे 'ऐधिषि' इस स्थानमें ईडागम नहीं हुआ ।

और अपृक्त कहनेके कारण 'ऐधिष्ट' इस स्थानमें भी ईडागम नहीं हुआ । अभूताम् ॥

२२२६ सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च । ३ । ४ । १०९

सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्संबन्धिनो झेर्जुस् स्यात् । इति प्राप्ते ॥

२२२६–सिच्, अभ्यस्त और विद् धातुके उत्तर ङित् सम्बन्धी झि के स्थानमें जुस् आदेश हो । इस प्रकार उसकी प्राप्ति होनेपर–॥

२२२७ आतः । ३ । ४ । ११० ॥

सिज्लुक्यादन्तादेव झेर्जुस् स्यात् । अभूवन् । अभूः । अभूतम् । अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूम ॥

२२२७–सिच्का लुक् होनेपर आकारान्त ही धातुके झि के स्थानमें जुस् आदेश हो, जैसे–अभूवन् । अभूः । अभूतम् । अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूम ॥

२२२८ न माङ्योगे । ६ । ४ । ७४ ॥

अडाटौ न स्तः । मा भवान् भूत् । मा स्म भवत् भूद्वा ॥

२२२८–माङ् शब्दके योगमें धातुको अट् और आट्का आगम न हो, जैसे–मा भवान् भूत् । मा स्म भवत् भूद्वा ॥

२२२९ लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ । ३ । ३ । १३९ ॥

हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्यः । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम ॥

२२२९–हेतु हेतुमद्भाव आदि लिङ्के निमित्त हैं, इन (हेतु हेतुमद्भावादि) के विषयमें क्रियाकी अनिष्पत्ति गम्यमान होनेपर भविष्यत् अर्थमें लृङ् हो, जैसे–अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्यः । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम ॥

२२३० ते प्राग्धातोः । १ । ४ । ८० ॥

ते गत्युपसर्गसंज्ञा धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः॥

२२३०–गति और उपसर्गसंज्ञक शब्द धातुओंके पूर्वमें ही प्रयुक्त हों ॥

२२३१ आनि लोट् । ८ । ४ । १६॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य णः स्यात् । प्रभवाणि ॥ दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ दुःस्थितिः । दुर्भवानि ॥ अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम् ॥ * ॥ अन्तर्धा । अन्तर्धिः । अन्तर्भवाणि ॥

२२३१–उपसर्गस्थ निमित्तके परे स्थित लोट्स्थानिक आनि आदेशके नकारको णत्व हो, जैसे–प्र–भवाणि । षत्व और णत्व कर्त्तव्य रहते दुर् शब्दके उपसर्गत्वका निषेध कहना चाहिये * जैसे–दुःस्थितिः । दुर्भवानि । अन्तर शब्दको अङ् तथा कि प्रत्ययके विधान और णत्वविषयमें ही उपसर्गत्व कहना चाहिये*जैसे–अन्तर्धा।अन्तर्धिः । अन्तर्भवाणि ॥

२२३२ शेषे विभाषाऽकखादावषान्त उपदेशे । ८ । ४ । १८ ॥

उपदेशे कादिखादिषान्तवर्जे गदनदादेरन्यस्मिन् धातौ परे उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्नस्य णत्वं वा स्यात् । प्रणिभवति । प्रनिभवति । इहोपसर्गाणामसमस्तत्वेपि संहिता नित्या। तदुक्तम्–

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः ॥
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥ इति ॥

सत्ताद्यर्थनिर्देशश्चोपलक्षणम् । यागात्स्वर्गो भवतीत्यादावुत्पद्यत इत्याद्यर्थात् । उपसर्गास्त्वर्थविशेषस्य द्योतकाः । प्रभवति । पराभवति । संभवति । अनुभवति । अभिभवति । उद्भवति । परिभवतीत्यादौ विलक्षणार्थावगतेः । उक्तं च–

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यः प्रतीयते ।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत् ॥ इति ॥

एध वृद्धौ । कत्थन्ताः षट्त्रिंशदनुदात्तेतः ॥

२२३२–उपदेशमें ककारादि, खकारादि, षकारान्त और गद, नदादि भिन्न धातु परे रहते उपसर्गस्थ निमित्तके परे स्थित निके नकारको विकल्प करके णत्व हो,जैसे–प्रणिभवति । प्रनिभवति । इस स्थलमें उपसर्गके साथ धातुका समास न होनेपर भी संधि नित्य ही सिद्ध होगा, जैसा–कहागया है कि,

एक पदमें धातु और उपसर्गमें और समासमें सन्धि नित्य हो, किन्तु वह सन्धि वाक्यविषयमें विवक्षाकी अपेक्षा करताहै ।

सत्ता आदि अर्थके निर्देश उपलक्षण हैं क्योंकि "यागात् स्वर्गो भवति" इस स्थलमें 'भवति' पदका 'उत्पद्यते'–इत्यादि अर्थ होताहै ।

उपसर्ग तो अर्थ विशेषका द्योतक है, जैसे–'प्रभवति । पराभवति । सम्भवति । अभिभवति । उद्भवति । परिभवति । इत्यादि स्थलमें विलक्षण अर्थकी अवगति होतीहै । कहा है–

उपसर्गके बलसे धातुके प्रकृत अर्थसे अन्यार्थकी प्रतीति होती है, जैसे–प्रहार, आहार, संहार, विहार, परिहार–इत्यादि ।

एध धातु वृद्धि अर्थमें जानना । एध धातुसे कत्थ धातु पर्यंत ३६ धातुओंके अनुदात्त अक्षर इत्संज्ञक हैं, अर्थात् यह आत्मनेपदी होंगे ॥

२२३३ टित आत्मनेपदानां टेरे । ३ । ४ । ७९ ॥

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वं स्यात्।एधते॥

२२३३–टकार इत् हो ऐसा जो लकार उसके स्थानमें विहित आत्मनेपदसंज्ञककी टिके स्थानमें एकार हो, जैसे–एधते ॥

२२३४ सार्वधातुकमपित् । १ । २ ।४॥

अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत्स्यात् ॥

२२३४–अपित् सार्वधातुकको ङिद्वत् कार्य हो ॥

२२३५ आतो ङितः । ७ ।२ । ८१ ॥

अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात् । एधेते । एधन्ते ॥

२२३५–अकारके परे स्थित ङित्के आकारके स्थानमें इय् आदेश हो, जैसे–एधेते । एधन्ते ॥

२२३६ थासः से । ३ । ४ । ८० ॥

टितो लस्य थासः से स्यात् । एधसे । एधेथे। एधध्वे । अतो गुणे । एधे । एधावहे । एधामहे॥

२२३६–टकार इत् है ऐसे लकारके स्थानमें विहित थास् प्रत्ययके स्थानमें से आदेश हो, जैसे–एधसे । एधेथे । एधध्वे । अकारके उत्तर गुण (अ, ए) परे रहते पूर्व परके स्थानमें गुण होताहै (१९१) जैसे–एधे । एधावहे । एधामहे ॥

२२३७ इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः । ३ । १ । ३६ ॥

इजादिर्योधातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्यात् लिटि । आमो मकारस्य नेत्त्वम्, आस्कासोराम्विधानाज्ज्ञापकात् ॥

२२३७–लिट् प्रत्यय परे रहते ऋच्छ धातुभिन्न अन्य गुरुसंज्ञकयुक्त अजादि धातुओंके उत्तर आम् प्रत्यय हो । आस् और कास् धातुके उत्तर आम् विधानके कारण आम्के मकारकी इत्संज्ञा न हो ॥

२२३८ आमः । २ । ४ । ८१ ॥

आमः परस्य लुक् स्यात् ॥

२२३८–आम् परे लिट्के लकारका लोप हो ॥

२२३९कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि।३।१।४०॥

आमन्ताल्लिट्परा: कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते । आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्येतिसूत्रे कृञ्ग्रहणसामर्थ्यादनुप्रयोगोऽन्यस्यापीति ज्ञायते । तेन कृभ्वस्तियोग इत्यतः कृञो द्वितीयेति ञकारेण प्रत्याहाराश्रयणात् कृभ्वस्तिलाभः । तेषां क्रियासामान्यवाचित्वादाम्प्रकृतीनां विशेषवाचित्वात्तदर्थयोरभेदान्वयः । सम्पदिस्तु प्रत्याहारेऽन्तर्भूतोप्यनन्वितार्थत्वान्न प्रयुज्यते । कृञस्तु क्रियाफले परगामिनि परस्मैपदे प्राप्ते ॥

२२३९–अतीत (बीतेहुए) कालमें आमन्त धातुके उत्तर लिट्परक कृ, भू, अस् धातु अनुप्रयुक्त हों ।

"आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य २२४०" इस सूत्रमें कृ धातुके ग्रहणकी सामर्थ्यके कारण तद्भिन्न धातुका भी अनुप्रयोग होसकताहै, इस कारण "कृभ्वस्तियोगे० २११७" इस सूत्रके 'कृ' तथा "कृञो द्वितीय० २१२९" इस सूत्रोक्त ञकारसे प्रत्याहाराश्रयके कारण कृ, भू और अस् धातुका लाभ होताहै, उनके सामान्यक्रियावाचित्व और आम् प्रकृतिके विशेषवाचित्वके कारण उन दोनों अर्थोंका अभेदान्वय होता है । संपूर्वक पद् धातु प्रत्याहारमध्यमें अन्तर्भूत होनेपर भी अनन्वितार्थके कारण प्रयुक्त नहीं होगा ।

कृञ् धातुका क्रियाफल परगामी होनेपर परस्मैपदकी प्राप्ति होनेपर– ॥

२२४०आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य । १ । ३ । ६३ ॥

आम् प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । आमप्रकृत्यां तुल्यमनुप्रयुज्यमानात्कृञोऽप्यात्मनेपदं स्यात् । इह पूर्ववदित्यनुवर्त्य वाक्यभेदेन संबध्यते । पूर्ववदेवात्मनेपदं न तु तद्विपरीतमिति । तेन कर्तृगेपि फले इन्द्रांचकारेत्यादौ न तङ् ॥

२२४०–जिन धातुओंके उत्तर आम्प्रत्यय हो, उनके साथ तुल्य अनुप्रयुक्त कृञ् धातुके उत्तर भी आत्मनेपद हो । इस स्थलमें "पूर्ववत्" इस पदकी अनुवृत्ति होकर वाक्यभेदानुसार संबन्ध होताहै इस कारण पूर्ववत् ही आत्मनेपद हो, उसके विपरीत अर्थात् आम् प्रकृतिके परस्मैपदी होनेपर अनुप्रयुक्तसे आत्मनेपद न हो, इस कारण फल कर्तृगत होनेपर भी 'इन्द्रांचकार'–इत्यादि स्थलमें तङ् न होगा ॥

२२४१ लिटस्तझयोरेशिरेच्।३।४।८१॥

लिडादेशयोस्तझयोरेश् इरेच् एतौ स्तः । एकारोच्चारणं ज्ञापकं तङादेशानां टेरेत्वं नेति । तेन डारौरसां न । कृ ए इति स्थिते ॥

२२४१–लिट्के स्थानमें आदिष्ट जो 'त' और 'झ' उनके स्थानमें एश् और इरेच् आदेश हों, एकारका उच्चारण ज्ञापक मात्र अर्थात् इस स्थानमें एकार उच्चारण करनेसे यह जाना जाताहै कि, तङ्के स्थानमें आदिष्ट की टिके स्थानमें एकार नहीं हो इससे डा, रौ, रसकी टिके स्थानमें एत्व नहीं हुआ। 'कृ+ए' ऐसा होनेपर ॥

२२४२ असंयोगाल्लिट्कित् । १। २ ।५ ॥

असंयोगात्परोऽपिल्लिट्कित्स्यात् क्ङिति चेति निषेधात्सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणो न । द्वित्वात्परत्वाद्याणि प्राप्ते ॥

२२४२–असंयोगके अर्थात् असंयुक्त धातुके परे स्थित जो अपित् लिट् उसकी कित्संज्ञा हो । "क्ङिति च २२१७" इस

सूत्रसे गुणनिषेधके कारण "सार्वधातुकार्धधातुकयोः २१६८" इस सूत्रसे गुण नहीं होगा द्वित्वसे परत्वके कारण यण्की प्राप्ति होनेपर ॥

२२४३ द्विर्वचनेऽचि । १ । १ । ५९ ॥

द्वित्वनिमित्तेऽचि परे अच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्तव्ये ॥

२२४३–द्वित्वनिमित्तीभूत अच् परे रहते यदि द्वित्व कर्तव्य हो तो धातुसम्बन्धी अच्के स्थानमें आदेश न हो, अर्थात् द्वित्व करनेपर आदेश हो, द्वित्व न होनेपर आदेश नहीं हो ॥

२२४४ उरत् । ७ । ४ । ६६ ॥

अभ्यासऋवर्णस्य अत्स्यात्प्रत्यये परे । रपरत्वम् ॥ हलादिः शेषः । प्रत्यये किम् । वव्रश्च ॥

२२४४–प्रत्यय परे रहते अभ्याससंबंधी ऋवर्णके स्थानमें अत् अर्थात् अकार हो "उरण्रपरः" इससे रपरत्व (अर्) होगा "हलादिः शेषः २१७९" इस सूत्रसे अन्तस्थित हल् अर्थात् रकारका लोप होगा ।

प्रत्यय परे न रहते वव्रश्च इस स्थलमें लिट् परे संप्रसारण करनेपर "अचः परस्मिन्" इस सूत्रसे स्थानिवद्भावके कारण "न सम्प्रसा०" इस सूत्रसे सम्प्रसारणका निषेध होताहै, 'प्रत्यये' न कहनेपर परनिमित्तक आदेश न होनेसे "अचः पर०" से स्थानिवद्भावकी प्राप्ति न होनेके कारण "न संप्रसा०" इसकी प्राप्ति न होनेपर संप्रसारण करके 'उव्रश्च' ऐसा होजाता ॥

२२४५ कुहोश्चुः । ७ । ४ । ६२ ॥

अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः स्यात् । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे ॥

२२४५–अभ्याससंबंधी कवर्ग और हकारके स्थानमें चवर्ग आदेश हो, जैसे–एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे ॥

२२४६ एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् । ७ । २ । १० ॥

उपदेशे यो धातुरेकाच् अनुदात्तश्च ततः परस्य वलादेरार्धधातुकस्येट् न स्यात् । उपदेशे इत्युभयान्वयि । एकाच इति किम् । यङ्-लुग्व्यावृत्तिर्यथा स्यात् । स्मरन्ति हि–

श्तिपा शपानुबन्धेन निर्दिष्टं यद्गणेन च ।
यत्रैकाज्ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि ॥ १ ॥ इति ।

एतच्चेहैवैकाज्ग्रहणेन ज्ञाप्यते । अच इत्येवै-कत्वविवक्षया तद्वतोग्रहणेन च सिद्धे एकग्रहण-सामर्थ्यादनेकाचकोपदेशो व्यावर्त्यते । तेन वधेर्हन्त्युपदेशे एकाचोऽपि न निषेधः । आदे-शोपदेशेऽनेकाच्त्वात् । अनुदात्ताश्चानुपदमेव संग्रहीष्यन्ते । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चकाथे ॥

२२४६–उपदेश अवस्थामें जो धातु एकअच् युक्त और अनुदात्त उसके परे स्थित वलादि आर्द्धधातुकको इट् आगम न हो । 'उपदेश' यह पद उभयान्वयी अर्थात् एकाच् धातु और अनुदात्त धातु इन दोनोंके साथ ही उसका अन्वय होताहै ।

एकाच् ग्रहण करनेसे यङ्लुक्में इस सूत्रकी प्रवृत्ति न होगी क्योंकि, आचार्य ऐसा कहतेहैं कि, श्तिप्से निर्दिष्ट जो कार्य, शप्से निर्दिष्ट जो कार्य, अनुबंधसे निर्दिष्ट जो कार्य, गण-से निर्दिष्ट जो कार्य्य और जिस सूत्रमें एकाच् ग्रहण कियाहै उस एकाच्से निर्दिष्ट जो कार्य यह पांच प्रकारके कार्य यङ्लुक्विषयमें नहीं होंगे । इस सूत्रमें एकाच् ग्रहणसे कारिकासे जो अभिहित हुआ है सो जाना जाता है यद्यपि 'अचः' ऐसी एकत्व विवक्षाके कारण और अच्विशिष्टके ग्रहणके कारण एकाच् विशिष्ट धातुका लाभ होता तथापि एक पदका ग्रहण क्यों किया ? इस आशङ्काका निराकरण करतेहैं कि, जहां हन् धातुके स्थानमें 'वध' आदेश होगा, उस स्थानमें आदेश उपदेशमें अनेकाच्त्वके कारण अनादेश अवस्थामें हन् धातु एकाच् होनेपर भी उसके उत्तर इट् निषेध नहीं होगा, एधा-ञ्चकृषे । एधाञ्चकाथे । अनुदात्त धातु आगे कहे जायंगे ॥

२२४७ इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् । ८ । ३ । ७८ ।

इण्णन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य मूर्ध-न्यः स्यात् । एधांचकृढ्वे । एधांचकृवहे । एधांचकृमहे । एधांबभूव । अनुप्रयोगसामर्थ्या-दस्तेर्भूभावो न । अन्यथा हि कस चानुप्रयुज्यत इति कृभ्विति वा ब्रूयात् ॥

२२४७–इण् भागान्त अङ्गके परे जो षीध्वम् प्रत्ययका धकार और लुट् लिट् संबन्धी जो धकार उसके स्थानमें मूर्द्धन्य वर्ण अर्थात् ढकार हो, जैसे–एधाञ्चकृढ्वे । एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । एधाम्बभूव ।

अनुप्रयोग होनेके कारण अस् धातुके स्थानमें भू आदेश नहीं होगा नहीं तो "कस् चानुप्रयुज्यते" ऐसे सूत्र करनेसे ही निर्वाह होनेसे भू धातुका ग्रहण व्यर्थ होजाता, अथवा "कृभू चानुप्रयुज्यत" ऐसा करनेपर भी निर्वाह होनेसे अस् धातुका पृथक् ग्रहण व्यर्थ होजाता ॥

२२४८ अत आदेः । ७ । ४ । ७० ॥

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात् । पररूपा-पवादः । एधामास । एधामासतुरित्यादि ॥ एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितासाथे ॥

२२४८–अभ्यासके आदिमें स्थित अकारको दीर्घ हो, यह सूत्र पररूपका विशेषक है, जैसे–एधामास । एधामासतुः–इत्यादि । एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितासाथे ॥

२२४९ धि च। ८। २। २५॥

धादौ प्रत्यये परे सलोपः स्यात्। एधिताध्वे॥

२२४९–धकारादि प्रत्यय परे रहते सकारका लोप हो, जैसे–एधिताध्वे॥

२२५० ह एति। ७। ४। ५२॥

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे। एधिताहे। एधितास्वहे। एधितास्महे। एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे॥

२२५०–विभक्तिका एकार परे रहते तास् प्रत्ययके सकार और अस् धातुके सकारके स्थानमें हकार हो, जैसे–एधिताहे। एधितास्वहे। एधितास्महे। एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे॥

२२५१ आमेतः। ३। ४। ९०॥

लोट एकारस्याम् स्याम्। एधताम्। एधेताम्। एधन्ताम्॥

२२५१–लोट्के एकारके स्थानमें आम् आदेश हो, जैसे–एधताम्। एधेताम्। एधन्ताम्॥

२२५२ सवाभ्यां वामौ। ३। ४। ९१॥

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद् अम् एतौ स्तः। एधस्व। एधेथाम्। एधध्वम्॥

२२५२–सकारके परे स्थित लोट्के एकारके स्थानमें व और वकारके परे स्थित लोट्के एकारके स्थानमें अम् आदेश हो, जैसे–एधस्व। एधेथाम्। एधध्वम्॥

२२५३ एत ऐ। ३। ४। ९३॥

लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात्। आमोऽपवादः। एधै। एधावहै। एधामहै॥

२२५३–लोट्के उत्तम पुरुषके एकारके स्थानमें ऐकार आदेश हो, यह ऐ आदेश आम् आदेशका अपवाद है, जैसे–एधै। एधावहै। एधामहै॥

२२५४ आडजादीनाम्। ६। ४। ७२॥

अजादीनामाट् स्यात् लुङादिषु। अटोऽपवादः। आटश्च। ऐधत। ऐधेताम्। ऐधन्त। ऐधथाः। ऐधेथाम्। ऐधध्वम्। ऐधे। ऐधावहि। ऐधामहि॥

२२५४–लङ्, लुङ् और लृङ् यह तीन लकार परे रहते अच् आदिमें है जिनके ऐसे जो धातु उनको आट् आगम हो, यह आट् अट् आगमका निषेधक है, "आटश्च २६९" इस सूत्रसे आकार तथा एकारके स्थानमें वृद्धि होगी, जैसे–ऐधत। ऐधेताम्। ऐधन्त। ऐधथाः। ऐधेथाम्। ऐधध्वम्। ऐधे। ऐधावहि। ऐधामहि॥

२२५५ लिङः सीयुट्। ३। ४। १०२॥

लिङात्मनेपदस्य सीयुडागमः स्यात्। सलोपः। एधेत। एधेयाताम्॥

२२५५–आत्मनेपदसंज्ञक लिङ्को सीयुट् आगम हो, सीयुट्के सकारका लोप होकर ईयुट् रहा, जैसे–एधेत। एधेयाताम्॥

२२५६ झस्य रन्। ३। ४। १०५॥

लिङो झस्य रन् स्यात्। एधेरन्। एधेथाः। एधेयाथाम्। एधेध्वम्॥

२२५६–लिङ्के झके स्थानमें रन् आदेश हो, जैसे–एधेरन्। एधेथाः। एधेयाथाम्। एधेध्वम्॥

२२५७ इटोऽत्। ३। ४। १०६॥

लिङादेशस्येटोऽत्स्यात्। एधेय। एधेवहि। एधेमहि। आशीर्लिङि आर्धधातुकत्वात् लिङः सलोपो न। सीयुट्सुटोः प्रत्ययावयवत्वात्षत्वम्। एधिषीष्ट। एधिषीयास्ताम्। एधिषीरन्। एधिषीष्ठाः। एधिषीयास्थाम्। एधिषीध्वम्। एधिषीय। एधिषीवहि। एधिषीमहि॥ ऐधिष्ट। ऐधिषाताम्॥

२२५७–लिङ्के स्थानमें आदिष्ट जो इट् उसके स्थानमें अत् हो, जैसे–एधेय। एधेवहि। एधेमहि। आशीर्लिङ्में आर्धधातुकके कारण धातुके उत्तर सकारका लोप नहीं होगा, सीयुट् और सुट्के प्रत्ययावयवत्वके कारण सकारको षत्व होगा, जैसे–एधिषीष्ट। एधिषीयास्ताम्। एधिषीरन्। एधिषीष्ठाः। एधिषीयास्थाम्। एधिषीध्वम्। एधिषीय। एधिषीवहि। एधिषीमहि॥ ऐधिष्ट। ऐधिषाताम्॥

२२५८ आत्मनेपदेष्वनतः। ७। १। ५॥

अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्य अत् इत्यादेशः स्यात्। ऐधिषत। ऐधिष्ठाः। ऐधिषाथाम्। इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्। ऐधिढ्वम्। इङ्भिन्न एव इणिह गृह्यते इति मते तु। ऐधिध्वम्। ढधयोर्वस्य मस्य च द्वित्वविकल्पात्षोडशरूपाणि। ऐधिषि। ऐधिष्वहि। ऐधिष्महि। ऐधिष्यत। ऐधिष्येताम्। ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः। ऐधिष्येथाम्। ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये। ऐधिष्यावहि। ऐधिष्यामहि। उदात्तत्वादइलादेरेद प्रसङ्गादनुदात्ताः संगृह्यन्ते॥

२२५८–आत्मनेपदमें अकारभिन्न स्वर वर्णके परे स्थित 'झ' के स्थानमें अत् आदेश हो। जैसे–ऐधिषत। ऐधिष्ठाः। ऐधिषाथाम्। "इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् २२४७" इस सूत्रसे धकारके स्थानमें ढकार होगा, जैसे–ऐधिढ्वम्। इस सूत्रसे धकारके स्थानमें ढकार होगा, इस स्थल (२२४७) में इङ्भिन्नही इण्का ग्रहण है, ऐसा जिनका मत है, उनके मतमें इस स्थानमें ढत्व नहीं होगा, जैसे–एधिध्वम्। ढ, ध, व और मकारके द्वित्व विषयमें

विकल्पके कारण सोलह(१६)रूप होंगे । ऐधिषि । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि ।

ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् । ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येथाम् । ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये । ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि । उदात्तत्वके कारण वलादि आर्द्धधातुकको इट्का आगम हुआ ॥

ऊदृदन्तैर्यौति-रु-क्ष्णु-
शी-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः ।
वृङ्-वृञ्भ्यां च विनैकाचो-
ऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥ १ ॥
शक्ल-पच्-मुच्-रिच्-वच्-विच्-
सिच्-प्रच्छि-त्यज्-निजिर्-भजः ।
भंज्-भुज्-भ्रस्ज्-मस्जि-यज्-युज्-
रुज्-रञ्ज्-विजिर्-स्वञ्जि-सञ्ज्-सृजः॥२॥
अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुदि-नुदः
पद्य-भिद्-विद्यति-विनद् ।
शद्-सदी स्विद्यतिः स्कन्दि-
हदी क्रुध् क्षुधि-बुध्यती ॥ ३ ॥
बन्धि-र्युधि-रुधी राधि-
व्यध्-शुधः साधि-सिध्यती ।
मन्य-ह-न्नाप्-क्षिप्-छुपि-तप्-
तिप-स्तृप्यति-दृप्यती ॥ ४ ॥
लिप्-लुप्-वप्-शप्-स्वप्-सृपि यभ्-
रभ्-लभ्-गम्-नम्-यमो रमिः ।
क्रुशि-र्दंशि-दिशी दृश्-मृश्-
रिश्-रुश्-लिश्-विश-स्पृशः कृषिः ॥ ५ ॥
त्विष्-तुष्-द्विष्-दुष्-पुष्य-पिष्-विष्-
शिष्-शुष्-श्लिष्यतयो घसिः ।
वसति-र्दह्-दिहि-दुहो
नह्-मिह्-रुह्-लिह् वहिस्तथा ॥ ६ ॥
अनुदात्ता हलन्तेषु
धातवो ह्यधिकं शतम् ॥
तुदादौ मतभेदेन
स्थितौ यौ च चुरादिषु ॥ ७ ॥
तृप्-दृपी तौ वारयितुं
श्यना निर्देश आदृतः ॥

किंच ।

स्विद्य-पद्यौ सिध्य-बुध्यौ
मन्य-पुष्य-श्लिषः श्यना ॥ ८ ॥
वसिः शपा लुका यौति-
र्निर्दिष्टोऽन्यनिवृत्तये ।
निजिर् विजिर् शक्लृ इति
सानुबन्धा अमी तथा ॥ ९ ॥
विन्दतिश्चान्द्रदौर्गादे-
रिष्टो भाष्येपि दृश्यते ।
व्याघ्रभूत्यादयस्त्वेनं
नेह पेठुरिति स्थितम् ॥ १० ॥
रञ्जि-मस्जी अदि-पदी
तुद् क्षुध् शुषि-पुषी शिषिः ।
भाष्यानुक्ता नवेहोक्ता
व्याघ्रभूत्यादिसंमतेः ॥ ११ ॥ २ ॥

प्रसङ्गसे अनुदात्त धातु संगृहीत होतेहैं, जैसे-ऊकारान्त और ऋकारान्त भिन्न जो धातु, यु,रु,क्ष्णु,शी, स्नु, नु,क्षु, श्वि, डीङ् और श्रि भिन्न जो धातु तथा वृङ् और वृञ् धातु भिन्न अजन्तके मध्यमें स्वरयुक्त सम्पूर्ण धातु अनुदात्त हैं । हलन्त धातुके मध्यमें निम्न लिखित शक्लृआदिसे लेकर वह् धातु तक एकसौ दो (१०२) धातु अनुदात्त हैं जैसे-

ककारान्त-१ । शक्लृ (शक्) समर्थ होना ।

चकारन्त-६ । पच्-रांधना । मुच्-छोडना । रिच्-रेच्-दस्त कराना । वच्-बोलना । विच्-अलग करना । सिच्-छिडकना वा सींचना ।

छकारान्त-१ । प्रच्छ्-पूंछना ।

जकारान्त-१५ । त्यज्-त्यागना । निज्-शुद्ध करना । भज्-सेवा करना । भञ्ज्-तोडना । भुज्-भोगकरना। भ्रस्ज्-भूनना । मस्ज्-डूबना । यज्-यज्ञकरना । युज्-जोडना । रुज्-रोगी होना । रञ्ज्-रंगना । विजिर्-अलग करना। स्वञ्ज्-गले लगना । सञ्ज्-मिलना । सृज्-त्याग करना ।

दकारान्त-१६ । अद्-खाना । क्षुद्-कूटना । खिद्-दुःखी होना । छिद्-काटना । तुद्-दुःख देना । नुद्-प्रेरणा करना । पद्य (दिवादि गणका) पद्-जानना । भिद्-तोडना । विद्य (दिवादि) विद्होना । विनद्-(रुधादि गण) विद्-विचारना । शद्-मुरझाना-व नष्ट होना । सद्-जाना । स्विद्य (दिवादि गणका) स्विद्-पसीजना । स्कन्द्-जाना, सूखना, सुखाना । हद्-मल त्यागना ।

धकारान्त-११। क्रुध्-क्रोध करना । क्षुध्-भुखाना । बुध्य (दिवादिगणका) बुध्-जानना । बन्ध-बांधना । युध्-लडना । रुध्-रूंधना घेरना । राध्-सिद्ध करना । व्यध्-ताडन करना वा वेधना । शुध्-स्वच्छ होना । साध्-सिद्ध करना । सिध्य (दिवादि गणका) सिध्-पूरा होना ।

नकारान्त-२ । मन्य (दिवादिका) मन्-मानना । हन्-मारना ।

पकारान्त-१३। आप्-प्राप्त करना वा व्याप्त होना। क्षिप्-फेंकना, छिप्-छूना। तप्-तपना, तिप्-चूना। तृप्य (दिवादि) तृप्-परितुष्ट होना वा तुष्ट करना । दृप्य (दिवादि) दृप्-अभिमानी होना । लिप्-लीपना । लुप्-काटना । वप्-बोना। शप्-शाप देना, शपथकरना । स्वप्-सोना । सृप्-रंगना ।

भकारान्त-३। यभ्-मैथुन करना । रभ्-शीघ्रता करना । लभ्-प्राप्त करना ।

मकारान्त–४। गम्–जाना। नम्–नमस्कार करना। यम्–निवृत्त होना। रम्–क्रीडा करना।

शकारान्त–१०। क्रुश्–ऊँचे स्वरसे रोना। दंश्–डसना वा काटना। दिश्–दान करना। दृश्–देखना। मृश्–स्पर्श करना वा बोध करना। रिश्–रुश्–हिंसा करना। लिश्–घटना। विश्–प्रवेश करना। स्पृश्–छूना।

षकारान्त–११। कृष्–आकर्षण करना। त्विष्–चमकना। तुष्–तृप्त होना। द्विष्–द्वेष करना। दुष्–बिगडना। पुष्य (दिवादि) पुष्–पुष्ट करना। पिष्–पीसना। विष्–व्याप्त होना। शिष्–अवशिष्ट करना। शुष्–सुखाना। श्लिष्–आलिंगन करना।

सकारान्त–२। घस्–खाना। वस्–वास करना।

हकारन्त–८। दह्–जलाना। दिह्–लीपना। दुह्–दुहना। नह्–बांधना। मिह्–सींचना। रुह्–जमना। लिह्–चाटना। वह्–लेजाना।

मतभेदसे तुदादि गणके तथा चुरादि गणके मध्यमें पठित जो तृप् और दृप् इन दो धातुओंके अनुदात्तत्व वारणके निमित्त उनके उत्तर श्यन् निर्देश किया, जैसे–तृप्यति। दृप्यति। इस कारण दिवादिगणीय तृप् और दृप् धातु ही अनुदात्त होंगे, उनसे भिन्न गणके नहीं होंगे।

और भी दिखातेहैं, जैसे–स्विद्–पद्–सिध्, बुध्, मन्, पुष्, श्लिष्–धातुओंके अन्यगणीय निवारणके निमित्त इनके उत्तर श्यन् निर्देश कियाहै, अर्थात् दिवादि गणके जो धातु वही अनुदात्त होंगे, उनसे भिन्न धातु अनुदात्त नहीं होंगे।

वस् धातु और यु धातुके अन्यगण निवृत्तिके निमित्त शप्लुक्के द्वारा निर्देश कियाहै अर्थात् अदादि गणीय वस् और यु धातु ही अनुदात्त और इससे भिन्न गणके उदात्त होंगे।

सानुबंध निजिर्, विजिर् और शक्लृ यह तीन धातु अनुदात्त और विद् धातु भी अनुदात्त यह चान्द्र है, दौर्गादिके इष्ट है, भाष्यमें भी देखा जाताहै, किन्तु व्याघ्रभूतिआदि आचार्योंके मतमें विद् धातु अनुदात्त नहीं है।

रञ्ज्, मस्ज्, अद्, पद्, तुद्, क्षुध्, शुष्, पुष्, शिष् यह नौ धातु व्याघ्रभूत्यादि आचार्योंके मतमें अनुदात्त कहे गए हैं, परन्तु भाष्यमें अनुदात्तत्वेन परिगणित नहीं हैं।

स्पर्ध संघर्षे। संघर्षः पराभिभवेच्छा। धात्वर्थेनोपसंग्रहादकर्मकः। स्पर्धते॥

स्पर्द्ध धातु संघर्ष अर्थात् पराभिभवकी इच्छामें जानना, धात्वर्थद्वारा उपसंग्रहके कारण स्पर्द्ध धातु अकर्मक है। स्पर्धते॥

२२५९ शर्पूर्वाः खयः। ७। ४। ६१॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते। हलादिः शेषः इत्यस्यापवादः। पस्पर्धे। स्पर्धिता। स्पर्धिष्यते। स्पर्धताम्। अस्पर्धत। स्पर्धेत। स्पर्धिषीष्ट। अस्पर्धिष्ट। अस्पर्धिष्यत॥ ३॥ गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च। गाधते। जगाधे॥ ४॥ बाधृ लोडने। लोडनं प्रतिघातः। बाधते॥५॥ नाथृ नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु॥ आशिषि नाथ इति वाच्यम्॥ *॥ अस्याशिष्येवात्मनेपदं स्यात्। नाथते। अन्यत्र नाथति॥ ६॥ नाधते॥ ७॥ दध धारणे। दधते॥

२२५९–अभ्याससंबन्धी शर्पूर्वक 'खर्' प्रत्याहार ही शेष रहैं, अन्यका लोप हो। यह सूत्र 'हलादिः शेषः२१७९" इस सूत्रका अपवाद है। पस्पर्द्धे। स्पर्द्धिता। स्पर्द्धिष्यते। स्पर्द्धताम्। अस्पर्द्धत। स्पर्द्धेत। स्पर्द्धिषीष्ट। अस्पर्द्धिष्ट। अस्पर्द्धिष्यत॥ गाधृ–प्रतिष्ठा, लाभेच्छा और ग्रंथनमें जानना, जैसे–गाधते। जगाधे। बाधृ धातु आलोडन अर्थात् प्रतीघातमें जानना, जैसे–बाधते। नाथृ और नाधृ धातु याचना, उपताप, ऐश्वर्य, और आशीर्वादमें जानना। इन दो धातुओंके ऋकारकी इत्संज्ञा हुई।

आशीरर्थमें ही नाथ धातु आत्मनेपदी हो * जैसे–नाथते। अन्यार्थमें नाथति। नाधते॥

दध् धातु धारणमें जानना, जैसे–दधते॥

२२६० अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि। ६। ४। १२०॥

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्यासंयुक्तहल्मध्यस्थस्याकारस्य एकारः स्यादभ्यासलोपश्च किति लिटि॥

२२६०–कित् लिट् परे रहते लिट् निमित्तक आदेशादि न हो, ऐसा जो अङ्ग तदवयव असंयुक्त एक हल्के मध्यमें स्थित अकारके स्थानमें एकार हो और अभ्यासका लोप हो॥

२२६१ थलि च सेटि। ६। ४। १२१॥

प्रागुक्तं स्यात्। आदेशश्चेह वैरूप्यसंपादक एवाश्रीयते। शसिदद्योः प्रतिषेधवचनाज्ज्ञापकात्। तेन प्रकृतिजश्चरां तेषु सत्स्वपि एत्वाभ्यासलोपौ स्त एव। देधे। देधाते। देधिरे। अतः किम्। दिदिवतुः। तपरः किम्। ररासे। एकेत्यादि किम्। तत्सरतुः। अनादेशादेः किम्। चकणतुः। लिट आदेशविशेषणादिह स्यादेव। नेमिथ। सेहे॥ ८॥ स्कुदि आप्रवणे। आप्रवणमुत्प्लवनमुद्धरणं च॥

२२६१–इट्के साथ वर्तमान थल् परे रहते तन्निमित्तक (सेट् थल्निमित्तक) आदेशादि न हो ऐसा जो अङ्ग तदवयव असंयुक्त एक हल्के मध्यमें स्थित अकारके स्थानमें एकार हो और अभ्यासका लोप हो। इस स्थलमें आदेश पदसे वैरूप्यसंपादक आदेशका ग्रहण है इस कारण "न शसददवादिगुणानाम्" यह प्रतिषेध भी सार्थक हुआ, उससे यह फल हुआ

कि, प्रकृति जस् और प्रकृति चर्का आदेश होनेपर भी एत्व और अभ्यासका लोप होगा । देचे । देधाते । देधिरे ।

अकारके स्थानमें एकार हो, यह बात कहनेसे 'दिदिवतुः' इस स्थानमें एकार नहीं हुआ ।

'अत्' इसमें तपरकरणके कारण 'ररासे' इस स्थानमें एत्व नहीं हुआ ।

'एकहल्मध्यस्य' कहनेसे 'तत्सरतुः' इस स्थानमें एत्व नहीं हुआ ।

लिट्निमित्त आदेशादि होनेपर 'चकणतुः' इस स्थानमें एत्व नहीं हुआ ।

लिट्के आदेश विशेषण होनेके कारण इस स्थानमें एत्व हुआ, जैसे-'नेमिथ,' 'सेहे' इस स्थानमें लिट्निमित्त आदेश नहीं है, इस कारण एत्व हुआ ॥

स्कुदि धातुके एकारकी इत्संज्ञा हुई, स्कुदि धातुका आप्रवण अर्थात् उत्प्लवन और उद्धरण अर्थ जानना ॥

२२६२ इदितो नुम् धातोः ।७।१।५८॥

स्कुन्दते । चुस्कुन्दे ॥ ९ ॥ श्विदि श्वैत्ये । अकर्मकः । श्विन्दते । शिश्विन्दे ॥ १० ॥ वदि अभिवादनस्तुत्योः । वन्दते । ववन्दे ॥ ११ ॥ भदि कल्याणे सुखेच । भन्दते । बभन्दे ॥ १२॥ मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु । मन्दते । ममन्दे ॥ १३ ॥ स्पदि किंचिच्चलने । स्पन्दते । पस्पन्दे ॥ १४ ॥ क्लिदि परिदेवने । शोके इत्यर्थः । सकर्मकः । क्लिन्दते चैत्रम् ॥ चिक्लिन्दे॥१५॥ मुद हर्षे । मोदते ॥ १६ ॥ दद दाने । ददते ॥

२२६२-इकारइत्संज्ञक धातुको नुम् हो । स्कुदि-स्कुन्दते । चुस्कुन्दे ॥ श्विदि धातुसे श्वैत्य जानना, यह अकर्मक है, जैसे-श्विन्दते । शिश्विन्दे ॥ वदि धातु अभिवादन और स्तुतिमें जानना, जैसे-वन्दते । ववन्दे ॥ भदि धातु कल्याण और सुखमें जानना, जैसे-भन्दते । बभन्दे ॥ मदि धातु स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गतिमें जानना, जैसे-मन्दते । ममन्दे ॥ स्पदि धातु ईषत् चलनमें जानना, जैसे-स्पन्दते । पस्पन्दे । क्लिदि धातु परिदेवन अर्थात् शोकमें जानना, यह सकर्मक है, जैसे-क्लिन्दते चैत्रम् । चिक्लिन्दे ॥ मुद धातु हर्षमें जानना, जैसे-मोदते ॥ दद धातु दानार्थक है, जैसे-ददते ॥

२२६३ न शसददवादिगुणानाम् ।६।४।१२६॥

शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन भावितस्य च योऽकारस्तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न । ददते । ददाते । ददिरे ॥ १७ ॥ ष्वद स्वर्द आस्वादने । अयमनुभवे सकर्मकः । रुचावकर्मकः ॥

२२६३-शस् धातु, दद् धातु और वकारादि धातुओंके गुण शब्दसे भावित जो अकार उसके स्थानमें एकार और अभ्यासका लोप न हो, जैसे-ददे । ददाते। ददिरे । ष्वद और स्वर्द धातु आस्वादन करनेमें जानना, यह अनुभवार्थमें सकर्मक और रुचि अर्थमें अकर्मक हैं ॥

२२६४ धात्वादेः षः सः । ६ ।१।६४ ॥

धातोरादेः षस्य सः स्यात् । सात्पदाद्योरितिषत्वनिषेधः । अनुस्वदते । सस्वदे ॥ १८ ॥ स्वर्दते । सस्वर्दे ॥१९॥ उर्द माने क्रीडायां च॥

२२६४-धातुके आदिमें स्थित षकारके स्थानमें स हो । "सात् पदाद्योः २१२३" इस सूत्रसे षत्वका निषेध हुआ, जैसे-अनुस्वदते । सस्वदे । स्वर्दते । सस्वर्दे ॥ उर्द धातु मानार्थक और क्रीडावाचक है ॥

२२६५ उपधायां च । ८ । २ । ७८ ॥

धातोरुपधाभूतयोरेफवकारयोर्हल्परयोः परत इको दीर्घः स्यात् । ऊर्दते । ऊर्दाञ्चक्रे ॥ २० ॥ कुर्द खुर्द गुर्द गुद क्रीडायामेव।कूर्दते।चुकूर्दे॥२१॥ खूर्दते ॥ २२ ॥ गूर्दते ॥ २३ ॥ गोदते । जुगुदे ॥ २४ ॥ षूद क्षरणे । सूदते । सुषूदे ॥

सेक्-सृप्-सृ-स्तृ-सृज्-स्तृ-स्त्या
न्ये दन्त्याजन्तसादयः ।
एकाचः षोपदेशाः ष्वष्क्-
स्विद्-स्वद्-स्वञ्ज-स्वप-स्मिङः ॥

दन्त्यः केवलदन्त्यो न तु दन्तोष्ठजोपि । ष्वष्कादीनां पृथग्ग्रहणाज्ज्ञापकात् ॥ २५ ॥ ह्राद अव्यक्ते शब्दे । ह्रादते । जह्रादे ॥ २६ ॥ ह्लादी सुखे च । चादव्यक्ते शब्दे । ह्लादते॥२७॥ स्वाद आस्वादने । स्वादते ॥ २८ ॥ पर्द कुत्सिते शब्दे । गुदरवे इत्यर्थः । पर्दते ॥२९ ॥ यती प्रयत्ने । यतते । येते ॥ ३० ॥ युतृ जुतृ भासने । योतते । युयुते ॥ ३१ ॥ जोतते। जुजुते ॥३२॥ विथृ वेथृ याचने । विविथे॥३३॥ विवेथे ॥ ३४ ॥ श्रथि शैथिल्ये । श्रन्थते॥३५॥ ग्रथि कौटिल्ये। ग्रन्थते॥३६॥कत्थ श्लाघायाम् । कत्थते ॥ ३७ ॥ एधादयोऽनुदात्तेतो गताः ॥

अथाष्टात्रिंशत्तवर्गीयान्ताः परस्मैपदिनः ॥ अत सातत्यगमने । अतति॥अत आदेः । आत। आततुः । आतुः। लुङि आतिस् ई इति स्थिते॥

२२६५-हल् परे रहते धातुके उपधाभूत रेफ और वकार परे इक्को दीर्घ हो, जैसे-ऊर्दते । ऊर्दाञ्चक्रे। कुर्द, खुर्द,गुर्द, और गुद धातु क्रीडा अर्थमें जानना, जैसे-कूर्दते । चुकूर्दे । खूर्दते । गूर्दते । गोदते । जुगुदे ॥ षूद धातु क्षरण अर्थमें जानना, जैसे-सूदते । सुषूदे ॥

सेक्, सृप्, सृ, स्तृ,सृज्, स्तृ और स्त्यै धातुसे अन्य दन्त्य अजन्त सकारादि एकाच् धातु, ष्वष्क्, स्विद्, स्वद्, स्वञ्ज, स्वप, और स्मिङ् धातु यह षोपदेश हैं । दन्त्य धातुसे केवल

न्त्य धातु ही जानना, स्वष्कादि धातुके पृथक् ग्रहणके कारण दन्त्योष्ठजका ग्रहण नहीं है ॥

ह्राद धातु अव्यक्त शब्दमें जानना, जैसे–ह्रादते। जह्रादे ॥ ह्लादी धातु सुख और अव्यक्त शब्द करनेमें जानना, जैसे–ह्लादते ॥ स्वाद धातु आस्वादनमें। पर्द धातु कुत्सित शब्द अर्थात् गुदरवकरनेमें जानना, पर्दते ॥ यति धातु प्रयत्नमें जानना, जैसे–यतते। येते ॥ युतृ और जुतृ धातु भासनार्थमें जानना, जैसे–योतते। युयुते। जोतते। जुजुते ॥ विथृ और वेथृ धातुको याचनार्थमें जानना, जैसे–विथे। विवेथे ॥ श्रथि धातु शैथिल्यमें जानना, जैसे–श्रन्थते ॥ ग्रथि धातु कौटिल्यमें जानना, जैसे–ग्रन्थते ॥ कत्थ धातु श्लाघामें जानना, जैसे–कत्थते ॥ एवआदि अनुदात्तेत् ३६ धातु कहे गये।

अब तवर्गान्त ३८ परस्मैपदी धातु कहतेहैं। अत धातु निरन्तर गमनमें जानना, जैसे–अतति।"अत आदेः २२४८" इस सूत्रसे अकारको दीर्घ हुआ, जैसे–आत। आततुः। लुङ्में आत+ई+स+ई+त् ऐसा होनेपर–॥

२२६६ इट ईटि । ८ । २ । २८ ॥

इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे ॥ सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः ॥ * ॥ आतीत्। आतिष्टाम्। आतिषुः ॥

२२६६–ईट् परे रहते इट्के परे जो सकार उसका लोप हो।

सिच् प्रत्ययका लोप एकादेशमें सिद्ध हो ऐसा कहना चाहिये, * जैसे–आतीत्। आतिष्टाम्। आतिषुः ॥

२२६७ वदव्रजहलन्तस्याचः ।७।२।३॥

वदेर्व्रजेर्हलन्तस्य चाङ्गस्याचः स्थाने वृद्धिः स्यात्सिचि परस्मैपदेषु। इति प्राप्ते ॥

२२६७–सिच् परे रहते वद् धातु, व्रज धातु और हलन्त धातुके अच्को परस्मैपदमें वृद्धि हो। ऐसी प्राप्ति होनेपर–॥

२२६८ नेटि । ७ । २ । ४ ॥

इडादौ सिचि प्रागुक्तं न स्यात्। मा भवानतीत्। अतिष्टाम्। अतिषुः ॥ १ ॥ चिती संज्ञाने। चेतति। चिचेत। अचेतीत्। अचेतिष्टाम्। अचेतिषुः ॥ २ ॥ च्युतिर् आसेचने। सेचनमार्द्रीकरणम्। आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ च ॥ इर इत्संज्ञा वाच्या ॥ * ॥ च्योतति। चुच्योत ॥

२२६८–इट् आदिमें है जिसके ऐसे सिच् प्रत्यय परे रहते वृद्धि न हो, जैसे–मा भवानतीत्। अतिष्टाम्। अतिषुः। चिती धातु सम्यक् ज्ञानमें है। चेतति। चिचेत। अचेतीत्। अचेतिष्टाम्। अचेतिषुः। च्युतिर् धातुका अर्थ आसेचन अर्थात् आर्द्रीकरण है, आङ् शब्दसे ईषदर्थ और अभिव्यक्ति जानना।

इर्की इत्संज्ञा हो ऐसा कहना चाहिये * च्योतति। चुच्योत ॥

२२६९ इरितो वा । ३ । १ । ५७ ॥

इरितो धातोश्च्लेरङ् वा स्यात्परस्मैपदे परे। अच्युतत्–अच्योतीत् ॥ ३ ॥ श्च्युतिर् क्षरणे। श्च्योतति। चुश्च्योत। अश्च्युतत्–अश्च्योतीत्। यकाररहितोऽप्ययम्। श्चोतति ॥ ४ ॥ मन्थ विलोडने। विलोडनं प्रतीघातः। मन्थति। ममन्थ। यासुटः किदाशिषीति कित्वादनिदितामिति नलोपः। मथ्यात् ॥ ५ ॥ कुथि पुथि लुथि मथि हिंसासंक्लेशनयोः। इदित्वान्नलोपो न। कुन्थ्यात्। मन्थ्यात् ॥ ९ ॥ षिध गत्याम्। सेधति। सिषेध। सेधिता। असेधीत्। सात्पदाद्योरिति निषेधे प्राप्ते ॥

२२६९–इर् इत्संज्ञक धातुके परे स्थित च्लिके स्थानमें विकल्प करके अङ् आदेश हो, जैसे–अच्युतत्, अच्योतीत् ॥ श्च्युतिर् धातु क्षरण अर्थमें है। श्च्योतति। चुश्च्योत। अश्च्युतत्, अश्च्योतीत्। यकार रहित यही श्चु धातु है। श्चोतति ॥ मन्थ धातु विलोडन, अर्थात् प्रतीघातार्थमें है। मन्थति। ममन्थ। यासुट् प्रत्ययके "किदाशिषि २२१६" इस सूत्रसे कित्वके कारण "अनिदिताम्० ४१५" इस सूत्रसे नकारका लोप होकर–मथ्यात् ॥ कुथि, पुथि, लुथि, और मथि धातु हिंसा और सम्यक् क्लेशमें है। इदित्वके कारण नकारका लोप न होगा, जैसे–कुन्थ्यात्। मन्थ्यात् ॥ षिधु धातु गति अर्थमें है। सेधति। सिषेध। सेधिता। असेधीत्। "सात् पदाद्योः २१२३" इस सूत्रसे षत्व निषेध प्राप्त होनेपर–॥

२२७० उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् । ८ । ३ । ६५ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तादेषां सस्य षः स्यात् ॥

२२७०–उपसर्गस्थ निमित्तके परे स्थित सुनोति, अर्थात् सु धातु, सू धातु, सो धातु, स्तु धातु, स्तुभ्, स्था, सेनय, सेध, सिच, सञ्ज और स्वञ्ज धातुके सकारके स्थानमें षकार हो ॥

२२७१ सदिरप्रतेः । ८ । ३ । ६६ ॥

प्रतिभिन्नादुपसर्गात्सदेः सस्य षः स्यात् ॥

२२७१–प्रतिभिन्न और उपसर्गके उत्तर सद् धातुके सकारके स्थानमें षकार हो ॥

२२७२ स्तम्भेः । ८ । ३ । ६७ ॥

स्तम्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात्। योगविभाग उत्तरार्थः। किञ्च, अप्रतेरिति नानुवर्तते। बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः।

२२७२–स्तम्भ धातुके सकारके स्थानमें षकार हो, भिन्न सूत्रकरण उत्तरार्थ है यहां 'अप्रतेः' इस पदकी अनुवृत्ति नहीं होतीहै इसलिये 'बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः' इत्यादि स्थलमें प्रतिपूर्वक होनेसे भी षत्व हुआ ॥

२२७३ अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः । ८ । ३ । ६८ ॥

अवात्स्तम्भेरेतयोरर्थयोः षत्वं स्यात् ॥

२२७३–आलम्बन, अर्थात् आश्रय और आविदूर्य्य अर्थात् सामीप्यार्थमें अवपूर्वक स्तम्भ धातुके सकारको षत्व हो॥

२२७४ वेश्च स्वनो भोजने।८।३।६९॥

व्यवाभ्यां स्वनतेः सस्य षः स्याद्भोजने ॥

२२७४–भोजनार्थमें विपूर्वक और अवपूर्वक स्वन् धातुके सकारको षत्व हो ॥

२२७५ परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्।८।३।७०॥

परिनिविभ्यः परेषामेषां सस्य षः स्यात् । निषेधति ॥

२२७५–परिपूर्वक, निपूर्वक और विपूर्वक, सेव, सित, सय, सिव, सह, सुट्, स्तु और स्वञ्ज धातुके सकारको षत्व हो, जैसे–निषेधति ॥

२२७६ प्राक्सितादड्व्यवायेपि। ८। ३ । ६३ ॥

सेवसितेत्यत्र सितशब्दात्प्राक् ये सुनोत्यादयस्तेषामड्व्यवायेपि षत्वं स्यात् । न्यषेधत्। न्यषेधीत् । न्यषेधिष्यत् ॥

२२७६–"सेवसित २२७५" इस स्थलमें सित शब्दके पूर्वमें जो सुनोति,अर्थात् सु इत्यादि धातुहैं उनके अड् व्यवधान रहनेपर भी सकारको षत्व हो, जैसे–न्यषेधत् । न्यषेधीत् । न्यषेधिष्यत् ॥

२२७७ स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य । ८ । ३ । ६४ ॥

प्राक् सितात् स्थादिष्वभ्यासेन व्यवायेपि षत्वं स्यात्। एषामेव चाभ्यासस्य न तु सुनोत्यादीनाम् । निषिषेध । निषिषिधतुः ॥ १० ॥

२२७७–सित शब्दके पूर्ववर्त्ती स्था आदि धातुओंके सकारको अभ्याससे व्यवहित होनेपर भी षत्व हो, इनका ही अभ्यासके व्यवधानमें षत्व होगा सुनोत्यादि धातुओंको तो नहीं, जैसे–निषिषेध । निषिषिधतुः ॥

२२७८ सेधतेर्गतौ ।८।३।११३ ॥

गत्यर्थस्य सेधतेः षत्वं न स्यात् । गङ्गां विसेधति ॥ ११ ॥ षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च । शास्त्रं शासनम् ॥

२२७८–गत्यर्थक सिध् धातुके सकारको षत्व न हो,जैसे–गंगां विसेधति । षिधू धातु शास्त्र (शासन) और माङ्गल्य अर्थमें है ॥

२२७९ स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा । ७ । २ । ४४ ॥

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धातुकस्येड्वा स्यात् ॥

२२७९–स्वरति, अर्थात् स्वृ धातु, सू, सूञ्, धूञ् और ऊकार इत्संज्ञक धातुओंके परे स्थित वलादि आर्धधातुक को विकल्प करके इट् हो ॥

२२८० झषस्तथोर्धोऽधः।८।२।४०॥

झषः परयोस्तथयोर्धः स्यान्न तु दधातेः । जश्त्वम् । सिषेद्ध–सिषेधिथ । सेद्धा–सेधिता । सेत्स्यति–सेधिष्यति । असैत्सीत् ॥

२२८०–झष्के परे स्थित तकार और थकारके स्थानमें ध आदेश हो, परन्तु धाञ् धातुके न हो, जश्त्व होकर सिषेद्ध । सिषेधिथ । सेद्धा, सेधिता । सेत्स्यति, सेधिष्यति । असैत्सीत् ॥

२२८१ झलो झलि । ८ । २ । २६ ॥

झलः परस्य सस्य लोपः स्यात् झलि। असैद्धाम् । असैत्सुः । असैत्सीः । असैद्धम् । असैद्ध । असैत्सम् । असैत्स्व । असैत्स्म । पक्षे असेधीत् । असेधिष्टामित्यादि ॥ १२ ॥ खाद्द भक्षणे । ऋकार इत् । खादति । चखाद ॥ १३ ॥ खद स्थैर्ये हिंसायां च । चाद्भक्षणे । स्थैर्ये अकर्मकः । खदति ॥

२२८१–झल् परे रहते झल्के परे स्थित सकारका लोप हो, जैसे–असैद्धाम् । असैत्सुः । असैत्सीः । असैद्धम् । असैद्ध । असैत्सम् । असैत्स्व । असैत्स्म । पक्षमें–असेधीत् । असेधिष्टाम्, इत्यादि ॥ खाद्द, धातु भक्षणार्थमें है । ऋकारकी इत्संज्ञा हुई, जैसे–खादति । चखाद ॥ खद् धातु हिंसा, ऐश्वर्य और चकारसे भक्षणार्थमें जानना । स्थैर्य्यार्थमें अकर्मक है, खदति ॥

२२८२ अत उपधायाः।७।२।११६॥

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे । चखाद ॥

२२८२–ञित् और णित् प्रत्यय परे रहते धातुके उपधाभूत अकारको वृद्धि हो, जैसे–चखाद ॥

२२८३ णलुत्तमो वा । ७ । १ ।९१॥

उत्तमो णल्वा णित्स्यात् । चखाद–चखद ॥

२२८३–उत्तमसंज्ञक णल् विकल्प करके णित् हो, जैसे–चखाद, चखद ॥

२२८४ अतो हलादेर्लघोः।७।२।७॥

हलादेर्लघोरकारस्य इडादौ परस्मैपदे परे सिचि वृद्धिर्वा स्यात्।अखादीत्–अखदीत् १४॥

बद स्थैर्ये। पवर्गीयादिः। बदति। बबाद। बेदतुः। बेदिथ। बबाद-बबद। अबादीत्-अबदीत् ॥१९॥ गद व्यक्तायां वाचि। गदति ॥

२२८४-इडादि सिच् परे रहते परस्मैपदमें इलादि धातुके लघुसंज्ञक अकारको विकल्प करके वृद्धि हो,जैसे-अखादीत्,अखदीत्॥बद् धातु स्थैर्य्य अर्थमें है यह धातु पवर्गीयादि है। बदति। बबाद। बेदतुः। बेदिथ। बबाद, बबद। अबादीत्, अबदीत्। गद् धातु व्यक्तवचन अर्थमें जानना। गदति ॥

२२८५ नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च।८।४।१७॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्णः स्याद् गदादिषु। प्रणिगदति। जगाद ॥ १६ ॥ रद विलेखने। विलेखनं भेदनम्। रराद। रेदतुः ॥१७॥ णद अव्यक्ते शब्दे ॥

२२८५-उपसर्गस्थ निमित्तके परे स्थित नि उपसर्गके नकारको णत्व हो गद, नद, पत, पद्, घु, संज्ञक मा,सो, हन, या, वा, द्रा, प्सा, वप, वह, शम्, चि और दिह धातु परे रहते, जैसे-प्रणिगदति। जगाद ॥ रद् धातु विलेखन, अर्थात् भेद करनेमें है। रराद। रेदतुः ॥ णद् धातु अव्यक्त शब्द करनेमें है ॥

२२८६ णो नः।६।१।६५॥

धातोरादेर्णस्य नः स्यात्।

णोपदेशास्त्वनर्द्द-नाटि-नाथ-नाध्-नन्द-नक्क-नॄ-नृतः।

नाटेर्दीर्घोऽहस्य पर्युदासाद्‌दृटादिर्णोपदेश एव तवर्गचतुर्थान्तनाधतेर्नॄनन्द्योश्च केचिण्णोपदेशतामाहुः ॥

२२८६-धातुके आदिमें स्थित णकारके स्थानमें नकार हो। नर्द्, नाटि, नाथ, नाध्,नन्द्,नक्क, नॄ और नृत् धातु भिन्न धातु णोपदेश हैं। दीर्घाई नाटि धातुके पर्युदासके कारण षटादि का धातु णोपदेश ही है। कोई २ कहतेहैं कि, तवर्गके चतुर्थ वर्णान्त, अर्थात् धकारान्त नाध् धातु और नॄ धातु और नन्द धातु णोपदेश है ॥

२२८७ उपसर्गादसमासेपि णोपदेशस्य।८।४।१४॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः स्यात्समासेऽसमासेपि। प्रणदति। प्रणिनदति ॥ १८ ॥ अर्द गतौ याचने च। अत आदेः ॥

२२८७-समास होनेपर अथवा न होनेपर भी उपसर्गस्थ निमित्तके परे स्थित णोपदेश धातुके नकारको णत्व हो, जैसे-प्रणदति। प्राणिनदति। अर्द धातु गति और याचन अर्थमें है। "अत आदेः २२४८" यह सूत्र लगकर- ॥

२२८८ तस्मान्नुड् द्विहलः।७।४।७१॥

द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतादकारात्परस्य नुट् स्यात्। आनर्द। आर्दीत् ॥ १९ ॥ नर्द गर्द शब्दे। णोपदेशत्वाभावान्न णः प्रनर्दति ॥२०॥ गर्दति। जगर्द ॥ २१ ॥ तर्द हिंसायाम्। तर्दति ॥ २२ ॥ कर्द कुत्सिते शब्दे। कुत्सिते कौक्षे। कर्दति ॥ २३ ॥ खर्द दन्दशूके। दंशहिंसादिरूपायां दन्दशूकक्रियायामित्यर्थः। खर्दति। चखर्द ॥ २४ ॥ अति अदि बन्धने। अन्तति। आनन्त ॥ २५ ॥ अन्दति। आनन्द ॥ २६ ॥ इदि परमैश्वर्ये। इन्दति। इन्दाञ्चकार ॥ २७ ॥ बिदि अवयवे। पवर्गतृतीयादिः। बिन्दति अवयवं करोतीत्यर्थः। भिदीति पाठान्तरम् ॥२८॥ गडि वदनैकदेशे। गण्डति। अन्तत्यादयः पञ्चैते न तिङ्विषया इति काश्यपः। अन्ये तु तिङमपीच्छन्ति ॥ २९॥ णिदि कुत्सायाम्। निन्दति। प्रणिन्दति ॥३०॥ टुनदि समृद्धौ ॥

२२८८-दो हल्युक्त धातुके दीर्घीभूत अकारके उत्तर नुट्का आगम हो, जैसे-आनर्द। आर्दीत्। नर्द् और गर्द धातु शब्द करनेमें हैं। इस स्थलमें णोपदेशत्वाभावके कारण णत्व नहीं होगा, जैसे-प्रनर्दति। गर्दति। जगर्द ॥ तर्द् धातु हिंसा अर्थमें है। तर्दति। कर्द् धातु कुत्सित कौक्ष शब्दमें है। कर्दति ॥ खर्द् धातु दन्दशूक, अर्थात् दंशहिंसादिरूप दंदशूकक्रियामें है। खर्दति। चखर्द ॥ अति और अदि धातु बंधनमें है। अन्तति। आनन्त। अन्दति। आनन्द ॥ इदि धातु परमैश्वर्यमें हैं। इन्दति। इन्दाञ्चकार ॥ बिदि धातु अवयवमें है, यह पवर्गीय बकारादि है। बिन्दति, अर्थात् अवयव करताहै। कोई २ बिदि धातुके स्थानमें 'भिदि' ऐसा पाठान्तर कहतेहैं ॥ गडि धातु वदनका एकदेश अर्थमें है। गण्डति ॥ अन्तति आदि पांच धातु तिङ्विषयक नहीं हैं, यह काश्यपका मत है, दूसरे तो तिङ् भी इच्छा करतेहैं ॥ णिदि धातु कुत्सामें है। निन्दति। प्रणिन्दति ॥ टुनदि धातु समृद्धि अर्थमें है ॥

२२८९ आदिर्ञिटुडवः।१।३।५॥

उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः। नन्दति। इदित्वान्नलोपो न। नन्द्यात् ॥ ३१ ॥ चदि आह्लादे। चचन्द ॥ ३२ ॥ त्रदि चेष्टायाम्। तत्रन्द ॥ ३३ ॥ कदि क्रदि क्लदि आह्वाने रोदने च। चकन्द ॥ ३४ ॥ चक्रन्द ॥ ३५ ॥ चक्लन्द ॥ ३६ ॥ क्लिदि परिदेवने। चिक्लिन्द ॥ ३७ ॥ शुन्ध शुद्धौ। शुशुन्ध। नलोपः। शुध्यात् ॥३८॥

२२८९-उपदेशावस्थामें धातुके आदिमें स्थित ञि, टु, डु की इत्संज्ञा हो, इससे टुकी इत्संज्ञा होनेपर नन्दति। इदित् होनेके कारण नकारका लोप नहीं हुआ, जैसे-नन्द्यात्॥

चदि धातु आह्लाद अर्थमें है । चचन्द ॥ त्रदि धातु चेष्टा अर्थमें है । तत्रन्द ॥ कदि क्रदि और क्लदि धातु आह्वान और रोदन अर्थमें है । चकन्द । चक्रन्द । चक्लन्द ॥ क्लिदि धातु परिवेदन अर्थमें है । चिक्लिन्द ॥ शुन्ध धातु शुद्धि अर्थमें है । शुशुन्ध । नकारका लोप होकर—शुध्यात् ।

अथ कवर्गीयान्ता अनुदात्तेतो द्विचत्वारिंशत्। शीकृ सेचने । तालव्यादिः । दन्त्यादिरित्येके । शीकते । शिशीके ॥ १ ॥ लोकृ दर्शने । लोकते । लुलोके ॥ २ ॥ श्लोकृ संघाते । संघातो ग्रन्थः । स चेह ग्रथ्यमानस्य व्यापारो ग्रन्थितुर्वा। आद्ये अकर्मको द्वितीये सकर्मकः । श्लोकते ॥ ३ ॥ द्रेकृ ध्रेकृ शब्दोत्साहयोः । उत्साहो वृद्धिरौद्धत्यं च । दिद्रेके ॥ ४ ॥ दिध्रेके ॥५॥ रेकृ शंकायाम् रेकते ॥ ६ ॥ सेकृ स्रेकृ स्रकि श्रकि श्लकि गतौ । त्रयो दन्त्यादयः द्वौ तालव्यादी । अषोपदेशत्वान्न षः । सिसेके ॥ ११ ॥ शकि शंकायाम् । शंकते । शशंके ॥ १२ ॥ अकि लक्षणे । अंकते । आनंके ॥ १३ ॥ वकि कौटिल्ये । वंकते ॥ १४ ॥ मकि मण्डने । मंकते ॥ १५ ॥ कक लौल्ये । लौल्यं गर्वश्चापल्यं च । ककते । चकके ॥ १६ ॥ कुक वृक आदाने । कोकते । चुकुके ॥ १७ ॥ वर्कते ॥ ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन ॥ * ॥ ववृके ॥ १८ ॥ चक तृप्तौ प्रतिघाते च । चकते । चेके ॥ १९ ॥ ककि वकि श्वकि त्रकि ढौकृ त्रौकृ ष्वष्क वस्क मस्क टिकृ टीकृ तिकृ तीकृ रघि लघि गत्यर्थाः ॥ कंकते । डुढौके । तुत्रौके ॥ सुब्धातुष्ठिवुष्वष्कतीनां सत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः ॥ * ॥ ष्वष्कते । षष्वष्के । अत्र तृतीयो दन्त्यादिरित्येके ॥ लघि भोजननिवृत्तावपि ॥ ३५ ॥ अघि वघि मघि गत्याक्षेपे । आक्षेपो निन्दा । गतौ गत्यारम्भे चेत्यन्ये । अंघते । आनंघे । वंघते । मंघते । मघि कैतवे च ॥ ३८ ॥ राघृ लाघृ द्राघृ सामर्थ्ये । राघते ॥ ३९ ॥ लाघते ॥ ४० ॥ ध्राघृ इत्यपि केचित् । द्राघृ आयामे च । आयामो दैर्घ्यम् ॥ द्राघते ॥ ४१ ॥ श्लाघृ कत्थने । श्लाघते ॥ ४२ ॥

अब कवर्गान्त आत्मनेपदी ४२ धातु कहतेहैं । शीकृ धातु सेचनमें है, वह तालव्यादि है, कोई २ कहतेहैं कि, यह दन्त्यादि है । शीकते । शिशीके। लोकृ धातु अवलोकन अर्थमें है । लोकते । लुलोके ॥ श्लोकृ धातु संघात अर्थमें है, अर्थात् ग्रन्थमें वह इस स्थलमें ग्रथ्यमानका व्यापार अथवा ग्रन्थकर्त्ताका व्यापार है । प्रथमार्थमें अकर्मक और दूसरे अर्थमें सकर्मक है । श्लोकते ॥ द्रेकृ और ध्रेकृ धातु शब्द और उत्साह अर्थमें है, उत्साह शब्दसे वृद्धि और औद्धत्य जानना। दिद्रेके । दिध्रेके ॥ रेकृ धातु शंकामें है । रेकते ॥ सेकृ, स्रेकृ, स्रकि और श्लकि धातु गति अर्थमें है, इनके मध्यमें तीन धातु दन्त्यादि और दो धातु तालव्यादि हैं । अषोपदेशत्वके कारण षत्व नहीं होगा, जैसे—सिसेके ॥ शकि धातु शंकामें है। शंकते । शशंके ॥ अकि धातु लक्षण अर्थमें है । अंकते । आनङ्के ॥ वकि धातु कुटिलतामें है । वंकते ॥ मकि धातु मण्डनमें है । मंकते ॥ कक धातु लौल्य, अर्थात् गर्व और चपलतामें है । ककते । चकके । कुक और वृक् धातु आदान अर्थात् ग्रहणार्थमें है । कोकते । चुकुके । वर्कते ।

ऋकारोपध धातुके उत्तर लिट्को गुण और पूर्वविप्रतिषेधसे कित्व हो * इससे गुणके पहले कित्व होनेके कारण गुण न होकर ववृके ।

चक् धातु तृप्ति और प्रतिघातमें है । चकते । चेके ॥ ककि, वकि, श्वकि, त्रकि, ढौकृ, त्रौकृ, ष्वष्क, वस्क, मस्क, टिकृ, टीकृ, तिकृ, तीकृ, रघि और लघि यह सब धातु गत्यर्थक हैं। कंकते । डुढौके । तुत्रौके ।

सुब्धातु (नामधातु) ष्ठिवु और ष्वष्क धातुके षकारको सत्व न हो * ष्वष्कते । षष्वष्के । यहां किसी २ ने तीसरी धातुको अर्थात् ष्वष्क धातुको दन्त्य सकारादि कहाहै । लघि धातु भोजननिवृत्ति अर्थमें भी जानना ॥ अघि, मघि और वघि धातु गतिके आक्षेपमें है आक्षेप शब्दसे निन्दा जानना । कोई २ कहतेहैं कि, यह गति और गतिका आरम्भ इन दो अर्थोंमें है । अंघते । आनंघे । वंघते । मंघते ॥ मघि धातु कैतव अर्थात् कपटमें है ॥ राघृ, लाघृ और द्राघृ धातु सामर्थ्यमें है। राघते । लाघते । कोई २ कहतेहैं कि, ध्राघृ धातु भी उक्तार्थक है ॥ द्राघृ, धातु आयाम अर्थात् दैर्घ्य अर्थमें है । द्राघते ॥ श्लाघृ धातु कत्थन अर्थात् आत्मगुणाविष्करण अर्थमें है । श्लाघते ॥

अथ परस्मैपदिनः पञ्चाशत् । फक्क नीचैर्गतौ। नीचैर्गतिर्मन्दगमनमसद्व्यवहारश्च । फक्कति । पफक्क ॥ १ ॥ तक हसने । तकति ॥ २ ॥ तकि कृच्छ्रजीवने । तंकति ॥ ३ ॥ बुक्क भषणे । भषणं श्वरवः । बुक्कति ॥ ४ ॥ कख हसने । प्रनिकखति ॥ ५ ॥ ओखृ राखृ लाखृ द्राखृ ध्राखृ शोषणालमर्थयोः । ओखति । ओखांचकार ॥ १० ॥ शाखृ श्लाखृ व्याप्तौ । शाखति ॥ १२ ॥ उख उखि वख वखि मख मखि णख णखि रख रखि लख लखि इख इखि ईखि वल्ग रगि लगि अगि वगि मगि तगि त्वगि श्रगि श्लगि इगि रिगि लिगि गत्यर्थाः । द्वितीयान्ताः पञ्चदश। यान्तास्त्रयोदश । इह खान्तेषु रिख त्रख त्रिखि शिखि इत्यपि चतुरः केचित्पठन्ति ॥

अब परस्मैपदी ५० धातु कहते हैं—फक्क धातु नीच गति अर्थात् मंद २ गमन और असद्व्यवहारमें है । फक्कति । पफक्क ॥ तक धातु हसनमें है । तकति ॥ तकि धातु कष्टसे जीवनधारण करनेमें है । तंकति ॥ बुक्क धातु भषण, अर्थात्

कुत्तेकी ध्वनिमें है। बुक्कति ॥ कख धातु हसनमें है। प्रनिकखति। ओखृ, राखृ, लाखृ, दाखृ और ध्राखृ, धातु शोषण और अलमर्थमें है। ओखति। ओखाञ्चकार ॥ शाखृ और श्लाखृ धातु व्याप्ति अर्थमें है। शाखति ॥ उख, उखि, वख, वखि, मख, मखि, णख, णखि, रख, रखि, लख, लखि, इख, इखि, ईखि, वल्ग, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, तगि, त्वगि, श्रगि, श्लगि, इगि, रिगि और लिगि धातु गत्यर्थमें हैं, इनमें कवर्ग द्वितीयान्त, अर्थात् खकारान्त १५ धातु और गकारान्त १३ धातु हैं। इनके अतिरिक्त खकारान्तमें रिख, त्रख, त्रिखि, शिखि यह चार धातु भी कोई २ पढतेहैं ॥

२२९० अभ्यासस्याऽसवर्णे।६।४।७८॥

अभ्यासस्य इवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि। उवोख। संनिपातपरिभाषया इजादेरित्याम्न। ऊखतुः। ऊखुः। इह सवर्णदीर्घस्याभ्यासग्रहणेन ग्रहणाद्ध्रस्वः प्राप्तो न भवति सकृत्प्रवृत्तत्वात्। आङ्गत्वाद्धि पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्त्या ह्रस्वे कृते ततो दीर्घः। वार्णादाङ्गं बलीय इति न्यायात्परत्वाच्च। उङ्खति। ववखतुः। वङ्खति। मंखतुः॥त्वगि कम्पने च॥४४॥ युगि जुगि बुगि वर्जने। युङ्गति ॥ ४७ ॥ घघ हसने। घघति। जघाघ ॥ ४८॥ मघि मण्डने। मंघति ॥ ४९ ॥ शिघि आघ्राणे। शिंघति॥५०॥

२२९०—असवर्ण अच् वर्ण परे रहते अभ्याससम्बन्धी इवर्णके स्थानमें इयङ् और उवर्णके स्थानमें उवङ् आदेश हो, जैसे—उवोख। सन्निपातपरिभाषासे "इजादेः० २२३७" इस सूत्रसे आम् प्रत्यय नहीं हुआ। ऊखतुः। ऊखुः, इस स्थलमें अभ्यासके ग्रहणसे सवर्णदीर्घके ग्रहणके कारण ह्रस्वकी प्राप्ति हुई, परन्तु सकृत् प्रवृत्तत्वके कारण वह नहीं हुई, जो कहो कि, पूर्वोपस्थित निमित्तके कारण दीर्घको अन्तरङ्ग होनेसे पहले दीर्घ ही होगा वह नहीं कह सकते हो कारण कि, आङ्गत्वके कारण "वार्णादाङ्गं बलीयः" इस न्यायसे और परत्वके कारण पर्जन्यवत् लक्षण प्रवृत्तिसे ह्रस्व होनेपर पश्चात् दीर्घ होगा। उंखति। ववखतुः। वंखति। मेखतुः॥ त्वगि धातु कम्पन अर्थमें है। युगि, जुगि और बुगि धातु वर्जनमें है। युङ्गति। घघ धातु हसनमें है। घघति। जघाघ ॥ मघि धातु मंडन अर्थात् भूषणमें है। मंघति ॥ शिघि धातु आघ्राणमें है। शिंघति ॥

अथ चवर्गीयान्ताः। तत्रानुदात्तेत एकविंशतिः। वर्च दीप्तौ। वर्चते ॥ १ ॥ षच सेचने सेवने च। सचते। सेचे। सचिता ॥२॥ लोचृ दर्शने। लोचते। लुलोचे ॥ ३ ॥ शच व्यक्तायां वाचि। शेचे ॥ ४ ॥ श्वच श्वचि गतौ। श्वचते। श्वञ्चते ॥ ६ ॥ कच बन्धने। कचते ॥ ७ ॥ कचि काचि दीप्तिबन्धनयोः। चकञ्चे। चकाञ्चे ॥ ९ ॥ मच मुचि कल्कने। कल्कनं दम्भः शाठ्यं च। कथनमित्यन्ये। मेचे। मुमुञ्चे॥११॥ मचि धारणोच्छ्रायपूजनेषु। ममञ्चे॥१२॥पचि व्यक्तीकरणे पञ्चते ॥ १३ ॥ ष्टुच प्रसादे। स्तोचते। तुष्टुचे॥१४॥ ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु॥ अर्जते। नुड्विधौ ऋकारैकदेशो रेफो हल्त्वेन गृह्यते। तेन द्विहल्त्वान्नुट्। आनृजे ॥ १५ ॥ ऋजि भृजी भर्जने। ऋञ्जते। उपसर्गादृतीति वृद्धिः। प्रार्ञ्जते। ऋञ्जाञ्चक्रे। आर्ञ्जिष्ट॥१६॥ भर्जते। बभृजे।अभर्जिष्ट ॥१७॥ एजृ भ्रेजृ भ्राजृ दीप्तौ। एजांचक्रे ॥ २० ॥ ईज गतिकुत्सनयोः। ईजांचक्रे ॥ २१ ॥

अब चवर्गीयान्त धातु कहतेहैं, उनमें अनुदात्तेत् २१ धातु हैं। वर्च धातु दीप्तिमें है। वर्चते ॥ षच धातु सेवन और सेचन अर्थमें है। सेचते। सेचे। सचिता। लोचृ धातु दर्शन करनेमें है। लोचते। लुलोचे ॥ शच धातु स्पष्ट वचनमें है। शेचे। श्वच और श्वचि धातु गति अर्थमें है। श्वचते। श्वञ्चते ॥ कच धातु बंधन अर्थमें है। कचते ॥ कचि और काचि धातु दीप्ति और बंधन अर्थमें है। चकञ्चे। चकाञ्चे ॥ मच धातु और मुचि धातु कल्कन, अर्थात् दम्भ, शाठ्य और किसी २ के मतमें कथनमें भी है। मेचे। मुमुञ्चे ॥ मचि धातु धारण उच्छ्राय और पूजा करनेमें है। ममञ्चे ॥ पचि धातु व्यक्तीकरण अर्थमें है। पंचते ॥ ष्टुच धातु प्रसादमें है। स्तोचते। तुष्टुचे ॥ ऋज धातु गति, स्थानार्जन और उपार्जन अर्थमें है। अर्जते।

नुड्विधिमें ऋकारैकदेश रेफ हल्त्वसे गृहीत होताहै। इस कारण द्विहल्त्व होनेसे उसके उत्तर नुट् आगम होकर आनृजे॥ ऋजि और भृजी धातु भर्जन अर्थमें है। ऋञ्जते। "उपसर्गादृति० ७४" इस सूत्रसे वृद्धि होकर, प्रार्ञ्जते। ऋञ्जाञ्चक्रे। आर्ञ्जिष्ट। भर्जते। बभृजे। अभर्जिष्ट ॥ एजृ, भ्रेजृ और भ्राजृ धातु दीप्ति अर्थमें है। एजाञ्चक्रे। ईज धातु गति और कुत्सन अर्थमें है। ईजाञ्चक्रे ॥

अथ द्विसप्ततिर्व्रज्यन्ताः परस्मैपदिनः ॥ शुच शोके। शोचति ॥ १ ॥ कुच शब्दे तारे। कोचति ॥ २॥ कुञ्च क्रुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोः। अनिदितामिति नलोपः। कुच्यात् ॥ ३ ॥ क्रुच्यात् ॥४॥ लुञ्च अपनयने। लुच्यात् ॥ ५ ॥ अञ्चु गतिपूजनयोः। अच्यात्। गतौ नलोपः। पूजायां तु। अञ्च्यात् ॥ ६ ॥ वञ्चु चञ्चु तञ्चु त्वञ्चु म्रुञ्चु म्लुञ्चु म्रुचु म्लुचु गत्यर्थाः। वच्यात्। चच्यात्। तच्यात्। त्वच्यात्। अम्रुञ्चीत्। अम्लुञ्चीत् ॥

अब व्रज धातु पर्यन्त ७२ धातु परस्मैपदी हैं। शुच धातु शोक करनेमें है। शोचति ॥ कुच धातु ऊंचे स्वरसे शब्द करनेमें है। कोचति। कुञ्च क्रुञ्च धातु कौटिल्य और अल्पी-

भावमें है। "अनिदिताम्० ४१५" इस सूत्रसे नकारका लोप होकर कुच्यात्। क्रुच्यात्। लुञ्च धातु अपनयन अर्थमें है। लुच्यात्॥ अञ्चु धातु गति और पूजा अर्थमें है। गत्यर्थमें नकारका लोप होकर, अच्यात्। पूजार्थमें नकारका लोप न होनेसे, अञ्च्यात्। वञ्चु, चञ्चु, तञ्चु, त्वञ्चु, म्रुञ्चु, म्लुञ्चु, म्रुचु और म्लुचु धातु गत्यर्थक हैं। वच्यात्। चच्यात्। तच्यात्। त्वच्यात्। अम्रुञ्चीत्। अम्लुञ्चीत्॥

२२९१ जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च। ३।१।५८॥

एभ्यश्च्लेरङ् वा स्यात्। अम्रुचत्–अम्रोचीत्। अम्लुचत्–अम्लोचीत्॥ १४॥ ग्रुचु ग्लुचु कुजु खुजु स्तेयकरणे। जुग्रोच। अग्रुचत्–अग्रोचीत्। जुग्लोच। अग्लुचत्–अग्लोचीत्। अकोजीत्। अखोजीत्॥ १८॥ ग्लुञ्चु षस्ज गतौ। अङ्। अग्लुचत्–अग्लुञ्चीत्॥ १९॥ सस्य श्चुत्वेन शः। जश्त्वेन जः। सज्जति। अयमात्मनेपद्यपि। सज्जते॥ २०॥ गुजि अव्यक्ते शब्दे। गुञ्जति। गुञ्ज्यात्॥ २१॥ अर्च पूजायाम्। आनर्च॥ २२॥ म्लेछ अव्यक्ते शब्दे। अस्फुटेऽपशब्दे चेत्यर्थः। म्लेच्छति। मिम्लेच्छ॥ २३॥ लछ लाछि लक्षणे। ललच्छ॥ २४॥ ललाञ्छ॥ २५॥ वाछि इच्छायाम्। वाञ्छति॥ २६॥ आछि आयामे। आञ्छति। अत आदेरित्यत्र तपरकरणं स्वाभाविकह्रस्वपरिग्रहार्थम्। तेन दीर्घाभावान्न नुट्। आञ्छ। तपरकरणं मुखसुखार्थमिति मते तु नुट्। आनाञ्छ॥ २७॥ ह्रीछ लज्जायाम्। जिह्रीच्छ॥ २८॥ हुर्छा कौटिल्ये। कौटिल्यमपसरणमिति मैत्रेयः। उपधायां चेति दीर्घः। हूर्छति॥ २९॥ मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः। मूर्छति॥ ३०॥ स्फुर्छा विस्तृतौ। स्फूर्छति॥ ३१॥ युच्छ प्रमादे। युच्छति॥ ३२॥ उछि उञ्छे। उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलमिति यादवः। उञ्छति। उञ्छांचकार॥ ३३॥ उछी विवासे। विवासः समाप्तिः। प्रायेणायं विपूर्वः। व्युच्छति॥ ३४॥ ध्रज ध्रजि धृज धृजि ध्वज ध्वजि गतौ। ध्रजति। ध्रञ्जति। धर्जति। धृञ्जति। ध्वजति। ध्वञ्जति॥ ४०॥ कूज अव्यक्ते शब्दे। चुकूज॥ ४१॥ अर्ज षर्ज अर्जने। अर्जति। आनर्ज॥ ४२॥ सर्जति। ससर्ज॥ ४३॥ गर्ज शब्दे। गर्जति॥ ४४॥ तर्ज भर्त्सने। तर्जति॥ ४५॥ कर्ज व्यथने। चकर्ज॥ ४६॥ खर्ज पूजने च। चखर्ज॥ ४७॥ अज गतिक्षेपणयोः। अजति॥

२२९१–जॄ, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु, ग्लुञ्चु और श्वि धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें विकल्प करके अङ् हो, जैसे–अम्रुचत्, अम्रोचीत्। अम्लुचत्, अम्लोचीत्। ग्रुचु, ग्लुचु, कुजु और खुजु धातु चौर्य करनेमें हैं। जुग्रोच। अग्रुचत्, अग्रोचीत्। जुग्लोच। अग्लुचत्, अग्लोचीत्। अकोजीत्। अखोजीत्॥ ग्लुञ्चु और षस्ज धातु गतिमें हैं। विकल्प करके अङ् होकर अग्लुचत्, अग्लुञ्चीत्। श्चुत्वके कारण सस्ज धातुके सके स्थानमें श और जश्त्वके कारण शके स्थानमें ज होकर–सज्जति। यह षस्ज धातु आत्मनेपद भी है। सज्जते॥ गुजि धातु अव्यक्त शब्द करनेमें है। गुञ्जति। गुञ्ज्यात्॥ अर्च धातु पूजा करनेमें है। आनर्च॥ म्लेछ धातु अव्यक्त (अस्फुट) और शब्द (अपशब्द) अर्थमें है। म्लेच्छति। मिम्लेच्छ॥ लछ और लाछि धातु लक्षणमें हैं। ललच्छ। ललाञ्छ। वाछि धातु इच्छा अर्थमें है। वाञ्छति॥ आछि धातु आयाम अर्थमें है। आञ्छति।

"अत आदेः २२४८" इस सूत्रमें तपरकरण स्वाभाविक ह्रस्व परिग्रहार्थ है, अत एव दीर्घाभावके कारण नुट् न होकर आञ्छ। तपरकरण मुखसुखार्थ है, इस मतमें तो नुट् होगा, आनाञ्छ॥ ह्रीछ धातु लज्जा अर्थमें है। जिह्रीच्छ॥ हुर्छा धातु कौटिल्य अर्थमें है। मैत्रेय मुनिके मतमें कौटिल्य शब्दसे अपसरण समझना। "उपधायाञ्च २२६५" इस सूत्रसे उपधाको दीर्घ होकर–हूर्छति॥ मूर्च्छा धातु मोह और समुच्छ्राय अर्थमें है॥ मूर्छति॥ स्फुर्छा धातु विस्तृत अर्थमें है। स्फूर्छति युच्छ धातु प्रमादमें है। युच्छति॥ उछि धातु उञ्छ अर्थात् शस्यादिको (कण २) ग्रहण करनेमें, यह यादवका मत है। उञ्छति। उञ्छाञ्चकार॥ उछी धातु विवास अर्थात् समाप्ति अर्थमें है। यह धातु प्रायःसे विपूर्वक है, जैसे–व्युच्छति॥ ध्रज, ध्रजि, धृज, धृजि, ध्वज और ध्वजि धातु गमन करनेमें हैं। ध्रजति। ध्रञ्जति। धर्जति। धृञ्जति। ध्वजति। ध्वञ्जति॥ कूज धातु अव्यक्त शब्द करनेमें है। चुकूज॥ अर्ज और षर्ज धातु अर्जन करनेमें हैं। अर्जति। सर्जति। ससर्ज॥ गर्ज धातु शब्द करनेमें है। गर्जति॥ तर्ज धातु भर्त्सन करनेमें है॥ कर्ज धातु व्यथन अर्थमें है। चकर्ज। खर्ज धातु पूजन अर्थमें है। चखर्ज॥ अज धातु गति और क्षेपण करनेमें है। अजति॥

२२९२ अजेर्व्यघञपोः।२।४।५६॥

अजेर्वी इत्ययमादेशः स्यादार्धधातुकविषये घञमपं च वर्जयित्वा॥ वलादावार्धधातुके वेष्यते॥ ॥ विवाय। विव्यतुः। विव्युः। अत्र वकारस्य हल्परत्वादुपधायां चेति दीर्घे प्राप्तेऽचः परस्मिन्निति स्थानिवद्भावेनाच्परत्वम्। न च न पदान्तेति निषेधः॥ स्वरदीर्घयलोपेषु लोपा-

जादेश एव न स्थानिवदित्युक्तेः ॥ थलि एकाच इतीण्निषेधे प्राप्ते ॥

२२९२–अज धातुके स्थानमें आर्धधातुकविषयमें वि आदेश हो, घञ् और अप् परे रहते न हो।

वलादि आर्धधातुक परे रहते विकल्प करके आदेश इष्ट है॥ विवाय। विव्यतुः। विव्युः।

इस स्थलमें वकारके हल्परत्वके कारण "उपधायाञ्च २२६५" इस सूत्रसे दीर्घ प्राप्त हुआ, परन्तु "अचः परस्मिन् ५०" इस सूत्रसे स्थानिवद्भावके कारण अच्परत्व होनेसे नहीं हुआ "न पदान्त० ५१" इस सूत्रसे स्थानिवद्भावका निषेध तो नहीं हो सकताहै क्योंकि, स्वर, दीर्घ और यलोपविधि कर्त्तव्य रहते लोपरूप अजादेश ही स्थानिवत् नहीं हो, ऐसा कहा है। थल् परे "एकाचः २२४६" इस सूत्रसे इण्निषेधकी प्राप्ति होनेपर ॥

२२९३ कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि। ७।२।१३॥

एभ्यो लिट इण्न स्यात्। क्रादीनां चतुर्णां ग्रहणं नियमार्थम्। प्रकृत्याश्रयः प्रत्ययाश्रयो वा यावानिण्निषेधः स लिटि चेत्तर्हि क्रादिभ्य एव नान्येभ्य इति। ततश्चतुर्णां थलि भारद्वाजनियमप्रापितस्य वमादिषु क्रादिनियमप्रापितस्य चेटो निषेधार्थम् ॥

२२९३–कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु, धातुओंके उत्तर लिट्को इट् न हो, कृ आदि चार धातुओंका ग्रहण नियमार्थ है कि, यदि प्रकृत्याश्रय अथवा प्रत्ययाश्रय जितने इण्निषेध हैं वह लिट् लकारमें हों तो कृ आदि धातुओंके उत्तर ही हों, अन्यके उत्तर नहीं। अनन्तर स्तु आदि चार धातुओंका ग्रहण थल् परे रहते भारद्वाजनियमप्रापित और व, म आदिमें क्रादिनियमप्राप्ति इट्के निषेधार्थ है ॥

२२९४ अचस्तास्वत्थल्य निटो नित्यम्। ७।२।६१॥

उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततः परस्य थल इण् न स्यात् ॥

२२९४–उपदेशावस्थामें अजन्त और तासि प्रत्यय परे रहते नित्य अनिट् हो ऐसे जो धातु उनके परे स्थित थल्को इट् न हो ॥

२२९५ उपदेशेऽत्वतः। ७।२।६२॥

उपदेशे अकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण्न स्यात् ॥

२२९५–उपदेशमें अकारयुक्त और तासि प्रत्यय परे रहते नित्य अनिट् धातुके उत्तर थल्को इट् न हो॥

२२९६ ऋतो भारद्वाजस्य।७।२।६३॥

तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेट् भारद्वाजस्य मतेन। तेनान्यस्य स्यादेव। अयमत्र संग्रहः–

अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ्नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥

न च स्तुद्रुद्रादीनामपि थलि विकल्पः शङ्क्यः। अचस्तास्वदिति उपदेशेऽत्वत इति च योगद्वयप्रापितस्यैव हि प्रतिषेधस्य भारद्वाजनियमो निवर्तकः। अनन्तरस्येति न्यायात्। विवयिथ–विवेथ। आजिथ। विव्यथुः। विव्य। विवाय–विवय। विव्यिव। विव्यिम। वेता। अजिता। वेष्यति। अजिष्यति। अजतु। आजत्। अजेत्। वीयात् ॥

२२९६–भारद्वाज मुनिके मतसे तासि प्रत्यय परे रहते नित्य अनिट् ऐसे ऋकारान्त धातुके ही उत्तर थल्को इट् न हो इस कारण अन्य धातुको होगा। इस स्थलमें यह संग्रह है।

अजन्त अथवा अकारयुक्त तासि प्रत्यय परे नित्य अनिट् जो धातु वह थल् प्रत्यय परे विकल्प करके सेट् हो, और तासि प्रत्यय परे नित्य अनिट् हो और क्रादिभिन्न हो ऐसे धातु लिट् परे सेट् हो।

स्तु, द्रु, स्रु और श्रु इन धातुओंको भी थल् प्रत्यय परे विकल्प करके इट् नहीं कहसकते कारण कि, "अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधो वा" इस न्यायसे "अचस्तास्व० २२९४" और "उपदेशेऽत्वतः २२९५" इस सूत्रसे प्रापित प्रतिषेधका ही भारद्वाजनियम निवर्त्तक है। विवयिथ, विवेथ, आजिथ। विव्यथुः। विव्य। विवाय, विवय। विव्यिव। विव्यिम। वेता, अजिता। वेष्यति, अजिष्यति। अजतु। आजत्। अजेत्। वीयात् ॥

२२९७ सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु। ७।२।१॥

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात्परस्मैपदपरे सिचि। अवैषीत्। आजीत्। अवेष्यत्। आजिष्यत्॥४८॥ तेज पालने। तेजति॥४९॥ खज मन्थे। खजति॥ ॥ ५०॥ खजि गतिवैकल्ये। खञ्जति॥ ५१॥ एजृ कम्पने। एजांचकार॥ ५२॥ टुओस्फूर्जा वज्रनिर्घोषे। स्फूर्जति। पुस्फूर्ज॥ ५३॥ क्षि क्षये। अकर्मकः। अन्तर्भावितण्यर्थस्तु सकर्मकः। क्षयति। चिक्षाय। चिक्षियतुः। चिक्षियुः। चिक्षयिथ–चिक्षेथ। चिक्षियिव। चिक्षियिम॥ क्षेता॥

२२९७–सिच् प्रत्यय परे रहते परस्मैपदमें इगन्त अङ्गको वृद्धि हो, जैसे–अवैषीत्, आजीत्। अवेष्यत्, आजिष्यत्॥ तेज धातु पालन करनेमें है। तेजति॥ खज धातु मन्थन करनेमें है खजति॥ खजि धातु गतिवैकल्यमें है। खञ्जति॥ एजृ

धातु कम्पनमें है । एजाञ्चकार ॥ टुओस्फूर्जा धातु वज्रनिर्घोषमें है । स्फूर्जति । पुस्फूर्जे ॥ क्षि धातु क्षय अर्थमें है, यह अकर्मक है । अन्तर्भावित णिजर्थ होनेपर सकर्मक है । क्षयति । चिक्षाय । चिक्षियतुः । चिक्षियुः । चिक्षयिथ, चिक्षेथ । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता ॥

२२९८ अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः । ७ । ४ । २५ ॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्याद्यादौ प्रत्यये परे न तु कृत्सार्वधातुकयोः । क्षीयात् । अक्षैषीत्॥५४॥ क्षीज अव्यक्ते शब्दे । कूजिना सहायं पठितुं युक्तः । चिक्षीज ॥ ५५ ॥ लज लजि भर्जने ॥ ॥ ५७ ॥ लाज लाजि भर्त्सने च ॥ ५९ ॥ जज जजि युद्धे ॥ ६१ ॥ तुज हिंसायाम् । तोजति । तुतोज ॥ ६२ ॥ तुजि पालने ॥ ६३ ॥ गज गजि गृज गृजि मुज मुजि शब्दार्थाः ॥ ६९ ॥ गज मदने च ॥ ७१ ॥ वज व्रज गतौ । वदव्रजेति वृद्धिः । अव्राजीत् ॥ ७२ ॥

२२९८–यकारादि प्रत्यय परे रहते अजन्त अङ्गको दीर्घ हो, कृत् प्रत्यय और सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते नहीं हो, क्षीयात् । अक्षैषीत् ॥ क्षीज धातु अव्यक्त शब्द करनेमें है, कूज और क्षीज, यह दोनों धातु एकार्थक हैं, इस कारण कूज धातुके साथ क्षीज धातुका पाठ करना युक्तियुक्त (ठीक) है। चिक्षीज ॥ लज और लजि धातु भर्जन अर्थमें हैं ॥ लाज और लाजि धातु भर्त्सन अर्थमें हैं ॥ जज और जजि धातु युद्ध अर्थमें है ॥ तुज धातु हिंसा करनेमें है । तोजति । तुतोज ॥ तुजि धातु पालन करनेमें है ॥ गज, गजि, गृज, गृजि, मुज और मुजि धातु शब्दार्थक हैं । गज धातु मदन, अर्थात् चित्तविकारमें भी है ॥ वज धातु और व्रज धातु गति अर्थमें है "वदव्रज० २२६७" इस सूत्रसे वृद्धि होकर अव्राजीत् ॥

अथ टवर्गीयान्ताः शाडचन्ता अनुदात्तेतः षट्त्रिंशत् । अट्ट अतिक्रमहिंसयोः।दोपधोयम् । तोपध इत्येके । अट्टते । आनट्टे ॥ १ ॥ वेष्ट वेष्टने । विवेष्टे ॥ २ ॥ चेष्ट चेष्टायाम् । अचेष्टिष्ट ॥ ३ ॥ गोष्ट लोष्ट संघाते । जुगोष्टे ॥४॥ लुलोष्टे ॥ ५ ॥ घट्ट चलने । जघट्टे ॥ ६ ॥ स्फुट विकसने । स्फोटते । पुस्फुटे ॥ ७ ॥ अठि गतौ । अण्ठते । आनण्ठे ॥ ८ ॥ वठि एकचर्यायाम् । ववण्ठे ॥ ९ ॥ मठि कठि शोके । शोक इह आध्यानम् । मण्ठते ॥ १० ॥ कण्ठते ॥ ११ ॥ मुठि पालने । मुण्ठते ॥१२॥ हेठ विबाधायाम् । जिहेठे ॥ १३ ॥ एठ च । एठाञ्चक्रे ॥ १४ ॥ हिडि गत्यनादरयोः । हिण्डते । जिहिण्डे ॥ १५ ॥ हुडि संघाते । जुहुण्डे ॥ १६ ॥ कुडि दाहे । चुकुण्डे ॥ १७ ॥ वडि विभाजने । मडि च । ववण्डे ॥ १९ ॥ भडि परिभाषणे । परिहासः सनिन्दोपालम्भश्च परिभाषणम् । बभण्डे ॥ २० ॥ पिडि संघाते । पिपिण्डे ॥ २१ ॥ मुडि मार्जने । मार्जनं शुद्धिर्न्यग्भावश्च । मुण्डते ॥ २२ ॥ तुडि तोडने । तोडनं दारणं हिंसनं च । तुण्डते॥२३॥ हुडि वरणे । वरणं स्वीकारः । हरण इत्येके । हुण्डते ॥ २४ ॥ चडि कोपे । चण्डते ॥ २५ ॥ शडि रुजायां संघाते च । शण्डते ॥ २६ ॥ तडि ताडने । तण्डते ॥ २७ ॥ पडि गतौ । पण्डते ॥ २८ ॥ कडि मदे । कण्डते ॥ २९ ॥ खडि मन्थे ॥ ३० ॥ हेडृ होडृ अनादरे । जिहेडे ॥ ३१ ॥ जुहोडे ॥ ३२ ॥ बाडृ आप्लाव्ये । बशादिः । आप्लाव्यमाप्लवः । बाडते॥ ३३ ॥द्राडृ ध्राडृ विशरणे।द्राडते॥३४॥ ध्राडते ॥३५॥शाडृ श्लाघायाम् । शाडते ॥ ३६ ॥

अब टवर्गीयान्त शाडचन्त ३६ धातु अनुदात्तेत्, अर्थात् आत्मनेपदी कहतेहैं ॥

अट्ट धातु अतिक्रम और हिंसामें है,यह धातु दकारोपध है। कोई २ कहतेहैं यह तकारोपध है । अट्टते । आनट्टे ॥ वेष्ट धातु वेष्टन करनेमें है । विवेष्टे । चेष्ट धातु चेष्टार्थक है । अचेष्टिष्ट । गोष्ट धातु और लोष्ट धातु समूहार्थमें जानना । जुगोष्टे । लुलोष्टे ॥ घट्ट धातु चलनार्थक है । जघट्टे ॥ स्फुट खिलनामें है । स्फोटते । पुस्फुटे ॥ अठि धातु गतिमें है । अण्ठते । आनण्ठे ॥ वठि धातु एकचर्य्यामें है । ववण्ठे ॥ मठि और कठि धातु शोक, अर्थात् आध्यानमें हैं । मण्ठते । कण्ठते ॥ मुठि धातु पालन करनेमें है । मुण्ठते ॥ हेठ धातु विबाधा अर्थमें है । जिहेठे ॥ एठ धातु भी उसी अर्थमें है । एठाञ्चक्रे ।

हिडि धातु गति और अनादरार्थमें है । हिण्डते । जिहिण्डे ॥ हुडि धातु संघातार्थमें है । जुहुण्डे ॥ कुडि धातु दाहार्थमें है । चुकुण्डे ॥ वडि और मडि धातु विभाजनार्थमें है । ववण्डे ॥ भडि धातु परिभाषण, अर्थात् परिहास और सनिन्द उपालम्भमें है । बभण्डे ॥ पिडि धातु संघातार्थमें है । पिपिण्डे ॥ मुडि धातु मार्जन करनेमें है । मार्जन शब्दसे शुद्धि और न्यग्भाव जानना । मुण्डते ॥ तुडि धातु तोडन, अर्थात् विदारण और हिंसा (अर्थ) है । तुण्डते ॥ हुडि धातु वरण अर्थात्, स्वीकार करनेमें है । किसी २ के मतसे हरण करनेमें भी जानना । हुण्डते ॥ चडि धातु कोप अर्थमें है । चण्डते॥ शडि धातु रुजा और संघातार्थमें है । शण्डते ॥ तडि धातु ताडना करनेमें है । तण्डते ॥ पडि धातु गमन करनेमें है । पण्डते ॥ कडि धातु मदमें है । कण्डते ॥ खडि धातु मंथन करनेमें है ॥ हेडृ और होडृ धातु अनादर करनेमें है । जिहेडे । जुहोडे ॥ बाडृ धातु आप्लावन करनेमें है। यह बशादि

है । बाडते ॥ द्राडृ और ध्राडृ धातु विशरणमें है । द्राडते । ध्राडते ॥ शाडृ धातु श्लाघामें है । शाडते ॥

अथ आटवर्गीयान्तसमाप्तेः परस्मैपदिनः । शौटृ गर्वे । शौटति । शुशौट ॥१॥ यौटृ बन्धे । यौटति ॥ २ ॥ म्लेटृ म्रेडृ उन्मादे ॥ द्वितीयो डान्तः । टान्तमध्ये पाठस्त्वर्थसाम्यान्नाथतिवत् । म्लेटति ॥ ३ ॥ म्रेडति ॥ ४ ॥ कटे वर्षावरणयोः । चटे इत्येके । चकाट । सिचि अतो हलादेर्लघोरितिवृद्धौ प्राप्तायाम् ॥

अब टवर्गीयान्त समाप्तिपर्य्यन्त परस्मैपदी धातु हैं ॥

शौटृ धातु गर्व्व अर्थमें है । शौटति । शुशौट॥ यौटृ धातु बंधनमें है । यौटति॥ म्लेटृ और म्रेडृ धातु उन्मादमें है दूसरी धातु डकारान्त है, अर्थकी समानताके कारण जैसे–नाथृ धातु धकारान्तमध्यमें पठित है वैसे यह भी टकारान्तमध्यमें पठित है । म्लेटति । म्रेडति॥ कटे धातु वर्षा और आवरणमें है । कोई२ चटे धातु पढते हैं । चकाट । सिच् परे "अतो हलादेर्लघोः २२४८" इस सूत्रसे वृद्धि प्राप्त होनेपर– ॥

२२९९ ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् । ७ । २ । ५ ॥

हमयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्न स्यादिडादौ सिचि । अकटीत् ॥ ६ ॥ अट पट गतौ । आट । आटतुः । आटुः ॥७॥ पपाट । पेटतुः । पेटुः ॥ ८ ॥ रट परिभाषणे । रराट ॥ ९ ॥ लट बाल्ये ललाट ॥ १० ॥ शट रुजाविशरणगत्यवसादनेषु । शशाट ॥११॥ वट वेष्टने । ववाट । ववटतुः । ववटुः । ववटिथ ॥ १२॥ किट खिट त्रासे । केटति ॥१३॥ खेटति ॥ १४ ॥ शिट षिट अनादरे । शेटति । शिशेट ॥ १५॥ सेटति । सिषेट ॥ १६ ॥ जट झट संघाते ॥ १८॥ भट भृतौ ॥ १९ ॥ तट उच्छ्राये ॥ २० ॥ खट काङ्क्षायाम्॥२१॥ णट भृतौ ॥ २२ ॥ पिट शब्दसंघातयोः ॥२३॥ हट दीप्तौ ॥ २४ ॥ षट अवयवे ॥ २५ ॥ लुट विलोडने । डान्तोयमित्येके ॥ २७ ॥ चिट परप्रेष्ये ॥ २८ ॥ विट शब्दे ॥ २९ ॥ बिट आक्रोशे । वशादिः । हिटेत्येके ॥ ३१ ॥ इट किट कटी गतौ । एटति ॥३२॥ केटति ॥३३॥ कटति । ईकारः श्वीदितो निष्ठायामितीण्निषेधार्थः ॥ ३४ ॥ केचित्तु इदितं मत्वा नुमि कृते कण्टतीत्यादि वदन्ति । अन्ये च इ ई इति प्रश्लिष्य । अयति । इयाय । ईयतुः । ईयुः । इययिथ–इयेथ । इयाय–इयय । दीर्घस्य त्विजादेरित्यामि अयांचकारेत्यादि उदाहरन्ति ॥ ३५ ॥ मडि भूषायाम् ॥ ३६ ॥ कुडि वैकल्ये । कुण्डति । कुण्डत इति तु दाहे गतम्॥३७॥ मुड प्रुड मर्दने ॥ ३९ ॥ चुडि अल्पीभावे ॥ मुडि खण्डने । मुण्डति ॥ ४० ॥ पुडि चेत्येके । पुण्डति ॥ ४१ ॥ रुटि लुटि स्तेये । रुण्टति४२॥ लुण्टति ॥ ४३ ॥ रुठि लुठि इत्येके ॥ ४५ ॥ रुडि लुडीत्यपरे ॥ ४७ ॥ स्फुटिर् विशरणे । इरित्त्वादङ्वा । अस्फुटत्–अस्फोटीत् ॥ ४८ ॥ स्फुडीत्यपि केचित् । इदित्वान्नुम् । स्फुण्टति ॥ ४९ ॥ पठ व्यक्तायां वाचि । पेठतुः । पेठिथ । अपाठीत्–अपठीत् ॥५०॥ वठ स्थौल्ये । ववठतुः । ववठिथ ॥५१॥ मठ मदनिवासयोः॥५२॥ कठ कृच्छ्रजीवने ॥५३॥ रठ परिभाषणे ॥ ५४ ॥ रठेत्येके ॥ ५५ ॥ हठ प्लुतिशठत्वयोः । बलात्कारे इत्येके । हठति । जहाठ ॥ ५६ ॥ रुठ लुठ उठ उपघाते । ओठति॥५९॥ ऊठेत्येके । ऊठति । ऊठांचकार ॥ ६० ॥ पिठ हिंसासंक्लेशनयोः ॥ ६१ ॥ शठ कैतवे च॥६२॥ शुठ प्रतिघाते । शोठति ॥६३॥ शुठीति स्वामी । शुण्ठति ॥ ६४ ॥ कुठि च । कुण्ठति ॥ ६५ ॥ लुठि आलस्ये प्रतिघाते च ॥६६॥ शुठि शोषणे ॥ ६७ ॥ रुठि लुठि गतौ ॥ ६९ ॥ चुड्ड भावकरणे । भावकरणमभिप्रायसूचनम् । चुड्डति । चुचुड्ड ॥७०॥ अड्ड अभियोगे । अड्डति । आनड्ड ॥ ७१ ॥ कड्ड कार्कश्ये । कड्डति ॥७२॥ चुड्डादयस्त्रयो दोपधाः । तेन क्विपि । चुत् । अत् । कत् इत्यादि । क्रीडृ विहारे । चिक्रीड ॥ ७३ ॥ तुडृ तोडने । तोडति । तुतोड ॥ ७४ ॥ तूडृ इत्येके ॥ ७५ ॥ हुडृ हूडृ होडृ गतौ । हुड्यात् । हूड्यात् । होड्यात् ॥७८॥ रौडृ अनादरे॥७९॥ रोडृ लोडृ उन्मादे ॥८१॥ अड उद्यमे । अडति । आड । आडतुः । आडुः ॥ ८२ ॥ लड विलासे । लडति ॥ ८३ ॥ डलयोर्लरयोश्चैकत्वस्मरणाल्लतीति स्वाम्यादयः ॥ कड मदे । कडति॥८४॥ कडि इत्येके । कण्डति ॥ ८५ ॥ गडि वदनैकदेशे । गण्डति ८६ ॥ इति टवर्गीयान्ताः ॥

२२९९–इट् आदिमें है ऐसे सिच् परे रहते हकारान्त, मकारान्त और यकारान्त धातु और क्षण, श्वस, जागृ और णिजन्त और श्वि धातु और एकारेत्संज्ञक धातुको वृद्धि न हो, जैसे–अकटीत् ॥ अट और पट धातु गतिमें है । आट । आटतुः । आटुः । पपाट । पेटतुः । पेटुः ॥ रट धातु परिभाषणमें है । रराट ॥ लट बाल्यमें है । ललाट ॥ शट धातु रुजा, विशरण, गति और अवसादनार्थमें है । शशाट ॥ वट

धातु वेष्टन करनेमें है । ववाट । ववटतुः । ववटुः । ववटिथ ॥ किट और खिट धातु त्रासमें है । केटति । खेटति ॥ शिट और षिट धातु अनादरमें है । शेटति । शिशेट । सेटति । सिषेट ॥ जट और झट धातु संघातमें है ॥ भट धातु भरण करनेमें है ॥ तट धातु उच्छ्रायमें है ॥ खट धातु कांक्षामें है ॥ णट धातु नृत्यमें है ॥ पिट धातु शब्द और संघातमें है ॥ हट धातु दीप्तिमें है ॥ षट धातु अवयवमें है ॥ लुट धातु विलोडन-में है । कोई २ कहतेहैं यह धातु डकारान्त हैं ॥ चिट धातु परप्रेष्यमें है ॥ विट धातु शब्द करनेमें है ॥ विट धातु आक्रोश करनेमें है । यह बशादि है । कोई २ हिट धातु पढते हैं ॥ इट, किट और कटी धातु गति अर्थमें जानना । एटति । केटति । कटति । ईकार " श्वीदितो निष्ठायाम् ३०३९" इस सूत्रसे इण् निषेधार्थ है ।

कोई २ इदित् मानकर नुम् करके 'कण्टति' ऐसा पद कहतेहैं और कटी धातुमें इ ई ऐसा प्रश्लेष करके, अयति । इयाय । ईयतुः । ईयुः । इययिथ, इयेथ । इयाय, इयय । दीर्घ ई धातुके तो "इजादेः २२३७" इस सूत्रसे आम् । प्रत्यय करके 'अयाञ्चकार' इत्यादि प्रयोग करतेहैं ॥

मंडि धातु भूषणमें है ॥ कुडि धातु वैकल्यमें है । कुण्डति । कुण्डते, यह पद तो दाहार्थमें कहचुके हैं ॥ मुड प्रुड धातु मर्दनमें है ॥ चुडि धातु अल्पीभावमें है ॥ मुडि धातु खंडनमें है मुण्डति ॥ पुडि धातु भी उस अर्थमें कोई २ कहतेहैं । पुण्डति ॥ रुटि और लुटि धातु स्तेय, अर्थात् चोरी करनेमें है । रुण्टति । लुण्टति ॥ रुठि और लुठि स्तेयार्थक है यह किसीका मत है । कोई २ कहतेहैं रुडि और लुडि धातु स्तेयार्थक हैं ।

स्फुटिर् धातु विशरणमें है । इरित्त्वके कारण विकल्प करके अङ् होगा, जैसे—अस्फुटत्, अस्फोटीत् । कोई २ स्फुटि ऐसा भी पाठ करतेहैं, उसको इदित्त्वके कारण नुम् होकर स्फुण्टति ॥ पठ धातु व्यक्त वाक्यमें है पेठतुः । पेठिथ । अपाठीत्, अपठीत् ॥ वठ धातु स्थौल्यमें है । ववठतुः । ववठिथ ॥ मठ धातु मद और निवासमें है । कठ धातु कष्टसे जीवनधारणमें है । रट धातु परिभाषणमें है । कोई २ रठ ऐसा धातु कहतेहैं । हठ धातु प्लुति और शठत्वमें है । कोई २ कहते है कि, हठ धातु बलात्कार अर्थमें है । हठति । जहाठ । रुठ, लुट और उठ धातु उपघातमें है । ओठति । कोई २ ऊठ ऐसा धातु कहतेहैं ऊठति । ऊठाञ्चकार ॥ पिठ धातु हिंसा और संक्लेशनमें है । शठ धातु कैतव अर्थमें है ॥ शुठ धातु प्रतिघातमें है । शोठति । शुठि ऐसा धातु स्वामी कहतेहैं । शुण्ठति ॥ कुठि धातुका भी प्रतिघात अर्थ है । कुण्ठति ॥ लुठि धातु आलस्य और प्रतिघातमें है । शुठि धातु शोषणार्थमें है । रुठि और लुठि धातु गमन करनेमें है ॥

चुड्ड धातु भावकरण, अर्थात् अभिप्रायसूचनमें है । चुड्डति । चुचुड्ड ॥ अड्ड धातु अभियोगमें है । अड्डति । आनड्ड ॥ कड्ड धातु कर्कशतार्थमें है । कड्डति । चुड्डादि तीन धातु दकारान्त हैं, इस कारण क्विप् प्रत्यय करके चुत्, अत्, कत्, इत्यादि रूप होंगे । क्रीड धातु विहार करनेमें है । चिक्रीड ॥ तोड धातु तोडनार्थमें है । तोडति । तुतोड । तूड धातुको भी तोडनार्थमें जानना ॥ हुडृ, हूडृ और होडृ धातु गमन करनेमें है । हुड्यात् । हूड्यात् । होड्यात् ॥ रौडृ धातु अनादरमें है । रोडृ और लोडृ धातु उन्मादमें है । अड धातु उद्यम करनेमें है । अडति । आड । आडतुः । आडुः ॥ लड धातु विलासमें है । लडति । डकार, लकार और रकार लकारके एकत्वस्मरणके कारण 'ललति' पद सिद्ध हुआ, यह स्वामी आदि आचार्योंका मत है ॥ कड धातु गर्व करनेमें है । कडति । किसीके मतसे कडि ऐसा धातु है । कण्डति ॥ गडि धातु वदनका एक अंश जानना । गण्डति ।

टवर्गान्त धातु सम्पूर्ण कहे गए ॥

अथ पवर्गीयान्ताः । तत्रानुदात्तेतः स्तोभत्यन्ताश्चतुस्त्रिंशत् । तिपृ तेपृ ष्टिपृ ष्टेपृ क्षरणार्थाः। आद्योनुदात्तः । क्षीरस्वामी त्वयं सेडिति बभ्राम। तेपते । तितिपे । क्रादिनियमादिट् । तितिपिषे। तेप्ता । तेप्स्यते ॥

अब पवर्गीयान्त धातु कहतेहैं, उसमें स्तुभ धातु पर्य्यन्त ३४ धातु अनुदात्तेत्, अर्थात् आत्मनेपदी हैं ।

तिपृ, तेपृ, ष्टिपृ और ष्टेपृ धातु क्षरणार्थक हैं, पहिला अनुदात्त है । क्षीर स्वामी कहतेहैं कि, यह सेट् है, परन्तु यह भ्रममात्र है । तेपते । तितिपे । क्रादिनियमके कारण इट् होकर—तितिपिषे । तेप्ता । तेप्स्यते ॥

२३०० लिङ्सिचावात्मनेपदेषु । १ । २ । ११ ॥

इक्समीपाद्धलः परौ झलादी लिङ् आत्मनेपदपरः सिच्चेत्येतौ कितौ स्तः । कित्त्वान्न गुणः। तिप्सीष्ट । तिप्सीयास्ताम् । तिप्सीरन् । लुङि, झलो झलीति सलोपः। अतिप्त । अतिप्साताम्। अतिप्सत। तेपते। तितिपे। तिष्टिपे। तिष्टिपाते। तिष्टिपिरे । तिष्टेपे । तिष्टेपाते तिष्टेपिरे ॥ तेपृ कम्पने च ॥ ४ ॥ ग्लेपृ दैन्ये । ग्लेपते ॥ ५ ॥ टुवेपृ कम्पने । वेपते ॥ ६ ॥ केपृ गेपृ ग्लेपृ च । चात्कम्पने गतौ च । सूत्रविभागादिति स्वामी। मैत्रेयस्तु चकारमन्तरेण पठित्वा कम्पने इत्यपेक्षत इत्याह । ग्लेपेरर्थभेदात्पुनः पाठः ॥९॥ मेपृ रेपृ लेपृ गतौ ॥१२॥ त्रपूष् लज्जायाम् । त्रपते ॥

२३००—इक्के समीपस्थ हल्के परे स्थित झलादि लिङ् और सिच् आत्मनेपदमें कित्संज्ञक हो । कित्त्वके कारण गुण नहीं होगा, तिप्सीष्ट । तिप्सीयास्ताम् । तिप्सीरन् । लुङ् परे रहते " झलो झलि० २२८१ " इस सूत्रसे सकारका लोप होकर, अतिप्त । अतिप्साताम् । अतिप्सत । तेपते । तितेपे । तिष्टिपे । तिष्टिपाते । तिष्टिपिरे । तिष्टेपे । तिष्टेपाते । तिष्टेपिरे ॥ तेपृ धातु काँपनेमें भी जानना ॥ ग्लेपृ धातु दैन्यार्थमें है । ग्लेपते ॥ टुवेपृ धातु कंपनमें है । वेपते ॥ केपृ, गेपृ और ग्लेपृ धातु कंपन और सूत्रविभागके कारण गत्यर्थमें भी जानना, यह

स्वामीका मत है, परन्तु मैत्रेय तो चकारको छोडके पटकर 'कम्पने' इसको अपेक्षा करतेहैं आचार्य्य, यह कहतेहैं । ग्लेपृ धातुका अर्थ भिन्न है इस कारण पुनः पाठ हुआ ॥ मेपृ, रेपृ और लेपृ धातु गति अर्थमें है । त्रपूष् धातु लज्जामें है । त्रपते ॥

२३०१ तृफलभजत्रपश्च।६।४।१२२॥

एषामत एकारोऽभ्यासलोपश्च स्यात्किति लिटि सेटि थलि च । त्रेपे । त्रेपाते । त्रेपिरे । ऊदित्वादिड्वा । त्रपिता । त्रप्ता । त्रपिषीष्ट । त्रप्सीष्ट ॥ १३ ॥ कपि चलने । कम्पते । चकम्पे॥१४॥ रबि लबि अबि शब्दे । ररम्बे । ललम्बे । आनम्बे ॥ लबि अवस्रंसने च ॥ १७ ॥ कबृ वर्णे । चकबे ॥१८॥ क्लीबृ अधाष्टर्ये । चिक्लीबे ॥१९॥ क्षीबृ मदे । क्षीबते ॥ २० ॥ शीभृ कत्थने । शीभते ॥ २१ ॥ चीभृ च ॥ २२ ॥ रेभृ शब्दे । रिरेभे ॥ २३॥ अभिरभी क्वचित्पठ्येते । अम्भते ॥ २४ ॥ रम्भते ॥ २५ ॥ ष्टभि स्कभि प्रतिबन्धे । स्तम्भते । उत्तम्भते । उदः स्थास्तम्भोरिति पूर्वसवर्णः । विस्तम्भते । स्तन्भेरिति षत्वं तु न भवति । श्नुविधौ निर्दिष्टस्य सौत्रस्यैव तत्र ग्रहणात् । तद्बीजं तूदस्थास्तम्भोरिति पवर्गीयोपधपाठः, स्तन्भेरिति तवर्गीयोपधपाठश्चेति माधवः। केचिदस्य टकार औपदेशिक इत्याहुः । तन्मते ष्टम्भते । टष्टम्भे ॥ २७ ॥ जभी जृभि गात्रविनामे ॥

२३०१ कित् लिट् और सेट थल् परे रहते तृ, फल, भज और त्रप इन धातुओंके अकारके स्थानमें एकार हो, और अभ्यासका लोप हो, त्रेपे । त्रेपाते । त्रेपिरे। ऊकार इत् होनेके कारण विकल्प करके इट् होगा, त्रपिता, त्रप्ता । त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट ॥ कपि धातु चलनमें है । कम्पते । चकम्पे ॥ रबि, लबि और अबि धातु शब्द करनेमें हैं । ररम्बे । ललम्बे। आनम्बे । लबि धातुका अवस्रंसन भी अर्थ जानना ॥ कबृ धातु वर्ण अर्थमें है । चकबे ॥ क्लीबृ धातु धाष्टर्यमें है । चिक्लीबे ॥ क्षीबृ धातु मद अर्थमें है । क्षीबते ॥ शीभृ धातु कत्थनमें है । शीभते ॥ चीभृ धातुका भी कत्थनार्थ जानना ॥ रेभृ धातु शब्द करनेमें हैं । रिरेभे । किसी स्थलमें अभि और रभि धातु पढे हैं । अम्भते । रम्भते ॥ ष्टभि और स्कभि धातु प्रतिबंधमें हैं । स्तम्भते । "उदः स्थास्तम्भोः० ११८" इससे पूर्वसवर्ण (त्) होकर–उत्तम्भते ।

विस्तम्भते, यहां " स्तन्भेः २२७२ " इस सूत्रसे श्नुविधिमें निर्दिष्ट सौत्र धातुका ग्रहण होनेसे षत्व नहीं हुआ उसका प्रमाण तो " उदः स्थास्तम्भोः० ११८" इस सूत्रमें पवर्गीयोपध पाठ और " स्तन्भेः २२७२ " इस सूत्रमें तवर्गीयोपध पाठ है, यह माधवाचार्यका मत है । कोई २ कहतेहैं कि, इसका टकार औपदेशिक है, उनके मतसे–ष्टम्भते । टष्टम्भे ॥ जभी और जृभि धातु गात्रविनाम अर्थमें है ॥

२३०२ रधिजभोरचि ।७।१।६१॥

एतयोर्नुमागमः स्यादचि । जम्भते । जजम्भे । जम्भिता । अजम्भिष्ट । जृम्भते । जजृम्भे ॥२९॥ शल्भ कत्थने । शशल्भे ॥ ३० ॥ वल्भ भोजने । दन्त्योष्ठ्यादिः । ववल्भे ॥ ३१ ॥ गल्भ धाष्टर्ये । गल्भते ॥ ३२ ॥ श्रम्भु प्रमादे । तालव्यादिर्दन्त्यादिश्च । श्रम्भते । स्रम्भते ॥ ३३ ॥ ष्टुभु स्तम्भे । स्तोभते । विष्टोभते । तुष्टुभे । व्यष्टोभिष्ट ॥ ३४ ॥

२३०२–अच् परे रहते रधि और जभ धातुको नुमागम हो, जम्भते। जजम्भे जम्भिता । अजम्भिष्ट। जृम्भते। जजृम्भे॥ शल्भ धातु कत्थन अर्थमें है। शशल्भे॥ वल्भ धातु भोजन करनेमें है, यह धातु दन्त्योष्ठादि है। ववल्भे॥ गल्भ धातु धाष्टर्यार्थमें है । गल्भते ॥ श्रम्भु धातु प्रमादार्थमें है, यह धातु तालव्यादि और दन्त्यादि है । श्रम्भते। स्रम्भते ॥ ष्टुभु धातु स्तम्भ करनेमें है । स्तोभते । विष्टोभते । तुष्टुभे । व्यष्टोभिष्ट ॥

अथ परस्मैपदिनः ॥ गुपू रक्षणे ॥

अब परस्मैपदी धातु कहते हैं ।

गुपू धातु रक्षा करनेमें है ॥

२३०३ गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ।३।१।२८॥

एभ्य आयप्रत्ययः स्यात्स्वार्थे। पुगन्तेति गुणः॥

२३०३–गुपू, धूप, विच्छि, पणि और पनि धातुके उत्तर स्वार्थमें आय प्रत्यय हो । "पुगन्त० २१८९ " इस सूत्रसे गुण होकर–॥

२३०४ सनाद्यन्ता धातवः ।३।१।३२॥

सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञाः स्युः । धातुत्वाल्लडादयः । गोपायति॥

२३०४–सनादि कमेर्णिङ् पर्य्यन्त प्रत्यय अन्तमें है जिसके उसको धातु संज्ञा हो, इससे धातुत्वके कारण उसके उत्तर लडादि प्रत्यय होंगे, जैसे–गोपायति ॥

२३०५ आयादय आर्धधातुके वा । ३ । १ । ३१ ॥

आर्धधातुकविवक्षायामायादयो वा स्युः ॥

२३०५–आर्धधातुक विवक्षामें विकल्प करके आयादि प्रत्यय हों–॥

२३०६ कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि । ३ । १ । ३५ ॥

कासधातोः प्रत्ययान्तेभ्यश्चाम् स्याल्लिटि न तु मन्त्रे ॥ कास्यनेकाज् ग्रहणं कर्तव्यम् ॥ * ॥

सूत्रे प्रत्ययग्रहणमपनीय तत्स्थानेऽनेकाच इति वाच्यमित्यर्थः ॥

२३०६-लिट् परे रहते कास धातु और प्रत्ययान्तके उत्तर आम् प्रत्यय हो, मंत्रमें नहीं हो ॥

सूत्रमें अनेकाच्ग्रहण करना उचित है, अर्थात् सूत्रमें प्रत्यय ग्रहण छोडकर उसके स्थानमें " अनेकाचः " ऐसा कहना चाहिये * ॥

२३०७ आर्धधातुके । ६ । ४ । ४६ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

२३०७-"आर्धधातुके" यह अधिकार करके-॥

२३०८ अतो लोपः । ६ । ४ । ४८ ॥

आर्धधातुकोपदेशकाले यदकारान्तं तस्याकारस्य लोपः स्यादार्धधातुके परे। गोपायाञ्चकार । गोपायाम्बभूव । गोपायामास । जुगोप। जुगुपतुः । ऊदित्त्वादिट्। जुगोपिथ-जुगोप्थ । गोपायिता-गोपिता-गोप्ता । गोपाय्यात्-गुप्यात् । अगोपायीत् । अगोपीत् । अगौप्सीत् ॥ १ ॥ धूप सन्तापे । धूपायति । धूपायाञ्चकार । दुधूप । धूपायितासि । धूपितासि ॥ २ ॥ जप जल्प व्यक्तायां वाचि । जप मानसे च ॥ ४ ॥ चप सांत्वने ॥ ५ ॥ षप समवाये । समवायः सम्बन्धः सम्यगवबोधो वा । सपति ॥ ६ ॥ रप लप व्यक्तायां वाचि ॥ ८ ॥ चुप मन्दायां गतौ । चोपति । चुचोप । चोपिता ॥ ९ ॥ तुप तुम्प त्रुप त्रुम्प तुफ तुम्फ त्रुफ त्रुम्फ हिंसार्थाः। तोपति । तुतोप । तुम्पति । तुतुम्प । तुतुम्पतुः । संयोगात्परस्य लिटः कित्त्वाभावान्नलोपो न। किदाशिषीति कित्त्वान्नलोपः। तुप्यात्। प्रात्तुम्पतौ गवि कर्तरीति पारस्करादिगणे पाठात्सुट्। प्रस्तुम्पति गौः।श्तिपा निर्देशाद्यङ्लुकि न। प्रतोतुम्पीति। त्रोपति।त्रुम्पति।तोफति।तुम्फति।त्रोफति।त्रुम्फति इहाद्यौ द्वौ पञ्चमषष्ठौ च नीरेफाः। अन्ये सरेफाः। आद्याश्चत्वारः प्रथमान्ताः। ततो द्वितीयान्ताः। अष्टावप्युकारवन्तः ॥ १७ ॥ पर्प रफ रफि अर्ब पर्ब लर्ब बर्ब मर्ब कर्ब खर्ब गर्ब शर्ब षर्ब चर्ब गतौ । आद्यः प्रथमान्तः। ततो द्वौ द्वितीयान्तौ। तत एकादश तृतीयान्ताः। द्वितीयतृतीयौ मुक्त्वा रेफोपधाः । पर्पति । पपर्प । रफति । रम्फति। अर्बति । आनर्ब । पर्बति । लर्बति । बर्बति । पवर्गीयादिरयम् । मर्बति । कर्बति । खर्बति । गर्बति । शर्बति । सर्बति । चर्बति ॥ ३१ ॥ कुबि आच्छादने । कुम्बति ॥ ३२ ॥ लुबि तुबि अर्दने । लुम्बति । तुम्बति ॥ ३४ ॥ चुबि वक्त्रसंयोगे । चुम्बति ॥ ३५ ॥ षृभु षृम्भु हिंसार्थौ । सर्भति । ससर्भ । सर्भिता । सृम्भति । ससृम्भ । सृम्भ्यात् ॥ ३७ ॥ षिभु षिम्भु इत्येके । सेभति सिम्भति ॥ ३९ ॥ शुभ शुम्भ भाषणे । भासने इत्येके । हिंसायामित्यन्ये ॥

२३०८-आर्धधातुक उपदेशकालमें अकारान्त धातुके अकारका लोप हो, गोपायाञ्चकार । गोपायाम्बभूव । गोपायामास । जुगोप । जुगुपतुः । ऊकार इत्संज्ञक होनेके कारण विकल्पसे इट् होगा, जुगोपिथ, जुगोप्थ । गोपायिता, गोपिता, गोप्ता । गोपाय्यात्, गुप्यात् । अगोपायीत्, अगोपीत्, अगौप्सीत् ॥ धूप धातु संतापमें है । धूपायति । धूपायाञ्चकार । दुधूप । धूपायितासि, धूपितासि ॥ जप और जल्प धातु व्यक्त वाक्यमें हैं । जप धातु मानसवचनमें भी है ॥ चप धातु शान्त करनेमें है । षप धातु समवायार्थमें है समवायसे सम्बन्ध और सम्यक् अवबोध अर्थ जानना । सपति ॥ रप और लप धातु व्यक्त वाक्यमें है ॥ चुप धातु मन्दगतिमें है । चोपति। चुचोप । चोपिता ॥ तुप, तुम्प, त्रुप, त्रुम्प, तुफ, तुम्फ, त्रुफ और त्रुम्फ धातु हिंसार्थमें हैं । तोपति । तुतोप । तुम्पति । तुतुम्प । तुतुम्पतुः, यहां संयोगके परे लिट्के कित्त्वाभावके कारण नकारका लोप नहीं हुआ ।

" किदाशिषि २२१६" इस सूत्रसे कित्त्वके कारण नकारका लोप होकर तुप्यात् ।

प्रात्तुम्पतौ गवि कर्त्तरि।(प्रशब्दके परे तुम्प धातुके गो कर्ता होनेपर सुट् हो) ऐसा पारस्करादि गणमें पाठके कारण सुट् होकर प्रस्तुम्पति गौः। श्तिप्से निर्देशके कारण यङ्लुगन्तमें नहीं होगा, प्रतोतुम्पीति । त्रोपति । त्रुम्पति । तोफति । तुम्फति । त्रोफति । त्रुम्फति । इस स्थलमें पहली, दूसरी और पांचवीं और छठी धातु रेफरहित और अन्य रेफसहित हैं । आद्य ४ प्रथमान्त, पश्चात् द्वितीयान्त हैं । आठों उकारवान् हैं । पर्प, रफ, रफि, अर्ब, पर्ब, लर्ब, बर्ब, मर्ब, कर्ब, खर्ब, गर्ब, शर्ब, षर्ब और चर्ब धातु गत्यर्थक हैं, आदिस्थित धातु प्रथमान्त है, पश्चात् दो द्वितीयान्त हैं, पश्चात् ११ तृतीयान्त हैं । दूसरी और तीसरी छोडकर और सम्पूर्ण धातु रकारोपध हैं। पर्पति । पपर्प । रफति । रम्फति । अर्बति । आनर्ब । पर्बति । लर्बति । बर्बति, यह धातु पवर्गादि है । मर्बति । कर्बति खर्बति । गर्बति । शर्बति । सर्बति ॥ चर्बति ॥ कुबि धातु आच्छादनमें है, । कुम्बति ॥ लुबि और तुबि धातु अर्दन करनेमें है । लुम्बति। तुम्बति ॥ चुबि धातु मुखसंयोग करनेमें है । चुम्बति ॥ षृभु और षृम्भु धातु हिंसार्थमें है । सर्भति । ससर्भ । सर्भिता । सृम्भति । ससृम्भ । सृम्भ्यात् ॥ षिभु षिम्भु धातु हिंसार्थक है। सेभति । सिम्भति ॥ शुभ धातु और शुम्भ धातु भाषणमें है । कोई २ कहतेहैं कि, भासनेमें और हिंसा करनेमें है ॥

अथानुनासिकान्ताः । तत्र कम्यन्ता अनुदात्तेतो दश । घिणि घुणि घृणि ग्रहणे । नुम् । ष्टुत्वम् । घिण्णते । जिघिण्णे । घुण्णते । जुघुण्णे। घृण्णते। जघृण्णे ॥ ३ ॥ घुण घूर्ण भ्रमणे । घोणते । घूर्णते । इमौ तुदादौ परस्मैपदिनौ ॥ ९ ॥ पण

व्यवहारे स्तुतौ च । पन च । स्तुतावित्येव सम्बध्यते पृथङ्निर्देशात् । पनिसाहचर्यात्पणेरपि स्तुतावेवायप्रत्ययः। व्यवहारे तु पणते । पेणे । पणितेत्यादि । स्तुतावनुबन्धस्य केवले चरितार्थत्वादायप्रत्ययान्तान्नात्मनेपदम्। पणायति । पणायाञ्चकार । पेणे । पणायितासि । पणितासे । पणाय्यात् । पनायति । पनायाञ्चकार । पेने ॥ ७ ॥ भाम क्रोधे । भामते । बभामे ॥ ८ ॥ क्षमूष् सहने । क्षमते । चक्षमे । चक्षमिषे–चक्षंसे । चक्षमिध्वे । चक्षन्ध्वे चक्षमिवहे ॥

इसके उपरान्त अनुनासिक वर्णान्त धातु कहे जातेहैं, उसमें कमि धातु पर्यन्त १० धातु अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी) हैं।

घिणि, घुणि, घृणि, धातु ग्रहण करनेमें हैं । नुम् और ष्टुत्व होकर–घिण्णते । जिघिण्णे । घुण्णते । जुघुण्णे । घृण्णते । जघृण्णे ॥ घुण और घूर्ण धातु भ्रमण करनेमें हैं । घोणते । घूर्णते । यह दो धातु तुदादिमें परस्मैपदी हैं ।

पण धातु व्यवहार और स्तुतिमें है। पन धातु भी इसी अर्थमें है, परन्तु पन धातुके पृथक् निर्देशके कारण स्तुति अर्थका ही सम्बन्ध होताहै। पनि धातुके साहचर्यके कारण पणि धातुके उत्तर भी स्तुति अर्थमें ही आय प्रत्यय होगा, व्यवहारार्थमें तो–पणते । पेणे । पणिता, इत्यादि । स्तुति अर्थमें अनुबंधको केवलमें चरितार्थत्वके कारण आयप्रत्ययान्तके उत्तर आत्मनेपद नहीं होगा–पणायति । पणायाञ्चकार । पेणे । पणायितासि । पणितासे । पणाय्यात् । पणिषीष्ट । पनायति । पनायाञ्चकार। पेने ॥ भाम धातु क्रोध करनेमें है । भामते । बभामे ॥ क्षमूष् धातु सहनमें है । क्षमते । चक्षमे । चक्षमिषे, चक्षंसे । चक्षमिध्वे, चक्षन्ध्वे । चक्षमिवहे ॥

२३०९ म्वोश्च । ८ । २ । ६५ ॥

मान्तस्य धातोर्मस्य नकारादेशः स्यान्मकारे वकारे च परे। णत्वम् । चक्षण्वहे । चक्षमिमहे-चक्षण्महे। क्षमिष्यते–क्षंस्यते । क्षमेत । आशिषि, क्षमिषीष्ट–क्षंसीष्ट । अक्षमिष्ट–अक्षंस्त ॥ ९ ॥ कमु कान्तौ । कान्तिरिच्छा ॥

२३०९–मकार और वकार परे रहते मकारान्त धातुके मकारके स्थानमें नकारादेश हो । णत्व होकर–चक्षण्वहे । चक्षमिमहे, चक्षण्महे । क्षमिष्यते, क्षंस्यते । क्षमेत । आशीर्लिङ्में, क्षमिषीष्ट, क्षंसीष्ट । अक्षमिष्ट, अक्षंस्त ॥ कमु धातु कान्ति अर्थात् इच्छामें है ॥

२३१० कमेर्णिङ् । ३ । १ । ३० ॥

स्वार्थे ङित्वात्तङ् । कामयते ॥

२३१०–कम् धातुके उत्तर णिङ् हो । ङ इत् होनेके कारण उसके उत्तर तङ् प्रत्यय होकर–कामयते ॥

२३११ अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु । ६ । ४ । ५५ ॥

आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात् । वक्ष्यमाणलोपापवादः । कामयाञ्चक्रे ॥ आयादय आर्द्धधातुके वा । चकमे । कामयिता–कमिता । कामयिष्यते–कमिष्यते ॥

२३११–आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु प्रत्यय परे रहते णिके स्थानमें अयादेश हो, यह अयादेश वक्ष्यमाण लोपका अपवाद है–कामयाञ्चक्रे । "आयादय आर्धधातुके वा २३०५" इससे आय प्रत्यय आर्धधातुकपरे विकल्प करके होकर–चकमे । कामयिता, कमिता । कामयिष्यते, कमिष्यते ॥

२३१२ णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् । ३ । १ । ४८ ॥

ण्यन्तात् श्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात्कर्त्रर्थे लुङि परे । अकाम् इ अतेति स्थिते ॥

२३१२–ण्यन्त धातु और श्रि, द्रु और स्रु धातुके उत्तर कर्त्रर्थक लुङ् परे रहते च्लिके स्थानमें चङ् आदेश हो। अकाम् इ अत, ऐसा होनेपर–॥

२३१३ णेरनिटि । ६ । ४ । ५१ ॥

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात् । परत्वादेरनेकाच इति यणि प्राप्ते ॥ ण्यल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घेभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेन ॥*॥ इति वार्तिकम्॥ णिलोपस्य तु पाचयतेः पाक्तिरित्यादि क्तिजन्तमवकाश इति भावः । वस्तुतस्त्वनिटीतिवचनसामर्थ्यादार्धधातुकमात्रमस्य विषयः। तथा चेयङादेरपवाद एवायम्। इयङ्, अततक्षत् । यण्, आटिटत् । गुणः, कारणा । वृद्धिः, कारकः। दीर्घः, कार्यते ॥

२३१३–अनिडादि आर्धधातुक परे रहते णिका लोप हो । परत्वके कारण "एरनेकाचः २७२" इस सूत्रसे यण्की प्राप्ति होनेपर–॥

इयङ्, यण्, गुण, वृद्धि और दीर्घसे पूर्वविप्रतिषेधसे णि और अकारका लोप हो * णिलोपका–पाचयतेः=पाक्तिः, इत्यादि क्तिजन्त अवकाश है इससे तुल्यबलविरोध दिखाया है वास्तविक तो 'अनिटि' इस वचनके असामर्थ्यके कारण आर्धधातुकमात्र इसका विषय है, तब तो यह इयङादिका अपवाद ही है जैसे–इयङ्–अततक्षत् । यण्–आटिटत् । गुण–कारणा । वृद्धि–कारकः । दीर्घ–कार्य्यते ॥

२३१४ णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः । ७ । ४ । १ ॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात् ॥

२३१४-चङ्परक णि परे रहते धातुकी उपधाको ह्रस्व हो-॥

२३१५ चङि । ७ । १ । ११ ॥

चङि परे अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य ॥

२३१५-चङ् परे रहते अनभ्यास धातुके अवयव प्रथम एकाच्को द्वित्व हो, और अजादि धातुके द्वितीय एकाच्को द्वित्व हो-॥

२३१६ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे । ७ । ४ । ९३ ॥

चङ्परे इति बहुव्रीहिः । स चाङ्गस्येति च द्वयमप्यावर्तते । अंगसंज्ञानिमित्तं यच्चङ्परं णिरिति यावत्, तत्परं यल्लघु तत्परो योऽङ्गस्याऽभ्यासस्तस्य सनीव कार्यं स्यात् णावग्लोपेऽसति । अथ वांगस्येति नावर्तते । चङ्परे णौ यदंगं तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्येत्यादि प्राग्वत् ॥

२३१६-चङ्परे यह बहुव्रीहि है 'चङ्परे' अङ्गस्य, इन दोनों पदोंकी आवृत्ति होती है, इससे अङ्गसंज्ञानिमित्तक जो चङ्परक णि तत्परक जो लघु तत्परक जो अङ्गका अभ्यास उसको सन् परे जैसा कार्य होताहै वैसा कार्य हो, णि परे अक्का लोप न हुआ हो तो,अथवा 'अङ्गस्य' इस पदकी आवृत्ति नहीं हो, तो ऐसा अर्थ हुआ कि, चङ्परक णि परे जो अङ्ग उसका जो लघुपरक अभ्यास उसको सन् परे जैसा कार्य्य होताहै वैसा कार्य्य हो, णि परे अक्का लोप नहीं हुआ हो तो-॥

२३१७ सन्यतः । ७ । ४ । ७९ ॥

अभ्यासस्यात इकारः स्यात्सनि ॥

२३१७-सन् परे रहते अभ्यासके अकारके स्थानमें इकार हो-॥

२३१८ दीर्घो लघोः । ७ । ४ । ९४ ॥

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात्सन्वद्भावविषये । अचीकमत । णिङभावपक्षे।कमेश्च्लेश्चङ्वक्तव्यः ॥*॥ णेरभावान्न दीर्घसन्वद्भावौ । अचकमत ॥ संज्ञायाः कार्यकालत्वादंगं यत्र द्विरुच्यते। तत्रैव दीर्घः सन्वच्च नानेकाच्स्विति माधवः॥ चकास्त्यर्थाप्यत्यूर्णोत्यादौ नांगं द्विरुच्यते । किं त्वस्यावयवः कश्चित्तस्मादेकाच्स्विदं द्वयम्। वस्तुतोंगस्याऽवयवो योऽभ्यास इति वर्णनात्। ऊर्णौ दीर्घोर्थापयतौ द्वयं स्यादिति मन्महे ॥ चकास्तौ तूभयमिदं न स्यात्स्याच्च व्यवस्थया। णेर्विशेष्यं सान्निहितं लघुनीत्यंगमेव वा ॥ इति व्याख्याविकल्पस्य कैयटेनैव वर्णनात् । णेरग्लोपेपि सम्बन्धस्त्वगितामपि सिद्धये ।९॥ १०

अथ कम्यन्तास्त्रिंशत्परस्मैपदिनः ॥ अण रण वण भण मण कण क्वण व्रण भ्रण ध्वण शब्दार्थाः । अणति । रणति । वणति । वकारादित्वादेत्वाभ्यासलोपौ न । ववणतुः । ववणिथ ॥ १० ॥ धणिरपि कैश्चित्पठ्यते । धणति ॥ ओणृ अपनयने । ओणति । ओणांचकार ॥ ११ ॥ शोणृ वर्णगत्योः । शोणति । शुशोण ॥ १२ ॥ श्रोणृ संघाते । श्रोणति ॥ १३ ॥ श्लोणृ च । शोणादयस्त्रयोऽमी तालव्योष्मादयः॥ १४॥ पैणृ गतिप्रेरणश्लेषणेषु । प्रैणृ इति कचित्पठ्यते । पिपैण ॥ १५ ॥ ध्रण शब्दे । उपदेशे नान्तोयम् । रषाभ्यामिति णत्वम् । ध्रणति । नोपदेशफलं यङ्लुकि । दन्ध्रन्ति ॥ १६ ॥ बणेत्यपि केचित् । बेणतुः । बेणिथ ॥ १७ ॥ कनी दीप्तिकान्तिगतिषु । चकान ॥ १८ ॥ ष्टन वन शब्दे । स्तनति वनति ॥ २० ॥ वन षण सम्भक्तौ । वनेरर्थभेदात्पुनः पाठः । सनति । ससान । सेनतुः ॥

२३१८--सन्वद्भावविषयमें लघुसंज्ञक अभ्यासको दीर्घ हो- अचीकमत । णिङ्के अभाव पक्षमें-

कमि धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें चङ् आदेश हो * णिके अभावके कारण दीर्घ और सन्वद्भाव न होकर- अचकमत ।

संज्ञा शास्त्रको कार्य्यकालपक्षमें विधिशास्त्रके साथ एकवाक्यता होनेसे'अङ्गस्य' इससे सम्बद्ध "पूर्वोऽभ्यासः" इसका "सन्वल्लघुनि०" "दीर्घो लघोः" इत्यादि शास्त्रमें सम्बन्ध हुआ और 'द्वे' इसका विशेष्यसमर्पक उच्चारण क्रियानिरूपित 'अङ्गस्य' इसमें कर्म्ममें षष्ठी हुई तब ऐसा अर्थ हुआ कि, अङ्गकर्मक जहां द्विरुच्चारण हो वहां पूर्वकी अभ्यास संज्ञा हो और उसको दीर्घ, सन्वद्भाव हो, इससे अङ्गका जहां द्विरुच्चारण है वहां ही दीर्घ, सन्वद्भाव होगा अनेकाच्में नहीं होगा यह माधवका मत है ।

चकास्, अर्थापि, ऊर्णु, इत्यादि धातुमें अङ्गको द्वित्व नहीं होताहै, किन्तु अङ्गके किसी अवयवको द्वित्व होताहै, इस कारण उन स्थलोंमें दीर्घ, सन्वद्भाव नहीं होगा, किन्तु एकाच् धातुमें ही दीर्घ और सन्वद्भाव होगा ।

अर्थाधिकार पक्षके श्रेष्ठत्वके कारण और वृत्त्यादिमें ऐसा ही स्वीकार होनेके कारण माधवके मतको कोई आचार्य्य दूषित कहते हैं कि, वास्तविक तो अंगावयव जो अभ्यास ऐसा वर्णनसे ऊर्णु धातुमें दीर्घ और अर्थापि धातुमें दीर्घ और सन्वद्भाव होगा ।

'चकास्' धातुमें तो व्यवस्थासे दोनों (दीर्घ,सन्वद्भाव)नहीं होंगे और होंगे भी, तो व्यवस्था यह है कि,णिका विशेष्य संनिहित होनेसे 'लघुनि' यह अथवा अंग होगा जब 'लघुनि'

होगा, तब णिसे पूर्व लघु न होनेसे दोनों नहीं होंगे और अंग विशेष्य होगा तो णिसे पूर्व अंग है, इस लिये दोनों कार्य होंगे।

कैयटसे ही इस प्रकार वैकल्पिक व्याख्या वर्णित है अगित् धातुको दीर्घ और सन्वद्भाव सिद्धके निमित्त णिके अग्लोपमें भी सम्बन्ध कियाहै।

अनन्तर क्रमु धातुपर्यन्त ३० परस्मैपदी धातु कहतेहैं।

अण, रण, वण, भण, मण, कण, क्वण, व्रण, भ्रण और ध्वण धातु शब्दार्थक हैं। अणति। रणति। वणति।

वकारादित्वके कारण एत्व और अभ्यासका लोप नहीं होकर—ववणतुः। ववणिथ॥ कोई २ धणि धातु भी पढतेहैं। धणति॥ ओणृ धातु अपनयन करनेमें है। ओणति। ओणाञ्चकार॥ शोणृ धातु वर्ण और गतिमें है। शोणति। शुशोण॥ श्रोणृ धातु और श्लोणृ धातु संघातमें है। श्रोणति। शोणादि ३ धातु तालव्योष्मादि हैं॥ पैणृ धातु गति, प्रेरण और श्लेषणमें है। किसी ग्रन्थमें प्रैणृ धातु पठित है। पिप्रैण॥ ध्रण धातु शब्द करनेमें है। उपदेशावस्थामें यह धातु नकारान्त है। "रषाभ्यां २३५" इस सूत्रसे णत्व होकर—ध्रणति। यङ्लुक्विषयमें नोपदेशका फल जानना जैसे—दन्ध्रन्ति,यहां नुक् हुआ। कोई २ बण धातु भी इस अर्थमें पढतेहैं। बेणतुः। बेणिथ॥ कनी धातु दीप्ति, कान्ति और गतिमें है। चकान॥ ष्टन धातु और वन धातु शब्द करनेमें हैं। स्तनति। वनति॥ वन षण धातु सम्भक्तिमें है। वन धातुका अर्थ भिन्न होनेसे पुनः पाठ कियाहै। सनति। ससान। सेनतुः॥

२३१९ ये विभाषा।६।४।४३॥

जनसनखनामात्वं वा स्याद्यादौ क्ङिति। सायात्-सन्यात्॥२१॥ अमगत्यादिषु। कनीदीप्तिकान्तिगतीत्यत्र गतेः परयोः शब्दसम्भक्त्योरादिशब्देन ग्रहः। अमति। आम॥२२॥ द्रम हम्म मीमृ गतौ। द्रमति। दद्राम। ह्म्यन्तेति न वृद्धिः। अद्रमीत्। हम्मति। जहम्म। मीमति। मिमीम। अयं शब्दे च॥२९॥ चमु छमु जमु झमु अदने॥

२३१९—यादि कित् और ङित् प्रत्यय परे रहे तो जन, सन और खन धातुके विकल्प करके आत्व हो, जैसे—सायात्, सन्यात्।

अम् धातु गत्यादि अर्थमें है "कनी दीप्ति कान्ति गति" इस स्थलमें गतिके परे जो शब्द और सम्भक्ति अर्थ कहा है, वह आदि शब्दसे गृहीत है। अमति। आम॥ द्रम, हम्म, मीमृ धातु गतिमें हैं। द्रमति। दद्राम। "ह्म्यन्तक्षण० २२९९" इस सूत्रसे वृद्धि न होकर—अद्रमीत्। हम्मति। जहम्म। मीमति। मिमीम, यह धातु शब्दार्थक भी है॥ चमु, छमु, जमु और झमु धातु भक्षण करनेमें हैं॥

२३२० ष्ठिवुक्लमुचमां शिति।७।३।७५॥

एषामचो दीर्घः स्याच्छिति॥ आङि चम इति वक्तव्यम्॥ *॥ आचामति। आङि किम्। चमति। विचमति। अचमीत्॥२९॥ जिमिं केचित्पठन्ति। जेमति॥ क्रमु पादविक्षेपे॥

२३२०—शित् प्रत्यय परे रहते ष्ठिवु, क्लमु, और चमु धातुके अच्को वृद्धि हो।

आङ् पूर्वमें रहते चमु धातुके अच्को वृद्धि हो ऐसा कहना चाहिये * आचामति। आङ्पूर्वक न होनेपर, जैसे—चमति। विचमति। अचमीत्॥ कोई २ जिमि धातु पढतेहैं। जेमति॥ क्रमु धातु पादविक्षेप करनेमें है॥

२३२१ वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः।३।१।७०॥

एभ्यः श्यन्वा स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे।

२३२१—कर्तृवाचक सार्वधातुक परे रहते भ्राश, भ्लाश, भ्रमु,क्रमु,क्लमु, त्रसि, त्रुटि और लष धातुके उत्तर विकल्प करके श्यन् प्रत्यय हो॥

२३२२ क्रमः परस्मैपदेषु।७।३।७६॥

क्रमेर्दीर्घः स्यात्परस्मैपदे परे शिति। क्राम्यति-क्रामति। चक्राम। क्राम्यतु-क्रामतु॥

२३२२—शित् प्रत्यय परे रहते परस्मैपदमें क्रमु धातुके अकारको विकल्प करके दीर्घ हो,जैसे—क्राम्यति,क्रामति। चक्राम। क्राम्यतु, क्रामतु॥

२३२३ स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते।७।२।३६॥

अत्रेवेट्। अक्रमीत्॥ ३०॥

अथ रेवत्यन्ता अनुदात्तेतः॥ अय वय मय पय चय तय णय गतौ। अयते॥

२३२३—आत्मनेपदनिमित्त न रहते स्नु और क्रमु धातुके उत्तर वलादि आर्धधातुकको इट् हो—अक्रमीत्।

अनन्तर रेवत्यन्त अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी) धातु कहे जातेहैं।

अय, वय, पय, मय, चय, तय और णय धातु गतिमें हैं। अयते॥

२३२४ दयायासश्च।३।१।३७॥

दय अय आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि। अयाञ्चक्रे। अयिता। अयिषीष्ट॥

२३२४—लिट् परे रहते दय, अय और आस् धातुके उत्तर आम् हो, अयाञ्चक्रे। अयिता। अयिषीष्ट॥

२३२५ विभाषेटः।८।३।७९॥

इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा मूर्धन्यः स्यात्। अयिषीढ्वम्-अयिषीध्वम्। आयिष्ट। आयिढ्वम्। आयिध्वम्॥

२३२५—इण्के परे स्थित इट्के उत्तर षीध्वं,लुङ् और लिट् सम्बन्धी धकारके स्थानमें विकल्प करके मूर्द्धन्यादेश (ढ) हो।

अयिषीढ्वम्, अयिषीध्वम् । आयिष्ट । आयिढ्वम्, आयिध्वम् ॥

२३२६ उपसर्गस्यायतौ ।८।२।१९॥

अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् । प्लायते । पलायते । निस्दुसोरुत्वस्यासिद्धत्वान्न लत्वम् । निरयते । दुरयते । निर्दुरोस्तु निलयते । दुलयते । प्रत्यय इति त्विणो रूपम् । अथ कथमुदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जाविति माघः । इट किट कटी इत्यत्र प्रश्लिष्टस्य भविष्यति । यद्वा । अनुदात्तत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् । चक्षिङो ङित्करणाज्ज्ञापकात् । वादित्वात् ववये । पेये । मेये । चेये । तेये । प्रणयते । नेये ॥ ७ ॥ दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु । आदानं ग्रहणम् । दयांचक्रे ॥ ८ ॥ रय गतौ ॥ ९ ॥ ऊयी तन्तुसन्ताने । ऊयांचक्रे ॥ १० ॥ पूयी विशरणे दुर्गन्धे च । पूयते । पुपूये ॥ ११ ॥ क्नूयी शब्दे उन्दे च । चुक्नूये ॥ १२ ॥ क्ष्मायी विधूनने । चक्ष्माये ॥ १३ ॥ स्फायी ओप्यायी वृद्धौ । स्फायते । पस्फाये । प्यायते ॥

२३२६-अय धातु परे रहते उपसर्गसम्बन्धी रेफके स्थानमें लकार हो, प्लायते । पलायते । निस् और दुस् सम्बन्धी रुत्वके असिद्धत्वके कारण लत्व नहीं होकर-निरयते । दुरयते । निर् और दुर् सम्बन्धी रके स्थानमें ल होकर-निलयते । दुलयते । 'प्रत्ययः' यह पद तो इण्धातुनिष्पन्न है ।

यदि 'अय' धातु आत्मनेपदी हो तो माघमें " उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जौ" इस स्थलमें 'उदयति' ऐसा परस्मैपद प्रयोग कैसे हुआ ? इसपर कहते हैं कि, इट, किट, कटी इस स्थलमें प्रश्लिष्ट इ धातुका 'उदयति' ऐसा पद हो, अथवा चक्षिङ् धातुमें ङित्करणके कारण अनुदात्तत्व प्रयुक्त आत्मनेपद अनित्य है, इससे उक्त रूप सिद्ध हुआ । वकारादित्वके कारण 'ववये' पद सिद्ध हुआ, इस स्थानमें एत्व नहीं हुआ । पेये । मेये । चेये । तेये । प्रणयते । नेये ॥ दय धातु दान, गति, रक्षण, हिंसा और आदान अर्थात् ग्रहण करनेमें है । दयाञ्चक्रे ॥ रय धातु गति अर्थमें है । ऊयी धातु-तन्तु सन्तानमें है । ऊयाञ्चक्रे ॥ पूयी धातु विसरण, दुर्गन्ध अर्थमें है । पूयते । पुपूये ॥ क्नूयी धातु शब्द करने और उन्द अर्थात् क्लेदनमें है । चुक्नूये ॥ क्ष्मायी धातु विधूननार्थमें है । चक्ष्माये ॥ स्फायी और ओप्यायी धातु वृद्धि अर्थमें है । स्फायते । पस्फाये । प्यायते ॥

२३२७ लिड्यङोश्च ।६।१।२९॥

लिटि यङि च प्यायः पीभावः स्यात् । पुनः प्रसंगविज्ञानात्पीशब्दस्य द्वित्वम् । एरनेकाच इति यण् । पिप्ये । पिप्याते । पिप्यिरे ॥

२३२७-लिट् और यङ् प्रत्यय परे रहते प्याय् धातुके स्थानमें पी आदेश हो, दूसरी वार भी प्रसंग (प्राप्ति) के कारण पी शब्दको द्वित्व हुआ, "एरनेकाचः० २७२" इस सूत्रसे यण् हुआ जैसे-पिप्ये । पिप्याते । पिप्यिरे ॥

२३२८ दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् । ३ । १ । ६१ ॥

एभ्यश्च्लेश्चिण्वा स्यादेकवचने तशब्दे परे ॥

२३२८-एकवचन त शब्द परे रहते दीप, जन, बुध, पूरि, तायि और प्यायि धातुके उत्तर विहित च्लिके स्थानमें विकल्प करके चिण् आदेश हो ॥

२३२९ चिणो लुक् । ६ । ४ । १०४ ॥

चिणः परस्य लुक् स्यात् । अप्यायि-अप्यायिष्ट ॥ १९ ॥ तायृ सन्तानपालनयोः । सन्तानः प्रबन्धः । तायते । तताये । अतायि-अतायिष्ट ॥ ॥ १६ ॥ शल चलनसंवरणयोः ॥ १७ ॥ वल वल्ल संवरणे संचरणे च । ववले । ववल्ले ॥ १९ ॥ मल मल्ल धारणे । मेले । ममल्ले ॥ २१ ॥ भल भल्ल परिभाषणहिंसादानेषु । बभले । बभल्ले ॥ २३ ॥ कल शब्दसंख्यानयोः । कलते । चकले ॥ २४ ॥ कल्ल अव्यक्ते शब्दे । कल्लते । अशब्द इति स्वामी । अशब्दस्तूष्णींभाव इति च ॥२५॥ तेवृ देवृ देवने । तितेवे । दिदेवे ॥२७॥ षेवृ गेवृ ग्लेवृ पेवृ मेवृ म्लेवृ सेवने । परिनिविभ्य इति षत्वम् । परिषेवते । सिषेवे । अयं सोपदेशोपीति न्यासकारादयः । तद्भाष्यविरुद्धम् । गेवते । जिगेवे । जिग्लेवे । पिपेवे । मेवते । म्लेवते ॥ ३३ ॥ शेवृ खेवृ केवृ इत्यप्येके ॥ ३६ ॥ रेवृ प्लवगतौ । प्लवगतिः प्लुतगतिः । रेवते ॥ ३७ ॥

अथावत्यन्ताः परस्मैपदिनः । मव्य बन्धने । ममव्य ॥ १ ॥ सूर्क्ष्य ईर्क्ष्य ईर्ष्य ईर्ष्यार्थाः ॥ ४ ॥ हय गतौ । अहयीत् । यान्तत्वान्न वृद्धिः ॥ ५ ॥ शुच्य अभिषवे । अवयवानां शिथिलीकरणं सुरायाः सन्धानं वाऽभिषवः स्नानं च । शुशुच्य ॥ ६ ॥ चुच्य इत्येके ॥ ७ ॥ हर्य गतिकान्त्योः । जहर्य ॥ ८ ॥ अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु । अलति । आल ॥

२३२९-चिण्के परे स्थित त शब्दका लोप हो । अप्यायि, अप्यायिष्ट । तायृ धातु सन्तान और पालनार्थमें है । तायते । तताये । अतायि, अतायिष्ट ।

शल धातु चलन और संवरण अर्थमें है । वल और वल्ल धातु संवरण और संचलन अर्थमें हैं । ववले । ववल्ले ॥ मल

और मल्ल धातु धारणार्थमें हैं। मेले। ममल्ले॥ भल और भल्ल धातु परिभाषण, हिंसा और दानार्थमें। बभले। बभल्ले॥ कल धातु शब्द और संख्यामें है। कलते। चकले॥ कल्ल धातु अव्यक्त शब्द करनेमें है। कल्लते। अशब्दमें है ऐसा स्वामीका मत है, अशब्द अर्थात् तूष्णींभाव।

तेवृ और देवृ धातु देवनार्थमें है. तितेवे। दिदेवे॥ षेवृ, गेवृ, ग्लेवृ, पेवृ, मेवृ, म्लेवृ, धातु सेवनार्थमें हैं। "परिनिविभ्यः० २२७५" इस सूत्रसे षत्व हुआ, परिषेवते। सिषेवे। यह धातु सोपदेश भी है, यह न्यासकारादि कहतेहैं, परन्तु वह भाष्यके विरुद्ध है। गेवते। जिगेवे। जिग्लेवे। पिपेवे। मेवते। म्लेवते॥ शेवृ, खेवृ और केवृ धातुका भी कोई कोई पाठ करतेहैं॥ रेवृ धातु प्लुतगतिमें है। रेवते।

अनन्तर अव धातुपर्यन्त परस्मैपदी धातु कहतेहैं।

मव्य धातु बंधनमें है। ममव्य॥

सूर्क्ष्य, ईर्क्ष्य, ईर्ष्य धातु ईर्ष्यार्थमें हैं॥ हय धातु गत्यर्थमें है। अहयीत्। यान्तत्वके कारण वृद्धि नहीं हुई॥ शुच्य धातु अभिषवमें है। अवयवका शिथिलीकरण और सुराका संधान तथा स्नानको अभिषव कहतेहैं। शुशुच्य। यहां कोई कोई कहतेहैं कि शुच्य धातुके स्थानमें 'चुच्य' ऐसा धातुपाठ करतेहैं। हर्य धातु गति और कान्तिमें है। जहर्य॥ अल धातु भूषण, पर्याप्ति और वारणमें है। अलति। आल॥

२३३० अतो ल्रान्तस्य। ७। २। २॥

ल्रेति लुप्तषष्ठीकम्। अतः समीपौ यौ ल्रौ तदन्तस्याऽङ्गस्यातो वृद्धिः स्यात्परस्मैपदपरे सिचि। नेटीति निषेधस्यातो हलादेरिति विकल्पस्य चापवादः। मा भवानालीत्। अयं स्वरितेदित्येके। तन्मते अलते इत्याद्यपि॥९॥ ञिफला विशरणे। तॄफलेत्येत्त्वम्। फेलतुः। फेलुः। अफालीत्॥ १०॥ मील श्मील स्मील क्ष्मील निमेषणे। निमेषणं संकोचः। द्वितीयस्तालव्यादिः। तृतीयो दन्त्यादिः॥ १४॥ पील प्रतिष्टम्भे। प्रतिष्टम्भो रोधनम्॥ १५॥ नील वर्णे। निनील॥ १६॥ शील समाधौ। शीलति॥ १७॥ कील बन्धने॥ १८॥ कूल आवरणे॥ १९॥ शूल रुजायां संघोषे च॥ २०॥ तूल निष्कर्षे। निष्कर्षो निष्कोषणम्। तच्चान्तर्गतस्य बहिर्निःसारणम्। तुतूल॥ २१॥ पूल संघाते॥ २२॥ मूल प्रतिष्ठायाम्॥ २३॥ फल निष्पत्तौ। फेलतुः। फेलुः॥ २४॥ चुल्ल भावकरणे। भावकरणमभिप्रायाविष्कारः॥ २५॥ फुल्ल विकसने॥ २६॥ चिल्ल शैथिल्ये भावकरणे च॥ २७॥ तिल गतौ। तेलति॥ २८॥ तिल्लेत्येके॥ तिल्लति॥ २९॥ वेल चेल केल खेल क्ष्वेल वेल्ल चलने। पञ्च ऋदितः षष्ठो लोपधः॥ ३५॥ पेल फेल शेल गतौ॥ ३८॥ षेल इत्येके॥ ३९॥ स्खल सञ्चलने। चस्खाल। अस्खालीत्॥ ४०॥ खल सञ्चये॥ ४१॥ गल अदने। गलति। अगालीत्॥ ४२॥ षल गतौ। सलति॥ ४३॥ दल विशरणे॥ ४४॥ श्वल श्वल्ल आशुगमने। शश्वाल। अश्वालीत्। शश्वल्ल। अश्वल्लीत्॥ ४६॥ खोलृ खोर्ऋ गतिप्रतिघाते। खोलति। खोरति॥ ॥ ४८॥ धोर्ऋ गतिचातुर्ये। धोरति॥ ४९॥ त्सर छद्मगतौ। तत्सार। अत्सारीत्॥ ५०॥ क्मर हूर्छने। चक्मार॥ ५१॥ अभ्र वभ्र मभ्र चर गत्यर्थाः। चरतिर्भक्षणेऽपि। अभ्रति। आनभ्र। मा भवानभ्रीत्। अङ्गान्त्यरेफस्यातः समीपत्वाभावान्न वृद्धिः॥ ५५॥ ष्ठिवु निरसने। ष्ठिवुक्लम्विति दीर्घः। ष्ठीवति। अस्य द्वितीयस्थकारष्ठकारो वेति वृत्तिः। तिष्ठेव। तिष्ठिवतुः। तिष्ठिवुः। टिष्ठेव। टिष्ठिवतुः। टिष्ठिवुः। हलि चेति दीर्घः। ष्ठीव्यात्॥ ५६॥ जि जये। अयमजन्तेषु पठितुं युक्तः। जय उत्कर्षप्राप्तिः। अकर्मकोयम्। जयति॥

२३३०–परस्मैपदमें सिच् प्रत्यय परे रहते अकारके समीपवर्त्ती जो लकार और रकार तदन्त अंगावयव अकारको वृद्धि हो। यह सूत्र "नेटि २२६८" इस निषेधका और "अतो हलादेः० २२८४" इस सूत्रसे विकल्प वृद्धिका अपवाद है। मा भवानालीत्। कोई २ कहते हैं यह धातु स्वरितेत् अर्थात् उभयपदी है, उनके मतमें अलते इत्यादि पद भी होगा॥ फल धातु विशरणमें है "तॄफल० २३०१" इस सूत्रसे एत्व होगा। फेलतुः। फेलुः। अफालीत्॥ मील, श्मील, स्मील और क्ष्मील धातु निमेषण अर्थात् संकोचार्थमें हैं। दूसरी धातु तालव्य शकारादि है॥ तीसरी धातु दन्त्यादि है। पील धातु प्रतिष्टम्भ अर्थात् रोधनार्थमें है॥ नील धातु वर्ण अर्थमें है। निनील॥ शील धातु समाधि अर्थमें है। शीलति॥ कील धातु बंधन अर्थमें है॥ कूल धातु आवरण अर्थमें है॥ शूल धातु रुजा और संघोषार्थमें है॥ तूल धातु निष्कोषणार्थमें अर्थात् भीतरसे बाहर निकालनेमें है। तुतूल॥ पूल धातु संघात अर्थमें है॥ मूल धातु प्रतिष्ठार्थमें है॥ फल धातु निष्पत्ति अर्थमें है। फेलतुः। फेलुः॥

चुल्ल धातु भाव करनेमें अर्थात् अभिप्रायज्ञापनार्थमें है॥ फुल्ल धातु विकसनार्थमें है॥ चिल्ल धातु शैथिल्यार्थमें और भावकरणार्थमें है।

तिल धातु गति अर्थमें है। तेलति। कोई २ कहतेहैं। तिल्ल धातु है। तिल्लति॥ वेलृ, चेलृ, केलृ, खेलृ, क्ष्वेलृ और वेल्ल धातु चलनार्थमें हैं। पांच ऋकार इत्संज्ञक और छठा लकारोपध है॥ पेलृ, फेलृ, शेलृ धातु गति अर्थमें हैं। कोई २ षेलृ धातु भी कहते हैं॥ स्खल धातु सञ्चलनार्थमें है।

चस्खाल । अस्खालीत् ॥ खल धातु सञ्चयार्थमें है ॥ गल धातु अदनार्थमें है । अगालीत् ॥ षल धातु गति अर्थमें है । सलति ॥ दल धातु विशरणार्थमें है ॥ श्वल, श्वल्ल धातु शीघ्र गमन अर्थमें हैं । शश्वाल । अश्वालीत् । शश्वल्ल । अश्वल्लीत् ॥ खोल, खोऋ धातु गतिप्रतिरोधमें है । खोलति । खोरति ।

धोऋ धातु गतिचातुर्यार्थमें हैं धोरति ॥ त्सर धातु छद्मगति में है । तत्सार । अत्सारीत् ॥ क्मर धातु हूर्च्छन अर्थात् कौटिल्यमें है । चक्मार ॥

अभ्र, वभ्र, मभ्र, चर धातु गत्यर्थमें हैं । चर धातु भक्षणार्थमें है । अभ्रति । आनभ्र । मा भवानभ्रीत् । अञ्जान्तरकारक अकारके समीपभावके कारण वृद्धि नहीं होगी ।

ष्ठिवु धातु निरसनार्थमें है । "ष्ठिवु क्लमु० २३२०" इस सूत्रसे दीर्घ होगा । ष्ठीवति । इस धातुके द्वितीय थकारके स्थानमें विकल्प करके टकार हो, यह वृत्तिकारका मत है । तिष्ठेव । तिष्ठिवतुः । तिष्ठिवुः । टिष्ठेव । टिष्ठिवतुः । टिष्ठिवुः । "हलि च ३५४" इस सूत्रसे दीर्घ होगा । ष्ठीव्यात् ।

जि धातु जय करनेमें है । इस धातुका अजन्तमें ही पाठ करना उचित है । जय शब्दसे उत्कर्षप्राप्ति जानना । यह अकर्मक है । जयति ॥

२३३१ सन्लिटोर्जेः । ७ । ३ । ५७ ॥

जयतेः सन्लिण्निमित्तो योऽभ्यासस्ततः परस्य कुत्वं स्यात् । जिगाय। जिग्यतुः।जिग्युः। जिगयिथ–जिगेथ । जिगाय–जिगय । जिग्यिव । जिग्यिम । जेता । जीयात् । अजैषीत्॥ ॥ ५७ ॥ जीव प्राणधारणे । जिजीव ॥ ५८ ॥ पीव मीव तीव णीव स्थौल्ये । पिपीव । मिमीव । तितीव । निनीव ॥ ६२ ॥ क्षीवु क्षेवु निरसने॥ ॥ ६४ ॥ उर्वी तुर्वी थुर्वी दुर्वी धुर्वी हिंसार्थाः । ऊर्वांचकार । उपधायां चेति दीर्घः । तुतूर्व ॥ ॥ ६९ गुर्वी उद्यमने । गूर्वति । जुगूर्व ॥ ७० ॥ मुर्वी बन्धने ॥ ७१ ॥ पुर्व पर्व मर्व पूरणे॥७४॥ चर्व अदने ॥ ७५ ॥ भर्व हिंसायाम् ॥ ७६ ॥ कर्व खर्व गर्व दर्पे ॥ ७९ ॥ अर्व शर्व षर्व हिंसायाम् । आनर्व । शर्वति । सर्वति ॥ ८२ ॥ इवि व्याप्तौ । इन्वति । इन्वांचकार ॥ ८३ ॥ पिवि मिवि णिवि सेचने । तृतीयो मूर्द्धन्योष्मादिरित्येके । सेवन इति तरङ्गिण्याम् । पिन्वति । पिपिन्व ॥ ८६ ॥ हिवि दिवि धिवि जिवि प्रीणनार्थाः । हिन्वति । दिन्वति ॥

२३३१–सन् और लिट् निमित्तक जो अभ्यास उसके परे स्थित जि धातुके स्थानमें कुत्व हो, अर्थात् सन् और लिट् परे रहते जि धातुके स्थानमें गि आदेश हो । जिगाय । जिग्यतुः । जिग्युः । जिगयिथ, जिगेथ । जिगाय, जिगय । जिग्यिव । जिग्यिम । जेता । जीयात् । अजैषीत् ।

जीव धातु प्राणधारण करनेमें है । जिजीव ॥ पीव, मीव, तीव, णिव धातु स्थौल्य अर्थमें हैं । पिपीव । मिमीव । तितीव । निनीव ॥ क्षीवु और क्षेवु धातु निरसन अर्थमें हैं ॥ उर्वी, तुर्वी, थुर्वी, दुर्वी और धुर्वी धातु हिंसार्थमें हैं । ऊर्वाञ्चकार । "उपधायां च २२६५" इस सूत्रसे दीर्घ होगा । तुतूर्व ॥ गुर्वी धातु उद्यमनार्थमें है । गुर्वति । जुगूर्व ॥ मुर्वी धातु बंधनार्थमें है । पुर्व, पर्व और मर्व धातु पूरणार्थमें हैं ॥ चर्व धातु भक्षणमें है ॥ तर्व धातु हिंसार्थमें है ॥ कर्व, खर्व, गर्व धातु दर्पार्थमें हैं ॥ अर्व, शर्व, षर्व धातु हिंसार्थमें हैं । आनर्व । शर्वति । सर्वति ॥ इवि धातु व्याप्ति अर्थमें हैं । इन्वति । इन्वाञ्चकार ॥ पिवि, मिवि और णिवि धातु सेचनार्थमें हैं । कोई २ कहते हैं कि, तीसरी णिवि मूर्द्धन्योष्मादि है, तरंगिणीके मतमें सेवनार्थमें है । पिन्वति । पिपिन्व ॥ हिवि, दिवि, धिवि और जिवि धातु प्रीणनार्थमें हैं । हिन्वति । दिन्वति ॥

२३३२ धिन्विकृण्व्योर च ।३।१।८०॥

अनयोरकारोन्तादेशः स्यादुप्रत्ययश्च शब्विषये । अतो लोपः । तस्य स्थानिवद्भावाल्लघूपधगुणो न । उप्रत्ययस्य पित्सु गुणः । धिनोति । धिनुतः । धिन्वन्ति ॥

२३३२–शप् विषयमें धिन्व और कृण्व धातुको अकार अन्तादेश और उ प्रत्यय हो, अकारका लोप होगा, उसके स्थानिवद्भावके कारण लघूपध गुण न होगा । पित् परे रहते उ प्रत्ययके उकारको गुण होगा । धिनोति । धिनुतः । धिन्वन्ति ॥

२३३३लोपश्चास्याऽन्यतरस्यां म्वोः। ६ । ४ । १०७ ॥

असंयोगपूर्वो यः प्रत्ययोकारस्तदन्तस्याङ्गस्य लोपो वा स्यात् म्वोः परयोः । धिन्वः–धिनुवः । धिन्मः–धिनुमः।मिपि तु परत्वाद्गुणः,धिनोमि ॥

२३३३–व और म परे रहते असंयोगपूर्वक जो प्रत्ययका उकार तदन्त अङ्गका विकल्प करके लोप हो । धिन्वः, धिनुवः । धिन्मः, धिनुमः । मिप् परे रहते परत्वके कारण गुण होगा । धिनोमि ॥

२३३४ उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् । ६ । ४ । १०६ ॥

असंयोगपूर्वो यः प्रत्ययोकारस्तदन्तादङ्गात्परस्य हेर्लुक् स्यात् । धिनु । नित्यत्वादकारलोपात्पूर्वमाट् । धिनवाव । धिनवाम । जिन्वति । इत्यादि ॥ ९० ॥ रिवि रवि धवि गत्यर्थाः । रिण्वति । रण्वति । धन्वति ॥ ९३ ॥ कृवि हिंसाकरणयोश्च । चकाराद्गतौ । कृणोतीत्यादि धिनोतिवत् । अयं स्वादौ च ॥९४॥ मव बन्धने ।

मवति। मेवतुः। मेवुः। अमवीत्–अमावीत् ॥ ॥९५॥ अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु। अवति। आव। मा भवानवीत् ॥ ९६ ॥ धावु गतिशुद्ध्योः। स्वरितेत्। धावति। धावते ॥ ९७ ॥ दधाव। दधावे ॥

अथोष्मान्ता आत्मनेपदिनः ॥ धुक्ष धिक्ष सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु। धुक्षते। दुधुक्षे। धिक्षते। दिधिक्षे ॥२॥ वृक्ष वरणे। वृक्षते। ववृक्षे ॥ ३ ॥ शिक्ष विद्योपादाने। शिक्षते ॥४॥ भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च। भिक्षते ॥५॥ क्लेश अव्यक्तायां वाचि। बाधन इति दुर्गः। क्लेशते। चिक्लेशे ॥६॥ दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च। दक्षते। ददक्षे॥७॥ दीक्ष मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु। दीक्षते। दिदीक्षे ॥ ८ ॥ ईक्ष दर्शने। ईक्षांचक्र। ॥ ९ ॥ ईष गतिहिंसादर्शनेषु। ईषांचक्र ॥१०॥ भाष व्यक्तायां वाचि। भाषते ॥ ११ ॥ वर्ष स्नेहने। दन्त्योष्ठ्यादिः। ववर्षे ॥ १२ ॥ गेषृ अन्विच्छायाम्। ग्लेषृ इत्येके। अन्विच्छा अन्वेषणम्। जिगेषे ॥१३॥ पेषृ प्रयत्ने। पेषते ॥१४॥ जेषृ णेषृ एषृ प्रेषृ गतौ। जेषते। नेषते। एषांचक्रे। पिप्रेषे ॥ १८ ॥ रेषृ हेषृ हेषृ अव्यक्ते शब्दे। आद्यो वृकशब्दे। ततो द्वौ अश्वशब्दे। रेषते। हेषते। हेषते ॥ २१ ॥ कासृ शब्दकुत्सायाम्। कासांचक्रे ॥ २२ ॥ भासृ दीप्तौ। बभासे ॥ २३ ॥ णासृ रासृ शब्दे। नासते। प्रणासते ॥ २५ ॥ णस कौटिल्ये। नसते॥२६॥ भ्यस भये। भ्यसते। बभ्यसे ॥ २७ ॥ आङः शासि इच्छायाम्। आशंसते। आशशंसे ॥२८॥ ग्रसु ग्लसु अदने। जग्रसे। जग्लसे ॥ ३०॥ ईह चेष्टायाम्। ईहांचक्रे ॥३१॥ बहि महि वृद्धौ। बंहते। बबंहे। मंहते ॥ ३३ ॥ अहि गतौ। अंहते। आनंहे ॥ ३४ ॥ गर्ह गल्ह कुत्सायाम्। जगर्हे। जगल्हे॥३६॥बर्ह बल्ह प्राधान्ये। ओष्ठ्यादी। ॥ ३८ ॥ वर्ह वल्ह परिभाषणहिंसाच्छादनेषु। दन्त्योष्ठ्यादी। केचित्तु पूर्वयोर्दन्त्योष्ठ्यादितामनयोरोष्ठ्यादितां चाहुः ॥ ४० ॥ प्लिह गतौ। पिप्लिहे ॥ ४१ ॥ वेहृ जेहृ बाहृ प्रयत्ने। आद्यो दन्त्योष्ठ्यादिः। अन्त्यः केवलोष्ठ्यादिः। उभावप्योष्ठ्यादी इत्येके। दन्त्योष्ठ्यादी इत्यपरे। जेहतिर्गत्यर्थोपि बवाहे ॥४४॥ द्राहृ निद्राक्षये। निक्षेपे इत्येके ॥ ४५ ॥ काशृ दीप्तौ। चकाशे ॥४६॥ ऊह वितर्के। ऊहांचक्रे ॥ ४७ ॥ गाहू विलोडने। गाहते–जगाहे। जगाहिषे–जघाक्षे। जगाहिढ्वे–जगाहिध्वे–जघाढ्वे ॥

२३३४–असंयोगपूर्वक जो प्रत्ययका उकार तदन्त अङ्गके परे स्थित हिका लोप हो। धिनु। नित्यत्वके कारण उकार लोपसे पूर्वमें आट् आगम होगा। धिनवाव। धिनवाम। जिन्वति–इत्यादि ॥ रिवि, रवि और धवि धातु गत्यर्थमें हैं। रिण्वति। रण्वति। धन्वति ॥ कृवि धातु हिंसा और करणार्थ और गत्यर्थमें हैं। कृणोति–इत्यादि धिन्व धातुके तरह रूप होंगे। यह स्वादिगणी भी है ॥ मव धातु बंधनार्थमें है। मवति। मेवतुः। मेवुः। अमवीत्, अमावीत् ॥ अव धातु रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति, अवगम, प्रवेश, श्रवण, स्वाम्यर्थ, याचन, क्रिया, इच्छा, दीप्ति, अवाप्ति, आलिङ्गन, हिंसा, आदान, भाग और वृद्धि अर्थमें है। अवति। आव। मा भवानवीत् ॥ धावु धातु गति और शुद्धिमें है। धावति। धावते। दधाव। दधावे।

अब ऊष्मवर्णान्त आत्मनेपदी धातु कहे जातेहैं।

धुक्ष और धिक्ष धातु सन्दीपन, क्लेशन और जीवन अर्थमें हैं। धुक्षते। दुधुक्षे। धिक्षते। दिधिक्षे ॥ वृक्ष धातु वरणमें है। वृक्षते। ववृक्षे ॥ शिक्ष धातु विद्योपार्जनमें है। शिक्षते॥ भिक्ष धातु भिक्षाके लाभ और अलाभमें है। भिक्षते। क्लेश धातु अव्यक्त वाक्यमें है। क्लेशते। चिक्लेशे। दक्ष धातु वृद्धि और शीघ्रार्थमें है। दक्षते। ददक्षे॥ दीक्ष धातु मौंड्य, इज्या, उपनयन, नियम और व्रतादेशमें है। दीक्षते। दिदीक्षे। ईक्ष धातु दर्शनमें है। ईक्षाञ्चक्रे ॥

ईष धातु गति, हिंसा और दर्शनमें है। ईषाञ्चक्रे ॥ भाष धातु व्यक्त वाक्यमें है। भाषते ॥ वर्ष धातु स्नेहनार्थमें है। यह दन्त्योष्ठ्यादि है। ववर्षे ॥ गेषृ धातु अन्वेषण अर्थमें है। कोई २ ग्लेषृ धातु का इस अर्थमें पाठ करतेहैं। जिगेषे ॥ पेषृ धातु प्रयत्नार्थमें है।पेषते ॥ जेषृ,णेषृ, एषृ और प्रेषृ धातु गति अर्थमेंहैं। जेषते। नेषते। एषाञ्चक्रे। पिप्रेषे। रेषृ, हेषृ, और हेषृ धातु अव्यक्त शब्द करनेमें हैं॥ रेषृ धातु वृकशब्द और हेषृ और हेषृ धातु अश्व शब्द करनेमें हैं। रेषते। हेषते। हेषते।

कासृ धातु कुत्सित शब्दमें है। कासाञ्चक्रे॥ भासृ धातु दीप्तिमें है। बभासे॥ णासृ और रासृ धातु शब्द करनेमें हैं। नासते। प्रणासते ॥ णस धातु कौटिल्यार्थमें है। नसते ॥ भ्यस धातु भयमें है। भ्यसते। बभ्यसे ॥ आङ्पूर्वक शंस् धातु इच्छार्थमें है। आशंसते। आशशंसे ॥ ग्रसु और ग्लसु धातु भक्षण करनेमें हैं। जग्रसे। जग्लसे ॥

ईह धातु चेष्टामें है। ईहाञ्चक्रे ॥ बहि और महि धातु वृद्धिमें है। बंहते।बबंहे।मंहते॥अहि धातु गतिमें है। अंहते। आनंहे॥ गर्ह, गल्ह धातु कुत्सामें हैं। जगर्हे।जगल्हे॥ बर्ह और बल्ह धातु प्राधान्यमें है। यह दो धातु ओष्ठ्यादि हैं॥ वर्ह, वल्ह धातु परिभाषण, हिंसा और आच्छादन अर्थमें हैं। यह

दो धातु दन्त्योष्ठ्यादि हैं । कोई २ इसके विपरीत कहतेहैं, अर्थात् पूर्वकी दन्त्योष्ठादि और परकी दो पवर्गादि हैं ॥ प्लिह धातु गतिमें है । पिप्लिहे ॥ वेह्, जेह् और बाह्ह धातु प्रयत्नमें हैं । पहली दन्त्योष्ठ्यादि और शेष केवल ओष्ठ्यादि हैं । कोई २ कहतेहैं दोनों ही ओष्ठ्यादि और दन्त्योष्ठ्यादि हैं, ॥ जेह धातु गत्यर्थमें भी है । ववाहे । द्राह्ह धातु निद्रा-भङ्गमें है । अन्य मतसे निक्षेपमें है ।

काशृ धातु दीप्तिमें है । चकाशे ।

ऊह धातु वितर्कमें है । ऊहाञ्चक्रे । गाहू धातु विलोडनमें है । गाहते । जगाहे । जगाहिषे, जघाक्षे । जगाहिढ्वे, जगाहिध्वे, जघाढ्वे ॥

२३३५ ढो ढे लोपः । ८ । ३ । १३॥

ढस्य लोपः स्याड्ढे परे । गाहिता-गाढा । गाहिष्यते-घाक्ष्यते । गाहिषीष्ट-घाक्षीष्ट । अगाहिष्ट-अगाढ । अघाक्षाताम् । अघाक्षत । अगाढाः । अघाढ्वम् । अघाक्षि ॥४८॥ गृहू गर्हणे । गर्हते । जगृहे ॥ ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन ॥*॥ जगृहिषे । जघृक्षे । जघृढ्वे गर्हिता-गर्ढा । गर्हिष्यते-घर्क्ष्यते । गर्हिषीष्ट-घृक्षीष्ट । लुङि । अगर्हिष्ट । इडभावे ॥

२३३५-ढ परे रहते पूर्ववर्ती ढकारका लोप हो । गाहिता, गाढा । गाहिष्यते, घाक्ष्यते । गाहिषीष्ट, घाक्षीष्ट । अगाहिष्ट, अगाढ । अघाक्षाताम् । अघाक्षत । अगाढाः । अघाढ्वम् । अघाक्षि ॥ गृहू धातु गर्हण अर्थात् निन्दामें है । गर्हते । जगृहे ।

पूर्वविप्रतिषेधके कारण गुणको बाधकर ऋकारोपध धातुके उत्तर लिट्की कित्संज्ञा हो * जगृहिषे, जघृक्षे । जघृढ्वे । गर्हिता, गर्ढा । गर्हिष्यते, घर्क्ष्यते । गर्हिषीष्ट, घृक्षीष्ट । लुङ् परे जैसे-अगर्हिष्ट । इट्अभाव पक्षमें-॥

२३३६ शल इगुपधादनिटः क्सः । ३ । १ । ४५ ॥

इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः स्यात् । अघृक्षत ॥

२३३६-इक्उपधावाले शलन्त धातुके उत्तर अनिट् च्लिके स्थानमें 'क्स' आदेश हो । जैसे-अघृक्षत ॥

२३३७ क्सस्याचि । ७ । ३ । ७२॥

अजादौ तङि क्सस्य लोपः स्यात् । अलोन्त्यस्य । अघृक्षाताम् । अघृक्षन्त ॥४९॥ ग्लह च । ग्लहते ॥ ५० ॥ घुषि कान्तिकरणे । घुंषते । जुघुंषे । केचिद्घषेत्यदुपधं पठन्ति ॥ ५१ ॥

अथार्हत्यन्ताः परस्मैपदिनः । घुषिर् अविशब्दने । विशब्दनं प्रतिज्ञानं ततोऽन्यस्मिन्नर्थे इत्येके । शब्द इत्यन्ये पेठुः । घोषति । जुघोष । घोषिता । इरित्वादङ् वा । अघुषत्अघोषीत् ॥ १ ॥ अक्षू व्याप्तौ ॥

२३३७-अजादि तङ् परे रहते क्स आदेशका लोप हो । "अलोन्त्यस्य ४२" इस सूत्रसे अन्त्यका लोप होगा, अघृक्षाताम् । अघृक्षन्त ॥ ग्लह धातु निन्दामें है । ग्लहते ।

घुषि धातु कान्तिकरणमें है । घुंषते । जुघुंषे । कोई २'घष' ऐसा अकारोपध पाठ कहतेहैं ।

अब घुषिर् धातुसे अर्ह धातुपर्यन्त परस्मैपदी धातु कहे जाते हैं, जैसे-घुषिर् धातु अविशब्दन अर्थात् प्रतिज्ञासे भिन्न अर्थमें है। यह मुख्य मत है । अन्य मतमें शब्द करनेमें है । घोषति । जुघोष । घोषिता । इर् इत् होनेके कारण विकल्प करके च्लिको अङ् होगा । अघुषत्, अघोषीत् ॥ अक्षु धातु व्याप्ति अर्थमें है ॥

२३३८ अक्षोऽन्यतरस्याम् । ३ । १ । ७५॥

अक्षो वा श्नुप्रत्ययः स्यात्कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप् । अक्ष्णोति । अक्ष्णुतः । अक्ष्णुवन्ति । अक्षति । अक्षतः । अक्षन्ति । आनक्ष । आनक्षिथ-आनष्ठ । अक्षिता-अष्टा । अक्षिष्यति-स्कोरिति कलोपः । षढोः कः सि । अक्ष्यति । अक्ष्णोतु । अक्ष्णुहि । अक्ष्णवानि । आक्ष्णोत् । आक्ष्णवम् । अक्ष्णुयात् । अक्ष्यात् । ऊदित्त्वाद्वेट् । नेटि । मा भवानक्षीत् । अक्षिष्टाम् । अक्षिषुः । इडभावे तु मा भवानाक्षीत् । आष्टाम् । आक्षुः ॥ २ ॥ तक्षू त्वक्षू तनूकरणे ॥

२३३८-कर्त्ता अर्थमें वर्त्तमान सार्वधातुक परे रहते अक्ष धातुके उत्तर विकल्प करके श्नु प्रत्यय हो । विकल्प पक्षमें शप् होगा । अक्ष्णोति । अक्ष्णुतः । अक्ष्णुवन्ति । अक्षतिः । अक्षतः । अक्षन्ति । आनक्ष । आनक्षिथ, आनष्ठ । अक्षिता, अष्टा । अक्षिष्यति । "स्कोः० ३८०" इस सूत्रसे ककारका लोप हुआ, "षढोः कः सि २९५" अर्थात् सकार परे रहते ष और ढके स्थानमें क हो, इससे षको क हुआ, अक्ष्यति । अक्ष्णोतु । अक्ष्णुहि । अक्ष्णवानि । आक्ष्णोत् । आक्ष्णवम् । अक्ष्णुयात् । अक्ष्यात् । ऊदित्त्वके कारण विकल्प करके इट् होगा । "नेटि २३६८" इस सूत्रसे वृद्धिका निषेध होताहै, इस कारण मा भवानक्षीत् । अक्षिष्टाम् । अक्षिषुः । इट्के अभावमें मा भवानक्षीत् । आष्टाम् । आक्षुः ॥ तक्षू और त्वक्षू धातु तनूकरणमें अर्थात् सूक्ष्म करनेमें हैं ॥

२३३९ तनूकरणे तक्षः । ३ । १ । ७६॥

श्नुः स्याद्वा शब्विषये ॥ तक्ष्णोति । तक्षति-काष्ठम् । ततक्षिथ । ततष्ठ । अतक्षीत् । अतक्षिष्टाम् । अताक्षीत् । अताष्टाम् । तनूकरणे किम् । वाग्भिः संतक्षति । भर्त्सयतीत्यर्थः ॥ ४ ॥ उक्ष सेचने । उक्षांचकार ॥ ५ ॥ रक्ष पालने ॥ ६ ॥ णिक्ष चुंबने । प्रणिक्षति ॥ ७ ॥ तृक्ष स्तृक्ष णक्ष

गतौ । तृक्षति । स्तृक्षति।नक्षति॥१०॥वक्ष रोषे। संघाते इत्येके ॥ ११ ॥ मृक्ष संघाते । म्रक्ष इत्येके ॥ १२ ॥ तक्ष त्वचने । त्वचनं संवरणं त्वचो ग्रहणं च । पक्ष परिग्रह इत्येके ॥ १४ ॥ सूर्क्ष आदरे । सुसूर्क्ष । अनादर इति तु काचित्कोऽपपाठः।अवज्ञावहेलनमसूर्क्षणमित्यमर १९॥ काक्षि वाक्षि माक्षि काङ्क्षायाम् ॥ १८ ॥ द्राक्षि ध्राक्षि ध्वाक्षि घोरवासिते च ॥ २१ ॥ चूष पाने । चुचूष ॥ २२ ॥ तूष तुष्टौ ॥ २३ ॥ पूष वृद्धौ ॥ २४ ॥ मूष स्तेये ॥ २९ ॥ लूष रूष भूषायाम् ॥ २७ ॥ शूष प्रसवे । प्रसवोऽभ्यनुज्ञानम् । तालव्योष्मादिः ॥ २८ ॥ यूष हिंसायाम् । जूष च ॥ ३० ॥ भूष अलंकारे । भूषति ॥३१॥ ऊष रुजायाम्।ऊषांचकार॥३२॥ ईष उञ्छे ॥ ३३ ॥ कष खष शिष जष झष शष वष मष रुष रिष हिंसार्थाः । तृतीयषष्ठौ तालव्योष्मादी । सप्तमो दन्त्योष्ठ्यादिः । चकाष । चखाष । शिशेष । शिशेषिथ । शेष्टा। क्सः । अशिक्षत् । अशेक्ष्यत् । जेषतुः । जझषतुः । शेषतुः । ववषतुः । मेषतुः ॥

२३३९–तनूकरण अर्थात् क्षीणकरण अर्थ होनेपर तक्ष धातुके उत्तर शप्के विषयमें विकल्प करके श्नु प्रत्यय हो, जैसे–तक्ष्णोति, तक्षति वा काष्ठम् । ततक्षिथ,ततष्ठ । अतक्षीत्। अताक्षिष्टाम् । अताक्षीत् । अताष्टाम् ।

तनूकरणार्थ न होनेपर 'वाग्भिः सन्तक्षति' इस स्थलमें भर्त्सनार्थ होनेके कारण श्नु प्रत्यय नहीं हुआ ।

उक्ष धातु सेचन करनेमें है । उक्षाञ्चकार॥रक्ष धातु पालन करनेमें है ॥ णिक्ष धातु चुम्बन करनेमें है । प्रणिक्षति ॥ तृक्ष, स्तृक्ष और णक्ष धातु गमन करनेमें हैं । तृक्षति । स्तृक्षति । नक्षति ॥ वक्ष धातु क्रोध करनेमें है । किसी २ मतमें संघात अर्थमें है॥मृक्ष धातु संघातार्थमें है । कोई२म्रक्ष धातु उक्तार्थमें पढतेहैं ॥ तक्ष धातु त्वचनमें है अर्थात् संवरण और त्वक्के ग्रहणमें है ॥ पक्ष धातु परिग्रहमें है ॥ सूर्क्ष धातु आदरमें है । सुसूर्क्ष । कोई २ कहतेहैं कि यह धातु 'अनादरे' ऐसे कहीं२ पाठके कारण अनादर अर्थमें है, परन्तु 'अनादरे' यह अपपाठ है कारण कि, अवज्ञा, अवहेलन और असूर्क्षण यह पर्य्यायशब्द हैं ऐसा अमरकोशमें है ॥

काक्षि, वाक्षि और माक्षि धातु कांक्षार्थमें हैं ॥ द्राक्षि,ध्राक्षि और ध्वाक्षि धातु घोर ध्वनिमें हैं॥ चूष धातु पान करनेमें है॥ तूष धातु तुष्टिमें है ॥ पूष धातु वृद्धिमें है ॥ मूष धातु चोरी करनेमें है ॥ लूष और रूष धातु भूषा करनेमें है ॥ शूष धातु प्रसव अर्थात् अभ्यनुज्ञामें है । यह धातु तालव्य और ऊष्मादि है ॥ यूष और जूष धातु हिंसा करनेमें हैं । जूषति ॥ भूष धातु अलङ्कार अर्थमें है ॥ ऊष धातु पीडित करनेमें है । ऊषाञ्चकार ॥ ईष धातु उञ्छार्थमें है ॥ कष, खष, शिष, जष, झष, शष, वष, मष, रुष और रिष धातु हिंसार्थमें हैं । इनमेंसे तीसरा और छठवां धातु तालव्य और ऊष्मादि है और सातमां दन्त्योष्ठ्यादि है । चकाष । चखाष । शिशेष । शिशेषिथ । शेष्टा । क्स प्रत्यय होकर–अशिक्षत् । अशेक्ष्यत् । जेषतुः । जझषतुः । शेषतुः । ववषतुः । मेषतुः ॥

२३४० तीषसहलुभरुषरिषः।७।२।४८॥

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात् । रोषिता–रोष्टा । रोषिष्यति । रेषिता–रेष्टा । रेषिष्यति ॥ ४३ ॥ भष भर्त्सने । इह भर्त्सनं श्वरवः । भषति । बभाष ॥ ४४ ॥ उष दाहे । ओषति ॥

२३४०–ईष,सह,लुभ,रुष और रिष इन धातुओंके परे जो तकारादि आर्धधातुक प्रत्यय उनको विकल्प करके इट् आगम हो।रोषिता,रोष्टा।रोषिष्यति।रेषिता,रेष्टा।रेषिष्यति॥ भष धातु भर्त्सनार्थमें है। इस स्थलमें भर्त्सन शब्दसे कुक्कुरका शब्द जानना। भषति । बभाष ॥ उष धातु दाहमें है । ओषति ॥

२३४१ उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् । ३ । १ । ३८ ॥

एभ्यो लिट्याम्वा स्यात् । ओषांचकार । उवोष । ऊषतुः । उवोषिथ ॥ ४९ ॥ जिषु विषु मिषु सेचने । जिजेष । क्रादिनियमादिट् । विवेषिथ । विवेषिव । वेष्टा । वेक्ष्यति । अविक्षत् ॥ ४८ ॥ पुष पुष्टौ । पोषति । पोषिता । पोषिष्यति । अपोषीत् । अनिट्सु पुष्यति श्यना निर्देशादयं सेट् अतो न क्सः । अङ्विधौ दैवादिकस्य ग्रहणान्नाङ्॥४९॥ श्रिषु श्लिषु प्रुषु प्लुषु दाहे। श्रेषति। शिश्रेष ।श्रेषिता। श्लेषति । शिश्लेष। श्लेषिता । अयमपि सेट् । अनिट्सु दैवादिकस्यैव ग्रहणमिति कैयटादयः। यत्त्वनिट्कारिकान्यासे द्वयोर्ग्रहणमित्युक्तम्, तत्त्वोक्तिविरोधाद्ग्रन्थान्तरविरोधाच्चोपेक्ष्यम् । प्रोषति । पुप्रोष ॥ ९३ ॥ पृषु वृषु मृषु सेचने । मृषु सहने च । इतरौ हिंसासंक्लेशनयोश्च । पर्षति । पपर्ष । पृष्यात् ॥ ९६ ॥ घृषु संघर्षे ॥ ९७ ॥ हृषु अलीके ॥ ९८ ॥ तुस ह्रस ह्लस रस शब्दे । तुतोस । जह्रास । जह्लास । ररास ॥ ६२ ॥ लस श्लेषणक्रीडनयोः ॥ ६३ ॥ घस्लृ अदने । अयं न सार्वत्रिकः । लिट्यन्यतरस्यामित्यदेर्घस्लादेशविधानात् । ततश्च यत्र लिंगं वचनं वास्ति तत्रैवास्य प्रयोगः । अत्रैव पाठः शपि परस्मैपदे लिंगम् । लृदित्करणमङि । अनि-

इट्कारिकासु पाठो वलाद्यार्धधातुके । क्मरचि तु विशिष्योपादानम् । घसति । घस्ता ॥

२३४१–लिट् लकार परे रहते उष, विद और जागृ धातुके उत्तर विकल्प करके आम् प्रत्यय हो । ओषाञ्चकार । उवोष । ऊषतुः । उवोषिथ ॥ जिषु, विषु और मिषु धातु सेचन करनेमें हैं । जिजेष । क्रादिनियमके कारण इट् होगा । विवेषिथ । विवेषिव । वेष्टा । वेक्ष्यति । अविक्षत् ॥ पुष धातु पुष्टिमें है । पोषति । पोषिता । पोषिष्यति । अपोषीत् ।

अनिट्कारिकामें 'पुष्य' ऐसे श्यन्युक्त धातुके निर्देशके कारण यह धातु सेट् है, इस कारण इसके उत्तर 'क्स' आदेश नहीं होगा, और टाङ् विधिमें दिवादिके ग्रहणके कारण इस स्थलमें अङ् भी नहीं होगा ।

श्रिषु, श्लिषु, प्रुषु, और प्लुषु धातु दाहमें हैं । श्रेषति । शिश्रेष । श्रेषिता । श्लेषति । शिश्लेष । श्लेषिता । यह धातु भी सेट् है, अनिट्कारिकामें दिवादिगणीय श्लिष धातुका ही ग्रहण होताहै यह कैयटादिका मत है । अनिट्कारिकाके न्यास-ग्रन्थमें दोनोंका ही ग्रहण होताहै ऐसा जो कहतेहैं वह स्वोक्त ग्रन्थान्तरोंके विरुद्ध होनेसे उपेक्षणीय है । पुप्रोष । पुप्लोष ॥

पृषु, वृषु और मृषु धातु सेचनार्थमें हैं । मृषु धातु सह-नार्थमें भी है । अन्य दो हिंसा और संक्लेशनार्थक भी हैं । पर्षति । पपर्ष । पृष्यात् ॥ घृषु धातु संघर्षमें है ॥ हृषु धातु अलीकार्थमें है ।

तुस, ह्रस ह्लस और रस धातु शब्द करनेमें हैं । तुतोस । जह्रास । जह्लास । ररास ॥ लस धातु श्लेषण और क्रीडामें है ॥

घस्लृ धातु भक्षणार्थमें है । लिट् परे अद् धातुके स्थानमें विकल्प करके घस् आदेश होने (२४२४) के कारण यह धातु सार्वत्रिक नहीं है, इस कारण जिस स्थानमें लिङ्ग वा वचन है, उस स्थानमें ही इसका प्रयोग होगा, इस स्थल (भ्वादि) में पाठके कारण परस्मैपदमें च्लिविषय रहते लृकार इत्संज्ञक होनेके कारण और अङ्विषयमें, अनिट्कारिकाके मध्यमें पाठके कारण वलादि आर्धधातुक विषयमें इसके प्रयोग होंगे । क्मरच् प्रत्यय परे रहते इसका विशेष रूपसे उपादान होगा । घसति । घस्ता ॥

२३४२ सः स्यार्धधातुके । ७ ।४।४९॥

सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके । घत्स्यति । घसतु।अघसत् । घसेत् । लिंगाद्यभावादाशिष्यप्रयोगः ॥

२३४२–सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते धातुके सकारके स्थानमें तकार हो, जैसे–घत्स्यति । घसतु । अघसत् । घसेत् । लिङ्गादिके अभावके कारण आशीर्वादार्थमें इसका प्रयोग नहीं होगा ॥

२३४३ पुषादिद्युताद्युदितः परस्मैपदेषु । ३ । १ । ५५ ॥

श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् स्यात्परस्मैपदेषु । अघसत् ॥ ६४ ॥ जर्ज चर्च झर्झ परिभाषणहिंसातर्जनेषु ॥ ६७ ॥ पिसृ पेसृ गतौ । पिपिसतुः । पिपेसतुः ॥६९ ॥ हसे हसने । एदित्त्वान्न वृद्धिः । अहसीत् ॥७०॥ णिश समाधौ । तालव्योष्मान्तः । प्रणेशति ॥ ॥ ७१ ॥ मिश मश शब्दे रोषकृते च । तालव्योष्मान्तौ ॥ ७३ ॥ शव गतौ ॥ दन्त्योष्ठ्यान्तस्तालव्योष्मादिः । शवति ॥ अशावीत्–अशवीत् ॥७४॥ शश प्लुतगतौ । तालव्योष्माद्यन्तः । शशाश । शेशतुः । शेशुः । शेशिथ । ॥ ७५ ॥ शसु हिंसायाम् । दन्त्योष्मान्तः । न शसददेत्येत्त्वं न । शशसतुः । शशसुः । शशसिथ ॥ ७६ ॥ शंसु स्तुतौ । अयं दुर्गतावपीति दुर्गः। नृशंसो घातुकः क्रूर इत्यमरः । शशंस । आशिषि नलोपः । शस्यात् ॥७७॥ चह परिकल्कने । परिकल्कनं शाठ्यम् । अचहीत् ॥ ७८ ॥ मह पूजायाम् । अमहीत् ॥ ७९ ॥ रह त्यागे॥८०॥ रहि गतौ । रंहति । रंह्यात् ॥८१॥दृह दृहि बृह बृहि वृद्धौ । दर्हति ।ददर्ह।ददृहतुः । दृंहति।बर्हति । बृंहति।बृहि शब्दे च।बृंहितं करिगर्जितम्। ॥८५॥ बृहिर् इत्येके । अबृहत्–अबर्हीत् ॥८६॥ तुहिर् दुहिर् उहिर् अर्दने । तोहति । तुतोह । अतुहत्–अतोहीत् । दोहति । अदुहत्–अदोहीत् । अनिट्कारिकास्वस्य दुहेर्ग्रहणं नेच्छन्ति । ओहति । उवोह । ऊहतुः । ओहिता । मा भवानुहत् । औहीत् ॥८९॥ अर्ह पूजायाम् । आनर्ह ॥ ९० ॥ अथ कृपूपर्यन्ता अनुदात्तेतः ॥ द्युत दीप्तौ । द्योतते ॥

२३४३–परस्मैपदमें श्यन् विकरण हो जिनसे ऐसे जो पुषादि धातु, द्युतादि धातु और लृकारइत् धातु उनके उत्तर च्लिके स्थानमें अङ् आदेश हो । अघसत् ॥ जर्ज, चर्च और झर्झ धातु परिभाषण, हिंसा और तर्जनार्थमें हैं॥पिस और पेस धातु गतिमें हैं । पिपिसतुः । पिपेसतुः ॥ हसे धातु हास्य करनेमें है । एकारइत्के कारण वृद्धि न होगी–अहसीत् ॥ णिश धातु समाधि अर्थमें है । यह तालव्य ऊष्मवर्णान्त है । प्रणेशति ॥ मिश और मश धातु शब्द और रोष करनेमें हैं । यह दो धातु तालव्य ऊष्मवर्णान्त हैं ॥ शव धातु गति अर्थमें है । यह धातु दन्त्योष्ठ्यान्त और तालव्य ऊष्मादि हैं । शवति। अशावीत–अशवीत् ॥ शश धातु प्लुतगतिमें है । यह तालव्य ऊष्माद्यन्त है । शशाश । शेशतुः । शेशुः । शेशिथ ।

शसु धातु हिंसार्थमें है । यह धातु दन्त्योष्मान्त है, " न शसदद० २२६३ " इस सूत्रसे एत्वका निषेध होगा–शश-

सतुः । शशसुः । शशंसिथ ॥ शंसु धातु स्तुतिमें है । यह धातु दुर्गतार्थमें भी जानना । नृशंस, घातुक, क्रूर–इत्यादि शब्द अमरकोशमें एकपर्यायमें लिखेहैं । शशंस । आशीर्थमें नकारका लोप होगा । शस्यात्॥ चह धातु परिकल्कन अर्थात् शठतामें है । अचहीत् ॥ मह धातु पूजार्थमें है । अमहीत् ॥रह धातु त्याग करनेमें है ॥ रहि धातु गति अर्थमें है । रंहति । रंह्यात् ॥ दृह, दृहि, बृह और बृहि धातु वृद्धिमें हैं । दर्हति । ददर्ह । ददृहतुः । दृंहति । बर्हति । बृंहति । बृहि धातु शब्द करनेमें भी है । बृंहित शब्दसे हाथीकी गर्जना जाननी । कोई उसको बृहिर् धातु कहतेहैं । अबृहत्, अबर्हीत् ।

तुहिर्, दुहिर् और उहिर् धातु अर्दन करनेमें हैं । तोहति । तुतोह । अतुहत्, अतोहीत् । दोहति । अदुहत्, अदोहीत् । अनिट्कारिकामें इस दुह धातुका ग्रहण नहीं है । ओहति । उवोह । ऊहतुः । ओहिता । मा भवानूहत् । औहीत् ॥ अर्ह धातु पूजार्थमें है । आनर्ह ।

अब कृप् धातु पर्य्यन्त अनुदात्तेत् कहतेहैं–।

द्युत धातु दीप्तिमें है । द्योतते ॥

२३४४ द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् । ७ । ४ । ६७ ॥

अनयोरभ्यासस्य संप्रसारणं स्यात् । दिद्युते । दिद्युताते । द्योतिता ॥

२३४४–द्युति और स्वप धातुके अभ्यासको संप्रसारण हो। दिद्युते । दिद्युताते । द्योतिता ॥

२३४५ द्युद्भ्यो लुङि । १ । ३ । ९१ ॥

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात् । पुषादिसूत्रेण परस्मैपदेऽङ् । अद्युतत्–अद्योतिष्ट ॥ १ ॥ श्विता वर्णे । श्वेतते । शिश्विते । अश्वितत् । अश्वेतिष्ट ॥२॥ ञिमिदा स्नेहने । मेदते ॥

२३४५–द्युतादि धातुके उत्तर लुङ्का परस्मैपद विकल्प करके हो "पुषादि०" इस सूत्रसे परस्मैपदमें अङ् होगा– अद्युतत् । अद्योतिष्ट ॥ श्विता धातु वर्णमें है । श्वेतते । शिश्विते । अश्वितत् । अश्वेतिष्ट ॥ ञिमिदा धातु स्नेह करनेमें है । मेदते ॥

२३४६ मिदेर्गुणः । ७ । ३ । ८२ ॥

मिदेरिको गुणः स्यादित्संज्ञकशकारादौ । एश आदिशित्त्वाभावान्नानेन गुणः । मिमिदे । अमिदत् । अमेदिष्ट ॥ ३ ॥ ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः । मोहनयोरित्येके । स्वेदते । सिष्विदे । अस्विदत् । अस्वेदिष्ट ॥४॥ ञिक्ष्विदा चेत्येके । अक्ष्विदत् । अक्ष्वेदिष्ट ॥ ५ ॥ रुच दीप्तावभिप्रीतौ च । रोचते सूर्यः । हरये रोचते भक्तिः । अरुचत् । अरोचिष्ट ॥ ६ ॥ घुट परिवर्तने । घोटते । जुघुटे । अघुटत् । अघोटिष्ट ॥ ७ ॥ रुट लुट लुठ प्रतिघाते । अरुटत् । अरोटिष्ट ॥१०॥ शुभ दीप्तौ ॥ ११ ॥ क्षुभ सञ्चलने ॥ १२ ॥ णभ तुभ हिंसायाम् । आद्योऽभावेऽपि । नभन्तामन्यके समे । मा भूवन्नन्यके सर्वे इति निरुक्तम् । अनभत् । अनभिष्ट । अतुभत् । अतोभिष्ट । इमौ दिवादौ क्र्यादौ च ॥ १४ ॥ स्रंसु ध्वंसु भ्रंसु अवस्रंसने । ध्वंसु गतौ च । अङि नलोपः । अस्रसत् । अस्रंसिष्ट । नास्रसत्करिणां ग्रैवमिति रघुकाव्ये । भ्रशु इत्यपि केचित्पेठुः । अत्र तृतीय एव तालव्यान्त इत्यन्ये । भ्रशु भ्रंशु अधःपतन इति दिवादौ ॥१९॥ स्रम्भु विश्वासे । अस्रभत् । अस्रम्भिष्ट । दन्त्यादिरयम् । तालव्यादिस्तु प्रमादे गतः ॥२०॥ वृतु वर्तने । वर्तते । ववृते॥

२३४६–इत्संज्ञक सकारादि प्रत्यय परे रहते मिद् धातुके इकारको गुण हो । जिस स्थानमें नकारके तक स्थानमें एश् आदेश होगा, उस स्थानमें आदिशित्त्वाभावके कारण इस सूत्रसे गुण नहीं होगा । मिमिदे । अमिदत् । अमेदिष्ट ॥ ञिष्विदा धातु स्नेह और मोचनार्थमें है । किसीके मतमें मोहनार्थमें भी है । स्वेदते । सिष्विदे । अस्विदत् । अस्वेदिष्ट ॥ किसीके मतमें ञिक्ष्विदा धातु भी उक्तार्थक है । अक्ष्विदत् । अक्ष्वेदिष्ट ॥ रुच धातु दीप्ति और अभिप्रीतिमें है । रोचते सूर्यः । हरये रोचते भक्तिः । अरुचत् । अरोचिष्ट ।

घुट धातु परिवर्तनमें है । घोटते । जुघुटे । अघुटत् । अघोटिष्ट । रुट, लुट और लुठ धातु प्रतिघातार्थमें है । अरुटत् । अरोटिष्ट ॥

शुभ धातु दीप्तिमें है ॥ क्षुभ धातु संचलनार्थमें है । णभ और तुभ हिंसार्थमें हैं । "नभन्तामन्यके समे" "मा भूवन्नन्यके सर्वे" इस निरुक्तके अनुसार पहलेका अभावार्थ भी है । अनभत् । अनभिष्ट । अतुभत् । अतोभिष्ट । यह दो धातु दिवादि और क्र्यादिगणी हैं ॥

स्रंसु, ध्वंसु और भ्रंसु धातु अवस्रंसनार्थमें हैं ॥ ध्वंस धातुका गति अर्थ भी जानना । अङ् परे रहते धातुके नकारका लोप होगा–अस्रसत् । अस्रंसिष्ट "नास्रसत् करिणां ग्रैवम्" ऐसा रघुवंशमें प्रयोग है । अस्रंसिष्ट । कोई २ भ्रंशु धातुका भी यही अर्थ कहतेहैं, इनमेंसे तीसरा धातु ही तालव्यशकारान्त है, यह किसी पंडितका मत है । दिवादि गणमें अधः पतनार्थमें भ्रशु और भ्रंशु धातु लिखी हैं॥स्रम्भु धातु विश्वास करनेमें है । अस्रभत् । अस्रम्भिष्ट । यह धातु दन्त्यादि हैं, कोई २ तालव्यादि भी कहते हैं, परन्तु यह उनका प्रमाद है ।

वृतु धातु वर्त्तनार्थमें है । वर्त्तते । ववृते ॥

२३४७ वृद्भ्यः स्यसनोः । १ । ३ । ९२ ॥

वृतादिभ्यः परस्मैपदं वा स्यात्स्ये सनि च ॥

२३४७–स्य और सन् प्रत्यय परे रहते वृतादि धातुओंके उत्तर विकल्प करके परस्मैपद हो ।

२३४८ न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः । ७ । २।५९॥

एभ्यः सकारादेरार्धधातुकस्येण्न स्यात्तङानयोरभावे । वर्त्स्यति–वर्तिष्यते । अवृतत् । अवर्तिष्ट । अवर्त्स्यत्–अवर्तिष्यत् ॥ २१ ॥ वृधु वृद्धौ । शृधु शब्दकुत्सायाम् । इमौ वृतिवत्॥२३॥ स्यन्दू प्रस्रवणे । स्यन्दते । सस्यन्दे । सस्यन्दिषे–सस्यन्त्से । सस्यन्दिध्वे–सस्यन्ध्वे । स्यन्दिता–स्यन्ता । वृद्भ्यः स्यसनोरिति परस्मैपदे कृते ऊदिल्लक्षणमन्तरङ्गमपि विकल्पं बाधित्वा चतुर्ग्रहणसामर्थ्यान्न वृद्भ्य इति निषेधः। स्यन्त्स्यति–स्यन्दिष्यते–स्यन्त्स्यते । स्यन्दिषीष्ट–स्यन्त्सीष्ट । द्युद्भ्यो लुङीति परस्मैपदपक्षे अङ् । नलोपः । अस्यदत् । अस्यन्दिष्ट–अस्यन्त । अस्यन्त्साताम् । अस्यन्त्सत । अस्यन्त्स्यत् । अस्यन्दिष्यत–अस्यन्त्स्यत ॥

२३४८–तङ् और आन(शानच्, कानच्)के अभाव होनेपर वृतादि चार धातुओंके उत्तर सकारादि आर्धधातुक प्रत्ययको इट् न हो, जैसे–वर्त्स्यति । वर्तिष्यते । अवृतत् । अवर्तिष्ट । अवर्त्स्यत्, अवर्तिष्यत् ॥ वृधु धातु वृद्धि अर्थमें है । शृधु धातु शब्द और कुत्सार्थमें है । इन दोनों धातुओंके वृतु धातुके समान रूप होंगे । स्यन्दू धातु प्रस्रवणमें है । स्यन्दते। सस्यन्दे । सस्यन्दिषे, सस्यन्त्से । सस्यन्दिध्वे, सस्यन्ध्वे । स्यन्दिता, स्यन्ता ।

"वृद्भ्यः स्यसनोः २३४७ " इस सूत्रसे परस्मैपद करनेपर ऊदिल्लक्षण अन्तरङ्ग भी विकल्पको बाधकर चतुर्ग्रहण सामर्थ्यके कारण " न वृद्भ्यः २३४८ " इस सूत्रसे इट् निषेध होगा–स्यन्त्स्यति , स्यन्दिष्यते, स्यन्त्स्यते । स्यन्दिषीष्ट, स्यन्त्सीष्ट । " द्युद्भ्यो लुङि२३४५" इस सूत्रसे परस्मैपद पक्षमें अङ् और नकारका लोप होकर–अस्यदत् । अस्यन्दिष्ट, अस्यन्त । अस्यन्त्साताम् । अस्यन्त्सत । अस्यन्त्स्यत् । अस्यन्दिष्यत, अस्यन्त्स्यत ॥

२३४९ अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु । ८ । ३ । ७२ ॥

एभ्यः परस्याप्राणिकर्तृकस्य स्यन्दतेः सस्य षो वा स्यात्।अनुष्यन्दते–अनुस्यन्दते वा जलम्। अप्राणिषु किम्।अनुस्यन्दते हस्ती। अप्राणिष्विति पर्युदासान्मत्स्योदके अनुष्यन्दते इत्यत्रापि पक्षे षत्वं भवत्येव प्राणिषु नेत्युक्तौ तु न स्यात्॥ ॥ २४ ॥ कृपू सामर्थ्ये ॥

२३४९–अनु, वि, परि, अभि और निपूर्वक अप्राणि कर्तृक स्यन्द धातुके सकारके स्थानमें विकल्प करके षकार हो, अनुष्यन्दते, अनुस्यन्दते वा जलम् । प्राणिकर्तृकमें अनुस्यन्दते हस्ती ।

'अप्राणिषु' इस पर्युदासके कारण 'मत्स्योदके अनुष्यन्दते' इस स्थलमें भी विकल्प करके षत्व होताही है, प्राणिकर्तृकमें नहीं हो, ऐसा कहते तो इस स्थानमें षत्व नहीं होता ॥ कृपू धातु सामर्थ्यार्थमें है ॥

२३५० कृपो रो लः । ८ । २ । १८॥

कृप उः इति च्छेदः । कृपेति लुप्तषष्ठीकम् । तच्चावर्तते । कृपो यो रेफस्तस्य लः स्यात् । कृपेर्ऋकारस्यावयवो यो रः रेफसदृशस्तस्य च लकारसदृशः स्यात् । कल्पते । चक्लृपे । चक्लृपिषे–चक्लृप्से इत्यादि स्यन्दिवत् ॥

२३५०–'कृप–उः' ऐसा पदच्छेद है 'कृप' यह लुप्तषष्ठ्यन्त है, उसकी आवृत्ति है, तब कृप धातुके रकारके स्थानमें लकार हो और कृप धातुके ऋकारका अवयव जो रेफ सदृश रकार उसको लकारसदृश आदेश हो, जैसे–कल्पते । चक्लृपे । चक्लृपिषे, चक्लृप्से, इत्यादि स्यन्दि धातुकी समान होंगे ॥

२३५१ लुटि च क्लृपः । १ । ३।९३॥

लुटि स्यसनोश्च क्लृपेः परस्मैपदं वा स्यात्॥

२३५१–लुट् लकार और स्य तथा सन् परे रहते कृप धातुके उत्तर विकल्प करके परस्मैपद हो ॥

२३५२ तासि च क्लृपः । ७ ।२।६०॥

क्लृपेः परस्य तासेः सकारादेरार्धधातुकस्य चेण्न स्यात्तङानयोरभावे । कल्प्तासि । कल्प्तास्थः । कल्पितासे–कल्प्तासे । कल्प्स्यति । कल्पिष्यते–कल्प्स्यते । कल्पिषीष्ट–क्लृप्सीष्ट । अक्लृपत् । अकल्पिष्ट–अक्लृप्त । अकल्प्स्यत् । अकल्पिष्यत–अकल्प्स्यत ॥ वृत् ॥ वृत्तः सम्पूर्णो द्युतादिर्वृतादिश्चेत्यर्थः ॥ २५ ॥

अथ त्वरत्यन्तास्त्रयोदशानुदात्तेतः षितश्च । घट चेष्टायाम् । घटते । जघटे । घटादयो मित इति वक्ष्यमाणेन मित्संज्ञा । तत्फलं तु णौ मितां ह्रस्व इति चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्यामिति च वक्ष्यते । घटयति । विघटयति । कथं तर्हि कमलवनोद्घाटनं कुर्वते ये, प्रविघाटयिता समुत्पतन् हरिदश्वः कमलाकरानिवेत्यादि । शृणु । घट सङ्घात इति चौरादिकस्येदम् । न च तस्यैवार्थविशेषे मित्त्वार्थमनुवादोऽयमिति वाच्यम्।नान्ये मितोऽहेताविति निषेधात् । अहेतौ स्वार्थे णिचि ज्ञपादिपञ्चकव्यतिरिक्ताश्चुरादयो मितो नेत्यर्थः। ॥ १ ॥ व्यथ भयसञ्चलनयोः । व्यथते ॥

२३५२–तङ् और आन (शानच्, कानच्) इन दोके अभाव रहते कृप धातुके परे स्थित तासि और सकारादि आर्धधातुक प्रत्ययको इट् न हो– कल्प्तासि । कल्प्तास्थः । कल्पितासे, कल्प्तासे । कल्प्स्यति । कल्पिष्यते, कल्प्स्यते । कल्पिषीष्ट, क्लृप्सीष्ट । अक्लृपत् । अकल्पिष्ट । अकल्प्स्यत् । अकल्पिष्यत, अकल्प्स्यत । वृतादि और द्युतादि धातु सम्पूर्ण हुए ॥

अब त्वर धातु पर्यन्त १३ अनुदात्तेत् और षित् धातु कहे जातेहैं । घट धातु चेष्टामें है । घटते । जघटे ।

"घटादयो मितः" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे मित् संज्ञा हुई, मित् संज्ञाका फल तो "मितां ह्रस्वः" इससे ह्रस्व और "चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् २३६२" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे चिण् और णमुल् प्रत्यय परे रहते धातुको विकल्प करके दीर्घ कहेंगे–घटयति । विघटयति ।

मितां ह्रस्वः इसको जागरूक रहते जो कहो "कमलवनोद्घाटनं कुर्वते ये" "प्रविघाटयिता समुत्पतन् हरिदश्वः कमलाकरानिव" इत्यादि स्थलमें दीर्घप्रयोग कैसे हुआ ? तो सुनो "घट संघाते" यह चुरादिगणीय घट धातुका प्रयोग है, यदि कहो कि, संघातार्थक चुरादिगणीय घट धातुके ही अर्थ विशेषमें, अर्थात् चेष्टार्थमें मित् संज्ञा होनेके निमित्त ऐसा अनुवाद है, सो भी "नान्ये मितोऽहेतौ" इस सूत्रसे मित् संज्ञाके निषेधके कारण नहीं कहसकते हो । अहेतु अर्थात् स्वार्थमें विहित णिच् परे रहते ज्ञपादि पांच धातु भिन्न चुरादि गणीय धातुकी मित्संज्ञा न हो ॥ व्यथ धातु भय और संचलनार्थमें है । व्यथते ॥

२३५३ व्यथो लिटि । ७ । ४ । ६८ ॥

व्यथोऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्याल्लिटि । हलादिःशेषापवादः । थस्य हलादिःशेषेण निवृत्तिः । विव्यथे ॥ २ ॥ प्रथ प्रख्याने । पप्रथे ॥ ३ ॥ प्रस विस्तारे । पप्रसे ॥ ४ ॥ म्रद मर्दने ॥ ५ ॥ स्खद स्खदने । स्खदनं विद्रावणम् ॥ ६ ॥ क्षजि गतिदानयोः । मित्त्वसामर्थ्यादनुपधात्वेपि चिण्णमुलोरिति दीर्घविकल्पः । अक्षाञ्जि-अक्षञ्जि । क्षाञ्जंक्षाञ्जम्–क्षञ्जंक्षञ्जम् ॥ ७ ॥ दक्ष गतिहिंसनयोः। योऽयं वृद्धिशैघ्ययोरनुदात्तेत्सु पठितस्तस्येहार्थविशेषे मित्त्वार्थोनुवादः ॥ ८ ॥ क्रप कृपायां गतौ ॥ ९ ॥ कदि क्रदि क्लदि वैक्लव्ये । वैकल्य इत्येके । त्रयोप्यनिदित इति नन्दी । इदित इति स्वामी । कदिक्रदी इदितौ, क्लदेति चानिदिताविति मैत्रेयः । कदिक्रदिक्लदी नामाह्वानरोदनयोः परस्मैपदिषूक्तानां पुनरिह पाठो मित्त्वार्थ आत्मनेपदार्थश्च ॥ १२ ॥ ञित्वरा संभ्रमे ॥ १३ ॥ घटादयः षितः । षित्त्वादङ् कृत्सु वक्ष्यते ॥

२३५३–लिट् परे रहते व्यथ धातुके अभ्यासको संप्रसारण हो, यह सूत्र हलादिःशेषका अपवाद है । "हलादिःशेषः" इस सूत्रसे थकारकी निवृत्ति हुई–विव्यथे ॥ प्रथ धातु प्रख्यानार्थमें है । पप्रथे ॥ प्रस धातु विस्तारमें है । पप्रसे ॥ म्रद धातु मर्दनार्थमें है ॥ स्खद धातु स्खदन, अर्थात् विद्रावणार्थमें है ॥ क्षजि धातु गति और दानार्थमें है ।

मित्त्वसामर्थ्यके कारण अनुपधाभूत अच् होनेपर भी "चिण्णमुलोः २७६२" इस सूत्रसे विकल्प करके दीर्घ होकर–अक्षाञ्जि, अक्षञ्जि । क्षाञ्जंक्षाञ्जम्, क्षञ्जंक्षञ्जम् ॥

दक्ष धातु गति और हिंसार्थमें है । जो दक्ष धातु वृद्धि और शैघ्र्यार्थमें आत्मनेपदीमें पढा है, उसका ही अर्थविशेषमें, अर्थात् गति और हिंसार्थमें मित्संज्ञाके निमित्त इस स्थलमें अनुवाद कियाहै ॥

क्रप धातु कृपा और गति अर्थमें है ॥ कदि, क्रदि और क्लदि धातु वैक्लव्य और किसी२के मतसे वैकल्य अर्थमें है । नन्दीके मतसे यह तीनों धातु अनिदित् हैं । स्वामीके मतसे इदित् हैं ॥ मैत्रेयके मतसे कदि और क्रदि धातु इदित्, और "क्रद, क्लद" दो धातु अनिदित् हैं । आह्वान और रोदनार्थमें परस्मैपदी धातुके मध्यमें उक्त कदि, क्रदि और क्लदि धातुका इस स्थलमें पाठ मित्त्वार्थ और आत्मनेपदार्थ जानना ॥ ञित्वरा धातु सम्भ्रमार्थमें है ॥

घटादि धातु षित् हैं । षित्त्वके कारण अङ् प्रत्यय कृदन्तमें कहेंगे ॥

अथ फणान्ताः परस्मैपदिनः ॥ ज्वर रोगे । ज्वरति । जज्वार ॥ १ ॥ गड सेचने । गडति । जगाड ॥ २ ॥ हेड वेष्टने । हेडृ अनादर इत्यात्मनेपदिषु गतः स एवोत्सृष्टानुबन्धोनूद्यते अर्थविशेषे मित्त्वार्थम् । परस्मैपदिभ्यो ज्वरादिभ्यः प्रागेवानुवादे कर्तव्ये तन्मध्येऽनुवादसामर्थ्यात्परस्मैपदम् । हेडति । जिहेड । हिडयति । अहीडि–अहिडि । अनादरे तु हेडयति ॥ ३ ॥ वट भट परिभाषणे । वट वेष्टने भट भृताविति पठितयोः परिभाषणे मित्त्वार्थोनुवादः ॥ ५ ॥ नट नृत्तौ । इत्थमेव पूर्वमपि पठितं तत्रायं विवेकः । पूर्वं पठितस्य नाट्यमर्थः । यत्कारिषु नटव्यपदेशः । वाक्यार्थाभिनयो नाट्यम् । घटादौ तु नृत्तं नृत्यं चार्थः । यत्कारिषु नर्तकव्यपदेशः । पदार्थाभिनयो नृत्यम् । गात्रविक्षेपमात्रं नृत्तम् । केचित्तु घटादौ नट नताविति पठन्ति । गतावित्यन्ये । णोपदेशपर्युदासवाक्ये भाष्यकृता नाटीतिदीर्घपाठाद् घटादिर्णोपदेश एव ॥ ६ ॥ ष्टक प्रतिघाते । स्तकति ॥ ७ ॥ चक तृप्तौ । तृप्तिप्रतिघातयोः पूर्वं पठितस्य तृप्तिमात्रे मित्त्वार्थो-

नुवादः । आत्मनेपदिषु पठितस्य परस्मैपदिष्वनुवादात्परस्मैपदम् ॥ ८ ॥ कखे हसने । एदित्वान्न वृद्धिः । अकखीत् ॥ ९ ॥ रगे शंकायाम् ॥ १० ॥ लगे सङ्गे ॥ ११ ॥ हगे ह्लगे षगे ष्टगे संवरणे॥१५॥ कगे नोच्यते । अस्यायमर्थ इति विशिष्य नोच्यते क्रियासामान्यार्थत्वात् । अनेकार्थत्वादित्यन्ये ॥ १६ ॥ अक अग कुटिलायां गतौ ॥ १८ ॥ कण रण गतौ । चकाण । रराण ॥ २० ॥ चण शण श्रण दाने च । शण गतावित्यन्ये ॥ २३ ॥

अत्र फण धातु पर्यन्त परस्मैपदी धातु कहतेहैं ।

ज्वर धातु रोगार्थमें है, ज्वरति । जज्वार॥ गड धातु सेचनार्थमें है । गडति । जगाड ॥

हेड धातु वेष्टनार्थमें है ॥ हेडृ धातु अनादरार्थमें आत्मनेपदी पूर्वमें कह आयेहैं, वही अनुबंधवर्जित अर्थविशेषमें मित्संज्ञार्थ अनूदित हुआहै । परस्मैपदी ज्वरादि धातुओंके पूर्वमें ही अनुवाद कर्तव्य होनेपर उसके मध्यमें अनुवादसामर्थ्यके कारण परस्मैपद होगा, हेडति । जिहेड । हिडयति । अहीडि, अहिडि । अनादरार्थमें तो ' हेडयति ' ऐसा होगा ॥

वट और भट धातु परिभाषणार्थमें हैं । वट धातु वेष्टनार्थमें और भट धातु भरणार्थमें पहले पठित हैं उनका परिभाषणार्थमें मित्त्वार्थ यहां अनुवाद है ॥

नट धातु नृत्यमें है । ऐसा ही पूर्वमें पढा है, वहां यह जानना चाहिये कि, पूर्व पठित धातुका अर्थ नाट्य है, जिसके करनेवालेको ' नट ' कहतेहैं । वाक्यार्थके अभिनयको नाट्य कहतेहैं । घटादिमें तो नट धातुका नृत्त और नृत्य अर्थ है, जिसको करनेवालेमें नर्त्तकव्यवहार होताहै । पदार्थाभिनयको नृत्य कहतेहैं । गात्रविक्षेपमात्रको नृत्त कहतेहैं । कोई तो घटादिमें नट धातुका नति अर्थ करतेहैं । कोई उसका गत्यर्थ कहतेहैं । णोपदेशपर्युदास वाक्यमें भाष्यकृतसे ' नाटि ' ऐसा दीर्घ पाठ करनेके कारण घटादि गणीय नट धातु णोपदेश ही है ॥

ष्टक धातु प्रतिघातमें है । स्तकति ॥

चक धातु तृप्तिमें है । तृप्ति और प्रतिघातार्थमें पूर्वमें पठित इस धातुका तृप्तिमात्रमें जो अनुवाद,वह मित्संज्ञार्थ जानना। आत्मनेपदी धातुके मध्यमें पठित धातुके परस्मैपदमें अनुवादके कारण परस्मैपद होगा ॥ कखे धातु हसन अर्थमें है । एकार इत् होनेके कारण वृद्धि न होकर--अकखीत् ॥ रगे धातु शंकार्थमें है ॥ लगे धातु सङ्ग अर्थमें है ॥

हगे, ह्लगे, षगे और ष्टगे धातु संवरणार्थमें हैं ॥ क्रियासामान्यार्थत्व और किसीके मतसे अनेकार्थत्वके कारण कगे धातु विशेष करके नहीं कहाजाताहै ॥ अक और अग धातु कुटिल गतिमें हैं ॥ कण और रण धातु गातम हैं । चकाण । रराण ॥ चण, शण और श्रण धातु दानार्थमें हैं । कोई २ कहतेहैं कि, शण धातु गतिमें है ॥

श्रथ श्लथ क्नथ क्रथ हिंसार्थाः । जासिनिप्रहणेतिसूत्रे क्राथेति मित्त्वेपि वृद्धिर्निपात्यते । क्राथयति । मित्त्वं तु निपातनात्परत्वाच्चिण्णमुलोरिति दीर्घे चरितार्थम् । अक्राथि-अक्रथि । क्राथंक्राथम्, क्रथंक्रथम् ॥ २७ ॥ वन च । हिंसायामिति शेषः ॥ २८ ॥ वनु च नोच्यते । वनु इत्यपूर्व एवायं धातुर्न तु तानादिकस्यानुवादः । उदित्करणसामर्थ्यात् । तेन क्रियासामान्ये वनतीत्यादि । प्रवनयति । अनुपसृष्टस्य तु मित्त्वविकल्पो वक्ष्यते ॥ २९ ॥ ज्वल दीप्तौ । णप्रत्ययार्थं पठिष्यमाण एवायं मित्त्वार्थमनूद्यत । प्रज्वलयति ॥ ३० ॥ ह्वल ह्मल चलने । प्रह्वलयति । प्रह्मलयति ॥ ३२ ॥ स्मृ आध्याने । चिन्तायां पठिष्यमाणस्य आध्याने मित्त्वार्थोऽनुवादः । आध्यानमुत्कण्ठापूर्वकं स्मरणम् ॥ ३३ ॥ दॄ भये, दॄ विदारणे इति क्र्यादेरयं मित्त्वार्थोऽनुवादः । दृणन्तं प्रेरयति दरयति । भयादन्यत्र दारयति । धात्वन्तरमेवेदमिति मते तु दरतीत्यादि । केचिद्घटादौ अस्मृदॄत्वरेति सूत्रे च दृ इति दीर्घस्थाने ह्रस्वं पठन्ति, तन्नेति माधवः ॥ ३४ ॥ नॄ नये । क्र्यादिषु पठिष्यमाणस्यानुवादः । नयादन्यत्र नारयति ॥ ३५ ॥ श्रा पाके, श्रै इति कृतात्वस्य श्रा इत्यदादिकस्य च सामान्येनानुकरणम्, लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्य लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणमिति परिभाषाभ्याम् । श्रपयति विक्लेदयतीत्यर्थः । पाकादन्यत्र श्रापयति । स्वेदयतीत्यर्थः ॥ ३६॥

श्रथ, श्लथ, क्नथ और क्रथ धातु हिंसार्थमें हैं । "जासिनिप्रहण० ६१७" इस सूत्रमें 'क्राथ' ऐसे निपातनके कारण मित्संज्ञा होनेपर भी वृद्धि होकर क्राथयति। मित्त्व तो निपातनसे परत्वके कारण "चिण्णमुलोः" इस सूत्रसे दीर्घविषयमें चरितार्थ होगा । अक्राथि, अक्रथि । क्राथम् क्राथंक्रथंक्रथम् ॥

वन धातु हिंसामें है । वनु ऐसा धातु नहीं कहतेहैं, कारण कि, वनु धातु अपूर्व है, उदित्करणसामर्थ्यके कारण तनादि धातुका अनुवाद नहीं है । इसलिये क्रियासामान्यमें 'वनति' इत्यादि पद होंगे । प्रवनयति । अनुपसृष्ट वनु धातुको तो मित्त्व विकल्प करके कहेंगे ॥

ज्वल धातु दीप्तिमें है । णप्रत्ययार्थ पठिष्यमाण यह धातु मित्त्वार्थ अनूदित है, प्रज्वलयति॥ ह्वल, ह्मल चलनार्थमें हैं । प्रह्वलयति । प्रह्मलयति ॥

स्मृ धातु आध्यानार्थमें है । चिन्तार्थमें पठिष्यमाण इस धातुका आध्यानार्थमें अनुवाद मित्संज्ञार्थ है । आध्यान शब्दसे

उत्कंठापूर्वक स्मरण जानना ॥ दॄ धातु भय अर्थमें है, 'दॄ विदारणे' इस क्र्यादिगणीय धातुका यहां मित्संज्ञार्थ अनुवाद है । दृणन्तं प्रेरयति=दरयति । भयभिन्नार्थमें दारयति । यह धात्वन्तर ही है इस मतमें 'दराति' इत्यादि पद होंगे । किसी २ ने घटादिमें और "अत्स्मृ दॄ त्वर २५६६" इस सूत्रमें दॄ ऐसे दीर्घके स्थानमें ह्रस्व पाठ कियाहै, परन्तु माधवके मतसे वह ठीक नहीं है ॥

नॄ-धातु नयार्थमें है, यह क्र्यादिके मध्यमें पठिष्यमाणका अनुवाद है । नयभिन्नार्थमें नारयति ॥

श्रा धातु पाक करनेमें है, "लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्य" १, "लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्" २, अर्थात् लुग्विकरण और अलुग्विकरणके ग्रहणमें जहां संदेह हो वहां अलुग्विकरणका ही ग्रहण हो, जो सूत्रसे कार्य होकर बना हो वह लाक्षणिक और जो स्वाभाविक है, वह प्रतिपदोक्त होताहै, उन लाक्षणिक और प्रतिपदोक्तके बीचमें जहां संदेह पडे वहां प्रतिपदोक्तकाही ग्रहण हो लाक्षणिकका नहीं। इन दो परिभाषाबलसे श्रै धातुके ऐकारके स्थानमें आकार करके जो श्रा धातु हुआ है, उसका और अदादिगणीय श्रा धातुका इस स्थानमें सामान्यसे अनुकरण कियाहै । श्रपयति, अर्थात् विक्लेदन करताहै । पाकभिन्नार्थमें श्रापयति, अर्थात् घर्म (पसीना) करताहै ॥

मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा । निशामनं चाक्षुषज्ञानमिति माधवः । ज्ञापनमात्रमित्यन्ये । निशानेष्विति पाठान्तरम् । निशानं तीक्ष्णीकरणम् । एष्वेवार्थेषु जानातिर्मित् । ज्ञप मिच्चेति चुरादौ ज्ञापनं मारणादिकं च तस्यार्थः । कथं विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेतीति तज्ज्ञापयत्याचार्य इति च । शृणु । माधवमतेऽचाक्षुषज्ञाने मित्त्वाभावात् । ज्ञापनमात्रे मित्त्वमिति मते तु ज्ञा नियोग इति चौरादिकस्य। धातूनामनेकार्थत्वात्। निशानेष्विति पठतां हरदत्तादीनां मते तु न काप्यनुपपत्तिः ॥ ३७ ॥ कम्पने चलिः । चल कम्पने इति ज्वलादिः । चलयति शाखाम् । कम्पनादन्यत्र तु शीलं चालयति अन्यथा करोतीत्यर्थः । हरतीत्यर्थ इति स्वामी । सूत्रं चालयति । क्षिपतीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ छदिरूर्जने । छद अपवारण इति चौरादिकस्य स्वार्थे णिजभावे मित्त्वार्थोयमनुवादः । अनेकार्थत्वादूर्जेऽर्थे वृत्तिः । छदन्तं प्रयुंक्ते छदयति । बलवन्तं प्राणवन्तं वा करोतीत्यर्थः । अन्यत्र छादयति । अपवारयन्तं प्रयुंक्ते इत्यर्थः । स्वार्थे णिचि तु छादयति । बलीभवति । प्राणीभवति । अपवारयति वेत्यर्थः ॥ ३९॥ जिह्वोन्मथने लडिः । लड विलास इति पठितस्य मित्त्वार्थोनुवादः । उन्मथनं ज्ञापनम् । जिह्वाशब्देन षष्ठीतत्पुरुषः । लडयति जिह्वाम्।तृतीयातत्पुरुषो वा। लडयति जिह्वया । अन्ये तु जिह्वाशब्देन तद्व्यापारो लक्ष्यते । समाहारद्वन्द्वोयम् । लडयति शत्रुम् । लडयति दधि । अन्यत्र लाडयति पुत्रम् ॥४०॥ मदी हर्षग्लेपनयोः । ग्लेपनं दैन्यम् । दैवादिकस्य मित्त्वार्थोयमनुवादः । मदयति । हर्षयति। ग्लेपयति वेत्यर्थः । अन्यत्र मादयति । चित्तविकारमुत्पादयतीत्यर्थः ॥ ४१ ॥ ध्वन शब्दे । भाव्ययं मित्त्वार्थमनूद्यते । ध्वनयति घण्टाम् । अन्यत्र ध्वानयति । अस्पष्टाक्षरमुच्चारयतीत्यर्थः ॥ ४२ ॥ अत्र भोजः; दलि-वलि-स्खलि-रणि-ध्वनि-त्रपि-क्षपयश्चेति पपाठ । तत्र ध्वनिरणी उदाहृतौ । दल विशरणे । वल संवरणे।स्खल सञ्चलने।त्रपूष् लज्जायामिति। गताः। तेषां णौ दलयति। वलयति । स्खलयति त्रपयति । क्षै क्षये इति वक्ष्यमाणस्य कृतात्वस्य पुका निर्देशः । क्षपयति ॥ ४९ ॥ स्वन अवतंसने । शब्दे इति पठिष्यमाणस्यानुवादः । स्वनयति । अन्यत्र स्वानयति ॥ ९० ॥

मारण, तोषण और निशामनार्थमें ज्ञा धातु मित्संज्ञक हो । माधवके मतसे निशामन शब्दसे चाक्षुष ज्ञान और अन्य मतसे ज्ञानार्थ जानना । 'निशानेषु' ऐसा पाठान्तर है, निशान शब्दसे तीक्ष्णीकरण जानना । इन सम्पूर्ण अर्थोंमें ही ज्ञा धातु मित्संज्ञक हो ॥

"ज्ञप मिच्च" ज्ञप धातु भी मित्संज्ञक हो, यह चुरादिमें पठित है उसका ज्ञापन और मारण अर्थ है ।

ज्ञा वा ज्ञप धातुको मित्त्व होनेपर 'विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति' इस स्थलमें 'विज्ञापना' यह पद और 'तज्ज्ञापयत्याचार्यः' इस स्थलमें 'ज्ञापयति' यह पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ ? इस पर कहतेहैं कि, माधवके मतसे अचाक्षुषज्ञानमें मित्त्वाभाव है, इससे 'विज्ञापना' आदि प्रयोग होसकतेहैं ज्ञापनमात्रमें मित्त्व हो इस मतसे तो 'ज्ञा नियोगे' इस चौरादिक धातुका होगा, अर्थभेद नहीं कहसकते हो कारण कि, धातुको अनेकार्थत्व है । जो 'निशानेषु' ऐसे पढतेहैं, उन हरदत्तादिके मतमें तो कुछ भी अनुपपत्ति नहीं है ॥

कम्पनार्थमें चल धातु मित्संज्ञक हो । चल धातु कंपनार्थमें है, यह धातु ज्वलादि है । चलयति शाखाम् । कम्पभिन्नार्थमें (शीलञ्चालयति) ऐसा प्रयोग होगा । चालन शब्दसे अन्यथाकरण और स्वामीके मतसे हरणार्थ जानना, 'सूत्रं' चालयति, अर्थात् निक्षेप करताहै ॥

ऊर्ज, अर्थात् बल और प्राणनार्थमें छदि धातु मित्संज्ञक हो । अपवारणार्थक चुरादिगणीय छद धातुके उत्तर स्वार्थिक

णिच्के अभाव पक्षमें मित् संज्ञाके निमित्त यहां अनुवाद जानना। अनेकार्थत्वके कारण ऊर्जार्थमें वृत्ति है। 'छदन्तं प्रयुङ्क्ते' इस वाक्यमें छदयति, अर्थात् बलवन्त और प्राणवन्त करताहै । अन्यार्थमें छादयति, अर्थात् अपवारण करनेवालेको प्रयुक्त करताहै, स्वार्थ णिच्में तो छादयति, अर्थात् बली होताहै, प्राणी होताहै अथवा अपवारण करताहै ऐसे अर्थ होंगे ॥

लड धातु जिह्वाके उन्मथनार्थमें मित्संज्ञक हो। यहां विलासार्थक लड धातुका मित्संज्ञार्थ अनुवाद है । उन्मथन शब्दसे ज्ञापनार्थ जानना । जिह्वा शब्दके साथ उन्मथन शब्दका षष्ठीतत्पुरुष अथवा तृतीयातत्पुरुष समास है । लडयति जिह्वाम् । लडयति जिह्वया । कोई तो कहतेहैं कि, जिह्वा शब्दसे तद्व्यापार लक्षित होताहै, 'जिह्वोन्मथने' यह समाहार द्वन्द्व है । लडयति शत्रुम् । लडयति दधि । अन्यार्थमें पुत्रं लाडयति ॥

मदी धातु हर्ष और ग्लेपन,अर्थात् दैन्यार्थमें है । दिवादिगणीय धातुकी मित्संज्ञार्थ यहां अनुवाद है । मदयति, हर्षयति, ग्लेपयति वेत्यर्थः। अन्यार्थमें मादयति,अर्थात् चित्तविकारको उत्पादन करताहै । ध्वन धातु शब्द करनेमें है । फणादि गणके मध्यमें पठिष्यमाण इस धातुका मित्त्वार्थ यहां अनुवाद है ध्वनयति घंटाम् । अन्यार्थमें ध्वानयति, अर्थात् अस्पष्टाक्षरको उच्चारण करताहै । यहां भोजराज दलि, वलि, स्खलि, रणि, ध्वनि, त्रपि और क्षपि धातु मित् हों, ऐसा पढतेहैं, उनमें ध्वनि और रणि धातु उदाहृत हैं ॥

दल धातु विशरणार्थमें, वल धातु संवरणमें, स्खल धातु संचलनमें, त्रपूष् धातु लज्जा करनेमें कह गये हैं उनको णिच् परे दलयति, वलयति, स्खलयति, त्रपयति । क्षयार्थमें वक्ष्यमाण कृतात्व क्षै धातुके पुक् करके निर्देश यहां है, क्षपयति ॥ स्वन धातु अवस्रंसनमें है । शब्दार्थमें पठिष्यमाण स्वन धातुका यहां अनुवाद है । स्वनयति । अन्यार्थमें स्वानयति ॥

घटादयो मितः ॥ मित्संज्ञा इत्यर्थः ॥ जनी-जृष्-क्नसु-रञ्जोऽमन्ताश्च ॥ मित इत्यनुवर्तते । जृषिति षित्वनिर्देशाज्जीर्यतेर्ग्रहणम् । जृणातेस्तु जारयति । केचित्तु जनी जॄ ष्णसु इति पठित्वा ष्णसु निरसने इति दैवादिकमुदाहरन्ति ॥९४॥ ज्वल-ह्वल-ह्मल-नमामनुपसर्गाद्वा ॥ एषां मित्त्वं वा । प्राप्तविभाषेयम् । ज्वलयति-ज्वालयति । उपसृष्टे तु नित्यं मित्त्वम् । प्रज्वलयति । कथं तर्हि प्रज्वालयति, उन्नामयतीति । घञन्तात्तत्करोतीति णौ । कथं संक्रामयतीति । मितां ह्रस्व इति सूत्रे वा चित्तविराग इत्यतो वेत्यनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणादिति वृत्तिकृत् । एतेन रजो विश्रामयन् राज्ञाम्, धुर्यान्विश्रामयति स इत्यादि व्याख्यातम् ॥ ९८ ॥ ग्ला-स्ना-वनु-वमां च अनुपसर्गादेषां मित्त्वं वा स्यात् । आद्ययोरप्राप्ते इतरयोः प्राप्ते विभाषा ॥ ६२ ॥

घटादि धातु मित्संज्ञक हों ।

जनी, जृष्, क्नसु, रञ्ज और अमन्त धातु मित्संज्ञक हों । जृष्धातुमें षित्व निर्देशके कारण दैवादिक जृष्धातुका ग्रहण है । क्र्यादिक जॄ धातुका तो 'जारयति' ऐसा होगा । कोई २ 'जनी, जॄ ष्णसु' ऐसा पाठ करके "ष्णसु निरसने" इस दैवादिक धातुका उदाहरण करतेहैं ॥

ज्वल, ह्वल, ह्मल और नम धातुको विकल्प करके मित्त्व हो । ज्वलयति, ज्वालयति । उपसृष्टार्थमें तो नित्य मित्त्व होगा, प्रज्वलयति, प्रज्वालयति । उन्नामयति, यह पद तो घञन्त ज्वाल और नाम शब्दके उत्तर "तत्करोति तदाचष्टे" इससे णिच् करके सिद्ध हुआहै ।

अमन्तको मित्त्व होनेसे'संक्रामयति' यह पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ ? इस विषयमें कहतेहैं कि, "मितां ह्रस्वः २५६८" इस सूत्रमें "वा चित्तविरागे २६०५" इस सूत्रसे 'वा' इस पदकी अनुवृत्ति करके व्यवस्थित विभाषा श्रवणके कारण कहीं मित्त्व नहीं भी होगा,यह वृत्तिकारका मत है इसीसे'रजो विश्रामयन् राज्ञाम्' 'धुर्यान् विश्रामयेति सः' इत्यादि भी सिद्ध हुए ॥

उपसर्गके परे स्थित ग्ला, स्ना, वनु और वम धातुको विकल्प करके मित्त्व हो । आद्य दो धातुको प्राप्त होनेपर औरको अप्राप्त होनेपर यह विकल्प करके मित्त्व विधान है ॥

न कम्यमिचमाम् ॥ अमन्तत्वात्प्राप्तं मित्त्वमेषां न स्यात् । कामयते । आमयति । चामयति ॥ ६५ ॥ शमो दर्शने ॥ शाम्यतिर्दर्शने मिन्न स्यात् । निशामयति रूपम् । अन्यत्र तु प्रणयिनो निशमय्य वधूः कथाः । कथं तर्हि निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतो ममेति । शम आलोचन इति चौरादिकस्य । धातूनामनेकार्थत्वाच्छ्रवणे वृत्तिः, शाम्यतिवत् ॥६६॥ यमोऽपरिवेषणे ॥ यच्छतिर्भोजनतोऽन्यत्र मिन्न स्यात् । आयामयति । द्राघयति । व्यापारयति वेत्यर्थः । परिवेषणे तु । यमयति ब्राह्मणान् भोजयतीत्यर्थः । पर्यवसितं नियमयन्नित्यादि तु नियमवच्छब्दात्तत्करोतीति णौ बोध्यम्६७॥ स्खदिरवपरिभ्यां च ॥ मिन्नेत्येव । अवस्खादयति । परिस्खादयति । अपावपरिभ्य इति न्यासकारः । स्वामी तु न कमीति नञमुत्तरत्रिसूत्र्यामननुवर्त्य शम अदर्शने इति चिच्छेद । यमस्त्वपरिवेषणे मित्त्वमाह । तन्मते पर्यवसितं नियमयन्नित्यादि सम्यगेव । उपसृष्टस्य स्खदेश्चेदेवादिपूर्वस्येति नियमात्प्रस्खादयतीत्याह । तस्माद् सूत्रद्वये उदाहरणप्रत्युदाहरणयोर्व्यत्यासः

फलितः । इदं च मतं वृत्तिन्यासादिविरोधादुपेक्ष्यम् ॥ ६९ ॥ फण गतौ ॥ नेति निवृत्तमसम्भवात् । निषेधात्पूर्वमसौ न पठितः। फणादिकार्यानुरोधात् ॥

कम्, अम्, चम् धातुको अमन्तत्वके कारण प्राप्त मित्व नहीं हो, कामयते । आमयति । चामयति ॥

शम् धातु दर्शन अर्थमें मित् न हो । निशामयति । अन्यार्थमें तो (प्रणयिनो निशमय्य वधूः कथाः) दर्शन ही अर्थमें मित्वका निषेध होनेसे ' निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतो मम ' इस स्थलमें किस प्रकारसे वृद्धि हुई ? इसपर कहतेहैं कि, इस स्थलमें आलोचनार्थक चुरादिगणीय शम धातुका प्रयोग है, धातुओंके अनेकार्थत्वके कारण शम धातुकी समान श्रवणार्थमें वृत्ति है ॥

यम धातु भोजनभिन्न अर्थमें मित् न हो, आयामयति, अर्थात् द्राघयति, अथवा व्यापारयति । परिवेषणार्थमें यमयति ब्राह्मणान्, अर्थात् भोजन कराताहै ।

'पर्य्यवसितं नियमयन्' इत्यादि तो नियमवत् शब्दसे "तत्करोति" इससे णिच् करके सिद्ध हुआ है, ऐसा जानना।

अव और परिपूर्वक स्खद् धातु मित् न हो, अवस्खादयति। परिस्खादयति । न्यासकारके मतसे अप, अव, और परिपूर्वक स्खद धातु मित् नहीं होगा। स्वामीने तो "नकामि०" इस सूत्रसे उत्तर तीन सूत्रोंमें 'नञ्' की अनुवृत्ति न करके "शमः अदर्शने" ऐसा छेद किया है । और 'अपरिवेषण' अर्थमें यम धातुको मित् कहाहै । उनके मतमें 'पर्य्यवसितं नियमयन्' इत्यादि पद समीचीन ही है । सोपसर्ग स्खद धातुको मित्व हो तो अवादि पूर्वक ही को हो इस नियमसे 'प्रस्खादयति' ऐसा कहतेहैं, इस कारण दोनों सूत्रोंके उदाहरण, प्रत्युदाहरणोंमें व्यत्यास फलित हुआ । वृत्तिकार और न्यासकारको असम्मत होनेके कारण यह मत त्याग करने योग्य है ।*

फण धातु गतिमें है । 'न' यह पद निवृत्त हुआ, क्योंकि, असम्भव है, अर्थात् जब मित्वकी प्राप्ति कहीं नहीं तो निषेध किसका ? फणादि कार्यके अनुरोधसे निषेधके पूर्व यह नहीं पठित हुआहै ॥

२३५४ फणां च सप्तानाम्।६।४।१२५॥

एषां वा एत्वाभ्यासलोपौ स्तः किति लिटि सेटि थलि च । फेणतुः । फेणुः । फेणिथ । पफणतुः । पफणुः । फणयति ॥ वृत् ॥ घटादिः समाप्तः ॥ फणेः प्रागेव वृदित्येके । तन्मते फाणयतीत्येव ॥ ७० ॥ राजृ दीप्तौ । स्वरितेत् । राजति । राजते । रेजतुः-रराजतुः । रेजे-रराजे । अत इत्यनुवृत्तावपि विधानसामर्थ्यादात एत्वम् ॥ ७१ ॥ टुभ्राजृ टुभ्राशृ टुभ्लाशृ दीप्तौ । अनुदात्तेतः । भ्राजतेरिह पाठः फणादिकार्यार्थः । पूर्वं पाठस्तु व्रश्चादिषत्वाभावार्थः । तत्र हि राजिसाहचर्यात् फणादेरेव ग्रहणम् । भ्रेजे-बभ्राजे । वा भ्राशेति श्यन्वा । भ्राश्यते-भ्राशते । भ्रेशे-बभ्राशे । भ्लाश्यते-भ्लाशते । भ्लेशे-बभ्लाशे । द्वाव-

*(यमोऽपरिवेषणे) यम् धातु भोजना अर्थसे अन्यत्र मित् न हो, यहां 'यम्-उपरमे' यह धातु समझना चाहिये । भोजना शब्द "रायासश्रन्थो युच् ३२८४" इस सूत्रसे युच् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग है, और 'परिवेषण' यहां भोजनानुकूलव्यापार है, (यहांपर परोसना अर्थ लियाहै) इससे अन्य अर्थमें मित्का निषेध है और इस सूत्रमें "न कम्यमिचमाम्" इस सूत्रसे 'न' इस पदकी अनुवृत्ति होती है, इस कारण यह अर्थ हुआ कि, यम धातु भोजनार्थमें तो मित् है जैसे-यमयति ब्राह्मणान्, यहां मित् होनेका फल णि प्रत्यय परे रहते यमके आकारको ह्रस्व होना है (२५६८) भोजनासे अन्यत्र यम धातु मित् नहीं होता,जैसे-आयामयति-द्राघयति, व्यापारयति वेत्यर्थः।यहां यम धातुको ह्रस्व न हुआ।यदि कोई कहै कि, 'पर्य्यवसितं नियमयन्' इत्यादि प्रयोगोंमें भोजना अर्थके न होनेपर भी मित्संज्ञाका फल ह्रस्व दीखताहै, सो कैसे हुआ ? इसका उत्तर यह है कि, उक्त प्रयोगमें नियमवत् शब्दसे 'करोति' इस अर्थमें णिच् प्रत्यय करनेसे होताहै, ऐसा जानना । इसी प्रकार "शमो दर्शने" "स्खदिरवपरिभ्यां च" इन दोनों सूत्रोंमें भी पूर्वोक्त सूत्रसे ही 'न' इस पदकी अनुवृत्ति होतीहै, इससे यह अर्थ हुआ कि, 'शम धातु दर्शन अर्थमें मित् न हो' इसका उदाहरण यह है-निशामयति रूपम् । दर्शनसे अन्यत्र मित् होताहै,इसका उदाहरण-'प्रणयिनो निशमय्य वधूः कथाः' है,यहां मित् होनेसे शम धातुको ह्रस्व होगया । यदि कोई कहै कि, "निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतो मम" इस दुर्गासप्तशतीके श्लोकमें शम धातुका श्रवण अर्थ है,तो मित् होकर ह्रस्व क्यों न हुआ ? तो इसका उत्तर यह है कि, यहां 'शम-आलोचने' यह चुरादि गणका धातु है और आलोचनका अर्थ यहां श्रवण है, क्योंकि, धातुओंका अनेक अर्थ होताहै और चुरादि गण ज्ञपादि पांच धातुओंके सिवाय और धातु स्वार्थणिच्में मित् नहीं होते इस कारण मित् न होनेसे ह्रस्व नहीं हुआ । इसी प्रकार तीसरे सूत्रका अर्थ यह है कि, अव और परि इन दो उपसर्गोंसे आगे स्खद धातु मित् नहीं होता इसके उदाहरण यह हैं-'अवस्खादयति, परिस्खादयति' इन दोनों प्रयोगोंमें मित् न होनेसे ह्रस्व न हुआ । न्यासकार तो कहतेहैं कि, 'अव, परि, अप' इन तीन उपसर्गोंसे आगे स्खद धातु मित् नहीं होता । अब स्वामीने तो "न कम्यमिचमाम्" इस गण सूत्रसे 'न' इस पदकी 'अनुवृत्ति' अगले तीनों सूत्रोंमें न करके "शमोदर्शने" इस गण सूत्रमें "शमः अदर्शने" ऐसा पदच्छेद करके 'शम धातु अदर्शनमें' मित् हो ऐसा अर्थ कियाहै । यद्यपि इस अर्थमें किसी प्रकारका पूर्वोक्त उदाहरणोंमें दोष नहीं आता, तो भी ' यमोपरिवेषणे ' इसके उदाहरण तथा प्रत्युदाहरणमें वैपरीत्य दोष आवेगा, क्योंकि पूर्व अर्थमें यम धातु परिवेषण अर्थमें मित् होताथा, अब नहीं होगा । इस प्रकार इनके मतमें 'पर्य्यवसितं नियमयन्' इत्यादि प्रयोग ठीक रहेंगे, और सोपसर्ग स्खद मित्व होते अव परि उपसर्गसे ही परको हो अन्यको नहीं, ऐसा नियम मानकर प्र उपसर्गसे परे स्खद धातुको मित् मानकर 'प्रस्खादयति' ऐसा रूप (स्वामीने) माना है, इस कारण इस सूत्रके भी उदाहरण, प्रत्युदाहरणोंमें व्यत्यास अर्थात् वैपरीत्य होगा, परन्तु यह स्वामीका मत वृत्तिकार और न्यासकारके मतसे विरुद्ध होनेसे त्याज्य है ॥

पीमौ तालव्यान्तौ ॥ ७४ ॥ स्यमु स्वन ध्वन शब्दे । स्यमादयः क्षरत्यन्ताः परस्मैपदिनः । स्येमतुः-सस्यमतुः । अस्यमीत् । स्वेनतुः-सस्वनतुः । सस्वनुः । अस्वानीत्-अस्वनीत् । विष्वणाति । अवष्वणति । सशब्दं भुंक्ते इत्यर्थः । वेश्च स्वन इति षत्वम् । फणादयो गताः ॥ दध्वनतुः ॥ ३ ॥ षम ष्टम अवैकल्ये । ससाम । तस्ताम॥५॥ज्वल दीप्तौ । अतो ल्रांतस्य।अज्वालीत् ॥६॥चल कम्पने॥७॥ जल घातने । घातनं तैक्ष्ण्यम् ॥ ८ ॥ टल ट्वल वैक्लव्ये ॥ १० ॥ ष्ठल स्थाने ॥ ११ ॥ हल विलेखने ॥१२॥ णल गन्धे । बन्धन इत्येके ॥ १३ ॥ पल गतौ । पलति ॥ १४ ॥ बल प्राणने धान्यावरोधने च। बलति । बेलतुः । बेलुः ॥ १५ ॥ पुल महत्त्वे ॥ पोलति ॥ १६ ॥ कुल संस्त्याने बन्धुषु च । संस्त्यानं सङ्घातः । बन्धुशब्देन तद्व्यापारो गृह्यते । कोलति । चुकोल ॥ १७ ॥ शल हुल पत्लृ गतौ । शशाल । जुहोल । पपात । पेततुः। पतिता ॥

२३५४-कित् लिट् और सेट् थल् परे रहते फणादि सात धातुओंको विकल्प करके एत्व और अभ्यासका लोप हो । फेणतुः । फेणुः । फेणिथ । पफणथुः । पफणुः । फणयति । (वृत्) घटादि धातु समाप्त हुए । कोई कहते हैं कि फणादि धातुके पूर्वमें ही 'वृत्' है, उनके मतमें 'फाणयति' पद सिद्ध होताहै ॥

राजृ धातु दीप्तिमें है । यह उभयपदी है । राजति। राजते। रेजतुः,रराजतुः।रेजे, रराजे"अतः एक०२२६०"से'अतः' इस पदकी अनुवृत्ति (२३५४ में) होनेपर भी विधान (फणादिमें 'राज' के पाठ) सामर्थ्यसे आकारके स्थानमें एकार होताहै ॥

भ्राजृ, भ्राशृ और भ्लाशृ धातु दीप्तिमें हैं, यह आत्मनेपदी इस स्थलमें भ्राज धातुका पाठ फणादिकार्यार्थ है और पूर्वमें पाठ "व्रश्च० २९४" से षत्वके अभावार्थ है, क्योंकि, उस (२९४) में राज धातुके साहचर्य्यसे फणादिका ही ग्रहण होता है । भ्रेजे, बभ्राजे ॥

"वा भ्राश० २३२१" इस सूत्रसे विकल्प करके श्यन् हो । भ्राश्यते, भ्राशते । भ्रेशे, बभ्राशे । भ्लाश्यते, भ्लाशते । भ्लेशे, बभ्लाशे । यह दोनों धातु तालव्यान्त हैं ।

स्यमु,स्वन और ध्वन धातु शब्दमें हैं । स्यमादि क्षरत्यन्त धातु परस्मैपदी हैं । स्येमतुः, सस्यमतुः । अस्यमीत्॥ स्वेनतुः, सस्वनतुः । सस्वनुः । अस्वानीत्, अस्वनीत् । विष्वणति। अवष्वणाति । अर्थात् शब्दसहित भोजन करताहै । "वेश्च स्वनः २२७४" इस सूत्रसे षत्व होताहै । फणादि धातुसमाप्त हुए । दध्वनतुः ॥

षम और ष्टम धातु अवैकल्पमें हैं । ससाम । तस्ताम । ज्वल धातु दीप्तिमें है । "अतो ल्रान्तस्य २२३०" इस सूत्रसे 'अज्वालीत्' पद होताहै । चल धातु कंपनमें, जल धातु घातन अर्थात् तीक्ष्णतामें है । टल और ट्वल धातु वैक्लव्यमें हैं । ष्ठल धातु स्थानमें है । हल धातु विलेखनमें है । णल धातु गंधमें है । किसीके मतमें बंधनार्थमें भी है । पल धातु गतिमें है । पलति । बल धातु प्राणन और धान्यावरोधनमें है। बलति । बेलतुः । बेलुः ॥ पुल धातु महत्त्वमें है । पोलति ॥ कुल धातु संस्त्यान और बन्धुमें है । संस्त्यान शब्दसे समूह और बन्धु शब्दसे तद्व्यापारका ग्रहण है । कोलति । चुकोल ॥ शल, हुल और पत्लृ धातु गतिमें हैं । शशाल । जुहोल । पपात । पेततुः । पतिता ॥

२३५५ पतः पुम् । ७ । ४ । १९ ॥

अङि परे । अपप्तत्।नेर्गदेति णत्वम् । प्रण्यपप्तत् ॥२०॥ कथे निष्पाके । कथति । चकाथ । अकथीत् ॥ २१ ॥ पथे गतौ । अपथीत् ॥२२॥ मथे विलोडने । मेथतुः।अमथीत् ॥ २३ ॥ टुवम उद्गिरणे । इहैव निपातनादृत इत्त्वमिति सुधाकरः । ववाम।ववमतुः। वादित्वादेत्त्वाभ्यासलोपौ न । भागवृत्तौ तु वेमतुरित्याद्यप्युदाहृतं तद्भाष्यादौ न दृष्टम् ॥ २४ ॥ भ्रमु चलने । वा भ्राशेति श्यन्वा । भ्रम्यति-भ्रमति । भ्राम्यतीति तु दिवादेर्वक्ष्यते ॥

२३५५-अङ् परे रहते पत धातुको पुम्का आगम हो, अपप्तत् । "नेर्गद० २२८५" इस सूत्रसे णत्व होकर-प्रण्यपप्तत् ॥ कथे धातु निष्पाकमें है । कथति । चकाथ । अकथीत् ॥ पथे धातु गतिमें है । अपथीत् । मथे धातु विलोडनमें है । मेथतुः । अमथीत् । टुवम धातु उद्गिरणमें है । इसी स्थलमें निपातनसे ऋकारान्त गृ धातुको इत्व हुआ, यह सुधाकरका मत है । ववाम । ववमतुः, यहां वकारादित्वके कारण एत्व और अभ्यासका लोप न हुआ । भ्रमु धातु चलनमें है "वा भ्राश०२३२१" इस सूत्रसे विकल्प करके श्यन् होकर-भ्रम्यति, भ्रमति । भ्राम्यति, यह तो दिवादि धातुका रूप कहेंगे ॥

२३५६ वा जृभ्रमुत्रसाम् ।६।४।१२४॥

एषामेत्त्वाभ्यासलोपौ वा स्तः किति लिटि सेटि थलि च । भ्रेमतुः-बभ्रमतुः । अभ्रमीत् ॥ ॥ २५ ॥ क्षर सञ्चलने । अक्षारीत् ॥ २६ ॥

अथ द्वावनुदात्तेतौ ॥ षह मर्षणे । परिनिविभ्य इति षत्वम् । परिषहते । सेहे । सहिता । तीषसहेति वा इट् । इडभावे ढत्वधत्वष्टुत्वढलोपाः ॥

२३५६-कित् लिट् और सेट् थल् परे रहते जृ, भ्रम और त्रस धातुको विकल्प करके एत्व और अभ्यासका लोप हो, भ्रेमतुः, बभ्रमतुः । अभ्रमीत् ॥ क्षर धातु संचलनमें है । अक्षारीत् ॥

अब दो अनुदात्तेत् धातु कहतेहैं।

षह धातु मर्षणमें है। "परिनिविभ्यः० २२७५" इस सूत्रसे षत्व होकर–परिषहते। सेहे। सहिता। "तीषसह० २३४०" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् होगा, इडभावपक्षमें ढत्व, धत्व, ष्टुत्व और ढलोप होगा॥

२३५७ सहिवहोरोदवर्णस्य।६।३।११२॥

अनयोरवर्णस्य ओत्स्यात् ढलोपे सति॥

२३५७–ढकारका लोप होनेपर सह और वह धातुके वर्णके स्थानमें ओकार हो–॥

२३५८ सोढः।८।३।११५॥

सोढ्रूपस्य संहः सस्य षत्वं न स्यात्।परिसोढा॥

२३५८–सोढ् रूपको प्राप्त हुए सह धातुके सकारको षत्व न हो, परिसोढा॥

२३५९ सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि। ८।३।७१॥

परिनिविभ्यः परेषां सिवादीनां सस्य षो वा स्यादड्व्यवायेपि। पर्यषहत–पर्यसहत॥१॥ रमु क्रीडायाम्। रेमे। रेमिषे। रन्ता। रंस्यते। रंसीष्ट। अरंस्त॥२॥

अथ कसन्ताः परस्मैपदिनः॥ षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु॥

२३५९–अड्व्यवाय रहते भी परि, नि और वि के परे स्थित सिवादि धातुके सकारको विकल्प करके षत्व हो, पर्य्यषहत, पर्यसहत॥ रमु धातु क्रीडामें है। रेमे। रेमिषे। रन्ता। रंस्यते। रंसीष्ट। अरंस्त॥

अब कसन्त परस्मैपदी धातु कहतेहैं।

षद्लृ धातु विसरण, गति और अवसादनार्थमें हैं॥

२३६० पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः।७।३।७८॥

पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे। सीदति। ससाद। सेदतुः। सेदिथ–ससत्थ। सत्ता। सत्स्यति। लृदित्वादङ्। असदत्॥ सदिरप्रतेः॥ निषीदति। न्यषीदत्॥

२३६०–इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय परे रहते पा धातुके स्थानमें पिब, घ्रा–जिघ्र, ध्मा–धम, स्था–तिष्ठ, म्ना–मन्, दाण–यच्छ, दृश्–पश्य, ऋ–ऋच्छ, सृ–धौ, शद, शीय और सद धातुके स्थानमें सीद आदेश हो। सीदति। ससाद। सेदतुः। सेदिथ, ससत्थ। सत्ता। सत्स्यति। लृकार इत् होनेके कारण इसके उत्तर अङ् होगा–। असदत्। प्रतिभिन्न उपसर्ग पूर्वक सद धातुसम्बन्धी सको षत्व हो (२२७१) निषीदति। न्यषीदत्॥

२३६१ सदेः परस्य लिटि।८।३।११८॥

सदेरभ्यासात्परस्य षत्वं न स्यात् लिटि।निषसाद। निषेदतुः॥१॥ शद्लृ शातने। विशीर्णतायामयम्। शातनं तु विषयतया निर्दिश्यते॥

२३६१–लिट् परे रहते सद धातुके अभ्यासके परे स्थित सके स्थानमें षत्व न हो। निषसाद। निषेदतुः। शद्लृ धातु शातनमें है, शातनसे विशीर्णता जानना, यदि यह कहो कि, शातनसे विशीर्णताका ग्रहण हो तो हेतुमत् णिच् करके 'शातन' यह पद कैसे निर्दिष्ट हुआ? तो सो ठीक नहीं कारण कि, विना प्रयोजकव्यापारके विशीर्णताका असम्भव होनेके कारण 'विषयतया' अर्थात् धात्वर्थ (विशीर्णता) जनकताद्वारा 'शातन' यह पद निर्दिष्ट हुआहै॥

२३६२ शदेः शितः।१।३।६०॥

शिद्भाविनोऽस्मादात्मनेपदं स्यात्। शीयते। शशाद। शेदतुः। शेदिथ–शशत्थ। शत्ता। अशदत्॥२॥ क्रुश आह्वाने रोदने च। क्रोशति। क्रोष्टा। क्लेः क्सः। अक्रुक्षत्॥३॥ कुच सम्पर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भविलेखनेषु। कोचति। चुकोच॥४॥ बुध अवगमने। बोधति। बोधिता। बोधिष्यति॥५॥ रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च। रोहति। रुरोह। रुरोहिथ। रोढा। रोक्ष्यति। अरुक्षत्॥६॥ कस गतौ। अकासीत्–अकसीत्॥७॥ वृत्। ज्वलादिगणः समाप्तः॥

**अथ गूहत्यन्ताः स्वरितेतः॥ हिक्क अव्यक्ते शब्दे। हिक्कति। हिक्कते॥१॥ अञ्चु गतौ याचने च। अञ्चति। अञ्चते॥२॥ अचु इत्येके॥३॥ अचि इत्यपरे॥४॥ टुयाचृ याच्ञायाम्। याचति। याचते॥५॥ रेटृ परिभाषणे। रेटति। रेटते॥६॥ चते चदे याचने। चचात। चेते। अचतीत्। चचाद। चेदे। अचदीत्॥८॥ प्रोथृ पर्याप्तौ। पुप्रोथ। पुप्रोथे॥९॥ मिदृ मेदृ मेधाहिंसनयोः। मिमेद। मिमिदे। थान्ताविमाविति स्वामी। मिमेथ। धान्ताविति न्यासः॥११॥ मेधृ सङ्गमे च। मेधति। मिमेधे॥१२॥ णिदृ णेदृ कुत्सासन्निकर्षयोः। निनेद। निनिदतुः। निनिदे॥१४॥ शृधु मृधु उन्दने। उन्दनं क्लेदनम्। शर्धति। शर्धते। शर्धिता। मर्धति। मर्धते॥१६॥ बुधिर् बोधने। बोधति। बोधते। इरित्वादङ् वा। अबुधत्–अबोधीत्। अबोधिष्ट। दीपजनेति चिण् तु न भवति

पूर्वोत्तरसाहचर्येण दैवादिकस्यैव तत्र ग्रहणात् ॥ ॥१७॥ उबुन्दिर् निशामने । निशामनं ज्ञानम् । बुबुन्दे । अबुदत् अबुन्दीत् ॥ १८ ॥ वेणृ गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु । वेणति। वेणते । नान्तोऽप्ययम् ॥ १९ ॥ खनु अवदारणे। खनति । खनते ॥

२३६२-शित्संज्ञक प्रत्यय होगा । जिससे ऐसा जो शद धातु उसके उत्तर आत्मनेपद हो । शीयते । शशाद । शेदतुः । शेदिथ, शशत्थ । शत्ता । अशदत् ॥ क्रुश धातु आह्वान और रोदनमें है । क्रोशति । क्रोष्टा । च्लिके स्थानमें क्स आदेश होगा-अक्रुक्षत् ॥ कुच धातु सम्पर्चन, कौटिल्य, प्रतिष्टम्भ और विलेखनमें है । कोचति । चुकोच ॥ बुध धातु अवगमनमें है । बोधति । बोधिता । बोधिष्यति॥रुह धातु बीजोत्पत्ति तथा प्रादुर्भावमें है । रोहति। रुरोह । रुरोहिथ । रोढा । रोक्ष्यति । अरुक्षत् ॥ कस धातु गतिमें है । अकासीत् , अकसीत् ॥

ज्वलादि गण समाप्त हुआ ॥

अब गुह धातु तक उभयपदी धातु कहे जातेहैं-

हिक्क धातु अव्यक्त शब्दमें है। हिक्कति । हिक्कते ॥ अञ्चु धातु गति और याचनार्थमें है । अञ्चति । अञ्चते । किसीके मतमें अचु धातु है । अन्य मतमें अचि धातु है॥ टुयाचृ धातु याचनामें है । याचति । याचते ॥ रेटृ धातु परिभाषणमें है । रटति । रेटते ॥ चते और चदे धातु याचनार्थमें हैं । चचात । चेते । अचतीत् । चचाद । चेदे । अचदीत् ॥ प्रोथृ धातु पर्य्याप्तिमें है । पुप्रोथ । पुप्रोथे॥मिदृ और मेदृ धातु मेधा और हिंसामें हैं । मिमेद । मिमिदे । स्वामीके मतमें यह थकारान्त है । मिमेथ । न्यासकारके मतमें यह धातु धकारान्त है ॥ मेधृ धातु संगममें है । मेधति । मिमेधे ॥ णिदृ और णेदृ धातु कुत्सा और सन्निकर्षमें हैं। निनेद । निनिदतुः । निनेदे ॥ शृधु और मृधु धातु उन्दन अर्थात् क्लेदनमें हैं । शर्द्धति । शर्द्धते । शर्द्धिता । मर्द्धति । मर्द्धते ॥

बुधिर् धातु बोधनमें है । बोधति । बोधते । इरित्वके कारण विकल्प करके अङ् होगा-अबुधत् , अबोधीत् । अबोधिष्ट । " दीपजन० २३२८ " इस सूत्रके अनुसार चिण् नहीं होगा, क्योंकि पूर्वोत्तर साहचर्य्यके कारण दिवादि गणीय धातुका ही उस स्थलमें ग्रहण हुआ है ॥ उबुन्दिर् धातु निशामन (ज्ञान) में है । बुबुन्दे । अबुदत् । अबुन्दीत् ॥ वेणृ धातु गति, ज्ञान, चिन्ता, निशामन और वादित्रग्रहणमें है । वेणति । वेणते । यह धातु नकारान्त भी है ॥ खनु धातु अवदारणमें है । खनति । खनते ॥

२३६३ गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि । ६ । ४ । ९८ ॥

एषामुपधाया लोपः स्यादजादौ क्ङिति न त्वङि । चख्नतुः ॥

२३६३-अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते गम, हन, जन, खन और घस धातुको उपधाका लोप हो, अङ् परे न हो । चख्नतुः । कित् और ङित्संज्ञक यकारादि कित्, ङित् प्रत्यय परे रहते जन, सन और खन धातुके स्थानमें विकल्प करके आकार हो ॥

(२३१९ ये विभाषा । ६ । ४।४३॥)

खायात्-खन्यात् ॥ २० ॥ चीवृ आदानसंवरणयोः । चिचीव । चिचीवे ॥ २१ ॥ चायृ पूजानिशामनयोः ॥ २२ ॥ व्यय गतौ । अव्ययीत्॥२३॥दाशृ दाने । ददाश । ददाशे ॥२४॥ भेषृ भये। गतावित्येके । भेषति। भेषते ॥ २५॥ भ्रेषृ भ्लेषृ गतौ ॥ २६ ॥ अस गतिदीप्त्यादानेषु । असति । असते । आस । आसे । अयं षान्तोऽपि ॥२७॥ स्पश बाधनस्पर्शनयोः। स्पर्शनं ग्रथनम् । स्पशति । स्पशते ॥ २८ ॥ लष कान्तौ । वा भ्राशेति श्यन्वा । लष्यति । लषति । लेषे ॥ २९ ॥ चष भक्षणे ॥ ३० ॥ छष हिंसायाम् । चच्छषतुः । चच्छषे ॥ ३१ ॥ झष आदानसंवरणयोः ॥ ३२ ॥ भ्रक्ष भ्लक्ष अदने ॥ ३४ ॥ भक्ष इति मैत्रेयः ॥ ३५ ॥ दासृ दाने॥३६॥माहृ माने ॥३७॥ गुहू संवरणे॥

(२३१९) खायात्, खन्यात् । चीवृ धातु आदान और संवरणमें है । चिचीव । चिचीवे ॥ चायृ धातु पूजा और निशामनार्थमें है ॥ व्यय धातु गतिमें है । अव्ययीत् ॥ दाशृ धातु दानमें है । ददाश । ददाशे ॥ भेषृ धातु भय और किसीके मतसे गतिमें है । भेषति । भेषते॥भ्रेषृ और भ्लेषृ धातु गतिमें हैं ॥ अस धातु गति, दीप्ति और आदानमें है । असति । असते । आस । आसे । यह धातु षकारान्त भी है ॥ स्पश धातु बाधन और स्पर्शन अर्थात् ग्रथनमें है । स्पशति स्पशते ॥ लष धातु कान्तिमें है । "वा भ्राश० २३२१" सूत्रसे इसके उत्तर विकल्प करके श्यन् प्रत्यय होगा । लष्यति । लषति । लेषे ॥ चष धातु भक्षणमें है ॥ छष धातु हिंसामें है चच्छषतुः । चच्छषे ॥ झष धातु आदान और संवरणमें है ॥ भ्रक्ष और भ्लक्ष धातु भक्षणमें हैं । मैत्रेय मुनिके मतमें भक्ष धातु उक्तार्थमें है ॥ दासृ धातु दानमें है ॥ माहृ धातु मानमें है ॥ गुहू धातु संवरणमें है ॥

२३६४ ऊदुपधाया गोहः । ६।४।८९॥

गुह उपधाया ऊत्स्याद् गुणहेतावजादौ प्रत्यये । गूहति । गूहते । ऊदित्त्वादिड्वा । गूहिता-गोढा । गूहिष्यति-घोक्ष्यति । गूहेत् । गुह्यात् । अगूहीत् । इडभावे क्सः । अघुक्षत् ॥

२३६४-गुणके हेतुभूत अजादि प्रत्ययके परे रहते गुह धातुकी उपधाके स्थानमें ऊकार हो । गूहति । गूहते । ऊकार इत् होनेके कारण इसके उत्तर विकल्प करके इट् होगा ।

गूहिता, गोढा । गूहिष्यति, घोक्ष्यति । गूहेत । गुह्यात् । अगूहीत् । इट्के अभावमें क्स होगा । अघुक्षत् ॥

२३६५ लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये । ७ । ३ । ७३ ॥

एषां क्सस्य लुग्वा स्याद्दन्त्ये तङि । ढत्वधत्वष्टुत्वढलोपदीर्घाः । अगूढ-अघुक्षत । क्सस्याचीत्यन्तलोपः । अघुक्षाताम् । अघुक्षन्त । अगुह्वहि-अघुक्षावहि । अघुक्षामहि ॥ ३८ ॥

अथाजन्ता उभयपदिनः । श्रिञ् सेवायाम् । श्रयति । श्रयते । शिश्रियतुः । श्रयिता । णिश्रीति चङ् । अशिश्रियत् ॥ १ ॥ भृञ् भरणे । भरति । बभार । बभ्रतुः । बभर्थ । बभृव । बभृषे । भर्ता ॥

२३६५-दन्त्य तङ् प्रत्यय परे रहते दुह, दिह और लिह और गुह धातुके उत्तर स्थित क्स प्रत्ययका आत्मनेपदमें विकल्प करके लुक् हो । क्रमसे ढत्व, धत्व, ष्टुत्व, ढलोप और दीर्घ होगा-अगूढ । अघुक्षत । "क्सस्याचि २३३७" इस सूत्रसे अन्तवर्णका लोप होगा-अघुक्षाताम् । अघुक्षन्त । अगुह्वहि, अघुक्षावहि । अगुह्महि, अघुक्षामहि ॥

अब अजन्त उभयपदी धातु कहे जाते हैं ।

श्रिञ् धातु सेवामें है । श्रयति । श्रयते । शिश्रियतुः । श्रयिता "णिश्रि० २३१२" इस सूत्रसे चङ् आदेश होगा । अशिश्रियत् ॥ भृञ् धातु भरणमें है । भरति । बभार। बभ्रतुः। बभर्थ । बभृव । बभृषे । भर्ता ॥

२३६६ ऋद्धनोः स्ये । ७ । २ । ७० ॥

ऋतो हन्तेश्च स्यस्य इट् स्यात् । भरिष्यति ॥

२३६६-ऋकारान्त धातु और हन धातुके स्यके इट्का आगम हो । भरिष्यति ॥

२३६७ रिङ् शयग्लिङ्क्षु ।७।४।२८ ॥

शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङादेशः स्यात् । रीङि प्रकृते रिङ्विधिसामर्थ्याद्दीर्घो न । भ्रियात् ॥

२३६७-श, यक्, यकारादि आर्धधातुक और लिङ् प्रत्यय परे रहते ऋकारान्त धातुके ऋकारके स्थानमें रिङ् आदेश हो । रीङ् करनेसे ही इष्ट सिद्ध होता था, फिर ह्रस्व विधानके कारण दीर्घ न हुआ-भ्रियात् ॥

२३६८ उश्च । १ । २ । १२ ॥

ऋवर्णात्परौ झलादी लिङ्सिचौ तङ्परौ कितौ स्तः । भृषीष्ट । भृषीयास्ताम् । अभार्षीत् । अभार्ष्टाम् । अभार्षुः ॥

२३६८-ऋवर्णके परवर्त्ती झलादि लिङ् तथा तङ् परक सिच् इनकी कित्संज्ञा हो । भृषीष्ट । भृषीयास्ताम् । अभार्षीत् । अभार्ष्टाम् । अभार्षुः ॥

२३६९ ह्रस्वादङ्गात् । ८ । २ । २७ ॥

सिचो लोपः स्यात् झलि । अभृत । अभृषाताम् । अभरिष्यत् ॥ २ ॥ हृञ् हरणे । हरणं प्रापणं स्वीकारस्तेयं नाशनं च । जहर्थ । जह्रिव । जह्रिषे । हर्ता । हरिष्यति ॥ ३ ॥ धृञ् धारणे । धरति । अधार्षीत् । अधृत ॥४॥ णीञ् प्रापणे । निनयिथ-निनेथ । निन्यिषे ॥ ५ ॥

अथाजन्ताः परस्मैपदिनः ॥ धेट् पाने । धयति॥

२३६९-झल् परे रहते ह्रस्वान्त अङ्गके उत्तर सिच्का लोप हो । अभृत । अभृषाताम् । अभरिष्यत् ॥ हृञ् धातु हरणमें है । हरण शब्द प्राप्ति चोरी और नाश करनेमें है । जहर्थ । जह्रिव । जह्रिषे । हर्त्ता । हरिष्यति ॥ धृञ् धातु धारण करनेमें है । धरति । अधार्षीत् । अधृत ॥ णीञ् धातु प्रापणमें है निनयिथ, निनेथ । निन्यिषे ॥

अब अजन्त परस्मैपदी धातु कहे जातेहैं ।

धेट् धातु पान करनेमें है । धयति ॥

२३७० आदेच उपदेशेऽशिति ।६।१।४५॥

उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वं स्यान्न तु शिति॥

२३७०-शित् भिन्न प्रत्यय परे रहते उपदेश अवस्थामें ए, ऐ, ओ और औकारान्त धातुके स्थानमें आकार हो ॥

२३७१ आत औ णलः । ७ । १।३४॥

आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात् । दधौ॥

२३७१-आकारान्त धातुके उत्तर णल् विभक्तिके स्थानमें औकार आदेश हो । दधौ ॥

२३७२ आतो लोप इटि च ।६।४।६४॥

अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः स्यात् । द्वित्वात्परत्वाल्लोपे प्राप्ते द्विर्वचनेऽचीति निषेधः । द्वित्वे कृते आलोपः। दधतुः। दधुः । दधिथ-दधाथ । दधिव। दधिम । धाता॥

२३७२-अजादि जो कित् ङित् आर्धधातुक और इट्के परे आकारान्त धातुके आकारका लोप हो । द्वित्वके परे लोपकी प्राप्ति होनेपर "द्विर्वचनेऽचि २२४३" इस सूत्रसे निषेध होगा, द्वित्व होनेपर आकारका लोप होगा-दधतुः । दधुः । दधिथ, दधाथ । दधिव । दधिम । धाता ॥

२३७३ दा धा घ्वदाप् । १ । १ । २०॥

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाप्दैपौ विना ॥

२३७३-दा और धा धातुकी घु संज्ञा हो,परन्तु दाप् और दैप् धातुकी न हो ॥

२३७४ एर्लिङि । ६ । ४ । ६७ ॥

घुसंज्ञानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि।धेयात्। धेयास्ताम्। धेयासुः॥

२३७४-आर्धधातुक कित् लिङ् परे रहते घुसंज्ञक, मा और स्थादि धातुको एत्व हो। धेयात्। धेयास्ताम्। धेयासुः॥

२३७५ विभाषा धेट्श्व्योः ।३।१।४९॥

आभ्यां च्लेश्चङ् स्यात्कर्तृवाचिनि लुङि परे। चङीति द्वित्वम्। अदधत्। अदधताम्॥

२३७५-कर्तृ वाच्यमें लुङ् परे रहते धेट् और श्वि धातुके उत्तर स्थित च्लिके स्थानमें विकल्प करके चङ् हो चङ् परे रहते द्वित्व होगा (२३१५) अदधत्। अदधताम्॥

२३७६ विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः । २ । ४ । ७८ ॥

एभ्यः सिचो लुग्वा स्यात्परस्मैपदे परे। अधात्। अधाताम्। अधुः॥

२३७६-परस्मैपद परे रहते घ्रा, धेट्, शो, छो और सो धातुके उत्तर विकल्प करके सिच्का लोप हो। अधात्। अधाताम्। अधुः॥

२३७७ यमरमनमाऽऽतां सक् च । ७ । २ । ७३ ॥

एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु। अधासीत्। अधासिष्टाम्। अधासिषुः॥ ॥ १ ॥ ग्लै म्लै हर्षक्षये। हर्षक्षयो धातुक्षयः। ग्लायति। जग्लौ। जग्लिथ-जग्लाथ॥

२३७७-परस्मैपदमें यम, रम, नम और आकारान्त धातुको सक्का आगम हो और सिच्के उत्तर इट् भी हो। अधासीत्। अधासिष्टाम्। अधासिषुः॥ ग्लै और म्लै धातु हर्षक्षयमें हैं। हर्षक्षय शब्दसे धातुक्षय जानना। ग्लायति। जग्लौ। जग्लिथ, जग्लाथ॥

२३७८ वाऽन्यस्य संयोगादेः ।६।४।६८॥

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वा स्यादार्धधातुके किति लिङि। ग्लेयात्-ग्लायात्। अग्लासीत्। म्लायति ॥ ३ ॥ द्यै न्यक्करणे। न्यक्करणं तिरस्कारः ॥ ४ ॥ द्रै स्वप्ने ॥ ५ ॥ ध्रै तृप्तौ ॥ ६॥ ध्यै चिन्तायाम् ॥७॥ रै शब्दे ॥ ॥ ८ ॥ स्त्यै ष्ट्यै शब्दसङ्घातयोः। स्त्यायति। षोपदेशस्यापि सत्वे कृते रूपं तुल्यम्। षोपदेशफलं तु तिष्ट्यासति। अतिष्ट्यपदित्यत्र षत्वम्॥ ॥ १० ॥ खै खदने ॥ ११ ॥ क्षै जै षै क्षये। क्षायति। जजौ। ससौ। साता। घुमास्थेत्यत्र विभाषा घ्राधेडित्यत्र च स्यतेरेव ग्रहणं न त्वस्य। तेन एत्वसिज्लुकौ न। सायात्। असासीत्॥ १४॥ कै गै शब्दे। गेयात्। अगासीत् ॥ १६ ॥ शै श्रै पाके ॥ १८ ॥ पै ओवै शोषणे। पायात्। अपासीत्। घुमास्थेतीत्वं तदपवाद एर्लिङीत्येत्वं गातिस्थेति सिज्लुक् च न। पारूपस्य लाक्षणिकत्वात् ॥ २० ॥ ष्टै वेष्टने। स्तायति॥ २१॥ ष्णै वेष्टने शोभायां चेत्येके। स्नायति ॥ २२ ॥ दैप् शोधने। दायति। अघुत्वादेत्त्वसिज्लुकौ न। दायात्। अदासीत् ॥ २३ ॥ पा पाने। पाघ्राध्मेति पिबादेशः तस्यादन्तत्वान्नोपधागुणः। पिबति। पेयात्। अपात् ॥ २४॥ घ्रा गन्धोपादाने। जिघ्रति। घ्रायात्-घ्रेयात्। अघ्रासीत्-अघ्रात्॥२५॥ ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः। धमति॥ ॥ २६ ॥ ष्ठा गतिनिवृत्तौ। तिष्ठति। स्थादिष्वभ्यासेनेति षत्वम्। अधितष्ठौ। उपसर्गादिति षत्वम्। अधिष्ठाता। स्थेयात् ॥ २७ ॥ म्ना अभ्यासे। मनति॥२८॥दाण् दाने। प्रणियच्छति। देयात्। अदात्॥२९॥ ह्वृ कौटिल्ये। ह्वरति॥

२३७८-आर्धधातुक कित् लिङ् विभक्ति परे रहते घुसंज्ञक धातु, मा धातु और स्थादि धातु भिन्न संयोगादि धातुके आकारके स्थानमें विकल्प करके एकार हो। ग्लेयात्, ग्लायात्। अग्लासीत्। म्लायति॥ द्यै धातु न्यक्कार अर्थात् तिरस्कारमें है॥ द्रै धातु स्वप्नमें है॥ ध्रै धातु तृप्तिमें है॥ ध्यै धातु चिन्तामें है॥ रै धातु शब्दमें है। स्त्यै ष्ट्यै धातु शब्दसमूहमें हैं। षोपदेश धातुका भी सकार करने पर रूप तुल्य ही होगा, किन्तु षोपदेशका फल कुछ विशेष होगा, जैसे-'तिष्ट्यासति, अतिष्ट्यपत्'-इत्यादि स्थलमें षत्व हुआ है॥ खै धातु खदनमें है॥ क्षै, जै और षै धातु क्षयमें हैं। क्षायति। जजौ। ससौ। साता।

"घुमास्था० २४६२" और "विभाषा घ्राधेट्० २३७६" इन दोनों सूत्रोंमें स्यतिके ग्रहण ही होनेसे इसका ग्रहण नहीं होताहै। इस कारण एत्व और सिच्का लुक् नहीं होगा-सायात्। असासीत्॥

कै, गै, धातु शब्द करनेमें हैं। गेयात्। अगासीत्॥ शै और श्रै धातु पाक करनेमें हैं॥ पै और वै धातु शोषण करनेमें हैं। पायात्। अपासीत्। इस स्थलमें "पा" इसके लाक्षणिकत्वके कारण "घुमास्था० २४६२" इस सूत्रसे विहित इत्व, तथा उसका अपवाद "एर्लिङि २३७४" इससे एत्व और "गातिस्था० २२२३" इस सूत्रसे विहित सिच्का लुक् नहीं होगा॥ ष्टै धातु वेष्टनमें है। स्तायति॥ ष्णै धातु वेष्टन और किसीके मतसे शोभामें भी है। स्नायति॥ दैप् धातु शोधनमें है। दायति। घुसंज्ञक न होनेके कारण एत्व और सिच्का लुक् नहीं होगा। दायात्। अदासीत्। पा धातु पानमें है। "पा घ्राध्मा० २३६०" इस सूत्रसे पा धातुके स्थानमें पिब आदेश होगा-अकारान्त होनेके कारण उपधा गुण नहीं होगा। पिबति। पेयात्। अपात्॥ घ्रा धातु गन्धोपादानमें है। जिघ्रति। घ्रायात्, घ्रेयात्। अघ्रासीत्, अघ्रात्॥ ध्मा धातु शब्द और अग्निसंयोगमें है। धमति॥ ष्ठा धातु गतिनिवृत्तिमें है। तिष्ठति। "स्थादिष्वभ्यासेन० २२७७" इस सूत्रसे षत्व होगा-अधितष्ठौ। उपसर्गके उत्तर (२२७०)

पत्व हो—अधिष्ठाता। स्थेयात्॥ म्ना धातु अभ्यास करनेमें है। मनाति। दाण धातु दानमें है। प्रणियच्छति। देयात्। अदात्॥ ह्वृ धातु कौटिल्यमें है। ह्वरति॥

२३७९ ऋतश्च संयोगादेर्गुणः।७।४।१०॥

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणः स्याल्लिटि। किदर्थमपीदं परत्वाण्णल्यपि भवति। रपरत्वम्। उपधावृद्धिः। जह्वार। जह्वरतुः। जह्वरुः। जह्वर्थ। ह्वर्ता॥ ऋद्धनोः स्ये, ह्वरिष्यति॥

२३७९–लिट् परे रहते ऋकारान्त और संयोगादि अङ्गसंज्ञक धातुके ऋकारको गुण हो। यद्यपि यह गुण कित् परे रहते भी होनेके कारण अपवाद न हुआ, तथापि परत्वके कारण णल् परे रहते भी होगा, रपरत्वके कारण उपधाको वृद्धि होगी—जह्वार। जह्वरतुः। जह्वरुः। जह्वर्थ। ह्वर्ता। "ऋद्धनोः स्ये २३६६" इस सूत्रसे स्य प्रत्ययके इट्का आगम होगा—ह्वरिष्यति॥

२३८० गुणोर्तिसंयोगाद्योः।७।४।२९॥

अर्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणः स्याद्यकि यादावार्धधातुके लिङि च। ह्वर्यात्। अह्वार्षीत्। अह्वार्ष्टाम्॥ ३०॥ स्वृ शब्दोपतापयोः। स्वरतिसूतीति वेट्। सस्वरिथ–सस्वर्थ। वमयोस्तु॥

२३८०–यक् और यकारादि आर्धधातुक लिङ् प्रत्यय परे रहते ऋ धातु और संयोगादि ऋकारान्त धातुके ऋकारको गुण हो। ह्वर्यात्। अह्वार्षीत्। अह्वार्ष्टाम्॥ स्वृ धातु शब्द और उपतापमें है। "स्वरतिसूति० २२७९" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् होगा—सस्वरिथ, सस्वर्थ। व और म परे रहते किस प्रकारसे होगा सो आगे कहतेहैं॥

२३८१ श्र्युकः किति। ७। २। ११॥

श्रिञ एकाच उगन्ताच्च परयोर्गित्कितोरिण्न स्यात्। परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट्। सस्वरिव। सस्वरिम। परत्वादृद्धनोरिति नित्यमिट्। स्वरिष्यति। स्वर्यात्। अस्वारीत्। अस्वारिष्टाम्। अस्वार्षीत्। अस्वार्ष्टाम्॥ ३१॥ स्मृ चिन्तायाम्॥ ३२॥ ह्वृ संवरणे॥ ३३॥ सृ गतौ। क्रादित्वान्नेट्। ससर्थ। सस्रिव। रिङ्, स्रियात्। असार्षीत्। असार्ष्टाम्॥

२३८१–श्रि धातु और एकाच् उक् (उ, ऋ, लृ) अन्तवाले धातुके परे स्थित गित् और कित् प्रत्ययको इट् न हो। "स्वरति०" इससे प्राप्त विकल्पको बाधा देकर पूर्वमें प्रतिषेधकांडारम्भसामर्थ्यके कारण इस सूत्रसे निषेध प्राप्ति होनेपर क्र्यादि नियमके अनुसार नित्य इट् होगा–सस्वरिव। सस्वरिम। परत्वके कारण ऋकारान्त धातु और हन् धातुके उत्तर स्थित स्यको नित्य इट् होगा–स्वरिष्यति। स्वर्यात्। अस्वारीत्। अस्वारिष्टाम्। अस्वार्षीत्। अस्वार्ष्टाम्॥ स्मृ धातु चिन्ता करनेमें है॥ ह्वृ धातु संवरणमें है॥ सृ धातु गतिमें है। क्रादित्वके कारण इट् न होगा–ससर्थ। सस्रिव। ऋकारके स्थानमें रिङ् हुआ–। स्रियात्। असार्षीत्। असार्ष्टाम्॥

२३८२ सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च।३।१।५६॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्कर्तरि लुङि। इह लुग्विकरणशासिना साहचर्यात्सर्त्यर्ती जौहोत्यादिकावेव गृह्येते। तेन भ्वाद्योर्नाङ्। शीघ्रगतौ तु पाघ्राध्मेति शिति धौरादेशः। धावति॥ ३४॥ ऋ गतिप्रापणयोः। ऋच्छति॥

२३८२–कर्तृ वाच्यमें लुङ् परे रहते सृ, शास् और ऋ धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें अङ् हो। इस स्थलमें लुग्विकरण शास धातुके साहचर्यके कारण 'सर्त्ति' और 'अर्त्ति' धातु भी जुहोत्यादिगणीय गृहीत हुए हैं, इस कारण भ्वादि गणीय उक्त धातुके उत्तर अङ् नहीं होगा। शीघ्र गतिके अर्थमें "पाघ्राध्मा०" इस सूत्रसे शित् परे धौ आदेश होगा—धावति॥ ऋ धातु गति और प्रापणार्थमें है—ऋच्छति॥

२३८३ ऋच्छत्यृताम्। ७। ४। ११॥

तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोर्ॠतां च गुणः स्याल्लिटि। णलि प्राग्वदुपधावृद्धिः। आर। आरतुः। आरुः॥

२३८३–लिट् परे रहते तुदादिगणीय ऋच्छ धातु और ऋ धातु और ॠकारान्त धातुके ऋकारको गुण हो। णल् परे रहते पूर्ववत् उपधाको वृद्धि होगी–आर। आरतुः। आरुः॥

२३८४ इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्।७।२।६६॥

अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात्। आरिथ। अर्ता। अरिष्यति। अर्यात्। आर्षीत्। आर्ष्टाम्॥ ३५॥ गृ घृ सेचने। गरति। जगार। जगर्थ। जग्रिव। रिङ्। ग्रियात्। अगार्षीत्॥ ३७॥ ध्वृ हूर्छने॥ ३८॥ स्रु गतौ। सुस्रोथ। सुस्रुव। स्रूयात्। णिश्रीति चङ्। लघूपधगुणादन्तरङ्गत्वादुवङ्। असुस्रुवत्॥ ३९॥ षु प्रसवैश्वर्ययोः। प्रसवोऽभ्यनुज्ञानम्। सुषोथ–सुषविथ। सुषुविव। सोता॥

२३८४–अद, ऋ और व्येञ् धातुके उत्तर थल् प्रत्ययको नित्य इट्का आगम हो। आरिथ। अर्ता। अरिष्यति। अर्यात्। आर्षीत्। आर्ष्टाम्॥ गृ और घृ धातु सेचन करनेमें है। गरति। जगार। जगर्थ। जग्रिव। ऋके स्थानमें रिङ् आदेश होगा। ग्रियात्। अगार्षीत्॥ ध्वृ धातु हूर्छनमें है॥ स्रु धातु गतिमें है। सुस्रोथ। सुस्रुव। स्रूयात्।

"णिश्रि० २३१२" इस सूत्रसे चङ् हुआ, लघूपध गुणको बाधकर अन्तरङ्गत्वके कारण उवङ् हुआ–असुसुवत् ॥ सु धातु प्रसव और ऐश्वर्यमें है । प्रसव शब्दसे अभ्यनुज्ञा जानना। सुषोथ, सुषुविथ । सुषुविव । सोता ॥

२३८५ स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु।७।२।७२॥

एभ्यः सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु । असावीत् । पूर्वोत्तराभ्यां ञिद्भ्यां साहचर्यात्सुनोतेरेव ग्रहणमिति पक्षे । असौषीत् ॥ ४० ॥ श्रु श्रवणे ॥

२३८५–स्तु, सु और धूञ् धातुके उत्तर परस्मैपदमें सिच्को इट्का आगम हो–असावीत् । पूर्वोत्तर ञित्के (ञ्इत् धातुके) साहचर्य्यके कारण ' सुनोति ' इस सु धातुका ही ग्रहण है–असौषीत् ॥ श्रु धातु श्रवणमें है ॥

२३८६ श्रुवः शृ च । ३ । १।७४॥

श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नुप्रत्ययश्च । शपोपवादः । श्नोर्ङित्वाद्धातोर्गुणो न । शृणोति। शृणुतः ॥

२३८६–श्रु धातुके स्थानमें शृ आदेश और श्नु प्रत्यय हो। यह आदेश शप्का विशेषक है । श्नु प्रत्ययके ङित्वके कारण धातुके उकारको गुण नहीं होगा । शृणोति । शृणुतः ॥

२३८७हुश्नुवोः सार्वधातुके ।६।४।८७॥

जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य चासंयोगपूर्वोवर्णस्य यण् स्यादजादौ सार्वधातुके । उवङोऽपवादः । शृण्वन्ति । शृणोमि । शृण्वः–शृणुवः । शृण्मः–शृणुमः। शुश्रोथ। शुश्रुव। शृणु। शृणवानि । शृणुयात् । श्रूयात्।अश्रौषीत् ॥४१॥ ध्रु स्थैर्ये। ध्रुवति।अयं कुटादौ गत्यर्थोऽपि ॥४२॥ दु द्रु गतौ । दुदोथ–दुदविथ । दुदुविव । दुद्रोथ । दुद्रुव । णिश्रीति चङ्। अदुद्रुवत्॥४३॥ जि ज्रि अभिभवे । अभिभवो न्यूनीकरणं न्यूनीभवनं च । आद्य सकर्मकः । शत्रून् जयति । द्वितीये त्वकर्मकः । अध्ययनात्पराजयते । अध्येतुं ग्लायतीत्यर्थः। विपराभ्यां जेरिति तङ्। पराजेरसोढ इत्यपादानत्वम् ॥ ४९ ॥

अथ डीङन्ता ङितः ॥ ष्मिङ् ईषद्धसने । स्मयते । सिष्मिये । सिष्मियिढ्वे–सिष्मियिध्वे ॥ १ ॥ गुङ् अव्यक्ते शब्दे । गवते । जुगुवे ॥ २ ॥ गाङ् गतौ । गाते । गाते । गाते । इट एत्वे कृते वृद्धिः । गै । लङ इटि । अगे । गेत । गेयाताम् । गेरन् । गासीष्ट । गाङ्कुटादिसूत्रे इङादेशस्यैव गाङो ग्रहणं न त्वस्य । तेनाङित्वाद् घुमास्थेतीत्वं न । अगास्त । अदादिकोऽयमिति हरदत्तादयः । फले तु न भेदः ॥ ॥ ३ ॥ कुङ् घुङ् उङ् ङुङ् शब्दे । अन्ये तु उङ् कुङ् खुङ् गुङ् घुङ् ङुङ् इत्याहुः । कवते । चुकुवे । घवते । अवते । ऊवे । वार्णादाङ्गं बलीय इत्युवङ् । ततः सवर्णदीर्घः । ओता । ओष्यते । ओषीष्ट । औष्ट । ङवते । ञुङुवे । ङोता ॥७॥ च्युङ् ज्युङ् प्रुङ् प्लुङ् गतौ ॥११॥ क्लुङ् इत्येके ॥ १२ ॥ रुङ् गतिरेषणयोः । रेषणं हिंसा । रुरुवे । रवितासे ॥ १३ ॥ धृङ् अवध्वंसने । धरते । दध्रे ॥ १४ ॥ मेङ् प्रणिदाने । प्रणिदानं विनिमयः प्रत्यर्पणं च । प्रणिमयते । नेर्गदेति णत्वम् । तत्र घुप्रकृतिमाङिति पठित्वा ङितो माप्रकृतेरपि ग्रहणस्येष्टत्वात् ॥ ॥ १९ ॥ देङ् रक्षणे । दयते ॥

२३८७–अजादि सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते हु धातु तथा श्नुप्रत्ययान्त अनेकाच् अङ्गसंज्ञक धातुके असंयोग पूर्वक उवर्णके स्थानमें यण् आदेश हो । यह उवङ्का अपवाद है । शृण्वन्ति । शृणोमि । शृण्वः, शृणुवः । शृण्मः, शृणुमः । शुश्रोथ । शुश्रुव । शृणु। शृणवानि। शृणुयात् । श्रूयात् । अश्रौषीत् ॥ ध्रु धातु स्थैर्य्यमें है । ध्रवति । ध्रु धातु कुटादि होनेपर गत्यर्थक हो ॥ दु और द्रु धातु गतिमें है। दुदोथ, दुदविथ। दुदुविव । दुद्रोथ । दुद्रुव । "णिश्रि० २३१२" इस सूत्रसे चङ् हुआ–अदुद्रुवत् ॥ जि और ज्रि धातु अभिभवमें हैं। अभिभव शब्दसे न्यूनीकरण और न्यूनीभवन जानना । प्रथम अर्थमें सकर्मक है–शत्रून् जयति । द्वितीय अर्थमें अकर्मक है–अध्ययनात् पराजयते, अर्थात् अध्ययनके निमित्त ग्लानिको प्राप्त होताहै "विपराभ्यां जेः २६२५" (वि और परापूर्वक जि धातुके उत्तर आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों) इससे तङ् हुआ, "पराजेरसोढः ५८९" इस सूत्रसे अपादानत्व हुआ ॥

अब डीङ् धातु तक ङकारइत् धातु कहतेहैं ।

ष्मिङ् धातु ईषद्धसनमें है । स्मयते । सिष्मिये । सिष्मियिढ्वे, सिष्मियिध्वे॥गुङ् धातु अव्यक्त शब्दमें है। गवते ।जुगुवे॥

गाङ् धातु गतिमें है । गाते । इट्के स्थानमें एत्व होनेपर वृद्धि होगी–गै । लङ्के स्थानमें इट् करनेपर–अगे । गेत। गेयाताम् । गेरन् । गासीष्ट । "गाङ् कुटादिभ्यः० २४६१" इस सूत्रमें इङ् धातुके स्थानमें आदिष्ट गाङ्का ही ग्रहण है गाङ् धातुका नहीं, इसी कारण ङित्ववशसे "घुमास्था० २४६२" इस सूत्रसे प्राप्त इत्व न हुआ । अगास्त । हरदत्तादिके मतमें यह अदादिगणीय है, दोनों गणमें इसके रूप एक ही तरह होंगे ॥

कुङ्, घुङ्, उङ् और ङुङ् धातु शब्द करनेमें हैं। अन्य मतमें 'उङ्,कुङ्, खुङ्,गुङ्,घुङ्, ङुङ्' धातु पठित हैं। कवते। चुकुवे। घवते। अवते। ऊवे, यहां "वार्णादाङ्गं बलीयः" (वर्णके कार्यसे अंगका कार्य बलवान् होताहै) इस परिभाषासे पहले उवङ् आदेश हुआ और पीछे सवर्णदीर्घ हुआ, कारण कि, उवङ् अंगकार्य है और सवर्णदीर्घ वर्णकार्य है। ओता। ओष्यते। ओषीष्ट। औष्ट। ङवते। जुङुवे। ङोता॥ च्युङ्, ज्युङ्, प्रुङ् और प्लुङ् धातु गतिमें हैं। किसीके मतमें क्लुङ् धातु भी उक्तार्थमें है॥ रुङ् धातु गति और रेषणमें है, रेषण शब्दसे हिंसा जानना। रुरुवे। रवितासे॥ धृङ् धातु अवध्वंसनमें है। धरते। दध्रे॥ मेङ् धातु प्रणिदान अर्थात् विनिमय और प्रत्यर्पणमें है।

प्रणिमयते। "नेर्गद० २२८५" इस सूत्रसे णत्व हुआ, कारण कि, इस सूत्रमें घु प्रकृतिक माङ् ऐसा पाठ करके ङ्इत् प्रकृतिमेंके भी ग्रहणका इष्टत्व होताहै॥ देङ् धातु रक्षणमें है, दयते॥

२३८८ दयतेर्दिगि लिटि। ७। ४।९॥

दिग्यादेशेन द्वित्वबाधनमिष्यत इति वृत्तिः। दिग्ये॥

२३८८-लिट् परे रहते देङ् धातुके स्थानमें 'दिगि' आदेश हो। दिगि आदेशसे द्वित्वका बाध इष्ट है, अर्थात् दिगि आदेश होनेपर द्वित्व न हो, ऐसी वृत्ति है-दिग्ये॥

२३८९ स्थाघ्वोरिच्च। १। २। १७॥

अनयोरिदादेशः स्यात् सिच्च कित्स्यात्। अदित। अदिथाः। अदिषि॥ १६॥ श्यैङ् गतौ। श्यायते। शश्ये॥ १७॥ प्यैङ् वृद्धौ। प्यायते। पप्ये। प्याता॥ १८॥ त्रैङ् पालने। त्रायते। तत्रे॥ १९॥ पूङ् पवने। पवते। पुपुवे। पविता॥ २०॥ मूङ् बन्धने। मवते॥ २१॥ डीङ् विहायसा गतौ। डयते। डिड्ये। डयिता॥ २२॥ तॄ प्लवनतरणयोः॥

२३८९-स्था और घुसंज्ञक धातुओंको इदादेश हो और सिच् की कित्संज्ञा हो। अदित। अदिथाः। अदिषि॥ श्यैङ् धातु गतिमें है। श्यायते। शश्ये॥ प्यैङ् धातु वृद्धिमें है। प्यायते। पप्ये। प्याता॥ त्रैङ् धातु पालन करनेमें है। त्रायते। तत्रे॥ पूङ् धातु पवनमें है। पवते। पुपुवे। पविता॥ मूङ् धातु बन्धनार्थमें है। मवते॥ डीङ् धातु आकाशगमनमें है। डयते। डिड्ये। डयिता॥ तॄ धातु प्लवन और तरणमें है॥

२३९० ॠत इद्धातोः। ७। १। १००॥

ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात्॥ इत्वोत्वाभ्यां गुणवृद्धी विप्रतिषेधेन॥ *॥ तरति। ॠच्छत्यॄतामिति गुणः। तॄफलेत्येत्वम्। तेरतुः। तेरुः॥

२३९०-ॠदन्त अङ्गसंज्ञक धातुको इत् हो। पूर्वविप्रतिषेधसे इत्व और उत्वको बाधकर गुण और वृद्धि हो * तरति "ॠच्छत्यॄताम् २३८३" इस सूत्रसे गुण हुआ। "तॄफल० २३०१" इस सूत्रसे एत्व होगा-तेरतुः। तेरुः॥

२३९१ वॄतो वा। ७। २। ३८॥

वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि। तरीता-तरिता। अलिटीति किम्। तेरिथ। हलि चेति दीर्घः। तीर्यात्॥

२३९१-वृङ्, वृञ् और ॠदन्त धातुके उत्तर इट्को विकल्प करके दीर्घ हो लिट् परे न हो-तरीता, तरिता। लिट् परे रहते-तेरिथ। "हलि च २५४" इस सूत्रसे दीर्घ होगा-तीर्यात्॥

२३९२ सिचि च परस्मैपदेषु। ७।२।४०॥

अत्र वॄत इटो दीर्घो न। अतारिष्टाम्॥२३॥ अथाष्टावनुदात्तेतः। गुप गोपने॥ १॥ तिज निशाने॥ २॥ मान पूजायाम्॥ ३॥ बध बन्धने॥

२३९२-परस्मैपद संज्ञक प्रत्ययपरक सिच् परे रहते वृङ्, वृञ् और ॠदन्त धातुके उत्तर इट्को दीर्घ न हो। अतारिष्टाम्॥

अब आठ अनुदात्तेत् धातु कहे जातेहैं॥

गुप धातु छिपानेमें है॥ तिज धातु निशानमें है॥ मान धातु पूजा करनेमें है॥ बध धातु बन्धनमें है॥

२३९३ गुप्तिज्किद्भ्यः सन्। ३।१।५॥

२३९४ मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य। ३। १। ६॥

सूत्रद्वयोक्तेभ्यः सन् स्यान्मानादीनामभ्यासस्येकारस्य दीर्घश्च॥ गुपेर्निन्दायाम्॥ *॥ तिजेः क्षमायाम्॥ *॥ कितेर्व्याधिप्रतीकारे निग्रहे अपनयने नाशने संशये च॥ *॥ मानेर्जिज्ञासायाम्॥ *॥ बधेश्चित्तविकारे॥ *॥ दानेरार्जवे॥ *॥ शानेर्निशाने॥ *॥ सनाद्यन्ता इति धातुत्वम्॥

२३९३-२३९४-इन दोनों सूत्रोंमें जो गुप तिज और ककारइत् धातु और मान, बध, दान और शान धातु इन धातुओंके उत्तर सन् प्रत्यय हो, उनमें मानादि धातुओंके अभ्याससम्बन्धी इकारको दीर्घ हो। किस धातुके उत्तर किस अर्थमें सन् होगा सो दिखाते हैं-गुप धातुके उत्तर निन्दार्थमें, तिज धातुके उत्तर क्षमार्थमें, कित् धातुके उत्तर व्याधिप्रतीकार, निग्रह और अपनयन, नाश और संशयार्थमें, मान धातुके उत्तर जिज्ञासार्थमें, बध धातुके उत्तर चित्तविकारार्थमें, दान धातुके उत्तर आर्जवार्थमें, और शान धातुके उत्तर निशानार्थमें ही सन् हो। "सनाद्यन्ताः० २३०४" इस सूत्रसे धातुत्व होगा॥

२३९५ सन्यङोः । ६ । १ । ९ ॥

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । अभ्यासकार्यम् । गुपिप्रभृतयः किद्भिन्ना निन्दाद्यर्थका एवानुदात्तेतः । दानशानौ च स्वरितेतौ । एते नित्यं सन्नन्ताः । अर्थान्तरे त्वननुबन्धकाश्चुरादयः । अनुबन्धस्य केवलेऽचरितार्थत्वात्सन्नन्तात्तङ् । धातोरित्यविहितत्वात्सनोत्र नार्धधातुकत्वम् । तेनेड्गुणौ न। जुगुप्सते । जुगुप्सांचक्रे । तितिक्षते । मीमांसते । भष्भावः । चर्त्वम् । बीभत्सते ॥ ४ ॥ रभ राभस्ये । आरभते । आरेभे । रब्धा । रप्स्यते ॥ ५ ॥ डुलभष् प्राप्तौ । लभते ॥ ६ ॥ ष्वञ्ज परिष्वङ्गे ॥

२३९५–सन्नन्त और यङन्त धातुके प्रथम एकाच्को द्वित्व हो। अजादि धातुके द्वितीय एकाच्को द्वित्व हो। द्वित्व होनेपर अभ्यासकार्य्य होगा। किद्भिन्न निन्दाद्यर्थक ही गुपिआदि धातु अनुदात्तेत् अर्थात् आत्मनेपदी हैं, दान और शान धातु उभयपदी हैं, यह सब धातु नित्य सन्नन्त हैं, किन्तु अर्थान्तरमें अनुबन्धशून्य चुरादिगणीय हैं, केवल धातुमें अनुबन्धके अचरितार्थत्वके कारण सन्नन्तसे आत्मनेपद होगा । धातुका अधिकार करके विहित न होनेके कारण इस स्थलमें सन्को आर्धधातुकत्व नहीं हुआ, इस कारण इट् और गुण भी न हुआ–जुगुप्सते । जुगुप्सांचक्रे । तितिक्षते । मीमांसते । भष्भाव और चर्त्व हुआ–बीभत्सते ॥ रभ धातु राभस्य अर्थात् आरंभ करना अर्थमें है । आरभते । आरेभे । रब्धा । रप्स्यते ॥ डुलभष् धातु प्राप्तिमें है । लभते ॥ ष्वञ्ज धातु परिष्वङ्गमें है ॥

२३९६ दंशसञ्जस्वञ्जां शपि।६।४।२५॥

२३९६–शप् परे रहते दंश, सञ्ज, स्वञ्ज इन धातुओंके नकारका लोप हो ॥

२३९७ रञ्जेश्च । ६ । ४ । २६ ॥

एषां शपि न लोपः । स्वजते । परिष्वजते ॥ श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनां लिटः किर्त्वं वेति व्याकरणान्तरम्॥ देभतुः । सस्वज इति भाष्योदाहरणादेकदेशानुमत्या इहाप्याश्रीयते । सदेः परस्य लिटीतिसूत्रे, स्वञ्जेरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ अतोऽभ्यासात्परस्य षत्वं न । परिषस्वजे–परिषस्वञ्जे । सस्वजिषे–सस्वञ्जिषे । स्वंक्ता । स्वङ्क्ष्यते । स्वजेत । स्वङ्क्षीष्ट । अस्वंक्त । प्रत्यष्वंक्त । प्राक्सितादिति षत्वम् । परिनिविभ्यस्तु सिवादीनां वेति विकल्पः । एतदर्थमेवोपसर्गात्सुनोतीत्येव सिद्धे स्तुस्वञ्ज्योः परिनिवीत्यत्र पुनरुपादानम् । पर्यष्वंक्त–पर्यस्वंक्त ॥ ७॥

हद पुरीषोत्सर्गे । हदते । जहदे । हत्ता । हत्स्यते। हदेत । हत्सीष्ट । अहत्त ॥

अथ परस्मैपदिनः ॥ ञिष्विदा अव्यक्ते शब्दे ॥ १ ॥ स्कन्दिर् गतिशोषणयोः । चस्कन्दिथ–चस्कन्थ । स्कन्ता । स्कन्त्स्यति । नलोपः । स्कद्यात् । इरित्वादङ् वा । अस्कदत्–अस्कान्त्सीत् । अस्कान्ताम् । अस्कान्त्सुः ॥

२३९७–शप् परे रहते रञ्ज धातुके भी नकारका लोप हो। स्वजते । परिष्वजते ॥ श्रन्थि, ग्रन्थि, दंभि और स्वञ्जि धातुके उत्तर स्थित लिट्को विकल्प करके कित्त्व हो, यह दूसरे व्याकरणका मत है, भाष्यमें " देभतुः, सस्वजे " ऐसे उदाहरण देखेजानेके कारण इस स्थानमें भी उस व्याकरणका आश्रयण हुआहै । " सदेः परस्य लिटि २३३१ " इस सूत्रमें वृत्तिकारने स्वञ्ज धातुका उपसंख्यान (स्वञ्ज धातुसम्बन्धी अभ्याससे परे स्थित सकारको षत्वनिषेध) कियाहै, इस कारण अभ्याससे पर भागको षत्व नहीं होगा–परिषस्वजे, परिषस्वञ्जे । सस्वजिषे। सस्वञ्जिषे। स्वङ्क्ता। स्वङ्क्ष्यते। स्वजेत। स्वङ्क्षीष्ट । अस्वङ्क्त । प्रत्यष्वङ्क्त, यहां " प्राक्सितात्० २२७६" इस सूत्रसे षत्व हुआ ।

परि, नि और विपूर्वक स्वञ्ज धातुके " सिवादीनां वा २३५९ " इस सूत्रसे सकारको विकल्प करके षत्व होगा, इस कारण ही " उपसर्गात् सुनोति० २२७० " इस सूत्रसे षत्व सिद्ध होनेपर भी " परिनिविभ्यः० २२७५ " इस सूत्रमें दुबारा ग्रहण कियाहै । पर्यष्वंक्त, पर्यस्वंक्त ॥

हद धातु मलत्यागनेमें है । हदते । जहदे । हत्ता । हत्स्यते। हदेत । हत्सीष्ट । अहत्त ॥

अब परस्मैपदी धातु कहे जातेहैं ।

ञिष्विदा धातु अव्यक्त शब्द करनेमें है ॥ स्कन्दिर् धातु गति और शोषणमें है । चस्कन्दिथ, चस्कन्थ । स्कन्ता । स्कन्त्स्यति । नकारका लोप हुआ–स्कद्यात् । इरित् धातुके उत्तर विकल्प करके अङ् होताहै–अस्कदत्, अस्कान्त्सीत् । अस्कान्ताम् । अस्कान्त्सुः ॥

२३९८ वेस्कन्देरनिष्ठायाम् ।८।३।७३॥

षत्वं वा स्यात् । कृत्यमेवेदम् । अनिष्ठायामितिपर्युदासात् । विष्कन्ता–विस्कन्ता । निष्ठायां तु विस्कन्नः ॥

२३९८–निष्ठाभिन्न प्रत्यय परे रहते विपूर्वक स्कन्द धातुके सकारको विकल्प करके षत्व हो । 'अनिष्ठायाम्' इस सूत्रोक्त पर्युदासके कारण कृत्य प्रत्यय परे रहते ही विकल्प करके षत्व हो, अन्य प्रत्यय परे रहते न हो । विष्कन्ता, विस्कन्ता । निष्ठा प्रत्यय परे षत्व नहीं होगा–विस्कन्नः ॥

२३९९ परेश्च । ८ । ३ । ७४ ॥

अस्मात्परस्य स्कन्देः सस्य षो वा । योगविभागादनिष्ठायामिति न संबध्यते । परिष्कन्दति–परिस्कन्दति।परिष्कण्णः–परिस्कन्नः।षत्वपक्षे

णत्वम् । न च पदद्वयाश्रयतया बहिरङ्गत्वात्षत्वस्यासिद्धत्वम् । धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गमित्यभ्युपगमात् । पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते ततः साधनेनेति भाष्यम् । पूर्वं साधनेनेति मतान्तरे तु न णत्वम् ॥ २ ॥ यभ मैथुने । येभिथ-ययब्ध । यब्धा । यप्स्यति । अयाप्सीत् ॥ ३ ॥ णम प्रह्वत्वे शब्दे च । नेमिथ-ननन्थ । नन्ता । अनंसीत् । अनंसिष्टाम् ॥४ ॥ गम्लृ सृप्लृ गतौ ॥

२३९९-परिपूर्वक स्कन्द धातुके सकारको विकल्प करके षत्व हो । भिन्न सूत्र करणके कारण इस स्थलमें 'अनिष्ठायाम्' इस सूत्रोक्त पर्य्युदासका संबन्ध नहीं होगा । परिष्कन्दति, परिस्कन्दति । परिष्कण्णः, परिस्कन्नः । षत्व होनेपर णत्व होगा । पद द्वयके आश्रयके कारण षत्वविधायक सूत्रके बहिरङ्गत्वके कारण असिद्धि होगी ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि धातु और उपसर्गका जो कार्य्य है वह अन्तरङ्ग है, बहिरंग नहीं है, इस कारण भाष्यकारने कहाहै कि, प्रथम धातु और उपसर्गके साथ युक्त होताहै, पश्चात् कार्य होताहै । पूर्वमें ही कार्य हो, ऐसा मतान्तर है, तब णत्व नहीं होगा ॥

यभ धातु मैथुनमें है । येभिथ, ययब्ध । यब्धा । यप्स्यति । अयाप्सीत् ॥ णम धातु प्रह्वत्व और शब्दमें है । नेमिथ, ननन्थ । नन्ता । अनंसीत् । अनंसिष्टाम् ॥ गम्लृ और सृप्लृ धातु गतिमें हैं ॥

२४०० इषुगमियमां छः । ७।३। ७७ ॥

एषां छः स्याच्छिति परे । गच्छति।जगाम। जग्मतुः । जग्मुः । जगमिथ-जगन्थ । गन्ता॥

२४००-शित् प्रत्यय परे रहते इषु, गम् और यम् इन धातुओंके अन्त्य वर्णके स्थानमें छ आदेश हो । गच्छति । जगाम । जग्मतुः । जग्मुः । जगमिथ, जगन्थ । गन्ता ॥

२४०१ गमेरिट् परस्मैपदेषु ।७।२।५८॥

गमेः परस्य सकारादेरिट् स्यात्।गमिष्यति। लृदित्त्वादङ् । अनङीतिपर्युदासान्नोपधालोपः । अगमत् । सर्पति । ससर्प ॥

२४०१-परस्मैपदमें गम धातुके उत्तर स्थित सकारादि प्रत्ययको इट्का आगम हो । गमिष्यति । लृदित् होनेके कारण गम धातुके उत्तर अङ् होगा " गमहन० " इस सूत्रमें ' अनङि ' इस पर्य्युदास विधानके कारण धातुकी उपधाका लोप न होगा-अगमत् ॥ सर्पति । ससर्प ॥

२४०२ अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् । ६ । १ । ५९ ॥

उपदेशेनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम्वा स्याज्झलादावकिति परे । स्रप्ता-सर्प्ता । स्रप्स्यति-सर्प्स्यति । असृपत् ॥ ६ ॥ यम उपरमे । यच्छति । येमिथ-ययन्थ । यन्ता । अयंसीत् । अयंसिष्टाम् ॥ ७ ॥ तप सन्तापे । तप्ता । अताप्सीत् ॥

२४०२-झलादि अकित् प्रत्यय परे रहते उपदेशावस्थामें अनुदात्त जो ऋकारोपध धातु उसको विकल्प करके अम्का आगम हो । स्रप्ता, सर्प्ता । स्रप्स्यति, सर्प्स्यति । असृपत् ॥ यम धातु उपरममें है । यच्छति । येमिथ, ययन्थ । यन्ता । अयंसीत् । अयंसिष्टाम् ॥ तप धातु संतापमें है। तप्ता । अताप्सीत् ॥

२४०३ निसस्तपतावनासेवने८।३।१०२।

षः स्यात् । आसेवनं पौनःपुन्यं ततोऽन्यस्मिन्विषये । निष्टपति ॥ ८ ॥ त्यज हानौ । तत्यजिथ-तत्यक्थ । त्यक्ता । अत्याक्षीत् ॥९॥ षञ्ज सङ्गे । दंशसञ्जस्वञ्जां शपीति नलोपः । सजति । सङ्क्ता ॥ १० ॥ दृशिर् प्रेक्षणे । पश्यति ॥

२४०३-आसेवन शब्द पौनःपुन्यमें है, अनासेवनमें अर्थात् अपौनःपुन्यार्थमें तप धातुके पूर्ववर्ती निस् उपसर्गके सकारको षत्व हो । निष्टपति ॥ त्यज धातु हानिमें है । तत्यजिथ, तत्यक्थ। त्यक्ता । अत्याक्षीत् ॥ षञ्ज धातु संगमें है । " दंशसञ्जस्वञ्जां शपि २३९६ " इस सूत्रसे नकारका लोप हुआ-सजति । सङ्क्ता ॥ दृशिर् धातु प्रेक्षणमें है । पश्यति ॥

२४०४ विभाषा सृजिदृशोः ।७।२।६५॥

आभ्यां थल इड्वा ॥

२४०४-सृज और दृश् धातुके उत्तर थल् प्रत्ययके स्थानमें विकल्प करके इट् हो ॥

२४०५ सृजिदृशोर्झल्यमकिति६।१।५८॥

अनयोरमागमः स्याज्झलादावकिति । दद्रष्ठ-ददर्शिथ । द्रष्टा । द्रक्ष्यति । दृश्यात् । इरित्त्वादङ् वा ॥

२४०५-कित्भिन्न झलादि प्रत्यय परे रहते सृज और दृश् धातुको अमागम हो । दद्रष्ठ, ददर्शिथ । द्रष्टा । द्रक्ष्यति । दृश्यात् । इरित्त्वके कारण विकल्पसे अङ् होगा-॥

२४०६ ऋदृशोऽङि गुणः । ७।४।१६॥

ऋवर्णान्तानां दृशेश्च गुणः स्यादङि । अदर्शत् । अङभावे ॥

२४०६-अङ् प्रत्यय परे रहते ऋवर्णान्त धातु और दृश् धातुको गुण हो । अदर्शत् । अङ्के अभाव पक्षमें कैसा होगा सो आगेके सूत्रसे कहतेहैं-॥

२४०७ न दृशः । ३ । १ । ४७ ॥

दृशेः क्सो न । अद्राक्षीत् ॥ ११ ॥ दंश दशने । दशनं दंष्ट्राव्यापारः । पृषोदरादित्वाद-

नुनासिकलोपः । अत एव निपातनादित्येके । तेषामप्यत्रैव तात्पर्यम् । अर्थनिर्देशस्याधुनिकत्वात् । दंशसञ्जेति नलोपः । दशति। ददंशिथ-ददंष्ठ । दंष्टा । दङ्क्ष्यति । दश्यात् । अदाङ्क्षीत् ॥ १२ ॥ कृष विलेखने । विलेखनमाकर्षणम् । क्रष्टा-कर्ष्टा । क्रक्ष्यति-कर्क्ष्यति ॥ स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः ॥ * ॥ अक्राक्षीत् । अक्राष्टाम् । अकार्क्षीत् । अकार्ष्टाम्। अकार्क्षुः । पक्षे क्सः । अकृक्षत् । अकृक्षताम् । अकृक्षन् ॥ १३ ॥ दह भस्मीकरणे । देहिथ-ददग्ध । दग्धा । धक्ष्यति । अधाक्षीत् । अदाग्धाम् । अधाक्षुः ॥ १४ ॥ मिह सेचने । मिमेह। मिमेहिथ । मेढा । मेक्ष्यति । अमिक्षत् ॥ १५ ॥ कित निवासे रोगापनयने च । चिकित्सति । संशये प्रायेण विपूर्वः । विचिकित्सा तु संशय इत्यमरः । अस्यानुदात्तेत्त्वमाश्रित्य चिकित्सते इत्यादि कश्चिदुदाजहार।निवासे तु केतयति१६॥ दान खण्डने । शान तेजने ॥ इतो वहत्यन्ताः स्वरितेतः । दीदांसति-दीदांसते । शीशांसति-शीशांसते । अर्थविशेषे सन् । अन्यत्र दानयति । शानयति ॥ २ ॥ डुपचष् पाके । पचति । पचते । पेचिथ-पपक्थ । पेचे । पक्ता। पक्षीष्ट ॥ ३ ॥ षच समवाये । सचति। सचते॥ ॥ ४ ॥ भज सेवायाम् । बभाज । भेजतुः । भेजुः । भेजिथ-बभक्थ । भक्ता । भक्ष्यति । भक्ष्यते । अभाक्षीत् । अभक्त ॥ ५ ॥ रञ्ज रागे। नलोपः । रजति । रजते । रज्यात् । रङ्क्षीष्ट । अराङ्क्षीत् । अरङ्क्त ॥ ६ ॥ शप आक्रोशे । आक्रोशो विरुद्धानुध्यानम् । शशाप । शेपे । अशाप्सीत् । अशप्त ॥७॥ त्विष दीप्तौ । त्वेषति । त्वेषते । तित्विषे । त्वेष्टा । त्वेक्ष्यति । त्वेक्ष्यते । त्विष्यात् । त्विक्षीष्ट । अत्विक्षत् । अत्विक्षत । अत्विक्षाताम् । अत्विक्षन्त ॥ ८ ॥ यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु । यजति । यजते ॥

२४०७-दृश् धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें क्स आदेश नहीं हो । अद्राक्षीत् ॥ दंश धातु काटनेमें है।यहां (दंशनमें) पृषोदरादित्वके कारण अनुनासिक (नकार)का लोप हुआ,इसी निपातनके कारण लोप हुआ, यह कोई २ कहतेहैं, उनका भी इसीमें तात्पर्य्य है कारण कि, अर्थका निर्देश आधुनिक है । "दंशसञ्ज०२३९६" इस सूत्रसे नकारका लोप हुआ-दशति। ददंशिथ, ददंष्ठ । दंष्टा । दङ्क्ष्यति । दश्यात् । अदाङ्क्षीत् ॥ कृष धातु विलेखन अर्थात् आकर्षणमें है । क्रष्टा, कर्ष्टा । क्रक्ष्यति, कर्क्ष्यति ॥

स्पृश, मृश, कृष, तृप और दृप धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें विकल्प करके सिच् हो * अक्राक्षीत् । अक्राष्टाम् । अकार्क्षीत् । अकार्ष्टाम् । अकार्क्षुः । विकल्प पक्षमें क्स होकर-अकृक्षत् । अकृक्षाताम् । अकृक्षन् ॥

दह धातु जलानेमें है । देहिथ, ददग्ध । दग्धा । धक्ष्यति । अधाक्षीत् । अदाग्धाम् । अधाक्षुः ॥ मिह धातु सेचनमें है । मिमेह । मिमेहिथ । मेढा । मेक्ष्यति । अमिक्षत्॥कित् धातु निवास और रोगापनयनमें है । चिकित्सति । संशयार्थमें कित् धातु प्रायः विपूर्वक होताहै, क्योंकि अमरकोषमें " विचिकित्सा तु संशयः " ऐसा कहाहै, इस कित् धातुके अनुदात्तेत्त्व आश्रय करके ' चिकित्सते ' इत्यादि कोई २ उदाहरण देते हैं, परन्तु निवासार्थमें ' केतयति ' ऐसा होगा ॥ दान धातु खण्डनमें है ॥ शान धातु तेजनमें है ॥

यहांसे लेकर वह धातु पर्यन्त स्वरितेत् हैं ॥

दीदांसति । दीदांसते । शीशांसति । शीशांसते । अर्थविशेषमें ही सन् होताहै अन्यत्र नहीं, जैसे-दानयति । शानयति ॥ डुपचष् धातु पाकमें है । पचति । पचते । पेचिथ, पपक्थ । पेचे । पक्ता । पक्षीष्ट ॥ षच धातु समवायमें है । सचति । सचते ॥ भज धातु सेवामें है । बभाज । भेजतुः । भेजुः । भेजिथ, बभक्थ । भक्ता । भक्ष्यति । भक्ष्यते । अभाक्षीत् । अभक्त ॥ रञ्ज धातु रंगनेमें है । इस धातुके नकारका लोप होगा-रजति । रजते । रज्यात् । रङ्क्षीष्ट । अराङ्क्षीत् । अरङ्क्त॥शप धातु आक्रोश अर्थात् विरुद्ध चिन्तामें जानना । शशाप । शेपे । अशाप्सीत् । अशप्त॥ त्विष धातु दीप्तिमें है । त्वेषति । त्वेषते । तित्विषे । त्वेष्टा । त्वेक्ष्यति । त्वेक्ष्यते । त्विष्यात् । त्विक्षीष्ट । अत्विक्षत् । अत्विक्षत । अत्विक्षाताम्॥ अत्विक्षन्त यज धातु देवपूजा, संगतिकरण और दानमें है । यजति । यजते ॥

२४०८ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् । ६ । १ । १७ ॥

वच्यादीनां ग्रहादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्याल्लिटि ॥ इयाज ॥

२४०८-लिट् परे रहते वच्यादि और ग्रहादि धातुओंके अभ्यासको संप्रसारण हो-इयाज ॥

२४०९ वचिस्वपियजादीनां किति। ६ । १ । १५ ॥

वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात्किति । पुनःप्रसङ्गविज्ञानाद्द्वित्वम् । ईजतुः । ईजुः । इयजिथ-इयष्ठ । ईजे । यष्टा । यक्ष्यति । यक्ष्यते । इज्यात् । यक्षीष्ट । अयाक्षीत् । अयष्ट ॥ ९ ॥ डुवप् बीजसन्ताने । बीजसन्तानं क्षेत्रे विकिरणं गर्भाधानं च । अयं छेदनेपि । केशान्वपति । उवाप । ऊपे । वप्ता । उप्यात् । वप्सीष्ट । प्रण्यवाप्सीत् । अवप्त ॥ १० ॥ वह प्रापणे । उवाह । उवहिथ ॥ सहिवहोरोदवर्णस्य ॥ उवोढ । ऊहे । वोढा । वक्ष्य-

ति । वक्ष्यते । अवाक्षीत् । अवोढाम् । अवाक्षुः । अवोढ । अवक्षाताम् । अवक्षत । अवोढाः । अवोढ्म् ॥ ११ ॥ वस निवासे परस्मैपदी । वसति । उवास ॥

२४०९–कित् प्रत्यय परे रहते वच और स्वप और यजादि धातुओंको संप्रसारण हो । पुनर्वार प्रसङ्ग विज्ञानके कारण द्वित्व होगा–ईजतुः । ईजुः । इयजिथ, इयष्ठ । ईजे । यष्टा । यक्ष्यति।यक्ष्यते। इज्यात् । यक्षीष्ट । अयाक्षीत् । अयष्ट॥ डुवप् धातु क्षेत्रमें बीज बोना और गर्भाधानमें है । यह डुवप धातु छेदनार्थमें भी है । केशान्–वपति । उवाप । ऊपे । वप्ता । उप्यात् । वप्सीष्ट । प्रण्यवाप्सीत् । अवप्त ॥ वह धातु प्राप्ति करनेमें है । उवाह । उवहिथ । "सहिव हो रोदवर्णस्य २३५७" इस सूत्रसे अवर्णके स्थानमें ओकार हुआ । वोढा। वक्ष्यति।वक्ष्यते। अवाक्षीत्। अवोढाम् । अवाक्षुः। अवोढ। अवक्षाताम् । अवक्षत । अवोढाः । अवोढ्म् ॥ वस धातु निवासमें है, यह धातु परस्मैपदी है । वसति । उवास ॥

२४१० शासिवसिघसीनां च।८।३।६०॥

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात् । ऊषतुः । ऊषुः । उवसिथ–उवस्थ । वस्ता ॥ (सः स्यार्धधातुके २३४२) वत्स्यति । उष्यात् । अवात्सीत् । अवात्ताम् ॥ १२ ॥ वेञ् तन्तुसन्ताने । वयति । वयते ॥

२४१०–इण् और कवर्गके उत्तर शास्, वस् और घस् धातुके सकारको षत्व हो । ऊषतुः । ऊषुः । उवसिथ, उवस्थ । वस्ता । आर्धधातुक परे सकारके स्थानमें तकार हो (२३४२) वत्स्यति । उष्यात् । अवात्सीत्। अवात्ताम्। वेञ् धातु तंतुविस्तार अर्थात् वस्त्रादि बुननेमें है। वयति । वयते ॥

२४११ वेञो वयिः । २ । ४ । ४१ ॥

वा स्याल्लिटि । इकार उच्चारणार्थः । उवाय ॥

२४११–लिट् परे रहते वेञ् धातुके स्थानमें विकल्प करके वयि आदेश हो । वयिका इकार उच्चारणार्थ है । उवाय ॥

२४१२ ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च । ६ । १ । १६ ॥

एषां किति ङिति च सम्प्रसारणं स्यात् । यकारस्य प्राप्ते ॥

२४१२–कित्, और ङित् प्रत्यय परे रहते ग्रह, ज्या, वय, व्यध, वश, विच् वृश्च, प्रच्छ और भ्रस्ज धातुको संप्रसारण हो । इससे यकारके स्थानमें संप्रसारण प्राप्त होनेपर आगे कहतेहैं ॥

२४१३ लिटि वयो यः । ६ । १ । ३८॥

वयो यस्य सम्प्रसारणं न स्याल्लिटि।ऊयतुः।ऊयुः॥

२४१३–लिट् परे रहते वय धातुके यकारको संप्रसारण न हो । ऊयतुः । ऊयुः ॥

२४१४ वश्चास्यान्यतरस्यां किति । ६ । १ । ३९ ॥

वयो यस्य वो वा स्यात्किति लिटि । ऊवतुः । ऊवुः । वयस्तासावभावात्थलि नित्यमिट् । उवयिथ । स्थानिवद्भावेन ञित्त्वात्तङ् । ऊये । ऊवे । वयादेशाभावे ॥

२४१४–कित् लिट् परे रहते वय धातुके यकारके स्थानमें विकल्प करके व हो । ऊवतुः। ऊवुः॥वय धातुके उत्तर तासि प्रत्ययके अभावके कारण उसके उत्तर थल्को नित्य इट् होगा–उवयिथ। स्थानिवद्भावके कारण ञित्त्व होनेसे तङ् हुआ–ऊये । ऊवे । वयादेशके अभावमें कैसा होगा सो अगले सूत्रमें कहतेहैं–॥

२४१५ वेञः । ६ । १ । ४० ॥

वेञो न सम्प्रसारणं स्याल्लिटि । ववौ। ववतुः। ववुः । वविथ–ववाथ । ववे । वाता । ऊयात्–वासीष्ट । अवासीत् ॥ १३ ॥ व्येञ् संवरणे । व्ययति । व्ययते ॥

२४१५–लिट् परे रहते वेञ् धातुको संप्रसारण न हो। ववौ । ववतुः । ववुः । वविथ,ववाथ । ववे । वाता । ऊयात्, वासीष्ट। अवासीत्॥ व्येञ् धातु संवरणमें है । व्ययति। व्ययते॥

२४१६ न व्यो लिटि । ६ । १ । ४६॥

व्येञ आत्वं न स्याल्लिटि । वृद्धिः। परमपि हलादिःशेषं बाधित्वा यस्य सम्प्रसारणम् । उभयेषां ग्रहणसामर्थ्यात् । अन्यथा वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चानुवृत्त्यैव सिद्धे किं तेन । विव्याय । विव्यतुः । विव्युः । इडत्त्यर्तीति नित्यमिट् । विव्ययिथ । विव्याय–विव्यय । विव्ये । व्याता । वीयात् । व्यासीष्ट । अव्यासीत् । अव्यास्त ॥ १४ ॥ ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च॥

२४१६–लिट् परे रहते व्येञ् धातुके एकारके स्थानमें आकार न हो । वृद्धि हुई । "हलादिः शेषः" इस सूत्रके परवर्त्ती होनेपर भी इसको बाध करके "लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् २४०८" इस सूत्रसे दोनोंके ग्रहणके कारण यकारको संप्रसारण होगा, अन्यथा वच्यादि और ग्रह्यादि धातुको अनुवृत्तिद्वारा ही संप्रसारण सिद्ध होजाता तो 'उभयेषाम्' पद के ग्रहणका क्या प्रयोजन होता अर्थात् व्यर्थ होजाता । विव्याय । विव्यतुः। विव्युः । "इडत्त्यर्ति० २३८४" इस सूत्रसे नित्य इट् हुआ। विव्ययिथ । विव्याय, विव्यय । विव्ये । व्याता । वीयात् । व्यासीष्ट । अव्यासीत् । अव्यास्त ॥ ह्वेञ् धातु स्पर्द्धा और शब्दमें है ॥

२४१७ अभ्यस्तस्य च । ६।१। ३३ ॥

अभ्यस्तीभविष्यतो ह्वञः संप्रसारणं स्यात् । ततो द्वित्वम् । जुहाव । जुहुवतुः । जुहुवुः । जुहविथ-जुहोथ।जुहुवे। ह्वाता। हूयात्। ह्वासीष्ट॥

२४१७-जिसकी अभ्यस्त संज्ञा होगी ऐसा जो ह्वञ् धातु उसको संप्रसारण हो । पश्चात् द्वित्व होगा । जुहाव । जुहुवतुः । जुहुवुः । जुहविथ, जुहोथ । जुहुवे । ह्वाता । हूयात् । ह्वासीष्ट॥

२४१८ लिपिसिचिह्वश्च । ३ । १।५३॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् ॥

२४१८-लिप्, सिच् और ह्वञ् धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें अङ् हो ॥

२४१९ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् । ३ । १ । ५४ ॥

आतो लोपः । अह्वत । अह्वताम् । अह्वन्त । अह्वत । अह्वास्त ॥ १५ ॥

अथ द्वौ परस्मैपदिनौ ॥ वद व्यक्तायां वाचि । अच्छं वदति । उवाद । ऊदतुः । उवदिथ । वदिता । उद्यात् । वदव्रजेति वृद्धिः । अवादीत् ॥१॥ टुओश्वि गतिवृद्ध्योः । श्वयति ॥

२४१९-आत्मनेपदमें उक्त धातुओंके उत्तर च्लिके स्थानमें विकल्प करके अङ् हो । अङ् परे रहते आकारका लोप हुआ (२३७२) अह्वत् । अह्वताम् । अह्वन् । अह्वत । अह्वास्त ॥

अब दो परस्मैपदी धातु कहे जातेहैं ।

वद धातु स्पष्ट कथनमें है । अच्छं वदति । उवाद । ऊदतुः । ऊदुः । उवदिथ । वदिता । उद्यात् । "वदव्रज० २२६७" इस सूत्रसे वृद्धि हुई-अवादीत् ॥ टुओश्वि धातु गति और वृद्धिमें है । श्वयति ॥

२४२० विभाषा श्वेः । ६ । १ । ३० ॥

श्वयतेः संप्रसारणं वा स्याल्लिटि यङि च । शुशाव । शुशुवतुः॥ श्वयतेर्लिट्यभ्यासलक्षणप्रतिषेधः । तेन लिट्यभ्यासस्येति संप्रसारणं न । शिश्वाय । शिश्वियतुः । श्वयिता । श्वयेत् । शूयात् । जॄस्तम्भ्वित्यङ् वा ॥

२४२०-लिट् और यङ् प्रत्यय परे रहते श्वि धातुको विकल्प करके संप्रसारण हो । शुशाव । शुशुवतुः ।

लिट् परे रहते श्वि धातुको अभ्यास लक्षण कार्य्यका प्रतिषेध हो इससे "लिट्यभ्यासस्य० २४०८" इस सूत्रसे लिट् परे रहते अभ्यासको संप्रसारण नहीं होगा-शिश्वाय । शिश्वियतुः । श्वयिता । श्वयेत् । शूयात् । "जॄस्तम्भु० २२९१" इस सूत्रसे विकल्प करके अङ् हुआ ॥

२४२१ श्वयतेरः । ७ । ४ । १८ ॥

श्वयतेरिकारस्य अकारः स्यादङि । पररूपम् । अश्वत् । अश्वताम् । अश्वन् । विभाषा धेट्श्व्योरिति चङ् । इयङ् । अशिश्वियत् । ह्म्यन्तेति न वृद्धिः । अश्वयीत् ॥ २ ॥ वृत् ॥ यजादयो वृत्ताः । भ्वादिस्त्वाकृतिगणः । तेन चुलुम्पतीत्यादिसंग्रहः ॥

॥ इति भ्वादयः ॥

२४२१-अङ् परे रहते श्वि धातुके इकारके स्थानमें अकार हो । अकार होनेपर पररूप होगा-अश्वत् । अश्वताम् । अश्वन् । "विभाषा धेट्श्व्योः २३७५" इस सूत्रसे चङ् होगा, पश्चात् इयङ् होगा-अशिश्वियत् । "ह्म्यन्त० २२९९" इस सूत्रसे निषेधके कारण वृद्धि न होगी-अश्वयीत् ॥

यजादि धातु समाप्त हुई ॥

भ्वादि धातु आकृतिगणीय हैं, इस कारण 'चुलुम्पति' इत्यादि पद सिद्ध होंगे ॥

॥ इति तिङन्ते भ्वादयः ॥

२४२२ ऋतेरीयङ् । ३ । १ । २९ ॥

ऋतिः सौत्रस्तस्मादीयङ् स्यात्स्वार्थे । जुगुप्सायामयं धातुरिति बहवः । कृपायां चेत्येके । सनाद्यन्ता इति धातुत्वम् । ऋतीयते । ऋतीयांचक्रे । आर्धधातुकविवक्षायां तु आयादय आर्धधातुके वेतीयङभावे शेषात्कर्तरीति परस्मैपदम् । आनर्त । अर्तिष्यति।आर्तीत्॥ १॥

॥ इति भ्वादिप्रकरणम् ॥

२४२२-'ऋति' यह सूत्रपठित धातु है, उसके उत्तर स्वार्थमें इयङ् प्रत्यय हो, अनेकोंके मतसे यह धातु जुगुप्सा वाचक है । कृपामें है, ऐसा एकका मत है । "सनाद्यन्ता० २३०४" इस सूत्रसे धातुत्व होकर ऋतीयते । ऋतीयाञ्चक्रे । आर्धधातुकविवक्षामें तो "आयादय आर्धधातुके वा २३०५" इस सूत्रसे इयङ्का अभाव होनेपर "शेषात्कर्तरि० २१५९" इस सूत्रसे परस्मैपद होगा । आनर्त । अर्तिष्यति । आर्तीत् ॥

॥ इति तिङन्तेभ्वादिप्रकरणम् ॥

अथादादयः २.

अद भक्षणे । द्वौ परस्मै पदिनौ ॥

अद धातु भक्षणमें है, यह दोनों धातु परस्मैपदी हैं ॥

२४२३ अदिप्रभृतिभ्यः शपः।२।४।७२॥

लुक् स्यात् । अत्ति । अत्तः । अदन्ति ॥

२४२३-अदादिगणीय धातुओंके उत्तर शप्का लुक् हो, अत्ति । अत्तः । अदन्ति ॥

२४२४ लिट्यन्यतरस्याम् ।२।४।४०॥

अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि । जघास । गमहनेत्युपधालोपः । तस्य चर्विधिं प्रति स्थानिवद्भावनिषेधाद्घस्य चर्त्वम् । शासिवसीति षत्वम् ।

जक्षतुः । जक्षुः । घसेस्तासावभावात्थलि नित्यमिट् । जघसिथ । आद । आदतुः । इडत्त्यर्तीति नित्यमिट् । आदिथ । अत्ता । अत्स्यति ॥

२४२४–लिट् परे रहते अद् धातुके स्थानमें विकल्प करके घस्लृ आदेश हो । जघास । "गमहन० २३६३" इस सूत्रसे उपधाका लोप हुआ, उसको चर्त्व विधिमें स्थानिवद्भावके निषेधके कारण घको चर्त्व हुआ। "शासिवसि० २४१०" इस सूत्रसे षत्व हुआ । जक्षतुः । जक्षुः । घस्को तासि प्रत्यय परे अभावके कारण थल्में नित्य इट् होकर–जघसिथ । आद। आदतुः । "इडत्त्यर्ति० २३४४" इस सूत्रसे नित्य इट् होकर-आदिथ । अत्ता । अत्स्यति ॥

२४२५ हुझल्भ्यो हेर्धिः । ६ ।४।१०१॥

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात् । अद्धि-अत्तात् । अदानि ॥

२४२५–हु धातु और झलन्त धातुके उत्तर हिके स्थानमें धि आदेश हो, अद्धि । अत्तात् । अदानि ॥

२४२६ अदः सर्वेषाम् । ७ । ३।१००॥

अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्याडागमः स्यात्सर्वमतेन । आदत् । आत्ताम्।आदन् । आदः । आत्तम् । आत्त । आदम् । आद्व । आद्म । अद्यात् । अद्याताम् । अद्युः। अद्यात्।अद्यास्ताम् । अद्यासुः ॥

२४२६–सब वैयाकरणोंके मतसे अद धातुके उत्तर अपृक्त सार्वधातुकको अडागम हो । आदत् । आत्ताम् । आदन् । आदः । आत्तम् । आत्त । आदम् । आद्व । आद्म । अद्यात् । अद्याताम् । अद्युः । अद्यात् । अद्यास्ताम् । अद्यासुः ॥

२४२७ लुङ्सनोर्घस्लृ । २ । ४ । ३७॥

अदो घस्लृ स्यात् लुङि सनि च । लृदित्वादङ् । अघसत्॥२॥हन हिंसागत्योः॥प्रणिहन्ति ॥

२४२७–लुङ् और सन् परे रहते अद् धातुके स्थानमें घस्लृ आदेश हो, लृकार इत् होनेके कारण च्लिके स्थानमें अङ् होकर–अघसत् । हन धातु हिंसा और गतिमें है । प्रणिहन्ति ॥

२४२८ अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति । ६ । ४ । ३७ ॥

अनुनासिकेति लुप्तषष्ठीकं वनतीतरेषां विशेषणम् । अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ क्ङिति परे। यमि–रमि–नमि-गमि-हनि-मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः । तनु-क्षणु-क्षिणु-ऋणु–तृणु–घृणु–वनु–मनु–तनोत्यादयः। हतः । घ्नन्ति ॥

२४२८–झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते अनुनासिकान्त तनु आदि धातुओंके और वन धातुके अन्तका लोप हो, इस सूत्रमें अनुनासिक, यह पद लुप्तषष्ठीक है, वन धातुसे भिन्न धातुका अर्थात् अनुदात्तोपदेश और तनोत्यादिका विशेषण है । यम्, रम्, नम्, गम्, हन् और मन् इतने धातु अनुदात्तोपदेश हैं । तनु, क्षणु, क्षिणु, ऋणु, तृणु, घृणु, वनु और मनु इतने तनोत्यादि धातु हैं । हतः । घ्नन्ति ॥

२४२९ वमोर्वा । ८ । ४ । २३ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य हन्तेर्नस्य णो वा स्याद्वमयोः परयोः । प्रहण्मि–प्रहन्मि। प्रहण्वः–प्रहन्वः । होहन्तेरिति कुत्वम् । जघान । जघ्नतुः । जघ्नुः ॥

२४२९–व और म परे रहते उपसर्गस्थनिमित्तके उत्तर हन धातुके नकारको विकल्प करके णत्व हो । प्रहण्मि,प्रहन्मि। प्रहण्वः, प्रहन्वः । "हो हन्तेः० ३५८" इस सूत्रसे हन् धातुके हकारको कुत्व, अर्थात् घ होकर–जघान । जघ्नतुः । जघ्नुः ॥

२४३० अभ्यासाच्च । ७ । ३ । ५५ ॥

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात् । जघनिथ–जघन्थ । हन्ता । ऋद्धनोरितीट् । हनिष्यति । हन्तु । हतात् । घ्नन्तु ॥

२४३०–अभ्यासके परे स्थित हन् धातुके हके स्थानमें घ हो । जघनिथ, जघन्थ । हन्ता । "ऋद्धनोः० २३६६" इस सूत्रसे इट् होकर–हनिष्यति । हन्तु । हतात् । घ्नन्तु ॥

२४३१ हन्तेर्जः । ६ । ४ । ३६ ॥

हौ परे । आभीयतया जस्यासिद्धत्वाद्धेर्न लुक् । जहि । हनानि । हनाव । हनाम । अहन्। अहताम् । अघ्नन् । अहनम् ॥

२४३१–हि विभक्ति परे रहते हन् धातुके स्थानमें ज आदेश हो । "असिद्धवदत्राभात्" इससे समानाश्रय आभीय कार्य्य (हिका लुक्) कर्त्तव्य रहते समानाश्रय आभीय कार्य्य (जादेश) को असिद्धत्वके कारण हिका लुक् न होकर–जहि । हनानि । हनाव । हनाम । अहन् । अहताम् । अघ्नन् । अहनम् ॥

२४३२ आर्धधातुके । २ । ४ । ३५ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

२४३२–आर्धधातुके इसका अधिकार करके–॥

२४३३ हनो वधलिङि । २ । ४ । ४२॥

२४३३–लिङ् परे रहते हन् धातुके स्थानमें वध आदेश हो–॥

२४३४ लुङि च । २ । ४ । ४३ ॥

वधादेशोऽदन्तः । आर्धधातुक इति विषयसप्तमी । तेनार्धधातुकोपदेशे अकारान्तत्वादतो-

लोपः । वध्यात् । वध्यास्ताम् । आर्धधातुके किम् । विध्यादौ हन्यात् । हन्तेरिति णत्वम् । प्रहण्यात् । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वादतो हलादेरिति न वृद्धिः । अवधीत्॥३॥ अथ चत्वारः स्वरितेतः । द्विष अप्रीतौ । द्वेष्टि । द्विष्टे । द्वेष्टा । द्वेक्ष्यति । द्वेक्ष्यते । द्वेष्टु । द्विष्यात् । द्विड्ढि । द्वेषाणि । द्वेषै । द्वेषावहै । अद्वेट् ॥

२४३४–लुङ् परे रहते भी हन् धातुके स्थानमें वध आदेश हो । वधादेश अकारान्त है 'आर्धधातुके' यह विषय सप्तमी है । (२३०७) इसलिये आर्धधातुक उपदेशकालमें अकारान्तत्वके कारण अकारका लोप होकर–(२३०८) वध्यात् । वध्यास्ताम् । आर्धधातुक न होनेपर विध्यादिमें 'हन्यात्' ऐसा होगा "हन्तेः ३५९" इस सूत्रसे णत्व होकर प्रहण्यात् । "अतो लोपः" इस सूत्रसे जो अकारका लोप हुआहै उसके स्थानिवद्भाव होनेसे "अतो हलादेः" इस सूत्रसे वैकल्पिक वृद्धि न होगी–अवधीत् ॥

अब चार उभयपदी धातु कहतेहैं ।

द्विष धातु अप्रीतिमें है । द्वेष्टि । द्विष्टे । द्वेष्टा । द्वेक्ष्यति । द्वेक्ष्यते । द्वेष्टु । द्विष्यात् । द्विड्ढि । द्वेषाणि । द्वेषै । द्वेषावहै । द्वेषामहै । अद्वेट् ॥

२४३५ द्विषश्च । ३ । ४ । ११२ ॥

लङो झेर्जुस्वा स्यात् । अद्विषुः–अद्विषन् । अद्वेषम् । द्विष्यात् । द्विषीत । द्विक्षीष्ट । अद्विक्षत् ॥ १ ॥ दुह प्रपूरणे । दोग्धि । दुग्धः । धोक्षि । दुग्धे । धुक्षे । धुग्ध्वे । दोग्धु । दुग्धि । दोहानि । धुक्ष्व । धुग्ध्वम् । दोहै । अधोक् । अदोहम् । अदुग्ध । अधुग्ध्वम् । अधुक्षत् । अधुक्षत । लुग्वा दुहेतिलुक्पक्षे तथास्ध्वम्वहिषु लङ्वदपि ॥ २॥ दिह उपचये । प्रणिदेग्धि ॥ ३॥ लिह आस्वादने । लेढि । लीढः । लिहन्ति । लेक्षि । लीढे । लिक्षे । लीढ्वे । लेढु । लीढि । लेहानि । अलेट् । अलीढ । अलिक्षत् । अलिक्षताम् । अलिक्षत । अलीढ । अलिक्षावहि । अलिह्वहि ॥ ४ ॥ चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । अयं दर्शनेपि । इकारोऽनुदात्तो युजर्थः । विचक्षणः प्रथयन । नुम् तु न । अन्तेदित इति व्याख्यानात् । ङकारस्तु अनुदात्तत्त्वप्रयुक्तमात्मनेपदमनित्यमिति ज्ञापनार्थः । तेन स्फायन्निर्मोकसन्धीत्यादि सिध्यति । चष्टे । चक्षाते ॥ आर्धधातुके इत्यधिकृत्य ॥

२४३५–द्विष धातुके उत्तर लङ्लकार सम्बन्धी झिके स्थानमें विकल्प करके जुस् हो, अद्विषुः, अद्विषन् । अद्वेषम् । द्विष्यात् । द्विषीत । द्विक्षीष्ट । अद्विक्षत्॥दुह धातु प्रपूरणमें है। दोग्धि । दुग्धः । धोक्षि । दुग्धे । धुक्षे, इत्यादि । "लुग्वा दुह २३६८" इस सूत्रसे लुक् पक्षमें तथास्, ध्वम् और वहि प्रत्यय परे लङ्की समानभी रूप होंगे । दिह धातु उपचयमें है । उपचय, अर्थात् वृद्धि । प्रणिदेग्धि॥लिह धातु आस्वादनमें है। लेढि, इत्यादि ॥ चक्षिङ् धातु व्यक्त वचनमें है । यह धातु दर्शनार्थमें भी है । इकार अनुदात्त युजर्थ है, जैसे–'विचक्षणः प्रथयन्' इकार इत् होनेसे नुम् तो नहीं कहसकतेहो, कारण कि, अन्त्य इकार इत् है जिसमें ऐसे धातुको नुम् हो, ऐसा व्याख्यान है ।

अनुदात्तेत चक्षिङ् धातु होनेसे आत्मनेपद सिद्ध होनेपर भी ङकार अनुबन्ध क्यों किया ? इसपर कहतेहैं कि, अनुदात्तेत्त्वलक्षण आत्मनेपदके अनित्यत्वज्ञापनार्थ चक्षिङ् धातुमें ङकार अनुबन्ध है, अत एव 'स्फायन्निर्मोकसंधि' इत्यादि पद सिद्ध हुए ॥ चष्टे । चक्षाते । "आर्धधातुके २३७७" इसका अधिकार करके कहते हैं कि–॥

२४३६ चक्षिङः ख्याञ् । २ ।४।५४ ॥

२४३६–आर्धधातुकविषयमें चक्ष धातुके स्थानमें ख्याञ् आदेश हो–॥

२४३७ वा लिटि । २ । ४ । ५५ ॥

अत्र भाष्ये ख्शादिरयमादेशः । असिद्धकाण्डे शस्य यो वेति स्थितम्। ञित्त्वात्पदद्वयम्। चख्यौ–चख्ये । चख्शौ–चख्शे । चयो द्वितीया इति तु न चर्त्वस्यासिद्धत्वात् । चचक्षे । ख्याता–क्शाता । ख्यास्यति । ख्यास्यते । क्शास्यति । क्शास्यते । अचष्ट । चक्षीत । ख्यायात्–ख्येयात् । क्शायात्–क्शेयात् ॥

२४३७–लिट् परे रहते चक्ष धातुके स्थानमें विकल्प करके ख्याञ् आदेश हो, इस स्थलमें भाष्यमें यह आदेश ख्शादि है । असिद्धकाण्डमें स्थित "शस्य यो वा" इस वार्तिकसे विकल्प करके शकारके स्थानमें यकार होगा । ञ् इत् होनेके कारण उभयपद होकर–चख्यौ, चख्ये । चख्शौ, चख्शे । यहां "चयो द्वितीयाः" इस वार्तिकसे चय, अर्थात् ककारके स्थानमें चर्त्वके असिद्धत्वके कारण द्वितीय वर्ग (खकार) नहीं हुआ । चचक्षे, इत्यादि ॥

२४३८ अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् । ३ । १ । ५२ ॥

एभ्यश्च्लेरङ् । अख्यत् । अख्यत । अक्शासीत् । अक्शास्त ॥ वर्जने ख्शाञ् नेष्टः ॥ * ॥ समचक्षिष्टेत्यादि ॥ ५ ॥

अथ पृच्यन्ता अनुदात्तेतः॥ईर गतौ कम्पने च ईर्ते । ईराञ्चक्रे । ईर्ताम् । ईर्ष्व । ईर्ध्वम् । ऐरिष्ट ॥ १ ॥ ईड स्तुतौ । ईट्टे ।

२४३८–अस्यति (अस्) धातु वच् धातु और ख्या धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें अङ् आदेश हो । अख्यत् । अख्यत इत्यादि ।

वर्जन अर्थमें ख्शाञ् आदेश इष्ट नहीं हो, जैसे–समचक्षिष्ट, इत्यादि ।

अब पच धातुपर्यन्त अनुदात्तेत् धातु कहतेहैं ॥

ईर् धातु गमन और कम्पनार्थमें है। ईर्ते। ईराञ्चक्रे। ईरिता। ईरिष्यते। ईर्ताम्। ईर्ष्व। ईर्ध्वम्। ऐरिष्ट॥ ईड धातु स्तुतिमें है। ईट्टे॥

२४३९ ईशः से। ७। २। ७७॥
२४४० ईडजनोर्ध्वे च। ७।२।७८॥

ईशीड्जनां सेध्वेशब्दयोः सार्वधातुकयोरिट् स्यात्। योगविभागो वैचित्र्यार्थः। ईडिषे। इडिध्वे। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात्। ईडिष्व। ईडिध्वम्। विकृतिग्रहणेन प्रकृतेरग्रहणात्। ऐड्ढ्म्॥ २॥ ईश ऐश्वर्ये। ईष्टे। ईशिषे। ईशिध्वे॥ ३॥ आस उपवेशने। आस्ते॥ दयायासश्च॥ आसांचक्रे। आस्स्व। आध्वम्। आसिष्ट॥ ४॥ आङः शासु इच्छायाम्। आशास्ते। आशासाते। आङ्पूर्वत्वं प्रायिकम्। तेन नमोवाकं प्रशास्महे इति सिद्धम्॥ ५॥ वस आच्छादने। वस्ते। वस्से। वध्वे। ववसे। वसिता॥ ६॥ कसि गतिशासनयोः। कंस्ते। कंसाते। कंसते। अयमनिदिदित्येके। कस्ते। तालव्यान्तोप्यनिदित्। कष्टे। कशाते। कक्षे। कड्ढ्वे॥ ७॥ णिसि चुम्बने। निंस्ते। दन्त्यान्तोयम्। आभरणकारस्तु तालव्यान्त इति बभ्राम॥ ८॥ णिजि शुद्धौ। निंक्ते। निंक्षे। निञ्जिता॥९॥शिजि अव्यक्ते शब्दे। शिंक्ते॥१०॥ पिजि वर्णे। सम्पर्चने इत्येके। उभयत्रेत्यन्ये। अवयवे इत्यपरे। अव्यक्ते शब्दे इतीतरे। पिंक्ते॥ ११॥ पृजीत्येके। पृंक्ते॥ १२॥ वृजी वर्जने। दन्त्योष्ठ्यादिः। ईदित्। वृक्ते। वृजाते। वृक्षे। इदिदित्यन्ये। वृंक्ते॥ १३॥ पृची सम्पर्चने। पृक्ते॥ १४॥ षूङ् प्राणिगर्भविमोचने। सूते। सुषुवे। सविता-सोता। भूसुवोरिति गुणनिषेधः। सुवै। सविषीष्ट-सोषीष्ट। असविष्ट-असोष्ट॥१५॥ शीङ् स्वप्ने॥

२४३९-२४४०-ईश,ईड और जन धातुके उत्तर सार्वधातुक से और ध्वे प्रत्ययको इट् हो। योगविभाग,अर्थात् भिन्न सूत्रकरण वैचित्र्यार्थ,अर्थात् उत्तर सूत्रमें पूर्व सूत्रसे से शब्दकी अनुवृत्ति और पूर्व सूत्रमें उत्तर सूत्रसे ध्वे शब्दके अपकर्षणरूप वैचित्र्य बोधनार्थ है। ईडिषे। ईडिध्वे। "एकदेशविकृतमनन्यवत्" इस परिभाषासे स्व और ध्वम् प्रत्ययको भी इट् होकर-ईडिष्व। ईडिध्वम्। प्रकृतिके ग्रहणसे विकृतिका ग्रहण होताहै परन्तु विकृतिके ग्रहणसे प्रकृतिका ग्रहण न होनेसे ऐड्ढ्म् इस स्थानमें इट् नहीं हुआ॥ ईश धातु ऐश्वर्यमें है। ईष्टे। ईशिषे। ईशिध्वे॥ आस धातु उपवेशनमें हैं। "दयायासश्च २३२४" इस सूत्रसे आस् धातुके उत्तर आम् होकर-आसाञ्चक्रे। आस्स्व। आध्वम्। आसिष्ट॥ आङ्पूर्वक शासु धातु इच्छामें है। आशास्ते। आशासाते। यह धातु प्रायः आङ्पूर्वक देखा जाताहै, किन्तु सर्वत्र आङ्पूर्वक नहीं है,अत एव 'नमोवाकं प्रशास्महे' ऐसा प्रयोग हुआ है॥ वस धातु आच्छादनमें है। वस्ते। वस्से। वध्वे। ववसे। वसिता॥ कसि धातु गति और शासनमें है। कंस्ते। कंसाते। कंसते। कोई २ कहतेहैं कि, यह अनिदित् है, उनके मतसे-कस्ते। कश् धातु तालव्यान्त और अनिदित् भी है जैसे-कष्टे। कशाते। कक्षे। कड्ढ्वे॥ णिसि धातु चुम्बनमें है। निंस्ते। यह धातु दन्त्य सकारान्त है। आभरणकार तो इसको तालव्यान्त कहतेहैं परन्तु यह भ्रम है॥ णिजि धातु शोधनमें है। निङ्क्ते। निङ्क्षे। निञ्जिता॥ शिजि धातु अव्यक्त शब्दमें है। शिङ्क्ते॥ पिजि धातु वर्णमें है। किसी २ के मतसे सम्पर्चनमें है। किसीके मतसे पूर्वोक्त दोनों अर्थमें है। किसीके मतसे अवयवार्थमें है और किसी २ के मतसे अव्यक्त शब्दार्थमें है। पिङ्क्ते। कोई २ पृजि धातु कहतेहैं। पृङ्क्ते॥ वृजी धातु वर्जनमें है, यह दन्त्योष्ठ्यादि और ईदित् है। वृक्ते। वृजाते। वृक्षे। कोई २ कहतेहैं,यह इदित् है। वृङ्क्ते॥ पृची धातु सम्पर्चनमें है। पृक्ते॥ षूङ् धातु प्रसव करनेमें है। सूते। सुषुवे। सविता, सोता। "भूसुवोः० २२२४" इस सूत्रसे गुणनिषेध होकर-सुवै। सविषीष्ट, सोषीष्ट। असविष्ट, असोष्ट॥ शीङ् धातु स्वप्नमें है॥

२४४१ शीङः सार्वधातुके गुणः। ७। ४। २१॥

क्ङिति चेत्यस्यापवादः। शेते। शयाते॥

२४४१-सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते शीङ् धातुके इकारको गुण हो। "क्ङिति च२२१३" इस सूत्रका विशेषक है। शेते। शयाते॥

२४४२ शीङो रुट्। ७। १। ६॥

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात्। शेरते। शेषे। शेध्वे। शये। शेवहे। शिश्ये। शयिता। अशयिष्ट॥ १६॥

अथ स्तौत्यन्ताः परस्मैदिनः। ऊर्णुस्तूभयपदी॥ यु मिश्रणेऽमिश्रणे च॥

२४४२-शीङ् धातुके परे स्थित झ के स्थानमें आदिष्ट अत् को रुट्का आगम हो, शेरते। शेषे। शेध्वे। शये। शेवहे। शेमहे। शिश्ये। शयिता। अशयिष्ट॥

अब स्तु धातु पर्यन्त परस्मैपदी धातु कहते हैं।

यु धातु मिश्रण और अमिश्रण (मिलाने और अलग करने) में है।

२४४३ उतो वृद्धिर्लुकि हलि। ७।३।८९॥

लुग्विषये उकारस्य वृद्धिः स्यात्पिति हलादौ सार्वधातुके न त्वभ्यस्तस्य। यौति। युतः। युवन्ति। युयाव। यविता। युयात्। इह उतो वृद्धिर्न। भाष्ये पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्नेति व्या॰

ख्यानात् । विशेषविहितेन ङित्त्वेन पित्त्वस्य बाधात् । यूयात् । अयावीत् ॥ १ ॥ रु शब्दे ॥

२४४३-पित् हलादि सार्वधातुक विभक्ति परे रहते लुग्विषयमें उकारान्त धातुको वृद्धि हो, अभ्यस्तसंज्ञक धातुको न हो, यौति । युतः । युवन्ति । युयाव । यविता । युयात् । यहां तिप्के आगम यासुट्के "यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते" अर्थात् जो जिसका आगम होताहै, उसका उसके ग्रहणसे ग्रहण होताहै, इस परिभाषासे तिप्ग्रहणसे ग्रहण होने पर पित् हलादि सार्वधातुक यास् परे उकारको वृद्धिकी प्राप्ति हुई, परन्तु पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्न (पित् ङित् न हो और ङित् पित् न हो) ऐसे भाष्यमें व्याख्यानके कारण नहीं हुई, यदि कहो कि, पित्त्वप्रयुक्तही कार्य्य हो सो नहीं कहसकते हो, कारण कि, विशेषविहित ङित्त्वसे पित्त्वका बाध होजाताहै-यूयात् । अयावीत् ॥ रु धातु शब्द करनेमें है ॥

२४४४ तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके । ७ । ३ । ९५ ॥

एभ्यः परस्य सार्वधातुकस्य हलादेस्तिङ ईड्वा स्यात् । नाभ्यस्तस्येत्यतोऽनुवृत्तिसम्भवे पुनः सार्वधातुकग्रहणमपिदर्थम् । रवीति-रौति । रुवीतः-रुतः । हलादेः किम् । रुवन्ति । तिङः किम् । शाम्यति । सार्वधातुके किम् । आशिषि रूयात् । विध्यादौ तु रुवीयात्-रुयात् । अरावीत् । अरविष्यत् ॥ २ ॥ तु इति सौत्रो धातुर्गतिवृद्धिहिंसासु । अयं च लुग्विकरण इति स्मरन्ति । तवीति-तौति । तुवीतः-तुतः । तोता । तोष्यति ॥ ३ ॥ णु स्तुतौ । नौति । नविता ॥ ४ ॥ टुक्षु शब्दे । क्षौति । क्षविता ॥ ५ ॥ क्ष्णु तेजने । क्ष्णौति । क्ष्णविता ॥ ६ ॥ ष्णु प्रस्रवणे । स्नौति । सुष्णाव । स्नविता । स्नूयात् ॥ ७ ॥ ऊर्णुञ् आच्छादने ॥

२४४४-तु, रु, स्तु, शम्, यम् इन धातुओंके परे सार्वधातुक हलादि तिङ्को विकल्प करके ईट् हो । "नाभ्यस्तस्य० २५०३" इस सूत्रसे सार्वधातुक पदकी अनुवृत्ति सम्भव होने पर भी फिर जो सार्वधातुकका ग्रहण है, वह केवल अपिदर्थ, अर्थात् 'पिति' इसकी अनुवृत्ति न हो इसके निमित्त है, रवीति, रौति । रवीतः, रुतः । हलादि न होनेपर, रुवन्ति । तिङ् भिन्न होनेपर-शाम्यति । सार्वधातुक न होनेपर, आशिषमें-रूयात् । विधि आदिमें तो रुवीयात्, रुयात् । अरावीत् । अरविष्यत् ॥ तु यह सौत्र धातु गति, वृद्धि और हिंसार्थमें है, यह लुक्विकरण, अर्थात् इसके उत्तर शप्का लुक् हो, यह पूर्वाचार्य्योंका मत है । तवीति, तौति । तुवीतः, तुतः । तोता । तोष्यति ॥ णु धातु स्तुतिमें है । नौति । नविता ॥ टुक्षु धातु शब्दमें है । क्षौति । क्षविता ॥ क्ष्णु धातु तेजनमें है । क्ष्णौति । क्ष्णविता ॥ ष्णु धातु प्रस्रवणमें है । स्नौति । सुष्णाव । स्नविता । स्नूयात् ॥ ऊर्णुञ् धातु आच्छादनमें है ॥

२४४५ ऊर्णोतेर्विभाषा । ७ । ३ । ९० ॥

वा वृद्धिः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके । ऊर्णौति-ऊर्णोति । ऊर्णुतः । ऊर्णुवन्ति । ऊर्णुते । ऊर्णुवाते । ऊर्णुवते ॥ ऊर्णोतेराम् नेति वाच्यम् ॥ * ॥

२४४५-हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते ऊर्णु धातुको विकल्प करके वृद्धि हो, ऊर्णौति, ऊर्णोति । ऊर्णुतः । ऊर्णुवन्ति । ऊर्णुते । ऊर्णुवाते । ऊर्णुवते ।

ऊर्णु धातुके उत्तर आम् न हो ऐसा कहना चाहिये * ॥

२४४६ नन्द्राः संयोगादयः । ६ । १ । ३ ॥

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति । नुशब्दस्य द्वित्वम्, णत्वस्यासिद्धत्वात् । पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचन इति त्वनित्यम्, उभौ साभ्यासस्येति लिङ्गात् । ऊर्णुनाव । ऊर्णुनुवतुः । ऊर्णुनुवुः ॥

२४४६-अच्के परे संयोगकी आदिमें स्थित न द और र को द्वित्व न हो । "पूर्वत्रासिद्धम्" इससे णत्वके असिद्धत्वके कारण नु शब्दको द्वित्व होगा "पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने" (द्वित्वभिन्न कार्य कर्त्तव्यमें "पूर्वत्रासिद्धम्" इसकी प्रवृत्ति हो) यह तो "उभौ साभ्यासस्य २६०६" इस सूत्रारम्भसामर्थ्यसे अनित्य है, नहीं तो 'प्राणिणत्' यहां भी "अनितेः" इससे द्वित्वके पहले णत्वको उक्त परिभाषाके बलसे असिद्धता न होनेसे द्वित्वोत्तर खण्डद्वयमें णकारका श्रवण हो ही जाता फिर यह सूत्र व्यर्थ ही हो जाता ।

ऊर्णुनाव । ऊर्णुनुवतुः । ऊर्णुनुवुः ॥

२४४७ विभाषोर्णोः । १ । २ । ३ ॥

इडादिप्रत्ययो वा ङित् स्यात् । ऊर्णुनुविथ-ऊर्णुनविथ । ऊर्णुविता-ऊर्णविता । ऊर्णौतु-ऊर्णोतु । ऊर्णवानि । ऊर्णवै ॥

२४४७-ऊर्णु धातुके परे स्थित इडादि प्रत्यय विकल्प करके ङित् हो, ऊर्णुनुविथ,ऊर्णुनविथ । ऊर्णुविता,ऊर्णविता । ऊर्णौतु, ऊर्णोतु । ऊर्णवानि । ऊर्णवै ॥

२४४८ गुणोऽपृक्ते । ७ । ३ । ९१ ॥

ऊर्णोतेर्गुणः स्यादपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके । वृद्ध्यपवादः । और्णोत् । और्णोः । ऊर्णुयात् । ऊर्णुयाः । इह वृद्धिर्न । ङिच्च पिन्नेति भाष्यात् । ऊर्णूयात् । ऊर्णुविषीष्ट-ऊर्णविषीष्ट । और्णुवीत् । और्णुविष्टाम् ॥

२४४८-अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते ऊर्णु धातुको गुण हो, यह सूत्र वृद्धि सूत्रका अपवाद है, और्णोत् । और्णोः । ऊर्णुयात् । ऊर्णुयाः इस स्थलमें "ङिच्च

पिन्न'' इस भाष्यके कारण वृद्धि न होगी । ऊर्णुयात् । ऊर्णुविषीष्ट, ऊर्णविषीष्ट । और्णुवीत् । और्णुविष्टाम् ॥

२४४९ ऊर्णोतेर्विभाषा । ७ । २ । ६ ॥

इडादौ सिचि परस्मैपदे परे वा वृद्धिः स्यात् । पक्षे गुणः । और्णावीत् । और्णाविष्टाम् । और्णाविषुः । और्णवीत् ॥ ८ ॥ द्यु अभिगमने। द्यौति। द्योता ॥ ९ ॥ षु प्रसवैश्वर्ययोः । प्रसवोऽभ्यनुज्ञानम् । सोता । असौषीत् ॥ १० ॥ कु शब्दे । कोता ॥ ११ ॥ ष्टुञ् स्तुतौ । स्तवीति–स्तौति। स्तुवीतः–स्तुतः । स्तुवीते–स्तुते । स्तुसुधूञ्भ्य इतीट् । अस्तावीत् । प्राक्सितादिति षत्वम् । अभ्यष्टौत् । सिवादीनां वा । पर्यष्टौत् । पर्यस्तौत् ॥ १२ ॥ ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ॥

२४४९–परस्मपद परक इडादि सिच् परे रहते ऊर्णु धातुके उकारको विकल्प करके वृद्धि हो, विकल्प पक्षमें गुण होगा । और्णावीत्। और्णाविष्टाम्। और्णाविषुः। और्णवीत् ॥ द्यु धातु अभिगमनमें है । द्यौति । द्योता ॥ षु धातु प्रसव और ऐश्वर्यमें है । प्रसव शब्दसे अभ्यनुज्ञान जानना । सोता । असौषीत् ॥ कु धातु शब्दमें है । कोता ॥ ष्टुञ् धातु स्तुतिमें है । स्तवीति, स्तौति । स्तुवीतः, स्तुतः । स्तुवीते, स्तुते । "स्तुसुधूञ्भ्यः० २३८५" इस सूत्रसे इट् होकर–अस्तावीत्। "प्राक् सितात्० २२७६" इस सूत्रसे षत्व होकर–अभ्यष्टौत्। "सिवादीनां वा" इससे विकल्प करके षत्व करके–पर्यष्टौत्, पर्यस्तौत् ॥ ब्रूञ् धातु व्यक्तवचनमें है ॥

२४५० ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः । ३ । ४ । ८४ ॥

ब्रुवो लटः परस्मैपदानामादितः पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः । अकार उच्चारणार्थः । आह । आहतुः । आहुः ॥

२४५०–ब्रू धातुके उत्तर लट् सम्बन्धी परस्मैपद आदिसे पांच अर्थात् तिप्, तस्, झि, सिप्, थस् के स्थानमें विकल्प करके णल् आदि पांच, अर्थात् णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस् आदेश हों और ब्रू धातुके स्थानमें आह आदेश हो । आह आदेशमें अकार उच्चारणार्थ है, आह । आहतुः । आहुः ॥

२४५१ आहस्थः । ८ । २ । ३५ ॥

झलि परे । चर्त्वम् । आत्थ । आहथुः ॥

२४५१–झलादि प्रत्यय परे रहते आह आदेशके हके स्थानमें थ हो । चर्त्व होकर–आत्थ । आहथुः ॥

२४५२ ब्रुव ईट् । ७ । ३ । ९३ ॥

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात्। आत्थेत्यत्र स्थानिवद्भावात्प्राप्तोयं झलीति थत्वविधानान्न भवति । ब्रवीति । ब्रूतः। ब्रुवन्ति । ब्रूते । आर्धधातुकाधिकारे ॥

२४५२–ब्रू धातुके उत्तर हलादि पित् प्रत्ययको ईट् हो–आत्थ, इस स्थलमें स्थानिवद्भावके कारण ईट् प्राप्त हुआ, परन्तु "आहस्थः" इस सूत्रसे झल् परे थत्व विधानके कारण नहीं हुआ । ब्रवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रूते। आर्धधातुकाधिकारमें किस प्रकार होगा, सो कहतेहैं ॥

२४५३ ब्रुवो वचिः । २ । ४ । ५३ ॥

उवाच । ऊचतुः । ऊचुः । उवचिथ–उवक्थ । ऊचे । वक्ता । ब्रवीतु । ब्रूतात् । ङिच्च पिन्नेत्यपित्त्वादीन्न । ब्रवाणि । ब्रवै । ब्रूयात् । उच्यात् । अस्यतिवक्तीत्यङ् ॥

२४५३–आर्धधातुकविषयमें ब्रू धातुके स्थानमें वचि आदेश हो, उवाच । ऊचतुः । ऊचुः । उवचिथ, उवक्थ । ऊचे । वक्ता । ब्रवीतु । ब्रूतात्, यहां 'ङिच्च पिन्न' इस भाष्यसे अपित्त्वके कारण ईट् नहीं हुआ । ब्रवाणि । ब्रवै । ब्रूयात् । उच्यात् । "अस्यतिवक्तिख्याति० २४३८" इस सूत्रसे ब्रू धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें अङ् होकर–॥

२४५४ वच उम् । ७ । ४ । २० ॥

अङि परे । अवोचत् । अवोचत ॥ १३ ॥ अथ शास्यन्ताः परस्मैपदिनः । इङ् त्वात्मनेपदी । इण् गतौ । एति । इतः ॥

२४५४–अङ् परे रहते वच् धातुको उम्का आगम हो, अवोचत् । अवोचत।

अब शासि धातु पर्यन्त परस्मैपदी धातु कहतेहैं, परन्तु उसमें इङ् धातु आत्मनेपदी है । इण् धातु गतिमें है। एति । इतः ॥

२४५५ इणो यण् । ६ । ४ । ८१ ॥

अजादौ प्रत्यये परे । इयङोऽपवादः । यन्ति । इयाय ॥

२४५५–अजादि प्रत्यय परे रहते इण् धातुके स्थानमें यण् आदेश हो, यह इयङ्का अपवाद है, यन्ति । इयाय ॥

२४५६ दीर्घ इणः किति । ७ । ४ । ६९ ॥

इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात्किति लिटि । ईयतुः । ईयुः । इययिथ–इयेथ । एता । इतात् । इहि । अयानि । ऐत् । ऐताम् । आयन् । इयात् । ईयात् ॥

२४५६–कित् लिट् परे रहते इण् धातुके अभ्यासको दीर्घ हो । ईयतुः । ईयुः । इययिथ, इयेथ । ऐत् । ऐताम् । आयन् । इयात् । ईयात् ॥

२४५७ एतेर्लिङि । ७ । ४ । २४ ॥

उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्वः स्यादार्धधातुके किति लिङि । निरियात् । उभयत आश्रयणे नान्तादिवत् । अभीयात् । अणः किम् । समेयात्। समीयादिति प्रयोगस्तु भौवादिकस्य ॥

२४५७-आर्धधातुक कित् लिङ् परे रहते उपसर्गसे परे स्थित इण् धातुसंबंधी अण्को ह्रस्व हो, निरियात् । उभयतः आश्रयणमें अन्तादिवद्भाव नहीं होनेसे अभीयात् । अण्भिन्न होनेपर-समेयात् । 'समीयात्' ऐसा प्रयोग तो भ्वादिगणीयधातुका होगा ॥

२४५८ इणो गा लुङि । २ । ४ । ४५ ॥

गातिस्थेति सिचो लुक् । अगात् । अगाताम् । अगुः ॥ १ ॥ इङ् अध्ययने । नित्यमधिपूर्वः । अधीते । अधीयाते । अधीयते ॥

२४५८-लुङ् परे रहते इण् धातुके स्थानमें गा आदेश हो। "गातिस्था० २२२३" इस सूत्रसे सिच्का लुक् होकर-अगात्। अगाताम् । अगुः॥ इङ् धातु अध्ययनमें है । यह धातु नित्य अधिपूर्वक है । अधीते । अधीयाते । अधीयते ॥

२४५९ गाङ् लिटि । २ । ४ । ४९ ॥

इङो गाङ् स्याल्लिटि लावस्थायां विवक्षिते वा । अधिजगे । अधिजगाते । अधिजगिरे । अध्येता । अध्येष्यते । अध्ययै । गुणायादेशयोः कृतयोरुपसर्गस्य यण् । पूर्वं धातुरुपसर्गेणेति दर्शनन्तरङ्गत्वाद् गुणात्पूर्वं सवर्णदीर्घः प्राप्तः । णेरध्ययने वृत्तमिति निर्देशान्न भवति । अध्यैत । परत्वादियङ् । तत आट् । वृद्धिः । अध्यैयाताम् । अध्यैयि । अध्यैवहि । अधीयीत । अधीयीयाताम् । अधीयीध्वम् । अधीयीय । अध्येषीष्ट ॥

२४५९-लिट् परे रहते अथवा लकारावस्था विवक्षित होनेपर इङ् धातुके स्थानमें गाङ् आदेश हो, अधिजगे । अधिजगाते । अधिजगिरे । अध्येता । अध्येष्यते । अध्ययै । यहां गुण और आय् आदेश करनेपर उपसर्गको यण् हुआ, यद्यपि "पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते पश्चात् साधनेन" इस मतसे पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूप अन्तरङ्गत्वके कारण गुणके पूर्वमें ही सवर्ण दीर्घ प्राप्त हुआ परन्तु "णेरध्ययने वृत्तम् ३०३६" इस सूत्रनिर्देशसे नहीं हुआ । अध्यैत । परत्वके कारण इयङ् पश्चात् आट् और वृद्धि होकर-अध्यैयाताम् । अध्यैयि । अध्यैवहि । अधीयीत । अधीयीयाताम् । अधीयीध्वम् । अधीयीय । अध्येषीष्ट ॥

२४६० विभाषा लुङ्लृङोः ।२।४।५०॥

इङो गाङ् वा स्यात् ॥

२४६०-लुङ् और लृङ् परे रहते इङ् धातुके स्थानमें विकल्प करके गाङ् आदेश हो ॥

२४६१ गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् । १ । २ । १ ॥

गाङादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णितः प्रत्यया ङितः स्युः ॥

२४६१-गाङ् आदेश और कुटादि धातुके उत्तर ञित् और णित्से भिन्न प्रत्यय ङित् हो ॥

२४६२ घुमास्थागापाजहातिसां हलि । ६ । ४ । ६६ ॥

एषामात ईत्स्यात् हलादौ क्ङित्यार्धधातुके । अध्यगीष्ट-अध्यैष्ट । अध्यगीष्यत-अध्यैष्यत ॥ २ ॥ इक् स्मरणे । अयमप्यधिपूर्वः । अधीगर्थदयेशामिति लिङ्गात् अन्यथा हीगर्थेत्येव ब्रूयात् ॥ इण्वदिक इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अधियन्ति । अध्यगात् । केचित्तु आर्धधातुकाधिकारोक्तस्यैवातिदेशमाहुः । तन्मते यण्न । तथाच भट्टिः।समीतयोराघवयोरधीयन्निति ॥ ३ ॥ वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु । प्रजनं गर्भग्रहणम् । असनं क्षेपणम् । वेति । वीतः । वियन्ति । वेषि । वेमि । वीहि । अवेत् । अवीताम् । अवियन् । अडागमे सत्यनेकाच्त्वाद्यणितिकेचित् । अव्यन् ॥ ४ ॥ अत्र ईकारोऽपि धात्वन्तरं प्रश्लिष्यते । एति । ईतः । इयन्ति । ईयात् । ऐषीत् ॥ ५ ॥ या प्रापणे । प्रापणमिह गतिः । प्रणियाति । यातः । यान्ति ॥

२४६२-हलादि कित् ङित् आर्धधातुक परे रहते घु, मा, स्था, गा, पा, हा और सा (षो) धातुके आकारके स्थानमें ईकार हो, अध्यगीष्ट, अध्यैष्ट । अध्यगीष्यत, अध्यैष्यत ॥ इक् धातु स्मरणमें है । " अधीगर्थदयेशाम् ६१३ " इस निर्देशके अनुसार यह धातु भी अधिपूर्वक है, नहीं तो 'ईगर्थ' ऐसा ही कहते ।

इण् धातुकी समान इक् धातुके रूप हों ऐसा कहना चाहिये * अधियन्ति । अध्यगात् । कोई २ तो आर्धधातुकाधिकारमें कहे हुए कार्य्यका ही अतिदेश होगा ऐसा कहतेहैं, उनके मतसे यण् न होगा, इसलिये भट्टिमें ' समीतयो राघवयोरधीयन् ' ऐसे प्रयोग कियेहैं ॥ वी धातु गति, व्याप्ति, प्रजन, कान्ति, असन और खादनमें है । प्रजन शब्दसे गर्भग्रहण है । असन शब्दसे क्षेपण जानना । वेति । वीतः । वियन्ति । वेषि । वेमि । वीहि । अवेत् । अवीताम् । अवियन् । यहां कोई २ कहतेहैं कि, अडागम होनेपर अनेकाच् होनेसे यण् होकर-' अव्यन् ' ऐसा प्रयोग होगा । इस स्थलमें ईकार भी धात्वन्तर प्रश्लिष्ट है, एति । ईतः । इयन्ति । ईयात् । ऐषीत्॥या धातु प्रापणमें है । प्रापणशब्दसे यहां गति जानना । प्रणियाति । यातः । यान्ति ॥

२४६३ लङः शाकटायनस्यैव । ३ । ४ । १११ ॥

आदन्तात्परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात् । अयुः । अयान् । यायात् । यायाताम् । यायास्ताम् ॥ ६ ॥ वा गतिगन्धनयोः । गन्धनं सूचनम् ॥ ७ ॥ भा दीप्तौ ॥ ८ ॥ ष्णा शौचे ॥ ९ ॥

श्रा पाके ॥ १० ॥ द्रा कुत्सायां गतौ ॥ ११ ॥ प्सा भक्षणे ॥ १२ ॥ पा रक्षणे । पायास्ताम् । अपासीत् ॥ १३ ॥ रा दाने ॥ १४ ॥ ला आदाने । द्वावपि दाने इति चन्द्रः ॥ १५ ॥ दाप् लवने । प्रणिदाति-प्रनिदाति । दायास्ताम् । अदासीत् ॥ १६ ॥ ख्या प्रकथने । अयं सार्वधातुकमात्रविषयः । सस्थानत्वं नमः ख्यात्रे इति वार्तिकं तद्भाष्यं चेह लिङ्गम् । सस्थानो जिह्वामूलीयः स नेतिख्याआदेशस्य ख्शादित्वे प्रयोजनमित्यर्थः । सम्पूर्वस्य ख्यातेः प्रयोगो नेति न्यासकारः ॥ १७ ॥ प्रा पूरणे ॥ १८ ॥ मा माने । अकर्मकः । तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष इति माघः। उपसर्गवशेनार्थान्तरे सकर्मकः। उदरं परिमाति मुष्टिना । नेर्गदेत्यत्र नास्य ग्रहणम् । प्रणिमाति-प्रनिमाति ॥ १९ ॥ वच परिभाषणे । वक्ति । वक्तः । अयमन्तिपरो न प्रयुज्यते । बहुवचनपर इत्यन्ये। झि पर इत्यपरे। वग्धि। वच्यात्। उच्यात्। अवोचत् ॥ २० ॥ विद ज्ञाने ॥

२४६३-आकारान्त धातुके उत्तर लङ्सम्बन्धी झिके स्थानमें विकल्प करके जुस् हो, अयुः, अयान् । यायात् । यायाताम् । यायास्ताम् ॥ वा धातु गति और गन्धन, अर्थात् सूचनार्थमें है ॥ भा धातु दीप्तिमें है ॥ ष्णा धातु शौचमें है ॥ श्रा धातु पाकमें है ॥ द्रा धातु कुत्सित गतिमें है ॥ प्सा धातु भक्षणमें है ॥ पा धातु रक्षा करनेमें है । पायास्ताम् । अपासीत् ॥ रा धातु दानमें है ॥ ला धातु आदानमें है॥ चन्द्रके मतसे रा और ला यह दोनों धातु दानार्थक हैं ॥ दाप् धातु लवन (काटने) में है । प्रणिदाति, प्रनिदाति । दायास्ताम् । अदासीत् ॥

ख्या धातु प्रकथनमें है इसका सार्वधातुकमात्र विषय है, इसमें " सस्थानत्वं नमः ख्यात्रे " यह वार्तिक और इसका भाष्य प्रमाण है । सस्थान जिह्वामूलीयको कहतेहैं, वह य ' नमःख्यात्रे ' यहां नहीं हुआ, यह ख्याआदेशको ख्शादित्वमें प्रयोजन भाष्यमें कहाहै, वहां असिद्धकाण्डस्थित ' शस्य यो वा ' इससे यत्वको असिद्ध होनेके कारण " कुप्वोः ${\asymp}$क${\asymp}$पौ च " इससे जिह्वामूलीयको बाधकर. " शर्परे विसर्जनीयः " इससे विसर्ग ही होताहै, सो कहो, यदि ख्या धातुके आर्धधातुकविषयमें भी प्रयोग हों तो इसी धातुसे तृच् प्रत्यय करके 'ख्यात्रे' बनेगा, उसको आगे रहते 'नमःख्यात्रे' यहां 'शर्परे वि०' इसकी प्राप्ति ही नहीं थी,फिर वार्त्तिक और उसका भाष्य सब विरुद्ध होजाता, इसलिये इस धातुका सार्वधातुकमात्र विषय है ॥ संपूर्वक ख्या धातुका प्रयोग नहीं होताहै, यह न्यासकारने कहाहै ॥ प्रा धातु पूरणमें है ॥ मा धातु मानमें है, यह अकर्मक है, अत एव " तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः "यह माघमें कहाहै।

उपसर्गवशसे अर्थभिन्न होनेपर सकर्मक है, जैसे-' उदरं परिमाति मुष्टिना ' । " नेर्गद० २२८५ " इस सूत्रमें इस धातुका ग्रहण नहीं है, इससे ' प्रणिमाति, प्रनिमाति ' यहां विकल्पसे णत्व हुआ ॥ वच धातु परिभाषणमें है । वक्ति । वक्तः । इस धातुको अन्तिविभक्त्यन्त पदका प्रयोग नहीं होताहै । कोई २ कहतेहैं कि, बहुवचन परे नहीं होताहै । कोई कहतेहैं कि, झि प्रत्यय परे प्रयोग नहीं होताहै । वग्धि । वच्यात् । उच्यात् । अवोचत् ॥ विद् धातु ज्ञानमें है ॥

२४६४ विदो लटो वा । ३ । ४ । ८३ ॥

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः । वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद । विद्व । विद्म । पक्षे । वेत्ति । वित्तः । इत्यादि । विवेद । विविदतुः । उषविदेत्याम्पक्षे विदत्यकारान्तनिपातनान्न लघूपधगुणः । विदांचकार । वेदिता ॥

२४६४-विद् धातुके उत्तर लट्सम्बन्धी परस्मैपदको णलादि आदेश हों, वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद । विद्व । विद्म । पक्षमें वेत्ति । वित्तः । विदन्ति, इत्यादि । विवेद । विविदतुः । " उषविद० २३४९ " इस सूत्रसे आम्पक्षमें ' विद ' ऐसे अकारान्त निपातनके कारण लघूपधाको गुण नहीं होगा, विदाञ्चकार । वेदिता ॥

२४६५ विदांकुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्। ३ । १ । ४१ ॥

वेत्तेर्लोट्याम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोतीत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते। पुरुषवचने न विवक्षिते इति शब्दात् ॥

२४६५-लोट् परे रहते विद् धातुके उत्तर आम् हो, और गुणाभाव, लोट्का लुक् और लोडन्त कृ धातुका अनुप्रयोग विकल्प करके निपातनसे हो । इति शब्दसे पुरुष और वचन विवक्षित नहीं हैं ॥

२४६६ तनादिकृञ्भ्य उः ।३।१।७९॥

तनादेः कृञश्च उप्रत्ययः स्यात्।शपोपवादः । तनादित्वादेव सिद्धे कृञ्ग्रहणं गणकार्यस्याऽनित्यत्वे लिङ्गं तेन न विश्वसेदविश्वस्तमित्यादि सिद्धम्। विदांकरोतु ॥

२४६६-तनादि धातु और कृञ् धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो, यह शप्का अपवाद है । तनादित्वके कारण सिद्ध होनेपर भी कृञ्का ग्रहण केवल गणकार्यके अनित्यत्वमें प्रमाण है, इसी कारण ' न विश्वसेदविश्वस्तम् ' इत्यादि सिद्ध हुए । विदांकरोतु ॥

२४६७ अत उत्सार्वधातुके।६।४।११०॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति।उदिति तपरकरणसामर्थ्यान्न गुणः।

विदांकुरुतात् । विदांकुरुताम् । उतश्चेति हेर्लुक् । आभीयत्वेन लुकोऽसिद्धत्वादुत्त्वम् । विदांकुरु । विदांकरवाणि । अवेत् । अवित्ताम् । सिजभ्यस्तेति झेर्जुस् । अविदुः ॥

२४६७-उ प्रत्ययान्त कृञ् धातुके अकारके स्थानमें उकार हो, कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते । 'उत्' ऐसे तपरकरणके कारण गुण नहीं होगा । विदांकुरुतात् । विदांकुरुताम् । " उतश्च " इस सूत्रसे हिका लुक्, उसका आभीयत्वके कारण असिद्धत्व होनेसे उत्त्व होकर-विदांकुरु । विदांकरवाणि । अवेत् । अवित्ताम् । "सिजभ्यस्त० २२२६" इस सूत्रसे झिके स्थानमें जुस् होकर-अविदुः ॥

२४६८ दश्च । ८ । २ । ७५ ॥

धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे रुः स्याद्वा । अवेः-अवेत् ॥ २१ ॥ अस् भुवि । अस्ति ॥

२४६८-सिप् परे रहते धातुसम्बन्धी पदान्तस्थित दकारके स्थानमें विकल्प करके रुत्व हो, अवेः, अवेत् ॥ अस् धातु सत्तामें है । अस्ति ॥

२४६९ श्नसोरल्लोपः । ६ । ४ । १११॥

श्नस्याऽस्तेश्चाकारस्य लोपः स्यात्सार्वधातुके क्ङिति । स्तः । सन्ति । तासस्त्योरिति सलोपः । असि । स्थः । स्थ । अस्मि । स्वः । स्मः ॥

आर्धधातुके इत्यधिकृत्य ॥

२४६९-श्नम् प्रत्ययके और अस् धातुके अकारका लोप हो, कित्, ङित् सार्वधातुक परे रहते-स्तः । सन्ति । " तासस्त्योः० २१९१ " इस सूत्रसे सकारका लोप होकर-असि । स्थः।स्थ।अस्मि । स्वः । स्मः । आर्धधातुकका अधिकार करके-॥

२४७० अस्तेर्भूः । २ । ४ । ५२ ॥

बभूव । भविता । अस्तु । स्तात् । स्ताम् । सन्तु॥

२४७०-आर्धधातुकविषयमें अस् धातुके स्थानमें भू आदेश हो, बभूव । भविता । अस्तु । स्तात् । स्ताम् । सन्तु॥

२४७१ घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च।६। ४ । ११९ ॥

घोरस्तेश्च एत्त्वं स्याद्धौ परे अभ्यासलोपश्च । आभीयत्वेन एत्त्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः । श्नसोरित्यल्लोपः । एधि । तातङ्पक्षे एत्त्वं न।परेण तातङा बाधात् सकृद्गतावितिन्यायात् । स्तात् । स्तम् । स्त । असानि । असाव । असाम । अस्तिसिच इतीट् । आसीत् । श्नसोरित्यल्लोपस्याभीयत्वेनासिद्धत्वादाट् । आस्ताम् । आसन्। स्यात्।भूयात्। अभूत्। सिचोस्तेश्च विद्यमानत्वेन विशेषणाद्नेण ॥

२४७१-घुसंज्ञक धातु और अस् धातुको हि परे रहते एकार हो और अभ्यासका लोप हो । आभीयत्व प्रयुक्त एत्वके असिद्ध होनेसे हिके स्थानमें धि और " श्नसोः० २४६९ " इस सूत्रसे अकारका लोप होकर-एधि ।

परवर्ती तातङ्से एत्वका बाध होनेसे तातङ् पक्षमें एत्व नहीं होगा, तातङ् होनेपर भी 'सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव' (एकवार दो शास्त्रकी प्राप्ति होनेपर जो बाधा जाताहै, वह बाधित ही रहताहै, फिर वह नहीं लगताहै) इस परिभाषासे नहीं होगा-स्तात् । स्तम् । स्त । असानि । असाव । असाम । " अस्तिसिचः०२२२५ " इस सूत्रसे ईट् होकर-आसीत् । "श्नसोः०२४६९ " इस सूत्रसे अकार लोपके आभीयत्वके कारण असिद्ध हो, इसे आट् होगा-आस्ताम् । आसन् । स्यात् । भूयात् । अभूत्, यहां " अस्तिसिचोऽपृक्ते " इस सूत्रमें सिच् असके विद्यमान विशेषणके कारण विद्यमान सिच्के परे स्थित अपृक्तसंज्ञक हल् न होनेसे ईट् नहीं हुआ ॥

२४७२ उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः । ८ । ३ । ८७ ॥

उपसर्गेभ्यः प्रादुसश्च परस्यास्तेः सस्य षः स्याद् यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रादुःष्यात् । निषन्ति । प्रादुःषन्ति । यच्परः किम् । अभिस्तः ॥ २२ ॥ मृजू शुद्धौ ॥

२४७२-यकार और अच् परे रहते उपसर्ग और प्रादुस् शब्दके परवर्ती अस् धातुके सकारको षत्व हो, निष्यात्, प्रादुःष्यात् । निषन्ति । प्रादुःषन्ति । यकार और अच् परे रहते अभिस्तः ॥ मृजू धातु शुद्धिमें है ॥

२४७३ मृजेर्वृद्धिः । ७ । २ । ११४ ॥

मृजेरिको वृद्धिः स्याद्धातुप्रत्यये परे॥ क्ङित्यजादौ वेष्यते ॥ * ॥ व्रश्चेति षः । मार्ष्टि । मृष्टः। मृजन्ति-मार्जन्ति।ममार्ज।ममार्जतुः-ममृजतुः। ममार्जिथ-ममार्ष्ठ।मार्जिता-मार्ष्टा। मृड्ढि। अमार्ट् ।अमार्जम्। अमार्जीत् । अमार्क्षीत्॥२३॥ रुदिर् अश्रुविमोचने ॥

२४७३-धातुसंबन्धी प्रत्यय परे रहते मृज् धातुके इक्को अर्थात् ऋकारको वृद्धि हो ।

अजादि प्रत्यय परे रहते उक्त कार्य विकल्प करके हो * " व्रश्च० २९४ " इस सूत्रसे ज्के स्थानमें ष होकर-मार्ष्टि । मृष्टः । मृजन्ति, मार्जन्ति । ममार्ज । ममार्जतुः, ममृजतुः । ममार्जिथ, ममार्ष्ठ । मार्जिता, मार्ष्टा । मृड्ढि । अमार्ट् । अमार्जम् । अमार्जीत्, अमार्क्षीत् ॥ रुदिर् धातु रोदन करनेमें है ॥

२४७४ रुदादिभ्यःसार्वधातुके।७।२।७६॥

रुद्, स्वप्, श्वस्, अन्, जक्ष्, एभ्यो वलादेः सार्वधातुकस्येट् स्यात् । रोदिति । रुदितः । हौ परत्वादिटि धित्वं न । रुदिहि ॥

२४७४–रुदादि, अर्थात् रुद्, स्वप्, श्वस्, अन् और जक्ष् धातुके उत्तर वलादि सार्वधातुकको इट् हो, रोदिति। रुदितः। हिमें परत्वके कारण इट् होनेसे हिके स्थानमें धि नहीं होकर–रुदिहि॥

२४७५ रुदश्च पञ्चभ्यः।७।३।९८॥

हलादेः पितः सार्वधातुकस्यापृक्तस्य ईट् स्यात्॥

२४७६–रुदादि पांच धातुओंके उत्तर अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुकको ईट्का आगम हो॥

२४७६ अड्गार्ग्यगालवयोः।७।३।९९॥

अरोदत्–अरोदीत्। अरुदिताम्। अरुदन्। अरोदः–अरोदीः। प्रकृतिप्रत्ययविशेषापेक्षाभ्यामडीड्भ्यामन्तरङ्गत्वाद्यासुट्। रुद्यात्। अरुदत्–अरोदीत्॥ १॥ ञिष्वप् शये। स्वपिति। स्वपितः। सुष्वाप। सुषुपतुः। सुषुपुः सुष्वपिथ–सुष्वप्थ॥

२४७६–गार्ग्य और गालव मुनिके मतसे रुदादि धातुके उत्तर अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुकके अट् आगम हो, अरोदत्, अरोदीत्। अरुदिताम्। अरुदन्। अरोदः, अरोदीः। प्रकृति और प्रत्यय विशेषकी अपेक्षासे अट्, ईट् यह बहिरङ्ग हैं, और या ट् इनकी अपेक्षा अन्तरङ्ग है, इस कारण यासुट् ही होगा, रुद्यात्। अरुदत्, अरोदीत्॥ ञिस्वप् धातु शयन करनेमें है। स्वपिति। स्वपितः। सुष्वाप। सुषुपतुः। सुषुपुः। सुष्वपिथ, सुष्वप्थ॥

२४७७ सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः। ८।३।८८॥

एभ्यः सुप्यादेः सस्य षः स्यात्। पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते। किति लिटि परत्वात्संप्रसारणे षत्वे च कृते द्वित्वम्। पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने॥ सुषुषुपतुः। सुषुषुपुः। अकिति तु द्वित्वेऽभ्यासस्य सम्प्रसारणम्। षत्वस्यासिद्धत्वात्ततः पूर्वं हलादिःशेषः। नित्यत्वाच्च। ततः सुपिरूपाभावान्न षः। सुसुष्वाप। सुस्वप्ता। अस्वपीत्–अस्वपत्। स्वप्यात्। सुप्यात्। सुषुप्यात्। अस्वाप्सीत्॥ २॥ श्वस प्राणने। श्वसिति। श्वसिता। अश्वसीत्–अश्वसत्। श्वस्याताम्। श्वस्यास्ताम्। ह्म्यन्तक्षणेति न वृद्धिः। अश्वसीत्॥ ३॥ अन च। अनिति। आन। अनिता। आनत्–आनीत्॥

२४७७–सु, वि, निर्, और दुर् इन उपसर्गोंके परे स्थित सुपि, सु और सम धातुके सकारको षत्व हो। पहले धातु उपसर्गके साथ युक्त होताहै पश्चात् साधनसे, इस मतसे "पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने" इस परिभाषाके अनुसार कित् लिट् परे रहते परत्वके कारण सम्प्रसारण और षत्व करनेपर द्वित्व होगा, जैसे–सुषुषुपतुः। सुषुषुपुः। कित्भिन्न लिट् परे रहते तो द्वित्व होनेपर अभ्यासको सम्प्रसारण होगा, तब षत्वके असिद्धत्व और नित्यत्वके कारण उसके पूर्वमें "हलादिः शेषः २१७९" इससे लोप, पश्चात् सुप् रूपके अभावके कारण षत्व नहीं होगा, जैसे–सुसुष्वाप। सुस्वप्ता। अस्वपत्, अस्वपीत्। स्वप्यात्। सुप्यात्। सुषुप्यात्। अस्वाप्सीत्॥ श्वस धातु प्राणनार्थमें है। श्वसिति। श्वसिता। अश्वसीत्, अश्वसत्। श्वस्यानाम्। श्वस्यास्ताम्"ह्म्यन्तक्षण० २२९९"इस सूत्रसे वृद्धि नहीं होकर–अश्वसीत्॥ अन धातु प्राणनार्थक है। अनिति। आन। अनिता। आनत्, आनीत्॥

२४७८ अनितेः।८।४।१९॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यानितेर्नस्य णः स्यात्। प्राणिति॥ ४॥ जक्ष भक्षहसनयोः। जक्षिति। जक्षितः॥

२४७८–उपसर्गस्थ निमित्तके परे अन् धातुके नकारको णत्व हो, प्राणिति॥ जक्ष धातु भक्षण और हसनमें है। जक्षिति। जक्षितः॥

२४७९ अदभ्यस्तात्।७।१।४॥

झस्य अत्स्यादन्तापवादः। जक्षति। सिजभ्यस्तेति जुस्। अजक्षुः। अयमन्तःस्थादिरित्युज्ज्वलदत्तो बभ्राम॥ ५॥ रुदादयः पञ्च गताः॥

जागृ निद्राक्षये। जागर्ति। जागृतः। जाग्रति। उषविदेत्याम् वा। जागरांचकार–जजागार॥

२४७९–अभ्यस्तसंज्ञक धातुके परे झके स्थानमें अत् हो, यह अन्तादेशका अपवाद है, जक्षति। "सिजभ्यस्त० २२२६" इस सूत्रसे झिके स्थानमें जुस् होकर–अजक्षुः। यह धातु अन्तस्थवर्णादि है, यह उज्ज्वलदत्तने कहाहै, परन्तु यह उसका भ्रम है। रुदादि पांच धातु कहे गए॥ जागृ धातु निद्राक्षय, अर्थात् जागरणमें है। जागर्ति। जागृतः। जाग्रति। "उषविद० २३४१" इस सूत्रसे जागृ धातुके उत्तर विकल्प करके आम् होकर–जागराञ्चकार, जजागार॥

२४८० जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु। ७।३।८५॥

जागर्तेर्गुणः स्याद्विचिण्णल्ङिद्भ्योऽन्यस्मिन् वृद्धिविषये प्रतिषेधविषये च। जजागरतुः। अजागः। अजागृताम्। अभ्यस्तत्वाज्जुस्॥

२४८०–विच्, चिण्, णल्, और ङित्भिन्न वृद्धिविषयमें और प्रतिषेधविषयमें जागृ धातुके ऋकारको गुण हो, जजागरतुः। अजागः। अजागृताम्। अभ्यस्तत्वके कारण जुस् होनेपर–॥

२४८१ जुसि च । ७ । ३ । ८३ ॥

अजादौ जुसीगन्ताङ्गस्य गुणः स्यात् । अजागरुः । अजादौ किम् । जागृयुः । आशिषि तु । जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासुः । लुङि । अजागरीत्।जागृ इस् इत्यत्र यण् प्राप्तः,तं सार्वधातुकगुणो बाधते, तं सिचि वृद्धिः,तां जागर्तिगुणः । तत्र कृते हलन्तलक्षणा प्राप्ता नेटीति निषिद्धा ततोऽतोहलादेरिति बाधित्वाऽतो ल्रान्तस्येति प्राप्ता ह्यन्तेति निषिध्यते ॥ तदाहुः ॥

गुणो वृद्धिर्गुणो वृद्धिः प्रतिषेधो विकल्पनम्॥
पुनर्वृद्धिर्निषेधोतो यण्पूर्वाः प्राप्तयो नवेति १

दरिद्रा दुर्गतौ । दरिद्राति ॥

२४८१–अजादि जुस् परे रहते इगन्त अङ्गको गुण हो, अजागरुः । अजादि जुस् न होनेपर जागृयुः । आशिर्लिङ्में तो जागर्यात्।जागर्यास्ताम् । जागर्यासुः । लुङ्में अजागरीत्, यहां "जागृ इस्" इस अवस्थामें यण् प्राप्त हुआ, वह सार्वधातुक गुणसे बाधित हुआ, उसको फिर सिचि वृद्धिने बाधा दी, उसको बाधकर "जाग्रोऽवि०" इससे जागृको गुण हुआ, तब हलन्तलक्षण वृद्धि प्राप्त हुई, उसको "नेटि २२६८" इस सूत्रसे निषेध हुआ, पश्चात् "अतो हलादे०२२८४" इस सूत्रको बाधकर "अतो ल्रान्तस्य" इस सूत्रकी प्राप्ति हुई, उसका "ह्यन्त० २२९९" इस सूत्रसे निषेध हुआ । यही कारिकामें प्रकाश करतेहैं कि, पहिले यण्की प्राप्ति तब गुणकी प्राप्ति हुई, उसको बाध करके वृद्धि प्राप्त हुई, उसको गुणने बाध किया, तब फिर वृद्धि प्राप्त हुई, उसका भी निषेध हुआ, फिर विकल्प करके प्राप्ति हुई, उसको बाधकर नित्य वृद्धि प्राप्त हुई उसका भी निषेध हुआ,इस प्रकार नौकी प्राप्ति हुई॥ दरिद्रा धातु दुर्गतिमें है । दरिद्राति ॥

२४८२ इद्दरिद्रस्य । ६ । ४ । ११४ ॥

दरिद्रातेरिकारः स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके । दरिद्रितः ॥

२४८२–दरिद्रा धातुके आकारके स्थानमें इकार हो हलादि सार्वधातुक कित् ङित् प्रत्यय परे रहते, दरिद्रितः ॥

२४८३ श्नाभ्यस्तयोरातः ।६।४।११२॥

अनयोरातो लोपः स्यात् क्ङिति सार्वधातुके । दरिद्रति । अनेकाच्त्वादाम् । दरिद्रांचकार । आत औ णल इत्यत्र ओं इत्येव सिद्धे औकारविधानं दरिद्रातेरालोपे कृते श्रवणार्थम् । अत एव ज्ञापकादाम्नेत्येके । ददरिद्रौ । ददरिद्रतुरित्यादि । यत्तु णलि ददरिद्रेति तन्निर्मूलमेव ॥ दरिद्रातेरार्धधातुके विवक्षिते आलोपो वाच्यः*॥ लुङि वा सनि ण्वुलि ल्युटि च न ॥ * ॥ दरिद्रिता । अदरिद्रात् । अदरिद्रिताम् । अदरिद्रुः । दरिद्रियात् । दरिद्र्यात् । अदरिद्रीत् । इट्सकौ । अदरिद्रासीत् ॥ २ ॥ चकासृ दीप्तौ । झस्य अत् । चकासति । चकासांचकार । धि चेति सलोपः । सिच एवेत्येके । चकाद्धि । चकाधीत्येव भाष्यम् ॥

२४८३–कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते श्ना और अभ्यस्तसंज्ञक धातुके आकारका लोप हो । दरिद्रति । अनेकाच् होनेसे आम् होकर–दरिद्राञ्चकार । "आत औणलः २३७१" इस सूत्रमें ओ ऐसा ही कहनेसे सिद्ध होनेपर औकार विधानकी आवश्यकता क्या है ? तो दरिद्रा धातुके आकारका लोप करनेपर भी औकारका श्रवण होनेके निमित्त है, इसी ज्ञापकके कारण आम् नहीं होगा, यह कोई २ कहतेहैं, उनके मतसे ददरिद्रौ । ददरिद्रतुः–इत्यादि । जो णल् परे 'ददरिद्र' ऐसा रूप कहतेहैं वह निर्मूल है ॥

आर्धधातुक विवक्षित होनेपर दरिद्रा धातुके आकारका लोप हो * ॥

लुङ् परे विकल्प करके आकारका लोप हो * और सन् ण्वुल् और ल्युट् परे रहते आकारका लोप नहीं हो * दरिद्रिता । अदरिद्रात् । अदरिद्रिताम् । अदरिद्रुः । दारिद्रियात् । दारिद्र्यात् । ('दारिद्रियात्' यह विधि लिङ्में । 'दरिद्र्यात्' यह आशिष्में) । अदरिद्रीत् । इट् और सक् होकर–अदरिद्रासीत् ॥ चकासृ धातु दीप्तिमें है । झके स्थानमें अत् होकर चकासति । चकासाञ्चकार । "धि च २२४९" इस सूत्रसे सिच्के ही सकारका लोप होताहै, यह कोई २ कहतेहैं, उनके मतसे ' चकाद्धि ' ऐसा होगा, परन्तु 'चकाधि' ऐसाही भाष्य है ॥

२४८४ तिप्यनस्तेः । ८ । २ । ७३ ॥

पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि न त्वस्तेः । अचकात्–अचकाद् । अचकासुः ॥

२४८४–तिप् परे रहते पदान्तमें स्थित सकारके स्थानमें दकार हो और अस् धातुको न हो, अचकात्, अचकाद् । अचकासुः ॥

२४८५ सिपि धातोरुर्वा । ८ ।२।७४॥

पदान्तस्य धातोः सस्य रुः स्याद्वा । पक्षे दः । अचकाः । अचकात् ॥ ३ ॥ शासु अनुशिष्टौ । शास्ति ॥

२४८५–सिप् परे रहते धातुसंबंधी पदान्तमें स्थित सकारके स्थानमें विकल्प करके रु हो, पक्षमें द होगा–अचकाः, अचकात् ॥ शासु धातु अनुशिष्टि, अर्थात् शासनमें है । शास्ति ॥

२४८६ शास इदङ्हलोः । ६ । ४ ।३४॥

शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति च । शासिवसीति षः । शिष्टः । शासति । शशास । शशासतुः । शास्तु–शिष्टात् । शिष्टाम्।शासतुः॥

२४८६-अङ् और हलादि कित्, ङित् प्रत्यय परे रहते शास् धातुकी उपधाके स्थानमें इकार हो, "शासिवसि० २४१०" इस सूत्रसे षत्व होकर-शिष्टः। शास्ति। शशास। शशासतुः। शास्तु, शिष्टात्। शिष्टाम्। शासतु॥

२४८७ शा हौ। ६। ४। ३५॥

शास्तेः शादेशः स्याद्धौ परे। तस्याभीयत्वेनासिद्धत्वाद्धेर्धिः। शाधि। अशात्। अशिष्टाम्। अशासुः। अशात्-अशाः। शिष्यात्। सर्तिशास्तीत्यङ्। अशिषत्। अशाशिष्यत्॥ ४॥ दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः। एतदादयः पञ्च धातवश्छान्दसाः। दीधीते। एरनेकाच इति यण्। दीध्याते॥

२४८७-हि परे रहते शास् धातुके स्थानमें शा आदेश हो। आभीयत्वके कारण वह असिद्ध होनेसे हिके स्थानमें धि आदेश होकर-शाधि। अशात्। अशिष्टाम्। अशासुः। अशात्, अशाः। शिष्यात्। "सर्तिशास्ति०२ ३८२" इस सूत्रसे अङ् होकर-अशिषत्। अशाशिष्यत्॥ दीधीङ् धातु दीप्ति और देवनार्थमें है। इस धातुसे लेकर पांच धातु छान्दस हैं॥ दीधीते। "एरनेकाचः२७२" इस सूत्रसे यण् होकर-दीध्याते॥

२४८८ यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः।७।४।५३॥

एतयोरन्त्यस्य लोपः स्याद्यकारे इवर्णे च परे इति लोपं बाधित्वा नित्यत्वाट्टेरेत्वम्। दीध्ये। दीधीवेवीटामिति गुणनिषेधः। दीध्यांचक्रे। दीधिता। दीधिष्यते॥ १॥ वेवीङ् वेतिना तुल्ये। वीगतीत्यनेन तुल्येऽर्थे वर्तते इत्यर्थः॥२॥ अथ त्रयः परस्मैपदिनः॥ षस सस्ति स्वप्ने। सस्ति। सस्तः। ससन्ति। ससास। सेसतुः। सस्तु। सधि। पूर्वत्रासिद्धमिति सलोपस्यासिद्धत्वादतोहेरिति न लुक्। असत्। असस्ताम्। असः-असत्। सस्यात्। असासीत्-अससीत्॥ १॥ सन्ति। सन्तः। संस्तन्ति॥ २॥ बहूनां समवाये द्वयोः संयोगसंज्ञा नेत्याश्रित्य स्कोरिति लोपाभावात्। संस्ति। संस्तः। संस्तन्ति इत्येके। वश कान्तौ। कान्तिरिच्छा। वष्टि। उष्टः। उशन्ति। वक्षि। उष्ठः। उवाश। ऊशतुः। वशिता। वष्टु। उष्टात्। उड्ढि। अवट्। औष्टाम्। औशन्। अवशम्। उश्याताम्। उश्यास्ताम्॥ ३॥ चर्करीतं च॥ यङ्लुगन्तमदादौ बोध्यम्॥ ह्नुङ् अपनयने। ह्नुते। जुह्नुवे। ह्नुवीत। ह्नोषीष्ट। अह्नोष्ट॥ ४॥

॥ इत्यदादयः॥

२४८८-यकार और इवर्ण परे रहते दीधी और वेवी धातुके अन्त्य भागका लोप हो, इस सूत्रसे प्राप्त लोपको बाधकर नित्यत्वके कारण टिको एकार होगा-दीध्ये। "दीधीवेवीटाम्२१९०" इस सूत्रसे गुणका निषेध हुआ। दीध्यांचक्रे। दीधिता। दीधिष्यते॥ वेवीङ् धातु वी धातुके तुल्य अर्थमें है।

अब तीन परस्मैपदी धातु कहतेहैं।

षस और सस्ति धातु स्वप्नमें है। सस्ति। सस्तः। ससन्ति। ससास। सेसतुः। सस्तु। सधि, यहां "पूर्वत्रासिद्धम्१२" इस सूत्रसे सकार लोपके असिद्धत्वके कारण "अतो हेः२२०२" इस सूत्रसे हिका लुक् नहीं हुआ। असत्। असस्ताम्। असः, असत्। सस्यात्। असासीत्, अससीत्। सन्ति। सन्तः। संस्तन्ति। यहां इदित्वके कारण नुम् और "स्कोः० ३८०" इस सूत्रसे सकारका लोप और "झरो झरि सवर्णे ७१" इस सूत्रसे तकारका विकल्प करके लोप हुआ। बहुतका समवाय होनेपर दोकी संयोगसंज्ञा न हो इसका आश्रयण करके "स्कोः० ३८०" इस सूत्रसे लोपका अभाव होनेसे संस्ति। संस्तः। संस्तन्ति, ऐसा कोई २ कहतेहैं॥ वश धातु कान्तिमें है, कान्ति शब्दसे इच्छा जाननी। वष्टि। उष्टः। उशन्ति। वक्षि। उष्ठः। उवाश। ऊशतुः। वशिता। वष्टु। उष्टात्। उड्ढि। अवट्। औष्टाम्। औशन्। अवशम्। उश्याताम्। उश्यास्ताम्॥

"चर्करीतञ्च" यङ्लुगन्त अदादिमध्यमें जानना चाहिये। ह्नुङ् धातु अपनयनमें है। ह्नुते। जुह्नुवे। ह्नुवीत। ह्नोषीष्ट। अह्नोष्ट॥

॥ इति तिङन्ते अदादिप्रकरणम्॥

अथ जुहोत्यादयः ३.

हु दानादनयोः॥ आदाने चेत्येके। प्रीणनेपीति भाष्यम्। दानं चेह प्रक्षेपः। स च वैधे आधारे हविषश्चेति स्वभावाल्लभ्यते। इतश्चत्वारः परस्मैपदिनः॥

हु धातु दान और आदानमें है। किसी २ के मतसे यह केवल आदानार्थक है। भाष्यकारके मतसे यह प्रीणनार्थमें भी है। इस स्थानमें दान शब्दसे प्रक्षेप जानना, वह वैध आधारमें हविष्का यह स्वभावसे लब्ध होताहै। अब चार परस्मैपदी धातु कहतेहैं॥

२४८९ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः।२।४।७५॥

शपः श्लुः स्यात्॥

२४८९-जुहोत्यादिगणीय धातुओंके उत्तर शप्के स्थानमें श्लु आदेश हो॥

२४९० श्लौ। ६। १। १०॥

धातोर्द्वे स्तः। जुहोति। जुहुतः। अदभ्यस्तादित्यत्। हुश्नुवोरिति यण्। जुह्वति॥

२४९०-श्लु परे होते धातुको द्वित्व हो। जुहोति। जुहुतः। "अदभ्यस्तात् २४७९" इससे झिके स्थानमें अत् आदेश,

" हुश्नुवोः० २३८७ " इस सूत्रसे यण् आदेश हुआ। जुह्वति॥

२४९१ भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ।३।१।३९॥

एभ्यो लिट्याम्वा स्यादामि श्लाविव कार्यं च। जुहवांचकार-जुहाव।होता।होष्यति।जुहोतु।जुहुतात्। हुर्धिः जुहुधि। आटि परत्वाद् गुणः। जुहवानि। परत्वाज्जुसि चेति गुणः। अजुहवुः। जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत् ॥१॥ ञिभी भये। बिभेति॥

२४९१-भी, ह्री, भृ और हु धातुके उत्तर लिट् परे रहते विकल्प करके आम् हो और आम् परे होनेपर श्लु परे रहते जो कार्य होताहै वही कार्य्य हो । जुहवाञ्चकार, जुहाव । होता । होष्यति । जुहोतु । जुहुतात् । हु धातुके उत्तर हिके स्थानमें धि हो-जुहुधि । आट् परे रहते परत्वके कारण हु धातुके उकारको गुण होगा-जुहवानि । परत्वके कारण जुस् परे भी गुण होगा-अजुहवुः । जुहुयात् । हूयात् । अहौषीत्॥ ञिभी धातु भयमें है । बिभेति ॥

२४९२ भियोन्यतरस्याम् ।६।४।११५॥

इकारः स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। बिभितः-बिभीतः। बिभ्यति। बिभयांचकार। बिभाय। भेता ॥ २ ॥ ह्री लज्जायाम्। जिह्रेति। जिह्रीतः। जिह्रियति। जिह्रयांचकार। जिह्राय ॥ ३ ॥ पॄ पालनपूरणयोः ॥

२४९२-कित्, ङित् हलादि सार्वधातुक परे रहते भी धातुके ईकारके स्थानमें विकल्प करके ह्रस्व इकार हो। बिभितः, बिभीतः । बिभ्यति । बिभयाञ्चकार। बिभाय। भेता ॥ ह्री धातु लज्जामें है । जिह्रेति । जिह्रीतः । जिह्रियति। जिह्रयाञ्चकार । जिह्राय ॥ पॄ धातु पालन और पूरणार्थमें है ॥

२४९३ अर्तिपिपर्त्योश्च ।७।४।७७॥

अभ्यासस्य इकारोन्तादेशः स्यात् श्लौ ॥

२४९३-श्लु प्रत्यय परे रहते ऋ धातु और पॄ धातुके अभ्यासके अन्तको इकार आदेश हो ॥

२४९४ उदोष्ठ्यपूर्वस्य।७।१।१०२॥

अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ॠत् तदन्तस्याङ्गस्य उत्स्यात्। गुणवृद्धी परत्वादिमं बाधेते। पिपर्ति। उत्त्वम्। रपरत्वम्। हलि चेति दीर्घः। पिपूर्तः। पिपुरति। पपार। किति लिटि ऋच्छत्यॄता-मिति गुणे प्राप्ते ॥

२४९४-अङ्गावयव ओष्ठ्यवर्णपूर्वक जो ॠकार तदन्ताङ्गसम्बन्धी ऌकारके स्थानमें उत् हो । गुण और वृद्धि परत्वके कारण इसको बाधा देतेहैं । पिपर्ति । उत्व और रपरत्व होगा-"हलि च ३५४" इस सूत्रसे दीर्घ होगा। पिपूर्तः । पिपुरति । पपार । कित् लिट् परे "ऋच्छत्यॄताम् २३८३" इस सूत्रसे गुणकी प्राप्ति होनेसे- ॥

२४९५ शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा।७।४।१२॥

एषां किति लिटि ह्रस्वो वा स्यात्। पक्षे गुणः। पप्रतुः। पप्रुः। पपरतुः। पपरुः। परिता-परीता। अपिपः। अपिपूर्ताम्। अपिपरुः। पिपूर्यात्। पूर्यात्। अपारीत्। अपारिष्टाम्। ह्रस्वान्तोयमिति केचित्। पिपर्ति। पिपृतः। पिप्रति। पिपृयात्। आशिषि। प्रियात्। अपार्षीत्। पाणिनीयमते तु, तं रोदसी पिपृतमित्यादौ छान्दसत्वं शरणम् ॥४॥ डुभृञ् धारण-पोषणयोः ॥

२४९५-शॄ, दॄ और पॄ धातुके ॠकारको विकल्प करके ह्रस्व हो, कित् लिट् परे रहते। विकल्प पक्षमें गुण होगा-पप्रतुः। पप्रुः। पपरतुः। पपरुः। परिता, परीता। अपिपः। अपिपूर्ताम्। अपिपरुः। पिपूर्य्यात्। पूर्य्यात् अपारीत्। अपारिष्टाम्। यह ह्रस्वान्त है, ऐसा कोई २ कहतेहैं। पिपर्ति पिपृतः। पिप्रति। पिपृयात्। आशीर्वाद अर्थमें प्रियात्। अपार्षीत्। किन्तु पाणिनीय मतमें "तं रोदसी पिपृतम्" इत्यादि स्थलमें वैदिकत्व ही शरण अर्थात् आश्रय करने योग्य है॥ डुभृञ् धातु धारण और पोषणार्थमें है ॥

२४९६ भृञामित्। ७। ४। ७६॥

भृञ् माङ् ओहाङ्, एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ। बिभर्ति। बिभृतः। बिभ्रति। बिभृध्वे। श्लुवद्भावाद्द्वित्वेत्त्वे। बिभरामास-बभार। बभर्थ। बभृव। बिभृहि। बिभराणि। अबिभः। अबिभृताम्। अबिभरुः। बिभृयात्। भ्रियात्। भृषीष्ट। अभार्षीत्। अभृत ॥५॥ माङ् माने शब्दे च ॥

२४९६-श्लु परे होते भृञ्, माङ्, ओहाङ् इन तीन धातुओंके अभ्यासके स्थानमें इकार आदेश हो । बिभर्ति । बिभृतः । बिभ्रति । बिभृध्वे । श्लुवद्भावके कारण द्वित्व और इत्व हुआ-बिभरामास, बभार । बभर्थ । बभृव । बिभृहि । बिभराणि । अबिभः । अबिभृताम् । अबिभरुः । बिभृयात् । भ्रियात् । भृषीष्ट । अभार्षीत् । अभृत॥ माङ् धातु मान और शब्दमें है ॥

२४९७ ई हल्यघोः। ६। ४। ११३॥

श्नाभ्यस्तयोरात ईत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति हलि न तु घुसंज्ञकस्य। मिमीते। श्नाभ्यस्तयोरित्यालोपः। मिमाते। मिमते। मम्यमास्त ॥ ६ ॥ ओहाङ् गतौ ॥ जिहीते। जिहाते। जिहते। जहे। हाता। हास्यते ॥ ७ ॥ ओहाक् त्यागे ॥ परस्मैपदी। जहाति ॥

२४९७-सार्वधातुक हलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे रहते श्ना प्रत्ययके आकारके और अभ्यस्तसंज्ञक धातुके आकारके स्थानमें ईकार हो, घुसंज्ञक धातुको न हो । मिमीते ।

"श्नाभ्यस्तयोः० २४८३" इससे आकारका लोप हुआ–मिमाते । मिमते । प्रण्यमास्त ॥ ओहाङ् धातु गतिमें है । जिहीते । जिहाते । जिहते । जहे । हाता । हास्यते ॥ ओहाक् धातु त्यागमें है, यह धातु परस्मैपदी है । जहाति ॥ -

२४९८ जहातेश्च । ६ । ४ । ११६ ॥

इत्त्याद्वा हलादौ क्ङिति सार्वधातुके । पक्षे ईत्त्वम् । जहितः–जहीतः । जहति ॥

२४९८–हलादि कित्, ङित् सार्वधातुक परे रहते हा धातुके आकारके स्थानमें इकार हो विकल्प करके । पक्षमें ईत्त्व होगा–जहितः, जहीतः । जहति ॥

२४९९ आ च हौ । ६ । ४ । ११७ ॥

जहातेर्हौ परे आ स्यात् चादिदीतौ । जहाहि–जहिहि–जहीहि । अजहात् । अजहुः ॥

२४९९–हि परे रहते हा धातुके स्थानमें आकार हो, चकार निर्देशके कारण इत्त्व और ईत्त्व हो–जहाहि, जहिहि, जहीहि । अजहात् । अजहुः ॥

२५०० लोपो यि । ६ । ४ । ११८ ॥

जहातेरालोपः स्याद्यादौ सार्वधातुके । जह्यात् । एर्लिङि । हेयात् । अहासीत् ॥ ८ ॥ डुदाञ् दाने ॥ प्रणिददाति । दत्तः । ददति । दत्ते । ददौ । घ्वसोरिति एत्त्वाभ्यासलोपौ । देहि । अददात् । अदत्ताम् । अददुः । दद्यात् । देयात् । अदात् । अदाताम् । अदुः । अदित ॥ ९ ॥ डुधाञ् धारणपोषणयोः । दानेप्येके । प्रणिदधाति ॥

२५००–यकारादि सार्वधातुक परे रहते हा धातुके आकारका लोप हो । जह्यात् "एर्लिङि २३७४" इस सूत्रसे लिङ् परे एत्त्व होगा–हेयात् । अहासीत् ॥ डुदाञ् धातु दानमें है । प्रणिददाति । दत्तः । ददति । दत्ते । ददौ । "घ्वसोः० २४७१" इस सूत्रसे एत्त्व और अभ्यासका लोप होगा । देहि । अददात् । अदत्ताम् । अददुः । दद्यात् । देयात् । अदात् । अदाताम् । अदुः । अदित ॥ डुधाञ् धातु धारण और पोषणार्थमें है । किसी २ के मतमें दानार्थमें भी है । प्रणिदधाति ॥

२५०१ दधस्तथोश्च । ८ । २ । ३८ ॥

द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो बशो भष् स्यात्तथयोः स्ध्वोश्च परतः । वचनसामर्थ्यादालोपो न स्थानिवदिति वामनमाधवौ । वस्तुतस्तु पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत् । धत्तः । दधति । धत्थः । धत्थ । दध्वः । दध्मः । धत्ते । धत्से । धध्वे । धेहि । अधित ॥ १० ॥

अथ त्रयः स्वरितेतः ॥ णिजिर् शौचपोषणयोः ॥

२५०१–जिसको द्वित्व किया गया हो ऐसा झषन्त जो धाञ् धातु उसके अवयवीभूत बश्के स्थानमें भष् हो, त् और थ,स् तथा ध्व परे रहते वामन और माधवके मतमें वचनसामर्थ्यके कारण आकारका लोप स्थानिवत् नहीं होगा,पर यथार्थमें तो "पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्" इस परिभाषासे स्थानिवत् नहीं होगा–धत्तः । दधति । धत्थः । धत्थ । दध्वः । दध्मः । धत्ते । धत्से । धध्वे । धेहि । अधित ॥

अब तीन स्वरितेत् अर्थात् उभयपदी धातु कहे जातेहैं । णिजिर् धातु शौच और पोषणार्थमें है ॥

२५०२ निजां त्रयाणां गुणः श्लौ । ७ । ४ । ७५ ॥

निज्–विज्–विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ । नेनेक्ति । नेनिक्तः । नेनिजति । नेक्ता । नेक्ष्यति । नेनेक्तु । नेनिग्धि ॥

२५०२–श्लु प्रत्यय परे रहते निज्, विज्, विष् इन तीन धातुओंके अभ्यासको गुण हो । नेनेक्ति । नेनिक्तः । नेनिजति । नेक्ता । नेक्ष्यति । नेनेक्तु । नेनिग्धि ॥

२५०३ नाभ्यस्तस्याऽचि पिति सार्वधातुके । ७ । ३ । ८७ ॥

लघूपधगुणो न स्यात् । नेनिजानि । अनेनेक् । अनेनिक्ताम् । अनेनिजुः । नेनिज्यात् । निज्यात् । अनिजत्–अनैक्षीत् । अनिक्त ॥ १ ॥ विजिर् पृथग्भावे । वेवेक्ति । वेविक्ते । विवेजिथ । अत्र विज इडिति ङित्त्वं न । ओविजी इत्यस्यैव तत्र ग्रहणात् । णिजिविजी रुधादावपि ॥२॥ विष्लृ व्याप्तौ । वेवेष्टि । वेविष्टे । लृदित्त्वादङ् । अविषत् । तङि क्सः । अजादौ क्सस्याचीति अल्लोपः । अविक्षत । अविक्षाताम् । अविक्षन्त ॥ ३ ॥

अथ आगणान्तात्परस्मैपदिनश्छान्दसाश्च ॥ घृ क्षरणदीप्त्योः । जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन ॥ भृञामित् । बहुलं छन्दसीति इत्त्वम् ॥ १ ॥ हृ प्रसह्यकरणे । अयं स्रुवो अभिजिहर्ति होमान ॥ ॥ २ ॥ ऋ सृ गतौ । बहुलं छन्दसीत्येव सिद्धे अर्तिपिपर्त्योश्चेतीत्त्वविधानादयं भाषायामपि । अभ्यासस्यासवर्ण इतीयङ् । इयर्ति । इयृतः । इय्रति । आर । आरतुः । इडत्यर्तीति नित्यमिट् । आरिथ । अर्ता । अरिष्यति । इयराणि । ऐयः । ऐयृताम् । ऐयरुः । ईयृयात् । अर्यात् । आरत् । ससर्ति ॥४॥ भस भर्त्सनदीप्त्योः । बभस्ति । घसिभसोर्हलीत्युपधालोपः । झलोझलीति सलोपः । बब्धः । बप्सति ॥५॥ कि ज्ञाने । चिकेति

॥ ६ ॥ तुर त्वरणे ॥ तुतोर्ति । तुतूर्तः । तुतुरति ॥७॥ धिष शब्दे । दिधेष्टि । दिधिष्टः ॥८॥ धन धान्ये । दधन्ति । दधन्तः । दधनति ॥ ९॥ जन जनने । जजन्ति ॥

२५०३-अजादि पित् सार्वधातुक परे रहते अभ्यस्तसंज्ञक धातुके लघु पदको गुण न हो । नेनिजानि । अनेनेक् । अनेनिक्ताम् । अनेनिजुः । नेनिज्यात् । निज्यात् । अनिजत्, अनैक्षीत् । अनिक्त ॥ विजिर् धातु पृथक्भावमें है । वेवेक्ति । वेविक्ते । विवेजिथ । इस स्थलमें " विज इट् २५३६ " इस सूत्रसे ङित्त्व न होगा कारण कि, वहां ओविजी धातुका ही ग्रहण है ॥ निजि और विजि धातु रुधादिमें भी पठित होंगे ॥ विष्लृ धातु व्याप्तिमें है । वेवेष्टि । वेविष्टे । लृदित्त्वके कारण अङ् होगा । अविषत् । तङ् परे क्स होगा- । "क्सस्याऽचि २३३७" इस सूत्रसे अजादि प्रत्यय परे रहते अकारका लोप होगा-अविक्षत । अविक्षाताम् । अविक्षन्त ॥

इसके पश्चात् गणसमाप्ति पर्य्यन्त परस्मैपदी तथा छान्दस धातु हैं ।

घृ धातु क्षरण और दीप्तिमें है, जैसे-"जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन" । " भृञामित् २४९६ " इससे 'इत्' की अनुवृत्ति होनेपर "बहुलं छन्दसि ३५९८" इस सूत्रसे इत्व हुआ॥ हृ धातु बलपूर्वक हरणमें है, यथा-"अयं स्रुवो अभिजिहर्त्ति होमान्" ऋ और सृ धातु गतिमें हैं । इस स्थलमें "बहुलं छन्दसि ३५९८" इस सूत्रसे इत्त्व सिद्ध होनेपर भी " अर्त्तिपिपर्त्योश्च २४९३" इस सूत्रसे इत्वविधानके कारण भाषामें भी इस धातुका व्यवहार प्रयोग होगा । " अभ्यासस्यासवर्णे २३९०" इस सूत्रसे इयङ् होगा-इयर्त्ति । इयृतः । इय्रति । आर । आरतुः । "इडत्यर्त्ति० २३८४" इस सूत्रसे नित्य इट् हुआ-आरिथ । अर्त्ता । अरिष्यति । इयराणि । ऐयः । ऐयृताम् । ऐयरुः । इयृयात् । अर्यात् । आरत् । ससर्त्ति ॥ भस धातु भर्त्सन और दीप्तिमें है । बभस्ति । "घसिभसोर्हलि ३५५०" इस सूत्रसे उपधाका लोप हुआ " झलो झलि २२८१" इस सूत्रसे सकारका लोप हुआ-बब्धः । यहां तसके तकारको "झषस्तथो० २२८० " से धत्व हुआ । बप्सति ॥ कि धातु ज्ञानमें है । चिकेति ॥ तुर धातु त्वरणमें है । तुतोर्त्ति । तुतूर्त्तः । तुतुरति ॥ धिष धातु शब्द करनेमें है । दिधेष्टि । दिधिष्टः ॥ धन धातु धान्यमें है । दधन्ति । दधन्तः । दधनति॥ जन धातु जननमें है। जजन्ति॥

२५०४ जनसनखनां सञ्झलोः । ६ । ४ । ४२ ॥

एषामाकारोन्तादेशः स्याज्झलादौ सनि झलादौ क्ङिति च । जजातः । जज्ञति । जजंसि । जजान । जजायात्-जजन्यात् । जायात् । जन्यात्॥१०॥ गा स्तुतौ । देवाञ् जिगाति सुम्नयुः । जिगीतः । जिगति ॥ ११ ॥ * ॥

॥ इति जुहोत्यादयः ॥

२५०४-झलादि सन् और झलादि कित्, ङित् परे रहते जन, सन और खन् धातुको आकार अन्तादेश हो । जजातः । जज्ञति । जजंसि । जजान । जजायात्, जजन्यात् । जायात्, जन्यात्।। गा धातु स्तुतिमें है,यथा-"देवाञ् जिगाति सुम्नयुः" जिगीतः । जिगति ॥

॥ इति तिङन्ते जुहोत्यादिप्रकरणम् ॥

अथ दिवादयः ४.

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु । ञूषन्ताः परस्मैपदिनः॥

दिवु धातु अर्थात् दिव् धातु क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गतिमें है । यहांसे झष धातु तक परस्मैपदी धातु कहे जातेहैं ।

२५०५ दिवादिभ्यः श्यन् । ३।१।६९॥

शपोपवादः। हलि चेति दीर्घः । दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत्।दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् ॥१॥ षिवु तन्तुसन्ताने । परिषीव्यति । परिषिषेव । न्यषेवीत्-न्यसेवीत् ॥२॥ स्रिवु गतिशोषणयोः॥३॥ष्ठिवु निरसने । केचिदिहेमं न पठन्ति ॥४॥ष्णुसु अदने आदान इत्येके।अदर्शन इत्यपरे। स्नुस्यति । सुष्णोस ॥ ५ ॥ ष्णसु निरसने । स्नस्यति । सस्नास ॥ ६ ॥ क्नसु ह्वरणदीप्त्योः । ह्वरणं कौटिल्यम् । चक्नास ॥ ७ ॥ व्युष दाहे। वुव्योष ॥ ८ ॥ प्लुष च ॥ ९ ॥ नृती गात्रविक्षेपे । नृत्यति ॥ ननर्त ॥

२५०५-दिवादिगणीयधातुओंके उत्तर श्यन् प्रत्यय हो, श्यन् प्रत्यय शप् प्रत्ययका विशेषक है । "हलि च ३५४" इस सूत्रसे दीर्घ होगा । दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् ॥ षिवु धातु तन्तुविस्तार अर्थात् सिलाई करनेमें है । परिषीव्यति । परिषिषेव । न्यषेवीत्, न्यसेवीत् ॥ स्रिवु धातु गति और शोषणमें है॥ ष्ठिवु धातु निरसनमें है । कोई२ इस धातुका दिवादिगणके मध्यमें पाठ नहीं करतेहैं ॥ ष्णुसु धातु अदनमें है, किसी २ के मतमें आदान और किसी २ के मतमें अदर्शनमें है । स्नुस्यति। सुष्णोस॥ ष्णसु धातु निरसनमें है । स्नस्यति । सस्नास ॥क्नसु धातु ह्वरण अर्थात् कौटिल्य और दीप्तिमें है । चक्नास ॥ व्युष धातु दाहमें है । वुव्योष ॥ प्लुष धातु दाहमें है ॥ नृती धातु गात्रविक्षेपमें है । नृत्यति । ननर्त ॥

२५०६ सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः । ७ । २ । ५७ ॥

एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्य

इड्वा स्यात् । नर्तिष्यति–नर्त्स्यति । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्तीत् ॥ १० ॥ त्रसी । उद्वेगे । वा भ्राशेति श्यन्वा । त्रस्यति–त्रसति । त्रेसतुः-तत्रसतुः ॥ ११ ॥ कुथ पूतीभावे । पूतीभावो दौर्गन्ध्यम् ॥ १२ ॥ पुथ हिंसायाम् ॥ १३ ॥ गुध परिवेष्टने ॥ १४ ॥ क्षिप प्रेरणे । क्षिप्यति । क्षेप्ता ॥ १५ ॥ पुष्प विकसने । पुष्प्यति । पुपुष्प ॥ १६ ॥ तिम ष्टिम ष्टीम आर्द्रीभावे । तिम्यति । स्तिम्यति । स्तीम्यति ॥ १९ ॥ व्रीड चोदने लज्जायां च । व्रीड्यति ॥ २० ॥ इष गतौ । इष्यति ॥ २१॥ षह षुह चक्यर्थे । चक्यर्थस्तृप्तिः । सह्यति । सुह्यति ॥ २३ ॥ जॄष् झॄष् वयोहानौ। जीर्यति । जजरतुः–जेरतुः । जरीता–जरिता । जीर्येत् । जीर्यात्–जॄस्तम्भ्वित्यङ्वा । ऋदृशोऽङि गुणः । अजरत्-अजारीत् । अजारिष्टाम् । झीर्यति । जझरतुः । अझारीत् ॥ २५ ॥ षूङ् प्राणिप्रसवे । सूयते । सुषुवे । स्वरतिसूतीति विकल्पं बाधित्वा श्र्युकः कितीति निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट् । सुषुविषे । सुषुविवहे । सोता–सविता ॥ २६ ॥ दूङ् परितापे दूयते ॥ २७ ॥ दीङ् क्षये । दीयते ॥

२५०६–कृत, चृत, छृद, तृद और नृत धातुके परे स्थित सिज्भिन्न सकारादि आर्धधातुक प्रत्ययको विकल्प करके इट्–का आगम हो । नर्तिष्यति, नर्त्स्यति । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्तीत् ॥ त्रसी धातु उद्वेगमें है "वा भ्राश० २३२१" इस सूत्रसे विकल्प करके इसके उत्तर श्यन् होगा–त्रस्यति, त्रसति । त्रेसतुः, तत्रसतुः ॥ कुथ धातु पूतीभावमें है । पूती–भाव शब्दसे दौर्गन्ध्य जानना॥पुथ धातु हिंसामें है॥ गुध धातु परिवेष्टनमें है ॥ क्षिप धातु प्रेरणमें है । क्षिप्यति । क्षेप्ता॥ पुष्प धातु विकसनमें है । पुष्प्यति । पुपुष्प ॥ तिम, ष्टिम और ष्टीम धातु आर्द्रीभावमें हैं । तिम्यति । स्तिम्यति । स्तीम्यति ॥ व्रीड धातु प्रेरण और लजामें है । व्रीड्यति ॥ इष धातु गतिमें है । इष्यति ॥ षह और षुह धातु चक्यर्थ अर्थात् तृप्तिमें हैं। सह्यति । सुह्यति ॥ जॄष् और झॄष् धातु वयोहानिमें हैं । जजरतुः, जेरतुः । जरीता, जरिता । जीर्येत् । जीर्यात् । "जॄस्तम्भु० २२९१" इस सूत्रसे विकल्प करके अङ् होगा, "ऋदृशोऽङि गुणः २४०६" इस सूत्रसे गुण होगा–अजरत्, अजारीत् । अजारिष्टाम् । झीर्यति । जझरतुः । अझारीत् ॥

षूङ् धातु प्राणिप्रसवमें है । सूयते । सुषुवे । "स्वरतिसूति० २२७९" इस सूत्रसे विकल्पको बाध करके "श्र्युकः किति २३८१" इस सूत्रसे निषेध प्राप्ति होनेपर क्रयादिनियमानुसार नित्य इट् होगा । सुषुविषे । सुषुविवहे । सोता, सविता । दूङ् धातु परितापमें है । दूयते ॥ दीङ् धातु क्षयमें है । दीयते ॥

२५०७ दीङो युडचि क्ङिति ।६।४।६३॥

दीङः परस्याजादेः क्ङित आर्धधातुकस्य युट् स्यात्॥वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ ॥ *॥ दिदीये ॥

२५०७–दीङ् धातुके उत्तर अजादि कित् ङित् आर्धधातुकको युट्का आगम हो ।

वुक् और युट्, उवङ् और यण् कर्त्तव्य रहते सिद्ध हो यह कहना चाहिये * दिदीये ॥

२५०८ मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च । ६ । १ । ५० ॥

एषामात्त्वं स्यात् ल्यपि चकारादशित्येज्निमित्ते । दाता । दास्यते । अदास्त । अदास्थाः ॥ २८ ॥ डीङ् विहायसा गतौ । डीयते । डिड्ये ॥ २९ ॥ धीङ् आधारे । धीयते । दिध्ये । धेता ॥ ३० ॥ मीङ् हिंसायाम् । हिंसात्र प्राणवियोगः । मीयते ॥ ३१ ॥ रीङ् श्रवणे । रीयते ॥ ३२ ॥ लीङ् श्लेषणे ।

२५०८–ल्यप् प्रत्यय परे रहते क्र्यादिगणीय मी धातु स्वादिगणीय मि धातु और दीङ् धातुके ईकार तथा इकारके स्थानमें आकार आदेश हो और सूत्रमें चकारके कारण शित् भिन्न एच् निमित्त प्रत्यय परे रहते भी हो । दाता । दास्यते । अदास्त । अदास्थाः ॥ डीङ् धातु आकाशगमनमें है । डीयते ॥ धीङ् धातु आधारमें है । धीयते । दिध्ये । धेता ॥ मीङ् धातु हिंसामें है । इस स्थलमें हिंसा शब्द प्राणवियोगमें है । मीयते ॥ रीङ् धातु श्रवणमें है । रीयते ॥ लीङ् धातु श्लेषणमें है ॥

२५०९ विभाषा लीयतेः । ६।१।५१ ॥

लीयतेरिति यका निर्देशो न तु श्यना । लीलीङोरात्वं वा स्यादेज्विषये ल्यपि च । लेता–लाता । लेष्यते–लास्यते । एज्विषये किम् । लीयते । लिल्ये ॥ ३३ ॥ व्रीङ् वृणोत्यर्थे । व्रीयते । विव्रिये ॥ स्वादय ओदितः॥ तत्फलं तु निष्ठानत्वम् ॥ ३४ ॥ पीङ् पाने । पीयते ॥३५॥ माङ् माने । मायते । ममे॥३६॥ ईङ् गतौ । ईयते । अयांचक्रे ॥ ३७ ॥ प्रीङ् प्रीतौ सकर्मकः । प्रीयते । पिप्रिये ॥ ३८ ॥

अथ परस्मैपदिनश्चत्वारः ॥ शो तनूकरणे ॥

२५०९–लीयते पद यक्से सिद्ध हुआहै, श्यन्से नहीं, एच्विषयमें और ल्यप् परे रहते ली और लीङ् धातुके ईकार-स्थानमें विकल्प करके आकार हो । लेता, लाता । लेष्यते, लास्यते । एच्विषय न होनेपर लीयते । लिल्ये ॥

व्रीङ् धातु वरणमें है । व्रीयते । विव्रिये । स्वादिगणीय धातु ओकारइत् हैं, उसका फल निष्ठानत्व है ॥ पीङ् धातु

पानमें है । पीयते ॥ माङ् धातु मानमें है । मायते । ममे । ईङ् धातु गतिमें है । ईयते । अयाञ्चक्रे ॥ प्रीङ् धातु प्रीतिमें है । यह सकर्मक है । प्रीयते । पिप्रिये ॥

अब चार परस्मैपदी धातु कहतेहैं ।

शो धातु क्षीण करनेमें है ॥

२५१० ओतः श्यनि । ७ । ३ । ७१ ॥

लोपः स्यात् श्यनि । श्यति । श्यतः । श्यन्ति । शशौ । शशतुः । शाता । शास्यति । विभाषा घ्राधेडिति सिचो वा लुक् । लुगभावे यमरमनमातां सक्च इति इट्सकौ । अशात् । अशाताम् । अशुः । अशासीत् । अशासिष्टाम् ॥ १ ॥ छो छेदने । छ्यति ॥ २ ॥ षोऽन्तकर्मणि । स्यति । ससौ । अभिष्यति । अभ्यष्यत् । अभिससौ ॥ ३ ॥ दो अवखण्डने । द्यति । ददौ । प्रणिदाता । देयात् । अदात् ॥ ४ ॥

अथात्मनेपदिनः पञ्चदश । जनी प्रादुर्भावे ॥

२५१०-श्यन् प्रत्यय परे रहते ओकारका लोप हो । श्यति । श्यतः । श्यन्ति । शशौ । शशतुः । शाता । शास्यति। "विभाषा घ्राधेट्० २३७६" इस सूत्रसे विकल्प करके सिच्का लुक् होगा, लुक्के अभाव पक्षमें "यमरम० २३७७" इस सूत्रसे इट् और सक् होगा । अशात् । अशाताम् । अशुः । अशासीत् । अशासिष्टाम् ॥ छो धातु छेदनमें है । छ्यति ॥ षो धातु विनाशमें है । स्यति । ससौ । अभिष्यति । अभ्यष्यत् । अभिससौ ॥ दो धातु अवखंडनमें है । द्यति । ददौ । प्रणिदाता । देयात् । अदात् ॥

अब पञ्चदश १५ आत्मनेपदी धातु कहतेहैं ।

जनी धातु प्रादुर्भावमें है ॥

२५११ ज्ञाजनोर्जा । ७ । ३ । ७९ ॥

अनयोर्जादेशः स्याच्छिति । जायते । जज्ञे । जज्ञाते । जज्ञिरे । जनिता । जनिष्यते । दीपजनेति वा चिण् ॥

२५११-शित् प्रत्यय परे रहते ज्ञा और जन् धातुके स्थानमें 'जा' आदेश हो । जायते । जज्ञे । जज्ञाते । जज्ञिरे । जनिता । जनिष्यते । "दीपजन० २३२८ इस सूत्रसे विकल्प करके चिण् होगा ॥

२५१२ जनिवध्योश्च । ७ । ३ । ३५ ॥

अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । अजनि-अजनिष्ट ॥ १ ॥ दीपी दीप्तौ । दीप्यते । दिदीपे । अदीपि-अदीपिष्ट ॥ २ ॥ पूरी आप्यायने । पूर्यते । अपूरि-अपूरिष्ट ॥ ३ ॥ तूरी गतित्वरणहिंसनयोः । तूर्यते । तुतूरे ॥ ४ ॥ धूरी गूरी हिंसागत्योः । धूर्यते । दुधूरे । गूर्यते । जुगूरे ॥ ६ ॥ घूरी जूरी हिंसावयोहान्योः ॥ ८ ॥ शूरी हिंसास्तम्भनयोः ॥ ९ ॥ चूरी दाहे ॥ १० ॥ तप ऐश्वर्ये वा । अयं धातुरैश्वर्ये वा तङ्श्यनौ लभते । अन्यदा तु शब्विकरणः परस्मैपदीत्यर्थः । केचित्तु वाग्रहणं वृतुधातोराद्यवयवमिच्छन्ति । तप्यते । तप्ता । तप्स्यते । पतेति व्यत्यासेन पाठान्तरम् । द्युतद्यामानियुतः पत्यमानः ॥ ११ ॥ वृतु वरणे । वृत्यते । पक्षान्तरे वावृत्यते । ततो वावृत्यमाना सा रामशालां न्यविक्षतेति भट्टिः ॥ १२ ॥ क्लिश उपतापे । क्लिश्यते । क्लेशिता ॥ १३ ॥ काशृ दीप्तौ । काश्यते ॥ १४ ॥ वाशृ शब्दे । वाश्यते । ववाशे ॥ १५ ॥

अथ पञ्च स्वरितेतः । मृष तितिक्षायाम् । मृष्यति । मृष्यते । ममर्ष । ममृषे ॥ १ ॥ शुचिर् पूतीभावे । पूतीभावः क्लेदः । शुच्यति । शुच्यते । शुशोच । शुशुचे । अशुचत्-अशोचीत् । अशोचिष्ट ॥ २ ॥ णह बन्धने । नह्यति । नह्यते । ननाह । नेहिथ-ननद्ध । नेहे । नद्धा । नत्स्यति । अनात्सीत् ॥ ३ ॥ रञ्ज रागे । रज्यति । रज्यते ॥ ४ ॥ शप आक्रोशे । शप्यति । शप्यते ॥ ५ ॥

अथैकादशानुदात्तेतः । पद गतौ । पद्यते । पेदे । पत्ता । पद्येत । पत्सीष्ट ॥

२५१२-चिण् और ञित्, णित्, कृत् प्रत्यय परे रहते जन और वध धातुकी उपधाको वृद्धि न हो । अजनि, अजनिष्ट । दीपी धातु दीप्तिमें है । दीप्यते । दिदीपे । अदीपि, अदीपिष्ट । पूरी धातु आप्यायनमें । पूर्यते । अपूरि, अपूरिष्ट ॥ तूरी धातु सत्वर गमन और हिंसामें है । तूर्यते । तुतूरे ॥ धूरी और गूरी धातु हिंसा और गतिमें है । धूर्यते । दुधूरे । गूर्यते । जुगूरे ॥ घूरी और जूरी धातु हिंसा और वयोहानिमें हैं ॥ शूरी धातु हिंसा और स्तम्भनार्थमें है ॥ चूरी धातु दाहमें है ॥

तप धातु ऐश्वर्य्यमें है । इस धातुके उत्तर ऐश्वर्य्यार्थमें तङ् और श्यन् विकल्प करके होताहै । किन्तु अन्यत्र शप् विकरण अर्थात् परस्मैपदी है । कोई २ वाशब्दको वृतु धातुका आद्यावयव इच्छा करतेहैं । तप्यते । तप्ता । तप्स्यते । 'पत' ऐसा व्यत्याससे पाठान्तर भी है, इसीसे " द्युतद्यामानियुतः पत्यमानः " यह भी सङ्गत हुआ । वृतु धातु वरणमें है । वृत्यते । पक्षान्तरमें वावृत्यते । " ततो वावृत्यमाना सा रामशालां न्यविक्षत " ऐसा भट्टिमें प्रयोग है ॥

क्लिश धातु उपतापमें है । क्लिश्यते । क्लेशिता ॥ काशृ धातु दीप्तिमें है । काश्यते ॥ वाशृ धातु शब्दमें है । वाश्यते । ववाशे ॥

अब पांच उभयपदी धातु कहतेहैं ।

मृष धातु तितिक्षामें है । मृष्यति । मृष्यते । ममर्ष । ममृषे ॥ शुचिर् धातु पूतीभावमें है, पूतीभाव शब्दसे क्लेद जानना । शुच्यति । शुच्यते । शुशोच । शुशुचे । अशुचत्,

अशोचीत् । अशोचिष्ट ॥ णह धातु बन्धनमें है । नह्यति । नह्यते । ननाह । नेहिथ, ननद्ध, । नेहे । नद्धा । नत्स्यति । अनात्सीत् ॥ रञ्ज धातु रागमें है । रज्यति । रज्यते ॥ शप धातु आक्रोशमें है । शप्यति । शप्यते ॥

अब ११ आत्मनेपदी धातु कहतेहैं ।

पद धातु गतिमें है । पद्यते । पेदे । पत्ता । पद्येत । पत्सीष्ट ॥

२५१३ चिण् ते पदः । ३ । १ । ६० ॥

पदश्च्लेश्चिण् स्यात्तशब्दे परे । प्रण्यपादि । अपत्साताम् । अपत्सत ॥१॥ खिद दैन्ये । खिद्यते । चिखिदे । खेत्ता । अखित्त ॥२॥ विद सत्तायाम् । विद्यते । वेत्ता ॥ ३ ॥ बुध अवगमने । बुध्यते । बुबुधे । बोद्धा । भोत्स्यते । भुत्सीष्ट । अबोधि–अबुद्ध । अभुत्साताम् ॥ ४ ॥ युध सम्प्रहारे । युध्यते । युयुधे । योद्धा । अयुद्ध । कथं युध्यतीति युधमिच्छतीति क्यच् । अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यमिति वा ॥ ५ ॥ अनोरुध कामे । अनुरुध्यते ॥६॥ अण प्राणने । अण्यते । आणे । अणिता ॥७॥ अनेति दन्त्यान्तोयमित्येके ॥८॥ मन ज्ञाने । मन्यते । मेने । मन्ता ॥ ९ ॥ युज समाधौ । समाधिश्चित्तवृत्तिनिरोधः । अकर्मकः युज्यते । योक्ता ॥ १० ॥ सृज विसर्गे । अकर्मकः । संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः । ससृजिषे । स्रष्टा । स्रक्ष्यते । लिङ्सिचाविति कित्त्वान्न गुणो नाप्यम् । सृक्षीष्ट । असृष्ट । असृक्षाताम् । ॥ ११ ॥ लिश अल्पीभावे । लिश्यते । लेष्टा । लेक्ष्यसे । लिक्षीष्ट । अलिक्षत । अलिक्षाताम् । ॥ १२ ॥ अथागणान्तात्परस्मैपदिनः । राधोऽकर्मकाद्वृद्धावेव । एवकारो भिन्नक्रमः । राधोऽकर्मकादेव श्यन् । उदाहरणमाह वृद्धाविति । यन्मह्यमपराध्यति । द्रुह्यतीत्यर्थः । विराध्यन्तं क्षमेत कः । द्रुह्यन्तमित्यर्थः । राध्यत्योदनः । सिध्यतीत्यर्थः । कृष्णाय राध्यति । दैवं पर्यालोचयतीत्यर्थः । दैवस्य धात्वर्थेऽन्तर्भावाज्जीवत्यादिवदकर्मकत्वम् । रराध । रराधतुः । रराधिथ । राधो हिंसायामित्येत्त्वाभ्यासलोपाविह न हिंसार्थस्य सकर्मकतया दैवादिकत्वायोगात् । राद्धा । रात्स्यति । अयं स्वादिश्चुरादिश्च ॥ १॥ व्यध ताडने । ग्रहिज्येति संप्रसारणम् । विध्यति । विव्याध । विविधतुः । विव्यधिथ–विव्यद्ध । व्यद्धा । व्यत्स्यति । विध्येत् । विध्यात् । अव्यात्सीत् ॥२॥ पुष पुष्टौ । पुष्यति । पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टा । पोक्ष्यति । पुषादीत्यङ् । अपुषत् ॥ ३ ॥ शुष शोषणे । अशुषत् ॥ ४ ॥ तुष प्रीतौ ॥ ५ ॥ दुष वैकृत्ये ॥ ६ ॥ श्लिष आलिङ्गने । श्लिष्यति । शिश्लेष । श्लेष्टा । श्लेक्ष्यति ॥

२५१३–त शब्द परे रहते पद धातुके उत्तर स्थित च्लिके स्थानमें चिण् हो । प्रण्यपादि । अपत्साताम् । अपत्सत ॥ खिद धातु दैन्यम है । खिद्यते । चिखिदे । खेत्ता । अखित्त ॥ विद धातु सत्तामें है । विद्यते । वेत्ता ॥ बुध धातु जाननेमें है । बुध्यते । बुबुधे । बोद्धा । भोत्स्यते । भुत्सीष्ट । अबोधि, अबुद्ध । अभुत्साताम् ॥ युध धातु संप्रहारमें है । युध्यते । युयुधे । योद्धा । अयुद्ध ।

'युध्यति' पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ ? कारण कि,युध धातु आत्मनेपदी है, इस कारण इसके उत्तर परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय नहीं हो सकता, तो कहतेहैं कि, युधमिच्छति इस विग्रहमें युध धातुके उत्तर क्यच् प्रत्यय होकर उक्त रूप सिद्ध हुआहै, किन्तु श्यन् करके नहीं हुआहै, 'अनुदात्तेत्त्व लक्षण आत्मनेपद अनित्य है' इस परिभाषासे विकल्प करके आत्मनेपद होनेके कारण उक्त रूप सिद्ध हुआ, ऐसा भी कह सकतेहैं ॥

अनुपूर्वक रुध धातु कामार्थमें है । अनुरुध्यते ॥ अण धातु प्राणनमें है । अण्यते । आणे । अणिता । कोई २ कहतेहैं, यह धातु दन्त्यान्त (नकारान्त) है ॥ मन धातु ज्ञानमें है । मन्यते । मेने । मन्ता ॥ युज धातु समाधिमें अर्थात् चित्तवृत्तिनिरोधमें है, यह अकर्मक है । युज्यते । योक्ता ॥ सृज धातु विसर्गमें है, यह अकर्मक है । "संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः" ससृजिषे । स्रष्टा । स्रक्ष्यते । "लिङ्सिचौ० २३००" इस सूत्रके अनुसार कित्त्वके कारण गुण और अम् नहीं होगा–सृक्षीष्ट । असृष्ट । असृक्षाताम् ॥ लिश धातु अल्पीभावमें है । लिश्यते । लेष्टा । लेक्ष्यसे । लिक्षीष्ट । अलिक्षत । अलिक्षाताम् ॥

अब दिवादि गणकी समाप्तिपर्यन्त परस्मैपदी धातु चलेंगे ।

राध धातु अकर्मक वृद्धि अर्थमें है, एव शब्द भिन्नक्रम जानना, अर्थात् अकर्मक राध धातुके उत्तर ही श्यन् हो, जैसे–वृद्धिमें 'यन्मह्यमपराध्यति' अर्थात् द्रोह करताहै, 'विराध्यन्तं क्षमेत कः' अर्थात् द्रोह करतेहुए, इन प्रयोगोंमें यह उदाहरण जानना । 'राध्यति ओदनः' अर्थात् सिद्ध होताहै, 'कृष्णाय राध्यति' अर्थात् दैवपर्य्यालोचना करताहै । दैव शब्दके धात्वर्थमें अन्तर्भाव होनेके कारण 'जीवति' इत्यादिके समान अकर्मक है । रराध । रराधतुः । रराधिथ । "राधो हिंसायाम्" इस सूत्रसे एत्त्व और अभ्यासका लोप नहीं होगा कारण कि, हिंसार्थमें सकर्मक होनेके कारण दिवादि गणके अयोग्य है । राद्धा । रात्स्यति । यह धातु स्वादि और चुरादि दोनों गणीय है ॥

व्यध धातु ताडनमें है । "ग्रहिज्या० २४१२" इससे संप्रसारण होगा–विध्यति । विव्याध । विविधतुः । विव्यधिथ, विव्यद्ध । व्यद्धा । व्यत्स्यति । विध्येत् । विध्यात् । अव्यात्सीत् ॥ पुष धातु पुष्टिमें है । पुष्यति । पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टा । पोक्ष्यति । "पुषादि० २३४३" इस सूत्रसे अङ् आदेश

हुआ-अपुषत् ॥ शुष धातु शोषणमें है । अशुषत् ॥ तुष धातु प्रीतिमें है ॥ दुष धातु वैकृत्यमें है ॥ श्लिष धातु आलिङ्गनमें है । श्लिष्यति । शिश्लेष । श्लेष्टा । श्लेक्ष्यति ॥

२५१४ श्लिषः-३ । १ । ४६ ॥

अस्मात्परस्यानिटश्च्लेः क्सः स्यात् । पुषाद्यङोपवादो न तु चिणः । पुरस्तादपवादन्यायात् ॥

२५१४ आलिङ्गने । ३ । १ ।४६॥

श्लिषश्च्लेरालिङ्गन एव क्सो नान्यत्र । योगविभागसामर्थ्याच्छल इगुपधादित्यस्याप्ययं नियमः । अश्लिक्षत्कन्यां देवदत्तः । आलिङ्गन एवेति किम् । समश्लिषज्जतु काष्ठम् । अङ् । प्रत्यासत्ताविह श्लिषिः । कर्मणि अनालिङ्गने सिजेव न तु क्सः । एकवचने चिण् । अश्लेषि । अश्लिक्षाताम् । अश्लिक्षन्त । अश्लिष्ठाः । अश्लिड्ढ्वम् ॥७॥ शक विभाषितोऽमर्षणे । विभाषित इत्युभयपदीत्यर्थः । शक्यति-शक्यते हरिं द्रष्टुं भक्तः । शशाक । शेकिथ-शशक्थ । शेके । शक्ता । शक्ष्यति । शक्ष्यते । अशकत् । अशक्त । सेडयमित्येके । तन्मतेनानिट्कारिकासु लदित्पठितः । शकिता । शकिष्यति ॥ ८ ॥ ष्विदा गात्रप्रक्षरणे । घर्मस्रुतावित्यर्थः । अयं ञीदिति न्यासकारादयः । नेति हरदत्तादयः । स्विद्यति । सिष्वेद । सिष्वेदिथ । स्वेत्ता । अस्विदत् ॥९॥ क्रुध क्रोधे । क्रोद्धा । क्रोत्स्यति ॥ १० ॥ क्षुध बुभुक्षायाम् । क्षोद्धा । कथं क्षुधित इति । सम्पदादिकिबन्तात्तारकादित्वादितच् इति माधवः वस्तुतस्तु वसतिक्षुधोरितीट् ॥ ११ ॥ शुध शौचे । शुध्यति । शुशोध । शोद्धा ॥ १२ ॥ षिधु संराद्धौ । ऊदित्पाठः प्रामादिकः । सिध्यति । सेद्धा । सेत्स्यति । असिधत् ॥ १३ ॥ रध हिंसासंराध्योः । संराद्धिर्निष्पत्तिः । रध्यति । रधिजभोरचीति नुम् । ररन्ध । ररन्धतुः ॥

२५१४-श्लिष धातुके उत्तर स्थित अनिट् च्लिके स्थानमें क्स हो । यह सूत्र "पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन्बाधन्ते नोत्तरान्" अर्थात् पूर्वदेशस्थित अपवाद शास्त्र समीप विधिको बाधा देताहै, उत्तर विधिको नहीं, इस परिभाषाके बलसे "पुषादि०" सूत्रसे विहित अङ्का अपवादक है, चिण्का नहीं ॥

श्लिष धातुके उत्तर आलिङ्गनार्थमें ही च्लिके स्थानमें क्स हो अन्यार्थमें नहीं हो । योगविभाग सामर्थ्यके कारण "शल इगुपधात्० २३३६" इस सूत्रसे च्लिके स्थानमें विहित क्स आदेशका भी वर्त्तमान नियम जानना चाहिये । "अश्लिक्षत् कन्यां देवदत्तः" ।

आलिङ्गनार्थमें न होनेपर 'समश्लिषत् जतु काष्ठम्' इस स्थानमें अङ् हुआ, इस स्थलमें श्लिष धातुका अर्थ प्रत्यासत्ति जानना चाहिये ।

कर्म वाच्यमें अनालिङ्गनार्थमें सिच् ही हो, क्स न हो, एकवचनमें चिण् होगा-अश्लेषि । अश्लिक्षाताम् । अश्लिक्षन्त । अश्लिष्ठाः । अश्लिड्ढ्वम् ॥

शक् धातु अमर्षणार्थमें उभयपदी हो । शक्यति, शक्यते हरिं द्रष्टुं भक्तः । शशाक । शेकिथ, शशक्थ । शेके । शक्ता । शक्ष्यति । शक्ष्यते । अशकत् । अशक्त । कोई २ कहतेहैं यह धातु सेट् है, क्योंकि उनके मतके अनुसार अनिट् कारिकामें ऌकारइत् शक् धातु पठित है । शकिता । शकिष्यति ॥ ष्विदा धातु गात्रप्रक्षरण अर्थात् पसीना निकलनेमें है, न्यासकारादिके मतमें यह धातु ञीत् है, किन्तु हरदत्तादिके मतमें ऐसा नहीं है । स्विद्यति । सिष्वेद । सिष्वेदिथ । स्वेत्ता । अस्विदत् ॥

क्रुध धातु क्रोधमें है । क्रोद्धा । क्रोत्स्यति ॥ क्षुध धातु बुभुक्षामें है । क्षोद्धा । किन्तु क्षुधित पद कैसे सिद्ध हुआ? कारण कि, यह धातु अनिट्कारिकामें पठित होनेसे अनिट् है? इस विषयमें माधवने कहाहै कि, सम्पदादि किबन्तके उत्तर तारकादित्वके कारण इतच् प्रत्यय होकर सिद्ध हुआहै, वास्तवमें तो "वसति क्षुधोः० ३०४६" इस सूत्रसे इट् हुआ ॥ शुध धातु शोधनमें है । शुध्यति । शुशोध । शोद्धा ॥ षिधु धातु संराद्धिमें है । इस स्थलमें ऊदित् पाठ प्रामादिक है । सिद्ध्यति । सेद्धा । सेत्स्यति । असिधत् ॥ रध धातु हिंसा और संराद्धिमें है, संराद्धि शब्दसे निष्पत्ति जाननी। रध्यति । "रधिजभोरचि २३०२" इस सूत्रसे नुम् हुआ-ररन्ध । ररन्धतुः ॥

२५१५ रधादिभ्यश्च । ७ । २ । ४५ ॥

रध्, नश्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह्, एभ्यो वलाद्यार्द्धधातुकस्य वेट् स्यात् । ररन्धिथ-ररद्ध । ररन्धिव-रेध्व ॥

२५१५-रधादि अर्थात् रध्, नश्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, ष्णुह् और ष्णिह् धातुके उत्तर वलादि आर्धधातुकको विकल्प करके इट्का आगम हो । ररन्धिथ, ररद्ध । ररन्धिव, रेध्व ॥

२५१६ नेट्यलिटि रधेः । ७।१। ६२॥

लिड्वर्जे इटि रधेर्नुम्न स्यात् । रधिता-रद्धा । रधिष्यति-रत्स्यति । अङि नुम् । अनिदितामिति नलोपः । अरधत् ॥ १४॥ णश अदर्शने । नश्यति । ननाश । नेशतुः । नेशिथ ॥

२५१६-लिट्को छोडकर इट् परे रहते रध् धातुको नुम् न हो । रधिता, रद्धा । रधिष्यति, रत्स्यति । अङ् परे नुम् हुआ, "अनिदिताम्० ४१५" इस सूत्रसे नकारका लोप हुआ-अरधत् ॥

णश धातु अदर्शनमें । नश्यति । ननाश । नेशतुः । नेशिथ॥

२५१७ मस्जिनशोर्झलि ।७।१। ६०॥

नुम् स्यात् । ननंष्ठ । नेशिव-नेश्व । नेशिम-नेश्म । नशिता-नंष्टा । नशिष्यति-नङ्क्ष्यति-नश्येत् । नश्यात् । अनशत् । प्रणश्यति ॥

२५१७-झल् परे रहते मस्ज और नश धातुको नुम् हो । ननंष्ठ । नेशिव, नेश्व । नेशिम, नेश्म । नशिता, नंष्टा । नशिष्यति, नङ्क्ष्यति । नश्येत् । नश्यात् । अनशत् । प्रणश्यति ॥

२५१८ नशेः षान्तस्य ।८।४। ३६॥

णत्वं न स्यात् । प्रनंष्टा । अन्तग्रहणं भूतपूर्वप्रतिपत्त्यर्थम् । प्रनङ्क्ष्यति । नशिष्यति ॥१९॥ तृप प्रीणने । प्रीणनं तृप्तिस्तर्पणं च । नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम् । पितॄनताप्सीदिति भट्टिः । इत्युभयत्र दर्शनात् । ततर्पिथ-तत्रप्थ-ततर्प्थ । तर्पिता-तर्प्ता-त्रप्ता । कृशमृशस्पृशेति सिज्वा । अतर्पीत्-अत्राप्सीत्-अताप्सीत्-अतृपत्॥१६॥ दृप हर्षमोहनयोः । मोहनं गर्वः । दृप्यतीत्यादि। रधादित्वादिमौ वेट्कावमर्थमनुदात्तता ॥ १७॥ द्रुह जिघांसायाम् । वा द्रुहमुहेति वा घः । पक्षे ढः । दुद्रोग्ध-दुद्रोढ-दुद्रोहिथ । द्रोहिता-द्रोग्धा-द्रोढा । द्रोहिष्यति-ध्रोक्ष्यति । ढत्वघत्वयोस्तुल्यं रूपम् । अद्रुहत्॥१८॥ मुह वैचित्ये वैचित्यमविवेकः । मुह्यति । मुमोहिथ-मुमोग्ध-मुमोढ । मोग्धा-मोढा-मोहिता । मोहिष्यति-मोक्ष्यति । अमुहत्॥१९॥ ष्णुह उद्गिरणे । स्नुह्यति । सुष्णोह । सुष्णोहिथ-सुष्णोग्ध-सुष्णोढ । सुष्णुहिव-सुष्णुह्व । स्नोहिता-स्नोग्धा-स्नोढा । स्नोहिष्यति-स्नोक्ष्यति । अस्नुहत् ॥ २० ॥ ष्णिह प्रीतौ । स्निह्यति । सिष्णेह ॥ वृत् ॥ रधादयः समाप्ताः । पुषादयस्तु आगणान्तादिति सिद्धान्तः ॥ २१ ॥ शमु उपशमे ॥

२५१८-षान्त नश् धातुके नकारको णत्व न हो । प्रनंष्टा । अन्त शब्दका ग्रहण करनेसे भूतपूर्वकी प्रतिपत्ति जनाता है, अर्थात् पूर्वमें षकारान्त था, अब नहीं इस प्रकार जो नश धातु इसको भी णत्व न हो । प्रनङ्क्ष्यति । नशिष्यति ॥

तृप धातु प्रीणनमें है । "नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम्" "पितॄनताप्सीत्" इन दोनों स्थलोंमें तृप धातुका प्रीणन अर्थ दिखाया है । ततर्पिथ, तत्रप्थ, ततर्प्थ । तर्पिता, तर्प्ता, त्रप्ता । "कृशमृशस्पृश०" इस सूत्रसे विकल्प करके सिच् हुआ-अतर्पीत्, अत्राप्सीत्, अताप्सीत्, अतृपत् । दृप धातु हर्ष और मोहन अर्थात् गर्वमें है । दृप्यति-इत्यादि । रधादित्वके कारण यह दो धातु विकल्प करके इट् युक्त होतेहैं। अम् आदेशके निमित्त अनुदात्तता हो ॥

द्रुह धातु जिघांसामें है । "वा द्रुहमुह० ३२७" इस सूत्रसे विकल्प करके घ हुआ, विकल्प पक्षमें ढ हुआ-दुद्रोग्ध, दुद्रोढ, दुद्रोहिथ । द्रोहिता, द्रोग्धा, द्रोढा । द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति। ढत्व और घत्वका रूप तुल्य ही है । अद्रुहत् ॥ मुह धातु वैचित्य अर्थात् अविवेकमें है । मुह्यति । मुमोहिथ, मुमोग्ध, मुमोढ । मोग्धा, मोढा, मोहिता । मोहिष्यति, मोक्ष्यति । अमुहत् ॥ ष्णुह धातु उद्गिरणमें है । स्नुह्यति । सुष्णोह । सुष्णोहिथ, सुष्णोग्ध, सुष्णोढ । सुष्णुहिव, सुष्णुह्व । स्नोहिता, स्नोग्धा, स्नोढा । स्नोहिष्यति, स्नोक्ष्यति । अस्नुहत् ॥ ष्णिह धातु प्रीतिमें है । स्निह्यति । सिष्णेह ॥

रधादि धातु समाप्त हुए ॥

पुषादि धातु गणसमाप्ति पर्य्यन्त चलेंगे यह सिद्धान्त मत है ।

शमु धातु उपशममें है ॥

२५१९ शमामष्टानां दीर्घः श्यनि । ७ । ३ । ७४ ॥

शमादीनामित्यर्थः । प्रणिशाम्यति । शेमतुः। शेमिथ । शमिता । अशमत् ॥ १ ॥ तमु काङ्क्षायाम् । ताम्यति । तमिता । अतमत् ॥ २ ॥ दमु उपशमे । उपशमे इति ण्यन्तस्य । तेन सकर्मकोयम् । न तु शमिवदकर्मकः । अदमत्॥३॥ श्रमु तपसि खेदे च श्राम्यति । अश्रमत् ॥ ४ ॥ भ्रमु अनवस्थाने । वा भ्राशेति श्यन्वा । तत्र कृते शमामष्टानामिति दीर्घः । भ्राम्यति । लुङ्यङ् । अभ्रमत् । शेषं भ्वादिवत् ॥५ ॥ क्षमू सहने । क्षाम्यति । चक्षमिथ-चक्षन्थ । चक्षमिव-चक्षण्व । चक्षमिम-चक्षण्म । क्षमिता-क्षन्ता । अयमषित् । भ्वादिस्तु षित । अषितः क्षाम्यतेः क्षान्तिः क्षमूषः क्षमतेः क्षमा ॥ ६ ॥ क्लमु ग्लानौ । क्लाम्यति-क्लामति । शपीव श्यन्यपि ष्ठिवुक्लम्वित्येव दीर्घे सिद्धे शमादिपाठो विनुणर्थः । अङ् । अक्लमत् ॥ ७ ॥ मदी हर्षे । माद्यति । अमदत् । शमादयोऽष्टौ गताः ॥ ८ ॥ असु क्षेपणे । अस्यति । आस । असिता ॥

२५१९-श्यन् परे रहते शमादि आठ धातुओंको दीर्घ हो। प्रणिशाम्यति । शेमतुः । शेमिथ । शमिता । अशमत् ॥ तमु धातु आकांक्षामें है, ताम्यति । तमिता । अतमत् ॥ दमु धातु उपशममें है, उपशम शब्द णिजन्तका निर्देश हुआ है, इस कारण यह धातु सकर्मक है, किन्तु शम धातुके समान अकर्मक नहीं है । अदमत् ॥ श्रमु धातु तपस्या और खेदमें है । श्राम्यति । अश्रमत् ॥ भ्रमु धातु अनवस्थितिमें है । "वा भ्राश० २३२१" इस सूत्रसे विकल्प करके इस धातुके उत्तर श्यन् होगा, श्यन् होनेपर "शमामष्टानाम्० २५१९"

इस सूत्रसे दीर्घ होगा–भ्राम्यति । लुङ् परे धातुके उत्तर स्थित च्लिके स्थानमें अङ् हुआ–अभ्रमत् । शेष रूप भ्वादिके समान हैं ॥

क्षमू धातु सहनमें है । क्षाम्यति । चक्षमिथ, चक्षन्थ । चक्षमिव, चक्षण्व । चक्षमिम, चक्षण्म । क्षमिता, क्षन्ता । यह धातु अषित् है, भ्वादिमें षित् जानना, अषित् क्षम धातुका क्षान्ति और षकार इत् अर्थात् क्षमूष् धातुका क्षमा ऐसा रूप कृदंतमें होगा ॥ क्लमु धातु ग्लानिमें है । क्लाम्यति, क्लामति । शप् परे रहते जैसा दीर्घ होताहै, वैसेही श्यन् परे भी "ष्ठिवुक्लमु० २३२०" इस सूत्रसेही दीर्घ सिद्ध होता तो भी शमादिपाठ घिनुणर्थ है । अङ् परे अक्लमत् ॥ मदी धातु हर्षमें है । माद्यति । अमदत् ॥

शमादि आठ धातु समाप्त हुए ॥

असु धातु क्षेपणमें है । अस्यति । आस । असिता ॥

२५२० अस्यतेस्थुक् । ७ । ४ । १७ ॥

अङि परे । आस्थत् । अस्य पुषादित्वादङि सिद्धे अस्यतिवक्तीति वचनं तङर्थम् । तङ् तूपसर्गादस्यत्यूह्योरिति वक्ष्यते । पर्यास्थत ॥ १ ॥ यसु प्रयत्ने ॥

२५२०–अङ् परे रहते असु धातुको थुक्का आगम हो। आस्थत् । इस धातुके उत्तर पुषादित्वके कारण अङ् सिद्ध होनेपर भी "अस्यतिवक्ति० २४३८" इस सूत्रसे अङ्का विधान तङर्थ है, किन्तु तङ् प्रत्यय "उपसर्गादस्यत्यूह्योः० २७०१" (सूत्रपरवार्त्तिक) इस आगे आनेवाले सूत्रमें कथित होगा । पर्यास्थत ॥ यसु धातु प्रयत्नमें है ॥

२५२१ यसोऽनुपसर्गात् । ३ । १ । ७१ ॥

२५२१–उपसर्ग पूर्वमें न रहते यस् धातुके उत्तर विकल्प करके श्यन् हो ॥

२५२२ संयसश्च । ३ । १ । ७२ ॥

श्यन्वा स्यात् । यस्यति–यसति । संयस्यति–संयसति । अनुपसर्गात्किम् । प्रयस्यति ॥ २ ॥ जसु मोक्षणे । जस्यति ॥ ३ ॥ तसु उपक्षये॥ दसु च । तस्यति । अतसत् । दस्यति । अदसत् ॥ ५ ॥ वसु स्तम्भे । वस्यति । ववास। ववसतुः । न शसददेति निषेधः । बशादिरयमिति मतं तु । बेसतुः । बेसुः ॥ ६ ॥ व्युष विभागे । अयं दाहे पठितः । अर्थभेदेन त्वङर्थं पुनः पठ्यते । अव्युषत् । ओष्ठ्यादिर्दन्त्यान्त्योऽयम् । व्युसतीत्यन्ये । अयकारं बुस इत्यपरे ॥ ७ ॥ प्लुष दाहे । अप्लुषत् । पूर्वत्र पाठः सिजर्थ इत्याहुः । तद् भ्वादिपाठेन गतार्थमिति सुवचम् ॥ ८ ॥ विस प्रेरणे । विस्यति । अविसत्॥ ॥ ९ ॥ कुस संश्लेषणे । अकुसत् ॥ १० ॥ बुस उत्सर्गे ॥ ११ ॥ मुस खण्डने ॥ १२ ॥ मसी परिणामे । परिणामो विकारः । समी इत्येके ॥ ॥ १३ ॥ लुठ विलोडने ॥ १४ ॥ उच समवाये । उच्यति । उवोच । ऊचतुः । मा भवानुचत् ॥ १५ ॥ भृशु भ्रंशु अधःपतने । बभर्श । अभृशत् । अनिदितामिति नलोपः । भ्रश्यति । अभ्रशत् ॥ १७ ॥ वृश वरणे । वृश्यति । अवृशत् ॥ १८ ॥ कृश तनूकरणे । कृश्यति ॥१९॥ ञितृषा पिपासायाम् ॥ २० ॥ हृष तुष्टौ । श्यन्नङौ भौवादिकाद्विशेषः ॥ २१ ॥ रुष रिष हिंसायाम् । तीषसहेति वेट् । रोषिता–रोष्टा । रेषिता–रेष्टा ॥ २३ ॥ डिप क्षेपे ॥ २४ ॥ कुप क्रोधे ॥ २५ ॥ गुप व्याकुलत्वे ॥ २६ ॥ युपु रुपु लुपु विमोहने । युप्यति । रुप्यति । लुप्यति । लोपिता । लुप्यतिः सेट्कः । अनिट्कारिकासु लिपिसाहचर्यात्तौदादिकस्यैव ग्रहणात् ॥ ॥ २९ ॥ लुभ गार्ध्ये । गार्ध्यमाकाङ्क्षा । तीषसहेति वेट् । लोभिता–लोब्धा । लोभिष्यति । लुभ्येत् । लुभ्यात् । अलुभत् । भ्वादेरवृत्करणत्वाल्लोभतीत्यपीत्याहुः ॥ ३० ॥ क्षुभ सञ्चलने । क्षुभ्यति ॥ ३१ ॥ णभ तुभ हिंसायाम् । क्षुभिनभितुभयो द्युतादौ क्र्यादौ च पठ्यन्ते तेषां द्युतादित्वादङ् सिद्धः । क्र्यादित्वात्पक्षे सिज्भवत्येव । इह पाठस्तु श्यनर्थः ॥ ३३ ॥ क्लिदू आर्द्रीभावे । क्लिद्यति । चिक्लेदिथ–चिक्लेत्थ । चिक्लिदिव–चिक्लिद्व । चिक्लिदिम–चिक्लिद्म । क्लेदिता–क्लेत्ता ॥ ३४ ॥ ञिमिदा स्नेहने । मिदेर्गुणः । मेद्यति । अमिदत् । द्युतादिपाठादेवामिदत्, अमेदीदिति सिद्धे इह पाठोऽमेदीदिति मा भूदिति । द्युतादिभ्यो बहिरेवात्मनेपदिषु पाठस्तूचितः ॥ ३५ ॥ ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः ॥ ३६ ॥ ऋधु वृद्धौ । आनर्ध । आर्धत् ॥ ३७ ॥ गृधु अभिकाङ्क्षायाम् । अगृधत् ॥ ३८ ॥ वृत् ॥ पुषादयो दिवादयश्च वृत्ताः। केचित्तु पुषादिसमाप्त्यर्थमेव वृत्करणम्। दिवादिस्तु भ्वादिवदाकृतिगणः । तेन क्षीयते मृग्यतीत्यादि सिद्धिरित्याहुः ॥

॥ इति दिवादयः ॥

२५२२–सम्पूर्वक यस् धातुके उत्तर भी विकल्प करके श्यन् हो–यस्यति, यसति । संयस्यति, संयसति । उपसर्गरहित क्यों कहा, तो उपसर्गपूर्वक होनेपर नित्य श्यन् होगा–प्रयस्यति ॥ जसु धातु मोक्षणमें है । जस्यति ॥ तसु और दसु धातु उपक्षयमें है । तस्यति । अत-

सत् । दस्यति । अदसत् ॥ वसु धातु स्तम्भनार्थमें है । वस्यति । ववास । ववसतुः । " नशसदद० २२६३ " इस सूत्रसे एत्व तथा अभ्यासलोपका निषेध हुआ । यह धातु बशादि है, इस मतमें–सेबतुः, बेसुः, ऐसा होगा ॥ व्युष धातु विभागमें है, यह धातु दाहार्थक भी है । अर्थभेदसे इसके उत्तर तङ्विधान करनेके निमित्त पुनर्वार पठित हुआ । अव्युषत् । कोई २ कहतेहैं इस धातुके आदिमें ओष्ठय वर्ण है और अन्तमें दन्त्य वर्ण है, जैसे–व्युसति । अन्य मतमें बुस धातु यकारहीन है ॥ प्लुष धातु दाहमें है । अप्लुषत् । सिच् विधानके निमित्त पूर्वमें पठित हुआहै । वह भ्वादि गणके पाठके कारण निरर्थक होताहै । विस धातु प्रेरणमें है । विस्यति । अविसत् ॥ कुस धातु संश्लेषणमें है । अकुसत् ॥ बुस धातु उत्सर्ग और मुस धातु खण्डनमें है ॥ मसी धातु परिणाम अर्थात् विकारमें है ॥ कोई २ कहतेहैं, वह समी धातु है ॥ लुठ धातु विलोडनमें है ॥ उच धातु समवायमें है । उच्यति । उवोच । ऊचतुः । ऊचुः । मा भवानुचत् ॥ भृशु और भ्रंशु धातु अधःपतनमें हैं । बभर्श । अभृशत् । " अनिदिताम्० ४१५ " इस सूत्रसे नकारका लोप हुआ–भ्रश्यति । अभ्रशत् । वृश धातु वरणमें है । वृश्यति । अवृशत् ॥ कृश धातु तनूकरणमें है । कृश्यति ॥ ञि तृषः धातु पिपासामें है ॥ हृष धातु तुष्टिमें भ्वादिगणीय हृष धातुके उत्तर श्यन् और अङ् हो, यही विशेष है ॥ रुष और रिष धातु हिंसामें हैं । "तीषसह० २३४०" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् हो । रोषिता, रोष्टा । रेषिता, रेष्टा ॥ डिप धातु क्षेपमें है ॥ कुप धातु क्रोधमें है ॥ गुप धातु व्याकुलत्वमें है ॥ युपु, रुपु और लुपु धातु विमोहनमें हैं । युप्यति । रुप्यति । लुप्यति । लोपिता । लुप धातु सेट् है । अनिट्कारिकामें लिप धातुके साहचर्य्यके कारण तुदादिगणीयधातुका ही ग्रहण होगा ॥ लुभ धातु गार्द्ध्य अर्थात् आकांक्षामें है । "तीषसह० २३४०" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् हुआ–लोभिता, लोब्धा । लोभिष्यति । लुभ्येत् । लुभ्यात् । अलुभत् । भ्वादिके आकृतिगणत्वके कारण 'लोभति' ऐसा पद भी होगा, यह कोई २ कहतेहैं ॥ क्षुभ धातु संचलनमें है ॥ णभ और तुभ धातु हिंसामें हैं । क्षुभि, नभि, और तुभि धातु द्युतादि और क्र्यादि गणमें पठित हों । उनके उत्तर द्युतादित्वके कारण अङ् होगा और क्र्यादित्वके कारण विकल्प करके सिच् होगा । इस गणमें पाठ श्यन् प्रत्ययार्थ है ॥ क्लिदू धातु आर्द्रीभावमें है । क्लिद्यति । चिक्लेदिथ, चिक्लेत्थ । चिक्लिदिव, चिक्लिद्व । चिक्लिदिम, चिक्लिद्म । क्लेदिता, क्लेत्ता ॥ ञि मिदा धातु स्नेहनमें है । मिद धातुके इकारको गुण हो । मेद्यति । अमिदत् । द्युतादिके मध्यमें पाठ करनेसे ही 'अमिदत्, अमेदिष्ट' ऐसे पद सिद्ध होते, तथापि इस स्थलमें पाठ करनेसे 'अमेदीत्' ऐसा पद सिद्ध नहीं होसकता । द्युतादिसे पृथक् जो मिद धातु सो आत्मनेपदमें ही पढनी उचित है ॥ ञिक्ष्विदा धातु स्नेहन और मोचनमें है ॥ ऋधु धातु वृद्धिमें है । आनर्द्ध । आर्द्धत् ॥ गृधु धातु अभिकांक्षामें है । अगृधत् । पुषादि और दिवादिगणीय धातु समाप्त हुए । कोई २ कहतेहैं, पुषादि धातु समाप्तिके निमित्त ही वृत् पदका ग्रहण हुआ है, किन्तु दिवादि धातु भ्वादिके समान आकृतिगणीय हैं, इसी कारण 'क्षीयते, मृग्यते' इत्यादि पदोंकी सिद्धि हुईहै ॥

॥ इति दिवादिप्रकरणम् ॥

अथ स्वादयः ५.

षुञ् अभिषवे । अभिषवः स्नपनं पीडनं स्नानं सुरासंधानं च । तत्र स्नानेऽकर्मकः ॥

षुञ् धातु अभिषव अर्थात् स्नपन, पडिन, सुरासन्धान और स्नान अर्थमें है । इन सब अर्थोंके मध्यमें स्नानार्थमें यह धातु अकर्म्मक है ॥

२५२३ स्वादिभ्यः श्नुः । ३ । १ । ७३ ॥

सुनोति । सुनुतः । हुश्नुवोरिति यण् । सुन्वन्ति । सुन्वः–सुनुवः । सुन्वहे–सुनुवहे । सुषाव । सुषुवे । सोता । सुनु । सुनवानि । सुनवै । सुनुयात् । सूयात् । स्तुसुधूञ्भ्य इतीट् । असावीत् । असोष्ट । अभिषुणोति । अभ्यषुणोत् । अभिसुषाव ॥

२५२३–स्वादिगणीय धातुके उत्तर श्नु प्रत्यय हो । सुनोति । सुनुतः । "हुश्नुवोः० २३८७" इस सूत्रसे यण् हुआ–सुन्वन्ति । सुन्वः, सुनुवः । सुन्वहे, सुनुवहे । सुषाव । सुषुवे । सोता । सुनु । सुनवानि । सुनवै । सुनुयात् । सूयात् । "स्तुसुधूञ्भ्यः० २३८५" इस सूत्रसे सु धातुके उत्तर स्थित सिच्को इट् हुआ–असावीत् । असोष्ट । अभिषुणोति । अभ्यषुणोत् । अभिसुषाव ॥

२५२४ सुनोतेः स्यसनोः । ८ । ३ । ११७ ॥

स्ये सनि च परे सुञः षो न स्यात् । विसोष्यति ॥ १ ॥ षिञ् बन्धने । सिनोति । विसिनोति । सिषाय–सिष्ये । सेता ॥ २ ॥ शिञ् निशाने । तालव्यादिः । शेता ॥ ३ ॥ डुमिञ् प्रक्षेपणे । मीनातिमिनोतीत्यात्त्वम् । ममौ । ममिथ–ममाथ । मिम्ये । माता । मीयात्–मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त ॥ ४ ॥ चिञ् चयने । प्रणिचिनोति ॥

२५२४–स्य और सन् प्रत्यय परे रहते सुञ् धातुके सकारको षत्व न हो । विसोष्यति ॥ षिञ् धातु बन्धनमें है । सिनोति । विसिनोति । सिषाय । सिष्ये । सेता ॥ शिञ् धातु निशानमें है । यह धातु तालव्य शकारादि है । शेता ॥ डुमिञ् धातु प्रक्षेपणमें है । "मीनाति मिनोति० २५०८" इस सूत्रसे आकार हुआ–ममौ । ममिथ, ममाथ । मिम्ये । माता । मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त ॥ चिञ् धातु चयनमें है । प्रणिचिनोति ॥

२५२५ विभाषा चेः । ७ । ३ । ५८ ॥

अभ्यासात्परस्य चिञः कुत्वं वा स्यात्सनि लिटि च । प्रणिचिकाय–चिचाय । चिक्ये–चिच्ये ।

अचैषीत्। अचेष्ट ॥ ५ ॥ स्तृञ् आच्छादने। स्तृणोति । स्तृणुते । गुणोऽर्तीति गुणः । स्तर्यात् ॥

२५२५-सन् और लिट् परे रहते अभ्यासके परे स्थित चिञ् धातुके चके स्थानमें विकल्प करके कुत्व हो । प्राणाचिकाय, चिचाय । चिक्ये, चिच्ये । अचैषीत् । अचेष्ट ॥ स्तृञ् धातु आच्छादनमें है । स्तृणोति । स्तृणुते । "गुणोऽर्ति०२३८०" इस सूत्रसे गुण हुआ-स्तर्यात् ॥

२५२६ ऋतश्च संयोगादेः ।७।२।४३ ॥

ऋदन्तात्संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचोरिड्वा स्यात्तङि । स्तरिषीष्ट-स्तृषीष्ट। अस्तरिष्ट-अस्तृत। ॥ ६ ॥ कृञ् हिंसायाम् । कृणोति । कृणुते । चकार । चकर्थ । चक्रे । क्रियात् । कृषीष्ट । अकार्षीत्। अकृत ॥ ७ ॥ वृञ् वरणे ॥

२५२६-तङ् परे रहते ऋकारान्त संयोगादि धातुके परे लिङ् और सिच्के स्थानमें विकल्प करके इट् हो । स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट । अस्तरिष्ट, अस्तृत ॥ कृञ् धातु हिंसामें है । कृणोति कृणुते । चकार । चकर्थ । चक्रे । क्रियात् । कृषीष्ट । अकार्षीत् । अकृत ॥ वृञ् धातु वरणमें है ॥

२५२७ बभूथाततन्थजगृभ्मववर्थेति निगमे । ७ । २ । ६४ ॥

एषां वेदे इडभावो निपात्यते। तेन भाषायां थलीट् । ववरिथ । ववृव । ववृवहे । वरिता-वरीता ॥

२५२७-वेदमें बभूथ, ततन्थ, जगृम्भ और ववर्थ पदमें निपातनसे इट्का अभाव हो अत एव लोकमें थल्को इट् होताहै, जैसे-ववरिथ । ववृव । ववृवहे । वरिता, वरीता ॥

२५२८ लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु । ७ । २ । ४२ ॥

वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्च परयोर्लिङ् सिचोरिड्वा स्यात्तङि ॥

२५२८-तङ् परे रहते वृङ् और वृञ् धातु और ऋकारान्त धातुओंके उत्तर लिङ् और सिच्को विकल्प करके इट् का आगम हो ॥

२५२९ न लिङि । ७ । २ । ३९ ॥

वॄतो लिङ इटो दीर्घो न स्यात् । वरिषीष्ट-वृषीष्ट । अवारीत् । अवरिष्ट-अवरीष्ट-अवृत ८॥ धुञ् कम्पने । धुनोति । धुनुते । अधौषीत्। अधोष्यत् ॥ ९ ॥ दीर्घान्तोऽप्ययम् । धूनोति । धूनुते । स्वरतिसूतीति वेट् । दुधविथ-दुधोथ। किति लिटि तु श्र्युकः कितीति निषेधं बाधित्वा क्रादिनियमान्नित्यमिट्।दुधुविव।स्तुसुधूञ्भ्य इति नित्यमिट्। अधावीत्। अधविष्ट-अधोष्ट ॥ १०॥

अथ परस्मैपदिनः । दुदु उपतापे । दुनोति ॥ १ ॥ हि गतौ वृद्धौ च ॥

२५२९-वृत्-वृङ्, वृञ्, ऋदन्त धातुके उत्तर लिङ् को उद्देश कर विहित इट्को दीर्घ न हो । वरिषीष्ट, वृषीष्ट । अवारीत् । अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवृत ॥ धुञ् धातु कंपनमेंहै धुनोति । धुनुते । अधौषीत् । अधोष्यत् । यह धातु दीर्घान्त भी है । धूनोति । धूनुते । "स्वरतिसूति० २२७९" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् हुआ, दुधविथ-दुधोथ । किंतु लिट् परे रहते तो "श्र्युकः० २३८१" इस सूत्रसे इट्के निषेधको बाध कर क्रादिनियमके अनुसार नित्य इट् होताहै-दुधुविव । "स्तुसुधूञ्भ्यः० २३८५" इस सूत्रसे नित्य इट् हुआ- अधावीत् । अधविष्ट, अधोष्ट ॥

अब परस्मैपदी धातु कहतेहैं ।

दुदु धातु उपतापमें है । दुनोति ॥ हि धातु गति और वृद्धिमें है ॥

२५३० हिनुमीना । ८ । ४ । १५ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य एतयोर्नस्य णः स्यात् । प्रहिणोति ॥

२५३०-उपसर्गस्थ निमित्तके परे हिनु और मीनाके नकारको णत्व हो । प्रहिणोति ॥

२५३१ हेरचङि । ७ । ३ । ५६ ॥

अभ्यासात्परस्य हिनोतेर्हस्य कुत्वं स्यान्न तु चङि । जिघाय ॥ २॥ पृ प्रीतौ । पृणोति। पर्त्ता ॥ ३ ॥ स्पृ प्रीतिपालनयोः ॥ प्रीतिचलनयोरित्यन्ये । चलनं जीवनमिति स्वामी । स्पृणोति।पस्पार ॥ ४ ॥ स्मृ इत्येके। स्मृणोति। पृणोत्यादयस्त्रयोपि छान्दसा इत्याहुः॥५॥ आप्लृ व्याप्तौ । आप्नोति । आप्नुतः । आप्नुवन्ति । आप्नुवः । आप्ता । आप्नुहि । लृदित्वादङ्। आपत् ॥ ६ ॥ शक्लृ शक्तौ ॥ अशकत् ॥ ७ ॥ राध साध संसिद्धौ ॥ राध्नोति ॥

२५३१-अभ्यासके परे स्थित हि धातुसम्बन्धी हके स्थानमें कवर्ग हो, चङ् परे रहते न हो । जिघाय ॥ पृ धातु प्रीतिमें है । पृणोति । पर्त्ता ॥ स्पृ धातु प्रीति और पालनमें है, अन्य मतमें प्रीति और चलनमें है, स्वामीके मतमें चलन शब्दसे जीवनमें है । स्पृणोति । पस्पार । अन्य मतमें स्मृ धातु भी उक्तार्थक है । स्मृणोति । पृणोति-इत्यादि तीनों धातु वैदिक हैं । आप्लृ धातु व्याप्तिमें है । आप्नोति । आप्नुतः । आप्नुवन्ति । आप्नुवः । आप्ता । आप्नुहि । लृकार इत् होनेके कारण अङ् हुआ-आपत् ॥ शक्लृ धातु शक्तिमें है । अशकत् ॥ राध और साध धातु संसिद्धिमें हैं । राध्नोति ॥

२५३२ राधो हिंसायाम् । ६।४।१२३॥

एत्वाभ्यासलोपौ स्तः किति लिटि सेटि थलि च। अपरेधतुः । रेधुः । रेधिथ । राद्धा । साध्नोति । साद्धा । असात्सीत् । असाद्धाम् ॥ ९ ॥

अथ द्वावनुदात्तेतौ ॥ अशू व्याप्तौ संघाते च। अश्नुते ॥

२५३२–कित् लिट् और सेट् थल परे रहते हिंसार्थ राध धातुके एत्व और अभ्यासका लोप हो। अपरेधतुः। रेधुः। रेधिथ। राद्धा। साध्नोति। साद्धा। असात्सीत्। असाद्धाम् ॥

अब दो आत्मनेपदी धातु कहतेहैं।

अशू धातु व्याप्ति और संघातमें है। अश्नुते ॥

२५३३ अश्नोतेश्च । ७ । ४ । ७२ ॥

दीर्घादभ्यासादवर्णात्परस्य नुट् स्यात्। आनशे। अशिता–अष्टा। अशिष्यते–अक्ष्यते। अश्नुवीत। अशिषीष्ट–अक्षीष्ट। आशिष्ट–आष्ट। आक्षाताम् ॥ १ ॥ ष्टिघ आस्कन्दने ॥ स्तिघ्नुते। तिष्टिघे। स्तेघिता ॥ २ ॥

अथ आगणान्तात्परस्मैपदिनः ॥ तिक तिग गतौ च। चादास्कन्दने। तिक्नोति। तिग्नोति ॥ २ ॥ षघ हिंसायाम् ॥ सघ्नोति ॥ ३ ॥ ञिधृषा प्रागल्भ्ये ॥ धृष्णोति। दधर्ष। धर्षिता ॥ ४ ॥ दम्भु दम्भने ॥ दम्भनं दम्भः। दभ्नोति। ददम्भ। श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनां लिटः कित्त्वं वेति व्याकरणान्तरमिहाप्याश्रीयत इत्युक्तम्। अनिदितामिति नलोपः। तस्याभीयत्वादसिद्धत्वेन एत्वाभ्यासलोपयोरप्राप्तौ ॥ दम्भेश्च एत्वाभ्यासलोपौ वक्तव्यौ ॥ * ॥ देभतुः–ददम्भतुः। इदं कित्त्वं पिदपिद्विषयकमिति सुधाकरादयः। तन्मते तिप्सिप्मिप्सु। देभ–देभिथ–देभेति रूपान्तरं बोध्यम्। अपिद्विषयकमिति न्यासकारादिमते तु। ददम्भ–ददंभिथ–ददम्भेत्येव। दभ्यात् ॥ ५ ॥ ऋधु वृद्धौ ॥ ६ ॥ तृप प्रीणन इत्येके ॥ क्षुभ्नादित्वाण्णत्वं न। तृप्नोति ॥ ७ ॥ छन्दसि ॥ आगणान्तादधिकारोयम्। अह व्याप्तौ ॥ अह्नोति ॥ १ ॥ दघ घातने पालने च ॥ दघ्नोति ॥ २ ॥ चमु भक्षणे। चम्नोति ॥ ३ ॥ रि क्षि चिरि जिरि दाश दृ हिंसायाम् ॥ रिणोति। क्षिणोति। अयं भाषायामपीत्येके। न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति। ऋक्षीत्येक एवाजादिरित्यन्ये। ऋक्षिणोति। चिरिणोति। जिरिणोति। दाश्नोति। दृणोति ॥ ९ ॥ वृत् ॥

॥ इति स्वादयः ॥

२५३३–अश धातुको दीर्घ अभ्याससंज्ञक अवर्णके परे नुट्का आगम हो। आनशे। अशिता, अष्टा। अशिष्यते, अक्ष्यते। अश्नुवीत। अशिषीष्ट, अक्षीष्ट। आशिष्ट, आष्ट। आक्षाताम् ॥ ष्टिघ धातु आस्कन्दनमें है। स्तिघ्नुते। तिष्टिघे। स्तेघिता ॥

अब गणसमाप्ति तक परस्मैपदी धातु कहतेहैं ॥

तिक और तिग धातु गति और चकारसे आस्कन्दनमें है। तिक्नोति। तिग्नोति ॥ षघ धातु हिंसामें है। सघ्नोति ॥ ञि धृषा धातु प्रागल्भ्यमें है। धृष्णोति। दधर्ष। धर्षिता ॥ दम्भु धातु दम्भमें है। दभ्नोति। ददम्भ ॥

श्रन्थि, ग्रन्थि, दम्भि और स्वञ्जि धातुके उत्तर लिट्को कित्त्व हो विकल्प करके यह व्याकरणान्तरमें कथित है, इस स्थलमें भी इसका आश्रय किया जा सकता है यह पहले कहा गया है। "अनिदिताम् ४१५" इस सूत्रसे नकारके लोपके आभीयत्वके कारण असिद्धि होनेसे एत्व और अभ्यासलोपकी अप्राप्ति होनेपर वार्त्तिक कहतेहैं–दम्भ धातुके एत्व और अभ्यासका लोप हो * देभतुः, ददम्भतुः। यह श्रन्थि, ग्रन्थि इत्यादि सूत्रोक्त कित्वपित् और अपित् दोनों विषयक है, यह बात सुधाकरादिने कही है, उनके मतमें तिप्, सिप्, मिप् यह तीन प्रत्यय परे पूर्वोक्त कार्य होगा, देभ, देभिथ, देभ, यह रूपान्तर होंगे, अपित् विषयक है, ऐसा न्यासकारादिकोंका मत है उनके मतमें ददम्भ, ददम्भिथ, ददम्भ, इस प्रकार रूप होंगे। दभ्यात् ॥

ऋधु धातु वृद्धिमें है। किसीके मतमें तृप धातु प्रीणनमें है। क्षुभ्नादित्वके कारण नकारको णत्व नहीं होगा–तृप्नोति। 'वेदमें' इस पदका गण समाप्ति तक अधिकार है ॥ अह धातु व्याप्तिमें है। अह्नोति ॥ दघ धातु घातन और पालनमें है। दघ्नोति ॥ चमु धातु भक्षणमें है। चम्नोति ॥ रि, क्षि, चिरि, जिरि, दाश और दृ यह सम्पूर्ण धातु हिंसार्थमें हैं। रिणोति। क्षिणोति। किसी २ के मतमें क्षि धातुका भाषामें भी प्रयोग होताहै, जैसे–" न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति " क्षि धातुको कोई २ ' ऋक्षि ' ऐसे अजादि धातु कहतेहैं, उनके मतमें ' ऋक्षिणोति ' ऐसा पद होगा। चिरिणोति। जिरिणोति। दाश्नोति। दृणोति ॥ वृत् ॥

॥ इति स्वादिप्रकरणम् ॥

अथ तुदादयः ६.

तुद व्यथने ॥ इतः षट् स्वरितेतः ॥

तुद धातु व्यथनमें है। यहांसे ६ धातु उभयपदी हैं ॥

२५३४ तुदादिभ्यः शः । ३ । १ । ७७ ॥

तुदति। तुदते। तुतोद। तुतोदिथ। तुतुदे। तोत्ता। अतौत्सीत्। अतुत्त ॥ १ ॥ णुद प्रेरणे। नुदति। नुदते। नुनोद। नुनुदे। नोत्ता ॥ २ ॥ दिश अतिसर्जने। अतिसर्जनं दानम्। देष्टा। दिक्षीष्ट। अदिक्षत्। अदिक्षत ॥ ३ ॥ भ्रस्ज पाके। ग्रहिज्येति संप्रसारणम्। सस्य श्चुत्वेन शः। शस्य जश्त्वेन जः। भृज्जति। भृज्जते ॥

२५३४–शप्के विषय रहते तुदादिगणीय धातुके उत्तर श प्रत्यय हो। तुदति। तुदते। तुतोद। तुतोदिथ। तुतुदे। तोत्ता। अतौत्सीत्। अतुत्त ॥ णुद धातु प्रेरणमें है। नुदति। नुदते। नुनोद। नुनुदे। नोत्ता ॥ दिश धातु अति-

सर्जन अर्थात् दानमें है । देष्टा । दिक्षीष्ट । अदिक्षत् । अदिक्षत ॥ भ्रस्ज धातु पाकमें है । "ग्रहिज्या० २४१२" इस सूत्रसे सम्प्रसारण अर्थात् भ्रस्ज धातुके रकारके स्थानमें ऋकार हुआ, सकारके स्थानमें चवर्गके योगमें श हुआ, शके स्थानमें जश्त्वके कारण ज् हुआ-भृज्जति । भृज्जते ॥

२५३५ भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ४७ ॥

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके । मित्त्वादन्त्यादचः परः । स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः । बभर्ज । बभर्जतुः । बभर्जिथ-बभर्ष्ठ । बभर्जे । रमभावे बभ्रज्ज । बभ्रज्जतुः । बभ्रज्जिथ । स्कोरिति सलोपः॥ व्रश्चेति षः । बभ्रष्ठ । बभ्रज्जे । भ्रष्टा-भर्ष्टा । भ्रक्ष्यति-भर्क्ष्यति ॥ क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन ॥ * ॥ भृज्ज्यात् । भृज्ज्यास्ताम् । भ्रक्षीष्ट-भर्क्षीष्ट । अभ्राक्षीत्-अभार्क्षीत् । अभ्रष्ट-अभर्ष्ट ॥ ४ ॥ क्षिप प्रेरणे ॥ क्षिपति । क्षिपते । क्षेप्ता । अक्षैप्सीत् । अक्षिप्त ॥५॥ कृष विलेखने ॥ कृषति । कृषते । क्रष्टा-कर्ष्टा । कृष्यात् । कृक्षीष्ट । स्पृशमृशकृषेति सिज्वा- पक्षे क्सः । सिचि अम् वा । अक्राक्षीत्-अकार्क्षीत्-अकृक्षत् । तङि लिङ्सिचाविति किंत्त्वादम्न । अकृष्ट । अकृक्षाताम् । अकृक्षत । अकृक्षत । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त ॥ ६ ॥ ऋषी गतौ । परस्मैपदी । ऋषति । आनर्ष ॥१॥ जुषी प्रीतिसेवनयोः ॥- आत्मनेपदिनश्चत्वारः । जुषते ॥ ओविजी भयचलनयोः ॥ प्रायेणायमुत्पूर्वः ॥ उद्विजते ॥

२५३५-आर्धधातुक विभक्ति परे रहते भ्रस्ज धातुके रेफ और उपधाके स्थानमें विकल्प करके रम्का आगम हो । मित्वके कारण अन्त्याच्के परे 'र' होगा । स्थानमें षष्ठीनिर्देशके कारण रकार और उपधाकी निवृत्ति हुई-बभर्ज । बभर्जतुः । बभर्जिथ, बभर्ष्ठ । बभर्जे । रम्के अभावपक्षमें-बभ्रज । बभ्रज्जतुः । बभ्रज्जिथ । "स्कोः० ३८०" इस सूत्रसे सकारका लोप हुआ, "व्रश्च० २९४" इस सूत्रसे षत्व हुआ- बभ्रष्ठ । बभ्रज्जे । भ्रष्टा, भर्ष्टा । भ्रक्ष्यति भर्क्ष्यति- ।

कित्, ङित् परे रहते "२२१७" सूत्रसे रमागमको बाध कर पूर्वविप्रतिषेधके कारण सम्प्रसारण हो-भृज्ज्यात् । भृज्ज्यास्ताम् । भ्रक्षीष्ट, भर्क्षीष्ट । अभ्राक्षीत् । अभार्क्षीत्, अभ्रष्ट-अभर्ष्ट ॥

क्षिप धातु प्रेरणमें है । क्षिपति । क्षिपते । क्षेप्ता । अक्षैप्सीत् । अक्षिप्त ॥ कृष धातु विलेखनमें है । कृषति । कृषते । क्रष्टा, कर्ष्टा । कृष्यात् । कृक्षीष्ट । "स्पृशमृशकृष०" इससे विकल्प करके सिच् हुआ, पक्षमें क्स हुआ, सिच् परे विकल्प करके अम् हुआ- अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत्, अकृक्षत् । तङ् परे रहते "लिङ्सिचौ० २३००" इस सूत्रसे किंत्वके कारण अम् नहीं हुआ-अकृष्ट । अकृक्षाताम् । अकृक्षत । अकृक्षत । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त ॥ ऋषि धातु गतिमें है, यह परस्मैपदी है । ऋषति । आनर्ष ॥ जुषी धातु प्रीति और सेवनमें है ॥

अब चार धातु आत्मनेपदी कहतेहैं ।

जुषते ॥ ओविजी धातु भय और चलन में है । यह धातु प्रायः उत्पूर्वक प्रयुक्त होताहै, यथा-उद्विजते ॥

२५३६ विज इट् । १ । २ । २ ॥

विजेः पर इडादिः प्रत्ययो ङिद्वत् । उद्विजिता । उद्विजिष्यते ॥ २ ॥ ओलजी ओलस्जी व्रीडायाम् ॥ लजते । लेजे । लज्जते । ललज्जे ॥ ४ ॥

अथ परस्मैपदिनः ॥ ओव्रश्चू छेदने । ग्रहिज्या । वृश्चति । वव्रश्च । वव्रश्चतुः । वव्रश्चिथ-वव्रष्ठ । लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणम् । रेफस्य ऋकारः । उरत् । तस्याचः परस्मिन्निति स्थानिवद्भावात्र सम्प्रसारण इति वस्योत्वं न । व्रश्चिता-व्रष्टा । व्रश्चिष्यति-व्रक्ष्यति । वृश्च्यात् । अव्रश्चीत्-अव्राक्षीत् । अव्रक्ष्यत् ॥ १ ॥ व्यच व्याजीकरणे । विचति । विव्याच । विविचतुः । व्यचिता । व्यचिष्यति । विच्यात् । अव्याचीत्-अव्यचीत् । व्यचेः कुटादित्वमनसीति तु नेह प्रवर्तते । अनसीति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात् ॥ २ ॥ उछि उञ्छे ॥ उञ्छति ॥ ॥ ३ ॥ उच्छी विवासे ॥ उच्छति ॥ ४ ॥ ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु ॥ ऋच्छत्यॄतामिति गुणः । द्विहल्ग्रहणस्यानेकहल्उपलक्षणत्वान्नुट् । आनर्छ । आनर्छतुः । ऋच्छिता ॥५॥ मिच्छ उत्क्लेशे ॥ उत्क्लेशः पीडा । मिमिच्छ । अमिच्छीत् ॥ ६ ॥ जर्ज चर्च झर्झ परिभाषणभर्त्सनयोः ॥ ९ ॥ त्वच संवरणे । तत्वाच ॥ १० ऋच स्तुतौ । आनर्च ॥ ११ ॥ उब्ज आर्जवे ॥ ॥ १२ ॥ उज्झ उत्सर्गे ॥ १३ ॥ लुभ विमोहने ॥ विमोहनमाकुलीकरणम् । लुभति । लोभिता-लोब्धा । लोभिष्यति ॥ १४ ॥ रिफ कत्थनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु ॥ रिफति । रिरेफ । रिहेत्येके । शिशुं न विप्रामतिभीरिहन्ति ॥१५॥ तृप तृम्फ तृप्तौ ॥ आद्यः प्रथमान्तः । द्वितीयो द्वितीयान्तः । द्वावपि द्वितीयान्तावित्यन्ये । तृपति । ततर्प । तर्पिता । स्पृशमृशेति सिज्विकल्पः पौषादिकस्यैव । अङ्पवादत्वात् । ते-

नात्र नित्यं सिच्। अतर्पीत्। तृम्फति । शस्य ङित्त्वादनिदितामिति नलोपे ॥ शे तृम्फादीनां नुम्वाच्यः ॥ * ॥ आदिशब्दः प्रकारे । तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः। तृम्फति । ततृम्फ । तृफ्यात् ॥ १७ ॥ तुप तुम्प तुफ तुम्फ हिंसायाम् ॥ तुपति । तुम्पति । तुफति । तुम्फति ॥ २१ ॥ दृप दृम्फ उत्क्लेशे ॥ प्रथमः प्रथमान्तः । द्वितीयो द्वितीयान्तः । प्रथमो द्वितीयान्त इत्येके । दृपति । दृफति । दृम्फति॥२३॥ ऋफ ऋम्फ हिंसायाम् । ऋफति । आनर्फ । ऋम्फति । ऋम्फांचकार ॥ २५ ॥ गुफ गुम्फ ग्रन्थे॥गुफति । जुगोफ। गुम्फति। जुगुम्फ॥२७॥ उभ उम्भ पूरणे ॥ उभति । उवोभ । उम्भति । उम्भांचकार ॥ २९ ॥ शुभ शुम्भ शोभार्थे ॥ शुभति । शुम्भति ॥ ३१ ॥ दृभी ग्रन्थे । दृभति ॥ ३२ ॥ चृती हिंसाग्रन्थनयोः ॥ चर्तिता । से सिचीति वेट् । चर्तिष्यति–चर्त्स्यति–अचर्तीत् ॥ ३३ ॥ विध विधाने ॥ विधति । वेधिता ॥३४॥ जुड गतौ ॥ तवर्गपञ्चमान्त इत्येके। जुडति । मरुतो जुनन्ति ॥ ३५ ॥ मृड सुखने ॥ मृडति । मर्डिता ॥ ३६ ॥ पृड च ॥ पृडति ॥ ॥ ३७ ॥ पृण प्रीणने ॥ पृणति । पपर्ण ॥३८॥ वृण च ॥ वृणति ॥३९॥ मृण हिंसायाम्॥४०॥ तुण कौटिल्ये ॥ तुतोण ॥ ४१ ॥ पुण कर्मणि शुभे । पुणति ॥ ४२ ॥ मुण प्रतिज्ञाने ॥ ४३ ॥ कुण शब्दोपकरणयोः ॥ ४४ ॥ शुन गतौ॥४५॥ द्रुण हिंसागतिकौटिल्येषु ॥ ४६ ॥ घुण घूर्ण भ्रमणे॥४८॥षुर ऐश्वर्यदीप्त्योः । सुरति। सुषोर। आशिषि। सूर्यात्॥४९॥कुर शब्दे। कुरति।कूर्यात्। अत्र न भकुर्छुरामिति निषेधोन । करोतेरेव तत्र ग्रहणादित्याहुः ॥ ५० ॥ खुर छेदने ॥५१॥ मुर संवेष्टने ॥ ५२ ॥ क्षुर विलेखने ॥ ५३ ॥ घुर भीमार्थशब्दयोः ॥ ५४ ॥ पुर अग्रगमने ॥ ॥ ५५ ॥ वृहू उद्यमने । दन्त्योष्ठ्यादिः । पवर्गीयादिरित्यन्ये ॥ ५६ ॥ तृहू स्तृहू तृंहू हिंसार्थाः । तृहति । ततर्ह । स्तृहति । तस्तर्ह । तर्हिता–तर्ढा । स्तर्हिता–स्तर्ढा । अतृंहीत्–अतार्ङ्क्षीत् । अताण्ढाम् ॥ ५९ ॥ इषु इच्छायाम् । इषुगमीति छः । इच्छति । एषिता–एष्टा । एषिष्यति । इष्यात् । ऐषीत् ॥ ६० ॥ मिष स्पर्धायाम् । मिषति । मेषिता ॥ ६१ ॥ किल श्वैत्यक्रीडनयोः ॥ ६२ ॥ तिल स्नेहने ॥ ॥ ६३ ॥ चिल वसने ॥ ६४ ॥ चल विलसने ॥ ६५ ॥ इल स्वप्नक्षेपणयोः ॥६६॥ विल संवरणे । दन्त्योष्ठ्यादिः ॥ ६७ ॥ बिल भेदने । ओष्ठ्यादिः ॥ ६८ ॥ णिल गहने॥६९॥ हिल भावकरणे॥७०॥ शिल षिल उञ्छे ॥७२॥ मिल श्लेषणे ॥ ७३ ॥ लिख अक्षरविन्यासे। लिलेख ॥ ७४ ॥ कुट कौटिल्ये । गाङ्कुटादिभ्य इति ङित्त्वम् । चुकुटिथ । चुकोट । चुकुट । कुटिता ॥ ७५ ॥ पुट संश्लेषणे ॥ ७६ ॥ कुच सङ्कोचने ॥ ७७ ॥ गुज शब्दे ॥ ७८ ॥ गुड रक्षायाम् ॥ ७९ ॥ डिप क्षेपे ॥ ८० ॥ छुर छेदने ॥ नभकुर्छुरामिति न दीर्घः ॥ ८१ ॥ छुर्यात् ॥ स्फुट विकसने।स्फुटति।पुस्फोट ॥८२॥ मुट आक्षेपमर्दनयोः ॥ ८३ ॥ त्रुट छेदने । वा भ्राशेति श्यन्वा । त्रुट्यति । त्रुटति । तुत्रोट। त्रुटिता ॥ ८४ ॥ तुट कलहकर्मणि ॥ तुटति । तुतोट । तुटिता ॥ ८५ ॥ चुट छुट छेदने॥८७॥ जुड बन्धने ॥ ८८ ॥ कड मदे ॥ ८९ ॥ लुट संश्लेषणे ॥ ९० ॥ कृड घनत्वे । घनत्वं सान्द्रता। चकर्ड । कृडिता ॥ ९१ ॥ कुड बाल्ये ॥ ९२ ॥ पुड उत्सर्गे ॥ ९३ ॥ घुट प्रतिघाते ॥ ९४ ॥ तुड तोडने । तोडनं भेदः॥९५॥थुड स्थुड संवरणे थुडति । तुथोड । तुस्थोड ॥ ९७ ॥ खुड छुड इत्येके ॥ ९९ ॥ स्फुर स्फुल सञ्चलने ॥ १०१ ॥ स्फुर स्फुरणे ॥ स्फुल संचलने इत्येके ॥

२५३६–विज धातुके परे इडादि प्रत्यय ङिद्वत् हो, उद्विजिता । उद्विजिष्यते॥ ओलजी और ओलस्जी धातु व्रीडामें हैं । लजते। लेजे । लज्जते । ललज्जे ॥

अब परस्मैपदी धातु कहतेहैं ॥

ओव्रश्चू धातु छेदनमें है "ग्रहिज्या० २४१२" इस सूत्रसे सम्प्रसारण होकर–वृश्चति । वव्रश्च । वव्रश्चतुः । वव्रश्चिथ, वव्रष्ठ । यहां "लिट्यभ्यासस्य २४०८" इससे अभ्यास रेफको ऋकार सम्प्रसारण और "उरत् २२४४" इस सूत्रसे ऋकारके स्थानमें अकार हुआ, उसको "अचः परस्मिन्० ५०" इस सूत्रसे स्थानिवद्भावके कारण "न संप्रसारणे सम्प्रसारणम् ३६३" इस सूत्रसे संप्रसारणके निषेध होनेसे वकारके स्थानमें उकार नहीं हुआ । व्रश्चिता, व्रष्टा । व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति । वृश्च्यात् । अव्रश्चीत्, अव्राक्षीत् ॥ व्यच धातु व्याजीकरणमें है । विचति । विव्याच । विविचतुः । व्यचिता । व्यचिष्यति । विच्यात् । अव्याचीत्, अव्यचीत् । "व्यचेः कुटादित्वमनसि" यह वार्त्तिक तो इस स्थलमें नहीं लगेगा, क्योंकि, 'अनसि' ऐसे पर्युदासके कारण उक्त वार्त्तिकका कृन्मात्र विषय है ॥ उछि धातु उञ्छमें है । उञ्छति ॥ उच्छी धातु विवासमें है । उच्छति ॥ ऋच्छ धातु

गति, इन्द्रिय, प्रलय और मूर्त्तिभावमें है । "ऋच्छत्यृताम् २३८३" इस सूत्रसे गुण हुआ ॥ द्विहल्ग्रहणसे अनेक हल्का उपलक्षण जानाजाताहै, इस कारण ऋच्छ धातुको नुट्का आगम होगा—आनर्च्छ । आनर्च्छतुः । ऋच्छिता ॥ मिच्छ धातु उत्क्लेश, अर्थात् पीडामें है । मिमिच्छ । अमिच्छीत् । जर्ज, चर्च और झर्झ धातु परिभाषण और भर्त्सनमें है ॥ त्वच धातु संवरणमें है । तत्वाच ॥ ऋच धातु स्तुतिमें है । आनर्च ॥ उब्ज धातु आर्जवमें है ॥ उज्झधातु उत्सर्ग, अर्थात् त्यागमें है ॥ लुभ धातु विमोहन, अर्थात् आकुलीकरणमें है । लुभति । लोभिता, लोब्धा । लोभिष्यति ॥ रिफ धातु कत्थन, युद्ध, निन्दा, हिंसा और दानमें है । रिफति, रिरेफ । कोई २ कहतेहैं रिह धातु है, जैसे—'शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति' तृप और तृम्फ धातु तृप्तिमें है । प्रथम धातु प्रथमान्त, अर्थात् पकारान्त और द्वितीय द्वितीयान्त, अर्थात् फकारान्त है । कोई २ कहतेहैं दोनों द्वितीयान्त हैं । तृपति । ततर्प । तर्पिता । अङ्के अपवादत्वके कारण "स्पृशमृश०" इस सूत्रसे विकल्प करके सिच् पुषादि धातुओंके ही उत्तर होताहै, इस कारण इस स्थलमें नित्य सिच् होगा, अतर्पीत् । तृम्फति । शकारको ङित्त्वके कारण "अनिदिताम्० ४१५" इस सूत्रसे नकारका लोप होनेपर—

श परे रहते तृम्फादि धातुओंको नुम् हो * आदि शब्द प्रकारार्थक है, इस कारण इस स्थलमें जो नकारयुक्त हैं, वह तृम्फादि हैं । तृम्फति । ततृम्फ । तृम्फ्यात् । तुप, तुम्प, तुफ और तुम्फ धातु हिंसामें हैं । तुपति । तुम्पति । तुफति । तुम्फति ॥ दृप और दृम्फ धातु उत्क्लेशमें हैं । पहला प्रथमान्त और दूसरा द्वितीयान्त है, कोई २ कहतेहैं पहिला द्वितीयान्त है । दृपति । दृफति । दृम्फति ॥ ऋफ और ऋम्फ धातु हिंसार्थक हैं । ऋफति । ऋम्फति । ऋम्फाञ्चकार ॥ गुफ और गुम्फ धातु ग्रन्थनमें हैं । गुफति । जुगोफ । गुम्फति । जुगुम्फ ॥ उभ, उम्भ धातु पूरण अर्थमें हैं । उभति । उवोभ । उम्भति । उम्भाञ्चकार ॥ शुभ और शुम्भ धातु शोभनार्थमें हैं । शुभति । शुम्भति ॥ दृभी धातु ग्रन्थमें है । दृभति ॥ चृती धातु हिंसा और ग्रन्थनमें है । चर्तिता । "सेऽसिच० २५०६" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् होकर—चर्तिष्यति, चर्त्स्यति । अचर्तीत् ॥ विध धातु विधानमें है । विधति । वेधिता ॥ जुड धातु गतिमें है । जुडति । कोई २ कहतेहैं, यह जुन धातु है, जैसे—'मरुतो जुनन्ति' ॥ मृड धातु सुखनमें है । मृडति । मर्डिता ॥ पृड धातु सुखन अर्थमें है । पृडति ॥ पृण धातु प्रीणनमें है । पृणति । पपर्ण ॥ वृण धातु भी उक्तार्थक है । वृणति ॥ मृण धातु हिंसामें है ॥ तुण धातु कौटिल्यमें है । तुतोण ॥ पुण धातु शुभ कर्ममें है । पुणति ॥ मुण धातु प्रतिज्ञानमें है ॥ कुण धातु शब्द और उपकरणमें है ॥ शुन धातु गतिमें है ॥ द्रुण धातु हिंसा, गति और कौटिल्यमें हैं ॥ घुण और घूर्ण धातु भ्रमणमें है ॥ पुर धातु ऐश्वर्य और दीप्तिमें है । पुरति । पुपोर । आशिष्अर्थमें—पूर्यात् ॥ कुर धातु शब्दमें है । कुरति । कूर्यात्, इस स्थलमें । "न भकुर्छुराम् १६२९" इस सूत्रसे उपधा दीर्घका निषेध नहीं होगा, क्यों कि, उस स्थलमें कुर धातुका ही ग्रहण है ॥ खुर धातु छेदनमें है ॥ मुर धातु संवेष्टनमें है ॥ क्षुर धातु विलेखनमें है ॥ घुर धातु भयानकार्थ और शब्दमें है ॥ पुर धातु अग्रगमनमें है बृहू धातु उद्यमनमें है, यह दन्त्योष्ठ्यादि है, अन्यमतसे पवर्गीयादि है ॥ तृहू, स्तृहू और तृंहू धातु हिंसार्थक हैं । तृहति । ततर्ह । स्तृहति । तस्तर्ह । तर्हिता, तर्ढा । स्तर्हिता, स्तर्ढा । अतृंहीत्, अतार्ंक्षीत् । अताण्ढाम् ॥ इष धातु इच्छामें है—"इषुगमि० २४००" इस सूत्रसे छ आदेश होकर—इच्छति । एषिता, एष्टा । एषिष्यति । इष्यात् । ऐषीत् ॥ मिष धातु स्पर्द्धामें है । मिषति । मेषिता ॥ किल धातु श्वैत्य और क्रीडामें है ॥ तिल धातु स्नेहनमें है ॥ चिल धातु वसनमें है ॥ चल धातु विलसनमें है ॥ इल धातु स्वप्न और क्षेपणमें है ॥ विल धातु संवरणमें है, यह धातु दन्त्योष्ठादि है ॥ बिल धातु भेदनमें है। यह ओष्ठ्यादि है ॥ णिल धातु गहनमें है ॥ हिल धातु भावकरणमें है ॥ शिल और षिल धातु उञ्छमें है ॥ मिल धातु श्लेषणमें है ॥ लिख धातु अक्षरविन्यास (लिखने) में है । लिलेख ॥ कुट धातु कौटिल्यमें है । "गाङ्कुटादिभ्यः० २४६१" इस सूत्रसे ङित्व होकर—चुकुटिथ । चुकोट, चुकुट । कुटिता ॥ पुट धातु संश्लेषणमें है ॥ कुच धातु संकोचनमें है ॥ गुज धातु शब्दमें है ॥ गुड धातु रक्षामें है ॥ डिप धातु क्षेपमें है ॥ छुर धातु छेदनमें हैं । "नभकुर्छुराम् १६२९" इस सूत्रसे दीर्घ न हुआ, छुर्यात् ॥ स्फुट धातु विकसनमें है। स्फुटति । पुस्फोट ॥ मुट धातु आक्षेप और मर्दनमें है ॥ त्रुट धातु छेदनमें है । "वा भ्राश० २३२१" इस सूत्रसे विकल्प करके श्यन् होकर—त्रुट्यति, त्रुटति । तुत्रोट । त्रुटिता ॥ तुट धातु कलहमें है । तुटति । तुतोट । तुटिता ॥ चुट और छुट धातु छेदनमें है ॥ जुड धातु बंधनमें है ॥ कड धातु मदमें है ॥ लुट् धातु संश्लेषणमें है ॥ कृड धातु घनत्व, अर्थात् सान्द्रतामें है । चकर्ड । कृडिता ॥ कुड धातु बाल्यमें है ॥ पुड धातु उत्सर्गमें है ॥ घुट धातु प्रतिघातमें है ॥ तुड धातु तोडन, अर्थात् भङ्ग करनेमें है ॥ थुड और स्थुड धातु संवरणमें है । थुडति । थुथोड । तुस्थोड । किसीके मतसे । खुड और छुड धातु है ॥ स्फुर और स्फुल धातु सञ्चलनमें है॥ स्फुर धातु स्फुरणमें है । स्फुल धातु सञ्चलनमें है, ऐसा कोई २ कहतेहैं ॥

२६३७ स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः । ८ । ३ । ७६ ॥

षत्वं वा स्यात् । निष्फुरति । निःस्फुरति । स्फर इत्यकारोपधं केचित्पठन्ति। पस्फार ॥ १०२ ॥ स्फुड चुड ब्रुड संवरणे ॥ १०५ ॥ क्रुड भृड निमज्जन इत्येके ॥ १०७ ॥ गुरी उद्यमने ॥ अनुदात्तेत् । गुरते । जुगुरे । गुरिता ॥ १०८ ॥ णू स्तवने ॥ दीर्घान्तः । परिणूतगुणोदयः ॥ इतश्चत्वारः परस्मैपदिनः ॥ नुवति । अनुवीत ॥ १ ॥

धू विधूनने ॥ धुवति ॥ २ ॥ गु पुरीषोत्सर्गे ॥ जुगुविथ–जुगुथ । गुता । गुष्यति । अगुषीत् । ह्रस्वादङ्गात् । अगुताम् । अगुषुः ॥ ३ ॥ ध्रु गतिस्थैर्ययोः ॥ ध्रुव इति पाठान्तरम् । आद्यस्य ध्रुवतीत्यादि गुवतिवत् । द्वितीयस्तु सेट् । दुध्रुविथ । ध्रुविता । ध्रुविष्यति। ध्रूव्यात् । अध्रुवीत् । अध्रुविष्टाम् ॥ ४ ॥ कुङ् शब्दे । दीर्घान्त इति कैयटादयः । कुविता । अकुविष्ट । ह्रस्वान्त इति न्यासकारः ॥ कुता । अकुत ॥१॥ वृत् ॥ कुटादयो वृत्ताः ॥

पृङ् व्यायामे ॥ प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः । रिङ् । इयङ् । व्याप्रियते । व्यापप्रे । व्यापप्राते । व्यापरिष्यते । व्यापृत । व्यापृषाताम् ॥ १ ॥ मृङ् प्राणत्यागे ॥

२५३७–निर्, नि और वि के परे स्थित स्फुर और स्फुल धातुके सकारको विकल्प करके षत्व हो, निःष्फुरति, निस्फुरति। निःष्फुलति, निस्फुलति । कोई स्फर ऐसा अकारोपध पाठ करतेहैं। पस्फार ॥ स्फुड, चुड और बुड धातु संवरणमें हैं ॥ कुड और भृड धातु निमजनमें हैं, यह किसी २ पंडितका मत है॥ गुरी धातु उद्यमनमें है, यह आत्मनेपदी है । गुरते । जुगुरे । गुरिता ॥ णू धातु स्तवनमें है, यह दीर्घ उकारान्त है, यथा– 'परिणूतगुणोदयः' ॥

अब चार परस्मैपदी धातु हैं ।

नुवति । अनुवीत् ॥ धू धातु विधूननमें है । धुवति ॥ गु धातु पुरीषोत्सर्गमें है । जुगुविथ, जुगुथ । गुता । गुष्यति । अगुषीत् । "ह्रस्वादङ्गात् २३६९" इससे सिच्का लोप होकर–अगुताम् । अगुषुः ॥ ध्रु धातु गति और स्थैर्यमें है । ध्रुव ऐसा पाठान्तर है । प्रथम धातुके 'ध्रुवति' इत्यादि गुवतिवत्, अर्थात् गु धातुके समान रूप होंगे। दूसरी धातु सेट् है । दुध्रुविथ । ध्रुविता । ध्रुविष्यति । ध्रुव्यात् । अध्रुवीत् । अध्रुविष्टाम् ॥ कुङ् धातु शब्दमें है, यह धातु दीर्घ उकारान्त है, ऐसा कैयटादि पंडितोंका मत है । कुविता । अकुविष्ट । यह न्यासकारके मतसे ह्रस्वान्त है । कुता । अकुत । कुटादि धातु समाप्त हुए ॥

पृङ् धातु व्यायाममें है, यह धातु प्रायः वि और आङ्पूर्वक है । रिङ् और इयङ् होकर–व्याप्रियते । व्यापप्रे । व्यापप्राते । व्यापरिष्यते ॥ व्यापृत । व्यापृषाताम् ॥ मृङ् धातु प्राणत्यागमें है ॥

२५३८ म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ।१।३।६१॥

लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र । ङित्त्वं स्वरार्थम् । म्रियते । ममार । ममर्थ । मम्रिव । मर्तासि ॥ मरिष्यति । मृषीष्ट । अमृत ॥ २ ॥

अथ परस्मैपदिनः सप्त ॥ रि पि गतौ । अन्तरङ्गत्वादियङ् । रियति । पियति । रेता । पेता ॥ २ ॥ धि धारणे ॥ ३ ॥ क्षि निवासगत्योः ॥ ४ ॥ षू प्रेरणे । सुवति । सविता॥५॥ कॄ विक्षेपे । किरति । किरतः । चकार । चकरतुः । करीता–करिता । कीर्यात्।अकारीत्॥

२५३८–लुङ्, लिङ् और शित्की प्रकृतिभूत मृङ् धातुके उत्तर तङ् हो, अन्यत्र न हो । स्वरार्थ ङ् इत् कियाहै । म्रियते । ममार । ममर्थ । मम्रिव । मर्त्तासि । मरिष्यति । मृषीष्ट । अमृत ॥

अब परस्मैपदी ७ धातु कहतेहैं ।

रि, पि, धातु गतिमें हैं । लघूपध गुणकी अपेक्षासे अन्तरङ्गत्वके कारण इयङ् होकर–रियति । रेता । पियति । पेता ॥ धि धातु धारणमें है ॥ क्षि धातु निवास और गतिमें है ॥ षू धातु प्रेरणमें है । सुवति । सविता ॥ कॄ धातु विक्षेपमें है । किरति । किरतः । चकार । चकरतुः । करीता–करिता । कीर्य्यात् । अकारीत् ॥

२५३९ किरतौ लवने । ६ ।१।१४० ॥

उपात्किरतेः सुडागमः स्याच्छेदेऽर्थे । उपस्किरति ॥ अडभ्यासव्यवायेऽपि । सुट्कात्पूर्व इति वक्तव्यम् ॥*॥ उपास्किरत् । उपचस्कार॥

२५३९–छेदार्थ होनेपर उप उपसर्गके परे स्थित कॄ धातुको सुट्का आगम हो, उपस्किरति ।

अट् और अभ्यासके व्यवधान रहते भी ककारके पूर्वमें सुट् हो * उपास्किरत् । उपचस्कार ॥

२५४० हिंसायां प्रतेश्च । ६।१। १४१ ॥

उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम् । उपस्किरति । प्रतिस्किरति ॥ ६ ॥ गॄ निगरणे॥

२५४०–उप और प्रतिके परे स्थित कॄ धातुको हिंसार्थमें सुट्का आगम हो, उपस्किरति । प्रतिस्किरति ॥ गॄ धातु निगरणमें है ॥

२५४१ अचि विभाषा । ८ । २ ।२१॥

गिरतेरेफस्य लत्वं वा स्यादजादौ । गिलति–गिरति । जगाल–जगार । जगलिथ–जगरिथ । गलीता–गरीता । गलिता–गरिता ॥७॥ दृङ् आदरे। आद्रियते।आद्रियेते । आदद्रे। आदद्रिषे । आदर्ता । आदरिष्यते । आदृषीष्ट । आदृत । आदृषाताम् ॥ १ ॥ धृङ् अवस्थाने । ध्रियते ॥ २ ॥

अथ परस्मैपदिनः षोडश । प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् ॥ पृच्छति । पप्रच्छ । पप्रच्छतुः । पप्रच्छिथ–पप्रष्ठ । प्रष्टा । प्रक्ष्यति। अप्राक्षीत् ॥ १॥ वृत् । किरादयो वृत्ताः । सृज विसर्गे । विभाषा सृजिदृशोः। ससर्जिथ–सस्रष्ठ। स्रष्टा । स्रक्ष्यति । सृजिदृशोर्झल्यमकितीत्यमागमः । सृजेत् । सृज्यात् । अस्राक्षीत् ॥ २ ॥ टुमस्जो शुद्धौ ॥

मज्जति । ममज्ज। ममज्जिथ। मस्जिनशोर्झलीति-नुम्। मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः ॥*॥ संयोगादिलोपः । ममङ्क्थ । मंक्ता । मङ्क्ष्यति । अमाङ्क्षीत् । अमाङ्क्ताम् । अमाङ्क्षुः ॥ ३ ॥ रुजो भङ्गे । रोक्ता । रोक्ष्यति । अरौक्षीत् । अरौक्ताम् ॥४॥ भुजो कौटिल्ये ॥ रुजिवत्॥५॥ छुप स्पर्शे । छोप्ता । अच्छौप्सीत् ॥६॥रुश रिश हिंसायाम् । तालव्यान्तौ । रोष्टा । रोक्ष्यति । रेष्टा । रेक्ष्यति ॥ ८ ॥ लिश गतौ । अलिक्षत् । ॥९॥ स्पृश संस्पर्शने। स्प्रष्टा-स्पर्ष्टा। स्प्रक्ष्यति-स्पर्क्ष्यति। अस्प्राक्षीत्-अस्पार्क्षीत्। अस्पृक्षत्१०॥ विच्छ गतौ । गुपूधूपेत्यायः । आर्द्धधातुके वा । विच्छायति।विच्छायांचकार-विविच्छ ॥ ११॥ विश प्रवेशने।विशति।वेष्टा॥१२॥ मृश आमर्शने। आमर्शनं स्पर्शः । अम्राक्षीत्-अमार्क्षीत् । अमृक्षत् ॥ १३ ॥ णुद प्रेरणे । कर्त्रभिप्रायेऽपि फले परस्मैपदार्थः पुनः पाठः ॥१४॥ षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु । सीदतीत्यादि भौवादिकवत्। इह पाठो नुम्विकल्पार्थः । सीदन्ती-सीदती । ज्वलादौ पाठस्तु णार्थः । सादः । स्वरार्थश्च । शबनुदात्तः । शस्तूदात्तः॥१५॥ शद्लृ शातने ॥ स्वरार्थ एष पुनः पाठः । शता तु नास्ति । शदेः शित इत्यात्मनेपदोक्तेः ॥ १६ ॥

अथ षट् स्वरितेतः । मिल सङ्गमे । मिल संश्लेषणे इति पठितस्य पुनः पाठः कर्त्रभिप्राये तङर्थः। मिलति । मिलते । मिमेल । मिमिले ॥ १ ॥ मुच्लृ मोक्षणे ॥

२५४१-अजादि प्रत्यय परे रहते गॄ धातुके रकारके स्थानमें विकल्प करके लकार हो, गिलति, गिरति । जगाल, जगार । जगलिथ, जगरिथ । गलीता, गरीता। गलिता, गरिता। दृङ् धातु आदरमें है । आद्रियते । आद्रियेते । आदद्रे । आदद्रिषे । आदर्त्ता । आदरिष्यते । आदृषीष्ट । आदृत । आदृषाताम् ॥ धृङ् धातु अवस्थानमें है । ध्रियते ॥

अब १६ परस्मैपदी धातु कहतेहैं ।

प्रच्छ धातु ज्ञीप्सामें है । पृच्छति । पप्रच्छ । पप्रच्छतुः । पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ । प्रष्टा । प्रक्ष्यति । अप्राक्षीत् । किरादि धातु समाप्त हुए ॥

सृज धातु विसर्ग अर्थात् त्याग करनेमें है । "विभाषा सृजिदृशोः २४०४" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् करके ससर्जिथ, सस्रष्ठ । स्रष्टा । स्रक्ष्यति । "सृजिदृशोर्झल्यमकिति २४०५" इस सूत्रसे अमागम हुआ । सृजेत् । सृज्यात् । अस्राक्षीत् ॥ टुमस्जो धातु शुद्धिमें है । मजति । ममज । ममजिथ । "मस्जिनशोर्झलि २५१७" इस सूत्रसे नुम्का आगम हुआ । मस्ज धातुके अन्त्य वर्णके पूर्वमें नुम् हो यह कहना चाहिये * संयोगके आदिका लोप हुआ, ममङ्क्थ । मङ्क्ता। मङ्क्ष्यति । अमाङ्क्षीत् । अमाङ्क्ताम् । अमाङ्क्षुः ॥ रुज् धातु भंगमें है । रोक्ता । रोक्ष्यति । अरौक्षीत् । अरौक्ताम् ॥ भुजो धातु कुटिलतामें है । रुजि धातुकी समान इसके रूप होंगे ॥ छुप धातु स्पर्शमें है । छोप्ता । अच्छौप्सीत् ॥ रुश और रिश धातु हिंसामें हैं,यह धातु तालव्यान्त हैं । रोष्टा । रोक्ष्यति। रेष्टा । रेक्ष्यति ॥ लिश धातु गतिमें है । अलिक्षत् ॥ स्पृश धातु संस्पर्शनमें है । स्प्रष्टा, स्पर्ष्टा । स्प्रक्ष्यति, स्पर्क्ष्यति । अस्प्राक्षीत्, अस्पार्क्षीत् । अस्पृक्षत् ॥ विच्छ धातु गतिमें है । "गुपूधूप० २३०३"इस सूत्रसे आय प्रत्यय होगा। आर्धधातुक स्थलमें विकल्प करके होगा, विच्छायति । विच्छायाञ्चकार, विविच्छ ॥ विश धातु प्रवेशमें है । विशति । वेष्टा ॥ मृश धातु आमर्शनमें है । आमर्शन शब्दसे स्पर्श जानना । अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत् । अमृक्षत्॥ णुद धातु प्रेरणमें है । कर्तृगामी क्रियाफल होनेपर भी परस्मैपदार्थ पुनः पाठ किया है॥षद्लृ धातु विशरण, गति और अवसादनमें है । सीदति, इत्यादि भ्वादिगणके धातुकी समान रूप होंगे । इस स्थलमें पाठ करनेसे विकल्प करके नुम् होगा । सीदन्ती, सीदती । तो ज्वलादि गणमें पाठ तो "ज्वलति०" इससे ण प्रत्ययार्थ है । सादः । और स्वरार्थ भी यहां पाठ कियाहै, शप् अनुदात्त और श उदात्त होताहै॥ शद्लृ धातु शातनमें है । स्वरार्थ इसका पुनः पाठ है । शतृ प्रत्यय तो नहीं होसकताहै, कारण कि, "शदेः शितः २३६२" इससे शित्प्रत्यय होनेवाला है जिससे ऐसे शद धातुको आत्मनेपद कहा है ।

अब ६ स्वरितेत् धातु कहतेहैं ।

मिल धातु संगममें है । श्लेषण अर्थमें पठित'मिल'धातुका पुनः पाठ कर्त्रभिप्राय क्रियाफलमें भी तङ् विधानार्थ है। मिलति । मिलते । मिमेल । मिमिले ॥ मुच्लृ धातु मोचनमें है ॥

२५४२ शेमुचादीनाम् । ७।१।५९॥

नुम् स्यात् । मुञ्चति ॥ मुञ्चते । मोक्ता । मुच्यात्। मुक्षीष्ट। अमुचत् ।अमुक्त।अमुक्षाताम् । ॥२॥ लुप्लृ छेदने । लुम्पति। लुम्पते । अलुपत्। अलुप्त ॥३॥ विद्लृ लाभे । विन्दति । विन्दते । विवेद । विविदे । व्याघ्रभूत्यादिमते तु सेडयम् । वेदिता । भाष्यादिमतेऽनिट्कः । वेत्ता । परिवेत्ता । परिर्वर्जने । ज्येष्ठं परित्यज्य दारानग्नींश्च लब्धवानित्यर्थः । तृन्तृचौ ॥ ४ ॥ लिप उपदेहे। उपदेहो वृद्धिः। लिम्पति। लिम्पते। लेप्ता। लिपिसिचीत्यङ् । तङि तु वा । अलिपत् । अलिपत-अलिप्त ॥ ५ ॥ षिच क्षरणे। सिञ्चति। सिञ्चते । असिचत् । असिचत-असिक्त । अभिषिञ्चति । अभ्यषिञ्चत् । अभिषिषेच ॥ ६ ॥

अथ त्रयः परस्मैपदिनः ॥ कृती छेदने । कृन्तति । चकर्त । कर्तिता । कर्तिष्यति-

कर्त्स्यति । अकर्तीत् ॥ १ ॥ खिद परिघाते । खिन्दति । चिखेद । खेत्ता । अयं दैन्ये दिवादौ रुधादौ च ॥ २ ॥ पिश अवयवे । पिंशति । पेशिता । अयं दीपनायामपि । त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ॥ ३ ॥ इति मुचादयस्तुदादयश्च ॥

॥ इति तुदादयः ॥

२५४२–श प्रत्यय परे रहते मुचादि धातुओंको नुम् हो, मुञ्चति । मुञ्चते । मोक्ता । मुच्यात् । मुक्षीष्ट । अमुचत् । अमुक्त । अमुक्षाताम् ॥ लुप्लृ धातु छेदनमें है । लुम्पति । लुम्पते । अलुपत् । अलुप्त ॥ विद्लृ धातु लाभमें है । विन्दति । विन्दते । विवेद । विविदे । व्याघ्रभूत्यादि–पंडितोंके मतसे यह धातु सेट् है, इससे वेदिता । भाष्यकारादिके मतसे यह अनिट् है, इससे वेत्ता । परिवेत्ता, यहां परि शब्दसे वर्जन समझना, ज्येष्ठको त्यागकर अर्थात् ज्येष्ठके विवाहादिके पूर्वमें ही पत्नी और अग्निको प्राप्त किये हुए । यहां विद धातुके उत्तर तृन् अथवा तृच् प्रत्यय है॥ लिप धातु उपदेहमें है । उपदेह, अर्थात् वृद्धि । लिम्पति । लिम्पते । लेप्ता । "लिपिसिचि० २४१८" इस सूत्रसे अङ् होगा, परन्तु तङ्परे विकल्प करके होगा, अलिपत् । अलिपत,अलिप्त॥ षिच धातु क्षरणमें है । सिञ्चति । सिञ्चते । असिचत् । असिचत, असिक्त । अभिषिञ्चति । अभ्यषिञ्चत् । अभिषिषेच ॥

अब ३ परस्मैपदी धातु कहतेहैं ।

कृती धातु छेदनमें है । कृन्तति । चकर्त । कर्तिता । कर्तिष्यति, कर्त्स्यति । अकर्तीत् ॥ खिद धातु परिघातमें है । खिन्दति । चिखेद । खेत्ता । यह धातु दैन्यार्थमें दिवादि और रुधादिगणीय है ॥ पिश धातु अवयवमें है । पिंशति । पेशिता । यह धातु दीपनार्थमें भी है, यथा–'त्वष्टा रूपाणि पिंशतु' ॥ इति मुचादयस्तुदादयश्च ॥

॥ इति तुदादिप्रकरम् ॥

अथ रुधादयः ७.

रुधिर् आवरणे ॥ नव स्वरितेत इरितश्च ॥

रुधिर् धातु आवरणमें है ।

अब धातु उभयपदी और इरित् कहतेहैं ॥

२५४३ रुधादिभ्यः श्नम्।३।१।७८॥

शपोऽपवादः । मित्त्वादन्त्यादचः परः । नित्यत्वाद् गुणं बाधते । रुणद्धि । श्नसोरल्लोपः । णत्वस्यासिद्धत्वादनुस्वारः । परसवर्णः । तस्यासिद्धत्वाण्णत्वं न । न पदान्तेतिसूत्रेणाऽनुस्वारपरसवर्णयोरल्लोपो न स्थानिवत् । रुन्धः । रुन्धन्ति । रुन्धे । रोद्धा । रोत्स्यति । रोत्स्यते । रुणद्धु । रुन्धात् । रुन्धि । रुणधानि । रुणधै । अरुणत् । अरुन्धाम् । अरुणत्–अरुणः । अरुणधम् । अरुधत्–अरौत्सीत् । अरुद्ध ॥ १ ॥ भिदिर् विदारणे ॥ भिनत्ति । भिन्ते । भेत्ता । भेत्स्यति । भेत्स्यते । अभिनत्–अभिनः । अभिनदम् । अभिन्त । अभिदत्–अभैत्सीत् । अभित्त ॥ २ ॥ छिदिर् द्वैधीकरणे । अच्छिदत्–अच्छैत्सीत् । अच्छित्त ॥३॥ रिचिर् विरेचने ॥ रिणक्ति । रिङ्क्ते । रिरेच । रिरिचे । रेक्ता । अरिणक् । अरिचत्–अरैक्षीत् । अरिक्त ॥ ४ ॥ विचिर् पृथग्भावे । विनक्ति । विङ्क्ते ॥ ५ ॥ क्षुदिर् सम्पेषणे ॥ क्षुणत्ति । क्षुन्ते । क्षोत्ता । अक्षुदत्–अक्षौत्सीत् । अक्षुत्त ॥ ६ ॥ युजिर् योगे ॥ योक्ता ॥ ७ ॥ उछृदिर् दीप्तिदेवनयोः॥ छृणत्ति । छृन्ते । चच्छर्द । सेसिचीति वेट् । चच्छृदिषे–चच्छृत्से । छर्दिता । छर्दिष्यति–छर्त्स्यति । अच्छृदत् । अच्छर्दीत् । अच्छर्दिष्ट ॥ ८ ॥ उतृदिर् हिंसानादरयोः ॥ तृणत्तीत्यादि ॥ ९ ॥ कृती वेष्टने । परस्मैपदी । कृणत्ति । आर्धधातुके तौदादिकवत् ॥ १० ॥ ञिइन्धी दीप्तौ ॥ त्रय आत्मनेपदिनः ॥

२५४३–रुधादि धातुके उत्तर श्नम् हो, यह श्नम् शप्का अपवाद (विशेषक) है । मकार इत् होनेके कारण अन्त्य अच्के परे होगा । नित्यत्वके कारण गुणको बाध करताहै । रुणद्धि । "श्नसोरल्लोपः" इस सूत्रसे श्नम्के अकारका लोप हुआ । श्नम्के मकार अकारकी इत्संज्ञा हुई नकार शेष रहा । णत्वके असिद्धके कारण नकारको अनुस्वार,और परसवर्ण हुआ, उसके असिद्धत्वके कारण फिर णत्व नहीं हुआ । अनुस्वार, परसवर्ण कर्त्तव्यमें अल्लोपके स्थानिवद्भाव तो नहीं होगा कारण कि,"न पदान्त० ५१"इस सूत्रसे स्थानिवद्भावका निषेध होजाताहै । रुन्धः । रुन्धन्ति । रुन्धे । रोद्धा । रोत्स्यति । रोत्स्यते । रुणद्धु । रुन्धात् । रुन्धि । रुणधानि । रुणधै । अरुणत् । अरुन्धाम् । अरुणत्, अरुणः । अरुणधम् । अरुधत्, अरौत्सीत् । अरुद्ध ॥ भिदिर् धातु विदारणमें है । भिनत्ति । भिन्ते । भेत्ता । भेत्स्यति । अभिनत्, अभिनः । अभिनदम् । अभिन्त । अभिदत्, अभैत्सीत् । अभित्त ॥ छिदिर् धातु द्वैधीकरणमें है। अच्छिदत्,अच्छैत्सीत्। अच्छित्त॥रिचिर् धातु विरेचनमें है। रिणक्ति। रिङ्क्ते। रिरेच।रिरिचे । रेक्ता। अरिणक् । अरिचत्, अरैक्षीत् । अरिक्त॥विचिर् धातु पृथक् भावमें है । विनक्ति । विङ्क्ते ॥ क्षुदिर् धातु सम्पेषणमें है । क्षुणत्ति । क्षुन्ते । क्षोत्ता । अक्षुदत्, अक्षौत्सीत् । अक्षुत्त ॥ युजिर् योगमें है । योक्ता ॥ उच्छृदिर् धातु दीप्ति और पाशककीडामें है । छृणत्ति । छृन्ते । चच्छर्द । "सेऽसिचि० २५०६" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् होकर–चच्छृदिषे, चच्छृत्से । छर्दिता । छर्दिष्यति, छर्त्स्यति । अच्छृदत् । अच्छर्दीत् । अच्छर्दिष्ट ॥ उतृदिर् धातु हिंसा और अनादरमें है । तृणत्ति। इत्यादि ॥ कृती धातु वेष्टनमें है, यह परस्मैपदी धातु है । कृणत्ति । आर्धधातुक स्थलमें इसके रूप तुदादिगणके

धातुकी समान होंगे ॥ ञिइन्धी धातु दीप्तिमें है, यह तीन धातु आत्मनेपदी हैं ॥

२५४४ श्नान्नलोपः । ६ । ४ । २३ ॥

श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात् । श्नसोरल्लोपः । इन्धे । इन्त्से । इन्धिता । इन्धै । ऐन्ध । ऐन्धाः ॥ १ ॥ खिद दैन्ये । खिन्ते । खेत्ता ॥ २ ॥ विद विचारणे । विन्ते । वेत्ता ॥ ३ ॥

अथ परस्मैपदिनः ॥ शिषॢ विशेषणे । शिनष्टि । शिंष्टः । शिंषन्ति । शिशेषिथ । शेष्टा । शेक्ष्यति । हेर्धिः । जश्त्वम् । झरो झरीति वा डलोपः । अनुस्वारपरसवर्णौ । शिण्ढि-शिण्ड्ढि । शिनषाणि । अशिनट् । लृदित्वादङ् । अशिषत् ॥ १ ॥ पिषॢ सञ्चूर्णने ॥ शिषिवत् । पिनष्टि ॥ २ ॥ भञ्जो आमर्दने ॥ भनक्ति । बभञ्जिथ-बभङ्क्थ । भङ्क्ता ॥ ३ ॥ भुज पालनाभ्यवहारयोः ॥ भुनक्ति । भोक्ता । भोक्ष्यति । अभुनक् ॥ ४ ॥ तृह हिसि हिंसायाम् ॥

२५४४-श्नम्के परे नकारका लोप हो " श्नसोरल्लोपः " इससे अकारका लोप होकर-इन्धे । इन्त्से । इन्धिता । इन्धै । ऐन्ध । ऐन्धाः ॥ खिद धातु दैन्यमें है । खिन्ते । खेत्ता ॥ विद धातु विचारणमें है । विन्ते । वेत्ता ।

अब परस्मैपदी धातु कहतेहैं ।

शिषॢ धातु विशेषणमें है । शिनष्टि । शिंष्टः । शिंषन्ति । शिशेषिथ । शेष्टा । शेक्ष्यति । शिष धातुके उत्तर हिके स्थानमें धि, और षको जश्त्व, और ' झरोझरि० ७२ " इस सूत्रसे विकल्प करके डकारका लोप, अनुस्वार, और परसवर्ण होकर-शिण्ढि, शिण्ड्ढि । शिनषाणि । अशिनट् । लृकार इत् होनेके कारण च्लिके स्थानमें अङ् होकर-अशिषत् ॥ पिषॢ धातु संचूर्णनमें है । इसके रूप शिष धातुकी समान होंगे । पिनष्टि ॥ भञ्जो धातु आमर्दनमें है । भनक्ति । बभञ्जिथ, बभङ्क्थ । भङ्क्ता ॥ भुज धातु पालन और अभ्यवहार, अर्थात् भोजनमें है । भुनक्ति । भोक्ता । भोक्ष्यति । अभुनक् ॥ तृह और हिसि धातु हिंसामें हैं ॥

२५४५ तृणह इम् । ७ । ३ । ९२ ॥

तृहः श्नमि कृते इमागमः स्याद्धलादौ पिति । तृणेढि । तृण्ढः । ततर्ह । तर्हिता । अतृणेट् । हिनस्ति । जिहिंस । हिंसिता ॥ ६ ॥ उन्दी क्लेदने ॥ उनत्ति । उन्तः । उन्दन्ति । उन्दांचकार । औनत् । औन्ताम् । औन्दन् । औनः-औनत् । औनदम् ॥ ७ ॥ अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु ॥ अनक्ति । अङ्क्तः । अञ्जन्ति । आनञ्ज । आनञ्जिथ-आनङ्क्थ । अङ्क्ता । अञ्जिता । अङ्ग्धि । अनजानि । आनक् ॥

२५४५-हलादि पित् प्रत्यय परे रहते तृह धातुके उत्तर श्नम् होनेपर इमागम हो, तृणेढि । तृण्ढः । ततर्ह । तर्हिता । अतृणेट् । हिनस्ति । जिहिंस । हिंसिता ॥ उन्दी धातु क्लेदनमें है । उनत्ति । उन्तः । उन्दन्ति । उन्दाञ्चकार । औनत् । औन्ताम् । औन्दन् । औनः, औनत् । औनदम् ॥ अञ्जू धातु व्यक्ति, म्रक्षण, कान्ति और गतिमें है । अनक्ति । अङ्क्तः । अञ्जन्ति । आनञ्ज । आनञ्जिथ, आनङ्क्थ । अङ्क्ता । अञ्जिता । अङ्ग्धि । अनजानि । आनक् ॥

२५४६ अञ्जेः सिचि । ७ । २ । ७१ ॥

अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात् । आञ्जीत् ॥ ८ ॥ तञ्चू संकोचने ॥ तञ्चिता-तङ्क्ता ॥ ९ ॥ ओविजी भयचलनयोः ॥ विनक्ति । विंक्तः । विज इडिति ङित्त्वम् । विविजिथ । विजिता । अविनक् । अविजीत् ॥ १० ॥ वृजी वर्जने ॥ वृणक्ति । वर्जिता ॥ ११ ॥ पृची संपर्के । पृणक्ति । पपर्च ॥ १२ ॥

॥ इति रुधादयः ॥

२५४६-अञ्जू धातुके उत्तर सिच्को नित्य इट् हो, आञ्जीत् ॥ तञ्चू धातु संकोचनमें है । तञ्चिता, तङ्क्ता ॥ ओविजी धातु भय और चलनमें है। विनक्ति । विङ्क्तः । "विज इट् २५३६" इस सूत्रसे ङित्त्व होकर-विविजिथ । विजिता । अविनक् । अविजीत् ॥ वृजी धातु वर्जनमें है । वृणक्ति । वर्जिता ॥ पृची धातु संपर्कमें है । पृणक्ति । पपर्च ॥

॥ इति रुधादिप्रकरणम् ॥

अथ तनादयः ८.

अथ सप्त स्वरितेतः ॥ तनु विस्तारे । तनादिकृञ्भ्य उः ॥ तनोति । तन्वः-तनुवः । तनुते । ततान । तेने । तनु । अतानीत्-अतनीत् ॥

यहांसे लेकर ७ धातु उभयपदी कहतेहैं । तनु धातु विस्तारमें है । " तनादिकृञ्भ्य उः " (तनादिगणीय धातु और कृञ् धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो) इस सूत्रसे उ प्रत्यय करके-तनोति । तन्वः, तनुवः । तनुते । ततान । तेने । तनु । अतानीत्, अतनीत् ॥

२५४७ तनादिभ्यस्तथासोः । २ । ४ । ७९ ॥

तनादेः सिचो वा लुक् स्यात्तथासोः । थासा साहचर्यादेकवचनं तशब्दो गृह्यते । तेनेह न । यूयमतनिष्ट-अतानिष्ट । अनुदात्तोपदेशेत्यनुनासिकलोपः । तङि । अतत-अतनिष्ट । अतथाः-अतनिष्ठाः ॥ १ ॥ षणु दाने ॥ सनोति । सनुते । ये विभाषा । सायात्-सन्यात् । जनसनेत्यात्वम् । असात-असनिष्ट । असाथाः-असनिष्ठाः ॥ २ ॥ क्षणु हिंसायाम् ॥ क्षणोति । क्षणुते । ह्मयन्तेति न वृद्धिः । अक्ष

णीत् । अक्षत-अक्षणिष्ट । अक्षथाः-अक्षणिष्ठाः॥ ॥ ३ ॥ क्षिणु च ॥ उप्रत्ययनिमित्तो लघूपधगुणः संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति न भवतीत्यात्रेयादयः । भवत्येवेत्यन्ये । क्षिणोति-क्षेणोति । क्षेणितासि । क्षेणितासे । अक्षेणीत् । अक्षित-अक्षेणिष्ट ॥ ४ ॥ ऋणु गतौ ॥ ऋणोति-अर्णोति । ऋणुतः-अर्णुतः । ऋण्वन्ति-अर्णुवन्ति । आनर्ण-आनृणे । अर्णितासि । आर्णीत् । आर्त-आर्णिष्ट । आर्थाः-आर्णिष्ठाः ॥ ॥ ५ ॥ तृणु अदने ॥ तृणोति-तर्णोति । तृणुते-तर्णुते ॥ ६ ॥ घृणु दीप्तौ ॥ जघर्ण । जघृणे ॥ ७ ॥

अथ द्वावनुदात्तेतौ ॥ वनु याचने ॥ वनुते । ववने । चान्द्रमते परस्मैपदी । वनोति । ववान॥ ॥ १ ॥ मनु अवबोधने ॥ मनुते ॥ मेने ॥ २ ॥ डुकृञ् करणे ॥ करोति । अत उत्सार्वधातुके । कुरुतः । यण् । न भकुर्छुरामिति न दीर्घः । कुर्वन्ति ॥

२५४७-त और थास् प्रत्यय परे रहते तनादि धातुओंके उत्तर विकल्प करके सिच्का लुक् हो । थास् प्रत्ययके साहचर्यसे एकवचन तशब्दका ग्रहण होताहै, इस कारण 'यूयमतनिष्ट, अतानिष्ट' इस स्थलमें सिच्का लुक् न हुआ । "अनुदात्तोपदेश० २४२८" इस सूत्रसे अनुनासिक वर्णका लोप होकर-तङ्में अतत, अतनिष्ट । अतथाः, अतनिष्ठाः ॥ षणु धातु दानमें है, सनोति। सनुते । "ये विभाषा २३१९" इस सूत्रसे यकारादि प्रत्यय परे सन धातुके नकारके स्थानमें विकल्प करके आकार होकर-सायात्, सन्यात् । "जनसन० २५०४" इस सूत्रसे आत्व होकर-असात, असनिष्ट । असाथाः, असनिष्ठाः ॥ क्षणु धातु हिंसामें है । क्षणोति । क्षणुते । "ह्म्यन्त० २२९९" इस सूत्रसे वृद्धि न होकर-अक्षणीत् । अक्षत, अक्षणिष्ट । अक्षथाः, अक्षणिष्ठाः ॥ क्षिणु धातु भी उक्तार्थक है । उ प्रत्यय निमित्तक लघूपध गुण "संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः" (संज्ञापूर्वक विधि अनित्य होताहै ।) इस परिभाषाके अनुसार नहीं होगा, यह आत्रेयादि मुनियोंका मत है । अन्यमतसे गुण होहीगा, जैसे-क्षिणोति, क्षेणोति । क्षेणितासि । क्षेणितासे । अक्षेणीत् । अक्षित, अक्षेणिष्ट ॥ ऋणु धातु गतिमें है । ऋणोति, अर्णोति । ऋणुतः, अर्णुतः । ऋण्वन्ति, अर्णुवन्ति । आनर्ण, आनृणे । अर्णितासि । आर्णीत् । आर्त्त, आर्णिष्ट । आर्थाः, आर्णिष्ठाः ॥ तृणु धातु अदनमें है । तृणोति, तर्णोति । तृणुते, तर्णुते ॥ घृणु धातु दीप्तिमें है । जघर्ण । जघृणे ॥

अब दो धातु आत्मनेपदी कहतेहैं ।

वनु धातु याचनमें है । वनुते । ववने । चान्द्रमतसे यह धातु परस्मैपदी है । वनोति । ववान ॥ मनु धातु अवबोधनमें है । मनुते । मेने ॥ डुकृञ् धातु करणमें है । करोति । "अत उत् सार्वधातुके २४६७" इससे उत्व होकर-कुरुतः । यण् और "न भकुर्छुराम् १६२९" इस सूत्रसे दीर्घ निषेध होकर कुर्वन्ति ॥

२५४८ नित्यं करोतेः । ६ । ४ । १०८ ॥

प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपः स्याद्वमोः परयोः । कुर्वः । कुर्मः । चकर्थ । चकृव । चकृषे । कर्ता । करिष्यति ॥

२५४८-व और म परे रहते कृ धातुके उत्तर प्रत्ययके उकारका नित्य लोप हो । कुर्वः । कुर्मः । चकर्थ । कर्त्ता । चकृव । करिष्यति ॥

२५४९ ये च । ६ । ४ । १०९ ॥

कृञ उलोपः स्याद्यादौ प्रत्यये परे । कुर्यात् । आशिषि । क्रियात् । कृषीष्ट। अकार्षीत् । तनादिभ्य इति लुकोऽभावे ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः। अकृत । अकृथाः ॥

२५४९-यकारादि प्रत्यय परे रहते कृ धातुके उकारका लोप हो । कुर्य्यात् । आशीर्लिङ्में-क्रियात् । कृषीष्ट । अकार्षीत् । "तनादिभ्यः० २५४७" इस सूत्रके लुक्के अभावमें "ह्रस्वादङ्गात्० २३६९" इस सूत्रसे सिच्का लोप होताहै, अकृत । अकृथाः ॥

२५५० संपरिभ्यां करोतौ भूषणे । ६ । १ । १३७ ॥

२५५०-भूषण अर्थ गम्यमान होनेपर सम्, और परि उपसर्गसे पर कृ धातुको सुट्का आगम हो ॥

२५५१ समवाये च । ६ । १ । १३८ ॥

संपरिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्याद्भूषणे सङ्घाते चार्थे । संस्करोति । अलंकरोतीत्यर्थः । संस्कुर्वन्ति । सङ्घीभवन्तीत्यर्थः । संपूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट् । संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकात् । परिनिविभ्य इति षः । परिष्करोति ॥ सिवादीनां वा । पर्यष्कार्षीत् । पर्यस्कार्षीत् ॥

२५५१-समूह अर्थ गम्यमान होनेपर भी सम्, और परि उपसर्गसे पर कृ धातुको सुट्का आगम हो । संस्करोति, अर्थात् अलंकृत करताहै । संस्कुर्वन्ति, अर्थात् सब एकत्र होकर दलबद्ध होतेहैं । "संस्कृतं भक्षाः" इस ज्ञापकके कारण संपूर्वक कृ धातुको कभी २ भूषणसे भिन्न अर्थमें भी सुट् होताहै । परि, नि और वि पूर्वक कृ धातुके सुट्के सकारको षत्व हो । परिष्करोति । सिवादिके सकारको विकल्प करके षत्व होताहै । (२३५९) पर्यष्कार्षीत् । पर्यस्कार्षीत् ॥

२५५२ उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च । ६ । १ । १३९ ॥

उपात्कृञः सुट् स्यादेष्वर्थेषु चात्प्रागुक्तयोर-

र्थयोः । प्रतियत्नो गुणाधानम् । विकृतमेव वैकृतं विकारः । वाक्यस्याध्याहारः, आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम् । उपस्कृता कन्या । अलंकृतेत्यर्थः । उपस्कृता ब्राह्मणाः । समुदिता इत्यर्थः । एधोदकस्योपस्कुरुते । गुणाधानं करोतीत्यर्थः । उपस्कृतं भुङ्क्ते । विकृतमित्यर्थः । उपस्कृतं ब्रूते । वाक्याध्याहारेण ब्रूते इत्यथः ॥

२५५२-प्रतियत्न, वैकृत और वाक्यके अध्याहार अर्थमें उपपूर्वक कृ धातुको सुट्का आगम हो। चकारसे प्रागुक्त अर्थमें अर्थात् भूषण और समूहअर्थमें भी हो। प्रतियत्न शब्दसे गुणाधान, वैकृत शब्दसे विकार वाक्याध्याहार अर्थात् आकाङ्क्षित एक देशका पूरण करना । उपस्कृता कन्या, अर्थात् अलंकृता । उपस्कृता ब्राह्मणाः, अर्थात् समुदिताः । एधोदकस्योपस्कुरुते, अर्थात् इन्धन जलका गुणाधान करताहै । उपस्कृतं भुङ्क्ते, अर्थात् विकृतभावसे भोजन करताहै । उपस्कृतं ब्रूते, अर्थात् वाक्याऽध्याहारपूर्वक बोलताहै ॥

२५५३ सुट्कात्पूर्वः । ६ । १ । १३५ ॥

अडभ्यासव्यवायेपीत्युक्तम् । संचस्कार । कात्पूर्व इत्यादि भाष्ये प्रत्याख्यातम् । तथा हि। पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते । अन्तरङ्गत्वात्सुट् । ततो द्वित्वम् । एवं च ऋतश्च संयोगादेर्गुणः । संचस्करतुः ॥ कृसृभृ० इति सूत्रे ऋतो भारद्वाजस्येतिसूत्रे च कृञोऽसुट इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ तेन ससुट्कात्परस्येट् । संचस्करिथ । संचस्करिव। गुणोर्तीतिसूत्रे नित्यं छन्दसीतिसूत्रान्नित्यमित्यनुवर्तते । नित्यं यः संयोगादिस्तस्येत्यर्थात्सुटि गुणो न । संस्क्रियात् । ऋतश्च संयोगादेरिति लिङ्सिचोर्नेट् । एकाच उपदेशे इति सूत्रादुपदेश इत्यनुवर्त्य उपदेशे यः संयोगादिरिति व्याख्यानात् । संस्कृषीष्ट । समस्कृत । समस्कृषाताम् ॥ १ ॥

॥ इति तनादयः ॥

२५५३-सम्, परि और उपसे परे अट् और अभ्यासका व्यवधान रहते भी कृ धातुके ककारके पूर्वमें सुट्का आगम हो । सञ्चस्कार । "कात्पूर्वः" इत्यादि भाष्यमें प्रत्याख्यात हुए हैं, क्योंकि, पूर्वमें धातु उपसर्गके साथ युक्त होताहै, तो अन्तरङ्गत्वके कारण पहले सुट्, पश्चात् द्वित्व होगा । ऐसा होनेपर "ऋतश्च संयोगादेर्गुणः २३८९" इस सूत्रसे ऋकारान्त संयोगादि धातुको गुण होता है । सञ्चस्करतुः । "कृसृभृ० २२९३" इस सूत्रमें और "ऋतो भारद्वाजस्य २२९६" इस सूत्रमें सुट्से रहित कृ धातु ऐसा कहना चाहिये । इस कारण ससुट्क धातुके उत्तर इट् हो । सञ्चस्करिथ । सञ्चस्करिव । "गुणोऽर्ति० २३८०" इस सूत्रमें "नित्यं छन्दसि ३५८७" इस सूत्रसे 'नित्यम्' पदकी अनुवृत्ति होतीहै, इससे नित्य जो संयोगादि, उसको गुण न हो ऐसे अर्थ होनेसे सुट् पर रहते गुण नहीं होता जैसे-संस्क्रियात् । "ऋतश्च संयोगादेः २५२६" इस सूत्रसे लिङ् और सिच्को वैकल्पिक इट् नहीं होता, क्योंकि, "एकाच उपदेशे० २२७६" इस सूत्रसे 'उपदेशे' की अनुवृत्ति कर उपदेशमें 'संयोगादि' ऐसी व्याख्या करनेसे जैसे-संस्कृषीष्ट । समस्कृत । समस्कृषाताम् ॥

॥ इति तनादिप्रकरणम् ॥

अथ क्र्यादयः ९.

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ॥

डुक्रीञ् धातु द्रव्यविनिमयमें है ॥

२५५४ क्र्यादिभ्यः श्ना । ३ । १ । ८१ ॥

क्रीणाति ॥ ई हल्यघोः । क्रीणीतः । ईत्वात्पूर्वं झेरन्तादेशः परत्वान्नित्यत्वादन्तरङ्गत्वाच्च । एवं झस्याद्भावः । ततः श्नाभ्यस्तयोरित्याल्लोपः। क्रीणन्ति । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते । चिक्राय । चिक्रियतुः । चिक्रयिथ-चिक्रेथ । चिक्रियिव । चिक्रियिषे । क्रेता-क्रेष्यति । क्रीयात् । क्रेषीष्ट । अक्रैषीत् । अक्रेष्ट ॥ १ ॥ प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च ॥ कान्तिः कामना । प्रीणाति । प्रीणीते ॥ २ ॥ श्रीञ् पाके ॥ ३ ॥ मीञ् हिंसायाम् ॥ हिनुमीना । प्रमीणाति । प्रमीणीतः । मीनातिमिनोतीत्येज्विषये आत्वम् । ममौ । मिम्यतुः । ममिथ-ममाथ । मिम्ये । माता । मास्यति । मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त ॥ ४ ॥ षिञ् बन्धने । सिनाति । सिनीते । सिषाय । सिष्ये । सेता ॥ ५ ॥ स्कुञ् आप्रवणे ॥

२५५४-क्र्यादि धातुओंके उत्तर श्ना प्रत्यय हो । सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते क्रीणाति । "ई हल्यघोः २४९७" इस सूत्रसे श्ना प्रत्ययके आकारके स्थानमें ईकार हो, क्रीणीतः । ईत्वके पूर्वमें झिके स्थानमें परत्व, नित्यत्व और अन्तरङ्गत्वके कारण "झोऽन्तः" से 'अन्त' आदेश हो, और झके स्थानमें "आत्म० " अत् हो, पश्चात् "श्नाभ्यस्तयोः० २४८३" इस सूत्रसे आकारका लोप हो । क्रीणन्ति । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते । चिक्राय । चिक्रियतुः । चिक्रयिथ, चिक्रेथ । चिक्रियिव । चिक्रियिषे । क्रेता, । क्रेष्यति । क्रीयात् । क्रेषीष्ट । अक्रैषीत् । अक्रेष्ट ॥

प्रीञ् धातु तर्पण, और कान्ति अर्थात् कामनामें है । प्रीणाति । प्रीणीते ॥ श्रीञ् धातु पाकमें है ॥ मीञ् धातु हिंसामें है । "हिनुमीना २५३०" यह सूत्र यहां स्मरणार्थ है । प्रमीणाति । प्रमीणीतः । "मीनातिमिनोति० २५०८" इस सूत्रसे एच्के विषयमें आत्त्व हो । ममौ । मिम्यतुः । ममिथ, ममाथ । मिम्ये । माता । मास्यति ।

मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त ॥ षिञ् धातु बंधनमें है । सिनाति । सिनीते । सिषाय। सिष्ये । सेता ॥

स्कुञ् धातु आप्रवण अर्थात् सम्यक् प्लवनमें है ॥

२५५५ स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च । ३ । १ । ८२ ॥

चात् श्ना । स्कुनोति । स्कुनुते । स्कुनाति । स्कुनीते । चुस्काव । चुस्कुवे । स्कोता । अस्कौषीत् । अस्कोष्ट ॥ ६ ॥ स्तन्भ्वादयश्चत्वारः सौत्राः । सर्वे रोधनार्था इत्येके । माधवस्तु प्रथमतृतीयौ स्तम्भार्थौ द्वितीयो निष्कोषणार्थः । चतुर्थो धारणार्थ इत्याह । सर्वे परस्मैपदिनः । नलोपः । विष्टभ्नोति–विष्टभ्नाति । अवष्टभ्नोति–अवष्टभ्नाति । अवतष्टम्भ । जृस्तन्भ्विच्यङ् वा । व्यष्टभत्–व्यष्टम्भीत् । स्तुभ्नोति–स्तुभ्नाति ॥

२५५५–स्तन्भु, स्तुन्भु, स्कन्भु, स्कुन्भु और स्कुञ् धातुके उत्तर श्नु और श्ना प्रत्यय हो । स्कुनोति, स्कुनाति । स्कुनुते, स्कुनीते । चुस्काव । चुस्कुवे । स्कोता । अस्कौषीत् । अस्कोष्ट । स्तन्भु आदि ४ धातु सौत्र (सूत्रोक्त) हैं । एक आचार्य कहतेहैं कि, सब (४) ही रोधनार्थक हैं । माधवके मतमें प्रथम और तृतीय स्तम्भार्थ हैं, द्वितीय निष्कोषणार्थ और चतुर्थ धारणार्थ है, और सब परस्मैपदी हैं । नकारका लोप, विष्टभ्नोति, विष्टभ्नाति । अवष्टभ्नोति, अवष्टभ्नाति । अवतष्टम्भ । "जृस्तन्भु० २२९१" इस सूत्रसे विकल्प करके अङ्, व्यष्टभत्, व्यष्टम्भीत् । स्तुभ्नोति, स्तुभ्नाति ॥

२५५६ वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् ।८।३।७७॥

वेः परस्य स्कभ्नातेः सस्य षः स्यात् । विष्कभ्नोति–विष्कभ्नाति।स्कुभ्नोति–स्कुभ्नाति ॥

२५५६–विपूर्वक स्कन्भ धातुके सकारको षत्व हो, विष्कभ्नोति, विष्कभ्नाति । स्कुभ्नोति, स्कुभ्नाति ॥

२५५७ हलः श्नः शानज्झौ ।३।१।८३॥

हलः परस्य श्नः शानजादेशः स्याद्धौ परे । स्तभान–स्तुभान । स्कभान–स्कुभान । पक्षे स्तभ्नुहीत्यादि ॥ युञ् बन्धने ॥ युनाति । युनीते । योता ॥ ७ ॥ क्नूञ् शब्दे ॥ क्नूनाति । क्नूनीते । क्नविता ॥ ८ ॥ द्रूञ् हिंसायाम् ॥ द्रूणाति । द्रूणीते ॥ ९ ॥ पूञ् पवने ॥

२५५७–हि परे रहते हल्के परे श्नाके स्थानमें शानच् आदेश हो । स्तभान, स्तुभान । स्कभान, स्कुभान । पक्षमें स्तभ्नुहि इत्यादि पद होंगे । युञ् धातु बंधनमें है । युनाति । युनीते । योता ॥ क्नूञ् धातु शब्दमें है । क्नूनाति । क्नूनीते । क्नविता । द्रूञ् धातु हिंसामें है । द्रूणाति । द्रूणीते ॥ पूञ् धातु पवित्र करनेमें है ॥

२५५८ प्वादीनां ह्रस्वः । ७ । ३।८०॥

शिति परे । पुनाति । पुनीते । पविता॥१०॥ लूञ् छेदने ॥ लुनाति । लुनीते ॥ ११ ॥ स्तॄञ् आच्छादने स्तृणाति । स्तृणीते । तस्तार । तस्तरतुः । स्तरीता–स्तरिता । स्तृणीयात् । स्तृणीते । आशिषि स्तीर्यात् ॥ लिङ्सिचोरिति वेट् ॥ (न लिङि । ७ । २ । ३९) वॄत इटो लिङि दीर्घो न स्यात् । स्तरिषीष्ट। उश्चेति कित्त्वम्। स्तीर्षीष्ट । सिचि च परस्मैपदेष्विति न दीर्घः।अस्तारीत्।अस्तारिष्टाम्। अस्तरीष्ट–अस्तरिष्ट । अस्तीर्ष्ट॥१२॥कॄञ् हिंसायाम्॥ कृणाति । कृणीते । चकार । चकरे ॥ १३ ॥ वॄञ् वरणे ॥ वृणाति वृणीते । ववार । ववरे । वरीता–वरिता । आशिषि उदोष्ठ्यपूर्वस्य । वूर्यात् । वरिषीष्ट–वूर्षीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवरीष्ट–अवरिष्ट–अवूर्ष्ट ॥ १४ ॥ धूञ् कम्पने ॥ धुनाति । धुनीते । दुधविथ–दुधोथ । दुधुविव । धविता–धोता । स्तुसुधूञ्भ्य इतीट् । अधावीत् । अधविष्ट-अधोष्ट ॥ १५ ॥

अथ बध्नात्यन्ताः परस्मैपदिनः ॥ शॄ हिंसायाम् ॥ शॄदॄप्रां ह्रस्वो वेति ह्रस्वपक्षे यण् । अन्यदा ऋच्छत्यॄतामिति गुणः । शश्रतुः–शशरतुः । श्र्युकः कितीतिनिषेधस्य क्रादिनियमेन बाधः । शशरिव–शश्रिव । शरीता–शरिता । शृणीहि । शीर्यात् । अशारिष्टाम् ॥ १ ॥ पॄ पालनपूरणयोः ॥ पप्रतुः–पपरतुः । आशिषि, पूर्यात् ॥ २ ॥ वॄ वरणे ॥ भरण इत्येके ॥ ३ ॥ भॄ भर्त्सने ॥ भरणेऽप्येके ॥ ४ ॥ मॄ हिंसायाम्॥ मृणाति । ममार ॥ ५ ॥ दॄ विदारणे ॥ ददरतुः । दद्रुः ॥ ६ ॥ जॄ वयोहानौ ॥ ७ ॥ झॄ इत्येके ॥ ८ ॥ धॄ इत्यन्ये ॥ ९ ॥ नॄ नये॥१०॥ कॄ हिंसायाम् ॥ ११ ॥ ऋ गतौ ॥ ऋणाति । अरांचकार । अरीता–अरिता । आर्णात् । आर्णीताम् । ईर्यात् । आरीत् । आरिष्टाम् ॥ १२ ॥ गॄ शब्दे ॥ १३ ॥ ज्या वयोहानौ ॥ ग्रहिज्या ॥

२५५८–शित् परे रहते प्वादि धातुओंको ह्रस्व हो । पुनाति । पुनीते । पविता ॥ लूञ् धातु छेदनमें है । लुनाति । लुनीते ॥ स्तॄञ् धातु आच्छादनमें है । स्तृणाति । स्तृणीते । तस्तार । तस्तरतुः । स्तरीता, स्तरिता । स्तृणीयात् । स्तृणीते । आशीर्लिङ्में स्तीर्यात् । "लिङ्सिचोः० २५२८" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् हो । "न लिङि २५२९" इस सूत्रसे

लिङ् परे रहते वृत (वृङ, वृञ्, ऋदन्त) धातुके उत्तर इट्को दीर्घ न हो । स्तारिषीष्ट । "उश्च २३६८" इस सूत्रसे कित्त्व हो । स्तीर्षीष्ट । सिच् परे रहते परस्मैपदमें दीर्घ न हो । (२३९२) अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् । अस्तरीष्ट । अस्तारिष्ट, अस्तीर्ष्ट ॥ कॄञ् धातु हिंसामें है । कृणाति । कृणीते । चकार । चकरे ॥ वॄञ् धातु वरणमें है । वृणाति । वृणीते । ववार । ववरे । वरीता, वरिता । आशीर्लिङ्में । ओष्ठयवर्ण पूर्वक जो ऋकार, तदन्त धातुको उकार हो । (२४९४) वूर्य्यात् । वारिषीष्ट । वूर्षीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवरीष्ट, अवारिष्ट, अवूर्ष्ट ॥ धूञ् धातु कम्पनमें है । धुनाति । धुनीते । दुधविथ, दुधोथ । दुधुविव । धोता, धविता । "स्तुसुधूञ्भ्यः २३८५"इस सूत्रसे धू धातुके उत्तरको इट् हो। अधावीत् । अधविष्ट, अधोष्ट ।

अब वध धातुतक परस्मैपदी हैं ॥ शॄ धातु हिंसामें है । "शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा २४९५"इस सूत्रसे विहित ह्रस्वपक्षमें यण् हो । अन्य पक्षमें ।"ऋच्छत्यॄताम्२३८३"इस सूत्रसे गुण हो । शश्रतुः । शशरतुः ।"श्र्युकः किति २३८१"इस निषेध सूत्रका क्रयादि नियमसे बाध होगा । शशरिव, शश्रिव । शरीता, शरिता । शृणीहि । शीर्य्यात् । अशारिष्टाम् । पॄ धातु पालन और पूरणमें है । पप्रतुः, पपरतुः । आशीर्लिङ्में–पूर्य्यात् ॥ वॄ धातु वरणमें है । कोई २ कहतेहैं कि, यह भरणार्थक है । भॄ धातु भर्त्सनमें है । किसीके मतमें भरणार्थक है ॥ मॄ धातु हिंसामें है । मृणाति । ममार ॥ दॄ धातु विदारणमें है । ददरतुः । दद्रुः ॥ जॄ, झॄ और धॄ धातु वयोहानिमें है ॥ नॄ धातु नयमें है । कॄ धातु हिंसामें है । ॠ धातु गतिमें है । ऋणाति । अराञ्चकार । अरीता, अरिता । आर्णी-त् । आर्णीताम् । ईर्य्यात् । आरीत् । आरिष्टाम् ॥ गॄ धातु शब्दमें है । ज्या धातु वयोहानिमें है । "ग्रहिज्या० २४१२" यह सूत्र यहां स्मरणार्थहै ॥

२५५९ हलः । ६ । ४ । २ ॥

अङ्गावयवाद्धलः परं यत्सम्प्रसारणं तदन्ताङ्गस्य दीर्घः स्यात् । इति दीर्घे कृते । प्वादीनां ह्रस्वः । जिनाति । जिज्यौ । जिज्यतुः ॥ १४ ॥ री गतिरेषणयोः ॥ रेषणं वृकशब्दः ॥ १५ ॥ ली श्लेषणे ॥ विभाषा लीयतेरित्येज्विषये आत्त्वं वा । ललौ–लिलाय । लाता–लेता॥१६॥ व्ली वरणे ॥ व्लिनाति ॥१७॥ प्ली गतौ ॥१८॥ वृत् ॥ ल्वादयो वृत्ताः । प्वादयोऽपीत्येके ॥ व्री वरणे ॥१९॥ भ्री भये॥भरण इत्येके ॥२०॥ क्षीष् हिंसायाम् ॥ एषां त्रयाणां ह्रस्वः । केचिन्मते तु न ॥ २१ ॥ ज्ञा अवबोधने ॥ ज्ञाजनोर्जा । जानाति । दीर्घनिर्देशसामर्थ्यान्न ह्रस्वः॥२२॥बन्ध बन्धने । बध्नाति । बबन्धिथ–बबन्ध । बन्धा । बन्धारौ । भन्त्स्यति । बधान । अभान्त्सीत् । पूर्वत्रासिद्धमिति भष्भावात्पूर्वं झलो झलीति सिज्लोपः । प्रत्ययलक्षणेन सादिप्रत्ययमाश्रित्य भष्भावो न, प्रत्ययलक्षणं प्रति सिज्लोपस्यासिद्धत्वात् । अबान्द्धाम् । अभान्त्सुः ॥ २३ ॥ वृङ् सम्भक्तौ । वृणीते । वव्रे । ववृषे । ववृढ्वे । वरीता–वरिता । अवरीष्ट–अवरिष्ट–अवृत ॥ १ ॥ श्रन्थ विमोचनप्रतिहर्षयोः ॥ इतः परस्मैपदिनः॥श्रथ्नाति । श्रन्थिग्रन्थीत्यादिना कित्त्वपक्षे एत्वाभ्यासलोपावप्यत्र वक्तव्यौ, इति हरदत्तादयः । श्रेथतुः । श्रेथुः । इदं कित्त्वं पितामपीति सुधाकरमते । श्रेथिथ । अस्मिन्नपि पक्षे णलि । शश्राथ । उत्तमे तु शश्राथ–शश्रथेति माधवः । तत्र मूलं मृग्यम् ॥ १ ॥ मन्थ विलोडने ॥ २ ॥ श्रन्थ ग्रन्थ सन्दर्भे ॥ अर्थभेदात् श्रन्थेः पुनः पाठः रूपं तूक्तम् ॥४॥ कुन्थ संश्लेषणे । संक्लेशे इत्येके । कुथ्नाति चुकुन्थ॥५॥कुथेति दुर्गः। चुकोथ ॥६॥ मृद क्षोदे ॥ मृद्नाति । मृदान ॥ ७ ॥ मृड च ॥ अयं सुखेपि । मृत्वम् । मृड्णाति ॥ ८ ॥ गुध रोषे ॥ गुध्नाति ॥ ९ ॥ कुष निष्कांशे ॥ कुष्णाति । कोषिता ॥

२५५९–अङ्गावयवीभूत हल्के परे जो सम्प्रसारण तदन्त अङ्गको दीर्घ हो, इससे दीर्घ होनेपर, " प्वादीनां ह्रस्वः २५५८" इस सूत्रसे ह्रस्व होगा । जिनाति । जिज्यौ । जिज्यतुः॥री धातु गति और रेषणमें है । रेषण अर्थात् वृकके शब्दमें ॥ ली धातु श्लेषणमें है । " विभाषा लीयतेः२५०९ " इस सूत्रसे एच्विषयमें विकल्प करके आत्त्व हो । ललौ । लिलाय । लाता, लेता ॥ व्ली धातु वरणमें है । व्लिनाति । प्ली धातु गतिमें है । ल्वादि धातु सम्पूर्ण हुए । कोई २ कहतेहैं कि, प्वादि धातु भी सम्पूर्ण हुए ।

व्री धातु वरणमें है । भ्री धातु भयमें है । किसी २ के मतमें यह भरणमें है ॥ क्षीष् धातु हिंसामें है, इन तीन धातु ओंको ह्रस्व हो, किसीके मतमें ह्रस्व नहीं होगा ॥ ज्ञा धातु अवबोधनमें है । " ज्ञा जनोर्जा २५११ " इस सूत्रसे ज्ञा धातुके स्थानमें ' जा ' आदेश हो । जानाति । सूत्रमें दीर्घ निर्देशके कारण ह्रस्व नहीं होगा ॥ बंध धातु बंधनमें है । बध्नाति । बबन्धिथ, बबन्ध । बन्धा । बन्धारौ । भन्त्स्यति । बधान । अभान्त्सीत् । " पूर्वत्रासिद्धम् १२ " इस सूत्रसे भष्भावके पूर्वमें "झलो झलि २२८१" इस सूत्रसे सिच्का लोप होगा । प्रत्यय लक्षणसे सकारादि प्रत्ययका आश्रय करके भष्भाव नहीं होगा, क्योंकि प्रत्ययलक्षणके प्रति सिच्के लोपको असिद्धत्व है । अबान्द्धाम् । अभान्त्सुः ॥ वृङ् धातु सम्भाक्तिम है । वृणीते । वव्रे । ववृषे । ववृढ्वे । वरीता, वरिता । अवरीष्ट, अवरिष्ट, अवृत ॥ श्रन्थ धातु विमोचन और प्रतिहर्षमें है । यहांसे परस्मैपदी हैं । श्रथ्नाति । हरदत्ता-

दिके मतमें "श्रन्थिग्रन्थि०" से किरवपक्षमें एत्व और अभ्यासका लोप भी होगा । श्रेथतुः । श्रेथुः । सुधाकरके मतमें इस पित्संज्ञक होनेपर भी इसकी कित्संज्ञा हो । श्रेथिथ । णल् परे–शश्राथ । उत्तम पुरुषमें शश्राथ–शश्रथ। यह माधवका मत है । इस विषयमें मूल अनुसंधेय है॥ मन्थ धातु विलोडनमें है ॥ श्रन्थ और ग्रन्थ धातु सन्दर्भमें हैं। अर्थभेदके कारण श्रन्थ धातुका पुनः पाठ हुआ, किन्तु इसका रूप पूर्वमें कह दिया है। कुन्थ धातु संश्लेषणमें है, किसीके मतमें संक्लेशमें है । कुथ्नाति । चुकुन्थ । दुर्गके मतमें यह 'कुथ' धातु है । चुकोथ ॥ मृद धातु क्षोदमें है । मृद्नाति । मृदान ॥ मृड धातु मर्दनमें है । और यह सुखमें भी है । ष्टुत्व हो । मृड्णाति॥गुध धातु रोषमें है । गुध्नाति ॥ कुष धातु निष्कोशमें है । कुष्णाति । कोषिता ॥

२५६० निरः कुषः । ७ । २ । ४६ ॥

निरः परात्कुषो वलादेरार्धधातुकस्य इड्वा स्यात् । निष्कोषिता–निष्कोष्टा । निरकोषीत्–निरकुक्षत् ॥ १० ॥ क्षुभ सञ्चलने ॥ (क्षुभ्नादिषु च । ८ । ४ । ३९ ॥) क्षुभ्नाति । क्षुभ्नीतः । क्षोभिता । क्षुभाण॥११॥ णभ तुभ हिंसायाम् ॥ नभ्नाति । तुभ्नाति । नभते–तोभते इति शपि । नभ्यति–तुभ्यतीति श्यनि॥१३॥क्लिशू विबाधने॥ शादिति श्चुत्वनिषेधः। क्लिश्नाति। क्लेशिता–क्लेष्टा। अक्लेशीत्–अक्लिक्षत् ॥ १४ ॥ अश भोजने ॥ अश्नाति । आश ॥ १५ ॥ उध्रस उञ्छे ॥ इकार इत्। ध्रस्नाति ॥ १६ ॥ उकारो धात्ववयव इत्येके । उध्रसांचकार ॥ १७ ॥ इष आभीक्ष्ण्ये ॥ पौनःपुन्यं भृशार्थो वा आभीक्ष्ण्यम् । इष्णाति । तीषसहेत्यत्र सहिना साहचर्यादकारविकरणस्य तौदादिकस्यैव इषेर्ग्रहणं न तु इष्यतीष्णात्योरित्याहुः । एषिता । वस्तुतस्तु इष्णातेरपि इड्विकल्प उचितः । तथा च वार्तिकम् ॥ इषेस्तकारे श्यन्प्रत्ययात्प्रतिषेध इति ॥ * ॥ १८ ॥ विष विप्रयोगे ॥ विष्णाति । वेष्टा ॥ १९ ॥ प्लुष स्नेहनसेवनपूरणेषु ॥ प्रुष्णाति । प्लुष्णाति ॥२१॥ पुष पुष्टौ॥ पोषिता ॥२२॥ मुष स्तेये॥ मोषिता ॥ २३ ॥ खच भूतप्रादुर्भावे ॥ भूतप्रादुर्भावोऽतिक्रान्तोत्पत्तिः । खश्नाति ॥ वान्तोयमित्येके ॥

२५६०–निर्पूर्वक कुष धातुसे पर वलादि आर्धधातुकके स्थानमें विकल्प करके इट् हो–निष्कोषिता,निष्कोष्टा । निरकोषीत्, निरकुक्षत् ॥ क्षुभ धातु संचलनमें है । "क्षुभ्नादिषु च ७९२" इस सूत्रसे णत्व न हो । क्षुभ्नाति । क्षुभ्नीतः । क्षोभिता । क्षुभाण ॥ णभ और तुभ धातु हिंसामें हैं । नभ्नाति । तुभ्नाति । शप् परे रहते–नभते । तोभते । श्यन् परे रहते–नभ्यति । तुभ्यति । क्लिशू धातु विबाधनमें है । "शात्११२" इस सूत्रसे श्चुत्व न होगा। क्लिश्नाति । क्लेशिता, क्लेष्टा । अक्लेशीत्, अक्लिक्षत्॥अश धातु भोजनमें है। अश्नाति।आश॥उध्रस् धातु उञ्छमें है । उकारकी इत्संज्ञा हुई । ध्रस्नाति । कोई२ कहतेहैं कि, उकार धातुका अवयव है । उध्रसाञ्चकार ॥ इष धातु आभीक्ष्ण्यमें है । आभीक्ष्ण्य शब्दसे पौनःपुन्य अथवा भृशार्थ समझना । इष्णाति । "तीषसह०२३४०" इस सूत्रसे सह शब्दके साहचर्य्यसे अकारविकरण तुदादिगणीय इष धातुका ही ग्रहण हुआ है, इष्यति अथवा इष्णाति-पद वाले इष धातुका ग्रहण नहीं है । एषिता । वस्तुतः (इष्णाति) इष धातुके परको विकल्प करके इट् होना उचित है, तथा च वार्त्तिक–"इषेस्तकारे श्यन् प्रत्ययात् प्रतिषेधः" अर्थात् श्यन् प्रत्ययवाले इष धातुसे पर तकारादि आर्धधातुकके इट्का प्रतिषेध है। विष धातु विप्रयोगमें है । विष्णाति । वेष्टा ॥ प्रुष और प्लुष धातु स्नेहन, सेवन और पूरणमें हैं–प्रुष्णाति । प्लुष्णाति ॥ पुष धातु पुष्टिमें है । पोषिता ॥ मुष धातु स्तेय (चोरी) में है । मोषिता ॥ खच धातु भूतप्रादुर्भावमें है–भूतप्रादुर्भाव शब्दसे अतिक्रान्तोत्पत्ति जाननी । खच्नाति । कोई २ कहतेहैं कि, यह धातु वकारान्त है ॥

२५६१ च्छ्वोः शूडनुनासिके च । ६ । ४ । १९ ॥

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श ऊठ् एतावादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति । खौनाति । चखाव । खविता । शानचः परत्वादूठि कृते हलन्तत्वाभावान्न शानच् । खौनीहि ॥२४॥ हिठ च ॥ ष्टुत्वम् । हिठ्णाति ॥ २५ ॥ ग्रह उपादाने ॥ स्वरितेत् । ग्रहिज्या–। गृह्णाति । गृह्णीते ॥

२५६१–अनुनासिक, क्वि और झलादि कित्, ङित् प्रत्यय परे रहते सतुक छ, और वके स्थानमें क्रमसे श और ऊठ् आदेश हो । खौनाति । चखाव । खविता । शानच्से परत्वके कारण ऊठ् होनेपर हलन्तके अभावके कारण शानच् नहीं होगा । खौनीहि ॥ हिठ धातु पूर्वोक्त अर्थमें है । ष्टुत्व होताहै । हिठ्णाति ॥ ग्रह धातु उपादानमें है । यह उभयपदी है । "ग्रहिज्या०२४१२" इस सूत्रसे ग्रह धातुको सम्प्रसारण हो । गृह्णाति । गृह्णीते ॥

२५६२ ग्रहोऽलिटि दीर्घः । ७।२।३७ ॥

एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घः स्यात् न तु लिटि। ग्रहीता। लिटि तु–जग्रहिथ। गृह्यात्। ग्रहीषीष्ट। ह्म्यन्तेति न वृद्धिः । अग्रहीत् । अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट । अग्रहीषाताम् । अग्रहीषत ॥ १ ॥

॥ इति क्र्यादयः ॥

२२६२-एकाच् ग्रह धातुके उत्तर विहित प्रत्ययके इट्को दीर्घ हो। लिट् परे रहते नहीं हो, लिट्में न हो ग्रहीता, लिट्में तो 'जग्रहिथ' ऐसा होगा। गृह्यात्। ग्रहीषीष्ट। "ह्म्यन्त० २२९९" इस सूत्रसे वृद्धि नहीं होगी-अग्रहीत्। अग्रहीष्टाम्। अग्रहीष्ट। अग्रहीषाताम्। अग्रहीषत॥

॥ इति क्र्यादिप्रकरणम् ॥

अथ चुरादयः १०.

चुर स्तेये ॥

चुर धातु स्तेयमें है।

२५६३ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्। ३। १। २५॥

एभ्यो णिच् स्यात्। चूर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकाद्धात्वर्थ इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम्। चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे। पुगन्तेति गुणः। सनाद्यन्ता इति धातुत्वम्। तिप्शबादिगुणायादेशौ। चोरयति॥

२५६३-सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण और चुरादि धातुओंके उत्तर स्वार्थमें णिच् हो। चूर्णान्त धातुओंके उत्तर "प्रातिपदिकात् धात्वर्थे" इस गण सूत्रसे णिच् होसकताहै तथापि उनका ग्रहण इस स्थलमें विस्तारार्थ है। चुरादिगणीय धातुओंके उत्तर तो स्वार्थमें णिच् हो। "पुगन्त० २१८९" इस सूत्रसे गुण हो "सनाद्यन्ताः० २३०४" इस सूत्रसे णिजन्तकी धातु संज्ञा हो। इस कारण उसके उत्तर तिप्, शप्, गुण, आय आदेश इत्यादि समस्त ही होंगे। चोरयति॥

२५६४ णिचश्च। १। ३। ७४॥

णिजन्तादात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले। चोरयते। चोरयामास। चोरयिता। चोर्यात्। चोरयिषीष्ट। णिश्रीति चङ्। णौ चङीति ह्रस्वः। द्वित्वम्। हलादिः शेषः। दीर्घो लघोरित्यभ्यासदीर्घः। अचूचुरत्। अचूचुरत॥१॥ चिति स्मृत्याम्॥ चिन्तयति। अचिचिन्तत्। चिन्तेति पठितव्ये इदित्करणं णिचः पाक्षिकत्वे लिङ्गम्। तेन चिन्त्यात्-चिन्त्यते इत्यादौ नलोपो न। चिन्तति। चिन्तेत्। एतच्च ज्ञापकं सामान्यापेक्षमित्येके अत एकहल इत्यत्र वृत्तिकृता जगाण जगणतुरित्युदाहृतत्वात्। विशेषापेक्षमित्यपरे, अत एवाधृषाद्वेत्यस्य न वैयर्थ्यम्॥२॥ यत्रि संकोचे॥ यन्त्रयति। यन्त्रेति पठितुं शक्यम्। यत्तु इदित्करणाद्यन्त्रतीति माधवेनोक्तं तच्चिन्त्यम्। एवं कुद्रितन्त्रिमन्त्रिषु॥३॥ स्फुडि परिहासे॥ स्फुण्डयति। इदित्करणात्-स्फुण्डति॥ स्फुटीति पाठान्तरम्। स्फुण्टयति॥४॥ लक्ष दर्शनाङ्कनयोः॥५॥ कुद्रि अनृतभाषणे॥ कुन्द्रयति॥६॥ लड उपसेवायाम्॥ लाडयति॥७॥ मिदि स्नेहने॥ मिन्दयति। मिन्दति॥८॥ ओलडि उत्क्षेपणे॥ ओलण्डयति। ओलण्डति॥९॥ ओकार इदित्येके। लण्डयति। लण्डति॥१०॥ उकारादिरयमित्यन्ये। उलण्डयति॥११॥ जल अपवारणे॥१२॥ लज इत्येके॥१३॥ पीड अवगाहने। पीडयति॥

२५६४-क्रियाफल कर्तृगामी होनेपर णिजन्त धातुके उत्तर आत्मनेपद हो। चोरयते। चोरयामास। चोरयिता। चोर्यात्। चोरयिषीष्ट "णिश्रि० २३१२" इस सूत्रसे चङ् हो। "णौच०२३१४" इस सूत्रसे ह्रस्व हो। द्वित्व हो। "हलादिः शेषः २१७९" "दीर्घो लघोः २३१८" इस सूत्रसे दीर्घ हो। अचूचुरत्। अचूचुरत॥ चिति धातु स्मृतिमें है। चिन्तयति। अचिचिन्तत्। 'चिन्त' ऐसा पठितव्य होनेपर इदित्करण णिच्के पाक्षिकत्वका ज्ञापक है। अर्थात् णिच्के विकल्प पक्षमें इसकी इत्संज्ञा चरितार्थ होगी। इसी कारण 'चिन्त्यात्, चिन्त्यते' इत्यादि स्थलमें नकारका लोप नहीं होता। चिन्तति। चिन्तेत्। कोई २ कहतेहैं कि, यह ज्ञापक सामान्यापेक्ष है, क्योंकि, "अत एकहल्० २२६०" इस सूत्रमें वृत्तिकारने 'जगाण। जगणतुः' इत्यादि उदाहरण दियाहै। 'यह विशेषापेक्ष है' ऐसा भी कोई २ कहते हैं, अत एव "आधृषाद्वा" इस गणसूत्रकी व्यर्थता नहीं हुई॥ यत्रि धातु संकोचमें है। यंत्रयति। 'यन्त्र' ऐसा पाठ भी किया जासकताहै। जो तो माधवाचार्यने इदित्करणसे 'यंत्रति' ऐसा कहा है, वह चिन्त्य है। कुद्रि, तत्रि और मत्रि धातुमें भी इसी प्रकार है। स्फुडि धातु परिहासमें है। स्फुण्डयति। इकार इत् करनेसे 'स्फुण्डति' ऐसा होगा। 'स्फुटि' ऐसा पाठान्तर भी है, जैसे-स्फुण्टयति॥ लक्ष धातु दर्शन और अंकनमें है॥ कुद्रि धातु मिथ्या कथनमें है। कुन्द्रयति॥ लड धातु उपसेवामें है। लाडयति॥ मिदि धातु स्नेहनमें है। मिन्दयति। मिन्दति॥ ओ लडि धातु उत्क्षेपणमें है। ओलण्डयति। ओलण्डति। कोई २ कहतेहैं कि, इस धातुका ओकार इत्संज्ञक होताहै, ऐसा होनेपर-लण्डयति, लण्डति, ऐसा होगा। कोई २ कहतेहैं कि, यह धातु उकारादि है। उलण्डयति॥ जल धातु अपवारणमें है। कोई २ कहते हैं, कि 'लज' धातु है॥ पीड धातु अवगाहनमें है। पीडयति॥

२५६५ भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम्। ७। ४। ३॥

एषामुपधाया ह्रस्वो वा स्याच्चङ्परे णौ। अपीपिडत्-अपिपीडत्॥१४॥ नट अवस्यन्दने।

अवस्यन्दनं नाट्यम् ॥१५॥ श्रथ प्रयत्ने। प्रस्थाने इत्येके ॥ १६ ॥ बध संयमने ॥ बाधयति । बन्धेति चान्द्राः ॥ १७ ॥ पॄ पूरणे ॥ पारयति । दीर्घोच्चारणं णिचः पाक्षिकत्वे लिङ्गं तद्धि सङ्क्त्वाय । एवं पृणातिपिपर्तिभ्यां परितेत्यादिसिद्धावपि परति परत इत्यादिसिद्धिः फलम् ॥ ॥ १८ ॥ ऊर्ज बलप्राणनयोः ॥ १९ ॥ पक्ष परिग्रहे ॥२०॥ वर्ण चूर्ण प्रेरणे॥२१॥वर्ण वर्णन इत्येके॥२२॥ प्रथ प्रख्याने ॥ प्राथयति । नान्ये मितोऽहेताविति वक्ष्यमाणत्वान्नास्य मित्त्वम् ॥

२५६५—भ्राज, भास, भाष, दीप, जीव, मील और पीड धातुकी उपधाको विकल्प करके ह्रस्व हो, चङ् जिससे परे हो ऐसी णि परे रहते । अपीपिडत् । अपिपीडत् ॥ नट धातु अवस्यन्दनमें है । अवस्यन्दन शब्दसे नाट्य समझना ॥ श्रथ धातु प्रयत्नमें है । किसीके मतमें प्रस्थानार्थमें है । बध धातु संयमनमें है । बाधयति । चान्द्र मतमें यह 'बंध' धातु है ॥ पॄ धातु पूरणमें है । पारयति । दीर्घका उच्चारण णिच्के पाक्षिकत्वमें लिङ्ग और इट्के निमित्त है । इस प्रकार पृणाति (क्रैयादिक पॄ), और पिपर्त्ति (जौहोत्यादिक पॄ) से 'परिता' इत्यादि रूपोंकी सिद्धि होनेपर भी 'पारयति, परति, परतः' इत्यादि रूपोंकी सिद्धि फल है ॥ ऊर्ज धातु बल और प्राणनमें है ॥ पक्ष धातु परिग्रहमें है ॥ वर्ण और चूर्ण धातु प्रेरणमें है । किसीके मतमें वर्ण धातु वर्णनामें है ॥ प्रथ धातु प्रख्यानमें है । प्राथयति । "नान्ये मितोऽहेतौ" अर्थात् स्वार्थिक णिच् परे रहते ज्ञपादि पांच धातुओंको छोडकर अन्य धातु मित् नहीं होते, इस वक्ष्यमाण गणसूत्रसे यहां मित्त्व नहीं होगा ॥

२५६६ अत्स्मृदॄत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् । ७ । ४ । ९५ ॥

एषामभ्यासस्य अकारोन्तादेशः स्याच्चङ्परे णौ । इत्वापवादः । अपप्रथत् ॥ २३ ॥ पृथ प्रक्षेपे ॥ पर्थयति ॥

२५६६—चङ् परक णि परे रहते स्मृ, दॄ, त्वर, प्रथ, म्रद, स्तॄ, और स्पश धातुके अभ्यासके स्थानमें अकार अन्तादेश हो । यह अकार इत्वका अपवाद है । अपप्रथत् । पृथ धातु प्रक्षेपमें है । पर्थयति ॥

२५६७ उर्ऋत् । ७ । ४ । ७ ॥

उपधाया ऋवर्णस्य स्थाने ऋत्स्याद्वा चङ्परे णौ।इररारामपवादः।अपीपृथत्-अपपर्थत् ॥२४॥ पथ इत्येके । पाथयति ॥ २५ ॥ षम्ब सम्ब धने । सम्बयति । अससम्बत् ॥ २६ ॥ शम्ब च ॥ अशशम्बत् ॥ २७ ॥ साम्ब इत्येके॥२८॥ भक्ष अदने ॥ २९ ॥ कुट्ट छेदनभर्त्सनयोः । पूरण इत्येके । कुट्टयति ॥ ३० ॥ पुट्ट चुट्ट अल्पीभावे ॥३२॥ अट्ट षुट्ट अनादरे॥अट्टयति । अयं दोपधः । ष्टुत्वस्यासिद्धत्वान्नन्द्रा इति निषेधः । आट्टिटत् ॥३४ ॥ लुण्ठ स्तेये ॥ लुण्ठयति । लुण्ठतीति। लुठ स्तेये इति भौवादिकस्य ॥३५॥शठ श्वठ असंस्कारगत्योः॥ ३७॥श्वठिइत्येके ॥३८॥तुजि पिजि हिंसाबलादाननिकेतनेषु॥तुञ्जयति।पिञ्जयति । इदित्करणात् तुञ्जति पिञ्जति ॥ ॥४०॥तुज पिजेति केचित॥४२॥ लजि लुजि इत्येके ॥ ४४ ॥ पिस गतौ ॥ पेसयति । पेसतीति तु शपि गतम् ॥ ४५ ॥ षान्त्व सामप्रयोगे ॥ ४६ ॥ श्वल्क वल्क परिभाषणे ॥ ४८ ॥ ष्णिह स्नेहने ॥ स्फिट इत्येके ॥ ५० ॥ स्मिट अनादरे ॥ अषोपदेशत्वान्न षः । असिस्मिटत् ॥ ॥ ५१ ॥ ष्मिङ् अनादर इत्येके । ङित्वस्यावयवेऽचरितार्थत्वाण्णिजन्तात्तङ् । स्माययते॥ ॥ ५२ ॥ श्लिष श्लेषणे ॥ ५३ ॥ पथि गतौ ॥ पन्थयति । पन्थति ॥ ५४ ॥ पिच्छ कुट्टने ॥ ॥ ५५ ॥ छदि संवरणे ॥ छन्दयति । छन्दति ॥ ॥५६॥श्रण दाने॥प्रायेणायं विपूर्वः । विश्राणयति ॥ ५७ ॥ तड आघाते ॥ ताडयति ॥ ५८ ॥ खड खडि कडि भेदने॥ खाडयति । खण्डयति। कण्डयति ॥ ६१ ॥ कुडि रक्षणे ॥ ६२ ॥ गुडि वेष्टने ॥ रक्षण इत्येके ॥ ६३ ॥ कुठि इत्यन्ये ॥ अवकुण्ठयति॥ अवकुण्ठति। गुठि इत्यपरे॥६५॥ खुडि खंडने॥६६॥वटि विभाजने॥वडि इत्येके॥ ॥६८॥मडि भूषायां हर्षे च॥६९॥भडि कल्याणे ॥७०॥ छर्द वमने ॥७१॥ पुस्त बुस्त आदरानादरयोः॥७३॥चुद संचोदने॥७४॥ नक्क धक्क नाशने ॥ णोपदेशलक्षणे पर्युदस्तोयम्। प्रनक्कयति ॥ ७६ ॥ चक्क चुक्क व्यथने ॥ ७८ ॥ क्षल शौचकर्मणि ॥ ७९ ॥ तल प्रतिष्ठायाम् ॥८०॥ तुल उन्माने ॥ तोलयति । तोलयामास । अतूतुलत् । कथं तुलयति तुलना इत्यादि । अतुलोपमाभ्यामिति निपातनादडन्तस्य तुलाशब्दस्य सिद्धौ ततो णिच् ॥८१॥ दुल उत्क्षेपे ॥८२॥ पुल महत्त्वे ॥ ८३ ॥ चुल समुच्छ्राये ॥ ८४ ॥ मूल रोहणे॥८५॥कल विल क्षेपे॥८७॥बिल भेदने ॥ ८८ ॥ तिल स्नेहने ॥ ८९ ॥ चल भृतौ ॥ ॥ ९० ॥ पाल रक्षणे ॥ ९१ ॥ लूष हिंसायाम् ॥ ९२ शुल्ब माने ॥ ९३ ॥ शूर्प च॥९४॥ चुट छेदने ॥ ९५ ॥ क्रुट सञ्चूर्णने ॥९६॥ पडि पसि नाशने ॥ पण्डयति । पण्डति । पंसयति ।

पंसति ॥ ९८ ॥ व्रज मार्ग संस्कारगत्योः ॥ ॥ १०० ॥ शुल्क अतिस्पर्शने ॥ १०१ ॥ चपि गत्याम् ॥ चम्पयति । चम्पति ॥ १०२ ॥ क्षपि क्षान्त्याम् ॥ क्षम्पयति । क्षम्पति ॥ १०३ ॥ छजि कृच्छ्रजीवने ॥ १०४ ॥ श्वर्त गत्याम् ॥ ॥ १०५ ॥ श्वभ्र च ॥ १०६ ॥ ज्ञप मिच्च । अयं ज्ञाने ज्ञापने च वर्तते ॥

२५६७-चङ् परक णि परे रहते धातुके उपधाभूत ऋवर्णके स्थानमें विकल्प करके ऋकार हो, यह इर्, अर् और आर्का अपवादक है । अपीपृथत्, अपपर्थत् । किसीके मतसे पथ धातु है । पाथयति ॥ षम्ब धातु संबन्धमें है । सम्बयति । असषम्बत् ॥ शम्ब धातु भी उक्तार्थक है । अशशम्बत् । किसीके मतसे साम्ब धातु है ॥ भक्ष धातु भक्षणमें है । कुट्ट धातु छेदन और भर्त्सन और किसीके मतसे पूरणार्थमें है । कुट्टयति ॥ पुट्ट और चुट्ट धातु अल्पीभावमें हैं ॥ अट्ट और षुट्ट धातु अनादरमें हैं अट्टयति । यह धातु दकारोपध है । ष्टुत्वके असिद्धत्वके कारण "नन्द्रा० २४४६" इस सूत्रसे दकारको द्वित्व नहीं होगा, आट्टिटत् ॥ लुण्ठ धातु चोरी करनेमें है । लुण्ठयति । 'लुण्ठति' यह 'लुठि स्तेये' इस भ्वादिगणीय धातुका रूप है ॥ शठ और श्वठ धातु असंस्कार और गतिमें हैं । कोई २ कहतेहैं श्वठि धातु है ॥ तुजि और पिजि धातु हिंसा, बल, आदान, और निकेतनार्थमें हैं । तुञ्जयति । पिञ्जयति । इदित् करणके कारण-तुञ्जति । पिञ्जति । कोई २ कहतेहैं तुज और पिज धातु हैं। कोई २ कहतेहैं लजि और लुजि धातु हैं ॥ पिस धातु गतिमें है । पेसयति । 'पेसति' यह तो शप परे कहा गया है ॥ षान्त्व धातु सामप्रयोगमें है ॥ श्वल्क और वल्क धातु परिभाषणमें है ॥ ष्णिह धातु स्नेहनमें है ॥ कोई स्फिट् धातु कहते हैं ॥ स्मिट् धातु अनादरमें है । अषोपदेशत्वके कारण षत्व नहीं होगा, असिस्मिटत् ॥ स्मिङ् धातु अनादरमें है । ङित्वके णिजन्तके अवयव ष्मिङ् धातुमें अचरितार्थत्वके कारण णिजन्तसे तङ् होगा, स्माययते ॥ श्लिष धातु श्लेषणमें है ॥ पथि धातु गतिमें है । पन्थयति । पन्थति ॥ पिच्छ धातु कुट्टनमें है ॥ छदि धातु संवरणमें है। छन्दयति । छन्दति ॥ श्रण धातु दानमें है, यह धातु प्रायः विपूर्वक है । विश्राणयति ॥ तड धातु आघातमें है । ताडयति ॥ खड, खडि और कडि धातु भेदनमें हैं । खाडयति। खंडयति । खण्डति । कण्डयति । कण्डति ॥ कुडि धातु रक्षा करनेमें है ॥ गुडि धातु वेष्टनमें है और किसीके मतसे रक्षणमें है । कोई २ इस धातुके स्थानमें कुठि धातु पढतेहैं । अवकुण्ठयति । अवकुण्ठति । कोई २ गुठि धातुका पाठ करतेहैं ॥ खुडि धातु खंडनमें है । वटि धातु विभाजनमें है । किसीके मतसे वडि धातु है ॥ मडि धातु भूषा और हर्षमें है ॥ भडि धातु कल्याणमें है ॥ छर्द धातु वमनमें है ॥ पुस्त और बुस्त धातु आदर और अनादरमें हैं ॥ चुद धातु सम्यक् प्रकारसे प्रेरणमें है ॥ नक्क और धक्क धातु नाशमें हैं । नक्क धातु णोपदेशके लक्षणमें पर्य्युदस्त है ॥ इससे णत्व न होगा, प्रनक्कयति ॥ चक्क और चुक्क धातु व्यथनमें हैं ॥ क्षल धातु शौचकर्ममें है ॥ तल धातु प्रतिष्ठामें है ॥ तुल धातु परिमाणमें है । तोलयति । अतूतुलत् । गुणविधायक शास्त्रके रहते 'तुलयति तुलना' इत्यादि प्रयोग किस प्रकार सिद्ध हुए ? तो "अतुलोपमाभ्याम् ६३०" इस सूत्रमें निपातनसे अदन्त तुला शब्दकी सिद्धि होनेपर उसके उत्तर णिच् है ॥ दुल धातु उत्क्षेपक्षणमें है ॥ पुल धातु महत्त्वमें है ॥ चुल धातु समुच्छ्रायमें है ॥ मूल धातु रोहणमें है ॥ कल और बिल धातु क्षेपणमें हैं ॥ बिल धातु भेदनमें है ॥ तिल धातु स्नेह करनेमें है । चल धातु भृतिमें है ॥ पाल धातु रक्षणमें है ॥ लूष धा हिंसामें है ॥ शुल्व और शूर्प धातु मानमें हैं॥चुट धातु छेदनमें है ॥ मुट धातु संचूर्णनमें है॥पडि और पसि धातु नाशनमें हैं । पण्डयति । पण्डति । पंसयति । पंसति॥व्रज धातु और मार्ग धातु संस्कारमें और गतिमें हैं॥शुल्क धातु अतिस्पर्शनमें है ॥ चपि धातु गतिमें है । चम्पयति । चम्पति ॥ क्षपि धातु क्षान्तिमें है ॥ क्षम्पयति । क्षम्पति ॥ लज धातु कष्टसे जीवन धारणमें है ॥ श्वर्त और श्वभ्र धातु गतिमें है ॥ ज्ञप धातु मित् हो । इस धातुका ज्ञान और ज्ञापनार्थ जानना ॥

२५६८ मितां ह्रस्वः । ६ । ४ । ९२ ॥

मितामुपधाया ह्रस्वः स्याण्णौ परे।ज्ञपयति ॥ ॥ १०७ ॥ यम च परिवेषणे ॥ चान्मित् । परिवेषणमिह वेष्टनम् । न तु भोजना नापि वेष्टना । यमयति चन्द्रम् । परिवेष्टत इत्यर्थः ॥ १०८ ॥ चह परिकल्पने ॥ चहयति । अचीचहत् । कथादौ वक्ष्यमाणस्य तु अदन्तत्वेनाग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावौ न । अचचहत् ॥ चप इत्येके ॥ चपयति॥११०॥ रह त्याग इत्येके । अरीरहत् । कथादेस्तु अररहत् ॥ १११ ॥ बल प्राणने ॥ बलयति ॥ ११२ ॥ चिञ् चयने ॥

२५६८-णिच् परे रहते मित् धातुओंकी उपधाको ह्रस्व हो, ज्ञपयति ॥ यम धातु परिवेषणमें है । चकारसे यम धातु मित् हो । इस स्थलमें परिवेषण शब्दसे परिवेष्टन समझना । भोजन और वेष्टन नहीं ॥ यमयति-चन्द्रम्, अर्थात् चन्द्रको परिवेष्टन करताहै ॥ चह धातु परिकल्पनमें है । चहयति । अचीचहत् । कथादिमें वक्ष्यमाण चह धातुको तो अदन्तत्व होनेसे अग्लोपित्वके कारण दीर्घ और सन्वद्भाव नहीं होगा, जैसे-अचचहत् ॥ चप धातु भी उक्तार्थक है । चपयति ॥ रह धातु त्यागमें है, यह कोई २ कहतेहैं । अरीरहत् । कथादिका तो अररहत् ॥ बल धातु प्राणनमें है ॥ बलयति ॥ चिञ् धातु चयनमें है ॥

२५६९ चिस्फुरोर्णौ । ६ । १ । ५४ ॥

आत्वं वा स्यात् ॥

२५६९-णि परे रहते चि और स्फुर धातुको विकल्प करके आत्व हो ॥

२८७० अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग् णौ । ७ । ३ । ३६ ॥

चपयति । चययति । ञित्करणसामर्थ्यादस्य णिज्विकल्पः । चयते । प्रणिचयति । प्रनिचयति ॥ नान्ये मितोऽहेतौ ॥ अहेतौ स्वार्थे णिचि ज्ञपादिभ्योऽन्ये मितो न स्युः तेन शमादीनाममन्तत्वप्रयुक्तं मित्त्वं न ॥ ११३ ॥ घट्ट चलने ॥ ११४ ॥ मुस्त सङ्घाते ॥ ११५ ॥ खट्ट संवरणे ॥ ११६ ॥ षट्ट स्फिट्ट चुबि हिंसायाम् ॥ ११९ ॥ पुल सङ्घाते ॥ १२० ॥ पूर्ण इत्येके ॥ पुणेत्यन्ये ॥ ॥ १२१ ॥ पुंस अभिवर्धने ॥ १२२ ॥ टकि बन्धने । टङ्कयति । टङ्कति ॥ १२३ ॥ धूस कान्तिकरणे ॥ धूसयति । दन्त्यान्तः । मूर्धन्यान्त इत्येके । तालव्यान्त इत्यपरे ॥ १२४ ॥ कीट वर्णे ॥ १२५ ॥ चूर्ण संकोचने ॥ १२६ ॥ पूज पूजायाम् ॥ १२७ ॥ अर्क स्तवने ॥ तपन इत्येके ॥ १२८ ॥ शुठ आलस्ये ॥ १२९ ॥ शुठि शोषणे ॥ शुण्ठयति । शुण्ठति ॥ १३० ॥ जुड प्रेरणे ॥ १३१ ॥ गज मार्ज शब्दार्थौ ॥ गाजयति । मार्जयति ॥ १३३ ॥ मर्च च ॥ मर्चयति ॥ ॥ १३४ ॥ घृ प्रस्रवणे ॥ स्रावण इत्येके ॥ १३५ ॥ पचि विस्तारवचने ॥ पञ्चयति । पञ्चति । पञ्चते इति व्यक्तार्थस्य शपि गतम् ॥ १३६ ॥ तिज निशाने ॥ तेजयति ॥ १३७ ॥ कृत संशब्दने ॥

२५७०—अर्ति, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी और आकारान्त धातुओंके णि परे रहते पुक्का आगम हो, चपयति, चययति । ञित्करण सामर्थ्यके कारण इससे णिच् विकल्प होगा—चयते । प्रणिचयति, प्रनिचयति ।

"नान्ये मितोऽहेतौ" अहेतु अर्थात् स्वार्थिक णिच् परे रहते ज्ञपादि पांच धातुओंसे भिन्न धातु मित् न हो, इससे शमादि धातुओंको अमन्तत्व प्रयुक्त मित्त्व नहीं होगा ॥

घट्ट धातु चलनमें है ॥ मुस्त धातु संघातमें है ॥ खट्ट धातु संवरणमें है ॥ षट्ट, स्फिट्ट और चुबि धातु हिंसामें है ॥ पुल धातु समूहमें है । कोई २ पूर्ण धातु पढतेहैं । कोई २ पुण धातु कहतेहैं । पुंस धातु अभिवर्द्धनमें है ॥ टकि धातु बंधनमें है । टंकयति । टंकति ॥ धूस धातु कान्ति करनेमें है । धूसयति । यह धातु दन्त्य सकारान्त है । कोई २ कहतेहैं मूर्धन्य षकारान्त है । अन्य मतसे तालव्यान्त है ॥ कीट धातु वर्णमें है ॥ चूर्ण धातु संकोचनमें है ॥ पूज धातु पूजामें है ॥ अर्क धातु स्तवनमें है ॥ किसीके मतसे तपनार्थक है ॥ शुठ धातु आलस्यमें है ॥ शुठि धातु शोषणमें है । शुण्ठयति । शुण्ठति ॥ जुड धातु प्रेरणमें है ॥ गज और मार्ज धातु शब्दार्थक है । गाजयति । मार्जयति ॥ मर्च धातु भी उक्तार्थक है । मर्चयति ॥ घृ धातु प्रस्रवणमें है । किसीके मतसे स्रावणमें है ॥ पचि धातु विस्तार वचनमें है । पञ्चयति । (पञ्चते) ऐसा पद तो व्यक्तार्थक पचि धातुका शप्‌में कथित हुआ ॥ तिज धातु तीक्ष्णीकरणमें है । तेजयति ॥ कृत धातु संशब्दनमें है ॥

२८७१ उपधायाश्च । ७ । १ । १०१ ॥

धातोरुपधाभूतस्य ॠत इत्स्यात् रपरत्वम् । उपधायां चेति दीर्घः । कीर्तयति ॥ उक्कीर्तत् । अचीकृतत्—अचिकीर्तत् ॥ १३८ ॥ वर्ध छेदनपूरणयोः ॥ १३९ ॥ कुबि आच्छादने ॥ कुम्बयति ॥ कुभि इत्येके ॥ १४१ ॥ लुबि तुबि अदर्शने ॥ अर्दने इत्येके ॥ १४३ ॥ ह्लप व्यक्तायां वाचि ॥ क्लपेत्येके ॥ १४५ ॥ चुटि छेदने ॥ १४६ ॥ इल प्रेरणे ॥ एलयति । ऐलिलत् ॥ १४७ ॥ म्रक्ष म्लेच्छने ॥ १४८ ॥ म्लेच्छ अव्यक्तायां वाचि ॥ १४९ ॥ ब्रूस बर्ह हिंसायाम् ॥ १५१ ॥ केचिदिह गर्ज गर्द शब्दे, गर्ध अभिकाङ्क्षायामिति पठन्ति ॥ १५४ ॥ गुर्द पूर्वनिकेतने ॥ १५६ ॥ जसि रक्षणे ॥ मोक्षण इति केचित् । जंसयति । जंसति ॥ १५७ ॥ ईड स्तुतौ ॥ १५८ ॥ जसु हिंसायाम् ॥ १५९ ॥ पिडि सङ्घाते ॥ १६० ॥ रुष रोषे ॥ रुट इत्येके ॥ १६२ ॥ डिप क्षेपे ॥ १६३ ॥ ष्टुप समुच्छ्राये ॥ १६४ ॥

आकुस्मादात्मनेपदिनः ॥ कुस्मनाम्नो वेति वक्ष्यते तमभिव्याप्येत्यर्थः । अकर्तृगामिफलार्थमिदम् । चित सञ्चेतने ॥ चेतयते । अचीचितत ॥ १ ॥ दशि दंशने ॥ दंशयते । अददंशत । इदित्त्वाण्णिजभावे । दंशति । आकुस्मीयमात्मनेपदं णिच्सन्नियोगेनैवेति व्याख्यातारः । नलोपे सञ्जिसाहचर्याद् भ्वादेरेव ग्रहणम् ॥ २ ॥ दसि दर्शनदंशनयोः ॥ दंसयते । दंसति । दसेत्यप्येके ॥ ४ ॥ डप डिप संघाते ॥ ६ ॥ तन्त्रि कुटुम्बधारणे । तन्त्रयते । चान्द्रास्तु धातुद्वयमिति मत्वा कुटुम्बयते इत्युदाहरन्ति ॥ ८ ॥ मन्त्रि गुप्तपरिभाषणे ॥ ९ ॥ स्पश ग्रहणसंश्लेषणयोः ॥ १० ॥ तर्ज भर्त्स तर्जने ॥ १२ ॥ बस्त गन्ध अर्दने ॥ बस्तयते । गन्धयते ॥ १४ ॥ विष्क हिंसायाम् ॥ हिष्केत्येके ॥ १६ ॥ निष्क परिमाणे ॥ १७ ॥ लल ईप्सायाम् ॥ १८ ॥ कूण संकोचने ॥ १९ ॥ तूण पूरणे ॥ २० ॥ भ्रूण आशाविशंकयोः ॥ २१ ॥

शठ श्लाघायाम् ॥ २२ ॥ यक्ष पूजायाम् ॥२३॥ स्यम वितर्के ॥ २४ ॥ गूर उद्यमने ॥ २५ ॥ शम लक्ष आलोचने ॥ नान्ये मित इति मित्त्वनिषेधः । शामयते ॥२७॥कुत्स अवक्षेपणे॥२८॥ त्रुट छेदने ॥ कुट इत्येके ॥ ३० ॥ गल स्रवणे ॥ ॥ ३१ ॥ भल आभण्डने ॥ ३२॥ कूट आप्रदाने॥ अवसादने इत्येके ॥ ३३ ॥ कुट्ट प्रतापने ॥३४॥ वञ्चु प्रलम्भने ॥ ३५॥ वृष शक्तिबन्धने । शक्तिबन्धनं प्रजननसामर्थ्यं शक्तिसंबन्धश्च । वर्षयते ॥ ३६ ॥ मद तृप्तियोगे ॥ मदयते ॥३७॥ दिवु परिकूजने ॥३८॥ गृ विज्ञाने । गारयते ॥३९॥ विद चेतनाख्याननिवासेषु ॥ वेदयते ॥ ४० ॥ सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे । विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात् मान स्तम्भे ॥ मानयते ॥ ४१ ॥ यु जुगुप्सायाम् ॥ यावयते ॥ ४२ ॥ कुस्म नाम्नो वा ॥ कुस्मेति धातुः कुत्सितस्मयने वर्तते । कुस्मयते । अचुकुस्मत ॥ ४३ ॥ अथ वा कुस्मेति प्रातिपदिकं ततो धात्वर्थे णिच् ॥ इत्याकुस्मीयाः ॥

चर्च अध्ययने ॥१॥ बुक्क भाषणे ॥२॥ शब्द उपसर्गादाविष्कारे च ॥ चाद्भाषणे । प्रतिशब्दयति प्रतिश्रुतमाविष्करोतीत्यर्थः ॥ अनुपसर्गाच्च ॥ आविष्कार इत्येव । शब्दयति ॥ ३ ॥ कण निमीलने ॥ काणयति ॥ णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः । काण्यादीनां वेति विकल्प्यते । अचीकणत् । अचकाणत् ॥ ४ ॥ जभि नाशने ॥ जम्भयति । जम्भति ॥५॥ षूद क्षरणे॥सूदयति। असूषुदत् ॥ ६ ॥ जसु ताडने ॥ जासयति । जसति ॥७॥ पश बन्धने ॥पाशयति ॥८॥ अम रोगे ॥ आमयति । नान्ये मित इति निषेधः। अम गत्यादौ शपि गतः । तस्माद्धेतुमण्णौ न कम्यमिचमामिति निषेधः । आमयति ॥ ९ ॥ चट स्फुट भेदने । विकासे शशपोः स्फुटति स्फोटते इत्युक्तम् ॥ ११ ॥ घट सङ्घाते । घाटयति ॥ ॥ १२ ॥ हन्त्यर्थाश्च ॥ नवगण्यामुक्ता अपि हन्त्यर्थाः स्वार्थे णिचं लभन्त इत्यर्थः ॥ दिवु मर्दने । उदित्त्वाद्देवतीत्यपि ॥ १३ ॥ अर्ज प्रतियत्ने ॥ अप्यमर्थान्तरेऽपि । द्रव्यमर्जयति॥१४॥ घुषिरविशब्दने ॥ घोषयति । घुषिरविशब्दन इति सूत्रेऽविशब्दन इति निषेधाल्लिङ्गादनित्योऽस्य णिच्। घोषति । इरित्त्वादङ्वा । अघुषत् । अघोषीत्। ण्यन्तस्य तु अजूघुषत् ॥ १५ ॥ आङः क्रन्दसातत्ये ॥ भौवादिकः क्रन्दधातुराह्वानाद्यर्थ उक्तः स एवाङ्पूर्वो णिचं लभते सातत्ये । आक्रन्दयति । अन्ये तु आङ्पूर्वो घुषिः क्रन्द सातत्ये इत्याहुः । आघोषयति ॥ ॥ १६ ॥ लस शिल्पयोगे ॥ १७ ॥ तसि भूष अलंकरणे । अवतंसयति । अवतंसति । भूषयति ॥१९॥ मोक्ष असने । मोक्षयति ॥२०॥ अर्ह पूजायाम् ॥ २१ ॥ ज्ञा नियोगे ॥ आज्ञापयति ॥ ॥ २२ ॥ भज विश्राणने ॥ २३ ॥ शृधु प्रसहने ॥ अशशर्धत्-अशीशृधत् ॥ २४ ॥ यत निकारोपस्कारयोः ॥ २५ ॥ रक लग आस्वादने ॥ रघ इत्येके ॥ रगेत्यन्ये ॥ २९ ॥ अञ्चु विशेषणे ॥ अञ्चयति । उदित्त्वमिड्विकल्पार्थम् । अत एव विभाषितो णिच् । अञ्चति । एवं शृधुजसु प्रभृतीनामपि बोध्यम् ॥ ३० ॥ लिगि चित्रीकरणे ॥ लिङ्गयति । लिङ्गति । ३१ ॥ मुद संसर्गे ॥ मोदयति सक्तून् घृतेन ॥ ३२ ॥ त्रस धारणे ॥ ग्रहण इत्येके । वारणे इत्यन्ये ॥३३॥ उध्रस उञ्छे । उकारो धात्ववयव इत्येके । नेत्यन्ये । ध्रासयति । उध्रासयति ॥ ३५ ॥ मुच प्रमोचने मोदने च ॥ ३६ ॥ वस स्नेहच्छेदापहरणेषु ॥ ३७ ॥ चर संशये ॥ ३८ ॥ च्यु सहने ॥ हसने चेत्येके । च्यावयति । च्युसेत्येके । च्योसयति ॥ ४० ॥ भुवोऽवकल्कने ॥ अवकल्कनं मिश्रीकरणमित्येके । चिन्तनमित्यन्ये । भावयति ॥ ४१ ॥ कृपेश्च । कल्पयति ॥४२॥

आस्वदः सकर्मकात् ॥ स्वदिमभिव्याप्य सम्भवत्कर्मभ्य एव णिच्। ग्रस ग्रहणे ॥ ग्रासयति फलम् ॥१॥ पुष धारणे ॥ पोषयत्याभरणम्॥२॥ दल विदारणे दालयति ॥ ३ ॥ पट पुट लुट तुजि मिजि पिजि लुजि भजि लघि त्रसि पिसि कुसि दशि कुशि घट घटि बृहि बर्ह बल्ह गुप धूप विच्छ चीव पुथ लोकृ लोचृ णद कुप तर्क वृतु वृधु भाषार्थाः ॥ पाटयति । पोटयति । लोटयति । तुञ्जयति । तुञ्जति । एवं परेषाम् । घाटयति । घण्टयति ॥

२५७१-धातुके उपधाभूत ऋकारके स्थानमें इत् हो रपरत्व होनेपर "उपधायाश्च २२६५" इस सूत्रसे दीर्घ होकर कीर्तयति । "उर्ऋत् २५६७" इस सूत्रसे उपधाभूत ऋवर्णके स्थानमें ऋत् होकर-अचीकृतत्, अचिकीर्तत् ॥ वर्ध धातु छेदन और पूरणमें है ॥ कुबि धातु आच्छादनमें है । कुम्ब-

यति। कोई कुभि धातु पढतेहैं, कुम्भयति ॥ छबि और तुबि धातु अदर्शनमें है। किसीके मतसे अर्दनमें है ॥ हप धातु स्पष्टवाक्य कथनमें है। कोई क्लप धातु पढतेहैं ॥ चुटि धातु छेदनमें है ॥ इल धातु प्रेरणमें है। प्रलयति । ऐलिलत् ॥ म्रक्ष धातु म्लेच्छनमें है ॥ म्लेच्छ धातु अव्यक्त शब्दमें है ॥ ब्रुस और बर्ह धातु हिंसामें है। कोई २ गर्ज और गर्द धातु शब्दमें और गर्ध धातु अभिकांक्षामें कहतेहैं ॥ गुर्द धातु पूर्वनिकेतनमें है ॥ जसि धातु रक्षण और किसीके मतसे मोक्षणमें है। जंसयति। जंसति ॥ ईड धातु स्तुतिमें है ॥ जसु धातु हिंसामें है ॥ पिडि धातु संघातमें है ॥ रुष धातु रोषमें है ॥ कोई रुठ धातु पढतेहैं ॥ डिप धातु क्षेपमें है ॥ स्तुप धातु समुच्छ्रायमें है।

अब कुस्म धातुतक आत्मनेपदी हैं, अर्थात् "कुस्मनाम्नो वा" यह पश्चात् वर्णित होगा वहां तक सम्पूर्ण धातु आत्मनेपदी हैं। यह अकर्तृगामि फलार्थ है।

चित धातु संचेतनमें है। चेतयते । अचीचितत् ॥ दशि धातु दंशनमें है। दंशयते । अददंशत् । इदित्वके कारण णिच्के अभाव पक्षमें, दंशति। व्याख्याकारोंके मतसे णिच् सन्नियोगसे ही कुस्म धातु पर्य्यन्त आत्मनेपद होगा इससे यहां आत्मनेपद नहीं हुआ ॥ नलोपशास्त्रमें सञ्जि धातुके साहचर्य्यसे भ्वादिगणीय धातुका ही ग्रहण है, इससे नलोप नहीं हुआ। दसि धातु दर्शन और दंशनमें है। दंसयते। दंसति। कोई २ कहते हैं, दस धातु है ॥ डप और डिप धातु संघातमें हैं ॥ तत्रि धातु कुटुम्बधारणमें है। तंत्रयते, चान्द्रनें तो यह दो धातु मान कर 'कुटुम्बयते' ऐसा उदाहरण दियाहै ॥ मत्रि धातु गुप्तपरिभाषणमें है ॥ स्पश धातु ग्रहण और संश्लेषणमें है ॥ तर्ज और भर्त्स धातु तर्जनमें है ॥ वस्त और गन्ध धातु अर्दनमें हैं। वस्तयते। गन्धयते ॥ विष्क धातु हिंसामें है। किसीके मतसे हिष्क धातु है ॥ निष्क धातु परिमाणमें है ॥ लल धातु ईप्सामें है ॥ कूण धातु संकोचमें है ॥ तूण धातु पूरणमें है ॥ भ्रूण धातु आशा और विशङ्कामें है ॥ शठ धातु श्लाघामें है ॥ यक्ष धातु पूजामें है स्यम धातु वितर्कमें है ॥ गूर धातु उद्यमनमें है ॥ शम और लक्ष धातु आलोचनमें है। "नान्ये मितः" इससे मित्त्वनिषेध हुआ। शामयते ॥ कुत्स धातु अवक्षेपणमें है ॥ त्रुट धातु छेदनमें है ॥ कोई कुट पढतेहैं ॥ गल धातु स्रवणमें है ॥ भल धातु आभण्डनमें है ॥ कूट धातु आप्रदानमें है ॥ किसीके मतसे अवसादनमें है ॥ कुट्ट धातु प्रतापनमें है ॥ वञ्चु धातु प्रलम्भनमें है ॥ वृष धातु प्रजनन सामर्थ्य, अर्थात् शक्तिबंधनमें है। वर्षयते ॥ मद धातु तृप्तियोगमें है। मदयते ॥ दिवु धातु परिकूजनमें है ॥ गृ धातु विज्ञानमें है। गारयते। विद धातु चेतना, आख्यान और विवासनमें है। वेदयते।

(कारिकाका अर्थ) "सत्ता अर्थमें दिवादिगणीय विद धातुके उत्तर श्यन् परे रहते विद्यते, ज्ञानार्थमें अदादिगणीय विद धातुके उत्तर शप्का लुक् होकर वेत्ति, विचारार्थमें रुधादिगणीय विद धातुके उत्तर श्नम् प्रत्यय होकर विन्ते, प्राप्ति, अर्थात् लाभार्थमें तुदादिगणीय विद धातुके उत्तर श होकर विन्दते और विन्दति पद क्रमसे सिद्ध है।

मान धातु स्तम्भमें है। मानयते ॥ यु धातु जुगुप्सामें है। यावयते ॥ "कुस्मनाम्नो वा" कुस्म धातु है कुत्सित हास्यमें है। कुस्मयते। अचुकुस्मत। अथवा कुस्म यह प्रातिपदिक है, उसके उत्तर धात्वर्थमें णिच् है ॥

आकुस्मीय धातु समाप्त हुए ॥

चर्च धातु अध्ययनमें है ॥ बुक्क धातु भाषणमें है ॥ शब्द धातु उपसर्गयुक्त होनेपर आविष्कार और चकारसे कथनमें है। प्रतिशब्दयति, अर्थात् प्रतिश्रुत विषयको आविष्कार करताहै। उपसर्गके उत्तर न होनेपर केवल आविष्कारार्थ ही समझना। शब्दयति ॥ कण धातु निमीलनमें है। काणयति । "णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः १३१४" इससे ह्रस्व "काण्यादीनां वा" इस वार्त्तिकसे विकल्प करके होगा। इससे–अचीकणत्। अचकाणत् ॥ जभि धातु नाश करनेमें है। जम्भयति। जम्भति॥ षूद धातु क्षरणमें है । सूदयति । असूषुदत् ॥ जसु धातु ताडनमें है। जासयति। जसति ॥ पश धातु बंधनमें है। पाशयति। अम धातु रोगमें है । आमयति, यहां "नान्ये मितः०" इससे मित्त्व निषेध हुआ ॥ अम धातु गत्यादिमें शप्में कहचुकेहैं, उसके उत्तर हेतुमत् णिच् रहते "न कम्यमिचमाम्" इससे ह्रस्वनिषेध होकर 'आमयति' पद होगा ॥ चट और स्फुट धातु भेदनमें हैं। विकाशार्थमें श और शप्में स्फुटति । स्फोटते इस प्रकार कहा है ॥ घट धातु संघातमें है। घाटयति।

"हन्त्यर्थाश्च" नवगणीमें उक्त भी जो हन्त्यर्थक धातु, उससे स्वार्थमें णिच् हो ॥

दिवु धातु मर्दनमें है। उंकार इत् होनेके कारण 'देवति' पद भी होगा। अर्ज धातु प्रतियत्नमें है। यह धातु अन्यार्थमें भी प्रयुक्त होताहै, जैसे–द्रव्यमर्जयति ॥ घुषिर् धातु अविशब्दनमें है। घोषयति। "घुषिरविशब्दने २०६३" इस सूत्रमें 'अविशब्दने' ऐसे निषेधके कारण इसको नित्य णिच् नहीं होगा, घोषति । इर् इत् होनेके कारण विकल्प करके अङ् होगा, अघुषत्, अघोषीत् ॥ णिजन्त का तो 'अजूघुषत्' ऐसा होगा।

भ्वादिगणीय क्रन्द धातु आह्वानादि अर्थमें कहा गया है, वही सातत्यार्थमें आङ्पूर्वक होकर णिच्को लाभ करै। आक्रन्दयति । अन्य मतसे तो आङ्पूर्वक घुषि धातुसे क्रन्दसातत्य अर्थमें णिच् होगा। आघोषयति ॥ लस धातु शिल्पयोगमें है॥ तसि और भूष धातु अलंकरणमें है। अवतंसयति । अवतंसति। भूषयति ॥ अर्ह धातु पूजामें है ॥ ज्ञा धातु नियोगमें है। आज्ञापयति ॥ भज धातु वितरण करनेमें है ॥ शृधु धातु प्रहसनमें है। अशशर्द्धत्, अशीशृधत् ॥ यत धातु निकार और उपस्कारमें है ॥ रक और लग धातु आस्वादनमें है। कोई २ रघ धातु कहतेहैं। कोई २ रग धातु कहतेहैं ॥ अंचु धातु विशेषणमें है। अञ्चयति। उकार इत् होनेसे क्त्वा प्रत्ययसे होनेपर विकल्प करके इट् होगा. इसी कारण णिच् भी विकल्पसे होताहै। अञ्चति । इसी प्रकार शृधु, जसु आदि धातुओंके क्त्वा प्रत्ययमें रूप होंगे ॥ लिगि धातु चित्रीकरणमें है। लिङ्गयति, लिंगति ॥ मुद धातु संसर्गमें है। 'मोदयति सक्तून् घृतेन

त्रस धातु धारणमें किसीके मतसे ग्रहणमें है । अन्य मतसे वारणार्थमें है ॥ उध्रस धातु उञ्छमें है । कोई २ कहतेहैं, उकार धातुका ही अवयव है । अन्य मतसे ऐसा नहीं, उध्रासयति, ध्रासयति ॥ मुच धातु प्रमोचन और मोदनमें है।वस धातु स्नेह, छेद और अपहरणमें है ॥ चर धातु संशयमेंहै ॥ च्यु धातु सहनमें है । किसी २ के मतसे हसनमें है । च्यावयति । कोई २ च्युस धातु कहतेहैं । च्योसयति ॥

अवकल्कन, अर्थमें ही भू धातुके उत्तर णिच् हो ॥ कोई २ अवकल्कन शब्दका मिश्रीकरण और कोई २ चिन्तन अर्थ कहतेहैं । भावयति । कृप धातुसे भी अवकल्पनार्थमें णिच् हो—कल्पयति ॥

"आस्वदः सकर्मकात्" अर्थात् स्वदि धातु पर्यन्त सकर्मक धातुओंके ही उत्तर णिच् हो । ग्रस धातु ग्रहण करनेमें है । ग्रासयति फलम् ॥ पुष धातु धारणमें है । पोषयति आभरणम्। दल धातु विदारणार्थमें है । दालयति ॥ पट, पुट, लुट, तुजि, मिजि, पिजि, लुजि, भजि, लघि, त्रसि, पिसि, कुसि, दशि, कुशि, घट, घटि, बृहि, बर्ह, बल्ह, गुप, धूप, विच्छ, चीव, पुथ, लोकृ, लोचृ, णद, कुप, तर्क, वृतु और वृधु धातु भाषार्थक हैं । पाटयति । पोटयति । लोटयति । तुञ्जयति, तुञ्जति । इसी प्रकार अन्य धातुओंके भी रूप होंगे । घाटयति । घण्टयति ॥

२५७२ नाग्लोपिशास्वृदिताम्।७।४।२॥

णिच्यग्लोपिनः शास्तेर्ऋदितां च उपधाया ह्रस्वो न स्याच्चङ्परे णौ । अलुलोकत् । अलुलोचत् । वर्तयति । वर्धयति । उदित्त्वाद्वर्तति । वर्धति ॥ ३४ ॥ रुट लजि अजि दसि भृशि रुशि शीक नट पुटि जि चि रघि लघि अहि रहि महि च ॥ ४९ ॥ लडि तड नल च॥५२॥ पूरी आप्यायने ॥ ईदित्त्वं निष्ठायामिण्निषेधाय । अत एव णिज्वा । पूरयति । पूरति ॥५३ ॥ रुज हिंसायाम् ॥ ५४ ॥ ष्वद आस्वादने । स्वाद इत्येके ॥ असिष्वदत् । दीर्घस्य त्वषोपदेशत्वात् असिस्वदत् ॥ ५६ ॥ (इत्यास्वदीयाः)

आधृषाद्वा ॥ इत ऊर्ध्वं विभाषितणिचो धृषधातुमभिव्याप्य ॥ युज पृच संयमने । योजयति । योजति । अयौक्षीत् । पर्चयति । पर्चति । पर्चिता । अपर्चीत् ॥ २ ॥ अर्च पूजायाम् ॥ ॥ ३ ॥ षह मर्षणे ॥ साहयति । स एवायं नागः सहति कलभेभ्यः परिभवम् ॥ ४ ॥ ईर क्षेपे ॥ ५ ॥ ली द्रवीकरणे ॥ लाययति । लयति । लेता ॥ ६ ॥ वृजी वर्जने ॥ वर्जयति । वर्जति ॥ ७ ॥ वृञ् आवरणे ॥ वारयति । वरति । वरते । वरीता—वरिता ॥ ८ ॥ जॄ वयोहानौ । जारयति । जरति । जरीता—जरिता ॥ ९ ॥ ज्रि च ॥ ज्राययति । ज्रयति ॥ ज्रेता ॥ १० ॥ रिच वियोजनसम्पर्चनयोः ॥ रेचयति । रेचति । रेक्ता ॥ ११ ॥ शिष असर्वोपयोगे ॥ शेषयति । शेषति । शेष्टा । अशिक्षत् । अयं विपूर्वोऽतिशये ॥ १२ ॥ तप दाहे ॥ तापयति । तपति । तप्ता ॥ १३ ॥ तृप तृप्तौ ॥ सन्दीपने इत्येके । तर्पयति । तर्पति । तर्पिता ॥ १४ ॥ छृदी सन्दीपने ॥ छर्दयति । छर्दति । छर्दिता । छर्दिष्यति । सेसिचीति विकल्पो न । साहचर्यात्तत्र रौधादिकस्यैव ग्रहणात् ॥ १५ ॥ चृप छृप दृप सन्दीपन इत्येके ॥ चर्पयति । छर्पयति ॥ १८ ॥ दृभी भये । दर्भयति । दर्भति । दर्भिता ॥ १९ ॥ दृभ सन्दर्भे ॥ अयं तुदादावीदित् ॥ २० ॥ श्रथ मोक्षणे ॥ हिंसायामित्येके ॥ २१ ॥ मी गतौ ॥ माययति । मयति । मेता ॥ २२ ॥ ग्रन्थ बन्धने ॥ ग्रन्थयति । ग्रन्थति ॥ २३ ॥ शीक आमर्षणे ॥२४॥ चीक च ॥ २५ ॥ अर्द हिंसायाम् । स्वरितेत् । अर्दयति । अर्दति । अर्दते ॥ २६ ॥ हिसि हिंसायाम् ॥ हिंसयति । हिंसति । हिनस्तीति श्नमि गतम् ॥ २७ ॥ अर्ह पूजायाम् ॥ २८ ॥ आङः षद पद्यर्थे ॥ आसादयति । आसीदति । पाघ्रेति सीदादेशः । आसत्ता । आसात्सीत् ॥ २९ ॥ शुन्ध शौचकर्मणि ॥ शुन्धिता । अशुन्धीत् । अशुन्धिष्टाम् ॥ ३० ॥ छद अपवारणे । स्वरितेत् ॥ ३१ ॥ जुष परितर्कणे ॥ परितर्कणमूहो हिंसा वा ॥ परितर्पण इत्यन्ये । परितर्पणं परितृप्तिक्रिया । जोषयति । जोषति । प्रीतिसेवनयोर्जुषते इति तुदादौ ॥३२॥ धूञ् कम्पने ॥ णावित्यधिकृत्य ॥ धञ्प्रीञोर्नुग्वक्तव्यः ॥ * ॥ धूनयति । धवति । धवते । केचित्तु धूञ्प्रीणोरिति पठित्वा प्रीणातिसाहचर्याद्धुनातेरेव नुकमाहुः । धावयति ॥ ३३ ॥ अयं स्वादौ क्र्यादौ तुदादौ च । स्वादौ ह्रस्वश्च । तथा च कविरहस्ये॥

> धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोकं
> चूतं धुनाति धुवति स्फुटितातिमुक्तम् ॥
> वायुर्विधूनयति चम्पकपुष्परेणून्
> यत्कानने धवति चन्दनमञ्जरीश्च ॥ १ ॥

प्रीञ् तर्पणे ॥ प्रीणयति । धूञ्प्रीणोरिति हरदत्तोक्तपाठे तु । प्राययति । प्रयति । प्रयते ॥ ३४॥ श्रन्थ ग्रन्थ सन्दर्भे ॥ ३६ ॥ आप्लृ लम्भने ॥

आपयति । आपिपत् । आपति । आप्ता । आपत् । स्वरितेदयमित्येके । आपते ॥ ३७ ॥ तनु श्रद्धोपकरणयोः ॥ उपसर्गाच्च दैर्घ्ये ॥ तानयति । वितानयति। तनति। वितनति॥३८॥ चन श्रद्धोपहननयोरित्येके ॥ चानयति । चनति ॥ ३९ ॥ वद सन्देशवचने ॥ वादयति । स्वरितेत् । वदति । वदते । ववदतुः । ववदिथ । वद्यात् । अनुदात्तेदित्येके । ववदे ॥ ४० ॥ वच परिभाषणे । वाचयति । वचति । वक्ता । अवाक्षीत् ॥ ४१ ॥ मान पूजायाम् ॥ मानयति । मानति । मानिता । विचारणे तु भौवादिको नित्यसन्नन्तः । स्तम्भे–मानयते । इत्याकुस्मीयाः॥ मन्यते इति दिवादौ । मनुते इति तनादौ च ॥ ४२ ॥ भू प्राप्तावात्मनेपदी ॥ भावयते । भवते । णिच्सन्नियोगेनैवात्मनेपदमित्येके । भवति ॥४३॥ गर्ह विनिन्दने ॥४४॥ मार्ग अन्वेषणे ॥ ४५ ॥ कठि शोके ॥ उत्पूर्वोयमुत्कण्ठायाम्।कण्ठते इत्यात्मनेपदीगतः॥४६॥ मृजू शौचालंकारयोः । मार्जयति । मार्जति । मार्जिता–मार्ष्टा ॥ ४७ ॥ मृष तितिक्षायाम् । स्वरितेत् । मर्षयति । मर्षति । मर्षते । मृष्यति मृष्यते इति दिवादौ॥ सेचने शपि मर्षति॥४८॥ धृष प्रसहने॥धर्षयति।धर्षति।४९।इत्याधृषीयाः॥

अथादन्ताः ॥ कथ वाक्यप्रबन्धे ॥ अल्लोपस्य स्थानिवद्भावान्न वृद्धिः । कथयति। अग्लोपित्वान्न दीर्घसन्वद्भावौ । अचकथत् ॥ १ ॥ वर ईप्सायाम् ॥ वरयति । वारयतीति गतम् ॥ २ ॥ गण संख्याने ॥ गणयति ॥

२५७२–णिच् परे अग्लोपि, शास् और ऋकारान्त धातुकी उपधाको चङ् परे रहते ह्रस्व न हो, अलुलोकत् । अलुलोचत् । वर्तयति । वर्द्धयति । उकारकी इत्संज्ञा होनेके कारण, वर्त्तति । वर्धति ॥ रुट, लजि, अजि, दसि, भृशि, रुशि, शीक, नट, पुटि, जिवि, रघि, लघि, अहि, रहि, महि, लडि तड और नल धातु भाषार्थक हैं ॥ पूरी धातु आप्यायनमें है । निष्ठामें इट् निषेधके निमित्त ईदित्व है, इसी कारण विकल्प करके णिच् होगा, पूरयति, पूरति ॥ रुज धातु हिंसामें है ॥ ष्वद धातु आस्वादनमें है । कोई स्वाद धातु कहतेहैं । असिष्वदत् । दीर्घका तो षोपदेश न होनेसे षत्व न होगा । असिस्वदत् ॥

"आधृषाद्वा" यहांसे युज धातुतक विकल्प करके णिच् हो। युज और पृच धातु संयमनमें है । योजयति, योजति । अयौक्षीत् ॥ पर्चयति, पर्चति । पर्चिता । अपर्चीत् ॥ अर्च धातु पूजामें है ॥ षह धातु मर्षणमें है । साहयति । 'स एवायं नागः

सहति कलभेभ्यः परिभवम्' ॥ ईर धातु क्षेपमें है ॥ ली धातु द्रवीकरणमें है । लाययति, लयति । लेता ॥ वृजी धातु वर्जनमें है । वर्जयति, वर्जति ॥ वृञ् धातु आवरणमें है । वारयति, वरति । वरते । वरीता, वरिता ॥ जॄ धातु वयोहानिमें है । जारयति, जरति ॥ जरीता, जरिता॥ ज्रि धातु वयोहानिमें है । ज्राययति, ज्रयति । ज्रेता ॥ रिच धातु वियोजन और सम्पर्चनमें है । रेचयति, रेचति । रेक्ता ॥ शिष धातु असर्वोपयोगमें है । शेषयति, शेषति । शेष्टा । अशिक्षत् । विपूर्वक शिष धातु अतिशयमें है ॥ तप धातु दाहमें है । तापयति, तपति । तप्ता ॥ तृप धातु तृप्तिमें है । किसीके मतसे सन्दीपनमें है । तर्पयति, तर्पति । तर्पिता ॥ छृदी धातु सन्दीपनमें है। छर्दयति, छर्दति । छर्दिता । छर्दिष्यति। यहां "सेसिचि० २५०६" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् न होगा, कारण कि, साहचर्य्यसे उस स्थलमें रुधादिगणीय धातुका ही ग्रहण है ॥ चृप, छृप, दृप, धातु सन्दीपनमें हैं, ऐसा कोई २ कहतेहैं । चर्पयति । छर्पयति ॥ दृभी धातु भयमें है, दर्भयति, दर्भति । दर्भिता ॥ दृभ धातु सन्दर्भमें है, यह धातु तुदादिगणमें ईदित् है ॥ श्रथ धातु मोक्षणमें है । किसीके मतसे हिंसामें है ॥ मी धातु गतिमें है । माययति, मयति । मेता ॥ ग्रन्थ धातु बंधनमें है । ग्रन्थयति, ग्रन्थति ॥ सीक धातु आमर्षणमें है । चीक धातु भी उक्तार्थमें है ॥ अर्द धातु हिंसामें है, यह उभयपदी है । अर्दयति, अर्दति । अर्दते ॥ हिसि धातु हिंसामें है । हिंसयति, हिंसति । 'हिनस्ति' ऐसा पद तो श्नम् प्रत्यय करके पूर्वमें वर्णित हुआहै॥ अर्ह धातु पूजामें है ।

आङ्पूर्वक षद धातु पद्यर्थ (प्राप्त्यर्थ) में है । आसादयति, आसीदति । यहां "पाघ्रा० २३६०" इस सूत्रसे सद धातुके स्थानमें सीद आदेश हुआ । आसत्ता । आसात्सीत् ॥ शुन्ध धातु शौचकर्ममें है । शुन्धिता । अशुन्धीत् । अशुन्धिष्टाम् ॥ छद धातु अपवारणमें है, यह उभयपदी है ॥ जुष धातु परितर्कण, अर्थात् वितर्क वा हिंसामें है । अन्य मतसे परितर्पणमें है । जोषयति, जोषति । प्रीति और सेवार्थमें 'जुषते' ऐसा तुदादिमें होताहै ॥ धूञ् धातु कम्पनमें है । 'णौ' इसका अधिकार करके ।

धूञ् और प्रीञ् धातुको नुगागम हो णि परे रहते । धूनयति, धवति, धवते । कोई २ 'धूञ् प्रीणोः' ऐसा पाठ करके प्री धातुके साहचर्य्यसे क्र्यादिगणीय धू धातुको ही नुक् हो, ऐसा कहतेहैं । धावयति। यह धातु स्वादि, क्र्यादि और तुदादिगणमें पठित है । स्वादिमें यह ह्रस्व है । इसीको कविरहस्यमें कहेहैं, यथा–' धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोकं चूतं धुनाति धुवति स्फुटितातिमुक्तम् ॥ वायुर्विधूनयति चम्पकपुष्परेणून् यत्काननं भवति चन्दनमञ्जरीश्च ॥' सब उपरोक्त गणोंके रूप इसमें आगये ॥ प्रीञ् धातु तर्पणमें है । प्रीणयति । 'धूञ्प्रीणोः' ऐसे हरदत्तोक्त पाठमें प्राययति, प्रयति । प्रयते ॥ श्रन्थ और ग्रन्थ धातु सन्दर्भमें है ॥ आप्लृ धातु लम्भनमें है । आपयति, आपिपत् । आपति । आप्ता । आपत् । कोई कहतेहैं, यह धातु उभयपदी है, आपते ॥ तनु धातु श्रद्धा और उपकरणमें है ।

उपसर्गपूर्वक तन धातुसे दैर्घ्यार्थमें णिच् हो। तानयति। वितानयति। तनति। वितनति॥ चन धातु श्रद्धा और उपहननमें है, ऐसा कोई कहतेहैं। चानयति। चनति॥ वद धातु सन्देशवचनमें है, यह स्वरितेत् है। वादयति, वदति। वदते। ववदतुः। ववदिय। वद्यात्। कोई २ कहतेहैं, यह अनुदात्तेत् है। ववदे॥ वच धातु परिभाषणमें है। वाचयति, वचति। वक्ता। अवाक्षीत्॥ मान धातु पूजामें है मानयति, मानति। मानिता। विचारार्थमें तो भ्वादिगणीय मान धातु नित्य सन्नन्त है। स्तम्भार्थमें 'मानयते' यह आकुस्मीय है। मन्यते ऐसा पद दिवादिगणमें होताहै। तनादिगणमें 'मनुते' ऐसा पद होताहै॥ प्राप्ति अर्थमें भू धातु आत्मनेपदी हो। भावयते, भवते। कोई कहतेहैं णिच् सन्नियोगसे ही आत्मनेपद हो, इससे भवति॥ गर्ह धातु विनिन्दामें है॥ मार्ग धातु अन्वेषणमें है॥ कठि धातु शोकमें है। उत्पूर्वक होनेपर इस धातुको उत्कंठामें समझना। कण्ठते।

आत्मनेपदी धातु कथित हुए।

मृज धातु शौच और अलंकारमें है। मार्जयति—मार्जति। मार्जिता, मार्ष्टा॥ मृष धातु तितिक्षामें है, यह स्वरितेत् है। मर्षयति, मर्षति। मर्षते। मृष्यति। मृष्यते, इस प्रकार दिवादिमें होताहै। सेचन अर्थमें शप् करके मर्षति होताहै॥ धृष धातु प्रहसनमें है। धर्षयति, धर्षति॥

आधृषीय धातु समाप्त हुए।

अब अदन्त धातु कहतेहैं। कथ धातु वाक्यप्रबंधमें है। अकारलोपके स्थानिवद्भावके कारण वृद्धि नहीं होगी, कथयति। अग्लोपित्वके कारण दीर्घ और सन्वद्भाव नहीं होगा, अचकथत्॥ वर धातु ईप्सामें है। वरयति। वारयति, यह पद पूर्वमें कहेहैं॥ गण धातु संख्यानमें है। गणयति॥

२५७३ ई च गणः। ७। ४। ९७॥

गणेरभ्यासस्य ईत्स्याच्चङ्परे णौ। चादत्। अजीगणत्। अजगणत्॥ ३॥ शठ श्वठ सम्यगवभाषणे॥५॥ पट वट ग्रन्थे॥ ७॥ रह त्यागे। अररहत्॥८॥ स्तनगदी देवशब्दे। स्तनयति। गदयति। अजगदत्॥ १०॥ पत गतौ वा॥ वा णिजन्तः। वाऽदन्त इत्येके। आद्ये। पतयति। पतति। पतांचकार। अपतीत्। द्वितीये। पातयति। अपीपतत्॥ ११॥ पष अनुपसर्गात्॥ गतावित्येव। पषयति॥ १२॥ स्वर आक्षेपे॥ स्वरयति। १३॥ रच प्रतियत्ने॥ रचयति॥ १४॥ कल गतौ संख्याने च॥ १५॥ चह परिकल्कने॥ परिकल्कनं दम्भः शाठ्यं च॥ १६॥ मह पूजायाम्॥ महयति। महतीति शपि गतम्॥ १७॥ सार कृप श्रथ दौर्बल्ये॥ सारयति। कृपयति। श्रथयति॥ २०॥ स्पृह ईप्सायाम्॥ २१॥ भाम क्रोधे॥ अबभामत॥ २२॥ सूच पैशुन्ये॥ सूचयति। अषोपदेशत्वान्न षः। असूसुचत्॥ २३॥ खेट भक्षणे॥ तृतीयान्त इत्येके॥ खोट इत्यन्ये॥ २६॥ क्षोट क्षेपे॥ २७॥ गोम उपलेपने॥ अजुगोमत्॥ २८॥ कुमार क्रीडायाम्॥ अचुकुमारत्॥ २९॥ शील उपधारणे॥ उपधारणमभ्यासः॥ ३०॥ साम सान्त्वप्रयोगे॥ अससामत्। साम सान्त्वने इत्यतीतस्य तु असीषमत्॥ ३१॥ वेल कालोपदेशे॥ वेलयति॥ ३२॥ काल इति पृथग्धातुरित्येके। कालयति॥ ३३॥ पल्यूल लवनपवनयोः॥ ३४॥ वात सुखसेवनयोः॥ गतिसुखसेवनेष्वित्येके॥ वातयति। अववातत्॥ ३५॥ गवेष मार्गणे॥ अजगवेषत्॥ ३६॥ वास उपसेवायाम्॥ ३७॥ निवास आच्छादने॥ अनिनिवासत॥ ३८॥ भाज पृथक्कर्मणि॥ ३९॥ सभाज प्रीतिदर्शनयोः, प्रीतिसेवनयोरित्यन्ये॥ सभाजयति॥ ४०॥ ऊन परिहाणे॥ ऊनयति। ओः पुयण्जि इति सूत्रे पययोरितिवक्तव्ये वर्णप्रत्याहारजकारग्रहो लिङ्गं णिचि अच आदेशो न स्याद्द्वित्वे कार्ये इति। यत्र द्विरुक्तावभ्यासोत्तरखण्डस्याद्योऽच् प्रक्रियायां परिनिष्ठिते रूपे वाऽवर्णो लभ्यते तत्रैवायं निषेधः। ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वात्तेनाचिकीर्त्तदिति सिद्धम्। प्रकृते तु नशब्दस्य द्वित्वं तत उत्तरखण्डेऽल्लोपः। औननत्। मा भवानूननत्॥ ४१॥ ध्वन शब्दे॥ अदध्वनत्॥ ४२॥ कूट परितापे॥ परिदाहे इत्यन्ये॥ ४३॥ संकेत ग्राम कुण गुण चामन्त्रणे॥ चात्कूटोऽपि। कूटयति। संकेतयति। ग्रामयति। कुणयति। गुणयति पाठान्तरम्॥ केत श्रावणे निमन्त्रणे च। केतयति। निकेतयति॥ कुण गुण चामन्त्रणे॥ चकारात्केतने। कूण संकोचने इति॥ ४८॥ स्तेन चौर्ये॥ अतिस्तेनत्॥ ४९॥

आगर्वादात्मनेपदिनः॥ पद गतौ॥ पदयते। अपपदत॥ १॥ गृह ग्रहणे॥ गृहयते॥ २॥ मृग अन्वेषणे॥ मृगयते। मृग्यतीति कण्ड्वादिः॥ ३॥ कुह विस्मापने॥ ४॥ शूर वीर विक्रान्तौ॥ ६॥ स्थूल परिबृंहणे॥ स्थूलयते। अतुस्थूलत्॥ ७॥ अर्थ उपयाच्ञायाम्॥ अर्थयते। आर्तथत॥ ८॥ सत्र सन्तानक्रियायाम्॥ असंसत्रत। अनेकाच्त्वान्न षोपदेशः। सिसत्रयिषते॥ ९॥ गर्व माने। गर्वयते।

अदन्तत्वसामर्थ्याण्णिज्विकल्पः । धातोरन्त उदात्तो लिट्याम् च फलम् । एवमग्रेऽपि ॥ १० ॥ इत्यागर्वीयाः ॥

सूत्र वेष्टने ॥ सूत्रयति । असुसूत्रत् ॥ १ ॥ मूत्र प्रस्रवणे ॥ मूत्रयति । मूत्रति ॥ २ ॥ रूक्ष पारुष्ये ॥ ३ ॥ पार तीर कर्मसमाप्तौ ॥ अपपारत् । अतितीरत् ॥ ५ ॥ पुट संसर्गे ॥ पुटयति ॥ ६ ॥ धेक दर्शने इत्येके ॥ अदिधेकत् ॥ ७ ॥ कत्र शैथिल्ये ॥ कत्रयति । कत्रति ॥ कर्तेत्यप्येके ॥ कर्तयति । कर्तति ॥ ९ ॥ प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च । प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यादिष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभावटिलोपविन्मतुब्लोपयणादिलोपप्रस्थस्फाद्यादेशभसंज्ञास्तद्वण्णावपि स्युः । पटुमाचष्टे पटयति । परत्वाद् वृद्धौ सत्यां टिलोपः । अपीपटत् । णौ चङीत्यत्र भाष्ये तु वृद्धेर्लोपो बलीयानिति स्थितम् । अपपटत् ॥ तत्करोति ॥ तदाचष्टे ॥ पूर्वस्य प्रपञ्चः ॥ करोत्याचष्ट इति धात्वर्थमात्रं णिजर्थः ॥ लडर्थस्त्वविवक्षितः ॥ तेनातिक्रामति । अश्वेनातिक्रामति अश्वयति । हस्तिनातिक्रामति हस्तयति ॥ धातुरूपं च ॥ णिच्प्रकृतिर्धातुरूपं प्रतिपद्यते । चशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तथा च वार्तिकम् ॥ आख्यानात्कृतस्तदाचष्टे कृल्लुक्प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकमिति ॥ * ॥ कंसवधमाचष्टे कंसं घातयति । इह कंसं हन् इ इति स्थिते ॥

२५७३–चङ् परे है जिससे ऐसे णिच् परे रहते गण धातुके अभ्यासको ईत् हो, चकारसे अत् भी हो, अजीगणत् । अजगणत् ॥ शठ और श्वठ धातु सम्यक् अवभाषणमें हैं ॥ पट और वट धातु ग्रन्थमें हैं ॥ रह धातु त्यागमें है । अरहत् ॥ स्तन धातु और गदी धातु देवशब्दमें है । स्तनयति । गदयति । अजगदत् ॥ पत धातु गतिमें विकल्प करके णिजन्त हो, विकल्प करके अदन्त ऐसा हो कोई २ कहतेहै । आद्ये पतयति, पतति । पताञ्चकार । अपतीत् । द्वितीये पातयति । अपीपतत् ॥ अनु उपसर्गके परे पष धातुको गतिमें समझना । पषयति ॥ स्वर धातु आक्षेपमें है । स्वरयति ॥ रच धातु प्रतियत्नमें है । रचयति ॥ कल धातु गति और संख्यानमें है ॥ चह धातु परिकल्कनमें है । परिकल्कन शब्दसे दम्भ और शाठ्य समझना ॥ मह धातु पूजामें है । महयति । 'महति' यह पद शप् परे कह आएहै ॥ सार, कृप और श्रथ धातु दौर्बल्यमें है । सारयति । कृपयति । श्रथयति ॥ स्पृह धातु स्पृहामें है ॥ भाम धातु क्रोधमें है । अबभामत् ॥ सूच धातु पिशुनतामें है । सूचयति । अषोपदेशत्वके कारण षत्व नहीं होगा, असूसुचत् ॥ खेट धातु भक्षणमें है । कोई २ कहतेहैं, यह धातु तृतीयान्त अर्थात् खेड है । अन्यमतसे खोट धातु है ॥ क्षोट धातु क्षेप, अर्थात् निन्दामें है ॥ गोम धातु उपलेपनमें है । अजुगोमत् ॥ कुमार धातु क्रीडामें है । अचुकुमारत् ॥ शील धातु उपधारणमें है । उपधारण, अर्थात् अभ्यास ॥ साम धातु सान्त्वनमें है । अससामत् । षाम सान्त्वने ऐसे पूर्वमें उल्लिखित धातुका तो 'असीषमत्' पद होगा ॥ वेल धातु कालोपदेशमें है । वेलयति । कोई कहतेहैं काल यह पृथक् धातु है । कालयति ॥ पल्यूल धातु लवन (काटने) और पवनमें है । वात धातु सुख और सेवनमें है । कोई कहतेहैं उक्त धातुका गति, सुख और सेवन अर्थ है । वातयति । अववातत् ॥ गवेष धातु अन्वेषणमें है । अजगवेषत् ॥ वास धातु उपसेवामें है । निवास धातु आच्छादनमें है । अनिनिवासत् ॥ भाज धातु पृथक् करनेमें है ॥ सभाज धातु प्रीति और दर्शनमें है । अन्यमतसे प्रीति और सेवनमें है । सभाजयति ॥ ऊन धातु परिहाणमें है । ऊनयति ।

ऊन धातुसे णिच् पश्चात् लुङ् मध्यमें च्लि प्रत्यय, उसको चङादेश होकर–'ऊन–इ–अत्' ऐसी स्थिति होनेपर णिलोप और "चङि" इससे अजादि धातुके द्वितीय एकाच् न शब्दको द्वित्व और अकारका लोप हुआ तब णिच् परे अग्लोपित्व होनेसे सन्वद्भावके अभावके कारण अभ्यासमें इत्व और दीर्घ न होकर आटको वृद्धि करके 'औननत्' ऐसा रूप होताहै, परन्तु वह अनुपपन्न है, कारण कि, द्वित्वसे पहले परत्वके कारण अकारका लोप करनेपर नि शब्दको द्वित्व होनेसे अभ्यासमें इकारश्रवण होगा, यदि कहो कि, द्वित्व कर्त्तव्य रहते "द्विर्वचनेऽचि" इससे अतोलोपका निषेध होगा वह नहीं कह सकते हो; कारण कि, अल्लोपनिमित्तक णिच्का द्वित्वनिमित्तत्व नहीं है ? इसपर कहतेहैं कि, "ओः पुयण्ज्यपरे २५७७" इस सूत्रमें 'पयोः' ऐसा नहीं कहकर वर्ग प्रत्याहार और जकार ग्रहण जो कियाहै, उससे यह ज्ञापित होताहै कि, द्वित्व कर्त्तव्य रहते णिच् परे अच्स्थानिक आदेश नहीं हो, नहीं तो बिभावयिषति । यियावयिषति । रिरावयिषति । लिलावयिषति । जिजावयिषति, इत्यादि स्थलमें भी द्वित्वके प्रति णिच्को निमित्तत्व न होनेसे "द्विर्वचनेऽचि २२४३" इसकी प्रवृत्ति न होनेपर द्वित्वसे परत्वके कारण वृद्धि, आवादेश होगा, पश्चात् द्वित्व, अभ्यासको ह्रस्व होनेपर "सन्यतः" इसीसे इत्व सिद्ध होनेसे पवर्ग, यण्, जकारग्रहण व्यर्थ ही होजाता । पकार थकारग्रहण तो व्यर्थ नहीं है, कारण कि, 'पिपविषते, यियविषति' यहां पूङ्, यु धातुसे सन् प्रत्ययके समभिव्याहारमें "स्मि पूङ्रञ्ज्वशां सनि" "सनीवन्तर्ध०" इन सूत्रोंसे इट् होनेपर इडादि सन् प्रत्ययको द्वित्वनिमित्तत्वके कारण इट्को भी द्वित्वनिमित्त होनेसे "द्विर्वचनेऽचि" इससे गुण, अवादेशको निषेधके कारण द्वित्व होनेपर अभ्यासमें उकारका श्रवण न हो, इसलिये चरितार्थ है।

यदि कहो कि, इस प्रकार ज्ञापन करनेपर कृत धातुके उत्तर णिच् पश्चात् लुङ् चङ् करनेपर ऋकारके स्थानमें 'इर्' आदेश और द्वित्वकी प्राप्ति हुई, परन्तु इरादेशके पूर्वमें ही उक्त ज्ञापनसे द्वित्व होगा, पश्चात् "उरत्" इस

सूत्रसे अभ्यास ऋकारके स्थानमें अर् और अभ्यासावयवका लोप होकर-' अचकीर्त्तत् ' ऐसा रूप होजायगा, इस कारण कहतेहैं कि, जिस धातुमें द्विरुक्ति होनेपर अभ्यासके उत्तर खण्डका आदि अच् प्रक्रियादशामें अथवा परिनिष्ठित रूपमें अवर्णको प्राप्त हो उस धातुमें यह निषेध हो, क्योंकि, ज्ञापक समान जातीयकी अपेक्षा करताहै, इस कारण ' अचिकीर्तत् ' इत्यादि पद सिद्ध हुए हैं । प्रकृत स्थलमें तो नकारको द्वित्व पश्चात् उत्तर खण्डमें अकारका लोप होकर-' औननत् ' पद सिद्ध हुआ । मा भवानूननत् ॥ ध्वन धातु शब्द करनेमें है । अदध्वनत् ॥ कूट धातु परिताप करनेमें है । अन्यमतसे परिदाहमें समझना ॥ सङ्केत, ग्राम, कुण, गुण और चकारसे कूट धातु आमंत्रणमें है । कूटयति । संकेतयति । ग्रामयति । कुणयति । गुणयति ॥ केत धातु श्रावण, अर्थात् श्रवण कराने और निमंत्रणमें है । केतयति । निकेतयति ॥ कुण और गुण धातु आमंत्रण और चकारसे केतनमें हैं ॥ कूण धातु संकोचार्थक समझना ॥ स्तेन धातु चौर्य्यमें है । अतिस्तेनत् ॥

अब गर्व धातुपर्य्यन्त आत्मनेपदी हैं ।

पद धातु गतिमें है । पदयते । अपपदत ॥ गृह धातु ग्रहणमें है । गृहयते॥मृग धातु अन्वेषणमें है। मृगयते।'मृग्यति' ऐसा पद कण्ड्वादिगणमें होताहै ॥ कुह धातु विस्मापनमें है॥ शूर और वीर धातु विक्रान्तिमें है ॥ स्थूल धातु परिबृंहणमें है । स्थूलयते । अतुस्थूलत ॥ अर्थ धातु उपयाच्ञामें है । अर्थयते । आर्त्तथत ॥ सत्र धातु विस्तार करनेमें है । अससत्रत । अनेकाच्त्वके कारण षोपदेश न होनेसे-सिसत्रयिषते॥ गर्व धातु मानमें है । गर्वयते । अकारान्तत्वके कारण इसके उत्तर विकल्प करके णिच् होगा,उस धातुका अन्त्य स्वर उदात्त, और लिट् परे आम् प्रत्यय यह फल है । इस प्रकार आगे भी जानना चाहिये ।

आगर्वीय गण समाप्त हुआ ।

सूत्र धातु वेष्टनमें है । सूत्रयति । असुसूत्रत् ॥ मूत्र धातु प्रस्रवणमें है । मूत्रयति ॥ रूक्ष धातु पारुष्य, अर्थात् कठोरतामें है ॥ पार और तीर धातु कर्मसमाप्तिमें हैं । अपपारत् । अतितीरत् ॥ पुट धातु संसर्गमें है । पुटयति ॥ किसीके मतसे धेक धातु दर्शनमें है । अदिधेकत् ॥ कत्र धातु शिथिलतामें है । कत्रयति, कत्रति । किसीके मतसे कर्त्त धातु है । कर्त्तयति, कर्त्तति ।

प्रातिपदिकके उत्तर धात्वर्थमें णिच् हो, और इष्ठन् प्रत्यय परे रहते जिस प्रकार पुंवद्भाव, टिका लोप, विन् और मतुप् प्रत्ययका लोप, यणादि लोप, प्र, स्थ, स्फ आदि आदेश और भसंज्ञा होती हैं, उसी प्रकार णिच् परे रहते भी उक्त समस्त कार्य हों । पटुमाचष्टे इस विग्रहमें पटयति । परत्वके कारण वृद्धि होनेसे टिका लोप होकर-अपीपटत् । " णौ चङि० २३१४"इस सूत्रके भाष्यमें तो वृद्धिसे लोप बलवान् है, ऐसा है । इसमें अग्लोपित्वके कारण सन्वद्भाव दीर्घ न होकर-अपपटत् ।

" करोति आचष्टे " इस अर्थमें द्वितीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर णिच् हो । पूर्वमें जो " प्रातिपदिकात् धात्वर्थे०" यह गणसूत्र है, उसका ही प्रपञ्च यह गणसूत्र है । करोति आचष्टे, यह जो धात्वर्थ है वही णिच्का अर्थ है, लट्का अर्थ तो विवक्षित नहीं है ।

" तेनातिक्रामति " 'अतिक्रामति ' इस अर्थमें तृतीयान्त प्रातिपदिकके उत्तर णिच् हो, अश्वेनातिक्रामति, इस विग्रहमें अश्वयति । हस्तिनातिक्रामति, इस विग्रहमें हस्तयति ।

" धातुरूपञ्च " णिच् प्रकृति धातुरूपको प्राप्त हो, इस स्थलमें च शब्द अनुक्त समुच्चयार्थक है, वैसे ही वार्त्तिक है कि,

आख्यानवाचक कृदन्त शब्दके उत्तर ' आचष्टे ' इस अर्थमें कृत् प्रत्ययका लुक् और प्रकृतिप्रत्ययापत्ति, अर्थात् आदेशादि विकारके परित्याग करके स्वरूपमें अवस्थान और प्रकृतिकी समान कारक हो * कंसवधमाचष्टे=कंसं घातयति, इस स्थलमें कंसं+हन्-इ ऐसा होनेपर-॥

२५७४ हनस्तोऽचिण्णलोः ।७।३।३२॥

हन्तेस्तकारोऽन्तादेशः स्याच्चिण्णल्वर्जे ञिति णिति । नन्वत्राङ्गसंज्ञा धातुसंज्ञा च कंसविशिष्टस्य प्राप्ता । ततश्चाड्द्वित्वयोर्दोषः । किं च। कुत्वतत्वे न स्याताम् ॥ धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानात् । सत्यम् । प्रकृतिवच्चेति चकारो भिन्नक्रमः । कारकं च चात्कार्यम् । हेतुमण्णिचः प्रकृतेर्हन्यादेर्हेतुमण्णौ यादृशं कारकं धातावनन्तर्भूतं द्वितीयान्तं यादृशं च कार्यं कुत्वतत्वादि तदिहापीत्यर्थः । कंसमजीघतत् ॥ कर्तृकरणाद्धात्वर्थे ॥ कर्तुर्व्यापारार्थं यत्करणं न तु चक्षुरादिमात्रमित्यर्थः । असिना हन्ति । असयति ॥ वष्क दर्शने ॥ १ ॥ चित्र चित्रीकरणे ॥ आलेख्यकरण इत्यर्थः ॥ कदाचिद्दर्शने ॥ चित्रेत्ययमद्भुतदर्शने णिचं लभते । चित्रयति ॥ २ ॥ अंस समाघाते ॥ ३ ॥ वट विभाजने ॥ ४ ॥ लज प्रकाशने ॥ वटि लजि इत्येके ॥ वण्टयति । लञ्जयति । अदन्तेषु पाठबलाददन्तत्वे वृद्धिरित्यन्ये । वण्टापयति । लञ्जापयति ॥ ७ ॥ शाकटायनस्तु कथादीनां सर्वेषां पुकमाह । तन्मते कथापयति । गणापयतीत्यादि ॥ मिश्र सम्पर्के ॥ ८ ॥ संग्राम युद्धे ॥ अयमनुदात्तेत् । अकारप्रश्लेषात् । अससंग्रामत ॥ ९ ॥ स्तोम श्लाघायाम् । अतुस्तोमत् ॥ १० ॥ छिद्र कर्णभेदने ॥ करणभेदन इत्यन्ये । कर्णेति धात्वन्तरमित्यन्ये ॥ १२ ॥ अन्ध दृष्ट्युपघाते ॥ उपसंहार इत्यन्ये । आन्दधत् ॥ ॥ १३ ॥ दण्ड दण्डनिपातने ॥ १४ ॥

अंक पदे लक्षणे च ॥ आञ्चकत् ॥ अङ्ग च ॥ आञ्जगत्॥१६॥सुख दुःख तत्क्रियायाम् ॥१८॥ रस आस्वादनस्नेहनयोः ॥ १९ ॥ व्यय वित्तसमुत्सर्गे ॥ अवव्ययत् ॥ २० ॥ रूप रूपक्रियायाम् ॥रूपस्य दर्शनं करणं वा रूपक्रिया॥२१॥ छेद द्वैधीकरणे ॥ अचिच्छेदत् ॥ २२ ॥ छद अपवारण इत्येके ॥ छदयति ॥ २३ ॥ लाभ प्रेरणे ॥ २४ ॥ व्रण गात्रविचूर्णने ॥ ॥ २५ ॥ वर्ण वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु ॥ वर्णक्रिया वर्णकरणम्, सुवर्णं वर्णयति। कथां वर्णयति। विस्तृणातीत्यर्थः। हरिं वर्णयति। स्तौतीत्यर्थः ॥ २६ ॥ बहुलमेतन्निदर्शनम् ॥ अदन्तधातुनिदर्शनमित्यर्थः। बाहुलकादन्येऽपि बोध्याः ॥ तद्यथा ॥ पर्ण हरितभावे ॥ अपपर्णत् ॥ विष्क दर्शने ॥ क्षप प्रेरणे ॥ वस निवासे ॥ तुत्थ आवरणे ॥ एवमान्दोलयति। प्रेङ्खोलयति। विडम्बयति। अवधीरयतीत्यादि। अन्ये तु दशगणीपाठो बहुलमित्याहुः। तेनापठिता अपि सौत्रलौकिकवैदिका बोध्याः। अपरे तु नवगणीपाठो बहुलमित्याहुः। तेनापठितेभ्योऽपि क्वचित्स्वार्थे णिच्। रामो राज्यमचीकरदिति यथेत्याहुः। चुरादिभ्य एव बहुलं णिजित्यर्थ इत्यन्ये। सर्वे पक्षाः प्राचां ग्रन्थे स्थिताः ॥ णिङङ्गान्निरसने ॥ अङ्गवाचिनः प्रातिपदिकान्निरसनेऽर्थे णिङ् स्यात्। हस्तौ निरस्यति–हस्तयते। पादयते। श्वेताश्वाश्वतरगालोडिताह्वरकाणामश्वतरेतकलोपश्च॥ श्वेताश्वादीनां चतुर्णामश्वादयो लुप्यन्ते णिङ् च धात्वर्थे। श्वेताश्वमाचष्टे तेनातिक्रामति वा श्वेतयते। अश्वतरमाचष्टेऽश्वयते। गालोडितं वाचां विमर्शः। तत्करोति गालोडयते। आह्वरयते। केचित्तु णिचमेवानुवर्तयन्ति तन्मते परस्मैपदमपि॥ पुच्छादिषु धात्वर्थ इत्येव सिद्धम्॥ णिजन्तादेव बहुलवचनादात्मनेपदमस्तु। मास्तु पुरुळभाण्डेति णिङ्विधिः। सिद्धशब्दो ग्रथान्ते मङ्गलार्थः ॥

॥ इति चुरादिः ॥

२५७४–चिण् और णल् छोडकर ञित् और णित् प्रत्यय परे रहते हन् धातुको तकार अन्तादेश हो।

यहां सन्देह है कि, अंगसंज्ञा और धातुसंज्ञा कंसविशिष्ट बधको प्राप्त है, तब अडागम और द्वित्वविषयमें (कंसवधको अडागम और क शब्दको द्वित्व रूप) दोष होगा और "हो हन्तेः०" इससे कुत्व और "हनस्तो०" इससे तत्व भी नहीं होगा, कारण कि, धातुके स्वरूपका ग्रहण रहनेपर उस धातुसे विहित प्रत्यय परे रहते ही कार्य्य होताहै, यह परिभाषा है, यह सत्य है, परन्तु 'प्रकृतिवच्च' इसमें चकार भिन्नक्रम है अर्थात् 'कारकम्' इससे आगे है, चकारसे कार्य्यका संग्रह हुआ, तत्र हेतुमत् णिच्का प्रकृतिभूत हन् आदि धातुको हेतुमत् णिच् परे रहते यादृश कारक अर्थात् धातुके अनन्तभूत द्वितीयान्त और यादृश कार्य्य अर्थात् कुत्व तत्व आदि होतेहैं वैसे ही यहां धात्वर्थणिच्में भी धातुके अनन्तर्भूत द्वितीयान्त और कुत्व तत्व होंगे–कंसमजीघतत्।

"कर्त्तृकरणाद्धात्वर्थे" कर्ताके व्यापारार्थ जो करण उसके उत्तर णिच् हो। यह चक्षुरादिमात्र करणके उत्तर नहीं होगा, किन्तु सबसे होगा। असिना हन्ति, इस विग्रहमें असयति ॥ बष्क धातु दर्शनमें है ॥ चित्र धातु चित्र करनेमें है ॥

कहीं अद्भुत दर्शनमें चित्र धातुसे णिच् हो। चित्रयति॥ अंस धातु समाघातार्थमें है। वट धातु विभाग करनेमें है ॥ लज धातु प्रकाश करनेमें है ॥ वटि धातु और लजि धातु हैं,यह किसी २ पंडितका मत है। वण्टयति। लञ्जयति। अदन्तमें पाठ होनेके कारण अदन्त होनेसे वृद्धि होगी, यह किसी पंडितका मत है, वण्टापयति। लञ्जापयति। शाकटायनमतसे तो कथ आदि सम्पूर्ण धातुओंको पुक् होगा, कथापयति। गणापयति, इत्यादि ॥ मिश्र धातु सम्पर्कमें है ॥ संग्राम धातु युद्धमें है। अकारप्रश्लेषके कारण यह धातु आत्मनेपदी है। अससंग्रामत ॥ स्तोम धातु श्लाघामें है। अतुस्तोमत् ॥ छिद्र धातु कर्णभेदनमें है। कोई २ कहतेहैं करणभेदनमें है। अन्यमतसे 'कर्ण' यह भिन्न धातु है ॥ अन्ध धातु दृष्टिके उपघातमें है। किसीके मतसे उपसंहारमें है। आन्दधत् ॥ दण्ड धातु दण्डनिपातनमें है ॥ अंक धातु पद और लक्षणमें है। आञ्चकत् ॥ अङ्ग धातु भी उक्तार्थक है। आञ्जगत् ॥ सुख धातु और दुःख धातु सुखी और दुःखी करनेमें हैं ॥ रस धातु आस्वादन और स्नेहमें है ॥ व्यय धातु धनव्यय करनेमें है। अवव्ययत्। रूप धातु रूपक्रिया, अर्थात् रूपके दर्शन और करणमें है ॥ छेद धातु द्विधा करनेमें है। अचिच्छेदत् ॥ छद धातु अपवारणमें है। छदयति ॥ लाभ धातु प्रेरणमें ॥ व्रण धातु गात्रविचूर्णनमें है ॥ वर्ण धातु वर्णक्रिया, विस्तार और गुणवचनमें है। वर्णक्रिया शब्दसे वर्णकरण समझना। सुवर्णं वर्णयति। कथां वर्णयति, अर्थात् विस्तार करताहै। हरिं वर्णयति, अर्थात् स्तव करताहै।

अदन्त धातुके निदर्शन (पाठ) बहुल प्रकारसे है। बहुल ग्रहणसे इसके अतिरिक्त धातु भी अदन्तमें जानना, यथा–पर्ण धातु हरितभावमें है। अपपर्णत् ॥ विष्क धातु दर्शनमें है। क्षप धातु प्रेरणमें है ॥ वस धातु निवासमें है। तुत्थ धातु आवरणमें है ॥ इसी प्रकार आन्दोलयति। प्रेङ्खोलयति। विडम्बयति। अवधीरयति, इत्यादि जानना।

अन्य पंडित लोग दशगणीपाठ बहुल करके है ऐसा कहते हैं, इससे उक्त गणोंमें अपठित भी अनेक सूत्रोक्त, लौकिक और वैदिक धातुओंका संग्रह हुआ। कितने पंडित तो नव-

गणी पाठ बहुल करके कहतेहैं, इससे अपठित धातुओंके भी उत्तर कहीं २ स्वार्थमें णिच् होगा, यथा–'रामो राज्यमचीकरत्' कोई कहतेहैं कि, चुरादिगणमें पठित धातुके ही उत्तर भी कभी णिच् हो कभी नहीं हो, यह सम्पूर्ण पक्ष प्राचीनोंके ग्रन्थमें पठित हैं ।

अङ्गवाचक प्रातिपदिकके उत्तर निरसनार्थमें णिङ् हो, हस्तौ निरस्यति=हस्तयते । पादयते ।

श्वेताश्व, अश्वतर, गालोडित और आह्वरक शब्दके उत्तर धात्वर्थमें णिङ् हो और श्वेताश्व पदमें अश्वपदका, अश्वतर शब्दमें तर प्रत्ययका, गालोडित पदमें इत भागका और आह्वरक शब्दके ककारका लोप हो, यथा–श्वेताश्वमाचष्टे तेनातिक्रामति वा, इस विग्रहमें श्वेतयते । अश्वतरमाचष्टे, इस विग्रहमें अश्वयते । गालोडित शब्दसे वाणीका विमर्श जानना । तत्करोति–गालोडयते। आह्वरयते । कोई२ इस स्थलमें णिच्का ही अनुवर्त्तन करतेहैं, उनके मतसे परस्मैपद भी होगा ।

पुच्छादिमें प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे इसीसे धात्वर्थमें णिच् और णिजन्तसे ही बहुलवचनसे आत्मनेपद सिद्ध होगा, फिर "पुच्छभाण्ड० २६७६" यह सूत्र नहीं करना चाहिये । ग्रन्थान्तमें सिद्ध शब्द मङ्गलार्थ है ॥

॥ इति तिङन्ते चुरादिप्रकरणम् ॥

अथ ण्यन्तप्रक्रिया ।

२५७५ तत्प्रयोजको हेतुश्च ।१।४।५५॥

कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात् ॥

२५७५–कर्ताके प्रयोजककी हेतुसंज्ञा और कर्तृसंज्ञा हो ॥

२५७६ हेतुमति च । ३ । १ । २६ ॥

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात् । भवन्तं प्रेरयति भावयति । णिचश्चेति कर्तृगे फले आत्मनेपदम् । भावयते । भावयांबभूव ॥

२५७६–प्रयोजक व्यापारमें प्रेषणादि अर्थ होनेपर धातुके उत्तर णिच् हो, भवन्तं प्रेरयति=भावयति । "णिचश्च२५६४" इस सूत्रसे कर्तृगामी क्रियाफल होनेपर आत्मनेपद होगा, भावयते । भावयाम्बभूवे ॥

२५७७ ओः पुयण्ज्यपरे । ७।४।८०॥

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्येत्वं स्यात्पवर्गयणजकारेष्ववर्णपरेषु परतः । अबीभवत् । अपीपवत् । मूङ् । अमीमवत् । अयीयवत् । अरीरवत् । अलीलवत् । अजीजवत् ॥

२२७७–अवर्णपरक पवर्ग, यण् और जकार परे रहते सन् परे जो अङ्ग उसके अवयव अभ्याससम्बन्धी उकारके स्थानमें इकार हो, अबीभवत् । अपीपवत् । मूङ् अमीमवत् । अयीयवत् । अरीरवत् । अलीलवत् । अजीजवत् ॥

२५७८ स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा । ७ । ४ । ८१ ॥

एषामभ्यासोकारस्य इत्त्वं वा स्यात्सन्यवर्णपरे धात्वक्षरे परे । असिस्रवत् । असुस्रवत् । नाग्लोपीति ह्रस्वनिषेधः । अशशासत् । अडुढौकत् । अचीचकासत् । मतान्तरे । अचचकासत् । अग्लोपीति सुब्धातुप्रकरणे उदाहरिष्यते । ण्यन्ताण्णिच् । पूर्वविप्रतिषेधादपवादत्वाद्वा वृद्धिं बाधित्वा णिलोपः । चोरयति । णौ चङीति ह्रस्वः । दीर्घो लघोः । न चाग्लोपित्वाद्द्वयोरप्यसम्भवः । ण्याकृतिनिर्देशात् । अचूचुरत् ॥

२५७८–सन् और अवर्ण परे है जिसके ऐसे धात्वक्षर परे रहते स्रु, श्रु, द्रु, प्रु, प्लु और च्यु धातुके अभ्यासावयव उकारके स्थानमें विकल्प करके इकार हो, असिस्रवत्, असुस्रवत् । "नाग्लोपि०" इस सूत्रसे ह्रस्व नहीं होकर–अशशासत् । अडुढौकत् । अचीचकासत् । मतान्तरमें, अचचकासत् । अग्लोपी धातुका उदाहरण नामधातुके प्रकरणमें दिया जायगा । ण्यन्त चुर धातुके उत्तर हेतुमत् णिच् पश्चात् पूर्वविप्रतिषेधके कारण और अपवादत्वके कारण वृद्धिको बाध करके णिच्का लोप होकर–चोरयति ।

लुङ्में "णौ चङि०२३१४" इस सूत्रसे ह्रस्व और "दीर्घो लघोः २३१८" इस सूत्रसे दीर्घ होगा । यदि कहो कि, अग्लोपित्वके कारण दोनोंको अर्थात् उक्त सूत्रोंसे उपधाको ह्रस्व और अभ्यासको दीर्घ होना असम्भव है वह नहीं कहसकते, कारण कि, 'चङ्परे णौ' यहां णिको चङ्परक णित्वजात्याश्रय एक अथवा अनेक णिच् व्यक्तिपरत्व है, इससे णित्वजात्यवच्छिन्न परे अग्लोपी न होनेसे उक्त कार्य्य होंगे । अचूचुरत् ॥

२५७९ णौ च संश्चङोः । ६ । १ । ३१ ॥

सन्परे चङ्परे च णौ श्वयतेः सम्प्रसारणं वा स्यात् । सम्प्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवदिति वचनात्सम्प्रसारणं पूर्वरूपम् । अशूशवत् । अलघुत्वान्न दीर्घः । अशिश्वयत् ॥

२५७९–सन् और चङ् परे है जिससे ऐसे णिच् परे रहते श्वि धातुको विकल्प करके सम्प्रसारण हो । 'संप्रसारणं तदाश्रयकार्य्यञ्च बलवत्' अर्थात् सम्प्रसारण और तदाश्रय कार्य बलवान् होताहै, इस परिभाषासे सम्प्रसारण और पूर्वरूप होकर–अशूशवत् । अलघुत्वके कारण दीर्घ न होकर–अशिश्वयत् ॥

२५८० स्तम्भुसिवुसहां चङि । ८ । ३ । ११६ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तादेषां सस्य षो न स्याच्चङि । अवातस्तम्भत् । पर्यसीषिवत् । न्यसी-

षहत् । आटिटत् । आशिशत् । बहिरङ्गोऽप्युपधाह्रस्वो द्वित्वात्प्रागेव । ओणेर्ऋदित्करणाल्लिङ्गात् । मा भवानिदिधत् । एजादावेधतौ विधानान्न वृद्धिः । मा भवान्प्रेदिधत् । नन्द्रा इति नदराणां न द्वित्वम् । औन्दिदत् । आड्डिडत् । आर्चिचत् । उब्ज आर्जवे । उपदेशे दकारोपधः । भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोरिति सूत्रे निपातनाद्दस्य वः । सचान्तरङ्गोऽपि द्वित्वविषये नन्द्रा इति निषेधाज्जिशब्दस्य द्वित्वे कृते प्रवर्तते न तु ततः प्राक् । दकारोच्चारणसामर्थ्यात् । औब्जिजत् । अजादेरित्येव नेह । अदिद्रपत् ॥

२५८०–चङ् परे रहते उपसर्गस्थ निमित्तके परे स्थित स्तम्भु, सिवु और सह धातुके सकारको षत्व न हो, अवातस्तम्भत् । पर्य्यसीषिवत् । न्यसीषहत् । आटिटत् । आशिशत् ।

औणृ धातुमें ऋकारके इत् करनेके कारण बहिरङ्ग होनेपर भी द्वित्वके पूर्वमें ही उपधा ह्रस्व होगा, नहीं तो पहले अजादि धातुके द्वितीय एकाच् णि शब्दको द्वित्व होनेपर उपधाको ह्रस्वकी प्राप्ति ही नहीं है, फिर उसके प्रतिषेधके निमित्त ओणृ धातुका ऋकार इत् करना व्यर्थ ही होजाता, मा भवान् इदिधत् । एजादि एध धातु परे वृद्धिविधानके कारण यहां वृद्धि नहीं होगी, मा भवान् प्रेदिधत् । "नन्द्रा० २४४६" इस सूत्रसे न, द और रकारको द्वित्व न होकर–औन्दिदत् । आड्डिड । आर्चिचत् ॥

उब्ज धातु सरलतामें है, उपदेशमें यह धातु दकारोपध है, "भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः २८७७" इस सूत्रमें निपातनसे दकारके स्थानमें धकार हुआहै, वह अन्तरङ्ग होनेपर भी द्वित्वविषयमें "नन्द्रा० २४४६" इस सूत्रसे निषेधके कारण जि शब्दको द्वित्व होनेपर प्रवृत्त होगा, दकारोच्चारण सामर्थ्यके कारण उसके पूर्वमें नहीं होगा, औब्जिजत् ।

"नन्द्रा०" इस सूत्रमें "अजादेर्द्वितीयस्य" इसकी अनुवृत्ति होनेसे आदिभूत अच्के परे ही न, द और रकारको द्वित्व नहीं होगा, इससे 'अदिद्रयत्' यहां दकारको द्वित्व हुआ ॥

२५८१ रभेरशब्लिटोः । ७ । १ । ६३ ॥

रभेर्नुम् स्यादचि । न तु शब्लिटोः । अररम्भत् ॥

२५८१–अच् परे रहते रभ धातुको नुम्का आगम हो, शप् और लिट् परे रहते न हो, अररम्भत् ॥

२५८२ लभेश्च । ७ । १ । ६४ ॥

अललम्भत् । हेरचङीति सूत्रेऽचङीत्युक्तेः कुत्वं न । अजीहयत् । अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् । असस्मरत् । अददरत् । तपरत्वसामर्थ्यादत्र लघोर्न दीर्घः ॥

२५८२–अच् परे रहते लभ धातुको भी नुम्का आगम हो, शप् और लिट् परे न हो–अललम्भत् । "हेरचङि २५३१" इस सूत्रमें "अचङि" ऐसा प्रतिषेध होनेसे कुत्व नहीं होकर–अजीहयत् । "अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् २५६६" इस सूत्रसे अत्व होकर–असस्मरत् । अददरत् । अत्में तपरत्वके कारण यहां लघु अभ्यासको दीर्घ नहीं हुआ ॥

२५८३ विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः । ७ । ४ । ९६ ॥

अभ्यासस्यात्वं वा स्याच्चङ्परे णौ । अववेष्टत्-अविवेष्टत् । अचचेष्टत्-अचिचेष्टत् । भ्राजभासेत्यादिना वोपधाह्रस्वः । अबिभ्रजत्-अबभ्राजत् ॥ काण्यादीनां वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ ण्यन्ताः कणरणभणश्रणलुपहेठः काण्यादयः षड् भाष्ये उक्ताः । ह्वायिवाणिलोटिलोपयश्चत्वारोऽधिका न्यासे । चाणिलोठी अप्यन्यत्र । इत्थं द्वादश । अचीकणत् । अचकाणत् ॥

२५८३–चङ्परक णि परे रहते चेष्ट और वेष्ट धातुके अभ्यासको विकल्प करके अकार हो–अववेष्टत्, अविवेष्टत् । अचचेष्टत्, अचिचेष्टत् । 'भ्राजभास० २५६५' इस सूत्रसे विकल्प करके उपधाको ह्रस्व होकर–अबिभ्रजत्, अबभ्राजत् ।

काण्यादि धातुओंकी भी उपधाको विकल्प करके ह्रस्व हो * ण्यन्त–कण, रण, भण, श्रण, लुप और हेठ इन ६ धातुओंको भाष्यकारने काण्यादि कहा है, न्यासकारने ह्वायि, वाणि, लोटि और लोपि, इन चार अधिक धातुओंको भी काण्यादि कहाहै, अन्यमतसे चाणि और लोठि धातुभी काण्यादि हैं । इस प्रकार काण्यादि १२ धातु हैं । अचीकणत्, अचकाणत् ॥

२५८४ स्वापेश्चङि । ६ । १ । १८ ॥

ण्यन्तस्य स्वापेश्चङि सम्प्रसारणं स्यात् । असूषुपत् ॥

२५८४–चङ् परे रहते णिजन्त स्वप् धातुको सम्प्रसारण हो, असूषुपत् ॥

२५८५ शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् । ७ । ३ । ३७ ॥

णौ । पुकोऽपवादः । शाययति । ह्वाययति ॥

२५८५–णिच् परे रहते शो, छो, सो, ह्वेञ्, व्येञ्, वेञ् और पा धातुको युक्का आगम हो, यह पुगागमका विशेषक है । शाययति । ह्वाययति । सूत्रमें शा छा, इत्यादि आकारान्त निर्देश पुक् आगमकी प्राप्तिकी सूचना करताहै, उसका प्रयोजन तो यह है कि, इस प्रकरणमें "लक्षणप्रतिपदोक्त०" परिभाषाकी प्रवृत्ति नहीं होगी. इस कारण अध्यापयति, क्षापयति, इत्यादि पद सिद्ध हुए ॥

२५८६ ह्वः सम्प्रसारणम् । ६ । १ । ३२ ॥

सन्परे चङ्परे च णौ ह्वः सम्प्रसारणं स्यात् । अजूहवत्-अजुहावत् ॥

२५८६-सन्परक और चङ्परक णि परे रहते ह्वेञ् धातुको सम्प्रसारण हो, अजूहवत्, अजुहावत्, यहां ह्वायि, वाणि, इत्यादि न्यासकारोक्त काण्यादिके अनुसार विकल्प करके उपधाको ह्रस्व हुआ ॥

२५८७ लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य। ७।४।४॥

पिबतेरुपधाया लोपः स्यादभ्यासस्य ईदन्तादेशश्च चङ्परे णौ । अपीप्यत् । अर्तिह्रीति पुक् । अर्पयति । ह्रेपयति । व्लेपयति । रेपयति । यलोपः । क्नोपयति । क्ष्मापयति । स्थापयति ॥

२५८७-चङ्परक णि परे रहते पा धातुकी उपधाका लोप हो, और अभ्यासको ईत् अन्तादेश हो, अपीप्यत् । "अर्त्ति ह्री० २५७०" इस सूत्रसे पुक्का आगम होकर-अर्पयति । ह्रेपयति । व्लेपयति । रेपयति । यकारका लोप होकर-क्नोपयति । क्ष्मापयति । स्थापयति ॥

२५८८ तिष्ठतेरित् । ७।४।५ ॥

उपाधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ । अतिष्ठिपत् ॥

२५८८-चङ्परक णि परे रहते स्था धातुकी उपधाके स्थानमें इत् आदेश हो, अतिष्ठिपत् ॥

२५८९ जिघ्रतेर्वा । ७।४।६ ॥

अजिघ्रिपत्-अजिघ्रपत् ॥ उर्ऋत् ॥ अचीकृतत्-अचिकीर्त्तत् । अवीवृतत्-अववर्त्तत् । अमीमृजत्-अममार्जत्॥पातेर्णौ लुग्वक्तव्यः *॥ पुकोऽपवादः । पालयति ॥

२५८९-चङ्परक णि परे रहते घ्रा धातुकी उपधाको विकल्प करके इत् आदेश हो, अजिघ्रिपत्, अजिघ्रपत् । "उर्ऋत् २५६७" इस सूत्रसे उपधाभूत ऋवर्णके स्थानमें ऋत् होकर-अचीकृतत्, अचिकीर्तत् । अवीवृतत्, अववर्तत्। अमीमृजत्, अममार्जत् ।

णिच् परे रहते पा धातुको लुक्का आगम हो * यह लुगागम पुगागमका विशेषक है, पालयति ॥

२५९० वो विधूनने जुक् ।७।३। ३८ ॥

वातेर्जुक् स्याण्णौ कम्पेऽर्थे । वाजयति । कम्पे किम् । केशान्वापयति । विभाषा लीयतेः ॥

२५९०-कम्प अर्थ होनेपर णिच् परे रहते वा धातुको जुक्का आगम हो, वाजयति । कम्पभिन्नार्थमें 'केशान् वापयति' इस स्थलमें जुगागम न होकर पुगागम हुआहै । "विभाषा लीयतेः २५०९" इससे आत्व विकल्प पक्षमें ॥

२५९१ लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने । ७ । ३ । ३९ ॥

लीयतेर्लातेश्च क्रमान्नुग्लुकावागमौ वा स्तो णौ स्नेहद्रवे । विलीनयति-विलापयति-विलाययति । विलालयति-विलापयति वा घृतम् । ली ई इति ईकारप्रश्लेषादात्वपक्षे नुक् न ॥ स्नेहद्रवे किम् । लोहं विलापयति-विलाययति ॥ प्रलम्भनाभिभवपूजासु लियो नित्यमात्वमशिति वाच्यम् ॥ * ॥

२५९१-स्नेह निपातन, अर्थात् स्नेहद्रव होनेपर ली और ला धातुको क्रमसे नुक् और लुक् आगम विकल्प करके हो, विलीनयति,विलापयति,विलाययति, विलालयति, विलापयति वा घृतम् "ली ई" ऐसे ईकारप्रश्लेषके कारण आत्व होनेपर नुक् नहीं होगा । स्नेहद्रव न होनेपर लोहं विलापयति ।

शित्भिन्न प्रत्यय परे रहते प्रलम्भन, अभिभव और पूजार्थमें ली धातुको नित्य आकार हो * ॥

२५९२ लियः संमाननशालीनीकरणयोश्च । १ । ३ । ७० ॥

लीङ्लियोर्ण्यन्तयोरात्मनेपदं स्यादकर्तृगेऽपि फले पूजाभिभवयोः प्रलम्भने चार्थे ॥ जटाभिर्लापयते । पूजामधिगच्छतीत्यर्थः । श्येनो वर्तिकामुल्लापयते । अभिभवतीत्यर्थः । बालमुल्लापयते । वञ्चयतीत्यर्थः ॥

२५९२-पूजा, अभिभव और प्रलम्भनार्थमें क्रियाका फल कर्तृगामि न होनेपर भी णिजन्त लीङ् और ली धातुसे आत्मनेपद हो, जटाभिर्लापयते, अर्थात् पूजाको प्राप्त होताहै । श्येनो वर्त्तिकामुल्लापयते, अर्थात् श्येनपक्षी वर्त्तिकाको अभिभूत करताहै । बालमुल्लापयते, अर्थात् बालकको वञ्चित करताहै ॥

२५९३ बिभेतेर्हेतुभये । ६ । १ ।५६ ॥

बिभेतेरेच आत्वं वा स्यात्प्रयोजकाद्भयं चेत्॥

२५९३-यदि प्रयोजकसे भय हो तो भी धातुके एकारके स्थानमें विकल्प करके आकार हो ॥

२५९४ भीस्म्योर्हेतुभये । १ । ३ ।६८॥

ण्यन्ताभ्यामाभ्यामात्मनेपदं स्याद्धेतोश्चेद्भयस्मयौ । सूत्रे भयग्रहणं धात्वर्थोपलक्षणम् । मुण्डो भापयते ॥

२५९४-प्रयोजक (हेतु) से भय और स्मय होनेपर भी और स्मि धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, सूत्रमें भय शब्दका ग्रहण धात्वर्थ, अर्थात् स्मि धातुके स्मयरूपार्थ का उपलक्षण है । मुण्डो भापयते ॥

२५९५ भियो हेतुभये षुक् ।७।३।४०॥

भी ई इति ईकारः प्रश्लिष्यते । ईकारान्तस्य भियः षुक् स्यात् णौ हेतुभये । भीषयते ॥

२५९५–णिच् परे रहते हेतुसे भय होनेपर ईकारान्त भी धातुको षुक्का आगम हो । भी धातुमें ईकार प्रश्लिष्ट होनेसे उक्त अर्थ हुआ–भीषयते ॥

२५९६ नित्यं स्मयतेः । ६ । १ । ५७॥

स्मयतेरेचो नित्यमात्त्वं स्याण्णौ हेतोः स्मये। जटिलो विस्मापयते । हेतोश्चेद्भयस्मयावित्युक्तेर्नेह । कुञ्चिकयैनं भाययति । विस्माययति । कथं तर्हि विस्मापयन् विस्मितमात्मवृत्ताविति। मनुष्यवाचेति करणादेव हि तत्र स्मयः । अन्यथा ज्ञानजपि स्यात् । सत्यम् । विस्माययन्नित्येव पाठ इति साम्प्रदायिकाः । यद्वा । मनुष्यवाक्प्रयोज्यकर्त्री विस्मापयते तया सिंहो-विस्मापयन्निति ण्यन्ताण्णौ शतेति व्याख्येयम्॥

२५९६–प्रयोजकसे स्मय होनेपर स्मि धातुके एच्के स्थानमें नित्य आकार हो णिच् परे रहते, जटिलो विस्मापयते । पूर्वसूत्रमें 'हेतोश्चेद्भयस्मयौ' ऐसा कहनेके कारण'कुञ्चिकया एनं भाययति–विस्माययति, इस स्थलमें आत्व और आत्मनेपद नहीं हुआ ।

हेतुसे स्मय रहते ही आत्व और आत्मनेपद होनेसे 'विस्मापयन् विस्मितमात्मवृत्तौ' इस स्थलमें किस प्रकारसे आत्व हुआ, क्योंकि, उक्त स्थलमें विस्मय 'मनुष्यवाचा' इस करणसे ही उत्पन्न होताहै, ऐसा न तो ज्ञानज् भी हो जायगा। सत्य है, परन्तु इस स्थलमें विस्माययन् ऐसा ही पाठ साम्प्रदायसिद्ध है, अथवा मनुष्यवाक्, यह प्रयोज्यकर्त्री विस्मय कराती है, उससे सिंह विस्मापित कराके ऐसे णिजन्तसे णिच् अनन्तर शतृ करके उक्त पद सिद्ध हुआहै ॥

२५९७ स्फायो वः । ७ । ३ । ४१ ॥

णौ । स्फावयति ॥

२५९७–णि परे रहते स्फाय धातुको वकार आदेश हो, स्फावयति ॥

२५९८ शदेरगतौ तः । ७ । ३ । ४२ ॥

शदेर्णौ तोऽन्तादेशः स्यान्न तु गतौ । शातयति । गतौ तु । गाः शादयति गोविन्दः । गमयतीत्यर्थः ॥

२५९८–णि परे रहते शद धातुके अन्तमें तकारादेश हो, गति अर्थमें न हो, शातयति । गति अर्थमें 'तो गाः शादयति गोविन्दः' अर्थात् श्रीकृष्ण गौओंको चलातेहैं ॥

२५९९ रुहः पोऽन्यतरस्याम् ।७।३।४३॥

णौ ॥ रोपयति–रोहयति ।

२५९९ णि परे रहते रुह धातुके हकारको विकल्प करके पकार आदेश हो–रोपयति, रोहयति ॥

२६०० क्रीङ्जीनां णौ । ६ । १ ।४८ ॥

एषामेच आत्त्वं स्याण्णौ । क्रापयति । अध्यापयति । जापयति ॥

२६००–णि परे रहते क्री, इङ् और जी धातुके एच्के स्थानमें आकार हो–क्रापयति । अध्यापयति । जापयति ॥

२६०१ णौ च संश्चङोः ।२। ४ । ५१॥

सन्परे चङ्परे च णौ इङो गाङ्वा स्यात् । अध्यजीगपत्–अध्यापिपत् ॥

२६०१–सन् परक और चङ्परक णि परे रहते इङ् धातुको विकल्प करके गाङ् आदेश हो, अध्यजीगपत्, अध्यापिपत् ॥

२६०२ सिध्यतेरपारलौकिके६।१।४९॥

ऐहलौकिकेऽर्थे विद्यमानस्य सिध्यतेरेच आत्त्वं स्याण्णौ । अन्नं साधयति । निष्पादयतीत्यर्थः । अपारलौकिके किम् । तापसः सिध्यति । तत्त्वं निश्चिनोति । तं प्रेरयति सेधयति तापसं तपः॥

२६०२–पारलौकिकभिन्नार्थ, अर्थात् ऐहलौकिकार्थमें विद्यमान सिध धातुके एच्के स्थानमें आकार हो णि परे रहते, अन्नं साधयति, अर्थात् अन्नको निष्पादन करताहै । पारलौकिकार्थमें तो तापसः सिध्यति, अर्थात् तत्त्वं निश्चिनोति–तं प्रेरयति सेधयति तापसं तपः ॥

२६०३ प्रजने वीयतेः । ६ । १ । ५५॥

अस्यै च आत्त्वं वा स्याण्णौ प्रजनेऽर्थे । वापयति–वाययति वा गाः पुरोवातः । गर्भं ग्राहयतीत्यर्थः ॥ ऊदुपधाया गोहः । ६ । ४ ।८९॥ गूहयति ॥

२६०३–णि परे रहते प्रजन, अर्थात् गर्भग्रहणार्थमें वी धातुके एच्के स्थानमें विकल्प करके आकार हो, वापयति, वाययति वा गाः पुरोवातः, गर्भं ग्राहयतीत्यर्थः । "ऊदुपधाया गोहः २३६४" इससे गुह धातुकी उपधाको ऊकार होकर–गूहयति ॥

२६०४ दोषो णौ । ६ । ४ । ९० ॥

दुष इति सुवचम् । दुष्यतेरुपधाया ऊत्स्याण्णौ । दूषयति ॥

२६०४–णि परे रहते दुष धातुकी उपधाको ऊकार हो । 'दुषः' ऐसा कहनेपर भी कोई दोष नहीं होगा । दूषयति ॥

२६०५ वा चित्तविरागे । ६ । ४।९१॥

विरागोऽप्रीतता । चित्तं दूषयति–दोषयति वा कामः । मितां ह्रस्वः । भ्वादौ चुरादौ च मित उक्ताः । घटयति । जनीजॄष् । जनयति । जरयति । जृणातेस्तु । जारयति ॥ रञ्जेर्णौ मृगरमणे नलोपो वक्तव्यः ॥ * ॥ मृगरमणमाखेटकम । रजयति मृगान् । मृगेति किम् । रञ्जयति पक्षिणः। रमणादन्यत्र तु रञ्जयति मृ-

गांस्तृणदानेन । चुरादिषु ज्ञपादिश्चिञ् चिस्फुरोर्णौ । चपयति-चययतीत्युक्तम् । चिनोतेस्तु । चापयति-चाययति । स्फारयति-स्फोरयति । अपुस्फरत्-अपुस्फुरत् ॥

२६०५-चित्तविराग अर्थ होनेपर दुष धातुकी उपधाको ऊकार हो णि परे रहते । विराग शब्दसे अप्रीतता समझना । चित्तं दूषयति,दोषयति वा कामः । "मितां ह्रस्वः२५६८"इस सूत्रसे मित् धातुको ह्रस्व होगा। भ्वादि और चुरादिगणमें मित्संज्ञक धातु उक्त है।उससे णिच् करनेपर-घटयति।"जनीजॄष्०" इससे मित्संज्ञा होकर-जनयति । जरयति । क्र्यादिक जॄ धातुका तो 'जारयति' ऐसा रूप होगा ॥

मृगरमणार्थमें रञ्ज धातुके नकारका लोप हो णि परे रहते* मृगरमण, अर्थात् मृगया । रजयति मृगान्।मृगरमणार्थ न होनेपर-रञ्जयति पक्षिणः । रमणभिन्नार्थमें तो रञ्जयति मृगान् तृणदानेन। चुरादिगणमें ज्ञपादि धातुओंके मध्यमें चिञ् धातु पठित है, उसको णिच् परे रहते "चिस्फुरोर्णौ २५६९" इससे विकल्प करके आत्व होकर-'चपयति, चययति' ऐसा रूप कहचुके हैं । स्वादिक चिञ् धातुके तो चापयति, चाययति ऐसे रूप होंगे । स्फारयति, स्फोरयति । अपुस्फरत्, अपुस्फुरत् ॥

२६०६ उभौ साभ्यासस्य । ८।४।२१॥

साभ्यासस्यानितेरुभौ नकारौ णत्वं प्राप्नुतो निमित्ते सति । प्राणिणत् ॥

२६०६-णत्वका निमित्त रहते अभ्यासविशिष्ट अन धातुके दोनों नकारको णत्व हो, प्राणिणत् ॥

२६०७ णौ गमिरबोधने । २ । ४।४६॥

इणो गमिः स्याण्णौ । गमयति । बोधने तु प्रत्याययति । इण्वदिकः । अधिगमयति । हनस्तोऽचिण्णलोः। हो हन्तेरिति कुत्वम्।घातयति ॥ ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति वक्तव्यम् ॥ * ॥ तृतीयव्यञ्जनस्य तृतीयैकाच इति वार्थः। आद्ये षकारस्य द्वित्वं वारयितुमिदम् । द्वितीये त्वजादेर्द्वितीयस्येत्यस्यापवादतया सन्नन्ते प्रवर्तते । ऐर्ष्यियत् । ऐर्षिष्यत् । द्वितीयव्याख्यायां णिजन्ताच्चङि षकार एवाभ्यासे श्रूयते । हलादिःशेषात् । द्वित्वं तु द्वितीयस्यैव । तृतीयाभावेन प्रकृतवार्तिकाप्रवृत्तेः। निवृत्तप्रेषणाद्धातोर्हेतुमण्णौ शुद्धेन तुल्योऽर्थः।तेन प्रार्थयन्ति शयनोत्थितं प्रिया इत्यादि सिद्धम् । एवं सकर्मकेषु सर्वमूह्यम् ॥

॥ इति ण्यन्तप्रक्रिया ॥

२६०७-णि परे रहते अबोधनार्थ होनेपर इण् धातुके स्थानमें गमि आदेश हो-गमयति। बोधनार्थ होनेपर तो प्रत्याययति।इण् धातुके समान इक् धातुको भी कार्य हो-अधिगमयति। "हन-स्तोऽचिण्णलोः २५७४ " इस सूत्रसे हन् धातुके अन्तमें तकारादेश हुआ, "हो हन्तेः०" इस सूत्रसे कुत्व अर्थात् हन् धातुके हके स्थानमें घ हुआ । घातयति ॥

ईर्ष्य धातुके तृतीय व्यञ्जन वर्णको द्वित्व हो, अथवा तृतीय स्वर वर्णको द्वित्व हो* पहिली व्याख्या षकारके द्वित्ववारणार्थ कियाहै, दूसरी " अजादेर्द्वितीयस्य " इसके अपवादके कारण सन्नन्त धातुमें प्रवृत्त होगी । ऐर्ष्यियत्, ऐर्षिष्यत् । दूसरी व्याख्यामें णिजन्तके उत्तर चङ् परे रहते हलादिःशेषके कारण अभ्यासमें षकार ही श्रुत होगा, प्रकृत वार्तिक प्रवर्तित न होगा ॥

निवृत्त प्रेरणार्थमें धातुके उत्तर हेतुमत् णिच् करनेपर केवल धातुके साथ तुल्यार्थमें अर्थात् णिच् न करनेपर भी जैसा अर्थ होगा उस स्थलमें णिच् करनेपर उसी प्रकार अर्थ होगा, इससे ऐसा फल हुआ कि, " प्रार्थयन्ति शयनोत्थितं प्रियाः " इत्यादि पद सिद्ध हुएहैं, इसी प्रकार सकर्मक सम्पूर्ण धातुओंमें ऊह करना चाहिये ॥

॥ इति णिजन्तप्रकरणम् ॥

अथ सन्नन्तप्रक्रिया ।

२६०८ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा । ३ । १ । ७ ॥

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन्प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् । धातोर्विहितत्वादिह सन आर्धधातुकत्वम् । इट् । द्वित्वम् ॥ सन्यतः । पठितुमिच्छति पिपठिषति । कर्मणः किम् । गमनेनेच्छतीति करणान्मा भूत् । समानकर्तृकात्किम् । शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः । वाग्रहणात्पक्षे वाक्यमपि । लुङ्सनोर्घस्लृ । एकाच उपदेश इति नेट् । सस्य तत्वम् । अत्तुमिच्छति जिघत्सति । ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति यिसनोर्द्वित्वम् । ईर्ष्यियिषति । ईर्ष्यिषिषति ॥

२६०८-इषि धातुके साथ समानकर्तृक इषि धातुके कर्मीभूत धातुके उत्तर इच्छार्थमें विकल्प करके सन् प्रत्यय हो । धातुके उत्तर विहित होनेके कारण सन्को आर्धधातुकत्व अर्थात् आर्धधातुक संज्ञा हुई, इट् हुआ, पश्चात् द्वित्व हुआ, अभ्यासके अकारके स्थानमें इकार हुआ,सन् परे रहते(२३१७) पठितुमिच्छति=पिपठिषति ।

कर्म न होनेपर अर्थात् करणादि होनेपर सन् नहीं होगा । गमनेन इच्छति-इस स्थलमें करण होनेके कारण सन् नहीं हुआ ।

समानकर्तृक न होनेपर सन् न होगा, जैसे-शिष्याः पठन्तु इच्छति गुरुः । वाशब्दका ग्रहण करनेसे सन्के विकल्प पक्षमें वाक्यमात्र ही होगा ।

लुङ् और सन् परे रहते अद धातुके स्थानमें घस्लृ आदेश हो (२४२७) " एकाच उपदेशे० २२४६ "

इस सूत्रसे इट्का निषेध हुआ, सकारके स्थानमें तकार हुआ-अत्तुमिच्छति=जिघत्सति । " ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य " इस वार्त्तिकसे यि और सन्को द्वित्व हुआ-इर्ष्यियिषति । ईर्ष्यिषिषति ॥

२६०९ रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च। १ । २ । ८ ॥

एभ्यः संश्च क्त्वा च कितौ स्तः। रुरुदिषति। विविदिषति। मुमुदिषति ॥

२६०९-रुद, विद,मुष,ग्रह,स्वप और प्रच्छ धातुके उत्तर सन् और चकारसे क्त्वा प्रत्ययकी कित्संज्ञा हो । रुरुदिषति । विविदिषति । मुमुदिषति ॥

२६१० सनि ग्रहगुहोश्च ।७।२।१२॥

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण्न स्यात्। ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्। सनः षत्वस्यासिद्धत्वाद्भष्भावः। जिघृक्षति। सुषुप्सति ॥

२६१०-ग्रह धातु, गुह धातु और उगन्त धातुके उत्तर स्थित सन्को इट् न हो । "ग्रहिज्या० २४१२" इस सूत्रसे सम्प्रसारण हुआ, सन्के सकारके षत्वके असिद्धत्वके कारण भष्भाव हुआ-जिघृक्षति । सुषुप्सति ॥

२६११ किरश्च पञ्चभ्यः ।७।२।७५॥

कॄ गॄ दृङ् धृङ् प्रच्छ एभ्यः सन इट् स्यात्। पिपृच्छिषति। चिकरिषति। जिगरिषति,जिगलिषति ॥ अत्रेटो दीर्घो नेष्टः ॥ दिदरिषते। दिधरिषते। कथमुद्दिधीर्षुरिति । भौवादिकयोर्धृङ्धृञोरिति गृहाण ॥

२६११-कॄ,गॄ, दृङ्, धृङ् और प्रच्छ धातुके उत्तर स्थित सन्को इट् हो । पिपृच्छिषति । चिकरिषति । जिगरिषति, जिगलिषति । इस स्थलमें "वृतो वा" इससे इट्को दीर्घ होना इष्ट नहीं है ।

दिदरिषते । दिधरिषते । अब शंका करतेहैं कि, ' उद्दिधीर्षुः ' पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ ? कारण कि,उक्त सूत्रसे इट् होकर ' उद्दिधरिषुः ' ऐसा होना चाहिये था ? समाधान-यह भौवादिक धृङ् और धृञ् धातुका रूप है । पिपृच्छिषति ॥

२६१२ इको झल् । १ । २ । ९ ॥

इगन्ताज्झलादिः सन् कित्स्यात्। बुभूषति। दीङ्। दातुमिच्छति दिदीषते। एज्विषयत्वाभावान्मीनातिमिनोतीत्यात्त्वं न। अत एव सनि मीमेति सूत्रे मा धातोः पृथङ्मीग्रहणं कृतम् ॥

२६१२-इगन्त धातुके उत्तर झलादि सन् प्रत्ययकी कित्संज्ञा हो । बुभूषति ॥ दीङ् धातु यथा-दातुमिच्छति= दिदीषते । एच् विषयत्वके अभावके कारण " मीनाति मिनोति० २५०८ " इस सूत्रसे इस स्थलमें आत्त्व नहीं होगा, इस कारण " सनि मीमा० २६२३ " इस सूत्रमें मा धातुसे पृथक् मी धातुका ग्रहण किया है ॥

२६१३ हलन्ताच्च । १ । २ । १० ॥

इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित्स्यात्। गुहू। जुघुक्षति। बिभित्सति । इकः किम्। यियक्षते। झल्किम्। विवर्धिषते। हल्ग्रहणं जातिपरम्। तृंहू-तितृक्षति। तितृंहिषति ॥

२६१३-इक्के समीपस्थ हल्के परे स्थित जो झलादि सन् प्रत्यय उसकी कित्संज्ञा हो । गुहू धातु-जुघुक्षति । बिभित्सति । इक्के समीपस्थ न होनेपर यियक्षते । झलादि न होनेपर विवर्द्धिषते । इस सूत्रमें हल् ग्रहण जातिपर है इससे यहांभी कित्व हुआ जैसे-तृंहू धातु-तितृक्षति, तितृंहिषति ॥

२६१४ अज्झनगमां सनि ।६।४।१६॥

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घः स्याज्झलादौ सनि। सन्लिटोर्जेः। जिगीषति। विभाषा चेः। चिकीषति-चिचीषति। जिघांसति ॥

२६१४ झलादि सन् प्रत्यय परे रहते अजन्त धातुके हन् धातुको तथा अजादेश अर्थात् अच्के स्थानमें आदिष्ट गम धातुको दीर्घ हो । " सन् लिटोर्जेः २३३१" यहां यह सूत्र स्मरणार्थ है । जिगीषति । " विभाषा चेः० २५२५ " चिकीषति, चिचीषति । जिघांसति ॥

२६१५ सनि च । २ । ४ । ४७ ॥

इणो गमिः स्यात्सनि न तु बोधने। जिगमिषति। बोधने प्रतीषिषति। इण्वदिकः। अधिजिगमिषति। कर्मणि तङ्। परस्मैपदेष्वित्युक्तेर्नेट्। झलादौ सनीति दीर्घः। जिगांस्यते। अधिजिगांस्यते। अजादेशस्येत्युक्तेर्गच्छतेर्न दीर्घः। जिगंस्यते। सञ्जिगंसते ॥

२६१५-सन् परे रहते इण् धातुके स्थानमें गमि आदेश हो, बोधनार्थमें न हो । जिगमिषति । बोधनार्थमें प्रतीषिषति। " इण्वदिकः " यहां इस वार्त्तिकका स्मरण कराया है-अधिजिगमिषति । कर्म्मवाच्यमें तङ् हुआ, "गमेरिट् परस्मैपदेषु " इस सूत्रमें ' परस्मैपदेषु ' ऐसा कहनेके कारण इट् नहीं हुआ, झलादि सन् प्रत्यय परे रहते दीर्घ हुआ-जिगांस्यते । अधिजिगांस्यते ।

अच्के स्थानमें आदिष्ट ऐसा कहनेसे केवल गम धातुको दीर्घ न होगा-जिगंस्यते । सञ्जिगंसते ॥

२६१६ इङश्च । २ । ४ । ४८ ॥

इङो गमिः स्यात्सनि। अधिजिगांसते ॥

२६१६-सन् परे रहते इङ् धातुके स्थानमें गम आदेश हो । अधिजिगांसते ॥

२६१७ रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च । १ । २ । २६ ॥

उश्च इश्च वी ते उपधे यस्य तस्माद्धलादेरलन्तात्परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः । द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् । दिद्युतिषते-दिद्योतिषते । रुरुचिषते-रुरोचिषते । लिलिखिषति-लिलेखिषति । रलः किम् । दिदेविषति । व्युपधात्किम् । विवर्तिषते । हलादेः किम् । एषिषिषति । इह नित्यमपि द्वित्वं गुणेन बाध्यते । उपधाकार्यं हि द्वित्वात्प्रबलम् । ओणेर्ऋदित्करणस्य सामान्यापेक्षज्ञापकत्वात् ॥

२६२७-उकार और इकारोपध हलादि रलन्त धातुके परे स्थित सेट् क्त्वा, और सन् प्रत्ययकी कित्संज्ञा हो । "द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् २३४४" इस सूत्रसे सम्प्रसारण हुआ-दिद्युतिषते, दिद्योतिषते । रुरुचिषते, रुरोचिषते । लिलिखिषति, लिलेखिषति । रलन्त न होनेपर दिदेविषति ॥

उवर्ण इवर्ण उपधा न होनेपर विवर्त्तिषते ॥

हलादि न होनेपर एषिषिषति, इस स्थलमें द्वित्व नित्य होनेपर भी गुणसे बाधित होगा, क्योंकि उपधाका कार्य द्वित्वसे बलवत् है, ओणृ धातुका ऋकार इत्करण सामान्यापेक्ष ज्ञापक है ॥

२६१८ सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् । ७ । २ । ४९ ॥

इवन्तेभ्य ऋधादिभ्यश्च सन इड्वा स्यात् । इडभावे हलन्ताच्चेति कित्त्वम् । च्छ्वोरिति वस्य ऊठ् । यण् । द्वित्वम् । दुद्यूषति-दिदेविषति । स्तौतिण्योरेवेति वक्ष्यमाणनियमान्न षः । सुस्यूषति-सिसेविषति ॥

२६१८-सन् परे रहते इवन्त धातु और ऋध धातु भ्रस्ज, दम्भु, श्रि, स्वृ, यु, ऊर्णु, भृ, ज्ञपि और सन् धातुके उत्तर विकल्प करके सन्को इट् हो । इट्के अभाव पक्षमें "हलन्ताच्च २६१३" इस सूत्रसे कित्व होगा । "च्छ्वोः० २५६१" इस सूत्रसे ऊठ् हुआ, पश्चात् यण् हुआ, द्वित्व हुआ-दुद्यूषति-दिदेविषति । "स्तौतिण्योरेव० २६२७" इस वक्ष्यमाण सूत्रके नियमसे षत्व नहीं होगा--सुस्यूषति । सिसेविषति ॥

२६१९ आप्ज्ञप्यृधामीत् । ७ । ४ । ५५ ॥

एषामच ईत्स्यात्सादौ सनि ॥

२६१९-सकारादि सन् प्रत्यय परे रहते आप्, ज्ञपि और ऋध धातुके अच्के स्थानमें ईत् हो ॥

२६२० अत्र लोपोऽभ्यासस्य । ७ । ४ । ५८ ॥

सनि मीमेत्यारभ्य यदुक्तं तत्राभ्यासस्य लोपः स्यात् । आप्तुमिच्छति ईप्सति । अर्धितुमिच्छति । रपरत्वम् । चर्त्वम् । ईर्त्सति-अर्दिधिषति । बिभ्रज्जिषति-बिभर्जिषति-बिभ्रक्षति-बिभर्क्षति ॥

२६२०-"सनि मीमा० २६२३" इस सूत्रसे आरम्भ करके जो कार्य्य कहे गये हैं वह होनेपर अभ्यासका लोप हो । आप्तुमिच्छति=ईप्सति । अर्धितुमिच्छति-इस विग्रहमें रपरत्व और चर्त्व होकर ईर्त्सति, अर्दिधिषति । बिभ्रज्जिषति, बिभर्जिषति, बिभ्रक्षति, बिभर्क्षति ॥

२६२१ दम्भ इच्च । ७ । ४ । ५६ ॥

दम्भेरच इत्स्यादीच्च सादौ सनि । अभ्यासलोपः । हलन्ताच्चेत्यत्र हल्ग्रहणं जातिपरमित्युक्तम् । तेन सनः कित्त्वान्नलोपः । धिप्सति-धीप्सति-दिदम्भिषति । शिश्रीषति-शिश्रयिषति । उदोष्ठ्यपूर्वस्य । सुस्वूर्षति-सिस्वरिषति । युयूषति-यियविषति । ऊर्णुनूषति-ऊर्णुनुविषति-ऊर्णुनविषति । न च परत्वाद् गुणावादेशयोः सतोरभ्यासे उकारो न श्रूयेतेति वाच्यम् । द्विर्वचनेऽचीति सूत्रेण द्वित्वे कर्तव्ये स्थानिरूपातिदेशादादेशनिषेधाद्वा । न च सन्नन्तस्य द्वित्वं प्रति कार्यित्वान्निमित्तता कथमिति वाच्यम् । कार्यमनुभवन् हि कार्यी निमित्ततया नाश्रीयते न त्वननुभवन्नपि । न चेह सन् द्वित्वमनुभवति । बुभूर्षति । बिभरिषति । ज्ञपिः पुगन्तो मित्संज्ञः पकारान्तश्चौरादिकश्च । इडभावे । इको झलिति कित्त्वान्न गुणः । अज्झनेति दीर्घः परत्वाण्णिलोपेन बाध्यते । आप्ज्ञपीति ईत् । ज्ञीप्सति । जिज्ञपयिषति । अमितस्तु । जिज्ञापयिषति । जनसनेत्यात्वम् । सिषासति । सिसनिषति ॥ तनिपतिदरिद्रातिभ्यः सनो वा इड्वाच्यः ॥ * ॥

२६२१-सकारादि सन् प्रत्यय परे रहते दम्भ धातुके अच्के स्थानमें इत् हो और सूत्रमें चकारनिर्देश होनेके कारण ईत् भी हो । "हलन्ताच्च २६१३" इस सूत्रमें हल् शब्दका ग्रहण करनेसे जातिपरत्व है, ऐसा कहा है, इससे यह फल हुआ कि, सन्के कित्वके कारण नकारका लोप होगा-धिप्सति, धीप्सति, दिदम्भिषति । शिश्रीषति, शिश्रयिषति । "उदोष्ठ्यपूर्वस्य २४९४" यह सूत्र स्मरणार्थ है । सुस्वूर्षति, सिस्वरिषति । युयूषति, यियविषति ।

ऊर्णुनूषति, ऊर्णुनुविषति, ऊर्णुनविषति । इस स्थलमें परत्वके कारण गुण और अवादेश करनेपर अभ्यासका उकार श्रूयमाण न हो, यह बात कही जा सकतीहै, किन्तु वह नहीं होगा, क्योंकि "द्विर्वचनेऽचि २२४३" इस सूत्रके अनुसार

द्वित्व कर्त्तव्य रहते स्थानिरूपका अतिदेश अथवा आदेश निषेध नहीं होगा कारण कि, सन्नन्तके द्वित्वके प्रति कार्यित्वके कारण सन् की निमित्तता किस प्रकारसे होगी, ऐसा कहा जा सकताहै, किन्तु वह नहीं होगी, क्योंकि कार्य्यका अनुभव करनेवाला जो कार्य्यी वह निमित्तरूपसे आश्रीयमाण नहीं है, किन्तु जो कार्यको अनुभव न करे, वह निमित्तरूपसे अनायाससें आश्रीयमाण हो सकता है, इस स्थलमें तो सन् द्वित्वका अनुभव नहीं करताहै, तो फिर निमित्तत्व होनेमें बाध नहीं होनेसे २२४३ से स्थानिरूपका अतिदेश वा आदेशका निषेध हुआ, ऐसा जानना ।

बुभूर्षति, बिभरिषति । ज्ञपि धातु पुगन्त मित्संज्ञक और पकारान्त चुरादिगणीय है, इट्के अभाव पक्षमें "इको झल २६१२" इस सूत्रसे किसके कारण गुण नहीं होगा, "अज्झन्० २६१४" इस सूत्रसे विहित दीर्घ परत्वके कारण णि लोपसे बाधित हुआ, "आप्ज्ञपि० २६१९" इस सूत्रसे ईत् हुआ, ज्ञीप्सति, जिज्ञपयिषति । मित् नहीं होनेपर 'जिज्ञापयिषति' ऐसा होगा । "जनसन० २५०४"इस सूत्रसे आत्व हुआ । सिषासति, सिसनिषति ।

तन, पत और दरिद्रा धातुके उत्तर स्थित सन्को विकल्प करके इट् हो ॥

२६२२ तनोतेर्विभाषा । ६ । ४ । १७ ॥

अस्योपधाया दीर्घो वा स्याज्झलादौ सनि । तितांसति–तितंसति–तितनिषति ॥ आशङ्कायां सन्वक्तव्यः ॥ * ॥ श्वा मुमूर्षति । कूलं पिपतिषति ॥

२६२२–झलादि सन् परे रहते तन धातुकी उपधाको विकल्प करके दीर्घ हो । तितांसति, तितंसति, तितनिषति । आशङ्का अर्थ होनेपर सन् हो * श्वा मुमूर्षति । कुलम्पिपतिषति ॥

२६२३ सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् । ७ । ४ । ५४ ॥

एषामच इस् स्यात्सादौ सनि । अभ्यासलोपः । स्कोरिति सलोपः । पित्सति । दिदरिद्रिषति । दिदरिद्रासति । डुमिञ् मीञ् आभ्यां सन् । कृतदीर्घस्य मिनोतेरपि मीरूपाविशेषादिस् । सः सीति तः । मित्सति । मित्सते । मा माने । मित्सति । माङ्मेङोः । मित्सते । दोदाणोः । दित्सति । देङ् । दित्सते । दाञ् । दित्सति । दित्सते । धेट् । धित्सति । धाञ् । धित्सति । धित्सते । रिप्सते । लिप्सते । शक्लृ । शिक्षति । शक मर्षण इति दिवादिः । स्वरितेत् । शिक्षति । शिक्षते । पित्सते ॥ राधो हिंसायां सनीस् वाच्यः ॥ * ॥ रित्सति । हिंसायां किम् । आरिरात्सति ॥

२६२३–सकारादि सन् प्रत्यय परे रहते मी, मा, घुसंज्ञक धातु रभ, लभ,शक,पत और पद धातुके अच्के स्थानमें इस् आदेश हो । "स्कोः० ३८०" इस सूत्रसे सकारका लोप हुआ–पित्सति । दिदरिद्रिषति । दिदरिद्रासति । डुमिञ् और मीञ् इन दो धातुओंके उत्तर सन् हुआ, कृतदीर्घ जो मी धातु उसके स्थानमें मी मीरूपके साथ अविशेषके कारण इस् हुआ, "सः सि० २३४२" इस सूत्रसे सकारके स्थानमें तकार हुआ । मित्सति, मित्सते । मा–मानमें–मित्सति । माङ् और मेङ्–मित्सते । दो धातु और दाण धातु–दित्सति । देङ् धातु–दित्सते । दाञ् धातु–दित्सति । दित्सते ।धेट् धातु–धित्सति । धाञ् धातु–धित्सति। धित्सते । रिप्सते।लिप्सते। शक्लृ धातु–शिक्षति । शक धातु मर्षणार्थमें,यह धातु दिवादि गणीय उभयपदी है–शिक्षति । शिक्षते । पित्सते ।

हिंसार्थमें सन् परे रहते राध धातुको इस् हो । रित्सति । हिंसार्थ न होनेपर इस् नहीं होगा–आरिरात्सति ॥

२६२४ मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा । ७ । ४ । ५७ ॥

सादौ सनि । अभ्यासलोपः । मोक्षते–मुमुक्षते वा वत्सः स्वयमेव । अकर्मस्य किम् । मुमुक्षति वत्सं कृष्णः । न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः । विवृत्सति । तङि तु । विवर्तिषते । से सिचीति वेट् । निनर्तिषति–निनृत्सति ॥

२६२४–सकारादि सन् प्रत्यय परे रहते अकर्मक मुच् धातुको विकल्प करके गुण हो । अभ्यासका लोप हुआ । मोक्षते, मुमुक्षते, वा वत्सः स्वयमेव । अकर्मक न होनेपर मुमुक्षति वत्सं कृष्णः । "न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः २३४८" इस सूत्रसे इट् निषेध होगा–विवृत्सति । आत्मनेपद परे रहते 'विवर्त्तिषते' ऐसा होगा । "सेऽसिचि० २५०६" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् होगा । निनर्त्तिषति, निनृत्सति ॥

२६२५ इट् सनि वा । ७ । २ । ४१ ॥

वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्च सन इड्वा स्यात् । तितरीषति–तितरिषति–तितीर्षति । विवरीषति–विवरिषति–वुवूर्षति । वृङ् । विवरिषते–वुवूर्षते । दुध्वूर्षति ॥

२६२५–वृङ्, वृञ् और ऋदन्त धातुके उत्तर स्थित सन्को विकल्प करके इट् हो । तितरीषति, तितरिषति, तितीर्षति । विवरिषति, विवरीषति, वुवूर्षति । वृङ् धातु–वुवूर्षते । विवरिषते । दुध्वूर्षति ॥

२६२६ स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि । ७ । २ । ७४ ॥

स्मि पूङ् ऋ अञ्जू अश् एभ्यः सन् इट् स्यात् । सिस्मयिषते । पिपविषते । अरिरिषति । इह रिसशब्दस्य द्वित्वम् । इस् इति सनोऽवयवः कार्यभागिति कार्यिणो निमित्तत्वायोगाद्द्विर्वचनेऽचीति न प्रवर्तते । अञ्जि-

षति। अशिशिषते। उभौ साभ्यासस्य। प्राणिणिषति। उच्छेस्तुक्। चुत्वम्। पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्व इति चछाभ्यां सहितस्येटो द्वित्वम्। हलादिःशेषः। उचिच्छिषति। निमित्तापाये नैमित्तिकापाय इति त्वनित्यम्। च्छ्वोरिति सतुग्ग्रहणाज्ज्ञापकात्। प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचनाद्वा। णौ च संश्चङोरितिसूत्राभ्यामिङो गाङ् श्वयतेः सम्प्रसारणं च वा। अधिजिगापयिषति-अध्यापिपयिषति। शिश्वाययिषति-शुशावयिषति। ह्वः सम्प्रसारणम्। जुहावयिषति। णौ द्वित्वात्प्रागच आदेशो नेत्युक्त्वादुकारस्य द्वित्वम्। पुस्फारयिषति। चुक्षावयिषति। ओःपुयण्ज्यपरे। पिपावयिषति। यियावयिषति। बिभावयिषति। रिरावयिषति। लिलावयिषति। जिजावयिषति। पुयण्जि किम्।नुनावयिषति। अपरे किम्। बुभूषति।स्रवतीत्यित्त्वं वा। सिस्रावयिषति-सुस्रावयिषतीत्यादि। अपर इत्येव शुश्रूषते॥

२६२६-स्मिङ्, पूङ्, ऋ, अञ्ज और अश धातुके उत्तर स्थित सन्को इट् हो। सिस्मयिषते। पिपविषते। अरिरिषति। इस स्थलमें रिस शब्दको द्वित्व हुआ, "अजादेर्द्वितीयस्य" इस सूत्रसे यह (इस्) सन्का अवयव कार्यभागी है, अतएव कार्य्यीके निमित्तत्वके अभावके कारण "द्विर्वचनेऽचि२२४३" यह सूत्र इस स्थानमें प्रवर्त्तित नहीं होताहै। अञ्जिजिषति। अशिशिषते॥

"उभौ साभ्यासस्य २६०६" इस सूत्रसे धातुके और अभ्यासके नकारको णत्व हुआ। प्राणिणिषति। उछ धातुको तुक्का आगम और चुत्व हुआ, "पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे" अर्थात् त्रिपादीका कार्य द्वित्व करनेमें असिद्ध न मानाजाय इस परिभाषासे च और छ इन दोनोंके साथ इट्को द्वित्व हुआ, पश्चात्, "हलादिः शेषः २१७९" इस सूत्रसे 'उचिच्छिषति' पद हुआ। यदि कहो कि, छकारको तुक् हुआहै, पश्चात् चकार हुआ है, तब "हलादिः शेषः २१७९" इस सूत्रसे छकारका लोप करनेपर चकारका भी निमित्तका अपाय होनेपर नैमित्तिकका भी अपाय हो इस परिभाषासे लोप होना उचित है,इस शङ्कापर कहतेहैं कि, "च्छ्वोः२५६१"इस सूत्रमें सतुक् ग्रहण करनेके कारण अथवा प्रकृतिप्रत्यापत्ति वचनके कारण यह परिभाषा अनित्य है॥

"णौ च संश्चङोः २६०१, २५७९" इन दो सूत्रोंसे इङ् धातुके स्थानमें गाङ् आदेश और श्वि धातुको विकल्प करके सम्प्रसारण हुआ-अधिजिगापयिषति। अध्यापिपयिषति। शिश्वाययिषति। शुशावयिषति। "ह्वः सम्प्रसारणम्२५८६" इस सूत्रसे सम्प्रसारण हुआ-जुहावयिषति। णिच् परे द्वित्वके पूर्वमें अच् स्थानिक आदेश न हो, ऐसा पहले कहचुकाहूं इससे उकारको द्वित्व हुआ। पुस्फारयिषति। चुक्षावयिषति॥

"ओः पुयण्ज्यपरे २५७७" इस सूत्रसे अभ्यासके उकारके स्थानमें इकार हुआ। पिपावयिषति। यियावयिषति। बिभावयिषति। रिरावयिषति। लिलावयिषति। जिजावयिषति। पवर्ग यण् और जकार कहनेसे 'ननावयिषति' इस स्थलमें इत्व नहीं हुआ। अवर्ण परे न होनेपर इत्व नहीं होगा-बुभूषति॥ "स्रवति० २५७८" इस सूत्रसे अभ्याससम्बन्धीय उकारको विकल्प करके इत्व हुआ-सिस्रावयिषति। सुस्रावयिषति-इत्यादि। इस सूत्रसे जो इत्व वह भी अवर्ण परे ही होगा, अन्यत्र नहीं, इससे यहां नहीं हुआ-शुश्रूषते॥

२६२७ स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्। ८। ३। ६१॥

अभ्यासेणः परस्य स्तौतिण्यन्तयोरेव सस्य षः स्यात्षभूते सनि नान्यस्य। तुष्टूषति। द्युतिस्वाप्योरित्युत्त्वम्। सुष्वापयिषति। सिषाधयिषति। स्तौतिण्योः किम्। सिसिक्षति। उपसर्गात्तु स्थादिष्वभ्यासेन चेति षत्वम्। परिषिषिक्षति। षणि किम्। तिष्ठासति। सुषुप्सति। अभ्यासादित्युक्तेर्नेह निषेधः। प्रतीषिषति। इक्। अधीषिषति॥

२६२७-षत्व हुआहै जिसके ऐसे सन् परे रहते अभ्याससम्बन्धीय इण्के परे स्थित स्तु धातु और ण्यन्त धातुके सकारको षत्व हो, अन्यत्र न हो। तुष्टूषति। "द्युतिस्वाप्योः २३४४" इस सूत्रसे उकार हुआ। सुष्वापयिषति। सिषाधयिषति।

स्तु धातु और ण्यन्त धातु भिन्न धातु होनेपर सिसिक्षति। उपसर्गके परे होनेपर "स्थादिष्वभ्यासेन २२७७" इस सूत्रसे षत्व होगा-परिषिषिक्षति।

षत्व हुआ हो ऐसा सन् परे न रहते तिष्ठासति, सुषुप्सति, इस प्रकार होगा॥

'अभ्यासात्' ऐसा कहनेसे इस सूत्रसे इस स्थलमें षत्वनिषेध नहीं होगा। इण् धातु-प्रतीषिषति। इक् धातु-अधीषिषति॥

२६२८ सः स्विदिस्वदिसहीनां च। ८। ३। ६२॥

अभ्यासेणः परस्य ण्यन्तानामेषां सस्य स एव न षः षणि परे। सिस्वेदयिषति। सिस्वादयिषति। सिसाहयिषति। स्थादिष्वेवाभ्यासस्येति नियमान्नेह। अभिसुसूषति॥

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः। सरूपप्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते॥

शैषिकाच्छैषिकः सरूपो न । तेन शालीये भव इति वाक्यमेव न तु छान्ताच्छः । सरूपः किम् । अहिच्छत्रे भव आहिच्छत्रः । आहिच्छत्रे भव आहिच्छत्रीयः अण्णन्ताच्छः । तथा मत्वर्थात्सरूपः स न । धनवानस्यास्ति । इह मतुबन्तान्मतुप् न । विरूपस्तु स्यादेव । दण्डिमती शाला । सरूप इत्यनुषज्यते । अर्थद्वारा सादृश्यं तस्यार्थः तेन इच्छासन्नन्तादिच्छासन्न । स्वार्थसन्नन्तात्तु स्यादेव । जुगुप्सिषते । मीमांसिषते ॥

॥ इति सन्नन्तप्रक्रिया ॥

२६२८–जिसे षत्व हुआ है, ऐसा सन् परे रहते अभ्याससम्बन्धीय इण्के उत्तर स्थित ण्यन्त स्विद्, स्वद और सह धातुके सकारको षत्व न हो । सिस्वेदयिषति । सिस्वादयिषति। सिसाहयिषति । स्थादि धातुओंके ही अभ्यासको षत्व हो, इस नियमके कारण 'अभिसुसूषति' यहां षत्व नहीं हुआ ॥

अब कारिकाकी व्याख्या करतेहैं–

शैषिक प्रत्ययके उत्तर स्वरूप शैषिक प्रत्यय न हो, उससे यह हुआ कि, 'शालीये भवः' इस स्थलमें वाक्यमात्र ही रहेगा, किन्तु छ प्रत्ययके उत्तर छ प्रत्यय नहीं होगा । सरूप ग्रहण करनेसे 'अहिच्छत्रे भवः=आहिच्छत्रः, आहिच्छत्रे भवः आहिच्छत्रीयः' इस स्थानमें अण् प्रत्ययान्तके उत्तर छ हुआ है । इसी प्रकार मत्वर्थीय प्रत्ययान्तके उत्तर सरूप मत्वर्थीय नहीं हो, इससे धनवानस्यास्ति–इस स्थलमें मतुप् प्रत्ययान्तके उत्तर मतुप् नहीं हुआ । यदि मत्वर्थीय विरूप अर्थात् विभिन्नरूप हो तो उसके उत्तर मतुप् होगा–दण्डिमती शाला । सरूप शब्दसे सदृरूप पदका सबके साथ अन्वय होगा । सरूप शब्दसे सदृशार्थक समझना । इसी कारण इच्छार्थक सन्नन्तके उत्तर फिर सरूप इच्छार्थक सन् नहीं होगा, किन्तु स्वार्थ सन्नन्तके उत्तर इच्छार्थक सन् होगा । जुगुप्सिषते । मीमांसिषते ॥

॥ इति सन्नन्तप्रकरणम् ॥

अथ यङन्तप्रक्रिया ।

२६२९ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् । ३ । १ । २२ ॥

पौनःपुन्यं भृशार्थश्च क्रियासमभिहारस्तस्मिन् द्योत्ये यङ् स्यात् ॥

२६२९–क्रियासमभिहार अर्थात् पौनःपुन्य और भृशार्थ होनेपर एकाच् हलादि धातुके उत्तर यङ् हो ॥

२६३० गुणो यङ्लुकोः । ७ । ४ । ८२ ॥

अभ्यासस्य गुणः स्याद्यङि यङ्लुकि च । ङिदन्तत्वादात्मनेपदम् । सनाद्यन्ता इति धातुत्वाल्लडादयः । पुनःपुनरतिशयेन वा भवति बोभूयते । बोभूयांचक्रे । अबोभूयिष्ट । धातोः किम् । आर्धधातुकत्वं यथा स्यात् । तेन ब्रुवो वचिरित्यादि। एकाचः किम्। पुनःपुनर्जागर्ति । हलादेः किम् । भृशमीक्षते । भृशं शोभते, रोचते इत्यत्र यङ्नेति भाष्यम् । पौनःपुन्ये तु स्यादेव । रोरुच्यते । शोशुभ्यते ॥ सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतिभ्यो यङ् वाच्यः ॥ * ॥ आद्यास्त्रयश्चुरादावदन्ताः ॥ सोसूच्यते । सोसूत्र्यते । मोमूत्र्यते।अनेकाच्त्वेनाषोपदेशत्वात्षत्वं न॥

२६३०–यङ् और यङ्लुक् परे रहते धातुसंबन्धीय अभ्यासको गुण हो ।"सनाद्यन्ता० २६०४"इस सूत्रसे धातुत्व सिद्ध होनेपर उसके उत्तर लट् आदि प्रत्यय प्रयुक्त होंगे । ङिदन्तत्वके कारण आत्मनेपदी होंगे । पुनःपुनः अतिशयेन वा भवति=बोभूयते । बोभूयाञ्चक्रे । अबोभूयिष्ट । धातुके उत्तर, ऐसा कहनेसे यङ्को आर्धधातुकत्व हुआ, उससे यह फल हुआ कि, ब्रू धातुके स्थानमें वच आदेश (२४५३) इत्यादि कार्य्य होगा ।

एकाच् कहनेसे 'पुनःपुनर्जागर्ति' इस स्थलमें यङ् नहीं हुआ । हलादि कहनेसे 'भृशम् ईक्षते, भृशं शोभते, रोचते' इन स्थलोंमें यङ् नहीं हो यह भाष्यमें लिखा है, किन्तु पौनःपुन्यार्थमें यङ् होगा–रोरुच्यते । शोशुभ्यते ॥

सूच, सूत्र, मूत्र, अट, ऋ, अश, ऊर्णु–इत्यादि धातुओंके उत्तर यङ् हो * । प्रथम तीन धातु चुरादिगणमें अकारान्त निर्दिष्ट हुए हैं । सोसूच्यते । सोसूत्र्यते । मोमूत्र्यते अनेकाच्त्वके कारण षोपदेश होताहै, इस कारण षत्व नहीं होगा ॥

२६३१ यस्य हलः । ६ । ४ । ४९ ॥

यस्येति संघातग्रहणम् । हलः परस्य यशब्दस्य लोपः स्यादार्धधातुके । आदेः परस्य । अतो लोपः । सोसूचांचक्रे । सोसूचिता । सोसूत्रिता । मोमूत्रिता ॥

२६३१–'यस्य' इस पदसे संघात अर्थात् अकार सहित यकारका ग्रहण है, आर्धधातुकसंज्ञक प्रत्यय परे रहते हल्के परे 'य' शब्दका लोप हो । "आदेः परस्य ४४" इस सूत्रसे 'य्' का लोप हुआ, "अतो लोपः२३०८" इस सूत्रसे अकारका लोप हुआ । सोसूचाञ्चक्रे । सोसूचिता । सोसूत्रिता । मोमूत्रिता ॥

२६३२ दीर्घोऽकितः । ७ । ४ । ८३ ॥

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घः स्याद्यङि यङ्लुकि च । अटाट्यते ॥

२६३२–अकित् अर्थात् जिसकी कित् संज्ञा नहीं ऐसे अभ्यासको दीर्घ हो यङ् और यङ्लुक् परे रहते । अटाट्यते ॥

२६३३ यङि च । ७ । ४ । ३० ॥

अर्तेः संयोगादेश्च ऋतो गुणः स्याद्यङि ।

यकारपररेफस्य न द्वित्वनिषेधः । अरार्यते इति भाष्योदाहरणात् । अरारिता । अशाशिता । ऊर्णोनूयते । बेभिद्यते । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वान्नोपधागुणः । बेभिदिता । सासद्यते ॥

२६३३-यङ् परे रहते ऋ धातुको और संयोगादि ऋकारान्त धातुको गुण हो । यकार परे रहते पूर्ववर्त्ती रकारको द्वित्वनिषेध नहीं हो,कारण कि,'अरार्यते'ऐसा उदाहरण भाष्यमें कहाहै । अरारिता । अशाशिता । ऊर्णोनूयते । बेभिद्यते । अकारलोपके स्थानिवत्वके कारण उपधाको गुण नहीं होगा-बेभिदिता ॥

२६३४ नित्यं कौटिल्ये गतौ ।३।१।२३॥

गत्यर्थात् कौटिल्य एव यङ् स्यान्न तु क्रियासमभिहारे । कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते ॥

२६३४-गत्यर्थ धातुके उत्तर कौटिल्यार्थमें ही यङ् हो क्रियासमभिहारमें न हो । कुटिलं व्रजति=वाव्रज्यते ॥

२६३५ लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम् । ३ । १ । २४ ॥

एभ्यो धात्वर्थगर्हायामेव यङ् स्यात् । गर्हितं लुम्पति लोलुप्यते । सासद्यते ॥

२६३५-भावगर्हा अर्थात् धात्वर्थ निन्दा होनेपर लुप,सद, चर, जप, जभ, दह, दश और गॄ धातुके उत्तर यङ् हो । गर्हितं लुम्पति लोलुप्यते । सासद्यते ॥

२६३६ चरफलोश्च । ७ । ४ । ८७ ॥

अनयोरभ्यासस्यातो नुक् स्याद्यङ्यङ्लुकोः नुगित्यनेनानुस्वारो लक्ष्यते ॥ स च पदान्तवद्वाच्यः ॥*॥ वा पदान्तस्येति यथा स्यात् ॥

२६३६-यङ् और यङ्लुक् परे रहते चर और फल धातुके अभ्यासके अकारको नुक् हो । नुक् पदसे अनुस्वार लक्षित होताहै ।

वह अनुस्वार पदान्तवत् हो * इस कारण"वा पदान्तस्य १२५" इस सूत्रकी प्रवृत्ति होगी ॥

२६३७ उत्परस्यातः । ७।४।८८॥

चरफलोरभ्यासात्परस्यात उत्स्याद्यङ्यङ्लुकोः । हलि चेति दीर्घः । चञ्चूर्यते-चंचूर्यते । पम्फुल्यते-पंफुल्यते ॥

२६३७-यङ् और यङ्लुक् परे रहते चर और फल धातुके अभ्यासके अकारके स्थानमें उत् हो । " हलि च ३५४" इस सूत्रसे इस उकारको दीर्घ होकर-चञ्चूर्यते, चंचूर्यते । पम्फुल्यते, पंफुल्यते ॥

२६३८ जपजभदहदशभञ्जपशां च । ७ । ४ । ८६ ॥

एषामभ्यासस्य नुक् स्याद्यङ्यङ्लुकोः । गर्हितं जपति जञ्जप्यते इत्यादि ॥

२६३८-यङ् और यङ्लुक् परे रहते जप, जभ, दह, दश, भञ्ज और पश धातुके अभ्यासको नुक्का आगम हो, गर्हितं जपति=जञ्जप्यते, इत्यादि ॥

२६३९ ग्रो यङि । ८ । २ । २० ॥

गिरते रेफस्य लत्वं स्याद्यङि । गर्हितं गिलति जेगिल्यते । घुमास्थेतीत्वम् । गुणः । देदीयते । पेपीयते । सेषीयते । विभाषा श्वेः । शोशूयते-शेश्वीयते । यङि च । सास्मर्यते । रीङ् ऋतः । चेक्रीयते । सुट् । सञ्चेस्क्रीयते ॥

२६३९-यङ् परे रहते गृ धातुके रकारके स्थानमें लकार हो, गर्हितं गिलति=जेगिल्यते । " घुमास्था० २४६२ " इस सूत्रसे ईकार और अभ्यास ईकारको गुण होकर-देदीयते । पेपीयते । सेषीयते । " विभाषा श्वेः २४२० " इस सूत्रसे विकल्प करके सम्प्रसारण होकर-शोशूयते, शेश्वीयते । "यङि च २६३३ " इस सूत्रसे गुण होकर-सास्मर्य्यते । " रीङ् ऋतः १२३४ " इस सूत्रसे रीङ् आदेश होकर-चेक्रीयते । सुट् आगम होकर-सञ्चेस्क्रीयते ॥

२६४० सिचो यङि ।८ । ३।११२॥

सिचः सस्य षो न स्याद्यङि । निसेसिच्यते ॥

२६४०-यङ् परे रहते सिच् धातुके सकारको षत्व न हो, निसेसिच्यते ॥

२६४१ न कवतेर्यङि । ७।४। ६३॥

कवतेरभ्यासस्य चुत्वं न स्याद्यङि । कोकूयते । कौतिकुवत्योस्तु चोकूयते ॥

२६४१-यङ् परे रहते कु धातुके अभ्यासको चुत्व अर्थात् कके स्थानमें च न हो । कोकूयते । ' कौति, कुवति ' अर्थात् अदादि तुदादि गणीय कु धातुके अभ्यास कके स्थानमें च होगा, चोकूयते ॥

२६४२ नीग्वंचुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम् । ७ । ४ । ८४ ॥

एषामभ्यासस्य नीगागमः स्याद्यङ्यङ्लुकोः अकित इत्युक्तेर्न दीर्घः । नलोपः । वनीवच्यते । सनीस्रस्यत इत्यादि ॥

२६४२-यङ् और यङ्लुक् परे रहते वञ्चु, स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु, कस, पत, पद और स्कन्द धातुके अभ्यासको नीक्का आगम हो । " दीर्घोऽकितः " इस सूत्रमें अकित् पदका ग्रहण करनेसे इस स्थलमें दीर्घ नहीं होगा । नकारका लोप होकर-वनीवच्यते । सनीस्रस्यते, इत्यादि ॥

२६४३ नुगतोऽनुनासिकान्तस्य । ७ । ४ । ८५ ॥

अनुनासिकान्तस्याङ्गस्य योऽभ्यासो दन्तस्तस्य नुक् स्यात् । नुकानुस्वारो लक्ष्यत इत्युक्तम् । यँयम्यते-यंयम्यते । तपरत्वसामर्थ्याद् भूतपूर्व-

दीर्घस्यापि न । भाम क्रोधे । बाभाम्यते । ये विभाषा । जाजायते-जञ्जन्यते । हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वाच्यः ॥ * ॥ जेघ्नीयते । हिंसायां किम् । जंघन्यते ॥

२६४३-यङ् और यङ्लुक् परे रहते अनुनासिकवर्णान्त अङ्गका जो अकारान्त अभ्यास, उसको नुक्का आगम हो । इस स्थलमें नुक् आगमसे अनुस्वार लक्षित होताहै । यँयम्यते, यंयम्यते । तपरत्वसामर्थ्यके कारण भूतपूर्व दीर्घको भी न होगा, जैसे-क्रोधार्थक भाम धातुका बाभाम्यते । "ये विभाषा २३१९" इस सूत्रसे जन धातुको विकल्प करके आत्व होकर-जाजायते, जञ्जन्यते ।

हिंसार्थमें हन् धातुके स्थानमें यङ् परे रहते घ्नी आदेश हो * जेघ्नीयते । हिंसाभिन्नार्थमें घ्नी आदेश नहीं होकर-जंघन्यते ॥

२६४४ रीगृदुपधस्य च ।७।४।९०॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमः स्याद्यङ्यङ्लुकोः । वरीवृत्यते । क्षुभ्नादित्वान्न णः । नरीनृत्यते । जरीगृह्यते । उभयत्र लत्वम् । चलीक्लृप्यते ॥ रीगृत्वत इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ वरीवृश्च्यते । परीपृच्छ्यते ॥

२६४४-यङ् और यङ्लुक् परे रहते ऋकारोपध धातुके अभ्यासको रीक्का आगम हो, वरीवृत्यते । क्षुभ्नादित्वके कारण नकारको णत्व नहीं होकर-नरीनृत्यते । जरीगृह्यते । क्लृप् धातुके अभ्यास और धातुसम्बन्धी दोनों रेफके स्थानमें लकार होकर-चलीक्लृप्यते ।

ऋकारविशिष्टधातुके अभ्यासको रीक्का आगम हो * ऐसा कहना चाहिये । वरीवृश्च्यते । परीपृच्छ्यते ॥

२६४५ स्वपिस्यमिव्येञां यङि । ६ । १ । १९ ।

सम्प्रसारणं स्याद् यङि । सोषुप्यते । सेसिम्यते । वेवीयते ॥

२६४५-यङ् प्रत्यय परे रहते स्वप, स्यम और व्येञ् धातुको सम्प्रसारण हो, सोषुप्यते । सेसिम्यते । वेवीयते ॥

२६४६ न वशः । ६ । १ । २० ॥

वावश्यते ॥

२६४६-यङ् परे रहते वश धातुको सम्प्रसारण न हो, वावश्यते ॥

२६४७ चायः की । ६ । १ । २१॥

चेकीयते ॥

२६४७-यङ् परे रहते चाय धातुके स्थानमें की आदेश हो, चेकीयते । की ऐसा दीर्घ उच्चारण यङ्लुगर्थ है, इसी कारण "न लुमताङ्गस्य" यह निषेध भी प्रवृत्त नहीं होकर की आदेश यङ्लुक्में होताही है, चेकीतः ॥

२६४८ ई घ्राध्मोः । ७ । ४ । ३१ ॥

जेघ्रीयते । देध्मीयते ॥

२६४८-यङ् परे घ्रा और ध्मा धातुके आकारके स्थानमें ईकार हो, जेघ्रीयते । देध्मीयते ॥

२६४९ अयङ्यि क्ङिति ।७।४।२२॥

शीङोऽयङादेशः स्याद्यादौ क्ङिति परे । शाशय्यते । अभ्यासस्य ह्रस्वः । ततो गुणः । ढोढौक्यते । तोत्रौक्यते ॥ * ॥

॥ इति यङन्तप्रक्रिया ॥

२६४९-यकारादि कित्, ङित् प्रत्यय परे रहते शीङ् धातुको अयङ् आदेश हो, शाशय्यते । अभ्यासको ह्रस्व पश्चात् गुण होकर-डोढौक्यते । तोत्रौक्यते ॥

॥ इति यङन्तप्रकरणम् ॥

अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया ।

२६५० यङोऽचि च । २ । ४।७४ ॥

यङोऽच्प्रत्यये लुक् स्याच्चकारात्तं विनापि बहुलं लुक् स्यात् । अनैमित्तिकोऽयम् । अन्तरङ्गत्वादादौ भवति । ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद्द्वित्वम् । अभ्यासकार्यम् । धातुत्वाल्लडादयः । शेषात्कर्तरीति परस्मैपदम् । अनुदात्तङित इति तु न । ङित्त्वस्य प्रत्ययाऽप्रत्ययसाधारणत्वेन प्रत्ययलक्षणाप्रवृत्तेः । यत्र हि प्रत्ययस्यासाधारणं रूपमाश्रीयते तत्रैव तत् । अत एव सुदृषत्प्रासाद इत्यत्राऽत्वसन्तस्येति दीर्घो न । येऽपि स्पर्धशीङादयोऽनुदात्तङितस्तेभ्योऽपि न । अनुदात्तङितः इत्यनुबन्धनिर्देशात् । तत्र च श्तिपा शपेति निषेधात् । अत एव श्यन्नादयो न । किंतु शबेव । चर्करीतं चेत्यगणेन निर्देशात् । किंतु शबेव । चर्करीतं चेत्य-

दादौ पाठाच्छपो लुक् ॥

२६५०-अच् प्रत्यय परे रहते यङ्का लुक् हो और चकारनिर्देशसे अच् प्रत्यय परे न रहते भी बहुल करके लुक् हो, यह यङ्लुक् अनैमित्तिक है, अत एव अन्तरङ्गत्वके कारण पहिले ही लुक् होगा, पश्चात् प्रत्ययलक्षणसे यङन्तत्वके कारण द्वित्व, अभ्यासकार्य्य और धातुत्व होनेसे उसके उत्तर लडादि प्रत्यय होंगे । "शेषात् कर्त्तरि० २१५९" इस सूत्रसे परस्मैपद होगा । "अनुदात्तङितः २१५७" इस सूत्रसे ङित्त्वके प्रत्यय और अप्रत्यय साधारण होनेसे प्रत्ययलक्षणकी अप्रवृत्तिके कारण आत्मनेपद नहीं होगा, कारण कि, जिस स्थलमें प्रत्ययका असाधारणरूप आश्रित होताहै, उसी स्थलमें प्रत्ययलक्षणकी प्रवृत्ति होताहै अत एव 'सुदृषत्प्रासादः' इस स्थलमें "अत्वसन्तस्य०४२५" इस सूत्रसे सुदृषत् शब्दके उत्तर जसको प्रत्ययलक्षण करके दीर्घ नहीं होताहै । जो भी स्पर्द्ध

और शीङ् आदि अनुदात्तेत् और ङित् धातु हैं उनके उत्तर भी आत्मनेपद नहीं होगा, क्योंकि, "अनुदात्तङितः० २१५७" इस सूत्रमें अनुबंधनिर्देशके कारण "श्तिपा श-पा०" इस परिभाषासे निषेध होजाताहै, अत एव उस स्थलमें गणनिर्देशके कारण श्यन् आदि प्रत्यय न होकर शप् ही होताहै। "चर्करीतञ्च" इसको अदादिगणमें पाठके कारण शप्का लुक् होगा।

२६५१ यङो वा । ७ । ३ । ९४ ॥

यङन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य ईड्वा स्यात्। भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न। बोभूतु तेतिक्ते इति छन्दसि निपातनात्। अत एव यङ्लुग्भाषायामपि सिद्धः। न च यङ्लुक्यप्राप्त एव गुणाभावो निपात्यतामिति वाच्यम्। प्रकृतिग्रहणेन यङ्लुगन्तस्यापि ग्रहणात्। द्विः प्रयोगो द्विर्वचनं षाष्ठमिति सिद्धान्तात्। बोभवीति-बोभोति। बोभूतः। बोभुवति। बोभवांचकार। बोभविता।अबोभवीत्-अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभवुः। बोभूयात्। बोभूयाताम्। बोभूयास्ताम्। गातिस्थेति सिचो लुक्। यङो वेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद्वुक्। अबोभूवीत्-अबोभोत्। अबोभूताम्। अभ्यस्ताश्रयो जुस्। नित्यत्वाद्वुक्। अबोभूवुः। अबोभविष्यदित्यादि। पास्पर्धीति-पास्पर्धि। पास्पर्धः। पास्पर्धति। पास्पर्त्सि। झषस्तथोर्धोऽधः। पास्पर्धि। लङ्। अपास्पर्त्-अपास्पर्द्। सिपि दश्चेति रुत्वपक्षे। रो रि। अपास्पाः। जागाद्धि। जागात्सि। अजागात्। सिपि रुत्वपक्षे। अजागाः। नाथृ। नानात्ति। नानात्तः। दध। दादद्धि। दादद्धः। दाधत्सि। अदाधत्। अदादद्धाम्। अदादधुः। अदाधः-अदाधत्। लुङि। अदादाधीत्-अदादधीत्। चोस्कुन्दीति-चोस्कुन्ति।अचोस्कुन्। अचोस्कुन्ताम्। अचोस्कुन्दुः। मोमुदीति-मोमोत्ति। मोमोदांचकार। मोमोदिता। अमोमुदीत्-अमोमोत्। अमोमुत्ताम्। अमोमुदुः। अमोमुदीः-अमोमोः-अमोमोत्। लुङि गुणः। अमोमोदीत्। चोकूर्दीति। चोकूर्ति। लङ् तिप्। अचोकूर्दीत्। अचोकूर्त्। सिप्पक्षे। अचोकूः। अचोकूः। अजोगूः। वनीवञ्चीति-वनीवङ्क्ति। वनीवक्तः। वनीवचति। अवनीवञ्चीत्। अवनीवन्। जङ्गमीति-जङ्गन्ति। अनुदात्तोपदेशेत्यनुनासिकलोपः। जङ्गतः। जङ्गमति। म्वोश्च। जङ्गन्मि। जङ्गन्वः। एकाज्ग्रहणोक्तत्वान्नेण्निषेधः। जङ्गमिता। अनुनासिकलोपस्याभीयत्वेनासिद्धत्वान्न हेर्लुक्। जङ्गहि। मो नो धातोः। अजङ्गन्। अनुबन्धनिर्देशान्न च्लेरङ्। ह्म्यन्तेति न वृद्धिः। अजंगमीत्। अजंगमिष्टाम्। हन्तेर्यङ्लुक्। अभ्यासाच्चेति कुत्वं यद्यपि होहन्तेरित्यतो हन्तेरित्यनुवर्त्य विहितं तथापि यङ्लुकि भवत्येवेति न्यासकारः। श्तिपा शपेति निषेधस्त्वनित्यः। गुणो यङ्लुकोरिति सामान्यापेक्षज्ञापकादिति भावः। जङ्घनीति-जङ्घन्ति। जङ्घतः। जङ्घ्नति। जङ्घनिता। श्तिपा निर्देशाज्जादेशो न। जङ्घहि। अजङ्घनीत्-अजङ्घन्। जङ्घन्यात्। आशिषि तु। वध्यात्। अवधीत्। अवधिष्टामित्यादि। वधादेशस्य द्वित्वं न भवति स्थानिवत्त्वेनानभ्यासस्येति निषेधात्। तद्धि समानाधिकरणं धातोर्विशेषणं बहुव्रीहिबलात्। आङ्पूर्वात्तु आङो यमहन इत्यात्मनेपदम्। आजङ्घते इत्यादि। उत्परस्येति तपरत्वान्न गुणः। हलि चेति दीर्घस्तु स्यादेव। तस्यासिद्धत्वेन तपरत्वनिवर्त्यत्वायोगात्। चञ्चुरीति-चञ्चूर्ति। चञ्चूर्त्तः। चञ्चुरति। अचञ्चुरीत्-अचञ्चूः। चङ्खनीति-चङ्खन्ति। जनसनेत्यात्वम्। चङ्खातः। गमहनेत्युपधालोपः।चङ्खनति।चङ्खहि।चङ्खनानि। अचङ्खनीत्-अचङ्खन्। अचङ्खाताम्।अचङ्खनुः। ये विभाषा। चङ्खायात्। चङ्खन्यात्। अचङ्खानीत्। अचङ्खनीत्। उतो वृद्धिरित्यत्र नाभ्यस्तस्येत्यनुवृत्तेरुतो वृद्धिर्न। योयोति-योयवीति। अयोयवीत्। अयोयोत्। योयुयात्। आशिषि दीर्घः। योयूयात्। अयोयावीत्। नोनवीति-नोनोति। जाहेति-जाहाति। ई हल्यघोः। जाहीतः। इह जहातेश्च, आ च हौ, लोपो यि घुमास्था, एर्लिङी-त्येते पञ्चापि न भवन्ति। श्तिपा निर्देशात्। जाहति। जाहेषि। जाहासि। जाहीथः। जाहीथ। जाहीहि। अजाहेत्-अजाहात्। अजाहीताम्। अजाहुः। जाहीयात्। आशिषि। जाहायात्। अजाहासीत्। अजाहासिष्टाम्। अजाहिष्यत्। लुका लुप्ते प्रत्ययलक्षणाभावात्स्वपिस्यमीत्युत्त्वं न। रुदादिभ्य इति गणनिर्दिष्टत्वादिण्न। सास्वपीति-सास्वप्ति। सास्वप्तः। सास्वपति। असास्वपीत्-असा-

स्वप्। सास्वप्यात्। आशिषि तु वचिस्वपी-त्युत्त्वम्। सासुप्यात्। असास्वापीत्-असास्वपीत्॥

२६५१--यङन्तके परे स्थित हलादि पित् सार्वधातुकको विकल्प करके ईट् हो। "भूसुवोः० २२२४" इस सूत्रसे भाषामें यङ्लुक् होनेपर गुणनिषेध नहीं होगा, कारण कि, "बोभूतु तेतिक्ते० ३५९६" इत्यादि पद वेदमें निपातनसे सिद्ध किये हैं, सो कहो यदि भाषामें भी गुणनिषेध हो तो उसीसे वेदमें भी गुणनिषेध होईजाता, फिर निपातन जो किया, वही पूर्वोक्त ज्ञापन करताहै, इसी कारण भाषामें भी यङ्लुक् सिद्ध हुआ, यदि कहो कि, द्वित्व होनेपर समुदायको अतिरिक्त होनेसे निषेधकी प्राप्ति नहीं है, इसलिये निपातन है, सो नहीं कह सकतेहो, कारण कि, प्रकृतिग्रहणसे यङ्लुगन्तका भी ग्रहण होताहै, कारण कि, षाष्ठ अर्थात् षष्ठाध्यायस्थ सूत्रसे विहित द्विर्वचनसे द्विःप्रयोगमात्र होताहै, प्रकृतसे कुछ भेद नहीं होताहै, ऐसा सिद्धान्त है। बोभवीति, बोभोति। बोभूतः। बोभुवति। बोभवाञ्चकार। बोभविता। अबोभवीत्, अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभवुः। बोभूयात्। बोभूयाताम्। बोभूयास्ताम्। "गातिस्था० २२२३" इस सूत्रसे सिच्का लुक् होगा। "यङो वा २६५१" इस सूत्रसे ईट्पक्षमें गुणको बाधा देकर नित्यत्वके कारण वुक् आगम होगा, अबोभूवीत्, अबोभूत्। अबोभूताम्। "गातिस्था०" इससे सिच्का लोप होनेपर सिच्के परे न होनेपर भी अभ्यस्ताश्रय झिके स्थान जुस् और नित्यत्वके कारण वुक्का आगम होकर-अबोभूवुः। अबोभविष्यत्, इत्यादि। पास्पर्धीति, पास्पर्धि। पास्पर्धः। पास्पर्धति। पास्पर्त्सि। "हुझल्भ्यो हेर्धिः २४२५" इस सूत्रसे हिके स्थानमें धि होकर-पास्पर्धि। लङ्में-अपास्पर्त्, अपास्पर्द्। सिप् परे "दश्च २४४६" इस सूत्रसे रुत्वपक्षमें "रो रि० १७३" इस सूत्रसे रकार परे रहते पूर्ववर्त्ती रकारका लोप होकर-अपास्पाः॥ जागाद्धि। जाघात्सि। अजाघात्। सिप् परे रहते रुत्वपक्षमें, अजाघाः॥ नाथृ धातुका-नानात्ति। नानात्तः॥ दध धातुका-दादद्धि। दादद्धः। दाधत्सि। अदाधत्॥ अदादद्धाम्। अदादधुः। अदाधः, अदाधत्। लुङ् परे-अदादाधीत्, अदादधीत्॥ चोस्कुन्दीति, चोस्कुन्ति। अचोस्कुन्। अचोस्कुन्ताम्। अचोस्कुन्दुः॥ मोमुदीति, मोमोत्ति। मोमोदाञ्चकार। मोमोदिता। अमोमुदीत्, अमोमोत्। अमोमुत्ताम्। अमोमुदुः। अमोमुदीः, अमोमोः, अमोमोत्। लुङ् परे गुण होकर-अमोमोदीत्॥ चोकूर्दीति, चोचकूर्ति। लङ्-तिप्। अचोकूर्दीत्, अचोकूर्त्। सिप् परे रुत्वपक्षमें। अचोकूः॥ अचोखूः॥ अजोगूः॥ वनीवञ्चीति, वनीवङ्क्ति। वनीवक्तः। वनीवचति। अवनीवञ्चीत्, अवनीवन्॥ जङ्गमीति, जङ्गन्ति। "अनुदात्तोपदेश० २४२८" इस सूत्रसे अनुनासिक वर्णका लोप होकर-जङ्गतः। जङ्गमति। "म्वोश्च २३०९" इस सूत्रसे नकार आदेश होकर-जङ्गन्मि। जङ्गन्वः। "एकाच् उपदेशे०" इसमें एकाच् ग्रहणके कारण "श्तिपा शपा०" इससे इट्निषेध नहीं होकर-जङ्गमिता। आभीयत्वके कारण अनुनासिक लोप, असिद्ध होनेसे हिका लुक् नहीं होकर-जङ्गहि। "मो नो धातोः ३४१" इस सूत्रसे मकारके स्थानमें नकारादेश होकर-अजङ्गन्॥ अनुबन्ध निर्देशके कारण श्लिके स्थानमें अङ् और 'ह्म्यन्त० २२९९" इस सूत्रसे वृद्धिनिषेधके कारण वृद्धि न होकर-अजङ्गमीत्। अजङ्गमिष्टाम्।

हन् धातुके उत्तर यङ्लुक् हुआ "अभ्यासाच्च २४३०" इस सूत्रसे कुत्व अर्थात् हके स्थानमें घ आदेश यद्यपि "हो हन्तेः० ३५८" इस सूत्रसे 'हन्तेः' इसकी अनुवृत्ति होकर विहित हुआ है तथापि यङ्लुक्में होताहै, यह न्यासकारका मत है "श्तिपा शपा०" इस परिभाषासे निषेध तो नहीं होगा, कारण कि, "गुणो यङ्लुकोः" इससे सामान्यापेक्ष ज्ञापन होताहै, कि, "श्तिपा शपा०" यह अनित्य है नहीं तो "एकाचो द्वे प्रथमस्य०" इसकी अनुवृत्ति करके "सन्यङोः" इससे द्वित्व करते समय उक्त परिभाषासे द्वित्वनिषेध होनेसे द्वित्व ही नहीं होगा, तब अभ्यास तो स्वतः नहीं होगा। फिर यङ्लुक्में अभ्यासको गुण विधान करना व्यर्थ ही होजाता। जंघनीति, जंघंति। जंघतः। जङ्घ्नति। जङ्घानता। श्तिप् निर्देशके कारण आदेश नहीं होकर-जंघहि। अजंघनीत्, अजंघन्। जंघन्यात्। आशिष्में वध्यात्। अवधीत्। अवधिष्टाम्, इत्यादि॥ द्विरुक्त हन्के स्थानमें वधादेशको द्वित्व न होगा, कारण कि स्थानिवद्भावसे "अनभ्यासस्य" यह निषेध होजाताहै, बहुव्रीहि समासके बलसे वह समानाधिकरण धातुका विशेषण है॥ आङ्पूर्वक होनेपर तो "आङो यमहनः २६९५" इस सूत्रसे आत्मनेपद होगा, आजंघते, इत्यादि॥

"उत् परस्य० २६३७" इस सूत्रसे विहित उत्में तपरत्व के कारण गुण नहीं होगा। "हलि च ३५४" इससे दीर्घ तो होहीगा, कारण कि, उसके असिद्ध होनेसे तपरत्व निवृत्तिका अयोग है। चञ्चुरीति, चञ्चूर्त्ति। चञ्चूर्त्तः। चञ्चुरति। अचञ्चुरीत्, अचञ्चूः॥ चङ्खनीति। चङ्खन्ति। "जनसन० २५०४" इस सूत्रसे आत्व होकर-चङ्खातः। "गमहन० २३६३" इस सूत्रसे उपधाका लोप होकर-चङ्खनति। चङ्खाहि। चङ्खनानि। अचङ्खनीत्, अचङ्खन्। अचङ्खाताम्। अचङ्खनुः, "ये विभाषा २३१९" इस सूत्रसे विकल्प करके आकार होकर-चङ्खायात्, चङ्खन्यात्। अचङ्खानीत्, अचङ्खनीत्।

"उतो वृद्धिः० २४४३" इस सूत्रमें "नाभ्यस्तस्य" इस अंशकी अनुवृत्तिके कारण उकारको वृद्धि नहीं होगी, योयोति, योयवीति। अयोयवीत्, अयोयोत्। योयुयात्। आशीर्लिङ्में दीर्घ होकर-योयूयात्। अयोयावीत्॥ नोनवीति, नोनोति।

जाहेति, जाहाति। "ई हल्यघोः २४९७" इस सूत्रसे दीर्घ ई होकर-जाहीतः। इस स्थलमें "जहातेश्च २४९८" "आ च हौ २४९९" "लोपो यि २५००" घुमास्था० २४६२" एर्लिङि २३७४" इन पांच सूत्रोंकी प्रवृत्ति नहीं होगी, क्यों कि, श्तिपूसे निर्देश हुआहै। जाहाति। जाहेषि, जाहासि।

जाहीथः । जाहीथ । जाहीहि । अजाहेत्, अजाहात् । अजाहीताम् । अजाहुः । जाहीयात् । आशीर्लिङ्में–जाहायात् । अजाहासीत् । अजाहासिष्टाम् । अजाहिष्यत् ।

लुक्से लुप्त होनेसे, प्रत्ययलक्षणके अभावके कारण "स्वपिस्यमि० २६४३" इस सूत्रसे उकार नहीं होगा । "रुदादिभ्य० २४७४" इस सूत्रसे गणनिर्देशके कारण इट् नहीं होगा, सास्वपीति, सास्वप्ति । सास्वप्तः । सास्वपति । असास्वपीत्, असास्वप् । सास्वप्यात् । आशीर्लिङ्में तो "वचिस्वपि० २४०९" इस सूत्रसे उकार होकर–सासुप्यात् । असास्वापीत्, असास्वपात् ॥

२६५२ रुग्रिकौ च लुकि । ७।४।९१ ॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रुक् रिक् रीक् एते आगमाः स्युर्यङ्लुकि ॥

२६५२–यङ् लुक् होनेपर–ऋकारोपध धातुके अभ्यासको रुक्, रिक् और रीक्का आगम हो ॥

२६५३ ऋतश्च । ७।४।९२ ॥

ऋदन्तधातोरपि तथा । वर्वृतीति–वरिवृतीति–वरीवृतीति, वर्वर्ति–वरिवर्ति–वरीवर्ति । वर्वृतः ३ । वर्वृतति ३ । वर्वर्तामास ३ । वर्वर्तिता ३ । गणनिर्दिष्टत्वान्न वृद्भ्यश्चतुर्भ्य इति न । वर्वर्तिष्यति ३ । अवर्वृतीत् ३, अवर्वर्त् ३ । सिपि दश्चेति रुत्वपक्षे रो रि । अवर्वाः ३ । गणनिर्दिष्टत्वादङ् । अवर्वर्तीत् ३ । चर्करीति ३ । चर्कर्ति–चरिकर्ति–चरीकर्ति । चर्कृतः ३ । चर्क्रति ३ । चर्करांचकार ३ । चर्करिता ३ । अचर्करीत् ३, अचर्कः ३ । चर्क्रियात् ३ । आशिषि रिङ् । चर्क्रियात् ३ । अचर्कारीत् ३ । ऋतश्चेति तपरत्वान्नेह । कॄ विक्षेपे । चाकर्ति । तातर्ति । तातीर्तः । तातिरति । तातीर्हि । तातराणि । अतातरीत्–अताः । अतातीर्ताम् । अतातरुः । अतातारीत् । अतातारिष्टामित्यादि । असंयङ्लुकि द्विर्वचनेऽभ्यासस्योरदत्त्वं रपरत्वम् । हलादिः शेषः । रुक् । रिग्रीकौ तु । अभ्यासस्यासवर्ण इति इयङ् । अरर्ति–अरियर्ति । अररीति–अरियरीति ॥ अर्ऋतः–अरियृतः । झि अत् । यण् रुको रो रीति लोपः । न च तस्मिन् कर्तव्ये यणः स्थानिवत्त्वम् । पूर्वत्रासिद्धीये तन्निषेधात् । आरति । अरिय्रति । लिङि श्तिपा निर्देशाद् गुणोऽर्तीति गुणो न । रिङ् रलोपः । दीर्घः । आरियात्–रिय्रियात् । गृह ग्रहणे । जर्गृहीति ३ । जर्गाढि ३ । जर्गृढः ३ । जर्गृहति ३ । अजर्घट् ३ । गृह्णातेस्तु जाग्रहीति–जाग्राढि । तस्मादौ ङिल्लभिसतं सम्प्रसारणम् । तस्य बहिरङ्गत्वेनासिद्धत्वान्न रुगादयः । जागृढः । जागृहति । जाग्रहीषि–जाग्रक्षि । लुटि । जाग्रहिता । ग्रहोऽलिटीति दीर्घस्तु न । तत्रैकाच इत्यनुवृत्तेः । माधवस्तु दीर्घमाह तद्भाष्यविरुद्धम् । जर्गृधीति ३–जर्गर्द्धि ३ । जर्गृद्धः ३ । जर्गृधति ३ । जर्गृधीषि ३–जर्घर्त्सि ३ । अजर्गृधीत् ३–इडभावे गुणः । हलङ्यादिलोपः । भष्भावः । जश्त्वचर्त्वे । अजर्घर्त् ३ । अजर्गृद्धाम् ३ । सिपि दश्चेति पक्षे रुत्वम् । अजर्घाः ३–अजर्गर्धीत् ३ । अजर्गर्धिष्टाम् ३ । पापृच्छीति–पाप्रष्टि । तस्मादौ ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं न भवति श्तिपा निर्देशात् । च्छ्वोः शूडिति शः । व्रश्चेति षः । पाप्रष्टः । पाप्रच्छति । पाप्रच्छिम । पाप्रच्छ्वः । पाप्रश्मः । यकारवकारान्तानां तूठभाविनां यङ्लुङ्नास्तीति च्छ्वोरिति सूत्रे भाष्ये ध्वनितम् । कैयटेनच स्पष्टीकृतम् । इदं च्छ्वोरिति यत्रोठ् तद्विषयकम् । ज्वरत्वरेत्यूठ्भाविनोः स्रिविमव्योस्तु यङ्लुगस्त्येवेति न्याय्यम् । माधवादिसम्मतं च । मव्य बन्धने । अयं यान्त ऊठ्भावी । तेवृ देवृ देवने इत्यादयो वान्ताः । हय गतौ । जाहयीति–जाहति । जाहतः । जाहयति । जाहयीषि–जाहसि । वलि लोपे यञादौ दीर्घः । जाहामि । जाहावः । जाहामः । हर्य गतिकान्त्योः । जाहर्यीति–जाहर्ति । जाहर्तः । जाहर्यति । लोटि । जाहर्हि । अजाहः । अजाहर्ताम् । अजाहर्युः । मव बन्धने ॥

२६५३–यङ्लुक् होनेपर ऋकारान्त धातुके भी अभ्यासको रुक्, रिक् और रीक्का आगम हो । वर्वृतीति । वरिवृतीति, वरीवृतीति, वर्वर्ति–वरिवर्ति–वरीवर्ति । वर्वृतः–वरिवृतः–वरीवृतः । वर्वृतति–वरिवृतति–वरीवृतति । वर्वर्तामास–वरिवर्तामास–वरीवर्तामास । वर्वर्तिता–वरिवर्तिता–वरीवर्तिता । गण निर्दिष्टत्वके कारण "न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः २३४८" इस सूत्रसे इट् निषेध नहीं होकर वर्वर्तिष्यति–वरिवर्तिष्यति–वरीवर्तिष्यति । अवर्वृतीत्–अवरिवृतीत्–अवरीवृतीत्, अवर्वर्त्–अवरीवर्त्–अवरिवर्त् । सिपि परे "दश्च २४६८" इस सूत्रसे रुत्वपक्षमें "रो रि १७३" इस सूत्रसे र परे रहते रकारका लोप होकर–अवर्वाः–अवरिवाः–अवरीवाः । गणनिर्देशके कारण अङ् नहीं होकर–अवर्वर्तीत्–अवरिवर्तीत्–अवरीवर्तीत् ॥ चर्करीति, चर्कर्ति–चरिकर्ति–चरीकर्ति । चर्कृतः ३ । चर्क्रति ३ । चर्करांचकार ३ । चर्करिता ३ । अचर्करीत् ३ । अचर्कः ३ । चर्कृयात् ३ । आशीर्लिङ्में रिङ् होकर चार्क्रियात् ३ । अचर्कारीत् ३ ॥ "ऋतश्च २६५३" इस सूत्रसे तपरत्वके कारण इस स्थलमें रुगादि नहीं होंगे, जैसे–विक्षेपार्थक कॄ धातुका चाकर्ति । तातर्ति । तातीर्तः । तातिरति ।

तातीर्हि। तातराणि। अतातरीत्, अतातः। अतातीर्ताम्। अतातरुः। अतातारीत्। अतातारिष्टाम्, इत्यादि॥ ऋ धातुको यङ् लुक् करनेपर द्वित्व पश्चात् अभ्यासको उरदत्व और रपरत्व होगा और "हलादिः शेषः २१७९" इस सूत्रसे अभ्यासके आदिमें स्थित हल्का शेष अन्य हल्का लोप होगा पश्चात् रुक् का आगम होगा, रिक् और रीक् आगमके पक्षमें तो "अभ्यासस्यासवर्णे २२९०" इस सूत्रसे इयङ् आदेश होगा। अरर्ति–अरियर्त्ति, अररीति–अरियरीति। अर्ऋतः–अरीयृतः। क्षि–अत्–यण् और "रो रि १७३" इस सूत्रसे रुक्का लोप होगा, लोप कर्तव्य होनेपर यण्का स्थानिवद्भाव तो नहीं कह सकतेहो क्योंकि, "पूर्वत्रासिद्धीये० इस" वचनसे उसका निषेध होजाताहै, आरीत। अरियृरति लिङ् परे दितपूनिर्देशके कारण "गुणोऽर्ति० २३८०" इस सूत्रसे गुण नहीं होगा। रिङ् रकारका लोप और पूर्वस्वरको दीर्घ होकर–आरियात्। अयूरियात्॥ ग्रह धातुका जर्गृहीति ३, जर्गर्दि ३। जर्गृढः ३। जर्गृहति ३। अजर्घट् ३॥ क्र्यादिगणपठित ग्रह धातुका तो जाग्रहीति–जाग्राढि। तस् आदि प्रत्यय परे ङित् निमित्त संप्रसारण होगा, उसको बहिरङ्गत्वके कारण असिद्ध होनेसे रुक् आदि नहीं होंगे, जागृढः। जागृहति। जाग्रहीषि, जाघ्रक्षि। लुट् परे जाग्रहिता, यहां "ग्रहोऽलिटि० २५६२" इस सूत्रसे दीर्घ तो नहीं होगा, कारण कि, उस स्थलमें एकाचकी अनुवृत्ति होतीहै। माधवने तो दीर्घ कहाहै, परन्तु वह भाष्यके विरुद्ध है। जर्गृधीति ३, जर्गर्धि ३। जर्गृद्धः ३। जर्गृधति३ जर्गृधीषि ३, जर्घर्त्सि ३। अजर्गृधीत् ३। इट्के अभावपक्षमें गुण "हल्ङ्याब्भ्यः०" इस सूत्रसे तिप्का लोप, भष्भाव, जश्त्व और चर्त्व होकर–अजर्घत् ३। अजर्गृद्धाम् ३। सिप् परे "दश्च २६६८" इस सूत्रसे पक्षमें रुत्व होकर–अजर्घाः३ अजर्गर्धीत् ३। अजर्गर्धिष्टाम् ३। पाप्रच्छीति, पाप्रष्टि। तसादिमें "ग्रहिज्या० २४१२" इस सूत्रसे सम्प्रसारण नहीं होगा, कारण कि, दितप् निर्देश कियाहै। "च्छ्वोः शूट्०" इस सूत्रसे श और "व्रश्च० २९४" इस सूत्रसे षत्व होकर–पाप्रष्टः। पाप्रच्छति। पाप्रश्मि। पाप्रच्छ्वः। पाप्रश्मः। ऊठ् होनेवाला है जिनको ऐसे यकारान्त और वकारान्त धातुके उत्तर यङ् लुक् नहीं होताहै यह "च्छ्वोः० २५६१" इस सूत्रके भाष्यमें ध्वनित है, और कैयटने भी स्पष्ट करके कहाहै, परन्तु यह यङ्लुक्निषेध जहां "च्छ्वो.० २५६१" इस सूत्रसे ऊठ् होनेवाला होगा, वहां नहीं लगेगा इस कारण "ज्वरत्वर० २५६४" इस सूत्रसे ऊठ्भावी स्रि, वि और मव्य धातुको तो यङ्लुक्में होताहीहै। यह न्यायानुगत और माधवादिके संमत भी है। मव्य धातु बंधनमें है, यह यकारान्त ऊठ्भावी हैं। देवनार्थक तेवृ और देवृ इत्यादि वकारान्त धातु हैं। हय धातु गतिमें है। जाहयीति, जाहाति। जाहतः। जाहयति। जाहयीषि, जाहसि। "लोपो व्योर्वलि" इस सूत्रसे यकारका लोप होनेपर यञादि सार्वधातुक परे दीर्घ होकर–जाहामि। जाहावः। जाहामः॥ हर्य धातु गति और कान्तिमें है। जाहर्यीति, जाहर्त्ति। जाहर्तः। जाहर्यति। लोट् परे–जाहर्हि। अजाहः। अजाहर्त्ताम्। अजाहर्युः॥ मव धातु बंधनमें है॥

२६५४ ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च। ६। ४। २०॥

ज्वरादीनामुपधावकारयोरूठ् स्यात् क्वौ झलादावनुनासिकादौ च प्रत्यये। अत्र क्ङितीति नानुवर्तते। अवतेस्तुनि ओतुरिति दर्शनात्। अनुनासिकग्रहणं चानुवर्तते। अवतेर्मन्प्रत्यये तस्य टिलोपे ओमिति दर्शनात्। ईडभावे ऊठि पिति गुणः। मामोति–मामवीति। मामूतः। मामवति। मामोषि। मामोमि। मामावः। मामूमः। मामोतु। मामूतात्। मामूहि। मामवानि। अमामोत्–अमामोः। अमामवम्। अमामाव। अमामूम। तुर्वी हिंसायाम्। तोतूर्वीति॥

२६५४–क्विप् प्रत्यय, झलादि प्रत्यय और अनुनासिकादि प्रत्यय परे रहते ज्वर, त्वर, स्रिवि, अवि, मव इन धातुओंकी उपधा और वकारके स्थानमें ऊठ् हो, इस सूत्रमें 'क्ङिति' इस पदकी अनुवृत्ति नहीं होगी, कारण कि अव धातुके उत्तर तुन् प्रत्यय करनेपर ओतुः ऐसा पद होताहै। धातुके अनुनासिक ग्रहणकी अनुवृत्ति होगी, क्योंकि, अव धातुके उत्तर मन प्रत्यय करनेपर टिका लोप होकर 'ओम्' यह पद होताहै। ईट्के अभावपक्षमें ऊठ् करनेपर पित् प्रत्यय परे गुण होकर–मामोति। मामवीति। मामूतः। मामवति। मामोषि। मामोमि। मामावः। मामूमः। मामोतु। मामूतात्। मामूहि। मामवानि। अमामोत्। अमामोः। अमामवम्। अमामाव। अमामूम॥ तुर्वी धातु हिंसामें है। तोतूर्वीति॥

२६५५ राल्लोपः। ६। ४। २१॥

रेफात्परयोश्छ्वोर्लोपः स्यात् क्वौ झलादावनुनासिकादौ च प्रत्यये। इति वलोपः। लघूपधगुणः॥

२६५५–क्विप् प्रत्यय, झलादि प्रत्यय और अनुनासिकादि प्रत्यय परे रहते रकारके परे स्थित छकार और वकारका लोप हो, इस सूत्रसे वकारका लोप, पश्चात् लघु उपधाको गुण होकर–॥

२६५६ न धातुलोप आर्धधातुके। १। १। ४॥

धात्वंशलोपनिमित्ते आर्धधातुके परे इको गुणवृद्धी न स्तः। इति नेह निषेधः। तिबादीनामनार्धधातुकत्वात्। तोतोर्ति। हलि चेति दीर्घः। तोतूर्तः। तोतूर्वति। तोथोर्ति। दोदोर्ति। दाधार्ति। मुर्छा। मोमूर्छीति। मोमोर्ति। मोमूर्तः। मोमूर्छतीत्यादि। आर्धधातुक इति विषयसप्तमी। तेन यङि विवक्षिते

अजेर्वी । वेवीयते । अस्य यङ्लुग्नास्ति । लुका अपहारे विषयत्वासम्भवेन वीभावस्याप्रवृत्तेः॥*॥

॥ इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया ॥

२६५६–धात्वंशलोपके निमित्तीभूत आर्धधातुक संज्ञक प्रत्यय परे रहते इक्को गुण और वृद्धि न हो । तिप् आदि विभक्तियोंके आर्धधातुकत्वके अभावके कारण इस स्थलमें निषेध नहीं होकर–तोतोर्त्ति । "हलि च ३५४" इस सूत्रसे दीर्घ होकर–तोतूर्त्तः । तोतूर्वति ॥ तोथोर्त्ति ॥ दोदोर्त्ति ॥ दोधोर्ति॥मुर्च्छा धातुका मोमूर्छीति, मोमोर्त्ति । मोमूर्त्तः । मोमूर्च्छति, इत्यादि ॥ 'आर्धधातुके' इसमें विषयसप्तमी है इस कारण यङ् विवक्षित होनेपर अज धातुके स्थानमें वी आदेश होगा,वेवीयते इसको यङ्लुक् नहीं होताहै, क्योंकि, लुक्द्वारा यङ्का अपहार होनेपर आर्धधातुक विषयत्वके असम्भव होनेसे वी आदेशकी प्राप्ति ही नहीं है ॥

॥ इति यङ्लुगन्तप्रकरणम् ॥

अथ नामधातुप्रक्रिया ।

२६५७ सुप आत्मनः क्यच् ।३।१।८॥

इषिकर्मण एषितृसम्बधिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच् प्रत्ययो वा स्यात् धात्ववयवत्वात्सुब्लुक् ॥

२६५७–इष् धातुका कर्म हो और इच्छाकर्त्ताका सम्बन्धी हो, ऐसे सुबन्तके उत्तर इच्छार्थमें विकल्प करके क्यच् प्रत्यय हो । धातुके अवयवत्वके कारण सुप्का लुक् होगा ॥

२६५८ क्यचि च । ७ । ४ । ३३ ॥

अस्य ईत्स्यात् । आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति । वान्तो यि प्रत्यये । गव्यति । नाव्यति । लोपः शाकल्यस्येति तु न । अपदान्तत्वात् । तथा हि ॥

२६५८–क्यच् परे रहते अकारके स्थानमें ईकार हो, आत्मनः पुत्रमिच्छति=पुत्रीयति । "वान्तो यि प्रत्यये ६३" इस सूत्रसे अवादि आदेश होकर–गव्यति । नाव्यति । "लोपः शाकल्यस्य ६७" यह सूत्र अपदान्तत्वके कारण इस स्थलमें प्रवृत्त नहीं होताहै, वही कहतेहैं ॥

२६५९ नः क्ये । १ । ४ । १५ ॥

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं स्यान्नान्यत् । सन्निपातपरिभाषया क्यचो यस्य लोपो न । गव्यांचकार । गव्यिता । नाव्यांचकार । नाव्यिता । नलोपः । राजीयति । प्रत्ययोत्तरपदयोश्च । त्वद्यति । मद्यति । एकार्थयोरित्येव । युष्मद्यति । अस्मद्यति । हलि च गीर्यति । पूर्यति । धातोरित्येव । नेह । दिवमिच्छति दिव्यति । इह पुरमिच्छति पुर्यतीति माधवोक्तं प्रत्युदाहरणं चिन्त्यम् । पुर्गिरोः साम्यात् । दीव्यतीति दीर्घस्तु प्राचः प्रामादिक एव । अदस्यति । रीङ् ऋतः । कर्त्रीयति॥ क्यच्व्योश्च । (६ । ४ । १५२ ॥) गार्गीयति । वाच्यति । अकृत्सार्वेति दीर्घः । कवीयति । समिध्यति ॥

२६५९–क्यच् और क्यङ् प्रत्यय परे रहते नकारान्तकी ही पद संज्ञा हो, अन्यकी न हो । सन्निपात परिभाषाद्वारा क्यच् प्रत्ययके यकारका लोप नहीं होकर–गव्यांचकार । गव्यिता । नाव्यांचकार । नाव्यिता । "नलोपः०" इस सूत्रसे नकारका लोप होकर–राजीयति, "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च १३७२" इस सूत्रसे त्वत् और मत् आदेश होकर त्वद्यति । मद्यति । एकवचनार्थकमें ही त्वत् और मत् होंगे, अन्यार्थकमें अर्थात् द्विवचन और बहुवचनार्थमें नहीं होंगे, जैसे– युष्मद्यति । अस्मद्यति । "हलि च ३५४" इस सूत्रसे दीर्घ होकर–गीर्यति । पूर्यति । धातुको ही दीर्घ होताहै, इस कारण 'दिवमिच्छति दिव्यति' इस स्थलमें दीर्घ नहीं हुआ । पुरमिच्छति=पुर्यति,यह माधवोक्त प्रत्युदाहरण सर्वसम्मत नहीं है, क्योंकि पुर् और गिर् शब्दोंका साम्य है । दीव्यति, इस स्थलमें दीर्घ तो प्राचीनोंका प्रामादिक है । अदस्यति । "रीङ् ऋतः १२३४" इस सूत्रसे ऋके स्थानमें रीङ् आदेश होकर–कर्त्रीयति । "क्यच्व्योश्च २११९"इस सूत्रसे अपत्यसम्बन्धी यकारका लोप होकर–गार्गीयति । वाच्यति । "अकृत्सार्वधातुकयोः० २२९८" इस सूत्रसे दीर्घ होकर–कवीयति । समिध्यति ॥

२६६० क्यस्य विभाषा ।६।४।५०॥

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वा स्यादार्धधातुके । आदेः परस्य । अतो लोपः तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न । समिधिता । समिध्यिता ॥ मान्तप्रकृतिकसुबन्तादव्ययाच्च क्यच् न ॥ * ॥ किमिच्छति । इदमिच्छति । स्वरिच्छति ॥

२६६०–आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते हल्के परे स्थित क्यच् और क्यङ्का विकल्प करके लोप हो । "आदेः परस्य० ४४" इस सूत्रसे आदिका लोप हुआ, "अतो लोपः २३०८" इस सूत्रसे अकारका लोप हुआ, अकार लोपके स्थानिवत्त्वके कारण लघु उपधाको गुण नहीं होकर–समिधिता, समिध्यिता ।

मान्तप्रकृतिक सुबन्त और अव्ययके उत्तर क्यच् प्रत्यय नहीं हो * किमिच्छति । इदमिच्छति । स्वरिच्छति ॥

२६६१ अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्धेषु । ७ । ४ । ३४ ॥

क्यजन्ता निपात्यन्ते । अशनायति । उदन्यति । धनायति । बुभुक्षादौ किम् । अशनीयति । उदकीयति । धनीयति ॥

२६६१–बुभुक्षा, अर्थात् क्षुधा, पिपासा और गर्ध, अर्थात् इच्छा अर्थमें यथाक्रम अशनाय, उदन्य और धनाय यह

क्यच् प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों, अशनायति । उदन्यति । धनायति । बुभुक्षादि अर्थ न होनेपर—अशनीयति । उदकीयति । धनीयति ॥

२६६२ अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि । ७ । १ । ५१ ॥

एषां क्यचि असुगागमः स्यात् ॥ अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम् ॥ * ॥ अश्वस्यति वडवा । वृषस्यति गौः ॥ क्षीरलवणयोर्लालसायाम् ॥ * ॥ क्षीरस्यति बालः । लवणस्यति उष्ट्रः ॥ सर्वप्रातिपदिकानां क्यचि लालसायां सुगसुकौ ॥ * ॥ दधिस्यति । दध्यस्यति । मधुस्यति । मध्वस्यति ॥

२६६२—आत्मप्रीति अर्थमें अश्व, क्षीर, वृष, लवण इन शब्दोंके उत्तर क्यच् प्रत्यय परे रहते असुक्का आगम हो ।

अश्व और वृष शब्दके उत्तर मैथुनेच्छा होनेपर असुक्का आगम हो * अश्वस्यति वडवा । वृषस्यति गौः ।

क्षीर और लवण शब्दके उत्तर लालसार्थमें असुक् हो * क्षीरस्यति बालः । लवणस्यति उष्ट्रः ।

सम्पूर्ण प्रातिपदिकोंको क्यच् प्रत्यय परे लालसार्थमें सुक् और असुक्का आगम हो * दधिस्यति—दध्यस्यति । मधुस्यति-मध्वस्यति ॥

२६६३ काम्यच्च । ३ । १ । ९ ॥

उक्तविषये काम्यच् स्यात् । पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रकाम्यति । इह यस्य हल इति लोपो न । अनर्थकत्वात् । यस्येति संघातग्रहणमित्युक्तम् । यशस्काम्यति । सर्पिष्काम्यति । मान्ताव्ययेभ्योऽप्ययं स्यादेव । किंकाम्यति । स्वःकाम्यति ॥

२६६३—उक्तविषयमें अर्थात् इष धातुका कर्म हो और इच्छा कर्त्ताका सम्बन्धी हो ऐसे सुबन्तके उत्तर इच्छा अर्थ होनेपर काम्यच् प्रत्यय हो, आत्मनः पुत्रमिच्छति=पुत्रकाम्यति । पुत्रकाम्यिता, इस स्थलमें अनर्थकत्वके कारण "यस्य हलः २६३१" इस सूत्रसे यकारका लोप नहीं होताहै, 'य' यह समूहका ग्रहण है, यह पूर्वमें कह आये हैं । यशस्काम्यति । सर्पिष्काम्यति । मकारान्त और अव्ययके उत्तर भी काम्यच् प्रत्यय होहीगा, किंकाम्यति । स्वःकाम्यति ॥

२६६४ उपमानादाचारे । ३ । १ । १० ॥

उपमानात्कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच् स्यात् । पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति च्छात्रम् । विष्णूयति द्विजम् ॥ अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ प्रासादीयति कुट्यां भिक्षुः । कुटीयति प्रासादे ॥

२६६४—उपमानवाचक कर्म सुबन्तके उत्तर आचारार्थमें क्यच् प्रत्यय हो, पुत्रमिवाचरति=पुत्रीयति च्छात्रम् । विष्णूयति द्विजम् ।

उपमानवाचक अधिकरण सुबन्तके भी उत्तर आचारार्थमें क्यच् प्रत्यय हो * प्रासादीयति कुट्यां भिक्षुः । कुटीयति प्रासादे ॥

२६६५ कर्तुः क्यङ् सलोपश्च । ३ । १ । ११ ॥

उपमानात्कर्तुः सुबन्तादाचारे क्यङ् वा स्यात् । सान्तस्य तु कर्तृवाचकस्य लोपो वा स्यात् । क्यङ् वेत्युक्तेः पक्षे वाक्यम् । सान्तस्य लोपस्तु क्यङ्सन्नियोगशिष्टः । स च व्यवस्थितः ॥ ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया ॥ * ॥ कृष्ण इवाचरति कृष्णायते । ओजःशब्दो वृत्तिविषये तद्वति ॥ ओजायते । अप्सरायते । यशायते—यशस्यते । विद्वायते—विद्वस्यते । त्वद्यते । मद्यते । अनेकार्थत्वे तु युष्मद्यते । अस्मद्यते । क्यङ्मानिनोश्च । कुमारीवाचरति कुमारायते । हरिणीवाचरति हरितायते । गुर्वीव गुरूयते । सपत्नीव सपत्नायते—सपतीयते—सपत्नीयते । युवतिरिव युवायते । पट्वीमृद्व्याविव पट्वीमृदूयते । न कोपधायाः । पाचिकायते ॥ आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः ॥ * ॥ वा ग्रहणात् क्यङपि । अवगल्भादयः पचाद्यजन्ताः । क्विप्सन्नियोगेनानुदात्तत्वमनुनासिकत्वं चाच्प्रत्ययस्य प्रतिज्ञायते तेन तङ् । अवगल्भते । क्लीबते । होडते । भूतपूर्वादप्यनेकाच आम् । एतद्वार्तिकारम्भसामर्थ्यात् । न च अवगल्भते इत्यादिसिद्धिस्तत्फलम् । केवलानामेवाचारेपि वृत्तिसम्भवात् । धातूनामनेकार्थत्वात् । अवगल्भांचक्रे । क्लीबाचक्रे । होडाञ्चक्रे । वार्त्तिकेऽवेत्युपसर्गविशिष्टपाठात् केवलादुपसर्गान्तरविशिष्टाच्च क्यङेवेति माधवादयः । तङ् नेति तूचितम् ॥ सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः ॥ * ॥ पूर्ववार्तिकं तु अनुबन्धासञ्जनार्थं तत्र क्विबनूद्यते । प्रातिपदिकग्रहणादिह सुप इति न सम्बध्यते । तेन पदकार्यं न । कृष्ण इवाचरति कृष्णति । अतो गुण इति शपा सह पररूपम् । अ इवाचरति अति । अतः । अन्ति । प्रत्ययग्रहणमपनीय अनेकाच इत्युक्तेर्नाम । औ । अतुः । उः । द्वित्वम् । अतो गुणे । अत आदेरिति दीर्घः । णल् । औ । वृद्धिः । अतुसादिषु त्वातो लोप इटि चेत्याल्लोपः ।

मालेवाचरति मालाति । लिंगविशिष्टपरिभाषया एकादेशस्य पूर्वान्तत्वाद्वा क्विप् । मालांचकार । लङि । अमालात् । अत्र हल्ङ्यादिलोपो न । ङीप्साहचर्यादापोऽपि सोरेव लोपविधानात् । इट्सकौ । अमालासीत् । कविरिव कवयति । आशीर्लिङि । कवीयात् । सिचि वृद्धिरित्यत्र धातोरित्यनुवर्त्य धातुरेव यो धातुरिति व्याख्यानान्नामधातोर्न वृद्धिरिति कैयटादयः । अकवयीत् । माधवस्तु नामधातोरपि वृद्धिमिच्छति । अकवायीत् । विरिव वयति । विवाय । विव्यतुः । अवयीत्-अवायीत् । श्रीरिव श्रयति । शिश्राय । शिश्रियतुः । पितेव पितरति । आशिषि रिङ् । पित्रियात् । भूरिव भवति । अत्र गातिस्थेति भुवो वुगिति भवतेरिति च न भवति । अभिव्यक्तत्वेन धातुपाठस्थस्यैव तत्र ग्रहणात् । अभावीत् । बुभाव । द्रुरिव द्रवति । णिश्रीति चङ् । अद्रावीत् ॥

२६६५-उपमानवाचक कर्तृ सुबन्तके उत्तर आचारार्थमें विकल्प करके क्यङ् प्रत्यय हो, और सकारान्त कर्तृवाचक शब्दका विकल्प करके लोप हो, और विकल्प करके क्यङ् हो, ऐसा कहनेसे पक्षमें वाक्य होगा । सकारान्त शब्दका लोप क्यङ् सन्नियोगशिष्ट है, अर्थात् जिस स्थानमें क्यङ् प्रत्यय होगा. उस स्थलमें ही सकारान्त शब्दके सकारका लोप होगा, यह लोप व्यवस्थित है, जैसे-

ओजस् और अप्सरस् शब्दके अन्तस्थित सकारका नित्य लोप हो, अन्य शब्दका विकल्प करके हो * कृष्ण इवाचरति कृष्णायते । ओजस् शब्दकी वृत्तिविषयमें ओजस्वीमें वृत्ति है । ओजायते । अप्सरायते । यशायते, यशस्यते । विद्वायते, विद्वस्यते । त्वद्यते । मद्यते । अनेकार्थ होनेपर तो युष्मद्यते । अस्मद्यते । "क्यङ्मानिनोश्च ८३७" इस सूत्रसे पुंवद्भाव होकर-कुमारीवाचरति=कुमारायते । हरिणीवाचरति=हरितायते । गुर्वीव=गुरूयते । सपत्नीव=सपत्नायते, सपतीयते, सपत्नीयते । युवतिरिव=युवायते । पट्वीमृद्वयाविव=पट्वीमृदूयते । "न कोपधायाः ८३८" इस सूत्रसे पुंवद्भाव निषेध होकर-पाचिकायते ।

आचारार्थमें अवगल्भ, क्लीब और होड शब्दके उत्तर विकल्प करके क्विप् प्रत्यय हो । विकल्प पक्षमें क्यङ् होगा । अवगल्भादि शब्द पचादित्वके कारण अच् प्रत्ययान्त हैं, क्विप् सन्नियोगसे प्रत्ययको अनुदात्तत्व और अनुनासिकत्व प्रतिज्ञात होताहै, इस कारण तङ् अर्थात् आत्मनेपद होगा, अवगल्भते । क्लीबते । होडते । इस वार्त्तिकारम्भसामर्थ्यसे भूतपूर्व अनेकाच् शब्दोंके उत्तर भी आम् प्रत्यय होगा । केवल 'अवगल्भते' इत्यादि पद सिद्धिके निमित्त ही यह वार्त्तिक है, ऐसा नहीं कहसकते कारण कि, केवल धातुको आचारार्थमें भी वृत्ति अर्थात् प्रत्ययकी सम्भावना है, धातुको अनेकार्थत्वके कारण अर्थमें भी भेद नहीं होगा । अवगल्भाञ्चक्रे । क्लीबाञ्चक्रे । होडाञ्चक्रे । वार्त्तिकमें 'अव' ऐसा उपसर्गयुक्त पाठ होनेके कारण केवल गल्भादि शब्द और अन्य उपसर्गविशिष्ट गल्भादि शब्दोंके उत्तर क्यङ् ही होगा, यह माधवादि आचार्योंका मत है आत्मनेपद न होगा, यह उचित है ।

सम्पूर्ण प्रातिपदिकोंके उत्तर विकल्प करके क्विप् हो * पूर्व वार्त्तिक तो अनुबन्धका आसंजनार्थ है, उस स्थलमें क्विप् अनूदित होताहै । प्रातिपदिकशब्दोंका ग्रहण करनेसे इस स्थलमें सुप्का संबन्ध नहीं होगा, इस कारण पदकार्य्य भी नहीं होगा, कृष्ण इवाचरति=कृष्णति । "अतो गुणे १९१" इस सूत्रसे शप्के साथ पररूप होकर-अ इवाचरति=अति । अतः । अन्ति । प्रत्यय ग्रहण त्यागकर "अनेकाचः" इस उक्तिके कारण आम् नहीं होगा, औ । अतुः । उः । द्वित्व हुआ, "अतो गुणे १९१" इस सूत्रसे पररूप, "अत आदेः २२४८" इस सूत्रसे दीर्घ, णल् विभक्तिके स्थानमें औ आदेश और वृद्धि हुई । अतुस् प्रभृतिमें तो "आतो लोप इटि च २३७२" इस सूत्रसे आकारका लोप हुआ, मालेवाचरति=मालाति, यहां लिङ्गविशिष्ट परिभाषासे अथवा एकादेशके पूर्वान्तत्वके कारण क्विप् हुआ । मालाञ्चकार । लङ् परे अमालात्, इस स्थलमें हल्ङ्यादि लोप नहीं होगा, कारण कि, ङीप्साहचर्यके कारण आप्से भी परे सुका ही लोप होताहै । इट् और सक् होकर-अमालासीत् । कविरिव=कवयति । आशीर्लिङ्में कवीयात् । "सिचि वृद्धि०२२९७" इस सूत्रमें धातुकी अनुवृत्ति करके धातुमात्र जो धातु उसको वृद्धि हो ऐसे व्याख्यानके कारण नाम धातुको वृद्धि नहीं होगी, यह कैयटादिकोंका अभिप्राय है । अकवयीत् । माधवके मतसे नामधातुको भी वृद्धि होगी । अकवायीत् । विरिव=वयति । विवाय । विव्यतुः । अवयीत्, अवायीत् । श्रीरिव=श्रयति । शिश्राय । शिश्रियतुः । पितेव=पितरति । आशीर्लिङ्में ऋके स्थानमें रिङ् हुआ, पित्रियात् । भूरिव=भवति । इस स्थलमें "गातिस्था० २२२३" "भुवो वुक्०२१७४" "भवतेः०२१८१" इन सूत्रोंका कार्य नहीं होगा, क्योंकि अभिव्यक्तत्वके कारण धातुपाठस्थका ही उस स्थलमें ग्रहण है । अभावीत् । बुभाव । द्रुरिव=द्रवति । "णिश्रि०२३१२" इस सूत्रसे चङ् नहीं होगा, अद्रावीत् ॥

२६६६ अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ।६।४।१५॥

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ च क्ङिति । इदमिवाचरति इदामति । राजेव राजानति । पन्था इव पथीनति । मथीनति । ऋभुक्षीणति । द्यौरिव देवतीति माधवः । अत्र ऊठि यवतीत्युचितम् । क इव कति । चकाविति हरदत्तः । माधवस्तु ण्यल्लोपाविति वचनात् णलि वृद्धिं बाधित्वाऽतो लोपाच्चक इति रूपमाह । स्व इव स्वौ । सस्व । यत्तु स्वामास स्वांचकारेति तदनाकरमेव ॥

२६६६—क्विप् प्रत्यय और झलादि कित्, ङित् प्रत्यय परे रहते अनुनासिकान्त प्रातिपदिककी उपधाको दीर्घ हो, इदमिवाचरति=इदामति । राजेव आचरति=राजानति । पन्था इव=पथीनति । मथीनति= ऋभुक्षीणति । द्यौरिव देवति, ऐसा माधवाचार्यने कहाहै, इस स्थलमें ऊठ् होकर 'द्यवति' पद होना उचित है । क इव= कति । 'चक्रौ' ऐसा हरदत्तने कहाहै । माधवके मतसे तो "ण्यल्लोपौ०" इससे णल् परे वृद्धिको बाध कर "अतो लोपः" इस सूत्रसे अकारके लोपके कारण 'चक' ऐसा होगा । स्व इव=सस्वौ, सस्व । स्वामास, स्वाञ्चकार—इत्यादि पद तो अनाकर अर्थात् प्रामादिक हैं ॥

२६६७ भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः । ३ । १ । १२ ॥

अभूततद्भावविषयेभ्यो भृशादिभ्यो भवत्यर्थे क्यङ् स्यात् हलन्तानामेषां लोपश्च । अभृशो भृशो भवति भृशायते । अच्वेरिति पर्युदासबलाद्भूततद्भाव इति लब्धम् । तेनेह न, क्व दिवा भृशा भवन्ति । ये रात्रौ भृशा नक्षत्रादयस्ते दिवा क्व भवन्तीत्यर्थः । सुमनस् । अस्य सलोपः । सुमनायते । चुरादौ संग्राम युद्धे इति पठ्यते तत्र संग्रामेति प्रातिपदिकम् । तस्मात्तत्करोतीति णिच् सिद्धः । तत्सन्नियोगेनानुबन्ध आसज्यते । युद्धे योऽयं ग्रामशब्द इत्युक्तेऽपि सामर्थ्यात्संग्रामशब्दे लब्धे विशिष्टपाठो ज्ञापयति । उपसर्गसमानाकारं पूर्वपदं धातुसंज्ञाप्रयोजके प्रत्यये चिकीर्षिते पृथक् क्रियते इति । तेन मनश्शब्दात्प्रागट् । स्वमनायत । उन्मनायते । उदमनायत । एवं चावागल्भत अवागल्भिष्टेत्यादावप्यवेत्यस्य पृथक्करणं बोध्यम् । ज्ञापकं च सजातीयविषयम् । तेन यत्रोपसर्गरूपं सकलं श्रूयते न त्वादेशेनापहृतं तत्रैव पृथक्कृतिः । एवं च आ ऊढः ओढः स इवाचर्य ओढायित्वा । अत्र उन्मनाय्य अवगल्भ्येतिवन्न ल्यप् । ज्ञापकस्य विशेषविषयत्वे षाष्ठं वार्तिकं तद्भाष्यं च प्रमाणम् । तथा हि ॥ उस्योमाङ्क्ष्वाटः प्रतिषेधः ॥*॥ उसि ओमाङोश्च पररूपं नेत्यर्थः । उस्रामैच्छत् । औस्रीयत् । ओङ्कारीयत । औढीयत् । आटश्चेति चशब्देन पुनर्वृद्धिविधानादिदं सिद्धमिति षाष्ठे स्थितम् ॥

२६६७—अभूततद्भावविषयक भृशादि शब्दोंके उत्तर 'भवति' अर्थमें क्यङ् प्रत्यय हो, और भृशादिके मध्यमें हलन्त शब्दोंका लोप हो, अभृशो भृशो भवति=भृशायते । 'अच्वेः' इस पर्युदासबलसे अभूततद्भाव अर्थ लब्ध हुआ, इस कारण 'क्व दिवा भृशा भवन्ति' अर्थात् रात्रिकालमें जो सम्पूर्ण नक्षत्रराशि उदय होतेहैं, वह दिनमें कहां जातेहैं, इस स्थलमें क्यङ् नहीं हुआ । सुमनस् शब्दके सकारका लोप हुआ, सुमनायते । चुरादिमें संग्राम युद्धे ऐसे पठित है, उस स्थलमें संग्राम यह प्रातिपदिक है, इससे 'तत्करोति' इस अर्थमें णिच् सिद्ध हुआ। णिच्के सन्नियोगसे अनुबन्ध आसक्त होताहै । युद्धमें जो ग्राम शब्द ऐसा कहनेसे भी सामर्थ्यसे संग्राम शब्द लब्ध हो ही जाता फिर सम्—विशिष्ट पाठ करनेका क्या प्रयोजन है? तो वही सम्—विशिष्ट पाठ यह जनाताहै कि, उपसर्ग समानाकार पूर्वपद धातु संज्ञाप्रयोजक प्रत्यय चिकीर्षित होनेपर पृथक् किया जाय इससे मनस् शब्दके पूर्वमें अट् होगा, स्वमनायत । उन्मनायते । उदमनायत । इसी प्रकार अवागल्भत, अवागल्भिष्ट—इत्यादिमें भी 'अव' इस पूर्वपदका पृथक् करण जानना चाहिये । उपसर्गसमानाकार पूर्व पदका जो पथक् करण विषयक ज्ञापक वह सजातीय विषयक है, इसी कारण जिस स्थलमें उपसर्गरूप सम्पूर्ण श्रूयमाण हो अर्थात् आदेशके द्वारा विकारको प्राप्त न हुआ हो, उसी स्थलमें पृथक्करण होगा, अत एव आ ऊढः=ओढः+स इवाचर्य; इस विग्रहमें 'ओढायित्वा' इस स्थलमें उन्मनाय्य अवगल्भ्य इत्यादिकी समान ल्यप् नहीं हुआ । ज्ञापकके विशेष विषयत्वमें षष्ठाध्यायस्थ वार्त्तिक और उसका भाष्य प्रमाण जानना, वही कहतेहैं ।

"उस्योमाङ्क्ष्वाटः प्रतिषेधः" अर्थात् उस,ओम्,आर आङ् परे रहते आट्का पररूप नहीं हो* । उस्रामैच्छत्=औस्रीयत् । ओङ्कारीयत् । औढीयत् । "आटश्च २६९" इस स्थलमें जो चकार निर्दिष्ट है उससे पुनर्वार वृद्धि विधानके कारण यह सिद्ध हुआ ऐसा भाष्यके छठे अध्यायमें कहाहै । सो कहो यदि ज्ञापकको विशेष विषयत्व न हो तो आङ्परत्वके अभावसे पररूपकी प्राप्ति ही नहीं थी फिर निषेध करना व्यर्थ ही होजाता ॥

२६६८ लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् । ३ । १ । १३ ॥

लोहितादिभ्यो डाजन्ताच्च भवत्यर्थे क्यष् स्यात् ॥

२६६८—लोहितादि शब्दोंके और डाच् प्रत्ययान्त शब्दोंके उत्तर 'भवति' अर्थमें क्यष् प्रत्यय हो ॥

२६६९ वा क्यषः । १ । ३ । ९० ॥

क्यषन्तात्परस्मैपदं वा स्यात् लोहितायति लोहितायते । अत्राच्वेरित्यनुवृत्त्याऽभूततद्भावविषयत्वं लब्धं तच्च लोहितशब्दस्यैव विशेषणम् । न तु डाचोऽसम्भवात् । नाप्यादिशब्दग्राह्याणां तस्य प्रत्याख्यानात् । तथा च वार्तिकम् ॥ लोहितडाज्भ्यः क्यष्वचनं भृशादिष्वितराणि·

ति ॥ * ॥ न चैवं काम्यच इव क्यषोऽपि ककारः श्रूयेत उच्चारणसामर्थ्यादिति वाच्यम् । तस्यापि भाष्ये प्रत्याख्यानात् । पटपटायति । पटपटायते । कृभ्वस्तियोगं विनापीह डाच् । डाजन्तात् क्यषो विधानसामर्थ्यात् । यत्तु,

लोहितश्यामदुःखानि हर्षगर्वसुखानि च ।
मूर्च्छानिद्राकृपाधूमाः करुणा नित्यचर्मणी ॥

इति पठित्वा श्यामादिभ्योऽपि क्यषि पदद्वयमुदाहरन्ति तद्भाष्यवार्तिकविरुद्धम् । तस्मात्तेभ्यः क्यङेव । श्यामायते । दुःखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया लोहिनीशब्दादपि क्यष । लोहिनीयति । लोहिनीयते ॥

२६६९–क्यष् प्रत्ययान्त नाम धातुके उत्तर विकल्प करके परस्मैपद हो, लोहितायति, लोहितायते । इस स्थलमें च्विकी अनुवृत्तिसे अभूततद्भाव, विषयत्व लब्ध हुआ, परन्तु वह लोहित शब्दका ही विशेषण है, डाच्का नहीं, क्योंकि, डाच् प्रत्ययका विशेषण होना असम्भव है और आदि शब्द ग्राह्य इतर शब्दका भी विशेषण नहीं होगा क्योंकि, भाष्यकारने क्यष्विधायक इस सूत्रमें आदि शब्दका प्रत्याख्यान किया है, वैसे ही वार्त्तिक है, यथा–

लोहित और डाच्प्रत्ययान्त शब्दोंके उत्तर क्यष् प्रत्यय हो और भृशादि शब्दोंके उत्तर क्यङ् आदि प्रत्यय हों * । यदि कहो कि, काम्यच् प्रत्ययके समान क्यष् प्रत्ययके उच्चारण सामर्थ्यके कारण ककार श्रुत होगा, ऐसा नहीं कह सकते हो क्योंकि, क्यष् प्रत्ययका ककार भी भाष्यमें प्रत्याख्यात हुआ है । पटपटायति, पटपटायते । डाजन्तके उत्तर क्यष् प्रत्यय विधानके=सामर्थ्यके कारण कृ, भू, अस् इन धातुओंके योग विना भी डाच् होगा । कोई लोहितादिकोंके मध्यमें, लोहित, श्याम, दुःख, हर्ष, गर्व, सुख, मूर्च्छा, निद्रा, कृपा, धूम, करुणा, नित्य, चर्म्म इनका पाठ करके श्यामादि शब्दोंके उत्तर भी क्यष् प्रत्यय करके दो पदोंका उदाहरण देतेहैं, वह भाष्य और वार्त्तिकके विरुद्ध है, इस कारण उनके उत्तर क्यङ् ही हुआ । श्यामायते । दुःखादि शब्द वृत्तिविषयमें दुःखादिमान्में वृत्ति है । लिङ्गविशिष्ट परिभाषासे लोहिनी शब्दके उत्तर भी क्यष् प्रत्यय होकर–लोहिनीयति, लोहिनीयते ॥

२६७० कष्टाय क्रमणे । ३ । १ । १४॥

चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात् । कष्टाय क्रमते कष्टायते । पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः ॥ सत्रकक्षकष्टकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कण्वं पापम् । सत्रादयो वृत्तिविषये पापार्थाः । तेभ्यो द्वितीयान्तेभ्यश्चिकीर्षायां क्यङ् । पापं चिकीर्षतीत्यस्वपदविग्रहः । सत्रायते । कक्षायते इत्यादि ॥

२६७०–चतुर्थीविभक्त्यन्त कष्ट शब्दके उत्तर उत्साहार्थमें क्यङ् प्रत्यय हो, कष्टाय क्रमते=कष्टायते, अर्थात् पाप करनेका उत्साह करता है ।

कण्व, अर्थात् पापचिकीर्षा होनेपर सत्र, कक्ष, कष्ट, कृच्छ्र और गहन शब्दोंके उत्तर क्यङ् प्रत्यय हो* कण्व नाम पापका है, सत्रादि भी वृत्तिविषयमें पापअर्थवाले हैं, द्वितीयान्त उनसे पाप करनेकी इच्छामें क्यङ् हुआ पापं चिकीर्षति, यह अस्वपद विग्रह है, सत्रायते । कक्षायते–इत्यादि ॥

२६७१ कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः । ३ । १ । १५ ॥

रोमन्थतपोभ्यां कर्मभ्यां क्रमेण वर्तनायां चरणे चार्थे क्यङ् स्यात् । रोमन्थं वर्तयति रोमन्थायते ॥ हनुचलन इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ चर्वितस्याकृष्य पुनश्चर्वणमित्यर्थः । नेह । कीटो रोमन्थं वर्तयति । अपानप्रदेशान्निःसृतं द्रव्यमिह रोमन्थः । तदश्नातीत्यर्थ इति कैयटः । वर्तुलं करोतीत्यर्थ इति न्यासकारहरदत्तौ ॥ तपसः परस्मैपदं च ॥*॥ तपश्चरति तपस्यति॥

२६७१–रोमन्थ और तपस् इन दो कर्म पदोंके उत्तर क्रमसे वर्तना और चरणार्थमें क्यङ् प्रत्यय हो, रोमन्थं वर्त्तयति=रोमन्थायते ।

तालुचलनसे चबाई हुई वस्तुको आकर्षणपूर्वक पुनश्चर्वण अर्थमें उक्त प्रत्यय हो * इस कारण 'कीटो रोमन्थं वर्त्तयति' इस स्थलमें क्यङ् प्रत्यय नहीं हुआ, इस स्थानमें अपान प्रदेशसे निःसृत द्रव्यको रोमन्थ कहतेहैं । उसको भोजन करताहै, ऐसा कैयटका मत है, न्यासकार और हरदत्तके मतसे वर्त्तुल करताहै ।

तपस् शब्दके उत्तर क्यङ् प्रत्यय होनेपर परस्मैपद होगा* तपश्चरति=तपस्यति ॥

२६७२ बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने।३।१।१६॥

आभ्यां कर्मभ्यां क्यङ् स्यात् । बाष्पमुद्वमति बाष्पायते । ऊष्मायते । फेनाच्चेति वाच्यम् ॥ * ॥ फेनायते ॥

२६७२–बाष्प और ऊष्म शब्दके उत्तर उद्वमनार्थमें क्यङ् प्रत्यय हो, बाष्पमुद्वमति=बाष्पायते, ऊष्मायते ।

फेन शब्दके उत्तर भी क्यङ् प्रत्यय हो * फेनायते ॥

२६७३ शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे । ३ । १ । १७ ॥

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् । शब्दं करोति शब्दायते । पक्षे तत्करोतीति णिजपीष्यत इति न्यासः । शब्दयति ॥ सुदिनदुर्दिननीहारेभ्यश्च ॥ * ॥ सुदिनायते ॥

२६७३-शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ इन कर्मोंके उत्तर ' करोति ' अर्थमें क्यङ् हो, शब्दं करोति= शब्दायते । पक्षमें "तत्करोति०"इससे णिच् भी होगा, यह न्यासकारका मत है । शब्दयति ।

सुदिन, दुर्दिन और नीहार शब्दके उत्तर क्यङ् प्रत्यय हो*सुदिनायते ॥

२६७४ सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् । ३ । १ । १८ ॥

सुखादिभ्यः कर्मभ्यो वेदनायामर्थे क्यङ् स्याद्वेदनाकर्तुरेव चेत्सुखादीनि स्युः । सुखं वेदयते सुखायते । कर्तृग्रहणं किम् । परस्य सुखं वेदयते ॥

२६७४-यदि सुखादि वेदना कर्त्ताको ही हो तो सुखादि शब्दोंके उत्तर वेदनार्थमें क्यङ् प्रत्यय हो, सुखं वेदयते= सुखायते । कर्तृ पदका ग्रहण करनेसे 'परस्य सुखं वेदयते' इस स्थलमें क्यङ् नहीं हुआ ॥

२६७५ नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ३।१।१९

करणे इत्यनुवृत्तेः क्रियाविशेषे पूजायां परिचर्यायामाश्चर्ये च । नमस्यति देवान् । पूजयतीत्यर्थः । वरिवस्यति गुरून् । शुश्रूषते इत्यर्थः । चित्रीयते । विस्मयते इत्यर्थः । विस्मापयत इत्यन्ये ॥

२६७५-नमस्, वरिवस् और चित्रङ् शब्दके उत्तर क्रियाविशेषमें अर्थात् पूजार्थमें, परिचर्य्यार्थ और आश्चर्य अर्थमें क्यच् प्रत्यय हो, नमस्यति देवान्, अर्थात् पूजा करताहै । वरिवस्यति गुरून्, सेवा करताहै । चित्रीयते, अर्थात् आश्चर्यान्वित होताहै । कोई २ कहतेहैं विस्मापयते, अथार्त् आश्चर्य्यान्वित करताहै ॥

२६७६ पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् । ३ । १ । २० ॥

पुच्छादुदसने व्यसने पर्यसने च ॥ * ॥ विविधं विरुद्धं वोत्क्षेपणं व्यसनम् । उत्पुच्छयते । विपुच्छयते । परिपुच्छयते ॥ भाण्डात्समाचयने ॥ * ॥ सम्भाण्डयते । भाण्डानि समाचिनोति राशीकरोतीत्यर्थः। समबभाण्डत॥ चीवरादर्जने परिधाने च ॥ * ॥ सञ्चीवरयते भिक्षुः । चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वेत्यर्थः ॥

२६७६-पुच्छ, भाण्ड, चीवर शब्दोंके उत्तर णिङ् हो । उदसन, व्यसन और पर्य्यसनार्थमें पुच्छ शब्दके उत्तर णिङ् हो * विविधं-विरुद्ध वोत्क्षेपणं व्यसनम् । उत्पुच्छयते । विपुच्छयते । परिपुच्छयते ।

समाचयन, अर्थात् राशीकरणार्थमें भाण्ड शब्दके उत्तर णिङ् प्रत्यय हो*सम्भाण्डयते, भाण्डानि समाचिनोति, अर्थात् इकट्ठा करताहै । समबभाण्डत ।

अर्जन और परिधानार्थमें चीवर शब्दके उत्तर णिङ् हो * सञ्चीवरयते भिक्षुः । चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वा, अर्थात् चीथडे एकत्र करताहै, अथवा पहिरताहै ॥

२६७७ मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् ।३।१।२१॥

कृञर्थे । मुण्डं करोति मुण्डयति ॥ व्रताद्भोजनतन्निवृत्त्योः ॥ * ॥ पयः शूद्रान्नं वा व्रतयति ॥ वस्त्रात्समाच्छादने ॥ * ॥ संवस्त्रयति ॥ हल्यादिभ्यो ग्रहणे ॥ * ॥ हलिकल्योरदन्तत्वं च निपात्यते । हलिं कलिं वा गृह्णाति, हलयति, कलयति । महद्धलं हलिः । परत्वाद् वृद्धौ सत्यामपीष्टवद्भावेनागेव लुप्यते, अतः सन्वद्भावदीर्घौ न । अजहलत् । अचकलत् । कृतं गृह्णाति कृतयति । तूस्तानि विहन्ति वितूस्तयति । तूस्तं केशा इत्येके । जटीभूताः केशा इत्यन्ये । पापमित्यपरे । मुण्डादयः सत्यापपाशेत्यत्रैव पठितुं युक्ताः । प्रातिपदिकाद्धात्वर्थ इत्येव सिद्धे केषांचिद्ग्रहणं सापेक्षेभ्योऽपि णिजर्थम् । मुण्डयति माणवकम् । मिश्रयत्यन्नम् । श्लक्ष्णयति वस्त्रम् । लवणयति व्यञ्जनमिति । हलिकल्योरदन्तत्वार्थम् । सत्यस्य आपुगर्थम् । केषांचित्तु प्रपञ्चार्थम् । सत्यं करोत्याचष्टे वा सत्यापयति ॥ अर्थवेदयोरप्यापुग्वक्तव्यः ॥*॥ अर्थापयति । वेदापयति।पाशं विमुञ्चति विपाशयति । रूपं पश्यति रूपयति वीणयोपगायत्युपवीणयति । तूलेनानुकुष्णात्यनुतूलयति । तृणाग्रं तूलेनानुघट्टयतीत्यर्थः । श्लोकैरुपस्तौति उपश्लोकयति । सेनया अभियाति अभिषेणयति । उपसर्गात्सुनोतीति षः । अभ्यषेणयत् । प्राक्सितादिति षः। अभिषिषेणयिषति। स्थादिष्वभ्यासेन चेति षः । लोमान्यनुमार्ष्टि अनुलोमयति । त्वच संवरणे । घः। त्वचं गृह्णाति त्वचयति । वर्मणा सन्नह्यति संवर्मयति । वर्णं गृह्णाति वर्णयति । चूर्णैरवध्वंसते अवचूर्णयति । इष्ठवदित्यतिदेशात्पुंवद्भावादयः।एनीमाचष्टे एतयति । दरदमाचष्टे दारदयति । पृथुं प्रथयति । वृद्धौ सत्यां पूर्वं वा टिलोपः । अपिप्रथत्-अपप्रथत । मृदुम् । म्रदयति । अमिम्रदत्-अमम्रदत् । भृशं कृशं दृढम् । भ्रशयति । क्रशयति । द्रढयति । अबभ्रशत् । अचक्रशत् । अदद्रढत् । परिव्रढयति । पर्यवव्रढत् । ऊढिमा-

ति ॥ * ॥ न चैवं काम्यच इव क्यषोऽपि ककारः श्रूयेत उच्चारणसामर्थ्यादिति वाच्यम् । तस्यापि भाष्ये प्रत्याख्यानात् । पटपटायति । पटपटायते । कृभ्वस्तियोगं विनापीह डाच् । डाजन्तात् क्यषो विधानसामर्थ्यात् । यत्तु,

लोहितश्यामदुःखानि हर्षगर्वसुखानि च ।
मूर्च्छानिद्राकृपाधूमाः करुणा नित्यचर्मणी ॥

इति पठित्वा श्यामादिभ्योऽपि क्यषि पदद्वयमुदाहरन्ति तद्भाष्यवार्तिकविरुद्धम् । तस्मात्तेभ्यः क्यङेव । श्यामायते । दुःखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया लोहिनीशब्दादपि क्यष । लोहिनीयति । लोहिनीयते ॥

२६६९-क्यष् प्रत्ययान्त नाम धातुके उत्तर विकल्प करके परस्मैपद हो, लोहितायति, लोहितायते । इस स्थलमें च्विकी अनुवृत्तिसे अभूततद्भाव, विषयत्व लब्ध हुआ, परन्तु वह लोहित शब्दका ही विशेषण है, डाच्का नहीं, क्योंकि, डाच् प्रत्ययका विशेषण होना असम्भव है और आदि शब्द ग्राह्य इतर शब्दका भी विशेषण नहीं होगा क्योंकि, भाष्यकारने क्यष्विधायक इस सूत्रमें आदि शब्दका प्रत्याख्यान किया है, वैसे ही वार्त्तिक है, यथा-

लोहित और डाच्प्रत्ययान्त शब्दोंके उत्तर क्यष् प्रत्यय हो और भृशादि शब्दोंके उत्तर क्यङ् आदि प्रत्यय हों * । यदि कहो कि, काम्यच् प्रत्ययके समान क्यष् प्रत्ययके उच्चारण सामर्थ्यके कारण ककार श्रुत होगा, ऐसा नहीं कह सकते हो क्योंकि, क्यष् प्रत्ययका ककार भी भाष्यमें प्रत्याख्यात हुआ है । पटपटायति, पटपटायते । डाजन्तके उत्तर क्यष् प्रत्यय विधानके=सामर्थ्यके कारण कृ, भू, अस् इन धातुओंके योग विना भी डाच् होगा । कोई लोहितादिकोंके मध्यमें, लोहित, श्याम, दुःख, हर्ष, गर्व, सुख, मूर्च्छा, निद्रा, कृपा, धूम, करुणा, नित्य,चर्म्म इनका पाठ करके श्यामादि शब्दोंके उत्तर भी क्यष् प्रत्यय करके दो पदोंका उदाहरण देतेहैं, वह भाष्य और वार्तिकके विरुद्ध है, इस कारण उनके उत्तर क्यङ् ही हुआ । श्यामायते । दुःखादि शब्द वृत्तिविषयमें दुःखादिमान्में वृत्ति है । लिङ्गविशिष्ट परिभाषासे लोहिनी शब्दके उत्तर भी क्यष् प्रत्यय होकर-लोहिनीयति, लोहिनीयते ॥

२६७० कष्टाय क्रमणे । ३ । १ । १४॥

चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात् । कष्टाय क्रमते कष्टायते । पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः ॥ सत्त्रकक्षकष्टकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ कण्वं पापम् । सत्त्रादयो वृत्तिविषये पापार्थाः । तेभ्यो द्वितीयान्तेभ्यश्चिकीर्षायां क्यङ् । पापं चिकीर्षतीत्यस्वपदविग्रहः । सत्त्रायते । कक्षायते इत्यादि ॥

२६७०-चतुर्थीविभक्त्यन्त कष्ट शब्दके उत्तर उत्साहार्थमें क्यङ् प्रत्यय हो, कष्टाय क्रमते=कष्टायते, अर्थात् पाप करनेका उत्साह करता है ।

कण्व,अर्थात् पापचिकीर्षा होनेपर सत्त्र,कक्ष,कष्ट,कृच्छ्र और गहन शब्दोंके उत्तर क्यङ् प्रत्यय हो* कण्व नाम पापका है, सत्त्रादि भी वृत्तिविषयमें पापअर्थवाले हैं, द्वितीयान्त उनसे पाप करनेकी इच्छामें क्यङ् हुआ पापं चिकीर्षति, यह अस्वपद विग्रह है, सत्त्रायते । कक्षायते-इत्यादि ॥

२६७१ कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः । ३ । १ । १५ ॥

रोमन्थतपोभ्यां कर्मभ्यां क्रमेण वर्तनायां चरणे चार्थे क्यङ् स्यात् । रोमन्थं वर्तयति रोमन्थायते ॥ हनुचलन इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ चर्वितस्याकृष्य पुनश्चर्वणमित्यर्थः । नेह । कीटो रोमन्थं वर्तयति । अपानप्रदेशान्निःसृतं द्रव्यमिह रोमन्थः । तदश्नातीत्यर्थ इति कैयटः । वर्तुलं करोतीत्यर्थ इति न्यासकारहरदत्तौ ॥ तपसः परस्मैपदं च ॥*॥ तपश्चरति तपस्यति॥

२६७१-रोमन्थ और तपस् इन दो कर्म पदोंके उत्तर क्रमसे वर्तना और चरणार्थमें क्यङ प्रत्यय हो, रोमन्थं वर्त्तयति=रोमन्थायते ।

तालुचलनसे चवाई हुई वस्तुको आकर्षणपूर्वक पुनश्चर्वण अर्थमें उक्त प्रत्यय हो * इस कारण 'कीटो रोमन्थं वर्त्तयति' इस स्थलमें क्यङ् प्रत्यय नहीं हुआ, इस स्थानमें अपान प्रदेशसे निःसृत द्रव्यको रोमन्थ कहतेहैं । उसको भोजन करताहै, ऐसा कैयटका मत है, न्यासकार और हरदत्तके मतसे वर्त्तुल करताहै ।

तपस् शब्दके उत्तर क्यङ् प्रत्यय होनेपर परस्मैपद होगा* तपश्चरति=तपस्यति ॥

२६७२ बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने।३।१।१६॥

आभ्यां कर्मभ्यां क्यङ् स्यात् । बाष्पमुद्वमति बाष्पायते । ऊष्मायते । फेनाच्चेति वाच्यम् ॥ * ॥ फेनायते ॥

२६७२-बाष्प और ऊष्म शब्दके उत्तर उद्वमनार्थमें क्यङ् प्रत्यय हो, बाष्पमुद्वमति=बाष्पायते, ऊष्मायते ।

फेन शब्दके उत्तर भी क्यङ् प्रत्यय हो * फेनायते ॥

२६७३ शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे । ३ । १ । १७ ॥

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् । शब्दं करोति शब्दायते। पक्षे तत्करोतीति णिजपीष्यत इति न्यासः । शब्दयति ॥ सुदिनदुर्दिननीहारेभ्यश्च ॥ * ॥ सुदिनायते ॥

२६७३-शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ इन कर्मोंके उत्तर ' करोति ' अर्थमें क्यङ् हो, शब्दं करोति= शब्दायते । पक्षमें "तत्करोति०" इससे णिच् भी होगा, यह न्यासकारका मत है । शब्दयति ।

सुदिन, दुर्दिन और नीहार शब्दके उत्तर क्यङ् प्रत्यय हो* सुदिनायते ॥

२६७४ सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् । ३ । १ । १८ ॥

सुखादिभ्यः कर्मभ्यो वेदनायामर्थे क्यङ् स्याद्वेदनाकर्तुरेव चेत्सुखादीनि स्युः । सुखं वेदयते सुखायते । कर्तृग्रहणं किम् । परस्य सुखं वेदयते ॥

२६७४-यदि सुखादि वेदना कर्त्ताको ही हो तो सुखादि शब्दोंके उत्तर वेदनार्थमें क्यङ् प्रत्यय हो, सुखं वेदयते= सुखायते । कर्तृ पदका ग्रहण करनेसे 'परस्य सुखं वेदयते' इस स्थलमें क्यङ् नहीं हुआ ॥

२६७५ नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ३।१।१९

करणे इत्यनुवृत्तेः क्रियाविशेषे पूजायां परिचर्यायामाश्चर्ये च । नमस्यति देवान् । पूजयतीत्यर्थः । वरिवस्यति गुरून् । शुश्रूषते इत्यर्थः । चित्रीयते । विस्मयते इत्यर्थः । विस्मापयत इत्यन्ये ॥

२६७५-नमस्, वरिवस् और चित्रङ् शब्दके उत्तर क्रियाविशेषमें अर्थात् पूजार्थमें, परिचर्य्यार्थ और आश्चर्य अर्थमें क्यच् प्रत्यय हो, नमस्यति देवान्, अर्थात् पूजा करताहै । वरिवस्यति गुरून्, सेवा करताहै । चित्रीयते, अर्थात् आश्चर्यान्वित होताहै । कोई २ कहतेहैं विस्मापयते, अर्थात् आश्चर्य्यान्वित कराताहै ॥

२६७६ पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् । ३ । १ । २० ॥

पुच्छादुदसने व्यसने पर्यसने च ॥ * ॥ विविधं विरुद्धं वोत्क्षेपणं व्यसनम् । उत्पुच्छयते । विपुच्छयते । परिपुच्छयते ॥ भाण्डात्समाचयने ॥ * ॥ सम्भाण्डयते । भाण्डानि समाचिनोति राशीकरोतीत्यर्थः। समवभाण्डत॥ चीवरादर्जने परिधाने च ॥ * ॥ सञ्चीवरयते भिक्षुः । चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वेत्यर्थः ॥

२६७६-पुच्छ, भाण्ड, चीवर शब्दोंके उत्तर णिङ् हो।

उदसन, व्यसन और पर्य्यसनार्थमें पुच्छ शब्दके उत्तर णिङ् हो * विविधं-विरुद्धं वोत्क्षेपणं व्यसनम् । उत्पुच्छयते । विपुच्छयते । परिपुच्छयते ।

समाचयन, अर्थात् राशीकरणार्थमें भाण्ड शब्दके उत्तर णिङ् प्रत्यय हो*सम्भाण्डयते, भाण्डानि समाचिनोति, अर्थात् इकट्ठा करताहै । समवभाण्डत ।

अर्जन और परिधानार्थमें चीवर शब्दके उत्तर णिङ् हो * सञ्चीवरयते भिक्षुः । चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वा, अर्थात् चीथडे एकत्र करताहै, अथवा पहिरताहै ॥

२६७७ मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच्।३।१।२१॥

कृञर्थे । मुण्डं करोति मुण्डयति ॥ व्रताद्भोजनतन्निवृत्त्योः ॥ * ॥ पयः शूद्रान्नं वा व्रतयति ॥ वस्त्रात्समाच्छादने ॥ * ॥ संवस्त्रयति ॥ हल्यादिभ्यो ग्रहणे ॥ * ॥ हलिकल्योरदन्तत्वं च निपात्यते । हलिं कलिं वा गृह्णाति, हलयति, कलयति । महद्धलं हलिः । परत्वाद् वृद्धौ सत्यामपीष्टवद्भावेनागेव लुप्यते, अतः सन्वद्भावदीर्घौ न । अजहलत् । अचकलत् । कृतं गृह्णाति कृतयति । तूस्तानि विहन्ति वितूस्तयति । तूस्तं केशा इत्येके । जटीभूताः केशा इत्यन्ये । पापमित्यपरे । मुण्डादयः सत्यापपाशेत्यत्रैव पठितुं युक्ताः । प्रातिपदिकाद्धात्वर्थ इत्येव सिद्धे केषांचिद्ग्रहणं सापेक्षेभ्योऽपि णिजर्थम् । मुण्डयति माणवकम् । मिश्रयत्यन्नम् । श्लक्ष्णयति वस्त्रम् । लवणयति व्यञ्जनमिति । हलिकल्योरदन्तत्वार्थम् । सत्यस्य आपुगर्थम् । केषांचित् प्रपञ्चार्थम् । सत्यं करोत्याचष्टे वा सत्यापयति ॥ अर्थवेदयोरप्यापुग्वक्तव्यः ॥*॥ अर्थापयति । वेदापयति।पाशं विमुञ्चति विपाशयति । रूपं पश्यति रूपयति वीणयोपगायत्युपवीणयति । तूलेनानुकुष्णात्यनुतूलयति । तृणाग्रं तूलेनानुघट्टयतीत्यर्थः । श्लोकैरुपस्तौति उपश्लोकयति । सेनया अभियाति अभिषेणयति । उपसर्गात्सुनोतीति षः । अभ्यषेणयत्। प्राक्सितादिति षः। अभिषिषेणयिषति। स्थादिष्वभ्यासेन चेति षः । लोमान्यनुमार्ष्टि अनुलोमयति । त्वच संवरणे । घः। त्वचं गृह्णाति त्वचयति । वर्मणा सन्नह्यति संवर्मयति । वर्णं गृह्णाति वर्णयति । चूर्णैरवध्वंसते अवचूर्णयति । इष्ठवदित्यतिदेशात्पुंवद्भावादयः।एनीमाचष्टे एतयति । दरदमाचष्टे दारदयति । पृथुं प्रथयति । वृद्धौ सत्यां पूर्वं वा टिलोपः । अपिप्रथत्-अपप्रथत् । मृदुम् । म्रदयति । अमिम्रदत्-अमम्रदत् । भृशं कृशं दृढम् । भ्रशयति । क्रशयति । द्रढयति । अबभ्रशत् । अचक्रशत् । अदद्रढत् । परिव्रढयति । पर्यवव्रढत् । ऊढिमा-

ख्यत् औजिढत् । ढत्वादीनामसिद्धत्वात् हृतिशब्दस्य द्वित्वम् । पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे इति त्वनित्यमित्युक्तम् । ढि इत्यस्य द्वित्वमित्यन्ये । औडिढत् । ऊढमाख्यत् । औजढत्-औडढत् । ओः पुयणितिवर्गप्रत्याहारजग्रहो लिङ्गम् । द्वित्वे कार्ये णावच आदेशो नेति ऊनयतावुक्तम् । प्रकृत्यैकाच् । वृद्धिपुकौ । स्वापयति । त्वां मां वाऽऽचष्टे त्वापयति । मापयति । मपर्यन्तस्य त्वमौ । पररूपात्पूर्वं नित्यत्वाट्टिलोपः । वृद्धिः पुक् त्वादयति मादयतीति तु न्याय्यम् । अन्तरङ्गत्वात्पररूपे कृते प्रकृत्यैकाजिति प्रकृतिभावात् । न च प्रकृतिभावो भाष्ये प्रत्याख्यात इति भ्रमितव्यम् । भाष्यस्य प्रष्ठाद्युदाहरणविशेषेऽन्यथासिद्धिपरत्वात् । युवामावां वा युष्मयति । अस्मयति । श्वानमाचष्टे शावयति । नस्तद्धित इति टिलोपः । प्रकृतिभावस्तु न । येन नाप्राप्तिन्यायेन टेरित्यस्यैव बाधको हि सः । भत्वात्सम्प्रसारणम् । अन्ये तु नस्तद्धित इति नेहातिदिश्यते इष्ठनि तस्यादृष्टत्वात् । ब्रह्मिष्ठ इत्यादौ परत्वाट्टेरित्यस्यैव प्रवृत्तेः । तेन शुनयतीति रूपमाहुः । विद्वांसमाचष्टे विद्वयति । अङ्गवृत्तपरिभाषया संप्रसारणं नेत्येके । संप्रसारणे वृद्धाववादेशे च विदावयतीत्यन्ये । नित्यत्वाट्टिलोपात्प्राक्संप्रसारणम्। अन्तरङ्गत्वात्पूर्वरूपं टिलोपः । विदयति इत्यपरे । उदञ्चमाचष्टे उदीचयति । उदैचिचत् । प्रत्यञ्चम्, प्रतीचयति । प्रत्यचिचत् । इकोऽसवर्णे इति प्रकृतिभावपक्षे । प्रतिअचिचत् । सम्यञ्चमाचष्टे समीचयति । सम्यचिचत्-समिअचिचत् । तिर्यञ्चमाचष्टे तिरायति । अञ्चेष्टिलोपेनापहारेऽपि बहिरङ्गत्वेनासिद्धत्वात्तिरसस्तिरिः । असिद्धवदत्रेति । चिणो लुङ्न्यायेन प्रथमटिलोपोऽसिद्धः । अतः पुनष्टिलोपो न। अङ्गवृत्तपरिभाषया वा । चङ्यग्लोपित्वादुपधाह्रस्वो न । अतितिरायत् । सध्र्यञ्चमाचष्टे सध्राययति । अससध्रायत् । विष्वद्र्यञ्चम्, अविविष्वद्रायत् । देवद्र्यञ्चम्, देवद्राययति, अदिदेवद्रायत् । अदद्र्यञ्चम्, अददद्रायत् । अदमुयञ्चम्, अदमुआययति । आददमुआयत । अमुमुयञ्चम्, अमुमुआययति । चङि । आमुमुआयत् । भुवं भावयति । अबीभवत् । भ्रुवम्, अबुभ्रवत् । श्रियम्, अशिश्रयत् । गाम्, अजूगवत् । रायम्, अरीरयत् । नावम्, अनूनवत् । स्वश्वम्, स्वाशश्वत् । स्वः । अव्ययानां भमात्रे टिलोपः । स्वयति । अमस्वत्-असिस्वत् । बहून् भावयति । बहयतीत्यन्ये । विन्मतोरिति लुक् स्रग्विणम्, स्रजयति । संज्ञापूर्वकत्वान्न वृद्धिः । श्रीमतीं श्रीमन्तं वा । श्रययति । अशिश्रयत् । पयस्विनीम्, पयसयति । इह टिलोपो न । तदपवादस्य लुकः प्रवृत्तत्वात्। स्थूलम्, स्थवयति । दूरम्, दवयति । कथं तर्हि दूरयत्यवनते विवस्वतीति । दूरमतति अयते वा दूरात् । दूरातं कुर्वतीत्यर्थः । युवानं यवयति-कनयति । युवाल्पयोरिति वा कन् । अन्तिकं नेदयति । बाढं साधयति । प्रशस्यं प्रशस्ययति । इह श्रज्यौ न । उपसर्गस्य पृथक्कृतेः । वृद्धं ज्यापयति । वर्षयति । प्रियं प्रापयति । स्थिरं स्थापयति । स्फिरं स्फापयति । उरुं वरयति । वारयति । बहुलं बंहयति । गुरुं गरयति । तृप्रं त्रपयति। दीर्घं द्राघयति। वृन्दारकं वृन्दयति॥

॥ इति नामधातुप्रक्रिया ॥

२६७७-मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत, और तूस्त शब्दोंके उत्तर 'करोति' अर्थमें णिच् हो, मुण्डं करोति=मुंडयति ।

भोजन और उससे निवृत्ति होनेपर व्रत शब्दके उत्तर णिच् हो * पयःशूद्रान्नं वा व्रतयति ।

समाच्छादन अर्थमें वस्त्र शब्दके उत्तर णिच् हो * संवस्त्रयति ।

ग्रहणार्थमें हलादि शब्दोंके उत्तर णिच् हो*हलि और कलिको अकारान्तता निपातनसे सिद्ध है । हलिं कलिं वा गृह्णाति=हलयति । कलयति । महत् हलको हलि कहतेहैं । परत्वके कारण वृद्धि होनेपर भी इष्टवद्भावसे अक्का ही लोप हुआ, अत एव सन्वद्भाव और दीर्घ नहीं हुआ, अजहलत् । अचकलत् । कृतं गृह्णाति=कृतयति । तूस्तानि विहन्ति=वितूस्तयति । कोई २ कहतेहैं, तूस्त शब्दसे केश समझना । अन्यमतसे जटीभूत केश और दूसरोंके मतसे पाप समझना ।

मुण्डादि शब्दोंका "सत्यापपाश० २५६३ " इस सूत्रमें ही पाठ करना उचित था ।

" प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे० " इससे ही सिद्ध होनेपर सापेक्षके भी उत्तर णिच् विधानार्थ किसी २ शब्दका ग्रहण है । मुण्डयति माणवकम् । मिश्रयति अन्नम् । श्लक्ष्णयति वस्त्रम्। लवणयति व्यञ्जनम् । हलि और कलि शब्दोंको अदन्तता विधानार्थ, सत्य शब्दको आपुक् आगमके निमित्त और अन्य शब्दोंका प्रपंचार्थ ग्रहण है । सत्यं करोति आचष्टे वा=सत्यापयति ।

अर्थ और वेद शब्दको भी आपुक् हो*अर्थापयति । वेदापयति । पाशं विमुञ्चति=विपाशयति । रूपं पश्यति=रूपयति ।

वीणया उपगायति=उपवीणयति । तूलेन अनुकुष्णाति=अनु-
तूलयति, अर्थात् तूलसे तृणाग्रको घटित करताहै । श्लोकै-
रुपस्तौति=उपश्लोकयति । सेनया अभियाति=अभिषेणयति,
यहां " उपसर्गात्सुनोति० २२७० " इस सूत्रसे षत्व हुआ,
अभ्यषेणयत्, यहां "प्राक् सितात्० २२७६ " इस सूत्रसे
षत्व हुआ । अभिषिषेणयिषति, यहां " स्थादिष्वभ्यासेन०
२२७७ " इस सूत्रसे षत्व हुआ । लोमान्यनुमार्ष्टि=अनुलो-
मयति ॥ त्वच धातु संवरणमें है । "पुंसि संज्ञायाम्" इस
सूत्रसे घ प्रत्यय हुआ, त्वचं गृह्णाति=त्वचयति । वर्मणा संन-
ह्यति=संवर्मयति । वर्णं गृह्णाति=वर्णयति । चूर्णैरवध्वंसते=
अवचूर्णयति । " इष्ठवत् " इस अतिदेशके कारण पुंव-
द्भाव, रभाव और टिका लोप आदि होंगे, एनीमाचष्टे=एत-
यति । दरदमाचष्टे=दारदयति । पृथुम्=प्रथयति । वृद्धि
होकर अथवा पहले टिका लोप हुआ, अपिप्रथत्,अपप्रथत्।
मृदुम्=म्रदयति । अमिम्रदत्, अमम्रदत् । भृश, कृश,
दृढ, शब्दोंके उत्तर णिच् होकर-भ्रशयति । क्रशयति ।
द्रढयति । अबभ्रशत् । अचक्रशत् । अदद्रढत् । परिवृढय-
ति । पर्यवव्रढत् । ऊढिमाख्यत्=औजिढत् । ढत्वादिकी
असिद्धिके कारण ढि शब्दको द्वित्व हुआ । " पूर्वत्रा-
सिद्धीयमद्वित्वे " यह तो अनित्य है, ऐसा उक्त हुआहै ।
अन्यमतसे ढि शब्दको द्वित्व होगा, औडिढत् ।
ऊढमाख्यत्=औजढत् । औडढत् । " ओः पुयण्जि०
२५७७ " इस सूत्रमें वर्ग, प्रत्याहार, जग्रहणसे द्वित्व
करनेपर णि परे अच् आदेश नहीं हो, यह ऊन धातु
प्रकरणमें कहाहै, इस कारण ढ शब्दको द्वित्व हुआ ।
" प्रकृत्यैकाच् २०१० " से प्रकृतिभाव, वृद्धि और
पुक्‌आगम होकर-स्वापयति। त्वां मां वाचष्टे=त्वापयति । माप-
यति, यहां मपर्यन्त शब्दके स्थानमें त्व और म आदेश पर-
रूपके पूर्वमें नित्यत्वके कारण टिका लोप, वृद्धि और पुगा-
गम हुआ । त्वादयति । मादयति । यह पक्ष तो ठीक है,
कारण कि, अन्तरङ्गत्वके कारण पररूप करनेपर " प्रकृत्यै-
काच् २०१० " इस सूत्रसे प्रकृतिभाव होताहै । भाष्यमें
प्रकृतिभाव प्रत्याख्यात है, यह भ्रम तो नहीं करना चाहिये,
कारण कि, भाष्यके प्रेष्ठादि उदाहरण विशेषोंसे अन्यथा-
सिद्धिपरत्व वर्णन है, नहीं तो ' स्थापयति ' इत्यादि प्रयोग
ही नहीं होंगे । युवाम् आवाम् वा=युष्मयति । अस्मयति ।
श्वानमाचष्टे=शावयति, यहां " नस्तद्धिते ६७९ " इस
सूत्रसे टिका लोप हुआ । प्रकृतिभाव तो नहीं होगा, कारण
कि, " येन नाप्राप्ति " इस न्यायसे वह प्रकृतिभाव "टेः
१७८६ " इस सूत्रका ही बाधक है । भत्वके कारण सम्प्र-
सारण हुआ । अन्य पण्डित तो ' नस्तद्धिते ६७९ " इस
सूत्रसे टिलोपका इस स्थलमें अतिदेश नहीं होगा, कारण कि,
इष्ठन् प्रत्यय परे वह देखा नहीं जाताहै, श्रेष्ठि इत्यादि
स्थलमें भी परत्वके कारण " टेः १७८६ " इस सूत्रकी
ही प्रवृत्ति होतीहै, इस कारण 'शुनयति' ऐसा रूप कहतेहैं ।
विद्वांसमाचष्टे=विद्वयति, यहां कोई २ कहतेहैं, अङ्गवृत्तपरि-
भाषासे सम्प्रसारण नहीं होगा । अन्य मतसे सम्प्रसारण,
वृद्धि और अवादेश होकर ' विदावयति ' ऐसा पद
होगा । और कोई तो नित्यत्वके कारण टिलोपके पूर्वमें
सम्प्रसारण, अन्तरङ्गत्वके कारण पूर्वरूप, पश्चात् टिका
लोप करके 'विदयति' ऐसा रूप कहतेहैं ॥ उदञ्चमाचष्टे=
उदीचयति । उदैचितत् ॥ प्रत्यञ्चम्=प्रतीचयति । प्रत्यचिचत् ।
"इकोऽसवर्णे० ९१" इस सूत्रसे प्रकृतिभाव पक्षमें प्रति-
अचिचत् । सम्यञ्चमाचष्टे=समीचयति । सम्यचिचत्, समिअ-
चिचत् । तिर्यञ्चमाचष्टे=तिराययति, यहां अञ्चु धातुकी टिका
लोप करके अपहार होनेपर भी बहिरंगत्वके कारण असिद्ध
होनेसे तिरस् शब्दके स्थानमें तिरि आदेश हुआ, और "असि-
द्धवदत्र० २९८३" इस सूत्रसे 'चिणो लुक्' इस न्यायके
अनुसार प्रथम टिका लोप असिद्ध हुआ, अत एव पुनर्वार
टिका लोप नहीं हुआ अथवा अङ्गवृत्तपरिभाषासे टिका लोप
नहीं हुआ । चङ् परे अक्‌का लोप होनेके कारण उपधाको
ह्रस्व नहीं होकर–अतितिरायत् ॥ सध्यञ्चमाचष्टे=सध्राययति ।
असमध्रायत् ॥ विष्वद्र्यञ्चम्=अविविष्वद्रायत् ॥ देवद्र्यञ्चम्=
देवद्राययति । अदिदेवद्रायत् ॥ अदद्र्यञ्चम्=अददद्रायत् ।
अदमुयञ्चम्=अदमुआययति । आददमुआयत् ॥ अमुमुयञ्चम् ।
अमुमुआययति । चङ् । आमुमुआयत् ॥ भुवम्=भावयति ।
अबीभवत् ॥ भ्रुवम्=अबुभ्रवत् ॥ श्रियम्=अशिश्रयत् ॥
गाम्=अजूगवत् ॥ रायम्=अरीरयत् ॥ नावम्=अनूनवत् ॥
स्वश्वम्=स्वाशश्वत्॥ स्वराचष्टे, इस विग्रहमें णिच् और अव्य-
यके भमात्रमें टिका लोप होकर–स्वयति । असस्वत् , असि-
स्वत्॥बहून्=भावयति। दूसरेके मतसे बहयति ॥ "विन्मतो०"
इससे लुक् होकर–स्रग्विणम्=स्रजयति । संज्ञापूर्वकत्वके
कारण वृद्धि नहीं हुई । श्रीमतीं–श्रीमन्तं वा=श्रययति । अशि-
श्रयत् । पयस्विनीम्=पयसयति । इस स्थलमें तदपवाद
लुक्की प्रवृत्तिके कारण टिका लोप नहीं हुआ ॥ स्थूलम्=
स्थवयति ॥ दूरम्=दवयति । " स्थूलदूर० " इससे यणादि
लोपको टिलोपापवाद होनेसे–' दूरयत्यवनते विवस्वतीति ' यह
प्रयोग कैसे बना ? इसपर कहतेहैं कि, इस स्थलमें दूरमतति
अयते वा दूरात्–दूरातं कुर्वति, इस विग्रहमें णिच् करके
' दूरयति ' यह प्रयोग है ॥ युवानम्=यवयति । कन-
यति, यहां " युवाल्पयोः० " इस सूत्रसे युव शब्दके स्थानमें
विकल्प करके कन् हुआ ॥ अन्तिकम्=नेदयति ॥ बाढम्=
साधयति । प्रशस्यम्=प्रशस्यति, यहां उपसर्गकी पृथक् कृतिके
कारण श्र और ज्य आदेश नहीं हुआ । वृद्धम्=ज्यापयति,
वर्षयति ॥ प्रियम्=प्रापयति ॥ स्थिरम्=स्थापयति ॥ स्फिरम्=
स्फापयति । उरुम्=वरयति, वारयति ॥ बहुलम्=बंह-
यति ॥ गुरुम्=गरयति ॥ तृप्रम्=त्रपयति । दीर्घम्=द्राघयति ॥
वृन्दारकम्=वृन्दयति ॥

॥ इति नामधातुप्रकरणम् ॥

अथ कण्ड्वादयः ।

२६७८ कण्ड्वादिभ्यो यक् ।३।१।२७॥

एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे।धा-
तुभ्यः किम् । प्रातिपदिकेभ्यो मा भूत् । द्विधा
हि कण्ड्वादयः । धातवः प्रातिपदिकानि च॥

कण्डूञ् गात्रविघर्षणे॥ कण्डूयति-कण्डूयते॥१॥ मन्तु अपराधे ॥ रोष इत्येके । मन्तूयति ॥ चन्द्रस्तु ञितमाह । मन्तूयते ॥ २ ॥ वल्गु पूजामाधुर्ययोः ॥ वल्गूयति ॥ ३ ॥ असु उपतापे॥असु असूञ् इत्येके।अस्यति।असूयति-असूयते ॥ ५ ॥ लेट् लोट् धौर्त्ये पूर्वभावे स्वप्ने च ॥ दीप्तावित्येके । लेट्यति । लेटिता । लोट्यति । लोटिता ॥ ७ ॥ लेला दीप्तौ ॥८॥ इरस् इरज् इरञ् ईर्ष्यायाम् ॥ इरस्यति । इरज्यति । हलि चेति दीर्घः । ईर्यति । ईर्यते ॥ ११ ॥ उषस् प्रभातीभावे ॥ १२ ॥ वेद धौर्त्ये स्वप्ने च ॥ १३ ॥ मेधा आशुग्रहणे । मेधायति ॥ १४ ॥ कुषुभ क्षेपे ॥ कुषुभ्यति ॥ ॥ १५ ॥ मगध परिवेष्टने ॥ नीचदास्य इत्यन्ये ॥ १६ ॥ तन्तस् पम्पस् दुःखे ॥१८ ॥ सुख दुःख तत्क्रियायाम् ॥ सुख्यति। दुःख्यति। सुखं दुःखं चानुभवतीत्यर्थः ॥ २० ॥ सपर पूजायाम् ॥ २१ ॥ अरर आराकर्मणि ॥ २२ ॥ भिषज् चिकित्सायाम् ॥ २३ ॥ भिष्णज् उपसेवायाम् ॥ २४ ॥ इषुध शरधारणे ॥ २५ ॥ चरण वरण गतौ ॥ २७ ॥ चुरण चौर्ये ॥२८॥ तुरण त्वरायाम् ॥ २९ ॥ भुरण धारणपोषणयोः ॥ ३० ॥ गद्गद वाक्स्खलने ॥ ३१ ॥ एला केला खेला विलासे ॥ इलेत्यन्ये ॥ लेखा स्खलने च। अदन्तोऽयमित्यन्ये लेख्यति॥३६॥ लिट अल्पकुत्सनयोः ॥ लिट्यति ॥ ३७ ॥ लाट जीवने ॥ ३८ ॥ हृणीङ् रोषणे लज्जायां च ॥ ३९ ॥ महीङ् पूजायाम् ॥ महीयते । पूजां लभत इत्यर्थः ॥ ४० ॥ रेखा श्लाघासादनयोः ॥ ४१ ॥ द्रवस् परितापपरिचरणयोः ॥ ॥ ४२ ॥ तिरस् अन्तर्धौ ॥ ४३ ॥ अगद नीरोगत्वे ॥ ४४ ॥ उरस् बलार्थः ॥ उरस्यति । बलवान् भवतीत्यर्थः ॥४५॥ तरण गतौ ॥४६॥ पयस् प्रसृतौ ॥४७॥सम्भूयस् प्रभूतभावे॥४८॥ अम्बर संवर सम्भरणे ॥ ५० ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ * ॥

॥ इति कण्ड्वादयः ॥

२६७८-कण्ड्वादि धातुओंके उत्तर स्वार्थमें नित्य यक् प्रत्यय हो । धातु क्यों कहा ? तो प्रातिपदिकके उत्तर नहीं हो, कण्ड्वादि दो प्रकारके हैं, धातु और प्रातिपदिक । कण्डूञ् धातु गात्रविघर्षणमें है । कण्डूयति । कण्डूयते ॥ मन्तु धातु अपराध और किसीके मतसे रोषमें है । मन्तूयति । चन्द्रमतसे तो मन्तु धातु ञित् अर्थात्, उभयपदी है । मन्तूयते ॥ वल्गु धातु पूजा और माधुर्य्यमें है । वल्गूयति । असु धातु उपतापमें है । असु और असूञ् धातु कोई २ कहतेहैं । अस्यति । असूयति । असूयते ॥ लेट् और लोट् धातु धूर्त्तता, पूर्वभाव और स्वप्न और मतसे दीप्ति अर्थमें है । लेट्यति । लेटिता । लोट्यति । लोटिता ॥ लेला धातु दीप्तिमें है ॥ इरस्, इरज्, इरञ् धातु ईर्ष्यामें हैं । इरस्यति । इरज्यति । "हलि च० ३५४" इस सूत्रसे दीर्घ होकर-ईर्य्यति । ईर्य्यते ॥ उषस् धातु प्रभातीभावमें है ॥ वेद धातु धूर्त्तता और स्वप्नमें है । मेधा धातु आशु (शीघ्र) ग्रहणमें है। मेधायति ॥ कुषुभ धातु क्षेपमें है । कुषुभ्यति ॥ मगध धातु परिवेष्टनमें अन्यमतसे नीचदास्यमें है ॥ तन्तस् और पम्पस् धातु दुःखमें हैं । सुख और दुःख धातु तत्क्रियामें हैं । सुख्यति । दुःख्यति । अर्थात् सुख, दुःखका अनुभव करताहै । सपर धातु पूजामें है । अरर धातु आराकर्म्ममें है ॥ भिषज् धातु चिकित्सामें है ॥ भिष्णज् धातु उपसेवामें है ॥ इषुध धातु शर धारणमें है ॥ चरण और वरण धातु गतिमें हैं ॥ चुरण धातु चौर्य्यमें है ॥ तुरण धातु त्वरा करनेमें है ॥ भुरण धातु धारण और पोषणमें है ॥ गद्गद धातु वाक्स्खलनमें है ॥ एला, केला, खेला और इला धातु विलासमें हैं ॥ लेखा धातु स्खलनमें है । अन्यमतसे यह धातु अदन्त है । लेख्यति ॥ लिट धातु अल्प और कुत्सनमें है । लिट्यति ॥ लाट धातु जीवनमें है ॥ हृणीङ् धातु रोषण और लज्जा में है ॥ महीङ् धातु पूजामें है । महीयते, अर्थात् पूजालाभ करताहै ॥ रेखा धातु श्लाघा और आसादनमें है ॥ द्रवस् धातु परिताप और परिचरणमें है॥तिरस् धातु अन्तर्धानमें है ॥ अगद धातु नीरोगत्वमें है ॥ उरस् धातु बलमें है । उरस्यति, अर्थात् बलवान् होताहै ॥ तरण धातु गतिमें है ॥ पयस् धातु प्रसृतिमें है ॥ संभूयस् धातु प्रभूतभावमें है ॥ अम्बर और संवर धातु सम्भरणमें हैं॥ यह आकृतिगण है ॥

॥ इति कण्ड्वादिप्रकरणम् ॥

अथ प्रत्ययमाला।

कण्डूयतेः सन् ॥ सन्यङोरिति प्रथमस्यैकाचो द्वित्वे प्राप्ते ॥ कण्ड्वादेस्तृतीयस्येति वाच्यम् ॥ * ॥ कण्डूयियिषति । क्यजन्तात्सन् ॥ यथेष्टं नामधातुषु ॥ * ॥ आद्यानां त्रयाणामन्यतमस्य द्वित्वमित्यर्थः ॥ अजादेस्त्वाद्येतरस्य । पुपुत्रीयिषति । पुतित्रीयिषति । पुत्रीयियिषति । अशिश्वीयिषति । अश्वीयियिषति । नदराणां संयुक्तानामचः परस्यैव द्वित्वनिषेधः । इन्द्रीयतेः सन् । द्रीशब्दयिशब्दयोरन्यतरस्य द्वित्वम् । इन्दिद्रीयिषति । इन्द्रीयियिषति । चिचन्द्रीयिषति । चन्दिद्रीयिषति ।

चन्द्रीयियिषति। प्रियमाख्यातुमाचक्षाणं प्रेरयितुं वेच्छति । पिप्रापयिषति । प्रापिपयिषति। प्रापयियिषति। उरुं विवारयिषति । वारिरयिषति। वारयियिषति । बाढं सिसाधयिषतीत्यादिरूपत्रयम्। षत्वं तु नास्ति। आदेशो यः सकार इत्युक्तेः । यङ् सन् ण्यन्तात्सन्। बोभूयिषयिषति। यङ् णिच् सन्नन्ताण्णिच्। बोभूययिषतीत्यादि ॥

॥ इति प्रत्ययमाला ॥

कण्डूय धातुके उत्तर सन् प्रत्यय हुआ । "सन्यङोः २३९५" इस सूत्रसे प्रथम एकाच्को द्वित्व प्राप्त होनेपर–

कण्ड्वादिके तृतीय एकाच्को द्वित्व हो, ऐसा कहना चाहिये * इससे यि शब्दको द्वित्व होकर–कण्डूयियिषति। क्यजन्तके उत्तर सन् हुआ।

नामधातुविषयमें यथेष्ट हो, अर्थात् आद्य तीनके मध्यमें अन्यतमको द्वित्व हो* पुपुत्रीयिषति। पुतित्रीयिषति। पुत्रीयियिषति। अजादि धातुके आदिको छोडकर द्वित्व होगा। अशिश्वीयिषति। अश्वीयियिषति। अच्के ही परे स्थित संयुक्त न, द और रकारको द्वित्व न होताहै, इस कारण इन्द्रीय धातुके उत्तर सन् करनेपर द्री शब्द और यि शब्दके मध्यमें अन्यतरको द्वित्व होगा, इन्दिद्रीयिषति। इन्द्रीयियिषति। चिचन्द्रीयिषति। चन्दिद्रीयिषति। चन्द्रीयियिषति। प्रियम् आख्यातुम् आचक्षाणं प्रेरयितुं वा इच्छति, इस विग्रहमें–पिप्रापयिषति। प्रापिपयिषति। प्रापयियिषति। उरुम्=विवारयिषति। वारिरयिषति। वारयियिषति। बाढम्=सिसाधयिषति, इत्यादि तीन रूप हुए। षत्व तो नहीं होगा, कारण कि, आदेशस्वरूप सकारको षत्व होताहै, ऐसे कह आएहैं। यङ्, सन् और ण्यन्तके उत्तर सन् होकर–बोभूयिषयिषति। यङ्, णिच् और सन्नन्तके उत्तर णिच् होकर–बोभूययिषति, इत्यादि ॥

॥ इति प्रत्ययमालाप्रकरणम् ॥

अथात्मनेपदप्रक्रिया ।

अनुदात्तङित आत्मनेपदम्। आस्ते। शेते ॥

२६७९ भावकर्मणोः । १ । ३ । १३ ॥

बभूवे। अनुबभूवे ॥

२६७९–२१५७–अनुदात्तेत् ङित् धातुसे आत्मनेपद हो। आस्ते। शेते ॥ भाववाच्यमें और कर्मवाच्यमें धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, बभूवे। अनुबभूवे ॥

२६८० कर्तरि कर्मव्यतिहारे।१।३।१४॥

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदं स्यात्। व्यतिलुनीते। अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः। श्नसोरल्लोपः। व्यतिस्ते । व्यतिषाते। व्यतिषते। तासस्त्योरिति सलोपः । व्यतिसे। धि च। व्यतिध्वे। ह एति। व्यतिहे। व्यत्यसै व्यत्यास्त। व्यतिषीत। व्यतिराते ३। व्यतिभाते ३। व्यतिबभे ॥

२६८०–क्रियाका विनिमय होनेपर कर्तृवाच्यमें आत्मनेपद हो, व्यतिलुनीते, अन्यके योग्य लवन, अर्थात् छेदनको करताहै। "श्नसोरल्लोपः २४६९" इस सूत्रसे अकारका लोप हुआ, व्यतिस्ते। व्यतिषाते। व्यतिषते। "तासस्त्योः० २१९१" इस सूत्रसे सकारका लोप हुआ, व्यतिसे। "धि च २२४९" इससे सलोप होकर व्यतिध्वे। "ह एति २२५०" इससे सको ह होकर–व्यतिहे। व्यत्यसै। व्यत्यास्त। व्यतिषीत। व्यतिराते ३। व्यतिभाते ३। व्यतिबभे ॥

२६८१ न गतिहिंसार्थेभ्यः।१।३।१५॥

व्यतिगच्छन्ति । व्यतिघ्नन्ति ॥ प्रतिषेधे हसादीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ हसादयो हसप्रकाराः शब्दक्रियाः। व्यतिहसन्ति । व्यतिजल्पन्ति ॥ हरतेरप्रतिषेधः ॥ * ॥ सम्प्रहरन्ते राजानः ॥

२६८१–कर्म्मव्यतिहारमें गत्यर्थक और हिंसार्थक धातुसे आत्मनेपद न हो, व्यतिगच्छन्ति। व्यतिघ्नन्ति।

प्रतिषेधविषयमें हसादिका उपसंख्यान करना चाहिये * हसादि शब्दसे हसप्रकार, शब्द क्रिया समझना। व्यतिहसन्ति। व्यतिजल्पन्ति।

हृ धातुको प्रतिषेध नहीं हो * सम्प्रहरन्ते राजानः ॥

२६८२ इतरेतरान्योन्योपपदाच्च । १ । ३ । १६ ॥

परस्परोपपदाच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इतरेतरस्यान्योन्यस्य परस्परस्य वा व्यतिलुनंति ॥

२६८२–इतरेतर और अन्योन्य शब्द उपपद होनेपर कर्म्मव्यतिहारमें धातुके उत्तर आत्मनेपद न हो।

परस्पर शब्द उपपद रहते भी न हो ऐसा कहना चाहिये* इतरेतरस्य, अन्योन्यस्य, परस्परस्य वा व्यतिलुनन्ति ॥

२६८३ नेर्विशः । १ । ३ । १७ ॥

निविशते।

२६८३–निपूर्वक विश धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, निविशते ॥

२६८४ परिव्यवेभ्यः क्रियः।१।३।१८॥

अकर्त्रभिप्रायार्थमिदम्। परिक्रीणीते । विक्रीणीते। अवक्रीणीते ॥

२६८४–परिपूर्वक, विपूर्वक और अवपूर्वक क्री धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, अकर्त्रभिप्रायार्थ यह सूत्र है। परिक्रीणीते। विक्रीणीते। अवक्रीणीते ॥

२६८५ विपराभ्यां जेः । १ । ३ । १९ ॥

विजयते । पराजयते ॥

२६८५-वि और परापूर्वक जि धातुसे आत्मनेपद हो, विजयते । पराजयते ॥

२७८६ आङो दोऽनास्यविहरणे । १ । ३ । २० ॥

आङ्पूर्वाद्ददातेर्मुखविकसनादन्यत्रार्थे वर्तमानादात्मनेपदं स्यात् । विद्यामादत्ते । अनास्येति किम् । मुखं व्याददाति । आस्यग्रहणमविवक्षितम् । विपादिकां व्याददाति । पादस्फोटो विपादिका । नदी कूलं व्याददाति । पराङ्गकर्मकान्न निषेधः ॥ * ॥ व्याददते पिपीलिकाः पतङ्गस्य मुखम् ॥

२६८६-आङ्पूर्वक दा धातुके उत्तर मुखविकसनसे भिन्नार्थमें आत्मनेपद हो, विद्यामादत्ते । मुखविकसन अर्थ होनेपर-तो मुखं व्याददाति । सूत्रमें आस्य पदका ग्रहण अविवक्षित है, इससे विपादिकां व्याददाति । विपादिका शब्दसे पादस्फोट (पीडाविशेष) समझना । नदी कूलं व्याददाति ।

पराङ्गकर्मक दा धातुसे निषेध नहीं हो * व्याददते पिपीलिकाः पतङ्गस्य मुखम् ॥

२६८७क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च । १ । ३ । २१ ॥

चादाङः । अनुक्रीडते । संक्रीडते । परिक्रीडते । आक्रीडते । अनोः कर्मप्रवचनीयान्न । उपसर्गेण समा साहचर्यात् । माणवकमनुक्रीडति । तेन सहेत्यर्थः । तृतीयार्थ इत्यनोः कर्मप्रवचनीयत्वम् ॥ समोऽकूजने ॥ * ॥ संक्रीडते । कूजने तु । संक्रीडति चक्रम् ॥ आगमेः क्षमायाम् ॥ * ॥ ण्यन्तस्येदं ग्रहणम् । आगमयस्व तावत् । मा त्वरिष्ठा इत्यर्थः ॥ शिक्षेर्जिज्ञासायाम् ॥ * ॥ धनुषि शिक्षते । धनुर्विषये ज्ञाने शक्तो भवितुमिच्छतीत्यर्थः ॥ आशिषि नाथः ॥ * ॥ आशिष्येवेति नियमार्थं वार्तिकमित्युक्तम् । सर्पिषो नाथते । सर्पिर्मे स्यादित्याशास्त इत्यर्थः । कथं नाथसे किमु पतिं न भूभृतामिति । नाधस इति पाठ्यम् ॥ हरतेर्गतताच्छील्ये ॥ * ॥ गतं प्रकारः । पैतृकमश्वा अनुहरन्ते । मातृकं गावः । पितुर्मातुश्च गतं प्रकारं सततं परिशीलयन्तीत्यर्थः । ताच्छील्ये किम् । मातुरनुहरति ॥ किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वाच्यम् ॥ * ॥ हर्षादयो विषयाः । तत्र हर्षो विक्षेपस्य कारणम् । इतरे फले ॥

२६८७-अनु, सम्, परि और चकारसे आङ्पूर्वक क्रीड धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, अनुक्रीडते । संक्रीडते । परिक्रीडते । आक्रीडते । सम् उपसर्गके साथ साहचर्यके कारण कर्मप्रवचनीय अनुपूर्वक क्रीड धातुके उत्तर आत्मनेपद न होगा, माणवकमनुक्रीडति, अर्थात् माणवकके साथ क्रीडा करताहै । यहां "तृतीयार्थे ५४९" इस सूत्रसे अनु उपसर्गको कर्मप्रवचनीयत्व हुआहै ।

अकूजनार्थमें सम्पूर्वक क्रीड धातुसे आत्मनेपद हो * संक्रीडते । कूजनार्थमें तो संक्रीडति चक्रम् ।

क्षमा अर्थमें आङ्पूर्वक गम धातुसे आत्मनेपद हो * यहां ण्यन्तका ग्रहण है, आगमयस्व तावत् मा त्वरिष्ठा इत्यर्थः।

जिज्ञासार्थमें शिक्ष धातुके उत्तर आत्मनेपद हो * धनुषि शिक्षते, अर्थात् धनुर्विषयक ज्ञानमें शक्त होनेकी इच्छा करताहै ।

आशीर्वादार्थमें नाथ धातुसे आत्मनेपद हो * आशिष्हीमें हो इस नियमके निमित्त यह वार्त्तिक है,ऐसा पहले कह आएहैं। सर्पिषो नाथते । सर्पिमें स्यादित्याशास्ते इत्यर्थः । इस वार्त्तिकके रहते 'नाथसे किमु पतिं न भूभृताम्' यहां आत्मनेपद कैसे हुआ ? तो इस स्थलमें 'नाधसे' ऐसा पाठ करना उचित है ।

गतताच्छील्यमें हृ धातुसे आत्मनेपद हो * गत शब्दसे प्रकार जानना । पैतृकमश्वा अनुहरन्ते मातृकं गावः, अर्थात् पिता और माताके प्रकारको निरन्तर परिशीलन करतेहैं । ताच्छील्यभिन्नार्थमें मातुरनुहरति ।

हर्ष, जीविका और कुलाय करणार्थमें कृ धातुसे आत्मनेपद हो * कृ धातुको हर्षादि विषय है, उसमें हर्ष विक्षेपका कारण और तद्भिन्न जो है वह फल (साध्य) जानना ॥

२६८८ अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने । ६ । १ । १४२ ॥

अपात्किरतेः सुट् स्यात् ॥ सुडपि हर्षादिष्वेव वक्तव्यः ॥ * ॥ अपस्किरते वृषो हृष्टः । कुक्कुटो भक्षार्थी । श्वा आश्रयार्थी च । हर्षादिष्विति किम् । अपकिरति कुसुमम् । इह तङ्सुटौ न । हर्षादिमात्रविवक्षायां यद्यपि तङ् प्राप्तस्तथापि सुडभावे नेष्यते इत्याहुः । गजोऽपकिरति ॥ आङि नुप्रच्छ्योः ॥ * ॥ आनुते । आपृच्छते ॥ शप उपालम्भे ॥ * ॥ आक्रोशार्थात्स्वरितेतोऽकर्तृगेऽपि फले शपथरूपेऽर्थे आत्मनेपदं वक्तव्यमित्यर्थः । कृष्णाय शपते ॥

२६८८-खननमें अपसे परे स्थित कृ धातुको सुट्का आगम हो, चतुष्पद और शकुनि (पक्षिविशेष) गम्य होनेपर ।

सुट् भी हर्षादि ही अर्थमें हो * अपस्किरते वृषो हृष्टः । कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थी च । हर्षादिभिन्नार्थ होनेपर अपकिरति कुसुमम्, इस स्थलमें तङ्

और सुट् नहीं हुआ, यद्यपि हर्षादिमात्र विवक्षामें आत्मनेपदकी प्राप्ति है, तथापि सुट्के अभाव होनेपर नहीं होताहै-गजोऽपकिरति ।

आङ्पूर्वक नु और प्रच्छ धातुसे आत्मनेपद हो* आनुते। आपृच्छते ।

आक्रोशार्थक स्वरितेत् शप धातुसे कर्तृगामी फल न होनेपर भी शपथरूप अर्थमें आत्मनेपद हो * कृष्णाय शपते ॥

२६८९ समवप्रविभ्यः स्थः ।१।३।२२॥

सन्तिष्ठते । स्थाघ्वोरिच्च । समस्थित । समस्थिषाताम् । समस्थिषत । अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ॥ आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ शब्दं नित्यमातिष्ठते । नित्यत्वेन प्रतिजानीते इत्यर्थः ॥

२६८९-सम्, अव प्र और विपूर्वक स्था धातुसे आत्मनेपद हो, सन्तिष्ठते । " स्थाघ्वोरिच्च २३८९" इस सूत्रसे इदादेश होकर-समस्थित । समस्थिषाताम् । समस्थिषत । अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ।

आङ्पूर्वक स्था धातुसे प्रतिज्ञामें आत्मनेपद हो*शब्दं नित्यमातिष्ठते, अर्थात् नित्यत्वरूपसे प्रतिज्ञा करताहै ॥

२६९० प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च । १ । ३ । २३ ॥

गोपी कृष्णाय तिष्ठते । आशयं प्रकाशयतीत्यर्थः । संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः । कर्णादीन्निर्णेतृत्वेनाश्रयतीत्यर्थः ॥

२६९०-प्रकाशन, अर्थात् ज्ञापन, स्थेय, अर्थात् विवादपद निर्णयकर्त्ता अर्थमें वर्त्तमान स्था धातुसे आत्मनेपद हो, गोपी कृष्णाय तिष्ठते, अर्थात् कृष्णसे आशय प्रकाश करतीहै । ' संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः ' अर्थात् कर्णादिको निर्णेतृत्वसे आश्रय करताहै ॥

२६९१ उदोऽनूर्ध्वकर्मणि ।१ ।३।२४ ॥

मुक्तावुत्तिष्ठते । अनूर्ध्वेति किम् । पीठादुत्तिष्ठति॥ईहायामेव॥*॥नेह। ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति॥

२६९१-ऊर्ध्व देशसंयोगानुकूलक्रियामें वृत्ति न हो ऐसे उत्पूर्वक स्था धातुसे आत्मनेपद हो, मुक्तावुत्तिष्ठते । ऊर्ध्वदेशसंयोगानुकूलक्रियामें वृत्ति होनेपर तो पीठादुत्तिष्ठति ।

ईहा अर्थात् चेष्टामें ही हो अन्यत्र नहीं*इससे 'ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति'-इस स्थलमें नहीं हुआ ॥

२६९२ उपान्मन्त्रकरणे । १।३। २५ ॥

आग्नेय्याऽऽग्नीध्रमुपतिष्ठते । मन्त्रकरणं किम् । भर्तारमुपतिष्ठति यौवनेन ॥ उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् ॥ * ॥ आदित्यमुपतिष्ठते । कथं तर्हि स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वतीति । देवतात्वारोपात्। नृपस्य देवतांशत्वाद्वा । गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते । उपश्लिष्यतीत्यर्थः । रथिकानुपतिष्ठते । मित्रीकरोतीत्यर्थः । पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते । प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ वा लिप्सायामिति वक्तव्यम् ॥*॥ भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते-उपतिष्ठति वा । लिप्सया उपगच्छतीत्यर्थः ॥

२६९२-मंत्रकरणार्थमें उपपूर्वक स्था धातुसे आत्मनेपद हो, आग्नेय्याग्नीध्रमुपतिष्ठते । मंत्रकरण न होनेपर भर्त्तारमुपतिष्ठति यौवनेन ।

देवपूजा, सङ्गतिकरण, मित्रकरण और पथ अर्थमें उपपूर्वक स्था धातुसे आत्मनेपद हो*आदित्यमुपतिष्ठते । देवपूजा न होनेसे ' स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती ' इस स्थलमें किस प्रकार आत्मनेपद हुआ ? इस पर कहतेहैं कि, देवतात्वारोपके कारण अथवा नृपके देवांशत्वके कारण आत्मनेपद हुआहै । गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते, अर्थात् आलिङ्गन करतीहै । रथिकानुपतिष्ठते, अर्थात् मित्रता करताहै । पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते, अर्थात् प्राप्त होताहै ।

लिप्सार्थमें विकल्प करके उक्त कार्य हो * भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते, उपतिष्ठति वा, अर्थात् लाभेच्छासे प्रभुके निकट जाताहै ॥

२६९३ अकर्मकाच्च । १ । ३ । २६ ॥

उपात्तिष्ठतेरकर्मकादात्मनेपदं स्यात्। भोजनकाले उपतिष्ठते । सन्निहितो भवतीत्यर्थः ॥

२६९३-उपपूर्वक अकर्मक स्था धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, भोजनकाले उपतिष्ठते, अर्थात् निकटस्थ होताहै ॥

२६९४ उद्विभ्यां तपः । १ । ३ । २७ ॥

अकर्मकादित्येव । उत्तपते । वितपते । दीप्यत इत्यर्थः॥स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् *॥ स्वमङ्गं स्वाङ्गं न तु अद्रवमिति परिभाषितम् । उत्तपते वितपते वा पाणिम् । नेह सुवर्णमुत्तपति । सन्तापयति विलापयति वेत्यर्थः । चैत्रो मैत्रस्य पाणिमुत्तपति । सन्तापयतीत्यर्थः ।

२६९४-उत् और विपूर्वक अकर्मक तप धातुसे आत्मनेपद हो, उत्तपते । वितपते, अर्थात् दीप्त होताहै ।

स्वाङ्गकर्म्मक होनेपर भी आत्मनेपद हो * इस स्थलमें स्वाङ्गशब्दसे स्वकीय अंग समझना 'अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गम्' यह परिभाषित अंग नहीं । उत्तपते । वितपते पाणिम् । यहां नहीं हुआ, जैसे-सुवर्णमुत्तपति, अर्थात् सन्तापित अथवा विलापित करताहै । चैत्रो मैत्रस्य पाणिमुत्तपति अर्थात् सन्तापित करताहै ॥

२६९५ आङो यमहनः । १ । ३।२८॥

आयच्छते । आहते । अकर्मकात्स्वाङ्गकर्मकादित्येव । नेह । परस्य शिर आहन्ति । कथं

तर्हि आजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्ष इति भारविः। आहध्वं मा रघूत्तममिति भट्टिश्च। प्रमाद एवायमिति भागवृत्तिः। प्राप्येत्यध्याहारो वा। ल्यब्लोपे पञ्चमीति तु ल्यबन्तं विनैव तदर्थावगतिर्यत्र तद्विषयम्। भेत्तुमित्यादि तुमुन्नन्ताध्याहारो वास्तु। समीपमेत्येति वा॥

२६९५-आङ्पूर्वक यम और हन धातुसे आत्मनेपद हो, आयच्छते। आहते। अकर्म्मक और स्वांगकर्म्मक होनेपर ही होगा अन्यत्र नहीं, इस कारण 'परस्य शिर आहन्ति' इस स्थलमें नहीं हुआ।

स्वांगकर्मक ही हन् धातुसे आत्मनेपद होनेसे 'आजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः' ऐसा किरातमें और 'आहध्वं मा रघूत्तमम्' ऐसा भट्टिमें किस प्रकारसे प्रयोग सिद्ध हुआ ? तो भागवृत्तिके मतसे यह प्रामादिक है, अथवा 'प्राप्य' इसपदका अध्याहार होगा, "ल्यब्लोपे०" इस सूत्रसे पञ्चमी तो ल्यबन्तके विना ही जिस स्थलमें तदर्थकी अवगति होतीहै, उसी स्थलमें होतीहै, अथवा भेत्तुमित्यादि तुमुन्नन्तका अध्याहार होगा, अथवा 'समीपमेत्य' इसका अध्याहार होगा।

२६९६ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्। २।४।४४॥

हनो वधादेशो वा लुङि आत्मनेपदेषु परेषु। आवधिष्ट। आवधिषाताम्॥

२६९६-आत्मनेपद परे रहते लुङ्लकारमें हन् धातुके स्थानमें विकल्प करके वध आदेश हो, आवधिष्ट। आवधिषाताम्॥

२६९७ हनः सिच्। १।२।१४॥

किस्स्यात्। अनुनासिकलोपः। आहत। आहसाताम्। आहसत॥

२६९७-हन् धातुके उत्तर सिच्को कित्व हो, अनुनासिक वर्णका लोप होकर-आहत। आहसाताम्। आहसत॥

२६९८ यमो गन्धने। १।२।१५॥

सिच् कित्स्यात्। गन्धनं सूचनं परदोषाविष्करणम्। उदायत। गन्धने किम्। उदायंस्त पादम्। आकृष्टवानित्यर्थः॥

२६९८-गन्धनार्थमें यम धातुके उत्तर सिच्को कित्व हो, गंधन शब्दसे सूचन,अर्थात् परदोषाविष्करण (पराया दोष प्रगट करना) समझना। उदायत। गन्धनभिन्नार्थमें उदायंस्त पादम्, अर्थात् पादको आकर्षण किए हुए॥

२६९९ समो गम्यृच्छिभ्याम्। १।३।२९॥

अकर्मकाभ्यामित्येव संगच्छते॥

२६९९-अकर्मक संपूर्वक गम् और ऋच्छ धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, संगच्छते॥

२७०० वा गमः। १।२।१३॥

गमः परौ झलादी लिङ्सिचौ वा कितौ स्तः। संगसीष्ट-संगंसीष्ट। समगत-समगंस्त। समृच्छिष्यते। अकर्मकाभ्यां किम्। ग्रामं संगच्छति। विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम्॥ * ॥ वेत्तेरेव ग्रहणम्।संवित्ते।संविदाते॥

२७००-गम धातुके उत्तर झलादि लिङ् और सिच्को विकल्प करके कित्व हो, संगसीष्ट, संगंसीष्ट। समगत, समगंस्त। समृच्छिष्यते। अकर्मक न होनेपर तो ग्रामं संगच्छति।

संपूर्वक विद, प्रच्छ और स्वृ धातुसे आत्मनेपद हो * संवित्ते। संविदाते। इस स्थलमें अदादिगणीय विद धातुका ग्रहण है॥

२७०१ वेत्तेर्विभाषा। ७।१।७॥

वेत्तेः परस्य झादेशस्यातो रुडागमो वा स्यात्। संविद्रते-संविदते। संविद्रताम्-संविदताम्। समविद्रत-समविदत। संपृच्छते। संस्वरते॥ अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम्॥ * ॥ अर्तीति द्वयोर्ग्रहणम्। अङ्विधौ त्वियर्तेरेवेत्युक्तम्। मा समृत। मा समृषाताम्। मा समृषतेति। समार्त। समार्षाताम्। समार्षतेति च भ्वादेः। इयर्तेस्तु मा समरत। मा समरेताम्। मा समरन्त। समारत। समारेताम्। समारन्तेति च। संश्रृणुते। संपश्यते। अकर्मकादित्येव। अत एव रक्षांसीति पुरापि संश्रृणुमहे इति मुरारिप्रयोगः प्रामादिक इत्याहुः। अध्याहारो वा इति कथयद्भ्य इति। अथास्मिन्नकर्मकाधिकारे हनिगम्यादीनां कथमकर्मकतेति चेत्। शृणु।

धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात्।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया॥१॥

वहति भारम्। नदी वहति स्यन्दत इत्यर्थः। जीवति। नृत्यति। प्रसिद्धेर्यथा। मेघो वर्षति। कर्मणोऽविवक्षातो यथा। हितान्न यः संश्रृणुते स किंप्रभुः॥ उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वेति वाच्यम्॥ ॥ * ॥ अकर्मकादिति निवृत्तम्। बन्धं निरस्यति-निरस्यते। समूहति-समूहते॥

२७०१-संपूर्वक विद धातुके परे स्थित झादेशके अत्को विकल्प करके रुट्का आगम हो,संविद्रते,संविदते। संविद्रताम्, संविदताम्। समविद्रत, समविदत। सम्पृच्छते। संस्वरते।

सम्पूर्वक अर्ति (ऋ) श्रु और दृश धातुके उत्तर आत्मनेपद हो * यहां अर्ति, इस पदसे दोनोंका ग्रहण है। अक-

विधिमें तो इयर्त्ति,अर्थात् दिवादिगणीय ऋका ही ग्रहण है।मा समृत । मा समृषाताम् । मा समृषत । समार्त । समर्षाताम् । समार्षत । यह स्वादिगणीय ऋ धातुका है । इयर्त्ति, अर्थात् दिवादिगणीयका तो मा समरत । मा समरेताम् । मा समरंत। समारत । समरेताम् । समारन्त । संश्रृणुते । संपश्यते । अकर्म्मक धातुके उत्तर ही होताहै, इस कारण 'रक्षांसीति पुरापि संश्रृणुमहे' ऐसा मुरारिका प्रयोग प्रामादिक है, अथवा 'कथयद्भयः' इसको अध्याहार करके होगा । इस अकर्मकाधिकारमें हन गमको कैसे अकर्म्मकत्व हुआ ? तो सुनो, धातुका अर्थ भिन्न होनेसे धात्वर्थसे उपसंग्रहमें प्रसिद्धिसे और कर्मकी अविवक्षासे अकर्म्मिका क्रिया होतीहै, जैसे—वहति भारम् । नदी वहति, अर्थात् वहतीहै । जीवति । नृत्यति । प्रसिद्धिसे जैसे—मेघो वर्षति। कर्म्मकी अविवक्षा होनेसे जैसे—'हितान्न यः संश्रृणुते स किंप्रभुः' ।

उपसर्गपूर्वक अस् धातु और ऊह धातुसे विकल्प करके आत्मनेपद हो * यहां 'अकर्मकात्' इसपदकी निवृत्ति हुई । बन्धं निरस्यति, निरस्यते । समूहति, समूहते ॥

२७०२ उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः।७।४।२३॥

यादौ क्ङिति । ब्रह्म समुह्यात् । अग्निं समुह्य ॥

२७०२–यकारादि कित्, ङित् प्रत्यय परे रहते उपसर्गके उत्तर ऊह धातुके ऊकारको ह्रस्व हो, ब्रह्म समुह्यात् । अग्निं समुह्य ॥

२७०३ निसमुपविभ्यो ह्वः ।१।३।३०॥

निह्वयते ॥

२७०३–नि, सम्, उप और विपूर्वक ह्वेञ् धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, निह्वयते ॥

२७०४ स्पर्धायामाङः । १ । ३ ।३१॥

कृष्णश्चाणूरमाह्वयते । स्पर्धायां किम् । पुत्रमाह्वयति ॥

२७०४–आङ्पूर्वक ह्वेञ् धातुसे स्पर्द्धा अर्थमें आत्मनेपद हो । कृष्णश्चाणूरमाह्वयते । स्पर्धाभिन्नार्थमें यथा–पुत्रमाह्वयति ॥

२७०५ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः । १ । ३ । ३२ ॥

गन्धनं हिंसा । उत्कुरुते। सूचयतीत्यर्थः।सूचनं हि प्राणवियोगानुकूलत्वाद्धिंसैव। अवक्षेपणं भर्त्सनम् । श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते । भर्त्सयतीत्यर्थः।हरिमुपकुरुते। सेवते। परदारान्प्रकुरुते। तेषु सहसा प्रवर्तते।एधो दकस्योपस्कुरुते।गुणमाधत्ते। गाथाः प्रकुरुते । प्रकथयति । शतं प्रकुरुते । धर्मार्थं विनियुङ्क्ते । एषु किम् । कटं करोति ॥

२७०५–गन्धन, अर्थात् हिंसा, अवक्षेपण,सेवन, साहसिक्य, प्रतियत्न, प्रकथन और उपयोगार्थमें कृ धातुसे आत्मनेपद हो, उत्कुरुते, अर्थात् सूचन करताहै । सूचन प्राणवियोगके अनुकूल होनेसे हिंसा ही है।अवक्षेपण शब्दसे भर्त्सना समझना। श्येनो वर्त्तिकामुदाकुरुते, अर्थात् श्येनपक्षी वर्त्तिका(बटेर) को भर्त्सन करताहै । हरिमुपकुरुते,अर्थात् सेवा करताहै। परदारान् प्रकुरुते, अर्थात् परस्त्रियोंमें सहसा प्रवृत्त होताहै । एधो दकस्योपस्कुरुते, अर्थात् लकडी जलका गुण ग्रहण करती है । गाथाः प्रकुरुते, अर्थात् कहताहै । शतम्प्रकुरुते, अर्थात् धर्मार्थ विनियोग करताहै । यह सम्पूर्ण अर्थ न होनेपर कटं करोति ॥

२७०६ अधेः प्रसहने । १ । ३ । ३३॥

प्रसहनं क्षमाऽभिभवश्च । षह मर्षणेऽभिभवे चेति पाठात् । शत्रुमधिकुरुते । क्षमत इत्यर्थः । अभिभवतीति वा ॥

२७०६–प्रसहनार्थमें अधिपूर्वक कृ धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, प्रसहन शब्दसे क्षमा और अभिभव समझना क्योंकि, षह धातु मर्षण और अभिभवमें है । शत्रुमधिकुरुते, अर्थात् शत्रुको क्षमा अथवा अभिभव करताहै ॥

२७०७ वेः शब्दकर्मणः । १ । ३।३४॥

स्वरान्विकुरुते । उच्चारयतीत्यर्थः । शब्दकर्मणः किम् । चित्तं विकरोति कामः ॥

२७०७–शब्द यदि कर्म्म हो तो विपूर्वक कृ धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, यथा–स्वरान् विकुरुते, अर्थात् स्वर उच्चारण करताहै । शब्द कर्म्म न होनेपर जैसे–चित्तं विकरोति कामः ॥

२७०८ अकर्मकाच्च । १ । ३ । ३५ ॥

वेः कृञ इत्येव । छात्रा विकुर्वते । विकारं लभन्ते इत्यर्थः ॥

२७०८–अकर्म्मक विपूर्वक कृ धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, छात्रा विकुर्वते, अर्थात् छात्रगण विकारको प्राप्त होतेहैं ॥

२७०९सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ।१।३।३६।

अत्रोत्सञ्जनज्ञानविगणनव्यया नयतेर्वाच्याः इतरे प्रयोगोपाधयः । तथा हि । शास्त्रे नयते । शास्त्रस्थं सिद्धान्तं शिष्येभ्यः प्रापयतीत्यर्थः । तेन च शिष्यसम्माननं फलितम् । उत्सञ्जने । दण्डमुन्नयते । उत्क्षिपतीत्यर्थः । माणवकमुपनयते। विधिना आत्मसमीपं प्रापयतीत्यर्थः। उपनयनपूर्वकेणाध्यापनेन हि उपनेतरि आचार्यत्वं क्रियते । ज्ञाने । तत्त्वं नयते । निश्चिनोतीत्यर्थः। कर्मकरानुपनयते । भृतिदानेन स्वसमीपं प्रापयतीत्यर्थः । विगणनमृणादेर्निर्यातनम् । करं वि-

जाताहै। सकर्म्मक न होनेपर जैसे—बाष्पमुच्चरति, अर्थात् भाफ ऊपर जाताहै ॥

२७२७ समस्तृतीयायुक्तात् ।१।३।५४॥

रथेन संचरते ॥

२७२७—तृतीयान्तसे युक्त सम् उपसर्गके परे स्थित चर धातुसे आत्मनेपद हो, यथा—रथेन संचरते । रथके द्वारा जाताहै ॥

२७२८ दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे । १।३।५५॥

संपूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात् तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे । दास्या संयच्छते । पूर्वसूत्रे सम इति षष्ठी । तेन सूत्रद्वयमिदं व्यवहितेऽपि प्रवर्तते । रथेन समुदाचरते।दास्या संप्रयच्छते॥

२७२८—तृतीया यदि चतुर्थ्यर्थमें हुई हो तो उस तृतीयान्त पदके योगमें सम्पूर्वक दाण् धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, दास्या संयच्छते । पूर्वसूत्रमें ' समः ' यह पद षष्ठीविभक्त्यन्त है, इस कारण व्यवहित होनेपर भी दोनों सूत्र प्रवृत्त होतेहैं, जैसे—रथेन समुदाचरते । दास्या सम्प्रयच्छते ॥

२७२९ उपाद्यमः स्वकरणे ।१।३।५६॥

स्वकरणं स्वीकारः । भार्यामुपयच्छते ॥

२७२९—उपपूर्वक यम धातुके उत्तर स्वकरण अर्थात् स्वीकरणार्थमें आत्मनेपद हो, भार्यामुपयच्छते । भार्याको स्वीकार करताहै ॥

२७३० विभाषोपयमने । १ । २।१६॥

यमः सिच् कित्वा स्याद्विवाहे । रामः सीतामुपायत—उपायंस्त वा । उदवोढेत्यर्थः । गन्धनाङ्गे उपयमे तु पूर्वविप्रतिषेधान्नित्यं कित्त्वम् ॥

२७३०—विवाहार्थमें उपपूर्वक यम धातुके उत्तर विकल्प करके सिच् कित् हो, रामः सीतामुपायत, उपायंस्त वा, अर्थात् रामने सीताके साथ विवाह किया । गंधनाङ्ग उपयम होनेपर तो पूर्वविप्रतिषेधके कारण नित्य कित्व होगा ॥

२७३१ ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ।१।३।५७॥

सन्नन्तानामेषां प्राग्वत् । धर्मं जिज्ञासते । शुश्रूषते । सुस्मूर्षते । दिदृक्षते ॥

२७३१—सन् प्रत्ययान्त ज्ञा, श्रु, स्मृ, और दृश धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, धर्मं जिज्ञासते । शुश्रूषते । सुस्मूर्षते । दिदृक्षते ॥

२७३२ नानोर्ज्ञः । १ । ३ । ५८ ॥

पुत्रमनुजिज्ञासति । पूर्वसूत्रस्यैवायं निषेधः । अनन्तरस्येति न्यायात् । तेनेह न।सर्पिषोऽनुजिज्ञासते । सर्पिषा प्रवर्तितुमिच्छतीत्यर्थः । पूर्ववत्सन इति तङ् । अकर्मकाच्चेति केवलाद्विधानात् ॥

२७३२—अनुपूर्वक सन्नन्त ज्ञा धातुके उत्तर आत्मनेपद न हो, पुत्र मनुजिज्ञासति । यह सूत्र ' अनन्तरस्य० ' इस न्यायके अनुसार पूर्वसूत्रका ही निषेधक है।इस कारण इस स्थलमें निषेध नहीं हुआ, जैसे—सर्पिषोऽनुजिज्ञासते, सर्पिष् (घृत) द्वारा प्रवृत्त होनेकी इच्छा करताहै । इस स्थलमें " पूर्ववत्सनः २७३४ " इस सूत्रसे आत्मनेपद हुआ, क्योंकि, " अकर्मकाच्च २७१८ " इस सूत्रसे केवल ज्ञा धातुके उत्तर ही आत्मनेपद विहित हुआहै ॥

२७३३ प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः । १ । ३।५९॥

आभ्यां सन्नन्ताच्छ्रुव उक्तं न स्यात् । प्रतिशुश्रूषति । आशुश्रूषति । कर्मप्रवचनीयात्स्यादेव। देवदत्तं प्रतिशुश्रूषते ॥

२७३३—प्रति और आङ्पूर्वक सन्नन्त श्रु धातुके उत्तर आत्मनेपद न हो, प्रतिशुश्रूषति । आशुश्रूषति । कर्म्मप्रवचनीयके उत्तर आत्मनेपद होहीगा,देवदत्तं प्रतिशुश्रूषते।

शदेः शितः । १ । ३ । ६० ॥

म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च । १ । ३ । ६१॥

व्याख्यातम् ॥

" शदेः शितः २३६२ " और " म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च २५३८ " यह दोनों सूत्र व्याख्यात हैं ॥

२७३४ पूर्ववत्सनः । १ । ३ । ६२ ॥

सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् । एदिधिषते । शिशयिषते । निविविक्षते । पूर्ववत्किम् । बुभूषति । शदेरित्यादिसूत्रद्वये सनो नेत्यनुवर्त्य वाक्यभेदेन व्याख्येयम् । तेनेह न । शिशत्सति । मुमूर्षति ॥

आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य । १ । ३ । ६३ । एधां चक्रे ॥

२७३४—सन्के पूर्वमें जो धातु उसके तुल्य सन्नन्तके भी उत्तर आत्मनेपद हो, एदिधिषते । शिशयिषते । निविविक्षते । पूर्ववत् क्यों कहा? तो 'बुभूषति'यहां न हो''शदेः० २३६२'' ''म्रियते० २५३८'' इन दो सूत्रोंमें 'सनो न' इस अंशकी अनुवृत्ति करके वाक्यभेदसे व्याख्या होतीहै, इस कारण 'शिशत्सति । मुमूर्षति' इस स्थलमें आत्मनेपद नहीं हुआ ।

''आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य २२४०'' इस सूत्रसे आम्प्रकृतिके तुल्य अनुप्रयुज्यमान कृञ्से भी आत्मनेपद होकर एधाञ्चक्रे ॥

२७३५ प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु । १ । ३ । ६४ ॥

प्रयुङ्क्ते । उपयुङ्क्ते ॥ स्वराद्यन्तोपसर्गा-

दिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ उद्युङ्क्ते । नियुङ्क्ते । अयज्ञपात्रेषु किम्। द्वन्द्वं न्यञ्चि पात्राणि प्रयुनक्ति॥

२७३५-यज्ञपात्र साधन न होनेपर प्र और उपपूर्वक युजधातुके उत्तर आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों, प्रयुंक्ते। उपयुंक्ते।

"स्वराद्यन्तोपसर्गात्०" अर्थात् जिन उपसर्गोंके आदिमें अथवा अन्तमें स्वरवर्ण है, उनके उत्तर युज धातुसे आत्मनेपद हो ऐसा कहना चाहिये। * इसी कारण दुर्, निर् और सम् उपसर्गोंके उत्तर युजधातुसे आत्मनेपद न होगा। उद्युंक्ते। नियुंक्ते। यज्ञपात्र साधन होनेपर तो-द्वन्द्वं न्यञ्चि पात्राणि प्रयुनक्ति, यहां आत्मनेपद न हुआ॥

२७३६ समः क्ष्णुवः । १ । ३ । ६५ ॥

संक्ष्णुते शस्त्रम् ॥

२७३६-सम्पूर्वक क्ष्णु धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, संक्ष्णुते शस्त्रम्॥

२७३७ भुजोऽनवने । १ । ३ । ६६ ॥

ओदनं भुङ्क्ते । अभ्यवहरतीत्यर्थः । बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमिव केवलाम् । वृद्धो जनो दुःखशतानि भुंक्ते । इहोपभोगो भुजेरर्थः । अनवने किम् । महीं भुनक्ति ॥

२७३७-अनवनार्थमें भुज धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, ओदनं भुंक्ते, अर्थात् चावक भोजन करता है, 'बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम्' 'वृद्धो जनो दुःखशतानि भुंक्ते' इन स्थलोंमें भुज धातुका अर्थ उपभोग कहाहै। अनवन अर्थ न होनेपर तो-महीं भुनक्ति, अवन शब्दसे पालन समझना पृथिवीका पालन करताहै। इस स्थलमें 'भुजोऽदने' ऐसा सूत्र लाघवसे पाणिनिजीने नहीं किया इससे विदित करातेहैं कि, जिस धातुका पालन और दूसरा कोईभी अर्थ है उसी धातुका ग्रहण है ऐसा रौधादिक भुज धातु है, उसीका ग्रहण हुआ॥

२७३८ णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्स कर्ताऽनाध्याने । १ । ३ । ६७ ॥

ण्यन्तादात्मनेपदं स्यादणौ या क्रिया सैव चेत् ण्यन्तेनोच्येत, अणौ यत्कर्मकारकं स चेण्णौ कर्ता स्यान्न त्वाध्याने । णिचश्चेति सिद्धेऽकर्त्रभिप्रायार्थमिदम् । कर्त्रभिप्राये तु विभाषोपपदेनेति विकल्पेऽणावकर्मकादिति परस्मैपदे च परत्वात्प्राप्ते पूर्वविप्रतिषेधेनेदमेवेष्यते ॥ कर्तृस्थभावकाः कर्तृस्थक्रियाश्चोदाहरणम्। तथा हि। पश्यन्ति भवं भक्ताः । चाक्षुषज्ञानविषयं कुर्वन्तीत्यर्थः । प्रेरणांशत्यागे । पश्यति भवः । विषयो भवतीत्यर्थः । ततो हेतुमण्णिच् । दर्शयन्ति भवं भक्ताः। पश्यन्तीत्यर्थः। पुनर्ण्यर्थस्याविवक्षायां दर्शयते भवः । इह प्रथमतृतीययोरवस्थयोर्द्वितीयचतुर्थ्योश्च तुल्योर्थः । तत्र तृतीयकक्षायां न तङ् । क्रियासाम्येऽप्यणौ कर्मकारकस्य णौ कर्तृत्वाभावात् । चतुर्थ्यां तु तङ् । द्वितीयामादाय क्रियासाम्यात् । प्रथमायां कर्मणो भवस्येह कर्तृत्वाच्च । एवमारोहयते हस्तीत्यप्युदाहरणम् । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । न्यग्भावयन्तीत्यर्थः । तत आरोहति हस्ती । न्यग्भवतीत्यर्थः । ततो णिच् । आरोहयन्ति । आरोहन्तीत्यर्थः । तत आरोहयते । न्यग्भवतीत्यर्थः। यद्वा पश्यन्त्यारोहन्तीति प्रथमकक्षा प्राग्वत् । ततः कर्मण एव हेतुत्वारोपाण्णिच्। दर्शयति भवः । आरोहयति हस्ती । पश्यत आरोहतश्च प्रेरयतीत्यर्थः । ततो णिजभ्यां तत्प्रकृतिभ्यां च उपात्तयोर्द्वयोरपि प्रेषणयोस्त्यागे दर्शयते आरोहयते इत्युदाहरणम्। अर्थः प्राग्वत्। अस्मिन्पक्षे द्वितीयकक्षायां न तङ्। समानक्रियत्वाभावाण्णिजर्थस्याधिक्यात्। अनाध्याने किम् । स्मरति वनगुल्मं कोकिलः स्मरयति वनगुल्मः । उत्कण्ठापूर्वकस्मृतौ विषयो भवतीत्यर्थः॥ भीस्म्योर्हेतुभये । १ । ३ । ६८ । व्याख्यातम् ॥

२७३८-णिजन्त धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, अणिजन्तावस्थामें जो क्रिया है यदि वही क्रिया णिजन्त धातुसे अभिहित हो, अणिजन्त कालमें जो कर्म कारक वह ण्यन्तकालमें कर्ता हो, आध्यान अर्थात् उत्कंठा पूर्वक स्मरण अर्थमें आत्मनेपद न हो। "णिचश्च २५६४" इस सूत्रसे आत्मनेपद सिद्ध होनेपर यह सूत्र अकर्त्रभिप्रायार्थ है,अर्थात् क्रियाफल कर्तृगामी न होनेपर भी आत्मनेपद होगा, क्रियाफल कर्तृगामी होनेपर तो "विभाषोपपदेन० २७४४" इस सूत्रसे विकल्प करके आत्मनेपदकी प्राप्ति रहते और "अणावकर्मकात्० २७५४" इस सूत्रसे परत्वके कारण परस्मैपदकी प्राप्ति होनेपर-पूर्वविप्रतिषेधसे इसी सूत्रसे आत्मनेपद होगा।

कर्तृस्थ भावक और कर्तृस्थक्रिय उदाहरण हैं,उनको दिखातेहैं यथा, पश्यन्ति भवं भक्ताः। अर्थात् भक्त लोग शिवको चाक्षुषज्ञानविषयीभूत करते हैं। अपरिस्पन्दन साध्य जो धात्वर्थ उसको भाव और परिस्पन्दन साध्य जो धात्वर्थ उसको क्रिया कहते हैं, साधनको कारक कहते हैं। गमन और आरोहणादि स्थलमें सपरिस्पन्द कर्त्ताही क्रिया साधन करताहै। णिजन्तार्थकी अविवक्षा होनेपर पश्यति भवः, अर्थात् शिव स्वयमेव चाक्षुषज्ञानविषय होतेहै उससे हेतुमण्णिच् करनेसे दर्शयंति भवं भक्ताः,भक्त लोग शिवको देखतेहैं।पुनः णिजर्थकी अविवक्षा होनेपर दर्शयते भवः।इस स्थलमें प्रथमा और तृतीया, अवस्थाका और द्वितीया तथा चतुर्थी अवस्थाका अर्थ तुल्य है।

क्रियाकी साम्य होनेपर भी अणिजन्त कालमें कर्म्मकारकको णिजन्तकालमें कर्तृत्वके अभावके कारण उस स्थलमें तृतीयकक्षामें आत्मनेपद न हुआ । द्वितीयासे क्रियाकी समताके कारण और प्रथमा अवस्थामें कर्म भवके कर्ता होनेके कारण चतुर्थ अवस्थामें तङ् हुआ । इसी प्रकार कर्तृस्थ क्रियाका उदाहरण यथा–आरोहयते हस्ती आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः, न्यग्भावयन्ति इत्यर्थः । पश्चात् आरोहति हस्ती न्यग्भवतीत्यर्थः । पश्चात् णिच् हुआ । आरोहयन्ति आरोहन्ति इत्यर्थः । पश्चात् आरोहयते । न्यग्भवतीत्यर्थः । अथवा पश्यन्त्यारोहन्ति यह प्रथमकक्षा पूर्ववत् है । पश्चात् कर्म्मसे ही हेतुत्वारोपके कारण णिच् हुआ । दर्शयति भवः । आरोहयति हस्ती, पश्यत आरोहतश्च प्रेरयतीत्यर्थः । पश्चात् दोनों णिच् करके और दोनों प्रकृतियां करके प्राप्त दोनों प्रेषणोंका त्याग होनेपर-दर्शयते और आरोहयते यह दो उदाहरण हुए, इनका अर्थ पूर्ववत् है । इस पक्षकी द्वितीयकक्षामें समान क्रियाके अभावसे णिजर्थके आधिक्यके कारण तङ् अर्थात् आत्मनेपद नहीं होगा । आध्यानार्थ होनेपर तो–स्मरति वनगुल्मं कोकिलः । स्मरयति वनगुल्मः । अर्थात् उत्कंठापूर्वक स्मृतिके विषयीभूत होताहै । (२५९४) भी और स्मि धातुसे आत्मनेपद हो, यदि उसके हेतुसे भयकी उत्पत्ति हो, यह पूर्वमें कह दियाहै ॥

२७३९ गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने।१।३।६९

प्रतारणेऽर्थे ण्यन्ताभ्यामाभ्यां प्राग्वत् । माणवकं गर्धयते । वञ्चयते वा । प्रलम्भने किम् । श्वानं गर्धयति । अभिकाङ्क्षामस्योत्पादयतीत्यर्थः । अहिं वञ्चयति । वर्जयतीत्यर्थः ॥ लियः संमाननशालीनीकरणयोश्च । १ । ३।७० । व्याख्यातम् ॥

२७३९–प्रलम्भनार्थमें णिजन्त गृध और वञ्च धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, यथा, माणवकं गर्धयते, वञ्चयते वा । प्रतारणार्थसे भिन्नार्थमें, श्वानं गर्धयति । अर्थात् इसकी आकांक्षा उत्पादन करताहै । अहिं वञ्चयति, अर्थात् सर्पको छोडताहै ।(२५९२) सम्मानन शालीनी करणार्थमें लि धातुके उत्तर आत्मनेपद हो ॥

२७४० मिथ्योपपदात्कृञोऽभ्यासे १। ३ । ७१ ॥

णेरित्येव । पदं मिथ्या कारयते । स्वरादिदुष्टमसकृदुच्चारयतीत्यर्थः। मिथ्योपपदात्किम् । पदं सुष्ठु कारयति । अभ्यासे किम् । सकृत्पदं मिथ्या कारयति ॥ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले । १ । ३।७२ । यजते । सुनुते । कर्त्रभिप्राये किम् ।ऋत्विजो यजन्ति । सुन्वन्ति॥

२७४०–अभ्यासार्थमें मिथ्याशब्दोपपद णिजन्त कृ धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, पदं मिथ्या कारयते । अर्थात् स्वरादि दुष्ट पद बार २ उच्चारण करताहै । मिथ्याशब्दोपपद न होनेपर तो पदं सुष्ठु कारयन्ति । अभ्यासार्थ न होनेपर यथा–सकृत्पदं मिथ्या कारयति ।

स्वरितेत् (यजादि) और ञित् (सुञादि) धातुओंके उत्तर आत्मनेपद हो, यदि क्रियाका फल कर्तृगामी हो–यजते। सुनुते । कर्त्रभिप्राय न होनेपर अर्थात् क्रियाका फल कर्तृगामी न होनेपर तो ऋत्विजो यजन्ति । सुन्वन्ति ॥

२७४१ अपाद्वदः । १ । ३ । ७३ ॥

न्यायमपवदते । कर्त्रभिप्राय इत्येव । अपवदति । णिचश्च । १ । ३ । ७४ । कारयते ॥

२७४१–अपपूर्वक वद धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, यथा–न्यायमपवदते क्रियाका फल कर्तृगामी होनेपर ही आत्मनेपद होगा । यहां न हुआ अपवदति । णिजन्तके उत्तर भी आत्मनेपद हो, कारयते ॥

२७४२ समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे । १ । ३ । ७५ ॥

अग्रन्थे इति च्छेदः । व्रीहीन्संयच्छते । भारमुद्यच्छते । वस्त्रमायच्छते । अग्रन्थे किम् । उद्यच्छति वेदम् । अधिगन्तुमुद्यमं करोतीत्यर्थः । कर्त्रभिप्राये इत्येव ॥

२७४२–क्रियाका फल कर्तृगामी होनेपर सम्, उद् और आङ्से पर अग्रन्थ विषयक यमधातुके उत्तर आत्मनेपद हो, व्रीहीन्संयच्छते । भारमुद्यच्छते । वस्त्रमायच्छते । ग्रन्थविषयक यम धातुसे आत्मनेपद न हो–उद्यच्छति वेदम्।अर्थात् वेदाध्ययनके निमित्त उद्यम करताहै ॥

२७४३ अनुपसर्गाज्ज्ञः। १ । ३ । ७६॥

गां जानीते। अनुपसर्गात्किम् । स्वर्गं लोकं न प्रजानाति । कथं तर्हि भट्टिः । इत्थं नृपः पूर्वमवालुलोचे ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्येति । कर्मणि लिट् । नृपेणेति विपरिणामः ॥

२७४३–उपसर्ग पूर्वमें न हो ऐसे ज्ञा धातुके उत्तर आत्मनेपद हो, यथा, गां जानीते । उपसर्ग पूर्वमें रहते यथा–स्वर्गं लोकं न प्रजानाति । इह आत्मनेपद न हुआ, तो भट्टिमें 'इत्थं नृपः पूर्वमवालुलोचे ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य' इस स्थलमें अनुजज्ञे पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ । इस स्थलमें कर्ममें लिट् लकार करनेसे 'नृपेण' इस तृतीयान्त पदकी योजना करनेसे 'अनुजज्ञे' इस पदकी सिद्धि हो सकीहै ॥

२७४४ विभाषोपपदेन प्रतीयमाने । १ । ३ । ७७ ॥

स्वरितञित इत्यादिपञ्चसूत्र्या यदात्मनेपदं विहितं तत्समीपोच्चारितेन पदेन क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वे द्योतिते वा स्यात् । स्वं यज्ञं यजति–यजते वा । स्वं कटं करोति–कुरुते वा ।

स्वं पुत्रमपवदति-अपवदते वा। स्वं यज्ञं कारयति-कारयते वा। स्वं व्रीहिं संयच्छति-संयच्छते वा। स्वां गां जानाति-जानीते वा॥

॥ इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ॥

२७४४-"स्वरितञितः" इत्यादि पांच सूत्रोंकरके जो आत्मनेपद विहित हुआ है, वह आत्मनेपद उपपदसे क्रियाफल कर्तृगामी प्रतीत होनेपर विकल्प करके हो। यथा-स्वं यज्ञं यजति यजते वा। स्वं कटं करोति कुरुते वा। स्व पुत्रं मपवदति अपवदते वा स्वं यज्ञं कारयति कारयते वा। स्वं व्रीहिं संयच्छति संयच्छते वा। स्वां गां जानाति जानीते वा॥

॥ इति आत्मनेपदप्रकरणं समाप्तम्॥

अथ परस्मैपदप्रक्रिया।

शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्।१।३।७८॥ अत्ति॥

आत्मनेपदके निमित्तसे हीन जो धातु उससे कर्ता अर्थमें परस्मैपद हो, (२१५९) अत्ति॥

२७४५ अनुपराभ्यां कृञः।१।३।७९॥

कर्तृगेऽपि फले गन्धनादौ च परस्मैपदार्थमिदम्। अनुकरोति। पराकरोति। कर्तरीत्येव। भावकर्मणोर्मा भूत्। न चैवमपि कर्मकर्तरि प्रसङ्गः। कार्यातिदेशपक्षस्य मुख्यतया तत्र कर्मवत्कर्मणेत्यात्मनेपदेन परेणास्य बाधात्। शास्त्रातिदेशपक्षे तु कर्तरि कर्मेत्यतः शेषादित्यतश्च कर्तृग्रहणद्वयमनुवर्त्य कर्तैव यः कर्ता न तु कर्मकर्ता तत्रेति व्याख्येयम्॥

२७४५-क्रियाका फल कर्तृगामी होनेपर और गंधनादि अर्थोंमें अनुपूर्वक और परापूर्वक कृ धातुके उत्तर कर्त्ता अर्थमें परस्मैपद हो, यथा-अनुकरोति, पराकरोति। इस सूत्रमें कर्तरि इस पदकी अनुवृत्तिसे इस सूत्रसे परस्मैपद भावकर्म न हुआ, जो कहो कि, कर्मकर्तामें इससे परस्मैपद क्यों न हुआ तो इसका उत्तर यह है कि कार्य्यातिदेशकी मुख्यतासे "कर्मवत्कर्मणा०" इस सूत्रसे "अनुपराभ्यां कृञः" इसका बाध हुआ। शास्त्रातिदेश पक्षमें तो "कर्मवत्कर्मणा०"इससे आत्मनेपद नहीं होगा किंतु "भावकर्मणोः" इस करके आत्मनेपद होगा, तो यह सूत्र पूर्व है कैसे "अनुपराभ्यां कृञः" इसका बाध करेगा तो "कर्तरि शप्"इस सूत्रसे "शेषात्कर्तरि०" इस सूत्रसे दोनों कर्तृपदकी अनुवृत्ति करके कर्ताही जो कर्ता उस अर्थमें परस्मैपद हो, ऐसा अर्थ करनेमें इस सूत्रकी कर्मकर्ता अर्थमें प्रवृत्ति न हुई। ऐसी भाष्यकारादिकी व्याख्या जाननी चाहिये॥

२७४६ अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः।१।३।८०॥

क्षिप प्रेरणे। स्वरितेत्। अभिक्षिपति॥

२७४६-अभिपूर्वक और प्रतिपूर्वक, क्षिप धातुके उत्तर परस्मैपद हो,क्षिप धातु प्रेरणार्थमें है। स्वरितेत् होनेसे परगामी क्रियाफलमें परस्मैपदकी प्राप्ति होनेपर भी कर्तृगामी क्रियाफल रहते हुये भी परस्मैपदार्थ सूत्र है। अभिक्षिपति।

२७४७ प्राद्वहः।१।३।८१॥

प्रवहति॥

२७४७-प्रपूर्वक वह धातुके उत्तर परस्मैपद हो। यथा-प्रवहति॥

२७४८ परेर्मृषः।१।३।८२॥

परिमृष्यति। भौवादिकस्य तु परिमर्षति। इह परेरिति योगं विभज्य वहेरपीति केचित्॥

२७४८-परिपूर्वक मृष धातुके उत्तर कर्तृगामी क्रियाफलमें भी परस्मैपद हो। यथा-परिमृष्यति। भौवादिक मृषधातुका परिमर्षति ऐसा पद होगा। इस स्थलमें "परेः" ऐसा योग विभाग अर्थात् भिन्न सूत्र करके वह धातुके उत्तर भी परस्मैपद होगा, ऐसा कोई कहतेहैं॥

२७४९ व्याङ्परिभ्यो रमः।१।३।८३॥

विरमति॥

२७४९-विपूर्वक, आङ्पूर्वक और परिपूर्वक रम्धातुके उत्तर परस्मैपद हो, यथा-विरमति।

२७५० उपाच्च।१।३।८४॥

यज्ञदत्तमुपरमति। उपरमयतीत्यर्थः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम्॥

२७५०-उपपूर्वक रम्, धातुके उत्तर कर्तृगामी क्रियाफलमें परस्मैपद हो। यथा-यज्ञदत्तमुपरमति। उपरमयतीत्यर्थः। यह पद अन्तर्भावितण्यर्थ अर्थात् इसके अन्तरमें णिजन्तका अर्थ निहित है॥

२७५१ विभाषाऽकर्मकात्।१।३।८५॥

उपाद्रमेरकर्मकात्परस्मैपदं वा। उपरमति। उपरमते वा। निवर्तत इत्यर्थः॥

२७५१-उपपूर्वक अकर्मक रम् धातुके उत्तर विकल्प करके परस्मैपद हो। यथा-उपरमति, उपरमते वा। अर्थात् निवृत्त होताहै॥

२७५२ बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः।१।३।८६॥

एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं स्यात्। णिचश्चेत्यस्यापवादः। बोधयति पद्मम्। योधयति काष्ठानि। नाशयति दुःखम्। जनयति सुखम्। अध्यापयति वेदम्। प्रावयति। प्रापयतीत्यर्थः। द्रावयति। विलापयतीत्यर्थः। स्रावयति। स्यन्दयतीत्यर्थः॥

२७५२-णिजन्त, बुध धातु, युध धातु, नश धातु, जन धातु, इङ् धातु, प्रु धातु, द्रु धातु और स्रु धातुके उत्तर कर्त्तामें परस्मैपद हो। यह सूत्र "णिचश्च (२५६४)" इस सूत्रका अपवाद है। यथा-बोधयति पद्मम्। योधयति काष्ठानि।

नाशयति दुःखम् । जनयति सुखम् । अध्यापयति वेदम् । प्रावयति प्रापयतीत्यर्थः । द्रावयति विलापयतीत्यर्थः । स्रावयति स्यन्दयतीत्यर्थः ॥

२७५३ निगरणचलनार्थेभ्यश्च । १ । ३ । ८७ ॥

निगारयति । आशयति । भोजयति । चलति । कम्पयति ॥ अदेः प्रतिषेधः ॥ * ॥ आदयते देवदत्तेन । गतिबुद्धीतिकर्मत्वमादिखाद्योर्नेति प्रतिषिद्धम्। निगरणचलनेतिसूत्रेण प्राप्तस्यैवायं निषेधः। शेषादित्यकर्त्रभिप्राये परस्मैपदं स्यादेव। आदयत्यन्नं बटुना ॥

२७५३-भक्षणार्थक कम्पार्थक ण्यन्त धातुके उत्तर परस्मैपद हो। यथा-निगारयति । आशयति। भोजयति। चलयति । कम्पयति ।

'अदेः प्रतिषेधः' अर्थात् अद् धातुके उत्तर परस्मैपद न हो * । यथा, आदयते देवदत्तेन । "गतिबुद्धि (५४०)" इस सूत्रसे प्राप्त कर्म्म संज्ञाको, "आदिखाद्योर्न" इस वार्तिकसे निषेध होताहै। "निगरणचलन० (२७५३)"इस सूत्रसे प्राप्त जो परस्मैपद उसीका पूर्वोक्त वार्तिककरके निषेध होताहै "शेषात्कर्तरि०" इस सूत्रसे अकर्त्रभिप्रायमें परस्मैपद ही होगा। आदयति अन्नं बटुना ॥

२७५४ अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् । १ । ३ । ८८ ॥

ण्यन्तात्परस्मैपदं स्यात्। शेते कृष्णस्तं गोपी शाययति ॥

२७५४-अण्यन्तमें अकर्मक और चित्तवत्कर्तृक जो धातु णिजन्त उससे परस्मैपद हो यथा-शेते कृष्णस्तं गोपी शाययति॥

२७५५ न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः । १ । ३ । ८९ ॥

एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं न । पिबतिर्निगरणार्थः। इतरे चित्तवत्कर्तृकाऽकर्मकाः । नृतिश्चलनार्थोऽपि। तेन सूत्रद्वयेन प्राप्तिः। पाययते। दमयते। आयामयते । आयासयते । परिमोहयते। रोचयते। नर्तयते । वादयते । वासयते ॥ धेट उपसंख्यानम् ॥ * ॥ धापयेते शिशुमेकं समीची । अकर्त्रभिप्राये शेषादिति परस्मैपदं स्यादेव। वत्सान्पाययति पयः। दमयन्ती कमनीयतामदम् । भिक्षां वासयति ॥

वा क्यषः । १ । ३ । ९० ॥ लोहितायति-लोहितायते ॥ द्युद्भ्यो लुङि । १ । ३ । ९१ ॥ अद्युतत्-अद्योतिष्ट ॥ वृद्भ्यः स्यसनोः । १ । ३ । ९२ ॥ वर्त्स्यति-वर्तिष्यते । विवृत्सति-विवर्तिषते॥ लुटि च क्लृपः । १ । ३ । ९३ ॥ कल्प्ता । कल्प्तासि-कल्पितासे । कल्प्स्यति-कल्पिष्यते-कल्प्स्यते । चिक्लृप्सति-चिकल्पिषते-चिक्लृप्सते ॥

॥ इति पदव्यवस्था ॥

२७५५-णिजन्त पा धातु दमि धातु, आङ्पूर्वक यम और यस धातु परिपूर्वक मुह धातु और रुचि धातु नृति धातु, वद और वस धातुके उत्तर परस्मैपद न हो । इस स्थलमें पा धातु निगरणार्थक है, इससे 'निगरणचलनार्थे०' इस सूत्रसे परस्मैपदकी प्राप्ति है और इतर जो दम्यादिक धातु हैं चित्तवत्कर्तृक हैं इनसे 'अणावकर्मका०' इस सूत्रसे परस्मैपदकी प्राप्ति है। नृति धातु चलनार्थ भी है इससे 'निगरण०' इस सूत्रसे परस्मैपदकी प्राप्ति है, इस सूत्रसे निषेध हुआ पाययते । दमयते । आयामयते। आयासयते परिमोहयते । रोचयते । नर्त्तयते । वादयते । वासयते ॥

णिजन्त धेट् धातुके उत्तर परस्मैपद हो * जैसे, धापयेते शिशुमेकं समीची । क्रियाफल कर्तृगामी न होनेपर "शेषात् (२१५९)" इत्यादि सूत्रसे परस्मैपद ही होगा। वत्सान् पाययति पयः । दमयन्ती कमनीयतामदम् । "भिक्षां वासयति ।" "वाक्यषः (२६६९) " इस सूत्रसे विकल्प करके परस्मैपद होताहै । लोहितायति, लोहितायते । "द्युद्भ्यो लुङि (२३४५)" इस सूत्रसे विकल्प करके परस्मैपद हो। अद्युतत्-अद्योतिष्ट । "वृद्भ्यः स्यसनोः (२३४७)" इस सूत्रसे विकल्प करके परस्मैपद होगा। वर्त्स्यति-वर्तिष्यते । विवृत्सति-विवर्त्तिषते। "लुटि च क्लृपः (२३५१)" इससे विकल्प करके परस्मैपद हो। कल्प्ता। कल्प्तासि, कल्पितासे। कल्प्स्यति, कल्पिष्यते, कल्प्स्यते। चिक्लृप्सति । चिकल्पिषते, चिक्लृप्सते ॥

॥ इति परस्मैपदप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ भावकर्मप्रक्रिया।

अथ भावकर्मणोर्लडादयः । भावकर्मणोरिति तङ् ॥

इसके अनन्तर भावमें और कर्म्ममें लडादि प्रत्यय हों, पश्चात् "भावकर्मणोः (२६७९)" इस सूत्रसे आत्मनेपद होगा ॥

२७५६ सार्वधातुके यक् । ३ । १ । ६७ ॥

धात्वर्थक प्रत्ययः स्याद्भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके परे। भावो भावना उत्पादना क्रिया। सा च धातुत्वेन सकलधातुवाच्या भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात्प्रथमपुरुषः । तिङाच्यभावनाया

असत्त्वरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि । किं त्वेकवचनमेव । तस्यौत्सर्गिकत्वेन संख्यानपेक्षत्वादनभिहिते कर्तरि तृतीया । त्वया मयाऽन्यैश्च भूयते । बभूवे ॥

२७५६–भाव वाचक और कर्म्म वाचक सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते धातुके उत्तर यक् प्रत्यय हो । इस स्थलमें भावशब्दसे भावना उत्पत्त्यनुकूलव्यापार क्रिया जाननी, इसको धातुत्व होनेके कारण वह सम्पूर्ण धातुओंके वाच्य हैं, वह भावार्थक लकारसे प्रयोग अनुवाद विषयीभूत भी जाती है । युष्मद्के और अस्मद्के साथ भावार्थक तिङ्के सामानाधिकरण्यके अभावके कारण अर्थात् मध्यम और उत्तम पुरुषोंके अविषयमें प्रथम पुरुष ही होगा । तिङ्वाच्य क्रियाके अद्रव्यत्वके कारण अर्थात् तिङ्वाच्य क्रिया कोई द्रव्य नहीं है । इस कारण लिङ्गसंख्याका अन्वय नहीं होताहै, इस कारण द्वित्वादिकी प्रतीति भी नहीं हुई, इस कारण द्विवचनादि नहीं होगा, किन्तु एकवचन ही होगा । एकवचनके औत्सर्गिकत्वके कारण संख्याकी अपेक्षा नहीं होती अत एव अनुक्त कर्त्तामें तृतीया विभक्ति होतीहै । यथा त्वया मया अन्यैश्च भूयते । बभूवे ॥

२७५७ स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च । ६ । ४ । ६२ ॥

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात्स्यादिषु परेषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च । अयमिट् चिण्वद्भावसन्नियोगशिष्टत्वात्तदभावे न । इहार्धधातुक इत्यधिकृतं सीयुटो विशेषणं नेतरेषामव्यभिचारात् । चिण्वद्भावाद् वृद्धिः । भाविता–भविता । भाविष्यते–भविष्यते । भूयताम् । अभूयत । भूयेत । भाविषीष्ट–भविषीष्ट ॥

२७५७–स्य आदि प्रत्यय परे रहते और भाव कर्म्म गम्यमान रहते उपदेशावस्थामें अर्थात् आद्योच्चारण कालमें जो अच् तदन्त जो धातु उसके और हन, ग्रह, दृश् इन धातुओंके चिण्की समान अर्थात् चिण् परे जो सम्पूर्ण अङ्गकार्य्य होतेहैं, उसी प्रकार अङ्गकार्य्य विकल्प करके हो, स्यादि प्रत्ययको इडागम भी हो । यह इट्, चिण्वद्भाव सन्नियोगशिष्टत्वके कारण उसके अभावमें अर्थात् चिण्वद्भावके अभावमें नहीं होगा । अव्यभिचारके कारण इस स्थानमें अधिकृत जो आर्धधातुक वह सीयुट्का विशेषण है, इतरका विशेषण नहींहै । चिण्वद्भावके कारण वृद्धि होगी । भाविता, भविता । भाविष्यते, भविष्यते । भूयताम् । अभूयत । भूयेत । भाविषीष्ट, भविषीष्ट ॥

२७५८ चिण् भावकर्मणोः । ३ । १ । ६६ ॥

च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे । अभावि । अभाविष्यत–अभविष्यत । तिङोक्तत्वात्कर्मणि न द्वितीया । अनुभूयत आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च । अनुभूयेते । अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे । अहमनुभूये । अन्वभावि । अन्वभाविषाताम्–अन्वभविषाताम् । णिलोपः । भाव्यते । भावयांचक्रे । भावयांबभूवे । भावयामासे । इह तशब्दस्य एशि इट् एत्वे च कृते ह एतीति हत्वं न । तासिसाहचर्यादस्तेरपि व्यतिहे इत्यादौ सार्वधातुके एति हत्वप्रवृत्तेरित्याहुः । भाविता । चिण्वदिट आभीयत्वे नासिद्धत्वाण्णिलोपः । पक्षे । भावयिता । भाविष्यते–भावयिष्यते । भाव्यताम् । अभाव्यत । भाव्येत । भाविषीष्ट–भावयिषीष्ट । अभावि । अभाविषाताम्–अभावयिषाताम् । बुभूष्यते । बुभूषांचक्रे । बुभूषिता । बुभूषिष्यते । बोभूय्यते । यङ्लुगन्तात्तु । बोभूयते । बोभवांचक्रे । बोभाविता–बोभविता । अकृत्सार्वेति दीर्घः । स्तूयते विष्णुः । तुष्टुवे । स्ताविता–स्तोता । स्ताविष्यते–स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविषाताम्–अस्तोषाताम् । गुणोर्तीति गुणः । अर्यते । स्मर्यते । सस्मरे । परत्वान्नित्यत्वाच्च गुणे रपरे कृतेऽजन्तत्वाभावेऽप्युपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट् । आरिता–अर्ता । स्मारिता-स्मर्ता । गुणोर्तीत्यत्र नित्यग्रहणानुवृत्तेरुक्तत्वान्नेह गुणः । संस्क्रियते । अनिदितामिति नलोपः । स्रस्यते । इदितस्तु नन्द्यते । सम्प्रसारणम् । इज्यते ॥ अयङ् यि क्ङिति । ७ । ४ । २२ ॥ शय्यते ॥

२७५८–भाववाचक अथवा कर्म्मवाचक त शब्द परे रहते च्लिके स्थानमें चिण् हो । अभावि । अभाविष्यत, अभविष्यत । तिङ्करके उक्त कर्म्ममें द्वितीया नहीं होगी । अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च । अनुभूयेते । अनुभूयंते । त्वमनुभूयसे । अहमनुभूये । अन्वभावि । अन्वभाविषाताम् । अन्वभविषाताम् । णिच्का लोप हो । भाव्यते । भावयाञ्चक्रे । भावयाम्बभूवे । भावयामासे । इस स्थलमें त शब्दके स्थानमें एश् आदेश करनेपर और इट्को एत्व करनेपर "ह एति (२२५०)" इस सूत्रसे हत्व नहीं होगा । तासि प्रत्ययके साहचर्य्यके कारण अस् धातुको भी व्यतिहे इत्यादि प्रयोगोंमें सार्वधातुक प्रत्यय एकार परे रहते हत्वप्रवृत्ति होगी, ऐसा कोई २ कहते हैं । भाविता । चिण्वदिट्को आभीयत्वके कारण असिद्धता होतीहै, अत एव णिका लोप होगा । पक्षमें । भावयिता । भाविष्यते, भावयिष्यते । भाव्यताम् । अभाव्यत । भाव्येत, भाविषीष्ट, भावयिषीष्ट । अभावि । अभाविषाताम् । अभावयिषाताम् । बुभूष्यते

बुभूषाञ्चक्रे । बुभूषिता । बुभूयिष्यते । बोभूय्यते । यङ्लुगन्तके उत्तर यक् होनेपर—बोभूयते। बोभवाञ्चक्रे । बोभाविता, बोभविता ।"अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः (२२९८)" इस सूत्रसे दीर्घ होगा । स्तूयते विष्णुः । तुष्टुवे । स्ताविता–स्तोता । स्ताविष्यते, स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविषाताम् । अस्तोषाताम् । "गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः २३८०" इस सूत्रसे गुण हुआ । अर्यते । स्मर्यते । सस्मरे । परत्व और नित्यत्वके कारण गुण और रपर करनेपर अजन्तत्वका अभाव होनेपर भी उपदेश ग्रहणके कारण चिण्वादट् होगा । आरिता–अर्त्ता । स्मरिता–स्मर्त्ता । "गुणोऽर्ति० (२३८०)" इस सूत्रसे नित्य ग्रहणकी अनुवृत्ति उक्त हुई है इस कारण इस स्थानमें गुण नहीं हुआ । संस्क्रियते । "अनिदिताम् (४१५)" इस सूत्रसे नकारका लोप हुआ । स्रस्यते । इदित् धातुके नकारका लोप नहीं होताहै । यथा, नन्द्यते । यज् धातुसे यक् होनेपर सम्प्रसारण हुआ । इज्यते । "अयङ् यि क्ङिति (२६४९)" इस सूत्रसे अयङ् आदेश हुआ–शय्यते ॥

२७५९ तनोतेर्यकि । ६ । ४ । ४४ ॥

आकारोन्तादेशो वा स्यात् । तायते–तन्यते । ये विभाषा । जायते–जन्यते ॥

२७५९–यक् परे रहते तन धातुको विकल्पकरके आकार अन्तादेश हो । तायते–तन्यते । " ये विभाषा (२३१९)" इस सूत्रसे विकल्प करके आकार हो । जायते–जन्यते ॥

२७६० तपोनुतापे च । ३ । १ । ६५॥

तपश्च्लेश्चिण्न स्यात्कर्मकर्तर्यनुतापे च । अन्वतप्त पापेन । पापं कर्तृ तेनाभ्याहत इत्यर्थः। कर्मणि लुङ् । यद्वा पापेन पुंसा कर्त्रा अशोचीत्यर्थः । घुमास्थेतीत्त्वम् । दीयते । धीयते । आदेच इत्यत्राशितीति कर्मधारयादित्संज्ञकशकारादौ निषेधः । एश आदिशित्त्वाभावात्तस्मिन्नात्त्वम् । जग्ले ॥

२७६०–कर्मकर्तामें अनुताप अर्थमें तप धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें चिण् न हो । यथा, अन्वतप्त पापेन । पापं कर्तृ तेनाभ्याहतः पापके कारण दुःखी होताहै कर्ममें लुङ् हुआ । अथवा पापेन पुंसा कर्त्रा अशोचीत्यर्थः, अपराधी पुमान् शोकातुर होताहै । "घुमास्था (२४६२) " इस सूत्रसे ईत्व हो । यथा, दीयते । धीयते । "आदेच० २३७०" इस स्थलमें अशिति इस पदमें कर्मधारय समासके कारण इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय परे आकारका निषेध हुआ । इस स्थानमें एश्के आदिशित्त्वके अभावके कारण एश्के परे आत्त्वका निषेध नहीं होगा । जग्ले ॥

२७६१ आतो युक् चिण्कृतोः।७।३।३३

आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञिति णिति कृति च । दायिता–दाता । दायिषीष्ट–दासीष्ट । अदायि । अदायिषाताम्–अदिषाताम् । अधायिषाताम्–अधिषाताम् । अग्लायिषाताम्–अग्लासाताम् । हन्यते । अचिण्णलोरित्युक्तेर्हनस्तो न । हो हन्तेरिति कुत्वम् । घानिता–हन्ता । घानिष्यते–हनिष्यते । आशीर्लिङि वधादेशस्यापवादश्चिण्वद्भावः । आर्धधातुके सीयुटीति विशेषविहितत्वात् । घानिषीष्ट । पक्ष । वधिषीष्ट । अघानि । अघानिषाताम्। अहसाताम्।पक्षे वधादेशः।अवधि।अवधिषाताम् । अघानिष्यत–अहनिष्यत। न च स्यादिषु चिण्वदित्यतिदेशाद्वधादेशः स्यादिति वाच्यम्। अङ्गस्येत्यधिकारादाङ्गस्यैवातिदेशात्। गृह्यते । चिण्वदिटो न दीर्घत्वम् । प्रकृतस्य वलादिलक्षणस्यैवेटो ग्रहोऽलिटीत्यनेन दीर्घविधानात् । ग्राहिता-ग्रहीता । ग्राहिष्यते-ग्रहीष्यते । ग्राहिषीष्ट-ग्रहीषीष्ट । अग्राहि । अग्राहिषाताम्-अग्रहीषाताम् । दृश्यते । अदर्शि । अदर्शिषाताम् । सिचः कित्वादम्न। अदृक्षाताम्। गिरितेर्लुङि ध्वमि चतुरधिकं शतम्। तथा हि। चिण्वदिटो दीर्घो नेत्युक्तम् । अगारिध्वम् । द्वितीये त्विटि वृतो वेति वा दीर्घः । अगरीध्वम्-अगरिध्वम् । एषां त्रयाणां लत्वं ढत्वं द्वित्वत्रयं चेति पञ्च वैकल्पिकानि । इत्थं षण्णवतिः । लिङ्सिचोरिति विकल्पत्वादिड्भावे उश्चेति कित्वम् । इत्वं रपरत्वं हलि चेति दीर्घः। इणः षीध्वमिति नित्यं ढत्वम् । अगीर्ढ्वम् । ढवमानां द्वित्वविकल्पेऽष्टौ । उक्तषण्णवत्या सह सङ्कलने उक्ता संख्येति ॥

इट् दीर्घश्चिण्वदिट् लत्वढत्वे द्वित्वत्रिकं तथा ।
इत्यष्टानां विकल्पेन चतुर्भिरधिकं शतम् ॥

हेतुमण्ण्यन्तात्कर्मणि लः यक् । णिलोपः । शम्यते मोहो मुकुन्देन ॥

२७६१–चिण् परे रहते और ञित् प्रत्यय,णित् प्रत्यय परे रहते कृत् प्रत्यय परे रहते आकारान्त धातुके उत्तर युक् आगम हो । दायिता–दाता । दायिषीष्ट–दासीष्ट । अदायि । अदायिषाताम्, अदिषाताम् । अधायिषाताम्–अधिषाताम् अग्लायिषाताम्–अग्लासाताम् । हन्यते । "अचिण्णलोः २५७४ " इस कथनसे हन् धातुका तकार अन्तादेश नहीं होगा । " हो हन्तेः ३५८ " इस सूत्रसे कुत्व हुआ । घानिता–हन्ता । घानिष्यते–हनिष्यते। चिण्वद्भाव आशीर्लिङ्में हन् धातुके स्थानमें वधादेशका अपवादहै आर्धधातुक सीयुट् परे रहते चिण्वद्भाव विशेष करके विहित हुआ है । घानिषीष्ट । पक्षे । वधिषीष्ट । अघानि । अघानिषाताम्–अहसाताम् । पक्षमें वध आदेश होकर अवधि । अवधिषाताम् । अघानिष्यत–अहनिष्यत । स्यआदि प्रत्यय परे रहते चिण्वद्भाव हो, इस अतिदेशके कारण वधादेश होगा ऐसा नहीं कहना

चाहिये । क्योंकि "अङ्गस्य (२००) " इस अधिकारके कारण अङ्गाधिकारस्थ कार्यको ही अतिदेश हुआ । यथा, गृह्यते । चिण्वदिट्को दीर्घ नहीं होगा । प्रकृतवलादि लक्षण इट्को "ग्रहोऽलिटि(२५६२)" इस सूत्रसे दीर्घ विहित हुआहै।ग्राहिता–ग्रहीता।ग्राहिष्यते–ग्रहीष्यते।ग्राहिषीष्ट–ग्रहीषीष्ट। अग्राहि । अग्राहिषाताम्–अग्रहीषाताम् । दृश्यते । अदर्शि । अदर्शिषाताम् । सिच्को किद्वत्के कारण अम् नहीं होगा । अदृक्षाताम् । गॄ धातुके उत्तर लुङ्के ध्वम् परे रहते एक सौ चार रूप होंगे । चिण्वदिट्को दीर्घ नहीं होगा, पूर्वमें यह कह दियाहै । यथा, अगारिध्वम् । द्वितीय इट् रहते " वृतो वा २३९१ " इस सूत्रसे विकल्प करके दीर्घ हुआ । अगरीध्वम्, अगरिध्वम् । इन तीन रूपोंके–"अचि विभाषा " इस सूत्रसे रकारके स्थानमें लकार ढत्व और द्वित्वत्रय ऐसे पांच प्रकारके विकल्प होतेहैं । इसी प्रकार छियानवें ९६ रूप होंगे । " लिङ्सिचोः २५२८ " इस सूत्रसे विकल्प करके इट्के अभावपक्षमें "उश्च२३६८" इस सूत्रसे किद्वत्, इत्व रपरत्व और " हलि च ३५४" इस सूत्रसे दीर्घ हुआ। " इणः षीध्वम्० २२४७ " इस सूत्रसे नित्य ढ हुआ । अगीर्ढ्वम् । ढ, व, म, इनके विकल्प करके द्वित्व करनेपर आठ रूप होंगे । " अचो रहाभ्यां द्वे " इस सूत्रसे ढकारको द्वित्व करनेपर दोनों पदके ही वकारको " यणो मयः० " इस वार्त्तिकसे द्वित्व करनेपर चार रूप होंगे । इन चाररूपोंके मकारको " अनचि च " इस सूत्रसे द्वित्व करनेपर आठ प्रकारके रूप होंगे और ९६ के साथ मिलानेसे एकसौ चार प्रकारके रूप होंगे । इट्, दीर्घ, चिण्वदिट्, लत्व और ढत्व, द्वित्वत्रय इन आठके विकल्पसे १०४ रूप होंगे । हेतुमान् जो णिच् तदन्तके उत्तरकर्म्ममें ल, यक् और णिलोप करके शम्यते मोहो मुकुन्देन, ऐसा प्रयोग सिद्ध हुआ है ॥

२७६२ चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ९३ ॥

चिण्परे णमुल्परे च णौ मितामुपधाया दीर्घो वा स्यात् । प्रकृता मितां ह्रस्व एव तु न विकल्पितः । ण्यन्ताण्णौ ह्रस्वविकल्पस्यासिद्धेः । दीर्घविधौ हि णिचो लोपो न स्थानिवदिति दीर्घः सिध्यति । ह्रस्वविधौ तु स्थानिवत्त्वं दुर्वारम् । भाष्ये तु पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदित्यवष्टभ्य द्विर्वचनसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चरः प्रत्याख्याताः । णाविति जातिपरो निर्देशः । "दीर्घग्रहणं चेदं मास्त्विति" तदाशयः।शामिता-शमिता-शमयिता।शामिष्यते-शमिष्यते-शमयिष्यते।यङन्ताण्णिच्।शंशम्यते।शंशामिता-शंशमिता-शंशमयिता।यङ्लुगन्ताण्णिच्यप्येवम्।भाष्यमते तु यङन्ताण्णिचि चिण्वदिटि दीर्घो नास्तीति विशेषः । ण्यन्तत्वाभावे, शम्यते मुनिना ॥

२७६२–चिण् और णमुल् परे है ऐसी णि परे रहते मित्संज्ञक धातुकी उपधाको विकल्प करके दीर्घ हो । प्रकृत "मितां ह्रस्वः (२५६८) " इस सूत्रमें विकल्पविधान न करके इस स्थानमें विकल्प करके दीर्घ विधान करतेहैं, इस आशङ्कासे कहतेहैं । प्रकृत अर्थात् प्रक्रान्त मित्संज्ञक धातुको विकल्प करके ह्रस्व तो पाणिनिजीने नहीं किया क्योंकि, णिजन्तके उत्तर पुनर्वार णिच् करनेपर विकल्पकरके ह्रस्वकी असिद्धि होगी । दीर्घ विधिमें णिच्का लोप स्थानिवत् नहीं होगा इस कारण दीर्घ सिद्ध होताहै । ह्रस्व विधिमें स्थानिवत्त्व अनिवार्य्य है । भाष्यमें " पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत् " अर्थात् त्रैपादिक कार्य्य कर्त्तव्य होनेपर स्थानिवत् नहीं होगा, इस परिभाषाको स्वीकार करके "न पदान्त०" इस सूत्रमें द्विर्वचन सवर्ण अनुस्वार दीर्घ, जश्, और चर इन सबका प्रत्याख्यान करदिया है । " णौ " यह जाति परक निर्देश है । उसका फल दिखाते हैं, यथा, इस स्थलमें दीर्घग्रहण नहीं करना चाहिये ह्रस्व विकल्प द्वारा ही इष्टसिद्धि होगी, ऐसा इसका आशय है । शामिता, शमिता । शमयिता।शामिष्यते,शमिष्यते,शमयिष्यते। यङन्तके उत्तर णिच् करके शंशम्यते। शंशामिता,शंशमिता शंशमयिता। यङ्लुगन्तसे णिच् करके कर्ममें लकार करनेपर ही ऐसा रूप होगा।यङन्तके उत्तर णिच् करनेपर इस प्रकार ही रूप होंगे । किन्तु भाष्यके मतमें यङन्तके उत्तर चिण्वदिट् करनेपर दीर्घ नहीं होगा, यही विशेष है णिजन्तके अभावमें शम्यते मुनिना, ऐसा प्रयोग होगा ॥

२७६३ नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः । ७ । ३ । ३४ ॥

उपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञिति णिति कृति च । अशमि । अदमि । उदात्तोपदेशस्येति किम् । अगामि । मान्तस्य किम् । अवादि। अनाचमेः किम् । आचामि ॥ अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ चिणि आयादय इति णिङभावे । अकामि । णिङ्णिचोरप्येवम् । अवामि । वध हिंसायाम् । हलन्तः । जनिवध्योरिति न वृद्धिः । अवधि । जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्स्विस्त्युक्तेर्न गुणः । अजागारि ॥

२७६३–चिण् परे रहते और ञित् णित् कृत् प्रत्यय परे रहते,चम् धातुसे भिन्न उपदेश अवस्थामें उदात्त जो मकारान्त धातु उसकी उपधाकी वृद्धि न हो। अशमि । अदमि । उदात्तोपदेशस्य इस पदको सूत्रमें क्यों किया । अगामि । इस पदमें भी वृद्धिका निषेध होजायगा।मान्तस्य सूत्रमें क्यों किया, " अवादि " यहां भी वृद्धिका निषेध होजायगा । सूत्रमें अनाचमेः क्यों किया,अचामि यहांभी वृद्धिका निषेध होजायगा। ' अनाचमि कमिवमीनामिति वक्तव्यम् ' अर्थात् आङ्पूर्वक चम, कम, वम इन धातुओंसे भिन्न उपदेश अवस्थामें उदात्त जो मान्त धातु उसकी उपधाकी वृद्धि न हो ऐसा

कहना चाहिये * चिण् परे रहते और "आयादय: २३०५" इस सूत्रसे णिङ्के अभाव पक्षमें अकामि इस प्रकार होगा। णिङ् और णिच् प्रत्यय परे रहते इसी प्रकार रूप होगा। अवामि। वध् धातु हिंसामें है। यह हलन्त है "जनिवध्यो: २५१२" इस सूत्रसे वृद्धि नहीं होगी। अवाधि। "जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु २४८०" इस सूत्रसे गुण नहीं होगा। अजागारि ॥

२७६४ भञ्जेश्च चिणि। ६। ४। ३३॥

नलोपो वा स्यात्। अभाजि-अभञ्जि ॥

२७६४-चिण् परे रहते भञ्ज धातुके नकारका विकल्प करके लोप हो। अभाजि-अभञ्जि ॥

२७६५ विभाषा चिण्णमुलोः।७।१।६९।

लभेर्नुमागमो वा स्यात्। अलम्भि-अलाभि। व्यवस्थितविकल्पत्वात्प्रादेर्नित्यं नुम्। प्रालम्भि। द्विकर्मकाणां तु।

गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।
बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणां च निजेच्छया॥
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः

गौर्दुह्यते पयः। अजा ग्रामं नीयते। ह्रियते। कृष्यते। उह्यते। बोध्यते माणवकं धर्मः, माणवको धर्ममिति वा। भोज्यते माणवकमोदनः माणवक ओदनं वा। देवदत्तो ग्रामं गम्यते। 'अकर्मकाणां कालादिकर्मकाणां कर्मणि भावे च लकार इष्यते'। मासो मासं वा आस्यते देवदत्तेन। णिजन्तात्तु प्रयोज्ये प्रत्ययः। मासमास्यते माणवकः ॥

॥ इति भावकर्मप्रक्रिया ॥

२७६५-चिण् और णमुल् प्रत्यय परे रहते लभ् धातुको विकल्प करके नुम्का आगम हो। यथा, अलम्भि-अलाभि। व्यवस्थित विकल्पत्वके कारण प्रपूर्वक लभ् धातुको नित्य नुम् हो। प्रालम्भि। (द्विकर्मक धातुके किस कर्ममें उक्त प्रत्यय होगा इस आशङ्कासे कहते हैं) द्विकर्म धातुओंके मध्यमें दुह धातुसे लेकर १२ धातुओंके उत्तर गौण कर्ममें और नी, हृ, कृष और वह धातुओंके मुख्य कर्ममें प्रत्यय हों, बुद्ध र्थक, भक्षार्थक और शब्द कर्मक धातुओंके इच्छाधीन अर्थात् गौण और मुख्य दोनों कर्मोंमें प्रत्यय होगा, अन्य णिजन्त धातुओंके प्रयोज्य कर्ममें उक्त प्रत्यय होंगे। यथा-गौर्दुह्यते पयः। अजा ग्रामं नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते। बोध्यते माणवकं धर्मः। माणवको धर्मम् इति वा। भोज्यते माणवकमोदनः, माणवक ओदनं वा। देवदत्तो ग्रामं गम्यते। अकर्मक और देशकाल, भाव अध्वावाचक शब्द कर्म होनेपर धातुके उत्तर कर्म और भावमें लकार होगा। मासो मासं वा आस्यते देवदत्तेन। णिजन्त धातुके उत्तर प्रयोज्य कर्ममें प्रत्यय होगा। मासमास्यते माणवकः ॥

॥ इति भावकर्मप्रकरणम् ॥

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया।

यदा सौकर्यातिशयं द्योतयितुं कर्तृव्यापारो न विवक्ष्यते तदा कारकान्तराण्यपि कर्तृसंज्ञां लभन्ते। स्वव्यापारे स्वतन्त्रत्वात्। तेन पूर्वं करणत्वादिसत्त्वेपि सम्प्रतिकर्तृत्वात्कर्तरि लकारः। साध्वसिश्छिनत्ति। काष्ठानि पचन्ति, स्थाली पचति। कर्मणस्तु कर्तृत्वविवक्षायां प्राक्सकर्मका अपि प्रायेणाकर्मकास्तेभ्यो भावे कर्तरि च लकारः। पच्यते ओदनेन। भिद्यते काष्ठेन। कर्तरि तु ॥

जिस समय सौकार्य्यातिशय द्योतनके लिये कर्त्ताका व्यापार विवक्षित न हो, तब अपने व्यापारकी स्वतंत्रताके निमित्त अन्य कारक भी कर्तृसंज्ञाको प्राप्त होतेहैं, उससे यह सिद्ध हुआ कि, पूर्वमें करणादि होनेपर भी सम्प्रति कर्तृत्वके कारण कर्त्तामें लकार होंगे। साध्वसिश्छिनत्ति। काष्ठानि पचन्ति। स्थाली पचति। कर्म्मके कर्तृत्व विवक्षामें पहिले सकर्म्म भी जो धातु हैं, वे प्रायः अकर्म्मक हैं। इस कारण उससे भावमें और कर्त्तामें लकार होंगे-पच्यते ओदनेन। भिद्यते काष्ठेन। कर्त्तामें प्रत्यय होनेपर तो ॥

२७६६ कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः।३। १। ८७॥

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत्स्यात्। कार्यातिदेशोऽयम्। तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः। कर्तुरभिहितत्वात्प्रथमा। पच्यते ओदनः। भिद्यते काष्ठम्। अपाचि। अभेदि। ननु भावे लकारे कर्तृद्वितीया स्यादस्मादतिदेशादिति चेन्न। लकारवाच्य एव कर्ता कर्मवत्। लिङ्याशिष्यङिति द्विलकारकाल्ल इत्यनुवृत्तेः। भावे प्रत्यये च कर्तुर्लकारेणानुपस्थितेः। अत एव कृत्यक्तखलर्थाः कर्मकर्तरि न भवन्ति किंतु भाव एव। भेत्तव्यं कुसूलेन। ननु पचिभिद्योः कर्मस्था क्रिया विक्लित्तिर्द्विधाभवनं च। सैवेदानीं कर्तृस्था न तु तत्तुल्या। सत्यम्। कर्मत्वकर्तृत्वावस्थाभेदोपाधिकं तत्समानाधिकरणक्रियाया भेदमाश्रित्य व्यवहारः। कर्मणेति किम्। करणाधिकरणाभ्यां तुल्यक्रिये पूर्वोक्ते साध्वसिरित्यादौ मा भूत्। किंच कर्तृस्थक्रियेभ्यो माभूत्। गच्छति ग्रामः। आरोहति हस्ती।

अधिगच्छति शास्त्रार्थः, स्मरति, श्रद्दधाति वा यत्र कर्मणि क्रियाकृतो विशेषो दृश्यते यथा पक्वेषु तण्डुलेषु यथा वा च्छिन्नेषु काष्ठेषु तत्र कर्मस्था क्रिया नेतरत्र। न हि पक्वापक्वतण्डुलेष्विव गतागतग्रामेषु वैलक्षण्यमुपलभ्यते। करोतिरुत्पादनार्थः। उत्पत्तिश्च कर्मस्था। तेन कारिष्यते घट इत्यादि। यत्नार्थत्वे तु नैतत्सिध्येत्। ज्ञानेच्छादिवद्यत्नस्य कर्तृस्थत्वात्। एतेनाऽनुव्यवस्यमानेर्थ इति व्याख्यातम्। कर्तृस्थत्वेन यगभावाच्छ्यनि कृते ओलोपे च रूपसिद्धेः। ताच्छील्यादावयं चानश् न त्वात्मनेपदम्॥ सकर्मकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः॥ *॥ अन्योन्यं स्पृशतः। अजा ग्रामं नयति॥ दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोरिति वाच्यम्॥ *॥

२७६६-जिस कर्ताकी क्रिया कर्मस्थ क्रियाके तुल्य हो, वह कर्त्ता कर्म्मवत् हो, यह कार्य्यातिदेश है। अर्थात् इस सूत्रसे कर्म्ममें जो सम्पूर्ण कार्य्य होताहै कर्तामें भी उन सब कार्य्योंका अतिदेश करतेहैं इससे यह हुआ कि, यक् आत्मनेपद, चिण् चिण्वदिट् ये सब कार्य कर्त्तामें लकार करनेपर होंगे, उक्तत्वके कारण कर्तामें प्रथमा होगी। पच्यते ओदनः। भिद्यते काष्ठम्। अपाचि। अभेदि। भावमें लकार करनेपर इस अतिदेशके कारण कर्तामें द्वितीया विभक्ति होगी, ऐसा नहीं कहना चाहिये। क्योंकि "व्यत्ययो बहुलम्" "लिङ्याशिष्यङ् ३४३४" इस सूत्रस्थ २ लकारोंसे एक लकारकी अनुवृत्तिके कारण "कर्मवत्कर्मणा०" इस सूत्रका ऐसा अर्थ होगा कि लकारवाच्य जो कर्ता वह कर्मवत् हो भावमें प्रत्यय करनेपर लकारसे कर्त्ताकी उपस्थिति नहीं होतीहै, इस कारण कर्म्मकर्तामें कृत्य प्रत्यय, क्त प्रत्यय और खलर्थ प्रत्यय नहीं होंगे, किन्तु केवल भावमें ही होंगे। यथा-भेत्तव्यं कुसूलेन। पच् धातुकी और भिद् धातुकी कर्म्मस्था क्रिया विक्लित्ति और द्विधाभवन है वह इस समय कर्तृस्था है तत्तुल्या नहीं है ऐसा कहो तो सत्य है, कर्म्मत्वावस्था और कर्तृत्वावस्था भेदरूप जो उपाधि तदुपाधिक तत्समानाधिकरण क्रियाके भेदका आश्रयण करके तुल्यत्व व्यवहार किया है। कर्म्मणा यह पद सूत्रमें क्यों किया करण और अधिकरणके साथ तुल्य क्रिया हुई है जिसकी ऐसे कर्त्ताका साध्वसिः छिनत्ति इत्यादि स्थलमें कर्म्मवद्भाव नहीं होगा, और कर्तृस्थक्रियासे न होगा, यथा-गच्छति ग्रामः। आरोहति हस्ती। अधिगच्छति शास्त्रार्थः। स्मरति श्रद्दधाति वा जिस कर्म्ममें क्रियाकृत विशेष दृष्ट है। यथा पक्वेषु तंडुलेषु अथवा जिस प्रकार छिन्नेषु काष्ठेषु उसी स्थलमें कर्मस्था क्रिया है, अन्यत्र नहीं है। पक्वापक्व तंडुलमें जिस प्रकार वैलक्षण्य देखा जाताहै, इस प्रकार गतागत ग्राममें वैलक्षण्यकी उपलब्धि नहीं होती है। कृ धातुका अर्थ उत्पादन है। और उत्पत्ति क्रिया कर्म्मस्था है। उससे, 'कारिष्यते घटः' इत्यादि पद सिद्ध हुए। यत्नार्थ होनेपर 'कारिष्यते घटः' इत्यादि पद सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि, ज्ञान और इच्छा इत्यादिके समान यत्नको कर्तृस्थत्व है। अत एव "अनुव्यवस्यमानेर्थे" ऐसी व्याख्या की है, कर्तृस्थत्वके कारण यक्के अभावसे श्यन् करनेपर पश्चात् ओकारका लोप करनेपर उक्त अनुव्यवस्यमान ऐसा पद सिद्ध हुआहै, (कर्म्मवत्त्वाभावमें इस स्थानमें शानच् किस प्रकारसे हुआ? इस आशङ्कासे कहते हैं) इस स्थानमें ताच्छील्यादि अर्थमें चानश् हुआ है आत्मनेपद नहीं हुआहै।

सकर्म्मक धातुके कर्त्ताको कर्म्मवद्भाव नहीं होगा * यथा-अन्योन्यं स्पृशतः। अजा ग्रामं नयति।

सकर्म्मक दुह धातु और पच् धातुका जो कर्त्ता, उसको कर्म्मवद्भाव बहुलसे हो। अर्थात् कहीं होगा कहीं न होगा।*

२७६७ न दुहस्नुनमां यक्चिणौ। ३।१।८९॥

एषां कर्मकर्तरि यक्चिणौ न स्तः। दुहेरनेन यक एव निषेधः। चिण् तु विकल्पिष्यते। शप् लुक्। गौः पयो दुग्धे॥

२७६७-दुह, स्नु और नम् धातुके उत्तर कर्म्मकर्तामें यक् और चिण् प्रत्यय न हो। इस सूत्रसे दुह धातुके केवल यक्का ही निषेध होताहै, चिण् तो विकल्प करके होता है शप्का लुक्, गौः पयो दुग्धे॥

२७६८ अचः कर्मकर्तरि। ३। १।६२॥

अजन्तात् च्लेश्चिण् वा स्यात्कर्मकर्तरि तशब्दे परे। अकारि-अकृत॥

२७६८-कर्म्मकर्तामें त शब्द परे रहते अजन्त धातुके उत्तर जो च्लि उसके स्थानमें विकल्प करके चिण् हो, अकारि, अकृत॥

२७६९ दुहश्च। ३।१।६३॥

अदोहि। पक्षे क्सः। लुग्वेति पक्षे लुक्। अदुग्ध-अधुक्षत। उदुम्बरः फलं पच्यते॥ सृजियुज्योः श्यंस्तु॥ *॥ अनयोः सकर्मकयोः कर्ता बहुलं कर्मवत् यगपवादश्च श्यन्वाच्य इत्यर्थः॥ सृजेः श्रद्धोपपन्ने कर्तर्येवेति वाच्यम्॥ *॥ सृज्यते स्रजं भक्तः। श्रद्धया निष्पादयतीत्यर्थः। असर्जि। युज्यते ब्रह्मचारी योगम्॥ भूषाकर्मकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात्॥ *॥ भूषावाचिनां किरादीनां सन्नन्तानां च यक्चिणौ चिण्वदिट् च नेति वाच्यमित्यर्थः। अलंकुरुते कन्या। अलमकृत। अवकिरते हस्ती। अवाकीर्ष्ट। गिरते। अगीर्ष्ट।

आद्रियते । आद्दत । किरादिस्तुदाद्यन्तर्गणः । चिकीर्षते कटः । अचिकीर्षिष्ट । इच्छायाः कर्तृस्थत्वेपि करोतिक्रियापेक्षमिह कर्मस्थक्रियात्वम् ॥

२७६९–कर्मकर्तामें त शब्द परे रहते दुह धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें विकल्प करके चिण् आदेश हो । अदोहि । पक्षमें क्स होगा " लुग्वा (३६५) " इस सूत्रसे पक्षमें लुक् होगा । अदुग्ध, अधुक्षत । उदुम्बरः फलं पच्यते। (काल उदुम्बरं फलं पचति) (ऐसा होनेपर गौण कर्म्म उदुम्बरकी कर्तृत्व विवक्षामें यह उदाहरण है)।

सकर्म्मक सृज धातुका और युज धातुका कर्त्ता विकल्प करके कर्म्मवत् हो और यक्का अपवाद श्यन् हो * ।

सृज धातुका कर्त्ता श्रद्धायुक्त होनेपर कर्म्मवत् हो और श्यन् हो * । सृज्यते सृजं भक्तः । श्रद्धया निष्पादयतीत्यर्थः । असर्जि । युज्यते ब्रह्मचारी योगम् ।

भूषावाचक जो धातु, कृ आदि जो धातु और सन्प्रत्ययान्त जो सम्पूर्ण धातु उनके उत्तर यक्, चिण्, चिण्वदिट् न हो * । अलंकुरुते कन्या । अलमकृत । अवकिरते हस्ती । अवाकीर्ष्ट । गिरते । अगीर्ष्ट । आद्रियते । आद्दत । कृ आदि धातु तुदादि गणीय है । चिकीर्षते कटः । अचिकीर्षिष्ट । इच्छा यद्यपि कर्तृस्था है तथापि करोति क्रियाकी अपेक्षा करके कर्म्मस्थ क्रियात्व है । अत एव चिकीर्षते । इस स्थानमें आत्मनेपद सिद्ध हुआ ॥

२७७० न रुधः । ३ । १ । ६४ ॥

अस्माच्च्लेश्चिण्न । अवारुद्ध गौः । कर्मकर्तरीत्येव । अवारोधि गौर्गोपेन ।

२७७०–रुध धातुके उत्तर जो च्लि उसके स्थानमें चिण् आदेश न हो, अवारुद्ध गौः । इस स्थानमें कर्म्मकर्ताहीमें रुध धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें चिण् न हो, इससे यहां च्लिके स्थानमें चिण् होगा । अवारोधि गौर्गोपेन ॥

२७७१ तपस्तपः कर्मकस्यैव । ३ । १ । ८८ ॥

कर्ता कर्मवत्स्यात् । विध्यर्थमिदम् । एवकारस्तु व्यर्थ एवेति वृत्त्यनुसारिणः । तप्यते तपस्तापसः । अर्जयतीत्यर्थः । तपोनुतापे चेति चिण्निषेधात्सिच् । अतप्त । तपःकर्मकस्येति किम् । उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः ॥ न दुहस्नुनमां यक्चिणौ । ३ । १ । ८९ ॥ प्रस्नुते । प्रास्नाविष्ट–प्रास्नोष्ट । नमते दण्डः । अनंस्त । अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र नमिः ॥ यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमण्णिश्रिब्रूञामुपसंख्यानम् ॥ * कारयते । अचीकरत । उच्छ्रयते दण्डः । उदशिश्रियत । चिण्वदिट् तु स्यादेव । कारिष्यते । उच्छ्रायिष्यते । ब्रूते कथाः । अवोचत ॥ भारद्वाजीयाः पठन्ति । णिश्रन्थिग्रन्थिब्रूञात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ पुच्छमुदस्यति । उत्पुच्छयते गौः । अन्तर्भावितण्यर्थतायाम् । उत्पुच्छयते गाम् । पुनः कर्तृत्वविवक्षायाम् । उत्पुच्छयते गौः। उदपुपुच्छत । यक्चिणोः प्रतिषेधाच्छप्चङौ । श्रन्थिग्रन्थ्योराधृषीयत्वाण्णिजभावपक्षे ग्रहणम् । ग्रन्थति ग्रन्थम् । श्रन्थति मेखलां देवदत्तः। ग्रन्थते ग्रन्थः। अग्रन्थिष्ट। श्रन्थते । अश्रन्थिष्ट । क्र्यादिकयोस्तु । श्रथ्नीते । ग्रथ्नीते स्वयमेव । विकुर्वते सैन्धवाः । वल्गन्तीत्यर्थः । वेः शब्दकर्मणोऽकर्मकाच्चेति तङ् । अन्तर्भावितण्यर्थस्य पुनः प्रेषणत्यागे । विकुर्वते सैन्धवाः । व्यकारिष्ट । व्यकारिषाताम् । व्यकारिषत । व्यकृत । व्यकृषाताम् । व्यकृषत ॥

२७७१–तपःकर्मक तप धातुका कर्त्ता कर्म्मवत् हो, यह सूत्र विध्यर्थ है । एवकारका कुछ प्रयोजन नहीं है, इस कारण वृत्यनुसारी आचार्योंने उसको व्यर्थ कहाहै । यथा, तप्यते तपस्तापसः । अर्जयतीत्यर्थः । "तपोऽनुतापे च (२७६०)" इस सूत्रसे चिण् निषेधके कारण सिच् होगा, अतप्त । तपःकर्मकस्य इसको सूत्रमें क्यों किया ? तपति सुवर्णं सुवर्णकारः । यहां कर्मवद्भाव न हुआ । " न दुहस्नुनमां यक्चिणौ (२७६७) " इस सूत्रसे यक् और चिण् प्रत्ययका प्रतिषेध हुआ । प्रस्नुते । प्रास्नाविष्ट, प्रास्नोष्ट । नमते दंडः, अनंस्त । अन्तर्भावितण्यर्थ इस स्थानमें नम् धातु है ।

यक् और चिण् प्रत्ययके प्रतिषेधविषयमें हेतुमण्णिजन्त धातु और श्रि धातु और ब्रू धातु इनको उपसंख्यान करना चाहिये अर्थात् इनसे यक् और चिण्का प्रतिषेध होगा * । कारयते । अचीकरत् । उच्छ्रयते दण्डः । उदशिश्रियत । चिण्वदिट् तो होवेहीगा । कारिष्यते । उच्छ्रायिष्यते । ब्रूते कथाः । अवोचत । भारद्वाजीय आचार्य्योंने ऐसा पाठ कियाहै, यथा–

णिजन्त धातु श्रन्थ, ग्रन्थ और ब्रूञ् धातु और आत्मनेपदी जो अकर्म्मक धातु इन सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर यक् और चिण्का प्रतिषेध हो * पुच्छमुदस्यति उत्पुच्छयते गौः जिस स्थानमें णिच्का अर्थ अन्तर्भूत है अर्थात् अन्तर्भावित ण्यर्थ होनेपर उत्पुच्छयते गाम् । पुनर्वार कर्तृत्व विवक्षा करनेपर उत्पुच्छयते गौः । उदपुपुच्छत । यक् और चिण्के प्रतिषेधके कारण शप् और चङ् होगा । श्रन्थ और ग्रन्थ धातुके आधृषीयत्वके कारण णिच्के अभाव पक्षमें यह प्रतिषेध जानना चाहिये । ग्रन्थति ग्रन्थम् । ग्रन्थति मेखलां देवदत्तः । ग्रन्थते ग्रन्थः । अग्रन्थिष्ट । श्रन्थते । अश्रन्थिष्ट । क्र्यादि पठित इन दो धातुओंके श्रथ्नीते । ग्रथ्नीते । ऐसे रूप होंगे । स्वयमेव विकुर्वते सैन्धवाः वल्गन्ति इत्यर्थः । "वेः शब्दकर्मणः २७०७" "अकर्मकाच्च २७०८" इस सूत्रसे आत्मनेपद हुआ । अन्तर्भावितण्यर्थका पुनर्वार प्रेरणांशत्याग करनेपर "विकुर्वते सैन्धवाः" ऐसा प्रयोग होगा । व्यकारिष्ट । व्यकारिषाताम् । व्यकारिषत । व्यकृत । व्यकृषाताम् । व्यकृषत ।

२७७२कुषिरजोः प्राचां श्यन्परस्मैपदं च । ३ । १ । ९० ॥

अनयोः कर्मकर्तरि न यक् किंतु श्यन्परस्मैपदं च । आत्मनेपदापवादः । कुष्यति-कुष्यते पादः । रज्यति-रज्यते वस्त्रम् । यगविषये तु नास्य प्रवृत्तिः । कोषिषीष्ट । रंक्षीष्ट ॥

॥ इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥

२७७२-कुषि और रञ्ज धातुके कर्म्म कर्तामें यक् न हो, किन्तु विकल्प करके श्यन् और परस्मैपद हो । यह सूत्र आत्मनेपदका अपवाद है । कुष्यति, कुष्यते पादः । रज्यति, रज्यते वस्त्रम् । यक्‌के अविषयमें इसकी प्रवृत्ति नहीं होगी । अर्थात् श्यन् न होगा । कोषिषीष्ट । रङ्क्षीष्ट ।

॥ इति कर्म्मकर्तृप्रकरणम् ॥

अथ लकारार्थप्रक्रिया ।

२७७३अभिज्ञावचने लृट् ।३।२।११२॥

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट् स्यात् । लङोपवादः । स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः । एवं बुध्यसे चेतयसे इत्यादियोगेऽपि। तेषामपि प्रकरणादिवशेन स्मृतौ वृत्तिसम्भवात् ॥

२७७३-उपपद स्मृतिबोधक होनेपर भूतानद्यतन अर्थमें धातुके उत्तर लृट् हो, यह लङ्का अपवाद है । यथा,स्मरसि कृष्ण ! गोकुले वत्स्यामः,हे कृष्ण स्मरण है हम गोकुलमें रहते थे । इसी प्रकार बुध्यसे चेतयसे इत्यादि पदोंके प्रयोगमें भी धातुके उत्तर लृट् हो । तिनकी भी अर्थात् बुध्यसे चेतयसे इत्यादि पदोंकी भी प्रकरणादि बलसे स्मृतिविषयमें वृत्तिका सम्भव है ॥

२७७४ न यदि । ३ । २ । ११३ ॥

यद्योगे उक्तं न । अभिजानासि कृष्ण यद्वने अभुञ्ज्महि ॥

२७७४-यत् शब्दके योगमें उक्त विषयमें लृट् न हो । अभिजानासि कृष्ण ! यद्वने अभुञ्ज्महि,हे कृष्ण! स्मरण है जो हमने वनमें भोजन किया था ॥

२७७५ विभाषा साकाङ्क्षे ।३।२।११४॥

उक्तविषये लृड्वा स्यात् । लक्ष्यलक्षणभावेन साकाङ्क्षश्चेद्धात्वर्थः । स्मरसि कृष्ण वने वत्स्यामस्तत्र गाश्चारयिष्यामः । वासो लक्षणं चारणं लक्ष्यम् । पक्षे लङ् । यच्छब्दयोगेऽपि न यदीति बाधित्वा परत्वाद्विकल्पः ॥ परोक्षे लिट् । ३।२। ११५। चकार।उत्तमपुरुषे चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम् । सुप्तोऽहं किल विललाप । बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम् ॥ अत्यन्तापह्नवे लिड्वक्तव्यः ॥ * ॥ कलिङ्गेष्ववात्सीः नाहं कलिङ्गाञ्जगाम ॥

२७७५-उपपद स्मृतिबोधक होनेपर लक्ष्यलक्षण भावसे अर्थात् ज्ञाप्यज्ञापकभावके द्वारा धात्वर्थ यदि साकांक्ष हो तो विकल्प करके लृट् हो । यथा, स्मरसि कृष्ण ! वने वत्स्यामस्तत्र गाश्चारयिष्यामः। इस स्थानमें वास लक्षण है,और चारण लक्ष्य है पक्षमें लङ् होगा । यत् शब्दके योगमें "न यदि २७७४"इस सूत्रको बाधकर परत्वके कारण विकल्प करके लृट् हुआ । "परोक्षे लिट्२१७१" इस सूत्रसे लिट् हुआ । चकार । उत्तम पुरुष विषयमें चित्त विक्षेपादिसे परोक्ष जानना चाहिये । "सुप्तोऽहं किल विललाप ।" " बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम् " ।

"अत्यन्तापह्नवे लिड्वक्तव्यः (२०८४) " अत्यन्त अपह्नव अर्थात् अपलापार्थ होनेपर धातुके उत्तर लिट् हो * "कलिङ्गेष्ववात्सीः नाहं कलिङ्गाञ्जगाम" ॥

२७७६हशश्वतोर्लङ् च । ३ ।२।११६॥

अनयोरुपपदयोर्लिड्विषये लङ् स्यात् । चाल्लिट् । इति हाकरोच्चकार वा । शश्वदकरोच्चकार वा ॥

२७७६—ह और शश्वत् शब्द उपपद होनेपर धातुके उत्तर लिट् विषयमें लङ् हो । चकार निर्देशके कारण लिट् भी हो । इति हाकरोच्चकार वा । शश्वदकरोच्चकार वा ॥

२७७७ प्रश्ने चासन्नकाले ।३।२।११७॥

प्रष्टव्यः प्रश्नः आसन्नकाले पृच्छ्यमानेऽर्थे लिड्विषये लङ्लिटौ स्तः । अगच्छत्किम्।जगाम किम् । अनासन्ने तु कंसं जघान किम् ॥

२७७७-आसन्नकालिक जिज्ञासितार्थ होनेपर लिट् विषयमें धातुके उत्तर लङ् और लिट् हो । अगच्छत् किम् । जगाम किम्,क्या अभी गये। जिस स्थानमें आसन्न कालिकार्थ नहीं है, उस स्थानमें 'कंसं जघान किम्', इस प्रकार होगा ॥

२७७८ लट् स्मे । ३ । २ । ११८ ॥

लिटोऽपवादः । यजति स्म युधिष्ठिरः ॥

२७७८-स्म शब्द उपपद रहते धातुके उत्तर लिट्के अर्थमें लट् हो यह सूत्र लिट्का अपवाद है । यजति स्म युधिष्ठिरः ॥

२७७९ अपरोक्षे च । ३ । २ । ११९ ॥

भूतानद्यतने लट् स्यात् स्मयोगे । एवं स्म पिता ब्रवीति ॥

२७७९-परोक्षसे भिन्न भूतानद्यतन अर्थ होनेपर स्म शब्दके योगमें धातुके उत्तर लट् हो । एवं स्म पिता ब्रवीति। यह बात पिताने कही थी ॥

२७८० ननौ पृष्टप्रतिवचने।३।२।१२०॥

अनद्यतने परोक्ष इति निवृत्तम् । भूते लट् स्यात् । अकार्षीः किम् । ननु करोमि भोः ॥

२७८०–अनद्यतन परोक्ष इस स्थलसे निवृत्त हुआ ननु शब्दके योगमें प्रत्युत्तर अर्थ होनेपर भूतकालमें धातुके उत्तर लट् हो। अकार्षीः किं ननु करोमि भोः ॥

२७८१ नन्वोर्विभाषा । ३ । २ ।१२१॥

अकार्षीः किम् । न करोमि । नाकार्षम् । अहं नु करोमि । अहं न्वकार्षम् ॥

२७८१–प्रत्युत्तर अर्थ होनेपर न शब्द और नु शब्दके योगमें भूतकालमें धातुके उत्तर लट् विकल्प करके हो । अकार्षीः किम्। क्या तुमने यह कार्य किया । न करोमि नहीं किया । पक्षमें लुङ् होगा । नाकर्षम् । अहं नु करोमि। पक्षमें अहं न्वकार्षम् ॥

२७८२ पुरि लुङ् चास्मे । ३।२।१२२॥

अनद्यतनग्रहणं मण्डूकप्लुत्यानुवर्तते । पुराशब्दयोगे भूतानद्यतने विभाषा लुङ् चाल्लट् न तु स्मयोगे । पक्षे यथाप्राप्तम् । वसन्तीह पुरा छात्राः अवात्सुः अवसन् ऊषुर्वा । अस्मे किम् । यजति स्म पुरा ॥ भविष्यतीत्यनुवर्तमाने ॥

२७८२–मंडूकप्लुतिन्यायसे अनद्यतन ग्रहणकी अनुवृत्ति होगी । पुराशब्दके योगमें भूतानद्यतन अर्थ होनेपर विकल्प करके लुङ् हो, और सूत्रमें चकार ग्रहण करनेके कारण लट् भी होगा, किन्तु स्म शब्दके योगमें नहीं होगा । लुङ् और लट्के अभाव पक्षमें लङ् और परोक्षमें लिट् होगा, यथा, वसन्तीह पुरा छात्राः अवात्सुः अवसन् ऊषुर्वा । स्म शब्दके योगमें–यजति स्म पुरा । " भविष्यति गम्यादयः " इस सूत्रसे भविष्यति पदकी अनुवृत्ति होगी ॥

२७८३ यावत्पुरानिपातयोर्लट्।३।३।४॥

यावद्भुङ्क्ते । पुरा भुङ्क्ते । निपातावेतौ निश्चयं द्योतयतः । निपातयोः किम् । यावद्दास्यते तावद्भोक्ष्यते । करणभूतया पुरा यास्यति ॥

२७८३–निपात संज्ञक यावत् और पुरा शब्दके योगमें भविष्यत् कालमें लट् हो । यथा, यावद्भुंक्ते । पुरा भुंक्ते । निपातसंज्ञक यावत् और पुरा शब्द निश्चयार्थक हैं । निपातसंज्ञक न होनेपर उनके उत्तर लट् होगा । यथा, यावत् दास्यते तावद्भोक्ष्यते । करणभूतया पुरा यास्यति ॥

२७८४ विभाषा कदाकर्ह्योः । ३।३।५॥

भविष्यति लट् वा स्यात् । कदा कर्हि वा भुङ्क्ते भोक्ष्यते भोक्ता वा ॥

२७८४––कदा और कर्हि शब्दके योगमें भविष्यत्कालमें विकल्प करके लट् हो । यथा,कदा कर्हि वा भुंक्ते भोक्ष्यते भोक्ता वा ॥

२७८५ किंवृत्ते लिप्सायाम्।३।३।६॥

भविष्यति लड्वा स्यात् । कं कतरं कतमं वा भोजयसि भोजयिष्यसि भोजयितासि वा। लिप्सायां किम् । कः पाटलिपुत्रं गमिष्यति ॥

२७८५–किं शब्दसे निष्पन्न जो शब्द उसके योगमें लिप्सा अर्थमें भविष्यत् कालमें धातुके उत्तर विकल्प करके लट् हो। कं कतरं कतमं वा भोजयसि, दोनोंमें किसको और सब लोगोंमें किसको भोजन करावोगे । भोजयिष्यसि, भोजयितासि वा । जिस स्थानमें लिप्सार्थ नहीं है, उस स्थानमें कः पाटलिपुत्रं गमिष्यति । यहां लट् न हुआ ।

२७८६ लिप्स्यमानसिद्धौ च ।३।३।७॥

लिप्स्यमानेनान्नादिना स्वर्गादेः सिद्धौ गम्यमानायां भविष्यति लड्वा स्यात् । योऽन्नं ददाति दास्यति दाता वा स स्वर्गं याति यास्यति याता वा ॥

२७८६–लिप्स्यमान अन्नादिसे स्वर्गादिकी सिद्धि गम्यमान होनेपर भविष्यत् कालमें विकल्प करके लट् हो । योऽन्नं ददाति दास्यति दाता वा स स्वर्गं याति यास्यति याता वा ।

२७८७ लोडर्थलक्षणे च । ३ । ३ ।८॥

लोडर्थः प्रैषादिर्लक्ष्यते येन तस्मिन्नर्थे वर्तमानाद्धातोर्भविष्यति लड्वा स्यात् । कृष्णश्चेद्भुङ्क्ते त्वं गाश्चारय । पक्षे लट्लृटौ ॥

२७८७–जिसके द्वारा लोट्के अर्थ प्रैषादि लक्षित हों, उस अर्थमें वर्तमान जो धातु उसके उत्तर भविष्यत् कालमें विकल्प करके लट् हो । यथा, कृष्णश्चेद्भुंक्ते त्वं गाश्चारय । कृष्णके भोजन कालमें तुम गाय चरावो । पक्षमें लट् और लृट् होगा ॥

२७८८ लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके ३।३।९॥

ऊर्ध्वं मुहूर्ताद्भवः ऊर्ध्वमौहूर्तिकः । निपातनात्समासः उत्तरपदवृद्धिश्च । ऊर्ध्वमौहूर्तिके भविष्यति लोडर्थलक्षणे वर्तमानाद्धातोर्लिङ्लटौ वा स्तः । मुहूर्तादुपरि उपाध्यायश्चेदागच्छेत् आगच्छति आगमिष्यति आगन्ता वा । अथ त्वं छन्दोधीष्व ॥

२७८८–ऊर्ध्वं मुहूर्त्तात् भवः इस विग्रहमें ऊर्ध्वमौहूर्त्तिकः पद सिद्ध हुआ । इस स्थानमें निपातनसे समास और उत्तर पदको वृद्धि हुई है। ऊर्ध्व मुहूर्त्तसे उत्पन्न अर्थात् मुहूर्त्तकी अपेक्षा अधिक कालमें लोडर्थ लक्षण अर्थमें वर्तमान जो धातु उससे भविष्यत् कालमें विकल्प करके लिङ् और लट् हो । मुहूर्त्तादुपरि उपाध्यायश्चेदागच्छेत् आगच्छति आगमिष्यति आगन्ता वा, अथ त्वं छन्दोऽधीष्व ॥

२७८९ वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा । ३ । ३ । १३१ ॥

समीपमेव सामीप्यम् । स्वार्थे ष्यञ् । वर्तमाने लडित्यारम्भ उणादयो बहुलमिति यावत् येनोपाधिना प्रत्यया उक्तास्ते तथैव वर्तमान-

समीपे भूते भविष्यति च वा स्युः । कदा आगतोसि । अयमागच्छामि । अयमागमम् । कदा गमिष्यसि । एष गच्छामि । गमिष्यामि वा ॥

२७८९–समीपमेव इस विग्रहमें स्वार्थमें ष्यञ् प्रत्यय करके सामीप्य पद सिद्ध हुआ । " वर्तमाने लट् २१५१ " इस सूत्रसे " उणादयो बहुलम् ३१६९ " इस सूत्रपर्यंत जिन २ धातुओंके उत्तर जो २ प्रत्यय विहित हुए हैं, वे सम्पूर्ण प्रत्यय इस वर्त्तमान सामीप्य भूत कालमें और वर्त्तमान सामीप्य भविष्यत् कालमें विकल्प करके हों । यथा, कदा आगतोऽसि । अयमागच्छामिऽअयमागमम् । कदा गमिष्यसि । एष गच्छामि, गमिष्यामि वा ॥

२७९० आशंसायां भूतवच्च।३।३।१३२।

वर्तमानसामीप्य इति नानुवर्तते । भविष्यति काले भूतवद्वर्तमानवच्च प्रत्यया वा स्युराशंसायाम् । देवश्चेदवर्षीत् वर्षति वर्षिष्यति वा। धान्यमवाप्स्म वपामः वप्स्यामो वा । सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशस्तेन लङ्लिटौ न ॥

२७९०–" वर्त्तमानसामीप्ये " इस पदकी इस स्थानमें अनुवृत्ति नहीं होगी । आशंसा अर्थमें भविष्यत् कालमें भूत कालकी और वर्त्तमान कालकी समान सम्पूर्ण प्रत्यय विकल्प करके हों । यथा, देवश्चेदवर्षीत् वर्षति वर्षिष्यति वा धान्यमवाप्स्म, वपामः, वप्स्यामो वा । सामान्यका अतिदेश होनेपर विशेषका अतिदेश नहीं होगा । अत एव इस स्थलमें लङ् और लिट् नहीं हुआ ॥

२७९१ क्षिप्रवचने लृट् । ३ ।३।१३३॥

क्षिप्रपर्याये उपपदे पूर्वविषये लृट् स्यात् । वृष्टिश्चेत्क्षिप्रमाशु त्वरितं वाऽऽयास्यति शीघ्रं वप्स्यामः । नेति वक्तव्ये लृड्ग्रहणं लुटोऽपि विषये यथा स्यात् । श्वः शीघ्रं वप्स्यामः ॥

२७९१–क्षिप्र पर्याय शब्द अर्थात् क्षिप्र, आशु, त्वरित, शीघ्र, द्रुत, सत्वर इत्यादि यदि उपपद हों, तो पूर्व विषयमें अर्थात् भविष्यत् कालमें लृट् हो । यथा, वृष्टिश्चेत् क्षिप्रम् आशु त्वरितं वा यास्यति शीघ्रं वप्स्यामः । क्षिप्रवचने न ऐसा सूत्र करनेपर कार्यकी सिद्धि रहते जो लृड्ग्रहण किया इससे लुट्के विषयमें भी लृट् होताहै । यथा, श्वः शीघ्रं वप्स्यामः ॥

२७९२ आशंसावचने लिङ्।३।३।१३४।

आशंसावाचिन्युपपदे भविष्यति लिङ् स्यान्न तु भूतवत् । गुरुश्चेदुपेयादाशंसेऽधीयीय । आशंसे क्षिप्रमधीयीय ॥

२७९२–आशंसावाचक उपपद रहते भविष्यत् कालमें लिङ् हो अतीतके और वर्त्तमानके समान प्रत्यय न हो । यथा, गुरुश्चेदुपेयादाशंसेऽधीयीय आशंसे क्षिप्रमधीयीय ॥

२७९३ नानद्यतनवत्क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः । ३ । ३ । १३५ ॥

क्रियायाः सातत्ये सामीप्ये च लङ्लुटौ न । यावज्जीवमन्नमदाद्दास्यति वा । सामीप्यं तुल्यजातीयेनाव्यवधानम् । येयं पौर्णमास्यतिक्रान्ता तस्याममीनाधित । सोमेनायष्ट । येयममावास्याऽऽगामिनी तस्याममीनाधास्यते । सोमेन यक्ष्यते ॥

२७९३–क्रियाका सातत्य और सामीप्य अर्थ गम्यमान होनेपर लङ् और लुट् नहीं हो । यथा, यावज्जीवमन्नमदाद्दास्यति वा । सामीप्य शब्दका अर्थ तुल्यजातीयके साथ अव्यवधान है । यथा, येयं पौर्णमास्यतिक्रान्ता तस्यामग्नीनाधित । सोमेनायष्ट । येयममावास्यागामिनी तस्यामग्नीनाधास्यते, सोमेन यक्ष्यते ॥

२७९४ भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् । ३ । ३ । १३६॥

भविष्यति काले मर्यादोक्तावस्मिन्प्रविभागेऽनद्यतनवन्न । योयमध्वा गन्तव्य आपाटलिपुत्रात्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र सक्तूनपास्यामः ॥

२७९४–भविष्यत् कालमें मर्यादोक्ति रहते अवरदेशमें विभाग गम्यमान रहते अनद्यतनवत् प्रत्यय नहीं हो (इस सूत्रमें देशकृत मर्यादा जाननी चाहिये)यथा,योऽयमध्वा गन्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र सक्तून्पास्यामः ॥

२७९५ कालविभागे चानहोरात्राणाम् । ३ । ३ । १३७ ॥

पूर्वसूत्रं सर्वमनुवर्तते । अहोरात्रसम्बन्धिनि विभागे प्रतिषेधार्थमिदम् । योगविभाग उत्तरार्थः । योयं वत्सर आगामी तस्य यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे । अनहोरात्राणां किम् । योयं मास आगामी तस्य योऽवरः पञ्चदशरात्रः तत्राध्येतास्महे ॥

२७९५–इस सूत्रमें सम्पूर्ण पूर्व सूत्रकी अनुवृत्ति आती है । भविष्यत् कालमें मर्यादोक्ति रहते अहोरात्र सम्बन्धी विभागमें अनद्यतनवत्प्रत्यय न हो यह निषेध न हो । यह सूत्र अहोरात्रसंबन्धी विभागमें प्रतिषेधके निमित्त है योगविभाग उत्तर सूत्रमें अनुवृत्तिके निमित्त है (इस सूत्रमें कालकृत मर्यादा जाननी चाहिये) योऽयं वत्सर आगामी तस्य यदवरमाग्रहाण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे । अहोरात्रसम्बन्धीय कालविभागमें योऽयं मास आगामी तस्य योऽवरः पञ्चदशरात्रः तत्राध्येतास्महे । ऐसा प्रयोग होगा ॥

२७९६ परस्मिन्विभाषा । ३ ।३।१३८।

अवरस्मिन्वर्ज्यं पूर्वसूत्रद्वयमनुवर्तते । अप्रा-

प्रविभाषेयम् । योयं संवत्सर आगामी तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्राध्येष्यामहे । अध्येतास्महे लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ । ३ । ३।१३९। भविष्यतीत्येव । सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत ॥

२७९६-अतरास्मन् यह अंश परित्याग करके पहिलेके दोनों सूत्रोंकी अनुवृत्ति आती है । भविष्यत् कालमें मर्य्यादोक्ति रहते परमें अहोरात्र सम्बन्धीसे भिन्न कालविभाग रहते अनद्यतनवत्प्रत्यय विकल्प करके हों, यह सूत्र अप्राप्त विभाषा है । यथा, यो ह्ययं संवत्सर आगामी तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्राध्येष्यामहे, अध्येतास्महे । "लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ (२२२९)" इस सूत्रसे भविष्यत् कालमेंही लृङ् होगा, अन्य कालमें नहीं होगा । सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत् । अच्छी वर्षा होगी तो सुकाल होगा ॥

२७९७ भूते च । ३ । ३ । १४० ॥

पूर्वसूत्रं संपूर्णमनुवर्तते ॥

२७९७-इस स्थानमें सम्पूर्ण पूर्व सूत्रकी अनुवृत्ति आती है, भूत कालमें क्रियाकी अनिष्पत्ति होनेपर हेतु और हेतुमद्भाव होनेपर लृङ् होगा ॥

२७९८ वोताप्योः । ३ । ३ । १४१ ॥

वा आ उताप्यांः । उताप्योरित्यतः प्राग्भूते लिङ्निमित्ते लृङ् वेत्यधिक्रियते । पूर्वसूत्रं तु उताप्योरित्यादौ प्रवर्तते इति विवेकः ॥

२७९८-"वा आ उताप्योः" इस स्थानमें ऐसा पदच्छेद होगा । "उताप्योः" इस सूत्रके पूर्वतक भूत लिङ्निमित्ते लृङ् वा इसका अधिकार है । "उताप्योः समर्थयोः" इसको लेकर "इच्छार्थेभ्यो विभाषा०" इस सूत्रतक "भूते च" इस पूर्व सूत्रका अधिकार जानना चाहिये ॥

२७९९ गर्हायां लडपिजात्वोः । ३ । ३ । १४२ ॥

आभ्यां योगे लट् स्यात् कालत्रये गर्हायाम् । लुङादीनपवादत्वादयं बाधते । अपि जायां त्यजसि जातु गणिकामाधत्से गर्हितमेतत् ॥

२७९९-अपि और जातु शब्दके योगमें गर्हा अर्थमें तीनों कालमें लट् हो । परत्वके कारण लुङादिककी यह सूत्र बाधता है । अपि जायां त्यजसि, जातु गणिकामाधत्से गर्हितमेतत् । क्या तूने स्त्री त्यागी है गणिका रक्खी है यह निन्दित है तीनों कालोंमें यह बात लगा लेनी ॥

२८०० विभाषा कथमि लिङ् च ३ । ३ । १४३ ॥

गर्हायामित्येव । कालत्रये लिङ् चाल्लट् । कथं धर्मं त्यजेस्त्यजसि वा । पक्षे कालत्रये लकाराः । अत्र भविष्यति नित्यं लृङ् भूते वा । कथं नाम तत्रभवान् धर्ममत्यक्ष्यत् ॥

२८००-कथम् शब्दके योगमें तीनों कालोंमें गर्हा अर्थ होनेपर विकल्प करके लिङ् हो । और चकारनिर्देशके कारण लट् भी हो । यथा, कथं धर्मं त्यजेः त्यजसि वा । पक्षमें तीनों कालोंमें विहित जो सम्पूर्ण लकार ये समस्त ही होंगे । इस स्थानमें भविष्यत् कालमें नित्य और भूतकालमें विकल्प करके लृङ् होगा । कथं नाम तत्र भवान् धर्ममत्यक्षत् । श्रीमान् आपने कैसे धर्मको त्यागन किया ॥

२८०१ किंवृत्ते लिङ्लृटौ ।३।३।१४४।

गर्हायामित्येव । विभाषा तु नानुवर्तते । कः कतरः कतमो वा हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा । लृङ् प्राग्वत् ॥

२८०१-किंशब्द निष्पन्न शब्द उपपद होनेपर गर्हा अर्थमें तीनों कालोंमें लिङ् और लृट् हो । इस स्थानमें गर्हामात्रकी ही अनुवृत्ति होगी, विभाषाकी अनुवृत्ति भाष्यकारादिकी व्याख्याके बलसे नहीं होगी । यथा, कः कतरः कतमो वा हरिं निन्देत्, निन्दिष्यति वा । पूर्ववत् क्रियाकी अनिष्पत्ति अर्थ होनेपर भविष्यत् कालमें नित्य और भूतकालमें विकल्प करके लृङ् होगा ॥

२८०२ अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि । ३ । ३ । १४५ ॥

गर्हायामिति निवृत्तम् । अनवक्लृप्तिरसंभावना । अमर्षोऽक्षमा । न संभावयामि न मर्षये वा भवान् हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा । कः कतरः कतमो वा हरिं निन्देत् । निन्दिष्यति वा । लृङ् प्राग्वत् ॥

२८०२-इस स्थानमें गर्हायां इस पदकी निवृत्ति हुई अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ होनेपर तथा किंशब्दसे निष्पन्न शब्द उपपद होनेपर भी और न होनेपर तीनों कालोंमें लिङ् और लृट् हो । अनवक्लृप्ति शब्दसे असम्भावना और अमर्ष शब्दसे अक्षमा समझना । न सम्भावयामि, न मर्षये वा भवान् हरिं निन्देत् । निन्दिष्यति वा । कः कतरः कतमो वा हरिं निन्देत् । निन्दिष्यति वा । लृङ् पूर्ववत् क्रियाकी अनिष्पत्ति होनेपर भविष्यत्कालमें नित्य और भूतकालमें विकल्प करके लृङ् होगा ॥

२८०३ किंकिलास्त्यर्थेषु लृट् । ३ । ३ । १४६ ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरित्येतद्गर्हायां चेति यावदनुवर्तते । किंकिलेति समुदायः क्रोधद्योतक उपपदम् । अस्त्यर्थाः अस्तिभवतिविद्यतयः । लिङोऽपवादः । न श्रद्दधे न मर्षये वा किंकिल त्वं शूद्रान्नं भोक्ष्यसे । अस्ति भवति विद्यते वा शूद्रीं गमिष्यसि । अत्र लृङ् न ॥

२८०३-अनवक्लृप्त्यमर्षयोः इस पदकी अनुवृत्ति "गर्हायां च" इस सूत्रके पूर्वतक होतीहै । किंकिल शब्द और अस्त्यर्थ शब्द उपपद होनेपर अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थमें तीनों कालोंमें लृट् हो । किंकिल शब्द क्रोधवाचक है । अस्ति, भवति, विद्यते यह सम्पूर्ण ही अस्त्यर्थ हैं । यह लिङ्का अपवाद है । न श्रद्दधे, न मर्षये वा किंकिल त्वं शूद्रान्नं भोक्ष्यसे । अस्ति भवति विद्यते वा शूद्रीं गमिष्यसि । इस स्थानमें लङ् नहीं होगा ॥

२८०४ जातुयदोर्लिङ् । ३ । ३ । १४७ ॥

यदायद्योरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ लटोऽपवादः । जातु यद्यदा यदि वा त्वादृशो हरिं निन्देन्नावकल्पयामि न मर्षयामि । लङ् प्राग्वत् ॥

२८०४-जातु और यत् शब्दके योगमें अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ होनेपर तीनों कालोंमें लिङ् हो ॥

'यदायद्योरुपसंख्यानम्' अर्थात् यदा और यदि शब्दके योगमें भी लिङ् हो ऐसा कहना चाहिये * यह सूत्र लट्का अपवाद है । जातु, यद्यदा, यदि वा त्वादृशो हरिं निन्देन्नावकल्पयामि न मर्षयामि, पूर्ववत् लङ् होगा । अर्थात् क्रियाका अनिष्पत्ति अर्थ होनेपर भविष्यत्कालमें नित्य और भूतकालमें विकल्प करके लङ् होगा ॥

२८०५ यच्चयत्रयोः । ३ । ३ । १४८ ॥

यच्च यत्र वा त्वमेवं कुर्याः न श्रद्दधे न मर्षयामि ॥

२८०५-यच्च और यत्र शब्दके योगमें अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ होनेपर तीनों कालोंमें लिङ् हो । (यह योगविभाग उत्तर सूत्रमें यच्च और यत्र शब्दकी ही अनुवृत्ति लानेके निमित्त है) यथा, यच्च, यत्र, वा त्वमेवं कुर्याः । न श्रद्दधे न मर्षयामि । क्रियाकी अनिष्पत्ति होनेपर भविष्यत्कालमें नित्य और भूतकालमें विकल्प करके लङ् हो ॥

२८०६ गर्हायां च । ३ । ३ । १४९ ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरिति निवृत्तम् । यच्चयत्रयोर्योगे गर्हायां लिङेव स्यात् । यच्च यत्र वा त्वं शूद्रं याजयेः । अन्याय्यं तत् ॥

२८०६-इस स्थलमें अनवक्लृप्त्यमर्षयोः इस पदकी निवृत्ति हुई । यच्च और यत्र शब्दके योगमें लिङ् ही होगा । अन्य लकार नहीं होगा; यथा, यच्च यत्र वा त्वं शूद्रं याजयेः । अन्याय्यं तत् ॥

२८०७ चित्रीकरणे च । ३ । ३ । १५० ॥

यच्च यत्र वा त्वं शूद्रं याजयेः । आश्चर्यमेतत् ॥

२८०७-यच्च और यत्र शब्दके योगमें चित्रीकरण गम्यमान रहते धातुके उत्तर लिङ् हो । यथा, यच्च यत्र वा त्वं शूद्रं याजयेः । आश्चर्यमेतत् ।

२८०८ शेषे लृडयदौ । ३ । ३ । १५१ ॥

यच्चयत्राभ्यामन्यस्मिन्नुपपदे चित्रीकरणे गम्ये धातोर्लृट् स्यात् । आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति । अयदौ किम् । आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत ॥

२८०८-यच्च, यत्र और यदि शब्द भिन्न शब्द उपपद होनेपर चित्रीकरण अर्थ गम्यमान होनेपर धातुके उत्तर तीनों कालोंमें लृट् हो, आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति । यदि शब्द भिन्न क्यों कहा ? आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत, इस स्थानमें लृट् नहीं हुआ ॥

२८०९ उताप्योः समर्थयोर्लिङ् । ३ । ३ । १५२ ॥

बाढमित्यर्थेऽनयोस्तुल्यार्थता । उत अपि वा हन्यादघं हरिः । समर्थयोः किम् । उत दण्डः पतिष्यति । अपिधास्यति द्वारम् । प्रश्नः प्रच्छादनं च गम्यते । इतः प्रभृति लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ भूतेपि नित्यो लङ् ॥

२८०९-दृढार्थमें दोनोंकी तुल्यार्थता जाननी चाहिये । तुल्यार्थक अपि और उत शब्दके योगमें तीनों कालोंमें धातुके उत्तर लिङ् हो, उत अपि वा हन्यादघं हरिः । समर्थयोः इस पदको सूत्रमें क्यों किया उत दंडः पतिष्यति अपिधास्यति द्वारम् । यहां लिङ् न हुआ इस स्थानमें प्रश्न और प्रच्छादन अर्थ जानना चाहिये इस सूत्रसे लेकर आगामी सूत्रोंसे हेतु और हेतुमद्भाव विषयमें क्रियाका अनिष्पत्ति अर्थ गम्यमान होनेपर भूतकालमें भी नित्य लिङ् होगा ॥

२८१० कामप्रवेदनेऽकच्चिति । ३ । ३ । १५३

स्वाभिप्रायाविष्करणे गम्यमाने लिङ् स्यान्न तु कच्चिति । कामो मे भुञ्जीत भवान् । अकच्चितीति किम् । कच्चिज्जीवति ॥

२८१०-स्वाभिप्रायके आविष्करण अर्थ गम्यमान होनेपर तीनों कालोंमें धातुके उत्तर लिङ् हो, किन्तु कच्चित् शब्द उपपद होनेपर न हो, कामो मे भुञ्जीत भवान् । जिस स्थानमें कच्चित् शब्दका योग होगा उस स्थानमें कच्चित् जीवति इस स्थलमें लिङ् नहीं हुआ ॥

२८११ सम्भावनेऽलमिति चेत्सिद्धाप्रयोगे । ३ । ३ । १५४ ॥

अलमर्थोऽत्र प्रौढिः । सम्भावनमित्यलमिति च प्रथमया सप्तम्या च विपरिणम्यते । सम्भावनेऽर्थे लिङ् स्यात्तच्चेत्सम्भावनमलमिति सिद्धाप्रयोगे सति । अपि गिरिं शिरसा भिन्द्यात् । सिद्धाप्रयोगे किम् । अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति ॥

२८११-यदि अलमर्थ यहां प्रौढि है सम्भावने और अलम् इन दोनों पदोंकी आवृत्ति करके द्वितीय उक्त पदोंके मध्यमें सम्भावने यह सप्तम्यन्तको प्रथमाके साथ विपरिणाम किया। अलं यह प्रथमान्तको सप्तम्यन्तके साथ विपरिणाम किया। क्रियामें योग्यतानिश्चयका नाम सम्भावन है, सम्भावन अर्थमें

लिङ् हो वह सम्भावन समर्थ यदि हो सिद्ध है अप्रयोग जिसका ऐसा अलं रहते अर्थात् अलमर्थ रहते अलं शब्द का प्रयोग न रहते लिङ् हो । यथा, अपि गिरिं शिरसा भिन्द्यात् । सिद्धाप्रयोगे इस पदको सूत्रमें क्यों किया अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति । इस स्थलमें लिङ् नहीं हुआ ॥

२८१२ विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि । ३ । ३ । १५५ ॥

पूर्वसूत्रमनुवर्तते । सम्भावनेऽर्थे धातावुपपदे उक्तेऽर्थे लिङ् वा स्यात् न तु यच्छब्दे । पूर्वेण नित्ये प्राप्ते वचनम् । सम्भावयामि भुञ्जीत भोक्ष्यते वा भवान् । अयदि किम् । सम्भावयामि यद्भुञ्जीथास्त्वम् ॥

२८१२-पूर्वसूत्रकी अनुवृत्ति आती है । संभावनार्थक धातु उपपद होनेपर उक्त अर्थमें विकल्प करके लिङ् हो । यत् शब्दके योगमें नहीं हो, पूर्व सूत्रसे नित्य प्राप्ति रहते विकल्प विधानके निमित्त यह भिन्न सूत्र किया है । यथा, सम्भावयामि भुञ्जीत, भोक्ष्यते वा भवान् । अयदि यह पद सूत्रमें क्यों किया सम्भावयामि यत् भुञ्जीथास्त्वम् । इस स्थलमें नहीं हुआ ॥

२८१३ हेतुहेतुमतोर्लिङ् । ३।३।१५६॥

वा स्यात् । कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात् । कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति ॥ भविष्यत्येवेष्यते ॥ * ॥ नेह । हन्तीति पलायते ॥

२८१३-हेतु और हेतुमान् अर्थ गम्यमान होनेपर भविष्यत्कालमें धातुके उत्तर विकल्प करके लिङ् हो । यथा, कृष्णं नमेचेत् सुखं यायात् । कृष्णं नंस्यति चेत् सुखं यास्यति ।

भविष्यत्कालमें ही होगा * अन्यत्र लिङ् न होगा । इस कारण "हन्तीति पलायते" इस स्थलमें नहीं हुआ ॥

२८१४ इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ । ३ । ३ । १५७ ॥

इच्छामि भुञ्जीत भुङ्क्तां वा भवान् । एवं कामये प्रार्थये इत्यादियोगे बोध्यम् ॥ कामप्रवेदन इति वक्तव्यम्॥*॥ नेह । इच्छन् करोति॥

२८१४-इच्छार्थ धातु उपपद होनेपर धातुके उत्तर लिङ् और लोट् हो । यथा इच्छामि भुञ्जीत । भुङ्क्तां वा भवान् । इसी प्रकार कामयते प्रार्थयते इत्यादिके योगमें भी होगा ।

काम प्रवेदन अर्थात् स्वाभिप्रायाविष्करण अर्थ गम्यमान होनेपर धातुके उत्तर लिङ् और लोट् हो * इस कारण इच्छन करोति इस स्थानमें नहीं हुआ ॥

२८१५ लिङ् च । ३ । ३ । १५९ ॥

समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषूपपदेषु लिङ् । भुञ्जीयेतीच्छति ॥

२८१५-समानकर्तृक इच्छार्थ धातु उपपद होनेपर धातुके उत्तर लिङ् हो, यथा, भुंजीय इति इच्छति ॥

२८१६ इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने । ३ । ३ । १६० ॥

लिङ् स्यात्पक्षे लट् । इच्छेत् । इच्छति । कामयेत । कामयते । विधिनिमन्त्रणेति लिङ् । विधौ-यजेत । निमन्त्रणे-इह भुञ्जीत भवान् । आमन्त्रणे-इहासीत । अधीष्टे-पुत्रमध्यापयेद्भवान् । संप्रश्ने-किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम् । प्रार्थने-भो भोजनं लभेय । एवं लोट् ॥

२८१६-इच्छार्थ धातुके उत्तर वर्तमानकालमें विकल्प करके लिङ् हो, पक्षमें लट् होगा । यथा, इच्छेत् । इच्छति । कामयेत । कामयते । "विधिनिमंत्रणा० २२०८" इस सूत्रसे लिङ् होताहै । विधि विषयमें उदाहरण यथा, यजेत । निमंत्रण विषयमें उदाहरण यथा, इह भुंजीत भवान् । आमंत्रण विषयमें उदाहरण यथा, इहासीत । अधीष्ट विषयमें उदाहरण यथा, पुत्रमध्यापयेद्भवान् । संप्रश्न विषयमें यथा, किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम् । प्रार्थना विषयमें यथा, भो भोजनं लभेय । इसी प्रकार लोट् भी होगा ॥

२८१७ प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च । ३ । ३ । १६३ ॥

प्रैषो विधिः । अतिसर्गः कामचारानुज्ञा । भवता यष्टव्यम् । भवान्यजताम् । चकारेण लोटोऽनुकर्षणं प्राप्तकालार्थम् ॥

२८१७-प्रैष अर्थात् विधि, अतिसर्ग अर्थात् कामचारानुज्ञा । विधि अर्थमें कामचारानुज्ञा अर्थमें प्राप्तकाल अर्थमें धातुके उत्तर कृत्य और लोट् हो । यथा, भवता यष्टव्यम् । भवान् यजताम् । चकारसे लोट्का अनुकर्षण प्राप्तकाल अर्थमें होनेके लिये कियाहै ॥

२८१८ लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके । ३ । ३ । १६४ ॥

प्रैषादयोऽनुवर्तन्ते । मुहूर्तादूर्ध्वं यजेत यजताम् यष्टव्यम् ॥

२८१८-इस सूत्रमें प्रैषादिककी अनुवृत्ति हुई । प्रैष अतिसर्ग और प्राप्तकाल अर्थमें यदि ऊर्ध्वमौहूर्तिक अर्थ गम्यमान हो तो धातुके उत्तर लिङ् हो, मुहूर्तादूर्ध्वं यजेत यजताम् यष्टव्यम् ॥

२८१९ स्मे लोट् । ३ । ३ । १६५ ॥

पूर्वसूत्रस्य विषये । लिङः कृत्यानां चापवादः । ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् यजतां स्म ॥

२८१९-यह सूत्र पूर्वसूत्रके विषयमें लिङ् और कृत्य प्रत्ययका अपवाद है, स्म शब्दके योगमें ऊर्ध्व मौहूर्तिक अर्थ गम्यमान हो तो धातुके उत्तर लोट् हो । यथा, ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् यजतां स्म ॥

२८२० अधीष्टे च । ३ । ३ । १६६ ॥

स्मे उपपदेऽधीष्टे लोट् स्यात् । त्वं स्म अध्यापय ॥

२८२०–स्म शब्द उपपद होनेपर अधीष्ट अर्थात् सत्कारपूर्वक व्यापार अर्थ होनेपर धातुके उत्तर लोट् हो यथा, त्वं स्म अध्यापय ॥

२८२१ लिङ्यदि । ३ । ३ । १६८ ॥

यच्छब्दे उपपदे कालसमयवेलासु च लिङ् स्यात् । कालः समयो वेला वा यद्भुञ्जीत भवान् ॥

२८२१–यत् शब्द उपपद होनेपर और काल समय वेला इन तीनों शब्दोंके उपपद होनेपर धातुके उत्तर लिङ् हो । यथा, कालः समयो वेला वा यद् भुंजीत भवान् ॥

२८२२ अर्हे कृत्यतृचश्च ।३ ।३।१६९॥

चाल्लिङ् । त्वं कन्यां वहेः ॥

२८२२–योग्य अर्थ होनेपर धातुके उत्तर कृत्य और तृच् प्रत्यय हों, चकारसे लिङ् भी हो । यथा, त्वं कन्यां वहेः ॥

२८२३ शकि लिङ् च ।३ । ३।१७२॥

शक्तौ लिङ् स्यात् चात्कृत्याः।भारं त्वं वहेः॥ माङि लुङ् । ३ । ३ । १७५ ॥ मा कार्षीः । कथं मा भवतु मा भविष्यतीति । नायं माङ् किंतु माशब्दः ॥

२८२३–शक्त अर्थ होनेपर धातुके उत्तर लिङ् हो, और चकारसे कृत्य प्रत्यय भी हो । यथा, भारं त्वं वहेः । "माङि लुङ् २२१९" इस सूत्रसे मा शब्दके योगमें लुङ् हो, मा कार्षीः । तो–मा भवतु मा भविष्यति ऐसा पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ ? इस स्थानमें यह माङ् शब्द नहीं है, यह मा शब्द है । इस कारण लुङ् नहीं हुआ ।

२८२४ धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः।३।४।१॥

धात्वर्थानां सम्बन्धे यत्र काले प्रत्यया उक्तास्ततोऽन्यत्रापि स्युः । तिङ्वाच्यक्रियायाः प्राधान्यात्तदनुरोधेन गुणभूतक्रियावाचिभ्यः प्रत्ययाः । वसन् ददर्श । भूते लट् । अतीतवासकर्तृकं दर्शनमर्थः । सोमयाज्यस्य पुत्रो भविता । सोमेन यक्ष्यमाणो यः पुत्रस्तत्कर्तृकं भवनम् ॥

२८२४–धात्वर्थके सम्बन्धमें जिस कालमें प्रत्यय उक्त हुए हैं, उससे दूसरे कालमें भी प्रत्यय हों । तिङन्त वाच्यक्रियाके प्राधान्यके कारण उनके अनुरोधसे गुणभूत क्रियावाचीके उत्तर प्रत्यय हों । यथा, "वसन् ददर्श" । इस स्थलमें भूतकालमें लट् हुआहै । अतीतवासकर्तृक दर्शनमर्थः । सोमयाज्यस्य पुत्रो भविता सोमेन यक्ष्यमाणो यः पुत्रस्तत्कर्तृकं भवनम् ॥

२८२५ क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः । ३ । ४ । २ ॥

पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोर्लोट् स्यात्तस्य च हिस्वौ स्तः । तिङामपवादः । तौ च हिस्वौ क्रमेण परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञौ स्तस्तिङ्संज्ञौ च । तध्वमोर्विषये तु हिस्वौ वा स्तः । पुरुषैकवचनसंज्ञे तु नानयोरतिदिश्येते । हिस्वविधानसामर्थ्यात् । तेन सकलपुरुषवचनविषये परस्मैपदिभ्यो हिः कर्तरि । आत्मनेपदिभ्यः स्वो भावकर्मकर्तृषु ॥

२८२५–पौनःपुन्य और भृशार्थ गम्यमान होनेपर धातुके उत्तर लोट् हो।और इस लोट्के स्थानमें हि और स्व आदेश हों। हि और स्व आदेश तिङ्के अपवाद हैं।अर्थात् तिङादि आदेशको बाध करके ये दो ही आदेश होंगे और यह हि और स्व आदेश क्रमसे परस्मैपद और आत्मनेपदसंज्ञक हों और तिङ्संज्ञक हों । त और ध्वम् इन दोनोंके विषयमें हि और स्व विकल्प करके हों । हि और स्व इन दोनोंके विधान बलसे उनके पुरुष और वचनका अतिदेश नहीं होगा । इस कारण सम्पूर्ण पुरुष और सम्पूर्ण वचनोंके विषयमें कर्तामें परस्मैपदी धातुओंके उत्तर हि और भाव कर्ता कर्ममें आत्मनेपदी धातुओंके उत्तर स्व होगा ॥

२८२६ समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ।३।४।३॥

अनेकक्रियासमुच्चये द्योत्ये प्रागुक्तं वा स्यात्॥

२८२६–अनेक क्रियाका समुच्चय होनेपर धातुके उत्तर लोट् और लोट्के स्थानमें हि और स्व आदेश और त और ध्वम् इन दोनोंके विषयमें विकल्प करके हि और स्व आदेश यह सम्पूर्ण पूर्वोक्त कार्य्य विकल्प करके हों ॥

२८२७ यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् । ३ । ४ ।४।

आद्ये लोड्विधाने लोट्प्रकृतिभूत एव धातुरनुप्रयोज्यः ॥

२८२७–"क्रियासमभिहारे॰" इस सूत्रसे विहित जो लोट् उसकी प्रकृतिभूत जो धातु उसका ही अनुप्रयोग होगा ॥

२८२८ समुच्चये सामान्यवचनस्य । ३ । ४ । ५ ॥

समुच्चये लोड्विधौ सामान्यार्थस्य धातोरनुप्रयोगः स्यात् । अनुप्रयोगाद्यथायथं लडादयस्तिबादयश्च । ततः संख्याकालयोः पुरुषविशेषार्थस्य चाभिव्यक्तिः ॥ क्रियासमभिहारे द्वे वाच्ये ॥ * ॥ याहियाहीति याति । पुनःपुनरतिशयेन वा यानं तत्स्यार्थः । एककर्तृकं वर्तमानकालिकं यानं यातीत्यस्य । इति शब्दस्त्वभेदान्वये तात्पर्यं ग्राहयति । एवं यातः । यान्ति । यासि । याथः । याथ । यातयातेति युयं

याथ । याहियाहीत्ययासीत् यास्यति वा । अधीष्वाधीष्वेत्यधीते । ध्वम्विषये पक्षेऽधीध्वमधीध्वमिति यूयमधीध्वे । समुच्चये तु सक्तूपिब धानाः खादेत्यभ्यवहरति । अन्नं भुङ्क्ष्व दाधिकमास्वादयस्वेत्यभ्यवहरते । तध्वमोस्तु पिबत-खादतेत्यभ्यवहरथ । भुङ्ध्वमास्वादयध्वमित्यभ्यवहरध्वे । पक्षे हिस्वौ । अत्र समुच्चीयमानविशेषाणामनुप्रयोगार्थेन सामान्येनाभेदान्वयः । पक्षे सक्तून् पिबति । धानाः खादति । अन्नं भुङ्क्ते । दाधिकमास्वदते । एतेन–

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः ॥ विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ॥ १ ॥

इति व्याख्यातम् । अवस्कन्दनलवनादिरूपा भूतानद्यतनपरोक्षा एककर्तृका अस्वास्थ्यक्रियेत्यर्थात् । इह पुनःपुनश्चस्कन्देत्यादिरर्थ इति तु व्याख्यानं भ्रममूलकमेव । द्वितीयसूत्रे क्रियासमभिहार इत्यस्यानुवृत्तेः । लोडन्तस्य द्वित्वापत्तेश्च । पुरीमवस्कन्देत्यादि मध्यमपुरुषैकवचनमित्यपि केषांचिद् भ्रम एव । पुरुषवचनसंज्ञे इह नेत्युक्तत्वात् ॥

॥ इति लकारार्थप्रक्रिया ॥

२८२८–क्रियाके समुच्चय अर्थमें लोट् विधिमें सामान्यार्थ धातुका अनुप्रयोग हो । अनुप्रयोगके उत्तर यथायोग्य लट् आदि और तिप् आदि होंगे । तब उससे संख्या, काल और पुरुष विशेषार्थका प्रकाश होगा ।

क्रियासमभिहार अर्थमें धातुको द्वित्व हो * यथा, पुनः पुनरतिशयेन याति इस विग्रहमें याहियाहीतियाति ऐसा पद सिद्ध हुआ । पुनःपुनरतिशयेन वा यानम् " यह हि विभक्त्यन्तका अर्थ है । एककर्तृकं वर्त्तमानकालिकं यानम्, यह याति इस पदका अर्थ है । इति शब्द अभेदान्वयमें तात्पर्यग्राहक है । इसी प्रकारसे–यातः । यान्ति । यासि । याथः । याथ । यात । यातेति यूयं याथ, याहियाहीत्ययासीत् यास्यति वा । अधीष्वाधीष्वेत्यधीते । ध्वम् पक्षमें अधीध्वमधीध्वमिति यूयमधीध्वे । समुच्चय विषयमें तो ऐसा होगा । यथा, सक्तून्पिब धानाः खादेत्यभ्यवहरति । अन्नं भुङ्क्ष्व दाधिकमास्वादयस्वेत्यभ्यवहरते । त और ध्वम्का उदाहरण ऐसा होगा । यथा–पिबत–खादतेत्यभ्यवहरथ । भुङ्ध्वमास्वादयध्वमित्यभ्यवहरध्वे । पक्षमें हि और स्व आदेश होगा । इस स्थानमें समुच्चीयमान विशेषको अनुप्रयोगार्थ सामान्यके साथ अभेदान्वय होगा । पक्षमें सक्तून्पिबति । धानाः खादति । अन्नं भुङ्क्ते । दाधिकमास्वदते । इसमें "पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः ॥ विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ॥१ ॥" यह व्याख्यात हुआ । इस स्थलमें अवस्कन्दन लवनादिरूपा भूतानद्यतन परोक्षा एककर्तृक अस्वास्थ्य क्रिया ऐसा अर्थ होगा । इस स्थलमें पुनःपुनश्चस्कन्द इत्यादि अर्थकी जो व्याख्या करी है, वह भ्रममूलक है । कारण कि द्वितीय सूत्रमें क्रियासमभिहारकी अनुवृत्ति नहीं आती है लोडन्तकी द्वित्वरूप आपत्ति भी हो जायगी । पुरीमवस्कन्द इत्यादि पद मध्यम पुरुषका एकवचन है ऐसी जो किसीने व्याख्या करी है वह भी भ्रममूलक है । क्योंकि इस स्थलमें पुरुष वचन संज्ञा नहीं होगी ऐसा उक्त हुआ है ॥

इति श्रीमुरादाबादवास्तव्यमिश्रकुलोत्पन्नपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतौ सिद्धान्तकौमुदीटीकायां संजीविव्याख्यायां तिङन्तकाण्डम् ॥

॥ इति भट्टोजीदीक्षितविरचितायां सिद्धान्तकौमुद्यामुत्तरार्द्धे तिङन्तं समाप्तम् ॥

॥ श्रीः ॥

अथ कृदन्तकृत्यप्रक्रिया।

२८२९ धातोः । ३ । १ । ९१ ॥

आ तृतीयसमाप्तेरधिकारोऽयम् ॥ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् । ३ । १ । ९२ ॥ कृदतिङ् ३ । १ । ९३ ॥

२८२९–तृतीयाध्यायकी समाप्तिपर्यन्त "धातोः" इस पदका अधिकार जानना चाहिये । "तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ७८१" इस सूत्रसे उपपद संज्ञा होगी । (३७४) तिङ्भिन्न जो प्रत्यय उसकी कृत्संज्ञा हो ॥

२८३० वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ।३।१।९४॥

परिभाषेयम् । अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्र्यधिकारोक्तं विना ॥

२८३०–यह पारिभाषिक सूत्र है । यह धात्वधिकारमें असमानरूप अपवाद प्रत्यय स्त्रीलिङ्गाधिकारोक्त प्रत्ययोंको छोडकर अन्य उत्सर्ग शास्त्रका विकल्प करके बाधक होगा ॥

२८३१ कृत्याः । ३ । १ । ९५ ॥

अधिकारोऽयं ण्वुलः प्राक् ॥

२८३१–यहांसे लेकर " ण्वुल्तृचौ २८९५ " सूत्रके पूर्वतक " कृत्याः " इस पदका अधिकार । जानना चाहिये ॥

२८३२ कर्तरि कृत् । ३ । ४ । ६७ ॥

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यादिति प्राप्ते ॥

२८३२–कर्तामें धातुके उत्तर कृत् प्रत्यय हो, इस सूत्रसे सब कृत्संज्ञक प्रत्ययोंकी कर्तामें प्राप्ति होनेपर–॥

२८३३ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः । ३ । ४ । ७० ॥

एते भावकर्मणोरेव स्युः ॥

२८३३–धातुके उत्तर कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव कर्ममें ही हों ॥

२८३४ तव्यत्तव्यानीयरः । ३।१।९६॥

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। तकाररेफौ स्वरार्थौ। एधितव्यम् एधनीयं त्वया। भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वं च । चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया ॥ वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च ॥ * ॥ वसतीति वास्तव्यः॥केलिमर उपसंख्यानम्॥*॥ पचेलिमा माषाः पक्तव्याः। भिदेलिमाः सरलाः भेत्तव्याः। कर्मणि प्रत्ययः॥ वृत्तिकारस्तु कर्मकर्तरि चायमिष्यत इत्याह। तद्भाष्यविरुद्धम्॥

२८३४–धातुके उत्तर कर्ममें और भावमें तव्यत्, तव्य और अनीयर् प्रत्यय हों, तकार और रकारकी इत्संज्ञा स्वरार्थ है । यथा, एधितव्यम्, एधनीयं त्वया । भावमें स्वाभाविक एकवचन और नपुंसकलिङ्ग होगा । चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया ।

वस धातुके उत्तर कर्तामें तव्यत् प्रत्यय हो । वह प्रत्यय णित् हो । वसति इस विग्रहमें वास्तव्यः ऐसा पद सिद्ध हुआ ।

धातुके उत्तर केलिमर प्रत्यय हो । पचेलिमा माषाः पक्तव्याः । भिदेलिमाः सरला भेत्तव्याः । यहां कर्ममें प्रत्यय हुआ "कर्मकर्तरि चायमिष्यते" यह प्रत्यय कर्मकर्तामें इष्ट है ऐसा वृत्तिकारने कहाहै । यह भाष्यविरुद्ध है ॥

२८३५ कृत्यचः । ८ । ४ । २९ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्याच उत्तरस्य कृत्स्थस्य नस्य णत्वं स्यात्। प्रयाणीयम् । अचः किम् । प्रमग्नः ॥ निर्विण्णस्योपसंख्यानम् ॥*॥ अचः परत्वाभावादप्राप्ते वचनम्। परस्य णत्वम्। पूर्वस्य ष्टुत्वम् । निर्विण्णः ॥

२८३५–उपसर्गस्थ निमित्तके और अच् प्रत्याहारके उत्तर जो कृत्प्रत्ययस्थ णकार उसको णत्व हो । प्रयाणीयम्, अचः इस पदको सूत्रमें क्यों किया ? प्रमग्नः इस पदमें भी णत्व हो जायगा ।

निर्विण्ण पदके नकारको णत्व हो । अच्के परे न होनेसे णत्वकी अप्राप्ति होनेपर णत्वार्थ इस वार्तिकका आरम्भ है । इस वार्तिकसे पर नकारको णत्व और पूर्व नकारके स्थानमें ष्टुत्व अर्थात् णकार होगा । निर्विण्णः ॥

२८३६ णेर्विभाषा । ८ । ४ । ३० ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य ण्यन्ताद्विहितो यः कृत्तत्स्थस्य नस्य णो वा स्यात् । प्रयापणीयम्–प्रयापनीयम् । विहितविशेषणं किम्।यका व्यवधाने यथा स्यात् । प्रयाप्यमाणं पश्य । णत्वे दुर उपसर्गत्वं नेत्युक्तम् । दुर्यानम् । दुर्यापनम् ॥

२८३६–उपसर्गस्थ निमित्तके उत्तर ण्यन्तसे विहित जो कृत् तत्स्थ नकारको विकल्प करके णत्व हो,प्रयापणीयम्,प्रयापनीयम्। विहित विशेषणका क्या फल है, मध्यमें यक्व्यवधान होनेपर भी णत्व होगा। एतदर्थ विहित विशेषण है–प्रयाप्यमाणं पश्य। णत्वविधिमें दुर उपसर्गको उपसर्गत्व नहीं होगा यह पूर्वमें कह दियाहै । दुर्यानम् । दुर्यापनम् ॥

२८३७ हलश्चेजुपधात् । ८ । ४ । ३१ ॥

हलादेरिजुपधात्कृन्नस्याचः परस्य णो वा

स्यात् । प्रकोपणीयम्-प्रकोपनीयम् । हलः किम् । प्रोहणीयम् । इजुपधात्किम् । प्रवपणीयम् ॥

२८३७-उपसर्गस्थ निमित्तके उत्तर हलादि इजुपध धातुके और अच्के उत्तर जो कृत् न उसको विकल्प करके णत्व हो । प्रकोपणीयम्, प्रकोपनीयम् । हलादि कहनेसे प्रोहणीयम् । इस स्थलमें नित्य णत्व हुआ । इजुपध कहनेसे प्रवपणीयम् इस स्थलमें भी नित्य णत्व होगा ॥

२८३८ इजादेः सनुमः । ८ । ४ । ३२ ॥

सनुमश्चेद्भवति तर्हि इजादेर्हलन्ताद्विहितो यः कृत्तस्थस्यैव । प्रेङ्खणीयम् । इजादेः किम् । मगि सर्पणे । प्रमङ्गनीयम् । नुम्ग्रहणमनुस्वारोपलक्षणम् । अट्कुप्वाङिति सूत्रेऽप्येवम् । तेनेह न । प्रेन्वनम् । इह तु स्यादेव । प्रोम्भणम् ॥

२८३८-सनुम् धातुके उत्तर जो कृत्स्थ नकारको णत्व हो तो इजादि हलन्त धातुसे विहित जो कृत् तत्स्थ ही नकारको णत्व हो । यथा, प्रेंखणीयम् । जहां इजादि न होगा वहां णत्व न हो । मगि धातुका सर्पण अर्थ समझना। प्रमङ्गनीयम् । नुम् शब्दका ग्रहण अनुसारके उपलक्षणार्थ है। " अटकुप्वाङ् १९७ " इस सूत्रमें भी नुम्ग्रहण अनुस्वारके उपलक्षणार्थ है, इस कारण प्रेन्वनम् इस स्थानमें णत्व नहीं हुआ और प्रोम्भणम् इस स्थानमें णत्व हुआहै ॥

२८३९ वा निंसनिक्षनिन्दाम् । ८ । ४ । ३३ ॥

एषां नस्य णो वा स्यात् कृति परे । प्रणिंसितव्यम्-प्रनिंसितव्यम् ॥

२८३९-कृत् प्रत्यय परे रहते उपसर्गस्थ निमित्तके परे निंस, निक्ष और निन्द धातुके नकारको विकल्प करके णत्व हो, जैसे-प्रणिंसितव्यम्, प्रनिंसितव्यम् ॥

२८४० न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् । ८ । ४ । ३४ ॥

एभ्यः कृत्रस्य णो न । प्रभानीयम् । प्रभवनीयम् ॥ पूञ् एवेह ग्रहणमिष्यते ॥ * ॥ पूङस्तु प्रपवणीयः सोमः ॥ ण्यन्तभादीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ प्रभापनीयम् । कृशाज्ञः शस्य यो वेत्युक्तं णत्वप्रकरणोपरि तद्बोध्यम् । यत्वस्यासिद्धत्वेन शकारव्यवधानान्न णत्वम् । प्रख्यानीयम् ॥

२८४०-उपसर्गस्थ निमित्तके उत्तर भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायी, और वेप् धातुके उत्तर कृत् प्रत्ययस्थ नकारको णत्व न हो । प्रभानीयम् । प्रभवनीयम् । पूञ् धातुका ही इस स्थानमें ग्रहण होगा । पूङ् धातुके उत्तर नकारको णत्व होगा। प्रपवणीयः सोमः ।

णिजन्त भा प्रभृति धातुओंके उत्तर नकारको णत्व न हो। यथा प्रभापनीयम् । असिद्ध काण्डमें क्शाञ्के शकारके स्थानमें विकल्प करके यकार हो यह पूर्व कह आये हैं । यह विधि णत्व प्रकरणके आगे समझना चाहिये । यत्वकी असिद्धि होनेसे शकार व्यवधान होगा, अत एव णत्व नहीं होगा । यथा प्रख्यानीयम् ॥

२८४१ कृत्यल्युटो बहुलम् । ३ । ३ । ११३ ॥

स्नात्यनेन स्नानीयं चूर्णम् । दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः ॥

२८४१-कृत्यसंज्ञक प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय जिस अर्थमें उक्त हुएहैं तद्भिन्न अर्थमें भी वे हों । यथा, स्नात्यनेन इस विग्रहमें स्नानीयम् चूर्णम् । दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः ॥

२८४२ अचो यत् । ३ । १ । ९७ ॥

अजन्ताद्धातोर्यत्स्यात् । चेयम् । जेयम् । अज्ग्रहणं शक्यमकर्तुम् । योगविभागोऽप्येवम् । तव्यदादिष्वेव यतोपि सुपठत्वात् ॥

२८४२-अजन्त धातुके उत्तर यत् प्रत्यय हो । यथा, चेयम्((चिञ्+यत्) जेयम् । इस सूत्रमें अच्का ग्रहण न करना चाहिये, कारण कि तिसका कोई प्रयोजन नहीं है और योगविभागका भी कोई प्रयोजन नहीं है । अत एव " तव्यत्तव्यानीयरः " इस सूत्रमें ही यत् प्रत्ययका भी पाठ करना उचित था ॥

२८४३ ईद्यति । ६ । ४ । ६५ ॥

यति परे आत ईत्स्यात् । गुणः । देयम् । ग्लेयम् ॥ तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्यः ॥ * ॥ तक्यम् । शस्यम् । चत्यम् । यत्यम् । जन्यम् । जनेर्यद्विधिः स्वरार्थः, ण्यतापि रूपसिद्धेः । न च वृद्धिप्रसङ्गः, जनिवध्योश्चेति निषेधात् ॥ हनो वा यद्वधश्च वक्तव्यः ॥ * ॥ वध्यः । पक्षे वक्ष्यमाणो ण्यत् । घात्यः ॥

२८४३-यत् प्रत्यय परे रहते आकारके स्थानमें ईकार हो । पश्चात् धातुको गुण हो । यथा, देयम् । ग्लेयम् ।

" तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्यः" इस वार्तिकसे तक्, शस्, चत्, यत् और जन् धातुके उत्तर यत् प्रत्यय हो । यथा, तक्यम् । शस्यम् । चत्यम् । यत्यम् । जन्यम् । जन धातुके उत्तर यत् प्रत्ययका विधान स्वरार्थ है, क्योंकि ण्यत् प्रत्ययके द्वारा भी जन्यम् पदकी सिद्धि होसकती है, फिर जो पुनर्वार यत् विधि है वह केवल स्वरार्थ है । यदि कहिये ण्यत् विधिमें वृद्धि होजायगी ऐसा कहना उचित नहीं है । क्योंकि "जनिवध्योश्च (२५१२)" इस सूत्रसे वृद्धिका निषेध होताहै * ।

हन् धातुके उत्तर यत् प्रत्यय और वधादेश विकल्प करके हों । यथा, वध्यः । पक्षमें वक्ष्यमाण ण्यत् प्रत्यय होगा यथा, घात्यः ॥

२८४४ पोरदुपधात् । ३ । १ । ९८ ॥

पवर्गान्तादुदुपधाद्यत्स्यात् । ण्यतोऽपवादः ।

शप्यम् । लभ्यम् । नानुबन्धकृतमसारूप्यम् । अतो न ण्यत् । तव्यदादयस्तु स्युरेव ॥

२८४४-पवर्गान्त अकारोपध धातुके उत्तर यत् प्रत्यय हो, यह यत् ण्यत्का अपवाद है । शप्यम् । लभ्यम् । अनुबन्धकृत असारूप्य नहीं होताहै इससे "वा सरूपोऽस्त्रियाम्" इस सूत्रसे विकल्प करके बाधसे ण्यत् प्रत्यय न हुआ तव्यदादिक प्रत्यय तो असरूप होनेसे होतेहैं ॥

२८४५ आङो यि । ७ । १ । ६५ ॥

आङः परस्य लभेर्नुम् स्याद्यादौ प्रत्यये विवक्षिते । नुमि कृतेऽदुपधत्वाभावात् ण्यदेव । आलम्भ्यो गौः ॥

२८४५-आङ्के परे जो लभ धातु तिसको नुम्का आगम हो । यकारादि प्रत्ययकी विवक्षामें नुम् करनेपर अदुपधत्वके अभावके कारण ण्यत् होगा । यथा, आलम्भ्यो गौः॥

२८४६ उपात्प्रशंसायाम् । ७ । १ । ६६ ॥

उपलम्भ्यः साधुः । स्तुतौ किम् । उपलब्धुं शक्य उपलभ्यः ॥

२८४६-प्रशंसा अर्थ होनेपर और यकारादि प्रत्ययकी विवक्षा रहते उपपूर्वक लभ धातुको नुम्का आगम हो, यथा, उपलम्भ्यः साधुः । जिस स्थानमें प्रशंसा न होगी उस स्थानमें उपलब्धुं शक्यः इस विग्रहमें उपलभ्यः पद होगा ॥

२८४७ शकिसहोश्च । ३ । १ । ९९ ॥

शक्यम् । सह्यम् ॥

२८४७-शक धातु और सह धातुके उत्तर यत् प्रत्यय हो । यथा, शक्यम् । सह्यम् ॥

२८४८ गदमदचरयमश्चानुपसर्गे । ३ । १ । १०० ॥

गद्यम् । मद्यम् । चर्यम् । चरेराङि चागुरौ ॥*॥ आचर्यो देशः । गन्तव्य इत्यर्थः । अगुरौ किम् । आचार्यो गुरुः । यमेर्नियमार्थम् । सोपसर्गान्मा भूदिति । प्रयाम्यम् । निपूर्वात्स्यादेव । तेन तत्र न भवेद्विनियम्यमिति वार्तिकप्रयोगात् । एतेनानियम्यस्य नायुक्तिः । त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषेत्यादि व्याख्यातम् । नियमे साधुरिति वा ॥

२८४८-उपसर्ग पूर्वमें न रहते गद, मद, चर और यम् धातुके उत्तर यत् प्रत्यय हो । यथा, गद्यम् । मद्यम् । चर्य्यम् ।

गुरुभिन्न अर्थ होनेपर आङ्पूर्वक चर धातुके उत्तर यत् प्रत्यय हो । आचर्यो देशः । गन्तव्य इत्यर्थः । जिस स्थानमें गुरु अर्थ होगा, उस स्थानमें आचार्यो गुरुः । "गोरदुपधात्" इस सूत्रसे यत् सिद्ध होनेपर भी जो इस सूत्रमें यम् धातुका ग्रहण कियाहै, वह उपसर्गके परे जो यम् धातु तिसके उत्तर यत् प्रत्यय नहीं होगा, इस नियमसे प्रयाम्यम्, यहां यत् प्रत्यय न हुआ । निपूर्वक यम् धातुके उत्तर तो यत् प्रत्यय होवेहीगा । क्योंकि " तेन तत्र न भवेद्विनियम्यम् " इस वार्तिकमें निपूर्वक यम धातुके उत्तर यत् प्रत्यय दृष्ट है इससे अनियम्यस्य नायुक्तिः इसमें और 'त्वया नियम्या ननुदिव्यचक्षुषा' इत्यादि स्थलमें नियम्य यहां यत्प्रत्ययान्त निपूर्वक यम् धातुका प्रयोग सिद्ध हुआ अथवा "नियमे साधुः" इस विग्रहमें "तत्र साधुः" इस सूत्रसे यत् प्रत्यय होनेपर भी उक्त स्थलोंमें नियम्य इस पदकी सिद्धि जाननी चाहिये ॥

२८४९ अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु । ३ । १ । १०१ ॥

वदेर्नञि उपपदे वदः सुपीति यत्क्यपोः प्राप्तयोर्यदेव सोपि गर्हायामेवेत्युभयार्थं निपातनम् । अवद्यं पापम् । गर्ह्ये किम् । अनुद्यं गुरुनाम । तद्धि न गर्ह्यं वचनानर्हं च ॥

आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च ।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥

इति स्मृतेः । पण्या गौः । व्यवहर्तव्येत्यर्थः । पाण्यमन्यत् । स्तुत्यर्हमित्यर्थः । अनिरोधोऽप्रतिबन्धस्तस्मिन्विषये वृङो यत् । शतेन वर्या कन्या । वृत्यान्या ॥

२८४९-गर्ह्य पणितव्य और अनिरोध अर्थमें क्रमसे अवद्य पण्य, वर्य्य यह यत् प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हो । नञ् उपपद होनेपर वद धातुके उत्तर "वदः सुपि क्यप् च २८५४" इस सूत्रसे यत् और क्यप्की प्राप्ति होनेपर यत् ही होगा । यह यत् गर्ह्य अर्थमें ही होगा । इन दोनों नियमके निमित्त यह निपातन है । अवद्यम् पापम् जिस स्थानमें गर्ह्य अर्थ नहीं होगा उस स्थानमें अनुद्यं गुरुनाम यहां यत् प्रत्यय न हुआ । गुरुका नाम गर्हित नहीं है । किन्तु "आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च ॥ श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः " इस स्मृतिके अनुसार तिनका नाम उच्चारण नहीं करते । पण्या गौः अर्थात् व्यवहर्तव्या । इससे अतिरिक्त स्थलमें पाण्यम् अर्थात् स्तुत्यर्ह इस स्थानमें ण्यत् हुआ । अनिरोध शब्दसे अप्रतिबंध अर्थात् आनियम लिया जाताहै इस अर्थमें वृङ् धातुके उत्तर यत् प्रत्यय होगा । यथा, शतेन वर्या कन्या । अन्य अर्थमें वृत्या इस प्रकार होगा ॥

२८५० वह्यं करणम् । ३ । १ । १०२ ॥

वहन्त्यनेनेति वह्यं शकटम् । करणं किम् । वाह्यम् । वोढव्यम् ॥

२८५०-करण कारकका अर्थ होनेपर वह्यं यह यत् प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हो । वहन्त्यनेनेति वह्यम् । शकटम्, यहां यत् प्रत्यय हुआ 'करणं' इस पदको सूत्रमें क्यों किया, वोढव्यम् इस स्थानमें यत् नहीं हुआ ण्यत् हुआहै ॥

२८५१ अर्यः स्वामिवैश्ययोः । ३ । १ । १०३ ।

ऋ गतौ अस्माद्यत् । ण्यतोऽपवादः । अर्यः

स्वामी वैश्यो वा । अनयोः किम् । आर्यो ब्राह्मणः । प्राप्तव्य इत्यर्थः ॥

२८५१-स्वामी और वैश्य अर्थ होनेपर अर्य्य यह यत् प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हो । ऋ धातु गतिमें है इस धातुके उत्तर यत् प्रत्यय हुआ । यह यत् प्रत्यय ण्यत् प्रत्यय का अपवाद है । अर्यः स्वामी वैश्यो वा जिस स्थानमें स्वामी और वैश्य अर्थ नहीं होगा उस स्थानमें आर्य्यो ब्राह्मणः प्राप्तव्यः इत्यर्थः । इस स्थानमें ण्यत् प्रत्यय हुआ ॥

२८५२ उपसर्या काल्या प्रजने । ३ । १ । १०४ ॥

गर्भग्रहणे प्राप्तकाला चेदित्यर्थः । उपसर्या गौः । गर्भाधानार्थं वृषभेणोपगन्तुं योग्येत्यर्थः । प्रजने काल्येति किम् । उपसार्या काशी । प्राप्तव्येत्यर्थः ॥

२८५२-गर्भग्रहणमें प्राप्तकाला स्त्रीपशुव्यक्ति विवक्षित होनेपर उपसर्य्या यह यत् प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हो, सृ धातुके उत्तर निपातनसे यत् प्रत्यय हुआ । उपसर्य्या गौः गर्भाधानार्थं वृषभेणोपगन्तुं योग्या इत्यर्थः । प्रजने काल्या इसको सूत्रमें क्यों किया ? उपसर्य्या काशी । प्राप्तव्या इत्यर्थः । (काशी जाने योग्य है) ॥

२८५३ अजर्यं संगतम् । ३ । १ । १०५ ॥

नञ्पूर्वाज्जीर्यतेः कर्तरि यत्संगतं चेद्विशेष्यम् । न जीर्यतीत्यजर्यम् । तेन संगतमार्येण रामाजर्यं कुरु द्रुतमिति भट्टिः । मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्धेत्यत्र तु संगतमिति विशेष्यमध्याहार्यम् । संगतं किम् । अजरिता कम्बलः । भावे तु संगतकर्तृकेऽपि ण्यदेव । अजार्यं संगतेन ॥

२८५३-यदि सङ्गत यह विशेष्य हो तो यहां यत् नहीं हुआ ण्यत् प्रत्यय हुआहै । इस स्थलमें अजर्यम् यह यत् प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हो नञ् पूर्वक जॄ धातुके उत्तर कर्त्तामें यत् प्रत्यय निपातनसे हुआ । न जीर्य्यति । इस विग्रहमें अजर्य्यम् पद सिद्ध हुआ । जहां संगतं यह विशेष्य नहीं है यथा-"तेन सङ्गतमार्येण रामाजर्य्यं कुरु द्रुतम्" इस भट्टिके प्रयोगमें और "मृगैरजर्य्यं जरसोपदिष्टमदेहबंधाय पुनर्बबंध" । इस स्थलमें सङ्गत यह विशेष्य पदका अध्याहार करना चाहिये । जिस स्थानमें सङ्गत विशेष्य नहीं होगा उस स्थानमें अजरिता कम्बलः यहां यत् न हुआ तृच् हुआहै । संगतकर्तृकभावमें ण्यत् प्रत्यय होगा । अजार्य्यं संगतेन ॥

२८५४ वदः सुपि क्यप् च । ३ । १ । १०६ ॥

उत्तरसूत्रादिह भाव इत्यपकृष्यते । वदेर्भावे क्यप्स्याच्चाद्यत अनुपसर्गे सुप्युपपदे । ब्रह्मोद्यम् ब्रह्मवद्यम् । ब्रह्म वेदः तस्य वदनमित्यर्थः । कर्मणि प्रत्ययावित्येके । उपसर्गे तु ण्यदेव । अनुवाद्यम् । अपवाद्यम् ॥

२८५४-उत्तर सूत्रसे भाव इस पदकी अनुवृत्ति होगी । अनुपसर्ग सुप् अर्थात् सुबन्त पद उपपद होनेपर वद् धातुके उत्तर भावमें क्यप् प्रत्यय हो । चकार निर्देशके कारण यत् प्रत्यय भी हो । ब्रह्मोद्यम्, ब्रह्मवद्यम् । ब्रह्म वेदः । तस्य वदनमित्यर्थः । कोई २ कहते हैं इस स्थानमें कर्म्ममें यह दोनों प्रत्यय हैं । उपसर्ग उपपद होनेपर ण्यत् ही होगा अर्थात् यत् नहीं होगा । अनुवाद्यम् । अपवाद्यम् ॥

२८५५ भुवो भावे । ३ । १ । १०७ ॥

क्यप्स्यात् । ब्रह्मणो भावो ब्रह्मभूयम् । सुपीत्येव । भव्यम् । अनुपसर्ग इत्येव । प्रभव्यम् ॥

२८५५-भावमें भू धातुके उत्तर क्यप् प्रत्यय हो । ब्रह्मणो भावो ब्रह्मभूयम् । इस स्थानमें यदि सुबन्त पद उपपद हो तो ही क्यप् होगा । भव्यम् यहां क्यप् न हुआ । उपसर्गभिन्न ही पद उपपद रहते क्यप् होगा । प्रभव्यम् इस स्थानमें क्यप् नहीं हुआ ॥

२८५६ हनस्त च । ३ । १ । १०८ ॥

अनुपसर्गे सुप्युपपदे हन्तेर्भावे क्यप्स्यात्तकारश्चान्तादेशः । ब्रह्मणो हननं ब्रह्महत्या । स्त्रीत्वं लोकात् ॥

२८५६-अनुपसर्ग सुप् अर्थात् सुबन्त उपपद होनेपर हन् धातुके उत्तर भावमें क्यप् प्रत्यय हो और तकार अन्तादेश हो ब्रह्मणो हननम् ब्रह्महत्या इस स्थलमें लौकिक प्रयोगके कारण स्त्रीत्व हुआ ॥

२८५७ एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् । ३ । १ । १०९ ॥

एभ्यः क्यप्स्यात् ॥

२८५७-इण् धातु और स्तु धातु शास् धातु वृ धातु दृ धातु और जुष् धातु इन सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर क्यप् प्रत्यय हो ॥

२८५८ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् । ६ । १ । ७१ ॥

इत्यः । स्तुत्यः । शास इदङ्हलोः । शिष्यः । वृ इति वृञो ग्रहणं न वृङः । वृत्यः । वृङस्तु वार्या ऋत्विजः । आदृत्यः । जुष्यः । पुनः क्यब्ग्रुक्तिः परस्यापि ण्यतो बाधनार्था । अवश्यस्तुत्यः ॥ शंसिदुहिगुहिभ्यो वेति काशिका ॥ शस्यम् । शंस्यम् । दुह्यम् । दोह्यम् । गुह्यम् । गोह्यम् । प्रशस्यस्य श्रः । ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यत इति सूत्रद्वयबलाच्छंसेः सिद्धम् । इतरयोस्तु मूलं मृग्यम् ॥ आङ्पूर्वादञ्जेः संज्ञायामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ अंजू व्यक्तिम्रक्षणादिषु ।

बाहुलकात् करणे क्यप् । अनिदितामिति नलोपः । आज्यम् ॥

२८५८-पित्संज्ञक कृत् प्रत्यय परे रहते ह्रस्वको तुक्का आगम हो । इत्यः । स्तुत्यः । "शास इदङ्हलोः २४८६" इस सूत्रसे शास् धातुकी उपधाको इत्व हुआ । शिष्यः । वृ पदसे वृञ् धातुका ही ग्रहण होगा, वृङ् धातुका नहीं ग्रहण होगा । वृत्यः । वृङ् धातुका तो वार्य्या ऋत्विजः ऐसा होगा । आदृत्यः । जुष्यः । अनुवृत्ति द्वारा ही क्यप् की प्राप्ति होजाती फिर क्यप्का ग्रहण सूत्रमें क्यों किया पुनः क्यब्रुक्तिसे पर भी जो "ओराव०" यह सूत्र है उसको बाध करके इस सूत्रसे अवश्य उपपद रहते भी क्यप् ही होगा । यथा,अवश्यस्तुत्यः । शंसि, दुहि, गुहि इन सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर क्यप् हो विकल्प करके ऐसा काशिकामें कहा है । शस्यम्, शंस्यम् । दुह्यम्, दोह्यम् । गुह्यम्, गोह्यम् । "प्रशस्यस्य श्रः २००९" "ईड-वन्दवृशंसदुहां ण्यतः २७०२"इन सूत्रोंमें क्यप् और ण्यत् दृष्ट है,इससे शंस् धातुके उत्तर ण्यत् और क्यप् होगा।किन्तु अपर दोनों धातुओंके उत्तर जो ण्यत् और क्यप्का विधान किया है वह अमूलक है ।

आङ् पूर्वादिति० इस वार्त्तिकसे आङ्पूर्वक अंजू धातुके उत्तर संज्ञा अर्थ होनेपर क्यप् हो । अंजू धातु व्यक्ति और म्रक्षणादि अर्थमें है । "कृत्यल्युटो बहुलम्" इस सूत्रसे करणमें क्यप् हुआ । "अनिदिताम्० ४१५"इस सूत्रसे नकारका लोप हुआ, आज्यम् ॥

२८५९ ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः । ३ । १ । ११० ॥

वृत् । वृत्यम् । वृध् । वृध्यम् । क्लृपिचृत्योस्तु कल्प्यम् । चर्त्यम् । तपरकरणं किम् । कॄत् । कीर्त्यम् । अनित्यण्यन्ताश्चुरादय इति णिजभावे ण्यत् । णिजन्तात्तु यदेव ॥

२८५९-क्लृप् और चृत् धातुसे भिन्न ऋकारोपध धातुके उत्तर क्यप् प्रत्यय हो। वृत्-वृत्यम्। वृध-वृध्यम् । क्लृप और चृत् धातुके उत्तर ण्यत् होगा । कल्प्यम् । चर्त्यम् । ऋत् इसमें तपरकरण क्यों किया,कॄत् कीर्त्यम् । इस स्थलमें भी क्यप् हो जायगा इस लिये कियाहै । चुरादि धातु नित्य ण्यन्त नहीं हैं, इस कारण णिच्के अभाव पक्षमें ण्यत् होगा । णिजन्तके उत्तर यत् ही होगा ।

२८६० ई च खनः । ३ । १ । १११ ॥

चात् क्यप् । आद्गुणः । खेयम् । इ चेति ह्रस्वः सुपठः ॥

२८६०-खन् धातुके उत्तर क्यप् हो और नकारके स्थानमें ईकार"आद्गुणः" इस सूत्रसे गुण होगा । यथा, खेयम् । "इ च" ऐसा ह्रस्व पाठ करना उचित है ॥

२८६१ भृञोऽसंज्ञायाम् । ३ । १ । ११२ ॥

भृत्याः कर्मकराः । भर्तव्या इत्यर्थः । क्रिया शब्दोऽयं न तु संज्ञा ॥ समश्च बहुलम् ॥ * ॥ संभृत्याः । संभार्याः । असंज्ञायामेव विकल्पार्थमिदं वार्तिकम् । असंज्ञायां किम् । भार्या नाम क्षत्रियाः । अथ कथं भार्या वधूरिति । इह हि संज्ञायां समजेति क्यपा भाव्यम् । संज्ञापर्युदासस्तु पुंसि चरितार्थः । सत्यम् । बिभर्त्तेर्भृ इति दीर्घान्तात् क्र्यादेर्वा ण्यत् । क्यप्तु भरतेरेव । तदनुबन्धकग्रहणे इति परिभाषया ॥

२८६१-संज्ञाभिन्न अर्थ होनेपर भृ धातुके उत्तर क्यप् हो । भृत्याः कर्मकराः भर्त्तव्याः इत्यर्थः । यह क्रियावाचक शब्द है संज्ञावाचक नहीं ।

'समश्च बहुलम्' इस वार्त्तिकसे संपूर्वक भृ धातुके उत्तर विकल्प करके क्यप् हो । संभृत्याः, संभार्य्याः । संज्ञाभिन्न ही अर्थमें विकल्पार्थ यह वार्तिक है । जिस स्थानमें संज्ञा होगी उस स्थानमें भार्या नाम क्षत्रियाः ऐसी संज्ञा होनेपर यहां ण्यत् हुआ । तो"भार्या वधूः" ऐसा प्रयोग किस प्रकार हुआ ? इस स्थलमें"संज्ञायां समज० ३२७६"इस सूत्रसे क्यप् होनेके योग्य है तो जो संज्ञाविषयमें निषेध किया है वह पुंलिंगमें चरितार्थ है। सत्य है । जुहोत्यादि जो भृ धातु तिसके उत्तर और क्र्यादिगणीय भॄ धातुके उत्तर ण्यत् होनेसे भार्या शब्द वधूवाचक सिद्ध होगा । क्यप् प्रत्यय तो भ्वादिगणपठित भृ धातुके ही उत्तर 'तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य' इस परिभाषाबलसे होगा ॥

२८६२ मृजेर्विभाषा । ३ । १ । ११३ ॥

मृजेः क्यब्वा स्यात्पक्षे ण्यत् । मृज्यः ॥

२८६२-मृज् धातुके उत्तर विकल्प करके क्यप् हो । पक्षमें ण्यत् हो । मृज्यः ॥

२८६३ चजोःकुघिण्यतोः । ७ । ३ । ५२ ॥

चस्य जस्य च कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च प्रत्यये परे । निष्ठायामनिट इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ तेनेह न । गर्ज्यम् । मृजेर्वृद्धिः । मार्ग्यः ॥

२८६३-घित् प्रत्यय और ण्यत् प्रत्यय परे रहते चकार और जकारको कुत्व हो ।

"निष्ठायामनिट इति वक्तव्यम्" अर्थात् निष्ठा प्रत्ययके परे अनिट् धातुका जो चकार और जकार उसके स्थानमें कुत्व हो ऐसा कहना चाहिये * इस कारण इस स्थानमें नहीं हुआ, यथा-गर्ज्यम् । मृज् धातुको वृद्धि होकर मार्ग्यः । यह सिद्ध हुआ ॥

२८६४ न्यङ्क्वादीनां च । ७ । ३ । ५३ ॥

कुत्वं स्यात् । न्यङ्कुः । नावञ्चेरिति उमत्ययः ॥

२८६४-न्यङ्कादि धातुओंको कुत्व हो । न्यंकुः । "नावञ्चेः" इस सूत्रसे उ प्रत्यय हुआ ॥

२८६५ राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः । ३ । १ । ११४ ॥

एते सप्त क्यबन्ता निपात्यन्ते । राज्ञा सोतव्योऽभिषवद्वारा निष्पादयितव्यः । यद्वा । लता-

त्मकः सोमो राजा स सूयते कण्डयतेऽत्रेत्यधिकरणे क्यप् निपातनाद्दीर्घः।राजसूयः।राजसूयम्। अर्धर्चादिः। सरत्याकाशे सूर्यः। कर्तरि क्यप्। निपातनादुत्त्वम्। यद्वा षू प्रेरणे तुदादिः। सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति क्यपो रुट्। मृषोपपदाद्वदेः कर्मणि नित्यं क्यप्। मृषोद्यम्। विशेष्यनिघ्नोऽयम्। उच्छ्रायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः। रोचते रुच्यः। गुपेरादेः कुत्वं च संज्ञायाम्। सुवर्णरजतभिन्नं धनं कुप्यम्। गोप्यमन्यत्। कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते कृष्टपच्याः कर्मकर्तरि। शुद्धे तु कर्मणि कृष्टपाक्याः। न व्यथतेऽव्यथ्यः॥

२८६५–राजसूय, सूर्य, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य और अव्यथ्य यह सात क्यप्प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हों। राजा सोतव्योऽभिषवद्वारा निष्पादयितव्यः। अथवा लतात्मकः सोमो राजा वह सूयते कण्डयतेऽत्र इस विग्रहमें अधिकरणमें क्यप् और निपातनके कारण दीर्घ होकर राजसूयः, राजसूयम् पद हुआ, यह अर्धर्चादिगण पठित है। सरति आकाशे इस विग्रहमें सूर्यः। सृ धातुके उत्तर कर्तामें क्यप् और निपातनसे उत्व हुआहै। उसके रपर होनेपर "हलिच" इस सूत्रसे दीर्घ होगा यद्वा षू धातु प्रेरणार्थमें है, यह तुदादि गणीय है। "सुवति कर्म्मणि लोकं प्रेरयति" इस विग्रहमें क्यप्के रुडागम करनेपर सूर्यः यह पद सिद्ध हुआ। मृषोपपद वद धातुके उत्तर कर्म्ममें नित्य क्यप् हो। मृषोद्यम्। यह पद विशेष्यनिघ्न अर्थात् विशेष्यानुयायी है। "उच्छ्रायसौन्दर्य्यगुणाः मृषोद्याः" रोचते इस विग्रहमें रुच्यः। संज्ञा होनेपर गुप् धातुके आदि वर्ण अर्थात् गकारके स्थानमें कुत्व हो। सुवर्ण और रजतसे भिन्न धनको कुप्य कहतेहैं। अन्यत्र गोप्यम् ऐसा रूप होगा। "कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते" इस विग्रहमें कृष्टपच्याः। यह कर्मकर्तामें होगा। केवल कर्म्ममें कृष्टपाक्याः ऐसा होगा। "नव्यथते" इस विग्रहमें अव्यथ्यः पद सिद्ध हुआ॥

२८६६ भिद्योद्ध्यौ नदे। ३।१।११५॥

भिदेरुज्झेश्च क्यप्। उज्झेर्धत्वं च। भिनत्ति कूलं भिद्यः। उज्झत्युदकमुद्ध्यः। नदे किम्। भेत्ता। उज्झिता॥

२८६६–नद अर्थ होनेपर भिद्य और उद्ध्य यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों। भिद धातुसे और उज्झ धातुसे क्यप् हो और उज्झ धातुको धकार अन्तादेश हो। 'भिनत्ति कूलम्' इस विग्रहमें भिद्यः। उज्झत्युदकमुद्ध्यः। जिस स्थानमें नद नहीं होगा, उस स्थानमें भेत्ता। उज्झिता। ऐसा पद सिद्ध होगा॥

२८६७ पुष्यसिध्यौ नक्षत्रे।३।१।११६॥

अधिकरणे क्यन्निपात्यते। पुष्यन्त्यस्मिन्नर्थाः पुष्यः। सिध्यन्त्यस्मिन्सिध्यः॥

२८६७–नक्षत्र अर्थ होनेपर पुष्यः और सिध्यः यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों। अधिकरणमें क्यप् प्रत्यय निपातनसे सिद्ध हो। पुष्यन्त्यस्मिन्नर्थाः पुष्यः। सिध्यन्त्यस्मिन्सिध्यः॥

२८६८ विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु। ३। १। ११७॥

पूङ्नीञ्जिभ्यः क्यप्। विपूयो मुञ्जः। रज्ज्वादिकरणाय शोधयितव्य इत्यर्थः। विनीयः कल्कः। "पिष्ट औषधिविशेष इत्यर्थः"। पापमिति वा। जित्यो हलिः बलेन कृष्टव्य इत्यर्थः। कृष्टसमीकरणार्थं स्थूलकाष्ठम्। अन्यत्तु विपव्यम्। विनेयम्। जेयम्॥

२८६८–मुञ्ज, कल्क, हल यह सम्पूर्ण अर्थ होनेपर क्रमसे विपूय, विनीय, जित्य यह सम्पूर्ण पद निपातनसे सिद्ध हों। अर्थात् पूङ् धातु णीञ् धातु और जि धातु इन संपूर्ण धातुओंके उत्तर निपातनसे क्यप् प्रत्यय हो। विपूयो मुञ्जः। रज्ज्वादिकरणाय शोधयितव्यः इत्यर्थः। विनीयः कल्कः पिष्ट औषधिविशेषः इत्यर्थः। पापम् इति वा। जित्यो हलिः, अर्थात् बलपूर्वक कृष्टव्य। जोती हुई भूमिको समान करनेके निमित्त स्थूल काष्ठ विशेषको जित्य कहतेहैं। जिस स्थानमें मुञ्जादि अर्थ नहीं होगा, उस स्थलमें, विपव्यम्। विनेयम्। जेयम्। इस प्रकारसे होगा॥

२८६९ प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः। ३।१। ११८॥

छन्दसीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ प्रतिगृह्यम्। अपिगृह्यम्। लोके तु प्रतिग्राह्यम्।अपिग्राह्यम्॥

२८६९–प्रतिपूर्वक और अपिपूर्वक ग्रह धातुके उत्तर क्यप् प्रत्यय हो।

वह "छन्दसीति वक्तव्यम्" अर्थात् वेदमें प्रतिपूर्वक और अपिपूर्वक ग्रह धातुके उत्तर क्यप् प्रत्यय हो * यथा, प्रतिगृह्यम्। अपिगृह्यम्। लौकिक प्रयोगमें प्रतिग्राह्यम्। अपिग्राह्यम्। यह पद होंगे॥

२८७० पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च। ३। १। ११९॥

अवगृह्यम्। प्रगृह्यं पदम्।अस्वैरी परतन्त्रः। गृह्यकाः शुकाः। पञ्जरादिबन्धनेन परतन्त्रीकृता इत्यर्थः। बाह्यायां ग्रामगृह्या सेना। ग्रामबहिर्भूतेत्यर्थः। स्त्रीलिंगनिर्देशात्पुन्नपुंसकयोर्न। पक्षे भवः पक्ष्यः। दिगादित्वाद्यत्। आर्यैर्गृह्यते आर्यगृह्यः। तत्पक्षाश्रित इत्यर्थः॥

२८७०–पद, अस्वैरि, बाह्य और पक्ष्य अर्थमें धातुके उत्तर क्यप् प्रत्यय हो। अवगृह्यम्। प्रगृह्यम् पदम्। अस्वैरी पदसे परतंत्र अर्थ समझना।गृह्यकाः शुकाः पञ्जरादिबंधनेन परतंत्रीकृता इत्यर्थः।बाह्य यथा, ग्रामगृह्या सेना ग्रामबहिर्भूता इत्यर्थः। स्त्रीलिङ्गनिर्देशके कारण पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिंग नहीं होगा। पक्षे भवः पक्ष्यः। दिगादिगण पठितत्वके कारण यत् प्रत्यय हुआ।

"आर्यैर्गृह्यते" इस विग्रहमें आर्यगृह्यः तत्पक्षाश्रितः इत्यर्थः ॥

२८७१ विभाषा कृवृषोः ।३।१।१२०॥

क्यप्स्यात् । कृत्यम् । वृष्यम् । पक्षे ॥

२८७१-कृ और वृष धातुके उत्तर विकल्प करके क्यप् हो। कृत्यम्। वृष्यम्। पक्षमें कैसा होगा, परसूत्रमें दिखावेंगे ॥

२८७२ ऋहलोर्ण्यत् । ३ ।१। १२४ ॥

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत्स्यात् । कार्यम् । वर्ष्यम् ॥

२८७२-ऋवर्णान्त धातु और हलन्त धातुके उत्तर ण्यत् प्रत्यय हो। यथा, कार्यम्। वर्ष्यम्।

२८७३ युग्यं च पत्रे । ३। १ ।१२१॥

पत्रं वाहनम् । युग्यो गौः । अत्र क्यप् कुत्वं च निपात्यते ॥

२८७३-पत्र अर्थात् वाहन अर्थ होनेपर युग्य यह पद निपातनसे सिद्ध हो। यथा, युग्यो गौः। इस स्थलमें क्यप् और कुत्व निपातनसे करतेहैं ॥

२८७४ अमावस्यदन्यतरस्याम् । ३ । १ । १२२ ॥

अमोपपदाद्वसेरधिकरणे ण्यत् । वृद्धौ सत्यां पाक्षिको ह्रस्वश्च निपात्यते । अमा सह वसतोऽस्यां चन्द्रार्कावमावास्या-अमावस्या । ऋहलोर्ण्यत् । चजोरिति कुत्वम् । पाक्यम् ॥ पाणौ सृजेर्ण्यद्वाच्यः ॥ * ॥ ऋदुपधलक्षणस्य क्यपोऽपवादः । पाणिभ्यां सृज्यते पाणिसर्ग्या रज्जुः ॥ समवपूर्वाच्च ॥ * ॥ समवसर्ग्या ॥

२८७४-अमा शब्द उपपद होनेपर वस् धातुके उत्तर अधिकरणमें ण्यत् प्रत्यय हो। वृद्धि होनेपर पाक्षिक ह्रस्व निपातनसे हुआ। अमा सह वसतेऽस्यां चन्द्राकौं अमावास्या, अमावस्या, " ऋहलोर्ण्यत् २८७२ " इस सूत्रसे ण्यत् प्रत्यय हुआ "चजोः २८६३ " इस सूत्रसे कुत्व होगा। पाक्यम्।

पाणि शब्द उपपद होनेपर सृज् धातुके उत्तर ण्यत् प्रत्यय हो, ऋकारोपध लक्षण क्यप्का अपवाद यह वार्त्तिक है। पाणिभ्यां सृज्यते पाणिसर्ग्या रज्जुः * ।

समपूर्वक और अवपूर्वक सृज धातुके उत्तर क्यप् प्रत्यय हो। समवसर्ग्या ॥

२८७५ न क्वादेः । ७ । ३ । ५९ ॥

क्वादेर्धातोः कुत्वं न । गर्ज्यम् । वार्तिककारस्तु चजोरिति सूत्रे निष्ठायामनिट इति पूरयित्वा न क्वादेरित्यादि प्रत्याचख्यौ । तेन अर्जितर्जिप्रभृतीनां न कुत्वं निष्ठायां सेट्त्वात् । ग्लुचुग्लुञ्चुप्रभृतीनां तु क्वादित्वेऽपि कुत्वं स्यादेव । सूत्रमते तु यद्यपि विपरीतं प्राप्तं तथापि यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम् ॥

२८७५-कवर्गादि धातुओंके चकार और जकारके स्थानमें कुत्व न हो। गर्ज्यम्। वार्त्तिककारने "चजोः २८६३" इस सूत्रमें "निष्ठायामनिटः" इसको मिलाकर पूर्ण करके "न क्वादेः (२८०५)" इत्यादिको प्रत्याख्यान किया है। उससे यह हुआ कि, अर्जि, तर्जि आदि धातुओंके निष्ठा प्रत्ययके इट्के साथ वर्त्तमानत्वके कारण कुत्व नहीं होगा। और ग्लुचु, ग्लुञ्चु आदि धातुओंके कवर्गादित्व होनेपर भी कुत्व होवेहीगा। सूत्रकारके मतमें यद्यपि इस प्रकार विपरीत प्राप्त होताहै तथापि उत्तरोत्तर मुनियोंका प्रामाण्य स्वीकार करना चाहिये इससे यह हुआ कि, वार्त्तिककारके मतानुरोध निष्ठा प्रत्यय परे रहते अनिट् धातुको कुत्व करना चाहिये। यह फलितार्थ है ॥

२८७६ अजिव्रज्योश्च । ७ । ३ ।६०॥

न कुत्वम् । समाजः । परिव्राजः ॥

२८७६-अज् धातु और व्रज् धातुको कुत्व नहीं होगा। समाजः। परिव्राजः।

२८७७ भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः । ७ । ३ । ६१ ॥

एतयोरेतौ निपात्यौ । भुज्यतेऽनेनेति भुजः पाणिः । हलश्चेति घञ् । न्युब्जन्त्यस्मिन्निति न्युब्जः । उपतापो रोगः । पाण्युपतापयोः किम् । भोगः समुद्गः ॥

२८७७-पाणि और उपताप अर्थ होनेपर क्रमसे भुज और न्युब्ज यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों। अर्थात् घञ् परे रहते भुज धातुको कुत्व और गुणका अभाव और घञ् परे रहते निपूर्वक उब्ज धातुको कुत्वाभाव और दकारके स्थानमें बकार आदेश निपातनसे हो। भुज्यतेऽनेनेति भुजः पाणिः। " हलश्च ३३०० " इस सूत्रसे घञ् प्रत्यय हो। न्युब्जन्त्यस्मिन्निति न्युब्जः। उपताप शब्दसे रोग समझना। जिस स्थानमें पाणि और उपताप नहीं होगा उस स्थानमें भोगः। समुद्गः। ऐसा पद सिद्ध होगा ॥

२८७८ प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे । ७ । ३ । ६२ ॥

एतौ निपातौ यज्ञाङ्गे । पञ्च प्रयाजाः । त्रयोऽनुयाजाः । यज्ञाङ्गे किम् । प्रयागः । अनुयागः ॥

२८७८-यज्ञका अङ्ग होनेपर प्रयाजः और अनुयाजः यह दोपद निपातनसे सिद्ध हों। पञ्च प्रयाजाः। त्रयोऽनुयाजाः। जिस स्थानमें यज्ञका अङ्ग नहीं होगा उस स्थानमें प्रयागः। अनुयागः। यह दो पद सिद्ध होंगे ॥

२८७९ वञ्चेर्गतौ । ७ । ३ । ६३ ॥

कुत्वं न । वञ्च्यम् । गतौ किम् । वङ्क्यं काष्ठम् । कुटिलीकृतमित्यर्थः ॥

२८७९–गति अर्थ होनेपर वञ्च धातुको कुत्व न हो। वञ्च्यम्। जिस स्थानमें गति अर्थ नहीं होगा उस स्थानमें वङ्क्यम्। काष्ठम्। कुटिलीकृतमित्यर्थः॥

२८८० ओक उचः के।७।३।६४॥

उचेर्गुणकुत्वे निपात्येते के परे। ओकः शकुन्तवृषलौ। इगुपधलक्षणः कः। घञा सिद्धे अन्तोदात्तार्थमिदम्॥

२८८०–ककार परे रहते उच धातुको गुण और कुत्व निपातनसे हों। ओकः शकुन्तवृषलौ। "इगुपध०" इस सूत्रसे क होगा। घञ् प्रत्ययसे सिद्ध होनेपर भी यह सूत्र अन्तोदात्तार्थ है॥

२८८१ ण्य आवश्यके।७।३।६५॥

कुत्वं न। अवश्यपाच्यम्॥

२८८१–आवश्यक अर्थमें जो ण्य प्रत्यय वह परे रहते कुत्व न हो। अवश्यपाच्यम्॥

२८८२ यजयाचरुचप्रवचर्चश्च।७।३।६६

ण्ये कुत्वं न। याज्यम्। याच्यम्। रोच्यम्। प्रवाच्यं ग्रन्थविशेषः। ऋच् अर्च्यम्। ऋदुपधत्वेप्यत एव ज्ञापकात् ण्यत्॥ त्यजेश्च॥ * ॥ त्याज्यम्। त्यजिपूज्योश्चेति काशिका॥ तत्र पूजेर्ग्रहणं चिन्त्यं भाष्यानुक्तत्वात्। ण्यत्प्रकरणे त्यजेरुपसंख्यानमिति हि भाष्यम्॥

२८८२–यज, याच, रुच, प्रपूर्वक वच, ऋच् इन सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर ण्यत् प्रत्यय रहते कुत्व न हो। याज्यम्। याच्यम्। रोच्यम्। प्रवाच्यम्। ग्रंथविशेष। ऋच् अर्च्यम्। यह धातु ऋदुपध है तो भी इस सूत्रसे ण्य प्रत्यय परे रहते कुत्वनिषेध विधानके कारण ण्यत् ही होगा।

"त्यजेश्च" अर्थात् त्यज धातुके उत्तर भी ण्यत् प्रत्यय रहते कुत्व न हो-त्याज्यम्। त्यज और पूज धातुके उत्तर ण्यत् प्रत्यय रहते कुत्व न हो, ऐसा काशिकाकारने कहा है। उस स्थानमें पूज धातुका ग्रहण श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि भाष्यमें वह उक्त नहीं है। ण्यत्प्रकरणमें "त्यजेरुपसंख्यानम्" ऐसा भाष्यकारने कहाहै॥

२८८३ वचोऽशब्दसंज्ञायाम्।७।३।६७॥

वाच्यम्। शब्दाख्यायां तु वाक्यम्॥

२८८३–ण्यत् प्रत्यय परे रहते अशब्दसंज्ञा होनेपर वच धातुको कुत्व न हो, वाच्यम्। अशब्द संज्ञा न होनेपर कुत्व हो। यथा, वाक्यम्॥

२८८४ प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे।७।३।६८॥

प्रयोक्तुं शक्यः प्रयोज्यः। नियोक्तुं शक्यो नियोज्यो भृत्यः॥

२८८४–शक्य अर्थ होनेपर प्रयोज्य और नियोज्य ये दो पद निपातनसे सिद्ध हों। प्रयोक्तुं शक्यः इस विग्रहमें प्रयोज्यः। नियोक्तुं शक्यः नियोज्यः भृत्यः।

२८८५ भोज्यं भक्ष्ये।७।३।६९॥

भोग्यमन्यत्। ण्यत्प्रकरणे लपिदभिभ्यां चेति वक्तव्यम्॥ * ॥ लाप्यम्। दभिर्धातुष्वपठितोपि वार्तिकबलात्स्वीकार्यः। दाभ्यः॥

२८८५–भक्ष्य अर्थ होनेपर भोज्यं यह पद निपातनसे सिद्ध हो। अन्यार्थ होनेपर भोग्यम् ऐसा होगा।

"ण्यत्प्रकरणे लपिदभिभ्याञ्चेति वक्तव्यम्" अर्थात् लप् और दभ् धातुके उत्तर ण्यत् प्रत्यय हो * लाप्यम्। दाभिः। यह धातुके मध्यमें अपठित होनेपर भी वार्त्तिकके बलसे स्वीकार करनेके योग्य है। दाभ्यः॥

२८८६ ओरावश्यके।३।१।१२५॥

उवर्णान्ताद्धातोर्ण्यत्स्यादवश्यंभावे द्योत्ये। लाव्यम्। पाव्यम्॥

२८८६–अवश्यम्भाव अर्थ प्रतीयमान होनेपर उवर्णान्त धातुके उत्तर ण्यत् प्रत्यय हो। लाव्यम्। पाव्यम्। लू+ण्यत्= लाव्यम् पू+ण्यत्=पाव्यम्॥

२८८७ आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च।३।१।१२६॥

षुञ् आसाव्यम्। यु मिश्रणे। याव्यम्। वाप्यम्। राप्यम्। लाप्यम्। त्राप्यम्। चाम्यम्॥

२८८७–आङ्पूर्वक षु धातु यु धातु वप् धातु रप् धातु लप् धातु त्रप् धातु चम धातु इन सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर ण्यत् प्रत्यय हो। षुञ् आसाव्यम्। यु धातु मिश्रणार्थमें है। याव्यम्। वाप्यम्। लाप्यम्। त्राप्यम्। चाप्यम्॥

२८८८ आनाय्योऽनित्ये।३।१।१२७॥

आङ्पूर्वान्नयतेर्ण्यदायादेशश्च निपात्यते। दक्षिणाग्निविशेष एवेदम्। सहि गार्हपत्यादानीयते नित्यश्च सततमप्रज्वलनात्। आनेयोऽन्यः घटादिः। वैश्यकुलादेरानीतो दक्षिणाग्निश्च॥

२८८८–अनित्य होनेपर आनाय्य यह पद निपातनसे सिद्ध हो। अर्थात् आङ्पूर्वक नी धातुके उत्तर ण्यत् और आय आदेश निपातनसे हों। दक्षिणाग्नि विशेष, ही अर्थमें यह निपातन समझना चाहिये, वह दक्षिणाग्नि गार्हपत्यसे आनीत होताहै और निरन्तर प्रज्वलित न होनेके कारण अनित्य है। अन्य अर्थ होनेपर अर्थात् गार्हपत्यसे आनीत न होनेपर वैश्यकुलसे आनीत होनेपर और घटादि अर्थ होनेपर आनेयः ऐसा होगा॥

२८८९ प्रणाय्योऽसंमतौ।३।१।१२८॥

संमतिः प्रीतिविषयीभवनं कर्मव्यापारः। तथा भोगेष्वादरोपि संमतिः। प्रणाय्यश्चोरः। प्रीत्यनर्ह इत्यर्थः। प्रणाय्योऽन्तेवासी। विरक्त इत्यर्थः। प्रणेयोऽन्यः॥

२८८९-असम्मति अर्थ होनेपर प्रणाय्यः यह पद निपातनसे सिद्ध हो। लोककी प्रीतिका विषय हो ऐसा जो कर्म्म व्यापार उसका नाम संमति है। इसी प्रकार भोगविषयमें जो आदर उसका भी नाम सम्मति है। प्रणाय्यश्चौरः प्रीत्यनर्ह इत्यर्थः। प्रणाय्योऽन्तेवासी विरक्त इत्यर्थः। इससे अन्य अर्थ होनेपर प्रणेयः ऐसा होगा॥

२८९० पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु। ३। १। १२९॥

मीयतेऽनेन पाय्यं मानम्। ण्यत् धात्वादेः पत्वं च। आतो युगिति युक्। सम्यङ्नीयते होमार्थमग्निं प्रतीति सान्नाय्यं हविर्विशेषः।ण्यदायादेशः समो दीर्घश्च निपात्यते। निचीयतेऽस्मिन्धान्यादिकं निकाय्यो निवासः। अधिकरणे ण्यत्। आय् धात्वादेः कुत्वं च निपात्यते। धीयतेऽनया समिदिति धाय्या ऋक्॥

२८९०-मान, हवि, निवास, सामिधेनी इन सम्पूर्ण अर्थोंमें क्रमसे पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य, धाय्य यह सम्पूर्ण पद निपातनसे सिद्ध हों। मीयते अनेन इस विग्रहमें पाय्यं मा , इस स्थानमें मी धातुसे ण्यत् और धातुके आदि वर्णको पत्व निपातनसे होगा "मीनातिमिनोति०" इस सूत्रसे आत्व होनेपर "आतो युक् (२७६१)" इस सूत्रसे युक् हुआ। सम्यङ् नीयते होमार्थमग्निं प्रति इस विग्रहमें सान्नाय्यं हविर्विशेषः। इस स्थानमें ण्यत् आय् आदेश, सम्‌को दीर्घ निपातनसे जानना। निचीयतेऽस्मिन् धान्यादिकम् इस विग्रहमें निकाय्यो निवासः। इस स्थानमें अधिकरणमें ण्यत्, आय् धातुके आदिको कुत्व निपातनसे समझना चाहिये। धीयतेऽनया समित् इस विग्रहमें धाय्या ऋक्॥

२८९१ क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ। ३। १। १३०॥

कुण्डेन पीयतेऽस्मिन्सोमः कुण्डपाय्यः क्रतुः। संचीयतेऽसौ संचाय्यः॥

२८९१-क्रतु अर्थ होनेपर कुंडपाय्य और सञ्चाय्य यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों। कुंडेन पीयतेऽस्मिन् सोमः इस विग्रहमें 'कुंडपाय्यः क्रतुः' सञ्चीयतेऽसौ 'सञ्चाय्यः'॥

२८९२ अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः। ३। १। १३१॥

अग्निधारणार्थे स्थलविशेषे एते साधवः। अन्यत्र तु परिचेयम्। उपचेयम्। संवाह्यम्॥

२८९२-अग्नि धारणार्थ स्थल होनेपर परिचाय्य, उपचाय्य समूह्य यह सम्पूर्ण पद निपातनसे सिद्ध हों। अन्य अर्थ होनेपर परिचेयम्। उपचेयम्। संवाह्यम्। ऐसे होंगे॥

२८९३ चित्याग्निचित्ये च।३।१।१३२॥

चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। अग्नेश्चयनमग्निचित्या। प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च।३।३।१६३। त्वया गन्तव्यम्। गमनीयम्। गम्यम्। इह लोटा बाधा मा भूदिति पुनः कृत्यविधिः। स्त्र्यधिकारादूर्ध्वं वासरूपविधिः क्वचिन्नेति ज्ञापयति। तेन क्तल्युट्तुमुन्खलर्थेषु नेति सिद्धम्। अर्हे कृत्यतृचश्च। ३। ३। १६९। स्तोतुमर्हः स्तुत्यः स्तुतिकर्म। स्तोता स्तुतिकर्ता। लिङा बाधा माभूदिति कृत्यतृचोर्विधिः॥

२८९३-चित्य और अग्निचित्य यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों। चीयतेऽसौ इस विग्रहमें-चित्यः अग्निः। अग्नेश्चयनम् इस विग्रहमें-अग्निचित्या। "प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च (२८१७)" इस सूत्रसे कृत्य प्रत्यय हुआ। त्वया गन्तव्यम्। गमनीयम्। गम्यम्। इस स्थानमें लोट्के द्वारा कृत्य प्रत्ययको बाध न हो। इस कारण दुबारा कृत्य प्रत्ययका विधान कियाहै स्त्री प्रत्ययाधिकारके परे वासरूप विधि कहीं २ न हो इसमें यह पुनः कृत्यविधान ज्ञापक है। उससे यह हुआ कि, क्त ल्युट् तुमुन् और खलर्थ प्रत्यय चिकीर्षित होनेपर वासरूप विधि नहीं होगी। "अर्हे कृत्यतृचश्च (२८२२)" इस सूत्रसे कृत्य प्रत्यय और तृच् प्रत्यय भी होगा। स्तोतुमर्हः इस विग्रहमें स्तुत्यः स्तुतिकर्म्म। स्तोता स्तुतिकर्त्ता। लिङ्के द्वारा बाध न हो इस निमित्त कृत्य और तृच् प्रत्ययका विधान है॥

२८९४ भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा।३।४।६८॥

एते कृत्यान्ताः कर्तरि वा निपात्यन्ते। पक्षे तयोरेवेति सकर्मकात्कर्मणि। अकर्मकात्तु भावे ज्ञेयाः। भवतीति भव्यः। भव्यमनेन वा। गायतीति गेयः साम्नामयम्। गेयं सामानेन वा इत्यादि। शकि लिङ् च। ३। ३। १७२। चात्कृत्याः। वोढुं शक्यो वोढव्यः। वहनीयो वाह्यः। लिङा बाधा मा भूदिति कृत्योक्तिः॥ लाघवादनेनैव ज्ञापनसंभवे प्रैषादिसूत्रे कृत्याश्चेति सुत्यजम्। अर्हे कृत्यतृचोर्ग्रहणं च॥

॥ इति कृत्सु कृत्यप्रक्रिया॥

२८९४-भव्य, गेय, प्रवचनीय, उपस्थानीय, जन्य, आप्लाव्य, आपात्य यह सम्पूर्ण कृत्यप्रत्ययान्त पद कर्तामें विकल्प करके निपातनसे सिद्ध हों। पक्षमें "तयोरेव" इस सूत्रसे सकर्म्मक धातुके उत्तर कर्म्ममें और अकर्म्मक धातुके उत्तर भावमें ही उक्त प्रत्यय होंगे। भवति इस विग्रहमें भव्यः। भव्यमनेन वा। गायति इस विग्रहमें गेयः। साम्नामयम्। गेयं सामानेन वा इत्यादि। "शकि लिङ् च (२८३३)" इस सूत्रमें चकारनिर्देशके कारण कृत्य प्रत्यय हो। वोढुं शक्यः इस

विग्रहमें वोढव्यः । वहनीयो वाह्यः । इस स्थानमें लिङ्के द्वारा कृत्यका बाध न हो इस कारण कृत्योक्ति है । लाघवके कारण इस चकारसे ही वासरूप विधिकी अप्रवृत्तिका ज्ञापक संभव होनेपर प्रैषादि सूत्रमें कृत्याश्च यह अंश त्याग करना उचित है । और "अर्हे कृत्यतृचश्च" इस सूत्रमें "कृत्यतृचः" इस अंशका भी त्याग करना उचित है ॥

॥ इति कदन्तकृत्यप्रक्रिया ॥

अथ कृत्प्रक्रिया ।

२८९५ ण्वुल्तृचौ । ३ । १ । १३३ ॥

धातोरेतौ स्तः । कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे । युवोरनाकौ । कारकः । कर्ता । वोढुमर्हो वोढा । कारिका । कर्त्री । गाङ्कुटेति ङित्त्वम् । कुटिता । अञ्णिदित्युक्तेर्न ङित्त्वम् । कोटकः । विज इट् । विजिता । हनस्तोऽचिण्णलोः । घातकः । आतो युक् । दायकः । नोदात्तोपदेशस्येति न वृद्धिः । शमकः । दमकः । अनिटस्तु नियामकः । जनिवध्योश्च । जनकः । वध हिंसायाम् । वधकः । रधिजभोरचि । रन्धकः । जम्भकः । नेट्यलिटि रधेः । रधिता–रद्धा । मस्जिनशोरिति नुम् । मङ्क्ता । नंष्टा–नशिता । रभेरशब्लिटोः । रम्भकः । रब्धा । लभेश्च । लम्भकः । लब्धा । तीषसह– । एषिता–एष्टा । सहिता–सोढा । दरिद्रातेरालोपः । दरिद्रिता । ण्वुलि न । दरिद्रायकः । कृत्यल्युट इत्येव सूत्रमस्तु । यत्र विहितास्ततोऽन्यत्रापि स्युरित्यर्थात् । एवं च बहुलग्रहणं योगविभागेन कृन्मात्रस्यार्थव्यभिचारार्थम् । पादाभ्यां ह्रियते पादहारकः । कर्मणि ण्वुल् । क्रमेः कर्तर्यात्मनेपदविषयात्कृत इण्निषेधो वाच्यः ॥ * ॥ प्रक्रन्ता । कर्तरीति किम् । प्रक्रमितव्यम् । आत्मनेपदेति किम् । संक्रमिता । अनन्यभावो विषयशब्दः । तेनानुपसर्गाद्वेति विकल्पार्हस्य न निषेधः । क्रमिता । तदर्हत्वमेव तद्विषयत्वम् । तेन क्रन्तेत्यपीति केचित् । गमेरिडित्यत्र परस्मैपदग्रहणं तङानयोरभावं लक्षयति । सञ्जिगमिषिता । एवं न वृद्ध्यश्चतुर्भ्यः । विवृत्सिता । यङन्तात् ण्वुल् । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वान्न वृद्धिः । पापचकः । यङ्लुगन्तात्तु । पापाचकः ॥

२८९५–धातुके उत्तर कर्तामें ण्वुल् और तृच् प्रत्यय हों । "कर्तरि कृत् (२८३२)" इस सूत्रसे कर्त्रर्थमें ही कृत् प्रत्यय होगा । ण्वुल् प्रत्ययके णकारकी इत्संज्ञा हुई पूर्व स्वरको वृद्धि हुई और स्वरार्थलकारकी इत्संज्ञा हुई " वु " शेष रहा । तृच् प्रत्ययके चकारकी इत्संज्ञा हुई । " तृ " शेष रहा । " युवोरनाकौ १२४७ " इस सूत्रसे वुके स्थानमें अक् आदेश हुआ । यथा, कारकः । कर्ता । वोढुमर्हः इस विग्रहमें वोढा । कारिका, कर्त्री । " गाङ्कुटादिभ्यो० २४६१" इस सूत्रसे ङित्त्व हुआ । कुटिता । " अञ्णित् " इस उक्तिके कारण ङित्त्व नहीं होगा । कोटकः । "विज इट् २५३६ " इस सूत्रसे इडादि प्रत्यय ङिद्वत् हो । यथा, विजिता । "हनस्तोऽचिण्णलोः२५७४" इस सूत्रसे हन् धातुके नकारको तकार आदेश हुआ । घातकः । " आतो युक् २७६१ " इस सूत्रसे युगागम हुआ । दायकः । "नोदात्तोपदेशस्य२७६३" इस सूत्रसे वृद्धि नहीं होगी । शमकः । दमकः । अनिट् धातुका नियामकः ऐसा रूप होगा । "जनिवध्योश्च २५१२" इस सूत्रसे उपधाको वृद्धि नहीं होगी । जनकः । वध धातु हिंसा अर्थमें है वधकः । "रधिजभोरचि २३०२" इस सूत्रसे नुम्का आगम हुआ । रंधकः । जम्भकः । "नेट्यलिटि रधेः २५१६" इस सूत्रसे, "रधिजभोरचि"सूत्रसे प्राप्त नुम्का निषेध हुआ । रधिता, रद्धा । "मस्जिनशोर्झलि २५१७ " इस सूत्रसे नुम् हुआ । मङ्क्ता, नंष्टा, नशिता । "रभेरशब्लिटोः२५८१"इससे नुम हुआ । रम्भकः । रब्धा । "लभेश्च २५८२" इस सूत्रसे लभ् धातुको नुम् हुआ । लम्भकः । लब्धा । "तीषसह०२३४०"इस सूत्रसे विकल्प करके इट् हुआ । एषिता, एष्टा । सहिता, सोढा । दरिद्रा धातुके आकारका लोप हुआ । दरिद्रिता । ण्वुल् प्रत्यय परे रहते आकारका लोप नहीं होगा । दरिद्रायकः । "कृत्यलुटो बहुलम् २८४१" इस सूत्रमें बहुल पद न देकर "कृत्यलुटः २८४१" ऐसा ही सूत्र करते बहुल पदका ग्रहण क्यों किया ? जिस स्थलमें कृत्य और ल्युट् प्रत्यय विहित हैं उनसे भिन्न स्थलमें भी हो यह अर्थ "कृत्यल्युटः" इस सूत्रका होगा तो बहुलग्रहण योगविभागके द्वारा कृन्मात्र अर्थ के व्यभिचारके लिये जानना चाहिये । पादाभ्यां ह्रियते पादहारकः । इस स्थलमें कर्ममें ण्वुल् प्रत्यय हुआहै ।

"क्रमेकर्त्तर्य्यात्मनेपदविषयात्कृत इण्निषेधो वाच्यः" अर्थात् आत्मनेपद विषयीभूत क्रमधातुके उत्तर जो कृत् उसके कर्तामें इट् न हो * प्रक्रन्ता । कर्तरि यह पद सूत्रमें क्यों किया ? प्रक्रमितव्यम् । यहां भी निषेध होजायगा इसलिये उक्त पद कियाहै । आत्मनेपदविषयीभूतसे भिन्न स्थलमें अर्थात् परस्मैपदविषयीभूत स्थलमें इट् होगा । यथा, संक्रमिता । इस स्थानमें विषय शब्द अनन्यभाव रूप अर्थमें है । आत्मनेपदसे भिन्नका अविषय होकर भी तन्मात्रका विषय जानना चाहिये । उससे यह हुआ कि नित्यात्मनेपदी जो क्रम धातु उससे परे जो कृत् उसको इट् न हो इस कारण "अनुपसर्गाद्वा २७१६" इस सूत्रसे विकल्प करके आत्मनेपदके योग्य जो क्रम धातु उसके उत्तर कृत्को इट्का निषेध नहीं होगा । क्रमिता । तदर्हत्व ही तद्विषयत्व जानना चाहिये । इस कारण क्रन्ता ऐसा पद भी कोई २ प्रयोग करते हैं । "गमेरिट् २४०१" इस सूत्रमें परस्मैपद ग्रहणसे आत्मनेपद और शानच् प्रत्ययका अभाव दिखातेहैं । सञ्जिगमिषिता ।

इसी प्रकार " न वृद्ध्यश्चतुर्भ्यः २३४८ " इस सूत्रमें भी आत्मनेपद और शानच्का अभाव दिखाया है । विवृत्सिता । यङन्तके उत्तर ण्वुल् प्रत्यय होनेपर अल्लोपके स्थानिवत्त्वके कारण वृद्धि नहीं होगी । पापचकः । यङ्लुगन्तके उत्तर ण्वुल करनेपर पापाचकः ऐसा पद होगा ॥

२८९६ नंदिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः । ३ । १ । १३४ ॥

नन्द्यादेर्ल्युर्ग्रह्यादेर्णिनिः पचादेरच् स्यात् । नन्दयतीति नन्दनः । जनमर्दयतीति जनार्दनः। मधुं सूदयतीति मधुसूदनः । विशेषेण भीषयतीति विभीषणः । लवणः । नन्द्यादिगणे निपातनाण्णत्वम् । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । विशयी । वृद्ध्यभावो निपातनात् । विषयी । इह षत्वमपि । परिभावी । परिभवी । पाक्षिको वृद्ध्यभावो निपात्यते । पचादिराकृतिगणः । शिवशमरिष्टस्य करे । कर्मणि घटोठच् इति सूत्रयोः करोतेर्घटेश्चाच्प्रयोगात् । अच्प्रत्यये परे यङ्लुग्विधानाच्च । केषांचित्पाठस्त्वनुबन्धासञ्जनार्थः । केषांचित्प्रपञ्चार्थः । केषांचिद्बाधकबाधनार्थः । पचतीति पचः । नदट् । चोरट् । देवट् । इत्यादयष्टितः । नदी । चोरी । देवी । दीव्यतेरिगुपधेति कः प्राप्तः । जारभरा । श्वपचा । अनयोः कर्मण्यण् प्राप्तः । न्यङ्क्वादिषु पाठात् श्वपाकोपि । यङोचि चेति लुक् । न धातुलोप इति गुणवृद्धिनिषेधः । चेक्रियः । नेन्यः । लोलुवः । पोपुवः । मरीमृजः ॥ चरिचलिपतिवदीनां वा द्वित्वमच्याक् चाभ्यासस्येति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आगमस्य दीर्घत्वसामर्थ्यादभ्यासह्रस्वो हलादिःशेषश्च न । चराचरः । चलाचलः । पतापतः । वदावदः ॥ हन्तेर्घत्वं च ॥ * ॥ घत्वमभ्यासस्य उत्तरस्य त्वभ्यासाच्चेति कुत्वम् । घनाघनः ॥ पाटेर्णिलुक्चोक्च दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ * ॥ पाटूपटः । पक्षे चरः । चलः । पतः । वदः । हनः । पाटः । रात्रेः कृतीति वा नुम् । रात्रिञ्चरो रात्रिचरः ॥

२८९६–नंद्यादि धातुके उत्तर ल्यु प्रत्यय हो, ग्रहादि धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो और पचादि धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो, यथा–नन्दयति इस विग्रहमें नन्दनः । जनमर्दयति इस विग्रहमें जनार्दनः । मधुं सूदयतीति मधुसूदनः । विशेषेण भीषयते इस विग्रहमें विभीषणः । लवणः । नन्दादि गणको पाणिनिजीने उच्चारण कियाहै इस हेतुसे निपातनके कारण णत्व हुआ । ग्राही । स्थायी । मंत्री । विशयी । निपातनके कारण वृद्धिका अभाव होगा । इस स्थानमें विषयी पदको षत्व भी निपातनसे हुआहै । परिभावी । परिभवी इस स्थानमें निपातनसे पाक्षिक वृद्धिका अभाव होताहै । "शिवशमरिष्टस्य करे (३४८९)" "कर्मणि घटोऽठच् (१८३६)" इन दोनों सूत्रोंमें कृ धातुके उत्तर और घट् धातुके उत्तर अच् प्रयोगके कारण और अच् प्रत्यय परे रहते "यङोचि च (२६५०)" इस सूत्रसे यङ्लुक्का विधान कियाहै इससे पचादि धातु आकृतिगण है। पचादिगणमें कितनेही धातुओंका पाठ अनुबंधके आसञ्जनके लिये है कितनेही धातुओंका विस्तारार्थ है। कितनेही धातुओंका बाधकबाधकनार्थ है । पचति इस विग्रहमें पचः । नदट्, चोरट्, देवट् इत्यादि शब्द टित् हैं । नदी । चोरी । देवी । दिव् धातुके उत्तर "इगुपध० (२८९७)" इस सूत्रसे क प्रत्यय प्राप्त हुआ है और जारभरा, श्वपचा इन दोनों पदोंमें "कर्मण्यण्"इससे अण् प्रत्यय प्राप्त हुआ । न्यङ्कादि मध्यमें पाठके कारण कुत्व होकर श्वपाकः पद सिद्ध होगा । "यङोचि" इस सूत्रसे यङ्लुक् होगा । "न धातुलोपः ० (२६५६)" इस सूत्रसे गुण और वृद्धिका निषेध हुआ । चेक्रियः । नेन्यः । लोलुवः । पोपुवः । परीमृजः ।

"चरिचलिपतिवदीनां वा द्वित्वमच्याक् चाभ्यासस्येति वक्तव्यम्" अर्थात् चर, चल, पत,वद इन सम्पूर्ण धातुओंको विकल्प करके अच् परे द्वित्व और अभ्यासको आक्का आगम हो । * आगमको दीर्घ करनेके कारण अभ्यासको ह्रस्व और "हलादिःशेषः (२१७९)" नहीं होगा । चराचरः । चलाचलः । पतापतः । वदावदः ।

"हन्तेर्घत्वञ्च" अर्थात् इन धातुके हकारको घत्व भी हो*। यह घत्व अभ्यासको होगा और उत्तर पदको "अभ्यासाच्च (२४३०)" इस सूत्रसे कुत्व होगा । घनाघनः ।

"पाटेर्णिलुक्चोक्च दीर्घश्चाभ्यासस्य" अर्थात् इससे पाटिधातुके णि प्रत्ययका लुक्, द्वित्व, ऊक् और अभ्यासको दीर्घ होगा । पाटूपटः । पक्षमें चरः । चलः । पतः । वदः । हनः । पाटः । "रात्रेः कृति० (१००८)" इस सूत्रसे विकल्प करके नुम् होकर–रात्रिञ्चरः, रात्रिचरः ॥

२८९७ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः । ३ । १ । १३५ ॥

एभ्यः कः स्यात् । क्षिपः । लिखः । बुधः । कृशः । ज्ञः । प्रीणातीति प्रियः । किरतीति किरः । वासरूपविधिना ण्वुल्तृचावपि । क्षेपकः। क्षेप्ता ॥

२८९७–इगुपध धातु, ज्ञा धातु, प्री धातु और कॄ धातुओंके उत्तर कर्तामें क प्रत्यय हो, क्षिपः । लिखः । बुधः । कृशः । ज्ञः । प्रीणाति, इस विग्रहमें प्रियः । किरति, इ विग्रहमें किरः । वासरूपविधिके द्वारा ण्वुल् और तृच् प्रत्यय भी होगा, क्षेपकः । क्षेप्ता ॥

२८९८ आतश्चोपसर्गे । ३ । १ । १३६॥

कः स्यात् । श्याद्व्यधेति णस्यापवादः । सुग्लः । प्रज्ञः ॥

२८९८–उपसर्ग उपपद होनेपर आकारान्त धातुके उत्तर क प्रत्यय हो, यह सूत्र "श्याद्व्यधा० (२९०३)" इस सूत्रसे विहित ण प्रत्ययका अपवाद है । सुग्लः । प्रज्ञः ॥

२८९९ पाघ्राध्माधेड्दृशः शः । ३ । १ । १३७ ॥

पिबतीति पिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । धया कन्या । धेट्ष्टित्त्वात् स्तनन्धयीति खशीव ङीप् प्राप्तः खशोऽन्यत्र नेष्यत इति हरदत्तः । पश्यतीति पश्यः । घ्रः संज्ञायां न । व्याघ्रादिभिरिति निर्देशात् ॥

२८९९–पा, घ्रा, ध्मा, धेट् और दृश् धातुओंके उत्तर कर्तामें श प्रत्यय हो, पिबति, इस विग्रहमें पिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । धया कन्या । धेट् धातुको टित्त्वके कारण 'स्तनन्धयी' इसमें जैसे खशन्तासे ङीप् होताहै, वैसे यहां भी ङीप् प्राप्त हुआ, परन्तु खश् प्रत्ययसे अन्यत्र ङीप् नहीं होगा, ऐसा हरदत्त कहतेहैं । पश्यति, इस विग्रहमें पश्यः । घ्रा धातुके उत्तर संज्ञा होनेपर श प्रत्यय नहीं होगा, क्योंकि, "व्याघ्रादिभिः (७३५)" ऐसा निर्देश है ॥

२९०० अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च । ३ । १ । १३८ ॥

शः स्यात् । लिम्पः । विन्दः । धारयः । पारयः । वेदयः । उदेजयः । चेतयः । सातिः सुखार्थः सौत्रो हेतुमण्ण्यन्तः सातयः । वासरूपन्यायेन क्विपि सात् परमात्मा । सात्वन्तो भक्ताः । षह मर्षणे चुरादिः । हेतुमण्ण्यन्तो वा । साहयः । अनुपसर्गात्किम् । प्रलिपः ॥ नौ लिम्पेर्वाच्यः ॥ * ॥ निलिम्पा देवाः ॥ गवादिषु विन्देः संज्ञायाम् ॥ * ॥ गोविन्दः । अरविन्दम् ॥

२९००–उपसर्ग पूर्वमें न हो ऐसे लिम्प, विन्द, धारि, पारि, वेदि, उत्पूर्वक एजि, चेति, साति, साहि धातुओंके उत्तर श प्रत्यय हो, लिम्पः । विन्दः । धारयः । पारयः । वेदयः । उदेजयः । चेतयः । साति धातु सुखार्थक, सौत्र हेतुमण्ण्यन्त है । सातयः । वासरूपन्यायसे क्विप् प्रत्यय परे 'सात्' होगा । सात् शब्दसे परमात्मा समझना । सात्वन्तो भक्ताः । षह धातु मर्षणमें है, यह चुरादिगणीय है, अथवा हेतुमण्णिजन्त है, साहयः । उपसर्गके पर होनेपर 'प्रलिपः' ऐसा होगा ।

निपूर्वक लिम्प धातुके उत्तर श प्रत्यय हो * यथा– निलिम्पाः देवाः ।

"गवादिषु विन्देः संज्ञायाम्" अर्थात् गवादि उपपद होनेपर संज्ञामें विन्द धातुके उत्तर श प्रत्यय हो * यथा– गां, भुवं, वेदं, स्वर्गं, वेद वा विन्दति गोविन्दः । अरविन्दम् ॥

२९०१ ददातिदधात्योर्विभाषा । ३ । १ । १३९ ॥

शः स्यात् । ददः । दधः । पक्षे वक्ष्यमाणो णः । अनुपसर्गादित्येव । प्रदः । प्रधः ॥

२९०१–जुहोत्यादिगणीय जो दा धातु और धा धातु उनके उत्तर विकल्प करके श प्रत्यय हो, ददः । दधः । पक्षमें वक्ष्यमाण ण प्रत्यय होगा । यह सूत्र भी उपसर्ग पूर्वमें न रहते ही होगा, इस कारण 'प्रदः । प्रधः' यहां न हुआ ॥

२९०२ ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः । ३ । १ । १४० ॥

इतिशब्द आद्यर्थः । ज्वलादिभ्यः कसन्तेभ्यो णः स्याद्वा । पक्षेऽच् ज्वालः । ज्वलः । चालः । चलः । अनुपसर्गादित्येव । उज्ज्वलः ॥ तनोतेरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ इहानुपसर्गादिति विभाषेति च न संबध्यते । अवतनोतीत्यवतानः ॥

२९०२–इस स्थलमें इति शब्द आद्यर्थक है । 'ज्वल दीप्तौ' इस धातुसे 'कस् गतौ' इस धातुतक तुदादि पठित जो धातु उनके उत्तर विकल्पसे ण प्रत्यय हो, विकल्प पक्षमें अच् प्रत्यय होगा, यथा–ज्वालः, ज्वलः । चालः, चलः । यह विधि भी उपसर्गके पर न होनेपर ही होगा, इससे 'उज्ज्वलः' यहां न हुआ ।

तन् धातुके उत्तर ण प्रत्यय हो * इस स्थानमें 'अनुपसर्गात्' और 'विभाषा' का सम्बन्ध नहीं होताहै, अवतनोति, इस विग्रहमें अवतानः ॥

२९०३ श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहलिहश्लिषश्वसश्च । ३ । १ । १४१ ॥

श्यैङ्प्रभृतिभ्यो नित्यं णः स्यात् । श्यैङोऽवश्यतेश्चादन्तत्वात्सिद्धे पृथग्ग्रहणमुपसर्गे कं बाधितुम् । अवश्यायः । प्रतिश्यायः । आत् । दायः । धायः । व्याधः । स्रु गतौ आङ्पूर्वः संपूर्वश्च । आस्रावः । संस्रावः । अत्यायः । अवसायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ॥

२९०३–श्यैङ् धातु, आदन्त धातु, व्यध धातु, आङ्पूर्वक स्रु धातु, संपूर्वक स्रु धातु, अतिपूर्वक इण् धातु, अवपूर्वक सो धातु, अवपूर्वक हृ धातु, लिह धातु, श्लिष धातु, और श्वस धातुओंके उत्तर कर्तामें नित्य ण प्रत्यय हो । श्यैङ् और अवपूर्वक सो धातुके उत्तर आदन्तत्वके कारण ण प्रत्यय सिद्ध होनेपर भी पृथक् २ कथन केवल उपसर्ग उपपद रहते प्रत्ययको बाधनार्थ है । अवश्यायः । प्रतिश्यायः । आदन्त धातुके उदाहरण, यथा–दायः । धायः । व्याधः । गत्यर्थक स्रु धातु आङ्पूर्वक और संपूर्वक है, यथा– आस्रावः । संस्रावः । अत्यायः । अवसायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ॥

२९०४ दुन्योरनुपसर्गे ।३।१। १४२ ॥

णः स्यात् । दुनोतीति दावः । नीसाहचर्यात्सानुबन्धकाद्दुनोतेरेव णः । दवतेस्तु पचाद्यच् । दवः । नयतीति नायः । उपसर्गे तु प्रदवः । प्रणयः ॥

२९०४–उपसर्ग पूर्वमें न रहते दु और नी धातुके उत्तर कर्तामें ण प्रत्यय हो, यथा–दुनोति, इस विग्रहमें दावः । नी धातुके साहचर्यके कारण सानुबंध दु धातुके उत्तर ही ण प्रत्यय होगा । भ्वादिगणीय धातुके उत्तर तो पचादित्वके कारण अच् प्रत्यय होगा । दवः । नयति, इस विग्रहमें नायः । उपसर्गपूर्वक होनेपर तो ' प्रदवः । प्रणयः ' इस प्रकार होगा ॥

२९०५ विभाषा ग्रहः । ३। १।१४३ ॥

णो वा । पक्षेऽच् । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेन जलचरे ग्राहः । ज्योतिषि ग्रहः । भवतेश्चेति काशिका । भवो देवः संसारश्च । भावाः पदार्थाः । भाष्यमते तु प्राप्त्यर्थाच्चुरादिण्यन्तादच् । भावः ॥

२९०५–ग्रह धातुके उत्तर विकल्प करके ण प्रत्यय हो, पक्षमें अच् प्रत्यय होगा । यह व्यवस्थित विभाषा है, उससे यह हुआ कि, जलचर अर्थमें ग्राहः इस स्थलमें ण प्रत्यय हुआ । ज्योतिष् अर्थमें ' ग्रहः ' इस स्थानमें ण प्रत्यय नहीं हुआ ॥

भू धातुके उत्तर ण प्रत्यय हो, ऐसा काशिकाकारने कहा है । भवो देवः संसारश्च । भावाः पदार्थाः । भाष्यकारके मतसे तो चुरादिणिजन्त प्राप्त्यर्थक भू धातुके उत्तर अच् प्रत्यय करके 'भावः ' पद सिद्ध हुआहै ॥

२९०६ गेहे कः । ३ । १ । १४४ ॥

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात् । गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम् । तात्स्थ्याद्गृहा दाराः ॥

२९०६–गेह कर्ता होनेपर ग्रह धातुके उत्तर क प्रत्यय हो गृह्णाति धान्यादिकमिति=गृहम् तात्स्थ्यात् गृहाः दाराः । अर्थात् धान्यादिको जो ग्रहणकरे उसको गृह कहतेहैं, उसमें रहनेके कारण गृह स्त्रीको भी कहतेहैं ॥

२९०७ शिल्पिनि ष्वुन् ।३ ।१।१४५॥

क्रियाकौशलं शिल्पं तद्वत्कर्तरि ष्वुन् स्यात् ॥ नृतिखनिरञ्जिभ्य एव ॥ * ॥ नर्तकः । नर्तकी । खनकः । खनकी ॥ असि अकेऽने च रञ्जेर्नलोपो वाच्यः ॥ *॥ रजकः । रजकी । भाष्यमते तु नृतिखनिभ्यामेव ष्वुन् । रञ्जेस्तु–क्वुन् शिल्पिसंज्ञयोरिति क्वुन् । टाप् । रजिका । पुंयोगे तु रजकी ॥

२९०७–क्रिया कौशलका नाम शिल्प है तद्वान् कर्त्ता, होनेपर धातुके उत्तर ष्वुन् प्रत्यय हो ।

"नृतिखनिरञ्जिभ्य एव" अर्थात् यह ष्वुन् प्रत्यय, नृत, खन, रञ्ज, धातुओंके उत्तर ही हो * नर्तकः । नर्तकी । खनकः । खनकी ।

"असि अकेऽने च रञ्जेर्नलोपो वाच्यः " अर्थात् अस्, अक और अन प्रत्यय परे रहते रञ्ज धातुके नकारका लोप हो * रजकः । रजकी । भाष्यकारके मतसे तो नृत और खन धातुके उत्तर ही ष्वुन् होगा, रञ्ज धातुके उत्तर तो "क्वुन्-शिल्पि संज्ञयोः" इससे क्वुन् प्रत्यय होगा, पश्चात् टाप् होकर–रजिका । पुंयोगमें तो रजकी ऐसा होगा ॥

२९०८ गः स्थकन् । ३ । १ । १४६॥

गायतेः स्थकन् स्यात् । शिल्पिनि कर्तरि । गाथकः ॥

२९०८–शिल्पी कर्त्ता होनेपर गा धातुके उत्तर थकन् प्रत्यय हो, गाथकः ॥

२९०९ ण्युट् च । ३ । १ । १४७॥

गायनः । टित्त्वाद्गायनी ॥

२९०९–शिल्पी कर्त्ता होनेपर गा धातुके उत्तर ण्युट् प्रत्यय भी हो, गायनः । टित्वके कारण ङीप् होकर गायनी ऐसा होगा ॥

२९१० हश्च व्रीहिकालयोः।३।१।१४८॥

हाको हाङश्च ण्युट् स्यात् व्रीहौ काले च कर्तरि । जहात्युदकमिति हायनो व्रीहिः । जहाति भावानिति हायनो वर्षम् । जिहीते प्राप्नोतीति वा ॥

२९१०–व्रीहि और काल कर्त्ता होनेपर ओहाक् और ओहाङ् धातुके उत्तर ण्युट प्रत्यय हो, जहात्युदकम्, इस विग्रहमें हायनो व्रीहिः । जहाति भवान्, इस विग्रहमें हायनो वर्षम् इसी प्रकार जिहीते अर्थात् प्राप्नोति, इस विग्रहमें भी उक्त पद हुआ ॥

२९११ प्रुसृल्वः समभिहारे वुन् । ३ । १ । १४९ ॥

समभिहारग्रहणेन साधुकारित्वं लक्ष्यते । प्रवकः । सरकः । लवकः ॥

२९११–प्रु, सृ, लू इन तीन धातुओंके उत्तर समभिहारार्थमें वुन् प्रत्यय हो, समभिहार शब्दका ग्रहण करनेसे साधुकारित्व लक्षित होताहै । प्रवकः । सरकः । लवकः ॥

२९१२ आशिषि च । ३ ।१ ।१५० ॥

आशीर्विषयार्थवृत्तेर्धातोर्वुन् स्यात्कर्तरि । जीवतात्–जीवकः । नन्दतात्–नन्दकः । आशीः प्रयोक्तुर्धर्मः । आशासितुः पित्रादेरियमुक्तिः ॥

२९१२-आशीरर्थमें धातुके उत्तर कर्तामें वुन् प्रत्यय हो, जीवतात्, इस विग्रहमें जीवकः । नन्दतात्, इस विग्रहमें नन्दकः । आशीर्वाद प्रयोक्ताका धर्म है । सम्यक् प्रकारसे शासन कर्ता पिता माता प्रभृतिकी यह उक्ति है ॥

२९१३ कर्मण्यण् । ३ । २ । १ ॥

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात् । उपपदसमासः । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः । आदित्यं पश्यतीत्यादावनभिधानान्न ॥ शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः ॥ * ॥ अणोपवादार्थं वार्तिकम् । मांसशीला । मांसकामा । मांसभक्षा । कल्याणाचारा ॥ ईक्षिक्षमिभ्यां च ॥*॥ सुखप्रतीक्षा । बहुक्षमा । कथं तर्हि गङ्गाधरभूधरादयः । कर्मणः शेषत्वविवक्षायां भविष्यन्ति ॥

२९१३-कर्म्म उपपद होनेपर धातुके उत्तर अण् प्रत्यय हो "उपपदमतिङ्" इस सूत्रसे उपपद समास हुआ, यथा-कुम्भं करोति, इस विग्रहमें कुम्भकारः । आदित्यं पश्यति, इत्यादि स्थलमें अनभिधानके कारण अण् नहीं होताहै ।

शील, कम्, भक्ष और आङ्पूर्वक चर धातुओंके उत्तर ण प्रत्यय हो * यह वार्त्तिक अण् प्रत्ययका अपवादार्थ है । मांसशीला । मांसकामा । मांसभक्षा । कल्याणाचारा ।

ईक्ष और क्षम धातुके उत्तर ण प्रत्यय हो * सुखप्रतीक्षा । बहुक्षमा । अण् प्रत्ययके सम्भव रहते गंगाधर और भूधरादि पद किस प्रकारसे सिद्ध हुए ? तो इसपर कहतेहैं कि, इस स्थलमें कर्मकी शेषत्वविवक्षामें होंगे ॥

२९१४ ह्वावामश्च । ३ । २ । २ ॥

अण् स्यात्कापवादः । स्वर्गह्वायः । तन्तुवायः । धान्यमायः ॥

२९१४-ह्वा, वा, मा धातुओंके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यह अण् प्रत्यय क प्रत्ययका बाधक है, यथा-स्वर्गह्वायः । तन्तुवायः । धान्यमायः ॥

२९१५ आतोऽनुपसर्गे कः । ३ । २।३॥

आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात्कर्मण्युपपदे कः स्यान्नाऽण् । आतो लोपः । गोदः । पार्ष्णित्रम् । अनुपसर्गे किम् । गोसन्दायः ॥ कविधौ सर्वत्र संप्रसारणिभ्यो डः ॥ * ॥ ब्रह्म जिनाति ब्रह्मज्यः । सर्वत्र ग्रहणात् । आतश्चोपसर्गे । ३।३।१०६ । आह्वः । प्रह्वः ॥

२९१५-उपसर्ग पूर्वमें न रहते कर्म उपपद होनेपर आकारान्त धातुके उत्तर क प्रत्यय हो, अण् प्रत्यय न हो । आकारका लोप होकर-गोदः । पार्ष्णित्रम् । उपसर्ग पूर्वमें रहते तो गोसन्दायः ।

क प्रत्ययविधानमें सर्वत्र संप्रसारण होनेवाला है जिसके ऐसे धातुके उत्तर ड प्रत्यय हो * ब्रह्म जिनाति, इस विग्रहमें ब्रह्मज्यः सर्व ग्रहणके कारण उपसर्ग उपपद होनेपर आकारान्त धातुके उत्तर भी ड प्रत्यय ही होगा, यथा-आह्वः । प्रह्वः ॥

२९१६ सुपि स्थः । ३ । २ । ४ ॥

सुपीति योगो विभज्यते । सुपि उपपदे आदन्तात्कः स्यात् । द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः । समस्थः । विषमस्थः । ततः स्थः । सुपि तिष्ठतेः कः स्यादारम्भसामर्थ्याद्भावे । आखूनामुत्थानमाखूत्थः ॥

२९१६-'सुपि' ऐसा सूत्र योगविभागसे कियाजाता है । सुबन्त उपपद होनेपर आकारान्त धातुके उत्तर क प्रत्यय हो, यथा-द्वाभ्यां पिबति, इस वि ... द्विपः । समस्थः।विषमस्थः। पश्चात् योगविभागसे 'स्थः' ऐसा द्वितीय सूत्र हुआ । सुबन्त उपपद होनेपर स्था धातुके उत्तर क प्रत्यय हो, आरम्भ सामर्थ्यके कारण भावमें क प्रत्यय होगा, जैसे-आखूनामुत्थानमाखूत्थः ॥

२९१७ प्रष्ठोऽग्रगामिनि । ८ । ३ । ९२॥

प्रतिष्ठत इति प्रष्ठो गौः । अग्रतो गच्छतीत्यर्थः । अग्रेति किम् । प्रस्थः ॥

२९१७-अग्रगामी अर्थमें प्रपूर्वक स्था धातुके उत्तर क प्रत्यय होनेपर निपातनसे षत्व होनेपर प्रतिष्ठते, इस विग्रहमें प्रष्ठो गौः । अग्रतो गच्छतीत्यर्थः । जिस स्थानमें अग्रगामी अर्थ नहीं होगा, उस स्थानमें षत्व नहीं होगा, यथा-प्रस्थः ॥

२९१८ अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः । ८ । ३ । ९७ ॥

स्थ इति कप्रत्ययान्तस्यानुकरणम् । षष्ठ्यर्थे प्रथमा । एभ्यः स्थस्य सस्य षः स्यात् । द्विष्ठः । त्रिष्ठः । इत ऊर्ध्वं कर्मणि सुपीति द्वयमप्यनुवर्तते । तत्राकर्मकेषु सुपीत्यस्य सम्बन्धः ॥

२९१८-'स्थ' यह क प्रत्ययान्तका अनुकरण है और उससे षष्ठ्यर्थमें प्रथमा हुई है । अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कुशे, कुशंकु, अंगु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिष्, दिवि, अग्नि इन शब्दोंके उत्तर कप्रत्ययान्त स्था धातुके सकारको षत्व हो, द्विष्ठः । त्रिष्ठः । इसके आगे 'कर्मणि' 'सुपि' इन दोनोंकी अनुवृत्ति होगी, उनमें अकर्म्मक धातुओंमें 'सुपि' इसका संबन्ध होगा ॥

२९१९ तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः । ३ । २ । ५ ॥

तुन्दशोकयोः कर्मणोरुपपदयोराभ्यां कः स्यात् ॥ आलस्यसुखाहरणयोरिति वक्तव्यम् ॥*॥ तुन्दं परिमार्ष्टीति तुन्दपरिमृजोऽलसः । शोकापनुदः । सुखस्याहर्ता । अलसादन्यत्र तुन्दपरि-

मार्ज एव। यश्च संसारासारत्वोपदेशेन शोकमपनुदति स शोकापनोदः ॥ कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः। आकृतिगणोऽयम् ॥ महीध्रः। कुध्रः। गिलतीति गिलः ॥

२९१९–तुन्द और शोक यह दो कर्म्म उपपद होनेपर यथाक्रम परिपूर्वक मृज धातुके उत्तर और अपपूर्वक तुद धातुके उत्तर क प्रत्यय हो।

आलस्य और सुखाहरणार्थमें क प्रत्यय हो ऐसा कहना चाहिये * यथा–तुन्दं परिमार्ष्टि, इस विग्रहमें तुन्दपरिमृजः। अलसः। शोकापनुदः। सुखस्याहर्त्ता। अलसभिन्नार्थमें 'तुन्दपरिमार्ज्जः' ऐसा ही होगा। जो व्यक्ति संसारके असारत्व उपदेशसे शोकका अपनोदन करताहै, उसका नाम शोकापनोद है।

कप्रकरणमें मूलविभुजादि शब्दोंसे क प्रत्ययको उपसंख्यान करना चाहिये * मूलानि विभुजति, इस विग्रहमें मूलविभुजो रथः। यह आकृतिगण है। महीध्रः। कुध्रः। गिलति, इस विग्रहमें गिलः ॥

२९२० प्रे दाज्ञः। ३। २। ६॥

दारूपाज्जानातेश्च प्रोपसृष्टात्कर्मण्युपपदे कः स्यादणोपवादः। सर्वप्रदः। पथिप्रज्ञः। अनुपसर्ग इत्युक्तेः प्रादन्यस्मिन्सति न कः। गोसम्प्रदायः॥

२९२०–कर्म्म उपपद होनेपर प्रपूर्वक दा और ज्ञा धातुके उत्तर कर्त्तामें क प्रत्यय हो, यह अण् प्रत्ययका अपवाद है, यथा–सर्वप्रदः। पथिप्रज्ञः, सूत्रमें अनुपसर्ग ऐसी उक्ति होनेसे प्रभिन्न सुबन्त उपपद होनेपर क प्रत्यय नहीं होगा, यथा–गोसम्प्रदायः ॥

२९२१ समि ख्यः। ३। २। ७॥

गोसंख्यः ॥

२९२१–सुबन्त उपपद होनेपर संपूर्वक ख्या धातुके उत्तर कर्त्तामें क प्रत्यय हो, यथा–गोसंख्यः ॥

२९२२ गापोष्टक्। ३। २। ८॥

अनुपसृष्टाभ्यामाभ्यां टक् स्यात्कर्मण्युपपदे। सामगः। सामगी। उपसर्गे तु सामसङ्गायः॥ पिबतेः सुराशीध्वोरिति वाच्यम् ॥*॥ सुरापी। शीधुपी। अन्यत्र क्षीरपा ब्राह्मणी। सुरां पाति रक्षतीति सुरापा ॥

२९२२–कर्म्म उपपद होनेपर और उपसर्गपूर्वक न होनेपर गा धातु और पा धातुके उत्तर टक् प्रत्यय हो, यथा–सामगः। सामगी। उपसर्गपूर्वक होनेपर तो सामसङ्गायः।

सुरा और शीधु शब्द उपपद होनेपर पानवाचक पा धातुके उत्तर टक् प्रत्यय हो * सुरापी। शीधुपी। अन्य शब्द उपपद होनेपर नहीं होगा, क्षीरपा ब्राह्मणी। सुरां पाति रक्षति, इस विग्रहमें 'सुरापा' ऐसा पद होगा ॥

२९२३ हरतेरनुद्यमनेच्। ३। २। ९॥

अंशहरः। अनुद्यमने किम्। भारहारः॥ शक्तिलाङ्गलांकुशतोमरयष्टिघटघटीधनुष्षु ग्रहेरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ शक्तिग्रहः। लाङ्गलग्रहः॥ सूत्रे च धार्यर्थे ॥ * ॥ सूत्रग्रहः। यस्तु सूत्रं केवलमुपादत्ते न तु धारयति तत्राणेव। सूत्रग्राहः॥

२९२३–अनुद्यमनार्थमें हृ धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो, यथा–अंशहरः। उद्यमनार्थ होनेपर–भारहारः ऐसा होगा।

शक्ति, लाङ्गल, अंकुश, तोमर, यष्टि, घट, घटी, धनुष् इन कर्म्मोंके उपपद होनेपर ग्रह धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो * यथा–शक्तिग्रहः। लाङ्गलग्रहः।

सूत्र कर्म उपपद होनेपर धारण अर्थमें ग्रह धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो * सूत्रग्रहः। जो तो सूत्र केवल ग्रहणमात्र करताहै, किन्तु धारण नहीं करताहै, उस स्थानमें अण् प्रत्यय ही होगा, सूत्रग्राहः ॥

२९२४ वयसि च। ३। २। १०॥

उद्यमनार्थं सूत्रम्। कवचहरः कुमारः ॥

२९२४–अवस्थारूप अर्थ गम्यमान होनेपर कर्म्म उपपद रहते हृञ् धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो, उद्यमनार्थ यह सूत्र है, यथा–कवचहरः कुमारः ॥

२९२५ आङि ताच्छील्ये। ३।२।११॥

पुष्पाण्याहरति तच्छीलः पुष्पाहरः। ताच्छील्ये किम्। भारहारः ॥

२९२५–कर्म्म उपपद होनेपर और ताच्छील्य गम्यमान होनेपर आङ्पूर्वक हृञ् धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो, पुष्पाण्याहरति तच्छीलः, इस विग्रहमें पुष्पाहरः। ताच्छील्यार्थ न होनेपर अच् प्रत्यय नहीं होगा, जैसे–भारहारः।

२९२६ अर्हः। ३। २। १२॥

अर्हतेरच् स्यात्कर्मण्युपपदेऽणोपवादः। पूजार्हा ब्राह्मणी ॥

२९२६–कर्म्म उपपद होनेपर अर्ह धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो, यह सूत्र अण् प्रत्ययका अपवाद है। पूजार्हा ब्राह्मणी ॥

२९२७ स्तम्बकर्णयो रमिजपोः। ३। २। १३॥

हस्तिसूचकयोरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ स्तम्बे रमते स्तम्बेरमो हस्ती। तत्पुरुषे कृतीति हलदन्तादिति वा ङेरलुक्। कर्णेजपः सूचकः ॥

२९२७–स्तम्ब और कर्ण शब्द उपपद होनेपर यथाक्रम रम और जप धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो।

यथाक्रम हस्ती और सूचक अर्थमें हो, ऐसा कहना चाहिये * यथा–स्तम्बे रमते=स्तम्बेरमो हस्ती, यहां "तत्पु-

रूपे कृति बहुलम् ९७२" अथवा "इलदन्तात्० ९६६" इस सूत्रसे ङिका अलुक् हुआ । कर्णेजपः सूचकः ॥

२९२८ शमि धातोः संज्ञायाम् ।३।२।१४

शम्भवः । शंवदः । पुनर्धातुग्रहणं बाधकविषयेऽपि प्रवृत्त्यर्थम् । कृञो हेत्वादिषु टो मा भूत् । शङ्करा नाम परिव्राजिका तच्छीला च ॥

२९२८-शम् शब्द उपपद होनेपर संज्ञामें धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो । शम्भवः । शंवदः । धातुके अधिकारसे सिद्धि होनेपर भी पुनर्वार धातुका ग्रहण बाधकविषयमें भी प्रवृत्तिके निमित्त है, इस कारण कृञ् धातुके उत्तर हेतु आदि अर्थोंमें ट प्रत्ययको बाधकर अच् प्रत्यय ही होता है, यथा-शंकरा नाम परिव्राजिका तच्छीला च ॥

२९२९ अधिकरणे शेतेः ।३।२।१५॥

खे शेते खशयः ॥ * ॥ पार्श्वादिषूपसंख्यानम् ॥ पार्श्वाभ्यां शेते पार्श्वशयः । पृष्ठशयः । उदरेण शेते उदरशयः ॥ उत्तानादिषु कर्तृषु ॥ * ॥ उत्तानः शेते उत्तानशयः। अवमूर्धशयः । अवनतो मूर्धा यस्य सः अवमूर्धा अधोमुखः शेत इत्यर्थः । गिरौ डश्छन्दसि ॥ * ॥ गिरौ शेते गिरिशः । कथं तर्हि गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशीति । गिरिरस्यास्तीति विग्रहे लोमादित्वाच्छः ॥

२९२९-अधिकरण उपपद होनेपर शीङ् धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो, यथा-खे शेते=खशयः ।

पार्श्वादि शब्द उपपद होनेपर शीङ् धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो * यथा-पार्श्वाभ्यां शेते=पार्श्वशयः।पृष्ठशयः । उदरेण शेते=उदरशयः ।

उत्तानादि कर्त्ता होनेपर शीङ् धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो * यथा-उत्तानः शेते उत्तानशयः । अवमूर्द्धशयः । अवनतो मूर्द्धा यस्य सः अवमूर्धा अधोमुखः शेते इत्यर्थः ।

वेदमें गिरि शब्द उपपद रहते शीङ् धातुके उत्तर ड प्रत्यय हो * गिरौ शेते=गिरिशः । वेदमें ड प्रत्यय होनेसे 'गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी' इस स्थलमें किस प्रकार गिरिश पद सिद्ध हुआहै ? तो इस स्थलमें गिरिरस्यास्ति इस विग्रहमें लोमादित्वके कारण श प्रत्यय हुआ है ॥

२९३० चरेष्टः ।३।२।१६॥

अधिकरणे उपपदे । कुरुचरः । कुरुचरी ॥

२९३०-अधिकरण उपपद होनेपर चर धातुके उत्तर ट प्रत्यय हो, यथा-कुरुषु चरति, इस विग्रहमें कुरुचरः । कुरुचरी ॥

२९३१ भिक्षासेनादायेषु च ।३।२।१७॥

भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायेति ल्यबन्तम् । आदायचरः । कथं प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीमिति । पचादिषु चरडिति पाठात् ॥

२९३१-भिक्षा, सेना और आदाय शब्द उपपद होनेपर चर धातुके उत्तर ट प्रत्यय हो,यथा-भिक्षां चरति,इस वाक्यमें भिक्षाचरः । सेनाचरः । 'आदय' पद आङ्पूर्वक दा धातुके उत्तर ल्यप् प्रत्यय करके सिद्ध हुआहै । आदायचरः । भिक्षादि उपपद न होनेसे ' प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीम् ' इस स्थलमें सहचरी शब्द किस प्रकार सिद्ध हुआ ? तो इस स्थलमें पचादिकोंके मध्यमें चरट् इसका पाठ होनेसे टित्वके कारण ङीप् होताहै ॥

२९३२ पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः ।३।२।१८॥

पुरस्सरः । अग्रतस्सरः । अग्रमग्रेणाग्रे वा सरतीत्यग्रेसरः । सूत्रेऽग्रे इति एदन्तत्वमपि निपात्यते । कथं तर्हि यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारमिति । बाहुलकादिति हरदत्तः ॥

२९३२-पुरस्, अग्रतस् और अग्रे शब्द उपपद होनेपर सृ धातुके उत्तर ट प्रत्यय हो, यथा-पुरस्सरः । अग्रतस्सरः । अग्रम् अग्रेण अग्रे वा सरति, इस विग्रहमें अग्रेसरः । सूत्रमें अग्रे इसमें एकारान्तत्व निपातनसे सिद्ध है, ' यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम्' इस स्थलमें तो अग्रसर पद बाहुलकके कारण सिद्ध हुआहै, ऐसा हरदत्तका मत है ॥

२९३३ पूर्वे कर्तरि ।३।२।१९॥

कर्तृवाचिनि पूर्वशब्दे उपपदे सर्तेष्टः स्यात् । पूर्वः सरतीति पूर्वसरः । कर्तरि किम् । पूर्वं देशं सरतीति पूर्वसारः ॥

२९३३-कर्तृवाचक पूर्व शब्द उपपद होनेपर सृ धातुके उत्तर ट प्रत्यय हो, पूर्वः सरति, इस विग्रहमें पूर्वसरः । जिस स्थानमें कर्तृवाचक पूर्व शब्द नहीं होगा, उस स्थानमें पूर्वं देशं सरति, इस विग्रहमें 'पूर्वसारः' ऐसा पद होगा ॥

२९३४ कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ।३।२।२०॥

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात् । अतः कृकमीति सः । यशस्करी विद्या । श्राद्धकरः । वचनकरः ॥

२९३४-हेतु, ताच्छील्य और आनुलोम्य द्योत्य होनेपर कृञ् धातुके उत्तर ट प्रत्यय हो । "अतः कृकमि० १६०" इस सूत्रसे स आदेश होकर-यशस्करी विद्या । श्राद्धकरः । वचनकरः ॥

२९३५ दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ।३।२।२१॥

एषु कृञष्टः स्यात् अहेत्वादावपि । दिवाकरः । विभाकरः । निशाकरः । कस्कादित्वात्त्सः । भास्करः । बहुकरः । बहुशब्दस्य वैपुल्यार्थ

संख्यापेक्षया पृथग्ग्रहणम्। लिपिलिबिशब्दौ पर्यायौ । संख्या । एककरः । द्विकरः । कस्कादित्वादहस्करः । नित्यं समासेनुत्तरपदस्थस्येति षत्वम् । धनुष्करः । अरुष्करः ॥ किंयत्तद्बहुषु कृञोऽज्विधानमिति वार्त्तिकम् ॥ * ॥ किंकरा । यत्करा । तत्करा । हेत्वादौ टं बाधित्वा परत्वादच् । पुंयोगे ङीष् । किङ्करी ॥

२९३५-दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, कार, अन्त, अनन्त, आदि, बहु, नान्दी, किम्, लिपि, लिबि, बलि, भक्ति, कर्तृ, चित्र, क्षेत्र, संख्या, जंघा, बाहु, अहर्, यद्, तद्, धनुस्, और अरुष् शब्द उपपद होनेपर कृञ् धातुके उत्तर हेतु, ताच्छील्य और आनुलोम्यसे भिन्न अर्थमें भी कर्तामें ट प्रत्यय हो, यथा-दिवाकरः । विभाकरः । निशाकरः । कस्कादित्वके कारण सत्व होकर-भास्करः । बहुकरः । बहु शब्दका विपुलता अर्थमें संख्यावाचकत्व न होनेके कारण पृथक् ग्रहण हुआहै । लिपि और लिबि शब्दपर्य्याय हैं। संख्यावाचक उपपद रहते, यथा-एककरः । द्विकरः, इत्यादि कस्कादिमें होनेसे 'अहस्करः' "नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य १५९" इससे षत्व होकर-धनुष्करः । अरुष्करः ।

किम्, यद्, तद्, और बहु शब्द उपपद होनेपर कृ धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो * यथा-किंकरा । यत्करा । तत्करा यहां हेतु, ताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थमें परत्वके कारण ट प्रत्ययको बाधकर अच् प्रत्यय हुआ । पुंयोगमें उसके उत्तर ङीष् प्रत्यय होकर-किङ्करी ॥

२९३६ कर्मणि भृतौ । ३ । २ । २२ ॥

कर्मशब्दे उपपदे करोतेष्टः स्यात् । कर्मकरो भृतकः । कर्मकारोऽन्यः ॥

२९३६-कर्म्म शब्द उपपद होनेपर कृ धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें भृति, अर्थात् वेतन अर्थ होनेपर ट प्रत्यय हो, यथा-कर्म्मकरो भृतकः । कर्म्मकारोऽन्यः । इस स्थलमें कर्म्म शब्द पूर्वक कृ धातुके उत्तर अण् प्रत्यय हुआहै ॥

२९३७ न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु । ३ । २ । २३ ॥

एषु कृञष्टो न हेत्वादिषु प्राप्तः प्रतिषिध्यते । शब्दकार इत्यादि ॥

२९३७-शब्द, श्लोक, कलह, गाथा, वैर, चाटु, सूत्र, मंत्र और पद शब्द उपपद होनेपर कृञ् धातुके उत्तर ट प्रत्यय न हो । हेत्वादि अर्थमें ट प्रत्ययकी प्राप्ति हुई थी, परन्तु इस सूत्रसे उसका प्रतिषेध हुआ, यथा-शब्दकारः इत्यादि ॥

२९३८ स्तम्बशकृतोरिन् । ३ । २ । २४ ॥

व्रीहिवत्सयोरिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ स्तम्बकारिर्व्रीहिः । शकृत्करिर्वत्सः । व्रीहिवत्सयोः किम् । स्तम्बकारः। शकृत्कारः ॥

२९३८-स्तम्ब और शकृत् शब्द उपपद रहते कृ धातुके उत्तर इन् प्रत्यय हो । यथाक्रम व्रीहि और वत्स वाच्य रहते ही ऐसा कहना चाहिये * यथा-स्तम्बकारिः व्रीहिः । शकृत्करिः वत्सः । व्रीहि और वत्ससे भिन्न अर्थमें तो स्तम्बकारः । शकृत्कारः ॥

२९३९ हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ । ३ । २ । २५ ॥

दृतिनाथयोरुपपदयोर्हृञ इन् स्यात् पशौ कर्तरि । दृतिं हरतीति दृतिहरिः । नाथं नासारज्जुं हरतीति नाथहरिः। पशौ किम् । दृतिहारः। नाथहारः ॥

२९३९-पशु कर्त्ता होनेपर दृति और नाथ शब्द उपपद रहते हृञ् धातुके उत्तर इन् प्रत्यय हो, यथा-दृतिं हरति, इस विग्रहमें दृतिहरिः । नाथं नासारज्जुं हरति, इस विग्रहमें नाथहरिः, पशु कर्त्ता न होनेपर तो दृतिहारः । नाथहारः ॥

२९४० फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ।३।२।२६॥

फलानि गृह्णाति फलेग्रहिः । उपपदस्य एदन्तत्वं ग्रहेरिन्प्रत्ययश्च निपात्यते । आत्मानं बिभर्तीति आत्मम्भरिः । आत्मनो मुमागमः । भृञ इन् । चात्कुक्षिम्भरिः । चान्द्रास्तु आत्मोदरकुक्षिष्विति पेठुः । ज्योत्स्नाकरम्भमुदरम्भरयक्षकोरा इति मुरारिः ॥

२९४०-'फलेग्रहिः' और 'आत्मम्भरिः' यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों । फलानि गृह्णाति, इस विग्रहमें फलशब्दपूर्वक ग्रह धातुके उत्तर इन् प्रत्यय और उपपदको अर्थात् फल शब्दको एकारान्तत्व निपातन होकर-फलेग्रहिः । आत्मानं बिभर्त्ति, इस विग्रहमें आत्मन् शब्द पूर्वक भृ धातुके उत्तर इन् प्रत्यय और आत्मन् शब्दको मुमागम निपातनसे होकर-आत्मम्भरिः । चकारसे 'कुक्षिम्भरिः' यह पद भी सिद्ध हुआ । चान्द्रके मतसे तो आत्मन्, उदर और कुक्षि शब्द उपपद होनेपर भृञ् धातुके उत्तर इन् प्रत्यय होगा, इस कारण मुरारिकृत ग्रन्थमें 'ज्योत्स्नाकरम्भमुदरंभरयक्षकोराः' ऐसा प्रयोग है ॥

२९४१ एजेः खश् । ३ । २ । २८ ॥

ण्यन्तादेजेः खश् स्यात् ॥

२९४१-णिजन्त एजि धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें खश् प्रत्यय हो ॥

२९४२ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् । ६ । ३ । ६७ ॥

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात् खिदन्ते उत्तरपदे न त्वव्ययस्य । शिखाच्छवादिः । जनमेजयतीति जनमेजयः ॥ वातशुनीतिलशर्धेष्वजधेट्तुदजहातिभ्य खशः उपसंख्यानम् ॥ * ॥ वातमजा मृगाः

२९४२-खिदन्त उत्तर पद रहते अरुष्, द्विषत् और अजन्त शब्दको मुम्का आगम हो, परन्तु अव्ययको मुमागम न हो। खश् प्रत्ययके श की इत्संज्ञा हुई, इस कारण धातुसे शप् आदि होंगे, यथा जनम् एजयति, इस विग्रहमें जनमेजयः।

वात, शुनी, तिल और शर्ध शब्द उपपद होनेपर यथाक्रम-अज, धेट्, तुद और हा धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो* यथा-वातमजाः, अर्थात् मृगाः ॥

२९४३ खित्यनव्ययस्य । ६ ।३।६६ ॥

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः स्यात् । ततो मुम् । शुनिन्धयः । तिलन्तुदः । शर्द्धजहा माषाः। शर्द्धोपानशब्दः तं जहति इति विग्रहः । जहातिरन्तर्भावितण्यर्थः ॥

२९४३-खिदन्त पद परे रहते पूर्वपदको ह्रस्व हो, इससे ह्रस्व पश्चात् मुम्का आगम होकर-शुनिन्धयः । तिलन्तुदः । शर्द्धजहाः माषाः । शर्द्ध शब्दसे अपानशब्द समझना, उसको त्याग करते हैं । हा धातु अन्तर्भावितणिजन्तार्थ है ॥

२९४४ नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः । ३ । २ । २९ ॥

अत्र वार्तिकम् ॥ स्तने धेटो नासिकायां ध्मश्चेति वाच्यम् ॥ * ॥ स्तनं धयतीति स्तनन्धयः । धेटष्टित्वात् स्तनन्धयी । नासिकन्धमः । नासिकन्धयः ॥

२९४४-नासिका और स्तन शब्द उपपद होनेपर ध्मा और धेट् धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो । इस स्थलमें यह वार्त्तिक है कि,

स्तन शब्द उपपद रहते धेट् धातु और नासिका शब्द उपपद रहते ध्मा धातुके उत्तर और च शब्दसे धेट् धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो, स्तनं धयतीति स्तनंधयः । धेट् धातुको टित्व होनेसे ङीप् होकर-स्तनन्धयी । नासिकन्धमः । नासिकन्धयः ॥

२९४५ नाडीमुष्ट्योश्च । ३ । २ । ३० ॥

एतयोरुपपदयोः कर्मणोर्ध्माधेटोः खश् स्यात् ॥ यथासंख्यं नेष्यते ॥ * ॥ नाडिंधमः । नाडिन्धयः । मुष्टिन्धमः । मुष्टिन्धयः । घटीखारीखरीषूपसंख्यानम् ॥ * ॥ घटिन्धमः । घटिन्धय इत्यादि । खारी परिमाणविशेषः । खरी गर्दभी ॥

२९४५-नाडी और मुष्टिरूप कर्म उपपद होनेपर ध्मा और धेट् धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो । इस स्थलमें यथाक्रम इष्ट नहीं है, अर्थात् यथेच्छ होगा, यथा-नाडिन्धमः । नाडिन्धयः । मुष्टिन्धमः । मुष्टिन्धयः ।

घटी, खारी और खरी शब्द उपपद होनेपर ध्मा और धेट् धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो * यथा-घटिन्धमः । घटिन्धयः, इत्यादि । खारी शब्दसे परिमाणविशेष समझना । खरी शब्दसे गर्दभी जानना ॥

२९४६ उदि कूले रुजिवहोः ।३।२।३१॥

उत्पूर्वाभ्यां रुजिवहिभ्यां कूले कर्मण्युपपदे खश् स्यात् । कूलमुद्रुजतीति कूलमुद्रुजः । कूलमुद्वहः ॥

२९४६-कूल कर्म्म उपपद होनेपर उत्पूर्वक रुज और वह धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो, यथा-कूलम् उद्रुजति, इस विग्रहमें कूलमुद्रुजः किनारा तोडनेवाला । कूलम् उद्वहति, इस विग्रहमें कूलमुद्वहः ॥

२९४७ वहाभ्रे लिहः । ३ । २ । ३२ ॥

वहः स्कन्धस्तं लेढीति वहंलिहो गौः । अदादित्वाच्छपो लुक् । खशो ङित्त्वान्न गुणः । अभ्रंलिहो वायुः ॥

२९४७-वह और अभ्ररूप कर्म्म उपपद होनेपर लिह धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो, यथा-वहः स्कन्दस्तं लेढि, इस विग्रहमें वहंलिहो गौः । यहां अदादित्वके कारण लिह धातुके उत्तर शप्का लुक् हुआ । खश् प्रत्यय ङित् है, अत एव धातुके इक्को गुण न हुआ । अभ्रं लेढि, इस विग्रहमें अभ्रंलिहो वायुः ॥

२९४८ परिमाणे पचः । ३ । २ । ३३॥

प्रस्थम्पचा स्थाली । खारीम्पचः कटाहः ॥

२९४८-परिमाणवाचक शब्द उपपद होनेपर पच् धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो, यथा-प्रस्थंपचा स्थाली । खारीं पचति, इस विग्रहमें खारींपचः कटाहः ॥

२९४९ मितनखे च । ३ । २ ।३४॥

मितम्पचा ब्राह्मणी । नखम्पचा यवागूः । पचिरत्र तापवाची ॥

२९४९-मित और नख शब्द उपपद होनेपर खश् प्रत्यय हो, यथा-मितं पचति, इस विग्रहमें मितम्पचा ब्राह्मणी । नखं पचति, इस विग्रहमें नखम्पचा यवागूः । इस स्थलमें पच् धातु तापवाचक है ॥

२९५० विध्वरुषोस्तुदः । ३ । २ ।३५॥

विधुन्तुदः । मुमि कृते संयोगान्तस्य लोपः । अरुन्तुदः ॥

२९५०-विधु और अरुष् शब्द उपपद होनेपर तुद् धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो, यथा-विधुं तुदति, इस विग्रहमें विधुन्तुदः राहुः । मुम् आगम होनेपर संयोगान्तका लोप होकर अरुर्मर्म तुदति, इस विग्रहमें अरुन्तुदः (मर्मस्थानमें चोट पहुंचानेवाला) ॥

२९५१ असूर्यललाटयोर्दृशितपोः । ३ । २ । ३६ ॥

असूर्यमित्यसमर्थसमासः । दृशिना नञः सम्बन्धात् । सूर्यं न पश्यन्तीत्यसूर्यम्पश्या राजदाराः । ललाटन्तपः सूर्यः ॥

२९५१–दृश् धातुके साथ नञ्का संबन्ध होनेके कारण 'असूर्यम्' इस स्थलमें असमर्थ समास हुआहै । असूर्य्य और ललाट शब्द उपपद होनेपर यथाक्रम दृश् और तप् धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो । सूर्य्यं न पश्यंति, इस विग्रहमें असूर्यम्पश्या राजदाराः । ललाटं तपति, इस विग्रहमें ललाटन्तपः सूर्य्यः ॥

२९५२ उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च । ३ । २ । ३७ ॥

एते निपात्यन्ते । उग्रमिति क्रियाविशेषणं तस्मिन्नुपपदे दृशेः खश् । उग्रं पश्यतीत्युग्रम्पश्यः। इरा उदकं तेन माद्यति दीप्यतेऽविन्धनत्वादिति इरम्मदो मेघज्योतिः । इह निपातनात् श्यन्न । पाणयो ध्मायन्तेऽस्मिन्निति पाणिन्धमोऽध्वा । अन्धकाराद्यावृत इत्यर्थः । तत्र हि सर्पाद्यपनोदनाय पाणयः शब्द्यन्ते ॥

२९५२–उग्रम्पश्यः, इरम्मदः, पाणिन्धमः, यह तीन पद निपातनसे सिद्ध हों इस स्थलमें उग्र पद क्रियाका विशेषण है । ' उग्रम् ' यह क्रियाविशेषण उपपद होनेपर दृश् धातुके उत्तर खश् प्रत्यय होकर–उग्रं पश्यति, इस विग्रहमें उग्रम्पश्यः । इरा उपपद होनेपर मद् धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हुआ । इरा शब्दसे उदक समझना । इरया माद्यति दीप्यते अविन्धनत्वात्, इस विग्रहमें इरम्मदो मेघज्योतिः (बिजली) यहां निपातनसे श्यन् प्रत्यय नहीं हुआ । पाणयो ध्मायन्तेऽस्मिन्, इस विग्रहमें पाणिन्धमः अध्वा, अर्थात् अन्धकारादिसे आवृत भाग उस स्थलमें सर्पादि दूरीकरणार्थ हस्तकी ध्वनि की जातीहै ॥

२९५३ प्रियवशे वदः खच् । ३ । २ । ३८ ॥

प्रियंवदः । वशंवदः ॥ गमेः सुपि वाच्यः ॥ * ॥ असंज्ञार्थमिदम् । मितङ्गमो हस्ती ॥ विहायसो विह इति वाच्यम् ॥ * ॥ खच्च डिद्वा वाच्यः ॥ * ॥ विहङ्गः । विहङ्गमः । भुजङ्गः ॥ भुजङ्गमः ।

२९५३–प्रिय और वश शब्द उपपद होनेपर वद् धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो, यथा–प्रियंवदः । वशंवदः ।

सुबन्त उपपद रहते गम् धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो * यह असंज्ञार्थ है संज्ञामें तो वक्ष्यमाण " गमश्च " इस सूत्रसे ही सिद्ध है मितङ्गमो हस्ती ।

विहायस् शब्दके स्थानमें विह आदेश हो * । खच् प्रत्यय विकल्प करके डित् हो विहङ्गः, विहङ्गमः–पक्षी । भुजङ्गः, भुजङ्गमः सर्पः ॥

२९५४ द्विषत्परयोस्तापेः । ३ । २ । ३९ ॥

खच् स्यात् ॥

२९५४–द्विषत् और पर शब्द उपपद होनेपर तापि धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो ॥

२९५५ खचि ह्रस्वः । ६ । ४ । ९४ ॥

खच्परे णौ उपधाया ह्रस्वः स्यात् । द्विषन्तं परं वा तापयतीति द्विषन्तपः । परन्तपः । घटघटीग्रहणाल्लिङ्गविशिष्टपरिभाषा अनित्या । तेनेह न । द्विषतीं तापयतीति द्विषतीतापः ॥

२९५५–खच्प्रत्ययपरक णि परे रहते धातुकी उपधाको ह्रस्व हो, यथा–द्विषन्तं परं वा तापयति, इस विग्रहमें द्विषन्तपः । परन्तपः शत्रुको ताप देनेवाला "शक्तिलाङ्गलांकुश०" इस सूत्रमें घट शब्दसे पृथक् घटी शब्दका ग्रहण करनेसे लिङ्गविशिष्टपरिभाषा अनित्य होतीहै, इस कारण द्विषती तापयति, इस विग्रहमें द्विषतीतापः (द्वेष करती हुई स्त्रीको दुःख देनेवाला) यहां खच् प्रत्यय नहीं हुआ ॥

२९५६ वाचि यमो व्रते । ३ । २ । ४० ॥

वाक्शब्दे उपपदे यमेः खच् स्याद्व्रते गम्ये ॥

२९५६–व्रत गम्य होनेपर वाक् शब्द उपपद रहते यम् धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो ॥

२९५७ वाचंयमपुरन्दरौ च । ६ । ३ । ६९ ॥

वाक्पुरोरमन्तत्वं निपात्यते । वाचंयमो मौनव्रती । व्रते किम् । अशक्त्यादिना वाचं यच्छतीति वाग्यामः ॥

२९५७–वाचंयमः पुरन्दरः, इनमें वाक् और पुर् शब्दको अमन्तत्व निपातनसे सिद्ध हो, यथा–वाचंयमो मौनव्रती । व्रत गम्य न होनेपर तो अशक्त्यादिना वाचं यच्छति, इस विग्रहमें वाग्यामः ॥

२९५८ पूःसर्वयोर्दारिसहोः । ३ । २ । ४१ ॥

पुरं दारयतीति पुरन्दरः । सर्वंसहः । सहिग्रहणमसंज्ञार्थम् ॥ भगे च दारेरिति काशिका ॥ बाहुलकेन लब्धमिदमित्याहुः । भगं दारयतीति भगन्दरः ॥

२९५८–पुर् और सर्व शब्द उपपद होनेपर यथाक्रम दारि धातु और सह धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो, पुरम् दारयति, इस विग्रहमें पुरन्दरः । सर्वंसहः । यहां सहिग्रहण असंज्ञार्थ है, संज्ञामें तो " संज्ञायां भृतॄवृजि० " इस सूत्रसे ही सिद्ध है ।

भाग शब्द उपपद रहते दारि धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो, यह काशिका है, कोई तो बाहुलकसे यह लब्ध होताहै, ऐसा कहतेहैं । भगं दारयति, इस विग्रहमें भगन्दरः (रोगविशेषः) ॥

२९५९ सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः । ३ । २ । ४२ ॥

सर्वङ्कषः खलः । कूलङ्कषा नदी । अभ्रंकषो वायुः । करीषङ्कषा वात्या ॥

२९५९-सर्व, कूल, अभ्र और करीष शब्द उपपद होनेपर कष् धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो, यथा-सर्वङ्कषः खलः । कूलङ्कषा नदी । अभ्रङ्कषो वायुः । करीषङ्कषा वात्या ॥

२९६० मेघर्तिभयेषु कृञः ।३।२।४३ ॥

मेघङ्करः । ऋतिङ्करः । भयङ्करः । भयशब्देन तदन्तविधिः । अभयङ्करः ॥

२९६०-मेघ, ऋति और भय शब्द उपपद होनेपर कृञ् धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो, यथा-मेघंकरः । ऋतिङ्करः । भयङ्करः । भय शब्दसे तदन्तविधि होतीहै, इससे भय शब्दान्त शब्दके उत्तर भी खच् प्रत्यय होगा, यथा-अभयङ्करः ॥

२९६१ क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ।३।२।४४॥

एषु कृञोऽण् स्यात् । चात् खच् । क्षेमंकरः-क्षेमकारः । प्रियङ्करः-प्रियकारः । मद्रङ्करः-मद्रकारः । वेति वाच्येऽण्ग्रहणं हेत्वादिषु टो मा भूदिति । कथं तर्हि अल्पारम्भाः क्षेमकरा इति । कर्मणः शेषत्वविवक्षायां पचाद्यच् ॥

२९६१-क्षेम, प्रिय और मद्र शब्द उपपद होनेपर कृञ् धातुके उत्तर अण् और चकारसे खच् प्रत्यय हो, यथा-क्षेमङ्करः । क्षेमकारः । प्रियङ्करः । प्रियकारः । मद्रङ्करः । मद्रकारः । वा शब्द ग्रहण करनेसे ही पक्षमें अण् प्रत्यय होता, फिर अणूग्रहण हेत्वादि अर्थमें ट प्रत्यय नहीं हो इसके निमित्त है । 'अल्पारम्भाः क्षेमकराः' इस स्थलमें तो कर्मकी शेषत्व विवक्षामें पचादित्वके कारण अच् प्रत्यय हुआहै ॥

२९६२ आशिते भुवः करणभावयोः। ३ । २ । ४५ ॥

आशितशब्दे उपपदे भवतेः खच् । आशितो भवत्यनेनाशितम्भव ओदनः । आशितस्य भवनम् आशितम्भवः ॥

२९६२-करण और भाववाच्यमें आशित शब्द उपपद होनेपर भू धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो, यथा-आशितो भवति अनेन, इस विग्रहमें आशितम्भवः ओदनः । आशितस्य भवनम्=आशितम्भवः ॥

२९६३ संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः । ३ । २ । ४६ ॥

विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरः । विश्वम्भरा । रथन्तरं साम । इह रथेन तरतीति व्युत्पत्तिमात्रं न त्ववयवार्थानुगमः । पतिंवरा कन्या । शत्रुंजयो हस्ती । युगंधरः पर्वतः । शत्रुंसहः । शत्रुंतपः । अरिंदमः । दमिः शमनार्थां तेन सकर्मक इत्युक्तम् । मतान्तरे तु अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र दमिः ॥

२९६३-संज्ञा होनेपर भृ, तॄ, वृ, जि, धारि, सहि, तप् और दम् धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो, यथा-विश्वं बिभर्ति, इस विग्रहमें विश्वम्भरः । विश्वम्भरा । रथन्तरम् साम, इस स्थलमें 'रथेन तरति' ऐसा व्युत्पत्तिमात्र है किन्तु कोई अवयवार्थका अनुगम नहीं है । पतिंवरा कन्या । शत्रुञ्जयो हस्ती । युगंधरः पर्वतः । शत्रुंसहः । शत्रुन्तपः । अरिन्दमः । दम् धातु शमनार्थमें है, इस कारण यह सकर्म्मक है । अन्य मतसे तो इस स्थलमें दम् धातु अन्तर्भावितणिजर्थ है ॥

२९६४ गमश्च । ३ । २ । ४७ ॥

सुतंगमः ॥

२९६४-संज्ञा अर्थ होनेपर गम् धातुके उत्तर खच् प्रत्यय हो, यथा-सुतङ्गमः ॥

२९६५ अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः । ३ । २ । ४८ ॥

संज्ञायामिति निवृत्तम् । एषु गमेर्डः स्यात् । डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः । अन्तं गच्छतीत्यन्तग इत्यादि ॥ सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ सर्वत्रगः । पन्नं पतितं गच्छतीति पन्नगः । पन्नमिति पद्यतेः क्तान्तं क्रियाविशेषणम् ॥ उरसो लोपश्च ॥ * ॥ उरसा गच्छतीत्युरगः ॥ सुदुरोरधिकरणे ॥ * ॥ सुखेन गच्छत्यत्र सुगः । दुर्गः ॥ अन्यत्रापि दृश्यते इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ ग्रामगः ॥ डे च विहायसो विहादेशो वक्तव्यः॥ ॥ * ॥ विहगः ॥

२९६५-यहां संज्ञायाम् इसकी निवृत्ति हुई । अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार, सर्व और अनन्त शब्द उपपद होनेपर गम् धातुके उत्तर ड प्रत्यय हो, प्रत्ययमें डित्वसामर्थ्यके कारण अभसंज्ञक टिका भी लोप होगा, यथा-अन्तं गच्छति, इस विग्रहमें अन्तगः, इत्यादि ।

सर्वत्र और पन्न शब्द उपपद रहते गम् धातुके उत्तर ड प्रत्यय हो* यथा-सर्वत्रगः । पन्नं पतितं गच्छति, इस विग्रहमें पन्नगः सर्पः । पद् धातुसे क्त प्रत्यय करके 'पन्नम्' यह क्रियाका विशेषण है ।

उरस् शब्द उपपद रहते गम् धातुके उत्तर ड प्रत्यय हो और सकारका लोप हो * उरसा गच्छति, इस विग्रहमें उरगः ।

अधिकरण कारकमें सु और दुर् शब्द उपपद रहते गम् धातुके उत्तर ड प्रत्यय हो * यथा-सुखेन गच्छति अत्र, इस विग्रहमें सुगः । दुर्गः ।

अन्यत्र भी देखा जाताहै, ऐसा कहना चाहिये * इस कारण ग्रामगः।

ड प्रत्यय परे रहते विहायस् शब्दके स्थानमें विह आदेश हो ऐसा कहना चाहिये * विहगः॥

२९६६ आशिषि हनः। ३। २। ४९॥

शत्रुं वध्याच्छत्रुहः। आशिषि किम्। शत्रुघातः॥ दारावाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम्॥ ॥ * ॥ दारुशब्दे उपपदे आङ्पूर्वाद्धन्तेरण् टकारश्चान्तादेशो वक्तव्य इत्यर्थः। दार्वाघाटः॥ चारौ वा ॥ * ॥ चार्वाघाटः। चार्वाघातः। कर्मणि समि च ॥ * ॥ कर्मण्युपपदे संपूर्वाद्धन्तेरुक्तं वेत्यर्थः। वर्णान्संहन्तीति वर्णसङ्घाटः। पदसङ्घाटः। वर्णसङ्घातः। पदसङ्घातः॥

२९६६-आशीरर्थमें हन् धातुके उत्तर ड प्रत्यय हो, यथा-शत्रुं वध्यात्=शत्रुहः। आशीर्भिन्नार्थमें तो शत्रुघातः।

संज्ञामें दारु शब्द उपपद होनेपर आङ्पूर्वक हन् धातुके उत्तर अण् प्रत्यय हो और टकार अन्तादेश हो * यथा-दार्वाघाटः।

चारु शब्द उपपद होनेपर भी आङ्पूर्वक हन् धातुके उत्तर विकल्प करके अण् प्रत्यय हो और टकार अन्तादेश हो* चार्वाघाटः। चार्वाघातः।

कर्म उपपद होनेपर संपूर्वक हन् धातुके उत्तर विकल्प करके अण् प्रत्यय और टकार अन्तादेश हो * यथा-वर्णान् संहन्ति, इस विग्रहमें वर्णसंघाटः, वर्णसंघातः। पदसंघाटः, पदसंघातः॥

२९६७ अपे क्लेशतमसोः। ३।२।५०॥

अपपूर्वाद्धन्तेर्डः स्यात्। अनाशीरर्थमिदम्। क्लेशापहः पुत्रः। तमोऽपहः सूर्यः॥

२९६७-क्लेश और तमस् शब्द उपपद रहते अपपूर्वक हन् धातुके उत्तर ड प्रत्यय हो, यह सूत्र अनाशीरर्थ, अर्थात् आशीर्वादार्थसे भिन्नमें होनेके निमित्त है। क्लेशापहः पुत्रः। तमोऽपहः सूर्यः (अंधकारका नाशक)॥

२९६८ कुमारशीर्षयोर्णिनिः।३।२।५१॥

कुमारघाती। शिरसः शीर्षभावो निपात्यते। शीर्षघाती॥

२९६८-कुमार और शीर्ष शब्द उपपद रहते हन् धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो, यथा-कुमारघाती। शिरस् शब्दके स्थानमें शीर्ष आदेश निपातनसे होकर-शीर्षघाती॥

२९६९ लक्षणे जायापत्योष्टक्।३।२।५२।

हन्तेष्टक् स्याल्लक्षणवति कर्तरि। जायाघ्नो ना। पतिघ्नी स्त्री॥

२९६९-कर्ता लक्षणविशिष्ट (शुभाशुभ लक्षणाक्रान्त) हो तो जाया और पति शब्द उपपद रहते हन् धातुके उत्तर टक् प्रत्यय हो, यथा-जायाघ्नो ना। पतिघ्नी स्त्री॥

२९७० अमनुष्यकर्तृके च। ३।२।५३॥

जायाघ्नस्तिलकालकः। पतिघ्नी पाणिरेखा। पित्तघ्नं घृतम्। अमनुष्येति किम्। आखुघातः शूद्रः। अथ कथं बलभद्रः, प्रलम्बघ्नः, शत्रुघ्नः, कृतघ्न इत्यादि। मूलविभुजादित्वात्सिद्धम्। चोरघातो नगरघातो हस्तीति तु बाहुलकादणि॥

२९७०-मनुष्यसे भिन्न लक्षणवान् कर्त्ता होनेपर हन् धातुके उत्तर टक् प्रत्यय हो, यथा-जायाघ्नः तिलकालकः। पतिघ्नी पाणिरेखा। पित्तघ्नं घृतम्। मनुष्य कर्त्ता होनेपर यथा॰ आखुघातः शूद्रः।

मनुष्यभिन्न कर्त्ता होनेपर ही प्रत्यय होनेसे बलभद्रः, प्रलम्बघ्नः, शत्रुघ्नः, कृतघ्नः इत्यादि पद किस प्रकारसे सिद्ध हुए। तो मूलविभुजादित्वके कारण क प्रत्यय करके सिद्ध हुएहैं। चोरघातः, नगरघातो हस्ती, इत्यादि पद तो बाहुलकके कारण अण् प्रत्यय होकर सिद्ध हुए हैं॥

२९७१ शक्तौ हस्तिकपाटयोः।३।२।५४॥

हन्तेष्टक् स्यात् शक्तौ द्योत्यायाम्। मनुष्यकर्तृकार्थमिदम्। हस्तिघ्नो ना। कपाटघ्नश्चोरः। कवाटेति पाठान्तरम्॥

२९७१-शक्ति द्योत्य होनेपर हस्तिन् और कपाट शब्द उपपद रहते हन् धातुसे टक् प्रत्यय हो, मनुष्यकर्तृकार्थ यह सूत्र है, यथा-हस्तिघ्नो ना। कपाटघ्नश्चोरः। 'कवाट' ऐसा पाठान्तर है॥

२९७२ पाणिघताडघौ शिल्पिनि। ३।२।५५॥

हन्तेष्टक् टिलोपो घत्वं च निपात्यते पाणिताडयोरुपपदयोः। पाणिघः। ताडघः। शिल्पिनि किम्। पाणिघातः। ताडघातः॥ राजघ उपसंख्यानम्॥ * ॥ राजानं हन्ति राजघः॥

२९७२-शिल्पी कर्त्ता हो तो पाणि और ताड शब्द उपपद होनेपर निपातनसे हन् धातुके उत्तर टक् प्रत्यय, धातुकी टिका लोप और घत्व हो, यथा-पाणिघः। ताडघः। शिल्पी न होनेपर तो पाणिघातः। ताडघातः।

राजन् शब्द उपपद रहते निपातनसे हन् धातुके उत्तर टक् प्रत्यय, टिलोप और घत्व हो * यथा-राजानं हन्ति, इस विग्रहमें राजघः॥

२९७३ आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन्। ३। २। ५६॥

एषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु कर्मसूपपदेषु कृञः ख्युन् स्यात्। अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्त्यनेन आढ्यङ्करणम्। अच्वौ किम्। आढ्यीकुर्वन्त्यनेन। इह प्रतिषेधसामर्थ्यात् ल्युडपि नेति काशिका। भाष्यमते तु ल्युट् स्यादेव। अच्वावित्युत्तरार्थम्॥

२९७३-च्वि प्रत्ययार्थक हो और च्वि प्रत्ययान्त न हो ऐसे आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध और प्रिय ये कर्म उपपद हों तो कृञ् धातुके उत्तर करणमें ख्युन् प्रत्यय हो, यथा-अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्त्यनेन, इस विग्रहमें आढ्यङ्करणम् । च्वि प्रत्ययान्त होनेपर तो आढ्यीकुर्वन्त्यनेन, इस स्थलमें प्रतिषेधबलसे ल्युट् प्रत्यय भी न होगा, यह काशिकाकारका मत है, परन्तु भाष्यके मतसे तो ल्युट् होवेहीगा । 'अच्वौ' यह पद उत्तरार्थ है ॥

२९७४ कर्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ । ३ । २ । ५७ ॥

आढ्यादिषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु भवतेरेतौ स्तः॥अनाढ्य आढ्यो भवतीति आढ्यम्भविष्णुः। आढ्यम्भावुकः॥ स्पृशोऽनुदके क्विन् ।३ । २।५८॥ घृतस्पृक् । कर्मणीति निवृत्तम् । मन्त्रेण स्पृशतीति मन्त्रस्पृक् ॥ ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ।३ । २ । ५९ । व्याख्यातम् ॥ त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च । ३ । २ ।६० । समानान्ययोश्चेति वाच्यम् ॥ * ॥ सदृक् । सदृशः । अन्यादृक् । अन्यादृशः । क्सोऽपि वाच्यः ॥ * ॥ तादृक्षः । सदृक्षः । अन्यादृक्षः॥

२९७४-च्व्यर्थक और अच्व्यन्त आढ्यादि शब्द उपपद होनेपर कर्तामें भू धातुके उत्तर खिष्णुच् और खुकञ् प्रत्यय हों, यथा-अनाढ्यः आढ्यो भवति, इस विग्रहमें आढ्यम्भविष्णुः । आढ्यम्भावुकः ।

(४३२) उदकभिन्न सुबन्त उपपद रहते स्पृश् धातुके उत्तर क्विन् प्रत्यय हो, घृतस्पृक् इस स्थलमें कर्मणि इस पदकी निवृत्ति हुई । मंत्रेण स्पृशति, इस विग्रहमें मंत्रस्पृक् ।

(३७३) इनकी व्याख्या पूर्वमें करदी है ।

(४२९) त्यदादि शब्द उपपद रहते दृश् धातुके उत्तर अनालोचनार्थमें कञ् प्रत्यय और चकारसे क्विन् प्रत्यय हो ।

समान और अन्य शब्द उपपद रहते भी दृश् धातुसे कञ् और क्विन् प्रत्यय हो * यथा-सदृक् । सदृशः । अन्यादृक् । अन्यादृशः ।

पूर्वोक्त उपपद रहते दृश् धातुसे क्स प्रत्यय भी हो * यथा-तादृक्षः । सदृक्षः । अन्यादृक्षः ॥

२९७५ सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् । ३। २ । ६१ ॥

एभ्यः क्विप्स्यादुपसर्गे सत्यसति च सुप्युपपदे। द्युसत्।उपनिषत्।अण्डसूः।प्रसूः।मित्रद्विट्। प्रद्विट् । मित्रध्रुक्।प्रध्रुक्।गोधुक्। प्रधुक्। अश्वयुक् । प्रयुक् । वेदवित् । निविदित्यादि ॥ अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णो वाच्यः ॥ * ॥ अग्रणीः । ग्रामणीः ॥

२९७५-उपसर्ग पूर्वमें रहे वा न रहे सुबन्त उपपद रहते सत्, सू, द्विष, द्रुह, दुह, युज, विद, भिद, छिद, जि, नी, राज्, धातुओंके उत्तर क्विप् प्रत्यय हो, यथा-द्युसत् । उपनिषत् । अण्डसूः । प्रसूः । मित्रद्विट् । प्रद्विट् । मित्रध्रुक् । प्रध्रुक् । गोधुक् । प्रधुक् । अश्वयुक् । प्रयुक् । वेदवित् । निवित्, इत्यादि ।

अग्र और ग्राम शब्दके परे नी धातुके नकारको णत्व हो * अग्रणीः । ग्रामणीः ॥

२९७६ भजो ण्विः । ३ । २ । ६२ ॥

सुप्युपसर्गे चोपपदे भजेर्ण्विः स्यात् । अंशभाक् । प्रभाक् ॥

२९७६-सुबन्त पद और उपसर्ग उपपद होनेपर भज धातुके उत्तर ण्वि प्रत्यय हो, यथा-अंशभाक् । प्रभाक् ॥

२९७७ अदोऽनन्ने । ३ । २ । ६८ ॥

विट् स्यात् । आममत्ति आमात् । सस्यात् । अनन्ने किम् । अन्नादः ॥

२९७७-अन्न शब्दसे भिन्न उपपद होनेपर अद् धातुके उत्तर विट् प्रत्यय हो, यथा-आममत्ति, इस विग्रहमें आमात् । शस्यात् । अन्न शब्द उपपद होनेपर तो 'अन्नादः' ऐसा होगा ॥

२९७८ क्रव्ये च । ३ । २ । ६९ ॥

अदेर्विट् । पूर्वेण सिद्धे वचनमण्बाधनार्थम् । क्रव्यात् । आममांसभक्षकः । कथं तर्हि क्रव्यादोऽस्रप आशर इति । पक्वमांसशब्दे उपपदेऽण् । उपपदस्य क्रव्यादेशः पृषोदरादित्वात् ॥

२९७८-क्रव्य शब्द उपपद होनेपर अद् धातुके उत्तर विट् प्रत्यय हो, पूर्व सूत्रसे विट् प्रत्ययकी सिद्धि होनेपर भी अण् प्रत्ययके बाधनार्थ यह सूत्र किया है । यथा-क्रव्यात् आममांसभक्षकः । क्रव्य शब्द उपपद रहते अद् धातुसे विट् प्रत्यय होनेसे 'क्रव्यादोऽस्रप आशरः' यहां 'क्रव्यादः' ऐसा अकारान्त पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ । तो इस स्थलमें पक्व मांस शब्द उपपद रहते अद् धातुके उत्तर अण् प्रत्यय हुआहै, और उपपदके स्थानमें पृषोदरादित्वके कारण क्रव्य आदेश हुआहै ॥

२९७९ दुहः कब्घश्च । ३ । २ । ७० ॥

कामदुघा ॥

२९७९-कर्म उपपद रहते दुह धातुके उत्तर कप् प्रत्यय हो और हको घ आदेश हो, यथा-कामदुघा ॥

२९८० अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते।३।२।७५।

छन्दसीति निवृत्तम् । मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः ॥

२९८०-इस स्थलमें 'छन्दसि' इस पदकी निवृत्ति हुई। धातुके उत्तर मनिन्, कनिप्, वनिप् और विच् प्रत्यय हों॥

२९८१ नेड्वशि कृति। ७। २। ८॥

वशादेः कृत इण्न स्यात्। शृ। सुशर्मा। प्रातरित्वा॥

२९८१-वशादि कृत्को इट्का आगम न हो, यथा-शृ-सुशर्म्मा। प्रातरित्वा॥

२९८२ विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत्। ६। ४। ४१॥

अनुनासिकस्य आत्स्यात्। विजायत इति विजावा। ओणृ। अवावा। विच्। रोट्। रेट्। सुगण्॥

२९८२-विट् और वन प्रत्यय परे रहते अनुनासिकान्त धातुको आत्व हो, विजायते इति=विजावा। ओणृ धातुका अवावा। विच् प्रत्यय होकर-रोट्। रेट्। सुगण्॥

२९८३ क्विप् च। ३। २। ७६॥

अयमपि दृश्यते। सत्सूद्विषेति त्वस्यैव प्रपञ्चः उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्॥

२९८३-धातुसे क्विप् प्रत्यय भी हो। "सत्सूद्विष २९७५" यह सूत्र तो इसका ही प्रपंच है। उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्॥

२९८४ अन्तः। ८। ४। २०॥

पदान्तस्यानितेर्नस्य णत्वं स्यादुपसर्गस्थान्निमित्तात्परश्चेत्। हे प्राण्। शास इदितीत्त्वम्। मित्राणि शास्ति मित्रशीः॥ आशासः क्वावुपधाया इत्त्वं वाच्यम्॥ * आशीः। इत्वोत्त्वे। गीः। पूः॥

२९८४-उपसर्गस्थ निमित्तके परे स्थित हो तो पदान्त अन् धातुके नकारको णत्व हो, यथा-हे प्राण्। "शास इत्० २४८६" इससे शास धातुकी उपधाके स्थानमें इकार होकर मित्राणि शास्ति, इस विग्रहमें मित्रशीः।

क्वि प्रत्यय परे रहते आङ्पूर्वक शास् धातुकी उपधाके स्थानमें इकार हो * आशीः। इत्व होकर-गीः। उत्व होकर-पूः॥

२९८५ इस्मन्त्रन्क्विषु च। ६। ४। ९७॥

एषु छादेर्ह्रस्वः स्यात्। तनुच्छत्। अनुनासिकस्य क्वीति दीर्घः। मो नो धातोः। प्रतान्। प्रशान्। च्छ्वोरित्यूठ्। अक्षद्यूः। ज्वरत्वरेत्यूठ्। जूः। जूरौ। जूरः। तूः। स्रूः। ऊठ्। वृद्धिः। जनानवतीति जनौः। जनावौ। जनावः। मूः। मुवौ। मुवः। सुमूः। सुम्वौ। सुम्वः। राल्लोपः। मुर्छा। मूः। मुरौ। मुरः। धुर्वी। धूः॥

२९८५-इस् मन् त्रन् और क्विप् प्रत्यय परे रहते छादि धातुकी उपधाको ह्रस्व हो, तनुच्छत् "अनुनासिकस्य० २६६६" इस सूत्रसे दीर्घ और "मो नो धातोः ३४१" इस सूत्रसे मकारके स्थानमें नकार होकर-प्रतान्। प्रशान्। "च्छ्वोः० २५६१" इस सूत्रसे ऊठ् आदेश होकर-अक्षद्यूः। "ज्वरत्वर० २६५४" इस सूत्रसे ऊठ् होकर-जूः। जूरौ। जूरः। तूः। स्रूः। ऊठ् और वृद्धि होकर-जनानवति, इस विग्रहमें जनौः। जनावौ। जनावः। मूः। मुवौ। मुवः। सुमूः। सुम्वौ। सुम्वः। "राल्लोपः २६५६" इस सूत्रसे रकारके परवर्त्ती छकार और वकारका लोप होकर-मुर्छा मूः। मुरौ। मुरः। धुर्वी। धूः॥

२९८६ गमः क्वौ। ६। ४। ४०॥

अनुनासिकलोपः स्यात्। अङ्गगत्॥ गमादीनामिति वक्तव्यम्॥ *॥ परीतत्। संयत्। सुनत्॥ ऊङ् च गमादीनामिति वक्तव्यं लोपश्च॥ *॥ अग्रेगूः। भ्रमु। अग्रेभ्रूः॥

२९८६-क्वि प्रत्यय परे रहते गम् धातुके अनुनासिक अर्थात् मकारका लोप हो, अंकगत्।

"गमादीनामिति वक्तव्यम्" अर्थात् गम् आदि धातुओंके अनुनासिक वर्णका लोप हो * परीतत्। संयत्। सुनत्।

गम् आदि धातुओंको ऊङ् आदेश और अनुनासिक वर्णका लोप हो * अग्रेगूः। भ्रमु अग्रेभ्रूः॥

२९८७ स्थः क च। ३। २। ७७॥

चात् क्विप्। शंस्थः। शंस्थाः। शमि धातोरित्यचं बाधितुं सूत्रम्॥

२९८७-स्था धातुके उत्तर क प्रत्यय और चकारसे क्विप् प्रत्यय हो, यथा-शंस्थः। शंस्थाः। "शमि धातोः २९२८" इस सूत्रसे विहित अच् प्रत्ययको बाधनके निमित्त यह सूत्र कियाहै॥

२९८८ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये। ३। २। ७८॥

अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिः स्यात्ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्णभोजी। शीतभोजी। अजातौ किम्। ब्राह्मणानामन्त्रयिता। ताच्छील्ये किम्। उष्णं भुङ्क्ते कदाचित्। इह वृत्तिकारेणोपसर्गभिन्न एव सुपि णिनिरिति व्याख्याय उत्प्रभृतिभ्यामाङ्कि सर्तेरुपसंख्यानमिति पठितम्। हरदत्तमाधवादिभिश्च तदेवानुसृतम्। एतच्च भाष्यविरोधादुपेक्ष्यम्। प्रसिद्धश्चोपसर्गेपि णिनिः। स बभूवोपजीविनाम्। अनुयायिवर्गः। पतत्यधो धाम विसारि। न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिरित्यादौ॥ साधुकारिण्युपसंख्यानम्॥ ॥ ब्रह्मणि वदः॥ *॥ अताच्छील्यार्थं वार्तिकद्वयम्। साधुदायी। ब्रह्मवादी॥

२९८८-ताच्छील्य द्योत्य होनेपर जातिभिन्नार्थक सुबन्त उपपद रहते धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो, यथा-उष्णभोजी (गरम भोजन करनेके स्वभाववाला) शीतभोजी । जाति-वाचक उपपद होनेपर तो ब्राह्मणानामंत्रयिता । ताच्छील्य न होनेपर तो 'उष्णं भुंक्ते कदाचित्' ऐसा होगा । इस स्थलमें वृत्तिकारने उपसर्गभिन्न सुबन्त उपपद होनेपर णिनि प्रत्यय हो, ऐसी व्याख्या करके 'उत्प्रतिभ्यामाङि सर्त्तेरुपसंख्यानम्' अर्थात् उत्, प्रति, आङ्पूर्वक सृ धातुसे णिनि प्रत्यय हो ऐसा पाठ कियाहै । हरदत्त, माधव आदि आचार्योंने भी उसका ही अनुसरण कियाहै, परन्तु यह भाष्यके विरुद्ध होनेसे त्याज्य है । उपसर्ग उपपद रहते णिनि प्रत्यय प्रसिद्ध भी है, यथा-'स बभूवोपजीविनाम्' 'अनुयायिवर्गः' 'पतत्यधो धाम विसारि' 'न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः' इत्यादि ।

'साधुकारिण्युपसंख्यानम्' साधुकारी अर्थ होनेपर धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो * ।

ब्रह्मन् शब्द उपपद होनेपर वद धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो * ताच्छील्यार्थ न होनेपर भी णिनि प्रत्यय होनेके निमित्त यह दोनों वार्त्तिक हैं, साधुदायी । ब्रह्मवादी ॥

२९८९ कर्तर्युपमाने । ३ । २ । ७९ ॥

णिनिः स्यात् । उपपदार्थः कर्ता प्रत्ययार्थस्य कर्तुरुपमानम् । उष्ट्र इव क्रोशति उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षरावी । अताच्छील्यार्थं जात्यर्थं च सूत्रम् । कर्तरि किम् । अपूपानिव भक्षयति माषान् । उपमाने किम् । उष्ट्रः क्रोशति ॥

२९८९-उपमानवाचक कर्त्ता उपपद होनेपर धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो, उपपदार्थ जो कर्त्ता वह प्रत्ययार्थ कर्त्ताका उपमान है, यथा-उष्ट्र इव क्रोशति, इस विग्रहमें उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षरावी । अताच्छील्यार्थ और जात्यर्थ यह सूत्र है । कर्त्ता उपपद न होनेपर तो 'अपूपानिव भक्षयति माषान्' इस स्थानमें णिनि प्रत्यय नहीं हुआ । उपमान न होनेपर यथा-उष्ट्रः क्रोशति ॥

२९९० व्रते । ३ । २ । ८० ॥

णिनिः स्यात् । स्थण्डिलशायी ॥

२९९०-व्रत गम्यमान होनेपर धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो, यथा-स्थण्डिलशायी ॥

२९९१ बहुलमाभीक्ष्ण्ये । ३ । २ । ८१ ॥

पौनःपुन्यं द्योत्यं सुप्युपपदे णिनिः । क्षीरपायिण उशीनराः ॥

२९९१-पौनःपुन्य द्योत्य होनेपर सुबन्त उपपद रहते धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो, यथा-क्षीरपायिण उशीनराः ॥

२९९२ मनः । ३ । २ । ८२ ॥

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात् । दर्शनीयमानी ॥

२९९२-सुबन्त उपपद होनेपर मन् धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो, यथा-दर्शनीयमानी ॥

२९९३ आत्ममाने खश्च । ३ । २ । ८३ ॥

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् चाण्णिनिः । पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितम्मन्यः-पण्डितमानी । खित्यनव्ययस्य । कालिम्मन्या । अनव्ययस्य किम् । दिवामन्या ॥

२९९३-सुबन्त उपपद होनेपर स्वकर्मक मनन अर्थमें विद्यमान मन् धातुके उत्तर खश् प्रत्यय हो, और चकार निर्देशके कारण णिनि प्रत्यय भी हो, यथा-पण्डितमात्मानं मन्यते इस विग्रहमें पण्डितम्मन्यः । पण्डितमानी । " खित्यनव्ययस्य २९४३ " इस सूत्रसे खिदन्त उत्तर पद होनेसे पूर्वपदको ह्रस्व होकर कालिम्मन्या । अव्यय पूर्वपदको ह्रस्व नहीं होकर-दिवामन्या ॥

२९९४ इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च । ६ । ३ । ६८ ॥

इजन्तादेकाचोऽम् स्यात्स च स्वाद्यम्वत्खिदन्ते परे । औतोम्शसोः । गाम्मन्यः । वाम्शसोः । स्त्रियम्मन्यः-स्त्रीम्मन्यः । नृ । नरम्मन्यः । भ्रुवम्मन्यः । श्रियमात्मानं मन्यते श्रिमन्यं कुलम् । भाष्यकारवचनात् श्रीशब्दस्य ह्रस्वो मुममोरभावश्च ॥

२९९४-खिदन्त उत्तर पद रहते इजन्त एकाच् पूर्वपदके उत्तर अम् प्रत्यय हो, और वह अम् स्वादिके मध्यमें पठित अम्के तुल्य हो । " औतोऽम्शसोः २८५ " इस सूत्रसे अम् और शस् सम्बन्धी अच् परे रहते ओकारान्त शब्दके ओकारके स्थानमें आकार होकर-गाम्मन्यः । " वाम्शसोः ३०२" इस सूत्रसे स्त्री शब्दको विकल्प करके इयङ् होकर-स्त्रियम्मन्यः, स्त्रीम्मन्यः । नृ-नरम्मन्यः । भ्रुवम्मन्यः । श्रियमात्मानं मन्यते, इस विग्रहमें श्रिमन्यम् कुलम्, यहां भाष्यकारके वचनसे श्रीशब्दके ईकारको ह्रस्व और मुम्, अम्का अभाव हुआ ॥

२९९५ भूते । ३ । २ । ८४ ॥

अधिकारोयम् । वर्तमाने लडिति यावत् ॥

२९९५-यह अधिकार सूत्रहै, अर्थात् " वर्त्तमाने लट् २१५१" इस सूत्रपर्य्यन्त 'भूते' इस पदका अधिकार है ॥

२९९६ करणे यजः । ३ । २ । ८५ ॥

करणे उपपदे भूतार्थाद्यजेर्णिनिः स्यात्कर्तरि । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी ॥

२९९६-करण कारक उपपद होनेपर भूतार्थक यज् धातुके उत्तर कर्तामें णिनि प्रत्यय हो, यथा-सोमेनेष्टवान्, इस विग्रहमें सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी । (अग्निष्टोमयज्ञ करनेवाला) ॥

२९९७ कर्मणि हनः । ३ । २ । ८६ ॥

पितृव्यघाती । कर्मणीत्येतत्सहे चेति यावदधिक्रियते ॥

२९९७-कर्म्म कारक उपपद होनेपर हन् धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो, यथा-पितृव्यघाती । 'कर्मणि' इस पदका "सहे च ३००६" इस वक्ष्यमाण सूत्र पर्यन्त अधिकार है ॥

२९९८ ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ।३।२।८७॥

एषु कर्मसूपपदेषु हन्तेर्भूते क्विप्स्यात् । ब्रह्महा । भ्रूणहा । वृत्रहा । क्विप् चेत्येव सिद्धे नियमार्थमिदम् । ब्रह्मादिष्वेव, हन्तेरेव, भूत एव क्विबेवेति चतुर्विधोऽत्र नियम इति काशिका। ब्रह्मादिष्वेव, क्विबेवेति द्विविधो नियम इति भाष्यम् ॥

२९९८-ब्रह्मन्, भ्रूण, वृत्र इन तीन कर्म्मोंमें किसी एकके उपपद होनेपर भूतार्थमें हन् धातुके उत्तर क्विप् प्रत्यय हो, ब्रह्महा, भ्रूणहा (गर्भघाती) वृत्रहा ।

"क्विप् च २९२३" इसीसे सिद्ध होनेपर फिर यह सूत्र नियमके निमित्त है कि, "ब्रह्मादिष्वेव हन्तेरेव भूत एव क्विबेव" अर्थात् ब्रह्मादि उपपद रहतेही हन् धातुसे भूतकालमें क्विप् हो, ब्रह्मादि उपपद रहते हन् धातुसेही भूतकालमें क्विप् हो, ब्रह्मादि उपपद रहते हन् धातुसे भूतकालमें ही क्विप् हो, और ब्रह्मादि उपपद रहते हन् धातुसे भूतकालमें क्विप् ही हो, इन चार प्रकारका इस स्थलमें नियम है, यह काशिकाका मत है । भाष्यकारके मतसे तो 'ब्रह्मादिष्वेव क्विबेव' इन दो प्रकारका नियम है । इन नियमोंका फल स्वयम् ऊह करके समझना ॥

२९९९ सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः । ३ । २ । ८९ ॥

सुकर्मादिषु च कृञः क्विप्स्यात् । त्रिविधोऽत्र नियम इति काशिका । सुकृत् । कर्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् । क्विबेवेति नियमात्कर्म कृतवानित्यत्राऽण्न । कृञ एवेति नियमान्मन्त्रमधीतवान्मन्त्राध्यायः अत्र न क्विप् । भूत एवेति नियमात् मन्त्रं करोति करिष्यति वेति विवक्षायां न क्विप् । स्वादिष्वेवेतिनियमाभावादन्यस्मिन्नप्युपपदे क्विप् । शास्त्रकृत् । भाष्यकृत् ॥

२९९९-सु, कर्म्म, पाप, मंत्र, पुण्य, यह कर्म्म उपपद होनेपर कृञ् धातुके उत्तर अतीतार्थमें क्विप् प्रत्यय हो, इस स्थलमें तीन प्रकारका नियम है, यह काशिकाका मत है। सुकृत् । कर्म्मकृत् । पापकृत् । मंत्रकृत् । पुण्यकृत् । क्विप् ही हो, इस नियमके कारण कर्म्मकृतवान् इस स्थानमें अण् प्रत्यय नहीं हुआ । कृञ् धातुके उत्तर ही हो इस नियमके कारण 'मंत्रमधीतवान्' इस विग्रहमें 'मंत्राध्यायः' इस स्थानमें क्विप् नहीं हुआ । भूतार्थमें ही हो, इस नियमके कारण 'मंत्रं करोति करिष्यति वा' ऐसी विवक्षा स्थलमें क्विप् नहीं हुआ । सु आदि उपपद होनेपर ही कृञ् धातुके उत्तर क्विप् हो, ऐसे नियम न होनेके कारण 'शास्त्रकृत् भाष्यकृत्,इन स्थलोंमें अन्य उपपद रहते भी क्विप् हुआ॥

३००० सोमे सुञः । ३ । २ । ९० ॥

सोमसुत् । चतुर्विधोऽत्र नियम इति काशिका । एवमुत्तरसूत्रेऽपि ॥

३०००-सोम शब्द उपपद होनेपर सुञ् धातुके उत्तर अतीतार्थमें क्विप् प्रत्यय हो, सोमसुत् । इस स्थलमें चार प्रकारका नियम है, यह काशिकाका मत है । ऐसा पर सूत्रमें भी नियम जानना ॥

३००१ अग्नौ चेः । ३ । २ । ९१ ॥

अग्निचित् ॥

३००१-अग्नि शब्द उपपद होनेपर चि धातुके उत्तर अतीतार्थमें क्विप् प्रत्यय हो, अग्निचित् ॥

३००२ कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ३।२।९२॥

कर्मण्युपपदे कर्मण्येव कारके चिनोतेः क्विप्स्यात्। अग्न्याधारस्थलविशेषास्याख्यायाम्। श्येन इव चितः श्येनचित् ॥

३००२-अग्निके आधार स्थलविशेषका नाम होनेपर कर्म्म उपपद रहते कर्म्म ही कारकमें चि धातुके उत्तर अतीतार्थमें क्विप् प्रत्यय हो, श्येन इव चितः, इस विग्रहमें श्येनचित् ॥

३००३ कर्मणीनि विक्रियः । ३। २।९३॥

कर्मण्युपपदे विपूर्वात्क्रीणातेरिनिः स्यात् । कुत्सितग्रहणं कर्तव्यम् ॥ * ॥ सोमविक्रयी। घृतविक्रयी ॥

३००३-कर्म्म उपपद होनेपर विपूर्वक क्री धातुके उत्तर अतीतार्थमें इनि प्रत्यय हो ।

कुत्सित अर्थ होनेपर क्री धातुके उत्तर इनि प्रत्यय हो, ऐसा कहना चाहिये*सोमविक्रयी । घृतविक्रयी ॥

३००४ दृशेः क्वनिप् । ३ । २ । ९४ ॥

कर्मणि भूत इत्येव। पारं दृष्टवान् पारदृश्वा॥

३००४-कर्म्म कारक उपपद होनेपर अतीतार्थमें दृश् धातुके उत्तर क्वनिप् प्रत्यय हो, यथा-पारं दृष्टवान्, इस विग्रहमें पारदृश्वा ॥

३००५ राजनि युधि कृञः ।३।२।९५॥

क्वनिप्स्यात् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः। राजानं योधितवान् राजयुध्वा । राजकृत्वा ॥

३००५-राजन् शब्द उपपद होनेपर युध् और कृञ् धातुके उत्तर अतीतार्थमें क्वनिप् प्रत्यय हो, इस स्थलमें युध् धातु अन्तर्भावितण्यर्थ है, राजानं योधितवान्, इस विग्रहमें राजयुध्वा । राजकृत्वा ॥

३००६ सहे च । ३ । २ । ९६ ॥

कर्मणीति निवृत्तम् । सहयुध्वा । सहकृत्वा॥

३००६–'कर्मणि' यह पद इस स्थानमें निवृत्त हुआ, सह शब्द उपपद होनेपर युध् और कृञ् धातुके उत्तर अतीतार्थमें क्विप् प्रत्यय हो, यथा–सहयुध्वा । सहकृत्वा ॥

३००७ सप्तम्यां जनेर्डः । ३ । २ । ९७॥

सरसिजम् । मन्दुरायां जातो मन्दुरजः । ङ्यापोरिति ह्रस्वः ॥

३००७–सप्तम्यन्त उपपद होनेपर जन् धातुके उत्तर अतीतार्थमें ड प्रत्यय हो, सरसिजम् । मन्दुरायां जातः, इस विग्रहमें मन्दुरजः, यहां "ङ्यापोः० १००१" इस सूत्रसे पूर्वपदको ह्रस्व हुआहै ॥

३००८ पञ्चम्यामजातौ । ३ । २ । ९८॥

जातिशब्दवर्जिते पञ्चम्यन्त उपपदे जनेर्डः स्यात् । संस्कारजः । अदृष्टजः ॥

३००८–जातिशब्दभिन्न पञ्चम्यन्त उपपद होनेपर जन् धातुके उत्तर अतीतार्थमें ड प्रत्यय हो, संस्कारजः । अदृष्टजः ॥

३००९ उपसर्गे च संज्ञायाम् । ३ । २ । ९९।

प्रजा स्यात्सन्ततौ जने ॥

३००९–संज्ञामें उपसर्ग उपपद रहते जन् धातुके उत्तर अतीतार्थमें ड प्रत्यय हो, यथा–'प्रजा स्यात् सन्ततौ जने' ॥

३०१० अनौ कर्मणि । ३ । २ । १०० ।

अनुपूर्वाज्जनेः कर्मण्युपपदे डः स्यात् । पुमांसमनुरुध्य जाता पुमनुजा ॥

३०१०–कर्म्म उपपद होनेपर अनुपूर्वक जन् धातुके उत्तर अतीतार्थमें ड प्रत्यय हो, यथा–पुमांसमनुरुध्य जाता=पुमनुजा ॥

३०११ अन्येष्वपि दृश्यते । ३ । २ । १०१।

अन्येष्वप्युपपदेषु जनेर्डः स्यात् । अजः । द्विजः । ब्राह्मणजः । अपिशब्दः सर्वोपाधिव्यभिचारार्थः । तेन धात्वन्तरादपि कारकान्तरेष्वपि क्वचित् । परितः खाता परिखा ॥

३०११–अन्य उपपद होनेपर भी जन् धातुके उत्तर अतीतार्थमें ड प्रत्यय हो, यथा–अजः । द्विजः । ब्राह्मणजः । इस स्थलमें अपि शब्द सर्वोपाधि व्यभिचारार्थ है, उससे यह हुआ कि, अन्य कारक उपपद होनेपर भी अन्य धातुके उत्तर भी कहीं २ ड प्रत्यय होगा, यथा–परितः खाता, इस विग्रहमें परिखा (खाई) ॥

३०१२ क्तक्तवतू निष्ठा । १ । १ । २६॥

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ॥

३०१२–क्त और क्तवतु इन दो प्रत्ययोंकी निष्ठा संज्ञा हो ॥

३०१३ निष्ठा । ३ । २ । १०२ ॥

अतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः । कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतुः । उकावितौ । स्नातं मया । स्तुतस्त्वया विष्णुः । विष्णुर्विश्वं कृतवान् ॥

३०१३–अतीतार्थमें धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्यय हो, उसमें "तयोरेव० २८३३" इस सूत्रसे भाव और कर्मवाच्यमें क्त प्रत्यय और "कर्त्तरि कृत् २८३२" इस सूत्रसे कर्तृवाच्यमें क्तवतु प्रत्यय होगा । प्रत्ययके उकार और ककार इत्संज्ञक हैं । स्नातं मया । स्तुतस्त्वया विष्णुः । विष्णुर्विश्वं कृतवान् ॥

३०१४ निष्ठायामण्यदर्थे । ६ । ४ । ६०॥

ण्यदर्थौ भावकर्मणी ततोऽन्यत्र निष्ठायां क्षियो दीर्घः स्यात् ॥

३०१४–ण्यत् प्रत्ययके अर्थ भाव और कर्म्म हैं उनसे अन्य अर्थमें जो निष्ठा प्रत्यय वह परे रहते क्षि धातुको दीर्घ हो ॥

३०१५ क्षियो दीर्घात् । ८ । २ । ४६ ॥

दीर्घात् क्षियो निष्ठातस्य नः स्यात् । क्षीणवान् । भावकर्मणोस्तु क्षितः कामो मया । श्र्युकः किति । श्रितः । श्रितवान् । भूतः । भूतवान् । क्षुतः ॥ ऊर्णोर्णुवद्भावो वाच्यः ॥ *॥ तेन एकाच्त्वान्नेट् । ऊर्णुतः । नुतः । वृतः ॥

३०१५–दीर्घान्त क्षि धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययसम्बन्धी तकारके स्थानमें नकार हो, क्षीणवान् । भाव और कर्म्मवाच्यमें जिस स्थानमें निष्ठा प्रत्यय है, उस स्थानमें तो 'क्षितः कामो मया' ऐसा होगा । "श्र्युकः किति (२३८१)" इस सूत्रसे इट्का निषेध होकर श्रितः । श्रितवान् । भूतः । भूतवान् । क्षुतः ।

ऊर्णुञ् धातु नु धातुकी समान हो * इससे एकाच्त्वके कारण इट् नहीं होगा, ऊर्णुतः । नुतः । वृतः ॥

३०१६ रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः । ८ । २ । ४२ ॥

रेफदकाराभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात् । निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दकारस्य च । शॄ । ॠत इत् । रपरः, णत्वम् । शीर्णः । बहिरङ्गत्वेन वृद्धेरसिद्धत्वान्नेह । कृतस्यापत्यं कार्तिः । भिन्नः । छिन्नः ॥

३०१६–रेफ और दकारके परे जो निष्ठा प्रत्ययका सम्बन्धी तकार उसके स्थानमें नकार हो और निष्ठापेक्षासे पूर्वमें जो धातुसम्बन्धी दकार उसके स्थानमें नकार हो "ॠत इत्० (२३९०)" इस सूत्रसे इत्त्व, रपरत्व और णत्व होकर–शॄ धातुका शीर्णः ऐसा रूप होगा । बहिरङ्गत्वके कारण वृद्धि असिद्ध होतीहै, इस कारण इस स्थलमें नकार नहीं होगा, यथा–कृतस्यापत्यं=कार्तिः । भिन्नः छिन्नः, इत्यादि ॥

३०१७ संयोगादेरातोधातोर्यण्वतः । ८ । २ । ४३ ॥

निष्ठातस्य नः स्यात् । द्राणः । स्त्यानः । ग्लानः । म्लानः ॥

३०१७–संयोगादि, आकारान्त और यण् प्रत्याहारान्तर्गतवर्णविशिष्ट धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्यय सम्बन्धी तकारके स्थानमें नकार हो, द्राणः । स्त्यानः । ग्लानः ॥

३०१८ ल्वादिभ्यः । ८ । २ । ४४ ॥

एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत् । लूनः । ज्या । ग्रहिज्या । जीनः ॥ दुग्वोर्दीर्घश्च ॥ * ॥ दु गतौ । दूनः । टुदु उपताप इत्ययं तु न गृह्यते सानुबन्धकत्वात् । मृदुतया दुतयेति माघः । गूनः ॥ पूञो विनाशे ॥ * ॥ पूना यवाः । विनष्टा इत्यर्थः । पूतमन्यत् ॥ सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्य ॥ * ॥ सिनो ग्रासः । ग्रासेति किम् । सिता पाशेन सूकरी । कर्मकर्तृकेति किम् । सितो ग्रासो देवदत्तेन ॥

३०१८–पूञ् धातुको लेकर २२ धातु क्र्यादि गणमें पठित हैं, उनमें पूञ् धातु त्याग कर लूञ् आदि २१ धातुओंके उत्तर निष्ठा प्रत्ययसम्बन्धी तकारके स्थानमें पूर्ववत् नकार हो, लूनः । ज्या धातुके उत्तर क्त प्रत्यय होनेपर. "ग्रहिज्या० २४१२" इस सूत्रसे संप्रसारण हुआ, जीनः ।

दु और गु धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययसम्बन्धी तकारके स्थानमें नकार हो, और उक्त धातुओंके उकारको दीर्घ भी हो * गत्यर्थक दु धातुका–दूनः । इस स्थलमें 'टुदु उपतापे' इस दु धातुका ग्रहण नहीं है, कारण कि, यह अनुबन्ध युक्त है, इस कारण 'मृदुतया दुतया' ऐसा माघमें प्रयोग है । गूनः ।

विनाशार्थमें पूञ् धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययके तकारके स्थानमें नकार हो * पूना यवाः । विनष्टा इत्यर्थः । अन्य अर्थमें 'पूतम्' पद होगा ।

यदि ग्रासरूप कर्म्म कर्त्ता हो तो बन्धनार्थक सिञ् धातुके उत्तर निष्ठासम्बन्धी तकारके स्थानमें नकार हो * सिनो ग्रासः । पिंडीकृत ग्रास जब दध्यादि व्यञ्जनसे बन्धनमें अनुकूल होताहै तब कर्म्मको ही कर्तृत्व होताहै उसी स्थलमें यह वार्त्तिक प्रवृत्त होगा । ग्रास कर्मकर्त्तृक न होनेपर तो सिता पाशेन सूकरी । कर्म्म कर्तृक न होनेपर सितो ग्रासो देवदत्तेन ॥

३०१९ओदितश्च । ८ । २ । ४५ ॥

भुग्नो । भुग्नः । टुओश्वि । उच्छूनः । ओहाक् । प्रहीणः । स्वादय ओदित इत्युक्तम् । सूनः । सूनवान् । दूनः । दूनवान । ओदिन्मध्ये डीङः पाठसामर्थ्यान्नेट्–उड्डीनः ॥

३०१९–ओदित् धातुके उत्तर निष्ठासम्बन्धी तकारके स्थानमें नकार आदेश हो, यथा–भुजो–भुग्नः । टुओश्वि धातुका उच्छूनः । ओहाक् धातुका प्रहीणः । स्वादिगणीय धातु ओदित् हैं, यह कहा है । सूनः । सूनवान् । दूनः । दूनवान् । ओदित् धातुके मध्यमें डीङ् धातुका पाठ होनेके कारण उसके उत्तर इट् नहीं होगा, यथा–उड्डीनः ॥

३०२० द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः । ६ । १ । २४ ॥

द्रवस्य मूर्तौ काठिन्ये स्पर्शे चार्थे श्यैङः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम् ॥

३०२०–निष्ठा प्रत्यय परे रहते द्रव पदार्थकी मूर्त्ति अर्थात् काठिन्य और स्पर्श गम्यमान होनेपर श्यैङ् धातुको सम्प्रसारण हो ॥

३०२१ श्योऽस्पर्शे । ८ । २ । ४७ ॥

श्यैङो निष्ठातस्य नः स्यादस्पर्शेऽर्थे । हल इति दीर्घः । शीनं घृतम् । अस्पर्शे किम् । शीतं जलम् । द्रवमूर्तिस्पर्शयोः किम् । संश्यानो वृश्चिकः । शीतात्संकुचित इत्यर्थः ॥

३०२१–अस्पर्शार्थ गम्यमान होनेपर श्यैङ् धातुके उत्तर निष्ठासम्बन्धी तकारके स्थानमें नकार हो । "हलः २५५९" इस सूत्रसे इकारको दीर्घ होकर–शीनं घृतम् । जिस स्थानमें स्पर्श अर्थ होगा, उस स्थानमें तो शीतं जलम् । द्रवमूर्त्ति स्पर्श न होनेपर–संश्यानो वृश्चिकः । शीतात् संकुचित इत्यर्थः ॥

३०२२ प्रतेश्च । ६ । १ । २५ ॥

प्रतिपूर्वस्य श्यः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम् । प्रतिशीनः ॥

३०२२–निष्ठा प्रत्यय परे रहते प्रतिपूर्वक श्यैङ् धातुको संप्रसारण हो, यथा–प्रतिशीनः ।

३०२३ विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य । ६ । १ । २६ ॥

श्यः संप्रसारणं वा स्यात् । अभिश्यानं घृतम् । अभिशीनम् । अवश्यानोऽवशीनो वृश्चिकः । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेनेह न । समवश्यानः ॥

३०२३–निष्ठा प्रत्यय परे रहते अभिपूर्वक और अवपूर्वक श्यैङ् धातुको विकल्प करके संप्रसारण हो, यथा–अभिशीनम्, अभिश्यानम् घृतम् । अवशीनः, अवश्यानः वृश्चिकः । यह व्यवस्थित विभाषा है, इस कारण 'समवश्यानः' इस स्थलमें सम्प्रसारण नहीं हुआ ॥

३०२४ अञ्चोऽनपादाने । ८ । २ । ४८ ॥

अञ्चो निष्ठातस्य नः स्यान्न त्वपादाने ॥

३०२४–अञ्चु धातुके उत्तर निष्ठासम्बन्धी तकारके स्थानमें नकार हो । अपादान वाचकका प्रयोग होनेपर नहीं हो ॥

३०२५ यस्य विभाषा । ७ । २ । १५ ॥

यस्य क्वचिद्विभाषयेड्विहितस्ततो निष्ठाया इण्न स्यात् । उदितो वेति क्त्वायां वेट्त्वादिह नेट् । समक्तः । अनपादाने किम् । उदक्तमुदकं कूपात् ॥ नत्वस्यासिद्धत्वाद्व्रश्चेति षत्वे प्राप्ते ॥ निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वाच्यः ॥ * ॥ वृक्णः । वृक्णवान् ॥

३०२५-जिस धातुके उत्तर वलादि आर्धधातुकको कदाचित् विकल्प करके इट् विहित है उसके उत्तर निष्ठा प्रत्ययको इट् नहीं हो । "उदितो वा (३३२८)" इस सूत्रसे क्त्वा प्रत्ययमें विकल्प करके इट् होनेके कारण इस स्थानमें इट् नहीं होगा, यथा-समक्तः । अपादान कारकका प्रयोग होनेपर तो 'उदक्तमुदकं कूपात्' इस स्थलमें क्त प्रत्ययके तकारके स्थानमें नकार नहीं हुआ । नत्वके असिद्धत्वके कारण "व्रश्च०" इस सूत्रसे षत्वकी प्राप्ति होनेपर-

षत्वविधि, स्वरविधि, प्रत्ययविधि और इड्विधि कर्त्तव्य रहते निष्ठादेश सिद्ध हो ऐसा कहना चाहिये * यथा-वृक्णः । वृक्णवान् ॥

३०२६ परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु । ८ । ३ । ७५ ॥

पूर्वेण मूर्धन्ये प्राप्ते तदभावो निपात्यते । परिस्कन्दः । प्राच्येति किम् । परिष्कन्दः । परिस्कन्दः । परेश्चेति विकल्पः । स्तन्भेरिति षत्वे प्राप्ते ॥

३०२६-प्राच्य और भरत अर्थ होनेपर 'परिस्कन्दः' यह पद निपातनसे सिद्ध हो अर्थात् पूर्वसूत्रसे मूर्द्धन्य षकारकी प्राप्ति होनेपर इस स्थानमें निपातनसे उसका अभाव हो, 'परिस्कन्दः' जिस स्थानमें प्राच्य और भरत अर्थ नहीं होगा, उस स्थलमें 'परिष्कन्दः, परिस्कदः' ऐसा होगा, इस स्थानमें "परेश्च २३९९" इस सूत्रसे विकल्प करके षत्व हुआहै । "स्तन्भेः २२७२" इस सूत्रसे षत्व प्राप्त होनेपर- ॥

३०२७ प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च । ८ । २ । ११४ ॥

अत्र षत्वं न स्यात् ॥

३०२७-'प्रतिस्तब्धः' और निस्तब्धः' यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों, अर्थात् इन स्थानोंमें षत्व नहीं हो ॥

३०२८ दिवोऽविजिगीषायाम् । ८ । २ । ४९

दिवो निष्ठातस्य नः स्यादविजिगीषायाम् । द्यूनः । विजिगीषायां तु । द्यूतम् ॥

३०२८-अविजिगीषा अर्थ होनेपर दिव् धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययसम्बन्धी तकारके स्थानमें नकार हो, द्यूनः । जिस स्थानमें विजिगीषा अर्थ है, उस स्थानमें 'द्यूतम्' ऐसा होगा इस स्थानमें तकारके स्थानमें नकार नहीं हुआ ॥

३०२९ निर्वाणोऽवाते । ८ । २ । ५० ॥

अवाते इति च्छेदः । निपूर्वाद्वातेर्निष्ठातस्य नत्वं स्याद्वातश्चेत्कर्ता न । निर्वाणोऽग्निर्मुनिर्वा । वाते तु निर्वातो वातः ॥

३०२९-निर्वाणः अवाते ऐसा पदच्छेद है, यदि वायु कर्त्ता न हो तो, निपूर्वक वा धातुके उत्तर निष्ठासम्बन्धी तकारके स्थानमें नकार हो, यथा-निर्वाणोऽग्निर्मुनिर्वा । (निर्वाण शब्दसे अग्नि और मुनि समझना) वायु कर्त्ता होनेपर तो 'निर्वातो वातः' ऐसा होगा, इस स्थानमें नकार नहीं हुआ ॥

३०३० शुषः कः । ८ । २ । ५१ ॥

निष्ठात इत्येव । शुष्कः ॥

३०३०-शुष् धातुके उत्तर निष्ठासम्बन्धी तकारके स्थानमें ककार हो, यथा-शुष्कः ॥

३०३१ पचो वः । ८ । २ । ५२ ॥

पक्वः ॥

३०३१-पच् धातुके उत्तर निष्ठासम्बन्धी तकारके स्थानमें वकार हो, यथा-पक्वः ॥

३०३२ क्षायो मः । ८ । २ । ५३ ॥

क्षामः ॥

३०३२-क्षै धातुके उत्तर निष्ठासम्बन्धी तकारके स्थानमें मकार हो, यथा-क्षामः (दुबला) ॥

३०३३ स्त्यः प्रपूर्वस्य । ६ । १ । २३ ॥

प्रात् स्त्यः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम् ॥

३०३३-निष्ठा प्रत्यय परे रहते प्रपूर्वक स्त्यै धातुको सम्प्रसारण हो ॥

३०३४ प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् । ८ । २ । ५४ ॥

निष्ठातस्य मो वा स्यात् । प्रस्तीमः । प्रस्तीतः । प्रात्किम् । स्त्यानः ॥

३०३४-प्रपूर्वक स्त्यै धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययसम्बन्धी तकारके स्थानमें विकल्प करके मकार हो, यथा-प्रस्तीमः, प्रस्तीतः । जिस स्थानमें प्रपूर्वक नहीं होगा, उस स्थानमें 'स्त्यानः' ऐसा होगा ॥

३०३५ अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः । ८ । २ । ५५ ॥

ञिफला । फुल्लः । निष्ठातस्य लत्वं निपात्यते । क्तवत्वेकदेशस्यापीदं निपातनमिष्यते । फुल्लवान् । क्षीबादिषु क्तप्रत्ययस्यैव तलोपः तस्यासिद्धत्वात्प्राप्तस्येटोऽभावश्च निपात्यते । क्षीबो मत्तः कृशस्तनुः । उल्लाघो नीरोगः । अनुपसर्गात्किम् ॥

३०३५–अनुपसर्गके उत्तर अर्थात् पूर्वमें कोई उपसर्ग न रहते फुल्ल, क्षीब, कृश, उल्लाघ यह पद निपातनसे सिद्ध हों, जिफला धातुका ' फुल्लः ' इस स्थानमें निष्ठासम्बन्धी तकारके स्थानमें निपातनसे ल हुआ है ।

यह निपातन क्तवतु प्रत्ययके एकदेशको भी हो, यथा– फुल्लवान् । क्षीबादि शब्दमें तो क्त प्रत्ययके ही तकारका लोप और उसके असिद्धके कारण प्राप्त जो इट्, उसका अभाव निपातनसे होगा, क्षीबो मत्तः । कृशस्तनुः । उल्लाघो नीरोगः । उपसर्गके उत्तर होनेपर तो–॥

३०३६ आदितश्च । ७ । २ । १६ ॥

आकारेतो निष्ठाया इण्न स्यात् ॥

३०३६–आदित् धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययको इट् न हो ॥

३०३७ ति च । ७ । ४ । ८९ ॥

चरफलोरत उत्स्यात्तादौ किति । प्रफुल्तः । प्रक्षीबितः । प्रकृशितः । प्रोल्लाघितः । कथं तर्हि लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लमिति । फुल्ल विकसने पचाद्यच् । सूत्रं तु फुल्तादिनिवृत्त्यर्थम् ॥ उत्फुल्लसंफुल्लयोरुपसंख्यानम् ॥ * ॥

३०३७–तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते चर और फल धातु सम्बन्धी अकारके स्थानमें उत् (उकार) हो, यथा– प्रफुल्तः । प्रक्षीबितः । प्रकृशितः । प्रोल्लाघितः । उपसर्गसे परे न रहते ही फुल्लादि निपातन होनेसे "लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् " इस स्थलमें किस प्रकार फुल्ल पद सिद्ध हुआ ? तो इस स्थानमें विकसनार्थक फुल्ल धातुके उत्तर पचादित्वप्रयुक्त अच् प्रत्यय हुआहै । सूत्र तो केवल फुल्त, इत्यादि प्रयोगकी निवृत्तिके निमित्त है ।

'उत्फुल्लसंफुल्लयोरुपसंख्यानम्' अर्थात्'उत्फुल्लः संफुल्लः'यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों * ॥

३०३८ नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् । ८ । २ । ५६ ॥

एभ्यो निष्ठातस्य नो वा । नुन्नः–नुत्तः । विद विचारणे रौधादिक एव गृह्यते, उन्दिना परेण साहचर्यात् । विन्नः–वित्तः । वेत्तेस्तु विदितः । विद्यतेर्विन्नः । उन्दी ॥

३०३८–नुद, विद, उन्द, त्रा, घ्रा, ह्री, इन धातुओंके उत्तर निष्ठा प्रत्ययके तकारके स्थानमें विकल्प करके नकार हो, नुन्नः, नुत्तः । विचारण अर्थवाला जो रुधादिगणपठित विद् धातु, उसका ही इस स्थलमें ग्रहण होगा, कारण कि, परवर्ती उन्द् धातुके साथ उसका साहचर्य्य है । विन्नः, वित्तः । क्त प्रत्ययान्त अदादिगणपठित विद् धातुका तो 'विदितः' इस प्रकार होगा । दिवादिगणपठित विद धातुका तो 'विन्नः' इस प्रकार होगा । वैसे ही भाष्य है यथा–"वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते । विन्तेर्विन्नश्च वित्तश्च वित्तं भोगेषु विन्देतेरिति" । उन्दी धातुका उदाहरण कहतेहैं– ॥

३०३९ श्वीदितो निष्ठायाम् । ७ । २ । १४ ॥

श्वयतेरीदितश्च निष्ठाया इण्न । उन्नः–उत्तः । त्राणः–त्रातः । घ्राणः–घ्रातः । ह्रीणः–ह्रीतः ॥

३०३९–श्वि धातु और ईदित् धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययको इट् न हो, यथा–उन्नः, उत्तः । त्राणः, त्रातः । घ्राणः, घ्रातः । ह्रीणः, ह्रीतः ॥

३०४० न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् । ८ । २ । ५७ ॥

एभ्यो निष्ठातस्य नत्वं न । ध्यातः । ख्यातः । पूर्तः ॥ राल्लोपः । मूर्तः । मत्तः ॥

३०४०–ध्या, ख्या, पॄ, मूर्च्छि और मद् धातुओंके उत्तर निष्ठा प्रत्ययसम्बन्धी तकारके स्थानमें नकार न हो, यथा– ध्यातः । ख्यातः । पूर्तः । "राल्लोपः"इस सूत्रसे छकारका लोप होकर–मूर्तः । मत्तः ॥

३०४१ वित्तो भोगप्रत्यययोः । ८ । २ । ५८ ॥

विन्दतेर्निष्ठान्तस्य निपातोयं भोग्ये प्रतीते चार्थे । वित्तं धनम् । वित्तः पुरुषः । अनयोः किम् । विन्नः । विभाषा गमहनेति क्वसौ वेट्त्वादिह नेट् ॥

३०४१–भोग और प्रत्यय शब्द कर्मसाधन है इस आशयसे कहतेहैं कि, भोग्य और प्रतीत अर्थ होनेपर निष्ठाप्रत्ययान्त तुदादिगणीय विद् धातुका ' वित्तः ' यह निपातनसे सिद्ध हो, यथा–वित्तं धनम् । वित्तः पुरुषः।जिस स्थानमें भोग्य और प्रतीत अर्थ नहीं होगा, उस स्थानमें विन्नः यहां " विभाषा गमहन० ३०९९" इस सूत्रसे क्वसु प्रत्यय परे रहते विकल्प करके इट् विहित होनेसे इट् नहीं हुआ ॥

३०४२ भित्तं शकलम् । ८ । २ । ५९ ॥

भिन्नमन्यत् ॥

३०४२–शकल अर्थात् खण्ड अर्थ होनेपर 'भित्तम्' यह पद निपातनसे सिद्ध हो । अन्य अर्थ होनेपर ' भिन्नम् ' ऐसा होगा ॥

३०४३ ऋणमाधमर्ण्ये । ८ । २ । ६० ॥

ऋधातोः क्ते तकारस्य नत्वं निपात्यते अधमर्णव्यवहारे । ऋतमन्यत् ॥

३०४३–आधमर्ण्य अर्थ होनेपर 'ऋणम् ' यह पद निपातनसे सिद्ध हो अर्थात् ऋ धातुके उत्तर क्त प्रत्ययके तकारके स्थानमें निपातनसे नकार हो । अन्य अर्थमें'ऋतम्'ऐसा होगा। जिसको ऋण अधम, अर्थात् दुःखप्रद हो, वह अधमर्ण है, उसका भाव आधमर्ण्य है ॥

३०४४ स्फायः स्फी निष्ठायाम् ६ । १ । २२ ॥

स्फीतः ॥

३०४४–निष्ठा प्रत्यय परे रहते स्फाय् धातुके स्थानमें स्फी आदेश हो, स्फीतः ॥

३०४५ इणिनष्ठायाम् । ७ । २ । ४७ ॥

निरः कुषो निष्ठाया इट् स्यात् । यस्य विभाषेति निषेधे प्राप्ते पुनर्विधिः । निष्कुषितः ॥

३०४५–निपूर्वक कुष् धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययको इट् हो, " यस्य विभाषा ३०२५" इस सूत्रसे इट्निषेधकी प्राप्ति होनेसे पुनर्वार यह विधि विहित है, निष्कुषितः ॥

३०४६ वसतिक्षुधोरिट् । ७ । २ । ५२॥

आभ्यां क्त्वानिष्ठयोर्नित्यमिट् स्यात् । उषितः। क्षुधितः ॥

३०४६–वस् और क्षुध् धातुके परे स्थित क्त्वा और निष्ठा प्रत्ययको नित्य इट् हो, यथा–उषितः । क्षुधितः ॥

३०४७ अञ्चेः पूजायाम् । ७ । २।५३॥

पूजार्थादञ्चेः क्त्वानिष्ठयोरिट् स्यात् । अञ्चितः। गतौ तु अक्तः ॥

३०४७–पूजा अर्थवाला अञ्च् धातुके उत्तर क्त्वा और निष्ठा प्रत्ययको इट् हो, यथा–अञ्चितः । गत्यर्थक अञ्च् धातुका तो–अक्तः ॥

३०४८ लुभो विमोहने । ७ ।२ । ५४ ॥

लुभः क्त्वानिष्ठयोर्नित्यमिट् स्यान्न तु गार्ध्ये । लुभितः । गार्ध्ये तु लुब्धः ॥

३०४८–विमोहन अर्थमें लुभ् धातुके उत्तर क्त्वा और निष्ठा प्रत्ययको इट् हो, परन्तु गार्ध्य अर्थमें न हो, यथा–लुभितः, अर्थात् विमोहित । गार्द्ध्य अर्थमें तो इट् नहीं होकर–लुब्धः (लोभी) ॥

३०४९ क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ।७।२।५०॥

इड्वा स्यात् । क्लिश उपतापे नित्यं प्राप्ते।क्लिशू विबाधने अस्य क्त्वायां विकल्पे सिद्धेऽपि निष्ठायां निषेधे प्राप्ते विकल्पः । क्लिशितः । क्लिष्टः ॥

३०४९–क्लिश् धातुके उत्तर क्त्वा और निष्ठा प्रत्ययको विकल्प करके इट् हो । उपतापार्थक क्लिश धातुके उत्तर प्रत्ययको नित्य इट्की प्राप्ति होनेपर और विबाधनार्थक क्लिशू धातुके उत्तर क्त्वा प्रत्ययमें विकल्प करके इट् सिद्ध होनेपर भी निष्ठा प्रत्ययमें निषेधकी प्राप्ति होनेपर विकल्प करके इट् विहित हुआहै, यथा–क्लिशितः, क्लिष्टः ॥

३०५० पूङश्च । ७ । २ । ५१ ॥

पूङः क्त्वानिष्ठयोरिड्वा स्यात् ॥

३०५०–पूङ् धातुके उत्तर क्त्वा और निष्ठा प्रत्ययको विकल्प करके इट् हो । " श्र्युकः किति २३८१" इस सूत्रसे इट् निषेधकी प्राप्ति होनेपर विकल्प करके इड्विधानके लिये यह सूत्र है ॥

३०५१ पूङः क्त्वा च । १ । २ । २२ ॥

पूङः क्त्वा निष्ठा च सेट् किन्न स्यात् । पवितः । पूतः । क्त्वाग्रहणमुत्तरार्थम् । नोपधादित्यत्र हि क्त्वैव सम्बध्यते ॥

३०५१–पूङ् धातुके उत्तर सेट् अर्थात् इट् विशिष्ट क्त्वा और निष्ठा प्रत्यय कित् न हो, यथा–पवितः, पूतः । इस सूत्रमें क्त्वा प्रत्ययका ग्रहण न करनेसे भी काम चल जाता, क्योंकि, " न क्त्वा सेट् " इस वक्ष्यमाण सूत्रसे ही कित्त्वनिषेध सिद्ध है, इस कारण कहतेहैं कि, क्त्वा ग्रहण उत्तरार्थ है । " नोपधात् ३३२४ " इस सूत्रमें क्त्वा मात्रका सम्बन्ध होताहै निष्ठाका नहीं ॥

३०५२ निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः । १ । २ । १९ ॥

एभ्यः सेण्निष्ठा किन्न स्यात् । शयितः । शयितवान् । अनुबन्धनिर्देशो यङ्लुङ्निवृत्त्यर्थः। शेशियतः । शेशियतवान ॥ आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या ॥ * ॥

३०५२–शीङ्, स्विद्, मिद्, क्ष्विद्, और धृष् धातुओंके उत्तर इट्के साथ वर्त्तमान निष्ठा प्रत्यय कित् न हो, शयितः । शयितवान् । इस स्थलमें अनुबन्ध निर्देश यङ्लुक्निवृत्तिके निमित्त है । शेशियतः । शेशियतवान् ।

" आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या।"अर्थात् आद्यलक्षण विशिष्ट क्रियावृत्ति धातुसे निष्ठा प्रत्यय हो *

३०५३ आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च । ३ । ४ । ७१ ॥

आदिकर्मणि यः क्तः स कर्तरि स्यात् चाद्भावकर्मणोः ॥

३०५३–आदिकर्म्ममें जो क्त प्रत्यय उक्त हुआहै, वह कर्त्तामें हो और चकारनिर्देशके कारण भाव और कर्म्मवाच्यमें भी हो ॥

३०५४ विभाषा भावादिकर्मणोः । ७ । २ । १७ ॥

भावे आदिकर्मणि चादितो निष्ठाया इड्वा स्यात् । प्रस्वेदितश्चैत्रः । प्रस्वेदितं तेन । ञिष्विदेति भ्वादिरत्र गृह्यते ञिद्भिः साहचर्यात्। स्विद्यतेस्तु स्विदित इत्येव । ञिमिदा, ञिक्ष्विदा, दिवादौ भ्वादौ च । प्रमेदितः । प्रमेदितवान् । प्रक्ष्वेदितः । प्रक्ष्वेदितवान् । प्रधर्षितः । प्रधर्षितवान् । धर्षितं तेन । सेट्कि । प्रस्विन्नः । प्रस्विन्नं तेनेत्यादि ॥

३०५४–भाववाच्यमें और आदिकर्म्ममें आदित् इत् धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययको विकल्प करके इट् हो, यथा–

प्रक्ष्वेदितश्चैत्रः, अर्थात् चैत्रकर्तृक आरभ्यमाण प्रक्ष्वेदन क्रिया। प्रक्ष्वेदितं तेन। ञित् धातुके साथ साहचर्यके कारण 'ञिष्विदा' इस भ्वादिगणीय धातुका इस स्थानमें ग्रहण है, दिवादिगणीय स्विद धातुका तो 'स्विदितः' ऐसा ही रूप होगा। 'ञिमिदा' और 'ञिक्ष्विदा' यह दो धातु दिवादि और भ्वादिगणीय हैं, यथा—प्रमेदितः। प्रमेदितवान्। प्रक्ष्वेदितः। प्रक्ष्वेदितवान्। प्रधर्षितः। प्रधर्षितवान्। धर्षितं तेन। "निष्ठा शीङ०" इस सूत्रमें सेट्की अनुवृत्ति होनेसे 'प्रस्विन्नः। प्रस्विन्नं तेन' इत्यादि स्थलमें कित्त्व नहीं हुआ॥

३०५५ मृषस्तितिक्षायाम् ।१।२।२०॥

सेण्निष्ठा किन्न स्यात्। मर्षितः। मर्षितवान्। क्षमायां किम्। अपमृषितं वाक्यम्। अविस्पष्टमित्यर्थः॥

३०५५—तितिक्षा अर्थमें मृष् धातुके उत्तर इट्के साथ वर्त्तमान निष्ठा प्रत्यय कित् न हो, मर्षितः। मर्षितवान्। जिस स्थानमें क्षमा अर्थ नहीं होगा, उस स्थानमें 'अवमृषितं वाक्यम्' ऐसा होगा, अर्थात् अविस्पष्टमित्यर्थः॥

३०५६ उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम्। १। २। २१॥

उदुपधात्परा भावादिकर्मणोः सेण्निष्ठा वा किन्न स्यात्। द्युतितम्—द्योतितम्। मुदितम्—मोदितं साधुना॥ प्रद्युतितः—प्रद्योतितः। प्रमुदितः—प्रमोदितः साधुः। उदुपधात्किम्। विदितम्। भावेत्यादि किम्। रुचितं कार्षापणम्। सेट् किम्। कुष्टम्॥ शब्विकरणेभ्य एवेष्यते॥ *॥ नेह गुध्यतेर्गुधितम्॥

३०५६—उकारोपध धातुके उत्तर भाव और आदि कर्ममें सेट् निष्ठा विकल्प करके कित् न हो, यथा—द्युतितम्, द्योतितम्। मुदितम्, मोदितम्—साधुना। प्रद्युतितः, प्रद्योतितः। प्रमुदितः, प्रमोदितः- साधुः॥ उदुपध धातु न होनेपर विदितम् इस स्थानमें नित्य कित्त्व होगा। भावादिकर्म क्यों कहा? तो 'रुचितम्' यहां विकल्प करके कित्त्व न हुआ। इट्के साथ वर्त्तमान निष्ठा प्रत्यय हो, ऐसा क्यों कहा? तो 'कुष्टम्' यहां न हो।

शप् विकरण जो उकारोपध धातु उसके उत्तर ही निष्ठाको विकल्प करके कित्त्व इष्ट है, इस कारण इस स्थानमें नहीं हुआ, यथा—गुध्यतेर्गुधितम्॥

३०५७ निष्ठायां सेटि। ६। ४। ५२॥

णेर्लोपः स्यात्। भावितः। भावितवान्। श्वीदित इति नेट्। सम्प्रसारणम्। शूनः। दीप्तः। गुहू। गूढः। वनु। वतः। तनु। ततः। पतेः सनि वेट्कत्वादिडभावे प्राप्ते द्वितीयाश्रितेति सूत्रे निपातनादिट्। पतितः। सेसिचीति वेट्कत्वात्सिद्धे कृन्तत्यादीनामीदित्त्वेनानित्यत्वज्ञापनाद्वा। तेन धावितमिभराजधियेत्यादि। यस्य विभाषेत्यत्रैकाच इत्येव। दरिद्रितः॥

३०५७—इट्के साथ वर्त्तमान जो निष्ठा प्रत्यय, वह परे रहते धातुसे विहित णिच्का लोप हो, यथा—भावितः। भावितवान्। "श्वीदितः० ३०३९" इस सूत्रसे इट् निषेध और "वचिस्वपि०" इससे सम्प्रसारण होकर—शूनः। दीप्तः। गुहू—गूढः। वनु—वतः। तनु—ततः।

पत धातुके उत्तर सन् प्रत्ययको विकल्प करके इट् विधानके कारण निष्ठा प्रत्ययमें इट्का अभाव प्राप्त होनेपर "द्वितीयाश्रित० ६८६" इस सूत्रमें निपातनसे इट् हुआ, यथा—पतितः। अथवा "सेसिचि२५०६" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् विधानके कारण निष्ठा प्रत्ययमें इट्निषेध सिद्ध होनेपर भी कृती, इत्यादि धातुके ईदित्करणसे "यस्य विभाषा २०२५" इस सूत्रके अनित्यत्व ज्ञापनके कारण 'पतितः' इस स्थलमें इट् होगा। अत एव 'धावितमिभराजधिया' इत्यादि प्रयोग सिद्ध हुए। "यस्य विभाषा २०२५" इस सूत्रसे एकाच् धातुके उत्तर ही निष्ठा प्रत्ययके इट्का निषेध होताहै, इस कारण 'दरिद्रितः' इस स्थलमें इट्निषेध नहीं हुआ॥

३०५८ क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वराऽनायासभृशेषु। ७। २। १८॥

क्षुब्धादीन्यष्टावनिट्कानि निपात्यन्ते समुदायेन मन्थादिषु वाच्येषु। द्रवद्रव्यसंपृक्ताः सक्तवो मन्थो, मन्थनदण्डश्च। क्षुब्धो मन्थश्चेत्। स्वान्तं मनः। ध्वान्तं तमः। लग्नं सक्तम्। निष्ठानत्वमपि निपातनात्। म्लिष्टमविस्पष्टम्। विरिब्धः। स्वरः। म्लेच्छ रेभृ अनयोरुपधाया इत्वमपि निपात्यते। फाण्टमनायाससाध्यः कषायविशेषः। माधवस्तु नवनीतभावात्प्रागवस्थापन्नं द्रव्यं फाण्टमिति वेदभाष्ये आह। बाढं भृशम्। अन्यत्र तु क्षुभितम्। क्षुब्धो राजेति त्वागमशास्त्रस्यानित्यत्वात्। स्वनितम्। ध्वनितम्। लगितम्। म्लेच्छितम्। विरेभितम्। फणितम्। वाहितम्॥

३०५८—मन्थ, मनः, तमः, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास, भृश, इन आठ अर्थोंमें यथाक्रम क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट, बाढ, यह आठ पद अनिट् निपातनसे सिद्ध हों। द्रवद्रव्यसे मिलित सक्तुका नाम और मथनेके दण्डका नाम मन्थ है। मन्थ अर्थ होनेपर—क्षुब्धः। मन अर्थ होनेपर—स्वान्तम्। तम अर्थमें—ध्वान्तम्। सक्त अर्थ होनेपर—लग्नम्, इस स्थानमें निपातनसे तकारके

स्थानमें नकार भी हुआहै । अविस्पष्ट अर्थ होनेपर–म्लिष्टम् । स्वर अर्थ होनेपर–विरिब्धः । म्लेच्छ और रेभृ इन दो धातुओंकी उपधाको निपातनसे इत्व भी हुआहै । फाण्ट शब्दसे अनायास साध्य कषायविशेष समझना । वेदभाष्यमें माधवाचार्य्य तो नवनीतके प्रागवस्थापन्न द्रव्यविशेषको फाण्ट कहते हैं । भृश अर्थात् पौनःपुन्यार्थमें–बाढम् । इससे अन्य अर्थ होनेपर–'क्षुभितम्' ऐसा पद होगा ।

'क्षुब्धो राजा' इस स्थानमें 'क्षुब्धः' यह पद तो आगमशास्त्रके अनित्यत्वके कारण सिद्ध हुआहै । स्वनितम् । ध्वनितम् । लगितम् । म्लेच्छितम् । विरेभितम् । फणितम् । वाहितम् ॥

३०५९ धृषिशसी वैयात्ये ।७।२।१९॥

एतौ निष्ठायामविनय एवानिटौ स्तः । धृष्टो विशस्तः । अन्यत्र धर्षितः । विशसितः । भावादिकर्मणोस्तु वैयात्ये धृषिर्नास्ति । अत एव नियमार्थमिदं सूत्रमिति वृत्तिः । धृषेरादित्त्वे फलं चिन्त्यमिति हरदत्तः । माधवस्तु भावादिकर्मणोरवैयात्ये विकल्पमाह । धृष्टम्–धर्षितम् । प्रधृष्टः–प्रधर्षितः ॥

३०५९–निष्ठा प्रत्यय परे रहते धृष् धातु और शस् धातु वैयात्य, अर्थात् अविनय अर्थमें ही अनिट् हो, यथा–धृष्टः । विशस्तः । अन्य अर्थ होनेपर–धर्षितः । विशसितः । भावादि कर्म्ममें तो वैयात्य अर्थमें धृष् धातु नहीं है, अत एव यह सूत्र नियमार्थक है, नहीं तो "विभाषा भावादिकर्मणोः" इसको बाधक होनेसे विध्यर्थ ही होजाता, यह वृत्तिकारका मत है । धृष् धातुके आदित्वकी कोई आवश्यकता नहीं है, यह हरदत्तका मत है । माधव तो भावादिकर्म्ममें अवैयात्य अर्थमें धृष् धातुके उत्तर प्रत्ययको विकल्प करके इट् कहतेहैं, यथा–धृष्टम्, धर्षितम् । प्रधृष्टः, प्रधर्षितः ॥

३०६० दृढः स्थूलबलयोः ।७।२।२०॥

स्थूले बलवति च निपात्यते । दृह दृहि वृद्धौ । क्तस्येडभावः । तस्य ढत्वम् । हस्य लोपः । इदितो नलोपश्च । दृहितः । दृंहितोऽन्यः ॥

३०६०–स्थूल और बलवान् अर्थमें 'दृढः' यह पद निपातनसे सिद्ध हो, अर्थात् वृद्ध्यर्थक दृह और दृहि धातुसे विहित क्त प्रत्ययके इट्का अभाव और तकारके स्थानमें ढकार और हकारका लोप और इदित् धातुके नकारका भी लोप हो । अन्य अर्थ होनेपर–दृहितः । दृंहितः ॥

३०६१ प्रभौ परिवृढः । ७ । २ । २१ ॥

वृह वृहि वृद्धौ । निपातनं प्राग्वत् । परिवृहितः । परिवृंहितोऽन्यः ॥

३०६१–प्रभु अर्थमें 'परिवृढः' यह निपातनसे सिद्ध हो, अर्थात् पूर्वकी समान वृद्ध्यर्थक वृह और वृहि धातुके उत्तर क्त प्रत्ययके इडभाव और तकारके स्थानमें ढकार हकारका लोप इदित् धातुमें नकारका भी लोप हो, अन्य अर्थमें परिवृहितः । परिवृंहितः ॥

३०६२ कृच्छ्रगहनयोः कषः ।७।२।२२॥

कषो निष्ठाया इण्न स्यादेतयोरर्थयोः । कष्टं दुःखं तत्कारणं च । स्यात्कष्टं कृच्छ्रमाभीलम् । कष्टो मोहः । कष्टं शास्त्रम् । दुरवगाहमित्यर्थः । कषितमन्यत् ॥

३०६२–कृच्छ्र, अर्थात् कष्ट और गहन, अर्थात् दुरवगाह अर्थ होनेपर कष् धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययको इट् न हो, कष्ट शब्दसे दुःख और दुःखका कारण समझना । 'स्यात् कष्टं कृच्छ्रमाभीलमित्यमरः' । कष्टो मोहः । कष्टं शास्त्रं दुरवगाहम् इत्यर्थः । अन्य अर्थमें–'कषितम्' ऐसा पद होगा ॥

३०६३ घुषिरविशब्दने । ७ । २ । २३॥

घुषिर्निष्ठायामनिट् स्यात् । घुष्टा रज्जुः । अविशब्दने किम् । घुषितं वाक्यम् । शब्देन प्रकटीकृताभिप्रायमित्यर्थः ॥

३०६३–अविशब्दन अर्थ होनेपर अर्थात् प्रतिज्ञाभिन्न अर्थ होनेपर निष्ठा प्रत्यय परे रहते घुषिर् धातु अनिट् हो, यथा–घुष्टा रज्जुः । जिस स्थानमें अविशब्दन अर्थ नहीं होगा, उस स्थानमें 'घुषितं वाक्यम्' ऐसा होगा, अर्थात् शब्दसे प्रकटीकृताभिप्रायक वाक्य जानना ॥

३०६४ अर्देः संनिविभ्यः । ७ । २ । २४॥

एतत्पूर्वादर्देर्निष्ठाया इण्न स्यात् । समर्णः । न्यर्णः । व्यर्णः । अर्दितोऽन्यः ॥

३०६४–संपूर्वक, निपूर्वक, विपूर्वक अर्द धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययको इट् न हो, यथा–समर्णः । न्यर्णः । व्यर्णः । उक्त उपसर्गपूर्वक न होनेपर–'अर्दितः' ऐसा पद होगा ॥

३०६५ अभेश्चाविदूर्य्ये । ७ । २ । २५ ॥

अभ्यर्णम् । नातिदूरमासन्नं वा । अभ्यर्दितमन्यत् ॥

३०६५–आविदूर्य्य अर्थात् अनतिदूर अर्थ होनेपर, अभिपूर्वक अर्द धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्ययको इट् हो, यथा-अभ्यर्णम् नातिदूरम् आसन्नं वा । अन्य अर्थ होनेपर 'अभ्यर्दितम्' ऐसा होगा ॥

३०६६ णेरध्ययने वृत्तम् । ७ । २ । २६॥

ण्यन्ताद् वृतेः क्तस्येडभावो णिलुक्चाधीयमानेऽर्थे । वृत्तं छन्दश्छात्रेण सम्पादितम् । अधीतमिति यावत् । अन्यत्र तु वर्तिता रज्जुः ॥

३०६६–अधीयमान अर्थ होनेपर णिजन्त वृत् धातुके उत्तर क्त प्रत्ययके इट्का अभाव और णिच्का लुक् हो, यथा–वृत्तं छन्दश्छात्रेण सम्पादितम् । अधीतमिति यावत् । अन्य अर्थ होनेपर–'वर्त्तिता रज्जुः' ऐसा होगा ॥

३०६७ शृतं पाके । ६ । १ । २७ ॥

श्रातिश्रपयत्योः क्ते शृभावो निपात्यते क्षीर-

हविषोः पाके ॥ शृतं क्षीरं स्वयमेव विक्लिन्नं पक्वं वेत्यर्थः । क्षीरहविर्भ्यामन्यत्तु श्राणं श्रपितं वा ॥

३०६७-पाक अर्थ होनेपर 'शृतम्' यह पद निपातनसे सिद्ध हो, अर्थात् क्त प्रत्यय परे रहते श्रा और श्रपि धातुके स्थानमें निपातनसे शृ आदेश हो ।

क्षीर और हविष्का पाक होनेपर शृ आदेश हो यथा-शृतम् क्षीरम् स्वयमेव विक्लिन्नं पक्वं वा इत्यर्थः । क्षीर और हविष्से भिन्नपदार्थका पाक होनेपर-'श्राणम् श्रपितम् वा' ऐसा पद होगा ॥

३०६८ वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः । ७ । २ । २७ ॥

एते णिचि निष्ठान्ता वा निपात्यन्ते । पक्षे । दमितः । शमितः । पूरितः । दासितः । स्पाशितः । छादितः । ज्ञपितः ॥

३०६८-दान्त, शान्त, पूर्ण, दस्त, स्पष्ट, छन्न, ज्ञप्त यह निष्ठाप्रत्ययान्त पद णिच् परे विकल्प करके सिद्ध हों, विकल्प पक्षमें दमितः । शमितः । पूरितः । दासितः । स्पाशितः । छादितः । ज्ञपितः ॥

३०६९ रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् । ७ । २ । २८ ॥

एभ्यो निष्ठाया इड्वा । रुषितः-रुष्टः । अमितः-आन्तः । तूर्णः-त्वरितः । अस्याऽऽदित्त्वे फलं मन्दम् । संघुष्टः-संघुषितः । आस्वान्तः-आस्वनितः ॥

३०६९-रुष्, अम्, त्वर और संपूर्वक घुष् धातु और आङ्पूर्वक स्वन् धातुओंके उत्तर निष्ठाप्रत्ययको विकल्प करके इट् हो, यथा-रुषितः, रुष्टः । अमितः, आन्तः । तूर्णः, त्वरितः । 'ञित्वरा संभ्रमे' इस धातुमें आकार इत् करनेका कोई प्रयोजन नहीं है । संघुष्टः, संघुषितः । आस्वान्तः, आस्वनितः ॥

३०७० हृषेर्लोमसु । ७ । २ । २९ ॥

हृषेर्निष्ठाया इड्वा स्यात् लोमसु विषये । हृष्टं-हृषितं लोम ॥ विस्मितप्रतिघातयोश्च ॥ * ॥ हृष्टो हृषितो मैत्रः । विस्मितः प्रतिहतो वेत्यर्थः । अन्यत्र तु । हृषु अलीके उदित्त्वान्निष्ठायां नेट् । हृष तुष्टौ इट् ॥

३०७०-लोम अर्थ होनेपर हृष् धातुके उत्तर जो निष्ठाप्रत्यय उसको विकल्प करके इट् हो, यथा-हृष्टम्, हृषितं लोम ।

"विस्मितप्रतिघातयोश्च" विस्मित और प्रतिघात अर्थ होनेपर हृष् धातुके उत्तर निष्ठाप्रत्ययको विकल्प करके इट् हो * यथा-हृष्टो, हृषितो मैत्रः, अर्थात् विस्मित और प्रतिहत मैत्र ऐसा अर्थ जानना चाहिये । अन्य अर्थ होनेपर तो अलीकार्थक हृष धातु उदित् है, इस कारण उसके उत्तर निष्ठाप्रत्ययको इट् नहीं होकर-'हृष्टः' और तुष्ट अर्थवाला हृष धातुके उत्तर निष्ठाप्रत्ययको इट् होकर-'हृषितः' ऐसा होगा ॥

३०७१ अपचितश्च । ७ । २ । ३० ॥

चायतेर्निपातोऽयं वा अपचितः-अपचायितः ।

३०७१-'अपचितः' यह पद भी निपातनसे सिद्ध हो, अर्थात् अपपूर्वक ण्यन्त चि धातुके स्थानमें निष्ठा प्रत्यय परे रहते, निपातनसे विकल्प करके चि आदेश हो, यथा-अपचितः, अपचायितः ॥

३०७२ प्यायः पी । ६ । १ । २८ ॥

वा स्यान्निष्ठायाम् । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेन स्वाङ्गे नित्यम् । पीनं मुखम् । अन्यत्र प्यानः, पीनः स्वेदः । सोपसर्गस्य न । प्रप्यानः । आङ्पूर्वस्यान्धूधसोः स्यादेव । आपीनोन्धुः । आपीनमूधः ॥

३०७२-निष्ठाप्रत्यय परे रहते प्याय् धातुके स्थानमें विकल्प करके पी आदेश हो यह व्यवस्थित विभाषा है, इससे यह हुआ कि, स्वाङ्ग होनेपर प्याय् धातुके स्थानमें नित्य पी आदेश होगा, यथा-पीनं मुखम् । अन्य अर्थ होनेपर प्यानः, पीनः स्वेदः । उपसर्ग विशिष्ट प्याय् धातुके स्थानमें पी आदेश नहीं होगा, प्रप्यानः ।

अन्धु और ऊधस् अर्थ होनेपर आङ्पूर्वक प्याय धातुके स्थानमें पी आदेश होहीगा, यथा-आपीनोऽन्धुः । आपीनमूधः ॥

३०७३ ह्रादो निष्ठायाम् । ६ । ४ । ९५

ह्रस्वः स्यात् । प्रह्लन्नः ॥

३०७३-निष्ठा प्रत्यय परे रहते ह्राद् धातुको ह्रस्व हो, प्रह्लन्नः ॥

३०७४ द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति । ७ । ४ । ४० ॥

एषामिकारोन्तादेशः स्यात्तादौ किति । ईत्त्वदद्भावयोरपवादः । दितः । सितः । मा माङ् मेङ् । मितः । स्थितः ॥

३०७४-तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते दो धातु, षो धातु, मा धातु और स्था धातुओंको इकार अन्तादेश हो, यह सूत्र ईत्त्व और दद्भावका बाधक है, यथा-दितः । सितः । मा धातु, माङ् धातु और मेङ् धातुओंका 'मितः' ऐसा पद हुआ । स्था धातुका स्थितः ॥

३०७५ शाच्छोरन्यतरस्याम् । ७ । ४ । ४१

शितः-शातः । छितः-छातः । व्यवस्थितविभाषात्वाद्व्रतविषये श्यतेर्नित्यम् । संशितं व्रतम् । सम्यक्संपादितमित्यर्थः । संशितो ब्राह्मणः । व्रतविषयकयत्नवानित्यर्थः ॥

३०७५-तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते शो धातु और छो धातुको विकल्प करके इकार अन्तादेश हो, शितः, शातः । छितः,छातः । व्यवस्थित विभाषात्वके कारण व्रतविषयमें शो धातुको नित्य इकार अन्तादेश होगा, संशितं व्रतम्, अर्थात् सम्यक् सम्पादित व्रत । संशितो ब्राह्मणः, अर्थात् व्रतविषयक यत्नवान् ॥

३०७६ दधातेर्हिः । ७ । ४ । ४२ ॥

तादौ किति । अभिहितम् । निहितम् ॥

३०७६-तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते धा धातुके स्थानमें हि आदेश हो, यथा-अभिहितम् । निहितम् ॥

३०७७ दो दद् घोः । ७ । ४ । ४६ ॥

घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दथ् स्यात्तादौ किति चर्त्वम् । दत्तः । घोः किम् । दातः । तान्तो वायमादेशः । न चैवं विदत्तमित्यादावुपसर्गस्य दस्तीति दीर्घापत्तिः । तकारादौ तद्विधानात् । दान्तो वा । धान्तो वा । न च दान्तत्वे निष्ठानत्वं धान्तत्वे झषस्तथोरिति धत्वं शङ्क्यम् । सन्निपातपरिभाषाविरोधात् ॥

३०७७-तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते घुसंज्ञक दा धातुके स्थानमें दथ् आदेश हो, चर्त्व होकर-दत्तः । घुसंज्ञक न होनेपर दथ् आदेश नहीं होगा, यथा-दातः । अथवा यह आदेश तकारान्त है । यदि कहो कि, तकारान्त आदेश होनेपर 'विदत्तम्' इत्यादि स्थलमें उपसर्गको "दस्ति ३०७९" इस सूत्रसे दीर्घकी आपत्ति तो न होगी, क्योंकि, तकारादि उत्तर पदके परे रहते इगन्त उपसर्गस्थ अच्के स्थानमें यह दीर्घ विधान है । यह आदेश दकारान्त और धकारान्त यदि होवेगा तो दान्तत्व होनेपर निष्ठाको नत्व किंवा धान्तत्व होनेपर "झषस्तथोः० २२८०" इस सूत्रसे धत्वकी आशङ्का न होगी । क्योंकि धत्व होनेमें सन्निपातपरिभाषाविरोध होगा । इससे यह आदेश थकारान्त होनेपर ही निर्देश होताहै । कारण कि, तकारान्त करना हो तो दीर्घ होगा । दकारान्त होनेपर निष्ठाके स्थानमें नकार होगा । धकारान्त होनेपर धकारकी प्राप्ति होगी किन्तु थकारान्तमें कोई भी दोष नहीं है ॥

३०७८ अच उपसर्गात्तः ।७।४।४७॥

अजोन्तादुपसर्गात्परस्य दा इत्यस्य घोरचस्तः स्यात्तादौ किति । चर्त्वम् । प्रत्तः । अवत्तः ॥

अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि ।
सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते ॥

चशब्दाद्यथाप्राप्तम् ॥

३०७८-तकारादि ककार इत् प्रत्यय परे रहते अजन्त उपसर्गसे परे घुसंज्ञक दा धातुसंबन्धी आकारके स्थानमें तकार आदेश हो, और "खरि च" इस सूत्रसे चर्त्व भी होगा, जैसे-प्रत्तः । अवत्तः । आदिकर्म विषयमें अवदत्तं, विदत्तं, प्रदत्तं, सुदत्तम्, अनुदत्तं, निदत्तं यह सम्पूर्ण पद यथासंभव निपातनसे सिद्ध होंगे । च शब्दके द्वारा यथासंभव अर्थ जानना चाहिये ॥

३०७९ दस्ति । ६ । ३ । १२४ ॥

इगन्तोपसर्गस्य दीर्घः स्याद्दादेशो यस्तकारस्तदादावुत्तरपदे । खरि चेति चर्त्वमाश्रयात्सिद्धम् । नीत्तम् । सूत्तम । घुमास्थेतीत्त्वम् । धेट् । धीतम् । गीतम् । पीतम् । जनसनेत्यात्त्वम् । जातम् । सातम् । खातम् ॥

३०७९-दा इसके स्थानमें आदिष्ट जो तकार तदादि उत्तर पद परे रहते इगन्त उपसर्गको दीर्घ हो । (चर्त्वके असिद्धत्वके कारण दा के स्थानमें तकार आदेश ही नहीं हुआ तो किस प्रकारसे उक्त व्याख्या सङ्गत हुई, इस आशंकासे कहते हैं) " खरि च १२१ " इस सूत्रके आश्रय(बल)से चर्त्व हुआ । यथा, नीत्तम् । " घुमास्था २४६२ " इस सूत्रसे ईत्त्व होगा । धेट् धातुम् धीतम्-गै धातु-गीतम् । पा धातु-पीतम् । "जनसन० २५०४" इस सूत्रसे जन सन, और खन धातुके स्थानमें आकार आदेश हो । जातम् । सातम् । खातम् । खन+क्त=खात+अम् खातम् (गर्त) ॥

३०८० अदो जग्धिर्ल्यप्तिकिति । २ । ४ । ३६ ॥

ल्यबिति लुप्तसप्तमीकम् । अदो जग्धिः स्यात् ल्यपि तादौ किति च । इकार उच्चारणार्थः । धत्वम् । झरो झरि । जग्धः ॥

आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च । ३ । ४ । ७१ ॥

प्रकृतः कटं सः । प्रकृतः कटस्तेन । निष्ठायामण्यदर्थ इति दीर्घः । क्षियो दीर्घादिति णत्वम् । प्रक्षीणः सः ॥

३०८०-इस सूत्रमें ल्यप् यह लुप्तसप्तमीका पद है । ल्यप् प्रत्यय और तकारादि ककार इत् प्रत्यय परे रहते अद् धातुके स्थानमें जग्धि आदेश हो । जग्धि इस स्थलमें इकार उच्चारणार्थ है । और तकारके स्थानमें धकार होकर । "झरो झरि ७१ " इस सूत्रसे धकारका लोप हुआ । जैसे-जग्धः । "आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च ३०५३" इस सूत्रसे क्तप्रत्यय भी हुआ । यथा, प्रकृतः कटं सः । प्रकृतः कटस्तेन " निष्ठायामण्यदर्थे ३०१४ " इस सूत्रसे निष्ठा प्रत्यय परे रहते पूर्व स्वरको दीर्घ हो । "क्षियो दीर्घात् ३०१५ " इस सूत्रसे अण् प्रत्यय हुआ और क्षि धातुके इकारको दीर्घ और तकारके स्थानमें नकार हुआ और पश्चात् इस नकारको णत्व हुआ । जैसे-प्रक्षीणः सः-॥

३०८१ वा क्रोशदैन्ययोः । ६ । ४ । ६१ ।

क्षियो निष्ठायां दीर्घो वा स्यादाक्रोशे दैन्ये च । क्षीणायुर्भव । क्षितायुर्वा । क्षीणोऽयं तपस्वी । क्षितो वा ॥

३०८१–आक्रोश और दैन्य अर्थ होनेपर निष्ठा प्रत्यय परे रहते विकल्प करके क्षि धातुके इकारको दीर्घ हो । क्षीणायुर्भव क्षितायुर्वा । क्षीणोऽयं तपस्वी । क्षितो वा ॥

३०८२ निनदीभ्यां स्नातेः कौशले । ८ । ३ । ८९ ॥

आभ्यां स्नातेः सस्य षः स्यात्कौशले गम्ये । निष्णातः शास्त्रेषु । नद्यां स्नातीति नदीष्णः । सुपीति कः ॥

३०८२–नि और नदी शब्दसे परे स्ना धातुके सकारको षत्व हो, कौशल अर्थ रहते । जैसे–निष्णातः शास्त्रेषु । नद्यां स्नाति इस विग्रहमें नदीष्णः । "सुपि २९१६" इस सूत्रसे स्नाधातुके उत्तर क प्रत्यय हुआ ॥

३०८३ सूत्रं प्रतिष्णातम् । ८ । ३ । ९० ॥

प्रतेः स्नातेः षत्वम् । प्रतिष्णातं सूत्रम् । शुद्धमित्यर्थः । अन्यत्र प्रतिस्नातम् ॥

३०८३–पवित्र अर्थ होनेपर प्रतिष्णातम् यह पद निपातनसे सिद्ध हुआ । अर्थात् प्रतिपूर्वक स्ना धातुके सकारको षत्व हुआ । जैसे–प्रतिष्णातम् सूत्रम् । अर्थात् शुद्ध अन्य अर्थ होनेपर प्रतिस्नातम् ऐसा होगा ॥

३०८४ कपिष्ठलो गोत्रे । ८ । ३ । ९१ ॥

कपिष्ठलो नाम यस्य कापिष्ठलिः पुत्रः । गोत्रे किम् । कपीनां स्थलं कपिस्थलम् ॥

३०८४–गोत्र अर्थ होनेपर कपिष्ठलः यह पद निपातनसे सिद्ध हो, कपिष्ठलो नाम यस्य कापिष्ठलिः पुत्रः । गोत्र न होनेपर किस प्रकार होगा ? कपीनां स्थलं कपिस्थलम् इस प्रकार होगा ॥

३०८५ विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् । ८ । ३ । ९६ ॥

एभ्यः स्थलस्य सस्य षः स्यात् । विष्ठलम् । कुष्ठलम् । शमिष्ठलम् । परिष्ठलम् ॥

३०८५–वि, कु, शमि, परि–इन सम्पूर्ण शब्दोंसे पर स्थल शब्दके सकारको षत्व हो । जैसे–विष्ठलम् । कुष्ठलम् । शमिष्ठलम् । परिष्ठलम् ॥

३०८६ गत्यार्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च । ३ । ४ । ७२ ।

एभ्यः कर्तरि क्तः स्यात् भावकर्मणोश्च । गङ्गां गतः । गङ्गां प्राप्तः । ग्लानः सः । लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः । शेषमधिशयितः । वैकुण्ठमधिष्ठितः । शिवमुपासितः । हरिदिनमुपोषितः । राममनुजातः । गरुडमारूढः । विश्वमनुजीर्णः । पक्षे प्राप्ता गङ्गा तेनेत्यादि ॥

३०८६–गत्यर्थधातु, अकर्मकधातु, श्लिषधातु, शीङ्धातु स्थाधातु, आसधातु, वसधातु, जनधातु, रुहधातु, जॄषधातु–इन संपूर्ण धातुओंके उत्तर कर्तृवाच्य रहते और भाव तथा कर्मवाच्य रहते क्त प्रत्यय हो । जैसे–गंगां गतः । गङ्गां प्राप्तः । ग्लानः सः । लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः । शेषमधिशयितः । वैकुण्ठमधिष्ठितः । शिवमुपासितः । हरिदिनमुपोषितः । राममनुजातः । गरुडमारूढः । विश्वमनुजीर्णः । पक्षे प्राप्ता गङ्गा तेन इत्यादि ॥

३०८७ क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः । ३ । ४ । ७६ ॥

एभ्योऽधिकरणे क्तः स्यात् । चाद्यथाप्राप्तम् । ध्रौव्यं स्थैर्यम् ॥

मुकुन्दस्यासितमिदमिदं यातं रमापतेः ।
भुक्तमेतदनन्तस्येत्यूचुर्गोप्यो दिदृक्षवः ॥

पक्षे आसेरकर्मकत्वात्कर्तरि भावे च । आसितो मुकुन्दः । आसितं तेन । गत्यर्थेभ्यः कर्तरि कर्मणि च । रमापतिरिदं यातः । तेनेदं यातम् । भुजेः कर्मणि । अनन्तेनेदं भुक्तम् । कथं भुक्ता ब्राह्मणा इति । भुक्तमस्ति एषामिति मत्वर्थीयोऽच् ॥

वर्तमाने इत्यधिकृत्य ॥

३०८७–ध्रौव्यार्थक, गत्यर्थक और प्रत्यवसानार्थक धातुसे अधिकरणवाच्य रहते क्त प्रत्यय हो । चकारसे यथाप्राप्त भाव और कर्मवाच्य रहते भी हो । ध्रौव्यशब्दसे स्थैर्य समझना यथा, "मुकुन्दस्यासितमिदम्" "इदं यातं रमापतेः"।"भुक्तमेतदनन्तस्येत्यूचुर्गोप्यो दिदृक्षवः" । "अधिकरणवाचिनश्च (६२६)" इस सूत्रसे अधिकरण वाच्य रहते कर्ता और कर्म इन दोनोंमें षष्ठी होगी । पक्षमें आसधातुके अकर्मकत्वके कारण कर्तृरूपार्थवाच्यमें और भावरूपार्थवाच्यमें क्त प्रत्यय होगा । यथा, आसितो मुकुन्दः । आसितं तेन । गत्यर्थकधातुसे कर्तृरूपार्थ वाच्य रहते और कर्मरूपार्थ वाच्य रहते क्त प्रत्यय होगा । जैसे–रमापतिरिदं यातः । तेन इदं यातम् । भुजधातुसे कर्मरूपार्थ वाच्य रहते क्त प्रत्यय होनेसे–अनन्तेन इदं भुक्तम् । भुक्ता ब्राह्मणाः इस स्थलमें भुक्ताः पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ? इस स्थलमें भुक्तमस्ति एषाम् इस विग्रहमें मत्वर्थीय अच् प्रत्ययके द्वारा उक्त पद सिद्ध हुआ ।

वर्तमान कालमें यह अधिकार करके कहते हैं अर्थात् यहांसे लेकर वक्ष्यमाण सूत्रमें वर्त्तमानमें क्त प्रत्यय होगा ॥

३०८८ ञीतः क्तः । ३ । २ । १८७ ॥

ञिक्ष्विदा । क्ष्विण्णः । ञिइन्धी । इद्धः ॥

३०८८–ञइत् धातुसे वर्तमान कालमें क्त प्रत्यय हो । जैसे–ञिक्ष्विदा धातु–क्ष्विण्णः । ञिइन्धी धातु–इद्धः ॥

३०८९ मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च । ३ । २ । १८८ ॥

मतिरिहेच्छा बुद्धेः पृथगुपादानात् । राज्ञां

मत इष्टः । तैरिष्यमाण इत्यर्थः । बुद्धः । विदितः । पूजितः । अर्चितः । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । शीलितो रक्षितः क्षान्तः आक्रुष्टो जुष्ट इत्यादि ॥

३०८९–मत्यर्थकधातु बुद्ध्यर्थकधातु और पूजार्थकधातुसे वर्तमान कालमें क्त प्रत्यय हो । इस स्थलमें मतिशब्दसे इच्छा लेनेमें बुद्धिका पृथक् उपादान कारण है । जैसे–राज्ञां मतः इष्टः । तैरिष्यमाण इत्यर्थः । बुद्धः । विदितः । पूजितः । अर्चितः । इस स्थानमें चकारनिर्देशसे जो धातु नहीं कहे हैं उनका भी समुच्चय होगा । जैसे–शीलितः, रक्षितः, क्षान्तः, आक्रुष्टः, जुष्टः, रुष्टः, रुषितः, अभिव्याहृतः, हृष्टः, तुष्टः, क्रान्तः, संयतः, उद्यतः, कष्टम् । इत्यादि पद भविष्यत्कालमें क्त प्रत्ययमें पूर्ववत् सिद्ध हुए ॥

३०९० नपुंसके भावे क्तः ।३।२।११४॥

क्लीबत्वविशिष्टे भावे कालसामान्ये क्तः स्यात् । जल्पितम् । शयितम् । हसितम् ॥

३०९०–क्लीबत्वविशिष्ट भाव वाच्य रहते कालसामान्यमें धातुसे क्त प्रत्यय हो । जैसे–जल्पितम् । शयितम् । हसितम् । जल्प्+इ+क्त=जल्पितम् ॥

३०९१ सुयजोर्ङ्वनिप् ।३।२।११४॥

सुनोतेर्यजेश्च ङ्वनिप्स्याद् भूते । सुत्वा । सुत्वानौ । यज्वा । यज्वानौ ॥

३०९१–भूतकालमें सु और यज धातुसे ङ्वनिप् प्रत्यय हो जैसे–सुत्वा । सुत्वानौ । यज्वा । यज्वानौ ॥

३०९२ जीर्यतेरतृन् । ३ । २ । १०४ ॥

भूत इत्येव । जरन् । जरन्तौ । जरन्तः । वासरूपन्यायेन निष्ठापि । जीर्णो जीर्णवान् ॥

३०९२–भूतकालमें जॄधातुसे अतृन् प्रत्यय हो । जरन् । जरन्तौ । जरन्तः । वासरूपन्यायसे जॄधातुसे निष्ठा प्रत्यय भी होगा । जैसे, जीर्णः । जीर्णवान् ॥

३०९३ छन्दसि लिट् । ३ ।२ । १०५ ॥

३०९३–वेदमें भूतसामान्यकालमें धातुसे लिट्लकार हो॥

३०९४ लिटः कानज्वा । ३ ।२।१०६॥

३०९४–लिट्के स्थानमें विकल्प करके कानच् प्रत्यय हो॥

३०९५ क्वसुश्च । ३ । २ । १०७ ॥

इह भूतसामान्ये छन्दसि लिट् । तस्य विधीयमानौ क्वसुकानचावपि छान्दसाविति त्रिमुनिमतम् । कवयस्तु बहुलं प्रयुञ्जते । तन्तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे । श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्त इत्यादि ॥

३०९५–[illegible] लिट्के स्थानमें क्वसु प्रत्यय हो । इस स्थलमें [illegible] विधीयमान जो वेदविषयमें लिट्, तिसके स्थानमें [illegible] और कानच यह भी वेदविषयमें हों । यह पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि इन तीन मुनियोंका मत है । किन्तु कविगण बहुल प्रयोग करतेहैं अर्थात् इस नियमके अनुगामी नहीं होते कारण कि, कवि लोग निरंकुश हैं । इस कारण "तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे" "श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते" इत्यादि प्रयोग कालिदासने लिखे हैं ॥

३०९६ वस्वेकाजाद्घसाम् । ७ । २।६७॥

कृतद्विर्वचनानामेकाचामादन्तानां घसेश्च वसोरिट् नान्येषाम् । एकाच् । आदिवान् । आरिवान् । आत् । ददिवान् । जक्षिवान् । एषां किम् । बभूवान् ॥

३०९६–कृतद्वित्व एकाच्धातुके अर्थात् द्वित्व होनेपर जिन धातुओंका एक अच्मात्र शेष रहे तिनके उत्तर आकारान्त धातुके उत्तर और अद धातुके स्थानमें कृतद्विर्वचन आदेश घस्लृके उत्तर क्वसुप्रत्ययको इट् हो अन्य धातुओंके उत्तर क्वसुको इट् न हो । एकाच्का उदाहरण, जैसे–आदिवान् । आरिवान् आकारान्तका उदाहरण जैसे–ददिवान् । घसका उदाहरण जैसे–जक्षिवान् । जिस स्थानमें यह धातु न होगा उस स्थानमें इट् नहीं होगा । जैसे–बभूवान् ॥

३०९७ भाषायां सदवसश्रुवः ।३।२।१०८

सदादिभ्यो भूतसामान्ये भाषायां लिड्वा स्यात् तस्य च नित्यं क्वसुः । निषेदुषीमासनबन्धधीरः । अध्यूषुषस्तामभवज्जनस्य । शुश्रुवान् ॥

३०९७–सद्, वस और श्रु इन धातुओंके उत्तर भाषामें भूतसामान्यमें विकल्प करके लिट् हो । इस लिट्के स्थानमें नित्य क्वसु प्रत्यय हो । "निषेदुषीमासनबंधधीरः" "अध्यूषुषस्तामभवज्जनस्य" शुश्रुवान् ॥

३०९८ उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च । ३ । २ । १०९ ॥

एते निपात्यन्ते । उपपूर्वादिणो भाषायामपि भूतमात्रे लिड्वा तस्य नित्यं क्वसुः । इट् । उपेयिवान् । उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्र्याम् ॥ उपेयुषी । उपेत्यविवक्षितम् ईयिवान् । समीयिवान् । नञ्पूर्वादश्नातेः क्वसुरिडभावश्च । भूतजयधृतेरनाशुष इति भारविः । अनुपूर्वाद्वचेः कर्तरि कानच् । वेदस्यानुवचनं कृतवाननूचानः ॥

३०९८–उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान, यह संपूर्ण पद निपातनसे सिद्ध हों । उपपूर्वक इण् धातुके उत्तर भूतकालमात्रमें भाषामें भी विकल्प करके लिट् हो । और इस लिट्के स्थानमें नित्य क्वसुप्रत्यय हो, और पश्चात् इट् हुआ, जैसे–उप+इण्+क्वसु=उपेयिवान् । "उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्र्याम्" उपेयुषी । इस सूत्रमें उप यह अविवक्षित है । ईयिवान् । समीयिवान् । नञ्पूर्वक अश धातुके उत्तर क्वसु प्रत्यय हुआ और एकाच्प्रयुक्त प्राप्त इट्का अभाव निपातनसे होकर

अनाश्वान् हुआ। तैसेही "धृतज जयधृतेरनाशुषः" इति भारविः। अनुपूर्वक वचधातुके उत्तर कर्तृ वाच्य रहते कानच् प्रत्यय हो। जैसे, वेदस्यानुवचनं कृतवाननूचानः॥

३०९९ विभाषा गमहनविदविशाम्। ७।२।६८॥

एभ्यो वसोरिड्वा । जग्मिवान्-जगन्वान्। जघ्निवान्-जघन्वान्। विविदिवान्-विविद्वान्। विविशिवान्-विविश्वान्। विशिना साहचर्याद्विन्दतेर्ग्रहणम्। वेत्तेस्तु विविद्वान्। नेड्वशि कृतीतीण्निषेधः॥ दृशेश्च॥ * ॥ ददृशिवान्। ददृश्वान्॥

३०९९-गम, हन, विद, विश इन धातुओंके उत्तर क्सु प्रत्ययके स्थानमें विकल्प करके इट् हो। जैसे-जग्मिवान् जगन्वान्। जघ्निवान्-जघन्वान्। विविदिवान्-विविद्वान्। विविशिवान्-विविश्वान्। विश धातुके साहचर्य्यके कारण विन्द धातुका भी ग्रहण होगा। अदादिगणीय विद धातुके उत्तर क्सु प्रत्ययमें भी विविद्वान् ऐसा पद हुआ। "नेड्वशि कृति २९८१" इस सूत्रसे इट् न होगा। "दृशेश्च" इस वार्त्तिकसे दृश धातुके उत्तर क्सु प्रत्ययके स्थानमें विकल्प करके इट् हो। जैसे ददृशिवान्-ददृश्वान्॥

३१०० लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे।३।२।१२४॥

अप्रथमान्तेन सामानाधिकरण्ये सतीत्यर्थः। शबादि। पचन्तं चैत्रं पश्य॥

३१००-शत्रन्तार्थ शानजन्तार्थका प्रथमाभिन्न अन्य विभक्त्यन्तार्थके साथ सामानाधिकरण्य होनेपर लट्के स्थानमें वर्त्तमानकालमें शतृ और शानच् प्रत्यय हो।शतृ और शानच्के शकारकी इत्संज्ञा हुई। इसकारण तिसके उत्तर शप् आदि कार्य्य होंगे। जैसे-पचन्तं चैत्रं पश्य॥

३१०१ आने मुक्।७।२।८२॥

अङ्गस्यातो मुगागमः स्यादाने परे। पचमानं चैत्रं पश्य। लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणमधिकविधानार्थम्। तेन प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित्। सन् ब्राह्मणः॥ माङ्याक्रोश इति वाच्यम्॥ * ॥ मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति। माङि लुङिति प्राप्ते। एतद्वचनसामर्थ्याल्लट्॥

३१०१-शानच् प्रत्ययका आन भाग परे रहते धातुके अंगसम्बन्धी अकारको मुक्का आगम हो। जैसे, पचमानं चैत्रं पश्य। अनुवृत्तिद्वारा अर्थात् पूर्वसूत्रसे इस स्थलमें लट्की अनुवृत्ति होसकती थी, तो पुनः लट्के ग्रहणकी क्या आवश्यकता है? इस कारण कहतेहैं कि यह केवल अधिक [illegible] इससे यह हुआ कि प्रथमाविभक्त्यन्तार्थके सामानाधिकरण्यमें भी कदापि लट्के स्थानमें शतृ और शानच् प्रत्यय होंगे। जैसे, सन् ब्राह्मणः। "माङ्याक्रोशे इति वाच्यम्" इस वार्तिकसे माङ् इस अव्यय शब्दका उपपद होनेपर आक्रोशार्थमें धातुके उत्तर लट्के स्थानमें शतृ और शानच् प्रत्यय हों। यथा, "माजीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति" "माङि लुङ्(२२१९)" इस सूत्रसे यद्यपि लुङ्की प्राप्ति होतीहै, तथापि इस वार्त्तिकके बलसे लट् ही होगा। परस्मैपदमें शतृ और आत्मनेपदमें शान हुआ॥

३१०२ संबोधने च।३।२।१२५॥

हे पचन्। हे पचमान॥

३१०२-संबोधनमें लट्के स्थानमें शतृ और शानच् प्रत्यय हो। जैसे, हे पचन्! हे पचमान!॥

३१०३ लक्षणहेत्वोः क्रियायाः। ३।२।१२६॥

क्रियायाः परिचायके हेतौ चार्थे वर्तमानाद्धातोलः शतृशानचौ स्तः। शयाना भुञ्जते यवनाः। अर्जयन्वसति। हरिं पश्यन्मुच्यते। हेतुः फलं कारणं च। कृत्यचः।८।४।२९। प्रपीयमाणः सोमः॥

३१०३-क्रियाका परिचायक हेतुरूप जो अर्थ (फलरूप जो अर्थ) तदर्थक धातुके उत्तर जो लट् तिसके स्थानमें शतृ और शानच् प्रत्यय हों। जैसे-शयानाः भुञ्जते यवनाः। अर्जयन् वसति। हरिं पश्यन् मुच्यते। हेतुशब्दसे फल और कारण यह दो अर्थ समझने।

"कृत्यचः (२८३५)" इस सूत्रसे नकारको णत्व हुआ। प्रपीयमाणः सोमः॥

३१०४ ईदासः।२।२।८३॥

आसः परस्यानस्य ईत्स्यात्। आदेः परस्य। आसीनः॥

३१०४-आसधातुके उत्तर आनके स्थानमें ईत् (ईकार) हो। "आदेः परस्य (४४)" इस सूत्रसे आनके आकारके स्थानमें ही ईकार होगा। जैसे-आसीनः॥

३१०५ विदेः शतुर्वसुः।७।१।३६॥

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा स्यात्। विदन्। विद्वान्। विदुषी॥

३१०५-विदधातुके उत्तर शतृप्रत्ययके स्थानमें विकल्प करके वसु प्रत्यय हो। जैसे-विदन्, विद्वान्, विदुषी॥

३१०६ तौ सत्।३।२।१२७॥

तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः॥

३१०६-इस शतृ और शानच्की सत्संज्ञा हो॥

३१०७ लटः सद्वा।३।३।१४॥

व्यवस्थितविभाषेयम्। तेनाप्रथमासामाना-

धिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् । करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य । करिष्यतोऽपत्यं कारिष्यतः करिष्यद्भक्तिः । हे करिष्यन् । अर्जयिष्यन्वसति । प्रथमासमानाधिकरणेपि क्वचित् । करिष्यतीति करिष्यन् ॥

३१०७–लृट्के स्थानमें विकल्प करके सत् अर्थात् शतृ और शानच् प्रत्यय हों । यह विकल्प व्यवस्थित बिभाषा हैं । इससे यह फल हुआ कि प्रथमान्तार्थभिन्न सामानाधिकरण्यस्थलमें प्रत्यय और उत्तरपद परे रहते संबोधनमें और लक्षण और हेतु अर्थ होनेपर उक्तप्रत्यय नित्य होंगे जैसे–करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य । करिष्यतोऽपत्यं कारिष्यतः । करिष्यद्भक्तिः । हे करिष्यन् ! अर्जयिष्यन् वसति । प्रथमासमानाधिकरणमें भी कहीं लृट्के स्थानमें सत् अर्थात् शतृ और शानच् प्रत्यय हों । जैसे, करिष्यतीति करिष्यन् ॥

३१०८ पूङ्यजोः शानन् ।३।२।१२८॥

वर्तमाने । पवमानः । यजमानः ।

३१०८–पूङ्धातु और यजधातुके उत्तर वर्त्तमानकालमें शानन् प्रत्यय हो । यह शानन् ण्वुलादिकी तरह स्वतन्त्र है लादेश नहीं है । जैसे–पवमानः । यजमानः ॥

३१०९ ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ।३।२।१२९॥

एषु द्योत्येषु कर्तरि चानश् । भोगं भुञ्जानः । कवचं बिभ्राणः । शत्रुं निघ्नानः ॥

३१०९–ताच्छील्य, वय, वचन, शक्ति, यह सम्पूर्ण अर्थ द्योत्य रहते कर्तृवाच्यमें धातुके उत्तर चानश् प्रत्यय हो । जैसे, भोगं भुञ्जानः । कवचं बिभ्राणः । शत्रुं निघ्नानः । नि+हन्+आनश्=निघ्नानः ॥

३११० इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि ।३।२।१३०॥

आभ्यां शतृ स्यादकृच्छ्रिणि कर्तरि । अधीयन् । धारयन् । अकृच्छ्रिणि किम् । कृच्छ्रेणाधीते । धारयति ॥

३११०–इङ्धातु और णिजन्त धृ धातुके उत्तर कृच्छ्रभिन्न कर्त्ता रहते, शतृ प्रत्यय हो । जैसे–अधीयन् । धारयन् । जिस स्थानमें कृच्छ्र कर्त्ता होगा, उस स्थलमें शतृ नहीं होगा । जैसे–कृच्छ्रेण अधीते । धारयति ॥

३१११ द्विषोऽमित्रे ।३।२।१३१॥

द्विषन् शत्रुः ॥

३१११–अमित्र अर्थ होनेपर द्विष्धातुके उत्तर शतृ प्रत्यय हो । जैसे–द्विषन् शत्रुः ॥

३११२ सुञो यज्ञसंयोगे ।३।२।१३२॥

सर्वे सुन्वन्तः सर्वे यजमानाः सत्रिणः ॥

३११२–यदि धातुका व्यापार यज्ञके साथ संयुज्यमान हो, तो सु धातुके उत्तर शतृ प्रत्यय हो । जैसे–सर्वे सुन्वन्तः । सर्वे यजमानाः सत्रिणः ॥

३११३ अर्हः प्रशंसायाम् ।३।२।१३३॥

अर्हन् ॥

३११३–प्रशंसा अर्थ वाच्य होनेपर अर्हधातुके उत्तर शतृ प्रत्यय हो । जैसे–अर्हन् ॥

३११४ आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु । ३ । २ । १३४ ॥

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु कर्तृषु बोध्याः ॥

३११४–क्विप्प्रत्ययतक वक्ष्यमाण प्रत्यय तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी अर्थमें ही प्रयुक्त हों ॥

३११५ तृन् । ३ । २ । १३५ ॥

कर्ता कटम् ॥

३११५–कर्तृवाच्यमें धातुके उत्तर तृन् प्रत्यय हो । जैसे–कर्त्ता कटम् ॥

३११६ अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच् ३ । २ । १३६ ॥

अलङ्करिष्णुः । निराकरिष्णुः । प्रजनिष्णुः । उत्पचिष्णुः । उत्पतिष्णुः । उन्मदिष्णुः । रोचिष्णुः । अपत्रपिष्णुः । वर्तिष्णुः । वर्धिष्णुः । सहिष्णुः । चरिष्णुः ॥

३११६–अलंशब्दपूर्वक कृञ्धातु निर् और आङ् एतद्द्वयपूर्वक कृञ्धातु प्रपूर्वक जनधातु, उत्पूर्वक पचधातु, उत्पूर्वक पतधातु, उत्पूर्वक मद और रुचधातु, अपपूर्वक त्रपधातु, वृत, वृध, सह और चर धातु इन सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर कर्तृवाच्य रहते इष्णुच् प्रत्यय हो । जैसे–अलङ्करिष्णुः । निराकरिष्णुः । प्रजनिष्णुः । उत्पचिष्णुः । उत्पतिष्णुः । उन्मदिष्णुः । रोचिष्णुः । अपत्रपिष्णुः । वर्त्तिष्णुः । वर्द्धिष्णुः । सहिष्णुः । चरिष्णुः ॥

३११७ णेश्छन्दसि । ३ । २ ।१३७ ॥

वीरुधः पारयिष्णवः ॥

३११७–वैदिकप्रयोग स्थलमें णिजन्त धातुके उत्तर कर्तृवाच्य रहते इष्णुच् प्रत्यय हो । जैसे–वीरुधः पारयिष्णवः ॥

३११८ भुवश्च । ३ । २ । १३८ ॥

छन्दसीत्येव । भविष्णुः । कथं तर्हि जगत्प्रभोरप्रभविष्णु वैष्णवमिति । निरंकुशाः कवयः । चकारोनुक्तसमुच्चयार्थः । भ्राजिष्णुरिति वृत्तिः । एवं क्षयिष्णुः । नैतद्भाष्ये दृष्टम् ॥

३११८-वेदमें भू धातुके उत्तर भी इष्णुच् प्रत्यय हो। जैसे-भविष्णुः । तो लौकिक "जगत्प्रभोरप्रभविष्णु वैष्णवम्"। ऐसे प्रयोग स्थलमें भू धातुके उत्तर इष्णुच् प्रत्यय किस प्रकार हुआ है ? इससे कहतेहैं कि, कविलोग निरंकुश अर्थात् सर्वदा सम्पूर्ण नियमोंके वशवर्ती नहीं होते । इस कारण लौकिक प्रयोगमें भी भू धातुके उत्तर इष्णुच् प्रत्यय किया है। इस सूत्रमें चकार अनुक्त समुच्चयार्थ है । अत एव वृत्तिकारके मतानुसार भ्राज+इष्णुच् प्रत्ययमें भ्राजिष्णुः । क्षि+इष्णुच्+ क्षयिष्णुः ऐसा पद होगा। किन्तु यह भाष्यमें देखा नहीं जाता। यहां वैदिकप्रकरण निवृत्त हुआ ॥

३११९ ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः।३।२।१३९॥

छन्दसीति निवृत्तम् । गिदयं न तु कित् । तेन स्थ ईत्वं न । ग्लास्नुः । गित्वान्न गुणः । जिष्णुः । स्थास्नुः । चाद्भुवः । श्र्युकः कितीत्यत्र गकारप्रश्लेषान्नेट् । भूष्णुः ॥ दंशेश्छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ दङ्क्ष्णवः पशवः ॥

३११९-ग्लै धातु,जि धातु,और स्था धातुके उत्तर"ग्स्नु"प्रत्यय हो। यह गकारादि है। जो आदिमें ककार कहताहै सो प्रामादिक है प्रकृतमें गकार इत् है । इस कारण स्थाधातुके आकारके स्थानमें "घुमास्था" इससे ईकार नहीं होगा। जैसे-"ग्लास्नुः" गकार इत् होनेसे जिधातुके इकारको गुण नहीं होगा । चकारसे भूधातुसे भी "ग्स्नु" होगा । " श्र्युकः किति २३८१ " इस सूत्रमें गकारके प्रश्लेषके कारण प्रत्ययके आदिमें इट् नहीं होगा । जैसे-भूष्णुः । दंशधातुका वेदमें उपसंख्यान होगा अर्थात् वैदिक प्रयोगमें दंशधातुके उत्तर "ग्स्नु" प्रत्यय हो । जैसे-दङ्क्ष्णवः पशवः ॥

३१२० त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः । ३ । २ । १४० ॥

त्रस्नुः । गृध्नुः । धृष्णुः । क्षिप्नुः ॥

३१२०-त्रसि, गृधि, धृषि, और क्षिप् धातुके उत्तर क्नु प्रत्यय हो । जैसे-त्रस्नुः । गृध्नुः । धृष्णुः । क्षिप्नुः ॥

३१२१ शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्।३।२।१४१

उकार उच्चारणार्थ इति काशिका । अनुबन्ध इति भाष्यम् । तेन शमिनितरा शमिनीतरेत्यत्र उगितश्चेति ह्रस्वविकल्पः । न चैवं शमी शमिनावित्यादौ नुम्प्रसङ्गः, झल्ग्रहणमपकृष्य झलन्तानामेव तद्विधानात् । नोदात्तोपदेशस्येति वृद्धिनिषेधः । शमी, तमी, दमी, श्रमी, भ्रमी, क्षमी, क्लमी, प्रमादी । उत्पूर्वान्मदेः अलंकृञा-दिसूत्रेणेष्णुजुक्तो, वासरूपविधिना घिनुणपि । उन्मादी । ताच्छीलिकेषु वासरूपविधिर्नास्ति इति तु प्रायिकम् ॥

३१२१-शम् आदि आठ धातुओंके उत्तर घिनुण् प्रत्यय हो । काशिकाकारके मतमें घिनुण् प्रत्ययका उकार उच्चारणार्थ है और भाष्यकारके मतमें उकार अनुबंधमात्र है । इस कारण शमिनितरा शमिनीतरा इस स्थलमें"उगितश्चेति(९८७)" इस सूत्रसे विकल्प करके ह्रस्व हुआ है । शमी । शमिनौ । इस स्थलमें नुम् होगा ऐसा कहना नहीं चाहिये । कारण कि, झल् पदका अपकर्षण करके झलन्तके उत्तर ही नुमका विधान हुआ है । अत एव शमिनौ इस स्थलमें नुमका प्रसंग भी नहीं होगा "नोदात्तोपदेशस्य (२७६३)" इस सूत्रसे वृद्धिका निषेध होगा । शमी । तमी । दमी । श्रमी । भ्रमी । क्षमी । क्लमी । प्रमादी । उत्पूर्वक मदधातुके उत्तर "अलंकृञ्" इत्यादि सूत्रसे इष्णुच् प्रत्यय उक्त हुआ है । और वासरूपविधिसे घिनुण् प्रत्यय भी होगा । तिससे उन्मादी यह पद सिद्ध हुआ । ताच्छीलिकप्रत्ययोंके विषयमें वासरूपविधि नहीं है ऐसा निषेध प्रायिक है ॥

३१२२ सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च । ३ । २ । १४२ ॥

घिनुण् स्यात् । सम्पर्की । अनुरोधी । आयामी । आयासी । परिसारी । संसर्गी । परिदेवी । संज्वारी । परिक्षेपी । परिराटी । परिवादी । परिदाही । परिमोही । दोषी । द्वेषी । द्रोही । दोही । योगी । आक्रीडी । विवेकी । त्यागी । रागी । भागी । अतिचारी । अपचारी । आमोषी । अभ्याघाती ॥

३१२२-संपूर्वक पृच्धातु अनुपूर्वक रुध्धातु, आङ्पूर्वक यम्धातु, आङ्पूर्वक यसधातु, परिपूर्वक सृधातु, संपूर्वक सृजधातु, परिपूर्वक देवृधातु, संपूर्वक ज्वरधातु, परिपूर्वक क्षिपधातु, परिपूर्वक रटधातु, परिपूर्वक वदधातु, परिपूर्वक दहधातु, परिपूर्वक मुहधातु, दुष, द्विष, द्रुह, दुह और धातु, आङ्पूर्वक क्रीडधातु, विपूर्वक विचधातु, त्यज, रञ्ज और भजधातु, और अतिपूर्वक चरधातु, अपपूर्वक चरधातु, आङ्पूर्वक मुषधातु, और अभि तथा आङ् एतद्वयपूर्वक हनधातु, इन धातुओंके उत्तर कर्तृरूपार्थवाच्य रहते घिनुण् प्रत्यय हो । जैसे-सम्पर्की । अनुरोधी । आयामी । आयासी । परिसारी । संसर्गी । परिदेवी । संज्वारी । परिक्षेपी । परिराटी । परिवादी । परिदाही । परिमोही । दोषी । द्वेषी । द्रोही । दोही । योगी । आक्रीडी । विवेकी । त्यागी । रागी । भागी । अतिचारी । अपचारी । आमोषी । अभ्याघाती ॥

३१२३ वौ कषलसकत्थस्रम्भः । ३ । २ । १४३ ॥

विकाषी । विलासी । विकत्थी । विस्रम्भी ॥

३१२३–विपूर्वक कप्, लस, कत्थ और स्रम्भ, इन धातुओंके उत्तर घिनुण् प्रत्यय हो । जैसे–विकापी । विलासी । विकत्थी । विस्रम्भी ॥

३१२४ अपे च लषः । ३ ।२।१४४॥

चाद्वौ । अपलाषी । विलाषी ॥

३१२४–अपि और विपूर्वक लष धातुके उत्तर घिनुण् प्रत्यय हो । जैसे–अपलापी । विलासी ॥

३१२५ प्रे लपसृद्रुमथवदवसः । ३ । २ । १४५ ॥

प्रलापी । प्रसारी । प्रद्रावी । प्रमाथी । प्रवादी । प्रवासी ॥

३१२५–प्रपूर्वक लप, सृ, द्रु, मथ, वद, वस इन धातुओंके उत्तर घिनुण् प्रत्यय हो । जैसे–प्रलापी । प्रसारी । प्रद्रावी । प्रमाथी । प्रवादी । प्रवासी ॥

३१२६ निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् । ३ । २ । १४६ ॥

पञ्चम्यर्थे प्रथमा । एभ्यो वुञ् स्यात् । निन्दकः । हिंसक इत्यादि । ण्वुला सिद्धे वुञ्वचनं ज्ञापकं तच्छीलादिषु वासरूपन्यायेन तृजादयो नेति ॥

३१२६–निन्द, हिंस, क्लिश, खाद ये धातु नाशसे णिजन्त नश विपूर्वक धातु, परिपूर्वक क्षिपधातु, परिपूर्वक रटधातु, परिपूर्वक वादिधातु, वि और आङ् एतद्द्वयपूर्वक भाषधातु, आङ्पूर्वक सूयधातु इन धातुओंके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो । इस सूत्रमें पञ्चम्यर्थमें प्रथमा विभक्ति हुई है । जैसे–निन्दकः । हिंसकः इत्यादि । ण्वुल् प्रत्यय करके भी यद्यपि यह सम्पूर्ण सिद्ध होजाते, तथापि जो वुञ् प्रत्ययविधायक सूत्र किया है उससे ज्ञापित होताहै तच्छीलादि अर्थोंके विषयमें ' वासरूपन्यायानुसार ' तृच् आदि प्रत्यय नहीं होतेहैं ॥

३१२७ देविक्रुशोश्चोपसर्गे ।३।२।१४७॥

आदेवकः । आक्रोशकः । उपसर्गे किम् । देवयिता । क्रोष्टा ॥

३१२७–उपसर्ग उपपद होनेपर देवि (हेतुमण्ण्यन्त दिवु धातु) और क्रुश धातुके उत्तर वुञ् प्रत्यय हो । जैसे–आदेवकः । आक्रोशकः । उपसर्ग पूर्वमें न रहते ऐसे रूप होंगे, जैसे–देवयिता । क्रोष्टा ॥

३१२८ चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् । ३ । २ । १४८ ॥

चलनार्थाच्छब्दार्थाच्च युच् स्यात् । चलनः । चोपनः । कम्पनः । शब्दनः । रवणः । अकर्मकात्किम् । पठिता विद्याम् ॥

३१२८–चलनार्थक और शब्दार्थक अकर्मक धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो । यथा–चलनः । चोपनः । कम्पनः । शब्दनः । रवणः । सकर्मक धातुके उत्तर युच् प्रत्यय नहीं होगा । जैसे–पठिता विद्याम् ॥

३१२९अनुदात्तेतश्चहलादेः।३।२।१४९॥

अकर्मकाद्युच् स्यात् । वर्तनः । वर्धनः । अनुदात्तेतः किम् । भविता । हलादेः किम् । एधिता । अकर्मकात्किम् । वसिता वस्त्रम् ॥

३१२९–अनुदात्तेत् (केवल आत्मनेपदी) जो अकर्मक हलादि धातु तिसके उत्तर युच् प्रत्यय हो । जैसे–वर्त्तनः । वर्द्धनः । अनुदात्तेत् न होनेसे भविता । इस स्थलमें भूधातुसे युच् नहीं हुआ । अनुदात्तेत्में हलादि विशेषण देनेसे एधिता, यहांपर युच्की अप्राप्ति रहते तृच्ही हुआ । अकर्मक न होनेपर सकर्मक अनुदात्तेतसे भी युच् नहीं होता तिससे वसिता वस्त्रम्, इस स्थलमें युच् नहीं हुआ ॥

३१३० जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः । ३ । २ ।१५०॥

जु इति सौत्रो धातुर्गतौ वेगे च । जवनः । चङ्क्रमणः । दन्द्रमणः । सरणः । पूर्वेण सिद्धे पदग्रहणं लषपतपदेत्युकञा बाधा मा भूदिति । तेन ताच्छीलिकेषु परस्परं वासरूपविधिर्नास्तीति । तेनालंकृञस्तृन्न ॥

३१३०–जु धातु, चङ्क्रम्य धातु, दन्द्रम्य धातु, सृ धातु, गृधि धातु, ज्वल धातु, शुच धातु, लष धातु, पत धातु और पद धातु इन धातुओंके उत्तर युच् प्रत्यय हो, जु यह सूत्रपठित धातु है यह गति और बोध अर्थमें प्रयुक्त हो । जैसे–जवनः । चंक्रमणः । दंद्रमणः । सरणः । पद धातुके अकर्मकत्व, अनुदात्तेत्त्व और हलादित्वके कारण " अनुदात्तेतश्च हलादेः " इस पूर्वसूत्रसे इसके उत्तर युच् प्रत्ययकी सिद्धि हो जाती, तो जो पुनर्वार इस सूत्रमें पद धातुका ग्रहण हुआहै, सो केवल "लषपतपद० ३१३४ " इस वक्ष्यमाण सूत्रसे उकञ् प्रत्यय होकर युच् प्रत्ययकी बाधा न हो, इस कारण विहित हुआ है ऐसा जानना चाहिये । तिससे यह फल हुआ कि तच्छीलादि विषयमें परस्पर वासरूप विधि नहीं है, इस कारण अलंशब्दपूर्वक कृञ् धातुके उत्तर तृन् प्रत्यय नहीं होगा ॥

३१३१ क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ।३।२।१५१॥

क्रोधनः । रोषणः । मण्डनः । भूषणः ॥

३१३१–क्रुध धातु और मंडार्थ अर्थात् भूषणार्थक धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो, जैसे–क्रोधनः । रोषणः । मंडनः । भूषणः इत्यादि ॥

३१३२ न यः । ३ । २ । १५२ ॥

यकारान्ताद्युच् न स्यात् । क्नूयिता । क्ष्मायिता ॥

३१३२–यकारान्तधातुके उत्तर युच् प्रत्यय न हो जैसे–क्नूयिता। क्ष्मायिता॥

३१३३ सूददीपदीक्षश्च। ३।२।१५३॥

युच् न स्यात्। सूदिता। दीपिता। दीक्षिता। नमिकम्पीति रेण युचो बाधे सिद्धे दीपेर्ग्रहणं ज्ञापयति ताच्छीलिकेषु वासरूपविधिर्नास्तीति प्रायिकमिति। तेन कम्रा कमना युवतिः। कम्प्रा कम्पना शाखा। यदि सूदेर्युज् न कथं मधुसूदनः। नन्द्यादिः॥

३१३३–सूद, दीप और दीक्ष इन धातुओंके उत्तर युच् प्रत्यय न हो। जैसे–सूदिता। दीपिता। दीक्षिता। "नमिकम्पि० ३१४७" इस सूत्रके अनुसार "र" प्रत्ययसे युच् प्रत्ययकी बाधा सिद्ध होनेपर भी इस स्थानमें दीपधातुके ग्रहणसे जानना चाहिये कि, ताच्छील्यादि विषयमें वासरूपविधि न हो, यह प्रायिक है। इसप्रकार कम्रा कमना युवतिः। कम्प्रा कम्पना शाखा। इस स्थलमें युच् प्रत्यय और रकार प्रत्यय दोनों ही हुए। यदि सूद धातुके उत्तर युच् प्रत्यय नहीं होता तो, मधुसूदनः यह पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ? इस विषयमें कहतेहैं कि, नन्द्यादिगणमें सूद धातु पठित है अत एव तिसके उत्तर ल्यु प्रत्यय सिद्ध हुआ॥

३१३४ लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ्। ३। २। १५४॥

लाषुकः। पातुक इत्यादि॥

३१३४–लष, पत, पद, स्था, भू, वृष, हन, कम, गम और शॄ धातु, इन धातुओंके उत्तर उकञ् प्रत्यय हो, जैसे–लाषुकः। पातुकः इत्यादि॥

३१३५ जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्। ३। २। १५५॥

जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः। वराकी॥

३१३५–जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, और वृङ् धातुके उत्तर षाकन् प्रत्यय हो। जैसे–जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः। वराकी। जल्प्+षाकन्=जल्प्+आक=जल्पाक+सु=जल्पाकः इत्यादि॥

३१३६ प्रजोरिनिः। ३। २। १५६॥

प्रजवी। प्रजविनौ। प्रजविनः॥

३१३६–प्रपूर्वक जु धातुके उत्तर इनि प्रत्यय हो। जैसे–प्रजवी। प्रजविनौ। प्रजविनः॥

३१३७ जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च। ३। २। १५७॥

जयी। दरी। क्षयी। विश्रयी। अत्ययी। वमी। अव्यथी। अभ्यमी। परिभवी। प्रसवी॥

३१३७–जि, दृ और क्षि धातु विपूर्वक श्री धातु, इण् धातु, वम धातु, नञ्पूर्वक व्यथ धातु, अभिपूर्वक अम धातु, परिपूर्वक भू धातु, प्रपूर्वक सू धातु, इन धातुओंके उत्तर इनि प्रत्यय हो। जैसे–जयी। दरी। क्षयी। विश्रयी। अत्ययी। वमी। अव्यथी। अभ्यमी। परिभवी। प्रसवी। प्र+सू+इन्=प्रसविन्=दीर्घ और नकारका लोप–प्रसवी॥

३१३८ स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्। ३। २। १५८॥

आद्याख्यश्चुरादावदन्ताः। स्पृहयालुः। गृहयालुः। पतयालुः। दयालुः। निद्रालुः। तत्पूर्वो द्रा। तदो नान्तत्वं निपात्यते। तन्द्रालुः॥ शीङो वाच्यः॥ * ॥ शयालुः॥

३१३८–स्पृहि धातु, गृहि धातु, पति धातु, दयि धातु, निपूर्वक द्रा धातु, तत्पूर्वक न्द्रा धातु और श्रत्पूर्वक डुधाञ् धातु इन धातुओंके उत्तर आलुच् प्रत्यय हो। इनमें प्रथम तीन अर्थात् स्पृहि, गृहि और पति धातु चुरादिगणमें आकारान्त पठित हुए हैं। जैसे, स्पृहयालुः। गृहयालुः। पतयालुः। दयालुः। तत्पूर्वक दा धातुके उत्तर निपातनसे तत्के अन्तिम तकारके स्थानमें नकार हो। जैसे–तन्द्रालुः। शीङ् धातुके उत्तर आलुच् प्रत्यय हो। जैसे–शयालुः। शी+"सार्वधातुकार्धधातुकयोः (२१६८)" से गुण शय्+आलुच्=शयालुः॥

३१३९ दाधेट्सिशदसदो रुः ३।२।१५९॥

दारुः। धारुः। सेरुः। शद्रुः। सद्रुः॥

३१३९–दा धातु, धेट् धातु, सि धातु, शद धातु, और सद धातुके उत्तर रु प्रत्यय हो। जैसे–दारुः। धारुः। सेरुः। शद्रुः। सद्रुः। दा+रु=दारु+सु=दारुः॥

३१४० सृघस्यदः क्मरच्। ३।२।१६०॥

सृमरः। घस्मरः। अद्मरः॥

३१४०–सृधातु, घसधातु और अदधातुके उत्तर क्मरच् प्रत्यय हो। जैसे–सृमरः। घस्मरः। अद्मरः॥

३१४१ भञ्जभासमिदो घुरच्। ३। २। १६१॥

भंगुरः। भासुरः। मेदुरः॥

३१४१–भञ्ज धातु, भास धातु और मिद धातुके उत्तर घुरच् प्रत्यय हो। जैसे–भंगुरः। भासुरः। मेदुरः॥

३१४२ विदिभिदिच्छिदेः कुरच्। ३। २। १६२॥

विदुरः। भिदुरम्। छिदुरम्॥

३१४२–विदि धातु, भिदि धातु, और छिदि धातुके उत्तर कुरच् प्रत्यय हो। जैसे–विदुरः। भिदुरम्। छिदुरम्॥

३१४३ इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप् । ३ । २ । १६३ ॥

इत्वरः । इत्वरी । नश्वरः । जित्वरः । सृत्वरः ॥

३१४३–इण् धातु,नश धातु,जि धातु,और सृ धातुके उत्तर क्वरप् प्रत्यय हो । जैसे–इत्वरः । इत्वरी । नश्वरः । जित्वरः। सृत्वरः ॥

३१४४ गत्वरश्च । ३ । २ । १६४ ॥

गमेरनुनासिकलोपोपि निपात्यते । गत्वरी॥

३१४४–गमधातुके उत्तर भी क्वरप् प्रत्यय हो । और गमधातुका अनुनासिक वर्ण अर्थात् मकारका निपातनसे लोप हो । जैसे–गत्वरी ॥

३१४५ जागुरूकः । ३ । २ । १६५ ॥

जागर्तेरूकः स्यात् । जागरूकः ॥

३१४५–जागृधातुके उत्तर ऊक प्रत्यय हो । जैसे–जागरूकः (जागरणके शीलवाला) ॥

३१४६ यजजपदशां यङः।३।२।१६६॥

एभ्यो यङन्तेभ्य ऊकः स्यात् । दशामिति भाविना नलोपेन निर्देशः । यायजूकः । जञ्जपूकः । दन्दशूकः ॥

३१४६–यङन्त यज धातु, जप धातु, दन्श धातुके उत्तर ऊक् प्रत्यय हो । दशाम् यह पद भावि नकारके लोपके द्वारा निर्देश हुआ है । जैसे–यायजूकः । जञ्जपूकः । दन्दशूकः । दन्श+यङ्+ऊक=दन्दशूक (राक्षस, सर्प) ॥

३१४७ नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः । ३ । २ । १६७ ॥

नम्रः । कम्प्रः । स्मेरः । जसिर्नञ्पूर्वः क्रियासातत्ये वर्तते । अजस्रं सन्ततमित्यर्थः । कम्रः । हिंस्रः । दीप्रः ॥

३१४७–नमधातु, कम्पधातु, स्मिधातु, नञ्पूर्वक जसधातु कमधातु हिन्सधातु और दीपधातु, इन धातुओंके उत्तर र प्रत्यय हो । जैसे–नम्रः । कम्प्रः । स्मेरः । नञ्पूर्वक जसधातु क्रियाके सातत्यार्थ अर्थात् नैरन्तर्य्यार्थमें जैसे–अजस्रं सन्ततम् इत्यर्थः । कम्रः । हिंस्रः । दीप्रः ॥

३१४८ सनाशंसभिक्ष उः ।३।२।१६८॥

चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः ॥

३१४८–सन्प्रत्ययान्त धातु स्तुत्यर्थक आङ्पूर्वक शंसु धातु और भिक्षधातु इन धातुओंके उत्तर उ प्रत्यय हो, जैसे–चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः ॥

३१४९ विन्दुरिच्छुः । ३ । २ ।१६९॥

वेत्तेर्नुम् इषेश्छत्वं च निपात्यते । वेत्ति तच्छीलो विन्दुः । इच्छति इच्छुः ॥

३१४९–विन्दुः और इच्छुः यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों । विदधातुको नुम् और इष्धातुके षकारके स्थानमें छकार निपातनसे सिद्ध हुआ है । जैसे–वेत्ति तच्छीलो विन्दुः । इच्छति इति इच्छुः ॥

३१५० क्याच्छन्दसि ।३ । २ ।१७०॥

देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥

३१५०–इस सूत्रमें क्य शब्दसे क्यच्, क्यप्, क्यङ् इन सम्पूर्ण प्रत्ययोंका सामान्यतः ग्रहण है । व्याख्यानसे कण्ड्वादित्वप्रयुक्त जो यक् प्रत्यय तादृश यगन्तका भी ग्रहण होता है वेदमें क्य प्रत्ययान्त धातुके उत्तर अर्थात् क्यच्, क्यप्, क्यङ् कण्ड्वादि यक् इन सम्पूर्ण प्रत्ययान्त धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो । जैसे–"देवान् जिगाति सुम्नयुः" ॥

३१५१ आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च । ३ । २ । १७१ ॥

आदन्तादृदन्ताद्गमादिभ्यश्च किकिनौ स्तश्छन्दसि तौ च लिड्वत् । पपिः सोमम् । ददिर्गाः । बभ्रिर्वज्रम् । जग्मिर्युवा । जघ्निर्वृत्रममित्रियम् । जज्ञिः । भाषायां धाञ्कृसृगमिजनिनमिभ्यः ॥ * ॥ दधिः । चक्रिः । सस्रिः जग्मिः । जज्ञिः । नेमिः ॥ सासहिवावहिचाचलिपापतीनामुपसंख्यानम् ॥ * ॥ यङन्तेभ्यः सहेत्यादिभ्यः किकिनौ पतेर्नीगभावश्च निपात्यते ॥

३१५१–आकारान्त धातु, ऋकारान्त धातु, गम धातु, हन धातु और जन धातु इन धातुओंके उत्तर वैदिक प्रयोगोंमें कि और किन् प्रत्यय हों । यह कि और किन् लिट्के तुल्य हों । जैसे–पपिः सोमम् । ददिर्गाः । बभ्रिर्वज्रम् । जग्मिर्युवा । "जघ्निर्वृत्रममित्रियम्" जज्ञिः ।

भाषामें धाञ् कृ सृ गम जन और नम इन धातुओंके उत्तर कि और किन् प्रत्यय हों* जैसे–दधिः । चक्रिः । सस्रिः। जग्मिः । जज्ञिः । नेमिः । "सासहिवावहिचाचलिपापतीनामुपसंख्यानम्" सासहि, वावहि, चाचलि, पापति, धातुके उत्तर अर्थात् यङन्त सह, वह, चल, और पत् धातुके उत्तर कि और किन् प्रत्यय हों । और पत् धातुके उत्तर नीक्का अभाव निपातनसे हो * ॥

३१५२ स्वपितृषोर्नजिङ् ।३।२।१७२॥

स्वप्नक् । तृष्णक् । तृष्णजौ । तृष्णजः । धृषेश्चेति वाच्यमिति काशिकादौ । धृष्णक् ॥

३१५२–स्वपि और तृष धातुके उत्तर नजिङ् प्रत्यय हो । जैसे–स्वप्नक् । तृष्णक् । तृष्णजौ । तृष्णजः। धृषधातुके उत्तर नजिङ् प्रत्यय हो । इस प्रकार काशिकामें कहा है जिससे धृष्णक् यह रूप सिद्ध हुआ ।

३१५३ शॄवन्द्योरारुः। ३। २ । १७३ ॥

शरारुः । वन्दारुः ॥

३१५३-यृ और अभिवादनस्तुत्यर्थक वदि धातुके उत्तर आरु प्रत्यय हो । जैसे-शरारुः । वन्दारुः ॥

३१५४ भियः क्रुक्लुकनौ ।३।२।१७४॥

भीरुः । भीलुकः ॥ क्रुकन्नपि वाच्यः ॥ * ॥ भीरुकः ॥

३१५४-भीधातुके उत्तर क्रु और क्लुकन् प्रत्यय हो । जैसे-भीरुः । भीलुकः ।

भी धातुके उत्तर क्रुकन् प्रत्ययभी हो*जैसे- भीरुकः ॥

३१५५ स्थेशभासपिसकसो वरच् । ३ । २ । १७५ ॥

स्थावरः । ईश्वरः । भास्वरः । पेस्वरः । कस्वरः ॥

३१५५--स्था, ईश, भास, पिस और कस इन धातुओंके उत्तर वरच् प्रत्यय हो । जैसे-स्थावरः । ईश्वरः । भास्वरः । पेस्वरः । कस्वरः ॥

३१५६ यश्च यङः । ३ । २ । १७६ ॥

यातेर्यङन्ताद्वरच् स्यात् । अतो लोपः । तस्याचः परस्मिन्निति स्थानिवद्भावे प्राप्ते । पदस्य चरमावयवे द्विर्वचनादौ च कर्तव्ये परनिमित्तोऽजादेशो न स्थानिवत् । तस्य यलोपं प्रति स्थानिवद्भावनिषेधाल्लोपो व्योरिति यलोपः। अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वमाश्रित्यातो लोपे प्राप्ते वरे लुप्तं न स्थानिवत् । यायावरः ॥

३१५६-यङन्त या धातुके उत्तर वरच् प्रत्यय हो । "अतो लोपः २३८० " इस सूत्रसे अकारका लोप हुआ । अकारका लोप होनेपर " अचः परस्मिन् ५०" इस सूत्रसे स्थानिवद्भावकी प्राप्ति होनेपर भी पदान्त निमित्त कार्य्य और द्वित्व आदि कर्त्तव्य होनेपर परनिमित्तक अच् स्थानिक आदेश स्थानिवत् नहीं होगा । इस कारण "न पदान्तद्विर्वचन" इस सूत्रसे यलोपके प्रति स्थानिवद्भावनिषेधके कारण "लोपो व्योः-८७३" इस सूत्रसे यकारका लोप हुआ । ऐसेही अकार लोपका स्थानिवत्त्व आश्रय करके "आतो लोप इटि च" इससे आकारका लोप प्राप्त होनेपर वरच् परे रहते लुप्त अकारका स्थानिवत्त्व नहीं होगा । जैसे-यायावरः। या+यङ्+वरच=यायावर (देशसे देशान्तर जानेवाला आश्वमेधिक घोडा वा जरत्कारुमुनि) ॥

३१५७ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् । ३ ।२ । १७७ ॥

विभ्राट् । भाः । भासौ । धूः । धुरौ। विद्युत्। ऊर्क् । पूः । पुरौ । दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः । जूः। जुवौ। जुवः । ग्रावशब्दस्य धातुना समासः सूत्रे निपात्यते । ततः क्विप् । ग्रावस्तुत्॥

३१५७-भ्राज धातु, भास धातु, हिंसार्थक धुर्वी धातु, विपूर्वक द्युत धातु, ऊर्ज धातु, पॄ धातु, जु धातु, ग्रावपूर्वक स्तु इन धातुओंके उत्तर क्विप् प्रत्यय हो । जैसे-विभ्राट् । भाः । भासौ । धूः । धुरौ । विद्युत् । ऊर्क् । पूः । पुरौः । पुरः । इस स्थलमें दृशि धातुके ग्रहणके अपकर्षके कारण जु धातुके उकारको दीर्घ होगा । जूः । जुवौ । जुवः । ग्राव शब्दके साथ स्तु धातुका जो समास वह निपातन सिद्ध है। पश्चात् उसके उत्तर क्विप् प्रत्यय होकर ग्रावस्तुत् पद सिद्ध हुआ ॥

३१५८अन्येभ्योऽपि दृश्यते।३।२।१७८।

क्विप् । छित् । भिद् । दृशिग्रहणं विध्यन्तरोपसंग्रहार्थम् क्वचिद्दीर्घः क्वचिदसम्प्रसारणं क्वचिद् द्वे क्वचिद्ध्रस्वः । तथा च वार्तिकम् ॥ क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च ॥ * ॥ क्विब्वचीत्यादिना उणादिसूत्रेण केषांचित्सिद्धे तच्छीलादौ तृना बाधा मा भूदिति वार्तिके ग्रहणम् । वक्तीति वाक् । पृच्छतीति प्राट् । आयतं स्तौति आयतस्तूः । कटं प्रवते कटप्रूः । जुरुक्तः । श्रयति हरिं श्रीः ॥ द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च ॥ * ॥ दृशिग्रहणादभ्याससंज्ञा । दिद्युत् । जगत् ॥ जुहोतेर्दीर्घश्च ॥ ॥ * ॥ जुहूः । दॄ भये । अस्य ह्रस्वश्च । दीर्यति ददृत् ॥ ध्यायतेः सम्प्रसारणं च॥* ॥ धीः॥

३१५८-अन्य धातुके उत्तर भी क्विप् प्रत्यय हो । जैसे-छिद्+क्विप्+छित् । भिद्+क्विप्+भिद् । इस स्थलमें अन्य विधि ग्रहणके निमित्त दृशि धातुका ग्रहण हुआ है। कहीं २ धातुके स्वरको दीर्घ होगा । कहीं २ सम्प्रसारण होगा, और कहीं द्वित्व होगा और कहीं ह्रस्व होगा । इस विषयमें वार्त्तिक है । जैसे-

क्विप् प्रत्यय, और वच् धातु,प्रच्छ धातु,आयत शब्दपूर्वक स्तु धातु,कट शब्दपूर्वक प्रु धातु,जु धातु,श्री धातु,इन सम्पूर्ण धातुओंके स्वरको दीर्घ और सम्प्रसारण होगा । * "क्विब्वचि" इत्यादि उणादि सूत्रसे दीर्घ और सम्प्रसारणकी बाधा होनेपर भी इसका जब वार्त्तिकमें ग्रहण हुआ है, तो तच्छीलादि अर्थमें तृन् प्रत्ययके द्वारा बाधा नहीं होगी ऐसा समझना चाहिये, जैसे-वक्ति इस विग्रहमें वाक् । पृच्छति इस विग्रहमें प्राट् । आयतं स्तौति इति आयतस्तूः । कटं प्रवते इति कटप्रूः । जु धातुके रूप पूर्वमें कह आये हैं । श्रयति हरिम् इति श्रीः ।

" द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च " * इस वार्त्तिकसे द्युत धातु, गम धातु, हु धातु, इन सम्पूर्ण धातुओंको द्वित्व भी हो * । दृशि ग्रहणके कारण इसकी अभ्यस्त संज्ञा हुई विद्युत् । जगत् ।

हु धातुको दीर्घ भी हो * । जैसे-जुहूः । दॄ धातु भयमें । इसको ह्रस्व भी हुआ । जैसे-दीर्यति इति ददृत् ॥

ध्यै धातुको सम्प्रसारण हो । * जैसे-धीः ॥

३१५९ भुवः संज्ञान्तरयोः।३।२।१७९॥

मित्रभूर्नाम कश्चित् । धनिकाधमर्णयोरन्तरे यस्तिष्ठति विश्वासार्थं स प्रतिभूः ॥

३१५९-संज्ञा और अन्तर यह दो अर्थ होनेपर भू धातुके उत्तर क्विप् प्रत्यय हो । जैसे-मित्रभूः । मित्रभूशब्दसे किसी व्यक्तिका नाम समझना । ऋणदाता (कर्ज देनेवाला) और प्रतिग्रहीता (कर्ज लेनेवाला) इन दोनोंके मध्यमें विश्वासार्थ जो जामिन हो तिसको प्रतिभूः कहतेहैं ॥

३१६०विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम् ३।२।१८०

एभ्यो भुवो डुः स्यान्न तु संज्ञायाम् । विभुर्व्यापकः । प्रभुः स्वामी । संभुर्जनिता । संज्ञायां तु विभूर्नाम कश्चित् ॥ मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ * ॥ मितं द्रवतीति मितद्रुः । शतद्रुः।शम्भुः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र भवतिः ॥

३१६०-विपूर्वक, प्रपूर्वक और संपूर्वक जो भू धातु तिसके उत्तर डु प्रत्यय हो । असंज्ञायाम् इस कथनसे संज्ञा होनेपर नहीं होगा । जैसे-विभुः व्यापकः । प्रभुः स्वामी । सम्भुः जनिता । संज्ञा होनेपर जैसे-विभूः अर्थात् इस नामकी कोई व्यक्ति ।

मित् पूर्वक द्रु धातुके उत्तर डु प्रत्यय हो * जैसे-मितं द्रवति इस विग्रहमें मितद्रुः । शतद्रुः । शम्भुः । शम्+ भू+डु=शम्भुः (शंकर महादेव) इस स्थलमें भू धातुमें णिजर्थ अन्तर्हित है ऐसा जानना चाहिये ॥

३१६१ धः कर्मणि ष्ट्रन् ।३।२।१८१।

धेटो धाञश्च कर्मण्यर्थे ष्ट्रन् स्यात् । धात्री जनन्यामलकी वसुमत्युपमातृषु ॥

३१६१-धेट् धातु और धाञ् धातुके उत्तर कर्म अर्थ होनेपर ष्ट्रन् प्रत्यय हो । जैसे-धात्री । धात्री शब्दसे जननी, आमलकी, वसुमती और उपमाता समझना ॥

३१६२दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ।३। २ ।१८२॥

दाबादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे । दान्त्यनेन दात्रम् । नेत्रम् ॥

३१६२-दाप् धातु, नी, शस, यु, युज, स्तु, तुद, सि, सिच, मिह, पत, दश और नह इन सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर ष्ट्रन् प्रत्यय हो, करणार्थ होनेपर जैसे-दान्त्यनेन इस विग्रहमें दात्रम् । नेत्रम् ॥

३१६३ तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च। ३ । २ । ९ ॥

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण्न स्यात् । शस्त्रम् । योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्त्रम् । दंष्ट्रा । नद्ध्री॥

३१६३-ति, तुन, त्रन्, त, थन्, सि, सु, सर, क, स इन दश कृत् प्रत्ययोंके पूर्वमें इट् न हो । जैसे-शस्त्रम् । योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्त्रम् । दंष्ट्रा । नद्ध्री ॥

३१६४ हलसूकरयोः पुवः ।३।२।१८३॥

पूङ्पूञोः करणे ष्ट्रन् स्यात् । तच्चेत्करणं हलसूकरयोरवयवः । हलस्य सूकरस्य वा पोत्रम् । मुखमित्यर्थः ॥

३१६४-पूङ् धातु और पूञ् धातुके उत्तर करणार्थ होनेपर ष्ट्रन् प्रत्यय हो । यह करण यदि हल और सूकरका अवयव हो तो । जैसे-हलस्य सूकरस्य वा पोत्रम् । मुखमित्यर्थः ॥

३१६५ अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः । ३ । २ । १८४ ॥

अरित्रम् । लवित्रम् । धुवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ॥

३१६५-ऋ धातु, लू धातु, धू धातु, सू धातु, खन धातु, सह धातु, और चर धातुके उत्तर इत्र प्रत्यय हो जैसे-अरित्रम्।लवित्रम्। धुवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् । चर्+ इत्र+अम्=चरित्रम् (वृत्तान्त) ॥

३१६६ पुवः संज्ञायाम् । ३ ।२।१८५॥

पवित्रम् । येनाज्यमुत्पूयते यच्चानामिकावेष्टनम् ॥

३१६६-पूञ्धातुके उत्तर संज्ञा अर्थमें इत्र प्रत्यय हो । जैसे-पवित्रम् । येनाज्यमुत्पूयते यच्चानामिकावेष्टनम् । जिसके द्वारा घी पवित्र कियाजाता है, जो कुशाकी बनाकर अनामिकाअंगुलीमें पहरीजातीहै ॥

३१६७कर्तरि चर्षिदेवतयोः।३।२।१८६॥

पुव इत्रः स्यात् ऋषौ करणे देवतायां कर्तरि। ऋषिर्वेदमन्त्रः । तदुक्तमृषिणेति दर्शनात् । पूयतेऽनेनेति पवित्रम् । देवतायां त्वग्निः पवित्रं स मा पुनातु ॥ * ॥

॥ इति पूर्वकृदन्तं समाप्तम् ॥

३१६७-ऋषिकरण और देवता कर्त्ता ऐसा अर्थ वाच्य होनेपर पूञ्धातुके उत्तर इत्र प्रत्यय हो।ऋषिर्वेदमंत्रः । अर्थात् वेदमंत्र ऋषियोंद्वारा कहेगये हैं ऐसा देखा जाता है । जैसे-पूयतेऽनेन इस विग्रहमें पवित्रम् । देवता कर्त्ता होनेपर जैसे-अग्निः पवित्रं स मा पुनातु ॥

॥ इति पूर्वकृदन्तप्रकरणम् ॥

अथोणादयः ।

(उणादयो बहुलम्) ऐसा सूत्र पीछे सूत्रकार पाणिनि मुनिने कहा है, उस स्थलमें प्रकृतिविशेषसे प्रत्ययविशेष शाकटायनके कियेहुए पञ्चपादक्रमसे तीनसौ एक सूत्र दर्शित हुए हैं। उसी प्रकरणके आरम्भ निमित्त प्रतिज्ञा करते हैं कि अब उणादि सूत्र कहेंगे ॥

१ 'कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्' ॥ ॥ करोतीति कारुः शिल्पी कारकश्च ॥ 'आतो युक्' । वातीति वायुः । पायुर्गुदम् । जयत्यभिभवति रोगान् जायुरौषधम् । मिनोति प्रक्षिपति देहे ऊष्माणमिति मायुः पित्तम् । स्वादुः । साध्नोति परकार्यं साधुः । अश्नुते आशु शीघ्रम्। 'आशुर्व्रीहिः पाटलः स्यात्' ॥

१–अब उणादि प्रत्यय कहेजाते हैं। कृ, वा, पा, जि, मि, स्वदि, साधि और अशू धातुके उत्तर उण् प्रत्यय हो। करोति इस विग्रहमें कृ+उण्=कारुः । कारुशब्दसे शिल्पी और कारक समझना। "आतो युक् २७६१" इस सूत्रसे आकारान्त धातुके उत्तर युक्का आगम हो। वाति इस विग्रहमें वा+उण्=वायुः । पा+उण्=पायुः । अर्थात् गुह्यदेश । जयति अभिभवति रोगान् इस विग्रहमें जि+उण्=जायुः । अर्थात् औषधविशेष । मिनोति प्रक्षिपति देहे ऊष्माणम् इस विग्रहमें मि+उण्=मायुः । अर्थात् पित्त । स्वद+उण्=स्वादुः । साध्नोति परकार्यम् इस विग्रहमें साध+उण्=साधुः । अश्नुते इस विग्रहमें अश+उण्=आशु शीघ्रम् । "आशुर्व्रीहिः पाटलः स्यात्" ॥

२ 'छन्दसीणः' ॥ ॥ मान आयौ ॥

२–वेदमें इण् धातुके उत्तर उण् प्रत्यय हो। जैसे–एति इस विग्रहमें इण्+उण्=आयुः । अर्थात् जीवितकाल आयु कहाताहै । "मान आयौ" ॥

३ 'दृसनिजनिचरिचटिभ्यो ञुण्' ॥ ॥ दीर्यत इति दारु । 'स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्' । जानु । जानुनी । इह 'जनिवध्योश्च' इति न निषेधः, अनुबन्धद्वयसामर्थ्यात् । चारु रम्यम् । मृगय्वादित्वात्कुप्रत्यये चटु प्रियं वाक्यम् । चाटु इत्यपि ॥

३–दृ विदारणे, षणु दाने, जन जनने, चर गतौ, चट भेदने, इन सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर ञुण् प्रत्यय हो । दीर्यते इस विग्रहमें दृ ञुण्–दारु । षण्+ञुण्+सानुः । अमरकोषमें लिखाहै । "स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्" जन+ञुण्=जानु । जानुनी । इस स्थलमें अनुबंध द्वयकी सामर्थ्यके कारण "जनिवध्योश्च २५१२" इस सूत्रसे वृद्धिका निषेध नहीं हुआ । चर+ञुण्=चारु रम्यम् । चट्+ञुण्=चाटु अर्थात् प्रियवाक्य । मृगय्वादित्वके कारण कु प्रत्यय करनेपर चटु ऐसा पद भी हो ॥

४ 'किञ्जरयोः श्रिणः' ॥ ॥ किं शृणोतीति किंशारुः । सस्यशूकं बाणश्च । जरामेति जरायुर्गर्भाशयः । 'गर्भाशयो जरायुः स्यात्' ॥

४–शॄ हिंसायाम्, इण् गतौ । किंशब्दपूर्वक शॄ धातु और जराशब्दपूर्वक इण् धातुके उत्तर ञुण् प्रत्यय हो । जैसे–किं शृणोति इस विग्रहमें किं+शॄ+ञुण्=किंशारुः । अर्थात् शस्यशूक और बाण समझना । जरामेति जरा+इण्+ञुण्=जरायुः। "गर्भाशयको जरायु कहतेहैं" ॥

५ 'त्रोरश्च लः' ॥ ॥ तरन्त्यनेन वर्णा इति तालु ॥

५–तॄ प्लवनतरणयोः। इस धातुके उत्तर ञुण् प्रत्यय हो और रकारके स्थानमें लकार हुआ । जैसे–तरन्ति अनेन वर्णाः इस विग्रहमें तॄ+ञुण्=तालु ॥

६ 'कृके वचः कश्च' ॥ ॥ कृकेण गलेन वक्तीति कृकवाकुः । 'कृकवाकुर्मयूरे च सरटे चरणायुधे' इति विश्वः ॥

६–वच परिभाषणे । कृकशब्द उपपद होनेपर वच धातुके उत्तर ञुण् प्रत्यय हो और ककार अन्तादेश हो । जैसे–कृकेण गलेन वक्ति इति इस विग्रहमें कृक+वच+ञुण्=क=कृकवाकुः कृकवाकु शब्दसे मोर सरट और चरणायुध समझना । इति विश्वः ॥

७ 'भृमृशीतॄचरित्सरितनिधनिमिमस्जिभ्य उः' ॥ ॥ भरति बिभर्ति वा भरुः स्वामी हरश्च । म्रियन्तेऽस्मिन् भूतानि मरुर्निर्जलदेशः । शेते शयुरजगरः । तरुर्वृक्षः । चरन्ति भक्षयन्ति देवता इममिति चरुः । त्सरुः खड्गादिमुष्टिः । तनुः स्वल्पम् । 'स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः' । धनुः शस्त्रविशेषः । 'धनुषा च धनुं विदुः'।'धनुरिवाजनिवक्रः' इति श्रीहर्षः। मयुः किन्नरः । 'मद्गुः पानीयकाकिका' इति रभसः। न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्।जश्त्वेन सस्य दः॥

७–भृञ् भरणे, डुभृञ् धारणपोषणयोः, मृङ् प्राणत्यागे, शीङ् स्वप्ने, तॄ प्लवनतरणयोः, चर गतौ, त्सर छद्मगतौ, तनु विस्तारे, धन धान्ये, डुमिञ् प्रक्षेपणे, टुमस्जो शुद्धौ, इन सब धातुओंके उत्तर उ प्रत्यय हो जैसे–भरति, बिभर्ति वा इस विग्रहमें भृ+उ+भरुः । अर्थात् स्वामी और हर । म्रियन्तेऽस्मिन् भूतानि इस विग्रहमें मृ+उ=मरुः अर्थात् निर्जल मरुभूमि । शेते इस विग्रहमें शी+उ=शयुः अर्थात् अजगर । तॄ+उ=तरुः अर्थात् वृक्ष । चरन्ति भक्षयन्ति देवता इमम् चर+उ=चरुः । त्सर+उ=त्सरुः । अर्थात् इस विग्रहमें खड्गमुष्टि । तन+उ=तनुः अर्थात् शरीर । "स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः" । धन्+उ=धनुः अर्थात् शस्त्रविशेष । "धनुषा च धनुर्विदुः" "धनुरिवाजनि वक्रः" इति श्रीहर्षः । मयुः अर्थात् किन्नर । मस्ज+उ=मद्गुः । अर्थात् पक्षिविशेष (पानकौडी नामसे प्रसिद्ध है) यह रभसने कहा है । न्यङ्क्वादि-

त्वके कारण कुत्व पश्चात् जश्त्वके कारण सकारके स्थानमें दकार हुआ ॥

८ 'अणश्च' ॥ ॥ 'लवलेशकणाणवः' । चात्कटिवटिभ्याम् । कटति रसनां कटुः । वटति वदतीति वटुः ॥

८–अण् शब्दार्थे । इस धातुके उत्तर उ प्रत्यय हुआ । जैसे–अण्+उ=अणुः । अर्थात् सूक्ष्म । "लवलेशकणाणवः" चकारसे कटि और वटि धातुके उत्तर उ प्रत्यय हुआ । जैसे–कटुः अर्थात् रसविशेष । वटति वदति इस विग्रहमें वटुः ॥

९ 'धान्ये नित्'॥ ॥धान्ये वाच्येऽण उप्रत्ययः स्यात् । स च नित् । नित्वादाद्युदात्तः । प्रियङ्गवश्चमेऽणवश्चमे । 'व्रीहिभेदस्त्वणुः पुमान्' । नित्ग्रहणं फलिपाटीत्यादिसूत्रमभिव्याप्य सम्बध्यते ॥

९–धान्य होनेपर अण धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो और उकार नित् हो । अर्थात् नकार इत् हो । नकारकी इत्संज्ञा होनेके कारण आदिम वर्ण उदात्त हुआ । जैसे–अणुः व्रीहिभेद । "प्रियङ्गवश्चमेऽणवश्चमे" । "व्रीहिभेदस्त्वणुः पुमान्" यहांका नित् ग्रहण "फलिपाटी" इत्यादि सूत्रपर्य्यन्त संवद्ध होगा ॥

१० 'शॄस्वृस्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च' ॥ ॥ शृणातीति शरुः । 'शरुरायुधकोपयोः' । स्वरुर्वज्रम् । स्नेहुर्व्याधिः । चन्द्र इत्यन्ये । त्रपु सीसम् । 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः' 'वसुर्हृदेऽग्नौ योक्त्रेंशौ वसु तोये धने मणौ' । हनुर्वक्त्रैकदेशः । क्लेदुश्चन्द्रः । बन्धुः । मनुः ॥ चात् बिदि अवयवे । बिन्दुः ॥

१०–शॄ, स्वृ, स्निहि, त्रपि, असि, वसि, हनि, क्लिदि बंधि और मनि धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो । जैसे–शृणोति इस विग्रहमें शॄ+उ=शरुः यह आयुध और कोप अर्थमें है। स्वृ+उ=स्वरुः अर्थात् वज्र । स्निह+उ=स्नेहुः अर्थात् व्याधि। अन्यमतमें चन्द्र भी समझना । त्रप+उ=त्रपु अर्थात् सीसक । असि=उ=असुः अर्थात् प्राण । असु शब्द पुंलिङ्ग बहुवचनान्त है । वस+उ=वसुः। वसुशब्दसे हृद, अग्नि, योक्त्र, अंशु, तोय, धन और मणि समझना । हन्+उ=हनुः । हनुशब्दसे मुखका एक अंश ठोडी समझना । क्लिद+उ=क्लेदुः । अर्थात् चन्द्र । बंध+उ=बन्धुः । मन+उ=मनुः । सूत्रमें चकार होनेसे अवयवार्थक बिद धातुके उत्तर भी उ प्रत्यय होगा । जैसे–बिद+उ=बिन्दुः ॥

११ 'स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च' ॥ ॥ 'देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्' इत्यमरः ॥

११–स्यन्द धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो और यकारको सम्प्रसारण हो और दकारके स्थानमें धकार हो । जैसे–स्यन्द+ उ=सिन्धुः । सिन्धुशब्दसे देश, नद विशेष और समुद्र समझना । "सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्" इत्यमरः ॥

१२ 'उन्देरिच्चादेः' ॥ ॥ उनत्ति इन्दुः ॥

१२–उन्द धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो, और धातुकी आदिके उकारके स्थानमें इकार हो जैसे–उनत्ति इस विग्रहमें उन्द+उ=इन्दुः ॥

१३ 'ईषेः किच्च' ॥ ॥ ईषेरुः स्यात्सच कित् आदेरिकारादेशश्च । ईषते हिनस्ति इषुः शरः । 'ईषुर्द्वयोः' ॥

१३–ईष धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो । वह उकार कित्संज्ञक हो और धातुके ईकारके स्थानमें इकार हो । जैसे–ईषते हिनस्ति ईष+उ=इषुः । अर्थात् बाण । इषु शब्द पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग है ॥

१४ 'स्कन्देः सलोपश्च' ॥ ॥ कन्दुः ॥

१४–स्कन्द धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो और सकारका लोप हो । जैसे–कन्दुः ॥

१५ 'सृजेरसुम्च' ॥ ॥ चात्सलोप उप्रत्ययश्च । रज्जुः ॥

१५–सृज धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो और धातुको असुम्का आगम हो । और चकारसे सकारका लोप और उ प्रत्यय हो । जैसे–रज्जुः ॥

१६ 'कृतेराद्यन्तविपर्ययश्च' ॥ ॥ ककारतकारयोर्विनिमयः । तर्कुः सूत्रवेष्टनम् ॥

१६–कृत धातुके उत्तर उ प्रत्यय और आदि और अन्त वर्णका विपर्य्यय अर्थात् ककार और तकारका विनिमय हो । जैसे–तर्कुः अर्थात् सूत्रवेष्टन (तकुआ) ॥

१७ 'नावञ्चेः'॥ ॥ न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम् । नियतमञ्चति न्यङ्कुर्मृगः ॥

१७–निपूर्वक अञ्चूधातुके उत्तर उ प्रत्यय हो और न्यङ्क्वादिसूत्रके अनुसार चकारके स्थानमें ककार हो । नियतमञ्चति न्यङ्कुः । अर्थात् मृगविशेष ॥

१८ 'फलिपाटिनमिमनिजनां गुक्पटिनाकिधतश्च' ॥ ॥ फलेर्गुक् । फल्गुः । पाटेः पटिः । पाटयतीति पटुः । नम्यतेऽनेन नाकुर्वल्मीकम् । मन्यते इति मधु । जायते इति जतु ॥

१८–फलि, पाटि, नमि, मनि और जनि धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो, और यथाक्रमसे फलके अवयव लकारको गुक्का आगम हो और पाटि आदिकोंके पटि, नाकि, ध और त अन्तमें आदेश हों । जो अनेकाल् आदेश हैं वे सम्पूर्णको होंगे । और अन्य अन्तमें होंगे । फल+गुक्+उ=फल्गुः । पाटयति इस विग्रहमें पटुः । नम्यतेऽनेन इस विग्रहमें नाकुः अर्थात् वल्मीक । मन्यते इस विग्रहमें मधु । जायते इस विग्रहमें जतु ॥

१९ 'वलेर्गुक् च' ॥ ॥ वल संवरणे वल्गुः ॥

१९–वल् धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो और वल्धातुके

लकारको गुक्का आगम हो। जैसे-संवरणार्थक वल्+उ=वल्गुः ॥

२० 'शः कित्सन्वच्च' ॥ ॥ श्यतेरुः स्यात्स च कित्सन्वच्च। शिशुर्बालः ॥

२०-शो धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो और यह उ कित्संज्ञक हो। और तिसको सन्वत् कार्य्य हो। जैसे-शिशुः (बालक)।

२१ 'यो द्वे च' ॥ ॥ 'ययुरश्वोश्वमेधीयः'। सन्वदिति प्रकृते द्वेग्रहणमित्वनिवृत्त्यर्थम् ॥

२१-या धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो और उसको द्वित्व हो। जैसे-ययुः ययुशब्दसे अश्वमेधका अश्व समझना। "शः कित्सन्वच्च" इस सूत्रसे सन्वत्की अनुवृत्ति होजाती तिससे द्वित्व होजाता, तो पुनः द्वित्व ग्रहण इत्व निवृत्तिके निमित्त है ॥

२२ 'कुर्भ्रश्च' ॥ ॥ 'बभ्रुर्मुन्यन्तरे विष्णौ बभ्रू नकुलपिङ्गलौ'। चादन्यतोपि। चक्रुः कर्ता। जघ्नुर्हन्ता। पपुः पालकः ॥

२२-भृ धातुके उत्तर कु प्रत्यय हो और धातुको द्वित्व हो। "बभ्रुर्मुन्यन्तरे विष्णौ बभ्रू नकुलपिङ्गलौ"। चकारसे अन्यधातुके उत्तर भी कु प्रत्यय हो। जैसे-चक्रुः कर्ता। जघ्नुर्हन्ता। पपुः पालकः ॥

२३ 'पॄभिदिव्यधिगृधिधृषिभ्यः' ॥ ॥ कुः स्यात्। पुरुः। भिनत्ति भिदुर्वज्रम्। ग्रहिज्येतिसम्प्रसारणम्। विरहिणं विध्यति विधुः। 'विधुः शशांके कर्पूरे हृषीकेशे च राक्षसे'। गृधुः कामः। धृषुर्दक्षः ॥

२३-पॄ, भिदि, व्यधि, गृधि, धृषि, इन धातुओंके उत्तर कु प्रत्यय हो। पुरुः। भिनत्ति भिदुर्वज्रम्। "ग्रहिज्येति २४१२" इस सूत्रसे सम्प्रसारण होगा। विरहिणं विध्यति विधुः। "विधुः शशांके कर्पूरे हृषीकेशे च राक्षसे" इस कोषसे विधुशब्द शशांक (चन्द्र), कर्पूर, हृषीकेश, राक्षस इन अर्थोंका वाचक है। गृधुः कामः। धृषुः दक्षः ॥

२४ 'कृग्रोरुच्च' ॥ ॥ करोतीति कुरुः। गृणाति गुरुः ॥

२४-कृ और गृ धातुके उत्तर कु प्रत्यय हो। और ऋकारके स्थानमें उकार हो। जैसे-कुरुः। गृणाति इति गुरुः ॥

२५ 'अपदुःसुषु स्थः' ॥ ॥ सुषामादिषु चेति षत्वम्। अपष्ठु प्रतिकूलम्। दुष्ठु। सुष्ठु ॥

२५-अपपूर्वक, दुर्पूर्वक, और सु पूर्वक स्था धातुके उत्तर कु प्रत्यय हो। तत्पश्चात् "सुषामादिषु च १०२२" इस सूत्रसे धातुके सकारको षत्व हो। जैसे-अपष्ठु, अर्थात् प्रतिकूल। दुष्ठु, सुष्ठु ॥

२६ 'रपेरिच्चोपधायाः' ॥ ॥ अनिष्टं रपतीति रिपुः ॥

२६-रप धातुकी उपधाके स्थानमें इकार हो। जैसे-अनिष्टं रपति इस विग्रहमें रिपुः ॥

२७ 'अर्जिदृशिकम्यमिपशिबाधामृजिपशितुग्धुग्दीर्घहकाराश्च' ॥ ॥ अर्जयति गुणान् ऋजुः। सर्वानविशेषेण पश्यतीति पशुः। कन्तुः। अन्धुः कूपः। 'पांशुर्ना न द्वयो रजः'। 'तालव्या अपि दन्त्याश्च सम्बसूकरपांसवः'। बाधते इति बाहुः। 'बाहुः स्त्रीपुंसयोर्भुजः ॥'

२७-अर्जि, दृशि, कमि, अमि, पशि, और बाध धातुके स्थानमें कु प्रत्यय परे रहते यथाक्रमसे ऋज, पश, तुक्, धुक्, दीर्घ और हकार आदेश हों। जैसे-अर्जयति गुणान् ऋजुः। सर्वान्-अविशेषेण पश्यतीति पशुः। कन्तुः। अन्धुः कूपः। "पांशुर्ना न द्वयो रजः" सम्ब सूकर और पांसु शब्द तालव्य शकारवाले तथा दन्त्य सकारवाले भी हैं। यहांपर दीर्घ भी हुआ है। बाधते इति बाहुः यहांपर धकारको हकार हुआ। "बाहुः स्त्रीपुंसयोर्भुजः" ।

२८ 'प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च' ॥ ॥ त्रयाणां कुः सम्प्रसारणं भ्रस्जेः सलोपश्च। पृथुः। मृदुः। न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम्। भृज्जति तपसा भृगुः ॥

२८-प्रथि, म्रदि, और भ्रस्ज इन तीन धातुओंके उत्तर कु प्रत्यय सम्प्रसारण और भ्रस्ज धातुके सकारका लोप हो। जैसे-पृथुः। मृदुः। पश्चात् कुत्व हो। भृज्जति भृगुः। भृगु मुनि ॥

२९ 'लङ्घिबंह्योर्नलोपश्च' ॥ ॥ लघुः ॥ बालमूललघ्वलमङ्गुलीनां वा लो रत्वमापद्यते ॥ * ॥ रघुर्नृपभेदः। बहुः ॥

२९-लंघ और बंह इन इन दो धातुओंके नकारका लोप और कु प्रत्यय हो। यथा, लघुः। बाल, मूल, लघु, अलम् और अंगुलि शब्दके लकारके स्थानमें विकल्प करके रकार हो। यथा, रघुः नृपभेदः। एक राजाका नाम। बहुः। बहुत।

३० 'ऊर्णोतेर्नुलोपश्च' ॥ ॥ ऊरु सक्थि ॥

३०-कु प्रत्यय परे रहते ऊर्णु धातुके णु भागका लोप हो। यथा, ऊरु अर्थात् सक्थि।

३१ 'महति ह्रस्वश्च' ॥ ॥ उरु महत् ॥

३१-महत् अर्थ होनेपर उकारको ह्रस्व हो। यथा, उरु अर्थात् महत् ॥

३२ 'श्लिषेः कश्च' ॥ ॥ श्लिष्यतीति श्लिकुर्भृत्यः। उद्यतो ज्योतिश्च ॥

३२-श्लिष धातुके उत्तर कु प्रत्यय हो षकारके स्थानमें ककार हो। यथा, श्लिष्यति इस विग्रहमें श्लिकुः अर्थात् भृत्य अथवा उद्यत ज्योति ॥

३३ 'आङ्परयोः खनिशॄभ्यां डिच्च' ॥ ॥

आखनतीत्याखुः । परं शृणातीति परशुः । पृषोदरादित्वादकारलोपात्पर्शुरपि ॥

३३-आङ्पूर्वक खन और परपूर्वक शॄ धातुके उत्तर कु प्रत्यय हो, और कु ङित्संज्ञक हो, यथा-आखनति इस विग्रहमें आखुः । परं शृणाति इति परशुः । पृषोदरादित्वके कारण पर शब्दके आकारका लोप होकर पर्शु पद भी हुआ ॥

३४ 'हरिमितयोर्द्रुवः' ॥ ॥ द्रु गतौ-अस्मात् हरिमितयोरुपपदयोः कुः स च डित् । हरिभिर्द्रूयते हरिद्रुर्वृक्षः । मितं द्रवति मितद्रुः समुद्रः ॥

३४-हरि और मित शब्द उपपद रहते द्रु धातुके परे कु प्रत्यय हो । यह प्रत्यय डित्संज्ञक हो । यथा, हरिभिर्द्रूयते हरिद्रुः अर्थात् वृक्षविशेष । मितं द्रवति मितद्रुः समुद्रः ॥

३५ 'शते च' ॥ ॥शतधा द्रवति शतद्रुः । बाहुलकात्केवलादपि । द्रवतीत्यूर्ध्वमिति द्रुर्वृक्षः शाखा च । तद्वान् द्रुमः ॥

३५-शत शब्दपूर्वक द्रु धातुके उत्तर कु प्रत्यय हो । यथा, शतधा द्रवति शतद्रुः । बाहुलक बलसे केवल द्रु धातुके उत्तर भी कु प्रत्यय हो । यथा, द्रवति ऊर्ध्वम् इति द्रुः वृक्ष और शाखा । तद्वान् द्रुमः ॥

३६ 'खरु-शंकु-पीयु-नीलंगु-लिगु' ॥ ॥ एतेऽमी कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ॥ खनतेरकारश्चान्तादेशः।खरुः कामः। क्रूरो मूर्खः अश्वश्च।'शंकुर्ना कीलशल्ययोः' पिबतेरीत्वं युगागमश्च पीयुर्वायसः कालः सुवर्णं च । निपूर्वाल्लगिगतावस्मात्कुनेर्दीर्घश्च नीलङ्गुः क्रिमिविशेषः शृगालश्च । नीलाङ्गुरिति पाठान्तरम् । तत्र धातोरपि दीर्घः । लगे सङ्गे अस्य अत इत्वं च । लगतीति लिगु चित्तम् । लिगुर्मूर्खः ॥

३६-खरु, शंकु, पीयु, नीलंगु और लिगु यह पांच शब्द कुप्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों । खन धातुके रकार अन्तादेश हो । यथा, खरुः अर्थात् कामः क्रूरो मूर्खः अश्वः । शंकु शब्द पुंलिङ्ग है वह कील और शल्यवाचक है पा धातुको ईत्व और युक् आगम हो । यथा, पीयुः अर्थात् वायस, काल और सुवर्ण । निपूर्वक गत्यर्थक लग धातुके उत्तर कु प्रत्यय हो और निरके इकारको दीर्घ हो । नीलंगु, अर्थात् कृमिविशेष और शृगाल । नीलांगुः ऐसा पाठान्तर भी है। उस स्थलमें निपातनसे धातुको भी दीर्घ हुआहै । लग धातु संगमें है । इस धातुके अकारके स्थानमें इकार हुआ । लगति इति लिगु अर्थात् चित्त और मूर्ख ॥

३७ 'मृगय्वादयश्च' ॥ ॥ एते कुप्रत्ययान्ता निपात्यंते । मृगं यातीति मृगयुर्व्याधः । देवयुर्धार्मिकः । मित्रयुर्लोकयात्राभिज्ञः । आकृतिगणोयम् ॥

३७-मृगयु आदि पद कुप्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों । मृगं याति इस विग्रहमें मृगयुः अर्थात् व्याधः । देवयुः अर्थात् धार्मिकः । मित्रयुः अर्थात् देवयात्राभिज्ञः । यह सब आकृति गणीय हैं ॥

३८'मन्दिवाशिमथिचतिचङ्क्यङ्किभ्य उरच्' ॥ मन्दुरा वाजिशाला । वाशुरा रात्रिः । मथुरा । चतुरः । चङ्कुरो रथः । अङ्कुरः खर्जूरादित्वादङ्कूरोपि ॥

३८-मन्दि, वाशि, मथि, चति, चङ्कि, और अङ्कि धातुके उत्तर उरच् प्रत्यय हो । यथा, मन्दुरा वाजिशाला । वाशुरा रात्रिः । मथुरा । चतुरः । चंकुरो रथः । अंकुरः खर्जूरादित्वके कारण अंकूर शब्द भी सिद्ध हो ॥

३९ 'व्यथेः सम्प्रसारणं किच्च' ॥ ॥ 'विथुरश्चोररक्षसोः' ॥

३९-व्यथ धातुके उत्तर उरच् प्रत्यय हो व्यथ धातुको सम्प्रसारण हो और यह उरच् प्रत्यय कित्संज्ञक हो । यथा, विथुरः अर्थात् चोर और राक्षस ॥

४० 'मुकुरदर्दुरौ' ॥ ॥मुकुरो दर्पणः । बाहुलकान्मकुरोपि । दॄ विदारणे धातोर्द्विर्वचनमभ्यासस्य रुक् टिलोपश्च । 'दर्दुरस्तोयदे भेके वाद्यभाण्डाद्रिभेदयोः' । 'दर्दुरा चण्डिकायां स्याद्ग्रामजाले च दर्दुरम्' इति विश्वः ॥

४०-मुकुरः और दर्दुरः यह दो उरच् प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हों यथा, मुकुरो दर्पणः । बाहुलक बलसे मकुरः पद भी सिद्ध होताहै । दॄ धातु विदारणमें है । उरच् प्रत्यय परे रहते उसको द्वित्व हो और अभ्यासके रुक्का आगम और पश्चात् टिका लोप हो । यथा, दर्दुरः । दर्दुर शब्दसे मेघ, भेक, वाद्य भांड और अद्रिविशेष समझना । दर्दुर शब्दसे चंडिका होनेपर वह स्त्रीलिङ्ग है और ग्रामसमूह होनेपर क्लीबलिङ्ग है । यह विश्वकोशका मत है ॥

४१ 'मद्गुरादयश्च' ॥ ॥ उरजन्ता निपात्यंते । माद्यतेर्गुक् । मद्गुरो मत्स्यभेदः ॥ 'कबृ वर्णे' ॥ रुगागमः । 'कर्बुरः श्वेतरक्षसोः । बध्नातेः खर्जूरादित्वादूरोऽपि । 'बन्धूरबन्धुरौ स्यातां नम्रसुन्दरयोस्त्रिषु' इति रन्तिदेवः ॥ (कोकतेर्वा कुक्) ॥ ग० ॥ कुक्कुरः । कुकुरः ॥

४१-मद्गुरादि शब्द उरच् प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों। यथा, मद धातुके उत्तर उरच् गुक्+मद्गुरः अर्थात् मत्स्यविशेष । कबृ धातु वर्णमें है । उसके उत्तर उरच्+रुक्+

कर्बुरः । 'कर्बुरः श्वेतरक्षसोः' (कर्बुर शब्द श्वेत और राक्षस-वाचक है) बंध धातुके उत्तर खर्जूरादि गणसे ऊर प्रत्यय भी हो । यथा, बंधूरः बन्धुरः । यह दोनों शब्द नम्र और सुन्दर-वाचक हैं और तीनों लिङ्गोंमें ही प्रयुक्त होतेहैं । यह रन्तिदे-वकी उक्ति है।कुक् धातुके उत्तर उरच् प्रत्यय परे रहते विकल्प करके कुक्का आगम हो । यथा, कुक्कुरः, कुकुरः ॥

४२ 'असेरुरन्' ॥ ॥ असुरः ॥ प्रज्ञाद्यण् । आसुरः ॥

४२–अस धातुके उत्तर उरन् प्रत्यय हो । यथा, असुरः। प्रज्ञादि गणमें पाठके कारण अण् प्रत्यय होगा । आसुरः ॥

४३ 'मसेश्च' ॥ ॥ पञ्चमे पादे मसेरूरन्निति वक्ष्यते । 'मसूरा मसुरा व्रीहिप्रभेदे पण्ययोषि-ति । मसूरा मसुरा वा ना वेश्याव्रीहिप्रभेदयोः॥ मसूरी पादरोगे स्यादुपधाने पुनः पुमान् । म-सूरमसुरौ च द्वौ' इति विश्वः ॥

४३–मस धातुके उत्तर उरच् प्रत्यय हो । "पञ्चम पादमें मस धातुके उत्तर ऊरन् प्रत्यय हो" ऐसा आगे कहा जायगा। मसूरा मसुरा व्रीहिविशेष और पण्ययोषित् (वेश्या) सम-झना । "मसूरा मसुरा वा ना वेश्या व्रीहिप्रभेदयोः । मसूरी पादरोगे स्यादुपधाने पुनः पुमान् । मसूरमसुरौ च द्वौ" इति विश्वः । (मसूर शब्द वेश्या, व्रीहिमें, मसूरी एकप्रकारके चरणरोगमें उपधान (तकिये) में पुल्लिंग है)॥

४४ 'शावशेराप्तौ' ॥ ॥ शु इति आश्चर्यें । श्वशुरः । 'पतिपत्न्योः प्रसूः श्वश्रूः श्वशुरस्तु पिता तयोः' इत्यमरः ॥

४४–आशु अर्थमें शु उपपद है उसके रहते प्राप्ति अर्थ गम्यमान होनेपर अशूङ् व्याप्तौ इस धातुके उत्तर उरन् प्रत्यय हो । श्वशुरः । "पतिपत्न्योः प्रसूः श्वश्रूः श्वशुरस्तु पिता तयोः" इत्यमरः । श्वशुर शब्द पति और पत्नीके पितामें है, श्वश्रूः (सास) शब्द पतिपत्नीकी मातामें वर्तताहै ॥

४५ 'अविमह्योष्टिषच्' ॥ ॥ अविषः॥महिषः॥

४५–अवि और मह धातुके उत्तर टिषच् प्रत्यय हो । यथा, अविषः । महिषः ॥

४६ 'अमेर्दीर्घश्च' ॥ ॥ 'आमिषं त्वस्त्रियां मांसे तथा स्याद्भोग्यवस्तुनि' ॥

४६–अम धातुके उत्तर टिषच् प्रत्यय हो, और पूर्व स्वरको दीर्घ भी हो । यथा, "आमिषं त्वस्त्रियां मांसे तथा स्याद्भोग्यवस्तुनि" (आमिष शब्द मांस और भोग्य वस्तुमें प्रयुक्त है) ॥

४७ 'रुहेर्वृद्धिश्च' ॥ ॥ 'रङ्कुशम्बररौहिषाः'। 'रौहिषो मृगभेदे स्याद्रौहिषं च तृणं मतम्' इति संसारावर्तः ॥

४७–रुह धातुके उत्तर टिषच् प्रत्यय हो । और पूर्वस्वरको वृद्धि हो । यथा, "रंकुशम्बररौहिषाः" "रौहिषो मृगभेदे स्याद्रौहिषं च तृणं मतम्" इति संसारावर्त्तः । (रौहिष एक-प्रकारका मृग, तृण अर्थमें नपुंसक है) ॥

४८ 'तवेर्णिद्वा' ॥ ॥ तवेति सौत्रो धातुः । तविषताविषावब्धौ स्वर्गे च । स्त्रियां तविषी ताविषी नदी देवकन्या भूमिश्च । तविषी बल-मिति वेदभाष्यम् ॥

४८–तव धातुके उत्तर टिषच् प्रत्यय हो और यह टिषच् प्रत्यय णित्संज्ञक हो । तव यह सूत्रविहित धातु है । यथा, "तविषताविषावब्धौ स्वर्गे च ।" स्त्रियां तविषी ताविषी नदी देवकन्या भूमिश्च । तविषी बलम् इति वेदभाष्यम् ॥

४९ 'नञि व्यथेः' ॥ ॥ 'अव्यथिषोऽब्धि-सूर्ययोः' । 'अव्यथिषी धरारात्र्योः' ॥

४९–नञ्पूर्वक व्यथ धातुके उत्तर टिषच् प्रत्यय हो, यथा, " अव्यथिषोऽब्धिसूर्ययोः " । " अव्यथिषी धरारात्र्योः " ॥

५० 'किलेर्बुक् च' ॥ ॥ किल्बिषम् ॥

५०–किल धातुके उत्तर टिषच् प्रत्यय हो और उसको बुक्का आगम हो, किल्बिषम् ॥

५१ 'इषिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिच-न्दितिमिमिहिमुहिमुचिरुचिरुधिबन्धिशुषिभ्यः किरच्' ॥ ॥ इषिरोऽग्निः । मदिरा सुरा । 'मुदिरः कामुकाभ्रयोः' इति विश्वमेदिन्यौ । खिदिरश्चन्द्रः । 'छिदिरोऽसिकुठारयोः' । भिदिरं वज्रम् । मन्दिरं गृहम् । स्त्रियामपि । 'मन्दिरं मन्दिराऽपि स्यात्' इति विश्वः । 'चन्दिरौ चन्द्रहस्तिनौ' । तिमिरं तमोक्षिरोगश्च । मिहिरः सूर्यः । 'मुहिरः काम्यसभ्ययोः' । मुचिरो दाता। रुचिरम् । रुधिरम् बधिरः । शुष शोषणे । शुषिरं छिद्रम् । शुष्कमित्यन्ये ॥

५१–इषि, मदि, मुदि, खिदि, छिदि, भिदि, मन्दि, चन्दि, तिमि, मिहि, मुहि, मुचि, रुचि, रुधि, बन्धि और शुषि धातुके उत्तर किरच् प्रत्यय हो, यथा–इषिरोऽग्निः । मदिरा अर्थात् सुरा । मुदिरः अर्थात् कामुक और मेघ । यह विश्व और मेदिनीकोषका मत है । खिदिरः अर्थात् चन्द्र । छिदिरः अर्थात् कुठार, असि । भिदिरम् अर्थात् वज्र। मन्दि-रम् अर्थात् गृह । यह स्त्रीलिङ्ग भी है । " मन्दिरं मन्दिरापि स्यात् " इति विश्वः । " चन्दिरौ चन्द्रहस्तिनौ " तिमिरम्= अन्धकार अथवा अक्षिरोग समझना । मिहिरः अर्थात् सूर्य । "मुहिरः०" अर्थात् काम्य और सभ्य । मुचिरः शब्दसे दाता समझना । रुचिरम् (श्रेष्ठ)। रुधिरम्। बधिरः । (बहरा) । शुष् धातु शोषणमें । शुषिरं छिद्र और शुष्कमें है ॥

५२ 'अशेर्णित्'॥ ॥ आशिरो वह्निरक्षसोः॥

५२–अश धातुके उत्तर किरच् प्रत्यय हो और यह

किरन् प्रत्यय गित्संज्ञक हो । आशिरः शब्दसे वह्नि और राक्षस समझना ॥

५३ 'अजिरशिशिरशिथिलस्थिरस्फिरस्थविरखदिराः' ॥ ॥ अजेर्वीभावाभावः । अजिरमंगणम् । शशेरुपधाया इत्त्वम् । 'शिशिरं स्यादृतोर्भेदे तुषारे शीतलेऽन्यवत्' । श्रथ मोचने-उपधाया इत्त्वं रेफलोपः । प्रत्ययरेफस्य लत्वम् । शिथिलम् । स्थास्फाय्योष्टिलोपः । स्थिरं निश्चलम् । स्फिरं प्रभूतम् । तिष्ठतेर्वुक् ह्रस्वत्वं च। स्थविरः। खदिरः। बाहुलकात् शीङो बुक् ह्रस्वत्वं च । शिबिरम् ॥

५३-अजिर, शिशिर, शिथिल, स्थिर, स्फिर, स्थविर और खदिर यह सम्पूर्ण किरच् प्रत्ययान्त शब्द निपातनसे सिद्ध हों । अज धातुके स्थानमें निपातनसे वीभाव न हो । अजिरम् अर्थात् आँगन । शश धातुकी उपधाके स्थानमें इकार निपातनसे हुआहै । शिशिरम् अर्थात् शीतऋतु तुषार और शीतल श्रथ धातु मोचनमें । उसकी उपधाके स्थानमें निपातनसे इकार और रकारका लोप और प्रत्ययका जो रेफ उसके स्थानमें लकार हो, शिथिलम् । स्था और स्फा धातुकी टिका लोप हो । स्थिरम् अर्थात् निश्चल । स्फिरम् अर्थात् प्रभूतम् । स्था धातुके उत्तर किरच् प्रत्यय हुआ और धातुको वुक्का आगम हो । स्थविरः खदिरः । इस स्थलमें बाहुलक बलसे शीङ् धातुके उत्तर बुक्का आगम और ह्रस्व होगा । शिबिरम् ॥

५४ 'सलिकल्यनिमहिभडिभण्डिशण्डिपिण्डितुण्डिकुकिभूभ्य इलच्' ॥ ॥ सलति गच्छति निम्नमिति सलिलम् । कलिलम् । अनिलः । महिला । पृषोदरादित्वान्महेलापि । भड इति सौत्रो धातुः । 'भडिलौ शूरसेवकौ' । भण्डिलो दूतः कल्याणं च । शण्डिलो मुनिः । पिण्डिलो गणकः । तुण्डिलो मुखरः। कोकिलः। भविलो भव्यः । बाहुलकात्कुटिलः ॥

५४-सलि, कलि, अनि, महि, भडि, भंडि, शंडि, पिंडि, तुंडि, कुकि, और भू धातुके उत्तर इलच् प्रत्यय हो, यथा-सलति गच्छति निम्नम् इस विग्रहमें सलिलम् । कलिलः । अनिलः । महिला । पृषोदरादित्वके कारण महेला पद भी होगा । भड यह सूत्रजात धातु है । भडिल शब्दसे शूरवीर और सेवक समझना, भण्डिल शब्दसे दूत और कल्याण समझना, शण्डिल शब्दसे मुनि समझना । पिंडलः अर्थात् गणकः । तुंडिलः अर्थात् मुखरः। कोकिलः । भविलः भव्यः । बाहुलक बलसे कुटिलः ॥

५५ 'कमेः पश्च' ॥ ॥ कपिलः ॥

५५-कम धातुके उत्तर इलच् प्रत्यय हो, और मकारके स्थानमें पकार होगा । कपिलः ॥

५६ 'गुपादिभ्यः कित्' ॥ ॥ गुपिलो राजा । तिजिलो निशाकरः । गुहिलं वनम् ॥

५६-गुपादिधातुओंके उत्तर इलच् प्रत्यय हो, और यह इलच् प्रत्यय कित्संज्ञक हो, यथा-गुपिलः अर्थात् राजा । तिजिलः अर्थात् निशाकर । गुहिलम् अर्थात् वनम् ॥

५७ 'मिथिलादयश्च' ॥ ॥ मथ्यन्तेऽत्र रिपवो मिथिला नगरी । पथिलः पथिकः ॥

५७-मिथिलादि शब्द इलच् प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों । मथ्यन्तेऽत्र रिपवो मिथिला अर्थात् नगरी । पथिलः अर्थात् पथिकः । मिथिलादि यथा, मिथिला नगरी । गतिला, वेत्रलता । तकिला अवधिः । चंडिला नदी । पथिलः पथिकः । इति ॥

५८ 'पतिकठिकुठिगडिगुडिदंशिभ्य एरक्' ॥ पतेरः पक्षी गन्ता च । कठेरः कृच्छ्रजीवी । कुठेरः पर्णाशः । बाहुलकान्नुम् । गंडेरो मेघः । गुडेरो गुडकः । दंशेरो हिंस्रः ॥

५८-पति, कठि, कुठि, गडि, गुडि, दंशि धातुके उत्तर एरक् प्रत्यय हो, यथा-पतेरः अर्थात् पक्षी और गन्ता । कठेरः कृच्छ्रजीवी । कुठेरः पर्णाशः (पत्तेखानेवाला) बाहुलक बलसे नुम् नहीं होगा । गंडेरो मेघः । गुडेरो गुडकः । दंशेरो हिंस्रः (हत्यारा) ॥

५९ 'कुम्बेर्नलोपश्च' ॥ ॥ कुबेरः ॥

५९--कुम्ब धातुके उत्तर एरक् प्रत्यय हो और धातुके नकारका लोप हो । यथा, कुबेरः । देवताओंका खजानची निधिपति ॥

६० 'शदेस्त च' ॥ ॥ शतेरः शत्रुः ॥

६०-शद धातुके उत्तर एरक् प्रत्यय हो और दकारके स्थानमें तकार हो, यथा-शतेरः अर्थात् शत्रुः ॥

६१ 'मूलेरादयः' ॥ ॥ एरगन्ता निपात्यन्ते । मूलेरा जटा । गुधेरो गोप्ता । गुहेरो लोहघातकः । मुहेरो मूर्खः ॥

६१-'मूलेर' आदि शब्द एरच् प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों, यथा, मूलेरः अर्थात् जटा । गुधेरः अर्थात् गोप्ता (रक्षक) गुहेरः अर्थात् लोहघातकः । मुहेरः मूर्खः ॥

६२ 'कबेरोतच् पश्च' ॥ ॥ कपोतः पक्षी ॥

६२-कब धातुके उत्तर ओतच् प्रत्यय हो और बकारके स्थानमें पकारहो । यथा, कपोतः पक्षी ॥

६३ 'भातेर्डवतुः' ॥ ॥ भातीति भवान् ॥

६३-भा धातुके उत्तर डवतु प्रत्यय हो, यथा-भाति इति भवान् ॥

६४ 'कटिचकिभ्यामोरन्' ॥ ॥ कठोरः । चकोरः ॥

६४-कठि और चकि धातुके उत्तर ओरन् प्रत्यय हो, यथा-कठोरः । चकोरः ॥

६५ 'किशोरादयश्च' ॥ ॥ किम्पूर्वस्य शृणातेष्टिलोपः। किमोऽन्त्यलोपः। किशोरोऽश्वशावः। सहोरः साधुः॥

६५-'किशोरः' आदि शब्द ओरन् प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों। किंपूर्वक शृणाति शृ धातुके उत्तर तरच् प्रत्यय हो किन्तु निपातनमें टिका लोप हो और किं भावके अन्त अर्थात् मकारका लोप हो। यथा, किशोरः अश्वशावकः। सहोरः साधुः॥

६६ 'कपिगडिगण्डिकटिपटिभ्य ओलच्'॥॥ कपीति निर्देशान्नलोपः। कपोलः। गडोलगण्डोलौ गुडकपर्यायौ। कटोलः कटुः। पटोलः॥

६६-कपि, गडि, गंडि, कटि, पटि, धातुके उत्तर ओलच् प्रत्यय हो। कपि ऐसे निर्देशके कारण नकारका लोप हो। यथा, कपोलः। गडोल और गंडोल यह दो शब्द गुडकपर्याय हैं। कटोलः कटुः। पटोलः॥

६७ 'मीनातेरूरन्' ॥ ॥ मयूरः॥

६७--मी धातुके उत्तर ऊरन् प्रत्यय हो। यथा, मयूरः (मोर)॥

६८ 'स्यन्देः संप्रसारणं च'॥ ॥ सिन्दूरम्॥

६८-स्यन्द धातुके उत्तर ऊरन् प्रत्यय हो और सम्प्रसारण हो, यथा-सिन्दूरम्॥

६९ 'सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्क्रुशिभ्यस्तुन्'॥ ॥ सिनोतीति सेतुः। तितुत्रेति नेट्। तन्तुः। गन्तुः। मस्तु दधिमण्डम्। सच्यत इति सक्तुः। अर्धर्चादिः। ज्वरत्वरेत्यूठ्। तत्र क्ङितीत्यनुवर्तत इति मते तु बाहुलकात्। ओतुर्बिडालः। धातुः। क्रोष्टा॥

६९-सि, तनि, गमि, मसि, सचि, अवि, धाञ् और क्रुश धातुके उत्तर तुन् प्रत्यय हो, यथा, सिनोति इति सेतुः। "तितुत्र० ३१६३" इस सूत्रसे इट् नहीं होगा। यथा, तन्तुः। गन्तुः। मस्तु अर्थात् दधिमंड। सच्यते इति सक्तुः। अर्द्धर्चादि है "ज्वरत्वर० २६५४" इस सूत्रसे ऊठ् आदेश हुआ। उस स्थलमें "क्ङिति" इस पदकी अनुवृत्ति होती है, यह मत बाहुलकके बलसे सिद्ध हुआ। यथा,-ओतुः, बिडालः। धातुः। क्रोष्टा॥

७० 'पः किच्च'॥ ॥ पिबतीति 'पितुर्वह्नौ दिवाकरे'॥

७०-पा धातुके उत्तर तुन् प्रत्यय हो और इस तुन्की कित्संज्ञा हो। यथा, पिबतीति। पितुः वह्नि और दिवाकर। (अग्नि और सूर्य)॥

७१ 'अर्तेश्च तुः'॥ ॥ अर्तेस्तुः स्यात्स च कित्। 'ऋतुः स्त्रीपुष्पकालयोः'॥

७१-ऋ धातुके उत्तर तु प्रत्यय हो और वह कित्संज्ञक हो "ऋतुः स्त्री पुष्पकालयोः" (वसन्तादि ऋतु, और स्त्रीके मासिक धर्मका समय)॥

७२ 'कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च'॥ ॥ एभ्यस्तुः स्यात्।'कन्तुः कन्दर्पचित्तयोः'। मन्तुरपराधः। जन्तुः प्राणी। 'गातुः पुंस्कोकिले भृङ्गे गन्धर्वे गायनेपि च'। भातुरादित्यः। 'यातुरध्वगकालयोः'। रक्षसि क्लीबे। हेतुः कारणम्॥

७२-कमि, मनि, जनि, गा, भा, या, हि इन सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर तु प्रत्यय हो।"कन्तुः कन्दर्पचित्तयोः"(कामदेव और चित्त) मन्तुरपराधः। जन्तुः प्राणी। "गातुः पुंस्कोकिले भृङ्गे गंधर्वे गायनेपि च" गातुः शब्द पुंस्कोकिल भौंरे गन्धर्व और गायनमें। भातुः आदित्यः। "यातुः अध्वगकालयोः" "रक्षसि क्लीबः" यातुः शब्द मार्गगमन कर्ता काल अर्थमें है राक्षस अर्थमें क्लीब है। हेतुः कारणम्॥

७३ 'चायः किः'॥ ॥ 'केतुर्ग्रहपताकयोः॥

७३-चाय धातुके उत्तर तु प्रत्यय हो और चायके स्थानमें कि आदेश हो। यथा, "केतुर्ग्रहपताकयोः" (केतुका अर्थ ग्रह और ध्वजा)॥

७४ 'आप्नोतेर्ह्रस्वश्च'॥ ॥ अप्तुः शरीरम्॥

७४-आप धातुके उत्तर तु प्रत्यय हो और पूर्व स्वरको ह्रस्व हो। यथा, अप्तुः अर्थात् शरीर॥

७५ 'वसेस्तुन्'॥ ॥ वस्तु॥

७५-वस धातुके उत्तर तुन् प्रत्यय हो, यथा-वस्तु॥

७६'अगारे णिच्च'॥॥'वेश्मभूर्वास्तुरस्त्रियाम्'।

७६-अगार अर्थात् गृह होनेपर वस धातुके उत्तर तुन् प्रत्यय हो, और यह तुन् णित्संज्ञक हो। यथा, वास्तुः अर्थात् रहनेका घर। यह स्त्रीलिङ्ग नहीं है॥

७७ 'कृञः क्तुः'॥ ॥ क्रतुर्यज्ञः॥

७७-कृञ् धातुके उत्तर क्तु प्रत्यय हो क्रतु अर्थात् यज्ञ होनेपर। यथा, क्रतुः यज्ञ॥

७८ 'एधिवह्योश्च तुः'॥ ॥ एधतुः पुरुषः। वहतुरनड्वान्॥

७८-एधि और वह धातुके उत्तर तु प्रत्यय हो। यथा, एधतुः अर्थात् पुरुषः। वहतुः अर्थात् वृष॥

७९ 'जीवेरातुः'॥ ॥ 'जीवातुरस्त्रियां भक्ते जीविते जीवनौषधे'॥

७९-जीव धातुके उत्तर आतु प्रत्यय हो। यथा, जीवातुः। जीवातु शब्द पुंलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग भी है। जीवातु शब्दसे भक्त, जीवित और जीवनौषध समझना॥

८० 'आतृकन् वृद्धिश्च'॥ ॥ जीवेरित्येव। 'जैवातृकस्त्विन्दुभिषगायुष्मत्सु कृषीवले'॥

८०-जीव धातुके उत्तर आतृकन् प्रत्यय हो और धातुके स्वरको वृद्धि हो, यथा-जैवातृकः। जैवातृक शब्दसे इन्दु, भिषक आयुष्मत् और कृषीवल समझना॥

८१ 'कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः'॥ ॥ 'कर्षूः पुंसि करीषाग्नौ कर्षूर्नद्यां स्त्रियां मता' । चमूः । तनूः । धनूः । शस्त्रम् । सर्ज सर्जने । सर्जूर्वणिक् । खर्ज व्यथने । खर्जूः पामा ॥

८१–कृषि,चमि,तनि,धनि,सर्जि और खर्जि धातुके उत्तर ऊ प्रत्यय हो,यथा–कर्षूः।कर्षू शब्द पुलिङ्गमें करीषाग्नि (उपलेकी आग) और नदी होनेपर स्त्रीलिङ्ग है । चमूः (सेना) । तनूः धनूः । अर्थात् शस्त्र । सर्ज धातु सर्जनमें इस धातुके उत्तर ऊ प्रत्यय हो । सर्जूः अर्थात् वणिक् । खर्ज धातु व्यथनमें है । खर्ज्जूः । अर्थात् पामा (रोगविशेष खुजली) ॥

८२ 'मृजेर्गुणश्च' ॥ ॥ मर्जूः शुद्धिकृत् ॥

८२–मृज धातुको गुण हो और ऊ प्रत्यय हो । मर्जूः इस शब्दसे शुद्धिकारी पदार्थ समझना ॥

८३ 'वहो धश्च' ॥ ॥'वधूर्जायास्नुषास्त्रीषु'॥

८३-वह धातुके उत्तर ऊ प्रत्यय हो और हकारके स्थानमें धकार हो । यथा, वधूः अर्थात् जाया और स्नुषा समझना और यह स्त्रीलिङ्ग है ॥

८४ 'कषेश्छश्च' ॥ ॥ कच्छूः पामा ॥

८४–कष धातुके उत्तर छ प्रत्यय हो । यथा, कच्छूः पामा॥

८५ 'णित्कसिपद्यर्तेः' ॥ ॥ कासूः शक्तिः । पादूश्चरणधारिणी । आरूः पिङ्गलः ॥

८५–कस पद और ऋ धातुके उत्तर ऊ प्रत्यय हो और यह ऊ णित्संज्ञक हो । यथा, कासूः शक्तिः । पादूः चरणधारिणी अर्थात् खडाऊ वा जूता । आरूः पिङ्गल ॥

८६ 'अणो डश्च' ॥ ॥ आडूर्जलप्लवद्रव्यम् ॥

८६–अण् धातुके उत्तर ऊ प्रत्यय हो और णकारको डकार आदेश हो यथा, आडूः अर्थात् जलप्लव द्रव्य ॥

८७ 'नञि लम्बेर्नलोपश्च' ॥ ॥ 'तुम्ब्यलाबूरुभे समे' इत्यमरः ॥

८७–नञ् पूर्वक लम्ब धातुके उत्तर ऊ प्रत्यय हो और धातुके नकारका लोप हो । यथा, अलाबूः । "तुम्ब्यलाबूरुभे समे" अर्थात् तुम्बी और अलाबू शब्द समान अर्थवाला समलिङ्ग है ॥

८८ 'के श्र एरङ् चास्य'॥ ॥ कशब्दे उपपदे शृणातेरूः स्यादरङ् आदेशः । 'कशेरूस्तृणकन्दे स्त्री'।बाहुलकादुप्रत्यये कशेरुः क्लीबे पुंसि च॥

८८–क शब्दपूर्वक शॄ धातुके उत्तर ऊ प्रत्यय हो और एरङ् आदेश हो । यथा, कशेरूः अर्थात् तृणकन्द यह स्त्रीलिङ्ग है । बाहुलक बलसे उ प्रत्यय होकर कशेरुः पद भी होताहै, किन्तु यह पुलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग है ॥

८९ 'त्रो दुट् च' ॥ ॥ तरतेरूः स्यात्तस्य दुट् । 'तर्दूः स्याद्दारुहस्तकः' ॥

८९–तॄ धातुके उत्तर ऊ प्रत्यय हो और प्रत्ययको दुट्का आगम हो । यथा, "तर्दूः स्याद्दारुहस्तकः" (काष्ठकी कडछी) ॥

९० 'दरिद्रातेर्यालोपश्च' ॥ ॥ इश्च आश्च यौ तयोर्लोपः । दर्द्रूः कुष्ठप्रभेदः ॥

९०–दरिद्रा धातुके उत्तर ऊ प्रत्यय हो और धातुके इकार और आकारका लोप हो । यथा, दर्द्रूः अर्थात् कुष्ठ रोगविशेष ॥

९१ 'नृतिशृध्योः कूः' ॥ ॥ नृतूर्नर्तकः । शृधूरपानम् ॥

९१–नृति, शृधि, धातुके उत्तर कू प्रत्यय हो । यथा, नृतूः अर्थात् नर्त्तक । शृधूः अर्थात् अपान ॥

९२ 'ऋतेरम् च' ॥ ॥ ऋतिः सौत्रो धातुः । ततः कूरमागमश्च । रंतूर्देवनदी सत्यवाक् च ॥

९२–ऋति धातु सूत्रजात है । ऋ धातुके उत्तर कू प्रत्यय हो और अमागम हो, यथा–रंतूः देवनदी और सत्यवाक्यका अर्थ है ॥

९३ 'अन्दूदृम्भूजम्बूकफेलूकर्कन्धूदिधिषूः'॥॥ एते कूप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अन्दूर्बन्धनम् । दृभी ग्रन्थे । निपातनान्नुम् । दृम्भूः । अनुस्वाराभावोऽपि निपातनादित्येके । दृन्भूः । (जनेर्बुक् ।) जम्बूः । जमु अदने इत्यस्येत्येके । बाहुलकाद्ध्रस्वोऽपि । जम्बुः।कफं लाति कफेलूः श्लेष्मातकः । निपातनादेत्वम् । कर्कं दधाति कर्कन्धूर्बदरी । निपातनान्नुम् । दिधिं धैर्यं स्यति त्यजतीति दिधिषूः पुनर्भूः। केचित्तु । अन्दूदृम्फूजम्बूकम्बू इति पठन्ति । दृम्फ उत्क्लेशे । दृम्फूः सर्पजातिः ॥ कमेर्बुक् ॥ ॥ कम्बूः परद्रव्यापहारी ॥

९३–अन्दू, दृम्भू,जम्बू ,कफेलू,कर्कन्धू,दिधिषू यह सम्पूर्ण कू प्रत्ययान्त शब्द निपातनसे सिद्ध हों । यथा, अन्दूः अर्थात् बंधन । दृभी ग्रन्थे । निपातनसे नुम् होगा । दृम्भूः । अनुस्वाराभाव भी निपातनसे होताहै । यह कोई २ कहतेहैं । दृन्भूः । जन धातुके उत्तर कू प्रत्यय हो और बुक्का आगम हो । जम्बूः । अदनार्थक जमु (खाना) धातुके उत्तर कू प्रत्यय और बुक्का आगम भी होगा । ऐसा कोई कहते हैं । बाहुलक बलसे ह्रस्व भी होगा । जम्बुः । कफं लाति कफेलूः अर्थात् श्लेष्मातक । निपातनसे एकार हुआ है । कर्कं दधाति इस विग्रहमें कर्कन्धूः । अर्थात् बदरी । इस स्थलमें निपातनसे नुम् हुआ है । दिधिं धैर्यं स्यति त्यजति इस विग्रमें दिधिषूः पुनर्भूः । कोई २ अन्दू, दृम्फू, जम्बू, कम्बू, ऐसा पाठ करतेहैं । दृम्फ धातु उत्क्लेशमें । दृम्फूः । अर्थात् सर्पजाति । कम धातुके उत्तर ऊ प्रत्यय हो और बुक्का आगम हो । कम्बूः अर्थात् परद्रव्यापहारी ॥

९४ 'मृग्रोरुतिः' ॥ ॥ मरुत् । गरुत्पक्षः ॥

९४–मृ और गॄ धातुके उत्तर उति प्रत्यय हो, यथा–मरुत् अर्थात् वायु । गरुत् अर्थात् पक्ष ॥

९५ 'ग्रो मुट् च' ॥ ॥ गिरतेरुतिस्तस्य च मुट्। गर्मुत्सुवर्णं तृणविशेषश्च ॥

९५–गॄ धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो और प्रत्ययको मुट्का आगम हो, यथा–गर्मुत् अर्थात् सुवर्ण और तृणविशेष ॥

९६ 'हृषेरुलच्' ॥ ॥'हर्षुलो मृगकामिनोः'। बाहुलकाच्चटतेः। चटुलं शोभनम् ॥

९६–हृष् धातुके उत्तर उलच् प्रत्यय हो। हर्षुलः अर्थात् मृग और कामी। बाहुलकबलसे चट धातुके उत्तर उलच् प्रत्यय होगा। यथा–चटुलम् अर्थात् सुन्दर ॥

९७ हसृरुहियुषिभ्य इतिः ॥ ॥ 'हरित्ककुभि वर्णे च तृणवाजिविशेषयोः'। सरिन्नदी। रोहित् मृगविशेषस्य स्त्री। युष इति सौत्रो धातुः। ऋश्यस्य रोहित् पुरुषस्य योषित् इति भाष्यम् ॥

९७–हृ, सृ, रुहि और युष धातुके उत्तर इति प्रत्यय हो। यथा, हरित् अर्थात् दिक्, वर्ण, तृण, और वाजिविशेष। सरित् नदी। रोहित मृगविशेषकी स्त्री। युष यह सूत्रपठित धातु है। मत्स्यविशेषकी स्त्रीको रोहित और मनुष्य स्त्रीजातिको योषित् कहते हैं, यह भाष्यकारका मत है ॥

९८ 'ताडेर्णिलुक् च' ॥ ॥ ताडयतीति तडित् ॥

९८–ताड धातुके उत्तर इति प्रत्यय हो और णिका लुक् हो। ताडयति इति तडित् (बिजली) ॥

९९ 'शमेर्ढः' ॥ ॥ बाहुलकादित्संज्ञा एयादेश इट् च न। 'शण्ढः स्यात्पुंसि गोपतौ'। शण्ढः क्लीबः ॥

९९–शम धातुके उत्तर ढ प्रत्यय हो। बाहुलकबलसे इत्संज्ञा, एयादेश और इट् भी नहीं होगा। यथा, शण्ढः। शण्ढ शब्दसे नपुंसक और स्वेच्छाचारी बैल समझना चाहिये॥

१०० 'कमेरठः' ॥ ॥ कमठः। 'कमठः कच्छपे पुंसि भाण्डभेदे नपुंसकम्' इति मेदिनी। बाहुलकाज्जरठः ॥

१००–कम धातुके उत्तर अठ प्रत्यय हो, यथा–कमठः। कमठ शब्द कच्छप अर्थ होनेपर पुंलिङ्ग और भांडभेद होनेपर नपुंसकलिङ्ग है। यह मेदिनीकोषका मत है। बाहुलकबलसे जरठः पद भी होगा (जरठ–वृद्ध) ॥

१०१ 'रमेर्वृद्धिश्च' ॥ ॥ रामठं हिंगु ॥

१०१–रम धातुके उत्तर अठ प्रत्यय हो और अकारकी वृद्धि हो। यथा, रामठं हिंगु (हींग) ॥

१०२ 'शमेः खः' ॥ ॥ शङ्खः ॥

१०२–शम धातुके उत्तर ख प्रत्यय हो। शंखः ॥

१०३ 'कणेष्ठः' ॥ ॥ कण्ठः ॥

१०३–कण धातुके उत्तर ठ प्रत्यय हो। कण्ठः ॥

१०४ 'कलस्तृपश्च' ॥ ॥ तृपतेः कलप्रत्ययः चात्तृफतेः। तृपला लता। 'तृफला तु फलत्रिके' ॥

१०४–तृप धातुके उत्तर कल प्रत्यय हो और चकारसे तृफ धातुके उत्तर भी कल प्रत्यय हो, तृपला लता। तृफला। तृफलासे तीन फल समझना (हर, बहेडा, आमला) ॥

१०५ 'शपेर्वश्च' ॥ ॥ शबलः ॥

१०५–शप धातुके उत्तर कल प्रत्यय हो और पकारके स्थानमें वकार हो, यथा–शबलः ॥

१०६ 'वृषादिभ्यश्चित्' ॥ ॥ वृषलः। पललम्। बाहुलकाद् गुणः। सरलः। तरलः ॥ कमेर्बुक् ॥ ग० ॥ कम्बलः। मुस खण्डने मुसलम् ॥ लङ्गेर्वृद्धिश्च ॥ ग० ॥ लांगलम् ॥ कुटिकशिकौतिभ्यः प्रत्ययस्य मुट् ॥ ॥ कुट्मलः। कुडेरपि। कुड्मलः। कश्मलम्। बाहुलकाद् गुणः। कोमलम् ॥

१०६–वृषादि धातुके उत्तर कल प्रत्यय हो और यह प्रत्यय चित्संज्ञक हो। यथा,वृषलः। पललम्। बाहुलकबलसे गुण हो। सरलः। तरलः। कम धातुके उत्तर कल प्रत्यय हो और वुक्का आगम हो। कम्बलः। मुस धातु खंडनमें है–मुसलम्। लङ्ग धातुको वृद्धि हो। लाङ्गलम्। कुटि, कशि, और कौति धातुके उत्तर कल प्रत्यय हो, प्रत्ययको मुट्का आगम हो। कुट्मलः। कुड धातुके उत्तर भी कल प्रत्यय हो, कुड्मलः। कश्मलम्। बाहुलकबलसे गुण हो। कोमलम् ॥

१०७ 'मृजेष्टिलोपश्च' ॥ ॥ मलम् ॥

१०७–मृज धातुके उत्तर कल प्रत्यय हो और टिका लोप हो। मलम् ॥

१०८ 'चुपेरच्चोपधायाः' ॥ ॥ चपलम् ॥

१०८–चुप धातुके उत्तर कल प्रत्यय हो और उपधाके स्थानमें अत् हो। चपलम् ॥

१०९ 'शकिशम्योर्नित्' ॥ ॥ शकलम् ॥ शमलम् ॥

१०९–शकि, और शमि धातुके उत्तर कल प्रत्यय हो और यह प्रत्यय नित्संज्ञक हो। शकलम्। शमलम् ॥

११० 'छो गुक् ह्रस्वश्च' ॥ ॥ छगलः। प्रज्ञादित्वाच्छागलः ॥

११०–छो धातुके उत्तर कल प्रत्यय हो और गुक्का आगम और ह्रस्व हो। यथा, छगलः प्रज्ञादित्वके बलसे छागलः ॥

१११ 'ञमन्ताड्डः' ॥ ॥ दण्डः। रण्डा। खण्डः। मण्डः। वण्डश्छिन्नहस्तः। अण्डः। बाहुलकात्सत्वाभावः। षण्डः संघातः। तालव्यादिरित्यपरे। शण्डः। गण्डः। चण्डः। पण्डः-क्लीबः। पण्डा बुद्धिः ॥

१११–ञम् अन्तमें है ऐसा जो धातु उसके उत्तर ड प्रत्यय हो। यथा, दण्डः। रण्डा। खण्डः। मण्डः। वण्डः

छिन्नहस्तः । अण्डः । बाहुलक बलसे सत्वाभाव होगा । यथा, षण्डः संघातः । कोई कहते हैं यह शब्द तालव्य शकारादि है । शण्डः । गण्डः । चण्डः । पण्डः । अर्थात् क्लीबः । पण्डा बुद्धिः ॥

११२ 'कादिभ्यः कित्' ॥ ॥ कवर्गादिभ्यो डः कित्स्यात् । कुण्डम् । काण्डम् । गुड् । गुडः । घुण भ्रमणे घुण्डो भ्रमरः ॥

११२-कवर्गादि धातुओंके उत्तर ड प्रत्यय हो और यह ड कित्संज्ञक हो । यथा, कुण्डम् । काण्डम् । गुड् । गुडः । घुण भ्रमणे । घुण्डो भ्रमरः ॥

११३ 'स्थाचतिमृजेरालञ्वालञालीयचः' ॥ ॥ तिष्ठतेरालञ् । स्थालम् । स्थाली । चतेर्वालञ् । चात्वालः । मृजेरालीयच् । मार्जालीयो बिडालः ॥

११३-स्था धातुके उत्तर आलञ् प्रत्यय हो, यथा-स्थालम्, स्थाली । चत धातुके उत्तर वालञ् प्रत्यय हो । यथा, चात्वालः । मृज धातुके उत्तर आलीयच् प्रत्यय हो । यथा, मार्जालीयो बिडालः ॥

११४ 'पतिचण्डिभ्यामालञ्' ॥ ॥ पातालम् । चण्डालः । प्रज्ञादित्वादणि चाण्डालोऽपीत्येके ॥

११४-पति और चडि धातुके उत्तर आलञ् प्रत्यय हो, यथा-पातालम् । चण्डालः । प्रज्ञादित्वके कारण धातुके उत्तर अण् प्रत्यय होकर चाण्डालः पद भी होगा ॥

११५ 'तमिविशिविडिमृणिकुलिकपिपलिपञ्चिभ्यः कालन्' ॥ ॥ तमालः । विशालः । बिडालः । मृणालम् । कुलालः । कपालम् । पलालम् । पञ्चालाः ॥

११५-तमि, विशि, बिडि, मृणि, कुलि, कपि, पलि, पञ्चि धातुके उत्तर कालन् प्रत्यय हो । यथा, तमालः विशालः । बिडालः । मृणालम् । कुलालः । कपालम् । पलालम् । पञ्चालाः ॥

११६ 'पतेरंगच् पक्षिणि' ॥ ॥ पतंगः ॥

११६-पक्षि अर्थ होनेपर पत धातुके उत्तर अङ्गच् प्रत्यय हो । यथा, पतङ्गः ।

११७ 'तरत्यादिभ्यश्च' ॥ ॥ तरंगः । लवंगम् ॥

११७-तरति आदि धातुओंके उत्तर अङ्गच् प्रत्यय हो । यथा, तरङ्गः । लवंगम् ॥

११८ 'बिडादिभ्यः कित्' ॥ ॥ विडंगः । मृदङ्गः । कुरंगः । बाहुलकादुत्वं च ॥

११८-विडादि धातुओंके उत्तर अङ्गच् प्रत्यय हो और वह कित् हो, यथा-विडङ्गः । मृदङ्गः । कुरङ्गः यहां बाहुलकबलसे उत्त्व भी हुआ ॥

११९ 'सृवृञोर्वृद्धिश्च' ॥ सारंगः । वारंगः । खड्गादिमुष्टिः ॥

११९-सृ और वृञ् धातुके उत्तर अङ्गच् प्रत्यय हो और वृद्धि हो, यथा-सारङ्गः । वारङ्गः, अर्थात् खड्गादि मुष्टि॥

१२० 'गन् गम्यद्योः' ॥ ॥ गंगा । अद्गः पुरोडाशः ॥

१२०-गम् और अद् धातुके उत्तर गन् प्रत्यय हो यथा-गङ्गा । अद्गः पुरोडाशः ॥

१२१ 'छापूखडिभ्यः कित्' ॥ ॥ छागः । पूगः । खड्गः । बाहुलकात् षिट अनादरे गन्सत्वाभावश्च । षिड्गस्तरलः । 'षिड्गैरगद्यत ससंभ्रममेवमेका' इति माघः ॥

१२१-छा, पू, खडि धातुओंके उत्तर गन् प्रत्यय हो और वह गन् प्रत्यय कित् हो, यथा-छागः । पूगः । खड्गः । बाहुलकबलसे अनादरार्थक षिट धातुके उत्तर गन् प्रत्यय और सत्वका अभाव भी हुआ, यथा-षिड्गस्तरलः । अत एव 'षिड्गैरगद्यत ससंभ्रममेवमेके' अर्थात् सम्भ्रमके साथ चञ्चल पुरुषसे कोई इस तरह बोलेगये, ऐसे माघकाव्यमें कहाहै ॥

१२२ 'भृञः किन्नुट् च ॥ ॥ भृञो गन् कित्स्यात्तस्य नुट् च । 'भृंगाः षिड्गालिधूम्याटाः' ॥

१२२-भृञ् धातुके उत्तर गन् प्रत्यय हो, और वह प्रत्यय कित् हो, और उसके नुट्का आगम हो, यथा-"भृङ्गाः षिङ्गालिधूम्याटाः" ॥

१२३ 'शृणातेर्ह्रस्वश्च' ॥ ॥ शृंगम् ॥

१२३-शॄ धातुके उत्तर गन् प्रत्यय, उसके नुट्का आगम और शॄ धातुको ह्रस्व हो, यथा-शृङ्गम् ॥

१२४ 'गण् शकुनौ' ॥ ॥ नुडित्यनुवर्त्तते। शार्ङ्गः ॥

१२४-शकुनि अर्थमें शॄ धातुके उत्तर गण् प्रत्यय हो और नुट्का आगम हो, यथा-शार्ङ्गः ॥

१२५ 'मुदिग्रोर्गग्गौ' ॥ ॥ मुद्गः । गर्गः ॥

१२५-मुद् और गॄ धातुके उत्तर गक् और ग प्रत्यय हो, यथा-मुद्गः । गर्गः ॥

१२६ 'अण्डन् कृसृभृवृञः' ॥ ॥ करण्डः । सरण्डः । पक्षी भरण्डः स्वामी । वरण्डो मुखरोगः ॥

१२६-कृ, सृ, भृ और वृञ् धातुके उत्तर अण्डन प्रत्यय हो, यथा-करण्डः । सरण्डः पक्षी । भरण्डः स्वामी। वरण्डो मुखरोगः ॥

१२७ 'शॄदृभसोऽदिः' ॥ ॥ शरत् । 'दरद्धृदयकूलयोः' । भसज्जघनम् ॥

१२७-शॄ, दृ और भस् धातुके उत्तर अदि प्रत्यय हो, यथा-शरत् । दरत्, अर्थात् हृदय और कूल । भसत्, अर्थात् जघन ॥

१२८ 'दृणातेः षुग् ह्रस्वश्च' ॥ ॥ दृषत् ।

१२८–दृ धातुके उत्तर अदि प्रत्यय, षुक्का आगम और ह्रस्व हो, यथा–दृषत् ॥

१२९ 'त्यजितनियजिभ्यो डित्' ॥ ॥ त्यद् । तद् । यद् । सर्वादयः ॥

१२९–त्यज, तन् और यज् धातुके उत्तर आदि प्रत्यय हो और वह डित् हो, यथा–त्यद् । तद् । यद् । यह सब सर्वादि हैं ॥

१३० 'एतेस्तुट् च' ॥ ॥ एतद् ॥

१३०–इण् धातुके उत्तर अति प्रत्यय हो और तुट्का आगम हो, यथा–एतद् ॥

१३१ 'सर्तेरटिः' ॥ ॥ 'सरट् स्याद्वातमेघयोः' । वेदभाष्ये तु याभिः कृशानुमिति मन्त्रे सरड्भ्यो मधुमक्षिकाभ्य इति व्याख्यातम् ॥

१३१–सृ धातुके उत्तर अटि प्रत्यय हो यथा–सरट् । सरट् शब्दसे वायु और मेघ समझना । वेदभाष्यमें तो 'याभिः कृशानुम्' इस मंत्रमें 'सरड्भ्यो मधुमक्षिकाभ्यः' ऐसी व्याख्या करीहै ॥

१३२ 'लंघेर्नलोपश्च' ॥ ॥ लघट् वायुः ॥

१३२–लंघ धातुके उत्तर अटि प्रत्यय हो और नकारका लोप हो, यथा–लघट् वायुः ॥

१३३ 'पारयतेरजिः' ॥ ॥ पारक् सुवर्णम् ॥

१३३–पारि धातुके उत्तर अजि प्रत्यय हो, यथा–पारक् अर्थात् सुवर्ण ॥

१३४ 'प्रथः कित्सम्प्रसारणं च' ॥ ॥ पृथक् । स्वरादिपाठादव्ययत्वम् ॥

१३४–प्रथ धातुके उत्तर अजि प्रत्यय हो और वह कित् हो और धातुको सम्प्रसारण हो, यथा–पृथक् । स्वरादिगणमें पाठके कारण पृथक् शब्द अव्यय है ॥

१३५ 'भियः षुग्ह्रस्वश्च' ॥ ॥ भिषक् ॥

१३५–भी धातुके उत्तर अजि प्रत्यय हो और धातुको षुक्का आगम और ह्रस्व हो, यथा–भिषक् ॥

१३६ 'युष्यसिभ्यां मदिक्' ॥ युष् सौत्रो धातुः । युष्मद् । अस्मद् । त्वम्।अहम् ॥

१३६–युष् और अस् धातुके उत्तर मदिक् प्रत्यय हो, युष् यह सौत्र धातु है, यथा–युष्मद् । अस्मद् । त्वम् । अहम् ॥

१३७ 'अर्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन्' ॥ ॥ एभ्यश्चतुर्दशभ्यो मन् । अर्मश्चक्षूरोगः । स्तोमः संघातः । सोमः । होमः । सर्मा गमनम् । धर्मः । क्षेमं कुशलम् । क्षोमम् । प्रज्ञाद्यणि क्षौमं च । भाम आदित्यः । यामः। 'वामः शोभनदुष्टयोः'। पद्मम् । यक्ष पूजायाम् । यक्ष्मो रोगराजः । नेमः ॥

१३७–ऋ, स्तु, सु, हु, सृ, धृ, क्षि, क्षु, भा, या, वा, पदि, यक्षि और नी धातुके उत्तर मन् प्रत्यय हो, यथा–अर्म्मः, अर्थात् चक्षूरोगः । स्तोमः समूहः । सोमः । होमः । सर्म्मो गमनम् । धर्म्मः । क्षेमम् कुशलम् । क्षोमम् । प्रज्ञादिगणमें पाठके कारण अण् प्रत्यय होकर 'क्षौमम्' पद भी होगा । भाम आदित्यः । यामः । (पहर) वामः, अर्थात् शोभन और दुष्ट । पद्मम् । यक्ष धातु पूजा करनेमें है । यक्ष्मो रोगराजः । नेमः ॥

१३८ 'जहातेः सन्वदालोपश्च' ॥ ॥ 'जिह्मः कुटिलमन्दयोः' ॥

१३८–ओहाक् धातुके उत्तर मन् प्रत्यय हो, वह सन्वत् हो और आकारका लोप हो, यथा–जिह्मः, अर्थात् कुटिल और मन्द ॥

१३९ 'अवतेष्टिलोपश्च' ॥ ॥ मन्प्रत्ययस्यायं टिलोपो न प्रकृतेः । अन्यथा डिदित्येव ब्रूयात् । ज्वरत्वरेति ऊठौ । तयोर्दीर्घे कृते गुणः । चादिपाठादव्ययत्वमित्युज्ज्वलदत्तस्तन्न तेषामसत्त्वार्थत्वात् । वस्तुतस्तु स्वरादिपाठादव्ययत्वम् । अवतीति ओम् ॥

१३९–अव धातुके उत्तर मन् प्रत्यय हो और टिका लोप हो । मन् प्रत्ययकीही टिका लोप होगा धातुका नहीं, अन्यथा डित् ऐसा ही कहते । "ज्वरत्वर० २६५४" इस सूत्रसे उपधा और वकारको ऊठ् आदेश हुआ । पश्चात् दोनोंको दीर्घ होनेपर गुण हुआ । चादिगणमें पाठके कारण वह अव्यय है,यह उज्ज्वलदत्तका मत है, परन्तु उसके असत्त्वार्थत्वके कारण वह ठीक नहीं है, वास्तविक तो स्वरादिगणमें पाठके कारण उसको अव्ययत्व होगा,अवतीति=ओम् ॥

१४० 'ग्रसेरा च' ॥ ॥ ग्रामः ॥

१४०–ग्रस् धातुके उत्तर मन् प्रत्यय हो और धातुको आकार हो, यथा–ग्रामः ॥

१४१ 'अविसिविसिशुषिभ्यः कित्' ॥ ॥ ऊमं नगरम् । स्यूमो रश्मिः । सिमः सर्वः । 'शुष्ममग्निसमीरयोः' ॥

१४१–अव्, सिव्, सि, और शुष् धातुके उत्तर मन् प्रत्यय कित् हो, यथा–ऊमं नगरम् । स्यूमो रश्मिः । सिमः सर्वः । शुष्मम् , अर्थात् अग्नि और वायु ॥

१४२ 'इषियुधीन्धिदसिश्याधूसूभ्यो मक्' ॥ ॥ 'इष्मः कामवसन्तयोः'। ईषीतिपाठे दीर्घादिः । युध्मः शरो योद्धा च । इध्मः समित् । दस्मो यजमानः । श्यामः । धूमः । सूमोऽन्तरिक्षम् । बाहुलकादीर्मं व्रणः ॥

१४२–इष ,युध,इन्ध,दस,श्या, धू और सू धातुके उत्तर मक् प्रत्यय हो, इष्मः, अर्थात् काम और वसन्त । 'ईषी' ऐसे

दीर्घपाठमें वह दीर्घादि जानना चाहिये । युध्मः, अर्थात् शर और योद्धा । इध्मः समित् । दस्मो यजमानः । श्यामः । धूमः । सूमोऽन्तरिक्षम् । बाहुलकबलसे ईर्म्मम्, अर्थात् व्रण॥

१४३ 'युजिरुचितिजां कुश्च' ॥ ॥ युग्मम् । रुक्मम् । तिग्मम् ॥

१४३–युज, रुच और तिज धातुके उत्तर मक् प्रत्यय हो और धातुसम्बन्धी चवर्गको कवर्ग हो, यथा–युग्मम् । रुक्मम् । तिग्मम् ॥

१४४ 'हन्तेर्हि च' ॥ ॥ हिमम् ॥

१४४–हन् धातुके उत्तर मक् प्रत्यय हो और हन् धातुके स्थानमें हि आदेश हो, यथा–हिमम् ॥

१४५ 'भियः षुग् वा' ॥ ॥ भीष्मः–भीमः॥

१४५–भी धातुके उत्तर मक् प्रत्यय हो और विकल्पकरके षुक्का आगम हो, यथा–भीष्मः, भीमः ॥

१४६ 'घर्मः' ॥ ॥ घृधातोर्मग्गुणश्च निपात्यते ॥

१४६–'घर्मः' यह निपातनसे सिद्ध हो, अर्थात् घृ धातुके उत्तर मक् प्रत्यय और गुण हो ॥

१४७ 'ग्रीष्मः' ॥ ॥ ग्रसतेर्निपातोऽयम् ॥

१४७–'ग्रीष्मः' यह निपातनसे सिद्ध हो अर्थात् ग्रस धातुके उत्तर मक् प्रत्यय और उपधाको ईकार, सकारको षत्व हो ॥

१४८ 'प्रथेः षिवन् सम्प्रसारणं च' ॥ ॥ पृथिवी । षवन्नित्येके । पृथवी । 'पृथवी पृथिवी पृथ्वी' इति शब्दार्णवः ॥

१४८–प्रथ धातुके उत्तर षिवन् प्रत्यय हो और धातुको सम्प्रसारण हो, यथा–पृथिवी। किसी२ के मतसे षवन् प्रत्यय हो, पृथवी अत एव "पृथवी पृथिवी पृथ्वी" ऐसा शब्दार्णवमें है ॥

१४९ 'अशूप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन्' ॥ ॥ अश्वः । प्रुष स्नेहनादौ । 'प्रुष्वः स्यादृतुसूर्ययोः' । प्रुष्वा जलकणिका । लट्वा पक्षिभेदः फलं च । कण्वं पापम् । बाहुलकादित्वे किण्वमपि । खट्वा । विश्वम् ॥

१४९–अशू, प्रुष्, लट्, कण्, खट् और विश् धातुओंके उत्तर क्वन् प्रत्यय हो, यथा–अश्वः । प्रुष् धातु स्नेहनादिमें है प्रुष्वः, अर्थात् ऋतु और सूर्य्य । प्रुष्वा, अर्थात् जलकणिका । लट्वा, अर्थात् पक्षिविशेष और फलविशेष । कण्वम्, अर्थात् पाप । बाहुलकबलसे इत्व होनेपर किण्वम् पद भी होगा । खट्वा । विश्वम् ॥

१५० 'इण्शीभ्यां वन्' ॥ ॥ एवो गन्ता । 'ये च एवामरुतः' असत्त्वे निपातोयम् । 'शेवं मित्राय वरुणाय' ॥

१५०–इण् और शी धातुके उत्तर वन् प्रत्यय हो, एवः, अर्थात् गन्ता । 'ये च एवामरुतः' यह असत्त्वमें निपातन है। 'शेवं मित्राय वरुणाय' ॥

१५१ 'सर्वनीघृष्वरिष्वलष्वशिवपट्वप्रह्वेष्वा अतन्त्रे' ॥ ॥ अकर्तर्येते निपात्यन्ते । सृतमनेन विश्वमिति सर्वम्। निपूर्वाद् घृषेर्गुणाभावोऽपि। निघृष्यतेऽनेन निघृष्वः खुरः । रिष्वो हिंस्रः । लष्वो नर्तकः । लिष्व इत्यन्ये । तत्रोपधाया इत्वमपि । शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शिवः शम्भुः । शीङो ह्रस्वत्वम् । पट्वो रथो भूलोकश्च । प्रहूयते इति प्रह्वः । ह्वेञ आकारवकारलोपः । जहातेरालोपो वा । ईषेर्वन् ईष्व आचार्यः । इष्व इत्यन्ये । अतन्त्रे किम् । सर्ता सारकः । बाहुलकाद् ह्सतेः । ह्स्वः ॥

१५१–सर्व, नीघृष्व, रिष्व, लष्व, शिव, पट्व, प्रह्व, ईष्व, यह कर्तृभिन्न वाच्यमें निपातनसे सिद्ध हों, यथा–सृतमनेन विश्वम्, इस विग्रहमें सर्वम् । निपूर्वक घृष् धातुको गुणाभाव भी निपातनसे हो, यथा–निघृष्यतेऽनेन निघृष्वः खुरः । रिष्वो हिंस्रः । लष्वो नर्त्तकः । किसीके मतसे 'लिष्वः' यह भी होगा, इस स्थलमें उपधाको निपातनसे इकार भी हुआ । शेतेऽस्मिन् सर्वम्, इस विग्रहमें–शिवः शम्भुः, यहां शीङ् धातुको ह्रस्व हुआ । पट्वो रथो भूलोकश्च । प्रहूयते इति=प्रह्वः, यह ह्वेञ् धातुके आकार और वकारका लोप होकर अथवा ओहाक् धातुके आकारका लोप होकर सिद्ध है । ईष् धातुके उत्तर वन् प्रत्यय होकर–ईष्व आचार्यः । किसीके मतसे 'इष्वः' ऐसा होगा । कर्तृवाच्यमें तो 'सर्त्ता सारकः' ऐसा होगा । बाहुलकबलसे ह्स् धातुके उत्तर भी वन् प्रत्यय होगा, यथा–ह्स्वः ॥

१५२ 'शेवयह्वजिह्वाग्रीवाप्वामीवाः' ॥ ॥ शेव इत्यन्तोदात्तार्थम् । यान्त्यनेन यह्वः ॥ ह्रस्वो हुगागमश्च । लिहन्त्यनया जिह्वा । लकारस्य जः गुणाभावश्च । गिरन्त्यनया ग्रीवा । ईडागमश्च । आप्नोतीत्याप्वा वायुः । मीवा उदरकृमिः । वायुरित्यन्ये ॥

१५२–शेव, यह्वा, जिह्वा, ग्रीवा, आप्वा, मीवा यह पद निपातनसे सिद्ध हों । शेवः यह अन्तोदात्तार्थ निपातन है, नहीं तो "इण्शीभ्याम्०" इसीसे सिद्ध होनेसे निपातन व्यर्थही होजाता । यान्ति अनेन=यह्वः यहां ह्रस्व और हुगागम हुआहै लिहन्त्यनया इति=जिह्वा, यहां लकारके स्थानमें जकार और गुणाभाव हुआहै । गिरन्त्यनया=ग्रीवा, यहां ईडागमभी हुआ है। आप्नोति इति=आप्वा वायुः । मीवा उदरकृमिः । अन्यमतसे वायु समझना ॥

१५३ 'कॄगॄशॄदॄभ्यो वः' ॥ ॥ कर्वः काम आखुश्च । गर्वः । शर्वः । दर्वो राक्षसः ॥

१५३–कॄ, गॄ, शॄ, दॄ धातुओंके उत्तर व प्रत्यय हो, यथा–कर्वः, अर्थात् काम आखुश्च । गर्वः । शर्वः । दर्वो राक्षसः ॥

१५४ 'कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः' ॥ ॥ यौतीति युवा । वृषा इन्द्रः । तक्षा । राजा । धन्वा मरुः । धन्व शरासनम् । द्युवा सूर्यः । प्रतिदीव्यन्त्यस्मिन् प्रतिदिवा दिवसः ॥

१५४–यु, वृष्, तक्ष्, राज्, धन्व्, द्यु और प्रतिपूर्वक दिव धातुके उत्तर कनिन् प्रत्यय हो, यौति इति=युवा । वृषा, अर्थात् इन्द्रः । तक्षा । राजा । धन्वा मरुः । धन्व शरासनम् । द्युवा सूर्य्यः । प्रतिदीव्यन्ति अस्मिन्=प्रतिदिवा दिवसः ॥

१५५ 'सप्यशूभ्यां तुट् च' ॥ ॥ सप्त । अष्ट ॥

१५५–सप् और अश् धातुके उत्तर कनिन् प्रत्यय हो और तुट्का आगम हो, यथा–सप्त । अष्ट ॥

१५६ 'नञि जहातेः' ॥ ॥ अहः ॥

१५६–नञ्पूर्वक हा धातुके उत्तर कनिन् प्रत्यय हो, अहः ॥

१५७ 'श्वन्नुक्षन्पूषन्प्लीहन्क्लेदन्स्नेहन्मूर्धन्मज्जन्नर्यमन्विश्वप्सन्परिज्मन्मातरिश्वन्मघवन्निति' ॥ ॥ एते त्रयोदश कनिन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । श्वयतीति श्वा । उक्षा । पूषा । प्लिह गतौ । इकारस्य दीर्घत्वम् । प्लेहतीति प्लीहा कुक्षिव्याधिः । क्लिदू आर्द्रीभावे । क्लिद्यति क्लेदा चन्द्रः । स्निह्यतेर्गुणः । स्निह्यतीति स्नेहा सुहृच्चन्द्रश्च । मुह्यन्त्यस्मिन्नाहते मूर्धा । मुहेरुपधाया दीर्घो धोन्तादेशो रमागमश्च । मज्जत्यस्थिषु मज्जा अस्थिसारः । अर्यपूर्वो माङ् । अर्यमा । विश्वं प्साति विश्वप्साऽग्निः । परिजायते परिज्मा चन्द्रोऽग्निश्च । जनेरुपधालोपो मश्चान्तादेशः । मातरि अन्तरिक्षे श्वयतीति मातरिश्वा । धातोरिकारलोपः । मह पूजायाम् । हस्य घो वुगागमश्च । मघवा इन्द्रः ॥

॥ इत्युणादिषु प्रथमः पादः ॥

१५७–श्वन्, उक्षन्, पूषन्, प्लीहन्, क्लेदन्, स्नेहन्, मूर्द्धन्, मज्जन्, अर्य्यमन्, विश्वप्सन्, परिज्मन्, मातरिश्वन्, मघवन्, यह कनिन्प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों, श्वयतीति श्वा । उक्षा । पूषा । 'प्लिह गतौ' इसके इकारको दीर्घ होकर–'प्लेहति' इस विग्रहमें प्लीहा, अर्थात् कुक्षिव्याधिः । क्लिदू आर्द्रीभावे । क्लिद्यति इति=क्लेदा चन्द्रः । स्निह् धातुको गुण होकर–स्निह्यति, इस विग्रहमें स्नेहा, अर्थात् सुहृत् और चन्द्र । मुह्यन्त्यस्मिन् आहते=मूर्द्धा, यहां धातुकी उपधाको दीर्घ और धकारान्तादेश और रम्का आगम हुआ । मज्जति अस्थिषु=मज्जा, अर्थात् हड्डीका सार (चरबी) । अर्य्यपूर्वक माङ् धातुके उत्तर कनिन् होकर=अर्य्यमा । विश्वं प्साति, इस विग्रहसें विश्वप्सा । अग्निः । परिजायते परिज्मा अर्थात् चन्द्र और अग्नि । जन धातुकी उपधाका लोप हो और अन्तमें मकार आदेश हो, मातर्य्यन्तरिक्षे श्वयति इति मातरिश्वा । धातुके इकारका लोप हुआ । मह धातु पूजामें है । हके स्थानमें घ और वुगागम होगा, मघवा इन्द्रः ॥

॥ इत्युणादिसूत्रे प्रथमपादः ॥

---

१५८ 'कृहृभ्यामेणुः' ॥ ॥ करेणुः । हरेणुर्गन्धद्रव्यम् ॥

१५८–कृ और हृ धातुके उत्तर एणु प्रत्यय हो, यथा–करेणुः । हरेणुः । इस शब्दका अर्थ गन्धद्रव्य समझना ॥

१५९ 'हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्' ॥ ॥ हथो विषण्णः । कुष्ठः । नीथो नेता । रथः । काष्ठम् ॥

१५९–हनि, कुषि, नी, रमि, काशि धातुके उत्तर क्थन् प्रत्यय हो, यथा–हथः अर्थात् विषण्णः । कुष्ठः । नीथो नेता । रथः काष्ठम् ॥

१६० 'अवे भृञः' ॥ ॥ अवभृथः ॥

१६०–अवपूर्वक भृञ् धातुके उत्तर क्थन् प्रत्यय हो, यथा–अवभृथः ॥

१६१ 'उषिकुषिगार्तिभ्यस्थन्' ॥ ॥ ओष्ठः । कोष्ठम् । गाथा । अर्थः । बाहुलकात्–शोथः ॥

१६१–उषि, कुषि, गा और आर्त्ति धातुके उत्तर थन् प्रत्यय हो, ओष्ठः । कोष्ठम् । गाथा । अर्थः । बाहुलकबलसे–शोथः ॥

१६२ 'सर्तेर्णित्' ॥ ॥ सार्थः समूहः ॥

१६२–सर्त्ति धातुके उत्तर थन् प्रत्यय हो और यह थन् णित्संज्ञक हो, यथा–सार्थः । अर्थात् समूहः ॥

१६३ 'जॄवृञ्भ्यामूथन्' ॥ ॥ जरूथं मांसम् । 'वरूथो रथगुप्तौ ना' ॥

१६३–जॄ और वृञ् धातुके उत्तर ऊथन् प्रत्यय हो, यथा–जरूथम्=मांसम् । "वरूथो रथगुप्तौ ना" वरूथ शब्द रथगुप्ति अर्थमें पुल्लिंग है ॥

१६४ 'पातॄतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक्' ॥ ॥ पीथो रविर्घृतं पीथम् । 'तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिषु । अवतारर्षिजुष्टाम्भःस्त्रीरजःसु च विश्रुतम्' इति विश्वः । तुत्थोऽग्निः । उक्थं सामभेदः । रिक्थम् । बाहुलकादृचेरपि । 'रिक्थमृक्थं धनं वसु' । सिक्थम् ॥

१६४–पा, तॄ, तुदि, वाचि, रिचि, सिचि धातुके उत्तर थक् प्रत्यय हो, यथा–पीथो रविर्घृतं पीथम् । "तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमंत्रिषु । अवतारर्षिजुष्टाम्भःस्त्रीरजःसु च विश्रुतम्॥" तीर्थ, शास्त्र, यज्ञ क्षेत्र, उपाय, उपाध्याय, मंत्री, अवतार, ऋषि जुष्ट (सेवित), जल और स्त्रीके रजमें यह शब्द माना है । इति विश्वः । तुत्थोऽग्निः । उक्थं सामभेदः । रिक्थं धनम् । बाहुलक बलसे ऋच धातुके उत्तर भी थक् प्रत्यय हो । "रिक्थमृक्थं धनं वसु" सिक्थं अन्नम् ॥

१६४ 'अर्तेर्निरि' ॥ ॥ निर्ऋथं साम ॥

१६५-निरपूर्वक ऋ धातुके उत्तर थक् प्रत्यय हो, यथा-निर्ऋथं साम ॥

१६६ 'निशीथगोपीथावगथाः' ॥ ॥ निशीथोऽर्धरात्रः रात्रिमात्रं च । गोपीथं तीर्थम् । अवगथः प्रातःस्नातः ॥

१६६-निशीथ, गोपीथ, अवगथ, यह तीन पद निपातनसे सिद्ध हों । निशीथोऽर्द्धरात्रः रात्रिमात्रं च । गोपीथं तीर्थम् । अवगथः प्रातः स्नातः ॥

१६७ 'गश्चोदि' ॥ ॥ उद्गीथः साम्नो भागविशेषः ॥

१६७-उत्पूर्वक गै धातुके उत्तर थक् प्रत्यय हो, यथा-उद्गीथः, सामका भागविशेष ॥

१६८ 'समीणः'॥ ॥समिथो वह्निः संग्रामश्च॥

१६८-सम्पूर्वक इण् धातुके उत्तर थक् प्रत्यय हो, यथा, समिथः वह्नि और संग्राम ॥

१६९ 'तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः' ॥ ॥ तिजेर्जलोपः । तिथोऽनलः कामश्च । पृष्ठम् । गूथं विष्ठा । यूथं समूहः । 'प्रोथमस्त्री तुरङ्गास्ये प्रोथः प्रस्थित उच्यते' ॥

१६९-तिथ, पृष्ठ, गूथ, यूथ, प्रोथ यह सम्पूर्ण शब्द थक् प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों । तिज धातुके जकारका लोप होगा । तिथः अनल और काम । पृष्ठम् । गूथं विष्ठा । यूथं समूहः । "प्रोथमस्त्री तुरङ्गास्ये प्रोथः प्रस्थित उच्यते"। प्रोथम्-घोडेका मुख, प्रोथम्-प्रस्थान ॥

१७० 'स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्द्युन्दिश्वितिवृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिच्छिदिभिदिमन्दिचन्दिदहिदसिदम्भिवसिवाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक्' ॥ ॥ द्वात्रिंशद्भ्यो रक् स्यात्।वलियलोपः।स्फारम्।न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम् । तक्रम् । वक्रम् । शक्रः । क्षिप्रम् । क्षुद्रः । सृप्रश्चन्द्रः । तृप्रः पुरोडाशः । दृप्रो बलवान् । वन्द्रः पूजकः । उन्दी-उन्द्रो जलचरः । श्वित्रं कुष्ठम् । 'वृत्रो रिपौ ध्वनौ ध्वान्ते शैले चक्रे च दानवे' । अजेर्वी । वीरः । नीरम् । पद्रो ग्रामः । मद्रो हर्षः देशभेदश्च । मुद्रा प्रत्ययकारिणी । खिद्रो रोगो दरिद्रश्च । छिद्रम् । भिद्रं वज्रम् । मन्द्रः । चन्द्रः । पचाद्यचि चन्दोपि । 'हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्रः शशी चन्दो हिमद्युतिः' । दह्रोऽग्निः । दस्रः स्ववैंद्यः । दभ्रः समुद्रः स्वल्पं च । वसेः संप्रसारणे ॥

१७०-स्फायि, तञ्चि, वञ्चि, शकि, क्षिपि, क्षुदि, सृपि, तृपि, दृपि, वन्दि, उन्दि, श्विति, वृ, त्यजि, नी, पदि, मदि, मुदि, खिदि, छिदि, भिदि, मन्दि, चन्दि, दहि, दसि, दम्भि, वसि, वसि, वाशि, शीङ् हसि, सिधि, और शुभि इन ३२ धातुओंके उत्तर रक् प्रत्यय हो, वल परे रहते यकारका लोप हो। स्फारम्।न्यङ्क्वादि गणके मध्यस्थ होनेके कारण तञ्चि धातुके तकारको कुत्व हो । तक्रम् । वक्रम् । शक्रः । क्षिप्रम् । क्षुद्रः । सृप्रः । चन्द्रः। तृप्रः पुरोडाशः । दृप्रो-बलवान् । वन्द्रः-पूजकः । उन्दी धातु । उन्द्रो जलचरः । श्वित्रं कुष्ठम् । वृत्रः अर्थात् शत्रु, ध्वनि, ध्वान्त, शैल, चक्र, और दानव । अज धातुके स्थानमें वी आदेश हो, पश्चात् रक् प्रत्यय हो । वीरः । नीरम् । पद्रः-ग्रामः।मद्रः हर्ष और देशविशेष । मुद्रा प्रत्ययकारिणी (मुहर) । खिद्रः रोग विशेष और दरिद्र । छिद्रम् । भिद्रं-वज्रम् । मन्द्रः । चन्द्रः । पचादित्वके कारण चन्दः पद भी होताहै । " हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्रः शशी चन्दो हिमद्युतिः " । दह्रो अर्थात् अग्निः । दस्रः स्ववैंद्यः । अश्विनीकुमार । दभ्रः समुद्रः स्वल्पञ्च । वस धातुको सम्प्रसारण हुआ ॥

३१६८न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् । ८ । ३ । ११० ॥

रेफपरस्य सकारस्य सृप्यादीनां सवनादीनां च मूर्धन्यो न स्यात् । पूर्वपदादिति प्राप्तः प्रतिषिध्यत इति वृत्तिर्भूयोभिप्राया । तेन शासिवसीतिप्राप्तमपि न । उस्रो रश्मिः । उस्रा गौः । वाश्रो दिवसः । वाश्रं मन्दिरम् । शीरोऽजगरः । हस्रो मूर्खः । सिध्रः साधुः । शुभ्रम् ॥ 'मुसेरक्' ॥ मुस्रम् । बाहुलकाद्-अश्रु ॥ ॥

३१६८-रकार परे रहते सकार और सृप्यादि सवनादि धातुओंका जो सकार वह मूर्द्धन्य न हो । " पूर्वपदात् ३६४३"इस सूत्रकी प्राप्ति हुई उसको निषेध करते हैं । यह वृत्ति पुनर्वार होगी यह अभिप्राय प्रकाश करते हैं । इसी कारण " शासिवसि० २४१०" इस सूत्रकी भी प्राप्ति हुईथी किन्तु वह नहीं हुई । उस्रः रश्मिः। उस्रा गौः। वाश्रो दिवसः। वाश्रं मन्दिरम् । शीरोऽजगरः । हस्रो मूर्खः । सिध्रः साधुः । शुभ्रम् । मुस् धातुके उत्तर रक् प्रत्यय । मुस्रम् । बाहुलकके कारण अश्रु ॥

१७१ 'चकिरम्योरुच्चोपधायाः' ॥ ॥ चुक्रमम्लद्रव्यम् । रुम्रोऽरुणः ॥

१७१-चकि और रमि धातुके उत्तर रक् प्रत्यय हो और उपधाके स्थानमें उकार हो । यथा, चुक्रम् अम्लद्रव्यम्-चूक । रुम्रोऽरुणः ॥

१७२ 'वौ कसेः' ॥ ॥ विकुस्रश्चन्द्रः ॥

१७२--विपूर्वक कस धातुके उत्तर रक् प्रत्यय हो । विकुस्रः चन्द्रः ॥

१७३ 'अमितम्योर्दीर्घश्च' ॥ ॥ आम्रम् । ताम्रम् ॥

१७३-अमि और तमि धातुके उत्तर रक् प्रत्यय हो और पूर्व स्वरको दीर्घ हो । आम्रम् । ताम्रम् ॥

१७४ 'निन्देर्नलोपश्च' ॥ ॥ निद्रा ॥

१७४–निन्द धातुके नकारका लोप हो और रक् प्रत्यय हो। निद्रा ॥

१७५ 'अर्देर्दीर्घश्च' ॥ ॥ आर्द्रम् ॥

१७५–अर्द धातुके उत्तर रक् प्रत्यय हो और पूर्व स्वरको दीर्घ हो। आर्द्रम् (गीला) ॥

१७६ 'शुचेर्दश्च' ॥ ॥ शूद्रः ॥

१७६–शुच धातुके उत्तर रक् प्रत्यय हो और चकारके स्थानमें दकार हो। पूर्व स्वरको दीर्घ हो। शूद्रः ॥

१७७ 'दुरीणो लोपश्च' ॥ ॥ दुःखेनेयते प्राप्यत इति दूरम् ॥

१७७–दुर् शब्द पूर्वक इण् धातुके उत्तर रक् प्रत्यय हो। और इण् धातुका लोप व स्वरको दीर्घ हो।दुःखेन ईयते प्राप्यते इति दूरम्। दुर्+इण्+रक्=दुर्+रक्=दूर+अम्=दूरम् ॥

१७८ 'कृतेश्छः क्रू च' ॥ ॥ कृच्छ्रम्। क्रूरः॥

१७८–कृत धातुके उत्तर रक् प्रत्यय हो और तकारको च्छ आदेश और कृत्को क्रू आदेश हो। कृच्छ्रम्। क्रूरः ॥

१७९ 'रोदेर्णिलुक् च'॥ ॥रोदयतीति रुद्रः॥

१७९–रोदि धातुके उत्तर रक् प्रत्यय हो और णिका लुक् हो। रोदयति इति रुद्रः ॥

१८० 'बहुलमन्यत्रापि संज्ञाछन्दसोः' ॥ ॥ णिलुगित्येव। 'वान्ति पर्णशुषो वातास्ततः पर्णमुचोऽपरे। ततः पर्णसहो वान्ति ततो देवः प्रवर्षति' ॥

१८०–संज्ञा और छंदमें और उससे भिन्न अन्यत्र भी णिके लुक्का प्रयोग देखा जाताहै। "वान्ति पर्णशुषो वातास्ततः पर्णमुचो परे।ततः पर्णसहो वान्ति ततो देवः प्रवर्षति"॥

१८१ 'जोरी च'॥ ॥जीरोऽणुः। ज्यश्चेत्येके॥

१८१–जु धातुके उत्तर रक् प्रत्यय और उकारके स्थानमें ईकार हो। यथा–जीरः अर्थात् अणुः। ज्या धातुके उत्तर रक् प्रत्यय होनेपर जीरः यह रूप होताहै ऐसा कोई २ कहतेहैं ॥

१८२ 'सुसूधागृधिभ्यः क्रन्' ॥ ॥ सुरः। सूरः। धीरः। गृध्रः ॥

१८२–सु, सू, धा, गृधि धातुके उत्तर क्रन् प्रत्यय हो। सुरः। सूरः। धीरः। गृध्रः ॥

१८३ 'शुसिचिमीनां दीर्घश्च'॥ ॥शुः सौत्रः। शूरः। सीरम्। चीरम्। मीरः समुद्रः ॥

१८३–शु, सि, चि, मि, धातुके उत्तर रक् प्रत्यय हो स्वरको दीर्घ हो। शु धातु सौत्र है। शूरः। सीरम्। चीरम्। मीरः अर्थात् समुद्रः ॥

१८४ 'वाविन्धेः' ॥ ॥ वीध्रं विमलम् ॥

१८४–वि उपसर्गपूर्वक इन्ध धातुके उत्तर रक् प्रत्यय हो और नकारका लोप हो। और इकारके स्थानमें ईकार दीर्घ हो। वीध्रम्–अर्थात् विमलम् (निर्मल) ॥

१८५ 'वृधिवपिभ्यां रन्' ॥ ॥ वर्ध्रं चर्म। वप्रः प्राकारः ॥

१८५–वृध और वपि धातुके उत्तर रन् प्रत्यय हो। वर्ध्रं चर्म। वप्रः प्राकारः (परकोटा) ॥

१८६ 'ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्रकुब्रचुब्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्लगौरवत्रेरामालाः' ॥ ॥ रन्नन्ता ऊनविंशतिः।निपातनाद्गुणाभावः।ऋज्रो नायकः। इदि इन्द्रः। अङ्गेर्नलोपः। अग्रम्। 'वज्रोऽस्त्री हीरके पवौ'। डुवप् उपधाया इत्वम्। विप्रः। कुम्बिचुम्ब्योर्नलोपः कुब्रमरण्यम्। चुब्रं मुखम्। क्षुर विलेखने। रेफलोपः। अगुणः। क्षुरः। खुर छेदने। रलोपो गुणाभावश्च। खुरः। भन्देर्नलोपः। भद्रम्। उच समवाये। चस्य गः। उग्रः। जिभी–भेरी। पक्षे लः। भेलो जलतरणद्रव्यम्। शुचेश्चस्य कः। शुक्रः। पक्षे लः। शुक्लः। गुङ् वृद्धिः। 'गौरोऽरुणे सिते पीते'। वन संभक्तौ। वत्रो विभागी। इणो गुणाभावः। 'इरा मद्ये च वारिणि'। मा माने। माला॥

१८६–ऋज्र, इन्द्र, अग्र, वज्र, विप्र, कुब्र, चुब्र, क्षुर, खुर, भद्र, उग्र, भेर, भेल, शुक्र, शुक्ल, गौर, वत्र, इरा, माला यह१९ रन् प्रत्ययान्त शब्द निपातनसे सिद्ध हों, निपातनसे गुण न हो, यथा–ऋज्रो नायकः। इदि–इन्द्रः। अङ्ग धातुके नकारका लोप हो, अग्रम्। "वज्रोऽस्त्री हीरके पवौ" वप् धातुकी उपधाके स्थानमें ईकार हो। विप्रः। कुम्बि और चुम्ब धातुके नकारका लोप हो। कुब्रम्–अरण्यम्। चुब्रं–मुखम्। क्षुरः। खुर धातु छेदनमें है। रकारका लोप और गुणाभाव निपातनसे हो। खुरः। भन्द धातुके नकारका लोप हो। भद्रम्। उच धातु समवायमें है। चकारके स्थानमें ग हो। उग्रः। जिभी–भेरी, विकल्प पक्षमें ल हो। भेलो जलतरणद्रव्यम्। शुच् धातुके चकारके स्थानमें ककार हो। शुक्रः। पक्षमें ल हो। शुक्लः। गुङ् धातुको वृद्धि हो। "गौरोऽरुणे सिते पीते" वन धातु संभक्तिमें है। वत्रः–विभागी। इण् धातुको गुणाभाव हो। "इरा मद्ये च वारिणि"। मा धातु मानमें है। माला ॥

१८७ 'समि कस उकन्' ॥ ॥ कस गतौ। सम्यक्कसन्ति पलायन्ते जना अस्मादिति संकसुको दुर्जनः अस्थिरश्च ॥

१८७–सम्पूर्वक कस धातुके उत्तर उकन् प्रत्यय हो। कस धातु गतिमें है। सम्यक् कसन्ति पलायन्ते जनाः अस्मादिति संकसुकः–दुर्जनः अस्थिरश्च (स्थिर न रहनेवाला) ॥

१८८ 'पचिनशोर्णुकन्कनुमौ च'॥ ॥पचेः कः। पाकः सूपकारः। नशेर्नुम्। नंशुकः ॥

१८८–पच और नश धातुके उत्तर णुकन् प्रत्यय हो, और क्रमसे पच्को ककारान्तादेश नशको नुम्का आगम हो। पाकुकः सूपकारः। नश धातुको नुम् आगम होगा। नंशुकः ॥

१८९ 'भियः क्रुकन्' ॥ ॥ भीरुकः ॥

१८९-भी धातुके उत्तर क्रुकन् प्रत्यय हो । भीरुकः ॥

१९० 'कुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि' ॥ ॥ रजकः । इक्षुकुट्टकः । चरकः । चष भक्षणे । चषकः । शुनकः । भषकः ॥

१९०-पूर्वमें कोई पद न हो तो शिल्पी होनेपर और संज्ञा होनेपर धातुके उत्तर क्वुन् प्रत्यय हो । रजकः (धोबी) इक्षुकुट्टकः । चरकः । चष भक्षणे । चषकः।शुनकः । भषकः (कुक्कुर) ॥

१९१ 'रमे रश्च लो वा' ॥ ॥ रमको विलासी । लमकः ॥

१९१-रम् धातुके उत्तर क्वुन् प्रत्यय हो और रकारके स्थानमें विकल्प करके लकार हो। रमकः विलासी । लमकः ॥

१९२ 'जहातेर्द्वे च' ॥ ॥ जहकस्त्यागी कालश्च ॥

१९२-हा धातुके उत्तर क्वुन् प्रत्यय हो और धातुको द्वित्व हो, यथा-जहकः त्यागी कालश्च । त्यागकरनेवाला और काल ॥

१९३ 'ध्मो धम च' ॥ ॥ धमकः कर्मकारः ॥

१९३-ध्मा धातुके स्थानमें धम आदेश हो और उसके उत्तर क्वुन् प्रत्यय हो । धमकः-कर्मकारः ॥

१९४ 'हनो वध च' ॥ ॥ वधकः ॥

१९४-हन धातुके उत्तर क्वुन् प्रत्यय हो और धातुके स्थानमें वध आदेश हो, वधकः ॥

१९५ 'बहुलमन्यत्रापि'॥ ॥ कुह विस्मापने । कुहकः । कृतकम् ॥

१९५--बाहुलकबलसे अन्य धातुओंके उत्तर क्वुन् प्रत्यय हो । कुह धातु विस्मापनमें है । कुहकः । कृतकम् ॥

१९६ 'कृषेर्वृद्धिश्चोदीचाम्' ॥ ॥ कार्षकः । कृषकः ॥

१९६-कृष धातुके उत्तर क्वुन् प्रत्यय और धातुके ऋकारको वृद्धि हो । उदीच्योंके मतमें-कार्षकः। कृषकः ॥

१९७ 'उदकं च' ॥ ॥ प्रपञ्चार्थम् ॥

१९७-उन्दी धातुके उत्तर भी क्वुन् प्रत्यय हो । उदकम् । पृथक् रूपसे निर्देश केवल विस्तारार्थ है ॥

१९८ 'वृश्चिकृषोः किकन्' ॥ ॥ वृश्चिकः । कृषिकः ॥

१९८-वृश्चि और कृष धातुके उत्तर किकन् प्रत्यय हो, यथा-वृश्चिकः । कृषिकः ॥

१९९ 'प्राङि पणिकषः' ॥ ॥ प्रापणिकः पण्यविक्रयी । प्राकषिकः परदारोपजीवी ॥

१९९-प्रपूर्वक और आङ्पूर्वक पण और कष धातुके उत्तर किकन् प्रत्यय हो । यथा-प्रापणिकः पण्यविक्रयी । प्राकषिकः परदारोपजीवी ॥

२०० 'मुषेर्दीर्घश्च' ॥ ॥ मूषिक आखुः ॥

२००-मुष धातुके उत्तर किकन् प्रत्यय हो और दीर्घ हो, यथा-मूषिकः आखुः ॥

२०१ 'स्यमेः संप्रसारणं च' ॥ ॥ चाद्दीर्घः। सीमिको वृक्षभेदः ॥

२०१-स्यमि धातुके उत्तर किकन् प्रत्यय हो, सम्प्रसारण और चकारसे दीर्घ हो, सीमिकः-वृक्षभेदः ॥

२०२ 'क्रिय इकन्' ॥ ॥ क्रयिकः क्रेता ॥

२०२--क्री धातुके उत्तर इकन् प्रत्यय हो । क्रयिकः क्रेता ॥

२०३ 'आङि पणिपनिपतिखनिभ्यः'॥ ॥ आपणिकः । आपनिकः इन्द्रनीलः किरातश्च । आपतिकः श्येनो दैवायत्तश्च । आखनिको मूषिको वराहश्च ॥

२०३-आङ्पूर्वक पण, पन, पत और खन धातुके उत्तर इकन् प्रत्यय हो । आपणिकः । आपनिकः-इन्द्रनीलः किरातश्च । आपतिकः श्येनो दैवायत्तश्च (दैवाधीन) । आखनिकः मूषिकः वराहश्च ॥

२०४ 'श्यास्त्याहृञविभ्य इनच्' ॥ ॥ श्येनः । स्त्येनः । हरिणः । अविनोऽध्वर्युः ॥

२०४--श्या, स्त्या, हृञ् और अवि धातुके उत्तर इनच् प्रत्यय हो, यथा-श्येनः । स्त्येनः । हरिणः । अविनः-अध्वर्युः ॥

२०५ 'वृजेः किच्च' ॥ ॥ वृजिनम् ॥

२०५-वृज धातुके उत्तर इनच् प्रत्यय हो और प्रत्यय कित्संज्ञक हो । वृजिनम् ॥

२०६ 'अजेरज च' ॥ ॥ वीभाववाधनार्थम् । अजिनम् ॥

२०६-अजि धातुके उत्तर इनच् प्रत्यय हो, और अजि धातुके स्थानमें अज्+इन रहते वी आदेश न हो,यथा-अजिनम् (चमडा) ॥

२०७ 'बहुलमन्यत्रापि' ॥ ॥ कठिनम् । नलिनम् । मलिनम् । कुण्डिनम् । यतेः ॥ यत्परुषि दिनम् । दिवसोऽपि दिनम् ॥

२०७-अन्यत्र भी बाहुलकबलसे प्रयोग देखा जाताहै, यथा-कठिनम् । नलिनम् । मलिनम् । कुण्डिनम् । दो धातुके उत्तर इनच् प्रत्यय हो, और बाहुलकबलसे आकारका लोप हुआ । " यत्परुषि दिनम् । दिवसोऽपि दिनम् " ॥

२०८ 'द्रुदक्षिभ्यामिनन्' ॥ ॥ द्रविणम् । दक्षिणः । दक्षिणा ॥

२०८-द्रु और दक्षि धातुके उत्तर इनन् प्रत्यय हो, द्रविणम् । दक्षिणः । दक्षिणा ॥

२०९ 'अर्तेः किदिच्च' ॥ ॥ इरिणं शून्यम् ॥

२०९-ऋ धातुके उत्तर इनन् प्रत्यय हो, और इस

प्रत्ययकी कित्संज्ञा हो, और धातुके स्थानमें इत् आदेश हो, यथा, इरिणं शून्यम् ॥

२१० 'वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च' ॥ ॥ विपिनम् । तुहिनम् ॥

२१०–वेपि और तुहि धातुके उत्तर इनन् प्रत्यय हो और ह्रस्व हो । यथा, विपिनम् । तुहिनम् (तुषार) ॥

२११ 'तलिपुलिभ्यां च' ॥ ॥ 'तलिनं विरले स्तोके स्वच्छेऽपि तलिनं त्रिषु' । पुलिनम् ॥

२११–तलि और पुलि धातुके उत्तर इनन् प्रत्यय हो । यथा, तलिनम् अर्थात् विरल, स्तोक, स्वच्छ । स्वच्छार्थ तलिन शब्द त्रिलिङ्ग है । पुलिनम् ॥

२१२ 'गर्वेरत उच्च' ॥ ॥ गौरादित्वात् ङीष् । गुर्विणी गर्भिणी ॥

२१२–गर्व धातुके उत्तर इनन् प्रत्यय हो और अकारके स्थानमें उकार हो । गौरादिके कारण ङीष् प्रत्यय होकर स्त्रीलिङ्गमें गुर्विणी अर्थात् गर्भिणी ॥

२१३ 'रुहेश्च' ॥ ॥ रोहिणः ॥

२१३–रुह धातुके उत्तर इनन् प्रत्यय हो यथा–रोहिणः ।

२१४ 'महेरिनण् च' ॥ ॥ चादिनन् । माहिनम्–महिनं राज्यम् ॥

२१४–महि धातुके उत्तर इनण् और इनन् प्रत्यय हो । यथा, माहिनम् , महिनम् , राज्यम् ।

२१५ 'क्विब्वचिप्रच्छिश्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च' ॥ ॥ वाक् । प्राट् । श्रीः । स्रवत्यतो घृतादिकमिति स्रूर्यज्ञोपकरणम् । द्रूर्हिरण्यम् । कटप्रूः कामरूपी कीटश्च । 'जूराकाशे सरस्वत्यां पिशाच्यां जवने स्त्रियाम्' ॥

२१५–वाचि, प्रच्छि, श्रि, स्रु, द्रु, प्रु, जु धातुके उत्तर क्विप् प्रत्यय हो, पश्चात् दीर्घ हो, और संप्रसारण न हो, यथा, वाक् । प्राट् । श्रीः । स्रवत्यतो घृतादिकम् इति स्रूः यज्ञोपकरणम् । द्रूर्हिरण्यम् । कटप्रूः कामरूपी और कीटविशेष । "जूराकाशे सरस्वत्यां पिशाच्यां जवने स्त्रियाम्" । अर्थात् आकाश, सरस्वती, पिशाची और वेग अर्थमें, स्त्रीलिंगमें जानना ॥

२१६ 'आप्नोतेर्ह्रस्वश्च' ॥ ॥ आपः । अपः । अद्भिः । अद्भ्यः ॥

२१६–आप धातुके उत्तर क्विप् प्रत्यय हो । और आकार को ह्रस्व हो । आपः । अपः । अद्भिः । अद्भ्यः ॥

२१७ 'परौ व्रजेः षश्च पदान्ते' ॥ ॥ व्रजेः क्विब्दीर्घौ स्तः पदान्ते तु षश्च । परिव्राट् । परिव्राजौ ॥

२१७–परिपूर्वक व्रज धातुके उत्तर क्विप् प्रत्यय हो पश्चात् पूर्व स्वरको दीर्घ हो और पदके अन्त वर्णके स्थानमें ष हो, यथा, परिव्राट् । परिव्राजौ ॥

२१८ 'हुवः श्लुवच्च' ॥ ॥ जुहूः ॥

२१८–हु धातुके उत्तर क्विप् प्रत्यय हो । और श्लुवत् कार्य और दीर्घ हो । यथा, जुहूः ॥

२१९ 'स्रुवः कः' ॥ ॥ स्रुवः ॥

२१९–स्रु धातुके उत्तर क प्रत्यय हो । यथा, स्रुवः ।

२२० 'चिक् च ॥ ॥ इकार उच्चारणार्थः । क इत्कुत्वम् । स्रुक् । स्रुवं च स्रुचश्च सम्मृड्ढि ॥

२२०– स्रु धातुके उत्तर चिक् प्रत्यय हो, चिक्का इकार उच्चारणार्थ है ककारकी इत्संज्ञा हुई और चकारके स्थानमें ककार हुआ । स्रुक् । स्रुवं च स्रुचश्चसंमृड्ढि ॥

२२१ 'तनोतेरनश्च वः' ॥ ॥ तनोतेश्चिक् प्रत्ययः । अनो वशब्दादेशश्च । त्वक् ॥

२२१–तन धातुके उत्तर चिक् प्रत्यय हो और अन् भागके स्थानमें व आदेश हो त्वक् । (खाल) ॥

२२२ 'ग्लानुदिभ्यां डौः' ॥ ॥ ग्लौः । नौः ॥

२२२–ग्ला और नुदि धातुके उत्तर डौ प्रत्यय हो । ग्लौः । नौः ॥

२२३ 'च्विरव्ययम्' ॥ ॥ डौरित्येव । ग्लौ करोति । कृन्मेजन्त इति सिद्धे नियमार्थमिदम् । उणादिप्रत्ययान्तश्च्व्यन्त एवेति ॥

२२३–च्वि प्रत्यय अव्यय अर्थात् डौ प्रत्ययान्त च्व्यन्त अव्यय संज्ञक हो यथा–ग्लौ करोति। "कृन्मेजन्तः(४४९)"इस सूत्रसे अव्यय संज्ञा होजाती तो भी यह सूत्र किस लिये कहा?ऐसा कहो तो नियमार्थ यह सूत्र है कि उणादि प्रत्ययान्त पद च्वि प्रत्ययान्त ही अव्यय संज्ञक हों, इस नियमसे ग्लौः नौः इस स्थलमें उक्त सूत्रसे अव्यय संज्ञा न हुई ॥

२२४ 'रातेर्डैः' ॥ ॥ राः । रायौ । रायः ॥

२२४––रा धातुके उत्तर डै प्रत्यय हो । राः । रायौ । रायः ॥

२२५ 'गमेर्डोः' ॥ ॥ 'गौर्नादित्ये बलीवर्दे किरणक्रतुभेदयोः । स्त्री तु स्यादिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि । नृस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमसु' बाहुलकाद् द्युतेरपि डोः । 'द्यौः स्त्री स्वर्गान्तरिक्षयोः' ॥

२२५–गम् धातुके उत्तर डोस् प्रत्यय हो । "गौर्नादित्ये[1] बलीवर्दे किरणक्रतुभेदयोः । स्त्री तु स्यादिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि । नृस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बु रश्मिदृग्बाणलोमसु" ॥ बाहुलकबलसे द्युत धातुके उत्तर भी डोस् प्रत्यय हो । "द्यौः स्त्री स्वर्गान्तरिक्षयोः " । द्यौः स्त्रीलिंग है । स्वर्ग और अन्तरिक्षमें वर्तमान है ॥

---

१ गोशब्द–आदित्य, बलीवर्द, किरण, यज्ञ अर्थमें पुँलिङ्ग है और दिशा, वाणी, भूमि, सुरभी, स्वर्ग, वज्र, अम्बु, रश्मि, नेत्र, बाण और लोम अर्थमें पुँलिंग और स्त्रीलिङ्ग है ॥

२२६ 'भ्रमेश्च डूः' ॥ ॥ भ्रूः । चाद्गमेः । अग्रेगूः ।

२२६–भ्रम धातुके उत्तर डू प्रत्यय हो । भ्रूः । गम् धातुके उत्तर भी डू प्रत्यय हो । अग्रेगूः ॥

२२७ 'दमेर्डोसिः' ॥ ॥ दोः । दोषौ ॥

२२७–दम् धातुके उत्तर डोस् प्रत्यय हो, दोः । दोषौ ॥

२२८ 'पणेरिज्यादेश्च वः' ॥ ॥ वणिक् । स्वार्थेऽण् । 'नैगमो वाणिजो वणिक्' ॥

२२८–पण् धातुके उत्तर इजि प्रत्यय हो और पके स्थानमें व हो । यथा वणिक् । स्वार्थमें अण् प्रत्यय हुआ । "नैगमो वाणिजो वणिक्" ॥

२२९ 'वशेः कित्' ॥ ॥ 'उशिगग्नौ घृतेपि च'

२२९–वश धातुके उत्तर इजि प्रत्यय हो और यह प्रत्यय कित्संज्ञक हो । "उशिगग्नौ घृतेऽपि च" ॥

२३० 'भृञ ऊच्च' ॥ ॥ भूरिक् भूमिः ॥

२३०–भृञ् धातुके उत्तर इजि प्रत्यय हो और धातुके ऋकारके स्थानमें ऊकार हो । यथा, भूरिक् भूमिः ॥

२३१ 'जसिसहोरुरिन्' ॥ ॥ जसुरिर्वज्रम् । सहुरिरादित्यः पृथिवी च ॥

२३१–जसि और सह धातुके उत्तर उरिन् प्रत्यय हो । जसुरिः वज्रम् । सहुरिः आदित्यः पृथिवी च ॥

२३२ 'सुयुरुवृञो युच्' ॥ ॥ सवनश्चन्द्रमाः । यवनः । रवणः कोकिलः । वरणः ॥

२३२–सु, यु, रु और वृञ् धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो । सवनः–चंद्रमाः । यवनः । रवणः–कोकिलः । वरणः॥

२३३ 'अशेरश च' ॥ ॥ अश्नोतेर्युच् स्यात् रशादेशश्च । रशना काञ्ची । जिह्वावाची तु दन्त्यसकारवान् ॥

२३३–अश धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो और धातुके स्थानमें रश आदेश हो । यथा, रशना काञ्ची । जिह्वा होनेपर रसना शब्द दन्त्यसकारविशिष्ट है ॥

२३४ 'उन्देर्नलोपश्च' ॥ ॥ ओदनः ॥

२३४–उन्द धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो और धातुके नकारका लोप हो, यथा, ओदनः । उन्द+युच्=उद्+यु=उद्+अन=ओद्+अन–ओदन+सु=ओदनः (भात) ॥

२३५ 'गमेर्गश्च' ॥ ॥ गमेर्युच् स्याद्गश्चादेशः । गगनम् ॥

२३५–गम् धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो और धातुके मकारके स्थानमें ग आदेश हो, यथा–गगनम् ॥

२३६ 'बहुलमन्यत्रापि' ॥ ॥ युच् स्यात् । स्यन्दनः । रोचना ॥

२३६–बाहुलक बलसे अन्य धातुओंके उत्तर भी युच् प्रत्यय हो । स्यन्दनः । रोचना ॥

२३७ 'रञ्जेः क्युन्' ॥ ॥ रजनम् ॥

२३७–रञ्ज धातुके उत्तर क्युन् प्रत्यय हो । रजनम् ॥

२३८ 'भूसूधूभ्रस्जिभ्यश्छन्दसि' ॥ ॥ भुवनम् । सुवन आदित्यः । धुवनो वह्निः । निधुवनं सुरतम् । भृज्जनमम्बरीषम् ॥

२३८–वेदमें भू, सू, धू और भ्रस्जि धातुके उत्तर क्युन् प्रत्यय हो, यथा, भुवनम् । सुवनः–आदित्यः । धुवनः–वह्निः । निधुवनं–सुरतम्–(स्त्रीप्रसंग) । भृज्जनम्–अम्बरीषम् ॥

२३९ 'कॄपॄवृजिमन्दिनिधाञः क्युः' ॥ ॥ किरणः । पुरणः–समुद्रः । वृजनमन्तरिक्षम् । मन्दनं स्तोत्रम् । निधनम् ॥

२३९–कॄ, पॄ, वृजि, मन्दि और निपूर्वक धाञ् धातुके उत्तर क्यु प्रत्यय हो यथा–किरणः । पुरणः–समुद्रः । वृजनम् अन्तरिक्षम् । मन्दनं स्तोत्रम् । निधनम् ॥

२४० 'धृषेर्धिष च संज्ञायाम्' ॥ ॥ धिषणो गुरुः । धिषणा धीः ॥

२४०–धृष धातुके उत्तर क्यु प्रत्यय और धिष् आदेश हो । यथा, धिषणः गुरुः । धिषणा बुद्धिः ॥

२४१ 'वर्तमाने पृषद् बृहन्महज्जगच्छतृवत्'॥ अतिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पृषु सेचने । गुणाभावः । पृषन्ति । बृहत् । महान् । गमेर्जगादेशः । जगत् ॥

२४१–वर्त्तमानमें शतृप्रत्ययान्त पदकी समान अति प्रत्ययान्त–पृषत्, बृहत्, महत्, जगत् यह सम्पूर्ण शब्द भी निपातनसे सिद्ध हों । यथा, सेचनार्थक पृष् धातुको गुणाभाव होकर–पृषन्ति । बृहत् । महान् । गम् धातुके स्थानमें जगादेश होकर जगत् ॥

२४२ 'संश्चत्तृपद्वेहत्' ॥ ॥ एते निपात्यन्ते । पृथक्करणं शतृवद्भावनिवृत्त्यर्थम् । संचिनोतेः सुट् । इकारलोपः । संश्चत् कुहकः । तृपच्छत्रम् । विपूर्वाद्धन्तेष्टिलोपः इत ए च । 'वेहद्गर्भोपघातिनी' ॥

२४२–संश्चत्, तृपत्, वेहत् यह निपातनसे सिद्ध हों पृथक् सूत्रकरण शतृवद्भाव निवृत्तिके निमित्त है । संपूर्वक चि धातुके उत्तर अति प्रत्यय सुट्का आगम और इकारका लोप होकर–संश्चत् कुहकः । तृपत् छत्रम् । विपूर्वक हन् धातुके उत्तर अति प्रत्यय, टिका लोप और इकारके स्थानमें एकार होकर–वेहत् गर्भोपघातिनी ॥

२४३ 'छन्दस्यसानच् शुजॄभ्याम्' ॥ ॥ शवसानः पन्थाः । जरसानः पुरुषः ॥

२४३–वेदमें शु और जॄ धातुके उत्तर असानच् प्रत्यय हो । यथा–शवसानः पन्थाः । जरसानः पुरुषः ॥

२४४ 'ऋञ्जिवृधिमन्दिसहिभ्यः कित्' ॥ ॥ ऋञ्जसानो मेघः । वृधसानः पुरुषः । मन्दसानोऽग्निर्जीवश्च । सहसानो यज्ञो मयूरश्च ॥

२४४–ऋञ्ज्,वृध्, मन्द् और सह् धातुके उत्तर असानच्

प्रत्यय हो और वह कित् हो, यथा-ऋञ्जसानो मेघः। वृधसानः पुरुषः। मन्दसानः, अर्थात् अग्नि और जीव।सहवानः, अर्थात् यज्ञ और मयूर॥

२४५ 'अर्तेर्गुणः शुट् च'॥ ॥अर्शसानोऽग्निः॥

२४५-ऋ धातुके उत्तर असानच् प्रत्यय, शुट्का आगम और गुण हो, यथा-अर्शसानः अर्थात् अग्निः॥

२४६ 'सम्यानच् स्तुवः' ॥ ॥ संस्तवानो वाग्मी ॥

२४६-सम्पूर्वक स्तु धातुके उत्तर आनच् प्रत्यय हो, यथा संस्तवानो वाग्मी॥

२४७ 'युधिबुधिदृशिभ्यः किच्च' ॥ ॥ युधानः। बुधानः। दृशानो लोकपालकः॥

२४७-युध्, बुध् और दृश् धातुके उत्तर आनच् प्रत्यय हो और वह कित् हो, यथा-युधानः। बुधानः। दृशानो लोकपालकः॥

२४८ 'हुर्छेः सनो लुक् छलोपश्च' ॥ ॥ जुहुराणश्चन्द्रमाः॥

२४८-सन्नन्त हुर्छ् धातुके उत्तर आनच् प्रत्यय हो और सन्का लुक् और छकारका लोप हो, यथा-जुहुराणश्चन्द्रः॥

२४९ 'श्वितेर्दश्च' ॥ ॥ शिश्विदानः पुण्यकर्मा॥

२४९-सन्नन्त श्विता धातुके उत्तर आनच् प्रत्यय हो और सन्का लुक् तकारके स्थानमें द आदेश हो, यथा-शिश्विदानः पुण्यकर्म्मा॥

२५० 'तृन्तृचौ शंसिक्षदादिभ्यः संज्ञायां चानिटौ' ॥ ॥ शंसेः क्षदादिभ्यश्च क्रमात्तृन्तृचौ स्तः। तौ चानिटौ। शंस्ता स्तोता। शंस्तरौ। शंस्तरः। क्षदिः सौत्रो धातुः शकलीकरणे भक्षणे च। अनुदात्तेत्। 'वृक्ये चक्षदानम्' इति मन्त्रात्। 'उक्षाणं वा वेहतं वा क्षदन्ते' इति ब्राह्मणाच्च। 'क्षत्ता स्यात्सारथौ द्वाःस्थे वैश्यायामपि शूद्रजे' ॥

२५०-संज्ञा होनेपर शंस् और क्षद् आदि धातुओंके उत्तर यथाक्रम तृन् और तृच् प्रत्यय हो, और दोनों प्रत्यय अनिट् हों, यथा-शंस्ता स्तोता। शंस्तरौ। शंस्तरः। क्षद् यह सूत्रसम्बन्धी धातु है, यह शकलीकरण और भक्षणार्थमें प्रयुक्त होताहै। 'वृक्ये चक्षदानम्' इस मंत्रके अनुसार और "उक्षाणं वा वेहतं वा क्षदन्ते" इस ब्राह्मणके अनुसार यह अनुदात्तेत् अर्थात् आत्मनेपदी है क्षत्ता अर्थात् सारथि, द्वारपाल और वैश्यामें शूद्रसे उत्पन्न हुआ व्यक्ति॥

२५१ 'बहुलमन्यत्रापि'। मन्। मन्ता। हन्। हन्ता। इत्यादि॥

२५१-अन्यत्र भी बहुलप्रकारसे उक्त प्रत्यय हों, यथा-मन्-मन्ता। हन्-हन्ता, इत्यादि॥

२५२ 'नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृभ्रातृजामातृमातृपितृदुहितृ' ॥ ॥ न पतन्त्यनेन पितरो नरके इति नप्ता पौत्रो दौहित्रश्च। नयतेः षुग्गुणश्च। नेष्टा। त्विषेरितोऽत्वम्। त्वष्टा। होता। पोता ऋत्विग्भेदः। भ्राजतेर्जलोपः। भ्राता। जायां माति जामाता। मान पूजायाम्। नलोपः। माता। पातेराकारस्य इत्वम्। पिता। दुहेस्तृच् इट् गुणाभावश्च। दुहिता॥

२५२-नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, होतृ, पोतृ, भ्रातृ, जामातृ, मातृ, पितृ, दुहितृ, यह निपातनसे सिद्ध हों, न पतन्त्यनेन इति=नप्ता, अर्थात् जिसके होनेसे नरकमें पात न हो ऐसा पौत्र वा दौहित्र। नी धातुके उत्तर तृन् प्रत्यय, षुक्का आगम और गुण होकर-नेष्टा। त्विष् धातुके इकारके स्थानमें अकार होकर-त्वष्टा। होता। पोता-ऋत्विग्भेदः। भ्राज् धातुके जकारका लोप होकर-भ्राता। जायां माति=जामाता। मान् धातु पूजा करनेमें है। इससे तृन् प्रत्यय और नकारका लोप होकर-माता। पा धातुके अकारके स्थानमें इकार होकर-पिता। दुह् धातुके उत्तर तृच् को इट् और धातुको गुणाभाव होकर-दुहिता॥

२५३ 'सुव्यसेर्ऋन्' ॥ ॥ स्वसा॥

२५३-सुपूर्वक अस् धातुके उत्तर ऋन् प्रत्यय हो, स्वसा॥

२५४ 'यतेर्वृद्धिश्च' ॥ ॥ याता। 'भार्यास्तु भ्रातृवर्गस्य यातरः स्युः परस्परम्'॥

२५४-यत् धातुके उत्तर ऋन् हो और उपधाको वृद्धि हो, याता।"भार्यास्तु भ्रातृवर्गस्य यातरः स्युः परस्परम्"(भाइयोंकी बहुएं परस्पर याता कहाती हैं)॥

२५५ 'नञि च नन्देः' ॥ ॥ न नन्दति ननान्दा। इह वृद्धिर्नानुवर्तत इत्येके। 'ननान्दा तु स्वसा पत्युर्ननन्दा नन्दिनी च सा' इति शब्दार्णवः ॥

२५५-नञ्पूर्वक नन्द् धातुके उत्तर ऋन् प्रत्यय हो, न नन्दति=ननान्दा। कोई कहतेहैं, इस सूत्रमें वृद्धिकी अनुवृत्ति नहीं आती है। "ननान्दा तु स्वसा पत्युर्ननन्दा नन्दनी च सा" इति शब्दार्णवः (पतिकी बहन ननान्दा कहाती है)॥

२५६ 'दिवेर्ऋः'[1] ॥ ॥ देवा। देवरः॥ 'स्वामिनो देवृदेवरौ'॥

२५६-दिव् धातुके उत्तर ऋ प्रत्यय हो, देवा। देवरः। "स्वामिनो देवृदेवरौ"॥

२५७ 'नयतेर्डिच्च' ॥ ॥ ना। नरौ। नरः॥

२५७-नी धातुके उत्तर ऋ प्रत्यय हो और वह प्रत्यय डित् हो, ना। नरौ। नरः॥

---

१ 'स्वावसेः' इति तु क्वाचित्कः पाठः। मनोरमायां तु नोपलभ्यते।

२५८ 'सव्ये स्थश्छन्दसि' ॥ ॥ अम्बाम्बेत्यत्र स्थास्थिन्स्थॄणामुपसंख्यानम् ॥ ॥ सव्येष्ठा सारथिः । सव्येष्ठरौ । सव्येष्ठरः ॥

२५८-वेदमें सव्यशब्दपूर्वक स्था धातुके उत्तर ऋ प्रत्यय हो । "अम्बाम्ब० २९१८" इस सूत्रमें ॥ स्था,स्थिन्,स्थॄ एतत्सम्बन्धी सकारको भी षत्वका उपसंख्यान करना चाहिये * यथा-सव्येष्ठा सारथिः।सव्येष्ठरौ । सव्येष्ठरः॥

२५९ 'अर्तिसृधृधम्यम्यश्यवितॄभ्योऽनिः'॥ ॥ अष्टभ्योऽनिप्रत्ययः स्यात् । अरणिरग्नेर्योनिः । सरणिः । धरणिः । धमनिः । अमनिर्गतिः । अशनिः । अवनिः।तरणिः।बाहुलकात् रजनिः ॥

२५९-ऋ, सृ, धृ, धम्, अम्, अश्, अव् और तॄ धातुके उत्तर अनि प्रत्यय हो, अरणिः अग्नेर्योनिः । सरणिः । धरणिः। धमनिः । अमनिर्गतिः । अशनिः । अवनिः।तरणिः। बाहुलकबलसे-रजनिः ॥

२६० 'आङि शुषेः सनश्छन्दसि' ॥ ॥ आशुशुक्षणिरग्निर्वातश्च ॥

२६०-वेदमें आङ्पूर्वक सन्नन्त शुष् धातुके उत्तर अनि प्रत्यय हो, आशुशुक्षणिः अग्निर्वायुश्च ॥

२६१ 'कृषेरादेश्च चः' ॥ ॥ चर्षणिर्जनः ॥

२६१-कृष् धातुके उत्तर अनि प्रत्यय हो और कके स्थानमें च हो, चर्षणिर्जनः ॥

२६२ 'अदेर्मुट् च' अद्मनिरग्निः ॥

२६२-अद् धातुके उत्तर अनि प्रत्यय हो और मुट्का आगम हो, अद्मनिः-अग्निः ॥

२६३ 'वृतेश्च' ॥ ॥ वर्तनिः । गोवर्धनस्तु चकारान्मुट् वर्त्मनिरित्याह ॥

२६३-वृत् धातुके उत्तर अनि प्रत्यय हो, वर्त्तनिः । गोवर्द्धनके मतसे तो चकारसे मुट् होकर ' वर्त्मनिः ' ऐसा होगा ॥

२६४ 'क्षिपेः किच्च' ॥ ॥ क्षिपणिरायुधम् ॥

२६४-क्षिप् धातुके उत्तर अनि प्रत्यय हो और प्रत्यय कित् हो, क्षिपणिरायुधम् ॥

२६५ 'अर्चिशुचिहुसृपिच्छादिच्छर्दिभ्य इसिः' ॥ ॥ अर्चिर्ज्वाला । इदन्तोऽप्ययम् । 'अग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः' । शोचिर्दीप्तिः । हविः । सर्पिः । इस्मन्निति ह्रस्वः । छदिः पटलम् । छर्दिर्वमनव्याधिः । इदन्तोऽपि । 'छर्द्यतीसारशूलवान्' ॥

२६५-अर्च्, शुच्, हु, सृप्, छदि और छर्द धातुके उत्तर इसि प्रत्यय हो, अर्चिर्ज्वाला । यह शब्द इदन्त भी है यथा-'अग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः' । शोचिः-दीप्तिः । हविः । सर्पिः। "इस्मन्० २९८५" इस सूत्रसे ह्रस्व होकर=छदिः पटलम्। छर्दिर्वमनव्याधिः । यह इदन्त भी है । यथा-"छर्द्यतीसारशूलवान्" ॥

२६६ 'बृंहेर्नलोपश्च' ॥ ॥ 'बर्हिर्ना कुशशुष्मणोः' ॥

२६६-बृंह् धातुके उत्तर इसि प्रत्यय और नकारका लोप हो,यथा-"बर्हिर्ना कुशशुष्मणोः"(बर्हिः शब्द कुश और अग्निवाचक है) ॥

२६७ 'द्युतेरिसिन्नादेश्च जः' ॥ ॥ ज्योतिः॥

२६७-द्युत् धातुके उत्तर इसिन् प्रत्यय हो और आदि अर्थात् दके स्थानमें ज हो, ज्योतिः ॥

२६८ 'वसौ रुचेः संज्ञायाम्' ॥ ॥ वसुरोचिर्यज्ञः ॥

२६८-वसु शब्दपूर्वक रुच् धातुके उत्तर संज्ञामें इसिन् प्रत्यय हो, यथा-वसुरोचिर्यज्ञः ॥

२६९ 'भुवः कित्' ॥ ॥ भुविः समुद्रः ॥

२६९-भू धातुके उत्तर इसिन् प्रत्यय हो और प्रत्यय कित् हो, भुविः समुद्रः ॥

२७० 'सहो धश्च' ॥ ॥ सधिरनड्वान् ॥

२७०-सह् धातुके उत्तर इसिन् प्रत्यय हो और हके स्थानमें ध हो, सधिरनड्वान् (बैल) ॥

२७१'पिबतेस्थुक्'॥ ॥'पाथिश्चक्षुःसमुद्रयोः'।

२७१-पा धातुके उत्तर इसिन् प्रत्यय और थुक्का आगम हो, पाथिः, अर्थात् चक्षु और समुद्र ॥

२७२ 'जनेरुसिः' ॥ ॥ जनुर्जननम् ॥

२७२-जन् धातुके उत्तर उसि प्रत्यय हो, जनुर्जननम् ॥

२७३ 'मनेर्धश्छन्दसि' ॥ ॥ मधुः ॥

२७३-वेदमें मन् धातुके उत्तर उसि प्रत्यय हो और नके स्थानमें ध हो, मधुः ॥

२७४'अर्तिपॄवपियजितनिधनितपिभ्यो नित्'॥ अरुः । परुर्ग्रन्थिः । वपुः । यजुः । तनुः।तनुषी। तनूंषि । धनुरस्त्रियाम् । 'धनुर्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति' । सान्तस्योदन्तस्य वा रूपम् । 'तपुः सूर्याग्निशत्रुषु' ॥

२७४-ऋ, पॄ, वप्, यज्, तन्,धन् और तप् धातुके उत्तर उसि प्रत्यय हो और वह प्रत्यय नित् हो, अरुः । परुर्ग्रन्थिः । वपुः । यजुः । तनुः । तनुषी । तनूंषि । धनुः शब्द स्त्रीलिङ्ग नहीं है । "धनुर्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति" यह सान्त अथवा उकारान्तका रूप है । तपुः, अर्थात् सूर्य, अग्नि और शत्रु ॥

२७५ 'एतेर्णिच्च' ॥ ॥ आयुः । आयुषी ॥

२७५-इण् धातुके उत्तर उसि प्रत्यय हो और वह प्रत्यय णित् हो, आयुः । आयुषी ॥

२७६ 'चक्षेः शिच्च' ॥ ॥ शित्वात्सार्वधातुकत्वेन ख्याञ्ञबाधः । चक्षुः ॥

२७६-चक्ष् धातुके उत्तर उसि प्रत्यय हो और वह शित् हो, शित्वके कारण सार्वधातुक होनेसे ख्याञ् आदेश न होकर चक्षुः (नेत्र) ॥

२७७ 'मुहेः किच्च' ॥ ॥ मुहुरव्ययम् ॥

२७७–मुह् धातुके उत्तर उसि प्रत्यय हो और वह कित् हो, मुहुः (वारंवार) यह अव्यय है ॥

२७८ 'बहुलमन्यत्रापि'। आचक्षुः।परिचक्षुः॥

२७८–अन्यत्र भी बहुल प्रकारसे उक्त प्रत्यय हो,आचक्षुः। परिचक्षुः ॥

२७९ 'कॄगॄशॄवृञ्चतिभ्यः ष्वरच्' ॥ ॥ 'कर्वरो व्याघ्ररक्षसोः'। गर्वरोऽहंकारी। शर्वरी रात्रिः। 'वर्वरः प्राकृतो जनः'। चत्वरम् ॥

२७९–कॄ, गॄ, शॄ, वृञ् और चत् धातुके उत्तर ष्वरच् प्रत्यय हो, कर्वरः, अर्थात् व्याघ्र और राक्षस। गर्वरोऽहंकारी। शर्वरी रात्रिः। वर्वरः प्राकृतजनः। चत्वरम् (चौराहा) ॥

२८० 'नौ सदेः' ॥ ॥ 'निषद्वरस्तु जम्बालः'। निषद्वरी रात्रिः ॥

॥ इत्युणादिषु द्वितीयः पादः ॥

२८०–निपूर्वक सद् धातुके उत्तर ष्वरच् प्रत्यय हो, निषद्वरः, अर्थात् जम्बालः। निषद्वरी रात्रिः ॥

॥ इत्युणादिसूत्रे द्वितीयपादः ॥

---

२८१ 'छित्वरछत्वरधीवरपीवरमीवरचीवरतीवरनीवरगह्वरकट्वरसंयद्वराः' ॥ ॥ एकादश ष्वरच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। छिदिर् छद् अनयोस्तकारोऽन्तादेशः छिदेर्गुणाभावश्च। छित्वरो धूर्तः। 'छत्वरो गृहकुञ्जयोः'। धीवरः कैवर्तः। पीवरः स्थूलः। मीवरो हिंसकः। चिनोतेर्दीर्घश्च। चीवरं भिक्षुकप्रावरणम्। तीवरो जातिविशेषः। नीवरः परिव्राट्। गाहतेर्ह्रस्वत्वम्। गह्वरम्। कटे वर्षादौ। कट्वरं व्यञ्जनम्। यमेर्दकारः। संयद्वरो नृपः। पदेः सम्पद्वर इत्येके ॥

२८१–छित्वर, छत्वर, धीवर, पीवर, मीवर, चीवर, तीवर, नीवर, गह्वर, कट्वर, संयद्वर यह ११ ष्वरच्प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हैं। छिदिर्, छद्, इन दो धातुओंके तकारान्तादेश और धातुके इकारको गुणाभाव होकर–छित्वरः धूर्त्तः। छत्वरः–गृह और कुञ्ज। धीवरः कैवर्त्तः। पीवरः स्थूलः। मीवरो हिंसकः। चि धातुको दीर्घ होकर–चीवरम् (भिक्षुकका वस्त्र) तीवरो जातिविशेषः। नीवरः परिव्राट्। गाह् धातुको ह्रस्व होकर–गह्वरम्। कटे धातु वर्षादि अर्थमें है। उससे ष्वरच् होकर–कट्वरम् व्यंजनम्। यम् धातुके मके स्थानमें द होकर–संयद्वरो नृपः। पद् धातुका 'संपद्वरः' ऐसा रूप कोई २ कहते है ॥

२८२ 'इण्सिञ्जिदीङुष्यविभ्यो नक्'॥ ॥ 'इनः सूर्ये नृपे पत्यौ'। सिनः काणः। जिनोऽर्हन्। दीनः। उष्णः। ऊनः ॥

२८२–इण्, सिञ्, जि, दीङ्, उष् और अव् धातुके उत्तर नक् प्रत्यय हो, 'इनः सूर्ये नृपे पत्यौ'। सिनः काणः। जिनोऽर्हन्। दीनः। उष्णः। ऊनः (न्यून) ॥

२८३ 'फेनमीनौ' ॥ ॥ एतौ निपात्येते। स्फायतेः फेनः। मीनः ॥

२८३–फेन और मीन शब्द निपातनसे सिद्ध हों, स्फाय् धातुका फेनः। मीनः ॥

२८४ 'कृषेर्वर्णे' ॥ ॥ कृष्णः ॥

२८४–वर्ण होनेपर कृष् धातुके उत्तर नक् प्रत्यय हो,कृष्णः (श्याम) ॥

२८५ 'बन्धेर्ब्रधिबुधी च' ॥ ॥ ब्रध्नः। बुध्नः॥

२८५–बन्ध् धातुके उत्तर नक् प्रत्यय हो और धातुके स्थानमें ब्रध् और बुध् आदेश हो, ब्रध्नः। बुध्नः ॥

२८६ 'धापॄवस्यज्यतिभ्यो नः' ॥ ॥ 'धाना भृष्टयवे स्त्रियः'। पर्णं पत्रम्। पर्णः किंशुकः। 'वस्नो मूल्ये वेतने च'। अजेर्वी। वेनः। अत्न आदित्यः। बाहुलकात्–श्रृणोतेः श्रोणः पंगुः ॥

२८६–धा, पॄ, वस्, अज् और अत् धातुके उत्तर न प्रत्यय हो, "धाना भृष्टयवे स्त्रियः"। पर्णं पत्रम्। पर्णः किंशुकः। "वस्नो मूल्ये वेतने च"। अज धातुके स्थानमें वी आदेश होकर वेनः। अत्नः आदित्यः। बाहुलकबलसे श्रु धातुके भी उत्तर न प्रत्यय होकर–श्रोणः पंगुः ॥

२८७ 'लक्षेरट् च' ॥ ॥ लक्षेश्चुरादिण्यन्तान्नः स्यात्तस्याडागमश्च। चान्मुडित्येके। 'लक्षणं लक्ष्मणं नाम्नि चिह्ने च'। लक्षणो लक्ष्मणश्च रामभ्राता। 'लक्षणा हंसयोषायां सारसस्य च लक्ष्मणा' ॥

२८७–चुरादि णिजन्त लक्ष् धातुके उत्तर न प्रत्यय हो और उसको अडागम हो, चकारसे मुट्का आगम हो, यह कोई कहतेहैं। "लक्षणं लक्ष्मणं नाम्नि चिह्ने च" लक्षणो लक्ष्मणश्च रामभ्राता "लक्षणा हंसयोषायां सारसस्य च लक्ष्मणा"। (हंसी लक्षणा और सारसी लक्ष्मणा कहातीहै) ॥

२८८ 'वनेरिच्चोपधायाः' ॥ ॥ वेन्ना नदी ॥

२८८–वन् धातुके उत्तर न प्रत्यय हो, और उपधाको इकार हो, यथा–वेन्ना नदी ॥

२८९ 'सिवेष्टेर्यू च' ॥ ॥ दीर्घोच्चारणसामर्थ्यान्न गुणः। स्यून आदित्यः। बाहुलकात् केवलो नः। ऊठ्। अन्तरङ्गत्वाद्यण्। गुणः। स्योनः॥

२८९–सिव् धातुके उत्तर न प्रत्यय हो, और टिको यू आदेश हो, दीर्घोच्चारणके कारण गुण न होगा, यथा–स्यूनः आदित्यः। बाहुलकबलसे केवल न प्रत्यय और ऊठ्, अन्तरङ्गत्वके कारण यण् और गुण होकर–स्योनः ॥

२९० 'कॄवॄजॄसिद्रुपन्यनिस्वपिभ्यो नित्'॥ ॥ कर्णः। वर्णः। 'जर्णश्चन्द्रे च वृक्षे च'। सेना।

---

१ वृञ्वरणे। दीर्घपाठे तु वॄ वरणे।

द्रोणः । पन्नो नीचैर्गतिः । अन्नमोदनः । स्वप्नो निद्रा ॥

२९०–कृ, वृ, जॄ, षि, द्रु, पद्, अन् और स्वप् धातुके उत्तर न हो और वह नित् हो, कर्णः । वर्णः । जर्णः, अर्थात् चन्द्र और वृक्ष । सेना । द्रोणः । पन्नो नीचैर्गतिः । अन्नमोदनम् । स्वप्नो निद्रा ॥

२९१ 'धेट् इच्च' ॥ ॥ धेनः सिन्धुर्नदी धेना॥

२९१–धेट् धातुके उत्तर न प्रत्यय हो और इत्त्व हो, 'धेनः सिन्धुर्नदी धेना' ॥

२९२ 'तृषिशुषिरसिभ्यः कित्' ॥ ॥ तृष्णा। शुष्णः सूर्यो वह्निश्च । रस्नं द्रव्यम् ॥

२९२–तृष्, शुष् और रस् धातुके उत्तर न प्रत्यय हो और वह कित् हो, तृष्णा । शुष्णः, अर्थात् सूर्य और वह्नि । रस्नम्–द्रव्यम् ॥

२९३ 'सुवो दीर्घश्च' ॥ ॥ सूना वधस्थानम्॥

२९३–सुञ् धातुके उत्तर न प्रत्यय हो और दीर्घ हो, सूना–वधस्थानम ॥

२९४ 'रमेस्त च' ॥ ॥ रमयतीति रत्नम्॥

२९४–रम् धातुके उत्तर न प्रत्यय हो और मके स्थानमें त हो, रमयति इति=रत्नम् ॥

२९५ 'रास्नासास्नास्थूणावीणाः' ॥ ॥ रास्ना गन्धद्रव्यम् । सास्ना गोगलकम्बलः । स्थूणा गृहस्तम्भः। वीणा वल्लकी ॥

२९५–रास्ना, सास्ना, स्थूणा और वीणा यह पद निपातनसे सिद्ध हों, रास्ना गंधद्रव्यम् । सास्ना–गोगल कम्बलः । स्थूणा गृहस्तम्भः । वीणा वल्लकी ॥

२९६ 'गादाभ्यामिष्णुच्' ॥ ॥ गेष्णुर्गायनः। देष्णुर्दाता ॥

२९६–गा और दा धातुके उत्तर इष्णुच् प्रत्यय हो, गेष्णुः–गायनः । देष्णुः–दाता ॥

२९७ 'कृत्यशूभ्यः क्स्नः' ॥ ॥ कृत्स्नम् । अक्ष्णमखण्डम् ॥

२९७–कृत् और अश् धातुके उत्तर क्स्न प्रत्यय हो । कृत्स्नम् । अक्ष्णम्–अखण्डम् ॥

२९८ 'तिजेर्दीर्घश्च' ॥ ॥ तीक्ष्णम् ॥

२९८–तिज धातुके उत्तर क्स्न प्रत्यय और दीर्घ हो, तीक्ष्णम् ॥

२९९ 'श्लिषेरच्चोपधायाः' ॥ ॥ श्लक्ष्णम्॥

२९९–श्लिष् धातुके उत्तर क्स्न प्रत्यय हो और उपधाको अकार हो, श्लक्ष्णम्–(चिकना) ॥

३०० 'यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच्' ॥ ॥ यज्युरध्वर्युः 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' शुन्ध्युरग्निः। दस्युस्तस्करः । जन्युः शरीरी ॥

३००–यज्, मन्, शुन्ध्, दस् और जन् धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो, यज्युः–अध्वर्युः । मन्युः अर्थात् दैन्य, क्रतु और क्रोध । शुन्ध्युः–अग्निः । दस्युस्तस्करः । जन्युः शरीरी ॥

३०१ 'भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ' ॥ ॥ भुज्युर्भाजनम् । मृत्युः ॥

३०१–भुज् और मृङ् धातुके उत्तर यथाक्रम युक् और त्युक् प्रत्यय हो, भुज्युर्भाजनम् (वर्तन) । मृत्युः ॥

३०२ 'सर्तेरयुः' ॥ ॥ सरयुर्नदी । अयूरिति पाठान्तरम् । सरयूः ॥

३०२–सृ धातुके उत्तर अयु प्रत्यय हो, सरयुः–नदी । 'अयूः' ऐसा पाठान्तर है, सरयूः ॥

३०३ 'पानीविषिभ्यः पः' ॥ ॥ पाति रक्षत्यस्मादात्मानमिति पापम् । तद्योगात्पापः । नेपः पुरोहितः । बाहुलकाद्गुणाभावे नीपो वृक्षविशेषः । वेष्पः पानीयम् ॥

३०३–पा, नी, विष् धातुके उत्तर प प्रत्यय हो, पाति रक्षति अस्मात् आत्मानम् इति=पापम् । उसके योगके कारण पापः । नेपः पुरोहितः । बाहुलकबलसे गुण न होकर–नीपः वृक्षविशेषः । वेष्पः पानीयम् ॥

३०४ 'च्युवः किच्च' ॥ ॥ च्युपो वक्त्रम् ॥

३०४–च्यु धातुके उत्तर प प्रत्यय हो और वह कित् हो, च्युपो वक्त्रम् ॥

३०५'स्तुवो दीर्घश्च'॥ ॥ स्तूपः समुच्छ्रायः॥

३०५–स्तु धातुके उत्तर प प्रत्यय हो, और उकारको दीर्घ हो, स्तूपः समुच्छ्रायः ॥

३०६ 'सुशॄभ्यां निच्च' ॥ ॥ चात्कित् । सूपः। बाहुलकादूत्वम् । शूर्पम् ॥

३०६–सु और शॄ धातुके उत्तर प प्रत्यय हो, और वह नित् हो और चकारसे कित् हो, सूपः । बाहुलकसे ऊत्व होकर–शूर्पम् ॥

३०७ 'कुयुभ्यां च' ॥ कुवन्ति मण्डूका अस्मिन् कूपः । युवन्ति बध्नन्त्यस्मिन्पशुमिति यूपो यज्ञस्तम्भः ॥

३०७–कु और यु धातुके उत्तर प प्रत्यय हो, कुवन्ति मण्डूका अस्मिन्=कूपः । युवन्ति बध्नन्ति अस्मिन् पशुमिति=यूपः यज्ञस्तंभः ॥

३०८'खष्पशिल्पशष्पबाष्परूपपर्पतल्पाः'॥ ॥ सप्तैते पप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । खनतेर्नकारस्य षत्वम् । 'खष्पौ क्रोधबलात्कारौ' । शीलतेर्ह्रस्वः। शिल्पं कौशलम् । शसु हिंसायाम् । निपातनात्षत्वम् । शष्पं बालतृणं प्रतिभाक्षयश्च । बाधतेः षः । 'बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः' । बाष्पं च । रौतेर्दीर्घः । 'रूपं स्वभावे सौन्दर्ये' । पॄ । पर्पं गृहं बालतृणं पंगुपीठं च । तल प्रतिष्ठाकरणे चुरादिणिचो लुक् । 'तल्पं शय्याट्टदारेषु' ॥

३०८–खष्प, शिल्प, शष्प, बाष्प, रूप, पर्प, तल्प, यह ७ पप्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हों, खन् धातुके नकारके स्थानमें ष् होकर–खष्पः, अर्थात् क्रोध और बलात्कार। शील् धातुको ह्रस्व होकर–शिल्पं कौशलम्। हिंसार्थक सु धातुके सकारको निपातनसे षत्व होकर–शष्पम् अर्थात् बालतृण और प्रतिभाक्षय। बाध् धातुके धको ष आदेश होकर–'बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः'। बाष्पञ्च।रु धातुके उकारको दीर्घ होकर–"रूपं स्वभावे सौन्दर्ये"। पृ धातुका–पर्पम्, अर्थात् गृह, बालतृण और पंगुपीठ। तल् धातु प्रतिष्ठाकरनेमें है। उससे विहित चुरादि णिच्का लोप होकर–"तल्पं शय्याट्टदारेषु"॥

३०९ 'स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच्'॥ ॥ अयामन्तेति णेरयादेशः। स्तनयित्नुः। हर्षयित्नुः। पोषयित्नुः। गदयित्नुर्वावदूकः। मदयित्नुर्मदिरा॥

३०९–ण्यन्त–स्तन्, हृष्, पु, गद् और मद् धातुके उत्तर इत्नुच् प्रत्यय हो, "अयामन्त० २३११" इस सूत्रसे णिके स्थानमें अयादेश होकर–स्तनयित्नुः (बादल)। हर्षयित्नुः। पोषयित्नुः। गदयित्नुः–वावदूकः। मदयित्नुः–मदिरा॥

३१०'कृहनिभ्यां क्त्नुः'॥ ॥ कृत्नुः शिल्पी। हत्नुर्व्याधिः शस्त्रं च॥

३१०–कृ और हन् धातुके उत्तर क्त्नु प्रत्यय हो, कृत्नुः–शिल्पी। हत्नुः, अर्थात् व्याधि और शस्त्र॥

३११ 'गमेः सन्वच्च'॥ ॥ जिगत्नुः॥

३११–गम् धातुके उत्तर क्त्नु प्रत्यय हो और उसको सन्वद्भाव हो, जिगत्नुः॥

३१२ 'दाभाभ्यां नुः'॥ ॥ दानुर्दाता। भानुः॥

३१२–दा और भा धातुके उत्तर नु प्रत्यय हो, दानुः–दाता। भानुः (सूर्य)॥

३१३ 'वचेर्गश्च'॥ ॥ वग्नुः॥

३१३–वच् धातुके उत्तर नु प्रत्यय हो, और चके स्थानमें ग हो, वग्नुः॥

३१४ 'धेट इच्च'॥ ॥ धयति सुतानिति धेनुः॥

३१४–धेट् धातुके उत्तर नु प्रत्यय हो, और आकारको इत् हो, धयाति सुतान् इति=धेनुः॥

३१५ 'सुवः कित्'॥ ॥ 'सूनुः पुत्रेऽनुजे रवौ'॥

३१५–सू धातुके उत्तर नु प्रत्यय हो, और वह कित् हो, "सूनुः पुत्रेऽनुजे रवौ" अर्थात् पुत्र, छोटा-भाई और रवि॥

३१६ 'जहातेर्द्वे अन्तलोपश्च'॥ जह्नुः॥

३१६–हा धातुके उत्तर नु प्रत्यय हो, और धातुको द्वित्व, अन्तका लोप हो, जह्नुः (ऋषिविशेष)॥

३१७'स्थोणुः'॥ ॥'स्थाणुः कीले स्थिरे हरे'॥

३१७–स्था धातुके उत्तर णु प्रत्यय हो, "स्थाणुः कीले स्थिरे हरे"॥

३१८ 'अजिवृरीभ्यो निच्च'॥ ॥ अजेर्वी। वेणुः। वर्णुर्नददेशभेदयोः। 'रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः'॥

३१८–अज्, वृ और री धातुके उत्तर णु प्रत्यय हो, और वह नित् हो। अज् धातुके स्थानमें वी देश होकर-वेणुः। वर्णुः नददेशभेदयोः। "रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूः"॥

३१९ 'विषेः किच्च'॥ ॥ विष्णुः॥

३१९–विष् धातुके उत्तर णु प्रत्यय हो, और वह कित् हो, विष्णुः॥

३२० 'कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः'॥ ॥ बाहुलकान्न कस्येत्संज्ञा। 'कर्को धवलघोटकः' दाको दाता। धाकोऽनड्वानाधारश्च। राका पौर्णमासी। अर्कः। 'कल्कः पापाशये पापे दम्भे विट्किट्टयोरपि'॥

३२०–कृ, दा, धा, रा, अर्च् और कल् धातुके उत्तर क प्रत्यय हो,"कर्को धवलघोटकः"। दाको दाता। धाकोऽनड्वान् आधारश्च। राका पौर्णमासी। अर्कः। "कल्कः पापाशये पापे दम्भे विट्किट्टयोरपि"॥

३२१ 'सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक्'॥ ॥ 'सृक उत्पलवातयोः'। 'वृकः श्वापदकाकयोः'। भूकं छिद्रम्। शुष्कः। मुष्कोऽण्डम्॥

३२१–सृ, वृ, भू, शुष्, मुष् धातुओंके उत्तर कक् प्रत्यय हो, सृकः, अर्थात् उत्पल और वायु। वृकः, अर्थात् श्वापद और काक। भूकं छिद्रम्। शुष्कः। मुष्कः–अण्डकोषः॥

३२२ 'शुकवल्कोल्काः'॥ ॥ शुभेरन्त्यलोपः। शुकः। 'वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्'। उष दाहे। षस्य लः। उल्का॥

३२२–शुक, वल्क, उल्क यह तीन कक्प्रत्ययान्त शब्द निपातनसे सिद्ध हों, शुभ् धातुके अन्तवर्णका लोप होकर–शुकः। वल्कं वल्कलम्। दाहार्थक उष् धातुके षके स्थानमें ल होकर–उल्का॥

३२३ 'इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्'॥ 'एके मुख्यान्यकेवलाः' 'भेको मण्डूकमेघयोः' इति विश्वमेदिन्यौ। काकः। पाकः शिशुः। शल्कं शकलम्। अत्कः पथिकः शरीरावयवश्च। मर्कः शरीरवायुः॥

३२३–इण्, भी, का, पा, शल्, अत्, मर्च् धातुओंके उत्तर कन् प्रत्यय हो, यथा–"एके मुख्यान्यकेवलाः" "भेको मण्डूकमेघयोः" यह विश्व और मेदिनीकोषमें है। काकः। पाकः शिशुः। शल्कं शकलम्। अत्कः पथिकः–शरीरावयवश्च। मर्कः शरीरवायुः॥

३२४ 'नौ हः' ॥ ॥ जहातेः कन् स्यान्नौ । निहाका गोधिका ॥

३२४-निपूर्वक हा धातुके उत्तर कन् प्रत्यय हो, निहाका गोधिका ॥

३२५ 'नौ सदेर्डिच्च' ॥ ॥ 'निष्कोऽस्त्री हेम्नि तत्पले' ॥

३२५--निपूर्वक सद् धातुके उत्तर कन् प्रत्यय हो, और वह प्रत्यय डित् हो, निष्कः, अर्थात् सुवर्ण और उसका पल ॥

३२६ 'स्यमेरीट् च' ॥ ॥ स्यमीको वल्मीकः वृक्षभेदश्च । इट् ह्रस्व इति केचित् । स्यमिकः ॥

३२६-स्यम् धातुके उत्तर कन् प्रत्यय हो, और ईट् हो, स्यमीको वल्मीको वृक्षविशेषश्च । किसी २ के मतसे ह्रस्व इट् होगा, स्यमिकः ॥

३२७ 'अजियुधुनीभ्यो दीर्घश्च' ॥ ॥ 'वीकः स्याद्वातपक्षिणोः' । यूका । धूको वायुः । नीको वृक्षविशेषः ॥

३२७-अज्, यु, धु, नी धातुके उत्तर कन् प्रत्यय और दीर्घ हो, वीकः, अर्थात् वात और पक्षी । यूका । धूको वायुः । नीको वृक्षविशेषः ॥

३२८ 'ह्रियो रश्च लो वा' ॥ ॥ 'ह्रीका ह्लीका त्रपा मता' ॥

३२८-ह्री धातुके उत्तर कन् प्रत्यय हो, और रके स्थानमें विकल्प करके ल हो, "ह्रीका ह्लीका त्रपा मता" ॥

३२९ 'शकेरुनोन्तोन्त्युनयः' ॥ ॥ उन उन्त उन्ति उनि एते चत्वारः स्युः । शकुनः । शकुन्तः । शकुन्तिः । शकुनिः ॥

३२९-शक् धातुके उत्तर उन, उन्त, उन्ति, उनि यह चार प्रत्यय हों, शकुनः । शकुन्तः । शकुन्तिः । शकुनिः । (पक्षी)॥

३३० 'भुवो झिच्' ॥ ॥ भवन्तिर्वर्तमानकालः । बाहुलकादवेश्च । अवन्तिः । वदेर्वदन्तिः । 'किंवदन्ती जनश्रुतिः' ॥

३३०-भू धातुके उत्तर झिच् प्रत्यय हो, भवन्तिर्वर्त्तमानकालः । बाहुलकबलसे अव् धातुके उत्तर भी होगा, अवन्तिः । वद धातुका वदन्तिः । "किंवदन्ती जनश्रुतिः" ॥

३३१ 'कन्युच् क्षिपेश्च' ॥ ॥ चाद् भुवः । क्षिपण्युर्वसन्तः । इत्युज्ज्वलदत्तः । 'भुवन्युः स्वामिसूर्ययोः' ॥

३३१-क्षिप् और चकारसे भू धातुके उत्तर कन्युच् प्रत्यय हो, क्षिपण्युर्वसन्तः । यह उज्ज्वलदत्तका मत है । "भुवन्युः स्वामिसूर्य्ययोः" ॥

३३२ 'अनुङ् नदेश्च' ॥ ॥ चात्क्षिपेः । नदनुर्मेघः । क्षिपणुर्वातः ॥

३३२-नद् और चकारसे क्षिप् धातुके उत्तर अनुङ् प्रत्यय हो, नदनुर्मेघः । क्षिपणुर्वातः ॥

३३३ 'कृवृदारिभ्य उनन्' ॥ ॥ 'करुणो वृक्षभेदः स्यात्करुणा च कृपा मता' । वरुणः । दारुणम् ॥

३३३-कृ, वृ और दारि धातुके उत्तर उनन् प्रत्यय हो, "करुणो वृक्षभेदः स्यात्करुणा च कृपा मता" वरुणः । दारुणम् ॥

३३४ 'त्रोरश्च लो वा' ॥ 'तरुणस्तलुना युवा' ॥

३३४-तृ धातुके उत्तर उनन् प्रत्यय हो और रके स्थानमें विकल्प करके ल हो, "तरुणस्तलुनो युवा" ॥

३३५ 'क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित्' ॥ ॥ क्षुधुनो म्लेच्छजातिः । पिशुनः । मिथुनम् ॥

३३५-क्षुध्, पिश् और मिथ् धातुके उत्तर उनन् प्रत्यय हो, और वह प्रत्यय कित् हो, क्षुधुनः-म्लेच्छजातिः । पिशुनः (चुगली करनेवाला) । मिथुनम् ॥

३३६ 'फलेर्गुक् च' ॥ ॥ फल्गुनः पार्थः । प्रज्ञाद्यण् । फाल्गुनः ॥

३३६-फल् धातुके उत्तर उनन् प्रत्यय हो, और गुक्का आगम हो, फल्गुनः पार्थः । प्रज्ञादि गणान्तर्गत होनेके कारण उसके उत्तर अण् प्रत्यय होकर-फाल्गुनः ॥

३३७ 'अशेर्लशश्च' ॥ ॥ लशुनम् ॥

३३७-अश् धातुके उत्तर उनन् प्रत्यय हो, और अश् धातुके स्थानमें लश् आदेश हो, लशुनम् ॥

३३८ 'अर्जेर्णिलुक् च' ॥ ॥ अर्जुनः

३३८-णिजन्त अर्ज् धातुके उत्तर उनन् प्रत्यय हो, और णिच्का लुक् हो, अर्ज्जुनः ॥

३३९ 'तृणाख्यायां चित्' ॥ ॥ चित्त्वादन्तोदात्तः । अर्जुनं तृणम् ॥

३३९-तृण अर्थ होनेपर अर्ज् धातुसे विहित उनन् प्रत्यय चित् हो, चकार इत् होनेके कारण अन्तोदात्त होगा, अर्ज्जुनं तृणम् ॥

३४० 'अर्तेश्च' ॥ ॥ अरुणः ॥

३४०-ऋ धातुके उत्तर उनन् प्रत्यय हो, अरुणः ॥

३४१ 'अजियमिशीङ्भ्यश्च' ॥ ॥ वयुनं देवमन्दिरम् । यमुना । शयुनोऽजगरः ॥

३४१-अज्, यम् और शीङ् धातुके उत्तर उनन् प्रत्यय हो, वयुनं देवमन्दिरम् । यमुना । शयुनोऽजगरः ॥

३४२ 'वृतॄवदिहनिकमिकषिभ्यः सः' ॥ ॥ वर्षम् । 'तर्षः प्लवसमुद्रयोः' । वत्सः । वत्सम् । वक्षः । हंसः । 'कंसोऽस्त्री पानभाजनम्' । कक्षं नक्षत्रम् ॥

३४२–वृ, तृ, वद्, हन्, कम् और कष् धातुके उत्तर स प्रत्यय हो, वर्षम्। "तर्षः प्लवसमुद्रयोः" ।वत्सः।वत्सम् वक्षः। हंसः। "कंसोऽस्त्री पानभाजनम्" । कक्षं नक्षत्रम् ॥

३४३ 'प्लुषेरच्चोपधायाः' ॥ ॥ प्लक्षः ॥

३४३–प्लुष् धातुके उत्तर स प्रत्यय हो, और उपधाको अकार हो, प्लक्षः (पिलखनका वृक्ष) ॥

३४४ 'मनेर्दीर्घश्च' ॥ ॥ मांसम् ॥

३४४–मन् धातुके उत्तर स प्रत्यय हो, और उपधाको दीर्घ हो, मांसम् ॥

३४५ 'अशेर्देवने' ॥ ॥ अक्षः ॥

३४५–देवनार्थमें अश् धातुके उत्तर स प्रत्यय हो, अक्षः। (पाशा) ॥

३४६ 'स्नुव्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित्' ॥ ॥ स्नुषा। वृक्षः । कृत्समुदकम् । ऋक्षं नक्षत्रम् ॥

३४६–स्नु, व्रश्च्, कृत् और ऋष् धातुके उत्तर स प्रत्यय हो, और वह स प्रत्यय कित् हो, स्नुषा । वृक्षः । कृत्समुदकम् । ऋक्षं नक्षत्रम् ॥

३४७ 'ऋषेर्जातौ' ॥ ॥ 'ऋक्षोऽद्रिभेदे भल्लूके शोणके कृतवेधने । ऋक्षमुक्तं च नक्षत्रे' इति विश्वः ॥

३४७–जाति होनेपर ऋष् धातुके उत्तर स प्रत्यय हो, और वह कित् हो, "ऋक्षोऽद्रिभेदे भल्लूके शोणके कृतवेधने। ऋक्षमुक्तञ्च नक्षत्रे" इति विश्वः ॥

३४८ 'उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च' ॥ ॥ उत्सः प्रस्रवणम् । गुत्सः स्तबकः । कुक्षो जठरम् ॥

३४८–उन्द्, गुध् और कुश् धातुके उत्तर स प्रत्यय हो, और वह कित् हो, यथा–उत्सः प्रस्रवणम् । गुत्सः स्तबकः । कुक्षो जठर ॥

३४९ 'गृधिपण्योर्दकौ च' ॥ ॥ गृत्सः कामदेवः । पक्षः ॥

३४९–गृध् और पण् धातुके उत्तर कित् स प्रत्यय हो और यथाक्रम धके स्थानमें द और णके स्थानमें क आदेश हो, गृत्सः कामदेवः । पक्षः ॥

३५० 'अशेः सरः' ॥ ॥ अक्षरम् ॥

३५०–अश् धातुके उत्तर सर प्रत्यय हो, अक्षरम् ॥

३५१ 'वसेश्च' ॥ ॥ वत्सरः ॥

३५१–वस् धातुके उत्तर सर प्रत्यय हो, वत्सरः ॥

३५२ 'सम्पूर्वाच्चित्' ॥ ॥ संवत्सरः ॥

३५२–संपूर्वक वस् धातुसे सर प्रत्यय हो, और वह प्रत्यय चित् हो, संवत्सरः ॥

३५३ 'कृधूमदिभ्यः कित्' ॥ ॥ बाहुलकान्न षत्वम् । 'कृसरः स्यात्तिलौदनम्' । धूसरः । मत्सरः । 'मत्सरा मक्षिका ज्ञेया भम्भराली च सा मता' ॥

३५३–कृ, धू और मद् धातुके उत्तर सर प्रत्यय हो, और वह प्रत्यय कित् हो, बाहुलकबलसे षत्व नहीं होकर–कृसरः–तिलौदनम् । धूसरः । मत्सरः । मत्सरा, अर्थात् मक्षिका और भम्भराली ॥

३५४ 'पते रश्च लः' ॥ ॥ पत्सलः पन्थाः ॥

३५४–पत् धातुके उत्तर सर प्रत्यय हो, और प्रत्ययके रके स्थानमें ल हो, यथा–पत्सलः–पन्थाः (मार्ग) ॥

३५५ 'तन्यृषिभ्यां क्सरन्' ॥ ॥ तसरः सूत्रवेष्टने । ऋक्षरः ऋत्विक् ॥

३५५–तन् और ऋष् धातुके उत्तर क्सरन् प्रत्यय हो, 'तसरः सूत्रवेष्टने' । ऋक्षरः ऋत्विक् ॥

३५६ 'पीयुकणिभ्यां कालन् ह्रस्वः सम्प्रसारणं च' ॥ ॥ पीयुः सौत्रः । पियालो वृक्षभेदः । कुणालो देशभेदः ॥

३५६–पीयु और कण् धातुके उत्तर कालन् प्रत्यय हो, और क्रमसे ह्रस्व और संप्रसारण हो, पीयुः यह सौत्र धातु है । पियालो वृक्षभेदः । कुणालो देशभेदः ॥

३५७ 'कटिकुषिभ्यां काकुः'॥ ॥कटाकुः पक्षी। कुषाकुरग्निः सूर्यश्च ॥

३५७–कट् और कुष् धातुके उत्तर काकु प्रत्यय हो, यथा–कटाकुः पक्षी । कुषाकुः–अग्निः सूर्यश्च ॥

३५८ 'सर्तेर्दुक् च'॥ ॥'सृदाकुर्वातसरितोः'॥

३५८–सृ धातुके उत्तर काकु प्रत्यय हो, और दुक्का आगम हो, सृदाकुः–वायु और नदी ॥

३५९ 'वृतेर्वृद्धिश्च' ॥ ॥ वार्ताकुः । बाहुलकादुकारस्याऽऽत्वम् । वार्ताकम् ॥

३५९–वृत् धातुके उत्तर काकु प्रत्यय हो, और ऋकारको वृद्धि हो, वार्त्ताकुः । बाहुलकबलसे उकारके स्थानमें अकार होकर–वार्त्ताकम् ॥

३६० 'पर्देर्नित्संप्रसारणमल्लोपश्च'॥ ॥'पृदाकुर्वृश्चिके व्याघ्रे चित्रके च सरीसृपे' ॥

३६०–पर्द धातुके उत्तर काकु प्रत्यय हो, और वह प्रत्यय नित् हो और रेफको संप्रसारण और अकारका लोप हो, पृदाकुः, अर्थात् वृश्चिक, व्याघ्र, चित्रक और सरीसृप ॥

३६१ 'सृयुवचिभ्योऽन्युजागूजक्नुचः' ॥ ॥ अन्युच् आगूच् अक्नुच् एते क्रमात्स्युः।'सरण्युर्मेघवातयोः' । यवागूः ।'वचक्नुर्विप्रवाग्मिनोः'॥

३६१–सृ, यु और वच् धातुके उत्तर यथाक्रम अन्युच्, आगूच् और अक्नुच् प्रत्यय हों, यथा–सरण्युः, अर्थात् मेघ और वायु । यवागूः । वचक्नुः, अर्थात् विप्र और वाग्मी ॥

३६२ 'आनकः शीङ्भियः'॥ ॥ शयानकोऽजगरः । भयानकः ॥

३६२–शी और भी धातुके उत्तर आनक प्रत्यय हो, यथा–शयानकः, अर्थात् अजगर । भयानकः ॥

३६३ 'आणको लूधूशिङ्घिधाञ्भ्यः' ॥ ॥ लवाणकं दात्रम् । धवाणको वातः । शिङ्घाणकः श्लेष्मा । पृषोदरादित्वात्पक्षे कलोपः । 'शिङ्घाणं नासिकामले'।धाणको दीनारभागः॥

३६३-लू, धू, शिङ्घ और धाञ् धातुके उत्तर आणक प्रत्यय हो, यथा-लवाणकं दात्रम् । धवाणको वातः । शिंघाणकः श्लेष्मा । पृषोदरादित्वके कारण ककारका लोप होकर "शिंघाणं नासिकामलम्" । धाणको दीनारभागः ॥

३६४ 'उल्मुकदर्विहोमिनः' ॥ ॥ उष दाहे । षस्य लः मुकप्रत्ययश्च । उल्मुकं ज्वलदङ्गारम् । दृणातेर्विः । दर्विः ॥ जुहोतेर्मिनिः ॥ होमी ॥

३६४-उल्मुक, दर्वि, होमी, यह तीन शब्द निपातनसे सिद्ध हों, दाहार्थक उष् धातुके षके स्थानमें ल और मुक प्रत्यय होकर-उल्मुकं ज्वलदङ्गारः, अर्थात् जलता हुआ अंगारा । दृ धातुके उत्तर वि प्रत्यय होकर-दर्विः (कडछी) हु धातुके उत्तर मिनि प्रत्यय होकर-होमी ॥

३६५ 'ह्रियः कुक् रश्च लो वा' ॥ ॥ ह्रीकुर्ह्रीकुर्लज्जावान् ॥

३६५-ह्री धातुके उत्तर कुक् प्रत्यय हो, और रके स्थानमें विकल्प करके ल हो, ह्रीकुः, ह्लीकुः अर्थात् लज्जावान् ॥

३६६ 'हसिमृग्रिण्वाऽमिदमिलूपूधुर्विभ्यस्तन्' ॥ ॥ दशभ्यस्तन् स्यत् । तितुत्रेति नेट् । हस्तः। मर्तः। गर्तः। एतः कर्बुरः । वातः । अन्तः । दन्तः । 'लोतः स्यादश्रुचिह्नयोः' । 'पोतो बालवहित्रयोः' । धूर्तः । बाहुलकात्तुसेर्दीर्घश्च । तूस्तं पापं धूलिर्जटा च ॥

३६६-हस्, मृ, गृ, इण्, वा, अम्, दम्, लू, पू और धुर्व् धातुके उत्तर तन् प्रत्यय हो, । "तितुत्र० ३१६३" इस सूत्रसे इट् नहीं होकर हस्तः । मर्तः । गर्तः । एतः-कर्बुरः। वातः। अन्तः। दन्तः। लोतः अर्थात् अश्रु और चिह्न । 'पोतो बालवहित्रयोः' धूर्तः । बाहुलकसे तुस् धातुके उत्तर तन् प्रत्यय और धातुके उकारको दीर्घ होकर-तूस्तं पापं धूलिर्जटा च ॥

३६७ 'नञ्याप इट् च' ॥ ॥ नापितः ॥

३६७-नञ्पूर्वक आप् धातुके उत्तर तन् प्रत्यय और इट्का आगम हो, यथा-नापितः (नाई) ॥

३६८ 'तनिमृङ्भ्यां किच्च' ॥ ॥ ततम् । मृतम् ॥

३६८-तन् और मृङ् धातुके उत्तर तन प्रत्यय हो, और वह कित् हो, ततम् । मृतम् ॥

३६९ 'अञ्जिघृसिभ्यः क्तः' ॥ ॥ अक्तम् । घृतम् । सितम् ॥

३६९-अञ्ज्, घृ और सि धातुके उत्तर क्त प्रत्यय हो, अक्तम् । घृतम् । सितम्, अर्थात्-श्वेत ॥

३७० 'दुतनिभ्यां दीर्घश्च' ॥ ॥ दूतः । तातः ॥

३७०-दु और तन् धातुके उत्तर क्त प्रत्यय हो, और दीर्घ हो, दूतः । तातः ॥

३७१ 'जेर्मूट् चोदात्तः' ॥ ॥ जीमूतः ॥

३७१-जि धातुके उत्तर क्त प्रत्यय,दीर्घ और मुट्का आगम हो, यथा-जीमूतः (मेघ) ॥

३७२ 'लोष्टपलितौ' ॥ ॥ लुनातेः क्तः तस्य सुट् धातोर्गुणः । लोष्टम् । पलितम् ॥

३७२-लोष्ट और पलित शब्द निपातनसे सिद्ध हो, लु धातुके उत्तर क्त प्रत्यय उसको सुट्का आगम और धातुको गुण होकर-लोष्टम् । (मट्टीका ढेला) पलितम् ॥

३७३'हृश्याभ्यामितन्'॥ ॥हरितश्येतौ वर्णभेदौ।

३७३-हृ और श्या धातुके उत्तर इतन् प्रत्यय हो, हरितः श्येतः । अर्थात् वर्णविशेष ॥

३७४ 'रुहेरश्च लो वा' ॥ ॥ 'रोहितो मृगमत्स्ययोः' । लोहितं रक्तम् ॥

३७४-रुह धातुके उत्तर इतन् प्रत्यय हो, और रके स्थानमें विकल्प करके ल हो, रोहितः अर्थात् मृग और मत्स्य। लोहितं रक्तम् (लाल) ॥

३७५ 'पिशेः किच्च' ॥ ॥ पिशितं मांसम्॥

३७५-पिश् धातुके उत्तर इतन् प्रत्यय हो, और वह प्रत्यय कित् हो, पिशितम्-मांसम् ॥

३७६ 'श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः' ॥ ॥ श्रवाय्यो यज्ञपशुः । दक्षाय्यो गरुडो गृध्रश्च । स्पृहयाय्यः । गृहयाय्यो गृहस्वामी ॥

३७६-श्रु, दक्ष, स्पृह् और गृह् धातुके उत्तर आय्य प्रत्यय हो, श्रवाय्यो यज्ञपशुः । दक्षाय्यो गरुडः गृध्रश्च । स्पृहयाय्यः । गृहयाय्यो गृहस्वामी ॥

३७७ 'दिधिषाय्यः' ॥ ॥ दधातेर्द्वित्वमित्वं षुक् च ॥ मित्र इव यो दिधिषाय्योऽभूत् ॥

३७७-दिधिषाय्यः । धा धातुके उत्तर आय्य प्रत्यय, धातुको द्वित्व, इत्व और षुक् आगम हो । मित्र इव ये दिधिषाय्यः । अर्थात् जो मित्रकी समान हो ॥

३७८ 'वृञ एण्यः' ॥ ॥ वरेण्यः ॥

३७८-वृञ् धातुके उत्तर एण्य प्रत्यय हो, वरेण्यः (स्तुतियोग्य, वरणयोग्य) ॥

३७९ 'स्तुवः क्सेय्यश्छन्दसि' ॥ ॥ स्तुषेय्यं पुरुवर्चसम् ॥

३७९-वेदमें स्तु धातुके उत्तर क्सेय्य प्रत्यय हो । स्तुषेय्यं पुरुवर्चसम् (बडी कान्ति) ॥

३८० 'राजेरन्यः' ॥ ॥ राजन्यो वह्निः ॥

३८०-राज धातुके उत्तर अन्य प्रत्यय हो, यथा-राजन्यः वह्निः । (अर्थात् अग्नि) ॥

३८१'शृरम्योश्च' ॥ ॥ शरण्यम् । रमण्यम्॥

३८१-शृ और रमि धातुके उत्तर अन्य प्रत्यय हो, शरण्यम्। रमण्यम (रमणयोग्य) ॥

३८२ 'अर्तेर्निच्' ॥ ॥ अरण्यम् ॥

३८२–ऋ धातुके उत्तर अन्य प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय नित्संज्ञक हो, अरण्यम् (वन) ॥

३८३ 'पर्जन्यः' ॥ ॥ पृषु सेचने । षस्य जः । 'पर्जन्यः शक्रमेघयोः' ॥

३८३–पर्जन्यः । पृष धातु सेचन करनेमें है । षके स्थानमें ज होकर–पर्जन्यः । अर्थात् शक्र और मेघ ॥

३८४ 'वदेरान्यः' ॥ ॥ 'वदान्यस्त्यागिवाग्मिनोः' ॥

३८४–वद धातुके उत्तर आन्य प्रत्यय हो, यथा–वदान्यः । अर्थात् त्यागशील और वाग्मी ॥

३८५ 'अमिनक्षियजिवधिपतिभ्योऽत्रन्' ॥ ॥ अमत्रं भाजनम् । नक्षत्रम् । यजत्रः । वधत्रमायुधम् । पतत्रं तनूरुहम् ॥

३८५–अमि, नक्षि, यजि, वधि और पति धातुके उत्तर अत्रन् प्रत्यय हो, यथा, अमत्रं भाजनम् । नक्षत्रम् । यजत्रः वधत्रमायुधम् । पतत्रं तनूरुहम् (अर्थात्–रोम) ॥

३८६ 'गडेरादेश्चकः' ॥ ॥ कडत्रम् । डलयोरेकत्वस्मरणात्, कलत्रम् ॥

३८६–गड धातुके उत्तर अत्रन् प्रत्यय हो, और गके स्थानमें क हो, कडत्रम् । ड और ल यह दोनों ही एक हैं, इस कारण ल होकर–कलत्रम् (स्त्री) ॥

३८७'वृञश्चित्' ॥ ॥ वरत्रा चर्ममया रज्जुः॥

३८७–वृञ् धातुके उत्तर अत्रन् प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय चित्संज्ञक हो, यथा–वरत्रा, चर्म्ममयी रज्जुः (अर्थात् चमडेकी बनी रस्सी) ॥

३८८ 'सुविदेः कत्रन्' ॥ ॥ सुविदत्रं कुटुम्बकम् ॥

३८८–सुपूर्वक विद धातुके उत्तर कत्रन् प्रत्यय हो, सुविदत्रम् कुटुम्बकम् ॥

३८९ 'कृतेर्नुम् च' ॥ ॥ कृन्तत्रं लाङ्गलम्॥

३८९–कृत धातुके उत्तर कत्रन् प्रत्यय और नुम् आगम हो, यथा–कृन्तत्रं लाङ्गलम् (अर्थात् हल) ॥

३९० 'भृमृदृशियजिपर्विपच्यमितमिनमिहर्यभ्योऽतच्' ॥ ॥ दशभ्योऽतच् स्यात् । भरतः । मरतो मृत्युः । दर्शतः सोमसूर्ययोः । यजतः ऋत्विक् । पर्वतः । पचतोऽग्निः । अमतो रोगः । तमतस्तृष्णापरः । नमतः प्रह्वः । हर्यतोऽश्वः ॥

३९०–भृ, मृ, दृशि, यजि, पर्वि, पचि, अमि, तमि, नमि, और हर्य्य धातुके उत्तर अतच् प्रत्यय हो, भरतः । मरतः–मृत्युः । दर्शतः–सोमः, सूर्यः । यजतः ऋत्विक् । पर्वतः । पचतः–अग्निः । अमतः–रोगः । तमतः–तृष्णापरः । नमतः–प्रह्वः । हर्य्यतः अश्वः (घोडा) । भृ+अतच्=भरत+सु=भरतः (पोषक वा नृपविशेष) ॥

३९१ 'पृषिरञ्जिभ्यां कित्' ॥ ॥ पृषतो मृगो बिन्दुश्च । रजतम् ॥

३९१–पृष और रञ्जि धातुके उत्तर अतच् प्रत्यय हो और यह प्रत्यय कित्संज्ञक हो । पृषतो मृगः बिन्दुः । रजतम् ॥

३९२ 'खलतिः' ॥ ॥ स्खलतेः सलोपः अतच्प्रत्ययान्तस्य इत्वं चाखलतिर्निष्केशशिराः॥

३९२–स्खल धातुके सकारका लोप, अतच् प्रत्यय और इत्व हो, यथा–खलतिः निष्केशशिराः, (जिसके शिरपर बाल न हों) ॥

३९३ 'शीङ्शपिरुगमिवञ्चिजीविप्राणिभ्योऽथः' ॥ ॥ सप्तभ्योऽथः स्यात् । शयथोऽजगरः। शपथः । रवथः कोकिलः । गमथः पथिकः पन्थाश्च । वञ्चथो धूर्तः । वन्दीतिपाठे वन्दतेर्वन्द्यतेवा वन्दथः स्तोता स्तुत्यश्च । जीवथ आयुष्मान् । प्राणथो बलवान् । बाहुलकाच्छमिदमिभ्याम्। 'शमथस्तु शमः शान्तिर्दान्तिस्तु दमथो दमः' ॥

३९३–शीङ्, शपि, रु, गमि, वञ्चि, जीवि, प्राणि, इन सात धातुओंके उत्तर अथ प्रत्यय हो, शयथः अजगरः । शपथः । रवथः–कोकिलः । गमथः–पथिकः पन्थाः । वञ्चथः धूर्त्तः । वन्दि ऐसे पाठमें 'वदि अभिवादनस्तुत्योः' इस धातुसे कर्तामें या कर्ममें अथ प्रत्यय करनेपर वन्दथः ऐसा रूप होगा । इसका अर्थ स्तोता और स्तुत्य । जीवथः आयुष्मान् । प्राणथः बलवान् । बाहुलकबलसे शमि और दमि धातुके उत्तर भी अथ प्रत्यय हो । "शमथस्तु शमः शान्तिर्दान्तिस्तु दमथो दमः" ॥

३९४ 'भृञश्चित्' ॥ ॥ भरथो लोकपालः॥

३९४–भृञ् धातुके उत्तर अथ प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय चित्संज्ञक हो, भरथः लोकपालः ॥

३९५ 'रुदिविदिभ्यां ङित्' ॥ ॥ रोदितीति रुदथः शिशुः । वेत्तीति विदथः ॥

३९५–रुदि और विदि धातुके उत्तर अथ प्रत्यय हो और यह प्रत्यय ङित्संज्ञक हो, रोदिति इस विग्रहमें रुदथः–शिशुः । वेत्ति, विदथः ॥

३९६ 'उपसर्गे वसेः' ॥ ॥ आवसथो गृहम्। संवसथो ग्रामः ॥

३९६–उपसर्गपूर्वक वस धातुके उत्तर अथ प्रत्यय हो, यथा–आवसथः–गृहम् । संवसथः ग्रामः ॥

३९७ 'अत्यविचमितमिनमिरभिलभिनभितपिपतिपनिपणिमहिभ्योऽसच्' ॥ ॥ त्रयोदशभ्योऽसच् स्यात् । अततीत्यतसो वायुरात्मा च। अवतीत्यवसो राजा भानुश्च चमत्यस्मिन् चमसः सोमपानपात्रम् । ताम्यत्यस्मिन् तमसोऽन्ध-

कारः। नमसः अनुकूलः। 'रभसो वेगहर्षयोः'। लभसो धनं याचकश्च। नभति नभ्यति वा नभस आकाशः। तपसः पक्षी चन्द्रश्च। पतसः पक्षी। पनसः कण्टकिफलः। पणसः पण्यद्रव्यम्। महसं ज्ञानम्॥

३९७-अति, अवि, चमि, तमि, नमि, रभि, लभि, नभि, तपि, पति, पनि, पणि, महि, इन १३ धातुओंके उत्तर असच् प्रत्यय हो। अतति इति अतसः वायुः आत्मा। अवति इति अवसः राजा, भानुः। चमत्यस्मिन् चमसः सोमपानपात्रम्। ताम्यति अस्मिन् इति तमसः अन्धकारः। नमसः अनुकूलः। रभसः वेगः हर्षः। लभसः धनं याचकः। नभति नभ्यति वा नभसः आकाशः। तपसः पक्षी चन्द्रः। पतसः पक्षी। पनसः कण्टकिफलम्। पणसः पण्यद्रव्यम्। महसं ज्ञानम्॥

३९८ 'वेञस्तुट् च'॥ ॥ बाहुलकादात्वाभावः। वेतसः॥

३९८-वेञ् धातुके उत्तर असच् प्रत्यय हो और तुट्का आगम हो, बाहुलकबलसे आकारका अभाव होगा। यथा-वेतसः॥

३९९ 'वहियुभ्यां णित्'॥ ॥ वाहसोऽजगरः। यावसस्तृणसङ्घातः॥

३९९-वहि और यु धातुके उत्तर असच् प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय णित्संज्ञक हो। वाहसः-अजगरः। यावसः-तृणसंघातः (तृणोंका समूह)॥

४०० 'वयश्च'॥ ॥ वय गतौ। वायसः काकः॥

४००-वय धातुके उत्तर असच् प्रत्यय हो, वायसः-काकः॥

४०१ 'दिवः कित्'॥ ॥ दिवसम्। दिवसः॥

४०१-दिव् धातुके उत्तर असच् प्रत्यय हो और यह प्रत्यय कित्संज्ञक हो। दिवसम्। दिवसः॥

४०२ 'कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच्'॥ ॥ करभः। शरभः। शलभः। कलभः। गर्दभः॥

४०२-कृ, शृ, शलि, कलि और गर्दि धातुके उत्तर अभच् प्रत्यय हो, करभः (हाथीकी सूँड)। शरभः (जन्तुविशेष) शलभः। कलभः (हाथीका बच्चा) गर्दभः (गधा)॥

४०३ 'ऋषिवृषिभ्यां कित्'॥ ॥ ऋषभः। वृषभः॥

४०३-ऋष और वृष धातुके उत्तर अभच् प्रत्यय हो और यह प्रत्यय कित्संज्ञक हो, ऋषभः। वृषभः (बैल)॥

४०४ 'रुषेर्लुष् च'॥ ॥ रुष हिंसायाम्। अस्मादभच् नित्कित्स्यात्। लुषादेशश्च। 'लुषभो मत्तदन्तिनि'॥

४०४-रुष धातुके उत्तर अभच् प्रत्यय हो, और वह नित् और कित्संज्ञक हो और लुष आदेश हो। लुषभः मत्तदन्ती (मतवाला हाथी)॥

४०५ 'रासिवल्लिभ्यां च'॥ ॥ रासभः। वल्लभः॥

४०५-रास और वल्ल धातुके उत्तर अभच् प्रत्यय हो, यथा-रासभः (गधा)। वल्लभः अर्थात् प्रिय॥

४०६ 'जॄविशिभ्यां झच्'॥ ॥ जरन्तो महिषः। वेशन्तः पल्वलम्॥

४०६-जॄ और विशि धातुके उत्तर झच् प्रत्यय हो, यथा-जरन्तः महिषः। वेशन्तः पल्वलम् (अल्प सरोवर)॥

४०७ 'रुहिनन्दिजीविप्राणिभ्यः षिदाशिषि'॥ ॥ रोहन्तो वृक्षभेदः। नन्दन्तः पुत्रः। जीवन्त औषधम्। प्राणन्तो वायुः। षित्वात् ङीष्। रोहन्ती॥

४०७-रुहि, नन्दि, जीवि और प्राणि धातुओंके उत्तर अशीश अर्थमें झच् प्रत्यय हो और वह प्रत्यय षित्संज्ञक हो। रोहन्तः। वृक्षभेदः नन्दन्तः पुत्रः। जीवन्तः औषधम्। प्राणन्तः। वायुः। षित् प्रत्यय होनेके कारण स्त्रीलिङ्गमें ङीष् होगा। रोहन्ती॥

४०८ 'तॄभूवहिवसिभासिसाधिगडिमण्डिजिनन्दिभ्यश्च'॥ ॥ दशभ्यो झच् स्यात्स च षित्। तरन्तः समुद्रः। तरन्ती नौका। भवन्तः कालः। वहन्तो वायुः। वसन्त ऋतुः। भासन्तः सूर्यः। साधन्तो भिक्षुः। गडेर्घटादित्वान्मित्त्वं ह्रस्वः। अयामन्तेति णेरयः। गण्डयन्तो जलदः। मण्डयन्तो भूषणम्। जयन्तः शक्रपुत्रः। नन्दयन्तो जलदः। नन्दकः॥

४०८-तॄ, भू, वहि, वासि, भासि, साधि, गडि, मण्डि, जि और नन्दि धातुके उत्तर झच् प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय षित्संज्ञक हो, यथा-तरन्तः समुद्रः तरन्ती नौका। भवन्तः कालः। वहन्तः वायुः। वसन्तः ऋतुः। भासन्तः सूर्यः। साधन्तः भिक्षुः। गडि धातु घटादि गणीय होनेके कारण उसकी मित्संज्ञा हुई। पश्चात् "मितां ह्रस्वः" इस सूत्रसे ह्रस्व होनेपर "अयामन्त० २३११" इस सूत्रसे णिके स्थानमें अय् आदेश होगा। गंडयन्तः जलदः (मेघ)। मंडयन्तः भूषणम्। जयन्तः शक्रपुत्रः। नन्दयन्तः नन्दकः॥

४०९ 'हन्तेर्मुट् हि च'॥ ॥ हेमन्तः॥

४०९-हन् धातुके उत्तर झच् प्रत्यय हो और मुट् आगम और धातुके स्थानमें हि आदेश हो। हेमन्तः। (ऋतुका नाम)॥

४१० 'भन्देर्नलोपश्च'॥ ॥ भदन्तः प्रव्रजितः॥

४१०-भन्दि धातुके उत्तर झच् प्रत्यय हो, धातुके नकारका लोप हो, भदन्तः प्रव्रजितः (सन्यासी)॥

४११ 'ऋच्छेररः' ॥ ॥ ऋच्छरा वेश्या । बाहुलकाज्जर्जरझर्झरादयः ॥

४११--ऋच्छ धातुके उत्तर अर प्रत्यय हो, यथा--ऋच्छरा वेश्या । बाहुलकबलसे जर्जरः झर्झरः इत्यादि पद भी हों ॥

४१२ 'अर्तिकमिभ्रमिचमिदेविवासिभ्यश्चित्' ॥ ॥ षड्भ्योऽरश्चित् स्यात् । अररं कपाटम् । कमरः कामुकः । भ्रमरः । चमरः । देवरः । वासरः ॥

४१२--अर्त्ति, कमि, भ्रमि, चमि, देवि और वासि धातुके उत्तर अर प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय चित्संज्ञक हो, यथा--अररं कपाटम् (किवाड)। कमरः कामुकः (कामी)। भ्रमरः । चमरः । देवरः । वासरः (दिन) ॥

४१३ 'कुवः क्ररन्' ॥ ॥ कुररः पक्षिभेदः ॥

४१३--कु धातुके उत्तर क्ररन् प्रत्यय हो, कुररः पक्षिभेदः कु+क्ररन्=कुरर+सु=कुररः ॥

४१४ 'अङ्गिमदिमन्दिभ्य आरन्' ॥ ॥ अङ्गारः । मदारो वराहः । मन्दारः ॥

४१४--अङ्गि, मदि और मन्दि धातुके उत्तर आरन् प्रत्यय हो, अङ्गारः । मदारः--वराहः। मन्दारः--पारिजातः अर्थात् कल्पवृक्ष ॥

४१५ 'गडेः कड च' ॥ ॥ कडारः पारिजातकः ॥

४१५--गड धातुके उत्तर आरन् प्रत्यय हो और गड धातुके स्थानमें कड आदेश हो । कडारः (कल्पवृक्ष) ॥

४१६ 'शृङ्गारभृङ्गारौ'॥ ॥शृभृञ्भ्यामारन्नुम् । गुग्हस्वश्च। शृंगारो रसः।'भृंगारः कनकालुकः'॥

४१६--शृंगारः और भृंगारः यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों । शृ और भृञ् धातुके उत्तर आरन् प्रत्यय हो और नुम् गुक् आगम और ह्रस्व हो, शृंगारः रसः । भृंगारः कनकालुका (झारी) ॥

४१७ 'कञ्जिमृजिभ्यां चित्' ॥ ॥ कञ्जिः सौत्रः । कञ्जारो मयूरः । मार्जारः ॥

४१७--कंजि और मृजि धातुके उत्तर आरन् प्रत्यय हो, कंजारः मयूरः । मार्जारः (बिलाव) ॥

४१८ 'कमेः किदुच्चोपधायाः' ॥ ॥ चिदित्यनुवृत्तेरन्तोदात्तः । कुमारः ॥

४१८--कम् धातुके उत्तर आरन् प्रत्यय हो, और वह कित्संज्ञक हो, और उपधाके स्थानमें उकार हो । चित् इस भागकी अनुवृत्ति होनेसे यह अन्तोदात्त होगा । कुमारः ॥

४१९ 'तुषारादयश्च' ॥ ॥ तुषारः । कासारः । सहार आम्रभेदः ॥

४१९--तुषारादि शब्द निपातनसे सिद्ध हों । तुषारः । कासारः । सहारः आम्रभेदः ॥

४२० 'दीङो नुट् च' ॥ ॥ दीनारः सुवर्णाभरणम् ॥

४२०--दीङ् धातुके उत्तर आरन् प्रत्यय हो, और नुट् आगम हो, दीनारः सुवर्णाभरणम् (सुवर्णमुद्रा) ॥

४२१ 'सर्त्तेरपः षुक् च' ॥ ॥ सर्षपः ॥

४२१--सर्त्ति धातुके उत्तर अप प्रत्यय हो,और षुक् आगम हो, सर्षपः ॥

४२२ 'उषिकुटिदलिकचिखजिभ्यः कपन्' ॥ 'उषपो वह्निसूर्ययोः' । कुटपो मानभाण्डम् । दलपः प्रहरणम् ॥ कचपं शाकपत्रम् । खजपं घृतम् ॥

४२२--उषि, कुटि, दलि, कचि और खजि धातुके उत्तर कपन् प्रत्यय हो,यथा--उषपः वह्नि और सूर्य । कुटपः मानभांडम् (तोलका वर्तन) । दलपः प्रहरणम् । कचपं शाकपत्रम् । खजपं घृतम् । खज्+कपन्=खज्+अपन्=खजप+अम् खजपम् अर्थात् घी ॥

४२३ 'क्वणेः संप्रसारणं च' ॥ ॥ कुणपम् ॥

४२३--क्वणि धातुके उत्तर कपन् प्रत्यय हो और धातुको सम्प्रसारण हो । कुणपम् ॥

४२४ 'कपश्चाक्रवर्म्मणस्य' ॥ स्वरे भेदः ॥

४२४--चाक्रवर्मणके मतमें कप् प्रत्यय होगा उसमें स्वरका भेद होगा ॥

४२५ 'विटपपिष्टपविशिपोलपाः'॥ ॥चत्वारोऽमी कपन्प्रत्ययान्ताः । विट शब्दे । विटपः । विशतेरादेः पः । प्रत्ययस्य तुट् । षत्वम् । पिष्टपं भुवनम् । विशतेः प्रत्ययादेरित्वम् । विशिपं मन्दिरम् ॥ वलतेः संप्रसारणम् ॥ ॥ 'उलपं कोमलं तृणम्' ॥

४२५--विटप, पिष्टप, विशिप और उलप यह चार शब्द कपन् प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों । विट धातु शब्द करनेमें है । विटपः । विश धातुके आदिवर्णके स्थानमें प और प्रत्ययको तुट् आगम और षत्व हो, पिष्टपं भुवनम् । विश धातुके प्रत्ययके आदिको इकार हो, विशिपं मन्दिरम्। वल धातुको सम्प्रसारण हो, उलपं कोमलं तृणम् (कोमल तृणका नाम उलप है) ॥

४२६ 'वृतेस्तिकन्' ॥ ॥ वर्त्तिका ॥

४२६--वृत धातुके उत्तर तिकन् प्रत्यय हो, यथा--वर्त्तिका ॥

४२७ 'कृतिभिदिलतिभ्यः कित्' ॥ ॥ कृत्तिका । भित्तिका भित्तिः । लत्तिका गोधा ॥

४२७--कृति, भिदि और लति धातुके उत्तर तिकन् प्रत्यय हो, कृत्तिका । भित्तिका भित्तिः । लत्तिका गोधा ॥

४२८ 'इष्यशिभ्यां तकन्' ॥ ॥ इष्टका । अष्टका ॥

४२८--इष् और अश् धातुके उत्तर तकन् प्रत्यय हो,इष्टका अष्टका ॥

१ विष्टपमिति केचित् ।

४२९ 'इणस्तशन्तशसुनौ'॥ ॥एतशो ब्राह्मणः। स एव एतशाः ॥

४२९-इण् धातुके उत्तर तशन् और तशसुन् प्रत्यय हो, एतशो-ब्राह्मणः । वही-एतशाः ॥

४३० 'वीपतिभ्यां तनन्' ॥ ॥ वी गत्यादौ । वेतनम् । पत्तनम् ॥

४३०-वी और पति धातुके उत्तर तनन् प्रत्यय हो, वेतनम् । पत्तनम् ॥

४३१ 'दृदलिभ्यां भः' ॥ ॥ दर्भः । 'दल्भः स्यादृषिचक्रयोः' ॥

४३१-दृ और दलि धातुके उत्तर भन् प्रत्यय हो, दर्भः । दल्भः । अर्थात् ऋषि और चक्र ॥

४३२ 'अर्तिगृभ्यां भन्' ॥ ॥ अर्भः ।गर्भः॥

४३२-अर्त्ति और गृ धातुके उत्तर भन् प्रत्यय हो, अर्भः। गर्भः । अर्भः-(बालक) ॥

४३३ 'इणः कित्' ॥ ॥ इभः ॥

४३३-इण् धातुके उत्तर भन् प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय कित्संज्ञक हो, इभः ॥

४३४ 'असिसञ्जिभ्यां क्थिन्' ॥ ॥ अस्थि । सक्थि ॥

४३४-असि और संजि धातुके उत्तर क्थिन् प्रत्यय हो, अस्थि । सक्थि ॥

४३५ 'प्लुषिकुषिशुषिभ्यः क्सिः' ॥ ॥ प्लुक्षिर्वह्निः । कुक्षिः । शुक्षिर्वातः ॥

४३५-प्लुषि, कुषि और शुषि धातुके उत्तर क्सिः प्रत्यय हो । प्लुक्षिः वह्निः । कुक्षिः । शुक्षिः-वातः ॥

४३६ 'अशेर्नित्' ॥ ॥ अक्षि ॥

४३६-अश् धातुके उत्तर क्सि प्रत्यय हो और यह प्रत्यय नित्संज्ञक हो, अक्षि (नेत्र) ॥

४३७ 'इषेः क्सुः' ॥ ॥ इक्षुः ॥

४३७-इषि धातुके उत्तर क्सु प्रत्यय हो, इक्षुः (गन्ना) ॥

४३८ 'अवितॄस्तृतन्त्रिभ्य ईः' ॥ ॥ 'अवीनारी रजस्वला' । तरीर्नौः । स्तरीर्धूमः । तन्त्रीर्वीणादेर्गुणः ॥

४३८-अवि, तॄ, स्तृ और तंत्रि धातुके उत्तर ई प्रत्यय हो अवीर्नारी रजस्वला । तरीः नौः । स्तरीः धूमः । तंत्रीः वीणा-गुणः । अव्+ई=अवी+सु=अवीः-रजस्वला स्त्री।तरीः-नौका। स्तरीः-धुआं । तन्त्री-वीणादिका डोरा ॥

४३९ 'यापोः किद्द्वे च' ॥ ॥ ययीरश्वः । 'पपीः स्यात्सोमसूर्ययोः' ॥

४३९-या और पा धातुके उत्तर ई प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय कित्संज्ञक हो, और धातुको द्वित्व हो, ययीः अश्वः । पपीः सोमः सूर्यः ॥

४४० 'लक्षेर्मुट् च' ॥ ॥ लक्ष्मीः ॥

॥ इत्युणादिषु तृतीयः पादः ॥

४४०-लक्ष धातुके उत्तर ई प्रत्यय हो और मुट् आगम हो, लक्ष्मीः ॥

इत्युणादिषु तृतीयपादः ॥

४४१ 'वातप्रमीः' ॥ ॥ वातशब्दे उपपदे प्रपूर्वान्माधातोरीप्रत्ययः स च कित् । वातप्रमीः ॥ अयं स्त्रीपुंसयोः ॥

४४१-वातशब्दपूर्वक मा धातुके उत्तर ई प्रत्यय हो । यह प्रत्यय कित्संज्ञक हो, यथा-वातप्रमीः । यह शब्द स्त्री और पुँल्लिङ्गवाचक है ॥

४४२ 'ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज्यर्पिमद्यत्यङ्गिकुयुकृशिभ्यः कत्निज्यतुजलिजिष्ठुजिष्ठजिसन्स्यनिथिनुल्यसासानुकः' ॥ ॥ द्वादशभ्यः क्रमात्स्युः । अर्त्तेः कत्निच् यण् । 'बद्धमुष्टिः करो रत्निः सोऽरत्निः प्रसृताङ्गुलिः' । तनोतेर्यतुच् । तन्यतुर्वायू रात्रिश्च । अञ्जेरलिच् । अञ्जलिः । वनेरिष्ठुच् । वनिष्ठुः स्थविरान्त्रम् । अञ्जेरिष्ठच् । अञ्जिष्ठो भानुः । अर्पयतेरिसन् अर्पिसोऽग्रमांसम् । मदेः स्यन् । मत्स्यः । अतेरिथिन् । अतिथिः । अंगेरुलिः । अंगुलिः । कौतेरसः । कवसः । अच इत्येके । कवचम् । यौतेरासः । यवासो दुरालभा । कृशेरानुक् । कृशानुः ॥

४४२-ऋ धातुके उत्तर कत्निच् और यण् होगा । तनि धातुके उत्तर यतुच्, अंजि धातुके उत्तर अलिच् प्रत्यय, वनि धातुके उत्तर इष्णुच् प्रत्यय, अंजि धातुके उत्तर इष्ठच् प्रत्यय, अर्पि धातुके उत्तर इसन् प्रत्यय, मदि धातुके उत्तर स्यन् प्रत्यय, अति धातुके उत्तर इथिन् प्रत्यय, अंगि धातुके उत्तर उलि प्रत्यय, कु धातुके उत्तर अस प्रत्यय किसी २ के मतमें युच् प्रत्यय भी हो, यु धातुके उत्तर आस प्रत्यय हो, और कृशि धातुके उत्तर आनक् प्रत्यय हो, यथा-'रत्निः बद्धमुष्टिकरः' । "अरत्निः प्रसृतांगुलिः" । तन्यतुः वायुः रात्रिः । अंजलिः । वनिष्ठुः स्थविरांत्रम् ।अंजिष्ठः भानुः । अर्पिसः अग्रमांसम् । मत्स्यः । अतिथिः । अंगुलिः । कवसः, कोई अच् प्रत्यय कहतेहैं । कवचम् । यवासः-दुरालभा । कृशानुः (अग्नि) ॥

४४३ 'शॄः करन्' ॥ ॥ उत्तरसूत्रे किद्ग्रहणादिह ककारस्य नेत्त्वम् । शर्करा ॥

४४३-शॄ धातुके उत्तर करन् प्रत्यय हो । उत्तर सूत्रमें कित् ग्रहणके कारण इस स्थलमें ककारको इत्व न होगा । शर्करा ॥

४४४ 'पुषः कित्' ॥ ॥ पुष्करम् ॥

४४४-पुष धातुके उत्तर करन् प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय कित्संज्ञक हो । पुष्करम् ॥

४४५ 'कलश्च' ॥ ॥ पुष्कलम् ॥

४४५–पुष धातुके उत्तर कल प्रत्यय भी हो । पुष्कलम् (पुष्कल अर्थात् पूर्ण) ॥

४४६ 'गमेरिनिः' ॥ ॥ गमिष्यतीति गमी॥

४४६–गम् धातुके उत्तर इनि प्रत्यय हो, गमी ॥

४४७ 'आङि णित्' ॥ ॥ आगामी ॥

४४७–आङ्पूर्वमें रहते गम धातुके उत्तर इनि प्रत्यय हो और वह णित्संज्ञक हो, आगामी (आनेवाला) ॥

४४८ 'भुवश्च' ॥ ॥ भावी ॥

४४८–भू धातुके उत्तर इनि प्रत्यय हो । भावी (होनेवाला) ॥

४४९ 'प्रे स्थः' ॥ ॥ प्रस्थायी ॥

४४९–प्रपूर्वक स्था धातुके उत्तर इनि प्रत्यय हो,प्रस्थायी॥

४५० 'परमे कित्' ॥ ॥ परमेष्ठी ॥

४५०–परमशब्दपूर्वक स्था धातुके उत्तर इनि प्रत्यय हो और वह कित्संज्ञक हो । परमेष्ठी ॥

४५१ 'मन्थः' ॥ ॥ मन्थतेरिनिः कित्स्यात् किस्वान्नकारलोपः । मन्थाः।मन्थानौ।मन्थानः ॥

४५१–मन्थ धातुके उत्तर इनि प्रत्यय हो और यह प्रत्यय कित्संज्ञक हो, कित्संज्ञक होनेके कारण नकारका लोप हो, मन्थाः । मन्थानौ । मन्थानः ॥

४५२ 'पतस्थ च' ॥ ॥ पन्थाः । पन्थानौ॥

४५२–पत धातुके उत्तर इनि प्रत्यय हो, थकारान्तादेश भी हो । पन्थाः । पन्थानौ ॥

४५३ 'खजेराकः' ॥ ॥ खजाकः पक्षी ॥

४५३–खजि धातुके उत्तर आक प्रत्यय हो, खजाकः पक्षी ॥

४५४ 'बलाकादयश्च' ॥ ॥ बलाका । शलाका । पताका ॥

४५४–बलाकादि शब्द निपातनसे सिद्ध हों । बलाका । शलाका । पताका ॥

४५५ 'पिनाकादयश्च' ॥ ॥ पातेरित्वं नुम् च । 'क्लीबपुंसोः पिनाकः स्याच्छूलशङ्करधन्वनोः' । तड आघाते । तडाकः ॥

४५५–पिनाकादि शब्द निपातनसे सिद्ध हों । पा धातुके आकारके स्थानमें इकार हो, और नुम् आगम हो । "क्लीब पुंसोः पिनाकः स्याच्छूलशङ्करधन्वनोः" अर्थात् पिनाक शब्द शंकरके धनुषमें क्लीबमें पुँल्लिंगमें वर्तताहै और शूलमें वर्तताहै । तड धातु आघातमें तडाकः ॥

४५६ 'कषिदूषिभ्यामीकन्' ॥ ॥ कषीका पक्षिजातिः । 'दूषिका नेत्रयोर्मलम्' ॥

४५६–कषि और दूषि धातुके उत्तर ईकन् प्रत्यय हो, कषीका । पक्षिजातिः । "दूषिका नेत्रयोर्मलम्" ॥

४५७ 'अनिहृषिभ्यां किच्च' ॥ ॥ अनीकम् । हृषीकम् ॥

४५७–अनि और हृषि धातुके उत्तर ईकन् प्रत्यय हो, और वह कित्संज्ञक हो, अनीकम् । हृषीकम् ॥

४५८ 'चङ्कणः कङ्कणश्च' ॥ ॥ कण शब्दे अस्माद्यङ्लुगन्तादीकन् धातोः कंकणादेशश्च । 'घण्टिकायां कंकणीका सैव प्रतिसरापि च' ॥

४५८–कण धातु शब्दकरनेमें है । यङ्लुगन्त कण धातुके उत्तर ईकन् प्रत्यय हो, और धातुके स्थानमें कङ्कणादेश हो, "घण्टिकायां कङ्कणीका सैव प्रतिसरापि च" । (छोटीघण्टी) ॥

४५९ 'शॄपॄवृञां द्वे रुक्चाभ्यासस्य' ॥ ॥ शर्शरीको हिंस्रः । पर्परीको दिवाकरः । वर्वरीकः कुटिलकेशः ॥

४५९–शॄ, पॄ, और वृञ् धातुके उत्तर ईकन् प्रत्यय हो, और धातुको द्वित्व हो, पश्चात् अभ्यासको रुक्का आगम हो। शर्शरीको हिंस्रः । पर्परीको दिवाकरः । वर्वरीकः कुटिलकेशः (अर्थात् टेढे बालोंवाला) ॥

४६० 'फर्फरीकादयश्च' ॥ ॥ स्फुर स्फुरणे । अस्मादीकन् धातोः फर्फरादेशः । फर्फरीकं किसलयम् । दर्दरीकं वादित्रम् । झर्झरीकं शरीरम्। तिन्तिडीको वृक्षभेदः । चर्रेर्नुम् च । चञ्चरीको भ्रमरः । मर्मरीको हीनजनः । कर्करीका गलन्तिका । पुणतेः पुण्डरीकं वादित्रम् । पुण्डरीको व्याघ्रोऽग्निर्दिग्गजश्च ॥

४६०–फर्फरीकादि शब्द निपातनसे सिद्ध हों । स्फुर धातु स्फुरणमें है । इस धातुके उत्तर ईकन् प्रत्यय और धातुके स्थानमें फर्फरादेश हो, फर्फरीकं किसलयम् (कमल) । दर्दरीकं वादित्रम् (बाजा) । झर्झरीकं शरीरम् । तिन्तिडीकः वृक्षभेदः (इमली) । चर धातुको नुम् हो, और उसके उत्तर ईकन् प्रत्यय हो । चञ्चरीकः(भौंरा)। मर्मरीकः–हीनजनः । कर्करीका गलन्तिका । पुण धातुके उत्तर ईकन् प्रत्यय हो, पुण्डरीकं वादित्रम् । पुण्डरीकः–व्याघ्रः, अग्निः और दिग्गजः ॥

४६१ 'ईषेः किद्ध्रस्वश्च' ॥ ॥ इषीका शलाका॥

४६१–ईष धातुके उत्तर ईकन् प्रत्यय हो, और वह कित्संज्ञक हो, और धातुको ह्रस्व हो, इषीका–शलाका ॥

४६२ 'ऋजेश्च' ॥ ॥ ऋजीकः उपहतः ॥

४६२–ऋजि धातुके उत्तर ईकन् प्रत्यय हो, ऋजीकः उपहतः ॥

४६३ 'सर्तेर्नुम् च' ॥ ॥ सृणीका लाला ॥

४६३–सृ धातुके उत्तर ईकन् प्रत्यय हो, और नुम् आगम हो, सृणीका–लाला ॥

४६४ 'मृडः कीकन्कङ्कणौ' ॥ ॥ मृडीको मृगः । मृडंकणः शिशुः ॥

४६४–मृड धातुके उत्तर कीकन् और कङ्कण प्रत्यय हो, मृडीकः मृगः । मृडङ्कणःशिशुः ॥

४६५ 'अलीकादयश्च' ॥ ॥ कीकन्नन्ता निपात्यन्ते । अल भूषणादौ । अलीकं मिथ्या । विपूर्वाद्व्यलीकं विप्रियं खेदश्च । 'वलीकं पटलप्रान्ते' इत्यादि ॥

४६५–अलीकादि शब्द कीकन्प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों । अल धातु भूषणादिमें है । अलीकं मिथ्या । विपूर्वक होनेपर व्यलीकं विप्रियं खेदश्च । व्यलीक शब्द अप्रिय और खेदमें है । वलीकं पटलप्रान्ते, अर्थात् पटलके समीप ॥

४६६ 'कॄतॄभ्यामीषन्' ॥ ॥ करीषोऽस्त्री शुष्कगोमये । तरीषः तरिता ॥

४६६–कॄ और तॄ धातुके उत्तर ईषन् प्रत्यय हो, करीषः शुष्कगोमयः । (सूखा गोवर) तरीषः–तरिता ॥

४६७ 'शॄपॄभ्यां किच्च'॥ ॥शिरीषः। पुरीषम्॥

४६७–शॄ, पॄ धातुके उत्तर ईषन् प्रत्यय हो, और वह कित्संज्ञक हो, शिरीषः । पुरीषम्–(विष्ठा)॥

४६८ 'अर्जेर्ऋज च'॥ ॥'ऋजीषं पिष्टपचनम्'॥

४६८–अर्जि धातुके स्थानमें ऋज आदेश हो, और उसके उत्तर ईषन् प्रत्यय हो, 'ऋजीषं पिष्टपचनम्' ॥

४६९ 'अम्बरीषः' ॥ ॥ अयं निपात्यते । अबि शब्दे ॥ 'अम्बरीषः पुमान् भ्राष्ट्रम्' । अमरस्तु 'क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना' ॥

४६९–शब्दार्थ अबि धातुके उत्तर ईषन् प्रत्यय होकर अम्बरीष शब्द निपातनसे सिद्ध हो, भ्राष्ट्रार्थमें अम्बरीषः यह पुमान् है । अमरस्तु "क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना" पुल्लिंगमें भ्राष्ट्र शब्द है और नपुंसकमें अम्बरीष शब्द है यह अमरकोशमें है ॥

४७० 'कॄशॄपॄकटिपटिशौटिभ्य ईरन्' ॥ ॥ करीरो वंशांकुरः । शरीरम् । परीरं फलम् । कटीरः कन्दरो जघनप्रदेशश्च । पटीरश्चन्दनः कण्टकः कामश्च । 'शौटीरस्त्यागिवीरयोः' ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । शौटीर्यम् ॥

४७०–कॄ, शॄ, पॄ, कटि, पटि और शौटि धातुके उत्तर ईरन् प्रत्यय हो, करीरो वंशांकुरः । शरीरम् । परीरं फलम् । कटीरः–कन्दरः जघनप्रदेशः (कन्दरा और जंघा) । पटीरः चन्दनः कण्टकः कामश्च। शौटीरस्त्यागी वीरः ।ब्राह्मणादि गणमध्यमें पाठके कारण ष्यञ् प्रत्यय भी होगा, शौटीर्य्यम् ॥

४७१ 'वशेः कित्' ॥ ॥ उशीरम् ॥

४७१–वश धातुके उत्तर ईरन् प्रत्यय हो, और वह कित्संज्ञक हो, उशीरम् (खस) ॥

४७२ 'कशेर्मुट् च' ॥ ॥ कश्मीरो देशः ॥

४७२–कशि धातुके उत्तर ईरन् प्रत्यय हो । और मुट्का आगम हो, कश्मीरः देशः ॥

४७३ 'कृण उच्च' ॥ ॥ कुरीरं मैथुनम् ॥

४७३–कृन् धातुके उत्तर ईरन् प्रत्यय और ऋके स्थानमें उकार हो, कुरीरं–मैथुनम् ॥

४७४ 'घसेः किच्च' ॥ ॥ क्षीरम् ॥

४७४–घस धातुके उत्तर ईरन् प्रत्यय कित्संज्ञक हो, क्षीरम् । (दूध) ॥

४७५ 'गभीरगम्भीरौ' ॥ ॥ गमेर्भः पक्षे नुम् च ॥

४७५–गम् धातुके उत्तर ईरन् प्रत्यय हो, और मके स्थानमें भ आदेश और पक्षमें नुम् आगम हो, गभीरः । गम्भीरः । (गहरा) ॥

४७६ 'विषा विहा' ॥ ॥ स्यतेर्जहातेश्च विपूर्वाभ्यामाप्रत्ययः । विषा बुद्धिः।विहा स्वर्गः। अव्यये इमे ॥

४७६–विपूर्वक स्यति और हा धातुके उत्तर आ प्रत्यय हो, विषा–बुद्धिः । विहा–स्वर्गः । यह अव्यय शब्द हैं ॥

४७७ 'पच एलिमच्' ॥ ॥ पचेलिमो वह्निरव्योः ॥

४७७–पच् धातुके उत्तर एलिमच् प्रत्यय हो, पचेलिमः वह्निरव्योः । अर्थात् अग्नि और सूर्य ॥

४७८ 'शीङो धुक्लक्वलञ्वालनः' ॥ ॥ चत्वारः प्रत्ययाः स्युः । शीधु मद्यम् । शीलं स्वभावः । शैवलः शैवालम् । बाहुलकाद्वस्य पोपि । 'शैवालं शैवलो न स्त्री शेपालो जलनीलिका' ॥

४७८–शीङ् धातुके उत्तर धुक्, लक्, वलञ् और वालन् यह चार प्रत्यय हों, शीधु मद्यम् । शीलम् स्वभावः । शैवलः । शैवालम् । बाहुलकसूत्रबलसे वकारके स्थानमें पकार हो । "शैवालः शैवलो न स्त्री शेपाली जलनीलिका" शैवालः अर्थात् सिवार स्त्रीलिङ्गमें शेपाली जलनीलिका नपुंसकमें शैवालम् ॥

४७९ 'मृकणिभ्यामूकोकणौ' ॥ ॥ मरूको मृगः । काणूकः काकः ॥

४७९–मृ और कणि धातुके उत्तर ऊक प्रत्यय और ऊकण् प्रत्यय हो, मरूको मृगः । काणूकः काकः ॥

४८० 'वलेरूकः' ॥ ॥ वलूकः पक्षी उत्पलमूलं च ॥

४८०–वल धातुके उत्तर ऊक प्रत्यय हो । वलूकः पक्षी उत्पलमूलञ्च (कमलकी जड़) ॥

४८१ 'उलूकादयश्च' ॥ ॥ वलेः संप्रसारणमूकश्च । 'उलूकाविन्द्रपेचकौ' । वावदूको वक्ता । भल्लूकः ॥ शमेर्बुक्च (ग०) शम्बूको जलशुक्तिः ॥

४८१–वल धातुके उत्तर ऊक प्रत्यय और वकारको सम्प्रसारण हो, " उलूकाविन्द्रपेचकौ" । वावदूको वक्ता । भल्लूकः । शम धातुके उत्तर बुक् आगम और ऊक् प्रत्यय हो, शम्बूको जलशुक्तिः । (जलकी सीपी, घोंघा) ॥

४८२ 'शलिमण्डिभ्यामूकण्' ॥ ॥ शालूकं कन्दविशेषः। मण्डूकः ॥

४८२-शलि और मण्डि धातुके उत्तर ऊकण् प्रत्यय हो, शालूकं कन्दविशेषः। मण्डूकः। शाल्+ऊकण्=शालूक+सु=शालूकः ॥

४८३ 'नियो मिः' ॥ ॥ नेमिः

४८३-नि धातुके उत्तर मि प्रत्यय हो, नेमिः (लीक) ॥

४८४ 'अर्त्तेरूच्च' ॥ ॥ ऊर्मिः ॥

४८४-ऋ धातुके उत्तर मि प्रत्यय और ऋके स्थानमें ऊकार हो, ऊर्मिः(लहर) ॥

४८५ 'भुवः कित्' ॥ ॥ भूमिः ॥

४८५-भू धातुके उत्तर मि प्रत्यय हो, और वह कित्संज्ञक हो, भूमिः ॥

४८६ 'अश्नातेरश्च' ॥ ॥ रश्मिः किरणो रज्जुश्च ॥

४८६-अश् धातुके उत्तर मि प्रत्यय हो, और रश् आदेश हो, रश्मिः किरण और रज्जु। अश्+मि=रश्मि+सु=रश्मिः। (किरण और रस्सी) ॥

४८७ 'दलिमः' ॥ ॥ दल विशरणे। दलिमरिन्द्रायुधम् ॥

४८७-दल धातुके मि प्रत्यय हो, 'दलिमरिन्द्रायुधम्' ॥

४८८ 'वीज्याज्वरिभ्यो निः' ॥ ॥ बाहुलकाण्णत्वम्। 'वेणिः स्यात्केशविन्यासः प्रवेणी च स्त्रियामुभे'। ज्यानिः। जूर्णिः ॥

४८८-वी, ज्या और ज्वरि धातुके उत्तर नि प्रत्यय हो, बाहुलकबलसे णत्व होगा। "वेणिः स्यात्केशविन्यासः प्रवेणी च स्त्रियामुभे"। ज्यानिः (जीर्णता, हानि) जूर्णिः। वेणिः-(स्त्रीजनोंके बालोंकी गुथी हुई चोटी) इसे प्रवेणी भी कहतेहैं ॥

४८९ 'सृवृषिभ्यां कित्' ॥ ॥ सृणिरंकुशः। 'वृष्णिः क्षत्रियमेषयोः' ॥

४८९-सृ और वृष धातुके उत्तर नि प्रत्यय हो, और वह कित्संज्ञक हो, सृणिः अंकुशः। "वृष्णिः क्षत्रियमेषयोः" ॥

४९० 'अङ्गेर्नलोपश्च' ॥ ॥ अग्निः ॥

४९०-अङ्ग धातुके उत्तर नि प्रत्यय हो और धातुके नकारका लोप हो, अग्निः ॥

४९१ 'वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित्' ॥ ॥ वह्निः। श्रेणिः। श्रोणिः। योनिः। द्रोणिः। ग्लानिः। हानिः। तूर्णिः। बाहुलकान्म्लानिः ॥

४९१-वहि, श्रि, श्रु, यु, द्रु, ग्ला, हा और त्वर धातुके उत्तर नि प्रत्यय हो वह नित्संज्ञक हो। वह्निः, श्रेणिः। योनिः। द्रोणिः। ग्लानिः। हानिः। तूर्णिः। बाहुलक सूत्रबलसे म्लानिः। श्रेणिः-पंक्ति, द्रोणिः-परिमाणविशेष वा जलादिआधार। म्लानिः-मलीनता। हानिः-अलाभ नुकसान ॥

४९२ 'घृणिपृश्निपार्ष्णिचूर्णिभूर्णि' ॥ ॥ एते पञ्च निपात्यन्ते। घृणिः किरणः। स्पृशतेः सलोपः। पृश्निरल्पशरीरः। पृषेर्वृद्धिश्च। पार्ष्णिः पादतलम्। चरेरुपधाया उत्त्वम्। चूर्णिः कपर्दकशतम्। बिभर्तेरुत्त्वम्। भूर्णिर्धरणी ॥

४९२-घृणि, पृश्नि, पार्ष्णि, चूर्णि और भूर्णि यह पांच पद निपातनसे सिद्ध हैं। घृणिः किरणः। स्पृश धातुके सकारका लोप हो, पृश्निः स्वल्प शरीर। पृष धातुको वृद्धि हो, पार्ष्णिः पादतलम्। चर धातुकी उपधाके स्थानमें उकार हो, चूर्णिः कपर्दकशतम्। भृ धातुकी ऋके स्थानमें दीर्घ ऊकार हो, भूर्णिः-धरणिः। (पृश्निः-छोटा शरीर) पार्ष्णिः-गुल्फका अधोभाग ॥

४९३ 'वृदृभ्यां विन्' ॥ ॥ वर्विर्घस्मरः। दर्विः ॥

४९३-वृ और दृ धातुके उत्तर विन् प्रत्यय हो, वर्विः घस्मरः। दर्विः ॥

४९४ 'जॄशॄस्तृजागृभ्यः क्विन्' ॥ ॥ जीर्विः पशुः। शीर्विर्हिंस्रः। स्तीर्विरध्वर्युः। जागृविर्नृपः ॥

४९४-जॄ, शॄ, स्तॄ और जागृ धातुके उत्तर क्विन् प्रत्यय हो, जीर्विः पशुः। शीर्विः हिंस्रः। स्तीर्विः अध्वर्युः। जागृविः नृपः ॥

४९५ 'दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य' ॥ ॥ 'दीदिविः स्वर्गमोक्षयोः' ॥

४९५-दिव् धातुको द्वित्व हो, और अभ्यासको दीर्घ हो, और क्विन् प्रत्यय हो "दीदिविः स्वर्गमोक्षयोः" ॥

४९६ 'कृविघृष्विच्छविस्थविकिकीदिवि' ॥ ॥ कृविस्तन्तुवायद्रव्यम्। घृष्विर्वराहः। छास्थोर्ह्रस्वत्वं च। छविर्दीप्तिः। स्थविस्तन्तुवायः। दीव्यतेः किकीपूर्वात्। किकीदिविश्चाषः। बाहुलकाद्ध्रस्वदीर्घयोर्विनिमयः। 'चाषेण किकिदीविना' ॥

४९६-कृवि, घृष्वि, छवि, स्थवि और किकीदिवि यह सम्पूर्ण शब्द निपातनसे सिद्ध हैं, कृविः तन्तुवायद्रव्यम्। घृष्विः वराहः। छा और स्था धातुको ह्रस्वता हो, छविः दीप्तिः। स्थविस्तन्तुवायः। किकीपूर्वक दिवि धातुके उत्तर इ प्रत्यय हो किकीदिविश्चाषः। इस स्थलमें बाहुलकबलसे ह्रस्व और दीर्घका भी विनिमय होगा। "चाषेण किकिदीविना" ॥

४९७ 'पातेर्डतिः' ॥ ॥ पतिः ॥

४९७-पा धातुके उत्तर डति प्रत्यय हो, पतिः ॥

४९८ 'शकेर्ऋतिन्' ॥ ॥ शकृत् ॥

४९८-शकि धातुके उत्तर ऋतिन् प्रत्यय हो, शकृत् ॥

४९९ 'अमेरतिः' ॥ ॥ अमतिः कालः ॥

४९९-अमि धातुके उत्तर अति प्रत्यय हो, अमतिः कालः ॥

५०० 'वहिवस्यर्तिभ्यश्चित्' ॥ ॥ वहतिः पवनः। 'वसतिर्गृहयामिन्योः'। अरतिः क्रोधः ॥

५००-वहि, वसि और अर्त्ति धातुके उत्तर अति प्रत्यय हो, और वह चित्संज्ञक हो, वहतिः पवनः । वसतिः गृह और यामिनी । अरतिः क्रोधः ॥

५०१ 'अञ्चेः को वा'॥ ॥ अंकतिरञ्चतिर्वातः॥

५०१-अञ्चि धातुके उत्तर अति प्रत्यय हो, और विकल्प करके चके स्थानमें क हो, अंकतिः अञ्चतिः वातः (वायु) ॥

५०२ 'हन्तेरंह च' ॥ ॥ हन्तेरतिः स्यादंहादेशश्च धातोः । हन्ति दुरितमनया अंहतिर्दानम् । 'प्रादेशनं निर्वपणमपवर्जनमंहतिः' ॥

५०२-हन धातुके स्थानमें अंह आदेश हो, और उसके उत्तर अति प्रत्यय हो, हन्ति दुरितमनया अंहतिः दानम् । " प्रादेशनं निर्वपणमपवर्जनमंहतिः " ॥

५०३ 'रमेर्नित्' ॥ ॥ 'रमतिः कालकामयोः' ॥

५०३-रम् धातुके उत्तर अति प्रत्यय हो, और वह नित्संज्ञक हो, "रमतिः कालकामयोः " ॥

५०४ 'सूङः क्रिः' ॥ ॥ सूरिः ॥

५०४-सूङ् धातुके उत्तर क्रि प्रत्यय हो, सूरिः ॥

५०५ 'अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन्' ॥ ॥ अद्रिः । शद्रिः शर्करा । भूरि प्रचुरम् ॥ शुभ्रिर्ब्रह्मा ॥

५०५-अदि, शदि, भू और शुभि धातुके उत्तर क्रिन् प्रत्यय हो, अद्रिः । शद्रिः—शर्करा । भूरि–प्रचुरम् । शुभ्रिः–ब्रह्मा ॥

५०६ 'वङ्क्र्यादयश्च' ॥ ॥ क्रिन्नन्ता निपात्यन्ते । वङ्क्रिर्वाद्यभेदो गृहदारु पार्श्वास्थि च । वप्रिः क्षेत्रम् । 'अंहिरङ्घ्रिश्च चरणः' । तंदिः सौत्रो धातुः । तन्द्रिर्मोहः । बाहुलकाद् गुणः । भेरिः ॥

५०६-वङ्क्र्यादि शब्द क्रिन् प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों, वंक्रिः वाद्यभेदः । गृहदारु पार्श्वास्थि । वप्रिः क्षेत्रम् । अंह्रिः अंघ्रिः चरणः । तंदिः यह सूत्रज धातु है । तंद्रिः–मोहः। बाहुलकबलसे गुण होगा । भेरिः ॥

५०७ 'राशदिभ्यां त्रिप्' ॥ ॥ रात्रिः । शत्रिः कुञ्जरः ॥

५०७-रा और शद् धातुके उत्तर त्रिप् प्रत्यय हो, रात्रिः। शत्रिः कुञ्जरः ॥

५०८ 'अदेस्त्रिनिश्च' ॥ ॥ चात्त्रिप् । अत्री । अत्रिणौ । अत्रिणः । अत्रिः । अत्री । अत्रयः ॥

५०८-अद धातुके उत्तर त्रिन् और त्रिप प्रत्यय हो, यथा–अत्त्री।अत्त्रिणौ । अत्त्रिणः । अत्त्रिः। अत्त्री । अत्त्रयः॥

५०९ 'पतेरत्रिन्' ॥ ॥ पतत्रिः पक्षी ॥

५०९-पत् धातुके उत्तर अत्रिन् प्रत्यय हो.पतत्रिः (पक्षी) ॥

५१० 'मृकणिभ्यामीचिः' ॥ ॥ मरीचिः । कणीचिः पल्लवो निनादश्च ॥

५१०-मृ और कणि धातुके उत्तर ईचि प्रत्यय हो, मरीचिः । कणीचिः पल्लवः निनादश्च । (मरीचिः–किरण । कणीचिः पत्ता, और शब्द) ॥

५११ 'श्वयतेश्चित्' ॥ ॥ श्वयीचिर्व्याधिः ॥

५११-श्वि धातुके उत्तर ईचि प्रत्यय हो, और वह चित्संज्ञक हो, श्वयीचिः व्याधिविशेषः ॥

५१२ 'वेञो डिच्च' ॥ ॥ वीचिस्तरंगः । नञ्समासे अवीचिर्नरकभेदः ॥

५१२-वेञ् धातुके उत्तर ईचि प्रत्यय हो,और वह डित्–संज्ञक हो । वीचिः तरङ्गः । नञ् समासमें अवीचि ऐसा पद सिद्ध हुआ । अवीचिः नरकः ॥

५१३ 'ऋहनिभ्यामूषन्' ॥ ॥ अरूषः सूर्यः । हनूषो राक्षसः ॥

५१३-ऋ और हनि धातुके उत्तर ऊषन् प्रत्यय हो, अरूषः सूर्यः हनूषः राक्षसः ॥

५१४ 'पुरः कुषन्' ॥ ॥ पुर अग्रगमने । पुरुषः । अन्येषामपीति दीर्घः । पूरुषः ॥

५१४-पुर् धातुके उत्तर कुषन् प्रत्यय हो, ' पुर अग्रगमने ' पुरुषः । " अन्येषामपि० ३५३९"इस सूत्रसे दीर्घ हुआ । पूरुषः ॥

५१५ 'पॄनहिकलिभ्य उषच्' ॥ ॥ परुषम् । नहुषः । कलुषम् ॥

५१५-पॄ, नहि और कलि धातुके उत्तर उषच् प्रत्यय हो; परुषम् । नहुषः कलुषम् (कलुषम्–पाप वा मैल) ॥

५१६ 'पीयेरूषन्' ॥ ॥ पीय इति सौत्रो धातुः । पीयूषम्। बाहुलकाद् गुणे ' पेयूषोऽभिनवं पयः' ॥

५१६-पीय धातुके उत्तर ऊषन् प्रत्यय हो, पीयूषम् (अमृत) बाहुलकसूत्रसे गुण होकर पेयूषः अभिनवं पयः (तुरतका दूध) ॥

५१७ 'मस्जेर्नुम् च' ॥ ॥ मञ्जूषा ॥

५१७-मस्ज धातुके उत्तर ऊषन् प्रत्यय हो, और नुम्का आगम हो, यथा–मञ्जूषा । (पिटारी) ॥

५१८ 'गंडेश्च' ॥ ॥ गण्डूषः । गण्डूषा ॥

५१८-गड धातुके उत्तर ऊषन प्रत्यय हो, गण्डूषः । गण्डूषा । (गण्डूषः–कुल्ला) ॥

५१९ 'अर्तेररुः' ॥ ॥ अररुः शत्रुः । अररू । अररवः ॥

५१९-ऋ धातुके उत्तर अरु प्रत्यय हो, अररुः शत्रुः । अररू । अररवः ॥

५२० 'कुटः किच्च' ॥ ॥ कुटरुर्वस्त्रगृहम् । कित्त्वप्रयोजनं चिन्त्यम् ॥

५२०-कुट धातुके उत्तर अरु प्रत्यय हो और वह कित्संज्ञक हो, कुटरुः वस्त्रगृहम् । इस स्थलमें ग्रन्थकारने जो कित्संज्ञाका विधान कियाहै, सो चिन्तनीय है ॥

५२१ 'शकादिभ्योऽटन्' ॥ ॥ शकटोऽस्त्रियाम् । ककिर्गत्यर्थः । कङ्कटः सन्नाहः । देवटः शिल्पी । करट इत्यादि ॥

५२१–शकादि धातुओंके उत्तर अटन् प्रत्यय हो, शकटः अर्थात् यानविशेष यह शब्द स्त्रीलिङ्ग नहीं है । ककि धातु, गत्यर्थमें है । कंकटः सन्नाहः । देवटः शिल्पी । करटः इत्यादि ॥

५२२ 'कृकदिकडिकटिभ्योऽम्बच्' ॥ ॥ करम्बं व्यामिश्रम् । कदिकडी सौत्रौ । कदम्बो वृक्षभेदः । कडम्बोऽग्रभागः । कटम्बो वादित्रम् ॥

५२२–कृ, कदि, कडि और कटि धातुके उत्तर अम्बच् प्रत्यय हो, करम्बम् व्यामिश्रम् । कदि और कडि यह दो धातु सूत्रज हैं । कदम्बः वृक्षभेदः । कडम्बः अग्रभागः । कटम्बो वादित्रम् ॥

५२३ 'कदेर्णित्पक्षिणि' ॥ ॥ कादम्बः कलहंसः ॥

५२३–पक्षि अर्थ होनेपर कदि धातुके उत्तर अम्बच् प्रत्यय हो, वह णित्संज्ञक हो । कादम्बः कलहंसः ॥

५२४ 'कलिकर्द्योरमः' ॥ ॥ कलमः । कर्दमः ॥

५२४–कलि और कर्दि धातुके उत्तर अम प्रत्यय हो, कलमः । कर्दमः (कलमः धान्य । कर्दमः–मुनिका-नाम, तथा कीचड़) ॥

५२५ 'कुणिपुल्योः किन्दच्' ॥ ॥ कुण शब्दोपकरणयोः । कुणिन्दः शब्दः । पुलिन्दो जातिविशेषः ॥

५२५–कुणि और पुलि धातुके उत्तर किन्दच् प्रत्यय हो, कुण धातु शब्द और उपकरणमें है । कुणिन्दः शब्दः । पुलिन्दः जातिविशेषः ॥

५२६ 'कुपेर्वा वश्च' ॥ ॥ कुपिन्दकुविन्दौ तन्तुवाये ॥

५२६–तन्तुवायार्थमें कुपि धातुके उत्तर किन्दच् प्रत्यय हो, और विकल्प करके पके स्थानमें व आदेश हो, कुपिन्दः कुविन्दः तन्तुवायः (जुलाहा) ॥

५२७ 'नौ षञ्जेर्घथिन्' ॥ ॥ निषंगथिरालिंगकः ॥

५२७–निपूर्वक संजि धातुके उत्तर घथिन् प्रत्यय हो, निषङ्गथिः आलिङ्गकः ॥

५२८ 'उदि ऋतेश्थिन्' ॥ ॥ उदरथिः समुद्रः ॥

५२८–उत्पूर्वक ऋ धातुके उत्तर थिन् प्रत्यय हो, और वह कित्संज्ञक हो, उदरथिः समुद्रः ॥

५२९ 'सर्तेर्णिच्च' ॥ ॥ सारथिः ॥

५२९–सृ धातुके उत्तर थिन् प्रत्यय हो, और वह णित्संज्ञक हो, सारथिः ॥

५३० 'खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ' ॥ ॥ खर्जूरः । कर्पूरः । वल्लूरं शुष्कमांसम् । पिञ्जूलं कुशवर्तिः ॥ लङ्गेर्वृद्धिश्च (ग०)॥ ॥लांगूलम् । कूसुलः । तमेर्दुग्वृद्धिश्च । तांबूलम् । शृणातेर्दुग्वृद्धिश्च । शार्दूलः । दुकोः कक्च । दुकूलम् । कुकूलम् ॥

५३०–खर्जादि और पिञ्जादि धातुके उत्तर ऊर और ऊलच् प्रत्यय हो, खर्जूरः । कर्पूरः । वल्लूरं शुष्कमांसम् । पिंजूलं कुशवर्त्तिः । लङ्ग धातुके उत्तर ऊलच् प्रत्यय हो, और वृद्धि हो, लांगूलम् । कुसूलः । (कुसूलः–तुषाग्नि वा अन्नभरनेकी कोठी) । तमि धातुके उत्तर ऊलच् प्रत्यय हो दुक्का आगम और वृद्धि हो । ताम्बूलम् । शृ धातुके उत्तर ऊलच् प्रत्यय दुक् आगम और वृद्धि हो, शार्दूलः । दु और कु धातुके उत्तर ऊलच् प्रत्यय और कुक् आगम हो, दुकूलम् । दुकूल–वस्त्र । कुकूलम् ॥

५३१ 'कुवश्चट् दीर्घश्च' ॥ ॥ कूची चित्रलेखनिका ॥

५३१–कु धातुके उत्तर चट् प्रत्यय हो, और पूर्व स्वर दीर्घ हो, कूची चित्रलेखनिका । (कूची–जिससे चित्रमें रंग भरे जातेहैं) ॥

५३२ 'समीणः' ॥ ॥ समीचः समुद्रः । समीची हरिणी ॥

५३२–संपूर्वक इण् धातुके उत्तर चट् प्रत्यय और पूर्व स्वरको दीर्घ हो, समीचः समुद्रः । समीची हरिणी ॥

५३३ 'सिवेष्टेरू च' ॥ ॥ सूचो दर्भांकुरः । सूची ॥

५३३–सिव् धातुके उत्तर चट् प्रत्यय हो, और टिके स्थानमें ऊकार आदेश हो, सूचो दर्भाङ्कुरः । सूची ॥

५३४ 'शमेर्बन्' ॥ ॥ शम्बो मुसलाग्रस्थलोहमंडलकः ॥

५३४–शमि धातुके उत्तर बन् प्रत्यय हो, शम्बो मुसलाग्रस्थलोहमण्डलकः ॥

५३५ 'उल्बादयश्च' ॥ ॥ बन्नन्ता निपात्यन्ते । उच समवाये । चस्य लत्वं गुणाभावश्च । उल्बो गर्भाशयः । शुल्बं ताम्रम् । बिम्बम् ॥

५३५–उल्ब आदि शब्द बन् प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हों, उच धातु समवायमें है । बन् प्रत्यय होनेपर चकारके स्थानमें लकार और गुणाभाव हो । उल्बः गर्भाशयः । शुल्बं ताम्रम् । बिम्बम् । बिम्ब–सूरत जो दर्पणमें दीखती है ॥

५३६ 'स्थः स्तोऽम्बजबकौ' ॥ ॥ तिष्ठतेरम्बच् अबक एतौ स्तस्तादेशश्च । 'स्तम्बो गुच्छस्तृणादिनः' । स्तबकः पुष्पगुच्छः ॥

५३६–स्था धातुके उत्तर अम्बच् और अबक प्रत्यय हों, और स्थाके स्थानमें स्त आदेश हो, स्तम्बः तृणादिगुच्छः । स्तबकः पुष्पगुच्छः । (फूलोंका गुच्छा) ॥

५३७ 'शाशपिभ्यां ददनौ' ॥ ॥ 'शादो जम्बालशष्पयोः' ॥ शब्दः ॥

५३७-शा और शपि धातुके उत्तर द और दन् प्रत्यय हों "शादो जम्बालशष्पयोः" (छोटी २ घास) । शब्दः ॥

५३८ 'अब्दादयश्च' ॥ ॥ अवतीत्यब्दः ॥ कौतेर्नुम् ॥ ग० ॥ कुन्दः ॥

५३८-अब्दादि शब्द निपातनसे सिद्ध हों, अवतीति= अब्दः ॥

कु धातुके उत्तर द प्रत्यय और नुम्का आगम भी हो, कुन्दः ॥

५३९ 'वलिमलितनिभ्यः कयन्' ॥ ॥ वलयम् । मलयः । तनयः ॥

५३९-वल्, मल् और तन् धातुके उत्तर कयन् प्रत्यय हो वलयम् (कङ्कण)।मलयः (तन्नामक पर्वत) । तनयः (पुत्र)॥

५४० 'वृहोः षुग्दुकौ च' ॥ ॥ वृषयः आश्रयः । हृदयम् ॥

५४०-वृ और हृ धातुके उत्तर कयन् प्रत्यय हो, और धातुको यथाक्रम षुक् और दुक्का आगम हो,वृषयः-आश्रयः हृदयम् ॥

५४१ 'मिपीभ्यां रुः' ॥ ॥ मेरुः । पेरुः सूर्यः । बाहुलकात् पिबतेरपि । 'संवत्सरवपुः पारुः पेरुर्वासीर्दिनप्रणीः' ॥

५४१-मि और पी धातुके उत्तर रु प्रत्यय हो, मेरुः । पेरुः।सूर्यः। बाहुलकबलसे पा धातुके उत्तर भी रु प्रत्यय होगा, "संवत्सरवपुः पारुः पेरुर्वासीर्दिनप्रणीः" ॥

५४२ 'जत्र्वादयश्च' ॥ ॥ जत्रु । जत्रुणी । अश्रु । अश्रुणी ॥

५४२-जत्रु आदि शब्द निपातनसे सिद्ध हों, जत्रु । जत्रुणी । अश्रु । अश्रुणी ॥

५४३ 'रुशातिभ्यां क्रुन्' ॥ ॥ रुरुर्मृगभेदः । शातयतीति शत्रुः । प्रज्ञादौ पाठाद्ध्रस्वत्वम् ॥

५४३-रु और शाति धातुके उत्तर क्रुन् प्रत्यय हो, रुरुः मृगभेदः । शातयति, इस विग्रहमें 'शत्रुः' यहां प्रज्ञादिगणमें पाठके कारण ह्रस्व हुआ ॥

५४४ 'जनिदाच्युसृवृमदिपमिनमिभृञ्भ्य इत्वनत्वनत्लण्क्निनशकस्यडडदाटचः' ॥ ॥ जनित्वौ मातापितरौ । दात्वो दाता । च्यौत्नो गन्ता अण्डजः क्षीणपुण्यश्च । सृणिरंकुशश्चन्द्रः सूर्यो वायुश्च । वृशः आर्द्रकं मूलकं च । मत्स्यः । षण्ढः । डित्वाट्टिलोपः । नमतीति नटः शैलूषः बिभर्त्ति भरटः कुलालो भृतकश्च ॥

५४४-जन्, दा, च्यु, सृ, वृ, मद्, षम्, नम् और भृञ् [illegible] उत्तर यथाक्रमसे इत्वन्, त्वन ,त्नण्,क्निन् , शक्,स्य, [illegible], ड्ट और अटच् प्रत्यय हों, यथा-जनित्वौ मातापितरौ । दात्वो दाता । च्यौत्नः-गन्ता, अंडजः, क्षीणपुण्यश्च । सृणिः-अंकुशः, चन्द्रः, सूर्यः, वायुश्च । वृशः-आर्द्रकं मूलकञ्च । मत्स्यः । षण्ढः । ड् इत् होनेके कारण टिका लोप होकर-नमति, इस विग्रहमें नटः-शैलूषः बिभर्त्ति भरटः । कुलालो भृतकश्च ॥

५४५ 'अन्येभ्योपि दृश्यन्ते' ॥ ॥ पेत्वममृतम् भृशम् ॥

५४५-अन्य धातुओंके उत्तर भी उक्त प्रत्यय हो; पेत्वम-मृतम् । भृशम् ॥

५४६ 'कुसेरुम्भोमेदेताः' ॥ ॥ कुसुम्भम् । कुसुमम् । कुसीदम् । कुसितो जनपदः ॥

५४६-कुस् धातुके उत्तर उम्भ, उम, ईद और इत प्रत्यय हों, कुसुम्भम् । कुसुमम् । कुसीदम् । कुसितः-जनपदः ॥

५४७ 'सानसिवर्णसिपर्णसितण्डुलांकुशचषालेल्वलपल्वलधिष्ण्यशल्याः'॥ ॥सनोतेरसिप्रत्यय उपधावृद्धिः ।सानसिर्हिरण्यम्। वृञो नुक च। वर्णसिर्जलम् । पृ । पर्णसिर्जलगृहम् । तड आघाते । तण्डुलाः । अकि लक्षणे उशच् । अंकुशः । चषेरालः । 'चषालो यूपकटकः' । इल्वलो दैत्यभेदः । पल्वलम् । ञिधृषा । ऋकारस्य इकारः । धिष्ण्यम् । शलेर्यः । 'शल्यं वा पुंसि शंकुर्ना' ॥

५४७-सानसि, वर्णसि, पर्णसि, तण्डुल, अंकुश, चषाल, इल्वल, पल्वल, धिष्ण्य, शल्य, यह पद निपातनसे सिद्ध हों । सन धातुके उत्तर असि प्रत्यय होनेपर उपधाको वृद्धि होकर-सानसिः-हिरण्यम्। वृञ् धातुके उत्तर असि प्रत्यय और नुक्का आगम होकर-वर्णसिः-जलम्।पॄ धातुके उत्तर असि प्रत्यय और नुक्का आगम होकर-पर्णसिः-जलगृहम्।आघातार्थक तड् धातुके उत्तर उलच् प्रत्यय,नुगागम होकर तण्डुलाः । लक्षणार्थक अकि धातुके उत्तर उशच् प्रत्यय होकर-अंकुशः।चष् धातुके उत्तर आल प्रत्यय होकर चषालः-यूपकटकः।इल्वलः-दैत्यभेदः।पल्वलम्। धृष् धातुके उत्तर ण्य प्रत्यय और ऋकारके स्थानमें इकार होकर-धिष्ण्यम् । शल् धातुके उत्तर य प्रत्यय होकर-'शल्यं वा पुंसि शंकुर्ना' ॥

५४८ 'मूशक्यबिभ्यः क्लः' ॥ ॥ मूलम् । शक्लः प्रियंवदे । अम्ब्लो रसः । बाहुलकादमेः । अम्लः ॥

५४८-मू, शक् और अब् धातुके उत्तर क्ल प्रत्यय हो, मूलम् । शक्लः प्रियंवदः । अम्ब्लः रसः । बाहुलकबलसे अम धातुके उत्तर भी क्ल प्रत्यय होकर-अम्लः ॥

५४९ 'माछाससिभ्यो यः' ॥ ॥ माया । छाया । सस्यम् । बाहुलकात्सुनोतेः । 'सव्यं दक्षिणवामयोः' ॥

५४९–मा, छा और सस धातुके उत्तर य प्रत्यय हो, माया । छाया । सस्यम् । बाहुलकबलसे सु धातुके उत्तर भी य प्रत्यय होकर "सव्यं दक्षिणवामयोः" ॥

५५० 'जनेर्यक्' ॥ ॥ ये विभाषा । जन्यं युद्धम् । जाया भार्या ॥

५५०–जन् धातुके उत्तर यक् प्रत्यय हो, जन्यं–युद्धम् । "ये विभाषा" इससे आत्व होकर–जाया–भार्या ॥

५५१ 'अघ्न्यादयश्च' ॥ ॥ यगन्ता निपात्यन्ते । हन्तेर्यक् अडागम उपधालोपश्च । अघ्न्या माहेयी । अघ्न्यः प्रजापतिः । कनी दीप्तौ । कन्या । बवयोरैक्यम् । वन्ध्या ॥

५५१–यक् प्रत्ययान्त अघ्न्यादि शब्द निपातनसे सिद्ध हों, हन् धातुके उत्तर यक् प्रत्यय अडागम और उपधाको लोप होकर–अघ्न्या–माहेयी । अघ्न्यः–प्रजापतिः दीप्त्यर्थक कनी धातुका–कन्या । ब और वको एकत्व होनेसे–वन्ध्या ॥

५५२ 'स्नामदिपद्यर्त्तिपॄशकिभ्यो वनिप्' ॥ ॥ स्नावा रसिकः । मद्वा शिवः । पद्वा पन्थाः । 'अर्वा तुरङ्गगर्ह्ययोः' । पर्व ग्रन्थिः प्रस्तावश्च । शक्वा हस्ती । ङीब्रौ । शक्वरी अंगुलिः ॥

५५२–स्ना, मद्, पद्, ऋ, पॄ और शक् धातुके उत्तर वनिप् प्रत्यय हो, स्नावा–रसिकः । मद्वा–शिवः । पद्वा–पन्थाः । अर्वा–तुरङ्गगर्ह्ययोः । पर्व–ग्रन्थिः, प्रस्तावश्च । शक्वा–हस्ती । स्त्रीलिङ्गमें ङीप् और रकारान्तादेश होकर—शक्वरी–अंगुलिः ॥

५५३ 'शीङ्क्रुशिरुहिजिक्षिसृधृभ्यः क्वनिप्' ॥ ॥ शीवा अजगरः । क्रुश्वा सृगालः । रुह्वा वृक्षः । जित्वा जेता । क्षित्वा वायुः । सृत्वा प्रजापतिः । धृत्वा विष्णुः ॥

५५३–शीङ्, क्रुश, रुह, जि, क्षि, सृ और धृ धातुके उत्तर क्वनिप् प्रत्यय हो शीवा–अजगरः । क्रुश्वा–शृगालः । रुह्वा–वृक्षः । जित्वा–जेता । क्षित्वा–वायुः । सृत्वा–प्रजापतिः । धृत्वा–विष्णुः ॥

५५४ 'ध्याप्योः संप्रसारणं च' ॥ ॥ धीवा कर्मकरः । पीवा स्थूलः ॥

५५४–ध्या और प्या धातुके उत्तर क्वनिप् प्रत्यय हो, और सम्प्रसारण हो, धीवा--कर्म्मकरः । पीवा–स्थूलः ॥

५५५ 'अदेर्ध च' ॥ ॥ अध्वा ॥

५५५–अद् धातुके उत्तर क्वनिप् प्रत्यय हो, और दके स्थानमें ध आदेश हो, अध्वा ॥

५५६ 'प्रे ईरशदोस्तुट् च' ॥ ॥ प्रेत्वा प्रशत्त्वा च सागरः । प्रेत्वरी प्रशत्त्वरी च नदी ॥

५५६प्रपूर्वक ईर् और शद् धातुके उत्तर क्वनिप् प्रत्यय हो, और तुट्का आगम हो, प्रेत्वा प्रशत्त्वा च सागरः । प्रेत्वरी प्रशत्त्वरी च नदी ॥

५५७ 'सर्वधातुभ्य इन्' ॥ ॥ पचिरग्निः । तुडिः । तुण्डिः । वलिः । वटिः । याजिः । देवयजिः । काशत इति काशिः । यतिः । मल्लिः । मल्ली । केलिः । मसी परिणामे । मसिः । बाहुलकाद् गुणः । कोटिः । हेलिः । बोधिः । नन्दिः । कलिः ॥

५५७–सब धातुके उत्तर इन् प्रत्यय हो, पचिः--अग्निः । तुडिः । तुण्डिः । वलिः । वटिः । याजिः । देवयजिः । काशते, इस विग्रहमें काशिः । यतिः । मल्लिः । मल्ली । केलिः । परिणामार्थक मसी धातुका--मसिः । बाहुलकबलसे इकको गुण होकर–कोटिः । हेलिः । बोधिः । नन्दिः । कलिः ॥

५५८ 'हृपिषिरुहिवृतिविदिच्छिदिकीर्तिभ्यश्च' ॥ ॥ "हरिर्विष्णावहाविन्द्रे भेके सिंहे हये रवौ । चन्द्रे कीले प्लवंगे च यमे वाते च कीर्त्तितः" ॥ पेषिर्वज्रम् । रोहिर्व्रती । वर्तिः । वेदिः । छेदिश्छेत्ता । कीर्त्तिः ॥

५५८—हृ, पिष्, रुह, वृत्, विद्, छिद, और कीर्त् धातुके उत्तर इन् प्रत्यय हो, "हरिर्विष्णावहाविन्द्रे भेके सिंहे हये रवौ । चन्द्रे क्लीवे प्लवङ्गे च यमे वाते च कीर्त्तितः" अर्थात्–हरिशब्द–विष्णु, सर्प, इन्द्र, भेक, सिंह, घोडा, रवि, चन्द्र, क्लिब, वांनर, यम, और पवनमें वर्तताहै । पेषिः--वज्रम । रोहिः--व्रती । वर्त्तिः । वेदिः । छेदिः–छेत्ता । कीर्तिः ॥

५५९ 'इगुपधात्कित्' ॥ ॥ कृषिः । ऋषिः । शुषिः । लिपिः । बाहुलकाद्वत्वे लिबिः । तूल निष्कर्षे । तूलिः । तूली कूर्चिका ॥

५५९--इगुपध धातुके उत्तर इन् प्रत्यय हो, और वह कित् हो, कृषिः । ऋषिः । शुषिः । लिपिः । बाहुलकबलसे पके स्थानमें बकार होकर--लिबिः । तूलधातु निष्कर्षमें है । तूलिः । तूली--कूर्चिका ॥

५६० 'भ्रमेः संप्रसारणं च' ॥ ॥ भृमिर्वातः बाहुलकाद भ्रमिः ॥

५६०--भ्रम धातुके उत्तर इन् प्रत्यय हो, और संप्रसारण हो, भृमिर्वातः । बाहुलकबलसे भ्रमिः ऐसा भी होगा ॥

५६१ 'क्रमितमिशतिस्तम्भामत इच्च' ॥ ॥ क्रिमिः । संप्रसारणानुवृत्तेः कृमिरपि । तिमिर्मत्स्यभेदः । 'शितिर्मेचकशुक्लयोः' । स्तिम्भिः समुद्रः ॥

५६१--क्रम, तम्, शत् और स्तम्भ् धातुके उत्तर इन् प्रत्यय हो, और धातुके अकारको इकार हो, क्रिमिः ।

सम्प्रसारणकी अनुवृत्ति होनेसे 'कृमिः' यह भी सिद्ध होगा। तिमिः–मत्स्यविशेषः। शितिः, अर्थात् कृष्ण और शुक्ल। स्तिम्भिः–समुद्रः॥

५६२ 'मनेरुच' ॥ ॥ मुनिः ॥

५६२–मन् धातुके उत्तर इन् प्रत्यय हो, और अकारके स्थानमें उकार हो, मुनिः॥

५६३ 'वर्णेर्बलिश्चाहिरण्ये' ॥ ॥ वर्णिः सौत्रः। अस्य बलिरादेशः। 'करोपहारयोः पुंसि बलिः प्राण्यङ्गके स्त्रियाम्'। हिरण्ये तु वर्णिः सुवर्णम् ॥

५६३–वर्ण धातुसे हिरण्यभिन्नार्थमें इन् प्रत्यय हो, और धातुके स्थानमें बलि आदेश हो, "करोपहारयोः पुंसि बलिः प्राण्यङ्गके स्त्रियाम्"। हिरण्यार्थमें बलि आदेश न होकर–वर्णिः–सुवर्णम॥

५६४ 'वसिवपियजिराजिव्रजिसदिहनिवाशिवादिवारिभ्य इञ्' ॥ ॥ 'वासिश्छेदनवस्तुनि'। वापिः–वापी। याजिर्यष्टा। राजिः–राजी। व्राजिर्वातालिः। सादिः सारथिः। निघातिर्लोहघातिनी। वाशिरग्निः। वादिर्विद्वान्। वारिर्गजबन्धनी। जले तु क्लीबम्। बाहुलकात् 'हारिः पथिकसंहतौ' ॥

५६४–वस्, वप्, यज्, राज, व्रज्, सद्, हन्, वाश्, वादि और वारि धातुके उत्तर इञ् प्रत्यय हो। वासिः–छेदनवस्तु। वापिः, वापी। याजिः–यष्टा। राजिः। राजी। व्राजिः–वातालिः। सादिः–सारथिः। निघातिः–लोहघातिनी। वाशिः अग्निः। वादिः–विद्वान्। वारिः–गजबन्धनी। जल अर्थ होनेपर वारि शब्द क्लीबलिंग है। बाहुलकबलसे हारिः, अर्थात् पथिकसंहतिः॥

५६५ 'नहो भश्च' ॥ ॥ 'नाभिः स्यात्क्षत्त्रिये पुंसि'। प्राण्यंगे तु स्त्रियां पुंस्यपीति केचित् ॥

५६५–नह् धातुके उत्तर इञ् प्रत्यय हो, और हके स्थानमें भ आदेश हो, "नाभिः स्यात्क्षत्त्रिये पुंसि" प्राण्यङ्गे तु स्त्रियां पुंस्यपीति केचित्॥

५६६ 'कृषेर्वृद्धिश्छन्दसि' ॥ ॥ कार्षिः ॥

५६६–वेदमें कृष् धातुके उत्तर इञ् प्रत्यय हो, और ऋकारको वृद्धि हो, कार्षिः॥

५६७ 'शृः शकुनौ' ॥ ॥ शारिः। शारिका॥

५६७–शकुनि अर्थ होनेपर शृ धातुके उत्तर इञ् प्रत्यय हो, और वृद्धि हो, शारिः। शारिका॥

५६८ 'कृञ उदीचां कारुषु' ॥ ॥ कारिः शिल्पी ॥

५६८–उत्तरदेशीय कारु अर्थात् शिल्पी अर्थ होनेपर कृञ् धातुके उत्तर इञ् प्रत्यय और वृद्धि हो, कारिः–शिल्पी॥

५६९ 'जनिघसिभ्यामिण्' ॥ ॥ जनिर्जननम्। घासिर्भक्ष्यमग्निश्च ॥

५६९–जन् और घस् धातुके उत्तर इण् प्रत्यय हो, जनिः जननम्। घासिः–भक्ष्यमग्निश्च॥

५७० 'अज्यतिभ्यां च' ॥ ॥ आजिः संग्रामः। आतिः पक्षी ॥

५७०–अज् और अत् धातुके उत्तर इण् प्रत्यय हो, और स्वरको वृद्धि हो, आजिः–संग्रामः। आतिः–पक्षी॥

५७१ 'पादे च' ॥ ॥ पदाजिः। पदातिः ॥

५७१–पादशब्दपूर्वक अज् और अत् धातुके उत्तर इण् प्रत्यय हो, पदाजिः। पदातिः॥

५७२ 'अशिपणाय्योरुडायलुकौ च' ॥ ॥ अशेरुट्। राशिः पुञ्जः। पणायतेरायलुक्। पाणिः करः ॥

५७२–अश् और पणाय धातुके उत्तर इण् प्रत्यय हो और अश् धातुको रुट्का आगम और पणाय धातुके आयभागका लुक् हो, राशिः–पुंजः। पाणिः–करः॥

५७३ 'वातेर्डिच्च' ॥ ॥ विः पक्षी। स्त्रियां वीत्यपि ॥

५७३–वा धातुके उत्तर इण् प्रत्यय हो, और वह डित् हो, विः–पक्षी। स्त्रीलिङ्गमें 'वी' ऐसा भी होगा॥

५७४ 'प्र हरतेः कूपे' ॥ ॥ प्रहिः कूपः ॥

५७४–कूप होनेपर प्रपूर्वक हृ धातुके उत्तर डित् इण् प्रत्यय हो, प्रहिः–कूपः॥

५७५ 'नौ व्यो यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः' ॥ व्येञ इण् स्याद् यलोपश्च नेर्दीर्घः। नीविः। नीवी वस्त्रग्रन्थौ मूलधने च ॥

५७५–निपूर्वक व्येञ् धातुके उत्तर इण् प्रत्यय हो, और यकारका लोप हो, और निके इकारको दीर्घ हो, नीविः। नीवी वस्त्रग्रन्थौ मूलधने च॥

५७६ 'समाने ख्यः स चोदात्तः' ॥ ॥ समानशब्दे उपपदे ख्या इत्यस्मादिण् स्यात्स च डिच्च यलोपश्च समानस्य तूदात्तः स इत्यादेशश्च। समानं ख्यायते जनैरिति। सखा।

५७६–समानशब्दपूर्वक ख्या धातुके उत्तर इण् प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय डित् हो और यकारका लोप, समान शब्दको उदात्त स आदेश हो, समानं ख्यायते जनैः इति= सखा (मित्र)॥

५७७ 'आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च' ॥ ॥ इण् स्यात्स च डित् आङो ह्रस्वश्च। 'त्रियः पाल्यश्रिकोटयः'। 'सर्पे वृत्रासुरेऽप्यहिः' ॥

५७७–आङ्पूर्वक श्रि और हन् धातुके उत्तर डित् इण् प्रत्यय और आङ्को ह्रस्व हो, "स्त्रियः पाल्यश्रिकोटयः"। और "वृत्रासुरेऽप्यहिः"॥

५७८ 'अच इः' ॥ ॥ रविः । पविः । तरिः । कविः । अरिः । अलिः ॥

५७८–अजन्त धातुके उत्तर इ प्रत्यय हो, रविः । पविः । तरिः । कविः । अरिः । अलिः ॥

५७९ 'खनिकष्यज्यसिवसिवनिसनिध्वनिग्रन्थिचलिभ्यश्च' ॥ ॥ खनिः । कषिर्हिंस्रः । अजिः । असिः । वसिर्वस्त्रम् । वनिरग्निः । सनिर्भक्तिर्दानं च । ध्वनिः । ग्रन्थिः । चलिः पशुः ॥

५७९–खन्, कष्, अज्, अस्, वस्, वन्, सन्, ध्वन्, ग्रन्थ और चल् धातुके उत्तर इ प्रत्यय हो, खनिः । कषिः–हिंस्रः । अजिः । असिः । वसिः–वस्त्रम् । वनिः–अग्निः । सनिः–भक्तिः, दानं च । ध्वनिः । ग्रन्थिः । चलिः–पशुः ॥

५८० 'वृतेश्छन्दसि' ॥ ॥ वर्तिः ॥

५८०–वेदमें वृत् धातुके उत्तर इ प्रत्यय हो, वर्त्तिः ॥

५८१ 'भुजेः किच्च' ॥ ॥ भुजिः ॥

५८१–भुज् धातुके उत्तर इ प्रत्यय हो, और वह प्रत्यय कित् हो, भुजिः ॥

५८२ 'कॄगॄशॄपकुटिभिदिच्छिदिभ्यश्च' ॥ ॥ इः किरस्यात् । किरिर्वराहः । 'गिरिर्गौत्राक्षिरोगयोः' । गिरिणा काणः गिरिकाणः । शिरिः शलभो हन्ता च । पुरिर्नगरं राजा नदी च । कुटिः शाला शरीरं च । भिदिर्वज्रम् । छिदिः परशुः ॥

५८२–कॄ, गॄ, शॄ, पॄ, कुट्, भिद् और छिद् धातुके उत्तर इ प्रत्यय हो, और वह प्रत्यय कित् हो, किरिः–वराहः । "गिरिर्गौत्राक्षिरोगयोः" । गिरिणा काणः=गिरिकाणः। शिरिः–शलभः, हन्ता च । पुरिः–नगरम्, राजा, नदी च । कुटिः–शाला, शरीरं च । भिदिः–वज्रम् । छिदिः–परशुः ॥

५८३ 'कुडिकम्प्योर्नलोपश्च' ॥ ॥ कुडि दाह । कुडिर्देहः । कपिः ॥

५८३–कुण्ड् और कम्प् धातुके उत्तर इ प्रत्यय हो, और नकारका लोप हो, कुडि धातु दाहमें है । कुडिः देहः। कपिः (वानर) ॥

५८४ 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' ॥ ॥ क्रियत इति कर्म । चर्म । भस्म । जन्म । शर्म । स्थाम बलम्।इस्मन्निति ह्रस्वः । छद्म । सुत्रामा॥

५८४–सब धातुओंके उत्तर मनिन् प्रत्यय हो, क्रियते, इस विग्रहमें कर्म्म । चर्म्म । भस्म । जन्म । शर्म्म । स्थाम-बलम् । " इस्मन्० २९८५" इस सूत्रसे ह्रस्व होकर–छद्म । सुत्रामा (इन्द्र) ॥

५८५ 'बृंहेर्नोच्च' ॥ ॥ नकारस्याकारः । 'ब्रह्म तत्त्वं तपो वेदो ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः' ॥

५८५–बृंह धातुके उत्तर मनिन् प्रत्यय हो, और नकारके स्थानमें अकार हो, "ब्रह्म तत्त्वं तपो वेदो ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः" (ब्रह्मशब्द तत्त्व, तप, वेद, ब्रह्मा और प्रजापतिमें वर्तताहै) ॥

५८६ 'अशिशकिभ्यां छन्दसि' ॥ ॥ अश्मा । शक्मा ॥

५८६–वेदमें अश् और शक् धातुके उत्तर मनिन् प्रत्यय हो, अश्मा । शक्मा ॥

५८७ 'हृभृधृसृस्तृशॄभ्य इमनिच्' ॥ ॥ हरिमा कालः । भरिमा कुटुम्बम् । धरिमा रूपम् । सरिमा वायुः। स्तरिमा तल्पम्।शरिमा प्रसवः॥

५८७–हृ, भृ, धृ, सृ, स्तृ और शॄ धातुके उत्तर इमनिच् प्रत्यय हो, हरिमा–कालः । भरिमा–कुटुम्बम्। धरिमा–रूपम्। सरिमा–वायुः । स्तरिमा–तल्पम् । शरिमा–प्रसवः ॥

५८८ 'जनिमृङ्भ्यामिमनिन्' ॥ ॥ जनिमा जन्म । मरिमा मृत्युः ॥

५८८–जन् और मृङ् धातुके उत्तर इमनिन् प्रत्यय हो, जनिमा–जन्म । मरिमा–मृत्युः ॥

५८९ 'वेञः सर्वत्र' ॥ ॥ छन्दसि भाषायां चेत्यर्थः । वेमा तन्तुवायदण्डः । अर्धर्चादिः । सामनी वेमनी इति वृत्तिः ॥

५८९–वेद और लोक दोनोंमें वेञ् धातुके उत्तर इमनिन् प्रत्यय हो, वेमा–तन्तुवायदण्डः । यह अर्द्धर्चादि है । सामनी वेमनी, यह वृत्ति है ॥

५९० 'नामन्–सीमन्–व्योमन्–रोमन्–लोमन्–पाप्मन्–धामन्' ॥ ॥ सप्त अमी निपात्यन्ते । म्नायतेऽनेनेति नाम । सिनोतेर्दीर्घः । सीमा । सीमानौ । सीमानः । पक्षे डाप् । सीमे। सीमाः । व्येञोऽन्त्यस्योत्वं गुणः । व्योम । रौतेः रोम । लोम । पाप्मा पापम् । धाम परिमाणं तेजश्च ॥

५९०–नामन्, सीमन्, व्योमन्, रोमन्, लोमन्, पाप्मन्, धामन्, यह सात शब्द निपातनसे सिद्ध हों, म्नायते अनेन इति=नाम । सि धातुके उत्तर इमनिन् प्रत्यय होनेपर दीर्घ होकर–सीमा । सीमानौ । सीमानः । पक्षमें डाप् प्रत्यय होगा, सीमे । सीमाः । व्येञ् धातुके अन्तभागको उकार और गुण होकर–व्योम । रु धातुका–रोम । लोम । पाप्मा–पापम् । धाम–परिमाणं तेजश्च ॥

५९१ 'मिथुने मनिः' ॥ ॥ उपसर्गक्रियासंबंधो मिथुनम् । स्वरार्थमिदम् । सुशर्मा ॥

५९१–मिथुनवाच्यमें मनि प्रत्यय हो, उपसर्ग और क्रियाके सम्बन्धको मिथुन कहतेहैं । "सर्वधातुभ्यो मनिन्" इससे मनिन् प्रत्यय करके सिद्ध होनेपर भी यह विधि स्वरार्थ है । सुशर्म्मा ॥

५९२ 'सातिभ्यां मनिन्मनिणौ' ॥ ॥ स्यति साम । सामनी । आत्मा ॥

५९२-सो और अत् धातुके उत्तर क्रमसे मनिन् और मनिण् प्रत्यय हों, स्यति इति=साम । सामनी । आत्मा ॥

५९३ 'हनिमशिभ्यां सिकन्' ॥ ॥ हंसिका हंसयोषिति । मक्षिका ॥

५९३-हन् और मश् धातुके उत्तर सिकन् प्रत्यय हो, हंसिका-हंसयोषित् । मक्षिका ॥

५९४ 'कोररन्' ॥ ॥ कवरः ॥

५९४-कु धातुके उत्तर अरन् प्रत्यय हो, कवरः । (केशपाश) ॥

५९५ 'गिर उडच्' ॥ ॥ गरुडः ॥

५९५-गॄ धातुके उत्तर उडच् प्रत्यय हो, गरुडः ॥

५९६ 'इन्देः कमिर्नलोपश्च' ॥ ॥ इदम् ॥

५९६-इन्द् धातुके उत्तर कमि प्रत्यय हो, और नकारका लोप हो, इदम् ॥

५९७ 'कायतेर्डिमिः' ॥ ॥ किम् ॥

५९७-कै धातुके उत्तर डिमि प्रत्यय हो, किम् ॥

५९८ 'सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्' ॥ ॥ वस्त्रम् । अस्त्रम् । शस्त्रम् । इस्मन्निति ह्रस्वत्वम् । छादनाच्छत्रम् ॥

५९८-सब धातुओंके उत्तर ष्ट्रन् प्रत्यय हो, वस्त्रम् । अस्त्रम् । शस्त्रम् । "इस्मन्० २९८५" इस सूत्रसे ह्रस्व होकर-छादयति इति=छत्रम् ॥

५९९ 'भ्रस्जिगमिनमिहनिविशयशां वृद्धिश्च' ॥ ॥ भ्राष्ट्रः । गांत्रं शकटम् । नांत्रं स्तोत्रम् । हांत्रं मरणम् । वैष्ट्रं पिष्टपम् । आष्ट्रमाकाशम् ॥

५९९-भ्रस्ज्, गम् , नम् , हन् , विश् और अश् धातुके उत्तर ष्ट्रन् प्रत्यय हो, और वृद्धि हो, भ्राष्ट्रः । गांत्रं-शकटम्-नांत्रम्-स्तोत्रम् । हान्त्रम्-मरणम् । वैष्ट्रम्-पिष्टपम्-आष्ट्रम्-आकाशम् ॥

६०० 'दिवेर्द्युच' ॥ ॥ द्यौत्रं ज्योतिः ॥

६००-दिव् धातुके उत्तर ष्ट्रन् प्रत्यय हो, और धातुके स्थानमें द्युत् आदेश और वृद्धि हो, द्यौत्रम्-ज्योतिः ॥

६०१ 'उषिखनिभ्यां कित्' ॥ ॥ उष्ट्रः । खात्रं खनित्रं जलाधारश्च ॥

६०१-उष् और खन् धातुके उत्तर ष्ट्रन् प्रत्यय हो, और वह प्रत्यय कित् हो, उष्ट्रः । खात्रम्-खनित्रं, जलाधारश्च ॥

६०२ 'सिविमुच्योष्टेरू च' ॥ ॥ सूत्रम् । मूत्रम् ॥

६०२-सिव् और मुच् धातुके उत्तर ष्ट्रन् प्रत्यय हो, और धातुकी टिके स्थानमें ऊकार हो, सूत्रम् ॥

६०३ 'अमिचिमिदिशसिभ्यः क्त्रः' ॥ ॥ अन्त्रम् । चित्रम् । मित्रम् । शस्त्रम् ॥

६०३-अम्, चि, मिद् और शस्, धातुके उत्तर क्त्र प्रत्यय हो, अंत्रम् । चित्रम् । मित्रम् । शस्त्रम् ॥

६०४ 'पुवो ह्रस्वश्च' ॥ ॥ पुत्रः ॥

६०४-पू धातुके उत्तर क्त्र प्रत्यय हो, और धातुको ह्रस्व हो, पुत्रः ॥

६०५ 'स्त्यायतेर्ड्ट्' ॥ ॥ स्त्री ॥

६०५-स्त्यै धातुके उत्तर ड्रट् प्रत्यय हो, स्त्री ॥

६०६ 'गुधृवीपचिवचियमिसदिक्षादिभ्यस्त्रः' ॥ ॥ 'गोत्रं स्यान्नामवंशयोः' । गोत्रा पृथिवी । धर्त्रं गृहम् । वेत्रम् । पत्रम् । वक्त्रम् । यन्त्रम् । सत्रम् । क्षत्त्रम् ॥

६०६-गु, धृ, वी, पच्, वच्, यम्, सद् और क्षद् धातुके उत्तर त्र प्रत्यय हो, गोत्रम्-नाम, वंशश्च । गोत्रा-पृथिवी । धर्त्रं-गृहम् । वेत्रम् । पक्त्रम् । वक्त्रम् । मंत्रम् । सत्त्रम् । क्षत्त्रम् ॥

६०७ 'हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन्' ॥ ॥ होत्रम् । यात्रा । मात्रा । श्रोत्रम् । भस्त्रा ॥

६०७-हु, या, मा, श्रु, और भस धातुके उत्तर त्रन् प्रत्यय हो, होत्रम् । यात्रा । मात्रा । श्रोत्रम् । भस्त्रा (धौंकनी) ॥

६०८ 'गमेरा च' ॥ ॥ गात्रम् ॥

६०८-गम् धातुके उत्तर त्रन् प्रत्यय हो, और मकारको आकार आदेश हो, गात्रम् (शरीरके अवयव) ॥

६०९ 'दादिभ्यश्छन्दसि' ॥ ॥ दात्रम् । पात्रम् ॥

६०९-वेदमें दा आदि धातुओंके उत्तर त्रन् प्रत्यय हो, दात्रम् । पात्रम् ॥

६१० 'भूवादिगृभ्यो णित्रन्' ॥ ॥ भावित्रम् । वादित्रम् । गारित्रमोदनम् ॥

६१०-भू, वादि और गॄ धातुके उत्तर णित्रन् प्रत्यय हो, भावित्रम् । वादित्रम् । गारित्रम्-ओदनम् ॥

६११ 'चरेर्वृत्ते' ॥ ॥ चारित्रम् ॥

६११-वृत्त वाच्यमें चर् धातुके उत्तर णित्रन् प्रत्यय हो, चारित्रम् ॥

६१२ 'अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ' ॥ ॥ अशित्रम् । वहित्रम् । धरित्री मही । त्रैङ् एवमादिभ्य उत्रः । त्रोत्रं प्रहरणम् । वृञ् । वरुत्रं प्रावरणम् ॥

६१२-अश् आदि और त्रा आदि धातुओंके उत्तर क्रमसे इत्र और उत्र प्रत्यय हो, अशित्रम् । वहित्रम् । धरित्री-मही । त्रैङ् आदि धातुओंके उत्तर उत्र प्रत्यय होकर-त्रोत्रम्-प्रहरणम् । वरुत्रम्-प्रावरणम् ॥

६१३ 'अमेर्द्विषति चित्' ॥ ॥ अमित्रः शत्रुः ॥

६१३-शत्रु अर्थमें अम् धातुके उत्तर इत्र प्रत्यय हो और वह चित् हो, अमित्रः-शत्रुः ॥

६१४ 'आ समिण्निकषिभ्याम्' ॥ ॥ संपूर्वादिणो निपूर्वात्कषेश्च आ स्यात् । स्वरादित्वादव्ययत्वम् । समया । निकषा ॥

६१४–सम्पूर्वक इण् धातु और निपूर्वक कष् धातुके उत्तर आ प्रत्यय हो, स्वरादित्वके कारण यह अव्यय संज्ञक हुआ । समया । निकषा (समीप) ॥

६१५ 'चितेः कणः कश्च' ॥ ॥ बाहुलकादगुणः । 'चिक्कणं मसृणं स्निग्धम्' ॥

६१५–चित् धातुके उत्तर कण प्रत्यय हो, और क आदेश हो, बाहुलकवलसे गुण न होकर– "चिक्कणं मसृणं स्निग्धम्" (चिकना) ॥

६१६ 'सूचेः स्मन्' ॥ ॥ सूक्ष्मम् ॥

६१६–सूच् धातुके उत्तर स्मन् प्रत्यय हो, सूक्ष्मम् ॥

६१७ 'पातेर्डुम्सुन्' ॥ ॥ पुमान् ॥

६१७–पा धातुके उत्तर डुम्सुन् प्रत्यय हो, पुमान् ॥

६१८ 'रुचिभुजिभ्यां किष्यन्' ॥ ॥ रुचिष्यमिष्टम् । भुजिष्यो दासः ॥

६१८–रुच् और भुज् धातुके उत्तर किष्यन् प्रत्यय हो, रुचिष्यम्–इष्टम् । भुजिष्यो दासः ॥

६१९ 'वसेस्तिः' ॥ ॥ 'वस्तिर्नाभेरधो द्वयोः' । 'वस्तयः स्युर्दशासूत्रे' । बाहुलकात् शासः । शास्तिः राजदण्डः । विन्ध्याख्यमगमस्यतीत्यगस्तिः । शकन्ध्वादिः ॥

६१९–वस् धातुके उत्तर ति प्रत्यय हो, "वस्तिर्नाभेरधो द्वयोः" " वस्तयः स्युर्दशासूत्रे" बाहुलकबलसे शास धातुके उत्तर भी ति प्रत्यय होकर–शास्तिः–राजदण्डः । विंध्याख्यमगमस्यति इति–अगस्तिः, यह शकन्ध्वादि है ॥

६२० 'सावसेः' ॥ ॥ स्वस्ति । स्वरादिपाठादव्ययत्वम् ॥

६२०–सुपूर्वक अस् धातुके उत्तर ति प्रत्यय हो, स्वस्ति (कल्याण) स्वरादिमें पाठ होनेसे यह अव्यय है ॥

६२१ 'वौ तसेः' ॥ ॥ वितस्तिः ॥

६२१–विपूर्वक तस् धातुके उत्तर ति प्रत्यय हो, वितस्तिः (वालिस्त) ॥ (वौ शसेः) ऐसा मूलपाठ होनेपर विपूर्वक शस् धातुके उत्तर ति प्रत्यय हो, विशस्तिः ॥

६२२ 'पदिप्रथिभ्यां नित्'॥॥ पत्तिः । प्रथितिः । तितुत्रेष्वग्रहादीनामितीट् ॥

६२२–पद् और प्रथ् धातुके उत्तर ति प्रत्यय हो, और वह नित् हो, पत्तिः । प्रथितिः, यहां " तितुत्रेष्वग्रहादीनाम्" इस वार्तिकसे इट् हुआ ॥

६२३ 'दृणातेर्ह्रस्वश्च' ॥ ॥ दृतिः ॥

६२३–दृ धातुके उत्तर ति प्रत्यय हो, और ऋकारको ह्रस्व हो, दृतिः ॥

६२४ 'कृतकृपिभ्यः कीटन्' ॥ ॥ किरीटं शिरोवेष्टनम् । तिरीटं सुवर्णम् । 'कृपीटं कुक्षिवारिणोः' ॥

६२४–कॄ, तॄ, और कृप् धातुके उत्तर कीटन् प्रत्यय हो, किरीटम्–शिरोवेष्टनम् । तिरीटं–सुवर्णम् । "कृपीटं कुक्षि वारिणोः" ॥

६२५ 'रुचिवचिकुचिकुटिभ्यः कितच्' ॥ ॥ रुचितमिष्टम् । उचितम् । कुचितं परिमितम् । कुटितं कुटिलम् ॥

६२५–रुच्, वच्, कुच् और कुट् धातुके उत्तर कितच् प्रत्यय हो, रुचितमिष्टम् । उचितम् । कुचितं–परिमितम् । कुटितं–कुटिलम् ॥

६२६ 'कुटिकुषिभ्यां क्मलन्' ॥ ॥ कुट्मलम् । कुष्मलम् ॥

६२६–कुट् और कुष् धातुके उत्तर क्मलन् प्रत्यय हो, कुट्मलम् । कुष्मलम् ॥

६२७ 'कुषेर्लश्च' ॥ ॥ कुल्मलं पापम् ॥

६२७–कुष् धातुके उत्तर क्मलन् प्रत्यय है, और धातुके षके स्थानमें लकार हो, कुल्मलम्–पापम् ॥

६२८ 'सर्वधातुभ्योऽसुन्' ॥ ॥ चेतः । सरः । पयः । सदः ॥

६२८–सब धातुओंके उत्तर असुन् प्रत्यय हो चेतः । सरः । पयः । सदः ॥

६२९ 'रपेरत एच्च' ॥ ॥ रेपोऽवद्यम् ॥

६२९–रप् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और अकारके स्थानमें एकार हो, रेपोऽवद्यम् ॥

६३० 'अशेर्देवने युट् च' ॥ ॥ देवने स्तुतौ । यशः ॥

६३०–अश् धातुके उत्तर देवन (स्तुति) अर्थमें असुन् प्रत्यय हो, और युट्का आगम हो, यशः ॥

६३१ 'उब्जेर्बले बलोपश्च' ॥ ॥ ओजः ॥

६३१–बलार्थमे उब्ज् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो,और बकारका लोप हो, ओजः ॥

६३२ 'श्वेः संप्रसारणं च' ॥ ॥ शवः । शवसी । बलपर्यायोऽयम् ॥

६३२–श्वि धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो, और धातुको सम्प्रसारण हो, शवः । शवसी । यह शब्द बलपर्य्याय है ॥

६३३ 'श्रयतेः स्वाङ्गे शिरः किच्च' ॥ ॥ श्रयतेः शिर आदेशोऽसुन् किच्च । शिरः । शिरसी ॥

६३३–श्रि धातुको शिर् आदेश हो, और असुन् प्रत्यय हो, और वह कित् हो, शिरः । शिरसी ॥

६३४ 'अर्तेरुच्च' ॥ ॥ उरः ॥

६३४–ऋ धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो, और अकारके स्थानमें उकार हो, उरः ॥

६३५ 'व्याधौ शुट् च' ॥ ॥ अर्शो गुदव्याधिः ॥

६३५–व्याधि अर्थमें ऋ धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और शुट्का आगम हो, अर्शो गुदव्याधिः (बवासीर) ॥

६३६ 'उदके नुट् च' ॥ ॥ अर्तेरसुन् स्यात्तस्य च नुट् । अर्णः । अर्णसी ॥

६३६–उदकार्थमें ऋ धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और नुट्का आगम हो, अर्णः । अर्णसी ॥

६३७ 'इण आगसि' ॥ ॥ एनः ॥

६३७–आगः, अर्थात् अपराधार्थमें इण् धातुसे असुन् प्रत्यय हो, और नुट्का आगम हो, एनः (अपराध) ॥

६३८ 'रिचेर्धने घिच्च' ॥ ॥ चात्प्रत्ययस्य नुट् । घित्त्वात्कुत्वम् । रेक्णः सुवर्णम् ॥

६३८–धनार्थमें रिच् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो, और वह घित् हो, और चकारसे प्रत्ययको नुट्का आगम हो, घित्वके कारण चके स्थानमें क होगा, रेक्णः–सुवर्णम् ॥

६३९ 'चायतेरन्ने ह्रस्वश्च' ॥ ॥ चनो भक्तम्॥

६३९–चाय् धातुके उत्तर अन्नार्थमें असुन् प्रत्यय हो, और नुट्का आगम और धातुको ह्रस्व हो, चनः–भक्तम् ॥

६४० 'वृङ्शीङ्भ्यां रूपस्वांगयोः पुट् च' ॥ वर्पो रूपम् । शेपो गुह्यम् ॥

६४०–वृङ् और शीङ् धातुके उत्तर रूप और स्वाङ्ग अर्थमें असुन् प्रत्यय और पुट्का आगम हो, वर्पो रूपम् । शेपो गुह्यम् ॥

६४१ 'स्रुरीभ्यां तुट् च' ॥ ॥ स्रोतः।रेतः॥

६४१–स्रु और री धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और तुट्का आगम हो, स्रोतः । रेतः । (वीर्य) ॥

६४२ 'पातेर्बले जुट् च' ॥ ॥ पाजः । पाजसी ॥

६४२–पा धातुके उत्तर बलार्थमें असुन् प्रत्यय और जुट्का आगम हो, पाजः । पाजसी (बल) ॥

६४३ 'उदके थुट् च' ॥ ॥ पाथः ॥

६४३–उदकार्थमें पा धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और थुट्का आगम हो, पाथः (जल) ॥

६४४ 'अन्ने च' ॥ पाथो भक्तम् ॥

६४४–अन्नार्थमें पा धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और थुट्का आगम हो, पाथः–भक्तम् ॥

६४५ 'अदेर्नुम् धौ च' ॥ ॥ अदेर्भक्ते वाच्येऽसुन् नुमागमो धादेशश्च । अन्धोऽन्नम् ॥

६४५–भक्त अर्थमें अद् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और नुम्का आगम और दकारको धकार आदेश हो, अन्धः–अन्नम् ॥

६४६ 'स्कन्देश्च स्वांगे' ॥ ॥ स्कन्धः । स्कन्धसी ॥

६४६–स्वाङ्गार्थमें स्कन्द् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और ध आदेश हो, स्कन्धः । स्कन्धसी ॥

६४७ 'आपः कर्माख्यायाम्' ॥ ॥ कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । अप्नः । अपः । बाहुलकात् । आपः । आपसी ॥

६४७–आप् धातुके उत्तर कर्माख्यामें असुन् प्रत्यय हो, और ह्रस्व और नुट्का आगम हो, विकल्प करके, अप्नः, अपः । बाहुलक बलसे–आपः । आपसी ॥

६४८ 'रूपे जुट् च' ॥ ॥ अब्जो रूपम् ॥

६४८–रूप अर्थमें आप् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय, धातुको ह्रस्व और जुट्का आगम हो, अब्जो रूपम् ॥

६४९ 'उदके नुम्भौ च' ॥ ॥ अम्भः ॥

६४९–उदकार्थमें आप् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय, नुम् का आगम और भ आदेश हो, अम्भः (जल) ॥

६५० 'नहेर्दिवि भश्च' ॥ ॥ नभः ॥

६५०–नह् धातुके उत्तर आकाश वाच्यमें असुन् प्रत्यय और हको भ आदेश हो, नभः (आकाश) ॥

६५१ 'इण आगोऽपराधे च' ॥ ॥ 'आगः पापापराधयोः' ॥

६५१–अपराधार्थमें इण् धातुको आग आदेश, और असुन् प्रत्यय हो, "आगः पापापराधयोः" अर्थात् पाप और अपराध ॥

६५२ 'अमेर्हुक् च' ॥ ॥ अंहः ॥

६५२–अम् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और हुक्का आगम हो, अंहः ॥

६५३ 'रमेश्च' ॥ ॥ रंहः ॥

६५३–रम् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और हुक् आगम हो, रंहः (वेग) ॥

६५४ 'देशे ह च' ॥ ॥ रमन्तेऽस्मिन् रहः ॥

६५४–देशार्थमें रम् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और ह आदेश हो, रमन्ते अस्मिन्=रहः ॥

६५५ 'अञ्च्यञ्जियुजिभृजिभ्यः कुश्च' ॥ ॥ एभ्योऽसुन् कवर्गश्चान्तादेशः । 'अङ्गःपक्षिहृदशरीरयोः' । अंगः पक्षी । योगः समाधिः । भर्गस्तेजः ॥

६५५–अञ्च्, अञ्ज्, युज् और भृज् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और कवर्ग अन्तादेश हो "अङ्गःपक्षिहृदशरीरयोः" । अङ्गः–पक्षी । योगः–समाधिः । भर्गः–तेजः ॥

६५६ 'भूरञ्जिभ्यां कित्' ॥ ॥ भुवः रजः ॥

६५६–भू और रञ्ज् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो, और वह कित् हो, भुवः । रजः ॥

६५७ 'वसेर्णित्' ॥ ॥ वासो वस्त्रम् ॥

६५७–वस् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो, और वह णित् हो, वासो वस्त्रम् ॥

६५८ 'चन्देरादेश्च छः' ॥ ॥ छन्दः ॥

६५८–चन्द् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और आदि वर्णको छ आदेश हो, छन्दः ॥

६५९ 'पचिवचिभ्यां सुट् च' ॥ ॥ 'पक्षसी तु स्मृतौ पक्षौ' । वक्षो हृदयम् ॥

६५९–पच् और वच् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो, और सुट्का आगम हो, "पक्षसी तु स्मृतौ पक्षौ" वक्षो हृदयम् ॥

६६० 'वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि' ॥ ॥ वक्षाः अनड्वान् । हासाश्चन्द्रः । धासाः पर्वत इति प्राञ्चः । वस्तुतस्तु णिदित्यनुवर्तते न तु सुट् । तेन वहेरुपधावृद्धिः । इतरयोरातो युगिति युक् । 'शोणा धृष्णू नृवाहसा' । 'श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः' । 'विश्वो विहायाः' । 'वाजम्भरो विहायाः' । 'देवो नयः पृथिवीं विश्वधायाः' । 'अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसम्' । 'धर्णसं भूरिधायसम्' इत्यादि ॥

६६०–वेदमें वह् हा और धाञ् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो, वक्षाः–अनड्वान् । हासाश्चन्द्रः । धासाः–पर्वतः। ऐसे प्राचीन कहतेहैं। वास्तविक तो णित् इसकीही अनुवृत्ति होतीहै सुट्की नहीं इस कारण वहि धातुकी उपधाको वृद्धि होगी, और अपर धातुओं को "आतो युक्(१७६१)" इस सूत्रसे युक्का आगम होगा, यथा "शोणा धृष्णू नृवाहसा" । "श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः" । "विश्वो विहायाः" । "वाजम्भरो विहायाः" । "देवो नयः पृथिवीं विश्वधायाः" । "अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसम्" । "धर्णसं भूरिधायसम्" इत्यादि ॥

६६१ 'इण आसिः' ॥ ॥ अयाः वह्निः । स्वरादिपाठादव्ययत्वम् ॥

६६१–इण् धातुके उत्तर आसि प्रत्यय हो, अयाः–वह्नि। स्वरादिगणमें पाठके कारण यह अव्ययसंज्ञक है ॥

६६२ 'मिथुनेऽसिः पूर्ववच्च सर्वम्' ॥ ॥ उपसर्गविशिष्टो धातुर्मिथुनं तत्रासुनोपवादोऽसिः स्वरार्थः सुयशाः ॥

६६२–मिथुनमें धातुके उत्तर असि प्रत्यय हो, और पूर्ववत् आगमादि समस्त कार्य्य हों, अर्थात् जिस धातुको जो जो कार्य्य असुन् प्रत्ययमें कहे गयेहैं वह सब कार्य उस२ धातुको असि प्रत्ययमें भी हों । उपसर्गविशिष्ट जो धातु उसको मिथुन कहतेहैं, उसमें असुन् प्रत्ययका विशेषक जो असि प्रत्यय वह स्वरार्थ है, यथा–सुयशाः॥

६६३ 'नञि हन एह च' ॥ ॥ अनेहाः । अनेहसौ ॥

६६३–नञ् पूर्वक हन् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो, और धातुको एह आदेश हो, अनेहाः । अनेहसौ ॥

६६४ 'विधाञो वेध च' ॥ ॥ विदधातीति वेधाः ॥

६६४–विपूर्वक धाञ् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो, और धाके स्थानमें वेध आदेश हो, विदधाति इति=वेधाः ॥

६६५ 'नुवो धुट् च' ॥ ॥ नोधाः ॥

६६५–नु धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय हो, और धुट्का आगम हो, नोधाः ॥

६६६ 'गतिकारकोपपदयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च' ॥ ॥ असिः स्यात् । सुतपाः । जातवेदाः । गतिकारकोपपदात् कृदित्युत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे सति शेषस्यानुदात्तत्वे प्राप्ते तदपवादार्थमिदम् ॥

६६६–गति और कारक उपपद होनेपर धातुके उत्तर असि प्रत्यय हो, और पूर्वपदका प्रकृतिस्वर हो, सुतपाः । जातवेदाः । "गतिकारकोपपदात्कृत्०" इस सूत्रसे उत्तर पदको प्रकृतिस्वर विहित होनेसे अवशिष्टको अनुदात्तत्व प्राप्त होनेपर उसके अपवादके निमित्त यह सूत्र किया है ॥

६६७ 'चन्द्रे मो डित्' ॥ ॥ चन्द्रोपपदान्माङोऽसिः स्यात्स च डित् । चन्द्रमाः ॥

६६७–चन्द्र शब्द उपपद होनेपर माङ् धातुके उत्तर असि प्रत्यय हो, और वह डित् हो, चन्द्रमाः ॥

६६८ 'वयसि धाञः' ॥ ॥ वयोधास्तरुणः॥

६६८–वयस् शब्द पूर्वक धाञ् धातुके उत्तर असि प्रत्यय हो, वयोधाः–तरुणः ॥

६६९ 'पयसि च' ॥ ॥ पयोधाः समुद्रो मेघश्च ॥

६६९–पयस् शब्दपूर्वक धाञ् धातुके उत्तर असि प्रत्यय हो, पयोधाः समुद्रो मेघः ॥

६७० 'पुरसि च' ॥ ॥ पुरोधाः ॥

६७०–पुरस् शब्दपूर्वक धाञ् धातुके उत्तर असि प्रत्यय हो, पुरोधाः (पुरोहित) ॥

६७१ 'पुरूरवाः' ॥ ॥ पुरुशब्दस्य दीर्घो रौतेरसिश्च निपात्यते ॥

६७१–पुरुशब्द पूर्वक रु धातुके उत्तर निपातनसे असि प्रत्यय और पुरु शब्दको दीर्घ हो, पुरूरवाः (राजाका नाम)॥

६७२ 'चक्षेर्बहुलं शिच्च' ॥ ॥ नृचक्षाः ॥

६७२–चक्ष् धातुके उत्तर असि प्रत्यय हो, और वह बहुल करके शित् हो, नृचक्षाः ॥

६७३ 'उषः कित्' ॥ ॥ उषः ॥

६७३–उष् धातुके उत्तर असि प्रत्यय हो, और वह कित् हो, उषः ॥

६७४ 'दमेरुनसिः' ॥ ॥ 'सप्तार्चिर्दमुनाः' ॥

६७४–दम् धातुके उत्तर उनसि प्रत्यय हो, "सप्तार्चिर्दमुनाः" (अग्निः) ॥

६७५ 'अंगतेरसिरिरुडागमश्च' ॥ ॥अंगिराः॥

६७५–अङ्ग धातुके उत्तर असि प्रत्यय और, इरुट्का आगम हो, अङ्गिराः ॥

६७६ 'सर्तेरप्पूर्वादसिः' ॥ ॥ अप्सराः । प्रायेणायं भूम्नि । अप्सरसः ॥

६७६–अप् शब्दपूर्वक सृ धातुके उत्तर असि प्रत्यय हो, अप्सराः । यह शब्द प्रायः बहुवचनान्त है, अप्सरसः ॥

६७७ 'विदिभुजिभ्यां विश्वे'॥ ॥ विश्ववेदाः। विश्वभोजाः ॥

६७७-विश्व शब्दपूर्वक विद् और भुज् धातुके उत्तर असि प्रत्यय हो, विश्ववेदाः । विश्वभोजाः ॥

६७८ 'वशेः कनसिः' ॥ ॥ संप्रसारणम् । उशनाः ॥

॥ इत्युणादिषु चतुर्थः पादः ॥

६७८-वश् धातुके उत्तर कनसि प्रत्यय हो, धातुको सम्प्रसारण होकर-उशनाः (शुक्र) ॥

॥ इत्युणादिषु चतुर्थपादः ॥

---

६७९ 'अदिभुवो डुतच्' ॥ ॥ अद्भुतम् ॥

६७९-अद् उपपद होनेपर भू धातुके उत्तर डुतच् प्रत्यय हो, अद्भुतम् ॥

६८० 'गुधेरूमः' ॥ ॥ गोधूमः ॥

६८०-गुध् धातुके उत्तर ऊम प्रत्यय हो, गोधूमः (गेहूं)

६८१ 'मसेरूरन्' ॥ ॥ मसूरः । प्रथमे पादे असेरुरन्मसेश्चेत्यत्र व्याख्यातः ॥

६८१-मस् धातुके उत्तर ऊरन् प्रत्यय हो, मसूरः । प्रथम पादमें "असेरुरन्मसेश्च" इस सूत्रमें यह व्याख्यात है ॥

६८२ 'स्थः किच्च' ॥ ॥ स्थूरो मनुष्यः ॥

६८२-स्था धातुके उत्तर ऊरन् प्रत्यय हो, और वह कित् हो, स्थूरो मनुष्यः ॥

६८३ 'पातेरतिः' ॥ ॥ पातिः स्वामी । सम्पातिः पक्षिराजः ॥

६८३-पा धातुके उत्तर अति प्रत्यय हो, पातिः-स्वामी । संपातिः-पक्षिराजः ॥

६८४ 'वातेर्नित्' ॥ ॥ 'वातिरादित्यसोमयोः' ॥

६८४-वा धातुके उत्तर अति प्रत्यय हो, और वह नित् हो, वातिः-'आदित्यसोमयोः' ॥

६८५ 'अर्तेश्च' ॥ ॥ अरतिरुद्वेगः ॥

६८५-ऋ धातुके उत्तर अति प्रत्यय हो,अरतिः-उद्वेगः॥

६८६ 'तृहेः क्नो हलोपश्च' ॥ ॥ तृणम् ॥

६८६-तृह् धातुके उत्तर क्न प्रत्यय हो और हकारका लोप हो, तृणम ॥

६८७'वृञ्लुटितनिताडिभ्य उलच् तण्डश्च'॥ व्रियन्ते लुटयन्ते तन्यन्ते ताडयन्त इति वा तण्डुलाः ॥

६८७-वृञ्, लुट् तन्, और ताडि, धातुके उत्तर उलच् प्रत्यय हो, और तण्ड हो, व्रियन्ते, लुटयन्ते, तन्यन्ते, ताडयन्ते इति वा, इस विग्रहमें तण्डुलाः (चावल) ॥

६८८ 'दंसेष्टटनौ न आ च' ॥ ॥ 'दासः सेवकशूद्रयोः' ॥

६८८-दन्स धातुके उत्तर ट, टन् प्रत्यय हों, और नके स्थानमें आ आदेश हो, "दासः सेवकशूद्रयोः" ॥

६८९ 'दंशेश्च' ॥ ॥ दाशो धीवरः ॥

६८९-दंश धातुके उत्तर भी यह प्रत्यय और आदेश हो। दाशो धीवरः । (धीमर) ॥

६९० 'उदि चेर्डसिः' ॥ ॥ स्वरादिपाठादव्ययत्वम् । उच्चैः ॥

६९०-उत्पूर्वक चि धातुके उत्तर डैसि प्रत्यय हो, उच्चैः (ऊंचा) और स्वरादिगणके मध्यमें पठित होनेके कारण इसकी अव्यय संज्ञा होगी ॥

६९१ 'नौ दीर्घश्च' ॥ ॥ नीचैः ॥

६९१-निपूर्वक चि धातुके उत्तर डैसि प्रत्यय हो, और निके इकारको दीर्घ हो, नीचैः । (नीचा) ॥

६९२'सौ रमेः क्तो दमे पूर्वपदस्य च दीर्घः'॥ रमे सुपूर्वाद्दमे वाच्ये क्तः स्यात् । कित्त्वादनुनासिकलोपः । सूरत उपशान्तो दयालुश्च ॥

६९२-सुपूर्व रम् धातुके उत्तर दम अर्थ होनेपर क्त प्रत्यय हो, और पूर्व पदको दीर्घ हो, कित्वके कारण अनुनासिक वर्णका लोप हो, सूरतः उपशान्तः,दयालुः ॥

६९३ 'पूञो यण्णुक् ह्रस्वश्च' ॥ ॥ यत्प्रत्ययः । पुण्यम् ॥

६९३-पू धातुके उत्तर यत् प्रत्यय हो, और णुक् आगम और ह्रस्व हो, पुण्यम् ॥

६९४ 'स्रंसेः शिः कुट् किच्च' ॥ ॥ स्रंसतेः शिरादेशः यत्प्रत्ययः कित्तस्य कुडागमश्च ॥ शिक्यम् ॥

६९४-स्रंस धातुके उत्तर यत् प्रत्यय हो, और यह प्रत्यय कित्संज्ञक हो धातुको शि आदेश और उसको कुडागम हो, शिक्यम् । (छींका) ॥

६९५ 'अर्तेः क्युरुच्च' ॥ ॥ उरणो मेषः ॥

६९५-ऋ-धातुके उत्तर क्यु प्रत्यय और अकारके स्थानमें उकार हो, उरणः-मेषः । (मेढा) ॥

६९६ 'हिंसेरीरन्नीरचौ' ॥ ॥ हिंसीरो व्याघ्रदुष्टयोः ॥

६९६-हिंस धातुके उत्तर ईरन् और ईरच प्रत्यय हों, हिंसीरः व्याघ्रः दुष्टः ॥

६९७ 'उदि दृणातेरजलौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च' ॥ ॥ उदरम् ॥

६९७-उत्पूर्वक दॄ धातुके उत्तर अच् और अल् प्रत्यय हों, और पूर्वपदके अन्त भागका अर्थात् दकारका लोप हो, उदरम् । (पेट) ॥

६९८ 'डित् खनेर्मुट् स चोदात्तः' ॥ ॥ अच् अल् च डित्स्याद्धातोर्मुट् स चोदात्तः । मुखम् ॥

६९८-खन धातुके उत्तर अच् और अल् प्रत्यय हों और

धातुको मुट् आगम हो,और वह डित्संज्ञक और उदात्तस्वर हो मुखम् ॥

६९९ 'अमेः सन्' ॥ ॥ अंसः ॥

६९९--अमि धातुके उत्तर सन् प्रत्यय हो, अंसः ॥

७०० 'मुहेः खो मूर्च' ॥ ॥ मूर्खः ॥

७००--मुह् धातुके उत्तर ख प्रत्यय हो, और मूर् आदेश हो, मूर्खः ॥

७०१ 'नहेर्हलोपश्च' ॥ ॥ नखः ॥

७०१--नह् धातुके उत्तर ख प्रत्यय हो, और हकारका लोप हो, नखः ॥

७०२ 'शीङो ह्रस्वश्च' ॥ ॥ शिखा ॥

७०२--शीङ् धातुके उत्तर ख प्रत्यय हो, और ह्रस्व हो, शिखा ॥

७०३ 'माङ ऊखो मय् च' ॥ ॥ मयूखः ॥

७०३--माङ् धातुके उत्तर ऊख प्रत्यय हो, और धातुके स्थानमें मय आदेश हो । मयूखय् (किरण) ॥

७०४ 'कलिगलिभ्यां फगस्योच्च' ॥ ॥ कुल्फः शरीरावयवो रोगश्च । गुल्फः पादग्रन्थिः॥

७०४--कलि और गलि धातुके उत्तर फक् प्रत्यय हो, और अको उत् आदेश हो, कुल्फः शरीरावयवो रोगश्च । गुल्फः पादग्रन्थिः ॥

७०५ 'स्पृशेः श्वणशुनौ पृ च' ॥ ॥ श्वण्शुनौ प्रत्ययौ पृ इत्यादेशः । 'पार्श्वोऽस्त्री कक्षयोरधः' । पर्शुरायुधम् ॥

७०५--स्पृश् धातुके उत्तर श्वण् और शुन् प्रत्यय हों, और धातुके स्थानमें पृ आदेश हो, "पार्श्वोऽस्त्री कक्षयोरधः"। पर्शुः आयुधम् । (फरस्या) ॥

७०६ 'श्मनि श्रयतेर्डुन्' ॥ ॥ श्मन्शब्दो मुखवाची । मुखमाश्रयत इति श्मश्रु ॥

७०६--श्मन् शब्दपूर्वक श्रि धातुके उत्तर डुन् प्रत्यय हो, श्मन् शब्दसे मुख समझना । मुखमाश्रयते इति श्मश्रु (मूंछ) ॥

७०७ 'अश्र्वादयश्च' ॥ ॥ अश्रु नयनजलम्॥

७०७--अश्रु आदि शब्द निपातनसे सिद्ध हों । अश्रु नयनजलम् ॥

७०८ 'जनेष्टन् लोपश्च' ॥ ॥ जटा ॥

७०८--जन धातुके उत्तर टन् प्रत्यय हो, और धातुके नकारका लोप हो, जटा ॥

७०९ 'अच् तस्य जङ्घ च' ॥ ॥ तस्य जनेः जङ्घादेशः स्याद्च । जङ्घा ॥

७०९--जन धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो, और धातुके स्थानमें जंघ आदेश हो जंघा ॥

७१० 'हन्तेः शरीरावयवे द्वे च'॥ ॥ जघनम् 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः क्लीबे तु जघनं पुरः'॥

७१०--हन धातुके उत्तर भी शरीरावयवार्थमें अच् प्रत्यय हो, और द्वित्व हो, जघनम् । "पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः क्लीबे तु जघनं पुरः" । स्त्रीके कमरके नीचेका भाग नितम्ब कहाताहै पुरोभाग जंघा ॥

७११ 'क्लिशेरन् लो लोपश्च' ॥ ॥ लकारस्य लोपः । केशः ॥

७११--क्लिश धातुके उत्तर अन् प्रत्यय हो, और लकारका लोप हो--केशः ॥

७१२ 'फलेरितजादेश्च पः' ॥ ॥ पलितम्॥

७१२--फल धातुके उत्तर इतच् प्रत्यय हो, और फके स्थानमें प हो, पलितम् ॥

७१३ 'कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन्' ॥ ॥ करकः । करका ॥ कटकः । नरकम् । नरकः । 'नरको नारकोऽपि च' इति द्विरूपकोशः । सरकं गगनम् । कोरकः । कोरकं च ॥

७१३--कृञादि धातुके उत्तर संज्ञार्थमें वुन् प्रत्यय हो करकः।करका।कटकः। नरकम्।नरकः।"नरको नारकोऽपि च"। इति द्विरूपकोशः । सरकं गमनम् । कोरकः कोरकञ्च ॥

७१४ 'चीकयतेराद्यन्तविपर्ययश्च' ॥ ॥ कीचको वंशभेदः ॥

७१४--ण्यन्त चीक धातुके उत्तर वुन् प्रत्यय हो, आदि और अन्तवर्णका विपर्य्यय हो, कीचको वंशभेदः । (जिनमें वायु भरजानेसे शब्द होताहै ऐसे बांस) ॥

७१५ 'पचिमच्योरिच्चोपधायाः' ॥ ॥ पेचकः । मेचकः ॥

७१५--पचि और मचि धातुके उत्तर वुन् प्रत्यय हो, और उपधाके स्थानमें इकार हो, पेचकः । मेचकः ॥

७१६ 'जनेररष्ठ च' ॥ ॥ जठरम् ॥

७१६--जन धातुके उत्तर अर् प्रत्यय हो और, धातुके नकारके स्थानमें ठ आदेश हो, जठरम् ॥

७१७ 'वचिमनिभ्यां चिच्च' ॥ ॥ वठरो मूर्खः । 'मठरो मुनिशौण्डयोः' । बिदादित्वान्माठरः । गर्गादित्वान्माठर्यः ॥

७१७--वचि और मनि धातुके उत्तर वुन् प्रत्यय हो और यह चित्संज्ञक हो, वठरः मूर्खः । "मठरो मुनिशौंडयोः" बिदादि गणीय होनेके कारण माठरः पद भी सिद्ध होगा । गर्गादि गणमें पाठ होनेसे माठर्यः ऐसा भी पद होता है ॥

७१८ 'ऊर्जि दृणातेरलचौ पूर्वपदान्तलोपश्च' ॥ ॥ 'ऊर्दरः शूररक्षसोः'॥

७१८--ऊर्ज उपपद रहते दृ धातुके उत्तर अल् और अच् प्रत्यय हों, और पूर्वपदके अन्तका लोप हो । "ऊर्दरः शूररक्षसोः" ॥

७१९ 'कुदरादयश्च' ॥ ॥ कुदरः कुसूलः । मृदरं विलसत् । सृदरः सर्पः ॥

७१९--कुदरादि शब्द निपातनसे सिद्ध हों । कुदरः कुसूलः । मृदरं विलसत् । सृदरः सर्पः ॥

७२० 'हन्तेर्युनाद्यन्तयोर्घत्वतत्वे' ॥ ॥ घातनो मारकः ॥

७२०-हन् धातुके उत्तर युन् प्रत्यय हो, और धातुके आदि वर्ण अर्थात् ह के स्थानमें घ और अन्त वर्ण अर्थात् न के स्थानमें त हो, । घातनः मारकः ॥

७२१ 'क्रमिगमिक्षमिभ्यस्तुन् वृद्धिश्च' ॥ ॥ क्रान्तुः पक्षी । गान्तुः पथिकः । क्षान्तुर्मशकः ॥

७२१-क्रमि, गमि और क्षमि धातुके उत्तर तुन् प्रत्यय और वृद्धि हो, क्रान्तुः पक्षी । पान्तुः-पथिकः । क्षान्तुर्मशकः (अर्थात् मच्छर) ॥

७२२ 'हर्यतेः कन्यन् हिरच्' ॥ ॥ कन्यन् प्रत्ययः । हिरण्यम् ॥

७२२-हर्य धातुके उत्तर कन्यन् प्रत्यय और धातुके स्थानमें हिरच् आदेश हो । यथा-हिरण्यम् (सुवर्ण) ॥

७२३ 'कृञः पासः'॥ ॥ कर्पासः । विल्वादित्वात्कार्पासं वस्त्रम् ॥

७२३-कृञ् धातुके उत्तर पास प्रत्यय हो, कर्पासः । (कपास) विल्वादित्वके कारण कार्पासं वस्त्रम् (कपडा) ॥

७२४ 'जनेस्तु रश्च' ॥ ॥ जर्तुर्हस्ती योनिश्च॥

७२४-जनि धातुके उत्तर तु प्रत्यय और रकारान्तादेश हो, जर्तुः हस्ती योनिश्च ॥

७२५ 'ऊर्णोतेर्डः' ॥ ॥ ऊर्णा ॥

७२५-ऊर्णु धातुके उत्तर ड प्रत्यय हो, ऊर्णा ॥

७२६ 'दधातेर्यन्नुट् च' ॥ ॥ धान्यम् ॥

७२६-धा धातुके उत्तर यत् प्रत्यय और उसको नुट् आगम हो । धान्यम् ॥

७२७ 'जीर्यतेः क्रिन् रश्च वः' ॥ ॥ 'जिव्रिः स्यात्कलपक्षिणोः'।बाहुलकाद्धलि चेति दीर्घो न॥

७२७-जॄ धातुके उत्तर क्रिन् प्रत्यय हो, और र के स्थानमें व आदेश हो, "जिव्रिः स्यात्कालपक्षिणोः" । " बाहुलकात् हलि च ३५४ " इस सूत्रसे दीर्घ न होगा ॥

७२८ 'मव्यतेर्यलोपो मश्चापतुट् चालः'॥ ॥ मव्यतेरालप्रत्ययः स्यात्तस्यापतुडागमो धातोर्यलोपो मकारश्चान्त्यस्य । ममापतालो विषये॥

७२८-मव्य धातुके उत्तर आल् प्रत्यय हो और उसको आपतुट् आगम, यकारका लोप और अन्त वर्णके स्थानमें मकार हो, 'ममापतालो विषये ' ॥

७२९ 'ऋजेः कीकन्' ॥ ॥ ऋजीक इन्द्रो धूमश्च ॥

७२९-ऋज् धातुके उत्तर कीकन् प्रत्यय हो, ऋजीकः इन्द्रो धूमश्च ॥

७३० 'तनोतेर्डउः सन्वच्च' ॥ ॥ 'तितउः पुंसि क्लीबे च' ॥

७३०--तन धातुके उत्तर डउ प्रत्यय हो, और उसको सन्वत् कार्य हो, "तितउः पुंसि क्लीबे च " ॥

७३१ 'अर्भकपृथुकपाका वयसि' ॥ ॥ ऋधु वृद्धौ । अतो वुन् । भकारश्चान्तादेशः । प्रथेः कुकन्संप्रसारणं च । पिबतेः कन् ॥

७३१-अर्भक, पृथुक और पाक शब्द वयोऽर्थमें निपातनसे सिद्ध हों । ऋधु वृद्धौ । ऋध धातुके उत्तर वुन् प्रत्यय हो और अन्तमें भकार आदेश हो । अर्भकः (बालक)। प्रथ धातुके उत्तर कुकन् प्रत्यय और सम्प्रसारण हो पृथुकः । पा धातुके उत्तर कन् प्रत्यय होगा । पाकः ॥

७३२ 'अवद्यावमाधमार्वरेफाः कुत्सिते'॥ ॥ वदेर्नञि यत् । अवद्यम् । अवतेरमः । वस्य पक्षे धः । अवमः । अधमः । अर्तेर्वन् । अर्वा॥ रिफतेस्तौदादिकात् अः रेफः ॥

७३२-अवद्य, अवम, अधम, अर्व, रेफ शब्द कुत्सितार्थमें नञ् उपपद रहते वद धातुके उत्तर यत् प्रत्यय निपातनसे सिद्ध होगा । अवद्यम् । अव धातुके उत्तर अम प्रत्यय होगा और विकल्प करके व के स्थानमें ध होगा, अवमः । अधमः । अर्ति धातुके उत्तर न् प्रत्यय होगा । अर्वा । तुदादि गणीय रिफ धातुके उत्तर अ प्रत्यय होगा । रेफः ॥

७३३ 'लीरीङो ह्रस्वः पुट् च तरौ श्लेषणकुत्सनयोः' ॥ ॥ तरौ प्रत्ययौ क्रमात् स्तो धातोर्ह्रस्वः प्रत्ययस्य पुट् । लिप्तं श्लिष्टम् । रिप्रं कुत्सितम् ॥

७३३-श्लेषण और कुत्सन अर्थ होनेपर लीङ् और रीङ् धातुके उत्तर क्रमसे त और र प्रत्यय हों । धातुको ह्रस्व हो; और प्रत्ययको पुट् आगम हो । लिप्तं श्लिष्टम् । रिप्रं कुत्सितम् । (निकम्मा) ॥

७३४ 'क्लिशेरीच्चोपधायाः कन् लोपश्च लो नाम् च' ॥ ॥ क्लिशेः कन् स्यात् उपधाया ईत्वं लस्य लोपो नामागमश्च । कीनाशो यमः । कित्वफलं चिन्त्यम् ॥

७३४-क्लिश धातुके उत्तर कन् प्रत्यय हो, पश्चात् उपधाके स्थानमें ईकार, लकारका लोप और नामागम हो, कीनाशो यमः । कित्संज्ञा करनेका फल विवेच्य है ॥

७३५ 'अश्नोतेराशुकर्मणि वरट् च' ॥ ॥ चकारादुपधाया ईत्वम् । ईश्वरः ॥

७३५-अश धातुके उत्तर शीघ्र करण अर्थमें वरट् प्रत्यय हो चकारके कारण उपधाके स्थानमें ईत्व हो,ईश्वरः॥

७३६ 'चतेरुरन्' ॥ ॥ चत्वारः ॥

७३६--चति धातुके उत्तर उरन् प्रत्यय हो, चत्वारः । (चार) ॥

७३७ 'प्राततेररन्' ॥ ॥ प्रातः ॥

७३७-प्रपूर्वक अति धातुके उत्तर अरन् प्रत्यय हो, प्रातः ॥

७३८ 'अमेस्तुट् च' ॥ ॥ अन्तर्मध्यम् ॥

७३८–अमि धातुके उत्तर अरन् प्रत्यय हो, और तुट् आगम हो, अन्तः मध्यम् ॥

७३९ 'दहेर्गोलोपो दश्च नः' ॥ ॥ गप्रत्ययो धातोरन्त्यस्य लोपो दकारस्य नकारः । नगः ॥

७३९–दह धातुके उत्तर ग प्रत्यय, धातुके अन्त-भागका लोप और दकारके स्थानमें नकार हो, । नगः (पर्वत, अचल) ॥

७४० 'सिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च' ॥ ॥ सिञ्चतेः कप्रत्ययो हकारादेशो नुम् च स्यात् । सिंहः ॥

७४०–संज्ञा अर्थ होनेपर सिच् धातुके उत्तर क प्रत्यय और हकारान्तादेश नुम् आगम हो, सिंहः ॥

७४१ 'व्याङि घ्रातेश्च जातौ' ॥ ॥ कप्रत्ययः स्यात् । व्याघ्रः ॥

७४१–जाति अर्थमें विपूर्वक और आङ्पूर्वक घ्रा धातुके उत्तर क प्रत्यय हो, व्याघ्रः ॥

७४२ 'हन्तेरच् घुर च' ॥ ॥ घोरम् ॥

७४२–हन धातुके उत्तर अच् प्रत्यय और घुर आदेश हो, घोरम् ॥

७४३ 'क्षमेरुपधालोपश्च' ॥ ॥ चादच् ।क्ष्मा॥

७४३–क्षमि धातुकी उपधाका लोप हो, और अच् प्रत्यय हो, क्ष्मा ॥

७४४ 'तरतेर्ड्रिः' ॥ ॥ त्रयः । त्रीन् ॥

७४४–तृ धातुके उत्तर ड्रि प्रत्यय हो, त्रयः त्रीन् ॥

७४५ 'ग्रहेरनिः'॥ ॥ ग्रहणिः । ङीष्। ग्रहणी व्याधिभेदः ॥

७४५–ग्रह धातुके उत्तर अनि प्रत्यय हो, ग्रहणिः । इसके उत्तर ङीष् प्रत्यय भी होगा । ग्रहणी व्याधिभेदः । (दस्तोंकी बीमारी) ॥

७४६ 'प्रथेरमच्' ॥ ॥ प्रथमः ॥

७४६–प्रथि धातुके उत्तर अमच् प्रत्यय हो, प्रथमः । (पहला) ॥

७४७ 'चरेश्च' ॥ ॥ चरमः ॥

७४७–चर धातुके उत्तर अमच् प्रत्यय हो, चरमः । (अन्त) ॥

७४८ 'मङ्गेरलच्' ॥ ॥ मङ्गलम् ॥

॥ इत्युणादिषु पञ्चमः पादः ॥

७४८–मङ्गि धातुके उत्तर अलच् प्रत्यय हो, मङ्गलम् ॥

॥ इत्युणादिसूत्रे पञ्चमः पादः ॥

॥ इत्युणादिप्रकरणम् ॥

अथोत्तरकृदन्तम् ।

३१६९ उणादयो बहुलम् । ३ । ३ ।१॥

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः । केचिदविहिता अप्यूह्याः ॥

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥

३१६९–उणादि प्रत्यय वर्त्तमान कालमें और संज्ञामें बाहुल्य रूपसे हों इन पञ्चपादी उणादि सूत्रोंमें जो सम्पूर्ण प्रत्यय विहित हुए हैं उनसे भिन्न प्रत्ययोंका भी बाहुल्य रूपसे ऊह करना चाहिये । ऊहनप्रकार लिखते हैं, कि, प्रथम तो संज्ञा-विषयमें, संपूर्ण धातुओंके रूप ऊहनीय हैं पश्चात् सम्पूर्ण प्रत्यय, और तत्पश्चात् सम्पूर्ण अनुबन्ध कार्यके अनुसार जानना चाहिये । यथा, कारुः । वायुः । पायुः । मायुः । स्वादुः । साधुः । आशुः । इतना ही उणादिमें शास्त्र (अनुशासन) है ॥

३१७० भूतेऽपि दृश्यन्ते । ३ । ३।२॥

३१७०–उणादि प्रत्ययोंका प्रयोग अतीत कालमें भी देखा जाताहै अर्थात् वर्त्तमान कालमें ही बाहुल्य रूपसे और अतीत कालमें अल्प परिमाणसे प्रयोग देखा जाताहै ॥

३१७१ भविष्यति गम्यादयः।३।३।३॥

३१७१–गमी आदि णिनिप्रत्ययान्त शब्द भविष्यत् कालमें ही निपातनसे सिद्ध हों ॥

३१७२ दाशगोघ्नौ संप्रदाने।३।४।७३॥

एतौ संप्रदाने कारके निपात्येते । दाशन्ति तस्मै दाशः । गां हन्ति तस्मै गोघ्नोऽतिथिः ॥

३१७२–दाश और गोघ्न यह दो अच्प्रत्ययान्त क प्रत्य-यान्त शब्द सम्प्रदान कारकमें निपातनसे सिद्ध हों, अर्थात् दाश धातुसे सम्प्रदानमें अच् प्रत्यय और गो पूर्वक हन् धातुसे क प्रत्यय सम्प्रदानमें निपातनसे हों, दाशन्ति तस्मै दाशः । गां हंति तस्मै गोघ्नोऽतिथिः ॥

३१७३ भीमादयोऽपादाने।३।४। ७४॥

भीमः । भीष्मः । प्रस्कन्दनः । प्रस्कः । मूर्खः । खलतिः ॥

३१७३–भीमादि शब्द अपादान कारकमें निपातनसे सिद्ध हों । भीमः । भीष्मः । प्रस्कन्दनः । प्रस्कः । मूर्खः । खलतिः–(इन्द्रलुप्त रोगवाला) ॥

३१७४ ताभ्यामन्यत्रोणादयः । ३ । ४ । ७५ ॥

संप्रदानपरामर्शार्थं ताभ्यामिति । ततोऽसौ भवति तन्तुः । वृत्तं तदिति वर्त्म । चरितं तदिति चर्म ॥

३१७४-सम्प्रदान और अपादान कारकभिन्न अन्यकारकमें उणादि प्रत्यय हों। कृत् प्रत्यय होनेके कारण कर्तृकारकमें ही प्राप्ति हुई थी किन्तु इस सूत्रसे कर्म्मादिमें भी उणादि प्रत्यय होंगे। यथा, ततोऽसौ भवति इस विग्रहमें तन्तुः वृत्तं तदिति वर्त्म। चरितं तत् इति चर्म्म॥

३१७५ तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्। ३। ३। १०॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः। मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति। अत्र वासरूपेण तृजादयो न पुनर्ण्वुलुक्तेः॥

३१७५-क्रियार्थक क्रियावाचक पद उपपद होनेपर भविष्यत् कालमें धातुके उत्तर तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय हों। मकारान्तत्वके कारण तदन्त पद अव्यय हों, यथा-कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णदर्शको याति। इस स्थलमें क्रियानिमित्तक क्रियावाचक पद उपपद होनेपर वासरूप विधिसे तृच् आदि प्रत्यय नहीं होंगे। कारण कि, पुनर्वार ण्वुल् प्रत्यय उक्त हुआहै॥

३१७६ समानकर्तृकेषु तुमुन्। ३। ३। १५८॥

अक्रियार्थोपपदार्थमेतत्। इच्छार्थेष्वेककर्तृकेषूपपदेषु धातोस्तुमुन् स्यात्। इच्छति भोक्तुम्। वष्टि वाञ्छति वा॥

३१७६-जिस स्थलमें क्रियार्थक क्रियावाचक पद उपपद नहीं है उस स्थलमें तुमुन् प्रत्ययके विधानार्थ यह सूत्र है, इच्छार्थमें वर्त्तमान ऐसी एक कर्त्तावाली सम्पूर्ण धातु उपपद रहते धातुके उत्तर तुमुन् प्रत्यय हो, इच्छति भोक्तुं, वष्टि वाञ्छति वा। एक कर्त्ता न होनेपर 'पुत्रस्य पठनमिच्छति' यहां तुमुन् न हुआ॥

३१७७ शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्। ३। ४। ६५॥

एषूपपदेषु धातोस्तुमुन् स्यात्। शक्नोति भोक्तुम्। एवं धृष्णोतीत्यादौ। अर्थग्रहणमस्तिनैव संबध्यते, अनन्तरत्वात्। अस्ति भवति विद्यते वा भोक्तुम्॥

३१७७-शक, धृष, ज्ञा, ग्ला, घट, रभ, लभ, क्रम, सह, अर्ह और अस्त्यर्थ धातु उपपद होनेपर धातुके उत्तर तुमुन् प्रत्यय हो, शक्नोति भोक्तुम्। इसी प्रकारसे अन्यत्र-यथा, धृष्णोति भोक्तुम् इत्यादि। अनन्तरत्वके कारण अर्थ शब्दका अस्ति पदके ही साथ संबन्ध हुआ अस्ति भवति विद्यते वा भोक्तुम्॥

३१७८ पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु। ३। ४। ६६॥

पर्याप्तिः पूर्णता। तद्वाचिषु सामर्थ्यवचनेषूपपदेषु तुमुन् स्यात्। पर्याप्तो भोक्तुं प्रवीणः कुशलः पटुरित्यादि। पर्याप्तिवचनेषु किम्। अलंभुक्त्वा। अलमर्थेषु किम्। पर्याप्तं भुङ्क्ते। प्रभूततेह गम्यते न तु भोक्तुः सामर्थ्यम्॥

३१७८-पर्य्याप्ति अर्थात् पूर्णता तद्वाचक और अलमर्थ अर्थात् सामर्थ्यवाचक शब्द उपपद होनेपर धातुके उत्तर तुमुन् प्रत्यय हो, पर्य्याप्तो भोक्तुम्। प्रवीणः कुशलः पटुः इत्यादि। पर्य्याप्तिवाचक न होनेपर, अलं भुक्त्वा। अलमर्थ न होनेपर पर्य्याप्तं भुंक्ते। इस स्थलमें भोजनकर्त्ताकी सामर्थ्य नहीं है किन्तु प्रचुरार्थ गम्यमान है॥

३१७९ कालसमयवेलासु तुमुन्। ३। ३। १६७॥

पर्यायोपादानमर्थोपलक्षणार्थम्। कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् स्यात्। कालः समयो वेला अनेहा वा भोक्तुम्। प्रैषादिग्रहणमिहानुवर्तते तेनेह न। भूतानि कालः पचतीति वार्ता॥

३१७९-"कालादिषु तुमुन्" ऐसा सूत्र करनेसे कार्यसिद्धि रहते पर्यायोपादान कालार्थक उपपद रहते तुमुन् विधानार्थ है। कालवाचक, समयवाचक और वेलावाचक शब्द उपपद होनेपर धातुके उत्तर तुमुन् प्रत्यय हो, यथा-कालः समयः वेला अनेहा वा भोक्तुम्। इस स्थलमें प्रैषादि शब्दोंकी अनुवृत्ति होती है। इसी कारण "भूतानि कालः पचतीति वार्ता" इस स्थलमें तुमुन् नहीं हुआ॥

३१८० भाववचनाश्च। ३। ३। ११॥

भाव इत्यधिकृत्य वक्ष्यमाणा घञादयः क्रियार्थायां क्रियायां भविष्यति स्युः। यागाय याति॥

३१८०-"भावे" इस सूत्रका अधिकार करके वक्ष्यमाण घञादि प्रत्यय क्रियानिमित्तक क्रियावाचक पद उपपद होनेपर भविष्यत् कालमें धातुके उत्तर हों, यथा-यागाय याति॥

३१८१ अण् कर्मणि च। ३। ३। १२॥

कर्मण्युपपदे क्रियार्थायां क्रियायां चाण् स्यात्। ण्वुलोऽपवादः। काण्डलावो व्रजति। परत्वादयं कादीन् बाधते। कम्बलदायो व्रजति॥

३१८१-कर्म्म उपपद होनेपर क्रियानिमित्तक क्रियावाचक पद उपपद होनेपर धातुके उत्तर भविष्यत् कालमें अण् प्रत्यय हो, यह अण् प्रत्यय ण्वुल् प्रत्ययका अपवाद है यथा-कांडलावो व्रजति। परत्वके कारण यह प्रत्यय ककारादि प्रत्ययोंको बाधता है। कम्बलदायो व्रजति॥

३१८२ पदरुजविशस्पृशो घञ्। ३। ३। १६॥

भविष्यतीति निवृत्तम्। पद्यतेऽसौ पादः। रुजतीति रोगः। विशतीति वेशः। स्पृशतीति स्पर्शः

३१८२-यहांसे भविष्यत् अर्थकी निवृत्ति हुई। पद, रुज, विश और स्पृश धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो,यथा-पद्यते असौ इति पादः। रुजति इति रोगः। विशतीति वेशः। स्पृशति इति स्पर्शः॥

३१८३ सृ स्थिरे। ३। ३। १७॥

सृ इति लुप्तविभक्तिकम्। सर्तेः स्थिरे कर्त्तरि घञ् स्यात्। सरति कालान्तरमिति सारः॥ अतीव्याधिमत्स्यबलेषु चेति वाच्यम्॥ * ॥ अतीसारो व्याधिः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र सरतिः रुधिरादिकमतिशयेन सारयतीत्यर्थः। विसारो मत्स्यः। सारो बले दृढांशे च॥

३१८३-सृ यह लुप्तविभक्तिक है। स्थिर कर्त्ता अर्थमें सृ धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा-सरति कालान्तरम् इति सारः। सृ धातुसे व्याधि, मत्स्य, और बल अर्थमें घञ् हो ऐसा कहना चाहिये *॥ अतीसारो व्याधिः। इस स्थलमें सृ धातु अन्तर्भावित णिजर्थ है। अर्थात् जो व्याधि रुधिरादिको अतिशय करके निर्गत करै उसको अतीसार कहतेहैं। विसारो मत्स्यः। सार शब्दसे बल और दृढांश समझना॥

३१८४ भावे। ३। ३। १८॥

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् स्यात्। पाकः। पाकौ॥

३१८४-सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ होनेपर धातुसे घञ् प्रत्यय हो, यथा, पाकः। पाकौ। (सिद्धभोजन)॥

३१८५ स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि। ६। १। ४७॥

अनयोरेच आत्वं स्याद् घञि। स्फारः। स्फालः। उपसर्गस्य घञीति दीर्घः। परीहारः। इकः काशे। ६। ३। १२३॥ काशे उत्तरपदे इगन्तस्यैव प्रादेर्दीर्घः। नीकाशः। अनूकाशः। इकः किम्। प्रकाशः। नोदात्तोपदेशेति न वृद्धिः। शमः। आचमादेस्तु। आचामः। कामः। वामः। विश्राम इति त्वपाणिनीयम्॥

३१८५-घञ् प्रत्यय परे रहते स्फुर और स्फुल धातुके एच्के स्थानमें आकार हो, यथा-स्फारः। स्फालः। "उपसर्गस्य घञि० (१०४४)" इस सूत्रसे दीर्घ होकर परीहारः। काश शब्द उपपद होनेपर इगन्तही आदि उपसर्गको दीर्घ हो। नीकाशः। अनूकाशः। इगन्त उपसर्ग उपपद न होनेपर दीर्घ नहीं होगा, प्रकाशः। "नोदात्तोपदेश०(२७६३)" इस सूत्रसे वृद्धि नहीं होगी, यथा-शमः। आङ्पूर्वक चमादि धातुओंके तो, आचामः। कामः। वामः। विश्रामः। यह पद पाणिनि महर्षिको अभिप्रेत नहीं है॥

३१८६ स्यदो जवे। ६। ४। २८॥

स्यन्देर्घञि नलोपो वृद्ध्यभावश्च निपात्यते। स्यदो वेगः। अन्यत्र स्यन्दः॥

३१८६-घञ् प्रत्यय परे रहते स्यन्दि धातुके नकारका लोप हो, और वृद्धिका अभाव निपातनसे सिद्ध हो, स्यदो वेगः। अन्य अर्थमें अर्थात् प्रस्रवण अर्थमें नकारका लोप नहीं होगा, यथा-स्यन्दः (टपकना)॥

३१८७ अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः। ६। ४। २९॥

अवोदः अवक्लेदनम्। एध इन्धनम्। ओद्म उन्दनम्। श्रन्थेर्नलोपो वृद्ध्यभावश्च॥

३१८७-अवोद,एध,ओद्म,प्रश्रथ,हिम,श्रथ यह संपूर्ण पद निपातनसे सिद्ध हों, यथा-अवोदः अवक्लेदनम्। एध इन्धनम्। ओद्म उन्दनम्। श्रन्थ धातुके नकारका लोप हो, और अकारको वृद्धि न हो, प्रश्रथः। इत्यादि॥

३१८८ अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्। ३। ३। १९॥

कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात्॥

३१८८-कर्तृभिन्न कारकमें संज्ञा होनेपर धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो॥

३१८९ घञि च भावकरणयोः। ६। ४। २७॥

रञ्जेर्नलोपः स्यात्। रागः। अनयोः किम्। रज्यत्यस्मिन् रङ्गः। प्रास्यते इति प्रासः। संज्ञायामिति प्रायिकम्। को भवता लाभो लब्ध इत उत्तरं भावे अकर्तरि कारक इति कृत्यल्युटो बहुलमिति यावद् द्वयमप्यनुवर्तते॥

३१८९--भाव और करणमें घञ् प्रत्यय परे रहते रञ्ज धातुके नकारका लोप हो, रागः। भाव, और करण अर्थ न होनेपर रज्यति अस्मिन् इस विग्रहमें रङ्गः। इस स्थलमें नकारका लोप नहीं हुआ। प्रास्यते इति प्रासः। "संज्ञायाम्" अर्थात् संज्ञा होनेपर घञ् होगा ऐसा जो कहा है वह प्रायिक अभिप्रायमें है अर्थात् सर्वत्र नहीं। यथा, को भवता लाभः लब्धः। इस स्थलमें संज्ञा नहीं है तथापि घञ् प्रत्यय हुआहै। इससे परवर्त्ती सूत्रमें "भावे" और "अकर्तरि कारके" इन दोनों पदोंकी "कृत्यल्युटो बहुलम् २८४१" इस सूत्रतक अनुवृत्ति होगी॥

३१९० परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः। ३। ३। २७॥

घञ्। अजपोर्बाधनार्थमिदम्। एकस्तण्डुलनिचायः। द्वौ शूर्पनिष्पावौ। द्वौ कारौ॥

दारजारौ कर्तरि णिलुक्च ॥ * ॥ दारयन्तीति दाराः । जारयन्तीति जाराः ॥

३१९०-परिमाण अर्थ होनेपर भावमें और कर्तृभिन्न कारकमें सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, अच् और अप् प्रत्ययके बाधनार्थ यह सूत्र विहित हुआहै । एकस्तण्डुलनिचायः । द्वौ शूर्पनिष्पावौ । द्वौ कारौ ॥

"दारजारौ कर्त्तरि णिलुक् च" ण्यन्त दॄ धातुसे और जॄ धातुसे कर्तामें घञ् प्रत्यय हो और णिलोपको बाध कर णि लुक् हो ऐसा कहना चाहिये* दारयन्ति इस विग्रहमें कर्त्तामें घञ् और णिका लुक् होकर दाराः पद सिद्ध हुआहै । तथा जारयन्ति इस विग्रहमें कर्त्तामें घञ् और णिका लुक् होकर जाराः पद सिद्ध हुआहै । दाराः-स्त्री । जाराः (यार)॥

३१९१ इङश्च । ३ । ३ । २१ ॥

घञ् । अचोपवादः । उपेत्य अस्मादधीयते उपाध्यायः ॥ अपादाने स्त्रियामुपसंख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष् ॥ * ॥ उपाध्याया । उपाध्यायी ॥ शॄ वायुवर्णनिवृत्तेषु ॥ * ॥ शॄ इत्यविभक्तिको निर्देशः । शारो वायुः । करणे घञ् । शारो वर्णः । चित्रीकरणमिह धात्वर्थः । निव्रियते आव्रियतेऽनेनेति निवृतमावरणम् । बाहुलकात्करणे क्तः । गौरिवाकृतनीशारः प्रायेण शिशिरे कृशः । अकृतमावरण इत्यर्थः ॥

३१९१-कर्तृभिन्न कारकमें इङ् धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो यह सूत्र अच् प्रत्ययका बाधक है, यथा, "उपेत्य अस्मात् अधीयते"इस विग्रहमें, उपाध्यायः ॥

अपादान कारकमें स्त्रीलिङ्गमें घञ् प्रत्यय हो और इस घञ् प्रत्ययान्त पदके उत्तर विकल्प करके ङीष् हो, यथा-उपाध्याया, उपाध्यायी ॥

वायु वर्ण और निवृत्त अर्थ होनेपर शॄ धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो * शॄ इसमें विभक्तियुक्त न करके निर्देश कियाहै । शारो वायुः । शॄ धातुके उत्तर करणमें घञ् प्रत्यय हुआहै । शारो वर्णः । इस स्थलमें शॄ धातुका अर्थ चित्रीकरण है । "निव्रियते आव्रियते अनेन" इस विग्रहमें निवृत्त अर्थात् आदरणार्थमें वृ धातुके उत्तर बाहुलकबलसे करणमें क्त प्रत्यय हुआहै। निवृत्तम्-"गौरिवाकृतनीशारः प्रायेण शिशिरे कृशः" अकृत-प्रावरण इत्यर्थः ॥

३१९२ उपसर्गे रुवः । ३ । ३ । २२ ॥

घञ् । संरावः । उपसर्गे किम् । रवः ॥

३१९२-भावमें और कर्तृभिन्न कारकमें उपसर्गपूर्वक रु धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा, संरावः । उपसर्गपूर्वक न होनेपर घञ् नहीं होगा । यथा, रवः ॥

३१९३ अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम् । ८ । ३ । ८६ ॥

अस्मात् स्तनेः सस्य मूर्धन्यः । अभिनिष्टानो वर्णः । शब्दसंज्ञायां किम् । अभिनिः स्तनति मृदङ्गः ॥

३१९३-शब्दसंज्ञा होनेपर अभिपूर्वक और निस्पूर्वक स्तन धातुके सकारको मूर्धन्य हो, यथा-अभिनिष्टानो वर्णः । शब्दसंज्ञा न होनेपर अभिनिः स्तनति मृदङ्गः ॥

३१९४ समि युद्रुदुवः । ३ । ३ । २३ ॥

संयूयते मिश्रीक्रियते गुडादिभिरिति संयावः पिष्टविकारोऽपूपविशेषः । सन्द्रावः । सन्दावः ॥

३१९४-सम्पूर्वक यु, द्रु और दु धातुके उत्तर भाव और कर्तृभिन्न कारकमें घञ् प्रत्यय हो, यथा-संयूयते मिश्रीक्रियते डादिभिः इति संयावः । अर्थात् पिष्टविकारोऽपूपविशेषः, सन्द्रावः । सन्दावः ॥

३१९५ श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे ।३।३।२४॥

श्रायः । नायः । भावः । अनुपसर्गे किम् । प्रश्रयः।प्रणयः । प्रभवः। कथं प्रभावो राज्ञ इति। प्रकृष्टो भाव इति प्रादिसमासः । कथं राज्ञो नय इति । बाहुलकात् ॥

३१९५-उपसर्ग पूर्वमें न रहते श्रि, नी और भू धातुके उत्तर भाव और कर्तृभिन्न कारकमें घञ् प्रत्यय हो, यथा, श्रायः । नायः । भावः । उपसर्ग पूर्वमें रहते घञ् नहीं होगा, यथा-प्रश्रयः । प्रणयः । प्रभवः । "प्रभावो राज्ञः" इस स्थलमें प्रभाव पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ ? प्रकृष्टः भावः । इस प्रादि समासमें प्रभावः पद निष्पन्न हुआहै । प्रथम भू धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय होनेपर भावः पश्चात् समासद्वारा सिद्ध हुआहै । "राज्ञो नयः" इस स्थलमें नयः पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ ? यह बाहुलकबलसे हुआहै ऐसा जानना चाहिये ॥

३१९६ वौ क्षुश्रुवः । ३ । ३ । २५ ॥

विक्षावः । विश्रावः । वौ किम् । क्षवः।श्रवः॥

३१९६-विपूर्वक क्षु और श्रु धातुके उत्तर भावमें और कर्तृभिन्न कारकमें घञ् प्रत्यय हो, यथा-विक्षावः । विश्रावः । जिस स्थानमें विपूर्वक नहीं होगा उस स्थानमें घञ् नहीं होगा, यथा-क्षवः । श्रवः । श्रु+अच्=श्रवः-(कान) ॥

३१९७ अवोदोर्नियः । ३ । ३ । २६ ॥

अवनायः अधोनयनम् । उन्नायः ऊर्ध्वनयनम् । कथमुन्नयः उत्प्रेक्षेति । बाहुलकात् ॥

३१९७-अवपूर्वक और उत्पूर्वक नी धातुके उत्तर भाव और कर्तृभिन्न कारकमें घञ् प्रत्यय हो, यथा-अवनायः-अधोनयनम् । उन्नायः-ऊर्ध्वनयनम् । "उन्नयः उत्प्रेक्षा" इस स्थलमें उन्नयः पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ ? बाहुलकबलसे सिद्ध हुआहै ॥

३१९८ प्रे द्रुस्तुस्रुवः । ३ । ३ । २७ ॥

प्रद्रावः । प्रस्तावः । प्रस्रावः । प्रे इति किम् । द्रवः । स्तवः । स्रवः ॥

३१९८–प्रपूर्वक, द्रु, स्तु और श्रु धातुके उत्तर भाव और कर्तृभिन्न कारकमें घञ् प्रत्यय है, प्रद्रावः । प्रस्तावः।प्रस्रावः। प्रपूर्वक न होनेपर द्रवः, स्तवः, स्रवः ॥

३१९९ निरभ्योः पूल्वोः । ३ ।३।२८॥

निष्पूयते शूर्पादिभिरिति निष्पावो धान्यविशेषः । अभिलावः।निरभ्योः किम्।पवः।लवः॥

३१९९–निर्पूर्वक पू धातु और अभिपूर्वक लू धातुके उत्तर भाव, और कर्तृभिन्न कारकमें घञ् प्रत्यय हो, यथा–निष्पूयते शूर्पादिभिः इस विग्रहमें निष्पावः अर्थात् धान्यविशेष। अभिलावः । निर् और अभिपूर्वक न होनेपर पवः । लवः । इस स्थलमें घञ् नहीं हुआ ॥

३२०० उन्न्योर्ग्रः । ३ । ३ । २९ ॥

उद्गारः । निगारः । उन्न्योः किम् । गरः ॥

३२००–भावमें और कर्तृभिन्न कारकमें उत् और निपूर्वक गॄ धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा–उद्गारः । निगारः । उत् और निपूर्वक न होनेपर,गरः । इस स्थलमें घञ् नहीं हुआ । अच् हुआ ॥

३२०१ कॄ धान्ये। ३ । ३ । ३० ॥

कॄ इत्यस्माद्धान्यविषयकादुन्न्योर्घञ् स्यात् । उत्कारो निकारो धान्यस्य विक्षेप इत्यर्थः । धान्ये किम् । भिक्षोत्करः । पुष्पनिकरः ॥

३२०१–धान्य अर्थ होनेपर भावमें और कर्तृभिन्न कारकमें उत् और निपूर्वक कॄ धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा–उत्कारः । निकारः । अर्थात् धान्यका विक्षेप । धान्य न होनेपर, भिक्षोत्करः । पुष्पनिकरः । इस प्रकार होगा ॥

३२०२ यज्ञे समि स्तुवः । ३ । ३।३१॥

समेत्य स्तुवन्ति यस्मिन् देशे छन्दोगाः स देशः संस्तावः । यज्ञे किम् । संस्तवः परिचयः॥

३२०२–यज्ञ अर्थ होनेपर भावमें और कर्तृभिन्न कारकमें सम्पूर्वक स्तु धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा, "समेत्य स्तुवन्ति यस्मिन्देशे छन्दोगाः स देशः संस्तावः ।" (संस्तावः–जिस देशमें सामवेदी मिलकर स्तुति करते हैं) । यज्ञ न होनेपर संस्तवः अर्थात् परिचयः ॥

३२०३ प्रे स्त्रोऽयज्ञे। ३ । ३। ३२ ॥

अयज्ञे इति छेदः। यज्ञे इति प्रकृतत्वात् । प्रस्तारः।अयज्ञे किम्।बर्हिषः प्रस्तरो मुष्टिविशेषः॥

३२०३–यज्ञभि अर्थ होनेपर प्रपूर्वक स्तॄ धातुके उत्तर भावमें और कर्तृभिन्न कारकमें घञ् प्रत्यय हो, पूर्वसूत्रमें यज्ञ अर्थ देखा जाताहै, अत एव इस स्थलमें अयज्ञ यह पदच्छेद क्रिया, यथा, प्रस्तारः । जिस स्थानमें यज्ञार्थ होगा उस स्थलमें बर्हिषः प्रस्तरः मुष्टिविशेषः ऐसा होगा ॥

३२०४ प्रथने वावशब्दे । ३ । ३ ।३३॥

विपूर्वात् स्तृणातेर्घञ् स्यादशब्दविषये प्रथने। पटस्य विस्तारः । प्रथने किम् । तृणविस्तरः । अशब्दे किम् । ग्रन्थविस्तरः ॥

३२०४–शब्दभिन्न विषयीभूत आख्यान होनेपर भावमें और कर्तृभिन्न कारकमें विपूर्वक स्तॄ धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा–पटस्य विस्तारः । प्रथन अर्थात् आख्यान अर्थ न होनेपर तृणविस्तरः । शब्द अर्थ होनेपर, ग्रन्थविस्तरः ॥

३२०५ छन्दोनाम्नि च । ३ । ३।३४॥

स्त्र इत्यनुवर्तते । विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः । विस्तीर्यन्तेऽस्मिन्नक्षराणीत्यधिकरणे घञ् ततः कर्मधारयः ॥

३२०५–'स्त्रः' इस पदकी यहाँ अनुवृत्ति होतीहै छन्दका नाम होनेपर विपूर्वक स्तॄ धातुके उत्तर भावमें और कर्तृभिन्न कारकमें घञ् प्रत्यय हो, यथा, विष्टारपंक्तिः अर्थात् इस नाम का छन्द । इस स्थलमें "विस्तीर्यन्तेऽस्मिन्नक्षराणीत्यधिकरणे घञ्" इस विग्रहमें अधिकरणमें घञ् प्रत्यय हुआहै । पश्चात् कर्मधारय समास हुआहै ॥

३२०६ छन्दोनाम्नि च। ८। ३ ।९४॥

विपूर्वात् स्तृणातेर्घञन्तस्य सस्य षत्वं स्याच्छन्दोनाम्नि । इति षत्वम् ॥

३२०६–छन्दका नाम होनेपर घञ् प्रत्ययान्त विपूर्वक स्तॄ धातुके सकारको षत्व हो । इस सूत्रसे षत्व हुआ ॥

३२०७ उदि ग्रहः । ३ । ३ । ३५ ॥

उद्ग्राहः॥

३२०७-उत्पूर्वक ग्रह धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो,यथा-उद्ग्राहः॥

३२०८ समि मुष्टौ । ३ । ३ । ३६ ॥

मल्लस्य संग्राहः।मुष्टौ किम्। द्रव्यस्य संग्रहः॥

३२०८–मुष्टिविषयक धात्वर्थ गम्यमान होनेपर सम्पूर्वक ग्रह धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा–मल्लस्य संग्राहः दृढ ग्रहण मुष्टिसे होताहै । इस कारण मुष्टिविषयक धात्वर्थ गम्यमान है । मुष्टिविषयक धात्वर्थ न होनेपर यथा–द्रव्यस्य संग्रहः ॥

३२०९ परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः । ३ । ३ । ३७ ॥

परिपूर्वान्नयतेर्निपूर्वादिणश्च घञ् स्यात् क्रमेण द्यूतेऽभ्रेषे च विषये । परिणायेन शारान् हन्ति । समन्तान्नयनेनेत्यर्थः । एषोऽत्र न्यायः । उचितमित्यर्थः । द्यूताभ्रेषयोः किम् । परिणयो विवाहः । न्ययो नाशः ॥

३२०९–परिपूर्वक नी धातुके उत्तर द्यूत विषयक नयन अर्थ होनेपर निपूर्वक इण् धातुके उत्तर अभ्रेष विषयक गमन अर्थ होनेपर घञ् प्रत्यय हो, यथा–परिणायेन शारान् हन्ति समन्तान्नयनेनेत्यर्थः । एषोऽत्र न्यायः अर्थात् यही इस स्थलमें उचित है । द्यूतविषयक नयन और अभ्रेष विषयक गमन अर्थ न होनेपर परिणयो विवाहः । न्ययो नाशः ॥

३२१० परावनुपात्यय इणः।३।३।३८॥

क्रमप्राप्तस्य अनतिपातोऽनुपात्ययः । तव पर्यायः । अनुपात्यये किम् । कालस्य पर्ययः । अतिपात इत्यर्थः ॥

३२१०-क्रम प्राप्तिका अनतिपात अर्थात् अविच्छेद अर्थ होनेपर परिपूर्वक इण् धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, तव पर्य्यायः । जिस स्थानमें क्रमप्राप्तिका अनतिपात नहीं होगा उस स्थानमें कालस्य पर्य्ययः अतिपातः इत्यर्थः ॥

३२११ व्युपयोः शेतेः पर्याये।३।३।३९॥

तव विशायः । तव राजोपशायः । पर्याये किम् । विशयः । संशयः । उपशयः समीपशयनम् ॥

३२११-पर्याय गम्यमान होनेपर विपूर्वक और उपपूर्वक शीङ् धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा-तव विशायः । तव राजोपशायः । पर्य्यायसे भिन्नार्थमें, विशयः। संशयः। उपशयः समपिशयनम् ॥

३२१२ हस्तादाने चेरस्तेये ।३।३।४०॥

हस्तादान इत्यनेन प्रत्यासत्तिरादेयस्य लक्ष्यते । पुष्पप्रचायः । हस्तादाने किम् । वृक्षाग्रस्थानां फलानां यष्ट्या प्रचयं करोति । अस्तेये किम् । पुष्पप्रचयश्चौर्येण ॥

३२१२-स्तेयसे भिन्न हस्तादान गम्यमान होनेपर चिञ् धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, हस्तादान शब्दसे आदेय वस्तुकी प्रत्यासत्ति जानना चाहिये, यथा-पुष्पप्रचायः । घञ् होनेसे वृद्धि होगी । हस्तसे प्रचय करताहै, हस्तादाने किम् , वृक्षाग्रस्थानां फलानां यष्ट्या प्रचयं करोति । स्तेय होनेपर पुष्पप्रचयश्चौर्येण॥

३२१३ निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः । ३ । ३ । ४१ ॥

एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च ककारः । उपसमाधानं राशीकरणं तच्च धात्वर्थः । अन्ये प्रत्ययार्थस्य कारकस्योपाधिभूताः । निवासे । काशीनिकायः । चितौ । आकायमग्निं चिन्वीत । शरीरे । चीयतेऽस्मिन्नस्थ्यादिकमिति कायः । समूहे । गोमयनिकायः । एषु किम् । चयः । चः कः इति वक्तव्ये आदेरित्युक्तेर्यङ्लुक्यादेरेव यथा स्यादिति । गोमयानां निकेचायः । पुनःपुना राशीकरणमित्यर्थः ॥

३२१३-निवास, चिति, शरीर, उपसमाधान इन सम्पूर्ण अर्थोंमें चि धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो और आदि वर्णके स्थानमें क आदेश हो, उपसमाधान शब्दसे राशीकरण समझना । यही धातुका अर्थ है । अन्य अर्थ प्रत्ययार्थ कारकके उपाधिभूत हैं । निवासार्थमें यथा-काशीनिकायः। चिति अर्थमें उदाहरण. । यथा, आकायमग्निं चिन्वीत । शरीरार्थमें यथा-चीयतेऽस्मिन्नस्थ्यादिकमिति कायः। इस विग्रहमें कायः। ऐसा पद हुआ। (जिसमें अस्थि आदिका चयन हो वह कायः) समूहार्थमें यथा, गोमयनिकायः । जिस स्थानमें यह समस्त अर्थ नहीं होंगे उस स्थानमें चयः ऐसा होगा। चके स्थानमें क हो ऐसा कहना ही ठीक है। फिर जो आदिके स्थानमें कहा है वह यङ्लुक् होनेपर आदिके स्थानमें ककार आदेश होगा इस निमित्त है । गोमयानां निकेचायः अर्थात् बार २ राशीकरण समझना ॥

३२१४ सङ्घे चानौत्तराधर्ये।३।३।४२॥

चेर्घञ् आदेश्च कः । भिक्षुनिकायः । प्राणिनां समूहः संघः । अनौत्तराधर्ये किम् । सूकरनिचयः । संघे किम् । ज्ञानकर्मसमुच्चयः ॥

३२१४-उत्तराधर भावसे भिन्न समूह अर्थमें चि धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, और आदि वर्णके स्थानमें ककार आदेश हो, यथा-भिक्षुनिकायः । प्राणिसमूहको संघ कहतेहैं । जिस स्थानमें उत्तराधर भाव अर्थ है उस स्थानमें सूकरनिचयः। स्तन्यपानार्थ सूकर उत्तराधरभावसे शयन करता है, जिस स्थानमें समूह न होगा उस स्थानमें ज्ञानकर्मसमुच्चयः । (अर्थात् ज्ञान और कर्मका एकीभाव) ॥

३२१५ कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् । ३ । ३ । ४३ ॥

स्त्रीलिङ्गे भावे णच् ॥

३२१५-कर्म्मका व्यतिहार अर्थ होनेपर स्त्रीलिङ्गभावमें णच् प्रत्यय हो ॥

३२१६ णचः स्त्रियामञ् । ५।४।१४॥

३२१६-स्त्रीलिङ्गमें विहित णच् प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय हो ॥

३२१७ न कर्मव्यतिहारे। ७। ३। ६ ॥

अत्र ऐच् न स्यात् । व्यावक्रोशी । व्यावहासी ॥

३२१७-कर्म्मव्यतिहार अर्थ होनेपर ऐच् आगम नहीं होगा, व्यावक्रोशी । व्यावहासी ॥

३२१८ अभिविधौ भाव इनुण् । ३ । ३ । ४४ ॥ ॥ आदिवृद्धिः ॥

३२१८-कार्त्स्न्य करके सम्बन्ध गम्यमान होनेपर भावमें इनुण् प्रत्यय हो ॥

३२१९ अणिनुणः । ५ । ४ । १५ ॥

इनण्यनपत्ये । सांराविणं वर्तते ॥

३२१९-इनुण् प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर स्वार्थमें अण् प्रत्यय हो, आदि पदको वृद्धि हो । "इनण्यनपत्ये (१२४५)" इस सूत्रसे प्रकृतिभाव होगा । सांराविणम् वर्तते ॥

३२२० आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः ।३।३।४५॥

अव नि एतयोर्ग्रहेर्घञ् स्यात् शापे । अवग्राहस्ते भूयात् । अभिभव इत्यर्थः । निग्राहस्ते भूयात् । बाध इत्यर्थः । आक्रोशे किम् । अवग्रहः पदस्य । निग्रहश्चोरस्य ॥

३२२०–शाप अर्थ होनेपर अवपूर्वक और निपूर्वक ग्रह धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, अवग्राहस्ते भूयात् । अवग्राह शब्दसे अभिभव समझना । निग्राहस्ते भूयात् । निग्राह शब्दसे बाध समझना । जिस स्थानमें आक्रोश अर्थ नहीं होगा, उस स्थलमें अवग्रहः पदस्य । निग्रहः चोरस्य । इत्यादि ॥

३२२१ प्रे लिप्सायाम् । ३ । ३ । ४६ ॥

पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुः ॥

३२२१–लिप्सा अर्थात् लाभेच्छा होनेपर प्रपूर्वक ग्रह धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा, पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुः । लिप्साते भिन्न अर्थमें, प्रग्रहो देवदत्तस्य । प्र+ग्रह+घञ्=प्रग्राहः ॥

३२२२ परौ यज्ञे । ३ । ३ । ४७ ॥

उत्तरः परिग्राहः । स्फ्येन वेदेः स्वीकरणम् ॥

३२२२–प्रयुज्यमान होनेपर परि पद रहते ग्रह धातुसे घञ् प्रत्यय हो, उत्तरः परिग्राहः । स्फ्येन वेदेः स्वीकरणम् ॥

३२२३ नौ वृ धान्ये ।३। ३। ४८ ॥

वृ इति लुप्तपञ्चमीकम् । नीवाराः । धान्ये किम् । निवरा कन्या । क्तिन्विषयेपि बाहुलकादप् । प्रवरा सेतिवत् ॥

३२२३–वृ यह लुप्त पञ्चमीका पद है, धान्य अर्थ होनेपर निपूर्वक वृ धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा, नीवारः (मुनिअन्न)"उपसर्गस्य घञ्० ६।३।१२२ "इससे उपसर्गको दीर्घ हुआ जिस स्थानमें धान्य अर्थ नहीं होगा उस स्थानमें निवरा कन्या । क्तिन्विषयमें भी बाहुलकबलसे अप् प्रत्यय होगा यथा, प्रवरा सा । इस प्रकार होगा ॥

३२२४ उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ३।३।४९॥

उच्छ्रायः । उद्यावः । उत्पावः । उद्द्रावः । कथं पतनान्ताः समुच्छ्रया इति । बाहुलकात् ॥

३२२४–उद् उपपद रहते श्रि, यु, पू, द्रु इन सम्पूर्ण धातुओंके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यथा–उच्छ्रायः । उद्यावः । उत्पावः । उद्द्रावः। ऐसा होनेपर"पतनान्ताः समुच्छ्रायाः"ऐसा प्रयोग किस प्रकारसे सिद्ध हुआ ? वह बाहुलकबलसे सिद्ध हुआहै ऐसा जानना चाहिये ॥

३२२५ विभाषाङि रुप्लुवोः।३।३।५०॥

आरावः । आरवः । आप्लावः । आप्लवः ॥

३२२५–आङ् उपपद रहते रु और प्लु धातुके उत्तर विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो, यथा–आरावः, आरवः । आप्लावः, आप्लवः ॥

३२२६ अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे । ३ । ३ । ५१ ॥

विभाषेति वर्तते । अवग्रहः । अवग्राहः । वर्षप्रतिबन्धे किम् । अवग्रहः पदस्य ॥

३२२६–विभाषा पदकी अनुवृत्ति आती है । वर्षप्रतिबन्ध अर्थ होनेपर अव उपपद रहते ग्रह धातुके उत्तर विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो, अवग्राहः, अवग्रहः । वर्षप्रतिबन्ध अर्थ न होनेपर, अवग्रहः पदस्य । इस प्रकार होगा ॥

३२२७ प्रे वणिजाम् । ३। ३। ५२ ॥

प्रे ग्रहेर्घञ् वा वणिजां संबंधी चेत्प्रत्ययार्थः। तुलासूत्रमिति यावत् । तुलाप्रग्राहेण चरति । तुलाप्रग्रहेण ॥

३२२७–यदि प्रत्ययार्थ वणिक् सम्बन्धी अर्थात् तुलासूत्र हो तो प्रपूर्वक ग्रह धातुके उत्तर विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो, यथा, तुलाप्रग्राहेण चरति तुला प्रग्रहेण वा ॥

३२२८ रश्मौ च । ३ । ३ । ५३ ॥

प्रग्रहः । प्रग्राहः ॥

३२२८–रश्मि अर्थ होनेपर प्रपूर्वक ग्रह धातुके उत्तर विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो, यथा, प्रग्राहः–प्रग्रहः ॥

३२२९ वृणोतेराच्छादने । ३।३।५४॥

विभाषा प्र इत्येव । प्रवारः । प्रवरः ॥

३२२९–आच्छादनार्थ होनेपर प्रपूर्वक वृ धातुके उत्तर विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो, यथा, प्रवारः–प्रवरः ॥

३२३० परौ भुवोऽवज्ञाने । ३ ।३।५५॥

परिभावः । परिभवः । अवज्ञाने किम् । सर्वतो भवनं परिभवः ॥

३२३०–अवज्ञा अर्थ होनेपर परिपूर्वक भू धातुके उत्तर विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो, यथा–परिभावः, परिभवः । जिस स्थानमें अवज्ञा अर्थ नहीं होगा, उस स्थानमें–सर्वतो भवनं परिभवः । इसप्रकार होगा ॥

३२३१ एरच् । ३ । ३ । ५६ ॥

चयः । जयः ॥ भयादीनामुपसंख्यानं नपुंसके क्तादिनिवृत्त्यर्थम् ॥ * भयम् । वर्षम् ॥

३२३१–इकारान्त धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हो, यथा–चयः । जयः ॥

भी आदि धातुओंके उत्तर भी अच् प्रत्यय हो * पूर्वोक्त वार्तिकका प्रयोजन कहते हैं ॥

नपुंसक लिङ्गमें क्तादि प्रत्यय न हों इसलियेभी आदि धातुसे अच् प्रत्ययका विधान किया है * भयम् । वर्षम् ॥

३२३२ ऋदोरप् । ३ । ३ । ५७ ॥

ऋवर्णान्तादुवर्णान्तादप् । करः । गरः । शरः । यवः । लवः । स्तवः । पवः ॥

३२३२ ऋवर्णान्त और उवर्णान्त धातुके उत्तर अप् प्रत्यय हो, यथा—करः । गरः । शरः । यवः । लवः । स्तवः । पवः ॥

३२३३ वृक्षासनयोर्विष्टरः ।८।३।९३॥

अनयोर्विपूर्वस्य स्तृः षत्वं निपात्यते । विष्टरो वृक्ष आसनं च । वृक्षेत्यादि किम् । वाक्यस्य विस्तरः ॥

३२३३—वृक्ष और आसन अर्थ होनेपर विपूर्वक स्तृ धातुके सकारको निपातनसे षत्व हो, यथा—विष्टरः अर्थात् वृक्ष और आसन। वृक्षादि अर्थ न होनेपर,वाक्यस्य विस्तरः ॥

३२३४ ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च । ३।३।५८॥

अप् स्यात् । घञोऽपवादः । ग्रहः । वरः । दरः । निश्चयः । गमः ॥ वशिरण्योरुपसंख्यानम् ॥ * ॥ वशः । रणः ॥ घञर्थे कविधानम् ॥ * ॥ प्रस्थः । विघ्नः ॥ द्वित्वप्रकरणे के कृञादीनामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ चक्रम् । चिक्लिदम् । चक्नसः ॥

३२३४—ग्रह धातु, वृ धातु, दृ धातु, निर्पूर्वक चि धातु और गम धातुके उत्तर अप् प्रत्यय हो, यह सूत्र घञ् और अच् प्रत्ययका अपवाद है, यथा—ग्रहः । वरः । दरः । निश्चयः । गमः ।

वश और रण धातुके उत्तर भी अप् प्रत्यय हो । ऐसा कहना चाहिये * यथा—वशः । रणः ।

घञ् प्रत्ययके अर्थमें कप् प्रत्यय भी हो * । यथा—प्रस्थः । विघ्नः ।

द्वित्वप्रकरणमें "एकाचो द्वे प्रथमस्य" इस द्वित्वप्रकरणमें क प्रत्यय परे रहते कृञ् आदि धातुओंके एकाच् प्रथम अवयवको द्वित्व हो* । यथा—चक्रम्। चिक्लिदम् । चक्नसः ॥

३२३५ उपसर्गेऽदः ।३।३।५९॥

अप् स्यात् ॥

३२३५—उपसर्ग उपपद रहते अद धातुके उत्तर अप् प्रत्यय हो ॥

३२३६ घञपोश्च । २।४।३८॥

अदेर्घस्लृ स्यात् घञि अपि च । प्रघसः । विघसः । उपसर्गे किम् । घासः ॥

३२३६—घञ् और अप् प्रत्यय परे रहते अद धातुके स्थानमें घस्लृ आदेश हो, यथा—प्रघसः । विघसः । उपसर्ग उपपद न होनेपर, घासः ॥

३२३७ नौ ण च । ३ । ३ । ६० ॥

नौ उपपदे अदेर्णः स्यादप् च । न्यादः । निघसः ॥

३२३७—नि उपपद रहते अद धातुके उत्तर ण प्रत्यय है और अप् प्रत्यय भी हो, यथा—न्यादः । निघसः ॥

३२३८ व्यधजपोरनुपसर्गे । ३।३। ६१॥

अप् स्यात् । व्यधः । जपः । उपसर्गे तु आव्याधः । उपजापः ॥

३२३८—उपसर्ग पूर्वक न होनेपर व्यध धातुके और जप धातुके उत्तर अप् प्रत्यय हो, यथा—व्यधः । जपः । उपसर्ग पूर्वक होनेपर घञ् प्रत्यय होगा । यथा—आव्याधः । उपजापः ॥

३२३९ स्वनहसोर्वा । ३ । ३ । ६२॥

अप् । पक्षे घञ् । स्वनः । स्वानः । हसः । हासः । अनुपसर्ग इत्येव । प्रस्वानः । प्रहासः ॥

३२३९—उपसर्ग पूर्वमें न हो ऐसा जो स्वन और हस धातु उसके उत्तर विकल्प करके अप् प्रत्यय हो, पक्षमें घञ् प्रत्यय होगा। यथा—स्वनः, स्वानः । हसः, हासः । जिस स्थलमें उपसर्ग पूर्वमें हो, उस स्थलमें घञ् प्रत्यय होगा। यथा, प्रस्वानः । प्रहासः । स्वन्+अप्=स्वनः । स्वन्+घञ्=स्वानः ॥

३२४० यमः समुपनिविषु च।३।३।६३॥

एषु अनुपसर्गे च यमेरप् वा । संयमः । संयामः । उपयमः । उपयामः । नियमः । नियामः । वियमः । वियामः । यमः । यामः॥

३२४०—सम्, उप, नि और वि उपपद रहते यम धातुके उत्तर और अनुपसर्ग पूर्वक यम धातुके उत्तर विकल्प करके अप् प्रत्यय हो, यथा—संयमः, संयामः । उपयमः, उपयामः । नियमः, नियामः । वियमः, वियामः । यमः, यामः । पक्षमें घञ्=यामः ॥

३२४१ नौ गदनदपठस्वनः।३।३।६४॥

अप् वा स्यात् । निगदः । निगादः । निनदः। निनादः । निपठः । निपाठः । निस्वनः । निस्वानः ॥

३२४१—निपूर्वक गद, नद, पठ और स्वन धातुके उत्तर विकल्प करके अप् प्रत्यय हो, यथा—निगदः, निगादः । निनदः, निनादः । निपठः,निपाठः । निस्वनः, निस्वानः ॥

३२४२ क्वणो वीणायां च ।३। ३। ६५ ॥

नावनुपसर्गे च वीणाविषयाच्च क्वणतेरप् वा स्यात् । वीणाग्रहणं प्राद्यर्थम् । निक्वणः । निक्वाणः । क्वणः । क्वाणः । वीणायां तु प्रक्वणः । प्रक्वाणः ॥

३२४२—निपूर्वक और अनुपसर्गपूर्वक वीणाविषयक जो क्वण धातु उसके उत्तर विकल्प करके अप् प्रत्यय हो, वीणा शब्दग्रहण प्रादि उपसर्गार्थ है, यथा—निक्वणः, निक्वाणः । क्वणः,क्वाणः । वीणा विषयमें प्रक्वणः, प्रक्वाणः । इस प्रकार होगा ॥

३२४३ नित्यं पणः परिमाणे ।३।३।६६॥

अप् स्यात् । मूलकपणः । शाकपणः । व्यवहारार्थं मूलकादीनां परिमितो मुष्टिर्बध्यते सोऽस्य विषयः । परिमाणे किम् । पाणः ॥

३२४३-परिमाणविशेष अर्थ गम्यमान होनेपर पण धातुके उत्तर नित्य ही अप् प्रत्यय हो,यथा-मूलकपणः। शाकपणः।व्यवहारार्थ मूलकादिकी परिमित जो मुट्ठी बांधी जाती है, इस स्थलमें परिमाण शब्दसे वही समझनी चाहिये । परिमाण न होनेपर पाणः ऐसा पद होगा ॥

३२४४ मदोऽनुपसर्गे । ३ । ३ । ६७॥

धनमदः । उपसर्गे तु । उन्मादः ॥

३२४४-उपसर्गपूर्वक न होनेपर मद धातुके उत्तर अप् प्रत्यय हो, यथा-धनमदः । जिस स्थानमें उपसर्गपूर्वक होगा उस स्थलमें उन्मादः ऐसा होगा । उन्मद=घञ्= उन्मादः (बावलापन) ॥

३२४५ प्रमदसम्मदौ हर्षे । ३ ।३।६८॥

हर्षे किम् । प्रमादः । संमादः ॥

३२४५-हर्ष अर्थ होनेपर प्रमद और संमद यह दो पद निपातनसे सिद्ध हों, जिस स्थानमें हर्ष नहीं होगा उस स्थलमें प्रमादः । संमादः । इस प्रकार होगा ॥

३२४६ समुदोरजः पशुषु । ३।३।६९॥

संपूर्वोऽजिः समुदाये उत्पूर्वश्च प्रेरणे तस्मात्पशुविषयकादप् स्यात्। अघञपोरित्युक्तेर्वीभावो न । समजः पशूनां सङ्घः । उदजः पशूनां प्रेरणम् । पशुषु किम् । समाजो ब्राह्मणानाम् । उदाजः क्षत्त्रियाणाम् ॥

३२४६-सम् उद् उपसर्ग उपपद रहते पशुविषयक अज धातुके उत्तर अप् प्रत्यय हो, सूत्रमें "अघञपो"ऐसी उक्तिके कारण वीभाव नहीं होगा, यथा-समजः पशुसमूहः । उदजः पशुप्रेरणम् । पशुविषयक न होनेपर अर्थात् पशुसे भिन्न अन्यजातिविषयक होनेपर " समाजः ब्राह्मणानाम् " इस स्थानमें अप् प्रत्यय नहीं होगा । उदाजः क्षत्त्रियाणाम् । इस स्थलमें अप् नहीं हुआ ॥

३२४७ अक्षेषु ग्लहः । ३ । ३ । ७० ॥

अक्षशब्देन देवनं लक्ष्यते तत्र यत्पणरूपेण ग्राह्यं तत्र ग्लह इति निपात्यते अक्षस्य ग्लहः । व्यात्युक्षीमभिसरणग्लहामदीव्यन् । अक्षेषु किम्। पादस्य ग्रहः ॥

३२४७-अक्ष शब्दसे पाशक्रीडा समझना । इस क्रीडाविषयमें पणरूपसे जो गृहीत होताहै उस अर्थमें ग्लह ऐसा पद निपातनसे सिद्ध हो, अर्थात् ग्रह धातुके उत्तर अप् प्रत्यय होकर रकारके स्थानमें ल होगा,यथा-अक्षस्य ग्लहः।"व्यात्युक्षीमाभिसरणग्लहामदीव्यन् " । अक्षभिन्नार्थमें पादस्य ग्रहः।

इस स्थलमें " ग्रहवृद० " इस सूत्रसे अप् प्रत्यय हुआ । लकार नहीं हुआ ॥

३२४८ प्रजने सर्त्तेः । ३ । ३ । ७१ ॥

प्रजनं प्रथमगर्भग्रहणम् । गवामुपसरः । कथमवसरः प्रसर इति । अधिकरणे पुंसि संज्ञायामिति घः ॥

३२४८-प्रजन अर्थात् गर्भग्रहण अर्थ होनेपर सृ धातुके उत्तर अप् प्रत्यय हो, यथा-गवामुपसरः । अवसरः और प्रसरः यह दो पद किस प्रकारसे सिद्ध हुए हैं ? अधिकरणमें "पुंसि संज्ञायाम्०३२९६ " इस सूत्रसे घ प्रत्यय हुआहै ॥

३२४९ ह्वः संप्रसारणं च न्यभ्युपविषु । ३ । ३ । ७२ ॥

निहवः । अभिहवः । उपहवः । विहवः । एषु किम् । प्रह्वायः ॥

३२४९-नि, अभि, उप और वि उपसर्ग उपपद रहते ह्वेञ् धातुके उत्तर अप् प्रत्यय हो, और सम्प्रसारण हो, यथा-निहवः । अभिहवः । उपहवः । विहवः । यह सम्पूर्ण पूर्वमें न रहते अर्थात् इनसे भिन्न अन्य उपसर्ग पूर्वमें रहते घञ् होगा, यथा-प्रह्वायः ॥

३२५० आङि युद्धे । ३ । ३ । ७३ ॥

आहूयन्तेऽस्मिन्नित्याहवः । युद्धे किम् । आह्वायः ॥

३२५०—युद्ध अर्थ होनेपर आङ्पूर्वक ह्वेञ् धातुके उत्तर भी अप् प्रत्यय हो, और सम्प्रसारण हो, यथा-आहूयन्ते अस्मिन् इस विग्रहमें आहवः (युद्ध) । युद्ध अर्थ न होनेपर आह्वायः इस प्रकार होगा ॥

३२५१ निपानमाहावः । ३ । ३ ।७४॥

आङ्पूर्वस्य ह्वयतेः संप्रसारणमप् वृद्धिश्चोदकाधारश्चेद्वाच्यः । आहावस्तु निपानं स्यादुपकूपजलाशये ॥

३२५१-यदि निपान अर्थात् उदकाधार अर्थ हो तो आहवः यह पद निपातनसे सिद्ध हो, अर्थात् आङ्पूर्वक ह्वेञ् धातुके उत्तर अप् प्रत्यय और वृद्धि सम्प्रसारण निपातनसे सिद्ध होगा । " आहवस्तु निपानं स्यादुपकूपजलाशये " ॥

३२५२ भावेऽनुपसर्गस्य । ३ ।३।७५॥

अनुपसर्गस्य ह्वयतेः संप्रसारणमप् च स्याद् भावे । हवः ॥

३२५२-उपसर्ग पूर्वमें न रहते ऐसी जो ह्वेञ् धातु उसके उत्तर भावमें अप् प्रत्यय हो, और सम्प्रसारण हो, यथा-हवः॥

३२५३ हनश्च वधः । ३ । ३ । ७६ ॥

अनुपसर्गाद्धन्तेर्भावे अप् स्यात् वधादेशश्चान्तोदात्तः वधेन दस्युम् । चाद्घञ् । घातः ॥

३२५३-अनुपसर्ग पूर्वक हन् धातुके उत्तर भावमें अप् प्रत्यय हो, और हन धातुके स्थानमें वधादेश हो, और उसके अन्तवर्णको उदात्त स्वर हो, यथा-वधेनः दस्युम्। चकार निर्देशके कारण घञ् प्रत्यय भी हो,यथा-घातः ॥

३२५४ मूर्तौ घनः। ३। ३। ७७॥

मूर्तिः काठिन्यं तस्मिन्नभिधेये हन्तेरप् स्यात् घनश्चादेशः। अभ्रघनः । कथं सैन्धवघनमानयेति। धर्मशब्देन धर्मी लक्ष्यते ॥

३२५४-मूर्ति अर्थात् काठिन्य अर्थ होनेपर हन धातुके उत्तर अप् प्रत्यय हो और हन धातुके स्थानमें घन आदेश हो, अभ्रघनः। तो " सैन्धवघनमानय" इस स्थलमें किस प्रकारसे प्रयोग हुआ ? इस स्थानमें धर्म शब्दसे धर्मी अर्थात् धर्मवान् लक्षित होताहै ॥

३२५५ अन्तर्घनो देशे। ३। ३। ७८॥

वाहीकग्रामविशेषस्य संज्ञेयम् । अन्तर्घण इति पाठान्तरम् ॥

३२५५-देश अर्थ होनेपर ' अन्तर्घनः ' यह पद निपातनसे सिद्ध हो, यह वाहीकग्रामविशेषकी संज्ञा है। 'अन्तर्घणः' ऐसा पाठान्तर भी है ॥

३२५६ अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च। ३। ३। ७९॥

द्वारदेशे द्वौ प्रकोष्ठावलिन्दौ आभ्यन्तरो वाह्यश्च। तत्र वाह्ये प्रकोष्ठे निपातनमिदम्। प्रविशद्भिर्जनैः पादैः प्रकर्षेण हन्यते इति प्रघणः। प्रघाणः। कर्मण्यप्। पक्षे वृद्धिः ॥

३२५६-अगार अर्थात् गृहका एकदेश होनेपर ' प्रघणः' और 'प्रघाणः' यह पद निपातनसे सिद्ध हों, द्वारदेशमें दो प्रकोष्ठ होतेहैं आभ्यन्तर और वाह्य उसमें वाह्य प्रकोष्ठ होनेपर यह निपातन है, यथा-प्रविशद्भिर्जनैः पादैः प्रकर्षेण हन्यते, इस विग्रहमें ' प्रघणः, प्रघाणः ' इस स्थलमें कर्मवाच्यमें अप् प्रत्यय हुआहै और विकल्प करके वृद्धि हुईहै ॥

३२५७ उद्घनोऽत्याधानम् ।३।३।८०॥

अत्याधानमुपरि स्थापनम् । यस्मिन् काष्ठे अन्यानि काष्ठानि स्थापयित्वा तक्ष्यन्ते तदुद्घनः। अधिकरणेऽप् ॥

३२५७-अत्याधान अर्थात् उपरि स्थापन अर्थ होनेपर 'उद्घनः' यह पद निपातनसे सिद्ध हो, जिस काष्ठके ऊपर दूसरा काष्ठ रखकर छेदन कियाजाय उसको'उद्घनः' कहतेहैं, इस स्थलमें अधिकरणवाच्यमें अप् प्रत्यय हुआहै ॥

३२५८ अपघनोऽङ्गम्। ३। ३। ८१॥

अङ्गं शरीरावयवः। स चेह न सर्वः किंतु पाणिः पादश्चेत्याहुः। करणेऽप्। अपघातोऽन्यः॥

३२५८-अङ्ग अर्थात् शरीरावयव वाच्य होनेपर ' अपघनः ' यह पद निपातनसे सिद्ध हो। वह अङ्ग यहां सब नहीं लेना, किन्तु पाणि और पाद यह पूर्वाचार्य्य कहेहैं । ' अपघनः' यहां करणवाच्यमें अप् प्रत्यय हुआहै। अन्यार्थमें 'अपघातः ' ऐसा होगा ॥

३२५९ करणेऽयोविद्रुषु। ३। ३।८२॥

एषु हन्तेः करणेऽप् स्याद्घनादेशश्च। अयो हन्यतेऽनेनेत्ययोघनः। विघनः। द्रुघनः।द्रुघण इत्येके। पूर्वपदात्संज्ञायामिति णत्वम्। संज्ञैषा कुठारस्य। द्रुर्वृक्षः ॥

३२५९-अयस्, वि और द्रु शब्द उपपद होनेपर करण वाच्यमें हन् धातुके उत्तर अप् प्रत्यय हो, और हन् धातुके स्थानमें घन आदेश हो, यथा-अयो हन्यते अनेन, इस विग्रहमें अयोघनः। विघनः। द्रुघनः। ' द्रुघणः' ऐसा कोई कहतेहैं यहां "पूर्वपदात् संज्ञायाम् ८५७ " इस सूत्रसे णत्व हुआ। द्रुघणः यह कुठारकी संज्ञा है।द्रु शब्दसे वृक्ष समझना॥

३२६० स्तम्बे क च। ३। ३। ८३ ॥

स्तम्बे उपपदे हन्तेः करणे कः स्यादप् च पक्षे घनादेशश्च । स्तम्बघ्नः । स्तम्बघनः। करण इत्येव। स्तम्बघातः ॥

३२६०-स्तम्ब शब्द उपपद होनेपर हन् धातुके उत्तर करणवाच्यमें क और अप् प्रत्यय हो, पक्षमें धातुके स्थानमें घन आदेश हो, यथा-स्तम्बघ्नः, स्तम्बघनः । करणभिन्नमें 'स्तम्बघातः ' पद होगा ॥

३२६१ परौ घः। ३। ३। ८४ ॥

परौ हन्तेरप् स्यात्करणे घशब्दश्चादेशः। परिहन्यतेऽनेनेति परिघः ॥

३२६१-परिपूर्वक हन् धातुके उत्तर करणवाच्यमें अप् प्रत्यय हो, और धातुके स्थानमें घ आदेश हो, यथा-परिहन्यते अनेन, इस विग्रहमें परिघः ॥

३२६२ परेश्च घाङ्कयोः। ८। २।२२॥

परे रेफस्य लो वा स्याद् घशब्देऽङ्कशब्दे च। पलिघः-परिघः।पल्यंकः-पर्यङ्कः।इह तरप्तमपौ घ इति कृत्रिमस्य न ग्रहणं व्याख्यानात् ॥

३२६२-घ शब्द और अंक शब्द परे रहते परि उपसर्गके रकारके स्थानमें विकल्प करके लकार आदेश हो, यथा-पलिघः, परिघः। पल्यङ्कः, पर्यंकः। इस सूत्रमें "तरप्तमपौ घः २००३" इस सूत्रोक्त कृत्रिम घका ग्रहण नहीं है कारण कि, ऐसा व्याख्यान है ॥

३२६३ उपघ्न आश्रये। ३।३। ८५॥

उपपूर्वाद्धन्तेरप् स्यादुपधालोपश्च । आश्रयशब्देन सामीप्यं लक्ष्यते । पर्वतेनोपहन्यते सामीप्येन गम्यत इति पर्वतोपघ्नः ॥

३२६३-आश्रय अर्थ होनेपर उपपूर्वक हन् धातुके

उत्तर अप् प्रत्यय हो, और उपधाका लोप हो, आश्रय शब्दसे इस स्थानमें सामीप्य समझना, यथा—पर्वतेन उपहन्यते अर्थात् सामीप्येन गम्यते, इस विग्रहमें पर्वतोपघ्नः ॥

३२६४ सङ्घोद्घौ गणप्रशंसयोः । ३ । ३ । ८६ ॥

संहननं संघः । भावेऽप् । उद्धन्यते उत्कृष्टो ज्ञायते इत्युद्घः । कर्मण्यप् । गत्यर्थानां बुद्धयर्थत्वात् हन्तिर्ज्ञाने ॥

३२६४—संघ और उद्घ यह दो शब्द यथाक्रम गण और प्रशंसा अर्थमें निपातनसे सिद्ध हों, यथा—संहननम्, इस विग्रहमें 'संघः' इस स्थलमें भाववाच्यमें अप् प्रत्यय हुआहै उद्धन्यते उत्कृष्टो ज्ञायते, इस विग्रहमें 'उद्घः' इस स्थलमें कर्मवाच्यमें अप् प्रत्यय हुआहै । गत्यर्थक धातुओंका बुद्धयर्थक होनेके कारण हन् धातु ज्ञानार्थमें है, अतएव 'उद्धन्यते' इसका 'उत्कृष्टो ज्ञायते' ऐसा विवरण लिखे हैं ॥

३२६५ निघो निमितम् ।३। ३ । ८७॥

समन्तान्मितं निमितम् । निर्विशेषं हन्यन्ते ज्ञायन्त इति निघाः वृक्षाः । समारोहपरिणाहा इत्यर्थः ॥

३२६५—निमित अर्थ होनेपर 'निघः' यह पद निपातनसे सिद्ध हो । समन्तात् मितको निमित कहतेहैं, निर्विशेषं हन्यन्ते ज्ञायन्ते, इस विग्रहमें निघाः—वृक्षाः, अर्थात् समारोहणसे विस्तारयुक्त ॥

३२६६ ड्वितः क्त्रिः । ३ । ३ । ८८ ॥

अयं भाव एव स्वभावात् । क्त्रेर्मम्नित्यम् । नित्यग्रहणात् क्त्रिर्मब्विषयः । अत एव क्त्र्यन्तेन न विग्रहः । डुपचष् पाके । पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् । डुवप् । उप्त्रिमम् ॥

३२६६—डु इत् है जिसमें ऐसे धातुके उत्तर क्त्रि प्रत्यय हो, यह प्रत्यय स्वभावसे भाववाच्यमें ही होताहै । "क्त्रेर्मम्नित्यम् १५७०" इससे क्त्रिप्रत्ययान्तके उत्तर निर्वृत्तार्थमें नित्य मप् होगा । नित्य शब्दके ग्रहणके कारण क्त्रि प्रत्ययान्तही मप् प्रत्ययके विषयीभूत है, अतएव क्त्रिप्रत्ययान्तके साथ विग्रह नहीं हुआ, यथा—पाकार्थक डुपचष् धातुका पाकेन निर्वृत्तम्, इस विग्रहमें पक्त्रिमम् । बीज सन्तानार्थक डुवप् धातुका उप्त्रिमम् ॥

३२६७ ट्वितोऽथुच् । ३ । ३ । ८९ ॥

अयमपि स्वभावाद् भाव एव । टुवेपृ । वेपथुः । श्वयथुः ॥

३२६७—ट्वित् धातुओंके उत्तर अथुच् प्रत्यय हो, यह प्रत्यय भी स्वभावतः भाववाच्यमें ही होताहै, यथा—टुवेपृ धातुका वेपथुः । श्वयथुः ॥

३२६८ यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् । ३ । ३ । ९० ॥

यज्ञः । याच्ञा । यत्नः । विश्नः । प्रश्नः । प्रश्ने चासन्नेति ज्ञापकान्न संप्रसारणम् । ङित्त्वं तु विश्न इत्यत्र गुणनिषेधाय । रक्ष्णः ॥

३२६८—यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ् और रक्ष् धातुके उत्तर नङ् प्रत्यय हो, यथा—यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। यहां "प्रश्ने चासन्न० २७७७" इस ज्ञापकसे सम्प्रसारण नहीं हुआ । 'विश्नः' इस स्थलमें गुणनिषेधके निमित्त प्रत्ययमें ङित्करण है । रक्ष्णः ॥

३२६९ स्वपो नन् । ३ । ३ । ९१ ॥

स्वप्नः ॥

३२६९—स्वप् धातुके उत्तर नन् प्रत्यय हो, यथा—स्वप्नः ॥

३२७० उपसर्गे घोः किः । ३।३।९२ ॥

प्रधिः । अन्तर्धिः। उपाधीयतेऽनेनेत्युपाधिः॥

३२७०—उपसर्ग उपपद रहते घुसंज्ञक धातुके उत्तर कि प्रत्यय हो, प्रधिः । अन्तर्धिः । उपाधीयतेऽनेनेत्युपाधिः ॥

३२७१ कर्मण्यधिकरणे च ।३।३।९३॥

कर्मण्युपपदे घोः किः स्यादधिकरणेऽर्थे । जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति जलधिः ॥

३२७१—कर्म्म उपपद होनेपर अधिकरणवाच्यमें घुसंज्ञक धातुके उत्तर कि प्रत्यय हो, यथा—जलानि धीयन्ते अस्मिन्, इस विग्रहमें जलधिः (समुद्र) ॥

३२७२ स्त्रियां क्तिन् । ३ । ३ । ९४ ॥

स्त्रीलिंगे भावादौ क्तिन् स्याद् घञोऽपवादः। अजपौ तु परत्वाद्बाधते । कृतिः । चितिः । स्तुतिः । स्फायी । स्फातिः । स्फीतिकाम इति तु प्रामादिकम् । क्तान्ताद्भावत्वर्थे णिचि अच इरिति वा समाधेयम् ॥ श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे ॥ * ॥ श्रूयतेऽनया श्रुतिः । यजेरिषेश्च इष्टिः । स्तुतिः । ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः ॥*॥ तेन नत्वम्।कीर्णिः।गीर्णिः।लूनिः। धूनिः । यूनिः।ह्लाद इति योगविभागात् क्तिनि ह्रस्वः। प्रह्लत्तिः। ति च। सूर्तिः । फुल्लतिः॥चायतेः क्तिनि चिभावो वाच्यः ॥ * ॥ अपचितिः ॥ सम्पदादिभ्यः क्विप् ॥ * ॥ सम्पत् । विपत् ॥ क्तिन्नपीष्यते ॥ * ॥ सम्पत्तिः । विपत्तिः ॥

३२७२—स्त्रीलिङ्गमें भावादिवाच्यमें धातुके उत्तर क्तिन् प्रत्यय हो, यह घञ् प्रत्ययका विशेषक है । अच् और अप् प्रत्ययको तो परत्वके कारण बाधता है, यथा—कृतिः। चितिः । स्तुतिः । स्फायी—स्फातिः। स्फीतिकामः, यह तो प्रामादिक है,

अथवा क्त प्रत्ययान्तके उत्तर धात्वर्थमें णिच् प्रत्यय करनेपर "अच इः" इस सूत्रसे इ प्रत्यय करके उक्तपदकी सिद्धि होगी।

श्रु, यज, इष, स्तु, धातुओंके उत्तर करणवाच्यमें क्तिन् प्रत्यय हो * श्रूयते अनया, इस विग्रहमें श्रुतिः। यज् और इष् धातुके उत्तर क्तिन् प्रत्यय करके 'इष्टिः' ऐसा पद होगा। स्तुतिः।

ॠ धातु और लू आदि धातुओंके उत्तर क्तिन् प्रत्यय निष्ठा प्रत्ययकी समान हो * इसलिये नत्व होगा, कीर्णिः। गीर्णिः। लूनिः। धूनिः। पूनिः। "ह्लादः ३०७३" ऐसे योगविभाग अर्थात् भिन्न सूत्रकरणके कारण क्तिन् प्रत्यय परे ह्रस्व होगा, प्रह्लत्तिः। "ति च ३०३७" इससे उत्व होकर चूर्त्तिः। फुल्तिः।

"चायतेः क्तिनि चिभावो वाच्यः" अर्थात् चाय् धातुको क्तिन् प्रत्यय परे रहते चिभाव हो * अपचितिः।

"सम्पदादिभ्यः क्विप्" अर्थात् पद आदि धातुके उत्तर क्विप् प्रत्यय हो* सम्पत्। विपत्।

क्तिन् प्रत्यय भी सम्पदादि धातुसे हो * यथा-सम्पत्तिः। विपत्तिः॥

३२७३ स्थागापापचो भावे।३।३।९५॥

क्तिन् स्यादङोऽपवादः। प्रस्थितिः। उपस्थितिः। संगीतिः। सम्पीतिः। पक्तिः। कथमवस्था संस्थेति व्यवस्थायामिति ज्ञापकात्॥

३२७३-स्था, गा, पा और पच् धातुओंके उत्तर भाववाच्यमें क्तिन् प्रत्यय हो, यह अङ् प्रत्ययका विशेषक अर्थात् अपवाद है, न यथा-प्रस्थितिः। उपस्थितिः। सङ्गीतिः। सम्पीतिः। पक्तिः। अङ् प्रत्ययका बाध होजानेसे अवस्था और संस्था यह पद किस प्रकारसे सिद्ध हुआ? तो 'व्यवस्थायाम्' इस ज्ञापकके कारण क्वचित् अङ् प्रत्यय भी होनेसे उक्त पद सिद्ध हुए॥

३२७४ ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च।३।३।९७॥

अवतेर्ज्वरत्वरेत्यूठ्। ऊतिः। स्वरार्थं वचनम्। उदात्त इति हि वर्तते। यूतिः। जूतिः। अनयोर्दीर्घत्वं च निपात्यते। स्यतेः सातिः। द्यतिस्यतिमास्थेतीत्वे प्राप्ते इत्त्वाभावो निपात्यते। सनोतेर्वा जनसनेत्यात्वे कृते स्वरार्थं निपातनम्। हन्तेर्हिनोतेर्वा हेतिः। कीर्तिः॥

३२७४-ऊति, यूति, जूति, साति, हेति और कीर्ति यह क्तिन् प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हों, यथा-अव धातुको "ज्वरत्वर० २६५४" इस सूत्रसे ऊठ् होकर-ऊतिः। यह सूत्र स्वरार्थ है, "उदात्तः" इस पदकी अनुवृत्ति आतीहै। यूतिः। जूतिः। इन दोनों पदोंमें दीर्घ निपातनसे हुआहै। सा धातुके उत्तर क्तिन् प्रत्यय होकर-सातिः, यहां "द्यतिस्यतिमास्था० ३०७४" इस सूत्रसे प्राप्त इत्वका अभाव निपातनसे हुआ। अथवा सन धातुको "जनसन० २५०४" इस सूत्रसे आकार होनेपर निपातन स्वरविधानके निमित्त जानना। हन अथवा हि धातुका हेतिः। कृत धातुका कीर्तिः॥

३२७५ व्रजयजोर्भावे क्यप्।३।३।९८॥

व्रज्या। इज्या॥

३२७५-व्रज् और यज् धातुके उत्तर भाववाच्यमें क्यप् हो, यथा-व्रज्या। इज्या॥

३२७६ संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः।३।३।९९॥

समजादिभ्यः स्त्रियां भावादौ क्यप्स्यात्स चोदात्तः संज्ञायाम्॥ अजेः क्यपि वीभावो नेति वाच्यम्॥ * ॥ समजन्ति तस्यामिति समज्या सभा। निषीदन्त्यस्यामिति निषद्या आपणः। निपतन्त्यस्यामिति निपत्या पिच्छिला भूमिः। मन्यतेऽनयेति मन्या गलपार्श्वशिरा। विदन्त्यनया विद्या। सुत्या अभिषवः। शय्या। भृत्या। ईयतेऽनया इत्या शिबिका॥

३२७६-संज्ञामें संपूर्वक अज्, निपूर्वक सद्, निपूर्वक पत्, मन्, विद्, षुञ्, शीङ् भृञ् और इण् धातुओंके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें भावादिवाच्यमें क्यप् प्रत्यय हो, और वह उदात्त हो।

अज् धातुको क्यप् प्रत्यय परे वीभाव न हो * यथा-समजन्ति अस्याम्, इस विग्रहमें समज्या, अर्थात् सभा। निषीदन्त्यस्याम्=निषद्या-आपणः। निपतन्त्यस्याम् इस विग्रहमें निपत्या-पिच्छिला भूमिः। मन्यते अनया, इस विग्रहमें मन्या गलपार्श्वशिरा। विदन्त्यनया, इस विग्रहमें विद्या। सुनोति अनया=सुत्या-अभिषवः। शेते अस्याम्=शय्या। भृत्या। ईयते अनया, इत्या-शिबिका॥

३२७७ कृञः श च।३।३।१००॥

कृञ इति योगविभागः। कृञः क्यप्स्यात्। कृत्या। श च। चात् क्तिन्। क्रिया। कृतिः॥

३२७७-"कृञः" यह योगविभाग है, कृञ् धातुके उत्तर क्यप् प्रत्यय हो, यथा-कृत्या। श च कृञ् धातुके उत्तर श प्रत्यय हो, और चकारनिर्देशके कारण क्तिन् प्रत्यय भी हो, यथा-क्रिया। कृतिः॥

३२७८ इच्छा।३।३।१०१॥

इषेर्भावे शो यगभावश्च निपात्यते। इच्छा॥ परिचर्यापरिसर्यामृगयाटाट्यानामुपसंख्यानम् * शो यक् च निपात्यते परिचर्या पूजा। परिसर्या परिसरणम्। अत्र गुणोऽपि। मृग अन्वेषणे चुरादावदन्तः। अतो लोपाभावोऽपि। शे यकि णिलोपः। मृगया। अटतेः शे यकि टयशब्दस्य द्वित्वं पूर्वभागे यकारनिवृत्तिर्दीर्घश्च। अटाट्या॥ जागर्तेरकारो वा पक्षे शः। जागरा। जागर्या॥

३२७८–निपातनसे इष् धातुके उत्तर भाववाच्यमें श प्रत्यय हो, और यक् प्रत्ययका अभाव हो, इच्छा ।

परिचर्या, परिसर्या, मृगया, अटाट्या, यह पद भी निपातनसे निष्पन्न हों, अर्थात् परिपूर्वक चर आदि धातुओंके उत्तर श और यक् निपातनसे हो * यथा–परिसर्य्या–पूजा परिसर्य्या–परिसरणम्, इस स्थलमें गुण भी हुआ । चुरादिमें अन्वेषणार्थक मृग धातु अदन्त है, उसके अकारका लोपाभाव भी निपातनसे हुआ, श प्रत्यय और यक् होनेपर णिका लोप होकर–मृगया । अट् धातुसे श प्रत्यय और यक् करनेपर टय शब्दको द्वित्व और पूर्वभागमें यकारनिवृत्ति और दीर्घ निपातनसे होकर अटाट्या ॥

"जागर्तेरकारो वा०" अर्थात् जागृ धातुके उत्तर विकल्प करके अकार प्रत्यय हो * विकल्प पक्षमें श प्रत्यय होगा, यथा–जागरा, जागर्य्या ॥

३२७९ अ प्रत्ययात् । ३ । ३ ।१०२॥

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारप्रत्ययः स्यात् । चिकीर्षा । पुत्रकाम्या ॥

३२७९–प्रत्ययान्त धातुके उत्तर स्त्रीलिंगमें अकार प्रत्यय हो, यथा–चिकीर्षा पुत्रकाम्या ॥

३२८० गुरोश्च हलः । ३ । ३ ।१०३ ॥

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामकारः स्यात् । ईहा । ऊहा । गुरोः किम् । भक्तिः । हलः किम् । नीतिः॥निष्ठायां सेट इति वक्तव्यम् ॥*॥ नेह । आप्तिः । तितुत्रेति नेट् । दीप्तिः ॥ तितुत्रेष्वग्रहादीनामिति वाच्यम् ॥ * ॥ निगृहीतिः । निपठितिः ॥

३२८०–गुरुस्वरविशिष्ट व्यञ्जनवर्णान्त धातुके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें अकार प्रत्यय हो, यथा–ईहा । ऊहा । गुरुविशिष्ट न होनेपर तो भक्तिः । हलन्त न होनेपर तो नीतिः ।

निष्ठा प्रत्यय परे रहते सेट् हो ऐसे गुरुमान् हलन्त धातुके उत्तर अकार हो, ऐसा कहना चाहिये * इससे 'आप्तिः' इस स्थलमें अकार प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि–इस स्थलमें "तितुत्रे० ३१६३" । इस सूत्रसे इट् नहीं होताहै । दीप्तिः ।

"तितुत्रेष्वग्रहादीनाम्०" अर्थात् तितुत्र सूत्रसे ग्रहादि भिन्नधातुके उत्तर इट्निषेध हो, ऐसा कहना चाहिये * यथा–निगृहीतिः । निपठितिः ॥

३२८१ षिद्भिदादिभ्योऽङ्।३।३।१०४॥

षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च स्त्रियामङ् । जॄष् । ऋदृशोऽङि गुणः । जरा । त्रपूष् । त्रपा । भिदा । विदारण एवायम् । भित्तिरन्या । छिदा । मृजा । कृपेः संप्रसारणं च । कृपा ॥

३२८१–षित् धातु और भिदादि धातुओंके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें अङ् प्रत्यय हो, जॄष् धातुको अङ् प्रत्यय परे रहते "ऋदृशोऽङि २४०६" इस सूत्रसे गुण होकर–जरा।त्रपूष्–त्रपा । भिदा । विदारणार्थमें ही यह पद होगा, अन्य अर्थमें भित्तिः होगा । छिदा । मृजा ।

कृप् धातुको सम्प्रसारण भी हो, कृपा ॥

३२८२ चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च । ३ । ३ । १०५ ॥

अङ् स्याद्युचोऽपवादः । चिन्ता । पूजा । कथा । कुम्बा । चर्चा ॥

३२८२–चिन्त्, पूज्, कथ्, कुम्ब् और चर्च् धातुके उत्तर अङ् प्रत्यय हो, यह सूत्र युच् प्रत्ययका विशेषक है; चिन्ता । पूजा । कथा । कुम्बा । चर्चा ॥

३२८३ आतश्चोपसर्गे । ३ ।३।१०६ ॥

अङ् स्यात् । क्तिनोऽपवादः । प्रदा । उपदा। श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिः । श्रद्धा । अन्तर्धा । उपसर्गे घोः किरित्यनेन किः । अन्तर्धिः ॥

३२८३–उपसर्ग पूर्वमें रहते आकारान्त धातुके उत्तर अङ् प्रत्यय हो, यह क्तिन् प्रत्ययका विशेषक है, यथा–प्रदा । उपदा ॥

श्रत् और अन्तः शब्दको उपसर्गकी समान कार्य्य हो, इससे श्रत् शब्द अन्तः शब्द उपपद रहते भी आकारान्त धातुके उत्तर अङ् प्रत्यय होगा, यथा–श्रद्धा । अन्तर्द्धा । "उपसर्गे घोः किः ३२७० " इससे कि प्रत्यय होकर–अन्तर्धिः ॥

३२८४ ण्यासश्रन्थो युच्।३।३।१०७॥

अकारस्यापवादः । कारणा । हारणा । आसना । श्रन्थना ॥ घट्टिवन्दिविदिभ्यश्चेति वाच्यम् ॥ * ॥ घट्टना । वन्दना । वेदना ॥ इषेरनिच्छार्थस्य ॥ * ॥ अन्वेषणा ॥ परेर्वा ॥*॥ पर्येषणा । परीष्टिः ॥

३२८४–णिजन्त धातु आस् धातु और श्रन्थ् धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो, यह अकार प्रत्ययका विशेषक है, यथा–कारणा । हारणा । आसना । श्रन्थना ।

घट्, वन्द् और विद् धातुके उत्तर भी युच् प्रत्यय हो * यथा–घट्टना । वन्दना । वेदना ।

अनिच्छार्थक इष् धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो * यथा–अन्वेषणा ।

परिपूर्वक इष् धातुके उत्तर विकल्प करके युच् प्रत्यय हो* यथा–पर्य्येषणा, परीष्टिः ॥

३२८५ रोगाख्यायां ण्वुल्बहुलम् । ३ । ३ । १०८ ॥

प्रच्छर्दिका । प्रवाहिका । विचर्चिका । क्वचिन्न । शिरोर्तिः ॥ धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल्वक्त-

व्यः ॥ * ॥ आसिका । शायिका ॥ इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे ॥ * ॥ पचिः । पचतिः ॥ वर्णात्कारः ॥ * ॥ निर्देश इत्येव । अकारः ॥ ककारः ॥ रादिफः॥*॥रेफः॥मत्वर्थाच्छः ॥*॥ बहुलवचनादकारलोपः । मत्वर्थीयः ॥ इणजादिभ्यः ॥ * ॥ आजिः । आतिः । इञ् वपादिभ्यः ॥ * ॥ वापिः । वासिः । स्वरे भेदः ॥ इक् कृष्यादिभ्यः ॥ * ॥ कृषिः । गिरिः ॥

३२८५-रोगकी आख्या अर्थात् नाम होनेपर धातुके उत्तर बहुल करके ण्वुल् प्रत्यय हो, यथा-प्रच्छर्दिका । प्रवाहिका । विचर्चिका । किसी २ स्थलमें ण्वुल् प्रत्यय न होगा, यथा-शिरोऽर्त्तिः ।

धातुके अर्थनिर्देशमें ण्वुल् प्रत्यय हो * यथा-आसिका । शायिका ।

धातुनिर्देशमें इक् और श्तिप् प्रत्यय हो * पचिः । पचतिः ।

वर्णके निर्देशमें वर्णसे कार प्रत्यय हो * यथा-अकारः । ककारः ।

रवर्णके उत्तर इफ प्रत्यय हो * यथा-रेफः ।

मत्वर्थ शब्दके उत्तर छ प्रत्यय हो * बहुलवचनसे अकारका लोप होकर-मत्वर्थीयः ।

अजादि धातुओंके उत्तर इण् प्रत्यय हो * यथा-आजिः । आतिः ।

वपादि धातुओंके उत्तर इञ् प्रत्यय हो * यथा-वापिः । वासिः । इण् प्रत्ययसे इञ् प्रत्ययमें केवल स्वरविशेष है ।

कृष्यादि धातुओंके उत्तर इक् प्रत्यय हो * यथा-कृषिः । गिरिः ॥

३२८६ संज्ञायाम् । ३ । ३ । १०९ ॥

अत्र धातोर्ण्वुल् । उद्दालकपुष्पभञ्जिका ॥

३२८६-संज्ञा होनेपर धातुके उत्तर ण्वुल् हो, उद्दालकपुष्पभञ्जिका ॥

३२८७ विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ्च । ३ । ३ । ११० ॥

परिप्रश्ने आख्याने च गम्ये इञ् स्याच्चात् ण्वुल्। विभाषोक्तेर्यथाप्राप्तमन्येपि। कां त्वं कारिं कारिकां क्रियां कृत्यां कृतिं वाऽकार्षीः । सर्वां कारिं कारिकां क्रियां कृत्यां कृतिं वाऽकार्षम्। एवं गणिं गणिकां गणनाम् । पाचिं पाचिकां पचां पक्तिम् ॥

३२८७-आख्यान और परिप्रश्न गम्य होनेपर धातुके उत्तर विकल्प करके इञ् प्रत्यय और चकारसे ण्वुल् प्रत्यय हो, विभाषा पदकी उक्तिके कारण यथाप्राप्त अन्यप्रत्यय भी होगा, यथा-कां, त्वं, कारिं, कारिकां, क्रियां, कृत्यां, कृतिं, वा अकार्षीः । सर्वां, कारिं, कारिकां, क्रियां, कृत्यां, कृतिं वा अकार्षम् । इसी प्रकार गणिं, गणिकाम्, गणनाम् । पाचिं, पाचिकां, पचां, पक्तिम् ॥

३२८८ पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् । ३ । ३ । १११ ॥

पर्यायः परिपाटी क्रमः । अर्हणमर्हः योग्यता । पर्यायादिषु द्योत्येषु ण्वुच् वा स्यात् । भवत आसिका । शायिका । अग्रगामिका । भवानिक्षुभक्षिकामर्हति । ऋणे । इक्षुभक्षिकां मे धारयति । उत्पत्तौ । इक्षुभक्षिका उदपादि ॥

३२८८-पर्य्याय, अर्ह, ऋण और उत्पत्ति द्योत्य रहते धातुके उत्तर विकल्प करके ण्वुच प्रत्यय हो, पर्य्याय शब्दसे परिपाटी अर्थात् क्रम समझना । अर्ह शब्दसे योग्यता समझना । यथा-भवत आसिका शायिका । अग्रगामिका । भवानिक्षुभक्षिकामर्हति । ऋण अर्थमें यथा-इक्षुभक्षिकां मे धारयति । उत्पत्ति अर्थमें यथा-इक्षुभक्षिका उदपादि ॥

३२८९ आक्रोशे नञ्यनिः।३।३।११२॥

विभाषेति निवृत्तम् । नञि उपपदेऽनिः स्यादाक्रोशे।अजीवनिस्ते शठ भूयात् । अप्रयाणिः॥ कृत्यल्युटो बहुलम् । ३ । ३ । ११३ ॥ भावेऽकर्तरि च कारके संज्ञायामिति च निवृत्तम् । राज्ञा भुज्यन्ते राजभोजनाः शालयः ॥ नपुंसके भावे क्तः । ३ । ३ । ११४ ॥

३२८९-इस सूत्रसे विभाषा पदकी निवृत्ति हुई । नञ् शब्द उपपद होनेपर आक्रोशार्थमें धातुके उत्तर अनि प्रत्यय हो, यथा-अजीवनिस्ते शठ भूयात् । अप्रयाणिः ॥

(२८४१)-कृत्य प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुल प्रकारसे हो, "भावेऽकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्" इन दोनोंकी यहां निवृत्ति हुई राज्ञा भुज्यन्ते राजभोजनाः-शालयः ॥

(३०९० भाववाच्य और नपुंसक लिंगमें धातुके उत्तर क्त प्रत्यय हो) ॥

३२९० ल्युट् च । ३ । ३ । ११५ ॥

हसितम् । हसनम् । योगविभाग उत्तरार्थः॥

३२९०-भाववाच्यमें नपुंसक लिङ्गमें धातुके उत्तर ल्युट् प्रत्यय भी हो, यथा-हसितम् । हसनम् । भिन्न सूत्र करना उत्तरार्थ है ॥

३२९१ कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्तुः शरीरसुखम् । ३ । ३ । ११६ ॥

येन स्पृश्यमानस्य कर्तुः शरीरसुखमुत्पद्यते तस्मिन् कर्मण्युपपदे ल्युट् स्यात् । पूर्वेण सिद्धे नित्यसमासार्थं वचनम् । पयःपानं सुखम् । कर्तुरिति किम् । गुरोः स्नापनं सुखम् । नेह गुरुः कर्ता किं तु कर्म ॥

३२९१-जिस कर्म्मसे स्पृश्यमान कर्त्ताके शरीरका सुख उत्पन्न हो वह कर्म्म उपपद होनेपर धातुके उत्तर ल्युट् प्रत्यय हो, पूर्वसूत्रसे सिद्ध होनेपर भी यह सूत्र केवल नित्य समासार्थ है यथा-पयःपानम् सुखम्। 'कर्त्तुः' क्यों कहा ? तो 'गुरोः स्नापनं सुखम्' इस स्थलमें ल्युट् नहीं हो, यहां गुरु कर्त्ता नहीं है किन्तु कर्म है ॥

३२९२ वा यौ । २ । ४ । ५७ ॥

अजेर्वी वा स्याद् यौ । प्रवयणम् । प्राजनम् ॥

३२९२-यु प्रत्यय परे रहते अज् धातुको विकल्प करके वी आदेश हो, यथा-प्रवयणम्, प्राजनम् ॥

३२९३ करणाधिकरणयोश्च ३।३।११७॥

ल्युट् स्यात् । इध्मप्रव्रश्चनः कुठारः । गोदोहनी स्थाली । खलः प्राक् करणाधिकरणयोरित्यधिकारः ॥

३२९३-करण और अधिकरण वाच्यमें धातुके उत्तर ल्युट् प्रत्यय हो, यथा-इध्मप्रव्रश्चनः-कुठारः । गोदोहनी-स्थाली । खल् प्रत्ययके पूर्वतक 'करणाधिकरणयोः' इसका अधिकार चलैगा ॥

३२९४ अन्तरदेशे । ८ । ४ । २४ ॥

अन्तःशब्दाद्धन्तेर्नस्य णः स्यात् । अन्तर्हणनम् । देशे तु अन्तर्हननो देशः । अत्पूर्वस्येत्येव । अन्तर्घ्नन्ति । तपरः किम् । अन्तरघानि ॥

३२९४-देशभिन्न अर्थ होनेपर अन्तः शब्दके परे हन् धातुके नकारको णत्व हो, यथा-अन्तर्हणनम् । देश अर्थ होनेपर अन्तर्हननो देशः । इस स्थलमें णत्व नहीं हुआ। अत् पूर्वक नकारको ही णत्व होगा, इस कारण 'अन्तर्घ्नन्ति' इस स्थलमें णत्व नहीं हुआ । तपरः कहनेकी आवश्यकता क्या है ? तो 'अन्तरघानि' इस स्थानमें णत्व नहीं हो ॥

३२९५ अयनं च । ८ । ४ । २५ ॥

अयनस्य णोऽन्तःशब्दात्परस्य । अन्तरयणम् । अदेश इत्येव । अन्तरयनो देशः ॥

३२९५-देश भिन्नार्थमें अन्तः शब्दके परवर्ती अयन शब्दके नकारको णत्व हो, यथा-अन्तरयणम् । जिस स्थानमें देश अर्थ होगा, उस स्थानमें णत्व नहीं होगा, यथा-अन्तरयनो देशः ॥

३२९६ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण । ३ । ३ । ११८ ॥

३२९६-संज्ञा होनेपर पुँल्लिंगमें धातुके उत्तर घ प्रत्यय हो-॥

३२९७ छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ।६।४।९६॥

द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वः स्याद् घे परे । दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन दन्तच्छदः । अद्वीति किम् । समुपच्छादः । आकुर्वन्त्यस्मिन् आकरः ॥

३२९७-द्विप्रभृति उपसर्गोंसे हीन छादि धातुओंको ह्रस्व हो घ प्रत्यय परे रहते, यथा-दन्ताश्छाद्यन्ते अनेन, इस विग्रहमें दन्तच्छदः । प्रच्छदः । द्विप्रभृति उपसर्गोंसे हीन हो ऐसा क्यों कहा ? तो 'समुपच्छादः' यहां ह्रस्व न हो । आकुर्वन्त्यस्मिन्, इस विग्रहमें आकरः ॥

३२९८ गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च । ३ । ३ । ११९ ॥

घान्ता निपात्यन्ते । हलश्चेति वक्ष्यमाणस्य घञोऽपवादः । गावश्चरन्त्यस्मिन्निति गोचरो देशः । संचरन्तेऽनेन संचरो मार्गः । वहन्त्यनेन वहः स्कन्धः । व्रजः । व्यजस्तालवृन्तम् । निपातनाद्वीभावो न । आपणः पण्यस्थानम् । निगच्छन्त्यनेन निगमश्छन्दः । चात्कषः । निकषः ॥

३२९८-गोचर, सञ्चर, वह, व्रज, व्यज, आपण और निगम यह घ प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हों, यह सूत्र "हलश्च ३३००" इस सूत्रसे वक्ष्यमाण घञ् प्रत्ययका विशेषक है, यथा-गावश्चरन्त्यस्मिन्, इस विग्रहमें गोचरो देशः । सञ्चरन्ते अनेन, इस विग्रहमें सञ्चरो मार्गः । वहन्त्यनेन, इस विग्रहमें वहः-स्कन्धः । व्रजः । व्यजः-तालवृन्तम् । यह निपातनके कारण अज् धातुके स्थानमें वी आदेश नहीं हुआ। आपणः-पण्यस्थानम् । निगच्छन्त्यनेन, इस विग्रहमें निगमश्छन्दः । चकारनिर्देशके कारण 'कषः निकषः' यह दो पद भी निपातनसे सिद्ध हुए ॥

३२९९ अवे तॄस्त्रोर्घञ् । ३ । ३।१२०॥

अवतारः कूपादेः । अवस्तारो जवनिका ॥

३२९९-अव पूर्वक तॄ और स्तॄ धातुके उत्तर संज्ञामें करण और अधिकरण वाच्यमें पुँल्लिङ्गमें घञ् प्रत्यय हो, यथा अवतारः कूपादेः । अवस्तारो जवनिका ॥

३३०० हलश्च । ३ । ३ । १२१ ॥

हलन्ताद्घञ् स्यात् । घापवादः । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः । विमार्गः समूहनी ॥

३३००-करण और अधिकरण वाच्यमें पुँल्लिङ्गमें संज्ञा होनेपर हलन्त धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय हो, यह सूत्र घ प्रत्ययका अपवाद है।रमन्ते योगिनोऽस्मिन्,इस विग्रहमें रामः। अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिः, इस विग्रहमें अपामार्गः । विमार्गः समूहनी ॥

३३०१ अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च । ३ । ३ । १२२ ॥

अधीयतेऽस्मिन् अध्यायः । नियन्ति उद्युवन्ति संहरन्त्यनेनेति विग्रहः ॥ अवहाराधारावायानामुपसंख्यानम् ॥ * ॥

३३०१-अध्याय, न्याय,उद्याव, संहार यह घञ् प्रत्ययान्त

शब्द निपातनसे सिद्ध हों, यथा–अधीयते अस्मिन्, इस विग्रहमें अध्यायः । नियन्ति अनेन, इस विग्रहमें न्यायः । उद्युवन्ति अनेन, इस विग्रहमें उद्यावः । संहरन्ति अनेन इस विग्रहमें संहारः ।

अवहार, आधार, आवाय यह घञ् प्रत्ययान्त शब्द निपातनसे सिद्ध हों ॥

३३०२ उदङ्कोऽनुदके । ३ । ३ ।१२३॥

उत्पूर्वादञ्चतेर्घञ् स्यात् न तूदके । घृतमुदच्यते उद्ध्रियतेऽस्मिन्निति घृतोदङ्कश्चर्ममयं भाण्डम् । अनुदके किम् । उदकोदञ्चनः ॥

३३०२–'उदङ्कः' यह घञ् प्रत्ययान्त शब्द निपातनसे सिद्ध हो, उदक भिन्न अर्थ होनेपर अर्थात् उत्पूर्वक अंच् धातुके उत्तर उदकभिन्न अर्थमें घञ् प्रत्यय हो, यथा–घृतमुदच्यते उद्ध्रियते अस्मिन्, इस विग्रहमें घृतोदङ्कः–चर्म्ममयं-भाण्डम् । उदक अर्थ होनेपर घञ् प्रत्यय नहीं होगा, यथा–उदकोदञ्चनः ॥

३३०३ जालमानायः । ३ । ३ ।१२४॥

आनीयन्ते मत्स्यादयोऽनेनेत्यानायः । जालमिति किम् । आनयनः ॥

३३०३–जाल अर्थ होनेपर 'आनायः' यह घञ् प्रत्ययान्त पद निपातनसे सिद्ध हो, यथा–आनीयन्ते मत्स्यादयोऽनेन, इस विग्रहमें आनायः । जिस स्थानमें जाल नहीं होगा, उस स्थानमें आनयनः ॥

३३०४ खनो घ च । ३ । ३ । १२५॥

चाद् घञ् । आखनः । आखानः । घित्करणमन्यतोऽप्ययमिति ज्ञापनार्थम् । तेन भगः पदमित्यादि ॥ खनेर्डडरेकेकवका वाच्याः ॥ * ॥ आखः । आखरः।आखनिकः । आखनिकवकः । एते खनित्रवचनाः ॥

३३०४–खन् धातुके उत्तर घ प्रत्यय हो, और चकारनिर्देशसे घञ् प्रत्यय हो, यथा–आखनः । आखानः । खन् धातुमें घित् प्रयुक्त कार्य्यप्रवृत्ति योग्य वर्ण न होनेसे प्रत्ययमें घित् करण अन्य धातुके उत्तर भी यह प्रत्यय हो, यह जतानेके निमित्त है, इससे भगः पदम् इत्यादि पदोंकी सिद्धि हुई ।

" खनेर्डडरेकेकवकाः वाच्याः" अर्थात् खन् धातुके उत्तर ड, डर, इक, इकवक यह चार प्रत्यय हों * यथा–आखः । आखरः । आखनिकः । आखनिकवकः । यह सब खनित्रवाचक हैं ॥

३३०५ ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् । ३ । ३ । १२६ ॥

करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम् । एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् स्यात् । तयोरेवेति भावे कर्मणि च कृच्छ्रे । दुष्करः कटो भवता । अकृच्छ्रे । ईषत्करः । सुकरः ॥ निमिमीलियां खलचोरात्त्वं नेति वाच्यम् ॥*॥ ईषन्निमयः । दुष्प्रमयः। सुविलयः । निमयः । मयः । लयः॥

३३०५–'करणाधिकरणयोः' यह निवृत्त हुआ। दुःख और सुखवाचक ईषत्, दुस् और सु यह तीन शब्द उपपद होनेपर अर्थात् पूर्वमें रहते धातुके उत्तर खल् प्रत्यय हो, " तयोरेव० २८३३ " इस सूत्रसे भाव और कर्म्मवाच्यमें होगा, दुःखार्थका उदाहरण यथा–दुष्करः कटो भवता (तुमसे चटाई बननी कठिन है) सुखार्थका उदाहरण जैसे–ईषत्करः । सुकरः ।

"निमिमीलियां खलचोरात्त्वं नेति वाच्यम् " अर्थात् निमिपूर्वक मि धातु मी धातु ली धातुको खल् और अच् प्रत्यय परे रहते आत्व न हो * यथा–ईषन्नियमः । दुःप्रमयः । सुविलयः । निमयः । मयः । लयः ॥

३३०६ उपसर्गात् खल्घञोः ।७।१।६७॥

उपसर्गादेव लभेर्नुम् स्यात् । ईषत्प्रलम्भः । दुष्प्रलम्भः । सुप्रलम्भः । उपालम्भः । उपसर्गात्किम् । ईषल्लभः । लाभः ॥

३३०६–खल् और घञ् प्रत्यय परे रहते उपसर्गपूर्वक ही, लभ् धातुके उत्तर नुम्का आगम हो, यथा–ईषत्प्रलम्भः। दुष्प्रलम्भः । सुप्रलम्भः । उपालम्भः । जिस स्थानमें उपसर्गपूर्वक नहीं होगा, उस स्थानमें ईषल्लभः । लाभः। ऐसा होगा ॥

३३०७ न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् । ७ । १ । ६८ ॥

उपसर्गान्तररहिताभ्यां सुदुर्भ्यां लभेर्नुम्न स्यात् खल्घञोः । सुलभम् । दुर्लभम् । केवलाभ्यां किम् । सुप्रलम्भः । अतिदुर्लम्भः । कथं तर्हि अतिसुलभमतिदुर्लभमिति । यदा स्वती कर्मप्रवचनीयौ तदा भविष्यति ॥

३३०७–खल् और घञ् प्रत्यय परे रहते उपसर्गान्तरसे रहित सु और दुर् उपसर्गके परे स्थित लभ् धातुके नुम्का आगम न हो, सुलभम् । दुर्लभम् । जिस स्थानमें उपसर्गान्तरसे रहित नहीं होगा, उस स्थानमें सुप्रलम्भः । अतिदुर्लम्भः । उपसर्गान्तरसे रहित ही सु और दुर् उपसर्गके परे स्थित लभ् धातुको नुम्का निषेध होनेसे ' अतिसुलभम्' और 'अतिदुर्लभम्' यह पद किस प्रकारसे सिद्ध हुए ? तो जिस स्थानमें सु और अति शब्दकी कर्म्मप्रवचनीय संज्ञा होगी, उस स्थानमें उक्त पद सिद्ध होंगे ॥

३३०८ कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः । ३ । ३ । १२७ ॥

कर्तृकर्मणोरीषदादिषु च उपपदेषु भूकृञोः । खल् स्यात् । यथासंख्यं नेष्यते । कर्तृकर्मणी च धातोरव्यवधानेन प्रयोज्ये ईषदादयस्तु ततः

प्राक् ॥ कर्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोरिति वाच्यम्॥*॥ खित्वान्मुम् । अनाढ्येनाढ्येन दुःखेन भूयते दुराढ्यम्भवम् । ईषदाढ्यम्भवम् । स्वाढ्यम्भवम् । ईषदाढ्यङ्करः । दुराढ्यङ्करः । स्वाढ्यंकरः । च्व्यर्थयोः किम् । आढ्येन सुभूयते ॥

३३०८–कर्त्ता, कर्म्म और ईषत्, दुस् और सु शब्द उपपद होनेपर भू और कृञ् धातुके उत्तर खल् प्रत्यय हो । इस स्थानमें ग्रन्थकारने क्रमकी इच्छा नहीं कीहै । कर्त्ता और कर्म्मको धातुके अव्यवधानसे प्रयोग करना चाहिये । ईषदादि शब्दको तो उसके पश्चात् प्रयोग करना चाहिये ।

कर्ता और कर्म्म च्वि प्रत्ययार्थक हो तो उक्तकार्य्य हो ऐसा कहना चाहिये * खित्वके कारण मुम्का आगम होगा, यथा–अनाढ्येनाढ्येन दुःखेन भूयते, इस विग्रहमें दुराढ्यम्भवम् । ईषदाढ्यम्भवम् । स्वाढ्यम्भवम् । ईषदाढ्यंकरः । दुराढ्यंकरः । स्वाढ्यंकरः । जिस स्थानमें च्वि प्रत्ययार्थक कर्त्ता और कर्म्म नहीं होगा, उस स्थानमें 'आढ्येन सुभूयते' इस प्रकार होगा ॥

३३०९ आतो युच् । ३ । ३ । १२८ ॥

खलोऽपवादः । ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ॥ भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज्वाच्यः ॥ * ॥ दुःशासनः । दुर्योधन इत्यादि ॥

३३०९–आकारान्त धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो, यह प्रत्यय खल् प्रत्ययका विशेषक है, यथा–ईषत् पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ।

"भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज् वाच्यः" अर्थात् भाषामें शास्, युध्, दृश्, धृष् और मृष् धातुके उत्तर युच् प्रत्यय हो * यथा–दुःशासनः । दुर्योधनः । इत्यादि ॥

३३१० षात्पदान्तात् । ८ । ४ ।३५॥

नस्य णो न । निष्पानम् । सर्पिष्पानम् । षात्किम् । निणयः । पदान्तात्किम् । पुष्णाति । पदे अन्तः पदान्तः इति सप्तमीसमासोयम् । तेनेह न । सुसर्पिष्केण ॥

३३१०–अडादि व्यवधान रहते भी पदान्त षकारके परे स्थित नकारको णत्व न हो, निष्पानम् । सर्पिष्पानम् । षकारके परे न होनेसे निर्णयः । जिस स्थानमें पदान्त षकारके परे नहीं होगा, उस स्थानमें पुष्णाति । "पदेऽन्तः=पदान्तः" इस प्रकार यह पद सप्तमीतत्पुरुषसमाससे निष्पन्न है, इस कारण इस स्थानमें णत्वनिषेध नहीं हुआ, यथा–सुसर्पिष्केण ॥

३३११ आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः । ३ । ३ । १७० ॥

अवश्यंकारी । शतन्दायी ॥

३३११–आवश्यक और अधमर्ण अर्थ होनेपर धातुके उत्तर णिनि प्रत्यय हो, अवश्यङ्कारी । शतन्दायी ॥

३३१२ कृत्याश्च । ३ । ३ । १७१ ॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोरित्येव । अवश्यं हरिः सेव्यः । शतं देयम् ॥

३३१२–आवश्यक और अधमर्ण अर्थ होनेपर धातुके उत्तर कृत्य प्रत्यय हो, अवश्यं हरिः सेव्यः । शतन्देयम् ॥

३३१३ क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् । ३ । ३ । १७४ ॥

धातोः क्तिच् क्तश्च स्यादाशिषि संज्ञायाम् । तितुत्रेति नेट् । भवतात् भूतिः ॥

३३१३–आशीर्वादार्थमें संज्ञा होनेपर धातुके उत्तर क्तिच् और क्त प्रत्यय हो, "तितुत्रेति०३१६३"इस सूत्रसे इट् निषेध होकर–यथा–भवतात्=भूतिः ॥

३३१४ न क्तिचि दीर्घश्च । ६ ।४।३९॥

अनिटां वनतितनोत्यादीनां च दीर्घानुनासिकलोपौ न स्तः क्तिचि परे । यन्तिः । रन्तिः । वन्तिः । तन्तिः ॥

३३१४–क्तिच प्रत्यय परे रहते आनिट् धातु और वन् तथा तनादि धातुओंको दीर्घ और अनुनासिक वर्णका लोप न हो, यथा–यन्तिः, रन्तिः, वन्तिः, तन्तिः ॥

३३१५ सनः क्तिचि लोपश्चास्याऽन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ४५ ॥

सनोतेः क्तिचि आत्वं वा स्याल्लोपश्च वा । सनुतात् । सातिः । सतिः । सन्तिः । देवा एनं देयासुर्देवदत्तः ॥

३३१५–क्तिच् प्रत्यय परे रहते सन धातुको आकार हो विकल्प करके, और धातुके नकारका लोप हो विकल्प करके, यथा–सनुतात्, इस विग्रहमें सातिः,सतिः, सन्तिः । देवा एनं देयासुः देवदत्तः ॥

३३१६ अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा । ३ । ४ । १८ ॥

प्रतिषेधार्थयोरलङ्खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । अमैवाव्ययेनेतिनियमान्नोपपदसमासः । दोदद्धोः । अलं दत्त्वा । घुमास्था । पीत्वा खलु । अलंखल्वोः किम् । मा कार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम् । अलंकारः ॥

३३१६–प्रतिषेधार्थक अलम् और खलु शब्द उपपद होनेपर अर्थात् पूर्वमें रहते धातुके उत्तर क्त्वा प्रत्यय हो,सूत्रमें 'प्राचाम्' इस पदका ग्रहण पूजार्थ जानना " अमैवाव्ययेन ७८३ " इस नियमके कारण उपपदसमास नहीं होगा । "दो दद् घोः ३०७७ " इस सूत्रसे दा धातुके स्थानमें दद्

आदेश हुआ, यथा–अलं दत्त्वा । "घुमास्था० २४६२" इस सूत्रसे धातुके आकारके स्थानमें ईकार होकर–पीत्वा खलु । अलम् और खलु शब्द उपपद न होनेपर क्त्वा प्रत्यय नहीं होगा, यथा–मा कार्षीत् । प्रतिषेधार्थक न होनेपर क्त्वा प्रत्यय नहीं होगा, यथा–अलङ्कारः (भूषण) ॥

३३१७ उदीचां माङो व्यतीहारे । ३ । ४ । १९ ॥

व्यतीहारेऽर्थे माङः क्त्वा स्यात् । अपूर्वकालार्थमिदम् ॥

३३१७–व्यतीहारार्थमें माङ् धातुके उत्तर क्त्वा प्रत्यय हो, यह सूत्र पूर्वकालार्थक नहीं है–॥

३३१८ मयतेरिदन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ७० ॥

मेङ इकारोन्तादेशः स्याद्वा ल्यपि । अपमित्य याचते । अपमाय । उदीचां ग्रहणाद्यथाप्राप्तमपि । याचित्वा अपमयते ॥

३३१८–मेङ् धातुके एकारके स्थानमें इकार आदेश हो विकल्प करके ल्यप् प्रत्यय परे रहते, यथा–अपमित्य याचते । अपमाय । 'उदीचाम्' इस पदका ग्रहण करनेके कारण यथाप्राप्त अन्य प्रत्यय भी होंगे, यथा–याचित्वा अपमयते॥

३३१९ परावरयोगे च । ३ । ४ । २० ॥

परेण पूर्वस्यावरेण परस्य योगे गम्ये धातोः क्त्वा स्यात् । अप्राप्य नदीं पर्वतः।परनदीयोगोऽत्र पर्वतस्य । अतिक्रम्य पर्वतं स्थिता नदी । अवरपर्वतयोगोऽत्र नद्याः ॥

३३१९–परके साथ पूर्वका और अवरके साथ परका योग गम्य होनेपर धातुके उत्तर क्त्वा प्रत्यय हो, यथा–अप्राप्य नदीं पर्वतः, इस स्थानमें पर्वतका पर नदीके साथ योग है । अतिक्रम्य पर्वतं स्थिता नदी, इस स्थलमें नदीका अवर पर्वतके साथ योग है ॥

३३२० समानकर्तृकयोः पूर्वकाले । ३ । ४ । २१ ॥

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात् । क्त्वा तु अव्ययकृतो भावे । भुक्त्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् । स्नात्वा भुक्त्वा पीत्वा व्रजति । अनुदात्तेत्यनुनासिकलोपः । विष्णुं नत्वा स्तौति । स्वरत्यादेः श्र्युकः क्तितीति नित्यमिडभावः पूर्वविप्रतिषेधेन । स्तृत्वा । सूत्वा । धूत्वा ॥

३३२०–एककर्तृक धात्वर्थके मध्य पूर्वकालमें विद्यमान जो धातु उसके उत्तर क्त्वा प्रत्यय हो, 'अव्ययकृतो भावे' इस सूत्रसे भाववाच्यमें क्त्वा प्रत्यय होगा, यथा–भुक्त्वा व्रजति। सूत्रमें द्विवचन विवक्षित नहीं है, इससे स्नात्वा, भुक्त्वा, पीत्वा व्रजति । "अनुदात्त० २४२८" इस सूत्रसे अनुनासिक वर्णका लोप होकर–विष्णुं नत्वा स्तौति । स्तृ आदि धातुओंको "श्र्युकः किति २३८१" इस सूत्रसे नित्य इट्का अभाव पूर्वविप्रतिषेधसे होकर–स्तृत्वा । सूत्वा । धूत्वा ॥

३३२१ क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः । ६ । ४ । ३१ ॥

एतयोर्नलोपो न स्यात् क्त्वि परे । स्कन्त्वा । ऊदित्त्वाद्विड्वा । स्यन्दित्वा । स्यन्त्वा ॥

३३२१–क्त्वा प्रत्यय परे रहते स्कन्द और स्यन्द धातुके नकारका लोप न हो, यथा–स्कन्त्वा । ऊकार इत् होनेके कारण स्यन्द धातुके उत्तर इट् विकल्प करके होगा, यथा–स्यन्दित्वा, स्यन्त्वा ॥

३३२२ न क्त्वा सेट् । १ । २ । १८ ॥

सेट् क्त्वा किन्न स्यात् । शयित्वा । सेट् किम् । कृत्वा ॥

३३२२–इट्के साथ विद्यमान जो क्त्वा प्रत्यय वह कित् न हो, यथा–शयित्वा । जिस स्थानमें सेट् नहीं होगा, उस स्थलमें कित्वनिषेध नहीं होगा, यथा–कृत्वा ॥

३३२३ मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा । १ । २ । ७ ॥

एभ्यः सेट् क्त्वा कित् । मृडित्वा । क्लिशः क्त्वेति वेट् । क्लिशित्वा । क्लिष्ट्वा । उदित्वा । उषित्वा । रुदविदेति कित्वम् । रुदित्वा । विदित्वा । मुषित्वा । गृहीत्वा ॥

३३२३–मृड्, मृद्, गुध्, कुष्, क्लिश्, वद् और वस् धातुओंके उत्तर सेट् क्त्वा प्रत्यय कित् हो, यथा–मृडित्वा । "क्लिशः क्त्वा ३०४९" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् होकर क्लिशित्वा, क्लिष्ट्वा । उषित्वा । उदित्वा । "रुदविद० २६०९" इस सूत्रसे कित्व होकर रुदित्वा । विदित्वा । मुषित्वा । गृहीत्वा ॥

३३२४ नोपधात्थफान्ताद्वा । १ । २ । २३ ॥

सेट् क्त्वा कित्स्याद्वा । श्रथित्वा । श्रन्थित्वा । गुफित्वा । गुम्फित्वा । नोपधात्किम् । कोथित्वा । रेफित्वा ॥

३३२४–नकारोपध थकारान्त और फकारान्त धातुओंके उत्तर सेट् क्त्वा प्रत्यय कित् हो विकल्प करके, यथा-श्रथित्वा, श्रन्थित्वा। गुफित्वा, गुम्फित्वा । नकारोपध धातु न होनेपर कित्व नहीं होगा, अत एव गुण होकर–कोथित्वा रेफित्वा ॥

३३२५ वञ्चिलुञ्च्यृतश्च । १ । २ । २४ ॥

सेट् क्त्वा किद्वा । वचित्वा । वञ्चित्वा । लुचित्वा । लुञ्चित्वा । ऋतित्वा । अर्तित्वा ॥

३३२५–वञ्च्, लुञ्च्, ऋत् धातुओंके उत्तर सेट् क्त्वा प्रत्ययकी विकल्प करके कित्व हो, यथा–वचित्वा, वञ्चित्वा । लुचित्वा, लुञ्चित्वा । ऋतित्वा, अर्तित्वा ॥

३३२६ तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य। १।२।२५॥

एभ्यः सेट् क्त्वा किद्वा। तृषित्वा। तर्षित्वा। मृषित्वा। मर्षित्वा। कृशित्वा। कर्शित्वा। रलो व्युपधादिति वा कित्त्वम्। द्युतित्वा। द्योतित्वा। लिखित्वा। लेखित्वा। रलः किम्। सेवित्वा। व्युपधात्किम्। वर्तित्वा। हलादेः किम्। एषित्वा। सेट् किम्। भुक्त्वा। वसतिक्षुधोरिट्। उषित्वा। क्षुधित्वा। क्षोधित्वा। अञ्चेः पूजायामिति नित्यमिट्। अञ्चित्वा। गतौ तु। अक्त्वेत्यपि। लुभित्वा। लोभित्वा। लुभोऽविमोहन इतीट्। विमोहने तु लुब्ध्वा॥

३३२६–काश्यपमुनिके मतसे तृष्, मृष्, कृश् इन तीन धातुओंके उत्तर सेट् क्त्वा प्रत्ययको कित्त्व हो, यथा–तृषित्वा, तर्षित्वा। मृषित्वा, मर्षित्वा। कृशित्वा, कर्शित्वा। "रलो व्युपधात्० २६१७" इस सूत्रसे विकल्प करके कित्त्व होकर–द्युतित्वा, द्योतित्वा। लिखित्वा, लेखित्वा।

जिस स्थानमें रलन्त धातुके परे नहीं होगा, उस स्थानमें कित्त्व नहीं होगा, यथा–सेवित्वा।

इकारोपध और उकारोपध न होनेसे कित्त्व न होकर–वर्त्तित्वा। हलादि न होनेसे कित्त्व नहीं होकर–एषित्वा। सेट् अर्थात् इट्के साथ युक्त क्त्वा प्रत्यय न होनेसे कित्त्व नहीं होकर–भुक्त्वा॥

"वसतिक्षुधोरिट् ३०४६" इस सूत्रसे वस् और क्षुध् धातुके उत्तर क्त्वा प्रत्ययको इट् होकर–उषित्वा। क्षुधित्वा, क्षोधित्वा। "अञ्चेः पूजायाम् ३०४७" इससे पूजार्थक अञ्च् धातुके उत्तर नित्य इट् होकर–अञ्चित्वा। गत्यर्थक अञ्च् धातुके उत्तर इट् नहीं होगा, यथा–अक्त्वा। "लुभोऽविमोहने ३०४८" इस सूत्रसे अविमोहनार्थमें इट् होकर–लुभित्वा, लोभित्वा। विमोहनार्थमें तो इट् नहीं होगा, यथा–लुब्ध्वा॥

३३२७ जॄव्रश्च्योः क्त्वि। ७।२।५५॥

आभ्यां परस्य क्त्व इट् स्यात्। जरीत्वा। जरित्वा। व्रश्चित्वा॥

३३२७–जॄ और व्रश्च् धातुके उत्तर क्त्वा प्रत्ययको इट् हो, यथा–जरीत्वा, जरित्वा। व्रश्चित्वा॥

३३२८ उदितो वा। ७।२।५६॥

उदितः परस्य क्त्व इड्वा। शमित्वा। अनुनासिकस्य क्वीति दीर्घः। शान्त्वा। देवित्वा। द्यूत्वा॥

३३२८–उदित् धातुके उत्तर क्त्वा प्रत्ययको विकल्प करके इट् हो, शमित्वा। "अनुनासिकस्य क्विप्० २६६६" इस सूत्रसे दीर्घ होकर शान्त्वा। देवित्वा, द्यूत्वा॥

३३२९ क्रमश्च क्त्वि। ६।४।१८॥

क्रम उपधाया वा दीर्घः स्यात् झलादौ क्त्वि परे। क्रान्त्वा। क्रन्त्वा। झलि किम्। क्रमित्वा। पूङश्चेति वेट्। पवित्वा। पूत्वा॥

३३२९–झलादिक्त्वा प्रत्यय परे रहते क्रम् धातुकी उपधाको विकल्प करके दीर्घ हो, यथा–क्रान्त्वा, क्रन्त्वा। झलादि न होनेपर 'क्रमित्वा' इस प्रकार होगा। "पूङश्च ३०५०" इस सूत्रसे विकल्प करके इट् होकर–पवित्वा, पूत्वा॥

३३३० जान्तनशां विभाषा। ६।४।३२॥

जान्तानां नशेश्च नलोपो वा स्यात् क्त्वि परे। भक्त्वा। भङ्क्त्वा। रक्त्वा। रङ्क्त्वा। मस्जिनशोरिति नुम्। तस्य पक्षे लोपः। नष्ट्वा। नंष्ट्वा। रधादिभ्यश्चेतीट्पक्षे। नशित्वा। झलादाविति वाच्यम्। नेह। अञ्जित्वा। ऊदित्त्वाद्वेट्। पक्षे। अक्त्वा। अङ्क्त्वा। जनसनखनां सञ्झलोरित्यात्त्वम्। खात्वा। खनित्वा। द्यतिस्यतीतीत्त्वम्। दित्वा। सित्वा। मित्वा। स्थित्वा। दधातेर्हिः। हित्वा॥

३३३०–क्त्वा प्रत्यय परे रहते जकारान्त धातु और नश धातुके नकारका विकल्प करके लोप हो, भक्त्वा, भङ्क्त्वा। रक्त्वा, रङ्क्त्वा। "मस्जिनशो० २५१७" इस सूत्रसे नुम् हुआ, उसका विकल्प करके लोप होकर–नष्ट्वा, नंष्ट्वा। "रधादिभ्यश्च २५१४" इस सूत्रसे इट् पक्षमें 'नशित्वा' इस प्रकार रूप होगा।

"झलादाविति वाच्यम्" अर्थात् झलादि क्त्वा प्रत्यय परे रहते विकल्प करके नकारका लोप हो ऐसा कहना चाहिये *। इससे यहां नहीं हुआ, यथा–अञ्जित्वा, यहां ऊकार इत् होनेके कारण विकल्प करके इट् हुआ है। इट्के विकल्पपक्षमें अक्त्वा, अङ्क्त्वा। "जनसन० २५०४" इस सूत्रसे धातुको आकार होकर, यथा–खात्वा, खनित्वा। "द्यतिस्यति० ३०७४" इस सूत्रसे इकार होकर–दित्वा। सित्वा। मित्वा। स्थित्वा। "दधातेर्हि० २०७६" इस सूत्रसे धा धातुके स्थानमें हि आदेश होकर–हित्वा॥

३३३१ जहातेश्च क्त्वि। ७।४।४३॥

हित्वा। हाङस्तु। हात्वा। अदो जग्धिः। जग्ध्वा॥

३३३१–ओहाक् धातुको क्त्वा प्रत्यय परे रहते हि आदेश हो, यथा–हित्वा। हाङ् धातुका तो 'हात्वा' ऐसा पद होगा। "अदो जग्धि: ३०८०" इस सूत्रसे अद् धातुको जग्धि आदेश होकर–यथा–जग्ध्वा॥

३३३२ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्। ७।१।३७॥

अव्ययपूर्वपदे अनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात्। तुक्। प्रकृत्य। अनञ् किम्। अकृत्वा। पर्युदासाश्रयणान्नेह। परमकृत्वा॥

३३३२-अव्यय पूर्वपदक नञ् भिन्न तत्पुरुष समास होनेपर क्त्वा प्रत्ययके स्थानमें ल्यप् आदेश हो,तुक् आगम होकर-यथा-प्रकृत्य । नञ्तत्पुरुष समास होनेपर ल्यप् नहीं होगा, यथा-अकृत्वा । पर्युदास नञ्के आश्रयणके कारण यहां भी ल्यबादेश नहीं हुआ, यथा-परमकृत्वा ॥

३३३३ षत्वतुकोरसिद्धः ।६। १ । ८६॥

षत्वे तुकि च कर्तव्ये एकादेशशास्त्रमसिद्धं स्यात् । कोऽसिचत् । इह षत्वं न । अधीत्य । प्रेत्य । ह्रस्वस्येति तुक् ॥

३३३३-षत्व और तुक् कर्त्तव्य रहते एकादेशशास्त्र असिद्ध हो, इससे कोऽसिचत्, इस स्थानमें षत्व नहीं हुआ । अधीत्य । प्रेत्य यहां "ह्रस्वस्य० २८५८" इस सूत्रसे तुक् आगम हुआहै ॥

३३३४ वा ल्यपि । ६ । ४ । ३८ ॥

अनुदात्तोपदेशानां वनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो वा स्याल्ल्यपि। व्यवस्थितविभाषेयम्।तेन मान्तानिटां वा नान्तानिटां वनादीनां च नित्यम् । आगत्य । आगम्य । प्रणत्य । प्रणम्य । प्रहत्य । प्रमत्य । प्रवत्य । वितत्य । अदो जग्धिः । अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो ल्यब्बाधते । जग्धिविधौ ल्यब्ग्रहणात् । तेन हित्वदत्त्वाऽऽत्वेत्त्वदीर्घत्वशूठिटो ल्यपि न । विधाय। प्रदाय। प्रखन्य । प्रस्थाय । प्रक्रम्य । आपृच्छ्य । प्रदीव्य ।

३३३४-ल्यप् प्रत्यय पर रहते नुदात्तोपदश धातु और वन् धातु और तनादि धातुओंके विकल्प करके अनुनासिकका लोप हो, यह व्यवस्थित विभाषा है, इससे यह फल हुआ कि, मान्त अनिट धातुके अनुनासिक वर्णका विकल्प करके लोप और नान्त अनिट् धातुओंके और वन आदि धातुओंके अनुनासिक वर्णका नित्य लोप होगा, यथा-आगत्य, आगम्य । प्रणत्य, प्रणम्य । प्रहत्य । प्रमत्य । प्रवत्य । वितत्य । "अदो जग्धिः ३०८०" इस सूत्रसे अद धातुके स्थानमें जग्धि आदेश हो । जग्ध्यादेशकी विधिमें ल्यप् ग्रहणके कारण ल्यप् आदेश बहिरङ्ग होनेपर भी अन्तरङ्ग विधिको बाध करताहै, इससे यह फल हुआ कि, ल्यप् परे हि आदेश दत्व, आत्व, इत्व, दीर्घ, शूठ् और इट् यह सम्पूर्ण कार्य्य नहीं होंगे, यथा-विधाय । प्रदाय । प्रखन्य । प्रस्थाय । प्रक्रम्य । आपृच्छ्य । प्रदीव्य ॥

३३३५ न ल्यपि । ६ । ४ । ६९ ॥

ल्यपि परे घुमास्थादेरीत्वं न । धेट् । प्रधाय। प्रमाय । प्रगाय । प्रपाय । प्रहाय । प्रसाय । मीनातिमिनोतीत्यात्त्वम् । प्रमाय । निमाय । उपदाय । विभाषा लीयतेः । विलाय । विलीय । णिलोपः । उत्तार्य । विचार्य ॥

३३३५-ल्यप् प्रत्यय परे रहते घुसंज्ञक और मा और स्था आदि धातुओंको ईकार नहीं हो, धेट् प्रधाय । प्रमाय । प्रगाय । प्रपाय । प्रहाय । प्रसाय । "मीनाति मिनोति० २५०८" इस सूत्रसे आत्त्व होकर-प्रमाय । निमाय । उपदाय । "विभाषा लीयतेः २५०९" इस सूत्रसे विकल्प करके आत्व होकर-विलाय, विलीय । णिका लोप होकर-उत्तार्य्य । विचार्य ॥

३३३६ ल्यपि लघुपूर्वात् । ६ ।४।५६॥

लघुपूर्वात्परस्य णेरयादेशः स्यात् ल्यपि । विगणय्य । प्रणमय्य । प्रवेभिदय्य । लघुपूर्वात्किम् । संप्रधार्य ॥

३३३६-ल्यप् प्रत्यय परे रहते लघुपूर्वक धातुके परे जो णि उसके स्थानमें अय आदेश हो, विगणय्य । प्रणमय्य । प्रवेभिदय्य । जिस स्थानमें लघुपूर्वक नहीं होगा उस स्थानमें अयादेश न होकर-'सम्प्रधार्य्य' इस प्रकार होगा ॥

३३३७ विभाषापः । ६ । ४ । ५७ ॥

आप्नोतेर्णेरयादेशो वा स्यात् ल्यपि ।प्रापय्य । प्राप्य ॥

३३३७-ल्यप् प्रत्यय परे रहते आप् धातुके परे स्थित णिके स्थानमें विकल्प करके अय आदेश हो, यथा-प्रापय्य, प्राप्य ॥

३३३८ क्षियः । ६ । ४ । ५९ ॥

क्षियो ल्यपि दीर्घः स्यात् । प्रक्षीय ॥

३३३८-ल्यप् प्रत्यय परे रहते क्षि धातुके इकारको दीर्घ हो, प्रक्षीय ॥

३३३९ ल्यपि च । ६ । १ । ४१ ॥

वेञो ल्यपि संप्रसारणं न स्यात् । प्रवाय ।

३३३९-ल्यप् प्रत्यय परे रहते वेञ् धातुको सम्प्रसारण न हो, प्रवाय ॥

३३४० ज्यश्च । ६ । १ । ४२ ॥

प्रज्याय ॥

३३४०-ल्यप् प्रत्यय परे रहते ज्या धातुको सम्प्रसारण हो, प्रज्याय ॥

३३४१ व्यश्च । ६ । १ । ४३ ॥

उपव्याय ॥

३३४१-ल्यप् प्रत्यय परे रहते व्येञ् धातुको सम्प्रसारण न हो, उपव्याय ॥

३३४२ विभाषा परेः । ६ । १ । ४४ ॥

परेर्व्येञो वा संप्रसारणं स्याल्ल्यपि । तुकं बाधित्वा परत्वाद्धल इति दीर्घः । परिवीय । परिव्याय । कथं मुखं व्यादाय स्वपिति, नेत्रे निमील्य हसतीति।व्यादानसंमीलनोत्तरकालेऽपि स्वापहासयोरनुवृत्तेस्तदंशविवक्षया भविष्यति ॥

३३४२ल्यप् प्रत्यय परे रहते परिपूर्वक व्येञ् धातुको विकल्प करके सम्प्रसारण हो, तुक्को बाधकर परत्वके कारण " हलः २५५९ " इस सूत्रसे दीर्घ होकर–परिवीय, परिव्याय।

मुखव्यादान और नेत्रनिमीलनको स्वाप् और हासके बाद होनेके कारण पूर्वकाल विशिष्टार्थ वृत्ति धातुको न होनेसे किस प्रकार ' मुखं व्यादाय स्वपिति ' यह प्रयोग और "नेत्रे निमील्य हसति" यह प्रयोग सिद्ध हुए? तो व्यादान और सम्मीलनके उत्तरकालमें भी निद्रा और हासके संबन्धके कारण उस अंशकी विवक्षासे होगा॥

३३४३ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च।३।४।२२॥

पौनःपुन्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च। द्वित्वम्। स्मारंस्मारं नमति शिवम्। स्मृत्वास्मृत्वा। पायंपायम्। भोजंभोजम्। श्रावंश्रावम्। चिण्णमुलोरिति णमुल्परे णौ वा दीर्घः। गामंगामम्। विभाषाचिण्णमुलोरिति नुम् वा। लम्भंलम्भम्। लाभंलाभम्। व्यवस्थितविभाषया उपसृष्टस्य नित्यं नुम्। प्रलम्भंप्रलम्भम्। जाग्रोऽविचिण्णिति गुणः। जागरंजागरम्। ण्यन्तस्याप्येवम्॥

३३४३–पौनःपुन्य अर्थ द्योत्य होनेपर पूर्वविषयमें णमुल् और क्त्वा प्रत्यय हो, द्वित्व होकर–स्मारंस्मारं नमति शिवम्। स्मृत्वास्मृत्वा। पायंपायम्। भोजंभोजम्। श्रावंश्रावम्। "चिण्णमुलोः० २७६२" इस सूत्रसे णमुल्परक णि प्रत्यय परे रहते विकल्प करके दीर्घ होकर–गामंगामम्। गमंगमम्। विभाषा चिण्णमुलोः २७६५" इस सूत्रसे विकल्प करके नुम् होकर–लम्भंलम्भम्। लाभंलाभम्। व्यवस्थित विभाषासे उपसर्गविशिष्ट लभ् धातुको नित्य नुम् होकर–प्रलम्भंप्रलम्भम्। "जाग्रोऽविचिण्० २४८० " इस सूत्रसे गुण होकर–जागरंजागरम्। णिजन्तके भी इसी प्रकार रूप होंगे॥

३३४४ न यद्यनाकाङ्क्षे। ३। ४।२३॥

यच्छब्दे उपपदे पूर्वकाले यत्प्राप्तं तन्न यत्र पूर्वोत्तरे क्रिये तद्वाक्यमपरं नाकाङ्क्षते चेत्। यदयं भुङ्क्ते ततः पठति। इह क्त्वाणमुलौ न। अनाकाङ्क्षे किम्। यदयं भुक्त्वा व्रजति ततोऽधीते॥

३३४४–जिस वाक्यमें पूर्व और उत्तर कालाभिधायी क्रिया है, वह वाक्य यदि अपर वाक्यकी आकांक्षा न करे तो यत् शब्द उपपद होनेपर पूर्वकालमें प्राप्त क्त्वा और णमुल् प्रत्यय नहीं हो, यदयं भुंक्ते ततः पठति। इस स्थानमें क्त्वा वा णमुल् प्रत्यय नहीं हुआ। अनाकांक्षे क्यों कहा? तो भुक्त्वा व्रजति ततोऽधीते॥

३३४५ विभाषाग्रे प्रथमपूर्वेषु।३।४।२४॥

आभीक्ष्ण्ये इति नानुवर्तते। एषूपपदेषु समानकर्तृकयोः पूर्वकाले क्त्वाणमुलौ वा स्तः। अग्रे भोजं व्रजति। अग्रे भुक्त्वा। प्रथमम्भोजम्। प्रथमम्भुक्त्वा। पूर्वम्भोजम्। पूर्वम्भुक्त्वा। पक्षे लडादयः। अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति। आभीक्ष्ण्ये तु पूर्वविप्रतिषेधेन नित्यमेव विधिः। अग्रे भोजम्भोजं व्रजति। भुक्त्वाभुक्त्वा॥

३३४५–इस सूत्रमें पौनःपुन्य अर्थकी अनुवृत्ति नहीं होती है। अग्रे, प्रथम और पूर्व यह तीन उपपद रहते एककर्तृक धातुके उत्तर पूर्वकाल विषयमें विकल्प करके क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो, यथा–अग्रे भोजं व्रजति। अग्रे भुक्त्वा। प्रथमं भोजम्। प्रथमं भुक्त्वा। पूर्वं भोजम्। पूर्वं भुक्त्वा। विकल्प पक्षमें लट् आदि प्रत्यय होंगे, यथा–अग्रे भुंक्ते ततो व्रजति। पौनःपुन्य अर्थमें तो पूर्वविप्रतिषेधके कारण नित्य ही विधि हुई। यथा–अग्रे भोजंभोजं व्रजति। भुक्त्वाभुक्त्वा॥

३३४६ कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ्। ३। ४। २५॥

कर्मण्युपपदे आक्रोशे गम्ये। चौरंकारमाक्रोशति। करोतिरुच्चारणे। चारशब्दमुच्चार्येत्यर्थः॥

३३४६–कर्म उपपद होनेपर और आक्रोश अर्थ गम्यमान होनेपर कृञ् धातुके उत्तर खमुञ् प्रत्यय हो, यथा–चौरंकारमाक्रोशति, इस स्थलमें कृ धातुका अर्थ उच्चारण समझना अत एव चौरंकारमाक्रोशति इसका चौर शब्द उच्चारण करके आक्रोश करताहै, ऐसा अर्थ हुआ॥

३३४७ स्वादुमि णमुल्। ३। ४।२६॥

स्वाद्वर्थेषु कृञो णमुल् स्यादेककर्तृकयोः पूर्वकाले। पूर्वपदस्य मान्तत्वं निपात्यते। अस्वादुं स्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। संपन्नंकारम्। लवणंकारम्। संपन्नलवणशब्दौ स्वादुपर्यायौ। वासरूपेण क्त्वापि। स्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते॥

३३४७–स्वाद्वर्थक शब्द उपपद होनेपर एककर्तृक धात्वर्थके पूर्वकालविषयमें कृञ् धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, पूर्वपदको मान्तत्व निपातनसे सिद्ध होकर, यथा–अस्वादुं स्वादुं कृत्वा भुंक्ते, इस विग्रहमें स्वादुङ्कारं भुंक्ते। सम्पन्नंकारम्। लवणंकारम्। सम्पन्न और लवण यह दो शब्द स्वादुपर्य्याय हैं। वासरूपविधिसे क्त्वा प्रत्यय भी होगा, यथा–स्वादुं कृत्वा भुंक्ते॥

३३४८ अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्। ३। ४। २७॥

एषु कृञो णमुल् स्यात् सिद्धः अप्रयोगोऽस्य एवंभूतश्चेत् कृञ्। व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः।

अन्यथाकारम् । एवंकारम् । कथंकारम् । इत्थंकारं भुङ्क्ते । इत्थं भुङ्क्त इत्यर्थः । सिद्धेति किम् । शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते ॥

३३४८-अन्यथा, एवम्, कथम्, और इत्थम् यह चार शब्द उपपद होनेपर कृञ् धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यदि यह कृञ् धातुका अप्रयोग सिद्ध हो तो, यथा-अन्यथाकारम् । एवंकारम् । कथंकारम् । इत्थंकारं भुंक्ते, अर्थात् इस प्रकार भोजन करताहै । कृ धातुके प्रयोग सिद्ध होनेपर तो शिरोऽन्यथा कृत्वा भुंक्ते ॥

३३४९ यथातथयोरसूयाप्रतिवचने । ३ । ४ । २८ ॥

कृञः सिद्धाप्रयोग इत्येव असूयया प्रतिवचने । यथाकारमहं भोक्ष्ये तथाकारं भोक्ष्ये किं तवानेन ॥

३३४९-यथा और तथा उपपद होनेपर और असूयासे प्रतिवचन गम्य होनेपर सिद्धाप्रयोग कृञ् धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-यथाकारमहं भोक्ष्ये तथाकारं भोक्ष्ये किं तवानेन ॥

३३५० कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये । ३ । ४ । २९ ॥

कर्मण्युपपदे णमुल् स्यात् । कन्यादर्शं वरयति । सर्वाः कन्या इत्यर्थः । ब्राह्मणवेदं भोजयति । यंयं ब्राह्मणं जानाति लभते विचारयति वा तं सर्वं भोजयतीत्यर्थः ॥

३३५०-कर्म उपपद होनेपर दृश् और विद् धातुके उत्तर साकल्यार्थमें णमुल् प्रत्यय हो, यथा-कन्यादर्शं वरयति, अर्थात् सम्पूर्ण कन्याओंको देखकर वरण करताहै । ब्राह्मणवेदं भोजयति । यं यं ब्राह्मणं जानाति लभते विचारयति वा तं सर्वं भोजयति इत्यर्थः ॥

३३५१ यावति विन्दजीवोः । ३ । ४ । ३० ॥

यावद्वेदं भुङ्क्ते । यावल्लभते । तावदित्यर्थः । यावज्जीवमधीते ॥

३३५१-यावत् शब्द उपपद होनेपर विन्द् और जीव् धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-यावद्वेदं भुंक्ते । यावल्लभते तावदित्यर्थः । यावज्जीवमधीते ॥

३३५२ चर्मोदरयोः पूरेः । ३ । ४ । ३१ ॥

कर्मणीत्येव । चर्मपूरं स्तृणाति । उदरपूरं भुङ्क्ते ॥

३३५२-चर्म और उदर शब्द उपपद होनेपर पूर धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-चर्मपूरं स्तृणाति । उदरपूरं भुंक्ते ॥

३३५३ वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् । ३ । ४ । ३२ ॥

कर्मण्युपपदे पूरेर्णमुल् स्यादूकारलोपश्च वा समुदायेन वर्षप्रमाणे गम्ये । गोष्पदपूरं वृष्टो देवः । गोष्पदप्रं वृष्टो देवः । अस्येति किम् । उपपदस्य माभूत् । मूषिकाबिलप्रम् ॥

३३५३-कर्म उपपद होनेपर पूर धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, और धातुके ऊकारका विकल्प करके लोप हो, यदि समुदायसे वर्षप्रमाण गम्य हो तो, यथा-गोष्पदपूरं वृष्टो देवः । गोष्पदप्रं वृष्टो देवः । सूत्रमें "अस्य" ऐसा क्यों कहा ? तो उपपदके ऊकारका लोप नहीं हो, यथा-मूषिकाबिलप्रम् ॥

३३५४ चेले क्नोपेः । ३ । ४ । ३३ ॥

चेलार्थेषु कर्मसूपपदेषु क्नोपेर्णमुल् स्याद्वर्षप्रमाणे । चेलक्नोपं वृष्टो देवः । वस्त्रक्नोपम् । वसनक्नोपम् ॥

३३५४-वर्षाका प्रमाण होनेपर चेलार्थक कर्म उपपद रहते क्नुप् धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-चेलक्नोपं वृष्टो देवः । वस्त्रक्नोपम् । वसनक्नोपम् ॥

३३५५ निमूलसमूलयोः कषः । ३ । ४ । ३४ ॥

कर्मणीत्येव । कषादिष्वनुप्रयोगं वक्ष्यति । अत्र प्रकरणे पूर्वकाल इति न सम्बध्यते । निमूलकाषं कषति । समूलकाषं कषति । निमूलं समूलं कषतीत्यर्थः । एकस्यापि धात्वर्थस्य निमूलादिविशेषणसंबन्धाद्भेदः । तेन सामान्यविशेषभावेन विशेषणविशेष्यभावः ॥

३३५५-निमूल और समूल यह दो कर्म उपपद होनेपर कष् धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, कषादिविषयमें अनुप्रयोग पश्चात् कहेंगे । इस प्रकरणमें पूर्वकालका संबन्ध नहीं होताहै । निमूलकाषं कषति । समूलकाषं कषति । निमूलं समूलं कषतीत्यर्थः । धात्वर्थ एक होनेपर भी निमूलादि विशेषण सम्बन्धसे भेद है, इस कारण सामान्यविशेषभावसे विशेषणको विशेष्यभाव हुआहै ॥

३३५६ शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः । ३ । ४ । ३५ ॥

एषु कर्मसु पिषेर्णमुल् । शुष्कपेषं पिनष्टि । शुष्कं पिनष्टीत्यर्थः । चूर्णपेषम् । रूक्षपेषम् ॥

३३५६-शुष्क, चूर्ण और रूक्ष यह उपपद होनेपर पिष् धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-शुष्कपेषं पिनष्टि । शुष्कं पिनष्टि इत्यर्थः । चूर्णपेषम् । रूक्षपेषम् ॥

३३५७ समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः । ३ । ४ ॥ ३६ ॥

कर्मणीत्येव । समूलघातं हन्ति । अकृतकारं करोति । जीवग्राहं गृह्णाति । जीवति इति जीवः । इगुपधलक्षणः कः । जीवन्तं गृह्णातीत्यर्थः ॥

३३५७-समूल,अकृत और जीव यह कर्म्म उपपद होनेपर यथाक्रमसे हन् कृञ् और ग्रह धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो । यथा, समूलघातं हन्ति । अकृतकारं करोति।जीवग्राहं गृह्णाति। जीवति इस विग्रहमें जीवः । "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः (२८९७)" इस सूत्रसे क प्रत्यय हुआ है। जीवन्तं गृह्णाति इत्यर्थः ॥

३३५८ करणे हनः । ३ । ४ । ३७ ॥

पादघातं हन्ति । पादेन हन्तीत्यर्थः । यथाविध्यनुप्रयोगार्थः सन्नित्यसमासार्थोयं योगः । भिन्नधातुसम्बन्धे तु हिंसार्थानां चेति वक्ष्यते॥

३३५८-करणवाचक पद उपपद होनेपर हन् धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-पादघातं हन्ति । पादेन हन्तीत्यर्थः । यथाविधि अनुप्रयोग होकर नित्य समासार्थ यह पृथक् सूत्र विहित हुआहै । किन्तु इससे भिन्न धातु संबन्धमें "हिंसार्थानाञ्च (३३६९)" इस सूत्रको आगे कहेंगे ॥

३३५९ स्नेहने पिषः । ३।४। ३८॥

स्निह्यते येन तस्मिन् करणे पिषेर्णमुल् । उदपेषं पिनष्टि । उदकेन पिनष्टीत्यर्थः ॥

३३५९-जिसके द्वारा स्निग्ध हो ऐसा करण उपपद होनेपर पिष धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, उदपेषं पिनष्टि उदकेन पिनष्टीत्यर्थः ॥

३३६० हस्ते वर्तिग्रहोः।३।४।३९॥

हस्तार्थे करणे । हस्तवर्तं वर्तयति । करवर्तम् , हस्तेन गुलिकां करोतीत्यर्थः । हस्तग्राहं गृह्णाति । करग्राहम् । पाणिग्राहम् ॥

३३६०-हस्त अर्थ हो ऐसा करण उपपद होनेपर वृत और ग्रह धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-हस्तग्राहं गृह्णाति । करग्राहम् । पाणिग्राहम् ॥

३३६१ स्वे पुषः । ३ । ४ । ४०॥

करण इत्येव । स्व इत्यर्थग्रहणम् । तेन स्वरूपे पर्याये विशेषे च णमुल्। स्वपोषं पुष्णाति। धनपोषम् । गोपोषम् ॥

३३६१-स्वार्थमें करणवाचक पद उपपद होनेपर पुष धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, इस स्थलमें स्वशब्दके अर्थका ही ग्रहण जानना चाहिये । उससे यह फल हुआ कि स्वशब्दका स्वरूप करण, पर्य्यायवाची करण और विशेषार्थ वाचक करण उपपद होनेपर पुष धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-स्वपोषं पुष्णाति । धनपोषम् । गोपोषम् ॥

३३६२ अधिकरणे बन्धः । ३।४।४१॥

चक्रबन्धं बध्नाति । चक्रे बध्नातीत्यर्थः ॥

३३६२-अधिकरण वाचक पद उपपद होनेपर बन्ध धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-चक्रबन्धं बध्नाति । चक्रे बध्नातीत्यर्थः ॥

३३६३ संज्ञायाम् । ३ । ४ । ४२ ॥

बध्नातेर्णमुल् संज्ञायाम् । क्रौञ्चबन्धं बद्धः । मयूरिकाबन्धम् । अट्टालिकाबन्धम् । बन्धविशेषाणां संज्ञा एताः ॥

३३६३-संज्ञा अर्थ होनेपर बन्ध धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-क्रौञ्चबन्धं बद्धः । मयूरिकाबन्धम् । अट्टालिकाबन्धम् । यह बन्धविशेषोंकी संज्ञा हैं ॥

३३६४ कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः । ३ । ४ । ४३ ॥

जीवनाशं नश्यति । जीवो नश्यतीत्यर्थः । पुरुषवाहं वहति । पुरुषो वहतीत्यर्थः ॥

३३६४-कर्तृवाचक जीव और पुरुष उपपद होनेपर क्रमसे नश और वह धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा, जीवनाशं नश्यति । जीवो नश्यति इत्यर्थः । पुरुषवाहं वहति । पुरुषो वहतीत्यर्थः ॥

३३६५ ऊर्ध्वे शुषिपूरोः । ३ ।४। ४४॥

ऊर्ध्वे कर्तरि । ऊर्ध्वशोषं शुष्यति । वृक्षादिरूर्ध्व एव तिष्ठञ्छुष्यतीत्यर्थः। ऊर्ध्वपूरं पूर्यते। ऊर्ध्वमुख एव घटादिर्वर्षोदकादिना पूर्णो भवतीत्यर्थः ॥

३३६५-ऊर्ध्वरूप कर्त्ता उपपद होनेपर शुष और पूरि धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-ऊर्ध्वशोषं शुष्यति । वृक्षादिरूर्ध्व एव तिष्ठन् शुष्यति इत्यर्थः । ऊर्ध्वपूरं पूर्यते । ऊर्ध्वमुख एव घटादिः वर्षोदकादिना पूर्णो भवति इत्यर्थः ॥

३३६६ उपमाने कर्मणि च ।३।४।४५॥

चात्कर्तरि । घृतनिधायं निहितं जलम् । घृतमिव सुरक्षितमित्यर्थः । अजकनाशं नष्टः । अजक इव नष्ट इत्यर्थः ॥

३३६६-उपमान वाचक कर्म्म और चकार निर्देशके कारण उपमान वाचक कर्त्ता उपपद होनेपर धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-घृतनिधायं निहितं जलम् । घृतमिव सुरक्षितमित्यर्थः । अजकनाशं नष्टः । अजक इव नष्ट इत्यर्थः ॥

३३६७ कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः । ३ । ४ । ४६ ॥

यस्माण्णमुलुक्तः स एवानुप्रयोक्तव्य इत्यर्थः। तथैवोदाहृतम् ॥

३३६७-कषादि विषयमें जिस धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, उस धातुका अनुप्रयोग कर्त्तव्य है । इसी प्रकार उदाहरण दियाहै ॥

३३६८ उपदंशस्तृतीयायाम् ।३।४।४७॥

इतः प्रभृति पूर्वकाल इति संबध्यते । तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्यामिति वा समासः । मूलकोपदंशं भुंक्ते । मूलकेनोपदंशम् । दश्यमानस्य मूलकस्य भुजिं प्रति करणत्वात्तृतीया।यद्यप्युपदंशिना सह न शाब्दः सम्बन्धस्तथाप्यार्थोऽस्त्येव कर्मत्वात्। एतावतैव सामर्थ्येन प्रत्ययः समासश्च । तृतीयायामिति वचनसामर्थ्यात् ॥

३३६८-इस सूत्रसे पूर्वकालका मण्डूकप्लुति करके अनुवृत्तिके कारण संबन्ध होगा। तृतीयान्त उपपद रहते समान कर्तृक धात्वर्थके मध्यमें पूर्व कालमें विद्यमान जो उपपूर्वक दंश धातु उसके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, "तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् (७८४)" इस सूत्रसे विकल्प करके समास होगा, यथा-मूलकोपदंशं भुंक्ते मूलकेनोपदंशम् इस स्थलमें दश्यमान मूलकको भुजि क्रियामें करणत्वके कारण मूलक शब्दसे तृतीया विभक्ति हुई । यद्यपि उपदंशके साथ शाब्दसंबन्ध नहीं है तथापि कर्मत्वके कारण आर्थसंबंध है ही । "तृतीयायाम्"इस वचन सामर्थ्यके कारण प्रत्यय और समास होगा॥

३३६९ हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् । ३ । ४ । ४८ ॥

तृतीयान्त उपपदेऽनुप्रयोगधातुना समानकर्मकाद्धिंसार्थाण्णमुल् स्यात्। दण्डोपघातं गाः कालयति । दण्डेनोपघातम् । दण्डताडम् । समानकर्मकाणामिति किम् । दण्डेन चोरमाहत्य गाः कालयति ॥

३३६९-तृतीयान्त पद उपपद होनेपर अनु प्रयुक्त धातुके साथ एककर्म्मक जो हिंसार्थ धातु, उसके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा दंडोपघातं गाः कालयति । दंडेनोपघातम् । दण्डताडम् । एककर्म्मक जिस स्थानमें नहीं होगा उस स्थानमें दण्डेन चौरमाहत्य गाः कालयति ॥

३३७० सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः । ३ । ४ । ४९ ॥

उपपूर्वेभ्यः पीडादिभ्यः सप्तम्यन्ते तृतीयान्ते चोपपदे णमुल् स्यात् । पार्श्वोपपीडं शेते । पार्श्वयोरुपपीडम् । पार्श्वाभ्यामुपपीडम् । व्रजोपरोधं गाः स्थापयति । व्रजेन व्रजे उपरोधं वा । पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति पाणावुपकर्षम् । पाणिनोपकर्षम् ॥

३३७०-सप्तम्यन्त और तृतीयान्त उपपद होनेपर उप-पूर्वक पीड, रुध, कृष इन धातुओंके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-पार्श्वोपपीडं शेते । पार्श्वयोरुपपीडम् । पार्श्वाभ्यामुपपीडम् । व्रजोपरोधं गाः स्थापयति । व्रजेन उपरोधम् व्रजे उपरोधम् वा । पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति । पाणावुपकर्षम् । पाणिनोपकर्षं वा ॥

३३७१ समासत्तौ । ३ । ४ । ५० ॥

तृतीयासप्तम्योर्धातोर्णमुल् स्यात्सन्निकर्षे गम्यमाने । केशग्राहं युध्यन्ते । केशेषु गृहीत्वा । हस्तग्राहम् । हस्तेन गृहीत्वा ॥

३३७१-तृतीयान्त और सप्तम्यन्त पद उपपद होनेपर और सन्निकर्ष गम्यमान होनेपर धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-केशग्राहं युध्यन्ते केशेषु गृहीत्वा । हस्तग्राहम् । हस्तेन गृहीत्वा ॥

३३७२ प्रमाणे च । ३ । ४ । ५१ ॥

तृतीयासप्तम्योरित्येव । द्व्यंगुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति । द्व्यंगुलेन द्व्यंगुले वोत्कर्षम् ॥

३३७२-तृतीयान्त और सप्तम्यन्त पद उपपद होनेपर और प्रमाण गम्यमान होनेपर धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-द्व्यंगुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति । द्व्यंगुलेन द्व्यंगुले वा उत्कर्षम् ॥

३३७३ अपादाने परीप्सायाम् । ३ । ४ । ५२ ॥

परीप्सा त्वरा । शय्योत्थायं धावति ॥

३३७३-अपादान कारक अर्थात् पञ्चम्यन्त पद उपपद होनेपर और परीप्सा अर्थात् त्वरा अर्थ होनेपर धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-शय्योत्थायं धावति । (शय्यासे उठते ही दौडता है) ॥

३३७४ द्वितीयायां च । ३ । ४ । ५३॥

परीप्सायामित्येव । यष्टिग्राहं युध्यन्ते । लोष्टग्राहम् ॥

३३७४-द्वितीयान्त पद उपपद होनेपर धातुके उत्तर त्वरा अर्थमें णमुल् प्रत्यय हो, यथा-यष्टिग्राहं युध्यन्ते(बडी शीघ्रतासे लकडी लेकर लडने जाते हैं) लोष्टग्राहम् ॥

३३७५ अपगुरो णमुलि । ६ । १।५३॥

गुरी उद्यमने इत्यस्यैचो वा आत्स्याण्णमुलि। अस्यपगारं युध्यन्ते । अस्यपगोरम् ॥

३३७५-णमुल् प्रत्यय परे रहते उद्यमनार्थक अपपूर्वक गुरी धातुके एच्के अर्थात् ओकारके स्थानमें विकल्प करके आकार हो, यथा-अस्यपगारम् युध्यंते अस्यपगोरम् ॥

३३७६ स्वांगेऽध्रुवे । ३ । ४ । ५४ ॥

द्वितीयायामित्येव । अध्रुवे स्वांगे द्वितीयान्ते धातोर्णमुल् । भ्रूविक्षेपं कथयति । भ्रुवं विक्षेपम् । अध्रुवे किम् । शिर उत्क्षिप्य । येन विना न जीवनं तद् ध्रुवम् ॥

२३७६-द्वितीयान्त अध्रुव स्वाङ्ग वाचक शब्द उपपद होनेपर धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-भ्रूविक्षेपं कथयति । भ्रुवं विक्षेपम् । जिस स्थानमें ध्रुव स्वाङ्ग होगा उस स्थलमें शिरः उत्क्षिप्य । जिसके विना जो जीव जीवित नहीं रहता, उसका नाम ध्रुव है ॥

२३७७ परिक्लिश्यमाने च ।३।४।५५॥

सर्वतो विबाध्यमाने स्वांगे द्वितीयान्ते णमुल् स्यात् । उरःप्रतिपेषं युध्यन्ते । कृत्स्नमुरः पीडयन्त इत्यर्थः । उरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः । ध्रुवार्थमिदम् ॥

२३७७-परिक्लिश्यमान अर्थात् सब प्रकारसे विबाध्यमान अर्थ होनेपर और द्वितीयान्त स्वांगवाचक शब्द उपपद होनेपर धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-उरःप्रतिपेषम् युध्यन्ते । कृत्स्नमुरः पीडयन्ते इत्यर्थः । "उरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः" ध्रुवार्थ यह सूत्र है ॥

२३७८ विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः । ३ । ४ । ५६॥

द्वितीयायामित्येव । द्वितीयान्त उपपदे विश्यादिभ्यो णमुल् स्याद्व्याप्यमान आसेव्यमाने चार्थे गम्ये । गेहादिद्रव्याणां विश्यादिक्रियाभिः साकल्येन सम्बन्धो व्याप्तिः । क्रियायाः पौनःपुन्यमासेवा । नित्यवीप्सयोरिति द्वित्वं तु न भवति । समासेनैव स्वभावतस्तयोरुक्तत्वात्। यद्यप्याभीक्ष्ण्ये णमुलुक्त एव तथापि उपपदसंज्ञार्थमासेवायामिह पुनर्विधिः। गेहानुप्रवेशमास्ते गेहङ्गेहमनुप्रवेशम् । गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशम् । एवं गेहानुप्रपातम् । गेहानुप्रपादम् । गेहानुस्कन्दम् । असमासे तु गेहस्य णमुलन्तस्य च पर्यायेण द्वित्वम् ॥

२३७८-द्वितीयान्त पद उपपद होनेपर और व्याप्यमान और आसेव्यमान अर्थ होनेपर विशि,पति, पदि, स्कन्द इन चार धातुओंके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, गृहादि द्रव्यका विशि आदि क्रियाओंके साथ जो साकल्य करके संबन्ध उसका नाम व्याप्ति है । आसेवा अर्थात् क्रियाका पौनःपुन्य "नित्यवीप्सयोः (२१४०)" इस सूत्रसे समासके द्वारा ही स्वभावतः नित्य और वीप्साके उक्तत्वके कारण द्वित्व नहीं होगा । यद्यपि आभीक्ष्ण्य अर्थमें णमुल् उक्त हुआ है तथापि उपपद संज्ञाके निमित्त आसेवा विषयमें पुनर्विधान होगा । यह बताता है, यथा-गेहानुप्रवेशमास्ते, गेहंगेहमनुप्रवेशम् । इसी प्रकार गेहानुप्रपातम् । गेहानुप्रपादम् । गेहानुस्कन्धम् । असमास विषयमें गेह शब्दको और णमुल् प्रत्ययान्तको पर्याय करके द्वित्व होगा ॥

२३७९ अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु । ३ । ४ । ५७ ॥

क्रियामन्तरयति व्यवधत्त इति क्रियान्तरः । तस्मिन्धात्वर्थे वर्तमानादस्यतेस्तृष्यतेश्च कालवाचिषुद्वितीयान्तेषूपपदेषु णमुल्स्यात्। द्व्यहात्यासं गाः पाययति। द्व्यहमत्यासम्।द्व्यहतर्षम्। द्व्यहन्तर्षम्। अत्यसनेन तर्षणेन च गवां पानक्रिया व्यवधीयते । अद्य पाययित्वा द्व्यहमतिक्रम्य पुनः पाययतीत्यर्थः ॥

२३७९-क्रियाको अन्तर अर्थात् व्यवधान करे जो क्रिया उसका नाम क्रियान्तर है, यह क्रियान्तर धात्वर्थ होनेपर कालवाचक द्वितीयान्त पद उपपद होनेपर असि और तृष् धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा-द्व्यहात्यासं गाः पाययति द्व्यहमत्यासम् । द्व्यहतर्षम् । द्व्यहन्तर्षम् । अत्यसनेन तर्षणेन च गवां पानक्रिया व्यवधीयते अद्य पाययित्वा द्व्यहमतिक्रम्य पुनः पाययतीत्यर्थः ॥

२३८० नाम्न्यादिशिग्रहोः ।३।४।५८॥

द्वितीयायामित्येव । नामादेशमाचष्टे । नामग्राहमाह्वयति ॥

२३८०-द्वितीयान्त नामन् शब्द उपपद होनेपर आङ्पूर्वक दिशि और आङ्पूर्वक ग्रहि धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, नामादेशमाचष्टे । नामग्राहमाह्वयति ॥

२३८१ अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ । ३ । ४ । ५९ ॥

अयथाभिप्रेताख्यानं नाम अप्रियस्योच्चैः प्रियस्य नीचैः कथनम् । उच्चैःकृत्य-उच्चैःकृत्वा-उच्चैःकारमप्रियमाचष्टे । नीचैःकृत्य-नीचैः कृत्वा-नीचैःकारं प्रियं ब्रूते ॥

२३८१-अव्यय शब्द उपपद होनेपर और अयथाभिप्रेत आख्यान होनेपर कृञ् धातुके उत्तर क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो, अप्रियको उच्च करके प्रियको नीच करके कथनको अयथाभिप्रेताख्यान कहते हैं, यथा-उच्चैःकृत्य, उच्चैःकृत्वा, उच्चैःकारमप्रियमाचष्टे । नीचैःकृत्य, नीचैःकृत्वा, नीचैःकारं प्रियं ब्रूते ॥

२३८२ तिर्यच्यपवर्गे । ३ । ४ । ६०॥

तिर्यक्शब्द उपपदे कृञः क्त्वाणमुलौ स्तः समाप्तौ गम्यायाम् । तिर्यक्कृत्य-तिर्यक्कृत्वा-तिर्यक्कारं गतः । समाप्य गत इत्यर्थः । अपवर्गे किम् । तिर्यक्कृत्वा काष्ठं गतः ॥

२३८२-समाप्ति अर्थ होनेपर और तिर्यक् शब्द उपपद होनेपर कृञ् धातुके उत्तर क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो,यथा-तिर्यक्कृत्य तिर्यक्कृत्वा तिर्यक्कारं गतः, समाप्य गत

इत्यर्थः । अपवर्ग अर्थात् समाप्ति अर्थ न होनेपर तिर्य्यक्-कृत्वा काष्ठं गतः ॥

३३८३ स्वांगे तस्प्रत्यये कृभ्वोः । ३ । ४ । ६१ ॥

मुखतःकृत्य गतः । मुखतः कृत्वा । मुखतःकारम् । मुखतोभूय । मुखतो भूत्वा । मुखतोभावम् ॥

३३८३–तस् प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाचक शब्द उपपद रहते कृ और भू धातुके उत्तर णमुल् प्रत्यय हो, यथा मुखतःकृत्य गतः, मुखतः कृत्वा । मुखतःकारम् । मुखतोभूयः । मुखतो भूत्वा । मुखतोभावम् ॥

३३८४ नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे । ३ । ४ । ६२ ॥

नाधार्थप्रत्ययान्ते च्व्यर्थविषये उपपदे कृभ्वोः क्त्वाणमुलौ स्तः । अनाना नाना कृत्वा नानाकृत्य–नाना कृत्वा–नानाकारम् । विनाकृत्य–विना कृत्वा–विनाकारम् । नानाभूय–नाना भूत्वा–नानाभावम् । अनेकं द्रव्यमेकं भूत्वा :एकधाभूय–एकधा भूत्वा–एकधाभावम् । एकधाकृत्य–एकधाकृत्वा–एकधाकारम् । प्रत्ययग्रहणं किम् । हिरुक्कृत्वा । पृथग्भूत्वा ॥

३३८४–च्वि प्रत्ययार्थ विषयमें अर्थात् अभूत तद्भाव में नाधार्थ प्रत्ययान्त पद उपपद होनेपर कृ और भू धातुके उत्तर क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो, यथा–अनाना नाना कृत्वा । नानाकृत्य । नाना कृत्वा । नानाकारम् । विनाकृत्य । विना कृत्वा । विनाकारम् । नानाभूय । नाना भूत्वा । नानाभावम् । अनेकं द्रव्यमेकं भूत्वा । एकधाभूय । एकधा भूत्वा । एकधाभावम् । एकधाकृत्य । एकधा कृत्वा । एकधाकारम् । नाधार्थ प्रत्यय न होनेपर, हिरुक् कृत्वा । पृथग् भूत्वा । इस स्थानमें इस सूत्र करके प्रत्यय नहीं हुआ ॥

३३८५ तूष्णीमि भुवः । ३ । ४ । ६३ ॥

तूष्णींशब्दे भुवः क्त्वाणमुलौ स्तः । तूष्णींभूय । तूष्णींभूत्वा । तूष्णीं भावम् ॥

३३८५–तूष्णीम् शब्द उपपद रहते भूधातुके उत्तर क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों, यथा–तूष्णींभूय । तूष्णीं भूत्वा । तूष्णींभावम् ॥

३३८६ अन्वच्यानुलोम्ये ।३।४।६४ ॥

अन्वक्शब्द उपपदे भुवः क्त्वाणमुलौ स्तः आनुकूल्ये गम्यमाने । अन्वग्भूय आस्ते । अन्वग्भूत्वा । अन्वग्भावम् । अग्रतः पार्श्वतः पृष्ठतो वाऽनुकूलो भूत्वा आस्त इत्यर्थः । आनुलोम्ये किम् । अन्वग्भूत्वा तिष्ठति । पृष्ठतो भूत्वेत्यर्थः ॥

इत्थं लौकिकशब्दानां दिङ्मात्रमिह दर्शितम् ।
विस्तरस्तु यथाशास्त्रं दर्शितः शब्दकौस्तुभे॥१॥
भट्टोजिदीक्षितकृतिः सैषा सिद्धान्तकौमुदी ।
प्रीत्यै भूयाद्भगवतोर्भवानीविश्वनाथयोः ॥ २ ॥

इति श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचितायां सिद्धान्तकौमुद्यामुत्तरार्धं समाप्तम् ॥

३३८६–अन्वक् शब्द उपपद होनेपर और आनुकूल्य अर्थ होनेपर भू धातुके उत्तर क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो, यथा अन्वग्भूय आस्ते । अन्वग्भूत्वा । अन्वग्भावम् । अग्रतः पार्श्वतः पृष्ठतः वानुकूलो भूत्वा आस्ते इत्यर्थः । जिस स्थानमें आनुकूल्य अर्थ नहीं होगा, उस स्थानमें णमुल् प्रत्यय नहीं होगा, केवल क्त्वा प्रत्यय होगा, यथा–अन्वग्भूत्वा तिष्ठति । तिष्ठतो भूत्वा तिष्ठति इत्यर्थः ॥

इस प्रकार इस ग्रन्थमें दिङ्मात्र लौकिक शब्दोंके प्रयोग दिखाये हैं इनका विस्तार शब्दकौस्तुभमें देखना चाहिये । यह सिद्धान्तकौमुदी भट्टोजिदीक्षितकी बनाई हुई है, यह भवानी और भगवान् विश्वनाथकी प्रीतिके निमित्त हो ॥ २ ॥

॥ इति कृदन्तप्रकरणं समाप्तम् ॥

॥ इति सिद्धान्तकौमुद्यां पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां कृदन्तप्रकरणं समाप्तम् ॥

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ वैदिकप्रक्रिया ।

३३८७ छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् । १ । २ । ६१ ॥

द्वयोरेकवचनं वा स्यात् । पुनर्वसुर्नक्षत्रं पुनर्वसू वा । लोके तु द्विवचनमेव ॥

३३८७-वेदमें पुनर्वसु शब्दसे द्विवचन स्थलमें विकल्प करके एक वचन हो, यथा-पुनर्वसुः नक्षत्रम् पुनर्वसू वा । लौकिकमें तो द्विवचन ही होगा, यथा-पुनर्वसू ॥

३३८८ विशाखयोश्च । १ । २ । ६२ ॥

प्राग्वत् । विशाखा नक्षत्रं विशाखे वा ॥

३३८८-वेदमें विशाखा शब्दसे द्विवचन स्थलमें विकल्प करके एकवचन हो, यथा-विशाखा नक्षत्रम् विशाखे वा ॥

३३८९ षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा । १ । ४ । ९ ॥

षष्ठ्यन्तेन युक्तः पतिशब्दश्छन्दसि घिसंज्ञा वा स्यात् । क्षेत्रस्य पतिना वयम् । इह वेति योगं विभज्य छन्दसीत्यनुवर्तते । तेन सर्वे विधयश्छन्दसि वैकल्पिकाः । बहुलं छन्दसीत्यादिरस्यैव प्रपञ्चः ॥ यचि भम् ॥ नभोङ्गिरोमनुषां वत्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ नभसा तुल्यं नभस्वत् । भत्वाद्रुत्वाभावः । अङ्गिरस्वदङ्गिरः । मनुष्वदग्ने । जनेरुसीति विहित उसिप्रत्ययो मनेरपि बाहुलकात् ॥ वृषण्वस्वश्वयोः ॥ * ॥ वृष वर्षकं वसु यस्य स वृषण्वसुः । वृषा अश्वो यस्य वृषणश्वः । इहान्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वे सति नलोपः प्राप्तो भत्वाद्बाध्यते । अत एव पदान्तस्येति णत्वनिषेधोपि न । अल्लोपोऽन इत्यल्लोपो न अनङ्गत्वात् ॥

३३८९-वेदमें षष्ठी विभक्त्यन्त पदके साथ युक्त पति शब्द विकल्प करके घिसंज्ञक हो, यथा-क्षेत्रस्य पतिना वयम् । इस सूत्रमें वा शब्दका पृथक् ग्रहण करके 'छन्दसि' इस पदकी अनुवृत्ति आती है, इससे वेदमें सब विधि विकल्प करके होते हैं । "बहुलं छन्दसि ३४०१ " इत्यादि वक्ष्यमाण सूत्र इसका ही प्रपञ्च है । "यचिभम् २३१" यादि अजादि कप् प्रत्ययावधि स्वादि असर्वनाम स्थान परे रहते पूर्वको भ संज्ञा हो ॥

नभस्, अङ्गिरस् और मनुष् शब्दको भ संज्ञा हो वत् प्रत्यय परे रहते * यथा-नभसा तुल्यम्=नभस्वत् । इस स्थानमें भत्व होनेसे रुत्वाभाव होताहै । अङ्गिरसा तुल्यम्=अङ्गिरस्वदङ्गिरः । मनुषा तुल्यम्=मनुष्वदग्ने । यहां "जनेरुसि" इस सूत्रसे विहित उसि प्रत्यय केवल जन धातुके उत्तर (नहीं, किन्तु बाहुलकबलसे मन् धातुके उत्तर) भी हुआ ।

वसु और अश्व शब्द परे रहते वृषन् शब्दकी भ संज्ञा हो * यथा-वृष वर्षकं वसु यस्य सः=वृषण्वसुः । वृषा अश्वो यस्य=वृषणश्वः । इस स्थलमें अन्तर्वर्ती विभक्तिको आश्रय करके पदत्व होनेसे नलोपकी प्राप्ति हुई, परन्तु वह भत्वके कारण निवारित होताहै । अत एव " पदान्तस्य १९८ " इस सूत्रसे णत्वनिषेध भी नहीं होताहै । अङ्गसंज्ञा न होनेके कारण "अल्लोपोऽनः २३४" इस सूत्रसे अकारका लोप नहीं हुआ ॥

३३९० अयस्मयादीनि छन्दसि । १ । ४ । २० ॥

एतानि च्छन्दसि साधूनि । भपदसंज्ञाधिकाराद्यथायोगं संज्ञाद्वयं बोध्यम् । तथा च वार्तिकम् ॥ उभयसंज्ञान्यपीति वक्तव्यमिति ॥ * ॥ स सुष्टुभास ऋक्वता गणेन । पदत्वात्कुत्वम् । भत्वाज्जत्वाऽभावः । जश्त्वविधानार्थाया: पदसंज्ञाया भत्वसामर्थ्येन बाधात् । नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु । अत्र पदत्वाद् जश्त्वम् । भत्वात्कुत्वाभावः ॥ ते प्राग्धातोः ॥

३३९०-वेदमें अयस्मयादि शब्द निपातनसे सिद्ध हों । भ और पद संज्ञाधिकार होनेके कारण उक्त दोनों संज्ञा यथायोग समझनी चाहियें। इस विषयमें वृत्तिकारने कहाहै कि-

वे इमें दोनों संज्ञा कहनी चाहियें * यथा-स सुष्टुभास ऋक्व गणन, इस स्थलमें पदत्वके कारण कुत्व हुआ है और भत्वके कारण जश्त्व नहीं हुआ क्यों कि, भत्व सामर्थ्यके कारण जश्त्वविधानार्थक पदसंज्ञाका बाध अर्थात् निषेध होताहै । नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु (वाचामिनाः प्रभवस्तेष्वप्येनं विद्वांसं न हिन्वन्ति विवदितुं न गच्छन्ति इत्यर्थः) इस स्थलमें पदत्वके कारण जश्त्व हुआहै और भत्वके कारण कुत्व नहीं हुआ । गतिसंज्ञक और उपसर्गसंज्ञक शब्द धातुओंके पूर्वमें ही प्रयुक्त हों ॥

३३९१ छन्दसि परेऽपि । १ । ४ । ८१ ॥

३३९१-वेदमें गतिसंज्ञक और उपसर्गसंज्ञक शब्द धातुके परेभी प्रयुक्त हों ॥

३३९२ व्यवहिताश्च । १ । ४ । ८२ ॥

हरिभ्यां याह्योक आ । आ मन्द्रैरिन्द्रहरिभिर्याहि ॥

३३९२-धातुसे व्यवहित भी गतिसंज्ञक और उपसर्गसंज्ञक शब्द प्रयुक्त हों, हरिभ्यां याह्योक आ । आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि ॥

३३९३ इन्धिभवतिभ्यां च । १ । २ । ६ ॥

आभ्यां परो लिट् कित् । समीधे दस्युहन्तमम् । पुत्र ईधे अथर्वणः । बभूव । इदं प्रत्याख्यातम् ॥ इन्धेश्छन्दोविषयत्वाद्भुवो वुको नित्यत्वात्ताभ्यां लिटः किद्वचनानर्थक्यमिति ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

३३९३-वेदमें इन्ध् और भू धातुके उत्तर लिट् प्रत्यय कित् हो, यथा-समीधे दस्युहन्तमम् । पुत्र ! ईधे अथर्वणः । इस स्थलमें कित्वके कारण नकारका लोप हुआ है । बभूव । इस स्थलमें कित्वके कारण गुण नहीं हुआ । इन्धि धातुके छन्दोविषयत्वके कारण और भू धातुके वुक् आगमके नित्यत्वके कारण इन्ध और भू धातुके उत्तर लिट्को कित्वविधान करना निरर्थक है ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

३३९४ तृतीया च होश्छन्दसि ।२।३।३॥

जुहोतेः कर्मणि तृतीया स्याद्द्वितीया च । यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति । अग्निहोत्रशब्दोऽत्र हविषि वर्तते । यस्याग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येतेत्यादिप्रयोगदर्शनात् । अग्नये हूयत इति व्युत्पत्तेश्च । यवाग्वाख्यं हविर्देवतोद्देशेन त्यक्त्वा प्रक्षिपतीत्यर्थः ॥

३३९४-वेदमें हु धातुके कर्ममें तृतीया और द्वितीया विभक्ति हों, यथा-यवाग्वा अग्निहोत्रं जुहोति, अर्थात् यवागू नामक हवि देवतोद्देशसे अर्पण करताहै । 'यस्याग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येत ' इत्यादि प्रयोगदर्शनके कारण और "अग्नये हूयते " इस व्युत्पत्तिके कारण इस स्थानमें अग्निहोत्र शब्द हविर्वाचक है ॥

३३९५ द्वितीया ब्राह्मणे ।२।३।६०॥

ब्राह्मणविषये प्रयोगे दिवस्तदर्थस्य कर्मणि द्वितीया स्यात् । षष्ठ्यपवादः । गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः ॥

३३९५-ब्राह्मण विषयमें अर्थात् मंत्रभिन्न वैदिक प्रयोगोंमें द्यूतार्थक और क्रयविक्रय व्यवहारार्थक दिव् धातुके कर्ममें द्वितीया विभक्ति हो, यह षष्ठीविभक्तिकी अपवादक है, यथा-गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः ॥

३३९६ चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि । २ । ३ । ६२ ॥

षष्ठी स्यात् । पुरुषमृगश्चन्द्रमसे गोधाकालकादार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम् । वनस्पतिभ्य इत्यर्थः ॥ षष्ठ्यर्थे चतुर्थीति वाच्यम् ॥ * ॥ या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः ॥

३३९६-वेदमें चतुर्थ्यर्थमें बहुल करके षष्ठी विभक्ति हो, यथा-पुरुषमृगश्चन्द्रमसे गोधाकालकादार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्, इस स्थानमें ' वनस्पतिभ्यः ' के स्थलमें ' वनस्पतीनाम्' हुआहै ।

षष्ठ्यर्थमें चतुर्थी हो, यह कहना चाहिये*यथा-या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः ॥

३३९७ यजेश्च करणे । २ । ३ । ६३ ॥

इह छन्दसि बहुलं षष्ठी । घृतस्य घृतेन वा यजते ॥

३३९७-वेदमें यज् धातुके करणमें विकल्प करके षष्ठी विभक्ति हो, यथा-घृतस्य घृतेन वा यजते ॥

३३९८ बहुलं छन्दसि ।२। ४ । ३९ ॥

अदो घस्लादेशः स्यात् । घस्तान्नूनम् । लुङि मन्त्रे घसेति च्लेर्लुक् अधभावः । सग्धिश्च मे ॥

३३९८-वेदमें अद् धातुके स्थानमें विकल्प करके घस्लृ आदेश हो, यथा-घस्तान्नूनम् । लुङ् परे रहते " मंत्रे घसह्वर ३४०२ " इत्यादि वक्ष्यमाण सूत्रसे च्लिको लुक् और अडागमाभाव हुआ । "सग्धिश्चमे" यहां अद् धातुसे क्तिन्, घस्लादेश, "घसिभसोर्हलि च ३५५० " इस सूत्रसे उपधालोप, "झलो झलि २२८१ " इस सूत्रसे सकारलोप, "झषस्तथोः० २२८० " इस सूत्रसे धत्व, घके स्थानमें ज, पश्चात् समान शब्दके साथ समास और समानको स आदेश हुआहै ॥

३३९९ हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि । २ । ४ । २८ ॥

द्वन्द्वः पूर्ववल्लिंगः । हेमन्तश्च शिशिरं च हेमन्तशिशिरौ । अहोरात्रे । अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥

३३९९-वेदमें हेमन्तशिशिरौ और अहोरात्रे यह दो पद द्वन्द्व समासमें पूर्ववत् लिङ्गको प्राप्त हों, यथा-हेमन्तश्च शिशिरश्च=हेमन्तशिशिरौ । अहश्च रात्रिश्च=अहोरात्रे । " अदिप्रभृतिभ्यः शपः २४२२ " अदादि धातुके परे स्थित शप्का लुक् हो ॥

३४०० बहुलं छन्दसि । २ । ४।७३ ॥

वृत्रं हनति वृत्रहा । अहिः शयत उपपृक्पृथिकाः । अत्र लुङ् न । अदादिभिन्नेऽपि क्वचिल्लुक् । त्राध्वं नो देवाः । जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥

३४००-वेदमें बहुल करके अदादि गणीय धातुओंके उत्तर शप्का लुक् हो, यथा-वृत्रं हनति वृत्रहा । अहिः शयत उपपृक् पृथिकाः । इस स्थानमें शप्का लुक् नहीं हुआ । अदादिभिन्न स्थलमें भी कहीं २ लुक् होगा, यथा-त्राध्वं नो देवाः । इस स्थलमें भ्वादिगणीय त्रै धातुके उत्तर शप्का लुक् हुआहै । "२४८९" जुहोत्यादिगणीय धातुओंके उत्तर शप्के स्थानमें श्लु आदेश हो, यह सूत्र यहां स्मरणार्थ उल्लिखित है ॥

३४०१ बहुलं छन्दसि । २ । ४ । ७६॥

दाति प्रियाणि चिद्वसु । अन्यत्रापि । पूर्णा विवष्टि ॥

३४०१-वेदमें जुहोत्यादिगणीय धातुके उत्तर बहुल करके शप्के स्थानमें श्लु आदेश हो, यथा-दाति प्रियाणि चिद्वसु । जुहोत्यादिभिन्न धातुके उत्तर भी श्लु आदेश होगा, यथा-

पूर्णा विवष्टि, यहां अदादिगणीय वश् धातुके उत्तर शप्को लुक्, पश्चात् द्वित्व, "भृञामित् २४९६" बहुलं छन्दसि इस सूत्रसे अभ्यासको इकार "व्रश्च० २९४" इस सूत्रसे शके स्थानमें ष और तके स्थानमें ट हुआ ॥

३४०२ मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः । २ । ४ । ८० ॥

लिरिति च्लेः प्राचां संज्ञा । एभ्यो लेर्लुक् स्यान्मन्त्रे । अक्षन्नमी मदन्त हि । घस्लादेशस्य गमहनेत्युपधालोपे शासिवसीति षः । माह्वर्मित्रस्य । धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । नशेर्वेति कुत्वम् । सुरुचो वेन आवः । मा न आधक् । आदित्याकारान्तग्रहणम् । आप्रा द्यावापृथिवी । परावर्ग्भारभृद्यथा । अक्रन्नुषसः । त्वे रयिं जागृवांसो अनुग्मन् । मन्त्रग्रहणं ब्राह्मणस्याप्युपलक्षणम् । अज्ञत वा अस्य दन्ताः । विभाषानुवृत्तेर्नेह । न ता अगृभ्णन्नजनिष्ट हि षः ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

३४०२–मंत्रमें घस् (अद धातुके स्थानमें आदिष्ट) ह्वर (ह्वृ कौटिल्ये) णश (णश अदर्शने) वृ (वृञ् वरणे) वृङ् (वृङ् सभक्तौ) दह (दह भस्मी करणे) आत् (आकारान्त प्रा–पूरणे इत्यादि) वृज् (वृजी वर्जने) कृ (डुकृञ् करणे) गम और जन् धातुओंके परे स्थित लि अर्थात् च्लिका लुक् हो, यथा–अक्षन्नमीमदन्त हि, यहां अद+लुङ्+झि–घस्लादेश, "गमहन २३६३" इस सूत्रसे उपधालोप, "शासिवसि० २४१०" इस सूत्रसे सके स्थानमें ष–हुआहै । माह्वर्मित्रस्य (माङ् पूर्वक ह्वृ+लुङ्+तिप् "इतश्च २२०७" इस सूत्रसे इकार लोप, च्लिका लुक्+सार्वधातुकत्वके कारण गुण, रपरत्व और "हल्ङ्याप्० २५२" इस सूत्रसे लोप हुआ है । धूर्त्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । प्र+णश्+लुङ्, तिप्, "हल्ङ्याप्०" इस सूत्रसे लोप, "उपसर्गादसमासे (२२८७)" इस सूत्रसे णत्व, शकारके स्थानमें ककार, कके स्थानमें ङ् होकर प्रनङ्) । सुरुचो वेन आवः । (आवृ+लुङ्+सिप्=आवः) । मान आधक् । (आदह "दादेर्धातोः० ३२५" इस सूत्रसे घ आदेश, "एकाचो बशो० ३२६" से भष्भाव) । "आप्रा द्यावा पृथिवी" परावर्ग्भारभृद् यथा । अक्रन्नुषसः । त्वे रयिं जागृवांसोऽनुग्मन् । मंत्र शब्द ग्रहण ब्राह्मणका भी उपलक्षण अर्थात् ग्राहक होताहै । यथा–"अज्ञत वा अस्य दन्ताः" । लोकमें यथा–अघसत् । अह्वार्षीत् । अनशत् । अवारीत् । अधाक्षीत् । आप्रासीः । अवर्जीत् । अकार्षीत् । अगमत् । अजनि, अजनिष्ट । विभाषाकी अनुवृत्तिके कारण यहां च्लिका लुक् नहीं होगा, यथा–"न ता अगृभ्णन्नजनिष्ट हि षः" ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

३४०३ अभ्युत्सादयांप्रजनयांचिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद्विदामक्रन्निति च्छन्दसि । ३ । १ । ४२ ॥

आद्येषु चतुर्षु लुङि आम् अक इत्यनुप्रयोगश्च । अभ्युत्सादयामकः । अभ्युदसीषददिति लोके । प्रजनयामकः । प्राजीजनदित्यर्थः । चिकयामकः । अचैषीदित्यर्थे चिनोतेराम् द्विर्वचनं कुत्वं च । रमयामकः । अरीरमत् । पावयांक्रियात् । पाव्यादिति लोके । विदामक्रन् । अवेदिषुः ॥

३४०३–वेदमें अभ्युत्सादयामकः, प्रजनयामकः, चिकयामकः, रमयामकः, पावयांक्रियात् और विदामक्रन् इत्यादि पद निपातनसे सिद्ध हों, इस स्थलमें प्रथम चार पदोंमें लुङ् परे आम्, और अक्का अनुप्रयोग हो, यथा–अभ्युत्सादयामकः । लोकमें अभ्युदसीषदत् । इसी प्रकार प्रजनयामकः । लोकमें, प्राजीजनत् । चिकयामकः । अचैषीत् । इस अर्थमें चि धातुके उत्तर आम्, द्वित्व और कुत्व हुआ है । रमयामकः । लोकमें, अरीरमत् । पावयांक्रियात् । लोकमें, पाव्यात् । विदामक्रन् । लोकमें, अवेदिषुः ॥

३४०४ गुपेश्छन्दसि । ३ । १ । ५० ॥

च्लेश्चङ् । गृहानजूगुपतं युवम् । अगौप्तमित्यर्थः ॥

३४०४–गुप् धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें विकल्प करके चङ् आदेश हो, यथा–गृहानजूगुपतं युवम् । अगौप्तमित्यर्थः ॥

३४०५ नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः । ३ । १ । ५१ ॥

च्लेश्चङ् न । मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः । मा त्वाग्निर्ध्वनयीत् ॥

३४०५–वेदमें ऊन धातु, ध्वन धातु, इल धातु, अर्द धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें चङ् आदेश न हो, यथा–मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः (त्वायतः त्वामिच्छतः जरितुः, स्तोतुः । मम काममभिलाषं मा ऊनयीः ऊनं मा कार्षीः) लोकमें औनः "मा त्वाग्निर्ध्वनयीत्" । भाषामें अदध्वनत् । ऐलयीत् । आर्दयीत् । लोकमें ऐलिलत् । आर्दिदत् ॥

३४०६ कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि । ३ । १ । ५९ ॥

च्लेरङ् वा । इदं तेभ्योकरं नमः । अमरत् । अदरत् । यत्सानोः सानुमारुहत् ॥

३४०६–वेदमें कृ, मृ, दृ, और रुह धातुके उत्तर च्लिके स्थानमें विकल्प करके अङ् हो, यथा–"इदं तेभ्योऽकरं नमः" । अमरत् । अदरत् । यत्सानोः सानुमारुहत् । लोकमें, अकार्षीत् । अमृत । अदारीत् । अरुक्षत् ॥

३४०७ छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ।३।१।१२३॥

कृन्ततेर्निस्पूर्वात् क्यपि प्राप्ते ण्यत् । आद्यन्तयोर्विपर्यासः निसः षत्वं च। निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः। देवशब्दे उपपदे ह्वयतेर्जुहोतेर्वा क्यप् दीर्घश्च। स्पर्द्धन्ते वा उ देवहूये। प्र उत् आभ्यां नयतेः क्यप्। प्रणीयः। उन्नीयः। उत्पूर्वाच्छिषेः क्यप्। उच्छिष्यः। मृङ्स्तृञ्ध्वृभ्यो यत्। मर्यः। स्तर्या। स्त्रियामेवायम्। ध्वर्यः। खनेर्यण्यतौ खन्यः। खान्यः। यजेर्यः। शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै। आङ्पूर्वात्पृच्छेः क्यप्। आपृच्छ्यं धरुणं वा ज्यर्षति। सीव्यतेः क्यप् षत्वं च। प्रतिषीव्यः। ब्रह्मणि वदेर्ण्यत्। ब्रह्मवाद्यम्। लोके तु वदः सुपि क्यप् चेति क्यब्यतौ।भवतेः स्तौतेश्च ण्यत्। भाव्यः। स्ताव्यः। उपपूर्वाच्चिनोतेर्ण्यदायादेशश्च पृड उत्तरपदे। उपचाय्यपृडम् ॥ हिरण्य इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ उपचेयपृडमेवान्यत्। मृड सुखने पृड चेत्यस्मादिगुपधलक्षणः कः ॥

३४०७–वेदमें निष्टर्क्य, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य्य, स्तर्य्या, ध्वर्य्य, खन्य, खान्य, देवयज्य, आपृच्छ्य, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य, स्ताव्य, उपचाय्य पृड, यह पद निपातनसे सिद्ध हों। निस्पूर्वक कृन्त धातुसे क्यप् प्राप्त होनेपर ण्यत् प्रत्यय हुआ, आदि और अन्तका विपर्य्यास और निस्को षत्व होकर नैष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः। देवपूर्वक ह्वे अथवा हु धातुके उत्तर क्यप्, पूर्वस्वरको दीर्घ होकर–स्पर्द्धन्ते वा उ देवहूये । प्रपूर्वक नी धातुसे क्यप्=प्रणीयः । उत्पूर्वक नी धातुसे क्यप्=उन्नीयः । उत्पूर्वक शिष् धातुसे क्यप्=उच्छिष्यः । मृङ्, स्तृञ्, ध्वृ धातुके उत्तर यत् प्रत्यय होकर–मर्य्यः । स्तर्या, यह पद स्त्रीलिङ्गमें ही हो, ध्वर्य्यः । खन+यत्=खन्यः । खन+ण्यत्=खान्यः । देवशब्दपूर्वक यज्+यत्=शुन्धध्वं दैव्याय कर्म्मणे देवयज्यायै । आङ्पूर्वक प्रच्छ्+क्यप्=आपृच्छ्यं धरुणं वा ज्यर्षति । प्रति+सिव+क्यप्+षत्व=प्रतिषीव्यः । ब्रह्मपूर्वक वद्+ण्यत्=ब्रह्मवाद्यम् । लोकमें तो "वदः सुपि क्यप् च २८५४" इस सूत्रसे वद् धातुके उत्तर क्यप् और यत् प्रत्यय होगा । भू स्तु धातुसे ण्यत्=भाव्यः । स्ताव्यः। पृड शब्द परे रहते उपपूर्वक चि धातुके उत्तर ण्यत् प्रत्यय और आयादेश होकर–उपचाय्य पृडम् ।

हिरण्यार्थमें 'उपचाय्य पृडम्' यह हो ऐसा कहना चाहिये * (हिरण्य अन्य वाच्यमें) 'उपचेयपृडम्'

ऐसा होगा, यहां 'मृड सुखने पृड च' इस पृड् धातुके उत्तर "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः २८९७" इस सूत्रसे क प्रत्यय हुआ है ॥

३४०८ छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्। ३।२।२७॥

एभ्यः कर्मण्युपपदे इन् स्यात् । ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम्। उत नो गोषणिं धियम्। ये पथां पथिरक्षयः। चतुरक्षौ पथिरक्षी। हविर्मथीनामभि ॥

३४०८–वेदमें कर्म्म पद पूर्वमें रहते वन्, सन्, रक्ष् और मन्थ् धातुओंके उत्तर इन् हो, यथा–ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम् । उत नो गोषणिं धियम् । ये पथां पथिरक्षयः । चतुरक्षौ पथिरक्षी । हविर्मथीनामभि ॥

३४०९ छन्दसि सहः। ३। २। ६३॥

ण्विः स्यात्। पृतनाषाट् ॥

३४०९–वेदमें कर्म्म पद पूर्वमें रहते सह धातुके उत्तर ण्वि प्रत्यय हो, यथा–पृतनाषाट्, लोकमें 'तुराषाहं पुरोधाय' इस प्रकार प्रयोग देखाजाताहै उस स्थलमें णिजन्त सह धातुके उत्तर विच् प्रत्यय हुआहै ॥

३४१० वहश्च। ३।२।६४॥

प्राग्वत्। दित्यवाट्। योगविभाग उत्तरार्थः॥

३४१०–वेदमें कर्म्म पद पूर्वमें रहते वह धातुके उत्तर ण्वि प्रत्यय हो, यथा–दित्यवाट् । भिन्नसूत्रकरण उत्तरार्थ है ॥

३४११ कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट्। ३।२।६५॥

एषु वहेर्ञ्युट् स्याच्छन्दसि । कव्यवाहनः। पुरीषवाहनः। पुरीष्यवाहनः ॥

३४११–वेदमें कव्य पुरीष और पुरीष्य शब्दके परे स्थित वह धातुके उत्तर ञ्युट् प्रत्यय हो, यथा–कव्यवाहनः । पुरीषवाहनः । पुरीष्यवाहनः ॥

३४१२ हव्येऽनन्तः पादम्। ३।२।६६॥

अग्निर्नो हव्यवाहनः। पादमध्ये तु वहश्चेति ण्विरेव। हव्यवाळग्निरजरः पिता नः ॥

३४१२–वेदमें हव्य शब्दके परे स्थित वह धातुके उत्तर ञ्युट् प्रत्यय हो, यदि पादके मध्यमें नः हो, यथा–अग्निर्नो हव्यवाहनः । पादके मध्यमें होनेपर तो "वहश्च" इस पूर्वसूत्रसे ण्वि प्रत्यय ही होगा, यथा–हव्यवाळग्निरजरः पिता नः । दोस्वरोंके मध्यमें प्राप्त हो तो डकारको ळकार होताहै, ऐसा प्रातिशाख्यमें प्रसिद्ध है ॥

३४१३ जनसनखनक्रमगमो विट्। ३। २। ६७॥

विड्वनोरित्यात्त्वम्। अब्जा। गोजाः। गोषा इन्द्रो नृषा असि। सनोतेरन इति षत्वम्। इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्। आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः। अग्रेगाः॥

३४१३–वेदमें उपसर्गपूर्वक जन् सन् खन् क्रम् और गम् धातुके उत्तर विट् प्रत्यय हो, "विड्वनोः० २९९२" इस सूत्रसे आत्त्व होकर अब्जा गोजाः। 'गोषा इन्द्रो नृषा असि' इस स्थलमें "सनोतेरनः ३६४५" इस सूत्रसे सन् धातुके सकारको षत्व हुआहै। इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्। आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः। अग्रेगाः॥

३४१४ मंत्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन्। ३। २। ७१॥

श्वेतवहादीनां डस्पदस्येति वक्तव्यम्॥ * ॥ यत्र पदत्वं भावि तत्र ण्विनोपवादो डस्वक्तव्य इत्यर्थः। श्वेतवाः। श्वेतवाहौ। श्वेतवाहः। उक्थानि उक्थैर्वा शंसति उक्थशा यजमानः। उक्थशासौ। उक्थशासः। पुरो दाश्यते दीयते पुरोडाः॥

३४१४–मंत्रमें श्वेत, उक्थ,पुरस् शब्द पूर्वमें रहते क्रमसे वह्, शंस्, दाश् धातुओंके उत्तर ण्विन् प्रत्यय हो अर्थात् कर्तृवाचक श्वेत शब्द पूर्वमें रहते वह् धातुके उत्तर कर्मकारकमें ण्विन् प्रत्यय हो। कर्म और करणवाचक उक्थ शब्दके परे स्थित शंस धातुके उत्तर ण्विन् प्रत्यय और धातुके नकारका लोप हो। पुरस् शब्द पूर्वक दाश् धातुके उत्तर कर्मकारकमें ण्विन् प्रत्यय और दके स्थानमें ड हो।

जिस स्थानमें श्वेतवाहादि शब्दोंको पदत्व होनेवाला हो उस स्थानमें ण्विन्का विशेषक डस् प्रत्यय हो * यथा–श्वेता एनं वहन्ति=श्वेतवाः। श्वेतवाहौ। श्वेतवाहः। उक्थानि उक्थैर्वा शंसति, इस वाक्यमें उक्थशाः,अर्थात् यजमानः। उक्थशासौ। उक्थशासः। पुरो दाश्यते, दीयते इस वाक्यमें पुरोडाः, अर्थात् हविः॥

३४१५ अवे यजः। ३। २। ७२॥

अवयाः। अवयाजौ। अवयाजः॥

३४१५–मंत्रमें अवपूर्वक यज् धातुके उत्तर ण्विन् प्रत्यय हो, यथा–अवयाः। अवयाजौ। अवयाजः। योगविभाग उत्तरार्थ है "पुरोडाशावयजोर्ण्विन्" इस प्रकार एक सूत्र करनेपर तो परसूत्रमें श्वेतवाहादिकी भी अनुवृत्ति होजाती, और अवपूर्वक ही यज् धातुकी अनुवृत्ति होजाती इष्ट तौ केवलका ही है, इसलिये योगविभाग है॥

३४१६ अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च। ८। २। ६७॥

एते सम्बुद्धौ कृतदीर्घा निपात्यन्ते।चादुक्थशाः॥

३४१६–मंत्रमें अवयाः, श्वेतवाः और पुरोडाः यह संबोधनमें कृतदीर्घ निपातनसे सिद्ध हों। चकारसे 'उक्थशाः' पद भी निपातनसे सिद्ध हो। सम्बोधनमें 'अत्वसन्तस्य'इसकी प्राप्ति न होगी, कारण कि, उसमें असम्बुद्धिकी अनुवृत्ति आती है, इस कारण सम्बोधनमें निपातनसे दीर्घ कियाहै॥

३४१७ विजुपे छन्दसि। ३। २।७३॥

उपे उपपदे यजेर्विच्। उपयट्॥

३४१७–वेदमें उपपूर्वक यज् धातुके उत्तर विच् प्रत्यय हो, यथा–उपयट॥

३४१८ आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च। ३। २। ७४॥

सुप्युपसर्गे चोपपदे आदन्तेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये मनिनादयस्त्रयः प्रत्ययाः स्युः। चाद्विच्। सुदामा। सुधीवा। सुपीवा। भूरिदावा। घृतपावा। विच्। कीलालपाः॥

३४१८–वेदमें सुबन्त और उपसर्ग उपपद रहते आकारान्त धातुके उत्तर मनिन्, क्वनिप् और वनिप् प्रत्यय हो, और चकारनिर्देशके कारण विच् प्रत्यय भी हो, यथा–सु+दा+मनिन्=सुदामा। सु+धा+क्वनिप्=सुधीवा। सु+पा+क्वनिप्=सुपीवा। भूरिदावा। घृतपावा। विच् प्रत्ययमें यथा–कीलालपाः॥

३४१९ बहुलं छन्दसि। ३। २। ८८॥

उपपदान्तरेपि हन्तेर्बहुलं क्विप् स्यात्। मातृहा। पितृहा॥ छन्दसि लिट्। ३। २। १०५। भूतसामान्ये। अहं द्यावापृथिवी आ ततान॥ लिटः कानज्वा।३।२।१०६। क्वसुश्च।३।२।१०७॥ छन्दसि लिटः कानच्क्वसू वा स्तः। चक्राणा वृष्णिम्। यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुः॥ छन्दसि परेच्छायामपि क्यज्वक्तव्यः॥ * ॥ क्याच्छन्दसि। ३। २। १७०॥ उप्रत्ययः स्यात्। अघायुः॥ एरजधिकारे जवसवौ छन्दसि वाच्यौ॥ * ॥ ऊर्वोस्तु मे जवः। देवस्य सवितुः सवे॥

३४१९–वेदमें ब्रह्म, भ्रूण, वृत्रभिन्न भी उपपद रहते हन् धातुके उत्तर बहुल करके क्विप् प्रत्यय हो, यथा–मातृ+हन्+क्विप्=मातृहा। पितृहा।

वेदमें भूतसामान्यमें धातुके उत्तर लिट् प्रत्यय हो,(३०९३) यथा–अहं द्यावापृथिवी आ ततान।

वेदमें धातुओंके उत्तर लिट्के स्थानमें विकल्प करके कानच् और क्वसु प्रत्यय हो (३०९४। ३०९५) यथा–चक्राणा वृष्णिम्। यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुः।

वेदमें परकी इच्छा होनेपर भी धातुके उत्तर क्यच् प्रत्यय हो *॥

वेदमें क्यच् प्रत्ययान्त धातुके उत्तर उ प्रत्यय हो(३१५०) यथा-अघ शब्द+क्यच्+अघाय धातु+उ=अघायुः यहां पर-स्याघमिच्छति, इस अर्थमें क्यच् प्रत्यय, "अश्वाघस्यात्" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे अकारादेश, तदन्तसे उ प्रत्यय हुआहै।

'एरच्' इस अधिकारमें वेदमें जव, सव यह दो पद निष्पन्न हों * अर्थात् जु और सू धातुके उत्तर "ऋदोरप्" इस सूत्रसे अप् प्रत्यय प्राप्त होनेपर अच् प्रत्यय हो, यथा-ऊर्वोस्तु मे जवः। देवस्य सवितुः सवे ॥

३४२० मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः । ३ । ३ । ९६ ॥

वृषादिभ्यः क्तिन् स्यात्स चोदात्तः । वृष्टिं दिवः । सुम्नमिष्टये । पचात्पक्तीरुत । इयं ते नव्यसी मतिः । वित्तिः । भूतिः । अग्न आ याहि वीतये । रातौ स्यामोभयासः ॥

३४२०-मंत्रमें वृष्, इष्, पच्, मन्, विद्, भू, वी और रा धातुके उत्तर क्तिन् प्रत्यय हो और वह उदात्त हो, यथा-वृष्टिन्दिवः। सुम्नमिष्टये। पचत्पक्तीरुत। इयं ते नव्यसी मतिः। वित्तिः। भूतिः। अग्न आयाहि वीतये। रातौ स्यामो भयासः ॥

३४२१ छन्दसि गत्यर्थेभ्यः।३।३।१२९॥

ईषदादिषूपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि युच् स्यात् । खलोऽपवादः । सूपसदनोऽग्निः ॥

३४२१-वेदमें ईषत् इत्यादि शब्दोंके परे स्थित गत्यर्थ धातुके उत्तर युच् (अन्) प्रत्यय हो, यह सूत्र खल प्रत्ययका अपवाद है, यथा-सूपसदनोऽग्निः ॥

३४२२ अन्येभ्योपि दृश्यते।३।३।१३०॥

गत्यर्थेभ्यो येन्ये धातवस्तेभ्योपि छन्दसि युच् स्यात । सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥

३४२२-गत्यर्थकसे भिन्नार्थक धातुके उत्तर भी वेदमें युच् (अन्) प्रत्यय हो, यथा-सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम्॥

३४२३ छन्दसि लुङ्लङ्लिटः । ३ । ४ । ६ ॥

धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वकालेष्वेते वा स्युः । पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः । लुङि । देवो देवेभिरागमत् । लोडर्थे लुङ् । इदं तेभ्योकरं नमः । लङ् । अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः । लिट् । अद्य ममार । अद्य म्रियत इत्यर्थः ॥

३४२३-वेदमें धात्वर्थसंबन्धमें भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानमें धातुओंके उत्तर विकल्प करके लुङ्, लङ् और लिट् लकार हो, विकल्पपक्षमें यथाप्राप्त प्रत्यय होंगे । लुङ् यथा-देवो देवेभिरागमत् यहां 'आगच्छतु' इस लोडर्थमें लुङ् हुआहै। "इदन्तेभ्योऽकरन्नमः" यहां "कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि" इससे च्लिको अङ् 'ऋदृशोऽङि' इससे गुण हुआ है। लङ् यथा-"अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः" लिट् यथा-अद्य ममार। अद्य म्रियते इत्यर्थः ॥

३४२४ लिङर्थे लेट् । ३ । ४ । ७ ॥

विध्यादौ हेतुहेतुमद्भावादौ च धातोर्लेट् स्याच्छन्दसि ॥

३४२४-वेदमें लिङर्थमें अर्थात् विधि आदि और हेतुहेतुमद्भावादिमें धातुके उत्तर विकल्प करके लेट् प्रत्यय हो॥

३४२५ सिब्बहुलं लेटि । ३ । १।३४॥

३४२५-लेट् परे रहते धातुके उत्तर सिप् प्रत्यय हो, विकल्प करके-॥

३४२६ इतश्च लोपः परस्मैपदेषु । ३ । ४ । ९७ ॥

लेटस्तिङामितो लोपो वा स्यात्परस्मैपदेषु ॥

३४२६-वेदमें परस्मैपदी धातुओंके उत्तर लेट् लकारके तिङ्के इकारका विकल्प करके लोप हो ॥

३४२७ लेटोऽडाटौ । ३ । ४ । ९४ ॥

लेटः अट् आट् एतावागमौ स्तस्तौ च पितौ ॥ सिब्बहुलं णिद्वक्तव्यः ॥ * ॥ वृद्धिः । प्रण आयूंषि तारिषत् । सुपेशसस्करति जोषिषद्धि । आ साविषदर्शसानाय । सिप इलोपस्य चाभावे । पताति विद्युत् । प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति ॥

३४२७-वेदमें लेट् प्रत्ययको अट् और आट् यह दो आगम हों, और यह आगम पित् हों।

सिप् प्रत्यय बहुल करके णित् हो*इस कारण सिप् परे वृद्धि होगी, यथा-प्रण आयूंषि तारिषत्। यहां तृ धातुके उत्तर लेट् उसको तिप्, इकारका लोप, तिप् परे धातुसे सिप्, इट्, वृद्धि और अट्का आगम हुआहै । सुपेशसस्करति जोषिषद्धि । जुषी धातुसे परस्मैपदमें पूर्ववत् कार्य्य और गुणमात्र विशेष जानना। आसाविषत् अर्शसानाय । यहां आङ्पूर्वक सु धातुके उत्तर पूर्ववत् समस्त कार्य्य वृद्धिमात्र विशेष हुआहै । सिप् और इकारके लोपका अभाव पक्षमें यथा-पताति विद्युत् । (पत+तिप्-आट्) । प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति ॥

३४२८ स उत्तमस्य । ३ । ४ । ९८ ॥

लेडुत्तमसकारस्य वा लोपः स्यात् । करवाव-करवावः । टेरेत्वम् ॥

३४२८--लेट् लकारके उत्तमपुरुषके सकारका विकल्प करके लोप हो, यथा-करवाव, करवावः । टिको एकार होकर-॥

३४२९ आत ऐ । ३ । ४ । ९५ ॥

लेट आकारस्य ऐ स्यात् । सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते । आतामित्याकारस्य ऐकारः । विधि-

सामर्थ्यादाट ऐत्वं न । अन्यथा हि ऐटमेव विदध्यात् । यो यजाति यजात इत् ॥

३४२९–लेट् लकारसम्बन्धी आकारके स्थानमें ऐकार आदेश हो, यथा–सुतेभिः सुप्रयसा, मादयैते । यहां 'आताम्' इस आकारके स्थानमें ऐकार आदेश हुआहै । विधिसामर्थ्यके कारण आट् आगमके आकारके स्थानमें ऐ नहीं होताहै, नहीं तो ऐट् आगम ही विधान करते । यथा–यो यजाति यजात इत् ॥

३४३० वैतोऽन्यत्र । ३ । ४ । ९६ ॥

लेट एकारस्य ऐ स्याद्वा । आत ऐ इत्यस्य विषयं विना । पशूनामीशै । ग्रहा गृह्यान्तै । अन्यत्र किम् । सुप्रयसा मादयैते ॥

३४३०–लेट् विभक्तिके एकारके स्थानमें विकल्प करके ऐकार हो, "आत ऐ३४२९" इस सूत्रका विषय न होनेपर, यथा–पशूनामीशैः । ग्रहा गृह्यान्तैः । अन्यत्र क्यों कहा ? तो 'सुप्रयसा मादयैते ' यहां ऐत्व विकल्प करके न हो ॥

३४३१ उपसंवादाशङ्कयोश्च ।३।४।८ ॥

पणबन्धे आशंकायां च लेट् स्यात् । अहमेव पशूनामीशै । नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम॥ हलः श्नः शानज्झौ ॥

३४३१–उपसंवाद अर्थात् पणबन्ध और आशंकामें धातुके उत्तर लेट् प्रत्यय हो, यथा–अहमेव पशूनामीशै । यह त्रिपुरविजयके समय देवताओंसे प्रार्थित रुद्रका वाक्य है । अर्थात् मैं समस्त पशु अर्थात् जीवोंका अधिपति हूँ। नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम । "हलः श्नः शानज्झौ २५५७" अर्थात् हि परे रहते हल्वर्णके ` स्थित श्नके स्थानमें शानच् आदेश हो ॥

३४३२ छन्दसि शायजपि ।३।१।८४ ॥

अपिशब्दाच्छानच् । हृग्रहोर्भश्छन्दसीति हस्य भः । गृभाय जिह्वया मधु । बधान देव सवितः । अनिदितामिति बध्नातेर्नलोपः । गृभ्णामि ते । मध्वा जभार ॥

३४३२–वेदमें हि विभक्ति परे रहते श्नके स्थानमें शायच् और शानच् यह दो आदेश हों, "हृग्रहोर्भश्छन्दसि" इससे हृ और ग्रह धातुके हके स्थानमें भ होकर–यथा–गृभाय जिह्वया मधु । बधान देव सवितः । यहां " अनिदिताम्० ४१५ " इस सूत्रसे बन्ध धातुके नकारका लोप हुआहै । गृभ्णामि ते । मध्वा जभार ॥

३४३३ व्यत्ययो बहुलम् ।३।१।८५ ॥

विकरणानां बहुलं व्यत्ययः स्याच्छन्दसि । आण्डा शुष्मस्य भेदति । भिनत्तीति प्राप्ते । जरसा मरते पतिः । म्रियत इति प्राप्ते । इन्द्रो वस्तेन नेषतु । नयतेर्लोट् शप्सिपौ द्वौ विकरणौ । इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् । तरेमेत्यर्थः । तरतेर्विध्यादौ लिङ् । उः सिप् शप् चेति त्रयो विकरणाः ॥

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च॥ व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोपि च सिध्यति बाहुलकेन ॥ १ ॥

धुरि दक्षिणायाः । दक्षिणस्यामिति प्राप्ते । चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति । तक्षन्तीति प्राप्ते । उपग्रहः परस्मैपदात्मनेपदे । ब्रह्मचारिणमिच्छते । इच्छतीति प्राप्ते । प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यति । युध्यत इति प्राप्ते । मधोस्तृप्ता इवासते । मधुन इति प्राप्ते । नरः पुरुषः । अधा स वीरैर्दशभिर्वियूयाः । वियूयादिति प्राप्ते । कालः कालवाची प्रत्ययः । श्वोऽग्नीनाधास्यमानेन । लुटो विषये लृट् । तमसो गा अदुक्षत् । अधुक्षदिति प्राप्ते । मित्र वयं च सूरयः । मित्रा वयमिति प्राप्ते । स्वरव्यत्ययस्तु वक्ष्यते । कर्तृशब्दः कारकमात्रपरः । तथा च तद्वाचिनां कृत्तद्धितानां व्यत्ययः । अन्नादाय । अण्विषये अच् । अवग्रहे विशेषः । यङो यशब्दादारभ्य लिङ्याशिष्यङिति ङकारेण प्रत्याहारः । तेषां व्यत्ययो भेदतीत्यादिरुक्त एव ॥

३४३३–वेदमें विकरणोंको अर्थात् आर्धधातुक स्थलमें स्य और तास् आदिओंको और सार्वधातुक स्थलमें शप् आदिओंको बहुल करके व्यत्यय हो, यथा–"आण्डा शुष्मस्य भेदति " यहां ' भिनत्ति ' ऐसा प्राप्त था, परन्तु वेदमें वैसा होकर शप् होनेसे उक्त रूप सिद्ध हुआ । जरसा मरते पतिः–इस स्थलमें प्राणत्यागार्थक तुदादिगणीय मृङ् धातुके उत्तर 'तुदादिभ्यः शः' से श, रिङ्शयग्लिङ्क्षु' इससे रिङ् आदेश और इयङ्,होकर'म्रियते'ऐसा प्रयोग प्राप्त था किन्तु वेदमें शप् होकर 'मरते' पद हुआहै । इन्द्रो वस्तेन नेषतु । यहां नी धातुसे लोट् लकार और शप् सिप् दो विकरण हुये हैं । इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् । तरेमेत्यर्थः । यहां तॄ धातुसे विध्यादिमें लिङ् और उ, सिप् और शप् यह तीन विकरण होकर ' तरुषेम ' पद हुआ है ॥

व्याकरण शास्त्रकार महर्षि पाणिनिने सुप्, तिङ्, उपग्रह (आत्मनेपद और परस्मैपद) लिङ्ग, पुरुष, काल, व्यञ्जनवर्ण, स्वरवर्ण, स्वर कर्तृ (कारक सब और तद्वाचक कृत् और तद्धित) और यङ्के य शब्दसे लेकर "लिङ्याशिष्यङ् ३४३४" इस सूत्रोक्त ङकारसे यङ् प्रत्याहार है । उसके व्यत्ययकी इच्छा करते हैं, वह भी व्यत्यय बाहुलकबलसे सिद्ध होते हैं ॥

सुप्का व्यत्यय यथा–'धुरि दक्षिणायाः' इस स्थलमें 'दक्षिणस्याम्' ऐसा प्राप्त था । तिङ्का व्यत्यय यथा–"च-

षालं ये अश्वयूपाय तक्षति" इस स्थलमें 'तक्षन्ति' ऐसा प्राप्त था। उपग्रह अर्थात् परस्मैपद, आत्मनेपद व्यत्यय यथा-'ब्रह्मचारिणमिच्छते' इस स्थलमें 'इच्छति' ऐसा प्राप्त था 'प्रतीपमन्य ऊर्म्मिर्युध्यति' इस स्थलमें 'युध्यते' ऐसा प्राप्त था। लिंगव्यत्यय यथा-'मधोस्तृप्ता इवासेत' इस स्थलमें 'मधुनः' ऐसा पद प्राप्त था। नर अर्थात् पुरुष प्रत्यय यथा-"अधास वीरैर्दशभिर्वियूयाः" इस स्थलमें 'वियूयात्' पद प्राप्त था। काल अर्थात् कालवाचक प्रत्ययका व्यत्यय यथा-"श्वोऽग्नीनाधास्यमानेन" इस स्थलमें लुट् विषयमें लृट् हुआ है। व्यञ्जनवर्ण व्यत्यय यथा-'तमसो गा अदुक्षत्' इस स्थलमें 'अधुक्षत्' ऐसा प्राप्त था। स्वरवर्णव्यत्यय यथा-'मित्र वयञ्च सूरयः' इस स्थलमें 'मित्रा वयम्' ऐसा पद प्राप्त था। स्वरव्यत्यय आगे कहेंगे। कर्तृ शब्द कारकमात्रपरक है तद्वाचक कृत् और तद्धितका व्यत्यय यथा-'अन्नादाय' इस स्थलमें अण् प्रत्ययके विषयमें अच् प्रत्यय हुआहै। अवग्रहमें विशेष होगा। यङ्के य शब्दसे आरम्भ करके 'लिङ्याशिष्यङ्' इस सूत्रोक्त ङकारके साथ यङ् प्रत्याहार जानना, उनके व्यत्ययका उदाहरण भेदति इत्यादि पहिले कहदियाहै ॥

३४३४ लिङ्याशिष्यङ् ।३।१।८६॥

आशीर्लिङि परे धातोरङ् स्याच्छन्दसि। वच उम्। मन्त्रं वोचेमाग्नये॥ दृशेरग्वक्तव्यः॥*॥ पितरं च दृशेयं मातरं च। आङि तु ऋदृशो-ऽङीति गुणः स्यात्॥

३४३४-वेदमें आशीर्लिङ् परे रहते धातुके उत्तर अङ् प्रत्यय हो, "वच उम् २४५४" से वच्को उम् होकर, यथा-मंत्रं वोचेमाग्नये।

दृश् धातुके उत्तर अक् प्रत्यय हो आशीर्लिङ् परे रहते * यथा-पितरञ्च दृशेयं मातरञ्च। अङ् परे रहते तो "ऋदृशो-ङि० २४०६" इस सूत्रसे गुण होजाता॥

३४३५ छन्दस्युभयथा।३।४।११७॥

धात्वधिकारे उक्तः प्रत्ययः सार्वधातुकार्ध-धातुकोभयसंज्ञः स्यात्। वर्धन्तुत्वा सुष्टुतयः। वर्धयन्त्वित्यर्थः। आर्धधातुकत्वाण्णिलोपः। विशृण्विरे। सार्वधातुकत्वात् श्नुः श्नुभावश्च। हुश्नुवोरिति यण्॥ आदृगमहनजनः कि-किनौ लिट् च। ३।२।१७१॥ आदन्तादृवर्णान्ताद्गमादेश्च किकिनौ स्तस्तौ च लिड्वत्। बभ्रिर्वज्रम्। पपिः सोमम्। ददि-र्गाः। जग्मिर्युवा। जज्ञिर्वृत्रममित्रियम्। जज्ञिः। लिड्वद्भावादेव सिद्धे ऋच्छत्यॄतामिति गुणबाध-नार्थं किस्वम्। बहुलं छन्दसीत्युत्वम्। ततुरिः। जगुरिः॥

३४३५-वेदमें धात्वधिकारमें उक्त प्रत्ययकी सार्वधातुक और आर्धधातुक दोनों संज्ञा हों, यथा-वर्द्धन्तु त्वा सुष्टुतयः, अर्थात् वर्द्धयन्तु। आर्धधातुकत्वके कारण णिका लोप हुआहै। विशृण्विरे, यहां सार्वधातुकत्वके कारण श्नु प्रत्यय और श्नु आदेश और "हुश्नुवोः० ३३८७" इस सूत्रसे यण् हुआहै॥

वेदमें आकारान्त, ऋवर्णान्त, गम्, हन्, जन् धातुओंके उत्तर कि और किन् प्रत्यय हो, और प्रत्यय लिट्की समान हो, ३१५१ बभ्रिर्वज्रम्। पपिः सोमम्। ददिर्गाः। जग्मिर्युवा। जज्ञिर्वृत्रममित्रियम्। जज्ञिः। लिटवद्भावसे ही सिद्ध होनेपर भी "ऋच्छत्यॄताम् २३८३" इस सूत्रसे गुणबाधनार्थ कित्व कियाहै। "बहुलं छन्दसि" इससे उत्व होकर-ततुरिः। जगुरिः॥

३४३६ तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः।३।४।९॥

से। वक्षे रायः। सेन्। ता वामेषे। असे। शरदो जीवसे धाः। असेन्नित्त्वादाद्युदात्तः। क्से। प्रेषे। कसेन्। गवामिव श्रियसे। अध्यै। अध्यैन्। जठरं पृणध्यै। पक्षे आद्युदात्तम्। कध्यै। कध्यैन्। आहुवध्यै। पक्षे नित्स्वरः। शध्यै। राधसः सह मादयध्यै। शध्यैन्। वायवे पिबध्यै। तवै। दातवा उ। तवेङ्। सूतवे। तवेन्। कर्तवे॥

३४३६-वेदमें तुमर्थमें अर्थात् भावमें (भावार्थमें "कर्त्तरि कृत् २८३२" इस सूत्रसे कर्तामें तुमुन् विधानके कारण किस प्रकारसे भावार्थ है अत एव इस स्थलमें "अव्य-यकृतो भावे" इस सूत्रसे भावमें तुमुन् विधान हुआ है। धातुके उत्तर से, सेन्, असे, असेन्, क्से, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ् और तवेन् यह १५ प्रत्यय हों, यथा-से-"वक्षे रायः" वचः से-कुत्व और षत्व। (लोकमें वक्तुम्) सेन्-"तावामेषे" (एतुम्) असे "शरदो जीवसे धाः" (जीवितुम्) असेन्-प्रत्यय होनेपर आदि उदात्त होगा। क्से-प्रेषे (प्रैतुम्) कसेन्-गवामिव श्रियसे (श्रयितुम्)। अध्यै-अध्यैन्-"जठरं पृण-ध्यै" (पूणितुम्)। पक्षमें आदि वर्ण उदात्त होगा। कध्यै-कध्यैन्-आहुवध्यैहु+उवङ् (आह्वातुम्) पक्षमें निस्वर। शध्यै-"राधसः। सहमादयध्यै" मदी+ण्यन्त+शध्यै प्रत्यय (मादयितुम्) शध्यैन्-वायवे पिबध्यै पा+श+(२३६०) (पातुम्) तवै-दातवा उ दा+तवै आय आदेश "लोपः शाकल्यस्य" इससे यकारका लोप होगा। (दातुम्) तवेङ् सूतवे (सोतुम्) तवेन्-कर्त्तवे। (कर्त्तुम्)॥

३४३७ प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै । ३ । ४ । १२ ॥

एते तुमर्थे निपात्यन्ते । प्रयातुं रोढुमव्यथितु-मित्यर्थः ॥

३४३७–वेदमें प्रयै, रोहिष्यै और अव्यथिष्यै यह पद तुमर्थमें निपातनसे सिद्ध हों । लोकमें प्रयातुम्, रोढुम्, अव्यथितुम् । प्रयै=प्र+या+कै ॥

३४३८ दृशे विख्ये च ।३।४।११॥

द्रष्टुं विख्यातुमित्यर्थः ॥

३४३८–दृशे विख्ये यह दो पद वेदमें तुमर्थमें निपातनसे सिद्ध हों, लोकमें–द्रष्टुम् । विख्यातुम् । दृश्+क–कित् होनेसे गुण न हुआ ॥

३४३९ शकि णमुल्कमुलौ ।३।४।१२।।

शक्नोतावुपपदे तुमर्थे एतौ स्तः । विभाजं नाशकत् । अपलुपं नाशकत् । विभक्तुमपलोप्तु-मित्यर्थः ॥

३४३९–वेदमें शक धातु उपपद रहते तुमर्थमें धातुके उत्तर णमुल् और कमुल् प्रत्यय हो, यथा–" विभाजम् नाशकत् " । " अपलुपम् नाशकत् " । लोकमें विभक्तुम् । अपलोप्तुम् । विभाजम्=वि+भज+णमुल् "अत उपधायाः" इससे वृद्धि होगी ॥

३४४० ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ।३।४।१३॥

ईश्वरो विचरितोः । ईश्वरो विलिखः । विचरितुं विलेखितुमित्यर्थः ॥

३४४०–वेदमें ईश्वर शब्द उपपद रहते धातुके उत्तर तुमर्थमें तोसुन् और कसुन् प्रत्यय हों, यथा–"ईश्वरो विचरितोः"।"ईश्वरो विलिखः"। लोकमें विचारितुम् । विलेखितुम् । विचरितोः=वि+चर+इट्+तोसुन्। विलिखः=वि+लिख+कसुन् कित्व होनेसे गुणका निषेध । "क्त्वातो० (४५०)" इससे अव्यय "अव्ययादाप्सुपः"इससे विभक्तिका लोप"न लुमता० (२६३) " इस निषेधसे " अत्वसन्त० (४२९)" इससे दीर्घ न हुआ ॥

३४४१ कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः । ३ । ४ । १४ ॥

न म्लेच्छितवै । अवगाहे । दिदृक्षेण्यः । भूर्यस्पष्टकर्त्वम् ॥

३४४१–वेदमें कृत्य प्रत्ययके अर्थमें अर्थात् भाव और कर्म्ममें धातुके उत्तर तवै, केन्, केन्य और त्वन् प्रत्यय हों, यथा–"न म्लेच्छितवै" (म्लेच्छितव्यम्) अवगाहे (अवगाह्यम्) । दिदृक्षेण्यः । भूर्य्यस्पष्ट कर्त्वम् । कार्य्यम् । दृश्+सन्+केन्य+"अतो लोपः" ॥

३४४२ अवचक्षे च । ३ । ४ । १५ ॥

रिपुणा नावचक्षे । अवख्यातव्यमित्यर्थः ॥

३४४२–कृत्यार्थमें अर्थात् भाव और कर्म्ममें अवपूर्वक चक्ष धातुके उत्तर निपातनसे एश् प्रत्यय हो, शित्वके कारण सार्वधातुक संज्ञा होगी, इस कारण चक्ष धातुके स्थानमें ख्याञादेश नहीं होगा, यथा–रिपुणा नावचक्षे । लोकमें अवख्यातव्यम् ॥

३४४३ भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् । ३।४।१६॥

आसंस्थातोः सीदन्ति । आसमाप्तेः सीदन्तीत्यर्थः । उदेतोः । अपकर्तोः। प्रवदितोः । प्रचरितोः । होतोः । आतमितोः । काममाविजनितोः संभवामः ॥

३४४३–इस स्थलमें कृत्यार्थकी निवृत्ति हुई । भावलक्षणार्थमें वर्त्तमान स्था, इण्, कृञ्, वद, चर, हु, तम और जन धातुके उत्तर तुमर्थमें तोसुन् प्रत्यय हो, यथा–आसंस्थातोः–सीदन्ति (आसंस्थातुम्) अर्थात् समाप्ति पर्य्यन्त अवसन्न होता है । इसी प्रकार उदेतोः (उदेतुम्) अपकर्त्तोः (अपकर्त्तुम्) अवदितोः (अवदितुम्) प्रचरितोः (प्रचरितुम्) होतोः (होतुम्) । आतमितोः (आतमितुम्) "काममाविजनितोः सम्भवामः"(जनितुम्)॥

३४४४ सृपितृदोः कसुन् । ३ । ४ । १७॥

भावलक्षणे इत्येव । पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । पुरा जतृभ्य आतृदः ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

३४४४–भावलक्षणार्थमें वर्त्तमान (गत्यर्थ) सृप और (हिंसार्थ) तृद धातुके उत्तर तुमर्थमें कसुन् प्रत्यय हो, यथा–पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्–यजु० १ । २८ । (विसृप्तुम्) (गमनावधि) पुरा जतृभ्य आतृदः । (आतर्त्तुम्) (हिंसापर्य्यन्त) इत्यादि ॥

इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

३४४५ रात्रेश्चाऽजसौ । ४ । १ । ३१ ॥

रात्रिशब्दान्ङीप्स्यात् अजसिविषये छन्दसि । रात्री व्यख्यदायती । लोके तु कृदिकारादिति ङीष्यन्तोदात्तः ॥

३४४५–वेदमें अजस्विषयमें अर्थात् प्रथमाके बहुवचनसे भिन्न विभक्तिविषयमें रात्रि शब्दके उत्तर नित्य ङीप् प्रत्यय हो, यथा–"रात्री व्यख्यदायती" किन्तु लौकिक प्रयोगमें विकल्प करके "कृदिकारात्०" इस सूत्रसे ङीष् प्रत्यय होनेपर अन्तोदात्त होगा ॥

३४४६ नित्यं छन्दसि । ४ । १ ।४६॥

बह्वादिभ्यश्छन्दसि विषये नित्यं ङीष् । बह्वीषु हित्वा । नित्यग्रहणमुत्तरार्थम् ॥

३४४६–बहु आदि शब्दोंके उत्तर वैदिक प्रयोगमें नित्य ङीष् हो, यथा–"बह्वीषु हित्वा" उत्तर सूत्रमें अनुवृत्तिके निमित्त इस स्थलमें नित्य शब्दका ग्रहण कियाहै ॥

३४४७ भुवश्च । ४ । १ । ४७ ॥

ङीष् स्यात् छन्दसि । विभ्वी । प्रभ्वी । विप्रसंभ्य इति डुप्रत्ययान्तं सूत्रेऽनुक्रियते उत इत्यनुवृत्तेः । उवङादेशस्तु सौत्रः ॥ मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च ॥*॥ ङीषो लित्त्वमानुक् चागमः । लित्स्वरः । रथीरभून्मुद्गलानी ॥

३४४७-वेदमें भू धातुनिष्पन्न शब्दके उत्तर नित्य ङीष् हो, यथा-विभ्वी । प्रभ्वी । वि+प्र+' सम्पूर्वक भू धातुके उत्तर डु प्रत्यय हो, क्योंकि सूत्रके द्वारा डु प्रत्ययान्त पदका ही अनुसरण होताहै । "वोतो गुणवचनात् (५०२)" इस सूत्रसे उत् पदकी अनुवृत्तिके कारण उवङ् आदेश सूत्रके अनुसार ही होताहै ॥

"मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च" मुद्गल शब्दसे वेदमें नित्य ङीष् हो, और आनुक्का आगम हो वह ङीष् लित् हो * यह "इन्द्रवरुण०"इत्यादि मूलका वार्तिक है । अत एव इस सूत्रके अनुसार नित्य ङीष् होगा, और ङीष्के स्थानमें नित्य लित्व और आनुक् आगम होगा, लित् परे रहते आनुक्के आकारको उदात्त स्वर होगा । यथा-"रथीरभून्मुद्गलानी" ॥

३४४८ दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि । ४ । १ । ५९ ॥

संयोगोपधत्वादप्राप्तो ङीष्विधीयते । आसुरी वै दीर्घजिह्वी देवानां यज्ञवाट् ॥

३४४८-वेदमें दीर्घजिह्वी पद निपातनसे सिद्ध हो । संयोगोपधत्वके कारण दीर्घजिह शब्दके उत्तर ङीष्की अप्राप्ति हुई थी । किन्तु इस स्थलमें वह पुनः विहित हुआ है । यथा-"आसुरी वै दीर्घजिह्वी देवानां यज्ञवाट्" ॥

३४४९ कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि । ४ । १ । ७१ ॥

ऊङ् स्यात् । कद्रूश्च वै कमण्डलूः ॥ गुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ गुग्गुलूः । मधूः । जतूः । पतयालूः ॥ अव्ययात्यप् ॥ आविष्ट्यस्योपसंख्यानं छन्दसि ॥*॥ आविष्ट्यो वर्धते ॥

३४४९-वेदमें कद्रु और कमंडलु शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें ऊङ् हो, यथा-"कद्रूश्च वै कमंडलूः" ॥

गुग्गुलु, मधु, जतु और पतयालु शब्दके उत्तर स्त्रीलिंगमें ऊङ् हो * यथा-गुग्गुलूः, मधूः, जतूः और पतयालूः । "अव्ययात्त्यप् (१३२४)" इस सूत्रमें त्यप् प्रत्ययका उल्लेख किया है, तथापि इस स्थानमें अनुवृत्ति प्रदर्शनार्थ उसका स्मरण कराया है ॥

वेदमें आविष्ट्य पदका उपसंख्यान हो * । यथा-"आविष्ट्यो वर्धते" आविर्भूत इत्यर्थः ॥

३४५० छन्दसि ठञ् । ४ । ३ । १९ ॥

वर्षाभ्यष्ठकोपवादः । स्वरे भेदः । वार्षिकम् ॥

३४५०-वेदमें वर्षादि शब्दोंके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, यह "वर्षाभ्यष्ठक्" इस सूत्रसे सामान्यतः प्राप्त ठक् प्रत्ययका अपवाद है । ठक् और ठञ् इन दोनों प्रत्ययोंका विशेष क्या है, इस कारण कहते हैं, स्वरविषयमें कुछ भेद होगा। अर्थात् ठञ् करनेपर "ञ्नित्यादिर्नित्यम्" इस सूत्रके अनुसार आदि उदात्त और ठक् करनेपर "कितः" इस सूत्रसे अन्तोदात्त होगा । यही विशेष है, यथा-वार्षिकम् । ठ प्रत्ययको इक् हुआ ॥

३४५१ वसन्ताच्च । ४ । ३ । २० ॥

ञ् स्याच्छन्दसि । वासन्तिकम् ॥

३४५१-वेदमें वसन्त शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो । यथा-वासन्तिकम् ॥

३४५२ हेमन्ताच्च । ४ । ३ । २१ ॥

छन्दसि ठञ् । हैमन्तिकम् । योगविभाग उत्तरार्थः ॥ शौनकादिभ्यश्छन्दसि । ४ । ३ । १०६ ॥ णिनिः प्रोक्तेर्थे । छाणोरपवादः । शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः । वाजसनेयिनः । छन्दसि किम् । शौनकीया शिक्षा ॥

३४५२-वेदमें हेमन्त शब्दके उत्तर ठञ् प्रत्यय हो, यथा-हैमन्तिकम् । इस स्थानमें "वसन्तहेमन्ताभ्याम्" इस प्रकार एक सूत्र न करके भिन्न २ सूत्र करण केवल परसूत्रमें अनुवृत्तिके निमित्त है ॥

वेदमें प्रोक्त अर्थात् तत्कर्तृक कथित अर्थमें शौनकादि शब्दोंके उत्तर नित्य णिनि प्रत्यय हो (१४८६) यह सूत्र छ और अण् प्रत्ययका अपवाद है, यथा-शौनकेन प्रोक्तमधीयते=शौनकिनः । (१४८३) वाजसनेयिनः । लौकिकमें शौनकीया (वृद्धाच्छः) अर्थात् शिक्षा ॥

३४५३ द्व्यचश्छन्दसि ।४।३। १५० ॥

विकारे वा मयट् स्यात् । शरमयं बर्हिः । यस्य पर्णमयी जुहूः ॥

३४५३-वेदमें दो स्वरविशिष्ट शब्दके उत्तर विकारार्थमें विकल्प करके मयट् प्रत्यय हो, यथा-शरमयं बर्हिः । "यस्य पर्णमयी जुहूः" ॥

३४५४ नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात् ।४।३।१५१॥

उत्वान् उकारवान् । मौञ्जं शिक्यम् । वर्ध्रं चर्म तस्य विकारो वार्ध्री रज्जुः । बैल्वो यूपः ॥ सभायायः ॥

३४५४-वेदमें उकार विशिष्ट प्रातिपदिक और वर्ध्र तथा बिल्व शब्दके उत्तर पूर्व सूत्रसे प्राप्त मयट् प्रत्यय न हो, यथा-मौञ्जम् । (मुञ्ज+अण्) अर्थात् शिक्य । वर्ध्र चर्म्म तस्य विकारो वार्ध्री अर्थात् रज्जुः । बैल्वः । अर्थात् यूपः । सभा शब्दके उत्तर य प्रत्यय हो (१६५७) ॥

३४५५ ढश्छन्दसि । ४ । ४ । १०६ ॥

सभेयो युवा ॥

३४५५–वेदमें सप्तम्यन्त सभा शब्दके उत्तर ढ प्रत्यय हो, यथा–सभेयः अर्थात् युवा ॥

३४५६ भवे छन्दसि ।४।४ । ११० ॥

सप्तम्यन्ताद्भवार्थे यत् । मेध्याय च विद्युत्याय च । यथायथं शैषिकाणामणादीनां च घादीनामपवादोयं यत् । पक्षे तेऽपि भवन्ति । सर्वविधीनां छन्दसि वैकल्पिकत्वात् । तद्यथा । मुञ्जवान्नाम पर्वतः तत्र भवो मौञ्जवतः । सोमस्येव मौञ्जवतस्य भक्षः । आचतुर्थसमाप्तेश्छन्दोऽधिकारः ॥

३४५६–वेदमें सप्तम्यन्त शब्दके उत्तर भवार्थमें यत् प्रत्यय हो, यथा–"मेध्याय च विद्युत्याय च" यजु० १६ । ३८ । यह यत् प्रत्यय यथायोग्य शैषिक का और अणादि प्रत्ययका और घादि प्रत्ययका अपवाद है । विकल्प पक्षमें यह समस्त प्रत्यय भी यथा क्रमसे होंगे । वेदमें सब विधिकी ही वैकल्पिकत्व है । यथा–मुञ्जवान् नाम पर्वतः तत्र भवः मौञ्जवतः । मुञ्जवत्+अण् "सोमस्येव मौञ्जवतस्य भक्षः" । चतुर्थाध्यायकी समाप्ति पर्य्यन्त छन्दोऽधिकार अर्थात् छन्दः इस शब्दकी अनुवृत्ति होगी ॥

३४५७पाथोनदीभ्यां ड्यण्।४।४।१११।

तमु त्वा पाथ्यो वृषा । चनो दधीत नाद्यो गिरो मे । पाथसि भवः पाथ्यः । नद्यां भवो नाद्यः ॥

३४५७–वेदमें सप्तम्यन्त पाथस् और नदी शब्दके उत्तर भवार्थमें ड्यण् प्रत्यय हो, यथा–"तमुत्वा पाथ्यो वृषा" । "चनो दधीतनाद्यो गिरो मे" पाथसि भवः=पाथ्यः । नद्यां भवो नाद्यः ॥

३४५८ वेशन्तहिमवद्भ्यामण् । ४ । ४ । ११२ ॥

भवे । वैशन्तीभ्यः स्वाहा । हैमवतीभ्यः स्वाहा ॥

३४५८–वेदमें वेशन्त और हिमवत् शब्दोंके उत्तर भवार्थमें अण् प्रत्यय हो, यथा–"वैशन्तीभ्यः स्वाहा" । "हैमवतीभ्यः स्वाहा" । विश+झच्=वेशन्त (पल्वल) तत्र भवा आपः वैशन्त्यः ॥

३४५९ स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ । ४ । ४ । ११३ ॥

पक्षे यत् । ड्यड्ड्ययोस्तु स्वरे भेदः । स्रोतसि भवः स्रोत्यः-स्रोतस्यः ॥

३४५९–वेदमें सप्तम्यन्त स्रोतस् शब्दके उत्तर भवार्थमें विकल्प करके ड्यत् ड्य प्रत्यय हों, और विकल्प करके ड्यत् ड्य न होनेपर यत् प्रत्यय होगा, ड्यत् और ड्य प्रत्ययके स्वरमें भेद होगा, यथा–स्रोतसि भवः=स्रोत्यः, स्रोतस्यः ॥

३४६० सगर्भसयूथसनुताद्यन् । ४ । ४ । ११४ ॥

अनुभ्राता सगर्भ्यः । अनुसखा सयूथ्यः । यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुः । नुतिर्नुतम् । नपुंसके भावे क्तः । सगर्भादयस्त्रयोपि कर्मधारयाः । समानस्य छन्दसीति सः । ततो भवार्थे यन् । यतोपवादः ॥

३४६०–वेदमें सप्तम्यन्त सगर्भ, सयूथ और सनुत शब्दके उत्तर भवार्थमें यत् प्रत्यय हो, अनुभ्राता सगर्भ्यः । अनुसखा सयूथ्यः । यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुः । नुतिः अर्थात् नुतम् । क्लीब लिङ्गमें भवार्थमें क्त प्रत्यय हुआ । सगर्भादि तीनों ही कर्म्मधारय समास निष्पन्न हैं । "समानस्य छन्दसि" इस सूत्रसे समान शब्दको स आदेश हुआ तत्पश्चात् भवार्थमें यन् प्रत्यय होगा । यह यन् प्रत्यय यत् प्रत्ययका अपवाद है । गर्भः='अतिगृभ्यां भन्' गिरति गीर्यते वा गर्भः । युता भवन्त्यस्मिन्निति यूथम् । समानश्चासौ गर्भश्च तत्र भवः सगर्भ्यः ॥

३४६१ तुग्राद् घन् । ४ । ४ । ११५॥

भवेऽर्थे । पक्षे यदपि । आ वः शर्मं वृषभं तुग्र्यास्विति बह्वृचाः ।तुग्रियास्विति शाखान्तरे । घनाकाशयज्ञवरिष्ठेषु तुग्रशब्द इति वृत्तिः ॥

३४६१–वेदमें तुग्र शब्दके उत्तर भवार्थमें विकल्प करके घन् प्रत्यय हो, विकल्प करके घन्के अभाव पक्षमें यत् प्रत्यय होगा । यथा–"आवः समं वृषभं तुग्र्यासु" यह बह्वृच् अर्थात् ऋग्वेदके जाननेवाले कहतेहैं । शाखान्तरमें "तुग्रियासु" । तुग्र शब्दसे घन, आकाश, यज्ञ और वरिष्ठ अर्थ समझना ॥

३४६२ अग्राद्यत् । ४ । ४ । ११६ ॥

३४६२–अग्र शब्दके उत्तर भवार्थमें यत् प्रत्यय हो ॥

३४६३ घच्छौ च । ४ । ४ । ११७ ॥

चाद्यत् । अग्रे भवोऽग्र्यः।अग्रियः । अग्रीयः ॥

३४६३–अग्र शब्दके उत्तर भवार्थमें घ, छ और चकार निर्देशके कारण यत् प्रत्यय होगा, यथा–अग्रे भवः=अग्र्यः । अग्रियः । अग्रीयः ॥

३४६४ समुद्राभ्राद्घः । ४ । ४ ।११८ ॥

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणम् । नानदतो अभ्रियस्येव घोषाः ॥

३४६४–वेदमें समुद्र और अभ्र शब्दके उत्तर भवार्थमें घ प्रत्यय हो, यथा–"समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणम्" नान-

दतोऽभ्रियस्येव घोषाः । समुदतीति समुद्रः 'स्फायितञ्चि०' इससे रक् । अपो बिभर्त्ति इत्यभ्रम् ॥

३४६५ बर्हिषि दत्तम् । ४ । ४।११९॥

प्राग्घिताद्यदित्येव।बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ॥

३४६५-वेदमें दत्त अर्थात् अर्पित इस अर्थमें बर्हिष् शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, "प्राग्घिताद्यत् (१६२६)" इस सूत्रसे हित शब्दके पूर्व सूत्र पर्य्यन्त समस्त सूत्रोंसे यत् प्रत्यय होगा। यथा-"बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु"। बर्हिष शब्द बृह धातुके नकारका लोप करके इस भागान्त शब्दके उत्तर यत् प्रत्ययसे सिद्ध हुआहै ॥

३४६६ दूतस्य भागकर्मणी।४।४।१२०॥

भागोंऽशः । दूत्यम् ॥

३४६६-षष्ठ्यन्त दूत शब्दके उत्तर भाग (अंश) और कर्म्म अर्थ होनेपर यत् प्रत्यय हो, भागार्थमें "तस्येदं (१५००)" इस सूत्रके अनुसार अण् प्रत्ययकी प्राप्ति होतीहै और कर्म्म होनेपर "दूतवणिग्भ्याञ्च" । इस सूत्रसे उपसंख्यानिक य प्रत्यय होताहै । किन्तु इस स्थलमें वह नहीं होगा । यथा-दूतस्य भागो दूत्यः । दूतस्य कर्म्म दूत्यम् ॥

३४६७ रक्षोयातूनां हननी।४।४।१२१॥

या ते अग्ने रक्षस्या तनूः । यातव्या ॥

३४६७-हननी इस अर्थमें रक्षस् और यातु शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, यथा-(रक्ष+असुन्=रक्षः) "कमितानि-मनि०" इत्यादि सूत्रसे (या+तुन्=यातु) (हन्यते अनया= हन्+ल्युट्=हननी) । रक्षसांम् हननी=रक्षस्या । इसी प्रकार यातूनां हननी=यातव्या । यथा-"या ते अग्ने रक्षस्या (राक्षस नाशिनी) तनूः" ॥

३४६८ रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये । ४ । ४ । १२२ ॥

प्रशंसने यत्स्यात् । रेवत्यादीनां प्रशंसनं रेवत्यम् । जगत्यम् । हविष्यम् ॥

३४६८-प्रशस्य अर्थात् प्रशंसार्थमें रेवती, जगती और हविष्या शब्दोंके उत्तर यत् प्रत्यय हो, यथा (प्र+शंस्+भावे क्यप्) (रयि शब्दात् मतुप्+ङीप्=रेवती) (गम्+शतृ+ ङीप्=जगती) । (हविषे हिता=हविस्+यत्=हविष्या) यथा-"रेवत्यादीनां प्रशंसनम्" इस अर्थमें रेवत्यम् । इसी प्रकार जगत्यम् । हविष्यम् ॥

३४६९ असुरस्य स्वम्।४।४। १२३ ॥

असुर्य्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ॥

३४६९-वेदमें असुरको स्व अर्थात् धन इस अर्थमें असुर शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय हो, यथा-असुर्य्यं देवेभिर्धायि विश्वम् । असेरुरन् ॥

३४७० मायायामण ।४ । ४ । १२४ ॥

आसुरी माया ॥

३४७०-("मीयतेऽनया") इस अर्थमें माङ्+उणादिक+य) । असुरकी माया अर्थ होनेपर असुर शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हो, यह पूर्वसूत्रका अपवाद है । यथा-आसुरी माया । आसुरी "टिड्ढाणञ्०" इससे ङीप् ॥

३४७१ तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः ।४।४।१२५॥

वर्चस्वानुपधानो मन्त्र आसामिष्टकानां वर्चस्याः । ऋतव्याः ॥

३४७१-मत्वन्त प्रथमान्त शब्दके उत्तर आसाम् इस षष्ठ्यर्थमें यत् प्रत्यय हो, वह प्रथमान्तार्थ उपधान मन्त्र यदि हो, और आसाम् इस षष्ठ्यर्थ करके निर्दिष्ट यदि इष्टका हो, और मतुका लुक् हो, यथा-वर्चस्वानुपधानो मंत्र आसामिष्टकानाम् इति=वर्चस्याः । ऋतव्याः । वर्चस्वान् अर्थात् वर्चस् शब्दविशिष्ट कुम्भादिके आरोपणमंत्र विशेषका नाम ऋतव्याः। उपधीयते अनेन उपधानम् । ऋतव्या ऋतुशब्दो यस्मिन्मन्त्रेस्ति स ऋतुमान् मधुश्च माधवश्च इत्यादि । (यजु० १३।२५) ॥

३४७२ अश्विमानण् ।४ ।४ । १२६ ॥

आश्विनीरुपदधाति ॥

३४७२-जिस मंत्रमें अश्वि शब्द है उसका नाम अश्विमान् मंत्र है, इस मंत्रवाचक प्रथमान्त अश्विमत् शब्दके उत्तर आसाम् अर्थात् इस षष्ठ्यर्थमें इष्टकादिका आरोपणमंत्र होनेपर उसके उत्तर अण् प्रत्यय हो, और मतु प्रत्ययका लुक् हो, आश्विनीरुपदधाति । ध्रुवक्षिति० (यजु० १४ । १) यह मन्त्र है, आश्विनीः । "अत इनिठनौ"इससे इनि मतु० और लुक् "इनण्यनपत्ये" इससे प्रकृतिभाव ॥

३४७३ वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप् ।४। ४ । १२७ ॥

तद्वानासामिति सूत्रं सर्वमनुवर्तते । मतोरिति पदमावर्त्य पञ्चम्यन्तं बोध्यम् । मतुबन्तो यो मूर्धशब्दस्ततो मतुप्स्यात्प्रथमस्य मतोर्लुक्च वयश्शब्दवन्मन्त्रोपधेयास्विष्टकासु । यस्मिन्मन्त्रे मूर्द्धवयःशब्दौ स्तस्तेनोपधेयासु मूर्द्धन्वतीरुपदधातीति प्रयोगः ॥

३४७३-तद्वानासाम् इत्यादि सूत्र समस्त ही अनुवर्त्तित होतेहैं । मतोः इस पदकी आवृत्ति करके षष्ठीके स्थानमें पञ्चमी विभक्ति विपरिणामसे होगी । वयस् शब्दविशिष्ट मंत्रसे उपधेय अर्थात् आरोप्य इष्टकादि विषयमें मतुप् प्रत्ययान्त जो मूर्द्धन् शब्द उसके उत्तर मतुप् प्रत्यय हो, और प्रथम मतुप् प्रत्ययका लुक् हो, अर्थात् जिसमें मूर्द्धन् और वयस् शब्द हैं उस मंत्रद्वारा ही आरोपित इष्टकादि विषयमें मतुप् प्रत्यय हो और प्रथम मतुप्का लुक् हो, यथा-"मूर्द्धन्वतीरुपदधाति" इत्यादि ॥ अनो नुट् इससे नुट्का आगम ॥

३४७४ मत्वर्थे मासतन्वोः।४।४।१२८॥

नभोऽभ्रम् । तदस्मिन्नस्तीति नभस्यो मासः। ओजस्या तनूः ॥

३४७४–वेदमें मास और तनू अर्थ होनेपर जिस अर्थमें मतुप् विहित हुआहै उस अर्थमें ही प्रथमान्त पदके उत्तर यत् प्रत्यय हो, यथा–नभोऽभ्रम् तदस्मिन्नस्ति इति नभस्यः। अर्थात् मासविशेष । इसी प्रकार ओजोऽस्त्यस्याम् अस्याः=वा ओजस्या अर्थात् तनूः ॥

३४७५ मधोर्ञ च । ४ । ४ । १२९ ॥

माधवः । मधव्यः ॥

३४७५–वेदमें मत्वर्थमें मधु शब्दके उत्तर ञ और यत् प्रत्यय हो, यथा–मधु अस्यास्ति इति मधु+ञ=माधवः । मधु+यत्=माधव्यः । "ओर्गुणः" "वान्तो यि प्रत्यये" इससे अवादेश हुआ ॥

३४७६ ओजसोऽहनि यत्खौ । ४ । ४ । १३० ॥

ओजस्यमहः । ओजसीनं वा ॥

३४७६वेदमें अहन् अर्थात् दिन अर्थ होनेपर मत्वर्थमें ओजस् शब्दके उत्तर यत् और ख प्रत्यय हो, यथा–ओजस्+यत्=ओजस्यम् अर्थात् दिन। ओजस्+ख=ओजसीनं वा ॥

३४७७ वेशोयशआदेर्भगाद्यल् । ४। ४ । १३१ ॥

यथासंख्यं नेष्यते । वेशो बलं तदेव भग इति कर्मधारयः । वेशोभग्यः यशोभग्यः ॥

३४७७–वेदमें वेशस् और यशस् शब्दके परे स्थित भग शब्दके उत्तर मत्वर्थमें यल् प्रत्यय हो । प्रत्ययका लकार स्वरार्थ है ।(वेशो बलं तदेव भग ऐसे कर्मधारय समासमें) यथा–वेशोभग्यः । यशोभग्यः ॥

३४७८ ख च । ४ । ४ । १३२ ॥

क्रमनिरासार्थश्च वेशोभगीनः। यशोभगीनः॥

३४७८–वेदमें वेशस् और यशस् शब्दके उत्तर जो भग तदन्तके उत्तर ख प्रत्यय हो, भिन्न सूत्रकरण परवर्त्ती सूत्रमें अनुवृत्तिके और क्रमभङ्गके निमित्त है । यथा–वेशोभगीनः । यशोभगीनः (ख) ॥

३४७९ पूर्वैः कृतमिनयौ च । ४ । ४ । १३३ ॥

गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः । ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासः ॥

३४७९–वेदमें तृतीयान्त पूर्व शब्दसे कृतम् इस अर्थमें इन् और इय प्रत्यय हो । और चकारनिर्देशके कारण यत् और ख प्रत्यय होगा, यथा–"गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः" । "ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासः" । (पूर्वैः कृताः पूर्विणा तैः) ॥

३४८० अद्भिः संस्कृतम् ।४।४।१३४॥

यस्येदमप्यं हविः ॥

३४८०–वेदमें तृतीयान्त अप् शब्दके उत्तर संस्कृतम् इस अर्थमें यत् प्रत्यय हो, यथा–"यस्येदमप्यं हविः" ॥

३४८१ सहस्रेण सम्मितौ घः । ४ । ४ । १३५ ॥

सहस्रियासो अपां नोर्मयः । सहस्रेण तुल्या इत्यर्थः ॥

३४८१–वेदमें तृतीयान्त सहस्र शब्दके उत्तर सम्मिति इस अर्थमें घ प्रत्यय हो, सम्मिति शब्दसे तुल्य समझना।यथा–सहस्रियासो अपां नोर्मयः । अर्थात् सहस्रकी तुल्य ॥

३४८२ मतौ च । ४ । ४ । १३६ ॥

सहस्रशब्दान्मत्वर्थे घः स्यात् । सहस्रमस्यास्तीति सहस्रियः ॥

३४८२–वेदमें सहस्र शब्दके उत्तर मत्वर्थमें घ प्रत्यय हो, सहस्रमस्यास्तीति=सहस्रियः ॥

३४८३ सोममर्हति यः । ४।४।१३७ ॥

सोम्यो ब्राह्मणः । यज्ञार्ह इत्यर्थः ॥

३४८३–द्वितीयाविभक्त्यन्त सोम शब्दके उत्तर अर्हति अर्थमें य प्रत्यय हो, यथा–सोम्यो ब्राह्मणः । अर्थात् यज्ञार्हः ॥

३४८४ मये च । ४ । ४ । १३८ ॥

सोमशब्दाद्यः स्यान्मयडर्थे । सोम्यं मधु । सोममयमित्यर्थः ॥

३४८४–वेदमें सोमशब्दके उत्तर मयडर्थमें य प्रत्यय हो, यथा–सोम्यं मधु । सोम्य अर्थात् सोममय ॥

३४८५ मधोः । ४ । ४ । १३९ ॥

मधुशब्दान्मयडर्थे यत्स्यात् । मधव्यः । मधुमय इत्यर्थः ॥

३४८५–वेदमें मधु शब्दके उत्तर मयट् प्रत्ययार्थमें यत् प्रत्यय हो, यथा–मधव्यः । अर्थात् मधुमयः ॥

३४८६ वसोः समूहे च । ४ ।४।१४०॥

चान्मयडर्थे यत् । वसव्यः ॥ अक्षरसमूहे छन्दस उपसंख्यानम् ॥ * ॥ छन्दःशब्दादक्षरसमूहे वर्तमानात्स्वार्थे यदित्यर्थः । आश्रावयेति चतुरक्षरमस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरं येयजामहे इति पञ्चाक्षरं यजेति द्व्यक्षरं द्व्यक्षरो वषट्कार एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः ॥

३४८६–वेदमें वसु शब्दके उत्तर समूहार्थमें और चकारनिर्देशके कारण मयडर्थमें यत् प्रत्यय हो, यथा–वसव्यः अर्थात् वसु समूह । लोकमें, वसुमयः ।

अक्षर समूहार्थमें वर्त्तमान छन्दस शब्दके उत्तर स्वार्थमें

यत् प्रत्यय हो * यथा-छन्दस्यः । "आश्रावयेति चतुरक्षरम्" अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम्, यजेति द्व्यक्षरम्, ये यजामहे इति पञ्चाक्षरम्, यजेति द्व्यक्षरम्, द्व्यक्षरो वषट्कारः "एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः" यह सप्तदशाक्षर विशिष्ट वैदिक मंत्र प्रजापति यज्ञमें विहित हुआहै ॥

३४८७ नक्षत्राद् घः ।४।४।१४१॥

स्वार्थे । नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा ॥

३४८७-वेदमें नक्षत्र शब्दके उत्तर स्वार्थमें घ प्रत्यय हो, यथा-नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा ॥

३४८८ सर्वदेवात्तातिल् ।४।४।१४२॥

स्वार्थे । सविता नः सुवतु सर्वतातिम् । प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः ॥

३४८८-वेदमें सर्व शब्द और देव शब्दके उत्तर स्वार्थमें तातिल् प्रत्यय हो, यथा-"सविता नः सुवतु सर्वतातिम्" प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः" ॥

३४८९ शिवशमरिष्टस्य करे।४।४।१४३।

करोतीति करः । पचाद्यच् । शिवं करोतीति शिवतातिः । याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे । अथो अरिष्टतातये ॥

३४८९-वेदमें "करोति" इस अर्थमें शिव, शम् और अरिष्ट शब्दके उत्तर तातिल् प्रत्यय हो, यथा-शिवतातिः । शन्तातिः । अरिष्टतातिः । करोति (कृ+अच्)=करः । शिवं करोति=शिवतातिः । "याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे" । अथो अरिष्टतातये ॥

३४९० भावे च ।४।४।१४४॥

शिवादिभ्यो भावे तातिः स्याच्छन्दसि । शिवस्य भावः शिवतातिः । शन्तातिः । अरिष्टतातिः ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

३४९०-वेदमें शिवादि शब्दोंके उत्तर भाव अर्थमें ताति प्रत्यय हो, यथा-शिवस्य भावः=शिवतातिः । शन्तातिः । अरिष्टतातिः ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

३४९१ सप्तनोऽञ्छन्दसि ।५।१।६१॥

तदस्य परिमाणमिति वर्ग इति च । सप्तसाप्तानि असृजत् ॥ शन्शतोर्डिनिश्छन्दसि तदस्य परिमाणमित्यर्थे वाच्यः ॥ * ॥ पञ्चदशिनोऽर्धमासाः । त्रिंशिनो मासाः ॥ विंशतेश्चेति वाच्यम् ॥ * ॥ विंशिनोऽङ्गिरसः ॥ युष्मदस्मदोः सादृश्ये वतुब्वाच्यः ॥ * ॥ त्वावतः पुरूवसो। न त्वावाम् अन्यः यज्ञं विप्रस्य मावतः॥

३४९१-वेदमें प्रथमान्त सप्तन् शब्दके उत्तर अस्य परिमाणम् इस अर्थमें वर्ग अर्थ होनेपर अञ् प्रत्यय हो, (सप्तन्+अञ्) "नस्तद्धिते ६७९" इस सूत्रसे टिका लोप, तद्धितान्तत्वके कारण प्रातिपदिक संज्ञासे जस्, "जश्शसोः शिः ३१२" । "नपुंसकस्य० ३१४" नुम् उपधाको दीर्घ, यथा-"सप्तसाप्तानि असृजत्" । अर्थात् सप्तवर्गान् असृजत् ।

वेदमें तदस्य परिमाणम् । इस अर्थमें शन् और शत् भागके उत्तर डिनि प्रत्यय हो, यथा-पञ्चदशिनोऽर्द्धमासाः, पञ्चदशाहानि परिमाणमेषामिति । डिनि टिलोप, त्रिंशिनो मासाः । विंशति शब्दके उत्तर भी डिनि प्रत्यय हो, यथा-विंशिनोऽङ्गिरसः । डिति 'यस्येति च' से अल्लोप ॥

सादृश्य होनेपर युष्मद् और अस्मद् शब्दोंके उत्तर वतुप् प्रत्यय हो * । यथा-" त्वावतः पुरूवसो " "नत्वावाँ अन्यः" "यज्ञं विप्रस्य मावतः" त्वावत-"प्रत्योत्तरपदयोश्च" से त्वमादेश "आ सर्वनाम्नः" इस सूत्रसे आत्व ॥

३४९२ छन्दसि च ।५।१।६७॥

प्रातिपदिकमात्रात्तदर्हतीति यत् । सादन्यं विदथ्यम् ॥

३४९२-वेदमें "तदर्हति" इस अर्थमें प्रातिपदिक मात्रके उत्तर यत् प्रत्यय हो, यथा-"सादन्यम् विदथ्यम्" सादन्य अर्थात् यज्ञके योग्य ॥

३४९३ वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि । ५।१।९१॥

निर्वृत्तादिष्वर्थेषु । इद्वत्सरीयः ॥

३४९३-वेदमें निर्वृत्तादि (निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भावी) अर्थमें वत्सरान्त (इद्वत्सर, इदावत्सर, संवत्सर, परिवत्सर) शब्दोंके उत्तर छ प्रत्यय हो, यथा-इद्वत्सरीयः । इत्यादि ॥

३४९४ संपरिपूर्वात्ख च ।५।१।९२॥

चाच्छः । संवत्सरीणः । संवत्सरीयः । परिवत्सरीणः । परिवत्सरीयः ॥

३४९४-वेदमें सम् और परि पूर्वक वत्सरान्त शब्दोंके उत्तर निर्वृत्तादि अर्थमें ख और छ प्रत्यय हो, यथा-संवत्सरीणः, संवत्सरीयः । परिवत्सरीणः, परिवत्सरीयः ॥

३४९५ छन्दसि घस् ।५।१।१०६॥

ऋतुशब्दात्तदस्य प्राप्तमित्यर्थे।भागऋत्वियः॥

३४९५-वेदमें "तदस्य प्राप्तम्" इस अर्थमें ऋतु शब्दके उत्तर घ प्रत्यय हो, यथा-"भागऋत्वियः" ॥

३४९६ उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे । ५।१।११८॥

धात्वर्थविशिष्टे साधने वर्तमानात्स्वार्थे वतिः स्यात्। यदुद्वतो निवतः।उद्गतान्निर्गतानित्यर्थः॥

३४९६-वेदमें धात्वर्थ विशिष्ट साधनमें वर्तमान उपसर्गके उत्तर स्वार्थमें वति प्रत्यय हो, यथा-यदुद्वतो निवतः । उद्गतान्निर्गतान् इत्यर्थः ॥

३४९७ थट् च च्छन्दसि । ५।२।५०॥

नान्तादसंख्यादेः परस्य डटस्थट् स्यान्मट् च। पञ्चथम् । पञ्चमम् ॥ छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि । ५ । २ । ८९ ॥ अपत्यं परिपन्थिनम् । मा त्वा परिपरिणो विदन् ॥

३४९७–वेदमें संख्यावाचक शब्द पूर्वमें न हो ऐसे नकारान्त संख्यावाचक शब्दोंके परे स्थित डट् प्रत्ययको थट् और मट्का आगम हो, यथा–पञ्चथम् । पञ्चमम् ।

वेदमें प्रतिपक्ष अर्थात् शत्रु वाच्य होनेपर परिपन्थिन् और परिपरिन् शब्द निपातनसे सिद्ध हों (१८८९) यथा–अपत्यं परिपन्थिनम् । मा त्वा परिपरिणो विदन् ॥

३४९८ बहुलं छन्दसि । ५ ।२।१२२॥

मत्वर्थे विनिः स्यात्॥ छन्दोविन्प्रकरणेऽष्टामेखलाद्वयोभयरुजा हृदयानां दीर्घश्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इति दीर्घः । मंहिष्ठमुभयाविनम् । शुनमष्ट्राव्यचरत्॥छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ॥।*॥ ई । रथीरभूत् । सुमङ्गलीरियं वधूः । मघवानमीमहे ॥

३४९८–वेदमें मत्वर्थमें बहुल करके विनि प्रत्यय हो। वेदमें विन् प्रकरणमें अष्टामेखला, द्वय, उभय, रुजा, हृदय शब्दोंके उत्तर विनि प्रत्यय हो, और पूर्वस्वरको दीर्घ हो*यथा–मंहिष्ठमुभयाविनम् । शुनमष्ट्राव्यचरत् ।

वेदमें मत्वर्थमें ई और वनिप् प्रत्यय हो* यथा–ई–रथीरभूत् । सुमङ्गलीरियं वधूः । मघवानमीमहे ॥

३४९९ तयोर्दार्हिलौ च च्छन्दसि। ५ । ३ । २० ॥

इदंतदोर्यथासंख्यं स्तः । इदा हि व उपस्तुतिम् । तर्हि ॥

३४९९––वेदमें इदम् शब्दके उत्तर दा और तद् शब्दके उत्तर र्हिल् प्रत्यय हो, यथा–इदा हि व उपस्तुतिम् । तर्हि ॥

३५०० थाहेतौ च च्छन्दसि।५।३।२६॥

किमस्था स्याद्धेतौ प्रकारे च। कथा ग्रामं न पृच्छसि । कथा दाशेम ॥

३५००–वेदमें हेत्वर्थमें और प्रकारार्थमें किम् शब्दके उत्तर थाल् प्रत्यय हो, था–कथा ग्रामं न पृच्छसि । कथा दाशेम ॥

३५०१ पश्चपश्चा च च्छन्दसि।५।३।३३

अवरस्य अस्तात्यर्थे निपातौ । पश्च हि सः । नो ते पश्चा ॥ तुश्छंदसि । ५ । ३ ।५९ ॥ तृजन्तात्तृन्नन्ताच्च इष्ठन्नीयसुनौ स्तः । आसुतिं करिष्ठः । दोहीयसी धेनुः ॥

३५०१–वेदमें अस्ताति प्रत्ययके अर्थमें अवर शब्दके स्थानमें निपातनसे पश्च और पश्चा आदेश हो, यथा–पश्च हि नो ते पश्चा । वेदमें तृजन्त और तृन्नन्त शब्दके उत्तर इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय हो, (२००७) । यथा–आसुतिं करिष्ठः दोहीयसी धेनुः ॥

३५०२ प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दसि ५ । ३ । १११ ॥

इवार्थे । तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ॥

३५०२–वेदमें इवार्थमें प्रत्न, पूर्व, विश्व और इम शब्दके उत्तर थाल् प्रत्यय हो, यथा–तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ॥

३५०३ अमु च च्छन्दसि । ५।४। १२ ॥

किमेत्तिङव्ययघादित्येव । प्र तं नय प्रतरम् ॥

३५०३–वेदमें द्रव्यप्रकर्षमें वर्तमान किम् शब्द, एकारान्तशब्द, तिङन्त, अव्यय और घ (तरप् तमप्) प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर अमु प्रत्यय हो, यथा–"प्रतं नय प्रतरम्"॥

३५०४ वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि । ५ । ४ । ४१ ॥

स्वार्थे । यो नो दुरेवो वृकतिः । ज्येष्ठतातिं बर्हिषदम् ॥

३५०४–वेदमें वृक और ज्येष्ठ शब्दके उत्तर यथाक्रम स्वार्थमें तिल् और तातिल् प्रत्यय हो, यथा–यो नो दुरेवो वृकतिः । ज्येष्ठतातिं बर्हिषदम् ॥

३५०५ अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि । ५ । ४ । १०३ ॥

तत्पुरुषाट्टच् स्यात्समासान्तः । ब्रह्मसामं भवति । देवच्छन्दसानि ॥

३५०५–वेदमें नपुंसक अन्नन्त और असन्त तत्पुरुषके उत्तर समासान्त टच् प्रत्यय हो, यथा–ब्रह्मसामं भवति । देवच्छन्दसानि ॥

३५०६ बहुप्रजाश्छन्दसि।५ ।४।१२३॥

बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥

३५०६–वेदमें बहुप्रजा शब्द निपातनसे सिद्ध हो। बह्वयः प्रजा यस्य इस बहुव्रीहि समासमें असिच् प्रत्यय प्रजा शब्दके आकारका 'यस्येति च' इस सूत्रसे लोप, "अत्वसन्तस्य" इस सूत्रसे दीर्घ होकर–बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥

३५०७ छन्दसि च । ५ । ४ । १४२ ॥

दन्तस्य दतृ स्याद्बहुव्रीहौ । उभयतोदतः प्रतिगृह्णाति ॥

३५०७-वेदमें दन्त शब्दके स्थानमें दतृ आदेश हो, बहुव्रीहि समासमें यथा–उभयतो दन्ता यस्य, इस वाक्यमें उभयतोदतः प्रतिगृह्णाति ॥

३५०८ ऋतश्छन्दसि । ५।४ । १५८ ॥

ऋदन्ताद्बहुव्रीहेर्न कप् । हता माता यस्य हतमाता ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

३५०८-वेदमें ऋदन्त बहुव्रीहिके उत्तर कप् प्रत्यय न हो, यथा-हता माता यस्य, इस वाक्यमें हतमाता ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

एकाचो द्वे प्रथमस्य । छन्दसि वेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ यो जा गार । दाति प्रियाणि ॥

धात्ववयव प्रथम एकाच्को द्वित्व हो और आदिभूत अच्से परे द्वितीय एकाच्को द्वित्व हो ।

वेदमें धातुको विकल्प करके द्वित्व हो, यथा-"यो जागार" "दाति प्रियाणि" । लोकमें जजागार । ददाति ॥

३५०९ तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य । ६ । १ । ७ ॥

तुजादिराकृतिगणः । प्र भरा तूतुजानः । सूर्यं मामहानम् । दाधार यः पृथिवीम् । स तूताव ॥

३५०९-वेदमें तुजादि धातुओंके अभ्यासको दीर्घ हो, यथा-"प्र भरा तूतुजानः" (तुज+लिट्+कानच्) । "सूर्यं मामहानम्" (मह+कानच्) "दाधार यः पृथिवीम्" (धृ+लिट्) । "स तूताव" (तु+लिट्) । लोकमें ह्रस्व होगा,यथा-तुतुजानः । ममहानम् । दधार । तुताव ॥

३५१० बहुलं छन्दसि । ६ । १ । ३४ ॥

ह्वः संप्रसारणं स्यात् । इन्द्रमा हुव ऊतये ॥ ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि ॥ * ॥ ऋच्शब्दे परे त्रेः संप्रसारणमुत्तरपदादेर्लोपश्चेति वक्तव्यम् । तृचं साम । छन्दसि किम् । त्र्यृचानि ॥ रयेर्मतौबहुलम् ॥ * ॥ रेवान् । रयिमान् पुष्टिवर्धनः ॥

३५१०-वेदमें आङ्पूर्वक ह्वेञ् धातुको सम्प्रसारण हो, यथा-" इन्द्रमा हुव ऊतये " ।

वेदमें ऋक् शब्द परे रहते त्रिशब्दको सम्प्रसारण और उत्तर पदादिका लोप हो*यथा-तृचम् साम । यहां तिस्रः ऋचो यस्मिन्, इस विग्रहमें " ऋक् पूरब्धूः० ९४०" इस सूत्रसे समासान्त अ प्रत्यय हुआहै । वेदसे भिन्न अर्थात् लोकमें तो त्र्यृचानि ।

वेदमें मतुप् प्रत्यय परे रहते रयि शब्दको बहुल करके सम्प्रसारण हो*यथा-रेवान्। यहां "छन्दसीरः ३६००" इस सूत्रसे वत्व हुआहै । सूत्रमें बहुलशब्दग्रहण करनेसे "रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः " इस स्थलमें सम्प्रसारण और वत्व न हुआ ॥

३५११ चायः की । ६ । १ । ३५ ॥

न्य १ न्यं चिक्युर्न निचिक्युरन्यम् । लिटि उसि रूपम् । बहुलग्रहणानुवृत्तेर्नेह । अग्निं ज्योतिर्निचाय्य ॥

३५११-वेदमें चाय् धातुको बहुल करके कि आदेश हो, यथा-" न्यन्यञ्चिक्युर्न निचिक्युरन्यम् " । ' निचिक्युः ' यह लिट्के उस्का रूप है । बहुल शब्दकी अनुवृत्तिके कारण " अग्निं ज्योतिर्निचाय्य " । इस स्थलमें कि आदेश न हुआ ॥

३५१२ अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताश्रितमाशीराशीर्ताः । ६ । १ । ३६ ॥

एते छन्दसि निपात्यन्ते । इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथाम् । स्पर्धेर्लङि आथाम् । अर्कमानृचुः । वसून्यानृहुः । अर्चेरर्हेश्च लिट्युसि । चिच्युषे । च्युङो लिटि थासि । यस्तित्याज । त्यजेर्णलि । श्रातास्त इन्द्र सोमाः । श्रिता नो ग्रहाः । श्रीञ् पाके निष्ठायाम् । नाशिरं दुह्रे । मध्यत आशीर्तः । श्रीञ एव क्विपि निष्ठायां च ॥

३५१२-वेदमें अपस्पृधेथाम्, आनृचुः,आनृहुः, चिच्युषे, तित्याज,श्राता,श्रितम्,आशीर और आशीर्त यह पद निपातनसे सिद्ध हों, यथा-"इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथाम्"स्पृध्+लङ्+आथाम् । " अर्कमानृचुः " । " वसून्यानृहुः " अर्च, अर्ह+लिट् उस् । चिच्युषे । च्युङ् लिट् थास् । " यस्तित्याज" । त्यज्+णल् । " श्रातास्त इन्द्र सोमाः " । " श्रिता नो ग्रहाः " श्रिञ् पाके+क्त । " नाशिरं दुह्रे " । मध्यत आशीर्तः । आङ्पूर्वक श्री धातुका ही क्विप् प्रत्यय और क्त प्रत्यय करनेपर उक्त दोनों रूप सिद्ध हुए हैं ॥

३५१३ खिदेश्छन्दसि । ६ । १ । ५२ ॥

खिद दैन्ये । अस्यैच आ स्यात् । चिखाद । चिखेदेत्यर्थः ॥

३५१३-वेदमें दैन्यार्थक खिद् धातुके एकारके स्थानमें आकार हो, यथा-चिखाद । चिखेदेत्यर्थः । खिद+लिट्+णल् ॥

३५१४ शीर्षश्छन्दसि । ६ । १ । ६० ॥

शिरःशब्दस्य शीर्षन् स्यात् । शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतः ॥

३५१४-वेदमें शिरस् शब्दके स्थानमें शीर्षन् आदेश हो, यथा-शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतः ॥

३५१५ वा छन्दसि । ६ । १ । १०६ ॥

दीर्घाज्जसि इचि च पूर्वसवर्णदीर्घो वा स्यात् । वाराही । वाराह्यौ । मानुषीरीळते विशः । उत्तरसूत्रद्वयेऽपीदं वाक्यभेदेन संबध्यते । तेनामिपूर्वत्वं वा स्यात् । शमीं च शम्यं च । सूर्मिं

सूर्म्यं सुषिरामिव । संप्रसारणाच्चेति पूर्वरूपमपि वा । इज्यमानः । यज्यमानः ॥

३५१५–वेदमें दीर्घके उत्तर जस् और इच् परे रहते विकल्प करके पूर्वसवर्ण दीर्घ हो, यथा–वाराही । वाराह्यौ । "मानुषीरीलते विशः" । वराहस्य विकारः, इस वाक्यमें "प्राणिरजतादिभ्योऽञ् १५३२" इससे अञ्, ङीप् । द्विवचनमें पूर्वसवर्ण दीर्घाभावमें यणादेश होगा । 'मानुषीः' यह प्रथमाका बहुवचन है । मनु शब्दके उत्तर जातार्थमें अञ् और षुक्का आगम हुआहै । उत्तरके दोनों सूत्रोंमें भी यह वाक्यभेदसे सम्बद्ध होताहै, इस कारण अम् परे रहते विकल्प करके पूर्वरूप होगा,यथा–शमीञ्च शम्यञ्च। सूर्म्मिम् सूर्म्यं सुषिरामिव । "सम्प्रसारणाच्च ३३०" इस सूत्रसे पूर्वरूप भी विकल्प करके होगा, इज्यमानः । यज्यमानः । (यज्+लिटः शानच्, यक् । "ग्रहिज्या०" इस सूत्रसे सम्प्रसारण, पूर्वसूत्रके वैकल्पिकत्वके कारण यण्) ॥

३५१६ शेश्छन्दसि बहुलम् ।६।१।७०॥

लोपः स्यात् । या ते गात्राणाम् । ताता पिण्डानाम् ॥ एमन्नादिषु छन्दसि पररूपं वक्तव्यम् ॥ * ॥ अपां त्वेमन् ।अपां त्वोद्मन् ॥

३५१६–वेदमें शिका बहुल करके लोप हो,यथा–"या ते गात्राणाम्" । "ताता पिंडानाम्" । यहां यत् शब्दके परे शिका लोप होनेपर प्रत्ययलक्षणसे "त्यदादीनामः" इससे अत्व, "नपुंसकस्य झलचः" इससे नुमागम "सर्वनामस्थाने च०" इससे दीर्घ, "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य" इससे नलोप हुआहै ॥

एमन् आदि शब्द परे रहते वेदमें पररूप कहना चाहिये* यथा–"अपां त्वेमन् । अपां त्वोद्मन्" ॥

३५१७ भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि । ६ । १ । ८३ ॥

बिभेत्यस्मादिति भय्यः । वेतेः प्रवय्या इति स्त्रियामेव निपातनम् । प्रवेयमित्यन्यत्र । छन्दसि किम् । भेयम् । प्रवेयम् ॥ हृदय्या उपसंख्यानम् ॥ * ॥ हृदे भवा हृदय्या आपः । भवे छन्दसि यत् ॥

३५१७–वेदमें यत् प्रत्यय परे रहते भी धातु और प्रपूर्वक वी धातुको निपातनसे य आदेश हो,बिभेति अस्मात् इति=भय्यः। प्रपूर्वक वी धातुका प्रवय्या यह पद स्त्रीलिङ्गमें ही निपातनसे हो । लोकमें प्रवेयम् । छन्दसि क्यों कहा ? तो भेयम् प्रवेयम् यहां यादेश निपातन न हो ।

'हृदय्या' इस स्थलमें यादेशका उपसंख्यान करना चाहिये * हृदे भवाः=हृदय्या आपः,यहां भवार्थमें वेदमें यत् प्रत्यय हुआ है ॥

३५१८ प्रकृत्यान्तःपादमव्यपरे । ६ । १ । ११५ ॥

ऋक्पादमध्यस्थ एङ् प्रकृत्या स्यात् अति परे न तु वकारयकारपरेति । उपप्रयन्तो अध्वरम् । सुजाते अश्वसूनृते । अन्तःपादं किम् । एतास एतेर्चन्ति । अव्यपरे किम् । तेऽवदन् । तेऽयजन् ॥

३५१८–वेदमें वकार यकारपरमें न हो ऐसे अति अर्थात् अकार परे रहते ऋक्पादमध्यस्थ एङ् (एकार ओकार) प्रकृतिके अनुसार हो अर्थात् संधिरूप विकारको प्राप्त न हो, यथा–"उपप्रयन्तो अध्वरम्" । "सुजाते अश्वसूनृते" पादमध्यस्थित होनेपर यथा–"एतास एतेऽर्चन्ति" । अत्पूर्वक वकार और यकार परे रहते यथा–"तेऽवदन् । 'तेऽयजन्" ॥

३५१९ अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च । ६ । १ । ११६ ॥

एषु व्यपरेष्वति एङ् प्रकृत्या । वसुभिर्नो अव्यात् । मित्रमहो अवद्यात् । मा शिवासो अवक्रमुः । ते नो अव्रता शतधारो अयं मणिः। ते नो अवन्तु । कुशिकासो अवस्यवः । यद्यपि बह्वृचैस्तेनोऽवन्तु रथतूः । सोऽयमागात् । तेरुणेभिरित्या दौ प्रकृतिभावो न क्रियते तथापि बाहुलकात्समाधेयम् । प्रातिशाख्ये तु वाचनिक एवायमर्थः ॥

३५१९–वेदमें अव्यात्, अवद्यात्, अवक्रमुः, अव्रत, अयम्, अवन्तु और अवस्यु एतत्सम्बन्धी यकार और वकार परकभी परे रहते एङ् प्रकृतिसे ही रहे अर्थात् संधिद्वारा विकृत न हो, यथा–"वसुभिर्नो अव्यात्" । "मित्रमहो अवद्यात्" । "मा शिवासो अवक्रमुः" ।" ते नो अव्रतः" । "शतधारो अयं मणिः" । "ते नो अवन्तु" । "कुशिकासो अवस्यवः" । यद्यपि बह्वृच अर्थात् ऋग्वेदज्ञ पण्डितलोग "ते नोऽवन्तु रथतः" "सोऽयमागात्" "तेऽरुणेभिः" इत्यादि स्थलमें प्रकृतिभाव अर्थात् संधिनिषेध नहीं करतेहैं, तथापि यह सब बाहुलकबलसे सिद्ध होतेहैं । प्रातिशाख्यमें तो यह अर्थ वाचनिक ही है ॥

३५२० यजुष्युरः । ६ । १ । ११७ ॥

उरःशब्द एङन्तोऽति प्रकृत्या यजुषि । उरो अन्तरिक्षम् । यजुषि पादाभावादनन्तःपादार्थं वचनम् ॥

३५२०–यजुर्वेदमें अकार परे रहते एङन्त उरस् शब्द संधिद्वारा विकृत न हो, यथा–"उरो अन्तरिक्षम्" । इस स्थलमें "प्रकृत्यान्तः० ३५१८" इस सूत्रसे उक्त पद सिद्ध होजाते पुनः सूत्रकरणकी आवश्यकता क्या ? इस शंकापर

कहतेहैं कि,-यजुर्वेदमें पादके अभावके कारण पूर्वसूत्रसे सिद्ध न होनेके कारण पृथक् सूत्र कियाहै ॥

३५२१ आपोजुषाणोवृष्णोवर्षिष्ठेऽम्बेऽम्बालेऽम्बिके पूर्वे । ६ । १ । ११८ ॥

यजुषि अति प्रकृत्या । आपो अस्मान्मातरः। जुषाणो अग्निराज्यस्य । वृष्णो अंशुभ्याम् । वर्षिष्ठे अधि नाके । अम्बे अम्बाले अम्बिके । अस्मादेव वचनादम्बार्थेति ह्रस्वो न ॥

३५२१-यजुर्वेदमें अत् परे रहते आपो, जुषाणो, वृष्णो, वर्षिष्ठे, अम्बे, अम्बाले, अम्बिके, इन पदोंका एङ् प्रकृतिसे रहे यथा-" आपो अस्मान्मातरः " । " जुषाणो अग्निराज्यस्य" । "वृष्णो अंशुभ्याम्" । "वर्षिष्ठे अधिनाके" । "अम्बे,अम्बाले, अम्बिके"इस स्थलमें इसी वचनसे"अम्बार्थनद्योः०" इससे ह्रस्व नहीं हुआ, इस सूत्रमें आपः यह पद जस्विभक्त्यन्त है । जुषाणो पद सुविभक्त्यन्त है । तीसरा ङसन्त है । चौथा ङ्यन्त और शेष सम्बोधनान्त है ॥

३५२२ अङ्ग इत्यादौ च । ६।१।११९॥

अङ्गशब्दे य एङ् तदादौ अकारे च य एङ्पूर्वः सोऽति प्रकृत्या यजुषि । प्राणो अंगे अंगे अदीव्यत् ॥

३५२२-यजुर्वेदमें अकार परे रहते अंग शब्दमें जो एङ् और उसके आदिभूत अकारके परे पूर्व जो एङ् वह दोनो एङ् विकृत न हों, यथा-"प्राणो अंगे अंगे अदीव्यत्" ॥

३५२३अनुदात्ते च कुधपरे।६।१।१२०॥

कवर्गधकारपरे अनुदात्तेऽति परे एङ् प्रकृत्या यजुषि । अयं सो अग्निः । अयं सो अध्वरः । अनुदात्ते किम् । अधोऽग्रे रुद्रे । अग्रशब्द आद्युदात्तः । कुधपरे किम् । सोऽयमग्निमतः ॥

३५२३-यजुर्वेदमें कवर्ग और धकार परे है, ऐसा अनुदात्त अत् परे रहते एङ् विकृत न हो, यथा-"अयं सो अग्निः" । "अयं सो अध्वरः" । अनुदात्त न होनेपर यथा-"अधोऽग्रे रुद्रे" इस स्थानमें अग्र शब्दका प्रथम वर्ण उदात्त है । कवर्ग और धकार परे न रहते तो एङ् विकृत होगा, यथा-"सोयमग्निमतः" ॥

३५२४ अवपथासि च । ६।१।१२१ ॥

अनुदात्ते अकारादौ अवपथाःशब्दे परे यजुषि एङ् प्रकृत्या । त्रीरुद्रेभ्यो अवपथाः।वपेस्थासि लिङि तिङ्ङतिङ इत्यनुदात्तत्वम् । अनुदात्ते किम् । यद्रुद्रेभ्योऽवपथाः । निपातैर्यद्यदीति निघातो न ॥

३५२४-यजुर्वेदमें अनुदात्त अकारादि अवपथाः शब्द परे रहते एङ् प्रकृतिसे रहै, यथा-"त्रीरुद्रेभ्यो अवपथाः" यहां वप धातुसे थास् कर यासु करनेपर "तिङ्ङतिङः ३९३५" इस सूत्रसे अनुदात्तत्व हुआ । अनुदात्त न होनेपर एङ् विकृत होगा, यथा-"यद्रुद्रेभ्योऽवपथाः" यहां "निपातैर्यद्यदि३९३७"इस वक्ष्यमाण सूत्रसे निघातस्वर नहीं हुआ॥

३५२५ आङोऽनुनासिकश्छन्दसि । ६ । १ । १२६ ॥

आङोऽचि परेऽनुनासिकः स्यात् स च प्रकृत्या- अभ्र आँ अपः । गभीर आँ उग्रपुत्रे ॥ ईषाअक्षादीनां छन्दसि प्रकृतिभावो वक्तव्यः ॥ * ॥ ईषा अक्षो हिरण्ययःज्या इयम् । पूषा अविष्टु॥

३५२५-वेदमें अच् परे रहते आङ् अनुनासिक हो, और वह प्रकृतिसे रहै, अर्थात् संधिद्वारा विकृत न हो, यथा-"अभ्र आँ अपः" यहां आङ् सप्तम्यर्थद्योतक है । "गभीर आँ उग्रपुत्रे" ॥

वेदमें ईषा अक्षादि शब्दोंको प्रकृतिभाव हो ऐसा कहना चाहिये * यथा-"ईषा अक्षो हिरण्ययः" । "ज्या इयम्" "पूषा अविष्टुः" ॥

३५२६स्यश्छन्दसि बहुलम्।६।१।१३३।

स्य इत्यस्य सोर्लोपः स्याद्धलि।एष स्य भानुः॥

३५२६-वेदमें हल् अर्थात् व्यञ्जन वर्ण परे रहते स्य इसके उत्तर सु विभक्तिका लोप हो, यथा- "एष स्य भानुः" ॥

३५२७ ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे । ६ । १ । १५१ ॥

ह्रस्वात्परस्य चन्द्रशब्दस्योत्तरपदस्य सुडागमः स्यान्मन्त्रे । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः । सुश्चन्द्र दस्म ॥

३५२७-मंत्रमें ह्रस्वके उत्तर उत्तरपदभूत चन्द्र। शब्दको सुडागम हो, यथा-" हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः " सुश्चन्द्र दस्म ॥

३५२८ पितरामातरा च च्छन्दसि । ६ । ३ । ३३ ॥

द्वन्द्वे निपातः । आ मा गन्तां पितरामातरा च । चाद्विपरीतमपि मातरापितरा नू चिदिष्टौ॥ समानस्य छन्दस्य मूर्धप्रभृत्युदर्केषु । ६ । ३।८४॥ समानस्य सः स्यान्मूर्धादिभिन्ने उत्तरपदे । सगर्भ्यः ॥ छन्दसि स्त्रियां बहुलम् ॥ * ॥ विष्वग्देवयोरद्र्यादेशः । विश्वाची च घृताची च । देवद्रीचीं नयत देवयन्तः । कद्रीची ॥

३५२८-वेदमें द्वन्द्वसमासमें पितरामातरा यह पद निपातनसे सिद्ध हो, यथा-"आ मा गंतां पितरामातरा च" । सूत्रमें चकार द्वारा विपरीत भी होगा, यथा-"मातरापितरा नू चिदिष्टौ" ॥

वेदमें मूर्द्धादि भिन्न उत्तरपद परे रहते समान शब्दके स्थानमें स आदेश हो, (१०१२) यथा-"सगर्भ्यः" ॥

वेदमें स्त्रीलिङ्गमें बहुल करके अद्र्यादेश हो *। "विष्वग्देवयोः०" से अद्र्यादेश न होकर यथा-"विश्वाची च घृताची च देवद्रीचीं । नयत देवयन्तः" । अद्र्यादेश होकर-कद्रीची ॥

३५२९ सध मादस्थयोश्छन्दसि । ६ । ३ । ९६ ॥

सहस्य सधादेशः स्यात् । इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे । सोमः सधस्थम् ॥

३५२९-वेदमें माद और स्थ शब्द परे रहते सह शब्दके स्थानमें सध आदेश हो, यथा-"इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे" । "सोमः सधस्थम्" ॥

३५३० पथि च च्छन्दसि।६।३।१०८॥

पथिशब्दे उत्तरपदे कोः कवं कादेशश्च । कवपथः । कापथः । कुपथः ॥

३५३०-वेदमें उत्तरपदभूत पथिन् शब्द परे रहते कु शब्दके स्थानमें कव और का आदेश हो, यथा-कवपथः । कापथः । कुपथः ॥

३५३१ साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे। ६ । ३ । ११३ ॥

सहेः क्त्वाप्रत्यये आद्यं द्वयं तृनि तृतीयं निपात्यते । मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साह्ळा । अचोर्मध्यस्थस्य डस्य ळः ढस्य ह्ळश्च प्रातिशाख्ये विहितः । आह हि । " द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य संपद्यते स डकारो ळकारः । ह्ळकारतामेति स एव चास्य ढकारः सन्नूष्मणा सम्प्रयुक्तः " ॥ इति ॥

३५३१-वेद (निगम) में सह धातुके उत्तर क्त्वा प्रत्यय करके निपातनसे साढ्यै, साढ्वा यह दो पद और तृन् प्रत्यय करके 'साढा' यह पद सिद्ध हों, यथा-"मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साह्ळा" । प्रातिशाख्यमें दो अच्के मध्यस्थित डकारके स्थानमें ळ और ढके स्थानमें ह्ळ आदेश विहित है। कहा है कि, इस आचार्यके मतसे दो स्वरके मध्यवर्ती डकार ळकार रूपसे परिणत होताहै और वही डकार ऊष्मवर्णसंयुक्त होनेसे ढकार होकर दो अच्के मध्यमें ह्ळकार होताहै ॥

३५३२ छन्दसि च । ६ । ३।१२६॥

अष्टन आत्वं स्यादुत्तरपदे । अष्टापदी ॥

३५३२-वेदमें उत्तर पद परे रहते अष्टन् शब्दको आकार हो, "अष्टापदी" यहां अष्टौ पादा अस्याः, इस विग्रहमें "संख्यासुपूर्वस्य ८७९" इससे पादका लोप करनेपर "पादोऽन्यतरस्याम् ४५७" इससे ङीप् हुआ ॥

३५३३ मन्त्रे सोमाऽश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ । ६ । ३ । १३१ ॥

दीर्घः स्यान्मन्त्रे । अश्वावतीं सोमावतीम् । इन्द्रियावान्मदिन्तमः । विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ॥

३५३३-मंत्रमें मतुप् प्रत्यय परे रहते सोम, अश्व, इन्द्रिय, विश्व और देव्य शब्दको दीर्घ हो, यथा-अश्वावतीम् सोमावतीम् । "इन्द्रियावान् मदिन्तमः" । "विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता" ॥

३५३४ ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम् । ६ । ३ । १३२ ॥

दीर्घः स्यान्मन्त्रे । यदोषधीभ्य अदधात्योषधीषु ॥

३५३४-मंत्रमें प्रथमाभिन्न विभक्ति परे रहते ओषधि शब्दके इकारको दीर्घ हो, यथा-"यदोषधीभ्य अदधात्योषधीषु" ॥

३५३५ ऋचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम् । ६ । ३ । १३३ ॥

दीर्घः स्यात् । आ तू न इन्द्र । नू मर्तः । उत वा घा स्यालात् । मक्षू गोमन्तमीमहे । भरता जातवेदसम् । तङिति थादेशस्य ङित्त्वपक्षे ग्रहणम् । तेनेह न । शृणोत ग्रावाणः । कूमनाः । अत्रा ते भद्रा । यत्रा नश्चक्रा । उरुष्याणः ॥

३५३५-ऋग्विषयमें तु, नु, घ, मक्षु, तङ्, कु, त्र, उरुष्य शब्दके स्वरको दीर्घ हो, यथा-"आ तू न इन्द्र" । "नू मर्तः" । "उत वा घा स्यालात्" । "मक्षू गोमन्तमीमहे" । "भरता जातवेदसम्" । तङ् यह ङित्त्वपक्षमें थकारादेशका ग्रहण है, इस कारण 'शृणोत ग्रावाणः' इस स्थानमें दीर्घ नहीं हुआ । "कूमनाः" । "अत्रा ते भद्रा" । "यत्रा नश्चक्रा" । उरुष्याणः ॥

३५३६ इकः सुञि । ६ । ३ १३४ ॥

ऋचि दीर्घ इत्येव । अभीषुणः सखीनाम् । सुञ इति षः । नश्च धातुस्थोरुषुभ्य इति णः ॥

३५३६-ऋक्विषयमें सुञ् धातु परे रहते इगन्त अर्थात् इ, उ, ऋ, ऌकारान्त शब्दोंको दीर्घ हो यथा-"अभीषुणः सखीनाम् " यहां "सुञः ३६४४" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे पूर्वपदस्थ निमित्तके परे सुञ् धातुके सकारको षत्व हुआ, और "नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ३६४९" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे णत्व हुआ ॥

३५३७ द्व्यचोऽतस्तिङः । ६। ३।१३५॥

मन्त्रे दीर्घः । विद्मा हि चक्रा जरसम् ॥

३५३७-ऋक् विषयमें दो स्वरविशिष्ट तिङ्प्रत्ययान्त पदके अकारको दीर्घ हो, यथा-"विद्मा हि चक्रा जरसम्"॥

३५३८ निपातस्य च । ६ । ३ । १३६ ॥

एवा हि ते ॥

३५३८-ऋग्विषयमें निपातको दीर्घ हो, "एवा हि ते" । इस स्थानमें एव शब्दको चादिमें पाठके कारण निपात संज्ञा हुई है ॥

३५३९ अन्येषामपि दृश्यते । ६ । ३ । १३७ ।

अन्येषामपि पूर्वपदस्थानां दीर्घः स्यात् । पूरुषः । दण्डादण्डि ॥

३५३९-वेदमें पूर्वपदस्थ अन्यको भी दीर्घ हो, यथा-पूरुषः । दण्डादण्डि ॥

३५४० छन्दस्युभयथा । ६ । ४ । ५ ॥

वामि दीर्घो वा । धाता धातॄणामिति बह्वृचाः । तैत्तिरीयास्तु ह्रस्वमेव पठन्ति ॥

३५४०-वेदमें आम् विभक्ति परे रहते पूर्वस्वरको विकल्प करके दीर्घ हो, यथा-"धाता धातॄणाम्" यह बह्वृचलोग कहते हैं, तैत्तरीयशाखाध्यायी लोग तो दीर्घके स्थानमें ह्रस्वपाठ करते हैं ॥

३५४१ वाषपूर्वस्य निगमे । ६ । ४ । ९ ॥

षपूर्वस्यान उपधाया वा दीर्घोऽसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे । ऋभुक्षाणम् । ऋभुक्षणम् । निगमे किम् । तक्षा । तक्षाणौ ॥

३५४१-निगममें सम्बोधनभिन्न सर्वनाम स्थान परे रहते षकार पूर्वक अन्की उपधाको विकल्प करके दीर्घ हो, यथा-" ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षणम् " । निगम भिन्न स्थलमें अर्थात् लोकमें तो नित्य दीर्घ होगा, यथा-तक्षा । तक्षाणौ ॥

३५४२ जनिता मन्त्रे । ६ । ४ । ५३ ॥

इडादौ तृचि णिलोपो निपात्यते । यो नः पिता जनिता ॥

३५४२-वेदमें मंत्रविषयमें इडादि (इट् आदिमें है ऐसे) तृच् प्रत्यय परे रहते 'जनिता' इसमें निपातनसे णि अर्थात् णिच्का लोप हो, यथा-"यो नः पिता जनिता" ॥ लोकमें जनयिता ॥

३५४३ शमिता यज्ञे । ६ । ४ । ५४ ॥

शमयितेत्यर्थः ॥

३५४३-वेदमें यज्ञ वाक्य होनेपर इट् आदिमें है जिसके ऐसा तृच् प्रत्यय परे रहते निपातनसे शम धातुके उत्तर णिच्का लोप हो, यथा-शमिता । अन्यत्र अर्थात् लोकमें शमयिता ॥

३५४४ युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि । ६ । ४ । ५८ ॥

ल्यपीत्यनुवर्तते । वियूय । विप्लूय । आडजादीनाम् । ६ । ४ । ७२ ॥

३५४४-वेदमें ल्यप् प्रत्यय परे रहते यु और प्लु धातुके उकारको दीर्घ हो, यथा-वियूय । विप्लूय । वेदभिन्न अर्थात् लोकमें यथा-आयुत्य । आप्लुत्य ।।

" आडजादीनाम् २२४४ " लुङादि विभक्ति परे रहते अजादि धातुको आट्का आगम हो ॥

३५४५ छन्दस्यपि दृश्यते । ६ । ४ । ७३ ॥

अनजादीनामित्यर्थः । आनट् । आवः । "न माङ्योगे । ६ । ४ । ७४" ॥

३५४५-वेदमें अनजादि अर्थात् स्वरवर्ण आदिमें न हो ऐसे धातुओंको भी आट्का आगम हो,यथा-आनट् । आवः। 'आनक्' यहां नश् धातुसे लुङ् 'मन्त्रे घस० ३४०२' इससे च्लिका लुक् 'नशेर्वा ४३१' इसकी प्रवृत्ति न होनेपर "व्रश्च० २९४" इससे षत्व, जश्त्व और चर्त्व हुआ । 'आवः' यहां वृञ् धातुसे लुङ्, च्लिका लुक् गुण, रेफको विसर्ग हुआ ॥

माङ् शब्दके योगमें अट् और आट्का आगम न हो (२२२८) ॥

३५४६ बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि । ६ । ४ । ७५ ॥

अडाटौ न स्तः माङ्योगेपि स्तः ॥ जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायः । मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः ॥

३५४६-वेदमें माङ् शब्दका योग हो अथवा न हो तथापि धातुको बहुल करके अट् और आट् आगम हो, अर्थात् माङ् शब्दका योग न होनेपर भी नहीं हो और माङ् शब्दके योग होनेपर भी हो,यथा-"जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायः" यहां जन् धातुसे लुङ्+थास्+अडागमाभाव हुआ । माङ्योगमें भी अडागमका उदाहरण, यथा-"मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः" । वो युष्माकं क्षेत्रे भार्यायां परबीजानि अन्येषां वीर्याणि मा अवाप्सुः उप्तानि मा भूवन् इत्यर्थः । 'अवाप्सुः' यहां वप् धातुसे कर्ममें लुङ् अडागम और व्यत्ययसे परस्मैपद हुआ । और च्लिके स्थानमें सिच् "वदव्रज० २२६७" से वृद्धि हुई । यह उदाहरण काशिकाके अनुरोधसे है, क्यों कि, अध्ययनमें 'वाप्सुः' ऐसा ही पाठ देखाजाताहै । माङ्योगमें अडागमका उदाहरणान्तर अन्वेषण करलेना ॥

३५४७ इरयोरे । ६ । ४ । ७६ ॥

प्रथमं दध्र आपः । रेभावस्याभीयत्वेनासिद्धत्वादालोपः। अत्र रेशब्दस्येटि कृते पुनरपि रेभावः। तदर्थं च सूत्रे द्विवचनान्तं निर्दिष्टमिरयोरिति ॥

३५४७-वेदमें धातुके उत्तर 'इरे' इसके स्थानमें रे आदेश हो, यथा-"प्रथमं दध्र आपः" यहां आभीयत्वके कारण रे भावकी असिद्धि होनेसे आकारका लोप हुआ । इस स्थानमें रे शब्दको इट् करनेपर फिर रेभाव हुआ, इसकारण सूत्रमें "इरयोः" । ऐसा द्विवचनान्त निर्देश कियाहै । नहीं तो लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषासे पुनर्वार रे आदेश नहीं होता ॥

३५४८ छन्दस्युभयथा ।६। ४। ८६ ॥

भूसुधियोर्यण् स्यादियङुवङौ च। वनेषु चित्रं विभ्वम्। विभुवं वा। सुध्यो नव्यमग्ने। सुधियो वा ॥ तन्वादीनां छन्दसि बहुलम् ॥ * ॥ तन्वं पुषेम तनुवं वा। त्र्यम्बकम्। त्रियम्बकम् ॥

३५४८–वेदमें भू और सुधी शब्दको यण् और इयङ् और उवङ् यह दो आदेश हों, यथा–"वनेषु चित्रम् विभ्वम्"। विभुवं वा "सुध्यो नव्यमग्ने"। सुधियो वा।

तन्वादि शब्दोंको वेदमें उक्त आदेश बहुलकरके हो * यथा–तन्वं पुषेम। तनुवं वा। त्र्यम्बकम्। त्रियम्बकम्। (त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि अस्य असौ त्र्यम्बको रुद्रः) ॥

३५४९ तनिपत्योश्छन्दसि ।६।४।९९॥

एतयोरुपधालोपः क्ङिति प्रत्यये। वितत्निरे कवयः। शकुना इव पप्तिम ॥

३५४९–वेदमें कित् और ङित् प्रत्यय परे रहते तन् धातु और पत् धातुकी उपधाका लोप हो, यथा–"वितत्निरे कवयः"। इस स्थलमें अकारलोपके असिद्धत्व होनेपर भी लोप विधानकी सामर्थ्यके कारण "अत एकहल्मध्ये० २२६०" इस सूत्रसे एत्व और अभ्यासका लोप नहीं हुआ। "शकुना इव पप्तिम"। पत+लिट्+म=पप्तिम लोकमें वितेनिरे। पेतिम इस प्रकार होंगे ॥

३५५० घसिभसोर्हलि च ।६।४।१००॥

सग्धिश्च मे। बब्धां ते हरी धानाः। "हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१" ॥

३५५०–वेदमें हलादि और अजादि कित् और ङित् प्रत्यय परे रहते घस् और भस् धातुकी उपधाका लोप हो, यथा–"सग्धिश्चमे"। अद धातुसे क्तिन् प्रत्यय "बहुलं छन्दसि" इस सूत्रसे अद धातुके स्थानमें घस आदेश और उपधाका लोप, "झलो झलि २२८१" इस सूत्रसे सकारका लोप, तकारके स्थानमें धकार, घको जश्त्व, पश्चात् 'समान ग्धिः सग्धिः' इस प्रकार समास करके "समानस्य छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु १०१२" इस सूत्रसे समान शब्दके स्थानमें स आदेश होकर सग्धिः। "बब्धान्ते हरी धानाः" यहां भस्+लोट् ताम्+श्लु पश्चात् पर और नित्य भी उपधालोपको बाध करके बाहुलकबलसे "श्लौ" इस सूत्रसे द्वित्व, पश्चात् उपधाका लोप, सकारलोप, धत्व और जश्त्व करके 'बब्धाम्' पद सिद्ध हुआ है। हु धातु और झलन्त धातुके उत्तर हिके स्थानमें धि आदेश हो २४२५ ॥

३५५१ श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि । ६। ४। १०२ ॥

श्रुधी हवम्। शृणुधी गिरः। रायस्पूर्धि। उरुणस्कृधि। अपावृधि ॥

३५५१–वेदमें श्रु, शृणु, पॄ, कृ और वृ धातुके उत्तर हिके स्थानमें धि आदेश हो, यथा–"श्रुधी हवम्" यहां "बहुलं छन्दसि" इस सूत्रसे शप्का लुक्, "अन्येषामपि० ३५३९" इस सूत्रसे दीर्घ हुआ। "शृणुधी गिरः"। श्रु धातुको शृभाव विधान सामर्थ्यके कारण "उतश्च प्रत्ययात्० १३३४" इस सूत्रसे हिका लुक् न हुआ और पूर्ववत् दीर्घ और हिके स्थानमें धि हुआ। "रायस्पूर्धि"। यहां शप्का लुक् "उदोष्ठ्यपूर्वस्य २४९४" इस सूत्रसे ऋके स्थानमें उकार और "हलि च ३५४" इस सूत्रसे दीर्घ हुआ। "उरुणस्कृधि" यहां "नश्चधातुस्थोरुषुभ्यः" इस सूत्रसे णत्व, "कः करत्० ३६३५" इस सूत्रसे विसर्गके स्थानमें सत्व हुआ "अपावृधि"। इस स्थलमें पूर्ववत् दीर्घ हुआ ॥

३५५२ वा छन्दसि । ६ । ४ । ८८॥

हिरपिद्वा ॥

३५५२–वेदमें हि विभक्ति विकल्प करके अपित् हो।

३५५३ अङितश्च ।६ । ४ । १०३ ॥

हेर्धिः स्यात्। रारन्धि। रमेर्व्यत्ययेन परस्मैपदम्। शपः श्लुरभ्यासदीर्घश्च। अस्मै प्रयन्धि। युयोधि जातवेदः। यमेः शपो लुक्। यौतेः शपः श्लुः ॥

३५५३–वेदमें अङित् हिके स्थानमें धि आदेश हो, यथा रारन्धि। यहां रम् धातुको व्यत्ययसे परस्मैपद हुआ, शप्के स्थानमें श्लु आदेश और अभ्यासको दीर्घ हुआ। "अस्मै प्रयन्धि" "युयोधि जातवेदः" यहां यम् धातुके उत्तर शप्का लुक् हुआ। यु धातुके उत्तर शप्के स्थानमें श्लु आदेश हुआ ॥

३५५४ मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः । ६ । ४ । १४१ ॥

आत्मन्शब्दस्यादेर्लोपः स्यादाङि। त्मना देवेषु ॥

३५५४–वेदमें आङ् प्रत्यय परे रहते आत्मन् शब्दके आदिभागका लोप हो, यथा–"त्मना देवस्य"। लोकमें आत्मना ॥

३५५५ विभाषर्जोश्छन्दसि।६।४।१६२॥

ऋजुशब्दस्य ऋतः स्थाने रः स्याद्वा इष्ठेमेयस्सु। त्वं रजिष्ठमनुनेषि। ऋजिष्ठं वा ॥

३५५५–वेदमें इष्ठ इमन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते ऋजु शब्दके ऋकारके स्थानमें विकल्प करके र आदेश हो, यथा–" त्वं रजिष्ठमनुनेषि "। ऋजिष्ठं वा ॥

३५५६ ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानिच्छन्दसि । ६ । ४ ।१७५॥

ऋतौ भवमृत्व्यम्। वास्तुनि भवं वास्त्व्यम्। वास्त्वं च। मधुशब्दस्याणि स्त्रियां यणादेशो निपात्यते। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। हिरण्य

शब्दाद्विहितस्य मयटो मशब्दस्य लोपो निपात्यते । हिरण्येन सविता रथेन ॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

३५५६-वेदमें ऋत्व्य, वास्त्व्य, वास्त्व, माध्वी, हिरण्यय, यह निपातनसे सिद्ध हों, यथा-ऋतौ भवम्, इस विग्रहमें निपातनसे यत् प्रत्यय परे यणादेश होकर-ऋत्व्यम्। वास्तुनि भवम्, इस विग्रहमें यत् और अण् प्रत्यय परे निपातनसे यणादेश होकर वास्त्व्यम् । वास्त्वम् च । मधु शब्दको स्त्रीलिङ्गमें निपातनसे यण् आदेश होकर-यथा-"माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः" । हिरण्य शब्दके उत्तर विहित मयट् प्रत्ययके मकारका निपातनसे लोप होकर-" हिरण्ययेन सविता रथेन" ॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

" शीङो रुट् । ७ । १ । ६ । "

शीङ् धातुके परे झादेश अत्को रुट्का आगम हो२४४२॥

३५५७ बहुलं छन्दसि । ७ । १ । ८ ॥

रुडागमः स्यात् । लोपस्त आत्मनेपदेष्विति पक्षे तलोपः । धेनवो दुह्रे । लोपाभावे घृतं दुह्रते ।अदृश्रमस्य।"अतो भिस ऐस् ।७।१।९" ॥

३५५७-वेदमें शीङ् धातुके परे झादेश अत्को बहुल करके रुट्का आगम हो, " लोपस्त आत्मनेपदेषु ३५६३ " इस सूत्रसे पक्षमें तकारका लोप होकर-यथा-"धेनवो दुह्रे" (दुह्+लट्, टेरेत्व, झको अत् आदेश, रुट्, तकारका लोप) लोपाभावमें घृतं दुह्रते । " अदृश्रमस्य " यहां दृश् धातुसे+लुङ्, व्यत्ययसे प्रथमपुरुषके बहुवचन स्थानमें उत्तम पुरुषका एकवचन और उसको रुडागम हुआहै । अदन्त अङ्गके उत्तर भिस्के स्थानमें ऐस् हो २०३-॥

३५५८ बहुलं छन्दसि । ७ । १ । १० ॥

अग्निर्देवेभिः ॥

३५५८-वेदमें भिस्के स्थानमें बहुल करके ऐस् हो, यथा-" अग्निर्देवेभिः " ॥

३५५९ नेतराच्छन्दसि । ७ । १ । २६ ॥

स्वमोरद्ड् न । वार्त्रघ्नमितरम् । छन्दसि किम् । इतरत्काष्ठम् ॥ "समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् । ७ । १ । ३७ ॥

३५५९-वेदमें इतर शब्दके परे सु और अम्के स्थानमें अदड् आदेश न हो, यथा-"वार्त्रघ्नमितरम्" । लोकमें तो 'इतरत् काष्ठम्' ऐसा होगा। अनञ् पूर्वक समासमें क्त्वाके स्थानमें ल्यप् आदेश हो ३३३२-॥

३५६० क्त्वापि च्छन्दसि । ७।१।३८ ॥

यजमानं परिधापयित्वा ॥

३५६०-अनञ् पूर्वक समासमें क्त्वा आदेश भी हो अपि शब्दसे ल्यप् भी समास और असमासमें हो इस स्थलमें अपि शब्द समाप्त ल्यप्का बाधक है, यथा-"यजमानं परिधापयित्वा" यहां णिजन्त परिपूर्वक धा धातुके उत्तर क्त्वा प्रत्यय, उसके स्थानमें ल्यबादेश प्राप्त होनेपर क्त्वा आदेश हुआ ॥

३५६१ सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः । ७ । १ । ३९ ॥

ऋजवः सन्तु पन्थाः । पन्थान इति प्राप्ते सुः। परमे व्योमन् व्योमनि इति प्राप्ते ङेर्लुक्। धीती। मती। सुष्टुती। धीत्या मत्या सुष्टुत्येति प्राप्ते पूर्वसवर्णदीर्घः। या सुरथा रथीतमा दिविस्पृशा अश्विना। यौ सुरथौ दिविस्पृशावित्यादौ प्राप्ते आ । नताद्ब्राह्मणम् । नतमिति प्राप्ते आत् । यादेव विद्म तात्वा । यमिति प्राप्ते । न युष्मे वाजबन्धवः। अस्मे इन्द्राबृहस्पती । युष्मासु अस्मभ्यमिति प्राप्ते शे । उरुया । धृष्णुया। उरुणा धृष्णुनेति प्राप्ते या । नाभा पृथिव्याः। नाभाविति प्राप्ते डा। ता अनुष्ठ्योच्च्यावयतात्। अनुष्ठानमनुष्ठा। व्यवस्थावदङ्। आङो ड्या। साधुया । साध्विति प्राप्ते याच् । वसन्ता यजेत । वसन्ते इति प्राप्ते आल् ॥ इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम् ॥*॥ उर्विया । दार्विया। उरुणा दारुणेति प्राप्ते इया। सुक्षेत्रिया।सुक्षेत्रिणेति प्राप्ते डियाच्।दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम्। ङेरीकार इत्याहुः । तत्राद्युदात्ते पदे प्राप्ते व्यत्ययेनान्तोदात्तता । वस्तुतस्तु ङीषन्तात् ङेर्लुक् । ईकारादेशस्य तूदाहरणान्तरं मृग्यम् ॥ आङ्याजयारामुपसंख्यानाम् ॥ * ॥ प्रबाहवा सिसृतम् । प्रबाहुनेति प्राप्ते आङादेशः। घेर्ङितीति गुणः । स्वप्नया । स्वप्नेनेति प्राप्ते अयाच्। स नः सिन्धुमिव नावया । ना वेति प्राप्ते अयार्। रित्स्वरः ॥

३५६१-वेदमें सुप्के स्थानमें सु, सुप्का लुक्, पूर्वसवर्णदीर्घ, आ, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच् और आल् आदेश हों, यथा-"ऋजवः सन्तु पन्थाः" । इस स्थलमें 'पन्थानः' ऐसा प्राप्त होनेपर सु हुआ है । "परमे व्योमन्"। इस स्थानमें 'व्योमनि' इस प्रकार प्राप्त होनेपर ङिका लुक् हुआहै । 'धीती मती सुष्टुती' इन स्थलोंमें 'धीत्या मत्या सुष्टुत्या' इस प्रकार प्राप्त होनेपर पूर्वसवर्ण दीर्घ हुआ है । "या सुरथा रथीतमा दिवि स्पृशा अश्विना" इस स्थलमें यौ सुरथौ दिविस्पृशौ ऐसे प्राप्त होनेपर आ हुआ है । "नताद् ब्राह्मणम्"इस स्थानमें'नतम्' ऐसे प्राप्त होनेपर आत् हुआ है। "यादेव विद्म तात्वा" यहां 'यम्' ऐसे प्राप्तमें आत् हुआ है "न युष्मे वाज बन्धवः॥ अस्मे इन्द्रा बृहस्पति"इस स्थानमें युष्मासु और अस्मभ्यम् ऐसा प्राप्त होनेपर शे हुआ है ।

"उरुया । धृष्णुया" इस स्थानमें 'उरुणा' और 'धृष्णुना' ऐसे प्राप्त होनेपर या हुआ है । "नाभा पृथिव्याः" इस स्थानमें नाभौ ऐसा प्राप्त होनेपर डा हुआहै । "ता अनुष्ठोच्यावयतात्" इस स्थलमें अनुष्ठानम्, इस विग्रहमें 'अनुष्ठा' पद हुआ, यहां 'व्यवस्था' पदकी समान अङ् आङ्के स्थानमें ड्या और डित्वके कारण टिका लोप हुआ है 'साधुया' इस स्थानमें 'साधु' ऐसे प्राप्त होनेपर याच् हुआ है । "वसन्ता यजेत" इस स्थानमें 'वसन्ते' ऐसे प्राप्त होनेपर आल् हुआ है ॥

सुपोंके स्थानमें इया, डियाच् और ईकार आदेश भी हो * यथा-"उर्विया दार्विया" यहां उरुणा और 'दारुणा' ऐसा प्राप्त होनेपर इया हुआ है । 'सुक्षेत्रिया' यहां 'सुक्षेत्रिणा' ऐसा प्राप्त होनेपर डियाच् हुआहै । "दृतिं न शुष्कं सरसीशयानम्" इस स्थलमें ङिके स्थानमें ईकार हुआहै । इस स्थलमें आद्युदात्त प्राप्त होनेपर व्यत्ययसे अन्तोदात्तता हुई है। वास्तविक तो ङीष् प्रत्ययान्तके परे ङिका लुक् हुआहै, तब ईकारादेशका उदाहरण अन्वेष्टव्य है ।

सुपोंके स्थानमें आङ्, अयाच् और अयार् आदेश भी हो* यथा-"प्रबाहवा सिसृतम्" इस स्थानमें प्रबाहुना ऐसा प्राप्त होनेपर आङ् आदेश हुआहै, और "घेर्ङिति २४५" इस सूत्रसे उकारको गुण हुआहै । 'स्वप्नया' इस स्थानमें 'स्वप्नेन' ऐसी प्राप्त होनेपर अयाच्-हुआ है । "स नः सिन्धुमिव नावया" इस स्थानमें 'नावा' ऐसा प्राप्त होनेपर अयार् हुआ और "रिति" इस सूत्रसे रित्स्वर हुआ ॥

३५६२ अमो मश् । ७ । १ । ४० ॥

मिबादेशस्यामो मश् स्यात् । अकार उच्चारणार्थः । शित्वात्सर्वादेशः । अस्तिसिच इति ईट् । वधीं वृत्रम् । अवधिषमिति प्राप्ते ॥

३५६२-वेदमें मिबादेश अम्के स्थानमें मश् आदेश हो, मश्का अकार उच्चारणार्थ है मश्का शकार इत् होनेके कारण सर्वादेश होगा । यथा-"वधीं वृत्रम्" यहां 'अवधिषम्' ऐसा प्राप्त था । इस स्थानमें हन् धातुसे लुङ् "हनो वध "लिङि लुङि च" इससे वधादेश, च्लिको सिच् "तस्थस्थ०" इससे मिप्को अम्भाव उसको मशादेश, "अस्तिसिचः २२२५" इससे अपृक्त मको इट् "इट ईटि" इससे सिच्का लोप, सवर्णदीर्घ, "बहुलं छन्दसि" इससे अडागमका अभाव हुआ है ॥

३५६३ लोपस्त आत्मनेपदेषु ७।१।४१॥

छन्दसि । देवा अदुह । अदुहतेति प्राप्ते । दक्षिणतः शये । शेते इति प्राप्ते । आत्मेति किम् । उत्सं दुहन्ति ॥

३५६३-वेदमें आत्मनेपदका जो तकार उसका लोप हो, यथा-"देवा अदुह" यहां अदुहत ऐसा प्राप्त था यहां दुह्+लङ् त "आत्मनेपदेष्वनतः" इससे झको अत् आदेश, "बहुलं छन्दसि" इससे रुट् तकारका लोप, दोनो अकारको "अतो गुणे" इससे पररूप हुआ । "दक्षिणतः शये" इस स्थलमें 'शेते' ऐसा प्राप्त था परन्तु तलोप करके अय् आदेश होनेपर 'शये' हुआ है । आत्मनेपद न होनेपर तकारका लोप नहीं होगा,यथा-"उत्सं दुहन्ति" ॥

३५६४ ध्वमो ध्वात् । ७ । १ । ४२ ॥

अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात् । वारयध्वमिति प्राप्ते ॥

३५६४-वेदमें ध्वम् प्रत्ययके स्थानमें ध्वात् आदेश हो, यथा-"अन्तरे वोष्माणं वारयध्वात्" यहां 'वारयध्वम्' ऐसा प्राप्त था ॥

३५६५ यजध्वैनमिति च । ७।१।४३ ॥

एनमित्यस्मिन्परे ध्वमोन्तलोपो निपात्यते । यजध्वैनं प्रियमेधाः । वकारस्य यकारो निपात्यत इति वृत्तिकारोक्तिः प्रामादिकी ॥

३५६५-वेदमें 'एनम्' यह पद परे रहते ध्वम् प्रत्ययके अन्तभागका निपातनसे लोप हो, यथा-"यजध्वैनं प्रियमेधाः" वकारके स्थानमें निपातनसे यकार आदेश हो, ऐसी जो वृत्तिकारकी उक्ति है, वह प्रामादिकी है ॥

३५६६ तस्य तात् । ७ । १ । ४४ ॥

मध्यमपुरुषबहुवचनस्य स्थाने तात्स्यात् । गात्रमस्यानूनं कृणुतात् । कृणुतेति प्राप्ते । सूर्यं चक्षुर्गमयतात् । गमयतेति प्राप्ते ॥

३५६६-वेदमें त अर्थात् मध्यम पुरुष सम्बन्धी बहुवचनके स्थानमें तात् आदेश हो, यथा-"गात्रमस्या नूनं कृणुतात्" 'कृणुत' ऐसा प्राप्त होनेपर कृणुतात् हुआ है "सूर्यं चक्षुर्गमयतात्" 'गमयत' ऐसा प्राप्तमें गमयतात् हुआ है।

३५६७ तप्तनप्तनथनाश्च ।७।१ । ४५ ॥

तस्येत्येव । शृणोत ग्रावाणः । शृणुतेति प्राप्ते तप् । सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे । दधातन द्रविणं चित्रमस्मै । तनप् । मरुतस्तज्जुजुष्टन । जुषध्वमिति प्राप्ते व्यत्ययेन परस्मैपदं श्लुश्च । विश्वे देवासो मरुतो यतिष्ठन । यत्संख्याकाः स्थेत्यर्थः । यच्छब्दाच्छान्दसो डतिः । अस्तेस्तस्य थनादेशः ॥

३५६७-वेदमें तके स्थानमें तप्, तनप्, तन और थन आदेश हों, यथा-"शृणोत ग्रावाणः" इस स्थानमें 'शृणुत' ऐसा प्राप्त होनेपर तप् आदेश और अङित् होनेसे गुण होकर 'शृणोत' ऐसा हुआ है । "सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे" "दधातन द्रविणं चित्रमस्मै" इन स्थलोंमें तनप् हुआ है । "मरुतस्तज्जुजुष्टन" यहां 'जुषध्वम्' ऐसा प्राप्त होनेपर व्यत्ययसे परस्मैपद और श्लु प्रत्यय हुआ है । "विश्वे देवासो मरुतो यतिष्ठन" यत् संख्याकाः स्थ इत्यर्थः । यत् शब्दके उत्तर छान्दस डति प्रत्यय हुआ है । अस धातुक उत्तर तके स्थानमें थनादेश हुआहै । 'मोस' यह आत्मभक्तिक निर्देश है । इकार उच्चारणार्थ है ॥

३५६८ इदन्तो मसि । ७।१।४६॥

मसीत्यविभक्तिको निर्देशः । इकार उच्चारणार्थः । मस् इत्ययमिकाररूपचरमावयवविशिष्टः स्यात् । मस इगागमः स्यादिति यावत् । नमो भरन्त एमसि । त्वमस्माकं तव स्मसि । इमः स्म इति प्राप्ते ॥

३५६८-वेदमें मस् यह इकाररूप अन्तावयवविशिष्ट हो अर्थात् मस् इस सकारान्त प्रत्ययको इम्का आगम हो । यथा-"नमो भरन्त एमसि" । "त्वमस्माकं तव स्मसि" । यहां 'इमः' और 'स्म' ऐसा प्राप्त होनेपर 'एमसि' और 'स्मसि' हुआ है ॥

३५६९ क्त्वो यक् । ७। १ ।४७॥

दिवं सुपर्णो गत्वाय ॥

३५६९-वेदमें क्त्वा प्रत्ययको यक्का आगम हो, यथा-"दिवं सुपर्णो गत्वाय" ॥

३५७० इष्ट्वीनमिति च । ७ । १ ।४८॥

क्त्वाप्रत्ययस्य ईनम् अन्तादेशो निपात्यते । इष्ट्वीनं देवान् । इष्ट्वा इति प्राप्ते ॥

३५७०-वेदमें क्त्वा प्रत्ययको निपातनसे 'ईनम्' अन्तादेश हो, यथा-"इष्ट्वीनं देवान्" यहां इष्ट्वा ऐसा प्राप्त था 'इष्ट्वीनम्' यहां यज्+क्त्वा "वचिस्वपि०" इससे सम्प्रसारण, "व्रश्च०" इससे षत्व, ष्टुत्व, अकारको 'ईनम्' आदेश हुआ ॥

३५७१ स्नात्व्यादयश्च । ७ । १ । ४९॥

आदिशब्दः प्रकारार्थः । आकारस्य ईकारो निपात्यते । स्विन्नः स्नात्वी मलादिव । पीत्वी सोमस्य वावृधे । स्नात्वा पीत्वेति प्राप्ते ॥

३५७१-यहां आदि शब्द प्रकारार्थक है । वेदमें स्नात्वी इत्यादि शब्द निपातनसे सिद्ध हों । अर्थात् क्त्वा प्रत्ययके आकारके स्थानमें निपातनसे ईकार हो, यथा-"स्विन्नः स्नात्वी मलादिव" "पीत्वी सोमस्य वावृधे" यहां 'स्नात्वा' और 'पीत्वा' ऐसा प्राप्त होनेपर स्नात्वी और पीत्वी हुआ है ॥

३५७२ आज्जसेरसुक् । ७ । १ । ५० ॥

अवर्णान्तादङ्गात्परस्य जसोऽसुक् स्यात् । देवासः । ब्राह्मणासः ॥

३५७२-वेदमें अवर्णान्त अङ्गके उत्तर जस्को असुक्का आगम हो, यथा-देवासः । ब्राह्मणासः । लोकमें तो देवाः । ब्राह्मणाः ऐसा होगा ॥

३५७३ श्रीग्रामण्योश्छन्दसि।७।१।५६॥

आमो नुट् । श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम् । सूतग्रामणीनाम् ॥

३५७३-वेदमें श्री और ग्रामणी शब्दोंके उत्तर आम्को नुट्का आगम हो, यथा-"श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्" । "सूतग्रामणीनाम्" । 'श्रीणाम्' यह "वामि" इससे नदी संज्ञाके अभाव पक्षमें उदाहरण है, नदीसंज्ञापक्षमें तो "ह्रस्वनद्यापः" इसीसे सिद्ध है ॥

३५७४ गोः पादान्ते । ७ । १ । ५७ ॥

विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम् । पादान्ते किम् । गवां शता पृक्षयामेषु । पादान्तेऽपि क्वचिन्न । छन्दसि सर्वेषां वैकल्पिकत्वात् । विराजं गोपतिं गवाम् ॥

३५७४-वेदमें पाद(चरण)के अन्तमें स्थित गो शब्दके उत्तर आम्को नुट्का आगम हो, यथा-" विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम् " । पदान्तमें न होनेपर " गवां शता पृक्षयामेषु " इस स्थानमें नुट्का आगम न हुआ । वेदमें आगम और प्रत्ययादि सबके वैकल्पिकत्वके कारण कहीं २ पदान्तमें भी नुट्का आगम न होगा, यथा- 'विराजं गोपतिं गवाम् ' पादसे इस स्थलमें ऋचाका चरण जानना कारण कि, यहां ' छन्दसि' इसका अधिकार है ॥

३५७५ छन्दस्यपि दृश्यते ।७।१।७६॥

अस्थ्यादीनामनङ्।इन्द्रो दधीचो अस्थभिः॥

३५७५-वेदमें टादि हलादि विभक्ति परे रहते भी अस्थ्यादि शब्दोंको अनङ् आदेश हो, यथा-" इन्द्रो दधीचोऽस्थभिः" इस स्थानमें 'अस्थिभिः' ऐसा प्राप्त होनेपर ' अस्थभिः ' हुआहै । इस स्थलमें " छन्दसि च " ऐसा सूत्र करनेसे ही सिद्ध होनेपर "अपि दृश्यते " यह सर्वोपाधिका व्यभिचारार्थ है, इससे टादि अजादिविभक्ति परे विहित अनङादेश हलादिविभक्ति परे भी होताहै, यथा 'अस्थभिः' और विभक्तिके परे उक्त अनङादेश अविभक्तिके परे भी होताहै, यथा-' अस्थन्वन्तं पदनस्था बिभर्ति ' । 'अस्थन्वन्तम् ' यहां अस्थिशब्दसे मतुप् अनङादेश करनेपर " अनो नुट् " इससे मतुप्को नुट् और अनङ्के नकारका लोप हुआ ॥

३५७६ ई च द्विवचने । ७ । १ । ७७॥

अस्थ्यादीनामित्येव । अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम् ॥

३५७६-वेदमें द्विवचन विभक्ति परे रहते अस्थ्यादि शब्दोंके इकारके स्थानमें दीर्घ ईकार हो, यथा-"अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम्" ॥

३५७७ दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि। ७ । १ । ८३ ॥

एषां नुम् स्यात्सौ । कीदृङ्ङिन्द्रः । स्ववान्। स्वतवान् ॥ " उदोष्ठ्यपूर्वस्य । ७।१।१०२॥"

३५७७-वेदमें सुविभक्ति परे रहते दृक्, स्ववस् और स्वतवस् शब्दोंको नुमागम हो, यथा-कीदृङ्ङिन्द्रः। स्ववान् । स्वतवान् " उदोष्ठ्यपूर्वस्य २४९४ " यह सूत्र यहां स्मरणार्थ है ॥

३५७८ बहुलं छन्दसि । ७ ।१।१०३॥

ततुरिः ॥

३५७८–वेदमें अङ्गावयव ओष्ठ्यपूर्वक जो ऋृत् तदन्त अङ्गको बहुल करके उत्व हो, यथा–ततुरिः ॥

३५७९ हु ह्वरेश्छन्दसि । ७ । २ ।३१॥

ह्वरेर्निष्ठायां हु आदेशः स्यात् । अहुतमसि हविर्धानम् ॥

३५७९–वेदमें ह्वृ धातुको निष्ठा प्रत्यय परे रहते हु आदेश हो, यथा–" अहुतमसि हविर्धानम् " ॥

३५८० अपरिह्वृताश्च । ७ । २ । ३२ ॥

पूर्वेण प्राप्तस्यादेशस्याभावो निपात्यते । अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ॥

३५८०–वेदमें नञ् परिपूर्वक ह्वृ धातुको निष्ठा प्रत्यय परे रहते निपातनसे पूर्वसूत्रोक्त आदेश न हो, यथा–"अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्" ॥

३५८१ सोमे ह्वरितः । ७ । २ । ३३ ॥

इड्गुणौ निपात्येते । मा नः सोमो ह्वरितः ॥

३५८१–वेदमें सोम अर्थ होनेपर और निष्ठा प्रत्यय परे रहते ह्वृ धातुको निपातनसे इट् और गुण हो, यथा–"मा नः सोमो ह्वरितः " ॥

३५८२ ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्तविकस्ता विशस्तृशंस्तृशास्तृतरुतृतरूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीरुज्ज्वलितिक्षरितिक्षमितिवमित्यमितीति च । ७।२।३४॥

अष्टादश निपात्यन्ते । तत्र ग्रसु स्कम्भु स्तम्भु एषामुदित्त्वान्निष्ठायामिट्प्रतिषेधे प्राप्ते इण्निपात्यते । युवं शचीभिर्ग्रसितामुञ्चतम् । विष्कभिते अजरे । येन स्वः स्तभितम् । सत्येनोत्तभिता भूमिः । स्तभितेत्येव सिद्धे उत्पूर्वस्य पुनर्निपातनमन्योपसर्गपूर्वस्य मा भूदिति। चते याचने । कस गतौ । आभ्यां क्तस्येडभावः। चत्ता इतश्चत्तामुतः । त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तम् । उत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् । निपातनबहुत्वापेक्षया सूत्र बहुवचनं विकस्ता इति तेनैकवचनान्तोऽपि प्रयोगः साधुरेव । शसु शंसु शासु एभ्यस्तृच इडभावः । एकस्त्वष्टुरश्वस्याविशस्ता । ग्रावग्राभ उत शंस्ता । प्रशास्ता पोता । तरतेर्वृङ्वृञोश्च तृच उट् ऊट् एतावागमौ निपात्येते । तरुतारं रथानाम् ।तरूतारम् । वरुतारम् वरूतारम् । वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु । अत्र ङीबन्तनिपातनं प्रपञ्चार्थम् । वरूतृशब्दो हि निपातितः । ततो ङीपा गतार्थत्वात् । उज्ज्वलादिभ्यश्चतुर्भ्यः शप इकारादेशो निपात्यते । ज्वल दीप्तौ । क्षर संचलने । टुवम उद्गिरणे । अम गत्यादिषु । इह क्षरितीत्यस्यानन्तरं क्षमितीत्यपि केचित्पठन्ति । तत्र क्षमूष् सहने इति धातुर्बोध्यः । भाषायां तु ग्रस्तस्कब्धस्तब्धोत्तब्धचतितविकसिताः । विशसिता–शंसिता–शासिता । तरीता–तरिता । वरीता–वरिता । उज्ज्वलति । क्षरति । पाठान्तरे क्षमति । वमति । अमति ॥ " बभूथाऽऽततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे । ७।२।६४ " ॥ विश्वा तमुत्सं यत आवभूथ । येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ । जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तम् । त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ । भाषायां तु । बभूविथ । आतेनिथ । जगृहिम । ववरिथेति ॥

३५८२–वेदमें ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित, चत्त, विकस्त, विशस्तृ, शंस्तृ, शास्तृ, तरुतृ, तरूतृ, वरुतृ, वरूतृ, वरूत्री, उज्ज्वलिति, क्षरिति, वमिति और अमिति यह अठारह पद निपातनसे सिद्ध हों । उनमें ग्रसु, स्कम्भु और स्तम्भु इन धातुओंका उकार इत् होनेके कारण निष्ठा प्रत्यय परे इट्का प्रतिषेध प्राप्त होनेपर निपातनसे इट् होगा, यथा–" युवं शचीभिर्ग्रसितामुञ्चतम् " "विस्कभिते अजरे" "येन स्वः स्तभितम् " । " सत्येनोत्तभिता भूमिः " 'स्तभिता' इसीसे सिद्ध होनेपर भी उत्पूर्वक स्तम्भ धातुको ' उत्तभित ' ऐसा निपातन केवल उत्से भिन्न उपसर्ग पूर्वमें रहते तादृश निपातन नहीं हो इस निमित्त है । 'चते याचने' और ' कस गतौ ' इन दो धातुओंके उत्तर क्त प्रत्ययको इट्का आगम न होकर–यथा–" चत्ता इतश्चत्तामुतः " । "त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तम् " । " उत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् " । सूत्रमें 'विकस्ताः' ऐसा बहुवचन निपातनगत बहुत्वकी अपेक्षासे है, अत एव एकवचनान्त प्रयोग भी साधु ही है । शसु, शंसु और शासु धातुके उत्तर तृच् प्रत्ययको इट् आगम न होकर–यथा–" एकस्त्वष्टुरश्वस्याविशस्ता " " ग्रावग्राभ उत शंस्ता " । " प्रशास्ता पोता" । तॄ, वृङ्, और वृञ् धातुके उत्तर तृच् प्रत्ययको निपातनसे उट् और ऊट् यह दो आगम होकर–यथा–" तरुतारं रथानाम् " तरूतारम् । वरुतारम् । वरूतारम् । "वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु " इस स्थलमें ङीप्प्रत्ययान्त निपातन प्रपञ्चार्थ है, क्यों कि, वरूतृ शब्द निपातनसिद्ध है, उसके उत्तर ङीप् प्रत्यय करके गतार्थ होजाताहै । उज्ज्वलादि चार धातुओंके अर्थात् ज्वल दीप्तौ, क्षर संचलने, टुवम् उद्गिरणे, अम् गत्यादिषु, इन धातुओंके उत्तर शप्के स्थानमें निपातनसे इकारादेश हुआहै । कोई २ ' क्षरिति ' इस पदके आगे 'क्षमिति' ऐसे पदका भी पाठ करतेहैं, उस स्थलमें ' क्षमूष्

सहने ' यह धातु जाननी चाहिये । लोकमें तो निष्ठा प्रत्ययान्त धातुका, ग्रस्तः । स्कम्भु–स्कब्धः । स्तम्भु–स्तब्धः । उत्तम्भु–उत्तब्धः । चते–चतितः । विकस–विकसितः । शसु–विशसिता । शंसु–शंसिता । शासु–शासिता। तृ–तरीता–तरिता,वृङ्, वृञ्–वरीता वरिता । उत्पूर्वक ज्वल–उज्ज्वलति। क्षर–क्षरति । पाठान्तरमें क्षम-क्षमति । वम–वमति । अम–अमति । ऐसे पद होंगे ॥

वेदमें बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ और ववर्थ यह पद निपातनसे सिद्ध हों, अर्थात् इनको वेदमें निपातनसे इट् न हो, २९२७ यथा–" विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ " । " येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ " " जगृम्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तम् " " त्वं ज्योतिषा वितमो ववर्थ " । लोकमें तो ' बभूविथ । आतेनिथ । जगृहिम । ववरिथ ' इस प्रकार होंगे ॥

३५८३ सनिंससनिवांसम् । ७ ।२।६९॥

सनिमित्येतत्पूर्वात्सनतेः सनोतेर्वा क्वसोरिट् । एत्वाभ्यासलोपाभावश्च निपात्यते ॥

पावकादीनां छन्दसि प्रत्ययस्थात्कादित्वं नेति वाच्यम् ॥ * ॥ हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः ॥

३५८३–वेदमें निपातनसे सनिम्पूर्वक भौवादिक सन् धातु अथवा तानादिक सन धातुके उत्तर क्वसु प्रत्ययको इट् हो, और एत्व और अभ्यास लोपका अभाव हो, यथा–सनिं ससनिवांसम् ॥

वेदमें पावकादि शब्दोंके उत्तर प्रत्ययस्थ ककारसे पूर्व अकारको इत्व न हो*यथा–"हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः" लोकमें प्रत्ययस्थ ककारके पूर्ववर्त्ती अकारके स्थानमें इकार होगा, यथा–पाविकाः ॥

३५८४ घोर्लोपो लेटि वा । ७।३।७०॥

दधद्रत्नानि दाशुषे । सोमो ददद्गन्धर्वाय । यदग्निरग्नये ददात् ॥

३५८४–वेदमें लेट् परे रहते घुसंज्ञक धातुके आकारका विकल्प करके लोप हो, यथा–" दधद्रत्नानि दाशुषे"यहां धा धातुसे लेट्, श्लु, द्वित्व होकर–'दधाति ' इस प्रकार होनेपर आकारका लोप और " लेटोऽडाटौ ३४२७ " इस सूत्रसे अडागम और " इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ३४२६ " इससे इकार लोप हुआ । " सोमो ददद् गन्धर्वाय" । "यदग्निरग्नये ददात्"। पूर्व दोनों स्थलोंमें आकारका लोप हुआहै और पर स्थलमें लोपाभाव हुआहै ॥

३५८५ मीनातेर्निगमे । ७ । ३ ।८१॥

शिति ह्रस्वः । प्रमिणन्ति व्रतानि । लोके प्रमीणाति । "अस्तिसिचोऽपृक्ते । ७ ।३।९६"॥

३५८५–वेदमें शित् प्रत्यय परे रहते भी धातुके ईकारको ह्रस्व हो, यथा–" प्रमिणन्ति व्रतानि " इस स्थलमें "हिनुमीना २५३०" इस सूत्रसे णत्व हुआहै । लोकमें प्रमीणाति । " अस्तिसिचोऽपृक्ते २२२५ " यह सूत्र यहां स्मरणार्थक है–॥

३५८६ बहुलं छन्दसि । ७ । ३ । ९७॥

सर्वमा इदम् ॥

ह्रस्वस्य गुणः । जसि च । जसादिषु छन्दसि वा वचनं प्राङ् णौ चङ्युपधायाः ॥ * ॥ अधा शतक्रत्वो यूयम् । शतक्रतवः । पश्वे नृभ्यो यथा गवे । पशवे । नाभ्यस्तस्याचीति निषेधे बहुलं छन्दसीति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आ-नुषग्जुजोषत् ॥

३५८६–वेदमें बहुल करके विद्यमान सिच् और अस् धातुके उत्तर अपृक्तसंज्ञक हल्को ईट् हो, यथा– "सर्वमा इदम्" यहां अस धातुके उत्तर लङ्, तिप्, "आडजादीनाम् २२५४ " इस सूत्रसे आट्, शप्का लुक् " अस्तिसिच० २२२५ " इस सूत्रसे ईट्का अभाव होनेपर अपृक्तत्वके कारण " हल्ङ्याप्०"से तका लोप रुत्व और विसर्ग हुआ । ह्रस्वको गुण हो सुम्बुद्धि परे रहते "जसि च २४१" ह्रस्वको गुण हो जस् प्रत्यय परे रहते ॥

जसादि प्रत्यय परे रहते वेदमें ' णौ चङ्युपधायाः' इस शास्त्रसे पूर्व शास्त्रविहित कार्य्य विकल्प करके हो * यथा– " अधा शतक्रत्वो यूयम् " । " शतक्रतवः " पश्वेनृभ्यो यथागवे" "पशवे" ॥

" नाभ्यस्तस्याचि २५०३ " इस गुणनिषेध शास्त्रमें 'बहुलं छन्दसि' ऐसा कहना चाहिये, अर्थात् " नाभ्यस्तस्याचि० " इसमें गुणनिषेध वेदमें विकल्प करके हो*"जुजोषत् " यहां प्रीति और सेवनार्थक जुष् धातुसे लेट् व्यत्ययसे परस्मैपद, तिप्, इकारका लोप, "लेटो " इस सूत्रसे अट्, व्यत्ययसे शप्के स्थानमें श्लु और द्वित्व हुआहै ॥

३५८७ नित्यं छन्दसि । ७ । ४ । ८ ॥

छन्दसि विषये चङ्युपधाया ऋवर्णस्य ऋन्नित्यम् । अवीवृधत् ॥

३५८७–वेदमें चङ् परे रहते उपधाभूत ऋवर्णके स्थानमें नित्य ऋकार हो, यथा–"अवीवृधत् " ॥

३५८८ न च्छन्दस्यपुत्रस्य ।७।४।३५॥

पुत्रभिन्नस्यादन्तस्य क्यचि ईत्वदीर्घौ न । मित्रयुः । क्याच्छन्दसीति उः । अपुत्रस्य किम्। पुत्रीयन्तः सुदानवः । अपुत्रादीनामिति वाच्यम् ॥ * ॥ जनीयन्तो न्वग्रवः । जनमिच्छन्त इत्यर्थः ॥

३५८८–क्यच् प्रत्यय परे रहते पुत्रभिन्न अकारान्त शब्दोंके अकारके स्थानमें ईकार और दीर्घ न हो, यथा– "मित्रायुः" यहां " क्याच्छन्दसि ३१५०" इस सूत्रसे उकार हुआ 'अपुत्रस्य' यह क्यों कहा ? तो " पुत्रीयन्तः सुदानवः" इस स्थलमें ईत्व और दीर्घ न हो ॥

'अपुत्रादीनाम्' अर्थात् पुत्रादिभिन्नको क्यच् परे ईत्व,दीर्घ न हो ऐसा कहना चाहिये * यथा–"जनीयन्तोऽन्वग्रवः " अर्थात् जनको इच्छा करतेहैं ॥

३५८९ दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यतिरिषण्यति । ७ । ४ । ३६ ॥

एते क्यचि निपात्यन्ते । भाषायां तु उप्रत्ययाभावाद् दुष्टीयति । द्रविणीयति । वृषीयति । रिष्टीयति ॥

३५८९-क्यच् प्रत्यय परे दुरस्युः, द्रविणस्युः, वृषण्यति, रिषण्यति, यह पद निपातनसे सिद्ध हों । लोकमें तो उ प्रत्ययके अभावके कारण 'दुष्टीयति । द्रविणीयति । वृषीयति । रिष्टीयति' इस प्रकार होंगे । 'दुरस्युः' इत्यादिमें दुष्ट शब्दको दुरस् भाव,द्रविणको द्रविणस्,वृषको वृषण्, रिष्टको रिषण् भाव निपातनसे हुआहै ॥

३५९० अश्वाघस्यात् । ७ । ४ । ३७ ॥

अश्व अघ एतयोः क्यचि आत्स्याच्छन्दसि । अश्वायन्तो मघवन् । मा त्वा वृका अघायवः । न च्छन्दसीति निषेधो न ईत्वमात्रस्य किंतु दीर्घस्यापीति । अत्रेदमेव सूत्रं ज्ञापकम् ॥

३५९०-वेदमें क्यच् प्रत्यय परे रहते अश्व और अघ शब्दके अकारको आत् हो, "अश्वायन्तो मघवन्" मा त्वा वृका अघायवः" । "न च्छन्दसि" इस सूत्रसे केवल ईत्वमात्रका निषेध नहीं होगा, किन्तु दीर्घका भी निषेध होगा, इसमें यह सूत्र ही ज्ञापक है ॥

३५९१ देवसुम्नयोर्यजुषि काठके । ७ । ४ । ३८ ॥

अनयोः क्यचि आत्स्याद्यजुषि कठशाखायाम् । देवायन्तो यजमानाः । सुम्नायन्तो हवामहे । इह यजुःशब्दो न मन्त्रमात्रपरः किंतु वेदोपलक्षकः । तेन ऋगात्मकेऽपि मन्त्रे यजुर्वेदस्थे भवति। किं च ऋग्वेदेपि भवति।स चेन्मन्त्रो यजुषि कठशाखायां दृष्टः।यजुषीति किम् । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः । बह्वृचानामप्यस्ति कठशाखा ततो भवति प्रत्युदाहरणमिति हरदत्तः॥

३५९१-यजुर्वेदीय कठशाखा विषयमें क्यच् परे रहते देव और सुम्न शब्दोंके अकारको आत् हो, यथा-"देवायन्तो यजमानाः" । "सुम्नायन्तो हवामहे" । इस स्थलमें यजुः शब्द केवल मंत्रमात्रपरक नहीं है, किन्तु वेदोपलक्षक है । इस कारण युजुर्वेदान्तर्गत ऋगात्मक मंत्रोंमें भी यह कार्य होगा । और ऋग्वेदमें भी होसकता है, यदि वही मंत्र यजुर्वेद विषयक कठशाखामें दृष्ट हो तो । यजुर्वेदीय कठ शाखा न होनेपर "देवाञ्जिगातिसुम्नयुः" ऐसा होगा।बह्वृचोंके भी कठशाखा होतीहै, इस कारण यह प्रत्युदाहरण है, ऐसा हरदत्त कहतेहैं ॥

३५९२ कव्यध्वरपृतनस्यर्चिलोपः । ७ । ४ । ३९ ॥

स पूर्वया निविदा कव्यतायोः । अध्वर्युं वा मधुपाणिम् । मदयन्तं पृतन्युम् ॥ "दधातेर्हिः । ७ । ४ । ४२ ।" "जहातेश्च क्त्वि । ७ । ४ । ४३" ॥

३५९२-ऋक् विषयमें क्यच् परे रहते कवि, अध्वर और पृतना शब्दोंके अन्त्यका लोप हो, मृगय्वादि गणमें अध्वर्यु शब्द पठित है, इससे उसकी व्युत्पत्त्यन्तर समझना "स पूर्वया निविदा कव्यतायोः"। "अध्वर्युं वा मधुपाणिम्" "मदयन्तं पृतन्युम्" । "दधातेर्हिः ३०७६" "जहातेश्च क्त्वि ३३३१" यह दोनों सूत्र यहां स्मरणार्थ हैं ॥

३५९३ विभाषा छन्दसि । ७। ४।४४॥

हित्वा शरीरम् । हीत्वा वा ॥

३५९३-वेदमें हा धातुके स्थानमें विकल्प करके हि आदेश हो, हि आदेशाभाव पक्षमें "घुमास्था०" इस सूत्रसे ईकार होगा, यथा-हित्वा शरीरम् । हीत्वा वा ॥

३५९४ सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च । ७ । ४ । ४५ ॥

सु वसु नेम एतत्पूर्वस्य दधातेः क्ते प्रत्यये इत्वं निपात्यते । गर्भं माता सुधितं वक्षणासु । वसुधितमग्नौ । नेमधिता न पौंस्या ॥ क्तिन्यपि दृश्यते । उत श्वेतं वसुधितिं निरेके । धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते । धत्स्वेति प्राप्ते । सुरेता रेतो धिषीय । आशीर्लिङि । इट् । इटोऽत् । धासीयेति प्राप्ते ॥

अपो भि ॥ मासश्छन्दसीति वक्तव्यम् ॥*॥ माद्भिः शरद्भिः ॥स्ववस्वतवसोरुषसश्चेष्यते॥*॥ स्ववद्भिः । अवतेरसुन् । शोभनमवो येषां ते स्ववसस्तैः । तु इति सौत्रो धातुस्तस्मादसुन् । स्वं तवो येषां तैः स्वतवद्भिः । समुषद्भिरजायथाः । मिथुनेऽसिः । वसेः किच्चेत्यसिप्रत्यय इति हरदत्तः । पञ्चपादीरीत्या तु उषः किदिति प्राग्व्याख्यातम् ॥ "न कवतेर्यङि ॥७।४।६३।"

३५९४-वेदमें सु वसु और नेम शब्दपूर्वक धा धातुके आकारके स्थानमें क्त प्रत्यय परे रहते निपातनसे इत्व हो, यथा-"गर्भं माता सुधितं वक्षणासु" । "वसुधितमग्नौ" । "नेमधिता न पौंस्या" क्तिन् प्रत्यय परे भी इत्व देखेजातेहै, यथा-"उत श्वेतं वसुधितिं निरेके" । "धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते" यहां 'धत्स्व' ऐसा प्राप्त था परन्तु निपातनसे 'धिष्व' हुआ । "सुरेता रेतो धिषीय" यहां आशीर्लिङ्में इट्, उसके स्थानमें अत् होकर 'धासीय' ऐसा प्राप्त था

"अपो भि ४४२" अप् शब्दके पकारके स्थानमें त हो, भादि प्रत्यय परे रहते ॥

"मासश्छन्दसीति वक्तव्यम्" अर्थात् भादि प्रत्यय परे रहते वेदमें मास् शब्दके सके स्थानमें तकार हो, ऐसा कहना चाहिये * माद्भिः शरद्भिः ।

स्ववस्, स्वतवस् और उषस् शब्दोंके सके स्थानमें तकार हो * "स्ववद्भिः" यहां अव धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय पश्चात् सुशोभनम् अवो येषां ते=स्ववसः तैः, इस विग्रहमें, 'स्ववद्भिः' पद सिद्ध हुआहै । तु यह सूत्रान्तर्गत धातु है, उसके उत्तर असुन् प्रत्यय हुआ पश्चात् स्व तवो येषां तैः इस विग्रहमें "स्वतवद्भिः" हुआ । "समुषद्भिरजायथाः" यहां मिथुनेसिः "वसेः किच्च" इस सूत्रसे असि प्रत्यय हुआहै, यह हरदत्तका मत है । पञ्चपादीरीत्यनुसार उष धातुके उत्तर कित् प्रत्यय होकर उक्त रूप हुआहै यह पूर्वमें व्याख्या की है । "न कवतेर्यङि" यह सूत्र यहां स्मरणार्थ है ॥

३५९५ कृषेश्छन्दसि । ७ । ४ । ६४ ॥

यङि अभ्यासस्य चुत्वं न । करीकृष्यते ॥

३५९५-वेदमें कृष् धातुके अभ्यासको यङ् परे रहते चुत्व न हो अर्थात् कके स्थानमें चकार न हो, यथा-करीकृष्यते ॥

३५९६ दाधर्तिदर्धर्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतःसरीसृपतंवरीवृजन्मर्मृज्यागनीगन्तीति च । ७ । ४ । ६५ ॥

एतेऽष्टादश निपात्यन्ते । आद्यास्त्रयो धृङो धारयतेर्वा । भवतेर्यङ्लुगन्तस्य गुणाभावः । तेन भाषायां गुणो लभ्यते । तिजेर्यङ्लुगन्तात्तङ् इयर्तेर्लिटि हलादिःशेषापवादो रेफस्य लत्वमित्त्वाभावश्च निपात्यते । अलर्षियुध्म खजकृत्पुरन्दरः । सिपा निर्देशो न तन्त्रम् । अलर्ति दक्ष उत । फणतेराङ्पूर्वस्य यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य नीगागमो निपात्यते । आपनीफणत् । स्यन्देः संपूर्वस्य यङ्लुकि शतरि अभ्यासस्य निक् । धातुसकारस्य षत्वम् । करोतेर्यङ्लुगन्तस्याभ्यासस्य चुत्वाभावः । क्रन्देर्लुङि च्लेरङ् द्विर्वचनमभ्यासस्य चुत्वाभावो निगागमश्च । कनिक्रदज्जनुषम् । अक्रन्दीदित्यर्थः । बिभर्तेरभ्यासस्य जश्त्वाभावः । वि यो भरिभ्रदोषधीषु । ध्वरतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य विगागमो धातोर्ऋकारलोपश्च । दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य । द्युतेरभ्यासस्य संप्रसारणाभावोऽत्वं विगागमश्च । दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः । तरतेः शतरि श्लौ अभ्यासस्य रिगागमः । सहोर्जा तरित्रतः । सृपेः शतरि श्लौ द्वितीयैकवचने रीगागमोऽभ्यासस्य । वृजेः शतरि श्लावभ्यासस्य रीक् । मृजेर्लिटि णल् अभ्यासस्य रुक् धातोश्च युक् । दमेराङ्पूर्वस्य लटि श्लावभ्यासस्य चुत्वाभावो नीगागमश्च । वक्ष्यन्ती वेदा गनीगन्ति कर्णम् ॥

३५९६-दाधर्त्ति, दर्धर्त्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वत्, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीव्रजत्, मर्मृज्या, आगनीगन्ति, यह अठारह पद वेदमें निपातनसे सिद्ध हों, उनमें पहिलेका तीन धृ अथवा धारि धातुके रूप हैं । यङ्लुगन्त भू धातुको गुणभाव हुआ, इस कारण लोकमें गुण होगा, यङ् लुगन्त तिज् धातुके उत्तर तङ् हुआहै ऋ धातुके उत्तर विट् परे हलादिः शेषापवाद रेफके स्थानमें लकार, इत्वाभाव निपातनसे होकर-"अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दरः" सिप् करके निर्देश शास्त्रसम्मत नहीं है इससे "अलर्ति दक्ष उत" यह हुआ । आङ् पूर्वक यङ्लुगन्त फण धातुसे शतृ प्रत्यय होनेपर अभ्यासको नीक्का आगम निपातनसे होकर, आपनीफणत् । संपूर्वक स्यन्द धातुके उत्तर यङ्का लुक्, और शतृ प्रत्यय होनेपर अभ्यासको नीक्का आगम और धातुके सकारको षत्व हुआ । यङ्लुगन्त कृ धातुके अभ्यासको चुत्वाभाव अर्थात् "कुहोश्चुः" इस सूत्रसे प्राप्त कके स्थानमें चकार न हुआ । क्रन्द धातुके उत्तर लुङ् परे च्लिके स्थानमें अङ्, पश्चात् द्वित्व, अभ्यास कवर्गको चवर्गका अभाव और निक्का आगम होकर-"कनिक्रदज्जनुषम्" अर्थात् रोदन कियाथा । भृ धातुके उत्तर शतृ प्रत्यय करके अभ्यासको जश्त्वका अभाव और रिगागम होकर यथा "वि यो भरिभ्रदोषधीषु"। यङ् लुगन्त ध्वृ धातुके उत्तर शतृ प्रत्यय परे अभ्यासको विक्का आगम और धातुके ऋकारका लोप होकर-यथा-"दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य" । यङ्लुगन्त द्युत् धातुके उत्तर शतृ प्रत्यय परे अभ्यासको "द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् २३४४" इस सूत्रसे प्राप्त सम्प्रसारण का अभाव और अत्व अर्थात् अकार और विगागम होकर-यथा-"दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः" तॄ धातुके उत्तर शतृ, श्लु प्रत्यय और अभ्यासको रिगागम होकर-यथा-"सहोर्जा तरित्रतः" । सृप् धातुके उत्तर शतृ और श्लु प्रत्यय द्वितीयैकवचनमें अभ्यासको रीगागम हुआ । वृज् धातुसे शतृ और श्लु, अभ्यासको रीगागम हुआ । मृज् धातुके उत्तर लिट्, णल् अभ्यासको रुक् और धातुको युक्का आगम हुआ । आङ्पूर्वक दम् धातुके उत्तर लट् और श्लु अभ्यासको चुत्वाभाव और नीक्का आगम होकर-यथा-"वक्ष्यन्ती वेदा गनीगन्ति कर्णम्" ॥

३५९७ ससूवेति निगमे । ७ । ४ । ७४ ॥

सूतेर्लिटि परस्मैपदं युगागमोऽभ्यासस्य चात्वं निपात्यते । गृष्टिः ससूव स्थविरम् । सुषुव इति भाषायाम् ॥

३५९७-वेदमें लिट् लकारमें सू धातुसे परस्मैपद और वुगागम और अभ्यासको आत्व अर्थात् ऊकारके स्थानमें आकार निपातनसे हो, यथा-"गृष्टिः ससूव स्थविरम्"। भाषामें "सुषुवे" ऐसा पद होगा ॥

३५९८ बहुलं छन्दसि ।७। ४। ७८॥

अभ्यासस्य इकारः स्याच्छन्दसि । पूर्णां विवष्टि । विशेरेतद्रूपम् ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

३५९८-वेदमें धातुसम्बन्धी अभ्यासको इकार हो, यथा-"पूर्णां विवष्टि" यह विश् धातुका रूप है। विश् धातुसे लिट्, तिप्,णप्के स्थानमें श्लु, द्वित्व, अभ्यासको इत्व "व्रश्च०" इससे षत्व और ष्टुत्व होकर 'विवष्टि' यह पद सिद्ध हुआ है ॥

इति सप्तमोऽध्यायः।

३५९९ प्रसमुपोदः पादपूरणे ।८।१।६॥

एषां द्वे स्तः पादपूरणे । प्रप्रायमग्निः । संसमिद्युवसे । उपोप मे परामृश । किं नोदुदु हर्षसे ॥

३५९९-वेदमें पादपूरण होनेपर प्र,सम्, उप और उत् इन अव्यय शब्दोंको द्वित्व हो, यथा-"प्रप्रायमग्निः"। "संसमिद्युवसे" । "उपोप मे परामृश" । "किं नोदुदु हर्षसे" ॥

३६०० छन्दसीरः ।८।२।१५॥

इवर्णान्ताद्रेफान्ताच्च परस्य मतोर्मस्य वः स्यात् । हरिवते हर्यश्वाय । गीर्वान् ॥

३६००-वेदमें इवर्णान्त और रेफान्त शब्दके परवर्ती मतुप्के मकारके स्थानमें वकार हो, यथा-"हरिवते हर्यश्वाय" गीर्वान्। "र्वोरुपधाया दीर्घ इकः" इससे दीर्घ ॥

३६०१ अनो नुट्।८।२।१६॥

अनन्तान्मतोर्नुट् स्यात् । अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः। अस्थन्वन्तं यदनस्था ॥

३६०१-वेदमें अन् भागान्त शब्दके उत्तर मतुप्को नुट् आगम हो, यथा-"अक्षण्वन्तः, कर्णवन्तः" । अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ॥

३६०२ नाद्घस्य।८।२।१७॥

नान्तात्परस्य घस्य नुट् । सुपथिन्तरः ॥ भूरिदाव्नस्तुड्वाच्यः ॥ * ॥ भूरिदावत्तरो जनः। ईद्रथिनः ॥ * ॥ रथीतरः । रथीतमं रथीनाम्॥

३६०२-वेदमें नकारान्त शब्दोंके परे स्थित घको नुट्का आगम हो। यथा, "सुपथिन्तरः"।

भूरिदावन् शब्दके उत्तर घको तुट्का आगम हो * "भूरिदावत्तरो जनः" दा+वनिप्+तरप्+ "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य" इससे नकारका लोप, तुडागम। रथिन् शब्दको घ परे रहते इत् हो*। रथीतरः।"रथीतमं रथीनाम्" ॥

३६०३ नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि च्छन्दसि ।८।२।६१॥

सदेर्नञ्पूर्वान्निपूर्वाच्च निष्ठाया नत्वाभावो निपात्यते । नसत्तमञ्जसा। निषत्तमस्य चरतः। असन्नं निषण्णमिति प्राप्ते । उन्देर्नञ्पूर्वस्यानुत्तम्। प्रतूर्तमिति त्वरतेः । तुर्वीत्यस्य वा। सूर्तमिति सृ इत्यस्य। गूर्तमिति गुरी इत्यस्य॥

३६०३-वेदमें नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त्त, सूर्त्त, गूर्त्त यह पद निपातनसे सिद्ध हों। नसत्त और निषत्त इस स्थलमें नञ्पूर्वक और निपूर्वक सद् धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्यय होकर निपातनसे नत्वाभाव हुआहै । यथा-"नसत्तमञ्जसा" । "निषत्तमस्य चरतः" लौकिक प्रयोग, असन्नम् निषण्णम् इस प्रकार होगा। नञ्पूर्वक उन्द धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्यय करके अनुत्तम् पद सिद्ध हुआहै। भाषामें अनुन्नम् । प्रपूर्वक त्वर अथवा तुर्व धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्यय करके प्रतूर्त्त पद सिद्ध हुआहै । "ज्वरत्वर० २६५४" इत्यादिसे ऊठ्। लोकमें प्रतूर्णम् । सृ धातुके उत्तर निष्ठा प्रत्यय करनेपर सूर्त्तम्। "उरण्रपरः" गुरी धातुसे निष्ठा प्रत्यय करनेपर गूर्त्तम् इत्यादि पद सिद्ध हुएहैं। लोकमें गूर्णम्। इस प्रकार होगा ॥

३६०४ अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि।८।२।७०॥

रुर्वा रेफो वा। अम्न एव । अम्नरेव । ऊध एव-ऊधरेव । अव एव-अवरेव ॥

३६०४-वेदमें अम्न, ऊध और अव शब्दके उत्तर विकल्प करके निपातनसे रु, अथवा रेफ हो, यथा-अम्न-एव, रुत्वपक्षमें "भोभगो० १६७" इससे रुको यकार"लोपः शाकल्यस्य"से लोप। अम्नरेव। ऊध एव=ऊधरेव। अव एव=अवरेव। अम्नर् ऊधर् और अवर् शब्द विकल्प करके रु अथवा र् होकर निपातनसे सिद्ध हुए हैं ॥

३६०५ भुवश्च महाव्याहृतेः।८।२।७१॥

भुव इति । भुवरिति ॥

३६०५-वेदमें महाव्याहृति अर्थमें भुव शब्दके उत्तर रु अथवा र् हो, यथा-भुव+इति=भुवरिति । भूः भुवः स्वः यह तीन महाव्याहृति पृथिवी अन्तरिक्ष और स्वर्गकी वाचक हैं ॥

३६०६ ओमभ्यादाने।८।२।८७॥

ओंशब्दस्य प्लुतः स्यादारम्भे । ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितम् । अभ्यादाने किम् । ओमित्येकाक्षरम् ॥

३६०६-अभ्यादान अर्थात् आरम्भ होनेपर अथवा वेदादिमंत्रोंके प्रथममें ओं शब्द प्लुत स्वर हो, यथा-"ओ३म्

अग्निमीळे पुरोहितम्" । आरम्भ न होनेपर "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" । इस स्थलमें प्लुत स्वर नहीं हुआ ॥

३६०७ ये यज्ञकर्मणि । ८ । २ । ८८ ॥

ये ३ यजामहे । यज्ञेति किम् । ये यजामहे॥

३६०७–यज्ञकर्म्म होनेपर वेदमें "ये" इस पदको प्लुत स्वर हो, यथा–"ये ३ यजामहे" । यज्ञ कर्म्म न होनेपर प्लुत स्वर नहीं होगा । यथा–"ये यजामहे" ॥

३६०८ प्रणवष्टेः । ८ । २ । ८९ ॥

यज्ञकर्मणि टेरोमित्यादेशः स्यात् । अपां रेतांसि जिन्वतो३म् । टेः किम् । हलन्तेऽन्त्यस्य मा भूत् ॥

३६०८–यज्ञकर्म्म होनेपर टिके स्थानमें प्लुत "ओम्" आदेश हो, यथा–"अपां रेतांसि जिन्वतो३म्" । टिभिन्न अन्य स्थल होनेपर हलन्त शब्दके अन्त्य वर्णके स्थानमें ओमादेश नहीं होगा ॥

३६०९ याज्यान्तः । ८ । २ । ९० ॥

ये याज्यान्ता मन्त्रास्तेषामन्त्यस्य टेः प्लुतो यज्ञकर्मणि । जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहा३म् । अन्तः किम् । याज्यानामृचां वाक्यसमुदायरूपाणां प्रतिवाक्यं टेः स्यात् सर्वान्तस्य चेष्यते ॥

३६०९–याज्यानुवाक्यकांडनामक प्रकरणमें जो सम्पूर्ण मंत्र है यज्ञकर्म्म होनेपर उनकी अन्त्य टिके स्थानमें प्लुत स्वर हो, यथा–"जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहा३म्" । याज्यका अन्त्य न होनेपर वाक्य समुदाय रूप याज्य मंत्रके प्रति वाक्यमें टिके स्थानमें प्लुत स्वर होगा, और सर्वान्त टिके स्थानमें प्लुत स्वर इष्ट है ॥

३६१० ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः । ८ । २ । ९१ ॥

एषामादेः प्लुतो यज्ञकर्मणि । अग्नयेऽनुब्रू ३ हि । अग्नये गोमयानि प्रे३ष्य । अस्तु श्रौ ३ षट् । सोमस्याग्ने वीही ३ वौ ३ षट् । अग्निमा ३ वह ॥

३६१०–वेदमें यज्ञकर्म्म होनेपर ब्रूहि, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट् और आवह पदके आदि वर्णको प्लुत स्वर हो, यथा–"अग्नये नुब्रू३हि।अग्नये गोमयानि प्रे३ष्य"।"अस्तु श्रौ३षट्"। "सोमस्याग्ने वीही३वौ३षट्" । "अग्निमा३वह" ॥

३६११ अग्नीत्प्रेषणे परस्य च । ८ । २ । ९२ ॥

अग्नीधः प्रेषणे आदेः प्लुतस्तस्मात्परस्य च। ओ ३ श्रा ३ वय । नेह । अग्नीदग्नीन्विहर। बर्हिस्तृणीहि ॥

३६११–वेदमें यज्ञकर्म्म होनेपर अग्नीत्प्रेषणार्थमें आदि वर्ण और उसके परवर्त्ती वर्णको प्लुत स्वर हो, यथा–"ओ३ श्रा३वय" । किन्तु "अग्नीदग्नीन्विहर" और "बर्हिस्तृणीहि"। इन दो स्थलोंमें नहीं होगा ॥

३६१२ विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः । ८ । २ । ९३ ॥

प्लुतः । अकार्षीः कटम् । अकार्षं हि ३ । अकार्षं हि । पृष्टेति किम् । कटं करिष्यति हि । हेः किम् । करोमि ननु ॥

३६१२–वेदमें पृष्ट विषयका प्रतिवचन होनेपर "हि" शब्दको विकल्प करके प्लुत स्वर हो,यथा–"अकार्षीः कटम्"। "अकार्षं हि३" । "अकार्षं हि" । पृष्ट प्रतिवचन न होनेपर यथा–"कटं करिष्यति हि" हि शब्द न होनेपर "करोमि ननु" ॥

३६१३ निगृह्यानुयोगे च । ८ । २ । ९४ ॥

अत्र यद्वाक्यं तस्य टेः प्लुतो वा । अद्यामावास्येत्यात्थ ३। अमावास्येत्येवं वादिनं युक्त्या स्वमतात्प्रच्याव्य एवमनुयुज्यते ॥

३६१३–निग्रहपूर्वक अनुयोग अर्थमें वर्तमान जो वाक्य उसकी टिके स्थानमें विकल्प करके प्लुत स्वर हो, यथा–"अद्यामावास्येत्यात्थ३" । अर्थात् आज अमावास्या है इस प्रकार कहनेवालेको युक्तिसे उसके निज मतसे प्रच्यावित करके ऐसा अनुयोग करना होताहै ॥

३६१४ आम्रेडितं भर्त्सने । ८ । २ । ९५ ॥

दस्योदस्यो ३ घातयिष्यामि त्वाम् । आम्रेडितग्रहणं द्विरुक्तोपलक्षणम् । चौरचौर ३ ॥

३६१४–भर्त्सनार्थमें आम्रेडित अर्थात् दो तीन वार उक्त जो पद उसके अन्तकी टिके स्थानमें प्लुत स्वर हो, यथा–दस्योदस्यो३घातयिष्यामि त्वाम्" । इस स्थलमें आम्रेडित शब्दग्रहणसे द्विरुक्त जानना चाहिये । "चौरचौर ३" इस स्थलमें भी प्लुत हुआ ॥

३६१५ अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम् । ८ । २ । ९६ ॥

अङ्गेत्यनेन युक्तं तिङन्तं प्लवते । अङ्ग कूज ३ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म । तिङ् किम् । अङ्ग देवदत्त मिथ्या वदसि । आकाङ्क्षं किम् । अङ्ग पच । नैतदपरमाकाङ्क्षति । भर्त्सन इत्येव । अङ्गाधीष्व भक्तं तव दास्यामि ॥

३६१५–आकांक्षा होनेपर अङ्ग शब्द करके युक्त तिङन्त पदके अन्त वर्णको प्लुत स्वर हो, यथा–"अङ्ग कूज३इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म" तिङन्त न होनेपर अङ्ग देवदत्त मिथ्या वदसि यहाँ प्लुत न हुआ । आकांक्षा न होनेपर यथा–"अङ्ग" । "पच" । यह तिङन्त अन्यका आकांक्षा नहीं करताहै । इस सूत्रसे भर्त्सन अर्थमें ही प्लुत होताहै, यथा–"अङ्गाधीष्व भक्तं तव दास्यामि" यहाँ प्लुत न हुआ ॥

३६१६ विचार्यमाणानाम् । ८।२।९७॥

वाक्यानां टेः प्लुतः । होतव्यं दीक्षितस्य गृहा ३ इ । न होतव्य३मिति । होतव्यं न होतव्यमिति विचार्यते । प्रमाणैर्वस्तुतत्त्वपरीक्षणं विचारः ॥

३६१६–विचार्य्यमाण वाक्यकी टिके स्थानमें प्लुत स्वर हो, यथा–"होतव्यं दीक्षितस्य गृहा ३इ" । " न होतव्य३मिति " । अर्थात् होम करना उचित है कि, नहीं सो विचार करताहै । प्रमाणसे वस्तुतत्त्वकी परीक्षा करनेको विचार कहतेहैं ॥

३६१७ पूर्वं तु भाषायाम् । ८।२।९८॥

विचार्यमाणानां पूर्वमेव प्लवते । अहिर्नु ३ रज्जुर्नु । प्रयोगापेक्षत्वं पूर्वत्वम् । भाषाग्रहणात्पूर्वयोगश्छन्दसीति ज्ञायते ॥

३६१७–भाषाविषयमें विचार्य्यमाण शब्दोंके पूर्व शब्दकी टिको प्लुत स्वर हो, यथा–" अहिर्नु ३ रज्जुर्नु " । प्रयोगापेक्षासे पूर्वत्व जानना । इस स्थलमें भाषा शब्दका ग्रहण करनेसे पूर्वयोग वेदमें जानना चाहिये ॥

३६१८ प्रतिश्रवणे च । ८ । २ । ९९॥

वाक्यस्य टेः प्लुतोऽभ्युपगमे प्रतिज्ञाने श्रवणाभिमुख्ये च । गां मे देहि भो३ः । हन्त ते ददामि ३ । नित्यः शब्दो भवितुमर्हति ३ । दत्त किमात्थ ३ ॥

३६१८–अभ्युपगम, प्रतिज्ञा और श्रवणकी आकांक्षा होनेपर वाक्यकी टिके स्थानमें प्लुत हो, यथा–" गां मे देहि भो३ः " । "हन्त ते ददामि३" । "नित्यः शब्दो भवितुमर्हति३" । " दत्त किमात्थ ३" ॥

३६१९ अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः । ८ । २ । १०० ॥

अनुदात्तः प्लुतः स्यात् । दूराद्धूतादिषु सिद्धस्य प्लुतस्यानुदात्तत्वमात्रमनेन विधीयते । अग्निभूत ३ इ । पट ३ उ । अग्निभूते पटो एतयोः प्रश्नान्ते टेरनुदात्तः प्लुतः । शोभनः खल्वसि माणवक ३ ॥

३६१९–प्रश्नान्त और अभिपूजित अर्थ होनेपर अनुदात्त वर्णको प्लुत स्वर हो, दूरसे हूतादि अर्थमें सिद्ध प्लुतको अनुदात्त मात्र विधानार्थक सूत्रहै । यथा–" अग्निभूत ३ इ" । "पट ३ उ " । " अग्निभूते " " पटो " । इन दो पदोंके प्रश्नान्तमें टिको अनुदात्त स्वर प्लुत हुआहै । "शोभनः खल्वसि माणवक ३ " ॥

३६२० चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने । ८ । २ । १०१ ॥

वाक्यस्य टेरनुदात्तः प्लुतः। अग्निचिद्भाया३त् । अग्निचिंदिव भाया३त् । उपमार्थे किम् । कथंचिदाहुः । प्रयुज्यमाने किम् । अग्निर्माणवको भायात् ॥

३६२०–उपमार्थ प्रयुज्यमान होनेपर " चित् " इस वाक्यकी टिको अनुदात्त स्वरकी प्लुत संज्ञा हो, यथा–" अग्निचिद्भाया३त् " । अग्निचिदिव भाया३त् " । उपमार्थ न होनेपर " कथंचिदाहुः " इस प्रकार होगा । प्रयुज्यमान न होनेपर " अग्निर्माणवको भायात् " । इस स्थलमें उपमार्थ गम्यमान होनेपर भी चित् शब्दके प्रयोगके कारण प्लुत नहीं हुआ ॥

३६२१ उपरिस्विदासीदिति च । ८। २ । १०२ ॥

टेः प्लुतोऽनुदात्तः स्यात् । उपरि स्विदासी३त् । अधःस्विदासी३दित्यत्र तु विचार्यमाणानामित्युदात्तः प्लुतः ॥

३६२१–उपरिस्विदासीत् इस पदकी टिके प्लुत स्वरकी अनुदात्त संज्ञा हो, यथा–"उपरि स्विदासी३त्" । "अधःस्विदासी३त्" । इस स्थलमें "विचार्य्यमाणानाम्" । इस सूत्रसे उदात्त स्वर प्लुत हुआ ॥

३६२२ स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु । ८ । २ । १०३ ॥

स्वरितः प्लुतः स्यादाम्रेडिते परेऽसूयादौ गम्ये । असूयायाम् । अभिरूपक३ अभिरूपकरिक्तं त आभिरूप्यम् । संमतौ । अभिरूपक ३-अभिरूपक शोभनोऽसि । कोपे । अविनीतक३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म । कुत्सने । शाक्तीक ३ शाक्तीक रिक्ता ते शक्तिः ॥

३६२२–असूया, सम्मति, कोप और कुत्सनार्थ गम्यमान होनेपर आम्रेडित परे रहते स्वरित वर्ण प्लुत हो, असूयार्थमें यथा–" अभिरूपक ३ अभिरूपक रिक्तं त आभिरूप्यम् " । संम्मति अर्थमें यथा–"अभिरूपक ३ अभिरूपक शोभनोऽसि " । कोपार्थमें यथा–" अविनीतक ३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म " । कुत्सार्थमें यथा–"शाक्तीक ३ शाक्तीक रिक्ता ते शक्तिः " ॥

३६२३ क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम् । ८ । २ । १०४ ॥

आकाङ्क्षस्य तिङन्तस्य टेः स्वरितः प्लुतः स्यात् । आचारभेदे । स्वयं ह रथेन याति ३ उपाध्यायं पदातिं गमयति । प्रार्थनायाम् । पुत्रांश्च लप्सीष्ट ३ धनं च तात । व्यापारणे । कटं कुरु ३ ग्रामं गच्छ । आकाङ्क्षं किम् । दीर्घायुरसि । अग्नीदग्नीन्विहर ॥

३६२३–आचारभेद आशीरर्थ और प्रैषार्थ गम्यमान होनेपर आकाङ्क्षित जो तिङन्त पद उसकी टिके स्वरित स्वरको प्लुत हो, यथा–" स्वयं इ रथेन याति ३ " "उपाध्यायं पदाति गमयति " । प्रार्थनामें यथा–" पुत्रांश्च लप्सीष्ट ३ धनं च तात " । प्रैष अर्थात् व्यापारार्थमें यथा–" कटं कुरु ३ ग्रामं गच्छ " । आकांक्षा न होनेपर दीर्घायुरसि । अग्निदमीन्विहर ॥

३६२४ अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः । ८ । २ । १०५ ॥

अनन्त्यस्यान्त्यस्यापि पदस्य टेः स्वरितः प्लुत एतयोः । अगम३ः । पूर्वा३न् ग्रामा३न् सर्वपदानामयम् । आख्याने । अगम३म् पूर्वान् ग्रामा३न् ॥

३६२४–प्रश्न और आख्यानार्थमें अन्त्य पदकी मध्य पदकी टिके स्वरित स्वरको प्लुत स्वर हो, प्रश्नार्थमें यथा– " अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् " । यह उदाहरण सब पदोंका है । आख्यानार्थमें यथा–अगम३म् पूर्वा३न् ग्रामा३न् ॥

३६२५ प्लुतावैच इदुतौ । ८।२।१०६॥

दूराद्धूतादिषु प्लुतो विहितस्तत्रैव ऐचः प्लुतप्रसङ्गे तदवयवाविदुतौ प्लवेते । ऐ३तिकायन औ३पगव । चतुर्मात्रावत्र ऐचौ सम्पद्येते ॥

३६२५–दूरसे आह्वानादि अर्थमें जो प्लुत स्वर विहित हुआहै उस अर्थमें ही ऐच्के प्लुतके प्रसङ्गमें तदवयवीभूत जो इकार और उकार वह दोनों प्लुतसंज्ञक हों, ऐ३तिकायन । औ३पगव । इस स्थलमें ऐच् चतुर्मात्र है । प्लुत इवर्ण उवर्णकी तीन और एक अकारकी ऐसी चारमात्रा हुई ॥

३६२६ एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्याऽऽदुत्तरस्येदुतौ ।८।२।१०७॥

अप्रगृह्यस्य एचोऽदूराद्धूते प्लुतविषये पूर्वस्यार्धस्याकारः प्लुतः स्यादुत्तरस्य त्वर्धस्य इदुतौ स्तः ॥ प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्यमाणप्रत्यभिवादयाज्यान्तेष्वेव ॥ * ॥ प्रश्नान्ते । अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् । अग्निभूत ३ इ । अभिपूजिते । भद्रं करोषि पट ३ उ । विचार्यमाणे । होतव्यं दीक्षितस्य गृहा ३ इ । न होतव्य ३ मिति । प्रत्यभिवादे । आयुष्मानेधि अग्निभूत ३ इ । याज्यान्ते । स्तोमैर्विधेमाग्नय ३ इ । परिगणनं किम् । विष्णुभूते ३ घातयिष्यामि त्वाम् । अदूराद्धूत इति न वक्तव्यम् । पदान्तग्रहणं तु कर्तव्यम् । इह मा भूत् । भद्रं करोषि गौरिति । अप्रगृह्यस्य किम् । शोभने माले ॥ आमन्त्रिते छन्दसि प्लुतविकारोऽयं वक्तव्यः ॥ * ॥ अग्ना ३ इ पत्नी वः ॥

३६२६–अप्रगृह्य जो एच् उसके निकटाह्वानार्थमें विहित प्लुत विषयमें पूर्वके अर्द्ध भाग स्थानमें आकार प्लुत हो, और उत्तरार्द्धका इकार और उकार प्लुत हो ।

प्रश्नान्त, अभिपूजन, विचार्य्यमाण, प्रत्यभिवाद और याज्यान्तार्थमें पूर्वोक्त कार्य हो* प्रश्नान्तमें यथा–" अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् । अग्निभूत३इ । अभिपूजितार्थमें यथा–"भद्रं करोषि पट ३ उ " । विचार्य्यमाणार्थमें यथा– " होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३ इ "। "न होतव्य३मिति" । प्रत्यभिवादनार्थमें यथा–"आयुष्मानेधि अग्निभूत ३ इ"। याज्यान्तमें यथा–"स्तोमैर्विधेमाग्नय ३ इ" । परिगणन न होनेपर, विष्णुभूते३ घातयिष्यामि त्वाम्। अदूराद्धूते यह वक्तव्य नहीं है, किन्तु पदान्त ग्रहण करना उचित है, भद्रं करोषि गौरिति । इस स्थलमें नहीं होगा । अप्रगृह्य न होनेपर । शोभने माले ॥

आमंत्रितार्थमें और वेदमें यह प्लुत विकार हो * अग्ना ३ इ पत्नी वः ॥

३६२७ तयोर्य्वावचि संहितायाम् । ८ । २ । १०८ ॥

इदुतोर्यकारवकारौ स्तोऽचि संहितायाम् । अग्न३याशा । पट३वाशा । अग्न३यिन्द्रम् । पट३वुदकम् । अचि किम् । अग्ना३वरुणौ । संहितायां किम् । अग्न ३ इ इन्द्रः । संहितायामित्यध्यायसमाप्तेरधिकारः । इदुतोरसिद्धत्वादयमारम्भः सवर्णदीर्घत्वस्य शाकल्यस्य च निवृत्त्यर्थम् । यवयोरसिद्धत्वादुदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्येत्यस्य बाधनार्थो वा ॥

३६२७–संहितार्थमें अच् परे रहते इकार और उकारके स्थानमें क्रमसे यकार और वकार हो, अग्न३याशा । पट३वाशा । अग्न३यिन्द्रम् । पट३वुदकम् । अच् परे न रहते, अग्ना ३ वरुणौ । संहिता न होनेपर, अग्न ३ इ इन्द्रः । इस अध्यायकी समाप्तितक संहिता शब्दका अधिकार चलैगा । इकार और उकारके असिद्धत्वके कारण इसका आरम्भ है । अथवा सवर्णदीर्घके और शाकल्यके निवृत्त्यर्थ है यकार और वकारके असिद्धत्वके कारण " उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ३६५९ " इस सूत्रके बाधनार्थ वा आरम्भ समझना चाहिये ॥

३६२८ मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसि। ८ । ३ । १ ॥

रु इत्यविभक्तिको निर्देशः । मत्वन्तस्य वस्वन्तस्य च रुः स्यात् । अलोन्त्यस्येति परिभाषया

नकारस्य । इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम । हरिवो मेदिनं त्वा । छन्दसीर इति वत्वम् ॥

३६२८-रु यह अविभक्तिक निर्देश है वेदमें संबोधन अर्थ होनेपर मतुप् प्रत्ययान्त और वसु प्रत्ययान्त पदके उत्तर रु हो, "अलोन्त्यस्य ४२" इस परिभाषा सूत्रसे नकारके स्थानमें रु हो, "इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम्" । "हरिवो मेदिनं त्वा" । "छन्दसीरः ३६००" इस सूत्रसे वकार हुआ मरुत्व मरुतो यस्य सन्तीति मतुप्-"झयः" इससे वत्व । हरिवः=हरयो विद्यन्ते यस्य इति मतुप् सम्बुद्धिके एकवचनमें "उगिदचाम्० ३६१" इससे नुम् "हल्ङ्याभ्यो० २५२" से लोप संयोगान्त लोप करनेपर नकारको रु, रुको "हशि च" करके उत्व ॥

३६२९ दाश्वान्साह्वान्मीढ्वांश्च । ६ । १ । १२ ॥

एते क्वस्वन्ता निपात्यन्ते । मीढ्वस्तोकाय तनयाय ॥ वन उपसंख्यानम् ॥ * ॥ कनिब्वनिपोः सामान्यग्रहणम् । अनुबन्धपरिभाषा तु नोपतिष्ठते । अनुबन्धस्येहानिर्देशात् । यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वः । इणः कनिप् ॥

३६२९-दाश्वान्, साह्वान्, मीढ्वान् यह तीन क्वसु प्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध हैं। । "मीढ्वस्तोकाय तनयाय" । वन् प्रत्ययान्त पद भी निपातनसे सिद्ध हो * इस स्थलमें केवल वर्णके ग्रहणके कारण कनिप् और वनिप्का सामान्यतः ग्रहण होताहै । इस स्थलमें अनुबन्धके अनिर्देशके कारण अनुबन्ध सम्बन्धी परिभाषा उपस्थित नहीं होतीहै । "यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वः" इस स्थलमें इण् धातुके उत्तर कनिप् प्रत्यय हुआहै ॥

३६३० उभयथर्क्षु । ८ । ३ । ८ ॥

अम्परे छवि नकारस्य रुर्वा । पशूंस्तांश्चक्रे- पशून्तांश्चक्रे ॥

३६३०-अम् परे है जिससे ऐसा छव् परे रहते नकारके स्थानमें विकल्प करके रु हो, यथा-पशूंस्तांश्चक्रे । पशून्तांश्चक्रे ॥

३६३१ दीर्घादटि समानपादे । ८ । ३ । ९ ॥

दीर्घान्नकारस्य रुर्वा स्यादटि तौ चेन्नाटौ एकपादस्थौ स्याताम् । देवाँ अच्छा सुमती । महाँ इन्द्रो य ओजसा । उभयथेत्यनुवृत्तेर्नेह । आदित्यान्याचिषामहे ॥

३६३१-अट् परे रहते दीर्घ स्वरके उत्तर नकारके स्थानमें विकल्प करके रु हो, यदि वह नकार और अट् एक पादस्थ हो, यथा-"देवाँ अच्छा सुमती" । "महाँ इन्द्रो य ओजसा" । "उभयथा" इस पदकी अनुवृत्तिके कारण "आदित्यान् याचिषामहे" इस स्थलमें रु नहीं हुआ ॥

३६३२ आतोऽटि नित्यम् । ८ । ३ । ३ ॥

अटि परतो रोः पूर्वस्यातः स्थाने नित्यमनुनासिकः । महाँ इन्द्रः । तैत्तिरीयास्तु अनुस्वारमधीयते । तत्र च्छान्दसो व्यत्यय इति प्राञ्चः । एवं च सूत्रस्य फलं चिन्त्यम् ॥

३६३२-अट् परे रहते रुके पूर्व आकारके स्थानमें नित्य अनुनासिक वर्ण हो, यथा-"महाँ इन्द्रः" तैत्तिरीय शाखाध्यायी लोग उस स्थानमें अनुस्वार पाठ करतेहैं, प्राचीन लोग कहतेहैं कि, उस स्थलमें जो व्यत्यय वह वैदिक प्रकरणमें ही हो, अन्यत्र न हो, ऐसा सूत्रका फल चिन्तनीय है ॥

३६३३ स्वतवान्पायौ । ८ । ३ । ११ ॥

रुर्वा । भुवस्तस्य स्वतवाँ पायुरग्ने ॥

३६३३-पायु शब्द परे रहते स्वतवत् शब्दको विकल्प करके रु हो, यथा-"भुवस्तस्य स्वतवाँ पायुरग्ने" ॥

३६३४ छन्दसि वाऽप्राम्रेडितयोः । ८ । ३ । ४९ ॥

विसर्गस्य सो वा स्यात् कुप्वोः प्रशब्दमाम्रेडितं च वर्जयित्वा । अग्ने त्रातर्ऋतस्कविः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः । नेह । वसुनः पूर्व्यः पतिः। अमेत्यादि किम् । अग्निः प्र विद्वान् । पुरुषःपुरुषः ॥

३६३४-वेदमें प्र शब्द और आम्रेडित अर्थात् पुनरुक्ति भिन्न प्र शब्द भिन्न अन्य कवर्ग और पवर्ग परे रहते विसर्गके स्थानमें विकल्प करके स हो, यथा-"अग्ने त्रातर्ऋतस्कविः" "गिरिर्न विश्वतस्पृथुः" । "वसुनः पूर्व्यः पतिः" । इस स्थलमें स् नहीं हुआ । प्र शब्द और आम्रेडित होनेपर यथा- "अग्निः प्र विद्वान्" । "पुरुषःपुरुषः" ॥

३६३५ कःकरत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः । ८ । ३ । ५० ॥

विसर्गस्य सः स्यात् । प्रदिवो अपस्कः । यथा नो वस्यसस्करत् । सुपे शसस्करति । उरुणस्कृधि । सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् । अनदितेरिति किम् । यथा नो अदितिः करत् ॥

३६३५-कः, करत्, करति, कृधि और कृत शब्द परे रहते विसर्गके स्थानमें स हो, अदिति शब्दके उत्तर न हो, यथा-"प्रदिवो अपस्कः" । "नो वस्यसस्करत्" । "सुपे शस्करति" । "उरुणस्कृधि" सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् । अदिति शब्दके उत्तर होनेपर विसर्गको सकार न हुआ, यथा-"नो अदितिः करत्" । करत्=कृञ्+लुङ् "कृमृदरुहिभ्यश्छन्दसि" इससे च्लिको अङ् "ऋदृशोऽङि" इससे गुण । करति लट् व्यत्ययसे शप् । कृधि=कृ+लोट्सिको हि "श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि" इससे हिको धि आदेश होकर कृधि हुआ ॥

३६३६ पञ्चम्याः परावध्यर्थे ।८।३।५१॥

पञ्चमीविसर्गस्य स स्यादुपरिभावार्थे परिशब्दे परतः । दिवस्परिप्रथमं जज्ञे । अध्यर्थे किम् । दिवस्पृथिव्याः पर्योजः ॥

३६३६–उपरिभावार्थ परि शब्द परे रहते पञ्चमीके विसर्गके स्थानमें स हो । यथा–"दिवस्परिप्रथमं जज्ञे "। अध्यर्थ न होनेपर "दिवस्पृथिव्याः पर्योजः" ॥

३६३७ पातौ च बहुलम् । ८ ।३।५२॥

पञ्चम्या इत्येव । सूर्यो नो दिवस्पातु ॥

३६३७–पातु शब्द परे रहते पञ्चमीके विसर्गके स्थानमें स हो, यथा–"सूर्यो नो दिवस्पातु" ॥

३६३८ षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु । ८ । ३ । ५३ ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणम् । दिवस्पुत्राय सूर्याय । दिवस्पृष्ठं भन्दमानः । तमसस्पारमस्य । परिवीत इळस्पदे । दिवस्पयो दिधिषाणाः । रायस्पोषं यजमानेषु ॥

३६३८–पति,पुत्र,पृष्ठ,पार,पद, पयस् और पोष शब्द परे रहते षष्ठी विभक्तिके विसर्गके स्थानमें स हो, यथा–"वाचस्पतिं विश्वकर्म्माणम्" । "दिवस्पुत्राय सूर्याय" । "दिवस्पृष्ठं भन्दमानः" । "तमसस्पारमस्य" । "परिवीत इळस्पदे" । "दिवस्पयो दिधिषाणाः " । "रायस्पोषं यजमानेषु" ॥

३६३९ इडाया वा । ८ । ३ । ५४ ॥

पतिपुत्रादिषु परेषु । इळायास्पुत्रः । इळायाः पुत्रः । इळायास्पदे । इळायाः पदे । "निसस्तपतावनासेवने । ८ । ३ । १०२ ॥" निसः सकारस्य मूर्द्धन्यः स्यात् । निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः । अनासेवने किम् । निस्तपति । पुनःपुनस्तपतीत्यर्थः ॥

३६३९–पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् और पोष शब्द परे रहते इडा शब्दके उत्तर विसर्गके स्थानमें स् हो, यथा, " इळायास्पुत्रः " । " इळायाः पुत्रः " । "इळायास्पदे" । "इळायाः पदे " । "निसस्तपतावनासेवने २४०३" इस सूत्रसे निस्के सकारको षत्व हो,यथा–"निष्टप्तं रक्षः" "निष्टप्ता अरातयः" । आसेवनार्थमें "निस्तपति" । अर्थात् पुनःपुनस्तपतीत्यर्थः ॥

३६४० युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तःपादम् । ८ । ३ । १०३ ॥

पादमध्यस्थस्य सस्य मूर्धन्यः स्यात्तकारादिष्वेषु परेषु । युष्मदादेशाः त्वंत्वातेतवाः । त्रिभिष्ट्वं देव सवितः । तेभिष्ट्वा आभिष्टे । अप्स्वग्ने सधिष्टव । अग्निष्टद्विश्वम् । द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । अन्तःपादं किम् । तदग्निस्तदर्यमा । यन्म आत्मनो मिन्दाभूदग्निस्तत्पुनराहार्जातवेदा विचर्षणिः । अत्राग्निरितिपूर्वपादस्यान्तो न तु मध्यः ॥

३६४०–तकारादि युष्मद् शब्दके स्थानमें आदिष्ट त्वं,त्वा, ते और तव और ततक्षु शब्द परे रहते पाद मध्यस्थ जो सकार उसको षत्व हो, यथा–"त्रिभिष्ट्वं देव सवितः" "तेभिष्ट्वा आभिष्टे" । "अप्स्वग्ने सधिष्टव" । "अग्निष्टद्विश्वम्" । "द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः" । पादमध्यस्थ न होनेपर । "तदग्निस्तदर्य्यमा" । "यन्म आत्मनो मिन्दाभूदग्निस्तत्पुनराहार्जातवेदा विचर्षणिः । " इस स्थलमें अग्नि शब्द पूर्वपदके अन्तमें है मध्यमें नहीं है ॥

३६४१ यजुष्येकेषाम् । ८ । ३।१०४॥

युष्मत्तत्ततक्षुषु परतः सस्य मूर्धन्यो वा । अर्चिभिष्ट्वम् । अग्निष्टे अग्रम् । अर्चिभिष्टतक्षुः । पक्षे अर्चिभिस्त्वमित्यादि ॥

३६४१–युष्मद्, तद्, ततक्षु शब्द परे रहते पदमध्यस्थित सकारको विकल्प करके षत्व हो, यथा–" अर्चिभिष्ट्वम् " । 'अग्निष्टेऽग्रम्" । "अर्चिभिष्टतक्षुः" । विकल्प पक्षमें "अर्चिभिस्त्वम्" इत्यादि ॥

३६४२ स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि । ८ । ३ । १०५ ॥

नृभिष्टुतस्य । नृभिः स्तुतस्य । गोष्टोमम् । गोस्तोमम् । पूर्वपदादित्येव सिद्धे प्रपञ्चार्थमिदम् ॥

३६४२–वेदमें स्तुत और स्तोम शब्दके सकारको विकल्प करके षत्व हो, यथा–"नृभिष्टुतस्य"–"नृभिः स्तुतस्य"। "गोष्टोमम्"–"गोस्तोमम्" इस स्थलमें "पूर्वपदात् " इस वक्ष्यमाण सूत्रसे उक्त पद सिद्ध होजाता, तथापि विस्तारार्थ यह सूत्र किया है ॥

३६४३ पूर्वपदात् । ८ । ३ । १०६ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य सस्य षो वा । यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठः । युवं हि स्थः स्वर्पती ॥

३६४३–पूर्व पदस्थ निमित्तके परे स्थित स्थ शब्दके सकारको विकल्प करके षत्व हो। यथा–"यदिन्द्राग्नी दिविष्ठः" "युवं हि स्थः स्वर्पती" ॥

३६४४ सुञः । ८ । ३ । १०७ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य सुञो निपातस्य सस्य षः । ऊर्ध्व ऊ षु णः । अभीषु णः ॥

३६४४–पूर्व पदस्थ निमित्तके परे स्थित निपात संज्ञक सुञ्के सकारको षत्व हो, यथा–"ऊर्ध्व ऊ षु णः" । "अभिषु णः" । ऊ षु णः "इकः सुञि" इससे पूर्व पदको दीर्घ "नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः" इससे णत्व ॥

३६४५ सनोतेरनः । ८ । ३ । १०८ ॥

गोषा इन्द्रो नृषा असि । अनः किम् । गोसनिः ॥

३६४५–पूर्वपदस्थ निमित्तके परे अनन्त सन् धातुके सकारको षत्व हो । यथा–"गोषा इन्द्रो नृषा असि" । अन् प्रत्ययान्त सन् धातु न होनेपर तो "गोसनिः" । गोषा–यहां "जनसनखनक्रमगमो विट्" इससे विट् "विड्वनो० २९८२" इससे आत्त्व हुआहै ॥

३६४६ सहेः पृतनर्ताभ्यां च । ८ । ३ । १०९ ॥

पृतनाषाहम् । ऋताषाहम् । चात् ऋतीषाहम् ॥

३६४६–पृतना और ऋत शब्दके उत्तर सह धातुके सकारको षत्व हो, यथा–"पृतनाषाहम्" । "ऋताषाहम्" । चकारसे ऋती शब्दके उत्तर भी सहधातुके सकारको षत्व होगा, "ऋतीषाहम्" ॥

३६४७ निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि । ८ । ३ । ११९ ॥

सस्य मूर्धन्यः । न्यषीदत्–न्यसीदत् । व्यषीदत्–व्यसीदत् । अभ्यष्टौत्–अभ्यस्तौत् ॥

३६४७–वेदमें नि, वि और अभि उपसर्गके उत्तर धातुके सकारको विकल्प करके अट्व्यवायमें षत्व हो, यथा–"न्यषीदत्, न्यसीदत्" । "व्यषीदत्, व्यसीदत्" । "अभ्यष्टौत् । अभ्यस्तौत्" ॥

३६४८ छन्दस्यृदवग्रहात् । ८ । ४ । २६ ॥

ऋकारान्तादवग्रहात्परस्य नस्य णः । नृमणाः । पितृयाणम् ॥

३६४८–वेदमें ऋकारान्त अवग्रहके उत्तर नकारको णत्व हो, यथा–"नृमणा पितृयाणम्" ॥

३६४९ नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः । ८ । ४ । २७ ।

धातुस्थात् । अग्ने रक्षा णः । शिक्षा णो अस्मिन् । उरु णस्कृधि । अभीषु णः । मो षु णः ॥

॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

३६४९–वेदमें धातुस्थ निमित्तके परे ऊरु शब्द और षु शब्दके उत्तर नस्के नकारको णत्व हो, यथा–"अग्ने रक्षा णः" । "शिक्षा णो अस्मिन्" । "उरु णस्कृधि" । "अभीषु णः" । "मोषु णः" ॥

इति श्रीमत्कान्यकुब्जकुलतिलकायमानपण्डितसुखानंदमिश्रात्मजपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसिद्धान्तकौमुदी–भाषाटीकायां वैदिकप्रकरणेऽष्टमोऽध्यायः ॥
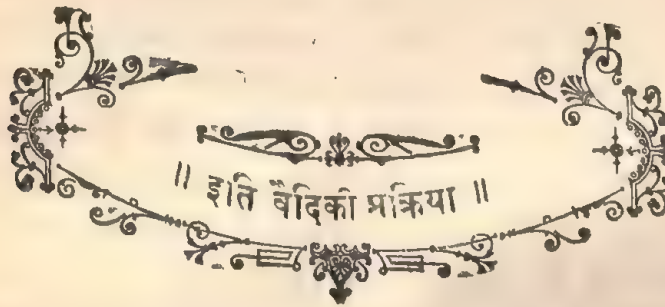
॥ श्रीः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्वरप्रक्रिया ।

३६५० अनुदात्तं पदमेकवर्जम् । ६ । १ । १५८ ॥

परिभाषेयं स्वरविधिविषया । यस्मिन्पदे यस्योदात्तः स्वरितो वा विधीयते तमेकमचं वर्जयित्वा शेषं तत्पदमनुदात्ताच्कं स्यात् । गोपायतं नः । अत्र सनाद्यन्ता इति धातुत्वे धातुस्वरेण यकाराकार उदात्तः शिष्टमनुदात्तम् । सति शिष्टस्वरबलीयस्त्वमन्यत्र विकरणेभ्य इति वाच्यम् ॥ * ॥ तेनोक्तोदाहरणे गुपेर्धातुस्वर आयस्य प्रत्ययस्वरश्च न शिष्यते । अन्यत्रेति किम् । यज्ञंयज्ञमभिवृधे गृणीतः । अत्र सतिशिष्टोऽपि श्ना इत्यस्य स्वरो न शिष्यते किं तु तस एव ॥

३६५०–यह स्वरविधि विषयकी परिभाषा है । जिस पद में जिस वर्णको उदात्त वा स्वरित विहित हो, उस अच्को त्यागकर शेष जो अच् रहें, उन सबको अनुदात्तस्वर हो, यथा–"गोपायतं नः" । इस स्थलमें "सनाद्यन्ताः०२३०४" इस सूत्रसे धातुत्व होनेपर धातुस्वरसे यकारके अकारको उदात्त स्वर और अवशिष्टोंको अनुदात्तस्वर हुआ ।

विकरणोंसे अन्यत्र सतिशिष्टस्वर बलवान् हो ऐसा कहना चाहिये * इस कारण उक्त उदाहरणमें गुप्को धातु स्वर और आयको प्रत्यय स्वर अवशिष्ट नहीं होताहै । अन्यत्र कहनेसे "यज्ञं यज्ञमभिवृधे गृणीतः" इस स्थलमें सतिशिष्ट होनेपर भी श्ना प्रत्ययका स्वर शिष्ट नहीं होताहै, किन्तु तस्का ही स्वर शिष्ट होताहै ॥

३६५१ अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः । ६ । १ । १६१ ॥

यस्मिन्ननुदात्ते परे उदात्तो लुप्यते तस्योदात्तः स्यात् । देवीं वाचम् । अत्र ङीबुदात्तः ॥

३६५१–जिस अनुदात्तस्वर परे रहते पूर्ववर्त्ती उदात्तस्वरका लोप हो, उसको उदात्तस्वर हो, यथा–"देवीं वाचम्" । इस स्थलमें ङीप् उदात्त है, क्यों कि, "अनुदात्तौ सुप्पितौ" इस सूत्रसे ङीप्को अनुदात्तत्व होनेपर वह परे रहते देव शब्दके उदात्तस्वरका लोप हुआहै ॥

३६५२ चौ । ६ । १ । १२२ ॥

लुप्ताकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्यान्तोदात्तः स्यात् । उदात्तनिवृत्तिस्वरापवादः । देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ॥ अतद्धित इति वाच्यम् ॥ * ॥ दाधीचः । माधूचः । प्रत्ययस्वर एवात्र ॥

३६५२–जिसका अकार लुप्त हुआहो, ऐसा अञ्च धातु परे रहते पूर्वपदके अन्त्यवर्णको उदात्तस्वर हो, यह सूत्र उदात्तनिवृत्तिस्वरका अपवाद है, यथा–"देवद्रीचीं नयत देवयन्तः" ॥

तद्धित प्रत्यय परे न रहते लुप्तनकारक अञ्च् धातु परे पूर्वस्वरको उदात्त हो ऐसा कहना चाहिये * . यथा–दाधीचः । माधूचः । इस स्थलमें केवल प्रत्ययस्वर ही होताहै ॥

३६५३ आमन्त्रितस्य च । ६।१।१९८॥

आमन्त्रितस्यादिरुदात्तः स्यात् । अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः ॥

३६५३––आमंत्रित अर्थात् संबोधनविभक्त्यन्त पदके आदिवर्णको उदात्तस्वर हो, यथा–"अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः" ॥

३६५४ आमन्त्रितस्य च । ८। १। १९ ॥

पदात्परस्यापादादिस्थितस्यामन्त्रितस्य सर्वस्यानुदात्तः स्यात् । प्रागुक्तस्य षाष्ठस्यापवादोऽयमाष्टमिकः । इमं मे गंगे यमुने सरस्वति । अपादादौ किम् । शुतुद्रि स्तोमम् ॥ आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ॥ अग्न इन्द्र । अत्रेन्द्रादीनां निघातो न । पूर्वस्याविद्यमानत्वेन पदात्परत्वाभावात् ॥ नामन्त्रिते समानाधिकरणे समान्यवचनम् ॥ समानाधिकरणे आमन्त्रिते परे विशेष्यं पूर्वमविद्यमानवन्न । अग्ने तेजस्विन् । अग्ने त्रातः । सामान्यवचनं किम् । पर्यायेषु मा भूत् । अघ्न्ये देवि सरस्वति ॥

३६५४–पदके परे हो और पादके आदिमें स्थित न हो ऐसे आमन्त्रित पदोंको अनुदात्तस्वर हो, यह आष्टमिक सूत्र प्रागुक्त षाष्ठ सूत्रका अपवाद है, यथा–इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति । पादके आदिमें स्थित होनेपर तो? "शुतुद्रि स्तोमम्" यहां पूर्व सूत्रसे आदि उदात्त हुआ । आमंत्रित पूर्वपद अविद्यमानवत् हो (४१२) यथा–"अग्न इन्द्र" इस स्थलमें इन्द्रादि शब्दोंको निघातस्वर नहीं हुआ, क्यों कि, पूर्वको अविद्यमानत्वके कारण पदसे पर नहीं है । समानाधिकरण आमंत्रित पद परे रहते पूर्वस्थित विशेष्यवाचक पद अविद्यमानवत् न हो, यथा–"अग्ने तेजस्विन्" "अग्ने त्रातः" । सामान्यवचन क्यों कहा? तो पर्य्यायमें नहीं हो, यथा–"अघ्न्ये देवि सरस्वति" ॥

३६५५ सामान्यवचनं विभाषितं विशेषवचने । ८ । १ । ७४ ॥

अत्र भाष्यकृता बहुवचनमिति पूरितम् । सामान्यवचनमिति च पूर्वसूत्रे योजितम् । आमन्त्रितान्ते विशेषणे परे पूर्वं बहुवचनान्तमविद्यमानवद्वा । देवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत । अत्र देवीनां विशेषणं षडिति । देवाः शरण्याः । इह द्वितीयस्य निघातो वैकल्पिकः ॥

३६५५-इस सूत्रमें भाष्यकारने 'बहुवचनम्' यह पूरित किया है और 'सामान्यवचनम्' यह पद पूर्वसूत्रमें योजित किया है । आमंत्रितान्त विशेषणवाचक पद परे रहते पूर्वस्थित बहुवचनान्तपद विकल्प करके अविद्यमानवत् हो, यथा-"देवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत" यहां देवीका विशेषण षट् यह है । "देवाः शरण्याः" इस स्थलमें दूसरेको विकल्प करके निघातस्वर हुआ ॥

३६५६ सुबामन्त्रिते परांगवत्स्वरे । २ । १ । २ ॥

सुबन्तमामन्त्रिते परे परस्यांगवत्स्यात्स्वरे कर्तव्ये।द्रवत्पाणीशुभस्पती।शुभ इति शुभेः क्विबन्तात्षष्ठ्यन्तस्य । परशरीरानुप्रवेशे षाष्ठिकमामन्त्रिताद्युदात्तत्वम् । न चाष्टमिको निघातः शंक्यः । पर्वामन्त्रितस्याविद्यमानत्वेन पादादित्वात् । यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनम्।इह दिवःशब्दस्याष्टमिको निघातः । परशुना वृश्चन् । षष्ठ्यामन्त्रितकारकवचनम् ॥ * ॥ षष्ठ्यन्तमामन्त्रितान्तं प्रति यत्कारकं तद्वाचकं चेति परिगणनं कर्तव्यमित्यर्थः । तेनेह न । अयमग्ने जरिता । एतेनाग्ने ब्रह्मणा । समर्थानुवृत्त्या वा सिद्धम् ॥ पूर्वांगवच्चेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ आ ते पितर्मरुताम् । प्रति त्वा दुहितर्दिवः ॥ अव्ययानां न ॥ * ॥ उच्चैरधीयान ॥ अव्ययीभावस्य त्विष्यते ॥ * ॥ उपाग्न्यधीयान ॥

३६५६-सुबन्त-आमंत्रित पद परे रहते स्वरविधिकर्तव्य रहते परवर्तीपदके अङ्ग (एकदेश) के समान हो, यथा-"द्रवत्पाणी शुभस्पती" इस स्थलमें 'शुभः' यह पद क्विबन्त शुभ धातुके षष्ठीविभक्त्यन्तका रूप है यहां परशरीरानुप्रवेशविषयमें षष्ठाध्यायस्थसूत्रविहित आमंत्रितपदके आदिवर्णको उदात्तस्वर हुआ । इस स्थलमें आष्टमिक निघातस्वर नहीं हो सकताहै कारण कि, पूर्ववर्ती आमंत्रित पदको अविद्यमानत्व होनेसे पादके आदिमें स्थितहोजाताहै । "यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनम्" इस स्थलमें दिवस् शब्दको आष्टमिक निघातस्वर होताहै । "परशुना वृश्चन्" ॥

"षष्ठ्यामंत्रितकारकवचनम्" अर्थात् षष्ठीविभक्त्यन्त और आमंत्रितान्तके प्रति जो कारक तद्वाचक पद आमन्त्रितसंज्ञकपद परे रहते पराङ्गवत् हो इस प्रकार परिगणन करना चाहिये । इस कारण "अयमग्ने जरिता" "एतेनाग्ने ब्रह्मणा" । इन स्थलोंमें नहीं हुआ । अथवा समर्थानुवृत्तिसे सिद्ध हुआहै ॥

"पूर्वाङ्गवच्चेति वक्तव्यम्" अर्थात् सुबन्त पराङ्गवत् न होकर पूर्वाङ्गवत् हो ऐसा कहना चाहिये * यथा-"आ ते पितर्मरुताम्" । "प्रति त्वा दुहितर्दिवः" ॥

अव्ययको पूर्वाङ्गवद्भाव न हो * यथा-"उच्चैरधीयान" ॥

अव्ययीभावसंज्ञकको पूर्वाङ्गवद्भाव इष्ट है * यथा-"उपाग्न्यधीयान" ॥

३६५७ उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य । ८ । २ । ४ ॥

उदात्तस्थाने स्वरितस्थाने च यो यण् ततः परस्यानुदात्तस्य स्वरितः स्यात् । अभ्यभि हि स्वरितस्य यणः । खलप्व्याशा । अस्य स्वरितस्य त्रैपादिकत्वेनासिद्धत्वाच्छेषनिघातो न ॥

३६५७-उदात्तस्थानमें और स्वरितस्थानमें जो यण् उसके परे स्थित अनुदात्तस्वरको स्वरितस्वर हो, उदात्तस्थानीय यणका यथा-अभ्यभि हि । स्वरितस्थानीययणका उदाहरण यथा-"खलप्व्याशा" । 'अभ्यभि हि'यहां अभि शब्द "उपसर्गाश्चाभिवर्जम्" इससे उदात्तनिषेध होनेसे फिट्स्वरसे अन्तोदात्त हुआ, पश्चात् अभि शब्दको द्वित्व"तस्य परमाम्रेडितम्" "अनुदात्तञ्च" इससे परको अनुदात्तत्व, वह परे रहते उदात्तस्थानमें यण् होनेपर उदात्त यण्के परे होनेके कारण स्वरितस्वर हुआ। खलपू शब्द कृदुत्तर पदप्रकृतिस्वरसे अन्तोदात्त है, उसके स्थानमें "ओः सुपि" इस सूत्रसे यण् हुआ वह यण् उदात्त है,उसके परे ङि प्रत्यय सुप्त्वके कारण अनुदात्त है, उसको इस वर्त्तमानसूत्रसे स्वरितस्वर हुआ, उस स्वरित इकारको यण् होनेपर उसके परे आशा शब्दके आकारको इसीसूत्रसे स्वरित हुआ, क्यों कि, आशा शब्द "आशाया अदिगाख्या चेत्" इससे अन्तोदात्त होनेसे अनुदात्तादि है । इस स्वरितस्वरके त्रैपादिकत्वके कारण असिद्ध होनेसे शेषको निघातस्वर नहीं हुआ ॥

३६५८ एकादेश उदात्तेनोदात्तः । ८ । २ । ५ ॥

उदात्तेन सहैकादेश उदात्तः स्यात् । वोश्वाः । क्वावरं मरुतः ॥

३६५८-उदात्तस्वरके साथ एकादेशको उदात्तस्वर हो, यथा-"वोश्वाः" । "क्वावरं मरुतः" ॥

३६५९ स्वरितो वानुदात्ते पदादौ । ८ । २ । ६ ॥

अनुदात्ते पदादौ परे उदात्तेन सहैकादेशः स्वरितो वा स्यात् । पक्षे पूर्वसूत्रेणोदात्तः। वी ३-

दं ज्योतिर्हृदये । अस्य श्लोको दिवीयते । व्यवस्थितविभाषात्वादिकारयोः स्वरितः । दीर्घप्रवेशे तूदात्तः । किं च एङः पदान्तादिति पूर्वरूपे स्वरित एव । तेऽवदन् । सो३ यमागात् । उक्तं च प्रातिशाख्ये । इकारयोश्च प्रश्लेषे क्षैप्राभिनिहतेषु चेति ॥

३६५९-अनुदात्त पदादि परे रहते उदात्तके साथ एकादेश विकल्प करके स्वरित हो, विकल्प पक्षमें पूर्व सूत्रसे उदात्त स्वर होगा, यथा-"वी३दं ज्योतिर्हृदये"।"अस्य श्लोको दिवीयते"। व्यवस्थितविभाषाके कारण दोनों इकारोंको स्वरित हुआ॥ दीर्घ प्रवेश होनेपर तो उदात्त होगा । "एङः पदान्तात्० ८६" इस सूत्रसे पूर्वरूप होनेपर तो स्वरित ही होगा । "तेऽवदन्" । "सो३यमागात्" । प्रातिशाख्यमें यह उक्त भी है, यथा-ह्रस्व दो इकारोंके स्थानमें सवर्ण दीर्घको प्रश्लेष कहतेहैं, उदात्त और स्वरित स्थानमें जो यण् उसको क्षैप्रसंधि कहतेहैं, और "एङः पदान्तादति" से पूर्वरूपको अभिनिहितसन्धि कहतेहैं उन सबमें स्वरित स्वर हो ॥

३६६० उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः । ८ । ४ । ६६ ॥

उदात्तात्परस्यानुदात्तस्य स्वरितः स्यात् । अग्निमीळे । अस्याप्यसिद्धत्वाच्छेषनिघातो न । तमीशानासः ॥

३६६०-उदात्तस्वरके परे स्थित अनुदात्तस्वरको स्वरित स्वर हो, यथा-"अग्निमीळे" । इसको भी असिद्धत्वके कारण शेषनिघात नहीं हुआ । "तमीशानासः" । 'अग्निमीळे' यहां अग्नि शब्द फिट् सूत्रसे वा प्रत्यय स्वरसे अन्तोदात्त है । अम् प्रत्यय सुप्त्वके कारण अनुदात्त है, पश्चात् "अमि पूर्वः" इस सूत्रसे एकादेश उदात्त हुआ । ईळे यह पद ईड् धातुका लट् सम्बन्धी उत्तम पुरुषका एकवचनमें है । यहां 'द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य सम्पद्यते स डकारो ळकारः' इस वक्ष्यमाण प्रातिशाख्यसे डकारको ळकार हुआ ॥

३६६१ नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् । ८ । ४ । ६७ ॥

उदात्तपरः स्वरितपरश्चानुदात्तः स्वरितो न स्यात् । गार्ग्यादिमते तु स्यादेव । प्र य आरुः । वोऽश्वाः । क्वा३ भीशवः ॥

३६६१-उदात्त और स्वरित परे रहते अनुदात्तको स्वरित न हो, गार्ग्यादिमुनिके मतसे तो होहीगा, "प्र य आरुः" "वोऽश्वाः" । "क्वा३ भीशवः" ॥

३६६२ एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ । १ । २ । ३३ ॥

दूरात्सम्बोधने वाक्यमेकश्रुतिः स्यात् । त्रैस्वर्यापवादः । आगच्छ भो माणवक ॥

३६६२-दूरसे संबोधन विषयक जो वाक्य उसको एकश्रुति हो, यह त्रैस्वर्यापवाद है, यथा-आगच्छ भो माणवक । उदात्तादिस्वरोंका विभागरहित होकर स्थितिको एकश्रुति कहतेहैं ॥

३६६३ यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु । १ । २ । ३४ ॥

यज्ञक्रियायां मन्त्र एकश्रुतिः स्याज्जपादीन्वर्जयित्वा । अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् । यज्ञेति किम् । स्वाध्यायकाले त्रैस्वर्यमेव । अजपेति किम् । ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु । जपो नाम उपांशुप्रयोगः । यथा जले निमग्नस्य । न्यूङ्खा नाम षोडश ओकाराः । गीतिषु सामाख्या ॥

३६६३-जप, न्यूंख और सामको छोडकर यज्ञक्रियामें जो मंत्र उसको एकश्रुतिस्वर हो । वेदमें उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीन स्वरोंसे सब मंत्र पढे जातेहैं, उनको यज्ञक्रियामें भी उसी प्रकार प्रयोगोंकी प्राप्ति होनेपर एकश्रुति स्वर विहित होताहै । इस स्थलमें मंत्र 'अजप' इस पर्युदाससे लब्ध होताहै, इस कारण ऊहादिमें नहीं होगा, अत एव "वाहन्द्रे शत्रुर्वर्द्धस्व" इस स्थलमें समासान्तोदात्तत्व कर्तव्य होनेपर आद्युदात्तका प्रयोग किया, इस प्रकारकी प्रसिद्धि है । "अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्" यज्ञक्रिया न होनेपर तो स्वाध्यायकालमें त्रैस्वर्यही होताहै । अजपादि क्यों कहा ? तो "ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु" । मंत्रादिके उपांशु प्रयोगको जप कहतेहैं, जैसे-जलमें निमग्नव्यक्तिको होताहै । षोडश ओकारात्मक मंत्रको न्यूंखा कहतेहैं। वह गीतमें समाख्यात होताहै ॥

३६६४ उच्चैस्तरां वा वषट्कारः । १ । २ । ३५ ॥

यज्ञकर्मणि वौषट्शब्द उच्चैस्तरां वा स्यादेकश्रुतिर्वा ॥

३६६४-यज्ञकर्ममें वौषट् शब्द विकल्प करके उच्चैस्तराम् अर्थात् उदात्ततर हो अथवा एकश्रुति हो, इस स्थलमें वषट् शब्दसे वौषट् शब्द लक्षित होताहै, क्यों कि, दोनोंका अर्थ समान है । यह दोनों शब्द देवतासम्प्रदानक दानका द्योतक हैं । प्रतिपत्तिका लाघवार्थ वौषट् शब्दका ही ग्रहण क्यों न किया ? तो महर्षि पाणिनिकी सूत्रनिर्माणकी चतुराई अतिचमत्कारक है, उन्होंने सूत्रका कहीं अक्षरलाघव और कहीं प्रतिपत्तिलाघवका आश्रयण कियाहै ॥

३६६५ विभाषा छन्दसि । १ । २ । ३६ ॥

छन्दसि विभाषा एकश्रुतिः स्यात् । व्यवस्थितविभाषेयम् । संहितायां त्रैस्वर्यम् । ब्राह्मणे एकश्रुतिर्बह्वृचानाम् । अन्येषामपि यथासंप्रदायं व्यवस्था ॥

३६६५-वेदमें विकल्प करके एकश्रुतिस्वर हो । इस सूत्रमें वाग्रहणकी अनुवृत्ति होनेसे सिद्ध होनेपर भी विभाषापदका ग्रहण "अच्छन्दसि" ऐसा पदच्छेद करके तंत्रादिके

अनुसार भाषामें भी विधानके निमित्त है, अत एव "श्वेतो धावति"। "अलम्बुसानां याता" यह वाक्य व्यर्थ है, ऐसा पस्पशान्तमें भाष्य है, उस स्थलमें श्वेत यह प्रातिपदिकस्वरसे अन्तोदात्त है, अलं शब्द निपातसंज्ञक होनेके कारण आद्युदात्त है और बुस शब्द प्रातिपदिकस्वरसे अन्तोदात्त है। और अलंबुस शब्द फिट्सूत्रसे अन्तोदात्त है, यदि उस स्थलमें विभाषासे एकश्रुति न हो, तो स्वरभेद होनेसे एकवाक्यकी व्यर्थता क्यों होती। यह व्यवस्थितविभाषा है इससे संहिताविषयमें त्रैस्वर्य होगा। ऋग्वेदीय ब्राह्मणविषयमें एकश्रुति होगा। औरोंके भी यथा सम्प्रदाय व्यवस्था जानना ॥

३६६६ न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः। १। २। ३७॥

सुब्रह्मण्याख्ये निगदे यज्ञकर्मणीति विभाषा छन्दसीति च प्राप्ता एकश्रुतिर्न स्यात्स्वरितस्योदात्तस्य स्यात्। सुब्रह्मण्यो ३ म् ॥ असावित्यन्तः ॥ * ॥ तस्मिन्नेव निगदे प्रथमान्तस्यान्त उदात्तः स्यात्। गार्ग्यो यजते। ञित्त्वात्प्राप्त आद्युदात्तोऽनेन बाध्यते ॥ अमुष्येत्यन्तः ॥*॥ षष्ठ्यन्तस्यापि प्राग्वत्। दाक्षेः पिता यजते ॥ स्यान्तस्योपोत्तमं च ॥ * ॥ चादन्तस्तेन द्वावुदात्तौ। गार्ग्यस्य पिता यजते ॥ वा नामधेयस्य ॥ * ॥ स्यान्तस्य नामधेयस्य उपोत्तममुदात्तं वा स्यात्। देवदत्तस्य पिता यजते ॥

३६६६–सुब्रह्मण्यनामक निगद अर्थात् ऊँचेस्वरसे पठित पादबन्धरहित (गद्यात्मक) यजुरात्मक मंत्रवाक्यमें "यज्ञकर्मणि०" और "विभाषा छन्दसि" इन दो सूत्रोंसे प्राप्त एकश्रुति नहीं हो, और स्वरितस्वरके स्थानमें उदात्तस्वर हो, यथा–"सुब्रह्मण्यो३म्" ॥

"असावित्यन्तः" अर्थात् उसी निगदमें प्रथमान्तपदको अन्त उदात्त हो * यथा–"गार्ग्यो यजते" इस स्थलमें ञित्वके कारण प्राप्त आद्युदात्त इस सूत्रसे निषिद्ध होताहै।

"अमुष्येत्यन्तः" अर्थात् उसी निगदमें षष्ठ्यन्त पदको भी अन्त उदात्त हो * यथा–"दाक्षेः पिता यजते"।

"स्यान्तस्योपोत्तमञ्च" स्यशब्दान्त पदके उपोत्तम और चकारसे अन्त्य वर्ण उदात्त हो * यथा–"गार्ग्यस्य पिता यजते" ॥

"वा नामधेयस्य" स्यशब्दान्त नामधेय वाचक शब्दको उपोत्तम विकल्प करके उदात्त हो * यथा–"देवदत्तस्य पिता यजते" ॥

३६६७ देवब्रह्मणोरनुदात्तः। १।२।३८॥

अनयोः स्वरितस्यानुदात्तः स्यात्सुब्रह्मण्यायाम्। देवा ब्रह्माण आगच्छत ॥

३६६७–सुब्रह्मण्याख्य निगदमें देव और ब्रह्मन् शब्दके स्वरितस्वरको अनुदात्त स्वर हो, यथा–"देवा ब्रह्माण आगच्छत" ॥

३६६८ स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्। १। २। ३९॥

स्वरितात्परेषामनुदात्तानां संहितायामेकश्रुतिः स्यात्। इमं मे गंगे यमुने सरस्वति ॥

३६६८–संहिताविषयमें स्वरितस्वरके परवर्ती अनुदात्त स्वरको एकश्रुतिस्वर हो, यथा–"इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति" ॥

३६६९ उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः। १।२।४०॥

उदात्तस्वरितौ परौ यस्मात्तस्यानुदात्ततरः स्यात्। सरस्वति शुतुद्रि। व्यचक्षयत्स्वः ॥ "तस्य परमाम्रेडितम् ॥ ८। १। २।"

३६६९–सन्न शब्दका नीचैः अर्थ है, उससे अनुदात्तत्व लक्षित होताहै। उदात्त और स्वरितस्वर परमें हैं जिससे ऐसे अनुदात्तस्वरके स्थानमें अनुदात्ततर स्वर हो, यथा–"सरस्वति शुतुद्रि"। "व्यचक्षयत्स्वः"। द्विरुक्तको परवर्ती रूप आम्रेडितसंज्ञक हो ॥

३६७० अनुदात्तं च। ८। १। ३॥

द्विरुक्तस्य परं रूपमनुदात्तं स्यात्। दिवेदिवे॥

॥ इति साधारणस्वराः ॥

३६७०–द्विरुक्तको परवर्ती रूप अनुदात्त हो, यथा–"दिवे दिवे" ॥

इति साधारणस्वराः।

प्रकृति दो प्रकारकी है, धातु और प्रातिपदिक, उसमें पहले धातुस्वर कहतेहैं ॥

३६७१ धातोः। ६। १। १६२॥

अन्त उदात्तः स्यात्। गोपायतं नः। असि सत्यः ॥

३६७१–धातुके अन्त्य वर्णको उदात्तस्वर हो, यथा–"गोपायतं नः"। "असि सत्यः" यहां "कर्षाऽऽत्वतः० ३६८०" इस पूर्वोक्त से "अन्त उदात्तः" इस पदकी अनुवृत्ति आतीहै ॥

३६७२ स्वपादिहिंसामच्यनिटि। ६। १। १८८॥

स्वपादीनां हिंसेश्चानिट्यजादौ लसार्वधातुके परे आदिरुदात्तो वा स्यात्। स्वपादिरुदाद्यन्तर्गणः। स्वपन्ति। श्वसन्ति। हिंसन्ति। पक्षे प्रत्ययस्वरेण मध्योदात्तता। ङित्येवेष्यते। नेह। स्वपानि। हिनसानि ॥

१ एकपदमें और दो पदोंमें भी वर्त्तमानके कारण यह साधारण स्वर है, "आद्युदात्तश्च"। "ञ्नित्यादिर्नित्यम्" इत्यादि तो एक ही पदमें वर्त्तमानके कारण साधारण स्वर नहीं है।

३६७२–अनिट् अजादि लस्थानिक सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते स्वपादि धातुओंका और हिंस् धातुका आदि वर्ण विकल्प करके उदात्त हो, स्वपादि अदाद्यन्तर्गण है, यथा–स्वपन्ति। श्वसन्ति। हिंसन्ति। विकल्प पक्षमें प्रत्यय स्वरसे मध्य वर्णको उदात्तस्वर होगा। कित् ङित् तादृश सार्वधातुक परे ही उक्त स्वर इष्ट है, इस कारण "स्वपानि, हिनसानि" यहां न हुआ, यह वृत्तिकारका मत है, भाष्यमें तो प्रायः ऐसा नहीं देखा जाताहै, इसलिये 'हिनसानि' इस स्थलमें आद्युदात्त भी पक्षमें होताहै (यदि पक्षमें आद्युदात्त स्वर इष्ट न हो तो व्यवस्थित विभाषाश्रयणसे न होगा)॥

३६७३ अभ्यस्तानामादिः।६।१।१८९॥

अनिटयजादौ लसार्वधातुके परे अभ्यस्तानामादिरुदात्तः। ये ददति प्रिया वसु। परत्वाच्चित्स्वरमयं बाधते। दधाना इन्द्रे॥

३६७३–अनिट् अजादि लस्थानिक सार्वधातुक विभक्ति परे रहते अभ्यस्तसंज्ञक धातुका आदिवर्ण उदात्त हो, यथा–"ये ददति प्रिया वसु"। यह परत्वके कारण चित्स्वरको अर्थात् "चितः" इस सूत्रसे विहित अन्तोदात्तस्वरको बाधा देताहै, यथा–"दधाना इन्द्रे"॥

३६७४ अनुदात्ते च।६।१।१९०॥

अविद्यमानोदात्ते लसार्वधातुके परेऽभ्यस्तानामादिरुदात्तः। दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषे॥

३६७४–जिसमें उदात्तस्वर न हो ऐसा ल सार्वधातुक विभक्ति परे रहते अभ्यस्तसंज्ञक धातुका आदिवर्ण उदात्त हो, यथा–"दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषे"॥

३६७५ भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात्पूर्वं पिति।६।१।१९२॥

भीप्रभृतीनामभ्यास्तानां पिति लसार्वधातुके परे प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तं स्यात्। योऽग्निहोत्रं जुहोति। ममत्तु नः परिज्मा। माता यद्वीरं दधनत्। जागर्षि त्वम्॥

३६७५–पित् लसार्वधातुक विभक्ति परे रहते अभ्यस्तसंज्ञक भी, ह्री, भृ, हु, मद, जन, धन, दरिद्रा और जागृ धातुके प्रत्ययका पूर्व वर्ण उदात्त हो, यथा–"योऽग्निहोत्रं जुहोति" "ममत्तु नः परिज्मा"। "माता यद्वीरं दधनत्" "जागर्षि त्वम्"॥

३६७६ लिति।६।१।१९३॥

प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तम्। चिकीर्षकः॥

३६७६–लित् प्रत्यय परे रहते प्रत्ययका पूर्ववर्ण उदात्त हो, यथा–"चिकीर्षकः"॥

३६७७ आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम्।६।१।१९४॥

अभ्यस्तानामादिरुदात्तो वा णमुलि परे। लोलूयंलोलूयम्। पक्षे लित्स्वरः॥

३६७७–णमुल् प्रत्यय परे रहते अभ्यस्तसंज्ञक धातुका आदिवर्ण विकल्प करके उदात्त हो, यथा–"लोलूयंलोलूयम्" यहां यङन्त लू धातुसे णमुल्, "नित्यवीप्सयोः" इससे द्वित्व हुआ यहां प्रथम लोलूय शब्द आद्युदात्त है। विकल्प पक्षमें लित्स्वर होगा॥

३६७८ अचः कर्तृयकि।६।१।१९५॥

उपदेशेऽजन्तानां कर्तृयकि परे आदिरुदात्तो वा। लूयते केदारः स्वयमेव॥

३६७८–कर्तृवाच्यमें विहित यक् प्रत्यय परे रहते उपदेशावस्थामें अजन्त धातुके आदिवर्णको विकल्प करके उदात्तस्वर हो, यथा–"लूयते केदारः स्वयमेव"॥

३६७९ चङ्यन्यतरस्याम्।६।१।२१८॥

चङन्ते धातावुपोत्तममुदात्तं वा। मा हि चीकरताम्। धात्वकार उदात्तः। पक्षान्तरे चङुदात्तः॥

॥ इति धातुस्वराः॥

३६७९–चङन्त धातुमें उपोत्तम अर्थात् आदिके अन्त्यका समीपवर्ण विकल्प करके उदात्त हो, यथा–"मा हि चीकरताम्" यहां धातुका अकार उदात्त हुआ। पक्षान्तरमें चङ् उदात्त होगा॥

इति धातुस्वराः।

३६८० कर्षाऽऽत्वतो घञोन्त उदात्तः।६।१।१५९॥

कर्षतेर्धातोराकारवतश्च घञन्तस्यान्त उदात्तः स्यात्। कर्षः शपा निर्देशात्तुदादेराद्युदात्त एव। कर्षः। पाकः॥

३६८०–घञ् प्रत्ययान्त कर्ष धातु और आकारवान् (आकारविशिष्ट) धातुका अन्त उदात्त हो, यथा–"कर्षः"। शप्द्वारा निर्देशके कारण तुदादिगणीय धातुका आदि उदात्त ही होगा, यथा–कर्षः। पाकः॥

३६८१ उञ्छादीनां च।६।१।१६०॥

अन्त उदात्तः स्यात्। उञ्छादिषु युगशब्दो घञन्तोऽगुणो निपात्यते कालविशेषे रथाद्यवयवे च। वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे। अन्यत्र योगेयोगे तवस्तरम्। भक्षशब्दो घञन्तः। गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः। उत्तमशश्वत्तमावपि। उदुत्तमं वरुण। शश्वत्तममीळते॥

३६८१–उञ्छादि (उञ्छ, म्लेच्छ, जञ्ज, जल्प, जप, वध, युग, गरो दूष्ये, वेगवेदवेष्टबन्धाः करणे, स्तुयुद्रुवश्छन्दसि, वर्त्तनि स्तोत्रे, श्वभ्रे दरः, साम्बतापौ भावगर्हायाम्, उत्तमशश्वत्तमौ, सर्वत्र भक्षमन्थभोगमन्थाः, इनका अन्त वर्ण उदात्त हो, उञ्छादिमें घञ् प्रत्ययान्त, युग शब्द कालविशे

और रथादिके अवयव विशेषमें गुणाभाव निपातनसे सिद्ध हुआहै। यथा-"वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे" । अन्यत्र (अन्यार्थमें) "योगेयोगे तवस्तरम्" । भक्ष शब्द घञ्-प्रत्ययान्त है। "गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः"। उत्तम और शश्वत्तम शब्द भी अन्तोदात्त हों, यह तमप्प्रत्ययान्त हैं, "उदुत्तमं वरुण"। "शश्वत्तममीळते" ॥

३६८२ चतुरः शसि ।६।१।१६७॥

चतुरोऽन्त उदात्तः शसि परे। चतुरः कल्पयन्तः। अचिरा इति रादेशस्य पूर्वविधौ स्थानिवत्त्वान्नेह। चतस्रः पश्य। चतेरुरन्। नित्त्वादाद्युदात्तता ॥

३६८२-शस् विभक्ति परे रहते चतुर् शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-"चतुरः कल्पयन्तः"। "अचि रः० २९९" इस सूत्रसे ऋकारस्थानमें रकारादेशकी पूर्वविधिमें स्थानिवत्त्वके कारण "चतस्रः पश्य" इस स्थलमें अन्तोदात्त नहीं हुआ। यहां चत् धातुके उत्तर उरन् प्रत्यय हुआ। उसके नित्त्वके कारण आद्युदा ई ॥

३६८३ झल्युपोत्तमम् ।६।१।१८०॥

षट्त्रिचतुर्भ्यो या झलादिर्विभक्तिस्तदन्ते पदे उपोत्तममुदात्तं स्यात्। अध्वर्युभिः पञ्चभिः। नवभिर्वाजैर्नवती च। सप्तभ्यो जायमानः। आदशभिर्विवस्वतः। उपोत्तमं किम्। आ षड्भिर्हूयमानः। वि ... भिः। झलि किम्। नवानां नवतीनाम् ॥

३६८३-षट्, त्रि और चतुर् शब्दके उत्तर जो झलादि विभक्ति तदन्त पद परे रहते उपोत्तम वर्ण उदात्त हो, यथा-"अध्वर्युभिः पञ्चभिः"। "नवभिर्वाजैर्नवती च"। "सप्तभ्यो जायमानः"। "आ दशभिर्विवस्वतः"। उपोत्तम न होनेपर "आ षड्भिर्हूयमानः"। "विश्वैर्देवैस्त्रिभिः"। झल् परे न होनेपर "नवानां नवतीनाम्" ॥

३६८४विभाषा भाषायाम्।६।१।१८१॥

उक्तविषये ॥

३६८४-भाषामें षट्, त्रि, चतुर् शब्दके परे जो झलादि विभक्ति, तदन्त पद परे रहते उपोत्तमवर्ण विकल्प करके उदात्त हो-॥

३६८५ सर्वस्य सुपि।६।१।१९१॥

सुपि परे सर्वशब्दस्यादिरुदात्तः स्यात्। सर्वे नन्दन्ति यशसा ॥

३६८५-सुप् प्रत्यय परे रहते सर्व शब्दका आदिवर्ण उदात्त हो, यथा-"सर्वे नन्दन्ति यशसा" ॥

३६८६ ञ्नित्यादिर्नित्यम्।६।१।१९७॥

ञिदन्तस्य निदन्तस्य चादिरुदात्तः स्यात्। यस्मिन्विश्वानि पौंस्या। पुंसः कर्मणि ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। सुते दधिष्व नश्चनः। चायतेरसुन्। चायेरन्ने ह्रस्वश्चेति चकारादसुनो नुडागमश्च ॥

३६८६-ञिदन्त और निदन्त शब्दोंका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा-"यस्मिन् विश्वा। नि पौंस्या"। पुंस् शब्दसे कर्मवाच्यमें ब्राह्मणादित्वके कारण ष्यञ् प्रत्यय होकर 'पौंस्या' पद सिद्ध हुआहै। "सुते दधिष्व नश्चनः" यह चाय् धातुके उत्तर असुन् प्रत्यय और "चायेरन्ने ह्रस्वश्च" इस सूत्रसे चकारसे असुन् प्रत्ययको नुडागम हुआहै ॥

३६८७ पथिमथोः सर्वनामस्थाने।६।१।१९९॥

आदिरुदात्तः स्यात्। अयं पन्थाः। सर्वनामस्थाने किम्। ज्योतिष्मतः पथो रक्ष। उदात्तनिवृत्तिस्वरेणान्तोदात्तं पदम् ॥

३६८७-सर्वनामस्थान अर्थात् सु, औ, जस्, अम्, औट् विभक्ति परे रहते पथिन् और मथिन् शब्दोंका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा-"अयं पन्थाः"। सर्वनाम स्थानविभक्तिभिन्न विभक्ति परे होनेपर "ज्योतिष्मतः पथोरक्ष" इस स्थलमें उदात्त निवृत्ति स्वरसे अर्थात् "अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः" इससे विभक्ति उदात्त होनेसे अन्तोदात्त यह पद हुआ ॥

३६८८ अन्तश्च तवै युगपत्।६।१।२००॥

तवैप्रत्ययान्तस्याद्यन्तौ युगपदाद्युदात्तौ स्तः। हर्षसे दातवा उ ॥

३६८८-तवैप्रत्ययान्त पदका आदि और अन्त वर्ण एकसाथ आद्युदात्त हो, यथा-"हर्षसे दातवा उ"। 'दातवा उ' इस स्थलमें दा धातुके उत्तर कृतार्थमें "तवैकेन्केन्यत्वनः" इस सूत्रसे तवै प्रत्यय हुआ। सूत्रमें युगपत् शब्दका ग्रहण पर्याय(क्रम)निरासार्थ है, अर्थात् तवै प्रत्ययान्त पदके आदि और अन्त वर्ण दोनों यथेच्छ आद्युदात्त हों, क्रम २ से नहीं, इस निमित्त है, अन्यथा "अनुदात्तं पदमेकवर्जम्" इस सूत्रमें 'एकवर्जम्' पदका ग्रहण करनेके कारण इस स्थलमें भी यौगपद्य नहीं होता ॥

३६८९ क्षयो निवासे।६।१।२०१॥

आद्युदात्तः स्यात्। स्वे क्षये शुचिव्रत ॥

३६८९-निवास अर्थ होनेपर क्षय शब्द आद्युदात्त हो, यथा-"स्वे क्षये शुचिव्रत"। क्षि धातु निवास और गतिमें है, क्षयन्ति यस्मिन्, इस विग्रहमें अधिकरण वाच्यमें "पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण" इससे घ प्रत्यय हुआहै। निवास भिन्न अर्थ अर्थात् नाश अर्थ होनेपर आद्युदात्त नहीं होगा, यथा-"व्याधेः क्षयः" इस स्थलमें "एरच्" इस सूत्रसे क्षयार्थक क्षि धातुके उत्तर अच् प्रत्यय हुआ है, इस कारण अन्तोदात्त होगा ॥

३६९० जयः करणम् । ६ । १ ।२०२॥

करणवाची जयशब्द आद्युदात्तः स्यात् । जयत्यनेन जयोऽश्वः ॥

३६९०-करणवाचक जय शब्द आद्युदात्त हो, यथा- "जयोऽश्वः" इस स्थलमें जयति अनेन, इस विग्रहमें "पुंसि०" इस सूत्रसे जि धातुके उत्तर करणवाच्यमें घ प्रत्यय हुआ है । करणवाच्यमें न होनेपर तो "जयो ब्राह्मणानाम्" इस स्थलमें भाववाच्यमें जि धातुके उत्तर अच् प्रत्यय होनेसे आद्युदात्तत्व नहीं हुआ ॥

३६९१ वृषादीनां च । ६ । १ ।२०३॥

आदिरुदात्तः । आकृतिगणोऽयम् । वाजेभिर्वाजिनीवती । इन्द्रं वाणीः ॥

३६९१-वृषादि शब्दोंका आदिवर्ण उदात्त हो, वृषादि आकृतिगण हैं, यथा-"वाजेभिर्वाजिनीवती" । "इन्द्रं वाणीः" । सेवनार्थक वृष धातुके उत्तर इगुपध लक्षणमें क प्रत्यय होकर वृष शब्द सिद्ध हुआहै । वज्+घञ्=वाजः यहां "कर्षात्वतः०"इस पूर्वोक्त सूत्रसे अन्तोदात्त स्वरकी प्राप्ति होनेपर वृषादि आकृति गण होनेके कारण इस सूत्रसे आद्युदात्त हुआ॥

३६९२ संज्ञायामुपमानम् ।६।१।२०४॥

उपमानशब्दः संज्ञायामाद्युदात्तः । चञ्चेव चञ्चा । कनोऽत्र लुप् । एतदेव ज्ञापयति क्वचित्स्वरविधौ प्रत्ययलक्षणं नेति । संज्ञायां किम् । अग्निर्माणवकः । उपमानं किम् । चैत्रः ॥

३६९२-संज्ञा होनेपर उपमानवाचक शब्द आद्युदात्त हो, यथा-"चञ्चेव चञ्चा" इस स्थलमें "इवे प्रतिकृतौ २५०१" इससे विहित कन् प्रत्ययको "लुम् मनुष्ये" इससे लुप् हुआहै । प्रत्यय लक्षणसे नित्वके कारण "ञ्नित्यादि०" इसीसे सिद्ध होनेपर यह सूत्र क्यों किया ? तो इसपर कहतेहैं यही सूत्र ज्ञाप न करताहै कि, कहीं स्वरविधिमें प्रत्ययलक्षण नहीं हो । संज्ञा न होनेपर तो "अग्निर्माणवकः" । उपमान वाचक न होनेपर तो "चैत्रः" ॥

३६९३ निष्ठा च द्व्यजनात् ।६।१।२०५॥

निष्ठान्तस्य द्व्यचः संज्ञायामादिरुदात्तो न त्वाकारः । दत्तः । द्व्यच् किम् । चिन्तितः । अनात्किम् । त्रातः । संज्ञायामित्यनुवृत्तेर्नेह । कृतम् । हृतम् ॥

३६९३-संज्ञा होनेपर निष्ठा प्रत्ययान्त दो अचोंसे युक्त शब्दका आदि उदात्त हो, परन्तु आदिभूत आकार उदात्त न हो, यथा-"दत्तः" । दो अच् न होनेपर तो "चिन्तितः" । आकार होनेपर तो त्रातः । "संज्ञायाम्" इस पदकी अनुवृत्तिके कारण "कृतम्" । "हृतम्" । इस स्थलमें आद्युदात्तत्व नहीं हुआ ॥

३६९४ शुष्कधृष्टौ । ६ । १ । २०६ ॥

एतावाद्युदात्तौ स्तः । असंज्ञार्थमिदम् । अतसं न शुष्कम् ॥

३६९४-शुष्क और धृष्ट शब्द आद्युदात्त हों, यह सूत्र असंज्ञार्थ है, संज्ञा होनेपर तो "निष्ठा च द्व्यजनात्" इस पूर्वोक्त सूत्रसे ही आद्युदात्त सिद्ध होगा । यथा-"अतसं न शुष्कम्" ॥

३६९५ आशितः कर्ता । ६ ।१।२०७॥

कर्तृवाची आशितशब्द आद्युदात्तः । कृषन्नित्फाल आशितम् ॥

३६९५-कर्तृवाचक आशित शब्द आद्युदात्त हो, यथा- "कृषन्नित्फाल आशितम्" यहां आङ् पूर्वक भोजनार्थक अश् धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें क्त प्रत्यय इसी सूत्रसे निपातनसे हुआ है, अन्यमतसे सूत्रस्थ "कर्त्ता" इस पदसे भूतपूर्वगतिके अनुसार जो अणिजन्तकालमें कर्त्ता णिजन्त कालमें कर्म्मीभूत हो वही विवक्षित है, वैसे होनेसे णिजन्त अश धातुके प्रयोज्यकर्त्ताको "गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ० ५४० " इस सूत्रसे कर्म्म संज्ञा विहित होकर निष्ठा प्रत्ययसे 'आशितः' पद सिद्ध हुआ है ॥

३६९६ रिक्ते विभाषा । ६ । १।२०८॥

रिक्तशब्दे वादिरुदात्तः। रिक्तः । संज्ञायां तु निष्ठा च द्व्यजनादिति नित्यमाद्युदात्तत्वं पूर्वविप्रतिषेधेन ॥

३६९६-रिक्त शब्दका आदिवर्ण विकल्प करके उदात्त हो, यथा-"रिक्तः" । यह सूत्र असंज्ञा विषयक है। संज्ञा होने पर तो "निष्ठा च द्व्यजनात्" इस सूत्रसे नित्य आद्युदात्तत्व पूर्वविप्रतिषेधसे होगा ॥

३६९७ जुष्टार्पिते च च्छन्दसि । ६ । १ । २०९ ॥

आद्युदात्ते वा स्तः ॥

३६९७-जुष्ट और अर्पित यह दो शब्द वेदमें विकल्प करके आद्युदात्त हों. प्रीति और सेवनार्थक जुष् धातुके उत्तर क्त प्रत्यय और "श्व्यादितो निष्ठायाम् ३०३९" इस सूत्रसे इट् होकर जुष्टः । ऋ धातुसे णिच् क्त प्रत्यय होनेपर "अर्ति० २४९३ " इस सूत्रसे पुक्का आगम होकर "अर्पितः" ॥

३६९८ नित्यं म न्त्रे । ६ । १ । २१०॥

एतत्सूत्रं शक्यमकर्तुम् । जुष्टो दमूनाः । षळर आहुरर्पितमित्यादेः पूर्वेणैव सिद्धेः । छन्दसि पाठस्य व्यवस्थिततया विपरीतापादनायोगात् । अर्पिताः षष्टिर्न चलाचलास इत्यत्रान्तोदात्तदर्शनाच्च ॥

३६९८-जुष्ट और अर्पित शब्द मंत्र विषयमें नित्य आद्युदात्त हों, यह सूत्र न करनेपर भी काम होजाताहै, कारण कि, "जुष्टोदमूनाः" । "षळर आहुरर्पितम्" इत्यादि प्रयोगोंमें आद्युदात्त पूर्वसूत्रसे ही सिद्ध है यदि कहो कि पक्षमें अन्तोदात्तत्व भी प्राप्त होगा, तो इस शंकापर कहतेहैं कि,

वेदमें पाठके व्यवस्थितत्वके कारण विपरीत उच्चारण नहीं होनेसे अन्तोदात्त नहीं होगा । और सूत्रको करनेपर "अर्द्धिताः पृथिवी चलाचलासः" इस स्थलमें अन्तोदात्त दृष्ट होताहै वह न होनेसे दोष भी होगा ॥

३६९९ युष्मदस्मदोर्ङसि ।६।१।२११॥

आदिरुदात्तः स्यात् । महिषस्तव नो मम ॥

३६९९-ङस् विभक्ति परे रहते युष्मद् और अस्मद् शब्दका आदिवर्ण उदात्त हो, यथा-"महिषस्तवनो मम" । युष् और अस् धातुके उत्तर मदिक् प्रत्यय होकर युष्मद् और अस्मद् शब्द सिद्ध हुएहैं ॥

३७०० ङयि च । ६ । १ । २१२ ॥

तुभ्यं हिन्वानः । मह्यं वातः पवताम् ॥

३७००-ङे विभक्ति परे रहते युष्मद् और अस्मद् शब्दोंका आदिवर्ण उदात्त हो, यथा-"तुभ्यं हिन्वानः" । "मह्यं वातः पवताम्" । इस स्थलमें योगविभाग यथासंख्यनिवृत्त्यर्थ है,नहीं तो युष्मद् शब्दको ङस परे, अस्मद् शब्दको ङे परे ही आद्युदात्त होता ॥

३७०१ यतोऽनावः । ६ । १ । २१३ ॥

यत्प्रत्ययान्तस्य द्व्यच आदिरुदात्तो नावं विना । युञ्जन्त्यस्य काम्या । कमेर्णिङन्तादचो यत् ॥

३७०१-यत्प्रत्ययान्त दो स्वरयुक्त शब्दका आदिवर्ण उदात्त हो, नौ शब्दको छोडकर यथा-"युञ्जन्त्यस्य काम्या" यहां णिङन्त कम धातुके उत्तर यत् प्रत्यय होकर 'काम्या' पद सिद्ध हुआहै यह सूत्र "तित्स्वरितम् ३७२९" इस पूर्वोक्त सूत्रका बाधक है । इस सूत्रमें "निष्ठा च द्व्यजनात्" इस सूत्रसे "द्व्यच्" पदकी अनुवृत्ति आतीहै । इस स्थलमें 'अनावः' यह 'नवतिं नाव्यानाम्' निषेध जनाताहै कि, स्वरविधिमें व्यञ्जन वर्ण अविद्यमानवत् हो, नहीं तो जो आदिस्थित नकार वह स्वरयोग्य नहीं है, और जो स्वरयोग्य आकार है वह आदिस्थ नहीं है, तो फिर प्रतिषेध अनर्थक ही होजाता । नौ शब्द होनेपर तो "नावा तार्य्यम्=नाव्यम्" इस स्थलमें नौ शब्दके उत्तर "नौवयोधर्म० १६४३"इस सूत्रसे यत् प्रत्यय हुआ । द्व्यच् न होनेपर तो चिकीर्ष्यम् । नाव्यम् और चिकीर्ष्यम् इन दोनों स्थलोंमें तित्स्वर होताहै ॥

३७०२ ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः । ६ । १ । २१४ ॥

एषां ण्यदन्तानामादिरुदात्तः । ईड्यो नूतनैरुत । आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च । श्रेष्ठं नो धेहि वार्य्यम् । उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ॥

३७०२-ण्यत्प्रत्ययान्त ईड, वन्द्, वृ, शंस् और दुह् धातुका आदिवर्ण उदात्त हो, यथा-"ईड्यो नूतनैरुत" । 'आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च'' । "श्रेष्ठं नो धेहि वार्य्यम्" । "उक्थमिन्द्राय शंस्यम्" । पूर्वसूत्रमें निरनुबन्ध यत् प्रत्ययके ग्रहणके कारण ण्यत्प्रत्ययान्तमें सूत्रकी अप्रसक्ति होनेसे यह सूत्रआरंभ कियाहै । ईड धातु स्तुतिमें है । वदि धातु अभिवादन और स्तुतिमें है । वृङ् धातु संभक्तिमें है । शंस धातु स्तुतिमें है । दुह धातु प्रपूरणमें है ईड धातुके उत्तर "ऋहलोः २८७२" इस सूत्रसे ण्यत् होकर ईड्यः । वार्य्यः यहां वृङ् धातुके उत्तर ण्यत् प्रत्यय है । वृङ् धातुके उत्तर "एतिस्तुशास्० ३८५७" इस विशेष सूत्रसे क्यप् प्रत्यय तो नहीं होगा, कारण कि, क्यप्विधिमें वृञ् धातुका ही ग्रहण है, ऐसा मूलमें ही स्पष्ट है ॥

३७०३ विभाषा वेण्विन्धानयोः । ६ । १ । २१५ ॥

आदिरुदात्तो वा । इन्धानो अग्निम् ॥

३७०३-वेणु और इन्धान शब्दका आदिवर्ण विकल्प करके उदात्त हो, यथा-"इन्धानो अग्निम्" । वेणुशब्दसे "अजिवृरीभ्यो निच्" इससे णु प्रत्ययको नित्व विधान होनेके कारण नित्य आद्युदात्त प्राप्त होनेपर और इन्धान शब्द चानश्प्रत्ययान्त होनेसे चित्त्वके कारण अन्तोदात्त प्राप्त होनेपर तन्निवारणार्थ यह सूत्र है ॥

३७०४ त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम् । ६ । १ । २१६ ॥

आदिरुदात्तो वा । आद्यास्त्रयो घञन्ताः । त्रयः पचाद्यजन्ताः ॥

३७०४-त्याग, राग, हास, कुह, श्वठ और क्रथ शब्दका आदिवर्ण विकल्प करके उदात्त हो, यथा-[illegible] । रागः । हासः । यह तीन शब्द घञ्प्रत्ययान्त और कुहः । श्वठः । क्रथः । यह तीन पचाद्यच्प्रत्ययान्त हैं ॥

३७०५ मतोः पूर्वमात्संज्ञायां स्त्रियाम् । ६ । १ । २१९ ॥

मतोः पूर्वमाकार उदात्तः स्त्रीनाम्नि । उदुम्बरावती । शरावती ॥

३७०५-स्त्रीका नाम होनेपर मतुप् प्रत्ययके पूर्ववर्त्ती आकार उदात्त हो, यथा-उदुम्बरावती । शरावती ॥

३७०६ अन्तोऽवत्याः । ६ । १ । २२० ॥

अवतीशब्दस्यान्त उदात्तः । वेत्रवती।ङीपः पित्त्वादनुदात्तत्वं प्राप्तम् ॥

३७०६-अवती शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो, यथा-"वेत्रवती" इस स्थलमें ङीप्का पकार इत् होनेसे अनुदात्तत्व प्राप्त था,परन्तु इस सूत्रसे वह न होकर अन्तोदात्त हुआहै ॥

३७०७ ईवत्याः । ६ । १ । २२१ ॥

ईवत्यन्तस्यापि प्राग्वत् । अहीवती।मुनीवती॥

॥ इति शब्दस्वराः ॥

३७०७-ईवती अन्तमें है जिसके ऐसे शब्दका भी पूर्ववत् अर्थात् अन्तवर्ण उदात्त हो यथा-अहीवती । मुनीवती ॥

इति शब्दस्वराः ।

अथ फिट्सूत्राणि।

१ 'फिषोऽन्त उदात्तः'॥ प्रातिपदिकं फिट् तस्यान्त उदात्तः स्यात्। उच्चैः॥

१-फिट् शब्दसे प्रातिपदिक समझना, यह पूर्वाचार्य्योंने कहाहै, उसके अन्तको उदात्तस्वर हो, यथा-उच्चैः॥

२ 'पाटलापालङ्काम्बासागरार्थानाम्'॥एतदर्थानामन्त उदात्तः। पाटला, फलेरुहा, सुरूपा, पाकलेति पर्यायाः। लघावन्ते इति प्राप्ते। अपालङ्क, व्याधिघात, आरेवत, आरग्वधेति पर्यायाः। अम्बार्थः। माता। उनर्वन्नन्तानामित्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते। सागरः। समुद्रः॥

२-पाटला, अपालङ्क, अम्बा और सागरार्थक शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो, पाटला, फलेरुहा, सुरूपा, पाकला, इतने पर्य्याय हैं। इस स्थलमें "लघावन्ते" अर्थात् अन्तमें लघु हो और दो लघुवर्ण हों ऐसे बहुस्वरविशिष्ट शब्दका गुरुवर्ण उदात्त हो, इस सूत्रसे गुरुवर्णकी उदात्तता प्राप्त थी, परन्तु इस सूत्रसे नहीं हुई। अपालङ्क, व्याधिघात, आरेवत, आरग्वध, यह पर्य्याय हैं। अम्बार्थक यथा-"माता" यहां "उनर्वन्नन्तानाम्" इस सूत्रसे आदिवर्णको उदात्त प्राप्त था परन्तु इस सूत्रसे वह नहीं हुआ। सागरार्थक यथा-सागरः। समुद्रः॥

३ 'गेहार्थानामस्त्रियाम्'॥ गेहम्। नब्विषयस्येति प्राप्ते। अस्त्रियां किम्। शाला। आद्युदात्तोऽयम्। इहैव पर्युदासाज्ज्ञापकात्॥

३-गेहवाचक शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो, परन्तु स्त्रीलिङ्ग होनेपर न हो, यथा-"गेहम्" यहां "नब्विषयस्य" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे आदिवर्णकी उदात्तता प्राप्त थी परन्तु इस सूत्रसे उसका प्रतिषेध हुआ। स्त्रीलिङ्ग गेहार्थक शब्द होनेपर तो "शाला" इस स्थलमें अन्तोदात्तत्व नहीं हुआ, किन्तु इसी सूत्रमें पर्युदासज्ञापक बलसे आद्युदात्तत्व हुआ॥

४ 'गुदस्य च'॥ अन्त उदात्तः स्यान्न तु स्त्रियाम्। गुदम्। अस्त्रियां किम्। आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यः। स्वांगशिटामदन्तानामित्यन्तरङ्गमाद्युदात्तत्वम्। ततष्टाप्॥

४-गुद शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो परन्तु स्त्रीलिङ्गमें न हो, यथा-गुदम्। स्त्रीलिङ्गमें तो, "अन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यः" इस स्थलमें "स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे अन्तरंग आद्युदात्तत्व हुआ, पश्चात् स्त्रीलिंगमें टाप् प्रत्यय होकर सिद्ध हुआहै॥

५ 'ध्यपूर्वस्य स्त्रीविषयस्य'॥ धकारयकारपूर्वो योऽन्त्योऽच् स उदात्तः। अन्तर्धा। स्त्रीविषयवर्णनाम्नामिति प्राप्ते। छाया। माया। जाया। यान्तस्यान्त्यात्पूर्वमित्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते। स्त्रीति किम्। बाह्यम्। यञन्तत्वादाद्युदात्तत्वम्। विषयग्रहणं किम्। इभ्या। क्षत्रिया। यतोऽनाव इत्याद्युदात्त इभ्यशब्दः। क्षत्रियशब्दस्तु यान्तस्यान्त्यात्पूर्वमिति मध्योदात्तः॥

५—स्त्रीविषयक नित्यस्त्रीलिंग शब्दका धकार और यकार पूर्वक जो अन्त्य अच् वह उदात्त हो, यथा-"अन्तर्द्धा" इस स्थलमें "स्त्रीविषयवर्णनाम्नाम्" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे आद्युदात्त प्राप्त था, परन्तु इस सूत्रसे उसका बाध हुआ। छाया। माया। जाया। यहां "यान्तस्यान्त्यात्पूर्वम्" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे आद्युदात्त प्राप्त था परन्तु इस सूत्रसे उसका बाध हुआ। स्त्रीविषयक न होनेपर यथा-"बाह्यम्" इस स्थलमें यञन्तत्वके कारण आद्युत्तत्व हुआ। विषयग्रहण क्यों किया? तो "इभ्या। क्षत्रिया" यहां अन्त्य अच् उदात्त न हो, इस स्थलमें "यतोनावः ३७०१" इस सूत्रसे इभ्य शब्द आद्युदात्त और क्षत्रिय शब्द "यान्तस्यान्त्यात्पूर्वम्" इस सूत्रसे मध्योदात्त है॥

६ 'खान्तस्याश्मादेः'॥ नखम्। उखा। सुखम्। दुःखम्। नखस्य स्वांगशिटामित्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते। उखा नाम भाण्डविशेषः। तस्य कृत्रिमत्वात्खय्युवर्णं कृत्रिमाख्याचेदित्युवर्णस्योदात्तत्वे प्राप्ते। सुखदुःखयोर्नब्विषयस्येति प्राप्ते। अश्मादेः किम्। शिखा। मुखम्। मुखस्य स्वांगशिटामिति नब्विषयस्येति वा आद्युदात्तत्वम्। शिखायास्तु शीङः खो निद्ध्रस्वश्चेति उणादिषु नित्त्वोक्तेरन्तरङ्गत्वाट्टापः प्रागेव स्वांगशिटामिति वा बोध्यम्॥

६-शकारादि और मकारादि भिन्न शब्द उसका अन्तवर्ण उदात्त हो, यथा-नखम्। उखा। सुखम्। दुःखम्। "नखम्" इस स्थानमें "स्वाङ्गशिटाम्०" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे आद्युदात्त प्राप्त था, परन्तु यह सूत्र उसका बाधक हुआ। उखा शब्दसे भाण्डविशेष समझना, उसको कृत्रिमत्वके कारण "खय्युवर्णं कृत्रिमा चेत्" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे उवर्णको उदात्तत्व प्राप्त होनेपर और सुख और दुःख शब्दको "नब्विषयस्य" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे आद्युदात्त प्राप्त होनेपर उसका इस सूत्रसे बाध हुआ। श्मादि होनेपर अर्थात् शकारादि और मकारादि होनेपर तो "शिखा। मुखम्" यहां खशब्दान्तोदात्त नहीं हुआ इस स्थलमें मुख शब्दको "स्वाङ्गशिटाम्०" अथवा "नब्विषयस्य" इस सूत्रसे आद्युदात्तत्व होताहै। शिखा शब्दको तो "शीङः खो निद्ध्रस्वश्च" इससे उणादिमें नित्त्वोक्तिसे वा अन्तरङ्गत्वके कारण टाप्से पहले "स्वाङ्गशिटाम्०" इससे आद्युदात्तत्व होताहै॥

७ 'द्विष्ठवत्सरतिशत्थान्तानाम्'॥ एषामन्त उदात्तः स्यात्। अतिशयेन बहुलो बंहिष्ठः। नित्त्वादाद्युदात्तत्वे प्राप्ते। बंहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेन यद्वंहिष्ठं नातिविधे इत्यादौ व्यत्ययादा-

द्युदात्तः । संवत्सरः।अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरोऽत्र बाध्यत इत्याहुः । सप्ततिः । अशीतिः । लघावन्त इति प्राप्ते । चत्वारिंशत् । इहापि प्राग्वत् । अभ्यूर्णवाना प्रभृथस्यायोः । अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरोऽत्र बाध्यत इत्याहुः । थाथादिसूत्रेण गतार्थमेतत् ॥

७–ष्ठि, वत्सर, ति, शत्, थ शब्दान्त पदोंके अन्तवर्ण उदात्त हों, "अतिशयेन बहुलो बंहिष्ठः" ।इष्ठन् प्रत्ययका नकार इत् होनेके कारण तदन्त शब्दको आद्युदात्तत्व प्राप्त था, परन्तु इस सूत्रसे उसका बाध होकर अन्तोदात्त हुआहै। "बंहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेन" । "यद्वंहिष्ठं नातिविधे" इत्यादि स्थलमें तो व्यत्ययसे आद्युदात्तत्व होताहै । "संवत्सरः"इस स्थलमें अव्यय पूर्वपद प्रकृतिस्वरका बाध होताहै । "सप्ततिः । अशीतिः" । इन स्थलोंमें "लघावन्त०" इस सूत्रसे उदात्त प्राप्त था। "चत्वारिंशत्" इस स्थलमेंभी उसी सूत्रसे उदात्त प्राप्त था "अभ्यूर्णवाना प्रभृथस्यायोः" इस स्थलमें अव्यय पूर्वपद प्रकृतिस्वरका बाध होताहै । यह पंडितोंने कहाहै । थाथादि सूत्रसे यह सूत्र गतार्थ है ॥

८ 'दक्षिणस्य साधौ' ॥ अन्त उदात्तः स्यात् । साधुवाचित्वाभावे तु व्यवस्थायां सर्वनामतया स्वाङ्गशिटामित्याद्युदात्तः । अर्थान्तरे तु लघावन्त इति गुरुरुदात्तः । दक्षिणः सरलोदारपरच्छन्दानुवर्तिष्विति कोशः ॥

८–साधु अर्थात् प्रावीण्यार्थमें दक्षिण शब्दके अन्तवर्णको उदात्तस्वर हो, जिस स्थानमें साधु अर्थ न होकर तद्भिन्न अर्थात् व्यवस्था अर्थ है, उस स्थानमें सर्वनामता होनेसे "स्वाङ्गशिटाम्०" इस सूत्रसे आदिवर्ण उदात्त होगा । अर्थान्तर होनेपर तो "लघावन्ते०" इससे गुरुवर्ण उदात्त होगा । दक्षिण शब्दसे सरल, उदार और परच्छन्दानुवर्ती समझना ॥

९'स्वांगाख्यायामादिर्वा'॥इह दक्षिणस्याद्यन्तौ पर्यायेणोदात्तौ स्तः। दक्षिणो बाहुः । आख्याग्रहणं किम् । प्रत्यङ्मुखस्यासीनस्य वामपाणिर्दक्षिणो भवति ॥

९–स्वाङ्गाख्या होनेपर (स्वाङ्गवाचक होनेपर) दक्षिण शब्दके आदि और अन्त वर्ण पर्य्यायसे उदात्त हों, यथा– "दक्षिणो बाहुः" इस स्थलमें आदि और अन्त दोनों उदात्त हैं । सूत्रमें आख्या शब्दके ग्रहणका प्रयोजन क्या है ? इसपर कहतेहैं कि, "प्रत्यङ् मुखस्यासीनस्य वामपाणिर्दक्षिणो भवति" (जो पुरुष पश्चिमकी तरफको मुख करके बैठताहै, उसका बांया हाथ दक्षिणकी तरफ रहताहै) इस स्थलमें दोनों वर्ण उदात्त नहीं हों ॥

१० 'छन्दसि च' ॥ अस्वाङ्गार्थमिदम् । दक्षिणः । इह पर्यायेणाद्यन्तावुदात्तौ ॥

१०–वेदमें स्वाङ्गवाचक न होनेपर भी दक्षिण शब्दका आदि और अन्तवर्ण पर्य्याय (क्रम) से उदात्त हो, यथा– "दक्षिणः" यहां क्रमसे आदि और अन्तवर्ण उदात्त हुआहै ॥

११'कृष्णस्यामृगाख्या चेत्' ॥ अन्त उदात्तः । वर्णानां तणेत्याद्युदात्तत्वे प्राप्ते अन्तोदात्तो विधीयते। कृष्णानां व्रीहीणाम् । कृष्णो नोनाव वृषभः। मृगाख्यायां तु । कृष्णो रात्र्यै ॥

११–मृग अर्थात् पशु अर्थ न होनेपर कृष्ण शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो, "वर्णानां तण०"इस सूत्रसे आद्युदात्तकी प्राप्ति थी, परन्तु इस सूत्रसे वह न होकर अन्तोदात्त हुआ, यथा–"कृष्णानां व्रीहिणाम्" । "कृष्णो नोनाव वृषभः" । मृगाख्या होनेपर तो "कृष्णो रात्र्यै" ॥

१२'वा नामधेयस्य'॥कृष्णस्येत्येव । अयं वा कृष्णो अश्विना । कृष्ण ऋषिः ॥

१२–नामधेयवाचक कृष्ण शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो, यथा–"अयं वा कृष्णो अश्विना" । कृष्ण ऋषिः ॥

१३'शुक्लगौरयोरादिः'॥नित्यमुदात्तः स्यादित्येके। वेत्यनुवर्त्तत इति तु युक्तम् । सरो गौरो यथा पिबेत्यत्रान्तोदात्तदर्शनात् ॥

१३–वेदमें शुक्ल और गौर शब्दका आदिवर्ण नित्य उदात्त हो, ऐसा कोई २ कहतेहैं । (इस सूत्रमें वा शब्दकी अनुवृत्ति होती है यह युक्त नहीं है क्योंकि, "सरो गौरो यथा पिब" इस स्थलमें गौर शब्दका अन्तवर्ण उदात्त देखा जाताहै ॥

१४ 'अङ्गुष्ठोदकबकवशानां छन्दस्यन्तः' ॥ अङ्गुष्ठस्य स्वांगानामकुर्वादीनामिति द्वितीयस्योदात्तत्वे प्राप्तेऽन्तोदात्तार्थ आरम्भः । वशाग्रहणं नियमार्थं छन्दस्येवेति । तेन लोक आद्युदात्ततेत्याहुः ॥

१४–वेदमें अंगुष्ठ, उदक, बक और वशा शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो, अंगुष्ठ शब्दका "स्वाङ्गानामकुर्वादीनाम् " इस वक्ष्यमाण सूत्रसे दूसरे वर्णकी उदात्तस्वरकी प्राप्ति होनेपर अन्तोदात्तार्थ सूत्रारम्भ कियाहै । सूत्रमें वशा शब्दग्रहण नियमार्थक है, कि, वेदमें ही वशा शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो इससे लोकमें आद्युदात्त ही होगा ॥

१५ 'पृष्ठस्य च' ॥ छन्दस्यन्त उदात्तः स्याद्वा भाषायाम् । पृष्ठम् ॥

१५–वेदमें पृष्ठ शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो और भाषामें विकल्प करके उदात्त हो, यथा–पृष्ठम् ॥

१६ 'अर्जुनस्य तृणाख्या चेत्' ॥ उनर्वन्तानामित्याद्युदात्तस्यापवादः ॥

१६–तृणका नाम होनेपर अर्ज्जुन शब्दका अन्तवर्ण विकल्प करके उदात्त हो, "उनर्वन्तानाम् " इस वक्ष्यमाण सूत्रसे आदि वर्ण उदात्त होता, किन्तु उसके प्रतिषेधके निमित्त भिन्न सूत्रको विधान कियाहै ॥

१७ 'अर्यस्य स्वाम्याख्या चेत्'॥ यान्तस्यान्त्यात्पूर्वमिति यतोऽनाव इति वाद्युदात्ते प्राप्ते वचनम्॥

१७-वेदमें स्वामी अर्थ होनेपर अर्य शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, स्वामीसे भिन्न अन्य अर्थमें न हो, "यान्तस्यान्त्यात्पूर्वम्" अर्थात् यकारान्त शब्दके अन्तवर्णसे पूर्व वर्ण उदात्त हो, इस वक्ष्यमाण सूत्र और "यतोऽनाव ३७०१" अर्थात् यत्प्रत्ययान्त दो स्वरयुक्त शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो, नौ शब्दका न हो, इस पूर्व सूत्रसे आदि वर्णको उदात्तता ही सिद्ध होती, इस कारण उसका बाधक भिन्न सूत्र कियाहै ॥

१८ 'आशाया अदिगाख्या चेत्' ॥ दिगाख्याव्यावृत्त्यर्थमिदम् । अत एव ज्ञापकाद्दिक्पर्यायस्याद्युदात्तता । इन्द्र आशाभ्यस्परि ॥

१८-वेदमें यदि दिक् अर्थ न हो तो आशा शब्दका अंत वर्ण उदात्त हो, दिग्वाचक शब्दकी व्यावृत्तिके निमित्त यह सूत्र कियाहै । अत एव दिक्पर्य्यायवाचक जो सम्पूर्ण (आशा, काष्ठा,इत्यादि) शब्द उनका आदि वर्ण उदात्त होगा । यथा- "इन्द्र आशाभ्यस्परि" ॥

१९ 'नक्षत्राणामाब्विषयाणाम्'॥ अन्त उदात्तः स्यात् । आश्लेषाऽनुराधादीनां लघावन्त इति प्राप्ते ज्येष्ठाश्रविष्ठाधनिष्ठानामिष्ठन्नन्तत्वेनाद्युदात्ते प्राप्ते वचनम् ॥

१९-आब्विषयीभूत अर्थात् आबन्त नक्षत्रवाचक शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो,आश्लेषा और अनुराधा इत्यादि आकारान्त नक्षत्रवाचक शब्दका "लघावन्ते०" अर्थात् लघु वर्ण अन्तमें रहते और दो लघु रहते बहच्क शब्दका गुरु वर्ण उदात्त और ज्येष्ठा, श्रविष्ठा, धनिष्ठा शब्द इष्ठन् प्रत्ययान्त होनेसे उनके आदि वर्णकी उदात्तता प्राप्त हुई थी, किन्तु उसके बाधके निमित्त यह सूत्र कियाहै । (ज्येष्ठः इत्यादि "प्रशस्यस्य श्रः २००९" "ज्य च २०११" इससे प्रशस्य शब्दसे इष्ठन् प्रत्यय परे हुए सन्ते ज्या आदेश । श्रविष्ठा श्रवणं श्रवः सोऽस्त्यस्याः सा श्रवती।धनं विद्यते अस्याः सा धनवती, अतिशयिता श्रवती श्रविष्ठा, धनिष्ठा, इष्ठन् होनेपर "विन्मतोर्लुक्" इससे मतुप्का लोप)॥

२० 'न कुपूर्वस्य कृत्तिकाख्या चेत्' ॥ अन्त उदात्तो न । कृत्तिका नक्षत्रम् । केचित्तु कुपूर्वो य आप् तद्विषयाणामिति व्याख्याय आर्यिका बहुलिका इत्यत्रान्तोदात्तो नेत्याहुः ॥

२०-कृत्तिका अर्थ होनेपर कवर्ग पूर्वक आकारान्त नक्षत्र वाचक शब्दोंका अन्त वर्ण उदात्त न हो, यथा-"कृत्तिका नक्षत्रम्" कोई २ कुपूर्वक जो आप् तदन्त शब्दका अन्त वर्ण उदात्त न हो ऐसा कहते हैं, यथा, "आर्यिका । बहुलिका"॥

२१ 'घृतादीनां च' ॥ अन्त उदात्तः । घृतं मिमिक्ष । आकृतिगणोऽयम् ॥

२१-घृतादि शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा, "घृतं मिमिक्षे" । यह आकृतिगण है ॥

२२ 'ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि' ॥ अन्त उदात्तः स्यात् । ज्येष्ठ आह चमसा । कनिष्ठ आह चतुरः । वयसि किम् । ज्येष्ठः श्रेष्ठः । कनिष्ठोऽल्पिकः । इह नित्त्वादाद्युदात्त एव ॥

२२-वयस् अर्थ होनेपर ज्येष्ठ और कनिष्ठ शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-"ज्येष्ठ आह चमसा"। "कनिष्ठ आह चतुरः" । वयस् अर्थ न होनेपर ज्येष्ठः-श्रेष्ठः । कनिष्ठः- अल्पिकः । इस स्थलमें नित्त्वके कारण अर्थात् इष्ठन् प्रत्यय होनेके कारण आद्युदात्त ही हुआ । ज्येष्ठः "वृद्धस्य च२०१३" इससे इष्ठन् परे होनेसे ज्या आदेश हुआ,कनिष्ठः "युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्" इससे युवन् शब्दको कन् आदेश हुआ ॥

२३ 'बिल्वतिष्ययोः स्वरितो वा'॥ अनयोरन्तः स्वरितो वा स्यात् । पक्षे उदात्तः ॥

॥ इति फिट्सूत्रेषु प्रथमः पादः ॥

२३-बिल्व और तिष्य शब्दका अन्त वर्ण विकल्प करके स्वरित हो, विकल्प पक्षमें उदात्त हो ॥

इति फिट्सूत्रेषु प्रथमः पादः ।

२४ 'अथादिः प्राक् शकटेः'॥ अधिकारोऽयम् । शकटिशकट्योरिति यावत् ॥

२४-इसके पश्चात् "शकटिशकट्योः" इस वक्ष्यमाण सूत्रके पूर्व सूत्र पर्यन्त 'आदिः' इस पदको अधिकार समझना चाहिये ॥

२५ 'ह्रस्वान्तस्य स्त्रीविषयस्य'॥ आदिरुदात्तः स्यात् । बलिः । तनुः ॥

२५-स्त्रीलिङ्गमें ह्रस्वान्त शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा-बलिः । तनुः ॥

२६ 'नब्विषयस्यानिसन्तस्य'॥ वने न वा यः। इसन्तस्य तु सर्पिः । नप् नपुंसकम् ॥

२६-नब्विषयीभूत अर्थात् नपुंसक लिङ्गमें इस् भागान्त शब्दभिन्न अन्य शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा-'वने न वा यः' इस् भागान्त शब्द यथा-सर्पिः । नप् शब्दसे नपुंसक समझना, सर्पिः='अर्चिशुचि०' इत्यादिसे इसि हुआ ॥

२७ 'तृणधान्यानां च द्व्यषाम्'॥ द्व्यचामित्यर्थः। कुशाः।काशाः।माषाः।तिलाः।बह्वचां तु गोधूमाः॥

२७-दो स्वरयुक्त तृण वाचक और धान्यवाचक शब्दोंका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा-कुशाः । काशाः । माषाः । तिलाः । बहु अच् युक्त होनेपर यथा-गोधूमाः ॥

२८ 'त्रः संख्यायाः' ॥ पञ्च । चत्वारः ॥

२८-नकारान्त और रकारान्त संख्यावाचक शब्दोंका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा-पञ्च । चत्वारः ॥

२९ 'स्वांगशिटामदन्तानाम्'॥शिट् सर्वनाम। कर्णाभ्यां चुबुकादधि । ओष्ठाविव मधु । विश्वो विहायाः ॥

२९–वेदमें आकारान्त स्वाङ्ग वाचक सर्वनाम शब्दोंका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा–कर्णाभ्यां चुबुका दधि । ओष्ठा विव मधु । विश्वो विहायाः ॥

३० 'प्राणिनां कुपूर्वम्'॥कवर्गात्पूर्व आदिरुदात्तः। काकः । वृकः । शुकेषु मे । प्राणिनां किम् । क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥

३०–कवर्गके पूर्ववर्ती प्राणिवाचक शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा–काकः । वृकः । शुकेषु मे । प्राणिवाचक न होनेपर यथा–क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥

३१ 'खय्युवर्णं कृत्रिमाख्या चेत्' ॥ खयि परे उवर्णमुदात्तं स्यात् । कन्दुकः ॥

३१–खय् संज्ञक वर्ण परे रहते और कृत्रिम द्रव्यका नाम होनेपर पूर्ववर्ती उवर्ण उदात्त हो, यथा–कन्दुकः ॥

३२ 'उनर्वन्नन्तानाम्'॥उन । वरुणं वो रिशादसम् । ऋ । स्वसारं त्वा कृणवै । वन् । पीवानं मेषम् ॥

३२–उन, ऋ और वन् अन्तमें हो ऐसा पदका आदि वर्ण उदात्त हो, उन यथा–वरुणं वो रिशादसम् । ऋ–स्वसारं त्वा कृणवै । वन्–पीवानं मेषम् ॥

३३ 'वर्णानां तणतिनितान्तानाम्' ॥ आदिरुदात्तः । एतः । हरिणः । शितिः । पृश्निः। हरित् ॥

३३–त, ण, ति, नि, और तकारान्त जो वर्णवाचक शब्द उनका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा–एतः । हरिणः । शितिः। पृश्निः । हरित् ॥

३४ 'ह्रस्वान्तस्य ह्रस्वमनृत्ताच्छील्ये' ॥ ऋद्वर्ज्यं ह्रस्वान्तस्यादिभूतं ह्रस्वमुदात्तं स्यात् । मुनिः ॥

३४–ताच्छील्य अर्थ होनेपर ऋकारको छोडकर ह्रस्वान्तका आदिभूत ह्रस्व उदात्त हो, यथा–मुनिः ॥

३५ 'अक्षस्यादेवनस्य' ॥ आदिरुदात्तः । तस्य नाक्षः । देवने तु । अक्षैर्मा दीव्यः ॥

३५–देवन अर्थात् क्रीडा अर्थ न होनेपर अक्ष शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा–तस्य नाक्षः । देवन अर्थ होनेपर–अक्षैर्मा दीव्यः । यहां आदि वर्ण उदात्त न हुआ ॥

३६ 'अर्धस्यासमद्योतने' ॥ अर्धो ग्रामस्य । समेंऽशके तु अर्धं पिप्पल्याः ॥

३६–असमान अर्थ होनेपर अर्द्ध शब्दका आदिवर्ण उदात्त हो, यथा–"अर्द्धो ग्रामस्य" । किन्तु समानांश होनेपर "अर्द्धं पिप्पल्याः" । इस प्रकार होगा ॥

३७ 'पीतद्वर्थानाम्' ॥ आदिरुदात्तः । पीतद्रुः सरलः ॥

३७–पीतद्रु अर्थात् वृक्षवाचक शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा–पीतद्रुः सरलः ॥

३८ 'ग्रामादीनां च' ॥ ग्रामः । सोमः । यामः ॥

३८–ग्रामादि शब्दोंका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा–ग्रामः । सोमः । यामः ॥

३९ 'लुबन्तस्योपमेयनामधेयस्य' ॥ चञ्चेव चञ्चा । स्फिगन्तस्येति पाठान्तरम् । स्फिगिति लुपः प्राचां संज्ञा ॥

३९–उपमेय जो नामवाचक लुबन्त शब्द उसका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा–चञ्चेव चञ्चा । "स्फिगन्तस्य" । ऐसा पाठान्तर भी है । स्फिक् यह लुप्की प्राचीन सम्मत संज्ञा है ॥

४० 'न वृक्षपर्वतविशेषव्याघ्रसिंहमहिषाणाम्'॥ एषामुपमेयनाम्नामादिरुदात्तो न । ताल इव तालः । मेरुरिव मेरुः।व्याघ्रः । सिंहः। महिषः ॥

४०–वृक्ष, पर्वत, व्याघ्र, सिंह और महिष ये जो उपमेयवाचक शब्द हैं इनका आदिवर्ण उदात्त न हो, यथा–ताल इव तालः । मेरुरिव मेरुः । व्याघ्रः । सिंहः । महिषः ॥

४१ 'राजविशेषस्य यमन्वा चेत्'॥यमन्वा वृद्धः। आङ्ग उदाहरणम् । अङ्गाः प्रत्युदाहरणम् ॥

४१–यमन्वा अर्थात् वृद्ध अर्थ होनेपर राजविशेषवाचक शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो, उदाहरण यथा–आंगः । प्रत्युदाहरण–अंगाः ॥

४२ 'लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः' ॥ अन्ते लघौ द्वयोश्च लघ्वोः सतोर्बह्वच्कस्य गुरुरुदात्तः । कल्याणः । कोलाहलः ॥

४२–लघु वर्ण अन्तमें रहते और दो लघु रहते बहु अच्विशिष्ट शब्दका गुरु वर्ण उदात्त हो, यथा–कल्याणः । कोलाहलः ॥

४३ 'स्त्रीविषयवर्णाक्षुपूर्वाणाम्' ॥ एषां त्रयाणामाद्युदात्तः । स्त्रीविषयः । मल्लिका । वर्णः । श्येनी । हरिणी । अक्षुशब्दात्पूर्वोऽस्त्येषां ते अक्षुपूर्वाः । तरक्षुः ॥

४३–स्त्रीवाचक, वर्णवाचक और विद्यमानपूर्वक अक्षु शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो, स्त्रीवाचक यथा–मल्लिका । वर्ण यथा–श्येनी । हरिणी । जिन शब्दोंके परे अक्षु शब्द रहे वह अक्षुपूर्व हैं । अक्षुपूर्व यथा–तरक्षुः ॥

४४ 'शकुनीनां च लघु पूर्वम्'॥पूर्वं लघु उदात्तं स्यात् । कुक्कुटः । तित्तिरिः । खंजरीटः ॥

४४–शकुनी अर्थात् पक्षिवाचक शब्दका आदि लघु वर्ण उदात्त हो, यथा–कुक्कुटः । तित्तिरिः । खञ्जरीटः ॥

४५ 'नर्तुप्राण्याख्यायाम्'॥यथालक्षणं प्राप्तमुदात्तत्वं न। वसन्तः। कृकलासः॥

४५-ऋतु और प्राणीवाचक शब्दका आदि लघु वर्ण उदात्त न हो, यथा-वसन्तः। कृकलासः॥

४६ 'धान्यानां च वृद्धक्षान्तानाम्'॥ आदिरुदात्तः। कान्तानाम्। श्यामाकाः। षान्तानाम्। माषाः॥

४६-वृद्धसंज्ञक कान्त और षकारान्त धान्यवाचक शब्दका आदि उदात्त हो। कान्त यथा-श्यामाकाः। षान्त यथा-राजमाषाः॥

४७ 'जनपदशब्दानामषान्तानाम्'॥ आदिरुदात्तः। केकयः॥

४७-जनपदवाचक अजन्त शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा-केकयः॥

४८ 'हयादीनामसंयुक्तलान्तानामन्तः पूर्वं वा'॥ हयिति हल्संज्ञा। पललम्। शललम्। हयादीनां किम्। एकलः। असंयुक्तेति किम्। मल्लः॥

४८-हयादि अर्थात् हलादि असंयुक्त लकारान्त शब्दका अन्त्य और आदि दोनों वर्ण विकल्प करके उदात्त हों, यथा-पललम्। शललम्। हलादि न होनेपर। एकलः। असंयुक्त न होनेपर मल्लः॥

४९ 'इगन्तानां च द्व्यषाम्'॥ आदिरुदात्तः। कृषिः।

॥ इति फिट्सूत्रेषु द्वितीयः पादः॥

४९-इ, उ, ऋ और लृकार अन्तमें हो ऐसा दो स्वरयुक्त शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा-कृषिः॥

इति फिट्सूत्रेषु द्वितीयपादः।

५० 'अथ द्वितीयं प्रागीषात्'॥ ईषान्तस्य हलादेरित्यतः प्राक् द्वितीयाधिकारः॥

५०-"ईषान्तस्य हलादेः" इस वक्ष्यमाण सूत्रके पूर्वपर्यन्त द्वितीयाधिकार जानना चाहिये॥

५१ 'त्र्यचां प्राङ्मकरात्'॥ मकरवरूढेत्यतः प्राक् त्र्यचामित्यधिकारः॥

५१-"मकरवरूढ०" इत्यादि वक्ष्यमाण सूत्रके पूर्वपर्यन्त 'त्र्यचाम्' इस पदका अधिकार जानना॥

५२ 'स्वाङ्गानामकुर्वादीनाम्'॥ कवर्गरेफवकारादीनि वर्जयित्वा त्र्यचां स्वाङ्गानां द्वितीयमुदात्तम्। ललाटम्। कुर्वादीनां तु। कपोलः। रसना। वदनम्॥

५२-कवर्ग, रेफ और वकारादि वर्जन करके तीन स्वरयुक्त स्वाङ्गवाचक शब्दका दूसरा वर्ण उदात्त हो, यथा-ललाटम्। कवर्गादि होनेपर यथा-कपोलः। रसना। वदनम्॥

५३ 'मादीनां च'॥ मलयः। मकरः॥

५३-मकार आदिमें है ऐसे तीन स्वरयुक्त शब्दका द्वितीय वर्ण उदात्त हो, यथा-मलयः। मकरः॥

५४ 'शादीनां शाकानाम्'॥ शीतन्या। शतपुष्पा॥

५४-शाकवाचक तालव्य शकार आदिमें है ऐसे तीन स्वरयुक्त शब्दका द्वितीय वर्ण उदात्त हो, यथा-शीतन्या। शतपुष्पा॥

५५ 'पान्तानां गुर्वादीनाम्'॥ पादपः। आतपः। लघ्वादीनां तु। अनूपम्। द्व्यचां तु। नीपम्॥

५५-जिन शब्दोंके अन्तमें पकार और आदिमें गुरुवर्ण रहै ऐसे जो तीन स्वरयुक्त शब्द उसका द्वितीय वर्ण उदात्त हो, यथा-पादपः। आतपः। आदिमें लघु वर्ण रहते नहीं होगा। यथा-अनूपम्। पूर्ववत् दो स्वरयुक्त शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-नीपम्॥

५६ 'युतान्यण्यन्तानाम्'॥ युत। अयुतम्। अनि। धमनिः। अणि। विपणिः॥

५६-युत, अनि और अणि यह भाग अन्तमें हैं ऐसे तीन स्वरयुक्त शब्दका दूसरा वर्ण उदात्त हो, यथा-युत-अयुतम्। अनि-धमनिः। अणि-विपणिः॥

५७ 'मकरवरूढपारेवतवितस्तेक्ष्वार्जिद्राक्षाकलोमाकाष्ठापेष्ठाकाशीनामादिर्वा'॥ एषामादिर्द्वितीयो वोदात्तः। मकरः। वरूढ इत्यादि॥

५७-मकर, वरूढ, पारेवत, वितस्त, इक्षु, आर्जि, द्राक्षा, कला, उमा, काष्ठा, पेष्ठा और काशीना शब्दका आदि वर्ण और द्वितीय वर्ण उदात्त हो, यथा-मकरः। वरूढः। इत्यादि॥

५८ 'छन्दसि च'॥ अमकराद्यर्थ आरम्भः। लक्ष्यानुसारादादिर्द्वितीयश्चोदात्तो ज्ञेयः॥

५८-वेदमें मकारादि शब्द और अन्य शब्दोंका आदि वर्ण और द्वितीय वर्ण उदात्त हों॥

५९ 'कर्दमादीनां च'॥ आदिर्द्वितीयो वोदात्तः॥

५९-कर्दमा, कुलटा, उदक, गान्धारि इत्यादि शब्दोंका आदि अथवा द्वितीय वर्ण उदात्त हो, यथा-कर्दमा इत्यादि॥

६० 'सुगन्धितेजनस्य ते वा'॥ आदिर्द्वितीयस्तेशब्दश्चेति त्रयः पर्यायेणोदात्ताः। सुगन्धितेजनाः॥

६०-सुगन्धितेजन शब्दका आदि वर्ण द्वितीय वर्ण और ते शब्द यह तीन वर्ण पर्य्याय (क्रम) से उदात्त हों, यथा-सुगन्धितेजनाः॥

६१ 'नपः फलान्तानाम्'॥ आदिर्द्वितीयं वोदात्तम्। राजादनफलम्॥

६१-फल शब्द अन्तमें रहते नप् अर्थात् नपुंसक (क्लीबलिङ्ग) शब्दका आदि और द्वितीय वर्ण उदात्त हो, यथा-राजादनफलम्। नपुंसक न होनेपर दासीफली वृक्षः॥

६२ 'यान्तस्यान्त्यात्पूर्वम्'॥ कुलायः॥

६२-यकारान्त शब्दके अन्त वर्णसे पूर्व वर्ण उदात्त हो, यथा-कुलायः ॥

६३ 'थान्तस्य च नालघुनी' ॥ नाशब्दो लघु च उदात्ते स्तः । सनाथा सभा ॥

६३-थकारान्त शब्दके "ना" और लघुसंज्ञक शब्द उदात्त हों, यथा-सनाथा सभा । कोई २ "आन्तस्य च नालघुनी" । ऐसा सूत्रपाठ करके "आकारान्तके नाशब्दके जो अन्त्य वर्णसे पूर्व लघुसंज्ञक वर्ण वह उदात्त हो," इस प्रकार व्याख्या करते हैं और नना, दिवा, मुधा, इस प्रकार उदाहरण देते हैं ॥

६४ 'शिशुमारोदुम्बरबलीवर्दोष्ट्रारपुरूरवसां च' ॥ अन्त्यात्पूर्वमुदात्तं द्वितीयं वा ॥

६४-शिशुमार, उदुम्बर, बलीवर्द, उष्ट्रार (उष्टार) और पुरूरवस् शब्दके अन्त्य वर्णसे पूर्व वर्ण और द्वितीय वर्ण विकल्प करके उदात्त हो ॥

६५ 'सांकाश्यकाम्पिल्यनासिक्यदार्वाघाटानाम्' ॥ द्वितीयमुदात्तं वा ॥

६५-साङ्काश्य, काम्पिल्य,नासिक्य और दार्वाघाट शब्दका द्वितीय वर्ण विकल्प करके उदात्त हो ॥

६६ 'ईषान्तस्य हयादेरादिर्वा' ॥ हलीषा । लाङ्गलीषा ॥

६६-ईषाशब्दान्त हलादि शब्दका आदि वर्ण विकल्प करके उदात्त हो, यथा-हलीषा, लांगलीषा ॥

६७ 'उशीरदाशेरकपालपलालशैवालश्यामाकशारीरशरावहृदयहिरण्यारण्यापत्यदेवराणाम्' ॥ एषामादिरुदात्तः स्यात् ॥

६७-उशीर, दाशेर, कपाल, पलाल, शैवाल, श्यामाक, शारीर, शराव, हृदय, हिरण्य, अरण्य, अपत्य और देवर शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो ॥

६८ 'महिष्याषाढयोर्जायेष्टकाख्या चेत्' ॥ आदिरुदात्तः । महिषी जाया । आषाढा उपदधाति ॥

॥ इति फिट्सूत्रेषु तृतीयः पादः ॥

६८-जाया अर्थमें महिषी शब्द और इष्टकार्थमें आषाढा शब्दका आदि वर्ण उदात्त हो,यथा-महिषी जाया । आषाढा उपदधाति ॥

इति फिट्सूत्रेषु तृतीयपादः ।

६९ 'शकटिशकट्योरक्षरमक्षरं पर्यायेण' ॥ उदात्तम् । शकटिः । शकटी ॥

६९-शकटि और शकटी शब्दके प्रत्येक अक्षरको पर्याय (क्रम) से उदात्त स्वर हो, यथा-शकटिः । शकटी ॥

७० 'गोष्ठजस्य ब्राह्मणनामधेयस्य' ॥ अक्षरमक्षरं पर्यायेणोदात्तम् । गोष्ठजो ब्राह्मणः । अन्यत्र गोष्ठजः पशुः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तः ॥

७०-ब्राह्मणका नाम होनेपर गोष्ठज शब्दके प्रत्येक अक्षरको पर्याय (क्रम) से उदात्त स्वर हो, यथा-गोष्ठजो ब्राह्मणः । ब्राह्मणका नाम न होनेपर उदात्त स्वर नहीं होगा, यथा-गोष्ठजः पशुः । इस स्थलमें कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरसे अन्तमें उदात्त होगा ॥

७१ 'पारावतस्योपोत्तमवर्जम्' ॥ शेषं क्रमेणोदात्तम् । पारावतः ॥

७१-पारावत शब्दका उपोत्तम (अन्तसमीप) वर्ण भिन्न अन्य वर्णोंको क्रमसे उदात्त स्वर हो, यथा-पारावतः ॥

७२ 'धूम्रजानुमुञ्जकेशकालवालस्थालीपाकानामधूजलस्थानाम्' ॥ एषां चतुर्णां धूप्रभृतींश्चतुरो वर्जयित्वा शिष्टानि क्रमेणोदात्तानि । धूम्रजानुः । मुञ्जकेशः । कालवालः । स्थालीपाकः ॥

७२-धूम्रजानु, मुञ्जकेश, कालवाल और स्थालीपाक इन चार शब्दोंके क्रमसे धू,ज,ल और स्थ इन चार वर्णको छोडकर अवशिष्ट वर्णोंको क्रमसे उदात्त स्वर हो, यथा-धूम्रजानुः । मुञ्जकेशः । कालवालः । स्थालीपाकः ॥

७३ 'कपिकेशहरिकेशयोश्छन्दसि' ॥ कपिकेशः । हरिकेशः ॥

७३-वेदमें कपिकेश और हरिकेश इन दो शब्दोंके क्रमसे सम्पूर्ण अक्षरोंको उदात्त स्वर हो, यथा-कपिकेशः । हरिकेशः ॥

७४ 'न्यङ्स्वरौ स्वरितौ' ॥ स्पष्टम् । न्यङ्ङुत्तानः । व्यचक्षयत्स्वः ॥

७४-न्यङ् और स्वर शब्दके सम्पूर्ण वर्णोंको स्वरित स्वर हो, यथा-न्यङ्ङुत्तानः । व्यचक्षयत्स्वः ॥

७५ 'न्यर्बुदव्यल्कशयोरादिः' ॥ स्वरितः स्यात् ॥

७५-न्यर्बुद और व्यल्कश शब्दके आदि वर्णको स्वरित स्वर हो ॥

७६ 'तिल्यशिक्यकाश्मर्यधान्यकन्याराजन्यमनुष्याणामन्तः' ॥ स्वरितः स्यात् । तिलानां भवनं क्षेत्रं तिल्यम् । यतोऽनाव इति प्राप्ते ॥

७६-तिल्य, शिक्य,काश्मर्य्य,धान्य,कन्या, राजन्य और मनुष्य शब्दके अन्त्य वर्णको स्वरित स्वर हो,यथा-"तिल्यम्" जिस खेतमें तिल उत्पन्न होतेहैं उसको तिल्य कहतेहैं । वैश्वानर्य्या शिक्यमादत्ते । प्रभिन्नाय मत्यमन्थ्यास्यति । वज्रः काश्मर्य्योवज्रेण । "यतोऽनावः३७०१" इस सूत्रसे आद्युदात्तकी प्राप्ति थी किन्तु इस सूत्रसे उसका निषेध होगया ॥

७७ 'बिल्वभक्ष्यवीर्याणि छन्दसि' ॥ अन्तस्वरितानि । ततो बिल्व उदतिष्ठत् ॥

७७-वेदमें बिल्व, भक्ष्य और वीर्य्य शब्दके अन्त वर्णको स्वरित स्वर हो, यथा-ततो बिल्व उदतिष्ठत् ॥

७८ 'त्वत्त्वसमसिमेत्यनुच्चानि' ॥ त्वत्तरीरु त्वत् । उत त्वः पश्यन् । नभन्तामन्यके समे । सिमस्मै ॥

७८-स्वत्, त्व, सम और सिम शब्दोंके अन्त वर्णको अनुदात्त स्वर हो, यथा-स्तरी स्वत् । उत त्वः पश्यन् । नभन्तामन्यके समे । सिमस्मै ॥

७९ 'सिमस्याथर्वणेऽन्त उदात्तः' ॥ अथर्वण इति प्रायिकम् । तत्र दृष्टस्येत्येवं परं वा । तेन वासस्तनुते सिमस्मै इत्यृग्वेदेऽपि भवत्येव ॥

७९-अथर्व वेदमें सिम शब्दके अन्त वर्णको उदात्त स्वर हो, अथर्वणका ग्रहण प्रायिक है अन्यमें भी हो, यथा-वासस्तनुते सिमस्मै । ऋग्वेदमें भी इसी प्रकार अनुदात्त स्वर हो ॥

८० 'निपाता आद्युदात्ताः' ॥ स्वाहा ॥

८०-निपातसंज्ञक स्वाहा और स्वधा आदि शब्दोंके आदि वर्णको उदात्त स्वर हो, यथा-स्वाहा ॥

८१ 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' ॥

८१-अभिभिन्न अन्य समस्त उपसर्गोंके आदि वर्णको उदात्त स्वर हो ॥

८२ 'एवादीनामन्तः' ॥ एवमादीनामिति पाठान्तरम् । एव । एवम् । नूनम् । सह । ते मित्र सूरिभिः सह । षष्ठस्य तृतीये सहस्य स इति प्रकरणे सहशब्द आद्युदात्त इति तु प्राञ्चः, तच्चिन्त्यम् ॥

८२-एव (पाठन्तरमें एवम्) आदि शब्दोंके अन्त्य वर्णको उदात्त स्वर हो, यथा-एव । एवम् । नूनम् । सह । सहते मित्र सूरिभिः । " षष्ठस्य तृतीये " इस स्थलमें " सहस्य सः १००९ " इस प्रकरणमें जो सह शब्द है वह आद्युदात्त है, यह प्राचीनोंका मत है । किन्तु वह विवेच्य है । कहीं [सहते पुत्र सूरिभिः] पाठ है ॥

८३ 'वाचादीनामुभावुदात्तौ' ॥ उभौ ग्रहणमनुदात्तं पदमेकवर्जमित्यस्य बाधाय ॥

८३-वाचाआदि शब्दोंके दोनों वर्ण उदात्त हों । दोनों शब्दोंका ग्रहण करनेसे "अनुदात्तं पदमेकवर्ज्यम् " । इस सूत्रके द्वारा विहित अनुदात्त स्वरका बाध होताहै ॥

८४ 'चादयोऽनुदात्ताः' ॥ स्पष्टम् ॥

८४-च वा इत्यादि शब्दोंका अनुदात्त स्वर हो ॥

८५ 'यथेति पादान्ते' ॥ तन्नेमिमृभवो यथा । पादान्ते किम् । यथानो अदितिः करत् ॥

८५-पादके अन्तमें रहते " यथा " शब्दको अनुदात्त स्वर हो, तन्नेमिमृभवो यथा । पादान्तमें न होनेपर उदात्त होगा । यथा-यथा नो अदितिः करत् ॥

८६ 'प्रकारादिद्विरुक्तौ' ॥ परस्यान्त उदात्तः ॥ पटुपटुः ॥

८६-"प्रकारे गुणवचनस्य २१४७ " इत्यादि सूत्रसे द्वित्व होनेपर परवर्त्ती भागके अन्त वर्णको उदात्त स्वर हो, यथा, पटुपटुः ॥

८७ 'शेषं सर्वमनुदात्तम्' ॥ शेषं नित्यादिद्विरुक्तस्य परमित्यर्थः । प्रप्रायम् । दिवेदिवे ॥

॥ इति शान्तनवाचार्यप्रणीतेषु फिट्सूत्रेषु तुरीयः पादः ॥

८७-नित्यादि अर्थमें द्वित्व होनेपर परके समस्त वर्णको अनुदात्त स्वर हो, यथा-प्रप्रायम् । दिवेदिवे ॥

॥ इति फिट्सूत्रेषु तुरीयपादः ॥

३७०८ आद्युदात्तश्च । ३ । १ । ३ ॥

प्रत्ययः आद्युदात्तः स्यात् । अग्निः कर्तव्यम् ॥

३७०८-प्रत्ययके आदि वर्णको उदात्त स्वर हो, यथा-अग्निः कर्तव्यम् । अङ्गके नकारका लोप और नि प्रत्यय=अग्निः । कृ-तव्य=कर्त्तव्यम् । इत्यादि ॥

३७०९ अनुदात्तौ सुप्पितौ । ३।१।४ ॥

पूर्वस्यापवादः । यज्ञस्य । न यो युच्छति । शप्तिपोरनुदात्तत्वे स्वरितप्रचयौ ॥

३७०९-सुप् अर्थात् सु औ जस् इत्यादि विभक्ति और पित्संज्ञक प्रत्ययके आदि वर्णको अनुदात्त स्वर हो, यह सूत्र पूर्व सूत्रका अपवाद है । यथा, यज्ञस्य न यो युच्छति । प्रमादार्थक युच्छ धातुको " धातोः " इस सूत्रसे अन्तोदात्त और शप् "उदात्तादनुदात्तस्य ३६६०" इस सूत्रसे स्वरित हुआ । "स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् " इस सूत्रसे तिप्के प्रचय हुआ ॥

३७१० चितः । ६ । १ । १६३ ॥

अन्त उदात्तः स्यात् ॥ चितः सप्रकृतेर्बह्वकजर्थम् ॥ * ॥ चिति प्रत्यये सति प्रकृतिप्रत्ययसमुदायस्यान्त उदात्तो वाच्य इत्यर्थः ॥ नभन्तामन्यके समे । यके सरस्वति । तकत्सु ते ॥

३७१०-चित् प्रत्ययान्त समुदायके अन्त वर्णको उदात्त स्वर हो,

चित् प्रत्यय होनेपर प्रकृति प्रत्ययसमुदायके अन्त वर्णको उदात्त स्वर हो, ऐसा कहना चाहिये * यथा, नभन्तामन्यके समे । यके सरस्वति । तकत्सुते ॥

३७११ तद्धितस्य । ६ । १ । १६४ ॥

चितस्तद्धितस्यान्त उदात्तः । पूर्वेण सिद्धे ञित्स्वरबाधनार्थमिदम् । कौञ्जायनाः ॥

३७११-चित् तद्धित प्रत्ययान्त शब्दके अन्त वर्णको उदात्त स्वर हो, पूर्व सूत्रसे वह सिद्ध होनेपर भी ञित्स्वरके बाधनार्थ पुनः इस सूत्रका विधान हुआहै, यथा-कौञ्जायनाः । कुञ्ज (१०९९) शब्दके उत्तर अपत्यार्थमें च्फञ् । (११००) इससे आयञ् । (२०७२) (११९३) ॥

३७१२ कितः । ६ । १। १६५ ॥

कितस्तद्धितस्यान्त उदात्तः । यदाग्नेयः ॥

३७१२-कित् तद्धित प्रत्ययान्त शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा, यदाग्नेयः । (अग्नि+ढक्) ॥

३७१३ तिसृभ्यो जसः । ६ । १ । १६६ ॥

अन्त उदात्तः । तिस्रो द्यावः सवितुः ॥

३७१३–तिसृ शब्दके उत्तर जस् विभक्तिका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा, तिस्रो द्यावः सवितुः । अन्तोदान्त त्रिशब्दके स्थानमें तिसृ आदेश हुआ । पाहिले स्थानिवद्भावके कारण अन्तोदात्त हुआ । पश्चात् "अनुदात्तौ सुप्पितौ ३७०९" इस सूत्रसे जस् अनुदात्त हुआ । और "अचि र ऋतः २९९"इस सूत्रसे रकारादेश करनेपर "उदात्तस्वरितयोर्यणः० ३६५७" इस सूत्रसे जस को स्वरितत्व प्राप्त हुआ था, किन्तु वर्तमान सूत्रसे उसका निषेध होगया ॥

३७१४ सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः । ६ । १ । १६८ ॥

साविति सप्तमीबहुवचनम् । तत्र य एकाच् ततः परा तृतीयादिर्विभक्तिरुदात्ता । वाचा विरूपः । सौ किम् । राज्ञेत्यादौ एकाचोऽपि राजशब्दात्परस्य मा भूत् ॥ राज्ञो नु ते । एकाचः किम् । विधत्ते राजनि त्वे । तृतीयादिः किम् । न ददर्श वाचम् ॥

३७१४–"सु" यह सप्तमीका बहुवचन है, प्रथमाका एक वचन नहीं है । सप्तमीके बहुवचनमें जो एकाच् शब्द उसके उत्तर तृतीयादि विभक्तिको उदात्त स्वर हो, यथा, वाचा विरूपः । सु परे न होनेपर राज्ञा इत्यादि स्थलमें एकाच् होने पर भी राज शब्दके उत्तर तृतीयादि विभक्तिको उदात्त स्वर नहीं हुआ । राज्ञो नु ते । एकाच् क्यों कहा तो ऐसा न कहने-पर 'विधत्ते राजनि त्वे' इसमें भी होता । तृतीयादि क्यों कहा ऐसा न कहनेपर 'न ददर्श वाचम्' में पूर्वोक्त स्वर होजाता ॥

३७१५ अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे । ६ । १ । १६९ ॥

नित्याधिकारविहितसमासादन्यत्र यदुत्तरपदमन्तोदात्तमेकाच् ततः परा तृतीयाविभक्तिरन्तोदात्ता वा स्यात् । परमवाचा ॥

३७१५–नित्याधिकारविहित समासभिन्न स्थलमें जो उत्तरपद वह अन्तोदात्त और एकाच् हो, उसके उत्तर तृतीयादि विभक्तिके अन्त वर्णको विकल्प करके उदात्त स्वर हो, यथा–परमवाचा ॥

३७१६ अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम् । ६ । १ । १७० ॥

अञ्चेः परा विभक्तिरुदात्ता । इन्द्रो दधीचः । चाविति पूर्वपदान्तोदात्तत्वं प्राप्तं तृतीयादिरित्यनुवर्तमाने सर्वनामस्थानग्रहणं शस्परिग्रहार्थम् । प्रतीचो बाहून् ॥

३७१६–अञ्च धातुके उत्तर असर्वनामस्थान अर्थात् सर्वनामस्थानसे भिन्न विभक्ति उदात्त हो, यथा–इन्द्रो दधीचः । "चौ" इस सूत्रसे पूर्व पदान्तको उदात्तत्व प्राप्त हुआ । "तृतीयादि" इस पदकी अनुवृत्ति करके कार्य सिद्ध होनेपर असर्वनामस्थानका ग्रहण, शस् विभक्तिके परिग्रहणके निमित्त है, यथा–प्रतीचो बाहून् । दधीच=दधि अञ्चतीति "ऋत्विक्० ३७३" इससे क्विन् "अनिदिताम्० ४१५" इससे नलोप "अचः ४१६" इससे अकारका लोप "चौ ४१७" इससे दीर्घ ॥

३७१७ ऊडिदंपदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः । ६ । १ । १७१ ॥

एभ्योऽसर्वनामस्थानविभक्तिरुदात्ता। प्रष्ठौहः । प्रष्ठौहा ॥ ऊठ्युपधाग्रहणं कर्तव्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । अक्षद्युवा । अक्षद्युवे । इदम् । एभिर्नृभिर्नृतमः । अन्वादेशे न । अन्तोदात्तादित्यनुवृत्तेः । न च तत्रान्तोदात्तताऽप्यस्तीति वाच्यम्। इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादाविति सूत्रेणानुदात्तस्य अशोविधानात् । प्र ते बभ्रू । माभ्यां गा अनु । पद्दन्नोमास्हृन्निश् इति षट् पदादयः । पद्भ्यां भूमिः । दद्भिर्नजिह्वा । अहरहर्जायते मासिमासि । मनश्चिन्मे हृद आ । अप् । अपां फेनेन । पुम् । अभ्रातेव पुंसः । रै । राया वयम् । रायो धर्ता विवस्वतः । दिव् । उपत्वाग्ने दिवेदिवे ॥

३७१७–ऊठ्, इदम्, पदादि अर्थात् पद,दत्, नस्, मास्, हृत्, निश्, इत्यादि अप्, पुम्, रै और दिव् इन सम्पूर्ण शब्दोंके उत्तर असर्वनामस्थान विभक्तिको उदात्त स्वर हो, यथा–प्रष्ठौहः । "छन्दसि सहः" "वहश्च" इससे ण्विः । "वाह ऊठ्" प्रष्ठौहा ॥

ऊठ् विषयमें उपधाभूत ऊठ्का ग्रहण कर्त्तव्य है, किन्तु उस स्थलमें नहीं होगा, अक्षद्युवा । अक्षद्युवे । इदम् । एभिर्नृभिर्नृतमः । अन्वादेश अर्थमें विभक्तिको उदात्त स्वर नहीं होगा, क्यों कि, "अन्तोदात्तात्" इस भागकी अनुवृत्ति होती है, अन्वादेश अर्थमें इदम् शब्द अन्तोदात्त नहीं है । क्यों कि "इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ३५०" इस सूत्र से अनुदात्तविशिष्ट अश्का विधान करते हैं, "प्रते बभ्रू । माभ्यां गा अनु(यजु० ३१।१३)।पद्भ्यां भूमिः।दद्भिर्नजिह्वा।अहरहर्जायते मासिमासि।मनश्चिन्मे हृद आ।अप्। (यजु० १९७१) अपां फेनेन । पुम् । अभ्रातेव पुंसः । रै । राया वयम् । रायो धर्ता विवस्वतः । दिव । उप त्वाग्ने दिवेदिवे ॥

३७१८ अष्टनो दीर्घात् । ६ । १ । १७२ ॥

शसादिर्विभक्तिरुदात्ता । अष्टाभिर्दशभिः ॥

३७१८–दीर्घ स्वरान्त अष्टन् शब्दके उत्तर शसादि असर्वनामस्थान विभक्तिको उदात्त स्वर हो, यथा–अष्टाभिर्दशभिः ॥

३७१९ शतुरनुमो नद्यजादी।६।१।१७३॥

अनुम् यः शतृप्रत्ययस्तदन्तादन्तोदात्तात्परा नदी अजादिश्च शसादिर्विभक्तिरुदात्ता स्यात्। अच्छा रवं प्रथमा जानती। कृण्वते। अन्तोदात्तात्किम्। दधती। अभ्यस्तानामादिरित्याद्युदात्तः। अनुमः किम्। तुदन्ती। एकादेशोऽत्र उदात्तः। अदुपदेशात्परत्वाच्छतुर्लसार्वधातुक इति निघातः॥

३७१९-अनुम् अर्थात् नुमागम न हो ऐसा जो शतृप्रत्यय तदन्त अन्तोदात्तके उत्तर नदी और अजादि शसादि विभक्तिको उदात्त स्वर हो, यथा-अच्छा रवं प्रथमा जानती। कृण्वते। अन्तोदात्तके परे शसादि विभक्ति न होनेपर, दधती। इस स्थलमें "अभ्यस्तानामादिः ३६७३" इस सूत्रसे आद्युदात्त हुआ। नुम् आगम होनेपर तुदन्ती तुद्+शतृ+नुम् इस स्थलमें एकादेश उदात्त हुआहै। अकारोपदेशके परत्वके कारण शतृ प्रत्ययको "तास्यनुदा०" इत्यादि सूत्रसे निघात स्वर हुआ॥

३७२० उदात्तयणो हल्पूर्वात्। ६।१।१७४॥

उदात्तस्थाने यो यण् हल्पूर्वस्तस्मात्परा नदी शसादिर्विभक्तिश्च उदात्ता स्यात्। चोदयित्री सूनृतानाम्। एषा नेत्री। ऋतं देवाय कृण्वते सवित्रे॥

३७२०-उदात्तके स्थानमें जो यण् हल् पूर्वक उसके उत्तर नदी और शसादि विभक्तिको उदात्त स्वर हो, यथा-"चोदयित्री सूनृतानाम्"। एषा नेत्री। ऋतं देवाय कृण्वते सवित्रे॥

३७२१ नोङ्धात्वोः।६।१।१७५॥

अनयोर्यणः परे शसादय उदात्ता न स्युः। ब्रह्मबन्ध्वा। सेत्पृश्निः सुभ्वे॥

३७२१-ऊङ् प्रत्ययके स्थानमें और धातुके स्थानमें जो यण् उसके उत्तर शसादि विभक्तिको उदात्त स्वर न हो, यथा-ब्रह्मबन्ध्वा। सेत्पृश्निः सुभ्वे॥

३७२२ ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्।६।१।१७६॥

ह्रस्वान्तादन्तोदात्तान्नुटश्च परो मतुबुदात्तः। यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति। नुटः। अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः। अन्तोदात्तात्किम्। मा त्वा विददिषुमान्। स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदित्येतदत्र न। मरुत्वानिंद्र नियुत्वान्वायवागहि॥ रेशब्दाच्च॥ *॥ रेवाँ इद्रेवतः॥

३७२२-ह्रस्वान्त अन्तोदात्त और नुट्के उत्तर जो मतुप् प्रत्यय वह उदात्त हो, ह्रस्वान्त यथा-"यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति" नुट् यथा-अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः। अन्तोदात्तके उत्तर न होनेपर, मात्वा विददिषुमान्। स्वरविधिमें व्यञ्जन वर्ण अविद्यमानवत् हो, अत एव इस स्थलमें वह ईप्सित नहीं हुआ। "मरुत्वानिन्द्र। नियुत्वान्वायवागहि"॥

रे शब्दके उत्तर मतु प्रत्ययको उदात्त स्वर हो, यथा-"रेवाँ इद्रेवतः"। अब्दिमान् आपो दीयन्तेऽस्मिन्निति "कर्मण्यधिकरणे च" इससे कि। अक्षण्वन्तः अक्षि+मतुप् "अस्थिदधि० ३२२" 'छन्दस्यपि दृश्यते' इससे अनङ्, "अनो नुट्" इसके असिद्ध होनेपर पहले नकारका लोप। भूतपूर्व गतिसे मतुपको नुट् "मादुपधाया० २८९७" इससे वत्व। रेवाँ रयिरस्यास्तीति मतुप् "रयेर्मतौ बहुलम्" इससे सम्प्रसारण, पूर्वरूप, आद्गुणः, फिर ह्रस्वाभाव॥

३७२३ नामन्यतरस्याम्।६।१।१७७॥

मतुपि यो ह्रस्वस्तदन्तादन्तोदात्तात्परो नामुदात्तो वा। चेतन्ती सुमतीनाम्॥

३७२३-मतुप् प्रत्यय परे रहते जो ह्रस्व तदन्त अन्तोदात्त वर्णके उत्तर नाम् विभक्तिको विकल्प करके उदात्त स्वर हो, यथा-चेतन्ती सुमतीनाम्॥

३७२४ ङ्याश्छन्दसि बहुलम्। ६।१।१७८॥

ङ्याः परो नामुदात्तो वा। देवसेनानामभिभञ्जतीनाम्। वेत्युक्तेर्नेह। जयन्तीनां मरुतो यन्तु॥

३७२४-ङीके उत्तर नाम् विभक्तिको विकल्प करके उदात्त स्वर हो, यथा-"देवसेनानामभिभञ्जतीनाम्"। इस सूत्रमें वा शब्दके ग्रहणके कारण "जयन्तीनां मरुतो यन्तु" इस स्थलमें उदात्त स्वर नहीं हुआ॥

३७२५ षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः। ६।१।१७९॥

एभ्यो हलादिर्विभक्तिरुदात्ता। आ षड्भिर्हूयमानः। त्रिभिष्ट्वं देव॥

३७२५-षट् और त्रि, चतुर् शब्दके उत्तर हलादि विभक्तिको उदात्त स्वर हो, यथा-आषड्भिर्हूयमानः। त्रिभिष्ट्वं देव॥

३७२६ न गोश्वन्साववर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः।६।१।१८२॥

एभ्यः प्रागुक्तं न। गवां शता। गोभ्यो गातुम्। शुनश्चिच्छेपम्। सौ प्रथमैकवचने अवर्णान्तात्। तेभ्यो द्युम्नम्। तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥

३७२६-गो, श्वन, सु परे रहते अवर्णान्त, राट्, अङ्, क्रुङ्, और कृत् इन सम्पूर्ण शब्दोंके उत्तर हलादि विभक्तिको उदात्त स्वर न हो, यथा-गवां शता। गोभ्यो गातुम्। "शुनश्चिच्छेपम्"। सु विभक्ति अर्थात् प्रथमाके

एकवचनमें जो अवर्णान्त शब्द उसको सावर्ण कहते हैं। "तेभ्यो द्युम्नम्" । तेषां पाहि श्रुधीहवम् ॥

३७२७ दिवो झल् । ६ । १ । १८३ ॥

दिवः परा झलादिर्विभक्तिर्नोदात्ता द्युभिरक्तुभिः । झलिति किम् । उप त्वाग्ने दिवेदिवे ॥

३७२७–दिव् शब्दके उत्तर झलादि विभक्तिको उदात्त स्वर न हो, यथा–द्युभिरक्तुभिः । झल् विभक्ति न होनेपर, उप त्वाग्ने दिवेदिवे ॥

३७२८ नृ चान्यतरस्याम् ।६।१।१८४॥

नुः परा झलादिर्विभक्तिर्वोदात्ता।नृभिर्येमानः।

३७२८–नृ शब्दके उत्तर झलादि विभक्तिको विकल्प करके उदात्त स्वर हो, यथा–नृभिर्येमानः ॥

३७२९ तित्स्वरितम् । ६ । १ । १८५॥

निगदव्याख्यातम्। क्व नूनम् ॥

३७२९–तित् को स्वरित स्वर हो, निगदव्याख्यातम् । अर्थात् उच्चारणके द्वारा व्याख्यात । यथा–क्व नूनम् ॥

३७३० तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमह्न्विङोः ।६।१। १८६ ॥

अस्मात्परं लसार्वधातुकमनुदात्तं स्यात् । तासि । कर्ता । कर्तारौ । कर्तारः । प्रत्ययस्वरापवादोऽयम् । अनुदात्तेत् । य आस्ते । ङितः । अभिचष्टे अनृतेभिः । अदुपदेशात् । पुरुभुजा चनस्यतम् । चित्स्वरोऽप्यनेन बाध्यते । वर्धमानं स्वे दमे । तास्यादिभ्यः किम् । अभि वृधे गृणीतः । उपदेशग्रहणात् नेह । हतो वृत्राण्यार्या । लग्रहणं किम् । कर्तारं निघ्नानाः। सार्वधातुकं किम् । शिश्ये । अह्न्विङोः किम् । हुते । यदधीते ॥ विदीन्धिखिदिभ्यो नेति वक्तव्यम् ॥ * ॥ इन्धे राजा । एतच्चानुदात्तस्य च यत्रेति सूत्रे भाष्ये स्थितम् ॥

३७३०–तासि अनुदात्तेत् और उपदेशमें ङित् अत् अर्थात् उपदेशमें अकारान्त और ङित् इनके उत्तर जो लादेश सार्वधातुक वह अनुदात्त हो, हु और इङ्को न हो, तासि यथा–कर्त्ता । कर्तारौ । कर्तारः । यह प्रत्यय स्वरका अपवाद है । अनुदात्तेत् यथा–य आस्ते । ङित् यथा–अभिचष्टे अनृतेभिः । अदुपदेश यथा–पुरुभुजा चनस्यतम् । इस सूत्रसे चित् स्वरको भी बाध होताहै । "वर्धमानं स्वे दमे" । तासि आदिके उत्तर न होनेपर यथा–"अभि वृधे गृणीतः" । उपदेशग्रहणके कारण इस स्थलमें नहीं होगा, यथा–"हतो वृत्राण्यार्या" लग्रहण न होनेपर यथा–"कर्तारं निघ्नानाः" । सार्वधातुक न होनेपर शिश्ये । हु और इङ् धातु होनेपर हुते । यदधीते ॥ विदि, इन्धि और खिदि धातुके उत्तर होनेपर नहीं होगा * यथा–इन्धे राजा । यह "अनुदात्तस्य च यत्र ३६५१" इस सूत्रके भाष्यमें गृहीत हुआहै । कर्ता (२१८८) एकवचनमें डित्व होनेसे टिका लोप कर्तारौ "रि च"इससे सकारका लोप । वर्द्धमान वृधु+लट्+शानच् "आने मुक्" इससे मुक् । शिश्ये="एरनेकाचः (२७२)" इससे यणादेश, "लिट् च" से यह आर्धधातुक है ॥

३७३१ आदिः सिचोऽन्यतरस्याम्। ६ । १ । १८७ ॥

सिजन्तस्यादिरुदात्तो वा । यासिष्टं वर्तिरश्विनौ ॥

३७३१–सिच् प्रत्ययान्तका आदि वर्ण विकल्प करके उदात्त हो, यथा–"यासिष्टं वर्तिरश्विनौ" । यासिष्टम्=या+लुङ् थस्को तम् "च्लि लुङि" "च्लेः सिच्" "यमरमनमातां० २३७७" इससे इट् सक् । "बहुलं छन्दसि" अमाङ् योगमें भी अडभाव ॥

३७३२ थलि च सेटीडन्तो वा । ६ । १ । १९६ ॥

सेटि थलन्ते पदे इडुदात्तः अन्तो वा आदिर्वा स्यात् । यदा नैते त्रयस्तदा लितीति प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तम् । लुलविथ । अत्र चत्वारोपि पर्यायेणोदात्ताः ॥

३७३२–इट्युक्त थलन्त पदका इट् उदात्त अन्त उदात्त और आद्युदात्त हो, जब यह तीनों नहीं होंगे, तब "लिति" इस सूत्रसे लित् प्रत्ययका पूर्व उदात्त होगा, यथा–लुलविथ । इस स्थलमें चारों ही क्रमसे उदात्त हुए ॥

३७३३ उपोत्तमं रिति ।६।१ । १२७ ॥

रित्प्रत्ययान्तस्योपोत्तममुदात्तं स्यात् । यदाहवनीये ॥

॥ इति प्रत्ययस्वराः ॥

३७३३–रित् प्रत्ययान्त शब्दका उपोत्तम वर्ण उदात्त हो, यथा–यदाहवनीये ॥

इति प्रत्यय स्वराः ।

३७३४ समासस्य । ६ । १ । २२३ ॥

अन्त उदात्तः स्यात् । यज्ञश्रियम् ॥

३७३४–समासका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–यज्ञश्रियम् ॥

३७३५ बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् । ६ । २ । १ ॥

उदात्तस्वरितयोगि पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । उदात्तेत्यादि किम् ।

सर्वानुदात्ते पूर्वपदे समासान्तोदात्तत्वमेव यथा स्यात् । समपादः ॥

३७३५-बहुव्रीहि समासमें उदात्त अथवा स्वरित स्वर-योगमें पूर्व पदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-" सत्यश्चित्र श्रवस्तमः " । उदात्त स्वरितयुक्त न होनेपर सर्वानुदात्त पूर्व पदमें जिस प्रकार समासको अन्तोदात्त ही होगा । इसी प्रकार होगा, यथा-समपादः । चित्रं श्रवा यस्य सः चित्रश्रवः । श्रूयत इति श्रवः ॥

३७३६ तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः ।६।२।२॥

सप्तैते पूर्वपदभूतास्तत्पुरुषे प्रकृत्या । तुल्यश्वेतः । कृत्यतुल्याख्या अजात्येति तत्पुरुषः । किरिणा काणः किरिकाणः । पतयन्मन्दयत्सखम् । मन्दयति मादके इन्द्रे सखेति सप्तमीतत्पुरुषः । शस्त्री श्यामा ॥ अव्यये नञ्कुनिपातानाम् ॥ * ॥ अयज्ञो वा एषः । परिगणनं किम् । स्नात्वाकालकः । मुहूर्तसुखम् । भोज्योष्णम् ॥

३७३६-तुल्यार्थ शब्द तृतीया विभक्त्यन्त पद, सप्तमीविभक्त्यन्त पद, उपमानवाचक शब्द, अव्यय शब्द, द्वितीयाविभक्त्यन्त पद और आकृतिवाचक शब्द यह सात पूर्वमें रहते तत्पुरुष समासमें प्रकृति स्वर हों, तुल्यार्थ यथा-तुल्यश्वेतः । "कृत्यतुल्याख्या अजात्या"इस सूत्रसे तत्पुरुष समास हुआहै। तृतीया,यथा-किरिणा काणः किरिकाणः।"पतयन्मन्दयत्सखम्" । "मन्दयति मादके इन्द्रे सखेति" इस वाक्यमें सप्तमी तत्पुरुष समास हुआहै । शस्त्री श्यामा । "अव्यये नञ्कुनिपातानाम् " अव्ययविषयमें नञ् कु और निपात इन सबके पूर्वपद प्रकृति स्वर हो, ऐसा परिगणन करना चाहिये* "अयज्ञो वा एषः"।परिगणन न होनेपर यथा-स्नात्वा कालकः। मुहूर्तसुखम् । भोज्योष्णम् ॥

३७३७ वर्णो वर्णेष्वनेते । ६ ।२। ३ ॥

वर्णवाचिन्युत्तरपदे एतवर्जिते वर्णवाचि पूर्वपदं प्रकृत्या तत्पुरुषे । कृष्णसारङ्गः । लोहितकल्माषः । कृष्णशब्दो नक्प्रत्ययान्तः । लोहितशब्द इतन्नन्तः । वर्णः किम् । परमकृष्णः । वर्णेषु किम् । कृष्णतिलाः । अनेते किम् । कृष्णैतः ॥

३७३७-एत वर्जित वर्णवाचक पद परे रहते वर्णबोधक पूर्व पदको तत्पुरुष समासमें प्रकृतिस्वर हो, यथा-कृष्णसारङ्गः । लोहितकल्माषः । कृष्ण शब्द नक् प्रत्ययान्त है । लोहित शब्द इतन् प्रत्ययान्त है । वर्ण वाचक पूर्वपद न होनेपर परमकृष्णः । वर्ण वाचक उत्तर पद न होनेपर कृष्णतिलाः । एत शब्द उत्तर पद होनेपर कृष्णैतः । कृष्ण शब्द मृगवाचक होनेसे वेदमें अन्तोदात्त है भाषामें वर्णवाचक आद्युदात्त है ॥

३७३८ गाधलवणयोः प्रमाणे ।६।२।४॥

एतयोरुत्तरपदयोः प्रमाणवाचिनि तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृत्या स्यात् । अरित्रगाधमुदकम् । तत्प्रमाणमित्यर्थः । गोलवणम् । यावद्गवे दीयते तावदित्यर्थः । अरित्रशब्द इत्रन्नन्तो मध्योदात्तः । प्रमाणमियत्तापरिच्छेदमात्रं न पुनरायाम एव । प्रमाणे किम् । परमगाधम् ॥

३७३८-प्रमाणवाचक गाध और लवण शब्द परे रहते तत्पुरुष समासमें पूर्व पदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-" अरित्रगाधमुदकम् " । अर्थात् अरित्र प्रमाण । गोलवणम् । गौको जितना परिमाणविशिष्ट लवण दियाजाताहै उतना परिमाण जानना चाहिये । अरित्र शब्द इत्र प्रत्ययान्त मध्योदात्त है, प्रमाण शब्दसे इयत्ता परिच्छेद मात्र जानना, किन्तु आयाम नहीं । प्रमाणवाचक न होनेपर परमगाधम् । गाधृ प्रतिष्ठायाम् । कर्ममें घञ् ॥

३७३९ दायाद्यं दायादे । ६ । २ । ५ ॥

तत्पुरुषे प्रकृत्या । धनदायादः । धनशब्दः क्युप्रत्ययान्तः प्रत्ययस्वरेणाद्युदात्तः । दायाद्यं किम् । परमदायादः ॥

३७३९-दायाद शब्द परे रहते दायाद्यवाची पूर्व पदको तत्पुरुष समासमें प्रकृतिस्वर हो, यथा-धनदायादः । इस स्थलमें धनशब्दसे ' कृपॄवृजिमन्दिनिधाञः क्युः ' इससे क्यु प्रत्यय हुआहै, तो प्रत्यय स्वरद्वारा इसको आद्युदात्त स्वर होगा, दायाद्यवाची पूर्व न होनेपर परमदायादः । ऐसा होगा ॥

३७४० प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः । ६ । २ । ६ ॥

प्रतिबन्धवाचि पूर्वपदं प्रकृत्या एतयोः परतस्तत्पुरुषे । गमनचिरम् । व्याहरणकृच्छ्रम् । गमनं कारणविकलतया चिरकालभावि कृच्छ्रयोगि वा प्रतिबन्धि जायते । प्रतिबन्धि किम् । मूत्रकृच्छ्रम् ॥

३७४०-चिर और कृच्छ् शब्द परे होनेपर प्रतिबन्धवाचक पूर्वपदको तत्पुरुषसमासमें प्रकृतिस्वर हो, यथा-गमनचिरम् । व्याहरणकृच्छ्रम् । गमन कारणविकलतासे चिरकालभावि कृच्छ्रयोगि होनेसे प्रतिबन्धि होताहै प्रतिबन्धवाचक पद पूर्वमें न होनेपर "मूत्रकृच्छ्रम्" ऐसा होगा । यह षष्ठीसमास है ॥

३७४१ पदेऽपदेशे । ६ । २ । ७ ॥

व्याजवाचिनि पदशब्दे उत्तरपदे पूर्वपदं प्रकृत्या तत्पुरुषे । मूत्रपदेन प्रस्थितः । उच्चारपदेन मूत्रशब्दो घञन्तः । उच्चारशब्दो घञ-

न्तस्थाथादिस्वरेणान्तोदात्तः। अपदेशे किम्। विष्णुपदम्॥

३७४१–व्याजवाचक पद शब्द उत्तरपद रहते पूर्वपदको तत्पुरुषसमासमें प्रकृतिस्वर हो, यथा–मूत्रपदेन प्रस्थितः। उच्चारपदेन। मूत्र शब्द घञ्प्रत्ययान्त है। उच्चार शब्द घञ्प्रत्ययान्त है अत एव थाथादिस्वरसे अन्तोदात्त हुआहै। अपदेशवाचक न होनेपर विष्णुपदम्। यह षष्ठीसमास है॥

३७४२ निवाते वातत्राणे। ६। २। ८॥

निवातशब्दे परे वातत्राणवाचिनि तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृत्या। कुटीनिवातम्। कुड्यनिवातम्। कुटीशब्दो गौरादिङीषन्तः। कुड्यशब्दो ड्यगन्तः। यगन्त इत्यन्ये। वातत्राणे किम्। राजनिवाते वसति। निवातशब्दोयं रूढः पार्श्वे॥

३७४२–तत्पुरुषसमासमें वातत्राणवाचक निवात शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती पदको प्रकृतिस्वर हो,यथा–कुटीनिवातम्।कुड्यनिवातम्। कुटी शब्द गौरादिगणीय होनेके कारण ङीष्प्रत्ययान्त है। कुड्य शब्द ड्यगन्त है। अन्यमतसे यगन्त है। वातत्राणार्थक न होनेपर "राजनिवाते वसति" यहां निवात शब्द पार्श्व अर्थमें रूढ है॥

३७४३ शारदेऽनार्तवे। ६। २। ९॥

ऋतौ भवमार्तवम्। तदन्यवाचिनि शारदशब्दे परे तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं स्यात्। रज्जुशारदमुदकम्। शारदशब्दो नूतनार्थः। तस्यास्वपदविग्रहः।रज्ज्वोः सद्य उद्धृतम्। रज्जुशब्दः सृजेरसुम् चेत्याद्युदात्तो व्युत्पादितः। अनार्तवे किम्। उत्तमशारदम्॥

३७४३–ऋतुमें होनेवालेको आर्त्तव कहतेहैं, उससे भिन्न अर्थमें विद्यमान शारद शब्द परे रहते तत्पुरुषसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, "रज्जुशारदमुदकम्" इस स्थलमें शारद शब्द नूतनार्थक है, उसका "रज्ज्वोः सद्य उद्धृतम्" ऐसा अस्वपद विग्रह है, रज्जु शब्द "सृजेरसुम्" इस सूत्रसे आद्युदात्त व्युत्पादित है। आर्त्तव होनेपर तो उत्तमशारदम्। (शरदि ऋतौ भवं शारदम्)॥

३७४४ अध्वर्युकषाययोर्जातौ। ६। २। १०।

एतयोः परतो जातिवाचिनि तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरम्। कठाध्वर्युः। दौवारिककषायम्। कठशब्दः पचाद्यजन्तः तस्माद्वैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्चेति णिनेः कठचरकाल्लुगिति लुक्। द्वारि नियुक्त इति ठक्यन्तोदात्तो दौवारिकशब्दः। जातौ किम्। परमाध्वर्युः॥

३७४४–अध्वर्यु और कषाय शब्द परे रहते जातिवाचक तत्पुरुषसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–काठध्वर्युः। दौवारिककषायम्। कठ शब्द पचाद्यजन्त है। उससे "वैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च" इस सूत्रसे विहित णिनि प्रत्ययका "कठचरकाल्लुक १४८७" इस सूत्रसे लुक् हुआ। द्वारि नियुक्तः, इस विग्रहमें ठक् प्रत्यय होनेपर, अन्तोदात्त दौवारिक शब्द हुआ। जातिवाचक तत्पुरुष न होनेपर परमाध्वर्युः। (अध्वरं यज्ञं यातीति अध्वर्युः)॥

३७४५ सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये। ६। २। ११॥

अनयोः पूर्वं प्रकृत्या। पितृसदृशः। सादृश्ये किम्। परमसदृशः। समासार्थोऽत्र पूज्यमानता न सादृश्यम्॥

३७४५–सादृश्यार्थक सदृश और प्रतिरूप शब्द परे रहते तत्पुरुषसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–पितृसदृशः। सादृश्यार्थ न होनेपर परमसदृशः। समासार्थ इस स्थलमें पूज्यमानता है सादृश्य नहीं॥

३७४६ द्विगौ प्रमाणे। ६। २। १२॥

द्विगावुत्तरपदे प्रमाणवाचिनि तत्पुरुषे पूर्वपदं प्रकृतिस्वरम्। प्राच्यसप्तसमः। सप्त समाः प्रमाणमस्य। प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यमिति मात्रचो लुक्। प्राच्यशब्द आद्युदात्तः। प्राच्यश्चासौ सप्तसमश्च प्राच्यसप्तसमः। द्विगौ किम्। व्रीहिप्रस्थः। प्रमाणे किम्। परमसप्तसमम्॥

३७४६–द्विगुसंज्ञक प्रमाणवाचक उत्तरपद परे रहते तत्पुरुषसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–प्राच्यसप्तसमः। सप्त समाः प्रमाणमस्य, इस विग्रहमें "प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्" इस सूत्रसे मात्रच् प्रत्ययका लुक् हुआ। प्राच्य शब्द आद्युदात्त है। प्राच्यश्चासौ सप्तसमश्च=प्राच्यसप्तसमः। द्विगुसंज्ञक न होनेपर व्रीहिप्रस्थः। प्रमाणवाचक न होनेपर परमसप्तसमम्॥

३७४७ गन्तव्यपण्यं वाणिजे। ६। २। १३॥

वाणिजशब्दे परे तत्पुरुषे गन्तव्यवाचि पण्यवाचि च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरम्। मद्रवाणिजः। गोवाणिजः। सप्तमीसमासः। मद्रशब्दो रक्प्रत्ययान्तः। गन्तव्येति किम्। परमवाणिजः॥

३७४७–वाणिज शब्द परे रहते तत्पुरुषसमासमें गन्तव्यवाचक और पण्यवाचक पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–मद्रवाणिजः। गोवाणिजः। इस स्थलमें सप्तमीतत्पुरुषसमास हुआहै। मद्र शब्द "स्फायितञ्चि" से रक्प्रत्ययान्त है। गन्तव्यवाचक न होनेपर परमवाणिजः। (मद्रवाणिजः=मद्रेषु गत्वा व्यवहरतीत्यर्थः)॥

३७४८ मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके। ६। २। १४॥

मात्रादिषु परतो नपुंसकवाचिनि तत्पुरुषे

तथा । भिक्षायास्तुल्यप्रमाणं भिक्षामात्रम् । भिक्षाशब्दो गुरोश्च हल इत्यप्रत्ययान्तः । पाणिन्युपज्ञम् । पाणिनिशब्द आद्युदात्तः । नन्दोपक्रमम् । नन्दशब्दः पचाद्यजन्तः । इषुच्छायम् । इषुशब्द आद्युदात्तो नित्त्वात् । नपुंसके किम् । कुड्यच्छाया ॥

३७४८–मात्र, उपज्ञ, उपक्रम और छाया शब्द परे रहते नपुंसकवाचक तत्पुरुषसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा––भिक्षायास्तुल्यप्रमाणं भिक्षामात्रम् । भिक्षा शब्द "गुरोश्च हलः ३२८०"इस सूत्रसे श प्रत्ययान्त है । पाणिन्युपज्ञम् । पाणिनि शब्द आद्युदात्त है । नन्दोपक्रमम् । नन्द शब्द पचाद्यजन्त है । इषुच्छायम् । इषु शब्द नित्त्वके कारण आद्युदात्त है । नपुंसक न होनेपर कुड्यच्छाया ॥

३७४९ सुखप्रिययोर्हिते । ६ । २।१५॥

एतयोः परयोर्हितवाचिनि तत्पुरुषे तथा । गमनप्रियम् । गमनसुखम् । गमनशब्दे लित्स्वरः। हिते किम् । परमसुखम् ॥

३७४९–सुख और प्रिय शब्द परे रहते हितवाचक तत्पुरुषसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–गमनप्रियम् । गमनसुखम् । गमनशब्दमें लित्स्वर है । हितवाचक तत्पुरुषसमास न होनेपर परमसुखम् ॥

३७५० प्रीतौ च । ६ । २ । १६ ॥

प्रीतौ गम्यायां प्रागुक्तम् । ब्राह्मणसुखं पायसम् । छात्रप्रियोऽनध्यायः । ब्राह्मणच्छात्रशब्दौ प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तौ।प्रीतौ किम्।राजसुखम् ॥

३७५०–प्रीति गम्यमान होनेपर तत्पुरुषसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–ब्राह्मणसुखम् पायसम् । छात्रप्रियोऽनध्यायः । ब्राह्मण और छात्र शब्द प्रत्ययस्वरसे अन्तोदात्त हैं प्रीति न होनेपर राजसुखम् यहां प्रकृतिस्वर न हुआ ॥

३७५१ स्वं स्वामिनि । ६ । २ । १७ ॥

स्वामिशब्दे परे स्ववाचि पूर्वपदं तथा । गोस्वामी । स्वं किम् । परमस्वामी ॥

३७५१–स्वामि शब्द परे रहते तत्पुरुषसमासमें स्ववाचक पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–गोस्वामी । स्ववाचक न होनेपर परमस्वामी ॥

३७५२ पत्यावैश्वर्ये । ६ । २ । १८ ॥

दमूना गृहपतिर्दमे ॥

३७५२–ऐश्वर्यार्थक पति शब्द परे रहते तत्पुरुषसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–दमूना गृहपतिर्दमे ॥

३७५३न भूवाक्चिद्दिधिषु ।६।२।१९ ॥

पतिशब्दे परे ऐश्वर्यवाचिनि तत्पुरुषे नैतानि प्रकृत्या । भुवः पतिर्भूपतिः । वाक्पतिः । चित्पतिः । दिधिषुपतिः ॥

३७५३–पति शब्द परे रहते ऐश्वर्यवाचक तत्पुरुषसमासमें पूर्वस्थित भू, वाक्, चित् और दिधिषु शब्दको प्रकृतिस्वर न हो, यथा–भुवः पतिः=भूपतिः । वाक्पतिः । चित्पतिः । दिधिषुपतिः ॥

३७५४ वा भुवनम् । ६ । २ । २० ॥

उक्तविषये भुवनपतिः । भूसूधूभ्रस्जिभ्य इति क्युन्नन्तो भुवनशब्दः ॥

३७५४–पति शब्द परे रहते ऐश्वर्यवाचक तत्पुरुषसमासमें पूर्ववर्ती भुवन शब्दको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा–भुवनपतिः । "भूसूधूभ्रस्जिभ्यः" इस सूत्रसे भू धातुके उत्तर क्युन् प्रत्यय होकर भुवन शब्द सिद्ध हुआहै ॥

३७५५ आशङ्काऽऽबाधनेदीयस्सु सम्भावने । ६ । २ । २१ ॥

अस्तित्वाध्यवसायः सम्भावनम् । गमनाशङ्कमस्ति । गमनाबाधम् । गमननेदीयः । गमनमाशङ्क्यते आबाध्यते निकटतरमिति वा सम्भाव्यते । सम्भावने किम् । परमनेदीयः ॥

३७५५–अस्तित्वका जो अध्यवसाय, उसको संभावना कहतेहैं । आशङ्क आबाध और नेदीय शब्द परे रहते संभावनावाचक तत्पुरुषसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–गमनाशङ्कमस्ति । गमनाबाधम् । गमननेदीयः । गमनमाशंक्यते आबाध्यते निकटतरमिति वा सम्भाव्यते । सम्भावनार्थक न होनेपर, परमनेदीयः ॥

३७५६ पूर्वे भूतपूर्वे । ६ । २ । २२ ॥

आढ्यो भूतपूर्वः आढ्यपूर्वः । पूर्वशब्दो वृत्तिविषये भूतपूर्वे वर्त्तते । भूतपूर्वे किम् । परमपूर्वः ॥

३७५६–भूतपूर्वार्थक पूर्व शब्द परे रहते पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–आढ्यो भूतपूर्वः, इस विग्रहमें आढ्यपूर्वः । पूर्व शब्द वृत्तिविषयमें भूतपूर्वार्थमें वर्त्ताहै । भूतपूर्वार्थक पूर्व शब्द न होनेपर परमपूर्वः ॥

३७५७ सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु सामीप्ये । ६ । २ । २३ ॥

एषु पूर्वं प्रकृत्या । मद्रसविधम् । गान्धारसनीडम् । काश्मीरसमर्यादम् । मद्रसवेशम् । मद्रसदेशम् । सामीप्ये किम् । सह मर्यादया समर्यादं क्षेत्रम् । चैत्रसमर्यादम् ॥

३७५७–समीप्यार्थक सविध, सनीड, समर्य्याद, सवेश और सदेश शब्द परे रहते पूर्वपदको तत्पुरुषसमासमें प्रकृतिस्वर हो, यथा–मद्रसविधम् । गान्धारसनीडम् । काश्मीरसमर्य्यादम् । मद्रसवेशम् । मद्रसदेशम् । सामीप्यार्थक न होनेपर, सह मर्यादया=समर्य्यादं क्षेत्रम् । चैत्रसमर्यादम् ॥

३७५८ विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु । ६ । २ । २४ ॥

विस्पष्टकटुकम् । विस्पष्टशब्दो गतिरनन्तर इत्याद्युदात्तः । विस्पष्टेति किम् । परमलवणम् । गुणेति किम् । विस्पष्टब्राह्मणः । विस्पष्ट । विचित्र । व्यक्त । सम्पन्न । पण्डित । कुशल । चपल । निपुण ॥

३७५८-गुणवाचक शब्द परे रहते विस्पष्टादि पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-विस्पष्टकटुकम् । विस्पष्ट शब्द "गतिरनन्तर० ३७८३" इस सूत्रसे आद्युदात्त है । विस्पष्टादि न होनेपर परमलवणम् । गुणवाचक शब्द परे न रहते विस्पष्टब्राह्मणः । विस्पष्टादिगण यथा-विस्पष्ट, विचित्र, व्यक्त, सम्पन्न, पण्डित, कुशल, चपल और निपुण ॥

३७५९ श्रज्याऽवमकन्पापवत्सु भावे कर्मधारये । ६ । २ । २५ ॥

श्र ज्य अवम कन् इत्यादेशवति पापवाचिनि चोत्तरपदे भाववाचि पूर्वपदं प्रकृत्या । गमनश्रेष्ठम् । गमनज्यायः । गमनावमम् । गमनकनिष्ठम् । गमनपापिष्ठम् । श्रेत्यादि किम् । गमनशोभनम् । भावे किम् । गम्यतेऽनेनेति गमनम् । गमनं श्रेयो गमनश्रेयः । कर्मेति किम् । षष्ठीसमासे मा भूत् ॥

३७५९-श्र, ज्य, अवम कन् आदेश विशिष्ट शब्द और पापवाचक शब्द परे रहते कर्म्मधारयसमासमें भाववाचक पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-गमनश्रेष्ठम् । गमनज्यायः । गमनावमम् । गमनकनिष्ठम् । गमनपापिष्ठम् । श्र इत्यादि आदेश विशिष्ट शब्द और पापवाचक शब्द परे न होनेपर गमनशोभनम् । पूर्वपद भाववाचक न होनेपर गम्यतेऽनेनेति=गमनं=गमनं श्रेयो गमनश्रेयः।'कर्मधारये' क्यों कहा? तो षष्ठीतत्पुरुष समास होनेपर नहीं हो ॥

३७६० कुमारश्च । ६ । २ । २६ ॥

कर्मधारये । कुमारश्रमणा । कुमारशब्दोऽन्तोदात्तः ॥

३७६०-कर्म्मधारय समासमें कुमार पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-कुमारश्रमणा । कुमार शब्द अन्तोदात्त है ॥

३७६१ आदिः प्रत्येनसि । ६। २।२७ ॥

कुमारस्यादिरुदात्तः प्रत्येनसि परे कर्मधारये। प्रतिगतमेनोऽस्य प्रत्येनाः । कुमारप्रत्येनाः ॥

३७६१-कर्म्मधारयसमासमें प्रत्येनस् शब्द परे रहते कुमार शब्दके आदिको प्रकृतिस्वर हो, यथा-प्रतिगतमेनोऽस्य=प्रत्येनाः । कुमारप्रत्येनाः ॥

३७६२ पूगेष्वन्यतरस्याम् । ६।२।२८॥

पूगा गणास्तेषूक्तं वा । कुमारचातकाः । कुमारजीमूताः । आद्युदात्तत्वाभावे कुमारश्चेत्येव भवति ॥

३७६२-पूग अर्थात् गणवाचक शब्द परे रहते कर्म्मधारयसमासमें पूर्ववर्त्ती कुमारशब्दका आदि वर्ण विकल्प करके उदात्त हो, यथा-कुमारचातकाः । कुमारजीमूताः । आद्युदात्तत्वाभाव होनेपर " कुमारश्च ३७६० " इससे प्रकृतिस्वर होगा ॥

३७६३ इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ । ६ । २ । २९ ॥

एषु परेषु पूर्वं प्रकृत्या । पञ्चारत्नयः प्रमाणमस्य पञ्चारत्निः । दश मासान् भूतो दशमास्यः। पंच मासान् भूतः पंचमास्यः । तमधीष्ट इत्यधिकारे द्विगोर्यप् पञ्चकपालः । पञ्चभगालः । पञ्चशरावः । त्रः संख्याया इति पञ्चन्शब्द आद्युदात्तः । इगन्तादिषु किम् । पञ्चाश्वः । द्विगौ किम् । परमारत्निः ॥

३७६३-द्विगु समासमें इगन्त शब्द, कालवाचक, कपाल, भगाल और शराव शब्द परे रहते पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-पञ्च अरत्नयः प्रमाणमस्य, इस विग्रहमें पञ्चारत्निः । दश मासान् भूतो दशमास्यः । पञ्च मासान् भूतः पञ्चमास्यः । यहां " तमधीष्ट० १७४४ " इस अधिकारमें "द्विगोर्यप्" इससे यप् प्रत्यय हुआ । पञ्चकपालः । पञ्चभगालः । पञ्चशरावः । " त्रः संख्यायाः " इस सूत्रसे पञ्चन् शब्द आद्युदात्त है । इगन्तादि शब्द परे न रहते कैसा होगा ? तो, पञ्चाश्वः । द्विगुसमास न होनेपर कैसा होगा ? तो, परमारत्निः ॥

३७६४ बह्वन्यतरस्याम् ।६।२ । ३० ॥

बहुशब्दस्तथा वा । बह्वरत्निः । बहुमास्यः । बहुकपालः । बहुशब्दोन्तोदात्तः । तस्य यणि सत्युदात्तस्वरितयोरिति भवति ॥

३७६४-इगन्तादि शब्द परे रहते द्विगुसमासमें पूर्ववर्त्ती बहु शब्दको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा-बह्वरत्निः । बाहुमास्यः । बहुकपालः । बहु शब्द अन्तोदात्त है, उसको यण् होनेपर " उदात्तस्वरितयोः० ३६५७ " इस सूत्रसे अरत्नि शब्दके आदिको स्वरित हुआ ॥

३७६५ दिष्टिवितस्त्योश्च ।६।२। ३१ ॥

एतयोः परतः पूर्वपदं प्रकृत्या वा द्विगौ । पञ्चदिष्टिः । पञ्चवितस्तिः ॥

३७६५-द्विगुसमासमें दिष्टि और वितस्ति शब्द परे रहते पूर्वपदको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा-पञ्चदिष्टिः पञ्चवितस्तिः ॥

३७६६ सप्तमी सिद्धशुष्कपक्कबन्धेष्वकालात् । ६ । २ । ३२ ॥

अकालवाचि सप्तम्यन्तं प्रकृत्या सिद्धादिषु । साङ्काश्यसिद्धः । साङ्काश्येति ण्यान्तः । आतपशुष्कः । भ्राष्ट्रपक्कः । भ्राष्ट्रेति ष्ट्रन्नन्तः । चक्रबन्धः । चक्रशब्दोऽन्तोदात्तः।अकालात्किम् । पूर्वाह्णसिद्धः । कृत्स्वरेण बाधितः सप्तमीस्वरः प्रतिप्रसूयते ॥

३७६६–तत्पुरुषसमासमें सिद्ध, शुष्क, पक्क और बन्ध शब्द परे रहते अकालवाचक सप्तम्यन्त पदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–साङ्काश्यसिद्धः । साङ्काश्य शब्द " वुञ्छण्० " इससे ण्य प्रत्ययान्त है । आतपशुष्कः । भ्राष्ट्रपक्कः । भ्राष्ट्र पद ष्ट्रन्प्रत्ययान्त है । चक्रबन्धः । चक्र शब्द अन्तोदात्त है । कालवाचक सप्तम्यन्त होनेपर कैसा होगा ? तो, पूर्वाह्णसिद्धः । इस सूत्रसे कृत्प्रत्ययके स्वरसे बाधित सप्तमीस्वर प्रतिप्रसूत होता है ॥

३७६७ परिप्रत्युपाऽपावर्ज्यमानाऽहोरात्रावयवेषु । ६ । २ । ३३ ॥

एते प्रकृत्या वर्ज्यमानवाचिनि अहोरात्रावयववाचिनि चोत्तरपदे । परित्रिगर्तं वृष्टो देवः । प्रतिपूर्वाह्णम् । प्रत्यपररात्रम् । उपपूर्वरात्रम् । अपत्रिगर्तम् । उपसर्गा आद्युदात्ताः । बहुव्रीहितत्पुरुषयोः सिद्धत्वादव्ययीभावार्थमिदम् । अपपर्योरेव वर्ज्यमानमुत्तरपदम् । तयोरेव वर्ज्यमानार्थत्वात् । अहोरात्रावयवा अपि वर्ज्यमाना एव । तयोर्भवन्ति । वर्ज्येति किम् । अग्निं प्रति प्रत्यग्नि ॥

३७६७–तत्पुरुषसमासमें वर्ज्यमानवाचक और अहोरात्रिका अवयववाचक पद उत्तर पद रहते पूर्ववर्त्ती परि, प्रति, उप और अपको प्रकृतिस्वर हो, यथा–परित्रिगर्त्तं वृष्टो देवः । प्रतिपूर्वाह्णम् । प्रत्यपररात्रम् । उपपूर्वरात्रम् । अपत्रिगर्त्तम् । उपसर्ग आद्युदात्त है । बहुव्रीहि और तत्पुरुषसमासमें सिद्ध होनेपर भी यह सूत्र अव्ययीभावसमासार्थ है । अप और परिशब्दका ही उत्तरपद वर्ज्यमानवाचक होगा, कारण कि, उन दोनोंका ही वर्ज्यमानार्थत्व है । अहोरात्रावयव भी उनका वर्ज्यमानही होता है । वर्ज्यमान न होनेपर कैसा होगा ? तो, अग्निं प्रति=प्रत्यग्नि ॥

३७६८ राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु । ६ । २ । ३४ ॥

राजन्यवाचिनां बहुवचनान्तानामन्धकवृष्णिषु वर्तमाने द्वन्द्वे पूर्वपदं प्रकृत्या । श्वाफल्कचैत्रकाः । शिनिवासुदेवाः । शिनिराद्युदात्तो लक्षणया तदपत्ये वर्तते । राजन्येति किम् । द्वैप्यभैमायनाः।द्वीपे भवा द्वैप्याः।भैमेरपत्यं युवा भैमायनः । अन्धकवृष्णय एते न तु राजन्याः । राजन्यग्रहणमिहाभिषिक्तवंश्यानां क्षत्रियाणां ग्रहणार्थम् । नैते तथा । बहुवचनं किम् । संकर्षणवासुदेवौ । द्वन्द्वे किम् । वृष्णीनां कुमाराः वृष्णिकुमाराः । अन्धकवृष्णिषु किम् । कुरुपञ्चालाः ॥

३७६८–राजन्यवाचक बहुवचनान्तपदके अन्धक और वृष्णिमें वर्त्तमान द्वन्द्वसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–श्वाफल्कचैत्रकाः । शिनिवासुदेवाः । शिनि शब्द आद्युदात्त है, वह लक्षणावृत्तिसे शिनिके अपत्यको कहता है । राजन्यवाचक न होनेपर कैसा होगा? तो, द्वैप्यभैमायनाः द्वीपे भवाः, इस विग्रहमें द्वैप्याः । भैमेरपत्यं युवा, इस विग्रहमें भैमायनः । यह अन्धक और वृष्णि हैं, किन्तु राजन्य नहीं हैं, कारण कि, इस स्थलमें राजन्य शब्द अभिषिक्तवंश्यक क्षत्रियका ग्रहणार्थ है, वैसा यह नहीं है । बहुवचनान्त न होनेपर कैसा होगा ? तो, संकर्षणवासुदेवौ । द्वन्द्व न होनेपर वृष्णीनां कुमाराः, इस विग्रहमें वृष्णिकुमाराः । अन्धक और वृष्णि न होनेपर कैसा होगा ? तो कुरुपञ्चालाः ॥

३७६९ संख्या । ६ । २ । ३५ ॥

संख्यावाचि पूर्वपदं प्रकृत्या द्वन्द्वे । द्वादश । त्रयोदश । त्रेस्त्रयसादेश आद्युदात्तो निपात्यते ॥

३७६९–द्वन्द्वसमासमें संख्यावाचक पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–द्वादश । 'त्रयोदश' इस स्थलमें त्रि शब्दके स्थानमें निपातनसे आद्युदात्त त्रयस् आदेश हुआ है ॥

३७७० आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासी । ६ । २ । ३६ ॥

आचार्योपसर्जनान्तेवासिनां द्वन्द्वे पूर्वपदं प्रकृत्या । पाणिनीयरौढीयाः । छस्वरेण मध्योदात्तावेतौ । आचार्योपसर्जनग्रहणं द्वन्द्वविशेषणम् । सकलो द्वन्द्व आचार्योपसर्जनो यथा विज्ञायते । तेनेह न । पाणिनीयदेवदत्तौ । आचार्येति किम् । छान्दसवैयाकरणाः ॥ अन्तेवासी किम् । आपिशलपाणिनीये शास्त्रे ॥

३७७०–आचार्य्योपसर्जन अन्तेवासियोंके द्वन्द्वसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–पाणिनीयरौढीयाः । यह दानों छस्वरसे मध्योदात्त हैं । ' आचार्य्योपसर्जन ' शब्द द्वन्द्वका विशेषण है, जिससे समस्त द्वन्द्व आचार्योपसर्जन (जाना जाय,) इस कारण " पाणिनीयदेवदत्तौ " इस स्थलमें प्रकृतिस्वर नहीं हुआ । आचार्य्योपसर्जन अन्तेवासियोंका द्वन्द्व न होनेपर कैसा होगा? तो, छान्दसवैयाकरणाः । अन्तेवासिओंका द्वन्द्व न होनेपर कैसा होगा ? तो आपिशलपाणिनीये शास्त्रे ॥

३७७१ कार्तकौजपादयश्च ।६।२।३७॥

एषां द्वंद्वे पूर्वपदं प्रकृत्या । कार्तकौजपौ । कृतस्येदं कुजपस्येदमित्यण्णन्तावितौ । सावर्णिमाण्डूकेयौ ॥

३७७१–कार्तकौजपादि शब्दोंके द्वन्द्वसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–कार्तकौजपौ । कृतस्य इदं कुजपस्य इदम्, इस विग्रहमें कृत और कुजप शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हुआ है । सावर्णिमाण्डूकेयौ । (कुर्भूमिः तत्र जाताः कुजाः तान् पातीति कुजपः । कृतकुजपाभ्यामपत्ये ऋष्यण् । माण्डूकेय-मण्डूक शब्दसे ढक्) ॥

३७७२ महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु ।६।२।३८॥

महच्छब्दः प्रकृत्या व्रीह्यादिषु दशसु । महाव्रीहिः । महापराह्णः । महागृष्टिः । महेष्वासः । महाहैलिहिलः । महारौरवः । महाप्रवृद्धः । महच्छब्दोन्तोदात्तः । सन्महदिति प्रतिपदोक्तसमास एवायं स्वरः । नेह । महतो व्रीहिर्महद्व्रीहिः ॥

३७७२–व्रीहि, अपराह्ण, गृष्टि, इष्वास, जाबाल, भार, भारत, हैलिहिल, रौरव और प्रवृद्ध शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती महत् शब्दको प्रकृतिस्वर हो, यथा–महाव्रीहिः । महापराह्णः । महागृष्टिः । महेष्वासः । महाजाबालः । महाभारः । महाभारतः । महाहैलिहिलः । महारौरवः । महाप्रवृद्धः । महत् शब्द अन्तोदात्त है । यह स्वर " सन्महत् ७४० " इस सूत्रसे प्रतिपदोक्त समासमें ही होगा, इस कारण महतो व्रीहिः, इस विग्रहमें महद्व्रीहिः यहां महत् शब्दको प्रकृतिस्वर न हुआ ॥

३७७३ क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे ।६।२।३९॥

चान्महान् । क्षुल्लकवैश्वदेवम् । महावैश्वदेवम् । क्षुधं लातीति क्षुल्लः । तस्मादज्ञातादिषु केऽन्तोदात्तः ॥

३७७३–वैश्वदेव शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती क्षुल्लक शब्दको और चकारसे महत् शब्दको प्रकृतिस्वर हो, यथा–क्षुल्लकवैश्वदेवम् । महावैश्वदेवम् । क्षुधं लातीति क्षुल्लः, इसके उत्तर अज्ञानादि अर्थमें क प्रत्यय होनेपर क्षुल्लक शब्द अन्तोदात्त हुआ ॥

३७७४ उष्ट्रः सादिवाम्योः ।६।२।४०॥

उष्ट्रसादी । उष्ट्रवामी । उषेः ष्ट्रनि उष्ट्रशब्द आद्युदात्तः ॥

३७७४–सादि और वामि शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती उष्ट्र शब्दको प्रकृतिस्वर हो, यथा–उष्ट्रसादी । उष्ट्रवामी । उष धातुके उत्तर ष्ट्रन् प्रत्यय होनेपर उष्ट्र शब्द आद्युदात्त हुआ ॥

३७७५ गौः सादसादिसारथिषु ।६।२।४१॥

गोसादः । गोसादिः । गोसारथिः ॥

३७७५–साद, सादि और सारथि शब्द परे रहते पूर्ववर्ती गो शब्दको प्रकृतिस्वर हो, यथा–गोसादः । गोसादिः गोसारथिः ॥

३७७६ कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा पारेवडवा तैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च ।६।२।४२।

एषां सप्तानां समासानां दासीभारादेश्च पूर्वपदं प्रकृत्या । कुरूणां गार्हपतं कुरुगार्हपतम् । उप्रत्ययान्तः कुरुः ॥ वृजेरिति वाच्यम् ॥ * ॥ वृजिगार्हपतम् । वृजिराद्युदात्तः । रिक्तो गुरुः रिक्तगुरुः। रिक्ते विभाषेति रिक्तशब्द आद्युदात्तः। असूता जरती असूतजरती । अश्लीला दृढरूपा अश्लीलदृढरूपा । अश्लीलशब्दो नञ्समासत्वादाद्युदात्तः । श्रीर्यस्यास्ति तत् श्लीलम् । सिध्मादित्वाल्लच् । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । पारे वडवेव पारेवडवा । निपातनादिवार्थे समासो विभक्त्यलोपश्च । पारशब्दो घृतादित्वादन्तोदात्तः । तैतिलानां कद्रूः तैतिलकद्रूः । तितिलिनोऽपत्यं छात्रो वा इत्यण्णन्तः । पण्यशब्दो यदन्तत्वादाद्युदात्तः । पण्यकम्बलः । संज्ञायामिति वक्तव्यम् ॥ * ॥ अन्यत्र पणितव्ये कंबले समासान्तोदात्तत्वमेव।प्रतिपदोक्ते समासे कृत्या इत्येष स्वरो विहितः । दास्या भारो दासीभारः। देवहूतिः । यस्य तत्पुरुषस्य पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वमिष्यते न विशिष्यवचनं विहितं स सर्वोपि दासीभारादिषु द्रष्टव्यः ॥ स राये सपुरन्ध्याम् । पुरं शरीरं ध्रियतेऽस्यामिति कर्मण्यधिकरणे चेति किप्रत्ययः । अलुक् छान्दसः । नञ्विषयस्येत्याद्युदात्तः पुरशब्दः ॥

३७७६–कुरुगार्हपत, रिक्तगुरु, असूतजरती, अश्लीलदृढरूपा, पारेवडवा, तैतिलकद्रू, और पण्यकम्बल, यह सात समस्त पदोंके और दासीभारादि शब्दोंके पूर्ववर्त्ती पदको प्रकृतिस्वर हो, यथा–कुरूणां गार्हपतम् इस विग्रहमें कुरुगार्हपतम् । कुरु शब्द उप्रत्ययान्त है । वृजि शब्दको गार्हपत शब्द परे रहते प्रकृतिस्वर हो, ऐसा कहना चाहिये* वृजिगार्हपतम् । वृजि शब्द आद्युदात्त है । रिक्तो गुरुः, इस विग्रहमें रिक्तगुरुः । " रिक्ते विभाषा ३६९६ " इस सूत्रसे रिक्त शब्द आद्युदात्त है । असूता जरती, इस विग्रहमें असूतजरती । अश्लीला दृढरूपा, इस विग्रहमें अश्लीलदृढरूपा । अश्लील शब्द नञ्समासत्वके कारण आद्युदात्त है । श्रीर्यस्यास्ति, इस वाक्यमें सिध्मादित्वके कारण लच्

प्रत्यय, और कपिलकादिगणमें पाठके कारण लत्व होकर ' श्लीलम् ' पद हुआ है । पारे वडवा इव, इस वाक्यमें "पारे वडवा" यह निपातनके कारण स्वार्थमें समास और विभक्तिका अलोप हुआ । पार शब्द घृतादि होनेके कारण अन्तोदात्त है । तैतिलानां कद्रूः, इस विग्रहमें तैतिलकद्रूः । तितिलिनोऽपत्यं छात्रो वा, इस विग्रहमें तितिलिन् शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय हुआहै । पण्य शब्द यत् प्रत्ययान्त होनेके कारण आद्युदात्त है । पण्यकम्बलः ॥

संज्ञा होनेपर पण्यकम्बल शब्दके पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, ऐसा कहना चाहिये* अन्यत्र पणितव्य कम्बल अर्थ होनेपर समासान्तोदात्त ही होगा, कारण कि, प्रतिपदोक्त समासमें " कृत्याः २८३१ " इससे स्वर विहित है । दास्याः भारः, इस विग्रहमें दासीभारः । देवहूतिः । जिस तत्पुरुषसमासमें पूर्वपदको प्रकृतिस्वर इष्ट है, परन्तु विशेष करके कोई वचन विहित नहीं है, उसको दासीभारादिमें समझना । स राये सपुरन्ध्याम् । पुरं शरीरं ध्रियते अस्याम्, इस विग्रहमें "कर्मण्यधिकरणे च ३२७१ " इस सूत्रसे कि प्रत्यय होकर पुरन्धि शब्द सिद्ध हुआहै । छान्दसत्वके कारण इस स्थलमें पुरं पदकी विभक्तिका लोप नहीं हुआ। "नव् विषयस्य" इस सूत्रसे पुर शब्द आद्युदात्त है ॥

३७७७ चतुर्थी तदर्थे । ६ । २ । ४३ ॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिन्युत्तरपदे चतुर्थ्यन्तं प्रकृत्या । युपाय दारु यूपदारु ॥

३७७७-चतुर्थी विभक्त्यन्तके निमित्त जो हो, तद्वाचक पद परे रहते पूर्ववर्त्ती चतुर्थी विभक्त्यन्त पदको प्रकृतिस्वर हो, यथा यूपाय दारु, इस विग्रहमें यूपदारु ॥

३७७८ अर्थे । ६ । २ । ४४ ॥

अर्थे परे चतुर्थ्यन्तं प्रकृत्या । देवार्थम् ॥

३७७८-अर्थ शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती चतुर्थ्यन्त पदको प्रकृति स्वर हो, यथा-देवाय इदम्, इस वाक्यमें देवार्थम् ॥

३७७९ क्ते च । ६ । २ । ४५ ॥

क्तान्ते परे चतुर्थ्यन्तं प्रकृत्या । गोहितम् ॥

३७७९-क्तप्रत्ययान्त पद परे रहते पूर्ववर्त्ती चतुर्थ्यन्त पदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-गवे हितम्, इस वाक्यमें गोहितम् ॥

३७८० कर्मधारयेऽनिष्ठा । ६ । २ । ४६ ॥

क्तान्ते परे पूर्वमनिष्ठान्तं प्रकृत्या । श्रेणिकृताः । श्रेणिशब्द आद्युदात्तः। पूगकृताः । पूगशब्दोऽन्तोदात्तः । कर्मधारये किम् । श्रेण्या कृतं श्रेणिकृतम् । अनिष्ठा किम् । कृताऽकृतम् ॥

३७८०-कर्मधारयसमासमें क्तप्रत्ययान्त पद परे रहते पूर्ववर्त्ती जो अनिष्ठान्त पद (जो क्तक्तवतु प्रत्ययान्त नहीं हो) उसको प्रकृतिस्वर हो, यथा-श्रेणिकृताः । श्रेणि शब्द आद्युदात्त है । पूगकृताः । पूग शब्द अन्तोदात्त है । कर्मधारयसमास न होनेपर कैसा होगा ? तो, श्रेण्या कृतम्, इस विग्रहमें श्रेणिकृतम् । निष्ठा प्रत्ययान्त पूर्वपद रहते कैसा होगा ? तो, कृताकृतम् ॥

३७८१ अहीने द्वितीया । ६ । २ । ४७ ॥

अहीनवाचिनि समासे क्तान्ते परे द्वितीयान्तं प्रकृत्या । कष्टश्रितः । ग्रामगतः । कष्टशब्दोऽन्तोदात्तः । ग्रामशब्दो नित्स्वरेण । अहीने किम् । कान्तारातीतः ॥ अनुपसर्ग इति वक्तव्यम् ॥ * ॥ नेह । सुखप्राप्तः । थाथेत्यस्यापवादोऽयम् ॥

३७८१-अहीनवाचक समासमें क्तप्रत्ययान्त पद परे रहते पूर्ववर्त्ती द्वितीया विभक्त्यन्त पदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-कष्टं श्रितः, इस वाक्यमें कष्टश्रितः। ग्रामं गतः, ग्रामगतः। कष्ट शब्द अन्तोदात्त है । ग्राम शब्द नित्वके कारण आद्युदात्त है । अहीनवाचक समास न होनेपर कैसा होगा ? तो, कान्तारातीतः । उपसर्ग रहित क्तान्तपद परे रहते पूर्वपदको प्रकृतिस्वर हो, ऐसा कहना चाहिये * इस कारण 'सुखप्राप्तः' इस स्थलमें नहीं हुआ । यह सूत्र थाथादि सूत्रसे विहितस्वरका अपवाद है ॥

३७८२ तृतीया कर्मणि । ६ । २ । ४८ ॥

कर्मवाचके क्तान्ते परे तृतीयान्तं प्रकृत्या । त्वोतासः । रुद्रहतः । महाराजहतः । रुद्रो रगन्तः । कर्मणि किम् । रथेन यातो रथयातः ॥

३७८२-कर्म्मवाचक क्तप्रत्ययान्त पद परे रहते पूर्ववर्त्ती तृतीया विभक्त्यन्त पदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-त्वोतासः । रुद्रेण हतः, इस विग्रहमें, रुद्रहतः । महाराजहतः । रुद्र शब्द रक्प्रत्ययान्त है । कर्म्मवाचक क्त प्रत्ययान्त पद परे न रहते यथा-रथेन यातः, इस वाक्यमें ' रथयातः ' । इस स्थलमें प्रकृतिस्वर न हुआ ॥

३७८३ गतिरनन्तरः । ६ । २ । ४९ ॥

कर्मार्थे क्तान्ते परेऽव्यवहितो गतिः प्रकृत्या । थाथेत्यस्यापवादः । पुरोहितम् । अनन्तरः किम् । अभ्युद्धृतः । कारकपूर्वपदस्य तु सतिशिष्टस्थाथादिस्वर एव । दूरादागतः ॥

३७८३-कर्म्मवाचक क्त प्रत्ययान्त पद परे रहते पूर्ववर्त्ती अव्यवहित गतिसंज्ञक शब्दको प्रकृतिस्वर हो, यह सूत्र थाथादि सूत्रका अपवाद है, यथा-पुरोहितम् । अव्यवहित न होनेपर कैसा होगा, ? तो, अभ्युद्धृतः । कारक पूर्वपदको तो सतिशिष्ट थाथादि स्वर ही होगा, यथा-दूरादागतः ॥

३७८४ तादौ च निति कृत्यतौ । ६ । २ । ५० ॥

तकारादौ निति तुशब्दवर्जिते कृति परेऽनन्तरो गतिः प्रकृत्या । अग्नेरायो नृतमस्य प्रभूतौ । सङ्गतिं गोः । कृत्स्वरापवादः । तादौ किम् । प्रजल्पाकः । निति किम् । प्रकर्ता । तृजन्तः । अतौ किम् । आगन्तुः ॥

३७८४–तकारादि, नित् तु शब्द वर्जित कृत् प्रत्यय परे रहते पूर्ववर्त्ती अव्यवहित जो गतिसंज्ञक शब्द उसको प्रकृतिस्वर हो, यथा–अग्ने रायोनृतमस्य प्रभूतौ । सङ्गितिं गोः । यह कृत्स्वरका अपवाद है । तकारादिप्रत्यय न होनेपर यथा–प्रजल्पाकः । नित् प्रत्यय न होनेपर यथा–प्रकर्ता । प्रकर्ता यह तृच्प्रत्ययान्त है । तु प्रत्यय होनेपर कैसा होगा ? तो, आगन्तुः॥

३७८५ तवै चान्तश्च युगपत्।६।२।५१॥

तवैप्रत्ययान्तस्यान्त उदात्तो गतिश्चानन्तरः प्रकृत्या युगपच्चैतदुभयं स्यात् । अन्वेतवा उ । कृत्स्वरापवादः ॥

३७८५–एककालमें तवैप्रत्ययान्त शब्दके अन्तवर्णको उदात्तस्वर हो, और तवैप्रत्ययान्त पद परे रहते अव्यवहित पूर्ववर्त्ती गतिसंज्ञक शब्दको प्रकृतिस्वर हो,यथा–अन्वेतवा उ । यह कृत्स्वरका अपवाद है । पर्य्यायनिवृत्तिके निमित्त युगपत् शब्दका ग्रहण कियाहै । 'अन्वेतवा उ' यहां अनु शब्द "उपसर्गाश्चाभिवर्जम्" इस सूत्रसे आद्युदात्त है ॥

३७८६ अनिगन्तोऽञ्चतौ वप्रत्यये । ६ । २ । ५२ ॥

अनिगन्तो गतिर्वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे प्रकृत्या । ये पराञ्चस्तान् । अनिगन्त इति किम् । प्रत्यञ्चो यन्तु । कृत्स्वरात्परत्वादयमेव । जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः । वप्रत्यये किम् । उदञ्चनम् ॥

३७८६–व प्रत्ययान्त अञ्च् धातु परे रहते पूर्ववर्त्ती अनिगन्त अर्थात् इगन्त (इ–उ–ऋ–लृकारान्त) न हो ऐसा जो गतिसंज्ञक शब्द उसको प्रकृतिस्वर हो, यथा–ये पराञ्चस्तान् । इगन्त गतिसंज्ञक होनेपर कैसा होगा ? तो प्रत्यञ्चो यन्तु । कृत्स्वरसे परत्वके कारण यही स्वर होगा । " जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः " । व प्रत्ययान्त अञ्च् धातु परे न होनेपर कैसा होगा ? तो उदञ्चनम् । " पराञ्चः " यहां " ऋत्विक्० " इससे किन् " उगिदचां सर्वनामस्थाने० " इससे नुम् हुआहै ॥

३७८७ न्यधी च । ६ । २ । ५३ ॥

वप्रत्ययान्तेऽञ्चतावगिन्तावपि न्यधी प्रकृत्या । न्यङ्ङुत्तानः । उदात्तस्वरितयोर्यण इति अञ्चतेरकारः स्वरितः । अध्यङ् ॥

३७८७–व प्रत्ययान्त अञ्च् धातु परे रहते पूर्ववर्त्ती नि और अधि शब्दको इकारान्त होनेपर भी प्रकृतिस्वर हो, यथा–न्यङ्ङुत्तानः । यहां " उदात्तस्वरितयोर्यणः ३६५७ " इस सूत्रसे अञ्च् धातुके अकारको स्वरितस्वर हुआ । अध्यङ् ॥

३७८८ ईषदन्यतरस्याम् ।६।२।५४॥

ईषत्कडारः । ईषदित्ययमन्तोदात्तः । ईषद्भेद इत्यादौ कृत्स्वर एव ॥

३७८८–ईषत् शब्दको प्रकृतिस्वर हो विकल्प करके, यथा–ईषत्कडारः । ईषत् शब्द अन्तोदात्त है । 'ईषद्भेदः' इत्यादि स्थलमें तो परत्वके कारण कृत्स्वर ही होगा ॥

३७८९ हिरण्यपरिमाणं धने।६।२।५५॥

सुवर्णपरिमाणवाचि पूर्वपदं वा प्रकृत्या धने । द्वे सुवर्णे परिमाणमस्येति द्विसुवर्णं तदेव धनं द्विसुवर्णधनम् । बहुव्रीहावपि परत्वाद्विकल्प एव । हिरण्यं किम् । प्रस्थधनम् । परिमाणं किम् । काञ्चनधनम् । धने किम् । निष्कमाला॥

३७८९–धन शब्द परे रहते हिरण्यके परिमाणवाचक पूर्वपदको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा–द्वे सुवर्णे परिमाणमस्य, इस विग्रहमें द्विसुवर्णम्+तदेव धनम्=द्विसुवर्णधनम् । बहुव्रीहिसमासमें भी परत्वके कारण विकल्प करके पूर्वपदप्रकृतिस्वर ही होगा । हिरण्यवाचक न होनेपर कैसा होगा? तो प्रस्थधनम् । परिमाणवाचक न होनेपर कैसा होगा? तो काञ्चनधनम् । धन शब्द परे न होनेपर कैसा होगा? तो निष्कमाला । (पाँच कृष्णलाओंका एक मासा, १६ मासेका एक सुवर्ण, ४सुवर्णका एक पल होताहै ॥

३७९० प्रथमोऽचिरोपसम्पत्तौ । ६ । २ । ५६ ॥

प्रथमशब्दो वा प्रकृत्याऽभिनवत्वे । प्रथमवैयाकरणः । सम्प्रति व्याकरणमध्येतुं प्रवृत्त इत्यर्थः । प्रथमशब्दः प्रथेरमजन्तः । अचिरेति किम् । प्रथमो वैयाकरणः ॥

३७९०–अचिरोपसंपत्ति अर्थात् अभिनवत्व द्योत्य होनेपर प्रथम शब्दको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा–प्रथमवैयाकरणः । प्रथ धातुके उत्तर अमच् प्रत्यय करके प्रथम शब्द सिद्ध हुआहै । अचिरोपसम्पत्ति न होनेपर कैसा होगा ? तो प्रथमो वैयाकरणः । अर्थात् वैयाकरणोंमें प्रधान । यहां अन्तोदात्त ही होगा ॥

३७९१ कतरकतमौ कर्मधारये।६।२।५७

वा प्रकृत्या । कतरकठः कर्मधारयग्रहणमुत्तरार्थम् । इह तु प्रतिपदोक्तत्वादेव सिद्धम् ॥

३७९१–कर्मधारयसमासमें पूर्ववर्त्ती कतर और कतम शब्दको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा–कतरकठः । कर्मधारय शब्दका ग्रहण उत्तरार्थ है । इस स्थलमें तो प्रतिपदोक्तत्वसे ही प्रकृतिस्वर सिद्ध है ॥

३७९२ आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः । ६ । २ । ५८ ॥

आर्यकुमारः । आर्यब्राह्मणः । आर्यो ण्यदन्तत्वादन्तस्वरितः । आर्यः किम् । परमब्राह्मणः । ब्राह्मणादीति किम् । आर्यक्षत्रियः । कर्मधारय इत्येव ॥

३७९२-ब्राह्मण और कुमार शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती आर्य्य शब्दको कर्मधारयसमासमें प्रकृतिस्वर हो, यथा-आर्य्यब्राह्मणः। आर्य्यकुमारः। आर्य्य शब्द ण्यत् प्रत्ययान्त है, अत एव उसका अन्त्यवर्ण स्वरित है। आर्य्य शब्द पूर्वमें न होनेपर कैसा होगा ? तो परमब्राह्मणः। ब्राह्मणादि शब्द परे न होनेपर कैसा होगा? तो आर्य्यक्षत्रियः॥

३७९३ राजा च। ६। २। ५९॥

ब्राह्मणकुमारयोः परतो वा प्रकृत्या कर्मधारये। राजब्राह्मणः। राजकुमारः। योगविभाग उत्तरार्थः॥

३७९३-कर्म्मधारयसमासमें ब्राह्मण और कुमार शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती राजन् शब्दको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा-राजब्राह्मणः। राजकुमारः। योगविभाग उत्तर-सूत्रमें राजन् शब्दकी अनुवृत्त्यर्थ है॥

३७९४ षष्ठी प्रत्येनसि। ६। २। ६०॥

षष्ठ्यन्तो राजा प्रत्येनसि परे वा प्रकृत्या। राजप्रत्येनाः। षष्ठी किम् अन्यत्र न॥

३७९४-कर्म्मधारयसमासमें प्रत्येनस् शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती षष्ठीविभक्त्यन्त राजन् शब्दको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा-राजप्रत्येनाः। षष्ठीविभक्त्यन्त क्यों कहा ? तो अन्यत्र अर्थात् राजा चासौ प्रत्येनाश्च, इस विग्रहमें "राजप्रत्येनाः" यहां नहीं हो॥

३७९५ क्ते नित्यार्थे। ६। २। ६१॥

क्तान्ते परे नित्यार्थे समासे पूर्वं वा प्रकृत्या। नित्यप्रहसितः। काला इति द्वितीयासमासोऽयम्। नित्यशब्दस्त्यबन्त आद्युदात्तः। हसित इति थाथादिस्वरेणान्तोदात्तः। नित्यार्थे किम्। मुहूर्तप्रहसितः॥

३७९५-नित्यार्थक समासमें क्तप्रत्ययान्त शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती शब्दको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा-"नित्यप्रहसितः" यहां "कालाः ६९०" इस सूत्रसे द्वितीयातत्पुरुषसमास हुआ। नित्य शब्द त्यप् प्रत्ययान्त है, अत एव आद्युदात्त है। हसित शब्द थाथादिस्वरसे अन्तोदात्त है। नित्यार्थक समास न होनेपर कैसा होगा ? तो मुहूर्त्तप्रहसितः॥

३७९६ ग्रामः शिल्पिनि। ६। २। ६२॥

वा प्रकृत्या। ग्रामनापितः। ग्रामशब्दः आद्युदात्तः। ग्रामः किम्। परमनापितः। शिल्पिनि किम्। ग्रामरथ्या॥

३७९६-शिल्पिवाचक शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती ग्राम शब्दको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा-ग्रामनापितः। ग्राम शब्द आद्युदात्त है। ग्राम शब्द पूर्वमें न होनेपर तो परमनापितः। शिल्पिवाचक शब्द परे न होनेपर कैसा होगा ? तो ग्रामरथ्या॥

३७९७ राजा च प्रशंसायाम्। ६। २। ६३॥

शिल्पिवाचिनि परे प्रशंसार्थं राजपदं वा प्रकृत्या। राजनापितः। राजकुलालः। प्रशंसायां किम्। राजनापितः। शिल्पिनि किम्। राजहस्ती॥

३७९७-शिल्पिवाचक शब्द परे रहते प्रशंसार्थ पूर्ववर्त्ती राजन् शब्दको विकल्प करके प्रकृतिस्वर हो, यथा-राजनापितः। राजकुलालः। प्रशंसार्थ न होनेपर कैसा होगा ? तो राजनापितः। शिल्पिवाचक शब्द परे न होनेपर कैसा होगा ? तो राजहस्ती॥

३७९८ आदिरुदात्तः। ६। २। ६४॥

अधिकारोऽयम्॥

३७९८-पूर्वपदका आदिवर्ण उदात्त हो, यह अधिकार-सूत्र है। 'पूर्वपदकम्' इसका यहां अर्थात् षष्ठ्यन्तत्वेन विपरिणाम है। इस प्रकरणमें सब जगह पूर्वपदविषयमें षष्ठ्यर्थमें प्रथमा जानना॥

३७९९ सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे। ६। २। ६५॥

सप्तम्यन्तं हारिवाचि च आद्युदात्तं धर्म्ये परे। देयं यः स्वीकरोति स हारीत्युच्यते। धर्म्यमित्याचारनियतं देयम्। मुकुटेकार्षापणम्। हलेद्विपदिका। संज्ञायामिति सप्तमीसमासः। कारनाम्नि चेत्यलुक्। याज्ञिकाश्वः। वैयाकरणहस्ती। क्वचिदयमाचारो मुकुटादिषु कार्षापणादि दातव्यं याज्ञिकादीनां त्वश्वादिरिति। धर्म्ये-ति किम्। कर्मकरवर्द्धितकः। अहरणे किम्। वाडवहरणम्। वडवाया अयं वाडवः। तस्य बीजनिषेकादुत्तरकालं शरीरपुष्ट्यर्थं यद्दीयते तद्धरणमित्युच्यते। परोऽपि कृत्स्वरो हारिस्वरेण बाध्यत इत्यहरण इति निषेधेन ज्ञाप्यते। तेन वाडवहार्यमिति हारिस्वरः सिद्ध्यति॥

३७९९-हरणभिन्न धर्म्यबोधक शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती सप्तम्यन्त और हारिवाचक शब्दोंका आदिवर्ण उदात्त हो, देयं यः स्वीकरोति स हारी, अर्थात् जो व्यक्तिदेय वस्तुको स्वीकार करे उसको हारी कहतेहैं। धर्म्य शब्दसे आचार-नियत देय द्रव्य समझना। यथा-मुकुटेकार्षापणम्। हलेद्विपदिका। यहां "संज्ञायाम् ७२१" इस सूत्रसे सप्तमी-तत्पुरुषसमास हुआ। "कारनाम्नि० ९६८" इस सूत्रसे विभक्तिका अलुक् हुआ। याज्ञिकाश्वः। वैयाकरणहस्ती। किसी २ स्थानमें इस प्रकार आचार है कि, मुकुटादिमें कार्षापण दियाजाताहै और याज्ञिकादिओंको तो अश्वादि देय होताहै। धर्म्यबोधक शब्द परे न होनेपर कैसा होगा ? तो कर्मकरवर्द्धितकः। हरणभिन्न धर्म्यबोधक शब्द परे न होनेपर कैसा होगा ? तो वाडवहरणम्। वडवाया अयं वाडवः।

वडवा संबन्धिको वाडव कहतेहैं । बीजनिषेकके पश्चात् शरीर-पोषणार्थ घोडीको जो दियाजाय उसको हरण कहतेहैं । कृत्स्वर परवर्त्ती होनेपर भी हारिस्वरके द्वारा बाधित होताहै, यह 'अहरणे' इस निषेधसे जानाजाताहै, इसकारण 'वाडवहार्य्यम्' इस स्थलमें हारिस्वर सिद्ध होताहै ॥

३८०० युक्ते च । ६ । २ । ६६ ॥

युक्तवाचिनि समासे पूर्वमाद्युदात्तम् । गोबल्लवः । कर्तव्ये तत्परो युक्तः ॥

३८००–युक्तवाचक समासमें पूर्वपदको आद्युदात्तस्वर हो, यथा–गोबल्लवः । कर्त्तव्यमें तत्परको युक्त कहतेहैं ॥

३८०१ विभाषाऽध्यक्षे । ६ । २ ।६७॥

गवाध्यक्षः ॥

३८०१–अध्यक्ष शब्द परे रहते समासमें पूर्वपदको आद्युदात्तस्वर हो, यथा–गवाध्यक्षः ॥

३८०२ पापं च शिल्पिनि ।६।२।६८॥

पापनापितः ॥ पापाणके इति प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणात् षष्ठीसमासे न ॥

३८०२–शिल्पिवाचक शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती पाप शब्दको आद्युदात्तस्वर हो, यथा–पापनापितः । इस सूत्रमें "पापाणके ७३३" इस प्रतिपदोक्तसमासके ही ग्रहणके कारण षष्ठीतत्पुरुषसमासमें नहीं होगा ॥

३८०३ गोत्राऽन्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु क्षेपे । ६ । २ । ६९ ॥

भार्यासौश्रुतः । सुश्रुतोऽपत्यस्य भार्याप्रधानतया क्षेपः । अन्तेवासी । कुमारीदाक्षाः । ओदनपाणिनीयाः । कुमार्यादिलाभकामा ये दाक्ष्यादिभिः प्रोक्तानि शास्त्राण्यधीयते ते एवं क्षिप्यन्ते । भिक्षामाणवः । भिक्षां लप्स्येऽहमिति माणवः । भयब्राह्मणः । भयेन ब्राह्मणः सम्पद्यते । गोत्रादिषु किम् । दासीश्रोत्रियः । क्षेपे किम् । परमब्राह्मणः ॥

३८०३–क्षेपवाची समासमें, गोत्रवाचक अन्तेवासिवाचक, माणवक और ब्राह्मण शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती पदको आद्युदात्तस्वर हो, यथा–भार्यासौश्रुतः । सुश्रुतकी सन्तानको भार्याप्रधानत्वके कारण उसकी निन्दा है । अन्तेवासी यथा–कुमारीदाक्षाः । ओदनपाणिनीयाः । अर्थात् कुमारी आदिके लाभके निमित्त जो दाक्ष्यादिसे प्रोक्त शास्त्रको अध्ययन करें, वह इसप्रकारसे निन्दित होतेहैं । भिक्षामाणवः । "भिक्षां लप्स्येऽहम्" ऐसा जो कहै, उसको भिक्षा माणव कहतेहैं । भयब्राह्मणः । भयसे जो ब्राह्मण बनगयाहो । गोत्रादि परे न होनेपर कैसा होगा ? तो दासीश्रोत्रियः । क्षेपार्थक समास न होनेपर कैसा होगा ? तो परमब्राह्मणः । (दाक्षिणा प्रोक्तम्= दाक्षम् तदधीते दाक्षः । सुशृणोतीति=सुश्रुत् तस्यापत्यं सौश्रुतः) ॥

३८०४ अङ्गानि मैरेये ।६।२।७०॥

मद्यविशेषो मैरेयः । मधुमैरेयः । मधुविकारस्य तस्य मध्वङ्गम् । अङ्गानि किम् । परममैरेयः । मैरेये किम् । पुष्पासवः ॥

३८०४–मद्यविशेषको मैरेय कहतेहैं, मैरेय शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती मद्यार्थारम्भक वाचक शब्दको आद्युदात्तस्वर हो, यथा–मधुमैरेयः । मधुका विकार मद्य है, अत एव मधु मद्यका अङ्ग आरम्भक होता है । मद्यका आरम्भकवाची न होनेपर कैसा होगा ? तो परममैरेयः । मैरेय शब्द परे न होनेपर कैसा होगा ? तो पुष्पासवः ॥

३८०५ भक्ताख्यास्तदर्थेषु । ६।२।७१॥

भक्तमन्नम् । भिक्षाकंसः । भाजीकंसः । भिक्षादयोऽन्नविशेषाः । भक्ताख्याः किम् । समाशशालयः । समशनं समाश इति क्रियामात्रमुच्यते । तदर्थेषु किम् । भिक्षाप्रियः । बहुव्रीहिरयम् । अत्र पूर्वपदमन्तोदात्तम् ॥

३८०५–भक्तार्थवाचक शब्द परे रहते भक्तवाचक पूर्वपदको अनुदात्तस्वर हो, यथा–भिक्षाकंसः । भाजीकंसः । भिक्षादि शब्दसे अन्नविशेष समझना । भक्तवाचक पूर्वपद न होनेपर कैसा होगा ? तो समाशशालयः । 'समशनम् समाशः' इससे क्रियामात्र कहाजाता है । भक्तार्थवाचक शब्द परे न होनेपर कैसा होगा?तो भिक्षाप्रियः । यह बहुव्रीहिसमासनिष्पन्न है । यहां पूर्वपद अन्तोदात्त है ॥

३८०६ गोबिडालसिंहसैन्धवेषूपमाने । ६ । २ । ७२ ॥

धान्यगवः । गोबिडालः । तृणसिंहः । सक्तुसैन्धवः । धान्यं गौरिवेति विग्रहः । व्याघ्रादिः । गवाकृत्या सन्निवेशितं धान्यं धान्यगवशब्देनोच्यते । उपमाने किम् । परमसिंहः ॥

३८०६–उपमानवाचक गो, बिडाल, सिंह और सैन्धव शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती पदको अनुदात्तस्वर हो, यथा–धान्यगवः । गोबिडालः । तृणसिंहः । सक्तुसैन्धवः । धान्यं गौरिव, इस विग्रहमें धान्यगवः पद सिद्ध हुआ है । यह व्याघ्रादि है । गौकी आकृतिसे राशीकृत धान्यको धान्यगव कहते हैं । उपमानवाचक न होनेपर कैसा होगा ? तो परमसिंहः । इस स्थलमें पूर्वपद अनुदात्त नहीं हुआ ॥

३८०७ अके जीविकार्थे । ६ । २।७३॥

दन्तलेखकः । यस्य दन्तलेखनेन जीविका । नित्यं क्रीडेति समासः । अके किम् । रमणीयकर्ता। जीविकार्थे किम्।इक्षुभक्षिकां मे धारयसि॥

३८०७–अकप्रत्ययान्त जीविकावाचक शब्द परे रहते समासमें पूर्वपद आद्युदात्त हो, यथा–दन्तलेखकः । जिसकी दन्तलेखनद्वारा जीविका हो, वह दन्तलेखक कहाता है । इस स्थलमें " नित्यं क्रीडा ७११ " इस सूत्रसे समास हुआ है ।

अक प्रत्ययान्त पद परे न रहते कैसा होगा? तो रमणीयकर्त्ता। जीविकार्थक न होनेपर कैसा होगा? तो इक्षुभक्षिकां मे धारयसि ॥

३८०८ प्राचां क्रीडायाम् । ६ ।२।७४॥

प्राग्देशवर्त्तिनां या क्रीडा तद्वाचिनि समासे अकप्रत्ययान्ते परे पूर्वमाद्युदात्तं स्यात् । उद्दालकपुष्पभञ्जिका । संज्ञायामिति ण्वुल् । प्राचां किम् । जीवपुत्रप्रचायिका । इयमुदीचां क्रीडा। क्रीडायां किम् । तव पुष्पप्रचायिका । पर्याये ण्वुल् ॥

३८०८-पूर्वदेशवर्त्ती लोगोंकी जो क्रीडा, तद्वाचक समासमें अक प्रत्ययान्त पद परे रहते पूर्ववर्त्ती पद आद्युदात्त हो, यथा-उद्दालकपुष्पभञ्जिका । इस स्थलमें "संज्ञायाम् ३२८६" इस सूत्रसे ण्वुल् प्रत्यय हुआ है । पूर्वदेशवासिओंकी क्रीडा न होनेपर कैसा होगा? तो जीवपुत्रप्रचायिका । यह उत्तरदेशिओंकी क्रीडा है, क्रीडा न होनेपर तो तव पुष्पप्रचायिका यहां पर्यायमें ण्वुल् प्रत्यय हुआ है ॥

३८०९ अणि नियुक्ते । ६ । २ । ७५॥

अण्णन्ते परे नियुक्तवाचिनि समासे पूर्वमाद्युदात्तम् । छत्रधारः । नियुक्ते किम् । काण्डलावः ॥

३८०९-अण्प्रत्ययान्त शब्द परे रहते नियुक्तवाचक समासमें पूर्ववर्त्ती पद आद्युदात्त हो, यथा-छत्रधारः । नियुक्तवाचक समास न होनेपर कैसा होगा? तो काण्डलावः ॥

३८१० शिल्पिनि चाऽकृञः ।६।२।७६॥

शिल्पिवाचिनि समासे अण्णन्ते परे पूर्वमाद्युदात्तं सचेदण् कृञः परो न भवति । तन्तुवायः । शिल्पिनि किम् । काण्डलावः । अकृञः किम् । कुम्भकारः ॥

३८१०-शिल्पिवाचक समासमें अण्प्रत्ययान्त शब्द परे रहते पूर्वपद आद्युदात्त हो, वह अण् प्रत्यय यदि कृञ् धातुके उत्तर विहित न हो तो, यथा-तन्तुवायः । शिल्पीवाचक समास न होनेपर कैसा होगा? तो काण्डलावः । कृञ् धातुके उत्तर अण् प्रत्यय होनेपर कैसा होगा? तो कुम्भकारः ॥

३८११ संज्ञायां च । ६ । २ । ७७ ॥

अण्णन्ते परे । तन्तुवायो नाम कृमिः । अकृञ इत्येव । रथकारो नाम ब्राह्मणः ॥

३८११-संज्ञा होनेपर अण्प्रत्ययान्त पद परे रहते पूर्वपदको आद्युदात्तस्वर हो, यथा-तन्तुवायो नाम कृमिः । कृञ् धातुके उत्तर अण् प्रत्यय न होनेपर ही होगा, इस कारण "रथकारो नाम ब्राह्मणः" यहां न हुआ ॥

३८१२ गोतन्तियवं पाले । ६ ।२।७८॥

गोपालः । तन्तिपालः । यवपालः । अनियुक्तार्थो योगः । गो इति किम् । वत्सपालः । पाले इति किम् । गोरक्षः ॥

३८१२-पाल शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती गो, तन्ति और यव शब्दको आद्युदात्तस्वर हो, यथा-गोपालः । तन्तिपालः । यवपालः । योग शब्दका अनियुक्त अर्थ जानना । गो शब्द पूर्वमें न रहते कैसा होगा? तो वत्सपालः । पाल शब्द परे न होनेपर कैसा होगा? तो गोरक्षः ॥

३८१३ णिनि । ६ । २ । ७९ ॥

पुष्पहारी ॥

३८१३-णिन्प्रत्ययान्त पद परे रहते पूर्ववर्त्ती पद आद्युदात्त हो, यथा-पुष्पहारी ॥

३८१४ उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव । ६ । २ । ८० ॥

उपमानवाचि पूर्वपदं णिन्यन्ते परे आद्युदात्तम् । उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षरावी । उपमानग्रहणमस्य पूर्वयोगस्य च विषयविभागार्थम् । शब्दार्थप्रकृतौ किम् । वृकवञ्ची । प्रकृतिग्रहणं किम् । प्रकृतिरेव यत्रोपसर्ग निरपेक्षा शब्दार्था तत्रैव यथा स्यात् । इह मा भूत् । गर्दभोच्चारी ॥

३८१४-शब्दार्थक धातुप्रकृतिक णिन्प्रत्ययान्त पद परे रहते पूर्ववर्त्ती उपमानवाचक पद आद्युदात्त हो, यथा-उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षरावी । इस स्थलमें उपमान शब्दका ग्रहण इस योगके और पूर्वयोगके विषयविभागार्थ है । शब्दार्थक धातुप्रकृतिक न होनेपर कैसा होगा? तो वृकवञ्ची । प्रकृति-शब्दका ग्रहण क्यों किया? तो जिस स्थलमें प्रकृति ही उपसर्गनिरपेक्षक होकर शब्दार्थक हो, उसी स्थलमें हो अन्यत्र नहीं, अत एव "गर्दभोच्चारी" इस स्थलमें आद्युदात्त नहीं हुआ ॥

३८१५ युक्तारोह्यादयश्च ।६। २ । ८१ ॥

आद्युदात्ताः । युक्तारोही । आगतयोधी । क्षीरहोता ॥

३८१५-युक्तारोही आदि शब्दोंको आद्युदात्तस्वर हो, यथा-युक्तारोही । आगतयोधी । क्षीर होता ॥

३८१६ दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे । ६ । २ । ८२ ॥

कुटीजः । काशजः । तुषजः । भ्राष्ट्रजः वटजः ॥

३८१६-ज शब्द परे रहते दीर्घान्त पूर्वपद और काश, तुष, भ्राष्ट्र और वट शब्द आद्युदात्त हों, यथा-कुटीजः । काशजः । तुषजः । भ्राष्ट्रजः । वटजः ॥

३८१७ अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः ।६।२।८३॥

बह्वचः पूर्वस्यान्त्यात्पूर्वपदमुदात्तं जे उत्तर-

पदे । उपसरजः । आमलकीजः । बह्वचः किम् । दग्धजानि तृणानि ॥

३८१७–ज शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती बहुस्वरविशिष्ट शब्दका अन्त्यसे पूर्व जो पद वह उदात्त हो, यथा–उपसरजः । आमलकीजः । बहुस्वरविशिष्ट न होनेपर कैसा होगा ? तो दग्धजानि तृणानि । स्त्रीगवादिमें गर्भाधानके निमित्त जो बलीवर्दोंका प्रथम गमन, उसको उपसर कहते हैं 'प्रजने सर्तेः' इससे अप्, तत्र जातः उपसरजः ॥

३८१८ ग्रामेऽनिवसन्तः ।६।२।८४॥

ग्रामे परे पूर्वपदमुदात्तम् । तच्चेन्निवसद्वाचि न। मल्लग्रामः । ग्रामशब्दोऽत्र समूहवाची । देवग्रामः। देवस्वामिकः। अनिवसन्तः किम् । दाक्षिग्रामः । दाक्षिनिवासः ॥

३८१८–ग्राम शब्द परे रहते पूर्वपद उदात्त हो ग्राम शब्द यदि निवासार्थक न हो, यथा–मल्लग्रामः । इस स्थलमें ग्राम शब्दसे समूह समझना । देवग्रामः,अर्थात् देवस्वामिकः । निवासार्थक होनेपर कैसा होगा ? तो दाक्षिग्रामः, अर्थात् दाक्षिनिवासः ॥

३८१९ घोषादिषु च ।६।२।८५॥

दाक्षिघोषः । दाक्षिकटः । दाक्षिह्रदः ॥

३८१९–घोषादि शब्द परे रहते पूर्वपद आद्युदात्त हो, यथा–दाक्षिघोषः । दाक्षिकटः । दाक्षिह्रदः ॥

३८२० छात्र्यादयः शालायाम् ।६।२।८६॥

छात्रिशाला । व्याडिशाला । यदापि शालान्तः समासो नपुंसकलिङ्गो भवति तदापि तत्पुरुषे शालायां नपुंसक इत्येतस्मात्पूर्वविप्रतिषेधेनाऽयमेव स्वरः । छात्रिशालम् ॥

३८२०–शाला शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती छात्रि आदि शब्द आद्युदात्त हो, यथा–छात्रिशाला । व्याडिशाला । जब भी शाला शब्दान्त समास क्लीबलिङ्ग होता है तबभी "तत्पुरुषे शालायां नपुंसके ३८५७" इस सूत्रसे पूर्वप्रतिषेधके कारण यह आद्युदात्तस्वर ही होगा, यथा–छात्रिशालम् ॥

३८२१ प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् ।६।२।८७॥

प्रस्थशब्दे उत्तरपदे कर्क्यादिवर्जितमवृद्धं पूर्वपदमाद्युदात्तं स्यात् । इन्द्रप्रस्थः । अवृद्धं किम् । दाक्षिप्रस्थः । अकर्क्यादीनामिति किम् । कर्कीप्रस्थः । मकरीप्रस्थः ॥

३८२१–प्रस्थ शब्द परे रहते कर्क्यादि शब्दभिन्न अवृद्ध अर्थात् वृद्धसंज्ञक न हो ऐसे पूर्वपदको आद्युदात्तस्वर हो, यथा–इन्द्रप्रस्थः । वृद्धसंज्ञक होनेपर कैसा होगा ? तो दाक्षिप्रस्थः । कर्क्यादि शब्द होनेपर कैसा होगा ? तो कर्कीप्रस्थः । मकरीप्रस्थः ॥

३८२२ मालादीनां च ।६।२।८८॥

वृद्धार्थमिदम् । मालाप्रस्थः । शोणाप्रस्थः ॥

३८२२–प्रस्थ शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती मालादि शब्दोंको आद्युदात्तस्वर हो, यह वृद्धार्थ सूत्र है । यथा–मालाप्रस्थः । शोणाप्रस्थः "एङ् प्राचां देशे" इससे शोण शब्दको वृद्धत्व हुआ ॥

३८२३ अमहन्नवन्नगरेऽनुदीचाम् ।६।२।८९॥

नगरे परे महन्नवन्वर्जितं पूर्वमाद्युदात्तं स्यात् तच्चेदुदीचां न । ब्रह्मनगरम् । अमेति किम् । महानगरम् । नवनगरम् । अनुदीचां किम् । कार्तिनगरम् ॥

३८२३–नगर शब्द परे रहते महत् और नवन् शब्द भिन्न पूर्ववर्त्ती शब्द आद्युदात्त हो वह यदि उत्तरदेशवासिओं का न हो तो, यथा–ब्रह्मनगरम् । महदादि पूर्वपद होनेपर कैसा होगा ? तो महानगरम् । नवनगरम् । उत्तरदेशवासिओंका होनेपर यथा–कार्तिनगरम् ॥

३८२४ अर्मे चाऽवर्णं द्व्यच् त्र्यच् ।६।२।९०॥

अर्मे परे द्व्यच् त्र्यच् पूर्वमवर्णान्तमाद्युदात्तम् । गुप्तार्मम् । कुक्कुटार्मम् । अवर्णं किम् । बृहदर्मम् । द्व्यच् त्र्यच् किम् । कपिञ्जलार्मम् । अमहन्नवन्नित्येव । महार्मम् । नवार्मम् ॥

३८२४–अर्म्म शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती द्विस्वर और त्रिस्वरविशिष्ट पूर्ववर्त्ती अवर्णान्त पद आद्युदात्त हो, यथा–गुप्तार्मम् । कुक्कुटार्मम् । अवर्णान्त न होनेपर यथा–बृहदर्मम् । द्व्यच् त्र्यच् न होनेपर यथा–कपिञ्जलार्मम् । महत् और नवन् शब्द भिन्न ही अवर्णान्त पूर्वपद आद्युदात्त होगा इससे "महार्मम् । नवार्मम्" यहां आद्युदात्तस्वर नहीं हुआ ॥

३८२५ न भूताधिकसञ्जीवमद्राश्मकज्जलम् ।६।२।९१॥

अर्मे परे नैतान्याद्युदात्तानि । भूतार्मम् । अधिकार्मम् । सञ्जीवार्मम् । मद्राश्मग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम् । मद्रार्मम् । अश्मार्मम् । मद्राश्मार्मम् । कज्जलार्मम् ॥ आद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ * ॥ दिवोदासाय दाशुषे ॥

३८२५–अर्म्म शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती भूत, अधिक, सञ्जीव, मद्र, अश्म और कज्जल शब्दको आद्युदात्त स्वर न हो, यथा–भूतार्म्मम् । अधिकार्म्मम् । सञ्जीवार्म्मम् । मद्राश्म शब्दका ग्रहण संघातार्थ और विगृहीतार्थ है, यथा–मद्रार्म्मम् । अश्मार्म्मम् । मद्राश्मार्म्मम् । कज्जलार्म्मम् ।

आद्युदात्त प्रकरणमें दिवोदासादि शब्दोंके आद्युदात्तका उपसंख्यान करना चाहिये * यथा-दिवो॑दासाय दा॒शुषे॑ ॥

३८२६ अन्तः । ६ । २ । ९२ ॥

अधिकारोऽयम् । प्रागुत्तरपदादिग्रहणात् ॥

३८२६-यह अधिकारसूत्र है, इसका उत्तरपदादिग्रहणके पूर्वपर्य्यन्त अधिकार चलेगा-॥

३८२७ सर्वं गुणकार्त्स्न्ये । ६ ।२।९३॥

सर्वशब्दः पूर्वपदमन्तोदात्तम् । सर्वश्वेतः । सर्वमहान् । सर्वं किम् । परमश्वेतः । आश्रयव्याप्त्या परमत्वं श्वेतस्येति गुणकार्त्स्न्ये वर्तते । गुणेति किम् । सर्वसौवर्णः । कार्त्स्न्ये किम् । सर्वेषां श्वेततरः सर्वश्वेतः ॥

३८२७-गुणकार्त्स्न्यमें वर्त्तमान पूर्ववर्त्ती सर्व शब्द अन्तोदात्त हो, यथा-सर्वश्वेतः । सर्वमहान् । सर्व शब्द पूर्वमें न होनेपर यथा-परमश्वेतः । आश्रयव्याप्तिसे श्वेतको परमत्व है, अत एव गुणकार्त्स्न्यमें वर्तमान है । गुणकार्त्स्न्यबोधक सर्व शब्द न होनेपर यथा-सर्वसौवर्णः । कार्त्स्न्यबोधक न होनेपर यथा-सर्वेषां श्वेततरः=सर्वश्वेतः ॥

३८२८ संज्ञायां गिरिनिकाययोः । ६ । २ । ९४ ॥

एतयोः परतः पूर्वमन्तोदात्तम् । अञ्जनागिरिः । मौण्डनिकायः । संज्ञायां किम् । परमगिरिः । ब्राह्मणनिकायः ॥

३८२८-संज्ञा होनेपर गिरि और निकाय शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती पदको आद्युदात्तस्वर हो, यथा-अञ्जनागिरिः । मौण्डनिकायः । संज्ञा न होनेपर यथा-परमगिरिः । ब्राह्मणनिकायः । " अञ्जनागिरिः " इसमें " वनगिर्योः संज्ञायाम्० " इससे दीर्घ हुआहै ॥

३८२९ कुमार्यां वयसि । ६ । २ ।९५॥

पूर्वपदमन्तोदात्तम् । वृद्धकुमारी । कुमारीशब्दः पुंसा सहासम्प्रयोगमात्रं प्रवृत्तिनिमित्तमुपादाय प्रयुक्तो वृद्धादिभिः समानाधिकरणः । तत्र वय इह गृह्यते न कुमारत्वमेव । वयसि किम् । परमकुमारी ॥

३८२९-कुमारी शब्द परे रहते वयस्में वर्तमान पूर्ववर्त्ती शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो, यथा-वृद्धकुमारी । कुमारी शब्द पुरुषके साथ असम्प्रयोगरूप प्रवृत्तिनिमित्तको लेकर प्रयुक्त हुआहै, इसलिये वृद्धादि शब्दोंके साथ समानाधिकरण होताहै । वह वयःक्रम इस स्थलमें वृद्धत्व गृहीत है, कुमारत्वही नहीं, इससे'वयसि'यह पूर्वपदका विशेषण है,यह सूचित हुआ है, अवस्थावाचक न होनेपर परमकुमारी ॥

३८३० उदकेऽकेवले । ६ । २।९६॥

अकेवलं मिश्रं तद्वाचिनि समासे उदके परे पूर्वमन्तोदात्तम् । गुडोदकम् । स्वरे कृतेऽत्र एकादेशः । स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादाविति पक्षे स्वरितः । अकेवले किम् । शीतोदकम् ॥

३८३०-अकेवल अर्थात् मिश्रवाचक समासमें उदक शब्द परे रहते पूर्वपद अन्तोदात्त हो, यथा-गुडोदकम् । स्वर करनेपर इस स्थलमें एकादेश होगा, " स्वरितो वानुदात्ते पदादौ ३६५९ " इस सूत्रसे विकल्पपक्षमें स्वरित स्वर होगा । केवलार्थमें यथा-शीतोदकम् । गुडमिश्रमुदकम्-गुडोदकम् ॥

३८३१ द्विगौ क्रतौ । ६ । २ । ९७ ॥

द्विगावुत्तरपदे क्रतुवाचिनि समासे पूर्वमन्तोदात्तम् । गर्गत्रिरात्रः । द्विगौ किम् । अतिरात्रः । क्रतौ किम् । बिल्वहोमस्य सप्तरात्रो बिल्वसप्तरात्रः ॥

३८३१-उत्तर पद द्विगु समास क्रतुवाचक परे रहते पूर्व पद अन्तोदात्त हो, यथा-गर्गत्रिरात्रः । द्विगु समास न होनेपर अतिरात्रः । क्रतु न होनेपर यथा-बिल्वहोमस्य सप्तरात्रो बिल्वसप्तरात्रः । तिसृणां रात्रीणां समाहारस्त्रिरात्रम् । "अहःसर्वैकदेश० ७८७ " इससे अच् समासान्त, ' संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् ' इससे नपुंसक । रात्रिमतिक्रान्तः अतिरात्रः॥

३८३२ सभायां नपुंसके । ६ । २।९८॥

सभायां परतो नपुंसकलिङ्गे समासे पूर्वमन्तोदात्तम् । गोपालसभम् । स्त्रीसभम् । सभायां किम् । ब्राह्मणसेनम् । नपुंसके किम् । राजसभा । प्रतिपदोक्तनपुंसकग्रहणान्नेह । रमणीयसभम् । ब्राह्मणकुलम् ॥

३८३२-नपुंसकलिङ्ग समासमें सभा शब्द परे रहते पूर्व पद अन्तोदात्त हो, यथा-गोपालसभम् । स्त्रीसभम् । सभा शब्द परे न होनेपर ब्राह्मणसेनम् । नपुंसक न होनेपर यथा-राजसभा । इस स्थलमें प्रतिपदोक्त नपुंसकके ग्रहणके कारण रमणीयसभम्, ब्राह्मणकुलम्, इन पदोंमें पूर्वपदको अन्तोदात्त न हुआ । रमणीया सभा यस्येति रमणीयसभम्-बहुव्रीहिः ॥

३८३३ पुरे प्राचाम् । ६ । २ । ९९ ॥

देवदत्तपुरम् । नान्दीपुरम् । प्राचां किम् । शिवपुरम् ॥

३८३३-पूर्व देश होनेपर समासमें पुर शब्द परे रहते पूर्व पदको अन्तोदात्त स्वर हो, यथा-देवदत्तपुरम् । नान्दीपुरम् । पूर्व देश न होनेपर शिवपुरम् ॥

३८३४ अरिष्टगौडपूर्वे च।६।२।१००॥

पुरे परे अरिष्टगौडपूर्वे समासे पूर्वमन्तोदात्तम् । अरिष्टपुरम् । गौडपुरम् । पूर्वग्रहणं किम् । इहापि यथा स्यात् । अरिष्टाश्रितपुरम् । गौडभृत्यपुरम् ॥

३८३४–पुर शब्द परे रहते अरिष्ट, गौड पूर्वक समासमें पूर्व पद अन्तोदात्त हो, यथा–अरिष्टपुरम् । गौडपुरम् । पूर्व शब्दके ग्रहणके कारण अरिष्टाश्रितपुरम् । गौडभृत्यपुरम् । इस स्थलमें भी पूर्वपद अन्तोदात्त हुआ ॥

३८३५ न हास्तिनफलकमार्देयाः । ६ । २ । १०१ ॥

पुरे परे नैतान्यन्तोदात्तानि । हास्तिनपुरम् । फलकपुरम् । मार्देयपुरम् । मृदेरपत्यमिति शुभ्रादित्वात् ढक् ॥

३८३५–पुर शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती हास्तिन, फलक और मार्देय शब्दको अन्तोदात्त स्वर हो, यथा–हास्तिनपुरम् । फलकपुरम् । मार्देयपुरम् । " मृदेरपत्यम् " इस विग्रहमें शुभ्रादित्वके कारण ढक् प्रत्यय हुआहै । (११४२) इससे उकारका लोप हुआहै ॥

३८३६ कुसूलकूपकुम्भशालं बिले । ६ । २ । १०२ ॥

एतान्यन्तोदात्तानि बिले परे । कुसूलबिलम् । कूपबिलम् । कुम्भबिलम् । शालबिलम् । कुसूलादि किम् । सर्पबिलम् । बिलेति किम् । कुसूलस्वामी ॥

३८३६–बिल शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती कुसूल, कूप, कुम्भ और शाल शब्दको अन्तोदात्तस्वर हो, यथा–कुसूलबिलम् । कूपबिलम् । कुम्भबिलम् । शालबिलम् । कुसूलादि पूर्वमें न होनेपर कैसा होगा ? तो सर्पबिलम् । बिल शब्द परे न होनेपर यथा–कुसूलस्वामी ॥

३८३७ दिक्शब्दा ग्रामजनपदाख्यानचानराटेषु । ६ । २ । १०३ ॥

दिक्शब्दा अन्तोदात्ता भवन्त्येषु । पूर्वेषुकामशमी । अपरकृष्णमृत्तिका । जनपदे । पूर्वपञ्चालाः । आख्याने । पूर्वयायातम् । पूर्वचानराटम् । शब्दग्रहणं कालवाचिदिक्शब्दस्य परिग्रहार्थम् ॥

३८३७–ग्रामवाचक, जनपदवाचक, आख्यानवाचक और चानराट शब्द परे रहते पूर्ववर्त्ती दिक्वाचक शब्द अन्तोदात्त हो, यथा–पूर्वेषुकामशमी । अपरकृष्णमृत्तिका । आख्यानक, जनपद शब्दसे देश समझना, यथा–पूर्वपञ्चालाः । आख्यानका उदाहरण यथा–पूर्वयायातम् । पूर्वचानराटम् । शब्दका ग्रहण कालवाचक दिक् शब्दके परिग्रहार्थ है ॥

३८३८ आचार्योपसर्जनश्चाऽन्तेवासिनि । ६ । २ । १०४ ॥

आचार्योपसर्जनान्तेवासिनि परे दिक्शब्दा अन्तोदात्ता भवन्ति । पूर्वपाणिनीयाः । आचार्येति किम् । पूर्वान्तेवासी । अन्तेवासिनि किम् । पूर्वपाणिनीयं शास्त्रम् ॥

३८३८–आचार्योपसर्जन अन्तेवासिवाचक शब्द परे रहते दिक्वाचक शब्दको अन्तोदात्तस्वर हो, यथा–पूर्वपाणिनीयाः । आचार्योपसर्जन अन्तेवासिन् शब्द न होनेपर कैसा होगा ? तो पूर्वान्तेवासी । अन्तेवासिवाचक शब्द परे न होनेपर यथा–पूर्वपाणिनीयं शास्त्रम् ॥

३८३९ उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च । ६ । २ । १०५ ॥

उत्तरपदस्येत्यधिकृत्य या वृद्धिर्विहिता तद्वत्युत्तरपदे परे सर्वशब्दो दिक्शब्दाश्चान्तोदान्ता भवन्ति । सर्वपाञ्चालकः । अपरपाञ्चालकः ॥ अधिकारग्रहणं किम् । सर्वभासः । सर्वकारकः ॥

३८३९–" उत्तरपदस्य " इस सूत्रके अधिकार करके विहित जो वृद्धि, तद्विशिष्ट उत्तरपद परे रहते सर्व शब्द और दिक्वाचक शब्द अन्तोदात्त हो, यथा–सर्वपाञ्चालकः । अधिकारशब्दका ग्रहण करनेसे " सर्वभासः, सर्वकारकः " यहां न हुआ ॥

३८४० बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् । ६ । २ । १०६ ॥

बहुव्रीहौ विश्वशब्दः पूर्वपदभूतः संज्ञायामन्तोदात्तः स्यात् । पूर्वपदप्रकृतिस्वरेण प्राप्तस्याद्युदात्तस्यापवादः । विश्वकर्मा । विश्वदेवः । आविश्वदेवं सत्पतिम् । बहुव्रीहौ किम् । विश्वे च ते देवाश्च विश्वदेवाः । संज्ञायां किम् । विश्वदेवः । प्रागव्ययीभावाद्बहुव्रीह्यधिकारः ॥

३८४०–बहुव्रीहिसमासमें संज्ञा होनेपर पूर्वपदभूत विश्व शब्द अन्तोदात्त हो, यह सूत्र पूर्वपद प्रकृतिस्वरसे प्राप्त आद्युदात्तस्वरका विशेषक है । यथा–विश्वकर्म्मा । विश्वदेवः । आविश्वदेवं सत्पतिम् । बहुव्रीहि न होनेपर कैसा होगा ? तो विश्वे च ते देवाश्च=विश्वदेवाः । संज्ञा न होनेपर कैसा होगा ? तो विश्वदेवः । अव्ययीभावके पूर्वपर्यन्त बहुव्रीहिका अधिकार है ॥

३८४१ उदराऽश्वेषुषु । ६ । २ । १०७ ॥

संज्ञायामितिवर्तते । वृकोदरः । हर्यश्वः । महेषुः ॥

३८४१–बहुव्रीहि समासमें उदर, अश्व और इषु शब्द परे रहते पूर्वपदभूत शब्दको अन्तोदात्त स्वर हो, यथा–वृकोदरः । हर्यश्वः । महेषुः ॥

३८४२ क्षेपे । ६ । २ । १०८ ॥

उदराश्वेषुषु पूर्वमन्तोदात्तं बहुव्रीहौ निन्दायाम् । घटोदरः । कन्दुकाश्वः । चलाचलेषुः । अनुदरः इत्यत्र नञ्सुभ्यामिति भवति विप्रतिषेधेन ॥

३८४२-क्षेप अर्थात् निन्दा होनेपर बहुव्रीहिसमासमें उदर, अश्व और इषु शब्द परे रहते पूर्वपद अन्तोदात्त हो, यथा-घटोदरः । कन्दुकाश्वः चलाचलेषुः । "अनुदरः" इस स्थलमें तो विप्रतिषेधसे "नञ्सुभ्याम् (३९०६)" इस सूत्रसे उत्तरपदको अन्तोदात्त होताहै ॥

३८४३ नदी बन्धुनि । ६ । २।१०९ ॥

बन्धुशब्दे परे नद्यन्तं पूर्वमन्तोदात्तं बहुव्रीहौ । गार्गीबन्धुः । नदी किम् । ब्रह्मबन्धुः । ब्रह्मशब्द आद्युदात्तः । बन्धुनि किम् । गार्गीप्रियः ॥

३८४३-बहुव्रीहिसमासमें बन्धु शब्द परे रहते नद्यन्त पूर्वपद अन्तोदात्त हो, यथा-गार्गीबन्धुः । नद्यन्त पूर्वपद न होनेपर कैसा होगा ? तो, ब्रह्मबन्धुः यहाँ ब्रह्मन् शब्द आद्युदात्त है । बन्धु शब्द परे न होनेपर कैसा होगा ? तो गार्गीप्रियः ॥

३८४४ निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम् । ६ । २ । ११० ॥

निष्ठान्त पूर्वपदमन्तोदात्तं वा । प्रधौतपादः। निष्ठा किम् । प्रसेवकमुखः । उपसर्गपूर्वं किम् । शुष्कमुखः ॥

३८४४-बहुव्रीहिसमासमें उपसर्गपूर्वक निष्ठाप्रत्ययान्त पद विकल्प करके अन्तोदात्त हो, यथा-प्रधौतपादः । निष्ठाप्रत्ययान्त न होनेपर कैसा होगा ? तो प्रसेवकमुखः । उपसर्गपूर्वक न होनेपर कैसा होगा ? तो शुष्कमुखः ॥

३८४५ उत्तरपदाऽऽदिः ।६।२।१११ ॥

उत्तरपदाधिकार आपादान्तम् । आद्यधिकारस्तु प्रकृत्या भगालमित्यवधिकः ॥

३८४५--पादसमाप्तिपर्य्यन्त उत्तरपदका अधिकार चलेगा । आदिका अधिकार तो"प्रकृत्या भगालम् ३८७१" इस सूत्रतक चलेगा ॥

३८४६ कर्णो वर्णलक्षणात्।६।२।११२॥

वर्णवाचिनो लक्षणवाचिनश्च परः कर्णशब्द आद्युदात्तो बहुव्रीहौ । शुक्लकर्णः । शंकुकर्णः । कर्णः किम् । श्वेतपादः । वर्णलक्षणात्किम् । शोभनकर्णः ॥

३८४६-बहुव्रीहिसमासमें वर्णवाचक और लक्षणवाचक शब्दके परवर्त्ती कर्ण शब्द आद्युदात्त हो, यथा-शुक्लकर्णः । शंकुकर्णः । कर्ण शब्द परे न होनेपर कैसा होगा ? तो श्वेतपादः । वर्ण और लक्षणवाचक शब्दके परे न होनेपर कैसा होगा ? तो शोभनकर्णः । (शङ्कुः कर्णे यस्य, इस विग्रहमें "सप्तमीविशेषणे०" इससे सप्तम्यन्तके पूर्वनिपातकी प्राप्ति होनेपर "गड्वादेः परा सप्तमी" इससे परनिपात, "कर्णे लक्षणस्या० १०३६" इससे दीर्घ होकर-शंकुकर्णः)॥

३८४७ संज्ञौपम्ययोश्च । ६।२।११३ ॥

कर्ण आद्युदात्तः । मणिकर्णः । औपम्ये । गोकर्णः ॥

३८४७-संज्ञा और औपम्यमें जो बहुव्रीहि उसमें उत्तरपदभूत कर्ण शब्द आद्युदात्त हो, संज्ञामें यथा-मणिकर्णः । औपम्यमें यथा-गोकर्णः ॥

३८४८ कण्ठपृष्ठग्रीवाजङ्घं च । ६ । २ । ११४ ॥

संज्ञौपम्ययोर्बहुव्रीहौ । शितिकण्ठः । काण्डपृष्ठः । सुग्रीवः । नाडीजंघः । औपम्ये । खरकण्ठः । गोपृष्ठः । अश्वग्रीवः । गोजंघः ॥

३८४८-संज्ञा और औपम्यमें जो बहुव्रीहि उसमें उत्तरपदभूत कण्ठ, पृष्ठ, ग्रीवा और जंघा शब्दको आद्युदात्त स्वर हो, संज्ञामें यथा-शितिकण्ठः । काण्डपृष्ठः । सुग्रीवः । नाडीजंघः । औपम्यमें यथा-खरकण्ठः । गोपृष्ठः । अश्वग्रीवः । गोजंघः ॥

३८४९ शृङ्गमवस्थायां च।६।२।११५॥

शृङ्गशब्दोऽवस्थायां संज्ञौपम्ययोश्चाद्युदात्तो बहुव्रीहौ । उद्गतशृंगः । द्व्यङ्गुलशृंगः । अत्र शृंगोद्गमनादिकृतो गवादेर्वयोविशेषोऽवस्था । संज्ञायाम्। ऋष्यशृंगः । उपमायाम् । मेषशृंगः। अवस्थेति किम् । स्थूलशृंगः ॥

३८४९-बहुव्रीहिसमासमें अवस्था, संज्ञा और औपम्यमें उत्तरपदभूत शृङ्ग शब्द आद्युदात्त हो, यथा-उद्गतशृङ्गः । द्व्यंगुलशृङ्गः । इस स्थलमें शृङ्गोद्गमनादि कृत गोप्रभृति पशुओंकी वयोविशेष अवस्था है । संज्ञामें यथा-ऋष्यशृङ्गः । औपम्यमें यथा-मेषशृङ्गः । अवस्था न होनेपर यथा-स्थूलशृङ्गः ॥

३८५० नञो जरमरमित्रमृताः । ६ । २ । ११६ ॥

नञः पर एते आद्युदात्ता बहुव्रीहौ । ता मे जराय्वजरम्।अमरम्। अमित्रमर्दय।श्रवो देवेष्वमृतम्। नञः किम् । ब्राह्मणमित्रः । जेति किम् । अशत्रुः ॥

३८५०-बहुव्रीहि समासमें नञ्के परवर्त्ती जर, मर, मित्र और मृत शब्दको आद्युदात्त स्वर हो, यथा-ता मे जराय्वजरम् । अमरम् । अमित्रमर्दय । श्रवो देवेष्वमृतम् । नञ्के उत्तर न होनेपर यथा-ब्राह्मणमित्रः । जरादि शब्द न होनेपर यथा-अशत्रुः । (जरणं जरः "ऋदोरप्" । मरणं मरः न मरणम्=अमरम् इसी निपातनसे अप् । मित्रम् ञिमिदा धातुसे "अमिचिमिदिशसिभ्यः क्रः" "मृतम्" यहां "नपुंसके भावे क्तः"। सूत्रमें शब्द परत्व होनेसे पुँल्लिंग पढा है)॥

३८५१ सोर्मनसी अलोमोषसी । ६ । २ । ११७ ॥

सोः परं लोमोषसी वर्जयित्वा मन्नन्तमसन्तं चाद्युदात्तं स्यात् । नञ्सुभ्यामित्यस्यापवादः । सुकर्माणः सुयुजः । स नो वक्षदनिमानः सुवत्मा । शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । सुपेशसस्करति । सोः किम् । कृतकर्मा । मनसी किम् । सुराजा । अलोमोषसी किम् । सुलोमा। सुषाः । कपि तु परत्वात्कपि पूर्वमिति भवति । सुकर्मकः । सुस्रोतस्कः ॥

३८५१-बहुव्रीहि समासमें सु शब्दके परवर्त्ती लोमन् और उषस् शब्दभिन्न मन्नन्त और असन्त शब्दको आद्युदात्त स्वर हो, यह सूत्र " नञ्सुभ्याम् ३९०६ " सूत्रका बाधक है, यथा-सुकर्म्माणः सुयुजः । स नो वक्षदनिमानः सुवत्मा शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।सुपेशसस्करति। सु शब्दके उत्तर न होनेपर कैसा होगा ? तो कृतकर्मा । 'मनसी' क्योंकहा ? तो "सुराजा"यहां न हो लोमन् और उषस् शब्द होनेपर कैसा होगा, तो सुलोमा । सुषाः । कप् प्रत्यय परे रहते तो परत्वके कारण "कपि पूर्वम्" इस सूत्रसे पूर्वपदको आद्युदात्त होगा, यथा-सुकर्म्मकः । सुस्रोतस्कः ॥

३८५२ क्रत्वादयश्च । ६ । २ । ११८ ॥

सोः परे आद्युदात्ताः स्युः । साम्राज्याय सुक्रतुः । सुप्रतीकः। सुहव्यः।सुप्रतूर्तिमनेहसम्॥

३८५२-बहुव्रीहिसमासमें सु शब्दके परवर्त्ती क्रतुआदि शब्द आद्युदात्त हो, यथा-साम्राज्याय सुक्रतुः । सुप्रतीकः । सुहव्यः । सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥

३८५३ आद्युदात्तं द्व्यच् छन्दसि । ६ । २ । ११९ ॥

यदाद्युदात्तं द्व्यच् तत्सोरुत्तरं बहुव्रीहावाद्युदात्तम् । अधा स्वश्वाः । सुरथाँ आतिथिग्वे । नित्स्वरेणाश्वरथावाद्युदात्तौ । आद्युदात्तं किम् । यासुबाहुः । द्व्यच् किम् । सुगुरसत्सुहिरण्यः । हिरण्यशब्दस्त्र्यच् ॥

३८५३-वेदमें सु शब्दके परवर्त्ती जो द्विस्वरयुक्त आद्युदात्त शब्द उसको बहुव्रीहि समासमें आद्युदात्त स्वर हो, यथा-अधा स्वश्वाः । सुरथाँ आतिथिग्वे । नित्स्वरसे अश्व और रथ शब्द आद्युदात्त हैं । आद्युदात्त न होनेपर यथा-यासुबाहुः । द्व्यच् न होनेपर कैसा होगा ? तो 'सुगुरसत्सुहिरण्यः' इस स्थलमें हिरण्य तीन स्वरसे युक्त है ॥

३८५४ वीरवीर्यौ च । ६ । २ । १२० ॥

सोः परौ बहुव्रीहौ छन्दस्याद्युदात्तौ । सुवीरेण रयिणा । सुवीर्यस्य गोमतः । वीर्यशब्दो यत्प्रत्ययान्तः । तत्र यतोऽनाव इत्याद्युदात्तत्वं नेति वीर्यग्रहणं ज्ञापकम् । तत्र हि सति पूर्वेणैव सिद्धं स्यात् ॥

३८५४-बहुव्रीहिसमासमें सु शब्दके परवर्त्ती वीर और वीर्य्य शब्दको आद्युदात्त स्वर हो,वेदमें यथा-सुवीरेण रयिणा। सुवीर्य्यस्य गोमतः । वीर्य्य शब्द यत् प्रत्ययान्त है, इस स्थलमें " यतोऽनावः ३७०१ " इस सूत्रसे आद्युदात्तस्वर नहीं हो, यह ज्ञापनके लिये वीर्य्य शब्दका ग्रहण है, नहीं तो पूर्व सूत्रसे ही सिद्ध होनेपर वीर्य्यग्रहण व्यर्थ ही होजाता ॥

३८५५ कूलतीरतूलमूलशालाऽक्षसममव्ययीभावे । ६ । २ । १२१ ॥

उपकूलम् । उपतीरम् । उपतूलम् । उपमूलम् । उपशालम् । उपाक्षम् । सुषमम् । निःषमम् । तिष्ठद्गुप्रभृतिष्वेते । कूलादिग्रहणं किम्। उपकुम्भम् । अव्ययीभावे किम् । परमकूलम् ॥

३८५५-अव्ययीभाव समासमें उत्तरपदभूत कूल, तीर, तूल, मूल, शाल, अक्ष और सम शब्दको आद्युदात्त स्वर हो, यथा-उपकूलम् । उपतीरम् । उपतूलम् । उपमूलम् । उपशालम् । उपाक्षम् । सुषमम् । निःषमम् । तिष्ठद्गुप्रभृतिमें उपकूलादि शब्द पठित हैं । कूलादि शब्द परे न रहते यथा-उपकुम्भम् । अव्ययीभाव समास न होनेपर यथा-परमकूलम् ॥

३८५६ कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डं द्विगौ । ६ । २ । १२२ ॥

द्विकंसः । द्विमन्थः । द्विशूर्पः । द्विपाय्यम् । द्विकाण्डम् । द्विगौ किम् । परमकंसः ॥

३८५६-द्विगु समासमें उत्तरपदभूत कंस, मन्थ, शूर्प, पाय्य और काण्ड शब्दको आद्युदात्त स्वर हो, यथा-द्विकंसः । द्विमन्थः । द्विशूर्पः । द्विपाय्यम् । द्विकाण्डम् । द्विगु समास न होनेपर यथा-परमकंसः । 'द्विकंसः' यहां द्वाभ्यां कंसाभ्यां क्रीतः, इस विग्रहमें " कंसाट्टिठन् " इससे टिठन् प्रत्यय, " अध्यर्द्धपूर्वा० " इससे लुक् । " द्विशूर्पः " यहां "शूर्पादञन्यतरस्याम्" इससे अञ् । द्विकाण्डम् द्वे काण्डे प्रमाणमस्य, इस विग्रहमें "प्रमाणे द्वयसच्० १८३८" इससे मात्रच् "प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्" इससे लुक् ॥

३८५७ तत्पुरुषे शालायां नपुंसके । ६ । २ । १२३ ॥

शालाशब्दान्ते तत्पुरुषे नपुंसकलिंगे उत्तरपदमाद्युदात्तम् । ब्राह्मणशालम् । तत्पुरुषे किम्। दृढशालं ब्राह्मणकुलम् । शालायां किम् । ब्राह्मणसेनम् । नपुंसके किम् । ब्राह्मणशाला ॥

३८५७-शाला शब्द अन्तमें है, ऐसा क्लीबलिङ्ग तत्पुरुषसमासमें उत्तरपद आद्युदात्त हो, यथा-ब्राह्मणशालम्। तत्पुरुष न होनेपर यथा-दृढशालम्, ब्राह्मणकुलम् । शाला

शब्द अन्तमें न होनेपर यथा—ब्राह्मणसेनम् । क्लीबलिङ्गक न होनेपर यथा—ब्राह्मणशाला ॥

३८५८ कन्था च । ६ । २ । १२४ ॥

तत्पुरुषे नपुंसकलिंगे कन्थाशब्द उत्तरपदमाद्युदात्तम्। सौशमिकन्थम् । आह्वरकन्थम् । नपुंसके किम् । दाक्षिकन्था ॥

३८५८—कन्था शब्दान्त क्लीबलिङ्गक तत्पुरुषसमासमें उत्तरपद आद्युदात्त हो, यथा—सौशमिकन्थम् । आह्वरकन्थम्। क्लीबलिङ्गक न होनेपर यथा—दाक्षिकन्था ॥

३८५९ आदिश्चिहणादीनाम् ६।२।१२५।

कन्थान्ते तत्पुरुषे नपुंसकलिंगे चिहणादीनामादिरुदात्तः। चिहणकन्थम् । मदुरकन्थम्। आदिरिति वर्तमाने पुनर्ग्रहणं पूर्वपदस्याद्युदात्तार्थम् ॥

३८५९—कन्था शब्दान्त क्लीबलिङ्गक तत्पुरुषसमासमें चिहणादि शब्दका आदि उदात्त हो, यथा—चिहणकन्थम् । मदुरकन्थम् । पूर्व सूत्रसे आदि शब्दकी अनुवृत्ति आनेपर भी पुनर्वार आदि शब्दका ग्रहण पूर्वपदके आद्युदात्तार्थ है ॥

३८६० चेलखेटकटुककाण्डं गर्हायाम् । ६ । २ । १२६ ॥

चेलादीन्युत्तरपदान्याद्युदात्तानि । पुत्रचेलम्। नगरखेटम् । दधिकटुकम् । प्रजाकाण्डम् । चेलादिसादृश्येन पुत्रादीनां गर्हा। व्याघ्रादित्वात्समासः । गर्हायां किम् । परमचेलम् ॥

३८६०—तत्पुरुषसमासमें निन्दा गम्य होनेपर उत्तरपदभूत चेलादि अर्थात् चेल, खेट, कटुक और काण्ड शब्दका आदि उदात्त हो, यथा—पुत्रचेलम । नगरखेटम् । दधिकटुकम् । प्रजाकाण्डम् । चेलादिका सादृश्यसे पुत्रादिकी गर्हा (निन्दा) होती है । इस स्थलमें व्याघ्रादित्वके कारण समास हुआहै । गर्हा न होनेपर यथा—परमचेलम् ॥

३८६१ चीरमुपमानम् ।६।२ । १२७ ॥

वस्त्रं चीरमिव वस्त्रचीरम् । कम्बलचीरम् । उपमानं किम् । परमचीरम् ॥

३८६१—तत्पुरुषमें उपमानवाचक उत्तरपदभूत चीर शब्दका आदि उदात्त हो, यथा—वस्त्रं चीरमिव=वस्त्रचीरम् । कम्बलचीरम् । उपमानवाचक न होनेपर कैसा होगा ? तो परमचीरम् ॥

३८६२ पललसूपशाकं मिश्रे । ६ । २ । १२८ ॥

घृतपललम् । घृतसूपः । घृतशाकम् । भक्ष्येण मिश्रीकरणमिति समासः । मिश्रे किम् परमपललम् ॥

३८६२—मिश्रवाची तत्पुरुषसमासमें उत्तरपदभूत पलल, सूप और शाक शब्दका आदि उदात्त हो, यथा—घृतपललम् । घृतसूपः । घृतशाकम् । इस स्थलमें "भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ६९७" इससे समास हुआहै । मिश्रवाचक न होनेपर यथा—परमपललम् । (घृतेन मिश्रं पललम्=घृतपललम् । इत्यादि) ॥

३८६३ कूलसूदस्थलकर्षाः संज्ञायाम् । ६ । २ । १२९ ॥

आद्युदात्तास्तत्पुरुषे । दाक्षिकूलम् । शाण्डिसूदम् । दाण्डायनस्थलम् । दाक्षिकर्षः । ग्रामसंज्ञा एताः । संज्ञायां किम् । परमकूलम् ॥

३८६३—तत्पुरुषसमासमें संज्ञा होनेपर उत्तरपदभूत कूल, सूद, स्थल और कर्ष शब्दका आदि उदात्त हो, यथा—दाक्षिकूलम् । शाण्डिसूदम् । दाण्डायनस्थलम् । दाक्षिकर्षः । यह सब ग्रामवाची हैं । संज्ञा न होनेपर यथा—परमकूलम् ॥

३८६४ अकर्मधारये राज्यम् । ६ । २ । १३० ॥

कर्मधारयवर्जिते तत्पुरुषे राज्यमुत्तरपदमाद्युदात्तम् । ब्राह्मणराज्यम् । अकेति किम् । परमराज्यम् ॥ चेलराज्यादिस्वरादव्ययस्वरः पूर्वविप्रतिषेधेन ॥ * ॥ कुचेलम् । कुराज्यम् ॥

३८६४—कर्मधारयवर्जित तत्पुरुषसमासमें उत्तरपदभूत राज्य शब्दका आदि उदात्त हो, यथा—ब्राह्मणराज्यम् । कर्मधारय होनेपर कैसा होगा ? तो परमराज्यम् ॥

चेलराज्यादिस्वरको बाधकर पूर्वविप्रतिषेधसे अव्ययस्वर हो* कुचेलम् । कुराज्यम् ॥

३८६५ वर्ग्यादयश्च । ६ ।२ । १३१ ॥

अर्जुनवर्ग्यः । वासुदेवपक्ष्यः । अकर्मधारय इत्येव । परमवर्ग्यः । वर्ग्यादिर्दिगाद्यन्तर्गणः ॥

३८६५—तत्पुरुषसमासमें उत्तरपदभूत वर्ग्य आदि शब्दोंका आदि उदात्त हो, यथा—अर्जुनवर्ग्यः । वासुदेवपक्ष्यः । कर्मधारय भिन्न ही तत्पुरुषसमासमें होगा, इससे यहां न हुआ, यथा—परमवर्ग्यः । वर्ग्यादि दिगाद्यन्तर्गण है ॥

३८६६ पुत्रः पुम्भ्यः । ६ । २। १३२ ॥

पुमशब्देभ्यः परः पुत्रशब्द आद्युदात्तस्तत्पुरुषे । दाशकिपुत्रः । माहिषपुत्रः । पुत्रः किम् । कौनटिमातुलः । पुम्भ्यः किम् । दाक्षीपुत्रः ॥

३८६६—तत्पुरुषसमासमें पुम् शब्दके परवर्ती पुत्र शब्दका आदि उदात्त हो, यथा—दाशकिपुत्रः । माहिषपुत्रः । पुत्र शब्द परे न होनेपर कैसा होगा? तो कौनटिमातुलः । पुम् शब्दके परे न होनेपर यथा—दाक्षीपुत्रः ॥

३८६७ नाचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः । ६ । २ । १३३ ॥

एभ्यः पुत्रो नाद्युदात्तः । आख्याग्रहणात्पर्यायाणां तद्विशेषाणां च ग्रहणम् । आचार्यपुत्रः । उपाध्यायपुत्रः । शाकटायनपुत्रः । राजपुत्रः । ईश्वरपुत्रः । नन्दपुत्रः । ऋत्विक्पुत्रः । याजकपुत्रः । होतुःपुत्रः । संयुक्ताः सम्बन्धिनः । श्यालपुत्रः। ज्ञातयो मातापितृसम्बन्धेन बान्धवाः । ज्ञातिपुत्रः । भ्रातुष्पुत्रः ॥

३८६७-तत्पुरुष समासमें आचार्य्य, राज, ऋत्विक् संयुक्त और ज्ञातिवाचक शब्दोंके उत्तर स्थित पुत्र शब्दका आदि वर्ण उदात्त न हो, सूत्रमें आख्या शब्दका ग्रहण करनेसे आचार्य्यादि शब्द और तत्पर्य्यायवाचक शब्द और तद्विशेष सबहीका ग्रहण होताहै, यथा-आचार्य्यपुत्रः । उपाध्यायपुत्रः । शाकटायनपुत्रः । राजपुत्रः । ईश्वरपुत्रः । नन्दपुत्रः । ऋत्विक्पुत्रः । याजकपुत्रः । होतुःपुत्रः । संयुक्त शब्दसे संबन्धी समझना, यथा-श्यालपुत्रः । ज्ञाति शब्दसे पितृ और मातृसंबन्धीय बान्धव समझना । ज्ञातिपुत्रः । भ्रातुष्पुत्रः । कस्कादिमें पाठ होनेसे षत्व ॥

३८६८ चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः । ६ । २ । १३४ ॥

एतानि प्राणिभिन्नषष्ठ्यन्तात्पराण्याद्युदात्तानि तत्पुरुषे । मुद्गचूर्णम् । अप्रेति किम् । मत्स्यचूर्णम् ॥

३८६८तत्पुरुष समासमें अप्राणिवाचक षष्ठ्यन्त पदके उत्तर स्थित चूर्णादि शब्दोंका आदि वर्ण उदात्त हो, मुद्गचूर्णम् । अप्राणिवाचक शब्द न होनेपर यथा-मत्स्यचूर्णम् । चूर्ण=पचाद्यच् ॥

३८६९ षट् च काण्डादीनि।६।२।१३५॥

अप्राणिषष्ठ्या आद्युदात्तानि । दर्भकाण्डम् । दर्भचीरम् । तिलपललम् । मुद्गसूपः । मूलकशाकम् । नदीकूलम् । षट् किम् । राजसूदः । अप्रेति किम् । दत्तकाण्डम् ॥

३८६९-तत्पुरुष समासमें अप्राणीवाचक षष्ठ्यन्त पदके उत्तर स्थित काण्डादि छः शब्दोंका आदि वर्ण उदात्त हो, यथा-दर्भकाण्डम् । दर्भचीरम् । तिलपललम् । मुद्गसूपः । मूलकशाकम् । नदीकूलम्। "चेलखेट०" सूत्रसे "कूलसूद०" इत्यादि सूत्रस्थ कूल शब्दपर्य्यन्त छः शब्द न होनेपर राजसूदः। प्राणिवाचक होनेपर यथा-दत्तकाण्डम् ॥

३८७० कुण्डं वनम् । ६ । २ । १३६ ॥

कुण्डमाद्युदात्तं वनवाचिनि तत्पुरुषे । दर्भकुण्डम् । कुण्डशब्दोत्र सादृश्ये । वनं किम् । मृत्कुण्डम् ॥

३८७०-वनवाचक तत्पुरुष समासमें कुण्ड शब्द आद्युदात्त हो, यथा-दर्भकुण्डम् । इस स्थलमें कुण्ड शब्दसे सादृश्य समझना । वनवाचक न होनेपर, यथा-मृत्कुण्डम् (भाजनविशेष) ॥

३८७१ प्रकृत्या भगालम् ।६।२।१३७॥

भगालवाच्युत्तरपदं तत्पुरुषे प्रकृत्या । कुम्भीभगालम्।कुम्भीनदालम् । कुम्भीकपालम् । मध्योदात्ता एते प्रकृत्येत्यधिकृतमन्त इति यावत् ॥

३८७१-तत्पुरुष समासमें भगाल अर्थात् नरकपालवाचक उत्तर पदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-कुम्भीभगालम् । कुम्भीनदालम् । कुम्भीकपालम् । यह मध्योदात्त हैं, इस सूत्रसे (३८७७) अन्तः सूत्रतक प्रकृतिस्वराधिकार जानना अर्थात् प्रकृतिस्वर होगा ॥

३८७२ शितेर्नित्याऽबह्वज्बहुव्रीहावभसत् । ६ । २ । १३८ ॥

शितेः परं नित्याबह्वच्कं प्रकृत्या । शितिपादः । शित्यंसः।पादशब्दो वृषादित्वादाद्युदात्तः अंसशब्दः प्रत्ययस्य नित्त्वात् । शितेः किम्।दर्शनीयपादः । अभसत्किम् । शितिभसत् । शितिराद्युदात्तः।पूर्वपदप्रकृतिस्वरापवादोयं योगः॥

३८७२-बहुव्रीहि समासमें शिति शब्दके उत्तर स्थित नित्यबहुस्वरविशिष्ट न हो ऐसे (एकस्वरविशिष्ट) शब्दको प्रकृतिस्वर हो, भसत् शब्दको न हो, यथा-शितिपादः । शित्यंशः । पाद शब्द वृषादित्वके कारण आद्युदात्त हुआ । अंस शब्द प्रत्ययके नित्त्वके कारण आद्युदात्त है । शिति शब्दके उत्तर न होनेपर यथा-दर्शनीयपादः । भसत् शब्द होनेपर यथा-शितिभसत् । शिति शब्द आद्युदात्त है । पूर्वपदप्रकृतिस्वरापवाद यह सूत्र है । अम्+सन् । अंशः ॥

३८७३ गतिकारकोपपदात्कृत । ६ । २ । १३९ ॥

एभ्यः कृदन्तं प्रकृतिस्वरं स्यात्तत्पुरुषे । प्रकारकः । प्रहरणम् । शोणा धृष्णू नृवाहसा । इध्मप्रव्रश्चनः । उपपदात् । उच्चैःकारम्।ईषत्करः। गतीति किम् । देवस्य कारकः । शेषे षष्ठी । कृद्ग्रहणं स्पष्टार्थम् । प्रपचतितरामित्यत्र तरबाद्यन्तेन समासे कृते आम् । तत्र सतिशिष्टत्वादामस्स्वरो भवतीत्येके । प्रपचतिदेश्यार्थं तु कृद्ग्रहणमित्यन्ये ॥

३८७३-तत्पुरुष समासमें गतिसंज्ञक शब्द, कारक औ उपपदके उत्तर कृत्प्रत्ययान्त पदको प्रकृतिस्वर हो, यथा-प्रकारकः । प्रहरणम् । "शोणाधृष्णू नृवाहसा"। इध्मप्रव्रश्चनः (ल्युट) उपपद यथा- उच्चैःकारम् (णमुल) ईषत्करः ।

(३३०५) इससे खल् गतिसंज्ञकके उत्तर न होनेपर यथा-देवस्य कारकः । शेषे षष्ठी इस स्थलमें कृत् पदका ग्रहण स्पष्टार्थ है, प्रपचतितराम् । इस स्थलमें तरबादि प्रत्ययान्त पदके साथ समास करनेपर आम् हुआ है । उस स्थलमें सतिशिष्टत्वके कारण आम् प्रत्ययको स्वर होता है, ऐसा कोई २ कहते हैं ॥

३८७४ उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्। ६ । २ । १४० ॥

एषु पूर्वोत्तरपदे युगपत्प्रकृत्या । वनस्पतिं वन आ । बृहस्पतिं यः । बृहच्छब्दोऽत्राद्युदात्तो निपात्यते । हर्षया शचीपतिम् । शार्ङ्गरवादित्वादाद्युदात्तः शचीशब्दः । शचीभिर्न इति दर्शनात् । तनूनपादुच्यते । नराशंसं वाजिनम् । निपातनाद्दीर्घः । शुनःशेपम् ॥

३८७४-तत्पुरुष समासमें वनस्पति आदि शब्दोंमें पूर्व पद और उत्तरपद दोनोंको ही एक कालमें प्रकृतिस्वर हो, यथा-वनस्पतिं वन आ । बृहस्पतिं यः । इस स्थलमें बृहत् शब्द निपातनसे आद्युदात्त होगा । हर्षया शचीपतिम् । शार्ङ्गरवादित्वके कारण शची शब्द आद्युदात्त है, कारण कि, शचीभिर्न ऐसा प्रयोग दीखता है । तनूनपात् । नराशंसं वाजिनम् । निपातनसे दीर्घ हुआ है । शुनःशेपम् । पति= पा+डति नराशंसम् नरा एनं शंसन्ति, नृ+कर्ममें घञ् । शुनः-शेपम् शुन इव शेपोस्येति बहुव्रीहिः "शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः" । इससे षष्ठीका अलुक् ॥

३८७५ देवताद्वन्द्वे च । ६ । २ । १४१ ॥

उभे युगपत्प्रकृत्या स्तः । आप इन्द्रावरुणौ । इन्द्राबृहस्पती वयम् । देवता किम् । प्लक्षन्यग्रोधौ । द्वन्द्वे किम् । अग्निष्टोमः ॥

३८७५-देवतावाचक शब्दोंके द्वन्द्व समासमें पूर्व और उत्तर दोनों पदोंको एक कालमें प्रकृतिस्वर हो, यथा-आप इन्द्रावरुणौ । इन्द्रा बृहस्पती वयम् । देवतावाचक न होनेपर यथा-प्लक्षन्यग्रोधौ । द्वन्द्व न होनेपर यथा-अग्निष्टोमः (९२४) । वरुणः "कृवृदारिभ्य उनन्" इससे वृ+उनन् । "देवताद्वन्द्वे च" इससे पूर्व पदको आनङ् ॥

३८७६ नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु । ६ । २ । १४२ ॥

पृथिव्यादिवर्जितेऽनुदात्तादावुत्तरपदे प्रागुक्तं न । इन्द्राग्निभ्यां कंवृषणः । अपृथिव्यादौ किम् । द्यावापृथिवी जनयत् । आद्युदात्तो द्यावा निपात्यते । पृथिवीत्यन्तोदात्तः । रुद्रसोमौ । रोदेर्णिलुक्चेति रगन्तो रुद्रशब्दः । इन्द्रापूषणौ । श्वन्नुक्षन्पूषन्निति पूषा अन्तोदात्तो निपात्यते । शुक्रामन्थिनौ । मन्थिन्निनन्तत्वादन्तोदात्तः । उत्तरपदग्रहणमनुदात्तादावित्युत्तरपदविशेषणं यथा स्यात् द्वन्द्वविशेषणं मा भूत् । अनुदात्तादाविति विधिप्रतिषेधयोर्विषयविभागार्थम् ॥

३८७६-देवतावाचक शब्दके द्वन्द्व समासमें पृथिवी, रुद्र, पूष और मन्थि शब्दभिन्न अन्य अनुदात्त स्वर आदिमें है जिसके ऐसा पद परे रहते प्रागुक्त कार्य न हो, यथा-इन्द्राग्निभ्यां कंवृषणः । पृथिव्यादि शब्द अन्तमें होनेपर यथा-(ऋ० ८ । २ । १३) द्यावापृथिवी जनयन् । द्यावा शब्द निपातनसिद्ध आद्युदात्त है, पृथिवी शब्द अन्तोदात्त है, रुद्रसोमौ "रोदेर्णिलुक् च" इस सूत्रसे रक् प्रत्यय हुआ है। इन्द्रापूषणौ। 'श्वन्नुक्षन्पूषन्'इस सूत्रसे पूषन् शब्द अन्तोदात्त निपातित है, शुक्रामन्थिनौ अन्नन्त होनेसे अन्तोदात्त है । उत्तर पदका ग्रहण 'अनुदात्तादौ'इस उत्तर पदका विशेषण हो । द्वन्द्वका विशेषण न हो, इस लिये है । उसी प्रकार इस प्रयोगसे विधि और प्रतिषेध दोनों विषयका ही विभाग हो इस लिये है ॥

३८७७ अन्तः । ६ । २ । १४३ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

३८७७-" अन्तः " यह अधिकारसूत्र है, अर्थात् इस सूत्रसे अन्तोदात्त स्वरका अधिकार चलैगा ॥

३८७८ थाऽथघञ्क्ताऽजऽबित्रकाणाम् । ६ । २ । १४४ ॥

थ अथ घञ् क्त अच् अप् इत्र क एतदन्तानां गतिकारकोपपदात्परेषामन्त उदात्तः । प्रभृथस्यायोः । आवसथः । घञ् । प्रभेदः । क्त । धर्ता वज्री पुरुष्टुतः । पुरुषु बहुप्रदेशेषु स्तुत इति विग्रहः । अच् । प्रक्षयः । अप् । प्रलवः । इत्र । प्रलवित्रम् । क । गोवृषः । मूलविभुजादित्वात्कः । गतिकारकोपपदादित्येव । सुस्तुतं भवता ॥

३८७८-गतिकारक और उपपदके उत्तर स्थित थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र, क शब्द अन्तमें है ऐसे शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-प्रभृथस्यायोः । थ-आवसथः । घञ्-प्रभेदः । क्त-धर्ता वज्री पुरुष्टुतः । पुरुषु अर्थात् बहुप्रदेशेषु स्तुत इस विग्रहमें पुरुष्टुतः पद सिद्ध हुआ है । अच्-प्रक्षयः । अप्-प्रलवः । इत्र-प्रलवित्रम् । क-गोवृषः । इस स्थलमें मूलविभुजादित्वके कारण क प्रत्यय हुआ है । गतिकारकोपपदके उत्तर ही होगा, अन्यत्र नहीं होगा, यथा-सुस्तुतं भवता ॥

३८७९ सूपमानात् क्तः । ६ । २ । १४५ ॥

सोरुपमानाच्च परं क्तान्तमन्तोदात्तम् । ऋतस्य योनौ सुकृतस्य । शशप्लुतः ॥

३८७९-सु शब्द और उपमानवाचक शब्दके उत्तर क्त प्रत्ययान्त पदका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-ऋतस्य योनौ सुकृतस्य, शशप्लुतः । शश इव प्लुतः=शशप्लुतः ॥

३८८० संज्ञायामनाचितादीनाम् । ६ । २ । १४६ ॥

गतिकारकोपपदात् क्तान्तमन्तोदात्तमाचितादीन्वर्जयित्वा । उपहूतः शाकल्यः । परिजग्धः । कौण्डिन्यः । अनेति किम् । आचितम् । आस्थापितम् ॥

३८८०–गतिकारकोपपदके उत्तर क्तप्रत्ययान्त पदका अन्त वर्ण उदात्त हो आचितादि शब्दोंको न हो, यथा–उपहूतः । शाकल्यः । परिजग्धः । कौण्डिन्यः । अनाचितादीनाम् इस पदको सूत्रमें क्यों किया ? आचितम् । आस्थापितम् । यहां भी अन्तोदात्त होजायगा। परिजग्धः=अदको जग्धादेश। आचितम्=चिञ्+क्त । आस्थापितम्=ष्ठा+णिच्+क्त ॥

३८८१ प्रवृद्धादीनां च । ६ ।२।१४७॥

एषां क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तम् । प्रवृद्धः । प्रयुक्तः।असंज्ञार्थोऽयमारम्भः।आकृतिगणोऽयम्॥

३८८१–प्रवृद्धादिशब्दोंके क्त प्रत्ययान्तका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–प्रवृद्धः । प्रयुक्तः । असंज्ञार्थ यह सूत्र है । प्रवृद्धादि आकृतिगण है ॥

३८८२ कारकाद्दत्तश्रुतयोरेवाशिषि। ६ । २ । १४८ ॥

संज्ञायामन्त उदात्तः । देवदत्तः । विष्णुश्रुतः । कारकात्किम् । संभूतो रामायणः । अस्मान्नियमादत्र संज्ञायामनेति न । दत्तश्रुतयोः किम् । देवपालितः । तृतीयाकर्मणीति तु भवति । एव किम् । कारकावधारणं यथा स्याद् दत्तश्रुतावधारणं मा भूत् । अकारकादपि दत्तश्रुतयोरन्त उदात्तो भवति । संश्रुतः । आशिषि किम् । दैवैः खाता देवखाता । आशिष्येवेत्येवमत्रेष्टो नियमः । तेनानाहतो नदति देवदत्त इत्यत्र न । शङ्खविशेषस्य संज्ञेयम् । तृतीयाकर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वमेव भवति।

३८८२–तत्पुरुष समासमें आशीर्वादार्थमें संज्ञा होनेपर कारकके उत्तर दत्त और श्रुत शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–देवदत्तः । विष्णुश्रुतः । कारकके उत्तर न होनेपर यथा–संभूतो रामायणः । दत्त और श्रुत शब्द न होनेपर यथा–देवपालितः। इस नियमके कारण इस स्थलमें "संज्ञायामनाचिता० ३८८० ,, इत्यादि पूर्ववर्त्ती सूत्रसे नहीं होगा । तो " तृतीया कर्म्मणि ३७८२" इस सूत्रसे होगा, एव ग्रहण क्यों किया ऐसा कहो तो कारकावधारण हो, दत्तश्रुतावधारण न हो, इसलिये है । कारक उत्तर न होनेपर भी दत्त और श्रुत शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–संश्रुतः । आशीर्वाद न होनेपर यथा–दैवैः खाता देवखाता । इस स्थलमें आशीर्वादार्थमें ही होगा, ऐसा ही नियम इष्ट अर्थात् अभिप्रेत है, इस कारण अनानाहतो नदति देवदत्तः । इस स्थलमें नहीं हुआ । देवदत्त शब्दसे शंखविशेषकी संज्ञा अर्थात् नाम जानना । " तृतीया कर्म्मणि ३७८२ " इस सूत्रसे पूर्वपद प्रकृतिस्वर ही होता है । देवदत्तः=देवा एनं देयासुरित्येवं प्रार्थितैर्देवैर्दत्तो देवदत्तः "आशिषि लिङ्लोटौ" " क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् " इससे क्त, " दो दद्घोः" इससे दथ्आदेश । विष्णुश्रुतः=विष्णुरेनं श्रूयादित्येवं प्रार्थिते विष्णुना श्रुतः विष्णुश्रुतः ॥

३८८३ इत्थम्भूतेन कृतमिति च । ६ । २ । १४९ ॥

इत्थम्भूतेन कृतमित्येतस्मिन्नर्थे यः समासस्तत्र क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं स्यात् । सुप्तप्रलपितम् । प्रमत्तगीतम् । कृतमिति क्रियासामान्ये करोतिर्नाभूतप्रादुर्भाव एव । तेन प्रलपिताद्यपि कृतं भवति । तृतीया कर्मणीत्यस्यापवादः ॥

३८८३–" इत्थंभूतेन कृतम् " इस अर्थमें जो समास हो, उस समासमें क्तप्रत्ययान्त जो उत्तर पद उसका अन्त वर्ण उदात्त हो, सुप्तप्रलपितम् । प्रमत्तगीतम् । कृत पद क्रियासामान्यमें है, करोति अभूतप्रादुर्भावार्थमें ही नहीं है । इसी कारण प्रलपितादि भी कृत हुए हैं । यह " तृतीया कर्म्मणि (३७८३) " इस सूत्रका अपवाद है ॥

३८८४ अनो भावकर्मवचनः । ६ । २ । १५० ॥

कारकात्परमनप्रत्ययान्तं भाववचनं कर्मवचनं चान्तोदात्तम् । पयःपानं सुखम् । राजभोजनाः शालयः । अनः किम् । हस्तादायः । भेति किम् । दन्तधावनम् । करणे ल्युट् । कारकात्किम् । निदर्शनम् ॥

३८८४–तत्पुरुष समासमें कारकके उत्तर भाववचन और कर्म्मवचन अनप्रत्ययान्त शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–पयःपानम् सुखम् । राजभोजनाः शालयः । अन प्रत्ययान्त न होनेपर यथा–हस्तादायः । भाववचन और कर्मवचन न होनेपर यथा–दन्तधावनम् इस स्थलमें करणमें ल्युट् अर्थात् अन हुआ है । कारकके उत्तर न होनेपर यथा–निदर्शनम् ॥

३८८५ मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासनस्थानयाजकादिक्रीताः ६।२।१५१॥

कारकात्पराणि एतान्युत्तरपदान्यन्तोदात्तानि तत्पुरुषे । कृत्स्वरापवादः । रथवर्त्म । पाणिनिकृतिः । छन्दोव्याख्यानम् । राजशयनम् । राजासनम् । अश्वस्थानम् । ब्राह्मण-

याजकः। गोक्रीतः। कारकात्किम् । प्रभूतौ सङ्गतिम् । अत्र तादौ च नितीति स्वरः ॥

३८८५-तत्पुरुष समासमें कारकके उत्तर मन और क्तिन्प्रत्ययान्त शब्द व्याख्यान, शयन, आसन, स्थान और याजकादि गण और क्रीत शब्दके अन्त वर्णको उदात्त स्वर हो, यह कृत् स्वरका अपवाद है यथा-रथवर्त्म। पाणिनिकृतिः। छन्दोव्याख्यानम् । राजशयनम् । राजासनम् । अश्वस्थानम् । ब्राह्मणयाजकः । गोक्रीतः । कारकके उत्तर न होनेपर यथा-प्रभूतौ सङ्गतिम् । इस स्थलमें " तादौ च निति ३७८४ " इस सूत्रसे प्रकृतिस्वर होगा । व्याख्यानम=करणमें ल्युट् हुआ। कृति+कृ+क्तिन् ॥

३८८६ सप्तम्याः पुण्यम् । ६।२।१५२॥

अन्तोदात्तम् । अध्ययनपुण्यम् । तत्पुरुषे तुल्यार्थे इति प्राप्तम् । सप्तम्याः किम् । वेदेन पुण्यं वेदपुण्यम् ॥

३८८६-सप्तमी तत्पुरुष समासमें पुण्य शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-अध्ययनपुण्यम् (३७३६) की प्राप्ति है, सप्तमी तत्पुरुष न होनेपर यथा-वेदेन पुण्यम्,इस विग्रहमें वेदपुण्यम् ऐसा होगा ॥

३८८७ ऊनार्थकलहं तृतीयायाः । ६ । २ । १५३ ॥

माषोनम् । माषविकलम् । वाक्कलहः । तृतीयापूर्वपदप्रकृतिस्वरापवादोऽयम् । अत्र केचिदर्थेति स्वरूपग्रहणमिच्छन्ति । धान्यार्थः । ऊनशब्देन त्वर्थनिर्देशार्थेन तदर्थानां ग्रहणमिति प्रतिपदोक्तत्वादेव सिद्धे तृतीयाग्रहणं स्पष्टार्थम्॥

३८८७-तृतीयान्तके उत्तर तत्पुरुष समासमें ऊनार्थ शब्द और कलह शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-माषोनम् । माषविकलम् । वाक्कलहः । यह सूत्र तृतीया पूर्वपद प्रकृति स्वरका अपवाद है । इस सूत्रमें कोई २ अर्थ शब्दसे स्वरूप ग्रहण करतेहैं । यथा, धान्यार्थः। ऊन शब्दद्वारा अर्थ निर्देशके कारण तदर्थकका ही ग्रहण होगा । इस सूत्रसे प्रतिपदोक्तत्वके कारण तृतीयान्तके ऊनार्थादि शब्दोंके अन्त वर्ण का उदात्त सिद्ध होनपर सूत्रमें तृतीयाग्रहण स्पष्टार्थ है ॥

३८८८ मिश्रं चानुपसर्गमसन्धौ । ६ । २ । १५४ ॥

पणबन्धेनैकार्थ्यं सन्धिः । तिलमिश्राः । सर्पिर्मिश्राः । मिश्रं किम् । गुडधानाः। अनुपसर्गं किम् । तिलसंमिश्राः । मिश्रग्रहणे सोपसर्गग्रहणस्येदमेव ज्ञापकम् । असन्धौ किम् । ब्राह्मणमिश्रो राजा । ब्राह्मणैः सह संहित ऐकार्थ्यमापन्नः ॥

३८८८-तृतीयान्तके उत्तर संधि अर्थात् पणबन्धद्वारा एकार्थ न होनेपर उपसर्ग पूर्वमें नहीं अर्थात् उपसर्गके उत्तर न होकर अन्य शब्दके उत्तर होनेपर मिश्र शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, (पणबन्धन द्वारा ऐकार्थ्य अर्थात् जो आप मेरा यह कार्य करोगे तो मैं आपका यह कार्य करूंगा यह पणबन्ध है इसको सन्धि कहते हैं) । यथा-तिलमिश्राः(६९३) सर्पिर्मिश्राः । मिश्र होनेपर गुडधानाः (६९७) ऐसा होगा, उपसर्ग होनेपर तिलसंमिश्राः ऐसा होगा । मिश्र शब्दका ग्रहण करनेसे सोपसर्गका भी ग्रहण होताहै । संधि होनेपर यथा-ब्राह्मणमिश्रो राजा ब्राह्मणैः सह संहित ऐकार्थ्यमापन्नः । ब्राह्मणमिश्रो राजा=जो आप मेरा यह कार्य करोगे तो मैं आपका यह कार्य करूंगा इस पणबन्ध करके ब्राह्मणोंके साथ मिलाहुआ दूसरे लोग तो स्वरूपभेदग्रहण करनेको संधि कहते हैं ब्राह्मणमिश्रः इस प्रयोगमें ब्राह्मणोंमें एकीभावको प्राप्त हुआ भी राजा स्वरूपसे जानाजाताहै ॥ गुडमिश्रः इस प्रयोगमें गुडसे एकीभूत होनेसे स्वरूपका भेद न होगा ॥

३८८९ नञो गुणप्रतिषेधे सम्पाद्यर्हहितालमर्थास्तद्धिताः । ६ ।२।१५५॥

सम्पाद्याद्यर्थतद्धितान्तान्नञो गुणप्रतिषेधे वर्तमानात्परेऽन्तोदात्ताः । कर्णवेष्टकाभ्यां संपादि कार्णवेष्टकिकम् । न कार्णवेष्टकिकमकार्णवेष्टकिकम् । छेदमर्हति छैदिकः । न छैदिकोऽच्छैदिकः। न वत्सेभ्यो हितोऽवत्सीयः । न सन्तापाय प्रभवति असन्तापिकः । नञः किम् । गर्दभरथमर्हति गार्दभरथिकः । विगार्दभरथिकः । गुणप्रतिषेधे किम् । गार्दभरथिकादन्योऽगार्दभरथिकः । गुणो हि तद्धितार्थे प्रवृत्तिनिमित्तं सम्पादितत्वाद्युच्यते । तत्प्रतिषेधो यत्रोच्यते तत्रायं विधिः । कर्णवेष्टकाभ्यां न सम्पादि मुखमिति । संपेति किम् । पाणिनीयमधीते पाणिनीयः । न पाणिनीयः अपाणिनीयः । तद्धिताः किम्।वोढुमर्हति वोढा।न वोढाऽवोढा ॥

३८८९-सम्पादिन् अर्थात् सम्पादन, अर्ह अर्थात् योग्यतार्थमें हित और अलमर्थमें विद्यमान जो तद्धितप्रत्ययान्त शब्द वह गुणप्रतिषेधार्थमें वर्तमान जो नञ् उसके उत्तर होनेपर उसका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि कार्णवेष्टकिकम् । न कार्णवेष्टकिकमकार्णवेष्टकिकम् । छेदमर्हति छैदिकः । न छैदिकोऽच्छैदिकः । न वत्सेभ्यो हितोऽवत्सीयः । न संतापाय प्रभवति असन्तापिकः । नञ्के उत्तर न होनेपर गर्दभरथमर्हति गार्दभरथिकः । विगार्दभरथिकः । गुणप्रतिषेध न होनेपर गार्दभरथिकादन्योऽगार्दभरथिकः । सम्पादित्वादि तद्धितार्थमें प्रवृत्ति निमित्त गुण शब्द करके कहा हुआहै । जिस स्थलमें उसका प्रतिषेध होगा उस स्थानमें ही यह विधि जानना चाहिये । कर्णवेष्टकाभ्यां न सम्पादि मुखमिति । [illegible]दित अर्थ न होनेपर यथा-पाणिनीयमधीते

पाणिनीयः। न पाणिनीयः अपाणिनीयः। तद्धितप्रत्ययान्त न होनेपर यथा–वोढुं अर्हति वोढा। न वोढाऽवोढा इत्यादि। वोढा (२८२२) इससे 'तृच्' "सहिवहोरोदवर्णस्य" इससे ओत्॥

३८९० ययतोश्चाऽतदर्थे।६।२।१५६॥

ययतौ यौ तद्धितौ तदन्तस्योत्तरपदस्य नञो गुणप्रतिषेधविषयात्परस्यान्त उदात्तः स्यात्। पाशानां समूहः पाश्या। न पाश्या अपाश्या। अदन्त्यम्। अतदर्थे किम्। अपाद्यम्। तद्धितः किम्। अदेयम्। गुणप्रतिषेधे किम्। दन्त्यादन्यददन्त्यम्। तदनुबन्धग्रहणे नातदनुबन्धकस्येति नेह। अवामदेव्यम्॥

३८९०–य और यत् जो तद्धित तदन्त जो उत्तर पद गुणप्रतिषेधविषयीभूत नञ्के उत्तर उसका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–पाशानां समूहः पाश्या। न पाश्या अपाश्या। अदन्त्यम्। तदर्थ न होनेपर यथा–अपाद्यम्। तद्धित न होनेपर यथा–अदेयम् (२८४२) (२८४३) इत्व होनेसे गुण। गुणप्रतिषेध न होनेपर यथा–दन्त्यादन्यददन्त्यम्। तदनुबन्धक शब्दका ग्रहण करनेसे तदनुबन्धकभिन्नका ग्रहण नहीं होगा, यथा–अवामदेव्यम्॥

३८९१ अच्कावशक्तौ।६।२।१५७॥

अजन्तं कान्तं च नञः परमन्तोदात्तमशक्तौ गम्यायाम्। अपचः। पक्तुमशक्तः। अविलिखः। अशक्तौ किम्। अपचो दीक्षितः। गुणप्रतिषेधे इत्येव। अन्योऽयं पचादपचः॥

३८९१–अशक्ति अर्थ गम्यमान होनेपर नञ्के परे रहते अजन्त और ककारान्त पदका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–अपचः अर्थात् जो व्यक्ति पाककरनेमें शक्त न हो। अविलिखः। अशक्ति न होनेपर यथा–अपचो दीक्षितः। गुणप्रतिषेधमें ही होगा, यथा–अन्योऽयं पचादपचः। अपचः=पचाद्यच्। अपचो दीक्षितः=इसमें दीक्षित शास्त्रसे विरोध होनेके कारण नहीं पकाता न कि अशक्त होनेसे॥

३८९२ आक्रोशे च।६।२।१५८॥

नञः परावच्कावन्तोदात्तावाक्रोशे। अपचो जाल्मः। पक्तुं न शक्नोतीत्येवमाक्रोश्यते। अविक्षिपः॥

३८९२–आक्रोशार्थमें नञ्के उत्तर अजन्त और कान्त शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–अपचो जाल्मः अर्थात् यह व्यक्ति पाक नहीं करसकता इस प्रकार अपमानित होताहै। अविक्षिपः॥

३८९३ संज्ञायाम्।६।२।१५९॥

नञः परमन्तोदात्तं संज्ञायामाक्रोशे। अदेवदत्तः॥

३८९३–आक्रोशार्थमें संज्ञा होनेपर नञ्के उत्तर शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–अदेवदत्तः। देवदत्त होनेपर भी अपने योग्य कर्म नहीं करता यह आक्षेप है॥

३८९४ कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च।६।२।१६०॥

नञः परेऽन्तोदात्ताः स्युः। अकर्तव्यः। उक। अनागामुकः। इष्णुच्। अनलंकरिष्णुः। इष्णुज्ग्रहणे खिष्णुचो ह्यनुबन्धकस्यापि ग्रहणमिकारादेर्विधानसामर्थ्यात्। अनाढ्यम्भविष्णुः। चार्वादिः। अचारुः। असाधुः॥ राजाह्नोश्छन्दसि॥ अराजा। अनहः। भाषायां नञः स्वर एव॥

३८९४–कृत्यप्रत्ययान्त उक प्रत्ययान्त और इष्णुच् प्रत्ययान्त शब्द और चारु आदि गण नञ्के परे रहते अन्तोदात्त हों, यथा, अकर्त्तव्यः। उक यथा–अनागामुकः। इष्णुच्=अनलंकरिष्णुः। इष्णुच् प्रत्ययका ग्रहण करनेसे दो अनुबन्धविशिष्ट खिष्णुच् प्रत्ययका भी ग्रहण होगा, क्यों कि,इकारादि विधान सामर्थ्यसे खिष्णुच् प्रत्ययका भी ग्रहण होगा। अनाढ्यम्भविष्णुः। चार्वादि यथा–अचारुः। असाधुः। 'राजाह्नोश्छन्दसि' इस सूत्रसे अराजा। अनहः। भाषामें नञ्का जो स्वर वही होगा। साधु कृवापाजि० (उण्)॥

३८९५ विभाषा तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु।६।२।१६१॥

तृन्। अकर्त्ता। अन्न। अनन्नम्। अतीक्ष्णम्। अशुचि। पक्षे अव्ययस्वरः॥

३८९५–नञ्के परे रहते तृन्प्रत्ययान्त शब्द अन्न, तीक्ष्ण और शुचि शब्दका अन्त वर्ण विकल्प करके उदात्त हो, यथा–तृन्–अकर्त्ता। अन्न–अनन्नम्। अतीक्ष्णम्। अशुचि। विकल्प पक्षमें अव्ययस्वर होगा॥

३८९६ बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः प्रथमपूरणयोः क्रियागणने।६।२।१६२॥

एभ्योऽनयोरन्त उदात्तः। इदं प्रथममस्य स इदंप्रथमः। एतद्द्वितीयः। तत्पञ्चमः। बहुव्रीहौ किम्। अनेन प्रथम इदंप्रथमः। तृतीयेति योगविभागात्समासः। इदमेतत्तद्भ्यः किम्। यत्प्रथमः। प्रथमपूरणयोः किम्। तानि बहून्यस्य तद्बहुः। क्रियागणने किम्। अयं प्रथमः प्रधानं येषां ते इदंप्रथमाः। द्रव्यगणनमिदम्। गणने किम्। अयं प्रथम एषां ते इदम्प्रथमाः। इदम्प्रधाना इत्यर्थः। उत्तरपदस्य कार्यित्वात्कापि पूर्वमन्तोदात्तम्। इदम्प्रथमकाः॥

बहुव्रीहावित्यधिकारो वनं समास इत्यतः प्राग्बोध्यः ॥

३८९६–क्रियागणनार्थमें बहुव्रीहि समासमें इदम् एतत् और तत् शब्दके उत्तर प्रथम और पूरणवाचक शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–"इदं प्रथममस्य" इस विग्रहमें (गणनामें) सः इदं प्रथमः । एतद्द्वितीयः । तत्पञ्चमः । बहुव्रीहि न होनेपर यथा–अनेन प्रथम इदंप्रथमः । इस स्थलमें, "तृतीया० (६९२)" इस भिन्न सूत्रसे तृतीया-तत्पुरुष समासमें सिद्ध हुआहै । इदम् एतत् और तत् शब्दके उत्तर न होनेपर यथा–यत्प्रथमः । प्रथम और पूरणार्थ न होनेपर यथा–तानि बहूनि अस्य इस विग्रहमें तद्बहुः । क्रियागणन न होनेपर यथा–अयंप्रथमः प्रधानं येषां ते इदंप्रथमाः । यह द्रव्यगणन है, क्रियागणन नहीं है।गणनार्थ न होनेपर यथा-अयं प्रथम एषां ते इदंप्रथमाः।अर्थात् यह व्यक्ति इनका प्रधान है, उत्तर पदके कार्यित्वके कारण "कपि पूर्वम्" इस वक्ष्यमाणसूत्रसे वह अन्तोदात्त होगा, यथा–इदंप्रथमकाः । यहांसे "वनं समासे ३९१२" इस सूत्रतक बहुव्रीहिसमासाधिकार चलेगा ॥

३८९७ संख्यायास्तनः।६।२।१६३॥

बहुव्रीहावन्तोदात्तः । द्विस्तना । चतुःस्तना । संख्यायाः किम् । दर्शनीयस्तना । स्तनः किम् । द्विशिराः ॥

३८९७–बहुव्रीहि समासमें संख्यावाचक शब्दके उत्तर स्तन शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–द्विस्तना । चतुःस्तना । संख्यावाचक न होनेपर यथा–दर्शनीयस्तना । स्तन शब्द न होनेपर यथा–द्विशिराः ॥

३८९८ विभाषा छन्दसि।६।२।१६४॥

द्विस्तनीं करोति वामदेवः । चतुःस्तनां करोति द्यावापृथिव्योर्दोहनाय ॥

३८९८–वेदमें बहुव्रीहि समासमें संख्यावाचक शब्दके उत्तर स्तन शब्दके अन्त वर्णको विकल्प करके उदात्त स्वर हो, यथा–द्विस्तनीं करोति वामदेवः,।चतुःस्तनां करोति द्यावापृथिव्योर्दोहनाय ॥

३८९९ संज्ञायां मित्राजिनयोः । ६।२।१६५॥

देवमित्रः । कृष्णाजिनम् । संज्ञायां किम् । प्रियमित्रः ॥ ऋषिप्रतिषेधोऽत्र मित्रे ॥ * ॥ विश्वामित्र ऋषिः ॥

३८९९बहुव्रीहि समासमें संज्ञा होनेपर उत्तरपद जो मित्र और अजिन शब्द उनका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–देवमित्रः । कृष्णाजिनम् । संज्ञा न होनेपर यथा–प्रियमित्रः ॥

मित्र शब्द परे रहते ऋषि अर्थमें उक्त स्वर नहीं होगा * यथा–विश्वामित्र ऋषिः ॥

३९०० व्यवायिनोऽन्तरम्।६।२।१६६॥

व्यवधानवाचकात्परमन्तरमन्तोदात्तम् । वस्त्रमन्तरं व्यवधायकं यस्य स वस्त्रान्तरः । व्यवधायिनः किम् । आत्मान्तरः । अन्यस्वभाव इत्यर्थः ॥

३९००–बहुव्रीहि समासमें व्यवधानवाचक शब्दके उत्तर शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–वस्त्रमन्तरं व्यवधायकं यस्य इस विग्रहमें वस्त्रान्तरः । व्यवधानवाचक न होनेपर यथा–आत्मान्तरः । अन्यस्वभाव इत्यर्थः ॥

३९०१ मुखं स्वांगम् ।६।२।१६७॥

गौरमुखः । स्वाङ्गं किम् । दीर्घमुखा शाला ॥

३९०१–बहुव्रीहि समासमें स्वाङ्गवाचक उत्तरपद मुख शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–गौरमुखः । स्वाङ्ग न होनेपर, यथा–दीर्घमुखा शाला । अर्थात् चौडेद्वारवाली ॥

३९०२ नाऽव्ययदिक्छब्दगोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः ।६।२।१६८॥

उच्चैर्मुखः । प्राङ्मुखः । गोमुखः । महामुखः।स्थूलमुखः।मुष्टिमुखः।पृथुमुखः।वत्समुखः। पूर्वपदप्रकृतिस्वरोऽत्र । गोमुष्टिवत्सपूर्वपदस्योपमानलक्षणोपि विकल्पोऽनेन बाध्यते ॥

३९०२–बहुव्रीहि समासमें अव्यय शब्द, दिग्वाचक शब्द गो, महत्, स्थूल, मुष्टि, पृथु और वत्स शब्दके उत्तर जो मुख शब्द उसका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा–उच्चैर्मुखः । प्राङ्मुखः । गोमुखः । महामुखः । स्थूलमुखः । मुष्टिमुखः । पृथुमुखः । वत्समुखः । इस स्थलमें पूर्व पदको प्रकृतिस्वर हुआहै । पूर्ववर्त्ती गो, मुष्टि और वत्स शब्दके उपमानलक्षण विहित जो विकल्प वह भी इस सूत्रसे बाधित होताहै । मुष्टिः= मुष्+क्तिच् । पृथुः='प्रथिम्रदिभ्रस्जां संप्रसारणं सलोपश्च ' इससे प्रथसे कु प्रत्यय करके पृथुः । वत्सः=वद+सः। गोमुखः गौर्मुखमिव मुखं यस्य सः ॥

३९०३ निष्ठोपमानादन्यतरस्याम् । ६।२।१६९॥

निष्ठान्तादुपमानवाचिनश्च परं मुखं स्वाङ्गं वाऽन्तोदात्तं बहुव्रीहौ । प्रक्षालितमुखः । पक्षे निष्ठोपसर्गेति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम् । पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेन गतिस्वरोऽपि भवति । उपमानम् । सिंहमुखः ॥

३९०३–बहुव्रीहि समासमें निष्ठाप्रत्ययान्त शब्द और उपमानवाचक शब्दके उत्तर स्वांगवाचक मुख शब्दको विकल्प करके अन्तोदात्त स्वर हो, यथा–प्रक्षालितमुखः । विकल्प पक्षमें " निष्ठोपसर्ग० " इत्यादि सूत्रसे पूर्वपदका अन्त वर्ण उदात्त होगा, पूर्व पदको प्रकृतिस्वरत्वके कारण गतिस्वर भी होगा । उपमान यथा–सिंहमुखः ॥

३९०४ जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात् क्तोऽकृतमितप्रतिपन्नाः । ६ । २ । १७० ॥

सारंगजग्धः । मासजातः । सुखजातः । दुःखजातः । जातिकालेति किम् । पुत्रजातः । अनाच्छादनात्किम् । वस्त्रच्छन्नः । अकृतेति किम् । कुण्डकृतः । कुण्डमितः । कुण्डप्रतिपन्नः। अस्माज्ज्ञापकान्निष्ठान्तस्य परनिपातः ॥

३९०४–बहुव्रीहि समासमें जातिवाचक शब्द कालवाचक शब्द और सुखादि शब्दोंके उत्तर आच्छादनवाचक शब्दके उत्तर न होनेपर क्तप्रत्ययान्त शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, कृत मित और प्रतिपन्न शब्दको न हो, यथा–सारङ्गजग्धः । मासजातः । सुखजातः । दुःखजातः । जाति और काल वाचक शब्दके परे न होनेपर यथा–पुत्रजातः । आच्छादनार्थ शब्दके उत्तर होनेपर यथा–वस्त्रच्छन्नः । कृतादि शब्दोंका यथा–कुण्डकृतः । कुण्डमितः । कुण्डप्रतिपन्नः ऐसे प्रयोगमें निष्ठान्तपद परे रहते अन्तोदात्त विधानसे क्तान्तका परनिपात जानना चाहिये । सारंगजग्धः=सारंगः पक्षिविशेषः स जग्धो भक्षितो येनेति विग्रहः।वस्त्रः=वस्+ष्ट्रन्॥

३९०५ वा जाते । ६ । २ । १७१ ॥

जातिकालसुखादिभ्यः परो जातशब्दो वान्तोदात्तः । दन्तजातः । मासजातः ॥

३९०५–बहुव्रीहि समासमें जातिवाचक और कालवाचक और सुखादि शब्दोंके उत्तर जो जात शब्द वह विकल्प करके अन्तोदात्त हो, यथा–दन्तजातः । मासजातः ॥

३९०६ नञ्सुभ्याम् । ६ । २ । १७२॥

बहुव्रीहावुत्तरपदमन्तोदात्तम् । अव्रीहिः । सुमाषः ॥

३९०६–बहुव्रीहि समासमें नञ् और सु शब्दके उत्तर जो उत्तरपद उसका अन्तवर्ण उदात्त हो, यथा–अव्रीहिः । सुमाषः ॥

३९०७ कपि पूर्वम् । ६ । २ । १७३ ॥

नञ्सुभ्यां परं यदुत्तरपदं तदन्तस्य समासस्य पूर्वमुदात्तं कपि परे । अब्रह्मबन्धुकः । सुकुमारीकः ॥

३९०७–बहुव्रीहि समासमें नञ् और सु शब्दके उत्तर जो उत्तरपद तदन्तसमासका पूर्ववर्ण कप् प्रत्यय परे रहते उदात्त हो, यथा–अब्रह्मबन्धुकः सुकुमारीकः ॥

३९०८ ह्रस्वान्तेऽन्त्यात्पूर्वम् । ६ । २ । १७४ ॥

ह्रस्वान्ते उत्तरपदे समासे चान्त्यात्पूर्वमुदात्तं कपि नञ्सुभ्यां परं बहुव्रीहौ । अव्रीहिकः । सुमाषकः । पूर्वमित्यनुवर्तमाने पुनः पूर्वग्रहणं प्रवृत्तिभेदेन नियमार्थम् । ह्रस्वान्तेन्त्यादेव पूर्वपदमुदात्तं न कपि पूर्वमिति । अज्ञकः । कबन्तस्यैवान्तोदात्तत्वम् ॥

३९०८–बहुव्रीहि समासमें ह्रस्वान्त उत्तरपद परे रहते नञ् और सु शब्दके उत्तर कप् प्रत्यय परे रहते अन्त्यवर्णसे पूर्व वर्ण उदात्त हो, यथा–अव्रीहिकः । सुमाषकः । पूर्वसूत्रसे पूर्वपदकी अनुवृत्ति होसकती है, तथापि पुनर्वार उस शब्दका ग्रहण वाक्यभेदसे नियमार्थ जानना चाहिये एक वाक्यसे । ह्रस्वान्त उत्तरपद परे रहते अन्त्यवर्णसे पूर्व वर्णको उदात्तत्व होगा । द्वितीय वाक्यसे ह्रस्वान्त उत्तर पद परे रहते अन्त्यवर्णसे ही पूर्व वर्ण उदात्त हो, कप् प्रत्यय परे रहते पूर्व वर्ण उदात्त न हो, ऐसा नियम होगा, यथा–अज्ञकः । इस स्थलमें कप् प्रत्ययान्तशब्दका ही अन्तवर्ण उदात्त हुआ ॥

३९०९ बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि । ६ । २ । १७५ ॥

उत्तरपदार्थबहुत्ववाचिनो बहोः परस्य पदस्य नञः परस्येव स्वरः स्यात्। बहुव्रीहिकः । बहुमित्रकः । उत्तरपदेति किम् । बहुषु मानोऽस्य स बहुमानः ॥

३९०९–बहुव्रीहि समासमें उत्तर पदार्थमें बहुत्ववाचक बहु शब्दके परवर्ती पदको नञ्के स्वरके समान स्वर हो, यथा–बहुव्रीहिकः । बहुमित्रकः । उत्तरपदार्थमें बहुत्ववाचक न होनेपर यथा–बहुषु मानोऽस्य स बहुमानः ॥

३९१० न गुणादयोऽवयवाः । ६ । २ । १७६ ॥

अवयववाचिनो बहोः परे गुणादयो नान्तोदात्ता बहुव्रीहौ । बहुगुणा रज्जुः । बह्वक्षरं पदम् । बह्वध्यायः । गुणादिराकृतिगणः । अवयवाः किम् । बहुगुणो द्विजः । अध्ययनश्रुतसदाचारादयो गुणाः ॥

३९१०–बहुव्रीहि समासमें बहु शब्दके उत्तर अवयववाचक गुणादि शब्द अन्तोदात्त न हो, यथा–बहुगुणा रज्जुः । बह्वक्षरं पदम् । बह्वध्यायः । गुणादि आकृतिगण है । अवयववाचक न होनेपर यथा–बहुगुणो द्विजः । गुण शब्दसे अध्ययन श्रुत और सदाचारादि समझना ॥

३९११ उपसर्गात्स्वांगं ध्रुवमपर्शु । ६ । २ । १७७ ॥

प्रपृष्ठः । प्रललाटः । ध्रुवमेकरूपम् । उपसर्गात्किम् । दर्शनीयपृष्ठः । स्वांगं किम् । प्रशाखो वृक्षः । ध्रुवं किम् । उद्बाहुः । अपर्शु किम् । विपर्शुः ॥

३९११-बहुव्रीहि समासमें उपसर्गके उत्तर स्वाङ्गवाचक ध्रुवार्थक शब्दको अन्तोदात्त स्वर, हो, पर्शु शब्दको न हो, यथा-प्रपृष्ठः। प्रललाटः। ध्रुव शब्दसे एकरूप समझना। उपसर्गके उत्तर न होनेपर यथा-दर्शनीयपृष्ठः। स्वाङ्गवाचक न होनेपर यथा-प्रशाखो वृक्षः। ध्रुवार्थ न होनेपर यथा-उद्बाहुः। पर्शु शब्द होनेपर यथा-विपर्शुः॥

३९१२ वनं समासे। ६।२।१७८॥

समासमात्रे उपसर्गादुत्तरपदं वनमन्तोदात्तम्। तस्येदिमे प्रवणे॥

३९१२-समासमात्रमें उपसर्गके उत्तर जो उत्तर पद वन शब्द वह अन्तोदात्त हो, यथा-तस्येदिमे प्रवणे। प्रवण= (प्रनिरन्तः णत्व)॥

३९१३ अन्तः। ६।२।१७९॥

अस्मात्परं वनमन्तोदात्तम् अन्तर्वणो देशः। अनुपसर्गार्थमिदम्॥

३९१३-समासमात्रमें अन्तःशब्दके उत्तर वन शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो, यथा-अन्तर्वणो देशः। यह सूत्र अनुपसर्गार्थ अर्थात् उपसर्ग पूर्वमें न रहते भी अन्तोदात्तार्थ है॥

३९१४ अन्तश्च। ६।२।१८०॥

उपसर्गादन्तःशब्दोन्तोदात्तः। पर्यन्तः। समन्तः॥

३९१४-समासमात्रमें उपसर्गके उत्तर अन्तःशब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-पर्यन्तः। समन्तः॥

३९१५ न निविभ्याम्। ६।२।१८१॥

न्यन्तः। व्यन्तः। पूर्वपदप्रकृतिस्वरे यणि च कृते उदात्तस्वरितयोर्यण इति स्वरितः॥

३९१५-समासमात्रमें नि और वि शब्दके उत्तर अन्तःशब्दका अन्त वर्ण उदात्त न हो, यथा-न्यन्तः। व्यन्तः। पूर्वपदको प्रकृतिस्वर और यण् करनेपर "उदात्तस्वरितयोर्यणः ३६५७" इस सूत्रसे स्वरित होगा॥

३९१६ परेरभितोभावि मण्डलम्। ६।२।१८२॥

परेः परमभित उभयतो भावो यस्यास्ति तत्कूलादि मण्डलं चान्तोदात्तम्। परिकूलम्। परिमण्डलम्॥

३९१६-समासमात्रमें परिशब्दके उत्तर अभितोभाविवाचक मण्डल अन्तोदात्त हो, यथा-परिकूलम्। परिमण्डलम्॥

३९१७ प्रादस्वांगं संज्ञायाम्। ६।२।१८३॥

प्रगृहम्। अस्वांगं किम्। प्रपदम्॥

३९१७-समासमात्रमें संज्ञा होनेपर प्र शब्दके उत्तर अस्वाङ्गवाचक शब्द अन्तोदात्त हो, यथा-प्रगृहम्। स्वाङ्गवाचक होनेपर यथा-प्रपदम्॥

३९१८ निरुदकादीनि च। ६।२।१८४॥

अन्तोदात्तानि। निरुदकम्। निरुपलम्॥

३९१८-समासमात्रमें निरुदकादि शब्दोंका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-निरुदकम्। निरुपलम्॥

३९१९ अभेर्मुखम्। ६।२।१८५॥

अभिमुखम्। उपसर्गात्स्वांगमितिसिद्धे बहुव्रीह्यर्थमध्रुवार्थमस्वांगार्थं च। अभिमुखा शाला॥

३९१९-समासमात्रमें अभिपूर्वक मुख शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-अभिमुखम्। "उपसर्गात्स्वांगम्०" इस सूत्रसे सिद्ध होनेपर भी बहुव्रीहिके निमित्त अध्रुवार्थ और अस्वाङ्गार्थ यह सूत्र जानना चाहिये। अत एव अभिमुखा शाला। इस स्थलमें भी हुआ॥

३९२० अपाच्च। ६।२।१८६॥

अपमुखम्। योगविभाग उत्तरार्थः॥

३९२०-बहुव्रीहि समासमें अपपूर्वक मुख शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-अपमुखम्। उत्तरसूत्रमें अनुवृत्तिके निमित्त भिन्न सूत्र कियाहै॥

३९२१ स्फिगपूतवीणाऽञ्जोऽध्वकुक्षिसीरनामनाम च। ६।२।१८७॥

अपादिमान्यन्तोदात्तानि। अपस्फिगम्। अपपूतम्। अपवीणम्। अञ्जस्। अपाञ्जः। अध्वन्। अपाध्वम्। उपसर्गादध्वन इत्यस्याभावे इदम्। एतदेव च ज्ञापकं समासान्ताऽनित्यत्वे। अपकुक्षि। सीरनाम। अपसीरम्। अपहलम्। नाम। अपनाम॥ स्फिगपूतवीणाकुक्षिग्रहणमबहुव्रीह्यर्थमध्रुवार्थमस्वांगार्थं च॥

३९२१-समासमें अपके उत्तर स्फिग, पूत, वीणा, अञ्जस्, अध्वन्, कुक्षि, सीरनाम और नामन् शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-अपस्फिगम्। अपपूतम्। अपवीणम्। अञ्जस्-अपाञ्जः। अध्वन्-अपाध्वम्। "उपसर्गादध्वनः ९५३" इस सूत्रके अभावमें "स्फिगपूत०" इस सूत्रसे उदात्त होताहै। यह सूत्र समासान्तके अनित्यत्वका ज्ञापक है, अपकुक्षि। सीरनाम अर्थात् हलादिका नाम यथा-अपसीरम्। अपहलम्। नामन् यथा-अपनाम। स्फिग, पूत, वीणा और कुक्षि शब्दका ग्रहण अबहुव्रीह्यर्थ और अध्रुवार्थ और अस्वाङ्गार्थ है॥

३९२२ अधेरुपरिस्थम्। ६।२।१८८॥

अध्यारूढो दन्तोऽधिदन्तः। दन्तस्योपरि जातो दन्तः। उपरिस्थं किम्। अधिकरणम्॥

३९२२-अधिके उत्तर उपरिस्थलवाची अन्तोदात्त हो, यथा-अध्यारूढो दन्तः अधिदन्तः। दन्तके ऊपर उत्पन्न हुए दाँतोंको उपरिस्थ कहतेहैं। उपरिस्थ न होनेपर यथा, अधिकरणम्॥

३९२३ अनोपरमप्रधानकनीयसी । ६ । २ । १८९ ॥

अनोः परमप्रधानवाचि कनीयश्चान्तोदात्तम्। अनुगतो ज्येष्ठमनुज्येष्ठः । पूर्वपदार्थप्रधानः प्रादिसमासः । अनुगतः कनीयाननुकनीयान् । उत्तरपदार्थप्रधानः । प्रधानार्थं च कनीयोग्रहणम् । अप्रेति किम् । अनुगतो ज्येष्ठोऽनुज्येष्ठः ॥

३९२३-अनु शब्दके उत्तर अप्रधानवाचक और कनीयस् शब्द अन्तोदात्त हो, यथा-अनुगतो ज्येष्ठम् अनुज्येष्ठः । इस स्थलमें पूर्व पदार्थ प्रधान और प्रादिसमास हुआहै।अनुगतः कनीयाननुकनीयान् । इस स्थलमें उत्तर पदार्थ प्रधान हुआहै। और इस स्थलमें प्रधानार्थ कनीयस् शब्दका ग्रहण हुआहै । प्रधानवाचक होनेपर यथा--अनुगतो ज्येष्ठोऽनुज्येष्ठः ॥

३९२४ पुरुषश्चाऽन्वादिष्टः ।६।२।१९०॥

अनोः परोऽन्वादिष्टवाची पुरुषोऽन्तोदात्तः । अन्वादिष्टः पुरुषोऽनुपुरुषः । अन्वादिष्टः किम् । अनुगतः पुरुषोऽनुपुरुषः ॥

३९२४-अनु शब्दके उत्तर अन्वादिष्टवाचक पुरुष शब्दका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-अन्वादिष्टः पुरुषोऽनुपुरुषः । अन्वादिष्टवाचक न होनेपर यथा-अनुगतः पुरुषोऽनुपुरुषः । अनु पश्चादादिष्टः कथितः ॥

३९२५ अतेरकृत्पदे । ६ । २ । १९१ ॥

अतेः परमकृदन्तं पदशब्दश्चान्तोदात्तः । अत्यङ्कुशो नागः । अतिपदा गायत्री । अकृत्पदे किम् । अतिकारकः ॥ अतेर्धातुलोप इति वाच्यम् ॥ * ॥ इह मा भूत् । शोभनो गार्ग्योऽतिगार्ग्यः । इह च स्यात् । अतिक्रान्तः कारुमतिकारुकः ॥

३९२५-अति शब्दके उत्तर अकृदन्त अर्थात् कृत्प्रत्यान्त न हो ऐसा जो शब्द और पद शब्द अन्तोदात्त हो, यथा-अत्यंकुशो नागः । अतिपदा गायत्री । अकृदन्त पद होनेपर यथा-अतिकारकः ॥

अतिके उत्तर शब्द धातुका लोप होनेपर अन्तोदात्त हो* इस स्थलमें धातुका लोप नहीं हुआहै । शोभनो गार्ग्योऽतिगार्ग्यः । अतिक्रान्तः कारुमतिकारुकः इस स्थलमें हुआहै । अत्यंकुशः=अंकुशमतिक्रान्तः । अतिकारकः=शोभनः कारकः ॥

३९२६ नेरनिधाने । ६ । २ । १९२ ॥

निधानमप्रकाशता । ततोऽन्यदनिधानं प्रकाशनमित्यर्थः । निमूलम् । न्यक्षम् । अनिधाने किम् । निहितो दण्डो निदण्डः ॥

३९२६-निधान-अप्रकाश।तद्भिन्न अर्थात् प्रकाश अर्थ होनेपर नि शब्दके उत्तर जो उत्तर पद उसका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-निमूलम् । न्यक्षम् । निधानार्थमें यथा-निहितो दण्डो निदण्डः । निर्गतं मूलमस्य, निर्गतं वा मूलम् निमूलम् ॥

३९२७ प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे।६।२।१९३॥

प्रतेः परेंऽश्वादयोऽन्तोदात्ताः । प्रतिगतोंऽशुः प्रत्यंशुः । प्रतिजनः । प्रतिराजा । समासान्तस्यानित्यत्वान्न टच् ॥

३९२७-प्रति शब्दके उत्तर अंशु आदि शब्द अन्तोदात्त हों, यथा-प्रतिगतः-अंशुः प्रत्यंशुः । प्रतिजनः । प्रतिराजा । इस स्थलमें समासान्तके अनित्यत्वके कारण टच् प्रत्यय नहीं हुआ ॥

३९२८ उपाद् द्व्यजजिनमगौरादयः। ६ । २ । १९४ ॥

उपात्परं यद् द्व्यचकमजिनं चान्तोदात्तं तत्पुरुषे गौरादीन्वर्जयित्वा । उपदेवः । उपेन्द्रः। उपाजिनम् । अगौरादयः किम् । उपगौरः । उपतैषः । तत्पुरुषे किम् । उपगतः सोमोऽस्य स उपसोमः ॥

३९२८-तत्पुरुष समासमें उप शब्दके उत्तर जो दोस्वरविशिष्ट शब्द और अजिन शब्द उसका अन्त वर्ण उदात्त हो, गौरादि शब्दोंको न हो, यथा-उपदेवः । उपेन्द्रः । उपाजिनम् । गौरादि होनेपर यथा-उपगौरः । उपतैषः । तत्पुरुष समास न होनेपर यथा-उपगतः सोमोऽस्य स उपसोमः ॥

३९२९ सोरवक्षेपणे । ६ । २ । १९५ ॥

सुप्रत्यवसितः । सुरत्र पूजायामेव । वाक्यार्थस्त्वत्र निन्दा असूयया तथाभिधानात् । सोः किम् । कुब्राह्मणः । अवक्षेपणे किम् । सुवृषणम् ॥

३९२९-अवक्षेपणार्थमें सुके उत्तर जो उत्तरपद उसका अन्त वर्ण उदात्त हो, यथा-सुप्रत्यवसितः । इस स्थलमें सु शब्दसे पूजा समझना, वाक्यार्थ तो यहां निन्दा है, कारण कि, असूयासे निन्दा अभिहित होतीहै । सु शब्दके उत्तर न होनेपर यथा-कुब्राह्मणः । अवक्षेपणार्थ न होनेपर यथा-सुवृषणम् ॥

३९३० विभाषोत्पुच्छे।६ । २।१९६ ॥

तत्पुरुषे । उत्क्रान्तः पुच्छादुत्पुच्छः । यदा तु पुच्छमुदस्यति उत्पुच्छयते एरच् उत्पुच्छस्तदा थाथादिस्वरेण नित्यमन्तोदात्तत्वे प्राप्ते विकल्पोऽयम् । सेयमुभयत्र विभाषा । तत्पुरुषे किम् । उदस्तं पुच्छं येन स उत्पुच्छः ॥

३९३०-उत्पूर्वक पुच्छ शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो विकल्प करके तत्पुरुषमें, यथा-उत्क्रान्तः पुच्छादुत्पुच्छः । जब तो-पुच्छमुदस्यति उत्पुच्छयते, इस विग्रहमें " एरच् ३२३१ " इस सूत्रसे अच् होकर-' उत्पुच्छः ' होगा तब

थाथादि स्वरसे नित्य अन्तोदात्तता प्राप्त होनेपर विकल्प-विधानके निमित्त यह सूत्र है । यह उभयत्र विभाषा है । तत्पुरुष न होनेपर यथा–उदस्तं पुच्छं येन सः=उत्पुच्छः ॥

३९३१ द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ । ६ । २ । १९७ ॥

आभ्यां परेष्वेष्वन्तोदात्तो वा । द्विपाच्चतुष्पाच्च रथाय । त्रिपादूर्ध्वः । द्विदन् । त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिम् । मूर्धन्नित्यकृतसमासान्त एव मूर्धशब्दः । तस्यैतत्प्रयोजनमसत्यपि समासान्ते अन्तोदात्तत्वं यथा स्यात् । एतदेव ज्ञापकमनित्यः समासान्तो भवतीति। यद्यपि च समासन्तः क्रियते तथापि बहुव्रीहिकार्यत्वात्तदेकदेशत्वाच्च समासान्तोदात्तत्वं पक्षे भवत्येव । द्विमूर्धः । त्रिमूर्धः । द्वित्रिभ्यां किम् । कल्याणमूर्धा । बहुव्रीहौ किम् । द्वयोर्मूर्धा द्विमूर्धा ॥

३९३१–बहुव्रीहिसमासमें द्वि और त्रि शब्दके परे पाद, दत् और मूर्द्धन् शब्दको अन्तोदात्तस्वर हो, द्विपाच्चतुष्पाच्च रथाय । त्रिपादूर्ध्वः । द्विदन् । त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिम् । मूर्द्धन् यह अकृतसमासान्तही मूर्ध शब्द है, इसका यह प्रयोजन है कि, समासान्त प्रत्यय न होनेपर भी अन्तोदात्त हो । यही निर्देश ज्ञापन करताहै कि, समासान्तविधि अनित्य होताहै । यद्यपि समासान्त कियाजाताहै तथापि बहुव्रीहिकार्यत्वके कारण और बहुव्रीहिके एकदेशत्वके कारण पक्षमें समासान्तोदात्तत्व होताही है,यथा–द्विमूर्द्धः+त्रिमूर्द्धः।द्वि और त्रिशब्दके उत्तर न होनेपर यथा–कल्याणमूर्द्धा । बहुव्रीहि न होनेपर यथा–द्वयोर्मूर्द्धा=द्विमूर्द्धा ॥

३९३२ सक्थं चाऽक्रान्तात् ।६।२।१९८॥

गौरसक्थः । श्लक्ष्णसक्थः । अक्रान्तात्किम् । चक्रसक्थः । समासान्तस्य षचश्चित्त्वान्नित्यमेवान्तोदात्तत्वं भवति ॥

३९३२–क्रशब्दान्तपदके उत्तर न होनेपर बहुव्रीहिसमासमें सक्थ शब्दका अन्तवर्ण उदात्त हो, यथा–गौरसक्थः । श्लक्ष्णसक्थः । क्रशब्दान्तपदके उत्तर होनेपर यथा–"चक्रसक्थः" । इस स्थलमें समासान्त षच् प्रत्ययके चित्व (च् इत्) के कारण नित्य ही अन्तोदात्तत्व होताहै ॥

३९३३ परादिश्छन्दसि बहुलम् । ६ । २ । १९९ ॥

छन्दसि परस्य सक्थशब्दस्यादिरुदात्तो वा। अजिसक्थमालभेत । अत्र वार्त्तिकम् ॥

परादिश्च परान्तश्च पूर्वान्तश्चापि दृश्यते ॥
पूर्वादयश्च दृश्यन्ते व्यत्ययो बहुलं ततः॥*॥

इति । परादिः । तु विजाता उरुक्षया । परान्तः । नियेन मुष्टिहत्यया । यस्त्रिचक्रः । पूर्वान्तः । विश्वायुर्धेहि ॥

॥ इति समासस्वराः ॥

३९३३–वेदमें परवर्ती सक्थ शब्दका आदिवर्ण विकल्प करके उदात्त हो, यथा–अजिसक्थमालभेत । इस स्थलमें वार्त्तिक ऐसा है, कि–परादि,परान्त पूर्वान्त और पूर्वादि बहुतसे स्थलोंमें उदात्त देखे जातेहैं,परन्तु वह बहुल ग्रहण लभ्य-व्यत्ययसे होताहै । अत एव बहुलग्रहणचरितार्थ हुआ,नहीं तो पूर्वसूत्रसे ही विभाषापदकी अनुवृत्ति करके विकल्प सिद्ध होनेपर बहुलग्रहण व्यर्थ ही होजाता । परादि यथा–भविजाता उरुक्षया । परान्त यथा–नियेन मुष्टिहत्यया । यस्त्रिचक्रः । पूर्वान्त यथा–विश्वायुर्धेहि ॥

इति समासस्वराः ।

३९३४ तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः । ८ । १ । २७ ॥

तिङन्तात्पदाद्गोत्रादीन्यनुदात्तान्येतयोः । पचति गोत्रम् । पचतिपचति गोत्रम् । एवं प्रवचनप्रहसनप्रकथनप्रत्यायनादयः। कुत्सनाभीक्ष्ण्यग्रहणं पाठविशेषणम् । तेनान्यत्रापि गोत्रादिग्रहणे कुत्सनादावेव कार्यं ज्ञेयम् । गोत्रादीति किम् । पचति पापम् । कुत्सेति किम् । खनति गोत्रं समेत्य कूपम् ॥

३९३४–कुत्सन अर्थात् निन्दा और आभीक्ष्ण्य अर्थात् पौनःपुन्य अर्थ होनेपर तिङन्त पदके उत्तर गोत्रादि शब्द अनुदात्त हों । गोत्रादि यथा–गोत्र, ब्रुव, प्रवचन, प्रयतन, पवन, यजन, प्रहसन, प्रकथन, प्रत्यायन, प्रचक्षण, विचक्षण, अवचक्षण, स्वाध्याय, भूयिष्ठ और वानाम । उदाहरण यथा–"पचति गोत्रम् । पचतिपचति गोत्रम्" । इस स्थलमें पौनःपुन्य है अर्थात् विवाहादिमें गोत्र वारंवार सुखी करताहै । इसी प्रकार ब्रुव आदि शब्द अनुदात्त होंगे । कुत्सन और आभीक्ष्ण्य शब्द पाठका विशेषण है। इस कारण अन्य सूत्रमें भी गोत्रादिका ग्रहण करनेसे कुत्सन और आभीक्ष्ण्यार्थमें ही कार्य होगा । गोत्रादिभिन्न शब्द होनेपर "पचति पापम्" इस स्थलमें पाप शब्द क्रियाका विशेषण है, इस कारण अनुदात्त नहीं हुआ । कुत्सनादि अर्थ न होनेपर "खनति गोत्रम् समेत्य कूपम्" अर्थात् गोत्रके सब मिलकर कूप खोदते हैं । इस स्थलमें भी अनुदात्त नहीं हुआ ॥

३९३५ तिङ्ङतिङः । ८ । १ । २८ ॥

अतिङन्तात्पदात्परं तिङन्तं निहन्यते । अग्निमीळे ॥

३९३५–अतिङन्त पदके उत्तर स्थित तिङन्त पद अनुदात्त हो अर्थात् यदि पूर्व पद तिङन्त न हो, तो तत्परवर्ती तिङन्त पद अनुदात्त हो, और यदि पूर्व पद तिङन्त हो, तो परवर्ती तिङन्त पद अनुदात्त न हो, यथा–अग्निमीळे ।

सूत्रमें अतिङ् पदका ग्रहण करना निष्प्रयोजन है, कारण कि, एकवाक्यमें केवल दो तिङन्त पद नहीं रह सकते इस कारण पूर्व पद सुबन्त ही होगा, पूर्वमें तिङन्त पद न होनेपर "पचति भवति" इस स्थलमें पर पद अनुदात्त नहीं हुआ ॥

३९३६ न लुट् । ८ । १ । २९ ॥

लुडन्तं न निहन्यते । श्वःकर्ता ॥

३९३६–ल्युट्विभक्त्यन्त पद अनुदात्त न हो, यहांसे अनुदात्तके निषेधसूत्र हैं यथा–"श्वःकर्ता" । इस स्थलमें एकवचनमें टिका लोप होनेपर उदात्तनिवृत्तिस्वरसे डा प्रत्ययको उदात्त स्वर हुआहै ॥

३९३७ निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेचण्कच्चिद्यत्रयुक्तम् । ८ । १ । ३० ॥

एतैर्निपातैर्युक्तं न निहन्यते । यदग्ने स्यामहं त्वम् । युवां यदीकृथः । कुविदङ्ग आसन् । अचित्तिभिश्चकृमा कच्चित् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति ॥

३९३७–यत्, यदि, हन्त, कुवित्, नेत्, चेत्, चण्, कच्चित् और यत्र इन संपूर्ण निपातोंसे युक्त जो तिङन्तपद वह अनुदात्त न हो, यथा–"यदग्ने स्यामहं त्वम्" । (अस्–विधिलिङ्+अम्=स्याम्) । "युवां यदीकृथः" "कुविदङ्ग आसन्" । "अचित्तिभिश्चकृमा कच्चित्" । इस स्थलमें 'चकृमा' यहां लिट् प्रत्ययस्वरके कारण अन्तोदात्त होताहै । "पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति" यदादि निपातका योग न होनेपर अर्थात् जब यत् आदिकी निपात संज्ञा नहीं है, तब कैसा होगा ? तो यत् कूजति शकटम् ॥

३९३८ नह प्रत्यारम्भे । ८ । १ । ३१ ॥

नहेत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम् । प्रतिषेधयुक्त आरम्भः प्रत्यारम्भः । नह भोक्ष्यसे । प्रत्यारम्भे किम् । नह वै तस्मिन् लोके दक्षिणमिच्छन्ति ॥

३९३८–प्रत्यारम्भ होनेपर नह शब्दसे युक्त जो तिङन्तपद वह अनुदात्त न हो । नह शब्द निपातसमुदाय है, यह निषेधार्थक है । प्रतिषेधयुक्त जो आरम्भ, उसको प्रत्यारम्भ कहतेहैं, यथा–"नह भोक्ष्यसे" प्रत्यारम्भ न होनेपर कैसा होगा ? तो "नह वै तस्मिन् लोके दक्षिणमिच्छन्ति" ॥

३९३९ सत्यं प्रश्ने । ८ । १ । ३२ ॥

सत्ययुक्तं तिङन्तं नानुदात्तं प्रश्ने । सत्यं भोक्ष्यसे । प्रश्ने किम् । सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम ॥

१ यत् आदिका अर्थ यह है, यथा–"यद्यदार्थे च हेतौ च विचारे यदि चेच्चणः । हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः । कच्चित् प्रश्ने नेत्प्रिषेधे प्रशंसायां कुवित्स्मृतम् । "यत्रेत्याधारे" अर्थात् यत्–पदार्थ और हेतुमें, यदि, चेत् और चण–विचारमें, हन्त–हर्ष, अनुकम्पा, वाक्यारम्भ और विषादमें, कच्चित्–प्रश्नमें, निषेधमें, कुवित्–प्रशंसामें तथा यत्र आधार अर्थमें वर्तता है ॥

३९३९–प्रश्न गम्य होनेपर सत्य शब्दसे युक्त जो तिङन्तपद वह अनुदात्त न हो, यथा–"सत्यं भोक्ष्यसे" । प्रश्न गम्य न होनेपर न होगा, यथा–"सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम" ॥

३९४० अङ्गाऽप्रातिलोम्ये । ८ । १ । ३३ ॥

अङ्गेत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम् । अङ्ग कुरु । अप्रातिलोम्ये किम् । अंग कूजसि वृषल इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म । अनभिप्रेतमसौ कुर्वन्प्रातिलोमो भवति ॥

३९४०–अप्रातिलोम्य अर्थात् अभिमतकारित्व होनेपर अङ्ग शब्दसे युक्त तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा–"अंग कुरु" प्रातिलोम्य अर्थात् प्रतिकूलकारित्व होनेपर कैसा होगा ? तो अंग कूजसि वृषल इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म । यह अनभिप्रेत काम करनेसे प्रतिलोम है ॥

३९४१ हि च । ८ । १ । ३४ ॥

हियुक्तं तिङन्तं नानुदात्तम् । आ हि स्मायाति । आ हि रुहन्तम् ॥

३९४१–अप्रातिलोम्यमें हिशब्दयुक्त तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा–आ हि स्मायाति । आ हि रुहन्तम् ॥

३९४२ छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम् । ८ । १ । ३५ ॥

हीत्यनेनयुक्तं साकाङ्क्षमनेकमपि नानुदात्तम् । अनृतं हि मत्तो वदति पाप्मा चैनं पुनाति । तिङन्तद्वयमपि न निहन्यते ॥

३९४२–वेदमें हि शब्दसे युक्त साकाङ्क्ष अर्थात् परस्पर आकांक्षा युक्त अनेक तिङन्तपद भी अनुदात्त न हों । यथा–"अनृतं हि मत्तो वदति पाप्मा चैनं पुनाति" यहां दोनों तिङन्तपद अनुदात्त न हुए ॥

३९४३ यावद्यथाभ्याम् । ८ । १ । ३६ ॥

आभ्यां योगे तिङन्तं नानुदात्तम् । यथा चित्कण्वमावतम् ॥

३९४३–यावत् और यथा शब्दके योगमें तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा–यथा चित्कण्वमावतम् ॥

३९४४ पूजायां नानन्तरम् । ८ । १ । ३७ ॥

यावद्यथाभ्यां युक्तमनन्तरं तिङन्तं पूजायां नानुदात्तम् । यावत्पचति शोभनम् । यथा पचति शोभनम् । पूजायां किम् । यावद्भुङ्क्ते । अनन्तरं किम् । यावद्देवदत्तः पचति शोभनम् । पूर्वेणात्र निघातः प्रतिषिध्यते ॥

३९४४–यदि, यावत् और यथा शब्दसे युक्त तिङन्तपदके मध्यमें अन्य कोई शब्द व्यवधान न हो तो तिङन्तपद पूजामें अनुदात्त न हो, यथा–यावत् पचति शोभनम् । पूजाभिन्नार्थमें यथा–यावद्भुङ्क्ते । अनन्तर अर्थात् अव्यवधान

न होनेपर कैसा होगा ? तो "यावद्देवदत्तः पचति शोभनम्" इस स्थलमें पूर्वसूत्रसे प्राप्त अनुदात्त प्रतिषिद्ध होता है ॥

३९४५ उपसर्गव्यपेतं च । ८ । १ । ३८ ॥

पूर्वेणानन्तरमित्युक्तम् । उपसर्गव्यवधानार्थं वचनम् । यावत्प्रपचति शोभनम् । अनन्तरमित्येव । यावद्देवदत्तः प्रपचति शोभनम् ॥

३९४५-पूजामें यावत् और यथा शब्दसे युक्त और उपसर्गसे व्यवहित जो तिङन्तपद वह अनुदात्त न हो, पूर्व सूत्रसे अव्यवहित तिङन्तपदको अनुदात्तका निषेध होता है । यह सूत्र उपसर्ग व्यवधानमें भी निषेधार्थ है । यथा-यावत् प्रपचाति शोभनम् । यावत् और यथा शब्दसे युक्त अव्यवहित ही सोपसर्ग तिङन्तपदके अनुदात्तका निषेध होगा, इस कारण यहां न हुआ, यथा-यावद्देवदत्तः प्रपचति शोभनम् ॥

३९४६ तुपश्यपश्यताऽहैः पूजायाम् । ८ । १ । ३९ ॥

एभिर्युक्तं तिङन्तं न निहन्यते पूजायाम् । आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ॥

३९४६-पूजामें तु, पश्य, पश्यत और अह शब्दसे युक्त तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा-" आदह स्वधा मनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे" ॥

३९४७ अहो च । ८ । १ । ४० ॥

एतद्योगेनानुदात्तं पूजायाम् । अहो देवदत्तः पचति शोभनम् ॥

३९४७-पूजामें अहो शब्दसे युक्त तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा-" अहो देवदत्तः पचति शोभनम्" । योगविभाग उत्तरार्थ है । नहीं तो तु प्रभृतिके योगमें भी उत्तरसूत्रकी प्रवृत्ति होजाती ॥

३९४८ शेषे विभाषा । ८ । १ । ४१ ॥

अहो इत्यनेन युक्तं तिङन्तं वानुदात्तमपूजायाम् । अहो कटं करिष्यति ॥

३९४८-पूजाभिन्नार्थमें अहो शब्दसे युक्त तिङन्तपद विकल्प करके अनुदात्त हो, यथा-" अहो कटं करिष्यति" ॥

३९४९ पुरा च परीप्सायाम् । ८ । १ । ४२ ॥

पुरेत्यनेन युक्तं वानुदात्तं त्वरायाम् । अधीष्व माणवक पुरा विद्योतते विद्युत् । निकटागामिन्यत्र पुराशब्दः । परीप्सायां किम् । न तेन स्म पुरा धीयते । चिरातीतेऽत्र पुरा ॥

३९४९-परीप्सा अर्थात् त्वरा होनेपर पुरा शब्दसे युक्त तिङन्तपद अनुदात्त विकल्प करके हो, यथा-" अधीष्व माणवक पुरा विद्योतते विद्युत् " अर्थात् शीघ्र पाठ करो बिजली चमकती है। इस स्थलमें पुरा शब्द निकटागामी अर्थमें समझना। परीप्सा न होनेपर यथा-" न तेन स्म पुरा धीयते " इस स्थलमें पुरा शब्दसे चिरातीत काल समझना ॥

३९५० नन्वित्यनुज्ञैषणायाम् । ८ । १ । ४३ ॥

ननु इत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तमनुज्ञाप्रार्थनायाम् । ननु गच्छामि भोः । अनुजानीहि मां गच्छन्तमित्यर्थः । अन्विति किम् । अकार्षीः कटं त्वम् । ननु करोमि । पृष्टप्रतिवचनमेतत् ॥

३९५०-अनुज्ञाकी प्रार्थना होनेपर ननु शब्दसे युक्त तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा-"ननु गच्छामि भोः " अर्थात् मुझको जानेकी अनुमति दो । अनुज्ञा प्रार्थना न होनेपर कैसा होगा ? तो अकार्षीः कटं त्वम् । ननु करोमि, अर्थात् तुमने चटाई बनाया ? महाशय ! बनाता हूं, यह पृष्टप्रतिवचन है ॥

३९५१ किं क्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम् । ८ । १ । ४४ ॥

क्रियाप्रश्ने वर्तमानेन किंशब्देन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम् । किं द्विजः पचत्याहोस्विद्गच्छति । क्रियेति किम् । साधनप्रश्ने मा भूत् । किं भक्तं पचत्यपूपान्वा । प्रश्ने किम् । किं पठति । क्षेपोयम् । अनुपसर्गं किम् । किं प्रपचति उत प्रकरोति । अप्रतिषिद्धं किम् । किं द्विजो न पचति ॥

३९५१-क्रियाप्रश्नमें वर्त्तमान किं शब्दसे युक्त अनुपसर्ग अप्रतिषिद्धार्थक तिङन्तपद अनुदात्त न हो, किं द्विजः पचत्याहोस्विद्गच्छति । क्रियाप्रश्न न होकर साधनप्रश्न होनेपर अनुदात्त न होगा यथा-किं भक्तं पचत्यपूपान्वा । प्रश्नभिन्नमें कैसा होगा ? तो " किं पठति " यह क्षेप अर्थात् निन्दा है । अनुपसर्ग न होनेपर कैसा होगा ? तो किं प्रपचति उत प्रकरोति । अप्रतिषिद्धार्थक न होनेपर यथा-किं द्विजो न पचति ॥

३९५२ लोपे विभाषा । ८ । १ । ४५ ॥

किमोऽप्रयोगे उक्तं वा । देवदत्तः पचत्याहोस्वित्पठति ॥

३९५२-क्रियाप्रश्नमें विद्यमान किं शब्दका लोप अर्थात् प्रयोग न होनेपर अनुपसर्ग अप्रतिषिद्धार्थक तिङन्तपद विकल्प करके अनुदात्त न हो, यथा-देवदत्तः पचत्याहोस्वित्पठति ॥

३९५३ एहिमन्ये प्रहासे लृट् । ८ । १ । ४६ ॥

एहिमन्ये इत्यनेन युक्तं लृडन्तं नानुदात्तं क्रीडायाम् । एहि मन्ये भक्तं भोक्ष्यसे भुक्तं तत्त्वतिथिभिः । प्रहासे किम् । एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति सुष्ठु मन्यसे । गत्यर्थलोटा लृडित्यनेनैव सिद्धे नियमार्थोऽयमारम्भः । एहि-

मन्येयुक्ते प्रहास एव नान्यत्र । एहिं मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये ॥

३९५३–प्रहास अर्थात् क्रीडा होनेपर 'एहिमन्ये' इस पदसे युक्त लृट् प्रत्ययान्तपद अनुदात्त न हो, यथा–एहि मन्ये भक्तं भोक्ष्यसे भुक्तं तत्त्वतिथिभिः । प्रहासे क्यों कहा ? तो "एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति सुष्ठु मन्यसे" यहां न हो "गत्यर्थलोटा लृट्० ३९५८" इस वक्ष्यमाण सूत्रसे सिद्ध होनेपर नियमार्थ इस सूत्रका आरम्भ है कि प्रहासार्थमें ही 'एहि मन्ये' इस पदसे युक्त तिङन्त अनुदात्त न हो, अन्यत्र नहीं, यथा–एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये ॥

३९५४ जात्वपूर्वम् । ८ । १ । ४७ ॥

अविद्यमानपूर्वं यज्जातु तेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम् । जातु भोक्ष्यसे । अपूर्वं किम् । कटं जातु करिष्यसि ॥

३९५४–पूर्वमें कोई पद न हो ऐसे जातु शब्दसे युक्त तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा–जातु भोक्ष्यसे। पूर्वमें कोई पद होनेपर कैसा होगा ? तो कटं जातु करिष्यसि ॥

३९५५ किंवृत्तं च चिदुत्तरम् । ८ । १ । ४८ ॥

अविद्यमानपूर्वं चिदुत्तरं यत्किंवृत्तम् तेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम् । विभक्त्यन्तं डतरडतमान्तं किमो रूपं किंवृत्तम् । कश्चिद्भुंक्ते । कतरश्चित् । कतमश्चिद्वा । चिदुत्तरं किम् । को भुंक्ते । अपूर्वमित्येव । रामः किंचित्पठति ॥

३९५५–पूर्वमें कोई पद न हो और चित् शब्द परे हो ऐसा जो किंवृत्त शब्द उससे युक्त तिङन्तपद अनुदात्त न हो, विभक्त्यन्त, डतर और डतम प्रत्ययान्त किंशब्दके रूपको किंवृत्त कहतेहैं, यथा–कश्चिद्भुंक्ते । कतरश्चित् । कतमश्चिद्वा । चित् शब्द परे न रहते किस प्रकार होगा ? तो को भुंक्ते । पूर्वमें कोई पद न होनेपर ही होगा, इससे "रामः किंचित् पठति" यहां अनुदात्तनिषेध न हुआ ॥

३९५६ आहो उताहो चाऽनन्तरम् । ८ । १ । ४९ ॥

आहो उताहो इत्याभ्यां युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम् । आहो उताहो वा भुंक्ते । अनन्तरमित्येव । शेषे विभाषां वक्ष्यति । अपूर्वेति किम् । देव आहो भुंक्ते ॥

३९५६–पूर्वमें कोई पद न रहते आहो और उताहो इन दो पदोंसे युक्त तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा–आहो उताहो वा भुंक्ते । अनन्तर अर्थात् आहो, उताहो इन दो पदोंको और धातुके मध्यमें व्यवधान न रहनेपर ही अनुदात्त नहीं होगा, कारण कि, शेषमें विकल्प करके कहेंगे। पूर्वमें कोई पद होनेपर कैसा होगा ? तो देव आहो भुंक्ते ॥

३९५७ शेषे विभाषा । ८ । १ । ५० ॥

आभ्यां युक्तं व्यवहितं तिङन्तं वानुदात्तम् । आहो देवः पचति ॥

३९५७–आहो और उताहो इन दो पदोंसे युक्त व्यवहित तिङन्तपद विकल्प करके अनुदात्त हो, यथा–आहो देवः पचति ॥

३९५८ गत्यर्थलोटा लृण्न चेत्कारकं सर्वान्यत् । ८ । १ । ५१ ॥

गत्यर्थानां लोटा युक्तं तिङन्तं नानुदात्तम् यत्रैव कारके लोट् तत्रैव लडपि चेत् । आगच्छ देव ग्रामं द्रक्ष्यसि । उह्यन्तां देवदत्तेन शालयो रामेण भोक्ष्यन्ते । गत्यर्थे किम् । पच देव ओदनं भोक्ष्यसेऽन्नम् । लोटा किम् । आगच्छेदेव ग्रामं द्रक्ष्यस्येनम् । लट् किम् । आगच्छ देव ग्रामं पश्यस्येनम् । न चेदिति किम् । आगच्छ देव ग्रामं पिता ते ओदनं भोक्ष्यते । सर्वं किम् । आगच्छ देव ग्रामं त्वं चाहं च द्रक्ष्याव एनमित्यत्राऽपि निघातनिषेधो यथा स्यात् । यल्लोडन्तस्य कारकं तच्चान्यच्च लडन्तेनोच्यते ॥

३९५८–जिसी कारकमें लोट् हो, यदि उसी कारकमें लृट् भी हो तो गत्यर्थ प्रकृतिक लोडन्तसे युक्त लृट्स्थानिक तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा–आगच्छ देव ग्रामं द्रक्ष्यसि उह्यन्तां देवदत्तेन शालयो रामेण भोक्ष्यन्ते । गत्यर्थ प्रकृतिक लोट् न होनेपर कैसा होगा ? तो पच देव ओदनं भोक्ष्यसेऽन्नम्। लोडन्तसे युक्त न होनेपर आगच्छेदेव ग्रामं द्रक्ष्यस्येनम्। लृट् न होनेपर कैसा होगा ? तो आगच्छ देव ग्रामं पश्यस्येनम् । 'न चेत्' यह क्यों कहा? तो "आगच्छ देव ग्रामं पिता ते ओदनं भोक्ष्यते यहां निषेध न हो । सर्व शब्दका ग्रहण क्यों किया ? तो "आगच्छ देव ग्रामं त्वं चाहं च द्रक्ष्याव एनम्" इस स्थलमें भी निघातस्वरका निषेध हो; यहां लोडन्तका जो कारक वह और अन्यकारक भी लृडन्तसे उक्त होताहै ॥

३९५९ लोट् च । ८ । १ । ५२ ॥

लोडन्तं गत्यर्थलोटा युक्तं नानुदात्तम् । आगच्छ देव ग्रामं पश्य । गत्यर्थेति किम् । पच देवौदनं भुङ्क्ष्वैनम् । लोट् किम् । आगच्छ देव ग्रामं पश्यसि । न चेत्कारकं सर्वान्यदित्येव । आगच्छ देव ग्रामं पश्यत्वेनं रामः । सर्वग्रहणात्त्विह स्यादेव । आगच्छ देव ग्रामं त्वं चाहं च पश्यावः । योगविभाग उत्तरार्थः ॥

३९५९–लोडन्त पद यदि गत्यर्थ प्रकृतिक लोडन्तसे युक्त हो तो अनुदात्त न हो, यथा–आगच्छ देव ग्रामं पश्य । गत्यर्थ प्रकृतिक लोडन्तसे युक्त न होनेपर कैसा होगा ? तो

पच देवौदनं भुङ्क्ष्वैनम् । लोडन्त न होनेपर कैसा होगा ? तो आगच्छ देव ग्रामं पश्यसि । सब कारक अन्द न होनेपर ही होगा, इससे यहां न हुआ, यथा–आगच्छ देव ग्रामं पश्यत्वेनं रामः । सर्व शब्दका ग्रहण करनेसे इस स्थलमें ही होगा, यथा–आगच्छ देव ग्रामं त्वं चाहं च पश्यावः । योगविभाग उत्तरार्थ है ॥

३९६० विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम् । ८ । १ । ५३ ॥

लोडन्तं गत्यर्थलोटा युक्तं तिङन्तं वानुदात्तम्। आगच्छ देव ग्रामं प्रविश । सोपसर्गं किम् । आगच्छ देव ग्रामं पश्य । अनुत्तमं किम् । आगच्छानि देव ग्रामं प्रविशानि ॥

३९६०–गत्यर्थ प्रकृतिक लोडन्तसे युक्त सोपसर्ग अनुत्तम लोडादेशान्तपद विकल्प करके अनुदात्त हो, यथा–आगच्छ देव ग्रामं प्रविश । उपसर्गयुक्त न होनेपर कैसा होगा ? तो आगच्छ देव ग्रामं पश्य । उत्तम संज्ञक लोट्स्थानिकादेश न होनेपर यथा–आगच्छानि देव ग्रामं प्रविशानि ॥

३९६१ हन्त च । ८ । १ । ५४ ॥

हन्तेत्यनेन युक्तमनुत्तमं लोडन्तं वानुदात्तम् । हन्त प्रविश । सोपसर्गमित्येव । हन्त कुरु । निपातैर्यद्यदीति निघातप्रतिषेधः । अनुत्तमं किम् । हन्त प्रभुनजावहै ॥

३९६१–हन्त शब्दसे युक्त उपसर्गपूर्वक उत्तमभिन्न लोडादेशान्त पद विकल्प करके अनुदात्त हो, यथा–हन्त प्रविश । उपसर्गपूर्वक न होनेपर न होगा, यथा–"हन्त कुरु" यहां "निपातैर्यद्यदि३९३७" इस सूत्रसे निघातस्वरका निषेध हुआ। उत्तम पुरुषमें कैसा होगा ? तो "हन्त प्रभुनजावहै" यह भुज् धातुके उत्तर लोट्, "भुजोऽनवने" इस सूत्रसे आत्मनेपद हुआहै ॥

३९६२ आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके । ८ । १ । ५५ ॥

आमः परमेकपदान्तरितमामन्त्रितं नानुदात्तम् । आम् पचसि देवदत्त ३ । एकान्तरं किम् । आम् प्रपचसि देवदत्त ३ । आमन्त्रितं किम् । आम् पचति देवदत्तः । अनन्तिके किम् । आम् पचसि देवदत्त ॥

३९६२–आम्से परे एकपदसे व्यवहित आमंत्रितपद अनुदात्त न हो समीप गम्य न होनेपर यथा–आम् पचसि देवदत्त ३ । एकान्तर न होनेपर–आम् प्रपचसि देवदत्त ३ आमंत्रितपद न होनेपर कैसा होगा? तो आम् पचति देवदत्तः अन्तिक गम्य होनेपर यथा–आम् पचसि देवदत्त ॥

३९६३ यद्धितुपरं छन्दसि । ८ । १ । ५६ ॥

तिङन्तं नानुदात्तम् । उदसृजो यदङ्गिरः । उशन्ति हि । आख्यास्यामि तु ते । निपातैर्यदिति हि चेति तु पश्येति च सिद्धे नियमार्थमिदम् । एतैरेव परभूतैर्योगे नान्यैरिति । जायेस्वारोहावेहि । एहीति गत्यर्थलोटा युक्तस्य लोडन्तस्य निघातो भवति ॥

३९६३–वेदमें यत् हि और तु शब्द परे रहते तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा–उदसृजो यदङ्गिरः । उशन्ति हि । आख्यास्यामि तु ते । "निपातैर्यत्० ३९३७, हि च३९४१" और "तु पश्य० ३९४६" इन तीन सूत्रोंसे पूर्वोक्त कार्य्यकी सिद्धि होनेपर यह सूत्र नियमार्थ है कि, परस्थित यही संपूर्ण शब्दके योगमें अनुदात्तका निषेध हो अन्यशब्दके योगमें नहीं, इससे "जायेस्वारोहावेहि" इस स्थलमें गत्यर्थक इण् धातु प्रकृतिक लोडन्तसे युक्त लोडन्त रोहाव पदको "लोट् च" से प्राप्त निघातस्वरका प्रतिषेध न हुआ ॥

३९६४ चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेष्वगतेः । ८ । १ । ५७ ॥

एषु षट्सु परतस्तिङन्तं नानुदात्तम् । देवः पचति चन । देवः पचति चित् । देवः पचतीव । देवः पचति गोत्रम् । देवः पचतिकल्पम् । देवः पचतिपचति । अगतेः किम् । देवः प्रपचति चन ॥

३९६४–गतिसंज्ञकसे परे न होनेपर चन, चित्, इव, गोत्रादि तद्धित प्रत्यय और आम्रेडित संज्ञक शब्द परे रहते तिङन्तपद अनुदात्त न हो, यथा–देवः पचति चन । देवः पचति चित् । देवः पचतीव । देवः पचति गोत्रम् । देवः पचतिकल्पम् । देवः पचतिपचति । गतिसंज्ञकसे परे होनेपर यथा–देवः प्रपचति चन ॥

३९६५ चादिषु च । ८ । १ । ५८ ॥

चवाहाहैवेषु परेषु तिङन्तं नानुदात्तम् । देवः पचति च खादति च । अगतेरित्येव । देवः प्रपचति च प्रखादति च । प्रथमस्य चवायोग इति निघातः प्रतिषिध्यते द्वितीयं तु निहन्यत एव ॥

३९६५–गतिसंज्ञकसे परे न होनेपर च, वा, ह, अह, एव इतने शब्द परे रहते तिङन्तपद अनुदात्त न हो, "देवः पचति च खादति च" इस स्थलमें "चवायोगे०३९६६" इस सूत्रसे प्रथमतिङन्तपदको निघातस्वर प्रतिषिद्ध होताहै, दूसरेको तो निघातस्वर होहीगा ॥

३९६६ चवायोगे प्रथमा । ८ । १ । ५९ ॥

चवेत्याभ्यां योगे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता । गाश्च चारयति वीणां वा वादयति । इतो वा सातिमीमहे । उत्तरवाक्ययोरनुषज्जनीयतिङन्तापेक्षयेयं प्राथमिकी । योगे किम् ।

पूर्वभूतयोरपि योगे निघातार्थम्। प्रथमाग्रहणं द्वितीयादेस्तिङन्तस्य मा भूत् ॥

३९६६–च, वा इन दो निपातोंके योगमें प्रथमा तिङ्विभक्ति अनुदात्त न हो, गाश्च चारयति वीणां वा वादयति। इतो वा सातिमीमहे। यहां उत्तरके दोनों वाक्योंमें अर्थात् देवो वा पार्थिवादधि, इन्द्रं महो वा रजसः इन दोनों वाक्योंमें अनुषञ्जनीय तिङन्तकी अपेक्षासे यह तिङ्विभक्ति प्राथमिकी है। योगग्रहण क्यों किया ? तो पूर्वस्थित भी उन दोनोंके योगमें निघातस्वर हो। प्रथमा शब्दका ग्रहण द्वितीयादि तिङन्तके अनुदात्तका निषेध न हो, इसके निमित्त है ॥

३९६७ हेति क्षियायाम् ।८।१।६०॥

हयुक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता धर्मव्यतिक्रमे। स्वयं ह रथेन याति ३। उपाध्यायं पदातिं गमयति। क्षियाशीरिति प्लुतः ॥

३९६७–धर्मव्यतिक्रममें ह युक्त प्रथमा तिङ्विभक्ति अनुदात्त न हो, यथा–स्वयं ह रथेन याति ३। उपाध्यायं पदातिं गमयति। "क्षियाशीः ३६३०" इससे प्लुत हुआ है। शिष्यका रथमें बैठकर जाना उपाध्यायका पैदल जाना आचारविरुद्ध है ॥

३९६८ अहेति विनियोगे च।८।१।६१॥

अहयुक्ता प्रथमा तिङ्भक्तिर्नानुदात्ता नानाप्रयोजने नियोगे क्षियायां च। त्वमह ग्रामं गच्छ। त्वमह रथेनारण्यं गच्छ। क्षियायां स्वयमह रथेन याति ३। उपाध्यायं पदातिं नयति ॥

३९६८–नानाप्रयोजनक नियोग और क्षिया अर्थात् धर्मव्यतिक्रमार्थमें अहयुक्त प्रथमा तिङ्विभक्ति अनुदात्त न हो, यथा–त्वमह ग्रामं गच्छ। त्वमह रथेनारण्यं गच्छ। क्षियामें यथा–स्वयमह रथेन याति ३। उपाध्यायं पदातिं नयति ॥

३९६९ चाहलोप एवेत्यवधारणम्। ८।१।६२॥

च अह एतयोर्लोपे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता। देव एव ग्रामं गच्छतु। देव एवारण्यं गच्छतु। ग्राममरण्यं च गच्छत्वित्यर्थः। देव एव ग्रामं गच्छतु। राम एवारण्यं गच्छतु। ग्रामं केवलमरण्यं केवलं गच्छत्वित्यर्थः। इहाहलोपः स च केवलार्थः। अवधारणं किम्। देव क्व भोक्ष्यसे। न क्वचिदित्यर्थः। अनवक्लृप्तावेव ॥

३९६९–अवधारणार्थक एव शब्दप्रयोगमें च और अह यह दोनों निपातका लोप होनेपर प्रथमा तिङ्विभक्ति अनुदात्त न हो, यथा–देव एव ग्रामं गच्छतु। देव एवारण्यं गच्छतु अर्थात् ग्राम और अरण्यको जायँ। देव एव ग्रामं गच्छतु। राम एवारण्यं गच्छतु। अर्थात् केवल ग्राम और केवल अरण्यको जायँ। इस स्थलमें अह शब्दका लोप है, वह केवलार्थक है। अवधारणार्थ न होनेपर कैसा होगा ? तो देव क्व भोक्ष्यसे, अर्थात् देव कहां भोजन करोगे ? कहीं नहीं। इस स्थलमें अनवक्लृप्ति अर्थमें एव शब्द प्रयुक्त है ॥

३९७० चादिलोपे विभाषा ।८।१।६३॥

चवाहाहैवानां लोपे प्रथमातिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता। चलोपे। इन्द्र वाजेषु नोऽव। शुक्ला व्रीहयो भवन्ति। श्वेता गा आज्याय दुहन्ति। वालोपे। व्रीहिभिर्यजेत। यवैर्यजेत ॥

३९७०–च, वा, ह, अह और एव शब्दके लोपमें प्रथमा तिङ्विभक्ति विकल्प करके अनुदात्त न हो, चलोपमें यथा–इन्द्र वाजेषु नोऽव। शुक्ला व्रीहयो भवन्ति। श्वेता गा आज्याय दुहन्ति। वा शब्दका लोप होनेपर यथा–व्रीहिभिर्यजेत। यवैर्यजेत ॥

३९७१ वैवावेति च च्छन्दसि।८।१।६४॥

अहवै देवानामासीत्। अयं वाव हस्त आसीत् ॥

३९७१–वेदमें वै और वाव शब्दके योगमें प्रथमा तिङ्विभक्ति विकल्प करके अनुदात्त न हो, यथा–अहवै देवानामासीत्। अयं वाव हस्त आसीत् ॥

३९७२ एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम्। ८। १। ६५॥

आभ्यां युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता छन्दसि। अजामेकां जिन्वति। प्रजामेकां रक्षति। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति। समर्थाभ्यां किम्। एको देवानुपातिष्ठत्। एक इति संख्यापरं नान्यार्थम् ॥

३९७२–वेदमें तुल्यार्थवाचक एक और अन्य शब्दोंके योगमें प्रथम तिङन्त पद विकल्प करके अनुदात्त न हों, यथा–"अजामेकां जिन्वति"। "प्रजामेकां रक्षति"। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति (ऋ० २। ३। १७) समर्थन होनेपर यथा–"एको देवानुपातिष्ठत्"। इस स्थलमें एक शब्द संख्यावाचक है। अन्यार्थक नहीं है। जिन्वति= जिवि=इदित् होनेसे नुम्, लट्, तिप्, शप् ॥

३९७३ यद्वृत्तान्नित्यम्। ८। १।६६॥

यत्र पदे यच्छब्दस्ततः परं तिङन्तं नानुदात्तम्। यो भुङ्क्ते। यद्वयङ्गायुर्वाति। अत्र व्यवहिते कार्यमिष्यते ॥

३९७३–जिस पदमें यद् शब्द है उसके उत्तर तिङन्त पद अनुदात्त न हो, यथा–यो भुङ्क्ते। यद्वयङ्गायुर्वाति। इस स्थलमें यत् पदके और तिङन्त पदके मध्यमें कोई

पदका व्यवधान रहते अनुदात्त इष्ट है। यद्र्यङ् यद्+अञ्च्+क्विन् " विष्वग्देवयोश्च " इससे टिको अद्रि आदेश हुआ ॥

३९७४ पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः ।८।१।६७॥

पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्यः पूजितवचनमनुदात्तम् । काष्ठाध्यापकः । मलोपश्च वक्तव्यः ॥*॥ दारुणाध्यापकः । अज्ञाताध्यापकः ॥ समासान्तोदात्तत्वापवादः । एतत्समास इष्यते ॥ नेह। दारुणमध्यापक इति वृत्तिमतम् । पूजनादित्येव पूजितग्रहणे सिद्धे पूजितग्रहणमनन्तरपूजितलाभार्थम् । एतदेव ज्ञापकमत्र प्रकरणे पञ्चमीनिर्देशेपि नानन्तर्यमाश्रीयत इति ॥

३९७४-पूजनार्थक काष्ठादि शब्दोंके उत्तर पूजितवाचक शब्द अनुदात्त हो, यथा-काष्ठाध्यापकः मकारका लोप हो * दारुणाध्यापकः । अज्ञाताध्यापकः । यह समासान्तोदात्तका अपवाद है । यह समासमें ही होगा । दारुणमध्यापकः इस स्थलमें नहीं होगा,यह वृत्तिकारका अभिप्राय है । "पूजनात्" इस पदके द्वारा पूजित शब्दका ग्रहण होजाता, फिर किस कारण पुनर्वार पूजितग्रहण किया ? अनन्तर पूजित शब्दकी प्राप्तिके निमित्त ऐसा ग्रहण किया है । यह ज्ञापक है कि, इस प्रकरणमें पञ्चमी निर्देश रहते भी आनन्तर्य्य आश्रित नहीं होगा । काष्ठादि शब्द यथा-काष्ठ, दारुण, कल्याण, अनुक्त, इत्यादि हैं ॥

३९७५ सगतिरपि तिङ् ।८।१।६८॥

पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्यस्तिङन्तं पूजितमनुदात्तम् । यत्काष्ठं प्रपचति । तिङ्ङतिङः इति निघातस्य निपातैर्यदिति निषेधे प्राप्ते विधिरयम्। सगतिग्रहणाच्च गतिरपि निहन्यते ॥ गतिग्रहणे उपसर्गग्रहणमिष्यते ॥ * ॥ नेह । यत्काष्ठं शुक्लीकरोति ॥

३९७५-पूजनार्थक काष्ठादि शब्दोंके उत्तर गतिसहित तिङन्त पूजित पद अनुदात्त हो, यथा-यत्काष्ठं प्रपचति । " तिङ्ङतिङः (३९३५)" इस सूत्रसे विहित निघात स्वरको " निपातैर्यत्० (३९३७) " इस सूत्रसे निषेधकी प्राप्ति होनेपर यह विधि जानना चाहिये । सगति पदका ग्रहण करनेसे केवल गतिसंज्ञकको भी निघात स्वर हो।

गति शब्दका ग्रहण करनेसे उपसर्गका ग्रहण इष्ट है*अत एव " यत्काष्ठं शुक्ली करोति " इस स्थलमें अनुदात्त नहीं हुआ । जिस स्थलमें तुल्य योगमें सह शब्द है उस स्थलमें दोनोंको ही कार्य होता है, यथा-सपुत्रो भोज्यताम् । ऐसा कहनेसे पिता और पुत्र दोनोंका भोजन समझना । अपि शब्दका ग्रहण करनेसे जिस स्थलमें गति संज्ञकका योग नहीं होगा, उस स्थलमें केवल तिङन्तको ही होगा । गतिसंज्ञक शब्दका प्रयोग होनेपर दोनोंके साथ ही होगा । तिङ्ग्रहणसे पूर्वयोगका अतिङ्विषयत्व ज्ञापित होता है ॥

३९७६ कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ ।८।१।६९॥

कुत्सने च सुबन्ते परे सगतिरगतिरपि तिङनुदात्तः । पचति पूति । प्रपचति पूति । पचति मिथ्या । कुत्सने किम् । प्रपचति शोभनम् । सुपि किम् । पचति क्लिश्नाति । अगोत्रादौ किम् । पचति गोत्रम् ॥ क्रियाकुत्सन इति वाच्यम्॥*॥ कर्तुः कुत्सने मा भूत् । पचति पूतिर्देवदत्तः ॥ पूति श्चानुबन्ध इति वाच्यम् ॥ * ॥ तेनायं चकारानुबन्धत्वादन्तोदात्तः ॥ बावह्वर्थमनुदात्तमिति वाच्यम् ॥ * ॥ पचन्तिपूति ॥

३९७६-कुत्सनार्थ गोत्रादिभिन्न सुबन्त पद परे रहते सगति और अगति अर्थात् गतिसंज्ञक शब्द करके युक्त अथवा अयुक्त जो तिङन्त पद वह अनुदात्त हो, यथा-पचति पूति । प्रपचति पूति । पचति मिथ्या । प्रपचति मिथ्या । कुत्सनार्थ न होनेपर प्रपचति शोभनम् । सुबन्त पद परे न होनेपर पचति क्लिश्नाति । गोत्रादि होनेपर पचति गोत्रम् ।

क्रियाके कुत्सन अर्थमें तिङन्त अनुदात्त हो, ऐसा कहना चाहिये * कर्त्ताके कुत्सन अर्थ होनेपर नहीं होगा । यथा-" पचति पूतिर्देवदत्तः " ।

अनुबन्धसहित पूति शब्द रहते तिङन्त अनुदात्त हो ऐसा कहना चाहिये* चकारानुबन्धसे यह अन्तोदात्त है, तिबन्त पूति शब्द आद्युदात्त है अत एव चकारानुबन्धत्वके कारण वह अन्तोदात्त होगा ।

बहुवचनान्त तिङन्त पद विकल्प करके अनुदात्त हो * जब तिङन्तको निघात स्वर हो, तबपूति शब्द अन्तोदात्त है अन्य स्थलमें आद्युदात्त है, यथा-पचन्ति पूति ॥

३९७७ गतिर्गतौ ।८।१।७०॥

अनुदात्तः । अभ्युद्धरति । गतिः । किम् । दत्तः पचति । गतौ किम् । आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ॥

३९७७-गतिसंज्ञक परे रहते गतिसंज्ञक अनुदात्त हो । यथा-अभ्युद्धराति । गतिसंज्ञक न होनेपर यथा-दत्तः पचति । गति परे न रहते यथा-" आमन्द्रैरिन्द्र " । हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ॥

३९७८ तिङि चोदात्तवति ।८।१।७१॥

गतिरनुदात्तः यत्प्रपचति । तिङ्ग्रहणमुदात्तवतः परिमाणार्थम् । अन्यथा हि यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रत्येव गतिस्तत्र धातावेवोदात्तवति स्यात् प्रत्यये न स्यात् । उदात्तवति किम् । प्रपचति ॥

॥ इति तिङन्तस्वराः ॥

३९७८-उदात्त स्वर विशिष्ट तिङन्त पद परे रहते गतिसंज्ञक शब्द उदात्त हो, यह सूत्र " निपाता आद्युदात्ताः "

इस सूत्रका अपवाद है । यथा–यत्प्रपचति "निपातैर्यद्यदि०" इस सूत्रसे निघात स्वरके प्रतिषेधके कारण तिङन्त पदको उदात्त स्वर होगा। उदात्त विशिष्टके परिमाणार्थ तिङ् शब्दका ग्रहण हुआ है । अन्यथा 'यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञा' इस वचनबलसे उदात्त स्वर विशिष्ट धातु परे रहते गतिसंज्ञक उदात्त होंगे, उदात्त स्वर विशिष्ट प्रत्यय परे रहते न होंगे, उदात्त स्वर न होनेपर यथा–प्रपचति ॥

इति तिङन्तस्वर प्रकरणम् ।

अथ वैदिकवाक्येषु स्वरसञ्चारप्रकारः कथ्यते । अग्निमीळ इति प्रथमा ऋक् । तत्राग्निशब्दोऽव्युत्पत्तिपक्षे फिष इत्यन्तोदात्त इति माधवः । वस्तुतस्तु घृतादित्वात् । व्युत्पत्तौ तु निप्रत्ययस्वरेण । अम् सुप्त्वादनुदात्तः । अमि पूर्व इत्येकादेशस्त्वेकादेश उदात्तेनेत्युदात्तः । ईळे । तिङ्ङतिङ इति निघातः । संहितायां तूदात्तादनुदात्तस्येतीकारः स्वरितः । स्वरितात्संहितायामिति ळे इत्यस्य प्रचयापरपर्याया एकश्रुतिः। पुरःशब्दोन्तोदात्तः पूर्वाधरावराणामित्यसिप्रत्ययस्वरात् । हितशब्दोपि धाञो निष्ठायां दधातेर्हिरिति ह्यादेशे प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः । पुरोऽव्ययमिति गतिसंज्ञायां कुगतीति समासे समासान्तोदात्तेतत्पुरुषे तुल्यार्थेत्यव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरे गतिकारकोपपदात्कृदिति कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरे थाथादिस्वरे च पूर्वपूर्वोपमर्देन प्राप्ते गतिरनन्तर इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः । पुरःशब्दोकारस्य संहितायां प्रचये प्राप्ते उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर इत्यनुदात्ततरः । यज्ञस्य । नङः प्रत्ययस्वरः । विभक्तेः सुप्त्वादनुदात्तत्वे स्वरितत्वम् । देवम् । पचाद्यच् । फिट्स्वरेण प्रत्ययस्वरेण चित्स्वरेण वान्तोदात्तः । ऋत्विक्छब्दः कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तः । होतृशब्दस्तृन्प्रत्ययान्तो नित्स्वरेणाद्युदात्तः । रत्नशब्दो नब्विषयस्येत्याद्युदात्तः । रत्नानि दधातीति रत्नधाः । समासस्वरेण कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण वान्तोदात्तः । तमपः पित्त्वादनुदात्तत्वे स्वरितप्रचयावित्यादि यथाशास्त्रमुन्नेयम् ॥

इत्थं वैदिकशब्दानां दिङ्मात्रमिह दर्शितम् ॥
तदस्तु प्रीतये श्रीमद्भवानीविश्वनाथयोः ॥१॥

इति सिद्धान्तकौमुद्यां श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचितायां वैदिकस्वरप्रक्रिया ॥

अब वैदिक प्रकरणमें स्वरसमूहकी संचारप्रणाली कही जातीहै । अग्निमीळेपुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम्" यह ऋग्वेदका प्रथम ऋक् अर्थात् मंत्र है । इस स्थानमें अग्नि शब्द अव्युत्पत्ति पक्षमें "फिष०" इस सूत्रसे अन्तोदात्त होगा, यह माधव कहतेहैं । वास्तवमें घृतादित्वके कारण अन्तोदात्त है किन्तु व्युत्पत्तिविषयमें नि प्रत्ययस्वरसे अम् सुप् होनेके कारण अनुदात्त है । "अमि पूर्वः" इस सूत्रसे एकादेश तो "एकादेश उदात्तेन० ३६५८" इस सूत्रसे उदात्त स्वर हुआ । ईळे[1] इससे "तिङ्ङतिङः ३९३५" इस सूत्रसे निघात हुआ । किन्तु संहितामें "उदात्तानुदात्तस्य० (३६६०)" अर्थात् उदात्तके परे अनुदात्त स्वरित हो, इस सूत्रसे ईकारको स्वरित स्वर हुआ । "स्वरितात्संहितायाम् ३६६८" इस सूत्रसे "ळे" इस भागको प्रचयापरपर्य्याय एकश्रुतिस्वर हुआ । पुरः शब्द अन्तोदात्त है "पूर्वाधरावरा०" इस सूत्रसे जो असि प्रत्यय हुआहै उसके स्वरसे इस स्थलमें पुरः शब्द अन्तोदात्त है । हित शब्द धा धातुके उत्तर क्त प्रत्यय और धातुके स्थानमें हि आदेश करके निष्पन्न हुआहै । यह प्रत्यय स्वरसे अन्तोदात्त है । "पुरोऽव्ययम् (७६८)" इस सूत्रसे गतिसंज्ञा सिद्ध होनेपर और "कुगति० ७६१" इस सूत्रसे समास होनेपर समासान्तोदात्त और "तत्पुरुषे तुल्यार्थ० ३७३६" इस सूत्रसे अव्यय पूर्वपद प्रकृतिस्वर "गतिकारकोपपदात्कृत् ३८७३" इस सूत्रसे कृदुत्तर पद प्रकृतिस्वर और थाथादिस्वर पूर्वपूर्वके उपमर्द्दद्वारा प्राप्त होनेपर "गतिरनन्तरः ३७८३" इस सूत्रसे पूर्वपद प्रकृतिस्वर हुआ । पुरःशब्दोकारके संहिता होनेपर प्रचय प्राप्त होनेपर "उदात्त स्वरित परस्य सन्नतरः ३६६९" इस सूत्रसे अनुदात्ततर स्वर होता है । यज्ञस्य । इस पदके नङ्को प्रत्ययस्वर हुआ । विभक्तिको सुप्त्वके कारण अनुदात्तत्व होनेपर स्वरित हुआ । देवम् । इस स्थलमें पचादित्वके कारण अच्, फिट्स्वर, प्रत्ययस्वर, और चित्स्वरद्वारा अन्तोदात्त है । ऋत्विक् शब्द कृदुत्तरपद प्रकृतिस्वरसे अन्तोदात्त है । होतृ शब्द तृन्प्रत्ययान्त है, यह नित्स्वरसे आद्युदात्त है । रत्न शब्द "नब्विषयस्य २६" इस सूत्रसे आद्युदात्त है । रत्नानि दधाति इस विग्रहमें रत्नधाः। समासस्वरसे अथवा कृदुत्तर पद प्रकृतिस्वरसे अन्तोदात्त है । तमप्का पकार इत्संज्ञक होनेके कारण अनुदात्त होनेपर स्वरित और प्रचय इत्यादि यथाशास्त्र जानने, इस प्रकारसे वैदिक प्रयोगोंके समूहोंका सम्पूर्णांश दिखाया गया ॥

इति श्रीमत्कान्यकुब्जवंशोद्भवपण्डितसुखानन्दमिश्रात्मज–ज्वालाप्रसादमिश्रकृत–भाषाटीकायां सिद्धान्तकौमुद्यां स्वरप्रकरणं समाप्तम् ॥

---

१ ईळे–ईड स्तुतौ लट् उत्तम पुरुषका एकवचन इट् टिको एत्व । 'द्वयोश्चास्यस्वरयोः' इस प्रातिशाख्य सूत्रसे ळः, यज्ञस्य=यज इसको "यजयाच०" इससे नङ् । ऋत्विजम्=ऋतु+यज+क्विन्, "वचिस्वपि०" इससे सम्प्रसारण, "नब्विषयस्य०," इससे इसन्त वर्जित नित्य नपुंसकको आदि उदात्त होताहै ॥

लिङ्गानुशासनम्।

अथ स्त्र्यधिकारः।

१ 'लिङ्गम्' ॥

१-लिंगम् ॥

२ 'स्त्री' ॥ अधिकारसूत्रे एते ॥

२-स्त्री, यह दोनों अधिकार सूत्र हैं, परन्तु दोनोंको अधिकारसूत्रत्व होनेपर भी 'लिङ्गम्' इसका शास्त्रसमाप्तिपर्य्यन्त और 'स्त्री' इसका "ताराधारा" इस सूत्रपर्य्यन्त अधिकार चलेगा, यह पार्थक्य है ॥

३ 'ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृयातृननान्दरः' ॥ ऋकारान्ता एते पञ्चैव स्त्रीलिङ्गाः। स्वस्रादिपञ्चकस्यैव ङीब्निषेधेन कर्त्रीत्यादेर्ङीपा ईकारान्तत्वात्। तिसृचतस्रोस्तु स्त्रियामादेशतया विधानेपि प्रकृत्योस्त्रिचतुरोर्ऋदन्तत्वाभावात् ॥

३-ऋकारान्त मातृ, दुहितृ, स्वसृ, योतृ और ननान्द (ननान्द) यह पांच ही शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं, कारण कि, स्वस्रादि पांच ही शब्दोंके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें विहित ङीप्के निषेधके कारण, कर्त्री इत्यादि पदोंको ङीप्के योगसे ईकारान्तत्व होजाताहै और स्त्रीलिङ्गमें तिसृ, चतसृ आदेश होनेके कारण उनको ऋकारान्त होनेपर भी त्रि और चतुर शब्दको ऋदन्तत्व नहीं है ॥

४ 'अन्यूप्रत्ययान्तो धातुः' ॥ अनिप्रत्ययान्त ऊप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियां स्यात्। अवनिः। चमूः। प्रत्ययग्रहणं किम्। देवयतेः क्विप्। द्यूः। विशेष्यलिङ्गः ॥

४-अनिप्रत्ययान्त और ऊप्रत्ययान्त धातुजात शब्द स्त्रीलिङ्ग हों, यथा-अवनिः। चमूः। प्रत्यय ग्रहणका प्रयोजन क्या है? तो दिव् धातुके उत्तर क्विप् करके 'द्यू' यह पद स्त्रीलिङ्ग न हो, यह विशेष्यलिङ्ग है ॥

५ 'अशनिभरण्यरणयः पुंसि च' ॥ इयमयं वा अशनिः ॥

५-अशनि, भरणि, अरणि शब्द पुंलिङ्गमें और स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-इयमयं वा अशनिः ॥

६ 'मिन्यन्तः' ॥ मिप्रत्ययान्तो निप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियां स्यात्। भूमिः। ग्लानिः ॥

६-मि प्रत्ययान्त और नि प्रत्ययान्त धातुजात शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-भूमिः ग्लानिः ॥

७ 'वह्निवृष्ण्यग्नयः पुंसि' ॥ पूर्वस्यापवादः ॥

७-वह्नि, वृष्णि और अग्नि शब्द पुँलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यह सूत्र पूर्वसूत्रका अपवाद है ॥

८ 'श्रोणियोन्यूर्मयः पुंसि च' ॥ इयमयं वा श्रोणिः ॥

८-श्रोणि, योनि और ऊर्मि शब्द पुँलिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-इयमयं वा श्रोणिः ॥

९ 'क्तिन्नन्तः' ॥ स्पष्टम्। कृतिरित्यादि ॥

९-क्तिन् प्रत्ययान्त शब्दका स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग हो, यथा-कृतिः इत्यादि ॥

१० 'ईकारान्तश्च' ॥ ईप्रत्ययान्तः स्त्री स्यात्। लक्ष्मीः ॥

१०-ई प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हो, यथा-लक्ष्मीः ॥

११ 'ऊङाबन्तश्च' ॥ कुरूः। विद्या ॥

११-ऊङ् प्रत्ययान्त और आबन्त शब्दोंका स्त्रीलिंगमें प्रयोग हो, यथा-कुरूः। विद्या ॥

१२ 'य्वन्तमेकाक्षरम्' ॥ श्रीः। भूः। एकाक्षरं किम्। पृथुश्रीः ॥

१२-ईकारान्त, ऊकारान्त एकाक्षर शब्दका स्त्रीलिंगमें प्रयोग हो, यथा-श्रीः। भूः। एकाक्षर न होनेपर कैसा होगा? तो 'पृथुश्रीः' यह शब्द पुँलिंग है ॥

१३ 'विंशत्यादिरानवतेः' ॥ इयं विंशतिः। त्रिंशत्। चत्वारिंशत्। पञ्चाशत्। षष्टिः। सप्ततिः। अशीतिः। नवतिः ॥

१३-विंशतिसे नवतिपर्यन्त संख्यावाचक शब्दोंका स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग हो, यथा-इयं विंशतिः। इयं त्रिंशत्। इयं चत्वारिंशत्। पञ्चाशत्। षष्टिः। सप्ततिः। अशीतिः। नवतिः ॥

१४ 'दुन्दुभिरक्षेषु' ॥ इयं दुन्दुभिः। अक्षेषु किम्। अयं दुन्दुभिर्वाद्यविशेषोऽसुरो वेत्यर्थः ॥

१४-अक्ष अर्थमें दुन्दुभि शब्दका स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग हो, यथा-इयं दुन्दुभिः। अक्ष अर्थ न होनेपर पुँलिङ्ग होगा, यथा-अयं दुन्दुभिः, । अर्थात् वाद्यविशेष वा असुर ॥

१५ 'नाभिरक्षत्रिये' ॥ इयं नाभिः ॥

१५-अक्षत्रिय अर्थमें नाभि शब्दका स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग हो, यथा-इयं नाभिः ॥

१६ 'उभावप्यन्यत्र पुंसि' ॥ दुन्दुभिर्नाभिश्चोक्तविषयादन्यत्र पुंसि स्तः। नाभिः क्षत्रियः। कथं तर्हि-"समुल्लसत्पंकजपत्रकोमलैरुपाहितश्रीण्युपनीविनाभिभिः" इति भारविः उच्यते। दृढभक्तिरित्यादाविव कोमलैरिति सामान्ये नपुंसकं बोध्यम्। वस्तुतस्तु। लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिंगस्येति भाष्यात्पुंस्त्वमपीह साधु। अत एव-"नाभिर्मुख्यनृपे चक्रमध्यक्षत्त्रिययोः पुमान्। द्वयोः प्राणिप्रतीके स्यात् स्त्रियां कस्तूरिकामदे" इति मेदिनी। रभसोऽप्याह-"मुख्यराट् क्षत्त्रिये नाभिः पुंसि प्राण्यंगके द्वयोः। चक्रमध्ये प्रधाने च स्त्रियां कस्तूरिकामदे" इति। एवमेवंविधेऽन्यत्रापि बोध्यम् ॥

१६-दुन्दभि और नाभि शब्द पूर्वोक्तार्थसे भिन्न अर्थमें पुँल्लिङ्ग हों, यथा-नाभिः क्षत्रियः अक्षत्रिय वाच्यमें स्त्रीलिङ्ग होनेसे भारविका " समुल्लसत्पङ्कजपत्रकोमलैरुपाहितश्रीण्युपनीवि नाभिभिः " ऐसा प्रयोग किस प्रकार सिद्ध हुआ? इस विषयमें कहते हैं कि, दृढभक्तिः इत्यादि प्रयोगोंकी समान कोमलैः इस स्थलमें सामान्यमें नपुंसकलिङ्ग है । वास्तविक तो "लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य" इस भाष्यके अनुसार इस स्थलमें पुँल्लिङ्ग भी साधु है, अत एव " नाभिर्मुख्यनृपे चक्रमध्यक्षत्रिययोः पुमान् । द्वयोः प्राणिप्रतीके स्यात् स्त्रियां कस्तूरिकामदे " ऐसा मेदिनीमें लिखा है । रभसने भी कहा है कि, "मुख्यराट् क्षत्रिये नाभिः पुंसि प्राण्यङ्गके द्वयोः । चक्रमध्ये प्रधाने च स्त्रियां कस्तूरिकामदे " । इसी प्रकार अन्यत्र भी ऐसे जगहमें समझना ॥

१७ 'तलन्तः' ॥ अयं स्त्रियां स्यात् । शुक्लस्य भावः शुक्लता । ब्राह्मणस्य कर्म ब्राह्मणता । ग्रामस्य समूहो ग्रामता । देव एव देवता ॥

१७-तल्प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-शुक्लस्य भावः=शुक्लता । ब्राह्मणस्य कर्म=ब्राह्मणता । ग्रामस्य समूहः=ग्रामता । देव एव=देवता ॥

१८ 'भूमिविद्युत्सरिल्लतावनिताभिधानानि'॥ भूमिर्भूः । विद्युत्सौदामनी । सरिन्निम्नगा । लता वल्ली । वनिता योषित् ॥

१८-भूमि, विद्युत्, सरित्, लता और वनितावाचक शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-भूमिः-भूः । विद्युत्-सौदामनी । सरिन्निम्नगा । लता-वल्ली । वनिता-योषित् ॥

१९ 'यादो नपुंसकम्' ॥ यादःशब्दः सरिद्वाचकोपि क्लीबं स्यात् ॥

१९-यादस् शब्द नदीवाचक होनेपर भी स्त्रीलिङ्ग न होकर क्लीबलिङ्गमें प्रयुक्त हो ॥

२० 'भाःस्रुक्स्रग्दिगुष्णिगुपानहः' ॥ एते स्त्रियां स्युः । इयं भाः इत्यादि ॥

२०-भास्, स्रुच्, स्रज्, दिश्, उष्णिह्, उपानह् शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-इयं भाः । इत्यादि ॥

२१ 'स्थूणोर्णे नपुंसके च' ॥ एते स्त्रियां क्लीबे च स्तः । स्थूणा-स्थूणम् । ऊर्णा-ऊर्णम् । तत्र स्थूणा काष्ठमयी द्विकर्णिका । ऊर्णा तु मेषादिलोम ॥

२१-स्थूणा और ऊर्ण शब्द क्लीबलिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा--स्थूणा, स्थूणम् । ऊर्णा, ऊर्णम् । स्थूणा शब्दसे काष्ठमयी द्विकर्णिका (खूँटी) समझना । ऊर्णा शब्दसे मेषका लोम समझना ॥

२२ 'गृहशशाभ्यां क्लीबे' ॥ नियमार्थमिदम् । गृहशशपूर्वे स्थूणोर्णे यथासंख्यं नपुंसके स्तः । गृहस्थूणम् । "शशोर्णं शशलोमनि" इत्यमरः ॥

२२-क्रमसे गृह और शश शब्दके परे स्थित स्थूणा और ऊर्णा शब्द क्लीब हों, यह सूत्र नियमार्थक है कि, गृह और शश शब्दके परे ही क्रमसे स्थूणा और ऊर्णा शब्द नपुंसक हो, यथा-गृहस्थूणम् । शशोर्णम्, अर्थात् शशलोम । "शशोर्णं शशलोमनि " ऐसा अमरकोश है ॥

२३ 'प्रावृड्विप्रुड्रुट्तृड्विट्त्विषः' ॥ एते स्त्रियां स्युः ॥

२३-प्रावृष्, विप्रुष्, रुष्, तृष्, विश्, और त्विष् शब्दका स्त्रीलिंङ्गमें प्रयोग हो ॥

२४ 'दर्विविदिवेदिखनिशान्यश्रिवेशिकृष्योषधिकट्यंगुलयः' ॥ एते स्त्रियां स्युः । पक्षे ङीष् । दर्वी-दर्विरित्यादि ॥

२४-दर्वि, विदि, वेदि, खनि, शानि, अश्रि, वेशि, कृषि, ओषधि, कटि, और अङ्गुलि शब्दोंका स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग हो, विकल्प करके ङीष् प्रत्यय भी होकर यथा-दर्वी, दर्विः । इत्यादि ॥

२५ 'तिथिनाडिरुचिवीचिनालिधूलिकिकिकेलिच्छविरात्र्यादयः' ॥ एते प्राग्वत् । इयं तिथिरित्यादि । अमरस्त्वाह—"तिथयो द्वयोः" इति । तथा च भारविः-"तस्य भुवि बहुतिथास्तिथय " इति । स्त्रीत्वे हि बहुतिथ्य इति स्यात् । श्रीहर्षश्च-"निखिलान्निशि पौर्णिमातिथीन्" इति ॥

२५-तिथि, नाडि, रुचि, वीचि, नालि, धूलि, किकि, केलि, छवि, रात्रि आदि शब्दोंका स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग हो, यथा-इयं तिथिः । अमरसिंहने तो " तिथयो द्वयोः " ऐसा कहा है और भारविने " तस्य भुवि बहुतिथास्तिथयः " ऐसा प्रयोग किया है । स्त्रीत्व होनेपर तो "बहुतिथ्यः" ऐसा प्रयोग होजाता । श्रीहर्षनेभी " निखिलान्निशि पौर्णिमातिथीन् " ऐसे प्रयोग किया है ॥

२६ 'शष्कुलिराजिकुट्यशनिवर्त्तिभ्रुकुटित्रुटिवलिपंक्तयः' ॥ एतेऽपि स्त्रियां स्युः । इयं शष्कुलिः ॥

२६-शष्कुलि, राजि, कुटि, अशनि, वर्त्ति, भ्रुकुटि, त्रुटि, वलि, पंक्ति शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-इयं शष्कुलिः ॥

२७ 'प्रतिपदापद्विपत्सम्पच्छरत्संसत्परिषदुषःसंवित्क्षुत्पुन्मुत्समिधः' ॥ इयं प्रतिपदित्यादि । उषा उच्छन्ती । उषाः प्रातरधिष्ठात्री देवता ॥

२७-प्रतिपद्, आपद्, विपद्, सम्पद्, शरद्, संसद्, परिषद्, उषस्, संवित्, क्षुत्, पुत्, मुत्, समिध्, शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-इयं प्रतिपद् । उषाः उच्छन्ती । उषाः अर्थात् प्रातरधिष्ठात्री देवता ॥

२८ 'आशीर्धूःपूर्गीर्द्वारः' ॥ इयमाशीरित्यादि ॥

२८-आशिष्, धुर्, पुर्, गिर्, और द्वार् शब्दका स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग हो, यथा-इयमाशीः इत्यादि ॥

२९ 'अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वं च' ॥ अबादीनां पञ्चानां स्त्रीत्वं स्याद्बहुत्वं च । आप इमाः । "स्त्रियः सुमनसः पुष्पम्" "सुमना मालती जातिः" । देववाची तु पुंस्येव । "सुपर्वाणः सुमनसः" बहुत्वं प्रायिकम् । एका च सिकता तैलदाने असमर्थेति अर्थवत्सूत्रे भाष्यप्रयोगात् । समांसमां विजायत इत्यत्र समायांसमायामिति भाष्याच्च । विभाषाघ्राधे· डिति सूत्रे अघ्रासातां सुमनसाविति वृत्तिव्या· ख्यायां हरदत्तोऽप्येवम् ॥

२९-अप्, सुमनस्, समा, सिकता, वर्षा यह पांच शब्द स्त्रीलिङ्गमें और बहुवचनमें प्रयुक्त हों, यथा-आपः इमाः । " स्त्रियः सुमनसः पुष्पम् " । " सुमना मालती जतिः " । देवतावाचक सुमनस् शब्द तो पुँल्लिङ्ग ही है, यथा-" सुपर्वाणः सुमनसः " । इनका बहुत्वविधान प्रायिक है कारण कि, " एका च सिकता तैलदानेऽसमर्था " ऐसा अर्थवत् सूत्रमें भाष्य प्रयोग है और "समांसमां विजायते" इस स्थलमें " समायांसमायाम् " ऐसा भाष्यमें वर्णित है । और " विभाषाघ्राधेट्० " इस सूत्रमें " अघ्रासातां सुमनसौ " ऐसा वृत्तिव्याख्यामें हरदत्तने भी कहा है ॥

३० ' स्रक्त्वग्ज्योग्वाग्यवागूनौस्फिजः ' ॥ इयं स्रक् त्वक् ज्योक् वाक् यवागूः नौः स्फिक् ॥

३०-स्रज्, त्वच्, ज्योक्, वाच्, यवागू, नौ और स्फिच् शब्दका स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग हो, यथा-इयं स्रक् । त्वक् । ज्योक् । वाक् । यवागूः । नौः । स्फिक् ॥

३१ 'तृटिसीमासंबध्याः' ॥ इयं तृटिः । सीमा । सम्बध्या ॥

३१-तृटि, सीमा और संबध्या शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-इयं तृटिः । सीमा । संबध्या ॥

३२ 'चुल्लिवेणिखार्यश्च' ॥ स्पष्टम् ॥

३२-चुल्लि, वेणि, खारि शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों ॥

३३ 'ताराधाराज्योत्स्नादयश्च' ॥

३३-तारा, धारा, ज्योत्स्ना आदि शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हों ॥

३४ 'शलाका स्त्रियां नित्यम्' ॥ नित्यग्रहण- मन्येषां क्वचिद्व्यभिचारं ज्ञापयति ॥

॥ इति स्त्र्यधिकारः ॥

३४-शलाका शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग हो, नित्य शब्द ग्रहण अन्य शब्दोंके स्त्रीत्वका कहीं २ व्यभिचार ज्ञापन करता है । जिस २ स्थानमें व्यभिचार होता है, वह पहिले ही कह- दिया है ॥

इति स्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

अथ पुँल्लिङ्गाधिकारः ।

३५ 'पुमान्' ॥ अधिकारोयम् ॥

३५-यहांसे पुँल्लिङ्गका अधिकार है ॥

३६ 'घञबन्तः' ॥ पाकः । त्यागः । करः । गरः । भावार्थ एवेदम् । नपुंसकत्वविशिष्टे भावे क्तल्युड्भ्यां स्त्रीत्वविशिष्टे तु क्तिन्नादिभि- र्बाधेन परिशेषात् । कर्मादौ तु घञाद्यन्तमपि विशेष्यलिङ्गम् । तथा च भाष्यम् । सम्बन्धम· नुवर्तिष्यत इति ॥

३६-घञ् और अप्प्रत्ययान्त शब्द पुँल्लिंग हों, यथा- पाकः । त्यागः । अप् यथा-करः । गरः । भाववाच्यमें विहित जो घञ् और अप् तदन्तमें ही यह सूत्र प्रवृत्त होगा, कारण कि, नपुंसकत्वविशिष्टभावमें क्त और ल्युट् प्रत्यय और स्त्रीत्वविशिष्टभावमें क्तिन् आदि प्रत्यय बाधक होजाता- है कर्म्मादिवाच्यमें घञ् आदि प्रत्ययान्त शब्द भी विशेष्य- लिंग होंगे, अत एव भाष्यकारने " सम्बन्धमनुवर्तिष्यते " यहां कर्मवाच्यमें घञ् करके क्लीबलिंगका प्रयोग किया है ॥

३७ ' घाजन्तश्च' ॥ विस्तरः । गोचरः । चयः । जयः । इत्यादि ॥

३७-घ और अच्प्रत्ययान्त पद पुँल्लिङ्गमें प्रयुक्त हों, विस्तरः । गोचरः । चयः । जयः । इत्यादि ॥

३८ 'भयलिङ्गभगपदानि नपुंसके ॥ एतानि नपुंसके स्युः । भयम् । लिङ्गम् । भगम् । पदम्॥

३८-भय, लिङ्ग, भग और पद शब्द क्लीबलिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-भयम् । लिङ्गम् । भगम् । पदम् ॥

३९ 'नङन्तः' ॥ नङ्प्रत्यान्तः पुंसि स्यात् । यज्ञः । यत्नः ॥

३९-नङ्प्रत्ययान्त शब्दका पुँल्लिङ्गमें प्रयोग हो, यथा- यज्ञः । यत्नः ॥

४० 'याच्ञा स्त्रियाम्' ॥ पूर्वस्यापवादः ॥

४०-याच्ञा शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त हो, यह सूत्र पूर्वसूत्रका अपवाद है ॥

४१ 'क्यन्तो घुः' ॥ किप्रत्ययान्तो घुः पुंसि स्यात् । आधिः । निधिः । उदधिः । क्यन्तः किम् । दानम् । घुः किम् । जज्ञिर्बीजम् ॥

४१-किप्रत्ययान्त घुसंज्ञक धातुनिष्पन्न शब्द अर्थात् दा और धा धातुनिष्पन्न शब्द पुँल्लिङ्ग हों,यथा-आधिः । निधिः। उदधिः । किप्रत्ययान्त न होनेपर न होगा, यथा-दानम् । घुसंज्ञक न होनेपर यथा-जज्ञिर्बीजम् ॥

४२ 'इषुधिः स्त्री च' ॥ इषुधिशब्दः स्त्रियां पुंसि च ॥ पूर्वस्यापवादः ॥

४२-इषुधि शब्द स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्गमें प्रयुक्त हो, यह पूर्वसूत्रका अपवाद है ॥

४३ 'देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठखड्गशरपंकाभिधानानि' ॥ एतानि पुंसि स्युः । देवाः सुराः । असुरा दैत्याः । आत्मा क्षेत्रज्ञः । स्वर्गो नाकः । गिरिः पर्वतः । समुद्रोऽब्धिः । नखः करुरुहः । केशः शिरोरुहः । दन्तो दशनः । स्तनः कुचः । भुजो दोः । कण्ठो गलः । खड्गः करवालः । शरो मार्गणः । पंकः कर्दम इत्यादि ॥

४३–देव, असुर, आत्मन्, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, शर और पंक-वाचक शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–देवाः सुराः । असुरा दैत्याः । आत्मा क्षेत्रज्ञः । स्वर्गो नाकः । गिरिः पर्वतः । समुद्रोऽब्धिः । नखः करुरुहः । केशः शिरोरुहः । दन्तो दशनः । स्तनः कुचः । भुजः दोः । कण्ठो गलः । खड्गो करवालः । शरो मार्गणः । पंकः कर्दमः । इत्यादि ॥

४४ 'त्रिविष्टपत्रिभुवने नपुंसके' ॥ स्पष्टम् । तृतीयं विष्टपं त्रिविष्टपम् । स्वर्गाभिधानतया पुंस्त्वे प्राप्ते अयमारम्भः ॥

४४–त्रिविष्टप और त्रिभुवन शब्द क्लीवलिंग हों, तृतीयं विष्टपम्=त्रिविष्टपम् । स्वर्ग पर्याय होनेसे पुंस्त्व प्राप्त होनेपर, उसके निवारणके निमित्त यह सूत्र कियाहै ॥

४५ 'द्यौः स्त्रियाम्' ॥ द्योदिवोस्तन्त्रेणोपादानमिदम् ॥

४५–द्यौ और दिव् शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हों, यहां द्यो और दिव् शब्दका तन्त्रसे उपादान है । (स्वर्गवाचक होनेके कारण पुँल्लिंगत्व प्राप्त था उसके निषेध करनेके लिये यह सूत्र कियाहै) ॥

४६ 'इषुबाहू स्त्रियां च' ॥ चात्पुंसि ॥

४६–इषु और बाहु शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हों, चकार-निर्देशके कारण पुँल्लिंगमें भी प्रयुक्त हों ॥

४७ 'बाणकाण्डौ नपुंसके च' ॥ चात्पुंसि । त्रिविष्टपेत्यादिचतुःसूत्री देवासुरेत्यस्यापवादः ॥

४७–बाण और काण्ड शब्द नपुंसक और चकारसे पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों "त्रिविष्टप" इत्यादि चार सूत्र "देवासुर०" इस सूत्रके अपवाद हैं ॥

४८ 'नान्तः' ॥ अयं पुंसि । राजा । तक्षा । न च चर्मवर्मादिष्वतिव्याप्तिः । मन्व्यच्कोकर्तरीति नपुंसकप्रकरणे वक्ष्यमाणत्वात् ॥

४८–नकारान्त शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–राजा । तक्षा । ऐसे होनेपर चर्मन् और वर्मन् आदि शब्दोंमें अतिव्याप्ति तो नहीं कहसकते हो, क्यों कि, मन्प्रत्ययान्त दो अच् विशिष्ट शब्द क्लीवलिंगमें प्रयुक्त हों कर्तृवाच्यमें नहीं ऐसा नपुंसक प्रकरणमें वक्ष्यमाण है ॥

४९ 'क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघाभिधानानि' ॥ क्रतुरध्वरः । पुरुषो नरः । कपोलो गण्डः । गुल्फः प्रपदः । मेघो नीरदः ॥

४९–क्रतु, पुरुष, कपोल, गुल्फ और मेघवाचक शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–क्रतुरध्वरः । पुरुषो नरः । कपोलो गण्डः । गुल्फः प्रपदः । मेघो नीरदः ॥

५० 'अभ्रं नपुंसकम्' ॥ पूर्वस्यापवादः ॥

५०–अभ्र शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हो, यह सूत्र पूर्वसूत्रका अपवाद है ॥

५१ 'उकारान्तः' ॥ अयं पुंसि स्यात् । प्रभुः । इक्षुः । "हनुर्हट्टविलासिन्यां नृत्यारम्भे गदे स्त्रियाम् ॥ द्वयोः कपोलावयवे" इति मेदिनिः । "करेणुरिभ्यां स्त्री नेभे" इत्यमरः । एवं जातीयकविशेषवचनानाक्रान्तस्तु प्रकृतसूत्रस्य विषयः। उक्तंच––"लिंगशेषविधिर्व्यापी विशेषैर्यद्यबाधितः" इति । एवमन्यत्रापि ॥

५१–उकारान्त शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–प्रभुः । इक्षुः । "हट्टविलासिनी नृत्यारम्भ और रोगार्थमें हनु शब्द स्त्रीलिंग है" कपोलोंके अवयवार्थमें पुँल्लिंग और स्त्रीलिंग है" स्त्रीलिंग है ऐसा मेदिनी है करेणु शब्द हस्तिनी अर्थमें हस्ती होनेपर पुँल्लिंग है, इस प्रकार विशेष वचन से अनाक्रान्त जो हो, वह प्रकृत सूत्रका विषयीभूत है, कहा है कि, यदि विशेषसूत्र बाधक न हो तो लिंगका शेषविधि ग्राह्य होताहै इस प्रकार अन्यत्र भी समझना ॥

५२ 'धेनुरज्जुकुहुसरयुतनुरेणुप्रियंगवः' ॥ स्त्रियाम् ॥

५२–धेनु, रज्जु, कुहु, सरयु, तनु, रेणु और प्रियंगु शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हों ॥

५३ 'समासे रज्जुः पुंसि च' ॥ कर्कटरज्जुना-कर्कटरज्ज्वा ॥

५३–समासमें रज्जु शब्द पुँल्लिंगमें भी प्रयुक्त हो, कर्कटरज्जुना, कर्कटरज्ज्वा ॥

५४ 'श्मश्रुजानुवसुस्वाद्वश्रुजतुत्रपुतालूनि नपुंसके' ॥

५४–श्मश्रु, जानु, वसु, स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु और तालु शब्द क्लीबलिंगमें प्रयुक्त हों ॥

५५ 'वसु चार्थवाचि' ॥ अर्थवाचीति किम् । "वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेषु" ॥

५५–धनवाचक वसु शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हो, धनवाचक न होनेपर यथा–"वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेषु" ॥

५६ 'मद्गुमधुसीधुशीधुसानुकमण्डलूनि नपुंसके च' ॥ चात्पुंसि । अयं मद्गुः इदं मद्गु ॥

५६–मद्गु, मधु, सीधु, शीधु, सानु, कमण्डलु शब्द नपुंसक और चकारसे पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–अयम् मद्गुः, इदम् मद्गु ॥

५७ 'रुत्वन्तः' ॥ मेरुः । सेतुः ॥

५७–रु और तु शब्दान्त शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–मेरुः । सेतुः ॥

५८ 'दारुकसेरुजतुवस्तुमस्तूनि नपुंसके' ॥ रुत्वंत इति पुंस्त्वस्यापवादः । इदं दारु ॥

५८-दारु, कसेरु, जतु, वस्तु और मस्तु शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यह सूत्र "रुत्वन्तः" इस पूर्वोक्त सूत्रसे प्राप्त पुंस्त्वका अपवाद है, यथा-इदं दारु ॥

५९ 'सक्तुर्नपुंसके च' ॥ चात्पुंसि । सक्तुः-सक्तु ॥

५९-सक्तु शब्द नपुंसक और चकारसे पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हो, यथा-सक्तुः, सक्तु ॥

६० 'प्राग्रश्मेरकारान्तः' ॥ रश्मिदिवसाभिधानमिति वक्ष्यति प्रागेतस्मादकारान्त इत्यधिक्रियते ॥

६०-" रश्मिदिवसाभिधानम् " इस सूत्रके पूर्वपर्यन्त "अकारान्त" शब्दका अधिकार है-॥

६१ 'कोपधः' ॥ कोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात् । स्तबकः । कल्कः ॥

६१-ककारोपध अकारान्त शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-स्तबकः । कल्कः ॥

६२ 'चिबुकशालूकप्रातिपदिकांशुकोल्मुकानि नपुंसके' ॥ पूर्वसूत्रापवादः ॥

६२-ककारोपध अकारान्त चिबुक, शालूक, प्रातिपदिक, अंशुक, उल्मुक शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यह सूत्र पूर्वसूत्रका अपवाद है ॥

६३ 'कण्टकानीकसरकमोदकचषकमस्तकपुस्तकतडाकनिष्कशुष्कवर्चस्कपिनाकभाण्डकपिण्डककटकशण्डकपिटकतालकफलकपुलाकानि नपुंसके च' ॥ चात्पुंसि । अयं कण्टकः । इदं कण्टकमित्यादि ॥

६३-ककारोपध अकारान्त कण्टक, अनीक, सरक, मोदक, चषक, मस्तक, पुस्तक, तडाक, निष्क, शुष्क, वर्चस्क, पिनाक, भाण्डक, पिण्डक, कटक, शण्डक, पिटक, तालक, फलक और पुलाक शब्द नपुंसक और पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयं कण्टकः, इदं कण्टकम् । इत्यादि ॥

६४ 'टोपधः' ॥ टोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात् । घटः । पटः ॥

६४-अकारान्त टकारोपध शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-घटः । पटः । इत्यादि ॥

६५ 'किरीटमुकुटललाटवटवीटशृङ्गाटकराटलोष्टानि नपुंसके' ॥ किरीटमित्यादि ॥

६५-अकारान्त टकारोपध किरीट, मुकुट, ललाट, वट, वीट, शृंगाट, कराट और लोष्ट शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-किरीटम् । इत्यादि ॥

६६ 'कुटकूटकपटकवाटकर्पटनटनिकटकीटकटानि नपुंसके च' ॥ चात्पुंसि । कुटः-कुटमित्यादि ॥

६६-अकारान्त टकारोपध, कुट, कूट, कपट, कवाट, कर्पट, नट, निकट, कीट और कट शब्द क्लीबलिंग और पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा कुटः, कुटम् । इत्यादि ॥

६७ 'णोपधः' ॥ णोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात् । गुणः । गणः । पाषाणः ॥

६७-अकारान्त णकारोपध शब्द पुँल्लिंग में प्रयुक्त हों, यथा-गुणः । गणः । पाषाणः । इत्यादि ॥

६८ 'ऋणलवणपर्णतोरणरणोष्णानि नपुंसके' ॥ पूर्वसूत्रापवादः ॥

६८-अकारान्त णकारोपध ऋण, लवण, पर्ण, तोरण, रण और उष्ण शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यह पूर्वसूत्रका अपवाद है ॥

६९ 'कार्षापणस्वर्णसुवर्णव्रणचरणवृषणविषाणचूर्णतृणानि नपुंसके च' ॥ चात्पुंसि ॥

६९-अकारान्त णकारोपध कार्षापण, स्वर्ण, सुवर्ण, व्रण, चरण, वृषण, विषाण, चूर्ण और तृण शब्द नपुंसक और पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-कार्षापणः, कार्षापणम् । इत्यादि ॥

७० 'थोपधः' ॥ रथः ॥

७०-अकारान्त थकारोपध शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-रथः ॥

७१ 'काष्ठपृष्ठसिक्थोक्थानि नपुंसके' ॥ इदं काष्ठमित्यादि ॥

७१-अकारान्त काष्ठ, पृष्ठ, सिक्थ, और उक्थ शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, इदं काष्ठम् इत्यादि ॥

७२ 'काष्ठा दिगर्था स्त्रियाम्' ॥ इमाः काष्ठाः ॥

७२-काष्ठा शब्द दिग्वाचक होनेपर स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हो, यथा-इमाः काष्ठाः ॥

७३ 'तीर्थप्रोथयूथगाथानि नपुंसके च' ॥ चात्पुंसि । अयं तीर्थः । इदं तीर्थम् ॥

७३-अकारान्त थकारोपध तीर्थ, प्रोथ, यूथ और गाथ शब्द पुँल्लिंग और नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयं तीर्थः, इदं तीर्थम् ॥

७४ 'नोपधः' ॥ अदन्तः पुंसि । इनः । फेनः ॥

७४-अकारान्त नकारोपध शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-इनः । फेनः ॥

७५ 'जघनाजिनतुहिनकाननवनवृजिनविपिनवेतनशासनसोपानमिथुनश्मशानरत्ननिम्नचिह्नानि नपुंसके' ॥ पूर्वस्यापवादः ॥

७५-अकारान्त नकारोपध जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, मिथुन, श्मशान, रत्न, निम्न, और चिह्न शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यह पूर्वसूत्रका अपवाद है ॥

७६ 'मानयानाऽभिधाननलिनपुलिनोद्यानशयनासनस्थानचन्दनालानसमानभवनवसनसम्भावनविभावनविमानानि नपुंसके च' ॥

चात्पुंसि। अयं मानः। इदं मानम्॥

७६–अकारान्त नकारोपध, मान, यान, अभिधान, नलिन, पुलिन, उद्यान, शयन, आसन, स्थान, चन्दन, आलान, सम्मान, भवन, वसन, संभावन, विभावन और विमान शब्द नपुंसक और चकारसे पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–अयं मानः, इदं मानम्। इत्यादि॥

७७ 'पोपधः'॥अदन्तः पुंसि। यूपः। दीपः। सर्पः॥

७७–अकारान्त पकारोपध शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–यूपः। दीपः। सर्पः॥

७८ 'पापरूपोडुपतल्पशिल्पपुष्पशष्पसमीपान्तरीपाणि नपुंसके'॥ इदं पापमित्यादि॥

७८–अकारान्त पकारोपध, पाप, रूप, उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, शष्प, समीप और अन्तरीप शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–इदं पापम्॥

७९ 'शूर्पकुतपकुणपद्वीपविटपानि नपुंसके च'॥ अयं शूर्पः। इदं शूर्पमित्यादि॥

७९–अकारान्त पकारोपध, शूर्प, कुतप, कुणप, द्वीप और विटप शब्द नपुंसक और चकारसे पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–अयं शूर्पः। इदं शूर्पम् इत्यादि॥

८० 'भोपधः'॥ स्तम्भः। कुम्भः॥

८०–अकारान्त भकारोपध शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–स्तम्भः। कुम्भः॥

८१ 'तलभं नपुंसकम्'॥ पूर्वस्यापवादः॥

८१–अकारान्त तलभ शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हो, यह सूत्र पूर्वसूत्रका अपवाद है॥

८२ 'जृम्भं नपुंसके च'॥ जृंभम्। जृम्भः॥

८२–अकारान्त जृम्भ शब्द नपुंसक और चकारसे पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हो, यथा–जृम्भम्, जृम्भः॥

८३ 'मोपधः'॥ सोमः। भीमः॥

८३–अकारान्त मकारोपध शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–सोमः। भीमः॥

८४ 'रुक्मसिध्मयुग्मेध्मगुल्माध्यात्मकुङ्कुमानि नपुंसके'॥ इदं रुक्ममित्यादि॥

८४–अकारान्त मकारोपध, रुक्म, सिध्म, युग्म, इध्म, गुल्म, अध्यात्म और कुंकुम शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–इदं रुक्मम्। इत्यादि॥

८५ 'संग्रामदाडिमकुसुमाश्रमक्षेमक्षौमहोमोद्दामानि नपुंसके च'॥ चात्पुंसि। अयं संग्रामः। इदं संग्रामम्॥

८५–अकारान्त मकारोपध, संग्राम, दाडिम, कुसुम, आश्रम, क्षेम, क्षौम, होम और उद्दाम शब्द नपुंसक और चकारसे पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–अयं संग्रामः, इदं संग्रामम्। इत्यादि॥

८६ 'योपधः'॥ समयः। हयः॥

८६–अकारान्त यकारोपध शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–हयः। समयः॥

८७ 'किसलयहृदयेन्द्रियोत्तरीयाणि नपुंसके'॥ स्पष्टम्॥

८७–अकारान्त यकारोपध, किसलय, हृदय, इन्द्रिय और उत्तरीय शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों॥

८८ 'गोमयकषायमलयान्वयाव्ययानि नपुंसके च'॥ गोमयः। गोमयम्॥

८८–अकारान्त यकारोपध, गोमय, कषाय, मलय, अन्वय और अव्यय शब्द नपुंसक और चकारसे पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–गोमयः, गोमयम्। इत्यादि॥

८९ 'रोपधः'॥ क्षुरः। अङ्कुरः॥

८९–अकारान्त रकारोपध शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–क्षुरः। अंकुरः॥

९० 'द्वाराग्रस्फारतक्रवक्रवप्रक्षिप्रक्षुद्रनीरतीरदूरकृच्छ्ररंध्राश्रश्वभ्रभीरगभीरक्रूरविचित्रकेयूरकेदारोदराजस्रशरीरकन्दरमन्दारपञ्जराजरजठराजिरवैरचामरपुष्करगह्वरकुहरकुटीरकुलीरचत्वरकाश्मीरनीराम्बरशिशिरतन्त्रयन्त्रक्षत्रक्षेत्रमित्रकलत्रचित्रमूत्रसूत्रवक्त्रनेत्रगोत्राङ्गुलित्रभलत्रास्त्रशस्त्रशास्त्रवस्त्रपत्रपात्रच्छत्राणि नपुंसके'॥ इदं द्वारमित्यादि॥

९०–अकारान्त रकारोपध द्वार, अग्र, स्फार, तक्र, वक्र, वप्र, क्षिप्र, क्षुद्र नीर, तीर, दूर, कृच्छ्र, रन्ध्र, अश्र, श्वभ्र, भीर, गभीर, क्रूर, विचित्र, केयूर, केदार, उदर, अजस्र, शरीर, कन्दर, मन्दार, पञ्जर, अजर, जठर, अजिर, वैर, चामर, पुष्कर, गह्वर, कुहर, कुटीर, कुलीर, चत्वर, काश्मीर, नीर, अम्बर, शिशिर, तंत्र, यंत्र, क्षत्र, क्षेत्र मित्र, कलत्र, चित्र, मूत्र, सूत्र, वक्त्र, नेत्र, गोत्र, अंगुलित्र, भलत्र, अस्त्र, शस्त्र, शास्त्र, वस्त्र, पत्र, पात्र और छत्र शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–इदं द्वारम्। इत्यादि॥

९१ 'शुक्रमदेवतायाम्'॥ इदं शुक्रं रेतः॥

९१–अकारान्त रकारोपध शुक्र शब्द देवताभिन्नार्थमें नपुंसकलिंग हो, यथा–इदं शुक्रम्, अर्थात् रेतः। (देवतार्थमें पुँल्लिंग होगा यथा–शुक्रो दैत्यगुरुः)॥

९२ 'चक्रवज्रान्धकारसारावारपारक्षीरतोमरशृंगारभृंगारमन्दारोशीरतिमिरशिशिराणि नपुंसके च'॥ चात्पुंसि। चक्रः–चक्रमित्यादि॥

९२–अकारान्त रकारोपध चक्र, वज्र, अन्धकार, सार, आवार, पार, क्षीर, तोमर, शृंगार, भृङ्गार, मन्दार, उशीर, तिमिर और शिशिर, शब्द नपुंसक और पुँल्लिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा–चक्रः, चक्रम्। इत्यादि॥

९३ 'षोपधः' ॥ वृषः । वृक्षः ॥

९३-अकारान्त षकारोपध शब्द पुँल्लिङ्गमें प्रयुक्त हों, यथा-वृषः । वृक्षः ॥

९४ 'शिरीषर्जीषाम्बरीषपीयूषपुरीषकिल्बिषकल्माषाणि नपुंसके' ॥

९४-शिरीष, ऋजीष, अंबरीष, पीयूष, पुरीष, किल्बिष और कल्माष शब्द क्लीबलिंगमें प्रयुक्त हों ॥

९५ 'यूषकरीषमिषविषवर्षाणि नपुंसके च' ॥ चात्पुंसि । अयं यूषः । इदं यूषमित्यादि ॥

९५-यूष, करीष, मिष, विष और वर्ष शब्द नपुंसक और चकारसे पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयं यूषः, इदं यूषम् ॥

९६ 'सोपधः' ॥ वत्सः।वायसः। महानसः ॥

९६-अकारान्त सकारोपध शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-वत्सः । वायसः । महानसः ॥

९७ 'पनसबिसबुससाहसानि नपुंसके' ॥

९७-पनस, बिस, बुस और साहस शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों ॥

९८ 'चमसांसरसनिर्यासोपवासकार्पासवासभासकासकांसमांसानि नपुंसके च' ॥ इदं चमसम् । अयं चमस इत्यादि ॥

९८-चमस, अंस,रस, निर्यास, उपवास, कार्पास, वास, भास, कास, कांस और मांस शब्द क्लीब और पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-इदम् चमसम् , अयं चमसः । इत्यादि ॥

९९ 'कंसं चाप्राणिनि' ॥ ''कंसोऽस्त्री पानभाजनम्''। प्राणिनि तु। कंसो नाम कश्चिद्राजा॥

९९-अप्राणी अर्थमें कंस शब्द नपुंसक और पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हो । कंस शब्दसे पीनेका पात्र समझना । प्राणी होनेपर पुँल्लिंगमें प्रयुक्त होगा, यथा-कंसो नाम कश्चिद्राजा ॥

१०० 'रश्मिदिवसाभिधानानि' ॥ एतानि पुंसि स्युः । रश्मिर्मयूखः । दिवसो घस्रः ॥

१००-रश्मि और दिवसवाचक शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-रश्मिर्मयूखः । दिवसो घस्रः । इत्यादि ॥

१०१ 'दीधितिः स्त्रियाम्' ॥ पूर्वस्यापवादः॥

१०१-दीधिति शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हो, यह पूर्वसूत्रका अपवाद है ॥

१०२ 'दिनाहनी नपुंसके'॥अयमप्यपवादः॥

१०२-दिन और अहन् शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यह भी अपवादसूत्र है ॥

१०३ 'मानाभिधानानि' ॥ एतानि पुंसि स्युः । कुडवः । प्रस्थः ॥

१०३-मानवाचक शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-कुडवः । प्रस्थः ॥

१०४ 'द्रोणाढकौ नपुंसके च' ॥ इदं द्रोणम्। अयं द्रोणः ॥

१०४-द्रोण और आढक शब्द नपुंसक और पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-इदं द्रोणम् , अयं द्रोणः ॥

१०५ 'खारीमानिके स्त्रियाम्' ॥ इयं खारी । इयं मानिका ॥

१०५-खारी और मानिका शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-इयं खारी । इयं मानिका ॥

१०६ 'दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वं च' ॥ इमे दाराः ॥

१०६-दार, अक्षत, लाज और असु शब्दको बहुत्व और चकारसे पुंस्त्व हो, यथा-इमे दाराः ॥

१०७ 'नाडयपजनोपपदानि व्रणाङ्गपदानि'॥ यथासंख्यं नाडयाद्युपपदानि व्रणादीनि पुंसि स्युः । अयं नाडीव्रणः । अपाङ्गः । जनपदः । व्रणादीनामुभयलिङ्गत्वेपि क्लीबत्वनिवृत्त्यर्थं सूत्रम् ॥

१०७-नाडी अप और जन शब्द उपपद रहते क्रमसे व्रण, अंग और पद शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-नाडीव्रणः । अपांगः । जनपदः । व्रणादि शब्दोंके उभयलिंगत्व होनेपर भी क्लीबत्वनिवृत्त्यर्थ यह सूत्र किया है ॥

१०८ 'मरुद्गरुत्तरदृत्विजः' ॥ अयं मरुत् ॥

१०८-मरुत्, गरुत्, तरत् और ऋत्विज् शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयं मरुत् ॥

१०९ 'ऋषिराशिदृतिग्रन्थिक्रिमिध्वनिबलिकौलिमौलिरविकविकपिमुनयः' ॥ एते पुंसि स्युः । अयमृषिः ॥

१०९-ऋषि, राशि, दृति, ग्रन्थि, क्रिमि, ध्वनि, बलि, कौलि, मौलि, रवि, कवि, कपि और मुनि शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयमृषिः । इत्यादि ॥

११० 'ध्वजगजमुञ्जपुञ्जाः' ॥ एते पुंसि ॥

११०-ध्वज, गज, मुञ्ज और पुञ्ज शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-ध्वजः । इत्यादि ॥

१११ 'हस्तकुन्तान्तव्रातवातदूतधूर्तसूतचूतमुहूर्ताः' ॥ एते पुंसि । अमरस्तु-'मुहूर्तोऽस्त्रियाम्' इत्याह ॥

१११-हस्त, कुन्त, अन्त, व्रात, वात, दूत, धूर्त, सूत, चूत और मुहूर्त शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, अमरकोषमें तो मुहूर्त शब्दको स्त्रीभिन्न सब लिंग कहाहै ॥

११२ 'षण्डमण्डकरण्डभरण्डवरण्डतुण्डगण्डमुण्डपाषण्डशिखण्डाः' ॥ अयं षण्डः ॥

११२-षण्ड, मण्ड, करण्ड, भरण्ड, वरण्ड, तुण्ड, गण्ड, मुण्ड, पाषण्ड और शिखण्ड शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयं षण्डः ॥

११३ 'वंशांशपुरोडाशाः' ॥ अयं वंशः। पुरो दाश्यते पुरोडाशः। कर्मणि घञ्। भवव्याख्यानयोः प्रकरणे पौरोडाशपुरोडाशात्ष्ठन्निति विकारप्रकरणे व्रीहेः पुरोडाश इति च निपातनात्प्रकृतसूत्र एव निपातनाद्वा दस्य डत्वम्। "पुरोडाशभुजामिष्टम्" इति माघः॥

११३-वंश, अंश और पुरोडाश शब्द पुँल्लिगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयं वंशः। पुरो दाश्यते इस विग्रहमें "पुरोडाशः" यहां कर्ममें घञ् हुआ। भव और व्याख्यान प्रकरणमें "पौरोडाशपुरोडाशात्ष्ठन् १४४९" इस सूत्रमें और विकार प्रकरणमें "व्रीहेः पुरोडाशे १५२८" इस सूत्रमें निपातनसे अथवा प्रकृतसूत्रमें निपातनसे द के स्थानमें ड हुआ। अतएव "पुरोडाशभुजामिष्टम्" ऐसा माघमें प्रयोग है॥

११४ 'ह्रदकन्दकुन्दबुद्बुदशब्दाः' ॥ अयं ह्रदः॥

११४-ह्रद, कन्द, कुन्द, बुद्बुद और शब्द पुँल्लिगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयं ह्रदः। इत्यादि॥

११५ 'अर्घपथिमथ्यृभुक्षिस्तम्बनितम्बपूगाः'॥ अयमर्घः॥

११५-अर्घ, पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन्, स्तम्ब, नितम्ब और पूग शब्द पुँल्लिगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयमर्घः॥

११६ 'पल्लवपल्वलकफरेफकटाहनिर्व्यूहमठमणितरंगतुरंगगन्धस्कन्धमृदंगसंगसमुद्रपुङ्खाः'। अयं पल्लव इत्यादि॥

११६-पल्लव, पल्वल, कफ, रेफ, कटाह, निर्व्यूह, मठ, मणि, तरंग, तुरंग, गन्ध, स्कन्ध, मृदंग, संग, समुद्र और पुंख शब्द पुँल्लिगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयं पल्लवः। इत्यादि॥

११७ 'सारथ्यतिथिकुक्षिवस्तिपाण्यञ्जलयः'॥ एत । अयं सारथिः॥

॥ इति पुँल्लिगाधिकारः॥

११७-सारथि, अतिथि, कुक्षि, वस्ति, पाणि और अञ्जलि शब्द पुँल्लिगमें प्रयुक्त हों, यथा-अयं सारथिः। इत्यादि॥

इति पुँल्लिगाधिकारः।

अथ नपुंसकाधिकारः।

११८ 'नपुंसकम्' ॥ अधिकारोऽयम्॥

११८-यहांसे नपुंसकाधिकार आरम्भ हुआहै-॥

११९ 'भावे ल्युडन्तः' ॥ हसनम्। भावे किम्। पचनोऽग्निः। इध्मव्रश्चनः कुठारः॥

११९-भाववाच्यमें जो ल्युट् तदन्त शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-हसनम्। भाववाच्यमें न होनेपर पुँल्लिंग होगा, यथा-पचनः, अर्थात् अग्निः। इध्मव्रश्चनः, अर्थात् कुठारः॥

१२० 'निष्ठा च' ॥ भावे या निष्ठा तदन्तं क्लीबं स्यात्। हसितम्। गीतम्॥

१२०-भाववाच्यमें विहित जो निष्ठा (क्त प्रत्यय) तदन्त शब्द नपुंसकलिंग हों, यथा-हसितम्। गीतम्। इत्यादि॥

१२१ 'त्वष्यञौ तद्धितौ' ॥ शुक्लत्वम्। शौक्ल्यम्॥ ष्यञः षित्त्वसामर्थ्यात्पक्षे स्त्रीत्वम्। चातुर्यम्-चातुरी। सामग्र्यम्-सामग्री। औचित्यम्-औचिती॥

१२१-तद्धितके मध्यमें त्व और ष्यञ् जो प्रत्यय तदन्त शब्द नपुंसकलिङ्ग हों, यथा-शुक्लत्वम्; शौक्ल्यम्। ष्यञ् प्रत्ययको षित्त्वसामर्थ्यके कारण विकल्प करके स्त्रीलिङ्ग होगा। यथा-चातुर्य्यम्, चातुरी। सामग्र्यम्, सामग्री। औचित्यम्, औचिती॥

१२२ 'कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्यः'॥ ब्राह्मणस्य कर्म ब्राह्मण्यम्॥

१२२-कर्म्म होनेपर ब्राह्मणादि शब्द और गुणवाचक शब्दोंके उत्तर जो ष्यञ् तदन्त शब्द नपुंसकलिंग हों, यथा-ब्राह्मणस्य कर्म्म ब्राह्मण्यम्॥

१२३ 'यद्यढग्यगञ्ण्वुञ्छाश्च भावकर्मणि'॥ एतदन्तानि क्लीबानि॥ स्तेनाद्यन्नलोपश्च। स्तेयम्। सख्युर्यः। सख्यम्। कपिज्ञात्योर्ढक्। कापेयम्। पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्। आधिपत्यम्। प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्। औष्ट्रम्। हायनान्तयुवादिभ्योऽण्। द्वैहायनम्। द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यो वुञ्। पितापुत्रकम्। होत्राभ्यश्छः। अच्छावाकीयम्॥ अव्ययीभावः। अधिस्त्रि॥

१२३-भाव और कर्म्म होनेपर जो यत्, य, ढक्, यक्, अञ्, अण, वुञ्, और छ प्रत्यय तदन्त शब्द नपुंसकलिङ्ग हों। "स्तेनाद्यन्नलोपश्च १७९०" इस सूत्रसे स्तेन शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय और नकारका लोप हुआ है। "स्तेनस्य भावः स्तेयम्"। "सख्युर्यः १७९१" सख्यम्। "कपिज्ञात्योर्ढक् १७९२" कापेयम्। "पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक १७९३" आधिपत्यम्। "प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् १७९४" औष्ट्रम्। "हायनान्तयुवादिभ्योऽण् १७९५" द्वैहायनम्। "द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यो वुञ्" पितापुत्रकम्। "होत्राभ्यश्छः १८०" अच्छावाकीयम्। अव्ययीभाव समास संज्ञक शब्द नपुंसकलिङ्ग हों, यथा-अधिस्त्रि॥

१२४ 'द्वन्द्वैकत्वम्' ॥ पाणिपादम्॥

१२४-समाहारद्वन्द्व समास शब्द नपुंसकलिङ्ग हों, यथा-पाणिपादम्॥

१२५ 'अभाषायां हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च' ॥ स्पष्टम् ॥

१२५-भाषाभिन्नार्थमें और अहोरात्रार्थमें हेमन्त और शिशिर शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग हों ॥

१२६ 'अनञ्कर्मधारयस्तत्पुरुषः' ॥ अधिकारोयम् ॥

१२६-यहांसे अनञ् कर्मधारय और तत्पुरुषका अधिकार आरम्भ हुआ ॥

१२७ 'अनल्पे छाया' ॥ शरच्छायम् ॥

१२७-अनल्पार्थमें समासान्त छाया शब्द नपुंसकलिंग हो, यथा-शरच्छायम् ॥

१२८ 'राजामनुष्यपूर्वा सभा' ॥ इनसभमित्यादि ॥

१२८-राजपूर्वक और मनुष्यपूर्वक सभा शब्द क्लीबलिंग हो, यथा-इनसभम् । इत्यादि ॥

१२९ 'सुरासेनाच्छायाशालानिशा स्त्रियां च'॥

१२९-सुरा, सेना, छाया, शाला और निशा शब्द स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग हों, ॥

१३० 'परवत्' ॥ अन्यस्तत्पुरुषः परवल्लिंगः स्यात् ॥ रात्राह्नाहाः पुंसि ॥

१३०-अन्य तत्पुरुषमें परवल्लिङ्ग हो, रात्र, अह और अह शब्द अन्तमें हों ऐसे शब्द पुँल्लिंग हों ॥

१३१ 'अपथपुण्याहे नपुंसके' ॥

१३१-अपथ और पुण्याह शब्द नपुंसकलिंग हों ॥

१३२ 'संख्यापूर्वा रात्रिः' ॥ त्रिरात्रम् । संख्यापूर्वेति किम् । सर्वरात्रः ॥

१३२-संख्यावाचक शब्द पूर्वक रात्रि शब्द नपुंसकलिंग हो, यथा-त्रिरात्रम् । संख्यापूर्वक न होनेपर पुँल्लिंग हो । यथा-सर्वरात्रः ॥

१३३ 'द्विगुः स्त्रियां च' ॥ व्यवस्थया । पञ्चमूली । त्रिभुवनम् ॥

१३३-द्विगु समास शब्द स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग हों, यथा-पञ्चमूली । त्रिभुवनम् । इत्यादि ॥

१३४ 'इसुसन्तः' ॥ हविः । धनुः ॥

१३४-इस् और उस् अन्तमें हों ऐसे शब्द नपुंसकलिंगम हों, यथा-हविः । धनुः ॥

१३५ 'अर्चिः स्त्रियां च' ॥ इसन्तत्वेपि अर्चिः स्त्रियां नपुंसके च स्यात् । इयमिदं वा अर्चिः ॥

१३५-अर्चिः शब्द स्त्रीलिंग हो, इस् अन्तमें होनेपर भी अर्चिः शब्द स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग हो, यथा-इयमिदं वा अर्चिः ॥

१३६ 'छदिः स्त्रियामेव' ॥ इयं छदिः । छाद्यते अनेनेति छदेश्चुरादिण्यन्तादर्चिशुचीत्यादिना इस् । इस्मन्नित्यादिना ह्रस्वः । "पटलं छदिः" इत्यमरः । तत्र पटलसाहचर्याच्छदिषः क्लीबतां वदन्तोऽमरव्याख्यातार उपेक्ष्याः ॥

१३६-छदि शब्द स्त्रीलिंग हो, यथा-इयं छदिः । "छाद्यते अनेन" इस वाक्यमें चुरादिगणीय णिजन्त छद धातुके उत्तर "अर्चिशुचि" इत्यादि सूत्रसे इस् प्रत्यय, "इस्मन्०" इस सूत्रसे ह्रस्व होगा । अमरकोषमें "पटलं छदिः" ऐसा प्रयोग होनेसे अमरकोषके व्याख्याताने पटल शब्दके साहचर्य्यके कारण छदि शब्दको नपुंसकलिंग होना कहा है, किन्तु वह ग्राह्य नहीं है ॥

१३७ 'मुखनयनलोहवनमांसरुधिरकार्मुकविवरजलहलधनान्नाभिधानानि' ॥ एतेषामभिधायकानि क्लीबे स्युः । मुखमाननम् । नयनं लोचनम् । लोहं कालम् । वनं गहनम् । मांसमामिषम् । रुधिरं रक्तम् । कार्मुकं शरासनम् । विवरं बिलम् । जलं वारि । हलं लांगलम् । धनं द्रविणम् । अन्नमशनम् । अस्यापवादानाह त्रिसूत्र्या ॥

१३७-मुख, नयन, लोह, वन, मांस, रुधिर, कार्म्मुक, विवर, जल, हल, धन और अन्नवाचक शब्द नपुंसकलिंग हों, यथा-मुखम्।आननम्-नयनम्-लोचनम्। लोहम्-कालम्। वनं-गहनम् । मांसमामिषम् । रुधिरम्-रक्तम्। कार्म्मुकं-शरासनम् । विवरं-बिलम् । जलम्-वारि । हलम्-लाङ्गलम् । धनम्-द्रविणम् । अन्नम्-अशनम् । इस सूत्रका अपवाद त्रिसूत्री करके कहा है ॥

१३८ 'सीरार्थौदनाः पुंसि' ॥

१३८-सीर अर्थ और ओदन शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों ॥

१३९ 'वक्त्रनेत्रारण्यगाण्डीवानि पुंसि च' ॥ वक्त्रो वक्त्रम् । नेत्रो नेत्रम् । अरण्योऽरण्यम् । गाण्डीवो गाण्डीवम् ॥

१३९-वक्त्र, नेत्र, अरण्य और गाण्डीव शब्द पुँल्लिंग और नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-वक्त्रो, वक्त्रम् । नेत्रो, नेत्रम् । अरण्योऽरण्यम् । गाण्डीवो, गाण्डीवम् ॥

१४० 'अटवी स्त्रियाम्' ॥

१४०-अटवी शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हो ॥

१४१ 'लोपधः' ॥ कुलम् । कूलम् । स्थलम् ॥

१४१-लकारोपध शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-कुलम्, कूलम् । स्थलम् ॥

१४२ 'तूलोपलतालकुसूलतरलकम्बलदेवलवृषलाः पुंसि' ॥ अयं तूलः ॥

१४२–तूल, उपल, ताल, कुसूल, तरल, कम्बल, देवल और वृषल शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–अयं तूलः । इत्यादि ॥

१४३ 'शीलमूलमंगलसालकमलतलमुसलकुण्डलपललमृणालवालवालनिगलपलालबिडालखिलशूलाः पुंसि च' ॥ चात् क्लीबे । इदं शीलमित्यादि ॥

१४३–शील, मूल, मंगल, साल, कमल, तल, मुसल, कुण्डल, पलल, मृणाल, बाल, वाल, निगल, पलाल, बिडाल, खिल और शूल शब्द पुँल्लिंग और नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–शीलः, शीलम् । इत्यादि ॥

१४४ 'शतादिः संख्या' ॥ शतम् । सहस्रम् । शतादिरिति किम् । एको द्वौ बहवः । संख्येति किम् । शतशृंगो नाम पर्वतः ॥

१४४–शतादिसंख्यावाचक शब्द नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त हों । यथा–शतम् । सहस्रम् । शतादिभिन्न होनेपर पुँल्लिङ्ग होगा । यथा–एकः । द्वौ । बहवः । किन्तु संख्या न होनेपर संज्ञा होनेपर पुँल्लिंग होगा । यथा–शतशृङ्गः । अर्थात् तन्नामक पर्वत ॥

१४५ 'शतायुतप्रयुताः पुंसि च' ॥ अयं शतः । इदं शतमित्यादि ॥

१४५–शत, अयुत और प्रयुत शब्द पुँल्लिंग और नपुंसक लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–अयं शतः, इदं शतमित्यादि ॥

१४६ 'लक्षा कोटिः स्त्रियाम्' ॥ इयं लक्षा । इयं कोटिः । "वा लक्षा नियुतं च तत्" इत्यमरात् क्लीबेपि लक्षम् ॥

१४६–लक्षा और कोटि शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–इयं लक्षा । इयं कोटिः । अमरकोषमें " वा लक्षा नियुतं च तत् " ऐसा निर्देश करनेसे लक्ष शब्द नपुंसकलिंग भी होगा । यथा–लक्षम् ॥

१४७ 'शंकुः पुंसि' ॥ सहस्रः क्वचित् । अयं सहस्रः । इदं सहस्रम् ॥

१४७–शङ्कु शब्द पुँल्लिंग हो, अर्थविशेषमें सहस्र शब्द पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त हो, यथा–सहस्रः, सहस्रम् ॥

१४८ 'मन्व्यन्नकोऽकर्तरि' ॥ मन्प्रत्ययान्तो द्व्यच्कः क्लीबः स्यात्र तु कर्तरि । वर्म । चर्म । द्व्यच्कः किम् । अणिमा । महिमा । अकर्तरि किम् । ददाति इति दामा ॥

१४८–मन्प्रत्ययान्त दो स्वर विशिष्ट शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, कर्तृवाच्यमें न हों, यथा–चर्म्म । वर्म्म । दो स्वर विशिष्ट न होनेपर स्त्रीलिंग हो, यथा–अणिमा । महिमा । कर्तृवाच्य होनेपर यथा, ददाति इति दामा ॥

१४९ 'ब्रह्मन् पुंसि च' ॥ अयं ब्रह्मा । इदं ब्रह्म ॥

१४९–ब्रह्मन् शब्द पुँल्लिंग और नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हो, यथा–अयं ब्रह्मा, इदं ब्रह्म ॥

१५० 'नामरोमणी नपुंसके' ॥ मन्व्द्यचक इत्यस्यायं प्रपञ्चः ॥

१५०–नामन् और रोमन् शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यह सूत्र " मन्द्व्यच्कः०" इस सूत्रका प्रपंचमात्र है ॥

१५१ 'असन्तो द्व्यच्कः' ॥ यशः । मनः । तपः । द्व्यच्कः किम् । चन्द्रमाः ॥

१५१–अस् अन्तमें हो ऐसे दो स्वरविशिष्ट शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों । यथा–यशः । मनः । तपः । दो अच् न होनेपर पुँल्लिंग होगा । यथा–चन्द्रमाः ॥

१५२ 'अप्सराः स्त्रियाम्' ॥ एता अप्सरसः । प्रायेणायं बहुवचनान्तः ॥

१५२–अप्सरस् शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हो, यथा–एता अप्सरसः । अप्सरः शब्द प्रायः बहुवचनान्त है ॥

१५३ 'त्रान्तः' ॥ पत्रम् । छत्रम् ॥

१५३–त्रप्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–पत्रम् । छत्रम् ॥

१५४ 'यात्रामात्राभस्त्रादंष्ट्रावरत्राः स्त्रियामेव' ॥

१५४–त्रप्रत्ययान्त यात्रा, मात्रा, भस्त्रा, दंष्ट्रा और वरत्रा शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हों ॥

१५५ 'भृत्रामित्रछात्रपुत्रमन्त्रवृत्रमेढ्रोष्ट्राः पुंसि' ॥ अयं भृत्रः । न मित्रममित्रः । "तस्य मित्राण्यमित्रास्ते" इति माघः । "स्याताममित्रौ मित्रे च" इति च । यत्तु द्विषोऽमित्र इति सूत्रे हरदत्तेनोक्तम् । अमेर्द्विषदित्यौणादिक इत्रच् । "अमेरमित्रं मित्रस्य व्यथयेत्" इत्यादौ मध्योदात्तस्तु चिन्त्यः । नञ्समासेऽप्येवम् । परवल्लिंगतापि स्यादिति तु तत्र दोषान्तरमिति तत्प्रकृतसूत्रापर्यालोचनमूलकम् । स्वरदोषोद्भावनमपि नञो जरमरमित्रमृता इति षाष्ठसूत्रास्मरणमूलकमिति दिक् ॥

१५५–त्रप्रत्ययान्त भृत्र, अमित्र, छात्र, पुत्र, मंत्र, वृत्र, मेढ्र और उष्ट्र शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों । यथा–अयं भृत्रः । न मित्रम् अमित्रः । "तस्य मित्राण्यमित्रास्ते" और " स्याताममित्रौ मित्रे च " । माघमें ऐसा प्रयोग है । किन्तु " द्विषोऽमित्रे ३१११ " इस सूत्रमें हरदत्तने कहा है

कि, " अमेर्द्विषति चित् " इस सूत्रसे इत्रच् प्रत्यय हुआ है, " अमैरमित्रं मित्त्रस्य व्यथयेत् " इत्यादि प्रयोगोंमें जो मध्योदात्त कहा है, वह चिन्तनीय है। नञ् समासमें भी ऐसी परवल्लिंगता होगी। ऐसा कहनेपर उस विषयमें दोषान्तर तत्प्रकृतसूत्रके अपर्य्यालोचनामूलक है। स्वरदोषका उद्भावन भी " नञो जरमरमित्रमृताः ३८५० " इत्यादि पाठ सूत्रके अस्मरण मूलक है॥

१५६ 'पत्रपात्रपवित्रसूत्रच्छत्राः पुंसि च'॥

१५६-त्र प्रत्ययान्त पत्र, पात्र, पवित्र, सूत्र, छत्र शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा, पत्रः, पत्रम्॥

१५७ 'बलकुसुमशुल्बयुद्धपत्तनरणाभिधानानि'॥ बलं वीर्यम्॥

१५७-बल, कुसुम, शुल्व, युद्ध, पत्तन और रणवाचक शब्द नपुंसकलिंग हों, यथा-बलं-वीर्यम्॥

१५८ 'पद्मकमलोत्पलानि पुंसि च'॥ पद्मादयः शब्दाः कुसुमाभिधायित्वेपि द्विलिंगाः स्युः। अमरोऽप्याह॥ "वा पुंसि पद्मं नलिनम्" इति। एवं च अर्द्धर्चादिसूत्रे तु जलजे पद्मं नपुंसकमेवेति वृत्तिग्रन्थो मतान्तरेण नेयः॥

१५८-पद्म, कमल, उत्पल शब्द कुसुमवाचक होनेपर भी पुँल्लिंग और नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों। अमरकोषमें कहा है कि, "वा पुंसि पद्मं नलिनम्" अर्थात् पद्म और नलिन शब्द विकल्प करके पुँल्लिंग हों, किन्तु "अर्द्धर्चाः०" सूत्रमें कमल अर्थमें पद्म शब्द केवल नपुंसकलिंग है यह वृत्ति ग्रन्थ मतांतर करके जानना चाहिये॥

१५९ 'आहवसंग्रामौ पुंसि'॥

१५९-आहव और संग्राम शब्द पुँल्लिंगमें प्रयुक्त हों॥

१६० 'आजिः स्त्रियामेव'॥

१६०-आजि शब्द स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हो॥

१६१ 'फलजातिः'॥ फलजातिवाची शब्दो नपुंसकं स्यात्। आमलकम्। आम्रम्॥

१६१-फलजातिवाचक शब्द नपुंसक लिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-आमलकम्। आम्रम्॥

१६२ 'वृक्षजातिः'॥ स्त्रियामेव क्वचिदेवेदम्। हरीतकी॥

१६२-वृक्षजातिवाचक शब्द कहीं २ स्त्रीलिंग हों, यथा-हरीतकी॥

१६३ 'वियज्जगत्सकृत्शकन्पृषच्छकृद्यकृदुदश्वितः'॥ एते क्लीबाः स्युः॥

१६३-वियत्, जगत्, सकृत्, शकन्, पृषत्, शकृत्, यकृत् और उदश्वित् शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों॥

१६४ 'नवनीतावतानानृतामृतनिमित्तवित्तचित्तपित्तव्रतरजतवृत्तपलितानि'॥

१६४-नवनीत, अवत, अन, अनृत, अमृत, निमित्त, वित्त, चित्त, पित्त, व्रत, रजत, वृत्त और पलित शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों॥

१६५ 'श्राद्धकुलिशदैवपीठकुण्डांकांगदधिसक्थ्यक्ष्यस्थ्यास्पदाकाशकण्वबीजानि'॥ एतानि क्लीबे स्युः॥

१६५-श्राद्ध, कुलिश, दैव, पीठ, कुण्ड, अंक, अंग, दधि, सक्थि, अक्षि, अस्थि, आस्पद, आकाश, कण्व और बीज शब्द नपुंसकलिंग हों॥

१६६ 'दैवं पुंसि च'॥ दैवम्। दैवः॥

१६६-दैव शब्द पुँल्लिंग और नपुंसकलिंग हो, यथा-दैवम्, दैवः॥

१६७ 'धान्याज्यसस्यरूप्यपण्यवर्ण्यधृष्यहव्यकव्यकाव्यसत्यापत्यमूल्यशिक्यकुड्यमद्यहर्म्यतूर्यसैन्यानि'॥ इदं धान्यमित्यादि॥

१६७-धान्य, आज्य, सस्य, रूप्य, पण्य, वर्ण्य, धृष्य, हव्य, कव्य, काव्य, सत्य, अपत्य, मूल्य, शिक्य, कुड्य, मद्य, हर्म्य, तूर्य और सैन्य शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-धान्यम्। इत्यादि॥

१६८ 'द्वन्द्वबर्हदुःखबडिशपिच्छबिंबकुटुम्बकवचवरशरवृन्दारकाणि'॥

१६८-द्वन्द्व, बर्ह, दुःख, बडिश, पिच्छ, बिम्ब, कुटुम्ब, कवच, वर, शर और वृन्दारक शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-द्वन्द्वम्। इत्यादि॥

१६९ 'अक्षमिन्द्रिये'॥ इंद्रिये किम्। रथांगादौ मा भूत्॥

॥ इति नपुंसकाधिकारः॥

१६९-इन्द्रियबोधक अक्ष शब्द नपुंसकलिंगमें प्रयुक्त हो। इन्द्रियभिन्नार्थ (रथांगादि) में पुँल्लिंग हो, यथा-अक्षः॥

इति नपुंसकाधिकारः।

अथ स्त्रीपुंसाधिकारः।

१७० 'स्त्री पुंसयोः'॥ अधिकारोयम्॥

१७०-'स्त्रीपुंसयोः' यह अधिकारसूत्र है यहांसे स्त्री और पुँल्लिङ्गका अधिकार चलैगा॥

१७१ 'गोमणियष्टिमुष्टिपाटलिवस्तिशाल्मलित्रुटिमसिमरीचयः'॥ इयमयं वा गौः॥

१७१-गो, मणि, यष्टि, मुष्टि, पाटलि, वस्ति, शाल्मलि, त्रुटि, मसि और मरीचि शब्द पुँल्लिंग और स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा-इयमयं वा गौः॥

१७२ 'मृत्युसीधुकर्कन्धुकिष्कुकण्डुरेणवः'॥ इयमयं वा मृत्युः॥

१७२–मृत्यु, सीधु, कर्कन्धु, किष्कु, कण्डु और रेणु शब्द पुँलिंग और स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–इयमयं वा मृत्युः ॥

१७३ 'गुणवचनमुकारान्तं नपुंसकं च' ॥ त्रिलिंगमित्यर्थः । पटु--पटुः--पट्वी ॥

१७३–गुणवाचक उकारान्त शब्द तीनों लिंगोंमें प्रयुक्त हों, यथा–पटु, पटुः, पट्वी ॥

१७४ 'अपत्यार्थतद्धिते' ॥ औपगवः–औपगवी ॥

॥ इति स्त्रीपुंसाधिकारः ॥

१७४–अपत्यार्थ तद्धितप्रत्ययान्त शब्द पुँलिंग और स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हों, यथा–औपगवः, औपगवी । इत्यादि ॥

इति स्त्रीपुंसाधिकारः ।

अथ पुंनपुंसकाधिकारः ।

१७५ 'पुन्नपुंसकयोः' ॥ अधिकारोयम् ॥

१७५–यहांसे पुँलिंग और नपुंसकलिंगका अधिकार चलेगा ॥

१७६ 'घृतभूतमुस्तक्ष्वेलितैरावतपुस्तकबुस्तलोहिताः' ॥ अयं घृतः । इदं घृतम् ॥

१७६–घृत, भूत, मुस्त, क्ष्वेलित, ऐरावत, पुस्तक, बुस्त और लोहित शब्द पुन्नपुंसकलिंग हों, यथा–अयं घृतः, इदं घृतम् । इत्यादि ॥

१७७ 'शृंगार्घनिदाघोद्यमशल्यदृढाः' ॥ अयं शृंगः । इदं शृंगम् ॥

१७७–शृंग, अर्घ, निदाघ, उद्यम, शल्य और दृढ शब्द पुन्नपुंसकलिंग हों, यथा, अयं शृंगः, इदं शृंगम् ॥

१७८ 'व्रजकुञ्जकुथकूर्चप्रस्थदर्पार्भार्धर्चदर्भपुच्छाः' ॥ अयं व्रजः । इदं व्रजम् ॥

१७८–व्रज, कुञ्ज, कुथ, कूर्च, प्रस्थ, दर्प, अर्भ, अर्धर्च, दर्भ और पुच्छ शब्द पुन्नपुंसकलिंग हों, यथा–अयं व्रजः, इदं व्रजम् ॥

१७९ 'कबन्धौषधायुधान्ताः' ॥ स्पष्टम् ॥

१७९–कबन्ध औषध और आयुध शब्द अन्तमें हों ऐसे शब्द पुन्नपुंसकलिंग हों ॥

१८० 'दण्डमण्डखण्डशवसैन्धवपार्श्वाकाशकुशकाशाङ्कुशकुलिशाः' ॥ एते पुन्नपुंसकयोः स्युः । "कुशो रामसुते दर्भे योक्त्रे द्वीपे कुशं जले" इति विश्वः । शलाकावाची तु स्त्रियाम् । तथा च–जानपदादिसूत्रेणायोविकारे ङीषि । कुशी । दारुणि तु टापा "कुशा वानस्पत्याः स्थ ता मा यात" इति श्रुतिः । अतः कुकमीति सूत्रे कुशाकर्णीष्विति प्रयोगश्च । व्याससूत्रे च–" हानौपूपायनशब्दे शेषत्वात्कुशाच्छन्दः" इति तत्र शारीरकभाष्येप्येवम् । एवं च । श्रुतिसूत्रभाष्याणामेकवाक्यत्वे स्थित आच्छन्द इत्याङ्प्रश्लेषादिपरो भामतीग्रन्थः प्रौढिवादमात्रपर इति विभावनीयं बहुश्रुतैः ॥

१८०–दण्ड, मण्ड, खण्ड, शव, सैन्धव, पार्श्व, आकाश, कुश, काश, अङ्कुश, और कुलिश शब्द पुन्नपुंसकलिङ्ग हों, " कुशो रामसुते दर्भे योक्त्रे द्वीपे कुशं जले " इति विश्वः । शलाकावाचक कुश शब्द स्त्रीलिङ्ग हो, जानपदादि सूत्रसे लोहविकारार्थमें ङीष् प्रत्यय करके कुशी पद हो । दारु होनेपर टाप् हो, यथा–" कुशा वानस्पत्याः स्थ ता मा यात" इति श्रुतिः । अत एव " कुकमि० १६० " इत्यादि सूत्रमें कुशाकर्णीषु इत्यादि प्रयोग है । और व्याससूत्रमें भी हानि अर्थमें उपायन शब्द शेष होनेके कारण कुशाच्छन्दः ऐसा लिखित है । शारीरक भाष्यमें भी ऐसा लिखा है, ऐसी श्रुति, सूत्र और भाष्यके एकवाक्यत्व होनेसे आच्छन्द इत्यादि स्थलमें आङ्प्रश्लेषादिपर जो भामती ग्रन्थ है वह केवल प्रौढवादमात्र है, यह बहुश्रुत पंडितोंका मत है ॥

१८१ 'गृहमेहदेहपट्टपटहाष्टापदाम्बुदककुदाश्च' ॥

॥ इति पुन्नपुंसकाधिकारः ॥

१८१–गृह, मेह, देह, पट्ट, पटह, अष्टापद, अम्बुद, ककुद शब्द पुन्नपुंसकलिंग हों ॥

इति पुन्नपुंसकाधिकारः ।

१८२ 'अविशिष्टलिङ्गम्' ॥

१८२–यहांसे अविशिष्ट लिंगका अधिकार चलैगा ॥

१८३ 'अव्ययं कतियुष्मदस्मदः' ॥

१८३–च, वा इत्यादि अव्यय शब्द कति शब्द और युष्मद् अस्मद् शब्द विशिष्ट लिंग कार्य्य शून्य अर्थात् त्रिलिंग हों, यथा–उच्चैः–तरुः, लता, मन्दिरम् । कति–पुरुषाः, स्त्रियः, बलानि । त्वं–पुमान्, स्त्री, कुलम् । अहं पुमान् ॥

१८४ 'ष्णान्ता संख्या' ॥

१८४–षकारान्त और नकारान्त संख्यावाचक शब्द त्रिलिंग हों, यथा--पञ्च, षट्–पुरुषाः, स्त्रियः, कुलानि ॥

१८५ 'शिष्टा परवत्' ॥ एकः पुरुषः । एका स्त्री । एकं कुलम् ॥

१८५--अविशिष्ट शब्द परवत् लिंग हों, यथा--एकः पुरुषः, एका स्त्री, एकं कुलम् ॥

१८६ 'गुणवचनं च' ॥ शुक्लः पटः । शुक्ला पटी । शुक्लं वस्त्रम् ॥

१८६--गुणवाचक शुक्लादि शब्द गुणी अर्थमें त्रिलिंग हों, यथा--शुक्लः पटः, शुक्ला पटी, शुक्लं वस्त्रम् । गुणमात्र होनेपर पुँल्लिंग होगा ॥

१८७ 'कृत्याश्च' ॥ करणा ॥

१८७--कृत्यप्रत्ययान्त शब्द त्रिलिंगमें हों, यथा--गायकः, गायिका, गायकम् ॥

१८८ 'करणाधिकरणयोर्ल्युट् च' ॥

१८८--करण और अधिकरणवाच्यमें ल्युट् प्रत्ययान्त शब्द त्रिलिंग हों, यथा--साधनः, साधना, साधनम् ॥

१८९ 'सर्वादीनि सर्वनामानि' ॥ स्पष्टार्थेयं त्रिसूत्री ॥

इति श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचितायां सिद्धांतकौमुद्यामुत्तरार्धे पाणिनीयलिङ्गानुशासनसूत्रवृत्तिः समाप्ता ॥ ॥ श्रीरस्तु ॥

१८९--सर्वादि सर्वनाम शब्द त्रिलिंग हों, यथा--सर्वः । सर्वा । सर्वम् । इत्यादि ॥

इति लिंगानुशासनप्रकरणम् ।

इति श्रीमत्कान्यकुब्जवंशावतंसपण्डितप्रवरमिश्रसुखानन्दात्मजविद्यावारिधिमहोपदेशकवेदभाष्यकारमुरादाबादनिवासिपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृता भाषाटीकायुता सिद्धान्तकौमुदी समाप्ता ॥

॥ समाप्तेयं वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीमुत्तरार्धम् ॥

पुस्तक मिलनेका पता--

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालय-मुंबई.

॥ श्रीः ॥
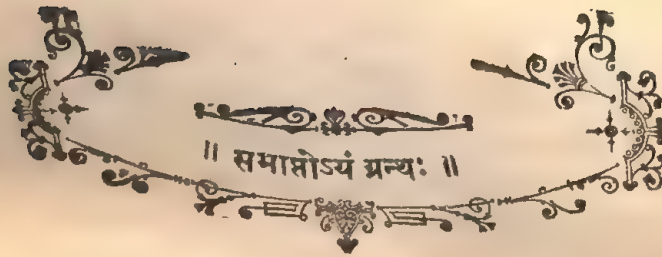
अथ पाणिनीयशिक्षाप्रारंभः।

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा । शास्त्रानुपूर्व्यं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः ॥१॥ प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः । पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ॥२॥ त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शंभुमते मताः । प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥३॥ स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः । यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥ ४ ॥ अनुस्वारो विसर्गश्च ᳵक ᳵपौ चापि पराश्रितौ । दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च ॥ ५ ॥१ ॥ आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थन्मनो युङ्क्ते विवक्षया । मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥६॥ मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् । प्रातःसवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥ ७॥ कण्ठे माध्यंदिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् । तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम् ॥ ८ ॥ सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः । वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥ ९ ॥ स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः । इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत॥१०॥२॥ उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः । ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥ ११ ॥ उदात्तौ निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ । स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥ १२ ॥ अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ॥ जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च॥१३॥ ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च । जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥ १४ ॥यद्योभावप्रसंधानमुकारादि परं पदम् । स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥ १५ ॥ ३ ॥ हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तस्थाभिश्च संयुतम् । औरस्यं तं विजानीयात्कण्ठ्यमाहुरसंयुतम् ॥ १६ ॥कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू । स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या ऌतुलसाः स्मृताः ॥१७॥ जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः । एऐ तु कण्ठतालव्यावोऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ॥१८॥ अर्धमात्रा तु कण्ठ्या स्यादेकारैकारयोर्भवेत् । ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम् ॥ १९ ॥ संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम् । घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः ॥ २० ॥४ ॥ स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम् । तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च ॥ ॥ २१ ॥ अनुस्वारयमानां च नासिकास्थानमुच्यते । अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ॥२२ ॥ अलाबुवीणानिर्घोषो दन्त्यमूल्यस्वराननु । अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च ॥२३॥अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये । द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद्यत्रौकारवकारयोः ॥ २४ ॥ व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् । भीतापतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥२५॥५॥ यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रँ इत्यभिभाषते । एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अराँ इव खेदया ॥२६॥ रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्नो ग्रसेत्पूर्वमक्षरम् । दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात्पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥ २७ ॥ हृदये चैकमात्रस्तु अर्धमात्रस्तु मूर्धनि नासिकायां तथार्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता ॥ २८ ॥ हृदयादुत्करे तिष्ठन्कांस्येन स्वमनुस्वरन् । मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ इति निदर्शनम् ॥ २९॥ मध्ये तु कम्पयेत्कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत् । सरङ्गं कम्पयेत्कम्पं रथीवेति निदर्शनम ॥३०॥ एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः । सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३१॥ ६ ॥ गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः । अनर्थज्ञोऽपकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥ ३२ ॥ माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः । धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥ ३३॥ शङ्कितं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम् । काकस्वरं शिरसि गतं तथा स्थानविवर्जितम् ॥ ३४ ॥ उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं विलंबितं गद्गदितं प्रगीतम् । निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम् ॥ ३५ ॥ प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन । मध्यंदिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन ॥३६॥ तारं तु विद्यात्सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् । मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन ॥ ३७ ॥ ७ ॥ अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेमस्पृष्टाः शरः स्मृताः । शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः ॥ ३८ ॥ यमोऽनुनासिका न ह्रौ नादिनो हझषः स्मृताः ।ईषन्नादा यणो जश्च श्वासिनस्तु खफादयः ॥३९ ॥ ईषच्छ्वासांश्चरो विद्याद्गोर्धामैतत्प्रचक्षते । दाक्षीपुत्रः पाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवि ॥ ४० ॥ छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते । ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१ ॥ शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् । तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४२ ॥ ८ ॥ उदात्तमाख्याति वृतोऽङ्गुलीनां

प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा । उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव ॥ ४३॥ उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात्प्रचयं मध्यतोऽङ्गुलिम् । निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ॥ ४४ ॥ अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् । मध्योदात्तं स्वरितं ह्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नवपदशय्या ॥ ४५ ॥ अग्निः सोमः प्रवो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती । अग्निरित्यन्तोदात्तं सोम इत्याद्युदात्तं प्रेत्युदात्तं व इत्यनुदात्तं वीर्यं नीचस्वरितम्॥ ॥ ४६ ॥ हविषां मध्योदात्तं स्वरिति स्वरितम् । बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम्॥ ४७॥ अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः । स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥४८ ॥ ९॥ चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं त्वेव वायसः । शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्धमात्रकम् ॥ ४९॥कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् । न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात् ॥ ५० ॥ सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नाय्यं सुव्यवस्थितम् । सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥ ५१॥ मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ ५२ ॥ अनक्षरमनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम् । अक्षताशस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥ ५३ ॥ हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् । ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति॥५४॥ हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् । ऋग्यजुः सामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ५५ ॥ १० ॥ शंकरः शांकरीं प्रादाद्दाक्षीपुत्राय धीमते । वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः ॥ ५६ ॥ येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् । कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५७ ॥ येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः। तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥५८॥ अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५९ ॥ त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमां य इह पठेत्प्रयतश्च सदा द्विजः । स भवति धनधान्यपशुपुत्रकीर्तिमानतुलं च सुखं समश्नुते दिवीतिदिवीति॥६०॥११॥ अथ शिक्षामात्मोदात्तश्च हकारं स्वराणां यथागीत्यचोस्पृष्टोदात्तं चाषस्तु शंकर एकादश ॥

॥ इति पाणिनीया शिक्षा समाप्ता ॥
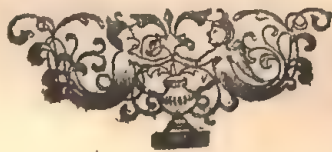
श्रीः ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

पाणिनीयाऽष्टाध्यायीमूत्रपाठ आरभ्यते ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ॥
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥ १ ॥
येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः ॥
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥ २ ॥
वाक्यकारं वररुचिं भाष्यकारं पतञ्जलिम् ॥
पाणिनिं सूत्रकारं च प्रणतोऽस्मि मुनित्रयम् ॥ ३ ॥

ॐ-अइउण् ॥ १ ॥ ऋऌक् ॥ २ ॥ एओङ् ॥ ३ ॥ ऐऔच् ॥ ४ ॥ हयवरट् ॥ ५ ॥ लण् ॥ ॥ ६ ॥ ञमङणनम् ॥ ७ ॥ झभञ् ॥ ८ ॥ घढधष् ॥ ९ ॥ जबगडदश् ॥ १० ॥ खफछठथचटतव् ॥ ११ ॥ कपय् ॥१२॥ शषसर्॥१३॥ हल् ॥ १४ ॥

वृद्धिरादैच् ॥ १ ॥ अदेङ् गुणः ॥२॥ इको गुणवृद्धी ॥ ३ ॥ न धातुलोप आर्धधातुके ॥ ४ ॥ क्ङिति च॥५॥ दीधीवेवीटाम् ॥ ६ ॥ हलोऽनन्तराः संयोगः ॥ ७ ॥ मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ॥ ८ ॥ तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ॥ ९ ॥ नाऽऽज्झलौ ॥ १० ॥ ःईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् ॥ ११ ॥ अदसो मात् ॥ १२॥ शे ॥ १३ ॥ निपात एकाजनाङ् ॥ १४ ॥ ओत् ॥ १५ ॥ सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे ॥ १६ ॥ उञः ॥ १७ ॥ ऊँ॥१८॥ ईदूतौ च सप्तम्यर्थे ॥१९॥ दाधा घ्वदाप् ॥ २० ॥१ ॥ आद्यन्तवदेकस्मिन् ॥ २१ ॥ तरप्तमपौ घः ॥ २२ ॥ बहुगणवतुडति संख्या ॥ २३ ॥ ष्णान्ता षट् ॥ २४ ॥ डति च ॥ २५ ॥ क्तक्तवतू निष्ठा ॥ २६ ॥ सर्वादीनि सर्वनामानि ॥२७ ॥ विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ ॥२८॥ न बहुव्रीहौ ॥ २९ ॥ तृतीयासमासे ॥ ३० ॥ द्वन्द्वे च ॥ ३१ ॥ विभाषा जसि ॥ ३२ ॥ प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च ॥ ३३ ॥ पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥३४॥ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ ॥ ३५ ॥ अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥ ३६ ॥ स्वरादिनिपातमव्ययम् ॥ ३७ ॥ तद्धितश्चासर्वविभक्तिः ॥ ३८ ॥ कृन्मेजन्तः ॥ ३९ ॥ क्त्वातोसुन्कसुनः ॥ ४० ॥ २॥ अव्ययीभावश्च ॥ ४१ ॥ शि सर्वनामस्थानम् ॥ ४२ ॥ सुडनपुंसकस्य ॥ ४३ ॥ नवेति विभाषा ॥४४॥ इग्यणः सम्प्रसारणम् ॥ ४५ ॥ आद्यन्तौ टकितौ ॥ ४६ ॥ मिदचोन्त्यात्परः॥४७॥एच इग्घ्रस्वादेशे ॥४८॥ षष्ठी स्थानेयोगा ॥ ४९ ॥ स्थानेऽन्तरतमः[1] ॥५०॥ उरण् रपरः॥५१॥ अलोन्त्यस्य ॥ ५२ ॥ ङिच्च ॥५३॥ आदेः परस्य॥५४॥ अनेकाल्शित्सर्वस्य ॥ ५५ ॥ स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ ॥५६॥ अचः परस्मिन्पूर्वविधौ ॥ ॥ ५७॥ न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णाऽनुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु ॥ ५८ ॥ द्विर्वचनेऽचि ॥ ५९ ॥ अदर्शनं लोपः ॥ ६० ॥ ३ ॥ प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः ॥ ६१ ॥ प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ॥६२॥ न लुमताङ्गस्य ॥६३॥ अचोऽन्त्यादि टि ॥ ६४ ॥ अलोन्त्यात्पूर्व उपधा ॥ ६५॥ तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ॥६६॥ तस्मादित्युत्तरस्य ॥६७॥ स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञा ॥ ६८ ॥ अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः ॥ ६९ ॥ तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥ आदिरन्त्येन सहेता ॥ ७१ ॥ येन विधिस्तदन्तस्य ॥ ७२ ॥ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् ॥७३॥ त्यदादीनि च ॥७४॥ एङ् प्राचां देशे ॥ ७५ ॥ १५ ॥ (वृद्धिराद्यन्तवदव्ययीभावः प्रत्ययस्य लुक् पञ्चदश) ॥

इति प्रथमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ॥ १ ॥ विज इट् ॥ २ ॥ विभाषोर्णोः ॥ ३ ॥ सार्वधातुकमपित् ॥ ४ ॥ असंयोगाल्लिट् कित् ॥ ५ ॥ इन्धिभवतिभ्यां च ॥ ६ ॥ मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा ॥७॥ रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥ ८ ॥ इको झल् ॥ ९ ॥ हलन्ताच्च ॥ १० ॥ लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ॥ ११ ॥ उश्च ॥ १२ ॥ वा गमः ॥ १३ ॥ हनः सिच् ॥१४॥ यमो गन्धने ॥१५॥ विभाषोपयमने ॥ १६ ॥ स्थाघ्वोरिच्च ॥ १७ ॥ न क्त्वा सेट् ॥ १८ ॥ निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ॥ १९ ॥ मृषस्तितिक्षायाम् ॥ २० ॥ १ ॥ उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ॥ २१ ॥ पूङः क्त्वा च ॥२२ ॥ नोपधात्थफान्ताद्वा ॥ २३ ॥ वञ्चिलुञ्च्यृतश्च ॥ २४ ॥ तृषिमृ-

---

१ अथ महाभाष्यसंमतश्रीनागोजीभट्टकृताष्टाध्यायीपाठोऽत्र टिप्पणीरूपेण संगृह्यते ॥-॥ उञ ऊँ इत्यस्य "उञः" इत्येकम्। "ऊँ" इत्यपरमिति योगविभागोऽत्र भाष्ये ।

[1] स्थानेन्तरतमे इति सप्तम्यन्तपाठः क्वचित्संहितापाठेऽङ्गीकृतः ।

पिक्रोशः काश्यपस्य ॥ २५ ॥ रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च ॥ ॥ २६ ॥ ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ २७ ॥ अचश्च ॥ ॥ २८ ॥ उच्चैरुदात्तः ॥ २९ ॥ नीचैरनुदात्तः ॥३०॥ समाहारः स्वरितः ॥ ३१ ॥ तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम् ॥ ३२ ॥ एकश्रुतिदूरात्सम्बुद्धौ ॥ ३३॥ यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु ॥ ३४ ॥ उच्चैस्तरां वा वषट्कारः ॥ ३५ ॥ विभाषा छन्दसि ॥ ३६ ॥ न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ॥ ३७ ॥ देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥ ३८ ॥ स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् ॥ ३९ ॥ उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥ ४० ॥ २ ॥ अपृक्त एकाल् प्रत्ययः ॥ ॥ ४१ ॥ तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः ॥ ॥ ४२ ॥ प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् ॥४३॥ एकविभक्ति चापूर्वनिपाते ॥ ४४ ॥ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ॥ ४५ ॥ कृत्तद्धितसमासाश्च ॥ ४६ ॥ ह्रस्वो नपुंसकेप्रातिपदिकस्य ॥ ४७॥ गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ॥ ४८ ॥ लुक् तद्धितलुकि ॥ ४९ ॥ इद्गोण्याः ॥५०॥ लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने ॥ ५१ ॥ विशेषणानां चाऽजातेः ॥ ५२ ॥ तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् ॥ ५३॥ लुब्योगाऽप्रख्यानात् ॥ ५४ ॥ योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात् ॥ ५५ ॥ प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्याऽन्यप्रमाणत्वात् ॥ ५६ ॥ कालोपसर्जने च तुल्यम् ॥ ५७ । जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम् ॥ ५८ ॥ अस्मदो द्वयोश्च ॥ ५९ ॥ फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे ॥ ६० ॥ ३ ॥ छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् ॥ ६१ ॥ विशाखयोश्च ॥६२॥ तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम् ॥ ६३ ॥ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ॥ ६४ ॥ वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः ॥ ६५ ॥ स्त्रीपुंवच्च ॥ ६६ ॥ पुमान् स्त्रिया ॥ ६७ ॥ भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् ॥ ६८ ॥ नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् ॥ ६९ ॥ पिता मात्रा ॥ ७० ॥ श्वशुरः श्वश्र्वा ॥ ७१ ॥ त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ॥ ७२ ॥ ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री ॥ ७३॥ १३॥ गाङ्कुटाद्युदुपधादपृक्तछन्दसिपुनर्वस्वोस्त्रयोदश) ॥

इति प्रथमाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥२॥

भूवादयो धातवः ॥ १ ॥ उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ ॥ २ ॥ हलन्त्यम् ॥ ३ ॥ न विभक्तौ तुस्माः ॥ ४ ॥ आदिर्ञिटुडवः ॥ ५ ॥ षः प्रत्ययस्य ॥६॥ चुटू ॥ ७॥ लशक्वतद्धिते ॥ ८ ॥ तस्य लोपः ॥ ९ ॥ यथासंख्यमनुदेशः समानाम् ॥१०॥ स्वरितेनाधिकारः ॥११॥ अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥ १२ ॥ भावकर्मणोः ॥१३॥ कर्तरि कर्मव्यतीहारे ॥ १४ ॥ न गतिहिंसार्थेभ्यः ॥ १५ ॥ इतरेतरान्योन्योपपदाच्च ॥ १६ ॥ नेर्विशः ॥ १७ ॥ परिव्यवेभ्यः क्रियः ॥ १८ ॥ विपराभ्यां जेः ॥ १९ ॥ आङो दोऽनास्यविहरणे ॥ २० ॥ १ ॥ क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च ॥ २१ ॥ समवप्रविभ्यः स्थः ॥२२॥ प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ॥ २३ ॥ उदोऽनूर्ध्वकर्मणि॥२४॥ उपान्मन्त्रकरणे ॥ २५॥ अकर्मकाच्च ॥ २६ ॥ उद्विभ्यां तपः ॥ २७ ॥ आङो यमहनः ॥ २८ ॥ समो गम्यृच्छिभ्याम् ॥ २९ ॥ निसमुपविभ्यो ह्वः ॥ ३० ॥ स्पर्धायामाङः ॥ ३१ ॥ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ॥ ३२ ॥ अधेः प्रसहने ॥ ३३ ॥ वेः शब्दकर्मणः ॥ ३४ ॥ अकर्मकाच्च ॥ ३५ ॥ सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ॥ ॥ ३६ ॥ कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि ॥३७ ॥ वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः ॥ ३८ ॥ उपपराभ्याम् ॥ ३९ ॥ आङ उद्गमने ॥ ४० ॥ २ ॥ वेः पादविहरणे ॥४१॥ प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ॥ ४२ ॥ अनुपसर्गाद्वा ॥ ४३ ॥ अपह्नवे ज्ञः ॥ ४४ ॥ अकर्मकाच्च ॥ ४५ ॥ सम्प्रतिभ्यामनाध्याने ॥ ४६ ॥ भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः ॥ ४७ ॥ व्यक्तवाचां समुच्चारणे ॥४८॥ अनोरकर्मकात् ॥ ४९ ॥ विभाषा विप्रलापे ॥ ५० ॥ अवाद्ग्रः ॥ ५१ ॥ समः प्रतिज्ञाने ॥ ५२ ॥ उदश्चरः सकर्मकात् ॥ ५३ ॥ समस्तृतीयायुक्तात् ॥५४॥ दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे॥५५॥ उपाद्यमः स्वकरणे ॥ ५६ ॥ ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ॥ ५७ ॥ नानोर्ज्ञः ॥ ५८ ॥ प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ॥ ५९ ॥ शदेः शितः ॥ ६० ॥ ३ ॥ म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ॥ ६१ ॥ पूर्ववत्सनः ॥६२॥ आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य ॥ ६३॥ प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ॥ ६४ ॥ समः क्ष्णुवः ॥ ॥ ६५ ॥ भुजोऽनवने ॥ ६६॥ णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्स कर्ताऽनाध्याने ॥ ६७ ॥ भीस्म्योर्हेतुभये ॥ ६८ ॥ गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने ॥ ६९ ॥ लियः संमाननशालीनीकरणयोश्च ॥७०॥ मिथ्योपपदात्कृञोऽभ्यासे ॥ ७१ ॥ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ॥ ७२ ॥ अपाद्वदः ॥ ७३ ॥ णिचश्च ॥ ७४ ॥ समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ॥ ॥ ७५ ॥ अनुपसर्गाज्ज्ञः ॥ ७६ ॥ विभाषोपपदेन प्रतीयमाने ॥ ७७ ॥ शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् ॥ ७८ ॥ अनुपराभ्यां कृञः ॥ ॥ ७९ ॥ अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ॥ ८० ॥ ४ ॥ प्राद्वहः ॥ ८१ ॥ परेर्मृषः ॥ ८२ ॥ व्याङ्परिभ्यो रमः ॥ ८३ ॥ उपाच्च ॥ ८४ ॥ विभाषाऽकर्मकात् ॥ ८५॥ बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः॥८६॥ निगरणचलनार्थेभ्यश्च ॥ ८७ ॥ अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् ॥८८॥ न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः ॥ ८९ ॥ वा क्यषः ॥ ९० ॥ द्युद्भ्यो लुङि ॥ ९१ ॥

वृद्धयः स्यसनोः ॥९२॥ लुटि च क्लृपः॥९३ ॥१२ ॥ (भूवादयः क्रीडोनु वेः पादम्रियतेः प्राद्वहस्त्रयोदश) ॥

इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

आकडारादेका संज्ञा ॥ १ ॥ विप्रतिषेधे परं कार्यम् ॥ ॥ २ ॥ यूस्त्र्याख्यौ नदी ॥ ३ ॥ नेयङुवङ्स्थानावस्त्री ॥ ॥ ४ ॥ वामि ॥ ५ ॥ ङिति ह्रस्वश्च ॥६॥ शेषो घ्यसखि ॥ ७ ॥ पतिः समास एव ॥ ८ ॥ षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा ॥ ९ ॥ ह्रस्वं लघु ॥ १० ॥ संयोगे गुरु ॥ ११ ॥ दीर्घं च ॥ १२ ॥ यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ॥ १३ ॥ सुप्तिङन्तं पदम् ॥ १४॥ नः क्ये ॥ १५ ॥ सिति च ॥ १६ ॥ स्वादिष्वसर्वनामस्थाने ॥१७ ॥ यचि भम् ॥ १८ ॥ तसौ मत्वर्थे ॥ १९ ॥ अयस्मयादीनि च्छन्दसि ॥ २० ॥ १ ॥ बहुषु बहुवचनम् ॥ २१ ॥ द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने ॥ २२ ॥ कारके ॥ २३ ॥ ध्रुवमपायेऽपादानम् ॥ २४ ॥ भीत्रार्थानां भयहेतुः ॥ २५ ॥ पराजेरसोढः ॥ २६ ॥ वारणार्थानामीप्सितः ॥ २७ ॥ अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति ॥ २८ ॥ आख्यातोपयोगे ॥ २९ ॥ जनिकर्तुः प्रकृतिः ॥ ३० ॥ भुवः प्रभवः ॥ ॥३१॥ कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम्॥३२॥रुच्यर्थानां प्रीयमाणः॥३३ ॥श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ॥३४ ॥ धारेरुत्तमर्णः॥३५॥स्पृहेरीप्सितः ॥३६॥ क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः ॥३७॥ क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ॥३८॥ राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ॥३९॥ प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ॥ ४० ॥ २ ॥ अनुप्रतिगृणश्च ॥ ४१ ॥ साधकतमं करणम् ॥ ४२ ॥ दिवः कर्म च ॥ ४३ ॥ परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥ आधारोऽधिकरणम् ॥ ४५ ॥ अधिशीङ्स्थासां कर्म ॥४६ ॥ अभिनिविशश्च ॥ ४७ ॥ उपान्वध्याङ्वसः ॥ ४८ ॥ कर्तुरीप्सिततमं कर्म ॥ ४९ ॥ तथायुक्तं चानीप्सितम् ॥ ५० ॥ अकथितं च ॥ ५१ ॥ गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ ॥ ५२ ॥ हृक्रोरन्यतरस्याम् ॥ ५३ ॥ स्वतन्त्रः कर्ता ॥ ५४ ॥ तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ ५५ ॥ प्राग्रीश्वरान्निपाताः ॥ ५६ ॥ चादयोऽसत्त्वे ॥ ५७ ॥ प्रादयः ॥५८॥ उपसर्गाः क्रियायोगे ॥ ५९ ॥ गतिश्च ॥ ६० ॥ ३ ॥ ऊर्यादिच्विडाचश्च ॥ ॥ ६१ ॥ अनुकरणं चानितिपरम् ॥ ६२ ॥ आदरानादरयोः सदसती ॥ ६३ ॥ भूषणेऽलम् ॥ ६४ ॥ अन्तरपरिग्रहे ॥ ६५ ॥ कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते ॥ ॥ ६६ ॥ पुरोऽव्ययम् ॥ ६७ ॥ अस्तं च ॥ ६८॥ अच्छ गत्यर्थवदेषु ॥ ६९ ॥ अदोनुपदेशे ॥ ७० ॥ तिरोऽन्तर्धौ ॥ ७१॥ विभाषा कृञि ॥ ७२ ॥उपाजेऽन्वाजे ॥ ७३ ॥ साक्षात्प्रभृतीनि च ॥ ७४ ॥ अनत्याधान उरसिमनसी ॥ ७५ ॥ मध्ये पदे निवचने च॥७६॥नित्यं हस्ते पाणावुपयमने ॥ ७७॥ प्राध्वं बन्धने ॥७८॥ जीविकोपनिषदावौपम्ये ॥ ७९ ॥ ते प्राग्धातोः ॥ ८० ॥ ४ छन्दसि परेऽपि ॥ ८१ ॥ व्यवहिताश्च ॥ ८२ ॥ कर्मप्रवचनीयाः ॥ ८३ ॥ अनुर्लक्षणे ॥ ८४ ॥ तृतीयार्थे ॥ ८५ ॥ हीने ॥ ८६ ॥ उपोऽधिके च ॥ ८७ ॥ अपपरी वर्जने ॥ ८८ ॥ आङ्मर्यादावचने ॥ ८९ ॥ लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः॥९०॥अभिरभागे ॥ ९१ ॥ प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः ॥ ९२ ॥ अधिपरी अनर्थकौ ॥ ९३ ॥ सुः पूजायाम् ॥ ९४ ॥ अतिरतिक्रमणे च ॥ ९५ ॥ अपिः पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु ॥९६ ॥ अधिरीश्वरे ॥ ९७॥ विभाषाकृञि ॥ ९८ ॥ लः परस्मैपदम् ॥ ९९ ॥ तङानावात्मनेपदम् ॥ १०० ॥ ५ ॥ तिङस्त्रीणित्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ॥ १०१ ॥ तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ॥ १०२ ॥ सुपः ॥१०३॥ विभक्तिश्च ॥ १०४॥ युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः॥१०५॥ प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च ॥ १०६ ॥ अस्मद्युत्तमः ॥१०७॥ शेषे प्रथमः ॥ १०८ ॥ परः सन्निकर्षः संहिता॥१०९॥विरामोऽवसानम् ॥११०॥६॥ (आकडाराद्बहुष्वनुप्रतिगृण ऊर्यादिच्छन्दसि तिङो दश)॥

इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

इति प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोध्यायः ।

समर्थः पदविधिः ॥ १ ॥ सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे ॥ २ ॥ प्राक्कडारात्समासः ॥ ३ ॥ सह सुपा ॥ ४ ॥ अव्ययीभावः ॥ ५ ॥ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ॥ ६ ॥ यथाऽसादृश्ये ॥ ७ ॥ यावदवधारणे ॥ ८ ॥ सुप् प्रतिना मात्रार्थे ॥ ९॥ अक्षशलाकासंख्याः परिणा ॥ १० ॥ विभाषा ॥ ११ ॥ अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या ॥ १२ ॥ आङ् मर्यादाभिविध्योः ॥ १३ ॥ लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये ॥ १४ ॥ अनुर्यत्समया ॥ १५ ॥ यस्य चायामः॥१६॥ तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च ॥ १७ ॥ पारे मध्ये षष्ठ्या वा ॥ १८ ॥ संख्या वंश्येन ॥ १९ ॥ नदीभिश्च ॥ २० ॥ ॥ १ ॥ अन्यपदार्थे च संज्ञायाम् ॥२१॥ तत्पुरुषः ॥ २२॥

द्विगुश्च ॥ २३ ॥ द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ॥ २४ ॥ स्वयं क्तेन ॥२५ ॥ खट्वा क्षेपे ॥ २६॥ सामि ॥ २७ ॥ कालाः ॥ २८ ॥ अत्यन्तसंयोगे च ॥ ॥ २९ ॥ तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन ॥ ३० ॥ पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः ॥ ३१ ॥ कर्तृकरणे कृता बहुलम् ॥३२॥ कृत्यैरधिकार्थवचने ॥३३॥ अन्नेन व्यञ्जनम् ॥३४॥ भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ॥ ३५ ॥ चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ॥ ३६ ॥ पञ्चमी भयेन ॥ ३७ ॥ अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः॥ ॥ ३८ ॥ स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ॥ ३९ ॥ सप्तमी शौण्डैः ॥ ४० ॥ २ ॥ सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ॥ ॥ ४१ ॥ ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ॥ ४२ ॥ कृत्यैर्ऋणे ॥ ४३ ॥ संज्ञायाम् ॥४४॥ क्तेनाहोरात्रावयवाः ॥४५॥ तत्र ॥४६॥ क्षेपे ॥ ४७ ॥ पात्रेसमितादयश्च ॥ ४८ ॥ पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन ॥ ४९ ॥ दिक्संख्ये संज्ञायाम् ॥ ५० ॥ तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ॥ ५१ ॥ संख्यापूर्वो द्विगुः ॥ ५२ ॥ कुत्सितानि कुत्सनैः ॥ ५३ ॥ पापाणके कुत्सितैः ॥५४ ॥ उपमानानि सामान्यवचनैः ॥ ५५ ॥ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥ ५६ ॥ विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ॥ ५७ ॥ पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च ॥ ५८ ॥ श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥ ५९ ॥ क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् ॥ ६० ॥ ३ ॥ सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ॥ ६१ ॥ वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम् ॥ ६२ ॥ कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने ॥ ६३ ॥ किं क्षेपे ॥ ६४ ॥ पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः ॥ ६५ ॥ प्रशंसावचनैश्च ॥ ६६ ॥ युवा खलतिपलितवलितजरतीभिः ॥ ६७ ॥ कृत्यतुल्याख्या अजात्या ॥ ६८ ॥ वर्णो वर्णेन ॥ ६९ ॥ कुमारः श्रमणादिभिः ॥ ७० ॥ चतुष्पादो गर्भिण्या ॥ ७१ ॥ मयूरव्यंसकादयश्च ॥७२॥ ॥१२॥ (समर्थोऽन्यपदार्थे च सिद्धशुष्कसन्महद्द्वादश) ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे ॥ १ ॥ अर्धं नपुंसकम् ॥ २ द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् ॥ ॥ ३ ॥ प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ॥ ४ ॥ कालाः परिमाणिना ॥ ५ ॥ नञ् ॥ ६ ॥ ईषदकृता ॥ ७ ॥ षष्ठी ॥ ८ ॥ याजकादिभिश्च ॥ ९ ॥ न निर्धारणे॥१०॥ पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ॥ ११ ॥ क्तेन च पूजायाम् ॥१२॥ अधिकरणवाचिना च ॥१३॥ कर्मणि च ॥ १४ ॥ तृजकाभ्यां कर्तरि ॥ १५ ॥ कर्तरि च ॥ ॥ १६ ॥ नित्यं क्रीडाजीविकयोः ॥ १७॥ कुगतिप्रादयः ॥ १८ ॥ उपपदमतिङ् ॥ १९ ॥ अमैवाव्ययेन ॥ २० ॥ १ ॥ तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्॥२१॥ क्त्वा च ॥ २२ ॥ शेषो बहुव्रीहिः ॥ २३ ॥ अनेकमन्यपदार्थे ॥ २४ ॥ संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये ॥ ॥ २५ ॥ दिङ्नामान्यन्तराले ॥ २६ ॥ तत्र तेनेदमिति सरूपे ॥ २७ ॥ तेन सहेति तुल्य योगे ॥ २८ ॥ चार्थे द्वन्द्वः ॥ २९॥ उपसर्जनं पूर्वम् ॥३०॥ राजदन्तादिषु परम् ॥३१॥ द्वन्द्वे घि ॥ ३२ ॥ अजाद्यदन्तम् ॥ ३३ ॥ अल्पाच्तरम् ॥ ३४ ॥ सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ ॥ ३५ ॥ निष्ठा ॥ ३६ ॥ वाहिताग्न्यादिषु ॥ ३७ ॥ कडाराः कर्मधारये ॥ ३८ ॥ १८ ॥ (पूर्वापराधरोत्तरं तृतीयाप्रभृतीन्यष्टादश) ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

अनभिहिते ॥ १ ॥ कर्मणि द्वितीया ॥ २ ॥ तृतीया च होश्छन्दसि ॥ ३ ॥ अन्तराऽन्तरेण युक्ते ॥ ४ ॥ कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥ ५ ॥ अपवर्गे तृतीया ॥ ६॥ सप्तमीपञ्चम्यौकारकमध्ये ॥ ७ ॥ कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ॥ ८ ॥ यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥ ९ ॥ पञ्चम्यपाङ्परिभिः ॥ १० ॥ प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥ ११ ॥ गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥ १२ ॥ चतुर्थी संप्रदाने ॥ १३ ॥ क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ॥ १४ ॥ तुमर्थाच्च भाववचनात् ॥ १५ ॥ नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च ॥ १६ ॥ मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ॥ १७ ॥ कर्तृकरणयोस्तृतीया ॥१८॥ सहयुक्तेऽप्रधाने ॥ १९ ॥ येनाङ्गविकारः ॥ २० ॥ १॥ इत्थंभूतलक्षणे ॥ २१ ॥ संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि ॥ २२ ॥ हेतौ ॥ २३ ॥ अकर्तर्यृणे पञ्चमी ॥ २४ ॥ विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ॥ २५ ॥ षष्ठी हेतुप्रयोगे ॥ २६ ॥ सर्वनाम्नस्तृतीया च ॥ २७॥ अपादाने पञ्चमी ॥ २८ ॥ अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ॥ २९ ॥ षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ॥ ३० ॥ एनपा द्वितीया ॥ ३१ ॥ पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ ३२ ॥ करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य ॥३३ ॥ दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ॥ ३४ ॥ दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ॥ ३५ ॥ सप्तम्यधिकरणे च ॥ ३६ ॥ यस्य च भावेन भावलक्षणम् ॥ ३७ ॥ षष्ठी चानादरे ॥ ३८ ॥ स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च ॥ ॥ ३९ ॥ आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् ॥ ४० ॥ २ ॥ यतश्च निर्धारणम् ॥ ४१ ॥ पञ्चमी विभक्ते ॥ ४२ ॥

साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ॥ ४३ ॥ प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ॥ ४४ ॥ नक्षत्रे च लुपि ॥ ४५ ॥ प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ॥ ४६ ॥ संबोधने च ॥ ४७ ॥ सामन्त्रितम् ॥ ४८ ॥ एकवचनं संबुद्धिः ॥ ४९ ॥ षष्ठी शेषे ॥ ५० ॥ ज्ञोऽविदर्थस्य करणे ॥ ५१ ॥ अधीगर्थदयेशां कर्मणि ॥ ५२ ॥ कृञः प्रतियत्ने ॥ ५३ ॥ रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः ॥ ५४ ॥ आशिषि नाथः ॥ ५५ ॥ जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ॥ ५६ ॥ व्यवहृपणोः समर्थयोः ॥ ५७ ॥ दिवस्तदर्थस्य ॥ ५८ ॥ विभाषोपसर्गे ॥ ५९ ॥ द्वितीया ब्राह्मणे ॥ ६० ॥ ॥ ३ ॥ प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने ॥ ६१ ॥ चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥ ॥ ६२ ॥ यजेश्च करणे ॥ ६३ ॥ कृत्वोर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे ॥ ६४ ॥ कर्तृकर्मणोः कृति ॥ ६५ ॥ उभयप्राप्तौ कर्मणि ॥ ६६ ॥ क्तस्य च वर्तमाने ॥ ६७ ॥ अधिकरणवाचिनश्च ॥ ६८ ॥ न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ॥ ६९ ॥ अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ॥ ७० ॥ कृत्यानां कर्तरि वा ॥ ७१ ॥ तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ ७२ ॥ चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः ॥ ७३ ॥ ॥ १३ ॥ (अनभिहित इत्थं यतश्च प्रेष्यब्रुवोस्त्रयोदश) ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

द्विगुरेकवचनम् ॥ १ ॥ द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ॥ २ ॥ अनुवादे चरणानाम् ॥ ३ ॥ अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् ॥ ४ ॥ अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् ॥ ५ ॥ जातिरप्राणिनाम् ॥ ६ ॥ विशिष्टलिङ्गोनदीदेशोऽग्रामाः ॥ ७ ॥ क्षुद्रजन्तवः ॥ ८ ॥ येषां च विरोधः शाश्वतिकः ॥ ९ ॥ शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥ १० ॥ गवाश्वप्रभृतीनि च ॥ ११ ॥ विभाषावृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् ॥ १२ ॥ विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि ॥ १३ ॥ न दधिपयआदीनि ॥ १४॥ अधिकरणैतावत्त्वे च॥१५॥ विभाषा समीपे ॥ १६ ॥ स नपुंसकम् ॥ १७ ॥ अव्ययीभावश्च ॥ १८ ॥ तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः ॥१९॥ संज्ञायां कन्थोशीनरेषु ॥२० ॥ १॥ उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम् ॥ २१ ॥ छाया बाहुल्ये ॥ २२ ॥ सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा ॥ २३ ॥ अशाला च ॥ २४ ॥ विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् ॥ २५ ॥ परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ॥ २६ ॥ पूर्ववदश्ववडवौ ॥ २७ ॥ हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि ॥ २८ ॥ रात्राह्नाहाः पुंसि ॥ २९ ॥ अपथं नपुंसकम् ॥ ३० ॥ अर्धर्चाः पुंसि च ॥३१॥ इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ॥ ३२ ॥ एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ ॥ ३३॥ द्वितीयाटौस्स्वेनः ॥ ३४ ॥ आर्धधातुके ॥ ३५॥ अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति ॥ ३६॥ लुङ्सनोर्घस्लृ ॥ ३७ ॥ घञपोश्च ॥ ३८ ॥ बहुलं छन्दसि ॥३९॥ लिट्यन्यतरस्याम् ॥ ॥ ४० ॥ २ ॥ वेञो वयिः ॥ ४१ ॥ हनो वध लिङि ॥ ४२॥ लुङि च ॥ ४३ ॥ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥ इणो गा लुङि ॥ ४५ ॥ णौ गमिरबोधने ॥ ४६ ॥ सनि च ॥ ४७ ॥ इङश्च ॥ ४८ ॥ गाङ् लिटि ॥४९॥ विभाषा लुङ्लृङोः ॥ ५० ॥ णौ च संश्चङोः ॥ ५१ ॥ अस्तेर्भूः ॥ ५२॥ ब्रुवो वचिः ॥ ५३ ॥ चक्षिङः ख्याञ् ॥ ५४ ॥ वा लिटि ॥ ५५ ॥ अजेर्व्यघञपोः॥५६॥ वा यौ ॥ ५७ ॥ ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः॥ ॥ ५८ ॥ पैलादिभ्यश्च ॥५९॥ इञः प्राचाम् ॥६०॥३॥ न तौल्वलिभ्यः॥ ६१ ॥ तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम ॥ ६२ ॥ यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥ ६३ ॥ यञञोश्च ॥ ॥ ६४ ॥ अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च ॥ ६५॥ बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु ॥ ६६ ॥ न गोपवनादिभ्यः ॥ ॥ ६७ ॥ तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे ॥ ६८ ॥ उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे ॥ ६९ ॥ आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् ॥७०॥ सुपो धातुप्रातिपदिकयोः ॥ ७१॥ अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥ ७२॥ बहुलं छन्दसि ॥ ७३ ॥ यङोऽचि च ॥ ७४ ॥ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥ ७५ ॥ बहुलं छन्दसि ॥ ७६ ॥ गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ॥ ७७ ॥ विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ॥ ७८ ॥ तनादिभ्यस्तथासोः ॥ ७९॥ मन्त्रे घसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः ॥ ८० ॥ ४ ॥ आमः ॥ ८१ ॥ अव्ययादाप्सुपः ॥ ८२ ॥ नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः ॥ ८३ ॥ तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥ ८४ ॥ लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥ ८५॥ ५॥ (द्विगुरुपज्ञोक्रमं वेञो वयिर्न तौल्वलिभ्य आमः पञ्च) ॥ **इति द्वितीयाध्यायस्य तुरीयः पादः ॥ ४ ॥**

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

प्रत्ययः ॥ १ ॥ परश्च ॥ २ ॥ आद्युदात्तश्च ॥ ३ ॥ अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥ ४ ॥ गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥ ५ ॥ मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥६॥ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ॥ ७ ॥ सुप आत्मनः क्यच् ॥ ८ ॥ काम्यच्च ॥ ९ ॥ उपमानादाचारे ॥ १० ॥ कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ॥ ११ ॥ भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ॥ १२ ॥ लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥ १३ ॥

कष्टाय क्रमणे ॥ १४ ॥ कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः ॥ १५॥ बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ॥ १६॥ शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ॥ १७ ॥ सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ॥ १८ ॥ नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ॥ १९ ॥ पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ॥ २० ॥ १ ॥ मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् ॥ २१ ॥ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ॥ २२ ॥ नित्यं कौटिल्ये गतौ ॥ २३ ॥ लुप सदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम् ॥ २४ ॥ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ॥ २५ ॥हेतुमति च ॥ २६॥ कण्ड्वादिभ्यो यक् ॥ २७ ॥ गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः॥२८॥ ऋतेरीयङ् ॥२९ ॥ कमेर्णिङ् ॥ ॥३०॥आयादय आर्धधातुके वा॥३१॥ सनाद्यन्ता धातवः ॥३२॥ स्यतासी लृलुटोः ॥३३॥ सिब्बहुलं लेटि॥३४॥ कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ॥३५ ॥ इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ॥ ३६ ॥ दयायासश्च ॥३७॥ उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ ३८ ॥ भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ॥ ३९ ॥ कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ॥४० ॥ २ ॥ विदांकुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ॥ ४१ ॥ अभ्युत्सादयांप्रजनयांचिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद्विदामक्रन्निति छन्दसि ॥ ४२ ॥च्लि लुङि ॥ ॥४३॥ च्लेः सिच्॥४४॥शल इगुपधादनिटः क्सः॥४५॥ श्लिष आलिङ्गने ॥ ४६ ॥ न दृशः ॥ ४७ ॥ णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् ॥ ४८ विभाषा धेट्श्व्योः ॥ ४९ ॥ गुपेश्छन्दसि ॥ ५० ॥ नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः॥ ॥ ५१ ॥ अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ॥५२ ॥ लिपिसिचिह्वश्च ॥ ५३ ॥ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ ५४॥ पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ॥ ५५ ॥ सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च ॥ ५६ ॥ इरितो वा ॥ ५७ ॥ जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ॥ ५८ ॥ कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि ॥ ॥ ५९ ॥ च्चिण् ते पदः ॥ ६० ॥ ३ ॥ दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ ६१ ॥ अचः कर्मकर्तरि ॥६२॥ दुहश्च ॥ ६३ ॥ न रुधः ॥ ६४ ॥ तपोऽनुतापे च ॥ ६५ ॥ चिण् भावकर्मणोः ॥ ६६ ॥ सार्वधातुके यक् ॥ ६७ ॥ कर्तरि शप् ॥ ६८ ॥ दिवादिभ्यः श्यन् ॥ ६९ ॥ वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ॥ ७० ॥ यसोऽनुपसर्गात् ॥ ७१ ॥ संयसश्च ॥ ७२ ॥ स्वादिभ्यः श्नुः ॥ ७३ ॥ श्रुवः शृ च ॥ ७४ ॥ अक्षोऽन्यतरस्याम् ॥ ७५ ॥ तनूकरणे तक्षः ॥ ७६ ॥ तुदादिभ्यः शः ॥ ७७ ॥ रुधादिभ्यः श्नम् ॥ ७८ ॥ तनादिकृञ्भ्य उः ॥ ७९ ॥ धिन्विकृण्व्योर च ॥ ८० ॥ ४ ॥ क्र्यादिभ्यः श्ना ॥ ८१ ॥ स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ॥ ८२ ॥ हलः श्नः शानज्झौ ॥ ८३ ॥ छन्दसि शायजपि ॥ ८४ ॥ व्यत्ययो बहुलम् ॥ ८५ ॥ लिङ्याशिष्यङ् ॥ ८६ ॥ कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ॥ ॥ ८७ ॥ तपस्तपःकर्मकस्यैव ॥ ८८ ॥ न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ॥ ८९ ॥ कुषिरजोः प्राचां श्यन्परस्मैपदं च ॥ ९० ॥ धातोः ॥ ९१ ॥ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ॥ ॥ ९२ ॥ कृदतिङ् ॥ ९३ ॥ वासरूपोऽस्त्रियाम् ॥ ॥ ९४ ॥ कृत्याः ॥ ९५ ॥ तव्यत्तव्यानीयरः ॥ ९६ ॥ अचो यत् ॥ ९७ ॥ पोरदुपधात् ॥ ९८ ॥ शकिसहोश्च ॥ ॥ ९९ ॥ गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ॥ १०० ॥ ५ ॥ अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु॥ ॥ १०१ ॥ वह्यं करणम् ॥ १०२ ॥ अर्यः स्वामिवैश्ययोः ॥ १०३ ॥ उपसर्या काल्या प्रजने ॥ १०४ ॥अजर्यं सङ्गतम् ॥ ॥ १०५ ॥ वदः सुपि क्यप् च ॥ १०६ ॥ भुवो भावे ॥ १०७ ॥ हनस्त च ॥ १०८ ॥ एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ॥१०९॥ ऋदुपधाच्चाक्लृपि चृतेः ॥ ११० ॥ ई च खनः ॥ १११ ॥ भृञोऽसंज्ञायाम् ॥ ११२ ॥ मृजेर्विभाषा ॥ ११३ ॥ राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ॥ ११४ ॥ भिद्योद्ध्यौ नदे ॥ ११५ ॥ पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे ॥ ११६ ॥ विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु ॥ ११७ ॥ प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः छन्दसि[1] ॥ ॥ ११८ ॥ पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ॥ ११९ ॥ विभाषा कृवृषोः ॥ १२० ॥ ६ ॥ युग्यं च पत्रे ॥ १२१ ॥ अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥ १२२ ॥ छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छयप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि॥१२३॥ ऋहलोर्ण्यत् ॥ १२४ ॥ ओरावश्यके ॥ १२५ ॥ आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ॥ १२६ ॥ आनाय्योऽनित्ये ॥ ॥ १२७ ॥ प्रणाय्योऽसंमतौ ॥ १२८ ॥ पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्यामानहविर्निवाससामिधेनीषु ॥ १२९ ॥ क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ ॥ १३० ॥ अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः ॥ १३१ ॥ चित्याग्निचित्ये च ॥ १३२ ॥ ण्वुल्तृचौ ॥ १३३ ॥ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ॥ १३४ ॥ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ॥ १३५ ॥ आतश्चोपसर्गे ॥ १३६॥ पाघ्राध्माधेट्दृशः शः॥१३७॥ अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च। ॥ १३८ ॥ ददातिदधात्योर्विभाषा ॥ १३९ ॥ ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ॥ १४० ॥ ७ ॥ श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च ॥ १४१ ॥ दुन्योरनुपसर्गे ॥ ॥१४२॥ विभाषाग्रहः ॥ १४३ ॥ गेहे कः ॥ १४४ ॥ शिल्पिनि ष्वुन् ॥ १४५ ॥ गस्थकन् ॥ १४६ ॥

[1] करयाः 'प्राङ्ण्वुलः'इत्यपि पाठः । २ छन्दसीति प्रक्षिप्तः पाठः ।

ण्युट् च ॥ १४७ ॥ हश्च व्रीहिकालयोः ॥ १४८ ॥ प्रुसृल्वः समभिहारे वुन् ॥ १४९ ॥ आशिषि च ॥ ॥ १५० ॥ १० ॥ (प्रत्ययो मुण्डविदांदीपजनत्र्यादिभ्योऽवद्यपण्ययुग्यं च श्याद्व्यधा दश)॥

इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

कर्मण्यण् ॥ १ ॥ ह्वावामश्च ॥ २ ॥ आतोऽनुपसर्गे कः ॥ ३ ॥ सुपि स्थः ॥ ४ ॥ तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥ ५ ॥ प्रे दाज्ञः ॥ ६ ॥ समि ख्यः ॥ ७ ॥ गापोष्टक् ॥ ८ ॥ हरतेरनुद्यमनेऽच् ॥ ९ ॥ वयसि च ॥ ॥ १० ॥ आङि ताच्छील्ये ॥ ११ ॥ अर्हः ॥ १२ ॥ स्तम्बकर्णयोरमिजपोः ॥ १३ ॥ शमि धातोः संज्ञायाम् ॥ ॥ १४ ॥ अधिकरणे शेतेः ॥ १५ ॥ चरेष्टः ॥ १६ ॥ भिक्षासेनादायेषु च ॥ १७ ॥ पुरोऽग्रतोग्रेषु सर्तेः ॥ ॥ १८ ॥ पूर्वे कर्तरि ॥॥ १९ ॥ कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ॥ २० ॥ १ ॥ दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ॥ २१ ॥ कर्मणि भृतौ ॥ २२ ॥ न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ॥ २३ ॥ स्तम्बशकृतोरिन् ॥ २४ ॥ हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ॥ २५ ॥ फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ॥ २६ ॥ छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥ २७ ॥ एजेः खश् ॥ २८॥ नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ॥ २९॥ नाडीमुष्ट्योश्च ॥३०॥ उदि कूले रुजिवहोः ॥ ३१ ॥ वहाभ्रे लिहः ॥ ३२ ॥ परिमाणे पचः ॥ ३३ ॥ मितनखे च ॥३४॥ विध्वरुषोः तुदः ॥ ३५ ॥ असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ॥ ३६ ॥ उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥३७॥ प्रियवशे वदः खच्॥ ॥ ३८ ॥ द्विषत्परयोस्तापेः ॥ ३९ ॥ वाचि यमो व्रते॥ ॥ ४० ॥ २ ॥ पूःसर्वयोर्दारिसहोः ॥ ४१ ॥ सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ॥ ४२ ॥ मेघर्तिभयेषु कृञः ॥ ४३ ॥ क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ॥ ४४ ॥ आशिते भुवः करणभावयोः ॥ ४५ ॥ संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः ॥ ४६ ॥ गमश्च ॥ ४७ ॥ अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ॥ ॥ ४८ ॥ आशिषि हनः ॥ ४९ ॥ अपे क्लेशतमसोः ॥ ॥ ५० ॥ कुमारशीर्षयोर्णिनिः ॥ ५१ ॥ लक्षणे जायापत्योष्टक् ॥ ५२ ॥ अमनुष्यकर्तृके च ॥ ५३ ॥ शक्तौ हस्तिकपाटयोः ॥ ५४ ॥ पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥ ॥ ५५॥ आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ॥ ५६ ॥ कर्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ॥ ५७ ॥ स्पृशोऽनुदके क्विन् ॥ ५८ ॥ ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ॥ ५९ ॥ त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ॥ ६० ॥ ३ ॥ सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् ॥ ६१ ॥ भजो ण्विः ॥ ६२ ॥ छन्दसि सहः ॥ ६३ ॥ वहश्च ॥ ६४॥ कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ॥ ६५ ॥ हव्येऽनन्तः पादम् ॥ ॥ ६६ ॥ जनसनखनक्रमगमो विट् ॥ ६७ ॥ अदोऽनन्ने॥ ॥ ६८ ॥ क्रव्ये च ॥ ६९ ॥ दुहः कप् घश्च ॥ ७० ॥ मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ॥ ७१ ॥ अवे यजः ॥ ७२ ॥ विजुपे छन्दसि ॥ ७३ ॥ आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च ॥७४॥ अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ ७५॥ क्विप् च॥ ॥ ७६ ॥ स्थः क च ॥ ७७ ॥ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥ ७८ ॥ कर्तर्युपमाने ॥ ७९ ॥ व्रते ॥ ८० ॥४॥ बहुलमाभीक्ष्ण्ये ॥ ८१ ॥ मनः ॥ ८२ ॥ आत्ममाने खश्च ॥ ८३ ॥ भूते ॥ ८४ ॥ करणे यजः ॥ ८५ ॥ कर्मणि हनः ॥ ८६ ॥ ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ॥ ८७ ॥ बहुलं छन्दसि ॥ ८८ ॥ सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥ ८९ ॥ सोमे सुञः ॥ ९० ॥ अग्नौ चेः ॥ ९१ ॥ कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥ ९२ ॥ कर्मणीनिविक्रियः ॥ ९३ ॥ दृशेः क्वनिप् ॥ ९४ ॥ राजनि युधिकृञः ॥ ९५ ॥ सहे च ॥ ९६ ॥ सप्तम्यां जनेर्डः ॥९७॥ पञ्चम्यामजातौ ॥९८ ॥ उपसर्गे च संज्ञायाम् ॥ ९९ ॥ अनौ कर्मणि ॥१००॥५॥ अन्येष्वपि दृश्यते ॥ १०१ ॥ निष्ठा ॥१०२॥ सुयजोर्ङ्वनिप् ॥ १०३ ॥ जीर्यतेरतृन् ॥ १०४ ॥ छन्दसि लिट् ॥ १०५ ॥ लिटः कानज्वा ॥ १०६ ॥ क्वसुश्च ॥ १०७॥ भाषायां सदवसश्रुवः ॥ १०८ ॥ उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ॥ १०९ ॥ लुङ् ॥११०॥ अनद्यतने लङ् ॥१११॥ अभिज्ञावचने लृट् ॥ ११२ ॥ न यदि ॥ ११३॥ विभाषा साकाङ्क्षे ॥ ११४ ॥ परोक्षे लिट् ॥ ११५ ॥ हशश्वतोर्लङ् च ॥ ११६ ॥ प्रश्ने चासन्नकाले ॥ ११७ ॥ लट् स्मे ॥ ११८ ॥ अपरोक्षे च ॥११९॥ ननौ पृष्टप्रतिवचने ॥ १२० ॥ ६ ॥ नन्वोर्विभाषा ॥ १२१ ॥ पुरि लुङ् चास्मे ॥ १२२ ॥ वर्तमाने लट् ॥ १२३ ॥ लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ॥ १२४ ॥ सम्बोधने च॥ ॥१२५ लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥ १२६ ॥ तौ सत् ॥ ॥ १२७ ॥ पूङ्यजोः शानन् ॥ १२८ ॥ ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ॥ १२९ ॥ इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि ॥ १३० ॥ द्विषोऽमित्रे ॥ १३१ ॥ सुञो यज्ञसंयोगे ॥ ॥ १३२ ॥ अर्हः प्रशंसायाम् ॥ १३३ ॥ आ केस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ॥ १३४ ॥ तृन् ॥ १३५ ॥ अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच् ॥ १३६ ॥ णेश्छन्दसि ॥ १३७ ॥ भुवश्च ॥ ॥ १३८ ॥ ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः ॥ १३९ ॥ त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ॥ १४० ॥ ७ ॥ शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ॥ १४१ ॥ सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेवि-

सञ्ज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुह-
युजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च ॥
॥ १४२ ॥ वौ कषलसकत्थस्रम्भः ॥ १४३ ॥ अपे च
लषः ॥ १४४ ॥ प्रे लपसुद्रुमथवदवसः ॥ १४५ ॥ नि-
न्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासू-
यो वुञ् ॥ १४६ ॥ देविक्रुशोश्चोपसर्गे ॥ १४७ ॥ चल-
नशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ॥ १४८ ॥ अनुदात्तेतश्च हलादेः
॥१४९॥ जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ॥
॥ १५० ॥ क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ॥ १५१ ॥ नयः ॥
॥ १५२ ॥ सूददीपदीक्षश्च ॥ १५३ ॥ लषपतपद-
स्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ् ॥ १५४ ॥ जल्पभिक्ष-
कुट्टलुण्टवृङः षाकन् ॥ १५५ ॥ प्रजोरिनिः ॥ १५६ ॥
जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ॥ १५७ ॥
स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ॥ १५८ ॥
दाधेट्सिशदसदो रुः ॥ १५९ ॥ सृघस्यदः क्मरच् ॥
॥ १६० ॥ ८ ॥ भञ्जभासमिदो घुरच् ॥ १६१ ॥ वि-
दिभिदिच्छिदेः कुरच् ॥ १६२ ॥ इण्नशजिसर्तिभ्यः ॥
क्वरप् ॥ १६३ ॥ गत्वरश्च ॥ १६४ ॥ जागुरूकः ॥
॥ १६५ ॥ यजजपदशां यङः ॥ १६६ ॥ नमिकम्पि-
स्म्यजसकमहिंसदीपो रः ॥ १६७ ॥ सनाशंसभिक्ष उः ॥
॥ १६८ ॥ विन्दुरिच्छुः ॥ १६९ ॥ क्याच्छन्दसि ॥
॥ १७० ॥ आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ॥ १७१ ॥
स्वपितृषोर्नजिङ् ॥ १७२ ॥ शॄवन्द्योरारुः ॥ १७३ ॥
भियः क्रुक्लुकनौ ॥ १७४ ॥ स्थेशभासपिसकसो वरच् ॥
॥ १७५ ॥ यश्च यङः ॥ १७६ ॥ भ्राजभासधुर्विद्युतो-
र्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ॥ १७७ ॥ अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥
॥ १७८ ॥ भुवः संज्ञान्तरयोः ॥ १७९ ॥ विप्रसम्भ्यो
ड्वसंज्ञायाम् ॥ १८० ॥ ९ ॥ धः कर्मणि ष्ट्रन् ॥ १८१ ॥
दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ॥ १८२ ॥
हलसूकरयोः पुवः ॥ १८३ ॥ अर्तिलूधूसूखनसहचर
इत्रः ॥ १८४ ॥ पुवः संज्ञायाम् ॥ १८५ ॥ कर्तरि
चर्षिदेवतयोः ॥ १८६ ॥ ञीतः क्तः ॥ १८७ ॥ मतिबु-
द्धिपूजार्थेभ्यश्च ॥ १८८ ॥ ८ ॥ (कर्मणि दिवापूः सत्सूव-
हुलमन्येष्वपिनन्वोः शमिति भञ्जभासधः कर्मण्यष्टौ) ॥

इति तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

उणादयो बहुलम् ॥ १ ॥ भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥ २ ॥
भविष्यति गम्यादयः ॥ ३ ॥ यावत्पुरानिपातयोर्लट् ॥ ४ ॥
विभाषा कदाकर्ह्योः ॥ ५ ॥ किंवृत्ते लिप्सायाम् ॥ ६ ॥
लिप्स्यमानसिद्धौ च ॥ ७ ॥ लोडर्थलक्षणे च ॥ ८ ॥
लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके ॥ ९ ॥ तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां
क्रियार्थायाम् ॥ १० ॥ भाववचनाश्च ॥ ११ ॥ अण्
कर्मणि च ॥ १२ ॥ लृट् शेषे च ॥ १३ ॥ लृटः सद्वा
॥ १४ ॥ अनद्यतने लुट् ॥ १५ ॥ पदरुजविशस्पृशो घञ्
॥ १६ ॥ स्थिरे ॥ १७ ॥ भावे ॥ १८ ॥ अकर्तरि च
कारके संज्ञायाम् ॥ १९ ॥ परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः
॥ २० ॥ १ ॥ इङश्च ॥ २१ ॥ उपसर्गे रुवः ॥ २२ ॥
समि युद्रुदुवः ॥ २३ ॥ श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे ॥ २४ ॥
वौ क्षुश्रुवः ॥ २५ ॥ अवोदोर्नियः ॥ २६ ॥ प्रे द्रुस्तुस्रुवः
॥ २७ ॥ निरभ्योः पूल्वोः ॥ २८ ॥ उन्न्योर्ग्रः ॥ २९ ॥ कॄ
धान्ये ॥ ३० ॥ यज्ञे समि स्तुवः ॥ ३१ ॥ प्रे स्त्रोऽयज्ञे ॥
॥ ३२ ॥ प्रथने वावशब्दे ॥ ३३ ॥ छन्दो नाम्नि च ॥
॥ ३४ ॥ उदि ग्रहः ॥ ३५ ॥ समि मुष्टौ ॥ ३६ ॥ परि-
न्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥ ३७ ॥ परावनुपात्यय इणः ॥ ३८ ॥
व्युपयोः शेतेः पर्याये ॥ ३९ ॥ हस्तादाने चेरस्तेये ॥ ४० ॥
॥ २ ॥ निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ॥ ४१ ॥
संघे चानौत्तराधर्ये ॥ ४२ ॥ कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्
॥ ४३ ॥ अभिविधौ भाव इनुण् ॥ ४४ ॥ आक्रोशेऽव-
न्योर्ग्रहः ॥ ४५ ॥ प्रे लिप्सायाम् ॥ ४६ ॥ परौ यज्ञे ॥
॥ ४७ ॥ नौ वृ धान्ये ॥ ४८ ॥ उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः
॥ ४९ ॥ विभाषाङि रुप्लुवोः ॥ ५० ॥ अवे ग्रहो
वर्षप्रतिबन्धे ॥ ५१ ॥ प्रे वणिजाम् ॥ ५२ ॥ रश्मौ च
॥ ५३ ॥ वृणोतेराच्छादने ॥ ५४ ॥ परौ भुवोऽवज्ञाने
॥ ५५ ॥ एरच् ॥ ५६ ॥ ऋदोरप् ॥ ५७ ॥ ग्रहवृदृ-
निश्चिगमश्च ॥ ५८ ॥ उपसर्गेऽदः ॥ ५९ ॥ नौ ण च
॥ ६० ॥ ३ ॥ व्यधजपोरनुपसर्गे ॥ ६१ ॥ स्वनहसोर्वा
॥ ६२ ॥ यमः समुपनिविषु च ॥ ६३ ॥ नौ गदनदप-
ठस्वनः ॥ ६४ ॥ क्वणो वीणायां च ॥ ६५ ॥ नित्यं पणः
परिमाणे ॥ ६६ ॥ मदोऽनुपसर्गे ॥ ६७ ॥ प्रम-
दसम्मदौ हर्षे ॥ ६८ ॥ समुदोरजः पशुषु ॥ ६९ ॥ अक्षेषु
ग्लहः ॥ ७० ॥ प्रजने सर्तेः ॥ ७१ ॥ ह्वः संप्रसारणं
च न्यभ्युपविषु ॥ ७२ ॥ आङि युद्धे ॥ ७३ ॥ निपा-
नमाहावः ॥ ७४ ॥ भावेऽनुपसर्गस्य ॥ ७५ ॥ हनश्च वधः
॥ ७६ ॥ मूर्तौ घनः ॥ ७७ ॥ अन्तर्घनो देशे ॥ ७८ ॥
अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ॥ ७९ ॥ उद्घनो-
ऽत्याधानम् ॥ ८० ॥ ४ ॥ अपघनोऽङ्गम् ॥ ८१ ॥
करणेऽयोविद्रुषु ॥ ८२ ॥ स्तम्बे क च ॥ ८३ ॥
परौ घः ॥ ८४ ॥ उपघ्न आश्रये ॥ ८५ ॥ सङ्घोद्घौ
गणप्रशंसयोः ॥ ८६ ॥ निघो निमितम् ॥ ८७ ॥ ड्वितः
क्त्रिः ॥ ८८ ॥ ट्वितोऽथुच् ॥ ८९ ॥ यजयाचयतविच्छ-
प्रच्छरक्षो नङ् ॥ ९० ॥ स्वपो नन् ॥ ९१ ॥ उपसर्गे
घोः किः ॥ ९२ ॥ कर्मण्यधिकरणे च ॥ ९३ ॥
स्त्रियां क्तिन् ॥ ९४ ॥ स्थागापापचो भावे ॥ ९५ ॥
मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः ॥ ९६ ॥ ऊतियू-

तिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च ॥ ९७ ॥ व्रजयजोर्भावे क्यप् ॥९८॥ संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः ॥ ९९ ॥ कृञः श च ॥ १०० ॥ ५ ॥ इच्छा ॥ १०१ ॥ अ प्रत्ययात् ॥ १०२ ॥ गुरोश्च हलः ॥ १०३ ॥ षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ १०४ ॥ चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ॥ १०५ ॥ आतश्चोपसर्गे ॥ १०६॥ ण्यासश्रन्थोयुच् ॥ १०७ ॥ रोगाख्यायां ण्वुल्बहुलम् ॥ १०८ ॥ संज्ञायाम् ॥ १०९ ॥ विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च ॥११०॥ पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच्॥१११॥ आक्रोशे नञ्यनिः ॥११२॥ कृत्यल्युटो बहुलम्॥११३॥ नपुंसके भावे क्तः ॥ ११४ ॥ ल्युट् च ॥११५॥ कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्तुः शरीरसुखम् ॥ ११६ ॥ करणाधिकरणयोश्च ॥ ११७ ॥ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण॥११८॥ गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च ॥११९॥अवे तॄस्त्रोर्घञ् ॥१२०॥६॥ हलश्च ॥ १२१ ॥ अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ॥ १२२ ॥ उदङ्कोऽनुदके ॥ १२३ ॥ जालमानायः ॥ १२४ ॥ खनो घ च ॥ १२५ ॥ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥१२६॥ कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ॥ ॥ १२७ ॥ आतो युच् ॥१२८ ॥ छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥ १२९ ॥ अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥१३०॥वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा ॥१३१॥ आशंसायां भूतवच्च ॥ १३२ ॥ क्षिप्रवचने लृट् ॥ १३३ ॥ आशंसावचने लिङ्॥१३४॥ नानद्यतनवत्क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ॥ १३५ ॥ भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् ॥१३६॥ कालविभागे चानहोरात्राणाम् ॥१३७॥ परस्मिन्विभाषा ॥ १३८ ॥ लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ॥१३९॥ भूते च ॥१४०॥ ७ ॥ वोताप्योः ॥ १४१ ॥ गर्हायां लडपिजात्वोः ॥ १४२॥ विभाषा कथमि लिङ् च ॥ १४३ ॥ किंवृत्ते लिङ्लृटौ॥ ॥ १४४ ॥ अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि ॥ १४५ ॥ किंकिलास्त्यर्थेषु लृट् ॥१४६॥ जातुयदोर्लिङ् ॥१४७॥ यच्चयत्रयोः ॥ १४८ ॥ गर्हायां च ॥१४९॥ चित्रीकरणे च ॥ १५० ॥ शेषे लृडयदौ ॥१५१॥ उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ॥१५२॥ कामप्रवेदनेऽकच्चिति ॥ १५३ ॥ सम्भावनेऽलमिति चेत्सिद्धाप्रयोगे ॥१५४॥ विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि ॥१५५॥ हेतुहेतुमतोर्लिङ् ॥१५६॥ इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ॥ १५७ ॥ समानकर्तृकेषु तुमुन् ॥ ॥१५८ ॥ लिङ् च॥ १५९ ॥ इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने ॥ १६० ॥८॥ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ॥ १६१ ॥ लोट् च ॥१६२॥ प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ॥ १६३ ॥ लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके ॥ ॥१६४ ॥ स्मे लोट् ॥ १६५ ॥ अधीष्टे च ॥ १६६ ॥ कालसमयवेलासु तुमुन् ॥ १६७ ॥ लिङ्यदि ॥१६८॥ अर्हे कृत्यतृचश्च ॥ १६९ ॥ आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ॥१७० ॥ कृत्याश्च ॥१७१॥ शकि लिङ् च ॥१७२॥ आशिषि लिङ्लोटौ ॥ १७३ ॥ क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ॥ ॥ १७४ ॥ माङि लुङ्॥१७५॥स्मोत्तरे लङ् च ॥१७६॥ ॥१९॥ (उणादय इङो निवासव्यधजपोरपघनोङ्गमिच्छाहलश्च वोताप्योर्विधिनिमन्त्रणाषोडश (॥

इति तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः ॥ १ ॥ क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ॥२॥ समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ॥ ३ ॥ यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ॥४॥ समुच्चये सामान्यवचनस्य ॥ ५॥ छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ॥ ६ ॥ लिङर्थे लेट् ॥७॥ उपसंवादाशङ्कयोश्च ॥८॥ तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ॥ ॥ ९ ॥ प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै ॥१०॥ दृशे विख्ये च ॥ ११ ॥ शकि णमुल्कमुलौ ॥ १२॥ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥ १३ ॥ कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ॥१४॥ अवचक्षे च ॥ १५ ॥ भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् ॥ १६ ॥ सृपितृदोः कसुन् ॥१७॥ अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ॥१८॥ उदीचां माङो व्यतीहारे ॥ १९ ॥ परावरयोगे च ॥ २० ॥१॥ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ॥ २१ ॥ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ॥ २२ ॥ न यद्यनाकांक्षे ॥ २३ ॥ विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥ २४ ॥ कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ्॥२५॥ स्वादुमि णमुल् ॥२६॥ अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ॥ २७ ॥ यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ॥२८॥ कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ॥ ॥ २९ ॥ यावति विन्दजीवोः ॥ ३० ॥ चर्मोदरयोः पूरेः ॥ ३१ ॥ वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ॥ ॥ ३२ ॥ चेले क्नोपेः ॥ ३३ ॥ निमूलसमूलयोः कषः ॥ ३४ ॥[१]शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः॥३५॥ समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ॥ ३६ ॥ करणे हनः ॥ ३७ ॥ स्नेहने पिषः ॥ ३८ ॥ हस्ते वर्तिग्रहोः ॥ ३९ ॥ स्वे पुषः ॥४०॥२॥ अधिकरणे बन्धः ॥ ४१ ॥ संज्ञायाम् ॥४२॥ कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ॥ ४३ ॥ ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ॥ ४४ ॥ उपमाने कर्मणि च ॥४५ ॥ कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ॥ ४६ ॥ उपदंशस्तृतीयायाम् ॥ ४७ ॥ हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ॥४८॥ सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ॥ ४९ ॥ समासत्तौ ॥ ५० ॥ प्रमाणे च ॥ ५१ ॥ अपादाने परीप्सायाम् ॥ ५२ ॥ द्वितीयायां च ॥ ५३ ॥ स्वाङ्गेऽध्रुवे ॥ ५४ ॥ परिक्लिश्यमाने च ॥

१ आधारावायशब्दौ प्रक्षिप्तौ, वार्त्तिके दर्शनात्।

॥ ५५ ॥ विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥ ५६ ॥ अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु ॥ ५७ ॥ नाम्न्यादिशिग्रहोः ॥ ५८ ॥ अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने-कृञः क्त्वाणमुलौ ॥ ५९॥ तिर्यच्यपवर्गे ॥ ६० ॥ ३ ॥ स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ॥ ६१ ॥ नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ॥ ६२ ॥ तूष्णीमि भुवः॥६३॥ अन्वच्यानुलोम्ये ॥६४ ॥ शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ॥ ६५ ॥ पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ॥६६॥ कर्तरि कृत्॥६७॥भव्यगेय-प्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा॥६८॥लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः॥६९॥तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः॥७०॥ आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च ॥ ७१ ॥ गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ॥ ७२ ॥ दाशगोघ्नौ संप्रदाने ॥ ७३ ॥ भीमादयोऽपादाने ॥७४॥ ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ ७५ ॥ क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः ॥ ७६ ॥ लस्य ॥ ७७ ॥ तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् ॥७८ ॥ टित आत्मनेपदानां टेरे ॥ ७९ ॥ थासः से ॥ ८० ॥ ४ ॥ लिटस्तझयोरेशिरेच् ॥ ८१ ॥ परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ॥ ८२ ॥ विदो लटो वा ॥ ८३ ॥ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥८४ ॥ लोटो लङ्वत्॥८५॥ एरुः ॥ ८६ ॥ सेर्ह्यपिच्च ॥ ८७ ॥ वा छन्दसि ॥ ८८॥ मेर्निः ॥ ८९ ॥ आमेतः ॥ ९० ॥ सवाभ्यां वामौ ॥ ९१ ॥ आडुत्तमस्य पिच्च ॥ ९२ ॥ एत ऐ ॥ ९३ ॥ लेटोऽडाटौ ॥ ९४ ॥ आत ऐ ॥ ९५ ॥ वैतोऽन्यत्र ॥ ९६ ॥ इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ॥ ९७ ॥ स उत्तमस्य ॥ ९८ ॥ नित्यं ङितः॥ ९९॥ इतश्च॥१००॥ ॥५॥ तस्थस्थमिपां तांतंतामः ॥ १०१ ॥ लिङः सीयुट् ॥ १०२ ॥ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च॥१०३॥ किदाशिषि ॥ १०४ ॥ झस्य रन् ॥ १०५ ॥ इटोऽत्॥ ॥१०६ ॥ सुट्तिथोः ॥ १०७ ॥ झेर्जुस् ॥ १०८ ॥ सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ॥ १०९ ॥ आतः ॥ ११० ॥ लङः शाकटायनस्यैव ॥ १११ ॥ द्विषश्च ॥ ११२ ॥ तिङ्शित्सार्वधातुकम् ॥ ११३ ॥ आर्धधातुकं शेषः ॥ ॥ ११४ ॥ लिट् च ॥ ११५ ॥ लिङाशिषि ॥११६॥ छन्दस्युभयथा ॥ ११७ ॥ १७॥ (धातुसम्बन्धे समानकर्तृकयोरविकरणे स्वांगे लिटस्तस्थस्थमिपां सप्तदश) ॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

समाप्तश्चाध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

ङ्याप्प्रातिपदिकात् ॥ १ ॥ स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्॥२॥ स्त्रियाम्॥ ॥३॥ अजाद्यतष्टाप् ॥४॥ ऋन्नेभ्यो ङीप् ॥५॥ उगितश्च॥ ॥६॥ वनो र च ॥ ७ ॥ पादोऽन्यतरस्याम् ॥ ८ ॥ टाबृचि ॥ ९ ॥ न षट्स्वस्रादिभ्यः ॥ १० ॥ मनः ॥ ॥ ११ ॥ अनो बहुव्रीहेः ॥ १२ ॥ डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ १३ ॥ अनुपसर्जनात् ॥ १४ ॥ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ॥ १५ ॥ यञश्च ॥ १६ ॥ प्राचां ष्फ तद्धितः ॥ १७ ॥ सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ॥ १८ ॥ कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च ॥ ॥ १९ ॥ वयसि प्रथमे ॥ २० ॥ १ ॥ द्विगोः ॥ २१॥ अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ॥ २२॥ काण्डान्तात्क्षेत्रे ॥ २३ ॥ पुरुषात्प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥ ॥ २४ ॥ बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ॥ २५ ॥ संख्याऽव्ययादेर्ङीप् ॥ २६ ॥ दामहायनान्ताच्च ॥ २७ ॥ अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ॥ २८ ॥ नित्यं संज्ञाछन्दसोः ॥ ॥ २९ ॥ केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्यकृतसुमङ्गलभेषजाच्च ॥ ३० ॥ रात्रेश्चाजसौ ॥ ३१ ॥ अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ॥ ३२ ॥ पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ॥ ३३ ॥ विभाषा सपूर्वस्य ॥ ३४ ॥ नित्यं सपत्न्यादिषु ॥ ३५ ॥ पूतक्रतोरै च ॥ ३६ ॥ वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः ॥ ॥३७॥ मनोरौ वा ॥ ३८॥ वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः॥ ॥ ३९ ॥ अन्यतो ङीष् ॥ ४० ॥ २ ॥ षिद्गौरादिभ्यश्च ॥ ४१॥ जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद्वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु ॥ ४२ ॥ शोणात् प्राचाम् ॥ ४३ ॥ वोतो गुणवचनात् ॥ ४४ ॥ बह्वादिभ्यश्च ॥ ४५ ॥ नित्यं छन्दसि ॥४६ ॥ भुवश्च ॥ ४७ ॥ पुंयोगादाख्यायाम् ॥ ४८ ॥ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ॥ ४९ ॥ क्रीतात्करणपूर्वात् ॥ ५० ॥ क्तादल्पाख्यायाम् ॥ ५१ ॥ बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ॥ ५२ ॥ अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ॥ ५३ ॥ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ॥ ५४ ॥ नासिकोदरौष्ठजंघादन्तकर्णशृङ्गाच्च ॥ ५५ ॥ न क्रोडादिबह्वचः ॥ ॥ ५६ ॥ सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ॥ ५७ ॥ नखमुखात्संज्ञायाम् ॥ ५८ ॥ दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि ॥ ५९ ॥ दिक्पूर्वपदान्ङीप् ॥ ६० ॥ ३ ॥ वाहः ॥ ६१ ॥ सख्यशिश्वीति भाषायाम् ॥ ६२ ॥ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ॥ ६३ ॥ पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च ॥६४॥ इतो मनुष्यजातेः ॥ ६५ ॥ ऊङुतः ॥ ६६ ॥ बाह्वन्तात्संज्ञायाम् ॥ ६७ ॥ पङ्गोश्च ॥६८॥ ऊरूत्तरपदादौपम्ये ॥ ६९ ॥ संहितशफलक्षणवामादेश्च ॥ ७० ॥

---

१ करपूर्व्युनामिति क्वचित्पाठः । तत्र व्युनामिति प्रामादिकः प्रक्षिप्तपाठः ।

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ॥ ७१ ॥ संज्ञायाम् ॥ ७२ ॥ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥ ७३ ॥ यङश्चाप् ॥ ७४ ॥ आवट्याच्च ॥ ७५ ॥ तद्धिताः ॥ ७६ ॥ यूनस्तिः ॥ ७७॥ अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ॥ ७८ ॥ गोत्रावयवात् ॥ ७९ ॥ क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ ८० ॥ ४ ॥ दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्डेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ ॥ ८१ ॥ समर्थानां प्रथमाद्वा ॥ ८२ ॥ प्राग्दीव्यतोऽण् ॥ ८३ ॥ अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥ ८४ ॥ दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ॥ ८५ ॥ उत्सादिभ्योऽञ्॥८६॥ स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ॥८७॥ द्विगोर्लुगनपत्ये ॥ ॥ ८८ ॥ गोत्रेऽलुगचि ॥ ८९ ॥ यूनि लुक् ॥ ९० ॥ फक्फिञोरन्यतरस्याम्॥ ९१ ॥ तस्यापत्यम् ॥ ९२ ॥ एको गोत्रे ॥ ९३ ॥ गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ॥ ९४ ॥ अत इञ्॥ ९५ ॥ बाह्वादिभ्यश्च ॥९६ ॥ सुधातुरकङ् च ॥ ॥ ९७ ॥ गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ् ॥ ९८ ॥ नडादिभ्यः फक् ॥९९ ॥ हरिताभ्यो ञः ॥१०० ॥ ५ यञिञोश्च ॥ ॥ १०१ ॥ शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु ॥ ॥१०२॥ द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम् ॥ १०३ ॥ अनृष्यानान्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ॥ १०४ ॥ गर्गादिभ्यो यञ् ॥ १०५ ॥ मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः॥१०६॥ कपिबोधादाङ्गिरसे ॥ १०७॥ वतण्डाच्च ॥ १०८ ॥ लुक् स्त्रियाम् ॥ १०९ ॥ अश्वादिभ्यः फञ् ॥ ११० ॥ भर्गात् त्रैगर्ते ॥ १११ ॥ शिवादिभ्योऽण् ॥ ११२ ॥ अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ॥ ११३ ॥ ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ॥ ११४ ॥ मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः ॥ ११५ ॥ कन्यायाः कनीन च ॥ ११६ ॥ विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु ॥ ११७ ॥ पीलाया वा ॥ ११८ ॥ ढक् च मण्डूकात् ॥ ११९ ॥ स्त्रीभ्यो ढक् ॥ १२० ॥ ६ ॥ द्व्यचः ॥ १२१ ॥ इतश्चानिञः ॥ १२२ ॥ शुभ्रादिभ्यश्च ॥ १२३ ॥ विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ॥ १२४ ॥ भ्रुवो वुक् च ॥ १२५ ॥ कल्याण्यादीनामिनङ् च ॥ १२६ ॥ कुलटाया वा ॥१२७ ॥ चटकाया ऐरक् ॥ १२८ ॥ गोधाया ढ्रक् ॥ १२९ ॥ आरगुदीचाम् ॥ १३० ॥ क्षुद्राभ्यो वा ॥ १३१ ॥ पितृष्वसुश्छण् ॥ १३२ ॥ ढकि लोपः ॥ १३३ ॥ मातृष्वसुश्च ॥ १३४ ॥ चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ॥ १३५ ॥ गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ १३६ ॥ राजश्वशुराद्यत् ॥ १३७ ॥ क्षत्राद् घः ॥ १३८ ॥ कुलात्खः ॥ १३९ ॥ अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ ॥ १४० ॥७॥ महाकुलादञ्खञौ ॥ १४१ ॥ दुष्कुलाद् ढक् ॥१४२॥ स्वसुश्छः ॥१४३॥ भ्रातुर्व्यच्च ॥ १४४ ॥ व्यन् सपत्ने ॥ १४५ ॥ रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥१४६॥ गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ॥ १४७॥ वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम् ॥ १४८ ॥ फेश्छ च ॥ ॥ १४९ ॥ फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ॥१५०॥कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥१५१॥ सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ॥ १५२॥ उदीचामिञ् ॥१५३॥ तिकादिभ्यः फिञ् ॥१५४॥कौसल्यकार्मार्याभ्यां च ॥ १५५॥ अणो द्व्यचः ॥ १५६ ॥ उदीचां वृद्धादगोत्रात् ॥ १५७ ॥ वाकिनादीनां कुक् च ॥१५८ ॥ पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ॥ १५९ ॥ प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम् ॥ १६० ॥ ८ ॥ मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ॥ १६१ ॥ अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ॥ ॥ १६२ ॥ जीवति तु वंश्ये युवा ॥ १६३॥ भ्रातरि च ज्यायसि ॥ १६४ ॥ वान्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति ॥१६५॥ वृद्धस्य च पूजायाम् ॥१६६॥ यूनश्च कुत्सायाम् ॥१६७॥ जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्॥१६८॥ साल्वेयगान्धारिभ्यां च ॥ १६९ ॥ द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ॥१७०॥ वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ॥१७१॥ कुरुनादिभ्यो ण्यः ॥ १७२ ॥ साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ॥ १७३ ॥ ते तद्राजाः ॥ १७४ ॥ कम्बोजाल्लुक् ॥ १७५ ॥ स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ॥ १७६ ॥ अतश्च ॥ १७७ ॥ न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥ १७८ ॥ (ङ्याब्द्विगोः षिद्गौरादिवाहो दैवयज्ञियञिञोर्द्व्यचो महाकुलान्मनोर्जातावष्टादश) ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

तेन रक्तं रागात् ॥ १ ॥ लाक्षारोचनाट्ठक् ॥ २ ॥ नक्षत्रेण युक्तः कालः ॥ ३ ॥ लुबविशेषे ॥ ४ ॥ संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम् ॥ ५ ॥ द्वन्द्वाच्छः ॥ ६ ॥ दृष्टं साम ॥ ७ ॥ कलेर्ढक् ॥ ८ ॥ वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ॥ ९ ॥ परिवृतो रथः ॥ १० ॥ पाण्डुकम्बलादिनिः ॥ ११ ॥ द्वैपवैयाघ्रादञ् ॥ १२ ॥ कौमारापूर्ववचने ॥१३॥ तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ॥ १४ ॥ स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते ॥१५॥संस्कृतं भक्षाः ॥ १६ ॥ शूलोखाद्यत् ॥ १७ ॥ दध्नष्ठक् ॥ १८ ॥ उदश्वितोऽन्यतरस्याम् ॥ १९ ॥ क्षीराड्ढञ् ॥२०॥१॥ सास्मिन् पौर्णमासीति संज्ञायाम ॥ २१ ॥ आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ॥२२॥ विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः ॥ २३ ॥ सास्य देवता ॥ २४ ॥ कस्येत् ॥ २५ ॥ शुक्राद्घन् ॥२६॥ अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यां घः॥२७॥ छ च ॥ २८ ॥ महेन्द्राद्घाणौ च ॥ २९ ॥ सोमाट्ट्यण् ॥३०॥ वाय्वृतुपितुषसो यत्॥३१॥ द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च॥३२॥ अग्नेर्ढक् ॥ ३३ ॥ कालेभ्यो भववत् ॥ ३४ ॥ महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् ॥ ३५॥ पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ॥ ३६ ॥ तस्य समूहः

॥ ३७ ॥ भिक्षादिभ्योऽण् ॥ ३८ ॥ गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ् ॥ ३९ ॥ केदाराद्यञ् च ॥ ४० ॥ २ ॥ ठञ् कवचिनश्च ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणमाणववाडवाद्यत् ॥ ४२ ॥ ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल् ॥ ॥ ४३॥ अनुदात्तादेरञ् ॥४४॥ खण्डिकादिभ्यश्च ॥४५॥ चरणेभ्यो धर्मवत् ॥४६॥ अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ॥ ४७ ॥ केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम् ॥ ४८ ॥ पाशादिभ्यो यः ॥ ४९ ॥ खलगोरथात् ॥ ५० ॥ इनित्रकट्यचश्च ॥ ५१ ॥ विषयो देशे॥५२॥राजन्यादिभ्यो वुञ् ॥५३॥ भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ ॥ ५४॥ सोऽस्यादिरिति च्छन्दसः प्रगाथेषु ॥ ५५ ॥ संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः ॥ ५६ ॥ तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः ॥ ॥ ५७ ॥ घञः सास्यां क्रियेति ञः ॥ ५८ ॥ तदधीते तद्वेद ॥ ५९ ॥ क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ॥ ६० ॥ ३ ॥ क्रमादिभ्यो वुन् ॥ ॥ ६१ ॥ अनुब्राह्मणादिनिः ॥ ६२॥ वसन्तादिभ्यष्ठक् ॥ ६३ ॥ प्रोक्ताल्लुक् ॥ ६४ ॥ सूत्राच्च कोपधात् ॥ ६५ ॥ छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ॥६६॥तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥६७॥ तेन निर्वृत्तम् ॥ ६८ ॥ तस्य निवासः ॥ ६९ ॥ अदूरभवश्च॥ ७०॥ ओरञ् ॥ ७१ ॥ मतोश्च बह्वजङ्गात्॥७२॥ बह्वचः कूपेषु ॥ ७३ ॥ उदक्च विपाशः ॥ ॥७४॥ संकलादिभ्यश्च ॥ ॥ ७५ ॥ स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु ॥७६॥ सुवास्त्वादिभ्योऽण् ॥७७॥ रोणी ॥ ७८ ॥ कोपधाच्च ॥ ७९ ॥ वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्णसुतंगमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥८०॥४॥ जनपदे लुप् ॥८१॥ वरणादिभ्यश्च ॥८२॥ शर्कराया वा ॥८३॥ ठक्छौ च ॥ ८४ ॥ नद्यां मतुप् ॥८५॥ मध्वादिभ्यश्च ॥८६॥ कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्॥८७॥नडशादाड्ड्वलच् ॥ ॥ ८८॥ शिखाया वलच् ॥८९॥ उत्करादिभ्यश्छः॥९०॥नडादीनां कुक् च ॥९१॥ शेषे ॥९२॥ राष्ट्रावारपाराद्घखौ ॥९३॥ ग्रामाद्यखञौ॥९४॥कत्र्यादिभ्यो ढकञ्॥९५॥कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलंकारेषु ॥ ९६ ॥ नद्यादिभ्यो ढक् ॥९७॥ दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ॥ ९८ ॥ कापिश्याः ष्फक् ॥ ॥ ९९ ॥ रङ्कोरमनुष्येऽण् च ॥ १०० ॥ ५ ॥ द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ॥ १०१ ॥ कन्थायाष्ठक् ॥ १०२॥ वर्णौ वुक् ॥ १०३ ॥ अव्ययात् त्यप् ॥ १०४ ॥ऐषमोह्यः श्वसोऽन्यतरस्याम् ॥१०५ ॥ तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ ॥ १०६ ॥ दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ॥ १०७ ॥ मद्रेभ्योऽञ् ॥ १०८॥ उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात् ॥ ॥१०९॥प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ॥११०॥कण्वादिभ्यो गोत्रे ॥ १११ ॥ इञश्च ॥ ११२॥ न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु ॥११३॥ वृद्धाच्छः ॥११४ ॥ भवतष्ठक्छसौ ॥ ११५ ॥ काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ॥ ११६ ॥ वाहीकग्रामेभ्यश्च ॥ ११७ ॥ विभाषोशीनरेषु ॥ ११८ ॥ ओर्देशे ठञ् ॥ ११९ ॥ वृद्धात् प्राचाम् ॥ १२० ॥ ६ ॥ धन्वयोपधाद्वुञ् ॥ १२१ ॥ प्रस्थपुरवहान्ताच्च ॥ १२२ ॥ रोपधेतोः प्राचाम् ॥१२३॥ जनपदतदवध्योश्च॥१२४॥ अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् ॥ १२५ ॥ कच्छाग्निवक्रगर्तोत्तरपदात् ॥ १२६ ॥ धूमादिभ्यश्च ॥ १२७ ॥ नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः ॥ १२८ ॥ अरण्यान्मनुष्ये ॥ १२९ ॥ विभाषा कुरुयुगंधराभ्याम् ॥ १३० ॥ मद्रवृज्योः कन् ॥१३१॥ कोपधादण् ॥ १३२ ॥ कच्छादिभ्यश्च ॥ १३३ ॥ मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् ॥ १३४ ॥ अपदातौ साल्वात् ॥ १३५ ॥ गोयवाग्वोश्च ॥ १३६ ॥ गर्तोत्तरपदाच्छः ॥ १३७ ॥ गहादिभ्यश्च ॥ १३८ ॥ प्राचां कटादेः ॥ १३९ ॥ राज्ञः क च ॥ १४० ॥ ७॥ वृद्धादकेकान्तखोपधात् ॥ १४१ ॥ कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् ॥ १४२ ॥ पर्वताच्च ॥ १४३ ॥ विभाषा मनुष्ये॥१४४॥ कृकणपर्णाद्भारद्वाजे ॥१४५॥८॥ (तेन सास्मिन्ठञ्क्रमादिभ्यो जनपदे द्युप्रागपाग्धन्ववृद्धात्पञ्च) ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ॥ १ ॥ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥ २ ॥ तवकममकावेकवचने ॥ ३ ॥ अर्धाद्यत् ॥ ४ ॥ परावराधमोत्तमपूर्वाच्च ॥ ५ ॥ दिक्पूर्वपदाट्ठञ् च ॥ ६ ॥ ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ ॥ ७ ॥ मध्यान्मः ॥ ८ ॥ अ सांप्रतिके ॥ ९ ॥ द्वीपादनुसमुद्रं यञ् ॥ १० ॥ कालाट्ठञ् ॥ ११ ॥ श्राद्धे शरदः ॥१२॥ विभाषा रोगातपयोः ॥ १३ ॥ निशाप्रदोषाभ्यां च॥१४॥ श्वसस्तुट् च ॥ १५ ॥ संधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥१६॥ प्रावृष एण्यः ॥ १७ ॥ वर्षाभ्यष्ठक् ॥ १८ ॥ छन्दसि ठञ् ॥ १९ ॥ वसन्ताच्च ॥ ॥ २० ॥ १ ॥ हेमन्ताच्च ॥ २१ ॥ सर्वत्राण च तलोपश्च ॥ २२ ॥ सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ॥ २३॥ विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् ॥ २४ ॥ तत्र जातः ॥ २५ ॥ प्रावृषष्ठप्॥ ॥ २६ ॥ संज्ञायां शरदो वुञ् ॥ २७ ॥ पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद्वुन् ॥ २८ ॥ पथः पन्थ च ॥ २९ ॥ अमावास्याया वा ॥ ३० ॥ अ च ॥ ३१ ॥ सिन्ध्वपकराभ्यां कन् ॥ ३२ ॥ अणञौ च ॥ ३३ ॥ श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक् ॥ ३४ ॥ स्थानान्तगोशालखरशालाच्च ॥ ३५ ॥ वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजो वा ॥ ३६ ॥ नक्षत्रेभ्यो

१ सूत्रे सहायशब्दः प्रक्षिप्तः । वार्तिके दर्शनात् ।

बहुलम् ॥ ३७ ॥ कृतलब्धक्रीतकुशलाः ॥ ३८ ॥ प्रायभवः ॥ ३९ ॥ उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक् ॥ ४० ॥ २ ॥ संभूते ॥ ४१ ॥ कोशाड्ढञ् ॥ ४२ ॥ कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु ॥ ४३ ॥ उप्ते च ॥ ४४ ॥ आश्वयुज्या वुञ् ॥४५॥ ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम् ॥ ४६ ॥ देयमृणे ॥ ४७ ॥ कलाप्यश्वत्थयवबुसाद्वुन् ॥ ४८ ॥ ग्रीष्मावरसमाद्वुञ् ॥ ४९ ॥ संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ् च ॥५०॥ व्याहरति मृगः ॥ ५१ ॥ तदस्य सोढम् ॥ ५२ ॥ तत्र भवः ॥ ५३ ॥ दिगादिभ्यो यत् ॥ ५४ ॥ शरीरावयवाच्च ॥५५॥ दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ॥ ५६ ॥ ग्रीवाभ्योऽण् च ॥ ५७ ॥ गम्भीराञ्ञ्यः ॥ ५८ ॥ अव्ययीभावाच्च ॥ ५९ ॥ अन्तःपूर्वपदाट्ठञ् ॥ ६० ॥ ३ ॥ ग्रामात् पर्यनुपूर्वात् ॥ ६१ ॥ जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ॥ ॥ ६२ ॥ वर्गान्ताच्च ॥ ६३ ॥ अशब्देयत्खावन्यतरस्याम् ॥ ६४ ॥ कर्णललाटात्कनलंकारे ॥६५॥ तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः ॥ ६६ ॥ बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ् ॥ ६७ ॥ क्रतुयज्ञेभ्यश्च ॥ ६८ ॥ अध्यायेष्वेवर्षेः ॥ ६९ ॥ पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन् ॥ ॥ ७० ॥ छन्दसो यदणौ ॥ ७१ ॥ द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक् ॥ ७२ ॥ अणृगयनादिभ्यः ॥ ७३ ॥ तत आगतः ॥ ७४ ॥ ठगायस्थानेभ्यः ॥ ७५ ॥ शुण्डिकादिभ्योऽण् ॥ ७६ ॥ विद्यायोनिसंबन्धेभ्यो वुञ् ॥ ७७ ॥ ऋतष्ठञ् ॥७८॥ पितुर्यच्च ॥७९॥ गोत्रादङ्कवत् ॥ ८० ॥ ४ ॥ हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ॥८१॥ मयट् च ॥८२ ॥ प्रभवति॥८३॥ विदूराञ्ञ्यः ॥८४॥ तद्गच्छति पथिदूतयोः ॥८५ ॥ अभिनिष्क्रामति द्वारम् ॥ ८६ ॥ अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ॥ ॥ ८७ ॥ शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः ॥ ॥ ८८ ॥ सोऽस्य निवासः ॥ ८९ ॥ अभिजनश्च ॥ ॥ ९० ॥ आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ॥ ९१ ॥ शण्डिकादिभ्योञ्यः ॥ ९२ ॥ सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ॥ ९३ ॥ तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः ॥ ॥९४॥ भक्तिः ॥९५॥ अचित्ताददेशकालाट्ठक् ॥ ९६ ॥ महाराजाट्ठञ् ॥ ९७॥ वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् ॥ ९८ ॥ गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ् ॥ ९९॥ जनपदिनां जनपदवत् सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ॥ ॥ १०० ॥ ५ ॥ तेन प्रोक्तम् ॥ १०१ ॥ तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् ॥ १०२ ॥ काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः ॥ १०३ ॥ कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च ॥ १०४ ॥ पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ॥१०५ ॥ शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥ १०६ ॥ कठचरकाल्लुक् ॥ ॥ १०७ ॥ कलापिनोऽण् ॥ ॥ १०८ ॥ छगलिनो ढिनुक् ॥ १०९ ॥ पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ॥११०॥ कर्मन्दकृशाश्वादिनिः ॥ १११ ॥ तेनैकदिक् ॥ ११२ ॥ तसिश्च ॥ ११३॥ उरसो यच्च ॥ ११४ ॥ उपज्ञाते ॥ ॥ ११५ ॥ कृते ग्रन्थे ॥ ११६ ॥ संज्ञायाम् ॥ ११७॥ कुलालादिभ्यो वुञ् ॥ ११८ ॥ क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्॥ ॥ ११९ ॥ तस्येदम् ॥ १२०॥ ६ ॥ रथाद्यत् ॥ १२१॥ पत्रपूर्वादञ् ॥ १२२ ॥ पत्राध्वर्युपरिषदश्च ॥ १२३ ॥ हलसीराट्ठक् ॥ १२४॥ द्वन्द्वाद्वुन् वैरमैथुनिकयोः ॥१२५॥ गोत्रचरणाद्वुञ् ॥ १२६ ॥ सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ॥ १२७ ॥ शाकलाद्वा ॥ १२८ ॥ छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः ॥ १२९ ॥ न दण्डमाणवान्तेवासिषु ॥ १३० ॥ रैवतिकादिभ्यश्छः ॥ १३१ ॥ कौपिञ्जलहास्तिपदादण् ॥ १३२ ॥ आथर्वणिकस्येकलोपश्च ॥ १३३ ॥ तस्य विकारः ॥१३४॥ अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ॥ १३५ ॥ बिल्वादिभ्योऽण् ॥ १३६ ॥ कोपधाच्च ॥ १३७ ॥ त्रपुजतुनोः षुक् ॥ १३८ ॥ ओरञ् ॥ १३९ ॥ अनुदात्तादेश्च ॥ १४० ॥ ७ ॥ पलाशादिभ्यो वा ॥ १४१ ॥ शम्याः ष्लञ् ॥ १४२ ॥ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ॥ १४३ ॥ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥ १४४ ॥ गोश्च पुरीषे ॥ १४५ ॥ पिष्टाच्च ॥ १४६ ॥ संज्ञायां कन् ॥ १४७ ॥ व्रीहेः पुरोडाशे ॥ १४८ ॥ असंज्ञायां तिलयवाभ्याम् ॥ १४९ ॥ द्व्यचश्छन्दसि ॥ १५० ॥ नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात् ॥ १५१ ॥ तालादिभ्योऽण् ॥१५२॥ जातरूपेभ्यः परिमाणे॥१५३॥ प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ॥ १५४ ॥ ञितश्च तत्प्रत्ययात् ॥ ॥ १५५ ॥ क्रीतवत् परिमाणात् ॥ १५६ ॥ उष्ट्राद्वुञ् ॥ १५७ ॥ उमोर्णयोर्वा ॥ १५८ ॥ एण्या ढञ् ॥१५९॥ गोपयसोर्यत् ॥ १६० ॥ ८ ॥ द्रोश्च ॥ १६१ ॥ माने वयः ॥ १६२ ॥ फले लुक् ॥ १६३ ॥ प्लक्षादिभ्योऽण् ॥१६४॥ जम्ब्वा वा ॥ १६५ ॥ लुप् च ॥ १६६ ॥ हरीतक्यादिभ्यश्च ॥ १६७॥ कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च ॥ १६८ ॥ ८ ॥ (युष्मद्वेमन्तात्सम्भूते ग्रामाद्धेतुतेन रथात्पलाशादिभ्यो द्रोश्चाष्टौ) ॥

॥ इति चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

प्राग्वहतेष्ठक् ॥ १ ॥ तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ॥ २ ॥ संस्कृतम् ॥ ३ ॥ कुलत्थकोपधादण् ॥ ४ ॥ तरति ॥ ५ ॥ गोपुच्छाट्ठञ् ॥ ६ ॥ नौद्व्यचष्ठन्॥ ॥ ७ ॥ चरति ॥ ८ ॥ आकर्षात् ष्ठल् ॥९॥ पर्पादिभ्यः ष्ठन् ॥ १० ॥ श्वगणाट्ठञ् च ॥ ११ ॥ वेतनादिभ्यो जीवति ॥ १२ ॥ वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् ॥१३ ॥ आयुधाच्छ

च ॥ १४ ॥ हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ १५ ॥ भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ॥ १६ ॥ विभाषा विवधात् ॥ १७ ॥ अण् कुटिलिकायाः ॥ १८ ॥ निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ १९ ॥ क्त्रेर्मम्नित्यम् ॥ ॥ २० ॥ १ ॥ अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ ॥ २१ ॥ संसृष्टे ॥ २२ ॥ चूर्णादिनिः ॥ २३ ॥ लवणाल्लुक् ॥ ॥ २४ ॥ मुद्गादण् ॥ २५ ॥ व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥ २६ ॥ ओजःसहोऽम्भसा वर्तते ॥ २७ ॥ तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ॥ २८ ॥ परिमुखं च ॥ २९ ॥ प्रयच्छति गर्ह्यम् ॥ ३० ॥ कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ ॥ ३१ ॥ उञ्छति ॥ ३२ ॥ रक्षति ॥ ३३ ॥ शब्ददर्दुरं करोति ॥ ३४ ॥ पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ॥ ३५ ॥ परिपन्थं च तिष्ठति ॥ ३६ ॥ माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति ॥ ३७ ॥ आक्रन्दाट्ठञ् च ॥ ३८ ॥ पदोत्तरपदं गृह्णाति ॥ ३९ ॥ प्रतिकण्ठार्थललामं च ॥ ४० ॥ २ ॥ धर्मं चरति ॥ ॥ ४१ ॥ प्रतिपथमेति ठंश्च ॥ ४२ ॥ समवायान् समवैति ॥ ४३ ॥ परिषदो ण्यः ॥ ४४ ॥ सेनाया वा ॥ ॥ ४५ ॥ संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति ॥ ४६ ॥ तस्य धर्म्यम् ॥ ४७ ॥ अण् महिष्यादिभ्यः ॥ ४८ ॥ ऋतोऽञ् ॥ ४९ ॥ अवक्रयः ॥ ५० ॥ तदस्य पण्यम् ॥ ॥ ५१ ॥ लवणाट्ठञ् ॥ ५२ ॥ किसरादिभ्यः ष्ठन् ॥ ५३ ॥ शलालुनोऽन्यतरस्याम् ॥ ५४ ॥ शिल्पम् ॥ ५५ ॥ मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥ प्रहरणम् ॥ ५७ ॥ परश्वधाट्ठञ् च ॥ ५८ ॥ शक्तियष्ट्योरीकक् ॥ ५९ ॥ अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ॥ ६० ॥ ३ ॥ शीलम् ॥ ६१ ॥ छत्रादिभ्यो णः ॥ ६२ ॥ कर्माध्ययने वृत्तम् ॥ ६३ ॥ बह्वच्पूर्वपदाट्ठच् ॥ ६४ ॥ हितं भक्षाः ॥ ६५ ॥ तदस्मै दीयते नियुक्तम् ॥ ६६ ॥ श्राणामांसौदनाट्टिठन् ॥ ६७ ॥ भक्तादणन्यतरस्याम् ॥ ६८ ॥ तत्र नियुक्तः ॥ ६९ ॥ अगारान्ताट्ठन् ॥ ७० ॥ अध्यायिन्यदेशकालात् ॥ ७१ ॥ कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति ॥ ७२ ॥ निकटे वसति ॥ ७३ ॥ आवसथात् ष्ठल् ॥ ७४ ॥ प्राग्घिताद्यत् ॥ ॥ ७५ ॥ तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ॥ ७६ ॥ धुरो यड्ढकौ ॥ ७७ ॥ खः सर्वधुरात् ॥ ७८ ॥ एकधुराल्लुक् च ॥ ७९ ॥ शकटादण् ॥ ८० ॥ ४ ॥ हलसीराट्ठक् ॥ ॥ ८१ ॥ संज्ञायां जन्या ॥ ८२ ॥ विध्यत्यधनुषा ॥ ॥ ८३ ॥ धनगणं लब्धा ॥ ८४ ॥ अन्नाण्णः ॥ ८५ ॥ वशं गतः ॥ ८६ ॥ पदमस्मिन्दृश्यम् ॥ ८७ ॥ मूलमस्याबर्हि ॥ ८८ ॥ संज्ञायां धेनुष्या ॥ ८९ ॥ गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ॥ ९० ॥ नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसंमितेषु ॥ ९१ ॥ धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ॥ ९२ ॥ छन्दसो निर्मिते ॥ ९३ ॥ उरसोऽण् च ॥ ९४ ॥ हृदयस्य प्रियः ॥ ९५ ॥ बन्धने चर्षौ ॥ ९६ ॥ मतजनहलात्करणजल्पकर्षेषु ॥ ९७ ॥ तत्र साधुः ॥ ९८ ॥ प्रतिजनादिभ्यः खञ् ॥ ९९ ॥ भक्ताण्णः ॥ १०० ॥ ५ ॥ परिषदो ण्यः ॥ १०१ ॥ कथादिभ्यष्ठक् ॥ १०२ ॥ गुडादिभ्यष्ठञ् ॥ १०३ ॥ पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् ॥ १०४ ॥ सभाया यः ॥ ॥ १०५ ॥ ढश्छन्दसि ॥ १०६ ॥ समानतीर्थेवासी ॥ ॥ १०७ ॥ समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ॥ १०८ ॥ सोदराद्यः ॥ १०९ ॥ भवे छन्दसि ॥ ११० ॥ पाथोनदीभ्यां ड्यण् ॥ १११ ॥ वेशन्तहिमवद्भ्यामण् ॥ ११२ ॥ स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ ॥ ११३ ॥ सगर्भसयूथसनुताद्यत् ॥ ११४ ॥ तुग्राद्घन् ॥ ११५ ॥ अग्राद्यत् ॥ ११६ ॥ घच्छौ च ॥ ११७ ॥ समुद्राभ्राद्घः ॥ ११८ ॥ बर्हिषि दत्तम् ॥ ११९ ॥ दूतस्य भागकर्मणि ॥ १२० ॥ ॥ ६ ॥ रक्षोयातूनां हननी ॥ १२१ ॥ रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये ॥ १२२ ॥ असुरस्य स्वम् ॥ ॥ १२३ ॥ मायायामण् ॥ १२४ ॥ तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः ॥ १२५ ॥ अश्विमानण् ॥ १२६ ॥ वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप् ॥ १२७ ॥ मत्वर्थे मासतन्वोः ॥ १२८ ॥ मधोर्ञ च ॥ १२९ ॥ ओजसोऽहनि यत्खौ ॥ १३० ॥ वेशोयशआदेर्भगाद्यल् ॥ ॥ १३१ ॥ ख च ॥ १३२ ॥ पूर्वैः कृतमिनयौ च ॥ १३३ ॥ अद्भिः संस्कृतम् ॥ १३४ ॥ सहस्रेण संमितौ घः ॥ १३५ ॥ मतौ च ॥ १३६ ॥ सोममर्हति यः ॥ १३७ ॥ मये च ॥ १३८ ॥ मधोः ॥ १३९ ॥ वसोः समूहे च ॥ १४० ॥ ७ ॥ नक्षत्राद्घः ॥ १४१ ॥ सर्वदेवात्तातिल् ॥ १४२ ॥ शिवशमरिष्टस्य करे ॥ १४३ ॥ भावे च ॥ १४४ ॥ ४ ॥
(प्राग्वहतेरपमित्यधर्मं शीलं हलपरिषदो रक्षोनक्षत्राच्चत्वारि) ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य तुरीयः पादः ॥ ४ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

प्राक् क्रीताच्छः ॥ १ ॥ उगवादिभ्यो यत् ॥ २ ॥ कम्बलाच्च संज्ञायाम् ॥ ३ ॥ विभाषा हविरपूपादिभ्यः ॥ ॥ ४ ॥ तस्मै हितम् ॥ ५ ॥ शरीरावयवाद्यत् ॥ ६ ॥ खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ॥ ७ ॥ अजाविभ्यां थ्यन् ॥ ॥ ८ ॥ आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः ॥ ९ ॥ सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ ॥ १० ॥ माणवचरकाभ्यां खञ् ॥ ॥ ११ ॥ तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ ॥ १२ ॥ छदिरुपधिबलेर्ढञ् ॥ १३ ॥ ऋषभोपानहोर्ञ्यः ॥ १४ ॥ चर्मणोऽञ् ॥ १५ ॥ तदस्य तदस्मिन् स्यादिति ॥ १६ ॥ परिखाया ढञ् ॥ १७ ॥ प्राग्वतेष्ठञ् ॥ १८ ॥ आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक् ॥ १९ ॥ असमासे निष्कादिभ्यः ॥ २० ॥ १ ॥ शताच्च ठन्यतावशते ॥ २१ ॥

संख्याया अतिशदन्तायाः कन् ॥ २२ ॥ वतोरिड् वा॥ ॥ २३ ॥ विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम् ॥ २४ ॥ कंसाट्टिठन् ॥ २५ ॥ शूर्पादञन्यतरस्याम् ॥ २६ ॥ शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण् ॥२७॥ अध्यर्धपूर्वाद्द्विगोर्लुगसंज्ञायाम् ॥ २८ ॥ विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम् ॥ ॥ २९ ॥ द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् ॥ ३० ॥ बिस्ताच्च ॥ ३१॥ विंशतिकात्खः ॥ ३२ ॥ खार्या ईकन् ॥ ३३ ॥ पणपादमाषशताद्यत् ॥ ३४ ॥ शाणाद्वा ॥ ३५ ॥ द्वित्रिपूर्वादण् च ॥ ॥ ३६ ॥ तेन क्रीतम् ॥ ३७॥ तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ ॥ ३८ ॥ गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ॥ ३९ ॥ पुत्राच्छ च ॥ ४० ॥ २ ॥ सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ॥ ४१ ॥ तस्येश्वरः ॥४२॥ तत्र विदित इति च ॥ ४३ ॥ लोकसर्वलोकाट्ठञ् ॥ ४४ ॥ तस्य वापः ॥ ४५ ॥ पात्रात् ष्ठन् ॥ ४६ ॥ तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ॥ ४७ ॥ पूरणार्धाट्ठन् ॥ ४८ ॥ भागाद्यच्च ॥ ४९ ॥ तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः ॥ ५० ॥ वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ ॥ ५१ ॥ संभवत्यवहरति पचति ॥ ५२ ॥ आढकाचितपात्रात्खोऽन्यतरस्याम् ॥ ५३ ॥ द्विगोष्ठंश्च ॥ ५४ ॥ कुलिजाल्लुक्खौ च ॥ ५५ ॥ सोऽस्यांशवस्नभृतयः ॥ ५६ ॥ तदस्य परिमाणम् ॥ ५७ ॥ संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु ॥५८॥ पंक्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ॥ ५९ ॥ पञ्चद्दशतौ वर्गे वा ॥ ६० ॥ ३ ॥ सप्तनोऽञ्छन्दसि ॥६१॥ त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण् ॥ ६२ ॥ तदर्हति ॥ ६३ ॥ छेदादिभ्यो नित्यम्॥ ॥६४॥ शीर्षच्छेदाद्यच्च ॥६५॥ दण्डादिभ्यो यः ॥ ६६ ॥ छन्दसि च ॥ ६७ ॥ पात्राद्घंश्च ॥ ६८ ॥ कडंकरदक्षिणाच्छ च ॥ ६९ ॥ स्थालीबिलात् ॥ ७० ॥ यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ॥ ७१ ॥ पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति ॥ ॥ ७२ ॥ संशयमापन्नः ॥ ७३॥ योजनं गच्छति ॥७४॥ पथः ष्कन् ॥ ७५ ॥ पंथो ण नित्यम् ॥ ७६ ॥ उत्तरपथेनाहृतं च ॥७७॥ कालात् ॥७८॥ तेन निर्वृत्तम् ॥ ॥ ७९ ॥ तमधीष्टो भृतो भूतो भावी ॥ ८० ॥ ४ ॥ मासाद्वयसि यत्खञौ ॥ ८१ ॥ द्विगोर्यप् ॥ ८२ ॥ षण्मासाण्ण्यच्च ॥ ८३ ॥ अवयसि ठंश्च ८४ ॥ समायाः खः ॥ ८५ ॥ द्विगोर्वा ॥ ८६ ॥ रात्र्यहः संवत्सराच्च ॥ ॥ ८७ ॥ वर्षाल्लुक् च ॥ ८८ ॥ चित्तवति नित्यम् ॥ ॥ ८९ ॥ षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते ॥९०॥ वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि ॥ ९१ ॥ संपरिपूर्वात्ख च ॥ ९२ ॥ तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् ॥९३॥ तदस्य ब्रह्मचर्यम्॥९४॥ तस्य दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः ॥ ९५ ॥ तत्र च दीयते कार्यं भववत् ॥ ९६ ॥ व्युष्टादिभ्योऽण् ॥ ९७ ॥ तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ ॥ ९८ ॥ संपादिनि ॥ ९९ ॥ कर्मवेषाद्यत् ॥ १०० ॥ ५ ॥ तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः ॥ १०१ ॥ योगाद्यच्च ॥ १०२ ॥ कर्मण उकञ् ॥ १०३ ॥ समयस्तदस्य प्राप्तम् ॥ १०४ ॥ ऋतोरण् ॥ १०५ ॥ छन्दसि घस् ॥१०६ ॥ कालाद्यत् ॥ १०७ ॥ प्रकृष्टे ठञ् ॥ १०८ ॥ प्रयोजनम् ॥१०९॥ विशाखा षाढादण्मन्थदण्डयोः ॥ ११० ॥ अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ॥ १११ ॥ समापनात्सपूर्वपदात् ॥ ११२ ॥ ऐकागारिकट्चौरे ॥ ११३ ॥ आकालिकडाद्यन्तवचने ॥ ॥ ११४ ॥ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ॥ ११५ ॥ तत्र तस्येव ॥ ११६ ॥ तदर्हम् ॥ ११७ ॥ उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे ॥ ११८ ॥ तस्य भावस्त्वतलौ ॥ ११९ ॥ आ च त्वात् ॥ १२० ॥ ६ ॥ न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषादचतुरसंगतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः ॥ १२१ ॥ पृथ्वादिभ्यः इमनिज्वा ॥ १२२ ॥ वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ॥१२३॥ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥ १२४ ॥ स्तेनाद्यन्नलोपश्च ॥ १२५ ॥ सख्युर्यः ॥ १२६ ॥ कपिज्ञात्योर्ढक् ॥ १२७ ॥ पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥ १२८ ॥ प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ॥ १२९ ॥ हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ॥ १३० ॥ इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ॥ ॥ १३१ ॥ योपधाद्गुरूपोत्तमाद्वुञ् ॥ १३२ ॥ द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ॥ १३३ ॥ गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु ॥ १३४ ॥ होत्राभ्यश्छः ॥ १३५ ॥ ब्रह्मणस्त्वः ॥१३६॥ १६ ॥ (प्राक्क्रीताच्छताच्च सर्वभूमिसप्तनोऽञ्मासात्तस्मै प्रभवति न नञ्पूर्वात् षोडश) ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ॥ १ ॥ व्रीहिशाल्योर्ढक् ॥ ॥ २ ॥ यवयवकषष्टिकाद्यत् ॥ ३ ॥ विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः ॥ ४ ॥ सर्वचर्मणः कृतः खखञौ ॥ ५ ॥ यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः ॥ ६ ॥ तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ॥ ७ ॥ आप्रपदं प्राप्नोति ॥ ८ ॥ अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु ॥ ९ ॥ परोवरपरंपरपुत्रपौत्रमनुभवति ॥ १० ॥ अवारपारात्यन्तानुकामंगामी ॥११ ॥ समांसमां विजायते ॥ १२ ॥ अद्यश्वीनावष्टब्धे ॥ १३ ॥ आगवीनः ॥१४॥ अनुग्वलंगामी ॥१५ ॥ अध्वनो यत्खौ ॥ १६ ॥ अभ्यमित्राच्छ च ॥ ॥१७॥ गोष्ठात्खञ् भूतपूर्वे ॥१८॥अश्वस्यैकाहगमः॥१९॥ शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः ॥२०॥१॥ व्रातेन जीवति ॥ २१ ॥ साप्तपदीनं सख्यम् ॥ २२ ॥ हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ॥ २३ ॥ तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ॥ २४ ॥ पक्षात् तिः ॥ २५ ॥ तेन वित्त-

श्चुचुप् चणपौ ॥ २६ ॥ विनञ्भ्यां नानाञौ न सह ॥ ॥ २७ ॥ वेः शालच्छङ्कटचौ ॥ २८ ॥ संप्रोदश्च कटच् ॥२९॥ अवात् कुटारच्च ॥३०॥ नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः ॥ ३१ ॥ नेर्बिडज्बिरीसचौ ॥ ३२ ॥ इनच्पिटच्चिकचि च ॥ ३३ ॥ उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ॥३४॥ कर्मणि घटोऽठच् ॥३५॥ तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ॥ ३६ ॥ प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ॥ ३७ ॥ पुरुषहस्तिभ्यामण् च ॥ ३८ ॥ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥ ३९ ॥ किमिदंभ्यां वो घः ॥ ४०॥२॥ किमः संख्यापरिमाणे डति च ॥ ४१ ॥ संख्याया अवयवे तयप् ॥ ४२ ॥ द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥ ४३॥ उभादुदात्तो नित्यम् ॥ ४४ ॥ तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ॥ ४५ ॥ शदन्तविंशतेश्च ॥ ४६ ॥ संख्याया गुणस्य निमाने मयट् ॥ ४७ ॥ तस्य पूरणे डट् ॥४८॥ नान्तादसंख्यादेर्मट् ॥ ४९ ॥ थट् च च्छन्दसि ॥ ५०॥ षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ॥ ५१ ॥ बहुपूगगणसंघस्य तिथुक् ॥ ५२ ॥ वतोरिथुक् ॥ ५३ ॥ द्वेस्तीयः ॥५४॥ त्रेः संप्रसारणं च ॥ ५५ ॥ विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥ नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च ॥ ॥ ५७ ॥ षष्ठ्यादेश्चासंख्यादेः ॥ ५८ ॥ मतौ छः सूक्तसाम्नोः ॥ ५९ ॥ अध्यायानुवाकयोर्लुक् ॥ ६० ॥ ३॥ विमुक्तादिभ्योऽण् ॥ ६१ ॥ गोषदादिभ्यो वुन् ॥ ६२॥ तत्र कुशलः पथः ॥ ६३ ॥ आकर्षादिभ्यः कन् ॥६४॥ धनहिरण्यात् कामे ॥ ६५ ॥ स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते ॥ ६६ ॥ उदराट्ठगाद्यूने ॥ ६७ ॥ सस्येन परिजातः ॥ ६८ ॥ अंशं हारी ॥ ६९ ॥ तन्त्रादचिरापहृते ॥ ७० ॥ ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम् ॥ ७१ ॥ शीतोष्णाभ्यां कारिणि॥७२॥ अधिकम् ॥ ७३ ॥ अनुकाभिकाभीकः कमिता ॥ ७४॥ पार्श्वेनान्विच्छति ॥ ७५ ॥ अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ ॥ ७६ ॥ तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा ॥ ७७ ॥ स एषां ग्रामणीः ॥ ७८ ॥ श्रृंखलमस्य बन्धनं करभे ॥ ॥ ७९ ॥ उत्क उन्मनाः ॥ ८० ॥ ४ ॥ कालप्रयोजनाद्रोगे ॥८१॥ तदस्मिन्नन्नं प्रायेण संज्ञायाम् ॥ ८२ ॥ कुल्माषादञ् ॥ ८३ ॥ श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते ॥ ८४ ॥ श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ॥८५॥ पूर्वादिनिः ॥ ८६॥ सपूर्वाच्च ॥ ८७ ॥ इष्टादिभ्यश्च ॥ ८८ ॥ छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि ॥ ८९ ॥ अनुपद्यन्वेष्टा ॥ ॥ ९० ॥ साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम् ॥ ९१॥ क्षेत्रियच्परक्षेत्रे चिकित्स्यः ॥ ९२ ॥ इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ॥ ९३ ॥ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ॥ ९४ ॥ रसादिभ्यश्च ॥ ९५ ॥ प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ॥ ९६ ॥ सिध्मादिभ्यश्च ॥ ॥ ९७ ॥ वत्सांसाभ्यां कामबले ॥ ९८ ॥ फेनादिलच्च ॥ ॥ ९९॥ लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः॥१००॥ ॥ ५ ॥ प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः ॥ १०१ ॥ तपःसहस्राभ्यां विनीनी ॥ १०२ ॥ अण् च ॥ १०३ ॥ सिकताशर्कराभ्यां च ॥ १०४ ॥ देशे लुबिलचौ च ॥१०५॥ दन्त उन्नत उरच् ॥ १०६ ॥ ऊषशुषिमुष्कमधो रः ॥ १०७ ॥ द्युद्रुभ्यां मः ॥ १०८ ॥ केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ॥ १०९ ॥ गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम् ॥११० ॥ काण्डाण्डादीरन्नीरचौ ॥ १११ ॥ रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ॥ ११२ ॥ दन्तशिखात् संज्ञायाम् ॥ ॥ ११३ ॥ ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः ॥ ११४ ॥ अत इनिठनौ ॥११५॥ व्रीह्यादिभ्यश्च ॥ ११६ ॥ तुन्दादिभ्य इलच्च ॥११७॥ एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम् ॥ ११८ ॥ शतसहस्रान्ताच्च निष्कात् ॥ ११९ ॥ रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् ॥ १२०॥ ॥ ६ ॥ अस्मायामेधास्रजो विनिः ॥ १२१ ॥ बहुलं छन्दसि ॥ १२२ ॥ ऊर्णाया युस् ॥ १२३ ॥ वाचो ग्मिनिः ॥ १२४ ॥ आलजाटचौ बहुभाषिणि॥१२५॥ स्वामिन्नैश्वर्ये ॥ १२६ ॥ अर्शआदिभ्योऽच् ॥ १२७॥ द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः ॥ १२८ ॥ वातातीसाराभ्यां कुक् च ॥ १२९ ॥ वयसि पूरणात् ॥ १३० ॥ सुखादिभ्यश्च॥ १३१ ॥ धर्मशीलवर्णान्ताच्च ॥ १३२॥ हस्ताज्जातौ ॥१३३॥ वर्णाद्ब्रह्मचारिणि ॥१३४॥ पुष्करादिभ्यो देशे॥१३५॥ बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम्॥१३६॥ संज्ञायां मन्माभ्याम् ॥१३७॥ कंशम्भ्यां बभयुस्तितुतयसः ॥१३८॥ तुन्दिबलिवटेर्भः ॥ १३९ ॥ अहंशुभमोर्युस् ॥ ॥ १४० ॥ ७ ॥ (धान्यानां त्रातेन किमो विमुक्तादिभ्यः कालप्रयोजनात्प्रज्ञाश्रद्धास्मायामेधाविंशतिः ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

प्राग्दिशो विभक्तिः ॥ १ ॥ किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ॥ २॥ इदम इश् ॥ ३ ॥ एतेतौ रथोः ॥ ४ ॥ एतदोऽन् ॥ ५ ॥ सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ॥ ६ ॥ पञ्चम्यास्तसिल् ॥ ७ ॥ तसेश्च ॥ ८ ॥ पर्यभिभ्यां च ॥ ९ ॥ सप्तम्यास्त्रल् ॥ १० ॥ इदमो हः ॥ ११ ॥ किमोऽत् ॥ १२ ॥ वा ह च च्छन्दसि ॥ १३ ॥ इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ १४ ॥ सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा ॥ ॥ १५ ॥ इदमो र्हिल् ॥ १६ ॥ अधुना ॥ १७ ॥ दानीं च ॥ १८ ॥ तदो दा च ॥ ॥ १९ ॥ तयोर्दार्हिलौ च च्छन्दसि ॥ २० ॥ १ ॥ अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ॥

१ आकर्षादिभ्यः इति पाठान्तरम्।

॥ २१ ॥ सद्यःपरुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ॥ २२ ॥ प्रकारवचने थाल् ॥ २३ ॥ इदमस्थमुः ॥ २४ ॥ किमश्च ॥ ॥ २५ ॥ था हेतौ च च्छन्दसि ॥ २६ ॥ दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ॥ २७ ॥ दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ॥ २८ ॥ विभाषापरावराभ्याम् ॥ ॥ २९ ॥ अञ्चेर्लुक् ॥ ३० ॥ उपर्युपरिष्टात् ॥ ३१ ॥ पश्चात् ॥ ३२ ॥ पश्च पश्चा च च्छन्दसि ॥ ३३ ॥ उत्तराधरदक्षिणादातिः ॥ ॥ ३४ ॥ एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ॥ ३५ ॥ दक्षिणादाच् ॥ ३६ ॥ आहि च दूरे ॥ ॥ ३७ ॥ उत्तराच्च ॥ ३८ ॥ पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् ॥ ३९ ॥ अस्ताति च ॥ ४० ॥ ॥ २ ॥ विभाषावरस्य ॥ ४१ ॥ संख्याया विधार्थे धा ॥ ॥ ४२ ॥ अधिकरणविचाले च ॥ ४३ ॥ एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥ द्वित्र्योश्च धमुञ् ॥ ४५ ॥ एधाच्च ॥ ४६ ॥ याप्ये पाशप् ॥ ४७ ॥ पूरणाद्भागे तीयादन् ॥ ॥ ४८ ॥ प्रागेकादशभ्योऽछन्दसि ॥ ४९ ॥ षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च ॥ ५० ॥ मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च ॥ ५१ ॥ एकादाकिनिच्चासहाये ॥ ५२ ॥ भूतपूर्वे चरट् ॥ ५३ ॥ षष्ठ्या रूप्य च ॥ ५४ ॥ अतिशायने तमबिष्ठनौ ॥ ५५ ॥ तिङश्च ॥ ५६ ॥ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ॥ ॥ ५७ ॥ अजादी गुणवचनादेव ॥ ५८ ॥ तुश्छन्दसि ॥ ५९ ॥ प्रशस्यस्य श्रः ॥ ६० ॥ ३ ॥ ज्य च ॥ ६१ ॥ वृद्धस्य च ॥ ६२ ॥ अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ ॥ ६३ ॥ युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ॥ ६४ ॥ विन्मतोर्लुक् ॥ ६५ ॥ प्रशंसायां रूपप् ॥ ६६ ॥ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ॥ ६७ ॥ विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ॥ ६८ ॥ प्रकारवचने जातीयर् ॥ ६९ ॥ प्रागिवात् कः ॥ ७० ॥ अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ॥ ७१ ॥ कस्य च दः ॥ ॥ ७२ ॥ अज्ञाते ॥ ७३ ॥ कुत्सिते ॥ ७४ ॥ संज्ञायां कन् ॥ ७५ ॥ अनुकम्पायाम् ॥ ७६ ॥ नीतौ च तद्युक्तात् ॥ ७७ ॥ बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा ॥ ७८ ॥ घनिलचौ च ॥ ७९ ॥ प्राचामुपादेरडज्वुचौ च ॥ ८० ॥ ॥ ४ ॥ जातिनाम्नः कन् ॥ ८१ ॥ अजितान्तस्योत्तरपदलोपश्च ॥ ८२ ॥ ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ॥ ८३ ॥ शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात् ॥ ८४ ॥ अल्पे ॥ ८५ ॥ ह्रस्वे ॥ ८६ ॥ संज्ञायां कन् ॥ ८७ ॥ कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ॥ ८८ ॥ कुत्वा डुपच् ॥ ८९ ॥ कासूगोणीभ्यां ष्टरच् ॥ ९० ॥ वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे ॥ ९१ ॥ किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ॥ ॥ ९२ ॥ वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ॥ ९३ ॥

एकाच्च प्राचाम् ॥ ९४ ॥ अवक्षेपणे कन् ॥ ९५ ॥ इवे प्रतिकृतौ ॥ ९६ ॥ संज्ञायां च ॥ ९७ ॥ लुम्मनुष्ये ॥ ९८ ॥ जीविकार्थे चापण्ये ॥ ९९ ॥ देवपथादिभ्यश्च ॥ ॥ १०० ॥ ५ ॥ वस्तेर्ढञ् ॥ १०१ ॥ शिलाया ढः ॥ ॥ १०२ ॥ शाखादिभ्यो यः ॥ १०३ ॥ द्रव्यं च भव्ये ॥ १०४ ॥ कुशाग्राच्छः ॥ १०५ ॥ समासाच्च तद्विषयात् ॥ १०६ ॥ शर्करादिभ्योऽण् ॥ १०७ ॥ अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् ॥ १०८ ॥ एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम् ॥ ॥ १०९ ॥ कर्कलोहितादीकक् ॥ ११० ॥ प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल्छन्दसि ॥ १११ ॥ पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ॥ ॥ ११२ ॥ व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ॥ ११३ ॥ आयुधजीविसंघाञ्ञ्यड्वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ॥ ११४ ॥ वृकाट्टेण्यण् ॥ ११५ ॥ दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः ॥ ११६ ॥ पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ ॥ ११७ ॥ अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमीवदूर्णावच्छ्रुमदणो यञ् ॥ ११८ ॥ ञ्यादयस्तद्राजाः ॥ ११९ ॥ १९ ॥ (प्राग्दिशोऽनद्यतने विभाषा ज्य च जातिनाम्नो वस्तेरेकोनविंशतिः ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च ॥ १ ॥ दण्डव्यवसर्गयोश्च ॥ २ ॥ स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ॥ ३ ॥ अनत्यन्तगतौ क्तात् ॥ ४ ॥ न सामिवचने ॥ ५ ॥ बृहत्या आच्छादने ॥ ६ ॥ अषडक्षाशितंग्वलंकर्मालंपुरुषाध्युत्तरपदात् खः ॥ ७ ॥ विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम् ॥ ८ ॥ जात्यन्ताच्छ बन्धुनि ॥ ९ ॥ स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ॥ १० ॥ किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ॥ ११ ॥ अमु च च्छन्दसि ॥ ॥ १२ ॥ अनुगादिनष्ठक् ॥ १३ ॥ णचः स्त्रियामञ् ॥ ॥ १४ ॥ अणिनुणः ॥ १५ ॥ विसारिणो मत्स्ये ॥ १६ ॥ संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ॥ ॥ १७ ॥ द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥ १८ ॥ एकस्य सकृच्च ॥ १९ ॥ विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ॥ २० ॥ १ ॥ तत्प्रकृतवचने मयट् ॥ २१ ॥ समूहवच्च बहुषु ॥ २२ ॥ अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः ॥ २३ ॥ देवतान्तात् तादर्थ्ये यत् ॥ २४ ॥ पादार्घाभ्यां च ॥ २५ ॥ अतिथेर्ञ्यः ॥ २६ ॥ देवात् तल् ॥ २७ ॥ अवेः कः ॥ ॥ २८ ॥ यावादिभ्यः कन् ॥ २९ ॥ लोहितान्मणौ ॥ ॥ ३० ॥ वर्णे चानित्ये ॥ ३१ ॥ रक्ते ॥ ३२ ॥ कालाच्च ॥ ३३ ॥ विनयादिभ्यष्ठक् ॥ ३४ ॥ वाचोव्याहृतार्थायाम् ॥ ३५ ॥ तद्युक्तात् कर्मणोऽण् ॥ ३६ ॥ ओषधेरजातौ ॥ ३७ ॥ प्रज्ञादिभ्यश्च ॥ ३८ ॥ मृदस्तिकन् ॥ ३९ ॥ सस्नौ प्रशंसायाम् ॥ ४० ॥

॥ २ ॥ वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि ॥ ॥ ४१ ॥ बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ॥ ४२ ॥ संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ॥ ४३ ॥ प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ॥ ४४ ॥ अपादाने चाहीयरुहोः ॥ ४५ ॥ अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः ॥ ४६ ॥ हीयमानपापयोगाच्च ॥४७॥ षष्ठ्या व्याश्रये ॥ ४८ ॥ रोगाच्चापनयने ॥ ४९ ॥ अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः ॥ ५० ॥ अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च॥५१॥ विभाषा साति कार्त्स्न्ये ॥ ५२ ॥ अभिविधौ संपदा च ॥ ५३ ॥ तदधीनवचने ॥ ५४ ॥ देये त्रा च ॥५५॥ देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥ ५६ ॥ अव्यक्तानुकरणद्व्यजवरार्धादनितौ डाच् ॥ ५७ ॥ कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ ॥ ५८ ॥ संख्यायाश्च गुणान्तायाः ॥ ५९ ॥ समयाच्च यापनायाम् ॥ ६०॥३॥ सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने ॥ ६१ ॥ निष्कुलान्निष्कोषणे ॥ ॥ ६२ ॥ सुखप्रियादानुलोम्ये ॥ ६३ ॥ दुःखात् प्रातिलोम्ये ॥ ६४ ॥ शूलात् पाके ॥ ६५ ॥ सत्यादशपथे ॥ ६६ ॥ मद्रात् परिवापणे ॥ ६७ ॥ समासान्ताः ॥ ६८ ॥ न पूजनात् ॥ ६९॥ किमः क्षेपे ॥७०॥ नञस्तत्पुरुषात् ॥ ७१ ॥ पथो विभाषा ॥७२ ॥ बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् ॥ ७३ ॥ ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ॥ ७४ ॥ अच्प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः ॥ ७५॥ अक्ष्णोऽदर्शनात् ॥ ७६॥ अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः ॥७७ ॥ ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ॥ ७८ ॥ अवसमन्धेभ्यस्तमसः ॥ ७९ ॥ श्वसोऽवसीयःश्रेयसः ॥८० ॥ ४ ॥ अन्ववतप्ताद्रहसः ॥ ॥ ८१ ॥ प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् ॥ ८२ ॥ अनुगवमायामे ॥ ८३ ॥ द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः ॥ ८४ ॥ उपसर्गादध्वनः ॥८५ ॥ तत्पुरुषस्यांगुलेः संख्याव्ययादेः ॥ ८६ ॥ अहः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः ॥८७ ॥ अह्नोऽह्न एतेभ्यः ॥८८॥ न संख्यादेः समाहारे ॥ ८९॥ उत्तमैकाभ्यां च ॥९०॥ राजाहः सखिभ्यष्टच् ॥ ९१ ॥ गोरतद्धितलुकि ॥ ९२ ॥ अग्राख्यायामुरसः ॥ ९३ ॥ अनोश्मायःसरसां जातिसंज्ञयोः ॥ ९४ ॥ ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः ॥ ९५ ॥ अतेः शुनः ॥ ९६ ॥ उपमानादप्राणिषु ॥ ९७ ॥ उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ॥ ॥ ९८ ॥ नावो द्विगोः ॥ ९९ ॥ अर्धाच्च ॥ १०० ॥ ॥ ५ ॥ खार्याः प्राचाम् ॥ १०१ ॥ द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ॥ ॥ १०२ ॥ अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि ॥ १०३ ॥

ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् ॥ १०४ ॥ कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् ॥ १०५ ॥ द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे ॥ ॥ १०६ ॥ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ॥ १०७ ॥ अनश्च ॥ १०८ ॥ नपुंसकादन्यतरस्याम् ॥ १०९ ॥ नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः ॥ ११० ॥ झयः ॥ ॥ १११ ॥ गिरेश्च सेनकस्य ॥ ११२ ॥ बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ॥ ११३ ॥ अंगुलेर्दारुणि ॥ ॥ ११४ ॥ द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ॥ ११५ ॥ अप् पूरणीप्रमाण्योः ॥ ११६ ॥ अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ॥ ॥ ११७ ॥ अञ् नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् ॥ ॥ ११८ ॥ उपसर्गाच्च ॥ ११९ ॥ सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः ॥ १२० ॥ ६॥ नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् ॥ १२१ ॥ नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ॥ १२२॥ बहुप्रजाश्छन्दसि॥१२३॥ धर्मादनिच् केवलात् ॥ १२४ ॥ जम्भासुहरिततृणसोमेभ्यः ॥ १२५ ॥ दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ॥ १२६ ॥ इच् कर्मव्यतिहारे ॥ १२७ ॥ द्विदण्ड्यादिभ्यश्च॥१२८॥ प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः ॥ १२९ ॥ ऊर्ध्वाद्विभाषा ॥१३०॥ ऊधसोऽनङ् ॥१३१ ॥ धनुषश्च ॥१३२॥ वा संज्ञायाम्॥ ॥ १३३ ॥ जायाया निङ् ॥ १३४ ॥ गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ॥ १३५ ॥ अल्पाख्यायाम् ॥ १३६ ॥ उपमानाच्च ॥ १३७ ॥ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ॥ ॥ १३८ ॥ कुम्भपदीषु च ॥ १३९ ॥ संख्यासुपूर्वस्य ॥ ॥ १४० ॥ ७ ॥ वयसि दन्तस्य दतृ ॥ १४१ ॥ छन्दसि च ॥ १४२ ॥ स्त्रियां संज्ञायाम् ॥ १४३ ॥ विभाषा श्यावारोकाभ्याम् ॥ १४४ ॥ अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च ॥ १४५ ॥ ककुदस्यावस्थायां लोपः ॥ ॥ १४६ ॥ त्रिककुत् पर्वते ॥ १४७ ॥ उद्विभ्यां काकुदस्य ॥ १४८ ॥ पूर्णाद्विभाषा ॥ १४९ ॥ सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ॥ १५० ॥ उरःप्रभृतिभ्यः कप् ॥ १५१॥ इनः स्त्रियाम् ॥ १५२ ॥ नद्यृतश्च ॥ १५३ ॥ शेषाद्विभाषा ॥ १५४ ॥ न संज्ञायाम् ॥ १५५ ॥ ईयसश्च ॥ १५६ ॥ वन्दिते भ्रातुः ॥ १५७ ॥ ऋतश्छन्दसि ॥ १५८ ॥ नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे ॥ १५९ ॥ निष्प्रवाणिश्च ॥ १६० ॥ ८ ॥ (पादशतस्य तत्प्रकृतवृकज्येष्ठाभ्यां सपत्रान्ववतप्तात् खार्या नञ्दुःसुभ्यो वयसि विंशतिः) ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य तुरीयः पादः ॥ ४ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायस्समाप्तः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

एकाचो द्वे प्रथमस्य ॥ १ ॥ अजादेर्द्वितीयस्य ॥ ॥ २ ॥ न न्द्राः संयोगादयः ॥ ३ ॥ पूर्वोऽभ्यासः ॥४॥ उभे अभ्यस्तम् ॥५॥ जक्षित्यादयः षट् ॥६॥ तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ॥ ७ ॥ लिटि धातोरनभ्यासस्य ॥ ८ ॥ सन्यङोः ॥ ९ ॥ श्लौ ॥ १० ॥ चङि॥११॥ दाश्वान्साह्वान्मीढ्वांश्च ॥१२॥ ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे॥ ॥ १३ ॥ बन्धुनि बहुव्रीहौ ॥१४॥ वचिस्वपियजादीनां किति ॥ १५ ॥ ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ॥१६॥ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ॥ १७ ॥ स्वापेश्चङि ॥ १८ ॥ स्वपिस्यमिव्येञां यङि ॥ १९ ॥ न वशः ॥ २० ॥ १ ॥ चायः की ॥ २१ ॥ स्फायः स्फी निष्ठायाम्॥२२॥ स्त्यः प्रपूर्वस्य ॥२३॥ द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः॥२४॥ प्रतेश्च॥२५॥विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य ॥२६॥शृतं पाके ॥२७॥ प्यायः पी ॥२८॥ लिड्यङोश्च ॥२९॥ विभाषा श्वेः॥३०॥ णौ च संश्चङोः ॥३१॥ह्वः संप्रसारणम् ॥३२॥अभ्यस्तस्य च ॥३३॥ बहुलं छन्दसि ॥ ॥३४॥चायः की ॥३५ ॥ अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजश्राताःश्रितमाशीराशीर्ताः ॥ ३६ ॥ न संप्रसारणे संप्रसारणम् ॥ ३७ ॥ लिटि वयो यः ॥३८ ॥ वश्चास्यान्यतरस्यां किति ॥ ३९ ॥ वेञः ॥ ४० ॥ २ ॥ ल्यपि च ॥ ४१ ॥ ज्यश्च ॥ ४२ ॥ व्यश्च ॥ ४३ ॥ विभाषा परेः ॥ ॥ ४४ ॥ आदेच उपदेशेऽशिति ॥४५॥ न व्यो लिटि ॥ ४६ ॥ स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि ॥ ४७ ॥ क्रीङ्जीनां णौ ॥ ४८ ॥ सिध्यतेरपारलौकिके ॥ ४९॥ मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च॥५०॥ विभाषा लीयतेः ॥ ॥५१ ॥ खिदेश्छन्दसि ॥ ५२ ॥ अपगुरो णमुलि ॥ ॥ ५३ ॥ चिस्फुरोर्णौ ॥ ५४ ॥ प्रजने वीयतेः ॥ ५५॥ बिभेतेर्हेतुभये ॥ ५६ ॥ नित्यं स्मयतेः ॥ ५७ ॥ सृजिदृशोर्झल्यमकिति ॥ ५८ ॥ अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ॥५९॥ शीर्षश्छन्दसि ॥ ६० ॥ ३ ॥ ये च तद्धिते ॥ ६१ ॥ अचि शीर्षः ॥ ६२ ॥ पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ॥ ६३ ॥ धात्वादेः षः सः ॥ ६४ ॥ णो नः ॥ ६५ ॥ लोपो व्योर्वलि ॥ ६६ ॥ वेरपृक्तस्य ॥ ६७ ॥ हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्॥ ६८ ॥ एङ्ह्रस्वात् संबुद्धेः ॥६९॥ शेश्छन्दसि बहुलम् ॥ ७० ॥ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ॥ ७१ ॥ संहितायाम् ॥ ७२ ॥ छे च ॥ ७३ ॥ आङ्माङोश्च ॥ ७४ ॥ दीर्घात ॥ ७५ ॥ पदान्ताद्वा ॥ ॥७६ ॥ इको यणचि ॥ ७७ ॥ एचोऽयवायावः ॥७८॥ वान्तो यि प्रत्यये ॥ ७९ ॥ धातोस्तन्निमित्तस्यैव ॥८०॥ ॥ ४ ॥ क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे ॥ ८१ ॥ क्रय्यस्तदर्थे ॥ ॥८२॥ भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि ॥ ८३ ॥ एकः पूर्वपरयोः ॥ ८४ ॥ अन्तादिवच्च ॥ ८५ ॥ षत्वतुकोरसिद्धः॥८६॥ आद् गुणः॥८७॥ वृद्धिरेचि ॥८८॥ एत्येधत्यूठ्सु ॥८९॥ आटश्च ॥ ९० ॥ उपसर्गादृति धातौ ॥ ९१ ॥ वा सुप्यापिशलेः ॥ ९२ ॥ औतोम्शसोः ॥ ॥ ९३ ॥ एङि पररूपम् ॥ ९४ ॥ ओमाङोश्च ॥ ९५ ॥ उस्यपदान्तात् ॥ ९६ ॥ अतो गुणे ॥९७॥ अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ ॥ ९८ ॥ नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा ॥ ९९ ॥ नित्यमाम्रेडिते डाचि ॥१००॥५॥ अकः सवर्णे दीर्घः ॥ १०१ ॥ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ॥ १०२ ॥ तस्माच्छसो नः पुंसि ॥ १०३ ॥ नादिचि ॥ १०४॥ दीर्घाज्जसि च ॥१०५॥ वा छन्दसि ॥ १०६ ॥ अमि पूर्वः ॥ १०७ ॥ संप्रसारणाच्च ॥ १०८ ॥ एङः पदान्तादति ॥ १०९ ॥ ङसिङसोश्च ॥ ११० ॥ ऋत उत् ॥ १११ ॥ ख्यत्यात् परस्य ॥ ११२ ॥ अतो रोरप्लुतादप्लुते ॥ ११३ ॥ हशि च ॥ ११४ ॥ प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे ॥११५ ॥ अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च ॥११६॥ यजुष्युरः ॥ ११७ ॥ आपो जुषाणो वृष्णोवर्षिष्ठेऽम्बेऽम्बालेऽम्बिकेपूर्वे ॥ ११८ ॥ अङ्ग इत्यादौ च ॥ ११९ ॥ अनुदात्ते च कुधपरे॥ १२० ॥ ६ ॥ अवपथासि च ॥ ॥ १२१ ॥ सर्वत्र विभाषा गोः ॥ १२२ ॥ अवङ् स्फोटायनस्य ॥ १२३ ॥ इन्द्रे च नित्यम् ॥ १२४ ॥ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ॥ १२५ ॥ आङोऽनुनासिकश्छन्दसि ॥ १२६ ॥ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च॥ ॥ १२७ ॥ ऋत्यकः ॥ १२८ ॥ अप्लुतवदुपस्थिते ॥ ॥ १२९ ॥ ई३ चाक्रवर्मणस्य ॥ १३० ॥ दिव उत् ॥ ॥१३१॥एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ॥१३२॥ स्यश्छन्दसि बहुलम् ॥ १३३ ॥ सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम् ॥ १३४ ॥ सुट्कात्पूर्वः ॥ १३५॥ अडभ्यासव्यवायेऽपि ॥ १३६ ॥ संपर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे ॥ ॥ १३७ ॥ समवाये च ॥ १३८ ॥ उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ॥१३९ ॥ किरतौ लवने॥१४०॥ ॥ ७ ॥ हिंसायां प्रतेश्च ॥ १४१ ॥ अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने ॥ १४२ ॥ कुस्तुम्बुरूणि जातिः ॥ १४३ ॥ अपरस्पराः क्रियासातत्ये ॥ १४४ ॥ गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु ॥ १४५॥ आस्पदं प्रतिष्ठायाम् ॥१४६॥ आश्चर्यमनित्ये ॥ १४७ ॥ वर्चस्केऽवस्करः ॥ १४८ ॥ अपस्करो रथाङ्गम् ॥ १४९ ॥ विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा ॥ १५० ॥ ह्रस्वाचन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे ॥ १५१ ॥ प्रतिष्कशश्च कशेः ॥ १५२॥ प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी ॥१५३॥ मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः ॥ १५४ ॥ कास्ती-

राजस्तुन्दे नगरे ॥ १५५ ॥ कारस्करो वृक्षः ॥ १५६ ॥ पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् ॥ १५७॥ अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ॥ १५८ ॥ कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः ॥ ॥ १५९ ॥ उञ्छादीनां च ॥ १६० ॥ ८ ॥ अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ॥ १६१ ॥ धातोः ॥ १६२ ॥ चितः ॥ १६३ ॥ तद्धितस्य ॥ १६४॥ कितः ॥१६५॥ तिसृभ्यो जसः ॥ १६६ ॥ चतुरः शसि ॥ १६७ ॥ सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः ॥ १६८ ॥ अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे ॥ १६९ ॥ अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम् ॥१७०॥ ऊडिदंपदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः॥१७१॥ अष्टनो दीर्घात् ॥ १७२ ॥ शतुरनुमो नद्यजादी॥१७३॥ उदात्तयणो हल्पूर्वात् ॥ १७४ ॥ नोङ्धात्वोः ॥ १७५॥ ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् ॥ १७६ ॥ नामन्यतरस्याम् ॥१७७॥ ङ्याश्छन्दसि बहुलम् ॥ १७८ ॥ षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः ॥ १७९ ॥ झल्युपोत्तमम् ॥ १८० ॥ ९ ॥ विभाषा भाषायाम् ॥१८१॥ न गोश्वन्साववर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः ॥ ॥१८२॥ दिवो झल्॥१८३॥ नृ चान्यतरस्याम्॥१८४॥ तित्स्वरितम्॥१८५॥ तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमह्न्विङोः॥१८६॥आदिः सिचोऽन्यतरस्याम् ॥ ॥ १८७ ॥ स्वपादिर्हिंसामच्यनिटि ॥ १८८ ॥ अभ्यस्तानामादिः ॥ १८९ ॥ अनुदात्ते च ॥ १९० ॥ सर्वस्य सुपि ॥ १९१ ॥ भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात् पूर्वं पिति ॥ १९२ ॥ लिति ॥ १९३ ॥ आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम् ॥ १९४ ॥ अचः कर्तृयकि ॥ ॥ १९५ ॥ थलि च सेटीडन्तो वा ॥ १९६ ॥ ञ्नित्यादिर्नित्यम् ॥१९७ ॥ आमन्त्रितस्य च ॥१९८॥ पथिमथोः सर्वनामस्थाने ॥ १९९ ॥ अन्तश्च तवै युगपत् ॥ २०० ॥ १० ॥ क्षयो निवासे ॥ २०१ ॥ जयः करणम् ॥ २०२ ॥ वृषादीनां च ॥ २०३ ॥ संज्ञायामुपमानम् ॥ २०४ ॥ निष्ठा च द्व्यजनात् ॥ २०५ ॥ शुष्कधृष्टौ ॥ २०६ ॥ आशितः कर्ता ॥ २०७ ॥ रिक्ते विभाषा ॥ २०८ ॥ जुष्टार्पिते च च्छन्दसि ॥ २०९॥ नित्यं मन्त्रे ॥ २१० ॥ युष्मदस्मदोर्ङसि ॥ २११ ॥ ङयि च ॥ २१२ ॥ यतो नावः ॥ २१३ ॥ ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः ॥२१४॥ विभाषा वेण्विन्धानयोः॥२१५॥ त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम् ॥ २१६ ॥ उपोत्तमं रिति ॥ २१७ ॥ चङ्यन्यतरस्याम् ॥ २१८ ॥ मतोः पूर्वमात्संज्ञायां स्त्रियाम् ॥ २१९ ॥ अन्तोऽवत्याः ॥ ॥ २२० ॥११ ॥ ईवत्याः ॥ २२१ ॥ चौ ॥२२२ ॥ समासस्य ॥ २२३ ॥ ३ ॥ (एकाचश्चाद्यो ल्यपि च ये च क्षय्यजय्यावकः सवर्णेऽवधथाहिंसायामनुदात्तस्य विभाषा क्षय ईवत्यात्त्रीणि) ॥

इति षष्ठाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ॥ १ ॥ तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः ॥ २ ॥ वर्णो वर्णेष्वनेते ॥ ३ ॥ गाधलवणयोः प्रमाणे ॥ ४ ॥ दायाद्यं दायादे ॥ ५ ॥ प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः ॥ ६ ॥ पदेऽपदेशे ॥ ७ ॥ निवाते वातत्राणे ॥ ८ ॥ शारदेऽनार्तवे ॥ ॥ ९ ॥ अध्वर्युकषाययोर्जातौ ॥१० ॥ सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये ॥ ११ ॥ द्विगौ प्रमाणे ॥ १२ ॥ गन्तव्यपण्यं वाणिजे ॥ १३ ॥ मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके॥१४॥ सुखप्रिययोर्हिते ॥ १५ ॥ प्रीतौ च ॥ १६ ॥ स्वं स्वामिनि ॥ १७ ॥ पत्यावैश्वर्ये ॥ १८ ॥ न भूवाक्चिद्दिधिषु ॥ १९ ॥ वा भुवनम् ॥ २० ॥ १ ॥ आशङ्काबाधनेदीयःसु संभावने ॥ २१ ॥ पूर्वे भूतपूर्वे ॥ २२ ॥ सविधसनीडसमर्यादसवेशसदेशेषु सामीप्ये ॥ २३ ॥ विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु ॥ २४ ॥ श्रज्यावमकन्पापवत्सु भावे कर्मधारये ॥ २५ ॥ कुमारश्च ॥ २६ ॥ आदिः प्रत्येनसि ॥ २७ ॥ पूगेष्वन्यतरस्याम् ॥ २८ ॥ इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ ॥२९ ॥ बह्वन्यतरस्याम्॥ ॥ ३० ॥ दिष्टिवितस्त्योश्च ॥ ३१ ॥ सप्तमी सिद्धशुष्कपक्वबन्धेष्वकालात् ॥३२ ॥ परिप्रत्युपापा वर्ज्यमानाहोरात्रावयवेषु ॥३३॥ राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु ॥ ३४॥ संख्या ॥ ३५ ॥ आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासी ॥ ३६ ॥ कार्तकौजपादयश्च ॥ ३७ ॥ महान्व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु ॥ ३८ ॥ क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे ॥ ३९ ॥ उष्ट्रः सादिवाम्योः ॥ ४० ॥२॥ गौः सादसादिसारथिषु ॥ ४१ ॥ कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा पारेवडवा तैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च ॥ ४२ ॥ चतुर्थी तदर्थे ॥ ४३ ॥ अर्थे ॥ ॥ ४४ ॥ क्ते च ॥ ४५ ॥ कर्मधारयेऽनिष्ठा ॥ ४६ ॥ अहीने द्वितीया ॥ ४७ ॥ तृतीया कर्मणि ॥ ४८ ॥ गतिरनन्तरः ॥ ४९ ॥ तादौ च निति कृत्यतौ ॥ ५०॥ तवै चान्तश्च युगपत् ॥ ५१ ॥ अनिगन्तोऽञ्चतावप्रत्यये ॥ ५२ ॥ न्यधी च ॥ ५३ ॥ ईषदन्यतरस्याम् ॥५४॥ हिरण्यपरिमाणं धने ॥ ५५ ॥ प्रथमोऽचिरोपसंपत्तौ ॥ ५६ ॥ कतरकतमौ कर्मधारये ॥ ५७ ॥ आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः ॥ ५८ ॥ राजा च ॥ ५९ ॥ षष्ठी प्रत्येनसि ॥ ६० ॥ ३ ॥ क्ते नित्यार्थे ॥ ६१ ॥ ग्रामः शिल्पिनि ॥ ६२ ॥ राजा च प्रशंसायाम् ॥ ६३ ॥ आदिरुदात्तः ॥ ६४ ॥ सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे ॥ ६५ ॥ युक्ते च ॥ ६६ ॥ विभाषाध्यक्षे ॥ ६७ ॥ पापं च शिल्पिनि ॥ ६८ ॥ गोत्रान्तेवासिमाणवब्राह्मणेषु-

१ 'अञ्चतौ वप्रत्यये' इति पाठान्तरम् ।

क्षेपे ॥ ६९ ॥ अङ्गानि मैरेये ॥ ७० ॥ भक्ताख्यास्तदर्थेषु ॥ ७१ ॥ गोबिडालसिंहसैन्धवेषूपमाने ॥ ७२ ॥ अके जीविकार्थे ॥ ७३ ॥ प्राचां क्रीडायाम् ॥ ७४ ॥ अणि नियुक्ते ॥ ७५ ॥ शिल्पिनि चाकृञः ॥ ७६ ॥ संज्ञायां च ॥ ७७ ॥ गोतन्तियवं पाले ॥ ७८ ॥ णिनि ॥ ७९ ॥ उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव ॥ ८० ॥ ॥ ४ ॥ युक्तारोह्यादयश्च ॥ ८१ ॥ दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटं जे ॥ ८२ ॥ अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः ॥ ८३ ॥ ग्रामेऽनिवसन्तः ॥ ८४ ॥ घोषादिषु च ॥ ८५ ॥ छात्र्यादयः शालायाम् ॥ ८६ ॥ प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् ॥ ॥ ८७ ॥ मालादीनां च ॥ ८८ ॥ अमहन्नवन्नगरेऽनुदीचाम् ॥ ८९ ॥ अर्मे चावर्णं द्व्यच्त्र्यच् ॥ ९० ॥ भूताधिकसंजीवमद्राश्मकज्जलम् ॥ ९१ ॥ अन्तः ॥ ९२ ॥ सर्वं गुणकार्त्स्न्ये ॥ ९३ ॥ संज्ञायां गिरिनिकाययोः ॥ ॥ ९४ ॥ कुमार्यां वयसि ॥ ९५ ॥ उदकेऽकेवले ॥ ॥ ९६ ॥ द्विगौ क्रतौ ॥ ९७ ॥ सभायां नपुंसके ॥ ९८ ॥ पुरे प्राचाम् ॥ ९९ ॥ अरिष्टगौडपूर्वे च ॥ १०० ॥ ५ ॥ न हास्तिनफलकमार्देयाः ॥ १०१ ॥ कुसूलकूपकुम्भशालं बिले ॥ १०२ ॥ दिक्शब्दा ग्रामजनपदाख्यानचानराटेषु ॥ १०३ ॥ आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि ॥ १०४ ॥ उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च ॥ १०५ ॥ बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् ॥ १०६ ॥ उदराश्वेषुषु ॥ १०७ ॥ क्षेपे ॥ ॥ १०८ ॥ नदी बन्धुनि ॥ १०९ ॥ निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम् ॥ ११० ॥ उत्तरपदादिः ॥ १११ ॥ कर्णो वर्णलक्षणात् ॥ ११२ ॥ संज्ञौपम्ययोश्च ॥ ११३ ॥ कण्ठपृष्ठग्रीवाजंघं च ॥ ११४ ॥ शृङ्गमवस्थायां च ॥ ॥ ११५ ॥ नञो जरमरमित्रमृताः ॥ ११६ ॥ सोर्मनसी अलोमोषसी ॥ ११७ ॥ क्रत्वादयश्च ॥ ११८ ॥ आद्युदात्तं द्व्यच्छन्दसि ॥ ११९ ॥ वीरवीर्यौ च ॥ १२० ॥ ६ ॥ कलतीरतूलमूलशालाक्षसममव्ययीभावे ॥ १२१ ॥ कंसमन्थशूर्पपाय्यकाण्डं द्विगौ ॥ १२२ ॥ तत्पुरुषे शालायां नपुंसके ॥ १२३ ॥ कन्था च ॥ १२४ ॥ आदिश्चिहणादीनाम् ॥ १२५ ॥ चेलखेटकटुककाण्डं गर्हायाम् ॥ १२६ ॥ चीरमुपमानम् ॥ १२७ ॥ पललसूपशाकं मिश्रे ॥ १२८ ॥ कूलसूदस्थलकर्षाः संज्ञायाम् ॥ १२९ ॥ अकर्मधारये राज्यम् ॥ १३० ॥ वर्ग्यादयश्च ॥ १३१ ॥ पुत्रः पुम्भ्यः ॥ १३२ ॥ नाचार्यराजर्त्विक्संयुक्तज्ञात्याख्येभ्यः ॥ १३३ ॥ चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः ॥ १३४ ॥ षट् च काण्डादीनि ॥ १३५ ॥ कुण्डं वनम् ॥ १३६ ॥ प्रकृत्या भगालम् ॥ ॥ १३७ ॥ शितेर्नित्याबह्वज्बहुव्रीहावभसत् ॥ १३८ ॥ गतिकारकोपपदात्कृत् ॥ १३९ ॥ उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ १४० ॥ ७ ॥ देवताद्वन्द्वे च ॥ १४१ ॥ नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु ॥ १४२ ॥ अन्तः ॥ १४३ ॥ थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् ॥ १४४ ॥ सूपमानात् क्तः ॥ १४५ ॥ संज्ञायामनाचितादीनाम् ॥ ॥ १४६ ॥ प्रवृद्धादीनां च ॥ १४७ ॥ कारकाद्दत्तश्रुतयोरेवाशिषि ॥ १४८ ॥ इत्थंभूतेन कृतमिति च ॥ ॥ १४९ ॥ अनो भावकर्मवचनः ॥ १५० ॥ मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासनस्थानयाजकादि ीताः ॥ १५१ ॥ सप्तम्याः पुण्यम् ॥ १५२ ॥ ऊनार्थकलहं तृतीयायाः ॥ ॥ १५३ ॥ मिश्रं चानुपसर्गमसंधौ ॥ १५४ ॥ नञो गुणप्रतिषेधे संपाद्यर्हहितालमर्थास्तद्धिताः ॥ १५५ ॥ ययतोश्चातदर्थे ॥ १५६ ॥ अच्कावशक्तौ ॥ १५७ ॥ आक्रोशे च ॥ १५८ ॥ संज्ञायाम् ॥ १५९ ॥ कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च ॥ १६० ॥ ८ ॥ विभाषा तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु ॥ १६१ ॥ बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः प्रथमपूरणयोः क्रियागणने ॥ १६२ ॥ संख्यायाः स्तनः ॥ ॥ १६३ ॥ विभाषा छन्दसि ॥ १६४ ॥ संज्ञायां मित्राजिनयोः ॥ १६५ ॥ व्यवायिनोऽन्तरम् ॥ १६६ ॥ मुखं स्वाङ्गम् ॥ १६७ ॥ नाव्ययदिक्शब्दगोमहत्स्थूलमुष्टिपृथुवत्सेभ्यः ॥ १६८ ॥ निष्ठोपमानादन्यतरस्याम् ॥ ॥ १६९ ॥ जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात् क्तोऽकृतमितप्रतिपन्नाः ॥ १७० ॥ वा जाते ॥ १७१ ॥ नञ्सुभ्याम् ॥ १७२ ॥ कपि पूर्वम् ॥ १७३ ॥ ह्रस्वान्तेऽन्त्यात्पूर्वम् ॥ १७४ ॥ बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि ॥ ॥ १७५ ॥ न गुणादयोऽवयवाः ॥ १७६ ॥ उपसर्गात्स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु ॥ १७७ ॥ वनं समासे ॥ १७८ ॥ अन्तः ॥ १७९ ॥ अन्तश्च ॥ १८० ॥ ९ ॥ न निविभ्याम् ॥ ॥ १८१ ॥ परेरभितो भावि मण्डलम् ॥ १८२ ॥ प्रादस्वाङ्गं संज्ञायाम् ॥ १८३ ॥ निरुदकादीनि च ॥ १८४ ॥ अभेर्मुखम् ॥ १८५ ॥ अपाच्च ॥ १८६ ॥ स्फिगपूतवीणाञ्जोऽध्वकुक्षिसीरनामनाम च ॥ १८७ ॥ अधेरुपरिस्थम् ॥ ॥ १८८ ॥ अनोरप्रधानकनीयसी ॥ १८९ ॥ पुरुषश्चान्वादिष्टः ॥ १९० ॥ अतेरकृत्पदे ॥ १९१ ॥ नेरनिधाने ॥ ॥ १९२ ॥ प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे ॥ १९३ ॥ उपाद्द्व्यजजिनमगौरादयः ॥ १९४ ॥ सोरवक्षेपणे ॥ १९५ ॥ विभाषोत्पुच्छे ॥ १९६ ॥ द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ ॥ १९७ ॥ सक्थं चाक्रान्तात् ॥ १९८ ॥ परादिश्छन्दसि बहुलम् ॥ १९९ ॥ १९ ॥ (बहुव्रीहावाशंकागौः सादक्ते नित्यार्थे युक्ता नहास्तिन कूलतीरदेवताविभाषा न निव्येकोनविंशतिः) ॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

अलुगुत्तरपदे ॥ १ ॥ पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ॥ २॥ ओजःसहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः ॥३॥ मनसः संज्ञायाम् ॥ ॥ ४ ॥ आज्ञायिनि च ॥ ५ ॥ आत्मनश्च पूरणे ॥ ६ ॥ वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः ॥ ७ ॥ परस्य च ॥ ८ ॥ हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् ॥ ९ ॥ कारनाम्नि च प्राचां हलादौ ॥ १० ॥ मध्याद् गुरौ ॥ ११ ॥ अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे ॥ १२ ॥ बन्धे च विभाषा ॥ १३ ॥ तत्पुरुषे कृति बहुलम्॥१४॥प्रावृट्शरत्कालदिवांजे॥१५॥ विभाषा वर्षक्षरशरवरात् ॥ १६ ॥ घकालतनेषु कालनाम्नः ॥१७॥ शयवासवासिष्वकालात् ॥ १८ ॥ नेन्सिद्धबध्नातिषु च ॥ १९ ॥ स्थे च भाषायाम् ॥ २० ॥ १ ॥ षष्ठ्या आक्रोशे ॥ २१ ॥ पुत्रेऽन्यतरस्याम् ॥२२॥ ऋतो विद्यायोनिसंबन्धेभ्यः ॥ २३ ॥ विभाषा स्वसृपत्योः ॥ ॥ २४ ॥ आनङृतो द्वन्द्वे ॥ २५ ॥ देवताद्वन्द्वे च ॥ ॥ २६ ॥ ईदग्नेः सोमवरुणयोः ॥ २७ ॥ इद्वृद्धौ ॥ ॥ २८॥ दिवो द्यावा ॥२९॥ दिवसश्च पृथिव्याम् ॥३०॥ उषासोषसः ॥ ३१ ॥ मातरपितरावुदीचाम् ॥ ३२ ॥ पितरामातरा च च्छन्दसि ॥ ३३ ॥ स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥ ३४॥ तसिलादिष्वाकृत्वसुचः ॥३५॥ क्यङ्मानिनोश्च॥ ३६ ॥ न कोपधायाः ॥ ३७ ॥ संज्ञापूरण्योश्च ॥ ३८ ॥ वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे ॥ ३९ ॥ स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनि ॥ ४० ॥ २ ॥ जातेश्च ॥ ४१ ॥ पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु ॥४२॥ घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः ॥ ४३ ॥ नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥ उगितश्च ॥ ४५ ॥आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ॥ ४६ ॥ द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ॥ ४७ ॥ त्रेस्त्रयः ॥ ४८ ॥ विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम् ॥ ४९ ॥ हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु ॥ ५० ॥ वा शोकष्यञ्रोगेषु ॥५१ ॥ पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु ॥ ५२ ॥ पद्यत्यतदर्थे ॥ ५३ ॥ हिमकाषिहतिषु च ॥ ५४ ॥ ऋचः शे ॥ ५५ ॥ वा घोषमिश्रशब्देषु ॥ ५६ ॥ उदकस्योदः संज्ञायाम्॥५७॥ पेषंवासवाहनधिषु च ॥ ५८ ॥ एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम् ॥ ५९ ॥ मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च ॥ ६० ॥ ३ ॥ इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य ॥ ६१ ॥ एकतद्धिते च ॥ ६२॥ ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् ॥ ६३ ॥ त्वे च ॥ ॥ ६४॥ इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु ॥ ६५ ॥ खित्यनव्ययस्य ॥ ६६ ॥ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ॥ ६७ ॥ इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च ॥ ॥ ६८ ॥ वाचंयमपुरंदरौ च ॥ ६९॥ कारे सत्यागदस्य ॥ ७० ॥ श्येनतिलस्य पाते ञे ॥ ७१ ॥ रात्रेः कृति विभाषा ॥ ७२ ॥ नलोपो नञः ॥ ७३ ॥ तस्मान्नुडचि ॥ ७४ ॥ नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या ॥ ७५ ॥ एकादिश्चैकस्य चादुक् ॥ ७६ ॥ नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् ॥ ७७ ॥ सहस्य सः संज्ञायाम् ॥ ७८ ॥ ग्रन्थान्ताधिके च ॥७९॥ द्वितीये चानुपाख्ये ॥ ८० ॥ ४ ॥ अव्ययीभावे चाकाले ॥ ८१ ॥ वोपसर्जनस्य ॥ ८२ ॥ प्रकृत्याशिष्यगोवत्सहलेषु ॥ ८३ ॥ समानस्य च्छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु॥८४॥ ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु ॥८५॥ चरणे ब्रह्मचारिणि ॥८६ ॥ तीर्थे ये ॥८७ ॥ विभाषोदरे ॥ ८८॥दृग्दृशवतुषु ॥ ८९ ॥ इदंकिमोरीश्की ॥९०॥ आ सर्वनाम्नः ॥ ९१॥ विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये ॥ ९२ ॥ समः समि ॥ ९३ ॥ तिरसस्तिर्यलोपे ॥ ९४ ॥ सहस्य सध्रिः ॥ ९५ ॥ सधमादस्थयोश्छन्दसि ॥ ९६ ॥ द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् ॥ ९७ ॥ ऊदनोर्देशे ॥ ९८ ॥ अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्यदुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु ॥९९ ॥ अर्थे विभाषा ॥ १०० ॥ ५ ॥ कोः कत्तत्पुरुषेऽचि ॥ १०१ ॥ रथवदयोश्च ॥ १०२ ॥ तृणे च जातौ ॥ १०३ ॥ का पथ्यक्षयोः ॥ १०४ ॥ ईषदर्थे ॥ १०५ ॥ विभाषा पुरुषे ॥ १०६ ॥ कवं चोष्णे ॥ १०७ ॥ पथि च च्छन्दसि ॥ १०८ ॥ पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ॥ १०९ ॥ संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याहन्नन्यतरस्यां ङौ ॥ ११० ॥ ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ॥ १११ ॥ सहिवहोरोदवर्णस्य ॥११२ ॥ साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे ॥ ११३ ॥ संहितायाम् ॥ ११४ ॥ कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य ॥ ११५ ॥ नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ॥ ११६ ॥ वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलुकादीनाम् ॥ ११७ ॥ वले ॥११८ ॥ मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् ॥ ११९ ॥ शरादीनां च॥१२०॥ ॥ ६ ॥ इको वहेऽपीलोः ॥ १२१ ॥ उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् ॥ १२२ ॥ इकः काशे ॥१२३॥ दस्ति ॥ १२४ ॥ अष्टनः संज्ञायाम् ॥ १२५ ॥ छन्दसि च ॥ ॥ १२६ ॥ चितेः कपि ॥ १२७ ॥ विश्वस्य वसुराटोः ॥ १२८ ॥ नरे संज्ञायाम् ॥१२९॥ मित्रे चर्षौ॥१३०॥ मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ ॥ १३१॥ ओषधेश्च विभक्तावप्रथमायाम् ॥१३२॥ ऋचि तुनुघमक्षुमतङ्कुत्रोरुष्याणाम् ॥ १३३ ॥ इकः सुञि ॥ १३४ ॥ द्व्यचोतस्तिङः ॥ १३५ ॥ निपातस्य च ॥१३६ ॥ अन्येषामपि दृश्यते ॥ १३७ ॥ चौ ॥ १३८ ॥ संप्रसारणस्य ॥

१ प्रकृत्याशिष्यगोवत्सहलेष्विति सूत्रे अगोवत्सहलेष्विति प्रक्षिप्तः पाठः । २ टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये इति पाठः ।

॥ १३९ ॥ १९ ॥ (अलुक्षष्ठ्या जातेरिकोऽव्ययीभावे कोः कत्तदिको वहे एकोनविंशतिः) ॥

इति षष्ठाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

अङ्गस्य ॥ १ ॥ हलः ॥ २ ॥ नामि ॥ ३ ॥ न तिसृचतसृ ॥ ४ ॥ छन्दस्युभयथा ॥ ५ ॥ नृ च ॥ ६ ॥ नोपधायाः ॥ ७ ॥ सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ ॥ ८ ॥ वा षपूर्वस्य निगमे ॥ ९ ॥ सान्तमहतः संयोगस्य ॥ १० ॥ अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम्॥११॥ इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ॥ १२ ॥ सौ च ॥ १३ ॥ अत्वसन्तस्य चाधातोः ॥ १४ ॥ अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ॥ १५ ॥ अज्झनगमां सनि ॥ १६ ॥ तनोतेर्विभाषा ॥ १७ ॥ क्रमश्च क्त्वि ॥ १८ ॥ च्छ्वोः शूडनुनासिके च ॥१९॥ ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च॥२०॥१॥ राल्लोपः ॥ २१ ॥ असिद्धवदत्राभात् ॥२२॥ श्नान्नलोपः ॥ २३ ॥ अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ॥ २४ ॥ दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ॥ २५ ॥ रञ्जेश्च ॥ २६ ॥ घञि च भावकरणयोः ॥ २७ ॥ स्यदो जवे ॥ २८ ॥ अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः ॥ २९ ॥ नाञ्चेः पूजायाम् ॥ ३० ॥ क्त्वि स्कन्दस्यन्दोः ॥ ३१ ॥ जान्तनशां विभाषा ॥३२॥ भञ्जेश्च चिणि ॥ ३३ ॥ शास इदङ्हलोः ॥ ३४ ॥ शा हौ ॥ ३५ ॥ हन्तेर्जः ॥ ३६ ॥ अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ॥३७॥ वा ल्यपि ॥ ३८ ॥ न क्तिचि दीर्घश्च ॥ ३९ ॥ गमः क्वौ ॥ ४० ॥ २ ॥ विड्वनोरनुनासिकस्यात् ॥ ४१ ॥ जनसनखनां सञ्झलोः ॥४२॥ ये विभाषा ॥ ४३ ॥ तनोतेर्यकि ॥ ४४ ॥ सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम् ॥ ॥ ४५ ॥ आर्धधातुके ॥ ४६ ॥ भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम् ॥ ४७ ॥ अतो लोपः ॥ ४८ ॥ यस्य हलः ॥ ४९ ॥ क्यस्य विभाषा ॥ ५० ॥ णेरनिटि ॥ ५१ ॥ निष्ठायां सेटि ॥ ५२ ॥ जनिता मन्त्रे ॥ ५३ ॥ शमिता यज्ञे ॥ ५४ ॥ अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ॥ ५५॥ ल्यपि लघुपूर्वात् ॥ ५६ ॥ विभाषापः ॥ ५७ ॥ युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि ॥ ५८ ॥ क्षियः ॥ ५९ ॥ निष्ठायामण्यदर्थे ॥ ६० ॥ ३ ॥ वाक्रोशदैन्ययोः ॥ ६१ ॥ स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ॥ ६२ ॥ दीङो युडचि क्ङिति ॥ ६३ ॥ आतो लोप इटि च ॥ ६४ ॥ ईद्यति ॥ ६५ ॥ घुमास्थागापाजहातिसां हलि ॥ ६६ ॥ एर्लिङि ॥ ६७ ॥ वान्यस्य संयोगादेः ॥ ६८ ॥ न ल्यपि ॥ ६९ ॥ मयतेरिदन्यतरस्याम् ॥ ७० ॥ लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ॥ ७१ ॥ आडजादीनाम् ॥ ७२ ॥ छन्दस्यपि दृश्यते ॥ ७३ ॥ न माङ्योगे ॥ ७४ ॥ बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि ॥ ७५॥ इरयो रे ॥ ७६॥ अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ॥७७॥ अभ्यासस्यासवर्णे ॥ ७८ ॥ स्त्रियाः ॥७९॥ वाम्शसोः ॥ ॥ ८० ॥ ४ ॥ इणो यण् ॥ ८१ ॥ एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ॥ ८२ ॥ ओः सुपि ॥ ८३ ॥ वर्षाभ्वश्च ॥ ॥ ८४ ॥ न भूसुधियोः ॥ ८५ ॥ छन्दस्युभयथा ॥८६॥ हुश्नुवोः सार्वधातुके ॥ ८७ ॥ भुवो वुग्लुङ्लिटोः॥८८॥ ऊदुपधाया गोहः ॥८९॥ दोषो णौ ॥९०॥ वा चित्तविरागे ॥ ९१ ॥ मितां ह्रस्वः ॥ ९२॥ चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् ॥ ९३ ॥ खचि ह्रस्वः ॥ ९४ ॥ ह्लादो निष्ठायाम् ॥ ९५ ॥ छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ॥ ९६ ॥ इस्मन्त्रन्क्विषु च ॥९७॥ गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ॥ ९८ ॥ तनिपत्योश्छन्दसि ॥ ९९ ॥ घसिभसोर्हलि च ॥ १०० ॥ ५ ॥ हुझल्भ्यो हेर्धिः ॥१०१॥ श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि ॥ १०२ ॥ अङितश्च ॥ १०३॥ चिणो लुक् ॥ १०४ ॥ अतो हेः ॥१०५॥ उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ॥ १०६ ॥ लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ॥१०७॥ नित्यं करोतेः ॥ १०८ ॥ ये च ॥ १०९ ॥ अत उत्सार्वधातुके ॥ ११० ॥ श्नसोरल्लोपः ॥ १११ ॥ श्नाभ्यस्तयोरातः ॥ ११२ ॥ ई हल्यघोः ॥ ११३ ॥ इद्दरिद्रस्य ॥ ११४ ॥ भियोऽन्यतरस्याम् ॥ ११५ ॥ जहातेश्च ॥ ११६ ॥ आ च हौ ॥ ११७ ॥ लोपो यि ॥ ११८ ॥ घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ॥ ११९ ॥ अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ॥ १२० ॥ ६ ॥ थलि च सेटि ॥ १२१ ॥ तॄफलभजत्रपश्च ॥ १२२ ॥ राधो हिंसायाम् ॥ १२३ ॥ वा जॄभ्रमुत्रसाम् ॥ १२४ ॥ फणां च सप्तानाम् ॥ १२५ ॥ न शसददवादिगुणानाम् ॥ ॥ १२६ ॥ अर्वणस्त्रसावनञः ॥१२७॥ मघवा बहुलम्॥ ॥ १२८ ॥ भस्य ॥ १२९ ॥ पादः पत् ॥ १३० ॥ वसोः संप्रसारणम् ॥ १३१ ॥ वाह ऊठ् ॥ १३२ ॥ श्वयुवमघोनामतद्धिते ॥ १३३ ॥ अल्लोपोऽनः ॥ १३४॥ षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि ॥१३५॥ विभाषा ङिश्योः ॥१३६॥ न संयोगाद्वमन्तात् ॥१३७॥ अचः ॥१३८॥ उद ईत्॥ ॥१३९॥ आतो धातोः ॥ १४० ॥ ७ ॥ मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः ॥ १४१ ॥ ति विंशतेर्डिति ॥ १४२ ॥ टेः॥ ॥ १४३ ॥ नस्तद्धिते ॥१४४॥ अह्नष्टखोरेव ॥ १४५॥ ओर्गुणः ॥ १४६ ॥ ढे लोपोऽकद्र्वाः ॥१४७॥यस्येति च ॥ १४८ ॥ सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः॥ ॥ १४९ ॥ हलस्तद्धितस्य ॥ १५० ॥ आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति ॥ १५१ ॥ क्यच्व्योश्च ॥ १५२ ॥ बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् ॥ ॥ १५३ ॥ तुरिष्ठेमेयःसु ॥ १५४॥

१ एरिति योगविभागोऽश्वादिगणल० शा० घोखरे ।

टः ॥ १९९ ॥ स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपर
पूर्वस्य च गुणः ॥ १९६ ॥ प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरु-
वृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः॥
॥ १९७ ॥ बहोर्लोपो भू च बहोः ॥ १९८ ॥ इष्ठस्य
यिट् च ॥ १९९ ॥ ज्यादादीयसः ॥ १६० ॥ ८ ॥
र ऋतो हलादेर्लघोः ॥१६१॥विभाषर्जोश्छन्दसि॥१६२॥
प्रकृत्यैकाच् ॥ १६३ ॥ इनण्यनपत्ये ॥ १६४ ॥ गाथि-
विदथिकेशिगणिपणिनश्च ॥१६९॥ संयोगादिश्च ॥१६६॥
अन् ॥ १६७ ॥ ये चाभावकर्मणोः ॥ १६८ ॥ आत्मा-
ध्वानौ खे ॥ १६९ ॥ न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः ॥ १७०॥
ब्राह्मोऽजातौ ॥ १७१ ॥ कार्मस्ताच्छील्ये ॥ १७२ ॥
औक्षमनपत्ये ॥ १७३ ॥ दाण्डिनायनहास्तिनायनाथ-
र्वणिकजैह्माशिनेयवासिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमै-
त्रेयहिरण्मयानि ॥ १७४ ॥ ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिर-
ण्ययानि च्छन्दसि ॥ १७९ ॥ १९ ॥ (अङ्गस्य राल्लोपो
विड्वनोर्वाक्रोशेणो यण्हुल्लल्म्यस्थलि च मन्त्रेषु र ऋतः
पञ्चदश) ॥

इति षष्ठाध्यायस्य तुरीयः पादः ॥ ४ ॥

॥ इति षष्ठाध्यायस्समाप्तः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

युवोरनाकौ ॥ १ ॥ आयनेयीनीयियःफढखछघां प्र-
त्ययादीनाम् ॥ २ ॥ झोऽन्तः ॥ ३ ॥ अदभ्यस्तात् ॥
॥ ४ ॥ आत्मनेपदेष्वनतः ॥ ९ ॥ शीङो रुट् ॥ ६॥
वेत्तेर्विभाषा ॥ ७ ॥ बहुलं छन्दसि ॥ ८ ॥ अतो भिस
ऐस् ॥ ९ ॥ बहुलं छन्दसि ॥ १० ॥ नेदमदसोरकोः ॥
॥ ११ ॥ टाङसिङसामिनात्स्याः ॥ १२ ॥ ङेर्यः ॥
॥ १३ ॥ सर्वनाम्नः स्मै ॥ १४ ॥ ङसिङ्योः स्मा-
त्स्मिनौ ॥ १९ ॥ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ॥ १६ ॥
जसः शी ॥ १७ ॥ औङ आपः ॥ १८ ॥ नपुंसकाच्च
॥ १९ ॥ जश्शसोः शिः ॥ २० ॥ १ ॥ अष्टाभ्य
औश् ॥ २१ ॥ षड्भ्यो लुक् ॥ २२ ॥ स्वमोर्नपुंसकात्॥
॥ २३ ॥ अतोऽम् ॥ २४ ॥ अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः
॥ २९ ॥ नेतराच्छन्दसि ॥ २६ ॥ युष्मदस्मद्भ्यां ङसो-
ऽश् ॥ २७ ॥ ङेप्रथमयोरम् ॥ २८ ॥ शसो न ॥२९ ॥
भ्यसोऽभ्यम् ॥३०॥ पञ्चम्या अत् ॥ ३१ ॥ एकवचनस्य
च ॥ ३२ ॥ साम आकम् ॥ ३३ ॥ आत औ णलः ॥
॥ ३४ ॥ तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ॥ ३९ ॥ विदेः
शतुर्वसुः ॥ ३६ ॥ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ॥३७॥
क्त्वापि च्छन्दसि ॥ ३८ ॥ सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडा-
ड्यायाजालः ॥ ३९॥ अमो मश् ॥ ४० ॥ २॥ लोपस्त
आत्मनेपदेषु ॥ ४१ ॥ ध्वमो ध्वात् ॥ ४२ ॥ यजध्वै-
नमिति च ॥ ४३ ॥ तस्य तात् ॥४४॥ तप्तनप्तनथनाश्च
॥ ४९ ॥ इदन्तो मसि ॥ ४६ ॥ क्त्वो यक् ॥ ४७ ॥
इष्ट्वीनमिति च ॥ ४८ ॥ स्नात्व्यादयश्च ॥ ४९ ॥
आज्जसेरसुक् ॥ ९० ॥ अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ
क्यचि ॥ ९१ ॥ आमि सर्वनाम्नः सुट् ॥ ९२ ॥ त्रेस्त्रयः
॥९३॥ ह्रस्वनद्यापो नुट् ॥ ९४ ॥ षट्चतुर्भ्यश्च ॥९९॥
श्रीग्रामण्योश्छन्दसि ॥ ९६ ॥ गोः पादान्ते ॥ ९७ ॥
इदितो नुम्धातोः ॥ ९८ ॥ शे मुचादीनाम् ॥ ९९ ॥
मस्जिनशोर्झलि ॥ ६० ॥ ३ ॥ रधिजभोरचि ॥ ६१ ॥
नेट्यलिटि रधेः ॥ ६२ ॥ रभेरशब्लिटोः ॥ ६३ ॥
लभेश्च ॥ ६४ ॥ आङो यि ॥ ६९ ॥ उपात्प्रशंसायाम्॥
॥ ६६ ॥ उपसर्गात्खल्घञोः ॥ ६७ ॥ न सुदुर्भ्यां केव-
लाभ्याम् ॥ ६८ ॥ विभाषा चिण्णमुलोः ॥ ६९॥ उगि-
दचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ॥ ७० ॥ युजेरसमासे ॥७१॥
नपुंसकस्य झलचः ॥ ७२ ॥ इकोऽचि विभक्तौ ॥७३॥
तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य ॥ ७४ ॥ अस्थिद-
धिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ॥७९॥ छन्दस्यपि दृश्यते ॥७६॥
ई च द्विवचने ॥ ७७ ॥ नाभ्यस्ताच्छतुः ॥ ७८ ॥
वा नपुंसकस्य ॥ ७९ ॥ आच्छीनद्योर्नुम् ॥ ८० ॥ ४ ॥
शप्श्यनोर्नित्यम् ॥ ८१ ॥ सावनडुहः ॥ ८२ ॥ दृक्स्वव-
स्स्वतवसां छन्दसि ॥८३॥ दिव औत् ॥ ८४॥ पथिम-
थ्यृभुक्षामात् ॥ ८९ ॥ इतोऽत्सर्वनामस्थाने ॥ ८६ ॥
थो न्थः ॥ ८७ ॥ भस्य टेर्लोपः ॥ ८८ ॥ पुंसो-
ऽसुङ् ॥ ८९ ॥ गोतो णित् ॥ ९० ॥ णलुत्तमो वा ॥
॥ ९१ ॥ सख्युरसंबुद्धौ ॥ ९२ ॥ अनङ् सौ ॥ ९३ ॥
ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ॥ ९४ ॥ तृज्वत् क्रोष्टुः
॥ ९९ ॥ स्त्रियां च ॥ ९६ ॥ विभाषा तृतीयादिष्वचि
॥ ९७ ॥ चतुरनडुहोरामुदात्तः ॥ ९८ ॥ अम्संबुद्धौ ॥
॥ ९९ ॥ ऋत इद्धातोः ॥ १०० ॥९ ॥ उपधायाश्च ॥
॥१०१॥ उदोष्ठ्यपूर्वस्य ॥ १०२ ॥ बहुलं छन्दसि ॥
॥ १०३ ॥ ३ ॥ (युवोरष्टाभ्यो लोपो रधिशप्श्यनो-
रुपधायास्त्रीणि) ॥

इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ॥ १ ॥ अतो ल्रान्तस्य
॥ २ ॥ वदव्रजहलन्तस्याचः ॥ ३ ॥ नेटि ॥ ४ ॥
ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ॥ ९ ॥ ऊर्णोतेर्विभाषा
॥ ६ ॥ अतो हलादेर्लघोः ॥ ७ ॥ नेड्वशि कृति॥८॥
तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ॥९॥एकाच उपदेशेनुदात्तात्॥
॥ १० ॥ श्र्युकः किति ॥ ११ ॥ सनि ग्रहगुहोश्च ॥
॥ १२ ॥ कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ॥ १३ ॥ श्वीदितो
निष्ठायाम् ॥ १४ ॥ यस्य विभाषा ॥ १९ ॥ आदितश्च

॥ १६ ॥ विभाषा भावादिकर्मणोः ॥ १७ ॥ क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु ॥ १८ ॥ धृषिशसी वैयात्ये ॥ १९ ॥ दृढः स्थूलबलयोः ॥ २० ॥ १ ॥ प्रभौ परिवृढः ॥ २१ ॥ कृच्छ्रगहनयोः कषः ॥ २२ ॥ घुषिरवि शब्दने ॥ २३ ॥ अर्देः संनिविभ्यः ॥ २४ ॥ अभेश्चाविदूर्ये ॥ २५ ॥ णेरध्ययने वृत्तम् ॥२६ ॥ वा दान्तशांतपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः ॥ २७ ॥ रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् ॥ २८ ॥ हृषेर्लोमसु ॥ २९ ॥ अपचितश्च ॥ ३० ॥ हु ह्वरेश्छन्दसि ॥ ३१ ॥ अपरिह्वृताश्च ॥ ३२ ॥ सोमे ह्वरितः ॥३३॥ ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्तविकस्ता विशस्तृशंस्तृशास्तृतरुतृतरूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीरुज्ज्वलितिक्षरितिवमित्यमितीति च॥ ॥ ३४ ॥ आर्धधातुकस्येड्वलादेः ॥३५ ॥ स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते ॥ ३६ ॥ ग्रहोऽलिटि दीर्घः ॥ ३७ ॥ वृतो वा ॥ ३८ ॥ न लिङि ॥ ३९ ॥ सिचि च परस्मैपदेषु ॥ ४० ॥ २ ॥ इट् सनि वा ॥ ४१ ॥ लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ॥ ४२ ॥ ऋतश्च संयोगादेः ॥ ४३ ॥ स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ॥ ४४ ॥ रधादिभ्यश्च ॥४५॥ निरः कुषः ॥ ४६ ॥ इण्निष्ठायाम् ॥ ४७ ॥ तीषसहलुभरुषरिषः ॥ ४८ ॥ सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् ॥ ४९ ॥ क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ॥ ५० ॥ पूङश्च ॥ ५१ ॥ वसतिक्षुधोरिट् ॥ ५२ ॥ अञ्चेः पूजायाम् ॥ ५३ ॥ लुभो विमोहने ॥ ५४ ॥ जॄव्रश्च्योः क्त्वि ॥ ५५ ॥ उदितो वा ॥ ५६ ॥ सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः ॥ ५७ ॥ गमेरिट्परस्मैपदेषु॥५८॥ न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ॥ ॥५९॥ तासि च क्लृपः॥६०॥३॥ अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ॥६१॥ उपदेशेऽत्वतः ॥ ॥६२॥ ऋतो भारद्वाजस्य ॥६३॥ बभूथाततन्थ जगृम्भ ववर्थेति निगमे ॥ ६४ ॥ विभाषा सृजिदृशोः ॥६५॥ इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् ॥६६॥ वस्वेकाजाद्घसाम् ॥६७॥ विभाषा गमहनविदविशाम् ॥ ६८ ॥ सनिंससनिवांसम्॥ ॥ ६९ ॥ ऋद्धनोः स्ये ॥ ७० ॥ अञ्जेः सिचि ॥ ॥ ७१ ॥ स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ॥ ७२ ॥यमरमनमातां सक् च ॥ ७३ ॥ स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि॥७४॥ किरश्च पञ्चभ्यः ॥ ७५ ॥ रुदादिभ्यः सार्वधातुके ॥ ७६ ॥ ईशः से ॥७७॥ ईडजनोर्ध्वे च ॥ ७८ ॥ लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ॥ ७९ ॥ अतो येयः ॥ ८० ॥ ४ ॥ आतो ङितः ॥ ८१ ॥ आने मुक् ॥ ८२ ॥ ईदासः ॥ ॥ ८३ ॥ अष्टन आ विभक्तौ ॥८४॥ रायो हलि॥८५॥ युष्मदस्मदोरनादेशे ॥ ८६ ॥ द्वितीयायां च ॥८७॥ प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ॥८८॥ योऽचि ॥८९॥ शेषे लोपः ॥ ९० ॥मपर्यन्तस्य ॥९१॥ युवावौ द्विवचने ॥ ९२ ॥ यूयवयौ जसि ॥ ९३ ॥ त्वाहौ सौ ॥ ॥ ९४ ॥ तुभ्यमह्यौ ङयि ॥ ९५ ॥ तवममौ ङसि ॥ ॥ ९६ ॥ त्वमावेकवचने ॥ ९७ ॥ प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ॥ ९८ ॥ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ॥ ९९॥ अचि र ऋतः ॥ १००॥ ५ ॥ जराया जरसन्यतरस्याम्॥१०१॥ त्यदादीनामः ॥ १०२ ॥ किमः कः ॥ १०३ ॥ कु तिहोः ॥ १०४ ॥ क्वाति ॥ १०५ ॥ तदोः सः सावनन्त्ययोः ॥१०६॥ अदस औ सुलोपश्च॥ १०७ ॥ इदमो मः ॥१०८॥ दश्च ॥ १०९ ॥ यः सौ ॥११०॥ इदोऽय् पुंसि ॥ १११ ॥ अनाप्यकः ॥ ११२ ॥ हलि लोपः ॥ ११३ ॥ मृजेर्वृद्धिः ॥ ११४ ॥ अचो ञ्णिति ॥ ११५ ॥ अत उपधायाः ॥ ११६ ॥ तद्धितेष्वचामादेः ॥ ११७ ॥ किति च ॥ ११८ ॥ ॥ १८ ॥ (सिचि प्रभाविट् सन्यचस्तास्वदातो जराया अष्टादश) ॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् ॥ १ ॥ केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः ॥ २ ॥न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ॥ ३ ॥ द्वारादीनां च ॥४॥ न्यग्रोधस्य च केवलस्य ॥ ५ ॥ न कर्मव्यतिहारे ॥ ६॥ स्वागतादीनां च ॥ ७ ॥ श्वादेरिञि ॥ ८ ॥ पदान्तस्यान्यतरस्याम् ॥ ९ ॥ उत्तरपदस्य ॥१०॥ अवयवादृतोः ॥ ११ ॥ सुसर्वार्धाज्जनपदस्य ॥ १२ ॥ दिशोऽमद्राणाम् ॥ १३ ॥ प्राचां ग्रामनगराणाम् ॥ १४ ॥ संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च ॥ १५ ॥ वर्षस्याभविष्यति ॥ १६ ॥ परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः ॥ १७॥ जे प्रोष्ठपदानाम् ॥ १८ ॥ हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च॥ ॥ १९ ॥ अनुशतिकादीनां च ॥ २० ॥१॥ देवताद्वन्द्वे च ॥ २१ ॥ नेन्द्रस्य परस्य ॥२२॥ दीर्घाच्च वरुणस्य ॥ २३ ॥ प्राचां नगरान्ते ॥ २४ ॥ जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् ॥२५॥ अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा ॥ २६ ॥ नातः परस्य ॥ २७ ॥ प्रवाहणस्य ढे ॥ २८ ॥ तत्प्रत्ययस्य च ॥ २९ ॥ नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ॥ ३० ॥ यथातथयथापुरयोः पर्यायेण ॥ ३१॥ हनस्तोऽचिण्णलोः ॥३२॥ आतो युक्चिण्कृतोः ॥ ३३ ॥ नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः ॥ ३४ ॥ जनिवध्योश्च ॥ ३५ ॥ अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग् णौ ॥ ३६ ॥ शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ॥ ३७ ॥ वो विधूनने जुक् ॥ ३८ ॥ लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने ॥

॥ ३९ ॥ भियो हेतुभये षुक् ॥ ४० ॥ २ ॥ स्फायो वः ॥ ४१ ॥ शदेरगतौ तः ॥ ४२ ॥ रुहः पोऽन्यतरस्याम् ॥ ४३ ॥ प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ॥ ॥ ४४ ॥ न यासयोः ॥ ४५ ॥ उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ ४६ ॥ भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वाणामपि॥ ॥ ४७ ॥ अभाषितपुंस्काच्च ॥ ४८॥ आदाचार्याणाम्॥ ॥ ४९ ॥ ठस्येकः ॥ ५० ॥ इसुसुक्तान्तात् कः ॥ ॥ ५१ ॥ चजोः कु घिण्यतोः ॥ ५२ ॥ न्यङ्क्वादीनां च ॥५३ ॥ हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ॥५४॥ अभ्यासाच्च ॥५५॥ हेरचङि ॥ ५६ ॥ सन्लिटोर्जेः ॥ ५७ ॥ विभाषा चेः ॥ ५८ ॥ न क्वादेः ॥ ५९ ॥ अजिव्रज्योश्च ॥ ६०॥३॥ भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः ॥६१ ॥ प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे ॥ ६२ ॥ वञ्चेर्गतौ ॥ ६३ ॥ ओक उचः के ॥ ६४ ॥ ण्य आवश्यके ॥ ६५ ॥ यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ॥६६॥ वचोऽशब्दसंज्ञायाम् ॥ ६७ ॥ प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे ॥ ६८ ॥ भोज्यं भक्ष्ये ॥ ६९ ॥ घोर्लोपो लेटि वा ॥ ॥ ७० ॥ ओतः श्यनि ॥ ७१ ॥ क्सस्याचि ॥ ७२ ॥ लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ॥ ७३ ॥ शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ॥ ७४ ॥ ष्ठिवुक्लमुचमां शिति ॥ ॥ ७५ ॥ क्रमः परस्मैपदेषु ॥ ७६ ॥ इषुगमियमां छः॥ ॥७७॥ पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः ॥ ७८ ॥ ज्ञाजनोर्जा ॥ ७९ ॥ प्वादीनां ह्रस्वः ॥ ८० ॥ ४ ॥ मीनातेर्निगमे ॥ ८१ ॥ मिदेर्गुणः ॥ ८२ ॥ जुसि च ॥ ८३ ॥ सार्वधातुकार्धधातुकयोः ॥ ८४ ॥ जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु ॥ ८५ ॥ पुगन्तलघूपधस्य च ॥ ॥ ८६ ॥ नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ॥ ८७ ॥ भूसुवोस्तिङि ॥ ८८ ॥ उतो वृद्धिर्लुकि हलि ॥ ८९ ॥ ऊर्णोतेर्विभाषा ॥ ९०॥ गुणोऽपृक्ते ॥ ९१ ॥ तृणह इम्॥ ॥ ९२ ॥ ब्रुव ईट् ॥ ९३ ॥ यङो वा ॥ ९४ ॥ तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके ॥ ९५ ॥ अस्तिसिचोऽपृक्ते ॥ ॥ ९६ ॥ बहुलं छन्दसि ॥ ९७ ॥ रुदश्च पञ्चभ्यः ॥ ॥ ९८ ॥ अड्गार्ग्यगालवयोः ॥ ९९ ॥ अदः सर्वेषाम्॥ ॥ १०० ॥ ५ ॥ अतो दीर्घो यञि ॥ १०१ ॥ सुपि च ॥ १०२ ॥ बहुवचने झल्येत् ॥ १०३ ॥ ओसि च ॥ ॥ १०४ ॥ आङि चापः ॥ १०५॥ संबुद्धौ च॥१०६॥ अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ॥ १०७ ॥ ह्रस्वस्य गुणः ॥१०८॥ जसि च ॥ १०९॥ ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः॥११०॥ घेर्ङिति ॥१११॥ आण्नद्याः ॥ ११२ ॥ याडापः ॥ ॥ ११३ ॥ सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ॥ ११४ ॥ विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम् ॥११५॥ ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ॥११६॥ इदुद्भ्याम् ॥ ११७ ॥ औत् ॥ ११८ ॥ अच्च घेः ॥ ॥ ११९ ॥ आङो नाऽस्त्रियाम् ॥ १२० ॥ ६ ॥ (देविकादेवतास्फायो भुजमीनातेरतो दीर्घो विंशतिः) ॥

इति सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ॥ १ ॥ नाग्लोपिशास्वृदिताम् ॥२ ॥ भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम् ॥ ३ ॥ लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य ॥ ४ ॥ तिष्ठतेरित् ॥ ॥ ५ ॥ जिघ्रतेर्वा ॥ ६ ॥ उर्ऋत् ॥ ७ ॥ नित्यं छन्दसि ॥ ८ ॥ दयतेर्दिगि लिटि ॥ ९ ॥ ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ॥ १० ॥ ऋच्छत्यॄताम् ॥ ११ ॥ शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ॥ १२ ॥ केऽणः ॥ १३ ॥ न कपि ॥ १४ ॥ आपोऽन्यतरस्याम ॥ १५ ॥ ऋदृशोऽङि गुणः ॥ १६ ॥ अस्यतेस्थुक् ॥ १७ ॥ श्वयतेरः ॥ १८ ॥ पतः पुम् ॥ ॥ १९ ॥ वच उम् ॥ २० ॥ १ ॥ शीङः सार्वधातुके गुणः ॥ २१ ॥ अयङ् यि क्ङिति ॥ २२ ॥ उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः ॥ २३ ॥ एतेर्लिङि ॥ २४ ॥ अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ॥ २५ ॥ च्वौ च ॥ २६ ॥ रीङृतः ॥ ॥ २७ ॥ रिङ्शयग्लिङ्क्षु ॥ २८ ॥ गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः ॥ २९ ॥ यङि च ॥३० ॥ ई घ्राध्मोः ॥ ३१ ॥ अस्य च्वौ ॥ ३२ ॥ क्यचि च ॥ ३३ ॥ अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्धेषु ॥ ३४ ॥ न च्छन्दस्यपुत्रस्य ॥ ३५ ॥ दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यतिरिषण्यति ॥ ॥ ३६ ॥ अश्वाघस्यात् ॥ ३७ ॥ देवसुम्नयोर्यजुषि काठके ॥३८॥ कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः ॥ ३९ ॥ द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति ॥ ४० ॥ २ ॥ शाच्छोरन्यतरस्याम् ॥ ४१ ॥ दधातेर्हिः ॥ ४२ ॥ जहातेश्च क्त्वि ॥ ४३ ॥ विभाषा छन्दसि ॥ ४४ ॥ सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च ॥ ४५ ॥ दो दद्घोः ॥ ॥ ४६ ॥ अच उपसर्गात्तः ॥ ४७ ॥ अपो भि ॥ ॥ ४८ ॥ सः स्यार्धधातुके ॥ ॥ ४९ ॥ तासस्त्योर्लोपः ॥ ५० ॥ रि च ॥ ५१ ॥ ह एति॥५२॥ यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः ॥ ५३ ॥ सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् ॥५४॥ आप्ज्ञप्यृधामीत् ॥५५ ॥ दम्भ इच्च ॥ ५६ ॥ मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा ॥ ५७॥ अत्र लोपोऽभ्यासस्य ॥ ५८ ॥ ह्रस्वः ॥ ५९ ॥ हलादिः शेषः ॥ ६० ॥ ३ ॥ शर्पूर्वाः खयः ॥ ६१ ॥ कुहोश्चुः ॥६२॥ न कवतेर्यङि ॥६३ ॥ कृषेश्छन्दसि॥ ॥ ६४ ॥ दाधर्तिदर्धर्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रदविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतः सरीसृपतं वरीवृजन्मर्मृज्यागनीगन्तीति च । ॥ ६५ ॥ उरत् ॥ ६६ ॥ द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् ॥ ॥ ६७ ॥ व्यथो लिटि ॥ ६८ ॥ दीर्घ इणः किति ॥

॥६९॥ अत आदेः ॥ ७० ॥ तस्मान्नुड् द्विहलः ॥ ॥ ७१ ॥ अश्नोतेश्च ॥ ७२ ॥ भवतेरः ॥ ७३ ॥ ससूवेति निगमे ॥ ७४ ॥ निजां त्रयाणां गुणः श्लौ ॥ ॥ ७५ ॥ भृञामित् ॥ ७६ ॥ अर्तिपिपर्त्योश्च ॥७७॥ बहुलं छन्दसि ॥ ७८ ॥ सन्यतः ॥ ७९ ॥ ओः पुयण्ज्यपरे ॥८०॥४ ॥ स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा ॥ ८१ ॥ गुणो यङ्लुकोः ॥ ८२ ॥ दीर्घोऽकितः ॥ ८३ ॥ नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम् ॥ ८४ ॥ नुगतोऽनुनासिकान्तस्य॥८५॥ जपजभदहदशभञ्जपशां च ॥ ८६ ॥ चरफलोश्च ॥ ॥ ८७ ॥ उत्परस्यातः ॥ ८८ ॥ ति च ॥ ८९॥ रीगृदुपधस्य च ॥ ९० ॥ रुग्रिकौ च लुकि ॥ ९१ ॥ ऋतश्च ॥ ९२ ॥ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ॥९३॥ दीर्घो लघोः ॥ ९४ ॥ अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम्॥ ॥ ९५ ॥ विभाषा वेष्टिचेष्टयोः ॥ ९६ ॥ ई च गणः ॥ ९७ ॥ १७ ॥ (णौ च शीङः श्रुच्छोः शर्पूर्वाः स्रवतिसप्तदश) ॥

इति सप्तमाध्यायस्य तुरीयः पादः ॥ ४ ॥

इति सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ।

अथाष्टमोऽध्यायः ।

सर्वस्य द्वे ॥ १ ॥ तस्य परमाम्रेडितम् ॥ २ ॥ अनुदात्तं च ॥ ३ ॥ नित्यवीप्सयोः ॥ ४ ॥ परेर्वर्जने ॥ ५ ॥ प्रसमुपोदः पादपूरणे ॥ ६ ॥ उपर्यध्यधसः सामीप्ये ॥ ७ ॥ वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासंमतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु ॥ ८ ॥ एकं बहुव्रीहिवत् ॥ ९ ॥ आबाधे च ॥ १० ॥ कर्मधारयवदुत्तरेषु ॥ ११ ॥ प्रकारे गुणवचनस्य ॥ १२ ॥ अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम् ॥ १३ ॥ यथास्वे यथायथम् ॥ १४ ॥ द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु ॥ १५ ॥ पदस्य ॥ १६ ॥ पदात् ॥ १७ ॥ अनुदात्तं सर्वमपादादौ ॥ १८ ॥ आमन्त्रितस्य च ॥ १९ ॥ युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ ॥ २० ॥ १ ॥ बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ २१ ॥ तेमयावेकवचनस्य ॥ ॥ २२ ॥ त्वामौ द्वितीयायाः ॥ २३ ॥ न चवाहाहैवयुक्ते ॥ २४ ॥ पश्यार्थैश्चानालोचने ॥ २५ ॥ सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा ॥ २६ ॥ तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः ॥ २७ ॥ तिङ्ङतिङः ॥ २८ ॥ न लुट् ॥ २९ ॥ निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्कच्चिद्यत्रयुक्तम् ॥ ३० ॥ नह प्रत्यारम्भे ॥ ३१ ॥ सत्यं प्रश्ने ॥ ३२ ॥ अङ्गाप्रातिलोम्ये ॥ ३३ ॥ हि च ॥३४॥ छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम् ॥ ३५ ॥ यावद्यथाभ्याम् ॥ ३६ ॥ पूजायां नानन्तरम् ॥ ३७॥ उपसर्गव्यपेतं च ॥३८॥ तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम् ॥३९॥अहो च॥ ॥ ४० ॥ २ ॥ शेषे विभाषा ॥ ४१ ॥ पुरा च परीप्सायाम् ॥ ४२ ॥ नन्वित्यनुज्ञैषणायाम् ॥ ४३ ॥ किंक्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम् ॥४४॥ लोपे विभाषा ॥ ॥४५॥ एहिमन्ये प्रहासे लृट् ॥ ४६ ॥ जात्वपूर्वम् ॥ ॥ ४७ ॥ किंवृत्तं च चिदुत्तरम् ॥ ४८ ॥ आहो उताहो चानन्तरम् ॥ ४९ ॥ शेषे विभाषा ॥ ५० ॥ गत्यर्थलोटा लृण्न चेत्कारकं सर्वान्यत् ॥ ५१ ॥ लोट् च ॥ ५२ ॥ विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम् ॥ ५३ ॥ हन्त च ॥ ५४ ॥ आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके ॥ ॥ ५५ ॥ यद्धितुपरं छन्दसि ॥५६॥ चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेष्वगतेः ॥ ५७ ॥ चादिषु च ॥ ५८ ॥ चवायोगे प्रथमा ॥ ५९ ॥हेति क्षियायाम् ॥ ६० ॥ ॥ ३ ॥ अहेति विनियोगे च ॥ ६१ ॥ चाहलोप एवेत्यवधारणम् ॥ ६२ ॥ चादिलोपे विभाषा ॥ ६३ ॥ वैवावेति च च्छन्दसि ॥६४॥ एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम्॥ ॥ ६५ ॥ यद्वृत्तान्नित्यम् ॥ ६६ ॥ पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः ॥ ६७॥ सगतिरपि तिङ् ॥६८॥ कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ ॥ ६९ ॥ गतिर्गतौ॥७०॥ तिङि चोदात्तवति ॥ ७१॥ आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्॥ ॥ ७२ ॥ नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ॥ ॥ ७३ ॥ विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम् ॥ ७४ ॥ १४ ॥ (सर्वस्य बहुवचनस्य शेषेऽहेति चतुर्दश) ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

पूर्वत्रासिद्धम् ॥ १ ॥ नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ॥ २ ॥ न मु ने ॥ ३ ॥ उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ॥ ४ ॥ एकादेश उदात्तेनोदात्तः ॥ ॥ ५ ॥ स्वरितो वानुदात्ते पदादौ ॥ ६ ॥ नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ७ ॥ न ङिसंबुद्ध्योः ॥ ८ ॥ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ॥ ९ ॥ झयः ॥१०॥ संज्ञायाम् ॥ ११ ॥ आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती ॥ १२ ॥ उदन्वानुदधौ च ॥ १३ ॥ राजन्वान्सौराज्ये ॥ १४ ॥ छन्दसीरः ॥ १५ ॥ अनो नुट् ॥ १६ ॥ नाद्धस्य ॥ १७ ॥ कृपो रो लः ॥ ॥ १८ ॥ उपसर्गस्यायतौ ॥ १९॥ ग्रो यङि ॥२०॥ अचि विभाषा ॥ २१ ॥ परेश्च घाङ्कयोः ॥ २२ ॥संयोगान्तस्य लोपः ॥ २३ ॥ रात्सस्य ॥ २४ ॥ धि च॥ ॥ २५ ॥ झलो झलि ॥ २६ ॥ ह्रस्वादङ्गात् ॥ २७॥ इट ईटि ॥ २८ ॥ स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ॥२९॥ चोः कुः ॥ ३० ॥ हो ढः ॥ ३१ ॥ दादेर्धा-

तोर्धः ॥ ३२ ॥ वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ॥ ३३ ॥ नहो धः ॥ ३४ ॥ आहस्थः ॥ ३५ ॥ व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ॥ ३६ ॥ एकाचो बशो भष्झषन्तस्य स्ध्वोः ॥ ३७ ॥ दधस्तथोश्च ॥ ३८ ॥ झलां जशोऽन्ते ॥ ३९ ॥ झषस्तथोर्धोऽधः ॥ ४० ॥ २ ॥ षढोः कः सि ॥ ४१ ॥ रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ॥ ४२ ॥ संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ॥ ४३ ॥ ल्वादिभ्यः ॥ ४४ ॥ ओदितश्च ॥ ४५ ॥ क्षियो दीर्घात् ॥ ४६ ॥ श्योऽस्पर्शे ॥ ४७ ॥ अञ्चोऽनपादाने ॥ ४८ ॥ दिवोऽविजिगीषायाम् ॥ ४९ ॥ निर्वाणोऽवाते ॥ ५० ॥ शुषः कः ॥ ५१ ॥ पचो वः ॥ ५२ ॥ क्षायो मः ॥ ५३ ॥ प्रस्त्योऽन्यतरस्याम ॥ ५४ ॥ अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः ॥ ५५ ॥ नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥ न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् ॥ ५७ ॥ वित्तो भोगप्रत्यययोः ॥ ५८ ॥ भित्तं शकलम् ॥ ५९ ॥ ऋणमाधमर्ण्ये ॥ ६० ॥ ३ ॥ नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्त्तगूर्तानि च्छन्दसि ॥ ६१ ॥ क्विन्प्रत्ययस्य कुः ॥ ६२ ॥ नशेर्वा ॥ ६३ ॥ मो नो धातोः ॥ ६४ ॥ म्वोश्च ॥ ६५ ॥ ससजुषो रुः ॥ ६६ ॥ अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च ॥ ६७ ॥ अहन् ॥ ६८ ॥ रोऽसुपि ॥ ६९ ॥ अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि ॥ ॥ ७० ॥ भुवश्च महाव्याहृतेः ॥ ७१ ॥ वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ॥ ७२ ॥ तिप्यनस्तेः ॥ ७३ ॥ सिपि धातो रुर्वा ॥ ७४ ॥ दश्च ॥ ७५ ॥ र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ॥ ७६ ॥ हलि च ॥ ७७ ॥ उपधायां च ॥ ७८ ॥ न भकुर्छुराम् ॥ ७९ ॥ अदसोऽसेर्दादु दो मः ॥ ८० ॥ एत ईद्बहुवचने ॥ ८१ ॥ वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः ॥ ८२ ॥ प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ॥ ८३ ॥ दूराद्धूते च ॥ ८४ ॥ हैहेप्रयोगे हैहयोः ॥ ८५ ॥ गुरोरनृतोनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् ॥ ८६ ॥ ओमभ्यादाने ॥ ८७ ॥ ये यज्ञकर्मणि ॥ ८८ ॥ प्रणवष्टेः ॥ ॥ ८९ ॥ याज्यान्तः ॥ ९० ॥ ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः ॥ ९१ ॥ अग्नीत्प्रेषणेपरस्य च ॥ ९२ ॥ विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः ॥ ९३ ॥ निगृह्यानुयोगे च ॥ ९४ ॥ आम्रेडितं भर्त्सने ॥ ९५ ॥ अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम् ॥ ९६ ॥ विचार्यमाणानाम् ॥ ॥ ९७ ॥ पूर्वं तु भाषायाम् ॥ ९८ ॥ प्रतिश्रवणे च ॥ ॥ ९९ ॥ अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः ॥ १०० ॥ ५ ॥ चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने ॥ १०१ ॥ उपरिस्विदासीदिति च ॥ १०२ ॥ स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासंमतिकोपकुत्सनेषु ॥ १०३ ॥ क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकांक्षम् ॥ ॥ १०४ ॥ अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः ॥ १०५ ॥ प्लुतावैच इदुतौ ॥ १०६ ॥ एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ ॥ १०७ ॥ तयोर्य्वावचि संहितायाम् ॥ १०८ ॥ ८ ॥ (पूर्वत्राचि षढोर्नसत्तेत ईच्चिदित्यष्टौ) ॥

१ कुत्सनभर्त्सनेष्विति पाठः क्वचिद्दृश्यते । तत्र भर्त्सनेति प्रक्षिप्तम् ।

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसि ॥ १ ॥ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ॥ २ ॥ आतोऽटि नित्यम् ॥ ३ ॥ अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः ॥ ४ ॥ समः सुटि ॥ ५ ॥ पुमः खय्यम्परे ॥ ६ ॥ नश्छव्यप्रशान् ॥ ७ ॥ उभयथर्क्षु ॥ ८ ॥ दीर्घादटि समानपादे ॥ ९ ॥ नॄन्पे ॥ ॥ १० ॥ स्वतवान्पायौ ॥ ११ ॥ कानाम्रेडिते ॥ १२ ॥ ढो ढे लोपः ॥ १३ ॥ रो रि ॥ ॥ १४ ॥ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥ १५ ॥ रोः सुपि ॥ १६ ॥ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ॥ १७ ॥ व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ॥ १८ ॥ लोपः शाकल्यस्य ॥ १९ ॥ ओतो गार्ग्यस्य ॥ २० ॥ १ ॥ उञि च पदे ॥ २१ ॥ हलि सर्वेषाम् ॥ २२ ॥ मोऽनुस्वारः ॥ २३ ॥ नश्चापदान्तस्य झलि ॥ २४ ॥ मो राजि समः क्वौ ॥ २५ ॥ हे मपरे वा ॥ ॥ २६ ॥ नपरे नः ॥ २७ ॥ ङ्णोः कुक्टुक्शरि ॥ २८ ॥ डः सि धुट् ॥ २९ ॥ नश्च ॥ ॥ ३० ॥ शि तुक् ॥ ३१ ॥ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ॥ ३२ ॥ मय उञो वो वा ॥ ३३ ॥ विसर्जनीयस्य सः ॥ ३४ ॥ शर्परे विसर्जनीयः ॥ ३५ ॥ वा शरि ॥ ३६ ॥ कुप्वोः ᳲक ᳲपौ च ॥ ३७ ॥ सोऽपदादौ ॥ ३८ ॥ इणः षः ॥ ३९ ॥ नमस्पुरसोर्गत्योः ॥ ॥ ४० ॥ २ ॥ इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य ॥ ४१ ॥ तिरसोऽन्यतरस्याम् ॥ ४२ ॥ द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ॥ ४३ ॥ इसुसोः सामर्थ्ये ॥ ४४ ॥ नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य ॥ ४५ ॥ अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ॥ ४६ ॥ अधःशिरसी पदे ॥ ४७ ॥ कस्कादिषु च ॥ ४८ ॥ छन्दसि वाऽप्राम्रेडितयोः ॥ ४९ ॥ कः करत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः ॥ ५० ॥ पञ्चम्याः परावध्यर्थे ॥ ५१ ॥ पातौ च बहुलम् ॥ ५२ ॥ षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु ॥ ५३ ॥ इडाया वा ॥ ५४ ॥ अपदान्तस्य मूर्धन्यः ॥ ५५ ॥ सहेः साडः सः ॥ ५६ ॥ इण्कोः ॥ ५७ ॥ नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ॥ ५८ ॥ आदेशप्रत्यययोः ॥ ५९ ॥ शासिवसिघसीनां च ॥ ६० ॥ ३ ॥ स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात् ॥ ६१ ॥ सः स्विदिस्वदिसहीनां च ॥ ६२ ॥ प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि ॥ ६३ ॥ स्थादिष्वभ्यासेन चा-

भ्यासस्य ॥ ६४ ॥ उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौति-स्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् ॥ ६५ ॥ सदिरप्रतेः ॥ ६६ ॥ स्तन्भेः ॥ ६७॥ अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः ॥ ६८ ॥ वेश्च स्वनो भोजने ॥ ६९ ॥ परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम् ॥ ७० ॥ सिवादीनां वाड्व्यवायेऽपि ॥ ७१ ॥ अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु ॥ ७२ ॥ वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् ॥ ७३ ॥ परेश्च ॥ ७४ ॥ परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु ॥ ७५ ॥ स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ॥ ७६ ॥ वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् ॥ ॥ ७७ ॥ इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ॥ ७८ ॥ विभाषेटः ॥ ७९ ॥ समासेऽङ्गुलेः सङ्गः ॥ ८० ॥ ४ ॥ भीरोः स्थानम् ॥ ८१ ॥ अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः ॥ ८२॥ ज्योतिरायुषः स्तोमः ॥८३॥ मातृपितृभ्यां स्वसा ॥८४॥ मातुः पितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ॥ ८५ ॥ अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम् ॥ ८६ ॥ उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ॥ ॥ ८७ ॥ सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः ॥८८ ॥ निनदीभ्यां स्नातेः कौशले ॥ ८९॥ सूत्रं प्रतिष्णातम् ॥ ९०॥ कपिष्ठलो गोत्रे ॥ ९१ ॥ प्रष्ठोऽग्रगामिनि ॥ ९२ ॥ वृक्षासनयोर्विष्टरः ॥ ९३ ॥ छन्दोनाम्नि च ॥ ९४ ॥ गवियुधिभ्यां स्थिरः ॥ ९५ ॥ विकुशमिपरिभ्यः स्थलम्॥ ॥ ९६ ॥ अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ॥ ९७ ॥ सुषामादिषु च॥९८॥एति संज्ञायामगात्॥९९॥नक्षत्राद्वा ॥ १००॥५॥ ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ॥१०१॥ निसस्तपतावनासेवने॥१०२॥ युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तः पादम् ॥ १०३ ॥ यजुष्येकेषाम् ॥ ॥ १०४ ॥ स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि ॥१०५॥ पूर्वपदात् ॥ ॥ १०६ ॥ सुञः ॥ १०७ ॥ सनोतेरनः ॥ १०८ ॥ सहेः पृतनर्ताभ्यां च ॥ १०९ ॥ न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ॥११०॥ सात्पदाद्योः ॥ १११ ॥ सिचो यङि ॥ ११२ ॥ सेधतेर्गतौ ॥ ११३ ॥ प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च ॥११४॥ सोढः ॥११५॥ स्तम्भुसिवुसहां चङि ॥११६॥ सुनोतेः स्यसनोः ॥११७॥ सदेः परस्य लिटि ॥ ११८ ॥ निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि ॥११९॥१९॥ (मतुवसोरुगि चेदुदुपधस्य स्तौतिण्योर्भीरोर्ह्रस्वात्तादावेकोनविंशतिः) ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

रषाभ्यां नो णः समानपदे ॥ १ ॥ अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ॥ २ ॥ पूर्वपदात्संज्ञायामगः ॥ ३ ॥ वनं पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः ॥४॥ प्रनिरन्तः शरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि ॥ ५ ॥ विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः ॥ ६ ॥ अह्नोऽदन्तात् ॥ ७ ॥ वाहनमाहितात् ॥ ८ ॥ पानं देशे ॥ ९ ॥ वा भावकरणयोः ॥ ॥ १० ॥ प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च ॥ ११ ॥ एकाजुत्तरपदे णः ॥ १२ ॥ कुमति च ॥ १३ ॥ उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ॥ १४ ॥ हिनु मीना ॥ १५॥ आनि लोट् ॥ १६ ॥ नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ॥ ॥ १७ ॥ शेषे विभाषाकखादावषान्त उपदेशे ॥ १८ ॥ अनितेः ॥ १९ ॥ अन्तः ॥ २० ॥ १ ॥ उभौ साभ्यासस्य ॥२१ ॥ हन्तेरत्पूर्वस्य ॥ २२ ॥ वमोर्वा ॥ २३ ॥ अन्तरदेशे ॥ २४ ॥ अयनं च ॥ २५ ॥ छन्दस्यृदवग्रहात् ॥ २६ ॥ नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ॥ २७ ॥उपसर्गाद्बहुलम् ॥२८॥ कृत्यचः ॥ २९ ॥ णेर्विभाषा ॥ ३० ॥ हलश्चेजुपधात् ॥३१॥ इजादेः सनुमः ॥३२ ॥ वा निंसनिक्षनिन्दाम् ॥ ३३ ॥ न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् ॥ ॥ ३४ ॥ षात्पदान्तात् ॥ ३५ ॥ नशेः षान्तस्य ॥ ॥ ३६ ॥ पदान्तस्य ॥ ३७ ॥ पदव्यवायेऽपि ॥ ३८ ॥ क्षुभ्नादिषु च ॥ ३९ ॥ स्तोः श्चुना श्चुः ॥ ४० ॥ २ ॥ ष्टुना ष्टुः ॥ ४१॥ न पदान्ताट्टोरनाम् ॥ ४२॥ तोः षि ॥ ४३ ॥ शात् ॥ ४४ ॥ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ॥ ४५ ॥ अचो रहाभ्यां द्वे ॥ ४६ ॥ अनचि च ॥ ॥ ४७ ॥ नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य ॥ ४८ ॥ शरोऽचि ॥ ॥ ४९ ॥ त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य ॥ ५० ॥ सर्वत्र शाकल्यस्य ॥ ५१ ॥ दीर्घादाचार्याणाम् ॥ ५२ ॥ झलां जश् झशि ॥ ५३ ॥ अभ्यासे चर्च ॥ ५४ ॥ खरि च ॥५५॥ वाऽवसाने ॥५६ ॥ अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः ॥५७॥ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ॥५८॥ वा पदान्तस्य ॥ ५९ ॥ तोर्लि ॥ ६०॥ ३ ॥ उदःस्थास्तम्भोः पूर्वस्य ॥ ॥६१॥ झयो होऽन्यतरस्याम् ॥६२॥ शश्छोऽटि ॥६३॥ हलो यमां यमि लोपः ॥ ६४ ॥ झरो झरि सवर्णे॥६५॥ उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ॥ ६६ ॥ नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ॥ ॥ ६७ ॥ अ अ ॥ ६८ ॥ ॥ ८ ॥ इति (रषाभ्यामुभौ ष्टुना ष्टुरुदः स्थाष्टौ) ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य तुरीयः पादः ॥ ४ ॥

इत्यष्टमोऽध्यायस्समाप्तः ॥ १ ॥

(संहत्यसूत्रसङ्ख्या ३९९७)

इति श्रीमत्पाणिनिमुनिप्रणीताऽष्टाध्यायी समाप्ता ।

१–२ सुषामादिगणे इदं द्वयं गणसूत्रत्वेन दृश्यते इति तदुभयमत्र अक्षिप्तम् ।

(१) दीर्घादाचार्याणामित्युत्तरम् "अनुस्वारस्य ययि,वा पदान्तस्य, तोर्लि,उदः स्था,झयो हो, शश्छोटि,इति षट्सूत्रीपाठोत्तरं झलां जश् झशि, अभ्यासे चर्च,खरि च,वावसाने, अणोऽप्रगृह्यस्य,इति पञ्चसूत्र्याः पाठो भाष्यसंमत" इत्यन्यत्र । (२) "उच्चैरुदात्तः" इति सूत्रमारभ्य नवसूत्र्याः "अ अ" इति सूत्रात्पूर्वं पाठ इति भाष्ये इति ल०श०शेखरे।परन्तु "उदात्तस्वरितपरस्येत्यतः परत्रेति स्पष्टं भाष्ये ।

(३) "चतुस्सहस्रीसूत्राणां पञ्चसूत्रीविवर्जिता ॥ अष्टाध्यायी पाणिनीया सूत्रैर्माहेश्वरैस्सह" ॥ १ ॥ इति स्वरसिद्धान्तचन्द्रिकायां श्रीकृष्णात्मजश्रीनिवासशर्मकृतायाम् । परन्तु प्रकृतपुस्तकेषु तथा न दृश्यते । योगविभागादिनान्यूनाधिक्यात् ।

अथ गणपाठः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

सि० कौ० सू० २१३ सर्वादीनि सर्वनामानि । १ । १ । २७ ॥ सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम। पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम् ॥ **इति सर्वादिः ॥ १ ॥**

४४७ स्वरादिनिपातमव्ययम् । १ । १। ३७ ॥ स्वर् अन्तर् प्रातर् । **अन्तोदात्ताः** । पुनर् सनुतर् उच्चैस् नीचैस् शनैस् ऋधक् ऋते युगपत् आरात् [अन्तिकात्] पृथक् । **आद्युदात्ताः** । ह्यस् श्वस् दिवा रात्रौ सायम् चिरम् मनाक् ईषत् [शश्वत्] जोषम् तूष्णीम् बहिस् [अवस्] अवस् समया निकषा स्वयम् मृषा नक्तम् नञ् हेतौ [हे है] इद्धा अद्धा सामि । **अन्तोदात्ताः** । वत् [५।१।११५] ब्राह्मणवत् क्षत्रियवत् सना सनत् सनात् उपधा तिरस् । **आद्युदात्ताः** । अन्तरा **अन्तोदात्त :** । अन्तरेण [मक्] ज्योक् [योक् नक्] कम् शम् सहसा [श्रद्धा] अलम् स्वधा वषट् विना नाना स्वस्ति अन्यत् अस्ति उपांशु क्षमा विहायसा दोषा मुधा दिष्ट्या वृथा मिथ्या । क्त्वातोसुन्कसुनः । कृन्मकारसंध्यक्षरान्तोऽव्ययीभावश्च । पुरा मिथो मिथस् प्रायस् प्रवाहुकम् प्रवाहिका आर्यहलम् अभीक्ष्णम् साकम् सार्धम् [सत्रम् समम्] नमस् हिरुक् । तसिलादयस्तद्धिता एधाच्पर्यन्ताः [५ । ३ । ७–४६] शस्तसी कृत्वसुच् सुच् आस्थालौ । च्व्यर्थाश्च । [अथ] अम् आम् प्रताम् प्रतान् प्रशान् । **आकृतिगणोऽयम्** । तेनान्येऽपि । तथा हि । माङ् श्रम् कामम् [प्रकामम्] भूयस् परम् साक्षात् साचि (साचि) सत्यम् मङ्क्षु संवत् अवश्यम् सपदि प्रादुस् आविस् अनिशम् नित्यम् नित्यदा सदा अजस्रम् संततम् उषा ओम् भूर् भुवर् झटिति तरसा सुष्ठु कु अञ्जसा अमिथु (अमिथु) विथक् भाजक् अन्वक् चिराय चिरम् चिररात्राय चिरस्य चिरेण चिरात् अस्तम् आनुषक् अनुषक् अनुषट् अम्नस् (अम्भस्) अम्नर् (अम्भर्) स्थाने वरम् दुष्ठु बलात् शु अर्वाक् शुदि वदि इत्यादि । तसिलादयः प्राक्पाशपः [५ । ३ । ७–१ । ३ ४७] शस्प्रभृतयः प्राक्समासान्तेभ्यः [५ । ४।४२–६७] । मान्तः कृत्वोर्थः । तसिवती नानाञाविति ॥ **इति स्वरादिः ॥ २ ॥**

२० चादयोऽसत्त्वे । १ । ४ । ५७ ॥ च वा ह अह एव एवम् नूनम् शश्वत् यूपत् युगपत् भूयस् सूपत् कूपत् कुवित् नेत् चेत् चण् कच्चित् यत्र तत्र नह हन्त माकिम् माकीम् माकिर् नकिम् नकीम् नकिर् आकीम् माङ् नञ् तावत् यावत् त्वा न्वै त्वै द्वै रै [रे] श्रौषट् वौषट् स्वाहा स्वधा ओम् तथा तथाहि खलु किल अथ सुष्ठु स्म अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ आदह उञ् उकञ् वेलायाम् मात्रायाम् यथा यत् तत् किम् पुरा वधा (वध्वा) धिक् हाहा हेहै (हहे) पाट् प्याट् आहो उताहो हो अहो नो (नौ) अथो ननु मन्ये मिथ्या असि ब्रूहि तु नु इति इव वत् वात् वन बत [सम् वशम् शिकम् दिकम्] सनुकम् छंबट् (छम्बट्) शङ्के शुकम् खम् सनात् सनतर् तहिकम् सत्यम् ऋतम् अद्धा इद्धा नोचेत् नहि जातु कथम् कुतः कुत्र अव अनु हाहे (है) आहोस्वित् शम् कम् खम् दिष्ट्या पशु वट् सह अनुषट् आनुषक् अङ्ग फट् ताजक् (भाजक्) अये अरे वाट् (चाटु) कुम् खुम् घुम् अम् ईम् सीम् सिम् सि वै । उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः । **आकृतिगणोऽयम् ॥ इति चादयः ॥ ३ ॥**

२१ प्रादयः । १ । ४ । ५४ ॥ प्र परा अप सम अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उद् अभि प्रति परि उप ॥ **इति प्रादयः ॥ ४ ॥**

७६२ ऊर्यादिच्विडाचश्च । १ । ४ । ६१ ॥ ऊरी उररी तन्थी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकला संशकला ध्वंसकला भ्रंशकला गुलगुधा सजूस् फल फली विक्ली आक्ली आलोष्ठी केवाली केवासी सेवासी पर्याली शेवाली वर्षाली अत्यूमशा वश्मसा मस्मसा मसमसा औषट् श्रौषट् वौषट् वषट् स्वाहा स्वधा पापी प्रादुस् श्रत् आविस् ॥ **इत्यूर्यादयः ॥ ५ ॥**

७७९ साक्षात्प्रभृतीनि च । १ । ४ । ७४ ॥ साक्षात् मिथ्या चिन्ता भद्रा रोचन आस्था अमा अद्धा प्राजर्या प्राजरुहा वीजर्या वीजरुहा संसर्या अर्थे लवणम् उष्णम् शीतम् उदकम् आर्द्रम् अग्नौ वशे विकसने विहसने प्रतपने प्रादुस् नमस् । **आकृतिगणोऽयम् ॥ इति साक्षात्प्रभृतयः ॥ ६ ॥**

द्वितीयोऽध्यायः ।

६७१ तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च । २ । १ । १७ ॥ तिष्ठद्गु वहद्गु आयतीगवम् खलेयवम् खलेबुसम् लूनयवम् लूयमानयवम् पूतयवम् पूयमानयवम् संहृतयवम् संह्रियमाणयवम् संहृतबुसम् संह्रियमाणबुसम् समभूमि समपदाति सुषमम् विषमम् दुःषमम् निःषमम् अपसमम् आयतीसमम् (प्रोढम्) पापसमम् पुण्यसमम् प्राह्णम् प्ररथम् प्रमृगम् प्रदक्षिणम् (अपरदक्षिणम्) संप्रति असंप्रति । इच्प्रत्ययः समासान्तः [५ । ४ । १२७ ॥ ५ । ४ । १२८]॥ **इति तिष्ठद्गुप्रभृतयः ॥ ७ ॥**

७१७ सप्तमी शौण्डैः । २ । १ । ४० ॥ शौण्ड धूर्त कितव व्याड प्रवीण संवीत अन्तर अधि पटु पण्डित कुशल चपल निपुण ॥ **इति शौण्डादयः ॥ ८ ॥**

७२५ पात्रेसमितादयश्च । २ । १ । ४८ ॥ पात्रेसमिताः पात्रेबहुलाः उदुम्बरमशकः उदुम्बरकृमिः कूपकच्छपः अवटकच्छपः कूपमण्डूकः कुम्भमण्डूकः उदपानमण्डूकः नगरकाकः नगरवायसः मातरिपुरुषः पिण्डीशूरः पितरिशूरः गेहेशूरः गेहेनर्दी गेहेक्ष्वेडी गेहेविजिती-गेहेव्याडः गेहेमेही गेहेदाही गेहेदृप्तः गेहेधृष्टः गर्भेतृप्तः आखनिकबकः गोष्ठेशूरः गोष्ठेविजिती गोष्ठेक्ष्वेडी गोष्ठेपटुः गोष्ठेपण्डितः गोष्ठेप्रगल्भः कर्णेटिरिटिरा कर्णेचुरुचुरा । **आकृतिगणोऽयम् ॥ इति पात्रेसमितादयः ॥ ९ ॥**

७३५ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे । २ । १ । ५६ ॥ व्याघ्र सिंह ऋक्षऋषभ चन्दन वृक वृष वराह हस्तिन् तरु कुञ्जर रुरु पृषत् पुण्डरीक पलाश कितव ॥ **इति व्याघ्रादयः ॥ आकृतिगणोऽयम् ।** तेन मुखपद्मम् मुखकमलम् करकिसलयम् पार्थिवचन्द्रः इत्यादि ॥ १० ॥

७३८ श्रेण्यादयः कृतादिभिः । २ । १ । ५९ ॥
१ श्रेणि एक पूग मुकुन्द राशि निचय विषय निधन पर इन्द्र देव मुण्ड भूत श्रमण वदान्य अध्यापक अभिरूपक ब्राह्मण क्षत्रिय [विशिष्ट] पटु पंडित कुशल चपल निपुण कृपण ॥ **इत्येते श्रेण्यादयः ॥ ११ ॥**

२ कृत मित मत भूत उक्त [युक्त] समाज्ञात समाम्नात समाख्यात संभावित [संसेवित] अवधारित अवकल्पित निराकृत उपकृत उपाकृत [दृष्ट कलित दलित उदाहृत विश्रुत उदित] । **आकृतिगणोऽयम् ॥ इति कृतादयः ॥ १२ ॥**

७३९ * शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानम् * २ । १ । ६० ॥ शाकपार्थिव कुतपसौश्रुत अजातौल्वलि । **आकृतिगणोऽयम् ।** कृतापकृत भुक्तविभुक्त पीतविपीत गतप्रत्यागत यातानुयात क्रयाक्रयिका पुटापुटिका फलाफलिका मानोन्मानिका॥**इति शाकपार्थिवादिः॥१३॥**

७५२ कुमारः श्रमणादिभिः । २ । १ । ७० ॥ श्रमणा प्रव्रजिता कुलटा गर्भिणी तापसी दासी बन्धकी अध्यापक अभिरूपक पंडित पटु मृदु कुशल चपल निपुण ॥ **इति श्रमणादयः ॥ १४ ॥**

७५४ मयूरव्यंसकादयश्च । २ । १ । ७२ ॥ मयूरव्यंसक छात्रव्यंसक कम्बोजमुण्ड यवनमुण्ड । छन्दसि । हस्तेगृह्य (हस्तगृह्य) पादेगृह्य (पादगृह्य) लाङ्गूलेगृह्य (लाङ्गूलगृह्य) पुनर्दाय । एहीडादयोऽन्यपदार्थे । एहीडम् एहियवम् एहिवाणिजा क्रिया । अपेहिवाणिजा प्रेहिवाणिजा एहिस्वागता अपेहिस्वागता एहिद्वितीया अपेहिद्वितीया । प्रेहिद्वितीया एहिकटा अपेहिकटा प्रेहिकटा आहरकरटा प्रेहिकर्दमा प्रोहकर्दमा विधमचूडा उद्धमचूडा (उद्धरचूडा) आहरचेला आहरवसना (आहरसेना) आहरवनिता (आहरवितना) कृन्तविचक्षणा उद्धरोत्सृजा उद्धरावसृजा उद्धमविधमा उत्पचनिपचा उत्पतनिपता उच्चावचम् उच्चनीचम् आचोपचम् आचपराचम् [नखप्रचम्]निश्चप्रचम् अकिंचन स्नात्वाकालक पीत्वास्थिरक भुक्त्वासुहित प्रोष्यपापीयान् उत्पत्यपाकला निपत्यरोहिणी निषण्णश्यामा अपेहिप्रघसा एहिविघसा इहपञ्चमी इहद्वितीया । जहिकर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्तारं चाभिदधाति । जहिजोडः (जहिजोडम्) जहिस्तम्बम् (जहिस्तम्बः) [उज्जहिस्तम्बम्] । अख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये । अश्नीतपिबता पचतभृज्जता खादतमोदता खादतवमता (खादताचमता) आहरनिवपा आहरनिष्किरा (आवपनिष्किरा) उत्पचविपचा भिन्धिलवणा छिन्धिविचक्षणा पचलवणा पचप्रकूटा । **आकृतिगणोऽयम् ।** तेन । अकुतोभयः कान्दिशीकः (कान्देशीकः) आहोपुरुषिका अहमहमिका यदृच्छा एहिरेयाहिरा उन्मृजावमृजा द्रव्यान्तरम् अवश्यकार्यम् ॥ **इति मयूरव्यंसकादयः१५**

७०३ याजकादिभिश्च । २ । २ । ९ ॥ याजक पूजक परिचारक परिवेषक [परिषेचक] स्नापक अध्यापक उत्साहक उद्वर्तक होतृ भर्तृ रथगणक पत्तिगणक॥**इति याजकादयः ॥ १६ ॥**

९०२ राजदन्तादिषु परम् । २ । २ । ३१॥ राजदन्तः अग्रेवणम् लिप्तवासितम् नग्नमुषितम् सिक्तसंमृष्टम् मृष्टलुञ्चितम् अवक्लिन्नपक्वम् अर्पितोतम् (अर्पितोप्तम्)

उत्तगाढ॥ उद्खलमुसलम् तण्डुलकिण्वम् दृषदुपलम् आरड्वायनि (आरग्वायनबन्धकी) चित्ररथबाह्लीक । अवन्त्यश्मकम् शूद्रार्यम् स्नातकराजानौ विष्वक्सेनार्जुनौ अक्षिभ्रुवम् दारगवम् शब्दार्थौ धर्मार्थौ कामार्थौ अर्थशब्दौ अर्थधर्मौ अर्थकामौ वैकारिमतम् गाजवाजम् (गोजवाजम्) गोपालिधानपूलसम्(गोपालधानीपूलासम्) पूलासकारण्डम् (पूलासककुरंडम्) स्थूलासम् (स्थूलपूलासम्) उशीर बीजम् [जिज्ञास्थि] सिञ्जास्थम् (सिञ्जाश्वत्थम्) चित्रास्वाती (चित्रस्वाती) भार्यापती दम्पतीजम्पती जायापतीपुत्रपती पुत्रपशू केशश्मश्रू शिरोविजु (शिरोबीजम्) शिरोजानु सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी (आद्यन्तौ) अन्तादी गुणवृद्धी वृद्धिगुणौ ॥ **इति राजदन्तादिः ॥ १७ ॥**

९०० वाहिताग्न्यादिषु । २ । २ । ३७ ॥ आहिताग्नि जातपुत्र जातदन्त जातश्मश्रु तैलपीत घृतपीत [मद्यपीत] ऊढभार्य गतार्थ । **आकृतिगणोऽयम् ।** तेन । गडुकण्ठ अस्युद्यत (अस्युद्यत) दण्डपाणिप्रभृतयोऽपि ॥ **इत्याहिताग्न्यादयः ॥ १८ ॥**

७९१ कडाराः कर्मधारये । २ । २ । ३८ ॥ कडार गडुल खञ्ज खोड कण कुंठ खलति गौर वृद्ध भिक्षुक पिङ्ग पिङ्गुल (पिङ्गल) तड तनु [जठर] बधिर मठर कज्ज बर्बर ॥ **इति कडारादयः ॥१९॥**

९८४ * नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेषु * २ । ३ । १७ ॥ नौ काक अन्न शुकशृगाल ॥ **इति नावादयः ॥ २० ॥**

५६१ * प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् * २ । ३ । १८ ॥ प्रकृति प्राय गोत्र सम विषम द्विद्रोण पञ्चक साहस्र ॥ **इति प्रकृत्यादयः ॥ २१ ॥**

९१९ गवाश्वप्रभृतीनि च । २ । ४ । ११ ॥ गवाश्वम् गवाविकम् गवैडकम् अजाविकम् (अजैडकम्) कुब्जवामनम् कुब्जकिरातम् पुत्रपौत्रम् श्वचण्डालम् स्त्रीकुमारम् दासीमाणवकम् शाटीपटीरम् शाटीप्रच्छदम् शाटीपट्टिकम् उष्ट्रखरम् उष्ट्रशशम् मूत्रशकृत् सूत्रपुरीषम् यकृन्मेदः मांसशोणितम् दर्भशरम् दर्भपूतीकम् अर्जुनशिरीषम् अर्जुनपुरुषम् तृणोपलम्(तृणोलपम्) दासीदासम् कुटीकुटम् भागवतीभागवतम् ॥**इति गवाश्वप्रभृतीनि२२**

९१८ न दधिपयआदीनि । २ । ४ । १४ ॥ दधिपयसी सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी ब्रह्मप्रजापती शिववैश्रवणौ स्कन्दविशाखौ परिव्राजककौशिकौ (परिव्राट्कौशिकौ) प्रवर्ग्योपसदौ शुक्लकृष्णौ इध्माबर्हिषी दीक्षातपसी (श्रद्धातपसी मेधातपसी) अध्ययनतपसी उलूखलमुसले आद्यवसाने श्रद्धामेधे ऋक्सामे वाङ्मनसे ॥ **इति दधिपयआदीनि ॥ २३ ॥**

८१६ अर्धर्चाः पुंसि च । २ । ४।३१॥ अर्धर्च गोमय कषाय कार्षापण कुतप कुसप (कुणप) कपाट शङ्ख गूथ यूथ ध्वज कबन्ध पद्म गृह सरक कंस दिवस यूप अन्धकार दण्ड कमण्डलु मण्ड भूत द्वीप द्यूत चक्र धर्म कर्मन् मोदक शतमान यानमख नखर चरण पुच्छ दाडिम हिम रजत सक्तु पिधान सार पात्र घृत सैन्धव औषध आढक चषक द्रोण खलीन पात्रीव षष्टिक वारवाण (वारवारण) प्रोथ कपित्थ [शुष्क] शाल शील शुक्ल (शुल्क) शीधु कवच रेणु [ऋण] कपट शीकर मुसल सुवर्ण वर्ण पूर्व चमस क्षीर कर्ष आकाश अष्टापद मङ्गल निधन निर्यास जृम्भ वृत्त पुस्त बुस्त क्ष्वेडित शृङ्ग निगड [खल] मूलक मधु मूल स्थूल शराव नाल वप्र विमान मुख प्रग्रीव शूल वज्र कटक कण्टक [कर्पट] शिखर कल्क [वल्कल] नटमक [नाटमस्तक] वलय कुसुम तृण पङ्क कुण्डल किरीट [कुमुद] अर्बुद अङ्कुश तिमिर आश्रय भूषण इकस [इष्वास] मुकुल वसन्त तटाक [तडाग] पिटक विटंक विडङ्ग पिण्याक माष कोश फलक दिन दैवत पिनाक समर स्थाणु अनीक उपवास शाक कर्पास [विशाल] चषाल [चखाल] खण्ड दर विटप [रण बल मक] मृणाल हस्त आर्द्र हल [सूत्र] ताण्डव गाण्डीव मण्डप पटह सौध योध पार्श्व शरीर फल [छल] पुर [पुरा] राष्ट्र अम्बर बिम्ब कुट्टिम मण्डल [कुक्कुट] कुडप ककुद खण्डल तोमर तोरण मञ्चक पञ्चक पुङ्ख मध्य [बाल] छाल वल्मीक वर्ष वस्त्र वसु देह उद्यान उद्योग स्नेह स्तेन [स्तन स्वर] संगम निष्कक्षेम शूक क्षत्र पवित्र यौवन कलह मालक [पालक] मूषिक [मण्डल वल्कल] कुज [कुञ्ज] विहार लोहित विषाण भवन अरण्य पुलिन दृढ आसन ऐरावत शूर्प तीर्थ लोमन [लोमश] तमाल लोह दण्डक शपथ प्रतिसर दारु धनुस् मान वर्चस्क कूर्च तण्डक मठ सहस्र ओदन प्रवाल शकट अपराह्न नीड शकल तण्डुल ॥ **इत्यर्धर्चादिः ॥ २४ ॥**

१०८४ पैलादिभ्यश्च । २ । ४ । ५९ ॥ पैल शालंकि सात्यकि सात्यकामि राहवि रावणि औदञ्चि औदव्रजि औदमेधि औदव्यज्रि (औदमज्जि) औदभृज्जि दैवस्थानि पैङ्गलौदायनि राहक्षति भौलिङ्गि राणि औदन्यि औद्राहमानि औजिहानि औदशुद्धि तद्राजाच्चाणः (तद्राज) ॥ **आकृतिगणोऽयम् । इति पैलादिः ॥२५॥**

१०८६ न तौल्वलिभ्यः । २ । ४ । ६१॥ तौल्वलि धारणि पारणि रावणि दैलीपि दैवति वार्कलि नैवति (नैवकि) दैवमित्रि (दैवमति) दैवयज्ञि चाफट्टकि वैल्वकि वैकि (बैंकि) आनुहारति (आनुराहति) पौष्करसादि आनुरोहति आनुति प्रादोहनि नैमिश्रि प्राडाहति बान्धकि वैशीति आसिनासि आहिंसि आसुरि नैमिषि आसिबन्धकि पौष्णि कारेणुपलि वैकर्णि वैरकि वैहति ॥ **इति तौल्वल्यादिः ॥ २६ ॥**

११४५ यस्कादिभ्यो गोत्रे । २ । ४ । ६३ ॥ यस्क लह्य द्रुह्य अयस्थूण [अयःस्थूण] तृणकर्ण सदामत्त कम्बलहार बहिर्योग कर्णाढक पर्णाढक पिण्डीजंघ वक्रसक्थ [वकसक्थ] विश्रि कुद्रि अजवस्ति मित्रयु रक्षोमुख जंघारथ उत्कास कटुक मथक [मन्थक] पुष्करट [पुष्करसद्] विषपुट उपरिमेखल क्रोष्टुकमान [क्रोष्टुमान] क्रोष्टुपाद क्रोष्टुमाय शीर्षमाय खरप पदक वर्षुक भलन्दन भडिल भण्डिल भडित भण्डित **एते यस्कादयः ॥ २७ ॥**

११४९ न गोपवनादिभ्यः । २ । ४ । ६७ ॥ गोपवन शैयु [शिग्रु] बिन्दु भाजन अश्वावतान श्यामक [श्योमाक] श्यामाक श्यापर्ण ॥ **विदाद्यन्तर्गणोऽयम् (४।१।१०४) इति गोपवनादिः ॥२८॥**

११५० तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे । २ । ४ । ६८ ॥ तिककितवाः वङ्खभण्डीरथाः उपकलमकाः पफकनरकाः बकनखगुदपरिणद्धाः उब्जककुभाः लंकशान्तमुखाः उत्तरशलङ्कटाः कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः अष्टककपिष्ठलाः अग्निवेशदशेरुकाः ॥ **एते तिककितवादयः ॥ २९ ॥**

११५१ उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे । २ । ४ । ६९ ॥ उपक लमक अष्टक कपिष्ठल कृष्णाजिन कृष्णसुन्दर चूडारक आडारक गडुक उदङ्क सुधायुक अबन्धक पिङ्गलक पिष्ट सुपिष्ट [सुपिष्ठ] मयूरकर्ण खरीजङ्घ शलाथक पतञ्जल पदञ्जल कठेरणि कुषीतक कशकृत्स्न [काशकृत्स्न] निदाघ कलशीकण्ठ दामकण्ठ कृष्णपिङ्गल कर्णक पर्णक जटिरक बधिरक जन्तुक अनुलोम अनुपद प्रतिलोम अपजग्ध प्रतान अनभिहित कमक वराटक लेखाभ्र कमन्दक पिञ्जूलक वर्णक मसूरकर्ण मदाघ कबन्तक कमन्तक कदामत दामकण्ठ ॥ **एते उपकादयः ॥ ३० ॥**

तृतीऽध्यायोयः ।

२६६७ भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः । ३ । १ । १२ ॥ भृश शीघ्र चपल मन्द पण्डित उत्सुक सुमनस दुर्मनस् अभिमनस् उन्मनस् रहस् रोहत् रेहत् संश्वत् तृपत् शश्वत् भ्रमत् वेहत् शुचिस् शुचिवर्चस् अण्डर वर्चस् ओजस् सुरजस् अरजस् ॥ **एते भृशादयः ॥ ३१ ॥**

२२६८ लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् । ३ । १ । १३ ॥ लोहित चरित नील फेन मद्र हरित दास मन्द ॥ **लोहितादिराकृतिगणः ॥ ३२ ॥**

२६७४ सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् । ३ । १ । १८ ॥ सुख दुःख तृप्त कृच्छ्र अस्र आस्र अलीक प्रतीप करुण कृपण सोढ ॥ **इति सुखादीनि ॥ ३३ ॥**

२६७८ कण्ड्वादिभ्यो यक् । ३ । १ । २७ ॥ कण्डूञ् मन्तु हृणीङ् वल्गु असु [मनस्] महीङ् लाट् लेट् इरस् इरज् इरञ् उवस उषस् वेट् मेधा कुषुभ [नमस्] मगध तन्तस् पम्पस् [पपस्] सुख दुःख (भिक्ष चरण चरम अवर) सपर अरर [अरर्] भिषज् भिष्णुज् [अपर आर] इषुध वरण चुरण तुरण भरण गद्गद एला केला खेला [वेला शेला] लिट् लोट् [लेखा लेख] रेखा द्रवस् तिरस् अगद उरस् तरण [तरणि] पयस् संभूयस् सम्बर॥ **आकृतिगणोऽयम्॥ इति कण्ड्वादिः ॥ ३४ ॥**

२८९६ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः । ३ । १ । १३४ ॥

१ नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवर्धिशोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम् । नन्दनः वाशनः मदनः दूषणः साधनः वर्धनः शोभनः रोचनः । सहितपिदमः संज्ञायाम् । सहनः तपनः दमनः । जल्पनः रमणः दर्पणः संक्रन्दनः संकर्षणः संहर्षणः जनार्दनः यवनः मधुसूदनः विभीषणः लवणः चित्तविनाशनः कुलदमनः [शत्रुदमनः] **इति नन्द्यादिः ॥ ३५ ॥**

२ ग्राही उत्साही उद्दासी उद्भासी स्थायी मन्त्री संमर्दी । रक्षश्रुवपशां नौ । निरक्षी निश्रावी निवापी निशायी । याचृव्याहृव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम् । अयाची अव्याहारी असंव्याहारी अव्राजी अवादी अवासी । अचामचित्तकर्तृकाणाम् । अकारी अहारी अविनायी [विशायी विषायी] विशयी विषयी देशे । विशयी विषयी देशः । अभिभावी भूते । अपराधी उपरोधी परिभवी परिभावी ॥ **इति ग्रहादिः ॥ ३६ ॥**

३ पच वच वप वद चल पत नदट् भषट् प्लवट् चरट् गरट् तरट् चोरट् गाहट् सूरट् देवट् [दोषट्] जर (रज) मर (मद) क्षम (क्षप) सेव मेष कोप (कोष) मेधनर्त व्रण दर्श सर्प [दम्भ दर्प] जार भर श्वपच ॥ **पचादिराकृतिगणः ॥ ३७ ॥**

२९१९ * कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् * ३ । २ । ५ ॥ मूलविभुज नखमुच काकगुह कुमुद महीध्र कुध्र गिध्र ॥ **आकृतिगणोऽयम् ॥ इति मूलविभुजादयः ॥ ३८ ॥**

२९२९ * पार्श्वादिषूपसंख्यानम् * ३ । २ । १५ ॥ पार्श्व उदर पृष्ठ उत्तान अवमूर्धन् ॥ **इति पार्श्वादिः ॥ ३९ ॥**

३१७१ भविष्यति गम्यादयः । ३ । ३ । ३ ॥ गमी आगमी भावी प्रस्थायी प्रतिरोधी प्रतियोधी प्रतिबोधी प्रतियायी प्रतियोगी ॥ **एते गम्यादयः ॥ ४० ॥**

३२७२ * संपदादिभ्यः क्विप् * ३।३ । ९४ ॥ संपद् विपद् आपद् प्रतिपद् परिषद् ॥ **एते संपदादयः ४१**

३२८१ षिद्भिदादिभ्योऽङ् । ३ । ३ । १०४ ॥ भिदा विदारणे । छिदा द्वैधीकरणे । विदा । क्षिपा । गुहा गिर्योषध्योः । श्रद्धा मेधा गोधा । आरा शस्त्र्याम् । हारा । कारा बन्धने । क्षिया । तारा ज्योतिषि । धारा प्रपातने । रेखा चूडा पीडा वपा वसा मृजा । क्रपेः संप्रसारणं च । कृपा ॥ **इति भिदादिः ॥ ४२ ॥**

३१७३ भीमादयोऽपादाने । ३ । ४।७४ ॥ भीम भीष्म भयानक वहचर (वहचरु) प्रस्कन्दन प्रपतन (प्रतपन) समुद्र स्रुव स्रुक् वृष्टि (दृष्टि) रक्षः संकसुक (शंकुसुक) मूर्ख खलति ॥ **आकृतिगणोऽयम् ॥ इति भीमादिः ॥ ४३ ॥**

चतुर्थोऽध्यायः ।

४५४ अजाद्यतष्टाप् । ४ । १ । ४ ॥ अजा एडका कोकिला चटका अश्वा मूषिका बाला होडा पाका वत्सा मन्दा विलाता पूर्वापिहाणा (पूर्वापहाणा) अपरापहाणा । संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् । सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् । शूद्रा चामहत्पूर्वाजातिः । क्रुञ्चा उष्णिहा देवविशा । ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा पुंयोगेऽपि । मूलान्नञः दंष्ट्रा ॥ **एतेऽजादयः ॥ ४४ ॥**

३०८ न षट्स्वस्रादिभ्यः । ४ । १ । १० ॥ स्वसृ दुहितृ ननान्दृ यातृ मातृ तिसृ चतसृ ॥ **इति स्वस्रादिः ॥ ४५ ॥**

४९२ नित्यं सपत्न्यादिषु । ४ । १ । ३५ ॥ समान एक वीर पिण्ड श्व (शिरी) भ्रातृ भद्र पुत्र । दासाच्छन्दसि ॥ **इति समानादिः ॥ ४६ ॥**

४९८ षिद्गौरादिभ्यश्च । ४ । १ । ४१ ॥ गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय गवय मुकय ऋष्य [पुट तूण] द्रुण द्रोण हरिण कोकण (काकण) पटर उणक [आमल] आमलक कुवल बिम्ब बदर फर्करक (कर्कर) तर्कार शर्कार पुष्कर शिखण्ड सलद शष्कण्ड सनन्द सुषम सुपव अलिन्द गडुल षाण्डश आढक आनन्द आश्वत्थ सृपाट आपक (आपचिक) शष्कुल सूर्य (सूर्म) शूर्प सूच यूष (पूष) यूथ सूप मेथ वल्लक धातक सल्लक मालक मालत साल्वक वेतस वृक्ष (वृस) अतस [उभय] भृङ्ग मह मेह छेद पेश मेद श्वन् तक्षन् अनडुही अनड्वाही । एषणः करणे । देह देहल काकादन गवादन तेजन रजन लवण औद्गाहमानि (आद्गाहमानि) गौतम (गोतम) [पारक] अयस्थूण (अयःस्थूण) भौरिकि भौलिकि भौलिङ्गि यान मेथ आलम्बि आलजि आलब्धि आलक्षि केवाल आपक आरट नट टोट नोट मुलाट शातन [पोतन] पातन पाठन (पानठ) आस्तरण अधिकरण अधिकार अग्रहावणी (आग्रहायणी) प्रत्यवरोहिणी [सेचन] । सुमङ्गलात्संज्ञायाम् । अण्डर सुन्दर मण्डल मन्थर मङ्गल पट पिण्ड [षण्ड] उर्द गुद शम सूद औड (आर्द्र) ह्रद (ह्रद) पाण्ड [भाण्डल] भाण्ड [लोहाण्ड] कदर कन्दर कदल तरुण तलुन कल्माष बृहत् महत् [सोम] सौधर्म । रोहिणी नक्षत्रे । रेवती नक्षत्रे । (विकल) निष्कल पुष्कल । कटाच्छ्रोणिवचने । पिप्पल्यादयश्च । पिप्पली हरितकी (हरीतकी) कोशातकी शमी वरी शरी पृथिवी क्रोष्टु मातामह पितामह । **इति गौरादिः ॥ ४७ ॥**

५०३ बह्वादिभ्यश्च । ४ । १ ४५ ॥ बहु पद्धति अञ्चति अङ्कति अंहति शकटि (शकति) । शक्तिः शस्त्रे । शारि वारि राति राधि [शाधि] आहि कपि यष्टि मुनि । इतः प्राण्यङ्गात् । कृदिकारादक्तिनः । सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके । चण्ड अराल कृपण कमल विकट विशाल विशङ्कट भरुज ध्वज । चन्द्रभागान्नद्याम् (चन्द्रभागा नद्याम्) कल्याण उदार पुराण अहन् क्रोड नख खुर शिखा वाल शफ गुद ॥ **आकृतिगणोऽयम् ॥** तेन । भग गल राग इत्यादि ॥ **इति बह्वादयः ॥४८॥**

५२७ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् । ४ । १ । ७३ ॥ शार्ङ्गरव कापटव गौग्गुलव ब्राह्मण वैद गौतम कामण्डलेय ब्राह्मणकृतेय [आनिचेय] आनिधेय आशोकेय

वात्स्यायन मौञ्जायन कैकश काव्य (काव्य) शैव्य एहि पर्येहि आश्मरथ्य औदपान अराल चण्डाल वतण्ड। भोगवद्गौरिमतोः संज्ञायां घादिषु [६ । ३ । ४३] नित्यं ह्रस्वार्थम्। नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥ **इति शार्ङ्गरवादिः॥४९॥**

१२०० क्रौड्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८० ॥ क्रौडि लाडि व्याडि आपिशलि आपक्षिति चौपयत चैटयत (वैटयत) सैकयत बैल्वयत सौधातकि । सूत युवत्याम्। भोज क्षत्रिये । यौतकि कौटि भौरिकि भौलिकि [शाल्मलि] शालास्थलि कापिष्ठलि गौकक्ष्य ॥ **इति क्रौड्यादिः ॥ ५० ॥**

१०७४ अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८४ ॥ अश्वपति [ज्ञानपति] शतपति धनपति गणपति [स्थानपति यज्ञपति] राष्ट्रपति कुलपति गृहपति [पशुपति] धान्यपति धन्वपति [वन्धुपति धर्मपति] सभापति प्राणपति क्षेत्रपति ॥ **इत्यश्वपत्यादिः ॥५१॥**

१०७९ उत्सादिभ्योऽञ् । ४ । १ । ८६ ॥ उत्स उदपान विकर मिनद महानद महानस महाप्राण तरुण तलुन । बष्कयासे । पृथिवी [धेनु] पंक्ति जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जनपद भरत उशीनर ग्रीष्म पीलुकुण । उदस्थान देशे । पृषदंश भल्लकीय रथन्तर मध्यंदिन बृहत् महत् सत्त्वत् कुरु पञ्चाल इन्द्रावसान उष्णिह् ककुभ् सुवर्ण देव ग्रीष्मादच्छन्दसि ॥ **इत्युत्सादिः ॥ ५२ ॥**

१०९६ बाह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ९६ ॥ बाहु उपबाहु उपवाकु निवाकु शिवाकु वटाकु उपनिन्दु [उपबिन्दु] वृषली वृकला चूडा बलाका मूषिका कुशला भगला [छगला] ध्रुवका (धुवका) सुमित्रा दुर्मित्रा पुष्करसद् अनुहरत् देवशर्मन् अग्निशर्मन् (भद्रशर्मन् सुशर्मन्) कुनामन् [सुनामन्] पञ्चन् सप्तन् अष्टन्। अमितौजसः सलोपश्च । सुधावत् उदञ्चु शिरस् माष शराविन् मरीची क्षेमवृद्धिन् शृङ्खलतोदिन् खरनादिन् नगरमर्दिन् प्राकारमर्दिन् लोमन् अजीगर्त कृष्ण युधिष्ठिर अर्जुन साम्ब गद प्रद्युम्न रत्नम् [उदङ्क] उदकः संज्ञायाम्। संभूयोम्भसोः सलोपश्च ॥ **आकृतिगणोऽयम् ॥** तेन। सात्यकिः जांघिः ऐन्दशर्मिः आजधेनविः इत्यादि ॥ **इति बाह्वादयः ॥ ५३ ॥**

१०९९ गोत्रे कुञ्जादिभ्यः च्फञ् । ४ । १ । ९८ ॥ कुञ्ज ब्रध्न शङ्ख भस्मन् गण लोमन् शठ शाक शुण्डा शुभ विपाश् स्कन्द स्कम्भ ॥ **इति कुञ्जादिः ॥ ५४ ॥**

११०१ नडादिभ्यः फक् । ४ । १ । ९९ ॥ नड चर [वर] बक मुञ्ज इतिक इतिश उपक [एक] लमक । शलङ्कु शलङ्कं च । सप्तल वाजप्य तिक । अग्निशर्मन्वृषगणे। प्राण नर सायक दास मित्र द्वीप पिङ्गर पिङ्गल किङ्कर किङ्कल [कातर] कातल काश्यप [कुश्यप] काश्य काल्य [काव्य] अज अमुष्य [अमुष्म] कृष्णरणौ ब्राह्मणवसिष्ठे । अमित्र लिगु चित्र कुमार । क्रोष्टु क्रोष्टं च । लोह दुर्ग स्तम्भ शिंशपा अग्र तृण शकट सुमनस् सुमत मिमत ऋच् जलंधर अध्वर युगंधर हंसक दण्डिन् हस्तिन् [पिण्ड] पञ्चाल चमसिन् सुकृत्य स्थिरक ब्राह्मण चटक बदर अश्वल खरप लङ्क इन्ध अस्त्र कामुक ब्रह्मदत्त उदुम्बर शोण अलोह दण्डप ॥ **इति नडादिः ॥ ५५ ॥**

११०६ अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ॥ ४ । १ । १०४ ॥ बिद उर्व कश्यप कुशिक भरद्वाज उपमन्यु किलात कन्दर्प [किंदर्भ] विश्वानर [ऋष्टिषेण] ऋष्टिषेण ऋतभाग हर्यश्व प्रियक आपस्तम्ब कूचवार शरद्वत् शुनक [शुनक्] धेनु गोपवन शिग्रु बिन्दु (भोगक) भाजन [शमिक] अश्वावतान श्यामाक श्यामक [श्यावलि] श्यापर्ण हरित किन्दास बह्यस्क अर्कजूष [अर्कलूष] बध्योग विष्णु वृद्ध प्रतिबोध [रथीतर] रथन्तर गविष्ठिर निषाद [शबर अलस] मठर [मृडाकु] सूपाकु मृदु पुनर्भू पुत्र दुहितृ ननान्द । परस्त्री परशुं च ॥ **इति बिदादिः ॥ ५६ ॥**

११०७ गर्गादिभ्यो यञ् । ४ । १ । १०५॥ गर्ग वत्स । वाजासे । संकृति अज व्याघ्रपात् विदभृत प्राचीनयोग (अगस्ति) पुलस्ति चमस रेभ अग्निवेश शङ्ख शट शक धूम एक अवट मनस् धनंजय वृक्ष विश्वावसु जरमाण लोहित शंसित बभ्रु वल्गु मण्डु शङ्ख लिगु गुहलु मन्तु मङ्क्षु अलिगु जिगीषु मनु तन्तु मनायी सूनु कथक कन्थक ऋक्ष तृक्ष (वृक्ष) [तनु] तरुक्ष तलुक्ष तण्ड वतण्ड कपिकत (कपि कत) कुरुकत अनडुह कण्व शकल गोकक्ष अगस्त्य कण्डिनी यज्ञवल्क पर्णवल्क अभयजात विरोहित वृषगण रहूगण शण्डिल वर्णक (चणक) चुलुक मुद्गल मुसल जमदग्नि पराशर जतुकर्ण (जातूकर्ण) महित मन्त्रित अश्मरथ शर्कराक्ष पूतिमाष स्थूरा अदरक (अरक) एलाक पिङ्गल कृष्ण गोलन्द उलूक तितिक्ष भिषज (भिषज्) [भिष्णज] भडित भण्डित दल्भ चेकित चिकित्सित देवहू इन्द्रहू एकलु पिप्पलु

बृहदग्नि [सुलोहिन्] सुलाभिन् उक्थ कुटीगु ॥ इति गर्गादिः ॥ ५७ ॥

१११३ अश्वादिभ्यः फञ् । ४ । १ । ११० ॥ अश्व अश्मन् शङ्ख शूद्रक विद पुट रोहिण खर्जूर (खजूर) [खञ्जार वस्त] पिजूल भडिल भण्डिल भडित भण्डित [प्रकृत रामोद] क्षान्त [काश तीक्ष्ण गोलाङ्क अर्क स्वर स्फुट चक्र श्रविष्ठ] पविन्द पवित्र गोमिन् श्याम धूम धूम्र वाग्मिन् विश्वानर कुट । शप आत्रेये । जन जड खड ग्रीष्म अर्ह कित विशंप विशाल गिरि चपल चुप दासक वैल्य (वैल्व) प्राच्य [धर्म्य] आनडुह्य । पुंसि जाते । अर्जुन [प्रहृत] सुमनस् दुर्मनस् मन (मनस्) [प्रान्त] ध्वन । आत्रेय भरद्वाजे । भरद्वाज आत्रेये । उत्स आतव कितव [वद धन्य पाद] शिव खदिर ॥ इत्यश्वादिः ॥ ५८ ॥

१११५ शिवादिभ्योऽण् । ४ । १ । ११२ ॥ शिव प्रोष्ठ प्रोष्ठक चण्ड जम्भ भूरि दण्ड कुठार ककुभ् (ककुभा) अनभिम्लान कोहित सुख संधि मुनि ककुत्स्थ कहोड कोहड कहूय कहय रोध कपिञ्जल (कुपिञ्जल) खञ्जन वतण्ड तृणकर्ण क्षीरह्रद जलह्रद परिल [पथिक] पिष्ट हैहय (पार्षिका) गोपिका कपिलिका जटिलिका बधिरिका मञ्जीरक [मजिरक] वृष्णिक खञ्जार खञ्जाल [कर्मार] रेख लेख आलेखन विश्रवण रवण वर्तनाक्ष ग्रीवाक्ष [विटप पिटक] विटाक तृक्षाक नभाक ऊर्णनाभ जरत्कारु [पृथा उत्क्षेप] पुरोहितिका सुरोहितिका सुरोहिका आर्यश्वेत (अर्यश्वेत) सुपिष्ट मसुरकर्ण मयूरकर्ण [खर्जुरकर्ण] कदूरक तक्षन् ऋष्टिषेण गङ्गा विपाश यस्क लह्य द्रुह्य अयस्थूण तृणकर्ण (तृण कर्ण) पर्ण भलन्दन विरूपाक्ष भूमि इला सपत्नी ।द्व्यचो नद्याः ॥ त्रिवेणी त्रिवणं च ॥ इति शिवादिः । आकृतिगणः ॥ ५९ ॥

११२६ शुभ्रादिभ्यश्च । ४ । १ । १२३ ॥ शुभ्र विष्ट पुर (विष्टपुर) ब्रह्मकृत शतद्वार शलाथल शलाकाभ्रू लेखाभ्रू (लेखाभ्र) विकसा (विकास) रोहिणी रुक्मिणी धर्मिणी दिश् शालूक अजवस्ति शकन्धि विमातृ विधवा शुक विश देवतर शकुनि शुक्र उग्र शतल (शतल) बन्धकी सृकण्डु विश्रि अतिथि गोदन्त कुशाम्ब मकष्टु शाताहर पवष्टुरिक सुनामन् । लक्षण श्यामयोर्वासिष्ठे । गोधा कृकलास अणीव प्रवाहण भरत (भारत) भरममृकण्डु कर्पूर इतर अन्यतर आलीढ सुदन्त सुदक्ष सुवक्षस् सुदामन् कद्रु तुद अकशाय कुमारिका कुठारिका किशोरिका अम्बिका जिह्माशिन् परिधि वायुदत्त शकल शलाका खड्डर कुबेरिका अशोका अन्धपिङ्गला खडोन्मत्ता अनुदृष्टिन् (अनुदृष्टि) जरतिन् बलीवर्दिन् विग्र बीज जीव श्वन् अश्मन् अश्व अजिर ॥ इति शुभ्रादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ६० ॥

११३१ कल्याण्यादीनामिनङ् च ।४।१।१२६॥ कल्याणी सुभगा दुर्भगा बन्धकी अनुदृष्टि अनुसृति (अनुसृष्टि) जरती बलीवर्दी ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा परस्त्री ॥ इति कल्याण्यादिः ॥ ६१ ॥

११४३ गृष्ट्यादिभ्यश्च । ४ । १ । १३६॥ गृष्टि हृष्टि बलि हलि विश्रि कुद्रि अजवस्ति मित्रयु ॥ इति गृष्ट्यादिः ॥ ६२ ॥

११६९ रेवत्यादिभ्यष्ठक् । ४ । १ । १४६॥ रेवती अश्वपाली मणिपाली द्वारपाली वृक वञ्चिन् वृकबन्धु वृकग्राह कर्णग्राह दण्डग्राह कुक्कुटाक्ष (ककुदाक्ष) चामरग्राह ॥ इति रेवत्यादिः ॥ ६३ ॥

११७५ कुर्वादिभ्यो ण्यः । ४ । १ । १५१ ॥ कुरु गर्गर मंगुष अजमार रथकार वावदूक । सम्राजः क्षत्रिये । कवि मति (विमति) कापिञ्जलादि वाक् वामरथ पितृमत् इन्द्रजाली एजि वातकि दामोष्णीषि गणकारि कैशोरि कुट शालका (शलाका) मुर पुर एरका शुभ्र अभ्र दर्भ केशिनी । वेनाच्छन्दसि । शूर्पणाय श्यावनाय श्यावरथ शावपुत्र सत्यकार वडभीकार पथिकार मूढ शकन्धु शङ्कु शाक शालिन् शालीन कर्तृ हर्तृ इन पिण्डी । तक्षन् । वामरथस्य कण्वादिवत्स्वरवर्जम् ॥ इति कुर्वादिः ॥ ६४ ॥

११७८ तिकादिभ्यः फिञ् । ४ । १ ।१५४॥ तिक कितव संज्ञाबालशिख (संज्ञा बाला शिखा) उरस् शाठ्य सैन्धव यमुन्द रूप्य ग्राम्य नील अमित्र गोकक्ष कुरु देवरथ तैतिल औरस कौरव्य भौरिकि भौलिकि चौपयत चैटयत शीकयत क्षैतयत ध्राजवत चन्द्रमस् शुभ गङ्गा वरेण्य सुयामन् आरब्ध बाह्यक खल्पक वृष लोमक वादन्य यज्ञ ॥इति तिकादिः ॥ ६५ ॥

११८२ वाकिनादीनां कुक्च । ४ । १।१५८॥ वाकिन गौधेर कार्कश काकलङ्का । चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च॥ इति वाकिनादिः ॥ ६६ ॥

११९४ कम्बोजाल्लुक् । ४ । १ । १७५ ॥ कम्बोज चोल केरल शक यवन ॥इति कम्बोजादिः ॥ ६७ ॥

११९७ न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः । ४ । १ । १७८ ॥

१ भर्ग करूश केकय कश्मीर साल्व सुस्थाल उरस् कौरव्य ॥ **इति भर्गादिः ॥ ६८ ॥**

२ यौधेय शौक्रेय शौभ्रेय ज्यावाणेय धौर्तेय धार्तेय त्रिगर्त भरत उशीनर ॥ **इति यौधेयादिः ॥ ६९ ॥**

१२४४ भिक्षादिभ्योऽण् । ४ । २ । ३८ ॥ भिक्षा गर्भिणी क्षेत्र करीष अङ्गारचर्मिन् धर्मिन् सहस्र युवति पदाति पद्धति अथर्वन् दक्षिणा भरत विषय श्रोत्र ॥ **इति भिक्षादिः ॥ ७० ॥**

१२५४ खण्डिकादिभ्यश्च । ४ । २ । ४५ ॥ खण्डिका वडवा क्षुद्रकमालवात् सेनासंज्ञायाम् । भिक्षुक शुक उलूक श्वन् अहन् युगवरत्रा हलबन्धा ॥ **इति खण्डिकादिः ॥ ७१ ॥**

१२५८ पाशादिभ्यो यः ॥ ४ । २ । ४९ ॥ पाश तृण धूम वात अङ्गार पाटल पोत गळ पिटक पिटाक शकट हल नट वन ॥ **इति पाशादिः ॥ ७२॥**

१२६० * खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः * ४ । २ । ५१ ॥ खल डाक कुटुम्ब शाक कुण्डलिनी ॥ **इति खलादिराकृतिगणः ॥ ७३ ॥**

१२६२ राजन्यादिभ्यो वुञ् । ४ । २ । ५३॥ राजन्य आनत बाभ्रव्य शालंकायन दैवयातव (देवयात्) [अव्रीड वरत्रा] जालंधरायण [राजायन] तेलु आत्मकामेय अम्बरीषपुत्र वसाति बैल्ववन शैलूष उदुम्बर तीव्र बैल्वल आर्जुनायन संप्रिय दाक्षि ऊर्णनाभ॥ **इति राजन्यादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ७४ ॥**

१२६३ भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधलभक्तलौ । ४ । २ । ५४ ॥

१ भौरिकि भौलिकि चौपयत चौटयत (चैटयत) काणेय वाणिजक वाणिकाज्य (वालिकाज्य) सैकयत वैकयत ॥ **इति भौरिक्यादिः ॥ ७५ ॥**

२ ऐषुकारि सारस्यायन (सारसायन) चान्द्रायण द्व्याक्षायण त्र्याक्षायण औडायन नौळायन खाडायन दासमित्रि दासमित्रायण शौद्रायण दाक्षायण शापण्डायन (शायण्डायन) तार्क्ष्यायण शौभ्रायण सौवीर [सौवीरायण] शपण्ड (शयण्ड) शौण्ड शयाण्डि (शयाण्ड) वैश्वमानव वैश्वध्येनव (वैश्वधेनव) नड तुण्डदेव विश्वदेव [सापिण्डि] ॥ **इति ऐषुकार्यादिः ॥ ७६ ॥**

१२७० क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ।४ । २ ।६०॥ उक्थ लोकायत न्याय न्यासपुनरुक्त निरुक्त निमित्त द्विपदा ज्योतिष अनुपद अनुकल्प यज्ञ धर्म चर्चा क्रमेतर श्लक्ष (श्लक्ष्ण) संहिता पदक्रम संघट (संघट्ट) वृत्ति परिषद् संग्रह गण [गुण] आयुर्देव (आयुर्वेद) **इत्युक्थादिः ॥ ७७ ॥**

१२७१ क्रमादिभ्यो वुन् । ४ । २ ६१ ॥ क्रम पद शिक्षा मीमांसा सामन् ॥ **इति क्रमादिः ॥७८॥**

१२७३ वसन्तादिभ्यष्ठक् । ४ । २ । ६३ ॥ वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद शरत् हेमन्त शिशिर प्रथम गुण चरम अनुगुण अथर्वन् अथर्वण ॥ **इति वसन्तादिः ॥ ७९ ॥**

१२८७ संकलादिभ्यश्च । २ । ४ । ७५ ॥ संकल पुष्कल उत्तम उडुप उद्वेप उत्पुट कुम्भ निधान सुदक्ष सुदत्त सुभूत सुपूत सुनेत्र सुमङ्गल सुपिङ्गल सूत सिकत पूतिका (पूतिक) पूलास कूलास पलाश निवेश गवेश (गवेष) गम्भीर इतर आन् अहन् लोमन् वेमन् चरण (वरुण) बहुल सद्योज अभिषिक्त गोभृत् राजभृत् भल्ल मल्ल माल ॥ **इति संकलादिः॥ ८० ॥**

१२८९ सुवास्त्वादिभ्योऽण् । ४ । २ ।७७॥ सुवास्तु (सुवस्तु) वर्णु भण्डु खण्डु सेवालिन् कर्पूरिन् शिखण्डिन् गर्त कर्कश शकटीकर्ण कृष्णकर्ण [कर्क] कर्कन्धुमती गोह अहिसक्थ॥**इति सुवास्त्वादिः ॥८१॥**

१२९२ वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययञ्फक्फिञिञ्ञ्यककठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्णसुतंगमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः । ४ । २।८० ॥

१ अरीहण (अहीरण) द्रुघण द्रुहण भलग (भगल) उलन्द किरण सांपरायण क्रौष्ट्रायन औष्ट्रायण त्रैगर्तायन मैत्रायण भास्त्रायण वैमतायण (वैमतायन) गौमतायन सौमतायन सौसायन धौमतायन सौमायण ऐन्द्रायण कौद्रायण (कौन्द्रायण) खाडायन शाण्डिल्यायन रायस्पोष विपथ विपाश उद्दण्ड उदञ्चन खाण्डवीरण वीरण काशकृत्स्न जाम्बवत् शिंशपा रैवत (रेवत) बिल्व सुयज्ञ शिरीष बधिर जम्बु खदिर सुशर्मन् (सशर्मन्) भलतृ मलन्दन खण्डु कलन यज्ञदत्त ॥ **इत्यरीहणादिः॥८२॥**

२ कृशाश्व आरिष्ट अरिश्म वेश्मन् विशाल लोमश रोमश रोमक लोमक शबल कूट वर्चल सुवर्चल सुकर सूकर प्रातर (प्रतर) सदृश पुरग पुराग मुख धूम अजिन विनत अवनत कुविद्यास (कुविट्यास) पराशर अरुस् अयस् मौद्गल्याकर (मौद्गल्युकर) **इति कृशाश्वादिः ॥८३॥**

३ ऋश्य (ह्रस्य) न्यग्रोध शर निलीन [निवास निवात] निधान निबन्धन (निबन्ध) [विबद्ध] परिगूढ [उपगूढ] असनि सित मत वेश्मन् उत्तराश्मन् अश्मन् स्थूल बाहु खदिर शर्करा अनडुह (अनडुह्) अरडु परिवंश वेणु वीरण खण्ड दण्ड परिवृत्त कर्दम अंशु ॥ **इत्यृश्यादिः ॥ ८४ ॥**

४ कुमुद शर्करा न्यग्रोध इकट संकट कंकट गर्त बीज परिवाप निर्यास शकट कच मधु शिरीष अश्व अश्वत्थ बल्वज यवास कूप विकङ्कट दशग्राम ॥ **इति कुमुदादिः ॥ ८५ ॥**

५ काश पाश अश्वत्थ पलाश पीयूक्षा चरण वास नड वन कर्दम कच्छूल कङ्कट गुड बिसतृण कर्पूर बर्बर मधुर ग्रह कपित्थ जतु सीपाल ॥ **इति काशादिः ॥८६॥**

६ तृण नड मूल वन पर्ण वर्ण वराण बिल पुल फल अर्जुन अर्ण सुवर्ण बल चरण बुस ॥**इति तृणादिः॥८७॥**

७ प्रेक्षा फलका (हलका) बन्धुका ध्रुवका क्षिपका न्यग्रोध इकट कङ्कट सङ्कट कट कूप बुक पुट मह परिवाप यवषि धुवका गर्त कूपक हिरण्य ॥ **इति प्रेक्षादिः॥८८॥**

८ अश्मन् यूथ ऊष मीननद दर्भ वृन्द गुद खण्ड नग शिखा कीट पाम कन्द कान्द कुल गह्व गुण कुण्डल पीन गुह ॥ **इत्यश्मादिः ॥ ८९ ॥**

९ सखि अग्निदत्त वायुदत्त सखिदत्त [गोपिल] भल्लपाल (भल्ल पाल) चक्र चक्रवाल छगल अशोक करवीर वासव वीर पूर वज्र कुशीकर शीहर (सीहर) सरक सरस समर समल सुरस रोह तमाल कदल सप्तल ॥ **इति सख्यादिः ॥ ९० ॥**

१० सङ्काश कपिल कश्मीर [समीर] सूरसेन सरक सूर [सुपथिन्पन्थ च] यूप (यूथ) अंश अङ्ग नासा पलित अनुनाश अश्मन् कूट मलिन दश कुम्भ शीर्ष चिरन्त (विरत) समल सीर पञ्जर मन्थ नल रोमन् लोमन पुलिन सुपरि कटिप सकर्णक वृष्टि तीर्थ अगस्ति विकर नासिका ॥ **इतिसङ्काशादिः ॥ ९१ ॥**

११ बल चुल नल दल वट लकुल उरल पुर्ल (पुल) मूल उलडुल (उल डुल) वनकुल ॥ **इति बलादिः ॥ ९२ ॥**

१२ पक्ष तुक्ष तुष कुण्ड अण्ड कम्बलिका वलिक चित्र अस्ति । पथः पन्थ च । कुम्भ सीरक सरक सकर्ल सरस समल अतिश्वन् रोमन लोमन् हस्तिन् मकर लोमक शीर्ष निवात पाक सहक (सिंहक) अङ्कुश सुवर्णक हंसक हिंसक कुत्स बिल खिल यमल हस्त कला सकर्णक॥ **इति पक्षादिः ॥ ९३ ॥**

१३ कर्ण वसिष्ठ अर्क अर्कलूष द्रुपद आनडुह्य पाञ्चजन्य स्फिग (स्फिज्) कुम्भी कुन्ती जित्वन् जीवन्त कुलिश आण्डीवत् (आण्डीवत) जव जैत्र आकन (आनक) ॥ **इति कर्णादिः ॥ ९४ ॥**

१४ सुतंगम मुनिचित विप्रचित महाचित्त महापुत्र न श्वेत गडिक (खडिक) शुक्रविप्र बीजवापिन् (बीज वापिन्) अर्जुन श्वन् अजिर जीत्र खंडित कर्ण विग्रह ॥ **इति सुतंगमादिः ॥ ९५ ॥**

१५ प्रगदिन् मगदिन् मददिन् कविल :खंडित गदित चूडार मडार मन्दार कोविदार ॥ **इति प्रगद्यादिः ॥९६॥**

१६ वराह पलाशा (पलाश) शेरीष (शिरीष) पिनद्ध निबद्ध बलाह स्थूल विदग्ध [विजग्ध] विभग्न [निमग्न] बाहु खदिर शर्करा ॥ **इति वराहादिः ॥ ९७ ॥**

१७ कुमुद गोमथ रथकार दशग्राम अश्वत्थ शाल्मलि [शिरीष] मुनिस्थल कुंडल कूट मधुकर्ण घासकुन्द शुचिकर्ण ॥ **इति कुमुदादिः ॥ ९८ ॥**

१३०१ वरणादिभ्यश्च । ४ । २ ।८२ ॥ वरणा शृङ्गी शाल्मलि शुंडी शयांडी पर्णी ताम्रपर्णी गोद आलिङ्गयायन जालपदी (जानपदी) जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयिनी गया मथुरा तक्षशिला उरसा गोमती बलभी ॥ **इति वरणादिः ॥ ९९ ॥**

१३०५ मध्वादिभ्यश्च । ४ । २ । ८६ ॥ मधु बिस स्थाणु वेणु कर्कन्धु शमी करीर हिम किशरा शर्याण मरुत् वार्दोली शर इष्टका आसुति शक्ति आसन्दी शकल शलाका आमिषी इक्षु रोमन् रुष्टि रुष्य तक्षशिला खड वट वेट ॥ **इति मध्वादिः ॥ १०० ॥**

१३०९ उत्करादिभ्यश्छः । ४ । २ । ९० ॥ उत्कर संफल शफर पिप्पल पिप्पलीमूल अश्मन् सुवर्ण खलाजिन तिक कितव अणक त्रैवण पिचुक अश्वत्थ काश क्षुद्र भस्त्रा शाल जन्या अजिर चर्मन् उत्क्रोश क्षान्त खदिर शूर्पणाय श्यावनाय नैवाकव तृण वृक्ष शाक पलाश विजिगीषा अनेक आतप फल संपर अर्क गर्त अग्नि बैराणक इडा अरण्य निशान्त पर्ण नीचायक शंकर अवरोहित क्षार विशाल वेत्र अरीहण खण्ड वातागार मन्त्रणार्ह इन्द्रवृक्ष नितान्तवृक्ष आर्द्रवृक्ष ॥ **इत्युत्करादिः ॥ १०१ ॥**

१०३० नडादीनां कुक्च । ४ । २ । ९१ ॥ नड प्लक्ष बिल्व वेणु वेत्र वेतस इक्षु काष्ठ कपोत तृण । क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च । तक्षन्नलोपश्च ॥ इति नडादिः॥१०२॥

१३१५ कत्र्यादिभ्यो ढकञ् । ४ । २ । ९५ ॥ कत्रि उम्भि पुष्कर पुष्कल मोदन कुम्भी कुण्डिन नगरी माहिष्मती वर्मती उख्या ग्राम । कुड्याया यलोपश्च ॥ इति कत्र्यादिः ॥ १०३ ॥

१३१७ नद्यादिभ्यो ढक् । ४ । २ । ९७ ॥ नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी वनकौशाम्बी काशपरी काशफारी (काशफरी) खादिरी पूर्वनगरी पाठा माया शाल्वदार्वा सेतकी । वडवाया वृषे ॥ इति नद्यादिः ॥ १०४ ॥

२३३१ प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् । ४। २ । ११० ॥ पलदी परिषद् रोमक वाहीक कलकीट बहुकीट जालकीट कमलकीट कमलकीकर कमलभिदा गौष्ठी नैकती परिखा शूरसेन गोमती पटच्चर उदपान यकृल्लोम ॥ इति पलद्यादिः ॥ १०५ ॥

१३४० काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ । ४ । २ । ११६ ॥ काशि चेदि (वेदि) सांयाति संवाह अच्युत मोदमान शकुलाद हस्तिकर्षू कुनामन् हिरण्य करण गोवासन भारङ्गी अरिंदम अरित्र देवदत्त दशग्राम शौवावतान युवराज उपराज देवराज मोदन सिन्धुमित्र दासमित्र सुधामित्र सोममित्र छागमित्र साधमित्र (सधमित्र)। आपदादिपूर्वपदात्कालान्तात् । आपद् ऊर्ध्वतत् ॥ इति काश्यादिः ॥ १०६ ॥

१३५१ धूमादिभ्यश्च ।४।२।१२७ ॥ धूम षडण्ड शशादन आर्जुनाव माहकस्थली आनकस्थली माहिषस्थली मानस्थली अट्टस्थली मद्रकस्थली समुद्रस्थली दाण्डायनस्थली राजस्थली विदेह राजगृह सात्रासाह शष्प मित्रवर्ध (मित्रवर्ध) मजाली मद्रकूल आजीकूल द्व्यहव (द्व्याहाव) त्र्यहव (त्र्याहाव) संस्फाय बर्बर वर्ज्य गर्त आनर्त माठर पाथेय घोष पल्ली आराज्ञी धार्तराज्ञीआवय तीर्थ। कूलात्सौवीरेषु । समुद्रान्नावि मनुष्ये च । कुक्षि अन्तरीप द्वीप अरुण उज्जयनी पट्टार दक्षिणापथ साकेत ॥ इति धूमादिः ॥ १०७ ॥

१३५७ कच्छादिभ्यश्च । ४ । २ ॥ १३३ ॥ कच्छ सिन्धु वर्ण गन्धार मधुमत् कम्बोज कश्मीर साल्व कुरु अनुषण्ड द्वीप अनूप अजवाह विजापक कलूतर रङ्कु॥ इति कच्छादिः ॥ १०८ ॥

१३६२ गहादिभ्यश्च । ४ । २ । १३८ ॥ गह अन्तस्थ सम विषम मध्य । मध्यं दिनं चरणे । उत्तम अङ्ग वङ्ग मगध पूर्वपक्ष अपरपक्ष अधमशाख उत्तमशाख एकशाख समानशाख समानग्राम एकग्राम एकवृक्ष एकपलाश इष्वग्र इष्वनीक अवस्यन्दन कामप्रस्थ खाडायन काठेरणि लावेरणि सौमित्रि शैशिरि आसुत् दैवशर्मि श्रौति आहिंसि आमित्रि व्याडि बैजि आध्यश्वि आनृशंसि शौङ्गि आग्निशर्मि भौजि वाराटकी वाल्मिकि (वाल्मीकि) क्षैमवृद्धि आश्वत्थि औद्गाहमानि ऐकवन्दवि दन्ताग्र हंस तत्त्वग्र (तन्त्वग्र) उत्तर अन्तर (अनन्तर) मुखपार्श्वतसोर्लोपः जनपरयोः कुक्च । देवस्य च । इति गहादिः॥ वेणुकादिभ्यश्छण् ॥ आकृतिगणः ॥ १०९ ॥

१३८७ संधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् । ४ । ३। १६ । संधिवेला संध्या अमावास्या त्रयोदशी चतुर्दशी पञ्चदशी पौर्णमासी प्रतिपत् । संवत्सरात्फलपर्वणोः ॥ इति संधिवेलादिः ॥ ११० ॥

१४२९ दिगादिभ्यो यत् । ४ । ३ । ५४ ॥ दिश् वर्ग पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अन्तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् देश आदि अन्त मुख जघन मेघ यूथ । उदकात्संज्ञायाम् । न्याय (न्याय) वंश वेश काल आकाश ॥ इति दिगादिः ॥ १११॥

१४३६ * परिमुखादिभ्यश्च * ४ । ३ । ५९ ॥ परिमुख परिहनु पर्योष्ठ पर्युलूखल परिसीर उपसीर उपस्थूण उपकलाप अनुपथ अनुपद अनुगङ्ग अनुतिल अनुसीत अनुसाय अनुसीर अनुमाष अनुयव अनुयूप अनुवंश प्रतिशाख॥इति परिमुखादिः ॥ ११२॥

१४३७ * अध्यात्मादिभ्यश्च * ४ । ३ । ६० ॥ अध्यात्म अधिदेव अधिभूत इहलोक परलोक ॥ इत्यध्यात्मादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ११३ ॥

१४५२ अणृगयनादिभ्यः । ४ । ३ । ७३ ॥ ऋगयन पदव्याख्यान छन्दोमानछन्दोभाषा छन्दोविचिति न्याय पुनरुक्त निरुक्त व्याकरण निगम वास्तुविद्या क्षत्रविद्या अङ्गविद्या विद्या उत्पात उत्पाद उद्याव संवत्सर मुहूर्त उपनिषद् निमित्त शिक्षा भिक्षा ॥ इति ऋगयनादिः ॥ ११४ ॥

१४५५ शुण्डिकादिभ्योऽण् । ४ । ३ । ७६॥ शुण्डिक कृकण कृपण स्थण्डिल उदपान उपल तीर्थ भूमि तृण पर्ण ॥ इति शुण्डिकादिः ॥ ११५ ॥

१४७२ शण्डिकादिभ्यो ञ्यः । ४ ।३। ९२॥ शण्डिक सर्वसेन सर्वकेश शक शट रक शंख बोध ॥ इति शण्डिकादिः ॥ ११६ ॥

१४७३ सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ।४।३।९३॥ १ सिन्धु वर्णु मधुमत् कम्बोज साल्व कश्मीर गन्धार किष्किन्धा उरसा दरद (दरद्) गन्दिका ॥ इति सिन्ध्वादिः ॥ ११७ ॥

२ तक्षशिला वत्सोद्धरण कैमेंदुर ग्रामणी छगल क्रौ-ष्टुकर्ण सिंहकर्ण सङ्कुचित किंनर काण्डधार पर्वत अवसान बर्बर कंस ॥ **इति तक्षशिलादिः ॥ ११८ ॥**

२४८६ शौनकादिभ्यश्छन्दसि । ४।३।१०६॥ शौनक वाजसनेय शार्ङ्गरव शापेय शाष्पेय खाडायन स्तम्भस्कन्ध देवदर्शन रज्जुभार रज्जुकण्ठ कठशाठ कषाय तल दण्ड पुरुषांसक अश्वपेज॥ **इति शौनकादिः११९॥**

१४९८ कुलालादिभ्यो वुञ् । ४ । ३।११८॥ कुलाल वरुड चाण्डाल निषाद कर्मार सेना सिरिन्ध्र (सिरिध्र) सैरिन्ध्र देवराज पर्षत् (परिषत्) वधू मधु रुरु रुद्र अनडुह ब्रह्मन् कुम्भकार श्वपाक बैजवापि ॥ **इति कुलालादिः ॥ १२० ॥**

१५११ रैवतिकादिभ्यश्छः । ४ । ३ । १३१॥ रैवतिक स्वापिशि क्षैमवृद्धि गौरग्रीव (गौर ग्रीवि) औदमेघि औदवापि बैजवापि॥ **इति रैवतिकादिः॥१२१॥**

१५१६ बिल्वादिभ्योऽण् । ४ । ३ । १३६ ॥ बिल्व व्रीहि काण्ड मुद्ग मसूर गोधूम इक्षु वेणु गवेधुका कर्पासी पाटली कर्कन्धु कुटीर॥ **इति बिल्वादिः१२२॥**

१५२१ पलाशादिभ्यो वा । ४ । ३ । १४१॥ पलाश खदिर शिंशपा स्पन्दन पुलाक करीर शिरीष यवास विकङ्कत ॥ **इति पलाशादिः ॥ १२३ ॥**

१५२४ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः । ४।३।१४४ ॥ शर दर्भ मृद् (मृत्) कुटी तृण सोम बल्वज ॥ **इति शरादिः ॥ १२४ ॥**

१५३० तालादिभ्योऽण् । ४ । ३ । १५२ ॥ तालाद्धनुषि । बार्हिण इन्द्रालिश इन्द्रादश इन्द्रायुध चय श्यामाक पीयूक्षा ॥ **इति तालादिः ॥ १२५ ॥**

१५३२ प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ।४।३। १५४ ॥ रजत सीस लोह उदुम्बर नीप दारु रोहीतक विभीतक पीतदारु तीव्रदारु त्रिकण्टक कण्टकार ॥ **इति रजतादिः ॥ १२६ ॥**

१५४२ प्लक्षादिभ्योऽण् । ४ । ३ । १६४ ॥ प्लक्ष न्यग्रोध अश्वत्थ इंगुदी शिग्रु रुरु कक्षतु बृहती ॥ **इति प्लक्षादिः ॥ १२७ ॥**

१५४६ हरीतक्यादिभ्यश्च । ४ । ३ । १६७॥ हरीतकी कोशातकी नखरजनी शष्कण्डी दाडी दोडी श्वेतपाकी अर्जुनपाकी द्राक्षा काला ध्वाक्षा गर्गीका कण्टकारिका पिप्पली चिम्पा (चिञ्चा) शेफालिका ॥ **इति हरीतक्यादिः ॥ १२८ ॥**

१५४८ * माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम् * ।४। ४ । १ ॥ माशब्दः नित्यशब्दः । कार्यशब्दः ॥ **इति माशब्दादिः ॥ १२९ ॥**

२५४९ * आहौ प्रभूतादिभ्यः * ४ । ४।१॥ प्रभूत पर्याप्त ॥ **इति प्रभूतादिः ॥ १३० ॥**

२५४९ * पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः * ४ । ४। १ ॥ सुस्नात सुखरात्रि सुखशयन ॥ **इति सुस्नातादिः ॥ १३१ ॥**

२५४९ * गच्छतौ परदारादिभ्यः * । ४।४। १ ॥ परदार गुरुतल्प **इति परदारादिः ॥ १३२ ॥**

१५५९ पर्पादिभ्यः ष्ठन् । ४ । ४ । १० ॥ पर्प अश्व अश्वत्थ रथ जाल न्यास व्याल । पादः पञ्च ॥ **इति पर्पादिः ॥ १३३ ॥**

१५६२ वेतनादिभ्यो जीवति । ४ । ४ ।१२॥ वेतन वाहन अर्धवाह धनुर्दण्ड जाल वेश उपवेश प्रेषण उपावस्ति सुख शय्या शक्ति उपनिषद् उपदेश स्फिज् (स्फिज) पाद उपस्थ उपस्थान उपहस्त ॥ **इति वेतनादिः ॥ १३४ ॥**

१५६५ हरत्युत्संगादिभ्यः । ४। ४।१५॥ उत्संग उडुप उत्पुत उत्पन्न उत्पुट पिटक पिटाक **इत्युत्संगादिः ॥ १३५ ॥**

१५६६ भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् । ४ । ४ । १६ ॥ भस्त्रा भरट भरण शीर्षभार शीर्षेभार अंसभार अंसेभार ॥ **इति भस्त्रादिः ॥ १३६ ॥**

१५६९ निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः । ४ । ४ । १९ ॥ अक्षद्यूत [जानूप्रहृत] जङ्घाप्रहृत जङ्घाप्रहत पादस्वेदन कण्टकमर्दन गतानुगत गतागत यातोपयात अनुगत ॥ **इत्यक्षद्यूतादिः ॥ १३७ ॥**

१५९८ अण्महिष्यादिभ्यः । ४ । ४ । ४८ ॥ महिषी प्रजापति प्रजावती प्रलेपिका विलेपिका अनुलेपिका पुरोहित मणिपाली अनुवारक [अनुचारक] होतृ यजमान ॥ **इति महिष्यादिः ॥ १३८ ॥**

१६०३ किसरादिभ्यः ष्ठन् । ४ । ४। ५३ ॥ किसर नरद नलद स्थागल तगर गुग्गुलु उशीर हरिद्रा हरिद्रु पर्णी (पर्णी) **इति किसरादिः ॥ १३९ ॥**

१६१२ छत्रादिभ्यो णः । ४ । ४ । ६२॥ छत्र शिक्षा प्ररोह स्था बुभुक्षा चुरा तितिक्षा उपस्थान कृषि कर्मन् विश्वधा तपस् सत्य अनृत विशिखा विशिका भक्षा उदस्थान पुरोडा विक्षा चुक्षा मन्द्र ॥ **इति छत्रादिः ॥ १४० ॥**

१६५१ प्रतिजनादिभ्यः खञ् । ४ । ४ । ९९ ॥ प्रतिजन इदंयुग संयुग समयुग परयुग परकुल परस्यकुल अमुष्यकुल सर्वजन विश्वजन महाजन पञ्चजन ॥ **इति प्रतिजनादिः ॥ १४१ ॥**

१६९४कथादिभ्यष्ठक्।४।४।१०२॥ कथा विकथा विश्वकथा संकथा वितण्डा कुष्टविद् (कुष्ठविद्) जनवाद जनेवाद जनोवाद वृत्ति संग्रह गुण गण आयुर्वेद ॥ **इति कथादिः ॥ १४२ ॥**

१६९९ गुडादिभ्यष्ठञ् । ४ । ४ ।१०३॥ गुड कुल्माष सक्तु अपूप मांसौदन इक्षु वेणु संग्राम संघात संक्राम संवाय प्रवास निवास उपवास ॥ **इति गुडादिः ॥ १४३ ॥**

पञ्चमोऽध्यायः ।

१६६२ उगवादिभ्यो यत् । ५ । १ । २ ॥ गो हविस् अक्षर विष बर्हिस् अष्टका स्खदा युग मेधा स्रुच् । नाभि नभं च । शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्संनियोगेन चान्तोदात्तत्वम् । ऊधसोनङ् च । कूप खद दर खर असुर अध्वन् (अध्वन) क्षर वेद बीज दीस (दीप्त)॥ **इति गवादिः ॥ १४४ ॥**

१६६४ विभाषा हविरपूपादिभ्यः । ५ । १ । ४ ॥ अपूप तण्डुल अम्युष (अम्यूष) अभ्योष अवोष अभ्येष पृथुक ओदन सूप पूप किण्व प्रदीप मुसल कटक कर्णवेष्टक इर्गल अर्गल । अन्नविकारेभ्यश्च । यूप स्थूणा दीप अश्व पत्र ॥ **इत्यपूपादिः ॥ १४५ ॥**

१६८२ असमासे निष्कादिभ्यः । ५ । १ । २० ॥ निष्क पण पाद माष वाह द्रोण षष्टि ॥ **इति निष्कादिः ॥ १४६ ॥**

१७०५ गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् । ५।१।३९ ॥ अश्व अश्मन् गण ऊर्णा (उर्म) उमा भङ्गा क्षण (गङ्गा) वर्षा वसु ॥ **इत्यश्वादिः ॥१४७॥**

१७१६ तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः । ५ । १ ।५०॥ वंश कुटज बल्वज मूल स्थूणा स्थूण अक्ष अश्मन् अश्व श्लक्ष्ण इक्षु खट्वा ॥ **इति वंशादिः॥१४८॥**

१७२९ छेदादिभ्यो नित्यम् । ५ । १ । ६४॥ छेद भेद द्रोह दोह नर्ति (नर्त) कर्ष तीर्थ संप्रयोग विप्रयोग प्रयोग विप्रकर्ष प्रेषण संप्रश्न विप्रश्न विकर्ष प्रकर्ष । विराग विरङ्गं च ॥ **इति छेदादिः ॥ १४९॥**

१७३१ दण्डादिभ्यो यः । ५ । १ ।६६ ॥ दंड मुसल मधुपर्क कशा अर्घ मेघ मेधा सुवर्ण उदक वध युग गुहा भाग इभ भङ्ग ॥ **इति दण्डादिः ॥ १५० ॥**

१७५८ * महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्य उपसंख्यानम् * । ५ । १ । ९४ ॥ महानाम्नी आदित्यव्रत गोदान ॥ **इति महानाम्न्यादिः ॥१५१॥**

१७५८ * अवान्तरदीक्षादिभ्यो डिनिर्वक्तव्यः ५ । १ । ९४ ॥ अवान्तरदीक्षा तिलव्रत देवव्रत ॥ **इत्यवान्तरदीक्षादिः ॥ १५२ ॥**

१७६१ व्युष्टादिभ्योऽण् । ५ । १ । ९७॥ व्युष्ट नित्य निष्क्रमण प्रवेशन उपसंक्रमण तीर्थ आस्तरण सङ्ग्राम संघात ॥ **इति व्युष्टादिः ॥ १५३ ॥**

१७६१* अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम् * । ५ १ । ९७ ॥ अग्निपद पीलुमूल (पीलु मूल) प्रवास उपवास आकृतिगण इति अग्निपदादिः ॥ १५४ ॥

१७३९ तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः । ५ ।१ । १०१ ॥ संताप संनाह संग्राम संयोग संपराय संवेशन संपेष निष्पेष सर्ग निसर्ग विसर्ग उपसर्ग प्रवास उपवास संघात संवेष संवास संमोदन सक्तु । मांसौदनाद्विगृहीतादपि ॥ **इति संतापादिः ॥१५५॥**

१७३६ * तदप्रकरणे उपवस्त्रादिभ्य उपसंख्यानम् * । ५ । १ । १०५ ॥ उपवस्त्र प्राशितृ चूडा श्रद्धा ॥ **इत्युपवस्त्रादिः ॥ १५६ ॥**

१७७४ अनुप्रवचनादिभ्यश्छः । ५ ।१।१११॥ अनुप्रवचन उत्थापन उपस्थापन संवेशन प्रवेशन अनुप्रवेशन अनुवासन अनुवचन अनुवाचन अन्वारोहण प्रारम्भण आरम्भण आरोहण ॥ **इत्यनुप्रवचनादिः॥१५७॥**

१७७४ * स्वर्गादिभ्यो यद्वक्तव्यः * ५ । १ । १११ ॥ स्वर्ग यशस् आयुस् काम धन ॥ **इति स्वर्गादिः ॥ १५८ ॥**

१७७४ * पुण्याहवाचनादिभ्यो लुग्वक्तव्यः * ५ । १ । १११ ॥ पुण्याहवाचन स्वस्तिवाचन शान्तिवाचन ॥ **इति पुण्याहवाचनादिः ॥ १५९ ॥**

१७८४ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा । ५ । १ । १२२ ॥ पृथु मृदु महत् पटु तनु लघु बहु साधु आशु उरु गुरु बहुल खण्ड दण्ड चण्ड अकिंचन बाल होड पाक वत्स मन्द स्वादु ह्रस्व दीर्घ प्रिय वृष ऋजु क्षिप्र क्षुद्र अणु ॥ **इति पृथ्वादिः ॥ १६० ॥**

१७८७ वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ।५ ।१। १२३॥ दृढ वृढ परिवृढ भृश कृश वक्र शुक्र चुक्र आम्र कष्ट लवण ताम्र शीत उष्ण जड बधिर पण्डित मधुर मूर्ख मूक स्थिर । वेर्यातलातमतिर्मनः शारदानाम् । समो मतिमनसोः । जवन ॥ **इति दृढादिः ॥ १६१ ॥**

१७८८ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च । ५ । १ । १२४ ॥ ब्राह्मण वाडव माणव । अर्हतो नुम्च । चोर धूर्त आराधय विराधय अपराधय उपराधय एकभाव द्विभाव त्रिभाव अन्यभाव अक्षेत्रज्ञ संवादिन् संवेशिन् संभाषिन् बहुभाषिन् शीर्षघातिन् विघातिन् समस्थ विषमस्थ परमस्थ मध्यमस्थ अनीश्वर कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ निश्न बालिश अलस दुःपुरुष कापुरुष राजन् गणपति अधिपति गडुल दायाद

विशस्ति विषम विपात निपात । सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे । चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च । शौटीर॥ **आकृतिगणोऽयम्॥ इति ब्राह्मणादिः ॥ १६२ ॥**

१७८९ * चतुर्वेदादिभ्य उभयपदवृद्धिश्च * ५ । १ । १२४ ॥ चतुर्वेद चतुर्वर्ण चतुराश्रम सर्वविद्य त्रिलोक त्रिस्वर षड्गुण सेना अन्तर संनिधि समीप उपमा सुख तदर्थ इतिह मणिक ॥ **इति चतुर्वेदादिः ॥१६३॥**

१७९३ पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् । ५ । १ । १२८ ॥ पुरोहित । राजाऽसे । ग्रामिक पिण्डित सुहित बालमन्द (बाल मन्द) खण्डिक दण्डिक वर्मिक कर्मिक धर्मिक शीलिक सूतिक मूलिक तिलक अञ्जलिक (अन्तलिक) रूपिक ऋषिक पुत्रिक अविक छत्रिक पर्षिक पथिक चर्मिक प्रतिक सारथि आस्तिक सूचिक संरक्ष सूचक (संरक्षसूचक) नास्तिक अजानिक शाकर नागर चूडिक ॥ **इति पुरोहितादिः ॥ १६४ ॥**

१७१४ प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् । ५ । १ । १२९ ॥ उद्गातृ उन्नेतृ प्रतिहर्तृ प्रशास्तृ होतृ पोतृ हर्तृ रथगणक पत्तिगणक सुष्टु दुष्टु अध्वर्यु वधू । सुभग मन्त्र ॥ **इत्युद्गात्रादिः ॥ १६५ ॥**

१३९९ हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ।५।१।१३०॥ युवन् स्थविर होतृ यजमान। पुरुषाऽसे। भ्रातृ कुतुक श्रमण (श्रवण) कटुक कमण्डलु कुस्त्री सुस्त्री दुःस्त्री सुहृदय दुर्हृदय सुहृद् दुर्हृद् सुभ्रातृ दुर्भ्रातृ वृषल परिव्राजक सब्रह्मचारिन् अनृशंस । हृदयाऽसे । कुल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ । श्रोत्रियस्य यलोपश्च ॥ **इति युवादिः ॥ १६६ ॥**

१७९८ द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च । ५ । १।१३३ ॥ मनोज्ञ प्रियरूप अभिरूप कल्याण मेधाविन् आढ्य कुलपुत्र छान्दस छात्र श्रोत्रिय चोर धूर्त विश्वदेव युवन् कुपुत्र ग्रामपुत्र ग्रामकुलाल ग्रामड (ग्रामषण्ड) ग्रामकुमार सुकुमार बहुल अवश्यपुत्र अमुष्यपुत्र आमुष्यकुल सारपुत्र शतपुत्र ॥ **इति मनोज्ञादिः ॥ १६७ ॥**

१८२५ तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ । ५ । २ । २४ ॥

१ पीलु कर्कन्धू (कर्कन्धु) शमी करीर बल (कुवल) वदर अश्वत्थ खदिर ॥ **इति पील्वादिः ॥ १६८ ॥**

२ कर्ण अक्षि नख मुख केश पाद गुल्फ भ्रू शृङ्ग दन्त ओष्ठ पृष्ठ ॥ **इति कर्णादिः ॥ १६९ ॥**

१८३७ तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् । ५। २ । ३६ ॥ तारका पुष्प कर्णक मञ्जरी ऋजीष क्षण सूच सूत्र निष्क्रमण पुरीष उच्चार प्रचार विचार कुड्मल कण्टक मुसल मुकुल कुसुम कुतूहल स्तबक (स्तवक) किसलय पल्लव खण्डवेग निद्रा मुद्रा बुभुक्षा धेनुष्या पिपासा श्रद्धा अभ्र पुलक अङ्गारक वर्णक द्रोह दोह सुख दुःख उत्कण्ठा भर व्याधि वर्मन् व्रण गौरव शास्त्र तरङ्ग तिलक चन्द्रक अन्धकार गर्व कुसुर (मुकुर) हर्ष उत्कर्ष रण कवलय गर्ध क्षुध् सीमन्त ज्वर गर रोग रोमाञ्च पण्डा कज्जल तृष् कोरक कल्लोल स्थपुट फल कन्चुक शृङ्गार अङ्कुर शैवल बकुल श्वभ्र अराल कलङ्क कर्दम कन्दल मूर्च्छा अङ्गार हस्तक प्रतिबिम्ब विघ्नतन्त्र प्रत्यय दीक्षा गर्ज । गर्भादप्राणिनि ॥ **इति तारकादिः ॥ आकृतिगणः ॥ १७० ॥**

१८६१ विमुक्तादिभ्योऽण् । ५ । २ । ६१ ॥ विमुक्त देवासुर रक्षोसुर उपसद सुवर्ण परिसारक सदसत वसु मरुत् पत्नीवत् वसुमत् महीयस्त्व सत्त्वत् बर्हवत् दशार्ण दशार्ह वयस् हविर्धान पतत्रिन् महित्री अस्यहत्य सोमापूषन् इडा अग्नाविष्णू उर्वशी वृत्रहन् ॥ **इति विमुक्तादिः ॥ १७१ ॥**

१८६२ गोषदादिभ्यो वुन् । ५।२।६२॥ गोषद इषेत्वा मातरिश्वन् देवस्यत्वा देवीरापः कृष्णोस्याखरेष्टः देवींधिया (देवींधियम्) रक्षोहण युञ्जान अञ्जन प्रभूत प्रतूर्त कृशानु (कृशाकु) ॥ **इतिं गोषदादिः ॥१७२॥**

१८६४ आकर्षादिभ्यः कन् । ५ । २ । ६४॥ आकर्ष (आकष) त्सरु पिशाच पिचण्ड अशनि अश्मन् निचय जय चय विजय आचय नय पाद दीप ह्रद ह्राद ह्लाद गद्गद शकुनि ॥ **इत्याकर्षादिः ॥ १७३ ॥**

१८८८ इष्टादिभ्यश्च । ५ । २ । ८८ ॥ इष्ट पूर्त उपासादित निगदित परिगदित परिवादित निकथित निषादित निपठित संकलित परिकलित संरक्षित परिरक्षित अर्चित गणित अवकीर्ण आयुक्त गृहीत आम्नात श्रुत अधीत अवधान आसेवित अवधारित अवकल्पित निराकृत उपकृत उपाकृत अनुयुक्त अनुगणित अनुपठित व्याकुलित ॥ **इतीष्टादिः ॥ १७४ ॥**

१८९९ रसादिभ्यश्च । ५ । २ । ९५॥ रस रूप वर्ण गन्ध स्पर्श शब्द स्नेह भाव । गुणात् एकाचः ॥ **इति रसादिः ॥ १७५ ॥**

१९०४ सिध्मादिभ्यश्च । ५ । २ । ९७ ॥ सिध्म गडु मणि नाभि बीज वीणा कृष्ण निष्पाव पांसु पार्श्व पर्शू हनु सक्तु मास (मांस) । पार्ष्णिधमन्योर्दीर्घश्च । वातदन्तबलललाटानामूङ् च । जटाघटाकटाकालाः क्षेपे । पर्ण उदक प्रज्ञा सक्थि कर्ण स्नेह शीत श्याम पिंग पित्त पुष्क पृथु मृदु मंजु मण्ड पत्र चटु कपि गंडु ग्रन्थि श्री

कुश धारा वर्ष्मन् पक्ष्मन् श्लेष्मन् पेश निष्पाद् कुण्ड। क्षुद्रजन्तूपतापयोश्च ॥ **इति सिध्मादिः ॥ १७६ ॥**

१९०७ लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। ५। २। १०० ॥

१ लोमन् रोमन् बभ्रु हरि गिरि कर्क कपि मुनि तरु ॥ **इति लोमादिः ॥ १७७ ॥**

२ पामन् वामन् वेमन् हेमन् श्लेष्मन् कद्रु (कद्रू) वलि सामन् ऊष्मन् कृमि। अङ्गात्कल्याणे। शाकीपलालीदद्रूणां ह्रस्वत्वं च। विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसंधेः। लक्ष्म्या अच॥ **इति पामादिः ॥ १७८ ॥**

३ पिच्छा उरस् ध्रुवक ध्रुवक। जटाघटाकालाः क्षेपे। वर्ण उदक पङ्क प्रज्ञा॥**इति पिच्छादिः॥१७९॥**

१९१० * ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम् * ५। २। १०३ ॥ ज्योत्स्ना तमिस्रा कुंडल कुतप विसर्प विपादिका ॥ **इति ज्योत्स्नादिः ॥ १८० ॥**

१९२३ व्रीह्यादिभ्यश्च। ५। २।११६॥ व्रीहि माया शाला शिखा माला मेखला केका अष्टका पताका चर्मन् कर्मन् वर्मन् दंष्ट्रा संज्ञा वडवा कुमारी नौ वीणा बलाका यवखदनौ कुमारी। शीर्षान्नञः॥ **इति व्रीह्यादिः ॥ १८१ ॥**

१९२४ तुन्दादिभ्य इलच्च। ५। २ ॥ ११७॥ तुन्द उदर पिचंड यव व्रीहि। स्वाङ्गाद्वि-वृद्धौ ॥ **इति तुन्दादिः ॥ १८२ ॥**

१९३३ अर्शआदिभ्योऽच्। ५। २। १२७॥ अर्शस् उरस् तुन्द चतुर पलित जटा घटा घाटा अभ्र अघ कर्दम अम्ल लवण। स्वांगाद्धीनात्। वर्णात्। **इत्यर्शआदिः। आकृतिगणः ॥ १८३ ॥**

१९३७ सुखादिभ्यश्च। ५। २ ॥१३१॥ सुख दुःख तृप्त कृच्छ्र अस्र (आश्र) आस्र अलीक कठण सोढ प्रतीप शील हल। माला क्षेपे। कृपण प्रणाय (प्रणय) दल कक्ष। **इति सुखादिः ॥ १८४॥**

१९४१ पुष्करादिभ्यो देशे ।५।२।१३५॥ पुष्कर पद्म उत्पल तमाल कुमुद नड कपित्थ बिस मृणाल कर्दम शालूक विगर्ह करीष शिरीष यवास प्रवाह हिरण्य कैरव कल्लोल तट तरंग पङ्कज सरोज राजीव नालीक सरोरुह पुटक अरविन्द अम्भोज अब्ज कमल पयस् ॥ **इति पुष्करादिः ॥ १८५ ॥**

१९४२ बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ।५। २ ॥ १३६ ॥ बल उत्साह उद्भास उद्वास उद्दास शिखा कुल चूडा सुल कूल आयाम व्यायाम उपयाम आरोह अवरोह परिणाह युद्ध ॥ **इति बलादिः॥१८६॥**

१९६३ * दशिग्रहणाद्भवदादियोग एव * ।५। ३ ॥ १४ ॥ भवान् दीर्घायुः देवानांप्रिय आयुष्मान् ॥ **इति भवदादिः ॥ १८७ ॥**

२०५९ देवपथादिभ्यश्च । ५। ३ ॥ १०० ॥ देवपथ हंसपथ वारिपथ रथपथ स्थलपथ कारिपथ अजपथ राजपथ शतपथ शङ्कुपथ सिन्धुपथ सिद्धगति उष्ट्रग्रीव वामरज्जु हस्त इन्द्र दंड पुष्प मत्स्य ॥ **इति देवपथादिः॥ आकृतिगणः ॥ १८८ ॥**

२०५८ शाखादिभ्यो यः । ५। ३। १०३ ॥ शाखा मुख जघन शृङ्ग मेघ अभ्र चरण स्कन्ध स्कद(स्कन्द) उरस् शिरस् अग्र शाण ॥ **इति शाखादिः ॥ १८९ ॥**

२०६२ शर्करादिभ्योऽण् । ५। २। १०७ ॥ शर्करा कपालिका कपिष्ठिका (कनिष्ठिका) पुण्डरीक शतपत्र गोलोमन् लोमन् गोपुच्छ नराची नकुल सिकता ॥ **इति शर्करादिः ॥ १९० ॥**

२०६३ अंगुल्यादिभ्यष्ठक्। ५। ३। १०८ ॥ अङ्गुली भरुज बभ्रु वल्गु मण्डर मण्डल शष्कुली हरि कपि मुनि रुह खल उदश्वित् गोणी उरस् कुलिश ॥ **इत्यङ्गुल्यादिः ॥ १९१ ॥**

२०६९ दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः । ५। ३। ११६ ॥ दामनि औलपि बैजवापि औदकि औदङ्कि अच्युतन्ति (आच्युतन्ति) अच्युतदन्ति (आच्युतदन्ति) शाकुन्तकि आकिदन्ति ॥ औडवि काकदन्तकि शात्रुतपि सर्वासेनि विन्दु वैन्दवि तुलभ मौंजायन काकन्दि सावित्रीपुत्र **इति दामन्यादिः ॥ १९२ ॥**

२०७० पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ।५।३।११७॥

१ पर्शु असुर रक्षस् बाह्लीक वयस् वसु मरुत् सत्त्वत् दशार्ह पिशाच अशनि कर्षापण॥**इति पर्श्वादिः॥१९३॥**

२ यौधेय कौशेय शौक्रेय शौभ्रेय धार्तेय धार्तेय ज्यावाणेय त्रिगर्त भरत उशीनर॥ **इति यौधेयादिः॥१९४॥**

२०७५ स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्। ५। ४। ३ ॥ स्थूल अणु माषेषु (माष इषु०) कृष्ण तिलेषु। यव व्रीहिषु। इक्षु तिल। पाद्यकालावदात सुरायाम्। गोमूत्र आच्छादने। सुरा अहौ जीर्णशालिषु। पत्रमूल समस्तो व्यस्तश्च। कुमारीपुत्र कुमारीश्वशुर मणि ॥ **इति स्थूलादिः ॥ १९५ ॥**

२०९७ यावादिभ्यः कन्। ५ ।४ ।२९ ॥ याव मणि अस्थि तालु जानु सान्द्र पीत स्तम्ब। ऋतावुष्णशीते। पशौ लूनविपाते। अणु निपुणे। पुत्र कृत्रिमे। स्नात वेदसमाप्तौ। शून्य रिक्ते। दान कुत्सिते। तनु सूत्रे ईयसश्च। ज्ञात अज्ञात। कुमारीक्रीडनकानि च (कुमारक्रीडनकानि च) **इति यावादिः ॥ १९६ ॥**

२१०२ विनयादिभ्यष्ठक् । ५ । ४ । ३४ ॥ विनय समय । उपायो ह्रस्वत्वं च । संप्रति संगति कथंचित् अकस्मात् समाचार उपचार समाय (समयाचार) व्यवहार संप्रदान समुत्कर्ष समूह विशेष अत्यय ॥ इति विनयादिः ॥ १९७ ॥

२१०६ प्रज्ञादिभ्यश्च । ५ । ४ । ३८ ॥ प्रज्ञ वणिज् उशिज् उष्णिज् प्रत्यक्ष विद्वस् वेदन षोडन् विद्या मनस् । श्रोत्र शरीरे । जुह्वत् । कृष्ण मृगे । चिकीर्षत् । चोर शत्रु योध चक्षुस् वसु एनस् मरुत् क्रुञ्च सत्त्वत् दशार्ह वयस् व्याकृत असुर रक्षस् पिशाच अशनि कर्षापण देवता बन्धु ॥ इति प्रज्ञादिः ॥ १९८ ॥

२१११ * आद्यादिभ्य उपसंख्यानम् * । ५। ४।४४॥ आदि मध्य अन्त पृष्ठ पार्श्व ॥ इत्याद्यादिः ॥ आकृतिगणः ॥ १९९ ॥

६७७ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः । ५ । ४ । १०७ ॥ शरद् विपाश् अनस् मनस् उपानह् अनडुह् दिव् हिमवत् हिरुक् विद् सद् दिश् दृश् विश् चतुर् त्यद् तद् यद् कियत् । जराया जरश्च । प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः। पथिन् ॥ इति शरदादिः ॥ २०० ॥

९६७ द्विदण्ड्यादिभ्यश्च । ५ । ४ । १२८ ॥ द्विदण्डि द्विमुसलि उभाञ्जलि उभयाञ्जलि उभादन्ति उभयादन्ति उभाहस्ति उभयाहस्ति उभाकर्णि उभयाकर्णि उभापाणि उभयापाणि उभाबाहु उभयाबाहु एकपदि प्रोष्ठपदि आढ्यपदि (आढ्यपदि) सपदि निकुच्यकर्णि संहतपुच्छि अन्तेवासि ॥ इति द्विदण्ड्यादिः ॥२०१॥

८७७ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः । ५ । ४ । १३८ ॥ हस्तिन् कुद्दाल अश्व कशिककुरुत कटोल कटोलक गण्डोल गण्डोलक कण्डोल कण्डोलक अज कपोत जाल गण्ड महेला दासी गणिका कुसूल ॥ इति हस्त्यादिः ॥ २०२ ॥

८७८ कुम्भपदीषु च । ५ । ४ । १३९ ॥ कुम्भपदी एकपदी जालपदी शूलपदी मुनिपदी गुणपदी शतपदी सूत्रपदी गोधापदी कलशीपदी विपदी तृणपदी द्विपदी त्रिपदी षट्पदी दासीपदी शितिपदी विष्णुपदी सुपदी निष्पदी आर्द्रपदी कुणिपदी कृष्णपदी शुचिपदी द्रोणीपदी (द्रोणपदी) द्रुपदी सूकरपदी शकृत्पदी अष्टापदी स्थूणापदी अपदी सूचीपदी ॥ इति कुम्भपद्यादिः ॥ २०३ ॥

८८९ उरःप्रभृतिभ्यः कप् । ५ । ४ । १५१ ॥ उरस् सर्पिस् उपानह् पुमान् अनड्वान् पयः नौः लक्ष्मीः दधि मधु शाली शालिः । अर्थान्नञः ॥ इत्युरःप्रभृतयः ॥ २०४ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

७९ * शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् * । ६ । १ । ९४ ॥ शकन्धुः कर्कन्धुः कुलटा । सीमन्तः केशवेशे । हलीषा मनीषा लाङ्गलीषा पतञ्जलिः । सारङ्गः पशुपक्षिणोः ॥ इति शकन्ध्वादिः ॥ २०५ ॥

३०७१ पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् । ६।१। १५७ ॥ पारस्करो देशः । कारस्करो वृक्षः । रथस्या नदी । किष्कुः प्रमाणम् । किष्किन्धा गुहा । तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च । प्रातुम्पतौ गवि कर्तरि ॥ इति पारस्करादिः ॥ २०६ ॥

३६८१ उञ्छादीनां च । ६ । १ ।१६०॥ उञ्छ म्लेच्छ जञ्ज नल्प (जल्प) जप वध । युग कालविशेषे । रथाद्युपकरणे च । गरो दूष्ये । वेदवेगवेष्टबन्धाः करणे । स्तुयुद्रुवश्छन्दसि । वर्तनि स्तोत्रे । श्वभ्रे दरः । साम्बतापौ भावगर्हायाम् । उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र । भक्षमन्थभोगमन्थाः ॥ इत्युञ्छादिः ॥ २०७ ॥

३६९१ वृषादीनां च । ६ । १ । २०३ ॥ वृषः जनः ज्वरः ग्रहः हयः गयः नयः तायः तयः चयः अमः वेदः सूदः अंशः गुहा । शमरणौ संज्ञायाम् । संमतौ भावकर्मणोः । मन्त्रः शान्तिः कामः यामः आरा धारा कारा वहः कल्पः पादः॥ इति वृषादिः॥आकृतिगणः॥ अविहितलक्षणमाद्युदात्तत्वं वृषादिषु ज्ञेयम् ॥ २०८ ॥

३७५८ विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु । ६।२।२४॥ विस्पष्ट विचित्र विचित्त व्यक्त संपन्न पटु पंडित कुशल चपल निपुण ॥ इति विस्पष्टादिः ॥ २०९ ॥

३७७१ कार्तकौजपादयश्च । ६ । २ । ३७ ॥ कार्तकौजपौ सावर्णिमाण्डकेयौ (सावर्णिमाण्डूकेयौ) अवन्त्यश्मकाः पैलश्यापर्णेयाः कपिश्यापर्णेयाः शैतिकाक्षपाञ्चालेयाः कटुकवाधूलेयाः शाकलशुनकाः शाकलशणकाः शणकबाभ्रवाः आर्चाभिमौद्गलाः कुन्तिसुराष्ट्राः चिन्तिसुराष्ट्राः तण्डवतण्डाः अविमत्तकामविद्धाः बाभ्रवशालङ्कायनाः बाभ्रवदानच्युताः कठकालापाः कठकौथुमाः कौथुमलौकाक्षाः स्त्रीकुमारम् मौदपैप्पलादाः वत्सजरन्तः सौश्रुतपार्थिवाः जरामृत्यू याज्यानुवाक्ये॥ इति कार्तकौजपादिः ॥ २१० ॥

३७७६ कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा पारेवडवा तैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च । ६ । २ । ४२ ॥ दासीभारः देवहूतिः देवभीतिः देवलातिः वसुनीतिः (वसूनितिः) ओषधिः चन्द्रमाः ॥ इति दासीभारादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २११ ॥

३९१९ युक्तारोह्यादयश्च । ६ । २ । ८१ ॥ युक्तारोही आगतरोही आगतयोधी आगतवञ्ची आगतनन्दी आगतप्रहारी आगतप्रमत्स्यः क्षीरहोता भगिनीभर्ता ग्रामगोधुक् अश्वत्रिरात्रः गर्गत्रिरात्रः व्युष्टित्रिरात्रः गणपादः एकशितिपाद् । पात्रेसमितादयश्च ॥ **इति युक्तारोह्यादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २१२ ॥**

३८७९ घोषादिषु च । ६ । २ । ८५ ॥ घोष घट (कट) वल्लभ ह्रद बदरी पिङ्गल (पिङ्गली) पिशङ्ग माला रक्षा शाला (वृट्) कुट कूट शाल्मली अश्वत्थ तृण शिल्पी मुनि प्रेक्षाकू (प्रेक्षा)॥ **इति घोषादिः॥२१३॥**

३८८० छात्र्यादयः शालायाम् । ६ । २।८६॥ छात्रि पेलि भाण्डि व्याडि आखण्डि आटि गोमि ॥ **इति छात्र्यादिः ॥ २१४ ॥**

३८८१ प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् । ६ । २ । ॥ ८७ ॥ कर्कि (कर्की) मघ्री मकरी कर्कन्धु शमी करीरि (करीर) कन्दुक कुवल (कवल) बदरी ॥ **इति कर्क्यादिः ॥ २१५ ॥**

३८८२ मालादीनां च । ६ । २ । ८८ ॥ माला शाला शोणा (शोण) द्राक्षा स्राक्षा शामा काञ्ची एक काम दिवोदास वध्यश्च ॥ **इति मालादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २१६ ॥**

३८९२ क्रत्वादयश्च । ६ । २ । ११८ ॥ क्रतु दृशीक प्रतीक प्रतूर्ति हव्य भव्य भग ॥ **इति क्रत्वादिः ॥ २१७ ॥**

३८९९ आदिश्चिहणादीनाम् । ६ ।२। १२५॥ चिहण मदुर मद्रुमर वैतुल पटत्क वैडालिकर्णक वैडालिकर्णि कुक्कुट चिक्कण चित्क्कण॥ **इति चिहणादिः२१८**

३८६९ वर्ग्यादयश्च । ६ । २ ।१३१ ॥ दिगादिषु वर्गादयस्त एव कृतयदन्ता वर्ग्यादयः॥२१९॥

३८६८ चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः । ६ । २ । १३४ ॥ चूर्ण करिष करीष शाकिन शाकट द्राक्षा तूस्त कुन्दम दलप चमसी चक्कन चौल ॥ **इति चूर्णादिः ॥ २२० ॥**

३८७४ उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् । ६ । २ । १४० ॥ वनस्पतिः बृहस्पतिः शचीपतिः तनूनपात् नराशंसः शुनःशेपः शण्डामर्कौ तृष्णावरूत्री लम्बाविश्ववयसौ मर्मृत्युः **इति ॥ वनस्पत्यादिः ॥ २२१ ॥**

३८८० संज्ञायामनाचितादीनाम् ।६।२।१४६॥ आचित पर्याचित आस्थापित परिगृहीत निरुक्त प्रतिपन्न अपश्लिष्ट प्रश्लिष्ट उपहित उपस्थित संहितागवि ॥ **इत्याचितादिः ॥ २२२ ॥**

३८८१ प्रवृद्धादीनां च । ६ । २ । १४७ ॥ प्रवृद्धं यानम् । प्रवृद्धो वृषलः । प्रयुतास्तूष्णवः । आकर्षे अवहितः अवहितो भोगेषु खट्वारूढः । कविशस्तः॥ **इति प्रवृद्धादिः॥आकृतिगणोऽयम्॥** तेन । प्रवृद्धं यानम् । अप्रवृद्धो वृषक्तो रथ इत्यादिः ॥ **२२३ ॥**

३८९४ कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च ।६।२।१६० ॥ चारु साधु यौधिक (यौधकि) अनङ्गमेजय वदान्य अकस्मात् । वर्तमानवर्धमानत्वरमाणध्रियमाणक्रियमाणरोचमानशोभमानाः संज्ञायाम्। विकारसदृशे व्यस्तसमस्ते । गृहपति गृहपतिक । राजाह्नोश्छन्दसि ॥ **इति चार्वादिः ॥ २२४ ॥**

३९१० न गुणादयोऽवयवाः । ६ । २।१७६॥ गुण अक्षर अध्याय सूक्त छन्दोमान ॥ **इति गुणादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २२५ ॥**

३९१८ निरुदकादीनि च । ६ । २ । १८४ ॥ निरुदक निरुपल निर्मक्षिक निर्मशक निष्कालक निष्कालिक निष्पेष दुस्तरीप निस्तरीप निस्तरीक निरजिन उदजिन उपाजिन । परेर्हस्तपादकेशकर्षाः ॥ **इति निरुदकादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २२६ ॥**

३९२७ प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे । ६ । २।१९३॥ अंशु जन राजन् उष्ट्र खेटक अजिर आर्द्रा श्रवण कृत्तिका अर्धपुर ॥ **इत्यंश्वादिः ॥ २२७ ॥**

३९२८ उपाद्द्व्यजजिनमगौरादयः । ६ । २ । १९४ ॥ गौर तैष तैल लेट लोट जिह्वा कृष्ण कन्या गुध कल्प पाद ॥ **इति गौरादिः ॥ २२८ ॥**

३९३३ * त्रिचक्रादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् * ६ ।२। १९९ ॥ त्रिचक्र त्रिवृत् । त्रिवङ्कर ॥ **इति त्रिचक्रादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २२९ ॥**

८३१ स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु । ६ । ३ । ३४ ॥ प्रिया मनोज्ञा कल्याणी सुभगा दुर्भगा भक्तिः सचिवा स्वसा कान्ता क्षान्ता समा चपला दुहिता वामा अबला तनया ॥ **इति प्रियादिः ॥ २३० ॥**

८३६ तसिलादिष्वाकृत्वसुचः । ६ । ३ । ३५ ॥ तसिल् त्रल् तरप् तमप् चरट् जातीयर् कल्पप् देशीयर् रूपप् पाशप् थल् थाल् दा र्हिल् तिल् थ्यन् ॥ **इति तसिलादयः ॥ २३१ ॥**

८३६ * कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु * ६ । ३ । ४२॥ कुक्कुटी मृगी काकी अण्ड पद शाव भ्रुकुंस भृकुटी॥ **इति कुक्कुट्यादिरण्डादिश्च ॥ २३२॥२३३ ॥**

१०३४ पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् । ६ । ३ । १०९ ॥ पृषोदर पृषोत्थान बलाहक जीमूत श्मशान

उद्खल पिशाच बृसी मयूर ॥ इति पृषोदरादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २३४ ॥

१०३८ वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलुकादीनाम् । ६ । ३ । ११७ ॥

१ कोटर मिश्रक सिध्रक पुरग सारिक (शारिक) इति कोटरादिः ॥ २३५ ॥

२ किंशुलुक शाल्व नड अञ्जन भञ्जन लोहित कुक्कुट ॥ इति किंशुलुकादिः ॥ २३६ ॥

१०४१ मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् । ६ । ३ । ११९ ॥ अजिर खदिर पुलिन हंसक (हंस) कारण्ड (कारण्डव) चक्रवाक ॥ इत्यजिरादिः ॥ २३७ ॥

१०४२ शरादीनां च । ६ । ३ । १२० ॥ शर वंश धूम अहि कपि मणि मुनि शुचि हनु ॥ इति शरादिः ॥ २३८ ॥

१०४३ * अपीत्वादीनामिति वक्तव्यम् * ६ । ३ । १२१ ॥ पीलु दारु रुचि चारु गम् कम् ॥ इति पील्वादिः ॥ २३९ ॥

१३११ विल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् । ६ । ४ । १५३ ॥ छविधानार्थं ये नडादयस्ते यदा छसन्नियोगे कृतकुगागमास्ते विल्वकादयः ॥ २४० ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

३५७१ स्नात्व्यादयश्च । ७ । १ ।४९ ॥ स्नात्वी पीत्वी ॥ इति स्नात्व्यादिः ॥ आकृतिगणः॥२४१॥

१३८६ द्वारादीनां च । ७ । ३ । ४ ॥ द्वार स्वर स्वाध्याय व्यल्कश स्वस्ति स्वर स्फ्यकृत् स्वादु मृदु श्वस् श्वन् स्व ॥ इति द्वारादिः ॥ २४२ ॥

१५४९ स्वागतादीनां च । ७ । ३ । ७॥ स्वागत स्वध्वर स्वङ्ग व्यङ्ग व्यड व्यवहार स्वपति ॥ इति स्वागतादिः ॥ २४३ ॥

१४३८ अनुशतिकादीनां च । ७ । ३ । २० ॥ अनुशतिक अनुहोड अनुसंवरण (अनुसंचरण) अनुसंवत्सर अङ्गारवेणु असिहत्य अस्यहत्य अस्यहेति वध्योग पुष्करसद् अनुहरत् कुरुकत कुरुपञ्चाल उदकशुद्ध इहलोक परलोक सर्वलोक सर्वपुरुष सर्वभूमि प्रयोग परस्त्री । राजपुरुषात्ष्यञि । सूत्रनड ॥ इत्यनुशतिकादिः ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ तेन अभिगम अधिभूत अधिदेव चतुर्विद्या ॥ इत्यादिः ॥ २४४ ॥

४६४ * क्षिपकादीनां चोपसंख्यानम् ७ । ३ । ४५ ॥ क्षिपका ध्रुवका चरका सेवका करका चटका अवका हलका अलका कन्यका ध्रुवका एडका ॥ इति क्षिपकादिः ॥आकृतिगणः ॥ २४५ ॥

२८६४ न्यङ्क्वादीनां च । ७ । ३ । ५३ ॥ न्यङ्कु मद्गु भृगु दूरेपाक फलेपाक क्षणेपाक दूरेपाका फलेपाका दूरेपाकु फलेपाकु तक्र (तत्र) वक्र (चक्र) व्यतिषङ्ग अनुषङ्ग अवसर्ग उपसर्ग श्वपाक मांसपाक (मासपाक) मूलपाक कपोतपाक उलूकपाक । संज्ञायां मेघनिदाघावदाघार्घाः । न्यग्रोध विरुत ॥ इति न्यङ्क्वादिः ॥ २४६ ॥

२५६९ * काण्यादीनां वेति वक्तव्यम्* ७ । ४ । ३ ॥ कण रण भण श्रण लुप हेठ ह्वायि वाणि लोटि (लोठि) लोपि ॥ इति काण्यादिः ॥ २४७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

३९३४तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः । ८ । १ । २७ ॥ गोत्र ब्रुव प्रवचन प्रहसन प्रकथन प्रत्ययन प्रपञ्च प्राय न्याय प्रचक्षण विचक्षण अवचक्षण स्वाध्याय भूयिष्ठ वानाम ॥इति गोत्रादिः ॥ २४८ ॥

३९७४ पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः । ८ । १ । ६७॥ काष्ठ दारुण अमातापुत्र वेश अनाज्ञात अनुज्ञात अपुत्र अयुत अद्भुत अनुक्त भृश घोर सुख परम सु अति ॥ इति काष्ठादिः ॥ २४९ ॥

१८९७ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः । ८ । २ । ९ ॥ यव दल्मि ऊर्मि (उर्मि) भूमि कृमि कुञ्चा वशा द्राक्षा ध्राक्षा ध्रजि ध्रजि ध्वजि निजि सिजि संजि हरित् ककुत् मरुत् गरुत् इक्षु द्रु मधु ॥ इति यवादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २५० ॥

१७१ *अहरादीनां पत्यादिषूपसंख्यानम् * ८ । २ । ७० ॥

१ अहर् गीर् धूर् ॥ इत्यहरादिः ॥ २५१ ॥

२ पति गण पुत्र ॥ इति पत्यादिः ॥ २५२ ॥

१४४ कस्कादिषु च । ८ । ३ । ४८ ॥ कस्कः कौतस्कुतः भ्रातुष्पुत्रः शुनस्कर्णः सद्यस्कालः सद्यस्क्रीः साद्यस्कः कांस्कान् सर्पिष्कुण्डिका धनुष्कपालम् बर्हिष्पलम् (बर्हिष्पलम्) यजुष्पात्रम् अयस्कान्तः तमस्काण्डः अयस्काण्डः मेदस्पिण्डः भास्करः अहस्करः ॥ इति कस्कादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २५३ ॥

१०२२ सुषामादिषु च । ८ । ३ । ९८ ॥ सुषामा निःषामा दुःषामा सुषेधः निषेधः निःषेधः दुःषेधः सुषंधिः निःषंधिः दुःषंधिः सुष्ठु दुष्ठु । गौरिषक्थः संज्ञायाम् । प्रतिष्णिका जलाषाहम् (जलाषाडम्) नौषेचनम् दुन्दुभिषेवणम् (दुन्दुभिषेचणम्) । एति संज्ञायामगात् । नक्षत्राद्वा । हरिषेणः रोहिणीषेणः ॥ इति सुषामादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २५४ ॥

३१६८ न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् । ८।३।११०॥ सवने सवने । सूते सूते । सोमे सोमे । सवनमुखे सवनमुखे । किंसं किंसम् (किंसः किंसः) । अनुसवनमनुसवनम् । गोसनिं गोसनिम् । अश्वसनिमश्वसनिम् ॥ **पाठान्तरम्॥** सवने सवने । सवनमुखे सवनमुखे । अनुसवनमनुसवनम् । संज्ञायां बृहस्पतिसवः । शकुनिसवनम् । सोमे सोमे । सुते सुते । संवत्सरे संवत्सरे । बिसं बिसम् । किसं किसम् । मुसलं मुसलम् गोसनिम् अश्वसनिम्॥**इति सवनादिः॥२९५॥**

१०५१ * इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः * ८।९।६ ॥ इरिका मिरिका तिमिरा ॥ **इर्तारिकादिः । आकृतिगणः ॥ २९६ ॥**

१०५४ * गिरिनद्यादीनां च । ८ । ४ ।१०॥ गिरिनदी गिरिनख गिरिनद्ध । गिरिनितम्ब चक्रनदी चक्रनितम्ब तूर्यमान माषोन आर्गयन॥ **इति गिरिनद्यादिः ॥ आकृ० ॥ २९७ ॥**

७९२ क्षुभ्नादिषु च । ८ । ४।३९॥ क्षुभ्न नृनमन नंदिन् नन्दन नगर । एतान्युत्तरपदानि संज्ञायां प्रयोजयन्ति । हरिनन्दी हरिनन्दनः गिरिनगरम् । नृतिर्यङि प्रयोजयन्ति । नरीनृत्यते । नर्तन गहन नन्दन निवेश निवास अग्नि अनूप । एतान्युत्तरपदानि प्रयोजयन्ति । परिनर्तनं परिगहनं परिनन्दनं शरनिवेशः शरनिवासः शराग्निः दर्भानूपः । आचार्यादणत्वं च॥ **आकृतिगणोऽयम् । पाठान्तरम् ॥** क्षुभ्ना तृप्नु नृनमन नरनगर नन्दन । यङ्नृती । गिरिनदी गृहगमन निवेश निवास अग्नि अनूप आचार्यभोगीन चतुर्हायन । इरिकादीनि वनोत्तरपदानि संज्ञायाम्। इरिका तिमिर समीर कुबेर हरि कर्मार ॥ **इति क्षुभ्नादिः ॥ २९८ ॥**

॥ इति श्रीपाणिनिमुनिप्रणीतो गणपाठः समाप्तः ॥

धातुपाठः ।

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥१॥
वाक्यकारं वररुचिं भाष्यकारं पतञ्जलिम् ।
पाणिनिं सूत्रकारं च प्रणतोऽस्मि मुनित्रयम् ॥१॥

भ्वादिगणः ।

१ भू सत्तायाम् ॥ **उदात्तः परस्मैभाषः** ॥ २ एध वृद्धौ । ३ स्पर्ध संघर्षे । ४ गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च। ५ बाधृ लोडने । ६ नाथृ ७ नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु । ८ दध धारणे । ९ स्कुदि आप्रवणे । १० श्विदि श्वैत्ये । ११ वदि अभिवादनस्तुत्योः । १२ भदि कल्याणे सुखे च। १३ मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु । १४ स्पदि किंचिच्चलने । १५ क्लिदि परिदेवने। १६ मुद हर्षे । १७ दद दाने । १८ ष्वद । १९ स्वर्द आस्वादने। २० उर्द माने क्रीडायां च । २१ कुर्द २२ खुर्द २३ गुर्द २४ गुद क्रीडायामेव । २५ षूद क्षरणे। २६ ह्राद अव्यक्ते शब्दे । २७ ह्लादी सुखे च । २८ स्वाद आस्वादने । २९ पर्द कुत्सिते शब्दे। ३० यती प्रयत्ने। ३१ युतृ ३२ जुतृ भासने। ३३ विथृ ३४ वेथृ याचने। ३५ श्रथि शैथिल्ये । ३६ ग्रथि कौटिल्ये । ३७ कत्थ श्लाघायाम् ॥ **एधादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः** ॥ ३८ अत सातत्यगमने । ३९ चिती संज्ञाने । ४० च्युतिर् आसेचने । ४१ श्चुतिर् क्षरणे । ४२ मन्थ विलोडने । ४३ कुथि ४४ पुथि ४५ लुथि ४६ मथि हिंसासंक्लेशनयोः । ४७ षिध गत्याम् । ४८ षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च । ४९ खादृ भक्षणे । ५० खद स्थैर्ये हिंसायां च । ५१ बद स्थैर्ये । ५२ गद व्यक्तायां वाचि । ५३ रद विलेखने । ५४ णद अव्यक्ते शब्दे । ५५ अर्द गतौ याचने च । ५६ नर्द ५७ गर्द शब्दे । ५८ तर्द हिंसायाम् । ५९ कर्द कुत्सिते शब्दे । ६० खर्द दन्दशूके । ६१ अति ६२ अदि बन्धने। ६३ इदि परमैश्वर्ये । ६४ बिदि अवयवे॥ भिदि इत्येके ॥ ६५ गडि वदनैकदेशे । ६६ णिदि कुत्सायाम् । ६७ टुनदि समृद्धौ । ६८ चदि आह्लादे। ६९ त्रदि चेष्टायाम् । ७० कदि ७१ क्रदि ७२ क्लदि आह्वाने रोदने च । ७३ क्लिदि परिदेवने । ७४ शुन्ध शुद्धौ ॥ **अतादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः** ॥ ७५ शीकृ सेचने । ७६ लोकृ दर्शने । ७७ श्लोकृ संघाते । ७८ द्रेकृ ७९ ध्रेकृ शब्दोत्साहयोः । ८० रेकृ शङ्कायाम् ८१ सेकृ ८२ स्रेकृ ८३ स्रकि ८४ श्रकि श्लकि ८५ गतौ । ८६ शकि शङ्कायाम् । ८७ अकि लक्षणे । ८८ वकि कौटिल्ये । ८९ मकि मण्डने । ९० कक लौल्ये । ९१ कुक ९२ वृक आदाने । ९३ चक तृप्तौ प्रतिघाते च । ९४ ककि ९५ वकि ९६ श्वकि ९७ त्रकि ९८ ढौकृ ९९ त्रौकृ १०० ष्वष्क १०१ वस्क १०२ मस्क १०३ टिकृ १०४ टीकृ १०५ तिकृ १०६ तीकृ १०७ रघि १०८ लघि गत्यर्थाः ॥ तृतीयो दन्त्यादिरित्येके । लघि भोजननिवृत्तावपि ॥ १०९ अघि ११० मघि गत्याक्षेपे । मघि कैतवे च १११ राघृ ११२ लाघृ ११३ द्राघृ सामर्थ्ये॥ ११४ ध्राघृ इत्यपि केचित् । द्राघृ आयामे च ॥११५ श्लाघृ कत्थने ॥ **शीकादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः** ॥ ११६ फक्क नीचैर्गतौ । ११७ तक हसने ११८ तकि कृच्छ्रजीवने ११९ बुक्क भषणे । १२० कख हसने । १२१ ओखृ १२२ राखृ १२३ लाखृ १२४ द्राखृ १२५ ध्राखृ शोषणालमर्थयोः १२६ शाखृ १२७ श्लाखृ व्याप्तौ । १२८ उख १२९ उखि १३० वख १३१ वखि १३२ मख १३३ मखि १३४ णख १३५ णखि १३६ रख १३७ रखि १३८ लख १३९ लखि १४० इख १४१ इखि १४२ ईखि १४३ वल्ग १४४ रगि १४५ लगि १४६ अगि १४७ वगि १४८ मगि १४९ तगि १५० त्वगि १५१ श्रगि १५२ श्लगि १५३ इगि १५४ रिगि १५५ लिगि गत्यर्थाः ॥ रिख त्रख त्रिखि शिखि इत्यपि केचित् । त्वगि कम्पने च ॥ १५६ युगि १५७ जुगि १५८ वुगि वर्जने । १५९ घघ हसने ।१६० मघि मण्डने ।१६१ शिघि आघ्राणे ॥ **फक्कादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः** ॥ १६२ वर्च दीप्तौ । १६३ षच सेचने सेवने च । १६४ लोचृ दर्शने । १६५ शच व्यक्तायां वाचि । १६६ श्वच १६७ श्वचि गतौ । १६८ कच बन्धने । १६९ कचि १७० काचि दीप्तिबन्धनयोः । १७१ मच १७२ मुचि कल्कने । कथन इत्यन्ये॥ १७३ मचि धारणोच्छ्रायपूजनेषु १७४ पचि व्यक्तीकरणे । १७५ ष्टुच प्रसादे ।१७६ ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु ।१७७ ऋजि १७८ भृजी भर्जने । १७९ एजृ १८० भ्रेजृ १८१

भ्राजृ दीप्तौ । १८२ ईज गतिकुत्सनयोः ॥ **वर्चादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ॥** १८३ शुच शोके । १८४ कुच शब्दे तारे । १८५ कुञ्च१८६क्रुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोः ।१८७लुञ्च अपनयने ।१८८अञ्चु गतिपूजनयोः । १८९ वञ्चु १९० चञ्चु १९१ तञ्चु १९२ त्वञ्चु १९३ म्रुञ्चु १९४ म्लुञ्चु१९५ म्रुचु १९६ म्लुचु गत्यर्थाः । १९७ ग्रुचु१९८ग्लुचु १९९ कुजु २०० खुजु स्तेयकरणे । २०१ ग्लुञ्चु २०२ षस्ज गतौ । २०३ गुजि अव्यक्ते शब्दे ।२०४ अर्च पूजायाम् । २०५ म्लेछ अव्यक्ते शब्दे । २०६ लछ २०७ लाछि लक्षणे । २०८ वाछि इच्छायाम् । २०९ आछि आयामे। २१० ह्रीछ लज्जायाम् । २११ हुर्च्छा कौटिल्ये । २१२ मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः । २१३स्फुर्छा विस्तृतौ । २१४ युच्छ प्रमादे । २१५ उछि उञ्छे । २१६ उछी विवासे। २१७ध्रज २१८ ध्रजि २१९ धृज २२० धृजि २२१ ध्वज२२२ ध्वजि गतौ २२३ कूज अव्यक्ते शब्दे । २२४ अर्ज २२५ षर्ज अर्जने । २२६ गर्ज शब्दे । २२७ तर्ज भर्त्सने । २२८ कर्ज व्यथने ।२२९ खर्ज पूजने च । २३० अज गतिक्षेपणयोः । २३१ तेज पालने । २३२ खज मन्थे । २३३ खजि गतिवैकल्ये । २३४ एजृ कम्पने । २३५ टुओस्फुर्जा वज्रनिर्घोषे । २३६ क्षि क्षये । २३७ क्षीज अव्यक्ते शब्दे । २३८ लज २३९ लजि भर्जने । २४० लाज २४१ लाजि भर्त्सने च । २४२ जज २४३ जजि युद्धे ।२४४ तुज हिंसायाम्। २४५ तुजि पालने । २४६ गज २४७ गजि २४८ गृज २४९ गृजि २५०मुज २५१ मुजि शब्दार्थाः। २५२ गज मदे च। २५३ वज २५४ व्रज गतौ ॥ **शुचादय उदात्ता उदात्तेतः (क्षिवर्जं) परस्मैभाषाः ॥** २५५ अट्ट अतिक्रमहिंसयोः। २५६ वेष्ट वेष्टने । २५७ चेष्ट चेष्टायाम् । २५८ गोष्ट २५९ लोष्ट संघाते। २६० घट्ट चलने । २६१ स्फुट विकसने । २६२ अठि गतौ। २६३ वठि एकचर्यायाम् । २६४ मठि २६५ कठि शोके । २६६ मुठि पालने । २६७ हेठ विबाधायाम् । २६८ एठ च । २६९ हिडि गत्यनादरयोः । २७० हुडि संघाते। २७१कुडि दाहे । २७२ वडि विभाजने । २७३ मडि च २७४ भडि परिभाषणे । २७५ पिडि संघाते । २७६मुडि मार्जने । २७७ तुडि तोडने २७८ हुडि वरणे । हरणे इत्येके । २७९ चडि कोपे । २८० शडि रुजायां संघाते च । २८१ तडि ताडने । २८२ पडि गतौ । २८३ कडि मदे । २८४ खडि मन्थे । २८५ । हेडृ २८६ होडृ अनादरे । २८७ बाडृ आप्लाव्ये । २८८ द्राडृ २८९ ध्राडृ विशरणे । २९० शाडृ श्लाघायाम् ॥ **अट्टादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ॥** २९१ शौटृ गर्वे । २९२ यौटृ बन्धे। २९३ म्लेटृ २९४ म्रेडृ उन्मादे । २९५ कटे वर्षावरणयोः । चटे इत्येके । २९६ अट २९७ पट गतौ । २९८ रट परिभाषणे। २९९ लट बाल्ये ॥ ३०० शट रुजाविशरणगत्यवसादनेषु । ३०१ वट वेष्टने । ३०२ किट ३०३ खिट त्रासे । ३०४ शिट ३०५ षिट अनादरे । ३०६ जट-३०७ झट संघाते । ३०८ भट भृतौ । ३०९ तट उच्छ्राये । ३१० खट काङ्क्षायाम् । ३११णट नृत्तौ । ३१२ पिट शब्दसंघातयोः । ३१३ हट दीप्तौ । ३१४ षट अवयवे । ३१५ लुट विलोडने । डान्तोऽयमित्येके । ३१६ चिट परप्रेष्ये। ३१७ बिट शब्दे । ३१८ विट आक्रोशे । हिठ इत्येके ॥ ३१९ इट ३२० किट ३२१ कटी गतौ । ३२२ मडि भूषायाम । ३२३ कुडि वैकल्ये । ३२४ मुट मर्दने। ३२५ चुडि अल्पीभावे। ३२६ मुडि खण्डने ॥ पुडि चेत्येके । ३२७ रुटि ३२८ लुटि स्तेये । रुठि लुठि इत्येके। रुडि लुडि इत्यपरे । ३२९ स्फुटिर् विशरणे। स्फुटि इत्यपि केचित् । ३३० पठ व्यक्तायां वाचि । ३३१ वठ स्थौल्ये ।३३२ मठ मदनिवासयोः । ३३३ कठ कृच्छ्रजीवने। ३३४ रट परिभाषणे । रठ इत्येके ॥३३५ हठ प्लुतिशठत्वयोः। बलात्कारे इत्यन्ये ॥ ३३६ रुठ ३३७ लुठ ३३८ उठ उपघाते । ऊठ इत्येके। ३३९ पिठ हिंसासंक्लेशनयोः । ३४० शठ कैतवे च। ३४१ शुठ प्रतिघाते । शुठि इति स्वामी । ३४२ कुठि च। ३४३ लुठि आलस्ये प्रतिघाते च । ३४४ शुठि शोषणे । ३४५रुठि ३४६ लुठि गतौ । ३४७ चुड्ड भावकरणे । ३४८ अड्ड अभियोगे । ३४९ कड्ड कार्कश्ये । चुड्डादयस्त्रयो दोपधाः । ३५० क्रीडृ विहारे ।३५१ तुडृ तोडने। तूडृ इत्येके । ३५२ हुडृ ३५३ हूडृ ३५४ होडृ गतौ । ३५५ रौडृ अनादरे । ३५६ रोडृ ३५७ लोडृ उन्मादे । ३५८ अड उद्यमे । ३५९ लड विलासे॥ लल इत्येके । ३६० कड मदे । कडि इत्येके । ३६१ गडि वदनैकदेशे ॥ **शौट्रादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः ।** ३६२ तिपृ ३६३तेपृ३६४ ष्टिपृ ३६५ ष्टेपृ क्षरणार्थाः। तेपृ कम्पने च । ३६६ ग्लेपृ दैन्ये । ३६७ टुवेपृ कम्पने। ३६८ केपृ ३६९ गेपृ ३७० ग्लेपृ च । ३७१ मेपृ ३७२ रेपृ ३७३ लेपृ गतौ । ३७४ त्रपूष् लज्जायाम् ३७५ कपि चलने। ३७६ रबि ३७७

लबि ३७८ अबि शब्दे ३७९ लवि अवस्रंसने च । ३८० कबृ वर्णे । ३८१ क्लीबृ अधार्ष्ट्ये ३८२ क्षीबृ मदे । ३८३ शीभृ कत्थने । ३८४ चिभृ च । ३८५ रेभृ शब्दे ॥ अभिरभी क्वचित्पठ्येते ॥ ३८६ ष्टभि ३८७ स्कभि प्रतिबन्धे । ३८८ जभि ३८९ जृभि गात्रविनामे । ३९० शल्भ कत्थने । ३९१ वल्भ भोजने । ३९२ गल्भ धार्ष्ट्ये । ३९३ श्रम्भु प्रमादे । दन्त्यादिश्च । ३९४ ष्टुभु स्तम्भे । **तिप्यादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः । तिपिस्त्वनुदात्तः ।** ३९५ गुपू रक्षणे । ३९६ धूप संतापे । ३९७ जप ३९८ जल्प व्यक्तायां वाचि । ३९९ जप मानसे च । ४०० चप सान्त्वने । ४०१ षप समवाये । ४०२ रप ४०३ लप व्यक्तायां वाचि । ४०४ चुप मन्दायां गतौ । ४०५ तुप ४०६ तुम्प ४०७ त्रुप ४०८ त्रुम्प ४०९ तुफ ४१० तुम्फ ४११ त्रुफ ४१२ त्रुम्फ हिंसार्थाः । ४१३ पर्प ४१४ रफ ४१५ रफि ४१६ अर्ब ४१७ पर्ब ४१८ लर्ब ४१९ बर्ब ४२० मर्ब ४२१ कर्ब ४२२ खर्ब ४२३ गर्ब ४२४ शर्ब ४२५ षर्ब ४२६ चर्ब गतौ । ४२७ कुबि आच्छादने । ४२८ लुबि ४२९ तुबि अर्दने । ४३० चुबि वक्त्रसंयोगे । ४३१ षृभु ४३२ षृम्भु हिंसार्थौ ॥ षिभु षिम्भु इत्येके । ४३३ शुभ ४३४ शुम्भ भाषणे ॥ भासने इत्येके । हिंसायामित्यन्ये ॥ **शुपादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः ।** ४३५ घिणि ४३६ घुणि ४३७ घृणि ग्रहणे । ४३८ घुण ४३९ घूर्ण भ्रमणे । ४४० पण व्यवहारे स्तुतौ च ४४१ पन च । ४४२ भाम क्रोधे । ४४३ क्षमूष् सहने । ४४४ कमु कान्तौ ॥ **घिण्यादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ।** ४४५ अण ४४६ रण ४४७ वण ४४८ भण ४४९ मण ४५० कण ४५१ क्वण ४५२ व्रण ४५३ भ्रण ४५४ ध्वण शब्दार्थाः ॥ धण इत्यपि केचित् ॥ ४५५ ओणृ अपनयने । ४५६ शोणृ वर्णगत्योः ४५७ श्रोणृ संघाते । ४५८ श्लोणृ च । ४५९ पैणृ गतिप्रेरणश्लेषणेषु । ४६० ध्रण शब्दे ॥ रण इत्यपि केचित् ४६१ ॥ कनी दीप्तिकान्तिगतिषु । ४६२ ष्टन ४६३ वन शब्दे ॥ ४६४ वन ४६५ षण संभक्तौ । ४६६ अम गत्यादिषु । ४६७ द्रम ४६८ हम्म ४६९ मीमृ गतौ । ४७० चमु ४७१ छमु ४७२ जमु ४७३ झमु अदने ४७४ क्रमु पादविक्षेपे । **अणादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः ।** ४७५ अय ४७६ वय ४७७ पय ४७८ मय ४७९ चय ४८० तय ४८१ णय गतौ । ४८२ दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु । ४८३ रय गतौ । ४८४ ऊयी तन्तुसंताने । ४८५ पूयी विशरणे दुर्गन्धे च । ४८६ क्नूयी शब्दे उन्दे च । ४८७ क्ष्मायी विधूनने । ४८८ स्फायी । ४८९ ओप्यायी वृद्धौ । ४९० तायृ संतानपालनयोः । ४९१ शल चलनसंवरणयोः । ४९२ वल ४९३ वल्ल संवरणे संचरणे च । ४९४ मल ४९५ मल्ल धारणे । ४९६ भल । ४९७ भल्ल परिभाषणहिंसादानेषु । ४९८ कल शब्दसंख्यानयोः । ४९९ कल्ल अव्यक्ते शब्दे ॥ अशब्दे इति स्वामी ॥ ५०० तेवृ ५०१ देवृ देवने । ५०२ षेवृ ५०३ गेवृ ५०४ ग्लेवृ ५०५ पेवृ ५०६ मेवृ ५०७ म्लेवृ सेवने ॥ शेवृ खेवृ क्लेवृ इत्येके ॥ ५०८ रेवृ प्लवगतौ ॥ **अयादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ॥** ५०९ मव्य बन्धने । ५१० सूर्क्ष्य ५११ ईर्क्ष्य ५१२ ईर्ष्य ईर्ष्यार्थाः । ५१३ हय गतौ । ५१४ शुच्य अभिषवे ॥ चुच्य इत्येके ॥ ५१५ हर्य गतिकान्त्योः । ५१६ अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु ॥ अयं स्वरितेदित्येके ॥ ५१७ ञिफला विशरणे । ५१८ मील ५१९ श्मील ५२० स्मील ५२१ क्ष्मील निमेषणे । ५२२ पील प्रतिष्टम्भे । ५२३ नील वर्णे । ५२४ शील समाधौ । ५२५ कील बन्धने ॥ ५२६ कूल आवरणे । ५२७ शूल रुजायां संघोषे च । ५२८ तूल निष्कर्षे । ५२९ पूल संघाते । ५३० मूल प्रतिष्ठायाम् ५३१ फल निष्पत्तौ । ५३२ चुल्ल भावकरणे । ५३३ फुल्ल विकसने । ५३४ चिल्ल शैथिल्ये भावकरणे च । ५३५ तिल गतौ ॥ तिल्ल इत्येके । ५३६ वेल्ल ५३७ चेल्ल ५३८ केल्ल ५३९ खेल्ल ५४० क्ष्वेल्ल ५४१ वेल्ल चलने । ५४२ पेल्ल ५४३ फेल्ल ५४४ शेल्ल गतौ ॥ षेल्ल इत्येके ॥ ५४५ स्खल संचलने ॥ ५४६ खल संचये । ५४७ गल अदने । ५४८ षल गतौ । ५४९ दल विशरणे । ५५० श्वल ५५१ श्वल्ल आशुगमने । ५५२ खोल्ल ५५३ खोर्ऋ गतिप्रतिघाते । ५५४ धोर्ऋ गतिचातुर्ये । ५५५ त्सर छद्मगतौ ५५६ क्मर हूर्च्छने । ५५७ अभ्र ५५८ वभ्र ५५९ मभ्र ५६० चर गत्यर्थाः । चरतिर्भक्षणेऽपि ॥ ५६१ ष्ठिवु निरसने । ५६२ जि जये । ५६३ जीव प्राणधारणे । ५६४ पीव ५६५ मीव ५६६ तीव ५६७ णीव स्थौल्ये । ५६८ क्षिवु ५६९ क्षेवु निरसने । ५७० उर्वी ५७१ तुर्वी ५७२ थुर्वी ५७३ दुर्वी ५७४ धुर्वी हिंसार्थाः । ५७५ गुर्वी उद्यमने । ५७६ मुर्वी बन्धने । ५७७ पुर्व ५७८ पर्व ५७९ मर्व पूरणे । ५८० चर्व अदने । ५८१ भर्व हिंसायाम् । ५८२ कर्व ५८३ खर्व ५८४ गर्व दर्पे । ५८५ अर्व ५८६ शर्व ५८७ षर्व हिंसायाम् । ५८८

इवि व्याप्तौ । ५८९ पिवि ५९० मिवि ५९१ णिवि सेचने ॥ सेवने इत्येके ॥ ५९२ हिवि ५९३ दिवि ५९४ धिवि ५९५ जिवि प्रीणनार्थाः । ५९६ रिवि ५९७ रवि ५९८ धवि गत्यर्थाः । ५९९ कृवि हिंसाकरणयोश्च। ६०० मव बन्धने । ६०१ अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु॥ **मव्यादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः । जिस्त्वनुदात्तः ॥** ६०२ धावु गतिशुद्ध्योः । **उदात्तः स्वरितेदुभयतोभाषः॥** ६०३ धुक्ष ६०४ धिक्ष संदीपनक्लेशनजीवनेषु । ६०५ वृक्ष वरणे । ६०६ शिक्ष विद्योपादाने । ६०७ भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च । ६०८ क्लेश अव्यक्तायां वाचि ॥ बाधने इति दुर्गः ॥ ६०९ दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च । ६१० दीक्ष मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु । ६११ ईक्ष दर्शने । ६१२ ईष गतिहिंसादर्शनेषु । ६१३ भाष व्यक्तायां वाचि । ६१४ वर्ष स्नेहने ६१५ गेषृ अन्विच्छायाम् । ग्लेषृ इत्येके ॥ ६१६ पेषृ प्रयत्ने। ६१७ जेषृ ६१८ णेषृ ६१९ एषृ ६२० प्रेषृ गतौ । ६२१ रेषृ ६२२ हेषृ ६२३ ह्रेषृ अव्यक्ते शब्दे । ६२४ कासृ शब्दकुत्सायाम् । ६२५ भासृ दीप्तौ । ६२६ णासृ ६२७ रासृ शब्दे । ६२८ णस कौटिल्ये । ६२९ भ्यस भये । ६३० आङः शसि इच्छायाम् । ६३१ ग्रसु ६३२ ग्लसु अदने । ६३३ ईह चेष्टायाम् । ६३४ वहि ६३५ महि वृद्धौ । ६३६ अहि गतौ । ६३७ गर्ह ६३८ गल्ह कुत्सायाम् । ६३९ बर्ह ६४० । बल्ह प्राधान्ये । ६४१ वर्ह ६४२ वल्ह परिभाषणहिंसाच्छादनेषु । ६४३ प्लिह गतौ । ६४४ वेहृ ६४५ जेहृ ६४६ बाहृ प्रयत्ने ॥ जेहृ गतावपि ॥ ६४७ द्राहृ निद्राक्षये ॥ निक्षेपे इत्येके ॥ ६४८ काशृ दीप्तौ । ६४९ ऊह वितर्के । ६५० गाहू विलोडने । ६५१ गृहू गर्हणे । ६५२ ग्लह च । ६५३ घुषि कान्तिकरणे ॥ घष इति केचित् ॥ **घुक्षादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ॥** ६५४ घुषिर् अविशब्दने । ६५५ अक्षू व्याप्तौ । ६५६ तक्षू ६५७ त्वक्षू तनूकरणे । ६५८ उक्ष सेचने । ३५९ रक्ष पालने। ६६० णिक्ष चुम्बने । ६६१ तृक्ष ६६२ स्तृक्ष ६६३ णक्ष गतौ । ६६४ वक्ष रोषे ॥ संघाते इत्येके ॥ ६६५ मृक्ष संघाते॥ म्रक्ष इत्येके॥ ६६६ तक्ष त्वचने । ६६७ सूर्क्ष आदरे॥ ६६८ काक्षि ६६९ वाक्षि ६७० माक्षि काङ्क्षायाम् । ६७१ द्राक्षि ६७२ ध्राक्षि ६७३ ध्वाक्षि घोरवासिते च । ६७४ चूष पाने । ६७५ तूष तुष्टौ । ६७६ पूष वृद्धौ । ६७७ मूष स्तेये । ६७८ लूष ६७९ रूष भूषायाम् ६८० शूष प्रसवे । ६८१ यूष हिंसायाम् ६८२ जूष च । ६८३ भूष अलंकारे । ६८४ ऊष रुजायाम् । ६८५ ईष उञ्छे । ६८६ कष ६८७ खष ६८८ शिष ६८९ जष ६९० झष ६९१ शष ६९२ वष ६९३ मष ६९४ रुष ६९५ रिष हिंसार्थाः ६९६ भष भर्त्सने । ६९७ उष दाहे । ६९८ जिषु ६९९ विषु ७०० मिषु सेचने । ७०१ पुष पुष्टौ । ७०२ श्रिषु ७०३ श्लिषु ७०४ प्रुषु ७०५ प्लुषु दाहे । ७०६ पृषु ७०७ वृषु ७०८ मृषु सेचने ॥ मृषु सहने च । इतरौ हिंसासंक्लेशनयोश्च ॥ ७०९ घृषु संघर्षे । ७१० हृषु अलीके । ७११ तुस ७१२ ह्रस ७१३ ह्लस ७१४ रस शब्दे ७१५ लस श्लेषणक्रीडनयोः । ७१६ घस्लृ अदने । ७१७ जर्ज ७१८ चर्च ७१९ झर्झ परिभाषणहिंसातर्जनेषु । ७२० पिसृ ७२१ पेसृ गतौ । ७२२ हसे हसने । ७२३ णिश समाधौ । ७२४ मिश ७२५ मश शब्दे रोषकृते च । ७२६ शव गतौ ७२७ । शश प्लुतगतौ । ७२८ शसु हिंसायाम् । ७२९ शंसु स्तुतौ ॥ दुर्गतावित्येके ॥ ७३० चह परिकल्कने ७३१ मह पूजायाम् । ७३२ रह त्यागे । ७३३ रहि गतौ । ७३४ दृह ७३५ दृहि ७३६ बृह ७३७ बृहि वृद्धौ ॥ बृहि शब्दे च । बृहिर् चेत्येके॥ ७३८ तुहिर् ७३९ दुहिर् ७४० उहिर् अर्दने । ७४१ अर्ह पूजायाम् ॥ **घुषिरादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः । घसिस्त्वनुदात्तः ॥** ७४२ द्युत दीप्तौ । ७४३ श्विता वर्णे । ७४४ ञिमिदा स्नेहने ७४५ ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः ॥ मोहनयोरित्येके । ञिक्ष्विदा चेत्येके ॥ ७४६ रुच दीप्तावभिप्रीतौ च । ७४७ घुट परिवर्तने । ७४८ रुट ७४९ लुट ७५० लुठ प्रतिघाते । ७५१ शुभ दीप्तौ । ७५२ क्षुभ संचलने । ७५३ णभ ७५४ तुभ हिंसायाम् । आद्योऽभावेऽपि । ७५५ स्रंसु ७५६ ध्वंसु ७५७ भ्रंसु अवस्रंसने ॥ ध्वंसु गतौ च । भ्रशु इत्यपि केचित् ॥ ७५८ स्रम्भु विश्वासे । ७५९ वृतु वर्तने । ७६० वृधु वृद्धौ । ७६१ शृधु शब्दकुत्सायाम् । ७६२ स्यन्दू प्रस्रवणे । ७६३ कृपू सामर्थ्ये ॥ **द्युतादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ॥ वृत् ॥** ७६४ घट चेष्टायाम् । ७६५ व्यथ भयसंचलनयोः । ७६६ प्रथ प्रख्याने । ७६७ प्रस विस्तारे । ७६८ म्रद मर्दने ७६९ स्खद स्खदने । ७७० क्षजि गतिदानयोः । ७७१ दक्ष गतिहिंसनयोः । ७७२ कृप कृपायां गतौ च । ७७३ कदि ७७४ क्रदि ७७५ क्लदि वैक्लव्ये ॥ वैकल्ये इत्येके । त्रयोऽप्यनिदित इति नन्दी । इदित इति स्वामी । कदि क्रदि इदितौ क्रद

क्नद इति चानिदितौ इति मैत्रेयः ॥ ७७६ त्विरा संभ्रमे ॥ **घटादयः षितः ॥ उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ॥** ७७७ ज्वर रोगे ७७८ गड सेचने । ७७९ हेड वेष्टने ७८० वट ७८१ भट परिभाषणे । ७८२ णट नृत्तौ ॥ गतावित्यन्ये ॥ ७८३ ष्टक प्रतिघाते । ७८४ चक तृप्तौ । ७८५ कखे हसने । ७८६ रगे शङ्कायाम् । ७८७ लगे सङ्गे । ७८८ ह्रगे ७८९ ह्लगे ७९० षगे ७९१ ष्टगे संवरणे । ७९२ कगे नोच्यते। ७९३ अक ७९४ अग कुटिलायां गतौ । ७९५ कण ७९६ रण गतौ । ७९७ चण ७९८ शण ७९९ श्रण दाने च ॥ शण गतावित्यन्ये ॥ ८०० श्रथ ८०१ श्लथ ८०२ क्नथ ८०३ क्लथ हिंसार्थाः । ८०४ चन च । ८०५ वनु च नोच्यते । ८०६ ज्वल दीप्तौ । ८०७ ह्वल ८०८ ह्मल चलने । ८०९ स्मृ आध्याने । ८१० दॄ भये । ८११ नॄ नये । ८१२ श्रा पाके ॥ मारणतोषणनिशामनेषु ८१३ ज्ञा । कम्पने ८१४ चलिः । ८१५ छदिर् ऊर्जने । जिह्वोन्मथने ८१६ लडिः । ८१७ मदी हर्षग्लेपनयोः । ८१८ ध्वन शब्दे । ८१९ दलि ८२० वलि ८२१ स्खलि ८२२ रणि ८२३ ध्वनि ८२४ त्रपि ८२५ क्षपयश्चेति भोजः । ८२६ स्वन अवतंसने ॥ **घटादयो मितः ॥** ८२७ जनी ८२८ जॄष् ८२९ क्नसु ८३० रञ्जो ८३१ अमन्ताश्च । ८३२ ज्वल ८३३ ह्वल ८३४ ह्मल ८३५ नमामनुपसर्गाद्वा। ८३६ ग्ला ८३७ स्ना ८३८ वनु ८३९ वमां च । न ८४० कमि ८४१ अमि ८४२ चमाम् । ८४३ शमो दर्शने । ८४४ यमोऽपरिवेषणे । ८४५ स्खदिर् अवपरिभ्यां च । ८४६ फण गतौ ॥ **घटादयः फणान्ता मितः॥वृत्॥ ज्वरादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः ॥** ८४७ राजृ दीप्तौ । **उदात्तः स्वरितेदुभयतोभाषः॥** ८४८ टुभ्राजृ ८४९ टुभ्राशृ ८५० टुभ्लाशृ दीप्तौ ॥ **उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः॥** ८५१ स्यमु ८५२ स्वन ८५३ ध्वन शब्दे । ८५४ षम ८५५ ष्टम अवैक्लव्ये ॥ वृत् ॥ ८५६ ज्वल दीप्तौ । ८५७ चल कम्पने । ८५८ जल घातने । ८५९ टल ८६० ट्वल वैक्लव्ये । ८६१ ष्ठल स्थाने । ८६२ हल विलेखने । ८६३ णल गन्धे ॥ बन्धने इत्येके । ८६४ पल गतौ । ८६५ बल प्राणने ॥ धान्यावरोधने च । ८६६ पुल महत्त्वे । ८६७ कुल संस्त्याने बन्धुषु च । ८६८ शल ८६९ हुल ८७० पत्लृ गतौ । ८७१ क्वथे निष्पाके । ८७२ पथे गतौ। ८७३ मथे विलोडने । ८७४ टुवम उद्गिरणे । ८७५ भ्रमु चलने । ८७६ क्षर संचलने ॥ **स्यमादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः ॥** ८७७ षह मर्षणे ॥ **उदात्तोऽनुदात्तेदात्मनेभाषः॥** ८७८॥ रमु क्रीडायाम्॥ **अनुदात्त उदात्तेदात्मनेभाषः ॥** ८७९ षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु । ८८० शद्लृ शातने । ८८१ क्रुश आह्वाने रोदने च ॥ **षदादयस्त्रयोऽनुदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः ॥** ८८२ कुच संपर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भविलेखनेषु । ८८३ बुध अवगमने । ८८४ रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च । ८८५ कस गतौ ॥ **वृत् । कुचादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः ॥ रुहिस्त्वनुदात्तः ॥** ८८६ हिक्क अव्यक्ते शब्दे । ८८७ अञ्चु गतौ याचने च ॥ अचु इत्येके । अचि इत्यपरे॥ ८८८ टुयाचृ याच्ञायाम् । ८८९ रेटृ परिभाषणे । ८९० चते ८९१ चदे याचने । ८९२ प्रोथृ पर्याप्तौ । ८९३ मिदृ मेदृ ८९४ मेधाहिंसनयोः ॥ थान्ताविमाविति स्वामी । धान्ताविति न्यासः ॥ ८९५ मेधृ संगमे च । ८९६ णिदृ ८९७ णेदृ कुत्सासन्निकर्षयोः ८९८ शृधु ८९९ मृधु उन्दने । ९०० बुधिर् बोधने । ९०१ उबुन्दिर् निशामने । ९०२ वेणृ गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु ॥ नान्तोऽप्ययम् ॥ ९०३ खनु अवदारणे । ९०४ चीवृ आदानसंवरणयोः । ९०५ चायृ पूजानिशामनयोः । ९०६ व्यय गतौ । ९०७ दाशृ दाने । ९०८ भेषृ भये ॥ गतावित्येके ॥ ९०९ भ्रेषृ ९१० भ्लेषृ गतौ । ९११ अस गतिदीप्त्यादानेषु ॥ अष इत्येके । ९१२ स्पश बाधनस्पर्शनयोः । ९१३ लष कान्तौ । ९१४ चष भक्षणे । ९१५ झष आदानसंवरणयोः । ९१६ छष हिंसायाम् । ९१७ भ्रक्ष ९१८ भ्लक्ष अदने । ९१९ दासृ दाने । ९२० माहृ माने । ९२१ गुहू संवरणे ॥ **हिक्कादय उदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः ॥** ९२२ श्रिञ् सेवायाम् ॥ **उदात्त उभयतोभाषः ॥** ९२३ भृञ् भरणे । ९२४ हृञ् हरणे । ९२५ धृञ् धारणे । ९२६ णीञ् प्रापणे ॥ **भृञादयश्चत्वारोऽनुदात्ता उभयतोभाषाः ॥** ९२७ धेट् पाने । ९२८ ग्लै ९२९ म्लै हर्षक्षये । ९३० द्यै न्यक्करणे । ९३१ द्रै स्वप्ने । ९३२ ध्रै तृप्तौ । ९३३ ध्यै चिन्तायाम् । ९३४ रै शब्दे । ९३५ स्त्यै ९३६ ष्ट्यै शब्दसंघातयोः ९३७ खै खदने । ९३८ क्षै ९३९ जै ९४० षै क्षये । ९४१ कै ९४२ गै शब्दे । ९४३ शै ९४४ श्रै पाके । ९४५ पै ९४६ ओवै शोषणे । ९४७ ष्टै ९४८ ष्णै वेष्टने॥ शोभायां चेत्येके । ९४९ दैप् शोधने । ९५० पा पाने । ९५१ घ्रा गन्धोपादाने । ९५२ ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः । ९५३ ष्ठा गतिनिवृत्तौ । ९५४ म्ना अभ्यासे ।

९५५ दाण् दाने । ९५६ ह्वृ कौटिल्ये । ९५७ स्वृ शब्दोपतापयोः ९५८ स्मृ चिन्तायाम् । ९५९ ह्वृ संवरणे । ९६० सृ गतौ । ९६१ ऋ गतिप्रापणयोः । ९६२ गृ ९६३ घृ सेचने । ९६४ ध्वृ हूर्च्छने । ९६५ स्रु गतौ । ९६६ षु प्रसवैश्वर्ययोः । ९६७ श्रु श्रवणे । ९६८ ध्रु स्थैर्ये । ९६९ दु ९७० द्रु गतौ । ९७१ जि ९७२ ज्रि अभिभवे ॥ **घयत्यादयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः** ॥ ९७३ ष्मिङ् ईषद्धसने । ९७४ गुङ् अव्यक्ते शब्दे । ९७५ गाङ् गतौ । ९७६ कुङ् ९७७ घुङ् ९७८ उङ् ९७९ ङुङ् शब्दे ॥ उङ् कुङ् खुङ् गुङ् घुङ् ङुङ् इत्यन्ये ॥ ९८० च्युङ् ९८१ ज्युङ् ९८२ प्रुङ् ९८३ प्लुङ् गतौ ॥ क्लुङ् इत्येके ॥ ९८४ रुङ् गतिरेषणयोः । ९८५ धृङ् अवध्वंसने । ९८६ मेङ् प्रणिदाने । ९८७ देङ् रक्षणे । ९८८ श्यैङ् गतौ । ९८९ प्यैङ् वृद्धौ । ९९० त्रैङ् पालने ॥ **ष्मिङादयोऽनुदात्ता आत्मनेभाषाः** ॥ ९९१ पूङ् पवने । ९९२ मुङ् बन्धने । ९९३ डीङ् विहायसा गतौ ॥ **पूङादयस्त्रय उदात्ता आत्मनेभाषाः** ॥ ९९४ तॄ प्लवनतरणयोः ॥ **उदात्तः परस्मैभाषः** ॥ ९९५ गुप गोपने । ९९६ तिज निशाने । ९९७ मान पूजायाम् । ९९८ बध बन्धने ॥ **गुपादयश्चत्वार उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः**॥ ९९९ रभ राभस्ये । १००० डुलभष् प्राप्तौ । १००१ ष्वञ्ज परिष्वंगे। १००२ हद पुरीषोत्सर्गे।**रभादयश्चत्वार उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः** ॥ १००३ ञिक्ष्विदा अव्यक्ते शब्दे ॥ **उदात्त उदात्तेत् परस्मैभाषः**॥ १००४ स्कन्दिर् गतिशोषणयोः । १००५ यभ मैथुने । १००६ णम प्रह्वत्वे शब्दे च । १००७ गम्लृ १००८ सृप्लृ गतौ । १००९ यम उपरमे । १०१० तप संतापे । १०११ त्यज हानौ । १०१२ षंज सङ्गे । १०१३ दृशिर् प्रेक्षणे । १०१४ दंश दर्शने । १०१५ कृष विलेखने । १०१६ दह भस्मीकरणे । १०१७ मिह सेचने ॥ **स्कन्दादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः** ॥ १०१८ कित निवासे रोगापनयने च ॥ **उदात्तेत् परस्मैभाषः** ॥ १०१९ दान खंडने । १०२० शान तेजने ॥ **उदात्तौ स्वरितेताउभयतोभाषौ** ॥ १०२१ डुपचष् पाके । १०२२ षच समवाये । १०२३ ॥ भज सेवायाम् । १०२४ रञ्ज रागे । १०२५ शप आक्रोशे । १७२६ त्विष दीप्तौ । १०२७ यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु । १०२८ डुवप् बीजसंताने छेदनेऽपि । १०२९ वह प्रापणे ॥ **पचादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः** ॥ **पचिस्तूदात्तः** ॥ १०३० वस निवासे ॥ **अनुदात्त उदात्तेत् परस्मैभाषः** ॥ १०३१ वेञ् तन्तुसन्ताने ॥ १०३२ व्येञ् संवरणे । १०३३ ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च ॥ **वेञादयस्त्रयोऽनुदात्ता उभयतोभाषाः** १०३४ वद व्यक्तायां वाचि। १०३५ टुओश्वि गतिवृद्धयोः॥ **वृत्।** **अयं वदतिश्चोदात्तौ परस्मैभाषौ**॥

इति शब्विकरणा भ्वादयः ॥ १ ॥

१ अद भक्षणे । २ हन हिंसागत्योः । **अनुदात्तावुदात्तेतौ परस्मैपदिनौ** ॥ ३ द्विष अप्रीतौ । ४ । दुह प्रपूरणे । ५ दिह उपचये । ६ लिह आस्वादने ॥ **द्विषादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः** ॥ ७ चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । दर्शनेपि॥**अनुदात्तोऽनुदात्तेदात्मनेपदी** ॥ ८ ईर गतौ कम्पने च । ९ ईड स्तुतौ । १० ईश ऐश्वर्ये । ११ आस उपवेशने । १२ आङः-शासु इच्छायाम् । १३ वस आच्छादने । १४ कसि गतिशासनयोः । कस इत्येके । कश इत्यपि॥ १५ णिसि चुम्बने । १६ णिजि शुद्धौ । १७ शिजि अव्यक्ते शब्दे । १८ पिजि वर्णे ॥ संपर्चने इत्येके । उभयत्रेत्यन्ये । अवयवे इत्येके । अव्यक्ते शब्दे इतीतरे। पृजि इत्येके॥ १९ वृजी वर्जने ॥ वृजि इत्यन्ये । २० पृची संपर्चने ॥ **ईरादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः** ॥ २१ षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । २२ शीङ् स्वप्ने ॥ **उदात्तावात्मनेभाषौ**॥ २३ यु मिश्रणेऽमिश्रणे च २४ रु शब्दे। २५ णु स्तुतौ । २६ टुक्षु शब्दे । २७ क्ष्णु तेजने। २८ ष्णु प्रस्रवणे ॥ **युप्रभृतय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः**॥२९ ऊर्णुञ् आच्छादने॥**उदात्त उभयतोभाषः**॥ ३० द्यु अभिगमने । ३१ षु प्रसवैश्वर्ययोः । ३२ कु शब्दे । ३३ ष्टुञ् स्तुतौ ॥ **द्युभृतयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः** ॥ स्तौति **उभयतोभाषः** ॥ ३४ ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ॥ **उदात्त उभयतोभाषः** ॥ ३५ इण् गतौ । ३६ इङ् अध्ययने । ३७ इक् स्मरणे । ३८ वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु । ३९ या प्रापणे । ४० । वा गतिगन्धनयोः । ४१ भा दीप्तौ । ४२ ष्णा शौचे । ४३ श्रा पाके । ४४ द्रा कुत्सायां गतौ । ४५ प्सा भक्षणे । ४६ पा रक्षणे । ४७ रा दाने । ४८ ला आदाने ॥ द्वावपि दाने इति चन्द्रः ॥ ४९ ॥ दाप् लवने। ५० ख्या प्रकथने । ५१ प्रा पूरणे । ५२ मा माने । ५३ वच परिभाषणे ॥ **इण्प्रभृतयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः** । **इङ् त्वात्मनेपदी** ॥ ५४ विद ज्ञाने । ५५

अस् भुवि । ५६ मृजू शुद्धौ ॥ ५७ रुदिर् अश्रुविमोचने ॥ **विदादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः॥** ५८ ञिष्वप् शये ॥ **उदात्तः परस्मैभाषः** ॥ ५९ श्वस प्राणने । ६० अन च । ६१ जक्ष भक्षहसनयोः ॥ **वृत्**॥ ६२ ॥ जागृ निद्राक्षये । ६३ दरिद्रा दुर्गतौ । ६४ चकासृ दीप्तौ । ६५ शासु अनुशिष्टौ ॥ **श्वसादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः॥** ६६ दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः । ६७ वेवीङ् वेतिना तुल्ये ॥ **उदात्तावात्मनेभाषौ॥** ६८ षस ६९ सस्ति स्वप्ने । ७० वश कान्तौ॥ **षसादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः** ॥ ७१ चर्करीतं च । ७२ ह्नुङ् अपनयने ॥ **अनुदात्ता आत्मनेभाषाः** ॥

॥ इति लुग्विकरणा अदादयः ॥

१ हु दानादनयोः । आदाने चेत्येके । २ ञिभी भये । ३ ह्री लज्जायाम् ॥ **जुहोत्यादयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः** ॥ पृ पालनपूरणयोः ॥ पॄ इत्येके । ४ **उदात्तः परस्मैभाषः॥** ५ डुभृञ् धारणपोषणयोः ॥ **अनुदात्त उभयतोभाषः** ॥ ६ माङ् माने शब्दे च । ७ ओहाङ् गतौ ॥ **अनुदात्तावात्मनेपदिनौ** ॥ ८ ओहाक् त्यागे ॥ **अनुदात्तः परस्मैपदी** ॥ ९ डुदाञ् दाने । १० डुधाञ् धारणपोषणयोः । दाने इत्यप्येके ॥ **अनुदात्तावुभयतोभाषौ॥** ११ णिजिर् शौचपोषणयोः । १२ विजिर् पृथग्भावे। १३ विष्लृ व्याप्तौ ॥**णिजिरादयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः** ॥ १४ घृ क्षरणदीप्त्योः । १५ हृ प्रसह्यकरणे । १६ ऋ १७ सृ गतौ॥ **घृप्रभृतयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः** ॥ १८ भस भर्त्सनदीप्त्योः ॥ **उदात्त उदात्तेत् परस्मैपदी** ॥ १९ कि ज्ञाने ॥ **अनुदात्तः परस्मैपदी** ॥ २० तुर त्वरणे । २१ धिष शब्दे । २२ धन धान्ये । २३ जन जनने ॥ **तुरादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः** ॥ २४ गा स्तुतौ ॥ **अनुदात्तः परस्मैभाषः** । **घृप्रभृतय एकादश च्छन्दसि । इयर्तिर्भाषायामपि ॥**

इति श्लुविकरणा जुहोत्यादयः ॥

१ दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु। २ षिवु तन्तुसंताने । ३ स्रिवु गतिशोषणयोः । ४ ष्ठिवु निरसने । ५ ष्णुसु अदने ॥ आदाने इत्येके । अदर्शने इत्यपरे ॥ ६ ॥ ष्णसु निरसने । ७ क्नसु ह्वरणदीप्त्योः । ८ व्युष दाहे । ९ प्लुष च । १० नृती गात्रविक्षेपे । ११ त्रसी उद्वेगे । १२ कुथ पूतीभावे । १३ पुथ हिंसायाम् । १४ गुथ परिवेष्टने । १५ क्षिप प्रेरणे । १६ पुष्प विकसने । १७ तिम १८ ष्टिम १९ ष्टीम आर्द्रीभावे । २० व्रीड चोदने लज्जायां च । २१ इष गतौ । २२ षह २३ षुह चक्यर्थे । २४ जॄष् २५ झॄष् वयोहानौ ॥ **दिवादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः । क्षिपिस्त्वनुदात्तः** ॥ २६ षूङ् प्राणिप्रसवे । २७ दूङ् परितापे ॥ **उदात्तावात्मनेभाषौ** ॥ २८ दीङ् क्षये। २९ डीङ् विहायसा गतौ । ३० धीङ् आधारे । ३१ मीङ् हिंसायाम् । ३२ रीङ् श्रवणे । ३३ लीङ् श्लेषणे । ३४ व्रीङ् वृणोत्यर्थे॥**वृत्** । **स्वादय ओदितः** ॥ ३५ पीङ् पाने । ३६ माङ् माने । ३७ ईङ् गतौ । ३८ प्रीङ् प्रीतौ ॥ **दीङादय आत्मनेपदिनोऽनुदात्ताः डीङ् तूदात्तः** ॥ ३९ शो तनूकरणे । ४० छो छेदने । ४१ षो अन्तकर्मणि । ४२ दो अवखण्डने ॥ **श्यतिप्रभृतयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः** ॥ ४३ जनी प्रादुर्भावे । ४४ दीपी दीप्तौ ॥ ४५ पूरी आप्यायने । ४६ तूरी गतित्वरणहिंसनयोः । ४७ धूरी ४८ गूरी हिंसागत्योः । ४९ घूरी ५० जूरी हिंसावयोहान्योः । ५१ शूरी हिंसास्तम्भनयोः । ५२ चूरी दाहे। ५३ तप ऐश्वर्ये वा । ५४ वृतु वरणे । ५५ क्लिश उपतापे । ५६ काशृ दीप्तौ । ५७ वाशृ शब्दे ॥ **जन्यादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः । तपिस्त्वनुदात्तः** ॥ ५८ मृष तितिक्षायाम् । ५९ शुचिर् पूतीभावे । **उदात्तौ स्वरितेतावुभयतोभाषौ** ॥ ६० णह बन्धने । ६१ रञ्ज रागे । ६२ शप आक्रोशे ॥ **णहादयस्त्रयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयतोभाषाः** ॥ ६३ पद गतौ। ६४ खिद दैन्ये । ६५ विद सत्तायाम् । ६६ बुध अवगमने । ६७ युध संप्रहारे । ६८ अनो रुध कामे । ६९ अण प्राणने ॥ अन इत्येके॥ ७० मन ज्ञाने । ७१ युज समाधौ । ७२ सृज विसर्गे । ७३ लिश् अल्पीभावे । **पदादयोऽनुदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः** ॥ ७४ राधोऽकर्मकाद्वृद्धावेव । ७५ व्यध ताडने । ७६ पुष पुष्टौ । ७७ शुष शोषणे । ७८ तुष प्रीतौ । ७९ दुष वैकृत्ये । ८० श्लिष आलिङ्गने । ८१ शंक विभाषितो मर्षणे । ८२ ष्विदा गात्रप्रक्षरणे । ८३ क्रुध क्रोधे ८४ क्षुध बुभुक्षायाम् । ८५ शुध शौचे। ८६ षिधु संराद्धौ। **राधादयोऽनुदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः** ॥ ८७ रध हिंसासंराध्योः । ८८ णश अदर्शने । ८९ तृप प्रीणने । ९० दृप हर्षमोहनयोः । ९१ द्रुह जिघांसायाम् । ९२ मुह वैचित्त्ये। ९३ ष्णुह उद्गिरणे ९४ ष्णिह प्रीतौ ॥ **वृत्** । **रधादय**

संज्ञा न होते क्यों कहा? तो 'उत्तराः कुरवः' इसमें उत्तर-के कुरु यह देशकी संज्ञा (नाम) है, इससे उसकी सर्वनाम संज्ञा नहीं हुई, इसीसे जस्के स्थानमें शी(ई) नहीं हुई * ॥

२१९ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ।१।१।३५॥

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य या प्राप्ता संज्ञा सा जसि वा स्यात्। स्वे। स्वाः। आत्मीया इत्यर्थः। आत्मान इति वा। ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः ज्ञातयोऽर्था वा ॥

२१९–ज्ञाति और धनको छोड कर अर्थात् 'आप' वा 'अपना' इन अर्थोंमें जो स्व शब्दकी गणपाठके अनुसार सर्व नाम संज्ञा प्राप्त है सो जस् प्रत्ययमें विकल्प हो।यथा–स्व+जस्=स्वे, स्वाः (आत्मा वा आत्मीय अर्थ यहां जानना)। जब ज्ञाति अथवा धन ऐसा अर्थ होता है, तब स्व+जस्=स्वाः (ज्ञाति वा धन) पद सिद्ध होगा । 'स्वे' में जस्के स्थानमें शी हुई है ॥

२२० अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ।१।१।३६॥

बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य या प्राप्ता संज्ञा सा जसि वा स्यात्। अन्तरे, अन्तरा वा गृहाः। बाह्या इत्यर्थः। अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः। परिधानीया इत्यर्थः ॥

२२०–बाहरका अथवा पहरनेका वस्त्र इस अर्थमें अन्तर शब्द हो तो उसको जो सर्वनाम संज्ञा सर्वत्र प्राप्त है सो जस् परे रहते विकल्प करके हो । यथा–अन्तर+जस्=अन्तरे, अन्तराः गृहाः (बाहरके घर) । अन्तरे, अन्तराः शाटकाः (पहरनेकी साडी) । दोनों स्थानोंमें विकल्प करके सर्वनाम संज्ञा हुई ॥

२२१ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ।७।१।१६॥

एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः। पूर्वस्मात्। पूर्वात्। पूर्वस्मिन्। पूर्वे। एवं परादीनामपि। शेषं सर्ववत्। एकशब्दः संख्यायां नित्यैकवचनान्तः ॥

२२१–इन्हीं पूर्वादि नव शब्द अर्थात् पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व और अन्तर शब्दके परवर्ती ङसि और ङिके स्थानमें क्रमसे विकल्प करके स्मात् और स्मिन् हों। यथा–पूर्व+ङसि=पूर्वस्मात्, पूर्वात्। पूर्व+ङि=पूर्वस्मिन्, पूर्वे। इसी प्रकार पर आदि शब्दोंमें भी जानना। इन शब्दोंके शेष रूप सर्व शब्दकी समान होंगे, इन नव शब्दोंके रूप स्पष्ट करनेके लिये पूर्व शब्दके रूप लिखतेहैं।

* सारांश यह कि, जस्में पूर्वे, पूर्वाः। परे, पराः। अवरे, अवराः। दक्षिणे, दक्षिणाः। उत्तरे, उत्तराः। अपरे, अपराः। ऐसे दो दो रूप होतेहैं। इतर रूप २२१ में समझे जायेंगे। संज्ञामें सर्वनाम संज्ञा न होनेसे रामशब्दवत् रूप होंगे ॥

पूर्व शब्दके रूप–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
सम्बुद्धि	हे पूर्व	हे पूर्वौ	हे पूर्वे, हे पूर्वाः
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
तृतीया	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
चतुर्थी	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पंचमी	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
षष्ठी	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
सप्तमी	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

इसी प्रकार शेष पर आदि आठोंके भी रूप जानो। इसके आगे गणपाठमें क्रमसे आनेवाले त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस् यह सर्वनाम हलन्त हैं, इस कारण हलन्त प्रकरणमें इनके रूप आवेंगे। एकशब्द सर्ववत् है, परन्तु जब उसका संख्याविशेष (एक) अर्थ हो, तब केवल एकवचनान्त ही रूप होताहै, एकशब्दके–

एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते ॥

अर्थात् अन्य, प्रधान (मुख्य), प्रथम, केवल, साधारण, समान, अल्प और संख्याविशेष ऐसे आठ अर्थ हैं, उनमें संख्याविशेषको छोडकर दूसरे अर्थ हों तो उनके रूप सब वचनोंके होंगे।

द्वि शब्द इकारान्त शब्दोंमें आवेगा।

युष्मद्, अस्मद्, भवतु (भवत्), किम्, यह सर्वनाम हलन्त हैं, इस कारण हलन्तप्रकरणमें आवेंगे।

समासके कारण कभी २ सर्वनाम संज्ञाको बाध आताहै, उसके विषयमें अगला सूत्र है ॥

२२२ न बहुव्रीहौ ।१।१।२९॥

बहुव्रीहौ चिकीर्षिते सर्वनामसंज्ञा न स्यात्। त्वकं पिता यस्य स त्वत्कपितृकः। अहकं पिता यस्य स मत्कपितृकः। इह समासात्प्रागेव प्रक्रियावाक्ये सर्वनामसंज्ञा निषिध्यते। अन्यथा लौकिके विग्रहवाक्ये इव तत्राप्यकच् प्रवर्तेत स च समासेऽपि श्रूयेत। अतिक्रान्तो भवकन्तमति भवकानितिवत्। भाष्यकारस्तु त्वकत्पितृको मकत्पितृक इति रूपे इष्टापत्तिं कृत्वैतत्सूत्रं प्रत्याचख्यौ। यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्। संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः। महासंज्ञाकरणेन तदनुगुणानामेव गणे संनिवेशात्। अतः संज्ञाकार्यमन्तर्गणकार्यं च तेषां न भवति। सर्वो नाम कश्चित्तस्मै सर्वाय देहि। अतिक्रान्तः सर्वमतिसर्वस्तस्मा अतिसर्वाय। अतिकतरं कुलम्। अतितत् ॥

२२२–बहुव्रीहि समास करना हो तो समासघटक शब्दकी सर्वनाम संज्ञा न हो। त्वकं पिता यस्य स त्वत्कपितृकः (तू अज्ञात मनुष्य है पिता जिसका वह त्वत्कपितृक), अहकं

पिता यस्य स मत्कपितृकः (मैं अज्ञात मनुष्य हूं पिता जिसका वह मत्कपितृक) सर्वनामसंज्ञक शब्दको ही अकच् प्रत्यय होता है यह पीछे "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ५।३।७१/७०२६" सूत्रका उल्लेख करके स्पष्ट कर ही दियाहै, तथा अर्थ भी कर दिया है। युष्मद् (तू) अस्मद् (मैं) इन सर्वनामोंके प्रथमाके एकवचन त्वम्, अहम् ३८५ से होते हैं, अकच् होनेसे वह रूप 'त्वकम्' 'अहकम्' होतेहैं–युष्मद्, अस्मद्,–यह सर्वनाम समासमें आतेहैं तब उनके स्थानमें ७।२।९८/१३७१ त्वत्, मत्,–यह रूप होतेहैं और अकच् होते ही वही त्वकत्, मकत् ऐसे रूप होतेहैं, परन्तु २।२।२३/८२९ से बहुव्रीहि समास किया जायगा तब प्रस्तुत सूत्रसे सर्वादिकोंकी सर्वनामसंज्ञा नहीं होती और सर्वनामत्वके विना तो अकच् होता ही नहीं, इस कारण उक्त प्रसंगमें त्वकत्, मकत्, यह रूप नहीं होते, अकच्के अभावमें सामान्यसे होनेवाला जो केवल क प्रत्यय वह लगकर होनेवाले 'त्वत्क,' 'मत्क' यह रूप उन्हींकी योजनासे होतेहैं, इस कारण केवल वाक्य हीमें 'त्वकं पिता यस्य' 'अहकं पिता यस्य' इनमें सर्वनाम है, तो भी बहुव्रीहि समास होते समय सर्वनामत्व न रहते, 'त्वत्कपितृकः', मत्कपितृकः' इनमें क-प्रत्ययान्तोंकी योजना हुईहै।

(इह समासादिति) लौकिक विग्रहवाक्यका अर्थ यह कि, समासके पदोंका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये लौकिक भाषणकी रीतिसे जो शब्दयोजनाकी जाती है, वह लौकिक विग्रहका अर्थ है, समासपदका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये उसके घटनायुक्त शास्त्रीयभाषाके अनुसार रहनेवाले प्रकृति प्रत्ययकी स्थिति दिखानेवाले वाक्यको अलौकिक प्रक्रियावाक्य कहते हैं।

'त्वत्कपितृकः' इसका लौकिक विग्रहवाक्य–'त्वकं पिता यस्य' है और अलौकिक प्रक्रियावाक्य युष्मद्+क+सु+पितृ+सु+कप्+सु यह है।

इस अलौकिक वाक्यमें ही पहले सर्वनामसंज्ञाका निषेध होकर अकच्के स्थानमें क प्रत्यय होकर फिर समास हुआहै, ऐसा न होता तो लौकिक विग्रहवाक्यके अनुसार वहांपर भी अकच् हो जाता और समासमें भी उसका श्रवण होता, जैसे 'अतिक्रान्तो भवकन्तम्=अतिभवकान्' इस तत्पुरुष समासमें अन्तमें भी अकच् रह गयाहै वैसा प्रकार (बहुव्रीहिमें) यहां भी होता। (भाष्यकार इति) ऐसा होनेपर भी भाष्यकारने 'त्वकत्पितृकः', 'मकत्पितृकः' इन रूपोंमें इष्टापत्ति (अर्थात् यह रूप बहुव्रीहिमें होतेहैं चलो यही अच्छा है ऐसा स्वीकार) कर "न बहुव्रीहौ" इस प्रस्तुत सूत्रका प्रत्याख्यान कियाहै अर्थात् यह सूत्र नहीं चाहिये ऐसा कहाहै। (यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्) पहले सूत्रकार, फिर वार्तिककार, फिर भाष्यकार, इन तीन मुनियोंमें अनुक्रमसे उत्तरोत्तर प्रमाण मानना अर्थात् सूत्रकारसे वार्तिककारका, वार्तिककारसे भाष्यकारका मत विशेष ग्राह्य है परन्तु भाष्यकारका इन दोनोंके ही मतसे विशेष प्रमाण है इस कारण भाष्यकारके मतानुसार 'त्वकत्पितृकः' 'मकत्पितृकः' यह रूप ग्राह्य हैं और सर्वादि शब्दोंकी बहुव्रीहिसमासमें भी सर्वनामसंज्ञा है।

(संज्ञोपसर्जनीति) जो सर्वादि शब्द संज्ञा (नाम) में योजना किये गये हैं, अथवा उपसर्जनीभूत (दूसरे शब्दमें विशेषणको समान लगाये हुए) हों तो वे सर्वादि शब्द सर्वनामसंज्ञक न हों (वा० २२५) कारण कि, व्याकरणमें केवल लाघवके निमित्त ही जो छोटी २ विना अर्थकी (टि० ७९), (घि २४३) इत्यादि संज्ञा की हैं, वैसे सर्वनाम यह संज्ञा अर्थशून्य वा छोटी संज्ञा नहीं है, यह महासंज्ञा (पांच अक्षरोंकी बडी संज्ञा) है और सार्थ है, सर्वनामानिका अर्थ 'सर्वेषां नामानि' अर्थात् सब नामोंके स्थानमें आनेवाले शब्द हैं, इसीसे इस अर्थके अनुकूल ही जब यह सर्वादि शब्द होंगे तभी सर्वादि गणमें उनकी गणना होगी, यह बात स्पष्ट है, जब वे केवल संज्ञाशब्द होतेहैं, अथवा विशेषण होतेहैं, तब उनके अर्थमें संकोच होताहै, इसी कारण उनकी सर्वनाम संज्ञा नहीं, इसीसे सर्वनाम संज्ञा होनेसे जो कार्य शब्दको होतेहैं वह (शी, स्मै, स्मात्, स्मिन्, सुट्, अकच्) और अन्तर्गणके कारणसे त्यदादि २६५ डतरादि ३१५ ऐसे जो सर्वादिकोंके अन्तर्गत दूसरे गण किये हैं उस कारणसे होनेवाले जो (अ, अद्, आदि) कार्य वे भी नहीं होते। (सर्वो नाम कश्चित् तस्मै सर्वाय देहि) अर्थात् सर्वनामवाले पुरुषको कुछ दो ऐसा कहनेकी इच्छामें सर्वकी चतुर्थी सर्वस्मै ऐसा न होते 'सर्वाय देहि' ऐसा प्रयोग हुआहै यह संज्ञाका उदाहरण हुआ।

(अतिक्रान्तः सर्वमिति)–सबके उल्लंघन करनेवाले अतिसर्वको कुछ दो ऐसा कहना हो तो उपसर्जनत्वके कारण अर्थात् उसमें विशेषणत्व होनेसे अतिसर्वाय ऐसा ही प्रयोग होताहै।

(अतिकतरं कुलम्) किस मनुष्यका अतिक्रमण किया हुआ कुल। इसमें डतर (अतर) प्रत्ययके कारणसे नपुंसकमें 'अतिकतरम्' ऐसा इतर नपुंसक शब्दके समान रूप हुआ, इसी प्रकारसे 'अतितत्' (उसका अतिक्रमण करनेवाला) इसमें 'तद्' इसको विशेषण होनेके कारण सर्वनाम संज्ञा न होनेसे पुँल्लिङ्गमें भी 'अतितत्' ऐसा ही नपुंसक शब्दके रूपकी समान दीखता हुआ रूप होताहै। अतिसः नहीं होता, ('अतितत्' में "त्यदादीनामः" से अ और "तदोः सः०" से स न हुए)॥

सर्वनामसंज्ञाका निषेधक सूत्र–

२२३ तृतीयासमासे । १ । १ । ३० ॥

अत्र सर्वनामता न स्यात् । मासपूर्वाय । तृतीयासमासार्थवाक्येऽपि न । मासेन पूर्वाय ॥

२२३–तृतीयातत्पुरुष ६९३ समासमें भी सर्वनाम संज्ञा नहीं होती। 'मासेन पूर्वाय' एक महीनेसे बडा ऐसा विग्रह होते मासपूर्व जो समास होताहै, उसकी चतुर्थीमें 'मासपूर्वाय' होताहै, इस सूत्रमें "विभाषा दिक्समासे०" इससे समासे इसकी अनुवृत्ति लाकर सिद्ध ही था फिर समासग्रहणसे नियम होताहै कि तृतीयातत्पुरुष समासका अर्थ हो जिसमें ऐसा वाक्य होते भी वहां सर्वादि शब्दको सर्वनामता नहीं 'मासेन पूर्वाय'

(जो एक महीनेसे बडा, उसको) यह सूत्र तदन्तविधिसे प्राप्त संज्ञाके निषेधके निमित्त है ॥

२२४ द्वन्द्वे च । १ । १ । ३१ ॥

द्वन्द्वे उक्ता संज्ञा न । वर्णाश्रमेतराणाम् । समुदायस्यायं निषेधो न त्ववयवानाम् । न चैवं तदन्तविधिना सुट्प्रसङ्गः सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडिति व्याख्यातत्वात् ॥

२२४–तदन्तविधिसे प्राप्त जो सर्वनाम संज्ञा वह द्वन्द्वसमास (९०१) में नहीं होती । वर्णाश्रमेतराणाम् (वर्ण, आश्रम और इतरका) । यह निषेध समुदायका है, उसके अवयवोंका जैसे बहुव्रीहिमें होताहै वैसे नहीं होता अर्थात् 'वर्णाश्रमेतर' इस सम्पूर्ण शब्दमात्रको सर्वनामता नहीं है, इसमेंके 'इतर' इस अंशको तो है ही, इस कारण 'पदाङ्गाधिकारे०' इस पूर्वोक्त (२०९) परिभाषासे "आमि सर्वनाम्नः सुट् ७।१।५२ / १२७" यहाँ तदन्तविधि होकर षष्ठीके आम् प्रत्ययको कहा हुआ जो सुट् वह इतरान्तसे परे जो आम् उसको भी होना चाहिये परन्तु वैसा नहीं होता, कारण कि, सर्वनामसे विधान करके जो आम् प्रत्यय लगाया हुआ होगा उसको सुट्का आगम होताहै, इस प्रकार २१७ सूत्रकी व्याख्या भाष्यकारने की है । इस कारण इतर यह शब्द सर्वनाम भी है और उसके आगे आम् प्रत्यय भी है तो भी उस इतर शब्दसे यह आम् प्रत्यय नहीं विहित है, इसकारण उसको सुडागम नहीं होता ऐसा इस व्याख्यानसे सिद्ध होताहै, आम् प्रत्यय 'वर्णाश्रमेतर' इस द्वन्द्वसमासघटित शब्दसे किया गयाहै, और इस शब्दके सर्वनामत्वका प्रस्तुत सूत्रसे निषेध है, इस कारण यहां सुडागम नहीं होता ऐसा जानना ॥

२२५ विभाषा जसि । १ । १ । ३२ ॥

जसाधारं शीभावाख्यं यत्कार्यं तत्र कर्तव्ये द्वन्द्वे उक्ता संज्ञा वा स्यात् । वर्णाश्रमेतरे । वर्णाश्रमेतराः । शीभावं प्रत्येव विभाषेत्युक्तमतो नाकच् । किंतु कप्रत्यय एव । वर्णाश्रमेतरकाः ॥

२२५–द्वन्द्व समासको सर्वनामसंज्ञा नहीं होती ऐसा कहा भी है, तथापि जस् प्रत्ययको जब शी (ई) कार्य हो तब द्वन्द्व समासमें उक्त सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके होतीहै, यथा–वर्णाश्रमेतरे, वर्णाश्रमेतराः । केवल शीरूप कार्यके लिये ही द्वन्द्वमें सर्वनामत्वको विभाषा कहाहै, इस कारण द्वन्द्वमें 'अकच्' नहीं 'क' प्रत्यय ही होताहै, कारण कि 'अकच्' प्रत्यय होनेके लिये उसको सर्वनामसंज्ञा नहीं है, 'वर्णाश्रमेतरकाः' । और शीभाव होताहै तब तो क प्रत्यय भी नहीं होता, कारण कि जो 'क' प्रत्यय किया जाताहै तो द्वन्द्वसमास पीछे पडजाताहै और फिर उसमें जहां 'क' प्रत्यय है, वहां सर्वनाम संज्ञा न होनेसे आगे शीभाव न होगा ॥

ऐसे ही और भी कितने शब्दोंकी सर्वनाम संज्ञा कभी नहीं होती, केवल जस्प्रत्ययमें वह विकल्पसे होती है, उसके निमित्त सूत्र–

२२६ प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च । १ । १ । ३३ ॥

एते जसः कार्यं प्रत्युक्तसंज्ञा वा स्युः । प्रथमे । प्रथमाः । शेषं रामवत् । तयः प्रत्ययस्ततस्तदन्ता ग्राह्याः । द्वितये । द्वितयाः । शेषं रामवत् । नेमे । नेमाः । शेषं सर्ववत् । विभाषाप्रकरणे तीयस्य ङित्सूपसंख्यानम् ॥ द्वितीयस्मै । द्वितीयायेत्यादि । एवं तृतीयः । अर्थवद्ग्रहणान्नेह । पटुजातीयाय । निर्जरः ॥

२२६–प्रथम, चरम, तय (प्रत्ययान्त), अल्प, अर्ध, कतिपय, नेम, यह शब्द जस् कार्यके समय विकल्प करके सर्वनामसंज्ञक होतेहैं । प्रथमे, प्रथमाः (प्रथमके); शेष रूप रामशब्दके समान जानने । तय यह प्रत्यय है, इससे तयप्प्रत्ययान्त शब्द लिये जायंगे, द्वितये, द्वितयाः (दूसरे) इतर रूप रामशब्दवत् होंगे । इसी प्रकार चरमे, चरमाः (अन्तके) । अल्पे, अल्पाः । अर्धे, अर्धाः । कतिपये, कतिपयाः (कुछ) ऐसे रूप होतेहैं, इतर रूप रामशब्दवत् जानो । नेमे, नेमाः । नेमशब्द सर्वादि गणमें है इससे शेष रूप सर्वशब्दवत् जानो । अवयवोंकी संख्या दिखानेवाला तयप् प्रत्यय है, दो अवयव जिसके हों वह द्वितय इसी प्रकार त्रितय, चतुष्टय, पञ्चतय, बहुतय, इत्यादि रूप जानो ५।२।४२ / १८४३ सूत्र देखो ।

*(विभाषेति) इस विभाषाप्रकरणमें तीयप्रत्ययान्त (द्वितीय, तृतीय) शब्दोंको ङित् विभक्ति परे रहते सर्वनाम संज्ञा करनी चाहिये । (वा० २४५) अर्थात् द्वितीय, तृतीय शब्दोंको ङित् विभक्तिमें (चतुर्थी, पंचमी, सप्तमी) इनके एक वचनमें विकल्पसे सर्वनाम संज्ञा होतीहै । द्वितीयस्मै, द्वितीयाय । द्वितीयस्मात्, द्वितीयात् । द्वितीयस्मिन्, द्वितीये । इसी प्रकार तृतीय शब्दके रूप जानने । तृतीयस्मै, तृतीयाय । तृतीयस्मात्, तृतीयात् । तृतीयस्मिन्, तृतीये । इनके इतर रूप रामशब्दवत् होंगे ।

'अर्थवद् ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम् ७३' यह परिभाषा पीछे कहीहै, इसके अनुसार यहां ऐसा जानना कि, संख्याके पूर्ण करनेके निमित्त जो "द्वेस्तीयः ५।२।५४ / १८५४" इससे तीय प्रत्यय होताहै उसके उच्चारणसे "प्रकारवचने जातीयर् ५।३।६९ / २०२४" इससे होनेवाला जातीयर् (जातीय) प्रत्यय है, इसमेंके 'तीय' इतने निरर्थक अंशका ग्रहण नहीं होता, उन शब्दोंका इस विभाषासे किसी प्रकारका कुछ सम्बन्ध नहीं, इस कारण पटुजातीय (कुशल मनुष्यकेसा) इस शब्दकी चतुर्थीमें 'पटुजातीयाय' ऐसा ही रूप होताहै, ऐसे ही और रूप रामशब्दकी समान जानने ॥

निर्जर (देवता) शब्द–(निर्गता जरा यस्मात् अर्थात् जिसको बुढापा नहीं आता–देवता) निर्जर+सु–निर्जरः । निर्जर+औ–

२२७ जराया जरसन्यतरस्याम् ७ । २ । १०१ ॥

जराशब्दस्य जरस् वा स्यादजादौ विभक्तौ ।

पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च । अनेकाल्त्वात्सर्वादेशे प्राप्ते निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाज्जरशब्दस्य जरस् । निर्जरसौ । निर्जरसः । इनादीन् बाधित्वा परत्वाज्जरस् । निर्जरसा । निर्जरसे । निर्जरसः । पक्षे हलादौ च रामवत् । वृत्तिकृता तु पूर्वविप्रतिषेधेन इनातोः कृतयोः सन्निपातपरिभाषाया अनित्यत्वमाश्रित्य जरसि कृते निर्जरसिन निर्जरसादिति रूपे न तु निर्जरसा निर्जरस इति केचिदित्युक्तम्। तथा भिसि निर्जरसैरिति रूपान्तरमुक्तम् । तदनुसारिभिश्च षष्ठ्येकवचने निर्जरस्येत्येव रूपमिति स्वीकृतमेतच्च भाष्यविरुद्धम् ॥

२२७–अजादि विभक्ति आगे होते जरा शब्दको जरस् आदेश होताहै । (परि०) 'पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च' अर्थात् पदाधिकार वा अंगाधिकारमें कहे हुए शब्दसे तदन्तका भी ग्रहण होताहै (२०९ सि०) । यह सूत्र अंगाधिकारमें है, इससे जराशब्दसे निर्जर शब्दका भी ग्रहण होताहै, अर्थात् निर्जर शब्दको भी जरस् आदेश होताहै, जरस् यह अनेकवर्णवान् आदेश है इससे निर्जरके स्थानमें १।१।५५/४५ से प्राप्त हुआ, परन्तु (परि०) 'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति' अर्थात् सूत्रमें जितनेका उच्चारण किया हो उतने ही अंशको आदेश होताहै, इस कारण 'जर' इतने ही अंशको आदेश जानना चाहिये । (एकदेशेति) एक देशमें विकार होनेसे अन्यके तुल्य नहीं होता (जैसे कुत्ता कान, पूंछ कटनेपर घोडा या गधा नहीं होता) इससे आदिमें जरा इस आकारान्त शब्दको सूत्रमें आदेश कहाहै तो भी उसके एकदेश अर्थात् थोडे भागमें विकार होकर बना जो जर शब्द उसको जरस् आदेश होताहै, निर्जर शब्दमें जरा यह मूल स्त्रीलिंग शब्द है, "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८/६५६" इससे उसको ह्रस्व हुआ है । निर्जरसौ । जस्, शस्में निर्जरसः । अकारान्त पुँल्लिंगके आगेके टा, ङे, ङसि, ङस्के स्थानमें ५।१।१२/२०१ । ७।१।२३/२०४ से क्रमसे इन, य, आत्, स्य. यह आदेश होतेहैं, परन्तु इस ७।२।७१/२२७ का कार्य जरस् आदेश पहले होकर शब्दका अकारान्तत्व नष्ट होगया, और उससे इन इत्यादि आदेश न होकर टा आदि मूल प्रत्यय ही लगकर निर्जरस् + टा=निर्जरसा । ङे=निर्जरसे । ङसि, ङस्=निर्जरसः । इसी प्रकारसे ओस्, आम्, ङि, इन प्रत्ययोंमें पहले ही जरस् आदेश होताहै । और जरसादेशके विकल्प पक्षमें और हलादिमें रामवत् रूप होतेहैं ।

निर्जर शब्दके रूप–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	निर्जरः	निर्जरसौ, निर्जरौ	निर्जरसः, निर्जराः
सम्बोधन	हे निर्जर	हे निर्जरसौ, हे निर्जरौ	हे निर्जरसः, हे निर्जराः
द्वि०	निर्जरसम्, निर्जरम्	निर्जरसौ, निर्जरौ	निर्जरसः, निर्जरान्
तृ०	निर्जरसा, निर्जरेण	निर्जराभ्याम्	निर्जरैः
च०	निर्जरसे, निर्जराय	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
पं०	निर्जरसः, निर्जरात्–द्	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
षष्ठी	निर्जरसः, निर्जरस्य	निर्जरसोः, निर्जरयोः	निर्जरसाम्, निर्जराणाम्
सप्तमी	निर्जरसि, निर्जरे	निर्जरसोः, निर्जरयोः	निर्जरेषु ॥ * ॥

(वृत्तिकृतेति)–वृत्तिकार कहतेहैं कि, "विप्रतिषेधे परं कार्यम् १।४।२/१०५" से पर अर्थात् इष्ट प्रसंगके अनुकूल ऐसा अर्थ लेकर यहां पूर्व यही अनुकूल अर्थ है, ऐसा कह कर "विभक्त्यादेशाः पूर्वप्रतिषेधेन भवन्ति" ऐसा वार्तिक वचन होनेसे उसके बलसे पूर्व कार्य पहले करना, अकारान्त निर्जर शब्दको इन, आत् यह पूर्व ७।१।१२/२०१ कार्य पहले करके उन्हींके निमित्तसे फिर उलटे निर्जर शब्दको २२७ से जरस् आदेश करना चाहिये, सन्निपातपरिभाषा तो अनित्य है अर्थात् यहां बाध आनेपर भी कोई हानि नहीं, इस कारण 'निर्जरसिन' 'निर्जरसात्' ऐसे रूप होतेहैं, 'निर्जरसा' 'निर्जरसः' ऐसे रूप नहीं होते ऐसा कोई कोई कहतेहैं, इसी प्रकार भिस् प्रत्ययमें भी निर्जरसैः ऐसा एक और रूप उन्होंने मानाहै, इसी प्रकार वृत्तिकारका मत माननेवालोंने षष्ठीके एकवचनमें 'निर्जरस्य' यह एक ही रूप मानाहै, वार्तिकसे स्य आदेश पहले होताहै और फिर जरस् आदेशको स्थल नहीं रहता ऐसा कहते हैं, परन्तु यह सब मत भाष्यविरुद्ध होनेसे त्याज्य हैं * ॥

(इस सूत्रमें "अचि र ऋतः ७।२।१००/२९९" से 'अचि' और "अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८४/३७१" से 'विभक्तौ' की अनुवृत्ति आतीहै)

पाणिनीय सूत्रोंकी वृत्ति लिखनेवालोंका नाम वृत्तिकार है, नाम प्रसिद्ध नहीं ।

स्त्रीलिंग जरा शब्द २९३ सूत्रमें आवेगा उसका वर्णन वहीं करेंगे, यहां केवल अकारान्त शब्द दिखाया है ॥

* द्वितीयाबहुवचनमें अर्थात् शस् प्रत्ययमें प्रथम रूपमें दीर्घ नहीं होता इस कारण "तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।७२/१९६" सूत्र नहीं लगता अर्थात् नकार नहीं होता । तृतीयाबहुवचनमें "अतो भिस ऐस् ७।१।९/२०३ इससे अकारान्तके आगे भिस् प्रत्ययके स्थानमें ऐस् आदेश हुआ, वह अजादि है इससे उसके कारणसे "जराया जरस्०" ७।२।१०१/२२७ सूत्रसे जरसादेश भी प्राप्त होताहै ऐसा न कहना चाहिये कारण कि निर्जर शब्दमेंके अकारान्तके आश्रयसे जो ऐस् आदेश हुआ उसीके कारणसे उपजीव्य निर्जर शब्दके अकारान्तत्वको नष्ट न होते सन्निपातपरिभाषा २०४ का विरोध आताहै वैसे ही अकारान्त शब्दको भी जो कितने एक दूसरे कार्य होने हैं वे जरसादेशमें नहीं होते ॥

* २०१ सूत्रमें भाष्यकारने इन और आत् का प्रत्याख्यान करके उसके स्थानमें 'न' 'अत्' ऐसा विधान किया 'रामेण' इत्यादि रूपसिद्धिके लिये "आङि चापः २८९" में 'आङि च' इसका योगविभाग कर आङ् परे रहते अदन्ताङ्गको एत्व हो ऐसा अर्थ किया और 'रामात्' इत्यादिकी सिद्धिके लिये 'अत्' ऐसा उच्चारणसामर्थ्यसे पररूप १९१ का बाध कर दीर्घ ही ८५ होगा ऐसा कहाहै, उनके मतसे वार्तिककारका 'निर्जरसिन' 'निर्जरसात्' इत्यादिरूप विरुद्ध हैं क्योंकि 'न' 'अत्' ऐसा आदेश होनेपर वे रूप नहीं बनसकते और भिस्में 'निर्जरैः' ऐसा ही होताहै यहां सन्निपातपरिभाषासे जरस् आदेश नहीं होता ऐसा भाष्यकारने कहाहै ॥

अब पाद (चरण)[1] शब्द कहतेहैं–

२२८ पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ॥ ६ । १ । ६३ ॥

पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृज्, यूष, दोष, यकृत्, शकृत्, उदक, आस्य, एषां पादादय आदेशाः स्युः शसादौ वा । यत्तु आसनशब्दस्य आसन्नादेश इति काशिकायामुक्तं तत्प्रामादिकम् । पादः । पादौ । पादाः । पादम् । पादौ । पदः । पादान् । पदा । पादेन इत्यादि ॥

२२८–पाद, दन्त, नासिका, मास, हृदय, निशा, असृज्, यूष, दोष, यकृत्, शकृत्, उदक, आस्य, इन शब्दोंके स्थानमें क्रमसे पद्, दत्, नस्, मास्, हृद्, निश्, असन्, यूषन्, दोषन्, यकन्, शकन्, उदन्, आसन् ,आदेश शस् आदि विभक्ति परे रहते विकल्प करके हों ("अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ६ । १ । ५९" से विकल्पकी अनुवृत्ति आतीहै)। आसन शब्दके स्थानमें आसन् आदेश हो यह बात जो काशिका वृत्तिमें लिखीहै, वह प्रमाद अर्थात् भूल है * ॥

पाद शब्दके रूप–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र.	:	पादौ	पादाः
सं.	हे पाद	हे पादौ	हे पादाः
द्वि.	पादम्	पादौ	पदः, पादान्
तृ.	पदा, पादेन	पद्भ्याम्, पादाभ्याम्	पद्भिः, पादैः
च.	पदे, पादाय	पद्भ्याम्, पादाभ्याम्	पद्भ्यः,पादेभ्यः
पं.	पदः, पादात्	पद्भ्याम्, पादाभ्याम्	पद्भ्यः,पादेभ्यः
ष.	पदः, पादस्य	पदोः, पादयोः	पदाम्,पादानाम्
स.	पदि, पादे	पदोः, पादयोः	पत्सु, पादेषु.

अब 'दन्त' (दांत) इसको शसादि प्रत्यय आगे रहते पूर्वसूत्रसे विकल्पसे दत् आदेश होताहै :परन्तु इसके रूप कहनेसे पहले कितनी ही संज्ञायें कहनी उचित हैं, सो कहतेहैं–

२२९ सुडनपुंसकस्य । १ । १ । ४३ ॥

सुट् प्रत्याहारः । स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य ॥

२२९–सुट् यह प्रत्याहार है, इससे सु, औ, जस्, अम्, औट् इन पांच प्रत्ययोंमेंसे प्रत्येकका ग्रहण होताहै । नपुंसकलिंगको छोडकर सु आदि पांच विभक्तियोंकी सर्वनामस्थान संज्ञा है । ("शि सर्वनामस्थानम् १।१।३९/३१२"से सर्वनामस्थानकी अनुवृत्ति आतीहै) * ॥

२३०स्वादिष्वसर्वनामस्थाने।१।४।१७॥

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु परतः पूर्वं पदसंज्ञं स्यात् ।

२३०–असर्वनामस्थान अर्थात् सर्वनामस्थानभिन्न कप्-प्रत्ययपर्यन्त (चतुर्थाध्यायके प्रारम्भसे पञ्चमाध्यायतकके) प्रत्यय परे रहते पूर्वकी पद संज्ञा हो । " सुप्तिङन्तं पदम् २९ " से, ४।१।२/१८३ से सुप् और १।४।७८/२१५४ से तिङ् प्रत्यय लगाकर जो शब्द बनतेहैं, उनकी पद संज्ञा होतीहै, परन्तु यहां प्रत्यय आगे रहते शब्दके मूलरूपकी पद संज्ञा है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये । यहां (२९ से पदकी अनुवृत्ति आतीहै) ॥

इसका अपवाद–

२३१ यचि भम् । १ । ४ । १८ ॥

यकारादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु परतः पूर्वं भसंज्ञं स्यात्॥

२३१–पिछले सूत्रमें कहेके अनुसार असर्वनामस्थान जो सु से लेकर कप् तक प्रत्यय उनमेंसे जो यकारादि अथवा अजादि प्रत्यय आगे हों तो पूर्व शब्दकी भ संज्ञा होतीहै ॥

पद और भ संज्ञा यह दोनों एक ही समय प्राप्त होतीहैं, तो इसपर कहतेहैं–

२३२आ कडारादेका संज्ञा ।१।४।१॥

इत ऊर्ध्वं कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया या पराऽनवकाशा च । तेन शसादावचि भसंज्ञैव न पदत्वम् । अतो जश्त्वं न । दतः । दता । जश्त्वम् । दद्भ्यामित्यादि । मासः । मासा । भ्यामि रुत्वे यत्वे च यलोपः । माभ्याम् । माभिरित्यादि ॥

२३२–यहां १।४।१/२३२ से "कडाराः कर्मधारये २।२।३८/७५१" तक अर्थात् पहिले अध्यायके चतुर्थपादसे लेकर द्वितीय अध्यायके द्वितीय पादकी समाप्तितक तीन पादमें जो संज्ञा कही हैं, वह एकको एक ही होतीहैं अर्थात् एक शब्दको कौन संज्ञा हो ? तो इनमेंसे दो वा अधिक संज्ञायें नहीं होतीं, (या परेति) जो पर हो वह होतीहै, परन्तु जो पूर्व संज्ञाको

---

१ जयादित्य अपर नाम वामनाचार्यने जो पाणिनीय सूत्रोंकी वृत्ति लिखी है वह काशी क्षेत्रमें लिखे जानेके कारण काशिका नामसे विख्यात है, कौमुदीसे पहले इसीका प्रचार था ॥

* "आस्नो वृकस्य वर्त्तिकाम्" इस मन्त्रमें 'आस्नः' इसका 'मुखात्' (मुखसे) ऐसा ही उचित अर्थ होनेसे और "हव्या जुह्वान आसनि" इस मन्त्रमें 'आसनि' इसका 'मुखे' (मुखमें) ऐसा अर्थ होनेसे 'आसन्' इस आदेशका स्थानी आस्य शब्द है, आसन शब्द नहीं ॥

* यहां लाघवसे 'सुट् स्त्रीपुंसयोः' ऐसा कहना उचित था सो न कहकर 'अनपुंसकस्य' ऐसा जो उच्चारण किया सो प्रसज्यप्रतिषेधमें भी समास हो (नञ्के दो अर्थ हैं–पर्युदास और प्रसज्य, तिसमें पर्युदास सदृशका ग्राहक होनेसे उसके समासमें कोई बाधा नहीं यथा 'अब्राह्मणः' इत्यादि और प्रसज्यार्थकका तो क्रियामें अन्वय होताहै इस कारण इस अर्थमें भी समास हो) ऐसे वाक्यमें ज्ञापक होताहै तिससे 'असूर्यपश्यानि मुखानि' इत्यादि वाक्य भी समास होनेसे सिद्ध होतेहैं ॥

और कहीं भी अवकाश न हो तो वही होतीहै, इससे शस् यहांसे चतुर्थ पंचम अध्यायमेंके प्रत्यय जो हैं, उनमेंके अजादि प्रत्यय आगे हों तो पूर्व शब्दको भ संज्ञा ही होतीहै, पद संज्ञा नहीं होती।

सारांश यह कि, सु, औ, जस्, अम्, औट् इन पांच प्रत्ययोंको पुँल्लिङ्गमें और स्त्रीलिंगमें सर्वनाम संज्ञा होतीहै, इन पांच प्रत्ययोंको छोडकर चौथे पांचवें अध्यायोंके जो और प्रत्यय बचे हैं उनमेंसे यकारादि और अजादि प्रत्यय आगे रहते पूर्व शब्दको 'भ' और उन्हींमेंके इतर प्रत्यय आगे रहते पूर्व शब्दको पद संज्ञा जाननी चाहिये, यह सब प्रत्यय बहुत हैं, परन्तु यहां सुप् प्रत्ययोंको दिखातेहैं-शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस् इनसे भ संज्ञा है। भ्याम्, भिस्, भ्याम्, भ्यस्, भ्याम्, भ्यस्, सुप, इन सातसे पद संज्ञा है। विशेष ध्यान रखने योग्य यह बात है कि, सर्वनामस्थान संज्ञा प्रत्ययोंकी होतीहै, परन्तु पद और भ संज्ञा यह प्रत्ययोंके पहले रहनेवाले शब्दोंकी होतीहै। इसी प्रकारसे शसादिकोंमेंके अजादि प्रत्यय आगे रहते पद संज्ञा नहीं होती, इसीसे 'दत्' के आगे शस् प्रत्यय होते "झलाञ्जशोऽन्ते ८४" सूत्र नहीं लगता, कारण कि पदान्तके विना इस सूत्रकी प्राप्ति नहीं होती, यहां पदान्त नहीं है, इससे तकारको (जश्त्व) दकार नहीं होता, दतः। दता। भ्याम् इत्यादि हलादि प्रत्यय आगे रहते पद संज्ञा है इससे ८४ से जश्त्व (तकारको दकार) हुआ दद्भ्याम् इत्यादि।

दन्त शब्दके रूप-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र.	दन्तः	दन्तौ	दन्ताः
सं.	हे दन्त	हे दन्तौ	हे दन्ताः
द्वि.	दन्तम्	दन्तौ	दतः, दन्तान्
तृ.	दता, दन्तेन	दद्भ्याम्, दन्ताभ्याम्	दद्भिः, दन्तैः
च.	दते, दन्ताय	दद्भ्याम्, दन्ताभ्याम्	दद्भ्यः, दन्तेभ्यः
पं.	दतः, दन्तात्	दद्भ्याम्, दन्ताभ्याम्	दद्भ्यः, दन्तेभ्यः
ष.	दतः, दन्तस्य	दतोः, दन्तयोः	दताम्, दंतानाम्
स.	दति, दन्ते	दतोः, दन्तयोः	दत्सु, दन्तेषु

नासिका (नाक) शब्द स्त्रीलिंगमें आगे आवेगा, (२९३ सू० देखो)।

मास (महीना) शब्द, इसको शसादिमें विकल्प करके मास् होगा, इससे मास्+शस्=मासः। मास्+टा=मासा। मास्+भ्याम्=माभ्याम्, इसमेंके सकारको "ससजुषो रुः ८।२।६६/१६२" से रु(र्) और आगे अश् रहनेसे रु को "भोभगो० ८।३।१७/१६७" से यत्व, फिर "हलि सर्वेषाम् ८।३।२२/१७१" से लोप होकर माभ्याम् हुआ। मास्+भिस्=माभिः-इत्यादि।

मास शब्दके रूप-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र.	मासः	मासौ	मासाः
सं.	हे मास	हे मासौ	हे मासाः
द्वि.	मासम्	मासौ	मासः, मासान्
तृ.	मासा, मासेन	माभ्याम्, मासाभ्याम्	माभिः, मासैः
च.	मासे, मासाय	माभ्याम्, मासाभ्याम्	माभ्यः, मासेभ्यः
पं.	मासः मासात्	माभ्याम्, मासाभ्याम्	माभ्यः, मासेभ्यः
ष.	मासः, मासस्य	मासोः, मासयोः	मासाम्, मासानाम्
स.	मासि, मासे	मासोः, मासयोः	माःसु, मास्सु, मासेषु

हृदय नपुंसक लिंगमें, निशा स्त्रीलिंगमें, असृज् नपुंसकमें आवेंगे।

यूष (मूंगका काढा) शब्द, इसको शसादिमें विकल्प करके यूषन् आदेश होताहै, परन्तु-॥

२३३ भस्य। ६। ४। १२९॥

अधिकारोऽयम्॥

२३३-यहां भसंज्ञाका अधिकार जानना चाहिये॥

२३४ अल्लोपोऽनः। ६। ४। १३४॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः स्यात्॥

२३४-अङ्गका अवयव और असर्वनामस्थान यकारादि प्रत्यय और अच् आदिवाले स्वादि प्रत्यय जिसके परे हों ऐसे अन्‌के अकारका लोप हो। यूषन्+अस् ऐसी स्थिति हुई-॥

२३५ रषाभ्यां नो णः समानपदे। ८। ४। १॥

एकपदस्थाभ्यां रेफषकाराभ्यां परस्य नस्य णः स्यात्। यूष्णः। यूष्णा। पूर्वस्मादपि विधौ स्थानिवद्भाव इति पक्षे तु अड्व्यवाय इत्येवात्र णत्वम्। पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदिति तु इह नास्ति। तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेष्विति निषेधात्॥

२३५-एक ही पदमें रहनेवाला रेफके आगेका अथवा षकारके आगेका जो 'न्' उसके स्थानमें 'ण्' आदेश होताहै, यूष्णः। यूष+टा=यूष्णा, यहां अकारके स्थानमें लोप यह आदेश है, (पूर्वस्मादिति) "अचः परस्मिन्पूर्वविधौ १।१।५७/५०" इससे पर वर्णके निमित्तसे अच्‌के स्थानमें प्राप्त होनेवाला जो आदेश वह अच्‌के पूर्व वर्णके कार्य कर्तव्य होते स्थानिवत् होताहै ऐसा कहाहै, परन्तु 'पूर्वविधौ' इसका अर्थ पूर्वस्य विधौ (पूर्ववर्णके सम्बन्धसे कार्य कर्तव्य होते) ऐसा न करते 'पूर्वस्मात् विधौ' अर्थात् पूर्ववर्णके अगले वर्णका कार्य कर्तव्य होते ऐसा भी कहीं २ करतेहैं, इस कारण विभक्ति प्रत्ययके निमित्तसे यूषन् इसमेंके जिस 'अ' अच्‌के स्थानमें अकारका लोप आदेश हुआहै, उसका पूर्व वर्ण जो ष् उससे परे नकारको णकार करना है, इस कारण अकारके लोपको 'स्थानिवद्भाव' अर्थात् अ है ऐसा पक्ष लियाजाय तो 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८।४।२/१५७' इस सूत्रसे बीचम अकार रहते भी षकारके निमित्तसे नकारके स्थानमें णत्व होताहै। (पूर्वत्रासि०) 'त्रिपादीमें स्थानिवद्भाव नहीं होताहै' ऐसा वचन है, परन्तु वह यहां नहीं लगता, क्योंकि संयोगादिलोप, लत्व, णत्व इनका

विधान होते त्रिपादीमें भी स्थानिवद्भाव होता है, ऐसा भाष्यमें निषेध होनेसे यहां उस वचनका बाध होताहै * ॥

२३६ न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य । ८ । २ । ७ ॥

नेति प्रातिपदिकेति च लुप्तषष्ठीके पदे । प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नकारस्य लोपः स्यात् । नलोपस्यासिद्धत्वाद्दीर्घत्वमेत्वमैस्त्वं च न। यूषभ्याम्।यूषभिः।यूषभ्य इत्यादि॥

२३६–इस सूत्रमें 'न' और 'प्रातिपदिक' यह दोनों पद 'लुप्तषष्ठीक' हैं,इनमेंके षष्ठीप्रत्ययोंका लोप हुआ है, सूत्रोंमें यह बात देखी जातीहै इससे षष्ठीप्रत्यय न होते भी षष्ठीका अर्थ लेना चाहिये, तब प्रातिपदिकसंज्ञक पद होते (अर्थात् उसके आगे असर्वनामस्थानसंज्ञक यजादिवर्ज भ्यांम् इत्यादि स्वादि प्रत्यय होते) उसके अन्त्य नकारका लोप होताहै ।

(नलोपस्येति) यह सूत्र त्रिपादीका है इससे सपादसप्ताध्यायीमेंके आगे कहे कार्यको लोप नहीं दीखता, नकार ही दीखताहै, इससे "सुपि च ७।३।१०२ / २०२" इससे यजादि सुप् प्रत्यय आगे रहते अकारान्त अंगको होनेवाला दीर्घ यहां नहीं होता, "अतो भिस ऐस् ७।१।९ / २०३" इससे अकारान्त के आगे जो भिस् उसके स्थानमें होनेवाला ऐस् आदेश वह भी नहीं होता, "बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३ / २०५" इससे बहुवचन झलादि सुप् प्रत्यय आगे रहते अकारको होनेवाला एत्व भी नहीं होता । इनके उदाहरण अनुक्रमसे यूषभ्याम्, यूषभिः, यूषभ्यः–इत्यादि ।

ऊपर वृत्तिमें 'प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदम्' ऐसा कहा है उसमें सुप्तिङन्त जो पद उसका भी ग्रहण होताहै,इससे राजन्+पुरुषः इत्यादिमें नकारका लोप होकर 'राजपुरुषः' ऐसा हुआ है ॥

२३७ विभाषा ङिश्योः।६।४।१३६॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः । यूष्णि । यूषणि । पक्षे रामवत् । पद्न्निति सूत्रे प्रभृतिग्रहणं प्रकारार्थम् । तथा च औङः श्यामपि दोषन्नादेशो भाष्ये ककुद्दोषणी इत्युदाहृतः । तेन पदंघ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्, स्वान्तं हृन्मानसं मन इति संगच्छते । आसन्यं प्राणमूचुरिति च । आस्ये भवः आसन्यः । दोषशब्दस्य नपुंसकत्वमप्यत एव भाष्यात् । तेन दक्षिणं दोर्निशाचर इति संगच्छते । भुजबाहू प्रवेष्टो दोरिति साहचर्यात्पुंस्त्वमपि । दोषं तस्य तथाविधस्य भजत इति । द्वयोरह्नोर्भवो द्व्यह्नः॥

२३७–असर्वनामस्थानयजादिस्वादिपर (अर्थात् भसंज्ञक) और अंगका अवयव जो अन् उसके अकारका विकल्प करके लोप होताहै आगे ङि वा शी ७।१।१९ / २१० प्रत्यय परे रहते । यूष्णि, यूषणि । अन्य पक्षमें रामशब्दवत् ।

यूष शब्दके रूप–

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यूषः	यूषौ	यूषाः
सम्बोधन	हे यूष	हे यूषौ	हे यूषाः
द्वितीया	यूषम्	यूषौ	यूष्णः, यूषान्
तृतीया	यूष्णा, यूषेण	यूषभ्याम्, यूषाभ्याम्	यूषभिः, यूषैः
चतुर्थी	यूष्णे, यूषाय	यूषभ्याम्, यूषाभ्याम्	यूषभ्यः, यूषेभ्यः
पञ्चमी	यूष्णः, यूषात्	यूषभ्याम्, यूषाभ्याम्	यूषभ्यः, यूषेभ्यः
षष्ठी	यूष्णः, यूषस्य	यूष्णोः, यूषयोः	यूष्णाम्, यूषाणाम्
सप्तमी	यूष्णि, यूषणि, यूषे	यूष्णोः, यूषयोः	यूषसु, यूषेषु

इसके अगले शब्द दोष्, यकृत्, शकृत् यह हलन्त हैं । उदक, आस्य यह अदन्त नपुंसक हैं, इससे इनके रूप अपने २ स्थानपर आवेंगे.

"पद्दत्० २२८" सूत्रमें प्रभृतिशब्द प्रकार अर्थात् सादृश्य दिखानेके निमित्त जोडा गयाहै, इस कारण शस्के पूर्वमें भी कहे हुए प्रत्यय आगे रहते कहीं २ पद्, दत् इत्यादि आदेश होतेहैं, (तथा च औङः श्या०) भाष्यमें "नपुंसकाच्च ७।१।१९ / ३३०" इस सूत्रसे औङ् (औ) प्रत्ययको होनेवाला शी (ई) आदेश करते समय भी 'ककुद्दोषणी' (बैलकी ककुद्-कन्धा)। दोष (हाथ) यह उदाहरण देकर स्पष्ट कियाहै । इसीसे 'पदंघ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्' इत्यादि अमरकोशके वाक्योंमें पद्, हृद् ऐसा शब्द प्रथमाके एकवचन सुप्रत्यय में लाये गयेहैं यह ठीक बैठतेहैं । (आसन्यं प्राणमूचुरिति) मुखमें उत्पन्न हुए वायुको प्राण कहतेहैं, ऐसा भी प्रामाणिक प्रयोग है । (आस्ये भव आसन्यः) मुखमें उत्पन्न हुआ, 'आसन्य' इसमें "शरीरावयवाच्च ४।३।५५ / १४३०" इससे यत् (य) प्रत्यय हुआहै यह शसादि सुप् प्रत्ययोंके परेका है

* 'रषाभ्यां नो०' 'अट्कुप्वाङ्०' यह सूत्र त्रिपादीमें होनेसे पूर्वत्र असिद्ध है इस कारण तत्प्रयुक्त कार्यको "अचः परस्मिन्पूर्वविधौ १।१।५७ / ५०" यह शास्त्र नहीं लगता, इसपरसे "पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्"यह परिभाषा प्रगट हुई,परन्तु फिर 'संयोगादिलोप०' इस निषेधके कारण उसका प्रस्तुत प्रसंगमें निराकरण हुआ, अर्थात् यहां स्थानिवद्भाव है ऐसा निश्चय हुआ, इन तीनों अपवादोंके उदाहरण यहां हैं–"स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२।२९ / ३८०"इससे पदान्तमें वा आगे झल् रहते संयोगके प्रारंभमें रहनेवाले सकार और ककारका लोप होताहै, इस कारण चक्री+अत्र इसकी संधि होनेसे जो चक्र्य्×अत्र ऐसी स्थिति हुई उसमें 'क्र्य्' ऐसा जो संयोग वह पदान्तमें होनेसे उसके आदि ककारका लोप प्राप्त हुआ, परन्तु 'संयोगादिलोप०' इस वचनसे अन्त्य यकारको स्थानिवद्भावसे ईत्व प्राप्त है, इस कारण क्र् इस संयोगको पदान्तत्व नहीं आता, और आगे झल् भी नहीं है इस कारण आदि ककारका लोप न होते 'चक्र्यत्र' ऐसी संधि हुई । लत्वका उदाहरण–'निगाल्यते' यह गृ धातुका प्रयोजकणिजन्तकर्मणि रूप है, इसमें स्थानिवद्भावसे रेफके स्थानमें "अचि विभाषा" ८ । २ । २१" से लत्व हुआ है । 'माषवपनी' इसमें स्थानिवद्भाव है इस कारण नकारको णत्व नहीं हुआ; अर्थात् 'यस्येति च' इससे अलोपके स्थानिवद्भाव होनेमें नकारको प्रातिपदिकान्तत्वाभाव होनेसे णकार न हुआ । अन्तके इन दोनों रूपोंकी सिद्धिका विस्तार आगेके स्थलोंमें आवेगा इस कारण यहां नहीं लिखते ॥

तो भी यह आगे रहते आस्य शब्दको आसन् आदेश हुआ है ।

'आसन्' यह आदेश आसन शब्दको होताहै ऐसा काशिकाकारने कहाहै सो प्रामादिक है यह कहनेको 'आसन्यं प्राणमूचुः' यही आधार है ॥

(दोष्शब्दस्य) ऊपर 'ककुद्दोषणी' ऐसा शब्द आया है वह 'ककुद्दोषन्' इस नपुंसक शब्दका प्रथमा द्वितीयाका द्विवचन है, इस भाष्यके लेखके आधारसे दोष शब्द नपुंसक भी है, इससे 'दक्षिणं दोर्निशाचरे' (दहिनी भुजा राक्षसपर 'डाली') यह प्रयोग साधु दीखताहै । (भुजबाहू०) अमरकोशमें 'प्रवेष्टः' पुँल्लिङ्गके साथ 'दोः' (दोष्) शब्द दिया हुआहै इस कारण उसको पुंस्त्व भी है, इसका प्रयोग 'दोषं तस्य तथाविधस्य भजतः' (इस प्रकारका वह ईश्वर है उसकी बाहुको भजते०) यह है ॥

अब द्व्यह्न शब्द-('द्वयोः अह्नोः भवः-द्व्यह्नः' । जो दो दिनोंमें हुआ)—

२३८ संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याहनन्यतरस्यां ङौ।६।३।११०॥

संख्यादिपूर्वस्याह्नस्याहनादेशो वा स्यान्ङौ। द्व्यह्नि। द्व्यहनि। द्व्यह्ने। विगतमहर्व्यह्नः। व्यह्नि। व्यहनि। व्यह्ने। अह्नः सायः सायाह्नः। सायाह्नि। सायाहनि। सायाह्ने॥ ॥ इत्यदन्ताः ॥

विश्वपाः ॥

२३८-संख्यावाचक शब्द अथवा अव्यय वि और साय-शब्द यदि पूर्वमें हों तो अह्न शब्दके स्थानमें ङि परे रहते विकल्प करके अहन् आदेश हो । इससे द्व्यह्नको 'द्व्यहन्' ऐसा रूप हुआ परन्तु आगे ङि होनेसे "विभाषा ङिश्योः ६।४।१३६/२३७" इससे फिर विकल्प करके अन्के अकारका लोप हुआ इस प्रकारसे तीन रूप हुए-द्व्यह्नि, द्व्यहनि, द्व्यह्ने । शेष रूप रामशब्दवत् जानो ।

इसी प्रकार व्यह्न ('विगतम् अहः' बीता हुआ दिन) शब्दके रूप जानो । इसके आगे ङि होनेसे व्यह्नि, व्यहनि, व्यह्ने । इतर रूप रामशब्दवत् जानो ।

अह्नः सायः-(दिनका सायंकाल) 'सायाह्नः' ङि प्रत्यय आनेपर सायाह्नि, सायाहनि, सायाह्ने । इतर रूप रामशब्दवत् जानने ।

इसमें अहन् शब्द हलन्त है तो भी "अहोऽह्न एतेभ्यः ५।४।८८/७९०" इससे टच् (अ) होकर समासान्तमें अह्न आदेश हुआ है, अहन् शब्द आदिका नपुंसक है तो भी द्व्यह्न यह सामासिक शब्द विशेषणरूप होनेसे पुँल्लिङ्गमें लेनेसे कोई दोष नहीं, 'व्यह्न' और 'सायाह्न' यह शब्द "रात्राह्नाहाः पुंसि २।४।२९/८१४" इससे पुँल्लिङ्ग हुए हैं ॥

इति अदन्ताः ॥

आदन्त शब्द विश्वपा (विश्वं पाति इति विश्वपाः-विश्वका पालन करनेवाला) इसमें 'पा' धातुके आगे क्विप् प्रत्यय हुआ है क्विप् प्रत्यय सब जातारहताहै (१२६ देखो) कृत् प्रत्यय होनेके कारण इसकी प्रातिपदिक संज्ञा हुई आगे विभक्ति प्रत्यय 'सु' में विश्वपाः । अब 'औ' और 'जस्' में-

२३९ दीर्घाज्जसि च । ६ । १ । १०५॥

दीर्घाज्जसि इचि च परे प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घो न स्यात् । वृद्धिः । विश्वपौ । सवर्णदीर्घः। विश्वपाः । यद्यपीह औङि नादिचीत्येव सिद्धं जसि तु सत्यपि पूर्वसवर्णदीर्घे क्षतिर्नास्ति तथापि गौर्यौ गौर्य इत्याद्यर्थं सूत्रमिहापि न्याय्यत्वादुपन्यस्तम् ॥

२३९-दीर्घके आगे जस् वा इच् प्रत्याहारका वर्ण हो तो "प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०१/१६४.५" यह सूत्र नहीं लगता अर्थात् इससे पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता । औ प्रत्यय आगे रहते "वृद्धिरेचि ६।१।८८/७२" इससे वृद्धि हुई तब विश्वपौ । आगे जस् परे रहते "अकः सवर्णे दीर्घः ८५" से दीर्घ विश्वपाः ।

(यद्यपीति०) यहां औङ् (औ) प्रत्यय आगे रहते "नादिचि ६।१।१०४/१६५" अवर्णके आगे इच् रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता, इसीसे रूप सिद्ध होजायगा और जस् प्रत्ययमें तो पूर्वसवर्णदीर्घ हो तो भी कोई हानि नहीं वही रूप होगा तथापि गौरी इत्यादिशब्दोंके गौर्यौ गौर्यः, इत्यादि रूप "प्रथमयोः० १६४" से सिद्ध नहीं होंगे इस सूत्रसे उसमें दोष आजायगा, इससे यह प्रस्तुत सूत्र लगाना चाहिये (३०० सूत्र देखो) उस शब्दकी समान ही यह शब्द दीर्घान्त होनेसे यहां भी वही नियम लगाना न्याय्य है, इससे वह सूत्र यहां दियाहै ॥

२४० आतो धातोः । ६ । ४ । १४७॥

आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याऽङ्गस्य लोपः स्यात् । अलोन्त्यस्य । विश्वपः। विश्वपा । विश्वपाभ्यामित्यादि ।एवं शङ्खध्मादयः । धातोः किम् । हाहान् । टा । सवर्णदीर्घः। हाहा । ङे। वृद्धिः। हाहै । ङसिङसोर्दीर्घः । हाहाः २ । ओसि वृद्धिः। हाहौः । ङौ आद्गुणः। हाहे। शेषं विश्वपावत् । आत इति योगविभागादधातोरप्याकारलोपः क्वचित् । क्त्वः । इनः ॥ इत्यादन्ताः ॥

२४०-आकारान्त जो धातु वह है अन्तमें जिसके ऐसे भसंज्ञक अंगका लोप हो । "अलोन्त्यस्य १।१।५२/४२" इससे आकारका लोप हुआ विश्वप्+अस=विश्वपः । विश्वपा+टा=विश्वपा । विश्वपाभ्याम् इत्यादि ।

विश्वपा शब्दके रूप-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
सम्बोधन	हे विश्वपाः	हे विश्वपौ	हे विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः

कारकप्रकरणम्।

१२२–अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्। १२३–नीवह्योर्न। १२४–नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः। १२५–आदिखाद्योर्न। १२६–भक्षेरहिंसार्थस्य न। १२७–जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्। १२८–दृशेश्च। १२९–शब्दायतेर्न। १३०–अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्। १३१–अभुक्त्यर्थस्य न। १३२–उभसर्वतसोः कार्य्या धिगुपर्य्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते। १३३–अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेपि। १३४–प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्। १३५–अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया। १३६–क्रियया यमभिप्रैति सोपि सम्प्रदानम्। १३७–कर्मणः करणसंज्ञा संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा। १३८–तादर्थ्ये चतुर्थीवाच्या। १३९–क्लृपि सम्पद्यमाने च। १४०–उत्पातेन ज्ञापिते च। १४१–हितयोगे च। १४२–नौकाकान्नशुकशृगालवर्ज्येष्विति वाच्यम्। १४३–जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्। १४४–ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च। १४५ यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पंचमी। १४६–तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ। १४७–कालात्सप्तमी च वक्तव्या। १४८–निमित्तपर्य्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्। १४९–अज्वरिसन्ताप्योरिति वाच्यम्। १५०–गुणकर्मणि वेष्यते। १५१–शेषे विभाषा। १५२–कमेरनिषेधः। १५३–द्विषः शतुर्वा। १५४–क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्। १५५–साध्वसाधुप्रयोगे च। १५६–निमित्तात्कर्मयोगे। १५७–अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च। १५८–अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम्।

समासप्रकरणम्।

१५९–इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च। १६०–समाहारे चायमिष्यते। १६१-गम्यादीनामुपसङ्ख्यानम्। १६२–अवरस्योपसंख्यानम्। १६३–अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। १६४–भयभीतभीतिभीभिरिति वक्तव्यम्। १६५–गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम्। १६६–कृद्योगा षष्ठी समस्यत इति वाच्यम्। १६७–प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यत इति वाच्यम्। १६८–एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनम्। १६९–उत्तरपदेन परिमाणिना द्विगोः सिद्धये बहूनां तत्पुरुषस्योपसंख्यानम्। १७०–सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः। १७१–द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्। १७२–अपरस्यार्द्धे पश्चभावो वाच्यः। १७३ श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनं कर्त्तव्यम्। १७४–शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्। १७५–ईषद्गुणवचनेनेति वाच्यम्। १७६–नञो नलोपस्तिङि क्षेपे। १७७–कारिकाशब्दस्योपसंख्यानम्। १७८–च्व्यर्थ इति वाच्यम्। १७९–प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया। १८०–अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया। १८१–अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया। १८२–पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या। १८३– निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। १८४–कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधः। १८५–महदात्त्वे घासकरविशिष्टेषूपसंख्यानं पुंवद्भावश्च। १८६–अष्टनः कपाले हविषि। १८७–गवि च युक्ते। १८८–प्राक् शतादिति वक्तव्यम्। १८९–षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेः ष्टुत्वं च धासु वेति वाच्यम्। १९०–द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः। १९१–संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्। १९२–सविशेषणस्य प्रतिषेधः। १९३–अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः। १९४–आबन्तो वा। १९५–अनो नलोपश्च वा द्विगुः स्त्रियाम्। १९६–पात्राद्यन्तस्य न। १९७–पुण्यसुदिनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्टा। १९८–पथः संख्याव्ययादेः। १९९–सामान्ये नपुंसकम्। २००–प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। २०१–नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। २०२–शसि बह्वल्पार्थस्य पुंवद्भावो वक्तव्यः। २०३–त्वतलोर्गुणवचनस्य। २०४ भस्याढे तद्धिते। २०५–ठक्छसोश्च। २०६–कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु। २०७–कोपधप्रतिषेधे तद्धितवुग्रहणम्। २०८–अमानिनीति वक्तव्यम्। २०९–अगोवत्सहलेष्विति वाच्यम्। २१०–संख्यायास्तत्पुरुषस्य वाच्यः। २११–नेतुर्नक्षत्रेऽब्वक्तव्यः। २१२–खुरखराभ्यां वा नस्। २१३–वेर्ग्रो वक्तव्यः। २१४ ख्यश्च। २१५–गन्धस्येत्त्वे तदेकान्तग्रहणम्। २१६–ईयसो बहुव्रीहेर्नेति वाच्यम्। २१७–सर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानम्। २१८–मिथोऽनयोः समासे संख्यापूर्वम्। २१९–संख्याया अल्पीयस्याः। २२०–द्वन्द्वेऽपि। २२१–वा प्रियस्य। २२२–गड्वादेः परा सप्तमी। २२३–जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्या। २२४ प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ। २२५–अनेकप्राप्तावेकत्र नियमोऽनियमः शेषे। २२६–घ्यन्तादजाद्यदन्तं विप्रतिषेधेन। २२७–ऋतुनक्षत्राणां समाक्षराणामानुपूर्व्येण। २२८–लघ्वक्षरं पूर्वम्। २२९–अभ्यर्हितञ्च। २३०–वर्णानामानुपूर्व्येण। २३१–भ्रातुर्ज्यायसः। २३२–स्थेणोर्द्वन्द्वेति वक्तव्यम्। २३३–फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवदिति

वाच्यम् ।२३४–वायुशब्दप्रयोगेप्रतिषेधः ।२३५--विष्णौ न । २३६--विरूपाणामपि समानार्थानाम् । २३७--त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत्परं तच्छिष्यते । २३८--त्यदादितः शेषे पुन्नपुंसकतो लिङ्गवचनानि । २३९--अद्वन्द्वतत्पुरुषविशेषणामिति वक्तव्यम । २४०--अनेकशफेष्विति वाच्यम् । २४१--अनचबहूचावध्येतर्य्येव । २४२--अवर्णान्ताद्वा । २४३--कृष्णोदक्पाण्डुसंख्यापूर्वाया भूमेरजिष्यते। २४४--संख्याया नदीगोदावरीभ्याञ्च।२४५--त्रुपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते । २४६--पल्यराजभ्यां चेति वक्तव्यम् । २४७--स्वतिभ्यामेव । २४८--ब्राह्मणाच्छंसिन उपसंख्यानम् । २४९--अञ्जस उपसंख्यानम् । २५०--पुंसानुजो जनुषान्ध इति च । २५१--पूरण इति वक्तव्यम् । २५२--द्युभ्यां च २५३--अन्ताच्च । २५४--अपो योनियन्मतुषु । २५५--वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु । २५६--आमुष्यायणाऽमुष्यपुत्रिकाऽऽमुष्यकुलिकेति च । २५७--देवानांप्रिय इति च मूर्खे । २५८--शेपपुच्छलांगूलेषु शुनः । २५९--दिवश्च दासे । २६०--विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यस्तत्पूर्वोत्तरपदग्रहणम् । २६१--ऋतया न । २६२--इके चरतावुपसंख्यानम् । २६३--निष्के चेति वाच्यम् । २६४--उत्तरपदस्य चेति वक्तव्यम् । २६५--इयङुवङ्भाविनामव्ययानां च नेति वाच्यम् ।२६६--अभ्रुकुंसादीनामिति वक्तव्यम् ।२६७--मातज्मातृकमातृषु वा । २६८--अस्तोश्चेति वक्तव्यम् । २६९--धेनोर्भव्यायाम् । २७०--लोकस्य पृणे । २७१--इत्येऽनभ्यासस्य । २७२--भ्राष्ट्राग्न्योरिन्धे । २७३--गिलेऽगिलस्य । २७४--गिलगिले च । २७५--उष्णभद्रयोः करणे । २७६--दक्षे चेति वक्तव्यम् । २७७--त्रौ च । २७८--दिक्शब्देभ्यस्तीरस्य तारभावो वा । २७९--दुरो दाशनाशदभध्येषूत्वमुत्तरपदादेः ष्टुत्वं च ।२८०--अपील्वादीनामिति वाच्यम् । २८१-- शुनो दन्तदंष्ट्राकर्णकुन्दवराहपुच्छपदेषु दीर्घो वाच्यः।२८२--द्व्यचत्र्यच्भ्यामेव । २८३--इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः । २८४--गिरिनद्यादीनां वा । २८५--युवादेर्न । २८६--अतद्धितइति वाच्यम् ॥

तद्धितप्रकरणम् ।

२८७--पृथिव्या ञाञौ । २८८--देवाद्यञञौ । २८९--बहिषष्टिलोपो यञ् च । २९०--ईकक् च । २९१--स्थाम्नोऽकारः । २९२--भवार्थे तु लुग्वाच्यः । २९३--लोम्नोऽपत्येषु बहुषु । २९४--गोरजादिप्रसङ्गे यत्।२९५--अग्निकलिभ्यां ढक्वक्तव्यः । २९६--वृद्धस्य च पूजायामिति वाच्यम् । २९७--यूनश्च कुत्सायां गोत्रसंज्ञेति वाच्यम् । २९८--व्यासवरुड-निषादचण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यम् । २९९--चटकस्येति वाच्यम् । ३००--स्त्रियामपत्येलुग्वक्तव्यः ।३०१--राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् । ३०२--वा हितनाम्न इति वाच्यम् । ३०३--तक्ष्णोऽण उपसंख्यानम् ।३०४--परमप्रकृतेरेवायमिष्यते । ३०५--छागवृषयोरपि । ३०६--त्यदादीनां फिञ् वा वाच्यः । ३०७--पूरोरण् वक्तव्यः । ३०८--पाण्डोर्ड्यण् । ३०९--कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् । ३१०--शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् । ३११--नील्या अन् । ३१२--पीतात्कन् । ३१३--हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् । ३१४--अस्मिन्नर्थेऽण् डिद्वा वक्तव्यः । ३१५--दोष उपसंख्यानम् । ३१६--शतरुद्राद्घश्च । ३१७--तदस्मिन्वर्तते इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम् । ३१८--पूर्णमासादण् वक्तव्यः । ३१९--पितुर्भ्रातरि व्यत् । ३२०--मातुर्डुलच् । ३२१--मातृपितृभ्यां पितरि डामहच् । ३२२--मातरि षिच्च । ३२३--अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचो वक्तव्याः । ३२४--तिलान्निष्फलात्पिञ्जपेजौ । ३२५--पिञ्जश्छन्दसि डिच्च । ३२६--प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः ।३२७--वृद्धाच्चेति वक्तव्यम् । ३२८--गणिकाया यञिति वक्तव्यम् । ३२९--पृष्ठादुपसंख्यानम् । ३३०--गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम् ।३३१--अह्नः खः क्रतौ । ३३२--पर्श्वा णस् वक्तव्यः । ३३३--खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः । ३३४--स्वार्थ उपसंख्यानम् । ३३५--मुख्यार्थात्तूक्थशब्दाट्ठगणौ नेष्यते । ३३६--सूत्रान्तात्त्वकल्पादेरेवेष्यते । ३३७--विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम् । ३३८--अङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वाद्विद्यान्तान्नेति वक्तव्यम्। ३३९--आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च । ३४०--सर्वादेः सादेश्च लुग्वक्तव्यः । ३४१--इकन् पदोत्तरपदात् । ३४२--शतषष्टेः षिकन् पथः । ३४३--हरीतक्यादिषु व्यक्तिः । ३४४--खलतिकादिषु वचनम् । ३४५--मनुष्यलुपि प्रतिषेधः । ३४६--महिषाच्चेति वक्तव्यम् । ३४७--अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् । ३४८--अमेहक्वतसित्रेभ्य एव । ३४९--अव्ययानां भमात्रे टिलोपः । ३५०--त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम् । ३५१--निसो गते । ३५२--अरण्याण्णः ३५३--दूरादेत्यः । ३५४--उत्तरादाहञ् । ३५५--वा नामधेयस्य वृद्धिसंज्ञा वक्तव्या । ३५६--आपदादिपूर्वात्कालान्तात् । ३५७--पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वाच्यम् । ३५८--वा गोमयेषु । ३५९--चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः । ३६०--अग्रादिपश्चाड्डिमच् । ३६१--अन्ताच्च । ३६२--सुसर्वार्धदिक्शब्देभ्यो जनपदस्य । ३६३--ऋतो वृद्धिमद्विधावव-यवानाम् । ३६४--चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसं-

ख्यानम् । ३६५-फाल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ वक्तव्यौ । ३६६-श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण् वक्तव्यः । ३६७-जातार्थे प्रतिप्रसूतोऽण् वा डिद्वक्तव्यः । ३६८-परिमुखादिभ्य एवेष्यते । ३६९-अध्यात्मादेष्ठञिष्यते । ३७०-सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकौथुमितैतिलिजाजलिलाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसंख्यानम् । ३७१-वहेस्तुरणिट् च । ३७२-अग्नीधः शरणे रण् भं च । ३७३-समिधामाधाने षेण्यण् । ३७४-पत्राद्वाह्ये । ३७५-वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः । ३७६-चरणाद्धर्माम्नाययोरिति वक्तव्यम् । ३७७-घोषग्रहणमपि कर्त्तव्यम् । ३७८-कौपिञ्जलहास्तिपदादण् वाच्यः । ३७९-आथर्वणिकस्येकलोपश्च । ३८०-अस्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः । ३८१-एकाचो नित्यम् । ३८२-तालाद्धनुषि । ३८३-फलपाकशुषामुपसंख्यानम् । ३८४-पुष्पमूलेषु बहुलम् । ३८५-तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम् । ३८६-आहौ प्रभूतादिभ्यः । ३८७-पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः । ३८८-गच्छतौ परदारादिभ्यः । ३८९-इकारादाविति वाच्यम् । ३९०-भावप्रत्ययान्तादिमब् वक्तव्यः । ३९१-वृद्धेर्वुधुषिभावो वक्तव्यः । ३९२-अधर्म्माच्चेति वक्तव्यम् । ३९३-नराच्चेति वक्तव्यम् । ३९४-विशसितुरिड्लोपश्चाञ्च वक्तव्यः । ३९५-विभाजयितुर्णिलोपश्चाञ्च वाच्यः । ३९६-नस् नासिकायाः । ३९७-वा केशेषु । ३९८-अचि शीर्ष इति वाच्यम् । ३९९-पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम् । ४००-सर्वजनाट्ठञ् खश्च । ४०१-महाजनाट्ठञ् । ४०२-आचार्य्यादणत्वं च । ४०३-सर्वाण्णो वेति वक्तव्यम् । ४०४-पुरुषाद्वधविकारसमूहतेनकृतेषु । ४०५-अर्धाच्चेति वक्तव्यम् । ४०६-कार्षापणाट्टिठन्वक्तव्यः प्रतिरादेशश्च वा । ४०७-बहुपूर्वाच्चेति वक्तव्यम् । ४०८-केवलायाश्चेति वक्तव्यम् । ४०९-द्वित्रिपूर्वादण् च । ४१०-वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम् । ४११-सन्निपाताच्चेति वक्तव्यम् । ४१२-ब्रह्मवर्चसादुपसंख्यानम् । ४१३-चतुर्थ्यर्थे उपसंख्यानम् । ४१४-तत्पचतीति द्रोणादण् च । ४१५-स्तोमे डविधिः । ४१६-यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसंख्यानम् । ४१७-क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम् । ४१८-ततोऽभिगमनमर्हतीति च वक्तव्यम् । ४१९-आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वादुपसंख्यानम् । ४२०-महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्य उपसंख्यानम् । ४२१-चतुर्मासाण्णो यज्ञे तत्र भव इत्यर्थे । ४२२-संज्ञायामण् । ४२३-अर्थाभ्यान्तु यथासंख्यं नेष्यते । ४२४-चूडादिभ्य उपसंख्यानम् । ४२५-आकालाट्ठंश्च । ४२६-अर्हतो नुम् च । ४२७-चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे उपसंख्यानम् । ४२८-श्रोत्रियस्य यलोपश्च । ४२९-सहायाद्वा । ४३०-खप्रत्ययानुत्पत्तौ यलोपो वा वक्तव्यः । ४३१-अलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम् । ४३२-गोष्ठजादयः स्थानादिषु पशुनामभ्यः । ४३३-संघाते कटच् । ४३४-विस्तारे पटच् । ४३५-द्वित्वे गोयुगच् । ४३६-षट्त्वे षड्गवच् । ४३७-स्नेहे तैलच् । ४३८-भवने क्षेत्रे शाकटशाकिनौ । ४३९-कप्रत्ययचिकादेशौ च वक्तव्यौ । ४४०-क्लिन्नस्य चिल् पिल् लश्चास्य चक्षुषी । ४४१-चुल्च । ४४२-प्रमाणे लः । ४४३-द्विगोर्नित्यम् । ४४४-प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रज्वक्तव्यः । ४४५-वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् । ४४६-चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च । ४४७-तावतिथेन गृह्णातीति कन् वक्तव्यो नित्यं च लुक् । ४४८-वटकेभ्य इनिर्वाच्यः । ४४९-भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने । सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः । ४५०-विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः । ४५१-वृत्तेश्च । ४५२-ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम् । ४५३-रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् । ४५४-नगपांसुपाण्डुभ्यश्च । ४५५-कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च । ४५६-अन्येभ्योऽपि दृश्यते । ४५७-अर्णसो लोपश्च ४५८-अन्येभ्योऽपि दृश्यते । ४५९-अन्येभ्योऽपि दृश्यते । ४६०-आमयस्योपसंख्यानं दीर्घश्च । ४६१-शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् । ४६२-फलबर्हाभ्यामिनच् । ४६३-हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम् । ४६४-शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने । ४६५-हिमाच्चेलुः । ४६६-बलादूलः । ४६७-वातात्समूहे च । ४६८ तप्पर्वमरुद्भ्याम् । ४६९-कुत्सित इति वक्तव्यम् । ४७०-प्राण्यङ्गान्न । ४७१-पिशाचाच्च । ४७२-बाहूरुपूर्वपदाद्बलात् । ४७३-सर्वादेश्च । ४७४-अर्थाच्चासन्निहिते । ४७५-तदन्ताच्च । ४७६-सर्वोभयार्थाभ्यामेव । ४७७-समानस्य सभावो यश्चाहनि । ४७८-पूर्वपूर्वतरयोः पर उदारी च संवत्सरे । ४७९-इदम इश् समसण् प्रत्ययश्च संवत्सरे । ४८०-परस्मादेद्यव्यहनि । ४८१-इदमोऽश् द्यश्च । ४८२-पूर्वादिभ्योऽष्टभ्योऽह्न्येद्युस् । ४८३-द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः । ४८४-एतदोपि वाच्यः । ४८५-थमुत्रन्तात्स्वार्थे डदर्शनम् । ४८६-तीयादीकक् स्वार्थे वा वाच्यः । ४८७-न विद्यायाः । ४८८-ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच् । ४८९-अकच्प्रकरणे तूष्णीमः काम्वक्तव्यः । ४९०-शीले को मलोपश्च ।

४९१ चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपो वाच्यः । ४९२—अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्यः । ४९३—लोपः पूर्वपदस्य च । ४९४—विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः । ४९५—उवर्णाल्ल इलस्य च । ४९६ ऋवर्णादपि । ४९७—द्वितीयं सन्ध्यक्षरं चेत्तदादेर्लोपो वक्तव्यः ४९८—एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपो वक्तव्यः । ४९९—षषष्ठाजादिवचनात्सिद्धम् । ५००—किमोऽस्मिन्विषये डतरजपि । ५०१—पादशतग्रहणमनर्थकमन्यत्रापि दर्शनात् । ५०२—चञ्चद्बृहतोरुपसंख्यानम् । ५०३—नवस्य नू आदेशस्त्नतनप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्याः । ५०४—नश्च पुराणे प्रात् । ५०५—भागरूपनामभ्यो धेयः । ५०६—आग्नीध्रसाधाराणादञ् । ५०७—लोहिताल्लिङ्गबाधनं वा । ५०८—बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम् । ५०९—आद्यादिभ्य उपसंख्यानम् । ५१०—अभूततद्भाव इति वक्तव्यम् । ५११—अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम् । ५१२—डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् । ५१३—नित्यमाम्रेडितं डाचीति वक्तव्यम् । ५१४—भद्राच्चेति वक्तव्यम् । ५१५—आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये । ५१६—सम्भ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः । ५१७—क्रियासमभिहारे च । ५१८—कर्मव्यतीहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम् । ५१९—असमासवद्भावे पूर्वपदस्य सुपः सुर्वक्तव्यः । ५२०—स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वा वक्तव्यः ॥

तिङन्तप्रकरणम् ।

५२१—कुमुडावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ । ५२२—दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः । ५२३—अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम् । ५२४—आशिषि नाथ इति वाच्यम् । ५२५—सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः । ५२६—इर इत्संज्ञा वाच्या । ५२७—ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन । ५२८—कुषधातुष्ठिवुष्वष्कतीनां सत्वप्रतिषधो वक्तव्यः । ५२९—कास्यनेकाज्ग्रहणं कर्त्तव्यम् । ५३०—ण्यल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घेभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेन । ५३१—कमेऽश्च्लेश्चङ् वाच्यः । ५३२—आङि चम इति वक्तव्यम् । ५३३—इस्त्योस्त्वाभ्यां गुणवृद्धी विप्रतिषेधेन । ५३४—गुपेर्निन्दायाम् । ५३५—तिजेः क्षमायाम् । ५३६—कितेर्व्याधिप्रतीकारे निग्रहेऽपनयने नाशने संशये च । ५३७—मानेर्जिज्ञासायाम् । ५३८—बधेश्चित्तविकारे । ५३९—दानेरार्जवे । ५४०—शानेर्निशाने । ५४१—स्वजेरुपसंख्यानम् । ५४२—स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः । ५४३—श्वयतेर्लिञ्यभ्यासलक्षणप्रतिषेधः । ५४४—वर्जने कृशात् नेष्टः । ५४५—ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम् । ५४६—इण्वदिक इति वक्तव्यम् । ५४७—दरिद्रातेरार्धधातुके विवक्षिते आलोपो वाच्यः । ५४८—लुङि वा । ५४९—सनि ण्वुलि ल्युटि च न ५५०—दम्भेश्च एत्त्वाभ्यासलोपौ वक्तव्यौ । ५५१—क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन । ५५२—शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः । ५५३—अडभ्यासविकारेऽपि सुट्कात्पूर्व इति वक्तव्यम् । ५५४—मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम् वाच्यः । ५५५—इषेस्तकारे श्यन्प्रत्ययात्प्रतिषेध इति । ५५६—धूञ्प्रीञोर्नुग्वक्तव्यः । ५५७—काण्यादीनां वेति वक्तव्यम् । ५५८—पातेर्णौ लुग्वक्तव्यः । ५५९—प्रलम्भनाभिभवपूजासु लियो नित्यमात्त्वमशिति वाच्यम् । ५६०—रञ्जेर्णौ मृगरमणे नलोपो वक्तव्यः । ५६१—ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति वक्तव्यम् । ५६२—तनिपतिदरिद्रातिभ्यः सनो वा इड्वाच्यः । ५६३—आशङ्कायां सन् वक्तव्यः । ५६४—राधो हिंसायां सनीस् वाच्यः । ५६५—सूचिसूत्रिमूत्र्यटयर्त्यशूर्णोतिभ्यो यङ् वाच्यः । ५६६—स च पदान्तवद्वाच्यः । ५६७—हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वाच्यः । ५६८—रीगृत्वत इति वक्तव्यम् । ५६९—मान्तप्रकृतिकसुबन्तादव्ययाच्च क्यच् न । ५७०—अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम् । ५७१—क्षीरलवणयोर्लालसायाम् । ५७२—सर्वप्रातिपदिकानां क्यचि लालसायां सुगसुकौ । ५७३—अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम् । ५७४—ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया । ५७५—आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः । ५७६—सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः । ५७७—उस्योमा इक्ष्वाटः प्रतिषेधः । ५७८ लोहितडाज्भ्यः क्यष्वचनं भृशादिष्वितराणि । ५७९—सत्रकक्षकष्टकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायामिति वाच्यम् । ५८०—हनुचलन इति वक्तव्यम् । ५८१—तपसः परस्मैपदञ्च । ५८२—फेनाच्चेति वाच्यम् । ५८३—सुदिनदुर्दिननीहारेभ्यश्च । ५८४—पुच्छादुदसने व्यसने पर्यसने च । ५८५—भाण्डात्समाचयने । ५८६—चीवरादर्जने परिधाने च । ५८७—व्रताद् भोजनतन्निवृत्त्योः । ५८८—वस्त्रात्समाच्छादने । ५८९—हल्यादिभ्यो ग्रहणे । ५९० अथर्वेदयोरण्यापुग्वक्तव्यः । ५९१—कण्ड्वादेस्तृतीयस्येति वाच्यम् । ५९२—यथेष्टं नामधातुषु । ५९३—प्रतिषेधे हसादीनामुपसंख्यानम् । ५९४—हरतेरप्रतिषेधः । ५९५—परस्परोपपदाच्चेति वक्तव्यम् । ५९६—पराङ्कर्मकान्न निषेधः । ५९७—समोऽकूजने । ५९८—आगमेः क्षमायाम् । ५९९—शिक्षेर्जिज्ञासायाम् । ६००—हरतेर्गतताच्छील्ये । ६०१—किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वाच्यम् । ६०२—सुङि हर्षादिष्वेव वक्तव्यः । ६०३—आङि

नुप्रच्छ्योः। ६०४–शप उपालम्भे। ६०५–आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम्। ६०६–ईहायामेव। ६०७–उपादेवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्। ६०८ वा लिप्सायामिति वक्तव्यम्। ६०९–स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्। ६१०–विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम्। ६११–अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम्। ६१२–उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वेति वाच्यम्। ६१३–ज्योतिरुद्गमन इति वाच्यम्। ६१४–स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम्।६१५–अदेः प्रतिषेधः। ६१६–घेट उपसंख्यानम्। ६१७–अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम्। ६१८ सकर्मकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः।६१९–दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोरिति वाच्यम्। ६२०–सृजियुज्योः श्यंस्तु। ६२१–सृजेः श्रद्धोपपन्ने कर्त्तर्य्येवेति वाच्यम्।६२२–भूषाकर्मकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात्। ६२३–यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमण्णिश्रिब्रूञामुपसंख्यानम्। ६२४–णिश्रन्थिग्रन्थिब्रूञात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानम्। ६२५–अत्यन्तापह्नवे लिड्वक्तव्यः। ६२६–यदायद्योरुपसंख्यानम्। ६२७–कामप्रवेदन इति वक्तव्यम्। ६२८–क्रियासमभिहारे द्वे वाच्ये।

कृदन्तप्रकरणम्।

६२९–वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्च। ६३०–केलिमर उपसंख्यानम्। ६३१–निर्विण्णस्योपसंख्यानम्। ६३२–ण्यन्तभादीनामुपसंख्यानम्। ६३३–तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्यः। ६३४–हनो वा यद्वधश्च वक्तव्यः। ६३५–चरेराङि चागुरौ। ६३६–आङ्पूर्वादञ्जेः संज्ञायामुपसंख्यानम्। ६३७–समश्च बहुलम्। ६३८–छन्दसीति वक्तव्यम्। ६३९–पाणौ सृजेर्ण्यद्वाच्यः। ६४०–समवपूर्वाच्च। ६४१–त्यजेश्च। ६४२-ण्यत्प्रकरणे लपिदभिभ्यां चेति वक्तव्यम्। ६४३–क्रमेः कर्त्तर्य्यात्मनेपदविषयात्कृत इण्निषेधो वाच्यः। ६४४–चरिचलिपतिवदीनां वा द्वित्वमच्याक् चाभ्यासस्येति वक्तव्यम्। ६४५–हन्तेर्घत्वञ्च। ६४६–पाटेर्णिलुक् चोक् च दीर्घश्चाभ्यासस्य। ६४७–नौ लिम्पेर्वाच्यः। ६४८–गवादिषु विन्देः संज्ञायाम्। ६४९ तनोतेरुपसंख्यानम्। ६५०–नृतिखनिरञ्जिभ्य एव। ६५१–अस्य केऽने च रञ्जेर्नलोपो वाच्यः। ६५२–शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः। ६५३–ईक्षिक्षमिभ्यां च। ६५४–कविधौ सर्वत्र सम्प्रसारणिभ्यो डः। ६५५–आलस्यसुखाहरणयोरिति वक्तव्यम्। ६५६–कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम्। ६५७–शक्तिलाङ्गलाङ्कुशतोमरयष्टिघटघटीधनुष्षु ग्रहेरुपसंख्यानम्। ६५८–सूत्रे च धार्य्यर्थे। ६५९–हस्तिसूचकयोरिति वक्तव्यम्। ६६०–पार्श्वादिषूपसंख्यानम्। ६६१–उत्तानादिषु कर्तृषु। ६६२–गिरौ डश्छन्दसि। ६६३–किंयत्तद्बहुषु कृञोऽज्विधानम्। ६६४–व्रीहिवत्सयोरिति वक्तव्यम्। ६६५–वातशुनीतिलशर्धेष्वजधेटतुदजहातिभ्यः खश् उपसंख्यानम्। ६६६-स्तने धेटो नासिकायां ध्मश्चेति वाच्यम्। ६६७–घटीखारीखरीषूपसंख्यानम्। ६६८–गमेः सुपि वाच्यः। ६६९–विहायसो विह इति वाच्यम्। ६७०–खच डिद्वा वाच्यः। ६७१–सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम्। ६७२–उरसो लोपश्च। ६७३–सुदुरोरधिकरणे। ६७४–अन्यत्रापि दृश्यत इति वक्तव्यम्. ६७५–डे च विहायसो विहादेशो वक्तव्यः। ६७६–दारावाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम्। ६७७–चारौ वा ६७८–कर्म्मणि समि च ६७९–राजघ उपसंख्यानम्। ६८०–समानान्ययोश्चेति वाच्यम्। ६८१–क्सोपि वाच्यः। ६८२–अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णो वाच्यः। ६८३–आशासः क्वावुपधाया इत्त्वं वाच्यम्। ६८४–गमादीनामिति वक्तव्यम्। ६८५–ऊङ् च गमादीनामिति वक्तव्यम्। ६८६–साधुकारिण्युपसंख्यानम्। ६८७–ब्रह्मणि वदः। ६८८–कुत्सितग्रहणंकर्त्तव्यम् ६८९–ऊर्णोतेर्णुवद्भावो वाच्यः। ६९०–दुग्वोर्दीर्घश्च। ६९१–पूञो विनाशे। ६९२–सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्त्तृकस्य। ६९३–निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वाच्यः। ६९४–उत्फुल्लसंफुल्लयोरुपसंख्यानम्। ६९५–आदिकर्मणि निष्ठा वाच्या। ६९६ क्षीरहविषोः पाके। ६९७–विस्मितप्रतिघातयोश्च। ६९८–दशेश्च। ६९९–माङ्याक्रोश इति वाच्यम्। ७०० दंशेश्छन्दस्युपसंख्यानम्। ७०१–शीङो वाच्यः। ७०२–भाषायां धाञ्कृसृगमिजनिनमिभ्यः। ७०३–सासहिवावहिचाचलिपापतीनामुपसंख्यानम्। ७०४–कुकन्नपि वाच्यः। ७०५–क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च ७०६–द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च। ७०७–जुहोतेर्दीर्घश्च। ७०८–ध्यायतेः सम्प्रसारणं च। ७०९–मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानम्। ७१०–व्याधिमत्स्यबलेषु चेति वाच्यम्। ७११–दारजारौ कर्त्तरि णिलुक् च। ७१२–अपादाने स्त्रियामुपसंख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष्। ७१३–शॄ वायुवर्णनिवृतेषु। ७१४–भयादीनामुपसंख्यानम्। ७१५–वशिरण्योरुपसंख्यानम्। ७१६–घञर्थे कविधानम्। ७१७–द्वित्वप्रकरणे के कृञादीनामिति वक्तव्यम्। ७१८–श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे। ७१९–ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः। ७२०–ति च। ७२१–चायतेः क्तिनि चिभावो वाच्यः। ७२२–सम्पदादिभ्यः क्विप्। ७२३–क्तिन्नपीष्यते। ७२४–अजेः क्यपि वीभावो ने

वाच्यम् । ७२५–परिचर्यापरिसर्यामृगयाटाटयानामुपसंख्यानम् । ७२६–जागर्त्तेरकारो वा । ७२७–निष्ठायां सेट इति वक्तव्यम् ७२८–तितुत्रेष्वग्रहादीनामिति वाच्यम् । ७२९–वह्रिवन्दिविदिभ्यश्चेति वाच्यम् । ७३०–इषेरनिच्छार्थस्य । ७३१–परेर्वा । ७३२–धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः । ७३३–इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे । ७३४–वर्णात्कारः । ७३५–रादिफः । ७३६–मत्वर्थाच्छः । ७३७–इणजादिभ्यः । ७३८–इञ् वपादिभ्यः । ७३९–इक् कृष्यादिभ्यः । ७४०–अवहाराधारावायानामुपसंख्यानम् । ७४१–खनेर्डडरेकेकवका वाच्याः । ७४२–निमिमीलियां खलचोरात्वन्नेति वाच्यम् । ७४३–कर्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोरिति वाच्यम् । ७४४–भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज्वाच्यः । ७४५–स्मरत्यादेः श्न्युकः कितीति नित्यमिडभावः पूर्वविप्रतिषेधेन । ७४६–ह्मलादाविति वाच्यम् ।

वैदिकप्रकरणम् ।

७४७–नभोङ्गिरोमनुषां वत्युपसंख्यानम् । ७४८–वृषण्वस्वश्वयोः । ७४९–उभयसंज्ञान्यपीति वक्तव्यम् । ७५०–षष्ठ्यर्थे चतुर्थीति वाच्यम् । ७५१–हिरण्य इति वक्तव्यम् । ७५२–श्वेतवहादीनां डस्पदस्येति वक्तव्यम् । ७५३–छन्दसि परेच्छायां क्यच उपसंख्यानम् । ७५४–एरजधिकारे जवसवौ छन्दसि वाच्यौ । ७५५–सिब्बहुलं णिद्वक्तव्यः । ७५६–दृशेरग्वक्तव्यः । ७५७–मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च । ७५८–गुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामिति वक्तव्यम् । ७५९ आविष्ट्यस्योपसंख्यानं छन्दसि । ७६०–अक्षरसमूहे छन्दस उपसंख्यानम् । ७६१–सन्शतोर्डिनिश्छन्दसि तदस्य परिमाणमित्यर्थे वाच्यः । ७६२–विंशतेश्चेति वाच्यम् । ७६३–युष्मदस्मदोः सादृश्ये मतुब्वाच्यः । ७६४–छन्दोविन्प्रकरणेऽष्ट्रामेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घश्चेति वक्तव्यम् । ७६५–छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ । ७६६–छन्दसि वेति वक्तव्यम् । ७६७–ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि । ७६८–रयेर्मतौ बहुलम् । एमन्नादिषु छन्दसि पररूपं वक्तव्यम् । ७६९–हृदय्या उपसंख्यानम् । ७७०–ईषाअक्षादीनां छन्दसि प्रकृतिभावो वक्तव्यः । ७७१–छन्दसि स्त्रियां बहुलम् । ७७२–तन्वादीनां छन्दसि बहुलम् । ७७३ –इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम् । ७७४–आङयाजयारामुपसंख्यानम् । ७७५–पावकादीनां छन्दसि प्रत्ययस्थात्कादित्त्वं नेति वाच्यम् । ७७६–जसादिषु छन्दसि वा वचनं प्राङ्णौ चङ्युपधायाः । ७७७–नाम्यस्तस्याचीति निषेधे बहुलं छन्दसीति वक्तव्यम् । ७७८–अपुत्रादीनामिति वाच्यम् ७७९–मासश्छन्दसीति वक्तव्यम् । ७८०–स्ववः स्वतवसोरुषसश्चेष्यते । ७८१–भूरिदान्नस्तुड्वाच्यः । ७८२–ईद्रथिनः । ७८३–प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्य्यमाणप्रत्यभिवादयाज्यान्तेष्वेव । ७८४-आमन्त्रिते छन्दसि प्लुतविकारोऽयं वक्तव्यः । ७८५–वन उपसंख्यानम् । ७८६–सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वमन्यत्रविकरणेभ्य इति वाच्यम् । ७८७–अतद्धित इति वाच्यम् । ७८८–षष्ठ्यामन्त्रितकारकवचनम् । ७८९–पूर्वाङ्गवच्चेति वक्तव्यम् । ७९०–अव्ययानान्न । ७९१–अव्ययीभावस्य त्विष्यते । ७९२–असावित्यन्तः । ७९३–अमुष्येत्यन्तः । ७९४–स्यान्तस्योपोत्तमं च । ७९५–वा नामधेयस्य । ७९६–संज्ञायान्तु निष्ठा च ह्यजनादिति नित्यमाद्युदात्तत्वं पूर्वविप्रतिषेधेन । ७९७–चितः सप्रकृतेर्बह्वकजर्थम् । ७९८-ऊटयुपधाग्रहणंकर्त्तव्यम् । ७९९–रेशब्दाच्च । ८००–विन्दीन्धिखिदिभ्योनेति वक्तव्यम् । ८०१–अव्यये नञ्कुनिपातानाम् । ८०२–वृजेरिति वाच्यम् । ८०३–संज्ञायामिति वक्तव्यम् । ८०४–अनुपसर्ग इति वक्तव्यम् । ८०५–आद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् । ८०६–चेलराज्यादिस्वराद्व्ययस्वरः पूर्वविप्रतिषेधेन । ८०७–ऋषिप्रतिषेधोऽत्र मित्रे । ८०८–अतेर्धातुलोप इति वाच्यम् । ८०९–परादिश्च परान्तश्च पूर्वान्तश्चापि दृश्यते । पूर्वादयश्च दृश्यन्ते व्यत्ययो बहुलन्ततः । ८१०–मलोपश्च वक्तव्यः । ८११--गतिग्रहणे उपसर्गग्रहणमिष्यते । ८१२--क्रिया कुत्सन इति वाच्यम् । ८१३–पूतिश्चानुबन्ध इति वाच्यम् । ८१४–वाबह्वर्थमनुदात्तमिति वाच्यम् ।

॥ इति कौमुद्यन्तर्गतवार्त्तिकपाठः । ॥

॥ श्रीः ॥

अथ परिभाषापाठः ।

१ व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणम् ॥ २ यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम् ॥ ३ कार्यकालं संज्ञापरिभाषम् ॥ ४ अनेकान्ता अनुबन्धाः ॥ ५ एकान्ता अनुबन्धाः ॥ ६ नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् ॥ ७ नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम् ॥ ८ नानुबन्धकृतमसारूप्यम् ॥ ९ उभयगतिरिह भवति ॥ १० कार्यमनुभवन् हि कार्यी निमित्ततया नाश्रीयते ११ यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते ॥ १२ निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥ १३ यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः ॥ १४ अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य (ग्रहणम्) ॥ १५ गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः ॥ १६ अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति ॥ १७ एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिस्सह वा निवृत्तिः ॥ १८ एकयोगनिर्दिष्टानां क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्तते ॥ १९ भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न ॥ २० भाव्यमानोऽप्युकारस्सवर्णान् गृह्णाति ॥२१ वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम्॥ २२ उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि ॥ २३ प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम् ॥ २४ प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्याः ॥ २५ उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे न तदन्तग्रहणम् ॥ २६ स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने न ॥ २७ संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति ॥ २८ कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् ॥ २९ पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च ॥ ३० व्यपदेशिवदेकस्मिन् ॥ ३१ ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति ॥ ३२ व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन ॥ ३३ यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे ॥ ३४ सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवति ॥ ३५ सर्वे विषयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते ॥ ३६ प्रकृतिवदनुकरणं भवति ॥ ३७ एकदेशविकृतमनन्यवत् ॥ ३८ पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरंबलीयः ॥ ३९ पुनः प्रसङ्गविज्ञानात्सिद्धम् ॥ ४० सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव ॥ ४१ विकरणेभ्यो नियमो बलीयान् ॥ ४२ परान्नित्यं बलवत् ॥ ४३ कृताऽकृतप्रसंगि नित्यम् ॥ ४४ शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति ॥ ४५ शब्दान्तरात्प्राप्नुवतः शब्दान्तरे प्राप्नुवतश्चानित्यत्वम् ॥ ४६ लक्षणान्तरेण प्राप्नुवन्विधिरनित्यः ॥ ४७ क्वचित्कृताकृतप्रसङ्गमात्रेणापि नित्यता ॥ ४८ यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते न तदनित्यम् ॥ ४९ यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते तदप्यनित्यम् ॥ ५० स्वरभिन्नस्य च प्राप्नुवन्विधिरनित्यः ॥ ५१ असिद्धं बहिरङ्गमन्तरंगे ॥ ५२नाजानन्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिः ॥ ५३ अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो लुग् बाधते ॥ ५४पूर्वोत्तरपदनिमित्तकार्यात्पूर्वमन्तरङ्गोऽप्येकादेशो न ॥ ५५अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो ल्यब्बाधते ॥ ५६ वार्णादाङ्गं बलीयो भवति ॥५७ अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः॥५८अन्तरंगादप्यपवादो बलीयान् ॥ ५९ येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति ॥ ॥ ६० क्वचिदपवादविषयेऽप्युत्सर्गोऽभिनिविशते ॥ ६१ पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन् बाधन्ते नोत्तरान् ॥ ६२ मध्येऽपवादाः पूर्वान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरान् ॥ ६३ अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति ॥ ६४ पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः ॥ ६५ प्रकल्प्य चापवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशते ॥ ६६ उपजनिष्यमाणनिमित्तोऽप्यपवाद उपसंजातनिमित्तमप्युत्सर्गं बाधत इति ॥ ६७ अपवादो यद्यन्यत्र चरितार्थस्तर्ह्यन्तरङ्गेण बाध्यते ॥ ६८ अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावो नास्ति ॥ ६९ ताच्छीलिकेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ ७० क्त्ल्युट्तुमुन्खलर्थेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ ७१ लादेशेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ ७२ उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान् ॥ ७३ प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम् ॥ ७४ विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम् ॥ ७५ सूत्रे लिङ्गवचनमतन्त्रम् ॥ ७६ नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथाह्यर्थगतिः ॥ ७७ गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः ॥ ७८ सांप्रतिकाभावे भूतपूर्वगतिः ॥ ७९ बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि ॥ ८० चानुकृष्टं नोत्तरत्र ॥ ८१ स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत् ॥ ८२ हल्स्वरप्राप्तौ व्यञ्जनमविद्यमानवत् ॥ ८३ निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य (ग्रहणम्) ॥ ८४ तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य (ग्रहणम्) ॥ ८५क्वचित्स्वार्थिकाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते ॥ ८६ समासान्तविधिरनित्यः ॥ ८७ सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य ॥ ८८ संनियोगशिष्टानामन्यतरापाये उभयोरप्यपायः ॥ ८९ ताच्छीलिके णेऽण्कृतानि भवन्ति ॥ ९० धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति ॥ ९१ तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते ॥ ९२ लुग्विकरणालुग्विकरण-

योरलुग्विकरणस्य ॥ ९३ प्रकृतिग्रहणे ण्यधिकस्यापि ग्रहणम् ॥ ९४ अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः ॥ ९५ संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वम् ॥ ९६ आगमशास्त्रमनित्यम् ॥ ९७ गणकार्यमनित्यम् ॥ ९८ अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् ॥ ९९ नञ्घटितमनित्यम् ॥ १०० आतिदेशिकमनित्यम् ॥ १०१ सर्वविधिभ्यो लुग्विधिरिड्विधिश्च बलवान् ॥ १०२ प्रकृतिग्रहणे यङ्लुगन्तस्यापि ग्रहणम् ॥ १०३ विधौ परिभाषोपतिष्ठते नानुवादे ॥ १०४ उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी ॥ १०५ अन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्य ॥ १०६ नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥ १०७ प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसंप्रत्ययः ॥ १०८ अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिर्बलीयसी ॥ १०९ व्यवस्थितविभाषयापि कार्याणि क्रियन्ते ॥ ११० विधिनियमसंभवे विधिरेव ज्यायान् ॥ १११ सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः ॥ ११२ प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्यैव ग्रहणम् ॥ ११३ सहचरितासहचरितयोस्सहचरितस्यैव ग्रहणम् ॥ ११४ श्रुतानुमितयोः श्रुतसम्बन्धो बलीयान् ॥ ११५ लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम् ॥ ११६ गामादाग्रहणेष्वविशेषः ॥ ११७ प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ ११८ क्वचित्समुदायेऽपि ॥ ११९ अभेदका गुणाः ॥ १२० बाधकान्येव निपातनानि ॥ १२१ पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः ॥ १२२ लक्ष्ये लक्षणं सकृदेव प्रवर्तते ॥ १२३ निषेधाश्च बलीयांसः ॥ १२४ अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे ॥ १२५ योगविभागादिष्टसिद्धिः ॥ १२६ पर्यायशब्दानां लाघवगौरवचर्चा नाद्रियते॥ १२७ ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र ॥ १२८ पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे ॥ १२९ एकस्या आकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च न भविष्यति ॥ १३० संप्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवत् ॥ १३१ क्वचिद्विकृतिः प्रकृतिं गृह्णाति॥ १३२ औपदेशिकप्रायोगिकयोरौपदेशिकस्यैव ग्रहणम् ॥ १३३ श्तिपा शपाऽनुबन्धेन निर्दिष्टं यद्गणेन च ॥ यत्रैकाज्ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि ॥ १३४ पदगौरवाद्योगविभागो गरीयान् ॥ १३५ अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः ॥

इति परिभाषापाठः समाप्तः ।

शाकटायनप्रणीत उणादिसूत्रपाठः।

१ कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्। २ छन्दसीणः। ३ दसनिजनिचारिचटिभ्यो ञुण्। ४ किंजरयोः श्रिणः। ५ त्रो रश्च लः। ६ कृके वचः कश्च। ७ भृमृशीतृचरित्सरितनिधनिमिमस्जिभ्य उः। ८ अणश्च। ९ धान्ये नित्। १० शस्वृस्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च। ११ स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च। १२ उन्देरिच्चादेः। १३ ईषेः किच्च। १४ स्कन्देः सलोपश्च। १५ सृजेरसुम् च। १६ कृतेराद्यन्तविपर्ययश्च। १७ नावञ्चेः १८ फलिपाटिनमिमनिजनां गुक्पटिनाकिधतश्च। १९ वलेर्गुक्च। २० शः कित्सन्वच्च। २१ यो द्वे च। २२ कुर्भ्रश्च। २३ पृभिदिव्यधिगृधिधृषिभ्यः। २४ कृग्रोरुच्च। २५ अपदुःसुषु स्थः। २६ रपेरिच्चोपधायाः। २७ अजिदशिकम्यक्षमिपशिबाधामृजिपशितुग्धुग्दीर्घहकारश्च। २८ प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च। २९ लङ्घिबंह्योर्नलोपश्च। ३० ऊर्णोतेर्नुलोपश्च। ३१ महति ह्रस्वश्च। ३२ श्लिषेः कश्च। ३३ आङ्परयोः खनिशॄभ्यां डिच्च। ३४ हरिमितयोर्द्रुवः। ३५ शते च। ३६ खरुशङ्कुपीयुनीलङ्गुलिगु। ३७ मृगय्वादयश्च। ३८ मन्दिवाशिमथिचतिचङ्क्यङ्किभ्य उरच्। ३९ व्यथेः सम्प्रसारणं किच्च। ४० मुकुरदर्दुरौ। ४१ मद्गुरादयश्च ४२ असेरुरन्। ४३ मसेश्च। ४४ शावशेराप्तौ। ४५ अविमह्योष्टिषच्। ४६ अमेर्दीर्घश्च। ४७ रुहेर्वृद्धिश्च। ४८ तवेर्णिद्वा। ४९ नञि व्यथेः। ५० किलेर्बुक्च। ५१ इषिमदिमुदिखिदिच्छिदिभिदिमन्दिचन्दितिमिमिहिमुहिमुचिरुचिरुधिबन्धिशुषिभ्यः किरच। ५२ अशेर्णित्। ५३ अजिरशिशिरशिथिलस्थिरस्फिरस्थविरखदिराः। ५४ सलिकल्यनिमहिभडिभण्डिशण्डिपिण्डितुण्डिकुटिभूभ्य इलच् ५५ कमेः पश्च। ५६ गुपादिभ्यः कित्। ५७ मिथिलादयश्च। ५८ पतिकठिकुठिगडिगुडिदंशिभ्य एरक्। ५९ कुम्बेर्नलोपश्च। ६० शदेस्त च। ६१ मूलेरादयः। ६२ कबेरोतः पश्च। ६३ मातेर्डवतुः। ६४ कठिचकिभ्यामोरन्। ६५ किशोरादयश्च। ६६ कपिगडिगण्डिकटिपटिभ्य ओलच्। ६७ मीनातेरूरन्। ६८ स्यन्देः सम्प्रसारणं च। ६९ सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्क्रुशिभ्यस्तुन् ७० पः किच्च। ७१ अर्तेश्च तुः। ७२ कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च। ७३ चायः किः। ७४ आप्नोतेर्ह्रस्वश्च। ७५ वसेस्तुन्। ७६ अगारे णिच्च। ७७ कृञः कतुः। ७८ एधिवह्योश्च तुः। ७९ जीवेरातुः। ८० आतृकन्वृद्धिश्च। ८१ कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः। ८२ मृजेर्गुणश्च। ८३ वहो धश्च। ८४ कषेरछश्च। ८५ णित्कसिपद्यर्तेः। ८६ अणो डश्च। ८७ नञि लम्बेर्नलोपश्च। ८८ के श्र एरङ् चास्य। ८९ त्रो दुट् च। ९० दरिद्रातेर्यालोपश्च। ९१ नृति शृध्योः कूः। ९२ ऋतेरम् च। ९३ अन्दूदृम्भूजम्बूकफेलूकर्कन्धूदिधिषूः। ९४ मृग्रोरुतिः। ९५ ग्रो मुट् च। ९६ हृषेरुलच्। ९७ हसृरुहियुषिभ्य इतिः। ९८ ताडेर्णिलुक् च। ९९ शमेर्ढः। १०० कमेरठः १०१ रमेर्वृद्धिश्च। १०२ शमेः खः। १०३ कणेष्ठः। १०४ कलस्तृपश्च। १०५ शपेर्बश्च। १०६ वृषादिभ्यश्चित्। १०७ मृजेष्टिलोपश्च। १०८ चुपेरच्चोपधायाः। १०९ शकिशम्योर्नित्। ११० छो गुग्घ्रस्वश्च। १११ अमन्ताड्डः। ११२ कादिभ्यः कित्। ११३ स्थाचतिमृजेरालज्वलञालीयचः। ११४ पतिचण्डिभ्यामालञ्। ११५ तमिविशिबिडिमृणिकुलिकपिपलिपञ्चिभ्यः कालन्। ११६ पतेरङ्गच्पक्षिणि। ११७ तरत्यादिभ्यश्च। ११८ बिडादिभ्यः कित्। ११९ सुवृञोर्वृद्धिश्च। १२० गन्गम्यद्योः। १२१ छापूखडिभ्यः कित्। १२२ भृञः किन्नुट् च। १२३ शृणातेर्ह्रस्वश्च। १२४ गण्शकुनौ। १२५ मुदिग्रोर्गग्गौ। १२६ अण्डन्कृसृभृवृञः। १२७ शृदृभसोऽदिः। १२८ दृणातेः षुग्घ्रस्वश्च। १२९ त्यजितनियजिभ्यो डित्। १३० एतेस्तुट् च। १३१ सर्तेरटिः। १३२ लंघेर्नलोपश्च। १३३ पारयतेरजिः। १३४ प्रथः कित्सम्प्रसारणं च। १३५ भियः षुग्घ्रस्वश्च। १३६। युष्यसिभ्यां मदिक्। १३७ अर्तिस्तुसुहुसृधुक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन्। १३८ जहातेः सन्वदालोपश्च। १३९ अवतेष्टिलोपश्च। १४० ग्रसेरा च। १४१ अविसिविसिशुषिभ्यः कित्। १४२ इषियुधीन्धिदसिश्याधुसूभ्यो मक्। १४३ युजिरुचितिजां कुश्च। १४४ हन्तेर्हि च। १४५ भियः षुग्वा। १४६ घर्मः। १४७। ग्रीष्मः। १४८ प्रथेः षिवन्सम्प्रसारणं च। १४९ अशुप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन्। १५० इण्शीभ्यां वन्। १५१ सर्वनिघृष्वरिष्वलष्वशिवपद्वप्रह्वेष्वा अस्वतन्त्रे। १५२ शेवयह्वजिह्वाग्रीवाप्वमीवाः। १५३

कॄगॄशॄदॄभ्यो वः । १५४ कनिन्युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः । १५५ सप्यशूभ्यां तुट् च । १५६ नञि जहातेः । १५७ श्वन्नुक्षन्पूषन्प्लीहन्क्लेदन्स्नेहन्मूर्धन्मज्जन्नर्यमन्विश्वप्सन्परिज्मन्मातरिश्वन्मघवन्निति ॥ इत्युणादिषु प्रथमः पादः ॥

१५८ कृहृभ्यामेणुः । १५९हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन् । १६० अवे भृञः । १६१उषिकुषिगर्तिभ्यस्थन्। १६२ सर्तेर्णित् । १६३ जॄवृञ्भ्यामूथन् । १६४ पातॄतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक् । १६५ अर्तेर्निरि । १६६ निशीथगोपीथावगथाः । १६७ गश्चोदि । १६८ समीणः । १६९ तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः । १७०स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्द्युन्दिश्वितिवृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिच्छिदिभिदिमन्दिचन्दिदहिदसिदम्भिवसिवाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक् ।

१७१ चकिरम्योरुच्चोपधायाः । १७२ वौ कसेः। १७३ अमितम्योर्दीर्घश्च । १७४ निन्देर्नलोपश्च । १७५ अर्देर्दीर्घश्च । १७६ शुचेर्दश्च । १७७ दुरीणो लोपश्च । १७८ कृतेश्छः क्रू च । १७९ रोदेर्णिलुक् च । १८० बहुलमन्यत्रापि संज्ञाछन्दसोः । १८१ जोरी च । १८२ सुसूधागृधिभ्यः क्रन् । १८३ शुसिचिमीनां दीर्घश्च । १८४ वाविन्धेः । १८५ वृधिवपिभ्यां रन् । १८६ ऋजेन्द्राग्रवज्रविप्रकुब्रचुब्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्लगौरवन्रेरामालाः। १८७ समि कस उकन् । १८८ पचिनशोर्णुकन्कनुमौ च । १८९ भियः क्रुकन्। १९० क्वुन्शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि । १९१ रमेरश्च लो वा। १९२ जहातेर्द्वे च। १९३ ध्मो धम च । १९४ हनो वध च । १९५ बहुलमन्यत्रापि । १९६ कृषेर्वृद्धिश्चोदीचाम् । १९७ उदकं च । १९८ वृश्चिकृषोः किकन् । १९९ प्राङि पणिकषः । २०० मुषेर्दीर्घश्च । २०१ स्यमेः सम्प्रसारणं च । २०२ क्रिय इकन् । २०३ आङि पणिपनिपतिखनिभ्यः। २०४ श्यास्त्याहृञविभ्य इनच् । २०५ वृजेः किच्च । २०६ अजेरज च । २०७ बहुलमन्यत्राऽपि । २०८ द्रुदक्षिभ्यामिनन्।२०९ अर्तेः किदिच्च । २१० वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च । २११ तलिपुलिभ्यां च । २१२ गर्वेरत उच्च । २१३ रुहेश्च । २१४ महेरिनण्च । २१५ क्विब्वचिप्रच्छिश्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च । २१६ आप्नोतेर्ह्रस्वश्च । २१७ परौ व्रजेः षः पदान्ते । २१८ ह्रुवः श्लुवच्च । २१९ सुवः कः। २२० चिक्च। २२१ तनोतेरनश्च वः। २२२ ग्लानुदिभ्यां डौः । २२३ भ्रियरुघयम् । २२४ रातेर्डैः । २२५ गमेर्डोः। २२६ भ्रमेश्च डुः । २२७ दमेर्डोसिः । २२८ पणेरिजादेश्च वः । २२९ वशेः कित् । २३० भृञ ऊच्च । २३१ जसिसहोरुरिन् । २३२ सुयुरुवृञो युच् । २३३ अशेरश च । २३४ उन्देर्नलोपश्च । २३५ गमेर्गश्च । २३६ बहुलमन्यत्रापि । २३७ रञ्जेः क्युन् । २३८ भूसूधूभ्रस्जिभ्यश्छन्दसि । २३९ कॄपॄवृजिमन्दिनिधाञः क्युः २४०धृषेर्धिष् च संज्ञायाम्।२४१ वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवत् । २४२ संश्चत्तृपद्वेहत् । २४३ छन्दस्यसानच्शुजॄभ्याम् । २४४ ऋञ्जिवृधिमन्दिसहिभ्यः कित् । २४५ अर्तेर्गुणः शुट् च । २४६ सम्यानच् स्तुवः । २४७ युधिबुधिदृशिभ्यः किच्च । २४८ हुर्छेः सनो लुक् छलोपश्च । २४९ श्वितेर्दश्च । २५० तृन्तृचौ शंसिक्षदादिभ्यः संज्ञायां चानिटौ । २५१ बहुलमन्यत्रापि । २५२ नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृभ्रातृजामातृमातृपितृदुहितृ । २५३ सुञ्यसेर्ऋन् । २५४ यतेर्वृद्धिश्च । २५५ नञि च नन्देः । २५६ दिवेर्ऋः । २५७ नयतेर्डिच्च । २५८ सव्ये स्थश्छन्दसि । २५९ अर्तिसृधृधम्यम्यश्यवितॄभ्योऽनिः । २६० आङि शुषेः सनश्छन्दसि । २६१ कृषेरादेश्च चः । २६२ अर्देर्मुट् च। २६३ वृतेश्च । २६४ क्षिपेः किच्च । २६५ अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः । २६६ बृंहेर्नलोपश्च । २६७ द्युतेरिसिन्नादेश्च जः। २६८ वसौ रुचेः संज्ञायाम् । २६९ भुवः कित्। २७० सहो धश्च । २७१ पिबतेस्थुक् । २७२ जनेरुसिः । २७३ मनेर्धश्छन्दसि । २७४ आर्तिपृवपियजितनिधनितपिभ्यो नित् २७५ एतेर्णिच्च । २७६ चक्षेः शिच्च । २७७ मुहेः किच्च । २७८ बहुलमन्यत्रापि । २७९ कॄगॄशॄवृञ्चतिभ्यः ष्वरच् । २८० नौ सदेः । इत्युणादिषु द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

२८१ छित्वरछत्वरधीवरपीवरमीवरचीवरतीवरनीवरगह्वरकट्वरसंयद्वराः । २८२ इण्सिञ्जिदीङुष्यविभ्यो नक् । २८३ फेनमीनौ । २८४ कृषेर्वर्णे । २८५ बन्धेर्ब्रधिबुधी च । २८६ धापॄवस्यज्यतिभ्यो नः । २८७ लक्षेरट् च । २८८ वनेरिच्चोपधायाः । २८९ सिवेष्टेर्यू च । २९० कॄवृजॄसिद्रुपन्यनिस्वपिभ्यो नित्।२९१धेट इच्च । २९२ तृषिशुषिरसिभ्यः कित् । २९३ सुञो दीर्घश्च । २९४ रमेस्त च । २९५ रास्नासास्नास्थूणावीणाः । २९६ गादाभ्यामिष्णुच् । २९७ कृत्यशूभ्यां क्स्नः । २९८ तिजेर्दीर्घश्च । २९९ श्लिषेरच्चोपधायाः । ३०० यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच् । ३०१ भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ । ३०२ सर्तेरयुः । ३०३ पानीत्रिषि-

भ्यः पः। ३०४ च्युवः किच्च। ३०५ स्तुवो दीर्घश्च। ३०६ सुशूभ्यां निच्च। ३०७ कुयुभ्यां च। ३०८ खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्पतल्पाः। ३०९ स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच्। ३१० कृहनिभ्यां क्त्नुः। ३११ गमेः सन्वच्च। ३१२ दामाभ्यां नुः। ३१३ वचेर्गश्च। ३१४ धेट इच्च। ३१५ सुवः कित्। ३१६ जहातेर्द्वेऽन्त्यलोपश्च। ३१७ स्थो णुः। ३१८ अजिवृरीभ्यो निच्च। ३१९ विषेः किच्च। ३२० कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः। ३२१ सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक्। ३२२शुकवल्कोल्काः। ३२३ इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्। ३२४ नौ हः। ३२५ नौ सदेर्डिच्च। ३२६ स्यमेरीट् च। ३२७ अजियुधुनीभ्यो दीर्घश्च। ३२८ ह्रियो रश्च लो वा। ३२९ शकेरुनोन्तोन्त्युनयः। ३३० भुवो झिच्। ३३१ कन्युच्क्षिपेश्च। ३३२ अनुङ्नदेश्च। ३३३ कृदारिभ्य उनन्। ३३४ श्रो रश्च लो वा। ३३५ क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित्। ३३६ फलेर्गुक्च। ३३७ अशेर्लशश्च। ३३८ अर्जेर्णिलुक्च। ३३९ तृणाख्यायां चित्। ३४० अर्तेश्च। ३४१ अजियमिशीङ्भ्यश्च। ३४२ वृतृवदिहनिकमिकषिभ्यः सः। ३४३ प्लुषेरच्चोपधायाः। ३४४ मनेर्दीर्घश्च। ३४५ अशेर्देवने। ३४६ स्तुव्रश्चिकृत्युषिभ्यः कित्। ३४७ ऋषेर्जातौ। ३४८ उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च। ३४९ गृधिपण्योर्दकौ च। ३५० अशेः सरः। ३५१ वसेश्च। ३५२ सम्पूर्वाच्चित्। ३५३ कृधूमदिभ्यः कित्। ३५४ पते रश्च लः। ३५५ तन्वृषिभ्यां क्सरन्। ३५६ पीयुकणिभ्यां कालन्ह्रस्वः सम्प्रसारणं च। ३५७ कटिकुषिभ्यां काकुः। ३५८सर्तेर्डुक्च। ३५९वृतेर्वृद्धिश्च। ३६० पर्देर्नित्सम्प्रसारणमल्लोपश्च। ३६१ सृयुवचिभ्योन्युजागूजक्नुचः। ३६२आनकः शीङ्भियः। ३६३ आणको लूधूशिङ्घिधाञ्भ्यः। ३६४ उल्मुकदर्विहोमिनः। ३६५ ह्रियः कुक्रश्च लो वा। ३६६ हसिमृग्रिण्वामिदमिलूपूधुर्विभ्यस्तन्। ३६७नञ्याप इट् च। ३६८ तनिमृङ्भ्यां किच्च। ३६९ अञ्जिघृसिभ्यः क्तः। ३७० दुतनिभ्यां दीर्घश्च। ३७१ जेर्मूट् चोदात्तः। ३७२ लोष्टपलितौ। ३७३ हृश्याभ्यामितन्। ३७४ रुहे रश्च लो वा। ३७५ पिशेः किच्च। ३७६ श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः। ३७७ दिधिषाय्यः। ३७८ वृञ एण्यः। ३७९ स्तुवः क्सेय्यश्छन्दसि। ३८० राजेरन्यः। ३८१ शृरम्योश्च। ३८२ अर्तेर्निच्च। ३८३ पर्जन्यः। ३८४ वदेरान्यः। ३८५ अमिनक्षियजिवधिपतिभ्योऽत्रन्। ३८६गडेरादेश्च कः। ३८७ वृञश्चित्। ३८८ सुविदेः कत्रः। ३८९ कृतेर्नुम्च। ३९०भृमृदृशियजिपर्विपच्यमितमिनमिहर्येभ्योऽतच्। ३९१ पृषिरञ्जिभ्यां कित्। ३९२ खलतिः। ३९३ शीङ्शपिरुगमिवञ्चिजीविप्राणिभ्योऽथः। ३९४ भृञश्चित्। ३९५ रुदिविदिभ्यां ङित्। ३९६ उपसर्गे वसेः। ३९७ अत्यविचमितमिनमिरभिलभिनमितपिपतिपनिपणिमहिभ्योऽसच्। ३९८ वेत्रस्तुट् च। ३९९ वहियुभ्यां णित्। ४०० वयश्च। ४०१ दिवः कित्। ४०२ कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच्। ४०३ऋषिवृषिभ्यां कित्। ४०४ रुषेर्नित्लुक्च। ४०५ रासिवल्लिभ्यां च। ४०६ जृविशिभ्यां झच्। ४०७ रुहिनन्दिजीविप्राणिभ्यः षिदाशिषि। ४०८ तृभूवहिवसिभासिसाधिगडिमंडिजिनन्दिभ्यश्च। ४०९ हन्तेर्मुट् हिं च। ४१० मन्देर्नलोपश्च। ४११ ऋच्छेररः। ४१२ आर्तिकमिभ्रमिचमिदेविवासिभ्यश्चित्। ४१३ कुवः क्ररन्। ४१४ अङ्गिमदिमन्दिभ्य आरन्। ४१५गडेः कड च। ४१६ शृङ्गारभृङ्गारौ। ४१७ कञ्जिमृजिभ्यां चित्। ४१८ कमेः किदुच्चोपधायाः। ४१९ तुषारादयश्च। ४२० दीङो नुट् च। ४२१ सर्तेरपः षुक् च। ४२२ उषिकुटिदलिकचिखजिभ्यः कपन्। ४२३ कणेः सम्प्रसारणं च। ४२४ कपश्चाक्रवर्मणस्य। ४२५ विटपपिष्टपविशिपोलपाः। ४२६ वृतेस्तिकन्। ४२७ कृतिभिदिलतिभ्यः कित्। ४२८ इष्यशिभ्यां तकन्। ४२९ इणस्तशन् तशसुनौ। ४३० वीपतिभ्यां तनन्। ४३१ दृदलिभ्यां भः। ४३२ अर्तिगृभ्यां भन्। ४३३ इणः कित्। ४३४ असिसंजिभ्यां क्थिन्। ४३५ प्लुषिकुषिशुषिभ्यः क्सिः। ४३६ अशेर्नित्। ४३७ इषेः क्सुः। ४३८ अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः। ४३९ यापोः किद्वे च। ४४० लक्षेर्मुट् च॥ इत्युणादिषु तृतीयः पादः॥

४४१ वातप्रमीः। ४४२ ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज्यर्पिमद्यत्यङ्गिकुयुकृशिभ्यः कत्निज्यतुजलिजिष्ठुजिष्ठजिसन्स्यनिथिनुल्यसासानुकः। ४४३ श्रः करन्। ४४४पुषः कित्। ४४५ कलश्च। ४४६ गमेरिनिः। ४४७ आङि णित्। ४४८ भुवश्च। ४४९ प्रे स्थः। ४५० परमे कित्। ४५१ मन्थः। ४५२ पतस्थ च। ४५३ खजेराकः। ४५४ बलाकादयश्च। ४५५ पिनाकादयश्च। ४५६कषिदूषिभ्यामीकन् ४५७ अनिहृषिभ्यां किच्च। ४५८ चङ्कणः कङ्कणश्च ४५९ शृपृवृञां द्वे रुक्चाभ्यासस्य। ४६०फर्फरीकादयश्च। ४६१ ईषेः किद्ध्रस्वश्च। ४६२ ऋजेश्च। ४६३ सर्तेर्नुम् च। ४६४ मृडः कीकन्कंकणौ। ४६५ अलीकादयश्च। ४६६कृतृभ्यामीषन्। ४६७ शृपृभ्यां किच्च। ४६८ अर्जेर्भृज च। ४६९ अम्बरीषः। ४७०

कॄशॄपॄकटिपटिशौटिभ्य ईरन् । ४७१ वशेः कित् । ४७२ कशेर्मुट् च । ४७३ कृञ उच्च । ४७४ घसेः किच्च । ४७५ गभीरगम्भीरौ । ४७६ विषा विहा । ४७७ पच एलिमच् । ४७८ शीङो धुक्लक्वलञ्वालनः ।४७९ मृकणिभ्यामूकोकणौ । ४८० वलेरूकः । ४८१ उल्क-कादयश्च । ४८२ शलिमण्डिभ्यामूकण् । ४८३ नियो मिः ।४८४ अर्तेरूच्च । ४८५ भुवः कित् । ४८६ अश्नोते रश्च । ४८७ दल्मिः । ४८८ वीज्याज्वरिभ्यो निः । ४८९ सृवृषिभ्यां कित् । ४९० अङ्गेर्नलोपश्च। ४९१वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित् । ४९२ घृणि-पृश्निपार्ष्णिचूर्णिभूर्णि । ४९३ वृदृभ्यां विन् । ४९४ जॄशॄस्तॄजागृभ्यः क्विन् । ४९५ दिवो द्वे दीर्घश्चा-भ्यासस्य । ४९६ कृविघृष्विच्छविस्थविकिकीदिवि ।४९७ पातेर्डतिः । ४९८ शकेर्ऋतिन् । ४९९ अमेरतिः । ५०० वहिवस्यर्तिभ्यश्चित् ।५०१ अञ्चेः को वा ।५०२ हन्तेरंह च । ५०३ रमेर्नित् । ५०४ सूङः क्रिः।५०५ अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् । ५०६ वङ्क्र्यादयश्च । ५०७ राशदिभ्यां त्रिप् । ५०८ अदेस्त्रिनिश्च । ५०९ पतेरत्रिन् । ५१० मृकणिभ्यामीचिः । ५११श्वयतेश्चित्। ५१२ वेञो डिच्च । ५१३ ऋहनिभ्यामूषन् । ५१४ पुरः कुषन् ।५१५ पॄनहिकलिभ्य उषच्। ५१६ पीयो-रूषन् । ५१७ मस्जेर्नुम् च । ५१८ गडेश्च । ५१९ अर्तेररुः । ५२० कुटः किच्च । ५२१ शकादिभ्योऽट-न् । ५२२ ककदिकडिकटिभ्योऽम्बच् ५२३ कदेर्णित्प-क्षिणि । ५२४ कलिकर्दोरमः । ५२५ कुणिपुल्योः किन्दच् । ५२६ कुपेर्वा वश्च । ५२७ नौ षञ्जेर्घथिन् । ५२८ उद्यर्तेश्चित् । ५२९ सर्तेर्णिच्च । ५३० खर्जि-पिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ । ५३१ कुवश्चट् दीर्घश्च । ५३२ समीणः । ५३३ सिवेष्टेरू च । ५३४ शमेर्बन् ।५३५ उल्बादयश्च । ५३६ स्थः स्तोऽम्बजबकौ । ५३७ शाशपिभ्यांददनौ । ५३८ अब्दादयश्च । ५३९ वलि-मलितनिभ्यः कयन् । ५४० वृह्णोः षुग्दुकौ च । ५४१ मिपीभ्यां रुः । ५४२ जत्र्वादयश्च । ५४३ रुशातिभ्यां क्रुन् । ५४४ जनिदाच्युसृवृमदिषमिनमिभृञ्भ्य इत्वन्त्व न्त्वण्क्तिन्शक्स्यढडटाटचः । ५४५ अन्येभ्योपि दृश्यन्ते। ५४६ कुसेरुम्भोमेदेताः । ५४७ सानसि वर्णसिपर्ण-सितण्डुलांकुशचषालेल्वलपल्वलधिष्ण्यशल्याः । ५४८ मृशाक्यविभ्युः कः । ५४९ माछाससिभ्यो यः । ५५० अजनेर्यक् । ५५१ अघ्न्या दय-श्च । ५५२ स्नामदिपद्यर्तिपॄशकिभ्यो वनिप् । ५५३ शीङ्क्रुशिरुहिजिक्षिसृधृभ्यः।कनिप् । ५५४ ध्याप्योः सम्प्रसारणञ्च । ५५५ अदेर्ध च । ५५६ प्रईरशदोस्तुट् च । ५५७ सर्वधातुभ्य इन् । ५५८ हृपिषिरुहिवृति-विदिछिदिकीर्तिभ्यश्च । ५५९ इगुपधात्कित् ५६० श्रमेः सम्प्रसारणं च ५६१ क्रमितमिशतिस्तम्भामत इच्च । ५६२ मनेरुच्च । ५६३ वर्णेर्वलिश्चाहिरण्ये । ५६४ वसिवपियजिराजिव्रजिसदिहनिवाशिवादिवारिभ्य इञ् । ५६५ नहो भश्च । ५६६ कृषेर्वृद्धिश्छन्दसि । ५६७ श्रः शकुनौ । ५६८ कृञ उदीचां कारुषु । ५६९ जनिघ-सिभ्यामिण् । ५७० अज्यतिभ्यां च ५७१ पादे च । ५७२ अशिपणाय्योरुडायलुकौ च । ५७३ वातेर्डिच्च । ५७४ प्रे हरतेः कूपे । ५७५ नौ व्यो यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः । ५७६समानेख्यः स चोदात्तः। ५७७ आङि श्रीहनिभ्यां ह्रस्वश्च। ५७८ अच इः। ५७९खनिकष्य-ज्यसिवसिवनिसनिध्वनिग्रन्थिचलिभ्यश्च । ५८० वृतेश्छ-न्दसि।५८१ भुजेः किच्च।५८२ कॄगॄशॄपॄ कुटिभिदिछि-दिभ्यश्च ।५८३ कुडिकम्प्योर्नलोपश्च ।५८४ सर्वधातुभ्यो मनिन् । ५८५ बृहेर्नोच्च । ५८६ अशिशकिभ्यां छन्दसि । ५८७ हृभृधृसृस्तॄशॄभ्य इमनिच् । ५८८ जनि-मृङ्भ्यामिमनिन् ५८९ वेञः सर्वत्र । ५९० नामन्सीमन् व्योमन् रोमन् लोमन् पाप्मन् धामन् । ५९१ मिथुने मनिः । ५९२ सातिभ्यां मनिन्मनिणौ । ५९३ हनिमशिभ्यां सिकन् । ५९४ कोररन् । ५९५ गिर उडच् । ५९६ इन्देः कमिर्नलोपश्च । ५९७ काय-तेर्डिमिः । ५९८ सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् । ५९९ भ्रस्जिग-मिनमिहनिविश्यशां वृद्धिश्च । ६०० दिवेर्ऋुच्च । ६०१ उषिखनिभ्यां कित् । ६०२ सिविमुच्योष्टेरू च । ६०३ अमिचिमिदिशसिभ्यः क्रः । ६०४पुवो ह्रस्वश्च । ६०५ स्त्यायतेर्ड्रट् । ६०६ गुधृवीपच्विवच्वियमिसदिक्षदिभ्यस्त्रः । ६०७ हुयामाश्रुमसिभ्यस्त्रन् । ६०८ गमेरा च । ६०९ दादिभ्यश्छन्दसि । ६१० भूवादिगृभ्यो णित्रन् । ६११ चरेर्वृत्ते । ६१२ अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ । ६१३ अमेर्द्विषति चित् । ६१४ आः समिण्निकषिभ्याम् । ६१५ चितेः कणः कश्च । ६१६ सूचेः स्मन् । ६१७ पातेर्डुम्सुन् । ६१८ रुचिभुजिभ्यां किष्यन् । ६१९ वसेस्तिः । ६२० सावसेः । ६२१ वौ तसेः । ६२२ पदिप्रथिभ्यां नित् । ६२३ दृणातेर्ह्रस्वश्च । ६२४ कृतॄकृपिभ्यः कीटन् । ६२५ रुचिवचिकुचिकुटिभ्यः कितच् । ६२६ कुटिकुषिभ्यां क्मलन् । ६२७ कुषेर्लश्च ६२८ सर्वधातुभ्योऽसुन् । ६२९ रपेरत एच्च । ६३० अशेर्देवने युट् च । ६३१ उब्जेर्बले बलोपश्च । ६३२ श्वेः सम्प्रसारणं च । ६३३ श्रयतेः स्वाङ्गे शिरः किच्च ।

६३४ अर्तेरुच । ६३५ व्याधौ शुट् च। ६३६ उदके नुट् च । ६३७ इण आगसि । ६३८ रिचेर्धने घिच्च । ६३९ चायतेरन्ने ह्रस्वश्च । ६४० वृङ्शीङ्भ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुट् च । ६४१ स्तुरीभ्यां तुट् च। ६४२ पातेर्बले जुट् च । ६४३ उदके थुट् च । ६४४ अन्ने च । ६४५ अदेर्नुम् धौ च । ६४६ स्कन्देश्च स्वाङ्गे । ६४७ आपः कर्माख्यायाम् । ६४८ रूपे जुट् च । ६४९ उदके नुम्भौ च । ६५० नहेर्दिवि भश्च । ६५१ इण आगोऽपराधे च । ६५२ अमेर्हुक् च । ६५३ रमेश्च । ६५४ देशे ह च । ६५५ अञ्च्यञ्जियुजिभृजिभ्यः कुश्च । ६५६ भूरञ्जिभ्यां कित् । ६५७ वसेर्णित् । ६५८ चन्देरादेश्च छः । ६५९ पचिवचिभ्यां सुट् च । ६६० वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि । ६६१ इण आसिः ६६२ मिथुनेऽसिः पूर्ववच्च सर्वम् । ६६३ नञि हन एह च । ६६४ विधाञो वेध च । ६६५ नुवो धुट् च । ६६६ गतिकारकोपपदयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च । ६६७ चन्द्रे मो डित् । ६६८ वयसि धाञः । ६६९ पयसि च । ६७० पुरसि च । ६७१ पुरूरवाः । ६७२ चक्षेर्बहुलं शिच्च । ६७३ उषः कित्। ६७४ दमेरुनसिः । ६७५ अङ्गतेरसिरिरुडागमश्च । ६७६ सर्तेरप्पूर्वादसिः । ६७७ विदिभुजिभ्यां विश्वे । ६७८ वशेः कनसिः । इत्युणादिषु चतुर्थः पादः ॥४॥

६७९ अदिभुवो डुतच् । ६८० गुधेरूमः । ६८१ मसेरूरन् । ६८२ स्थः किच्च । ६८३ पातेरतिः ६८४ वातेर्नित् । ६८५ अर्तेश्च । ६८६ तृहेः क्नो हलोपश्च । ६८७ वृत्रलुटितनिताडिभ्य उलच् तण्डश्च । ६८८ दंसेष्टटनौ न आ च । ६८९ दंशेश्च । ६९० उदि चेर्डैसिः । ६९१ नौ दीर्घश्च । ६९२ सौ रमेः क्तो दमे पूर्वपदस्य च दीर्घः । ६९३ पूञो यण्लुक् ह्रस्वश्च । ६९४ स्रंसेः शिः कुट् किच्च । ६९५ अर्तेः क्युरुच । ६९६ हिंसेरीरन्नीरचौ । ६९७ उदि दृणातेरजलौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च । ६९८ डित् खनेर्मुट् स चोदात्तः । ६९९ अमेः सन् । ७०० मुहेः खो मूर्च । ७०१ नहेर्हलोपश्च । ७०२ शीङो ह्रस्वश्च । ७०३ माङ ऊखो मय च । ७०४ कलिगलिभ्यां फगस्योच्च । ७०५ स्पृशेः श्वणशुनौ पृ च । ७०६ श्मनि श्रयतेर्डुन् । ७०७ अश्वादयश्च । ७०८ जनेष्टन् लोपश्च । ७०९ अच् तस्य जङ्घ च ७१० हन्तेः शरीरावयवे द्वे च । ७११ क्लिशेरन् लो लोपश्च । ७१२ फलेरितजादेशश्च पः । ७१३ कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन् । ७१४ चीकयतेराद्यन्तविपर्ययश्च ।७१५ पचिमच्योरिच्चोपधायाः। ७१६ जनेररष्ठ च । ७१७ वचिमनिभ्यां चिच्च । ७१८ ऊर्जिदृणातेरलचौ पूर्वपदान्तलोपश्च । ७१९ कृदरादयश्च । ७२० हन्तेर्युनाद्यन्तयोर्घत्वतत्वे । ७२१ क्रमिगमिक्षमिभ्यस्तुन्वृद्धिश्च । ७२२ हर्यतेः कन्यन् हिरच्। ७२३ कृञः पासः । ७२४ जनेस्तु रश्च । ७२५ ऊर्णोतेर्डः । ७२६ दधातेर्यलुट् च । ७२७ जीर्यतेः क्रिन् रश्च वः । ७२८ मन्यतेर्यलोपो मश्चापतुट् चालः । ७२९ ऋजेः कीकन् । ७३० तनोतेर्ड उः सन्वच्च । ७३१ अर्भकपृथुकपाका वयसि । ७३२ अवद्यावमाधमार्वरेफाः कुत्सिते । ७३३ लीरीङो ह्रस्वः पुट् च तरौ श्लेषणकुत्सनयोः । ७३४ क्लिशेरीच्चोपधायाः कन् लोपश्च लोनाम् च । ७३५ अश्नोतेराशुकर्मणि वरट् च । ७३६ चतेरुरन् । ७३७ प्रातेररन् । ७३८ अमेस्तुट् च । ७३९ दहेर्गोलोपो दश्च नः । ७४० सिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च । ७४१ व्याङि घ्रातेश्च जातौ । ७४२ हन्तेरच् घुर च । ७४३ क्षमेरुपधालोपश्च। ७४४ तरतेर्ड्रिः । ७४५ ग्रहेरनिः । ७४६ प्रथेरमच् । ७४७ चरेश्च । ७४८ मङ्गेरलच् । इत्युणादिषु पञ्चमः पादः ॥ इत्युणादिप्रकरणम् ॥

इति शाकटायनप्रणीत उणादिसूत्रपाठः ।

शान्तनवाचार्यप्रणीतः फिट्सूत्रपाठः।

१ फिषोऽन्त उदात्तः। २ पाटलापालङ्काम्बासागरार्थानाम्। ३ गेहार्थानामस्त्रियाम्। ४ गुदस्य च। ५ ध्यपूर्वस्य स्त्रीविषयस्य। ६ खान्तस्याश्मादेः। ७ बंहिष्ठवत्सरतिशत्थान्तानाम्। ८ दक्षिणस्य साधौ। ९ स्वाङ्गाख्यायामादिर्वा। १० छन्दसि च। ११ कृष्णस्यामृगाख्या चेत्। १२ वा नामधेयस्य। १३ शुक्लगौरयोरादिः। १४ अङ्गुष्ठोदकबकवशानां छन्दस्यन्तः १५ पृष्ठस्य च। १६ अर्जुनस्य तृणाख्या चेत्। १७ आर्यस्य स्वाम्याख्या चेत्। १८ आशाया अदिगाख्या चेत्। १९ नक्षत्राणामाब्विषयाणाम्। २० न कुपूर्वस्य कृत्तिकाख्या चेत्। २१ घृतादीनां च। २२ ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि। २३ बिल्वतिष्ययोः स्वरितो वा। इति फिट्सूत्रेषु प्रथमः पादः॥

२४ अथादिः प्राक् शकटेः। २५ह्रस्वान्तस्य स्त्रीविषयस्य। २६ नब्विषयस्यानिसन्तस्य। २७ तृणधान्यानां च द्व्यषाम्। २८ त्रः संख्यायाः। २९ स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्। ३० प्राणिनां कुपूर्वम्। ३१खय्युवर्णं कृत्रिमाख्या चेत्। ३२उनर्वन्नन्तानाम्। ३३वर्णानां तणतिनितान्तानाम्। ३४ह्रस्वान्तस्य ह्रस्वमनृत्ताच्छील्ये। ३५ अक्षस्यादेवतस्य। ३६अर्धस्यासमद्योतने। ३७ पीतद्दर्थानाम्। ३८ ग्रामादीनां च। ३९ लुबन्तस्योपमेयनामधेयस्य। ४०न वृक्षपर्वतविशेषव्याघ्रसिंहमहिषाणाम्। ४१ राजविशेषस्य यमन्वा चेत्। ४२ लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः। ४३ स्त्रीविषयवर्णाक्षुपूर्वाणाम् ४४ शकुनीनां च लघुपूर्वम्। ४५ नर्तुप्राण्याख्यायाम्। ४६ धान्यानां च वृद्धक्षान्तानाम्। ४७ जनपदशब्दानामषान्तानाम्। ४८ हयादीनामसंयुक्तलान्तानामन्तः पूर्वं वा। ४९ इगन्तानां च द्व्यषाम्॥ इति फिट्सूत्रेषु द्वितीयः पादः॥

५० अथ द्वितीयं प्रागीषात्। ५१ त्र्यचां प्राङ्मकारात्। ५२ स्वाङ्गानामकुर्वादीनाम्। ५३ मादीनां च। ५४ शादीनां शाकानाम्। ५५ पान्तानां गुर्वादीनाम्। ५६ युतान्यण्यन्तानाम्। ५७ मकरवरूढपारेवतवितस्तेक्ष्वार्जिद्राक्षाकलोमाकाष्ठापेष्ठाकाशीनामादिर्वा। ५८ छन्दसि च। ५९ कर्दमादीनां च। ६० सुगन्धितेजनस्य ते वा। ६१ नपः फलान्तानाम्। ६२ यान्तस्यान्त्यात्पूर्वम्। ६३ थान्तस्य च नालघुनी। ६४ शिशुमारोदुम्बरबलीवर्दोष्ट्रारपुरूरवसां च ६५ सांकाश्यकाम्पिल्यनासिक्यदार्वाघाटानाम्। ६६ ईषान्तस्य हयादेरादिर्वा। ६७ उशीरदाशेरकपालपलालशैवालश्यामाकशारीरशरावहृदयहिरण्यारण्यापत्यदेवराणाम्। ६८ महिष्याषाढयोर्जायेष्टकाख्या चेत्॥इति फिट्सूत्रेषु तृतीयः पादः॥

६९ शकटिशकट्योरक्षरमक्षरं पर्यायेण। ७० गोष्ठजस्य ब्राह्मणनामधेयस्य। ७१ पारावतस्योपोत्तमवर्जम्। ७२ धूम्रजानुमुञ्जकेशकालवालस्थालीपाकानामधूजलस्थानाम्।७३कपिकेशहरिकेशयोश्छन्दसि। ७४ न्यङ्स्वरौ स्वरितौ। ७५ न्यर्बुदव्यल्कशयोरादिः। ७६ तिल्यशिक्यमत्यकार्ष्मर्यधान्यकन्याराजन्यमनुष्याणामन्तः। ७७ बिल्वभक्ष्यवीर्याणि च्छन्दसि। ७८ त्वत्त्वसमसिमेत्यनुच्चानि। ७९ सिमस्याथर्वणेऽन्त उदात्तः। ८०निपाता आद्युदात्ताः। ८१ उपसर्गाश्चाभिवर्जम्। ८२ एवादीनामन्तः। ८३ वाचादीनामुभावुदात्तौ। ८४ चादयोऽनुदात्ताः। ८५ यथेति पादान्ते। ८६ प्रकारादिद्विरुक्तौ। ८७ शेषं सर्वमनुदात्तम्। इति फिट्सूत्रेषु चतुर्थः पादः॥

॥ इति शान्तनवाचार्यप्रणीतः फिट्सूत्रपाठः॥

॥ श्रीः ॥

अथाष्टाध्यायीसूत्राणां सूची।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः	सूत्राणि ।
३०७१	अपचित्तश्च ७ । २ । ३०
१०८९	अपत्यं पौत्रप्रभृति० ४ । १ । १६२
८१५	अपथं नपुंसकम् २ । ४ । ३०
१३५९	अपदातौ साल्वात् ४ । २ । १३५
२१०	अपदान्तस्य मूर्धन्यः ८ । ३ । ५५
६६६	अपपरिबहिरञ्चवः० २ । १ । १२
५९६	अपपरी वर्जने १ । ४ । ८८
१५७१	अपमित्ययाचिताभ्यां० ४ । ४ । २१
२०५९	अपरस्पराः क्रिया० ६ । १ । १४४
४८०	अपरिमाणविस्ताचि० ४ । १ । २२
३५८०	अपरिह्वृताश्च ७ । २ । ३२
२७७९	अपरोक्षे च ३ । २ । ११९
५६३	अपवर्गे तृतीया २ । ३ । ६
२०६४	अपस्करो रथाङ्गम् ६ । १ । १४९
३५१२	अपस्पृधेथामानृचुरा० ६ । १ । ३६
२७१७	अपह्नवे ज्ञः १ । ३ । ४४
३९२०	अपाच्च ६ । २ । १८६
२६८८	अपाच्चतुष्पाच्छकु० ६ । १ । १४२
२११२	अपादने चाहीयरुहोः ५ । ४ । ४५
५८७	अपदाने पञ्चमी २ । ३ । २८
३३७३	अपादाने परीप्सायाम् ३ । ४ । ५२
२७४१	अपाद्वदः १ । ३ । ७३
५५७	अपिः पदार्थसंभाव० १ । ४ । ९६
११६३	अपूर्वपदादन्यतर० ४ । १ । १४०
२५१	अपृक्त एकाल् प्रत्ययः० १ । २ । ४१
२९६७	अपे क्लेशतमसोः ३ । २ । ५०
३१२४	अपे च लषः ३ । २ । १४४
७००	अपेतापोढमुक्तपतिता० २ । १ । ३८
१२२९	अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः ४ । २ । २७
४४२	अपो भि ७ । ४ । ४८
२७७	अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृ० ६ । ४ । ११
८३२	अप्पूरणीप्रमाण्योः ५ । ४ । ११६
३२७९	अ प्रत्ययात् ३ । ३ । १०२
९८	अप्लुतवदुपस्थिते ६ । १ । १२९
४६७	अभाषितपुंस्काच्च ७ । ३ । ४८
१४७०	अभिजनश्च ४ । ३ । ९०
२०७१	अभिजिद्विदभृ० ५ । ३ । ११८
२७७३	अभिज्ञावचने लृट् ३ । २ । ११२
५४३	अभिनिविशश्च १ । ४ । ४७
१४६६	अभिनिष्क्रामति द्वा० ४ । ३ । ८६
३१९३	अभिनिसः स्तनः ८ । ३ । ८६
२७४६	अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १ । ३ । ९०
५५३	अभिरभागे १ । ४ । ९१
३२१८	अभिविधौ भाव इनुण् ३ । ३ । ४४
२१२४	अभिविधौ संपदा च ५ । ४ । ५३
३९१९	अभेर्मुखम् ६ । २ । १८५
३०६५	अभेश्चाविदूर्ये ७ । २ । २५
१८१८	अभ्यमित्राच्छ च ५ । २ । १७
२४१७	अभ्यस्तस्य च ६ । १ । ३३
३६७३	अभ्यस्तानामादिः ६ । १ । १८९
२२९०	अभ्यासस्यासवर्णे ६ । ४ । ७८
२४३०	अभ्यासाच्च ७ । ३ । ५५
२१८२	अभ्यासे चर्च ८ । ४ । ५४
३४०३	अभ्युत्सादयांप्रजनयां० ३ । १ । ४२
२९७०	अमनुष्यकर्तृके च ३ । २ । ५३
३८२३	अमहन्नवन्नगरेऽनु ६ । २ । ८९
२८७४	अमावस्यदन्यतर० । ३ । १ । १२२
१४०३	अमावास्याया वा ४ । ३ । ३०
१९४	अमि पूर्वः ६ । १ । १०७
३५०३	अमु च च्छन्दसि ५ । ४ । १२
९७०	अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गा० ६ । ३ । १२
७८३	अमैवाव्ययेन २ । २ । २०
३३६२	अमो मश् ७ । १ । ४०
३६०४	अम्नरूधरवरित्युभय० ८ । २ । ७०
२९१८	अम्बाम्बगोभूमिस० ८ । ३ । ९७
२६७	अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ७ । ३ । १०७
३३३	अम् सम्बुद्धौ ७ । १ । ९९
१८७६	अयःशूलदण्डाजिना० ५ । २ । ७६
२६४९	अयङ् यि क्ङिति ७ । ४ । ४२
२२९५	अयनं च ८ । ४ । २५
३३९०	अयस्मयादीनि च्छ० १ । ४ । २०
२३११	अयामन्ताल्वाय्येत्न्वि० ६ । ४ । ५५
१३५३	अरण्यान्मनुष्ये ४ । २ । १२९
३८३४	अरिष्टगौडपूर्वे च ६ । २ । १००
२९४२	अरुर्द्विषदजन्तस्य मु० ६ । ३ । ६७
२१२१	अरुमनश्चक्षुश्चेतोरहो० ५ । ४ । ५१
२४९३	अर्तिपिपर्त्योश्च ७ । ४ । ७७
३१६५	अर्तिलूधूसूखनसह० ३ । २ । १८४
२५७०	अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयी० । ७ । ३ । ३६
१७८	अर्थवदधातुरप्रत्य० १ । २ । ४५
३७७८	अर्थे ६ । २ । ४४
१०२६	अर्थे विभाषा ६ । ३ । १००
२०६४	अर्देः संनिविभ्यः ७ । २ । २४
७१३	अर्धं नपुंसकम् २ । २ । २
८१६	अर्धर्चाः पुंसि च २ । ४ । ३१
८०२	अर्धाच्च ५ । ४ । १००
१६८४	अर्धात्परिमाणस्य पू० ७ । ३ । २६
१३७४	अर्धाद्यत् ४ । ३ । ४
३८२४	अर्मे चावर्णं द्व्यच् त्र्यच् ६ । २ । ९०
२८५१	अर्यः स्वामिवैश्ययोः ३ । १ । १०३
३६४	अर्वणस्त्रसावनञः ६ । ४ । १२७
१९३३	अर्शआदिभ्योऽच् ५ । २ । १२७

सूत्राङ्काः	सूत्राणि ।
१५७०	कर्मन्ननित्यम् ४ । ४ । २०
७८५	क्त्वा च २ । २ । २२
४५०	क्त्वातोसुन्कसुनः १ । १ । ४०
३५६०	क्त्वापिच्छन्दसि ७ । १ । ३८
३३२१	क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः ६ । ४ । ३१
३५६९	क्त्वो युक् ७ । १ । ४७
८३७	क्यङ्मानिनोश्च ६ । ३ । ३६
२६५८	क्यचि च ७ । ४ । ३३
२११९	क्यच्व्योश्च ६ । ४ । १५२
२६६०	क्यस्य विभाषा ६ । ४ । ५०
३१५०	क्याच्छन्दसि ३ । २ । १७०
१४४७	क्रतुयज्ञेभ्यश्च ४ । ३ । ६८
१२७०	क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ४ । २ । ६०
२८९१	क्रतौ कुण्डपाय्यसं० ३ । १ । १३०
३८५२	क्त्वादयश्च ६ । २ । ११८
३३२२	क्रमः परस्मैपदेषु ७ । ३ । ७६
३३२९	क्रमश्च क्त्वि ६ । ४ । १८
१२७१	क्रमादिभ्यो वुन् ४ । २ । ६१
६६	क्रय्यस्तदर्थे ६ । १ । ८२
२९७८	क्रव्ये च ३ । २ । ६९
५८१	क्रियार्थोपपदस्य च क० २ । ३ । १४
२८२५	क्रियासमभिहारे लोट्० ३ । ४ । २
२६००	क्रीङ्जीनां णौ ६ । १ । ४८
२६८७	क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च १ । ३ । २१
१५३८	क्रीतवत्परिमाणात् ४ । ३ १५६
५०६	क्रीतात्करणपूर्वात् ४ । १ । ५०
५७५	क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थां० १ । ४ । ३७
५७६	क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म १ । ४ । ३८
३१३१	क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ३ । २ । १५१
१२००	क्रौड्यादिभ्यश्च ४ । १ । ८०
२५५४	क्र्यादिभ्यः श्ना ३ । १ । ८१
३०४९	क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ७ । २ । ५०
३२४२	क्वणो वीणायां च ३ । ३ । ६५
३०९५	क्वसुश्च ३ । २ । १०७
२९६०	क्वाति ७ । २ । १०५
३७७	क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८ । २ । ६२
२९८३	क्विप्च ३ । २ । ७६
११६१	क्षत्राद्घः ४ । १ । १३८
३६८९	क्षयो निवासे ६ । १ । २०१
६५	क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे ६ । १ । ८१
३०३२	क्षायो मः ८ । २ । ५३
२७९१	क्षिप्रवचने लृट् ३ । ३ । १३३
३३३८	क्षियः ६ । ४ । ५९
३६२३	क्षियाशीःप्रैषेषु ति० ८ । २ । १०४
३०१५	क्षियो दीर्घात् ८ । २ । ४६
१२२२	क्षीराड्ढञ् ४ । २ । २०
९१२	क्षुद्रजन्तवः २ । ४ । ८

सूत्राङ्काः	सूत्राणि ।
११३७	क्षुद्राभ्यो वा ४ । १ । १३१
१४९९	क्षुद्राभ्रमरवटरपा० ४ । ३ । ११९
३०५८	क्षुब्धस्वान्तध्वान्त० ७ । २ । १८
७९२	क्षुम्नादिषु च ८ । ४ । ३९
३७७३	क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे ६ । २ । ३९
१८९२	क्षेत्रियच्परक्षेत्रे चि० ५ । २ । ९२
७२४	क्षेपे २ । १ । ४७
३८४२	क्षेपे ६ । २ । १०८
२९६१	क्षेमप्रियमद्रेऽण्च ३ । २ । ४४
२३३७	क्सस्याचि ७ । ३ । ७२
१६३०	खः सर्वधुरात् ४ । ४ । ७८
३४७८	ख च ४ । ४ । १३२
२९५५	खचि ह्रस्वः ६ । ४ । ९४
६८८	खट्वा क्षेपे २ । १ । २६
१२५४	खण्डिकादिभ्यश्च ४ । २ । ४५
३३०४	खनो घ च ३ । ३ । १२५
७६	खरवसानयोर्विसर्ज० ८ । ३ । १५
१२१	खरि च ८ । ४ । ५५
१२५९	खलगोरथात् ४ । २ । ५०
६६८	खलयवमाषतिलवृष० ५ । १ । ७
१६९८	खार्या ईकन् ५ । १ । ३३
८०३	खार्याः प्राचाम् ५ । ४ । १०१
२९४३	खित्यनव्ययस्य ६ । ३ । ६६
३५१३	खिदेश्छन्दसि ६ । १ । ५२
२५५	ख्यत्यात्परस्य ६ । १ । ११२
३८७३	गन्तिकारकोपपदा० ६ । २ । १३९
५४०	गतिबुद्धिप्रत्यवसाना० १ । ४ । ५२
३६८३	गतिरनन्तरः ६ । २ । ४९
३९७७	गतिर्गतौ ८ । १ । ७०
२३	गतिश्च १ । ४ । ६०
५८५	गत्यर्थकर्मणि द्विती० २ । ३ । १२
३९५८	गत्यर्थलोटा लृण्न ८ । १ । ५१
३०८६	गत्यर्थाकर्मकश्लि० ३ । ४ । ७२
३१४४	गत्वरश्च ३ । २ । १६४
२८८८	गदमदचरयमश्चा० ३ । १ । १००
३७४७	गन्तव्यपण्यं वाणिजे ६ । २ । १३
२७०५	गन्धनावक्षेपणसेवन० १ । ३ । ३२
८७४	गन्धस्येदुत्पूतिसुसु० ५ । ४ । १३५
२९८६	गमः क्वौ ६ । ४ । ४०
२९६४	गमश्च ३ । २ । ४७
२३६३	गमहनजनखनघसां० ६ । ४ । ९८
२४०१	गमेरिट् परस्मैपदेषु ७ । २ । ५८
१४३५	गम्भीराञ्ञ्यः ४ । ३ । ५८
११०७	गर्गादिभ्यो यञ् ४ । १ । १०५
१३६१	गर्तोत्तरपदाच्छः ४ । २ । १३७
२७९९	गर्हायां लडपि० ३ । ३ । १४२

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

२३६ नलोपः प्रातिपदिका० ८ । २ । ७
३५३ नलोपः सुप्स्वरसंज्ञा० ८ । २ । २
७५७ नलोपो नञः ६ । ३ । ७३
३३३५ न ल्यपि ६ । ४ । ६९
२६४६ न वशः ६ । १ । २०
१९० न विभक्तौ तुस्माः १ । ३ । ४
२३४८ न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७ । २ । ५९
२४ नवेति विभाषा १ । १ । ४४
२४१६ न व्यो लिटि ६ । १ । ४६
२९३७ न शब्दश्लोककलह० ३ । २ । २३
२२६३ न शसददवादिगुणा० ६ । ४ । १२६
२५१८ नशेः षान्तस्य ८ । ४ । ३६
४३१ नशेर्वा ८ । २ । ६३
१३२ नश्च ८ । ३ । ३०
३६४९ नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ८ । ४ । २७
१२३ नश्चापदान्तस्य झलि ८ । ३ । २४
१४० नश्छव्यप्रशान् ८ । ३ । ७
३०८ न षट्स्वस्रादिभ्यः ४ । १ । १०
३५५ न संयोगाद्वमन्तात् ६ । ४ । १३७
७९३ न संख्यादेः समाहारे ५ । ४ । ८९
८९३ न संज्ञायाम् ५ । ४ । १५५
३६०३ नसत्तनिषत्तानुत्त० ८ । २ । ६१
३६३ न संप्रसारणे संप्रसारणम् ६ । १ । ३७
२०७७ न सामिवचने ५ । ४ । ५
३३०७ न सुदुर्भ्यां केवला० ७ । १ । ६८
३६६६ न सुब्रह्मण्यायां स्व० १ । २ । ३७
६७९ नस्तद्धिते ६ । ४ । १४४
३९३८ नह प्रत्यारम्भे ८ । १ । ३१
३८३५ न हास्तिनफलक० ६ । २ । १०१
१०३७ नहिवृतिवृषिव्य० ६ । ३ । ११६
४४० नहो धः ८ । २ । ३४
२५७२ नाग्लोपिशास्वृदिताम् ७ । ४ । २
३८६७ नाचार्यराजर्त्विक्सं० ६ । २ । १३३
१३ नाज्झलौ १ । १ । १०
४२४ नाञ्चेः पूजायाम् ६ । ४ । ३०
८९६ नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे ५ । ४ । १५९
२९४५ नाडीमुष्ट्योश्च ३ । २ । ३०
१६८५ नातः परस्य ७ । ३ । २७
१६५ नादिचि ६ । १ । १०४
५५ नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य ८ । ४ । ४८
३६०२ नाद्धस्य ८ । २ । १७
३३८४ नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ३ । ४ । ६२
२७९३ नानद्यतनवत्क्रिया० ३ । ३ । १३५
२७३२ नानोर्ज्ञः १ । ३ । ५८
१८५० नान्तादसंख्यादेर्मट् ५ । २ । ४९
२५०३ नाभ्यस्तस्याचि पिति० ७ । ३ । ८७

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

४२७ नाभ्यस्ताच्छतुः ७ । १ । ७८
४१३ नामन्त्रिते समाना० ८ । १ । ७३
३७२३ नामन्यतरस्याम् ६ । १ । १७७
२०९ नामि ६ । ४ । ३
३३८० नाम्न्यादिशिग्रहोः ३ । ४ । ५८
८२ नाम्रेडितस्यान्त्यस्य० ६ । १ । ९९
८०१ नावो द्विगोः ५ । ४ । ९९
३९०२ नाव्ययदिक्छब्दगो० ६ । २ । १६८
६५७ नाव्ययीभावादतो० २ । ४ । ८३
२९४४ नासिकास्तनयो० ३ । २ । २९
५११ नासिकोदरौष्ठजं० ४ । १ । ५५
१६२४ निकटे वसति ४ । ४ । ७३
२७५३ निगरणचलनार्थे० १ । ३ । ८७
३६१३ निगृह्यानुयोगे च ८ । २ । ९४
३२६५ निघो निमित्तम् ३ । ३ । ८७
२५०२ निजां त्रयाणां गुणः० ७ । ४ । ७५
१५२४ नित्यं वृद्धशरादि० ४ । ३ । १४४
१८५७ नित्यं शतादिमासा० ५ । २ । ५७
४८७ नित्यं संज्ञाछन्दसो० ४ । १ । २९
४९२ नित्यं सपत्न्यादिषु ४ । २ । ३५
२५९ नित्यं समासेऽनुत्तर० ८ । ३ । ४५
२५९६ नित्यं स्मयतेः ६ । १ । ५७
७७८ नित्यं हस्ते पाणाबु० १ । ४ । ७७
२५४८ नित्यं करोतेः ६ । ४ । १०८
२६३४ नित्यं कौटिल्ये गतौ ३ । १ । २३
७११ नित्यं क्रीडाजीविकयोः २ । २ । १७
२२०० नित्यं ङितः ३ । ४ । ९९
३४४६ नित्यं छन्दसि ४ । १ । ४६
३५८७ नित्यं छन्दसि ७ । ४ । ८
८६२ नित्यमसिच्प्रजा० ५ । ४ । १२२
२१२८ नित्यमाम्रेडिते० ५ । ४ । ५७ (वा०)
३२४३ नित्यं पणः परिमाणे ३ । ३ । ६६
३६९८ नित्यं मंत्रे ६ । १ । २१०
२१४० नित्यवीप्सयोः ८ । १ । ४
३०८२ निनदीभ्यां स्नातेः० ८ । ३ । ८९
३१२६ निन्दहिंसक्लिशखा० ३ । २ १४६
१०३ निपात एकाजनाङ् १ । १ । १४
३५३८ निपातस्य च ६ । ३ । १३६
३९३७ निपातैर्यद्यदिहन्तकु० ८ । १ । ३०
३२५१ निपानमाहावः ३ । ३ । ७४
३३५५ निमूलसमूलयोः कषः ३ । ४ । ३४
२५६० निरः कुषः ७ । २ । ४६
३१९९ निरभ्योः पूल्वोः ३ । ३ । २८
३९१८ निरुदकादीनि च ६ । २ । १८४
३०२९ निर्वाणोऽवाते ८ । २ । ५०
१५६९ निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ४ । ४ । १९

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

सूत्राङ्काः सूत्राणि ।

इति अष्टाध्यायीसूत्रपाठसूची ।

गणपाठ सूची ।

गणसूत्राङ्काः

१०२ नडादिः
१०४ नद्यादिः
३५ नन्द्यादिः
२० नावादिः
२२६ निरुदकादिः
१४६ निष्कादिः
२४६ न्यङ्क्वादिः
९३ पक्षादिः
३७ पचादिः
२५२ पत्यादिः
१३२ परदारादिः
११२ परिमुखादिः
१३३ पर्पादिः
१९३ पर्श्वादिः
१०५ पलद्यादिः
१२३ पलाशादिः
९ पात्रेसमितादिः
१७८ पामादिः
२०६ पारस्करादिः
३९ पार्श्वादिः
७२ पाशादिः
१७९ पिच्छादिः
१६८ पील्वादिः
२३९ पील्वादिः
१५९ पुण्याहवाचनादिः
१६५ पुरोहितादिः
१८५ पुष्करादिः
१६० पृथ्वादिः
२३४ पृषोदरादिः
२५ पैलादिः
२१ प्रकृत्यादिः
९६ प्रगद्यादिः
११८ प्रज्ञादिः
१४१ प्रतिजनादिः
१३० प्रभूतादिः
२२३ प्रवृद्धादिः
४ प्रादिः
२३० प्रियादिः
८८ प्रेक्षादिः
११७ प्लक्षादिः
९२ बलादिः
१८६ बलादिः
४८ बह्वादिः
५३ बाह्वादिः
५६ बिदादिः

गणसूत्राङ्का

२४० बिल्वकादिः
१२२ बिल्वादिः
१६२ ब्राह्मणादिः
६८ भर्गादिः
१८७ भवदादिः
१३६ भस्त्रादिः
७० भिक्षादिः
४१ भिदादिः
४३ भीमादिः
३१ भृशादिः
७५ भैरिक्यादिः
१०० मध्वादिः
१६७ मनोज्ञादिः
१५ मयूरव्यंसकादिः
१५१ महानाम्न्यादिः
१३८ महिष्यादिः
२१६ मालादिः
१२९ माशब्दादिः
३८ मूलविभुजादिः
२५० यवादिः
२७ यस्कादिः
१६ याजकादिः
१९६ यावादिः
२१२ युक्तारोह्यादिः
१६६ युवादिः
६९ यौधेयादिः
१९४ यौधेयादिः
१२६ रजतादिः
१७५ रसादिः
१७ राजदन्तादिः
७४ राजन्यादिः
६३ रेवत्यादिः
१२१ रैवतिकादिः
१७७ लोमादिः
३२ लोहितादिः
१४८ वंशादिः
२२१ वनस्पत्यादिः
९९ वरणादिः
९७ वराहादिः
२१९ वर्ग्यादिः
७९ वसन्तादिः
६६ वाकिनादिः
१९७ विनयादिः
१७१ विमुक्तादिः
२०९ विस्पष्टादिः
२०८ वृषादिः

गणसूत्राङ्काः

१३४ वेतनादिः
१० व्याघ्रादिः
११५ व्युष्टादिः
१८१ व्रीह्यादिः
२०५ शकन्ध्वादिः
११६ शण्डिकादिः
२०० शरदादिः
१२४ शरादिः
२३८ शरादिः
१९० शर्करादिः
१३ शाकपार्थिवादिः
१९८ शाखादिः
४९ शार्ङ्गरवादिः
५९ शिवादिः
११५ शुण्डिकादिः
६० शुभ्रादिः
८ शौण्डादिः
११९ शौनकादिः
१४ श्रमणादिः
११ श्रेण्यादिः
९० सख्यादिः
८० संकलादिः
९१ संकाशादिः
११५ संतापादिः
११० संधिवेलादिः
४६ समानादिः
४२ संपदादिः
१ सर्वादिः
२५५ सवनादिः
६ साक्षात्प्रभृतिः
१७६ सिध्मादिः
११७ सिन्ध्वादिः
३३ सुखादिः
१८४ सुखादिः
९५ सुतंगमादिः
८१ सुवास्त्वादिः
२५४ सुषामादिः
११३ सुस्नातादिः
१९५ स्थूलादिः
२४१ स्नात्व्यादिः
२ स्वरादिः
१९८ स्वर्गादिः
४५ स्वस्रादिः
२४३ स्वागतादिः
१२८ हरीतक्यादिः
२०२ हस्त्यादिः

इति गणपाठसूची ।

धातुसूची।

जिन सूत्रोंके नीचे दशगणोंमें जो धातु आये हैं यह उनके अंक हैं। वे २१६९ से २९७३ सूत्रतक हैं।

सूत्राङ्काः	धातवः
२२८८	इदि (भ्वा. प. से.)
२५४३	(ञि) इन्धी (रु. आ. से.)
२५३६	इल (तु. प. से.)
२५७१	इल (चु. उ. से.)
२३११	इवि (भ्वा. प. से.)
२५०६	इष (दि. प. से.)
२५३६	इष (तु. प. से.)
२५६०	इष (क्र्या. प. से.)
२४३४	ईक्ष (भ्वा. आ. से.)
२२८९	ईखि (भ्वा. आ. से)
२५०९	ईङ् (दि. आ. अ.)
२२९०	ईज (भ्वा. आ. से.)
२४१८	ईड (अ. आ. से.)
२५७१	ईड (चु. उ. से.)
२४१८	ईर (अ. आ. से.)
२५७२	ईर (चु. उ. से.)
२३२९	ईर्क्ष्य (भ्वा. प. से.)
२३२९	ईर्ष्य (भ्वा. प. से.)
२४४०	ईश (अ. आ. से.)
२३३४	ईष (भ्वा. प. से)
२३१९	ईष (भ्वा. प. से.)
२३३४	ईह (भ्वा. आ. से.)
२३३९	उक्ष (भ्वा. प. से.)
२२८९	उख (भ्वा. प. से)
२२८९	उखि (भ्वा. प. से.)
२३८७	उङ् (भ्वा. अ. अ.)
२५२२	उच (दि. प. से.)
२२९१	उछि (भ्वा. प. से.)
२५३६	उछि (तु. प. से.)
२२९१	उच्छी (भ्वा. प. से.)
२५१६	उच्छी (तु. प. से.)
२५१६	उज्झ (तु. प. से.)
२२९९	उठ (भ्वा. प. से.)
२५४५	उन्दी (रु. प. से.)
२५३६	उम्भ (तु. प. से.)
२५३६	उब्ज (तु. प. से.)
२५३६	उभ (तु. प. से.)
२२६४	उर्द (भ्वा. आ. से.)
२३३१	उर्वी (भ्वा. प. से)
२३४०	उष (भ्वा. प. से.)
२३४३	उहिर (भ्वा. प. से.)
२२९९	ऊठ (पा.) (भ्वा. प. से.)
२५७३	ऊन (चु. उ. से.)
२३२६	ऊयी (भ्वा. आ. से.)
२५६५	ऊर्ज (चु. उ. से.)
२४४४	ऊर्णुञ् (अ. उ. से.)
२३३९	ऊष (भ्वा. प. से.)
२३३४	ऊह (भ्वा. आ. से.)
२३८२	ऋ (भ्वा. प. अ.)
२५०३	ऋ (जु. प. अ.)
२५३६	ऋच (तु. प. से.)
२५३६	ऋच्छ (तु. प. से)
२२९०	ऋज (भ्वा. आ. से.)
२२९०	ऋजि (भ्वा. आ. से.)
२५४७	ऋण (त. उ. अ.)
२५२२	ऋधु (दि. प. से.)
२५१३	ऋधु (स्वा. प. से.)
२५३६	ऋम्फ (तु. प. से.)
२५३६	ऋफ (तु. प. से.)
२५३५	ऋषी (तु. प. से.)
२५५८	ॠ (क्र्या. प. अ.)
२२९०	एजृ (भ्वा. आ. से.)
२२९७	एजृ (भ्वा. प. से.)
२२९८	एठ (भ्वा. आ. से.)
२२३२	एध (भ्वा. आ. से.)
२३३४	एषृ (भ्वा. आ. से.)
२२८९	ओखृ (भ्वा. प. से.)
२३१८	ओणृ (भ्वा. प. से.)
२४१९	(टु) ओश्वि (भ्वा. प. से.)
२२८९	कक (भ्वा. आ. से.)
२२८९	ककि (भ्वा. आ. से.)
२२८९	कख (भ्वा. प. से.)
२३५३	कखे (भ्वा. प. से.)
२३५३	कगे (भ्वा. प. से.)
२२९०	कच (भ्वा. आ. से.)
२२९०	कचि (भ्वा. आ. से)
२२९९	कटी (भ्वा. प. से.)
२२९८	कटे (भ्वा प. से.)
२२९९	कठ (भ्वा. प. से.)
२२९८	कठि (भ्वा. आ. से.)
२५७२	कठि (चु. उ. से.)
२२९९	कड (भ्वा. प. से.)
२५३६	कड (तु. प. से.)
२२९९	कड्ड (भ्वा. प. से.)
२२९८	कडि (भ्वा. आ. से.)
२२९९	कडि (पा.) (भ्वा. प. से.)
२५६७	कडि (चु. उ. से.)
२३१८	कण (भ्वा. प. से.)
२३५३	कण (भ्वा. प से.)
२५७१	कूण (चु. उ. से.)
२५७१	कण (चु. उ. से.)

सूत्राङ्काः	धातवः
२३५५	कथे (भ्वा. प. से.)
२३५३	क्षजि (भ्वा. आ. से.)
२५४७	क्षणु (त. उ. से.)
२५७४	क्षप (चु. उ. से.)
२३५३	क्षजिः (पा.) (भ्वा. प. से.)
२५६७	क्षपि (चु. प. से.)
२५१९	क्षमू (दि. प. से.)
२३०८	क्षमूष् (भ्वा. आ. से.)
२३५६	क्षर (भ्वा. प. से.)
२५६७	क्षल (चु. उ. से.)
२२९७	क्षि (भ्वा. प. अ.)
२५२३	क्षि (स्वा. प. अ.)
२५३८	क्षि (तु. प. अ.)
२५४७	क्षिणु (त. उ. से.)
२५०६	क्षिप (दि. प. अ.)
२५३५	क्षिप् (तु. उ. से.)
२२९८	क्षीज (भ्वा. प. से.)
२३०१	क्षीवृ (भ्वा. आ. से.)
२३३१	क्षीवु (भ्वा. प. से.)
२५५९	क्षीष् (क्र्या. प. से.)
२५४३	क्षुदिर् (रु. उ. अ.)
२४४५	(टु) क्षु (अ. प. से.)
२५१४	क्षुध (दि. प. से.)
२३४६	क्षुभ (भ्वा. आ. से.)
२५२२	क्षुभ (दि. प. से.)
२५६०	क्षुभ (क्र्या. प. से.)
२५३६	क्षुर (तु. प. से.)
२३३१	क्षेवु (भ्वा. प. से.)
२३७८	क्षै (भ्वा. प. अ.)
२५७३	क्षोट (चु. उ. से.)
२४४४	क्ष्णु (अ. प. से.)
२३२६	क्ष्मायी (भ्वा. आ. से.)
२३३०	क्ष्मील (भ्वा. प. से.)
२३४६	(ञि)क्ष्विदा(पा.) (भ्वा.आ.से.)
२५२२	(ञि) क्ष्विदा (दि. प. से.)
२३३०	क्ष्वेल (भ्वा. प. से.)
२५६०	खच (क्र्या. प. से.)
२२९७	खज (भ्वा. प. से.)
२२९७	खजि (भ्वा. प. से.)
२२९९	खट (भ्वा. प. से.)
२५७०	खट्ट (चु. उ. से.)
२५६७	खड (चु. उ. से.)
२२९८	खडि (भ्वा. आ. से.)
२५६७	खडि (चु. उ. से.)
२२८१	खद (भ्वा. प. से.)
२३६२	खनु (भ्वा. उ. से.)
२२९१	खर्ज (भ्वा. प. से.)
२२८८	खर्द (भ्वा. प. से.)
२३०८	खर्ब (भ्वा. प. से.)
२३३१	खर्व (भ्वा. प. से.)
२५६०	खव (पा.) (क्र्या. प. से.)
२३३०	खल (भ्वा. प. से.)
२३३९	खष (भ्वा. प. से.)
२२८१	खादृ (भ्वा. प. से.)
२२९९	खिट (भ्वा. प. से.)
२५१३	खिद (दि. आ. अ.)
२५४२	खिद (तु. प. से.)
२५४४	खिद (रु. आ. अ.)
२३८७	खुङ् (पा.) (भ्वा. आ. अ.)
२२९१	खुजु (भ्वा. प. से.)
२५३६	खुड (पा.) (तु. प. से.)
२५६७	खुडि (चु. उ. से.)
२५३६	खुर (तु. प. से.)
२२६५	खुर्द (भ्वा. आ. से.)
२५७३	खेट (चु. उ. से.)
२३३०	खेल (भ्वा. प. से.)
२३२९	खेवृ (पा.) (भ्वा. आ. से.)
२३७८	खै (भ्वा. प. अ.)
२५५३	खोट (पा.) (चु. उ. से.)
२३३०	खोर्ऋ (भ्वा. प. से.)
२३३०	खोल (भ्वा. प. से.)
२४६३	ख्या (अ. प. अ.)
२२९८	गज (भ्वा. प. से.)
२५७०	गज (चु. उ. से.)
२२९८	गजि (भ्वा. प. से.)
२३५३	गड (भ्वा. प. से.)
२२८८	गडि (भ्वा. प. से.)
२२९९	गडि (भ्वा. प. से.)
२५७२	गण (चु. उ. से.)
२२८४	गद (भ्वा. प. से.)
२५७३	गदी (चु. उ. से.)
२५७१	गन्ध (चु. आ. से.)
२३९९	गम्लृ ((भ्वा. प. अ.)
२२९१	गर्ज (भ्वा. प. से.)
२५७१	गर्ज (पा.) (चु. उ. से.)
२२८८	गर्द (भ्वा. प. से.)
२५७१	गर्द (पा.) (चु. उ. से.)
२५७१	गर्ध (पा.) (चु. उ. से.)
२३०८	गर्ब (भ्वा. प. से)
२३३१	गर्व (भ्वा. प. से.)
२५७३	गर्व (चु. आ. से.)
२३३४	गर्ह (भ्वा. आ. से.)
२५७१	गर्ह (चु. उ. से.)
२३३०	गल (भ्वा. प. से.)
२५७१	गल (चु. आ. से.)
२३०२	गल्भ (भ्वा. आ. से.)
२३३४	गल्ह (भ्वा. आ. से.)
२५७३	गवेष (चु. उ. से.)
२५०४	गा (जु. प. अ.)
२३८७	गाङ् (भ्वा. आ. अ.)
२२५९	गाधृ (भ्वा. आ. से.)
२३३४	गाहू (भ्वा. आ. से.)
२५३७	गु. (तु. प. अ.)
२३८७	गुङ् (भ्वा. आ. अ.)
२५३६	गुज (तु. प. से.)
२२९१	गुजि (भ्वा. प. से.)
२५६३	गुठि (पा.) (चु. उ. से)
२५३६	गुड (तु. प. से.)
२५६७	गुडि (चु. उ. से.)
२५७३	गुण (चु. उ. से.)
२२६५	गुद (भ्वा. आ. से.)
२५०६	गुध (दि. प. से.)
२५५९	गुध (क्र्या. प. से.)
२५३६	गुम्फ (तु. प. से.)
२३९२	गुप (भ्वा. आ. से.)
२५२२	गुप (दि. प. से.)
२५७१	गुप (चु. उ. से.)
२३०२	गुपू (भ्वा. प. से.)
२५३६	गुफ (तु. प. से.)
२५३७	गुरी (तु. आ. से.)
२२६५	गुर्द (भ्वा. आ. से.)
२५७१	गुर्द (चु. उ. से.)
२३३१	गुर्वी (भ्वा. प. से.)
२३६३	गुहू (भ्वा. उ. से.)
२५७१	गूर (चु. आ. से.)
२५१२	गूरी (दि. आ. से.)
२३८४	गृ (भ्वा. प. अ.)
२५७१	गृ (चु. आ. से.)
२२९८	गृज (भ्वा. प. से.)
२२९८	गृजि (भ्वा. प. से.)
२५२२	गृधु (दि. प. से)
२५७३	गृह (चु. आ. से.)
२३३५	गृहू (भ्वा. आ. से.)
२५४०	गॄ (तु. प. से.)
२५५८	गॄ (क्र्या. प. से.)
२३००	गेपृ (भ्वा. आ. से.)
२३२९	गेवृ (भ्वा. आ. से.)

सूत्राङ्काः धातवः

सूत्राङ्काः	धातवः
२५७१	लुबि (चु. उ. से.)
२५२२	लुभ (दि. प. से.)
२५३६	लुभ (तु. प. से.)
२५५८	लूञ् (क्र्या. उ. से.)
२३३९	लूष (भ्वा. प. से.)
२५६७	लूष (चु. उ. से.)
२३००	लेपृ (भ्वा. आ. से.)
२२८९	लोकृ (भ्वा. आ. से.)
२५७१	लोकृ (चु. उ. से.)
२२९०	लोचृ (भ्वा. आ. से.)
२५७१	लोचृ (चु. उ. से.)
२२९९	लोडृ (भ्वा. प. से.)
२२९८	लोष्ट (भ्वा. आ. से.)
२३३९	वक्ष (भ्वा. प. से.)
२२८९	वकि (भ्वा. आ. से.)
२२८९	वकि (भ्वा. आ. से.)
२२८९	वख (भ्वा. प. से.)
२२८९	वखि (भ्वा. प. से.)
२२८९	वगि (भ्वा. , से.)
२२८९	वघि (भ्वा. आ. से.)
२४६३	वच (. अ.)
२५७२	वच (चु. उ. से.)
२२९८	वज (भ्वा. प. से.)
२५६७	वज (चु. उ. से.)
२३५३	वट (भ्वा. प. से.)
२५७३	वट (चु. उ. से.)
२५७४	वट (चु. उ. से.)
२२९९	वट (भ्वा. प. से.)
२५६७	वटि (चु. उ. से.)
२५७४	वटि (पा.) (चु. उ. से.)
२२९९	वठ (भ्वा. प. से.)
२२९८	वठि (भ्वा. आ. से.)
२२९८	वडि (भ्वा. आ. से.)
२५६७	वडि (पा.) चु. उ. से.)
२३१८	वण (भ्वा. प. से.)
२४१९	वद (भ्वा. प. से.)
२५७२	वद (चु. उ. से.)
२२६२	वदि (भ्वा. आ. से.)
२३५३	वन (भ्वा. प. से.)
२३१८	वन (भ्वा. प. से.)
२३१८	वन (भ्वा. प. से.)
२३५३	वनु (पा.) (भ्वा. प. से.)
२५४७	वनु (त. आ. से.)
२२९०	वञ्चु (भ्वा. प. से.)
२५७१	वञ्चु (चु. आ. से.)
२४०९	(टु) वप् (भ्वा. उ. से.)
२३३०	वभ्र (भ्वा. प. से.)
२३५५	(टु) वमु (भ्वा. प. से.)
२३२३	वय (भ्वा. आ. से.)
२५७२	वर (चु. उ. से.)
२२९०	वर्च (भ्वा. आ. से.)
२५६५	वर्ण (चु. उ. से.)
२५७४	वर्ण (चु. उ. से.)
२५७१	वर्ध (चु. उ. से.)
२३३८	वर्ष (भ्वा. आ. से.)
२३३४	वर्ह (भ्वा. आ. से.)
२३२९	वल (भ्वा. आ. से.)
२३५३	वलि (पा.) (भ्वा. प. से.)
२५६७	वल्क (चु. उ. से.)
२५७४	वल्क (चु. उ. से.)
२२८९	वल्ग (भ्वा. प. से.)
२३०२	वल्भ (भ्वा. आ. से.)
२३२९	वल्ल (भ्वा. आ. से.)
२३६४	वल्ह (भ्वा. आ. से.)
२४८८	वश (अ. प. से.)
२३३९	वष (भ्वा. प. से.)
२४०९	वस (भ्वा. प. अ.)
२४४०	वस (अ. आ. से.)
२५७१	वस (चु. उ. से.)
२५७४	वस (चु. उ. से.)
२५२२	वसु (दि. प. से)
२२८९	वस्क (भ्वा. आ. से.)
२५७१	वस्त (चु. आ. से.)
२४०९	वह (भ्वा. उ. अ.)
२३३४	वहि (भ्वा. आ. अ.)
२४६२	वा (अ. प. अ.)
२३३९	वाक्षि (भ्वा. प. से.)
२२९१	वाछि (भ्वा. प. से.)
२५७३	वात (चु. उ. से.)
२५१२	वाशृ (दि. आ. से.)
२५७३	वास (चु. उ. से.)
२५४३	विचिर् (रु. उ. अ.)
२५०३	विजिर् (जु. उ. अ.)
२५३५	(ओ) विजी (तु. आ. से.)
२५४६	(ओ) विजी (रु. प. से.)
२५४१	विच्छ (तु. प. से.)
२५७१	विच्छ (चु. उ. से.)
२२९९	विट (भ्वा. प. से.)
२२६५	विथृ (भ्वा. आ. से.)
२४६३	विद (अ. प. से.)
२५१३	विद (दि. आ. अ.)
२५४४	विद (रु. आ. अ.)
२५७१	विद (चु. आ. से.)
२५४२	विद्लृ (तु. उ. अ.)
२५३६	विध (तु. प. से.)
२५३६	विल (तु. प. से.)
२५६७	विल (चु. उ. से.)
२५४१	विश (तु. प. से.)
२५६०	विष (क्र्या. प. से.)
२३४१	विषु (भ्वा. प. से.)
२५७१	विष्क (चु. आ. से.)
२५७४	विष्क (चु. उ. से.)
२५०३	विष्लृ (जु. उ. अ.)
२५२२	विस (दि. प. से.)
२४६२	वी (अ. प. अ.)
२५३७	वीर (चु. आ. से.)
२२९०	वुगि (भ्वा. प. से.)
२३६२	(उ) वुन्दिर (भ्वा. उ. से.)
२५२२	वुस (दि. प. से.)
२२८९	वृक (भ्वा. आ. से.)
२३३४	वृक्ष (भ्वा. आ. से.)
२५५९	वृङ (क्र्या. आ. से.)
२४४०	वृजि (पा.) (अ. आ. से)
२४४०	वृजी (अ. आ. से.)
२५४६	वृजी (रु. प. से.)
२५७२	वृजी (चु. उ. से.)
२५२६	वृञ् (स्वा. उ. से.)
२५७२	वृञ् (चु. उ. से.)
२५३६	वृण (तु. प. से.)
२३४६	वृतु (भ्वा. आ. से.)
२५११	वृतु (दि. आ. से.)
२५७१	वृतु (चु. उ. से.)
२३४८	वृधु (भ्वा. आ. से.)
२५७१	वृधु (चु. उ. से.)
२५२२	वृश (दि. प. से.)
२५७१	वृष (चु. आ. से.)
२३४१	वृषु (भ्वा. प. से.)
२५३६	वृहू (तु. प. से.)
२५५८	वॄ (क्र्या. प. से.)
२५५८	वॄञ् (क्र्या. उ. से.)
२४१०	वेञ् (भ्वा. उ. से.)
२३६१	वेणृ (भ्वा. उ. से.)
२२६५	वेथृ (भ्वा. आ. से.)
२३६२	वेतृ (पा.) (भ्वा. उ. से.)
२३००	(टु) वेपृ (भ्वा. आ. से.)
२५७३	वेल (चु. उ. से.)
२३३०	वेलृ (भ्वा. प. से.)
२३३०	वेल्ल (भ्वा. प. से.)

इति धातुसूची समाप्ता ।

कौमुद्यन्तर्गतवार्तिकसूची।

जिन सूत्रोंपर जो वार्तिक हैं उन सूत्रोंके अंक।

इति वार्तिकसूची समाप्ता ।

परिभाषासूची।

इति परिभाषासूची समाप्त।

उणादिसूत्रसूची ।

इत्युणादिसूची ।

फिट्सूत्रसूची ।

इति फिट्सूत्रसूची ।

आकाशसप्ताङ्कविधुप्रमेऽब्दे मार्गे सिते विष्णुतिथौ बुधे च ।
कृपाकटाक्षैर्जगतो नियन्तुः सञ्जीवनी पूर्तिमगान्ममेयम् ॥

शुभमस्तु ।

महावीर संकट हरन, पवनपुत्र बलधाम । कृपा करहु जन जान मोहि, करहु सफल मनकाम ॥

श्रीसाम्बशिवार्पणमस्तु ।

पुस्तक मिलनेका पता–खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बंबई.